ॐ

गांधी-हरीभाईदेवकरण जैनग्रंथमाला ।

४

आचार्यप्रवर श्रीमन्नेमिचंद्र सैद्धांतिक चक्रवर्तिविरचित

गोम्मटसार ।

(जीवकांड-पूर्वार्द्ध)

श्रीमद्केशववर्णीकृत जीवतत्त्वप्रदीपिका और अभयचंद्राचार्यकृत मंदप्रबोधिका

नामकी दो संस्कृत टीका

तथा पंडित टोडरमलजी कृत सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामकी हिंदीटीकासहित ।

जिसको

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाके महामंत्री पन्नालाल बाकलीवालने

संस्थाके जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेसमें छपाकर

प्रकाशित किया ।

संपादक—

पं० गजाधरलाल जैन, न्यायतीर्थ

और

श्रीलालजैन काव्यतीर्थ

मुद्रक—

श्रीलालजैन काव्यतीर्थ

जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,

नं० ८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्ता।

गोम्मटसार जीवकांड ।

(उत्तरार्द्ध)

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाके

परमसंस्थापक और संरक्षक—



दानवीर स्वर्गीय शेठ बालचंद रामचंदजी गांधी, सोलापूर।

जन्म संवत् १९२१ मृत्यु सवत् १९७४

फाल्गुन शुद्ध ८। आश्विन वदी ८ रविवार।



दानवीर स्वर्गीय शेठ फूलचंद रामचदजी गांधी, सोलापूर।

जन्म संवत् १९२७ मृत्यु सवत् १९७४

चैत्र वदी ६। आश्विन वदी २ सोमवार।



दानवीर श्रीयुत शेठ हीराचंदरामचंदजी गांधी, सोलापूर।

ॐ

गांधी–हरीभाईदेवकरण जैनग्रंथमाला ।

४

आचार्यप्रवर श्रीमन्नेमिचंद्रसैद्धांतिकचक्रवर्तिविरचित–

गोम्मटसार ।

(जीवकांड–उत्तरार्द्ध)

श्रीमत्केसववर्णीकृत जीवतत्त्वप्रदीपिका और अभयचंद्राचार्यकृत मंदप्रबोधिका

नामकी दो संस्कृत टीका

तथा स्वर्गीय पंडित टोडरमलजी कृत सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामकी हिंदीभाषाटीकासहित ।

जिसको

भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाके महामंत्री पन्नालाल बाकलीवालने

संस्थाके जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेसमें छपाकर

प्रकाशित किया ।

संपादक—

पं० गजाधरलाल जैन न्यायतीर्थ

और

श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ।

मुद्रक—

श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ,

जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,

नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

भाषाटीकाकार–स्वर्गीय पंडित टोडरमलजीकृत

गोम्मटसार–पीठिका ।

बंदौं ज्ञानानंदकर, नेमिचंद गुणकंद ।
माधववंदितविमलपद, पुण्यपयोनिधिनंद ॥ १ ॥

दोषदहन गुनगहनघन, अरिकरिहरि अरहंत ।
स्वानुभूतिरमनीरमन, जगनायक जयवंत ॥ २ ॥

सिद्ध सुद्ध साधितसहज, स्वरससुधारसधार ।
समयसार शिव सर्वगत, नमत होहु सुखकार ॥ ३ ॥

जैनी वानी विविधविधि, वरनत विश्वप्रमान ।
स्यात्पदमुद्रित अहितहर, करहु सकल कल्यान ॥ ४ ॥

मैं नमो नगन जैन जन, ज्ञानध्यानधनलीन ।
मैनमानविन दानघन, एनहीन तनछीन ॥ ५ ॥ यहु चित्रालंकारयुक्त है ।

इहविधि मंगल करन तैं, सवविधि मंगल होत ।
होत उदंगल दूरि सव, तम ज्यों भानु उदोत ॥ ६ ॥

अथ मंगलाचरणकरि श्रीमद्गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ ताकी देशभाषामयी टीकाकरनेका उद्यम करौ हौं। सो यहु ग्रंथसमुद्र तौ ऐसा है जो सातिशयबुद्धिबलसंयुक्त जीवनिकरि भी जाका अवगाह होना दुर्लभ है अर मैं मंदबुद्धि अर्थप्रकाशनेरूप याकी टीका करने विचारौं हौं। सो यहु विचार ऐसा भया जैसैं कोऊ अपने मुखतैं जिनेंद्र देवका सर्वगुण वर्णन कीया चाहै, सो कैसैं बनै? इहां कोऊ कहै-नाहीं वनै है तो उद्यम काहेकौं करौ हौ? ताकौं कहिये है—जैसैं जिनेंद्रदेवके सर्व गुण कहनेकी सामर्थ्य नाहीं तथापि भक्त पुरुष भक्तिके वशतैं अपनी बुद्धि अनुसार गुण वर्णन करै तैसैं इस ग्रंथके संपूर्ण अर्थ प्रकाशनेकी सामर्थ्य नाहीं तथापि अनुरागके वशतैं मैं अपनी बुद्धि अनुसार अर्थ प्रकाशोंगा। बहुरि कोऊ कहै कि-अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रंथाभ्यास करो, मंदबुद्धिनिकौं टीका करनेका अधिकारी होना युक्त नाहीं। ताकौं कहिये है—जैसैं किसी शिष्यशालाविषैं बहुत बालक पढै हैं तिनिविषैं कोऊ बालक विशेषज्ञानरहित है तथापि अन्य बालकनितैं अधिक पढ्या है सौ आपतैं थोरे पढनेवाले बालकनिकौं अपने समान ज्ञान होनेके अर्थि किछू लिखि देना आदि कार्यका अधिकारी हो है तैसैं मेरैं विशेषज्ञान नाहीं, तथापि कालदोषतैं मोतैं भी मंदबुद्धि हैं अर होंहिगे तिनिकैं मेरे समान इस ग्रंथका ज्ञान होनेके अर्थि टीका करनेका अधिकारी भया हौं। बहुरि कोऊ कहै कि—यहु कार्य करना तो विचार्या परंतु जैसैं छोटा मनुष्य बडा कार्य करना विचारै तहां उस कार्यविषैं चूक होइ ही, तहां वह हास्यकौं पावै है तैसैं तुम भी मंदबुद्धि होय इस ग्रंथकी टीका करनी विचारौ हौ सो चूक होइगी तहां हास्यकौं पावोगे। ताकौं कहिये है--यहु तौ सत्य है कि-मैं मंदबुद्धि होइ ऐसे महान् ग्रंथकी टीका करनी विचारौ हौं सो चूक तौ होइ परंतु सज्जन हास्य नाहीं करैंगे। जैसैं औरनितैं अधिक पढ्या बालक कहीं भूलै तब बडे ऐसा विचार करै हैं कि बालक है भूलै ही भूलै परंतु और बालकनितैं भला है ऐसैं विचारि हास्य नाहीं करै हैं

तैसें मैं इहां कहीं भूलोंगा तहां सज्जन पुरुष ऐसा विचारैंगे कि-मंदबुद्धि था सो भूलै ही भूलै परंतु केतेइक अतिमंदबुद्धीनितैं भला है ऐसें विचारि हास्य न करैंगे । बहुरि कोऊ कहै कि-सज्जन तो हास्य न करैंगे परंतु दुर्जन तौ हास्य करैंगे ? ताकौं कहिये है कि--दुष्ट तौ ऐसें ही हैं, जिनके हृदयविषैं औरनिके निर्दोष भलेगुण भी विपरीतरूप ही भासैं। सो उनका भयकरि जामैं अपना हित होय ऐसे कार्यकौं कोन न करैगा। बहुरि कोऊ कहै कि पूर्व ग्रंथ थे ही, तिनिका अभ्यास करने करावनेतैं ही हित हो है, मंदबुद्धीनिकरि ग्रंथकी टीका करनेकी महंतता काहेकौं प्रगट कीजिये ? ताकौं कहिये है कि-ग्रंथ अभ्यास करनेतैं ग्रंथकी टीका रचना करनेविषैं उपयोग विशेष लागै है, अर्थ भी विशेष प्रतिभासै है बहुरि अन्य जीवनिकौं ग्रंथका अभ्यास करावनेका संयोग होना दुर्लभ अर संयोग होइ तौ कोई ही जीवकै अभ्यास होइ । अर ग्रंथकी टीका बनै तौ परंपरा अनेक जीवनिकैं अर्थका ज्ञान होइ। तातैं अपना अर अन्य जीवनिका विशेष हित होनेके अर्थि टीका करिये है, महंतताका तौ किछू प्रयोजन नाहीं । बहुरि कोऊ कहै कि-इस कार्यविषैं विशेष हित हाहै सो सत्य, परंतु मंदबुद्धितैं कहीं भूलिकरि अन्यथा अर्थ लिखिए, तहां महत्पाप उपजनेतैं अहित भी तौ होइ ? ताकौं कहिये है-- यथार्थ सर्व पदार्थनिका ज्ञाता तौ केवली भगवान है औरनिकैं ज्ञानावरणका क्षयोपशमके अनुसारी ज्ञान है तिनिकौं कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभासै परंतु जिनदेवका ऐसा उपदेश है-कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनिके वचनकी प्रतीतिकरि वा हठकरि वा क्रोध मान माया लोभकरि वा हास्य भयादिककरि जो अन्यथा श्रद्धान करै वा उपदेश देइ सो महापापी है अर विशेष ज्ञानवान गुरुके निमित्त विना, वा अपने विशेष क्षयोपशम विना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासै अर यहु ऐसा जानै कि जिनदेवका उपदेश ऐसें ही है ऐसा जानि कोई सूक्ष्म अर्थकौं अन्यथा श्रद्धहै वा उपदेश देइ तौ याकौं महत् पाप न होइ सोई इस ग्रंथविषैं भी आचार्य कहा है--

"सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥" २७ ॥ जीवकांड ।

वहुरि कोऊ कहे कि-तुम विशेष ज्ञानीतें ग्रंथका यथार्थ सर्व अर्थका निर्णयकरि टीका करनेका प्रारंभ क्यों न कीया ? ताकौं कहिये है-काल दोषतें केवली श्रुतकेवलीका तौ इहां अभाव ही भया वहुरि विशेषज्ञानी भी विरले पाइए। जो कोई है तौ दूर क्षेत्रविषैं है, तिनिका संयोग दुर्लभ। अर आयु बुद्धि बल पराक्रम आदि तुच्छ रहि गए। तातैं जो बन्या सो अर्थका निर्णय कीया, अवशेष जैसें है तैसैं प्रमाण है। वहुरि कोऊ कहे कि-तुम कही सो सत्य, परंतु इस ग्रंथविषैं जो चूक होइगी ताके शुद्ध होनेका किछू उपाय भी है ? ताकौं कहिये है-एक उपाय यहु कीजिये है-जो विशेष ज्ञानवान पुरुषनिका प्रत्यक्ष संयोग नाहीं, तातैं परोक्ष ही तिनिस्यों ऐसी वीनती करौ हौं कि-मैं मंदबुद्धि हौं विशेषज्ञानरहित हौं, अविवेकी हौं, शब्द न्याय गणित धार्मिक आदि ग्रंथनिका विशेष अभ्यास मेरे नाहीं है तातैं शक्तिहीन हौं, तथापि धर्मानुरागके वशतैं टीका करनेका विचार कीया सो याविषैं जहां जहां चूक होइ, अन्यथा अर्थ होइ, तहां तहां मेरे ऊपरि क्षमाकरि तिस अन्यथा अर्थकौं दूरिकरि यथार्थ अर्थ लिखना ऐसैं विनतीकरि जो चूक होइगी ताके शुद्ध होनेका उपाय कीया है। वहुरि कोऊ कहे कि-तुम टीका करनी विचारी सो तौ भला कीया परंतु ऐसे महान ग्रंथनिकी टीका संस्कृत ही चाहिये, भाषाविषैं याकी गंभीरता भासै नाहीं। ताकौं कहिये है-इस ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृतटीका तौ पूर्वैं ही है। परंतु तहां संस्कृत गणित आम्नाय आदिका ज्ञानरहित जे मंदबुद्धि हैं तिनिका प्रवेश न हो है। वहुरि इहां कालदोषतें बुद्ध्यादिकके तुच्छ होनेकरि संस्कृतादि ज्ञानरहित घने जीव हैं। तिनिके इस ग्रंथके अर्थका ज्ञान होनेके अर्थि भाषा टीका करिए है। सो जे जीव संस्कृतादि विशेषज्ञानयुक्त हैं ते मूलग्रंथ वा संस्कृतटीकातैं अर्थ धारौ। वहुरि जे जीव संस्कृतादि विशेष ज्ञानरहित हैं ते इस भाषाटीकातैं अर्थ धारौ। बहुरि जे जीव संस्कृतादि ज्ञानसहित हैं परंतु गणित आम्नायादिकके ज्ञानका अभावतैं मूलग्रंथ वा संस्कृतटीकाविषैं प्रवेश न पावे हैं ते इस भाषा टीकातैं अर्थकौं धारि मूलग्रंथ वा संस्कृतटीकाविषैं प्रवेश करहु। वहुरि जो भाषाटीकातैं मूलग्रंथ वा संस्कृतटीकाविषैं अधिक अर्थ होइ ताके जाननेका अन्य उपाय बने सो करहु। इहां कोऊ कहै-संस्कृतज्ञानवालोंकैं

भाषा अभ्यासविषैं अधिकार नाहीं। ताकौं कहिये है-संस्कृतज्ञानवालोंकौं भाषा वांचनेतैं कोई दोषतो नाही उपजै है अपना प्रयोजन जैसैं सिद्ध होइ तैसैं ही करना। पूर्वै अर्द्धमागधी आदि भाषामय महान ग्रंथ थे बहुरि बुद्धिकी मंदता जीवनिकै भई तब संस्कृतादि भाषामय ग्रंथ बनै। अब विशेष बुद्धिकी मंदता जीवनिकैं भई तातैं देश भाषामय ग्रंथ करनेका विचार भया। बहुरि संस्कृतादिकका अर्थ भी अब भाषाद्वारकरि जीवनिकौं समझाइये है। इहां भाषाद्वारकरि ही अर्थ लिख्या तो किछू दोष नाहीं है। ऐसैं विचारि श्रीमद्गोम्मटसार द्वितीयनामा पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृतटीका ताकै अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा यहु देशभाषामयी टीका करनेका निश्चय कीया है सो श्रीअरहंतदेव वा जिनवानी, वा निर्ग्रंथ गुरुनिके प्रसादतैं वा मूलग्रंथकर्ता नेमिचंद्र आदि आचार्यनिके प्रसादतैं यहु कार्य सिद्ध होहु॥

अब इस शास्त्रके अभ्यासविषैं जीवनिकौं सन्मुख करिए है। हे भव्यजीव हो ! तुम अपने हितकौं वांछो हौ तौ तुमकौं जैसैं बनै तैसैं या शास्त्रका अभ्यास करना। जातैं आत्माका हित मोक्ष है। मोक्ष विना अन्य जो है सो परसंयोगजनित है, विनाशीक है, दुःखमय है। अर मोक्ष है सोई निज स्वभाव है, अविनाशी है, अनंत सुखमय है। तातैं मोक्ष पद पावनेका उपाय तुमकौं करना सो मोक्षके उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र हैं। सो इनकी प्राप्ति जीवादिकके स्वरूप जाननेही तैं हो है। सो कहिए है—जीवादि तत्त्वनिका श्रद्धान सम्यग्दर्शन, सो विना जानैं श्रद्धानका होना आकाशका फूल समान है। पहिलैं जानै तब पीछैं तैसैं ही प्रतीति करि श्रद्धानकौं प्राप्त हो है। तातैं जीवादिकका जानना श्रद्धान होनेतैं पहिलैं जो होइ सोई तिनकै श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शनका कारण जानना। बहुरि श्रद्धान भए जो जीवादिकका जानना होइ ताहीका नाम सम्यग्ज्ञान है। बहुरि श्रद्धानपूर्वक जीवादि जानै स्वयमेव उदासीन होइ हेयकौं त्यागै उपादेयकौं ग्रहै तब सम्यक् चारित्र हो है। अज्ञानपूर्वक क्रियाकांडतैं सम्यक्चारित्र होइ नाहीं। ऐसैं जीवादिककौं जानने हीतैं सम्यग्दर्शनादि मोक्षके उपायनिकी प्राप्ति निश्चय करनी। सो इस शास्त्रके अभ्यासतैं जीवादिकका जानना नीकैं हो

है। जातैं संसार है सोई जीव अर कर्मका संबंध रूप है । बहुरि विशेष जानैं इनका संबंधका जो अभाव होइ सोई मोक्ष है। सो इस शास्त्रविषैं जीव अर कर्मका ही विशेष निरूपण है । अथवा जीवादिकका षड् द्रव्य सप्त-तत्त्वादिकनिका भी या विषैं नीकैं निरूपण है तातैं इस शास्त्रका अभ्यास अवश्य करना।

अब इहां केई जीव इस शास्त्रका अभ्यासविषैं अरुचिहोनेकौं कारण विपरीत विचार प्रकट करै हैं तिनिकौं समझाइए है। तहां केई जीव प्रथमानुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोगकी केवल पक्ष करि इस करणानुयोगरूप शास्त्रविषैं अभ्यासकौं निषेधै हैं । तिनिविषैं प्रथमानुयोगका पक्षपाती कहै है कि–इदानीं जीवनिकी बुद्धि मंद बहुत है तिनिकैं ऐसे सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्रविषैं किछू समझना होइ नाही तातैं तीर्थंकरादिककी कथाका उपदेश दीजिए तौ नीकै समझैं अर समझिकरि पापतैं डरैं, धर्मानुरागरूप होंइ, तातैं प्रथमानुयोगका उपदेश कार्यकारी है ताकौं कहिये है–

अब भी सर्व जीव तौ एकसे न भए हैं, हीनाधिक बुद्धि देखिए है तातैं जैसा जीव होइ, तैसा उपदेश देना। अथवा मंदबुद्धीभी सिखाए हुए अभ्यासतैं बुद्धिमान होते देखिए है। तातैं जे बुद्धिमान हैं तिनिकौं तौ यहु ग्रंथ कार्यकारी है ही, अर जे मंदबुद्धी हैं ते विशेषबुद्धिनितैं सामान्य विशेष रूप गुणस्थानादिकका स्वरूप सीखि इस शास्त्रका अभ्यास विषैं प्रवर्त्तौ । इहां मंदबुद्धी कहै हैं कि इस गोम्मटसार शास्त्रविषैं तौ गणित समस्या अनेक अपूर्व कथनकरि बहुत कठिनता सुनिए है हम कैसैं याविषैं प्रवेश पावैं। तिनिकौं कहिये है–भय मति करौ। इस भाषा टीकाविषै गणित आदिका अर्थ सुगमरूप करि कह्या है । तातैं प्रवेश पावना कठिन रह्या नाहीं। बहुरि या शास्त्रविषैं कथन कहीं सामान्य है, कहीं विशेष है, कहीं सुगम है, कहीं कठिन है तहां जो सर्व अभ्यास बनै तौ नीकै ही है। अर जो न बनै तौ अपनी बुद्धिके अनुसार जैसा बनै तैसा ही अभ्यास करौ, अपने उपायमें आलस्य करना नाहीं । बहुरि तैं कह्या–प्रथमानुयोगसंबंधी कथादिक सुनैं पापतैं डरै हैं अर धर्मानुरागरूप हो हैं। सो तहां तौ दोऊ कार्य शिथिलता लीए हो हैं। इहां पाप पुण्यके कारण कार्यादिक

विशेष जाननेतैं ते दोऊ कार्य दृढता लिएँ हो हैं। तातैं याका अभ्यास करना। ऐसें प्रथमानुयोगके पक्षपातीकौं इस शास्त्रका अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

अब चरणानुयोगका पक्षपाती कहै है कि-इस शास्त्रविषैं कह्या जीवकर्मका स्वरूप, सो जैसें है तैसें है ही तिनिकौं जानैं कहा सिद्धि हो है, जो हिंसादिकका त्यागकरि व्रत पालिए, वा उपवासादि तप करिए, वा अरहंतादिककी पूजा, नामस्मरण आदि भक्ति करिए, वा दान दीजिए, वा विषयादिकस्यों उदासीन हूजे इत्यादि शुभ कार्य करिए तो आत्महित होइ, तातैं इनका प्ररूपक चरणानुयोगका उपदेशादिक करना। ताकौं कहिए है-हे स्थूलबुद्धि! तैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे ते करने योग्य ही हैं, परंतु ते सर्व सम्यक्त्व विना ऐसें है जैसें अंक विना बिंदी। अर जीवादिकका स्वरूप जानैं विना सम्यक्त्वका होना ऐसा, जैसा बांझका पुत्र। तातैं जीवादिक जाननेके अर्थि इस शास्त्रका अभ्यास अवश्य करना। बहुरि तैं जैसें व्रतादिक शुभ कार्य कहे अर तिनितैं पुण्यबंध होहै तैसें जीवादिकका स्वरूप जाननेरूप ज्ञानाभ्यास है सो प्रधान शुभ कार्य है। यातैं सातिशय पुण्यका बंध हो है। बहुरि तिन व्रतादिकनिविषैं भी ज्ञानाभ्यासकी ही प्रधानता है सो कहिए है—

जो जीव प्रथम जीवसमासादि जीवादिकके विशेष जानैं, पीछैं यथार्थ ज्ञानकरि हिंसादिककौं त्यागि व्रत धारै सोई व्रती है। बहुरि जीवादिकके विशेष जानैं विना कथंचित् हिंसादिकका त्यागतैं आपकौं व्रती मानै सो व्रती नाहीं। तातैं व्रत पालनेविषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। बहुरि तप दोय प्रकार है-एक बहिरंग, एक अंतरंग। तहां जाकरि शरीरका दमन होइ सो बहिरंग तप है, अर जातैं मनका दमन होइ सो अंतरंग तप है। इनिविषैं बहिरंग तपतैं अंतरंग तप उत्कृष्ट है। सो उपवासादिक तौ बहिरंग तप है, ज्ञानाभ्यास अंतरंग तप है। सिद्धांतविषैं भी छह प्रकार अंतरंग तपनिविषैं चौथा स्वाध्यायनामा तप कह्या है, तिसतैं उत्कृष्ट व्युत्सर्ग अर ध्यान ही है। तातैं तप करनेविषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। बहुरि जीवादिकके विशेषरूप गुणस्थानादिकनिका स्वरूप जानैं ही अरहंतादिकनिका स्वरूप नीकै पहिचानिए है, वा अपनी अवस्था पहिचानिए है। ऐसी पहिचानि

भए जो तीव्र अंतरंग भक्ति प्रकट हो है सोई बहुत कार्यकारी है। बहुरि जो कुलक्रमादिकतैं भक्ति हो है सो किंचिन्मात्र ही फलकी दाता है। तातैं भक्तिविषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। बहुरि दान चार प्रकार है। तिनिविषैं आहारदान, औषधदान, अभयदान तौ तात्कालिक क्षुधाके दुःखकौं वा रोगके दुःखकौं, वा मरणादिके दुःखहीकौं दूर करै हैं। अर ज्ञानदान है सो अनंतभव संतानसंबंधी है दुःख दूर करनेकौं कारण है। तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकनिकैं भी ज्ञानदानकी प्रवृत्ति है। तातैं ज्ञानदान उत्कृष्ट है सो अपनैं ज्ञानाभ्यास होइ तो अपना भला करै, अर अन्य जीवनिकौं ज्ञानदान देवै। ज्ञानाभ्यास विना ज्ञानदान देना कैसैं होइ? तातैं दानविषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। बहुरि जैसैं जन्मतैं ही केई पुरुष ठिगनके घर गए। तहां तिन ठिगनिकौं अपना मानै हैं बहुरि कदाचित् कोऊ पुरुष किसी निमित्तस्यों अपने कुलका वा ठिगनिका यथार्थ ज्ञान होनैतैं ठिगनिस्यों अंतरगविषैं उदासीन भया तिनिकौं परजानि संबंध छुडाया चाहै है, वाह्य जैसा निमित्त है तैसें प्रवर्त्तै है। बहुरि कोऊ पुरुष तिन ठिगनिकौं अपना ही जानै है अर किसी कारणतैं कोऊ ठिगस्यों अनुरागरूप प्रवर्त्तै है, कोई ठिगस्यों लडिकरि उदासीन भया आहारादिकका त्यागी होइ है। तैसैं अनादितैं सर्व जीव संसारविषैं प्राप्त हैं, तहां कर्मनिकौं अपने मानै हैं। बहुरि कोई जीव किसी निमित्तस्यों जीवका अर कर्मका यथार्थ ज्ञान होनैतैं कर्मनिस्यों उदासीन भया तिनिकौं परजानने लगा, तिनस्यों संबंध छुडाया चाहै है वाह्य जैसा निमित्त है तैसें वर्त्तै है। ऐसें जो ज्ञानाभ्यासतैं उदासीनता होइ सोई कार्यकारी है। बहुरि कोई जीव तिन कर्मनिकौं अपने जानै हैं, अर किसी कारणतैं कोई कर्मस्यों अनुराग रूप प्रवर्तै हैं, कोई अशुभ कर्मस्यों दुःखका कारण जानि उदासीन भया विषयादिकका त्यागी हो है। ऐसैं ज्ञानविना जो उदासीनता होइ सो पुण्यफलकी दाता है, मोक्ष कार्यकौं न साधै है। तातैं उदासीनताविषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। याही प्रकार अन्य भी शुभकार्यनिविषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना। देखो! महामुनीनिकैं भी ध्यान अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। तातैं शास्त्र अध्ययनतैं जीव कर्मका स्वरूप जानि स्वरूपध्यान करना।

बहुरि इहां कोऊ तर्क करै कि--कोई जीव शास्त्र अध्ययन तौ बहुत करै है अर विषयादिकका त्यागी न हो है ताकैं शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है कि नाहीं ? जो है ! तौ महंत पुरुष काहेकौं विषयादिक तजैं, अर नाहीं ! तौ ज्ञानाभ्यासका महिमा कहा रह्या ? ताका समाधान--शास्त्राभ्यासी दोय प्रकार हैं एक लोभार्थी एक धर्मार्थी। तहां जो अंतरंग अनुराग विना ख्याति पूजा लाभादिकके अर्थि शास्त्राभ्यास करै सो लोभार्थी है, सो विषयादिकका त्याग नाही करै है। अथवा ख्याति पूजा लाभादिककै अर्थि विषयादिकका त्याग भी करै है तौ भी ताका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नाहीं । बहुरि जो अंतरंग अनुरागतैं आत्महितके अर्थि शास्त्राभ्यास करै है सो धर्मार्थी है। सो प्रथम तौ जैन शास्त्र ऐसे हैं जिनका धमार्थी होइ अभ्यास करै सो विषयादिकका त्याग करै ही करै। ताकैं तौ ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही । बहुरि कदाचित् पूर्वकर्मका उदयकी प्रबलतातैं न्यायरूप विषयादिकका त्याग न बनै है तौ भी ताकैं सम्यग्दर्शन ज्ञानके होनेतैं ज्ञानाभ्यास कार्यकारी हो है। जैसैं असंयत गुणस्थानविषैं विषयादिकका त्यागविना भी मोक्षमार्गपना संभवै है । इहां प्रश्न जो धर्मार्थी होइ, जैन शास्त्र अभ्यासै, ताकैं विषयादिकका त्याग न होइ सो यहु तौ बनै नाहीं। जातैं विषयादिकका सेवन परिणामनितैं हो है, परिणाम स्वाधीन हैं। तहां समाधान--परिणाम ही दोय प्रकार है । एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक । तहां अपने अभिप्रायके अनुसारि होइ सो बुद्धिपूर्वक । अर दैवनिमित्ततैं अपने अभिप्रायतैं अन्यथा होइ सो अबुद्धिपूर्वक। जैसैं सामायिक करनेतैं धर्मात्माका अभिप्राय ऐसा है कि--मैं मेरे परिणाम शुभरूप राखौं । तहां जो शुभपरिणाम ही होइ सो तौ बुद्धिपूर्वक। कर्मोदयतैं स्वयमेव अशुभ परिणाम होइ सो अबुद्धिपूर्वक जानने । तैसैं धर्मार्थी होइ जो जैन शास्त्र अभ्यासै है ताका अभिप्राय तौ विषयादिकका त्यागरूप वीतराग भावका ही होइ, इहां वीतराग भाव होइ तौ बुद्धिपूर्वक है। अर चारित्रमोहके उदयतैं सराग भाव होइ तौ अबुद्धिपूर्वक है । तातैं विनावश जे सरागभाव हो हैं तिन करि ताकैं विषयादिककी प्रवृत्ति देखिये है जातैं बाह्य प्रवृत्तिका कारण परिणाम है । इहां तर्क--जो ऐसैं हैं तो हम भी

विषयादिक सेवेंगे अर कहेंगे--हमारे उदयाधीन कार्य हो है। ताकौं कहिये है-रे मूर्ख ! किछू कहनेतैं तौ होता नाहीं ! सिद्धि तौ अभिप्रायके अनुसार है तातैं जैनशास्त्रके अभ्यासतैं अपना अभिप्रायकौं सम्यक् रूप करना। अर अंतरंगविषैं विषयादिक सेवनका अभिप्राय होतैं तौ धर्मार्थी नाम पावै है नाहीं। ऐसैं चरणानुयोगके पक्षपातीकौं इस शास्त्रका अभ्यासविषैं सन्मुख कीया।

अब द्रव्यानुयोगकाँ पक्षपाती कहै है कि इस शास्त्रविषैं जीवके गुणस्थानादिक रूप विशेष अर कर्मके विशेष वर्णन कीए, तिनकौं जानैं अनेक विकल्प तरंग उठैं अर किछू सिद्धि नाहीं। तातैं अपने शुद्धस्वरूपकौं अनुभवना। वा अपना अर परका भेदविज्ञान करना। इतना ही कार्यकारी है अथवा इनके उपदेशक जे अध्यात्मशास्त्र, तिनकाही अभ्यास करना योग्य है। ताकौं कहिए है–

हे सूक्ष्माभासबुद्धी ! तैं कह्या सो सत्य, परंतु अपनी अवस्था देखनी। जो स्वरूपानुभवविषैं वा भेदविज्ञानविषैं उपयोग निरंतर रहै है तौ काहेकौं अन्य विकल्प करने। तहां ही स्वरूपानंदसुधारसका स्वादी होइ संतुष्ट होना। परंतु नीचली अवस्थाविषैं तहां निरंतर उपयोग रहै नाहीं, उपयोग अनेक अवलंबनिकौं चाहै है। तातैं जिसकाल तहां उपयोग न लागै तब गुणस्थानादि विशेष जाननेका अभ्यास करना। बहुरि तैं कह्या कि-अध्यात्मशास्त्रनिकाही अभ्यास करना सो युक्त ही है। परंतु तहां भेदविज्ञान करनेके अर्थि स्वपरका सामान्यपनैं स्वरूपनिरूपण है। अर विशेष ज्ञान विना सामान्यका जानना स्पष्ट होइ नाहीं। तातैं जीवके अर कर्मके विशेष नीकैं जानैं ही स्वपरका जानना स्पष्ट होहै। तिस विशेष जाननेकौं इस शास्त्रका अभ्यास करना। जातैं सामान्य शास्त्रतैं विशेष शास्त्र बलवान है। सो ही कह्या है–"सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।" इहां कहै हैं कि-अध्यात्मशास्त्रनिविषैं तौ गुणस्थानादि विशेषनिकरि रहित शुद्धस्वरूपका अनुभवना उपादेय कह्या है। इहां गुणस्थानादिसहित जीवका वर्णन है। तातैं अध्यात्मशास्त्र अर इस शास्त्रविषैं तौ विरुद्ध भासै है सो कैसैं हैं ? ताकौं कहिये है—

नय दोय प्रकार है-एक निश्चय, एक व्यवहार। तहां निश्चयनयकरि जीवका स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेदवस्तु मात्र ही है। अर व्यवहारनयकरि गुणस्थानादि विशेषसंयुक्त अनेक प्रकार है। तहां जे जीव सर्वोत्कृष्ट अभेद एक स्वभावकौं अनुभवै हैं तिनकौं तौ तहां शुद्ध उपदेशरूप जो शुद्धनिश्चय सो ही कार्यकारी है। बहुरि जे स्वानुभव दशाकौं न प्राप्त भए, वा स्वानुभवदशातैं छूटि सविकल्पदशाकौं प्राप्त भए ऐसे अनुत्कृष्ट जो अशुद्ध स्वभाव, तिहिविषैं तिष्ठते जीव तिनकौं व्यवहारनय प्रयोजनवान है। सोई आत्मख्याति अध्यात्मशास्त्र विषैं कह्या है-

सुद्धो सुद्धाएसो णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे ॥ १४ समयसार

इस सूत्रका व्याख्यानका अर्थ विचार देखना। बहुरि सुनि! तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशाविषैं तौ प्रवर्त्तैं नाहीं। अर विकल्प जानि गुणस्थानादि भेदनिका विचार न करैगा तौ तू इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होय अशुभोपयोग ही विषैं प्रवर्त्तैगा तहां तेरा बुरा होयगा। बहुरि सुनि! सामान्यपनैं तौ वेदांत आदि शास्त्राभासनिविषैं भी जीवका स्वरूप शुद्ध कहे हैं, तहां विशेष जानैं विना यथार्थ अयथार्थका निश्चय कैसैं होय? तातैं गुणस्थानादि विशेष जानैं जीवकी शुद्ध अशुद्ध मिश्र अवस्थाका ज्ञान होइ, तब निर्णयकरि यथार्थका अंगीकार करै। बहुरि सुनि! जीवका गुण ज्ञान है, सो विशेष जानैं आत्मगुण प्रकट होइ, अपना श्रद्धान भी दृढ होय। जैसैं सम्यक्त्व है, सो केवल ज्ञान भए परमावगाढ नाम पावै है तातैं विशेष जानना।

बहुरि वह कहै है-तुम कह्या सो सत्य, परंतु करणानुयोगतैं विशेष जानैं भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्मश्रद्धान विना संसारी ही रहै। अर अध्यात्म अनुसारि तिर्यंचादिककैं स्तोक श्रद्धानतैं भी सम्यक्त्व हो है। वा तुषमाष भिन्न इतनाही श्रद्धानतैं शिवभूति मुनि मुक्त भया। तातैं हमारी तौ बुद्धितैं विशेष विकल्पनिका साधन होता नाहीं। प्रयोजनमात्र अध्यात्म अभ्यास करैंगे। याकौं कहिये है-

जो द्रव्यलिंगी जैसैं करणानुयोगतैं विशेष जानै है तैसैं अध्यात्मशास्त्रनिका भी ज्ञान वाकैं होय। परंतु मिथ्यात्वके उदयतैं अयथार्थ साधन करै तौ शास्त्र कहा करै? शास्त्रनिविषैं तौ परस्पर विरुद्ध है नाहीं। कैसैं? सो कहियै है-करणानुयोग शास्त्रनिविषैं भी अर अध्यात्मशास्त्रनिविषैं भी रागादिक भाव आत्माकै कर्मनिमित्ततैं उपजे कहे। द्रव्यलिंगी तिनका आप कर्त्ता हूवा प्रवर्त्तै है। बहुरि शरीराश्रित सर्व शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कहीं। द्रव्यलिंगी अपनी जानि तिनविषैं त्यजन ग्रहण बुद्धि करै है। बहुरि सर्व ही शुभाशुभ भाव आस्रव बंधके कारण कहे। द्रव्यलिंगी शुभ क्रियाकौं संवर निर्जरा मोक्षका कारण मानै है। बहुरि शुद्धभाव संवर निर्जरा मोक्षका कारण कह्या ताकौं द्रव्यलिंगी पहिचानै ही नाहीं। बहुरि शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष कह्या, ताका द्रव्यलिंगीकै यथार्थ ज्ञान नाहीं, ऐसैं अन्यथा साधन करै तौ ताकौं शास्त्रनिका कहा दोष है? बहुरि तैं तिर्यंचादिककैं सामान्य श्रद्धानतैं कार्यसिद्धि कही, सो उनकैं भी अपना क्षयोपशम अनुसारि विशेषका जानना हो है। अथवा पूर्व पर्यायनिविषैं विशेषका अभ्यास कीया था तिस संस्कारके बलतैं हो है। बहुरि जैसैं काहूनै कहीं गड्या धन पाया, सो 'हम भी ऐसैं ही पावैंगे' ऐसा मानि सबहीकौं व्यापारादिकका त्यजन न करना। तैसैं काहूनैं स्तोक श्रद्धानतैं ही कार्यसिद्धि कीया तो हम भी ऐसैं ही कार्यकी सिद्धि करैंगे' ऐसैं मानि सर्वहीकौं विशेष अभ्यासका त्यजन करना योग्य नाहीं जातैं यहु राजमार्ग नाहीं। राजमार्ग तौ यहु ही है-'नानाप्रकार विशेष जानि तत्त्वनिका निर्णय भए ही कार्यसिद्धि हो है॥ बहुरि तैं कह्या-मेरी बुद्धितैं विकल्पसाधन होता नाहीं, सो जेता बनैं तेता ही अभ्यास करि। बहुरि तू पापकार्यविषैं तौ प्रवीण, अर इस अभ्यासविषैं कहै-मेरी बुद्धि नाहीं।' सो यहु तौ पापीका लक्षण है। ऐसैं द्रव्यानुयोगका पक्षपातीकौं इस शास्त्रका अभ्यासविषैं सन्मुख कीया॥

अब अन्य विपरीत विचारवालोंकौं समझाइए है। तहां शब्दशास्त्रादिकका पक्षपाती बोलै है कि-व्याकरण न्याय कोश छंद अलंकार काव्यादिक ग्रंथनिका अभ्यास करिए तो अनेक ग्रंथनिका स्वयमेव ज्ञान होय, वा पंडितपना प्रगट होय। अर इस शास्त्रके अभ्यासतैं तो एक याहीका ज्ञान होय वा पंडितपना विशेष प्रकट न होय तातैं शब्द शास्त्रादिकका अभ्यास करना। ताकौं कहिए है—

जो तू लोकविषैं हीं पंडित कहाया चाहै है तौ तू तिनहींका अभ्यास कीया करि। अर जो अपना कार्य कीया चाहै है तो ऐसे ग्रंथनिका अभ्यास करना ही योग्य है। बहुरि जैनी तौ जीवादिक तत्त्वनिके निरूपक जे जैनग्रंथ तिनहीका अभ्यास भए पंडित मानैंगे। बहुरि वह कहै है कि-मैं जैन ग्रंथनिका विशेष ज्ञान होनेहीके अर्थि व्याकरणादिकनिका अभ्यास करौं हौं ताकौं कहिए है,ऐसैं है तो भलैं ही है। परंतु इतना है जैसें स्याना खिनहर अपनी शक्ति अनुसारि हलादिकतैं थोडा बहुत खेतकौं संवारि समयविषैं बीज बावै तौ ताकौं फलकी प्राप्ति होइ। तैसें तू भी जो अपनी शक्ति अनुसारि व्याकरणादिकका अभ्यासतैं थारी बहुत बुद्धिकौं संवारि यावत् मनुष्य पर्याय वा इंद्रियनिकी प्रबलता इत्यादिक प्रवर्त्तैं हैं तावत् समयविषैं तत्त्वज्ञानकौं कारण जे शास्त्र, तिनिका अभ्याम करेगा तौ तुझ कौं सम्यक्त्वादिकी प्राप्ति होयगी। बहुरि जैसें अयाना खितहड हलादिकतैं खेतकौं संवारता संवारता ही समयकौं खोवै, तौ ताकौं फलप्राप्ति होनेकी नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न भया। तैसैं तू भी जो व्याकरणादिकतैं बुद्धिकौं संवारता संवारता ही समय खोवेगा तौ सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति होनेकी नाहीं। वृथा ही खेदखिन्न भया। बहुरि इस कालविषैं आयु बुद्धि आदि स्तोक हैं तातैं प्रयोजनमात्र अभ्यास करना, शास्त्रनिका तौ पार है नाहीं। बहुरि सुनि-केई जीव व्याकरणादिकका ज्ञानविना भी तत्त्वोपदेशरूप भाषा शास्त्रनिकरि, वा उपदेश सुननेकरि, वा सीखनेकरि तत्त्वज्ञानी होते देखिये है। अर केई जीव केवल व्याकरणादिकका ही अभ्यासविषैं जन्म गमावै हैं अर तत्त्वज्ञानी न होते देखिये है। बहुरि सुनि—व्याकरणादिकका अभ्यास करतैं पुण्य न उपजै है। धर्मार्थी होइ तिनका अभ्यास करै तौ किंचित् पुण्य उपजै। बहुरि तत्त्वोपदेशक शास्त्रनिका अभ्यासतैं सातिशय महत् पुण्य उपजै है। तातैं भला यह है-असे तत्त्वोपदेशक शास्त्रनिका अभ्यास करना। ऐसैं शब्दशास्त्रादिकका पक्षपातीकौं सन्मुख कीया।

बहुरि अर्थका पक्षपाती कहै है कि-इस शास्त्रका अभ्यास कीए कहा है? सर्व कार्य धनतैं बनै हैं। धन करि ही प्रभावना आदि धर्म निपजै हैं। धनवानके निकट अनेक पंडित आय प्राप्त हो हैं। अन्य भी सर्वकार्यसिद्धि होइ। तातैं धन उपजावनेका उद्यम करना। ताकौं कहिए है—

रे पापी ! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है। भाग्यतैं हो है सो ग्रंथाभ्यास आदि धर्म साधनतैं जो पुण्य निपजै, ताहीका नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास कीए कैसें न होगा। अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न कीए कैसें होगा ? तातैं धनका होना, न होना तौ उदयाधीन है। शास्त्राभ्यासविषैं काहेकौं शिथिल हूजे। बहुरि सुनि-धन है सो तौ विनाशीक है, भयसंयुक्त है, पापतैं निपजै है, नरकादिकका कारण है। अर यहु शास्त्राभ्यास रूप ज्ञानधन है सो अविनाशी है, भयरहित है, धर्मरूप है, स्वर्गमोक्षका कारण है। सो महंत पुरुष तौ धनादिककौं छांडि शास्त्राभ्यासविषैं लगै हैं सो तू पापी शास्त्राभ्यासकौं छुडाय धन उपजावनेकी बडाई करै है सो तू अनंतसंसारी है। बहुरि तैं कह्या-प्रभावना आदि धर्म भी धनहीतैं हो हैं ! सो प्रभावना आदि धर्म हैं सो किंचित् सावद्यक्रियासंयुक्त हैं। तिसतैं समस्त सावद्यरहित शास्त्राभ्यासरूप धर्म है सो प्रधान है । ऐसैं न होइ तौ गृहस्थ अवस्थामैं प्रभावना आदि धर्म साधने थे तिनिकौं छांडि संजमी होइ शास्त्राभ्यासविषैं काहेको लागै हैं। बहुरि शास्त्राभ्यासतैं प्रभावनादिक भी विशेष हो है। बहुरितैं कह्या-धनवानके निकट पंडित भी आनि प्राप्त होंइ ! सो लोभी पंडित होंइ, अर अविवेकी धनवान होंइ तहां ऐसैं हो है। अर शास्त्राभ्यासवालौंकी तौ इंद्रादिक सेवा करै हैं। इहां भी बडे बडे महंत पुरुष दास होते देखिए है। तातैं शास्त्राभ्यास वालौंतैं धनवानकौं महंत मति जानै। बहुरि तैं कह्या-धनतैं सर्वकार्यसिद्धि हो है। सो धनतैं तौ इस लोकसंबंधी किछू विषयादिक कार्य ऐसा सिद्ध होइ जातैं बहुत कालपर्यंत नरकादि दुःख सहने होंइ। अर शास्त्राभ्यासतैं ऐसा कार्य सिद्ध हो है जातैं इहलोकविषैं अर परलोकविषैं अनेक सुखनिकी परंपरा पाइए। तातैं धन उपजावनेका विकल्प छोडि शास्त्राभ्यास करना। अर जो सर्वथा ऐसैं न बनैं तौ संतोष लिए धन उपजावनेका साधन करि शास्त्राभ्यासविषैं तत्पर रहना। ऐसैं अर्थ उपजावनेका पक्षपातीकौं सन्मुख कीया।

बहुरि कामभोगादिकका पक्षपाती बोलै है कि-शास्त्राभ्यास करनेविषैं सुख नाहीं, बडाई नाहीं। तातैं जिनकर इहां ही सुख उपजै ऐसे जे स्त्रीसेवना, खाना, पहिरना, इत्यादि विषयसुख तिनका सेवन करिए अथवा जिनकरि इहां ही बडाई होइ ऐसे विवाहादिक कार्य करिए। ताकौं कहिए है—

विषयजनितँ जो सुख है सो दुःख ही है। जातैं विषय सुख है सो परनिमित्ततैं हो है। पाहिले पीछै तत्काल
आकुलता लिए है, जाके नाश होनेके अनेक कारण पाइए है, आगामी नरकादि दुर्गतिकौं प्राप्त करण हारा है,
ऐसा है तौ भी तेरा चाह्या मिलै नाहीं, पूर्व पुण्यतैं हो है तातैं विषम है। जैसैं खाजि करि पीडित पुरुष अपना
अंगकौं कठोर वस्तुतैं खुजावै, तैसैं इंद्रियनिकरि पीडित जीव, तिनकी पीडा सही न जाय तब किंचिन्मात्र तिस
पीडाके प्रतीकारसे भासैं ऐसे जे विषयसुख तिन विषैं झंपापात लेवै है, परमार्थरूप सुख है नाहीं। बहुरि शास्त्रा-
भ्यास करतैं भया जो सम्यग्ज्ञान, ताकरि निपज्या आनंद, सो सांचा सुख है। जातैं सो सुख स्वाधीन है, आकुल-
तारहित है, काहूकरि नष्ट न हो है, मोक्षका कारण है विषम नाहीं। जैसैं खाजि न पीडै तब सहज ही सुखी होइ, तैसैं
तहां इंद्रिय पीडनेकौं समर्थ न होइ तब सहज ही सुखकौं प्राप्त हो है। तातैं विषयसुख छोडि शास्त्राभ्यास करना।
जो सर्वथा न छूटै तौ जेता बनै तेता छोडि शास्त्राभ्यासविषैं तत्पर रहना। बहुरि तैं विवाहादिक कार्यविषैं ब-
डाई होनेकी कही सो केतेक दिन बडाई रहैगी। जाकै अर्थि महापापारंभ करि नरकादिविषैं बहुतकाल दुःख
भोगना होइगा। अथवा तुझतैं भी तिनकार्यनिविषैं धन लगावनेवाले बहुत हैं तातैं विशेष बडाई भी होनेकी
नाहीं। बहुरि शास्त्राभ्यासतैं ऐसी बडाई हो है, जाकी सर्वजन महिमा करैं, इंद्रादिक भी प्रशंसा करैं अर परं-
परा स्वर्गमुक्तिका कारण। तातैं विवाहादिक कार्यनिका विकल्प छोडि शास्त्राभ्यासका उद्यम राखना। सर्वथा
न छूटै तो बहुत विकल्प न करना। ऐसैं काम भोगादिकका पक्षपातीकौं शास्त्राभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

या प्रकार अन्य जीव भी जे विपरीत विचारतैं इस ग्रंथ अभ्यासविषैं अरुचि प्रगट करैं तिनकौं यथार्थ वि-
चारतैं इस शास्त्रके अभ्यासविषैं सन्मुख होना योग्य है।

इहां अन्यमती कहै हैं कि-तुम अपने ही शास्त्र अभ्यास करनेकौं दृढ कीया हमारे मतविषैं नाना युक्ति
आदि करि संयुक्त शास्त्र हैं तिनका भी अभ्यास क्यों न कराइए? ताकौं कहिए है—

तुमारे मतके शास्त्रनिविषैं आत्महितका उपदेश नाहीं। जातैं कहीं शृंगारका, कहीं युद्धका, कहीं कामसे-

वनादिका, कहीं हिंसादिका कथन है। सो ए तो विनाही उपदेश सहज ही वनि रहे हैं, इनकौं तजैं हित होइ, ते तहां उलटे पोषे हैं तातैं तिनतैं हित कैसैं होइ ? तहां वह कहै है-ईश्वरनैं ऐसें लीलाकरी है, ताकौं गावै है, तिमतैं भला हो है। तहां कहिये हैं-जो ईश्वरकैं सहज सुख न होगा तब संसारीवत् लीलाकरि सुखी भया, जो वह सहज सुखी होता तौ काहेकौं विषयादि सेवन वा युद्धादिक करता ? जातैं मंदबुद्धि हू विना प्रयोजन किंचिन्मात्र भी कार्य न करै। तातैं जानिए है-वह ईश्वर हम सारिखा ही है। ताका जस गाएं कहा सिद्धि होइ ? बहुरि वह कहै है कि-हमारे शास्त्रनिविषैं वैराग्य त्याग अहिंसादिकका भी तौ उपदेश है। तहां कहिए है-सो उपदेश पूर्वापर विरोध लिए है। कहीं विषय पोषे हैं, कहीं निषेधे हैं, कहीं वैराग्य दिखाय पीछैं हिंसादिका करना पोष्या है तहां वातुलवचनवत् प्रमाण कहा ? बहुरि वह कहै है कि-वेदांत आदि शास्त्रनिविषैं तो तत्त्वहीका निरूपण है। तहां कहिए है-सो निरूपण प्रमाणकरि वाधित अयथार्थ है, ताका निराकरण जैनके न्यायशास्त्रनिविषैं कीया है, सो जानना। तातैं अन्यमतके शास्त्रनिका अभ्यास न करना। ऐसें जीवनिकौं इस शास्त्रके अभ्यासविषैं स-न्मुख कीया तिनकौं कहिए है-

सो हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यासके अनेक अंग हैं। शब्द वा अर्थका वांचना, या सीखना, सिखावना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्नकरना, समाधान जानना, वारंवार चरचा करना, इत्यादि अनेक अंग हैं। तहां जैसे बनै तैसें अभ्यास करना। जो सर्वशास्त्रका अभ्यास न बनै तौ इस शास्त्रविषैं सुगम वा दुर्गम अनेक अर्थनिका निरूपण है तहां जिसका बनै तिसहीका अभ्यास करना। परंतु अभ्यासविषैं आलसी न होना। देखो ! शास्त्राभ्यास-का महिमा जाकौं होतैं परंपरा आत्मानुभव दशाकौं प्राप्त होइ। सो मोक्षमार्गरूप फल निपजै है सो तो दूर ही तिष्ठौ, तत्काल ही इतने गुण हो हैं क्रोधादि कषायनिकी तौ मंदता हो है, पंचइंद्रियनिकी विषयनिविषैं प्रवृत्ति रुकै है, अति चंचल मन भी एकाग्र हो है, हिंसादि पंच पाप न प्रवर्तैं हैं, स्तोक ज्ञान होतैं भी त्रिलोकके त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थनिका जानना हो है, हेयोपादेयकी पहिचान हो है, आत्मज्ञान सन्मुख हो है, अधिक अधिक ज्ञान

होतैं आनंद निपजै है, लोकविषैं महिमा यश विशेष हो है, अतिशय पुण्यका बंध हो है, इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करतैं तत्काल ही प्रगट होइ हैं तातैं शास्त्राभ्यास अवश्य करना ॥ बहुरि हे भव्य हो ! शास्त्राभ्यास करनेका समय पावना महादुर्लभ है। काहे तैं ? सो कहिए है--

एकेंद्रियादि असंज्ञीपर्यंत जीवनिकैं तौ मन ही नाहीं, अर नारकी वेदनापीडित, तिर्यंच विवेकरहित, देव विषयासक्त, तातैं मनुष्यनिकैं अनेक सामिग्री मिल शास्त्राभ्यास होइ। सो मनुष्य पर्यायका पावनाही द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि महादुर्लभ है। तहां द्रव्यकरि लोकविषैं मनुष्य जीव बहुत थोरे हैं, तुच्छ संख्यात मात्र ही हैं। अर अन्य जीवनिविषैं निगोदिया अनंत हैं, और जीव असंख्याते हैं। बहुरि क्षेत्रकरि मनुष्यनिका क्षेत्र बहुत स्तोक है, अढाई द्वीप मात्र ही है। अर अन्य जीवनिविषैं एकेंद्रियनिका सर्व लोक है, औरनिका केते इक राजू प्रमाण है। बहुरि कालकरि मनुष्य पर्यायविषैं उत्कृष्ट रहनेका काल स्तोक है, कर्मभूमि अपेक्षा पृथक्त्व कोटि पूर्व मात्र ही है। अर अन्य पर्यायनिविषैं उत्कृष्ट रहनेका काल एकेंद्रियविषैं तो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र, अर औरनिविषैं संख्यातपल्य मात्र है। बहुरि भावकरि तीव्र शुभाशुभपना करि रहित ऐसे मनुष्य पर्यायकौं कारण परिणाम होने अति दुर्लभ हैं, अन्य पर्यायकौं कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ हैं। ऐसैं शास्त्राभ्यासका कारण जो पर्याय कर्मभूमि या मनुष्यपर्याय ताका दुर्लभपना जानना। तहां सुवास उच्चकुल, पूर्ण आयु, इंद्रियनिकी सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धिकी प्रबलता इत्यादिक पावना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। सो प्रत्यक्ष देखिए है। अर इतना सामिग्री मिले विना ग्रंथाभ्यास बनै नाहीं। सो तुम यहु भाग्यकरि अवसर पाया है तातैं तुमकौं हठकरि भी तुमारे हित होनेके अर्थि प्रेरे हैं। जैसैं बनै तैसैं इस शास्त्रका अभ्यास करौ, बहुरि अन्य जीवनिकौं जैसैं बनै तैसैं शास्त्राभ्यास करावौ, बहुरि जे जीव शास्त्राभ्यास करते होंइ तिनकी अनुमोदना करहु, बहुरि पुस्तक लिखावना, वा पढने, पढावनेवालोंकी स्थिरता करनी, इत्यादिक शास्त्राभ्यासकौं वाह्य कारण तिनका साधन करना। जातैं इनकरि भी परंपरा कार्यसिद्धि हो है वा महत्पुण्य उपजे है। ऐसैं इस शास्त्रके अभ्यासादिविषैं जीवनिकौं रुचिवान कीया।

बहुरि जो यहु सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीका करिए है तिहिंविषैं संस्कृत टीकातैं कहीं अर्थ प्रगट करनेके अर्थि, वा कहीं प्रसंगरूप, वा कहीं अन्य ग्रंथ अनुसारि लेइ अधिक भी कथन करियेगा । अर कहीं अर्थ स्पष्ट न प्रतिभासैगा, तहां न्यून कथन होइगा ऐसा जानना। सो इस भाषा टीकाविषैं मुख्यपनैं जो जो व्याख्यान है, ताकौं अनुक्रमतैं संक्षेपताकरि कहिए है। जातैं याके जानैं अभ्यास करनेवालौंकैं सामान्यपनै इतना तौ जानना होइ जो या विषैं ऐसा कथन है । अर क्रम जानैं जिस व्याख्यानकौं जानना होइ, ताकौं तहां शीघ्र अवलोकि अभ्यास करैं, वा जिननैं अभ्यास कीया होइ ते याकौं देखि अर्थका स्मरण करैं, सो सर्व अर्थकी सूचनिका कीए तौ विस्तार होई, कथन आगैं है ही, तातैं मुख्य कथनकी सूचनिका क्रमतैं करिए है–

तहां इस भाषा टीकाविषैं सूचनिका कर्माष्टक आदि गणितका स्वरूप दिखाय संस्कृत टीकाके अनुसरि मंगलाचरणादिकका स्वरूप कहि मूल गाथानिकी टीका कीजिएगा। तहां इस शास्त्रविषैं दोय महा अधिकार हैं–एक जीवकांड, एक कर्मकांड। तहां जीवकांडविषैं वाईस अधिकार हैं । तिनिविषैं प्रथम गुणस्थानाधिकार है। तिसविषैं गुणस्थाननिका नाम, वा सामान्य लक्षण कहि, तिनविषैं सम्यक्त्व चारित्र अपेक्षा औद-यिकादि संभवते भावनिका निरूपण करि क्रमतैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननिका वर्णन है । तहां मि-थ्यादृष्टिविषैं पंच मिथ्यात्वादिका, सासादनविषैं ताके काल वा स्वरूपका, मिश्रविषैं ताके स्वरूपका वा मरण न होनेका, असंयतविषैं वेदकादि सम्यक्त्वनिका वा ताके स्वरूपादिकका, देशसंयतविषैं ताके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि प्रमत्तका कथन विषैं पंद्रह वा असी वा साढासैंतीस हजार प्रमाद भेदनिका अर तहां प्रसंग पाइ संख्या, प्रस्तार, परिवर्त्तन, नष्ट, समुद्दिष्ट करि; वा गूढ यंत्र करि अक्षसंचारका विधानका कथन है । जहां भेदनिकौं पलटि पलटि परस्पर लगाइए तहां अक्षसंचार विधान हो है । बहुरि अप्रमत्तका कथनविषैं स्वस्थान अर सातिशय दोय भेद कहि सातिशय अप्रमत्तकैं अधःकरण हो है। ताके स्वरूपका वा काल वा परिणाम वा समयसमयसंबंधी परिणाम वा एक एक समयविषैं अनुकृष्टि विधान, वा तहां संभवते

च्यारि आवश्यक इत्यादिका विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ श्रेणी व्यवहार रूप गणितका कथन है। तिसविषैं सर्वधन, उत्तरधन, मुख, भूमि, चय, गच्छ इत्यादि संज्ञानिका स्वरूप वा प्रमाण लावनेकौं कारण सूत्रनिका वर्णन है। बहुरि अपूर्वकरणका कथनविषैं ताके काल, स्वरूप, परिणाम, समयसंबंधी परिणामादिकका कथन है। बहुरि अनिवृत्तिकरणका कथनविषैं ताके स्वरूपादिकका कथन है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका कथन विषैं प्रसंग पाइ कर्मप्रकृतिनिके अनुभाग अपेक्षा अविभागप्रतिच्छेद, वर्ग, वर्गणा, स्पर्द्धक, गुणहानि नानागुणहानिनिका अर पूर्वस्पर्द्धक, अपूर्वस्पर्धक वादरकृष्टि, सूक्ष्मकृष्टिका वर्णन है। इत्यादि विशेष कथन है सो जानना। बहुरि उपशांतकषाय, क्षीणकषायका कथनविषैं तिनके दृष्टांतपूर्वक स्वरूपका, सयोगी जिनका कथनविषैं नवकेवललब्धि आदिकका, अयोगीविषैं अलेश्यपना आदिकका कथन है। बहुरि बारह गुणस्थाननिविषैं गुणश्रेणी निर्जराका कथन है। तहां द्रव्यकौं अपकर्षणकरि उपरितन स्थिति, अर गुणश्रेणी, आयाम अर उदयावलीविषैं जैसैं दीजिए है ताका वा गुणश्रेणी आयामके प्रमाणका निरूपण है तहां प्रसंग पाइ अंतर्मुहूर्त्तके भेदनिका वर्णन है। बहुरि सिद्धनिका वर्णन है॥

बहुरि दूसरा जीवसमास अधिकारविषैं जीवसमासका अर्थ वा होनेका विधान कहि चौदह, गुणतीस, वा सत्तावन, वा च्यारिसै छह जीवसमासनिका वर्णन है। बहुरि च्यारि प्रकारि जीवसमास कहि तहां स्थानभेदविषैं एक आदि उगणीस पर्यंत जीवस्थाननिका, वा इनहीके पर्याप्तादि भेदकरि स्थाननिका वा अठ्याणवै वा च्यारिसै छह जीवसमासनिका कथन है। बहुरि योनिभेदविषैं शंखावर्तादि तीन प्रकार योनिका, अर सन्मूर्च्छनादि जन्मभेद पूर्वक नवप्रकार योनिनिके स्वरूप वा स्वामित्वका अर चौरासी लाख योनिनिका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ च्यारि गतिनिविषैं सन्मूर्छनादि जन्म वा पुरुषादि वेद संभवैं तिनका निरूपण है। बहुरि अवगाहना भेदविषैं सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्त आदि जीवनिकी जघन्य उत्कृष्ट शरीरकी अवगाहनाका विशेष वर्णन है। तहां एकेंद्रियादिककी उत्कृष्ट अवगाहना कहनेका प्रसंग पाइ गोलक्षेत्र संखक्षेत्र आयत चतुरस्रक्षेत्रका क्षेत्रफल करनेका, अर

अवगाहनाविषैं प्रदेशनिकी वृद्धि जाननेके अर्थि अनंतभाग आदि चतुःस्थानपतित वृद्धिका, अर इस प्रसंगतैं दृष्टांतपूर्वक षट्स्थानपतित आदि वृद्धि हानिका, वा सर्वअवगाहनाभेद जाननेके अर्थि मत्स्यरचनाका वर्णन है॥ बहुरि कुलभेदविषैं एकसौ साढा सित्याणवैं लाख कोडि कुलनिका वर्णन है।

बहुरि तीसरा पर्याप्त नामा अधिकारविषैं पहलैं मानका वर्णन है। तहां लौकिक अलौकिक मानके भेद कहि, बहुरि द्रव्यमानके दोय भेदनिविषैं, संख्यामानविषैं संख्यात असंख्यात अनंतके इकईस भेदनिका वर्णन है। बहुरि संख्याके विशेष रूप चौदह धारानिका कथन है। तिनिविषैं द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा, द्विरूपघनाघनधारानिके स्थाननिविषैं जे पाइए हैं तिनका विशेष वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ पणट्ठी बादाल एकट्ठीका प्रमाण, अर वर्गशलाका अर्धच्छेदनिका स्वरूप, वा अविभागप्रतिच्छेदका स्वरूप, वा उक्तंच गाथानिकरि अर्धछेदादिकके प्रमाण होनेका नियम, वा अग्निकायिक जीवनिका प्रमाण ल्यावनेका विधान इत्यादिकनिका वर्णन है। बहुरि दूसरा उपमामानके पल्य आदि आठभेदनिका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ व्यवहारपल्यके रोमनिकी संख्या ल्यावनेकौं परमाणूतैं लगाय अंगुलपर्यंत अनुक्रमका, अर तीनप्रकार अंगुलका, अर जिस जिस अंगुलकरि जाका प्रमाण वर्णिए है ताका, अर गोलगर्तके क्षेत्रफल ल्यावनेका वर्णन है। अर उद्धारपल्यकरि द्वीपसमुद्रनिकी संख्या ल्याइए है, अद्धापल्यकरि आयु आदि वर्णिए है ताका वर्णन है। अर सागरकी सार्थक संज्ञा जाननेकौं लवण समुद्रका क्षेत्रफलकौं आदि देकर वर्णन है। अर सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर, जगत्घन तिनका प्रमाण ल्यावनेकौं विरलन आदि विधानका वर्णन है। बहुरि पीछैं पल्यादिककी वर्गशलाका अरु अर्धच्छेदनिका प्रमाणवर्णन है। तिनिके प्रमाण जाननेकौं उक्तं च गाथा रूप करण सूत्रनिका कथन है। बहुरि पीछैं पर्याप्ति प्ररूपणा है। तहां पर्याप्त अपर्याप्तके लक्षणका, अर छह पर्याप्तिनिके नामका स्वरूपका, प्रारंभसंपूर्ण होनेके कालका, स्वामित्वका वर्णन है। बहुरि लब्धिअपर्याप्तका लक्षण, वा ताके निरंतर क्षुद्रभवनिके प्रमाणादिकका वर्णन है। तहां ही प्रसंग पाइ प्रमाणफल इच्छारूप त्रैराशिक गणितका कथन है। बहुरि सयोगी जि-

नकैं अपर्याप्तपना संभवनेका, अर लब्धि अपर्याप्त, निर्वृति अपर्याप्त, पर्याप्तके संभवते गुणस्थाननिका वर्णन है॥

बहुरि चौथा प्राणाधिकारविषैं प्राणनिका लक्षण, अर भेद, अर कारण अर स्वामित्वका कथन है।

बहुरि पांचमा संज्ञा अधिकारविषैं च्यारि संज्ञानिका स्वरूप, अर भेद, अर कारण, अर स्वामित्वका वर्णन है।

बहुरि छट्ठा मार्गणा महाअधिकारविषैं मार्गणाका निरुक्तिका, अर चौदह भेदनिका, अर सांतरमार्गणाके अंतरालका, अर प्रसंग पाइ तत्त्वार्थसूत्रटीकाके अनुसारि नानाजीव एकजीव अपेक्षा गुणस्थाननिविषैं, अरगुण स्थान अपेक्षालिऐं मार्गणानिविषैं कालका, अर अंतरका कथनकरि छट्ठा गति मार्गणा अधिकार है। तहां गतिके लक्षणका, अर भेदनिका अर च्यारि भेदनिके निरुक्तिलिए लक्षणनिका, अर पांच प्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्यनिका अर सिद्धनिका वर्णन है। बहुरि सामान्य नारकी, जुदे जुदे सात पृथ्वीनिके नारकी, अर पांचप्रकार तिर्यंच, च्यारि प्रकार मनुष्य, अर व्यंतर ज्योतिषी भवनवासी सौधर्मादिकके देव, सामान्य देवराशि इन जीवनिकी संख्याका वर्णन है। तहां पर्याप्त मनुष्यनिकी संख्या कहनेका प्रसंगपाइ "कटपयपुरस्थवर्णै" इत्यादि सूत्रकरि ककारादि अक्षररूप अंक वा विंदीकी संख्याका वर्णन है।

बहुरि सातमा इंद्रियमार्गणा अधिकारविषैं इंद्रियनिका निरुक्तिलिए लक्षणका, अर लब्धि उपयोगरूप भावेंद्रियका, अर वाह्य अभ्यंतर भेद लिए निर्वृत्ति उपकरणरूप द्रव्येंद्रियका, अर इंद्रियनिके स्वामीका, अर तिनके विषयभूत क्षेत्रका, अर तहां प्रसंग पाइ सूर्यके चारक्षेत्रादिकका, अर इंद्रियनिके आकारका, वा अवगाहनाका, अर अतींद्रिय जीवनिका वर्णन है। बहुरि एकेंद्रियादिकनिका उदाहरणरूप नाम कहि, तिनकी सामान्य संख्याका वर्णनकरि, विशेषपने सामान्य एकेंद्री, अर सूक्ष्म वादर एकेंद्री, बहुरि सामान्य त्रस, अर वेइंद्रिय तेइंद्रिय, चौइंद्रिय, पंचेंद्रिय इन जीवनिका प्रमाण, अर इनविषैं पर्याप्त अपर्याप्त जीवनिका प्रमाण वर्णन है॥

बहुरि आठमा कायमार्गणा अधिकारविषैं कायके लक्षणका वा भेदनिका वर्णन है। बहुरि पंचस्थावरनिके नाम, अर काय, कायिक जीवरूप भेद, अर वादर सूक्ष्मपनेका लक्षणादि, अर शरीरकी अवगाहनाका वर्णन है।

बहुरि वनस्पतीके साधारण प्रत्येक भेदनिका, प्रत्येकके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेदनिका, अर तिनकी अवगाहनाका अर एक स्कंधविषैं तिनके शरीरनिके प्रमाणका, अर योनीभूत जीवनिविषैं जीव उपजनेका, वा तहां सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित होनेके कालका, अर प्रत्येक वनस्पतीविषैं सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जाननेकौं तिनके लक्षणका, बहुरि साधारण वनस्पती निगोदरूप तहां जीवनिके उपजने, पर्याप्ति धरने, मरनेके विधानका, अर निगोद शरीरकी उत्कृष्ट स्थितिका, अर स्कंध, अंडर पुलवी आवास देह जीव इनके लक्षण प्रमाणादिका, अर नित्यनिगोदादिके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि त्रसजीवनिका अर तिनके क्षेत्रका वर्णन है। बहुरि वनस्पतीवत् औरनिके शरीरविषैं सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितपनेका, अर स्थावर त्रस जीवनिके आकारका, अर कायसहित कायरहित जीवनिका वर्णन है। बहुरि अग्नि, पृथ्वी, अप्, वात, प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक साधारण वनस्पती जीवनिकी, अर तिनविषैं सूक्ष्म बादर जीवनिकी, अर तिनविषैं भी पर्याप्त अपर्याप्त जीवनिकी संख्याका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ पृथ्वी आदि जीवनिकी उत्कृष्ट आयुका वर्णन है। बहुरि त्रस जीवनिकी, अर तिनविषैं पर्याप्त अपर्याप्त जीवनिकी संख्याका वर्णन है। बहुरि बादर अग्निकायिक आदिकी संख्याका विशेष निर्णय करनेके अर्थि तिनके अर्धच्छेदादिकका, अर प्रसंग पाइ " दिण्णछेदेणवहिद " इत्यादिक करणसूत्रका वर्णन है।

बहुरि नवमां योगमार्गणा अधिकारविषैं योगके सामान्य लक्षणका अर सत्य आदि च्यारि च्यारि प्रकार मन वचन योगका वर्णन है। तहां सत्यवचनका विशेष जाननेकौं दश प्रकार सत्यका, अर अनुभय वचनका विशेष जाननेकौं आमंत्रणा आदि भाषानिका, अर सत्यादिक भेद होनेके कारणका, अर केवलीके मन वचन योग संभवनेका, अर द्रव्यमनके आकारका इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि काययोगके सातभेदानिका वर्णन है। तहां औदारिकादिकनिके निरुक्तिपूर्वक लक्षणका, अर मिश्रयोग होनेके विधानका, अर आहारक शरीर होनेके विशेषका, अर कार्माणयोगके कालका वर्णन है। बहुरि युगपत् योगनिकी प्रवृत्ति होनेका विधान वर्णन है। अर योगरहित आत्माका वर्णन है। बहुरि पंच शरीरनिविषैं कर्म नोकर्म भेदानिका, अर पंच शरीरनिकी

वर्गणा वा समय प्रबद्धविषैं परमाणूनिका प्रमाण वा क्रमतैं सूक्ष्मपना वा तिनकी अवगाहनाका वर्णन है। बहुरि विश्रसोपचयका स्वरूप वा तिनकी परमाणूनिके प्रमाणका वर्णन है। बहुरि कर्म नोकर्मका उत्कृष्ट संचय होनेका काल वा सामग्रीका वर्णन है। बहुरि औदारिक आदि पंच शरीरनिका द्रव्य तौ समय समय प्रबद्धमात्र कहि तिनकी उत्कृष्ट स्थिति, अर तहां संभवती गुणहानि, नाना गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि, दो गुणहानिका स्वरूप प्रमाण कहि करण सूत्रादिकतैं तहां चयादिकका प्रमाण ल्याय समय समयसंबंधी निषेकनिका प्रमाण कहि एक समयविषैं केते परमाणू उदयरूप होइ निर्जरैं, केते सत्ताविषैं अवशेष रहैं ताके जाननेकौं अंकसंदृष्टिकी अपेक्षालिये त्रिकोण यंत्रका कथन है। बहुरि वैक्रियिकादिकनिका उत्कृष्ट संचय कौनकैं कैसैं होइ सो वर्णन है। बहुरि योगमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्याका वर्णनविषैं वैक्रियिक शक्तिकर संयुक्त वादर पर्याप्त अग्निकायिक वातकायिक, अर पर्याप्त पंचेंद्रिय तिर्यंच मनुष्यनिके प्रमाणका, अर भोगभूमियां आदि जीवनिकैं पृथक् विक्रिया, अर औरनिकैं अपृथक् विक्रिया हो है ताका कथन है। बहुरि त्रियोगी, द्वियोगी, एकयोगी जीवनिका प्रमाण कहि त्रियोगीनिविषैं आठप्रकार मनवचनयोगी अर काययोगी जीवनिका, अर द्वियोगीनिविषैं वचनकाययोगीनिका प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ सत्यमनोयोगादि वा सामान्य मनवचनकाय योगनिके कालका वर्णन है। बहुरि काययोगीनिविषैं सातप्रकार काययोगीनिका जुदा जुदा प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंगपाइ औदारिक औदारिकमिश्र, कार्माणके कालका, वा व्यंतरनिविषैं सोपक्रम अनुपक्रम कालका वर्णन है। बहुरि यहु कथन है जो जीवनिकी संख्या उत्कृष्टपने युगपत् होनेकी अपेक्षा कही है।

बहुरि दशवां वेदमार्गणा अधिकारविषैं भावद्रव्यवेद होनेके विधानका, अर तिनके लक्षणका, अर भावद्रव्यवेद समान वा असमान हो है ताका, अर वेदनिका कारण दिखाइ ब्रह्मचर्य अंगीकार करनेका अर तीनों वेदनिका निरुक्तिलिये लक्षणका, अर अवेदी जीवनिका वर्णन है। बहुरि तहां संख्याका वर्णनविषैं देवराशि कहि तहां स्त्रीपुरुषवेदीनिका, अर तिर्यंचनिविषैं द्रव्य स्त्री आदिका प्रमाण कहि समस्त पुरुष स्त्री नपुंसकवेदीनिका प्र-

माण वर्णन है। बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी इत्यादिक ग्यारह स्थाननिविषैं जीवनिका प्रमाण वर्णन है।

बहुरि ग्यारहवां कषायमार्गणा अधिकारविषैं कषायनिका निरुक्तीलीये लक्षणका, वा सम्यक्त्वादिक घातने रूप दूसरे अर्थविषैं अनंतानुबंधी आदिका निरुक्तीलीए लक्षणका वर्णन है। बहुरि कषायनिके एक च्यारि सोलह असंख्यात लोकमात्र भेद कहि क्रोधादिककी उत्कृष्टादि च्यारि प्रकार शक्तिनिका दृष्टांत वा फलकी मुख्यता करि वर्णन है। बहुरि पर्याय धरनेके पहिले समय कषाय होनेका नियम है वा नाहीं है सो वर्णन है। बहुरि अकषायजीवनिका वर्णन है। बहुरि क्रोधादिकके शक्ति अपेक्षा च्यार, लेश्या अपेक्षा चौदह, आयुबंध अर अबंध अपेक्षा वीस भेद हैं। तिनका अर सर्व कषायस्थाननिका प्रमाण कहि तिन भेदनिविषैं जेते जेते स्थानसंभवैं तिनका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनिकी संख्याका वर्णनविषैं नारकी देव तिर्यंच मनुष्यगतिविषैं जुदा जुदा क्रोधी आदि जीवनिका प्रमाण वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ तिनगतिनिविषैं क्रोधादिकका काल वर्णन है।

बहुरि बारहवां ज्ञानमार्गणा अधिकारविषैं ज्ञानका निरुक्तिपूर्वक लक्षण कहि ताके पंचभेदनिका अर क्षयोपशमके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि तीन मिथ्याज्ञाननिका, अर मिश्रज्ञाननिका अर तीन कुज्ञाननिके परिणामनिके उदाहरणका वर्णन है। बहुरि मतिज्ञानका वर्णनविषैं याके नामांतरका, अर इंद्रियमनतैं उपजनेका अर तहां अवग्रहादि होनेका, अर व्यंजन अर्थके स्वरूपका, अर व्यंजनविषैं नेत्र मन वा ईहादिक न पाइए ताका, अर पहिले दर्शन होइ पीछे अवग्रहादि होनेके क्रमका अर अवग्रहादिकनिके स्वरूपका, अर अर्थ व्यंजनके विषयभूत बहु बहुविध आदि बारह भेदनिका, तहां अनिवृतिविषैं च्यारि प्रकार परोक्ष प्रमाणगर्भितपना आदिका, अर मतिज्ञानके एक, च्यारि, चौवीस, अट्टाईस अर इनतैं बारह गुणे भेदनिका वर्णन है। बहुरि श्रुतज्ञानका वर्णनविषैं श्रुतज्ञानका लक्षण निरुक्ति आदिका, अर अक्षररूप श्रुतज्ञानके उदाहरण वा भेद वा प्रमाणका वर्णन है। बहुरि भाव श्रुतज्ञान अपेक्षा वीस भेदनिका वर्णन है। तहां पहिला जघन्यरूप पर्याय ज्ञानका वर्णनविषैं ताके स्वरूपका, अर तिसका आवरण जैसैं उदय हो है ताका, अर यहु जाकैं हो है ताका, अर याका दूसरा नाम लब्धि

अक्षर है ताका वर्णन है । अर पर्यायसमास ज्ञानका वर्णनविषैं षट्स्थानपतित वृद्धिका वर्णन है । तहां जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण कहि अर अनंतादिकका प्रमाण अर अनंत भागादिककी सहनानी कहि जैसैं अनंतभागादिक षट्स्थानपतितवृद्धि हो है ताके क्रमका यंत्र द्वारतैं वर्णन करि अनंत भागादि वृद्धिरूप स्थाननिविषैं अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण ल्यावनेकौं प्रक्षेपक आदिका विधान, अर तहां प्रसंग पाइ एकवार, दोयबार, आदि संकलन धन ल्यावनेका विधान, अर साधिक जघन्य जहां दूणा हो है ताका विधान, अर पर्याय समासविषैं अनंतभाग आदि वृद्धि होनेका प्रमाण इत्यादि विशेष वर्णन है । बहुरि अक्षर आदि अठारह भेदनिका क्रमतैं वर्णन है । तहां अर्थाक्षरके स्वरूपका, अर तीन प्रकार अक्षरनिका, अर शास्त्रके विषयभूत भावनिके प्रमाणका, अर तीनप्रकार पदनिका, अर चौदह पूर्वनिविषैं वस्तु वा प्राभृतनामा अधिकारनिके प्रमाणका इत्यादि वर्णन है। बहुरि वीस भेदनिविषैं अक्षर अनक्षर श्रुतज्ञानके अठारहैं दोय भेदनिका अर पर्यायज्ञानादिकी निरुक्तिलीए स्वरूपका वर्णन है । बहुरि द्रव्यश्रुतका वर्णनविषैं द्वादशांगके पदनिकी अर प्रकीर्णकके अक्षरनिकी संख्यानिका, बहुरि चौसठि मूल अक्षरनिकी प्रक्रियाका, अर अपुनरुक्त सर्व अक्षरनिका प्रमाण वा अक्षरनिविषैं प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंगनिकरि तिस प्रमाण ल्यावनेका विधान अर सर्वश्रुतके अक्षरनिविषैं अंगनिके पद अर प्रकीर्णकनिके अक्षरनिके प्रमाण ल्यावनेका विधान इत्यादि वर्णन है। बहुरि आचारांग आदि ग्यारह अंग, अर दृष्टिवाद अंगके पांचभेद, तिनमैं परिकर्मके पांचभेद, तहां सूत्र अर प्रथमानुयोगका एक एक भेद, अर पूर्वगतके चौदह भेद, चूलिकाके पांच भेद, इन सबनिके जुदा जुदा पदनिका प्रमाण अर इनविषैं जो जो व्याख्यान पाइए ताकी सूचनिकाका कथन है। तहां प्रसंग पाइ तीर्थंकरकी दिव्यध्वनि होनेका विधान, अर वर्द्धमानस्वामीके समय दश दश जीव अंतकृत केवली अर अनुत्तरगामी भए तिनका नाम, अर तीनसै तरेसठि कुवादनिके धारकनिविषैं केई कुवादीनिके नाम, अर सप्तभंगका विधान, अर अक्षरनिके स्थान प्रयत्नादिक, अर बारह भाषा, अर आत्माके जीवादि विशेषण इत्यादि घने कथन हैं। बहुरि सामा-

यिक आदि चौदह प्रकीर्णकनिका स्वरूप वर्णन है। बहुरि श्रुतज्ञानका महिमा वर्णन है। बहुरि अवधिज्ञानका वर्णनविषैं निरुक्तिपूर्वक स्वरूप कहि ताके भवप्रत्यय गुणप्रत्यय भेदनिका, अर ते भेद कौंन कौंनकैं होंय, कौन आत्मप्रदेशनितैं उपजैं ताका, अर तहां गुण प्रत्ययके छह भेदानिका, तिनविषैं अनुगामी अननुगामीके तीन तीन भेदनिका वर्णन है। बहुरि सामान्यपनैं अवधिके देशावधि, परमावधि, सर्वावधि भेदनिका, अर तिनविषैं भवप्रत्यय गुणप्रत्ययके संभवपनेका, अर ए कौंन कौंनकैं होइ ताका, अर तहां प्रतिपाती अप्रतिपाती विशेषका, अर इनके भेदनिके प्रमाणका वर्णन है। बहुरि जघन्य देशावधिका विषयभूत द्रव्य क्षेत्र काल भावका वर्णनकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा द्वितीयादि उत्कृष्ट पर्यंत क्रमतैं भेद होनेका विधान, अर तहां द्रव्यादिकके प्रमाणका अर सर्व भेदनिके प्रमाणका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ ध्रुवहार वर्ग वर्गणा गुणकार इत्यादिकका अनेक वर्णन है। अर तहां ही क्षेत्र काल अपेक्षा तिस देशावधिके उगणीस कांडकानिका वर्णन है। बहुरि परमावधिके विषयभूत द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा जघन्यतैं उत्कृष्टपर्यंत क्रमतैं भेद होनेका विधान, वा तहां द्रव्यादिकका प्रमाण वा सर्व भेदनिके प्रमाणका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ संकलित धन ल्यावनेका अर 'इच्छिदरासिच्छेदं' इत्यादि दोय करण सूत्रनिका आदि अनेक वर्णन है। बहुरि सर्वावधि अभेद है। ताके विषभूत द्रव्य क्षेत्र काल भावका वर्णन है। बहुरि जघन्य देशावधितैं सर्वावधिपर्यंत द्रव्य अर भाव अपेक्षा भेदनिकी समानताका वर्णन है। बहुरि नरकविषैं अवधिका वा ताके विषयभूत क्षेत्रका, अर मनुष्य तिर्यंचविषैं जघन्य उत्कृष्ट अवधि होनेका अर देवनिविषैं भवनवासी व्यंतर ज्योतिषीनिके अवधिगोचर क्षेत्र कालका, सौधर्मादि द्विकनिविषै क्षेत्रादिकका वा द्रव्यका भी वर्णन है। बहुरि मनःपर्ययज्ञानका वर्णनविषैं ताके स्वरूपका, अर दोय भेदनिका, अर तहां ऋजुमति तीन प्रकार, विपुलमति छहप्रकार ताका, अर मनःपर्यय जातैं उपजै है अर जिनकैं होहै ताका, अर दोय भेदनिविषैं विशेष है ताका, अर जीवकरि चिंतया हुवा द्रव्यादिककौं जानै ताका, अर ऋजुमतिका विषयभूत द्रव्यका अर मनःपर्यय संबंधी ध्रुवहारका, अर विपुलमतिके जघन्यतैं उत्कृष्टपर्यंत द्रव्य अपेक्षा भेद होनेका विधान, वा भेदनिका प्रमाण, वा द्र-

न्यका प्रमाण कहि जघन्य उत्कृष्ट क्षेत्र काल भावका वर्णन है। बहुरि केवलज्ञान सर्वज्ञ है ताका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनिकी संख्याका वर्णनविषैं मति श्रुति मनःपर्यय केवल अवधिज्ञानीका अर च्यारो गतिसंबंधी विभंगज्ञानीनिका, अर कुमति कुश्रुत ज्ञानीनिका प्रमाण वर्णन है।

बहुरि तेरहवां संयममार्गणा अधिकारविषैं ताके स्वरूपका, अर संयमके भेदके निमित्तका वर्णन है। बहुरि संयमके भेदनिका स्वरूप वर्णन है। तहां परिहारविशुद्धिका विशेष, अर ग्यारह प्रतिमा अट्ठाईस विषय इत्यादिकका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनिकी संख्याका वर्णनविषैं सामायिक छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय, यथाख्यात संयमधारी, अर संयतासंयत, अर असंयत जीवनिका प्रमाण वर्णन है।

बहुरि चौदहवां दर्शनमार्गणा अधिकारविषैं ताके स्वरूपका, अर दर्शनभेदनिके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनिकी संख्याका वर्णनविषैं शक्तिचक्षुर्दर्शनी व्यक्तचक्षुर्दर्शनीनिका अर अवधि केवल अचक्षुर्दर्शनीनिका प्रमाण वर्णन है।

बहुरि पंद्रहवां लेश्यामार्गणा अधिकारविषैं द्रव्य भावकरि दोय प्रकार लेश्या कहि भावलेश्याका निरुक्ति लीए लक्षण अर ताकरि बंध होनेका वर्णन है। बहुरि सोलह अधिकारनिके नाम हैं। बहुरि निर्देशाधिकारविषैं छह लेश्यानिके नाम हैं। अर वर्णाधिकारविषैं द्रव्यलेश्यानिकौं कारणका, अर लक्षणका, अर छहो द्रव्य लेश्यानिके वर्णका दृष्टांतका, अर जिनकैं जो जो द्रव्यलेश्या पाइए ताका व्याख्यान है। बहुरि प्रमाणाधिकारविषैं कषायनिके उदयस्थाननिविषैं संक्लेशविशुद्धि स्थाननिके प्रमाणका, अर तिनविषैं भी कृष्णादि लेश्यानिके स्थाननिके प्रमाणका, अर संक्लेश विशुद्धिकी हानि वृद्धितैं अशुभ शुभलेश्या होनेके अनुक्रमका वर्णन है। बहुरि संक्रमणाधिकारविषैं स्वस्थान परस्थानसंक्रमण संक्लेश विशुद्धिका वृद्धि हानितैं जैसैं संक्रमण होहै ताका, अर संक्लेशविशुद्धिविषैं जैसैं लेश्याके स्थान होंइ, अर तहां जैसैं षट्स्थानपतित वृद्धि हानि संभवै ताका वर्णन है। बहुरि कर्माधिकारविषैं छहो लेश्यावाले कार्यविषैं जैसैं प्रवर्त्तै ताके उदाहरणका वर्णन है। बहुरि लक्षणाधिकार-

विषैं छहोलेश्यावालेनिका लक्षणवर्णन है। बहुरि गति अधिकारविषैं लेश्यानिके छव्वीस अंश, तिनविषैं आठ मध्यम अंश आयुबंधकौं कारण, ते आठ अपकर्षकालनिविषैं होंइ, तिन अपकर्षनिका उदाहरणपूर्वक स्वरूपका, अर तिनविषैं आयु न बंधै तौ जहां बंधै ताका, अर सोपक्रमायुष्क, निरुपक्रमायुष्क जीवानिकै अपकर्षण रूप कालका, वा तहां आयुबंधनेका, विधान वा गति आदि विशेषका, अर अपकर्षनिविषैं आयुबंधनेवाले जीवनिके प्रमाणका वर्णन करि पीछैं लेश्यानिके अठारह अंशानिविषैं जिस जिस अंशविषैं मरण भए जिस जिस स्थानविषैं उपजे ताका वर्णन है। बहुरि स्वामी अधिकारविषैं भावलेश्याकी अपेक्षा सातनरकनिके नारकीनिविषैं, अर मनुष्य तिर्यंचविषैं, तहां भी एकेंद्रिय विकलत्रयविषैं असैनी पचेंद्रीविषैं, लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच मनुष्यविषैं, अपर्याप्त तिर्यंच मनुष्य भवनत्रिकदेव सासादनवालोंविषैं, पर्याप्त अपर्याप्त भोगभूमियाविषैं, मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानिनिविषैं, पर्याप्त भवनत्रिक सौधर्मादिक आदि देवनिविषैं जो जो लेश्या पाइए ताका वर्णन है। तहां असैनीके लेश्यानिमित्ततैं गतिविषैं उपजनेका आदि विशेष कथन है। बहुरि साधन अधिकारविषैं द्रव्यलेश्या अर भावलेश्यानिके कारणका वर्णन है। बहुरि संख्याधिकारविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव मान करि कृष्णादि लेश्यावाले जीवानिका प्रमाण वर्णन है। बहुरि क्षेत्राधिकारविषैं सामान्यपनैं स्वस्थान समुद्घात उपपाद अपेक्षा, विशेषपनैं दोय प्रकार स्वस्थान, सात प्रकार समुद्घात, एक उपपाद इन दश स्थाननिविषैं संभवते स्थाननिकी अपेक्षा कृष्णादि लेश्यानिका स्थानवर्णन कहिए क्षेत्रका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ विवाक्षित लेश्याविषैं संभवते स्थान; तिनविषैं जीवानिके प्रमाणका, तिन स्थाननिविषैं क्षेत्रके प्रमाणका, समुद्घातादिकके विधानका, क्षेत्र फलादिकका, मरनेवाले आदि देवनिके प्रमाणका, केवल समुद्घातविषैं दंडकपाटादिकका, तहां लोकके क्षेत्रफलका इत्यादिकका वर्णन है। बहुरि स्पर्शाधिकारविषैं पूर्वोक्त सामान्य विशेषपनैंकरि लेश्यानिका, तीनकालसंबंधी क्षेत्रका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ मेरुतैं सहस्रारपर्यंत सर्वत्र पवनके सद्भावका, अर जंबूद्वीपसमान लवणसमुद्रके खंड, लवणसमुद्रके समान अन्य समुद्रके खंड करनेके विधानका, अर जलचररहित समुद्रनिका मिलाया हुआ

क्षेत्रफलके प्रमाणका, अर देवादिकके उपजने गमनकरनेका इत्यादि वर्णन है। बहुरि काल अधिकारविषैं कृष्णादि लेश्या जितने काल रहै ताका वर्णन है। बहुरि अंतराधिकारविषैं कृष्णादिलेश्यानिका जघन्य उत्कृष्ट जितने काल अभाव रहै ताका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ एकेंद्री विकलेंद्रीविषैं उत्कृष्ट रहनेके कालका वर्णन है। बहुरि भावाधिकारविषैं छहों लेश्यानिविषैं औदयिक भावके सद्भावका वर्णन है। बहुरि अल्पबहुत्व अधिकारविषैं संख्याके अनुसारि लेश्यानिविषैं परस्पर अल्प बहुत्वका व्याख्यान है। ऐसैं सोलह अधिकार कहि लेश्यारहित जीवानिका व्याख्यान है॥

बहुरि सोलहवां भव्य मार्गणा अधिकारविषैं दोय प्रकार भव्य अर अभव्य अर भव्य अभव्यपनाकरि रहित जीवानिका स्वरूप वर्णन है। बहुरि इहां संख्याका कथनविषैं भव्य अर अभव्य जीवानिका प्रमाण वर्णन है। बहुरि इहां प्रसंग पाइ द्रव्य क्षेत्र काल भव भावरूप पंचपरिवर्तननिके स्वरूपका, वा जैसे क्रमतैं परिवर्तन हो है ताका, अर परिवर्त्तननिके कालका, अनादितैं जैसैं परिवर्तन भए तिनके प्रमाणका वर्णन है। तहां गृहीतादि पुद्गलनिके स्वरूप संदृष्टिका, वा योग स्थान आदिकनिका वर्णन पाइए है॥

बहुरि सतरहवां सम्यक्त्व मार्गणा अधिकारविषैं सम्यक्त्वके स्वरूपका, अर सराग वीतरागके भेदनिका अर षट् द्रव्य नव पदार्थनिके श्रद्धानरूप लक्षणका, वर्णन है। बहुरि षट् द्रव्यका वर्णनविषैं सात अधिकारनिका कथन है। बहुरि तहां नाम अधिकारविषैं द्रव्यके एक वा दोय भेदका, अर जीव अजीवके दोय दोय भेदनिका, अर तहां पुद्गलका निरुक्ति लीएं लक्षणका, पुद्गल परमाणुके आकारका वर्णनपूर्वक रूपी अरूपी अजीव द्रव्यका कथन है। बहुरि उपलक्षणानुवादाधिकारविषैं छहो द्रव्यनिके लक्षणनिका वर्णन है, तहां गति आदि क्रिया जीव पुद्गलकैं है ताका कारण धर्मादिक हैं ताका दृष्टांतपूर्वक वर्णन है। अर वर्तनाहेतुत्व कालके लक्षणका दृष्टांतपूर्वक वर्णन है। अर मुख्य कालके निश्चय होनेका, कालकैं धर्मादिककौं कारणपनेका, समय आवली आदि व्यवहारकालके भेदनिका, तहां प्रसंग पाइ प्रदेशके प्रमाणका, वा अंतर्मुहूर्तके भेदनिका, वा

व्यवहारकाल जाननेकौं निमित्तका, व्यवहारकालके अतीत अनागत वर्तमान भेदनिके प्रमाणका, वा व्यवहार निश्चय कालके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि स्थिति अधिकारविषैं सर्व अपने पर्यायनिका समुदायरूप अवस्थानका वर्णन है। बहुरि क्षेत्राधिकारविषैं जीवादिक जितना क्षेत्र रोकैं ताका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ तीन प्रकार आधार वा जीवके समुद्घातादि क्षेत्रका वा संकोच विस्तार शक्तिका वा पुद्गलादिकनिकी अवगाहन शक्तिका वा लोकालोकके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि संख्याधिकारविषैं जीव द्रव्यादिकका वा तिनके प्रदेशनिका, वा व्यवहार कालके प्रमाणका, द्रव्य क्षेत्र काल भावमान करि वर्णन है। बहुरि स्थान स्वरूपाधिकारविषैं द्रव्यनिका वा द्रव्यके प्रदेशनिका चल अचलपनेका वर्णन है। बहुरि अणुवर्गणा आदि तेईस पुद्गल वर्गणानिका वर्णन हैं। तहां तिन वर्गणानिविषैं जेती जेती परमाणू पाइए ताका आहारादिक वर्गणातैं जो जो कार्य निपजै है ताका जघन्य उत्कृष्ट प्रत्येकादि वर्गणा जहां पाईए ताका, महास्कंध वर्गणाके स्वरूपका, अणुवर्गणा आदि वर्गणा लोकविषैं जितनी जितनी पाइए ताका इत्यादि वर्णन है। बहुरि पुद्गलके स्थूल आदि छह भेदनिका, वा स्कंध, प्रदेश, देश इनतीन भेदनिका वर्णन है बहुरि फल अधिकारविषैं धर्मादिकका गति आदि साधनरूप उपकार, जीवनिके परस्पर उपकार, पुद्गलनिका कर्मादिक वा सुखादिक उपकार, तिनका प्रश्नोत्तरादिक लीएं वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ कर्मादिक पुद्गल ही हैं ताका, अर कर्मादिक जिस जिस पुद्गल वर्गणातैं निपजैं हैं ताका, अर स्निग्धरूपके गुणनिके अंशनिकरि जैसैं पुद्गलका संबंध हो है ताका वर्णन है। ऐसैं षट् द्रव्यका वर्णन करि तहां कालविना पंचास्तिकाय हैं ताका वर्णन है। बहुरि नव पदार्थनिका वर्णनविषैं जीव अजीवका तौ षट् द्रव्यनिविषैं वर्णन भया। बहुरि पाप जीवनिका वर्णन है तहां प्रसंग पाइ चौदह गुणस्थाननिविषैं जीवनिका प्रमाण वर्णन है। तहां उपशम क्षपक श्रेणीवाले निरंतर अष्ट समयनिविषैं जेते जेते होंइ ताका, वा युगपत् बोधितबुद्धि आदि जीव जेते जेते होंइ ताका, अर सकल संयमीनिके प्रमाणका वर्णन है। बहुरि सात नरकके नारकी भवनत्रिक सौधर्मादिकादिक देव. तिर्यंच. मनुष्य ए जेते जेते मिथ्यादृष्टि आदि

गुणस्थाननिविषैं पाइए तिनका वर्णन है। बहुरि गुणस्थाननिविषैं पुण्यजीव पापजीवनिका भेद वर्णन है। बहुरि पुद्गलीक द्रव्य पुण्य पापका वर्णन है । बहुरि आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्षरूप पुद्गलनिका प्रमाण वर्णन है। ऐसैं षट्द्रव्यादिकका स्वरूप कहि तिनके श्रद्धानरूप सम्यक्त्वके भेदनिका वर्णन है । तहां क्षायिक सम्यक्त्वके भेदनिका वर्णन है। तहां क्षायिक सम्यक्त्व होनेके कारणका ताके स्वरूपका, ताकौं पाऐं जेते भवनिविषैं मुक्ति होइ ताका, तिसके महिमाका अर तिसका प्रारंभ निष्ठापन जहां होइ ताका वर्णन है। बहुरि वेदकसम्यक्त्वके कारणका वा स्वरूपका वर्णन है बहुरि उपशम सम्यक्त्वके स्वरूपका, कारणका, पंचलब्धि आदि सामग्रीका, वा जाके उपशम सम्यक्त्व होइ ताका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ आयुबंध भए पीछैं सम्यक्त्व व्रत होने न होनेका वर्णन है। बहुरि सासादन मिश्र मिथ्यारुचिका वर्णन है। बहुरि इहां जीवनिकी संख्याका वर्णनविषैं क्षायिक, उपशम, वेदक सम्यग्दृष्टिनिका अर मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र जीवनिका प्रमाण वर्णन है। बहुरि नव पदार्थनिका प्रमाण वर्णन है। तहां जीव अर अजीवविषैं पुद्गल, धर्म। अधर्म, आकाश, काल, अर पुण्य पाप रूप जीव, अर आस्रव संवर निर्जरा बंध मोक्ष इनके प्रमाणका निरूपण है॥

बहुरि अठारहवां संज्ञा मार्गणा अधिकारविषैं संज्ञाके स्वरूपका, संज्ञी असंज्ञी जीवनिके लक्षणका वर्णन है अर इहां संख्याका वर्णनविषैं संज्ञी असंज्ञी जीवनिका प्रमाण वर्णन है।

बहुरि उगणीसवां आहार मार्गणा अधिकारविषैं आहारकके स्वरूप वा निरुक्तिका अर आहारक जिनके हो है ताका तहां प्रसंग पाइ सात समुद्घातनिके नाम वा समुद्घातके स्वरूपका, अर आहारक अनाहारकके कालका वर्णन है । बहुरि तहां आहारक अनाहारक जीवनिका प्रमाण वर्णन है तहां प्रसंग पाइ प्रक्षेपयोगोद्धृति मिश्रपिंड इत्यादि सूत्रकरि मिश्रके व्यवहारका कथन है।

बहुरि बीसवां उपयोग अधिकारविषैं उपयोगके लक्षणका, साकार अनाकार भेदनिका, उपयोग है सो व्याप्ति अव्याप्ति असंभवी दोषरहित जीवका लक्षण है ताका, अर केवलज्ञान केवलदर्शनविना साकार अना-

कार उपयोगनिका काल अंतर्मुहूर्त मात्र है ताका वर्णन है । बहुरि इहां जीवनिकी संख्या साकारोपयोगविषैं ज्ञानमार्गणावत् अर अनाकारोपयोगविषैं दर्शनमार्गणावत् है ताका वर्णन है ।

बहुरि इकीसवां ओघादेश योगप्ररूपणा प्ररूपण अधिकारविषैं गति आदि मार्गणानिकें भेदनिविषैं यथासंभव गुणस्थान अर जीवसमासनिका वर्णन है । तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्वविषैं पर्याप्त अपर्याप्त अपेक्षा गुणस्थाननिका विशेष कह्या है । बहुरि गुणस्थाननिविषैं संभवते जे जीवसमास पर्याप्ति प्राण संज्ञा चौदह मार्गणानिके भेद उपयोग तिनका वर्णन है । तहां मार्गणा वा उपयोगके स्वरूपका भी किछू वर्णन है ! तहां योग भव्यमार्गणानिके भेदनिका, वा सम्यक्त्वमार्गणाविषैं प्रथम द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका इत्यादि विशेष वर्णन है । अर गति आदि केई मार्गणानिविषैं पर्याप्त अपर्याप्त अपेक्षा कथन है ।

बहुरि बावीसवां आलाप अधिकारविषैं मंगलाचरणकरि समान्य पर्याप्त अपर्याप्तकरि तीन आलाप, अर अनिवृति करणविषैं पंच भागनिकी अपेक्षा पंच आलाप तिनका गुणस्थाननिविषैं वा गुणस्थान अपेक्षा चौदहमार्गणाके भेदनिविषैं यथासंभव कथन है । तहां गति मार्गणाविषैं किछू विशेष कथन है । बहुरि गुणस्थान मार्गणास्थाननिविषैं गुणस्थानादि वीस प्ररूपणा यथासंभव आलापनिकी अपेक्षा निरूपण करनी । तहां पर्याप्त अपर्याप्त एकेंद्रियादि जीवनिकें संभवते पर्याप्ति प्राण जीव समासादिकका किछू वर्णनकरि यथायोग्य सर्व प्ररूपणा जाननेका उपदेश है । बहुरि तिनके जाननेकौं यंत्रनिकारि कथन है । तहां पहिलै यंत्रनिविषैं जैसैं अनुक्रम है, वा समस्या है वा विशेष है सो कथन है । पीछे एक एक रचनाविषैं वीस वीस प्ररूपणाका कथनस्वरूप छह्यै चउदह यंत्रनिकी रचना है । तहां कोई रचना समान जानि बहुत रचनानिकी एक रचना है । बहुरि मनःपर्यय ज्ञानादिकविषैं एकहोतैं अन्य न होय ताका, उपशम श्रेणीतैं उतरि मरणभए उपजनेका, सिद्धनिविषैं संभवती प्ररूपणानिका निक्षेपादिककरि प्ररूपणा जाननेके उपदेशका वर्णन है । बहुरि आशीर्वाद है । बहुरि टीकाकारके वचन हैं ।

ऐसैं जीवकांडनामा महा अधिकारके बावीस अधिकारनिविषैं क्रमतैं व्याख्यानकी सूचनिका जाननी ॥

अथ कर्म(अजीव)कांड नामा महाअधिकारके नव अधिकार हैं तिनके व्याख्यानकी सूचना क्रमतैं कहिए है—

तहां पहिला प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारविषैं मंगलाचरणपूर्वक प्रतिज्ञाकरि प्रतिज्ञाके स्वरूपका, जीवकर्मके संबंधका, तिनके अस्तित्वका, दृष्टांतपूर्वक कर्मपरमाणूनिके ग्रहणका, बंध उदय सत्त्वरूप कर्मपरमाणूनिके प्रमाणका वर्णन है। बहुरि ज्ञानावरणादिक आठ मूल प्रकृतिनिके नामका, इनविषैं घाती अघाती भेदका, इनकरि कार्य होहै ताका, इनके क्रम संभवनेका, दृष्टांत निरुक्तिलीए इनके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि इनकी उत्तर प्रकृतिनिका कथन है। तहां पंच निद्राका, तीन दर्शनमोह होनेके विधानका, पंचशरीरनिके पंद्रह भंगनिका, विवक्षित संहननवाले देव नरक गतिविषैं जहां उपजैं ताका, कर्मभूमिकी स्त्रीनिकैं तीन संहनन हैं ताका, आताप प्रकृतिके स्वरूप वा स्वामित्वका विशेष व्याख्यान है। बहुरि मतिज्ञानावरणादि उत्तर प्रकृतिनिके निरुक्तिलीएं स्वरूपका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ अभव्यके केवलज्ञानके सद्भावविषैं प्रश्नोत्तरका, बहुरि सात धातु सात उपधातुका इत्यादि वर्णन है। बहुरि अभेद विवक्षाकरि जे प्रकृति गर्भित हो हैं तिनका वर्णनकरि बंध उदय सत्तारूप जेती जेती प्रकृति हैं तिनका वर्णन है बहुरि घातियानिविषैं सर्वघाती देशघाती प्रकृतिनिका, अर सर्व प्रकृतिनिविषैं प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतिनिका वर्णन है। बहुरि अनंतानुबंधी आदि कषायनिका कार्य वा वासनाकालका वर्णन है। बहुरि कर्म प्रकृतिनिविषैं पुद्गलविपाकी भवविपाकी क्षेत्रविपाकी जीवविपाकी प्रकृतिनिका वर्णन है। बहुरि प्रसंग पाइ संशय विपर्यय अनध्यवसायका वर्णनपूर्वक तीनप्रकार श्रोतानिका वर्णनकरि प्रकृतिनिके चार निक्षेपनिका वर्णन है। तहां नामादि निक्षेपनिका स्वरूप कहि नाम निक्षेपका, अर तदाकार अतदाकाररूप दोय प्रकार स्थापना निक्षेपका अर आगम नोआगम रूप दोय प्रकार द्रव्य निक्षेपका, तहां नो आगमके ज्ञायक भावी तद्व्यतिरिक्तरूप तीनप्रकारका, तहां भी भूत भावी वर्तमानरूप ज्ञायकशरीरके तीन भेदनिका, तहां भी च्युत च्यावित त्यक्तरूप भूत शरीरके तीन भेदनिका, तहां भी त्यक्तके भक्त प्रतिज्ञा इंगिनी प्रायोपगमनरूप भेदनिका, तहां भी भक्त प्रतिज्ञाके उत्कृष्ट मध्य जघन्यरूप तीनप्रकारनिका अर तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्यके कर्म नोकर्म

भेदनिका, बहुरि भावनिक्षेपके आगम नोआगम भेदनिका वर्णन है। तहां मूल प्रकृतिनिविषैं इनकौं कहि उत्तर प्रकृतिनिविषैं वर्णन है। तहां औरनिका सामान्यपनैं संभवपना कहि नोकर्मरूप तद्व्यतिरिक्त नो आगम द्रव्य-की जुदी जुदी प्रकृतिनिविषैं वर्णन है। अर नोआगमभावका समुच्चयरूप वर्णन है।

बहुरि दूसरा बंध उदय सत्त्वयुक्तस्तवनामा अधिकार है। तहां नमस्कार पूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्तवनादिकका लक्षण वर्णन है। बहुरि बंध व्याख्यानविषैं बंधके प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप भेदनिका, अर तिनविषैं उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट जघन्य अजघन्यपनेका, अर इनविषैं भी सादि अनादि ध्रुव अध्रुव संभवनेका वर्णन है। बहुरि प्रकृति-बंधका कथनविषैं गुणस्थाननिविषैं प्रकृतिबंधके नियमका, तहां भी तीर्थंकरप्रकृति वंधनेके विशेषका, अर गुण-स्थाननिविषैं व्युच्छित्ति बंध अबंध प्रकृतिनिका, तहां भी व्युच्छित्तिके स्वरूप दिखावनेकौं द्रव्यार्थिक पर्याया-र्थिकनयकी अपेक्षाका, अर गति आदि मार्गणाके भेदनिविषैं सामान्यपनैं वा संभवते गुणस्थान अपेक्षा व्युच्छि-त्ति बंध अबंध प्रकृतिनिके विशेषका, अर मूल उत्तर प्रकृतिनिविषैं संभवते सादिनैं आदि देकर बंधका, तहां अ-ध्रुव प्रकृतिनिविषैं सप्रतिपक्ष निःप्रतिपक्ष प्रकृतिनिका, अर निरंतर बंध होनेके कालका वर्णन है। बहुरि स्थिति-बंधका वर्णनविषैं मूल उत्तर प्रकृतिनिके उत्कृष्ट स्थितिबंधका, अर उत्कृष्टस्थितिबंध संज्ञीपंचेंद्रियकैं ही होय ताका, अर जिस परिणामतैं वा जिसजीवकैं जिस प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबंध होय ताका, तहां प्रसंग पाय उत्कृष्ट ईषत् मध्यम संक्लेश परिणामनिके स्वरूप दिखावनेकौं अनुकृष्टि आदि विधानका, अर मूल उत्तर प्रकृतिनिके जघन्य स्थितिबंधके प्रमाणका, अर जघन्य स्थितिबंध जाकैं होय ताका वर्णन है। अर एकेंद्री वेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री अ-संज्ञी संज्ञी पंचेंद्री जीवनिकैं मोहादिककी उत्कृष्ट जघन्यस्थितिके प्रमाणका, तहां प्रसंग पाइ तिनके आबाधाके कालभेदकांडकनिके प्रमाणकौं कहि भेदप्रमाणकरि गुणितकांडकप्रमाणकौं उत्कृष्टस्थितिविषैं घटाएं जघन्यस्थिति का प्रमाण होनेका वर्णन है। बहुरि एकेंद्रियादिजीवनिके स्थितिभेदनिकौं स्थापनकरि तहां चौदह जीवसमा-सनिविषैं जघन्य उत्कृष्ट स्थितिबंध अर अबाधा अर भेदनिके प्रमाणका, अर तिनके जाननेका विधानवर्णन

है। तहां प्रकृतिनिका जघन्य स्थितिबंध जिनकैं होइ ताका, अर जघन्य आदि स्थितिबंधविषैं सादिनैं आदि देकरि संभवपनेका, अर विशुद्धसंक्लेशपरिणामनितैं जैसैं जघन्य उत्कृष्ट स्थितिबंध होय ताका, अर आबाधाके लक्षणका, मोहादिककी आबाधाके कालका, आयुकी आबाधाके विशेषका तहां प्रसंग पाइ देव नारकी भोगभूमियां कर्मभूमियांनिके आयुबंध होनेके समयका, उदीर्णा अपेक्षा आबाधाकालके प्रमाणका, प्रसंग पाइ अचलावली, उदयावली उपरितन स्थितिविषैं कर्मपरमाणु खिरनेका, उदीर्णाके स्वरूपका, आयु वा अन्य कर्मनिके निषेकनिके स्वरूपका, अंकसंदृष्टिपूर्वक निषेकनिविषैं द्रव्यप्रमाणका, तहां गुणहानि आदिका वर्णन है। बहुरि अनुभागबंधका व्याख्यानविषैं प्रकृतिनिका अनुभाग जैसैं संक्लेशविशुद्धिपरिणामनिकरि बंधै है ताका, अर जिस प्रकृतिका जाकैं तीव्र वा जघन्य अनुभाग बंधै है ताका, तहां प्रसंग पाइ अपरिवर्तमान, परिवर्तमान मध्य परिणामनिके स्वरूपादिकका अर उत्कृष्टादि अनुभाग बंधविषैं सादिनैं आदि देकरि भेदनिके संभवपनेका वर्णन है। बहुरि घातियानिविषैं लता दारु अस्थि शैलभागरूप अनुभागका तहां देशघातियास्पर्द्धकनिका मिथ्यात्वविषैं विशेष है ताका, अर जिन प्रकृतिनिविषैं जेतेप्रकार अनुभाग प्रवर्त्तै ताका, अर अघातियानिविषैं प्रशस्त प्रकृतिनिका गुड खंड शर्करा अमृत रूप, अप्रशस्त प्रकृतिनिका, निंब कांजीर विष हलाहलरूप अनुभागका अर इन प्रकृतिनिकैं तीन तीनप्रकार अनुभागप्रवर्त्तै ताका वर्णन है। बहुरि प्रदेश बंधका कथनविषैं एकक्षेत्र अनेकक्षेत्रसंबंधी वा तहां कर्मरूप होनैकौं योग्य अयोग्यरूप, तिनविषैं भी जीवके ग्रहणकी अपेक्षा सादि अनादिरूप पुद्गलनिका प्रमाणादिक कहि, तहां जिन पुद्गलनिकौं समयप्रबद्धविषैं ग्रहै है ताका, अर ग्रहे जे परमाणु तिनके प्रमाणकौं कहि तिनका आठ वा सात मूल प्रकृतिनिविषैं जैसैं विभाग होहै ताका, तहां हीनाधिक विभाग होनेके कारणका वर्णन है। अर उत्तर प्रकृतिनिविषैं विभागके अनुक्रमका अर ज्ञानावरण दर्शनावरण अंतरायविषैं सर्वघाती देशघाती द्रव्यके विभागका, तहां प्रसंग पाइ मतिज्ञानावरणादि प्रकृतिनिविषैं सर्वघाती देशघाती स्पर्द्धकनिका, तहां अनुभागसंबंधी नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तद्रव्यस्थितिगुणहानिका प्रमाण कहि, तहां वर्गणानिका प्रमाण ल्याय तिनविषैं

जहां देशघाती सर्वघातीपना पाइए ताका वर्णनकरि च्यारि घातिया कर्मनिकी उत्तर प्रकृतिनिविषैं कर्मपरमाणुनिके विभागका वर्णन हैं। तहां संज्वलन अर नोकषायविषैं विशेष है ताका, अर नोकषायनिविषैं जिनका युगपत् बंध होइ तिनका, अर तिनके निरंतरबंधनेके कालका, अर अंतरायकी प्रकृतिनिविषैं सर्वघातीपना नाहीं ताका वर्णन है। बहुरि युगपत् नामकर्मकी तेईस आदि प्रकृति बंधैं तिनविषैं विभागका, अर वेदनीयादिककी एक एक ही प्रकृति बंधै तातैं तहां विभाग न करनेका वर्णन है।

बहुरि मूल उत्तर प्रकृतिनिका उत्कृष्टादि प्रदेशबंधविषैं सादि इत्यादि भेद संभवनेका, अर जिस प्रकृतिका उत्कृष्ट जघन्य प्रदेशबंध जाकैं होय ताका, अर तहां प्रसंग पाइ स्तोकसा एकजीवके युगपत् जेती जेती प्रकृति बंधैं ताका वर्णन है। बहुरि इहां प्रसंग पाइ योगनिका कथन है। तहां उपपाद एकांतवृद्धि परिणामरूप योगनिके स्वरूपादिकका वर्णन है। अर योगनिके अविभागप्रतिच्छेद वर्ग वर्गणा स्पर्द्धक गुणहानि नानागुणहानि स्थाननिके स्वरूप प्रमाण विधानका योगशक्ति वा प्रदेश अपेक्षा विशेष वर्णन है। अर योगनिका जघन्य स्थानतैं लगाय स्थाननिविषैं वृद्धिके अनुक्रमकौं आदिदेकरि वर्णन है। अर सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तकका जघन्य उपपाद योगस्थानकौं आदि देकरि चौरासी स्थाननिका, अर वीचि वीचि जिनका स्थानी (स्वामी) न पाइए तिनका, अर तिनविषैं गुणकारके अनुक्रमका, अर जघन्यस्थानतैं उत्कृष्ट स्थानके गुणकारका वर्णन है। अर तीन प्रकार योग निरंतर जेते काल प्रवर्त्तैं ताका, अर पर्याप्त त्रस संबंधी परिणाम योगस्थाननिविषैं जेते जेते योगस्थान दोय आदि आठ समयपर्यंत निरंतर प्रवर्त्तैं तिनके प्रमाण ल्यावनेकौं कालयवमध्य रचनाका, अर पर्याप्त त्रससंबंधी परिणाम योगस्थाननिविषैं जेते जेते जीव पाइए तिनके प्रमाण जाननेकौं गुणहानि आदिं विशेषलिएं जीवयवमध्यरचनाका अर योगस्थाननितैं जेता जेता प्रदेशबंध होय ताका, अर जघन्यतैं उत्कृष्टस्थानपर्यंत बंधनेके क्रमका वीचि वीचि जेते अविभाग प्रतिच्छेद होंइ तिनका वर्णन है। बहुरि च्यारि प्रकार बंधके कारणनिका वर्णन है। बहुरि योगस्थानादिकके अल्पबहुत्वका वर्णन है। तहां योगस्थानश्रेणीके असंख्यातवां भागमात्र तिनिका वर्ण-

नकरि तिनतैं असंख्यातलोकगुणे कर्मप्रकृतिनिके भेदनिका वर्णनविषैं मतिज्ञानादिकनिके भेदनिका, अर क्षेत्र अपेक्षा आनुपूर्वीके भेदनिका कथन है। बहुरि तिनतैं असंख्यातगुणे कर्मस्थितिके भेदनिका वर्णनविषैं तिन एक एक प्रकृतिकी जघन्यादि-उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति भेदनिका कथन है। बहुरि तिनतैं असंख्यातगुणे स्थिति बंधाध्यवसायनिका वर्णनविषैं द्रव्यस्थिति गुणहानि निषेक चयादिककरि स्थिति बंधकौं कारण परिणामनिका स्तोकसा कथन है। बहुरि तिनतैं असंख्यातलोकगुणे अनुभागबंधाध्यवसायस्थाननिका वर्णनविषैं द्रव्यास्थिति गुणहान्यादिककरि अनुभागकौं कारण परिणामनिका स्तोकसा कथन है। बहुरि तिनतैं अनंतगुणे कर्मप्रदेशनिका वर्णनविषैं द्रव्यस्थिति गुणहानि नानागुणहानि चय निषेकनिका अंकसंदृष्टि वा अर्थकरि कथन है। तहां एकसमयविषैं समयप्रबद्धमात्र पुद्गल बंधैं, एक एक निषेक मिलि समयप्रबद्धमात्र ही निर्जरैं ऐसैं होतैं द्व्यर्द्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धमात्र सत्त्व रहै ताका विधान जाननेके अर्थि त्रिकोणयंत्रकी रचना करी है। बहुरि ऐसैं बंध वर्णनकरि उदयका वर्णनविषैं उदय प्रकृतिनिका नियम कहि गुणस्थाननिविषैं व्युच्छित्ति उदय अनुदय प्रकृतिनिका वर्णन है। बहुरि इहां ही उदीरणाविषैं विशेष कहि गुणस्थाननिविषैं व्युच्छित्ति उदीरणा अनुदीर्णारूप प्रकृतिनिका वर्णन है। बहुरि मार्गणाविषैं उदय प्रकृतिनिका नियम कहि गति आदि मार्गणानिके भेदनिविषैं संभवते गुणस्थाननिकी अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति उदय अनुदयप्रकृतिनिका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ अनेक कथन है। बहुरि सत्त्वका कथनविषैं तीर्थंकर आहारककी सत्ताका, मिथ्यादृष्ट्यादिविषैं विशेष अर आयुबंध भए पीछै सम्यक्त्व व्रत होनेका विशेष, क्षायिक सम्यक्त्व होनेका विशेष कहि मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थाननिविषैं सत्त्व प्रकृतिनिका वर्णनकरि, ऊपरि क्षपकश्रेणी अपेक्षा व्युच्छित्ति सत्त्व असत्त्व प्रकृतिनिका वर्णन है। बहुरि मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननिविषैं सत्त्व असत्त्व प्रकृतिनिका वर्णनकरि उपशम श्रेणीविषैं इकईस मोह प्रकृति उपशमावनेका क्रमका, अर तहां सत्त्व प्रकृतिनिका कथन है। बहुरि मार्गणानिविषैं सत्ता असत्ता प्रकृतिनिका नियम कहि गति आदि मार्गणानिके भेदनिविषैं संभवते गुणस्थाननिकी अपेक्षा लीए व्युच्छित्ति सत्त्व असत्त्व प्रकृतिनिका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ इंद्रिय काय मार्गणाविषैं प्रकृतिनिकी उद्वेलनाका इत्यादि अनेक वर्णन है।

बहुरि विशेष सत्तारूप तीसरा सत्त्वस्थान अधिकारविषैं एक जीवकैं एक काल प्रकृति पाइए तिनके प्रमाणकी अपेक्षा स्थान, अर स्थानविषैं प्रकृति बदलनेकी अपेक्षा भंग तिनका वर्णन है। तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि स्थानभंगनिका स्वरूप कहि गुणस्थाननिविषैं सामान्यवत् प्रकृतिनिका वर्णनकरि विशेष वर्णनाविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननिविषैं जेते जेते स्थान वा भंग पाइए तिनकौं कहि जुदा जुदा कथनविषैं तिनका विधान वा प्रकृति घटने वधने बदलनेके विशेषका बद्धायु अबद्धायु अपेक्षा वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ मिथ्यादृष्टिविषैं तीर्थंकर सत्तावालेकैं नरकायुहीका सत्त्व होइ ताका, वा एकेंद्रियादिककैं उद्वेलनाका अर सासादनविषैं आहार सत्ताके विशेषका, मिश्रविषैं आनंतानुबंधीरहित सत्त्वस्थान जैसैं संभवै ताका, असंयतविषैं मनुष्यायु तीर्थंकर सहित एकसौ अडतीस प्रकृतिकी सत्तावालेकैं एक वा दोय वा तीन ही कल्याणक होंइ ताका, अपूर्वकरणादिविषैं उपशमक क्षपक श्रेणी अपेक्षाका इत्यादि अनेक वर्णन है। बहुरि आचार्यनिके मतकरि जो विशेष है ताकौं कहि तिस अपेक्षा कथन है।

बहुरि चौथा त्रिचूलिका नामा अधिकार है। तहां प्रथम नव प्रश्नकरि चूलिकाका व्याख्यान है। तिसविषैं पहिलैं तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तरविषैं जिन प्रकृतिनिकी उदय व्युच्छित्तितैं पहिले बंध व्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदय व्युच्छित्तितैं पीछैं बंधव्युच्छित्ति भई तिनका, अर जिनकी उदयव्युच्छित्ति बंधव्युच्छित्ति युगपत् भई तिनका वर्णन है। बहुरि दूसरा तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तरविषैं जिनका अपना उदय होतैं ही बंध होइ तिनका, अर जिनका अन्य प्रकृतिनिका उदय होतैं ही बंध होइ तिनका, अर जिनका अपना वा अन्य प्रकृतिनिका उदय होतैं बंध होय तिनि प्रकृतिनिका वर्णन है। बहुरि तीसरा तीन प्रश्नकरि तिनका उत्तरविषैं जिनका निरंतर बंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर बंध होइ तिनका, अर जिनका सांतर निरंतर बंध होइ तिनिका कथन है। इहां तीर्थंकरादि प्रकृति निरंतर बंधी जैसैं हैं ताका, अर सप्रतिपक्ष निःप्रतिपक्ष अवस्थाविषैं सांतर निरंतर बंध जैसैं संभवै है ताका वर्णन है।

बहुरि दूसरी पंचभागहारचूलिकाका व्याख्यानविषैं मंगलाचरणकरि उद्वेलन विध्यात अधःप्रवृत्त गुणसंक्रम सर्वसंक्रम इन पंच भागहारनिके नामका, अर स्वरूपका, अर ते भागहार जिनि जिनि प्रकृतिनिविषैं वा गुणस्थाननिविषैं संभवैं ताका वर्णन है। अर सर्व संक्रमभागहार, गुणसंक्रमभागहार, उत्कर्षण वा अपकर्षणभागहार, अधःप्रवृत्तभागहार, योगनिविषैं गुणकार, स्थितिविषैं नानागुणहानि, पल्यके अर्धच्छेद, पल्यका वर्गमूल, स्थितिविषैं गुणहानि आयाम, स्थितिविषैं अन्योन्याभ्यस्तराशि, पल्य, कर्मकी उत्कृष्टस्थिति, विध्यातसंक्रमभागहार, उद्वेलनभागहार, अनुभागविषैं नाना गुणहानि, गुणहानि, द्व्यर्द्धगुणहानि, दोगुणहानि, अन्योन्याभ्यस्त इनका प्रमाणपूर्वक अल्प बहुत्वका कथन है।

बहुरि तीसरी दशकरण चूलिकाका व्याख्यानविषैं बंध १ उत्कर्षण २ संक्रम ३ अपकर्षण ४ उदीर्णा ५ सत्त्व ६ उदय ७ उपशम ८ निधत्ति ९ निःकांचना १० इन दश करणानिके नामका, स्वरूपका, जिनि जिनि प्रकृतिनिविषैं वा गुणस्थाननिविषैं जैसैं जैसैं संभवैं तिनिका वर्णन है॥

बहुरि पांचवां बंध उदय सत्त्वसहित स्थानसमुत्कीर्त्तन नामा अधिकारविषैं मंगलाचरण करि एक जीवकैं युगपत् संभवतीं बंधादिक प्रकृतिनिका प्रमाण रूप स्थान वा तहां प्रकृति बदलनेकरि भये भंगनिका वर्णन है। तहां मूलप्रकृतिनिके बंधस्थाननिका, अर तहां संभवते भुजाकारादि बंध विशेपका, अर भुजाकार अल्पतर अवस्थित अवक्तव्यरूप बंध विशेषनिके स्वरूपका, अर मूलप्रकृतिनिके उदयस्थान उदीर्णास्थान सत्त्वस्थाननिका वर्णन है। बहुरि उत्तरप्रकृतिनिका कथनविषैं दर्शनावरण मोहनीयनामकी प्रकृतिनिविषैं विशेष है तहां दर्शनावरणके बंधस्थाननिका, अर तहां गुणस्थान अपेक्षा भुजाकारादि विशेष संभवनेका, अर दर्शनावरणके गुणस्थाननिविषैं संभवते बंधस्थान, उदयस्थान, सत्त्वस्थाननिका वर्णन है। बहुरि मोहनीयके बंधस्थाननिका, अर ते गुणस्थाननिविषैं जैसैं संभवैं ताका, अर तहां प्रकृतिनिके नाम जाननेकौं ध्रुवबंधी प्रकृतिका, वा कूट रचना आदिकका, अर तहां प्रकृति बदलनेतैं भए भंगनिका, अर तिन बंधस्थाननिविषैं संभवते भुजाकारादि विशेषनिका,

वा भुजाकारादिकके लक्षणका, वा सामान्य अवक्तव्य भंगनिकी संख्याका, अर भुजाकारादि संभवनेके विधानका, अर इहां प्रसंग पाइ गुणस्थाननिविषैं चढना उतरना इत्यादि विशेषनिका वर्णन है। बहुरि मोहके उदयस्थाननिका, अर गुणस्थाननिविषैं संभवता दर्शनमोहका उदय कहि तहां संभवते मोहके उदयस्थाननिका, अर तहां प्रकृत्यादिके जाननेकू कूटरचना आदिका, अर तहां प्रकृति बदलनेतैं भए भंगनिका, अर अनिवृत्तिकरणविषैं वेदादिकके उदयकालादिकका, अर सर्वमोहके उदयस्थान, अर तिनकी प्रकृतिनिका विधान, वा संख्या वा मिलाई हुई संख्याका, अर गुणस्थाननिविषैं संभवते उपयोग, योग, संयम, लेश्या, सम्यक्त्व तिनकी अपेक्षा मोहके उदयस्थाननिका, वा तिनकी प्रकृतिनिका विधान संख्या आदिकका, तहां अनंतानुबंधीरहित उदयस्थान मिथ्यादृष्टिकी अपर्याप्त अवस्थामैं न पाइए इत्यादि विशेषका वर्णन है। बहुरि मोहके सत्त्वस्थाननिका वा तहां प्रकृति घटनेका, अर ते स्थान गुणस्थाननिविषैं जैसैं संभवैं ताका, अर अनिवृत्तिकरणविषैं विशेष है ताका वर्णन है। बहुरि नाम कर्मका कथनविषैं आधारभूत इकतालीस जीवपद चौंतीस कर्मपदनिका व्याख्यान करि नामके बंधस्थानका अर ते गुणस्थाननिविषैं जैसैं संभवै ताका, अर ते जिस जिम कर्मपदमाहित बंधे हैं ताका, अर तिनिविषैं क्रमतैं नवध्रुवबंधी आदि प्रकृतिनिके नामका, अर तेईसकेनैं आदि दै करि नामके बंधस्थाननिविषैं जे जे प्रकृति जैसैं जैसैं पाइए ताका, अर तहां प्रकृति बदलनेतैं भए भंगनिका वर्णन है। अर इहां प्रसंग पाइ जीव मरि जहां उपजै ताका वर्णनविषैं प्रथमादि पृथ्वीके नारकी मरि जहां उपजैं वा न उपजैं ताका, तहां प्रसंग पाइ स्वयंभूरमण समुद्रपरैं कूणानिविषैं कर्मभूमियां तिर्यंच हैं इत्यादि विशेषका, अर बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त अग्निकायिक आदि जीव जहां उपजैं ताका, तहां सूक्ष्मनिगोदतैं आए मनुष्य सकल संयम न ग्रहै इत्यादि विशेषका, अर अपर्याप्त मनुष्य जहां उपजैं ताका, अर भोगभूमि कुभोगभूमिके तिर्यंच मनुष्य, अर कर्मभूमिके मनुष्य जहां उपजैं ताका, अर सर्वार्थसिद्धितैं लगाय भवनत्रिक पर्यंत देव जहां उपजैं ताका वर्णन है। बहुरि ऐसैं च्यवन उत्पाद कहि चौदह मार्गणानिविषैं गुणस्थाननिकी अपेक्षा लीएं जैसैं जे जे नामकर्मके बंधस्थान संभवैं तिनका

वर्णन है। तहां गति इंद्रिय काय योग वेद मार्गणानिविषैं तौ लेश्या अपेक्षा बंधस्थाननिका कथन है, कषाय मार्गणाविषैं अनंतानुबंधी आदि जैसैं उदय हो हैं ताका, वा इनके देशघाती सर्वघाती स्पर्द्धकनिका, वा सम्यक्त्व संयमघातनेका वा लेश्या अपेक्षा बंधस्थाननिका कथन है। अर ज्ञानमार्गणाविषैं गति आदिककी अपेक्षा करि बंधस्थाननिका कथन है। अर संयममार्गणाविषैं सामायिकादिकके स्वरूपका, अर संयतासंयतविषैं दोयगति अपेक्षा, अर असंयमविषैं च्यारिगति अपेक्षा बंधस्थाननिका कथन है। तहां निर्वृत्यपर्याप्तदेवकैं बंधस्थान कहनेकौं देवगतिविषैं जे जे जीव जहां पर्यंत उपजैं ताका, अर सासादनविषैं बंधस्थान कहनेकौं जे जे जीव जैसैं उपशमसम्यक्त्वकौं छांडि सासादन होंइ ताका इत्यादि कथन है। अर दर्शनमार्गणाविषैं गति अपेक्षा बंधस्थाननिका कथन है। अर लेश्या मार्गणाविषैं प्रथमादि नरक पृथ्वीनिविषैं लेश्या संभवनेका, जिस जिस संहननके धारी जे जे जीव जहां जहां पर्यंत नरकविषैं उपजैं ताका, नरकनिविषैं पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था अपेक्षा बंधस्थाननिका अर तिर्यंचविषैं एकेंद्रियादिककैं वा भोगभूमियां तिर्यंचकैं जो जो लेश्या पाइए ताका, अर जे जे जीव जिस जिस लेश्याकरि तिर्यंचविषैं उपजैं ताका, अर तिनकैं निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थाविषैं बंधस्थाननिका, अर जहांतैं आए सासादन वा असंयत होंइ अर तिनके जे बंधस्थान होंइ ताका, अर शुभाशुभलेश्यानिविषैं परिणामनिका, तहां प्रसंग पाइ कषायनिके स्थान वा तहां संक्लेश विशुद्धिस्थान, वा कषायनिके च्यारि शक्तिस्थान, चौदह लेश्यास्थान वीस आयु बंधाबंधस्थान तिनका, अर लेश्यानिके छव्वीस अंश, तहां आठ मध्यम अंश आयुबंधकौं कारण ते आठ अपकर्षकालनिविषैं होंइ, अन्य अठारह अंश च्यारि गतिनिविषैं गमनकौं कारण तिनके विशेषका, अर लेश्यानिके पलटनेके क्रमका वर्णन करि, तिर्यंचकैं मिथ्यादृष्टि आदिविषैं जैसैं मिथ्यात्वकषायनिका उदय पाइए है ताकौं कहि, तहां जे बंधस्थान पाइए ताका, अर भोगभूमियां तिर्यंचकैं, वा प्रसंग पाइ औरनिकैं, जैसैं निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त मिथ्यादृष्टि आदिविषैं जैसैं लेश्याकरि बंधस्थान पाइए, वा भोगभूमिविषैं जैसैं उपजना होइ ताका वर्णन है। बहुरि मनुष्यगतिविषैं लब्धिअपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त पर्याप्त दशाविषैं जो जो लेश्या पाइए वा तहां संभवते

गुणस्थाननिविषैं बंधस्थान पाइए ताका वर्णन है। बहुरि देवगतिविषैं भवन त्रिकादिककैं निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त दशाविषैं जो जो लेश्या पाइए, वा देवनिके जहां जन्मस्थान हैं वा जे जीव जिस जिस लेश्याकरि जहां जहां देवगतिविषैं उपजैं, वा निर्वृत्यपर्याप्त वा पर्याप्त दशाविषैं मिथ्यादृष्टि आदि जीवनिकैं जे जे बंधस्थान पाइए तिनका, अर तहां प्रासंगिक गाथानिकरि जे जीव जहां जहां पर्यंत देवगतिविषैं उपजैं, वा अनुदिशादिक विमाननितैं चयकरि जे पद न पावैं, वा जे जीव देवगतितैं चयकरि मनुष्य होइ निर्वाण ही जांय, वा जहांके आये तरेसठि शलाका पुरुष न होंइ, वा देवपर्याय पाइ जैसैं जिनपूजादिक कार्य करैं तिनका वर्णन है। बहुरि भव्य मार्गणाविषैं बंधस्थाननिका वर्णन है। बहुरि सम्यक्त्वमार्गणाविषैं सम्यक्त्वके लक्षणका, भेदनिका, जहां मरण न होय ताका, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व जाकैं होइ ताका, वा वाकैं जिन प्रकृतिनिका उपशम होइ ताका, तहां लब्धि आदि होनेका, अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व भए मिथ्यात्वके तीन खंड होहैं ताका, तहां नारकादिककैं जे बंधस्थान पाइए तिनका, तहां नरकविषैं तीर्थंकरके बंध होनेके विधानका, वा साकार उपयोग होनेका, वा निसर्गज अधिगमके स्वरूपका, अर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जाकैं होइ ताका, तहां अपूर्वकरणादिविषैं जो जो क्रिया करता चढै वा उतरै ताका, तहां जे बंधस्थान संभवैं ताका, वा तहां मरि देव होय ताकैं बंधस्थान संभवै ताका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारंभ निष्ठापन जाकैं होइ ताका, वा तहां तीन करण होहैं तिनका, तहां गुणश्रेणी आदि होनेका अर अनंतानुबंधीका विसंयोजनकरि पीछैं केई क्रियाकरि करणादि विधानतैं दर्शनमोह क्षपावनेका, अर तहां प्रारंभ निष्ठापनके कालका, वा तिनके स्वामीनिका, वा तहां तीर्थंकर सत्तावालेकैं तद्भव अन्यभवविषैं मुक्त होनेका वर्णनकरि क्षायिक सम्यक्त्वविषैं संभवते बंधस्थाननिका वर्णन है। बहुरि वेदक सम्यक्त्व जिनकैं होइ, अर प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम सम्यक्त्वतैं वा मिथ्यात्वतैं जैसैं वेदक सम्यक्त्व होइ, अर तिनकैं जे बंधस्थान पाईए तिनका वर्णन है।

बहुरि सासादन मिश्र मिथ्यात्व जहां जहां जिस जिस दशाविषैं संभवै अर तहां जे बंधस्थान पाइए तिनका

वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ विवक्षित गुणस्थानतैं जिस जिस गुणस्थानकौं प्राप्त होइ ताका वर्णन है। बहुरि संज्ञी अर आहार मार्गणाविषैं बंधस्थाननिका वर्णन है। बहुरि नामके बंधस्थाननिविषैं भुजाकारादिकहनेकौं पुनरुक्त, अपुनरुक्त भंगनिका, अर स्वस्थानादि तीन भेदनिका, प्रसंग पाइ गुणस्थाननितैं चढने उतरनेका, जहां मरण न होइ ताका, कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि मरि जहां उपजै ताका, भुजाकारादिकके लक्षणका, अर इकतालीस जीव पदनिविषैं भंगसहित बंधस्थाननिका वर्णनकरि मिथ्यादृष्टयादि गुणस्थाननिविषैं संभवते भुजाकार अल्पतर अवस्थित अवक्तव्यभंगनिका वर्णन है।

बहुरि नामके उदयस्थाननिका वर्णनविषैं कार्माण, मिश्रशरीर, शरीरपर्याप्ति, उच्छ्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति इन पंचकालनिका स्वरूप प्रमाणादिक कहि, वा केवलीकै समुद्घात अपेक्षा इनका संभवपना कहि, नामके उदयस्थान होनेका[1] विधानविषैं ध्रुवोदयी आदि प्रकृतिनिका वर्णनकरि, तिन पंचकालनिकी अपेक्षा लीएं जिस जिस प्रकार वीस प्रकृति रूप स्थानतै लगाय संभवते नामके उदयस्थाननिका, अर तहां प्रकृति बदलनेकरि संभवते भंगनिका वर्णन है। बहुरि नामके सत्त्वस्थाननिका वर्णनविषैं तिराणवे प्रकृतिरूप स्थान आदि जैसैं जे सत्त्वस्थान हैं तिनका, अर तहां जिन प्रकृतिनिकी उद्वेलना हो है तिनके स्वामी वा क्रम वा कालादिक विशेषका, अर सम्यक्त्व, देशसंयम, अनंतानुबंधीका विसंयोजन, उपशमश्रेणी चढना, सकल संयम धरना, ए उत्कृष्टपनैं केतीवार होइ तिनका, अर च्यारि गतिकी अपेक्षा लीएं गुणस्थाननिविषैं जे सत्त्वस्थान संभवैं तिनका, अर इकतालीस जीव पदनिविषैं सत्त्वस्थान संभवैं तिनका वर्णन है।

बहुरि त्रिसंयोगीविषैं स्थान वा भंगनिका वर्णन है। तहां मूलप्रकृतिनिविषैं जिस जिस बंधस्थान होतैं जो जो उदय वा सत्त्वस्थान होइ ताका, अर ते गुणस्थाननिविषैं जैसैं संभवैं ताका वर्णन है। बहुरि उत्तर प्रकृतिनिविषैं ज्ञानावरण, अंतरायका तौ पांच पांच ही का बंध उदय सत्त्व होइ तातैं तहां विशेष वर्णन नाहीं। अर दर्शना-

[1] 'होनेका' ऐसा ख पुस्तकमें पाठ है।

वरणविषैं जिस जिस बंधस्थान होतैं जो जो उदय वा सत्त्वस्थान गुणस्थान अपेक्षा संभवै ताका वर्णन है। अर वेदनीयविषैं एक एक प्रकृतिका उदयबंध होतैं भी प्रकृति बदलनेकी अपेक्षा, वा सत्त्व दोयका, वा एकका भी हो है ताकी अपेक्षा गुणस्थानविषैं संभवते भंगनिका वर्णन है। बहुरि गोत्रविषैं भी नीच उच्च गोत्रके बंध उदयसत्त्वके बदलनेकी अपेक्षा गुणस्थाननिविषैं संभवते भंगनिका वर्णन है। बहुरि आयुविषैं भोगभूमियां आदि जिस कालविषैं आयुबंध करैं ताका, एकेंद्रियादि जिस आयुकौं बांधै ताका, नारकादिकनिकैं आयुका उदय सत्त्व संभवै ताका, अर आठ अपकर्षविषैं बंधै ताका, तहां दूसरी तीसरी बार आयुबंध होनेविषैं घटने बधनेका, अर बध्यमान भुज्यमान आयुके घटनेरूप अपवर्त्तन घात, कदलीघातका वर्णनकरि बंध अबंध उपरितनबंधकी अपेक्षा गुणस्थाननिविषैं संभवते भंगनिका वर्णन है। बहुरि वेदनीय गोत्र आयु इनके भंग मिथ्यादृष्ट्यादिविषैं जेते जेते संभवैं, वा सर्व भंग जेते जेते हैं तिनका वर्णन है। बहुरि मोहके स्थाननिकी अपेक्षा भंगनिकरि गुणस्थाननिविषैं बंध उदय सत्त्वस्थान जैसैं पाइए ताका वर्णन करि मोहके त्रिसंयोगविषैं एक आधार दोय आधेय तीनप्रकार, तहां जिस जिस बंधस्थानविषैं जो जो उदयस्थान, वा सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस जिस उदयस्थानविषैं जो जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस जिस सत्त्वस्थानविषैं जो जो बंधस्थान वा उदयस्थान संभवै तिनका वर्णन है। बहुरि मोहके बंध उदय सत्त्वनिविषैं दोय आधार एक आधेय तीनप्रकार, तहां जिस जिस बंधस्थानसहित उदयस्थानविषैं जो जो सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवै, अर जिस जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थानविषैं जो जो उदयस्थान संभवै अर जिस जिस उदयस्थान सहित सत्त्वस्थानविषैं जो जो बंधस्थान पाइए ताका वर्णन है। बहुरि नामकर्मके स्थानोक्त भंग कहि गुणस्थाननिविषैं अर चौदह जीवसमासनिविषैं अर गति आदि मार्गणानिके भेदनिविषैं संभवते बंध उदय सत्त्व स्थाननिका वर्णनकरि एक आधार दोय आधेयका वर्णनविषैं जिस जिस बंधस्थानविषैं जो जो उदयस्थान वा सत्त्वस्थान जिसप्रकार संभवै अर जिस जिस उदयस्थानविषैं जो जो बंधस्थान वा सत्त्वस्थान जिस जिसप्रकार संभवै, अर जिस जिस सत्त्वस्थानविषैं जो जो बंधस्थान उदयस्थान जिस

जिसप्रकार संभवै तिनिका वर्णन है बहुरि दोय आधार एक आधेयविषैं जिस जिस बंधस्थानसहित उदयस्थान-विषैं जो जो सत्त्वस्थान संभवै, अर जिस जिस बंधस्थानसहित सत्त्वस्थानविषैं जो जो उदयस्थान संभवै अर जिस जिस उदयस्थानसहित सत्त्वस्थानविषै जो जो बंधस्थान पाइए तिनका वर्णन है ॥ ५ ॥

बहुरि छठा प्रत्यय अधिकार है। तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि च्यारि मूल आस्रव अर सत्तावन उत्तर आस्रवनिका अर ते जेम गुणस्थाननिविषैं संभवैं ताका, तहां व्युच्छित्ति वा आस्रवनिके प्रमाण नामादिकका वर्णन करि, तहां विशेष जाननेकौं पंचप्रकारनिका वर्णन है। तहां प्रथम प्रकारविषैं एक जीवकैं एकैकाल संभवैं ऐसे जघन्य मध्यम उत्कृष्टरूप आस्रवस्थान जेते जेते गुणस्थाननिविषैं पाइए तिनका वर्णन है। बहुरि दूसरा प्रकारविषैं एक एक स्थानविषै आस्रवभेद बदलनेतें जेते जेते प्रकार होंहि तिनका वर्णन है। बहुरि तीसरा प्रकारविषैं तिन-स्थाननिके प्रकारनिविषै संभवते आस्रवनिकी अपेक्षा कूटरचनाके विधानका वर्णन है। बहुरि चौथा प्रकारविषैं तिनहूं कूटनिके अनुसारि अक्षसंचारि विधानतें जैसें जैसें आस्रवस्थाननिकौं कहनेका विधानरूप कूटोच्चारण वि-धानका वर्णन है। तहां अविरतविषैं युगपत् संभवते हिंसाके प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भेदनिका, अर ते भेद जेते होंइ ताका वर्णन है। बहुरि पांचवां प्रकारविषैं तिनस्थाननिविषैं भंग ल्यावनेके विधानका, वा गुणस्थाननिविषैं सं-भवते भंगनिका, तहां अविरतविषैं हिंसाके प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंग ल्यावनेकौं गणितशास्त्र अनुसार प्रत्येक द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंगनिके ल्यावनेके विधानका वर्णन है। बहुरि आस्रवनिके विशेषभूत जिनि जिनि भावनितें स्थिति अनुभागकी विशेषतालीयें ज्ञानावरणादि जुदी जुदी प्रकृतिनिका बंध होइ तिनका क्रमतें वर्णन है ॥

बहुरि सातवां भाव चूलिका नामा अधिकार है। तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि भावनितें गुणस्थानसंज्ञा होहै ऐसैं कहि पंचमूल भावनिका, अर इनके स्वरूपका, अर तरेपन उत्तर भावनिका, अर मूल उत्तर भावनिविषैं अक्षसंचार विधानतें प्रत्येक परसंयोगी द्विसंयोगी आदि भंग जैसे होंइ ताका, अर नाना जीव नाना काल अ-पेक्षा गुणस्थाननिविषैं संभवते भावनिका वर्णन है। बहुरि एक जीवकैं युगपत् संभवते भावनिका वर्णन है। तहां

१ अ पुस्तकमें यह पाठ नहीं है।

गुणस्थाननिविषैं मूलभावनिके प्रत्येक परसंयोगी द्विसंयोगी आदि संभवते भंगनिका वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ प्रत्येक द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग ल्यावनेका गणितशास्त्र अनुसार विधान वर्णन हे। बहुरि गुणस्थाननिविषैं मूलभावनिकी वा तिनके भंगनिकी संख्याका वर्णन है। बहुरि उत्तर भावनिके भंग स्थानगत पदगत भेदतैं दोयप्रकार कहे हैं तहां एक जीवकैं एककाल संभवते भावनिका समूह सो स्थान तिस अपेक्षा जे स्थानगतभंग तिनविषैं स्वसंयोगी भंगके अभावका अर गुणस्थाननिविषैं संभवते औपशमिकादिक भावनिका अर औदयिकके स्थाननिके भंगनिका वर्णनकरि तहां संभवते स्थाननिके परस्पर संयोगकी अपेक्षा गुण्य गुणकार क्षेपादि विधानतैं जैसैं जेते प्रत्येक भंग अर परसंयोगीविषैं द्विसंयोगी आदि भंग होंहि तिनका, अर तहां गुण्य गुणकार क्षेपका प्रमाण कहि सर्वभंगनिके प्रमाणका वर्णन है। बहुरि जातिपद सर्वपद भेदकरि पदगत भंग दोयप्रकार तिनिका स्वरूप कहि गुणस्थाननिविषैं जैसैं जेते जेते जातिपद संभवैं तिनका, अर तिनकौं परस्पर लगावनेकी अपेक्षा गुण्य गुणकार क्षेप आदि विधानतैं जेते जेते प्रत्येक स्वसंयोगी परसंयोगी द्विसंयोगी आदि भंग संभवैं तिनका, अर तहां गुण्य गुणकार क्षेपका प्रमाण कहि सर्व भंगनिके प्रमाणका वर्णन है। बहुरि पिंडपद, प्रत्येकपद भेदकरि सर्वपद भंग दोयप्रकार है तिनके स्वरूपका, अर गुणस्थाननिविषैं ए जेते जैसैं संभवैं ताका, अर तहां परस्पर लगावनेतैं प्रत्येक द्विसंयोगी आदि भंग कीए जे भंग होंहि तिनका, तहां मिथ्यादृष्टिका पंद्रहवां प्रत्येकपदविषैं भंग ल्यावनेका प्रसंग पाइ गणित शास्त्रके अनुसार एकवार दोयवार आदि संकलन धनके विधानका, अर गुणस्थाननिविषैं प्रत्येकपद पिंडपदनिकी रचनाके विधानका, अर प्रत्येकपदनिके प्रमाणका, अर तहां जेते सर्वपद भंग भए तिनका वर्णन है। बहुरि इहां तीनसै तरेसठि कुवादके भेदनिका अर तिनविषैं जैसैं प्ररूपण है ताका, अर एकांतरूप मिथ्यावचन स्याद्वादरूप सम्यग्वचनका वर्णन है।

बहुरि आठवां त्रिकरणचूलिकानामा अधिकार है। तहां मंगलाचरणकरि करणनिका प्रयोजन कहि अधःकरणका वर्णनविषैं ताके कालका अर तहां संभवते सर्व परिणाम, प्रथमसमयसंबंधी परिणाम, अर समय समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम, वा द्वितीयादि समयसंबंधी परिणाम, वा समय समय संबंधी परिणामनिविषैं खंड रचनाकरि अ-

नुकृष्टि विधान, तहां खंडनिविषैं प्रथमखंडविषैं वा खंड खंड प्रतिवृद्धिरूप वा द्वितीयादि खंडनिविषैं परिणाम तिनका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। तहां श्रेणीव्यवहार नामा गणितके सूत्रनिके अनुसार ऊर्ध्वरूप गच्छ चय उत्तरधन आदिधन सर्वधनादिकका, अर अनुकृष्टिविषैं तिर्यग्रूप गच्छादिकके प्रमाण ल्यावनेका, विधान वर्णन है। अर तिन खंडनिविषैं विशुद्धि ताका अल्प बहुत्वका वर्णन है। बहुरि अपूर्वकरणका वर्णनविषैं अनुकृष्टि विधान नाहीं, ऊर्ध्वरूप गच्छादिकका प्रमाण ल्यावनेका विधानपूर्वक ताके कालका वा सर्व परिणाम प्रथमसमय-संबंधीपरिणाम समय समय प्रति वृद्धिरूप परिणाम द्वितीयादि समयसंबंधी परिणाम तिनका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। बहुरि अनिवृत्तिकरणविषैं भेद नाहीं तातैं तहां कालादिकका वर्णन है॥

बहुरि नवमा कर्मस्थिति अधिकार है। तहां नमस्कारपूर्वक प्रतिज्ञाकरि आबाधाके लक्षणका वा स्थिति अनुसार ताके कालका, वा उदीरणा अपेक्षा आबाधा कालका वर्णन है। बहुरि कर्मस्थितिविषैं निषेकनिका वर्णन है। बहुरि प्रथमादि गुणहानिनिके प्रथमादि निषेकनिका वर्णन है। बहुरि स्थितिरचनाविषैं द्रव्य १, स्थिति २, गुणहानि ३, नानागुणहानि ४, दोगुणहानि ५, अन्योन्याभ्यस्त ६, इनके स्वरूपका, अर अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा तिनके प्रमाणका वर्णन है। तहां नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्तराशि सर्व कर्मनिका समान नाहीं तातैं इनका विशेष वर्णन है। तहां मिथ्यात्वकर्मकी नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्त जाननेका विधान वर्णन है। इहां प्रसंग पाइ 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादि करणसूत्रकरि गुणकाररूप पंक्तिके जोडदेनेका विधान आदि वर्णन है। बहुरि गुणहानि दोगुणहानिके प्रमाणका वर्णन है। तहां ही विशेष जो चय ताका प्रमाणका वर्णन है। ऐसैं प्रमाण कहि प्रथमादि गुणहानिनिका वा तिनविषैं प्रथमादि निषेकनिका द्रव्य जाननेका विधान वा ताका प्रमाण अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। बहुरि मिथ्यात्ववत् अन्यकर्मनिकी रचना है। तहां गुणहानि दो गुणहानि तौ समान हैं। अर नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्तराशि समान नाहीं तिनके जाननेकौं सातिपंक्तिकरि विधान कहि तिनके प्रमाणका, अर जिस जिसका जेता जेता नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्तका प्रमाण आया ताका वर्णन है। बहुरि ऐसैं कहि अंकसंदृष्टि अपेक्षा त्रिकोणयंत्र, अर त्रिकोणयंत्रका प्रयोजन, अर तहां एक एक निषे-

क मिलि एक एक समय प्रबद्धका उदय होहै अर सर्व त्रिकोणयंत्रके निषेक जोडैं किंचिदून द्व्यर्द्ध गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व होहै तिनका वर्णन है। बहुरि निरंतर सांतररूप स्थितिके भेद स्वरूप स्वामीनिका वर्णन है। बहुरि स्थितिबंधकौं कारण जे स्थितिबंधाध्यवसायस्थान तिनका वर्णनविषैं आयु आदि कर्मके स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननिके प्रमाणका अर स्थितिबंधाध्यवसायके स्वरूप जाननेकौं सिद्धांत वचननिका वर्णनकरि स्थितिके भेदनिकौं कहि तिनविषैं जेते जेते स्थितिबंधाध्यवसायस्थान संभवैं तिनके जाननेकौं द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दो गुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तका वा चयका, वा प्रथमादि गुणहानिनिका, वा तिनके निषेकनिका, वा आदिधनादिकका द्रव्यप्रमाण अर ताके जाननेकौं विधान ताका वर्णन है। बहुरि इहां एक एक स्थितिभेदसंबंधी स्थितिबंधाध्यवसायस्थाननिविषैं नानाजीव अपेक्षा खंड हो है। तहां ऊपरली नीचली स्थितिसंबंधी खंड समान भी हो हैं तातैं तहां अनुकृष्टि रचनाका वर्णन है। तहां आयुकर्मका जुदा ही विधान है तातैं पहिलैं आयुकी कहि पीछैं मोहादिककी अनुकृष्टि रचनाका अंकसंदृष्टि वा अर्थ अपेक्षा वर्णन है। तहां खंडनिकी समानता असमानता इत्यादि अनेक कथन हैं। बहुरि अनुभाग बंधकौं कारण जे अनुभागाध्यवसायस्थान तिनका वर्णनविषैं तिन सर्वनिका प्रमाण कहि तहां एक एक स्थिति भेदसंबंधी स्थिति बंधाध्यवसायस्थाननिविषैं द्रव्य स्थिति गुणहानि आदिका प्रमाणादिक कहि एक एक स्थिति बंधाध्यवसायस्थानरूप जे निषेक तिनविषैं जेते जेते अनुभागाध्यवसायस्थान पाइए तिनका वर्णन है। बहुरि मूलग्रंथकर्त्ताकरि कीया हुआ ग्रंथकी संपूर्णता होनेविषैं ग्रंथके हेतुका चामुंडराय राजाका आशीर्वादका, ताकरि बनाया चैत्यालय वा जिनबिंबका वीरमार्तंड राजाकौं आशीर्वादका वर्णन है। बहुरि संस्कृत टीकाकार अपने गुरुनिका वा ग्रंथ होनेके समाचार कहे हैं तिनका वर्णन है।

अैसैं श्रीमद्गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह मूलशास्त्र ताकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसार इस भाषाटीकाविषैं अर्थका वर्णन होसी ताकी सूचनिका कही ॥

बहुरि तहां जे संदृष्टि हैं तिनका अर्थ, वा कहे अर्थनिकी संदृष्टि जाननेकौं इस भाषाटीकाविषैं जुदा ही संदृष्टि अधिकार वर्णन हांगी।

इहां कोऊ कहै-अर्थका स्वरूप जान्या चाहिये संदृष्टिनिके जानैं कहा सिद्धि होहै ? ताका समाधान–संदृष्टि जानैं पूर्वाचार्यनिकी परंपरातैं चल्या आया जो संकेतरूप अभिप्राय ताकौं जानिए है। अर थोरेमैं बहुत अर्थकौं नीकै पहिचानिए है। अर मूलशास्त्र वा संस्कृतटीकाविषैं, अर अन्य ग्रंथनिविषैं जहां संदृष्टिरूप व्याख्यान है तहां प्रवेश पाइए है। अर अलौकिक गणितके लिखनेका विधान आदि चमत्कार भासै है। अर संदृष्टि देखते ही ग्रंथकी गंभीरता प्रगट हो है इत्यादि प्रयोजन जानि संदृष्टि अधिकार करनेका विचार कीया है। तहां केई संदृष्टि आकाररूप हैं, केई अंकरूप हैं, केई अक्षर रूप हैं, केई लिखनेहीका विशेषरूप हैं सो तिस अधिकारविषैं पहिले तौ सामान्यपनैं संदृष्टिनिका वर्णन है। तहां पदार्थनिके नामतैं, संख्यातैं अर अक्षरनितैं अंकनिकी अर प्रभृति आदिकी संदृष्टिनिका वर्णन है। बहुरि सामान्य संख्यात असंख्यात अनंतकी अर इनके इकईस भेदनिकी, अर पल्य आदि आठ उपमा प्रमाणकी, अर इनके अर्धच्छेद वा वर्गशलाकानिकी संदृष्टिनिका वर्णन है। बहुरि परिकर्माष्टकविषैं संकलनादि होतैं जैसैं सहनानी हो है, अर बहुतप्रकार संकलनादि होतैं वा संकलनादि आठविषैं एकत्र दोय तीन आदि होतैं जो सहनानी हो है, वा संकलनादिविषैं अनेक सहनानीका एक अर्थ हो है इत्यादिकनिका वर्णन है। अर स्थिति अनुभागादिकविषैं आकाररूप सहनानी हैं, वा केई इच्छितसहनानी हैं इत्यादिकनिका वर्णन है। ऐसैं सामान्य वर्णनकरि पीछैं श्रीमद्गोम्मटसारनामा मूलशास्त्र वा ताकी जीवतत्त्वप्रदीपकानामा टीका ताविषैं जिस जिस अधिकारविषैं कथनका अनुक्रमलीए संख्यातादिक अर्थकी जैसैं जैसैं संदृष्टि है तिनका अनुक्रमतैं वर्णन है। तहां केई करण वा त्रिकोणयंत्रका जोड इत्यादिकनिका संदृष्टिनिकी संस्कृतटीकाविषैं वर्णन था अर भाषा करतैं अर्थ न लिख्या था तिनका इस संदृष्टि अधिकारविषैं अर्थ लिखिएगा अर मूलशास्त्रके यंत्ररचनाविषैं वा संस्कृतटीकाविषैं केई संदृष्टिरूप रचना ही लिखी थी तिनकौं अर्थपूर्वक इस संदृष्टि अधिकारविषैं लिखिएगा सो तिनकी इहां सूचनिका लिखैं विस्तार होइ तातैं तहां ही वर्णन होगा सो जानना।

इहां कोऊ कहै-मूलशास्त्र वा टीकाविषैं जहां संदृष्टि वा अर्थ लिख्या था तहां ही तुम भी तिनके अर्थनिका निरूपणकरि क्यों न लिखन कीया ? तहां छोडि तिनकौं एकत्रकरि संदृष्टि अधिकारविषैं वर्णन कीया सो कौंन कारण ? तहां समाधान—

जो यहु टीका मंदबुद्धीनिकैं ज्ञान होनेके अर्थि करिए है सो याविषैं वीचि वीचि संदृष्टि लिखनेतैं कठिनता तिनकौं भासै तब अभ्यासतैं विमुख होंइ तातै जिनकौं अर्थमात्र ही प्रयोजन होहि सो अर्थहीका अभ्यास करौ अर जिनकौं संदृष्टिकौं भी जाननी होइ ते संदृष्टि अधिकारविषैं तिनका भी अभ्यास करौ।

बहुरि इहां कोई कहै-तुम अैसा विचार कीया परंतु कोई इस टीकाका अवलंबनतैं संस्कृतटीकाका अभ्यास कीया चाहै तौ कैसैं अभ्यास करै ताकौं कहिए है—

अर्थका तौ अनुक्रम जैसे संस्कृतटीकाविषैं है तैसैं याविषै है ही। अर जहां जो संदृष्टि आदिका कथन वीचिमैं आवै ताकौं संदृष्टि अधिकारविषैं तिस स्थलविषैं वाकी कथन है ताकौं जानि तहां अभ्यास करौ। ऐसैं विचारि संदृष्टि अधिकार करनेका विचार कीया है।

बहुरि ऐसा विचार भया जो लब्धिसार अर क्षपणासार नामा शास्त्र है तिनविषैं सम्यक्त्वका अर चारित्रका विशेषतालीएं बहुत नीकै वर्णन है। अर तिस वर्णनकौं जानै मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थाननिका भी स्वरूप नीकै जानिए है सो इनका जानना बहुत कार्यकारी जानि तिन ग्रंथनिके अनुसारि किछू कथन करना तातैं लब्धिसार शास्त्रके गाथा सूत्रनिकी भाषाकरि इस ही टीकाविषैं मिलाइएगा। तिसहीके क्षपक श्रेणीका कथनरूप गाथा सूत्रनिका अर्थविषैं क्षपणासारका अर्थ गर्भित होयगा ऐसा जानना।

इहां कोऊ कहै--तिन ग्रंथानिकी जुदी ही टीका क्यों न करिए ? याहीविषैं कथन करनेका कहा प्रयोजन ? ताका समाधान—

ज्ञान न होय, वा तिनग्रंथनिविषैं कह्या हूवा अर्थकौं जानैं इस शास्त्रविषैं कहे हूए गुणस्थानादिक केतेइक अर्थनिका स्पष्ट ज्ञान होइ सो ऐसा संबंध जान्या अर तिन ग्रंथनिविषैं कहे अर्थ कठिन हैं सो जुदा रहे प्रवृत्ति विशेष न होइ तातैं इसही विषैं तिन ग्रंथनिका अर्थलिखनेका विचार कीया है। सो तिसविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वादि होनेका विधान धाराप्रवाहरूप वर्णन है। तातैं ताकी सूचनिका लिखैं विस्तार होइ, कथन आगैं होयहीगा। तातैं इहां अधिकारमात्र ताकी सूचनिका लिखिए है।

प्रथम मंगलाचरण करि दशप्रकार कारणका वा प्रकृतिबंधापसरण, स्थितिबंधापसरण, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक गुणश्रेणीफालि इत्यादि, केती इक संज्ञानिका स्वरूप वर्णन करि प्रथमोपशमसम्यक्त्व होनेका विधान वर्णन है। तहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने योग्य जीवका, अर पंचलब्धिनिके नामादिक कहि तिनके स्वरूपका वर्णन है। तहां प्रायोग्यता लब्धिका कथनविषैं जैसैं स्थिति घटै है अर तहां च्यारि गति अपेक्षा प्रकृतिबंधापसरण हो है ताका, अर स्थिति अनुभाग प्रदेशबंधका वर्णन है। बहुरि च्यारि गति अपेक्षा एक जीवकैं युगपत् संभवता भंगसहित प्रकृतिनिके उदयका, अर स्थिति अनुभाग प्रदेशके उदयका वर्णन है। बहुरि एकजीवकैं युगपत् संभवती प्रकृतिनिके सत्त्वका अर स्थिति अनुभाग प्रदेशके सत्त्वका वर्णन है। बहुरि करणलब्धिका कथनविषैं तीन करणनिका नाम कालादिक कहि तिनके स्वरूपादिकका वर्णन है। तहां अधःकरणविषैं स्थितिबंधापसरणादिक आवश्यक हो है तिनका वर्णन है। अर अपूर्वकरण विषैं च्यारि आवश्यक तिनिविषैं गुणश्रेणी निर्जराका कथन है तहां अपकर्षण किया हुवा द्रव्यकौं जैसैं उपरितन स्थिति गुणश्रेणी आयाम उदयावली विषैं दीजिए है सो वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ उत्कर्षण वा अपकर्षण किया हूवा द्रव्यका निक्षेप अर अतिस्थापनका विशेष वर्णन है। बहुरि गुणसंक्रमण इहां न संभवै है सो जहां संभवै है ताका वर्णन है। बहुरि स्थितिकांडक अनुभाग कांडकके स्वरूप प्रमाणादिकका अर स्थिति अनुभागकांडकोत्करण कालका वर्णनपूर्वक स्थिति अनुभाग

१-"स्पष्ट रूप सबही न प्रतिभासैं" ऐसा ग पुस्तकमें पाठ है। २-"का अनुसारि किछू कथन" ऐसा ग प्रतिमें पाठ है।

सत्त्व घटावनेका वर्णन है। बहुरि अनिवृत्ति करणविषैं स्थिति कांडकादि विधान कहि ताके काल संख्यातवां भाग रहें अंतरकरण हो है ताके स्वरूपका, अर आयाम प्रमाणका अर ताके निषेकनिका अभावकरि जहां निक्षेपण कीजिए है ताका इत्यादि वर्णन है। बहुरि अंतर करण करनेका[1] अर प्रथम स्थितिका, अर अतरायामका काल-वर्णन है। बहुरि अंतरकरणका काल पूर्ण भए पीछैं प्रथमस्थितिका काल विषैं दर्शनमोहके उपशमावनेका विधान काल अनुक्रमादिकका, तहां आगाल प्रत्यागाल जहां पाइए है वा न पाइए है ताका, दर्शनमोहकी गुणश्रेणी जहां न होइ है ताका इत्यादि अनेक वर्णन है। बहुरि पीछैं अंतरायामका काल प्राप्त भए उपशम सम्यक्त्व होनेका, तहां एक मिथ्यात्व प्रकृतिकौं तीन रूप परिणमावनेके विधानका वर्णन है। बहुरि उपशम-सम्यक्त्वका विधानविषैं जैसैं कालका अल्प बहुत्व पाइए है तैसैं वर्णन है। बहुरि प्रथमोपसम्यक्त्वविषैं मरणके अभावका, अर तहांतैं सासादन होनेके कारणका, अर उपशम सम्यक्त्वका प्रारंभ वा निष्ठापनविषैं जो जो उप-योग योग लेश्या पाइए ताका अर उपशम सम्यक्त्वके काल स्वरूपादिकका, अर तिस कालकौं पूर्ण भए पीछैं एक कोई दर्शनमोहकी प्रकृति उदय आवनेका, तहां जैसैं द्रव्यकौं अपकर्षण करि अंतरायामादि विषैं दीजिए है ताका, अर दर्शनमोहका उदय भए वेदक सम्यक्त्व वा मिश्र गुणस्थान वा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान हो है तिनके स्वरूपका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्वका विधान वर्णन है। तहां क्षायिक सम्यक्त्वका प्रारंभ जहां होइ ताका, अर प्रारंभनिष्ठापन अवस्थाका वर्णन है। बहुरि अनंतानुबंधीके विसंयोजनका वर्णन है। तहां तीन क-रणनिका अर अनिवृत्तिकरणविषैं स्थिति घटनेका अर अन्यकषायरूप परिणमनेके विधान प्रमाणादिकका कथन है। बहुरि विश्राम लेइ दर्शनमोहकी क्षपणा हो है ताका विधान वर्णन है। तहां संभवता स्थिति कांडादिकका वर्णन है। अर मिथ्यात्व मिश्रमोहनी सम्यक्त्वमोहनीविषैं स्थिति घटावनेका, वा संक्र-मण होनेका विधान वर्णनकरि सम्यक्त्व मोहनीकी आठ वर्ष प्रमाण स्थिति रहें अनेक क्रिया विशेष हो हैं, वा

१—"अतंरायकरनेंका" ग प्रतिमें ऐसा पाठ है।

तहां गुणश्रेणी स्थितिकांडकादिकविषैं विशेष हो है तिनका वर्णन है। बहुरि कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि होनेका वा तहां मरण होतैं लेश्या वा उपजनेका, वा कृतकृत्य वेदक भए पीछैं जे क्रिया विशेष हो हैं अर तहां अंतकांडक वा अंतफालिविषैं विशेष हो है तिनिका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व होनेका वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्वके विधानविषैं संभवते कालका तेतीस जायगां अल्प बहुत्व वर्णन है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्वके स्वरूपका वा मुक्त होनेका इत्यादि वर्णन है।

बहुरि चारित्र दोय प्रकार—देशचारित्र सकलचारित्र। सो ए जाकैं होंइ वा सन्मुख होतैं जो क्रिया होइ सो कहि देशचारित्रका वर्णन है। तहां वेदक सम्यक्त्वसहित देशचारित्र जो ग्रहै ताके दोइ ही कारण होंइ, गुणश्रेणी न होंइ देश संयतकौं प्राप्त भए गुणश्रेणी होइ इत्यादि वर्णन है बहुरि एकांतवृद्धि देशसंयतके स्वरूपादिकका वर्णन है। बहुरि अधःप्रवृत्त देशसंयतका वर्णन है। तहां ताके स्वरूप कालादिकका, अर तहां स्थिति अनुभाग खंडन न होइ, अर तहां देशसंयततैं भ्रष्ट होइ देशसंयतकौं प्राप्त होइ ताकैं कारण होने न होनेका[1], अर देशसंयतविषैं संभवते गुणश्रेण्यादि विशेषका वर्णन है। बहुरि देशसंयमके विधानविषैं संभवते कालका अल्पबहुत्वताका वर्णन है। बहुरि जघन्य उत्कृष्ट देशसंयम जाकैं होइ ताका, अर देशसंयमविषैं स्पर्द्धक वा अविभागप्रतिच्छेद पाइए ताका वर्णन है। बहुरि देशसंयमके स्थाननिका, अर तिनके प्रतिपात प्रतिपाद्यमान अनुभयरूप तीनप्रकारनिका, अर ते क्रमतैं जैसैं जिनकैं जेते पाइए, अर वीचिमैं स्वामीरहित स्थान पाइए तिनिका, अर तहां विशुद्धताका वर्णन है। बहुरि सकलचारित्र तीनप्रकार, क्षायोपशामिक, औपशमिक, क्षायिक तहां क्षायोपशामिक चारित्रका वर्णन है। तिसविषैं यहु जाकैं होइ ताका, वा सन्मुख होतैं जो क्रिया होइ ताका वर्णन करि वेदक सम्यक्त्वसहित चारित्र ग्रहण करनेवालेकैं दोय ही करण होंइ इत्यादि अल्प बहुत्व पर्यंत सर्वकथन देशसंयतवत् है ताका वर्णन है। बहुरि सकलसंयत स्पर्द्धक वा अविभाग प्रतिच्छेदनिका कथन करि प्रतिपात

[1] 'होनेका' ऐसा ख पुस्तकमें पाठ है।

प्रतिपाद्यमान अनुभयरूप स्थान कहि ते जैसें जेते जिस जीवके पाइए तिनिका क्रमतें वर्णन है। तहां विशुद्धता वा म्लेछके सकलसंयम संभवनेका वा सामायिकादिसंबंधी स्थाननिका इत्यादि विशेष वर्णन है। बहुरि औपशमिक चारित्रका वर्णन है। तहां वेदकसम्यक्त्वी जिस विधानपूर्वक क्षायिकसम्यक्त्वी वा द्वितीयोपशमसम्यक्त्वी होइ उपशमश्रेणी चढै है ताका वर्णन है। तहां द्वितीयोपशम सम्यक्त्व होनेका विधानविषैं तीन करण गुणश्रेणी स्थितिकांडकादिक वा अंतरकरणादिकका विशेष वर्णन है।

बहुरि उपशमश्रेणीविषैं आठ अधिकार हैं तिनिका वर्णन है। तहां प्रथम अधःकरणका वर्णन है। बहुरि दूसरा अपूर्वकरणका वर्णन है। इहां संभवते आवश्यकनिका वर्णन है। तहांतैं लगाय उपशम श्रेणीका चढना उतरणाविषैं स्थितिबंधापसरण अर स्थितिकांडक वा अनुभागकांडकके आयामादिकके प्रमाणका, अर इनकौं होतैं जैसा जैसा स्थितिबंध अर स्थितिसत्त्व अर अनुभागसत्त्व अवशेष रहै ताका यथा ठिकाणैं वीचि वीचि वर्णन है सो कथन आगैं होइगा तहां जानना। बहुरि अपूर्वकरणका वर्णनविषैं प्रसंग पाइ अनुभागके स्वरूपका वा वर्ग वर्गणा स्पर्द्धकगुणहानि नानागुणहानिका वर्णन है। अर इहां गुणश्रेणी संक्रम हो है अर प्रकृतिबंधका व्युच्छेद हो है ताका वर्णन है। बहुरि अनिवृत्तिकरणका कथनविषैं दश करणनिविषैं तीन करणनिका अभाव हो है ताका अनुक्रमलीऐं कर्मनिका स्थितिबंध करनेरूप क्रम करण हो है ताका, तहां असंख्यातसमयप्रबद्धनि-की उदीरणादिकका, अर कर्मप्रकृतिनिके स्पर्द्धक देशघाती करनेरूप देशघाती करणका, अर कर्मप्रकृतिनिकैं केतेइक निषेकनिका अभावकरि अन्य निषेकनिविषैं निक्षेपण करनेरूप अंतर करणका, अर अंतरकरणकी स-माप्तता भए युगपत् सातकरणनिका प्रारंभ हो है ताका, तहां ही आनुपूर्वी संक्रमणका इत्यादि वर्णनकरि नपुंसक-वेद अर स्त्रीवेद अर छह हास्यादिक पुरुष वेद तीन क्रोध अर तीन मान अर तीन माया अर दोय लोभ इनके उपशमावनेके विधानका अनुक्रमतें वर्णन है। गुणश्रेणीका वा स्थिति अनुभागकांडक घात होने न होनेका अर नपुंसकवेदादिकविषैं नरकबंधके स्वरूप परिणमनादि विशेषका, वा प्रथम स्थितिके स्वरूपका आदि विशे-

षका, वा तहां आगाल प्रत्यागाल गुणश्रेणी जे हो है इत्यादि विशेषनिका, अर संक्रमणादि विशेष पाइए हैं तिनका इत्यादि अनेक वर्णन पाइए है। बहुरि संज्वलनलोभका उपशम विधानविषैं लोभ वेदकालके तीन भागनिका, अर तहां प्रथम स्थिति आदिकका वर्णनकरि सूक्ष्मकृष्टि करनेका विधान वर्णन है। तहां प्रसंग पाइ वर्ग वर्गणा स्पर्द्धकनिका कथनकरि अर कृष्टि करनेका वर्णन है। इहां बादरकृष्टि तो है ही नाही,सूक्ष्मकृष्टि हो है तिनविषैं जैसैं कर्मपरमाणु परिणमै हैं वा तहां ही जैसैं अनुभागादिक पाइए है, वा तहां अनुसमयापवर्त्तनरूप अनुभागका घात हो है इत्यादिकनिका, अर उपशमावने आदि क्रियानिका वर्णन है। बहुरि सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानकौं प्राप्त होइ सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त जो लोभ ताके उदयकौं भोगवनेका, तहां संभवती गुणश्रेणी प्रथमस्थिति आदिका इहां उदय अनुदयरूप जैसैं कृष्टि पाइए तिनका, वा संक्रमण उपशमनादि क्रियानिका वर्णन है। बहुरि सर्वकषाय उपशमाय उपशांत कषाय हो है ताका, अर इहां संभवती गुणश्रेणी आदि क्रियानिका, अर इहां जे प्रकृति उदय हैं तिनिविषैं परिणामप्रत्यय अर भवप्रत्ययरूप विशेषका वर्णन है। ऐसैं इकईस चारित्र मोहकी प्रकृति उमशमावनेका विधानकरि उपशांत कषायतैं पडनेरूप दोयप्रकार प्रतिपातका, तहां भवक्षयनिमित्त प्रतिपाततैं देवसंबंधी असंयत गुणस्थानकौं प्राप्त हो है, तहां गुणश्रेणी वा अनुपशमन वा अंतरका पूरण करना इत्यादि जे क्रिया हो हैं तिनका वर्णन है। अद्धा क्षयनिमित्ततैं क्रमतैं पडि स्वस्थान अप्रमत्तपर्यंत आवै तहां गुणश्रेणी आदिकका, वा चढतैं जे क्रिया भई थी तिनका अनुक्रमतैं नष्ट होनेका वर्णन है। बहुरि अप्रमत्ततैं पडनेका तहां संभवती क्रियानिका अर अप्रमत्ततैं चढै तौ बहुरि श्रेणी मांडै ताका वर्णन है। ऐसैं पुरुषवेद संज्वलन क्रोधका उदयसहित जो श्रेणी मांडै ताकी अपेक्षा वर्णन है। बहुरि पुरुषवेद संज्वलन मानसहित आदि ग्यारह प्रकार उपशम श्रेणी चढनेवालोंकैं जो जो विशेष पाइए है तिनका वर्णन है। बहुरि इस उपशमचारित्र विधानविषैं संभवते कालका अल्पबहुत्व वर्णन है।

बहुरि क्षपणासारके अनुसारिलीएं क्षायिकचारित्रके विधानका वर्णन है। तहां अधःकरणादि सोलह अ-

धिकारनिका अर क्षपकश्रेणीकौं सन्मुख जीवका वर्णन है। बहुरि अधःकरणका वर्णन है। तहां विशुद्धिता-की वृद्धि आदि च्यारि आवश्यकनिका, अर तहां संभवते परिणाम योग कषाय उपयोग लेश्या वेद अर प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप कर्मनिका सत्त्व बंध उदय तिनका वर्णन है। बहुरि अपूर्वकरणका वर्णन है। तहां सं-भवते स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणि गुणसंक्रम, इनका विशेष वर्णन है। अर इहां प्रकृति बंधकी व्युच्छित्ति हो है तिनका वर्णन है। इहांतैं लगाय क्षपकश्रेणीविषैं जहां जैसा जैसा स्थितिबंधापसरण, अर स्थितिकांडकघात, अर अनुभागकांडकघात पाइए अर इनकौं होतैं जैसा स्थितिबंध, अर स्थितिसत्त्व अर अनुभागसत्त्व रहै तिनका वीच वीच वर्णन है। सो कथन होगा तहां जानना। बहुरि अनिवृत्तिकरणका कथन है। तहां स्वरूप गुणश्रेणी स्थितिकांडकादि वर्णनकरि कर्मनिका क्रम लीएं स्थितिबंध, स्थितिसत्त्व करने रूप क्रमकरणका वर्णन है। बहुरि गुणश्रेणीविषैं असंख्यातसमयप्रबद्धनिकी उदीरणा होनेलगी ताका वर्णन है बहुरि प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानरूप आठ कषायनिके खिपावनेका विधानवर्णन है। बहुरि निद्रा निद्रा आदि सो-लह प्रकृति खिपावनेका विधान वर्णन है। बहुरि प्रकृतिनिकी देशघातिस्पर्द्धकनिका बंध करनेरूप देशघाती करणका वर्णन है। बहुरि च्यारि संज्वलन नवनोकषायनिके केते इक निषेकनिका अभावकरि अन्यत्र निक्षेपण करनेरूप अंतरकरणका वर्णन है। बहुरि नपुंसकवेद क्षपावनेका विधान वर्णन है। तहां संयमका वा युगप-त सातक्रियानिका प्रारंभ होहै तिनका इत्यादि वर्णन है। बहुरि स्त्रीवेद क्षपावणेका वर्णन है। बहुरि छह नोकषाय अर पुरुषवेद इनकी क्षपणाका विधान वर्णन है। बहुरि अश्वकरणसहित अपूर्वस्पर्द्धक करणेका वर्णन है। तहां पूर्वस्पर्द्धक जाननेकौं वर्ग वर्गणा स्पर्द्धकनिका, अर तिनविषैं देशघाती सर्वघातीनिके विभागका, वा व-र्गणाकी समानता असमानता आदिकका कथनकरि अश्वकरणके स्वरूप विधान क्रोधादिकनिके अनुभागका प्रमाणादिकका अर अपूर्वस्पर्द्धकनिके स्वरूप प्रमाणका तिनविषैं द्रव्य अनुभागादिकका प्रमाणका, तहां समय समयसंबंधी क्रियानिका वा उदयादिकका बहुत वर्णन है।

बहुरि कृष्टिकरणका वर्णन है। तहां क्रोधवेदक कालके विभागका, अर वादरकृष्टिके विधानविषैं कृष्टिनिके स्वरूपका, तहां बारह संग्रहकृष्टि, एक एक संग्रहकृष्टिविषैं अनंती अंतरकृष्टि तिनका, अर तिनविषैं प्रदेश अनुभागादिकके प्रमाणका तहां समय समय संबंधी क्रियानिका वा उदयादिकका अनेक वर्णन है। बहुरि कृष्टिवेदनाका विधान वर्णन है। तहां कृष्टिनिके उदयादिकका, वा संक्रमका, वा घात करनेका, वा समयसमयसंबंधी क्रियानिका विशेष वर्णन करि क्रमतैं दश संग्रहकृष्टिनिके भोगवनेका वा तहां संक्रम होनेका विधान प्रमाणादिकका बहुत कथनकरि तिनकी क्षपणाका विधान वर्णन है। बहुरि अन्य प्रकृति संक्रमणकरि इनरूप परिणमी तिनके द्रव्यसहित लोभकी द्वितीय तृतीय संग्रह कृष्टिके द्रव्यकौं सूक्ष्म कृष्टिरूप परिणमावै है ताके विधानका स्वरूप प्रमाणादिकका वर्णन है। ऐसैं अनिवृत्तिकरणका बहुत वर्णन है। याविषैं गुणश्रेणी अनुभागघातके विशेष आदि वीचि वीचि अनेक कथन पाइए है सो आगे कथन होइगा तहां जानना। बहुरि सूक्ष्मसांपरायका वर्णन है। तहां स्थिति अनुभागका घातका वा गुणश्रेणी आदिका कथन करि वादर कृष्टिसंबंधी अर्थका निरूपणपूर्वक सूक्ष्मसांपराय संबंधी कृष्टिनिके अर्थका निरूपण, अर तहां सूक्ष्मकृष्टिनिका उदय अनुदय प्रमाण अर संक्रमण क्षयादिकका विधान इत्यादि अनेक वर्णन है। बहुरि यहु तौ पुरुषवेद संज्वलन क्रोधका उदयसहित श्रेणी चढ्या ताकी अपेक्षा कथन है। बहुरि पुरुषवेद संज्वलन मान आदिका उदयसहित ग्यारह प्रकार श्रेणी चढनेवालोंकैं जो जो विशेष पाइए ताका वर्णन है। ऐसैं कृष्टिवेदना पूर्ण भएं बहुरि क्षीणकषायका वर्णन है। तहां ईर्यापथबंधका, अर स्थिति अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदिकका, वा तहां संभवते ध्यानादिकका अर ज्ञानावरणादिकके क्षयहोनेके विधानका, अर इहां शरीरसंबंधी निगोदजीवनिके अभाव होनेके क्रमका इत्यादि वर्णन है। बहुरि सयोगकेवलीका वर्णन है। तहां ताके महिमाका अर गुणश्रेणीका अर विहार आहारादिक होने न होनेका वर्णन करि अंतर्मुहूर्त्त मात्र आयु रहै आवर्जित करण हो है ताका, तहां गुणश्रेणी आदि विशेषका, अर केवल समुद्घातका, तहां दंड

१ 'क्षपणादिकका' ऐसा क पुस्तकमें पाठ है।

कपाटादिकके विधान वा क्षेत्र प्रमाणादिकका, वा तहां संभवती स्थिति अनुभागघटने आदि क्रियानिका वा योगनिका इत्यादि वर्णन है। बहुरि वादर मनवचनकाय योगकौं निरोधि सूक्ष्मकरनेका, तहां जैसैं योग हो है ताका अर सूक्ष्म मनयोग वचनयोग उच्छ्वास निश्वास काययोगके निरोध करनेका तहां काययोगके पूर्वस्पर्द्धकनिके अपूर्वस्पर्द्धक अर तिनकी सूक्ष्मकृष्टि करिए है तिनका स्वरूपविधान प्रमाण समय समयसंबंधी क्रियाविशेष इत्यादिकका अर करी सूक्ष्मकृष्टि ताकौं भोगवता सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातीध्यान युक्त हो है ताका वा तहां संभवते स्थिति अनुभागघात वा गुणश्रेणी आदि विशेषका वर्णन है। बहुरि अयोगकेवलीका वर्णन है। तहां ताकी स्थितिका शैलेश्यपनाका, ध्यानका, तहां अवशेष सर्वप्रकृति खिपावनेका वर्णन है। बहुरि सिद्धभगवानका वर्णन है तहां सुखादिकका महिमाका, स्थानकका, अन्यमतोक्त स्वरूपके निराकरणका इत्यादि वर्णन है। ऐसैं लब्धिसार[1] वा क्षपणासारके कथनकी सूचनिका जाननी। बहुरि अंतविषैं अपने किछू समाचार प्रगटकरि इस सम्यग्ज्ञान चंद्रिकाकी समाप्तता होतैं कृतकृत्य होइ आनंददशाकौं प्राप्त होना होइगा। ऐसैं सूचनिका करि ग्रंथसमुद्रके अर्थ संक्षेपपनैं प्रकट कीए हैं।

इति सूचनिका।

बहुरि इस करणानुयोगरूप शास्त्रके अभ्यास करनेके अर्थि गणितका ज्ञान अवश्य चाहिये जातैं अलंकारादिक जानैं प्रथमानुयोगका, गणितादिक जानैं करणानुयोगका, सुभाषितादिक जानैं चरणानुयोगका, न्यायादिक जानैं द्रव्यानुयोगका विशिष्टज्ञान हो है तातैं गणित ग्रंथनिका अभ्यास करना। अर न वनैं तौ परिकर्माष्टक तौ अवश्य जान्या चाहिये। जातैं याकौं जाणैं अन्यगणित कर्मनिका भी विधान जानि तिनकौं जानैं अर इस शास्त्रविषैं प्रवेश पावै। तातैं इस शास्त्रका अभ्यास करनेका प्रयोजनमात्र परिकर्माष्टक वर्णन इहां करिए है—

तहां संकलन[1] व्यवकलन[2] गुणकार[3] भागहार वर्ग वर्गमूल घन घनमूल ए आठ नाम जानने। ए लौकिक ग-

१ 'लब्धिसार' यह पाठ क और ग पुस्तकमें नहीं है।

णितविषैं भी संभवै हैं, अर अलौकिक गणितविषैं भी संभवै हैं। सो लौकिक गणित तो प्रवृत्तिविषैं प्रसिद्ध ही है। अर अलौकिक गणित जघन्य संख्यातादिक वा पल्यादिकका व्याख्यान आगैं जीव समासाधिकार पूर्णभए पीछैं होइगा तहां जानना। अब संकलनादिकका स्वरूप कहिए है—

किसी प्रमाणकौं किसी प्रमाणविषैं जोडिये तहां संकलन कहिए जैसैं सातविषैं पांच जोडैं बारह होइ, वा पुद्गलराशिविषैं जीवादिकका प्रमाण जोडैं सर्वद्रव्यानिका प्रमाण होइहै। बहुरि किसीप्रमाणविषैं किसीप्रमाणकौं घटाइए तहां व्यवकलन कहिए। जैसैं बारहविषैं पांच घटाऐं सात होय, वा संसारी राशिविषैं त्रसराशिघटाऐं स्थावरनिका प्रमाण होइ। बहुरि किसीप्रमाणकौं किसीप्रमाणकरि गुणिए तहां गुणकार कहिए। जैसैं पाचकौं च्यारिकरि गुणिए वीस होइ, वा जीवराशिकौं अनंतकरि गुणें पुद्गलराशि होइ। बहुरि किसीप्रमाणकौं किसीप्रमाणका जहां भाग दीजिऐ तहां भागहार कहिए। जैसैं वीसकौं च्यारिकरि भाग दीऐ पांच होइ, वा जगत् श्रेणीकौं सातका भाग दीए राजू होइ। बहुरि किसी प्रमाणकौं दोय जायगां मांडि परस्पर गुणिए तहां तिस प्रमाणका वर्ग कहिए जैसैं पांचकौं दोय जायगा मांडि परस्पर गुणैं पांचका वर्ग पचीस होइ। वा सूच्यंगुलकौं दोय जायगां मांडि परस्पर गुणैं सूच्यंगुलका वर्ग प्रतरांगुल होइ। बहुरि जो प्रमाण जाका वर्गकीयें होइ तिस प्रमाणका सो वर्गमूल कहिए जैसैं पचीस पांचका वर्गकीए होइ तातैं पचीसका वर्गमूल पांच है। वा प्रतरांगुल है सो सूच्यंगुलका वर्ग कीए होहै तातैं प्रतरांगुलका मूल वर्ग सूच्यंगुल है। बहुरि किसीप्रमाणकौं तीन जायगां मांडि परस्पर गुणैं तिस प्रमाणका घन कहिए। जैसैं पांचकौं तीन जायगां मांडि परस्पर गुणैं पांचका घन एकसौ पचीस होइ। वा जगत् श्रेणीकौं तीन जायगां मांडि परस्पर गुणैं लोक होइ। बहुरि जो प्रमाण जाका घन कीए होइ तिस प्रमाणका सो घनमूल कहिए। जैसैं एकसौ पचीस पांचका घन कीए होइ तातैं एकसौ पचीसका घनमूल पांच है। वा लोक है सो जगत् श्रेणीका घन कीए हो है तातैं लोकका घनमूल जगत्श्रेणी है।

अब इहां केते इक संज्ञाविशेष कहिए है-संकलनविषैं जोडनेयोग्य राशिका नाम धन है। मूलराशिकौं तिस

घनकरि अधिक कहिए। जैसैं पांच अधिक कोडि वा जीवराश्यादिककरि अधिक पुद्गल इत्यादिक जानने। बहुरि व्यवकलनविषैं घटावनेयोग्य राशिका नाम ऋण है। मूलराशिकौं तिस ऋणकरि हीन वा न्यून वा शोधित वा स्फोटित कहिए। जैसैं पांचकरि हीन कोटि वा त्रसराशिहीन संसारी इत्यादि जानने। कहीं मूलराशिका नाम धन भी कहिए है। बहुरि गुणकारविषैं जाकौं गुणिए ताका नाम गुण्य कहिये। जाकरि गुणिए ताका नाम गुणकार वा गुणक कहिए। गुण्यराशिकौं गुणकारकरि गुणित वा हत वा अभ्यस्त वा घ्नत इत्यादि कहिए। जैसैं पंचगुणित लक्ष वा असंख्यातकरि गुणित लोक कहिए। कहीं गुणकारका प्रमाण गुण्य कहिए है। जैसैं पांचगुणां वीसकौं पांचवीसी कहिए असंख्यातगुणां लोककूं असंख्यात लोक कहिए इत्यादिक जानने। गुणनेका नाम गुणन वा हनन वा घात इत्यादि कहिए है। बहुरि भागहारका जाविषैं भाग दीजिए ताका नाम भाज्य वा हार्य इत्यादि है। अर जाका भाग दीजिए ताका नाम भागहार वा हार वा भाजक इत्यादि है। भाज्यराशिकूं भागहारकरि भाजित भक्त वा हत वा खंडित इत्यादि कहिए। जैसैं पांचकरि भाजित कोटि वा असंख्यातकरि भाजित पल्य इत्यादिक जानने। भागहारका भाग देइ एक भागग्रहण करना होइ तहां ते थवां भाग वा एक भाग कहिये। जैसैं वीसका चौथा भाग, वा पल्यका असंख्यातवां भाग इत्यादि जानने। बहुरि एक भागविना अवशेष भागग्रहण करने होंइ तहां बहुभाग कहिए। जैसैं वीसके च्यारि बहुभाग वा पल्यका असंख्यात बहुभाग इत्यादि जानने। बहुरि वर्गका नाम कृति भी है। बहुरि वर्गमूलका नाम कृतिमूल वा मूल वा पद वा प्रथम मूल भी है। बहुरि प्रथममूलके मूलकौं द्वितीयमूल कहिए। द्वितीयमूलके मूलकौं तृतीयमूल कहिए। ऐसैं चतुर्थादिमूल जानने। जैसैं पैंसठहजार पांचसौ छत्तीसका प्रथममूल दोयसै छप्पन, द्वितीयमूल सोलह, तृतीयमूल च्यारि, चतुर्थमूल दोय होइ। ऐसैं ही पल्य वा केवलज्ञानादिके प्रथमादिमूल जानने। ऐसैं अन्य भी अनेक संज्ञाविशेष यथासंभव जानने।

अब इहां विधान कहिए है। सो प्रथम लौकिकगणित अपेक्षा कहिए है। तहां ऐसा जानना "अंकानां

वामतो गतिः।" अंकनिका अनुक्रम बाईतरफ सेती है। जैसें दोयसै छैंप्पनके तीन अंकनिविषैं छक्का आदि अंक पांचा दूसरा अंक दूवा अंत अंक कहिये। असैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ आदि अंकनिकौं क्रमतैं एकस्थानीय दशस्थानीय शतस्थानीय सहस्रस्थानीय आदि कहिए। प्रवृत्तिविषैं इनहीकौं इकवाई दाहकी सैकडा हजार आदि कहिए है। बहुरि संकलनादि होतैं प्रमाणल्यावनेकौं गणित कर्मकौं कारण जे करणसूत्र तिनकरि गणितशास्त्रनिविषै अनेकप्रकार विधान कह्या है सो तहातैं जानना वा त्रिलोकसारकी भाषाटीका बनी है तहां लौकिक गणितका प्रयोजन जानि पीठबंधविषैं किछू वर्णन किया है सो तहांतैं जानना। इस शास्त्रविषैं गणितका कथनकी मुख्यता नाहीं वा लौकिक गणितका बहुत विशेष प्रयोजन नाहीं तातैं इहां बहुत वर्णन न करिए है। विधानका स्वरूप मात्र दिखावनेकौं एकप्रकार करि किंचित् वर्णन करिए है। तहां संकलनविषैं जिनका संकलन करना होइ तिनके एकस्थानीय आदि अंकनिकौं क्रमतैं यथास्थान जोडैं जो अंक आवै सो सो अंक जोडविषैं क्रमतैं यथास्थान लिखना। सो प्रवृत्तिविषैं जैसैं जोड देनेका विधान है तैसैं ही यहु जानना। बहुरि जो एकस्थानीय आदि अंक जोडैं दोय तीन आदि अंक आवैं तौ प्रथम अंककौं जोडविषैं पहिले लिखिए। द्वितीय आदि अंकनिकौं दशस्थानीय आदि अंकनिविषैं जोडिए। याकौं प्रवृत्तिविषैं हाथ लागा कहिए है। अैसैं करतैं जो आंक होइ सो जोड्या हुवा प्रमाण जानना। इहां उदाहरण—जैसै दोयसै छप्पन अर चौरासी (२५६+८४) जोडिए। तहां एकस्थानीय छह अर च्यारि जोडैं दश भए। तहां जोडविषैं एकस्थानीय बिंदी लिखी। अर रह्या एक, ताकौं अर दशस्थानीय पांचा आठा इनकौं जोडैं चौदह भए। तहां जोडविषैं दशस्थानीय चौका लिख्या अर रह्या एका, ताकौं अर शतस्थानीय दूवाकौं जोडैं तीन भया सो जोडविषैं शतस्थानीय लिख्या। अैसैं जोडैं तीनसै चालीस भये। अैसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि व्यवकलनविषैं मूलराशिके एकस्थानीय आदि अंकनिविषैं ऋणराशिके एकस्थानीय आदि अंकनिकौं यथाक्रम घटाइए। जो मूलराशिके एकस्थानीय आदि अंकतैं ऋणराशिके एकस्थानीय आदि अंक अ-

धिक प्रमाणलीए होइ तौ धनराशिके दशस्थानीय आदि अंकविषैं एक घटाइ धनराशिके एकस्थानीय आदि अंकविषैं दश जोडि तामैं ऋणराशिका अंक घटावना। सो प्रवृत्तिविषैं जैसैं वाकी काटनेका विधान है तैसैं ही यहु जानना। ऐसैं करतैं जो होइ सो अवशेष प्रमाण जानना। इहां उदाहरण-जैसैं छहमै पिचहत्तरि मूलराशिविषैं वाणवै (६७५-९२) ऋण घटावना होइ, तहां एकस्थानीय पांचामैं दूवा घटाए तीन रहे अर दशस्थानीय सातविषैं नव घटै नाहीं तातैं शतस्थानीय छकामैं एकघटाइ ताके दश सातविषैं जोडैं सतरह भए तामैं नौ घटाइ आठ रहे शतस्थानीय छकामै एक घटायें पांच रहे तामैं ऋण अंक कोऊ घटावनेकौं है नाहीं तातैं पांच ही रहे। ऐसैं अवशेष पांचसै तियासी प्रमाण आया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि गुणकारविषैं गुण्यके अंत अंकतै लगाय आदि अंकपर्यंत एक एक अंककौं क्रमतैं गुणकारके अंकनिकरि गुणि यथास्थान लिखिए वा जोडिए तव गुणितराशिका प्रमाण आवै। इहां उदाहरण-जैसैं गुण्य दोयसै छप्पन अर गुणकार सोलह २५६×१६। तहां गुण्यका अंत अंक दूवाकौं सोलहकरि गुणना। तहां छका तौ दूवा ऊपरि अर एका ताके पीछै $\substack{१६\\२५६}$ ऐसैं स्थापनकरि एककरि दूवाकौं गुणैं दोय पाये सो तो एकाके नीचै लिखना। बहुरि छहकरि दूवाकौं गुणै बारह पाए तिसविषै दूवा तौ गुण्यकी जायगां लिखना एका पहिलै दोय लिख्या था तामै जोडना तब ऐसा भया {३२ ५६} बहुरि ऐसैं ही गुण्यका उपांत अंक पांचा ताकौं सोलहकरि गुणना तहां ऐसैं $\substack{१६\\३२,५६}$ स्थापनकरि एकाकरि पांचाकौं गुणै पांच भए सो तौ एकाके नीचै दूवा तामैं जोडिए अर छकाकरि पांचाकौं गुणै तीस भए तहां विंदी पांचाकी जायगां मांडि तीन पीछले अंकनिविषै जोडिए ऐसैं कीए ऐसा ४००६ भया। बहुरि गुण्यका आदि अंक छकाकौं सोलहकरि गुणना तहां ऐसैं $\substack{१६\\४००६}$ स्थापि एककरि छहकौं गुणैं छह भए सो तौ एकाके नीचै विंदी तामैं जोड दीया अर छकौं छकरि गुणै छत्तीस भया तहां छकातौ गुण्यका छकाकी जायगां स्थापना तीया पीछला अंक छका तामै जोडना ऐसैं कीए ४०९६ ऐसा भया। या प्रकार गुणितराशि च्यारि हजार छिनवै आया। ऐसैं ही अन्यत्र विधान जानना।

बहुरि भागहारविषै भाज्यके जेते अंकनिविषै भागहारका भागदेना संभवै तितने अंकनिकौं ताका भागदेइ पाया अंककौं जुदा लिखि तिस पाया अंककरि भागहारकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना, जाका भागदीया था तामैं घटाय अवशेष तहां लिखना बहुरि तैसैं ही भागदीएं जो अंक पावै ताकौं पूर्वै लिख्या था अंक, ताके आगै लिखि ताकरि भागहारकौं गुणि तैसैं ही घटावना। ऐसैं यावत् भाज्यराशि निःशेष न होइ तावत् कीए जुदे लिखे अंकप्रमाण एकभाग आवै है। इहां उदाहरण-जैसैं भाज्य च्यारि हजार छिनवै भागहार सोलह। तहां भाज्यका अंत अंक च्यारिकौं तौ सोलहका भाग संभवै नाहीं तातैं दोय अंक चालीस तिनकौं भागदेना तहां ऐसैं $\frac{४०९६}{१६}$ लिखिए। इहां तीन आदि अंकनिकरि सोलहकौं गुणै तौ चालीसतैं अधिक होइ जाय तातैं दोइ पाये सो दूवा जुदा लिखि ताकरि सोलहकौं गुणि चालीसमैं घटाएं ८९६ ऐसा भया।

बहुरि इहां निवासीकौं सोलहका भाग दीए $\frac{८९६}{१६}$ पांच पाए सो दूवाके आगैं पांच लिखि ताकरि सोलहकौं गुनि निवासीमें घटाए ९६ ऐसा रह्या। बहुरि याकौं सोलहका भागदीएं छह पाए सो पांचाके आगैं लिखि ताकरि सोलहकौं गुणि छिनवे भए सो घटाए भाज्यराशि निःशेष भया। ऐसैं जुदे लिखे अंक तिनकरि एक भागका प्रमाण दोयसै छप्पन आवै है। बहुरि 'भागो नास्ति लब्धं शून्यं' इस वचनतैं जहां भाग टूटि जाय तहां विंदी पावै। जैसैं भाज्य तीन हजार छत्तीस (३०३६) भागहार छह (६) तहां तीसकौं छहका भाग दीए पांच पाए तिनकरि छहकौं गुणि घटाए तीस निःशेष होयगया सो इहां भाग टूट्या तातैं पांचके आगैं विंदी लिखिए। बहुरि अवशेष छत्तीसकौं छहका भागदीए छह पाए सो विंदीके आगैं लिखि ताकरि छहकौं गुणि घटाएं सर्व भाज्य निःशेष भया। ऐसैं लब्ध प्रमाण पांचसै छै पाया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि वर्गविषैं गुणकारवत् विधान जानना। जातैं दोय जायगा समान राशि लिखि एककौं गुण्य एककौं गुणकार स्थापि परस्पर गुणैं वर्ग हो है। जैसैं सोलहकौं सोलहकरि गुणैं सोलहका वर्ग दोयसै छप्पन हो है। बहुरि घनविषैं भी गुणकारवत् विधान है। जातैं तीन जायगा समान राशि मांडि परस्पर गुणन करना। तहां

राशिरूप गुणकार करि गुणें जो प्रमाण आवै सोइ तिस राशिका घन जानना जैसें सोलहकौं सोलहकरि गुणें दोयसै छप्पन, बहुरि ताकौं सोलहकरि गुणें च्यार हजार छिनवे होइ सोई सोलहका घन है। ऐसें ही अन्यत्र जानना। बहुरि वर्गमूलविषैं वर्गरूप राशिके प्रथम अंक उपरि विषमकी दूसरे अंक उपरि समकी तीसरे अंक उपरि विषमकी चौथे अंक उपरि समकी ऐसें क्रमतैं अंत अंक पर्यंत ऊभी आडी लीक करि सहनानी करनी। जो अंतका अंक सम होय तो तहां उपांतका अर अंतका दोऊ अंकनिकी विषम संज्ञा जाननी। तहां अंतका एक वा दोय जो विषम अंक ताका प्रमाणविषैं जिस अंकका वर्ग संभवै ताका वर्गकरि अंतका विषम प्रमाणतैं घटावना। अवशेष रहै सो तहां लिखना। बहुरि जाका वर्ग कीया था तिस मूल अंककौं जुदा लिखना। बहुरि अवशेष रहे अंकनिकरि सहित जो तिस विषमके आगैं सम अंक ताके प्रमाणकौं जुदा स्थाप्या जो अंक तातैं दूणा प्रमाण रूप भागहारका भाग दीए जो अंक पावैं ताकौं तिस जुदा स्थाप्या अंकके आगैं लिखना। अर तिस अंक करि गुण्या हुवा भागहारका प्रमाणकौं तिस भाज्यमें घटाइ अवशेष तहां लिखि देना। बहुरि इस अवशेष सहित जो तिस समके आगैं विषम अंक तामैं जो अंक पाया था ताका वर्ग कीए जो प्रमाण होइ सो घटावना अवशेष तहां लिखना। बहुरि इस अवशेषसहित जो तिस विषमके आगैं सम अंक ताकौं तिन जुदे लिखे हुए सर्व अंक रूप प्रमाणतैं दूणा प्रमाणरूप भागहारका भाग देइ पाया अंककौं तिन जुदे लिखे हुए अंकनिके आगैं लिखना। अर इस पाया अंककरि भागहारकौं गुणि भाज्यमें घटाइ अवशेष तहां लिखना। बहुरि इस अवशेष सहित जो सम अंकके आगैं विषम अंक ताविषैं पाया अंकका वर्ग घटावना। ऐसें ही क्रमतैं यावत् वर्गराशि निःशेष होय तावत् कीए वर्गमूलका प्रमाण आवै है। इहां उदाहरण—जैसें वर्गित राशि पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस (६५५३६) इहां विषम समकी सहनानी ऐसी ।-।-। ६५५३६ करि अंतका विषम छका तामैं तीनका वर्ग तौ बहुत होइ तातैं संभवता दोयका वर्ग च्यारि घटाइ अवशेष दोइ तहां लिखना। अर मूल अंक दूवा जुदा पंक्ति

विषैं लिखना। बहुरि तिस अवशेषसहित आगिला सब अंक औसा २५। ताकौं जुदा लिख्या हुवा दूवातैं दूणा च्यारिका भाग दीए छह पावैं परंतु आगैं वर्ग घटावनेका निर्वाह नाहीं तातैं पांच पाया सो जुदा लिख्या दूवाके आगैं लिखना। अर पाया अंक पांचकरि भागहार च्यारिकौं गुणि भाज्यमैं घटाएं पचीसकी जायगां पांच रह्या तिस सहित आगिला विषम औसा (५५) तामैं पाया अंक पांचका वर्ग पचीस घटाए अवशेष औसा ३०, तिस सहित आगिला सम औसा ३०३, ताकौं जुदे लिखे अंकनितैं दूणा प्रमाण पचास, ताका भाग दीए छह पाया सो जुदे लिखे अंकनिके आगैं लिखना। अर छह करि भाग हार पचासकौं गुणि भाज्यमैं घटाए अवशेष औसा ३ रह्या तिस सहित आगिला विषम औसा ३६, यामैं पाया अंक छहका वर्ग घटाए राशि निःशेष भया। औसैं जुदे लिखे हूवे अंकनिकरि पैंसठ हजार पांचसै छत्तीसका वर्गमूल दोयसै छप्पन भया औसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि घनमूलविषै घनरूपराशिके अंकनि उपरि पहिला घन, दूजा तीजा अघन, चौथा घन, पाचवां छठा अघन औसैं क्रमतैं ऊभी आडी लीक रूप सहनानी करनी। जो अंतका घन अंक न होइ तो अंत उपांत दोय अंकनिकी घनसंज्ञा जाननी। अर ते दोऊ घन न होंइ तौ अंततैं तीन अंकनिकी घन संज्ञा जाननी। तहां एक वा दोय वा तीन अंकरूप अंत घन तामैं जाका घन संभवै ताका घनकरि ताकौं अंतका घन अंकरूप प्रमाणमैं घटाइ अवशेष तहां लिखना। अर जाका घन कीया था तिस मूल अंककौ जुदा पंक्तिविषै स्थापना। बहरि तिस अवशेषसाहित आगिला अंककौं तिस मूल अंकके वर्गतैं तिगुणा भागहारका भागदेना जो अंकपावैं ताकौं जुदा लिख्या हुवा अंकके आगै लिखना। अर पाया अंककरि भागहारकौं गुणि भाज्यमें घटाइ अवशेष तहां लिखिदेना। बहुरि इस अवशेषसहित आगिला अंक[1] ताविषै पाया अंकके वर्गकौं पूर्वैं पंक्तिविषै तिष्ठते अंकनिकरि गुणें जो प्रमाण होइ ताकौ तिगुणाकरि घटाइ देना। अवशेष तहां लिखना। बहुरि इस अवशेषसहित आगिला अंकविषै तिसही पाया अंकका घन घटावना। बहुरि अवशेषसहित आगिला अंककौं जुदा लिखि अंकनिके प्रमाणका व-

1 ख पुस्तकमें 'अक ताविषै पाया' इतना नही है।

गेकौं तिगुणाकरि जैसै निर्वाह होइ तैसैं भागदेना। पाया अंक पंक्तिविषै आगै लिखना। ऐसैं ही अनुक्रमतैं यावत् घनराशि निःशेष होइ तावत् कीए घनमूलका प्रमाण आवै है। इहां उदाहरण-जैसैं घनराशि पंद्रह हजार छहसै पचीस (१५६२५) इहां घनअघनकी सहनानी कीए ऐसा (१५६२५) इहां अंत अंक घन नाहीं तातैं दोय अंकरूप अंतघन १५। इहां तीनका घनकीए बहुत होय तातै दोयका घन आठ घटाइ तहां अवशेष सात लिखना। अर घनमूल दूवा जुदी पंक्तिविषै लिखना। बहुरि तिस अवशेषसहित आगिला अंक ऐसा (७६) ताकौं मूल अंकका वर्ग च्यारि, ताका तिगुणा बारह, ताका भाग दीए छह पावैं परंतु आगै निर्वाह नाहीं तातैं पांच पाया सो दूवाके आगें पंक्तिविषै लिखना अर इस पांचकरि भागहार बारहकौं गुणि भाज्यमें घटाएं अवशेष सोलह ऐसा (१६) तिस सहित आगिला अंक ऐसा (१६२) तामैं पाया अंक पांच ताका वर्ग पचीस, ताकौं पूर्वं पंक्तिविषै तिष्ठै था दूवा, ताकरि गुणे पचास, तिनके तिगुणे ड्योढसै घटाएं अवशेष बारह तिससहित आगिला अंक ऐसा (१२५) यामैं पांचका घन घटाएं राशि निःशेष भया ऐसैं पंद्रह हजार छसै पचीसका घनमूल पचीस प्रमाण आया। ऐसैंही अन्यत्र जानना।

ऐसैं वर्णनकरि अब भिन्न परिकर्माष्टक कहिए है तहां अंश अर हारनिका संकलनादिक जानना। अंश[1] अर हार कहा कहिए। जैसैं जहां छह पांच कहे। तहां एकके पांच[2] अंश कीए तिह समान छह अंश जानने। वा छहका पांचवां भाग जानना। तहां छहकौं अंश वा लव इत्यादि कहिए। अर पांचकौं हार वा हर वा छेद इत्यादिक कहिए। तहां अंशकौं ऊपरि लिखिए, हारकौं नीचै लिखिए। जैसैं छह पांचकौं ऐसा $\frac{6}{5}$ लिखि१। ऐसैं ही अन्यत्र जानना। तहां भिन्न संकलन व्यवकलनके अर्थि भागजाति, प्रभागजाति, भागानुबंध, भागापवाह ए च्यारि जाति हैं। तिनविषैं इहां विशेष प्रयोजनभूत समच्छेद विधान लीए भागजाति कहिए है। जुदे जुदे अंश अर तिनके हार लिखि एक एक अंशकौं अन्य अंशनिके हारनिकरि गुणिए सर्व अंश अर सर्वहारनिकौं परस्पर

१ इस रीतिमें 'अंश' की जगह सर्वत्र 'हार' और 'हार' की जगह अंश (ख) पुस्तकमें लिखा है।
२ यद्यपि तीनो प्रतियों में ऐसाही पाठ है पर हमारी समझ से "एकके छह अंश तिह समान पाच अंश" ऐसा पाठ होना चाहिये।

गुणिए। ऐसैंकरि जो संकलन करना होइ तौ परस्पर अंशनिकौं जोड दीजिए अर व्यवकलन करना होइ तो मूलराशि[illegible] अंशनिविषै ऋणराशिके अंश घटाइ दीजिए। अर हार सबनिके समान भए। तातैं हार परस्पर गुणे जेते भए तेते ही राखिए। ऐसैं समान हार होनेतैं याका नाम समच्छेद विधान है। इहां उदाहरण-तहां संकलनविषैं पांच छट्ठा दोय तिहाइ तीन चौथाई इनकौं जोडना होइ तहां $\frac{5}{6}\ \frac{2}{3}\ \frac{3}{4}$ ऐसा लिखि तहां पांच अंशकौं अन्यके तीन च्यारि हारनिकरि अर दोय अंशकौं अन्यके छह च्यारि हारनिकरि अर तीन अंशकौं अन्यके छह तीन हारनिकरि गुणे साठि अडतालीस चौवन अंश भए। अर हारनिकौं परस्पर गुणे सर्वत्र बहत्तर हार $\frac{60}{72}\ \frac{48}{72}\ \frac{54}{72}$ ऐसैं भए। इहां अंशनिकौं जोडे एकसो वासठ अंश अर बहत्तर हार भए तहां अंशकौं हारका भागदीए दोय पाये अर अवशेष अठारहका बहत्तरिवां भाग रह्या ताका अठारहकरि अपवर्त्तनकीए एकका चौथा भाग भया। ऐसैं तिनका जोड सवा दोय आया। कोई संभवता प्रमाणका भाग देइ भाज्य वा भाजक राशिका महत् प्रमाणकौं थोरा कीजिए वा निःशेष कीजिए तहां अपवर्त्तनसंज्ञा जाननी सो इहां अठारहका भागदीए भाज्य अठारह था तहां एक भया अर भागहार बहत्तर था तहां च्यारि भया तातैं अठारहकरि अपवर्त्तन भया कह्या ऐसैं ही अन्यत्र अपवर्त्तनका स्वरूप जानना।

बहुरि व्यवकलनविषैं जैसैं तीनविषैं पांच चौथा अंश घटावना। तहां 'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः।' इस वचनतैं जाकैं हार न होइ तहां एक हार कल्पना। सो इहां तीनका हार नाहीं, तातैं एकहार कल्पि ऐसैं लिखना ($\frac{3}{1}\ \frac{5}{4}$) इहां तीन अंशनिकौं अन्यके च्यारि हारनि करि, अर पांच अंशनिकौं अन्यके एक हारकरि गुणे अर हारनिकौं परस्पर गुणे $\frac{12}{4}\ \frac{5}{4}$ ऐसा भया। इहां बारह अंशनिविषै पांच घटाएं सात अंश भए। अर हार च्यारि भए। तहां अंशकौं हारका भाग दीए एक, अर तीनका चौथा भाग पौण इतना फल आया।

बहुरि भिन्न गुणकारविषै गुण्य अर गुणकारके अंशकौं अंशकरि, हारकौं हारकरि गुणन करना। जैसैं दशकी चौथाइकौं च्यारिकी तिहाई करि गुणना होइ तहां ऐसा $\frac{10}{4}\ \frac{4}{3}$ लिखि परस्पर गुण्य गुणकारके अंश

अर हारनिकौं गुणें चालीस अंश वारह हार $\frac{४०}{१२}$ भए तहां अंशकौं हारका भाग दीए तीन पाया। अवशेष च्यारि का बारहवां भाग ताकौं च्यारि करि अपवर्त्तन कीए एकका तीसरा भाग भया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्नभागहारविषै भाजकके अंशनिकौं हार कीजिए अर हारनिकौं अंश कीजिए। ऐसैं पलटि भाज्य भाजकका गुण्य गुणकारवत् विधान करना। जैसैं सैंतीसके आधाकौं तेरहकी चौथाईका भाग देना होइ तहां ऐसैं $\frac{३७}{२}$ $\frac{३}{४}$ लिखिए। बहुरि भाजकके अंश अर हार पलटै ऐसैं $\frac{३७}{२}$ $\frac{४}{१३}$ लिखिना। बहुरि गुणनविधि कीए एकसौ अडतालीस अंश अर छब्बीस हार $\frac{१४८}{२६}$ भए। तहां हारका अंशकौं भाग दीए पांच पाए। अर अवशेष अठारह छब्बीसवां भाग, ताका दोयकरि अपवर्त्तन कीए नव तेरहवां भागमात्र भया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि भिन्नवर्ग अर घनका विधान गुणकारवत् ही जानना। जातैं समान राशि दोयकौं परस्पर गुणें वर्ग हो है। तीनकौं परस्पर गुणें घन हो है। जैसैं तेरहका चौथा भागकौं दोय जायगा मांडि $\frac{१३}{४}$ $\frac{१३}{४}$ परस्पर गुणें ताका वर्ग एक सौ गुडहत्तरका सोलहवां भागमात्र $\frac{१६९}{१६}$ हो है। अर तीन जायगा मांडि $\frac{१३}{४}$ $\frac{१३}{४}$ $\frac{१३}{४}$ परस्पर गुणें इकईससै सत्याणवैका चौसठवां भाग मात्र $\frac{२१९७}{६४}$ घन हो है। बहुरि भिन्नवर्गमूल घनमूल विषैं अंश अर हारनिका पूर्वोक्त विधान करि जुदा जुदा मूलग्रहण करिए। जैसैं वर्गित राशि एक सौ गुणहत्तरिका सोलहवां भाग $\frac{१६९}{१६}$। तहां पूर्वोक्त विधानतैं एकसौ गुणहत्तरिका वर्गमूल तेरह, अर सोलहका च्यारि ऐसैं तेरहका चौथा भागमात्र $\frac{१३}{४}$ वर्गमूल आया। बहुरि घनराशि इकईससै सत्याणवैका चौसठवां भाग $\frac{२१९७}{६४}$। तहां पूर्वोक्त विधानकरि इकईससै सत्याणवैका घनमूल तेरह अर चौसठिका च्यारि ऐसैं तेरहका चौथा भाग मात्र $\frac{१३}{४}$ घनमूल आया। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि अब शून्यपरिकर्माष्टक लिखिए है-शून्य नाम बिंदीका है ताके संकलनादिक कहिए है। तहां बिंदीविषैं अंक जोडैं अंकही होय। जैसै पचासविषै पांच जोडिए तहां एकस्थानीय बिंदीविषैं पांच जोडैं पांचभए। दशस्थानीय पांच है ही। ऐसैं पचावन भए। बहुरि अंकविषै बिंदीघटाए अंक ही रहै। जैसै पचावनमें दश घटाए एक-

स्थानीय पांचमें विंदीघटाए पांचही रहे दशस्थानीय पांचमें एकघटाए च्यारि रहे ऐसें पैंतालीम भए। बहुरि गुणकारविषै विंदीकौं गुणे विंदी होय। जैसें वीसकौं गुणिए। तहां गुण्यके दूवाकौ पांचकरि गुणे दश भए। बहुरि विंदीकौं पांचकरि गुणे विंदी ही भई ऐसें सौ भए। बहुरि अंककौ विंदीका भागदीए खहर कहिए। जातैं जैसें जैसें भागहार घटता होइ तैसें तैसें लब्धराशि बधती होइ। जैसें दशकौं एकका छठाभागका भागदीए साठि होंइ,एकका वीसवां भागका भागदीए दोयसै होंय सो विंदी शून्यरूप ताका भागदीए फलका प्रमाण अवक्तव्य है। याका हारविंदी है इतना ही कह्या जाय। बहुरि विंदीका वर्गघन वर्गमूल घनमूलविषैं गुणकारादिवत् विंदी ही हो है। ऐसें लौकिकगणित अपेक्षा परिकर्माष्टकका विधान कह्या।

बहुरि अलौकिकगणित अपेक्षा विधान है सो सातिशयज्ञानगम्य है। जातें तहां अंकादिकका अनुक्रम व्यक्तरूप नाहीं है। तहां कहीं तौ संकलनादि होतें जो प्रमाण भया ताका नाम कहिए है। जैसें उत्कृष्ट असंख्याता संख्यातविषै एक जोडे जघन्यपरीतानंत होइ, जघन्यपरीतानंतमें एक घटाएं उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होइ। और[2] जघन्य परीतासंख्यातविषै एक घटाए उत्कृष्ट संख्यात होइ। पल्यकौं दशकोडाकोडिकरि गुणे सागर होइ, जगत् श्रेणीकूं सातका भागदीए राजू होइ, जघन्ययुक्तासंख्यातका वर्गकीए जघन्य असंख्यातासंख्यात होइ सूच्यंगुलका घनकीए घनांगुल होइ, प्रतरांगुलका वर्गमूल ग्रहे सूच्यंगुल होइ, लोकका घनमूल ग्रहे जगत्श्रेणी होइ इत्यादि जानना। बहुरि कहीं संकलनादि होतें जो प्रमाण भया ताका नाम न कहिए है। संकलनादिरूप ही कथन कहिए है। जातें सर्व संख्यात असंख्यात अनंतनिके भेदनिका नाम वक्तव्यरूप नाही है। जैसें जीवराशि करि अधिक पुद्गलराशि कहिए वा सिद्धराशिकरि हीन जीवराशि कहिए वा असंख्यात गुणा लोक कहिए वा संख्यात प्रतरांगुलकरि भाजित जगत्प्रतर कहिए। वा पल्यका वर्ग कहिए वा पल्यका घन कहिए, वा केवलज्ञानका वर्गमूल कहिए वा आकाश प्रदेशराशिका घनमूल कहिए इत्यादि जानना। बहुरि अलौकिक मानकी सह-

१ यह पाठ क और ग पुस्तकमें नहीं है। २ यह पाठ ख पुस्तकमें नहीं है।

नानी स्थापि तिनके लिखनेका वा तहां संकलनादि होतैं लिखनेका जो विधान है सो आगे संदृष्टि अधिकारविषै वर्णन करेगें तहां तैं जानना। बहुरि तहां ही लौकिक मानका भी लिखनेका वा तहां संकलनादि होतैं लिखनेका जो विधान है सो वर्णन करेंगे। इहां लिखैं ग्रंथविषैं प्रवेश करते ही शिष्यनिकौं कठिनता भासती, तहां अरुचि होती तातैं इहां न लिखिए है। उदाहरण मात्र इतना ही इहां भी जानना जो संकलनविषै तौ अधिक राशिकौं ऊपरि लिखना जैसैं पंच अधिक सहस्र ($\frac{५}{१०००}$) ऐसैं लिखने। व्यवकलनविषै हीन राशिकौं ऊपरि लिखि तहां पूंछडीकासा आकार करि विंदी दीजिए जैसैं पंच हीन सहस्र $\frac{५^{\circ}}{१०००}$ ऐसैं लिखिए। गुणकारविषैं गुण्यके आगै गुणककौं लिखिए जैसैं पंचगुणा सहस्र १०००×५ ऐसैं लिखिए। भागहारविषै भाज्यके नीचै भाजककौं लिखिए। जैसे पांचकरि भाजित सहस्र $\frac{१०००}{५}$ ऐसैं लिखिये। वर्गविषै राशिकौं दोयबार बराबर मांडिए जैसै पांचका वर्गकौं ५×५ ऐसैं लिखिए। घनविषै राशिकौं तीनवार बराबरि मांडिए। जैसै पांचका घनकौं ५×५×५ ऐसै लिखिए। वर्गमूल घनमूलविषै वर्गरूप घनरूपराशिके आगै मूलकी सहनानी करनी। जैसैं पचीसका वर्गमूलकौं (२५ व० मू०) ऐसैं लिखिए। एकसौ पचीसका घनमूलकौ (१२५ घ० मू०) ऐसैं लिखिए। ऐसैं ही अनेक प्रकार लिखनेका विधान है। ऐसैं परिकर्माष्टकका व्याख्यान कीया सो जानना।

बहुरि त्रैराशिकका जहां तहां प्रयोजन जानि स्वरूप मात्र कहिए है। तहां तीन राशि हो हैं–प्रमाण १ फल २ इच्छा ३। तहां तिस विवक्षित प्रमाणकरि जो फल प्राप्त होइ सो प्रमाणराशि अर फलराशि जाननी। बहुरि अपना इच्छित प्रमाण होइ सो इच्छा राशि जाननी। तहां फलकौं इच्छाकरि गुणि प्रमाणका भागदीए

१ यद्यपि पं० टोडरमलजीने संकलन आदिमें संख्या लिखनेकी ऊपर लिखी रीति लिखी है परंतु आजकल प्रवृत्ति इसप्रकार है संकलन व्यवकलनमें अधिक प्रमाण ऊपर और हीन नीचे जैसैं $\frac{१०००}{५}$ या अधिक प्रमाणके आगे संकलनमें (+) ऐसा और व्यकलनमें (—) ऐसा चिन्ह कर भी हीन संख्या लिख दीया करते हैं जैसें १०००+५। १०००—५। गुणकारमें गुण्यके नीचे भी गुणक लिखते हैं। भागहारमें पहिले भाजक फिर भाज्य और फिर फलको लिखते हैं जैसे ५) १००० (२०० १०००

अपना इच्छित प्रमाणकरि प्राप्त जो फल ताका प्रमाण आवै है इसका नाम लब्ध है इहां प्रमाण अर इच्छाकी एकजाति जाननी। बहुरि फल अर लब्धकी एकजाति जाननी। इहां उदाहरण--जैसैं पांच रुपैयाका सात मण अन्न आवै तौ सात रुपैया का केता अन्न आवै ऐसैं त्रैराशिक कीया। इहां प्रमाण राशि पांच, फल राशि सात, तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीए गुणचासका पांचवां भाग प्रमाण आया ताका नव मण अर च्यारि मणका पांचवां भाग मात्र लब्धराशि भया। ऐसैं ही छहसै आठ (६०८) सिद्ध छह महीना आठ समय विषैं होंइ तौ सर्व सिद्ध केते कालमें होंइ ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां प्रमाण राशि छहसै आठ, अर फलराशि छह मास आठ समयनिकी संख्यात आवली, इच्छा राशि सिद्धराशि। तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीए लब्धराशि संख्यात आवलीकरि गुणित सिद्ध राशि मात्र अतीत कालका प्रमाण आवै है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

बहुरि केते इक गणितनिका कथन आगैं इस शास्त्रविषैं जहां प्रयोजन आवैगा तहां कहिएगा। जैसैं श्रेढी व्यवहारका कथन गुणस्थानाधिकारविषैं करणनिका कथन करते कहिएगा। बहुरि एकवार दोयवार आदि संकलनका कथन ज्ञानाधिकारविषैं पर्यायसमासज्ञानका कथन करते कहिएगा। बहुरि गोल आदि क्षेत्र व्यवहारका कथन जीवसमासादिक अधिकारनिविषैं कहिएगा। ऐसैं ही और भी गणितनिका जहां प्रयोजन होइगा तहां ही कथन करिएगा सो जानना। बहुरि अज्ञातराशि ल्यावनेका विधान वा सुवर्णगणित आदि गणितनिका इहां प्रयोजन नाहीं तातैं तिनका इहां कथन न करिए है। ऐसैं गणितका कथनकीया। ताकौं यादि राखि जहां प्रयोजन होइ तहां यथार्थरूप जानना। बहुरि ऐसैं ही इस शास्त्रविषैं करणसूत्रनिका, वा केई संज्ञानिका वा केई अर्थनिका स्वरूप एकबार जहां कह्या होइ तहांतैं यादि राखि तिनका जहां प्रयोजन आवै तहां तैसा ही स्वरूप जानना।

या प्रकार श्रीगोम्मटसारशास्त्रकी सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं पीठिका समाप्त भई॥

गांधी—हरीभाईदेवकरणजैनग्रंथमाला ।

४

आचार्यप्रवरश्रीमन्नेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिविरचित

गोम्मटसार ।

(द्वितीयनाम पंचसंग्रह)

जीवतत्त्वप्रदीपिका और मंदप्रबोधिका नामकी दो संस्कृत टीका

तथा

सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामकी हिंदी-भाषाटीका सहित ।

जीवकांड ।

अथ जीवतत्त्वप्रदीपिका टीका ।

नेमिचंद्रं जिनं नत्वा सिद्धं श्रीज्ञानभूषणं ।
वृत्तिं गोम्मटसारस्य कुर्वे कर्णाटवृत्तितः ॥ १ ॥

श्रीमदप्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यंतरनिवासिप्रवादिसिंधुरसिंहायमानसिंहनंदिमुनींद्राभिनंदितगंगवंशललामराजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधे-यभागधेयश्रीमद्राजमल्लदेवमहीवल्लभमहामात्यपदविराजमानरणरंगमल्लासहायपराक्रमगुणरत्नभूषणसम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणनामस-

मासादितकीर्तिकांतश्रीमच्चामुंडरायप्रश्नावतीर्णैकचत्वारिंशत्पदनामसत्त्वप्ररूपणद्वारेणाशेषविनेयजननिकुरंबसंबोधनार्थं श्रीमन्नेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्ती समस्तसैद्धांतिकजनप्रख्यातविशदयशोविशालमतिरसौ भगवान् शास्त्रकरो महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धांतजीवस्थान-क्षुद्रबंध-बंधस्वामित्व-वेदनाखंड-वर्गणाखंड-महाबंधानां षट्खंडानां मध्ये जीवादिप्रमेयांशं निरवशेषं समुद्धृत्य गोम्मटसारपंचसंग्रहप्रपंचमारचयंस्तदादौ निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिनिमित्तं नास्तिकतापरिहारार्थं शिष्टाचारपरिपालनार्थमुपकारस्मरणार्थं चेष्टविशिष्टदेवताविशेषं नमस्करोति—

ननु चेष्टदेवतानमस्कारकरणेन निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्तिः किं भवतीति नाशंकनीयं "विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगाः। विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥" इति वचनात् । प्रायश्चित्ताचरणेन दोषवदौषधसेवनेन रोगवन्मंगलकरणेनापि विघ्नकर्मविलयस्याऽविप्रतिपत्तेश्च । ननु "सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः । विद्यते स न हि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥" इति न्यायेन प्रारब्धमेवारचयतु किं नास्तिक्यपरिहारेणेत्यपि न वाच्यं, प्रशमसंवेगानुकंपास्तिक्याभिव्यक्तलक्षणं सम्यग्दर्शनमित्याप्तादिविषयास्तिक्यस्य सम्यक्त्वसंप्रतिहेतुत्वात् ।"यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी। तथापि लौकिकाचारं मनसाऽपि न लंघयेत् ॥" इति प्रसिद्धत्वाच्च । न च शिष्टाचारपरिपालनं किमर्थं क्रियत इति पर्यनुयोगो युक्तः । प्रायेण गुरुजनशीलमनुचरंति शिष्या इति वाक्यस्य रूढत्वात्। "मंगलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्तारमिति षडपि व्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वंतु"इति न्यायस्याचार्यपरंपरागतस्यातिक्रमे चोत्पथप्रवर्त्तनप्रसंगाच्च । तत्र तावत् पुण्यं पूतं पवित्रं प्रशस्तं शिवं भद्रं क्षेमं कल्याणं शुभं सौख्यमित्यादिर्मंगलस्य पर्यायः । तत्र मलो नाम द्रव्यभावभेदाद् द्विविधः । तत्र द्रव्यमलो बाह्यः आंतरश्च । तत्र बाह्यमलः स्वेदमलरेणुकर्दमादिः, अंतर्मलः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशैरात्मप्रदेशेषु घननिविडज्ञानावरणाद्यष्टविधं कर्म । भावमलो अज्ञानादर्शनादिपरिणामो नामस्थापनाद्रव्यभावभेदो वा । उपचारमलो जीवपापं । तं सर्वमलं गालयति विनाशयति घातयति दहति हंति शोधयति विध्वंसयतीति मंगलं । अथवा मंगं सौख्यं पुण्यं वा लात्यादत्ते इति मंगलं । तच्च मंगलं नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदादानंदजनकं षोढा । तत्र नाममंगलमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां नाम, स्थापनामंगलं कृत्रिमाकृत्रिमजिनादीनां प्रतिबिंबं, द्रव्यमंगलं जिनसूर्युपाध्यायसाधुशरीरं, क्षेत्रमंगलमूर्जयंतादिकमर्हदादीनां निःक्रमणकेवलज्ञानादिगुणोत्पत्तिस्थानमर्द्धचतुर्थहस्तादिपंचविंशत्यप्रपंचशतधनुःपर्यंतकेवलिशरीरावष्टब्धाकाशः केवलिसमुद्घातावष्टब्धाकाशो वा, कालमंगलं यदा परिनिःक्रमणादिकल्याणान्याष्टान्हिकादिजिनादिमहोत्सवा वर्तते स कालः । भावमंगलं मंगलपर्यायोपलक्षितयावद्द्रव्यमात्रं । तदिदमुक्तमंगलं जिनादिप्रकीर्त्तनादिरूपं शास्त्रादौ कृतं शिष्यान् लघु पारगान् करोति, मध्येकृतं विद्याया अव्युच्छित्तिं करोति, चरमे कृतं विद्याया निर्विघ्नं करोति "नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतरायः । तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः ॥" इति परमागमप्रसिद्धेः । ततस्तदवश्यं कर्तव्यमेव ।

१ बंधकं बध्यमानं यो बंधेशं बंधकारणं । भाषते बंधभेदं च तं स्तुवे पंचसंग्रहं । एतस्य किंचित्तात्पर्यं विंशतिप्रकारं बंधकं, कर्मणां मूलोत्तरप्रकृतीनां भेदं बध्यमानं, चतुर्दशगुणस्थानस्वरूपं बंधेशं, मिथ्यात्वादि बंधहेतुं, प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशं बंधभेदं ।

निमित्तमस्य शास्त्रावतारस्य भव्या बहुनयप्रमाणैर्विविधविकल्पं द्रव्यं जानंत्विति । हेतुरस्याध्ययने प्रत्यक्षः परोक्षश्च । तत्र प्रत्यक्षः-साक्षात्प्रत्यक्षः, परंपराप्रत्यक्षश्च । तत्र साक्षात्प्रत्यक्षः-अज्ञानविनाशः, सम्यग्ज्ञानोत्पत्तिर्देवमनुष्यादिभिः सततपूजाकरणं, प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेणिकर्मनिर्जरा च । परंपराप्रत्यक्षः-शिष्यप्रशिष्यैः सततपूजाकरणं । परोक्षोऽप्यभ्युदयरूपो निःश्रेयसरूपश्च । तत्राभ्युदयरूपः-सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां तीव्रानुभागोदयजनितं तीर्थंकरसुरेंद्रनरेंद्रादिसुखं । निःश्रेयसरूपः-सातिशयमात्मसमुत्थमनुपमं प्रवरं तीर्थंकरसुखं पंचेंद्रियातीतं सिद्धसुखं च । प्रमाणं तु विविधार्थैरनंतमक्षरगणनया संख्यातमिति । नाम जीवादिवस्तुप्रकाशनप्रदीपकत्वाज्जीवतत्त्वप्रदीपिकेति । कर्तास्यार्थकर्ता, ग्रंथकर्त्ता, उत्तरग्रंथकर्ता च । तत्रार्थकर्ता निःशेषनिर्दग्धघातिचतुष्टयतया समुत्पन्नानंतज्ञानादिचतुष्टयत्वेन ज्ञातत्रिकालगोचरसमस्तद्रव्यगुणपर्याययाथात्म्यो विनष्टाष्टादशदोषश्चतुस्त्रिंशदतिशयाष्टप्रतिहार्योपेतः समस्तसुरनरेंद्रादिभिः समर्चितचरणसरोजस्त्रिभुवनैकनाथोऽष्टादशमहाभाषासप्तशतक्षुल्लकभाषासंज्ञ्यक्षरानक्षरभाषात्मकत्यक्तताल्वदंतोष्ठकंठव्यापारभव्यजनानंदकयुगपत्सर्वोत्तरप्रतिपादकदिव्यध्वन्युपेतो द्वादशसभासेवितो भगवान् श्रीवर्द्धमानतीर्थंकरपरमदेवः, ग्रंथकर्ता तदर्थज्ञानविज्ञानसप्तर्द्धिसमृद्धगौतमस्वामी, उत्तरग्रंथकर्ता तदनुक्रमधराविनष्टसूत्रार्थरागादिदोषरहितमहामुनिगणः । ननु शास्त्रादावुपकारस्मरणं किमर्थमिति न वाच्यं । "श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः । इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥" इति कथनात् । "अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् । इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति ॥" इति वचनाच्च ।

अत एव विघ्नं विनाशयितुं शिष्टाचारं परिपालयितुं नास्तिक्यं परिहर्तुमभ्युदयकारणपरमपुण्यमुपार्जयितुं कृतोपकारस्मरणार्थं च शास्त्रादौ जिनेंद्रादिनमस्कारादिरूपमुख्यमंगलमाचरयन्नभिधेयप्रतिज्ञां प्रकाशयन् सिद्धमित्यादिगाथासूत्रमाह—

अथ मंदप्रबोधिका टीका ।

मुनिं सिद्धं प्रणम्याहं नेमिचंद्रं जिनेश्वरं ।

टीकां गोम्मटसारस्य कुर्वे मंदप्रबोधिकां ॥ १ ॥

श्रीमदप्रतिहतप्रभावस्याद्वादशासनगुहाभ्यंतरनिवासिप्रवादिमदांधसिंधुरसिंहायमानसिंहनंदिमुनींद्राभिनंदितगंगवंशललामराजसर्वज्ञाद्यनेकगुणनामधेयभागधेय श्रीमद्राजमल्लदेवमहीवल्लभमहामात्यपदविराजमानरणरंगमल्लासहायपराक्रमगुणरत्नभूषणसम्यक्त्वरत्ननिलयादिविविधगुणनामसमासादितकीर्तिकांतश्रीमच्चामुंडरायभव्यपुंडरीकद्रव्यानुयोगप्रश्नानुरूपं महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धांतजीवस्थानाख्यप्रथमखंडार्थसंग्रहं गोम्मटसारनामधेयपंचसंग्रहं शास्त्रं प्रारभमाणः समस्तसैद्धांतिकचूडामणिः श्रीमन्नेमिचंद्रसैद्धांतिकचक्रवर्ती तद्गोम्मटसारप्रथमावयवभूतं जीवकांडं विरचयंस्तदादौ मलगालनपुण्यावाप्तिशिष्टाचारप्रतिपालननास्तिकतादिपरिहारादिफलजननसमर्थं विशिष्टेष्टदेवतानमस्काररूपं परममंगलपूर्वकं प्रकृतशास्त्रकथनप्रतिज्ञासूचकं गाथासूत्रं कथयति—

अब इस शास्त्रके मूलसूत्रनिकी संस्कृत टीकाके अनुसारि भाषाटीका करिए है तहां प्रथम ही संस्कृत टीकाकार करि कथित ग्रंथकरनेकी प्रतिज्ञा, वा मूल शास्त्र होनेके समाचार वा मंगल करनेकी पुष्टता इत्यादि कथन करिए है—

बंदौं नेमिचंद्र जिनराय, सिद्ध ज्ञानभूषण सुखदाय ।
करिहौं गोम्मटसार सुटीक, करि कर्णाट टीकतैं ठीक ॥ १ ॥

ऐसैं संस्कृत टीकाकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करी है । बहुरि कहै हैं—श्रीमान् अर काहू करि हण्या न जाय है प्रभाव जाका ऐसा जो स्याद्वाद मत सोही भई गुफा ताके अभ्यंतर वास करता जो कुवादीरूप हस्तीनिकौं सिंहसमान सिंहनंदी नामा मुनींद्र, तिहकरि भई है ज्ञानादिककी वृद्धि जाकें ऐसा जो गंगनामा वंशविषैं तिलक समान अर राजकार्यका सर्व जाननेकौं आदि देकरि अनेक गुण संयुक्त नामका धारक श्रीमान् राजमल्लनामा महाराजा देव पृथिवीकौं प्यारा ताका महान् जो मंत्रीपद तिहविषैं शोभायमान अर रणकी रंगभूमिविषैं शूरवीर अर परका सहाय न चाहै ऐसा पराक्रमका धारी अर गुणरूपी रत्ननिका आभूषण जाके पाइए अर सम्यक्त्व रत्नका स्थानकपनाकौं आदि देकरि नानाप्रकारके गुणनिकरि अंगीकार करी जो कीर्ति ताका भर्तार ऐसा जो श्रीमान् चामुंडराय राजा, ताका प्रश्नकरि जाका अवतार भया ऐसा इकतालीस पदनिविषैं नामकर्मके सत्त्वनिका निरूपण तिह द्वारकरि समस्त शिष्य जननिके समूहकौं संबोधनके अर्थि श्रीमान् नेमिचंद्र नामा सिद्धांतचक्रवर्ती समस्त सिद्धांतपाठी जननिविषैं विख्यात है निर्मल यश जाका अर विस्तीर्ण बुद्धिका धारक यहु भगवान् शास्त्रका कर्ता सो महाकर्मप्रकृतिप्राभृत नामा मुख्य सिद्धांत, तिहका जीवस्थान १ क्षुद्रबंध २ बंधस्वामी ३ वेदनाखंड ४ वर्गणाखंड ५ महाबंध ६ ए छह खंड हैं तिहविषैं जीवादिक जो प्रमाण करनेयोग्य समस्त वस्तु ताकौं उद्धारकरि गोम्मटसार द्वितीय नामा पंचसंग्रह नामा ग्रंथके विस्तारकौं रचता संता तिस ग्रंथकौं आदिहीविषैं नि-

विघ्नतैं शास्त्रकी संपूर्णता होनेके अर्थि, वा नास्तिक वादीका परिहारके अर्थि वा शिष्टाचार पालनेके अर्थि वा उपकारकौं स्मरणेके अर्थि विशिष्ट जो अपना इष्टदेवका विशेष ताहि नमस्कार करै हैं।

भावार्थ—इहां ऐसा जानना। सिंहनंदि नामा मुनिका शिष्य जो गंगवंशी राजमल्ल नामा महाराजा, ताका मंत्री जो चामुंडराय राजा, ताहि नेमिचंद्र सैद्धांतचक्रवर्ती प्रति ऐसा प्रश्नकीया जो सूक्ष्मपदार्थ जो पर्याप्त पृथ्वीकायादिक इकतालीस जीवपद तिनविषै नामकर्मके सत्त्वानिका निरूपण कैसैं है सो कहौ। तहां इस प्रश्नके निमित्तकौं पाय अनेक जीवनिके संबोधनेके अर्थि जीवस्थानादिक आगैं छह अधिकार जामैं पाइए ऐसा महाकर्म प्रकृति प्राभृत है नाम जाका ऐसा अग्रायणीय पूर्वका पांचवां वस्तु, अथवा यतिभूतिवल्लि[1] आचार्यकृत धवल शास्त्र, ताका अनुसार लेइ गोम्मटसार अर याहीका द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ ताके करनेका प्रारंभ किया। तहां प्रथम अपने इष्टदेवकौं नमस्कार करै हैं। ताके निर्विघ्नपने शास्त्रकी समाप्तता होनेकूं आदि देकरि च्यारि प्रयोजन कहे। अब इनकौं दृढ करै हैं। इहां जो इष्टदेव ताकौं नमस्कार करनेका फल निर्विघ्नतातैं शास्त्रकी समाप्तता कहा हो है? तहां कहिए है जो ऐसी आशंका न करनी। जातैं शास्त्रका ऐसा वचन है—

"विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥"

याका अर्थ—जो जिनेश्वरदेवकौं स्तवतां थकां विघ्नके जु समूह ते नाशकौं प्राप्त हो हैं बहुरि शाकिनीभूत सर्पादिक ते नाशकौं प्राप्त हो हैं। बहुरि विष है सो विषरहितपनाकौं प्राप्त हो है। सो ऐसा वचनथकी शंका न करना। बहुरि जैसैं प्रायश्चित्तकौं आचरणकरि व्रतादिकका दोष नष्ट हो है, बहुरि जैसैं औषधि सेवनकरि रोग नष्ट हो है तैसैं मंगल करनेकरि विघ्नकर्ता अंतरायकर्मके नाशका अविरोध है तातैं शंका न करनी। ऐसैं प्रथम प्रयोजन दृढकीया। बहुरि तर्क जो ऐसा न्याय है—

१ "यतिभूतवल्लभिकाचार्य" यह पाठ ख पुस्तकमें है।

"सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यति जनो बहुजल्पः।
विद्यते स नहि कश्चिदुपायः सर्वलोकपरितोषकरो यः॥"

याका अर्थ—जो सर्वप्रकार अपना हितका आचरण करना। अपना हितकरतैं वहुत वकै है जो मनुष्यलोक सो कहा करैगा। अर कोऊ कहै जो सर्व प्रसन्न होइ सो कार्य करना तो लोकविषैं सो कोई उपाय ही नाहीं जो सर्व लोककौं संतोष करै ऐसैं न्यायकरि जाका प्रारंभ करोहौ ताका प्रारंभ करौ। नास्तिकवादीका परिहारकरि कहा साध्य है? तहां कहिए है। ऐसा भी न कहना। जातैं प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य गुणका प्रगट होनेरूप लक्षणका धारी सम्यग्दर्शन है। यातैं नास्तिकवादीका परिहारकरि आप्त जो सर्वज्ञ तिहने आदिदेकरि पदार्थनिविषैं जो आस्तिक्य भाव हो है ताकैं सम्यग्दर्शनका प्राप्ति करनेका कारणपना पाइए है। वहुरि ऐसा प्रसिद्ध वचन है—

"यद्यपि विमलो योगी छिद्रान् पश्यति मेदिनी।
तथापि लौकिकाचारं मनसापि न लंघयेत्॥"

याका अर्थ—यद्यपि योगीश्वर निर्मल है तथापि पृथ्वी वाके भी छिद्रनिकौं देखै है तातैं लौकिक आचारकूं मनकरि भी उलंघन न करै ऐसैं प्रसिद्ध है तातैं नास्तिकका परिहार कीया चाहिये। ऐसैं दूसरा प्रयोजन दृढ कीया। बहुरि तर्क-जो शिष्टाचारका पालना किसै अर्थ करिए? तहां कहिए है—ऐसा विचार योग्य नाहीं, जातैं ऐसा वचन मुख्य है-"प्रायेण गुरुजनशीलमनुचरंति शिष्याः।" याका अर्थ—जे शिष्य हैं ते अतिशयकरि गुरुजनका जु स्वभाव ताकौं अनुसारकरि आचरण करै हैं। बहुरि ऐसा न्याय है-"मंगलं निमित्तं हेतुं परिमाणं नाम कर्त्तारमिति षडपि व्याकृत्याचार्याः पश्चाच्छास्त्रं व्याकुर्वंतु।" याका अर्थ—जो मंगल निमित्त हेतु परिमाण नाम कर्ता इन छहोंकौं पहिलेकरि आचार्य है सो पीछैं शास्त्रकौं करौ। ऐसा न्याय आचार्यनिकी परंपरातैं चल्या आया है। ताका उल्लंघन कीए उन्मार्गविषैं प्रवर्तनेका प्रसंग होय तातैं शिष्टाचारका पालना किसे अर्थ करिए है ऐसा विचार योग्य नाहीं।

अब इहां मंगलादिक छहो कहा? सो कहिए है-तहां प्रथम ही पुन्य पूत पवित्र प्रशस्त शिव भद्र क्षेम कल्याण शुभ सौख्य इत्यादि मंगलके पर्याय हैं। मंगलहीके पुण्यादिक भी नाम हैं। तहां मंगल दोयप्रकार है-द्रव्यमंगल, भावमंगल। तहां द्रव्यमंगल दोयप्रकार--वहिरंग, अंतरंग। तहां पसेव मल धूलि कादों इत्यादि वहिरंग द्रव्यमल है। बहुरि प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशनिकरि आत्माके प्रदेशनिविषैं निविड बंध्या जो ज्ञानावरणादि आठप्रकार कर्म सो अंतरंग द्रव्यमल है। बहुरि भावमल अज्ञान अदर्शनादि परिणामरूप है अथवा नाम स्थापना द्रव्य भाव भेदरूप मल है। अथवा उपचारमल जीवके पाप कर्म हैं। तिस सब ही मलकौं गालयति कहिए विनाशै वा घातै वा दहै वा हनै वा शोधै वा विध्वंसै सो मंगल कहिए। अथवा मंगं कहिए सौख्य वा पुण्य ताकौं लाति कहिए आदान करै ग्रहण करै सो मंगल है। बहुरि सो मंगल नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेदतैं आनंदका उपजावनहारा छहप्रकार है। तहां अर्हत् सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इनका जो नाम सो तौ नाम मंगल है। बहुरि कृत्रिम अकृत्रिम जिनादिकके प्रतिबिंब स्थापना मंगल है। बहुरि जिन, आचार्य, उपाध्याय साधु इनका जो शरीर सो द्रव्यमंगल है। बहुरि (कैलाश[1]) गिरिनार (सम्मेदाचलादिक) पर्वतादिक अर्हत आदिकके तप केवल ज्ञानादिगुणनिके उपजनेका स्थानक, वा साढा तीन हाथतैं लगाय पांचसै पचीस धनुष पर्यंत केवलीका शरीरकरि रोक्या हूवा आकाश अथवा केवलीका समुद्धातकरि रोक्या हूवा आकाश सो क्षेत्रमंगल है। बहुरि जिसकालविषैं तप आदिक कल्याण भए होंहि, वा जिसकालविषैं अष्टाह्निक आदि जिनादिकके महान उत्सव वर्त्तै सो काल मंगल है। बहुरि मंगल पर्यायकरि संयुक्त जीवद्रव्यमात्र भावमंगल है। सो यहु कह्या हूवा मंगल जिनादिकका स्तवनादिरूप है सो शास्त्रकी आदिविषैं कीयाहूवा शिष्यनिकौं थोरे कालादिककरि शास्त्रनिका पारगामी करै है। मध्यविषैं कीया हूवा विद्याका व्युच्छेद न होइ ताकौं करै है। अंतविषैं कीया हूवा विद्याका निर्विघ्नपनेकौं करै है। कोई तर्क करै कि-इष्ट अर्थकी प्राप्ति परमेष्ठीनिके नमस्कारतैं कैसैं होइ तहां काव्य कहिए है—

१ 'कैलाश' 'सम्मेदाचलादिक' इतना पाठ ख पुस्तकमें नहीं है।

"नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतरायः।
तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः॥"

याका अर्थ—अर्हंतादिककौं नमस्काररूप शुभ भावनिकरि नष्ट भया है अनुभागका आधिक्य जाका ऐसा जु अंतराय नामा कर्म सो इष्टके घातनेकौं प्रभु कहिए समर्थ न होइ, तातैं तिस अभिलाषयुक्त जीवकरि गुणानुरागतैं अर्हंत आदिककौं कह्या हूवा नमस्कारादिक सो इष्ट अर्थका करन हारा है। ऐसा परमागमविषैं प्रसिद्ध है। तातैं सो मंगल अवश्य करना ही योग्य है।

बहुरि निमित्त इस शास्त्रका यहु है जे भव्य जीव हैं ते बहुत नय प्रमाणनिकरि नानाप्रकार भेदकौं लीये पदार्थकौं जानहु। इस कार्यकौं कारणभूत ग्रंथ करिए हैं। बहुरि हेतु इस शास्त्रके अध्ययनविषैं दोयप्रकार है—प्रत्यक्ष, परोक्ष। तहां प्रत्यक्ष दोयप्रकार-साक्षात्प्रत्यक्ष, परंपराप्रत्यक्ष। तहां अज्ञानका विनाश होना, बहुरि सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होनी, बहुरि देव मनुष्यादिकनिकरि निरंतर पूजा करना, बहुरि समय समयप्रति असंख्यातगुणश्रेणीरूप कर्मनिका निर्जरण[1] होना ये तौ साक्षात् प्रत्यक्ष हेतु हैं। शास्त्राध्ययन करतैं ही ए फल निपजे हैं। बहुरि शिष्य वा शिष्यनिके प्रति शिष्य तिनिकरि निरंतर पूजाका करना सो परंपरा प्रत्यक्ष हेतु है। शास्त्राध्ययन कीएतैं ऐसा फलकी परंपरा हो है। बहुरि परोक्षहेतु दोय प्रकार-अभ्युदय रूप, निश्रेयसरूप। तहां सातावेदनीयादिक प्रशस्त प्रकृतिनिका तीव्र अनुभागका उदयकरि निपज्या तीर्थंकर इंद्र राजादिकसंबंधी सुख सो तौ अभ्युदयरूप है। बहुरि अतिशयसंयुक्त आत्मजनित अनौपम्य सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरका सुख वा पंचेंद्रियनितैं अतीत सिद्ध सुख सो निश्रेयसरूप है। ग्रंथ अध्ययनतैं पीछैं परोक्ष ऐसा फल पाइए है। तातैं यहु ग्रंथ ऐसे फलनिका हेतु जानना। बहुरि प्रमाण इस शास्त्रका नानाप्रकार अर्थनिकरि अनंत है। बहुरि अक्षरगणनाकरि संख्यात है जातैं जीवकांडका सातसै पचीस गाथा सूत्र है। बहुरि नाम-जीवादि वस्तुका प्रकाशनेकौं दीपिका समान है।

१ "कर्मनिर्जराका होना" ऐसा क पुस्तकमें पाठ है।

तातैं संस्कृत टीकाकी अपेक्षा जीवतत्त्वप्रदीपिका है। बहुरि कर्ता इस शास्त्रका तीनप्रकार–अर्थकर्ता, ग्रंथकर्ता, उत्तर ग्रंथकर्ता, तहां समस्तपनैं दग्ध कीया घातिकर्म चतुष्टय, तिहकरि उपज्या जो अनंतज्ञानादिक चतुष्टयपना ताकरि जान्या है त्रिकालसंबंधी समस्त द्रव्य गुण पर्यायका यथार्थस्वरूप जिहैं, बहुरि नष्ट भए हैं क्षुधादिक अठारह दोष जाके, बहुरि चौंतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य करि संयुक्त, बहुरि समस्त सुरेंद्र नरेंद्रादिकनिकरि पूजित है चरण कमल जाका, बहुरि तीनलोकका एक नाथ बहुरि अठारह महाभाषा, अर सातसै क्षुद्रभाषा, वा संज्ञी संबंधी अक्षर अनक्षर भाषा तिहस्वरूप, अर तालवा दांत होठ कंठका हलावना आदि व्यापाररहित, अर भव्य जीवनिकौं आनंदका कर्ता, अर युगपत् सर्वजीवनिकौं उत्तरका प्रतिपादन करनहारा ऐसा जु दिव्य-ध्वनि तिहकरि संयुक्त, बहुरि बारह सभाकरि सेवनीक ऐसा जो भगवान श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर परमदेव सो अर्थकर्ता जानना। बहुरि तिस अर्थका ज्ञान वा कवित्वादि विज्ञान अर सात ऋद्धि तिनकरि संपूर्ण विराजमान ऐसा गोतमगणधर देव, सो ग्रंथकर्ता जानना। बहुरि तिसहीके अनुक्रमका धारक, बहुरि नाहीं नष्ट भया है सूत्रका अर्थ जाकै, बहुरि रागादि दोषनिकरि रहित ऐसा जो मुनीश्वरनिका समूह सो उत्तर ग्रंथकर्ता जानना। या प्रकार मंगलादि छहोंनिका व्याख्यान इहां कीया। ऐसैं तीसरा प्रयोजन दृढ कीया है। बहुरि वितर्क–जो शास्त्रकी आदिविषै उपकारस्मरण किसे अर्थ करिए है। तहां कहिए है–जो ऐसा न कहना। जातैं ऐसा कथन है

"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धिः प्रसादात्परमेष्ठिनः।
इत्याहुस्तद्गुणस्तोत्रं शास्त्रादौ मुनिपुंगवाः ॥"

याका अर्थ—श्रेय जो कल्याण ताके मार्गकी सम्यक् प्रकार सिद्धि सो परमेष्ठीके प्रसादतैं हो है। इस हेतु तैं मुनि प्रधान हैं ते शास्त्रकी आदिविषैं तिस परमेष्ठीका स्तोत्र करना कहै हैं। बहुरि ऐसा प्रवचन है–

अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात्।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति ॥

याका अर्थ–वांछित अभीष्टफलकी सिद्धि होनेका उपाय सम्यग्ज्ञान है। बहुरि सो सम्यग्ज्ञान शास्त्रतें हो है। बहुरि तिस शास्त्रकी उत्पत्ति आप्त जो सर्वज्ञ तातैं है इस हेतुतें सो आप्त सर्वज्ञदेव है सो तिसका प्रसादतें ज्ञानवंत भए जे जीव तिनिकरि पूज्य हो हैं सो न्याय ही है व पंडित हैं ते कीए उपकारकौं नाहीं भूलै हैं। तातैं शास्त्रकी आदिविषैं उपकारस्मरण किसे अर्थ करिए ऐसा न कहना। ऐसैं चौथा प्रयोजन दृढ कीया।

याहीतैं विघ्नविनाशनेकौं बहुरि शिष्टाचार पालनेकौ बहुरि नास्तिकके परिहारकौं बहुरि अभ्युदयका कारण जो परमपुण्य ताहि उपजावनेकौं, बहुरि कीया उपकारके यादि करनेकौं शास्त्रकी आदिविषै जिनेंद्रादिककौं नमस्कारादि रूप जो मुख्य मंगल ताकौ आचरण करता संता, बहुरि जो अर्थ कहेगा तिस अभिधेयकी प्रतिज्ञाकौं प्रकाशता संता आचार्य है सो सिद्धं इत्यादि गाथा सूत्रकौं कहै है–

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।
गुणरयणभूसणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं ॥ १ ॥

छाया— सिद्धं शुद्धं प्रणम्य जिनेंद्रवरनेमिचंद्रमकलंकं।
गुणरत्नभूषणोदयं जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्ये ॥ १ ॥

जी०प्र०–वक्ष्यामि–करिष्यामि, किं ? प्ररूपणं–निरूपणं व्याख्यानं, अथवा प्ररूपयतीति प्ररूप्यतेऽनेनेति वा प्ररूपणो ग्रंथस्तं, कस्य प्ररूपणं ? जीवस्य–चतुर्भिः प्राणैर्जीवति जीविष्यत्यजीवीदिति जीवः-आत्मा, तस्य जीवस्य भेदप्रतिपादकं शास्त्रमहं वक्ष्यामीति प्रतिज्ञा। अनया शास्त्रस्य संबंधाभिधेयशक्यानुष्ठानेष्टप्रयोजनवत्त्वात् प्रेक्षावद्भिरादरणीयत्वमावेदितं। कथंभूतं प्ररूपणं ? गुणरयणभूसणुदयं–गुणरत्नभूषणोदयं-गुणाः सम्यग्दर्शनादय एव भूषणानि यस्यासौ गुणरत्नभूषणश्चामुंडरायस्तस्मादुदय उत्पत्तिर्यस्य शास्त्रस्य तत् गुणरत्नभूषणोदयं चामुंडरायप्रश्नवशादस्योत्पत्तिप्रसिद्धेः। अथवा गुणरत्नभूषणानि यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणो मोक्षस्तस्य उदय उत्पत्तिर्यस्मात् शास्त्रात् तद् गुणरत्नभूषणोदयं मोक्षकारणमिदं शास्त्रं, न पुनर्विकथादिवद् बंधकारणमित्यर्थः। अनेन बंधक–बंध्यमान-बंधस्वामि–बंधहेतु–बंधभेदानां पंचानां सिद्धांतार्थानां मध्ये बंधकस्य जीवस्य प्रतिपादकमिदं शास्त्रं जीवस्थान–जीवकांडनामद्वयप्रख्यातं अहं वक्ष्यामीति शास्त्रकारस्या-

मिप्रायः प्रदर्शितः। पुनः कथंभूतं प्ररूपणं ? सिद्धं-पूर्वाचार्यपरंपराप्रसिद्धं, न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः। अनेनाचार्यः स्वस्य कर्तृतां परिहृत्य अनुवादमाह। पुनः कीदृशं प्ररूपणं ? शुद्धं-पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वान्निर्मलं, अनेन सम्यग्ज्ञानिनां उपादेयत्वमस्य शास्त्रस्य प्रकाशितं भवति। किंकृत्वा ? पणमिय--प्रणम्य नमस्कृत्य, कं ? जिणिंदवरणेमिचंदं-कर्मारातीन् जयतीति जिनः, अपूर्वकरणपरिणामप्रविष्टप्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखसातिशयमिथ्यादृष्टयः, त एव इंद्राः परमैश्वर्यभाजः कर्मनिर्जराफलत्वात्। सकलैश्वर्याणां जिनेंद्राणां वरः-श्रेष्ठः, असंख्यातगुणहानिनिर्जराधिपतित्वात्। नेमिः-चामुंडरायनिर्मितमहापूतचैत्यालयस्थो नेमितीर्थंकरः, चंद्रयति-आह्लादयति भव्यान्, प्रकाशयति समस्तानिति चंद्रः भवातापाज्ञानतमोविनाशकत्वात्, नेमिश्चासौ चंद्रश्च नेमिचंद्रः, जिनेंद्रवरश्चासौ नेमिचंद्रश्च जिनेंद्रवरनेमिचंद्रः, तं जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं जिनेंद्रं, कथंभूतं ? सिद्धं-समस्तभुवनविख्यातं, पुनरपि कथंभूतं ? शुद्धं-द्रव्यभावात्मकघातिकर्मरहितं, तथापि क्षुधादिदोषसंभवं वदंतं प्रत्याह-अकलंकमितिन विद्यंते कलंकाः-क्षुधादयोष्टादशदोषा यस्यासावकलंकः तं, गुणरत्नभूषणोदयं-गुणाः-अनंतज्ञानादय एव रत्नभूषणानि गुणरत्नभूषणानि तेषां उदयः-प्रकर्षः परमकाष्ठा यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं, इत्यसाधारणविशेषणैरशेषातिशयप्रकाशिभिः अमीभिः अन्येषामाप्ततावार्तामप्यसहमानैः अस्यैव भगवतः परमात्मता परमकृतकृत्यता अस्मदादीनां अकृतकृत्यानां परमशरणता च प्रतिपादिता चेत्यवसेयं। अथवा—

प्रणम्य, कं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं सकलात्मप्रदेशनिविडनिबद्धघातिकर्ममेघपटलविघटनप्रकटीभूतानंतज्ञानादिनवकेवललब्धित्वात् जिनः, निरुपमानपरमैश्वर्यसंपन्नत्वादिंद्रः, जिनश्चासौ इंद्रश्च जिनेंद्रः स्वकीयावबोधप्रभाभिर्व्याप्तत्रिकालत्रिभुवनविस्तार इति यावत्। वश्च रश्च वरौ चतुर्विंशतिरित्यर्थः। निजाद्भुतपुण्यमाहात्म्येन नागेंद्रनरेंद्रदेवेंद्रवृंदं निजपादारविंदद्वंद्वे नमयति इति नेमिः। यदि वा तीर्थरथप्रवर्तनपरत्वात् नेमिरिव नेमिः तीर्थंकरसमुदायः। चंद्रयति-आह्लादयति लोकत्रयनेत्रकैरववनानीति चंद्रस्तथाविधरूपसौंदर्यसंपन्नोदयः यद्रूपसंपदातुलायां इंद्रादिसौंदर्यसारसर्वस्वमपि परमाणूयति। नेमिश्चासौ चंद्रश्च नेमिचंद्रः वरसंख्याविशिष्टो नेमिचंद्रो वरनेमिचंद्रः। जिनेंद्रश्चासौ वरनेमिचंद्रश्च जिनेंद्रवरनेमिचंद्रः, तं। वृषभादिवीरावसानतीर्थंकरनिकुरंबमित्यभिप्रायः। शेषविशेषणानां पूर्ववत्संबंधः। अथवा—

प्रणम्य--नमस्कृत्य, कं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं, जयति-भिनत्ति विदारयति कर्मभूभृन्निवहमिति जिनः "नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते" इति न्यायेन इंद्रस्य-इंद्रभूतेः देवेंद्रस्य वा वरः-गुरुः इंद्रवरः श्रीवर्धमानस्वामीत्यर्थः। नयति अनश्वरपदं विनेयनिवहमिति नेमिः। विश्वतत्त्वप्रकाशकत्वाच्चंद्रवच्चंद्रः, जिनश्चासाविंद्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चंद्रश्चासौ जिनेंद्रवरनेमिचंद्रश्च, तं पूर्ववदन्यत्। अथवा—

प्रणम्य, कं ? सिद्धं-सिद्धः निष्ठितः निष्पन्नः कृतकृत्यः सिद्धसाध्य इति यावत्, तं सिद्धं-सिद्धपरमेष्ठिनं जात्यपेक्षयात्रैकवचनं तेन सर्वत्र सर्वदा सर्वप्रकारेण सिद्धानां अविशेषेण ग्रहणं। कथंभूतं ? शुद्धं-ज्ञानावरणाद्यष्टविधद्रव्यभावात्मककर्मरहितं। भूयः कथंभूतं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं-अनेकभवगहनविषमव्यसनप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयतीति जिनः, इदनात्-परमैश्वर्ययोगाद्, राजते-शोभत इति इंद्रः, यथावस्थितमर्थं नयति-परिच्छिनत्ति इति नेमिः-बोधः, वरः-परमोऽनंतरूपो नेमिर्यस्यासौ वरनेमिः, चंद्रयति-आह्लादते परमसुखमनुभवतीति चंद्रः, सर्वत्र जात्यपेक्षयैकवचनं।

जिनश्चासौ इंद्रश्चासौ वरनेमिश्चासौ चंद्रश्च जिनेंद्रवरनेमिचंद्रः, तं। पुनरपि कथंभूतं ? अकलंकं-न विद्यंते कलंकाः-परवादिपरिकल्पितदोषा यस्यासावकलंक', तं। पुनरपि कीदृशं ? गुणरत्नभूषणोदयं गुणाः-परमावगाढसम्यक्त्वादयोऽष्टसंख्याविशिष्टाः, त एव रत्नभूषणानि, तेषां उदयः अनुभवनं प्रकृष्टा वा प्राप्तिर्यस्यासौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं। अथवा—

प्रणम्य, कं ? कं-आत्मानं, कथंभूतं ? अकलं न विद्यते कला-शरीरं यस्यासौ अकलः, तं। पुनरपि कथंभूतं ? सिद्धं-नित्यमनादिधनं। भूयः कथंभूतं ? शुद्धं-शुद्धनिश्चयनयविषयं। पुनरपि कीदृशं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं जिनानां-असंयतसम्यग्दृष्टिप्रमुखानां, इंद्रः-स्वामी परमाराध्यो जिनेंद्रः, वरः-सर्ववस्तुषु सारीभूतः, नेमिचंद्रो ज्ञानसुखस्वभावः, जिनेंद्रश्चासौ वरश्चासौ नेमिचंद्रश्च जिनेंद्रवरनेमिचंद्रः, तं। पुनरपि कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं-गुणानां रत्नभूषणस्य-रत्नवत्पूज्यस्य सम्यक्त्वस्य उदयः-उत्पत्तिः, यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं। अथवा—

प्रणम्य, कं? सिद्धं-सिद्धपरमेष्ठिसमूहं, कथंभूतं ? शुद्धं-दग्धाष्टकर्ममलं, पुनः कथंभूतं (क प्रणम्य) जिनेंद्रवरनेमिचद्रं-जिनेंद्रः-अर्हत्समूहः, वराः-गणधरचक्रधरेंद्रप्रभृतयो भव्यपुंडरीकाः, त एव नेमयः-नक्षत्राणि तेषां चंद्र इव चंद्रः वरनेमिचंद्रः जिनेंद्रश्चासौ वरनेमिचंद्रश्च जिनेंद्रवरनेमिचद्रस्तं-अर्हत्परमेश्वरनिवहमित्यर्थः। कथंभूतं ? अकलंकं-दूरीकृतत्रिषष्ठिकर्ममलकलंकं। न केवलं तं, गुणरत्नभूषणोदयं च-गुणरूपाणि रत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तान्येव भूषणानि-आभरणानि, तेषां उदयः-समुदयः, यस्यासौ गुणभूषणोदयः, तं, आचार्योपाध्यायसाधुवर्गमित्यर्थः। अथवा-

प्रणम्य, कं ? जीवस्य प्ररूपणं, किंविशिष्टं ? सिद्धं- सम्यग्गुरूपदेशपूर्वकत्वेन अखंडप्रवाहरूपेण आयातं। पुनरपि कथंभूतं ? शुद्धं-प्रमाणाविरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन पूर्वापरप्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनादिविरोधैः अबाधितं। भूयः कथंभूतं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं-जिनेंद्रः-सर्वज्ञः, वरः-कर्ता यस्यासौ जिनेंद्रवरः-सर्वज्ञप्रणीत इति यावत्। एतेन वक्तुःप्रामाण्याद्वचनस्य प्रामाण्यमुपदर्शितं। यथावस्थितमर्थं नयति-प्रतिपादयति द्योतयतीति नेमिः, चंद्रयति आह्लादयति विकाशयति शब्दार्थालंकाराभ्यां श्रोतुर्मनःकुमुदकुड्मलानीति चंद्रः, जिनेंद्रवरश्चासौ नेमिश्चासौ चद्रश्च जिनेंद्रवरनेमिचंद्रः, तं। पुनरपि किं विशिष्टं ? अकलंकं-दूरोत्सारितशब्दार्थविषयदोपकलंकं। पुनरपि कथंभूतं ? गुणरत्नानां-रत्नत्रयरूपाणां भूषाणानां उदयः-उत्पत्तिः-संपत्तिर्वा यस्मादस्मदादीनां असौ गुणरत्नभूषणोदयः तं। अथवा-

प्रणम्य, कं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं जिनेंद्रवरनेमिचंद्राचार्यं, कथंभूतं ? सिद्धं-प्रसिद्धं तात्कालिकविश्वशास्त्रनिष्पन्नं वा। पुनरपि किं विशिष्टं ? शुद्धं-पंचविंशतिमलरहितसम्यक्त्वं निरतिचारचारित्रं देशकुलजातिशुद्धं वा। भूयः किंभूतं ? अकलंकं विशुद्धमनोवाक्कायसंयुक्तं। पुनः कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं गुणरत्नभूषणश्चामुंडरायः-तस्य उदयः-अभिवृद्धिः, यस्मात् असौ गुणरत्नभूषणोदयस्तमिति। एवं इष्टविशिष्टदेवतानमस्कारकरणलक्षणं परममंगलमंगीकृत्य अनंतरं प्रकृतजीवप्ररूपणस्य अधिकारान् निर्दिशति—

मं०प्र०—वोच्छ-वक्ष्याम्यहं-व्यक्तं कथयिष्यामि, किं ? परूवणं-प्ररूपण-प्ररूप्यते अस्मिन्ननेनेति वा प्ररूपणं शास्त्र, कस्य ? जीवस्स जीवस्य—आत्मनः, जीवस्वरूपप्रतिपादकं शास्त्रं व्यक्तं कथयिष्यामीत्यर्थः। कथंभूतं प्ररूपणं ? गुणरयणभूसणुदयं गुणरत्नभूषणोदयं गुणाः- सम्यग्दर्शनादय एव रत्नभूषणानि

यस्यासौ गुणरत्नभूषणश्चामुंडरायः, तस्मादुदयः—उत्पत्तिर्यस्य शास्त्रस्य तद्गुणरत्नभूषणोदयं, चामुंडरायप्रश्नवशादस्योत्पत्तिप्रसिद्धेः । अथ वा गुणा एव रत्नभूषणानि यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणो मोक्षः तस्य उदयः—उत्पत्तिः यस्मात् शास्त्रात् तद्गुणरत्नभूषणोदयं, मोक्षकारणमिदं शास्त्रं न पुनर्विकथादिवद्बंधकारणं । अनेन बंधक-बंध्यमान-बंधस्वामित्व-बंधहेतु-बंधप्रकाराणां पंचानां सिद्धांतार्थानां मध्ये बंधकस्य जीवस्य प्रतिपादकमिदं शास्त्रं जीवस्थान—जीवकांडनामद्वयप्रख्यातमहं वक्ष्यामीति शास्त्रकारस्याभिप्रायः प्रदर्शितः । पुनरपि कथंभूत जीवस्य प्ररूपणं ? सिद्धं—पूर्वाचार्यपरंपराप्रसिद्धं, न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः । अनेनाचार्यः स्वकर्तृतां परिहृत्यानुवादकत्वमाह । पुनरपि किं विशिष्टं सुद्धं—शुद्धं पूर्वापरविरोधादिदोषरहितत्वान्निर्मलं, अनेन सम्यग्ज्ञानिनामुपादेयत्वमस्य शास्त्रस्य प्रकाशितं भवति । किंकृत्वा ? पणमिय—प्रणम्य—प्रकर्षेण मनोवाक्कायशुद्धिविशेषेण नत्वा—सम्यगाराध्य । कं ? जिणिंदवरणेमिचंदं जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं-अनेकविषम (भव) गहनदु.खप्रापणहेतून् कर्मारातीन् जयंति-निर्जरयंतीति जिनाः-अपूर्वकरणपरिणामप्रविष्टप्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखसातिशयमिथ्यादृष्ट्यादयः त एव इंद्राः-परमैश्वर्यभाजः कर्मनिर्जराफलत्वात्सकलैश्वर्याणां जिनेंद्राणां वरः—श्रेष्ठः, असंख्यातगुणमहानिर्जराधिपतित्वात्, नेमिः—चामुंडरायनिर्मितमहापूतचैत्यालयस्थो नेमितीर्थंकरः, चंद्रयति—आह्लादयति भव्यान् प्रकाशयति च समस्तार्थानिति चंद्रः, भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात्, नेमिश्चासौ चंद्रश्चासौ नेमिचंद्रः, जिनेंद्रवरश्चासौ नेमिचंद्रश्चासौ जिनेंद्रवरनेमिचंद्र, तं जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं । पंचपरमेष्ठिनां मध्येऽर्हत्परमेष्ठिनः प्रधानत्वात्प्रथमतो नमस्कारः कृतः । कथंभूतं तं ? सिद्धं- सिद्धिः—स्वात्मोपलब्धिरस्यास्तीति सिद्धस्तं, सिद्धं । अस्ति सर्वज्ञः सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वादित्यादिप्रमाणतो वा सिद्धं । पुनरपि कथंभूतं ? सुद्धं-शुद्धं- घातिकर्मचतुष्टयरूपद्रव्यमलरहितं । पुनरपि कथंभूतं तं ? अकलंकं—न विद्यंते कलंकाः—अज्ञानमिथ्यात्वादयो भावमलाः, यस्यासावकलंकः तं अकलंकं । अनेन विशेषणद्वयेन द्रव्यभावकर्मरहितत्वात्केवलज्ञानादिवरक्षायिकलब्धिसंपदर्हत्परमेष्ठिनो दर्शिता । अत एव 'मोक्षार्थिनामर्हत्परमेष्ठ्येव नमस्कारार्हः' इति सूचितं । पुनरपि कथंभूतं तं ? गुणरत्नभूषणोदयं—गुणा ज्ञानादय एव रत्नभूषणानि तेषामुदयः परमप्रकर्षो यस्मिन्नसौ गुणरत्नभूषणोदयस्तं । अनेन भगवदर्हत्परमेष्ठिगुणानां सकललोकोत्तरत्वं प्रदर्शितं ।

अथवा सिद्धं--निष्पन्नं, कं—परमात्मानं प्रणम्य सिद्धपरमेष्ठिने प्रणम्येत्यर्थः । कथंभूतं ? शुद्धं-द्रव्यभावकर्ममलरहितं । पुनरपि कथंभूतं ? अकलं--न विद्यते कला--सकलदुःखाकरशरीरत्रयं, यस्य सः, अकलः तं । पुनरपि कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं—केवलज्ञानादिगुणमणिमयाभरणप्रकर्षवंतं । पुनरपि कथंभूतं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं—जिनानां कर्मनिर्जरावतामिंद्राः—स्वामिनः--विध्वस्तघातिकर्माणोऽर्हंतः, तेषां वरः--ध्येयतया श्रेष्ठः, जिनेंद्रवरः सिद्धपरमेष्ठिनो विध्वस्तघात्यघातिकर्मत्वे चार्हद्भ्योऽपि श्रेष्ठत्वसंभवात् । नयति सकलद्रव्यगुणपर्यायान् प्रतिक्षणं पूर्वाकारपरिहारोत्तराकारावाप्तिद्रव्याकारास्थितिपरिवृत्तिलक्षणं परिणाममिति नेमिः--कालचक्रधारा तस्याश्चंद्रः प्रकाशकः, सिद्धपरमेष्ठिनोऽपि केवलज्ञानदर्शनोपयोगस्य कालद्रव्यकलितसकलद्रव्यगुणपर्यायप्रकाशकत्वप्रसिद्धेः । जिनेंद्रवरश्चासौ नेमिचंद्रश्चासौ जिनेंद्रवरनेमिचंद्रस्तं ।

अथवा अकलंकं--मिथ्यात्वादिदोषरहितं गणधराद्याचार्योपाध्यायसाधुपरमेष्ठिसमूहं प्रणम्य, कथंभूतं ? सिद्धं—पंचमकाले श्रीवर्धमानभट्टारकतीर्थप्रभावकत्वेन

१ धुरा इत्यपि (क) पुस्तके पाठ. ।

प्रसिद्धं, पुनरपि कथंभूतं ? शुद्धं–निर्मलं -निर्मलनिश्चयव्यवहाररत्नत्रयाराधकत्वेन परमपावनमित्यर्थः । शुद्धत्वाकलंकत्वविशेषणयोर्द्रव्यभावमलरहितत्वेन भेदोत्राऽपि ज्ञातव्यः । पुनरपि कथंभूतं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं--जिनेंद्रः--भगवदर्हत्परमेष्ठी, वरः--भर्ता, यस्य स जिनेंद्रवरः । अंतर्भावितसकलद्रव्यगुणपर्यायवर्तना कालचक्रधारा नेमिः, तस्याश्चंद्रः प्रकाशको नेमिचंद्रः, गणधरादिसाधुत्रयज्ञानोपयोगस्य प्रत्यक्षं परोक्षं वा कालद्रव्यसमाकलितसकलद्रव्यगुणपर्यायप्रकाशकत्वप्रसिद्धेः । जिनेंद्रवरश्चासौ नेमिचंद्रश्चासौ जिनेंद्रवरनेमिचंद्रस्तं । अत्र मोक्षमार्गोपदेशलक्षणपरमोपकारकर्तृत्वेनार्हत्परमेष्ठ्येव मोक्षार्थिनां परमगुरुरिति प्रथमतस्तन्नमस्कारो युक्तः । श्रीमद्गोतमगणधरपादैरपि वेदनाखंडस्यादौ 'णमोजिणाणं' इत्यादिना भूतबलिभट्टारकेणमहाकर्मप्रकृतिप्राभृतस्य प्रथमसिद्धांतस्यादौ 'णमो अरिहंताणं' इत्यादिना गृद्धपिच्छाचार्येणापि तत्त्वार्थशास्त्रस्यादौ 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' इत्यादिना अर्हन्नमस्कारस्यैव परममंगलतया प्रथममुक्तत्वात् । लोकेऽपि 'नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति' इत्युपकारस्यैव प्राधान्येनाश्रयणात् । परीक्षकव्यवहारेऽपि—

"अभिमतफलसिद्धेरभ्युपायः सुबोधः प्रभवति स च शास्त्रात्तस्य चोत्पत्तिराप्तात् ।
इति भवति स पूज्यस्तत्प्रसादात्प्रबुद्धैर्नहि कृतमुपकारं साधवो विस्मरंति ॥"

इति भगवन्नर्हन्नमस्कारस्यैव मुख्यतया दर्शनात् ।

अथवा चामुंडरायस्य जीवप्ररूपणशास्त्रकर्तृत्वमाश्रित्य मंगलसूत्रं व्याख्यायते । तद्यथा–जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्यामि--अहं चामुंडरायार्यः कर्ता, किंकृत्वा ? प्रणम्य, कं जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं -जिनेंद्राः वराः- भर्तारः, यस्यासौ जिनेंद्रवरः । जिनानां–कर्मनिर्जरावतां, इंद्रौ जिनेंद्रौ--अर्हत्सिद्धौ अथवा जिनः–इंद्रः- स्वामी येषां ते जिनेंद्राः–आचार्योपाध्यायसाधवः, एवं जिनेंद्रवरः पंचपरमेष्ठ्याराधक इत्यर्थः । जिनेंद्रवरश्चासौ नेमिचंद्रश्चासौ जिनेंद्रवरनेमिचंद्रः तं, पंचपरमेष्ठ्याराधनासमुद्भूतदर्शनविशुद्ध्यादिगुणसंपन्नं स्वस्य परमगुरु नेमिचंद्राचार्यं प्रणम्येत्यर्थः । कथंभूतं ? सिद्धं--तात्कालिकस्वपरसमयश्रुताधारत्वेन प्रसिद्धं पुनरपि कथंभूतं ? शुद्धं--दर्शनमोहादिद्रव्यमलरहित । पुनरपि कथंभूतं ? अकलंकं -मिथ्यात्वादिभावमलरहितं । पुनरपि कथंभूतं ? गुणरत्नभूषणोदयं--गुणरत्नभूषणस्य–चामुंडरायस्य, उदयः--अभ्युदयः यस्मादसौ गुणरत्नभूषणोदयः, तं । अस्मिन् पक्षेऽप्यर्हदादिनमस्काराः पूर्ववत् ज्ञातव्याः । अथवा स्वगुरुनमस्कारेणैव परमेष्ठिनमस्कारः कृतः स्वगुरोरेव परमेष्ठित्वाभ्युपगमात् । ननु मलं गालयतीति, मंग पुण्यं लात्यादत्ते अस्मादिति वा मंगलमिति निरुक्तिसिद्धमलगालनपुण्यादानलक्षणमंगलप्रयोजनस्य सिद्धिः परमेष्ठिनमस्कारात्कथमिति चेत् ? उच्यते, "नेष्टं विहंतुं शुभभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरंतरायः । तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदर्हदादेः ।" इति वचनेन परमजिनेंद्रगुणस्तोत्रादेर्विघ्नलक्षणमलविध्वंसनस्य मंगलफलस्य अर्हदादिगुणानुरागरूपविशुद्धिविशेषानुगृहीततद्गुणस्तोत्रादेरभिनवपुण्यास्रवरूपमंगादानस्य च मंगलफलस्य सुप्रसिद्धत्वात् । अस्य शास्त्रस्य निमित्तं चामुंडरायस्य प्रश्नः । हेतुः प्रयोजनं गुरुशिष्यपरंपरोपदेशः । परिमाणं–अर्थतोऽनंतरूपं, शब्दतो गाथासूत्राणां पंचविंशत्युत्तरा सप्तशती । नाम जीवप्ररूपणं जीवकांडं जीवस्थानमिति वा । कर्ता पुनः--मूलतंत्रकर्ता, उत्तरतंत्रकर्ता, उत्तरोत्तरतंत्रकर्ता चेति त्रिविधः । तत्र मूलतंत्रकर्ता सर्वभाषात्मकदिव्यध्वनिप्रवर्तकश्रीवर्धमानतीर्थंकरः । उत्तरतंत्रकर्ता ज्ञानर्द्धिसंपन्नो द्वादशांगांगबाह्यश्रुतस्कंधप्रवर्तको–गोतमगणधरदेवः । उत्तरोत्तरतंत्रकर्ता–जीवकांडशास्त्रकारो नेमिचंद्रसैद्धांतिकचक्रवर्ती जिनेंद्रवरनेमिचंद्र-

मित्यनेन विशेषणेन सूचितः । एवं मंगलादिषडधिकारसूचनपुरस्सरं जीवप्ररूपणप्रतिज्ञासूत्रं संक्षेपेण व्याख्यातं ॥ १ ॥ अथ परमेष्ठिनमस्काररूपमंगलपूर्वकं जीवस्वरूपप्ररूपणप्रतिज्ञासूत्रमुक्त्वा मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया जीवप्ररूपणभेदानाह—

स० चं०—अहं वक्ष्यामि अहं कहिए मैं जु हौं ग्रंथकर्ता सो वक्ष्यामि कहिये कहौंगा करौंगा, किं ?-किसहि करौंगा ? प्ररूपणं कहिये व्याख्यान अथवा अर्थकौं प्ररूपै वा अर्थ याकरि प्ररूपिये ऐसा जु ग्रंथ ताहि करौंगा। कस्य प्ररूपणं ? किसका प्ररूपण कहौंगा ? जीवस्य कहिये च्यारि प्राणनिकरि जीवै है जीवैगा जीया ऐसा जीव जो आत्मा तिस जीवके भेदका प्रतिपादन करणहारा शास्त्र मैं कहौंगा ऐसी प्रतिज्ञा करी। इस प्रतिज्ञाकरि इस शास्त्रकै संबंधाभिधेय शक्यानुष्ठान इष्टप्रयोजनपना है। तातैं बुद्धिवंतनिकरि आदर करना योग्य कह्या है। तहां जैसा संबंध होइ तैसा ही जहां अर्थ होइ सो संबंधाभिधेय कहिये। बहुरि जाके अर्थके आचरण करनेकी सामर्थ्य होइ सो शक्यानुष्ठान कहिये। बहुरि जो हितकारी प्रयोजनलिए होइ सो इष्टप्रयोजन कहिये। कथंभूतं प्ररूपणं ? जाकौं कहौंगा सो कैसा है प्ररूपण ? गुणरत्नभूषणोदयं—गुण जे सम्यग्दर्शनादिक तेई भये रत्न सोई है आभूषण जाकै ऐसा जो गुणरत्नभूषण चामुंडराय तिसतैं है उदय कहिये उत्पत्ति जाकी ऐसा शास्त्र है जातैं चामुंडरायके प्रश्नकें वशतैं याकी उत्पत्ति प्रसिद्ध है अथवा गुणरूप जो रत्न सो भूषयति कहिये शोभै जिहिविषै ऐसा गुणरत्नभूषण मोक्ष ताकी है उदय कहिये उत्पत्ति जातैं ऐसा शास्त्र है। भावार्थ—यहु शास्त्र मोक्षका कारण है। बहुरि विकथादिरूप बंधका कारण नाहीं है। इस विशेषणकरि बंधक १ बंध्यमान २ बंधस्वामी ३ बंधहेतु ४ बंधभेद ५ ये पंच सिद्धांतके अर्थ हैं। तहां कर्मबंधका कर्ता संसारी जीव सो बंधक बहुरि मूल उत्तर प्रकृतिबंध सो बंध्यमान, बहुरि यथासंभव बंधका सद्भावलीये गुणस्थानादिक सो बंधस्वामी, बहुरि मिथ्यात्वादि आस्रव सो बंधहेतु, बहुरि प्रकृति स्थिति आदि बंधभेद इनका निरूपण है तातैं गोम्मटसारका द्वितीयनाम पंचसंग्रह है तिहिविषैं बंधक जो जीव ताका प्रतिपादन करणहारा यहु शास्त्र जीवस्थान वा जीवकांड इनि दोय नामानिकरि विख्यात ताहि मैं कहौंगा। ऐसा शास्त्रके कर्ताका अभिप्राय यहु विशेषण दिखावै है। बहुरि कथंभूतं प्ररूपणं ? कैसा है प्ररूपण ?

सिद्धं कहिये पूर्वाचार्यनिकी परंपरायकरि प्रसिद्ध है अपनी रुचिकरि नाहीं रचनारूप किया है। इस विशेषणकरि आचार्य अपना कर्तापनाकौं छोडि पूर्व आचार्यादिकनिका अनुसारकों कहे हैं। पुनः किंविशिष्टं प्ररूपणं ? वहुरि कैसा है प्ररूपण ? शुद्धं कहिये पूर्वापर विरोधकों आदि देकरि दोषनिकरि रहित है तातैं निर्मल है। इस विविशेषणकरि सम्यग्ज्ञानी जीवनिके उपादेयपना इस शास्त्रका प्रकाशित कीया है। किंकृत्य ? कहाकरि ? प्रणम्य कहिये प्रकर्षपने नमस्कारकरि प्ररूपण करौ हौं। किं-किसहि ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं-कर्मरूपी वैरीनिकौं जीतै सो जिन। अपूर्वकरण परिणामकौं प्राप्त प्रथमोपशमसम्यक्त्वकौं सन्मुख सातिशयमिथ्यादृष्टि ते जिन कहिये। तेई भए इंद्र कर्मनिर्जरारूप ऐश्वर्य ताका भोक्ताकौं आदि देकरि सर्वजिनेंद्रनिविषैं वर कहिये श्रेष्ठ असंख्यातगुणी महानिर्जराका स्वामी ऐसा चामुंडरायकरि निर्मापित महापूत चैत्यालयविषैं विराजमान नेमिनामा तीर्थंकर देव सोई भव्यजीवनिकौं चंद्रयति कहिये आह्लाद करै वा समस्त वस्तुनिकौं प्रकाशै अथवा संसार आताप अर अज्ञान अंधकारका नाश करनहारा चंद्र ऐसा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र, कैसा है ? अकलंकं कहिए कलंकरहित, ताकौं नमस्कार करि जीवका प्ररूपण मैं कहौंगा। अथवा अन्य अर्थ करैं हैं–कं प्रणम्य ? किसहि नमस्कारकरि जीवका प्ररूपण करौं हौं ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं नेमिचंद्रनामा जिनेंद्रतीर्थंकर देव ताहि नमस्कारकरि जीवकी प्ररूपणा करौं हौं। कैसा है सो ? सिद्धं कहिये समस्तलोकविषैं विख्यात है। वहुरि कैसा है ? शुद्धं कहिये द्रव्यभावस्वरूपघातिया कर्मनिकरि रहित है। तथापि ताकौं कोई संशयी क्षुधादिदोषका संभव कहै है तिस प्रति कहैं हैं–कैसा है सो ? अकलंक कहिये नाहीं विद्यमान है कलंक कहिये क्षुधादिक अठारहदोष जाके ऐसा है। वहुरि कैसा है ? गुणरत्नभूषणोदयं–गुण जे अनंत ज्ञानादिक तेई भए रत्नके आभूषण तिनिका है उदय कहिये उत्कृष्टपना जाविषैं ऐसा है इसप्रकार अन्यविषैं न पाईए ऐसे असाधारण विशेषण समस्त अतिशयनिके प्रकाशक अन्यके आप्तपनैंकी वार्ताकौं भी जे सहैं नाहीं तिनि इनि विशेषणनिकरि इस ही भगवानके परम आप्तपना परम कृतकृत्यपना हम आदिदै जे अकृतकृत्य हैं तिनकें शरणपना प्रतिपादन किया है ऐसा जानना।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं--कं प्रणम्य ? किसहि नमस्कार करि जीवका प्रतिपादन करौं हौ ? जिनेंद्रवर-नेमिचंद्रं-सकल आत्माके प्रदशनिविषैं सघन बंधे जे घाति कर्मरूप मेघपटल तिनके विघटनतैं प्रकटीभूत भए, अनंतज्ञानादिक नव केवल लब्धिपनां तातैं जिन कहिये बहुरि अनौपम परम ईश्वेरताकरि संपूर्णपनां होनेकरि इंद्र कहिये। जिन सोई जो इंद्र सो जिनेंद्र अपने ज्ञानके प्रभाव करि व्याप्त भया है तीनकाल संबंधी तीन लोकका विस्तार जाकैं ऐसा जिनेंद्र, वर कहिये अक्षर संख्याकरि चौवीस, कैसैं 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्र अपेक्षा य र ल व विषैं वकार चौथा अक्षर ताका च्यारिका अंक, अर रकार दूसरा अक्षर ताका दोयका अंक, अंकनिकी वाई तरफसे गति है ऐसैं वरशब्दकरि चौवीसका अर्थ भया। बहुरि अपने अद्भुत पुण्यके माहात्म्यतैं नागेंद्र नरेंद्र देवेंद्रका समूहकौं अपने चरणकमलविषैं नमावे सो नेमि कहिये। अथवा धर्मतीर्थरूपी रथके चलावने विषैं सावधान है तातैं जैसैं रथके पहेकैं नेमि धुरी हो है तैसैं सो तीर्थंकरनिका समुदाय धर्मरथविषैं नेमिं कहिये है। बहुरि चंद्रयति कहिये तीनलोकके नेत्ररूप चंद्रवंशी कमलवननिकौं आह्लादित करै सौ चंद्र कहिये अथवा जाकै तैसा रूपकी संपदाका संपूर्ण उदय होय है जिसरूप संपदाके तौलनके विषैं इंद्रादिकनिकी सुंदरताकी समीचीन सर्वस्व भी परमाणू समान हलका हो है सो जो नेमि सोई चंद्र सो नेमिचंद्र वर-चौवीस संख्या लिए जो नेमिचंद्र सो वरनेमिचंद्र जो जिनेंद्र सोई वरनेमिचंद्र सो जिनेंद्रवरनेमिचंद्र कहिए वृषभादि वर्धमानपर्यंत तीर्थंकरनिका समुदाय ताहि नमस्कार करि जीवका प्ररूपण कहौ हौं ऐसा अभिप्राय है, अवशेष सिद्ध आदि विशेषणनिका पूर्वोक्त प्रकार संबंध जानना।

अथ वा अन्य अर्थ कहै हैं--प्रणम्य कहिये नमस्कार करि, किं? किसहि? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं जयति कहिये जीतै भेदै विदारै कर्मपर्वतसमूहकौं सो जिन कहिए। बहुरि नामका एकदेश संपूर्णनामविषैं प्रवर्तै है इस न्यायकरि इंद्र कहिये इंद्रभूति ब्राह्मण ताका वा इंद्र कहिये देवेंद्र ताका वर कहिए गुरु ऐसा इंद्रवर श्रीवर्धमानस्वामी,

१ ख पुस्तकमें अन्य अर्थकौं यह भी पाठ है। २ ख पुस्तकमें ऐश्वर्यताकरि यह भी पाठ है। ३ ख पुस्तकमें कमल तिनिकौं यह पाठ है।

५

बहुरि 'नयति' कहिए अविनश्वर पदकों प्राप्तकरै शिष्य समूहकौं सो नेमि कहिये बहुरि समस्त तत्त्वनिकौं प्रकाशै है चंद्रवत् तातैं चंद्र कहिये। जिन सोई इंद्रवर सोई नेमि सोई चंद्र ऐसा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र वर्धमानस्वामी ताहि नमस्कारकरि जीवका प्ररूपण करौ हौं। अन्य संबंध पूर्वोक्त प्रकार जानना।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं-प्रणम्य नमस्कार करि। कं? किसहि सिद्धं कहिये सिद्ध भया वा निष्ठित संपूर्ण भया वा निष्पन्न जो होना था सो हूवा वा कृतकृत्य जो करता था सो जानै कीया वा सिद्धसाध्य सिद्ध भया है साध्य जाकैं ऐसा सिद्धपरमेष्ठी बहुत हैं तथापि जाति एक है तातैं द्वितीया विभक्तिका एकवचन कह्या तिह करि सर्वक्षेत्रविषैं सर्वकालविषैं सर्वप्रकारकरि सिद्धनिका सामान्यपनैं करि ग्रहण करना सो सर्वसिद्धसमूहकौं नमस्कार करि जीवका प्ररूपण करौं हौं ऐसा अर्थ जानना। सो कैसा है? शुद्धं कहिये ज्ञानावरणादि आठ प्रकार द्रव्यभाव स्वरूप कर्मकरि रहित है। बहुरि कैसा है? जिनेंद्रवरनेमिचंद्र-अनेक संसारवन संबंधी विषम कष्ट दैनेकौं कारण कर्म वैरी ताहि जीतैं सो जिन बहुरि इंदन कहिये परम ईश्वरताका योग ताकरि राजन कहिए शोभै सो इंद्र बहुरि यथार्थ पदार्थनिकौं नयति कहिये जानै सो नेमि कहिये ज्ञान, वर कहिए उत्कृष्ट अनंतरूप जाके प.इए सो वरनेमि बहुरि चंद्रयति कहिए आह्लादरूप होइ परम सुखका अनुभव सो चंद्र इहां सर्वत्र जाति अपेक्षा एकवचन जानना सो जो जिन सोई इंद्र सोई वरनेमि सोई चंद्र ऐसा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र सिद्ध है। बहुरि कैसा है? अकलंकं कहिए नाही विद्यमान है कलंक कहिए अन्यमतीनिकरि कल्पना कीया दोष जाकै ऐसा है। बहुरि कैसा है? गुणरत्नभूषणोदयं गुण कहिए परमावगाढ सम्यक्त्वादि आठ गुण तेई भए रत्न आभूषण तिनिका है उदय कहिए अनुभवन वा उत्कृष्ट प्राप्ति जाकैं ऐसा है।

अथवा अन्य अर्थ कहैं हैं-प्रणम्य नमस्कारकरि कं? किसहि? कं कहिए आत्मद्रव्य ताहि नमस्कारकरि जीवका प्ररूपण करौं है। कैसा है? अकलं कहिये नाही विद्यमान है कल कहिये शरीर जाके ऐसा है। बहुरि कैसा है? सिद्धं कहिए नित्य अनादि निधन है। बहुरि कैसा है? शुद्धं कहिये शुद्धनिश्चयनयका गोचर है। बहुरि कैसा है?

जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं-जिन जे असंयत सम्यग्दृष्टी आदि तिनका इंद्र कहिये स्वामी है, परम आराधने योग्य है। बहुरि वर कहिये समस्तपदार्थनिविषैं सारभूत है। बहुरि नेमिचंद्र कहिये ज्ञान सुखस्वभावकौं धरे है। सो जिनेंद्र सोई वर सोई नेमिचंद्र ऐसा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र आत्मा है। बहुरि कैसा है ? गुणरत्नभूषणोदयं गुणानां कहिये समस्त गुणनिविषैं रत्न कहिये रत्नवत् पूज्य प्रधान ऐसा जो सम्यक्त्वगुण ताकी है उदय कहिये उत्पत्ति जाकैं वा जातैं आत्मानुभवतैं सम्यक्त्व हो है तातैं आत्मा गुणरत्नभूषणोदयं है।

अथवा अन्य अर्थ कहे हैं-प्रणम्य नमस्कारकरि, कं ? किसहि ? सिद्धं कहिये सिद्ध परमेष्ठीनिके समूहकौं, सो कैसा है ? शुद्धं कहिये दग्ध किए हैं आठ कर्ममूल जिहि। बहुरि किसहि ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं जिनेंद्र कहिये अर्हंत परमेष्ठीनिका समूह सो वराः कहिये उत्कृष्ट जीव गणधर चक्रवर्ती इंद्र धरणेंद्रादिक भव्यप्रधान तेई भए नेमि कहिये नक्षत्र तिनिविषैं चंद्र कहिये चंद्रमावत् प्रधान ऐसा जिनेंद्र सोई वरनेमिचंद्र ताहि अर्हत्परमेश्वरनिके समूहकौं, सो कैसा है ? अकलंकं कहिए दूरकीया है तरेसठिकर्मप्रकृतिरूपमलकलंक जानै ऐसा है। केवल तिसहीको नमस्कार करि नाही, बहुरि गुणरत्नभूषणोदयं गुणरूपी रतन सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तेई भए भूषण कहिए आभूषण आभरण तिनिका है उदय कहिए समुदाय जाके ऐसा आचार्य उपाध्याय साधुसमूह ताकौं ऐसैं सिद्ध अरहंत आचार्य उपाध्याय साधुरूप पंचपरमेष्ठीनिकौं नमस्कार करि जीवका प्ररूपण करौं हौं।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं—प्रणम्य कहिये नमस्कार करि कं कहिए किसहि, जीवस्य प्ररूपणं कहिए जीवनिका निरूपण वा ग्रंथ ताहि नमस्कार करि कहौं हौ। सो कैसा है ? सिद्धं कहिए सम्यक् गुरुनिका उपदेश पूर्वकपनैं करि अखंडित प्रवाहरूपकरि अनादितैं चल्या आया है। बहुरि कैसा है ? शुद्धं कहिए प्रमाणतैं अविरोधी अर्थका प्रतिपादकपनैं करि पूर्वापरतैं प्रत्यक्षतैं अनुमानतैं आगमतैं लोकतैं निजवचनादितैं विरोध तिनिकरि अखंडित है। बहुरि कैसा है 'जिनेंद्रवरनेमिचंद्रं-जिनेंद्र कहिये सर्वज्ञ सो है वर कहिए कर्ता जाका ऐसा जिनेंद्रवर कहिए सर्वज्ञप्रणीत है। इस विशेषणकरि वक्ताके प्रमाणपनातैं वचनका प्रमाणपना दिखाया।

बहुरि यथावस्थित अर्थकौं नयति कहिए प्रतिपादन करै प्रकासै सो नेमि कहिए। बहुरि चंद्रयति कहिए आह्लादित करै विकासै शब्द अर्थ अलंकारनिकरि श्रोतानिके मनरूपी गद्रू (कमल) लनिकौं सो चंद्र कहिए जिनेंद्रवर सोई नेमि सोई चंद्र ऐसा जिनेंद्रवरनेमिचंद्र प्ररूपण है। बहुरि कैसा है ? अकलंकं कहिए दूरहीतैं छोड्या है शब्द अर अर्थ गोचर दोषकलंक जिहि ऐसा है। बहुरि कैसा है ? गुणरत्नभूषणोदयं--गुणरत्न जे रत्नत्रयरूप भूषण कहिये आभूषण तिनकी है उदय कहिए उत्पत्ति वा प्राप्ति हम आदि जीवनिकै जातैं ऐसा गुणरत्नभूषण प्ररूपण है।

अथवा अन्य अर्थ कहै हैं—चामुंडरायके जीवप्ररूपणशास्त्रका कर्तापनैका आश्रयकरि मंगलसूत्र व्याख्यान करिए है। भावार्थ इस गोम्मटसारका मूलगाथाबंधग्रंथकर्ता नेमिचंद्र आचार्य है ताकी टीका कर्णाटकदेशभाषाकरि चामुंडराय करी है ताकै अनुसारि केशवनामा ब्रह्मचारी संस्कृतटीका करी है सो चामुंडरायकी अपेक्षा इससूत्रका अर्थ करिए है—अहं जीवस्य प्ररूपणं वक्ष्यामि मैं जु हौं चामुंडराय सो जीवका प्ररूपण रूप ग्रंथका टिप्पण ताहि कहौंगा। किं कृत्वा? कहाकरि ? प्रणम्य नमस्कार करि, कं ? किसहि ? जिनेंद्रवरनेमिचंद्र जिनेंद्र है वर कहिए भर्ता स्वामी जाका सो जिनेंद्रवर इहां जिन कहिये कर्मनिर्जरासंयुक्त जीव तिनि विषै इंद्र कहिए स्वामी अर्हंत सिद्ध, बहुरि जिन हैं इंद्र कहिए स्वामी जिनिका ऐसे आचार्य उपाध्याय साधु ऐसैं जिनेंद्र शब्दकरि पंच परमेष्ठी आए तिनिका आराधनतैं उपजैं जे सम्यग्दर्शनादिक गुण जिंनिकरि संयुक्त अपना परमगुरु नेमिचंद्र आचार्य ताहि नमस्कारकरि जीव प्ररूपणा कहौंगा। सो कैसा है ? सिद्ध कहिये प्रसिद्ध है वा वर्तमान कालविषै प्रवृत्तिरूप समस्त शास्त्रनिमैं निष्पन्न है। बहुरि कैसा है ? शुद्धं कहिये पचीस मलरहित चारित्र जाकै पाइये है वा देश कुल जातिकर शुद्ध है। बहुरि कैसा है अकलंकं कहिए विशुद्ध मन वचन काय संयुक्त है। बहुरि कैसा है ? गुणरत्नभूषणोदयं-गुणरत्नभूषण कहिए चामुंडराय राजा ताकै है उदय कहिये ज्ञानादिककी वृद्धि जातैं ऐसा नेमिचंद्र आचार्य है। ऐसैं इष्टविशेषरूप देवतानिकौं नमस्कार करना है लक्षण जाका ऐसा परम मंगलकौं अंगीकार करि याकै अनंतर अधिकारभूत जीवप्ररूपणके अधिकारनिकौं निर्देश करै हैं ॥ १ ॥

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उबओगोवि य कमसो वीसं तु परूबणा भणिदा ॥ २ ॥

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणाश्च।
उपयोगोऽपि च क्रमशः विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ॥ २ ॥

जी० प्र०—अत्र चतुर्दश गुणस्थानानि, अष्टानवतिर्जीवसमासाः, षट् पर्याप्तयः, दश प्राणाः, चतस्रः संज्ञाः, चतस्रो गतिमार्गणाः, पंचेंद्रियमार्गणाः, षट् कायमार्गणाः, पंचदश योगमार्गणाः, तिस्रः वेदमार्गणाः, चतस्रः कषायमार्गणाः, अष्टौ ज्ञानमार्गणाः, सप्त संयममार्गणाः, चतस्रः दर्शनमार्गणाः, षट् लेश्यामार्गणाः, द्वे भव्यमार्गणे, षट् सम्यक्त्वमार्गणाः, द्वे संज्ञिमार्गणे, द्वे आहारकमार्गणे, द्वे उपयोगमार्गणे इत्येताः जीवप्ररूपणा विंशतिर्भणिताः। अत्र गुण्यते-परिच्छिद्यते द्रव्याद् द्रव्यांतरमनेनेति गुणः। कर्मोपाधिसापेक्षज्ञानदर्शनोपयोगचैतन्यप्राणेन जीवंतीति जीवाः। ते जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। परि-समंतात्, आप्तिः पर्याप्तिः शक्तिनिष्पत्तिरित्यर्थः। जीवंति-प्राणंति जीवितव्यव्यवहारयोग्या भवंति जीवा यैस्ते प्राणाः। आगमप्रसिद्धा वांछा संज्ञा अभिलाष इति यावत्। यकाभिः यासु वा जीवा मृग्यंते ता मार्गणाः, मार्गयिता भव्यपुंडरीकस्तत्त्वार्थश्रद्धालुरित्यर्थः, मृग्याः चतुर्दशमार्गणाविशिष्टात्मानः। मृग्यस्य कारणतां अधिकरणतां वा प्राप्ता गत्यादयः मार्गणाः। मार्गणोपायो ज्ञानदर्शनसामान्यमुपयोगः। एतासां प्ररूपणानां साधारणार्थप्रतिपादनमुक्तं ॥ २ ॥ अथ संग्रहनयापेक्षया प्ररूपणाद्वैविध्यं मनसि धृत्वा गुणस्थानमार्गणास्थानप्ररूपणयोः संज्ञांतरमाह—

मं० प्र०—गुणश्च जीवश्च गुणजीवौ इति गुणस्थानजीवसमासलक्षणे द्वे प्ररूपणे, पर्याप्तिरिति तृतीया प्ररूपणा, प्राणा इति चतुर्थी प्ररूपणा, अत्र प्राणशब्दस्य एकवचनांतप्रयोगाभावात् बहुवचनांतनिर्देशः, न प्ररूपणाबहुत्वापेक्षः। संज्ञा चेति पंचमी प्ररूपणा, चशब्दः पंचानां प्ररूपणानां समुच्चयार्थः। मार्गणाश्चेति चतुर्दशप्ररूपणाः, तथैव गतींद्रियादिचतुर्दशभेदेन मार्गणास्थानानां सविस्तरं वक्ष्यमाणत्वात्। अत्रतनचशब्दोऽपि पूर्वप्ररूपणाभिः सह एतासां चतुर्दशमार्गणास्थानाख्यप्ररूपणानां समुच्चयार्थः। एवमेकोनविंशतिप्ररूपणा उद्दिष्टा। उपयोगोऽपि चेति विंशतितमा प्ररूपणा। अत्र अपिचेत्यव्ययद्वयं मिलितमेव पूर्वप्ररूपणाभिः सह अस्याः प्ररूपणायाः समुच्चयार्थं तथा बहुलं प्रयोगदर्शनात्। एवं विंशतिसंख्यागुणस्थानादयः प्ररूपणाः क्रमशः भगवदर्हद्गणधरशिष्यप्रशिष्यादिगुरुपर्वागतया परिपाट्या अनुक्रमेण भणिताः। परमागमे पूर्वाचार्यैः प्रतिपादिताः। अनेन स्वकर्तृत्वं परिहृत्य ता एव मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया संक्षिप्य वक्ष्यामीति भव्यजनानुग्रहो दृश्यते। तुशब्देन सामान्येन एका प्ररूपणा विशेषेण विंशतिः प्ररूपणाः इति विभागो लक्ष्यते। गुणादिशब्दानां निरुक्त्यर्थादयस्तत्तत्प्रकरणेष्वाचार्येण स्वयमेव वक्ष्यंते इति हास्माभिर्नोच्यते ॥ २ ॥ अथ संक्षेपरुचिशिष्यापेक्षया प्ररूपणाद्विप्रकारप्रदर्शनार्थमाह—

स० चं०—इहां चौदह गुणस्थान अठ्याणवै जीवसमास छह पर्याप्ति दश प्राण च्यारि संज्ञा मार्गणाविषै च्यारि गतिमार्गणा, पांच इंद्रिय मार्गणा, छह कायमार्गणा पंद्रह योगमार्गणा, तीन वेदमार्गणा, च्यारि कषायमार्गणा, आठ ज्ञानमार्गणा, सात संयममार्गणा, च्यारि दर्शनमार्गणा, छह लेश्यामार्गणा, दोय भव्यमार्गणा, छह सम्यक्त्वमार्गणा, दोय संज्ञिमार्गणा, दोय आहारमार्गणा, दोय उपयोग ऐसैं ये जीवप्ररूपणा वीस कहीं हैं। इहां निरुक्ति कहिये है- गुण्यते कहिये जाणिये द्रव्यतैं द्रव्यांतरकौं याकरि सो गुण कहिये बहुरि कर्म उपाधिकी अपेक्षासहित ज्ञानदर्शन उपयोगरूप चैतन्यप्राणकरि जीवै हैं ते जीव सम्यक् प्रकार आसते कहिये स्थितिरूप होंइ इनि विषैं ते जीवसमास है। बहुरि परि कहिये समंततातैं आप्ति कहिये प्राप्ति सो पर्याप्ति है। शक्तिकी निष्पन्नताका होना सो पर्याप्ति जानना। बहुरि प्राणंति कहिये जीवैं हैं जीवितव्यरूप व्यवहारकौं योग्य हो हैं जीव जिनिकरि ते प्राण हैं बहुरि आगमविषै प्रसिद्ध बांछा संज्ञा अभिलाषा ऐ एकार्थ हैं। बहुरि जिनकरि वा जिनविषैं जीव हैं ते मृग्यंते कहिये अवलोकिये ते मार्गणा हैं तहां अवलोकनहारा मार्गयिता[1] तो भव्यनिविषै उत्कृष्ट प्रधान तत्त्वार्थश्रद्धावान जीव जानना। अवलोकन योग्य मृग्य चौदह मार्गणानिके विशेषलिये आतमा जानना। बहुरि अवलोकना मृग्यताका साधनकौं वा अधिकरणकौं जे प्राप्त ते गति आदि मार्गणा हैं बहुरि मार्गणा जो अवलोकन ताका जो उपाय सो ज्ञान दर्शनका सामान्य भावरूप उपयोग है ऐसैं इन प्ररूपणानिका साधारण अर्थका प्रतिपादन कह्या ॥२॥ आगै संग्रहनयकी अपेक्षाकरि प्ररूपणाका दोयप्रकारको मनविषैं धरि गुणस्थान मार्गणास्थानरूप दोय प्ररूपणानिके नामांतर कहैं हैं—

संखेओ ओघोत्ति य गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।
वित्थारादेसोत्ति य मग्गणसण्णा सकम्मभवा ॥ ३ ॥

[1] पुस्तकमें मृगयिता पाठ है।

संक्षेप ओघ इति च गुणसंज्ञा सा च मोहयोगभवा ।
विस्तार आदेश इति च मार्गणासंज्ञा स्वकर्मभवा ॥ ३ ॥

जी० प्र०—संक्षेप इति ओघ इति च गुणस्थानस्य संज्ञा अनादिनिधनार्षे रूढा प्रसिद्धा, सा च संज्ञा मोहयोगभवा-मोहयोगाभ्यां संजाता भवति । संज्ञावतां गुणस्थानानां मोहयोगप्रभवत्वात् तत्संज्ञाया अपि तत्प्रभवत्वमुपचारेण उक्तं। चशब्दात् सामान्यमित्यपि गुणस्थानस्य संज्ञा भवतीति ज्ञातव्यं । तथा विस्तार आदेशश्चेति मार्गणास्थानस्य संज्ञा भवति। सा च स्वाभिधानप्रत्ययव्यवहारनिमित्तकर्मोदयाद्भवति। अत्रापि प्राग्वत् तत्संज्ञाया अपि तत्प्रभवत्वोपचारो ज्ञातव्यः। चशब्दाद्विशेष इत्यपि मार्गणाया अनुक्तसंज्ञा भवति ॥ ३ ॥ अथ प्ररूपणाद्वैविध्ये शेषप्ररूपणानामंतर्भावं प्ररूपयति—

मं०प्र०—गुणस्थानप्ररूपणा मार्गणास्थानप्ररूपणा चेति द्वे एव प्ररूपणे संक्षेपतो भवतः,जीवसमासादि शेषप्ररूपणानां मार्गणास्थानप्ररूपणायामेवांतर्भावसंभवात्। तत्र सक्षेप इति ओघ इति च गुणस्थानस्य संज्ञा सा च मोहोदयात् योगाच्च भवति इति मोहयोगभवा। तथाहि दर्शनमोहस्य मिथ्यात्वकर्मण उदयान्मिथ्यादृष्टिः । अनंतानुबंधिकषायोदयात्सासादनसम्यग्दृष्टिः । सम्यङ्मिथ्यात्वोदयात्सम्यग्मिथ्यादृष्टिः । अप्रत्याख्यानकषायोदयात् असंयतसम्यग्दृष्टिः । प्रत्याख्यानकषायोदयाद्देशसंयतः, तीव्रसंज्वलनकषायोदयात्प्रमत्तसयतः । मंदसंज्वलनकषायोदयादप्रमत्तसंयतः । मंदतरसंज्वलनकषायोदयादपूर्वकरणः । मंदतमसंज्वलनकषायोदयादनिवृत्तिकरणः । सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदयात्सूक्ष्मसांपरायः । समस्तचारित्रमोहोपशमादुपशांतकषायः । समस्तचारित्रमोहनिरवशेषक्षयात्क्षीणकषायः । कायवाग्मनःकर्मलक्षणयोगसद्भावात्सयोगकेवली । तादृग्योगाभावादयोगकेवली । विस्तार आदेश इति च मार्गणासंज्ञा । सा च स्वस्वयोग्यनामादिकर्मोदयाद्भवतीति स्वकर्मभवा । तथाहि-गतिनामकर्मोदयाद्गतिः । इंद्रियजातिनामकर्मोदयात् स्पर्शनादिज्ञानावरणक्षयोपशमाच्च इंद्रियं । त्रसस्थावरनामकर्मोदयात्कायः । शरीरनामकर्मोदयाद्योगः । द्रव्यवेदोदयाद्वेदः । द्रव्यकषायोदयात्कषायः । ज्ञानावरणस्य क्षयोपशमात्क्षयाच्च ज्ञानं । चारित्रमोहस्य क्षयोपशमादुपशमात्क्षयाच्च संयमः । दर्शनावरणस्य क्षयोपशमात् क्षयाच्च दर्शनं । शरीरवर्णनामकर्मोदयाद् द्रव्यलेश्या । योगकषायानुरंजनाद्भावलेश्या । मोक्षहेतुपरिणामभवनाद्भव्यत्वं । दर्शनमोहस्योपशमादेः सम्यक्त्वं । नोइंद्रियज्ञानावरणाक्षयोपशमादेः संज्ञित्वं । औदारिकादिशरीरनामकर्मोदयादाहारित्वमिति वक्ष्यमाणगुणस्थानमार्गणास्थानप्रकरणेषु आगमानुसारेण योजयितव्यं। प्रज्ञावतां संक्षेपरुचीनां गुणस्थानमार्गणास्थानप्ररूपणाद्वयेनैव जीवभेदस्वरूपणस्य ज्ञातुं शक्यत्वात् ॥ ३ ॥ अथ गुणस्थानमार्गणास्थानाभ्यामन्यासा प्ररूपणानामंतर्भावप्रदर्शनार्थमाह—

स०चं०—संक्षेप ऐसी ओघ ऐसी गुणस्थानकी संज्ञा अनादिनिधन ऋषिप्रणीत मार्गविषैं रूढ है प्रसिद्ध है। गुणस्थानकाही संक्षेप वा ओघ ऐसा भी नाम है। बहुरि सो संज्ञा 'मोहयोगभवा' कहिए दर्शन चारित्रमोह वा मन वचन काय योग तिनिकरि उपजी है। इहां संज्ञाके धारक गुणस्थाननिकैं मोह योगतैं उत्पन्नपना है तातैं तिनकी

संज्ञाकैं भी मोह योगकरि उपजना उपचारकरि कह्या है। बहुरि सूत्रविषैं चकार कह्या है तातैं सामान्य ऐसी भी गुणस्थानकी संज्ञा है ऐसा जानना। बहुरि तैसैंही विस्तार आदेश ऐसी मार्गणास्थानकी संज्ञा है। मार्गणाका विस्तार आदेश ऐसा नाम है। सो यह संज्ञा अपना अपना मार्गणाका नामकी प्रतीतिके व्यवहारकौं कारण जो कर्म ताके उदयतैं हो हैं। इहां भी पूर्ववत् संज्ञाके कर्मतैं उपजनेका उपचार जानना। निश्चयकरि संज्ञा तौ शब्दजनित ही है। बहुरि चकारतैं विशेष ऐसी भी मार्गणास्थानकी संज्ञा गाथाविषैं विना कही भी जाननी ॥३॥ आगै प्ररूपणाका दोयप्रकारपनाविषैं अवशेषप्ररूपणानिका अंतर्भूतपना दिखावै हैं—

आदेसे संलीणा जीवा पज्जत्तिपाणसण्णाओ ।
उवओगोवि य भेदे वीसं तु परूवणा भणिदा ॥ ४ ॥

आदेशे संलीना जीवाः पर्याप्तिप्राणसंज्ञाश्च ।
उपयोगोऽपि च भेदे विंशतिस्तु प्ररूपणा भणिताः ॥ ४ ॥

जी० प्र०—मार्गणास्थानप्ररूपणायां जीवसमासाः, पर्याप्तयः, प्राणाः, संज्ञा, उपयोगश्च इति पंच प्ररूपणाः संलीनाः—सम्यगंतर्भूता इत्यर्थः। तथा सति गुणस्थानप्ररूणं मार्गणास्थानप्ररूपणमिति संग्रहनयापेक्षया प्ररूपणाद्वयमेव प्ररूपितं जातं। अथ कस्यां मार्गणायां का प्ररूपणा अंतर्भूतेति चेद्गाथात्रयेणाह—

मं०प्र०—अभेदविवक्षायां जीवसमासपर्याप्तिप्राणसंज्ञाः, उपयोगोऽपि च इत्येताः पंचप्ररूपणा आदेशे मार्गणास्थानप्ररूपणायां संलीनाः सम्यगंतर्भूताः, तासां तस्याः कथंचिदभेदसंभवात्। एवं संक्षेपरुचिशिष्यापेक्षया गुणस्थानमार्गणास्थानभेदेन द्विविधा प्ररूपणा सिद्धा भवति। भेदे तु पुनर्विवक्षिते सति मध्यमरुचिशिष्यापेक्षया विंशतिः प्ररूपणाः कथिताः युक्ता एव ॥ ४ ॥ अत्र जीवसमासादिपंचप्ररूपणांतर्भावविभाग प्रदर्शयितुं गाथात्रयमाह—

स० चं०—मार्गणास्थानप्ररूपणाविषैं जीवसमास पर्याप्ति प्राण संज्ञा उपयोग ए पांच प्ररूपणा संलीना कहिए गर्भित है किसीप्रकार तिनि मार्गणाभेदनिविषैं अंतर्भूत हैं। तैसैं होतैं गुणस्थानप्ररूपण अर मार्गणास्थानप्ररूपण

ऐसैं संग्रहनय अपेक्षाकरि प्ररूपणा दोयही निरूपित हो हैं ॥ ४ ॥ आगै किस मार्गणाविषैं कौन प्ररूपणा गर्भित है ? सो तीन गाथानि करि कहै हैं—

इंदियकाये लीणा जीवा पज्जत्तिआणभासमणो ।
जोगे काओ णाणे अक्खा गदिमग्गणे आऊ ॥ ५ ॥

इंद्रियकाययोर्लीना जीवाः पर्याप्त्यानभाषामनांसि ।
योगे कायः ज्ञाने अक्षीणि गतिमार्गणायामायुः ॥ ५ ॥

जी० प्र०–इंद्रियमार्गणायां कायमार्गणायां च जीवसमासाः पर्याप्तयः आनपानभाषामनोबलप्राणाश्चांतर्भूताः । कथं ? इति चेत् जीवसमासानां पर्याप्तीनां च इंद्रियकायाभ्यां तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसंभवात् सामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिसंभवाद्वा पर्याप्तीनां धर्मधर्मिकृतप्रत्यासत्तिसंभवाच्च । उच्छ्वासनिश्वासवाग्मनोबलप्राणानां च स्वकारणतत्तत्पर्याप्त्यंतर्भावविषयेऽपि तेषामपि अंतर्भावस्यापि न्याय्यत्वात् तत्रैवांतर्भाव्यंते(?) योगमार्गणायां कायबलप्राणोंतर्भूतः । जीवप्रदेशपरिस्पंदलक्षणकाययोगरूपकार्ये तद्बलाधानलक्षणकायबलप्राणस्वरूपकारणस्य स्वरूपसामान्यविशेषकृतप्रत्यासत्तिविशेषसद्भावात् कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तिर्भवति । ज्ञानमार्गणायां इंद्रियाणि अंतर्भूतानि इंद्रियावरणक्षयोपशमोद्भूतलब्धिरूपेंद्रियाणां ज्ञानेन सह तादात्म्यकृतप्रत्यासत्तिसद्भावात् । गतिमार्गणायां आयुःप्राणोंतर्भूतः गत्यायुषोरन्योन्याजहद्वृत्तिलक्षणप्रत्यासत्तिसद्भावात् ॥ ५ ॥

मं०प्र०–इंद्रियमार्गणायां कायमार्गणायां च जीवसमासाः, पर्याप्तयः, उच्छ्वासनिश्वासभाषामनोबलप्राणाश्च लीनाः-यथासंभवमंतर्भूताः । तत्र इंद्रियकाययोर्जीवसमासानां स्वरूपस्वरूपवद्भावप्रत्यासत्त्या सामान्यविशेषभावप्रत्यासत्त्या वा अंतर्भावः । इंद्रियकायं स्वरूपं जीवसमासाः स्वरूपवंतः । अथवा इंद्रियकायौ विशेषौ जीवसमासः सामान्यमिति तत्र तदंतर्भावस्य युक्तत्वात् । तयोरेव पर्याप्तीनां धर्मिधर्मभावप्रत्यासत्त्या अंतर्भावः । इंद्रियकायौ धर्मिणौ पर्याप्तयो धर्मा इति धर्मिणि धर्माणामंतर्भावस्य युक्तत्वात् । तयोरेव उच्छ्वासनिश्वासभाषामनोबलप्राणानां कार्यकारणभावप्रत्यासत्त्या अंतर्भावः कार्यभूतानामुच्छ्वासनिश्वासभाषामनोबलप्राणानां स्वकारणभूतपर्याप्त्यंतर्भावस्थाने अंतर्भावस्य युक्तत्वात् । योगे कायबलप्राणा अंतर्भूताः । कायबलं स्वरूपं योगः स्वरूपवानिति स्वरूपस्वरूपवद्भावप्रत्यासत्त्या अथवा योगः सामान्य कायबलं विशेष इति सामान्यविशेषभावप्रत्यासत्त्या योगे कायबलांतर्भावस्य युक्तत्वात् तयोः शरीरनामकर्मोदयसमुद्भूतत्वेन तथाभावसंभवात् । ज्ञाने–ज्ञानमार्गणायां अक्षीणि–इंद्रियबलप्राणाः कार्यकारणभावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूताः कार्यभूतं ज्ञानं प्रति इंद्रियज्ञानावरणक्षयोपशमरूपस्य इंद्रियबलस्य कारणत्वेन तत्र तदंतर्भावस्य युक्तत्वात् । गतिमार्गणायां–आयुःप्राणः अन्योन्याजहद्वृत्तिप्रत्यासत्त्या अंतर्भूतः गतिनामकर्मायुष्कर्मणोरुदयस्य साहचर्यनियमात् ॥ ५ ॥

स०चं०—इंद्रियमार्गणाविषै बहुरि कायमार्गणाविषैं जीवसमास अर पर्याप्ति अर सासोश्वास भाषा मनबल प्राण ए अंतर्भूत हैं। कैसैं हैं ? सो कहै हैं—जीवसमास अर पर्याप्ति इनिकैं इंद्रिय अर कायसहित तादात्म्यकरि कीया हूवा एकत्वसंभवै है। जीवसमास अर पर्याप्ति ए इंद्रियकायरूपही हैं। बहुरि सामान्यविशेषकरि कीया हूवा एकत्व संभवै है। जीवसमास पर्याप्ति अर इंद्रिय कायविषैं कहीं सामान्यका ग्रहण है, कहीं विशेषका ग्रहण है। बहुरि पर्याप्तिनिकै धर्म धर्मीकरि कीया हुवा एकत्व संभवै है पर्याप्ति धर्म है इंद्रिय काय धर्मी हैं तातैं जीवसमास अर पर्याप्ति ए इंद्रिय काय मार्गणाविषै गर्भित जानने। बहुरि उश्वास वचनबल मनबल प्राणनिकै अपनां कारणभूत उश्वास भाषा मनःपर्याप्ति जहां अंतर्भूता भया तिसविषैं अंतर्भूतपना न्यायही है। तातैं एऊ तहां ही इंद्रिय कायमार्गणाविषै गर्भित भए। बहुरि योग मार्गणाविषैं कायबल प्राण गर्भित है। जातैं जीवके प्रदेशनिका चंचलहोनैं रूप लक्षणधरै काययोगरूप जो कार्य तीहिविषैं तिसकायबल रूप लक्षणधरैं कायबल प्राणस्वरूप जो कारण ताकैं अपने स्वरूपका सामान्य विशेषकरि कीया एकत्वविशेषका सद्भाव है। तातैं कार्यकारण करि कीया एकत्व ही है। बहुरि ज्ञानमार्गणाविषैं इंद्रिय प्राण गर्भित है। जातैं इंद्रियरूप मतिश्रुतावरणके क्षयोपशमतैं प्रकट जे लब्धिरूप इंद्रिय तिनकैं ज्ञानसाहित तादात्म्यकरि कीया एकत्वका सद्भाव है बहुरि गति मार्गणाविषैं आयुः प्राण गर्भित है। जातैं गति और आयुके परस्पर अजहद्वृत्ति है। गति आयुविना नाही, आयु गति विना नाहीं सो इस लक्षणकरि एकत्व संभवै है ॥ ५ ॥

मायालोहे रदिपुव्वाहारं कोहमाणगह्मि भयं।
वेदे मेहुणसण्णा लोहह्मि परिग्गहे सण्णा ॥ ६ ॥

मायालोभयोः रतिपूर्वकमाहारं क्रोधमानकयोर्भयं।
वेदे मैथुनसंज्ञा लोभे परिग्रहे संज्ञा ॥ ६ ॥

जी० प्र०—मायाकषाये लोभकषाये च आहारसंज्ञांतर्भूता आहाराकांक्षाया रतिकर्मोदयपूर्वकत्वसद्भावात्. रतिकर्म मायालोभकषाययोश्च रागहेतुकषायांतःप्रविष्टत्वात् । क्रोधकषाये मानकषाये च भयसंज्ञांतर्भूता भयहेतुषु द्वेषहेतुत्वेन द्वेषरूपक्रोधमानयोः कार्यकारणप्रत्यासत्तिसंभवात् । वेदमार्गणायां मैथुनसंज्ञांतर्भूता कामोद्रेकवशीकृतमिथुनकृत्यं साभिलापसंभोगरूपं तत् वेदोदयजनितपुरुषाद्यभिलाषकार्यमिति कार्यकारणभावप्रत्यासत्तिसद्भावात् । लोभकषाये परिग्रहसंज्ञांतर्भूता लोभकषाये सत्येव मूर्छास्वभावस्य परिग्रहाभिलाषस्य संभवात् अत्र कार्यकारणप्रत्यासत्तिरेवेति जानीहि ॥ ६ ॥

मं०प्र०—मायालोभकषाययोराहारसंज्ञा स्वरूपस्वरूपवद्भावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूता । रतिपूर्विका आहारसंज्ञा रागस्वरूपं रागविशेषौ मायालोभौ स्वरूपवंतौ इति तत्र तदंतर्भावो युक्तः । क्रोधमानकषाययोर्भयसंज्ञा स्वरूपस्वरूपवद्भावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूता । भयं द्वेषस्वरूपं क्रोधमानौ तु द्वेषविशेषौ स्वरूपवंतौ इति तत्र तदंतर्भावो युक्तः । वेदे-वेदमार्गणायां मैथुनसंज्ञा कार्यकारणभावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूता । कार्यभूतां मैथुनसंज्ञां प्रति वेदस्य कारणत्वेन तत्र तदंतर्भावस्य युक्तत्वात् । लोभकषाये परिग्रहसंज्ञा कार्यकारणभावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूता कार्यभूतां परिग्रहसंज्ञां प्रति लोभस्य कारणत्वेन तत्र तदंतर्भावस्य युक्तत्वात् ॥ ६ ॥

स० चं०--मायाकषाय अर लोभकषायविषैं आहारसंज्ञा गर्भित है जातैं आहारकी वांछा रतिनामकर्मके उदयकौं पहिले भएं हो है । बहुरि रतिकर्म है सो माया लोभकषाय रागकौं कारण है तहां अंतर्भूत है । बहुरि क्रोधकषाय अर मानकषायविषैं भयसंज्ञा गर्भित है । जातैं भयके कारणनिविषैं दोषका कारणपना है जातैं द्वेषरूप जे क्रोध मान कषाय तिनकैं कार्यकारण अपेक्षा एकत्व संभवै है । बहुरि वेदमार्गणा विषैं मैथुनसंज्ञा अंतर्भूत है जातैं कामका तीव्रपनाका वशीभूतपनाकरि कीया स्त्री पुरुष युगलरूप जो मिथुनका कार्य अभिलाषसहित संभोगरूप सो वेदका उदयकरि निपज्या पुरुषादिकका अभिलाषरूप कार्य है । ऐसैं कार्यकारणभावकरि एकत्वका सद्भाव है । बहुरि लोभकषायविषैं परिग्रहसंज्ञा अंतर्भूत है जातैं लोभकषाय होतैं ही ममत्वभावरूप जो परिग्रहका अभिलाष ताका संभव है तातैं यहां कार्यकारण भाव अपेक्षा एकत्व है । ऐसा हे भव्य ! तू जाणि ॥६॥

सागारो उवजोगो णाणे मग्गह्मि दंसणे मग्गे ।
अणगारो उवजोगो लीणोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ७ ॥

साकार उपयोगः ज्ञानमार्गणायां, दर्शनमार्गणायां ।
अनाकार उपयोगः लीन इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ७ ॥

जी० प्र०—ज्ञानमार्गणायां साकारोपयोगोऽन्तर्भूतः ज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमसमुद्भूतज्ञातृव्यापारसन्निधाने एव विशेषग्रहणलक्षणस्य ज्ञानस्य समुत्पत्तेः कार्यकारणकृतप्रत्यासत्तिसंभवात् । दर्शनमार्गणायां च अनाकारोपयोगोंतर्भूतः दर्शनावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमविजृंभितार्थसामान्यग्रहणव्यापारे सत्येव अर्थसामान्यग्रहणलक्षणस्य दर्शनस्य समुत्पत्तेः कार्यकारणभावघटनात् अयमंतर्भावः इति प्रागुक्तरीत्या जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टः—कथितः न पुनः स्वरुचिविरचित इत्यर्थः। एवं जीवसमासादीनां मार्गणास्थानेंऽतर्भावसमर्थनेन गुणस्थानमार्गणास्थानप्ररूपणाद्वयं प्रतिपाद्य पुनर्भेदविवक्षया विंशतिः प्ररूपणाः प्रागुक्ता एव उच्यंते । भणिता इति पदेन विंशतिप्ररूपणानां परमागमप्रसिद्धानां प्रकाशनेन तद्विशेपकथनेन स्वातंत्र्यपरिहृतं जातं इत्ययं न्यायस्तथैव योज्यते । अथ तासां विंशतिप्ररूपणानां मध्ये प्रथमोद्दिष्टगुणस्थानप्ररूपणाप्रतिपादनार्थं प्रथमं गुणस्थानशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं कथयति—

मं०प्र०—ज्ञानमार्गणायां साकारोपयोगः स्वरूपस्वरूपवद्भावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूतः। साकारोपयोगत्वं सविकल्पग्रहणत्वं स्वरूपं ज्ञानं स्वरूपवत् इति तत्र तदंतर्भावो युक्तः । दर्शनमार्गणायां—अनाकारोपयोगः स्वरूपस्वरूपवद्भावप्रत्यासत्त्या अंतर्भूतः, अनाकरोपयोगत्वं निर्विकल्पग्रहणत्वं स्वरूपं, दर्शनं स्वरूपवत् इति तत्र तदंतर्भावो युक्तः । इत्येवं प्रकारेण इंद्रियकायमार्गणादिषु जीवसमासादीना पंचप्ररूपणानामंतर्भावविधानं जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टमिति शास्त्रस्य प्रामाण्यं शास्त्रकारेण प्रदर्शितं । ७ । अथ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायमाश्रित्य प्रागुद्दिष्टानां विंशतिप्ररूपणानां मध्ये प्रथमोद्दिष्टाया गुणस्थानप्ररूपणाया निर्देशं आरभमाणः प्राह—

स० चं०—ज्ञानमार्गणाविषैं साकार उपयोग गर्भित है। जातैं ज्ञानवरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं उत्पन्न ज्ञानका परिणमनका निकटपना होतैंहीं विशेषग्रहण रूप लक्षणधरैं जो ज्ञान ताकी उत्पत्ति है । तातैं कार्यकारणकरि कीया एकत्वसंभवै है। बहुरि दर्शनमार्गणाविषैं अनाकार उपयोग गर्भित है। जातैं दर्शनावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशम करि प्रकटभया पदार्थका सामान्यग्रहणरूप व्यापार होते ही पदार्थका सामान्यग्रहणरूप लक्षण धरैं जो दर्शन ताकी उत्पत्ति है। तातैं कार्यकारण भाव बनै है। ऐसैं यह गर्भितभाव पूर्वोक्तरीति करि जिन जे अर्हंतादिक तिनिकरि निर्दिष्ट कहिए कह्या है। बहुरि अपनी रुचि करि रच्या हुवा नाहीं है ऐसैं जीवसमासादिकनिकैं मार्गणास्थानविषैं गर्भितभावका समर्थनकरि गुणस्थान अर मार्गणास्थान ए प्ररूपणा दोय प्रतिपादन-

करि बहुरि भेदविवक्षाकरि वीसप्ररूपणा पूर्वैं कहीं तेई कहिए है। पूर्वैं गाथाविषैं 'भणिताः' ऐसा पद कह्या ताकरि वीस प्ररूपणा परमागमविषैं प्रसिद्ध हैं तिनिका प्रकाशन करि तिनिका विशेष कथनविषैं स्वाधीनपना अपनी इच्छाके अनुसारि कहना सो छोड्या है। ऐसैं यह न्याय तैसैं हीं जोडिए है ॥७॥ आगैं तिनि वीसप्ररूपणानिविषैं पहलैं कही जो गुणस्थानप्ररूपणा ताका प्रतिपादनिके अर्थि प्रथम गुणस्थानशब्दकी निरुक्तिपूर्वक अर्थ कहै हैं—

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं ॥ ८ ॥

यैस्तु लक्ष्यंते उदयादिषु संभवैर्भावैः।
जीवास्ते गुणसंज्ञा निर्दिष्टाः सर्वदर्शिभिः ॥ ८ ॥

जी० प्र०—मोहनीयादिकर्मणां उदयोपशमक्षयोपशमक्षयपरिणामरूपेषु अवस्थाविशेषेषु सत्सु संजायमानैर्यैर्भावैः-जीवस्य मिथ्यात्वादिपरिणामैः, गुण्यंते—लक्ष्यंते दृश्यंते लांछ्यंते वा जीवास्ते जीवपरिणामाः गुणस्थानसंज्ञा भवंतीति सर्वदर्शिभि-सर्वज्ञैः, निर्दिष्टाः-कथिताः। अनेन गुणशब्दनिरुक्तिप्रधानसूत्रेण मिथ्यात्वादयोऽयोगिकेवलित्वपर्यंता जीवपरिणामविशेषाः त एव गुणस्थानानीति प्रतिपादितं भवति। (अथ तेषां पंचभावानां निरुक्तिरुच्यते) स्वस्थितिक्षयवशादुदयनिषेके गलतां कार्मणस्कंधानां फलदानपरिणतिः-उदयः, तस्मिन् भव औदयिकः। प्रतिपक्षकर्मणामुदयाभावः उपशमः तस्मिन् भव औपशमिकः। प्रतिपक्षकर्मणां पुनरुत्पत्त्यभावेन नाशः क्षयः तस्मिन् भवः क्षायिकः। प्रतिपक्षकर्मणामुदये विद्यमाने यो जीवगुणांशो दृश्यते सक्षयोपशमः तस्मिन् भवः क्षायोपशमिकः। उदयादिनिरपेक्षः परिणामः तस्मिन् भवः पारिणामिकः। एवमौदयिकादीनां पंच भावानां सामान्यार्थं प्रतिपाद्य विस्तरतः अग्रे तन्महाधिकारे प्रतिपादयिष्यति ॥८॥ अथ तानि गुणस्थानानि गाथाद्वयेन उद्दिशति—

मं० प्र०—दर्शनमोहनीयादिकर्मणामुदयादिषु—उदयोपशमक्षयक्षयोपशमपरिणामेषु अवस्थाविशेषु सत्सु संभवैः—उत्पद्यमानैः, यैर्भावैः—औदयिकादिभिःमिथ्यादर्शनादिभिः परिणामैः, जीवा गुण्यंते लक्ष्यंते लांछ्यंते ते भावा गुणसंज्ञा गुणनामान इति सर्वदर्शिभिः- अर्हदादिभिः, निर्दिष्टाः प्रकथिताः ॥ ८ ॥ अथ तद्गुणस्थाननामोद्देशार्थं गाथाद्वयमाह—

स०चं०—मोहनीय आदि कर्मनिका उदय उपशम क्षय क्षयोपशम परिणामरूप जे अवस्थाविशेष तिनकौं होते संतै उत्पन्नभए जे भाव कहिए जीवके मिथ्यात्वादिक परिणाम तिनकरि गुण्यंते कहिए लखिए वा देखिए

वा लांछित करिए जीव ते जीवके पारिणाम गुणस्थानसंज्ञाके धारक हैं ऐसा सर्वदर्शी जे सर्वज्ञदेव तिनकरि निर्दिष्टाः कहिए कहे हैं। इस गुणशब्दकी निरुक्तिकी प्रधानतालीए सूत्रकरि मिथ्यात्वादिक अयोगकेवलीपनापर्यंत भए जीवके परिणामविशेष तेई गुणस्थान हैं ऐसा प्रतिपादन कीया है। तहां अपनी स्थितिके नाशके वशतें उदयरूप निषेकविषैं गले जे कार्माण स्कंध तिनका फलदेनेरूप जो परिणमन सो उदय है ताकौं होतैं जो भाव होइ सो औदयिक भाव है। वहुरि गुणका प्रतिपक्षी जे कर्म तिनका उदयका अभाव सो उपशम है। ताकौं होते संतैं जो होय सो औपशमिक भाव है। वहुरि प्रतिपक्षी कर्मनिका वहुरि न उपजै ऐसा नाश होना सो क्षय ताकौं होतैं जो होइ सो क्षायिक भाव है। वहुरि प्रतिपक्षी कर्मनिका उदय विद्यमान होतैं भी जो जीवके गुणका अंश देखिए सो क्षयोपशम, ताकौं होतैं जो होइ सो क्षायोपशमिक भाव है। वहुरि उदयादिक अपेक्षातें रहित सो परिणाम है ताकौं होतैं जो होइ सो पारिणामिक भाव है। ऐसैं औदयिक आदि पंचभावनिका सामान्य अर्थ प्रतिपादनकरि विस्तारतैं आगै तिनि भावनिका महा अधिकारविषैं प्रतिपादन करिसी ॥ ८ ॥ आगैं ते गुणस्थान गाथा दोयकरि नाममात्र कहे हैं—

मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो अपुव्व अणियट्टि सुहमो य ॥ ९ ॥
उबसंत खीणमोहो सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा ॥ १० ॥

मिथ्यात्वं सासनः मिश्रः अविरतसम्यक्त्वं च देशविरतश्च।
विरताः प्रमत्तः इतरः अपूर्वः अनिवृत्तिः सूक्ष्मश्च ॥ ९ ॥

उपशांतः क्षीणमोहः सयोगकेवलिजिनः अयोगी च ।
चतुर्दश जीवसमासाः क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्याः ॥ १० ॥

जी०प्र०—मिथ्या–अतत्त्वविषया दृष्टिः–श्रद्धा यस्यासौ मिथ्यादृष्टिः। नाम्नि उत्तरपदश्चेति दृष्टिपदस्य लोपात् मिच्छो इत्युक्तं। अयं भेदः अग्रेऽपि ज्ञातव्यः। सह आसादनेन (सम्यक्त्व) विराधनेन वर्तत इति सासादना, सासादना सम्यग्दृष्टिर्यस्यासौ सासादनसम्यग्दृष्टिः। अथवा आसादनेन सम्यक्त्वविराधनेन सह वर्तमानः सासादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्च सासादनसम्यग्दृष्टिः। इदं भूतपूर्वन्यायेन सम्यग्दृष्टित्वं ज्ञातव्यं। सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रो मिश्रः। सम्यक्-समीचीना दृष्टिः–तत्त्वार्थश्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्दृष्टिः। स चासौ अविरतश्च अविरतसम्यग्दृष्टिः। देशतः–एकदेशतः, विरतो देशविरतः संयतासंयत इत्यर्थः। अत्र विरतपदं उपरितनसर्वगुणस्थानवर्तिनां संयमित्वमेव ज्ञापयति। प्रमाद्यतीति प्रमत्तः। इतरः–अप्रमत्तः। अपूर्वा करणाः–परिणामा यस्यासौ अपूर्वकरणः। निवृत्तिः–परिणामविशेषः, न विद्यते निवृत्तिरूपः करणो यस्यासावनिवृत्तिकरणः। सूक्ष्मः सांपरायः–कषायः, यस्यासौ सूक्ष्मसांपरायः। उपशांतो मोहो यस्यासौ उपशांतमोहः। क्षीणो मोहो यस्यासौ क्षीणमोहः। घातिकर्माणि जयति स्मेति जिनः, केवलज्ञानमस्यास्तीति केवली, स चासौ जिनश्च केवलिजिनः, योगेन सह वर्तते इति सयोगः, स चासौ केवलिजिनश्च सयोगकेवलिजिनः। योगः अस्यास्तीति योगी, न योगी अयोगी, अयोगी केवलिजिनः इत्यनुवर्तनात् अयोगी चासौ केवलिजिनश्च अयोगिकेवलिजिनः। एते मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगिकेवलिजिनावसानाः चतुर्दशजीवसमासाः गुणस्थानानीति ज्ञातव्याः। कथमियं जीवसमास इति संज्ञा गुणस्थानस्य जाता ? इति चेत् जीवाः समस्यंते–संक्षिप्यंते एष्विति जीवसमासाः। अथवा जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः। इत्यत्र प्रकरणसामर्थ्येन गुणस्थानान्येव जीवसमासशब्देन उच्यंते। एते सकर्माणो जीवा यथा लोके संति विनष्टकृत्स्नकर्माणः सिद्धपरमेष्ठिनोऽपि संतीति ज्ञातव्याः भवंति। क्रमेण सिद्धाश्चेति क्रमशब्देन पूर्वं घातिकर्माणि क्षपयित्वा सयोगायोगिकेवलिगुणस्थानयोर्यथायोग्यकालं स्थित्वा अयोगिकेवलिचरमसमये शेषाघातिकर्माणि निरवशेषाणि क्षपयित्वा सिद्धा भवंतीत्ययं क्रमो ज्ञाप्यते। अनेन ज्ञापकेन युगपत्सकलकर्मक्षयत्वं सर्वदाकर्माभावात् सदामुक्तत्वं च परमात्मनो निराकृतं जातं ॥ ९-१० ॥ अथ गुणस्थानेषु औदयिकादिभावानां संभवं दर्शयति—

मं० प्र०—नामैकदेशेन नाम गृह्यते इति न्यायेन मिथ्या इति मिथ्यादृष्टिर्गृह्यते। सासादन इति सासादनसम्यग्दृष्टिः। अत्र प्राकृते विभक्तिलोपः। मिश्रः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, अविरतसम्यग्दृष्टिश्च, अत्र अविरतशब्दः अंतदीपकत्वेन अधस्तनमिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानानामविरतत्वं सूचयति। चशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः। देशविरतश्च संयतासंयतश्च। अत्र चशब्दोऽपि समुच्चयार्थः। विरताः, अयं विरतशब्द आदिदीपकः, वक्ष्यमाणाः प्रमत्तादयः सर्वेऽपि विरता एवेऽति सूचयति। विरता इति न गुणस्थानांतर तादृगागमाभावात्। प्रमत्तः–प्रमत्तविरतः, इतरः–अप्रमत्तविरतः, अपूर्वः–अपूर्वकरणः, अनिवृत्तिः–अनिवृत्तिकरणः। सूक्ष्मश्च सूक्ष्मसांपरायश्च अत्रापि गुणस्थानत्रये 'नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते' इति न्याय. आश्रयणीयः। चशब्दः प्रमत्तादिसमुच्चयार्थः। अपूर्वकरणादयस्त्रयोऽपि उपशमकक्षपकश्रेण्योः साधारणाः संभवंति-अपूर्वकरणः, उपशमकः क्षपकश्चेत्यादि ॥ ९ ॥

मं० प्र०—उपशांतः—उपशांतमोहः, अयं उपशमकश्रेण्यामेव । क्षीणमोहः—क्षीणकपायः, अयं क्षपकश्रेण्यामेव । सयोगकेवलिजिनः अत्र सयोगत्वमंत्यदीपकत्वेन मिथ्यादृष्ट्यादीनां सर्वेषामपि सयोगत्वं सूचयति । केवलित्वमादिदीपकत्वेन उत्तरेषामयोगानां सिद्धानां च केवलित्वं सूचयति । जिनत्व मध्यदीपकत्वेन असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनामयोगानां च कर्मारिजयसंभवाज्जिनत्वं सूचयति । अयं सयोगकेवलिजिनः सर्वज्ञवीतरागः परमात्मा, अयोगी च—अयोगिकेवलिजिनश्च अयमपि सर्वज्ञवीतरागः परमात्मा, क्षीणकषायांतानामधस्तनगुणानां केवलज्ञाना त्वात् अन्यथता-असर्वज्ञता ज्ञातव्या । एते मिथ्यादृष्ट्यादयः अयोगिकेवलिपर्यंताश्चतुर्दश जीवसमासाः । गुणस्थानानि क्रमेण मिथ्यादृष्टिः प्रथमं गुणस्थानं, सासादनसम्यग्दृष्टिर्द्वितीयं गुणस्थानमित्याद्यनुक्रमेण ज्ञातव्यं । जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासाः गुणस्थानानीत्यर्थः । ननु कर्मोदयादिजनितजीवपरिणामानाम संख्येयलोकप्रमितत्वसंभवात्कथं चतुर्दशत्वमिति चेत् ? न, जातिद्वारेण मिथ्यादृष्ट्याद्यभिधानप्रत्ययव्यवहारयोग्यतया चतुर्दशत्वाविरोधात् । न ह्यसंख्येयलोकमात्रेषु परिणामेषु तद्व्यवहारो घटेत् तथा वक्तुं ज्ञातुं चाशक्यत्वात् । एवं संसारिजीवाना गुणस्थानभेदं प्रदर्श्य मुक्तजीवानामभेदेन नामोद्देशं करोति । सिद्धाश्चेति सिद्धा —निष्पन्नस्वरूपाः कृतकृत्याः संतीति क्रियाध्याहारः सर्वत्र ज्ञातव्यः । तेन चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनः संसारिणो जीवाः संति । अतीतसंसाराः सिद्धाश्च संतीति सत्प्ररूपणा ॥ १० ॥ अथास्मिन् गुणस्थाने अयं भावो वर्तते इति औदयिकादिपंचभावानां गुणस्थानेषु प्रतिनियता वृत्तिं गाथाचतुष्टयेनाह—

स.चं.—मिथ्या कहिए अतत्त्वगोचर है दृष्टि कहिए श्रद्धा जाकी सो मिथ्यादृष्टि है 'नाम्न्युत्तरपदस्त्र' ऐसा व्याकरण सूत्रकरि दृष्टिपदका लोपकरतैं 'मिच्छो' ऐसा कह्या है । यहु भेद आगें भी जानना । वहुरि आसादन जो विराधना तिहिं सहित वर्तै सो सासादना, सासादना है सम्यग्दृष्टि जाकै सो सासादनसम्यग्दृष्टि है । अथवा आसादन कहिए सम्यक्त्वका विराधन तींहि सहित जो वर्तमान सो सासादन वहुरि सासादन अर सो सम्यग्दृष्टि सो सासादन सम्यग्दृष्टि है[1] । यहु पूर्वै भया था सम्यक्त्व तिस न्यायकरि इहां सम्यग्दृष्टिपना जानना । वहुरि सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वका जो मिश्रभाव सो मिश्र है । वहुरि सम्यक् कहिए समीचीन है दृष्टि कहिए तत्त्वार्थश्रद्धान जाकैं सो सम्यग्दृष्टि अर सोई अविरत कहिए असंयमी सो अविरतसम्यग्दृष्टि है । वहुरि देशतः कहिए एकदेशतैं विरत कहिए संयमी सो देशविरत है संयतासंयत है ऐसा अर्थ जानना । इहां जो विरत पद है सो ऊपरिके सर्वगुणस्थानवर्तीनिकैं संयमीपनाकौं जनावै है । वहुरि प्रमाद्यति कहिये प्रमाद करै सो प्रमत्त है वहुरि इतर कहिए प्र-

1 'सासादन जो सम्यग्दृष्टि' यह पाठ ख पुस्तकमें है ।

माद न करै सो अप्रमत्त है। बहुरि अपूर्व है करण कहिए परिणाम जाकैं सो अपूर्वकरण है। बहुरि निवृत्ति कहिए परिणामनिविषैं विशेष, न पाइए है निवृत्तिरूप करण कहिए परिणाम जाकैं सो अनिवृत्तिकरण है। बहुरि सूक्ष्म है सांपराय कहिये कषाय जाकैं सो सूक्ष्मसांपराय है बहुरि उपशांत भया है मोह जाका सो उपशांतमोह है। बहुरि क्षीण भया है मोह जाका सो क्षीणमोह है। बहुरि घातिकर्मनिकौं जीतता भया सो जिन, बहुरि केवलज्ञान याकैं हैं यातैं केवली, केवली सोई जिन सो केवलिजिन, बहुरि योगकरि सहित सो सयोग सोई केवलिजिन सो सयोगकेवली जिन है। बहुरि योग जाकैं है सो योगी, योगी नाहीं सो अयोगी, केवलिजिन ऐसी अनुवृत्तितैं अयोगी सोई केवलिजिन ऐसैं अयोगिकेवलिजिन है। ऐसैं ए मिथ्यादृष्टि आदि अयोगिकेवलिजिनपर्यंत चौदह जीवसमास कहिए गुणस्थान ते जानने। कैसैं यहु जीवसमास ऐसी संज्ञा गुणस्थानकी भई। तहां कहिए है—जीव हैं, समस्यंते कहिए संक्षेपरूपकरि इनिविषैं ते जीवसमास अथवा जीव हैं ते सम्यक् आसते एषु कहिए भलेप्रकार तिष्ठै हैं इनिविषैं ते जीवसमास ऐसैं इहां प्रकरण जो प्रस्ताव ताकी सामर्थ्यकरि गुणस्थान ही जीवसमासशब्दकरि कहिए है जातैं ऐसा वचन है—'यादृशं प्रकरणं तादृशोर्थः' जैसा प्रकरण तैसो अर्थ सो इहां गुणस्थानका प्रकरण है तातैं गुणस्थान अर्थका ग्रहण कीया है। बहुरि ये कर्मसहित जीव जैसैं लोकविषैं हैं तैसैं नष्ट भए सर्वकर्म जिनके ऐसे सिद्ध परमेष्ठी भी हैं ऐसा जानना। क्रमेण कहिए क्रमकरि सिद्ध हैं सो यहां क्रमशब्दकरि पहिलैं घातिकर्मनिकौं क्षपाइ इन सयोगकेवली अयोगकेवली गुणस्थाननिविषैं यथायोग्य काल तिष्ठि अयोगकेवलीका अंत समयविषैं अवशेष अघातिकर्म समस्त खिपाइ सिद्ध हो है ऐसा अनुक्रम जनाइए है। सो इस अनुक्रमकौं जतावनहारा क्रमशब्दकरि युगपत् सर्वकर्मका नाशपना बहुरि सर्वदा कर्मका अभावतैं सदा ही मुक्तपना परमात्माकैं निराकरण कीया है॥ ९–१०॥ आगै गुणस्थाननिविषैं औदायिक आदि भावनिका संभव दिखावै हैं—

१ क पुस्तकमें 'क्षपाय सयोगकेवल अयोगकेवलगुणस्थाननिविषैं' यह पाठ है।

मिच्छे खलु ओदइओ विदिये पुण पारणामिओ भावो ।
मिस्से खओवसामिओ अविरदसम्मह्मि तिण्णेव ॥ ११ ॥

मिथ्यात्वे खलु औदयिको द्वितीये पुनः पारिणामिको भावः ।
मिश्रे क्षायोपशमिकः अविरतसम्यक्त्वे त्रय एव ॥ ११ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने दर्शनमोहोदयजनितौदयिकभावः अतत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणो भवति खलु-स्फुटं, द्वितीये-सासादनगुणस्थाने पुनः पारिणामिकभावो भवति, अत्र दर्शनमोहोदयादिनिरपेक्षासद्भावात् । मिश्रगुणस्थाने क्षायोपशमिकभावो भवति कुतः ? मिथ्यात्वप्रकृतेः सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदये विद्यमाने सत्यनुदयप्राप्तनिषेकाणां उपशमे च समुद्भूतत्वादेव कारणात् । अविरतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने औपशमिकसम्यक्त्व—क्षायोपशमिकरूपवेदकसम्यक्त्व- क्षायिकसम्यक्त्वनामानस्त्रयो भावा भवंति। तत्र दर्शनमोहोपशमस्य क्षयोपशमस्य क्षयस्य च संभवात् ॥ ११ ॥ एषामुक्तभावानां संभवनियमस्य निमित्तमाह—

मं० प्र०—मिच्छे मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने, खलु–नियमेन औदयिको भावः- मिथ्यादर्शनलक्षणो वर्तते । तत्र यद्यपि अज्ञानजीवत्वादिरूपौ क्षायोपशमिकपारिणामिकौ भावौ विद्येते तथापि मोहनीयविवक्षया तदभावाच्चौ नोक्तौ सर्वत्रान्यकर्मणामविवक्षितत्वात् औपशमिकक्षायोपशमिकयोस्तत्रासंभव एव । पुनर्द्वितीये सासादनगुणस्थाने पारिणामिक एव भावो जीवत्वादिरूपो वर्तते तत्र मोहनीयस्योपशमक्षयक्षयोपशमोदयाभावात् । मिश्रे सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने क्षायोपशमिक एव सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामरूपो भावो वर्तते । ननु–सर्वघातिनः सम्यग्मिथ्यात्वकर्मण उदयादुत्पन्नसम्यग्मिथ्यात्वपरिणामः कथं क्षायोपशमिकः ? इति चेत् न, तत्कर्मणः सर्वघातित्वेऽपि तदनुभागानां सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये हीनानुभागरूपतया परिणतस्य सदवस्थालक्षणे उपशमे च देशघातिस्पर्धकोदयसहिते सति सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामस्योत्पन्नत्वात् क्षायोपशमिकत्वमेव नौदयिकत्वं, अतएव तत्कर्मणः सर्वघातित्वेऽपि सम्यक्त्वगुणस्य सर्वात्मना घाताभावः सिद्धः । अविरतसम्यग्दृष्टौ गुणस्थाने त्रयः औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकरूपा एव भावा वर्तते । तत्र दर्शनमोहप्रकृतित्रयस्य उपशमादिसंभवात् ॥ ११ ॥

स० चं०—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानविषैं दर्शनमोहका उदयकरि निपज्या ऐसा औदयिक भाव अतत्त्वश्रद्धान है लक्षण जाका सो पाइए है खलु कहिए प्रकटपनैं बहुरि दूसरा सासादनगुणस्थानविषैं पारिणामिक भाव है जातैं

इहां दर्शनमोहका उदय आदिकी अपेक्षाका जु अभाव ताका सद्भाव है। बहुरि मिश्रगुणस्थानविषैं क्षायोपशमिक भाव है काहे तैं? मिथ्यात्वप्रकृतिका सर्वघातिया स्पर्धकनिका उदयका अभाव सोई है लक्षण जाका ऐसा तौ क्षय होते संतै बहुरि सम्यग्मिथ्यात्व नाम प्रकृतिका उदय विद्यमान होते संते बहुरि उदयकौं न प्राप्त भए ऐसे निषेकनिका उपशम होते संते मिश्रगुणस्थान हो है। तातैं ऐसा कारणतैं मिश्रविषैं क्षायोपशमिकभाव है। बहुरि अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानविषैं औपशमिक सम्यक्त्व बहुरि क्षायोपशमिकरूप वेदकसम्यक्त्व बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व ऐसे नाम धारक तीन भाव हैं जातैं इहां दर्शनमोहका उपशम वा क्षयोपशम वा क्षय संभवै है ॥ ११ ॥

आगैं कहे हैं जु ए भाव तिनके संभवनेके नियमका कारण कहै हैं—

एदे भावा णियमा दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित्तं णत्थि जदो अविरदअंतेसु ठाणेसु ॥ १२ ॥

एते भावा नियमाद् दर्शनमोहं प्रतीत्य भणिताः खलु।
चारित्रं नास्ति यतोऽविरतांतेषु स्थानेषु ॥ १२ ॥

जी० प्र०—एते प्रागुक्तौदयिकादयो भावाः नियमाद् दर्शनमोहं प्रतीत्य -आश्रित्यैव, भणिताः—कथिताः भवंति खलु-स्फुटं, यतः कारणादविरतांतेषु चतुर्षु गुणस्थानेषु चारित्रं नास्तीति कारणात् ते चारित्रमोहं प्रतीत्य न भणिताः। तेन सासादनगुणस्थाने अनंतानुबंध्यन्यतमोदये विद्यमानेऽपि तदविवक्षया पारिणामिकभावः आर्षे प्रतिपादित इति जानीहि। अनंतानुबंध्यन्यतमोदयविवक्षया तु औदयिकभावोऽपि भवेत् ॥ १२ ॥ देशसंयतादिषु गुणस्थानेषु भावनियमं गाथाद्वयेन दर्शयति—

मं० प्र०—ऐते मिथ्यादृष्ट्यादिषु–अविरतसम्यग्दृष्टिपर्यंतेषु, पूर्वमुक्ता भावाः–औदयिकादयः, नियमाद्दर्शनमोहं प्रतीत्यैव–उद्दिश्यैव, भणिताः–कथिताः खलु न चारित्रमोहं प्रतीत्य। कुतः? इति चेत् यतः कारणात् अविरतांतेषु गुणस्थानेषु चारित्रं नास्ति ततः कारणात् चारित्रमोहविवक्षा नास्तीत्यर्थः ॥१२॥

सं० चं०—ऐसैं पूर्वोक्त औदयिक आदि भाव कहे ते नियमतैं दर्शनमोहकौं प्रतीत्य कहिए आश्रयकरि भणिता कहिए कहे हैं। प्रगटपनैं जातैं अविरतपर्यंत च्यारि गुणस्थानविषैं चारित्र नाहीं है। इस कारणतैं ते भाव

चारित्र मोहका आश्रयकरि नाहीं कहे हैं। तीहिं करि सासादनगुणस्थानविषैं अनंतानुवंधी कोई क्रोधादिक एक कषायका उदय विद्यमान होतैं भी ताकी विवक्षा न करनेकरि पारिणामिकभाव सिद्धांतविषैं प्रतिपादन कीया है ऐसा तू जानि। वहुरि अनंतानुवंधी किसी कषायका उदयकी विवक्षा करि औदयिक भाव भी है। आगैं देशसंयतादिगुणस्थाननिविषैं भावनिका नियम गाथा दोय करि दिखावैं हैं--

देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु।
सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं॥ १३॥

देशविरते प्रमत्ते इतरे च क्षायोपशमिकभावस्तु।
स खलु चारित्रमोहं प्रतीत्य भणितस्तथा उपरि॥ १३॥

जी० प्र०--देशविरते प्रमत्तसंयते तु पुनः इतरस्मिन् अप्रमत्तसंयते च क्षायोपशमिकसंयमलक्षणो भावो भवति। देशसंयतापेक्षया प्रत्याख्यानावरणकषायाणां उदयागतदेशघातिस्पर्धकानंतबहुभागानुभागोदयेन सहानुदयागतक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषेकसर्वघातिस्पर्धकानंतबहुभागानामुदयाभावलक्षणक्षये तेषामुपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुद्भूतत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्य देशसंयमः क्षायोपशमिकभाव इत्युक्तं। तथा प्रमत्ताप्रमत्तयोरपि संज्वलनकषायाणामुदयागतदेशघातिस्पर्धकानंतैकभागानुभागेन सह अनुदयागतक्षीयमाणविवक्षितोदयनिषेकसर्वघातिस्पर्धकानंतबहुभागानां उदयाभावलक्षणक्षये तेषां उपरितननिषेकाणां अनुदयप्राप्तानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति समुत्पन्नत्वात् चारित्रमोहं प्रतीत्यात्रापि सकलसंयमोऽपि क्षायोपशमिको भाव इति भणितं इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवत्यभिप्रायः। तथा उपर्यपि अपूर्वकरणादिगुणस्थानेषु चारित्रमोहनीयं प्रतीत्य तत्तद्गुणस्थानेषु भावा ज्ञातव्याः॥ १३॥

मं० प्र०--देशविरते प्रमत्तविरते इतरस्मिन्नप्रमत्तविरते च क्षायोपशमिकचारित्रलक्षण एव भावो वर्तते। देशविरते प्रत्याख्यानावरणकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणे क्षये, तेषामेव हीनानुभागरूपतया परिणतानां सदवस्थालक्षणे उपशमे च, देशघातिस्पर्धकोदयसहिते उत्पन्नं देशसंयमरूपचारित्रं क्षायोपशमिकं। प्रमत्तविरते तीव्रानुभागसंज्वलनकषायाणां प्रागुक्तलक्षणक्षयोपशमसमुत्पन्नसंयमरूपं प्रमादमलिनं सकलचारित्रं क्षायोपशमिकं। अत्र संज्वलनानुभागानां प्रमादजनकत्वमेव तीव्रत्वं। अप्रमत्तविरते मंदानुभागसंज्वलनकषायाणां प्रागुक्तक्षयोपशमोत्पन्नसंयमरूपं निर्मलं सकलचारित्रं क्षायोपशमिकं। तुशब्दः असंयतादिव्यवच्छेदार्थः। स खलु देशविरतादिषु प्रोक्तक्षायोपशमिको भावः। चारित्रमोहं प्रतीत्य भणितः तथा उपरि उपशमकादिषु चारित्रमोहं प्रतीत्य भाणिष्यते॥ १३॥

स.चं.--देशविरतविषैं बहुरि प्रमत्तसंयतविषैं बहुरि इतर अप्रमत्तसंयतविषैं क्षायोपशमिक भाव है । तहां देशसंयत अपेक्षा करि प्रत्याख्यानकषायनिके उदय अवस्थाकौं प्राप्त भए जे देशघाती स्पर्धकनिका अनंतवां भागमात्र तिनका जो उदय तीहिं सहित जे उदयकौं न प्राप्त भए ही निर्जरा रूप क्षय होते जे विवक्षित उदयरूप निषेक तिनि स्वरूप जे सर्वघातिया स्पर्धकनिका अनंतभागनिविषैं एकभागविना बहुभाग तिनका उदयका अभाव सो ही है लक्षण जाका ऐसा क्षय होते संते बहुरि वर्तमान समयसंबंधी निषेकतैं ऊपरिके निषेक जे उदय अवस्थाकौं न प्राप्त भए तिनकी सत्तारूप जो अवस्था सोई है लक्षण जाका ऐसा उपशम होते संते देशसंयम प्रकटै है तातैं चारित्र मोहकौं आश्रय करि देशसंयत क्षायोपशमिक भाव है ऐसा कह्या है। बहुरि तैसैं ही प्रमत्त अप्रमत्तविषैं भी संज्वलन कषायनिका उदय आए जे देशघातिया स्पर्धक अंनतवां भागरूप तिनिका उदयकरि सहित उदयकौं न प्राप्त होतैं ही क्षयरूप होते जे विवक्षित उदय निषेक तिनिरूप सर्वघातिया स्पर्धक अनंत भागनिविषैं एकभागविना बहुभागरूप तिनिका उदयका अभाव सोही है लक्षण जाका ऐसा क्षय होते बहुरि ऊपरिके निषेक जे उदयकौं प्राप्त न भए तिनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम ताकौं होते संतै प्रमत्त अप्रमत्त हो है तातैं चारित्र मोह अपेक्षा इहां सकलसंयम है तथापि क्षायोपशमिक भाव है ऐसा कह्या है ऐसा श्रीमान् अभयचंद्रनामा आचार्य सिद्धांतचक्रवर्ती ताका अभिप्राय है । भावार्थ--सर्वत्र क्षयोपशमका स्वरूप ऐसा ही जानना जहां प्रतिपक्षी कर्मके देशघातिया स्पर्धकनिका उदय पाइए तीह सहित सर्वघातिया स्पर्धक उदयनिषेकसंबंधी तिनिका उदय न पाइए विना ही उदय दीए निर्जरै सोई क्षय अर जे उदय न प्राप्त भए आगामी निषेक तिनिका सत्तास्वरूप उपशम तिनि दोऊनिकौं होतै क्षयोपशम हो है सो स्पर्धकनिका वा निषेकनिका वा सर्वघाति देशघातिस्पर्धकनिके विभागका आगैं वर्णन होगा तातैं इहां विशेष नाहीं लिख्या है। सो इहां भी पूर्वोक्तप्रकार चारित्रमोहका क्षयोपशम ही है तातैं क्षायोपशमिक भाव देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्तविषैं जानना। तैसैं ही ऊपरि भी अपूर्वकरणादिगुणस्थाननिविषैं चारित्रमोहकौं आश्रयकरि भाव जानने ॥ १३ ॥

तत्तो उवरिं उवसमभावो उवसामगेसु खवगेसु ।
खइओ भावो णियमा अजोगिचरिमोत्ति सिद्धे य ॥ १४ ॥

तत उपरि उपशमभाव उपशामकेषु क्षपकेषु ।
क्षायिको भावो नियमात् अयोगिचरम इति सिद्धे च ॥ १४ ॥

जी० प्र०—तत उपरि अपूर्वकरणादिचतुर्गुणस्थानोपशमकेषु औपशमिक भावो भवति तत्संयमस्य चारित्रमोहोपशमादेव संभवात् । तथा अपूर्वकरणादिचतुर्गुणस्थानक्षपकेषु सयोगायोगिकेवलिनोश्च क्षायिकभावो भवति नियमेन तच्चारित्रस्य चारित्रमोहक्षयोत्पन्नत्वात् । (अयोगिचरमं यावदिति गुणस्थानपर्यंतसूचनार्थं इतिशब्दस्य यावदर्थत्वात्) सिद्धे च तथा सिद्धपरमेष्ठिषु च (ष्वपि) क्षायिकभावः स्यात् तस्य सकलकर्मक्षयोद्भूतत्वात् ॥ १४ ॥ अथ प्रागुद्दिष्टचतुर्दशगुणस्थानेषु प्रथमोद्दिष्टस्य मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्य स्वरूपं प्रकाशयति—

मं० प्र०—तत उपरि--अप्रमत्तगुणस्थानस्योपरि, उपशमश्रेण्यां त्रिषूपशमकेषु उपशांतकषाये च एकविंशतिचारित्रमोहप्रकृतीनामुपशमादुत्पन्नसंयमरूपं निर्मलतरं सकलचारित्रमौपशमिको भावः । क्षपकश्रेण्यां त्रिषु क्षपकेषु क्षीणकषाये सयोगकेवलिनि अयोगिकेवलिनि च चारित्रमोहक्षयोत्पन्नसंयमरूपं निर्मलतमं सकलचारित्रं क्षायिको भावः । अयोगिचरमं यावदिति गुणस्थानपर्यंतसूचनार्थं, इतिशब्दस्य यावदर्थत्वात् । सिद्धे सिद्धपरमेष्ठिनि च क्षायिको भावः केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनादिरूपः यथासंभवमागमाविरोधेन ज्ञातव्यः तत्र चारित्रमोहं प्रति नियमाभावात् सिद्धजीवत्वलक्षणपारिणामिकभावस्यापि विद्यमानत्वात् ॥ १४ ॥ अथ प्रथमोद्दिष्टमिथ्यादृष्टिगुणस्थानं कारणस्वरूपप्रकारकथनपूर्वकं प्ररूपयति—

स० चं०—तातैं ऊपरि अपूर्वकरणादि च्यारि गुणस्थान उपशमश्रेणी संबंधी तिनिविषैं औपशमिक भाव है जातैं तिस संयमका चारित्रमोहके उपशमहीतैं संभव है। बहुरि तैसैं अपूर्वकरणादि च्यारिगुणस्थान क्षपकश्रेणी संबंधी अर सयोग अयोगीकेवली तिनिविषैं क्षायिक भाव है नियमकरि, जातैं तिस चारित्रका चारित्रमोहके क्षयहीतैं उपजना है। बहुरि तैसैं ही सिद्धपरमेष्ठीनिविषैं भी क्षायिक भाव हो है। जातैं तिस सिद्धपदका सकलकर्मके क्षय होतैं प्रकटपना होहै ॥ १४ ॥ आगैं पूर्वैं नाममात्र कहे जे चौदहगुणस्थान तिनिविषैं पहिले कह्या जो मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ताका स्वरूपकौं प्ररूपैं हैं—

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्चअत्थाणं ।
एयंतं विवरीयं विणयं संसयिदमण्णाणं ॥ १५ ॥

मिथ्यात्वोदयेन मिथ्यात्वमश्रद्धानं तु तत्त्वार्थानां ।
एकांतं विपरीतं विनयं संशयितमज्ञानं ॥ १५ ॥

जी० प्र०—दर्शनमोहनीयभेदमिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन जीवस्य अतत्त्वश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वं स्यात् । तच्च मिथ्यात्वं–एकांतं विपरीतं विनयं संशयितं अज्ञानं चेति पंचविधं । तत्र जीवादिवस्तु सर्वथा सदेव सर्वथाऽसदेव सर्वथा एकमेव सर्वथा अनेकमेवेत्यादिप्रतिपक्षनिरपेक्षैकांताभिप्रायः एकांतमिथ्यात्वं । अहिंसादिलक्षणसद्धर्मफलस्य स्वर्गादिसुखस्य हिंसादिरूपयागादिफलत्वेन, जीवस्य प्रमाणसिद्धस्य मोक्षस्य निराकरणत्वेन, प्रमाणबाधितस्त्रीमोक्षास्तित्ववचनेन इत्याद्येकांतावलंबनेन विपरीताभिनिवेशो विपरीतमिथ्यात्वं । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिरपेक्षतया गुरुपादपूजादिरूपविनयेनैव मुक्तिरेतच्छ्रद्धानं वैनयिकमिथ्यात्वं । प्रत्यक्षादिप्रमाणगृहीतार्थस्य देशांतरे कालांतरे च व्यभिचारसंभवात् परस्परविरोधिन आप्तवचनस्यापि प्रामाण्यानुपपत्तेरिदमेव तत्त्वमिति निर्णयितुमशक्तेः सर्वत्र संशय एव इत्यभिप्रायः संशयमिथ्यात्वं । ज्ञानदर्शनावरणतीव्रोदयाक्रांतानामेकेंद्रियजीवानां अनेकांतात्मकं वस्त्विति वस्तुसामान्ये, उपयोगलक्षणो जीव इति वस्तुविशेषेपि अज्ञानजनितं श्रद्धानं अज्ञानमिथ्यात्वं भवति । एवं स्थूलांशाश्रयेण मिथ्यात्वस्य पंचविधत्वं कथितं सूक्ष्मांशाश्रयेणासंख्यातलोकमात्रविकल्पसंभवात् तत्र व्यवहारानुपपत्तेः ॥ १५ ॥ अथैषां भावानामुदाहरणान्युद्दिशति—

मं० प्र०—दर्शनमोहनीयप्रकृतिभेदस्य मिथ्यात्वकर्मणः उदयेन फलदानशक्तिविपाकेन जायमानं तत्त्वार्थानां–जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षाणां, अश्रद्धानं–अनभ्युपगमः, मिथ्यात्वं–जीवस्य मिथ्यादर्शनपरिणामः, तच्च–मिथ्यात्वं, एकांतविपरीतविनयसंशयिताज्ञानभेदात्पंचप्रकारं । तत्र सर्वथा अस्त्येव नास्त्येव एकमेव अनेकमेव नित्यमेव अनित्यमेव वक्तव्यमेव अवक्तव्यमेव जीवादि वस्तु इत्यादि प्रतिपक्षनिरपेक्षसर्वथानियम एकांतः, तच्छ्रद्धानं एकांतमिथ्यात्वं । अहिंसादिलक्षणधर्मफलस्य स्वर्गापवर्गसौख्यस्य हिंसादिरूपयागादिकर्मफलत्वश्रद्धानं विपरीतमिथ्यात्वं । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रनिरपेक्षगुरुपादपूजादिलक्षणविनयेनैव भक्त्येव स्वर्गापवर्गप्राप्तिरिति श्रद्धानं विनयमिथ्यात्वं । प्रत्यक्षादिप्रमाणैः परिज्ञातस्यापि वस्तुनः देशांतरे कालांतरे च इदमेव ईदृशमेव इत्यवधारयितुमशक्यत्वेन तत्स्वरूपप्ररूपकाणामाप्ताभिमानिनामपि परस्परविरुद्धशास्त्रोपदेशकत्वात् वंचकत्वशंकया च तत्त्वमित्थं भवति वा नवेत्युभयांशावलंबनरूपसंशयपूर्वकश्रद्धानं संशयितमिथ्यात्वं । विचार्यमाणानां जीवाद्यर्थानामिदमेव ईदृशमेव तत्त्वमिति ज्ञानाभावादज्ञानमेवेति श्रद्धानमज्ञानमिथ्यात्वं । एवं स्थूलांशाश्रयेण मिथ्यात्वस्य पंचविधत्वं कथितं । सूक्ष्मांशाश्रयेणासंख्यातलोकमात्रविकल्पसंभवात् तत्र व्यवहारानुपपत्तेः ॥ १५ ॥ अथ मिथ्यात्वस्य पंचप्रकारोदाहरणान्युद्दिशति—

स० चं०—दर्शनमोहनीका भेदरूप मिथ्यात्व प्रकृतिका उदयकरि जीवकैं अतत्त्व श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा मिथ्यात्व हो है। बहुरि सो मिथ्यात्व एकांत १ विपरीत २ विनय ३ संशयित ४ अज्ञान ५ ऐसैं पांच प्रकार है। तहां जीवादि वस्तु सर्वथा सत्त्वरूप ही है सर्वथा असत्त्वरूप ही है, सर्वथा एक ही है, सर्वथा अनेक ही है इत्यादि प्रतिपक्षी दूसरा भावकी अपेक्षारहित एकांतरूप अभिप्राय सो एकांत मिथ्यात्व है। बहुरि अहिंसादिक समीचीनधर्मका फल जो स्वर्गादिक सुख ताकौं हिंसादिरूप यज्ञादिकका फल कल्पनाकरि मानैं वा जीवकैं प्रमाणकरि सिद्ध है जो मोक्ष ताका निराकरणकरि मोक्षका अभाव मानै वा प्रमाणकरि खंडित जो स्त्रीकैं मोक्षप्राप्ति ताका अस्तित्व वचनकरि स्त्रीकौं मोक्ष है ऐसा मानैं इत्यादि एकांत अवलंबनकरि विपरीतरूप जो अभिनिवेश-अभिप्राय सो विपरीत मिथ्यात्व है। बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी सापेक्षारहितपनैंकरि गुरुचरणपूजनादिरूप विनय ही करि मुक्ति है यहु श्रद्धान वैनयिक मिथ्यात्व है। बहुरि प्रत्यक्षादि प्रमाणकरि ग्रह्या जो अर्थ ताका देशांतरविषैं अर कालांतरविषैं व्यभिचार जो अन्यथाभाव सो संभवै है तातैं अनेकमत अपेक्षा परस्पर विरोधी जो आप्तवचन ताका भी प्रमाण ताकी प्राप्ति नाहीं तातैं ऐसैं ही तत्त्व है ऐसा निर्णय करनेकी शक्तिके अभावतैं सर्वत्र संशय ही है ऐसा जो अभिप्राय सो संशयमिथ्यात्व है। बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरणका तीव्र उदयकरि संयुक्त जे एकेंद्रियादिक जीव तिनके अनेकांत स्वरूप वस्तु है ऐसा वस्तुका सामान्य भावविषैं अर उपयोग लक्षण जीव है ऐसा वस्तुका विशेषभावविषैं जो अज्ञान ताकरि निपज्या जो श्रद्धान सो अज्ञानमिथ्यात्व है। ऐसैं स्थूल भेदनिका आश्रयकरि मिथ्यात्वका पंचप्रकारपना कह्या जातैं सूक्ष्म भेदनिका आश्रयकरि असंख्यात लोकमात्र भेद संभवै हैं तातैं तहां व्याख्यानादिक व्यवहारकी अप्राप्ति है ॥ १५ ॥ आगे इन पंचनिका उदाहरणकौं कहै हैं—

एयंत बुद्धदरसी विवरीओ बह्म तावसो विणओ।
इंदो विय संसइयो मक्कडिओ चेव अण्णाणी ॥ १६ ॥

एकांतो बुद्धदर्शी विपरीतो ब्रह्म तापसो विनयः ।
इंद्रोऽपि च संशयितो मस्करी चैवाज्ञानी ॥ १६ ॥

जी॰ प्र॰—एतानि उपलक्षणत्वेन उक्तत्वात् एवं व्याख्येयानि- बुद्धदर्श्यादयः एकांतमिथ्यादृष्टयः । याज्ञिकब्राह्मणादयः विपरीतमिथ्यादृष्टयः । तापसादयः विनयमिथ्यादृष्टयः । इंद्रो नाम श्वेतांबरगुरुः, तदादयः संशयमिथ्यादृष्टयः । मस्कर्यादयः अज्ञानमिथ्यादृष्टयो भवंति । कालापेक्षया एतद्भरतक्षेत्रसंभविनः बुद्धदर्श्यादय उदाहृताः ॥ १६ ॥ अथातत्त्वश्रद्धानलक्षणं मिथ्यात्वं निरूपयति—

म॰ प्र॰—उपलक्षणमेतत् अन्येषामपि तत्तन्मिथ्यात्वोदाहरणानां समवात्, तत एवं व्याख्यायते- बुद्धदर्श्यादयः एकांतमिथ्यादृष्टयः । ब्राह्मणादयः विपरीतमिथ्यादृष्टयः । तापसादयः विनयमिथ्यादृष्टयः । इंद्रः श्वेतांबरगुरुः तदादयः संशयितमिथ्यादृष्टयः । मस्कर्यादयः अज्ञानमिथ्यादृष्टयः । कालापेक्षया एतद्भरतक्षेत्रसंभविनः बुद्धदर्श्यादय उदाहृताः ॥ १६ ॥ अथ प्रकारांतरेण मिथ्यादृष्टिस्वरूपमाह—

स॰ चं॰—ए उपलक्षणपनाकरि कहे हैं एकका नाम लेनैतैं अन्य भी ग्रहण करने तातैं ऐसैं कहने-बुद्धदर्शी जो बौद्धमती ताकौं आदि देकरि एकांत मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि यज्ञकर्ता ब्राह्मण आदि विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि तापसी आदि विनयमिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि इंद्रनामा श्वेतांबरनिका गुरु ताकौं आदिदेकरि संशयमिथ्यादृष्टि हैं । बहुरि मस्करी संन्यासीकौं आदि देकरि अज्ञानमिथ्यादृष्टि हैं । वर्तमान काल अपेक्षाकरि ए भरतक्षेत्रविषैं संभवते बौद्धमती आदि उदाहरण कहे हैं॥१६॥आगैं अतत्त्वश्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा मिथ्यात्वकौं प्ररूपै हैं—

मिच्छंतं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥ १७ ॥

मिथ्यात्वं विदन् जीवो विपरीतदर्शनो भवति ।
न च धर्मं रोचते हि मधुरं खलु रसं यथा ज्वरितः ॥ १७ ॥

जी॰ प्र॰—मिथ्यात्वं उदयागतं वेदयन्-अनुभवन् जीवः विपरीतदर्शनः अतत्त्व (अनाप्तागमपदार्थेषु आप्तागमपदार्थ) श्रद्धायुक्तो भवति न केवलं अतत्त्वमेव श्रद्धत्ते अनेकांतात्मकं धर्मं वस्तुस्वभावं रत्नत्रयात्मकमोक्षकारणभूतधर्मं वा न च-नैव रोचते-नाभ्युपगच्छति । अत्र दृष्टांत-

माह-यथा ज्वरितः-पित्तज्वराक्रांतो, मधुरं-क्षीरादिरसं, न रोचते तथा मिथ्यादृष्टिर्धर्मं न रोचते इत्यर्थः १७ इदमेव वस्तुस्वभावाश्रद्धानं स्पष्टयति—

मं० प्र०—मिथ्यात्वं-उदयागतं दर्शनमोहप्रकृतिविशेषं, वेदयन्-अनुभवन् जीवः, विपरीतदर्शनः, अनाप्तागमपदार्थेषु आप्तागमपदार्थश्रद्धानो भवति। एतदेव समर्थयते-खलु-यतः कारणात् धर्मं परमार्थाप्तागमपदार्थस्वभावं न रोचते च न श्रद्धत्ते च। अत्र चशब्दः अनाप्तागमपदार्थस्वभावरूपधर्मं रोचते इति समुच्चयार्थः। ततः कारणात् लौकिकव्यवहारे सम्यग्दृष्टिवत् मिथ्यादृष्टेर्विपरीतश्रद्धानाभावेऽपि परमार्थेषु-आप्तागमपदार्थेषु विपरीतश्रद्धानसभवात् मिथ्यादृष्टिरेवेति निश्चेतव्यं। अस्मिन्नर्थे दृष्टांतमाह-यथा ज्वरितः-पित्तज्वराक्रांतः, मधुरं-क्षीरादिरसं मधुरं न रोचते तथा मिथ्यादृष्टिरपि धर्मं न रोचते इत्यर्थः॥१७॥ अमुमेवार्थं परिस्फुटं कुर्वन् मिथ्यादृष्टेश्चिह्नमाह—

स० चं०—उदय आया मिथ्यात्वकौं वेदन् कहिए अनुभवता जो जीव सो विपरीतदर्शन कहिए अतत्त्वश्रद्धानसंयुक्त हो है अयथार्थ प्रतीत करै है। बहुरि केवल अतत्त्वहीकौं नाहीं श्रद्धै है अनेकांतस्वरूप जो वस्तुका स्वभाव अथवा रत्नत्रयस्वरूप मोक्षका कारणभूत धर्म ताहि न रोचते कहिए नाहीं रुचिरूप प्राप्त हो है। इहां दृष्टांत कहै हैं-जैसैं ज्वरित कहिए पित्तज्वरसहित पुरुष सो मधुर मीठा दुग्धादिक रस ताहि न रोचै है तैसैं मिथ्यादृष्टि धर्मकौं न रोचै है ऐसा अर्थ जानना॥ १७॥ इस ही वस्तुस्वभावके अश्रद्धानकौं स्पष्ट करै हैं—

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं॥ १८॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं उपदिष्टं वा अनुपदिष्टं॥ १८॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं-अर्हदादिभिर्व्याख्यातं, प्रवचनं-आप्तागमपदार्थत्रयं न श्रद्दधाति-नाभ्युपगच्छति। प्रकृष्टं वचनं यस्यासौ प्रवचनः-आप्तः, प्रकृष्टस्य वचनं प्रवचनं-परमागमः, प्रकृष्टमुच्यते-प्रमाणेन अभिधीयते इति प्रवचनं पदार्थः, इति निरुक्त्या प्रवचनशब्देन तत्त्रयस्याभिधानात्। पुनः स मिथ्यादृष्टिः असद्भावं-मिथ्यारूपं प्रवचनं आप्तागमपदार्थं, उपदिष्टं-आप्ताभासैः प्रकथितं अथवा अनुपदिष्टं-अकथितमपि श्रद्दधाति। ननु-'घडपडत्थंभादिपयत्थेसु मिच्छाइट्ठी जहावगमं। सद्दहतोवि अण्णाणी उत्तदे जिणवयणे सद्दहणाभावादो॥' इति सिद्धां-

तवाक्योद्दिष्टमिथ्यादृष्टिलक्षणं ज्ञात्वा स मिथ्याभावः परिहर्त्तव्यः। पुनः स मिथ्यादर्शनपरिणामभेदोप्यनेनैव ज्ञातव्यः। कश्चिन्मिथ्यादर्शनपरिणामः आत्मन्यवस्थितः रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यासं भेदाभेदविपर्यासं स्वरूपविपर्यासं च जनयति। तत्र कारणविपर्यासस्तावत् रूपादीनामेकं कारणममूर्तं नित्यमिति कल्पयति। अपरः पृथिव्यादिजातिभिन्नाः परिमाणवश्चतुस्त्रिद्व्येकगुणास्तुल्यजातीयानां कार्याणामारंभका इति वर्णयति। भेदाभेदविपर्यासः-कार्यात् कारणं भिन्नमेवाभिन्नमेवेति परिकल्पना स्यात्। स्वरूपविपर्यासः-रूपादयो निर्विकल्पाः संति न संत्येव वा तदाकारपरिणतं विज्ञानमेव न तदालंबनं बाह्यं वस्त्विति। एवं कुमतिज्ञानबलाधानेन कुश्रुतविकल्पा भवंति। एतेषां सर्वं मूलकारणं मिथ्यात्वकर्मोदय एवेति निश्चेतव्यं ॥ १८ ॥ अथ सासादनगुणस्थानस्वरूपं सूत्रद्वयेन आह-

मं० प्र०---यो जीवः उपदिष्टं-परमगुरुभिर्दर्शितं प्रवचनं--पूर्वापरविरोधादिदोषरहितमाप्तवचनं न श्रद्धाति, उपदिष्टं अनुपदिष्टं वा आचार्याभासैर्व्याख्यातं स्वेच्छाचर्चितं वा असद्भावं कुश्रुतं श्रद्धाति सः मिथ्यादृष्टिर्भवतीति लक्षयितव्यः। प्रकृष्टस्य--ज्ञानवैराग्यादिगुणैरुत्कृष्टस्य पुरुषस्य वचनं प्रवचनं। प्रकृष्ट निर्दोषं--सर्वहितं सयुक्तिकं वा वचनं प्रवचनं परमागम इत्यर्थः। असंतः--अपरमार्थाः भावाः--पदार्थाः, यस्मिन् तत् असद्भावं कुश्रुतमित्यर्थः। परमागमाश्रद्धानं मिथ्यागमश्रद्धानं च मिथ्यादृष्टेश्चिह्नमित्ययमस्य गाथासूत्रस्य भावार्थः ॥ १८ ॥ अथ सासादनगुणस्थानप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह--

स० चं०---मिथ्यादृष्टि जीव है सो उपदिष्ट कहिए अर्हंत आदिकनिकरि उपदेस्या हूआ प्रवचन कहिए आप्त आगम पदार्थ इनि तीनोंकौं नाहीं श्रद्धै है[2] जातैं प्र कहिए उत्कृष्ट है वचन जाका ऐसा प्रवचन कहिए आप्त बहुरि प्रकृष्ट जो परमात्मा ताका वचन सो प्रवचन कहिए परमागम बहुरि प्रकृष्टं उच्यते कहिए प्रमाणकरि निरूपिए ऐसा प्रवचन कहिए पदार्थ, याप्रकार निरुक्तिकरि प्रवचन शब्दकरि आप्त आगम पदार्थ तीनोंका अर्थ हो है। बहुरि सो मिथ्यादृष्टि असद्भाव कहिए मिथ्यारूप, प्रवचन कहिए आप्त आगम पदार्थ, उपदिष्ट कहिए आप्तकीसी आभासा लिए कुदेव कुगुरु जे हैं तिनकरि उपदेस्या हूआ अथवा अनुपदिष्ट कहिए विना उपदेस्या हूआ ताकौं श्रद्धान करै है। बहुरि वादीका अभिप्राय लेइ उक्तं च-गाथा कहै हैं---

"घडपडथंभादिपयत्थेसु मिच्छाइट्ठी जहावगमं।
सद्दहतोवि अण्णाणी उच्चदे जिणवयणे सद्दहणाभावादो ॥"

याका अर्थ--घट पट स्तंभ आदि पदार्थनिविषैं मिथ्यादृष्टी जीव यथार्थ ज्ञानलीएं श्रद्धान करता भी अज्ञानी कहिए

१ "तद्भेदोऽप्यनेनैव वाक्येन ज्ञातव्य·" इति ख पुस्तके पाठ। २ क, पुस्तकमें श्रद्धहै है यह पाठ है।

जातैं जिनवचनविषैं श्रद्धानका अभाव है। ऐसा सिद्धांतका वाक्यकरि कह्या मिथ्यादृष्टिका लक्षण जानैं। सो मिथ्यात्वभाव त्यजना योग्य है। ताका भेद भी इस ही वाक्यकरि जानना। सो कहिए हैं-कोऊ मिथ्यादर्शनरूप परिणाम आत्माविषैं प्रकट हूआ थका वर्णरसादिकी उपलब्धि जो ज्ञानकरि जाननेकी प्राप्ति ताहि होते संतैं कारणविपर्यास बहुरि भेदाभेदविपर्यास बहुरि स्वरूपविपर्यासकौं उपजावै है। तहां कारणविपर्यास प्रथम कहिए है रूप रसादिकनिका एक कारण है सो अमूर्तीक है नित्य है ऐसैं कल्पना करै है। अन्य कोई 'पृथ्वी आदि जातिभेद लीए भिन्न २ परमाणु हैं ते पृथ्वीके च्यारि गुणयुक्त, अप्के गंधविना तीन गुणयुक्त, अग्निके रसविना दोय गुणयुक्त, पवनके एक स्पर्शगुणयुक्त परमाणु हैं ते अपनी समान जातिके कार्यनिकों निपजावन हारे हैं' ऐसा वर्णन करै है। या प्रकार कारणविषैं विपरीतभाव जानना। बहुरि भेदाभेदविपर्यास कहै हैं-कार्यतैं कारण भिन्न ही है अथवा अभिन्न ही है ऐसा कल्पना भेदाभेदविषै अन्यथापना जानना। बहुरि स्वरूपविपर्यास कहै हैं-रूपादिक गुण निर्विकल्प हैं। कोऊ कहै-हैं ही नाहीं। कोऊ कहै-रूपादिकनिके जाननेकरि तिनके आकार परिणया ज्ञान ही है, तिनका अवलंबन बाह्य वस्तु है ही नाहीं। ऐसा विचार स्वरूपविषैं मिथ्यारूप जानना। याप्रकार कुमतिज्ञानका बलका आधारकरि कुश्रुतज्ञानके विकल्प हो हैं। इनका सर्व मूलकारण मिथ्यात्व कर्मका उदय ही है ऐसा निश्चय करना ॥ १८ ॥ आगै सासादनगुणस्थानका स्वरूप दोय सूत्रनिकरि कहै हैं--

आदिमसम्मत्तद्धा समयादो छावलित्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो णासियसम्मोत्ति सासणक्खो सो ॥१९॥

आदिमसम्यक्त्वाद्धा आसमयतः षडावलिरिति वा शेषे।
अनान्यतरोदयात् नाशितसम्यक्त्व इति सासानाख्यः सः ॥ १९ ॥

जी० प्र०--प्रथमोपशमसम्यक्त्वकाले जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन आवलिषट्के च अवशिष्टे सति अनंतानुबंधिकषायचतुष्के अन्यतमक-

षायस्योदये जाते यो विनाशितसम्यक्त्वो जायते स सासादन इत्युच्यते । वाशब्देन द्वितीयोपशमसम्यक्त्वकालेऽपि सासादनगुणस्थानप्राप्तिर्भवति इति कषायप्राभृताभिप्रायो भवति ॥ १९ ॥

मं० प्र०----आदिमसम्यक्त्वस्य-प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य, वाशब्दात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वस्य वा अद्धाकालः- अंतर्मुहूर्तप्रमितः, तत्र एकसमयात्प्रभृतिषडावलिपर्यंते यथासंभवावशेषे सति अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभानां मध्ये अन्यतमकषायस्योदयात् यो जीवः नाशितसम्यक्त्वः स सासनाख्य इति ज्ञातव्यः । असनं--क्षेपणं सम्यक्त्वविराधनं, तेन सह वर्तते यः स सासन इति निरुक्त्या सासन इत्याख्या यस्यासौ सासनाख्यः--सासादनसम्यग्दृष्टिरित्यर्थः । अनंतानुबंधिकषायाणां चारित्रमोहत्वेऽपि सम्यक्त्वचारित्रघातकत्वस्वभावात् । न खलु स्वभावः आक्षेपमर्हति अग्निर्दहति वायुर्वातीत्यादिवत् । ननु सासादनस्य अनंतानुबंध्यन्यतमोदयजनितत्वेन कथं पारिणामिकत्वं ? इति चेत् न, विवक्षितदर्शनमोहोदयाद्यभावात् । अनंतानुबंधिनश्च दर्शनमोहत्वाभावात् तस्य चारित्रमोहे पठितत्वात् । ननु सम्यग्दर्शनघातकस्यानंतानुबंधिनः कथं दर्शनमोहत्वाभावः ? इति चेत्, न-तस्य चारित्रघातकतीव्रतमानुभागमहिम्ना चारित्रमोहत्वस्यैव युक्तत्वात् । तर्हि कथं तस्मात् सम्यग्दर्शनविनाशः ? इति चेत्, अनंतानुबंध्युदये सति षडावलिरूपस्तोककालव्यवधानेऽपि मिथ्यात्वकर्मोदयाभिमुख्ये सत्येव सम्यग्दर्शनविनाशसंभवात् । अत एव मिथ्यात्वोदयनिरपेक्षतया सासादनत्वं भवतीति पारिणामिकभावत्वमुक्तं । परिणामः स्वभावः, तस्माद्भव पारिणामिक इति व्युत्पत्तेः । नन्वेवं कथमनंतानुबंध्यन्यतमोदयान्नाशितसम्यक्त्व इत्युच्यते ? इति चेत्, न-मिथ्यात्वोदयाभिमुख्यसन्निहितस्य अनंतानुबंध्युदयस्य सम्यग्दर्शनविनाशसंभवेन तदुदयात्तद्विनाश इति वचनाविरोधात् । किं बहुना अनंतानुबंधिनः सम्यक्त्वविनाशसामर्थ्यशक्तिसंभवेऽपि मिथ्यात्वोदयाभिमुख्ये सत्येव तत्सामर्थ्यव्यक्तिरिति सिद्धो नः सिद्धांतः । ननु सासादनसम्यग्दृष्टौ किं तत्त्वरुचिः, किमतत्त्वरुचिः, किमुभयरुचिः, किमनुभयं वा ? यदि तत्त्वरुचिस्तदा सम्यग्दृष्टिरेवासौ, यद्यतत्त्वरुचिस्तदा मिथ्यादृष्टिरेवासौ, यद्युभयरुचिस्तदा सम्यग्मिथ्यादृष्टिरेवासौ यद्यनुभयरुचिस्तदा आत्माभावः स्यात् । श्रद्धानमात्मनो गुणस्तदभावे गुणिनः–आत्मनोऽप्यभावप्रसंगात् सासादनगुणस्थानस्याभावः प्राप्नोति, इति चेत्, न–अतत्त्वरुचिपक्षस्य स्वीकारात् तत्त्वश्रद्धानविनाशे अतत्त्वश्रद्धानस्यावश्यंभावात् । सासादने हि अव्यक्तमतत्त्वश्रद्धानं मिथ्यादृष्टौ व्यक्तमिति विभागः स्वीकर्तव्यः ततोऽस्ति सासादनगुणस्थानं ॥ १९ ॥

स० चं०–प्रथमोपशम सम्यक्त्वका कालविषै जघन्य एकसमय,उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं अनंतानुबंधी च्यारि कषायनिविषै अन्यतम कोई एकका उदय होते संतै नष्ट कीया है सम्यक्त्व जानै ऐसा होइ सो सासादन ऐसा कहिए । बहुरि वा शब्दकरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका कालविषै भी सासादन गुणस्थानकी प्राप्ति हो है ऐसा कषायप्राभृतनामा यतिवृषभाचार्यकृत महाधवल ग्रंथका अभिप्राय है । जो मिथ्यात्वतैं चतुर्थादि गुणस्थाननिविषै उपशम सम्यक्त्व होइ सो प्रथमोपशम सम्यक्त्व है । बहुरि उपशमश्रेणी चढते क्षायोपशमिक सम्यक्त्वतैं जो उपशम सम्यक्त्व होय सो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जानना ॥ १९ ॥

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो सासणणामो मुणेयव्वो ॥ २० ॥

सम्यक्त्वरत्नपर्वतशिखरात् मिथ्यात्वभूमिसमभिमुखः।
नाशितसम्यक्त्वः सः सासननामा मंतव्यः ॥ २० ॥

जी० प्र०—यो जीवः सम्यक्त्वपरिणामरूपरत्नशिखरात् मिथ्यात्वपरिणामरूपभूम्यभिमुखः सन् यावदंतरालकाले एकसमयात् षडावलिकालपर्यंते वर्तते स जीवो विनाशितसम्यक्त्वः सासादननामा ज्ञातव्यः ॥ २० ॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्वरूपं गाथाचतुष्टयेनाह—

म.प्र.—सम्यक्त्वमेव रत्नपर्वतः सम्यक्त्वरत्नपर्वतः सम्यग्ज्ञानादिगुणरत्नानामुत्पत्तिस्थानत्वात् सर्वोन्नतमुक्तिस्थानप्रापकत्वेनोन्नतत्वाच्च तस्य शिखरं सम्यक्त्वस्थितिचरमसमयः तस्मात्पतितः, मिथ्यात्वभूमिसमभिमुखः। यथा त्यक्तपर्वतशिखरः भूमिमप्राप्य पतन्नंतराले कियंतमपि कालं वर्तते कश्चित् तथा यः नाशितसम्यक्त्वः सन् मिथ्यात्वभूमिमप्राप्य षडावलिमात्रांतरालकाले वर्तते स सासननामा,सासादनसम्यग्दृष्टिरिति ज्ञातव्यः। सह आसादनेन—विराधनया वर्तते या सा सासादना, सासादना सम्यग्दृष्टिः—सम्यग्दर्शनं यस्यासौ सासादनसम्यग्दृष्टिः—विनाशितसम्यक्त्व इत्येकोऽर्थः ॥ २० ॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानस्वरूपं गाथाचतुष्टयेन प्ररूपयति——

स० चं०—जो जीव सम्यक्त्वपरिणामरूपी रत्नपर्वतके शिखरतैं मिथ्यात्वपरिणामरूपी भूमिकाके सन्मुख होता संता पडिकरि जितना अंतरालका काल एकसमय आदि छह आवली पर्यंत है तिहिंविषै वर्तै सो जीव नष्ट कीया है सम्यक्त्व जानै असा सासादन नाम धारक जानना ॥ २० ॥ आगै सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानका स्वरूप गाथा च्यारि करि कहै हैं—

सम्मामिच्छुदयेण य जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण।
ण य सम्मं मिच्छं पि य सम्मिस्सो होदि परिणामो ॥ २१ ॥

सम्यग्मिथ्यात्वोदयेन च जात्यंतरसर्वघातिकार्येण ।
न च सम्यक्त्वं मिथ्यात्वमपि च, सम्मिश्रो भवति परिणामः ॥ २१ ॥

जी० प्र०---जात्यंतरसर्वघातिकार्यरूपसम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन जीवस्य युगपत्सम्यक्त्वमिथ्यात्वशबलितरूपपरिणामो भवति तेन सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृत्युदयेन मिथ्यात्वकर्मोदयवन्न केवलं मिथ्यात्वं परिणामो भवति नापि सम्यक्त्वप्रकृत्युदयवत् सम्यक्त्वपरिणामो भवति ततः कारणात् तत्कार्यं जात्यंतररूपसम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामशबलितं भवतीति ज्ञातव्यं ॥ २१ ॥

मं.प्र.- जात्यंतरसर्वघातिकार्येण सम्यग्मिथ्यात्वोदयेन कस्यचिज्जीवस्य केवलं सम्यक्त्वमेव केवलं मिथ्यात्वमेव वा न च-नैव भवति। अपिचेत्येतत् पक्षद्वयसमुच्चयार्थं। किंतु संमिश्रः-सम्यग्मिथ्यात्वव्यामिश्रः-आप्तागमपदार्थश्रद्धानसंकीर्णानाप्तागमपदार्थश्रद्धानरूपपरिणामो भवति । सर्वघातिनः कार्यं सर्वघातिकार्यं-अतत्त्वश्रद्धानं जात्यंतरं तत्त्वश्रद्धानसंमिश्रं सर्वघातिकार्यं यस्यासौ जात्यंतरसर्वघातिकार्य.--सम्यग्मिथ्यात्वकर्मोदयः, तेन, अतएवायं परिणामः क्षायोपशमिक इति पूर्वमेवोक्त.॥२१॥

स० चं०---जात्यंतर कहिए जुदीही एकजाति भेद लीएं जो सर्वघातिया कार्यरूप सम्यग्मिथ्यात्व नामा दर्शनमोहकी प्रकृति ताका उदयकरि मिथ्यात्व प्रकृतिका उदयवत् केवल मिथ्यात्व परिणाम भी न होइ है अर सम्यक्त्व प्रकृतिका उदयवत् केवल सम्यक्त्व परिणाम भी न होइ है तिहिं कारणतें तिस सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिका कार्यभूत जुदी ही जातिरूप सम्यग्मिथ्यात्वपरिणाम मिलाया हूआ मिश्ररूप हो है ऐसा जानना ॥ २१ ॥

दहिगुडमिव वामिस्सं पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं ।
एवं मिस्सयभावो सम्मामिच्छोत्ति णादव्वो ॥ २२ ॥

दधिगुडमिव व्यामिश्रं पृथग्भावं नैव कर्तुं शक्यं ।
एवं मिश्रकभावः सम्यग्मिथ्यात्वमिति ज्ञातव्यं ॥ २२ ॥

जी० प्र०---इव-यथा, व्यामिश्रं-संमिश्रं, दधिगुडं पृथग्भावं कर्तुं नैव शक्यं भवति एवं तथा सम्यग्मिथ्यात्वं-संमिश्रपरिणामोऽपि केवलसम्यक्त्वभावेन वा केवलमिथ्यात्वभावेन वा पृथग्भावेन व्यवस्थापयितुं नैव शक्यो भवति अतः कारणात् स सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यो भवति। समीचीना चासौ मिथ्या च सम्यग्मिथ्या, सा दृष्टिः-श्रद्धानं यस्यासौ सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति व्युत्पत्तेरपि पूर्वपरिगृहीतातत्त्वश्रद्धानापरित्यागेन सह तत्त्वश्रद्धानं भवति तथासंभवकारणसद्भावात् ॥ २२ ॥

मं.प्र.—व्यामिश्रं दधिगुडमिव यथा पृथग्भावं कर्तुं नैव शक्यं, एवं सम्यग्मिथ्यात्वमिति मिश्रभावोऽपि पृथक्कर्तुं न शक्यत इति ज्ञातव्यः। ननु सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामः क्रमेण युगपद्वा ? क्रमेण चेत् यदा सम्यक्त्वं तदा सम्यग्दृष्टिरेवासौ, यदा मिथ्यादृष्टिस्तदा मिथ्यादृष्टिरेवासौ न सम्यग्मिथ्यदृष्टिर्नाम कश्चित् संभवति। युगपच्चेत् शीतोष्णादिवत्सहानवस्थालक्षणविरोधात्तन्न्यासंभव एव ? इति चेत्, न—मित्रामित्रादिव्यवहारवदेकस्यापि युगपद्भिन्नविषयापेक्षया तादृशोभयात्मकत्वस्य विरोधाभावात्। यथा कस्यचित् मित्रं प्रति मित्रत्व, चैत्रं प्रत्यमित्रत्वमित्युभयात्मकत्वविरुद्धं लोके दृश्यते तथा कस्यचित्पुरुषस्य अर्हदादिश्रद्धानापेक्षया सम्यक्त्वं, अनाप्तादिश्रद्धानापेक्षया मिथ्यात्वं च युगपदेव विषयभेदेन संभवतीति सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वमविरुद्धमेव दृश्यत इति सिद्धं तृतीयगुणस्थानं वस्तुव्यवस्थायाः प्रतीत्यनुसारित्वात् ॥ २२ ॥

स॰ चं॰—इव कहिए जैसैं, व्यामिश्रं कहिए मिल्या हूआ दही गुड सो पृथग्भावं कर्तुं कहिए जुदा जुदा भाव करनेकौं नैव शक्यं कहिए नाहीं समर्थपना है एवं कहिए तैसैं सम्यग्मिथ्यात्वरूप मिल्या हूआ परिणाम सो केवल सम्यक्त्वभावकरि अथवा केवल मिथ्यात्वभावकरि जुदा जुदा भावकरि स्थापनेकौं नाहीं समर्थपना है। इस कारणतैं सम्यग्मिथ्यादृष्टि ऐसा जानना योग्य है। समीचीन अर सोइ मिथ्या सो सम्यग्मिथ्या ऐसा है दृष्टि कहिए श्रद्धान जाकैं सो सम्यग्मिथ्यादृष्टि है इस युक्तितैं भी पूर्वैं ग्रह्या जो अतत्त्वश्रद्धान ताका सर्वथा त्याग विना तीहिं सहित ही श्रद्धान हो है। जातैं तैसैं ही संभवता प्रकृतिका उदयरूप कारणका सद्भाव है ॥ २२ ॥

सो संजमं ण गिण्हदि देसजमं वा ण बंधदे आउं।
सम्मं वा मिच्छं वा पडिवज्जिय मरदि णियमेण ॥ २३ ॥

स संयमं न गृह्णाति देशयमं वा, न बध्नाति आयुः।
सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते नियमेन ॥ २३ ॥

जी॰ प्र॰—सः-सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्जीवः सकलसंयमं देशसंयमं वा न गृह्णाति तद्ग्रहणयोग्यकरणपरिणामानां तस्मिन्नसंभवात्। तथा स चतुर्गतिनिबंधनानि आयूंष्यपि न बध्नाति मरणकाले नियमेन सम्यग्मिथ्यात्वपरिणामं त्यक्त्वा, असंयतसम्यग्दृष्टित्वं वा मिथ्यादृष्टित्वं वा नियमेन प्राप्यैव पश्चान्म्रियते ॥ २३ ॥

मं० प्र०—सः-सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्जीवः, संयमं-महाव्रतं, देशसंयमं-अणुव्रतं च, न गृह्णाति किमप्यायुर्न बध्नाति च। वाशब्दः समुच्चयार्थः। यदा म्रियते तदा नियमेन सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने वर्तमानस्य मरणं नास्ति इत्यर्थः॥ २३॥

स० चं०—सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव है सो सकलसंयम वा देशसंयमकौं ग्रहण करै नाहीं जातैं तिनके ग्रहण योग्य जे करणरूप परिणाम तिनिका तहां मिश्रगुणस्थानविषै असंभव है। बहुरि तैसैं ही सो मिथ्यादृष्टि जीव च्यारि गतिसंबंधी आयुकौं नाहीं बांधै है। बहुरि मरणकालविषै नियमकरि सम्यग्मिथ्यात्वरूप परिणामकौं छोडि असंयत सम्यग्दृष्टीपनाकौं वा मिथ्यादृष्टीपनाकौं नियमकरि प्राप्त होइ पीछे मरै है। भावार्थ--मिश्रगुणस्थानतैं पंचमादि गुणस्थानविषै चढना नाहीं है। बहुरि तहां आयुबंध मरण नाहीं है॥ २३॥

सम्मत्तमिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि॥ २४॥

सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामेषु यत्रायुष्कं पुरा बद्धं।
तत्र मरणं मरणांतसमुद्घातोऽपि च न मिश्रे॥ २४॥

जी० प्र०—सम्यक्त्वपरिणाममिथ्यात्वपरिणामयोर्मध्ये यस्मिन् परिणामे, पुरा-सम्यग्मिथ्यादृष्टित्वप्राप्तेः पूर्वं परभवायुष्कर्म बद्धं तस्मिन्नेव परिणामे सम्यक्त्वरूपे वा मिथ्यात्वरूपे वा गतस्यैव जीवस्य मरणं भवतीति नियमः कथितः, अन्येषामाचार्याणामभिप्रायेण नियमो नास्ति। तद्यथा-सम्यक्त्वपरिणामे वर्तमानः कश्चिज्जीवः तद्योग्यं परभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते। कश्चिज्जीवः मिथ्यात्वे वर्तमानः तद्योग्यमुत्तरभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं प्रतिपद्य म्रियते। इदं बद्धायुष्कं प्रत्युक्तं तथा मारणांतिकसमुद्घातोऽपि मिश्रगुणस्थाने नास्ति॥ २४॥ अथासंयतगुणस्थानस्वरूपं निरूपयति—

मं० प्र०—सम्यक्त्वमिथ्यात्वपरिणामयोर्मध्ये यस्मिन् परिणामे पुरा-सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानप्राप्तेः पूर्वं, परभवायुष्कर्म बद्धं तस्मिन्नेव परिणामे सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे वा वर्तमानस्य जीवस्य मरणं भवतीति नियम उक्तः। अन्येषामाचार्याणामभिप्रायेण नियमो नास्ति। तद्यथा-सम्यक्त्वपरिणामे वर्तमानः कश्चिज्जीवः तद्योग्यं परभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते, कश्चित् जीवः मिथ्यात्वे वर्तमानः तद्यो-

ग्यमुत्तरभवायुर्बद्ध्वा पुनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भूत्वा पश्चात् सम्यक्त्वं वा मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते, इदं बद्धायुष्कं प्रत्युक्तं। तथा मिश्रे मारणांतिकसमुद्घातोऽपि नास्ति ॥२४॥ अथासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानं सम्यक्त्वभेदकथनपूर्वकं गाथापंचकेन प्ररूपयति—

स० चं०—सम्यक्त्वपरिणाम अर मिथ्यात्वपरिणाम इनि दोऊनिविषै जिह परिणामविषै पुरा कहिए मिथ्यादृष्टीपनांकौ प्राप्ती भएं पहिलै परभवका आयु बंध्या होइ तींहिं सम्यक्त्वरूप वा मिथ्यात्वरूपपरिणामविषै प्राप्त भया ही जीवका मरण हो है ऐसा नियम कहिए है बहुरि अन्य केई आचार्यनिके अभिप्रायकरि नियम नाहीं है सोई कहिए है-सम्यक्त्वपरिणामविषै वर्तमान कोई जीव यथायोग्य परभवके आयुकौं बांधि बहुरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि होइ पीछै सम्यक्त्वकौं वा मिथ्यात्वकौं प्राप्त होइ मरै है। मिथ्यात्वपरिणामविषैं वर्तमान सो यथायोग्य परभवका आयु बांधि बहुरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि होइ पीछै सम्यक्त्वकौं वा मिथ्यात्वकौं प्राप्त होइ मरै है। बहुरि तैसैं ही मारणांतिक समुद्घात भी मिश्रगुणस्थानविषैं नाहीं है ॥ २४ ॥ आगैं असंयत गुणस्थानके स्वरूपकौं निरूपै हैं—

सम्मत्तादेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं।
चलमलिनमगाढं तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥ २५ ॥

सम्यक्त्वदेशघातेरुदयाद्वेदकं भवेत्सम्यक्त्वं।
चलं मलिनमगाढं तन्नित्यं कर्मक्षपणहेतु ॥ २५ ॥

जी० प्र०—अनंतानुबंधिकषायाणां प्रशस्तोपशमो नास्ति इति तेषामप्रशस्तोपशमे विसंयोजने वा जाते दर्शनमोहनीयमिथ्यात्वकर्मसम्यग्मिथ्यात्वकर्मणोः प्रशस्तोपशांतयोः क्षपणीययोर्वा जातयोः सम्यक्त्वप्रकृतिदेशघातिस्पर्धकानामुदये सत्येव यत्तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणं सम्यक्त्वं भवेत् तद्वेदकनाम भवति। तत् सम्यक्त्वप्रकृत्युदये देशघातिस्पर्धकोदयस्य तत्त्वार्थश्रद्धानविनाशनसामर्थ्यशून्यत्वात् तत्सम्यक्त्वं चलं मलिनं अगाढं भवति सम्यक्त्वप्रकृत्युदयस्य तत्त्वार्थश्रद्धानस्य मलजननमात्र एव व्यापरात् ततः कारणात् तस्य देशघातित्वं भवति। एवं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतो जीवस्य जायमानं तत्त्वार्थश्रद्धानं वेदकसम्यक्त्वमित्युच्यते। इदमेव क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं नाम, दर्शनमोहसर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणक्षये देशघातिस्पर्धकरूपसम्यक्त्वप्रकृत्युदये तस्यैवोपरितनानुदयप्राप्तस्पर्धकानां सदवस्थालक्षणोपशमे च सति

समुत्पन्नत्वात् । नित्यमिति विशेषणेन जघन्येनांतर्मुहूर्तत्वेऽपि उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमस्थितिमात्रदीर्घकालावस्थायीत्युत्कृष्टविवक्षयोक्तं न तु सार्वकालिकं । कर्मक्षपणहेतु इत्यनेन मोक्षकारणसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेषु सम्यक्त्वमेव मुख्यकारणमिति सूचितं । वेदकसम्यक्त्वस्य शंकादिमला अपि यथासंभवं सम्यक्त्वनिर्मूलनोच्छेदनाकारणसम्यक्त्वप्रकृत्युदयादुत्पद्यंते । औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वयोर्मलजननकारणतदुदयाभावान्निर्मलत्वं सिद्धमिति जानीहि । चलादीनि लक्षयति । तत्र चलत्वं यथा—

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं ।
लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं ॥

नानात्मीयविशेषेषु आप्तागमपदार्थश्रद्धानविकल्पेषु चलतीति चलं स्मृतं । तद्यथा—

स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोयं मेऽन्यकारिते ।
अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥

स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ ममायं देव इति मदीयत्वेन, अन्यकारितेऽर्हच्चैत्यादौ परकीयत्वेन च भजनाच्चलमित्युक्तं । अत्र दृष्टांतमाह—नानाकल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं तथापि नानारूपेण चलति तथा मोहात् सम्यक्त्वप्रकृत्युदयात् श्रद्धानं भ्रमणं चेष्टते। अथ मलिनत्वं यथा—

तदप्यलब्धमाहात्म्यं यकात् सम्यक्त्वकर्मणः ।
मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥

तदपि सम्यक्त्वं सम्यक्त्वप्रकृत्युदयादलब्धमाहात्म्यं भवति । तच्च मलसंगेन मलिनं जायते यथा शुद्धं स्वर्णं तथा। अथागाढत्वं यथा—

स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते ।
वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥

स्थाने एव—आप्तागमपदार्थश्रद्धानावस्थायामेव स्थितं कंप्रमेव अगाढमिति कीर्त्यते । तद्यथा—

समेप्यनंतशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं ।
देवोऽस्मै प्रभुरेषोऽस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥

इति तीव्ररुचिरहितं भवति । तद्यथा—सर्वेषां अर्हत्परमेष्ठिनां अनंतशक्तित्वे समाने स्थितेऽपि अस्मै शांतिकर्मणे शांतिक्रियायै शांतिनाथदेवः प्रभुर्भवति, अस्मै विघ्नविनाशनादिकर्मणे विघ्नविनाशनादिक्रियायै पार्श्वनाथदेवः प्रभुरित्यादिप्रकारेण रुचिशैथिल्यसंभवात्। यथा वृद्धकरतलगतयष्टिः शिथिलसंबंधतया अगाढा तथा वेदकसम्यक्त्वमपि ज्ञातव्यं ॥ अथ औपशमिकक्षायिकसम्यक्त्वयोरुत्पत्तिकारणं स्वरूपं च प्रतिपादयति

मं० प्र०—दर्शनमोहनीयभेदस्य सम्यक्त्वप्रकृतेः सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये तेषामेव सदवस्थालक्षणे उपशमे च उदयनिषेकदेशघातिस्प-

धकस्योदयात् क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानं भवेत् तदेव वेदकमित्युच्यते । सम्यक्त्वप्रकृत्युदयमनुभवतः आत्मनः परिणामत्वात् वेदकमित्यागमप्रसिद्धत्वाद्वा । तद्वेदकसम्यक्त्व कथंभूत ? चल--नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं, तद्यथा–सर्वेषामर्हतामनतशक्तित्वे समानेऽपि अय देवः शांतिनाथः अस्मै शांतिकर्मणे समर्थः । एष पार्श्वनाथ अस्मै विघ्नविनाशकर्मणे समर्थः इत्याद्याप्तश्रद्धानभेदश्चलत्व । पुनरपि कथंभूत ? मलिनं--शकादिमलाना मध्ये यथासंभवमलसद्भावात् मलिनं । पुनरपि कथंभूतं ? अगाढं -अदृढं, तद्यथा--स्वेन कारिते अर्हत्प्रतिमादौ अय देवो ममेति, अन्यस्येति भ्रांत्या अर्हद्देवश्रद्धानस्य स्वपरसकल्पभेदेन शिथिलत्व अगाढ़त्व । एवं चलमलिनागाढ़त्व वेदकसम्यक्त्वस्य सम्यक्त्वप्रकृतिदेशघातिस्पर्धकोदयकार्यं न तु सम्यक्त्वमूलविनाशः तत्कार्यं । पुनरपि कथभूत ? नित्य जघन्येनातर्मुहूर्तस्थितित्वेऽपि, उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमस्थितिमात्रदीर्घकालस्थायि' न तु सार्वकालिक । पुनरपि कथमूतं ? कर्मक्षपणहेतु–कर्मक्षपणस्य सवरनिर्जरालक्षणस्य हेतुः–कारणं, सम्यग्दर्शनस्य ज्ञानचारित्रसम्यग्भावकरणत्वेन असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषु गुणस्थानेषु विशिष्टसंवरनिर्जराहेतुत्वप्रसिद्धेः ॥ २५ ॥

स० चं०—अनंतानुबंधी कषायनिका प्रशस्त उपशम नाहीं है इस हेतुतैं तिन अनंतानुबंधी कषायनिका अप्रशस्त उपशमकौं होते अथवा विसंयोजन होते बहुरि दर्शनमोहका भेदरूप मिथ्यात्वकर्म अर सम्यग्मिथ्यात्वकर्म इनि दोऊनिकौं प्रशस्त उपशम रूप होतैं वा अप्रशस्त उपशम होतैं वा क्षय होनेके सन्मुख होतैं बहुरि सम्यक्त्व प्रकृतिरूप देशघातियास्पर्धकोंका उदय होतैं ही जो तत्त्वार्थ श्रद्धान है लक्षण जाका ऐसा सम्यक्त्व होइ सो वेदक ऐसा नाम धारक है। जहां विवक्षित प्रकृति उदय आवनेयोग्य न होइ अर स्थिति अनुभाग घटनैं वा बधनैं वा संक्रमणादि होनैं योग्य होइ तहां अप्रशस्तोपशम जानना। बहुरि जहां उदय आवने योग्य न होइ अर स्थिति अनुभाग घटने बंधने वा संक्रमण होने योग्य भी न होइ तहां प्रशस्तोपशम जानना । बहुरि तिहिं सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होतैं देशघातिया स्पर्धकनिकैं तत्त्वार्थश्रद्धान नष्ट करनेकी सामर्थ्यका अभाव है तातैं सो सम्यक्त्व चल मालिन अगाढ है। जातैं सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयका तत्त्वार्थ श्रद्धानकौं मल उपजावने मात्रहीविषैं व्यापार है तीहिं कारणतैं तिस सम्यक्त्वप्रकृतिकैं देशघातिपना है ऐसैं सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयकौं अनुभवता जीवके उत्पन्न भया जो तत्त्वार्थश्रद्धान सो वेदक सम्यक्त्व है ऐसा कहिए है। यह ही वेदक सम्यक्त्व है सो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ऐसा नामधारक है जातैं दर्शनमोहके सर्वघाती स्पर्धकनिका उदयका अभावरूप

जो तसवहाउ विरदो अविरदओ तह य थावरवहादो ।
एक्कसमयम्हि जीवो विरदाविरदो जिणेक्कमई ॥ ३१ ॥

यस्त्रसवधाद्विरतः अविरतस्तथा च स्थावरवधात् ।
एकसमये जीवो विरताविरतो जिनैकमतिः ॥ ३१ ॥

जी० प्र०—स एव विरताविरत इति व्यपदिश्यते एककाले एव यस्त्रसवधाद्विरतः स्थावरवधादविरतः स जीवः । विरतश्चासावविरतश्चेति विषयभेदापेक्षया अविरोधेन विरताविरत इति व्यपदेशार्हो भवति । तथा चशब्देन प्रयोजनं विना स्थावरवधमपि न करोतीति व्याख्येयो भवति । जिनेषु-आप्तादिषु एका-केवला, मतिः इच्छा, रुचिः, यस्यासौ जिनैकमतिः । इत्यनेन देशसंयतस्य सम्यग्दृष्टित्वविशेषणं निरूपितं जातं । इदमेव आदिदीपकत्वेन उत्तरत्रापि गुणस्थानेषु विशेषणत्वेन संबंधनीयं भवति ॥ ३१ ॥ प्रमत्तगुणस्थानं गाथाद्वयेनाह—

म० प्र० यो जीवः त्रसवधाद्विरतः स्थावरवधादविरतः जिनैकमतिः जिनेषु-आप्तागमपदार्थेषु, एका-असहाया, मतिः श्रद्धा, यस्यासौ जिनैकमतिः, सम्यग्दृष्टिरित्यर्थः स एकस्मिन्नेव समये-काले-युगपदेव, विरताविरतः-विरतश्चासौ अविरतश्चासौ विरताविरतः-सयतासंयतो भवति त्रसवधस्थावरवधविषयभेदात् मित्रत्वामित्रत्वादिवन्न विरोधः । तथा चेत्यनेन प्रयोजनं विना स्थावरवधमपि न करोतीत्ययमर्थः सूच्यते । स एव देशसयत इत्युच्यते । देशेन-एकदेशेन त्रसवधनिवृत्त्याश्रयेण संयतो विरतो देशसंयतो भवति ॥ ३१ ॥ अथ प्रमत्तसयतगुणस्थानकथनार्थं गाथाद्वयमाह—

स० चं०—सोई देशसंयत विरताविरत ऐसा भी कहिए है एक काल ही विषै जो जीव त्रसहिंसातैं विरत है अर स्थावरहिंसातैं अविरत है सो जीव विरत अर सोई अविरत ऐसैं विरत अविरतविषै विरोध है तथापि अपने अपने गोचर भाव त्रस स्थावरके भेद अपेक्षाकरि विरोध नाहीं तीहिंकरि विरत अविरत ऐसा उपदेश योग्य है। बहुरि तैसैं चकार शब्दकरि प्रयोजन विना स्थावर हिंसाकौं भी नाही करै है। ऐसा व्याख्यान करना योग्य है। सो कैसा है ? जिनैकमति कहिए जिन जे आप्तादिक तिनहीविषै है एक केवल मति कहिए इच्छा रुचि जाकै ऐसा है। इसकरि देशसंयतकै सम्यग्दृष्टीपना ऐसा विशेषण निरूपण कीया है। यहु विशेषण आदि दीपक समान है सो आदिविषैं धरया हुवा दीपक जैसैं अगिले सर्व पदार्थनिकौं प्रकाशै तैसैं इहांतैं आगै भी स-

विशेषण वाचक मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननिविषैं अविरतपनाकौं प्रकाशै है ऐसा संबंध जानना। बहुरि अपि-शब्दकरि अनुकंपा भी है। भावार्थ—कोऊ जानैगा कि विषयनिविषैं अविरती है तातैं विषयानुरागी बहुत होगा सो नाहीं है संवेगादि गुणसंयुक्त है बहुरि हिंसादिविषैं अविरती है तातैं निर्दयी होगा सो नाहीं है दया भाव संयुक्त है ऐसा अविरतसम्यग्दृष्टि है ॥ २९ ॥ आगैं देशसंयत गुणस्थानकौं गाथा दोयकरि निर्देश करै हैं—

पच्चक्खाणुदयादो संजमभावो ण होदि णवरिं तु।
थोववदो होदि तदो देसवदो होदि पंचमओ ॥ ३० ॥

प्रत्याख्यानोदयात् संयमभावो न भवति नवरिं तु।
स्तोकवृतं भवति ततो देशवृतो भवति पंचमः ॥ ३० ॥

जी०प्र—अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणकषायाष्टकोपशमात् प्रत्याख्यानावरणकषायाणां देशघातिस्पर्धकोदये जाते सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणक्षयेन सकलसंयमभावो न भवति। णवरिं विशेषोऽस्ति पुनः स एव विशेषो दर्श्यते—स्तोकव्रतं-देशसंयमो भवति। तद्वान् देशसंयतनामा पंचमगुणस्थानवर्ती जीवो ज्ञातव्यः ॥ ३० ॥

मं० प्र०--प्रत्याख्यानस्य-प्रत्याख्यानावरणस्य कषायस्य, उदयात् संयमभावः--सकलचारित्रपरिणामो न भवति। प्रत्याख्यानं-सकलसंयमं, आवृणोतीति प्रत्याख्यानावरणः तृतीयः क्रोधादिकषाय, नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तत इति न्यायात् प्रत्याख्यानावरणे प्रत्याख्यानशब्दः प्रयुक्तः। तु-पुनः, णवरिं विशेषोऽस्ति स एव विशेषो दर्श्यते-स्तोकव्रतं देशसंयमो भवति ततः कारणात् पंचमः-पंचमे देशसंयमगुणस्थाने वर्तमानो जीवो देशसंयतो भवति। प्रत्याख्यानावरणकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणे क्षये तेषामेव सदवस्थालक्षणे उपशमे च देशघातिस्पर्धकोदयादुत्पन्नत्वाद्देशसंयमः क्षायोपशमिक इति प्रतिपादितः ॥ ३० ॥

स० चं०—अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण रूप आठ कषायनिका उपशमतैं प्रत्याख्यानावरण कषायनिका देशघाती स्पर्धकनिका उदय होतैं संतैं सर्वघाती स्पर्धकनिका उदयाभावरूप लक्षण जाका ऐसा क्षयकरि जाकैं सकल संयमरूप भाव न हो है। विशेष यहु देश संयम कहिए किंचित् विरति हो है, ताकौं धरै देशसंयतनामा पंचमगुणस्थानवर्ती जीव जानना ॥ ३० ॥

हो है। जातैं सूत्रका अश्रद्धानकरि जिन आज्ञाका उलंघनका सुप्रसिद्धपना है तींहि कारणतैं मिथ्यादृष्टी हो है ॥ २८ ॥ आगैं असंयतपना अर सम्यग्दृष्टीपनाकैं सामानाधिकरण्यकौं दिखावैं हैं----

णो इंदियेसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि।

जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥ २९ ॥

नो इंद्रियेषु विरतो नो जीवे स्थावरे त्रसे वापि।

यः श्रद्दधाति जिनोक्तं सम्यग्दृष्टिरविरतः सः ॥ २९ ॥

जी० प्र०---यः इंद्रियविषयेषु नो विरतः-विरतिरहितः, तथा स्थावरत्रसजीववधेऽपि नो विरतः, जिनोक्तं प्रवचनं श्रद्दधाति स जीवः अविरतसम्यग्दृष्टिर्भवति। अनेन असंयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति समानाधिकरणत्वं समर्थितं जातं। अपिशब्देन संवेगादिसम्यक्त्वगुणाः सूच्यंते। अत्रत्यं अविरतत्वविशेषणं अंत्यदीपकत्वादधस्तनगुणस्थानेष्वपि संबंधनीयं। अपिशब्देन अनुकंपापि स्यात् ॥ २९ ॥ अथ देशसंयतगुणस्थानं गाथाद्वयेन निर्दिशति--

मं० प्र०--यो जीवः, इंद्रियेषु-इंद्रियविषयेषु, नो विरतः-न निवृत्तः, त्रसे स्थावरे वा जीवे नो विरतः-त्रसस्थावरजीववधान्न निवृत्तः, जिनोक्त-अर्हदाद्युपदिष्ट परमागमं श्रद्दधात्येव स अविरतसम्यग्दृष्टिरुच्यते। अपिशब्देनानुकंपादिगुणसद्भावान्निरपराधहिंसां न करोतीति सूच्यते। अनेन गाथात्रयेण असंयतत्वं निवृत्तं ॥ २९ ॥ अथ देशसंयतगुणस्थानं गाथाद्वयेन प्ररूपयति--

स० चं०---जो जीव इंद्रियविषयनिविषैं नोविरतः--विरतिरहित है बहुरि तैसैं ही स्थावर त्रस जीवकी हिंसाविषैं भी नाहीं विरत है-त्यागरहित है बहुरि जिनकरि उपदेश्या प्रवचनकौं श्रद्धान करै है सो जीव अविरत सम्यग्दृष्टी हो है। याकरि असंयत सोई सम्यग्दृष्टी सो असंयतसम्यग्दृष्टी है। ऐसैं समानाधिकरणपना दृढ कीया। बहुत विशेषणनिका एक वस्तु आधार होइ तहां कर्मधारय समासविषैं समानाधिरणपना जानना। बहुरि अपिशब्दकरि ताकैं संवेगादिक सम्यक्त्वके गुण भी याकैं पाइए है ऐसा सूचै है। बहुरि इहां जो अविरत विशेषण है सो अंत्यदीपक समान जानना। जैसैं छैहडैं धर्‍या हुवा दीपक पिछले सर्वपदार्थनिकौं प्रकाशै तैसैं इहां अविरत

ताहि श्रद्दधाति कहिए श्रद्धै है रोचै है। बहुरि तिनि आप्तादिकनिविषैं असद्भावं कहिए अतत्त्व अन्यथा रूप ताकौं भी अपने विशेष ज्ञानका अभावकरि केवल गुरुहीका नियोगतैं जो इस गुरुने कह्या सो ही अर्हंतकी आज्ञा है ऐसा प्रतीतितैं श्रद्धान करै है सो भी सम्यग्दृष्टि ही है जातैं तिसकी आज्ञाका उलंघन नाहीं करै है। भावार्थ— जो अपनैं विशेष ज्ञान न होइ बहुरि जैन गुरु मंदमतितैं आप्तादिकका स्वरूप अन्यथा कहैं अर यहु अर्हंतकी ऐसी ही आज्ञा है ऐसैं मानि जो असत्य श्रद्धान करै तौ भी सम्यग्दृष्टिका अभाव न होइ जातैं इसनैं तो अर्हंतकी आज्ञा जानि प्रतीति करी है ॥ २७ ॥

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी ॥ २८ ॥

सूत्रात्तं सम्यग्दर्शयंतं यदा न श्रद्दधाति।
स चैव भवति मिथ्यादृष्टिर्जीवः तदा प्रभृति ॥ २८ ॥

जी० प्र०—तथा असदर्थश्रद्धानः आज्ञासम्यग्दृष्टिर्जीवः यदा कुशलाचार्यान्तरैः प्राक्तनतद्गृहीतासदर्थरूपविपरीततत्त्व गणधरादिकथितं सूत्रं दर्शयित्वा सम्यक्प्ररूप्यमाणं तत दुराग्रहादेशेव न श्रद्दधाति तदा प्रभृति स जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवति। गणधरादिकथितसूत्राश्रद्धानेन आज्ञातिक्रमस्य सुप्रसिद्धत्वादेव कारणात् ॥ २८ ॥ अथासंयततत्त्वसम्यग्दृष्टित्वयोः सामानाधिकरण्यं प्रदर्शयति—

मं० प्र०—एवं गृहीतासत्यार्थः सः-सम्यग्दृष्टिः, युक्त्यागमकुशलेन-पापभीरुणा अधीत तात्कालिकमहुश्रुतेन अपरेणाचार्येण, सूत्रात् गणधरादिकथित सूत्रमाश्रित्य दर्श्यमान तं प्राग्गृहीतासत्यार्थविपरीत सम्यच–निर्दोषमर्थं, यदा न श्रद्दधाति तदा प्रभृति स एव जीवो मिथ्यादृष्टिर्भवति गणधरादिकथितसूत्रार्थाश्रद्धानात् ॥ २८ ॥

स० चं०—तैसैं असत्य अर्थ श्रद्धान करता आज्ञा सम्यग्दृष्टी जीव सो जिसकाल प्रवीण अन्य आचार्यनिकरि पूर्वै ग्रह्या हूवा असत्यार्थरूप श्रद्धानतैं विपरीत भावसत्यार्थ सो गणधरादिकनिके सूत्र दिखाइ सम्यक्प्रकार निरूपण कह्या हूआ होइ ताकौं खोटा हटकरि न श्रद्धान करै तौ तीहिं काकसौं लगाय सो जीव मिथ्यादृष्टी

मलनिकी अंशकाकी भी उत्पत्ति नाहीं संभवै है। बहुरि तैसैं दोऊ सम्यक्त्व निश्चल हैं जातैं आप्त आगम पदार्थ-गोचर श्रद्धान भेदनिविषैं कहीं भी स्खलित न हो है। बहुरि तैसैं ही दोऊ सम्यक्त्व गाढ हैं जातैं आप्तादिकविषैं तीव्ररुचि संभवै है। यहु मलका न संभवना स्खलित न होना तीव्ररुचिका संभवनां ए तीन सम्यक्त्व प्रकृतिका उदयका इहां अत्यंत अभाव है तातैं पाइए है ऐसा जानना। बहुरि याप्रकार कहे तीन प्रकार सम्यक्त्वनिकरि परिणया जो सम्यग्दृष्टि जीव सो द्वितीय कषाय जे अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ इनविषैं एक किसीका उदयकरि असंयत कहिए असंयमी हो है याका नाम असंयतसम्यग्दृष्टी है ॥ २६ ॥ आगें तत्त्वार्थश्रद्धानका सम्यक्प्रकार ग्रहण अर त्यागका अवसर ताहि गाथा दोयकरि कहै हैं–

सम्माइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा ॥ २७ ॥

सम्यग्दृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं अज्ञायमानो गुरुनियोगात् ॥ २७ ॥

जी० प्र० ---यः अर्हदाद्युपदिष्ट प्रवचनं आप्तागमपदार्थत्रयं श्रद्धधाति-रोचते, तेषु असद्भाव-अतत्त्वमपि स्वस्य विशेषज्ञानशून्यत्वेन केवलगुरुनियोगात् अर्हदाद्याज्ञातः श्रद्दधाति सोऽपि सम्यग्दृष्टिरेव भवति तदाज्ञाया अनतिक्रमात् ॥ २७ ॥

मं०--प्र०- तु-पुनः, उक्तलक्षणः सम्यग्दृष्टिर्जीवः, उपदिष्टं-अर्हदादिभिः प्रोक्तं, प्रवचन–परमागममेव श्रद्दधाति रोचते अभ्युपगच्छत्येव, तस्य नियमेन मिथ्यागमश्रद्धानाभावात् परगमाश्रद्धानाभावाच्च अन्यथा सम्यग्दृष्टित्वविरोधात्। स एव सम्यग्दृष्टिः कदाचिद्वचनाकौशलदुष्टाभिप्रायगृहीतविस्मरणादिदोषवतो गुरोः–आचार्यस्य, नियोगात्-उपदेशात्, असद्भावमपि-अविद्यमानार्थमपि, स्वयमजानान.-अनवबुध्यमानः सन् श्रद्दधाति, तथाप्यसौ सम्यग्दृष्टिरेव। स्वगुरुदोषाणामागमार्थसत्त्वस्य चापरिज्ञानात् गुरूपदेशस्य जिनोपदेशत्वाभिमानाच्च ॥ २७ ॥

स० चं०—जो जीव अर्हंतादिकनिकरि उपदेस्या हूवा ऐसा जु प्रवचन कहिए आप्त आगम पदार्थ ए तीन

सत्ताण्हं उवसमदो उवसमसम्मो खयादु खइयो य।
बिदियकसायुदयादो असंजदो होदि सम्मो य॥ २६ ॥

सप्तानामुपशमतः उपशमसम्यक्त्वं क्षयात्तु क्षायिकं च ॥
द्वितीयकषायोदयादसंयतं भवति सम्यक्त्वं च ॥ २६ ॥

जी०प्र०—न विद्यते अंतः-अवसानं यस्य तदनंतं मिथ्यात्वं, तदनुबध्नंतीत्येवं शीला अनंतानुबंधिनः क्रोधमानमायालोभाः, मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिनामदर्शनमोहत्रयं चेति सप्तप्रकृतीनां सर्वोपशमेनौपशमिकसम्यक्त्वमुत्पद्यते । तथा तासामेव सप्तप्रकृतीनां क्षयात् क्षायिकं सम्यक्त्वं भवति । इदमुभयसम्यक्त्वमपि निर्मलं भवति । शंकादिमललेशस्याप्यनुत्पत्तिसंभवात् । तथा निश्चलं भवति आप्तागमपदार्थविषयश्रद्धानविकल्पेषु क्वचिदपि स्खलनाभावात् । तथा गाढं भवति आप्तादिषु तीव्ररुचिसंभवात् । इदं मलासंभवादित्रयं तु सम्यक्त्वप्रकृत्युदयस्यात्रात्यंताभावादिति ज्ञातव्यं । एवमुक्तत्रिविधसम्यक्त्वैः परिणतसम्यग्दृष्टिः द्वितीयकषायाणां अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानामन्यतमोदयेन असंयतो भवति ॥ २६ ॥ अथ तत्त्वार्थश्रद्धानस्य ग्रहणत्यागावसरं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

म० प्र०—तिसृणा—मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतीना, चतुर्णां—अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभानां, एव सप्तप्रकृतीनामुपशमात्—उदयायोग्यपरिणामादौपशमिकं सम्यक्त्वं भवति । एतासामेव सप्तप्रकृतीना क्षयात्—प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशैः कर्मत्वपरिणतपुद्गलस्कंधस्य कर्मरूपत्वपरित्यागात् क्षायिक सम्यक्त्वं भवति । एतद् द्विविधमपि सम्यक्त्व निश्चल निर्मलं गाढ च भवति चलत्वादिकारणसम्यक्त्वप्रकृत्युदयाभावात्। एव चेत् औपशमिकसम्यक्त्वस्य क्षायिकवन्नित्यत्वं प्रसज्यते इति नाशंकितव्यं औपशमिकसम्यक्त्वस्यांतर्मुहूर्तमात्रस्वस्थितिक्षयान्नियमेन मिथ्यात्वादिकर्मण उदयसंभवादनित्यत्वप्रसिद्धेः । एवंविधसम्यक्त्वत्रये अन्यतमसम्यक्त्वपरिणतः कश्चिज्जीवः द्वितीयकषायाणा—अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभकषायाणामुदयादसयतो भवति । एव खलु—स्फुटं, असयतश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चासौ असयतसम्यग्दृष्टिरित्याख्यायते ॥ २६ ॥

याका अर्थ—नाहीं पाइए है अंत जाका ऐसा अनंत कहिए मिथ्यात्व ताहि अनुबध्नंति कहिए आश्रय करि प्रवर्तै ऐसैं अनंतानुबंधी क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ बहुरि मिथ्यात्व ५ सम्यग्मिथ्यात्व ६ सम्यक्त्व प्रकृति नाम धारक दर्शनमोहप्रकृति तीन ऐसैं सात प्रकृतिनिका सर्व उपशम होनैकरि औपशमिकसम्यक्त्व होहै बहुरि तैसैं तिनि प्रकृतिनिका क्षयतैं क्षायिक सम्यक्त्व हो है। बहुरि दोऊ सम्यक्त्व ही निर्मल हैं जातैं शंकादि

कराया जिनबिंबादिविषैं यहु मेरा यहु अन्यका इत्यादि विकल्प करै है परंतु अन्य देवादिककों नाहीं भजै है। अब मलिनपना कहिए है–

तदप्यलब्धमाहात्म्यं पाकात्सम्यक्त्वकर्मणः।
मलिनं मलसंगेन शुद्धं स्वर्णमिवोद्भवेत् ॥

याका अर्थ–सो भी वेदकसम्यक्त्व है सो सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयतैं न पाया है माहात्म्य जिहि ऐसा हो है बहुरि सो शंकादिक मलका संगकरि मलिन हो है जैसैं शुद्ध सौना बाह्य मलका संयोगतैं मैला होइ तैसैं वेदकसम्यक्त्व शंकादिक मलका संयोगतैं मलिन हो है। अब अगाढ कहिए है--

स्थान एव स्थितं कंप्रमगाढमिति कीर्त्यते। वृद्धयष्टिरिवात्यक्तस्थाना करतले स्थिता ॥
समेप्यनंतशक्तित्वे सर्वेषामर्हतामयं। देवोऽस्मै प्रभुरेषोस्मा इत्यास्था सुदृशामपि ॥

याका अर्थ––स्थान कहिए आप्त आगम पदार्थनिका श्रद्धानरूप अवस्था तिहिंविषैं तिष्ठता हूआ ही कांपै गाढा न रहै सो अगाढ ऐसा कहिए है ताका उदाहरण कहैं हैं-ऐसैं तीव्ररुचिरहित होय सर्व अर्हत परमेष्ठीनिकैं अनंतशक्तिपना समान होतैं[1] भी इस शांतिकर्म जो शांति क्रिया ताकै अर्थि शांतिनाथ देव है सो प्रभु कहिए समर्थ है। बहुरि इस विघ्ननाशन आदि क्रियाके अर्थि पार्श्वनाथ देव समर्थ है इत्यादि प्रकारकरि रुचि[2] जो प्रतीति ताकी शिथलता संभवै है। तातैं बूढेका हाथविषैं लाठी शिथिल संबंधपनाकरि अगाढ है तैसैं सम्यक्त्व अगाढ है। भावार्थ–जैसैं बूढेकें हाथतैं लाठी छूटैं नाहीं परंतु शिथिल रहै तैसैं वेदक सम्यक्त्वका श्रद्धान छूटै नाहीं। शांति आदिके अर्थि कुदेवादिकनिकों[3] न सेवै तथापि शिथिल रहै जैन देवादिकविषैं कल्पना उपजावै ऐसैं इहां चल मलिन अगाढका वर्णन उपदेशरूप उदाहरण मात्र कह्या है। सर्व तारतम्यभाव ज्ञानगम्य है। ॥ २५ ॥ आगैं औपशमिक क्षायिक सम्यक्त्वनिका उपजनेका कारण अर स्वरूप प्रतिपादन करैं हैं–

---

१ होतैं सतैं भी यह पाठ क पुस्तकमें है। २ क पुस्तकमें रुचिप्रतीतिकी शिथिलता संभवै है यह पाठ है। ३ अन्य देवादिकनिकौं यह पाठ क पुस्तकमें है।

है लक्षण जाका ऐसा क्षय होतैं बहुरि देशघातिस्पर्धकरूप सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होतैं बहुरि तिसहीका वर्तमान समयसबंधीतैं ऊपरिके निषेक उदयकौं न प्राप्त भए तिनिसंबंधी स्पर्धकनिका सत्ता अवस्थारूप है लक्षण जाका ऐसा उपशम होतैं वेदक सम्यक्त्व होहै तातैं याहीका दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है। भिन्न नाही है। सो वेदक सम्यक्त्व कैसा है? नित्यं कहिए नित्य है इस विशेषणकरि याकी जघन्यस्थिति अंतर्मुहूर्त है तथापि उत्कृष्टपनाकरि छ्यासाठि सागरप्रमाण काल रहै है तातैं उत्कृष्ट स्थिति अपेक्षा दीर्घकालताई रहै है तातैं नित्य कह्या है। बहुरि सर्वकाल अविनश्वर अपेक्षा नित्य इहां न जानना। बहुरि कैसा है? कर्मक्षपणहेतु कहिए कर्मक्षपावनेका कारण है। इस विशेषणकरि मोक्षके कारण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र परिणाम हैं तिनिविषैं सम्यक्त्व ही मुख्यकारण है ऐसा सूचै है। बहुरि वेदकसम्यक्त्वविषैं शंकादिक मल हैं ते भी यथासंभव सम्यक्त्वका मूलतैं नाश करनेकौं कारण नाहीं ऐसे सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयतैं उपजै हैं। बहुरि औपशमिक अर क्षायिक सम्यक्त्वविषैं मल उपजावनेकौं कारण तिस सम्यक्त्व प्रकृतिका उदयका अभावतैं निर्मलपना सिद्ध है ऐसा हे शिष्य! तू जान। बहुरि चलादिकनिका लक्षण कहै हैं तहां चलपना कहिए है—

नानात्मीयविशेषेषु चलतीति चलं स्मृतं। लसत्कल्लोलमालासु जलमेकमवस्थितं ॥
स्वकारितेऽर्हच्चैत्यादौ देवोऽयं मेऽन्यकारिते। अन्यस्यायमिति भ्राम्यन् मोहाच्छ्राद्धोऽपि चेष्टते ॥

याका अर्थ—नानाप्रकार अपने ही विशेष कहिए आप्त आगम पदार्थरूप श्रद्धानके भेद तिनिविषैं जो चलै चंचल होइ सो चल कह्या है सोई कहिए है-अपना कराया अर्हंतप्रतिबिंबादिकविषैं यहु मेरा देव है ऐसे ममत्वकरि, बहुरि अन्यकरि कराया अर्हंतप्रतिबिंबादिकविषैं यहु अन्यका है ऐसैं परका मानिकरि भेदरूप करै है तातैं चल कह्या है। इहां दृष्टांत कहै हैं-जैसैं नानाप्रकार कल्लोल तरंगनिकी पंक्तिविषैं जल एक ही अवस्थित है तथापि नानारूप होइ चल है तैसैं मोह जो सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय तातैं श्रद्धान है सो भ्रमणरूप चेष्टा करै है भावार्थ—जैसैं जल तरंगनिविषैं चंचल होइ परंतु अन्यभावकौं न भजै, तैसैं वेदकसम्यग्दृष्टि अपना वा अन्यका

वेंगुणस्थानकनिविषैं इस विशेषणकरि संबंध करना योग्य है। सर्वसम्यग्दृष्टी जानने ॥ ३१ ॥ आगे प्रमत्तगुणस्थानकों गाथा दोयकरि कहैं हैं—

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा ।
मलजणणपमादो वि य तम्हा हु पमत्तविरदो सो ॥ ३२ ॥

संज्वलननोकषायाणामुदयात्संयमो भवेद्यस्मात् ।
मलजननप्रमादोऽपि च तस्मात्खलु प्रमत्तविरतः सः ॥ ३२ ॥

जी० प्र०—यस्मात्कारणात् (संज्वलनदेशघातिस्पर्धकानां क्रोधमानमायालोभानां, नोकषायाणां च हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदानां तीव्रोदयात् यस्य संयमः-सकलचारित्रं मलजननप्रमादोऽपि च भवेत् तस्मात्कारणात् प्रमादसंयमवान् स जीवः खलु स्फुटं प्रमत्तविरतो भवति) संज्वलनकषायनोकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकोदयभावलक्षणक्षये द्वादशकषायाणामनुदयप्राप्तसंज्वलननोकषायनिषेकाणां च सदवस्थालक्षणोपशमे च संज्वलननोकषायदेशघातिस्पर्धकतीव्रोदयात् संयमो मलजननप्रमादश्च उत्पद्यते तस्मात्कारणात् प्रमत्तश्चासौ विरतश्चेति स षष्ठगुणस्थानवर्ती जीवः प्रमत्तसंयत इत्युच्यते। विवक्खिदस्स संजमस्स खओवसमित्तपदुप्पायणमेत्तफलत्तादो कधं संजलणणोकसायाणं चारित्तविरोहीण चारित्तकारयत्तं ? देसघादित्तेण सपडिवक्खगुणविणिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदयो विज्जमाणोवि ण स कज्जकारओत्ति संजमहेदुत्तेण विवक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि मलजणणपमादोवि य, अवि य इत्यवधारणे मलजणणपमादो चेव जह्मा एवं तह्मा हु पमत्तविरदो सो। तमुत्तलक्खदि—

मं० प्र०—यस्मात् कारणात्, सज्वलनानां-क्रोधमानमायालोभाना, नोकषायाणां च हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदानां तीव्रोदयात् यस्य संयमः-सकलचारित्र, मलजननप्रमादोऽपि च भवेत् तस्मात्कारणात् प्रमादसंयमवान् स जीवः, खलु- स्फुट, प्रमत्तविरतो भवति । संज्वलनकषायनोकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकोदयाभावलक्षणे क्षये, तेषामेव सदवस्थालक्षणे उपशमे च सति सकलसंयमो भवति । तेषा देशघातिस्पर्धकतीव्रोदयात्संयममलजननप्रमादोऽपि भवतीति प्रमत्तसंयते वर्तमानं सामायिकछेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिरूपं चारित्रत्रयं क्षायोपशमिको भाव इति तात्पर्यार्थः ॥ ३२ ॥

स० चं०—जाकारणतैं संज्वलनकषायके सर्वघाती स्पर्धकनिका उदयाभाव लक्षण धरैं क्षय होतैं बहुरि बारह

१ इसकी भाषा तीनों प्रतियोंमें नहीं है।

कषाय उदयकौं न प्राप्त तिनका अर संज्वलन कषाय अर नोकषाय इनके निषेकनिका सत्ता अवस्था रूप लक्षण धरैं उपशम होतैं बहुरि संज्वलनकषाय नोकषायनिका देशघाती स्पर्धकनिका तीव्र उदयहोतैं सकलसंयम अर मलका उपजावनहारा प्रमाद दोऊ हो हैं तींहि कारणतैं प्रमत्त सोई विरत सो षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव प्रमत्तसंयत ऐसा कहिए है। "विवक्खिदस्स संजमस्स खओवसमित्तपडुप्पायणमेत्तफलत्तादो कथं संजलणणोकसायाणं चरित्तविरोहीणं चरित्तकारयत्तं? देशघादित्तेण सपडिवक्खगुणविणिम्मूलणसत्तिविरहियाणमुदओ विज्जमाणो वि ण स कज्जकार ओत्ति संजमहेदुत्तेण विविक्खियत्तादो, वत्थुदो दु कज्जं पडुप्पायेदि मलजणणपमादोविय 'अविय इत्यवधारणे' मलजणणपमादो चेव जम्हा एवं तम्हा हु पमत्ताविरदो सो तमुवलक्खदि।" याका अर्थ-विवक्षित जो संयम ताकैं क्षायोपशमिकपनाका उत्पादनमात्र फलपना है कैसैं संज्वलन अर नोकषाय जे चारित्रके विरोधी तिनकैं चारित्रका करना उपजावना संभव है? तहां कहै हैं एक देशघाती है तींहि भावकरि अपना प्रतिपक्षी संयमगुण ताहि निर्मूल नाशकरनेकी शक्तिरहित है सो इनका उदय विद्यमान भी है तथापि अपना कार्यकारी नाहीं, संयम नाश न करि सकै है। ऐसैं संयमका कारणपनाकरि विवक्षातैं संज्वलन अर नोकषायनिकैं चारित्र उपजावना उपचारकरि जानना। वस्तुतैं यथार्थ निश्चय विचार करिए तब ए संज्वलन अर नोकषाय अपने कार्यहीकौं उपजावैं हैं इनितैं मलका उपजावनहारा प्रमाद हो है अपि च ऐसा शब्द है सो प्रमाद भी है ऐसा अवधारण अर्थविषैं जानना। मलका उपजावनहारा प्रमाद है जातैं ऐसैं तातैं प्रकट प्रमत्ताविरत सो षष्ठम गुणस्थानवर्ती जीव[1] जानना। ताहि लक्षणकरि कहैं हैं—

वत्तावत्तपमादे जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणशीलकलिओ महव्वई चित्तलायरणो ॥ ३३ ॥

---

1 ख पुस्तकमें 'जीव है यह' पाठ है।

व्यक्ताव्यक्तप्रमादे यो वसति प्रमत्तसंयतो भवति ।
सकलगुणशीलकलितो महाव्रती चि(त्र)त्तलाचरणः ॥ ३२ ॥

जी० प्र०—व्यक्ते स्वसंवेद्ये, अव्यक्ते-प्रत्यक्षज्ञानिनामेव संवेद्ये च प्रमादे यः संयतो वर्तते स चारित्रमोहनीयक्षयोपशममाहात्म्येन सकलगुणशीलकलितो महाव्रती (अपि) भवति । अत्र साकल्यं महत्त्वं च देशसंयतापेक्षया ज्ञातव्य ततः कारणादेव प्रमत्तसंयतः चित्रलाचरण इत्युक्तं । चित्रं-प्रमादमिश्रं लातीति चित्रलं, चित्रलं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथ वा चित्रलः-सारंगः, तद्वत् शवलितं आचरणं यस्यासौ चित्रलाचरणः । अथवा चित्तं लातीति चित्तलं, चित्तलं आचरणं यस्यासौ चित्तलाचरणः इति विशेषव्युत्पत्तिरपि ज्ञातव्या ॥ ३२ ॥ अथ तेषां प्रमादानां नामसंख्याप्रदर्शनार्थमाह—

मं० प्र०—स्वसवेद्य परानुमेयश्च व्यक्तः स्थूल इत्यर्थः । प्रत्यक्षज्ञानिनामेव विषयः अव्यक्तः--सूक्ष्म इत्यर्थः । व्यक्तश्चाव्यक्तश्च व्यक्ताव्यक्तं, तच्च तत्प्रमादश्चासौ व्यक्ताव्यक्तप्रमादः, तस्मिन् यः संयतो वसति--वर्तते स प्रमत्तसंयतो भवति । कथंभूतः ? सकलगुणशीलकलितः -सकलैः—समस्तैः, गुणैः—सम्यक्त्वज्ञानादिभिः, शीलैश्च-व्रतरक्षणधर्मैः, कलितः-संयुक्तः, पुनरपि कथंभूतः ? महाव्रती-सकलगुणशीलकलितत्वादेव महाव्रती जातः । पुनरपि कथंभूतः ? चित्रलाचरणः-चित्रलः—सारंगः, चित्रल इव प्रमादमलचित्रितं आचरणं—चारित्रं यस्यासौ चित्रलाचरणः अविशुद्धचारित्र इत्यर्थः ॥ ३२ ॥ अथ प्रमादानां नामसंख्याप्ररूपणार्थमाह—

स० चं०—व्यक्त कहिए आपके जाननेमें आवै बहुरि अव्यक्त कहिए प्रत्यक्ष ज्ञानीनिके ही जानने योग्य ऐसा जो प्रमाद तींहिविषैं जो संयत प्रवर्तै सो चारित्रमोहनीयका क्षयोपशमका माहात्म्यकरि समस्त गुण अर शीलकरि संयुक्त महाव्रती हो है। अपिशब्दकरि प्रमादी भी हो है अर महाव्रती भी हो है। इहां सकलसंयमपनों अर महाव्रतीपनों देशसंयत अपेक्षाकरि जानना ऊपरिके गुणस्थाननिकी अपेक्षा नाहीं है। तिस कारणतें ही प्रमत्तसंयत चित्रलाचरण है ऐसा कह्या है। चित्रं कहिए प्रमादकरि मिश्ररूपकौं 'लाति' कहिए ग्रहै करै सो चित्रल कहिए, चित्रल आचरण जाकैं होइ सो चित्रलाचरण जानना। अथवा चित्रल कहिए सारंग चीता तिहिं समान मिल्या हूवा कावरा आचरण जाका होइ सो चित्रलाचरण जानना। अथवा चित्तं लाति कहिए मनकौं प्रमादरूपकरि करै सो चित्तल कहिए, चित्तल है आचरण जाका सो चित्तलाचरण जानना। ऐसी विशेष निरुक्ति भी पाठांतर अपेक्षा जाननी ॥ ३२ ॥ आगैं तिनि प्रमादनिका नाम संख्या दिखावनेके अर्थि सूत्र कहैं हैं—

विकहा तहा कसाया इंदियणिद्दा तहेव पणयोय ।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्णरस ॥ ३४ ॥

विकथा तथा कषाया इंद्रियनिद्राः तथैव प्रणयश्च ।
चतुश्चतुःपंचैकैकं भवंति प्रमादाः खलु पंचदश ॥ ३४ ॥

जी० प्र०——संयमविरुद्धाः कथाः विकथाः, कषति-हिंसंति संयमगुणमिति कषायाः, संयमविरोधींद्रियव्यापाराः इंद्रियाणि, स्त्यानगृद्ध्यादिकर्मत्रितयोदयेन निद्रा, प्रचलातीव्रोदयेन वा समुद्भूता जीवस्य स्वार्थसामान्यग्रहणप्रतिबंधिका जाड्यावस्था निद्रा । बाह्यार्थेषु ममत्वरूपः प्रणयः, एते यथासंख्यं चतस्रः, चत्वारः, पंच,एका, एकः सर्वे मिलित्वा प्रमादाः पंचदश भवंति । अथ प्रथमोद्दिष्टस्तथाशब्दः सर्वप्रमादसाधारण्यज्ञापनार्थः, द्वितीयस्तथाशब्दः समुच्चयार्थः ॥३४॥ अथैषां प्रमादानां प्रकारांतरेण संख्यादिपंचप्रत्ययान् गाथानवकेन प्ररूपयति—

म० प्र०——विलक्षणा.–सयमविरुद्धाः कथावाक्यप्रबंधा. विकथाः- स्त्री-भक्त-राष्ट्र-राजकथाः, तथा कषायाः संयमविरुद्धा तीव्रपारिणामाः कषायाः-भावक्रोधादयः, इंद्रियाणि–स्पर्शनादींद्रियद्वारेभ्यो जाताः स्पर्शादिस्वस्वविषयरागा , निद्राः–स्त्यानगृद्ध्यादित्रयरूपा, तीव्रनिद्रा प्रचलारूपा च, तथैव प्रणयश्च–तीव्रपरिणतमोहश्च--तीव्रहास्यादिनोकषायोदयजनितारमसंक्लेशपरिणाम इत्यर्थः । एव यथाक्रम चतुश्चतुःपंचैकैकभेदा विकथादयः प्रमादा मिलिताः पचदश भवति खलु सम्यग्दर्शनादिषु गुणशीलेषु कुशलानुष्ठानेषु अनवधानमनादरः प्रमाद इति लक्षणस्य विकथादिषु पचदशस्वपि विद्यमानत्वात् । प्रमाद्यति जीवः कुशलानुष्ठानेभ्यः प्रच्यवते अनेनेति प्रमाद इति निरुक्तिसद्भावाच्च ॥ ३४ ॥ अथ प्रमादानां पचप्रत्ययकथनार्थं गाथासप्तकमाह——

स० चं०——संयमविरुद्ध जे कथा ते विकथा कहिए । वहुरि कषंति कहिए संयमगुणकौं घातैं ते कषाय कहिए । वहुरि संयमविरोधी इंद्रियनिका विषय प्रवृत्तिरूप व्यापार ते इंद्रिय कहिए । वहुरि स्त्यानगृद्धि आदि तीन कर्मप्रकृतिनिका उदयकरि निद्रा वा प्रचलाका तीव्र उदयकरि प्रकट भई जो जीवकैं अपने दृश्य पदार्थनिका सामान्यमात्र ग्रहणकौं रोकनहारी जडरूप अवस्था सो निद्रा है । वहुरि वाह्यपदार्थनिविषैं ममत्वरूप भाव सो प्रणय कहिए स्नेह है । ए क्रमतैं विकथा च्यारि,कषाय च्यारि,इंद्रिय पांच,निद्रा एक, स्नेह एक ऐसैं सर्व मिलि प्रमाद पंद्रह हो हैं । इहां सूत्रविषैं पहिलैं चकार कह्या सो सवही ए प्रमाद हैं ऐसा साधारण भाव जाननेके अर्थि कह्या

श्रित्य प्रमादानामालापो दर्श्यते । तद्यथा-स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् प्रथम आलापः । भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालु स्नेहवान् ॥ २ ॥ राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालु स्नेहवान् ॥ ३ ॥ राजकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् ॥ ४ ॥ पुनर्व्याघुट्य स्त्रीकथालापी मानी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालु स्नेहवान् ॥ ५ ॥ इत्यादि क्रमेण पूर्वोक्ताक्षसंचारक्रममाश्रित्य षष्ठाद्या आलापा आनेतव्याः । तथा च स्पर्शनेंद्रिये षोडश प्रमादालापा भवति एव शेषेंद्रियेष्वपि षोडश षोडश भवंतीति पंचेंद्रियाण्याश्रित्य सर्वेऽपि मिलित्वा अशीतिः प्रमादालापाः भवंति ॥ ३९ ॥

स० चं०—पहिला प्रमाद अक्ष कहिए भेद विकथा सो आलापका अनुक्रमकरि अपने पर्यंत जाइ बहुरि बाहुडिकरि अपने प्रथमस्थानकौं युगपत् प्राप्त होइ तब दूसरा प्रमादका अक्ष कषाय सो अपने दूसरे स्थानकौं प्राप्त होइ। भावार्थ--आलापनिविषैं पहिलैं तो विकथाके भेद पलटिए क्रमतैं स्त्री भक्त राष्ट्र अवनिपालकथा च्यारि आलापनिविषैं कहिए अर अन्य प्रमादनिका पहिला पहिला ही भेद इन च्यारौ आलापनिविषैं ग्रहण करिए तहां पीछैं पहिला विकथा प्रमाद अपना अंत अवनिपालकथा तहां पर्यंत जाइ बाहुडिकरि अपना स्त्रीकथारूप प्रथम भेदकौं तब प्राप्त होइ जब दूसरा प्रमाद कषाय सो अपना पहला स्थानक क्रोधकों छोडि द्वितीय स्थानक मानकौं प्राप्त होइ। बहुरि प्रथम प्रमादका अक्ष पूर्वोक्त अनुक्रमकरि संचार करता अपना पर्यंतकौं जाइ बाहुडिकरि युगपत् अपना प्रथमस्थानकौं जब प्राप्त होइ तब दूसरा प्रमादका अक्षकषाय सो अपना तीसरा स्थानकौं प्राप्त होइ। भावार्थ—दूसरा कषाय प्रमाद दूसरा भेद मानकौं प्राप्त हूवा तहां भी पूर्वोक्त प्रकार पहला भेद क्रमतैं च्यारि आलापनिविषैं क्रमतैं पलटि अपना पर्यंत भेद ताईं जाइ बाहुडिकरि अपना प्रथमभेद स्त्रीकथाकौं प्राप्त होइ तब कषायप्रमाद अपना तीसरा भेद मायाकौं प्राप्त हो है। बहुरि ऐसैं ही संचार करता पलटता दूसरा प्रमादका अक्षकषाय सो जब अपने अंत पर्यंत भेदकौं प्राप्त होइ तब प्रथम अक्ष विकथा सो भी अपना पर्यंत भेदकौं प्राप्त होइ तिष्ठै। भावार्थ—पूर्वोक्तप्रकार च्यारि आलाप मायाविषै च्यारि आलाप लोभविषैं भए कषाय अक्ष अपना पर्यंत भेद लोभ ताकौं प्राप्त भया अर इनिविषैं पहिला अक्ष विकथा सो भी अपना पर्यंत भेद अवनिपालकथा ताकौं प्राप्त भया ऐसैं होते सोलह आलाप भए। बहुरि ए दोऊ अक्ष विकथा अर कषाय बाहु-

हुरि राष्ट्रकथालापी बहुरि अवनिपालकथालापी क्रमतैं स्थापि एक एक विकथाके वीस वीस भंग होंइ । च्यारौ विकथानिके मिलिकरि सर्वप्रमादनिके असी आलाप हो हैं ऐसा जानना॥३७॥ आगैं अन्यप्रकार प्रस्तार दिखावै हैं—

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खेओ एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥ ३८ ॥

निक्षिप्त्वा द्वितीयमात्रं तस्योपरि द्वितीयमेकैकं ।
पिंडं प्रति निक्षेप एवं सर्वत्र कर्तव्यः ॥ ३८ ॥

जी० प्र०—कषायाभिधानद्वितीयप्रमादप्रमाणस्थानेषु विकथात्मकप्रथमप्रमादप्रमाणपिंड प्रत्येकं संस्थाप्य ४ ४ ४ ४ पुनः पिंडं प्रति द्वितीयप्रमादानां प्रमाणस्य एकैकरूपमुपरि निक्षेप्तव्यं, एवं ($\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$) निक्षिप्ते तेषां युतिः षोडशप्रमितपिंडो भवति अयं पिंडः पुनः "एवं सर्वत्र कर्तव्यः" इति वचनात् इद्रियाभिधानतृतीयप्रमादपिंडप्रमाणस्थानेषु संस्थाप्य । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । तेषामुपरि तृतीयप्रमादप्रमाणं एकैकरूपेण निक्षेप्तव्यं । ($\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$) एवं निक्षिप्ते अधस्तनाक्षसंचारहेतुर्द्वितीयप्रस्तारो जायते । तद्यथा-स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवानिति प्रथमप्रमादालापः । १ । भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवान् इति द्वितीयप्रमादालापः । २ । राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगत निद्रालुः स्नेहवान् इति तृतीयप्रमादालापः । ३ । अवनिपालकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रिग्वशगतः निद्रालुः स्नेहवान् चतुर्थप्रमादालापः । ४ । एवं शेषमानमायालोभानामपि चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्णां कषायाणां एकस्पर्शनेंद्रियप्रमादे षोडशप्रमादालापा भवंति तथा शेषरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणां चतुर्णामपि एकैकस्य षोडश षोडश भूत्वा पंचानामिंद्रियाणामशीतिप्रमादालापा भवंति तान् सर्वान् ज्ञात्वा वर्तितव्यं व्रतिभिः । अय क्रमः सर्वत्र चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलादीनामपि प्रस्तारेऽपि कर्तव्यः ॥ ३८ ॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया अक्षपरिवर्तनक्रममाह—

मं० प्र०—अथ वा द्वितीयमात्र कषायप्रमादसंख्याया यावति रूपाणि तावत्सु स्थानेषु प्रथमं विकथाप्रमादप्रमाणं चतुष्क पिंडं कृत्वा--स्थापयित्वा (४ ४ ४ ४) तस्योपरि द्वितीयप्रमाद विरलयित्व। पिंड प्रति एकैक रूपं निक्षेप्तव्य ($\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$) एव निक्षिप्ते षोडश प्रमादा भवंति १६ । एवं सर्वत्र उपर्यपि निक्षेपः कर्तव्य. । तथाहि षोडशक पिंड कृत्वा उपरितनेंद्रियरागप्रमादप्रमाणस्य यावति रूपाणि तावत्सु स्थानेषु स्थापयित्वा (१६ १६ १६ १६ १६) तस्योपरि पिंडं प्रति उपरितनेंद्रियरागप्रमादसख्या विरलयित्वा तद्रूपमेकैकं निक्षेप्तव्य ($\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$) एवं निक्षिप्ते सति सर्वप्रमादसंख्या अशीतिर्जायते ८० । अयमपरः प्रस्तारक्रमः ॥ ३८ ॥

ताकै ऊपरिका दूसरा कषायनामा प्रमाद ताका पिंड जो समुदाय ताका प्रमाण च्यारि ४, ताहि विरलनरूप स्थापे जे नीचले प्रमाद तिनिका एक एक भेदप्रति देना। भावार्थ—एक एक विकथा भेद ऊपरि च्यारि च्यारि कषाय स्थापने { क ४ ४ ४ ४ / वि १ १ १ १ } सो इनकौं मिलाएं जोडैं सोलह प्रमाद हो हैं। बहुरि ऊपरिकी अपेक्षा याकौं पहिला प्रमादपिंड कहिए सो याकौं विरलनकरि क्रमतैं स्थापि यातैं ऊपरिका तिस पहिलाकी अपेक्षा दूसरा इंद्रियप्रमाद ताका पिंड प्रमाण पांच, ताहि पूर्ववत् विरलनकरि स्थापे जे नीचले प्रमाद तिनके एक एक भेद प्रति एक एक पिंडरूप स्थापिए—

५ १	५ १	५ १	५ १	,	५ १	५ १	५ १	५ १	,	५ १	५ १	५ १	५ १	,	५ १	५ १	५ १	५ १	,
क्रो	मा	मा	लो	,	क्रो	मा	मा	लो	,	क्रो	मा	मा	लो	,	क्रो	मा	मा	लो	,
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री	,	भ	भ	भ	भ	,	रा	रा	रा	रा	,	अ	अ	अ	अ	,

भावार्थ—सोलह भेदनिविषैं एक एक भेद ऊपरि पांच पांच इंद्रिय स्थापने सो इनकौं जोडैं असी भंग हो हैं। यहु प्रस्तार आगैं कहिए जो अक्षसंचार ताका कारण है। ऐसैं प्रस्ताररूप स्थापे जे असी भंग तिनिका आलाप जो भंग कहनेका विधान ताहि कहिए है--स्नेहवान् निद्रालु स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु असी भंगनिविषैं पहिला भंग है। बहुरि स्नेहवान् निद्रालु रसना इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु दूसरा भंग है। बहुरि स्नेहवान् निद्रालु घ्राण इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु तीसरा भंग भया। बहुरि स्नेहवान् निद्रालु चक्षु इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु चौथा भंग है। बहुरि स्नेहवान् निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु पांचवा भंग है। ऐसैं पांच भंग भए याहीप्रकार क्रोधकी जायगा मान स्थापि पंच भंग करने। बहुरि मायावी स्थापि पंच भंग करने। बहुरि लोभी स्थापि पंच भंग करने। ऐसैं एक एक कषायके पांच होंइ च्यारौ कषायनिके एक स्त्रीकथाप्रमादविषैं वीस आलाप हो हैं। बहुरि जैसैं स्त्रीकथा आलापीकी अपेक्षा वीस भेद कहे तैसैं ही स्त्रीकथालापीकी जायगा भक्तकथालापी ब-

हुरि राष्ट्रकथालापी बहुरि अवनिपालकथालापी क्रमतैं स्थापि एक एक विकथाके वीस वीस भंग होंइ । च्यारौ विकथानिके मिलिकरि सर्वप्रमादनिके असी आलाप हो हैं ऐसा जानना॥३७॥ आगैं अन्यप्रकार प्रस्तार दिखावै हैं—

णिक्खित्तु बिदियमेत्तं पढमं तस्सुवरि बिदियमेक्केक्कं ।
पिंडं पडि णिक्खेओ एवं सव्वत्थ कायव्वो ॥ ३८ ॥

निक्षिप्त्वा द्वितीयमात्रं तस्योपरि द्वितीयमेकैकं ।
पिंडं प्रति निक्षेप एवं सर्वत्र कर्तव्यः ॥ ३८ ॥

जी० प्र०—कषायाभिधानद्वितीयप्रमादप्रमाणस्थानेषु विकथात्मकप्रथमप्रमादप्रमाणपिंड प्रत्येकं संस्थाप्य ४ ४ ४ ४ पुनः पिंडं प्रति द्वितीयप्रमादानां प्रमाणस्य एकैकरूपमुपरि निक्षेप्तव्यं, एवं ($\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$) निक्षिप्ते तेषां युतिः षोडशप्रमितपिंडो भवति अयं पिंडः पुनः "एवं सर्वत्र कर्तव्यः" इति वचनात् इंद्रियाभिधानतृतीयप्रमादपिंडप्रमाणस्थानेषु संस्थाप्य । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । तेषामुपरि तृतीयप्रमादप्रमाणं एकैकरूपेण निक्षेप्तव्यं । ($\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$) एवं निक्षिप्ते अधस्तनाक्षसंचारहेतुर्द्वितीयप्रस्तारो जायते । तद्यथा-स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवानिति प्रथमप्रमादालापः । १ । भक्तकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवान् इति द्वितीयप्रमादालापः । २ । राष्ट्रकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगत. निद्रालुः स्नेहवान् इति तृतीयप्रमादालापः । ३ । अवनिपालकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रिग्वशगतः निद्रालुः स्नेहवान् चतुर्थप्रमादालापः । ४ । एवं शेषमानमायालोभानामपि चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्णां कषायाणां एकस्पर्शनेंद्रियप्रमादे षोडशप्रमादालापा भवंति तथा शेषरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणां चतुर्णामपि एकैकस्य षोडश षोडश भूत्वा पंचानामिंद्रियाणामशीतिप्रमादालापा भवंति तान् सर्वान् ज्ञात्वा वर्तितव्यं व्रतिभिः । अय क्रमः सर्वत्र चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलादीनामपि प्रस्तारेऽपि कर्तव्यः ॥ ३८ ॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया अक्षपरिवर्तनक्रममाह—

मं० प्र०—अथ वा द्वितीयमात्र कषायप्रमादसंख्याया यावति रूपाणि तावत्सु स्थानेषु प्रथमं विकथाप्रमादप्रमाणं चतुष्कं पिंडं कृत्वा--स्थापयित्वा (४ ४ ४ ४) तस्योपरि द्वितीयप्रमाद विरलयित्व। पिंड प्रति एकैक रूपं निक्षेप्तव्य ($\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$ $\overset{१}{४}$) एव निक्षिप्ते षोडश प्रमादा भवंति १६ । एवं सर्वत्र उपर्यपि निक्षेपः कर्तव्य. । तथाहि षोडशक पिंड कृत्वा उपरितनेंद्रियरागप्रमादप्रमाणस्य यावति रूपाणि तावत्सु स्थानेषु स्थापयित्वा (१६ १६ १६ १६ १६) तस्योपरि पिंडं प्रति उपरितनेंद्रियरागप्रमादसंख्या विरलयित्वा तद्रूपमेकैकं निक्षेप्तव्य ($\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$ $\overset{१}{१६}$) एवं निक्षिप्ते सति सर्वप्रमादसंख्या अशीतिर्जायते ८० । अयमपरः प्रस्तारक्रमः ॥ ३८ ॥

है। बहुरि दूसरा तथा शब्द कह्या सो परस्पर समुदाय करनेके अर्थि कह्या है ॥ ३४ ॥ आगैं इनि प्रमादनिके अन्य प्रकारकरि पांच प्रकार हैं तिनकौं नवगाथानिकरि कहैं हैं—

संखा तह पत्थारो परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्टं ।
एदे पंच पयारा पमदसमुक्कित्तणे णेया ॥ ३५ ॥

संख्या तथा प्रस्तारः परिवर्तनं नष्टं तथा समुद्दिष्टं ।
एते पंच प्रकाराः प्रमादसमुत्कीर्तने ज्ञेयाः ॥ ३५ ॥

जी० प्र०—प्रमादालापोत्पत्तिनिमित्ताक्षसंचारहेतुविशेषः संख्या, एषां न्यासः प्रस्तारः, अक्षसंचारः परिवर्तनं, संख्यां धृत्वा अक्षानयनं नष्टं, अक्षं धृत्वा संख्यानयनं समुद्दिष्टं । एते पंचप्रकाराः प्रमादसमुत्कीर्तने ज्ञेया भवंति ॥ ३५ ॥ अथ विशेषसंख्योत्पत्तिक्रममाह—

मं० प्र०—सख्या-भेदगणना, प्रस्तारः-न्यासः, परिवर्तन-अक्षसंचारः, नष्टं-सख्या धृत्वा अक्षाख्यानयनं, उद्दिष्टं-अक्षं धृत्वा संख्यानयनं । पूर्वस्तथाशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः । उत्तरस्तथाशब्दः यथाशब्दार्थपरामर्शी । प्रमादसमुत्कीर्तने-प्रमादव्याख्याने एते पंचप्रकाराः यथा पूर्वाचार्यैरुक्तास्तथा अस्माभिर्व्याख्यायमाना ज्ञेयाः ॥ ३५ ॥

स० चं०—संख्या प्रस्तार परिवर्तन नष्ट समुद्दिष्ट ए पांचप्रकार प्रमादनिका व्याख्यानविषैं जानना। तहां प्रमादनिका आलापकौं कारणभूत जो अक्षसंचारके निमित्तका विशेष सो संख्या है बहुरि इनका स्थापन करना सो प्रस्तार है, बहुरि अक्षसंचार परिवर्तन है, संख्या धरि अक्षका ल्यावना नष्ट है, अक्ष धरि संख्याका ल्यावना समुद्दिष्ट है। इहां भंगकौं कहनेका विधान सो आलाप जानना। बहुरि भेद वा भंगका नाम अक्ष जानना। बहुरि एक भेद अनेक भंगनिविषैं क्रमतैं पलटै ताका नाम अक्षसंचार जानना बहुरि जेथवां भंग होइ तींहि प्रमाणका नाम संख्या जानना ॥ ३५ ॥ आगैं विशेष संख्याकी उत्पत्तिका क्रम कहैं हैं—

सव्वेपि पुव्वभंगा उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु ।

ताकै ऊपरिका दूसरा कषायनामा प्रमाद ताका पिंड जो समुदाय ताका प्रमाण च्यारि ४, ताहि विरलनरूप स्थापे जे नीचले प्रमाद तिनिका एक एक भेदप्रति देना। भावार्थ—एक एक विकथा भेद ऊपरि च्यारि च्यारि कपाय स्थापने {क ४ ४ ४ ४ / वि १ १ १ १} सो इनकौं मिलाएं जोडैं सोलह प्रमाद हो हैं। वहुरि ऊपरिकी अपेक्षा याकौं पहिला प्रमादपिंड कहिए सो याकौं विरलनकरि क्रमतैं स्थापि यातैं ऊपरिका तिस पहिलाकी अपेक्षा दूसरा इंद्रियप्रमाद ताका पिंड प्रमाण पांच, ताहि पूर्ववत् विरलनकरि स्थापे जे नीचले प्रमाद तिनके एक एक भेद प्रति एक एक पिंडरूप स्थापिए—

५ ५ ५ ५ १ १ १ १ ,	५ ५ ५ ५ १ १ १ १ ,	५ ५ ५ ५ १ १ १ १ ,	५ ५ ५ ५ १ १ १ १ ,
क्रो मा मा लो ,	क्रो मा मा लो ,	क्रो मा मा लो ,	क्रो मा मा लो ,
स्त्री स्त्री स्त्री स्त्री ,	भ भ भ भ ,	रा रा रा रा ,	अ अ अ अ ,

भावार्थ—सोलह भेदनिविषैं एक एक भेद ऊपरि पांच पांच इंद्रिय स्थापने सो इनकौं जोडैं असी भंग हो हैं। यहु प्रस्तार आगैं कहिए जो अक्षसंचार ताका कारण है। ऐसैं प्रस्ताररूप स्थापे जे असी भंग तिनिका आलाप जो भंग कहनेका विधान ताहि कहिए है--स्नेहवान् निद्रालु स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु असी भंगनिविषैं पहिला भंग है। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु रसना इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु दूसरा भंग है। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु घ्राण इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु तीसरा भंग भया। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु चक्षु इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु चौंथा भंग है। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसैं यहु पांचवा भंग है। ऐसैं पांच भंग भए याही-प्रकार क्रोधकी जायगा मान स्थापि पंच भंग करने। वहुरि मायावी स्थापि पंच भंग करने। वहुरि लोभी स्थापि पंच भंग करने। ऐसैं एक एक कषायके पांच होंइ च्यारौ कषायनिके एक स्त्रीकथाप्रमादविषैं वीस आलाप हो हैं। वहुरि जैसैं स्त्रीकथा आलापीकी अपेक्षा वीस भेद कहे तैसैं ही स्त्रीकथालापीकी जायगा भक्तकथालापी व-

डिकरि अपने प्रथम स्थानकौं प्राप्त भए तब तीसरा प्रमादका अक्ष अपना प्रथम स्थानकौं छोडि दूसरा स्थानकौं प्राप्त हो है। इस ही अनुक्रमकरि प्रथम अर द्वितीय अक्षका क्रमतैं अपने पर्यंत भेदताईं जाना बहुरि बाहुडना तिनकरि तीसरा प्रमादका अक्ष इंद्रिय सो अपना तीसरा आदि स्थानकौं प्राप्त होइ ऐसा जानना। भावार्थ-विकथा अर कषाय अक्ष बाहुडि अपना प्रथमस्थान स्त्रीकथा अर क्रोधकौं प्राप्त होइ तब इंद्रिय अक्षविषैं पूर्वें सोलह आलापनिविषैं पहिला भेद स्पर्शन इंद्रिय था सो तहां रसना इंद्रिय होइ तहां पूर्वोक्तप्रकार अपना अपना पर्यंत भेदताईं जाय तब रसना इंद्रियविषैं सोलह आलाप होंइ। बहुरि तैसैं ही ते दोऊ अक्ष बाहुडि अपने प्रथमस्थानकौं प्राप्त होंइ तब इंद्रिय अक्ष अपना तीसरा भेद घ्राण इंद्रियकौं प्राप्त होइ याविषैं पूर्वोक्तप्रकार सोलह आलाप होंइ। बहुरि इस ही क्रमकरि सोलह सोलह आलाप चक्षु श्रोत्र इंद्रियविषैं भए सर्वप्रकारके अक्ष अपने पर्यंत भेदकौं प्राप्त होइ तिष्ठैं हैं। यहु अक्षसंचारका अनुक्रम नीचे अक्षतैं लगाय ऊपरिके अक्ष पर्यंत विचारिकरि प्रवर्तावना बहुरि अक्षकी सहनानी हंसपद है ताका आकार ऐसा × जानना ॥ ३९ ॥ आगें प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा अक्ष परिवर्तन कहै हैं—

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥ ४० ॥

तृतीयाक्षः अंतगतः आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः।
द्वावपि गत्वांतमादिगते संक्रामति प्रथमाक्षः ॥ ४० ॥

जी० प्र०—तृतीयप्रमादाक्षः आलापक्रमेण स्वपर्यंतं गत्वा पुनः परावृत्य स्वप्रथमस्थानं युगपदेवागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वद्वितीयस्थानं गच्छति। पुनः तृतीयप्रमादाक्षः क्रमेण स्वपर्यंतं गत्वा व्यावृत्य युगपदेव स्वप्रथमस्थानमागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयस्थानं

---

१ यह गाथा मदप्रवोधिकामें ३९ नंबर पर है और ३९ की गाथा ४० पर है।

ताके ऊपरिका दूसरा कषायनामा प्रमाद ताका पिंड जो समुदाय ताका प्रमाण च्यारि ४, ताहि विरलनरूप स्थापे जे नीचले प्रमाद तिनिका एक एक भेदप्रति देना। भावार्थ—एक एक विकथा भेद ऊपरि च्यारि च्यारि कपाय स्थापने $\left\{\begin{matrix} \text{क} & ४ & ४ & ४ & ४ \\ \text{वि} & १ & १ & १ & १ \end{matrix}\right\}$ सो इनकौं मिलाएं जोडें सोलह प्रमाद हो हैं। वहुरि ऊपरिकी अपेक्षा याकौं पहिला प्रमादपिंड कहिए सो याकौं विरलनकरि क्रमतें स्थापि यातें ऊपरिका तिस पहिलाकी अपेक्षा दूसरा इंद्रियप्रमाद ताका पिंड प्रमाण पांच, ताहि पूर्ववत् विरलनकरि स्थापे जे नीचले प्रमाद तिनके एक एक भेद प्रति एक एक पिंडरूप स्थापिए—

१	१	१	१,	१	१	१	१,	१	१	१	१,	१	१	१	१,
क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,	क्रो	मा	मा	लो,
स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री,	भ	भ	भ	भ,	रा	रा	रा	रा,	अ	अ	अ	अ,

भावार्थ—सोलह भेदनिविषें एक एक भेद ऊपरि पांच पांच इंद्रिय स्थापने सो इनकौं जोडें असी भंग हो हैं। यहु प्रस्तार आगें कहिए जो अक्षसंचार ताका कारण है। ऐसें प्रस्ताररूप स्थापे जे असी भंग तिनिका आलाप जो भंग कहनेका विधान ताहि कहिए है--स्नेहवान् निद्रालु स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसें यहु असी भंगनिविषें पहिला भंग है। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु रसना इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसें यहु दूसरा भंग है। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु घ्राण इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसें यहु तीसरा भंग भया। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु चक्षु इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसें यहु चौथा भंग है। वहुरि स्नेहवान् निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत क्रोधी स्त्रीकथालापी ऐसें यहु पांचवा भंग है। ऐसें पांच भंग भए याही प्रकार क्रोधकी जायगा मान स्थापि पंच भंग करने। वहुरि मायावी स्थापि पंच भंग करने। वहुरि लोभी स्थापि पंच भंग करने। ऐसें एक एक कषायके पांच होंइ च्यारौ कषायनिके एक स्त्रीकथाप्रमादविषैं वीस आलाप हो हैं। वहुरि जैसें स्त्रीकथा आलापीकी अपेक्षा वीस भेद कहे तैसें ही स्त्रीकथालापीकी जायगा भक्तकथालापी व-

गच्छति । एवं द्वितीयप्रमादाक्षो यदा एकवारं स्वपर्यंतं गच्छति तदा तृतीयप्रमादाक्षोऽपि क्रमेण संचरन् स्वपर्यंतं गच्छति एवं तौ द्वावप्यक्षौ पुनः व्यावृत्य स्वस्वप्रथमस्थानं यदा युगपदेव आगच्छतः तदा प्रथमप्रमादाक्षः स्वप्रथमस्थानं मुक्त्वा स्वद्वितीयस्थानं गच्छति अनेन क्रमेण तृतीयद्वितीयाक्षयोः स्वपर्यंतप्राप्तिनिवृत्तिभ्यां प्रथमप्रमादाक्षस्य स्वतृतीयादिस्थानेषु संचारो ज्ञातव्यः । अयमक्षसंचारक्रमः उपरितोऽधस्तनं विचार्य वर्तयितव्यः ॥ ४० ॥ अथ नष्टानयनं प्रदर्शयति—

मं० प्र०—प्रथमप्रस्तारापेक्षया अयं अक्षसंचारः कथ्यते । तद्यथा--विकथाकषायेंद्रियनिद्रास्नेहानामादौ स्त्रीकथाक्रोधस्पर्शननिद्रास्नेहरूपे प्रमादे अक्षं हंसपदाकृति संस्थाप्य तृतीयाक्षः--इंद्रियाक्षः—स्पर्शनं त्यक्त्वा रसने संक्रामति, रसनं त्यक्त्वा घ्राणे संक्रामति, घ्राणं त्यक्त्वा चक्षुषि सक्रामति, चक्षुस्त्यक्त्वा श्रोत्रे संक्रामति, अन्याक्षास्तथैव तिष्ठति । एव संचरन् तृतीयाक्षः अंत श्रोत्रेंद्रिय गतः प्राप्तो भूत्वा व्याघुटय यदा आदिं स्पर्शनमागतः तदा द्वितीयाक्षः- कषायाक्षः क्रोधं त्यक्त्वा मानं संक्रामति--संचरति । पुनस्तस्मिन् द्वितीयाक्षे तत्रैव माने स्थिते सति पुनस्तृतीयाक्षः पूर्वोक्तक्रमेण संचरन्नंतं गत्वा व्याघुटय यदा आदिमागच्छति तदा द्वितीयाक्षः माने त्यक्त्वा मायायां संक्रामति पुनस्तदक्षे तस्यामेव स्थिते सति पुनस्तृतीयाक्षः पूर्वोक्तक्रमेण संचरन्नतं गतो भूत्वा व्याघुटय यदा आदि गच्छति तदा द्वितीयाक्षः मायाक्षः माया त्यक्त्वा लोभे संक्रामति पुनस्तदक्षे तस्मिन्नेव स्थिते सति तृतीयाक्षः उक्तक्रमेण सचरन्नत गच्छति तदा द्वावपि तृतीयद्वितीयाक्षौ अंतं गत्वा व्याघुटय यदा आदिं गतौ तदा प्रथमाक्षः--विकथाक्षः स्त्रीकथा त्यक्त्वा भक्तकथायां संक्रामति पुनस्तदक्षे तस्यामेव स्थिते सति तृतीयाक्षद्वितीयाक्षौ पूर्वोक्तक्रमेण सचरतौ अंतं गत्वा व्याघुटय यदा आदि गतौ तदा प्रथमाक्षः भक्तकथा त्यक्त्वा राष्ट्रकथाया संक्रमति पुनस्तदक्षे तस्यामेव स्थिते सति तृतीयाक्षद्वितीयाक्षौ पूर्वोक्तक्रमेण सचरतो अंतं गत्वा व्याघुट्य यदा आदिं गतौ तदा प्रथमाक्षः राष्ट्रकथां त्यक्त्वा राजकथाया संक्रामति पुनस्तदक्षे तस्यामेव स्थिते सति तृतीयद्वितीयाक्षौ उक्तक्रमेण संचरतावंत गतै. एव अक्षसंचारः समाप्तः । निद्रास्नेहयोर्द्वितीयाभावादक्षसचारो नास्ति । एवमक्षसंचारमाश्रित्य प्रमादानामालापो दर्श्यते तद्यथा स्त्रीकथालापी क्रोधी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालु. स्नेहवान् प्रथमालापः । स्त्रीकथालापीक्रोधी रसनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् द्वितीयः । स्त्रीकथालापी क्रोधी घ्राणेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् तृतीयः । स्त्रीकथालापी क्रोधी चक्षुरिंद्रियवशगतो निद्रालु. स्नेहवान् चतुर्थः । स्त्रीकथालापी क्रोधी श्रोत्रेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् पंचमः । पुनर्व्याघुट्य स्त्रीकथालापी मानी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् षष्ठः इत्यादिक्रमेण पूर्वोक्ताक्षसंचारक्रममाश्रित्य सप्तमाद्या आलापा आनेतव्याः । तथा च स्त्रीकथाया विंशतिः प्रमादालापा भवति एवं शेषविकथास्वपि विंशतिर्विंशतिर्भवंतीति चतुर्विकथाः आश्रित्य सर्वेऽपि मिलित्वा अशीतिः प्रमादालापा भवंति ॥ ४० ॥

स० चं०—तीसरा प्रमादका अक्ष इंद्रिय सो आलापका अनुक्रम करि अपने पर्यंत जाइ—स्पर्शनादिक्रमतैं पांच आलापनिविषैं श्रोत्रपर्यंत जाइ बहुरि बाहुडि युगपत् अपने प्रथमस्थान स्पर्शनकौं प्राप्त होइ तब दूसरा प्रमादका अक्षकषाय सो पहलैं क्रोधरूप प्रथमस्थानकौं प्राप्त था ताकौं छोडि अपनां दूसरा स्थान मानकौं प्रा-

प्त हो है। तहां बहुरि तीसरा प्रमादका अक्ष इंद्रिय सो पूर्वोक्त अनुक्रम करि अपने अंतभेदपर्यंत जाइ बाहुडि युगपत् प्रथमस्थानकौं प्राप्त होइ तब दूसरा प्रमादका अक्षकषाय सो दूसरा स्थान मानकौं छोडि अपना तृतीय-स्थान मायाकौं प्राप्त होइ तहां भी पूर्वोक्तप्रकार विधान होइ ऐसैं क्रमतैं दूसरा प्रमादका अक्ष जब एकबार अपना पर्यंत भेद लोभकौं प्राप्त होइ तब तीसरा प्रमादका अक्ष इंद्रिय सो भी क्रमकरि संचार करता अपने अंतभेदकौं प्राप्त होइ तब बीस आलाप होंइ। भावार्थ—एक एक कषायविषैं पांच पांच आलाप इंद्रियनिके संचार करि होंइ। बहुरि ते इंद्रिय अर कषाय दोऊ ही अक्ष बाहुडि अपने अपने प्रथम स्थानकौं युगपत् प्राप्त होंइ तब पहिला प्रमादका अक्ष विकथा सो पहिलैं बीसौं आलापनिविषैं अपना प्रथमस्थान स्त्रीकथा रूप ताकौं प्राप्त था सो अब प्रथमस्थानकौं छोडि अपना द्वितीय स्थान भक्तकथाकौं प्राप्त होइ बहुरि इस ही अनुक्रमकरि पूर्वोक्तप्रकार तृतीय द्वितीय प्रमादका अक्ष इंद्रिय अर कषाय तिनिका अपने अंतपर्यंत जाना बहुरि बाहुडना इनिकरि प्रथम-प्रमादका अक्ष विकथा सो अपना तृतीयादि स्थानकनिकौं प्राप्त होइ ऐसा संचार जानना। भावार्थ-पूर्वोक्त प्रकार एक एक विकथा भेदविषैं इंद्रियकषायनिके पलटनेतैं बीस आलाप होंइ ताके चारो विकथानिविषैं असी आलाप हो हैं। यहु अक्षसंचारका अनुक्रम ऊपरि अंतका भेद इंद्रियका पलटनातैं लगाय क्रमतैं अधस्तन पूर्व पूर्व अक्षका परिवर्तनकौं विचारि पलटना ऐसैं अक्षसंचार कह्या। अक्ष जो भेद ताका क्रमतैं पलटनेका विधान ऐसैं जानना ॥ ४० ॥ आगैं नष्ट ल्यावनेका विधान दिखावैं हैं—

सगमाणेहिं विभत्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं।
लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंते ण रूवपक्खेओ ॥ ४१ ॥

स्वकमानैर्विभक्ते शेषं लक्षयित्वा जानीहि अक्षपदं।
लब्धे रूपं प्रक्षिप्य(प) शुद्धे अंते न रूपप्रक्षेपः ॥ ४१ ॥

जी० प्र०—या विवक्षितप्रमादसंख्या तां प्रथमप्रमादपिंडप्रमाणेन भक्त्वा शेषमक्षस्थानं भवति। तल्लब्धे रूपं प्रक्षिप्य तत्प्रक्षिप्तयुतं उपरितनद्वितीयप्रमादप्रमाणपिंडेन भक्त्वा तच्छेषमत्राक्षस्थानं भवति। तल्लब्धे रूप प्रक्षिप्य तृतीयप्रमादप्रमाणपिंडेन भक्त्वा लब्धं शून्यं तदा तत्र तत्र प्रमादानां अवसानस्थाने एव अक्षस्तिष्ठति। तल्लब्धे एकरूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। अत्रोदाहरणमुच्यते-यद्विवक्षितनष्टप्रमादसंख्यामिमां १५ प्रथमविकथाप्रमादप्रमाणपिंडेन ४ भक्त्वा लब्धं त्रयं ३, शेषमपि त्रयं, इतिराष्ट्रकथायामक्षोऽस्ति इति तत्राक्षं दत्त्वा दर्शयेत्। तल्लब्धत्रये एकं रूपं प्रक्षिप्य तच्चतुष्के तदुपरितनद्वितीयकषायप्रमादपिंडेन ४ भक्ते शेषं शून्यमिति तत्कषायप्रमादानामंत्ये लोभालापस्थाने अक्ष सूचयतीति तत्र लिखेत्। तल्लब्धमेकरूपं तस्योपरि एकरूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। पुनस्तल्लब्धैकरूपे उपरितनेंद्रियप्रमादपिंडेन ५ भक्ते लब्धं शून्यं, शेषमेकरूपमिति तत्स्पर्शनेंद्रियवशगत इति प्रमादोऽक्षं सूचयति। एवं पंचदश प्रमादो राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानित्यालापो भवतीत्यर्थः। एवमेव नष्टालापं साधयेत् ॥ ४१ ॥ अथालापं धृत्वा संख्यां साधयितुमग्रतनसूत्रमाह—

म० प्र०—पृष्टव्यप्रमादस्य विवक्षितसंख्यां सस्थाप्य स्वस्वप्रमाणैर्विभजेत्। विभक्ते सति शेष अक्षस्थानमिति लक्षयित्वा लब्धे एकं रूपं प्राक्षिप। तलब्धं पुनः स्वस्वप्रमाणैर्विभजेः। शेषं अक्षस्थानमिति लक्षयित्वा लब्धे एक रूप प्रक्षिप। शुद्धे शेषाभावे सति अंते अक्षो वर्तत इति लक्षय तदा लब्धे रूपप्रक्षेपो न कर्तव्यः। एवमुपरि सर्वत्र करणीयं। अत्र किंचिदुदाहरणं दर्श्यते। तद्यथा दशमः प्रमादः कीदृशः ? इति पृष्टे पृष्टप्रमादस्य सख्या दश १० स्थापयित्वा ता प्रथमविकथाप्रमादसख्यया चतुर्भिर्विभजेत्, विभक्ते शेष द्वयमिति द्वितीये भक्तकथाख्ये प्रमादे अक्ष लक्षयेत्। लब्धे द्वये रूपं प्रक्षिप्य उपरितनकषायसख्यया चतुर्भिर्विभजेत् ४)३(० अत्र भागो नास्तीति लब्धं शून्य शेष त्रयमिति तृतीये कषाये अक्ष लक्षयेत्। लब्धे शून्ये एक रूप प्रक्षिप्य तदुपरितनेंद्रियप्रमादसंख्यापचभिर्भजेत् ५)१(० शेष एकमिति प्रथमे स्पर्शनेंद्रिये अक्ष लक्षयेत् भागो नास्तीति लब्ध शून्य तत्र एक रूपं प्रक्षिप्य निद्राप्रमादसख्यया एकेन भजेत् ($\frac{1}{1}$) शेषं शून्य लब्धमेक, शुद्धे अते निद्रायामेवाक्ष. 'न रूपप्रक्षेपः।' इति वचनात् लब्धमेक स्नेहप्रमादसंख्यया एकेन भजेत् ($\frac{1}{1}$) शेषं शून्य शुद्धे अंत इति वचनात् स्नेह एवाक्षः एकस्य स्वयमेवादित्वादतत्वाच्च अनेन सूत्रेण संख्या धृत्वा अक्षानयन नष्टमिति नष्टानयनकथनात् भक्तकथालापी मायी स्पर्शनेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवानिति दशमः प्रमादालापः सिद्ध.। क्रोधनिरोधे चत्वारः माननिरोधे चत्वारः मायानिरोधे स्त्रीकथा भक्तकथा इति द्वौ एवं दशालापदर्शनात् ॥ ४१ ॥

स० चं०—कोऊ जेथवां प्रमाद भंग पूछै तीहिं प्रमादभंगका आलापकी खबरि नाहीं जो यहु आलाप कौंन है ? तहां ताकौं नष्ट कहिए ताके ल्यावनेका जाननेका उपाय कहिए है। कोऊ जेथवां प्रमाद पूछ्या होइ ताकौं अपना प्रमादपिंडका भाग दीजिए जो अवशेष रहै सो अक्षस्थान जानना बहुरि जेते पाए होंइ तिनिविषैं एक जोड़ि जो प्रमाण होइ ताकौं द्वितीय प्रमाद पिंडका भाग देना तहां भी तैसैं ही जानना। ऐसैं ही क्रमतैं

डिकरि अपने प्रथम स्थानकौं प्राप्त भए तब तीसरा प्रमादका अक्ष अपना प्रथम स्थानकौं छोडि दूसरा स्थानकौं प्राप्त हो है। इस ही अनुक्रमकरि प्रथम अर द्वितीय अक्षका क्रमतैं अपने पर्यंत भेदताईं जाना बहुरि बाहुडना तिनकरि तीसरा प्रमादका अक्ष इंद्रिय सो अपना तीसरा आदि स्थानकौं प्राप्त होइ ऐसा जानना। भावार्थ-विकथा अर कषाय अक्ष बाहुडि अपना प्रथमस्थान स्त्रीकथा अर क्रोधकौं प्राप्त होइ तब इंद्रिय अक्षविषैं पूर्वैं सोलह आलापनिविषैं पहिला भेद स्पर्शन इंद्रिय था सो तहां रसना इंद्रिय होइ तहां पूर्वोक्तप्रकार अपना अपना पर्यंत भेदताईं जाय तब रसना इंद्रियविषैं सोलह आलाप होंइ। बहुरि तैसैं ही ते दोऊ अक्ष बाहुडि अपने प्रथमस्थानकौं प्राप्त होंइ तब इंद्रिय अक्ष अपना तीसरा भेद घ्राण इंद्रियकौं प्राप्त होइ याविषैं पूर्वोक्तप्रकार सोलह आलाप होंइ। बहुरि इस ही क्रमकरि सोलह सोलह आलाप चक्षु श्रोत्र इंद्रियविषैं भए सर्वप्रकारके अक्ष अपने पर्यंत भेदकौं प्राप्त होइ तिष्ठै हैं। यहु अक्षसंचारका अनुक्रम नीचै अक्षतैं लगाय ऊपरिके अक्ष पर्यंत विचारिकरि प्रवर्तावना बहुरि अक्षकी सहनानी हंसपद है ताका आकार ऐसा × जानना ॥ ३९ ॥ आगैं प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा अक्ष परिवर्तन कहै हैं—

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णिवि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो ॥ ४० ॥[1]

तृतीयाक्षः अंतगतः आदिगते संक्रामति द्वितीयाक्षः।
द्वावपि गत्वांतमादिगते संक्रामति प्रथमाक्षः ॥ ४० ॥

जी० प्र०—तृतीयप्रमादाक्षः आलापक्रमेण स्वपर्यंतं गत्वा पुनः परावृत्य स्वप्रथमस्थानं युगपदेवागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वद्वितीयस्थानं गच्छति। पुनः तृतीयप्रमादाक्षः क्रमेण स्वपर्यंतं गत्वा व्यावृत्य युगपदेव स्वप्रथमस्थानमागच्छति तदा द्वितीयप्रमादाक्षः स्वतृतीयस्थानं

1 यह गाथा मदप्रवोधिकामें ३९ नवर पर है और ३९ की गाथा ४० पर है।

सर्वत्र करना इतना विशेष जानना जो जहां भागदीएं राशि शुद्ध होइ जाय कछू भी अवशेष न रहै तहां तिस प्रमादका अंतभेद ग्रहण करना। बहुरि तहां जो लब्धराशि होइ तिहिंविषैं एक न जोडना बहुरि ऐसैं करतैं अंत जहां होइ तहां एक न जोड़ना सो कहिए है-जेथवां प्रमाद पूछ्या तिस विवक्षित प्रमादकी संख्याकौं प्रथम प्रमाद विकथा ताका पिंड प्रमाण च्यारि ताका भाग देइ अवशेष जितने रहैं सो अक्षस्थान हैं। जितने अवशेष रहैं तेथवां विकथाका भेद तिस आलापविषैं जानना। बहुरि इहां भागदीएं जो पाया तींह लब्धराशिविषैं एक और जोडना, जोडैं जो प्रमाण होइ ताका ऊपरिका दूसरा प्रमाद कषाय ताका पिंड प्रमाण च्यारि ताका भाग देइ जो अवशेष रहै सो तहां अक्षस्थान जानना। जितने अवशेष रहैं तेथवां कषायका भेद तिस आलापविषैं जानना। बहुरि जो इहां लब्धराशि होइ तींहिविषैं एक जोडि तीसरा प्रमाद इंद्रिय ताका पिंड प्रमाण पांच ताका भाग दीजिए बहुरि जहां अवशेष शून्य रहै तहां प्रमादनिका अंतस्थानविषैं ही अक्ष तिष्ठै है तहां अंतका भेद ग्रहण करना बहुरि लब्धराशिविषैं एक न जोडना। इहां उदाहरण कहिए है-काहूने पूछ्या कि असी भंगनिविषैं पंद्रहवां प्रमाद भंग कौन है? तहां ताके जाननेकौं विवक्षित नष्ट प्रमादकी संख्या पंद्रह ताकौं प्रथम प्रमादका पिंड च्यारिका भाग देइ तीन पाए अर अवशेष भी तीन रहै सो तीन अवशेष रहै तातैं विकथाका तीसरा भेद राष्ट्रकथा तींहिविषैं अक्ष है तहां अक्ष देइकरि देखै। भावार्थ—पंद्रहां आलापविषैं राष्ट्रकथालापी जानना। बहुरि तहां तीन पाए थे तिस लब्धराशि तीनविषैं एक जोडैं च्यारि होंइ ताकौं ताके ऊपरि कषायप्रमाद ताका प्रमाणपिंड च्यारि ताका भागदीएं अवशेष शून्य रहै किछू न रहै तब तिस कषायप्रमादका अंतभेद जो लोभ ताका आलापविषैं अक्ष सूचै है। जातैं जहां राशि शुद्ध होइ जाइ तहां ताका अंतभेद ग्रहण करना। भावार्थ—पंद्रहां आलापविषैं लोभी जानना। बहुरि तहां लब्धराशि एक तींहिविषैं एक न जोडना। जातैं जहां राशि शुद्ध होइ जाय तहां पायाराशिविषैं एक और न मिलावना सो एकका एक ही रह्या ताकौं ऊपरिका इंद्रियप्रमादपिंड पांचका भागदीए लब्धराशि शून्य है। जातैं भाज्यतैं भागहारका प्रमाण अधिक है तातैं इहां लब्धराशिका अ-

भाव है। अवशेष एक रह्या तातैं इंद्रियका स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत ऐसा प्रथमभेदरूप अक्ष पद्रह्वां आलापविषैं सूचै है। ऐसैं पद्रह्वां राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत निद्रालु स्नेहवान ऐसा आलाप जानना। याहीप्रकार जेथवां आलाप जान्यां चाहिए तेथवां नष्ट आलापकौं साधै। बहुरि इहां द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा विकथादिकका क्रमकरि जैसैं नष्ट ल्यावनेका विधान कह्या तैसैं ही प्रथम प्रस्तार अपेक्षा ऊपरितैं इंद्रियकषाय विकथाका अनुक्रमकरि नष्ट ल्यावनेका विधान जानना तहां उदाहरण-किसीने पूछा प्रथमप्रस्तार अपेक्षा पंद्रह्वां आलाप कौंन ? तहां इस संख्याकौं पांचका भागदीए अवशेष शून्य तातैं इहां अंतका भेद श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत करना। बहुरि इहां पाए तीन ताकौं कषायपिंड प्रमाण च्यारि ताका भागदीएं लब्धराशि शून्य अवशेष तीन तातैं इहां तीसरा कषाय भेद मायावी जानना। बहुरि लब्धराशि शून्यविषैं एकमिलाएं एकभया ताकौं विकथाका प्रमादपिंड च्यारिका भागदीएं लब्धराशि शून्य अवशेष एक सो स्त्रीकथालापी जानना ऐसैं प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पंद्रह्वां स्नेहवान् निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत मायावी स्त्रीकथालापी ऐसा आलाप जानना। ऐसैं ही अन्य नष्ट आलाप साधने ॥ ४१ ॥ आगैं आलापधरि संख्या साधनेकौं अगिला सूत्र कहैं हैं---

संठाविदूण रूवं उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे।
अवणिज्ज अणंकिदयं कुज्जा एमेव सव्वत्थ ॥ ४२ ॥

संस्थाप्य रूपमुपरितः संगुणित्वा स्वकमानं।
अपनीयानंकितं कुर्यात् एवमेव सर्वत्र ॥ ४२ ॥

जी० प्र०---प्रथमं तावदेकरूपं संस्थाप्य उपरितनेंद्रियप्रमादसंख्यया गुणयित्वा अत्रानंकितस्थानानां संख्यामपनीय पुनः शेषं तदनतराधस्तनकषायप्रमादपिंडसंख्यया गुणयित्वा तत्राप्यनकितस्थानान्यपनीय शेषं पुनस्तदनंतराधस्तनविकथाप्रमादपिंडसंख्यया गुणयित्वा तत्राप्यनंकितस्थानान्यपनीय शेपमक्षांकितप्रमादालापसंख्या भवति। एवं सर्वत्र गुणशीलादिष्वपि उद्दिष्टानयनक्रमो ज्ञातव्यः। अत्राप्युदाहरणं प्रद-

इयेते-प्रथममेकरूपं संस्थाप्य उपरितनेंद्रियप्रमादसंख्यया पंचकेन गुणयित्वा तल्लब्धराशौ पंचात्मके ५ पंचदशोद्दिष्टस्य विवक्षया रसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राण्यनकितस्थानानीति चतुरोऽपनीय शेषमेकरूपं १ तदनंतराधस्तनकषायसंख्यया ४ चतुर्भिर्गुणयित्वा तल्लब्धराशौ ४ चतुरात्मके अनंकितस्थानमत्र किमपि नास्ति इति शून्येऽपनीते राशेरविकृतिंसभवाच्चत्वार एव तस्मिन् राशौ पुनस्तदनंतराधस्तनविकथासख्यया ४ चतुर्भिर्गुणिते १६ षोडश। अत्राप्यनंकितस्थाने एकस्मिन्नपनीते शेषं पंचदश राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शनेंद्रियवशगतः निद्रालुः स्नेहवान् इत्याकांक्षितप्रमादालापस्य संख्याप्रमाणं भवति एवं सर्वत्रापि अक्षं धृत्वा संख्यानयनमुद्दिष्ट सर्वत्र साधयेत् ॥ ४२ ॥ अथ प्रथमप्रस्ताराक्षसंचारमाश्रित्य नष्टोद्दिष्टयोर्गूढयंत्रस्वरूपमाह——

म० प्र०——स्वेष्ट कश्चित् प्रमादमालप्य अयं प्रमादः कतिथ इति प्रश्ने कृते सति तत्संख्या आनीयते तद्यथा-एकं रूपं संस्थाप्य स्नेहनिद्रयोः संचाराभावात्तद्द्वयं मुक्त्वा उपरितनेंद्रियादिप्रमादसंख्यया गुणयित्वा तत्रानकितकं अक्षालक्षितस्थानसख्यामपनयेत् पुन. शेषं तदधस्तनप्रमादसंख्यया संगुण्य तत्राप्यनंकितस्थानसंख्यामपनयेत् एवमेव सर्वत्र कुर्यात्। अत्र किंचिदुदाहरणं दर्श्यते तद्यथा-राष्ट्रकथालापी मायी घ्राणेंद्रियवशगतो निद्रालुः स्नेहवान् इत्ययं प्रमादः कतिथ इति प्रश्ने सति एकं रूपं संस्थाप्य इंद्रियप्रमादसंख्यया पंचभिर्गुणयित्वा ५ तत्रानंकित चक्षु. श्रोत्रद्वयमपनीय शेषं ३ पुनः कषायप्रमादसख्यया चतुर्भिः सगुण्य १२ तत्रानकितं लोभमेकमपनीय शेषं ११ विकथा प्रमादसंख्यया चतुर्भिः संगुण्य ४४ तत्रानकित राजकथाप्रमादमेकमपनयेत् अवशिष्ट त्रिचत्वारिंशत्तमः पूर्वोक्तप्रमादः सिद्धः अक्षं धृत्वा संख्यानयनमुद्दिष्टमित्युद्दिष्टलक्षणस्य सद्भावात् स्पर्शनेंद्रिये षोडश १६ रसनेंद्रिये षोडश घ्राणेंद्रिये क्रोधे चत्वारः ४ माने चत्वारः ४ मायायां त्रयः इति त्रिचत्वारिंशत्सभवात् ॥ ४२ ॥ अथाप्रमत्तसंयतगुणस्थानमाह——

सं० च०——प्रथम एकरूप स्थापनकरि ऊपरितैं अपना प्रमाण करि गुणें जो प्रमाण होई तामैं अनंकित स्थानका प्रमाण घटावना ऐसैं सर्वत्र करना। इहां जो भेद ग्रहण होइ ताकैं परैं स्थानकनिकी जो संख्या ताकौं अनंकित कहिए। जैसैं विकथाप्रमादविषैं प्रथम भेद स्त्रीकथाका ग्रहण होइ तौ तहां ताकैं परैं तीन स्थान रहैं तातैं अनंकितका प्रमाण तीन है। बहुरि जो भक्तकथाका ग्रहण होइ तौ ताकैं परैं दोय स्थान रहैं तातैं अनंकित स्थान दोय हैं। बहुरि जो राष्ट्रकथाका ग्रहण होइ तौ ताकैं परैं एक स्थान है तातैं अनंकित स्थान एक है। बहुरि जो अवनिपालकथाका ग्रहण होइ तौ ताकैं परैं कोऊ भी नहीं तातैं तहां अनंकित स्थानका अभाव है। ऐसैं ही कषाय इंद्रिय प्रमादविषैं भी अनंकित स्थान जानना सो कोऊ कहे कि असुकालाप केथवां है ? तहां आलाप कह्या ताकी संख्या न जानिए ताकी संख्या जाननेकौं उद्दिष्ट कहिए है। प्रथम एक रूप स्थापिए बहुरि

ऊपरिका इंद्रियप्रमाद संख्या पांच ताकरि तिस एककौं गुणिए तहां अनंकित स्थानकनिकी संख्या घटाइ अवशेषकौं ताके अनंतर नीचला कषाय प्रमादका पिंडकी संख्या च्यारि ताकरि गुणिए तहां भी अनंकित स्थान घटाइ अवशेषकौं ताके अनंतरि नीचली विकथाप्रमादपिंड च्यारि ताकरि गुणिए तहां भी अनंकित स्थान घटाइ अवशेष रहै तितनां विवक्षित आलापकी संख्या हो है। ऐसैं ही सर्वत्र उत्तरगुण वा शीलभेदनिविषैं उद्दिष्ट ल्यावनेका अनुक्रम जानना। इहां भी उदाहरण दिखाइए है—काहूनैं पूछ्या कि राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत निद्रालु स्नेहवान ऐसा आलाप केथवां है? तहां प्रथम एक रूप स्थापि ताकौं ऊपरिका इंद्रियप्रमाद ताकी संख्या पांच तींहिकरि गुणैं पांच भए। तींहि राशिविषैं पद्रह्वां उद्दिष्टकी विवक्षाकरि तामैं पहला भेद स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत ऐसा आलापविषैं कह्या था तातैं ताके परैं रसना घ्राण चक्षु श्रोत्र ए च्यारि अनंकित स्थान हैं तातैं इनकौं घटाएं अवशेष एक रहै ताकौं नीचला कषाय प्रमादकी संख्या च्यारिकरि गुणैं च्यारि भए सो इस लब्धराशि च्यारिविषैं इहां आलापविषैं लोभी कह्या था सो लोभके परैं कोऊ भेद नाहीं तातैं अनंकित स्थान कोऊ नाहीं इस हेतुतैं इहां शून्य घटाए राशि जैसाका तैसा ही रह्या सो च्यारि ही रहै। बहुरि इस राशिकौं याके नीचे विकथाप्रमादकी संख्या च्यारि ताकरि गुणैं सोलह भए। इहां आलापविषैं राष्ट्रकथालापी कह्या सो याके परैं एक भेद अवनिपालकथा है यातैं अनंकित स्थान एक घटाएं पंद्रह रहै सोई पूछ्या था ताका उत्तर ऐसा जो राष्ट्रकथालापी लोभी स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत निद्रालु स्नेहवान ऐसा आलाप पद्रह्वां है। सो यहु विधान दूसरा प्रस्तारकी अपेक्षा जानना बहुरि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा नीचेतैं अनुक्रम जानना। तहां उदाहरण कहिए है—स्नेहवान निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत मायावी स्त्रीकथालापी ऐसा आलाप केथवां है? तहां एक रूप स्थापि प्रथमप्रस्तार अपेक्षा ऊपरिका प्रमाद विकथा ताका प्रमाण च्यारि करि गुणैं च्यारि भए सो इहां स्त्रीकथालापी ग्रह्या सो याकैं परैं तीन भेद हैं तातैं अनंकित स्थान तीन घटाएं अवशेष एक रह्या ताकौं कषायप्रमाद च्यारि करि गुणैं च्यारि भए सो इहां मायावी ग्रह्या ताकैं परैं एक लोभ अनंकित स्थान है तातैं

घटाएं तीन रहै याकौं इंद्रियप्रमाद पांचकरि गुणें पंद्रह भए सो इहां श्रोत्र इंद्रियका ग्रहण है ताके परें कोऊ भेद नाहीं तातें अनंकित स्थानका अभाव है इस हेतुनैं शून्य घटाएं पंद्रह ही रहैं ऐसैं स्नेहवान निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत मायावी स्त्रीकथालापी ऐसा आलाप पंद्रह्वां है। याही प्रकार विवक्षित प्रमादका आलापकी संख्या हो है ऐसैं अक्षधरि संख्याका ल्यावना सो उद्दिष्ट सर्वत्र साधै ॥ ४२ ॥ आगैं प्रथम प्रस्तारका अक्षसंचारकौं आश्रयकरि नष्ट उद्दिष्टका गूढ यंत्र कहै हैं—

इगिबितिचपणखपणदसपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य।
संठविय पमदठाणे णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे ॥ ४३ ॥

एकद्वित्रिचतुःपंचखपंचदशपंचदशखविंशच्चत्वारिंशत्षष्टीश्च।
संस्थाप्य प्रमादस्थाने नष्टोद्दिष्टे च जानीहि त्रिस्थाने ॥ ४३ ॥

जी० प्र०— नष्टोद्दिष्टयोर्यंत्रमिदं
स्प १, र २, घ्रा ३, च ४, श्रो ५,
क्रोध०, मा ५, मा १०, लो १५,
स्त्री०, भ २०, रा ४०, अ ६०,

प्रमादस्थानेषु इंद्रियाणां पंचसु कोष्ठेषु यथासंख्यं एकद्वित्रिचतुःपंचांकान् संस्थाप्य तथा कषायाणां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्यं शून्यपंचदशपंचदशांकान् संस्थाप्य तथा विकथानां चतुर्षु कोष्ठेषु यथासंख्य शून्यविंशतिचत्वारिंशत्षष्ट्यंकान् संस्थाप्य निद्रास्नेहयोर्द्वित्वत्रित्वाद्यभावेन न तद्धेतुकं आलापानां संख्याबहुत्वं संभवतीति तेषु त्रिस्थानेष्वेव स्थापितांकेषु नष्टमुद्दिष्टं च जानीहि। तत्र नष्टं यथा—पंचत्रिंशत्तमः आलापः कीदृग्? इति प्रश्ने इंद्रियकषायविकथानां यद्यत्कोष्ठगतांकशून्येषु मिलितेषु सा संख्या स्यात् तत्तत्कोष्ठगतप्रमादेषु स्नेहनिद्राभ्यामग्रे उच्चरितेषु स्नेही निद्रालुः श्रोत्रेंद्रियवशगतो मायावी भक्तकथालापीति पृष्टालापः स्यात्। तथा एकषष्ठितम आलापः कीदृग्? इति प्रश्ने अत्रापींद्रियकषायविकथानां यद्यत्कोष्ठगतांकशून्येषु मिलितेषु सा संख्या स्यात् तत्तत्कोष्ठगतप्रमादेषु प्राग्वदुच्चरितेषु स्नेही निद्रालुः स्पर्शनेंद्रियवशगतः क्रोधी अवनिपालकथालापीति तत्पृष्टालापः स्यात्। एवमन्यालापप्रश्नेऽपि विधेयं। उद्दिष्टं तु स्नेही निद्रालुः स्पर्शनेंद्रियवशगतो मानी राष्ट्रकथालापीत्यालापः कतिथः? इति प्रश्ने स्नेहनिद्रावर्जिततत्तत्कोष्ठगतैकपंचचत्वारिंशदंकेषु मिलितेषु या

१—मदप्रबोधिका टीकामें ४३ ४४ नबरकी दो गाथा नहीं हैं।

संख्या पद्चत्वारिंशज्जायते स पृष्टालापस्ततियो भवति। तथा स्नेही निद्रालुः चक्षुरिंद्रियवशगतो लोभी भक्तकथालापीत्यालापः कतिथः? इति प्रश्ने तत्तत्कोष्ठगतचतुःपंचदशविंशत्यंकेषु मिलितेषु या संख्या एकान्नचत्वारिंशत् संपद्यते स पृष्टालापस्ततियो भवति एवमन्यालापेऽपि पृष्टे कर्तव्यं ॥ ४२ ॥ अथ द्वितीयप्रस्तारापेक्षया नष्टोद्दिष्टयोर्गूढयंत्रमाह–

स० चं०—प्रमादस्थानकनिविषैं इंद्रियनिके पंच कोठानिविषैं क्रमतैं एक दोय तीन च्यारि पांच इन अंकनिकौं स्थापि, कषायनिके च्यारि कोठानिविषैं क्रमतैं विंदी पांच दश पंद्रह इन अंकनिकौं स्थापि, विकथानिके च्यारि कोठानिविषैं क्रमतैं विंदी वीस चालीस साठि इनि अंकनिकौं स्थापि निद्रा स्नेहके दोय तीन आदि भेदनिका अभाव है तींहिं करि ताके निमित्ततैं हुई जो आलापनिकी बहुत संख्या सो न संभवै है यातैं तिन तीनौं स्थानकनिविषैं स्थापे अंक तिनविषै नष्ट उद्दिष्ट तू जानि। भावार्थ—निद्रा स्नेहका तौ एक एक भेद ही है सो इनकी तौ सर्वभंगनिविषैं पलटनि नाहीं तातैं इनिकों तो कहिलैने। अर अवशेष तीन प्रमादनिका तीन पंक्तिरूप यंत्र करना। तहां ऊपरिकी पंक्तिविषैं पंच कोठे करने तिनविषैं क्रमतैं स्पर्शन आदि इंद्रिय लिखने अर एक दोय तीन च्यारि पांच ए अंक लिखने। बहुरि ताके नीचली पंक्तिविषैं च्यारि कोठे करने तिन विषैं क्रोधादि कषाय लिखने अर विंदी पांच दश पंद्रह ए अंक लिखने। बहुरि ताके नीचली पांक्तिविषैं च्यारि कोठे लिखने तिनविषैं स्त्री आदि विकथा क्रमतैं लिखनीं अर विंदी वीस चालीस साठ ए अंक लिखने।

स्पर्शन १, रसन २, घ्राण ३, चक्षु ४, श्रोत्र ५,
क्रोध०, मान ५, माया १०, लोभ १५,
स्त्री०, भक्त २०, राष्ट्र ४०, अव ६०,

इहां कोऊ बूझै तो जेथवां प्रमादभंग पूछ्या सो प्रमाण तीनो पंक्तिविषैं जिन जिन कोठनिके अंक जोडैं होंइ तिन तिन कोठेनिविषैं जो जो इंद्रियादि लिखा होइ सो सो तिस पूछया हूवा आलापविषैं जानने। बहुरि जो उद्दिष्ट बूझै तौ जो आलाप बूझ्या तिस आलापविषैं जो इंद्रियादिक ग्रहे होंइ तिनके तीनों पंक्तिनिके कोठे-

निविषैं जे जे अंक लिखे होंइ तिनकौं जोडैं जो प्रमाण होइ तेथवां सो आलाप जानना। तहां नष्टका उदाहरण कहिए है—जैसैं पैंतीसवां आलाप कैसा है ? ऐसा पूछैं इंद्रिय कषाय विकथानिकैं तीनों पंक्तिसंबंधी जिन जिन कोठानिके अंक वा शून्य मिलाएं सो पैंतीसकी संख्या होइ तिन तिन कोठानिविषैं लिखे हुवे इंद्रियादि प्रमाद अर स्नेह निद्राविषैं आगै उच्चारण कीए स्नेहवान निद्रालु श्रोत्र इंद्रियके वशीभूत मायावी भक्तकथालापी ऐसा पूछ्या हूआ पैंतीसवां आलाप जानना। भावार्थ—यंत्रविषैं इंद्रिय पंक्तिका पांचवां कोठा कषायपंक्तिका तीसरा कोठा, विकथापंक्तिका दूसरा कोठा इन कोठेनिका अंक जोडैं पैंतीस होंइ तातैं इन कोठेनिविषैं जे जे इंद्रियादि लिखे ते ते पैंतीसवां आलापविषैं जाननें। स्नेह निद्राकौं पहिलैं कहि लीजिये। बहुरि दूसरा उदाहरण नष्टका ही कहिए है—इकसठिवां आलाप कैसा है ? ऐसैं पूछैं इहां भी इंद्रियकषायविकथानिके जिन जिन कोठानिके अंक वा शून्य जोडैं सो इकसठि संख्या होइ तिन तिन कोष्ठनिविषैं प्राप्त प्रमाद पूर्ववत् कहे स्नेहवान् निद्रालु स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत क्रोधी अवनिपालकथालापी ऐसा पूछ्या हूवा इकसठिवां आलाप हो है। भावार्थ—इंद्रियपंक्तिका प्रथम कोठाका एका अर कषायपंक्तिका प्रथम कोठाकी विंदी विकथाका चौथा कोठाका साठि जोडैं इकसठि होंइ सो इनि कोठानिविषैं जे जे इंद्रियादि लिखे हैं ते इकसठिवां आलापविषैं जाननें। ऐसैं ही अन्य आलापका प्रश्न भए भी विधान करना। बहुरि उद्दिष्टका उदाहरण कहिए है—स्नेहवान निद्रालु स्पर्शन इंद्रियके वशीभूत मानी राष्ट्रकथालापी ऐसा आलाप केथवां है ? ऐसा प्रश्न होतैं स्नेह निद्रा विना जे जे इंद्रियादिक इस आलापविषैं कहे ते तीनों पंक्तिनिविषैं जिस जिस कोठे विषैं ये लिखे होंइ सो इंद्रियपंक्तिका प्रथम कोठा कषायपंक्तिका दूसरा कोठा विकथापंक्तिका तीसरा कोठानिविषैं ए आलाप लिखे हैं सो इन कोठानिके एक पांच चालीस ए अंक मिलाइ छियालीस होंइ है सो पूछ्या हूआ आलाप छ्यालीसवां है। बहुरि दूसरा उदाहरण कहिए है—स्नेहवान निद्रालु चक्षु इंद्रियके वशीभूत लोभी भक्तकथालापी ऐसा आलाप केथवां है ? तहां इस आलापविषैं कहे इंद्रियादिकनिके कोठे तिनिविषैं लिखे हूवे च्यारि पंद्रह वीस अंक जोड़ैं गुणतालीस

हवान ऐसा आलाप केथवां है ? ऐसा प्रश्न होतें इस आलापविषैं जो जो विकथादि प्रमाद कह्या है तींह तींह प्रमादका कोठाविषैं जो जो अंक एक च्यारि बत्तीस लिखे हैं तिनकौं जोडैं सैंतीस होइ तातैं सो आलाप सैंतीसवां है। बहुरि दूसरा उदाहरण अवनिपालकथालापी लोभी चक्षु इंद्रियके वशीभूत निद्रालु स्नेहवान ऐसा आलाप केथवां है ? तहां इस आलापविषैं जे प्रमाद कहे तिनके कोठानिविषैं प्राप्त च्यारि बारह अड़तालीस अंक मिलाएं जो संख्या चौंसठि होइ सोई तिस आलापकौं चौसठिवां कहे ऐसैं ही अन्य आलाप पूछैं भी विधान करनो। ऐसैं मूल प्रमाद पांच उत्तर प्रमाद पंद्रह उत्तरोत्तर प्रमाद असी इनका यथासंभव संख्यादिक पांच प्रकारनिकौं निरूपण करि अब और प्रमादकी संख्याका विशेषकौं जनावैं हैं सो कहैं हैं—स्त्रीकी कथा सो स्त्रीकथा, धनादिरूप अर्थकथा, खानेकी सो भोजन कथा, राजानिकी सो राजकथा, चोरकी सो चोरकथा, वैरकरणहारी सो वैरकथा, पराया पाखंडादिरूप सो परपाखंडकथा, देशादिककी सो देशकथा, कहानी इत्यादि भाषाकथा, गुणरोकनेरूप गुणबंध कथा, देवीकी सो देवीकथा, कठोररूप निष्ठुरकथा, दुष्टतारूप परपैशून्यकथा, कामादिरूप कंदर्पकथा, देशकालविषै विपरीत सो देशकालानुचितकथा, निर्लज्जतादिरूप भंडकथा, मूर्खतारूप मूर्खकथा, अपनी वढाईरूप आत्मप्रशंसाकथा, पराईनिंदारूप परपरिवादकथा, पराई घृणारूप परजुगुप्साकथा, परकौं पीड़ा देनेरूप परपीड़ाकथा, लडनेरूप कलहकथा, परिग्रह कार्यरूप परिग्रहकथा, खेतीआदिका आरंभरूप कृष्याद्यारंभकथा, संगीत वादित्रादिरूप संगीतवादित्रादि कथा, ऐसैं विकथा पचीस भेदसंयुक्त है। बहुरि सोलह कषाय अर नव नो कषाय भेदकरि कषाय पचीस हैं। बहुरि स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र मन नाम धारक इंद्रिय छह हैं। बहुरि स्त्यानगृद्धि निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला निद्रा प्रचला भेदकरि निद्रा पांच हैं। बहुरि स्नेह मोह भेदकरि प्रणय दोय हैं इनकौं परस्पर गुणैं पांचसै अधिक सैंतीस हजार प्रमाण हो हैं ३७५००। ए भी मिथ्यादृष्टि आदि प्रमत्तसंयतगुणस्थान पर्यंत प्रवर्तै हैं जे बीस प्ररूपणा तिनविषैं यथासंभव बंधका हेतुपणाकरि पूर्वोक्त संख्या आदि पांच प्रकार लीए जैनागमतैं अविरुद्धपनें जोडने। अब प्रमादनिके साड़ा सैंतीस हजार भेदनिविषैं संख्या,दोय प्रकार प्रस्तार,तिन प्रस्तारनिकी अपेक्षा अक्षसंचार, नष्ट, समुद्दिष्ट पूर्वोक्त वि-

धानतैं यथा संभव करना। बहुरि गूढ यंत्र करनेका विधान न कह्या सो गूढ यंत्र कैसे होइ? तातैं इहां भाषाविषैं गूढ यंत्र करनेका विधान कहिए है जाकौं जानैं जाका चहिए ताका गूढ यंत्र कर लीजिये तहां पहिले प्रथम प्रस्तारकी अपेक्षा कहिए है—जाका गूढयंत्र करना होइ तिस विवक्षितके जे मूलभेद जितने होंइ तितनी पंक्तिका यंत्र करना तहां तिन मूल भेदनिविषैं अंतका मूलभेद होइ ताकी पंक्ति सवनिके ऊपरि करनी। तहां तिस मूल भेदके जे उत्तर भेद होंहिं तितने कोठे करने। तिन कोठानिविषैं तिस मूल भेदके जे उत्तर भेद होंहिं ते क्रमतैं लिखने। बहुरि तिनही प्रथमादि कोठानिविषैं एक दोय इत्यादि क्रमतैं एक एक बधता अंक लिखना। बहुरि ताके नीचे जो अंत भेदतैं पहला उपांत मूल भेद होइ ताकी पंक्ति करनी। तहां उपांतमूल भेदके जेते उत्तर भेद होंइ तितने कोठे करने। तहां उपांत मूल भेदके उत्तरभेदनिकौं क्रमतैं लिखने। बहुरि तिनहीं कोठानिविषैं प्रथम कोठाविषैं विंदी लिखनी। दूसरे कोठाविषैं ऊपरिकी पंक्तिका अंतका कोठाविषैं जेतेका अंक होइ सो लिखना। बहुरि तृतीयादि कोठानिविषैं दूसरा कोठा विषैं जेतेका अंक लिख्या तितना तितना ही बधाइ बधाइ क्रमतैं लिखने। बहुरि ताके नीचैं नीचैं जे उपांततैं पूर्वै मूलभेद होंइ ताकौं आदिदेकरि आदिके मूलभेदपर्यंत जे मूल भेद होंइ तिनकी पंक्ति करनी तहां तिनके जेते जेते उत्तरभेद होंइ तितने कोठे करने बहुरि तिनविषैं अपना २ मूलभेदके उत्तरभेद होंइ ते क्रमतैं लिखने। बहुरि तिन सर्वपंक्तिनिके प्रथम कोठानिविषैं तौ विंदी लिखनी। बहुरि द्वितीय कोठाविषैं अपनी पंक्तितैं ऊपरिकी सर्वपंक्तिके अंतका कोठानिविषैं जितने जितनेका अंक लिख्या होइ तिनकौं जोडैं जो प्रमाण होइ तितनेका अंक लिखना। बहुरि तृतीयादि कोठानिविषैं जेतेका अंक दूसरा कोठा विषैं लिख्या तितना तितना ही क्रमतैं बधाइ बधाइ लिखना। ऐसैं विधान करना। अब द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा कहिए है—जो विधान प्रथम प्रस्तार अपेक्षा लिख्या सोई विधान द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा जानना विशेष इतना इहां विवक्षितका जो प्रथम मूल भेद होइ ताकी पंक्ति ऊपरि करनी। ताके नीचैं दूसरे मूलभेदकी पंक्ति करनी ऐसैं ही नीचैं नीचैं अंतके मूलभेद पर्यंत पंक्ति करनी। बहुरि तहां जैसैं अंत मूल भेदसंबंधी ऊपरि पंक्तितैं लगाइ क्रम वर्णन कीया था तैसैं तहां प्रथम मूल भेद संबधी पंक्तितैं लगाइ क्रमतैं विधान जानना। अन्य

सर्व विधान पूर्वोक्त जानना ऐसैं गूढ यंत्र करना तहां प्रमादके साडे सैंतीस हजार भेद तिनिका यंत्र लिखिए है—

स्नेह १ / मोह २	निद्रा	इन्द्रिय	कषाय-नोकषाय	विकथा	
	स्त्यानगृद्धि ०	स्पर्शन ०	अनंतानुबंधी क्रोध ०	स्त्री	०
	निद्रानिद्रा २	रसन १०	अनंतानुबंधी मान ६०	अर्थ	१५००
	प्रचलाप्रचला ४	घ्राण २०	अनंतानुबंधी माया १२०	भोजन	३०००
	निद्रा ६	चक्षु ३०	अनंतानुबंधी लोभ १८०	राज	४५००
	प्रचला ८	श्रोत्र ४०	अप्रत्याख्यान क्रोध २४०	चोर	६०००
		मन ५०	अप्रत्याख्यान मान ३००	वैर	७५००
			अप्रत्याख्यान माया ३६०	परपाखंड	८०००
			अप्रत्याख्यान लोभ ४२०	देश	१०५००
			प्रत्याख्यान क्रोध ४८०	भाषा	१२०००
			प्रत्याख्यान मान ५४०	गुणबंध	१३५००
			प्रत्याख्यान माया ६००	देवी	१५०००
			प्रत्याख्यान लोभ ६६०	निष्ठुर	१६५००
			संज्वलन क्रोध ७२०	परपैशून्य	१८०००
			संज्वलन मान ७८०	कंदर्प	१९५००
			संज्वलनमाया ८४०	देशकालानुचित	२१०००
			संज्वलन लोभ ९००	भंड	२२५००
			हास्य ९६०	मूर्ख	२०००
			रति १०२०	आत्मप्रशंसा	२५५००
			अरति १०८०	परपरिवाद	२७०००
			शोक ११४०	परजुगुप्सा	२८५००
			भय १२००	परपीडा	३००००
			जुगुप्सा १२६०	कलह	३१५००
			स्त्री १३२०	परिग्रह	३३०००
			पुरुष १३८०	कृष्याद्यारंभ	३४५००
			नपुंसक १४४०	संगीतवाद्य	३६०००

या प्रकार साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनिका प्रथम प्रस्तार अपेक्षा गूढयंत्र कह्या तहां कोऊ पूछे नष्टका किएथवां आलाप भंग कौंनसा? तहां जिस प्रमाणका आलाप पूछ्या सो प्रमाण सर्वपंक्तिनिके जिस जिस कोठानिके अंक वा विंदी मिलाए होइ तिस तिस कोठाविषैं जे जे उत्तर भेद लिखे तिनरूप सो पूछ्या हूवा आलाप जानना। बहुरि कोई उद्दिष्ट पूछे कि अमुकालाप केथवां है तो तहां पूछे हुए आलापविषैं जे जे उत्तर भेद ग्रहे हैं तिन तिन उत्तर भेदनिके कोठानिविषैं जे जे अंक वा विंदी लिखी हैं तिनकों जोडैं जो प्रमाण होइ तेथवां सो पूछ्या हूवा आलाप जानना। अब इस विधानतैं साडा सैंतीस हजार प्रमाद भंगनिका प्रथम प्रस्तार अपेक्षा गूढ यंत्र लिखिए हैं–इहां प्रमादके मूलभेद पांच हैं तातैं पांच पंक्ति करनीं। तहां ऊपरि प्रणयपंक्तिविषैं दोय कोठे करि तहां स्नेह मोह लिखे अर एक दोयका अंक लिखे ताके नीचै निद्रापंक्तिके पांच कोठे करि तहां स्त्यानगृद्धि आदि लिखे अर प्रथम कोठाविषैं विंदी लिखी। द्वितीय कोठाविषैं ऊपरिकी पंक्तिके अंतके कोठेमें अंक दोय था सो लिख्या अर तृतीयादि कोठैं विषैं तितने तितने ही बधाइ च्यारि छह आठ लिखे। बहुरि ताके नीचैं इंद्रिय पंक्तिके छह कोठे करि तहां स्पर्शनादि लिखे। अर प्रथम कोठाविषैं विंदी द्वितीय कोठाविषैं ऊपरिकी दोय पंक्तिके अंतका कोठाके जोडैं दश होइ सो अर तृतीयादि कोठानिविषैं सोई दश दश बधाइ लिखे हैं। अर ताके नीचैं कषायपंक्तिविषैं पचीस कोठे करि तहां अनंतानुबंधी क्रोधादि लिखे। अर प्रथम कोठाविषैं विंदी दूसरा कोठाविषैं ऊपरिकी तीन पंक्तिका अंतके कोठानिका जोड साठि लिखि तृतीयादि कोठानिविषैं तितने तितने बधाइ लिखे। बहुरि ताके नीचैं विकथापंक्तिविषैं पचीस कोठाकरि तहां स्त्रीकथादि लिखे। अर प्रथम कोठाविषैं विंदी द्वितीय कोठाविषैं ऊपरिकी च्यारिपंक्तिनिके अंत कोठानिका जोड पंद्रहसै तृतीयादि कोठानिविषैं तितने तितने बधाइ लिखे हैं। ऐसैं प्रथम प्रस्तार अपेक्षा यंत्र भया। बहुरि द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यंत्र लिखिए है–

१	स्त्री	अनंतानुबंधी क्रोध ०	स्पर्शन ०	स्त्यानगृद्धि ०	० स्नेह
२	अर्थ	अनंतानुबंधी मान २५	रसन ६२५	निद्रानिद्रा ३७५०	१८७५० मोह
३	भोजन	अनंतानुबंधी माया ५०	घ्राण १२५०	प्रचलाप्रचला ७५००	
४	राज	अनंतानुबंधी लोभ ७५	चक्षु १८७५	निद्रा ११२५०	
५	चोर	अप्रत्याख्यान क्रोध १००	श्रोत्र २५००	प्रचला १५०००	
६	वैर	अप्रत्याख्यान मान १२५	मन ३१२५		
७	परपाखंड	अप्रत्याख्यान माया १५०			
८	देश	अप्रत्याख्यान लोभ १७५			
९	भाषा	प्रत्याख्यान क्रोध २००			
१०	गुणबंध	प्रत्याख्यान मान २२५			
११	देवी	प्रत्याख्यान माया २५०			
१२	निष्ठुर	प्रत्याख्यान लोभ २७५			
१३	परपैशून्य	संज्वलन क्रोध ३००			
१४	कंदर्प	संज्वलन मान ३२५			
१५	देशकालानुचित	संज्वलन माया ३५०			
१६	भंड	संज्वलन लोभ ३७५			
१७	मूर्ख	हास्य ४००			
१८	आत्मप्रशंसा	रति ४२५			
१९	परपरिवाद	अरति ४५०			
२०	परजुगुप्सा	शोक ४७५			
२१	परपीडा	भय ५००			
२२	कलह	जुगुप्सा ५२५			
२३	परिग्रह	स्त्री ५५०			
२४	कृष्याद्यारंभ	पुरुष ५७५			
२५	संगीतवाद्य	नपुंसक ६००			

तहां ऊपरि विकथा पंक्तिकरी तहां पचीस कोठेकरि तहां स्त्रीकथादि लिखे अर एक दोय आदि एक एक वधता अंक लिखे ताके नीचैं नीचैं कषायपंक्ति अर इंद्रियपंक्ति अर निद्रापंक्ति अर प्रणयपंक्तिविषैं क्रमतैं पचीस छह पांच दोय कोठेकरि तहां अपने २ उत्तरभेद लिखे बहुरि इन सवपंक्तिनिके प्रथम कोठाविषैं विंदी लिखी अर दूसरा कोठाविषैं अपनी अपनी पंक्तितैं ऊपरि क्रमतैं एक दोय तीन च्यारि पंक्ति तिनके अंत कोठासंबंधी अंकनिकौं जोडैं पचीस छहसै पचीस साडा सैंतीससै अठारह हजार सातसै पचास लिखे। बहुरि तृतीयादि कोठानिविषैं जेते दूसरे कोठाविषैं लिखे तितने तितने वधाइ क्रमतैं अंत कोठापर्यंत लिखे हैं ऐसैं द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यंत्र जानना सोही यंत्रका कोठाकी विधि वा अक्षर अंकादिक कही विधि मूजिव क्रमतैं यंत्र रचना विधि लिखी है ॥

इसप्रकार साढा सैंतीसहजार प्रमादका गूढ यंत्र कीए। तहां प्रथम प्रस्तार अपेक्षा कोऊ पूछे कि इन भंगनिविषैं पैंतीसहजारवां भंग कौंन है ? तहां प्रणय पंक्तिका दूसरा कोठा निद्रा पंक्तिका पांचवां कोठा इंद्रियपंक्तिका दूसरा कोठा कषाय पंक्तिका नवमा कोठा विकथा पंक्तिका चौवीसवां कोठा इनि कोठानिके अंक जोडैं पैंतीस हजार होंइ तातैं इनि कोठानिविषैं तिष्ठते उत्तर भेदरूप मोही प्रचलायुक्त रसना इंद्रियके वशीभूत प्रत्याख्यान क्रोधी कृष्याद्यारंभकथालापी ऐसा आलाप पैंतीसहजारवां जानना। याकौं दृढकरणेंकौं 'सगमाणेहिं विभत्ते' इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रकरि भी याकौं साधिए है। पूछनहारेने पैंतीसहजारवां आलाप पूछ्या तहां प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पहलैं प्रणयका प्रमाण दोय ताकौं भाग दीएं साढ़े सतराहजार पाए अवशेष किछू रह्या नाहीं तातैं इहां अंतभेद स्नेह ग्रहण करना। बहुरि लब्धराशिविषैं किछू अवशेष न रह्या तातैं एक न जोडना। बहुरि तिस लब्धराशिकौं याके नीचैं निद्राभेद पांच ताका भागदीए पैंतीससै पाए इहां भी किछू अवशेष न रह्या तातैं अंतभेद प्रचला ग्रहण करना। इहां भी लब्धराशिविषैं एक न जोडि तिस लब्धराशिकौं छह इंद्रियका भाग दीएं पांचसै तियासी पाए अवशेष दोय रहै सो इहां दूसरा अक्ष रसना इंद्रियका ग्रहण करना। बहुरि लब्धराशिविषैं इहां

एक जोडिए तब पांचसे चौरासी होंइ तिनकौं कषाय पचीसका भाग दीएं तेवीस पाए अवशेष नव रहै सो इहां नवमां कषाय प्रत्याख्यान क्रोधका ग्रहण करना। बहुरि लब्धराशि तेवीसविषैं एक जोडिए तब चौवीस होंइ ताकौं कषायभेद पचीसका भाग दीएं शून्य पावैं अवशेष चौवीम रहैं सो इहां चौवीसवां विकथा भेद कृष्याद्यारंभका ग्रहण करना। ऐसैं पूछ्या हूवा पैंतीसहजारवां आलाप मोही प्रचलायुक्त रसना इंद्रियके वशीभूत प्रत्याख्यान क्रोधी कृष्याद्यारंभकथालापी ऐसा भंगरूप हो है। ऐसैं ही अन्य नष्टका साधन करना। ऐसैं नष्टका उदाहरण कह्या। अब उद्दिष्टका कहिए है—कोऊ पूछै कि स्नेही निद्रायुक्त मनके वशीभूत अनंतानुबंधी क्रोधयुक्त मूर्खकथालापी ऐसा आलाप केथवां है? तहां उत्तर भेद जिस जिस कोठानिविषै लिखे हैं तिस तिस कोठानिके अंक एक छह पचास विंदी चौवीसहजार मिलाएं चौवीसहजार सत्तावनवां भेद हो है ऐसा कहिए। बहुरि याहीकूं संठाविदूणरूवं इत्यादि सूत्रोक्त उद्दिष्ट ल्यावनेका विधान साधिए है प्रथम एकरूप स्थापि ताकौं प्रथम प्रस्तार अपेक्षा पहिलैं पचीस विकथानिकरि गुणिए अर इहां आलापविषैं मूर्खकथाका ग्रहण है तातैं याके परैं आठ अनंकित स्थान हैं तिनकौं घटाएं तब सतरह होंइ। बहुरि इनिकौं पचीस कषायनिकरि गुणिएं अर वहां प्रथम कषायका ग्रहण है तातैं याके परैं चौवीस अनंकित स्थान घटाइए तब च्यारिसै एक होंइ। बहुरि इनिकौं छह इंद्रियनिकरि गुणिए अर इहां अंतभेदका ग्रहण है तातैं अनंकित न घटाइए तब चौवीससै छह होंइ। बहुरि इनकौ पांच निद्राकरि गुणिए अर इहां चौथी निद्राका ग्रहण है तातैं याके परैं एक अनंकित स्थान है ताकौं घटाइए तब बारह हजार गुणतीस होंइ। याकौं दोय प्रणयकरि गुणिए अर इहां प्रथम भेदका ग्रहण है तातैं याके परैं एक अनंकित स्थान घटाइए तब चौवीसहजार सत्तावन होंइ ऐसैं स्नेहवान निद्रालु मनके वशीभूत अनंतानुबंधी क्रोधयुक्त मूर्खकथालापी ऐसा पूछ्या हूवा आलाप चौवीस हजार सत्तावनवां जानना। याहीप्रकार अन्य उद्दिष्ट साधने। बहुरि जैसैं प्रथम प्रस्तार अपेक्षा विधान कह्या तैसैं ही द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा यथासंभव नष्ट उद्दिष्ट ल्यावनेका विधान जानना। ऐसैं साढा सैंतीसहजार प्रमादभंगनिके प्रकार जानने। बहुरि याहीप्रकार अठारह हजार

शील भेद चौरासी लाख उत्तरगुण मतिज्ञान भेद वा पाखंडनिके भेद वा जीवाधिकरणके भेद इत्यादिकनिविषैं जहां अक्षसंचारकरि भेदनिकी पलटनि होइ तहां संख्यादिक पांच प्रकार जानने। विशेष इतना पूर्वै प्रमादनिकी अपेक्षा वर्णन कीया है इहां जाका विवक्षित वर्णन होइ ताकी अपेक्षा सर्वविधान करना। तहां जैसैं प्रमादनिके विकथादि मूलभेद कहे हैं तैसैं विवक्षितके जेते मूलभेद होंइ ते कहने। बहुरि जैसैं प्रमादके मूल भेदनिके स्त्रीकथादिक उत्तरभेद कहे हैं तैसै विवक्षित मूलभेदनिके उत्तर जे भेद हों है ते कहने। बहुरि जैसैं प्रमादनिके आदि अंतादिरूप मूलभेद ग्रहि विधान कह्या है तैसैं विवक्षितके जे आदि अंतादि मूलभेद होंइ तिनकौं ग्रहि विधान करना। बहुरि जैसैं प्रमादके मूलभेद उत्तर भेदका जेता प्रमाण था तितना ग्रहण कीया तैसैं विवक्षितके मूलभेद वा उत्तर भेदनिका जेता जेता प्रमाण होइ तितना ग्रहण करना इत्यादि संभवते विशेष जानि संख्या अर दोयप्रकार प्रस्तार अर तिन प्रस्तारनिकी अपेक्षा अक्षसंचार अर नष्ट अर समुद्दिष्ट ए पांच प्रकार हैं ते यथासंभव साधन करने। तहां उदाहरण-तत्त्वार्थसूत्रका षष्ठम अध्यायविषै जीवाधिकरणके वर्णनस्वरूप अैसा सूत्र है—

"आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः॥" इस सूत्रविषैं संरंभ १ समारंभ २ आरंभ ३ ए तीन अर मन १ वचन २ काय ३ ए योग तीन अर कृत १ कारित २ अनुमोदित ३ ए तीन अर क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ ए कषाय च्यारि इनके एक एक मूलभेदके एक एक उत्तरभेदकौं होतैं अन्य सर्व मूलभेदनिके एक एक उत्तर भेद संभवै है। तातैं क्रमतैं ग्रहे इनका परस्पर गुणनेतैं एकसौ आठ भेद हो हैं सो यहु संख्या जानना। बहुरि पहला पहला प्रमाणका विरलनकरि एक एकके ऊपरि आगला पिंडप्रमाणकौं स्थापैं प्रथम प्रस्तार हो है बहुरि पहला पहला पिंडप्रमाणकी संख्याकौं आगला मूलभेदके उत्तर भेद प्रमाण स्थानकनिविषैं स्थापि तिनके ऊपरि तिनि उत्तर भेदनिकौं स्थापै द्वितीय प्रस्तार हो है।

यह जीवाधिकरणका प्रथम प्रस्तार है यहां संरंभादिककी प्रथम अक्षरकी सहनानी है ऊपरि च्यारि कषायनिकी सहनानी है—

४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ	कृ	का	अ
म	म	म	व	व	व	का	का	का	म	म	म	व	व	व	का	का	का	म	म	म	व	व	व	का	का	का
सं	सं			सं	सं	सं	सं	सं	स	स	स	स	स	स	स	स	स	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ

बहुरि यह द्वितीय प्रस्तार है इहां क्रोधादि कषायनिविषैं क्रमतैं सत्ताईस सत्ताईस भंग कहने।

क्रोध,	मान,	माया,	लोभ,
१,	१,	१,	१,
२७,	२७,	२७,	२७,

बहुरि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा अंतका मूलभेदतैं लगाय आदि भेदपर्यंत अर द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा आदि मूलभेदतैं लगाय अंतभेदपर्यंत क्रमतैं उत्तर भेदनिका अंतपर्यंत जाइ जाइ बाहुड़नाका अनुक्रम लीएं उत्तरभेदनिके पलटनेरूप अक्षसंचार जानना। 'बहुरि सगमाणेहिं विभत्ते' इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रकरि नष्टका विधान करिए तहां उदाहरण-प्रथम प्रस्तार अपेक्षा कोऊ पूछै कि पचासवां आलाप कौन है ? तहां पचासकौं पहलैं च्यारि कषायका भाग दीएं बारह पाए अर अवशेष दोय रहै तातैं दूसरा कषाय मान ग्रहण करना। बहुरि अवशेष बारहविषैं एक जोड़ि कृतादि तीनका भागदीएं च्यारि पाए अवशेष एक रह्या तातैं पहला भेद कृत जानना। बहुरि पाए च्यारिविषैं एक जोडि योग तीनका भाग दीएं एक पाया अवशेष दोय सो दूसरा वचन योग ग्रहण करना। बहुरि पाया एकविषैं एक जोड़ें संरंभादि तीनकषायका भाग दीएं किछू भी न पाया अवशेष दोय सो दूसरा भेद समारंभ ग्रहना। ऐसैं पूछ्या हूवा पचासवां आलाप मानकषायकृत वचन समारंभ ऐसा भंगरूप होहै। ऐसैं ही अन्य नष्ट साधने। बहुरि 'संठाविदूणरूवं' इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रकरि उद्दिष्टका विधान करिए तहां उदाहरण प्रश्न—जो माया कषाय कारित मन आरंभ ऐसा आलाप केथवां है ? तहां प्रथम एक स्थापि प्रथम प्रस्तार अपेक्षा ऊपरितैं संरंभादि तीनकरि गुणि इहां अंतस्थानका ग्रहण है तातैं अनंकितकौं न घटाएं तीन ही भए। बहुरि इनकौं तीन योगकरि गुणि इहां वचन काय ए दोय अनंकित घटाएं सातभए। बहुरि इनकौं कृतादि तीनकरि गुणि अनुमोदित अनंकित स्थान घटाएं वीस हो हैं। बहुरि इनकौं च्यारि कषायकरि गुणिए एक लोभ अनंकित स्थान घटाएं गुन्यासी हो हैं ऐसा पूछ्या हुवा आलाप गुण्यासीवां है ऐसैं ही अन्य उद्दिष्ट साधने। बहुरि इसही प्रकार द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा भी नष्ट उद्दिष्ट साधने। बहुरि पूर्वैं जो विधान कह्या है तातैं याके गूढयंत्र ऐसैं करने—

प्रथम प्रस्तार अपेक्षा जीवाधिकरणका गूढयंत्र।

क्रोध,	मान,	माया,	लोभ,
१,	२,	३,	४,
कृत,	कारित,	अनुमोदित,	
०,	४,	८,	
मन,	वचन,	काय,	
०,	१२,	२४,	
संरंभ,	समारंभ,	आरंभ,	
०,	३६,	७२,	

द्वितीय प्रस्तार अपेक्षा जीवाधिकरणका गूढयंत्र।

संरंभ,	समारंभ,	आरंभ,	
१,	२,	३,	
मन,	वचन,	काय,	
०,	३,	६,	
कृत,	कारित,	अनुमोदित,	
०,	९,	१८,	
क्रोध,	मान,	माया,	लोभ,
०,	२७,	५४,	८१,

तहां नष्ट पूछे तौ जैसें च्यारौ पंक्तिनिके जिस जिस कोठाके अंक मिलाएं पूछ्या हूवा नष्टका प्रमाण मिलै तिस तिस कोठाविषै स्थित भेदरूप आलाप कहना जैसें साठिवां आलाप पूछे तौ च्यारि आठ वारह छत्तीस अंक जोडें साठि अंक होंइ तातैं इन अंक संयुक्त कोठानिके भेद ग्रहैं लोभ अनुमोदित वचन समारंभ ऐसा आलाप कहिए। बहुरि उद्दिष्ट पूछै तौ तिस आलापविषै कहे भेदसंयुक्त कोठेनिके अंक मिलाएं जो प्रमाण होइ तेथवां आलाप कहना जैसें पूछ्या कि मानकृत काय आरंभ केथवां आलाप है तहां इस आलापविषै कहे भेदसंयुक्त कोठेनिके दोय विंदी चौवीस बहत्तरि ए अंक जोडि अठ्याणवैवां आलाप है ऐसा कहना। याही प्रकार अन्य प्रस्तार अपेक्षा अन्य नष्ट समुद्दिष्ट वा दूसरा प्रस्तार अपेक्षा ते नष्ट समुद्दिष्ट साधन करने। ऐसैं ही शीलभेदादिविषै यथासंभव साधन करना। या प्रकार प्रमत्तगुणस्थानविषैं प्रमादभंग कहनेका प्रसंग पाइ संख्यादि पांच प्रकारनिका वर्णन करि प्रमत्तगुणस्थानका वर्णन समाप्त किया ॥४४॥ आगैं अप्रमत्त गुणस्थानके स्वरूपकौं प्ररूपै हैं—

संजलणणोकषायाणुदयो मंदो जदा तदा होदि ।
अपमत्तगुणो तेण य अपमत्तो संजदो होदि ॥ ४५ ॥

संज्वलननोकषायाणामुदयो मंदो यदा तदा भवति ।
अप्रमत्तगुणस्तेन च अप्रमत्तः संयतो भवति ॥ ४५ ॥

जी० प्र०—यदा-यस्मिन् काले संज्वलनानां क्रोधमानमायालोभानां चतुर्णां, नोकषायाणां हास्यादीनां नवानां च यथासंभवं उदयः-फलदानपरिणामः, मंदः-प्रमादजननशक्तिरहितो भवति, तदा-तस्मिन् काले अंतर्मुहूर्तपर्यंतं जीवस्य अप्रमत्तगुणः-अप्रमत्तगुणस्थानं भवेत् तेन कारणेन तद्गुणयुतः संयतः सकलसंयमी अप्रमत्तः-अप्रमत्तसंयतो भवति । चशब्दः वक्ष्यमाणगुणयुक्तश्च भवतीति समुच्चयार्थः पूर्णार्थो वा ॥४५॥ स्वस्थानाप्रमत्तः सातिशयाप्रमत्तश्चेति द्वौ भेदौ तत्र स्वस्थानाप्रमत्तसंयतस्वरूपं निरूपयति—

मं० प्र०—यदा संज्वलनक्रोधमानमायालोभाना नोकषायाणां च हास्यादीना मंदः प्रमादजननशक्तिरहितः, उदयो भवति तदा आत्मनः अप्रमत्तगुणः प्रमादरहितसकलसंयमो भवति तेनाप्रमत्तगुणेन युक्त स आत्मा अप्रमत्तसंयतो भवति । चशब्दो वक्ष्यमाणगुणयुक्तश्च भवति इति समुच्चयार्थः पूरणार्थो वा ४५
अथ स्वस्थानाप्रमत्तः सातिशयाप्रमत्तश्चेति द्वौ भेदौ मनसि कृत्य तत्र स्वस्थानाप्रमत्तलक्षणमाह—

स० चं०—यदा कहिए जिसकालविषैं संज्वलन क्रोध मान माया लोभ च्यारि कषाय अर हास्यादि नव नोकषाय इनका यथासंभव उदय कहिए फलदेनेरूप परिणमन सो मंद होइ प्रमाद उपजावनेकी शक्तिकरि रहित होइ तदा कहिए तींहिकालविषै अंतर्मुहूर्तपर्यंत जीवकैं अप्रमत्तगुण कहिए अप्रमत्तगुणस्थान हो है तींहि कारणकरि तिस अप्रमत्त गुणस्थानसंयुक्त संयत कहिए सकलसंयमी सो अप्रमत्तसंयत है। चकारकरि आगैं कहिए हैं जे गुण तिनकरि संयुक्त है ॥४५॥ आगै अप्रमत्त संयतके दोय भेद हैं स्वस्थान अप्रमत्त, सातिशय अप्रमत्त। तहां जो श्रेणी चढनेकौं सन्मुख नाहीं भया सो स्वस्थान अप्रमत्त कहिए। बहुरि जो श्रेणी चढनेकौं सन्मुख भया सो सातिशय अप्रमत्त कहिए तहां स्वस्थान अप्रमत्त संयतके स्वरूपकौं निरूपै हैं—

णट्ठासेसपमादो वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी ।
अणुवसमओ अखवओ झाणणिलीणो हु अपमत्तो ॥ ४६ ॥

नष्टाशेषप्रमादः व्रतगुणशीलावलिमंडितो ज्ञानी ।
अनुपशमकः अक्षपकः ध्याननिलीनो हि अप्रमत्तः ॥ ४६ ॥

जी० प्र०—यो नष्टाशेषप्रमादः व्रतगुणशीलावलीभिर्मंडितः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तः धर्म्यध्याननिलीनमना: अप्रमत्तसंयतो यावदुपशमश्रेण्यभिमुखः क्षपकश्रेण्यभिमुखो वा चटितुं न वर्तते तावत् स खलु स्वस्थानाप्रमत्त इत्युच्यते । अत्र ज्ञानीति विशेषणं सम्यग्दर्शनचारित्रवत् सम्यग्ज्ञानस्यापि मोक्षहेतुत्वं सूचयति ॥ ४६ ॥ अथ सातिशयाप्रमत्तसंयतस्वरूपमाह—

म० प्र०—प्रमादहेतुसंज्वलनतीव्रानुभागोदयाभावात् यः विनष्टसकलप्रमादः स संयतः—अप्रमत्त इत्युच्यते अत्र एव स व्रतगुणशीलावलीमंडितः-व्रतगुणशीलानां पंक्तिभिरलंकृतः, ज्ञानी-निरंतरदेहात्मभेदज्ञानपरिणत, ध्याननिलीन:-मोक्षहेतुधर्म्यध्याने निलीनः निमग्नः, इति स्वांतरंगस्वरूपैः स्पष्टः । एवंविधः अप्रमत्तसंयतो यावदनुपशमकः, अक्षपकश्च—उपशमकक्षपकश्रेणिद्वयाभिमुखो न भवति तावत्स्वस्थानाप्रमत्तः-निरतिशयाप्रमत्त इति चोच्यते ॥४६॥ अथ सातिशयाप्रमत्तलक्षणमाह—

सं०चं०—जो जीव नष्ट भए हैं समस्त प्रमाद जाके ऐसा होइ बहुरि व्रत गुण शील इनकी आवली पंक्ति तिनकरि मंडित होइ-आभूषित होइ बहुरि सम्यग्ज्ञान उपयोगकरि संयुक्त होइ बहुरि धर्मध्यानविषैं लीन है मन जाका ऐसा होइ ऐसा अप्रमत्त संयमी यावत् उपशम श्रेणी वा क्षपक श्रेणीके सन्मुख चढनेकों न प्रवर्तै तावत् सो जीव प्रकट स्वस्थान अप्रमत्त है ऐसा कहिए । इहां ज्ञानी ऐसा विशेषण कह्या है सो जैसें सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र मोक्षके कारण हैं तैसें सम्यग्ज्ञानकैं भी मोक्षका कारणपनाकों सूचै है । भावार्थ—कोऊ जानेगा कि चतुर्थ गुणस्थानविषैं सम्यक्त्वका वर्णन कीया पीछैं चारित्रका कीया सो ए दोय ही मोक्षमार्ग हैं । तातैं ज्ञानी ऐसा विशेषण कहि सम्यग्ज्ञान भी इनिकी साथिही मोक्षका कारण है ऐसा अभिप्राय दिखाया है ॥ ४६ ॥ आगैं सातिशय अप्रमत्तसंयतके स्वरूपकों कहै हैं—

इगवीसमोहखवणुवसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं ।
पढमं अधापवत्तं करणं तु करेदि अपमत्तो ॥ ४७ ॥

एकविंशतिमोहक्षपणोपशमननिमित्तानि त्रिकरणानि तेषु ।
प्रथममधःप्रवृत्तं करणं तु करोति अप्रमत्तः ॥ ४७ ॥

जी० प्र०–यः प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानो वेदकसम्यग्दृष्टिः अप्रमत्तसंयतः सः प्रथमं अनंतानुबंधिकषायचतुष्टयं करणत्रयपूर्वकं संक्रमणविधानेन द्वादशकषायनवनोकषायस्वरूपेण विसंयोजयति-परिणामयति तदनंतरमंतर्मुहूर्तकालं विश्राम्य पुनरपि करणत्रयेण दर्शनमोहत्रयमुपशमय्य द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भवति । अथवा तत्करणत्रयेण तद्दर्शनमोहत्रयं क्षपयित्वा क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्भवति । तदनंतरमंतर्मुहूर्तकालपर्यंतं प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानयोः परावृत्तिसहस्राणि करोति तदनंतरं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानः एकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीरुपशमयितुमुद्युक्तो भवति । अथ वा ताः एकविंशतिचारित्रमोहप्रकृतीः क्षपयितु क्षायिकसम्यग्दृष्टिरेवोद्युक्तो भवति । स एवंविधः सातिशयाप्रमत्त एव चारित्रमोहोपशमनक्षपणनिमित्तकरणत्रयपरिणामेषु मध्ये प्रथमं अधःप्रवृत्तकरणं करोतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणस्य निरुक्तिसिद्धं लक्षणं कथयति—

मं० प्र०—अप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनक्रोधमानमायालोभाना द्वादशानां, नोकषायाणां च हास्यादीना नवानां मिलित्वा एकविंशतेश्चारित्रमोहप्रकृतीनां क्षपणस्य निर्मूलविनाशनस्य उपशमनस्य च–उदयाभावविधानस्य, निमित्तानि–कारणानि यानि त्रीणि करणानि विशुद्धिपरिणामविशेषाः परमागमप्रसिद्धास्तेषु प्रथमं, अथाप्रवृत्तं–अधःप्रवृत्ताख्यं करणं प्रतिसमयमनंतगुणवृद्ध्या वर्धमानविशुद्धिपरिणामः कश्चिदप्रमत्तसयतः करोति । तुशब्दः एवकारार्थे[1], तेन प्रथममेव करणं करोति नान्यदिति ज्ञायते । एवविधः क्षपकोपशमकश्रेण्यभिमुखः सातिशयाप्रमत्त इत्युच्यते अधःप्रवृत्तकरणाख्यविशुद्धिपरिणामातिशयसंभवात् ॥ ४७ ॥ अथ अधःप्रवृत्तलक्षणमाह—

सं० चं०—इहां विशेष कथन है सो कैसें है ? सो कहिए है–जो जीव समय समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धताकरि वर्धमान होइ, मंदकषाय होनेका नाम विशुद्धता है सो प्रथम समयकी विशुद्धतातैं दूसरे समयकी विशुद्धता अनंतगुणी तातैं तीसरे समयकी अनंतगुणी ऐसैं समय समय विशुद्धता जाकैं बधती होइ ऐसा जो वेदक

1 एवकारार्थेऽनेन इत्यपि क. ख. लिखितपुस्तकयोः पाठ ।

सम्यग्दृष्टी अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव सो प्रथम ही अनंतानुबंधीके चतुष्ककौं अधःकरणादि तीन करणरूप पहिलैंकरि विसंयोजन करै है। विसंयोजन कहा कहै है ? अन्य प्रकृतिरूप परिणमावनेरूप जो संक्रमण ताका विधानकरि इस अनंतानुबंधी चतुष्कके जे कर्म परमाणू तिनकौं बारह कषाय अर नव नोकषायरूप परिणमावै है। बहुरि ताके अनंतर अंतर्मुहूर्त्तकाल ताईं विश्रामकरि जैसाका तैसा रहि बहुरि तीनकरण पहिलेकरि दर्शन-मोहकी तीन प्रकृति तिनकौं उपशमाय द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी हो है। अथवा तीनकरण पहिलैंकरि तीन द-र्शनमोहकी प्रकृतिनिकौं खिपाइ क्षायिक सम्यग्दृष्टी हो है। बहुरि ताके अनंतर अंतर्मुहूर्त कालताईं अप्रमत्ततैं प्रमत्तविषैं प्रमत्ततैं अप्रमत्तविषै हजारांवार गमनागमनकरि पलटनि करै है। बहुरि ताके अनंतर समय समय प्रति अनंत गुणी विशुद्धताकी वृद्धिकरि वर्धमान होता संता इकईस चारित्रमोहकी प्रकृतिनिके उपशमावनेकौं उद्यमवंत हो है। अथवा इकईस चारित्रमोहकी प्रकृति क्षपावनेकौं क्षायिकसम्यग्दृष्टी उद्यमवंत हो है। भावार्थ— उपशम श्रेणीकौं क्षायिकसम्यग्दृष्टी वा द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी दोऊ चढैं अर क्षपकश्रेणीकौं क्षायिक सम्य-ग्दृष्टी ही चढनेकौं समर्थ है उपशम सम्यग्दृष्टी क्षपकश्रेणीकौं नाहीं चढै है सो यहु ऐसा सातिशय अप्रमत्त सं-यत सो अनंतानुबंधी चतुष्क विना इकईस प्रकृतिरूप तिस चारित्रमोहकौं उपशमावने वा क्षपावनेकौं कारणभूत ऐसे जे तीन करणके परिणाम तिनविषैं प्रथम अधःप्रवृत्तकरणकौं करै है ऐसा अर्थ जानना ॥ ४७ ॥ आगैं अधःप्रवृत्तकरणका निरुक्तिकरि सिद्धभया ऐसा लक्षणकौं कहै हैं—

जह्मा उवरिमभावा हेट्ठिमभावेहिं सारिसगा होंति।
तह्मा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं ॥ ४८ ॥

यस्मादुपरितनभावा अधस्तनभावैः सदृशका भवंति।
तस्मात्प्रथमं करणं अधःप्रवृत्तमिति निर्दिष्टं ॥ ४८ ॥

जी० प्र०---यस्मात्कारणात् यस्य जीवस्य उपरितनोपरिसमयस्थितपरिणामैः सह अन्यजीवस्य अधस्तनसमयपरिणामाः सदृशा भवंति तस्मात्कारणात् तत्प्रथमं करणं अधःप्रवृत्तकरणमिति निर्दिष्टं--परमागमे प्रतिपादितं भवति ॥ ४८ ॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणकालप्रमाणं (प्रचय-निर्देशार्थं) कथयति---

मं० प्र०---यस्मात्कारणात् अधःप्रवृत्तकरणकाले नानाजीवापेक्षया उपरितनसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामाः अधस्तनसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामैः सह सदृशाः--संख्यया विशुद्ध्या च समानाः संभवंति तस्मात्कारणात् प्रथमः करणः अधःप्रवृत्त इति निर्दिष्टः परमागमे प्रतिपादितः। अधः--अधस्तनसमये, प्रवृत्ताः--प्रवृत्ता इव, करणाः उपरितनसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामाः यस्मिन् सति स अधःप्रवृत्तकरण इति निरुक्त्या तदर्थस्य सिद्धत्वात्। अधःशब्देन उपरितनशब्दार्थस्य अभिव्यज्यमानत्वात् ॥ ४८ ॥ अथ अधःप्रवृत्तकरणकालसंख्याचयनिर्देशार्थमाह---

सं० चं---जाकारणतैं ऊपरि ऊपरिके समयसंबंधी परिणामानिकरि सहित अन्य जीवके नीचे नीचेके समय संबंधी परिणाम सदृश समान हो हैं ताकारणतैं सो प्रथम करण अधःकरण है अैसा निर्दिष्ट कहिए परमागमविषै प्रतिपादन कीया है। भावार्थ--तीनों करणनिके नाम नाना जीवनिके परिणामानिकी अपेक्षा हैं तहां जैसी विशुद्धता वा संख्या लीएं किसी जीवके परिणाम ऊपरिके समयसंबंधी होंइ तैसी विशुद्धता वा संख्या लीएं किसी अन्य जीवके परिणाम अधस्तन समयसंबंधी भी जिस करणविषैं होंइ सो अधःप्रवृत्त करण है। अधःप्रवृत्त कहिए नीचले समयसंबंधी परिणामानिकी समानताकौं प्रवृत्तैं अैसे हैं करण कहिए परिणाम जाविषै सो अधःप्रवृत्त करण है। इहां करण प्रारंभ भएं पीछै घने घने समय व्यतीत भएं जे परिणाम होहिं ते ऊपरि ऊपरि समयसंबंधी जानने। बहुरि थोरे थोरे समय व्यतीत भएं जे परिणाम होंहि ते अधस्तन अधस्तन समयसंबंधी जानने। सो नाना जीवनिकैं इनकी समानता भी होहि। ताका उदाहरण-जैसै दोय जीवकै एकै कालि अधःप्रवृत्तकरणका प्रारंभ होइ तहां एक जीवकै द्वितीयादि घने समय व्यतीत भये जैसे संख्या वा विशुद्धता लीये परिणाम भये तैसे संख्या वा विशुद्धता लीये द्वितीय जीवकै प्रथम समयविषै भी होंइ याहीप्रकार अन्य भी ऊपरि नीचैके समयसंबंधी परिणामनिकी समानता इस करणविषै जानि याका नाम अधःप्रवृत्त करण निरूपण कीया है ॥४८॥ आगै अधःप्रवृत्तकरणके कालका प्रमाणकौं चयका निर्देशके अर्थि कहै हैं--

अंतोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखमिदा उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया ॥ ४९ ॥

अंतर्मुहूर्तमात्रस्तत्कालो भवति तत्र परिणामाः।
लोकानामसंख्यमिता उपर्युपरि सदृशवृद्धिगताः ॥ ४९ ॥

जी० प्र०—स्तोकांतर्मुहूर्तमात्रात् २ ७ अनिवृत्तिकरणकालात् संख्यातगुणः २ ७ ७ अपूर्वकरणकालः, अतः संख्यातगुणः २ ७ ७ ७ अधःप्रवृत्तकरणकालः सोप्यंतर्मुहूर्तमात्र एव, तस्मिन्नधःप्रवृत्तकरणकाले त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिनो विशुद्धपरिणामाः सर्वेऽपि असंख्यातलोकमात्राः संति ≡ a तेषु प्रथमसमयसंबंधिनो यावंतः संति द्वितीयादिसमयेषु उपर्युपरि चरमसमयपर्यंतं सदृशवृद्ध्या वर्धिताः संति ते च तावदंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यंते–तत्र परिणामाः द्वासप्तत्युत्तरत्रिसहस्री ३०७२ अधःप्रवृत्तकरणकालः षोडशसमयाः १६। प्रतिसमयपरिणामवृद्धिप्रमाणं चत्वारः ४, संख्येयरूपाणि त्रीणि ३, ऊर्ध्वरचनायां धनमानीयते- सर्वपरिणामधने ३०७२ पद १६ कृत्या २५६ संख्यातरूपैश्च ३ भक्ते $\frac{३०७२}{२५६\times३}$ सति प्रतिसमयपरिणामप्रचयप्रमाणं भवति ४, तथा व्येकपदा १५ र्धं ($\frac{१५}{२}$) प्रचय $\frac{१५}{२}\times४$ गुणो गच्छः ($\frac{१५}{२}\times४\times१६$) प्रचयधनप्रमाणं भवति ४८०, अनेन प्रचयधनेन सर्वधनं ३०७२ हीनयित्वा २५९२ पदेन १६ भक्ते लब्धं प्रथमसमयपरिणामसंख्या भवति १६२ अस्यामेकैकस्मिन् प्रचये ४ वर्धिते सति द्वितीयतृतीयादिसमयवर्तिपरिणामानां संख्या भवति ताः इमाः--१६६। १७०। १७४ १७८। १८२। १८६। १९०। १९४। १९८। २०२। २०६। २१०। २१४। २१८। २२२॥ अस्यामंत्यधनस्यानयनं तु व्येकपदं १५ चया (४) भ्यस्तं ६० तदादि १६२ सहितं इति भवति २२२। अत्र चैकचये ४ अपनीते द्विचरमसमयधनं भवति २१८। एतान्युक्तधनानि अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयाच्चरमसमयपर्यंतमुपर्युपरि स्थापयितव्यानि। अथानुकृष्टिरचनोच्यते–तत्र अनुकृष्टिर्नाम अधस्तनसमयपरिणामखंडानां उपरितनसमयपरिणामखंडैः सादृश्यं भवति। अनुकृष्टि ४ गच्छः ऊर्ध्वगच्छे संख्यातेन भक्ते ($\frac{१६}{४}$) लब्धमात्रः (४), अनुकृष्टिचयः ऊर्ध्वचये अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते ($\frac{४}{४}$) लब्धमात्रो भवति १। प्रथमसमयसमस्तपरिणामधने १६२ व्येकपदार्द्धप्रचयगुणो गच्छः–($\frac{३}{२}\times१\times४$) अनुकृष्ट्युत्तरधनं ६ तदपनीयशेषे १५६ अनुकृष्टिपदेन भक्ते सति ($\frac{१५६}{४}$) लब्धं ३९ प्रथमसमयपरिणामानां प्रथमखंडप्रमाणं भवति। इदमेव सर्वजघन्यखंडं अन्येषां खंडानां परिणामसंख्याविशुद्धिभ्यां ततोऽधिकत्वसंभवात्। तत्प्रथमखंडे चैकस्मिन्ननुकृष्टिचये युते तद्द्वितीयखंडं भवति। ४०। एवं तृतीयादीनि चरमखंडपर्यंतानि तिर्यगेकैकचयाधिकानि स्थाप्यानि ४१, ४२। ततः परं द्वितीयसमयप्रथमखंडं प्रथमसमयप्रथमखंडात् ३९ एकविशेषाधिकं भवति ४०। द्वितीयसमयसमस्तपरिणामेषु १६६ अनुकृष्टिचयधनेन ६ न्यूनयित्वा १६० अनु-

कृष्टिपदेन ४ भक्तेषु तदुत्पत्तिर्सभवात् । तदग्रे द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडान्येकैकचयाधिकानि संति ४१ । ४२ । ४३ । अत्र द्वितीयसमयप्रथमखंडं ४० प्रथमसमयद्वितीयखंडेन समानं एवं द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडानि प्रथमसमयस्य तृतीयादिखंडैः सदृशानि किंतु द्वितीयसमयचरमखंडं प्रथमसमयसर्वखंडेषु केनापि न सदृशं । पुनस्तृतीयादिसमयेषु प्रथमादिखंडानां प्रथमादिखंडानि ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । अनंतराधस्तनखंडेभ्यो विशेषाधिकानि ऊर्ध्वचयेन अधिकत्वात् एवमधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयचरमखंडपर्यंतं ज्ञातव्यं ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । अत्र सर्वजघन्यखंडपरिणामानां ३९ सर्वोत्कृष्टखंडपरिणामानां ५७ च कैरपि सादृश्यं नास्ति शेषाणामेवोपर्यधस्तनसमयवर्तिपरिणामपुंजानां यथासंभवं तत्संभवात् । अत्र मुह १६२ भूमि २२२ योग ३८४ दले १९२ पदगुणिदे १९२ × १६ पदधनं ३०७२ होदीति सर्वधनमानेतव्यं ।

अथ अर्थसंदृष्टया विन्यासो दृश्यते–तद्यथा त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिनः अधःप्रवृत्तकरणकालसमस्तसमयसंभविनः सर्वपरिणामा असंख्यातलोकमात्राः संति ≡ a । अधःप्रवृत्तकरणकालो गच्छः २ ९ ९ ९ समस्तधने ≡ a पदकृत्या २ ९ ९ ९ × २ ९ ९ ९ संख्यातेन च ९ भक्ते सति ऊर्ध्वप्रचयो भवति ≡ a / (२ ९ ९ ९ । २ ९ ९ ९ । ९) । रूपोनगच्छार्धेन (२ ९ ९ ९)/२ प्रचयं गुणित्वा ≡ a / (२ ९ ९ ९, २ ९ ९ ९ । ९) × (२ ९ ९ ९)/२ गच्छेन गुणिते ≡ a / (२ ९ ९ ९, २ ९ ९ ९, ९,) (२ ९ ९ ९)/२ × २ ९ ९ ९ अपवर्तितं चयधनमिदं ≡ a / (२ ९ ९ ९ । ९ । २ ।) ≡ a / (२ ९ ९ ९, ९,) (२ ९ ९ ९)/२ समच्छेदीकृतसमस्तधनमध्ये ≡ a । १ / (२ ९ ९ ९ । ९ । २) चयधनस्थं ऋणरूपं पृथक् संस्थाप्य २ ९ ९ ९ । ९ । २ असंख्यातलोकावलित्रिसंख्यातात्मकगुणस्य सादृश्यं प्रदर्श्य अग्रस्थद्विगुणसंख्याते ९ । २ । चयधनस्य आत्मप्रमाणमेकरूपमपनीय

≡ a २ ९ ९ ९ । ९ । २ ।

२ ९ ९ ९ । ९ । २ पृथक्स्थापितचयधनस्य ऋणरूपं 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति न्यायेनासंख्यातलोकस्यासंख्यातलोकं प्रदर्श्य शेष-

≡ a । २ ९ ९ ९ । ९ । २ ।

गुणकारस्योपर्यधिकं कृत्वा २ ९ ९ ९ । ९ । २ ऊर्ध्वपदेन २ ९ ९ ९ भक्ते सति त्रिकालगोचरसमस्तजीवानामधःप्रवृत्तकर-

≡ a । २ ९ ९ ९ । ९ । २ ≡ a

णकालप्रथमसमयसंभविपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ ९ ९ ९ । २ ९ ९ ९ । ९ । २ अस्योपर्यूर्ध्वप्रचये २ ९ ९ ९ । २ ९ ९ ९ । ९

१०३

द्वाभ्यां समच्छेदेन गुणकारभूतद्वये असंख्यातलोकस्यासंख्यातलोकं प्रदर्श्य युते द्वितीयसमये नानाजीवसमस्तपरिणामपुंजप्रमाणं भवति

≡ a । २ ១ ១ ១ । ១ । २

२ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ एवमुपर्यपि प्रतिसमयं कुर्यात्। रूपोनगच्छप्रमितचयेषु प्रथमसमयपरिणामपुंजे युतेषु चरमसमयनानाजीवसंबंधि

≡ a २ ១ ១ ១

परिणामपुंजप्रमाणं स्यात्। तद्यथा–व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंतधनं भवेत् इति रूपोनोर्ध्वगच्छहतचयेषु २ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១

≡ a २ ១ ១ ១ २ ≡ a । २

द्वाभ्यां समच्छेदेन २ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ ऋणरूपद्वयं पृथक् संस्थाप्य २ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ प्रथमसमयपरिणामपुंजे सादृश्यरहिताग्रतनगुणकारे ១ २ स्थितऋणं शोधयित्वा शेषैकरूपं प्रक्षिप्य ១ २ पृथक् संस्थाप्य तत् ऋणरूपद्वयं 'धनस्य ऋणं राशेः ऋणं भवतीति न्यायेन असंख्यातलोकस्याग्रतनगुणकारस्थधनरूपं शोधयित्वा शेषरूपं तत्रोनयेत् एवंकृते चरमसमयसमस्तपरिणामपुंजो भवति

≡ a । २ ១ ១ ១ । ១ । २

२ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ अत्रैकचये समच्छेदेन अपनीते द्विचरमसमयवर्तिनानाजीवसंबंधिसमस्तविशुद्धिपरिणामपुंजप्रमाणं भवति

≡ a । २ ១ ១ ១ । ១ । २

२ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ अथाधःप्रवृत्तकरणकालस्य प्रथमादिसमयपरिणामानां मध्ये त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिप्रथमसमयजघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामसमूहस्याधःप्रवृत्तकरणकालसंख्यातैकभागमात्रनिर्वर्गणकांडकसमयसमानानि २ ១ ១ खंडानि क्रियंते तानि

≡ a ।

चयाधिकानि भवंति। ऊर्ध्वरचनाचये अनुकृष्टिपदेन भक्ते लब्धमनुकृष्टिचयप्रमाणं भवति २ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ ១ ១ व्येकपदार्ध-

≡ a २ ១ ១ । २ ១ ១ ≡ a । २ ១ ១

घ्नचयगुणो गच्छोऽनुकृष्टिचयधनं भवति २ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ ១ ១ । २ तच्चापवर्त्य २ ១ ១ ១ । २ ១ ១ ១ । ១ । २ ऊर्ध्वरचना-

≡ a । २ a a a । a । २ ≡ a । २ a a a । a । २

प्रथमसमयसंबंधिसमस्तपरिणामपुंजे २ a a a । २ a a a । a । २ ऊनयित्वा शेषे २ a a a । २ a a a । a । २ अनुकृ-

≡ a २ a a a । a । २

ष्टिपदेन भक्ते लब्धं प्रथमसमयप्रथमखंडप्रमाणं भवति २ a a a । २ a a a । a । २ a a । २ अत्रैकानुकृष्टिचये समच्छेदेन

a २

२ a a a । २ a a a । a । २ a a । २ युते प्रथमसमयसमस्तपरिणामानां द्वितीयखंडप्रमाणं भवति

≡ a । २ a a a । a । २

२ a a a । २ a a a । a । २ a a । २ एवं तृतीयादिखंडानि अनुकृष्टिचयेन अधिकानि स्वचरमखंडपर्यंतं स्थापयितव्यानि । तत्र

≡ a । २ a a । २

चरमखंडं तु अनुकृष्टिप्रथमखंडे रूपोनपदमात्रानुकृष्टिचयान् द्वाभ्यां समुच्छिद्य २ a a a । २ a a a । a । २ a a । २ ऋणरूपद्वयेन प्रथमखंडस्थि-तघनद्वयं समानमिति कृत्वा द्विसंख्यातगुणितावलिप्रमितासंख्यातलोकगुण्यं उभयत्र समानं प्रदर्श्य शेषरूपोनद्विगुणसंख्यातद्वयगतऋणायैकं

a । २ a a a । a । २ ॥

दत्त्वा शेषैकस्मिन् युते २ a a a । २ a a a । a । २ a a । २ प्रथमसमयानुकृष्टिचरमखंडपरिणामपुंजप्रमाणं भवति । एवं प्रथमस-मयपरिणामपुंजाः संख्यातावलि २ a a प्रमिता ज्ञातव्याः । पुनः द्वितीयसमयपरिणामप्रथमखंडं प्रथमसमयप्रथमखंडाद्विशेषाधिकं तदिदं

a २ a a a । a । २ a २ a a a । a । २

२ a a a । २ a a a । a । २ a a । २ कुतः ? द्वितीयसमयसमस्तपरिणामपुंजे २ a a a । २ a a a । a । २ अनुकृष्टि-

═══ ३ । २ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ═══ ३ । २ ꩧ ꩧ

चयधनं २ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ । २ अपवर्त्य २ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २, अपनीय अनुकृष्टिपदेन भक्ते सति सिद्धत्वात् । अत्र द्वितीयसमयप्रथमखंडे एकानुकृष्टिचये समच्छेदेन युते द्वितीयसमयपरिणामानां द्वितीयखंडप्रमाण भवति

═══ ३ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २

२ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ । २ एवं तृतीयादिखंडानि विशेषाधिकानि स्थाप्यानि । रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयेषु द्वितीय-

≡ ३ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २

समयपरिणामप्रथमखंडे २ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ । २ युतेषु द्वितीयसमयचरमखंडप्रमाण भवति

≡ ३ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २

२ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ । २ अत्र चैकानुकृष्टिचयेऽपनीते द्वितीयसमयद्विचरमखंडप्रमाण भवति

═══ ३ २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २

२ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ । २ द्वितीयसमयप्रथमखंडं प्रथमसमयद्वितीयखंडं च द्वे सदृशे तथा द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडानि प्रथमसमयतृतीयादिखंडैः सह सदृशानि किंतु द्वितीयसमयचरमखंडं प्रथमसमयखंडेषु केनापि सह सदृशं नास्ति । अतोग्रे तृतीयादिसमयेषु अनुकृष्टिप्रथमादिखंडानि अनंतराधस्तनानुकृष्टिखंडेभ्यो विशेषाधिकानीत्यधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयपर्यंतं नेतव्यानि । तत्र चरमस-

≡ ३ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ≡ ३ । २ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ

मयसमस्तपरिणामधने २ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ २ अनुकृष्टिचयधनं २ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ २ अपवर्त्य शोध-

≡ ३ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २

यित्वानुकृष्टिगच्छेन २ ꩧ ꩧ भक्ते चरमसमयपरिणामप्रथमानुकृष्टिखंडं भवति २ ꩧ ꩧ ꩧ । २ ꩧ ꩧ ꩧ । ꩧ । २ ꩧ ꩧ । २

≡ a । ण्

अत्र चैकानुकृष्टिचये २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् समच्छेदेन युते चरमसमयद्वितीयानुकृष्टिखंडं भवति

≡ a । २ ण्ण्ण् । ण् । २

२ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् । २ एवं तृतीयादिखंडानि अनुकृष्टिचयाधिकानि ज्ञातव्यानि । तत्र रूपोनानुकृष्टिगच्छमात्रानु-

≡ a । २ ण्ण्ण् । ण् । २

कृष्टिचयेषु समच्छेदेन चरमसमयपरिणामप्रथमखंडे २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् । २ युतेषु चरमसमयचरमानुकृ-

≡ a । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ≡ a । ण्

ष्टिखंडपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् । २ अत्र चैकानुकृष्टिचये २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण्

≡ a । २ ण्ण्ण् । ण् । २

समच्छेदेन अपनीते द्विचरमखंडपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् । २ एवं चरमसमयानुकृष्टिखंडानि-

≡ a । २ ण्ण्ण् । ण् । २

तिर्यगनुकृष्टिगच्छमात्राणि स्थापयितव्यानि । पुनः चरमसमयानुकृष्टिप्रथमखंडे २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् । २ एकानु-

≡ a । ण्

कृष्टिचये २ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् समच्छेदेन अपनीते शेषं द्विचरमसमयपरिणामानुकृष्टिप्रथमखंडपरिणामपुंजप्रमाणं भवति

≡ a । २ ण्ण्ण् । ण् । २

२ ण्ण्ण् । २ ण्ण्ण् । ण् । २ ण्ण् । २ अत्रैकानुकृष्टिचये युते द्विचरमसमयद्वितीयखंडपरिणामपुंजो भवति

≡ a २ ॣ ॣ । ॣ । २

२ ॣ ॣ । २ ॣ ॣ । ॣ । २ ॣ ॣ । २ एवं तृतीयादिखंडानि चयाधिकानि ज्ञातव्यानि । पुनस्तत्र रूपोनानुकृष्टिपदमात्रानुकृष्टिचयेषु

≡ a । २ ॣ ॣ । ॣ । २

द्वाभ्यां समच्छेदेन द्विचरमसमयपरिणामप्रथमखंडे २ ॣ ॣ । २ ॣ ॣ । ॣ । २ ॣ ॣ । २ युतेषु द्विचरमसमयानुकृष्टिचरमखंडपरिणामपुंज-

≡ a । २ ॣ ॣ । ॣ । २

प्रमाणं भवति २ ॣ ॣ । २ ॣ ॣ । ॣ । २ ॣ ॣ । २ अत्रैकानुकृष्टिचये शोधिते तद्द्विचरमखंडपरिणामपुंजो भवति

≡ a । २ ॣ ॣ । ॣ । २

२ ॣ ॣ । २ ॣ ॣ । ॣ । २ ॣ ॣ । २ एवमधः प्रवृत्तकरणकालद्विचरमसमयानुष्ट्योनुकृष्टिपदमात्र्यश्चयाधिका ज्ञातव्याः ।

एवमधःप्रवृत्तकरणपरिणामानां प्रथमसमयानुकृष्टिप्रथमसर्वजघन्यखंडस्य ३९ चरमसमयपरिणामानां चरमानुकृष्टिसर्वोत्कृष्टखंडस्य ५७ च कुत्रापि सादृश्यं नास्ति शेषोपरितनसमयवर्तिखंडानामधस्तनसमयवर्तिखंडैः, अथवा अधस्तनसमयवर्तिखंडानां उपरितनसमयवर्तिखंडैः सह यथासंभवं सादृश्यमस्ति । द्वितीयसमया ४० द्विचरमसमयपर्यंतं ५३ प्रथमप्रथमखंडानि चरमसमयप्रथमखंडात् द्विचरमसमयपर्यंतखंडानि च ५४ । ५५ । ५६ । स्वस्वोपरितनसमयपरिणामैः सह सादृश्याभावात् असदृशानि । इयमंकुशरचनेत्युच्यते । तथा द्वितीयसमया-

इयमंकुशरचना

४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४
														५५
														५६

४२ द्विचरमसमय ५६ पर्यंतं चरमचरमखंडानि प्रथमसमयप्रथमखंड ३९ वर्जितशेषखंडानि च स्वस्वाधस्तनसमयपरिणामैः सह सादृश्याभावात्

विसदृशानि इयं लांगलरचनेत्युच्यते। तत्राधःप्रवृत्तकरणपरिणामेषु प्रथमसमयपरिणामखंडानां मध्ये प्रथमखंडपरिणामा असंख्यातलोकमात्राः—

४०														
४१														
४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६

इयं लांगलरचना।

≡ a । २ ౧ ౧ ౧ । ౧ । २

२ ౧ ౧ ౧ । २ ౧ ౧ ౧ । ౧ । २ ౧ ౧ । २ अपवर्तितास्तदा संख्यातप्रतरावलिभक्ताऽसंख्यातलोकमात्रा भवति ≡ a अमी च जघन्यम-

४ । ౧

२ । २ । २ । २ । २ ।

ध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नानां रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातैकभागस्य घनगुणितवर्गमात्रपरिणामव्यक्तीनां a a a a a यद्येकषट्स्थानवारो ल-

≡ a

भ्यते तदैतावतां परिणामानां ४ ౧ कियंतः षट्स्थानवारा लभ्यंते इति त्रैराशिकलब्ध ≡ a असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानगतवृद्ध्या

४ । ౧ । २ । २ । २ । २ । २

a a a a a

वर्धिताः संति। तथा-द्वितीयसमयप्रथमखंडपरिणामाश्चयाधिका जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाः प्राग्वदसंख्यातलोकषट्स्थानवृद्धिवर्धिताः प्रथमखंडपरिणामाः संति। एव तृतीयसमयादिचरमसमयपर्यंत चयाधिकाः प्रथमखंडपरिणामाः संति तथा प्रथमादिसमयेषु द्वितीयादिखंडपरिणामाः अपि चयाधिकाः संति।

अथ तेषां विशुद्ध्यल्पबहुत्वमुच्यते तद्यथा–प्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिः सर्वतः स्तोकापि जीवराशितोऽनंतगुणा अविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मिका भवति १६ ख। अतस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततो द्वितीयखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। एवं तृतीयादिखंडेष्वपि जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनंतगुणानंतगुणाश्चरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यंतं वर्तते। पुनः प्रथमसमयप्रथमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धितो द्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततो द्वितीयखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा एव तृतीयादिखंडेष्वपि जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनंतगुणितक्रमेण द्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यंतं गच्छंति। अनेन मार्गेण तृतीयादिसमयेष्वपि निर्वर्गणकांडकद्विचरमसमयपर्यंतं जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनंतगुणितक्रमेण नेतव्याः। निर्वर्गणकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धितः प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततो द्वितीयनिर्वर्गणकांडकप्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततस्तत्प्रथमनिर्वर्गणकांडकद्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततो द्वितीयनिर्वर्गणकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततः प्रथमनिर्वर्गणकांडकतृतीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा एवमहिगत्या जघन्यादुत्कृष्टं उत्कृष्टाज्जघन्यमित्यनंतगुणितक्रमेण परिणामविशुद्धीर्नीत्वा चरमनिर्वर्गणकांडकचरमसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतानंतगुणा। कुतः? पूर्वपूर्वविशुद्धितोऽनंतानंतगुणत्वस्य सिद्धत्वात्। ततश्चरमनिर्वर्गणकांडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततस्तदुपरि चरमनिर्वर्गणकांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यंता उत्कृष्टखंडोत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनंतानंतगुणितक्रमेण गच्छंति। तन्मध्ये या जघन्योत्कृष्टपरिणामविशुद्धयोऽनतानंतगुणिताः संति ता न विवक्षिता इति ज्ञातव्यं। एवंविधविशुद्धिविशिष्टाधःप्रवृत्तकरणपरिणामेषु गुणश्रेणि निर्जरागुणसंक्रमणं स्थितिकांडकोत्करणमनुभागकांडकोत्कीर्णनमिति चत्वारि आवश्यकानि न संभवंति तत्परिणामानां तादृशकार्यकारणसामर्थ्याभावात्। किंतु केवलं प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धिः स्थितिबंधापसरणं सातादिप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनंतगुणवृद्ध्या चतुःस्थानानुभागबंध-असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीनां प्रतिसमयमनंतगुणहान्या निंबकांजीरसदृशद्विस्थानानुभागबंधश्चेति चत्वार्यावश्यकानि संभवति। एतदुक्तार्थोपयोगिनी रचना लिख्यते–

अंकसंदृष्ट्यपेक्षयाऽधःकरणरचना ।

२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

अर्थसंदृष्ट्यपेक्षयाऽधःकरणरचना ।

चरमसमयपरिणामपुंजः		**चरमसमयपरिणामप्रथमखंडं**
≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० २	० ०	≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २ ० ० । २
द्विचरमसमयपरिणामपुंजः		**द्विचरमसमयपरिणामप्रथमखंडं**
३ ≡ a २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २	० ०	२ ≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २ ० ० । २
द्वितीयसमयपरिणामपुंजः		**द्वितीयसमयपरिणामप्रथमखंडं**
३ ≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २	० ०	४ ≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २ ० ० । २
प्रथमसमयपरिणामपुंजः		**प्रथमसमयपरिणामप्रथमखंडं**
≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २	० ०	३ ≡ a । २ ० ० ० । ० । २ २ ० ० ० । २ ० ० ० । ० । २ ० ० । २

चरमसमयद्वितीयखंडं		चरमसमयद्विचरमखंडं		द्विचरमसमयद्वितीयखंडं
≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ऌऌऌ । ऌ । २ऌऌ । २	० ०	≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ऌऌऌ । ऌ । २ऌऌ । २	० ०	≡a २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ऌऌ । २
द्विचरमसमयद्विचरमखंडं		**द्वितीयसमयद्वितीयखंडं**		**द्वितीयसमयद्विचरमखंड**
≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ऌऌ । २	० ०	≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ऌऌ । २	० ०	≡a २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ ऌऌ । २
प्रथमसमयद्वितीयखंडं		**प्रथमसमयद्विचरमखंडं**		**चरमसमयचरमखंडं**
≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ ऌऌ । २	० ०	≡a २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ २ ऌऌऌ । ऌ । २ ऌऌ । २	० ०	≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ ऌऌ । २
द्वितीयसमयचरमखंडं		**द्विचरमसमयचरमखंडं**		**प्रथमसमयचरमखंडं**
≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ ऌऌऌ । ऌ । २ऌऌ । २	० ०	≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ ऌऌऌ । २ऌऌऌ । ऌ । २ऌ ऌ । २	० ०	≡a । २ ऌऌऌ । ऌ । २ २ऌऌऌ । २ऌऌऌ । ऌ । २ऌ ऌ । २

ए, जी   ए, जी   ना, जी   ना, जी
ए, का   ना, का   ए, का   ना, का
१   २ ऌऌऌ १०८   ≡a

तथास्यायमभिप्रायः एकजीव एककाल इत्युक्ते विवक्षिताधःप्रवृत्तकरणपरिणामपरिणतैकजीवस्य परमार्थवृत्त्या कालः एकसमय एव भवति । एकजीवनानाकाल इत्युक्तेऽधःप्रवृत्तकरणनानाकालांतर्मुहूर्तमात्रसमयाः क्रमेणैकजीवेनारूढ्यंते इति तावंत एव समयाः स्युः २ ऌऌऌ । ना-

नाजीवैककाल इत्युक्ते विवक्षितैकसमयेऽधःप्रवृत्तकरणकालासंख्यातसमयेष्वेव यथासंभवमष्टोत्तरशतसमयस्थाने संगृहीतजीवानां विवक्षितैककाल इत्यष्टोत्तरशतसमया ज्ञातव्याः । नानाजीवनानाकाल इत्युक्ते अधःप्रवृत्तकरणपरिणामा असंख्यातलोकमात्रास्त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंधिनः अपुनरुक्तरूपाः तान् नानाजीवा नानाकाले समाश्रयंतीति विवक्षया नानाकालोऽसंख्यातलोकमात्रसमया एव भवंतीति ज्ञातव्यं । अथाधःप्रवृत्तकरणकाले प्रथमादिसमयविन्यस्तविशुद्धकषायपरिणामेषु प्रमाणावधारणहेतुभूतसूत्राणां गोपालिकया बीजगणितविन्यासः कथ्यते पूर्वोक्तेऽर्थे संशयाभावात् । व्येकपद १६ अर्ध $\frac{१५}{२}$ प्रचय ($\frac{१५}{२}$ ४) गुणो गच्छः ($\frac{१५}{२}$ ४ १६) उत्तरधनमित्यत्र व्येकपद इत्यनेन प्रथमस्य वृद्धिर्वा हानिर्वा नास्तीति चरमसमये रूपोनगच्छमात्रचयाः संतीति तत्संख्योक्ता । अर्ध इत्यनेन चरमसमयस्य सार्धसप्तचयेषु प्रथमसमयस्थाने रचितेषु तदधस्तनसार्धषट्चयेषु द्वितीयसमयस्थाने एकचयस्याग्रे रचितेषु तदधस्तनसार्धपंचचयेषु तृतीयसमयस्थाने द्विचयस्याग्रे रचितेषु उपरितनचतुर्थादिसमयगतसार्धचतुश्चयादिचयेषु चतुर्थादिसमयगतत्रिचयादीनामग्रे रचितेषु षोडशस्थानेषु समपट्टिकारूपेण सार्धसप्तसार्धसप्तचयाः कृता भवंति । संदृष्टिः—

	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
	८।१।१।४।४।४।४।४	८३२
	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
।८	८।४।४।४।४।१।४।४	८३२
।१।८	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
।१।१।८	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
।१।१।४।८	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
।१।१।१।१।८	८।४।४।४।४।४।४।४	८३२
।१।१।१।१।१।८	८।१।१।४।१।१।४।४	८३२
।१।४।१।४।४।४।८	८।१।४।१।१।१।४।४	८३२
।४।४।४।४।४।४।४।८	८।४।४।४।१।४।४।४	८३२

अत्रैतत्त्रैराशिकलब्धं प्रागुक्तमुत्तरधनं भवति तथानुकृष्टावप्यंकसंदृष्टया प्ररूप्य अर्थसंदृष्टावव्यामोहेनानयेत् ॥ ४९ ॥ एवमप्रमत्तगुणस्थानं व्याख्याय अनंतरमपूर्वकरणपरिणामपुरस्सरमपूर्वकरणगुणस्थानमाह—

म० प्र०—तस्याधःप्रवृत्तकरणस्य कालः—अंतर्मुहूर्तमात्रः समयाधिकामावलिं आदि कृत्वा (२) समयोनमुहूर्तं २ ꣳ ꣳ ꣳ ꣳ अंतं कृत्वा आदी अंते सुद्धेत्यादिना साधिताः असंख्याता २ ꣳ ꣳ ꣳ ꣳ ३ अंतर्मुहूर्तविकल्पाः सति तेषां मध्ये कश्चिज्जिनदृष्टभावोऽन्तर्मुहूर्तः २ ꣳ ꣳ ꣳ अधःप्रवृत्तकरणकाल इत्यर्थः । तत्काले लोकानामसंख्यमिताः—असंख्यातलोकमात्राः कालत्रयवर्तिनानाजीवसंबंधिनः अधःप्रवृत्तकरणपरिणामाः संति ते चानुकृष्टिखंडापेक्षया, ऊर्ध्वखंडापेक्षया, सर्वसमुदायापेक्षया च सदृशवृद्ध्या समानचयेन एकैकेन चतुष्केण वा गताश्चरमसमयपर्यंतं प्रवृत्ताः संति। तद्यथा—अंकसदृष्टिमाश्रित्य तावदधःप्रवृत्तकरणव्याख्यानं क्रियते-परिणामाः द्वासप्तत्यधिकत्रिसहस्री ३०७२ अध्वा तत्कालः षोडश १६, परिणामविशेषश्चत्वारि ४, संख्येयरूपाणि त्रीणि ३ अनुकृष्ट्यध्वा चत्वारि ४ अनुकृष्टिविशेष एकं १ । ऊर्ध्वरचनायां प्रतिसमयधनमानीयते तद्यथा—गच्छवर्गेण संख्यातरूपैश्च सर्वधने भक्ते $\left(\frac{३०७२}{१६\times१६\times३}\right)$ लब्धप्रचयो भवति ४ । रूपोनगच्छार्धगुणितचयेन गुणितो गच्छः ($\frac{१५}{२}$ ४ १६) लब्धं चयधनं ४८० । चयधनहीने सर्वधने गच्छेन भक्ते सति ($\frac{३०७२ ४८०}{१६}$) लब्धमादिः अधःप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये नानाजीवसंभविपरिणामविकल्पाः (१६२) आदौ एकैकस्मिन् चये वृद्धे सति द्वितीयादिषु चरमसमयपर्यंतेषु समयेषु संभवंतः परिणामविकल्पा भवंति १६६ । १७० । १७४ । १७८ । १८२। १८६।१९०। १९४।१९८। २०२ २०६ । २१० । २१४ । २१८ । २२२ अत्राधस्तनोपरितनसमयपरिणामसंख्याविशुद्धिसादृश्यप्रदर्शनार्थं तिर्यग्रूपेणानुकृष्टिरचना कथ्यते तद्यथा—ऊर्ध्वगच्छे संख्यातरूपैश्चतुर्भिर्भक्ते ($\frac{१६}{४}$) लब्धमनुकृष्टिगच्छो भवति ४ । ऊर्ध्वचये अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते ($\frac{४}{४}$) लब्धमनुकृष्टिचयो भवति १ । रूपोनानुकृष्टिगच्छार्धगुणितचयगुणितगच्छः ($\frac{३}{२}$ । १ । ४) लब्ध चयधन भवति ६ । चयधनहीने प्रथमसमयसमस्तधने अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते सति ($\frac{१६२-६}{४}$) लब्धमादिः प्रथमसमयसमस्तपरिणामविकल्पाना बहुषु खंडेषु कृतेषु प्रथमखंडपरिणामप्रमाणं ३९ । आदिखंडे एकैकस्मिन् चये वृद्धे द्वितीयखंडादीनि चरमखंडपर्यंतानि प्रथमसमयसमस्तपरिणामविकल्पाना बहुखंडानि भवति ४० । ४१ । ४२ । एवं द्वितीयसमयादि चरमसमयपर्यंतसमस्तपरिणामविकल्पानां बहुखंडान्यानेतव्यानि तेषां खंडानां तिर्यग्रचना कर्तव्या तन्न्यासोयं—

अथार्थसंदृष्टिमाश्रित्याधःप्रवृत्तकरणव्याख्यानं क्रियते तद्यथा—समस्तपरिणामा असंख्यातलोकमात्राः ≡a । अध्वा तत्कालः अंतर्मुहूर्तमात्रः २ ꣳ ꣳ ꣳ । परिणामविशेषः $\frac{≡a}{२ ꣳ ꣳ ꣳ । २ ꣳ ꣳ ꣳ । ꣳ}$ । संख्येयरूपाणि ꣳ । अनुकृष्ट्यध्वा २ ꣳ ꣳ अनुकृष्टिविशेषः $\frac{≡a}{२ꣳ ꣳ ꣳ । २ ꣳ ꣳ ꣳ । ꣳ । २ ꣳ ꣳ}$ । ऊर्ध्वरचनाया प्रतिसमयधनमानीयते तद्यथा—गच्छवर्गेण संख्यातरूपैश्च सर्वधने भक्ते चयो भवति

१ । इयं रचना कथं सिद्धेति प्रश्ने कृतेसति कथ्यते—रूपाधिकावल्या रूपोनमुहूर्तस्य ऋणत्वात् मुहूर्तस्थितमेकं ऋणरूपं आवलिस्थितमधिकरूपं च द्वय राशौ ऋणमिति पृथक्न्यस्य आवलिं राशावपनीय तदुपरि द्विकं धनतया न्यस्य सर्वस्योपरि एकं निक्षिपेत् एवं सति ऋणस्य धन राशेः ऋणं भवतीति आवल्युपरिस्थितं द्विकं राशेः ऋणमित्यर्थः ।

२ न्यासरचना ११६ पृष्ठे विलोकनीया ।

≡ a   ≡ a २ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्

२ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्। ग्। रूपोनगच्छार्धेन गच्छेन च गुणितप्रचयः चयधनं भवति २ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्। ग्। २ अपवर्तिते

≡ a। २ ग्ग्ग्

एवं २ ग्ग्ग्। ग्। २ चयधनहीने सर्वधने गच्छेन भक्ते सति आदि'—अधःप्रवृत्तकरणस्य प्रथमसमये नानाजीवसंभविपरिणामविकल्पप्रमाणं भवति।

≡ a २ ग्ग्ग्। ग्२   ≡ a। २ ग्ग्ग्। ग्। २

२ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्। ग्। २ एतदानयनविधानं यथा—चयधनहारेण सर्वधनं समानच्छेदं कृत्वा २ ग्ग्ग्। ग्। २ पुनश्च-

≡ a। १   ≡ a। २ ग्ग्ग्

यधनस्य ऋण पृथक् संस्थाप्य २ ग्ग्ग्। ग्। २ तस्मिन् चयधने २ ग्ग्ग्। ग्। २ तत्र समच्छेदेन सर्वधने अपनीते सति एव

≡ a २ ग्ग्ग्। ग्। २

२ ग्ग्ग्। ग्। २ पुनः पृथक्स्थापितचयधनऋणरूपं 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं, इति न्यायेन तत्प्राक्षिप्य गच्छेन भक्ते सति आदिरागच्छति

≡ a २ ग्ग्ग्। ग्२

२ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्। ग्। २ आदावेकैकस्मिन् चये वृद्धे सति द्वितीयादिषु चरमसमयपर्यंतेषु समयेषु संभवंतः परिणामविकल्पा भवंति।

≡ a २ ग्ग्ग्

तत्र चरमसमयधनानयनमिदं चयेन गुणिते रूपोनगच्छे २ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्। ग् आदौ प्राक्षिप्ते सति चरमसमयपरिणामविकल्पा भवंति

≡ a। २ग्ग्ग्। ग्। २

२ ग्ग्ग्। २ ग्ग्ग्। ग्। २ ततः एकस्मिन् चये अपनीते द्विचरमसमयधनं। अत्राधस्तनोपरितनसमयपरिणामसंख्याविशुद्धिसादृश्यप्रदर्शनार्थं तिर्यग्रूपेण अनुकृष्टिरचना कथ्यते तद्यथा—

ऊर्ध्वगच्छे संख्यातरूपैर्भक्ते २ ७ ७ ७ / ७ अपवर्तितः अनुकृष्टिगच्छो भवति २ ७ ७ ऊर्ध्वचये अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते अनुकृष्टिचयो भवति

≡ a
२ ७ ७ ७ । २ ७ ७ ७ । ७ । २ ७ ७ रूपोनानुकृष्टिगच्छार्धगुणितचयगुणितगच्छश्चयधनं भवति ।

≡ a २ ७ ७ । २ ७ ७
२ ७ ७ ७ । २ ७ ७ ७ । ७ । २ ७ ७ । २ चयधनहीने प्रथमसमयसमस्तधने अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते सति आदिर्भवति

≡ a २ ७ ७ ७ । ७ । २

प्रथमसमयपरिणामविकल्पानां बहुषु खंडेषु कृतेषु प्रथमखंडपरिणामप्रमाणं २ ७ ७ ७ । २ ७ ७ ७ । ७ । २ ७ ७ । २ एतदानयनविधानमिदं । अनुकृष्टिचयधनस्य तिर्यग्गच्छमात्रगुणकारभागहारान् अपवर्त्य ऋणरूपं पृथक्संस्थाप्य प्रथमसमयसमस्तधने संख्यातद्वयावलिं समानं प्रदर्श्य उत्तरगुणकारेषु चयधनात्मप्रमाणमेकरूपमपनीय पुनः पृथक्स्थापितऋणरूपं 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं' इति न्यायेन तत्र गुणकारेषु धनं कृत्वा अनुकृष्टिगच्छेन भक्ते प्रथमखंडप्रमाणमागच्छति आदिखडे एकैकस्मिन्ननुकृष्टिचये वृद्धे द्वितीयखंडादीनि चरमसमयखडपर्यंतानि प्रथमसमयसमस्तपरिणामविकल्पानां बहुखंडानि भवति

≡ a २ ७ ७ ७ । ७ । २

तत्र चरमखडानयनविधानमिदं रूपोनगच्छगुणिते चये आदिखंडे प्रक्षिप्ते चरमखंडप्रमाणं भवति २ ७ ७ ७ । २ ७ ७ ७ । ७ । २ ७ ७ । २ ततः एकस्मिन् चये अपनीते द्विचरमखंडप्रमाण भवति। एवं द्वितीयसमयादिचरमसमयपर्यंतं समस्तपरिणामविकल्पानां बहुखंडान्यानेतव्यानि तेषां खंडाना तिर्यग्रचना कर्तव्या तन्न्यासोयं[1]–

अथाकसंदृष्ट्या अर्थसंदृष्ट्या च अधस्तनोपरितनसमयवर्तिपरिणामविकल्पानां संख्यासादृश्यं कथ्यते तद्यथा–सर्वेषु समयेषु अनुकृष्टिगच्छभूतसंख्यातावलिकालसमया यावन्तस्तावंति विशुद्धपरिणामविकल्पाना खडानि जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदानि प्रत्येकमसंख्यातलोकमात्रपरिणामविकल्पसमूहरूपाणि संति । तत्र प्रथमसमयवर्तिपरिणामखडाना मध्ये प्रथमखडं सर्वखडेभ्योऽल्पसंख्यात्वात् सर्वजघन्यं तेन सदृश खंडं कुत्रापि नास्ति। पुनः प्रथमसमयवर्तिद्वितीयखडं द्वितीयसमयवर्तिप्रथमखड च द्वे अपि संख्यया अन्योन्य समाने तथा प्रथमसमयवर्तितृतीयखडं द्वितीयसमयवर्ति द्वितीयखंड तृतीयसमयवर्ति प्रथमखडं च त्रीण्य-

[1] न्यासस्तु १११,११२ तमयो पृष्ठयोर्द्रष्टव्यः ।

पि संख्यया परस्परं समानानि । एवं गत्वा त्रिचरमसमयवर्तिचरमखंडं द्विचरमसमयवर्तिद्विचरमखंडं चरमसमयवर्तित्रिचरमखंडं च त्रीण्यपि संख्यया परस्परं समानानि तथा द्विचरमसमयवर्ति चरमखंडं चरमसमयवर्ति द्विचरमखंड च द्वे अपि संख्यया अन्योन्य समाने। चरमसमयवर्ति चरमखंडं सर्वोत्कृष्ट तत्सदृशं कुत्रापि नास्ति । एकसमयवर्तिखडाना च परस्पर संख्यया सादृश्यं नास्त्येव । विशुद्धिसादृश्य दर्श्यते । तद्यथा -प्रथमसमयवर्तिसर्वजघन्यखंडे विशुद्धिपरिणामा असंख्येयलोकमात्राः संति । अपवर्तिते संख्यातप्रतरावलिभक्तासंख्यातलोकमात्राः । ते च जघन्यादारभ्योत्कृष्टपर्यंता षट्स्थानवृद्ध्या वर्धिताः भवंति । तत्र जघन्यविशुद्धेरविभागप्रतिच्छेदाः सर्वजीवराशेरनंतगुणाः (१६ ख) ततो द्वितीयादिपरिणामा अनंतभागादिवृद्ध्या वर्धिताः अनंतगुणवृद्धिविशुद्धिपरिणामपर्यंत-

२ २ २ २ २

षट्स्थानपतिताः संति तत्रैकवारषट्स्थानगतपरिणामाः रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातभागघनवर्गयोः परस्परगुणनलब्धमात्राः a a a a a गुणिते प्र-

६ । ४ ≡a

तरांगुलासंख्यातभागगुणितघनांगुलासंख्यातभागप्रमिता भवंति a a एतावत्परिणामानां यद्येकः १ षट्स्थानवारो लभ्यते तदा एतावतां ४ । गृ सर्वजघन्यखं-

≡a

४ । गृ । ६ । ४

डपरिणामानां कियंतः षट्स्थानवाराः ? इति त्रैराशिकलब्धषट्स्थानवाराः a a प्रथमसमयसर्वजघन्यखडे भवंति । एवं तिर्यक्चयवृद्धिद्वितीयादिखंडेष्वपि स्वस्वजघन्यादारभ्य स्वस्वोत्कृष्टपर्यंतमेकैकचयषट्स्थानवाराधिकाः जघन्यखडषट्स्थानवाराः प्रथमसमयोत्कृष्टखंडपर्यंत गच्छंति एतावत्परिणामानां

६ । ४ ≡ a

a a यद्येकः षट्स्थानवारो लभ्यते तदा ८ । गृ एतावतां चयपरिणामानां कियंतः षट्स्थानवाराः इति त्रैराशिकलब्धास्तिर्यक्चयषट्स्थानवाराः

≡a

८ । गृ । ६ । ४ ।

a a एवमूर्ध्वचयेऽपि षट्स्थानवारा आनेतव्याः । षट्स्थानानामादिरष्टांकः अंत उर्वंकः । तत्र प्रथमसमयजघन्यखंडे जघन्यपरिणामादुत्कृष्टपरिणामो विशुद्ध्या रूपोनषट्स्थानवारमात्रासंख्येयलोकानंतगुणकारगुणितः तस्य ऊर्वंकत्वात् । ततो द्वितीयखडस्य जघन्यपरिणामः एकवारानंतगुणः तस्याष्टांकत्वात् । ततः दुत्कृष्टपरिणामो रूपोनषट्स्थानवारमात्रासंख्येयलोकानंतगुणकारगुणितः । ततस्तृतीयखडजघन्यपरिणामः एकवारानंतगुणकारगुणितः । एवमुत्कृष्टखंडोत्कृष्टपरिणामपर्यंतं गुणकारक्रमो ज्ञातव्यः । सर्वत्र प्रतिखड स्वजघन्यात्स्वोत्कृष्टस्य रूपोनषट्स्थानवारमात्रासंख्यातलोकानंतगुणकारगुणितत्वात् । ततस्तदुत्तरजघन्यस्य एकवारानंतगुणकारगुणितत्वाच्च । तथा द्वितीयसमयजघन्यखडे जघन्यपरिणामः प्रथमसमयप्रथमखडोत्कृष्टपरिणामात् विशुद्ध्या एकवारानंतगुणकारगुणितः, तत एव प्रथमसमयद्वितीयखडजघन्यपरिणामसदृशः । पुनर्द्वितीयसमयप्रथमखंडोत्कृष्टपरिणामो रूपोनषट्स्थानवारमात्रासंख्यातलोकानंतगुणकार-

गुणितः, अतएव प्रथमसमयद्वितीयखंडोत्कृष्टपरिणामसदृशः । तन्मध्यपरिणामा अपि सर्वे प्रथमसमयाद्वितीयखंडमध्यमपरिणामैः सर्वैर्यथाक्रम सदृशाः । एवं द्वितीयसमयद्वितीयादिखंडजघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामाः प्रथमसमयतृतीयादिखडजघन्यमन्यमोत्कृष्टपरिणामैः सदृशाः । द्वितीयसमयचरमखंडपरिणामाः अधः प्रथमसमयसर्वखडपरिणामेषु कैरपि न सदृशाः तेभ्योऽनंतगुणविशुद्धिकत्वात् । प्रथमसमयप्रथमखंडजघन्यादिपरिणामा अपि विशुद्ध्या उपरितनसमयपरिणामैः कैरपि न सदृशाः तेभ्योऽनतगुणहीनविशुद्धिकत्वात् एवं तृतायादिसमयेषु प्रथमादिखडानां जघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामाः अधस्तनसमयपरिणामखंडानां यथायोग्यं जघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामैः सदृशा युक्त्या ज्ञातव्याः । चरमसमयचरमखडजघन्यमध्यमोत्कृष्टपरिणामा अधस्तनसमयखडपरिणामानां मध्ये कैरपि न सदृशास्तेषा सर्वेभ्योऽपि अनंतगुणत्वात् । तथा चोक्तं लब्धिसारे—

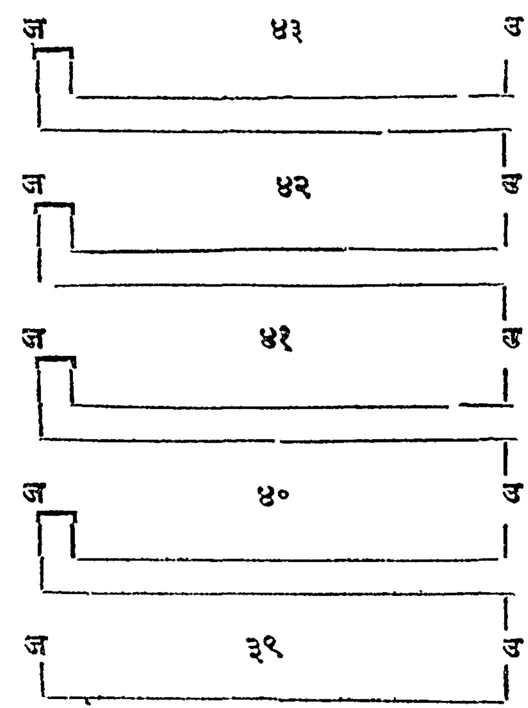
"पढमे चरिमे समये पढमं चरिमं च खंडमसरिच्छं । सेसा सव्वे सरिसा अट्ठुव्वंकादिअंतगया ॥" इति

सर्वसमयेषु प्रथमखंडानि चरमसमयसर्वखंडानि च उपर्युपरि अनंतगुणान्यसदृशानि अत एव तेषां विन्यासः अंकुशरचनेत्युच्यते[1] । तथा सर्वसमयोत्कृष्टखंडानि प्रथमसमयसर्वखडानि च अधस्तनखंडैः कैरपि न सदृशानि तन्न्यासो लांगलरचनेत्युच्यते[2] । कश्चिज्जीवः अध.प्रवृत्तकरणप्रथमसमयवर्तिप्रथमखंडसर्वजघन्यविशुद्धिपरिणामं प्रतिपन्नः पुनर्द्वितीयसमये ततः षट्स्थानवारमात्रासंख्येयलोकानंतगुणितं प्रथमखंडजघन्यविशुद्धिपरिणामं प्राप्नोति । अपरो जीवः प्रथमसमयवर्तिप्रथमखंडजघन्यविशुद्धिपरिणाम प्रतिपन्नः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्य अनतभागवृद्धियुक्त द्वितीयविशुद्धिपरिणाम प्राप्नोति । अन्यो जीवः प्रथमसमयवर्तिप्रथमखंडजघन्यविशुद्धिपरिणामं प्रतिपन्नः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्य अपरमनंतभागवृद्धियुक्त तृतीय विशुद्धिपरिणाम गच्छति । एको जीवस्तादृशपरिणाम एव पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्यापरमनंतभागवृद्धियुक्तं चतुर्थं विशुद्धिपरिणामं गच्छति । पुनः कश्चिज्जीवस्तादृशपरिणाम एव पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्यापरमनंतभागवृद्धियुक्तं पंचमं विशुद्धिपरिणामं गच्छति । एवं प्रथमसमयवर्तिनः प्रथमखडजघन्यविशुद्धिपरिणाम प्रतिपन्ना एव नानाजीवाः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखडस्यानंतभागासंख्यातभागसंख्यातभागवृद्धियुक्तसंख्यातगुणासंख्यातगुणानंतगुणगुणितासंख्येयलोकवारषट्स्थानपतितान् असंख्येयलोकमात्रतिर्यक्चयगतविशुद्धिपरिणामान् गच्छंति । तथा प्रथमसमयवर्तिनः प्रथमखडस्य द्वितीयपरिणामं प्रतिपन्नाः केचिज्जीवाः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखडस्य चयमात्रान् असंख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धियुक्तानसंख्यातलोकमात्रान् द्वितीयादिविशुद्धिपरिणामान् गच्छंति । तथा प्रथमसमयवर्तिनः प्रथमखंडस्य तृतीयविशुद्धिपरिणामं प्रतिपन्नाः केचिज्जीवाः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्य तृतीयादिविशुद्धिपरिणामान् चयमात्रासंख्यातलोकप्रमितानसंख्येयलोकवारषट्स्थानवृद्धियुक्तान् गच्छंति । तथा प्रथमसमयवर्तिनः प्रथमखंडस्य चतुर्थविशुद्धिपरिणामं प्रतिपन्नाः केचिज्जीवाः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्य चतुर्थादिविशुद्धिपरिणामान् चयमात्रासंख्येयलोकप्रमितानसंख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धियुक्तान् गच्छति । एवं प्रथमसमयवर्तिन. प्रथमखडस्य पंचमादितदुत्कृष्टपर्यंतविशुद्धिपरिणामप्रतिपन्ना नानाजीवाः पुनर्द्वितीयसमये प्रथमखंडस्य स्वस्वपूरणं विशुद्धिपरिणाममादि कृत्वा चयमात्रासंख्येयलोकप्रमितानसंख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धियुक्तान् विशुद्धिपरिणामान् गच्छति । एव प्रथमसमयवर्तिद्वितीयादिखडजघन्यमध्यमोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामप्रतिपन्ना नानाजीवाः पुनर्द्वितीयसमये द्वितीयादिखंडाना जघन्यमध्यमोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामेभ्य उत्तरोत्तरान् चयमात्रासंख्येयलोकप्रमिता-

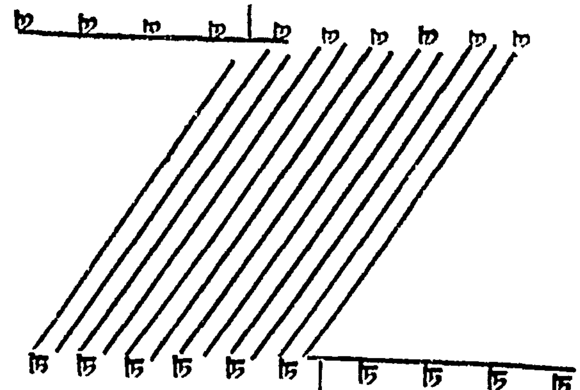
१—रचनाबिंब १०८ तमे प्रष्ठे विलोकनीयं । २—रचना क्रमो १०९ प्रष्ठे द्रष्टव्यः ।

नंसंख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धियुक्तान् विशुद्धिपरिणामान् गच्छंति एवं तृतीयादिसमयेषु चरमसमयपर्यंतेषु प्रथमसमयोक्तालापक्रमेण यथायोग्यालापं कृत्वा प्रतिसमयमधःप्रवृत्तकरणपरिणामानामनंतगुणविशुद्धिक्रमो ज्ञातव्य ,वस्तुनो विचित्रपरिणामसंभावात्। अत्र विशुद्धिपरिणामानामल्पवहुत्व स्वस्थानपरस्थाने आश्रित्योच्यते तद्यथा प्रथमसमये प्रथमखंडस्य जघन्यविशुद्धिपरिणामात् उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामः अनंतगुणः, ततो द्वितीयखडस्य जघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनंतगुणः। ततस्तदुत्कृष्टपरिणामोऽनंतगुणः। एव तृतीयादिखडेषु चरमखडपर्यंतेषु जघन्योत्कृष्टपरिणामा अनंतगुणा नेतव्याः। तथा द्वितीयादिसमयेष्वपि चरमसमयपर्यंतेषु जघन्योत्कृष्टपरिणामानां अल्पवहुत्वक्रमो ज्ञात्वा वक्तव्यः, इद स्वस्थानाल्पवहुत्व। पुनः परस्थानाल्पवहुत्वं यथा---

प्रथमसमयप्रथमखडजघन्यविशुद्धिपरिणामात्तदुत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽनतगुण', ततो द्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यविशुद्धिपरिणामोनतगुणः, ततस्तदुत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽनंतगुण' ततस्तृतीयसमयप्रथमखडजघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनंतगुणः एवं चरमसमयपर्यंतं प्रथमखंडजघन्योत्कृष्टपरिणामा अनंतगुणानंतगुणा ज्ञेयाः। तथा प्रथमसमयादिचरमसमयपर्यंतवर्तिद्वितीयखंडादिचरमखंडपर्यंतजघन्योत्कृष्टपरिणामा अपि अहिगत्या अनतगुणा ज्ञातव्याः, इतीय प्रतिखंडाहिगतिरचना अंकसदृष्ट्या---



एवं अर्थसंदृष्ट्यापि प्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामादनुकृष्टिगच्छमात्रनिर्वर्गणकांडकस्योपरितनसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनंतगुणः । ततो द्वितीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनतगुणः । ततो द्वितीयनिर्वर्गणकांडकद्वितीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनंतगुणः । ततस्तृतीयसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनंतगुणः, ततो द्वितीयकाडकतृतीयसमयप्रथमखंडजघन्यपरिणामोऽनतगुणः । ततश्चतुर्थसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामोऽनंतगुणः । एवं द्विचरमकांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामात् चरमकांडकचरमसमयप्रथमखडजघन्यपरिणामोऽनंतगुणः । ततश्चरमकाडकप्रथमसमयचरमखंडोत्कृष्टः अनंतगुणो भवति यावत्तावदहिगत्या गच्छति इयं समस्ताहिगतिरचना ।



उपरिचरमकांडकचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टपरिणामपर्यंतं यथायोग्यानतगुणकारो द्रष्टव्यः । इदं परस्थानाल्पबहुत्वं । अवशिष्टार्थविशेषं उपरिसूत्रानुसारेण व्याख्यास्यामः ॥ ४९ ॥ अथापूर्वकरणपरिणामपुरस्सरमपूर्वकरणगुणस्थानं गाथाषट्केनाह—

स० चं०—तीनौं करणनिविषैं स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण अनिवृत्तिकरणका काल है। यातैं संख्यातगुणा अपूर्वकरणका काल है। यातैं संख्यातगुणा इस अधःप्रवृत्त करणका काल है सो भी अंतर्मुहूर्त मात्र ही है। जातैं अंतर्मुहूर्तके भेद बहुत हैं। बहुरि तींह अधःप्रवृत्तकरणके कालविषैं अतील अनागत वर्तमान त्रिकालवर्ती नानाजीवसंबंधी विशुद्धता रूप इसकरणके सर्व परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण हैं। लोकके प्रदेशनिका प्रमाणतैं असंख्यात गुणे हैं। बहुरि तिनि परिणामनिविषैं तिस अधःप्रवृत्तकरणकालका प्रथमसमयसंबंधी जेते परिणाम हैं तिनतैं लगाय द्वितीयादि समयनिविषैं ऊपरि ऊपरि अंतसमय पर्यंत समान वृद्धिकरि वर्धमान हो हैं। प्रथम समय संबंधी परिणामतैं द्वितीयसमयसंबंधी परिणाम जितने बधती हैं तितने ही द्वितिय समयसंबंधी परिणाम-

निर्तें तृतीय समयसंबंधी परिणाम बधती हैं इस क्रमतें ऊपरि ऊपरि अंत समय पर्यंत सदृश वृद्धिकौं प्राप्त जानने सो जहां समान वृद्धि हानिका अनुक्रम स्थानकनिविषैं होइ तहां श्रेणी व्यवहार रूप गणित संभवै है तातैं इहां श्रेणी व्यवहारकरि वर्णन करिए है। तहां प्रथम संज्ञा कहिए है-विवाक्षित सर्वस्थानकसंबंधी सर्व द्रव्य जोड़ें जो प्रमाण होइ सो सर्वधन कहिए वा पदधन कहिए। बहुरि स्थानकनिका जो प्रमाण ताकौं पद कहिए वा गच्छ कहिए। बहुरि स्थान स्थान प्रति जितना जितना बधै ताकौं चय कहिए वा उत्तर कहिए वा विशेष कहिए। बहुरि आदि स्थानविषैं जो प्रमाण ताकौं मुख कहिए वा आदि कहिए वा प्रथम कहिए। बहुरि अंतस्थानविषैं जो द्रव्यका प्रमाण होइ ताकौं अंतधन कहिए वा भूमि कहिए। बहुरि सर्वस्थानकनिके वीचि जो स्थान ताका द्रव्यके प्रमाणकौं मध्यधन कहिए जहां स्थानकनिका प्रमाण सम होइ तहां वीचिके दोय स्थानकनिका द्रव्य जोडि आधा कीए जो प्रमाण होइ ताकौं मध्यधन कहिए। बहुरि जेता मुखका प्रमाण होइ तितना तितना सर्वस्थानकनिका ग्रहण करि जोडैं जो प्रम।ण होइ सो आदिधन कहिए। बहुरि सर्वस्थानकनिविषै जे जे चय बधे तिन सर्व चयनिकौं जोडैं जो प्रमाण होइ ताकौं उत्तरधन कहिए वा चयधन कहिए। बहुरि ऐसैं आदिधन उत्तरधन मिलै सर्वधन हो है। अब इनके प्रमाण जाननेके अर्थि करण सूत्र कहिए है—

"मुहभूमिजोगदले पदगुणिदे पदधनं होदि"

इस सूत्रकरि मुख आदिस्थान अर भूमि अंतस्थान इनकौं जोडि ताका आधाकरि ताकौं गच्छकरि गुणै पदधन कहिए सर्वधन हो है। बहुरि

'आदी अंते सुद्धे वट्टिहदे रूवसंजुदे ठाणे।'

इस सूत्रकरि आदिकौं अंतधनविषै घटाएं जेते अवशेष रहैं तिनकौं वृद्धि जो चय ताका भाग दीयें जो होइ तामैं एक मिलाएं स्थानकनिका प्रमाणरूप पद वा गच्छका प्रमाण आवै है बहुरि 'पदकदिसंखेण भाजियं पचयं' पद जो गच्छ ताकी जो कृति कहिए वर्ग ताका भाग सर्वधनकौं दीएं जो प्रमाण आवै ताकूं संख्यातका

भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो चय जानना। सो इहां अधःकरणविषैं पहिलैं मुखादिकका ज्ञान होइ तातैं ऐसैं कथन कीया है। बहुरि सर्वत्र सर्वधनकौं गच्छका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तामैं मुखका प्रमाण घटाइ अवशेष रहै तिनकौं एक घटाइ गच्छका आधा प्रमाणका भाग दीए चयका प्रमाण हो है अथवा 'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजितं प्रचयः' इस वचनतैं सर्वस्थानकसंबंधी आदि धनकौं सर्वधनविषैं घटाइ अवशेषकौं गच्छके प्रमाणका वर्गविषै गच्छका प्रमाण घटाइ अवशेष रहै ताका आधा जेता होय ताका भाग दीये चयका प्रमाण आवै है बहुरि उत्तर धनकौं सर्व धनविषै घटाएं अवशेष रहै ताकौं गच्छका भाग दीएं मुखका प्रमाण आवै है बहुरि–

"व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं"

इस सूत्रकरि एक घाटि गच्छकौं चयकरि गुणै जो प्रमाण होइ ताकौं मुखका प्रमाण सहित जोडे अंतधन हो है बहुरि मुख अर अंतधनकौं मिलाय ताका आधा कीएं मध्यधन हो है। बहुरि

'पदहतमुखमादिधनं'

इस सूत्रकरि पदकरि गुण्या हूवा मुखका प्रमाण सो आदिधन हो है। बहुरि

"व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं"

इस सूत्रकरि एक घाटि जो गच्छ ताका आधा प्रमाणकौं चयकरि गुणैं जो प्रमाण होइ ताकौं गच्छकरि गुणैं उत्तरधन हो है सो आदिधन उत्तरधन मिलाएं भी सर्वधनका प्रमाण हो है। अथवा मध्यधनकौं गच्छकरि गुणैं भी सर्वधनका प्रमाण आवै है। ऐसैं श्रेणी व्यवहाररूप व्यवहार गणितका किंचित् स्वरूप प्रसंग पाइ कह्या अब अधिकारभूत अधःकरणविषैं सर्वधन आदिका वर्णन करिए है तहां प्रथम अंकसंदृष्टिकरि कल्पनारूप प्रमाण लीएं दृष्टांतमात्र कथन करिए है। सर्व अधःकरणका परिणामनिकी संख्यारूप सर्वधन तीनहजार बहत्तरि (३०७२) बहुरि अधःकरणके कालका समयानिका प्रमाणरूप गच्छ सोलह (१६) बहुरि समय समय परिणा-

मानिकी वृद्धिका प्रमाणरूपचय च्यारि (४) बहुरि इहां संख्यातका प्रमाण तीन (३) अब उर्ध्व रचनाविषैं धन ल्याइए है सो युगपत् अनेक समयकी प्रवृत्ति न होइ तातैं समयसंबंधी रचना ऊपरि ऊपरि ऊर्ध्वरूप करिए है। तहां आदि धनादिकका प्रमाण ल्याइये है–

'पदकदिसंखेण भाजियं पचयं'

इस सूत्रकरि सर्वधन तीनहजार बहत्तरि ताकौं पद सोलहकी कृति दोयसै छप्पन ताका भाग दीएं बारह होइ। अर ताकौं संख्यातका प्रमाण तीन ताका भाग दीएं च्यारि होइ अथवा दोयसौ छप्पनकौं तिगुणा करि ताका भाग सर्व धनकौं दीये च्यारि होइ सो समय समय प्रति परिणामनिका चयका प्रमाण है। अथवा याकौं अन्य विधानकरि कहिए है। सर्वधन तीनहजार बहत्तरि ताकौं गच्छका भाग दीएं एकसौ वाणवे तामैं आगैं कहिए है मुखका प्रमाण एकसौ बासठ सो घटाइ तीस रहे। इनकौं एक घाटि गच्छका आधा साढासात ताका भाग दीये च्यारि पाए सो चय जानना। अथवा–

'आदिधनोनं गणितं पदोनपदकृतिदलेन संभजितं'

इस सूत्रकरि आगैं कहिए है आदिधन पचीससै वाणवै तीहकरि रहित सर्वधन च्यारिसै असी ताकौं पदकी कृति दोयसै छप्पनविषैं पद सोलह घटाइ अवशेषका आधा कीये एकसौ वीस होइ ताका भागदीये च्यारि पाये सो चयका प्रमाण जानना। बहुरि–

'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं'।

इस सूत्रकरि येक घाटि गच्छ पंद्रह ताका आधा साढासात (१५/२) ताकौ चय च्यारि ताकरि गुणे तीस ताकौं गच्छ सोलहकरि गुणैं च्यारिसौ असी चयधनका प्रमाण हो है। बहुरि इस प्रचय धनकरि सर्वधन तीन हजार बहत्तरि सो हीन कीये अवशेष दोजार पांचसै वाणवै रहे इनकौ पद सोलह ताका भाग दीये येकसौ बासठि पाये सोई प्रथम समयसंबंधी परिणामनिकी संख्या हो है। बहुरि यामैं येक येक चय बधाये संते द्वितिय तृती-

यादि समयसंबंधी परिणामनिकी संख्या हो है। तहां द्वितीय समयसंबंधी येकसौ छ्यासठ, तृतीय समयसंबंधी येकसौ सत्तरि इत्यादि क्रमतैं येक एक चय बधती परिणामनिकी संख्या हो है--१६२ १६६ १७० १७४ १७८ १८२ १८६ १९० १९४ १९८ २०२ २०६ २१० २१४ २१८ २२२ । इहां अंतसमयसंबंधी परिणामनिकी संख्यारूप अंत धन ल्याइये है—

'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तदादिसहितं धनं'

इस सूत्रतैं एक घाटि गच्छ पंद्रह ताकौं चय च्यारिकरि गुणैं साठि बहुरि याकौं आदि एकसौ वासठि करि युक्त कीएं दोयसै वाईस होंइ सोई अंतसमयसंबंधी परिणामनिका प्रमाण जानना। बहुरि यामैं एक चय घटाएं दोयसै अठारह द्विचरम समयसंबंधी परिणामनिका प्रमाण जानना। ऐसैं कहैं जो धन कहिए समय समय संबंधी परिणामनिका प्रमाण तिनकौं अधःप्रवृत्तकरणका प्रथमसमयतैं लगाइ अंत समयपर्यंत ऊपरि ऊपरि स्थापन करने।

आगैं अनुकृष्टिरचना कहिए है। तहां नीचैके समयसंबंधी परिणामनिके जे खंड तिनके ऊपरि के समयसंबंधी परिणामनिके खंडनिकरि जो सादृश्य कहिए समानता सो अनुकृष्टि ऐसा नाम धरै है॥ भावार्थ—ऊपरिके अर नीचेके समयसंबंधी परिणामनिके जे खंड ते परस्पर समान जैसैं होंइ तैसैं एक समयके परिणामनिविषैं खंड करना तिसका नाम अनुकृष्टि जानना। तहां ऊर्ध्वगच्छके संख्यातवां भाग अनुकृष्टिका गच्छ है सो अंकसंदृष्टि अपेक्षा ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण सोलह ताकौं संख्यातका प्रमाण च्यारिका भाग दीए जो च्यारि पाए सोई अनुकृष्टिविषैं गच्छका प्रमाण है—अनुकृष्टिविषैं खंडनिका प्रमाण इतना जानना। बहुरि ऊर्ध्व रचनाका चयकौं अनुकृष्टि गच्छका भाग दीएं अनुकृष्टिविषैं चय होइ सो ऊर्ध्वचय च्यारिकौं अनुकृष्टि गच्छ च्यारिका भाग दीएं एक पाया सोई अनुकृष्टि चय जानना—खंड खंड प्रति बधतीका प्रमाण इतना है। बहुरि प्रथम समय संबंधी समस्त परिणामनिका प्रमाण एकसौ वासठि सो इहां प्रथमसमयसंबंधी अनुकृष्टि रचनाविषैं सर्वधन जानना। बहुरि 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रकरि एक घाटि गच्छ तीन ताका

आधाकौं चय एक करि गुणि अर गच्छ च्यारिकरि गुणैं छह होइ सो इहां उत्तरधनका प्रमाण जानना। बहुरि इस उत्तर धन छहकौं (६) सर्वधन एकसौ वासठि (१६२) विषैं घटाएं अवशेष एकसौ छप्पन रहे तिनकौं अनुकृष्टि गच्छ च्यारिका भाग दीएं गुणतालीस पाए सोई प्रथमसमयसंबंधी परिणामनिका जो प्रथम खंड ताका प्रमाण है सो यहुही सर्व जघन्य खंड है जातैं इस खंडतैं अन्य सर्व खंडनिके परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धताकरि अधिकपनों संभवै है। बहुरि तिस प्रथम खंडविषैं एक अनुकृष्टिका चय जोडें तिसहीके दूसरा खंडका प्रमाण चालीस हो है ऐसैं तृतीयादिक अंत खंडपर्यंत तिर्यक् एक एक चय अधिक स्थापने। तहां तृतीय खंडविषैं इकतालीस अंतखंडविषैं वियालीस परिणामनिका प्रमाण है। ते ऊर्ध्वरचनाविषैं जहां प्रथम समयसंबंधी परिणाम स्थापे ताके आगे आगैं बरोवरि ए खंड स्थापन करणे। ए खंड एक समयविषैं युगपत् अनेक जीवनिके पाइए तातैं इनिको वरोवरि स्थापन कीए हैं। बहुरि तातैं परैं ऊपरि द्वितीय समयका प्रथम खंड प्रथम समयका प्रथम खंड ३९ तैं एक अनुकृष्टि चयकरि १ एक अधिक हो है तातैं ताका प्रमाण चालीस है। जातैं द्वितीय समय संबंधी परिणाम एकसौ छ्यासठि सो ही सर्वधन तामें अनुकृष्टिका उत्तर धन छह घटाइ अवशेषकौं अनुकृष्टिका गच्छ च्यारि ताका भाग दीयें तिस द्वितीय समयका प्रथम खंडकी उत्पत्ति संभवै है। बहुरि ताके आगैं द्वितीय समयके द्वितीयादि खंड ते येक येक चय अधिक संभवै हैं। ४१। ४२। ४३। इहां द्वितीय समयका प्रथम खंड सो प्रथम समयका द्वितीय खंडकरि समान है। ऐसैं ही द्वितीय समयका द्वितीयादि खंड ते प्रथम समयका तृतीयादि खंडनिकरि समान हैं। इतना विशेष-जो द्वितीय समयका अंतका खंड प्रथम समयका सर्वखंडनिविषैं किसी खंडकरि भी समान नाहीं। बहुरि तृतीयादि समयनिके प्रथमादिखंड द्वितीयादि समयनिके प्रथमादि खंडनितैं येक विशेष अधिक हैं तहां तृतीय समयके। ४१। ४२। ४३। ४४। चतुर्थ समयके। ४२। ४३। ४४। ४५। पंचम समयके। ४३। ४४। ४५। ४६। षष्ठ समयके। ४४। ४५। ४६। ४७। सप्तम समयके। ४५। ४६। ४७। ४८। अष्टम समयके। ४६। ४७। ४८। ४९। नवमा समयके ४७। ४८। ४९। ५०। दशवां समयके

४८ । ४९ । ५० । ५१ । ग्यारह्वां समयके । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । वारहवां समयके । ५० । ५१ । ५२ । ५३ । तेरह्वां समयके । ५१ । ५२ । ५३ । ५४ । चौदह्वां समयके । ५२ । ५३ । ५४ । ५५ । पंद्रह्वां समयके । ५३ । ५४ । ५५ । ५६ । सोलह्वां समयके । ५४ । ५५ । ५६ । ५७ । खंड जानने । जातैं ऊपरि ऊपरि सर्वधन येक येक ऊर्ध्व चयकरि अधिक हैं । इहां सर्वजघन्य खंड जो प्रथम समयका प्रथम खंड ताके परिणामनिके अर सर्वोत्कृष्ट अंतसमयका अंत खंड ताके परिणामनिके किस ही खंडके परिणामनिकरि सहित समानता नाहीं है जातैं अवशेष समस्त ऊपरिके वा नीचले समय संबंधी खंडनिका परिणाम पुंजनिकैं यथासंभव समानता संभवै है । बहुरि इहां ऊर्ध्व रचनाविषै 'मुहभूमी जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि' इस सूत्रकरि मुख एकसौ वासठि अर भूमि दोयसौ वाइस इनिकौं जोड़ि । ३८४ । आधाकरि १९२ गच्छ सोलहकरि गुणै सर्व धन तीन हजार वहत्तरि हो है । अथवा मुख १६२ भूमि २२२ कौं जोडें ३८४ आधा कीयें मध्यधनका प्रमाण एकसौ वाणवै होइ ताकौं गच्छ सोलहकरि गुणैं सर्वधनका प्रमाण हो है । अथवा 'पदहतमुखमादिधनं' इस सूत्रकरि गच्छ सोलहकरि मुख एकसौ बासठिकौं गुणैं पच्चीससै वाणवै सर्वसमयसंबंधी आदिधन हो है । बहुरि उत्तरधन पूर्वै च्यारिसै असी कह्या है इनि दोऊनिकौं मिलाएं सर्वधनका प्रमाण हो है । बहुरि गच्छका प्रमाण जाननेकौं 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहदे रूवसंजुदे ठाणे' इस सूत्रकरि आदि एकसौ बासठि सो अंत दोयसै बाईसमें घटाएं अवशेष साठि ताकौं वृद्धिरूप चय च्यारिका भागदीएं पंद्रह तामैं एक जोडें गच्छका प्रमाण सोलह आवै है । ऐसैं दृष्टांतमात्र सर्वधनादिकका प्रमाण कल्पनाकरि वर्णन कीया है सो याका प्रयोजन यहु जो इस दृष्टांतकरि अर्थका प्रयोजन नीकैं समझनेमें आवै । अब यथार्थ वर्णन करिए है--सो ताका स्थापन असंख्यात लोकादिककी अर्थसंदृष्टिकरि वा संदृष्टिके अर्थि समच्छेदादि विधानकरि संस्कृतटीकाकेविषै दिखाया है सो इहां भाषाटीकाविषैं आगैं संदृष्टि अधिकार जुदा कहैंगे तहां इनिकी भी अर्थसंदृष्टिका अर्थविधान लिखैंगे तहां जानना । इहां प्रयोजनमात्र कथन करिए है । आगैं भी जहां अर्थसंदृष्टि होय ताका अर्थ वा विधान आगैं संदृष्टि अधिकारविषैं ही देखलेना ।

जायगा जायगा संदृष्टिका अर्थ लिखनेतैं ग्रंथ प्रचुर होइ अर काठिन होइ तातैं न लिखिए हैं। सो इहां त्रिकालवर्ती नानाजीवसंबंधी समस्त अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोकमात्र हैं सो सर्वधन जानना। बहुरि अधःप्रवृत्तकरणका काल अंतर्मुहूर्तमात्र ताके जेते समय होंइ सो इहां गच्छ जानना। बहुरि सर्वधनकौं गच्छका वर्गकरि ताका भाग दीजिए। बहुरि यथासंभव संख्यातका भाग दीजिए जो प्रमाण आवै सो ऊर्ध्वचय जानना। बहुरि एक घाटि गच्छका आधाप्रमाणकरि चयकौं गुणि बहुरि गच्छका प्रमाणकरि गुणैं जो प्रमाण आवै सो उत्तर धन जानना। बहुरि इस उत्तरधनकौं सर्वधनविषैं घटाइ अवशेषकौं उर्ध्वगच्छका भागदीएं त्रिकालवर्ती समस्त जीवनिका अधःप्रवृत्तकरण कालके प्रथम समयविषैं संभवते परिणामनिका पुंजका प्रमाण हो है। बहुरि याकेविषैं एक उर्ध्व चय जोडें द्वितीय समयसंबंधी नाना जीवनिके समस्त परिणामनिके पुंजका प्रमाण हो है। ऐसैं ही ऊपरि भी समय समय प्रति एक एक ऊर्ध्वचय जोडें परिणाम पुंजका प्रमाण जानना। तहां प्रथम समयसंबंधी परिणामपुंजविषै एक घाटि गच्छ प्रमाण चय जोडें अंतसमयसंबंधी नाना जीवनिके समस्त परिणामनिके पुंजका प्रमाण हो है सो ही कहिए है--'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यंतधनं भवेत्' इस करण सूत्रकरि एक घाटि गच्छका प्रमाणकरि चयकौं गुणैं जो प्रमाण होइ ताकौं प्रथम समयसंबंधी परिणामपुंज प्रमाणविषैं जोडें अंतसमयसंबंधी परिणामपुंजका प्रमाण हो है। बहुरि याविषैं एक चय घटाएं द्विचरमसमयवर्ती नाना जीवसंबंधी समस्त विशुद्ध परिणाम पुंजका प्रमाण हो है। ऐसैं ऊर्ध्वरचना जो ऊपरि ऊपरि रचना तींहिविषैं समय समयसंबंधी अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम पुंजका प्रमाण कह्या। भावार्थ—आगैं कषायाधिकारविषैं विशुद्धपरिणामनिकी संख्या कहैंगे तिसविषैं अधःकरणविषैं संभवते शुभलेश्या संज्वलन कषायका देशघाती स्पर्धकनिका उदयसंयुक्त विशुद्ध परिणामनिकी संख्या त्रिकालवर्ती नाना जीवनिकैं असंख्यात लोकमात्र है। तिनिविषैं जिनि जीवनिकौं अधःप्रवृत्तकरण माड़ें पहला समय है ऐसे त्रिकालसंबंधी अनेक जीवनिकैं जे परिणाम संभवैं तिनिके समूहकौं प्रथमसमयपरिणामपुंज कहिए। बहुरि जिनि जीवनिकौं अधःकरण माढें दूसरा समय

भया ऐसे त्रिकालसंबंधी अनेक जीवनिकैं जे परिणाम संभवैं तिनिके समूहकौं द्वितीयसमयपरिणामपुंज कहिए। ऐसैं क्रमतैं अंत समयपर्यंत जानना। तहां प्रथमादि समयसंबंधी परिणामपुंजका प्रमाण श्रेणी व्यवहार गणितका विधानकरि जुदा जुदा कह्या सो सर्वसमयसंबंधी परिणाम पुंजनिकौं जोडैं असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होइ है। बहुरि इन अधःप्रवृत्तकरण कालका प्रथमादि समयसंबंधी परिणामनिकेविषैं त्रिकालवर्ती नाना जीवसंबंधी प्रथम समयके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद लीएं जो परिणाम पुंज कह्या ताके अधःप्रवृत्तकरण कालके जेते समय तिनकौं संख्यातका भाग दीएं जेता प्रमाण आवे तितना खंड करिए। ते खंड निर्वर्गण कांडकके जेते समय तितने हो हैं। वर्गणा कहिए समयनिकी समानता तींहिकरि रहित जे ऊपरि ऊपरि समयवर्ती परिणाम खंड तिनका जो कांडक कहिए सर्वप्रमाण सो निर्वर्गण कांडक है। तिनिके समयानिका जो प्रमाण सो अधःप्रवृत्तकरणकालरूप जो ऊर्ध्वगच्छ ताके संख्यातवे भागमात्र है सो यहु प्रमाण अनुकृष्टिके गच्छका जानना। इस अनुकृष्टि गच्छप्रमाण एक एक समयसंबंधी परिणामनिविषै खंड हो हैं। बहुरि ते खंड एक एक अनुकृष्टिचयकरि अधिक हैं। तहां ऊर्ध्व रचनाविषैं जो चयका प्रमाण कह्या ताकौ अनुकृष्टिगच्छका भाग दीएं जो पाइए सो अनुकृष्टिचयका प्रमाण है। बहुरि 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रकरि एक घाटि अनुकृष्टिके गच्छका आधा प्रमाणकौं अनुकृष्टि चयकरि गुणि अनुकृष्टिगच्छकरि गुणैं जो प्रमाण होइ सो अनुकृष्टिका चयधन हो है याकौं ऊर्ध्वरचनाविषै जो प्रथम समयसंबंधी समस्त परिणाम पुंजका प्रमाणरूप सर्वधन तींहिविषै घटाइ अवशेष जो रहै ताकौं अनुकृष्टि गच्छका भागदीएं जो प्रमाण होइ सोई प्रथमसमयसंबंधी प्रथम खंडका प्रमाण है। बहुरि याविषैं एक अनुकृष्टि चयकौं जोडैं प्रथमसमयसंबंधी समस्त परिणामनिके द्वितीय खंडका प्रमाण हो है। ऐसैं ही तृतीयादिक खंड एक एक अनुकृष्टि चयकरि अधिक अपने अंत खंडपर्यंत क्रमतैं स्थापन करने। तहां अनुकृष्टिका प्रथम खंडविषैं एक घाटि अनुकृष्टिगच्छका प्रमाण अनुकृष्टिचय जोडैं जो प्रमाण होइ सोई अंत खंडका प्रमाण जानना। यामैं एक अनुकृष्टि चय घटाएं प्रथमसमयसंबंधी द्विचरमखंडका प्रमाण हो है।

ऐसैं प्रथमसमयसंबंधी परिणाम पुंजरूप खंड संख्यात आवली प्रमाण हैं ते क्रमतैं जानने। इहां तीनवार संख्यातकरि गुणित आवली प्रमाण जो अधःकरणका काल ताके संख्यातवे भाग खंडनिका प्रमाण सो दोइबार संख्यात करि गुणित आवली प्रमाण है ऐसा जानना। बहुरि द्वितीय समयसंबंधी परिणाम पुंजका प्रथम खंड है सो प्रथम समयसंबंधी प्रथम खंडतैं अनुकृष्टि चयकरि अधिक है काहे तैं ? जातैं द्वितीय समयसंबंधी समस्तपरिणाम पुंजरूप जो सर्वधन तामैं पूर्वोक्त प्रमाण अनुकृष्टिका चयधन घटाएं अवशेष रहै ताकौं अनुकृष्टि गच्छका भागदीएं सो प्रथमखंड सिद्ध हो है। बहुरि इस द्वितीयसमयका प्रथमखंडविषैं एक अनुकृष्टि चयकों जोडैं द्वितीय समयसंबंधी परिणामनिका द्वितीय खंडका प्रमाण हो है। ऐसैं तृतीयादिक खंड एक एक अनुकृष्टि चयकरि अधिक स्थापन करने। बहुरि तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छ प्रमाण चय द्वितीयसमयपरिणामका प्रथम खंड विषैं जोड़ैं द्वितीय समयसंबंधी अंत खंडका प्रमाण हो है। यामैं एक अनुकृष्टिचय घटाएं द्वितीय समयसंबंधी द्विचरम खंडका प्रमाण हो है। बहुरि इहां द्वितीय समयका प्रथम खंड अर प्रथम समयका द्वितीय खंड ए दोऊ समान हैं तैसैं ही द्वितीय समयका द्वितीयादिखंड अर प्रथम समयका तृतीयादिखंड दोऊ समान हो हैं इतना विशेष द्वितीय समयका अंत खंड सो प्रथम समयका खंडनिविषैं किसीहीकरि समान नाहीं। बहुरि याके आगैं ऊपरि तृतीयादि समयनिविषैं अनुकृष्टिका प्रथमादिक खंड ते नीचला समयसंबंधी प्रथमादि अनुकृष्टि खंडनितैं एक एक अनुकृष्टि चयकरि अधिक हैं। ऐसैं अधःप्रवृत्तकरणकालका अंत समय पर्यंत जानने। तहां अंत समयका समस्त परिणामरूप सर्वधनविषैं अनुकृष्टिका चयधनकौं घटाइ अवशेषकौं अनुकृष्टिगच्छका भागदीएं अंतसमयसंबंधी परिणामका प्रथम अनुकृष्टि खंड हो है। यामैं एक अनुकृष्टिचय जोडैं अंतसमयका द्वितीय अनुकृष्टि खंड हो है। ऐसैं तृतीयादिखंड एक एक अनुकृष्टिचयकरि अधिक जानने। तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छप्रमाण अनुकृष्टिचय अंतसमयसंबंधी परिणामका प्रथम खंडविषैं जोडै अंतसमयसंबंधी अंत अनुकृष्टिखंडके परिणाम पुंजका प्रमाण हो है। बहुरि यामैं एक अनुकृष्टिचय घटाएं अंतसमयसंबंधी द्विचरमखंडके

परिणाम पुंजका प्रमाण हो है। ऐसैं अंतसमयसंबंधी अनुकृष्टि खंडते अनुकृष्टिके गच्छप्रमाण हैं ते बरोबरि आगे आगे क्रमतैं स्थापने। बहुरि अंतसमयसंबंधी अनुकृष्टिका प्रथम खंडविषैं एक अनुकृष्टिचय घटाएं अवशेष द्विचरमसमयसंबंधी प्रथमखंडका परिणामपुंजका प्रमाण हो है। बहुरि यामैं एक अनुकृष्टिचय जोडैं द्विचरम समयसंबंधी द्वितीय खंडका परिणाम पुंजका प्रमाण हो है। बहुरि ऐसैं ही तृतीयादिखंड एक एक चय अधिक जानने। तहां एक घाटि अनुकृष्टि गच्छप्रमाण अनुकृष्टिचय द्विचरम समयसंबंधी परिणामका प्रथम खंडविषै जोडै द्विचरम समयसंबंधी अनुकृष्टिका अंत खंडका परिणाम पुंजका प्रमाण हो है। बहुरि यामैं एक अनुकृष्टिचय घटाएं तिस ही द्विचरम समयका द्विचरम खंडका प्रमाण हो है। ऐसैं अधःप्रवृत्तकरणके कालका द्विचरम समयसंबंधी अनुकृष्टि खंड ते अनुकृष्टिका गच्छप्रमाण हैं ते क्रमतैं एक एक चय अधिक स्थापन करने ऐसैं तिर्यक्रचना जो बरोबर रचना तींहिविषैं एक एक समयसंबंधी खंडनिविषैं परिणामनिका प्रमाण कह्या। भावार्थ—पूर्वै अधःकरणका एक एक समयविषैं संभवते नाना जीवनिके परिणामनिका प्रमाण कह्या था अब तिसविषैं जुदे जुदे संभवते ऐसे एक एक समयसंबंधी खंडनिविषैं परिणामानिका प्रमाण इहां कह्या है सो ऊपरिके अर नीचेके समयसंबंधी खंडनिविषैं परस्पर समानता पाइये है तातैं अनुकृष्टि ऐसा नाम इहां संभवै है। जितनी संख्या लीयें ऊपरिके समयविषैं परिणाम खंड हो हैं तितनी संख्या लीयें नीचलें समयविषैं भी परिणाम खंड होइ हैं ऐसैं नीचले समयसंबंधी परिणाम खंडतैं ऊपरिके समयसंबंधी परिणाम खंडविषैं समानता जानि इसका नाम अधःप्रवृत्तकरण कह्या है। बहुरि इहां विशेष है सो कहिये है प्रथमसमयसंबंधी अनुकृष्टिका प्रथमखंड सो सर्वतैं जघन्य खंड है जातैं सर्वखंडनितैं याकी संख्या घाटि है। बहुरि अंतसमयसंबंधी अंतका अनुकृष्टिखंड सो सर्वोत्कृष्ट है जातैं याकी संख्या अन्य खंडनितैं अधिक है सो इन दोऊनिकै कहीं अन्य खंडकरि समानता नाहीं है। बहुरि अवशेष ऊपरि समयसंबंधी खंडनिके नीचले समयसंबंधी खंडनिसहित अथवा नीचले समयसंबंधी खंडनिकौं ऊपरि समयसंबंधी खंडनिसहित यथासंभव समानता है। तहां द्वितीयसमयतैं लगाय द्विचरम समयपर्यंत जे समय ति-

नका पहला पहला खंड अर अंतसमयका प्रथमखंडतैं लगाइ द्विचरमखंड पर्यंतखंड ते अपने अपने ऊपरिके समयसंबंधी खंडनिकरि समान नाहीं हैं तातैं असदृश हैं सो द्वितीयादि चरमसमयपर्यंतसंबंधी खंडनिकी ऊर्ध्वरचना कीएं अर ऊपरि अंतसमयके प्रथमादि द्विचरम पर्यंत खंडनिकी तिर्यक् रचना कीएं अंकुशके आकार रचना हो है—

अंक संदृष्टि अपेक्षा
अंकुशरचना

५४	५५	५६
५३		
५२		
५१		
५०		
४९		
४८		
४७		
४६		
४५		
४४		
४३		
४२		
४१		
४०		

तातैं याकौं अंकुश रचना कहिए। बहुरि द्वितीयसमयतैं लगाइ द्विचरमसमयपर्यंत समय संबंधी अंत अंतके खंड अर प्रथमसमय संबंधी प्रथम खंड विना अन्य सर्व खंड ते अपने अपने नीचले समय संबंधी किसी ही खंडनिकरि समान नाहीं तातैं असदृश हैं सो इहां द्वितीयादि द्विचरमपर्यंत समय संबंधी अंत अंत खंडनिकौं ऊर्ध्व रचना कीएं अर नीचें प्रथम समयके द्वितीयादि अंत पर्यंत खंडनिकी तिर्यक् रचना कीएं हलके आकार रचना हो है—

अंक संदृष्टि अपेक्षा
लांगलरचना

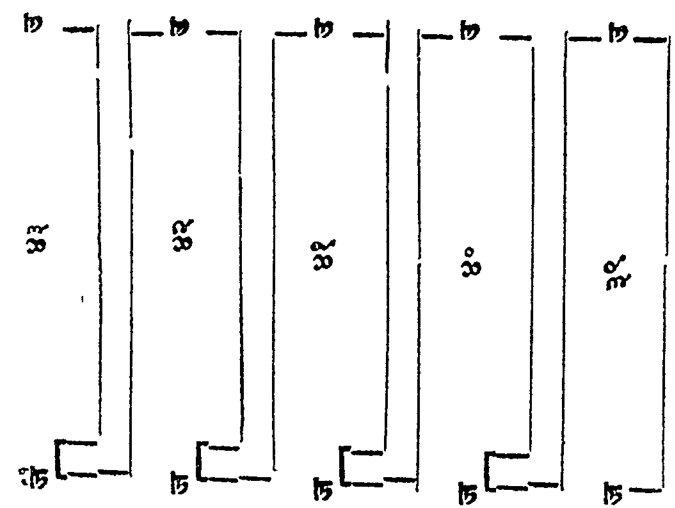
		५६
		५५
		५४
		५३
		५२
		५१
		५०
		४९
		४८
		४७
		४६
		४५
		४४
		४३
४०	४१	४२

तातैं याकौं लांगल रचना कहिए। बहुरि जघन्य उत्कृष्ट खंड अर ऊपरि नीचै समय संबंधी खंडनिकी अपेक्षा कहे असदृश खंड तिनि खंडनि विनां अवशेष सर्व खंड अपने ऊपरिके अर नीचले समय संबंधी खंडनिकरि यथासंभव समान जानने।

शक्तिका अंश ताका नाम अविभाग प्रतिच्छेद जानना। तिनकी अपेक्षा गणनाकरि पूर्वोक्त अधःकरणके खंडनिविषैं अल्पबहुत्वरूप वर्णन करे हैं-तहां अधःप्रवृत्तकरणके परिणामनिविषैं प्रथमसमयसंबंधी परिणाम तिनके खंडनिविषैं जे प्रथमखडके परिणाम ते सामान्यपनैं असंख्यात लोकमात्र हैं तथापि पूर्वोक्त विधानके अनुसारि स्थापिभाज्य भागहारका यथा संभव अपवर्तन किये संख्यात प्रतरावलीका जाकौं भाग दीजिये ऐसा असंख्यात लोक मात्र हैं। ते ए परिणाम अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद लिये हैं। तहां एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका घनकरि तिसहीका वर्गकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने परिणामनिविषैं जो एकबार षद् स्थान होइ तो संख्यात प्रतरावली भक्त असंख्यात लोक प्रमाण प्रथमसमयसंबंधी प्रथमखंडके परिणामनिविषैं केतीबार षद् स्थान होइ ? ऐसैं त्रैराशिककरि पाए हुए असंख्यात लोकबार षद् स्थाननिकौं प्राप्त जो विशुद्धताकी वृद्धि तींहिकरि वर्धमान हैं। भावार्थ—आगैं ज्ञानमार्गणाविषैं पर्याय समास श्रुतज्ञानका वर्णन करतैं जैसैं अनंत भागवृद्धि आदि षद् स्थान पतित वृद्धिका अनुक्रम कहैंगे तैसैं इहां अधःप्रवृत्तकरण संबंधी विशुद्धतारूप कषाय परिणामनिविषैं भी अनुक्रमतैं अनंतभाग असंख्यातभाग संख्यातभाग, संख्यातगुण असंख्यातगुण अनंतगुण वृद्धिरूप षद्स्थान पतित वृद्धि संभवै है। तहां तिस अनुक्रमके अनुसारि एक अधिक जो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग ताका घनकरि ताहीका वर्गकौं गुणिए। भावार्थ ऐसा पांच जायगा माड़ि परस्पर गुणिये जो प्रमाण आवै तितने विशुद्धि परिणामविषैं एकबार षद् स्थान पतित वृद्धि हो है। ऐसैं क्रमतैं प्रथमपरिणामतैं लगाइ इतने इतने परिणाम भये पीछैं एक एक बार षद् स्थान वृद्धि पूर्ण होतैं असंख्यात लोकमात्रबार षद् स्थानपतित वृद्धि भएं तिस प्रथम खंडके सब परिणामनिकी संख्या पूर्ण होइ है। यातैं असंख्यात लोकमात्र षद्स्थान पतित वृद्धिकरि वर्धमान प्रथम खंडके परिणाम हैं। बहुरि तैसैं ही द्वितीय समयके प्रथम खंडका परिणाम अनुकृष्टि चयकरि अधिक है ते जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद लिये हैं सो ए भी पूर्वोक्त प्रकार असंख्यात

लोकमात्र षट् स्थान पतित वृद्धिकरि वर्धमान है। भावार्थ-एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागका घनकरि गुणिये तिसहीका वर्गमात्र परिणामनिविषैं जो एक वार षट् स्थान होइ तौ अनुकृष्टि चयप्रमाण परिणामनिविषैं केतीबार षट् स्थान होइ ऐसैं त्रैराशिक किये जितने पावैं तितनीबार अधिक षट् स्थानपतित वृद्धि प्रथम समयके प्रथम खंडतैं द्वितीय समयके प्रथमखंडविषैं संभवै है। ऐसैं ही तृतीयादिक अंतपर्यंत समयनिकै प्रथम प्रथम खंडके परिणाम एक एक अनुकृष्टि चयकरि अधिक हैं। बहुरि तैसैं ही प्रथमादि समयनिके अपने २ प्रथम खंडतैं द्वितीयादि खंडनिकै परिणाम भी क्रमतैं एक एक चय अधिक हैं। तहां यथासंभव षट् स्थानपतित वृद्धि जेती बार होइ तिनका प्रमाण जानना। अब तिन खंडनिकैं विशुद्धताका अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अल्प बहुत्व कहिये हैं— प्रथम समय संबंधी प्रथमखंडका जघन्य परिणामकी विशुद्धता अन्य सर्वतैं स्तोक है तथापि जीव राशिका जो प्रमाण तातैं अनंतगुणां अविभाग प्रतिच्छेदनिके समूहकौं धरै है। बहुरि यातैं तिसही प्रथमसमयका प्रथम खंडका उत्कृष्ट परिणामकी विशुद्धता अनंत गुणी है। बहुरि तातैं द्वितीय खंडका जघन्य-परिणामकी विशुद्धता अनंत गुणी है। तातैं तिसहीका उत्कृष्टपरिणामकी विशुद्धता अनंत गुणी है। ऐसैं ही क्रमतैं तृतीयादि खंडनिविषैं भी जघन्य उत्कृष्ट परिणामनिकी विशुद्धता अनंत गुणी अनंत गुणी अंतका खंडकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतापर्यंत प्रवर्तै है। बहुरि प्रथम समय संबंधी प्रथम खंडकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतातैं द्वितीय समयकी प्रथम खंडकी जघन्यपरिणामविशुद्धता अनंत गुणी है। तातैं तिसहीकी उत्कृष्ट परिणामविशुद्धता अनंत गुणी है। बहुरि तातैं द्वितीय खंडकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंत गुणी है। तातैं तिसहीकी उत्कृष्ट विशुद्धता अनंत गुणी है ऐसैं तृतीयादि खंडनिविषैं भी जघन्य उत्कृष्ट परिणामविशुद्धता अनंतगुणा अनुक्रमकरि द्वितीय समयका अंत खंडकी उत्कृष्ट परिणामविशुद्धता पर्यंत प्राप्त हो है। बहुरि इसही मार्गकरि तृतीयादि समय खंडनिविषैं भी पूर्वोक्त लक्षणयुक्त जो निर्वर्गणकांड ताका द्विचरम समय पर्यंत जघन्य उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणा अनुक्रमकरि ल्यावनी। बहुरि निर्वर्गणकांडकका अंत समयसंबंधी प्रथम-

खंडकी जघन्य परिणामविशुद्धतातैं प्रथमसमयका अंत खंडकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। तातैं दूसरा निर्वर्गणकांडकका प्रथम समयसंबंधी प्रथमखंडकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंत गुणी है। तातैं तिस प्रथम निर्वर्गणकांडकका द्वितीयसमय संबंधी अंतके खंडकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंतगुणी है। तातैं द्वितीय निर्वर्गणकांडकका द्वितीय समय संबंधी प्रथमखंडकी जघन्य परिणामविशुद्धता अनंतगुणी है। तातैं प्रथम निर्वर्गण कांडकका तृतीय समयसंबंधी उत्कृष्टखंडकी उत्कृष्टविशुद्धता अनंतगुणी है यामकार जैसैं सर्पकी चाल इधरतैं ऊधर उधरतैं इधर पलटनिरूप हो है तैसैं जघन्यतैं उत्कृष्ट उत्कृष्टतैं जघन्य ऐसैं पलटनिविषैं अनंत



१—भाषाटीकामें सर्पका आकार बनाकर बीचमें जघन्य उत्कृष्ट तीन तीन बार लिख कर सदृष्टि लिखी है परंतु मंदप्रबोधिकामें इस प्रकार है।

गुणी अनुक्रमकरि विशुद्धता प्राप्त करिए पीछे अंतका निर्वर्गणकांडकका अंतसमय संबंधी प्रथम खंडकी जघन्य परिणाम विशुद्धता अनंतानंतगुणी है। काहेतैं? जातैं पूर्व पूर्व विशुद्धतातैं अनंतानंतगुणापनौं सिद्ध है। बहुरि तातैं अंतका निर्वर्गणकांडकका प्रथमसमय संबंधी उत्कृष्ट खंडकी परिणामविशुद्धता अनंतगुणी है। तातैं ताके ऊपरि अंतका निर्वर्गणकांडकका अंत समय संबंधी अंतखंडकी उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता पर्यंत उत्कृष्ट खंडकी उत्कृष्टपरिणामविशुद्धता अनंतानंतगुणा अनुक्रमकरि प्राप्त हो है। तिनिविषैं जे जघन्यतैं उत्कृष्ट परिणामनिकी विशुद्धता अनंतानंतगुणी है ते इहां विवक्षारूप नाहीं है ऐसा जानना। याप्रकार विशुद्धता विशेष धरैं जे अधः प्रवृत्तकरणके परिणाम तिनिविषैं गुणश्रेणिनिर्जरा गुणसंक्रमण स्थितिकांडकोत्करण अनुभागकांडकोत्करण भएं च्यारि आवश्यक न संभवैं हैं जातैं तिस अधःकरणके परिणामनिविषैं तैसा गुणश्रेणी निर्जरा आदि कार्य करनेकी समर्थताका अभाव है। इनका स्वरूप आगैं अपूर्वकरणके कथनविषैं लिखैंगे। तौ इसकरणविषैं कहा हो है? केवल प्रथमसमयतैं लगाइ समय समय प्रती अनंतगुणी अनंतगुणी विशुद्धताकी वृद्धि हो है। बहुरि स्थितिबंधापसरण हो है पूर्वैं जेता प्रमाण लीएं कर्मनिका स्थितिबंध होता था तातैं घटाइ घटाइ स्थितिबंध करै है। बहुरि साता वेदनीयकौं आदिदेकरि प्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका समय समय प्रति अनंतगुणा अनंतगुणा बधता गुडखंड शर्करा अमृत समान चतुस्थान लीएं अनुभाग बंध हो है। बहुरि असाता वेदनीय आदि अप्रशस्त कर्मप्रकृतिनिका समय समय प्रति अनंतगुणा अनंतगुणा घटता निंब कांजीर समान द्विस्थान लीए अनुभाग बंध हो है विष हलाहल रूप न हो है। ऐसैं च्यारि आवश्यक इहां संभवैं हैं। अवश्य हो हैं तातैं इनिकौं आवश्यक कहिए है। बहुरि ऐसैं यहु कह्या जो अर्थ ताकी रचना अंकसदृष्टि अपेक्षा लिखिए है—

अंकसंदृष्टि अपेक्षा अधःकरण रचना

सोलह समयनिकी ऊर्ध्व रचना	अनुकृष्टिरूप एक एक समय संबंधी च्यारि च्यारि खंडनिकी तिर्यक् रचना — प्रथम खंड	द्वितीय खंड	तृतीय खंड	चतुर्थ खंड
२२२	५४	५५	५६	५७
२१८	५३	५४	५५	५६
२१४	५२	५३	५४	५५
२१०	५१	५२	५३	५४
२०६	५०	५१	५२	५३
२०२	४९	५०	५१	५२
१९८	४८	४९	५०	५१
१९४	४७	४८	४९	५०
१९०	४६	४७	४८	४९
१८६	४५	४६	४७	४८
१८२	४४	४५	४६	४७
१७८	४३	४४	४५	४६
१७४	४२	४३	४४	४५
१७०	४१	४२	४३	४४
१६६	४०	४१	४२	४३
१६२	३९	४०	४१	४२

अर्थसंदृष्टि अपेक्षा रचना है सो आगैं संदृष्टि अधिकारविषैं लिखेंगे। तथा याका यहु अभिप्राय है--एक जीव एकैकाल ऐसा कहिए तहां विवक्षित अधः प्रवृत्त करणका परिणामरूप परिणया जो एकजीव ताका परमार्थवृत्तिकरि वर्तमान अपेक्षा काल एक समय मात्र ही है तातैं एक जीवका एकैकाल समय प्रमाण जानना। बहुरि एक जीव नानाकाल ऐसा कहिए तहां अधःप्रवृत्तकरणका नानाकालरूप अंतर्मुहूर्तका समय मात्र हैं ते अनुक्रमतैं एक जीवकरि चढिए है यातैं एक जीवका नानाकाल अंतर्मुहूर्तका समयमात्र है। बहुरि नानाजीव एककाल ऐसा कहिए हैं तहां विवक्षित एकसमय अपेक्षा अधःप्रवृत्तकालके असंख्यात समय हैं तथापि तिनिविषैं यथासंभव एक सौ आठ समयरूप जे स्थान तिनविषै संग्रहरूप जीवनिकी विवक्षाकरि एककाल है जातैं वर्तमान एक कोई समयविषैं अनेक जीव हैं ते पहिला दूसरा तीसरा अधःकरणके असंख्यात समयनि-

१—पृष्ठ ११२ संस्कृत टीकामें जो 'ए० जी० ए० का०' आदि संदृष्टि है उसका यह अर्थ है।

विषैं यथा संभव एकसौ आठ समयविषैं ही प्रवर्तिते पाइए है तातैं अनेक जीवनिका एक काल एकसौ आठ समय प्रमाण है। बहुरि नानाजीव नानाकाल ऐसा कहिए तहां अधःप्रवृत्तकरणके परिणाम असंख्यात लोकमात्र हैं। ते त्रिकालवर्ती अनेक जीवसबंधी हैं। बहुरि जिस परिणामकौं कह्या तिसकौं फेर न कहना ऐसैं अपुनरुक्त रूप हैं तिनकौं अनेक जीव अनेककालविषैं आश्रय करैं हैं। सो एक एक परिणामका एक एक समयकी विवक्षाकरि नाना जीवनिका नानाकाल असंख्यातलोक प्रमाण समय मात्र है ऐसा जानना। बहुरि अब अधःप्रवृत्तकरणका कालविषैं प्रथमादि समयसंबंधी स्थापे जे विशुद्धतारूप कषाय परिणाम तिनिविषैं प्रमाणके अवधारनेकौं कारणभूत जे करण सूत्र तिनिका गोपालिक विधानकरि बीजगणितका स्थापन कहिए है जातैं पूर्वोक्त करणसूत्रनिका अर्थविषैं संशयका अभाव है तहां व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं इस करणसूत्रकी वासना अंकसंदृष्टि अपेक्षा दिखाइए हैं। व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छ ऐसा शब्दकरि एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण चय सर्वस्थानकनिविषैं ग्रहण कीया ताका प्रयोजन यहु जो ऊपरि वा नीचैंके स्थानकनिविषैं हीनाधिक चय पाइए तिनिकौं समानकरि स्थापैं एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण चय सर्वस्थानकनिविषैं समान होहै सो इहां एक घाटि गच्छका आधा प्रमाण साढ़ा सात है सो इतने इतने चय सोलह समयनिविषैं समान हो हैं। कैसैं? सो कहिए है-प्रथम समयविषैं तो आदि प्रमाण ही है ताके चयकी वृद्धि वा हानि नाहीं है। बहुरि अंतसमय विषैं एक घाटि गच्छका प्रमाण चय है यातैं व्येकपद शब्दकरि एक घाटि गच्छ प्रमाण चयनिकी संख्या कही। बहुरि अर्धशब्दकरि अंतसमयके पंद्रह चयनिविषैं साढ़ा सात चय काढि प्रथम समयका स्थानकविषैं रचे दोऊ जायगा साढ़ा सात साढ़ा सात चय समान भए ऐसैं ही ताके नीचे पद्रह्वां समयके चौदह चयनिविषैं साढ़ा छह चय काढ़ि द्वितीयसमयका एक चयके आगे रचनारूप कीएं दोऊ जायगा साढा सात साढा सात चय होहैं। बहुरि ताके नीचैं चौदह्वां समयके तेरह चयनिविषैं साढ़ा पांच चय काढि तीसरा समयका स्थानविषैं दोय चयके आगैं रचे दोऊ जायगा साढ़ा सात साढा सात चय हो हैं। ऐसैं ही ऊपरितैं चौथा स्थान तेरह्वां समय

ताकौं आदि देकरि समयनिके साड़ा च्यारि आदि चय काढि नीचैं तैं चौथा समय आदि स्थानकनिके ताईं आदि चयनिके आगै स्थापैं सर्वत्र साडासात साडासात चय हो हैं। ऐसैं सोलह स्थानकनिविषैं जैसें समपाटीका आकार हो है। तैसैं साडासात साड़ासात चय स्थापिए हैं इहांका यंत्र है—

यह अंक संदृष्टि अपेक्षा 'व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रकी वासना कहनेकौं रचना है

ऊपरि समयवर्ती चयकौं काढि नीचले समय स्थान विषैं स्थापे तिनकी रचना	सर्वस्थानकनिविषैं समानरूप कीए चयनिकी रचना इहां च्यारि च्यारि तौ एक एक चयका प्रमाण आगै दोय आधा चयका प्रमाण जानना	सर्व स्थान कनिविषै आदिका प्रमाण
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।५।५।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
।२	२।४।४।४।४।४।५।४।४	१३२
।५।२	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
।५।५।२	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
।५।५।४।२	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
।५।५।५।५।२	२।४।४।४।४।४।४।४।४	१३२
।५।५।५।५।५।२	२।५।५।४।५।५।५।४।४	१३२
।५।४।५।४।४।४।४।२	२।५।४।५।५।५।५।४।४	१३२
।४।४।४।४।४।४।४।४।२	२।४।४।४।४।५।४।४।४	१३२

बहुरि एक स्थानविषैं साढासात चयका प्रमाण होइ तौ सोलह स्थानकनिविषैं केते चय हो हैं ऐसैं त्रैराशिककरि प्रमाण राशि एक स्थान फलराशि साढासात चय तिनिका प्रमाण तीस इच्छाराशि सोलह स्थान तहां फलकौं इच्छाकरि गुणि प्रमाणका भाग दिये लब्धराशि च्यारिसै असी पूर्वोक्त उत्तर धनका प्रमाण आवै है।

ऐसैं ही अनुकृष्टिविषैं भी अंकसंदृष्टिकरि प्ररूपण करना । बहुरि याही प्रकार अर्थ संदृष्टिकरि भी सत्यार्थरूप साधन करना । ऐसैं व्येकपदार्द्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं इससूत्रकी वासना बीज गणितकरि दिखाई बहुरि अन्य करण सूत्रनिकी भी यथासंभव बीजगणितकरि वासना जानना ॥४९॥ ऐसैं अप्रमत्त गुणस्थानकौं व्याख्यान करि याके अनंतर अपूर्वकरण गुणस्थानकौं कहै हैं—

अंतो मुहुत्तकालं गमिऊण अधापवत्तकरणं तं ।
पडिसमयं सुज्झंतो अपुव्वकरणं समुल्लियइ ॥ ५० ॥

अंतर्मुहूर्तकालं गमयित्वा अधःप्रवृत्तकरणं तत् ।
प्रतिसमयं शुध्यन् अपूर्वकरणं समाश्रयति ॥ ५० ॥

जी० प्र०—एवमंतर्मुहूर्तकालायामं प्रागुक्तलक्षणमधःप्रवृत्तकरणं गमयित्वा विशुद्धसंयतोभूत्वा प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्ध्या वर्धमानः अपूर्वकरणगुणस्थानं समाश्रयति ॥ ५० ॥

मं० प्र०—स्वयोग्यांतर्मुहूर्तकाले स सातिशयाप्रमत्तः प्रतिसमयमनंतगुणवृद्ध्या शुध्यन् विशुद्धिपरिणामं गच्छन्, उपलक्षणमेतत्, तेन सातादिप्रशस्तप्रकृतीना चतुःस्थानमनुभाग प्रतिसमयमनंतगुण बध्नन्, असाताद्यप्रशस्तप्रकृतीना द्विस्थानानुभागं प्रतिसमयमनंतगुणहीनं बध्नन् समस्तबधप्रकृतीनां संख्यातसहस्र-स्थितिबंधापसरणानि कुर्वन् इति सूच्यते । एवं चत्वार्यावश्यकानि कुर्वन् त अधःप्रवृत्तपरिणामं गमयित्वा श्रेणीद्वयं प्रविश्य तत्प्रथमसमये अपूर्वकरणपरिणाममाश्रयति स एव अपूर्वकरणगुणस्थानमित्युच्यते ॥ ५० ॥

सं० च०—ऐसैं अंतर्मुहूर्तकाल प्रमाण पूर्वोक्त लक्षण धरैं अधःप्रवृत्त करणकौं गमाइ विशुद्धसंयमी होइ समय समय प्रति अनंतगुणी विशुद्धताकी वृद्धि करि बँधता संता अपूर्वकरण गुणस्थानकौं आश्रय करै है ॥५०॥

एदह्मि गुणट्ठाणे विसरिस समयट्ठियेहिं जीवेहिं ।
पुव्वमपत्ता जह्मा होंति अपुव्वा हु परिणामा ॥ ५१ ॥

पूर्वमप्राप्ता यस्माद् भवति अपूर्वा हि परिणामाः ॥ ५१ ॥

जी० प्र०---यस्मात्--कारणात् एतस्मिन्- अपूर्वकरणगुणस्थाने, विसदृशेषु उत्तरोत्तरेषु समयेषु स्थितैर्जीवैः पूर्वपूर्वसमयेष्वप्राप्ता एव विशुद्धपरिणामाः प्राप्यंते तस्मात् कारणात् अपूर्वाः करणाः--परिणामा यस्मिन् तदपूर्वकरणं गुणस्थानमिति निरुक्तया लक्षणमुक्तं ॥ ५१ ॥

मं० प्र०---एतस्मिन्--अपूर्वकरणगुणस्थाने, यस्मात्--विसदृशसमयस्थितैर्जीवैः उपरितनसमयस्थितैर्जीवैः पूर्वमधस्तनसमये अप्राप्ता अपूर्वा एव परिणामाः प्राप्यते तस्मात् सः-अपूर्वकरणः इत्यन्वर्थसंज्ञोयं खलु स्फुटं ॥ ५१ ॥

सं० च०--जाकारणतैं इस अपूर्व करण गुणस्थान विषैं विसदृश कहिए समानरूप नाहीं ऐसे जे ऊपरि ऊपरिके समयनिविषै तिष्ठते जीवनिकरि जे विशुद्ध परिणाम पाइए हैं ते पूर्व २ समयनिविषै किसी ही जीवकरि न पाये ऐसै हैं ता कारणतैं अपूर्व है करण कहिए परिणाम जाविषै सो अपूर्वकरण गुणस्थान है ऐसा निरुक्तिकरि लक्षण कह्या है ॥ ५१ ॥

भिण्णसमयट्ठियेहिं दु जीवेहिं ण होदि सव्वदा सरिसो ।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा ॥ ५२ ॥

भिन्नसमयस्थितैस्तु जीवैर्न भवति सर्वदा सादृश्यं ।
करणैरेकसमयस्थितैः सादृश्यं वैसादृश्यं वा ॥ ५२ ॥

जी० प्र०---यथाधःप्रवृत्तकरणे भिन्नसमयस्थितानां जीवानां परिणामसंख्या विशुद्धिसादृश्य संभवति तथा अस्मिन्नपूर्वकरणगुणस्थाने सर्वदा--सर्वकालेऽपि कस्यापि जीवस्यापि सादृश्यं न संभवति एकसमयस्थितकरणपरिणामानां मध्ये विवक्षितैकपरिणामापेक्षया सादृश्यं नानापरिणामापेक्षया वैसादृश्यं च जीवानां अधःप्रवृत्तकरणवत् अत्रापि नियमो नास्तीति ज्ञातव्यं ॥ ५२ ॥

म० प्र०--भिन्नसमयस्थितै--उपर्युपरिसमयस्थितैः, जीवैः सह अधोधःसमयवर्तिजीवः कश्चिदपि करणैः-विशुद्धिपरिणामैः, सर्वदा सर्वस्मिन्नपूर्वकरणकाले सदृशो न भवति। एकसमयस्थितैर्जीवैः सह कश्चिज्जीवः सदृशो विसदृशश्च भवति । तु शब्दः एकस्मिन् समयपरिणामसादृश्यं संभवतीति विशेषज्ञापनार्थः, अतएव अस्य गाथासूत्रस्य पौनरुक्त्याभावः ॥ ५२ ॥

सं० च०—जैसैं अधःप्रवृत्त करणविषै भिन्नं भिन्न ऊपरि नीचैके समयनिविषैं तिष्ठते जीवनिके परिणामनिकी संख्या अर विशुद्धता समान संभवै है तैसैं इहां अपूर्वकरण गुणस्थानविषै सर्वकालविषै भी कोही ही जीवकैं सो समानता न संभवै है। बहुरि एक समयविषैं स्थित करण जे परिणाम तिनके मध्य विवक्षित एक परिणामकी अपेक्षा समानता अर नाना परिणामकी अपेक्षा असमानता जीवनिके अधःकरणवत् इहां भी संभवै है सो नियम नाही ऐसा जानना भावार्थ--इस अपूर्व करणविषैं ऊपरिके समयवर्ती जीवनिकैं अर नीचले समयवर्ती जीवनिकैं समान परिणाम कदाचित् न होंइ। बहुरि एक समयवर्ती जीवनिकैं तिससमय संबंधी परिणामनिविषैं परस्पर समान भी होंइ अर समान नाहीं भी होंइ ताका उदाहरण जैसैं जिनि जीवनिकौं अपूर्वकरण माढैं पांचवां समय भया तहां तिन जीवनिकैं जैसे परिणाम होंहि तैसे परिणाम जिन जीवनिकौं अपूर्वकरण माढैं प्रथमादि चतुर्थ समय पर्यंत वा षष्ठमादि अंत पर्यंत समय भए होंहि तिनकैं कदाचित् न होंइ यहु नियम है। बहुरि जिनि जीवनिकौं अपूर्वकरण माढैं पांचवां समय भया ऐसे अनेक जीवनिके परिणाम परस्पर समान भी होंइ जैसा एक जीवका परिणाम होइ तैसा अन्यका भी होइ अथवा असमान भी होइ एकजीवका औरसा परिणाम होइ एक जीवका औरसा परिणाम होइ। ऐसैं ही अन्य अन्य समयवर्ती जीवनिकैं तौ जैसैं अधःकरणविषैं परस्पर समानता भी थी तैसैं इहां नाहीं है। बहुरि एक समयवर्ती जीवनिकैं जैसैं अधःकरणविषैं समानता वा असमानता थी तैसैं इहां भी है। याप्रकार त्रिकालवर्ती नाना जीवनिके परिणाम इस अपूर्व करणविषैं प्रवर्तते जानने।५२।

अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा।
कमउड्ढा पुव्वगुणे अणुकट्ठी णत्थि णियमेण॥ ५३॥

अंतर्मुहूर्तमात्रे प्रतिसमयसंख्यलोकपरिणामाः।
क्रमवृद्धा अपूर्वगुणे अनुकृष्टिर्नास्ति नियमेन॥ ५३॥

जी० प्र०—अंतर्मुहूर्तमात्रे अपूर्वकरणकाले प्रतिसमयं क्रमशः चयवृद्धाः असंख्यातलोकमात्राः परिणामाः संति तत्र नियमेन अनुकृष्टि-विधानं नास्ति । अत्रापि अंकसदृष्ट्यर्थसंदृष्टिभ्यां रचनाक्रमो दर्श्यते तद्यथा—त्रिकालगोचरनानाजीवसंबंध्यपूर्वकरणविशुद्धिपरिणामाः सर्वेऽपि अधःप्रवृत्तकरणपरिणामेभ्यः असंख्यातलोकगुणिताः संति कुतः ? अधःप्रवृत्तकरणकालचरमसमयविशुद्धिपरिणामानां अपूर्वकरणकालप्रथमसमये प्रत्येकमेकैकपरिणामस्य असंख्यातलोकविकल्पोत्पत्तिसंभवात् । अपूर्वकरणस्य समस्तपरिणामधनं ≡a × ≡a तत्संदृष्टिः ४०९६ कालोंऽतर्मुहूर्तः २ ११ तत्संदृष्टिः ८ संख्यातरूपाणि १ तत्संदृष्टिः ४ तद्धनं ≡a≡a । ४०९६ । पदकदिसंखेण भाजिदे

≡a । ≡a ४०९६ ≡a । ≡a
२ ११ × २ ११, १ । ८ । ८ । ४ पचयो होदि २ ११ । २ ११ । १ १६ व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छश्चयधनं भवति

≡a≡a२११ । २११

२ ११ । २ ११ । १ । २ । ४४८ तच्च समस्तधने शोधयित्वा शेषे पदेन भक्ते प्रथमसमयवर्तित्रिकालगोचरनानाजीवसंबंध्यपूर्वकरणपरि-

≡a । ≡a । २ ११ । १ । २

णामपुंजप्रमाण भवति २ ११ । २ ११ । १ । २ ४५६ अत्रैकचये युते द्वितीयसमयवर्तिनानाजीवसंबंध्यपूर्वकरणपरिणामपुंज-

≡a ≡a २ ११ । १ । २

प्रमाणं भवति । २ ११ । २ ११ । १ । २ ४७२ एवं तृतीयादिसमयेषु एकैकचयवृद्धिक्रमेण परिणामपुजप्रमाणेषु आनीतेषु चरमसमयधनं

≡a । ≡a । २ ११ । १ । २

रूपोनगच्छमात्रचययुतप्रथमसमयधनमात्रं भवति २ ११ । २ ११ । १ । २ । ५६८ अत्रैकचये अपनीते तु द्विचरमसमयवर्तिनानाजी-

≡a≡a २ ११ । १ । २

वसंबधिविशुद्धपरिणामपुंजप्रमाणं भवति २ ११ । २ ११ । १ । २ ५५२ अस्मिन्नपूर्वकरणगुणस्थाने पूर्वोत्तरसमयपरिणामानां सर्वकालेऽपि सादृश्याभावात् अनुकृष्टिरचना नास्ति । अत्र अपूर्वकरणकाले प्रथमादिचरमसमयपर्यंतस्थितानां असंख्यातलोकवार—

≡a ≡a
२।२।२।२।२।

a a a a a षट्स्थानपतितानां जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदभिन्नपरिणामस्थानानां प्रतिसमयं प्रतिपरिणामस्थानं च विशुद्धयविभागप्रतिच्छेदप्रमाणावधारणार्थं अल्पबहुत्वमुच्यते । तद्यथा--प्रथमसमयवर्तिसर्वजघन्यपरिणामविशुद्धिः अधःप्रवृत्तकरणचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टविशुद्धितोऽनंतगुणाविभागप्रतिच्छेदात्मिकाप्यपूर्वकरणपरिणामविशुद्धितः स्तोका। ततः प्रथमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा। ततो द्वितीयसमयजघन्यपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानानि अंतरयित्वैव तस्योत्पत्त्यभ्युपगमात्। ततस्तदुत्कृष्टपरिणामविशुद्धिरनंतगुणा एवमुत्कृष्टाज्जघन्यं जघन्यादुत्कृष्ट च विशुद्धिस्थानं अनंतगुण अनंतगुणमित्यहिगत्या अपूर्वकरणकालचरमसमयोत्कृष्टपरिणामविशुद्धिपर्यंतं जघन्योत्कृष्टविशुद्धयल्पबहुत्वं ज्ञातव्यं ॥ ५२ ॥ एवंविधस्यापूर्वकरणपरिणामस्य कार्यविशेषं गाथाद्वयेनाह----

म० प्र०--अतर्मुहूर्तमात्रे--अपूर्वकरणगुणस्थानकाले अध.प्रवृत्तकरणकालात् संख्यातगुणहीने । २ ᱑ ᱑ । त्रिकालगोचरनानाजीवविशुद्धिपरिणामविकल्पा असख्येयलोकमात्राः सतोऽप्यधःप्रवृत्तकरणविशुद्धिपरिणामविकल्पेभ्योऽसख्येयलोकगुणिता भवति ते च प्रतिसमय-एकैकचयेन क्रमवृद्धाश्चरमसमयपर्यंतं गच्छंति, अवस्तनोपरितनसमयपरिणामाना सादृश्याभावात्। अपूर्वकरणगुणस्थाने नियमेन अवश्यभावेन, अनुकृष्टिर्नास्ति तत एव प्रतिसमयपरिणामाना बहुखडविधानाभावः । तद्यथा--अपूर्वकरणस्य स्वकालसंभव्यसख्यातलोकमात्रसमस्तपरिणामन्यासस्तावदंकसदृष्टया दर्श्यते-समस्तपरिणामाः षण्णवत्युत्तरा चतुःसहस्री ॥ ४०९६ ॥ परिणामाध्वा अपूर्वकरणकालः अष्टौ (८) परिणामविशेषः षोडश (१६) संख्येयरूपाणि चत्वारि (४) अत्र पूर्वोक्तगणितसूत्रविधानेन चय चयधन आदि चानीय आदौ प्रथमसमयवर्तित्रिकालगोचरनानाजीवविशुद्धिपरिणामविकल्पप्रमाणे एकचये वर्धिते द्वितीयसमयपरिणामप्रमाण भवति एव तृतीयादिषु चरमपर्यंतेषु समयेषु एकैकचयवृद्धया परिणामप्रमाणमानेतव्यं पूर्वोक्तक्रमेणातधनमानीय तस्मादेकस्मिन् चये शोधिते द्विचरमसमयपरिणामप्रमाणं भवति। अनुकृष्टिर्नास्तीति वचनात् अधस्तनोपरितनसमयपरिणामानां संख्यासादृश्य नास्त्येव प्रतिसमयमेकैकचयहीनाधिकभावात् सख्याविसदृशत्वस्यैव दर्शनात्। अथार्थसंदृष्टिर्दर्श्यते--

≡a≡a

समस्तपरिणामाः ≡a≡a। परिणामाध्वा २᱑᱑ परिणामविशेषः २᱑᱑।२᱑᱑।᱑ सख्येयरूपाणि ᱑ पूर्वोक्तगणितसूत्रक्रमेण चयं चयधनं आदिधनं चानीय आदौ एकस्मिन् चये वर्धिते द्वितीयसमयपरिणामप्रमाणं भवति। तृतीयादिष्वपि समयेष्वेवमेकैकचयवृद्धया परिणामप्रमाणमानयेत्। चरमसमये 'व्येकं पदं चयाभ्यस्तं तत्साद्यतघनं' इति सूत्रेण परिणामप्रमाणमानीय तत एकस्मिन् चय अपनीते द्विचरमसमयपरिणामप्रमाणं भवति एवं त्रिचरमसमयादिषु एकैकचयापनयनेन परिणामप्रमाणमानेतव्यं ।

अथ संख्याविशुद्धिभ्यामल्पबहुत्वमुच्यते--अधःप्रवृत्तकरणचरमसमयपरिमाणविकल्पेभ्यः अपूर्वकरणस्य प्रथमसमयपरिणामविकल्पा असंख्येयलोकगुणाः तेभ्यो द्वितीयसमयपरिणामविकल्पाः विशेषाधिकाः एवं प्रतिसमयं चरमसमयपर्यंतं विशेषाधिकक्रमेण गच्छति इदं सख्याल्पबहुत्वं ।

अथ विशुद्ध्यल्पबहुत्वमुच्यते--अधःप्रवृत्तकरणचरमसमयचरमखंडोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामात् अपूर्वकरणस्य प्रथमसमये जघन्यविशुद्धिपरिणामःअनंतगुणः। ततस्तस्मिन्नेव समये अनतभागादिवृद्धियुक्ताः द्वितीयादिपरिणामाः असंख्याततलोकवारषट्स्थानेषु तावन्मात्रानंतगुणकारैर्गुणिताश्च मध्ये मध्ये संभवति यावदुत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽसंख्याततलोकवारानतगुणकारैर्गुणितो भवति ततो द्वितीयसमये जघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनतगुणः, तत उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽसख्येयलोकवारानतगुणकारैर्गुणित', ततस्तृतीयसमये जघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनंतगुण:, तत उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽसंख्येयलोकवारानंतगुणकारैर्गुणितः, ततश्चतुर्थसमये जघन्यविशुद्धिपरिणामोऽनतगुण:, तत उत्कृष्टविशुद्धिपरिणामोऽसख्येयलोकवारानंतगुणकारैर्गुणित' । एवं पंचमसमयादिचरमसमयपर्यंतजघन्योत्कृष्टविशुद्धिपरिणामा अहिगत्या अनतगुणा गच्छति । तत्र प्रथमसमये जघन्यविशुद्धिपरिणाम कश्चिज्जीव. द्वितीयसमये ततोऽसंख्येयलोकवारानंतगुणं जघन्यविशुद्धिपरिणामं गच्छति । अपरो जीव. प्रथमसमयजघन्यविशुद्धिपरिणाम एव द्वितीयसमये अनंतभागवृद्धियुक्तं जघन्यविशुद्धिपरिणामं गच्छति । अन्यो जीवस्तत्परिणाम एव अपरमनंत भागवृद्धियुक्त त परिणामं गच्छति । एव प्रथमसमयजघन्यविशुद्धिपरिणामा एव नानाजीवा द्वितीयसमये असंख्याततलोकमात्रचयविशुद्धिपरिणामान् असंख्याततलोकमात्रषट्स्थानवृद्धिपरिणतान् गच्छति । पुनः प्रथमसमये अनतभागवृद्धियुक्तविशुद्धिपरिणामा नानाजीवा द्वितीयसमये अनंतभागवृद्धियुक्तविशुद्धिपरिणामादीन् असख्येयलोकवारषट्स्थानपतितवृद्धिपरिणतान् चयमात्रासख्येयलोकविशुद्धिपरिणामान् प्रथमसमयजघन्यविशुद्धिपरिणामजीववद्गच्छति । एव प्रथमसमयवर्तिनः तदुत्कृष्टविशुद्धिपरिणामजीवपर्यंताः, असंख्येयलोकमात्रविशुद्धिपरिणामपरिणता नानाजीवाः सर्वेऽपि द्वितीयसमये तत्तत्स्ववृद्धिसदृशवृद्धियुक्तविशुद्धिपरिणाममादिं कृत्वा असख्येयलोकवारषट्स्थानवृद्धिपरिणतान् चयमात्रासंख्येयलोकविशुद्धिपरिणामान् गच्छति । एव तृतीयसमयादिषु चरमसमयपर्यंतेषु द्वितीयसमयादिविशुद्धिपरिणामवतो नानाजीवाः प्रतिसमयमसख्येयलोकवारानतगुणकारैर्गुणितान् विशुद्धिपरिणामान् गच्छंतीति ज्ञातव्यं॥

सं० चं०--अंतर्मुहूर्तमात्र जो अपूर्वकरणका काल तीहिविषैं समय समय प्रति क्रमतैं एक एक चय वधता असंख्यात लोकमात्र परिणाम है। तहां नियमकरि पूर्वापर समय संबंधी परिणामनिके समानताका अभावतैं अनुकृष्टि विधान नाहीं है। इहां भी अंक संदृष्टिकरि दृष्टांतमात्र प्रमाण कल्पना करि रचनाका अनुक्रम दिखाइये है। अपूर्वकरणके परिणाम च्यारि हजार छिनवै सो सर्वधन है। बहुरि अपूर्वकरणका काल आठ समय मात्र सो गच्छ है। बहुरि संख्यातका प्रमाण च्यारि है ४ सो 'पदकदिसंखेण भाजिदे पचयो होदि' इस सूत्रकरि गच्छ ८ का वर्ग ६४ अर संख्यात च्यारिका भाग सर्वधन ४०९६ कौं दीएं चय होइ ताका प्रमाण सोलह भया। बहुरि 'व्येकपदार्धघ्नचयगुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रकरि एक घाटि गच्छ ७ ताका आधा $\frac{7}{2}$ कौं चय १६ करि गुणें जो प्रमाण ५६ होय ताका गच्छ ८ आठकरि गुणें चयधन च्यारिसै अड़तालीस ४४८ होइ याकौं सर्वधन

४०९६ में घटाइ अवशेष ३६४८ कौं गच्छ आठ ८ का भाग दीएं प्रथमसमय संबंधी परिणाम च्यारिसै छप्पन ४५६ हो हैं। यामैं एक चय १६ मिलाएं द्वितीय समय संबंधी हो है। ऐसैं तृतीयादिसमयनिविषैं एक एक चय बंधता परिणाम पुंज है तहां एक घाटि गच्छमात्र चयका प्रमाण एकसौ बारह सो प्रथम समय संबंधी धनविषैं जोड़ें अंतसमय संबंधी परिणाम पुंज पांचसै अडसठि हो है। यामैं एक चय घटाएं द्विचरम समय संबंधी परिणाम पुंज पांचसै बावन हो है। ऐसैं ही एक चय घटाइ आठौं गच्छकौं प्रमाण जानना।

अंक संदृष्टि अपेक्षा समय२संबंधी अपूर्व करण परिणामरचना
५६८
५५२
५३६
५२०
५०४
४८८
४७२
४५६
सर्व परिणाम जोड ४०९६

अब यथार्थ कथन करिये है- तहां अर्थ संदृष्टिकरि रचना है सो आगैं संदृष्टि अधिकार विषैं लिखेंगे। सो त्रिकालवर्ती नाना जीव संबंधी अपूर्वकरणके विशुद्धतारूप परिणाम ते सर्व ही अधः प्रवृत्त करणके जेते परिणाम हैं तिनितैं असंख्यात लोक गुणे है। काहेतैं? जातैं अधःप्रवृत्त करण कालका अंत समय संबंधी जे विशुद्धतारूप परिणाम है तिनिका अपूर्वकरण कालका प्रथम समयविषैं प्रत्येक एक एक परिणामके असंख्यात लोक प्रमाण भेदनिकी उत्पत्तिका सद्भाव है। तातैं अपूर्वकरणका सर्व परिणामरूप सर्वधन सो असंख्यात लोककौं असंख्यात लोककरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना है सो सर्वधन जानना। बहुरि ताका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है ताके जेते समय सो गच्छ जानना। बहुरि 'पदकदिसंखेण भाजिदं पचयं' इस सूत्रकरि गच्छका वर्गका अर संख्यातका भाग सर्वधनकौं दीएं जो प्रमाण होइ सो चय जानना। बहुरि व्येकपदार्द्धघ्नचय गुणो गच्छ उत्तरधनं' इस सूत्रकरि एक घाटि गच्छका आधा प्रमाणकरि चयकौं गुणि गच्छकौं गुणैं जो प्रमाण होइ सो चयधन जाननां। याकौं सर्वधन विषैं घटाइ अवशेषकौं गच्छका भाग दिएं जो प्रमाण आवै सोई प्रथमसमयवर्ती त्रिकाल गोचर नानाजीवसंबंधी अपूर्वकरण परिणामका प्रमाण हो है। बहुरि यामैं एक चय जोड़ें द्वितीय समयवर्ती नाना जीव संबंधी अपूर्वकरण परिणामनिका

पुंज प्रमाण हो है। ऐसें ही तृतीयादि समयनिविषै एक एक चयवृद्धिका अनुक्रम करि परिणाम पुंजका प्रमाण ल्याएं संतैं अंतसमयविषैं परिणामधन है सो एक घाटि गच्छका प्रमाण चयनिकौं प्रथमसमयसंबंधी धनविषैं जोडें- जितना प्रमाण होइ तितना हो है। बहुरि यामैं एक चय घटाएं द्विचरमसमयवर्ती नाना जीव संबंधी विशुद्ध परिणामनिका पुंज प्रमाण हो है। ऐसें समय समय संबंधी परिणाम क्रमतैं बधते जानने। बहुरि इस अपूर्वकरण गुण स्थानविषैं पूर्वोत्तर समय संबंधी परिणामनिकैं सदा ही समानताका अभाव है तातैं इहां खंडरूप अनुकृष्टि रचना नाहीं है भावार्थ—आगैं कषायाधिकारविषैं शुक्ल लेश्या संबंधी विशुद्ध परिणामनिका प्रमाण कहैंगे। तिसविषैं इहां अपूर्वकरणविषै संभवते जे परिणाम तिनिविषै अपूर्वकरण कालका प्रथमादि समयनिविषैं जेते २ परिणाम संभवैं तिनका प्रमाण कह्या है। बहुरि इहां पूर्वापर विषैं समानताका अभाव है तातैं खंडकरि अनुकृष्टि विधान न कह्या है बहुरि इस अपूर्वकरणका काल विषैं प्रथमादिक अंत समय पर्यंत स्थित जे परिणाम स्थान ते पूर्वोक्त विधानकरि असंख्यात लोकवार षट् स्थान पतित वृद्धिकौं लीएं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संयुक्त हैं तिनिका समय समय प्रति अर परिणाम परिणाम प्रति विशुद्धताका अविभाग प्रतिछेदनिका प्रमाण अवधारणेके अर्थि अल्पबहुत्व कहिए हैं।

तहां प्रथम समयवर्ती सर्वजघन्यपरिणाम विशुद्धता अधःप्रवृत्तकरणका अंत समयसंबंधी अंत खंडकी उत्कृष्ट विशुद्धतातैं भी अनंत गुणी अविभाग प्रतिच्छेदमयी है तथापि अन्य अपूर्वकरणके परिणामनिकी विशुद्धतातैं स्तोक है। बहुरि तातैं प्रथम समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धता अनंत गुणी है। तातैं द्वितीयसमयवर्ती जघन्यपरिणाम विशुद्धता अनंत गुणी है। जातैं प्रमथसमय उत्कृष्ट विशुद्धतातैं असंख्यात लोक मात्र वार षट् स्थानपतित वृद्धिरूप अंतरालकरि सो द्वितीय समयवर्ती जघन्य विशुद्धता उपजै है। बहुरि तातैं तिस द्वितीय समयवर्ती उत्कृष्ट विशुद्धता अनंत गुणी है। ऐसैं उत्कृष्टतैं जघन्य अर जघन्यतैं उत्कृष्ट विशुद्ध स्थान अनंत गुणा अनंत गुणा है। या प्रकार सर्पकी चालवत् जघन्यतैं उत्कृष्ट उत्कृष्टतैं जघन्यरूप अनुक्रम लीएं अ-

पूर्वकरणका अंत समयवर्ती उत्कृष्ट परिणाम विशुद्धतापर्यंत जघन्य उत्कृष्ट विशुद्धताका अल्प बहुत्व जानना ॥ ॥ ५३ ॥ या प्रकार इस अपूर्वकरण परिणामका जो कार्य है ताका विशेषकौं गाथा दोयकरि कहै हैं—

तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं ।
मोहस्सपुव्वकरणा खवणुवसमणुज्जया भणिया ॥ ५४ ॥

तादृशपरिणामस्थितजीवा हि जिनैर्गलिततिमिरैः ।
मोहस्यापूर्वकरणा क्षपणोपशमनोद्यता भणिताः ॥ ५४ ॥

जी० प्र०——तादृशेषु पूर्वोत्तरसमयविलक्षणेषु अपूर्वकरणपरिणामेषु स्थिताः परिणता जीवा अपूर्वकरणा इति गलितज्ञानावरणादिकर्मतिमिरैर्जिनैर्भणिताः ते च अपूर्वकरणाः सर्वेऽपि प्रथमसमयमादिंकृत्वा चारित्रमोहनीयकर्मणः क्षपणोपशमनोद्युक्ता भवंति गुणश्रेणिगुणसंक्रमणस्थितिखंडानुभागखंडनलक्षणानि चत्वार्यावश्यकानि कुर्वंतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

मं० प्र०——तादृशविशुद्धिपरिणामेषु, अधउपरिसंख्याविशुद्धिसादृश्यरहितेषु प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिपरिणतेषु परिणामेषु स्थिताः-विद्यमानाः, अपूर्वाः-भिन्नसमयेषु सादृश्यरहिताः, करणाः-विशुद्धिपरिणामाः, येषा ते अपूर्वकरणा इत्यन्वर्थनामानो जीवाः संयतात्मानो मोहस्य-एकविंशतिप्रकृतिकचारित्रमोहस्य–क्षपणोपशमनयोरुद्यताः, तत्कालप्रथमसमयादारभ्य गुणश्रेणिगुणसंक्रमणस्थित्यनुभागकाडकघातविधानेन मोहस्य क्षपणं, उपशमनं वा कर्तुमुद्युक्ता इति गलिततिमिरैः विनाशिताज्ञानांधकारैः, जिनैः-अर्हदादिभिः परमगुरुभिः, भणिताः प्ररूपिताः । इत्यनेन स्वरुचिविरचितत्वदोषो निराकृतः । अतएवापूर्वकरणगुणस्थानमपि तादृशं क्षपकश्रेण्या उपशमश्रेण्यां च वर्तते इति भावार्थः । अधःप्रवृत्तकरणस्य गुणश्रेण्यादिविधानासामर्थ्येन चारित्रमोहक्षपणोशमनायोग्यत्वात् श्रेणिद्वयेवृत्तिर्नास्ति ॥ ५४ ॥

सं० चं०--तादृश कहिए तैसा पूर्व उत्तर समयनिविषैं असमान जे अपूर्व करणके परिणाम तिनिविषैं स्थिताः कहिए परिणए ऐसे जीव ते अपूर्व करण हैं ऐसैं गल्या है ज्ञानावरणादि कर्म रूप अंधकार जिनिका ऐसे जिनदेवनिकरि कह्या है। बहुरि ते अपूर्वकरण जीव सर्व ही प्रथम समयतैं लगाइ चारित्र मोहनीय नामा कर्मके क्षपावनेंकौं वा उपशम करनेंकौं उद्यमवंत हो हैं। याका अर्थ यहु जो गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखंडन

अनुभागखंडन ऐसैं लक्षण धरैं जे च्यारि आवश्यक तिनकौं करैं हैं। तहां पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्ताकर्मपरमाणु रूपद्रव्य तामैंसौं काढि जो द्रव्य गुण श्रेणीविषैं दीया ताका गुणश्रेणीका कालविषैं समय समय प्रति असंख्यात असंख्यातगुणा अनुक्रम लीए पंक्तिबंध जो निर्जराका होना सो गुणश्रेणीनिर्जरा है। बहुरि समय समय प्रति गुणकारका अनुक्रमतैं विवक्षित प्रकृतिके परमाणु पलटिकरि अन्यप्रकृतिरूप होइ परिणमैं सो गुण संक्रमण है। बहुरि पूर्वैं बांधी थी ऐसी सत्तारूप कर्मप्रकृतिनिकी स्थिति ताका घटावना सो स्थिति खंडन कहिए। बहुरि पूर्वैं बांध्या था ऐसा सत्तारूप अप्रशस्तकर्म प्रकृतिनिका अनुभाग ताका घटावना सो अनुभाग खंडन कहिए ऐसैं च्यारि कार्य अपूर्वकरणविषैं अवश्य हो हैं इनिका विशेष वर्णन आगैं लब्धिसार क्षपणासारका अर्थ लिखैंगे तहां जानना ॥ ५४ ॥

णिद्दापयले णट्ठे सदि आऊ उवसमंति उवसमया ।
खवयं ढुक्के खवया णियमेण खवंति मोहं तु ॥ ५५ ॥

निद्राप्रचले नष्टे सति आयुषि उपशमयंति उपशमकाः ।
क्षपकं ढौकमानाः क्षपका नियमेन क्षपयंति मोहं तु ॥ ५५ ॥

जी० प्र०—अत्र अपूर्वकरणगुणस्थाने विद्यमानायुष्कस्य प्रथमभागे निद्राप्रचलाद्वये बंधतो व्युच्छिन्ने सति उपशमश्रेण्यारोहकापूर्वकरणस्य प्रथमभागे मरणं नास्तीति आगमोऽस्तीत्यर्थः। ते अपूर्वकरणगुणस्थानवर्तिनः उपशमश्रेणिमारोहंति तदा चारित्रमोहनीयं नियमेन उपशमयंति। क्षपकश्रेणिमारुह्यमाणाः क्षपकाः तच्चारित्रमोहनीयं नियमेन क्षपयंति। क्षपकश्रेण्यां सर्वत्र मरणं नियमेन नास्ति ॥ ५५ ॥ अनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्वरूपं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

म० प्र०—तस्यापूर्वकरणस्य कालमंतर्मुहूर्तं षड्भागीकृत्य तत्प्रथमभागे (२ ११/६) निद्राप्रचलयोर्बंधव्युच्छित्तियुक्ते वर्तमाना आरोहकापूर्वकरणोपशमका नियमेन न म्रियते इति 'सत्यायुषि' इत्यनेन ज्ञाप्यते द्वितीयादिषु तद्भागेषु मरणसंभवात्।

'मरणूणम्मि णियट्टी पढमे णिद्दा तहेव पयला य'

इति सूत्रकारैर्वक्ष्यमाणत्वात् अतो नियमेन अम्रियमाणाः प्रथमभागवर्तिनोऽपूर्वकरणाः, द्वितीयादिभागेषु च आयुषि सति जीवंतोऽपूर्वकरणाः उपशमकश्रेण्यां चारित्रमोह उपशमयति । अत एवोपशमका इत्युच्यंते । क्षपकं क्षपकश्रेणीं ढौकित्वा-आरुह्य अपूर्वकरणाः चारित्रमोह क्षपयत्येव तत्र सर्वत्र नियमेन मरणाभावात् अतएव क्षपका इत्युच्यंते । तुशब्दः क्षपकश्रेण्या मरणाभावं सूचयति ॥ ५५ ॥ अथ अनिवृत्तिकरणपरिणामलक्षणं गाथाद्वयेनाह—

सं० चं०--इस अपूर्वकरण गुणस्थानविषैं विद्यमान मनुष्य आयु जाकैं पाइए ऐसा अपूर्वकरण जीव प्रथमभागविषैं निद्रा अर प्रचला ए दोय प्रकृतिबंध होनेतैं व्युच्छित्तिरूप हो है । अर्थ यहु-जो उपशम श्रेणी चढनेवाले अपूर्वकरण जीवका प्रथम भागविषैं मरण न होइ बहुरि निद्रा प्रचलाका बंध व्युच्छेद होइ तिसको होतैं ते अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव जो उपशम श्रेणी प्रति चढै तो चारित्रमोहको नियमकरि उपशमावै है । बहुरि क्षपक श्रेणी प्रति चढनेवाले क्षपक ते नियमकरि तिस चारित्र मोहको क्षपावै हैं । बहुरि क्षपकश्रेणीविषै सर्वत्र नियमकरि मरण नाहीं है ॥ ५५ ॥ आगे अनिवृत्तिकरण गुणस्थानका स्वरूप गाथा दोयकरि प्ररूपै हैं—

एकह्मि कालसमये संठाणादीहिं जह णिवट्टंति ।
ण णिवट्टंति तहावि य परिणामेहिं मिहो जेहिं ॥ ५६ ॥
होंति अणियट्टिणो ते पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा ।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढकम्मवणा ॥५७॥ (जुम्मम्)

एकस्मिन् कालसमये संस्थानादिभिर्यथा निवर्तंते ।
न निवर्तंते तथापि च परिणामैर्मिथो यैः ॥ ५६ ॥
भवंति अनिवर्तिनस्ते प्रतिसमयं येषामेकपरिणामाः ।
विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः ॥ ५७ ॥ (जुग्मम्)

जी० प्र०---ये अनिवृत्तिकरणकाले एकस्मिन् समये वर्तमानास्त्रिकालगोचरा नानाजीवा यथा संस्थानवर्णवयोवगाहनज्ञानोपयोगादिभिः परस्परं भिद्यंते तथा विशुद्धिपरिणामैर्न भिद्यंते खलु--स्फुटं ॥ ५६ ॥

जी० प्र०---ते जीवा अनिवृत्तिकरणा इति सम्यग्ज्ञातव्याः । न विद्यते निवृत्तिः विशुद्धिपरिणामभेदो येषां ते अनिवृत्तय इति निरुक्तयाश्रयणात् । ते सर्वेऽपि अनिवृत्तिकरणा जीवाः तत्कालप्रथमसमयमादिं कृत्वा प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिवृद्धया वर्धमानेन हीनाधिकभावरहितेन विशुद्धिपरिणामेन प्रवर्तमानाः संति यतः, ततः प्रथमसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामेभ्यो द्वितीयसमयवर्तिजीवविशुद्धिपरिणामा अनंतगुणा भवंति । एवं पूर्वपूर्वसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामेभ्यो जीवानामुत्तरोत्तरसमयवर्तिविशुद्धिपरिणामा अनंतानंतगुणितक्रमेण वर्धमाना भूत्वा गच्छंति इत्ययं विशेषः प्रवचने प्रतिपादितः प्रत्येतव्यः । तदनिवृत्तिकरणपरिणामयुतजीवाः विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवना भवंति । अनेन चारित्रमोहस्य उपशमनं क्षपणं च अनिवृत्तिकरणपरिणामकार्यमिति सूचितं ॥ ५७ ॥ अथ सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानस्वरूपमाह---

म० प्र०---अंतर्मुहूर्तमात्रस्यानिवृत्तिकरणकालस्यापूर्वकरणकालात्संख्यातगुणहीनस्य २१ प्रथमादिचरमसमयपर्यंताना समयाना मध्ये प्रथमे वा द्वितीये वा तृतीयादौ यत्र कुत्रापि वा चरमे वा विवक्षिते एकस्मिन् समये वर्तमानास्त्रिकालगोचरा नानाजीवा यथा संस्थानवर्णावगाहनलिंगादिभिर्बहिरंगैः, ज्ञानदर्शनादिभिश्चांतरंगैर्निवर्तंते मिथः--परस्पर भिद्यते तथा यैर्विशुद्धिपरिणामैः, मिथो न निवर्तंते न भिद्यते विसदृशा न भवंत्येव ते विशुद्धिपरिणामा अनिवृत्तिकरणा भवति । कथभूताः ? यस्मात् प्रतिसमयमेकैकपरिणामाः, यथा प्रथमसमयवर्तिनानाजीवपरिणामाः अधःप्रवृत्तापूर्वकरणवत् जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पयुक्ता न भवति किंतु समानविशुद्धय एव, अपूर्वकरणचरमसमयवर्तिनानाजीवसंबंधिजघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पयुक्तविसदृशविशुद्धिपरिणामाः सर्वेऽपि तदनंतरसमये तदुत्कृष्टपरिणामादनंतगुणविशुद्धिकाः परस्परमेकादृशा एव जायते तथा अनिवृत्तिकरणप्रथमसमयवर्तिनानाजीवसंबंधिसदृशविशुद्धिपरिणामास्तद्द्वितीयसमये अनंतगुणविशुद्धयः परस्पर सदृशा एव नानाजीवपरिणामाः एवं तृतीयादिसमयेषु चरमसमयपर्यंतेषु प्रतिसमयमनंतगुणानंतगुणविशुद्धयः संतो विवक्षिते एकस्मिन् समये नानाजीवसंबंधिविशुद्धिपरिणामाः परस्परमेकादृशा एव भवंति । पुनरपि कथंभूताः ? विमलतरध्यानहुतवहशिखाभिर्निर्दग्धकर्मवनाः--प्रतिसमयमनंतगुणविशुद्धिसामर्थ्येनायुर्वर्जितसप्तकर्मणा गुणश्रेणिगुणसंक्रमस्थित्यनुभागकांडकघातैः षोडशप्रकृतिक्षपणेन मोहनीयस्याष्टकषायादिक्षपणेन बादरसूक्ष्मकृष्टिविधानेन अन्यैश्चोपायैः आत्मनः श्रेयोमार्गप्राप्तिहेतु घातिकर्मारण्य प्रतिसमयप्रवर्धमानैकाग्रचिंतानिरोधरूपसदृशयादिमलरहितधर्म्मध्यानाग्निज्वालाशतैरभितः प्रकृतिस्थित्यनुभागानभिव्याप्य भस्मीकुर्वाणा इति श्रीबालचंद्रपंडितदेवाना तात्पर्यार्थः ॥ ५६ । ५७ ॥

स० चं०—अनिवृत्तिकरणकालविषैं एक समयविषैं वर्तमान जे त्रिकालवर्ती अनेक जीव ते जैसैं शरीरका संस्थान वर्ण वय अवगाहना अर क्षयोपशमरूप ज्ञान उपयोगादिक तिनकरि परस्पर भेदकौं प्राप्त हैं तैसैं विशुद्ध परिणामनिकरि भेदकौं प्राप्त न हो हैं प्रगटपनें ते जीव अनिवृत्तिकरण हैं ऐसैं सम्यक् जानना। जातैं नाहीं विद्यमान

है निवृत्ति कहिए विशुद्ध परिणामनिविषैं भेद जिनकैं ते अनिवृत्तिकरण हैं ऐसी निरुक्ति हो है। भावार्थ—जिन जीवनिकौं अनिवृत्तिकरण माडें पहला दूसरा आदि समान समय भए होंहिं तिनि त्रिकालवर्ती अनेक जीवनिके परिणाम समान ही होंइ। जैसें अधःकरण अपूर्वकरण विषै समान वा असमान होते थे तैसें इहां नाहीं बहुरि अनिवृत्तिकरणकालका प्रथम समयकौं आदि देकरि समय समय प्रति वर्तमान जे सर्व जीव ते हीन अधिकपनातै रहित समान विशुद्ध परिणाम धरै हैं। तहां समय समय प्रति जे विशुद्ध परिणाम अनंतगुणे अनंतगुणे उपजै हैं तहां प्रथम समयविषै जे विशुद्ध परिणाम हैं तिनितैं द्वितीय समयविषै विशुद्ध परिणाम अनंतगुणे हो हैं। ऐसैं पूर्व पूर्व समयवर्ती विशुद्ध परिणामनितैं जीवनिके उत्तरोत्तर समयवर्ती विशुद्ध परिणाम अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा अनंतगुणा अनंतगुणा अनुक्रमकरि बधता हुआ प्रवर्तै हैं। ऐसा यहु विशेष जैनसिद्धांत विषै प्रतिपादन किया है। सो प्रतीतिमें ल्यावना। भावार्थ—अनिवृत्तिकरणविषैं एक समयवर्ती जीवनिके परिणामनिविषैं समानता है। बहुरि ऊपरि समयवर्तीनिके अनंतगुणी अनंतगुणी विशुद्धता बधती है ताका उदाहरण—जैसैं जिनकौं अनिवृत्तिकरण माडें पांचवा समय भया ऐसे त्रिकालवर्ती अनेक जीव तिनिकैं विशुद्ध परिणाम परस्पर समान ही होंइ कदाचित् हीन अधिक न होंइ। बहुरि ते विशुद्ध परिणाम जिनकौं अनिवृत्ति करण माडैं चौथा समय भया तिनिके विशुद्ध परिणामनितैं अनंत गुणे हैं। बहुरि इनतैं जिनकौं अनिवृत्तिकरण माडें छठा समय भया तिनके अनंत गुणे विशुद्ध परिणाम हो हैं ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि तिन अनिवृत्तिकरण परिणाम संयुक्त जीव ते अति निर्मल ध्यानरूपी हुतभुक् कहिए अग्नि ताकी शिखानिकरि दग्ध कीए हैं कर्मरूपी बन जिनने ऐसे हैं। इस विशेषणकरि चारित्रमोहका उपशमावना वा क्षय करना अनिवृत्तिकरण परिणामनिका कार्य है ऐसा सूच्या है॥ ५६—५७॥ आगैं सूक्ष्म सांपरायगुणस्थानके स्वरूपकौं कहै हैं—

धुदकोसुंभयवत्थं होदि जहा सुहमरायसंजुत्तं।

एवं सुहमकसाओ सुहमसरागोत्ति णादव्वो ॥ ५८ ॥

धौतकौसुंभवस्त्रं भवति यथा सूक्ष्मरागसंयुक्तं ।
एवं सूक्ष्मकषायः सूक्ष्मसांपराय इति ज्ञातव्यः ॥ ५८ ॥

जी० प्र०----यथा धौतकौसुंभवस्त्रं सूक्ष्मरागसंयुक्तं भवति तथाग्रतनसूत्रोक्तप्रकारेण सूक्ष्मकृष्टिगतलोभकषायः सूक्ष्मसांपराय इति ज्ञातव्यः ॥ ५८ ॥ अथ सूक्ष्मकृष्टिगतस्वरूप गाथाद्वयेन निरूपयति---

मं० प्र०---यथा कौसुभ--कुसुंभेन- रागविशेषेण रजितं, वस्त्रं धुतं सम्यक्प्रक्षालितमपि सूक्ष्मरागसयुक्तं -अव्यक्तरागाक्रांतं भवति एवं तथा सूक्ष्मकृष्ट्यनुभागोदयजनितसूक्ष्मलोभकषायः सयतः सूक्ष्मसराग इति ज्ञातव्यः । रागेण--यथाख्यातचारित्रप्रतिबंधिना कषायरंजनेन सह वर्तते यः स सरागः--विशुद्धिपरिणामः, सूक्ष्मः--सूक्ष्मकृष्ट्यनुभागोदयसहचरितः सरागो यस्य असौ सूक्ष्मसरागः--सूक्ष्मसांपराय इत्यर्थः । कुंताः प्रविशंतीत्यादौ यथा कुंतसहचरिताः पुरुषाः कथ्यते तथात्रापि । अतएव तत्सयमोऽपि सूक्ष्मसांपराय इत्युच्यते ॥ ५८ ॥

सं० च०---जैसैं धोया हुआ कसूंभल वस्त्र सो सूक्ष्म लाल रंगकरि संयुक्त हो है तैसैं आगिला सूत्रविषैं कह्या विधानकरि सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त जो लोभ कषाय ताहिकरि जो संयुक्त सो सूक्ष्मसांपराय है ऐसा जानना ॥ ५८ ॥ आगैं सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्तपनेका स्वभावकौं गाथा दोयकरि प्ररूपैं हैं--

पुव्वापुव्वप्फड्डयबादरसुहमगयकिट्टिअणुभागा ।
हीणकमाणंतगुणेणवराढु वरं च हेट्ठस्स ॥ ५९ ॥

पूर्वापूर्वस्पर्धकबादरसूक्ष्मगतकृष्ट्यनुभागाः ।
हीनक्रमा अनंतगुणेन अवरात्तु वरं चाधस्तनस्य ॥ ५९ ॥

जी० प्र० ---पूर्वं अनिवृत्तिकरणस्थाने संसारावस्थायां संभवत्कर्मशक्तिसमूहरूपस्पर्धकानां (उ । व ९ । ना) अनिवृत्तिकरणपरिणामैः क्रि-
ज । व । १

यमाणतदनंतैकभागमात्रापूर्वस्पर्धकानां (उ । व / ख / ज । व / ख ९ / उ ३) तेभ्य एव क्रियमाणवादरकृष्टीनां (उ व / ख ९ ख / उ ३ / ज । व / ख ९ ख ४ / उ ३ ख) ताभ्य एव क्रियमाणकर्मशक्तिसूक्ष्म-

खंडरूपसूक्ष्मकृष्टीनां च (उ । व / ख ९ ख ४ ख / उ ३ ख / ज व / ख९ख ४ ख ४ / उ ३ ख ख) यथाक्रमं अनुभागाः स्वोत्कृष्टात् स्वजघन्यः उपरितनजघन्यादधस्तनोत्कृष्टश्चेति अनंतगुणहीनक्रमा भवंति ॥

मं० प्र०—अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु तदेकभागे क्रियमाणकार्यप्ररूपणेयं तद्यथा -पूर्वं–संसारावस्थायां प्रतिकर्म सभवंति स्पर्धकानि नानागुणहानिसमूहरूपैकस्थानवर्तीनि सिद्धानंतैकभागप्रमितानि वर्गणासमूहरूपाणि पूर्वस्पर्धकानि । अविभागप्रतिच्छेदसमूहो वर्गः । वर्गसमूहो वर्गणा । वर्गणासमूहः स्पर्धकं । स्पर्धकसमूहो गुणहानिः । गुणहानिसमूहः स्थानमिति वक्ष्यमाणत्वात् । तेषां पूर्वस्पर्धकानां अधः—अनिवृत्तिकरणपरिणामविशुद्ध्या क्रियमाणानि चतुःसंज्वलननानापूर्वस्पर्धकसर्वजघन्यानुभागानंतैकभागमात्रशक्तीनि एकगुणहानिस्पर्धकशलाकासंख्येयभागप्रमितान्यपूर्वस्पर्धकानि (९ / उ ३ / व) तेषामुत्कृष्टानुभागः (ख / व / ४) स एव अपूर्वस्पर्धकायामेन भक्तः । तेषां जघन्यानुभागः (ख ९ / उ ३ / व) तेषामपूर्वस्पर्धकानामधः अनंतगुणविशुद्ध्या क्रियमाणा एकस्पर्धकवर्गणाशलाकानंतैकभागप्रमिताः साधिकाः (ख / व) वादरकृष्टयः अपूर्वस्पर्धकजघन्यानुभागानंतैकभागमात्र्यः, तासामुत्कृष्टानुभागः (ख ९ ख / उ ३) स एव वादरकृष्ट्यायामेन भक्तः, तासां जघन्यानुभागः (ख ९ ख ४ / उ ३ ख) तासां लोभवादरकृष्टीनां, अधः अनंतगुणविशुद्ध्या क्रियमाणा एकस्पर्धकवर्गणाशलाकानंतैकभागप्रमिताःसाधिकाः

सज्वलनलोभस्य सूक्ष्मकृष्टयः । वादरकृष्टिजघन्यानुभागानंतैकभागप्रमितः सूक्ष्मकृष्टीनामुत्कृष्टानुभागः (ख ९ ख ४ ख / उ ३ ख) स एव सूक्ष्मकृष्ट्यायामेन भक्तः, तासा जघन्यानुभागः (ख ९ ख ४ ख ४ / उ ३ ख ख) इममर्थं सर्वं मनसिकृत्य, अवरात् उपरितनजघन्यात् अधस्तनस्य वरः उत्कृष्टः चशब्दसूचितः स्वोत्कृष्टात्स्वजघन्यश्च पूर्वापूर्वस्पर्धकवादरसूक्ष्मकृष्टिगतः, अनुभागा यथासंभवानंतगुणेन हीनक्रमाः स्वयोग्यानंतैकभागप्रमिताः, इतिश्रीनेमिचंद्रसैद्धांतिकचक्रवर्तिभिः सूचिताः । एवमनिवृत्तिकरणपरिणामकार्याणि प्ररूपितानि ॥ ५९ ॥ अथ सूक्ष्मसापरायगुणस्थानप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह---

सं० च०---पूर्वें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानविषै वा संसार अवस्थाविषै जे सभवैं ऐसै कर्मकी शक्ति समूहरूप पूर्वस्पर्धक, बहुरि अनिवृत्तिकरण परिणामनिकरि कीए तिनके अनंतवें भाग प्रमाण अपूर्वस्पर्धक, बहुरि तिनहीं करि करी जे वादरकृष्टि बहुरि तिनहीकरि करी जे कर्म शक्तिका सूक्ष्म खंडरूप सूक्ष्मकृष्टि इनिका क्रमतैं अनुभाग अपने उत्कृष्टतैं अपना जघन्य अर ऊपरिके जघन्यतैं नीचला उत्कृष्ट ऐसा अनंत गुणा घाटि क्रम लीएं है। भावार्थ--पूर्व स्पर्धकनिका उत्कृष्ट अनुभाग सो अविभाग प्रतिच्छेद अपेक्षा जो प्रमाण धरै है ताके अनंतवें भाग पूर्व स्पर्धकनिका जघन्य अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग अपूर्वस्पर्धकनिका उत्कृष्ट अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवे भाग अपूर्वस्पर्धकनिका जघन्य अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग वादरकृष्टिका उत्कृष्ट अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग वादरकृष्टिका जघन्य अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग सूक्ष्मकृष्टिका उत्कृष्ट अनुभाग है। बहुरि ताके अनंतवें भाग सूक्ष्मकृष्टिका जघन्य अनुभाग वंध है ऐसा अनुक्रम जानना। बहुरि इन पूर्वस्पर्धकादिकनिका स्वरूप आगैं लब्धिसार क्षपणासारका कथन लिखेंगे तहां नीकै जानना तथापि इनिका स्वरूप जाननेके अर्थि इहां भी किंचित् वर्णन करिये है--

कर्म प्रकृतिरूप परिणए जे परमाणू तिनिविषैं अपने फल देनेकी जो शक्ति ताकौं अनुभाग कहिये। तिस अनुभागका ऐसा कोई केवलज्ञानगम्य अंश जाका दूसरा भाग न होइ सो इहां अविभागप्रतिच्छेद जानना।

बहुरि एक परमाणुविषैं जेते अविभाग प्रतिच्छेद पाइए तिनिके समूहका नाम वर्ग है। बहुरि जिन परमाणूनिविषैं परस्पर समान गणना लीएं अविभाग प्रतिच्छेद पाइए तिनिके समूहका नाम वर्गणा है। तहां अन्य परमाणूनितैं जाविषैं थोरे अविभाग प्रतिच्छेद पाइए ताका नाम जघन्य वर्ग है बहुरि तिस परमाणूके समान जिन परमाणूनिविषैं अविभाग प्रतिच्छेद पाइए तिनके समूहका नाम जघन्य वर्गणा है। बहुरि जघन्य वर्गतैं एक अविभाग प्रतिच्छेद अधिक जिनिविषैं पाइए ऐसी परमाणूनिका समूह सो द्वितीय वर्गणा है ऐसैं जहां ताईं एक एक अविभाग प्रतिच्छेद वधनेका अनुक्रम लीएं जेती वर्गणा होंइ तितनी वर्गणाके समूहका नाम जघन्य स्पर्धक है। बहुरि यातैं ऊपरि जघन्य वर्गणाके वर्गनिविषैं जेते अविभाग प्रतिच्छेद थे तिनतैं दूणे जिस वर्गणाके वर्गनिविषैं अविभाग प्रतिच्छेद होंहि तहांतैं द्वितीय स्पर्धकका प्रारंभ भया। तहां भी पूर्वोक्त प्रकार एक एक अविभाग प्रतिच्छेद वधनेका क्रमयुक्त वर्गनिके समूहरूप जेतीवर्गणा होंइ तिनके समूहका नाम द्वितीय स्पर्धक है। बहुरि प्रथम स्पर्धककी प्रथमवर्गणाके वर्गनिविषैं जेते अविभाग प्रतिच्छेद थे तिनतैं तिगुणे जिस वर्गणाके वर्गनिविषैं अविभाग प्रतिच्छेद पाइए तहांतैं तीसरे स्पर्धकका प्रारंभ भया तहां भी पूर्वोक्त क्रम जानना। अर्थ इहां यहु-जो यावत् वर्गणाके वर्गनिविषैं क्रमतैं एक एक अविभाग प्रतिच्छेद वधै तावत् सोई स्पर्धक कहिए। बहुरि जहां युगपत् अनेक अविभाग प्रतिच्छेद बंधैं तहांतै नवीन अन्य स्पर्धकका प्रारंभ कहिए सो चतुर्थादि स्पर्धकनिकी आदि वर्गणाका वर्गविषैं अविभाग प्रतिच्छेद प्रथम स्पर्धकका आदि वर्गणाके वर्गनिविषै जेते थे तिनतैं चौगुण पंचगुण आदि क्रम लीएं जानने। बहुरि अपनी अपनी द्वितीयादि वर्गणाके वर्गविषै अपनी अपनी प्रथम वर्गणाके वर्गतैं एक एक अविभाग प्रतिच्छेद बंधता अनुक्रमतै जानना। ऐसैं स्पर्धकनिके समूहका नाम प्रथम गुणहानि है। इस प्रथमगुण हानिकी प्रथम वर्गणाविषै जेता परमाणु रूप वर्ग पाइए है तिनितैं एक एक चय प्रमाण घटते द्वितीयादि वर्गणानिविषै वर्ग जानने। ऐसैं क्रमतैं जहां प्रथम गुण हानिका वर्गणाके वर्गनितैं आधा जिस वर्गणाविषै वर्ग होइ तहांतै दूसरी गुणहानिका प्रारंभ भया। तहां

द्रव्य चय आदिका प्रमाण आधा आधा जानना। इस क्रमतैं जेती गुणहानि सर्व कर्म परमाणूनिविषै पाइए तिनिके समूहका नाम नानागुणहानि है। इहां वर्गणादिविषै परमाणूनिका प्रमाण ल्यावनेकौं द्रव्य स्थिति गुणहानि दोगुणहानि नानागुणहानि अन्योन्याभ्यस्तराशि ए छह जानने। तहां सर्व कर्म परमाणूनिका प्रमाण त्रिकोण यंत्रके अनुसारि स्थितिसंबंधी किंचित्ऊन द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्धप्रमाण सो सर्व द्रव्य जानना। बहुरि नाना गुणहानिकरि गुणहानि आयामकौं गुणैं जो सर्वद्रव्यविषै वगर्णानिका प्रमाण होइ सो स्थिति जाननी। बहुरि एक गुणहानिविषैं अनंतगुणा अनंत प्रमाण वर्गणा पाइए हैं सो गुणहानि आयाम जानना। याकौं दूणा किएं जो प्रमाण होइ सो दोगुणहानि है। बहुरि सर्वद्रव्यविषैं जे गुणहानि अनंत पाइए तिनिका नाम नानागुणहानि है जातैं दोयका गुणकार रूप घटता घटता जाविषैं द्रव्यादिक पाइए सो गुणहानि, अनेक जो गुणहानि सो नानागुणहानि जानना। बहुरि नानागुणहानि प्रमाण दुये माड़ि परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ सो अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। तहां एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग सर्वद्रव्यकौं दीए जो प्रमाण होइ सो अंतकी गुणहानिके द्रव्यका प्रमाण है यातैं दूणा दूणा प्रथम गुणहानिपर्यंत द्रव्यका प्रमाण है। बहुरि 'दिवड्ढगुणहाणिभाजिदे पढमा' इस सूत्रकरि साधिक ड्योढ गुणहानि आयामका भाग सर्वद्रव्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ सोई प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणाविषैं परमाणूनिका प्रमाण है। बहुरि याकौं दोगुण हानिका भाग दीएं चयका प्रमाण आवै है सो द्वितीयादि वर्गणानिविषैं एक एक चय घटता परमाणूनिका प्रमाण जानना। ऐसैं क्रमतैं जहां प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणातैं जिस वर्गणाविषैं आधा परमाणूनिका प्रमाण है सो द्वितीय गुणहानिकी प्रथमवर्गणा है। याके पहले जेती वर्गणा भई ते सर्व प्रथम गुणहानि संबंधी जाननी। बहुरि इहां द्वितीय गुणहानिविषैं भी द्वितीयादि वर्गणानिविषैं एक एक चय घटता परमाणूनिका प्रमाण जानना। इहां द्रव्य चय आदिका प्रमाण प्रथम गुणहानितैं सर्व आधा आधा जानना ऐसैं क्रमतैं सर्वद्रव्यविषै नानागुणहानि अनंत हैं बहुरि इहां प्रथम गुणहानिकी प्रथम वर्गणातैं लगाइ अनंत गुणहानिकी अनंत वर्गणा पर्यंत जे वर्गणा तिनिके

वर्गानिविषै अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण प्रवाहरूप पूर्वोक्तप्रकार अनुक्रमरूप बधता बधता जानना। अब इस कथनकों अंक संदृष्टिकरि दिखाइए है—

सर्वद्रव्य इकतीससै ३१००, स्थिति चालीस ४०, गुणहानि आयाम आठ ८, दोगुण हानि सोलह १६ नानागुणहानिं पांच ५, अन्योन्याभ्यस्त राशि वत्तीस ३२ तहां एकघाटि अन्योन्याभ्यस्तराशि ३१ का भाग सर्वद्रव्य ३१०० कौं दीएं सौ पाए सो अनंत गुणहानिका द्रव्य है। यातैं दूणा दूणां प्रथमगुणहानिपर्यंत द्रव्य जानना। १६०० । ८०० । ४०० । २०० । १०० । बहुरि साधिक ड्योढ गुणहानिका भाग सर्वद्रव्यकौं दीएं दोयसै छप्पन २५६ पाए सो प्रथमगुणहानिका प्रथमवर्गणाविषै वर्गानिका प्रमाण है। याकौं दो गुण हानि सोलह १६ का भाग दीएं सोलह पाए सो चयका प्रमाण है सो द्वितीयादिवर्गणाविषै इतना इतना घटता वर्ग जानना। ऐसैं आठ वर्गणा प्रथमगुणहानिविषै जानना। बहुरि द्वितीय गुणहानिविषै आठ वर्गणा हैं तिनिविषै पूर्वतैं द्रव्य वा चयका प्रमाण आधा आधा जानना। ऐसैं आधा आधा क्रमकरि पांच नानागुणहानि सर्व द्रव्यविषैं हो हैं इनकी रचना—

'अंक संदृष्टि अपेक्षा गुणहानिकी वर्गणानिविषैं वर्गनिके प्रमाणका यंत्र है।

प्रथम गुणहानि	द्वितीय गुणहानि	तृतीय गुणहानि	चतुर्थ गुणहानि	पंचम गुणहानि
१४४	७२	३६	१८	९
१६०	८०	४०	२०	१०
१७६	८८	४४	२२	११
१९२	९६	४८	२४	१२
२०८	१०४	५२	२६	१३
२२४	११२	५६	२८	१४
२४०	१२०	६०	३०	१५
२५६	१२८	६४	३२	१६
जोड	जोड	जोड	जोड	जोड
१६००	८००	४००	२००	१००

बहुरि च्यारि च्यारि वर्गणाका समूह एक एक स्पर्धक। तातैं एक एक गुणहानिविषैं दोय दोय स्पर्धक हैं। तहां प्रथम गुणहानिका प्रथम स्पर्धककी प्रथमवर्गणाका वर्गनिविषैं आठ २ अविभाग प्रतिछेद पाइये है। दूसरी वर्गणाका वर्गनिविषैं नव नव तीसरीकाविषैं दश २ चौथीकाविषैं ग्यारह २ जानने। बहुरि प्रथम गुणहानिकी द्वितीय स्पर्धककी प्रथमवर्गणाका वर्गनिविषैं सोलह २ दूसरीकानिविषैं सतरह सतरह, तीसरीकानिविषैं अठारह अठारह चौथीकानिविषै उगणीस उगणीस अविभाग प्रतिच्छेद हैं। बहुरि द्वितीय गुणहानिका प्रथम स्पर्धककी प्रथम वर्गणाके वर्गनिविषैं चौईस चौईस ऊपरि एक एक वधती। ऐसैं ही अनंतगुणहानिका अंत स्पर्धककी अंतवर्गणा पर्यंत अनुक्रम जानना इनकी रचना---

अंकसदृष्टि अपेक्षा आविभाग प्रतिच्छेदनिकी रचना ताका यंत्र।

इहां च्यारि तीन आदि स्थानकनिविषैं आठ नव आदि अविभाग प्रतिच्छेद स्थापे हैं तिनकी सहनानी करि अपनी अपनी वर्गणाविषैं जेते जेते वर्ग हैं तितने तितने स्थानकनिविषैं तिन अविभाग प्रतिच्छेदनिका स्थापन जानना।

प्रथमगुणहानि		द्वितीयगुणहानि		तृतीयगुणहानि		चतुर्थगुणहानि		पंचमगुणहानि	
प्रथमस्पर्धक	द्वितीयस्पर्धक	प्रथमस्पर्धक	द्वितीयस्पर्धक	प्रथमस्पर्धक	द्वितीयस्पर्धक	प्रथमस्पर्धक	द्वितीयस्पर्धक	प्रथमस्पर्धक	द्वितीयस्पर्धक
११	१९	२७	३५	४३	५१	५९	६७	७५	८३
१०।१०	१८।१८	२६।२६	३४।३४	४२।४२	५०।५०	५८।५८	६६।६६	७४।७४	८२।८२
९।९।९	१७।१७।१७	२५।२५।२५	३३।३३।३३	४१।४१।४१	४९।४९।४९	५७।५७।५७	६५।६५।६५	७३।७३।७३	८१।८१।८१
८।८।८।८	१६।१६।१६।१६	२४।२४।२४।२४	३२।३२।३२।३२	४०।४०।४०।४०	४८।४८।४८।४८	५६।५६।५६।५६	६४।६४।६४।६४	७२।७२।७२।७२	८०।८०।८०।८०

ऐसैं अंकसंदृष्टिकरि जैसैं दृष्टांत कह्या तैसैं ही पूर्वोक्त यथार्थ कथनका अवधारण करना. याप्रकार कहे जे अनुभागके स्पर्धक ते पूर्वैं संसार अवस्थाविषैं जीवनिकै संभवै हैं तातैं इनिकौं पूर्वस्पर्धक कहिये इनिविषैं जघन्य स्पर्धकतैं लगाइ लताभागादिकरूप स्पर्धक प्रवर्तैं हैं। तिनिविषैं लताभागादिरूप केई स्पर्धक देशघाती हैं। ऊपरिके केई स्पर्धक सर्वघाती हैं तिनिका विभाग आगैं लिखैंगे। बहुरि अनिवृत्तिकरण परिणामनिकरि कबहूं पूर्वैं न भए ऐसे अपूर्वस्पर्धक हो हैं। तिनिविषैं जघन्य पूर्वस्पर्धकतैं भी अनंतवे भाग उत्कृष्ट अपूर्व स्पर्धकविषै भी अनुभाग शक्ति पाइए है। विशुद्धताका माहात्म्यतैं अनुभाग शक्ति घटाइ कर्मपरमाणूनिकौं ऐसैं परिणमावै है। इहां विशेष इतना ही भया जो पूर्वस्पर्धककी जघन्य वर्गणाके वर्गतैं इस अपूर्वस्पर्धककी अंतवर्गणाके वर्गविषै अनंतवे भाग अनुभाग है। बहुरि तातैं अन्य वर्गणानिविषैं अनुभाग घटता है ताका विधान पूर्वस्पर्धकवत् ही

जानना। बहुरि वर्गणानिविषै परमाणूनिका प्रमाण पूर्वस्पर्धककी जघन्यवर्गणातैं एक एक चय बधता पूर्व स्पर्धकवत् क्रमतैं जानना। इहां चयका प्रमाण पूर्वस्पर्धककी आदि गुणहानिका चयतैं दूणा है बहुरि पीछैं अनिवृत्तिकरणके परिणामनि ही करि कृष्टि करिये है अनुभागका कृष करना घटावना सो कृष्टि कहिये। तहां संज्वलन क्रोध मान माया लोभका अनुभाग घटाइ स्थूलखंड करना सो वादरकृष्टि है। तहां उत्कृष्ट वादरकृष्टिविषैं भी जघन्य अपूर्व स्पर्धकतैं भी अनंतगुणा अनुभाग घटता हो है। तहां च्यारौ कषायनिकी बारह संग्रहकृष्टि हो हैं। अर एक एक संग्रह कृष्टिकेविषैं अनंत अनंत अंतरकृष्टि हो हैं। तिनिविषैं लोभकी प्रथमसंग्रहकी प्रथमकृष्टितैं लगाइ क्रोधकी तृतीय संग्रहकी अंतकृष्टिपर्यंत क्रमतैं अनंतगुणा अनंतगुणा अनुभाग है। तिस क्रोधकी तृतीय कृष्टिकी अंतकृष्टितैं अपूर्व स्पर्धकनिकी प्रथमवर्गणाविषैं अनंतगुणा अनुभाग है सो स्पर्धकनिविषैं तौ पूर्वोक्तप्रकार अनुभागका अनुक्रम था इहां अनंतगुणा घटता अनुभागका अनुक्रम भया सोई स्पर्धक अर कृष्टिविषैं विशेष जानना। बहुरि तहां परमाणूनिका प्रमाण लोभकी प्रथम संग्रहकी जघन्यकृष्टिविषैं यथासंभव बहुत है तातैं क्रोधकी तृतीय संग्रहकी अंतकृष्टिपर्यंत चय घटता क्रमलीए है सो याका विशेष आगैं लिखैंगे सो जानना। सो यहु अपूर्व स्पर्धक वादरकृष्टि क्षपक श्रेणीविषैं ही हो है उपशम श्रेणीविषैं न हो है। बहुरि अनिवृत्तिकरणके परिणामनिकरि ही कषायनिके सर्वपरिमाणू आनुपूर्वी संक्रमादिविधानकरि एक लोभरूप परिणमाइ वादरकृष्टिगत लोभरूपकरि पीछैं तिनिकौं सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है सो सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त भया लोभ ताका जघन्य वादरकृष्टितैं भी अनंतवें भाग उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टिविषै अनुभाग हो है। तहां अनंती कृष्टिनिविषै क्रमतैं अनंतगुणा अनुभाग घटता है। बहुरि परमाणूनिका प्रमाण जघन्यकृष्टितैं लगाइ उत्कृष्ट कृष्टिपर्यंत चय घटता क्रम लीएं है सो विशेष आगै लिखैंगे तहां जानना। सो यहु विधान क्षपक श्रेणीविषै हो है। उपशम श्रेणिविषै पूर्वस्पर्धकरूप जे लोभके केई परमाणू तिनहीकौं सूक्ष्मकृष्टिरूप परिणमावै है ताका विशेष आगै लिखैंगे। बहुरि ऐसैं अनिवृत्तिकरणविषै करी जो सत्ताविषै सूक्ष्मकृष्टि सो जहां उदयरूप होइ प्रवर्तै तहां सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान हो है ऐसा जानना ॥ ५९ ॥

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहमसंपराओ जहखादेणूणओ किंचि ॥ ६० ॥

अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको व क्षपको वा ।
स सूक्ष्मसांपरायो यथाख्यातेनोनः किंचित् ॥ ६० ॥

जी० प्र०—अनिवृत्तिकरणचरमसमयानंतरं सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानं प्राप्य सूक्ष्मकृष्टिगतलोभं अनुभवन् उपशमकः क्षपको वा सूक्ष्मसांपराय इत्याख्यायते । स एव सामायिकछेदोपस्थापनसंयमविशुद्धितोऽतिविशुद्धिसूक्ष्मसांपरायसंयमसंपन्नः यथाख्यातचारित्रसंपन्नात् किंचिद्धीनो भवति । सूक्ष्मः कृष्टिगतः सांपरायो लोभकषायो यस्यासौ सूक्ष्मसांपराय इत्यन्वर्थनामत्वात् ॥६०॥ अथोपशांतकषायगुणस्थानस्वरूपं निर्दिशति—

मं० प्र०—यो जीवः अणुलोभं उदयागतं सूक्ष्मकृष्टयनुभाग संज्वलनलोभमंतर्मुहूर्तकाल, विदन्--अनुभवन्, उपशमकः क्षपको वा इति स सूक्ष्मसांपराय, इत्याख्यायते । तस्य संयमोऽपि यथाख्यातचारित्रात्किंचिदूनः अलक्ष्यसूक्ष्मरागकलकितत्वेन सूक्ष्मसांपराय इत्युच्यते ॥६०॥ अथोपशातकषायगुणस्थानमाह—

सं० चं०—अनिवृत्तिकरणकालका अंतसमयके अनंतरि सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानकौं पाइ सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त जो लोभ ताके उदयकौं भोगवता संता उपशमावनेवाला वा क्षय करनेवाला जीव सो सूक्ष्मसांपराय है ऐसा कहिए है । सोई सामायिक छेदोपस्थापना संयमकी विशुद्धतातैं अति अधिक विशुद्धतामय जो सूक्ष्मसांपराय संयम तींहिकरि संयुक्त जो जीव सो यथाख्यातचारित्रसंयुक्त जीवतैं किंचित् मात्र ही हीन है । जातैं सूक्ष्म कहिए सूक्ष्म कृष्टिकौं प्राप्त ऐसा जो सांपराय कहिए लोभ कषाय सो जाकैं पाइए सो सूक्ष्मसांपराय है ऐसा सार्थक नाम है ॥ ६० ॥ आगैं उपशांतकषाय गुणस्थानके स्वरूपका निर्देश करैं हैं—

कदकफलजुदजलं वा सरए सरवाणियं व णिम्मलयं ।
सयलोवसंतमोहो उवसंतकसायओ होदि ॥ ६१ ॥

कतकफलयुतजलं वा शरदि सरःपानीयं व निर्मलं ।
सकलोपशांतमोह उपशांतकषायको भवति ॥ ६१ ॥

जी० प्र०—यथा कतकफलचूर्णयुतं जलं प्रसन्नं अथवा अभ्रकलंकरहितशरत्काले सरःपानीयं प्रसन्नं तथा साकल्येन उपशांतमोहनीयः उपशांतकषायो भवति । उपशांताः-साकल्येन उदयायोग्याः कृताः कषायनोकषाया येन असौ उपशांतकषायः इति निरुक्त्या अत्यंतप्रसन्नचित्तता सूचिता ॥ ६१ ॥ अथ क्षीणकषायगुणस्थानस्वरूपमाह—

मं० प्र०—वा इव—यथा जलं भूस्पर्शमालिन सलिलं कतकफलयुत -कतकफलचूर्णसंमिश्र सत् निर्मलं भवति । अथवा सरःपानीयं तटाकमृत्कलंकितजलं शरदि—शरत्काले सति परप्रयोगमनपेक्ष्यैव यथा निर्मल प्रसन्न भवति तथा सूक्ष्मसापरायचरमसमयानतरोत्तरसमये वीतरागविशुद्धिपरिणामाविजृंभितयथाख्यातचारित्रोपयुक्तो यो जीव. स सकलोपशातमोहः सन् उपशातकषायनामा भवति सकलः—प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशसंक्रमोदीरणादिसमस्तकरणगोचरः, उपशातः—उदयायोग्यो मोहो यस्य स सकलोपशातमोहः । द्वितीयदृष्टातानुसारेण सूक्ष्मसापरायचरमसमये मोहोदये व्युच्छिन्ने सति तदनंतरोत्तरसमये कालनिमित्तपरिणामप्रत्ययः सन् जीवः वीतरागतापरिणतः सकलोपशातमोहः-उपशातकषायनामा भवति स चांतर्मुहूर्तकालमवतिष्ठते ॥ अथ क्षीणकषायगुणस्थान प्ररूपयति—

सं० चं०—कतकफलका चूर्णकरि संयुक्त जो जल सो जैसैं प्रसन्न हो है अथवा मेघपटल रहित जो शरत्काल तींहिविषै जैसैं सरोवरका पानी प्रसन्न हो है-ऊपरितैं निर्मल हो है तैसैं समस्तपनेकरि उपशांत भया है मोहनीय कर्म जाका सो उपशांत कषाय है । उपशांत कहिए समस्तपनेंकरि उदय होनेकौं अयोग्य कीए हैं कषाय नोकषाय जानैं सो उपशांत कषाय है ऐसी निरुक्तिकरि अत्यंत प्रसन्नचित्तपना सूचन किया है ॥ ६१ ॥
आगैं क्षीणकषाय गुणस्थानका स्वरूपकौं प्ररूपै हैं—

णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णदि णिग्गंथो वीयरायेहिं ॥ ६२ ॥

निश्शेषक्षीणमोहः स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तः ।
क्षीणकषायो भण्यते निर्ग्रंथो वीतरागैः ॥ ६२ ॥

जी० प्र०—निश्शेषक्षीणाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरहिता मोहप्रकृतयो यस्यासौ निःशेषक्षीणमोहः (कषायः) इति निरवशेषमोहप्रकृतिसत्त्वरहितः क्षीणकषायः । ततः कारणात् स्फटिकभाजनोदकसदृशप्रसन्नचित्तः क्षीणकषाय इति वीतरागसर्वज्ञैर्भण्यते स एव परमार्थेन निर्ग्रंथो भवति । उपशांतकषायोऽपि यथाख्यातचारित्रसाधारण्येन निर्ग्रंथ इति प्रवचने प्रतिपाद्यते (प्रतिपादितो जातः) ॥ ६२ ॥ अथ सयोगकेवलिगुणस्थानं गाथाद्वयेन कथयति—

म० प्र०---सूक्ष्मसांपरायक्षपकचरमसमये चारित्रमोहस्य प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशाना बंधोदयोदीरणासत्त्वेषु व्युच्छिन्नेषु तदनंतरोत्तरसमये निश्शेषक्षीणमोहः—निरवशेषविनष्टचारित्रमोहः सन् स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तो जीवः, अतिनिर्मलस्फटिकघटसंभृतेन निर्मलजलेन सदृशं चित्तं भावमनो विशुद्धिपरिणामो यस्यासौ स्फटिकामलभाजनोदकसमचित्तः यथा तज्जल संक्षोभैः प्रकारैः कलुषित न भवति तथा यथाख्यातचारित्रपवित्रक्षीणकषायविशुद्धिपरिणामोऽपि कुताश्चिदपि कारणात् कलुषितो न भवति स वीतरागैः क्षीणकषाय इति भणितः । स एव परमार्थतो निर्ग्रंथः । ग्रथ्नति—रचयंति संसारकारणं कर्मबंधमिति ग्रंथाः--परिग्रहाः मिथ्यात्ववेदादयः अतरगाश्चतुर्दश, वहिरगाश्च क्षेत्रादयो दश तेभ्यो निष्क्रांतः सर्वात्मना निवृत्तो निर्ग्रंथ इति मुख्यनिर्ग्रंथलक्षणसद्भावात् । तत्र सूक्ष्मलोभपर्यंताना मोहोदयजनितसमस्ताविभावपरिणामाना निरवशेषक्षयप्रसिद्धेः । पुलाकवकुशकुशीलानां वाह्यनैर्ग्रंथ्यस्याभ्यंतरनैर्ग्रंथ्यस्य वा क्वचित् कदाचित् प्रतिसेवनावशेन सपूर्णत्वासंभवात् तथापि तेषां त्रयाणां निर्ग्रथताव्यवहारः सम्यग्दर्शनसकलसंयमरूपातरंगनैर्ग्रंथ्येन, यथाजातरूपलक्षणवाह्यनैर्ग्रंथ्येन च परमागमे सुप्रसिद्ध एव निष्टप्तषोडशवर्णस्य अधस्तनाना च षड्वर्णपर्यंतहीनवर्णानां सुवर्णताव्यवहारवत् ॥ ६२ ॥ अथ सयोगकेवलिस्वरूपं गाथाद्वयेनाह——

सं० च०----अवशेषरहित क्षीण कहिए प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशकरि रहित भई है मोहनीय कर्मकी प्रकृति जाकैं सो निश्शेष क्षीणकषाय है। ऐसैं निश्शेष मोह प्रकृतिनिका सत्त्वकरि रहित जीव सो क्षीणकषाय है ताकारणतैं स्फटिकका भाजनविषैं तिष्ठता जल सदृश प्रसन्न सर्वथा निर्मल है चित्त जाका ऐसा क्षीणकषाय जीव है। ऐसैं वीतराग सर्वज्ञदेवनिकरि कहिए है। सोई परमार्थकरि निर्ग्रंथ है। उपशांत कषाय भी यथाख्यात चारित्रकी समानताकरि निर्ग्रंथ है ऐसैं जिन वचनविषैं प्रतिपादन करिए है। भावार्थ--उपशांतकषायकैं तौ मोहके उदयका अभाव है सत्त्व विद्यमान है बहुरि क्षीणकषायकैं उदय सत्त्व सर्वथा नष्ट भए हैं। परंतु दोऊनिके परिणामनिविषैं कषायनिका अभाव है तातैं दोऊनिकैं यथाख्यात चारित्र समान है तींहिकरि दोऊ वाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित निर्ग्रंथ कहे हैं॥ ६२ ॥ आगैं सयोगकेवलि गुणस्थानकौं गाथा दोयकरि कहैं हैं--

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवललद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥ ६३ ॥

केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः ।
नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः ॥ ६३ ॥

जी० प्र०---केवलज्ञानदिवाकरस्य किरणकलापाः-अर्थप्रकाशनपटवो दिव्यध्वनिविशेषाः तैः प्रणाशितं विनेयजनाज्ञानांधकारं येनासौ केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः । अनेन सयोगभट्टारकस्य भव्यलोकोपकारकत्वलक्षणपरार्थसंपत्प्रणीता । नवानां केवललब्धीनां क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्यलक्षणानां उदयेन प्रादुर्भावेन सुजनितः-वस्तुवृत्त्या विहितः परमात्मेति व्यपदेशो यस्यासौ नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः इति भगवदर्हत्परमेष्ठिनोऽनंतज्ञानादिलक्षणस्वार्थसंपत् प्रदर्शिता ॥ ६३ ॥

म० प्र०---क्षीणकषायगुणस्थानकालचरमभागवर्त्येकत्ववितर्कवीचाराख्यद्वितीयशुक्लध्यानप्रभावेन ज्ञानदर्शनावरणांतरायाख्यघातित्रये तच्चरमसमयानंतरोत्तरसमये विनाशिते सति केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापः, त्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुणपर्यायप्रत्यक्षप्रकाशिसपूर्णानतानतशक्तिः तथाविधकेवलदर्शनसहचरितस्तस्यात्मन. सजायते तेन तस्मिन्नेव समये प्रणाशित क्षीणकषायचरमसमयवर्ति अज्ञान अदर्शन च यस्यासौ केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः । लौकिको दिवाकरः प्रतिनियतक्षेत्र दिवा करोति--प्रकाशं करोति केवलज्ञानदिवाकरः लोकालोकरूपमप्रतिनियतक्षेत्रं दिवाकरोति इति भेदे सत्यपि परनिरपेक्षतया स्पष्टप्रकाशनसादृश्यात् केवलज्ञानमेव दिवाकर इत्यभेदेन निरूप्यते उपमानोपमेययोर्मुखचंद्रादिवत्सर्वात्मना सादृश्याभावात् तस्य केवलज्ञानदिवाकरस्य किरणाः-ज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदाः, तेषा कलापः--समूहः, द्विकवारानतोत्कृष्टप्रमाणः, तस्मिन् प्रादुर्भवति सति पूर्वपर्यायस्य अज्ञानस्य प्रणशो युक्त एव सूर्योदये अंधकारप्रणाशवत् । पूर्वपर्यायप्रणाशोत्तरपर्यायप्रादुर्भावयोरेकस्मिन्नेव समये अविरोधस्य प्रतीतत्वात् । 'कार्योत्पादः क्षयोहेतुर्नियमात्' इति समतभद्रस्वामिभिरुक्तत्वाच्च । पुनरपि कथभूत. ? नवाना केवललब्धीना क्षायिकसम्यक्त्वचारित्रज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणा, उद्गमः--तत्तत्प्रतिबंधकघातिकर्मक्षयात्प्रादुर्भावः, तेन सुजनित - साधुसपादित. परमात्मेति व्यपदेशो नाम यस्यासौ नवकेवललब्ध्युद्गमसुजनितपरमात्मव्यपदेशः । परमः--परमार्थः अनुपचरितः, आत्मा--स्वभावः क्षायिकसम्यक्त्वादिरूपो यस्यासौ परमात्मा । परमात्मेति निरुक्त्या परमागमवेदिभिर्व्याख्यायते ॥ ६३ ॥

सं० च०---केवलज्ञानदिवाकरकिरणकलापप्रणाशिताज्ञानः कहिए केवलज्ञानरूपी दिवाकर जो सूर्य ताके किरणनिका कलाप कहिए समूह पदार्थनिके प्रकाशनेविषैं प्रवीण दिव्यध्वनिके विशेष तिनकरि प्रनष्ट कीया है

शिष्य जननिका अज्ञानांधकार जानैं ऐसा सयोगकेवली है। इस विशेषणकरि सयोगी भट्टारककैं भव्यलोककौं उपकारीपना है लक्षण जाका ऐसा परार्थरूप संपदा कही। बहुरि 'नवकेवललब्ध्युद्गमसुजानितपरमात्मव्यपदेशः' कहिए क्षायिकसम्यक्त्व क्षायिकचारित्र ज्ञान दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्यरूप लक्षण धरें जे नव केवल-लब्धि तिनिका उदय कहिए प्रकट होना ताकरि सुजनित कहिए वस्तुवृत्तिकरि निपज्या है परमात्मा ऐसा व्यपदेश कहिए नाम जाका ऐसा सयोग केवली है इस विशेषणकरि भगवान अर्हत्परमेष्ठीकैं अनंत ज्ञानादि लक्षण धरैं स्वार्थरूप संपदा दिखाइये है ॥ ६३ ॥

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण।
जुत्तोत्ति सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो ॥ ६४ ॥

असहायज्ञानदर्शनसहितः इति केवली हि योगेन।
युक्त इति सयोगिजिनः अनादिनिधनार्षे उक्तः ॥ ६४ ॥

जी० प्र०—योगेन सह युक्त इति सयोगः असहायज्ञानदर्शनसहित इति केवली सयोगश्चासौ केवली च सयोगकेवली घातिकर्मनिर्मूलको जिनः, सयोगकेवली चासौ जिनश्च सयोगकेवलिजिनः, इत्यनादिनिधनार्षागमे उक्तः-प्रतिपादितः ॥६४॥ अथायोगकेवलिगुणस्थानं निरूपयति-

मं० प्र०—तस्य परमात्मनः केवलित्वं सयोगत्वं चानेन गाथासूत्रेण प्ररूपयति--केवलाभ्या--असहायाभ्या,--इंद्रियप्रकाशशब्दलिंगादीनिरपेक्षाभ्यां, ज्ञानदर्शनाभ्या समस्तवस्तुविशेषसामान्यग्रहणाभ्या सविकल्पनिर्विकल्पलक्षणसाकारानाकारोपयोगाभ्या, सहितः--युक्तः--परिणतः इति केवली, केवले अस्य स्त इति केवलीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। योगेन मनोवाक्कायकर्मान्यतमेन युक्तः—सह वर्तते इति सयोगः, घातीनि कर्माणि जयति अधस्तनगुणस्थाननिर्जरातः प्रतिसमयमसंख्येयगुणं निर्जरयति सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिरूपतृतीयशुक्लध्यानसामर्थ्येन योगाख्यं कर्म निरुणद्धीति वा जिनः। सविशेषनिर्जरत्वादयमेव मुख्यवृत्त्या जिनः। असंयतसम्यग्दृष्ट्यादिषु क्षीणकषायांतेषु सामान्यनिर्जरावत्त्वात् जिन इव जिन इति गौणवृत्त्या जिनशब्दः प्रवर्तते इत्यनादिनिधने ब्रह्मलोकविदेहादिक्षेत्रेष्वविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमेणाद्यतरहिते आर्षे लोकातिकगणधरादिमहर्षिभिर्व्याख्याते प्रवचने उक्तः सयोगकेवलिजिन इति व्यक्तं प्ररूपितः ॥ ६४ ॥ अथायोगिकेवलिजिनस्वरूपं प्ररूपयति—

सं० च०—योगकरि सहित सो सयोग, अर परसहायरहित जो ज्ञानदर्शन तिनिकरि सहित सो केवली स-योग सोही केवली सो सयोगकेवली। वहुरि घातिकर्मनिका निर्मूल नाशकर्ता सो जिन, सयोगकेवली सोई जिन सो सयोगकेवलिजिन कहिए ऐसैं अनादि निधन ऋषिप्रणीत आगमविषै कह्या है ॥ ६४ ॥ आगैं अयोग केवलि गुणस्थानकौं निरूपैं हैं—

सीलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होदि ॥ ६५ ॥

शीलैश्यं संप्राप्तः निरुद्धनिश्शेषास्रवो जीवः।
कर्मरजोविप्रमुक्तो गतयोगः केवली भवति ॥ ६५ ॥

जी० प्र०—अष्टादशसहस्रशीलाधिपत्य संप्राप्तः, निरुद्धनिश्शेषास्रवत्वात् नूतनबध्यमानकर्मरजोविप्रमुक्तः, मनोवाक्काययोगरहितत्वादयोगः, न विद्यते योगो यस्यासौ अयोगः सचासौ केवली च अयोगकेवली इति भगवत्परमेष्ठिजीवः कथितः ॥ ६५ ॥ एवं निषचतुर्दशगुणस्थानेषु स्वायुर्वर्जितकर्मणां गुणश्रेणिनिर्जरा तत्कालविशेषं च गाथाद्वयेनाह—

सं० प्र०—गताः अतिक्रान्ताः, योगाः—मनोवाक्कायकर्माणि यस्मादसौ गतयोगः स एव जीवः अयोगिकेवलिजिनो भवति। स किंविशिष्टः ? शीलानां—अष्टादशसहस्रसंख्यानां, ऐश्यं ईश्वरत्वं—स्वामित्वं संप्राप्तः। पुनरपि कथंभूतः ? निरुद्धनिश्शेषास्रवः—अभिनवकर्मणां समस्तास्रवनिरोधात् परमसंवरसंपन्न इत्यर्थः, योगस्यास्रवत्वात् तदभावात्तद्रूप आस्रवनिरोधः सिद्ध एव। मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषायरूपाणामास्रवाणां अधस्तनगुणस्थानेष्वेव निरुद्धत्वात् अयोगकेवलिनः निरुद्धनिश्शेषास्रवत्वं सिद्धमेव। पुनरपि कथंभूतः सः ? कर्मरजोविप्रमुक्तः—बन्धहेतोरास्रवस्य योगपर्यंतस्य निरवशेषविनाशात् बध्यमानकर्मपरमाणुविप्रमुक्तत्वं सिद्धमेव कारणविनाशे तत्कार्यासंभवस्य सकलवादिसम्मतत्वात्, अहेतुकबंधाभ्युपगमे मोक्षाभावप्रसंगात् सर्वेषां जीवानां सर्वप्रकृतिबंधप्रसंगाच्च सर्वेऽपि मिथ्यादृष्टयो भवेयुः सर्वेऽपि तीर्थंकरा भवेयुरित्यादिसमस्तगुणस्थानमार्गणास्थानसत्तामुक्त्यादिव्यवहारविलोपः स्यात् सत्त्वोदयकर्मपरमाणूनामप्ययोगकेवलिकाले अत्यल्पे पूर्वगुणस्थानविहितासंख्यातगुणितगुणश्रेणिनिक्षेपमाहात्म्यात् प्रतिसमयमसंख्यातगुणत्वविशिष्टनिषेकाधोगलनरूपकर्मस्वभावप्रमोक्षप्रसिद्धेः। इयमेव सविपाकनिर्जरा अयोगकेवलिनोऽपि व्युपरतक्रियानिवृत्तिलक्षणचतुर्थशुक्लध्यानसामर्थ्येन अनुदयप्राप्तानामपि कर्मणां स्वस्थितिक्षयवशात् संभवतीति सिद्धांतविदो वदंति ॥ ६५ ॥ अथैकादशनिर्जरास्वामिद्रव्यकालप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

सं० च०—अठारह हजार शीलका स्वामित्वपनाकौं प्राप्त भया बहुरि निरोधे हैं समस्त आस्रव जानै तातैं नवीन वध्यमान कर्मरूपी रजकरि सर्वथा रहित भया। बहुरि मन वचन काय योगकरि रहितपनातैं अयोग भया सो नाहीं विद्यमान है योग जाकैं ऐसा अयोग। अर अयोग सोई केवली सो अयोग केवली भगवान् परमेष्ठी जीव ऐसा है ॥ ६५॥ याप्रकार कहे चौदह गुणस्थान तिनिविषै अपने आयु विना सातकर्मनिकी गुणश्रेणी निर्जरा संभवै है ताका अर तिस गुणश्रेणीनिर्जराका काल विशेषकौं गाथा दोयकरि कहैं हैं—

सम्मत्तुप्पत्तीये सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवगे कषायउवसामगे य उवसंते॥ ६६॥
खवगे य खीणमोहे जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति॥ ६७॥

सम्यक्त्वोत्पत्तौ श्रावकविरते अनंतकर्मांशे।
दर्शनमोहक्षपके कषायोपशामके चोपशांते॥ ६६॥
क्षपके च क्षीणमोहे जिनेषु द्रव्याण्यसंख्यगुणितक्रमाणि।
तद्विपरीताः कालाः संख्यातगुणक्रमा भवंति॥ ६७॥

जी० प्र०—प्रथमोपशमसम्यक्त्वोत्पत्तौ करणत्रयपरिणामचरमसमये वर्तमानविशुद्धिविशिष्टमिथ्यादृष्टेः आयुर्वर्जितज्ञानावरणादिकर्मणां यद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणं ततः असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानगुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं। ततः देशसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणं। ततः सकलसंयतस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणं। ततोऽनंतानुबंधिकषायविसंयोजकस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं असंख्यातगुणं। ततो दर्शनमोहक्षपकस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं। ततः कषायोपशमकत्रयस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं।

तत उपशांतकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं । ततः क्षपकत्रयस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं । ततः क्षीणकषायस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं । ततः स्वस्थानकेवलिजिनस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं । ततः समुद्घातकेवलिजिनस्य गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातगुणं इत्येकादश सुस्थानेषु गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यस्य प्रतिस्थानमसंख्यातगुणितत्वमुक्तं। तद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यप्रमाणं (तु) उच्यते तद्यथा अनादिसंसारनिबंधनबंधानुबंधसंबंधेन संबद्धं जगच्छ्रेणिघनप्रमाणैकजीवस्य प्रदेशेषु ज्ञानावरणादिमूलोत्तरप्रकृतिसत्त्वद्रव्यं त्रिकोणरचनाभिप्रायेण किंचिन्न्यूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमाणं (स a १२-) इदमायुर्वर्जितसप्तकर्मणां सप्तभिर्भक्त्वा दत्ते ज्ञानावरणीयस्यैतावत् (स a । १२- / ७)

इदं देशघातिसर्वघातिविभागार्थं जिनदृष्टानंतेन भक्त्वैकभागं (स a । १२-१ / ७ । ख) सर्वघातिकेवलज्ञानावरणस्य दत्त्वा शेषबहुभागे (स a । १२- । ख / ७ । ख) गुणकारे ऋणैकरूपमवज्ञाय भाज्यभागहारभूतावनंतावपवर्त्य देशघातिनां मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणानां चतुर्णां चतुर्भिर्भक्त्वा दत्ते मतिज्ञानावरणस्यैतावत् (स a । १२- / ७ । ४ ।) इदमपकर्षणभागहारेण भक्त्वा बहुभागमिदं— (स a । १२-उ / ७ । ४ उ) तथैव तिष्ठतीति मत्त्वा शेषैकभागमिदं (स a । १२- । १ / ७ । ४ उ) पल्यासंख्यातेन भक्त्वा बहुभागमिदं (स a । १२-प / ७ । ४ । उ । प a / a)

उपरितनस्थितौ देयमित्येकत्र संस्थापयेत् शेषैकभागमिदं (स a । १२—१ / ७ । ४ । उ । प a) पुनरसंख्यातलोकेन भक्त्वा बहुभागमिदं (स a । १२- ≡a / ७ । ४ । उ । प ≡ a a)

गुणश्रेण्यायामे देयमित्येकत्र संस्थापयेत् शेषैकभागमिदं (स a । १२-१ / ७ । ४ । उ । प a ≡ a) उदयावल्यां दीयते इत्युदयावल्या भक्ते मध्यधनमागच्छति (स a । १२-- / ७ । ४ । उ प a ≡ a । ४) पुनः रूपन्यूनावल्यर्धेनोनेन निषेकभागहारेण भक्ते प्रचयो भवति (स । a । १२-- / ७ । ४ । उ प a ≡ a । ४ । १६ ४ २)

स । a । १२--। १६ ।

अयं दोगुणहान्या गुणितः उदयावलिप्रथमनिषेकः स्यात् ७ । ४ । उ । प ≡ a । ४ । १६--४ (a, २) अत्रैकचये अपनीते उदयावलिद्वितीयनिषेकः

स a । १२--१६ १

स्यात् ७ । ४ । उ । प ≡ a ४ १६--४ (a, २) एवमुदयावलिचरमनिषेकपर्यंतमेकैकचये अपनीते रूपोनावलिमात्रचयेषु उदयावलि प्रथमनिषेकेषु अ-

स a । १२-१६--४

पनीतेषु तच्चरमनिषेकप्रमाणं भवति ७ । ४ । उ । प ≡ a । ४ । १६--४ (a, २)

स । a । १२-≡ a

इतः परं गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यमसंख्यातलोकबहुभागमात्रं ७ । ४ । उ । प ≡ a (a) सम्यक्त्वोत्पत्तिगुणश्रेण्यायामांतर्मुहूर्तमात्रसमयेषु प्रति-समयमसंख्यातगुणितक्रमेण निषेकरचना क्रियते तद्यथा–तद्गुणश्रेण्यायामप्रथमसमये यावद् द्रव्यं निक्षिप्यते तत्प्रमाणं शलाका एका १, द्वितीयसमये ततोऽसंख्यातगुणितशलाकाश्चतस्रः ४ । एवमसंख्यातगुणितशलाकाक्रमेण गुणश्रेणिचरमसमये तद्योग्यासंख्यातगुणितशलाकाः स्युः, तत्संदृष्टिः ६४ । एताः प्रथमादिसमयसर्वशलाकाभिर्मिलितास्तदा संदृष्टिः ८५ । अनेन शलाकायोगेन मिश्रपिंडराशिं भक्त्वा

स a । १ २-। ≡ a

७ । ४ । उ । प ≡ a । ८५ (a) संदृष्टिगुणकारेण एकेन गुणिते प्रथमनिषेकः

स a । १२--। ≡ a । १

७ । ४ । उ प ≡ a । ८५ (a) चतुर्भिर्गुणिते द्वितीयनिषेकः

स a । १२-। ≡ a । ४

७ । ४ । उ । प । ≡ a । ८५ (a) षोडशभिर्गुणिते तृतीयनिषेकः

स a । १२- ≡ a । १६

७ । ४ । उ । प । ≡ a । ८५ (a) चतुःषष्ट्या गुणिते चरमनिषेकः

स a । १२-।≡a। ६४
७ । ४ । उ प ।≡a। ८५ एवमसंख्यातगुणितक्रमेण गुणश्रेणिद्रव्यं दत्तं भवति । इतोग्रे उपरितनस्थितद्रव्यमिदं स a । १२-। प । ७ । ४ । उ । प a

नानागुणहानिषु प्रथमप्रथमनिषेकेषु अर्धार्धक्रमेण अग्रे त्रिकोणरचनाविशेषः करिष्यते, अत्र प्रयोजनाभावान्न कृतः ।

तद्गुणश्रेणिनिर्जराद्रव्यं श्रावकादिदशस्थानेष्वसंख्यातगुणितं कथं जातं ? इति चेत् तन्निमित्तपरिणामविशुद्धिनिर्बंधनत्वेन असंख्यातगुणहीनत्वात्तस्यासंख्यातगुणितक्रमप्रसिद्धेः । गुणश्रेण्यायामकालाः पुनस्तद्विपरीताः । तद्यथा—समुद्घातजिनमादिं कृत्वा विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालपर्यंतं संख्यातगुणाः क्रमेण भवंति । समुद्घातजिनगुणश्रेण्यायामकालोऽतर्मुहूर्तः २ ११, अतः स्वस्थानजिनगुणश्रेण्यायामकालः संख्यातगुणः एवं पश्चादानुपूर्व्या गंतव्यं । पर्यवसाने बहुवारं संख्यातगुणितत्वेऽपि विशुद्धमिथ्यादृष्टिगुणश्रेण्यायामकालोऽतर्मुहूर्तमात्र एव नाधिकः । कुतः ? जघन्योऽतर्मुहूर्तः आवलिप्रमाणः सर्वतः स्तोकः, उपरिसमयोत्तरावलिप्रभृतयः सर्वे मध्यमांतर्मुहूर्ता भूत्वा चरमस्य समयोनमुहूर्तस्योच्छ्वासाः ३७७३ । एकोच्छ्वासस्य संख्यातावल्यः २ ११ तदा चरमांतर्मुहूर्तस्य संख्यातावल्योमूः २ ११ ११ आवलिमात्रांतर्मुहूर्तस्य आत्मप्रमाणमेकरूपं संस्थाप्य २ ११, चरमांतर्मुहूर्तावलेर्गुणकारस्योपर्यपनीय २ ११ ११ वृद्धया एकसमयेन भक्त्वा २ ११ ११ / १ एकरूपे युते २ ११ ११ / १ लब्धांतर्मुहूर्तविकल्पानां संख्यातावलिप्रमाणत्वात् ॥६७॥ अथैवं सकर्मजीवानां गुणस्थानाश्रितरूपं तत्तत्कर्मनिर्जराद्रव्यं कालायामप्रमाणं च प्ररूप्य निर्जीर्णकर्मसिद्धपरमेष्ठिनां स्वरूपं मतांतरविप्रतिपत्तिनिराकरणपूर्वकं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—सम्यक्त्वोपपत्तौ अनादिमिथ्यादृष्टिः सादिमिथ्यादृष्टिर्वा जीवः कश्चित् क्षयोपशमविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यतालब्धीः प्राप्य प्रतिसमयमनंतगुणवृद्ध्या वर्धमानविशुद्धिपरिणामः सन् यदा प्रथमोपशमसम्यक्त्वाभिमुखः करणलब्धिं प्राप्तः तदा स सातिशयमिथ्यादृष्टिः अधःप्रवृत्तकरणविशुद्धिपरिणामान् गमयित्वा अपूर्वकरणं प्रविष्टस्तत्प्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरां प्रारभते तत्र आयुर्वर्जितसप्तकर्मणा किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धप्रमितात्सत्त्वद्रव्यत्वात् (स a १२-)

अपकर्षणभागहारभक्तैकभागमात्रद्रव्यमपकृष्य स a १२- / उ इदं पल्यासंख्यातभागेन खंडयित्वा तद्बहुखंडद्रव्यं स a १२-प / उ a प इदं उपरितनस्थितौ निक्षे-

प्यमित्येकत्र स्थापयित्वा तदेकखंडद्रव्यमिदं स a १२-१ / उ प / a असंख्यातलोकेन खंडयित्वा तद्बहुभागद्रव्यं स a १२-≡ a / उ । प ≡ a / a इदमपूर्वकरणानिवृत्तिकरणकालद्वयमनिवृत्तिकरणकालसंख्यातभागाधिकं यावत्तावत्प्रमाणे गुणश्रेण्यायामे २ १ १ ४ / ४ निक्षेप्यमित्येकत्र संस्थाप्य पुनस्तदेकभागद्रव्यं स a १२- / उ प ≡ a / a उदयावल्यां निक्षिपेत्। तत्र द्रव्यनिक्षेपक्रमो लब्धिसारे वक्ष्यमाणक्रमेण ज्ञातव्यः एवं द्वितीयादिसमयेषु प्रतिसमयमसंख्यातगुणितमपकृष्य गुणश्रेण्यां त्रिद्रव्यनिक्षेपः क्रियते यावद् गुणश्रेणिविधानकालचरमसमयं प्राप्नोति तावदपकृष्टद्रव्यात् सर्वस्मात् श्रावकस्य देशसंयतस्य देशसंयमप्राप्तिनिमित्तगुणश्रेणि द्रव्यमसंख्यातगुणं, सम्यक्त्वोत्पत्तिगुणश्रेण्यायामात् श्रावकगुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणहीनः पुनः श्रावकगुणश्रेणिद्रव्यात् विरते महाव्रतिनि सकलसंयमप्राप्तिनिमित्तगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्येयगुणं। श्रावकगुणश्रेण्यायामात् विरतगुणश्रेण्यायामः संख्यातगुणहीनः एवं अनंतानुबंधिकर्मांशवियोजके दर्शनमोहक्षपकक्षायोपशमकत्रये उपशांतकषाये॥ ६६॥

म० प्र०--चारित्रमोहक्षपकत्रये, क्षीणमोहे, जिनयोः स्वस्थानकेवलिजिने समुद्घातकेवलिजिने च पूर्वपूर्वगुणश्रेणिद्रव्यादुत्तरोत्तरगुणश्रेणिद्रव्यमसंख्यातगुणमपकृष्य पूर्वपूर्वगुणश्रेण्यायामात् संख्यातगुणहीने उत्तरोत्तरगुणश्रेण्यायामे त्रिद्रव्यविधानेन निक्षिप्यते एतत्सर्वं मनसिकृत्य सम्यक्त्वोत्पत्त्यादिषु द्रव्याण्यसंख्यातगुणितक्रमाणि, तद्विपरीताः कालाः समुद्घातजिनादारभ्य सम्यक्त्वोत्पत्तिपर्यंतगुणश्रेण्यायामाः अधोधः संख्येयगुणक्रमाः इत्युक्तं सूत्रकारेण तेन सह वृत्तिग्रंथस्य विरोधो नास्त्येव। क्षपकश्चेति चशब्दः जिनयोश्चेति संबंधनीयः ॥ ६७ ॥ अथ चतुर्दशगुणस्थानविशिष्टान् जीवान् प्ररूप्य गुणस्थानातिक्रांतं सिद्धजीवस्वरूपं प्ररूपयति—

सं० चं०-प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति जो प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं कारण तीनकरणनिके परिणामनिका अंत समय तींहिविषैं वर्तमान ऐसा जो विशुद्धताका विशेष धरैं मिथ्यादृष्टि जीव ताकैं आयु विना अवशेष ज्ञानावरणादि कर्मनिका जो गुण श्रेणी निर्जराका द्रव्य है तातैं देशसंयतकैं गुणश्रेणी निर्जराद्रव्य असंख्यातगुणा है। बहुरि तातैं सकलसंयमीकै गुणश्रेणी निर्जराद्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं अनंतानुबंधी कषायका विसंयोजन करन हारा जीवकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। तातैं दर्शन मोहका क्षय करनेवाले कैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं कषाय उपशम करनेवाले अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवनिकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती जीवकैं गु-

णश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं क्षपक श्रेणीवाले अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती जीवकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं समुद्घातरहित जो स्वस्थान केवली जिन ताकैं गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। बहुरि तातैं समुद्घातसहित जो समुद्घातकेवली जिन ताकैं गुण श्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है। ऐसैं ग्यारह स्थानकनिविषै गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्यके स्थान स्थान प्रति असंख्यातगुणापना कह्या अब तिस गुणश्रेणी निर्जराद्रव्यका प्रमाण कहिए है–कर्मप्रकृतिरूप परिणए पुद्गल परमाणू तिनिका नाम इहां द्रव्य जानना। अनादिसंसारके हेतुतैं बंधका संबंधकरि बंधरूप भया जो जगच्छ्रेणीका घनमात्र लोक तींहि प्रमाण एक जीवके प्रदेशनिविषैं तिष्ठता ज्ञानावरणादि मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिसंबंधी सत्तारूप सर्वद्रव्य सो आगे कहिएगा जो त्रिकोण रचना ताका अभिप्रायकरि किंचित् ऊन ड्योढ गुणहानि आयामका प्रमाणकरि समय प्रबद्धका प्रमाणकौं गुणे जो प्रमाण होइ तितना है। बहुरि इसविषै आयुकर्मका स्तोक द्रव्य है तातैं याविषै किंचित् ऊन किएं अवशेष द्रव्य सातकर्मनिका है तातैं याकौं सातका भाग दीएं एक भाग प्रमाण ज्ञानावरण कर्मका द्रव्य हो है। बहुरि याकौं देशघाती सर्वघाती द्रव्यका विभागके अर्थि जिनदेवकरि देखा यथासंभव अनंत ताका भागदीए एकभाग प्रमाण तौ सर्वघाती केवलज्ञानावरणका द्रव्य है। अवशेष बहुभाग प्रमाण मतिज्ञानादि देशघातिप्रकृतिनिका द्रव्य है बहुरि इस देशघाती द्रव्यकौं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानावरणरूप च्यारि देशघाति प्रकृति तिनिका विभागके अर्थि च्यारिका भागदीए एक भाग प्रमाण मतिज्ञानावरणका द्रव्य हो है। भावार्थ–इहां मतिज्ञानावरणके द्रव्यकी गुणश्रेणीका उदाहरण करि कथन कीया है तातैं मतिज्ञानावरण द्रव्यका ही ग्रहण कीया है। ऐसैं ही अन्य प्रकृतिनिका भी यथासंभव जानि लेना। बहुरि इस मतिज्ञानावरण द्रव्यकौं अपकर्षण भाग हारका भाग देइ तहां बहुभाग तौ तैसैं ही तिष्ठै है ऐसा जानि एक भागका ग्रहण कीया। भावार्थ–जैसैं अन्नका राशिमेंस्यों च्यारिका भाग देइ कोई कार्यके अर्थि एक भाग जुदा काढिए अवशेष बहुभाग

जैसे थे तैसे ही राखिए। तैसैं इहां मतिज्ञानावरण रूप द्रव्यमेंस्यों अपकर्षण भागहारका भाग देइ एकभागकौं अन्यरूप परणमावनेके अर्थि जुदा ग्रहण कीया। अवशेष बहुभाग प्रमाण द्रव्य जैसैं पूर्वे अपनी स्थितिके समय समय संबंधी निषेकनिविषैं तिष्ठै था तैसे ही रह्या। इहां कर्म परमाणू रूप राशिविषै स्थिति घटावनेकौं जिस भागहारका भाग संभवै ताका नाम अपकर्षण भागहार जानना। सो इस अपकर्षण भागहारका प्रमाण आगै कर्मकांडविषै पंचभागहार चूलिका अधिकारविषैं कहैंगे तहां जानना। बहुरि विवक्षित भागहारका भाग दीएं तहां एक भाग विना अवशेष सर्व भागनिके समूहका नाम बहुभाग जानना सो अपकर्षण भागहारका भाग देइ बहुभागकौं तैसैं ही राखि एकभागकौं जुदा ग्रह्या था ताकौं कैसैं कैसैं परिणमाया सो कहैं हैं—

तिस एक भागकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां बहुभाग तौ उपरितन स्थितिविषैं देना सो एक जायगा स्थापै बहुरि अवशेष एक भाग रह्या ताकौं बहुरि असंख्यात लोकका भाग देइ तहां बहुभाग तौ गुणश्रेणीका आयामविषै देना सो एक जायगा स्थापै अवशेष एक भागहार रह्या सो उदयावलीविषै दीजिए है। अब उदयावली गुणश्रेणी उपरितन स्थितिविषैं दीया हूवा द्रव्य कैसैं परिणमै है सो कहिए है—तहां उदयावलीविषैं दीया हूआ द्रव्य वर्तमान समयतैं लगाइ एक आवलीप्रमाण कालविषै पूर्वै जे आवलीके निषेक थे तिनकी साथि अपना फलकौं देइ खिरै है तहां आवलीका कालके प्रथमादि समयनिविषैं केता केता द्रव्य उदयमें आवै है सो कहैं हैं—एक समय सबंधी जेता द्रव्यका प्रमाण ताका नाम निषेक जानना तहां उदयावलीविषैं दीया जो द्रव्य ताकौं उदयावलीकालके समयनिका जो प्रमाण ताका भाग दीएं वीचिके समयसंबंधी द्रव्यरूप जो मध्यधन ताका प्रमाण आवै है। बहुरि ताकौं एक घाटि आवलीका आधा प्रमाणकरि हीन असा जो निषेकहार कहिए गुणहानि आयामका प्रमाणतैं दूणा जो दोगुणहानिका प्रमाण ताका भाग दीएं एक चयका प्रमाण हो है। बहुरि इस चयकौं दोगुण हानिकरि गुणैं उदयावलीका प्रथमसमयसंबंधी प्रथमनिषेकका प्रमाण आवै है। यामैं एकचय घटाएं उदयावलीका द्वितीयसमयसंबंधी द्वितीय निषेकका प्रमाण आवै है। अैसैं ही क्रमतैं उदयावलीका

अंतनिषेकपर्यंत एक एक चय घटाएं एक घाटि आवली प्रमाण चय उदयावलीका प्रथमनिषेकविषैं घटैं उदयावलीका अंतका निषेकका प्रमाण हो है ॥ याकौं अंक संदृष्टिकरि व्यक्त करिए है–

जैसैं उदयावलीविषैं दीया द्रव्य दोयसै बहुरि गच्छ आवली ताका प्रमाण आठ, बहुरि एक एक गुणहानिविषैं जो निषेकनिका प्रमाण सो गुणहानिका आयाम ताका प्रमाण आठ याकौं दूणा कीएं दोगुणहानिका प्रमाण सोलह, तहां सर्वद्रव्य दोयसैकौं आवली प्रमाण गच्छ आठका भाग दीए पचीस मध्य धनका प्रमाण होइ याकौं एक घाटि आवलीका आधा साढा तीन सो निषेकहार सोलहमैं घटाएं साढावारा ताका भाग दीएं दोय पाए सो चयका प्रमाण जानना । याकौं दोगुणहानि सोलह ताकरि गुणैं वत्तीस पाए सो प्रथमनिषेकका प्रमाण है । यामैं एक एक चय घटाएं द्वितीयादि निषेकनिका तीस आदि प्रमाण हो है। ऐसैं एक घाटि आवलीप्रमाण चयके भये चौदह ते प्रथम निषेकविषैं घटाएं अवशेष अठारह अंतनिषेकका प्रमाण हो है इनि सर्वनिकौं जोडैं ३२,३०,२८,२६, २४, २२, २०, १८ दोयसै २०० सर्वद्रव्यका प्रमाण हो है । ऐसैं ही अर्थ संदृष्टिकरि पूर्वोक्त यथार्थ स्वरूप अवधारण करना । बहुरि यातैं परैं उदयावलीकालपीछैं अंतर्मुहूर्तमात्र जो गुणश्रेणीका आयाम कहिए कालप्रमाण ताविषैं दीया हूवा द्रव्य सो तिस कालका प्रथमादि समयविषैं जे पूर्वै निषेक थे तिनकी साथि क्रमतैं असंख्यातगुणा असंख्यातगुणा होइ निर्जरै है सो गुणश्रेणी निर्जराका द्रव्य असंख्यात लोकका भाग दीएं बहुभाग प्रमाण था सो सम्यक्त्वकी उत्पत्तिरूप करणकालसंबंधी गुणश्रेणीका आयाम अंतर्मुहूर्तमात्र तिसविषैं असंख्यात असंख्यात गुणी अनुक्रमकरि निषेक रचना करिए है। इहां सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसंबंधी गुणश्रेणीका कथन मुख्य कीया है तातैं तिसहीके कालका ग्रहण कीया है। तहां 'प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति' इस करण सूत्रकरि प्रक्षेप जो शलाका तिनिका जो योग कहिए जोड ताकरि उद्धृत कहिए भाजित ऐसा जो मिश्रपिंड कहिए मिल्याहूवा द्रव्यका जो प्रमाण सो प्रक्षेप कहिए अपनी अपनी शलाकनिका प्रमाण ताका गुणक कहिए गुणकार हो है। अथवा यहु गुण्य हो है ते प्रक्षेप गुणकार हो हैं ऐसैं भी करिए तो दोष नाहीं जातें दोऊनिका

प्रयोजन एक है। सो इहां तिस गुणश्रेणी आयामका प्रथम समयविषैं जेता द्रव्य दीया तींहि प्रमाण एक शलाका है। बहुरि तातैं दूसरे समय तैसैं ही असंख्यात गुणी शलाका हैं। तातैं तीसरे समय असंख्यातगुणी शलाका है। ऐसैं असंख्यातगुणा अनुक्रमकरि अंत समयविषैं यथायोग्य असंख्यातगुणी शलाका हो है। इनि सर्व प्रथमादि समयसंबंधी शलाकानिका जोड दीएं जो प्रमाण होइ सो प्रक्षेपयोग जानना। ताका भाग गुणश्रेणीविषैं दीया हूवा द्रव्यकौं दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं प्रक्षेपक जो अपना अपना समयसंबंधी शलाकाका प्रमाण ताकरि गुणैं अपने अपने द्रव्यका प्रमाण हो है। ऐसैं जिस जिस समयविषैं जेता जेता प्रमाण द्रव्यका आवै है तितना तितना द्रव्य तिस तिस समयविषैं निर्जरै है याप्रकार गुणश्रेणी आयामविषैं सर्वगुणश्रेणीविषैं दीया हूवा जो द्रव्य सो निर्जरै है ॥ अब इस कथनकौं अंकसंदृष्टिकरि व्यक्त करिए है--

जैसैं गुणश्रेणीविषै दीया हूवा द्रव्यका प्रमाण छसै अस्सी, गुण श्रेणी आयामका प्रमाण च्यारि, असंख्यातका प्रमाण च्यारि। तहां प्रथमसंमयसंबंधी जेता द्रव्य तींहि प्रमाण शलाका एक दूसरा संमयसंबंधी तातैं असंख्यात गुणी शलाका च्यारि ४ तीसरा समयसंबंधी तातैं असंख्यातगुणी शलाका सोलह १६ चौथा समयसंबंधी तातैं असंख्यातगुणी शलका चौसठि ६४ सो इनि शलाकानिका नाम प्रक्षेप है इनिका जो योग कहिये जोड सो पिच्यासी हो है ताकरि मिश्रपिंड जो सबनिका मिल्या हूआ द्रव्य छसै असी ताकौं भाग दीजिये तब आठ पाये। बहुरि यहु पाया हूआ राशि ताका प्रक्षेप कहिए अपनी २ शलाकाका प्रमाण ताकरि गुणिये है। तहां आठकौं एककरि गुणैं प्रथम समय संबंधी निषेकका प्रमाण आठ ८ हो है। बहुरि च्यारिकौं गुणें द्वितीय निषेकका प्रमाण बत्तीस हो है बहुरि सोलहकरि गुणैं तृतीय निषेकका प्रमाण एकसौ अट्ठाईस १२८ हो है। बहुरि चौसठिकरि गुणैं अंत निषेकका प्रमाण पांचसै बारह ५१२ हो है। ऐसैं सर्व समयनिविषैं ८, ३२, १२८, ५१२ मिलिकरि छसै असी ६८० द्रव्य निर्जरै हैं। भावार्थ--लोकविषै जाकौं विसवा कहिए ताका नाम इहां शलाका है। बहुरि जाकौं लोकविषैं सीरका द्रव्य कहिए ताका नाम इहां मिश्रपिंड कह्या है सो सब विसवा मिलाइ इनिका

भाग देइ अपना २ विसवनिकरि गुणैं जैसैं अपना २ द्रव्यका प्रमाण आवै तैसैं इहां समय समयविषै जेता जेता द्रव्य निर्जरै ताका प्रमाण वर्णन किया है। ऐसैं इहां सम्यक्त्वकी उत्पत्तिरूप करणका गुणश्रेणी आयामविषैं वर्णन उदाहरण मात्र किया ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना तहां कालका वा द्रव्यका विशेष है सो यथासंभव जानना।

बहुरि यातैं आगैं जो उपरितन स्थितिविषैं दीया द्रव्य सो विवक्षित मतिज्ञानावरणकी स्थितिके निषेक पूर्वैं थे तिस विषै इस गुणश्रेणी आयामके कालके पीछै अनंतर समय संबंधी जो निषेक तातैं लगाइ अंतविषै अतिस्थापनावलीके निषेकनिकौं छोडि जे निषेक थे तिनिविषै क्रमतैं दीजिये है पूर्वैं तिनि निषेकनिकौं द्रव्यविषै याकौं भी क्रमकरि मिलाइए है तहां नाना गुणहानिविषैं पहला पहला निषेकनिविषैं आधा आधा दीजिये द्वितीयादिनिषेकनिविषैं चयहीनका अनुक्रमकरि दीजिए सो इस वर्णनविषै त्रिकोण रचना संभवै है ताका विशेष आगैं करैंगे इहां प्रयोजनका अभाव है तातैं विशेष न किया है। ऐसैं जो एक भागमात्र जुदा द्रव्य ग्रह्या था ताकौं वर्तमान समयतैं लगाइ उदयावलीका काल ताके पीछैं गुणश्रेणी आयामका काल ताके पीछैं अवशेष सर्वस्थितिका काल अंतविषैं अतिस्थापनावलीविना सो उपरितनस्थितिका काल तिनिके निषेक पूर्वैं थे तिनिविषैं मिलाइए है सो यह मिलाया हूवा द्रव्य पूर्वनिषेकनिका साथि उदय होइ निर्जरै है ऐसा भाव जानना। बहुरि पूर्वैं कह्या जो जो गुणश्रेणी निर्जरा द्रव्य सो सो श्रावकादि दशस्थानकनिविषैं असंख्यात असंख्यात गुणा है सो कैसैं? ताका समाधान--तिस गुणश्रेणी द्रव्यकौं कारणभूत जो अपकर्षण भागहार तिनिके अधिक अधिक विशुद्धताका निमित्तकरि असंख्यातगुणा घाटिपना है तातैं तिस गुणश्रेणीद्रव्यकैं असंख्यातगुणा अनुक्रमकी प्रसिद्धता है। भावार्थ--श्रावकादि दशस्थानकनिविषैं विशुद्धता अधिक अधिक है तातैं जो पूर्वस्थानविषैं अपकर्षण भागहारका प्रमाण था ताके असंख्यातवें भाग उत्तर स्थानविषैं अपकर्षण भागहारका प्रमाण जानना। सो जेता भागहार घटता होइ तेता लब्धराशिका प्रमाण अधिक होइ। तातैं इहां लब्धराशि जो गुणश्रेणीका द्रव्य सो भी क्रमतैं असंख्यात गुणा हो है। बहुरि गुणश्रेणी आयामका काल तातैं विपरीत उल्टा अनुक्रम धरै है

सोई कहिए है--'समुद्घात जिनकौं आदि देकरि विशुद्ध मिथ्यादृष्टि पर्यंत गुणश्रेणी--आयामका काल क्रमकरि संख्यातगुणा संख्यातगुणा है' समुद्घात जिनका गुणश्रेणी आयामकाल अंतर्मुहूर्तमात्र है तातैं स्वस्थानजिनका गुणश्रेणी आयामकाल संख्यातगुणा है तातैं क्षीणमोहका संख्यातगुणा है। ऐसें ही क्रमतें पीछेतैं क्षपकश्रेणी-वाले आदिविषें संख्यात संख्यात गुणा जानना। तहां अंतविषैं बहुतवार संख्यातगुणा भया तौ भी करण परिणाम संयुक्त विशुद्ध मिथ्यादृष्टिकैं गुणश्रेणी आयामका काल अंतर्मुहूर्तमात्र ही है अधिक नाहीं! काहेतें? जातैं अंतर्मुहूर्तके भेद बहुत हैं। तहां जघन्य अंतर्मुहूर्त एक आवली प्रमाण है सो सर्वतैं स्तोक है। बहुरि यातैं एक समय अधिक आवलीतैं लगाइ एक एक समय बधता मध्यम अंतर्मुहूर्त होइ। अंतका उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त एक समय घाटि दोय घटिकारूप मुहूर्त प्रमाण है। तहां ताके उच्छ्वास तीन हजार सातसै तेहत्तरि अर एक उच्छ्वासकी आवली संख्यात यातैं दोयवार संख्यातगुणी आवली प्रमाण उत्कृष्ट मुहूर्त है। बहुरि--'आदी अंते सुद्धे वट्टिहदे रूवसंजुदे ठाणे' इस सूत्रकरि आवलीमात्र जघन्य अंतर्मुहूर्तकौं दोयवार संख्यात गुणित आवली प्रमाण उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्तविषैं घटाइ वृद्धिका प्रमाण एक समयका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तामैं एक और जोडे जो प्रमाण होइ तितने अंतर्मुहूर्तके भेद संख्यात आवली प्रमाण हो हैं॥ ६७ ॥ आगैं ऐसें कर्मसहित जीवनिका गुणस्थानकनिका आश्रय लीएं स्वरूप अर तिस तिस कर्मकी निर्जराका द्रव्य वा काल आयामका प्रमाण ताकौं निरूपणकरि अब निर्जरे हैं सर्व कर्म जिनकरि ऐसे जे सिद्धपरमेष्ठी तिनिका स्वरूपकौं अन्यमतके विवादका निराकरण लीएं गाथा दोयकरि कहैं हैं---

अट्ठवियकम्मवियला सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥ ६८ ॥

अष्टविधकर्मविकलाः शीतीभूता निरंजना नित्याः ।
अष्टगुणाः कृतकृत्याः लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥ ६८ ॥

जी० प्र०–न केवलं उक्तगुणस्थानवर्तिन एव जीवाः संति सिद्धा अपि–स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धिसंपन्नमुक्तजीवा अपि संति। ते कथंभूताः ? अष्टविधकर्मविकला अनेकप्रकारोत्तरप्रकृतिगर्भाणां ज्ञानावरणाद्यष्टविधमूलप्रकृतिकर्मणां–

मोहो खाइयसम्मं केवलणाणं च केवलालोयं ।
हणदि हु आवरणदुगं अणंतविरियं हणेदि विग्घंतु ॥
सुहुमं च णामकम्मं हणेदि आऊ हणेदि अवगहणं ।
अगुरुलहुगं गोदं अव्वावाहं हणेइ वेयणियं ॥

इत्यष्टगुणप्रतिपक्षाणां प्रक्षयेण विकलाः निष्प्रतिपक्षा मुक्ता इत्यर्थः। अनेन संसारिजीवस्य मुक्तिर्नास्तीति याज्ञिकमतं, सर्वदा कर्ममलैरस्पृष्टत्वेन सदा मुक्त एव सदैवेश्वर इति सदाशिवमतं च अपास्तं। पुनः कथंभूत : ? शीतीभूताः सहजशरीरागंतुकमानसादिविविधसांसारिकदुःखवेदनापरितापपरिक्षयेण सुनिर्वृत्ता इत्यर्थः। अनेन मुक्तौ आत्मनः सुखाभावं वदन् सांख्यमतमपाकृतं। पुनः कथंभूताः ? निरंजनाः–अभिनवास्रवरूपकर्ममलरूपांजनान्निष्क्रांताः इत्यर्थः। अनेन मुक्तात्मनः पुनः कर्माजनसंसर्गेण ससारोऽस्तीति वदन् मस्करीदर्शनं प्रत्याख्यातं। पुनः कथभूताः ? नित्या यद्यपि प्रतिसमयवर्त्यर्थपर्यायैः परिणतसिद्धा उत्पादव्ययौ स्वस्मिन् कुर्वंतोऽपि विशुद्धचैतन्यसामान्यरूपद्रव्याकारान्वयमाहात्म्यात् सर्वकालाश्रिताव्ययत्वात् ते नित्यतां न जहतीत्यर्थः। अनेन प्रतिक्षणं विनश्वरचित्पर्याया एव एकसंतानवर्तिनः परमार्थतो नित्यद्रव्यं नेति वदंतीति बौद्धप्रत्यवस्था प्रतिव्यूढा। पुनः कथंभूताः ? अष्टगुणाः-क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्यसौक्ष्म्यावगाहागुरुलघुकाव्याबाधत्वनामाष्टगुणयुता इत्युपलक्षणं तेन तदनुसार्यनंतानंतगुणानां तेष्वेवांतर्भाव इत्यर्थः, अनेन ज्ञानादिगुणानामत्यंतोच्छित्तिरात्मनो मुक्तिरिति वदन्नैयायिकवैशेषिकाभिप्रायः प्रत्युक्तः। पुनः कथंभूताः ? कृतकृत्याः कृतं--निष्ठापितं, कृत्यं सकलकर्मक्षयतत्कारणानुष्ठानादिकं यैस्ते कृतकृत्याः। इत्यनेन ईश्वरः सदा मुक्तोऽपि जगन्निर्मापणे कृतादरत्वेनाकृतकृत्य इति वददीश्वरसृष्टिवादाकूतं निराकृतं। पुनः कथंभूता. ? लोकाग्रनिवासिनः--लोक्यंते जीवादय. पदार्था अस्मिन्निति लोकः, एवंविधलोकत्रयसन्निवेशाग्रे तनुवातप्रांते निवासिनः स्थास्नवः। यद्यपि कर्मक्षयक्षेत्रादुपर्येव कर्मक्षयानंतरं तथागमनस्वाभाव्यात् ते गच्छंति तथापि लोकाग्रत ऊर्ध्वगमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावान्न तदुपरि इतीदं लोकाग्रनिवासित्वमेव युक्तं तेषां, अन्यथा लोकालोकविभागाभावः प्रसज्यते। अनेन आत्मनः ऊर्ध्वगमनस्वाभाव्यात् मुक्ताव-

स्थायां क्वचिदपि विश्रामाभावात् उपर्युपरि गमनमिति वदन्मांडलिकमतं मत्यस्तं ॥ ६८ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा अष्टविधकर्मविकलत्वादीनां सप्तविशेषणानां प्रयोजनं प्रदर्शयंति—

मं० प्र०—सिद्धिः—अनतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिः, सिद्धिरस्ति एषामिति सिद्धाः मुक्तजीवाः ईदृशा भवंति । कथंभूताः ? अष्टविधकर्मविकलाः—अष्टविधानि मूलप्रकृतिभेदेन अष्टप्रकाराणि कर्माणि—ज्ञानावरणादीनि, विकलानि विगतप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशांशानि प्रच्युतस्वरूपाणि येषा ते अष्टविधकर्मविकलाः मयूरव्यंसकादित्वात् पूर्वनिपातविपर्ययः । पुनरपि कथंभूताः ? शतिभूताः पूर्वं ससारावस्थाया अशीताः—भवदुःखतापतप्ताः पश्चान्मोक्षावस्थाया शीताः—भवदुःखतापविगमादनतसुखामृतानुभवजातशैत्याः भूताः शीतीभूताः । पुनरपि कीदृशाः ? निरंजनाः - मिथ्यादर्शनादिबंधहेतुविनाशात् अभिनवास्रवत्कर्मांजनरहिताः, अंजन कज्जलमिव अनंतज्ञानादिविशुद्धात्मस्वभावमालिन्यहेतुत्वात्, अजन—ज्ञानावरणादि कर्म ततो निष्क्राता निरंजनाः, पुनरपि किंविशिष्टाः ? नित्याः—यद्यपि पर्यायार्थिकनयात् प्रतिसमयं विशुद्धकेवलज्ञानादिपरिणामरूपार्थपर्यायोत्पादविनाशसंभवस्तथापि द्रव्यार्थिकनयप्राधान्यात् स्वपरावभासकाखंडगुणमंडलीमडितचिद्द्रव्यध्रौव्यपरिणतत्वात् नित्याः—अविचालितस्वभावाः, पुनरपि कीदृग्भूताः ? अष्टगुणाः—अष्टौ क्षायिकसम्यक्त्वकेवलज्ञानदर्शनानतवीर्यपरमसौक्ष्म्यावगाहागुरुलघुत्वाव्याबाधत्वनामानो गुणाः आत्मद्रव्यसहभाविनो धर्माः येषां सति ते अष्टगुणाः । पुनरपि कीदृग्विधा ? कृतकृत्याः—कृतानि निष्पादितानि, कृत्यानि—प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिगुणश्रेणिनिर्जरादीनि अयोगकेवलिचरमसमयवर्तिशुक्लध्यानानिवर्तितचरमनिषेकविपाकपर्यंतानि कार्याणि यैस्ते कृतकृत्याः । कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षात्पर सिद्धपरमेष्ठिना किंचिदपि कार्यांतरं नास्ति केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनरूपः परिणामः सिद्धाना स्वभाव एव न तु कृत्यं । पुनरपि कथंभूताः ? लोकाग्रनिवासिनः—लोकस्य षड्द्रव्यसंघातसंस्थानविशेषस्य, अग्रे उपरितनतनुवातभागे निवसंति—तिष्ठति लोकात् परं गतिहेतुधर्मास्तिकायाभावात् ऊर्ध्वं न गच्छंतीत्येवं शीलाः लोकाग्रनिवासिनः । यद्यप्यात्मनः ऊर्ध्वगमनस्वभावोऽस्ति तथापि तत्सहकारिसन्निधिमपेक्ष्यैव तद्गतिपरिणामो युक्तः । यथा मत्स्यानां जलसन्निधानेनैव गतिपरिणामः । तेषां जलादुत्प्लवनमपि जलावष्टंभजलसंस्कारवशेनैव भवति तत्संस्कारक्षये पुनरुपर्युत्प्लवनाभाव एव ॥ ६८ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः अष्टविधकर्मविकलत्वादीनां सप्तविशेषणानां प्रयोजनं प्रदर्शयंति—

स०चं०—केवल कहे जे गुणस्थानवर्ती जीव तेई नाहीं है सिद्ध कहिये अपने आत्मस्वरूपकी प्राप्ति रूप लक्षण धरैं जो सिद्धि ताकरि संयुक्त मुक्त जीव भी लोकविषैं हैं। ते कैसे हैं? अष्टविधकर्मविकलाः कहिये अनेक प्रकार उत्तर प्रकृतिरूप भेद जिनविषैं गर्भित ऐसे जो ज्ञानावरणादिक आठ प्रकार कर्म आठ गुणनिके प्रतिपक्षी तिनिका सर्वथा क्षयकरि प्रतिपक्षीरहित भए हैं ऐसे आठ कर्म आठ गुणनिके प्रतिपक्षी हैं सो कहे हैं। उक्तं च—

मोहो खाइय सम्मं केवलणाणं च केवलालोयं ।
हणदि उ आवरणदुगं अणंतविरियं हणेदि विग्घं तु ॥

सुहमं च णामकम्मं हणेदि आऊ हणेदि अवगहणं ।
अगुरूलहुगं गोदं अव्वावाहं हणेइ वेयणियं ॥

इनिका अर्थ–मोहकर्म क्षायिक सम्यक्त्वकौं घातै है। केवलज्ञान अर केवलदर्शनकौं आवरणछिक जो ज्ञानावरण दर्शनावरण सो घातै है। अनंतवीर्यकौं विघन जो अंतराय कर्म सो घातै है। सूक्ष्मगुणकौं नाम कर्म घातै है। आयुकर्म अवगाहनाकौं घातै है। अगुरुलघुकौं गोत्र कर्म घातै है। अव्याबाधकौं वेदनीयकर्म घातै है। ऐसैं आठ गुणनिके प्रतिपक्षी आठ कर्म जानने। इस विशेषणकरि जीवकै मुक्ति नाहीं है ऐसा मीमांसक मत बहुरि सर्वदा कर्ममलनिकरि स्पर्शा नाही तातैं सदाकाल मुक्त ही है सदा ईश्वर है ऐसा सदाशिव मत सो निराकरण कीया है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? शीतीभूता कहिये जन्ममरणादिरूप सहज दुःख अर रागादिकतैं निपज्या शरीर दुःख अर सर्पादिकतैं उपज्या आगंतुक दुःख अर आकुलतादिरूप मानसदुःख इत्यादि नानाप्रकार संसारसंबंधी दुख तिनकी जो वेदना सोई भया आतप ताका सर्वथा नाशकरि शीतल भए हैं सुखी भये हैं। इस विशेषणकरि मुक्तिविषैं आत्माके सुखका अभाव है ऐसैं कहता जो सांख्यमत सो निराकरण कीया है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? निरंजनाःकहिये नवीन आस्रवरूप जो कर्ममल सो ही भया अंजन ताकरि रहित हैं। इस विशेषणकरि मुक्ति भए पीछैं बहुरि कर्म अंजनका संयोगकरि संसार हो है ऐसैं कहता जो सन्यासी मत सो निराकरण कीया है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? नित्याः कहिये यद्यपि समय समयवर्ती अर्थपर्यायनिकरि परिणमए सिद्ध अपने विषैं उत्पाद व्ययकौं करै हैं तथापि विशुद्ध चैतन्य स्वभावका सामान्य भाव रूप जो द्रव्यका आकार सो अन्वयरूप है भिन्न न होइ है ताके माहात्म्यतैं सर्वलोक विषैं अविनाशीपणाका आश्रित हैं तातैं ते सिद्ध नित्यपनांकौ नाहीं छोडै हैं इसविशेषणकरि क्षण क्षण विनाशीक चैतन्यपर्याय ते एक संतानवर्ती हैं। परमार्थतैं कोई नित्य द्रव्य नांही है। ऐसैं कहता जो बौद्धमतीकी प्रतिज्ञा सो निराकरण करी है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? अष्टगुणाः कहिए क्षायिक सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वीर्य सूक्ष्मत्व अवगाहन अगुरुलघु अव्याबाध नाम धारक जे आठ गुण

तिंनिकरि संयुक्त हैं। सो यहु विशेषण उपलक्षणरूप है तातैं तिनि गुणनिके अनुसारी अनंतानंत गुणनिका तिन हीं विषै अंतर्भूतपना जानना। इस विशेषणकरि ज्ञानादि गुणनिका अत्यंत अभाव होना सोई आत्माकैं मुक्ति है ऐसैं कहता जो नैयायिक अर वैशेषिक मतका अभिप्राय सो निराकरण कीया है।

बहुरि कैसे है सिद्ध? कृतकृत्याः कहिए संपूर्ण कीया है कृत्य कहिए सकल कर्मका नाश अर ताका कारण चारित्रादिक जिनकरि ऐसे है। इस विशेषणकरि ईश्वर सदा मुक्त है तथापि जगतका निर्मापणविषैं आदर कीया है तीहिकरि कृतकृत्य नाही वाकैं भी किछू करना है ऐसैं कहता जो ईश्वर सृष्टिवादका अभिप्राय सो निराकरण कीया है। बहुरि कैसे है सिद्ध? लोकाग्रनिवासिनः कहिए विलोकिए हैं जीवादि पदार्थ जाविषैं ऐसा जो तीन लोक ताका अग्रभाग जो तनुवातका भी अंत तीहिविषै निवासी हैं तिष्ठै हैं। यद्यपि कर्म क्षय जहां कीया तिस क्षेत्रतैं ऊपरि ही कर्मक्षयके अनंतरि ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं ते गमन करैं हैं तथापि लोकका अग्रभाग पर्यंत ऊर्ध्वगमन हो है। गमनका सहकारी धर्मास्तिकायके अभावतैं तहांते ऊपरि गमन न करैं हैं ऐसैं लोकका अग्रभागविषैं ही निवासीपणा तिन सिद्धनिके युक्त है अन्यथा कहिए तौ लोक अलोकके विभागका अभाव होइ इस विशेषणकरि आत्माके ऊर्ध्वगमन स्वभावतैं मुक्त अवस्थाविषैं कहीं भी विश्रामके अभावतैं ऊपरि ऊपरि गमन हूवा ही करै है ऐसैं कहता जो मांडलिक मत सो निराकरण कीया है ॥ ६८ ॥ आगैं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव ते 'अष्टविधकर्मविकलाः' इत्यादि सात विशेषणनिका प्रयोजन दिखावै हैं—

सदसिवसंखो मक्कडि बुद्धो णैयाइयो य वेसेसी।
ईसरमंडलिदंसणविदूसणट्ठं कयं एदं ॥ ६९ ॥

सदाशिवः सांख्यः मस्करी बुद्धो नैयायिकश्च वैशेषिकः।
ईश्वरमंडलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतत् ॥ ६९ ॥

जी० प्र०—सदाशिवसांख्यमस्करिबुद्धनैयायिकवैशेषिकेश्वरमंडलिदर्शनविदूषणार्थं कृतमेतद्विशेषणं—

सदाशिवः सदाकर्म सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितं ।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिं ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो यौगश्च मन्यते ।
कृतकृत्यं तमीशानो मंडली चोर्द्ध्वगामिनं ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानप्ररूपणा नाम प्रथमोधिकारः ।

म० प्र०—सदाशिवसांख्यमस्करिबुद्धनैयायिकवैशेषिकेश्वरमंडलिदर्शनाविदूषणार्थं एतदष्टविधकर्मविकलाः, इत्यादि गाथासूत्रमाचार्यैः कृत तथाहि सदाशिवः सदामुक्तः शश्वत्कर्ममलैरस्पृष्ट इति सदाशिवदर्शनं तन्निराकरणार्थं अष्टविधकर्मविकलाः सिद्धा इत्युक्तं । पूर्वं बद्धस्यैव मुक्तत्वव्यवहारात् शृंखलादिबद्धचौरादिमुक्तत्वव्यवहारवत् । अबद्धस्य आकाशादेर्मुक्तत्वव्यवहाराभावाच्च युक्तिसिद्धो बंधपूर्वको मोक्षः । अस्त्यात्मा अनादिबद्धस्तत्क्षयान्मोक्षभागीत्यागमप्रसिद्धेश्च । मिथ्यादर्शनादिभ्यो बंधः सम्यग्दर्शनादिभ्यो मोक्ष इति तर्कशास्त्रेषु समर्थितत्वाच्च । 'प्रकृतेरेव बंधमोक्षौ तत्फलदुःखसुखे च नात्मनः' इति सांख्यदर्शनं तद्विदूषणार्थं शीतीभूता इति विशेषणं । आत्मन एव मिथ्यादर्शनादिपरिणतस्य कर्मबंधस्तत्फलदुःखरूपभवतापः सम्यग्दर्शनादिपरिणतस्य मोक्षस्तत्फलसुखरूपशीतीभावश्च युक्त्यागमाभ्यां प्रसिद्ध इति सकलास्तिकवादिसंमतत्वात् । मुक्तस्य पुनः कर्मांजनसंश्लेषात्संसारसमागमोऽस्तीति मस्करिदर्शनं तन्निराकरणार्थं निरंजना इति विशेषणं, सकलद्रव्यभावकर्मविप्रमुक्तस्य विशुद्धस्वभावस्य सिद्धपरमेष्ठिनः कर्मबंधहेतुमिथ्यादर्शनादिभावकर्माभावात्तत्कार्यस्य बंधस्यात्यंतमसंभवात् अन्यथा मोक्षोऽपि निर्हेतुकः स्यादिति संसाराभावप्रसंगात् । 'ज्ञानक्षणसंतानाभावो मोक्षः' इति बुद्धदर्शनं तन्निराकरणार्थं नित्या इति विशेषणं उपादेयस्य मोक्षस्य ज्ञानसंतानक्षयरूपत्वेन तत्कारणतपोयोगादियत्नस्य अनिष्टफलस्य कर्तुमशक्यत्वात्, अपूर्वलाभमुद्दिश्य जनः सर्वोऽपि प्रवर्तते नहि मूलविनाशाय प्रेक्षावान् कश्चिदीहते इति लोकेऽपि प्रसिद्धत्वात् । तर्कशास्त्रेषु जीवादिद्रव्यस्यानादिनिधनत्वसमर्थनाच्च । बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराणां नवानामात्मविशेषगुणानामत्यंतमुच्छित्तिर्मुक्तिरिति नैयायिकवैशेषिकदर्शनं तन्निराकरणार्थं अष्टगुणा इति विशेषणं स्वाभाविककेवलज्ञानादिगुणात्मकत्वात् परमात्मनो गुणनाशे तद्भिन्नस्य द्रव्यस्यापि नाशप्रसंगात् मुक्तौ ज्ञानादिगुणाभावे परमात्मन आकाशादिवदचेतनत्वप्रसंगाच्च । चेतनायाः स्वपरसंवेदनस्वभावत्वात् स्वगुणनाशरूपमोक्षाय तपोयोगादियत्नस्यानिष्टफलस्य तत्वविदामयुक्तत्वाच्च । ईश्वरः परमात्मा सदा मुक्तः सन्नपि तनुकरणभवनादिलक्षणं कृत्यं कुर्वन्नास्ते इतीश्वरसृष्टिवाददर्शननिराकरणार्थं 'कृतकृत्याः' इति विशेषणं । त्रिकालगोचरानंतद्रव्यगुणपर्यायरूपं लोकालोकतत्त्वं सर्वं जानन् पश्यन्नभ्युपगच्छन्ननंतसुखामृतमनुभवन्ननंतवीर्योऽपि सिद्धपरमेष्ठी परमात्मा निर्धूतसकलकल्मषतया विशुद्धस्वभावो निर्मलरत्नदर्पण इव लोकमूर्ध्नि प्रकाशमानो बहिः कृत्यं किंचिदपि न करोत्येव प्रयोजनाभावात् आत्मकृत्यस्य कर्मनिर्जरादेस्तत्कारणानुष्ठानस्य च कृतत्वाच्च । जगत्परिणामस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यरूपः कालं बहिर्निमित्तमाश्रित्य स्वतएव भवतीति परमात्मनः तत्कर्तृत्वकथनं विचारचतुरचेतसां चेतस्ययुक्तमेव प्रतिभाति तर्कशास्त्रेषु जगत्सृष्टिवादनिराकरणस्य बहुधा समर्थितत्वाच्च । सकलकर्मविप्रमुक्तः

परमात्मा ऊर्ध्वगमनस्वभावत्वात् कचिदप्यव्यास्थितः सन्नूर्ध्वं गच्छत्येवेति मंडलिदर्शननिराकरणार्थं लोकाग्रनिवासिन इति विशेषणं जीवपुद्गलानां गमनसहकारिकारण धर्मास्तिकायो यावत्क्षेत्रमभिव्याप्य तिष्ठति तावदेव गमन ततोवहिर्गमनाभावः, लोकश्च तावानेव। गमननिवृत्तिरूपस्थितिहेतुरधर्मास्तिकायोऽपि तावानेव तत कारणात् सकलकर्मविप्रमुक्तः परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी ऊर्ध्वगमनस्वभावत्वाल्लोकाग्रपर्यंतमूर्ध्वं गत्वा तत्रैव तिष्ठति ततो वहिर्गमनसहकारिधर्मास्तिकायाभावात् न गच्छति अन्यथा सहकारिकारणाभावेऽपि सर्वाकाशसर्वगतसहकारिकारणेऽपि सर्वेषा जीवपुद्गलानां सर्वाकाशमभिव्याप्य गमनागमनप्रसगात् लोकालोकविभागाभावो दुर्निवारः स्यात्, न चैवं, लोकालोकविभागस्य सर्वसम्मतत्वात्। 'ऊर्ध्वं व्रज्यास्वभावात्समयमुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रे' इतिपरमागमप्रसिद्धत्वाच्च लोकाग्रनिवासित्व सिद्धानां सिद्धं ॥ ६९ ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारपचसंग्रहवृत्तौ गुणस्थानप्ररूपणा नाम प्रथमोधिकारः।

स० चं०—सदाशिवमत सांख्यमत मस्करी सन्यासीमत बौद्धमत नैयायिकमत वैशेपिकमत ईश्वरमत मंडालिमत ए जो दर्शन कहिए मत तिनिके दूषनेके अर्थि ए पूर्वोक्त विशेषण कीए हैं उक्तं च—

सदाशिवः सदाकर्म सांख्यो मुक्तं सुखोज्झितं।
मस्करी किल मुक्तानां मन्यते पुनरागतिं ॥ १ ॥
क्षणिकं निर्गुणं चैव बुद्धो यौगश्च मन्यते।
कृतकृत्यं तमीशानो मंडली चोर्ध्वगामिनं ॥ २ ॥

इनिके अर्थ—सदाशिव मतवाला सदा कर्मरहित मानै है। सांख्यमतवाला मुक्त जीवकौं सुखरहित मानै है। मस्करी सन्यासी सो मुक्त जीवकैं संसारविषैं बहुरि आवना मानै है। बहुरि बौद्ध अर योग मतवाले क्षणिक अर निर्गुण आत्माकौं मानै हैं। बहुरि ईशान जो सृष्टिवादी सो ईश्वरकौं अकृतकृत्य मानै है। बहुरि मंडलिक आत्माकौं ऊर्ध्वगमन रूप ही मानै हैं। ऐसैं माननेवाले मतनिका पूर्वोक्त विशेषणतैं निराकरणकरि यथार्थ सिद्धपरमेष्ठीका स्वरूप निरूपण कीया ते सिद्ध भगवान आनंदकर्ता होहु।

इति श्रीआचार्य नेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम भाषा टीकाकेविषै जीवकांडविषै कहीं जे बीसप्ररूपणा तिनिविषै गुणस्थान प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा प्रथम अधिकार संपूर्ण भया ॥ १ ॥

अथ जीवसमासप्ररूपणा ॥ २ ॥

जी० प्र०— जित्वा घातीनि कर्माणि लब्धानंतचतुष्टयं ।
विश्वं येन समुद्दिष्टमजितं तं नमाम्यहं ॥ १ ॥

एवं गुणस्थानलक्षणसंख्यादिप्ररूपणानंतरं जीवसमासप्ररूपणामारचयन् निरुक्तिपूर्वकं सामान्येन तल्लक्षणमाह—

म० प्र०— प्रक्षीणघातिकर्माण लब्धानंतचतुष्टय ।
अजितं जितकामादिदोषं वंदे परं गुरु ॥ १ ॥

अथ श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ती जीवसमासप्ररूपणायां तावत्सामान्यप्ररूपणार्थं गाथात्रयमाह—

स० चं०— कर्मघातिया जीति जिन पाय चतुष्टय सार ।
विश्वस्वरूप प्रकाशियो नमौं अजित सुखकार ॥ १ ॥

ऐसैं गुणस्थान संबंधी संख्यादिक प्ररूपणाके अनंतरि जीवसमास प्ररूपणाकौं रचता संता निरुक्तिपूर्वक तिस जीव समासका लक्षण कहै है—

जेहिं अणेया जीवा णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी ।
ते पुण संगहिदत्था जीवसमासात्ति विण्णेया ॥ ७० ॥

यैरनेके जीवा ज्ञायंते बहुविधा अपि तज्जातयः ।
ते पुनः संगृहीतार्था जीवसमासा इति विज्ञेयाः ॥ ७० ॥

जी० प्र०—यैः सदृशपरिणामधर्मैः जीवाः, अनेके—बहवोऽपि, बहुविधाः- बहुप्रकारा अपि तज्जातयः विवक्षितसामान्यक्रोडीकरणादेकत्रानीताः, ज्ञायंते ते धर्माः संगृहीतार्थाः अंतर्भावितव्यक्तयः जीवसमासा इति विज्ञेयाः । जीवाः समस्यंते—संगृह्यन्ते यैः, येषु वा ते जीवसमासा इति निर्वचनात् । अनेन समस्तसंसारिजीवसंग्रहप्रयोजन जीवसमासप्ररूपणं प्रारब्धमिति ज्ञातव्यं । अथवा यैर्धर्मैः जीवा अणेया अज्ञेया अपि कुतः ? बहुविधत्वात् न च नानात्मव्यक्तयःसामस्त्येन केवलज्ञानव्यतिरेकेण गम्यंते अतस्तथा ज्ञातुमशक्या अपि तज्जातयः सैव जाति-

येषां ते तज्जातयः संगृहीतार्थाः ·सम्यक्–सामस्त्येन, गृहीताः--गर्भीकृताः क्रोडीकृता अर्था व्यक्तयो यैस्ते संगृहीतार्थास्ते जीवसमासा इति ज्ञातव्याः। अथवा तज्जातयः--ताश्च जातयश्च तज्जातयः संगृहीतार्थाः -सं सामस्त्येन गृहीताः -गर्भीकृताः क्रोडीकृता अर्था व्यक्तयो यकाभिस्ताः संगृहीतार्था निर्विशेषा न भवंतीत्यर्थः 'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्' इति संगृहीतार्थाभिस्तज्जातिभिः करणभूताभिः जीवाः–प्राणिनः, अनेकेऽपि बहुविधा अपि ज्ञायंते ता जीवसमासा इति ज्ञातव्याः ॥ ७० ॥ अथ जीवसमासोत्पत्तिनिबंधनतल्लक्षणमाह–

म० प्र०---यैः–एकेंद्रियत्वबादरत्वादिभिर्धर्मैः, अनकेऽपि–बहवोऽपि अज्ञेया अपि वा बहुविधा अपि- बहुप्रकारा अपि जीवाः, तज्जातयः विवक्षितसामान्यलक्षिता ज्ञायते–निश्चीयते ते धर्माःसंगृहीतार्था -सक्षिप्तजीवविशेषाः जीवसमासा इति पुनः-गुणस्थानप्ररूपणाया. पश्चात् आगमज्ञैर्विज्ञेयाः-अवबोद्धव्याः॥७०॥

स० चं०–यैः कहिए जिनि समान पर्यायरूप धर्मनिकरि जीवा कहिए जीव है ते अनेके अपि कहिए यद्यपि बहुत हैं बहुविधा कहिए बहुतप्रकार हैं तथापि तज्जातयः कहिए विवक्षित सामान्यभावकरि एकठा करनेतैं एक जातिविषै प्राप्त कीए हुए ज्ञायंते कहिए जानिए ते कहिए ते वे जीव समानपर्यायरूप धर्मसंगृहीतार्थाः कहिए अंतर्भूत करी है अनेक व्यक्ति जिनिकरि ऐसे जीवसमासाः कहिए जीवसमास हैं ऐसैं जानना। भावार्थ–जैसैं एक गऊ जातिविषै अनेक खांडी मुंडी शांवली गऊरूप व्यक्ति सास्नादिमत्त्व समान धर्मकरि अंतर्गर्भित हो हैं तैसैं एक एकेंद्रियत्वादिजातिविषै अनेक पृथ्वी कायादिक व्यक्ति जिनि एकेंद्रियत्वादियुक्त लक्षणनिकरि अंतर्गर्भित करिए तिनिका नाम जीवसमास है। काहेतै ? जातैं 'जीवाः समस्यंते यैर्येषु वा ते जीवसमासाः' जीव हैं ते संग्रहरूप करिए जिनि समानधर्मनिकरि वा जिनि समान लक्षणनिविषै ते वे समानरूप लक्षण जीवसमास हैं ऐसी निरुक्ति हो है इस विशेषणकरि समस्त संसारी जीवनिका संग्रहणरूप ग्रहण करना है प्रयोजन जाका ऐसा जीवसमासका प्ररूपण है सो प्रारंभ कीया है ऐसा जानना अथवा अन्य अर्थ कहै हैं 'जीवा अज्ञेया अपि' कहिए यद्यपि जीव अज्ञात हैं काहेतै ? बहुविधत्वात् कहिए जातैं जीव बहुत प्रकार हैं नानाप्रकार आत्माकी पर्यायरूप व्यक्तितैं समस्तपणांकरि केवलज्ञान विना न जानिये है यातैं सर्वपर्यायरूप जीव जाननेकौं असमर्थपना है तथापि तज्जातयः कहिए सोई एकेंद्रियत्वादिरूप है जाति जिनिकी बहुरि संगृहीतार्थाः कहिए समस्तपणांकरि गर्भित कीए हैं एकठे कीये हैं व्यक्ति जिनिकरि ऐसे जीव हैं तेई जीवसमास है ऐसा जानना। अथवा

अन्य अर्थ कहे हैं-संगृहीतार्थाः कहिए समस्तपणाकरि गर्भितकरी है एकठी करी है व्यक्ति जिनकरि ऐसी तज्जातयः कहिए ते जाति हैं। जातैं विशेषविना सामान्य न होइ। काहेतैं? जातैं ऐसा वचन है-'निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत्' याका अर्थ-विशेषरहित जो सामान्य सो ससाके सींग समान अभावरूप है तातैं संगृहीतार्थ जे वे जाति तिनिका कारणभूत जातिनिकरि जीव प्राणी हैं ते 'अनेकेऽपि' कहिए यद्यपि अनेक हैं बहुविधाअपि कहिए बहुतप्रकार हैं तथापि ज्ञायंते कहिए जानिएं हैं ते वे जाति जीवसमास हैं ऐसा जानना। भावार्थ--जीवसमास शब्दके तीन अर्थ कहे तहां एक अर्थविषैं एकेंद्रियत्वादि समानधर्मनिकौं जीवसमास कहे। एक अर्थविषैं एकेंद्रियादि जीवनिकौं जीवसमास कहे। एक अर्थविषैं एकेंद्रियत्वादि जातिनिकौं जीवसमास कहे ऐसैं विवक्षा भेदकरि तीन अर्थ जानने।७०।आगैं जीवसमासकी उत्पत्तिका कारण बहुरि जीवसमासका लक्षण कहैं हैं--

तसचदुजुगाणमज्झे अविरुद्धेहिं जुदजादिकम्मुदये।
जीवसमासा होंति हु तब्भवसारिच्छसामण्णा ॥ ७१ ॥

त्रसचतुर्युगलानां मध्ये अविरुद्धैर्युतजातिकर्मोदये।
जीवसमासा भवंति हि तद्भवसादृश्यसामान्याः ॥ ७१ ॥

जी० प्र०---त्रसस्थावरौ बादरसूक्ष्मौ पर्याप्तापर्याप्तौ प्रत्येकसाधारणाविति चत्वारि युगलानि। एतासां नामप्रकृतीनां मध्ये यथासंभवमविरुद्धप्रकृतिभिः सह मिलितस्य एकेंद्रियादिजातिनामकर्मणः उदये सति प्रादुर्भूताः तद्भवसादृश्यसामान्यरूपजीवधर्मा जीवसमासा भवंति। तद्भवसामान्य नाम ते विवक्षितद्रव्यगतपर्यायास्त्रिकालगोचरा भवंति--विद्यंते अस्मिन्निति तद्भवसामान्यं-ऊर्ध्वतासामान्यमित्यर्थः। तच्च नानाकाले एकव्यक्तिगतान्वयरूपं भवति। द्रव्याश्रितपर्यायोन्वयः। स्थासकोशकुशूलघटकपालिकादिषु मृदिव अन्विताकारद्रव्यं तेनोपलक्ष्यते। सादृश्यसामान्यानि तिर्यक्सामान्यानीत्यर्थः। एककाले नानाव्यक्तिगतोऽन्वयस्तिर्यक्सामान्यं सदृशपरिणामाः खंडमुडशबलशाबलेयादिविविधव्यक्तिषु गोत्वादिवत्। तथा पृथिवीकायिकादिविविधजीवेषु एकेंद्रियत्वादिधर्माः सदृशपरिणामरूपा जीवसमासा भवंतीति खलु तात्पर्यं। पुनः तेषु चतुर्षु युगलेषु एकेंद्रियजातिनामकर्मणा सह त्रसनामकर्मोदयोविरुद्धः। द्वींद्रियादिजातिनामकर्मचतुष्टयेन सह स्थावरसूक्ष्मसाधा-

शणनामकर्मोदयो विरुद्धः इतरकर्मोदयः अविरुद्धः । तथा त्रसनामकर्मणा सह स्थावरसूक्ष्मसाधारणनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । स्थावरनामकर्मणा सह त्रसनामकर्मोदय एक एव विरुद्धः शेषकर्मोदय अविरुद्धः । बादरनामकर्मणा सह सूक्ष्मनामकर्मोदयो विरुद्धः, शेषप्रकृत्युदयः अविरुद्धः । सूक्ष्मनामकर्मणासह त्रसबादरप्रत्येकनामकर्मोदयोविरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः। पर्याप्तनामकर्मणा सह अपर्याप्तनामकर्मोदयो विरुद्धः शेषसर्वकर्मोदयः अविरुद्धः । अपर्याप्तनामकर्मोदयेन सह पर्याप्तनामकर्मोदयोविरुद्धः शेषसर्वकर्मोदयः अविरुद्धः । प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयेन सह साधारणशरीरनामकर्मोदयोविरुद्धः शेषकर्मोदयः अविरुद्धः । साधारणशरीरनामकर्मणा प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयः, त्रसनामकर्मोदयश्च विरुद्धः एवमविरुद्धप्रकृत्युदयजनितसदृशपरिणामधर्माः जीवसमासा इति ज्ञातव्या भवंति ॥ ७१ ॥ अथ संक्षेपेण जीवसमासस्थानानि प्ररूपयति---

म० प्र०---त्रसादीनां चतुर्णां युगानां-युगलानां त्रसस्थावरौ बादरसूक्ष्मौ पर्याप्तापर्याप्तौ प्रत्येकसाधारणौ, इति चत्वारि युगलानि, एतेषां मध्ये अविरुद्धैः यथासंभवं सहावास्थितपर्यायकारिभि त्रसनामादिकर्मभि , युतस्य संयुक्तस्य एकेंद्रियादिजातनामकर्मण उदये सति तद्भवसादृश्यसामान्याः जीवसमासाः स्फुट भवंति । तेषु भवं विद्यमानं तद्भवं, तद्भवं सादृश्यसामान्य येषा ते तद्भवसादृश्यसामान्याः विवक्षितैकजीवस्थितपर्याप्तबादरैकेंद्रियत्वादिसदृशधर्मयुक्ता इत्यर्थः । अथवा तद्भवानि च तानि सादृश्यसामान्यानि च तानि तद्भवसादृश्यसामान्यानि तान्येव जीवसमासा इत्युच्यंते तद्विवक्षितं जीवादिवस्तु भवति-अस्ति, येन तत्तद्भवं द्रव्यरूपं ऊर्ध्वतासामान्यमित्यर्थ. । तद्भवसहचरितानि तद्भवानि इत्युपचारशब्दोऽय । परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वतासामान्यं । अर्थातरगतः सदृशपरिणामस्तिर्यक्सामान्यमिति सामान्यद्वयस्य लक्षणं ज्ञातव्यं ॥ ७१ ॥

स० चं०--त्रस स्थावर बहुरि बादर सूक्ष्म बहुरि पर्याप्त अपर्याप्त बहुरि प्रत्येक साधारण ऐसैं नामकर्मकी प्रकृतिनिके च्यारि युगल हैं तिनिकेविषैं यथासंभव परस्पर विरोधरहित जे प्रकृति तिनिकरि सहित मिल्या ऐसा जो एकेंद्रियादि जातिरूप नाम कर्मका उदय ताकौं होते संतैं प्रकट भए ऐसे तद्भवसादृश्य सामान्यरूप जीवकैं धर्म ते जीवसमास हैं तहां तद्भव सामान्यका अर्थ कहैं हैं--विवक्षित एकद्रव्यविषैं प्राप्त जो त्रिकालसंबंधी पर्याय ते भवंति कहिए विद्यमान जाविषैं होंइ सो तद्भवसामान्य है । ऊर्ध्वता सामान्यका नाम तद्भव सामान्य है । तहां अनेक काल संबंधी पर्यायका ग्रहण होइ तहां ऊर्ध्वतासामान्य कहिए तातैं कालके समय हैं ते ऊपरि ऊपरि क्रमतैं प्रवर्तैं हैं युगपत् चौडाई रूप नाहीं प्रवर्तैं हैं जातैं इहां नानाकालविषैं एकविवक्षित व्यक्तिविषैं प्राप्त जे पर्याय तिनिका अन्वयरूप ऊर्ध्वता समान्य है सो एक द्रव्यके आश्रय जो पर्याय सो अन्वयरूप है जैसैं स्थास कोश

कुशूल घट कपालक आदिविषैं माटी अन्वयरूप आकार धरैं द्रव्य है। भावार्थ—माटी क्रमतैं इतने पर्यायरूप परिणया। प्रथम स्थास कहिए पिंडरूप भया बहुरि कोश कहिए वाके ऊपरि ऊभा कीया पिंडरूप भया बहुरि कुशूल कहिए हाथ अगूंठनिकरि कीया आकाररूप भया। बहुरि घट कहिए घडारूप भया बहुरि कपाल कहिए फूट्या घडारूप भया ऐसैं एक माटीरूप व्यक्तिविषैं अनेककालवर्ती पर्याय हो हैं। तिनि सवनिविषैं माटीपना पाइए है। ताकरि सर्वत्र माटी द्रव्य अवलोकिए है। ऐसैं इहां भी अनेक कालवर्ती अनेक अवस्थानिविषैं एकेंद्रिय आदि जीव द्रव्यरूप व्यक्ति सो अन्वयरूप द्रव्य जानना सो याका नाम तद्भवसामान्य वा ऊर्ध्वतासमान्य है। तींहि तद्भवसामान्यकरि उपलक्षणरूप संयुक्त ऐसैं जो सादृश्यसामान्य कहिए तिर्यक्सामान्य ते जीवसमास हैं। सो एककालविषैं नाना व्यक्तिनिकौं प्राप्तभया ऐसा एक जातिरूप अन्वय सो तिर्यक् सामान्य है। याका अर्थ यहु-जो समान धर्मका नाम सादृश्य सामान्य है जैसैं खांडी मूडी सांवरी इत्यादि नानाप्रकारकी व्यक्तिनिविषैं गऊपणा समान धर्म है। भावार्थ—एककालवर्ती खांडी मूडी सांवली इत्यादि अनेक वैल तिनिविषैं वैलपना समान धर्म है सो यहु सादृश्य सामान्य है। तैसैं एककालवर्ती पृथ्वीकायिक आदि नानाप्रकार जीवनिविषैं एकेंद्रिय युक्तपना आदि धर्म हैं ते समान परिणामरूप हैं तातैं इनिकौं सादृश्यसामान्य कहिए ऐसैं जे सादृश्यसामान्य तेई जीवसमास हैं ऐसा तात्पर्य जानना। बहुरि तिनि च्यारि युगलनिकी आठ प्रकृतिनिविषैं एकेंद्रिय जातिनाम कर्मसहित त्रसनामकर्मका उदय विरोधी है। बहुरि द्वींद्रियादिक जातिरूप नामकर्मकी च्यारि प्रकृतिनिका उदयसहित स्थावर सूक्ष्म साधारण नाम प्रकृतिनिका उदय विरोधी है अन्यकर्मका उदय अविरोधी है। बहुरि तैसैं ही त्रसनाम कर्मसहित स्थावर सूक्ष्म साधारण नामकर्मका उदय विरोधी है अन्य कर्मका उदय अविरोधी है। बहुरि स्थावर नाम कर्मसहित त्रसनामकर्मका उदय एकही विरोधी है अवशेष कर्मका उदय अविरोधी है। बहुरि वादरनाम कर्मसहित सूक्ष्म नामकर्मका उदय विरोधी है अवशेष प्रकृतिनिका उदय अविरोधी है। बहुरि सूक्ष्मनामकर्मसहित त्रसवादरनामकर्मका उदय विरोधी है अवशेष कर्मका उदय अविरोधी है।

र्याप्त नाम कर्मसहित अपर्याप्त नाम कर्मका उदय विरोधी है अवशेष सर्वकर्मका उदय अविरोधी है। बहुरि अपर्याप्त नामकर्मका उदय सहित पर्याप्त नामकर्मका उदय विरोधी है अवशेष सर्वकर्मका उदय अविरोधी है। बहुरि प्रत्येकशरीरनामकर्मका उदयसहित साधारण शरीरनामकर्मका उदय विरोधी है अवशेष कर्मका उदय अविरोधी है। बहुरि साधारण शरीरनामकर्मका उदयसहित प्रत्येकशरीरनामकर्मका उदय अर त्रसनामकर्मका उदय विरोधी है अवशेष कर्मका उदय अविरोधी है। ऐसैं अविरोधी प्रकृतिनिका उदयकरि निपजे जे सदृश परिणामरूप धर्म ते जीवसमास हैं ऐसा जानना ॥ ७१ ॥ आगैं संक्षेपकरि जीवसमासके स्थानकनिकौं प्ररूपैं हैं–

बादरसुहमेइंदियवितिचउरिंदियअसण्णिसण्णी य ।
पज्जत्तापज्जत्ता एवं ते चोद्दसा होंति ॥ ७२ ॥

वादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिनश्च ।
पर्याप्तापर्याप्ता एवं ते चतुर्दश भवंति ॥ ७२ ॥

जी० प्र०---एकेंद्रियस्य वादरसूक्ष्माविति द्वौ, विकलत्रयस्य द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिया इति त्रयः, पंचेंद्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिनाविति द्वौ एवं सप्तजीवभेदाः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताभ्यां गुणिताः संक्षेपेण चतुर्दशजीवसमासा भवंति ॥ ७२ ॥ अथ विस्तरजीवसमासान् प्ररूपयति---

म० प्र०---एकेंद्रिया जीवाः वादराः--स्थूलाः, सूक्ष्माश्च। द्वींद्रियास्त्रींद्रियाश्चतुरिंद्रियाः असंज्ञिसंज्ञिपचेंद्रियाश्च वादरा एव पुनरेते सप्तविधा अपि प्रत्येकं पर्याप्ताः अपर्याप्ताश्च भवंति इत्येव द्वाभ्यां गुणितत्वप्रकारेण चतुर्दशजीवसमासा भवंति । तदालापक्रमोयं--पर्याप्तवादरैकेंद्रियत्वरूपसदृशधर्मयुक्ताः अनंतजीवा पर्याप्तवादरैकेंद्रियाः एको जीवसमासः । अपर्याप्तवादरैकेंद्रियत्वरूपसदृशधर्मयुक्ताः अनंता जीवाः अपर्याप्तवादरैकेंद्रियाः इति द्वितीयो जीवसमासः पर्याप्तसूक्ष्मैकेंद्रियत्वरूपसदृशधर्मयुक्ता अनंता जीवा पर्याप्तसूक्ष्मैकेंद्रियाः, इति तृतीयो जीवसमासः । अपर्याप्तसूक्ष्मैकेंद्रियाः अनंता जीवाः इति चतुर्थो जीवसमासः । एवं पर्याप्तवादरद्वींद्रिया असंख्येया जीवाः पंचमो जीवसमासः इत्याद्युत्तरेऽपि जीवसमासा नेतव्याः ॥७२॥ अथ विशेषजीवसमासप्ररूपणार्थमाह--

सं० चं०—एकेंद्रियके वादर सूक्ष्म ए दोय भेद बहुरि विकलत्रयके द्वींद्रिय १ त्रींद्रिय १ चतुरिंद्रिय १ ए

तीन भेद बहुरि पंचेंद्रियके संज्ञी असंज्ञी ए दोय भेद ऐसैं सात जीव भेद भए ये एक एक भेद पर्याप्त अपर्याप्त रूप हैं। ऐसैं संक्षेपकरि चौदह जीवसमास हो हैं ॥ ७२ ॥ आगैं विस्तारतैं जीवसमासकौं प्ररूपैं हैं—

भूआउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा ।
पत्तेयपदिट्ठिदरा तसपण पुण्णा अपुण्णदुगा ॥ ७३ ॥

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदस्थूलेतराः ।
प्रत्येकप्रतिष्ठेतराः त्रसपंच पूर्णा अपूर्णद्विकाः ॥ ७३ ॥

जी० प्र०—भूकायिकाप्कायिकतेजस्कायिकवायुकायिकाः वनस्पतिकायिकेषु नित्यनिगोदसाधारणचतुर्गतिनिगोदसाधारणाविति षड्भेदाः । प्रत्येकं बादरसूक्ष्माविति द्वादश । प्रत्येकशरीरवनस्पतिकायिकस्य प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठिताविति द्वौ । द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रिया इति त्रयः । पंचेंद्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाविति द्वौ एवं सर्वे मिलित्वा एकोनविंशतिजीवसमासा भवंति । एते सर्वेऽपि प्रत्येकं पर्याप्तकाः निर्वृत्त्यपर्याप्तका लब्ध्यपर्याप्तकाश्च भवतीति विस्तरतो जीवसमासा सप्तपंचाशद्भेदा भवंति ॥ ७३ ॥ अथैषां सप्तपंचाशज्जीवभेदानां अवांतरविशेषप्रदर्शनार्थं स्थानाद्यधिकारचतुष्टयमाह----

मं० प्र०—भूकायिकाः अप्कायिकाः तेजस्कायिकाः वायुकायिकाः, वनस्पतिकायिकाः द्विधा--साधारणशरीराः प्रत्येकशरीराश्चेति । तत्र साधारणशरीराः निगोदाः ते च द्विविधाः—नित्यनिगोदाश्चतुर्गतिनिगोदाश्चेति एव भूकायिकादयः षडपि प्रत्येकं द्विधा स्थूलेतरे—बादराः सूक्ष्माश्च एवं द्वादश । प्रत्येकशरीराः प्रतिष्ठितप्रत्येका अप्रतिष्ठितप्रत्येकाश्चेति द्विधा एते चतुर्दश स्थावराः । त्रसाः पंच द्वींद्रियाः, त्रींद्रियाः, चतुरिंद्रियाः, असंज्ञिपंचेंद्रियाः, संज्ञिपंचेंद्रियाश्चेति । प्रत्येकशरीरादयः सप्तापि बादरा एव एव एकान्नविंशतिर्विशेषजीवसमासाः । ते च पूर्णाः पर्याप्ताः, अपूर्णद्विकाः द्विधा-अपर्याप्ताः—निर्वृत्त्यपर्याप्ताः लब्ध्यपर्याप्ताश्चेति ॥ ७३ ॥ अथोत्तरोत्तरविशेषजीवसमासप्ररूपणोपायमाह---

सं० चं०—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजः कायिक, वायुकायिक, अर वनस्पतिकायिकनिविषैं दोय भेद नित्यनिगोद साधारण, चतुर्गतिनिगोद साधारण ए छह भेद भए ते एक एक भेद बादर सूक्ष्मकरि दोय दोय भेदरूप हैं ऐसैं बारह भए। बहुरि प्रत्येकशरीररूप वनस्पती कायिकके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ए दोय भेद हैं।

बहुरि विकलेंद्रियके वेइंद्री, तेइंद्री, चौइंद्री, ए तीन भेद बहुरि पंचेंद्रियके संज्ञी पंचेंद्रिय असंज्ञी पंचेंद्रिय ए दोय भेद ए सर्व मिलि सामान्य अपेक्षा उगणीस जीव समास हो हैं। बहुरि ए सर्व ही प्रत्येक पर्याप्तक निर्वृत्ति अपर्याप्तक लब्धि अपर्याप्तक ऐसें तीन तीन भेद लीएं हैं तातैं विस्तारतैं जीवसमास सत्तावन भेद संयुक्त हो है ॥ ७३ ॥ आगें इनि सत्तावन जीवभेदनिके गर्भित विशेष दिखावनेके अर्थि स्थानादिक च्यारि अधिकार कहैं हैं—

ठाणेहिं वि जोणीहिं वि देहोग्गाहणकुलाण भेदेहिं ।
जीवसमासा सव्वे परूविदव्वा जहाकमसो ॥ ७४ ॥

स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनकुलानां भेदैः ।
जीवसमासाः सर्वे प्ररूपितव्या यथाक्रमशः ॥ ७४ ॥

जी० प्र०——स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनैरपि कुलानां भेदैरपि सर्वे ते जीवसमासाः, यथाक्रमं–प्रवचनपरिपाट्यनतिक्रमेण प्ररूपयितव्या भवंति ॥ ७४ ॥ अथ यथोद्देशस्तथा निर्देश इति न्यायेन प्रथमोद्दिष्टजीवसमासस्थानाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह——

मं० प्र०——स्थानैरपि--एकद्वित्र्यादिविकल्पैः, योनिभिरपि--उत्पत्त्याधारैः, देहावगाहनैः- सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकशरीरजघन्यावगाहनं घनांगुलासंख्येयभागप्रमितमादिं कृत्वा महामत्स्यशरीरसंख्यातघनागुलमात्रोत्कृष्टावगाहनपर्यंतैः, कुलानां भेदैः--शरीरभेदोत्पत्तिकारणनोकर्मवर्गणानां प्रकारैः, सर्वे उत्तरोत्तरविशेषविशिष्टा जीवसमासाः यथाक्रमं प्ररूपितव्याः । अस्माभिर्वक्ष्यमाणाः स्थानयोन्यवगाहनकुलकोटीराश्रित्य तत्र तत्र तदनुसारेण विशेषजीवसमासाः प्रवचनपट्टुभिर्व्याख्यातृभिः शिष्येभ्यः प्रतिपादयितव्या इत्यर्थः । अपिशब्दद्वयं स्थानैरपि योनिभिरपि देहावगाहनैरपि कुलाना भेदैरपीति प्रत्येकसमुच्चयसूचनार्थं । न केवलं पूर्वोक्तप्रकारैरेव जीवसमासाः प्ररूप्यंते अपि तु स्थानैरपीति समुच्चयार्थः प्रथमोऽपिशब्दः । इतरः पुनः पूर्वपूर्वसमुच्चयार्थः ॥ ७४ ॥ अथ स्थानान्याश्रित्य जीवसमासप्ररूपणार्थं गाथात्रयमाह–

सं० चं०–स्थानकनिकरि बहुरि योनि भेदनिकरि बहुरि देहकी अवगाहनाके भेदनिकरि बहुरि कुलभेदनिकरि सर्व ही ते जीवसमास यथाक्रम सिद्धांतपरिपाटीका उलंघन जैसैं न होइ तैसैं प्ररूपण करने योग्य हैं ॥७४॥ आगें जैसैं उद्देश कहिए नामका क्रम होइ तैसैं ही निर्देश कहिए स्वरूपनिर्णय क्रमकरि करना इस न्यायकरि प्रथम कह्या जो जीवसमासविषैं स्थानाधिकार ताकौं गाथा च्यारिकरि कहैं हैं–

सामण्णजीव तसथावरेसु इगिविगलसयलचारिमदुगे ।
इंदियकाये चरिमस्स य दुतिचदुपणगभेदजुदे ॥ ७५ ॥

सामान्यजीवः त्रसस्थावरयोः एकविकलसकलचरमद्विके ।
इंद्रियकाययोः चरमस्य च द्वित्रिचतुःपंचभेदयुते ॥ ७५ ॥

जी० प्र–तत्रोपयोगलक्षणसामान्यजीवे द्रव्यार्थिकनयेन विषयीकृते जीवसमासस्थानमेकं, संग्रहनयगृहीतार्थभेदकव्यवहारनयविवक्षायां संसारिजीवस्य प्रथमभेदौ त्रसस्थावरावधिकृतौ इति जीवसमासस्थाने द्वे, पुनरन्यप्रकारेण व्यवहारनयविवक्षायां एकेंद्रियविकलेंद्रियसकलेंद्रियजीवानधिकृत्य जीवसमासस्थानानि त्रीणि एवमग्रेऽपि सर्वत्र प्रकारांतरैर्व्यवहारनयविवक्षा ज्ञातव्या । तद्यथा–एकेंद्रियविकलेंद्रियौ तथा अंत्यस्य सकलेंद्रियस्य असंज्ञिसंज्ञिभेदौ च मिलित्वा जीवसमासस्थानानि चत्वारि तथा एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदजीवसमासस्थानानि पंच । तथा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायिकभेदात् जीवसमासस्थानानि षट् । तथा पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिकायिकाः पंच अंत्यस्य च त्रसकायस्य विकलेंद्रियसकलेंद्रियौ द्वाविति मिलित्वा जीवसमासस्थानानि सप्त । तथा स्थावरकायाः पंच विकलेंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाश्च त्रय· मिलित्वा जीवसमासस्थानान्यष्टौ । तथा स्थावरकायाः पच द्वित्रिचतुःपचेंद्रियाश्च चत्वार मिलित्वा जीवसमासस्थानानि नव । तथा स्थावरकायाः पंच द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाश्च पंच मिलित्वा जीवसमासस्थानानि दश ॥ ७५ ॥

म० प्र०–सामान्येन सग्रहात्मकद्रव्यार्थिकनयप्राधान्यात् सर्वससारिजीवाना संसारित्वलक्षणसदृशपरिणामेनैकत्वमुपचर्य कथंचिदेकः संसारिजीवसमासः इति प्रथमं स्थानं, मुक्तजीवानामपि मुक्तत्वलक्षणसदृशपरिणामेनैकत्वमुपचर्य कथचिदेको मुक्तजीवः, संसारिमुक्तजीवाना जीवत्वलक्षणसदृशपरिणामेनैकत्वमुपचर्य कथंचिदेको जीव इति स्याद्वादिभिरभिधीयते । पुनर्व्यवहारनयप्राधान्यात् यः प्रागुक्त एको जीव इति स संसारी मुक्तश्चेति भेदलक्षणयोगाद् द्विधा भिद्यते तथा संसारिजीवश्च य एक इति प्रागुक्त स त्रसः स्थावरश्चेति तयोर्भिन्नयो· सतोर्द्वितीय जीवसमासस्थानं । इद्रियमाश्रित्य स्थावरः एकेंद्रियः, त्रसभेदौ विकलेंद्रियः सकलेंद्रियश्चेति द्वौ इति तृतीय जीवस्थान । तेषु चरमस्य सकलेंद्रियस्य भेदौ असंज्ञिपचेंद्रियः सज्ञिपचेंद्रियश्चेति द्वौ इति चतुर्थं स्थानं । इंद्रियेषु विवक्षितेषु एकेंद्रियो द्वींद्रियस्त्रींद्रियश्चतुरिंद्रियः पचेंद्रियः इति पचम स्थानं । कायमाश्रित्य भूकायिकः अप्कायिकः तेजस्कायिक· वायुकायिकः वनस्पतिकायिकः त्रसकायिकश्चेति षष्ठं स्थान । तेषु चरमस्य त्रसकायिकस्य भेदौ विकलेंद्रिय· सकलेंद्रियश्चेति द्वौ इति सप्तमं स्थान । तस्यैव चरमस्य भेदाः विकलेंद्रियः असंज्ञिपंचेंद्रियः सज्ञिपचेंद्रियश्चेति त्रयः इत्यष्टमं स्थान । तस्यैव चरमस्य भेदाः–द्वींद्रियाः त्रींद्रियाः चतुरिंद्रियाः पंचेंद्रियाश्चेति चत्वार इति नवमं स्थानं । तस्यैव चरमस्य भेदाः द्वीद्रियादयस्त्रयः असज्ञिपचेंद्रियः सज्ञिपचेंद्रियश्चेति पच इति दशम स्थानं ॥ ७५ ॥

सं० चं०—तहां उपयोग लक्षण धरैं सामान्यमात्र जीवद्रव्य सो द्रव्यार्थिक नयकरि ग्रहण कीएं जीवसमासका स्थान एक है। बहुरि संग्रहनयकरि ग्रह्या जो अर्थ ताका भेदकरणहारा जो व्यवहारनय ताकी विवक्षाविषैं संसारी जीवके मुख्यभेद त्रस स्थावर ते अधिकाररूप हैं। ऐसैं जीवसमासके स्थान दोय हैं। बहुरि अन्यप्रकार व्यवहारनयकी विवक्षा होतें एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय, सकलेंद्रिय जीवनिकौं अधिकार रूपकरि जीवसमासके स्थान तीन हैं। बहुरि ऐसैंही आगे भी सर्वत्र अन्य अन्य प्रकारनिकरि व्यवहार नयकी विवक्षा जाननी सो कहे हैं—एकेंद्रिय, विकलेंद्रिय दोय तौ ए, अर सकलेंद्रिय जो पंचेंद्रिय ताके असंज्ञी संज्ञी ए दोय भेद ऐसैं मिलि जीवसमासके स्थान च्यारि हो हैं। बहुरि तैसैंही एकेंद्रिय १ वेइंद्री २ तेइंद्री ३ चौइंद्री ४ पंचेंद्री ५ भेदतैं जीवसमासके स्थान पांच हैं। बहुरि तैसैं ही पृथ्वी १ अप् २ तेज ३ वायु ४ वनस्पति ५ त्रस ६ कायिकभेदतै जीवसमासके स्थान छह हैं। बहुरि तैसैंही पृथ्वी १ अप् २ तेज ३ वायु ४ वनस्पति ५ ए पांच स्थावर अर अन्य त्रसकायके विकलेंद्रिय ६ सकलेंद्रिय ७ ए दोयभेद ऐसैं मिलि जीवसमासके स्थानक सप्त हो हैं। बहुरि तैसैं ही पृथ्वी आदि स्थावरकाय पांच, विकलेंद्रिय ६ असंज्ञी पंचेंद्रिय ७ संज्ञी पंचेंद्रिय ८ ए तीन मिलिकरि जीवसमासके स्थान आठ हो हैं। बहुरि स्थावरकाय पांच अर वेंद्री ६ तेइंद्री ७ चौंद्री ८ पंचेंद्री ९ ए च्यारि मिलिकरि जीवसमासके स्थान नव हो हैं। बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय पांच ५ अर वेंद्री ६ तेंद्री ७ चौंद्री ८ असंज्ञी पंचेंद्री ९ संज्ञी पंचेंद्री १० ए पांच मिलिकरि जीवसमासके स्थान दश हो हैं॥ ७५॥

पणजुगले तससहिये तसस्स दुतिचदुरपणगभेदजुदे।
छद्दुगपत्तेयह्मि य तसस्स तियचदुरपणगभेदजुदे॥ ७६॥

पंचयुगले त्रससहिते त्रसस्य द्वित्रिचतुःपंचकभेदयुते।

षड्द्विकप्रत्येके च त्रसस्य त्रिचतुःपंचभेदयुते ॥ ७६ ॥

जी० प्र०–तथा स्थावरकायाः पंचापि बादरसूक्ष्माः त्रसकायश्चेति जीवसमासस्थानान्येकादश । तथा स्थावरकाया दश विकलेंद्रियसकलेंद्रियौ चेति जीवसमासस्थानानि द्वादश । तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य विकलासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियास्त्रयः इति जीवसमासस्थानानि त्रयोदश । तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्चत्वारश्चेति जीवसमासस्थानानि चतुर्दश । तथा स्थावरकाया दश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाः पंच चेति जीवसमासस्थानानि पंचदश । तथा पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाः साधारणवनस्पतेर्नित्यनिगोदचतुर्गतिनिगोदौ चेति षडपि बादराःसूक्ष्माश्च प्रत्येकवनस्पतिश्चेति स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य विकलासंज्ञिसंज्ञिनस्त्रयश्चेति जीवसमासस्थानानि षोडश । तथा स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्चत्वारश्चेति जीवसमासस्थानानि सप्तदश । तथा स्थावरकायास्त्रयोदश त्रसकायस्य द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाःपंच चेति जीवसमासस्थानान्यष्टादश ॥ ७६ ॥

मं० प्र०––पंचानां स्थावरकायिकानां युगलेषु बादरसूक्ष्माविति युग्मेषु त्रसकायिकसहितेषु विवक्षितेषु एकादशजीवसमासा इत्येकादशं स्थानं । तेषु मध्ये त्रसस्य भेदौ विकलेंद्रियसकलेंद्रियौ द्वौ इति द्वादशं स्थानं । तस्यैव त्रसस्य भेदा विकलासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियास्त्रय इति त्रयोदशं स्थानं । तस्यैव त्रसस्य भेदाः द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाश्चत्वार इति चतुर्दशं स्थानं । तस्यैव त्रसस्य भेदाः द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाः पंचेति पंचदशं स्थानं । षण्णां भूवप्तेजोवायुकायिकनित्यचतुर्गतिनिगोदानां युगलेषु बादरसूक्ष्मद्वयेषु प्रत्येकवनस्पतिकायिके त्रसस्य भेदेषु विकलासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियेषु त्रिषु युतेषु षोडशं स्थानं । तस्यैव त्रसस्य भेदेषु द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियेषु चतुर्षु युतेषु सप्तदशं स्थानं । तस्यैव त्रसस्य भेदेषु द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियेषु पंचसु युतेषु अष्टादशं स्थानं ॥ ७६ ॥

सं० चं –तैसैंही स्थावरकाय पांच ते प्रत्येक बादर सूक्ष्मभेद संयुक्त ताके दश अर त्रस काय ए मिलि जीवसमासके स्थान ग्यारह हो हैं। बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय दश अर विकलेंद्रिय सकलेंद्रिय मिलिकरि जीवसमासके स्थान बारह हो हैं। बहुरि तैसैं ही स्थावरकाय दश अर त्रसकायके विकलेंद्रिय संज्ञी असंज्ञी पंचेंद्रिय ए तीन मिलिकरि जीवसमासके स्थान तेरह हो हैं। बहुरि स्थावरकाय दश अर त्रसकायके बेंद्री तेंद्री चौंद्री पंचेंद्री ए च्यारि भेद मिलि जीवसमासके स्थान चौदह हो हैं। बहुरि तैसैं ही स्थावरकायके दश बहुरि त्रसकायके बेंद्री, तेंद्री, चौंद्री, असंज्ञी पंचेंद्री, संज्ञी पंचेंद्री ए पांच मिलिकरि जीवसमासके स्थान पंद्रह हो हैं। बहुरि तैसैं ही पृथिवी, अप्, तेज, वायु, अर साधारण वनस्पतिके नित्यनिगोद इतरनिगोद, ए दोय भेद मिलि छह भए ते ए जुदे जुदे बादर सूक्ष्म भेद लीएं हैं ताके बारह अर एक प्रत्येकवनस्पती ऐसैं स्थावरकाय तेरह अर त्रसकाय विकलें-

द्रिय असंज्ञी पंचेंद्रिय संज्ञी पंचेंद्रिय ए तीनि मिलि जीवसमासके स्थान सोलह हो हैं। बहुरि तैसें ही स्थावरकायके तेरह अर त्रसकायके वे इंद्री ते इंद्री चौं इंद्री पंचेंद्री ए च्यारि मिलि जीवसमासके स्थान सतरह हो हैं। बहुरि स्थावरकायके तेरह अर त्रसकायके वेंद्री तेंद्री चौंद्री असंज्ञी पंचेंद्री संज्ञी पंचेंद्री ए पांच मिलि जीवसमासके स्थान अठारह हो हैं ॥ ७६ ॥

सगजुगलह्मि तसस्स य पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा।
एयादुणवीसोत्ति य इगिबितिगुणिदे हवे ठाणा॥ ७७ ॥

सप्तयुगले त्रसस्य च पंचभंगयुतेषु भवंति एकोनविंशतिः।
एकादेकोनविंशतिरिति च एकद्वित्रिगुणिते भवेयुः स्थानानि ॥ ७७ ॥

जी० प्र०-तथा पृथिव्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदाः षडपि वादराः सूक्ष्माश्च प्रत्येकवनस्पतेः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियाश्चेति जीवसमासस्थानान्येकान्नविंशतिः। एवमुक्तानि सामान्यजीवरूपैकस्थानादीनि एकोनविंशतिभेदस्थानपर्यंतानि एकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्गुणितानि यथाक्रमं एकोनविंशतिभेदस्थानानि अष्टात्रिंशद्भेदस्थानानि सप्तपंचाशद्भेदस्थानानि च भवंति ॥ ७७ ॥ अथ एक-द्वित्रिगुणकारकारणं प्ररूपयति--

म० प्र०--सप्ताना भूवप्तेजोवायुकायिकनित्यचतुर्गतिनिगोदानां वादरसूक्ष्मयुग्मेषु प्रत्येकस्य च प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितयुग्मे त्रसस्य भंगेषु भेदेषु द्वित्रिचतुरसंज्ञिसंज्ञिपंचेंद्रियेषु पचसु युतेषु एकान्नविंश स्थान। एव सर्वाण्यपि स्थानानि एकान्नविंशतिर्भवति। जीवसमासा अपि तावंत एव एकाद्येकान्नविंशतिस्थानपर्यंतानि सर्वाणि स्थानानि एकेन द्वाभ्यां त्रिभिश्च गुणितानि यथाक्रमं एकान्नविंशतिः अष्टात्रिंशत् सप्तपंचाशज्जीवस्थानानि भवंति ॥७७॥ अथ एकद्वित्रिगुणकारकारणं प्ररूपयति-

सं० च०—तैसें ही पृथ्वी अप् तेज वायु नित्यनिगोद इतरनिगोद ए छह वादर सूक्ष्म ताके वारह अर प्रत्येक वनस्पतिके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित ए दोय अर त्रसके वे इंद्रिय ते इंद्रिय चतुरिंद्रिय असंज्ञि पंचेंद्रिय संज्ञिपंचेंद्रिय ए पांच मिलि जीवसमासके स्थान उगणीस हो हैं। ऐसें कहे जे ऐ सामान्य जीवरूप एक स्थानकौं

आदि देकरि उगणीस भेदरूप स्थानपर्यंत स्थान तिनिकौं एक दोय तीनिकरि गुणें अनुक्रमतैं अंतविषैं उगणीस भेदस्थान अड़तीस भेदस्थान सत्तावनभेदस्थान हो हैं ॥ ७७ ॥

सामण्णेण तिपंती पढमा विदिया अपुण्णगे इदरे।
पज्जत्ते लद्धिअपज्जत्तेऽपढमा हवे पंती ॥ ७८ ॥

सामान्येन त्रिपंक्तयः प्रथमा द्वितीया अपूर्णके इतरस्मिन्।
पर्याप्ते लब्ध्यपर्याप्तेऽप्रथमा भवेत् पंक्तिः ॥ ७८ ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तैकाद्येकोत्तरैकान्नविंशतिविकल्पस्थानानां तिस्रः पंक्तयोऽधोध कर्तव्याः। तासु प्रथमा पंक्तिः पर्याप्तापर्याप्तादिविवक्षामकृत्वा सामान्यालापेन गुणयितव्या। द्वितीयापंक्तिर्द्वाभ्यां पर्याप्तापर्याप्तभेदाभ्यां गुणयितव्या। अप्रथमा–तृतीया पंक्तिः त्रिभिःपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदैर्गुणयितव्या। द्वितीयतृतीयपंक्त्योरप्रथमत्वेऽपि द्वितीयायाःकंठोक्तत्वेन अप्रथमा इत्यनेन पारिशेष्यात्तृतीयैव गृहीता। तत्र सामान्यप्रथमपंक्तेः मुह १ भूमि १९ जोग २० दले १० पदगुणिदे १०। १९। लब्धयुतिः १९० द्वितीयपंक्तेः मुह २ भूमी ३८ जोग ४० दले २० पदगुणिदे २०। १९ युतिः ३८०। तृतीयपक्तेः मुह ३ भूमी ५७ जोग ६० दले ३० पदगुणिदे ३०×१९ युतिः ५७० ॥ ७८। अथैकेंद्रियविकलत्रयजीवसमासाश्रितपंचेंद्रियगतजीवसमासस्थान् विशेषान् गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—एतेषा प्रागुक्तानां एकान्नविंशतिजीवसमासाना तिस्र पंक्तयः कर्तव्याः। तासां तिसृणां पंक्तीनां मध्ये प्रथमा पंक्ति सामान्येन पर्याप्तापर्याप्तभेदमकृत्वा जीवसमाससामान्यमाश्रित्य एकेन आत्मप्रमाणेन गुणिता एकान्नविंशतिप्रमितैव। द्वितीया पंक्तिः पूर्णके पर्याप्तके, इतरस्मिन् अपर्याप्तके च वर्तते इति द्वाभ्या गुणिता अष्टात्रिंशत्प्रमिता भवति। पुनरप्रथमा–तृतीया पक्तिः पर्याप्ते लब्ध्यपर्याप्ते निवृत्यपर्याप्ते च वर्तते इति त्रिभिर्गुणिता चत्वारिंशत्प्रमिता भवति। लब्धिशब्देनैव 'नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तते' इति न्यायात् लब्ध्यपर्याप्तको गृह्यते। अपर्याप्तशब्देन अवशिष्टो निवृत्यपर्याप्तको गृह्यते। द्वितीयतृतीययोरप्रथमत्वेऽपि द्वितीयाया उक्तत्वात् अवशिष्टा तृतीया पक्तिरेवाप्रथमाशब्देन गृह्यते ॥७८॥ अथ उत्तरोत्तरजीवसमासविशेषप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

सं० च०—पूर्वैं कहे जे एककौं आदि देकरि एक एक बधते उगणीस भेदरूप स्थान तिनिकी तीनिपंक्ति नीचैं नीचैं करनीं। तिनिविषैं प्रथमपंक्ति तौ पर्याप्तादिककी विवक्षाकौं न करि सामान्य आलापकरि गुणनी। बहुरि दूसरी पंक्ति जे पर्याप्त अपर्याप्त भेद तिनिकरि गुणनी। बहुरि अप्रथमा कहिए तीसरी पंक्ति सो तीन जे

पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त भेद तिनिकरि गुणनी। इहां दूसरी तीसरी दोय पंक्ति अप्रथमा हैं तथापि दूसरी पंक्ति कांठेही कही तींहिकरि अप्रथमा ऐसैं शब्दकरि अवशेष रही पंक्ति तीसरी सोई ग्रहण करी है। भावार्थ--एककौं आदिदेकरि उगणीस पर्यंत जीवसमासके स्थान कहे तिनिका सामान्यरूप ग्रहणकीएं एक आदि एक एक बधते उगणीस पर्यंत स्थान हो हैं। इहां सामान्यविषैं पर्याप्तादि भेद गर्भित जानने। बहुरि तिनही एक एकके पर्याप्त अपर्याप्त भेद कीएं दोयकौं आदि देकरि दोय दोय बधते अडतीस पर्यंत स्थान हो हैं। इहां अपर्याप्तविषैं निर्वृति अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त दोऊ गर्भित जानने। बहुरि तिनही एक एकके पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त भेद कीयें तिनिकौं आदि देकरि तीन तीन बधते सत्तावन पर्यंत स्थान हो हैं इहां जुदे जुदे भेद जानने। अब कहे भेदनिकी यंत्रमें रचना अंकनिकरि लिखिये है---

जीवसमासके स्थानकनिका यंत्र।

सामान्य अपेक्षा स्थान	पर्याप्त अपर्याप्त अपेक्षा स्थान	पर्याप्त निर्वृ-त्तिअपर्याप्त लब्धिअप-र्याप्त अपेक्षा स्थान
१	२	३
२	४	६
३	६	९
४	८	१२
५	१०	१५
६	१२	१८
७	१४	२१
८	१६	२४
९	१८	२७
१०	२०	३०
११	२२	३३
१२	२४	३६
१३	२६	३९
१४	२८	४२
१५	३०	४५
१६	३२	४८
१७	३४	५१
१८	३६	५४
१९	३८	५७
१९०	३८०	५७०

अब इनि पंक्तिनिका जोड देनेके अर्थि करण सूत्र कहिए है-'मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि' मुख आदि अर भूमि अंत इनिकौं जोड़ैं आधाकरि पद जो स्थान प्रमाण तींहिकरि गुणैं सर्वपदधन हो है। सो प्रथम पंक्तिविषैं मुख येक अर भूमी उगणीस जोडैं वीस ताका आधा दश पद उगणीसकरि गुणैं येकसौ निवै सर्वजोड हो है। बहुरि द्वितीय पंक्तिविषैं मुखदोय, भूमी अड़तीस जोडे चालीस आधा कीएं वीस पद उगणीसकरि गुणे तीनसै असी सर्व जोड हो है। बहुरि तीसरी पंक्तिविषैं मुख तीन, भूमी सत्तावन जोडे साठि आधा कीएं तीस पद उगणीसकरि गुणै पांचसै सत्तरि सर्व जोड हो है ॥ ७८ ॥ आगैं एकेंद्रिय विकलत्रय जीव समासनिकरि मिले हूए ऐसे पंचेंद्रियसंबंधी जीवसमास स्थानके विशेषनिकौं गाथा दोयकरि कहे हैं—

इगिवण्णं इगिविगले असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं ।
गब्भभवे समुच्छे दुतिगं भोगथलखेचरे दो दो ॥ ७९ ॥
अज्जवमलेच्छमणुए तिदुभोगभूमिजे दो दो ।
सुरणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु अडणउदी ॥८०॥

एकपंचाशत् एकविकले असंज्ञिसंज्ञिगतजलस्थलखगानां ।
गर्भभवे सम्मूर्छे द्वित्रिकं भोगस्थलखेचरे द्वौ द्वौ ॥ ७९ ॥
आर्यम्लेच्छमनुष्ययोस्त्रयो द्वौ भोगकुभोगभूमिजयोर्द्वौ द्वौ ।
सुरनिरयोर्द्वौ द्वौ इति जीवसमासा हि अष्टानवतिः ॥ ८० ॥

जी० प्र०—एकेंद्रियसप्तयुगलद्वित्रिचतुरिंद्रियाः पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इत्येकेंद्रियविकलेंद्रियेषु एकपंचाशत् । तिर्यग्गतौ कर्मभूमिजलस्थलखचरास्त्रयोऽपि प्रत्येकमसंज्ञिसंज्ञिनौ भूत्वा षट्, ते च गर्भजेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमेषु च पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्ता इति

त्रिंशत् । भोगभूमिसंज्ञिगर्भजस्थलखचरौ पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तौ भूत्वा चत्वारः, एवं तिर्यक्पंचेंद्रियस्य चतुस्त्रिंशत् । कर्मभूमौ मनुष्याणां आर्यखंडे गर्भजेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तौ संमूर्छिमे तु लब्ध्यपर्याप्त एवेति त्रयः, म्लेच्छखंडे गर्भजेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तौ द्वौ, भोगकुभोगभूम्योर्गर्भजे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः, मिलित्वा मनुष्यगतौ नव । देवनारकौपपादिकयोः प्रत्येक पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्ताविति चत्वारः । एवं चतुर्गतिषु पचेंद्रियजीवसमासस्थानानि सप्तचत्वारिंशत् । एतानि च एकविकलेंद्रियाणामेकपचाशता मिलित्वा अष्टानवतिर्भवंतीति सूत्रतात्पर्यं । अत्र विवक्षया स्थावराणां द्वाचत्वारिंशत् ४२, विकलेंद्रियाणां नव ९, तिर्यक्पंचेंद्रियाणां चतुस्त्रिंशत् ३४, देवानां द्वौ २, नारकाणां द्वौ २, मनुष्याणां नव ९ । सर्वाणि मिलित्वा अष्टानवतिः ९८। अमूनि संसारिणामेव न मुक्तानां विशुद्धचैतन्यनिष्ठज्ञानदर्शनोपयोगयुक्तत्वेन तेषां त्रसस्थावरभेदाभावात् संसारिणस्त्रसस्थावरा इति सूत्रसद्भावात्॥ ७९। ८० ॥ अथोक्तेभ्यो विशेपजीवसमासकथकमपराचार्योक्तं गाथासूत्रत्रयमाह–

मं० प्र०—एकद्वित्रिचतुरिंद्रियसंबंधिषु सप्तदशसु जीवसमासेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तैस्त्रिभिर्गुणितेषु एकपंचाशदुत्तरविशेषजीवसमासा भवंति तत्र सर्वत्र अप्रतिहतवृत्त्या पर्याप्तादित्रयस्य संभवात् । तज्जीवाना सर्वेषा समूर्छनजन्मत्वात् । तिर्यग्गतौ, कर्मभूमौ जलचरस्थलचरखचराणा, असज्ञिपचेंद्रियाणा संज्ञिपंचेंद्रियाणां च गर्भभवेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तौ द्वौ द्वौ जीवसमासौ तत्र लब्ध्यपर्याप्तकासभवात् इति द्वादशजीवसमासाः । तत्रैव सम्मूर्छिमेषु पर्याप्तादित्रयसद्भावात् त्रयस्त्रयो जीवसमासाः इत्यष्टादश मिलित्वा कर्मभूमौ त्रिंशत् । भोगभूमौ स्थलचरखचराणां संज्ञिपंचेंद्रियाणा गर्भभवेषु द्वौ द्वौ पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तकौ इति चत्वारः, तत्र जलचराणा विकलेंद्रियाणां असज्ञिना सम्मूर्छिमाना चाभावात्, इति तिर्यग्गतौ पचेंद्रियजीवसमासाः चतुस्त्रिंशत् ॥७९॥

म० प्र०—मनुष्यगतौ कर्मभूमौ आर्यखडे पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तास्त्रयो जीवसमासाः । म्लेच्छखडे लब्ध्यपर्याप्तकाभावात् द्वौ जीवसमासौ । भोगभूमौ कुभोगभूमौ च द्वौ द्वौ जीवसमासौ तत्रापि लब्ध्यपर्याप्तकाभावात् । एवं मनुष्यगतौ मिलित्वा नव । देवगतौ द्वौ । नरकगतौ द्वौ । उभयत्रापि लब्ध्यपर्याप्तकाभावात् । एवं चतुर्गतिषु पंचेंद्रियजीवसमासाः सप्तचत्वारिंशत् प्राक्तनैकविकलेंद्रियजीवसमासैरेकपचाशता सह एतेषु मिलितेषु सर्वजीवसमासाः अष्टानवतिः खलु–स्फुटं परमागमकोविदैर्ज्ञातव्याः ॥ ८० ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा योनिप्ररूपणायां आकारयोनिप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह--

स. चं. पृथ्वी अप् तेज वायु नित्यनिगोद इतरनिगोदके सूक्ष्म वादर भेदकरि छह युगल अर प्रत्येकवनस्पतीका सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेदकरि एक युगल ऐसैं एकेंद्रियके सात युगल बहुरि वेंद्री तेंद्री चौंद्रीं ए तीन ऐसैं ए सतरह भेद पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त भेदकरि तीन तीन प्रकार हैं ऐसैं एकेंद्रिय विकलेंद्रियनिविषैं इक्यावन भेद भये । बहुरि पंचेंद्रियरूप तिर्यंच गतिविषैं कर्मभूमिके तिर्यंच तीनप्रकार हैं । तहां जे जलविषैं गमनादिकरैं ते जलचर अर जे भूमिविषैं गमनादि करैं ते स्थलचर अर जे आकाशविषै उडना आदि गमनादि करैं ते नभचर तीनों प्रत्येक संज्ञी असंज्ञी भेदरूप हैं तिनिके छह भए । बहुरि ते छहौं गर्भज अर सन्मूर्छन ही हैं । तहां गर्भज-

विषैं पर्याप्त अर निवृत्ति अपर्याप्त ए दोय भेद संभवै हैं तिनिके बारह भए। बहुरि सन्मूर्छनविषैं पर्याप्त निवृत्ति अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त ऐ तीन भेद संभवै हैं तिनिके अठारह भए ऐसैं कर्मभूमियां पंचेंद्रियतिर्यचके तीस भेद भये। बहुरि भोग भूमिविषैं संज्ञी ही हैं असंज्ञी नाहीं। बहुरि स्थलचर अर नभचर ही हैं जलचर नाहीं। बहुरि पर्याप्त निवृति अपर्याप्त ही हैं लब्धि अपर्याप्त नाहीं। तातैं संज्ञी स्थलचर नभचरके पर्याप्त निवृत्यपर्याप्त-भेदकरि च्यारि भए ऐसैं तिर्यंच पंचेंद्रियके चौंतीस भेद भये। बहुरि मनुष्यनिके कर्मभूमिविषैं आर्यखंडविषैं तौ गर्भजके पर्याप्त निवृत्ति अपर्याप्तकरि दोय भेद अर सन्मूर्छनका लब्धि अपर्याप्तरूप एक भेद ऐसैं तीन भए। बहुरि म्लेच्छखंडविषैं गर्भजही हैं ताके पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्तकरि दोय भेद बहुरि भोगभूमि अर कुभोग-भूमि इन दोऊनिविषैं गर्भज ही हैं तिनके पर्याप्त निवृत्ति अपर्याप्तकरि दोय दोय भेद भए च्यारि भेद मिलि-करि मनुष्यगतिविषैं नव भेद भए। बहुरि देवनारकी औपपादिक हैं तिनिके पर्याप्त निवृत्ति अपर्याप्त भेदकरि दोय दोय भेद होई च्यारि भेद ऐसैं च्यारि गतिनिविषैं पंचेंद्रियके जीवसमासके स्थान सैंतालीस हैं। बहुरि ए सैंतालीस अर एकेंद्री विकलेंद्रियके इक्यावन मिलिकरि अठ्याणवै जीवसमास स्थान हो हैं ऐसा सूत्रनिका तात्पर्य जानना। इहां विवक्षाकरि स्थावरनिके बियालीस विकलेंद्रियनिके नव तिर्यंच पंचेंद्रियनिके चौंतीस देवनिके दोय नारकीनिके दोय मनुष्यनिके नव सर्वमिलि अठ्याणवे भए। ऐसैं ए कहे जीवसमासके स्थान ते सं-सारी जीवनिके जानने मुक्तजीवनिके नाहीं हैं। जातैं विशुद्ध चैतन्यस्वरूप ज्ञान दर्शन उपयोगका संयुक्तपनां करि तिन मुक्तजीवनिके त्रस स्थावर भेदनिका अभाव है। अथवा 'संसारिणस्त्रसस्थावराः' ऐसा तत्त्वार्थ सू-त्रविषैं वचन है तातैं ए भेद संसारी जीवनिके ही जानने॥ ७९, ८०॥ अब कहे जे जीवसमास तिनितैं विशेष जीवसमासका कहनहारा अन्य आचार्यकरि कह्या हूवा गाथा सूत्र कहै हैं—

सुद्दखरकुजलतेवा णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा।

पदिठिदरपंचपात्तियवियलतिपुण्णा अपुण्णदुगा ॥ १ ॥
इगिविगले इगिसीदी असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं ।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगतिभोगथलखेचरे दो दो ॥२॥
अज्जसमुच्छिगिगब्भे मलेच्छभोगतियकुणरछपणत्तीससये ।
सुराणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु छहियचारिसयं ॥ ३ ॥

शुद्धखरकुजलतेजोनित्यचतुर्गतिनिगोदस्थूलेतराः ।
प्रतिष्ठितेतरपंचप्रत्येकविकलत्रयः पूर्णाः अपूर्णद्विकाः ॥
एकविकले एकाशीतिः असंज्ञिसंज्ञिगतजलथलखगानां ।
गर्भभवे सम्मूर्च्छे द्वित्रिगा त्रिभोगथलखेचरे द्वौ द्वौ ॥
आर्यसंमूर्छिगर्भे म्लेच्छभोगत्रयकुनरषट्पंचत्रिंशतशतं ।
सुरनिरये द्वौ द्वौ इति जीवसमासाः खलु षडधिकचतुःशती ॥

जी० प्र–मृदादिरूपपृथ्वीकायिकः पाषाणादिरूपखरपृथ्वीकायिकः अप्कायिकः तेजस्कायिकः वायुकायिकः नित्यनिगोदः इतरनिगोदः परनामचतुर्गतिनिगोदश्चेति सप्तापि स्थूलसूक्ष्मभेदाच्चतुर्दश । तृणं वल्ली गुल्मः वृक्षः मूलं चेति पंचापि प्रत्येकवनस्पतयो निगोदशरीरैः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदाद्दश । द्वींद्रियस्त्रींद्रियश्चतुरिंद्रियश्चेति विकलेंद्रियास्त्रयः । एतेषु सप्तविंशतयेकेंद्रियविकलेंद्रियभेदेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादेकाशीतिः । पचेंद्रियेषु कर्मभूम्यसंज्ञिसंज्ञिभेदजलचरस्थलचरखचरेषु षट्स्वपि गर्भजेषु पर्याप्तनिर्वृत्यपर्याप्तभेदाद् द्वादश । तत्संमूर्छिमेषु पर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तलब्ध्यपर्याप्तभेदादष्टादश । उत्कृष्टमध्यमजघन्यभोगभूमीनां संज्ञिस्थलचारखचराविति षट्सु पर्याप्तनिवृत्त्यपर्याप्तभेदाद्द्वादश

**कुम्मुणणयजोणीए तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य।
रामा वि य जायंते सेसाये सेसगजणो दु॥ ८२॥**

कूर्मोन्नतयोनौ तीर्थकराः द्विविधचक्रवर्तिनश्च।
रामा अपि च जायंते शेषायां शेषकजनस्तु॥ ८२॥

जी० प्र—कूर्मोन्नतयोनौ तीर्थंकराः सकलचक्रवर्तिन. अर्धचक्रवर्तिनः प्रतिवासुदेवा बलदेवाश्चोत्पद्यंते अपिशब्दान्नेतरजनाः। शेषवंशप-
त्रयोनौ शेषजना एवोत्पद्यंते न तीर्थंकरादयः॥ ८२॥ अथ जन्मभेदनिर्देशपूर्वकं गुणयोनीर्निर्दिशति--

म० प्र०-कूर्मपृष्ठवदुन्नता योनिः कूर्मोन्नतयोनिः, तस्या तीर्थंकराः, द्विविधचक्रवर्तिनश्च-सकलचक्रवर्तिनः अर्धचक्रवर्तिनश्च वासुदेवप्रतिवासुदेवाः,
रामा अपि च बलदेवा अपि च जायते-उत्पद्यते। शेषायां वंशपत्रयोनौ-वंशपत्रसदृशयोनौ तु पुनः शेषा जना जायते॥ ८२॥ अथ गुणयोनिप्ररूपणार्थं
ग्रंथकारा गाथाषट्कमाहुः--

सं० च०—कूर्मोन्नतयोनिविषैं तीर्थंकर वा सकलचक्रवर्ती वा अर्धचक्रवर्ती नारायण प्रतिनारायण वा बल-
भद्र उपजैं हैं। अपि शब्दकरि अन्य कोई नाहीं उपजै है बहुरि अवशेष वंशपत्र योनिविषैं अवशेष जन उपजैं हैं
तीर्थंकरादि नाहीं उपजैं हैं॥ ८२॥ आगैं जन्म भेदनिका निर्देशपूर्वक गुणयोनिकौं निर्देश करैं हैं—

**जम्मं खलु संमुच्छणगब्भुववादा दु होदि तज्जोणी।
सच्चित्तसीदसंउडसेदरमिस्सा य पत्तेयं॥ ८३॥**

जन्म खलु संमूर्छनगर्भोपपादास्तु भवति तद्योनयः।
सचित्तशीतसंवृतसेतरमिश्राश्च प्रत्येकं॥ ८३॥

जी० प्र०—सम्मूर्छनगर्भोपपादाः संसारिजीवानां जन्मभेदा भवति। सं समंतात्, मूर्छनं जायमानजीवानुग्राहकाणां शरीराकारपरिणम-

नगोग्यपुद्गलस्कंधानां समन्ततः मूर्छनं सम्मूर्छनं । जायमानजीवेन शुक्रशोणितरूपपिंडस्य गरणं -शरीरतया उपादानं गर्भः । उपपदनं संपुटशय्योष्ट्रमुखाकारादिषु लघुनांतर्मुहूर्तेनैव जीवस्य जननं उपपादः । इति संमूर्छिमादिभिर्निरुक्तिसिद्धास्तद्योनयः जीवशरीरग्रहणाधाराः यथासंभवं सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चेति नवविधा भवति । तासु संमूर्छनादय एव प्रत्येकं यथासंभव संभवति । चित्तेन चेतनेन सह वर्तंते इति सचित्ताः प्राण्यतःप्रदेशपरिगृहीतपुद्गलस्कंधाः इत्यर्थः । तद्विपरीता अचित्ताः । तदुभयात्मका मिश्राः । प्रादुर्भूतशीतस्पर्शाः पुद्गलाः शीताः । अभिव्यक्तोष्णस्पर्शाः पुद्गला उष्णाः । तदुभयात्मकाः पुद्गला मिश्राः । दुरुपलक्ष्यः-गुप्ताकारः पुद्गलस्कंधः संवृतः । प्रकटाकार उपलक्षणीयः पुद्गलस्कंधो विवृतः । तदुभयात्मकः पुद्गलस्कंधो मिश्रः ॥ ८३ ॥ अथ संमूर्छनादीनां स्वामिनिर्देशं करोति--

मं० प्र०---संसारिजीवाना जन्म -उत्पत्तिः पूर्वभवशरीरं त्यक्त्वा पुनरुत्तरभवशरीरग्रहण । यद्यपि परमार्थतः विग्रहगतौ प्रथमसमये उत्तरभवप्रथमपर्यायप्रादुर्भावो जन्म । पूर्वपर्यायविनाशोत्तरपर्यायप्रादुर्भावयोरंगुलिऋजुत्वविनाशवक्रत्वोत्पादवदेककालत्वात् तथापि सम्मूर्छनादिरूपेण पुद्गलपिंडादानस्य तत्प्रथमपर्याये अभावात् तत्समीपशरीरग्रहणप्रथमसमयपर्यायोत्पाद एव जन्मसमीपं जन्म इत्युपचारेणोच्यते । गंगातट गंगेति यथा गंगायां घोष इत्युपचर्यते उपचारनिमित्तस्य सामीप्यस्य सद्भावात् अथवा ऋजुगत्यपेक्षया उत्तरभवप्रथमसमये एव सम्मूर्छनादिरूपशरीरग्रहणविशिष्टतत्प्रथमपर्यायोत्पादस्य पूर्वभवचरमपर्यायविनाशस्य च युगपत्संभवात् मुख्यमेव जन्मलक्षणं । तद्भेदास्तु पुनः सम्मूर्छनगर्भोपपादाः, खलु स्फुट जन्म भवतीति संबंधः । 'सम्मूर्छनगर्भोपपादा जन्म' इति तत्त्वार्थशास्त्रेऽप्युक्तत्वात् । सं--समतात् सर्वदिग्गतस्य शरीरयोग्यपुद्गलपिंडस्य मूर्छन गर्भोपपादविलक्षणं शरीराकारेण परिणमनं संमूर्छनं । शरीरपरिणतिकारणशुक्रशोणितस्य गरण स्वीकारो गर्भः । रूढिशब्दोऽयं पोतादिजन्मवाची । उपेत्य संपुटशय्यां, उष्ट्रकादिकं वा आश्रित्य पदनं--शरीरपरिणामयोग्यपुद्गलस्कंधस्य गमन--प्राप्तिः, उपपादः, रूढिशब्दोऽयं देवनारकाणामेव जन्मवाची । अथवा सम्मूर्च्छनगर्भोपपादाद्यानाश्रित्य जन्म भवतीति गोम्मटपंचिकाकारादीनामभिप्रायः । तस्य जन्मनः योनय -उत्पत्तिस्थानानि प्रत्येकं सम्मूर्छनगर्भोपपादाना जन्मविशेषाणां यथासभवं सचित्तादिगुणविशिष्टाः संभवति । तद्यथा--चित्तेन--चेतनेन सह वर्तते यः पुद्गलपिंडः स साचित्तः । शीतः बहुलशीतस्पर्शः । संवृतः--अंतर्निगूढावयवः । एते त्रयोऽपि सेतराः- इतरैः--अचित्तोष्णविवृतैः सह वर्तमानाः । चेतनराहितः पुद्गलपिंडः अचित्तः । बहुलोष्णस्पर्शः--उष्णः । सुप्रकटावयवः--विवृतः । मिश्राश्च उभयगुणामिश्रिताः--सचित्ताचित्तमिश्रः । शीतोष्णमिश्रः । संवृतविवृतमिश्रश्चेति ॥ ८३ ॥

सं० च०---सम्मूर्छन १ गर्भज २ उपपाद ३ ए तीन संसारी जीवनिके जन्मके भेद हैं। सं कहिए समस्तपनेंकरि मूर्छनं कहिए जन्म धरता जो जीव ताकौं उपकारी ऐसे जे शरीरके आकार परिणमने योग्य पुद्गलस्कंध तिनिका स्वयमेव प्रकट होना सो सम्मूर्छन जन्म है। बहुरि जन्म धरता जीवकरि शुक्र शोणितरूप पिंडका गरणं कहिए अपना शरीररूप ग्रहण करना सो गर्भ है। बहुरि उपपादनं कहिए संपुट शय्या वा उष्ट्रादि मुखाकार

योनिविषै लघु अंतर्मुहूर्त कालकरि ही जीवका उपजना सो उपपाद है। असे तीन प्रकार जन्म भेद हैं। भावार्थ-माता पितादिकका निमित्तविना स्वयमेव शरीराकार पुद्गलका प्रकट होनेकरि जीवका उपजना सो सम्मूर्छन जन्म है। बहुरि माताका रुधिर अर पिताका वीर्यरूप पुद्गलका शरीररूप ग्रहणकरि जीवका उपजना सो गर्भ जन्म है। बहुरि देवनिका संपुटशय्याविषै नारकीनिका उष्ट्रमुखादि आकाररूप योनि स्थानकनिविषै लघु अंतर्मुहूर्तकरि संपूर्ण शरीरकरि जीवका उपजना सो उपपाद जन्म है। ऐसैं तीनप्रकार जन्म भेद जानने। बहुरि इनि सम्मूर्छनादिकरि तिनि जीवनिकी योनि कहिए। जीवके शरीर ग्रहणका आधारभूत स्थान ते यथासंभव नव प्रकार हैं-सचित्त १ शीत २ संवृत ३ इनिके प्रतिपक्षी इतर अचित्त ४ उष्ण ५ विवृत ६ बहुरि इनिके मिलनेसे मिश्र सचित्ताचित्त ७ शीतोष्ण ८ संवृतविवृत ९ ऐसैं नव प्रकार हैं। बहुरि ते योनि सम्मूर्छनादिकनिविषैं प्रत्येक यथासंभव जानना। तहां चित्त कहिए अन्य चेतन तींहिकरि सहित वर्तै ते सचित्त हैं। अन्य प्राणीकरि पूर्वै ग्रहे हूवे पुद्गल स्कधं सचित्त कहिए। बहुरि तातैं विपरीत अन्य प्राणीनिकरि न ग्रहे जे पुद्गलस्कंध ते अचित्त हैं बहरि सचित्त अचित्त दोऊ रूप जे पुद्गलस्कंध ते मिश्र हैं। बहुरि प्रगट है शीत स्पर्श जिनके ऐसे पुद्ग ते शीत हैं। बहुरि प्रगट है उष्णस्पर्शन जिनिकैं ऐसे पुद्गल ते उष्ण हैं। बहुरि शीत उष्ण दोऊरूप जे पुद्गल ते मिश्र हैं। बहुरि प्रगट जाकौं न अवलोकिए ऐसा गुप्त आकार जाका सो पुद्गलस्कंध संवृत है। बहुरि प्रकट आकाररूप जाकौं अवलोकिए ऐसा पुद्गल स्कंध सो विवृत है। बहुरि संवृत विवृत दोऊरूप पुद्गल स्कंध सो मिश्र है। ऐसैं जीव उपजनेके आधाररूप पुद्गल स्कंध तिनिके नव प्रकार जानने। भावार्थ--गुणकौं धरैं त्रैलोक्यविषैं यथासंभव जीव जहां उपजैं ऐसे योनिरूप पुद्गल स्कंध तिनिके भेद नव हैं ॥८३॥ आगे सम्मूर्छनादिक जन्म भेदके जे स्वामी हैं तिनिकौं निर्देश करै हैं--

पोतजरायुजअंडजजीवणं गब्भ देवणिरयाणं।

उववादं सेसाणं सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं ॥ ८४ ॥

पोतजरायुजांडजजीवानां गर्भः देवनारकाणां।
उपपादः शेषाणां सम्मूर्छनकं तु निर्दिष्टं ॥ ८४ ॥

जी० प्र०——किंचित्परिवरणमंतरेण परिपूर्णावयवो योनिनिर्गममात्रेणैव परिस्पंदादिसामर्थ्योपेतः पोतः । जालवत्प्राणिपरिवरणं विततमांसशोणितं जरायुः, तस्मिन् जातो जरायुजः । शुक्रशोणितपरिवरणं उपात्तकाठिन्यं नखत्वक्सदृशं परिमंडलमंडं तस्मिन् जातोंडजः । एषां जीवानां गर्भ एव जन्म । चतुर्णिकायदेवानां नारकाणां च धर्मादिभवानामुपपाद एव जन्म । उक्तजीवेभ्यः शेषाणां एकद्वित्रिचतुरिंद्रियाणां केषांचित्पंचेंद्रियाणां लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां च संमूर्च्छनमेव जन्मेति प्रवचने निर्दिष्टं -कथितं ॥ ८४ ॥ अथ सचित्तादियोनिभेदानां संमूर्छनादिजन्मभेदेषु संभवासंभवं गाथात्रयेण निर्दिशति——

मं० प्र०——अंडजजरायुजवर्जिताः संजातमात्रव्यक्तांगोपांगोपेताः पोताः । गर्भे शिशूना मांसशोणितमेदोमयं कवचप्रायं परिवरणं जरायुः, तत्र जाता जरायुजाः । शुक्रशोणितयोः कठिनावयवं परिवरण परिमंडल अड, तत्र जाता अडजाः, तेषां पोतजरायुजाडजाना जीवानां गर्भो नाम जन्म भवति तेषामेव गर्भ', तेषा गर्भएवेति नियमद्वयं ज्ञातव्यं । देवनारकाणामेव उपपादः, उपपाद एव देवनारकाणामिति च नियमद्वयमत्रापि । शेषाणां पोतजरायुजांडजेभ्यः देवनारकेभ्यश्चान्येषां तिर्यग्मनुष्याणा सम्मूर्छनमेव शेषणामेव सम्मूर्छनमिति च नियमद्वयमत्रापि निर्दिष्ट--परमागमे प्रतिपादितं । तुशब्दः सर्वत्र नियमविशेषसूचनार्थं ॥ ८४ ॥

सं० च०——किछू भी शरीर ऊपरि आवरण विना संपूर्ण है अवयव जाका अर योनितैं निकसता ही चलनादिककी सामर्थ्य ताकरि संयुक्त ऐसा जो जीव सो पोत कहिए। बहुरि जालवत् प्राणीका शरीर ऊपरि आवरण मास लोही जामें विस्ताररूप पाइए ऐसा जो जरायु ताविषै जो जीव उपज्या जो जरायुज कहिए। बहुरि शुक्र लोही मय आवरण कठिनताकों लीएं नखकी चामडी समान गोल आकार धरै सो अंड तींहिविषै उपज्या जो जीव सो अंडज कहिए। इनि पोत जरायुज अंडज जीवनिकै गर्भरूप ही जन्मका भेद जानना। बहुरि च्यारि प्रकार देव अर धर्मादिविषै उपजे नारकी तिनिकैं उपपाद ही जन्मका भेद है। इनि कहे जीवनिविना अन्य सर्व एकेंद्री वेंद्री तेंद्री चौंद्री अर केई पंचेंद्री तिर्यंच अर लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य इनिकैं सम्मूर्छन ही जन्मका

भेद पाइए है ऐसा सिद्धांतविषै कह्या है ॥ ८४ ॥ आगै सचित्तादि योनिभेदनिका सम्मूर्छनादि जन्मभेदविषै संभवपना असंभवपना गाथा तीनिकरि दिखावै हैं—

उपवादे अच्चित्तं गब्भे मिस्सं तु होदि सम्मुच्छे ।
सच्चित्तं अच्चित्तं मिस्सं च य होदि जोणी हु ॥८५॥

उपपादे अचित्ता गर्भे मिश्रा तु भवति संमूर्छे ।
सचित्ता अचित्ता मिश्रा च च भवति योनिर्हि ॥ ८५ ॥

जी० प्र०—देवनारकसंबंध्युपपादजन्मभेदे अचित्तैव योनिः स्यात् । गर्भजन्मनि सचित्ताचित्तमिश्र एव पुद्गलस्कंधो योनिः स्यात् । संमूर्छनजन्मनि तु पुनः सचित्ता अचित्ता उभया चेति त्रिविधा योनिर्भवति ॥ ८५ ॥

मं० प्र०—सम्मूर्छनगर्भोपपादेषु सचित्तादियोनयो विभज्यंते । तद्यथा—उपपादे अचित्त एव अन्यजीवानाश्रयैव योनिः संपुटशय्योष्ट्रकादिषु विवक्षितजीवोत्पत्तेः प्रागचेतनत्वादेव सचित्तमिश्रत्वासंभवात् । गर्भे तु पुनः मिश्र एव भवति पुरुषशरीराद्गलितेन आचितेन शुक्रेण मिश्रस्य स्त्रीशोणितस्य च सचित्तस्य मिश्रयोनित्वसंभवात् केवलाचित्तस्य शुक्रस्य केवलसचित्तस्य स्त्रीशोणितस्य च योनित्वासंभवात् । संमूर्छे सचित्तः, अचित्तः मिश्रश्च योनिर्भवति गर्भोपपादरहितप्रदेशेषु क्वचित् सचित्ते एव क्वचिदचित्ते एव क्वचिन्मिश्रे एव पुद्गलस्कंधे जीवानामुत्पत्तिसंभवात् । 'मिस्स च य' इत्यत्र द्वितीयश्चशब्दः सर्वत्र नियमार्थ ॥८५॥

सं० च०—देव नारकी संबंधी जो उपपाद जन्मका भेद तींहिविषै अचित्त ही योनि है तहां योनिरूप पुद्गलस्कंध सर्व अचित्त ही हैं। गर्भजन्मका भेदविषै सचित्त अचित्त दोऊरूप मिश्र ही पुद्गल स्कंधरूप योनि है तहां योनिरूप पुद्गल स्कंधविषै कोई पुद्गल सचित्त हैं कोई अचित्त हैं। बहुरि सम्मूर्छन जन्मविषै सचित्त अचत्त मिश्र ए तीन प्रकार योनि पाइए है। कहीं योनिरूप पुद्गल स्कंध सचित्त ही हैं कहीं अचित्त ही हैं कहीं मिश्र हैं ॥ ८५ ॥

उपपादे सीदुसणं सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि ।

उववादेयक्खेसु य संउड वियलेसु विउलं तु ॥८६॥

उपपादे शीतोष्णे शेषे शीतोष्णमिश्रका भवंति ।
उपपादैकाक्षेषु च संवृता विकलेषु त्रिवृता तु ॥ ८६ ॥

जी० प्र०—उपपादजन्मनि शीतोष्णे द्वे योनी स्यातां । शेषे गर्भजन्मनि संमूर्छनजन्मनि च प्रत्येकं शीता उष्णा मिश्रा चेति तिस्रो योनयः स्युः । (तेजस्कायिकेषु उष्णैव योनिः स्यात्) उपपादजेषु एकेंद्रियेषु च संवृतैव योनिः स्यात् । विकलेंद्रियेषु विवृतैव योनिः स्यात्॥८६॥

मं० प्र०—उपपादे क्वचित् शीतः क्वचिदुष्णः इति द्वावेव योनी भवतः । रत्नप्रभायाः प्रभृति धूमप्रभाविलानां त्रिचतुर्भागपर्यंतेषु विलेषु उष्णस्पर्शस्यैव, धूमप्रभायाश्चतुर्भागादारभ्य महातमःप्रभापर्यंतेषु विलेषु शीतस्पर्शस्यैव भावात् । शेषे गर्भे सम्मूर्छने च शीतः, उष्णः, मिश्रश्चेति त्रयोऽपि योनयो भवंति । उपपादे एकेंद्रियसंमूर्छने च सवृत एव योनिः संपुटशय्योष्ट्रकाद्युपपादस्थानाना विवक्षितजीवोत्पत्त्यनंतर पुनरपरजीवोत्पत्तेः प्राक् नियमेन संवृतत्वात् । तु—पुनः, विकलेषु- विकलेंद्रियसम्मूर्छने विवृत एव योनिर्भवति ॥ ८६ ॥

सं० च०—उपपाद जन्मभेदविषै शीत अर उष्ण ए दोय योनि हैं--योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत हैं वा उष्ण हैं । तहां नारकीनिके रत्नप्रभाका विलनितै लगाइ धूमप्रभा विलनिका तीन चौथा भाग पर्यंत विलनिविषै उष्ण योनि ही है । बहुरि धूमप्रभा विलनिका चौथा भागतैं लगाइ महातम प्रभाका विलनिपर्यंत विलनिविषै शीत योनि ही है । ऐसा विशेष जानना । बहुरि अवशेष गर्भ जन्म भेदविषै अर सम्मूर्छन जन्मके भेदविषै शीत उष्ण मिश्र तीनों योनि हैं । कोई योनिरूप पुद्गलस्कंध शीत ही हैं, कोऊ उष्ण ही हैं, कोऊ योनिरूप पुद्गल स्कंधविषैं कोई पुद्गल शीत है कोई उष्ण है तातैं मिश्र हैं । तहां तेजस्कायिक जीवनिविषै उष्ण ही योनि है । तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध उष्ण ही है । बहुरि जलकायिक जीवनिविषै शीत ही योनि है तहां योनिरूप पुद्गल स्कंध शीत ही हैं । बहुरि उपपादज देव नारकी अर एकेंद्रिय इनविषै संवृत ही योनि है जहां उपजैं ऐसा योनिरूप पुद्गल स्कंध सो अप्रकट आकाररूप ही है । बहुरि विकलेंद्रियविषै विवृत योनि ही है जहां उपजैं ऐसा योनिरूप पुद्गल स्कंध सो प्रकट ही है ॥ ८६ ॥

गब्भजजीवाणं पुण मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु ।
सम्मुच्छणपंचक्खे वियलं वा विउलजोणी हु ॥ ८७ ॥

गर्भजजीवानां पुनः मिश्रा नियमेन भवति योनिर्हि ।
संमूर्छनपंचाक्षयोः विकलं वा विवृतयोनिर्हि ॥ ८७ ॥

जी० प्र०---गर्भजजीवानां पुनः संवृतविवृताभ्यां मिश्रा एव योनिः स्यात् । संमूर्छनजपंचेंद्रियेषु विकलेंद्रियवद्विवृतैव योनिः स्यात्॥८७॥
अथ योनिप्रभेदसंख्योद्देशपुरस्सरमुपसंहारमाह---

मं० प्र०---गर्भजजीवानां गर्भे पुनर्विशेषेण संवृतविवृतयोः मिश्र एव योनिर्नियमेन भवति पुरुषशरीराद्गलितस्य शुक्रस्य विवृतरूपस्य स्त्रीशोणितस्य च संवृतरूपस्य मिश्रणात् मिश्रः । अय गर्भे एव नान्यत्रेति नियमशब्दार्थः । पंचाक्षाणां -पचेंद्रियाणा, सम्मूर्छने विकलानामिव विवृतयोनिरेव खलु--स्फुटं भवति । वियलवेति छंदःपूरणार्थं विकलेंद्रियसादृश्यार्थं वा ॥ ८७ ॥ अथ पूर्वोक्तगुणयोन्युपसंहारपूर्वक योनिविशेषसंख्या प्ररूपयति--

सं० च०---बहुरि गर्भज जीवनिकै संवृत विवृत दोऊ मिश्ररूप योनि हैं जहां उपजैं ऐसा योनिरूप पुद्गल स्कंधविषै किछू प्रकट किछू अप्रकट हैं। बहुरि सम्मूर्छन पंचेंद्रियनिविषै विकलेंद्रियवत् विवृत योनि ही है ॥ ८७ ॥ आगैं योनिभेदनिकी संख्याका उद्देशके आगै कथनका संकोचनिकौं कहै हैं--

सामण्णेण य एवं णव जोणीओ हवंति वित्थारे ।
लक्खाण चदुरसीदी जोणीओ होंति णियमेण ॥ ८८ ॥

सामान्येन च एवं नव योनयो भवंति विस्तारे ।
लक्षाणां चतुरशीतिः योनयो भवंति नियमेन ॥ ८८ ॥

जी० प्र०---एवं--उक्तप्रकारेण, सामान्येन--संक्षेपेण, नव योनयो भवंति । विस्तरेण तु चतुरशीतिलक्ष्योनयो भवति नियमेन ॥ ८८ ॥
अथ तासां योनीनां विस्तरसंख्यां दर्शयति--

मं० प्र०---एवं-उक्तप्रकारेण, सामान्येन-संक्षेपेण नव योनयो भवंति, विस्तारे--योनिविशेषे विवक्षिते सति लक्षाणां चतुरशीतिर्योनयो नियमेन अवश्यं-भावेन भवंति । चशब्दः संक्षेपेण नवैवेति नियमार्थः ॥ ८८ ॥ अथ योनिविशेषसंख्यासभवस्थाननिर्देशार्थमाह--

सं० च०---ऐसैं पूर्वोक्त प्रकारकरि सामान्येन कहिए संक्षेपकरि नव योनि हैं। बहुरि विस्तारकरि चौरासी लाख योनि हैं नियमकरि। भावार्थ—जीव उपजनेका आधारभूत पुद्गल स्कंधका नाम योनि है। ताके सामान्यपनै नव भेद हैं विस्तारकरि तिसहीके चौरासी लाख भेद हैं ॥ ८८ ॥ आगैं तिनि योनिनिकी विस्तारकरि संख्या दिखावै हैं—

णिच्चिदरधादुसत्त य तरुदस वियलंदियेसु छच्चेव ।
सुरणिरयतिरियचउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा ॥ ८९ ॥

नित्येतरधातुसप्त च तरुदश विकलेंद्रियेषु षट् चेव ।
सुरनिरयतिर्यक्चतस्रः चतुर्दश मनुष्ये शतसहस्राः ॥ ८९ ॥

जी० प्र०—नित्यनिगोदेतरनिगोदपृथिवीकायिकाप्कायादिकतेजस्कायिकवायुकायिकेषु एतेषु षट्सु अपि स्थानेषु प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षयोनयो भवंति। मिलित्वा द्वाचत्वारिंशल्लक्षाणि भवंति । तरुषु प्रत्येकवनस्पतिकायिकेषु दशलक्षयोनयो भवंति । विकलेंद्रियरूपद्वित्रिचतुरिंद्रियेषु प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षयोनयो भवंति, मिलित्वा षट् । सुरेषु नारकेषु तिर्यग्पंचेंद्रियेषु च प्रत्येकं चतुश्चतुर्लक्षयोनयो भवंति । मिलित्वा द्वादशलक्षाणि । मनुष्येषु चतुर्दशलक्षयोनयो भवंति । एवं समस्तसंसारिजीवानां योनयः सर्वा मिलित्वा चतुरशीतिलक्षसंख्या प्रतिपत्तव्या ॥ ८९ ॥ अथ गत्याश्रयेण जन्म गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०--नित्यनिगोदेषु, इतरेषु -चतुर्गतिनिगोदेषु, धातुषु पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकेषु एवं षट्सु स्थानेषु प्रत्येकं सप्त सप्त शतसहस्राणि लक्षाणि योनिविशेषा भवंति, मिलित्वा द्वाचत्वारिंशल्लक्षाणि तरुषु--वनस्पतिकायिकेषु दशशतसहस्राणि भवंति । विकलेंद्रियेषु द्वित्रिचतुरिंद्रियेषु प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे, मिलित्वा षडेव। देवनारकतिर्यक्षु प्रत्येक चत्वारि लक्षाणि मिलित्वा द्वादशलक्षाणि । मनुजेषु चतुर्दशलक्षाणि सर्वाणि संपिंडितानि चतुरशीतिर्लक्षाणि संसारिजीवाना चतुर्गतिषु योनिविशेषा भवंति ॥ ८९ ॥ अथ संमूर्छनादित्रयस्य गतींद्रियवेदमार्गणासु यथासंभवं प्रवृत्तिस्थानं प्ररूपयितुं गाथाचतुष्टयमाह—

सं० च०—नित्यनिगोद १ इतरनिगोद २ अर धातु कहिए पृथ्वी कायिक ३ जलकायिक ४ तेजस्कायिक ५ वातकायिक ६ इनि छहौं स्थाननिविषैं प्रत्येक सात सात लाख योनि हैं। बहुरि तरु जो प्रत्येक वनस्पती तिनिविषैं दशलाख योनि हैं बहुरि विकलेंद्रीरूप वेंद्री तेंद्री चौंद्री इनिविषैं प्रत्येक दोय दोय लाख योनि हैं। बहुरि देव नारकी पंचेंद्री तिर्यंच इनिविषैं प्रत्येक च्यारि च्यारि लाख योनि हैं। बहुरि मनुष्यनिविषैं चौदह लाख योनि हैं। ऐसैं समस्त संसारी जीवनिके योनि सर्व मिलि चौरासी लाख संख्यारूप प्रतीति करनी ॥८९॥
आगैं गतिनिका आश्रयकरि जन्म भेदकौं गाथा दोय करि कहै हैं—

उबबादा सुरणिरया गब्भजसमुच्छिमा हु णरातिरिया।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जता एयविलक्खा॥ ९० ॥

उपपादाः सुरनिरयाः गर्भजसंमूर्छिमा हि नरातिर्यंचः।
सम्मूर्छिमा मनुष्या अपर्याप्ता एकविकलाक्षाः॥ ९० ॥

जी० प्र०—उपपादजाः सुरा नारकाश्च भवंति। गर्भजाः संमूर्छिमाश्च खलु-स्फुटं यथासंभवं मनुष्याः तिर्यंच एव भवंति। केवलसंमूर्छिमा एव लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्या एकेंद्रिया विकलेंद्रियाश्च भवंति॥ ९०॥

मं० प्र०—सुराः निरयाश्च—नारकाश्च उपपादाः—औपपादिका एव। निरयाः—नारकविलानि तत्रस्था जीवा निरया इत्युपचारतः। उपपादः—जन्मविशेषः तत्र भवा अपि उपपादा इत्युपचारशब्दोय। एवमुत्तरोत्तरमुपचारशब्दा ज्ञातव्याः। नराः तिर्यंचश्च गर्भजाश्च सम्मूर्छिमाश्च खलु नियमेन भवति। अपर्याप्ताः—लब्ध्यपर्याप्तमनुष्या सम्मूर्छिन एव। एकविकलाख्याश्च एकेंद्रियाः, विकलेंद्रियाश्च सम्मूर्छिमा एवेति नियमो ज्ञातव्यः॥ ९०॥

सं० च०—देव अर नारकी उपपाद जन्मसंयुक्त हैं। बहुरि मनुष्य अर तिर्यंच ए गर्भज अर सम्मूर्छन यथासंभव होहैं। तहां लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य अर एकेंद्रिय विकलेंद्रिय केवल सम्मूर्छन ही हैं॥ ९०॥

पंचक्खतिरिक्खाओ गब्भजसम्मुच्छिमा तिरिक्खाणं।

भोगभुमा गब्भभवा नरपुण्णा गब्भजा चेव ॥ ९१ ॥

पंचाक्षतिर्यंचः गर्भजसम्मूर्छिमा तिरश्चां।
भोगभूमा गर्भभवा नरपूर्णा गर्भजाश्चैव ॥ ९१ ॥

जी० प्र०-पचेंद्रियतिर्यंचो गर्भजाः संमूर्छिमाश्च भवंति । तिर्यक्षु भोगभूमिजा गर्भभवा एव। नरपर्याप्तका गर्भजा एव भवंति ॥ ९१ ॥ अथौपपादिकादिषु लब्ध्यपर्याप्तकत्वस्य संभवासंभवं कथयति–

मं० प्र०--पचेंद्रियतिर्यंचः गर्भजाश्च सम्मूर्च्छिमाश्च भवति, इदं संभववचनं । तिरश्चां मध्ये भोगभूमा--भोगभूमिभवाः, तिर्यंचो गर्भभवा एव । अथ-वा--णं ननु अहो शिष्येति सबोधनार्थमव्ययं । नरपूर्णाः पर्याप्तमनुष्या गर्भजा एव ॥ ९१ ॥

स० च०--पंचेंद्रिय तिर्यच ते गर्भज अर सम्मूर्छन हो हैं। बहुरि तिर्यचनिविषैं भोगभूमियां तिर्यच गर्भज ही हैं बहुरि पर्याप्त मनुष्य गर्भज ही हैं ॥ ९१ ॥ आगैं औपपादिकादिनिविषैं लब्धि अपर्याप्तकपनाका संभवपना असंभवपनाकौं कहैं हैं–

उबबादगब्भजेसु य लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण ।
णरसम्मुच्छिमजीवा लद्धिअपज्जत्तगा चेव ॥ ९२ ॥

उपपादगर्भजेषु च लब्ध्यपर्याप्तका न नियमेन।
नरसम्मूर्छिमजीवा लब्ध्यपर्याप्तकाश्चैव ॥ ९२ ॥

जी० प्र०-औपपादिकेषु गर्भजेषु च लब्ध्यपर्याप्तका नियमेन न संति। संमूर्छिमनुष्या लब्ध्यपर्याप्ता एव भवंति ॥ ९२ ॥ अथ नरकादिगतिषु वेदानवधारयति–

मं० प्र०--उपपादजेषु देवनारकेषु गर्भजेषु च विशिष्टतिर्यग्मनुष्येषु च लब्ध्यपर्याप्तका नियमेन न सति । नरसम्मूर्छिमा जीवा लब्ध्यपर्याप्तका एव भवति ।। ९२ ॥

स० चं०—औपपादिकनिविषैं बहुरि गर्भजनिविषैं लब्धि अपर्याप्तक नियमकरि नाहीं हैं। बहुरि सम्मूर्छन मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक ही हो हैं पर्याप्त न हो हैं ॥ ९२ ॥ आगैं नरकादि गतिनिविषैं वेदानिकौं अवधारण करैं हैं—

णेरइया खलु संढा णरतिरिये तिण्णि होंति सम्मुच्छा।
संढा सुरभोगभुमा पुरिसिच्छीवेदगा चेव ॥ ९३ ॥

नैरयिकाः खलु षंढा नरतिरश्चोस्त्रयो भवंति सम्मूर्छाः।
षंढाः सुरभोगभुमाः पुरुषस्त्रीवेदकाश्चैव ॥ ९३ ॥

जी० प्र०—नारकाः सर्वेऽपि खलु नियमेन षंढाः–द्रव्यतो भावतश्च नपुंसकवेदा एव भवंति। मनुष्यतिर्यक्षु स्त्रीपुंनपुंसकवेदत्रयं स्यात्। संमूर्छिमतिर्यग्मनुष्या षंढवेदा एव भवंति। ते संमूर्छिममनुष्यास्तु स्त्रीयोनितत्कक्षास्तनमूलांतरालेषु चक्रवर्तिनः पट्टमहिषीं विना मूत्रपुरीषाद्यशुचिस्थानेषु चोत्पद्यंते। सुरा भोगभूमिजाश्च पुरुषस्त्रीवेदनियतोदया एव नियमेन भवंति ॥ ९३ ॥ इति विविधयोन्यधिकारो जीवसमासेषु कथितः। अथ शरीरावगाहनाश्रयेण जीवसमासान् वक्तुमनाः प्रथमं तत्सर्वजघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनस्वामिनो निर्दिशति—

मं० प्र०—नैरयिकाः खलु–नियमेन षंढा एव–द्रव्यतो भावतश्च नपुंसकवेदा एव। नरतिर्यक्षु त्रयोऽपि वेदाः संति द्रव्यतो भावतश्च स्त्रियः पुमांसः नपुंसकानि च भवंति इत्यर्थः। सम्मूर्छिनो द्रव्यभावतः षंढा एव भवंति। सुरा भोगभूमिभवाश्च द्रव्यभावतः स्त्रीपुंसवेदा एव भवंति ॥ ९३ ॥ अथ जीवानामवगाहनभेदमष्टभिर्गाथासूत्रैः प्ररूपयति—

सं. चं.—नारकी सर्व ही नियमकरि षंढाः कहिए नपुंसक वेदी ही हैं। बहुरि मनुष्य तिर्यंचनिविषैं स्त्री पुरुष नपुंसक भेदरूप तीनों वेद हैं। बहुरि सम्मूर्छन तिर्यंच अर मनुष्य सर्व नपुंसक वेदी ही हैं। ते सम्मूर्छन मनुष्य स्त्री-की योनि वा कांख वा स्तननिका मूल तिनिविषैं अर चक्रवर्तीकी पट्टराज्ञी विना मूत्र विष्टा आदि अशुचिस्थान-कनिविषैं उपजै हैं। ऐसा विशेष जानना। बहुरि देव अर भोगभूमियां ते पुरुषवेद स्त्री वेदका ही उदयसंयुक्त नियम करि हैं तहां नपुंसक न पाइए है ॥ ९३ ॥ इति तीनिप्रकार योनिनिका अधिकार जीवसमासनिका कह्या

आगैं शरीरकी अवगाहना आश्रयकरि जीवसमासनिकौं कहनेका है मन जाका ऐसा आचार्य सो प्रथम ही सर्व जघन्य अर उत्कृष्ट अवगाहनाके जे स्वामी तिनिका निर्देश करै हैं–

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥ ९४ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अंगुलासंख्यभागं जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥ ९४ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य तद्भवे ऋजुगत्योत्पन्नस्य तृतीयसमये घनांगुला (ल) संख्यातैकभागमात्रप्रदेशावगाहविशिष्टशरीरं सर्वावगाहविकल्पेभ्यो जघन्यं भवति स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्तिमहामत्स्ये उत्कृष्टावगाहेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वोत्कृष्टावगाहविशिष्टं शरीरं भवति । ननूत्पन्नतृतीयसमये एव सर्वजघन्यावगाहनं कथं संभवेत् ? इति चेत् तत्प्रथमसमये निगोदजीवशरीरस्यायतचतुरस्रत्वात् द्वितीसमये समचतुरस्रत्वात् तृतीयसमये कोणापनयनेन वृत्तत्वात् तदेव तदवगाहनस्याल्पत्वसंभवात् । तर्हि ऋजुगत्योत्पन्नस्यैव कथमुक्तं विग्रहगतौ योगवृद्धियुक्तत्वेन तदवगाहवृद्धिप्रसंगात् । तत्सर्वजघन्यावगाहे घनांगुलस्य भागहाराः पल्यासंख्यातैकभागा एकान्नविंशतिः । आवल्यसंख्यातैकभागा नव । रूपाधिकावल्यसंख्यातैकभागा द्वाविंशतिः संख्याता नव । गुणकारास्तु आवल्यसंख्यातैकभागा द्वाविंशतिः । संदृष्टिः—

६ । ८ । २२
a
प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १ । ९
a a a

॥ ९४ ॥ अथेंद्रियाश्रयेणोत्कृष्टावगाहानां प्रमाणं तत्स्वामिनश्च निर्दिशति—

म० प्र०—सूक्ष्मनिगोदस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य- ऋजुगत्या उत्पन्नस्य, उत्पत्तेस्तृतीयसमये वर्तमानस्य जीवस्य घनांगुलासंख्येयभागमात्रं सर्वजघन्यमवगाहनं भवति । तथाहि–घनांगुलस्य भागहाराः पल्यासंख्येयभागाः एकान्नविंशतिवाराः, आवल्यसंख्येयभागा नववाराः, रूपाधिका आवल्यसंख्येयभागा द्वाविंशतिवाराः, संख्येयरूपाणि नववाराणि, गुणकारा आवल्यसंख्येयभागा द्वाविंशतिवाराः अपवर्तिते ईदृशं घनांगुलासंख्येयभागमात्रं भवति
६
a स्वयंभूरमणमहासमुद्रमध्यवर्तिनि महामत्स्ये सहस्रयोजनायामपंचशतयोजनविस्तारपंचाशदुत्तरद्विशतयोजनोत्सेधशरीरप्रदेशप्रमाणं घनक्षेत्रफलं संख्यात-

घनांगुलमात्रं सर्वोत्कृष्टमवगाहनं भवति ६ ७ ७ ७ ७ ७ मध्ये जघन्यावगाहात् प्रदेशोत्तरा अवगाहनविकल्पा भवंति । सर्वेऽपि संपिंडिताः संख्यातघनांगुलमात्रा असंख्येया अवगाहनविकल्पा भवंति ६ ७ ७ ७ ७ ७ $\frac{}{a}$ a। ननु विग्रहगत्या उत्पन्नस्य प्रथमद्वितीयसमययोश्च जघन्यावगाहन किमिति नोच्यते ? इति चेत्तन्न, विग्रहगतौ योगवृद्ध्या शरीरवृद्धिप्रसगात् । प्रथमसमये आयतचतुरस्रत्वात् द्वितीयसमये समचतुरस्रत्वात्, तृतीयसमये पुनः कोणापनयनेन वृत्तत्वे शरीराल्पत्वसंभवात् । अन्येषु द्वीपसमुद्रेषु इतरगतित्रये च सर्वोत्कृष्टावगाहस्यासभवात् । स्वयभूरमणसमुद्रेऽपि तटसमीपमत्स्यानां तथाविधसर्वोत्कृष्टावगाहनासंभवात् ॥ ९४ ॥

स. चं.–जितना आकाश क्षेत्र शरीर रोकै ताका नाम इहां अवगाहना है। सो सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तकजीव तींहि पर्यायविषैं ऋजुगतिकरि उत्पन्न भया ताका तीसरा समयविषैं घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्रदेशनिकी अवगाह विशेषधरैं शरीर हो है। सो यहु अन्य सर्व अवगाहना भेदनितैं जघन्य है। बहुरि स्वयंभूरमण नामा समुद्रके मध्यवर्ती जो महामत्स्य ताका उत्कृष्ट अवगाहनातैं भी सबनितैं सर्वोत्कृष्ट अवगाहना विशेष धरैं शरीर हो है। इहां तर्क–जो उपजनेंतैं तीसरा समयविषैं सर्व जघन्य अवगाहना कैसैं संभवै है? तहां समाधान-जो उपजता ही प्रथम समयविषै तो निगोदिया जीवका शरीर लंबा बहुत चौडा थोडा ऐसा चौकोर हो है। बहुरि दूसरा समयविषैं लंबा चौडा समान ऐसा चौकोर हो है । बहुरि तीसरे समय कोण दूर करणेंकरि गोल आकार हो है तबही तिस शरीरकैं अवगाहनाका अल्प प्रमाण हो है । जातैं लंबा चौकोर सम चौकोरतैं गोल क्षेत्रफल स्तोक हो है। बहुरि तर्क- जो ऐसैं हैं तो ऋजुगतिकरि उपज्याहीकैं होइ ऐसैं कैसैं कह्या ? ताका समाधान–जीव परभवकौं गमनकरै ताकी विदिशाकरि वर्जित च्यारि दिशा वा अधः ऊर्ध्वविषै गमनक्रिया होइ है सो च्यारि प्रकार है-ऋजुगति १ पाणिमुक्ता गति २ लांगलगति ३ गोमूत्रिका गति ४ । तहां सूधा गमन होइ सो ऋजुगति है। जामैं वीचि एकवार मुडे सो पाणिमुक्ता गति है जामै वीच दोयवार मुडे सो लांगल गति है। जामैं वीच तीनवार मुडे सो गोमूत्रिका गति है। सो मुडनेविषैं जो विग्रह गति ताविषैं जीव

योगनिकी वृद्धिकरि युक्त हो है ताकरि शरीरकी अवगाहना भी वृद्धिरूप हो है। तातैं ऋजुगतिकरि उपज्या जीवकैं जघन्य अवगाहना कही सो सर्वजघन्य अवगाहनाका प्रमाण कहैं हैं—घनांगुल रूप जो प्रमाण ताका पल्यका असंख्यातवां भाग उगणीसवार, बहुरि आवलीका असंख्यातवां भाग नववार, बहुरि एक अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग वाईसवार बहुरि संख्यातका भाग नववार इतने तौ भागहार जानने। बहुरि तिस घनांगुलका आवलीका असंख्यातवां भाग वाईसवार आवलीका असंख्यातवां भागका वाईसवार गुणकार जानने। तहां पूर्वोक्त भागहारनिकौं मांडि परस्पर गुणन किएं जेता प्रमाण आवै तितना भागहारका प्रमाण जानना। बहुरि वाईस जायगा आवलीका असंख्यात भागकौं मांडि परस्परगुणै जो प्रमाण आवै तितना गुणकारका प्रमाण जानना। तहां घनांगुलके प्रमाणकौं भागहारके प्रमाणका भाग दीएं अर गुणकारका प्रमाणकरि गुणै जो प्रमाण आवै तितना जघन्य अवगाहनाके प्रदेशनिका प्रमाण जानना ऐसैं ही आगै भी गुणकार भागहारका अनुक्रम जानना ॥ ९४ ॥ आगै इंद्रिय आश्रयकरि उत्कृष्ट अवगाहनानिका प्रमाण तिनिके स्वामीनिकौं निर्देश करैं हैं—

साहियसहस्समेकं वारं कोसूणमेकमेक्कं च।
जोयणसहस्सदीहं पम्मे वियले महामच्छे ॥ ९५ ॥

साधिकसहस्रमेकं द्वादश क्रोशोनमेकमेकं च।
योजनसहस्रदीर्घं पद्मे विकले महामत्स्ये ॥ ९५ ॥

जी० प्र०—एकेंद्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपमध्यवर्तिस्वयंप्रभाचलापरभागस्थितक्षेत्रोत्पन्नपद्मे साधिकसहस्रयोजनायामैकयोजनव्यासोत्कृष्टावगाहो भवति अस्य च व्यासः (यो०) १। त्रिगुणः १। ३ परिधिः। अयं च व्यासचतुर्थां $\frac{1}{4}$ हतः १। ३। $\frac{1}{4}$ क्षेत्रफलं। तच्च वेधेन १००० चतुर्भिरपव

इत द्वाविंशत्यतपाठाः क पुस्तके नोपलब्धः।

तिर्वैन गुणितं योजनात्मकं खातफलमेतावद्भवति ७५०। द्वींद्रियेषु तत्स्वयंभूरमणसमुद्रवर्तिशंखे द्वादशयोजनायामयोजनपंचचतुर्थांशोत्सेध ५/४ चतुर्योजनमुखव्यासोत्कृष्टावगाहो भवति। अस्य च व्यासः १२ तावद्गुणितः १४४ वदन ४ दल २ ऊन १४२ मुखार्द्धवर्ग ४ युतः १४६ द्विगुणः २९२ चतुर्भिर्भक्तः ७३ पंचगुणः ३६५ शंखखातफलं। त्रींद्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपापरभागवर्तिकर्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रे रक्तवृश्चिक-जीवे योजनत्रिचतुर्भागायाम ३/४ तदष्टमांशव्यास ३/३२ तदर्द्धोत्सेध ३/६४ उत्कृष्टावगाहोऽस्ति अस्य च भुजकोटिवधात् प्रजायते क्षेत्रफलं ३/४ ३/३२ तच्च वेधगुणं ३/४ । ३/३२ । ३/६४ घनफलं भवति २७/८१९२। चतुरिंद्रियेषु स्वयंभूरमणद्वीपापरभागकर्मभूमिप्रतिबद्धक्षेत्रवर्तिभ्रमरे एकयोजनायामतत्त्रिचतुर्भागव्यास ३/४ अर्धयोजनोत्सेध १/२ उत्कृष्टावगाहोऽस्ति। अस्य च भुजकोटीत्यादिनानीतघनफलं ३/८ योजनत्र्यष्टमभागो भवति। पंचेंद्रियेषु स्वयंभूरमणसमुद्रमध्यवर्तिमहामत्स्ये सहस्रयोजनायामपंचाशत्योजनव्यासपंचाशदग्रद्विशतयोजनोत्सेधोत्कृष्टावगाहोऽस्ति। अस्य च भुजकोटीत्यादिनानीतघनफलं १२५०००००० सार्धद्वादशकोटियोजनमात्रं भवति। एतान्युक्तघनफलानि प्रदेशीकृतानि त-वैकेंद्रियस्य चतुस्संख्यातगुणितघनांगुलमात्रं ६ १ १ १ १ द्वींद्रियस्य त्रिसंख्यातगुणितघनांगुलमात्रं ६ १ १ १ त्रींद्रियस्य एकसंख्यातगुणितघनांगुलमात्रं ६ १ चतुरिंद्रियस्य द्विसंख्यातगुणितघनांगुलमात्र ६ १ १। पंचेंद्रियस्य पंचसंख्यातगुणितघनांगुलमात्रं भवति ६ १ १ १ १ १ ॥९५॥ अथ पर्याप्तद्वींद्रियादीनां जघन्यावगाहप्रमाण तत्स्वामिनिर्देशं चाह—

मं०प्र०-बादरपर्याप्तकैकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियेषु यथाक्रम पद्मे, विकलेंद्रियेषु शंखग्रैष्मीभ्रमरेषु महामत्स्ये च दैर्घ्य--आयाम. कथ्यते तद्यथा—पद्मे साधिकं योजनानामेकं सहस्र पुष्पोत्सेधेन अधिकस्य सहस्रयोजनायामस्य एकयोजनविष्कंभस्य वृत्तस्य तन्नालस्य संभवात्। तस्य क्षेत्रफलं 'वासोतिगुणो' इत्यादिना गाथासूत्रमार्गेणानेतव्य। तद्घनफलं योजनानि ७५० प्रदेशा. ६ १ १ १ १। शंखे द्वादशयोजनान्यायामः। चत्वारि मुखव्यास.। उदयः पंचचतुर्भाग. 'आयामेकदीत्यादिगाथासूत्रमार्गेण नीतं घनफल ३६५। ६ १ १ १। ग्रैष्म्यां-ग्रीष्मकालभवे त्रसविशेषे क्रोशोनमेकयोजनमायामः। आयामाष्टमभागो व्यासः, व्यासदलं वेधः। भुजकोटिवेधगुणनादानीत चतुरस्रघनफलं २७/८१९२। ६ १। भ्रमरे एकं योजनमायामः। त्रिचतुर्भागो व्यासः। योजनार्धं वेधः। तस्यापि भुजकोटिवेधगणनादानीत घनफलं ३/८ ६ १ १ महामत्स्ये प्रागुक्ता आयामव्यासोदयाः। तस्यापि भुजकोटिवेधगुणनादानीतं घनफलं १२५०००००० ६ १ १ १ १ १ ॥ ९५ ॥

सं॰ चं॰—एकेंद्रियनिविषैं स्वयंभूरमण द्वीपके मध्यवर्ती जो स्वयंप्रभ नामा पर्वत ताका परला भाग संबंधी कर्मभूमि रूप क्षेत्रविषैं उपज्या ऐसा जो कमल तींहिविषैं किछूअधिक एकहजार योजन लंबा एक योजन चौडा ऐसा उत्कृष्ट अवगाह है। याका क्षेत्रफल कहिए है-समान प्रमाण लीए खंडकल्पैं जितने खंड होंइ तिस प्रमाण-का नाम क्षेत्रफल है । तहां ऊंचा लंबा चौडा क्षेत्रका ग्रहण जहां होइ तहां घनक्षेत्रफल वा खातक्षेत्रफल जा-नना। बहुरि जहां ऊंचापणाकी विवक्षा न होइ अर लंबा चौडा ही का ग्रहण होइ तहां प्रतरक्षेत्रफल वा वर्ग क्षेत्रफल जानना। बहुरि जहां ऊंचा चौडापणाकी विवक्षा न होइ एक लंबाईका ही ग्रहण होइ तहां श्रेणी क्षेत्र-फल जानना। सो इहां खात क्षेत्रफल कहिए है—तहां कमल गोल है तातैं गोल क्षेत्रका क्षेत्रफल साधनरूप कर-ण सूत्र करि साधिए है—

वासोत्तिगुणो परिही वासचउत्थाहदो दु खेत्तफलं।
खेत्तफलं वेहगुणं खादफलं होइ सव्वत्थ ॥

याका अर्थ—व्यास जो चौडाईका प्रमाण तातैं तिगुणा गिरदभ्रमणरूप जो परिधि ताका प्रमाण हो है। बहुरि परिधिकौं व्यासका चौथा भागकरि गुणैं प्रतररूप क्षेत्रफल हो है। बहुरि याकौं वेध जो उंचाईका प्रमाण ताकरिगुणैं सर्वत्र खात फल हो है सो इहां कमलविषैं व्यास एक योजन ताकौं तिगुणां कीएं परिधि तीन योजन हो है। याकौं व्यासका चौथा भाग पाव योजनकरि गुणैं प्रतर क्षेत्रफल पौंण योजन हो है। याकौं वेध हजार योजनकरि गुणैं च्यारिकरि अपवर्तन कीएं योजन स्वरूप कमलका क्षेत्र फल साड़ा सातसौ योजन प्रमाण हो है। भावार्थ—एक एक योजन लंबा चौड़ा ऊंचा खंड कल्पैं इतने खंड हो हैं। बहुरि द्वींद्रियनिविषैं तींहि स्वयंभू-रमण समुद्रवर्ती शंखविषैं बारह योजन लंबा, योजनका पांच चौथा भाग प्रमाण चौडा, च्यारि योजन मुख व्या-सकरि युक्त ऐसा उत्कृष्ट अवगाह है। याका क्षेत्रफल करण सूत्रकरि साधिए है-

व्यासस्तावद्गुणितो वदनदलोनो मुखार्धवर्गयुतः।

द्विगुणश्चतुर्भिर्भक्तः पंचगुणः शंखखातफलं ॥

याका अर्थ--प्रथम व्यासकौं व्यासकरि गुणिए तामें मुखका आधा प्रमाण घटाइ तामें मुखका आधा प्रमाणका वर्ग जोडिए ताका दूणा करिए, ताकौं च्यारिका भाग दीजिए ताकौं पांचगुणां करिए ऐसें करते शंख क्षेत्रका खातफल हो है। सो इहां व्यास वारह योजनकौं याही करि गुणें एकसौ चवालीस होइ। यामें मुखका आधाप्रमाण दोय घटाएं एकसौ व्यालीस होइ। यामें मुखका आधा प्रमाणका वर्ग च्यारि जोडें एकसौ छियालीस होइ याकौं दूणा कीएं दोयसै वाणवे होइ। याकौं च्यारिका भाग दीए तेहत्तरि होइ। याकौं पांचकरि गुणें तीनसौ पैंसठि योजनप्रमाण शंखका क्षेत्र फल होहै। बहुरि त्रींद्रियनिविषैं स्वयंभूरमण द्वीपका परला भाग विषैं जो कर्मभूमि संबंधी क्षेत्र है तहां रक्त वीछू जीव है। तीहि विषैं योजनका तीन चौथा भाग प्रमाण ३/४ लंबा लंबाईके आठवें भाग ३/३२ चौडा, चौडाईतैं आधा ३/६४ ऊंचा ऐसा उत्कृष्ट अवगाह है। यहु क्षेत्र आयत चतुरस्र है लंबाई लीएं चौकोर है सो याका प्रतर क्षेत्रफल भुज कोटि वध तैं होइ है। सन्मुख दोय दिशानिविषैं कोई एक दिशा विषैं जितना प्रमाण ताका नाम भुज है। बहुरि अन्य दोय दिशाविषैं कोइ एक दिशाविषैं जितना प्रमाण ताका नाम कोटि है। यहु अर्थ-जो लंबाई चौडाई विषैं एकका नाम भुज एकका नाम कोटि जानना। इनिका वध कहिए परस्पर गुणना तीहि थकी प्रतरक्षेत्र फल हो है सो इहां लंबाई तीन चौथा भाग चौडाई तीन वतीसवां भाग इनिका परस्पर गुणें नवका एकसौ अठाईसवां भाग ९/१२८ भया बहुरि याकौं वेध उंचाईका प्रमाण तीनिका चौसाठिवां भाग ताकरि गुणें सताईस योजनका इक्यासीसैं वाणवैंका भाग दीए एकभाग २७/८१९२ प्रमाण रक्तवीछूका घन क्षेत्रफल हो है। बहुरि चतुरिंद्रियनिविषैं स्वयंभूरमण द्वीपका परला भागवर्ती कर्मभूमि संबंधी क्षेत्रविषैं भ्रमर हो है सो तिहिविषैं एक योजन लांबा पौन योजन ३/४ चौडा आधा योजन १/२ ऊंचा उत्कृष्ट अवगाह है। ताकौं भुज कोटि वध-एक योजन अर तीन योजनका चौथा भाग अर एक योजनका दूसरा भाग इनिकौं परस्पर गुणें तीन योजनका आठवां भाग ३/८ प्रमाण घन क्षेत्रफल हो है। बहुरि पंचेंद्रियनिविषैं

स्वयंभूरमण समुद्रके मध्यवर्ती महामच्छ तींहिविषैं हजार १००० योजन लांबा पांचसे ५०० योजन चौडा पचास अधिक दोयसे २५० योजन ऊंचा उत्कृष्ट अवगाह है। तहां भुज कोटि वेध हजार १००० अर पांचसे ५०० अर अढाईसे २५० योजन प्रमाण इनिकों परस्पर गुणें साढे वारा कोडि १२५०००००० योजन प्रमाण घन फल हो है। ऐसें कहे जे योजन रूप घनफल तिनके प्रदेशनिका प्रमाण कीएं एकेंद्रियके ग्यारिवार संख्यातगुणां घनांगुल प्रमाण द्वींद्रियकैं तीनवार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण, त्रींद्रियके एकवार संख्यातगुणां घनांगुल प्रमाण चतुरिंद्रियकैं दोयवार संख्यातगुणा घनांगुल प्रमाण पंचेंद्रियके पांचवार संख्यातगुणां घनांगुल प्रमाण प्रदेशनिका उत्कृष्ट अवगाहनाविषैं हो है ॥ ९५ ॥ आगैं पर्याप्त द्वींद्रियादिक जीवनिका जघन्य अवगाहनाका प्रमाण अर ताका स्वामीका निर्देशकौं कहै हैं–

वितिचपपुण्णजहण्णं अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु ।
सिच्छयमच्छे विंदंगुलसंखं संखगुणिदकमा ॥ ९६ ॥

द्वित्रिचपपूर्णजघन्यमनुंधरीकुंथुकाणमक्षिकासु ।
सिक्थकमत्स्ये वृंदांगुलसंख्यं संख्यगुणितक्रमाः ॥ ९६ ॥

जी० प्र०—द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियपर्याप्तकेषु यथासंख्यं अनुंधरीकुंथुकाणमक्षिकासिक्थकमत्स्यजीवेषु जघन्यावगाहविशिष्टशरीरावष्टब्धप्रदेशप्रमाणं वृंदांगुलसंख्यातैकभागमादिं कृत्वा संख्यातगुणितक्रमेण भवति। ६ द्वि ६ त्रि ६ च ६ पं। एषामिदानीं व्यासायामोत्सेधानामुपदेशो नास्ति इति घनफलमेवोक्तं ॥ ९६ ॥ अथ सर्वजघन्यावगाहनादीनां उत्कृष्टावगाहनपर्यंतानां शरीरावगाहनविकल्पानां स्वाम्यल्पबहुत्वगुणकारान् गाथापंचकेन प्रदर्शयति—

(६ द्वि: ११११, ६ त्रि: १११, ६ च: ११, ६ पं: १)

मं० प्र०—वि–ति–च–पेसु द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियेषु पर्याप्तेषु अनुंधरीकुंथुकाणमक्षीषु सिक्थकमत्स्ये च जघन्यमवगाहनं घनांगुलसंख्यातभागप्रमितं भ-

वति तत्रानुंधरीजघन्यावगाहनात् कुंथ्वाद्युत्तरजघन्यावगाहनानि संख्यातगुणानि संत्यपि सर्वाणि घनांगुलसंख्यातभागप्रमितान्येव ृ । ९ । गुणकारभाग-
६ । ६ । ६ ।
हारापवर्तनेन ृ । ८ । ृ । ७ । ृ । ६ । हारा गुणयित्वा लघूक्ताः पूर्वाचार्यैः ृ ृ ृ ृ । ृ ृ ृ । ृ ृ । ृ ॥ ९६ ॥

सं० चं०--पर्याप्त द्वींद्रियविषैं अनुंधरी, त्रींद्रियनिविषैं कुंथु, चतुरिंद्रियनिविषैं काणमाक्षिका, पंचेंद्रियनिविषैं तंदुलमच्छ इनि जीवनिविषैं जघन्य अवगाहना विशेष धरै जो शरीर ताकरि रोक्या हूवा क्षेत्रका प्रदेशनिका प्रमाण घनांगुलका संख्यातवां भागतैं लगाइ संख्यातगुणा अनुक्रमकरि जानना। तहां द्वींद्रियविषैं च्यारि वार त्रींद्रियविषैं तीनवार चतुरिंद्रियविषैं दोयवार पंचेंद्रियविषै एकबार संख्यातका भाग दीजिए ऐसा घनांगुल मात्र पर्याप्तनिका जघन्य अवगाहनाके प्रदेशनिका प्रमाण जानना। इनिका अब चौडाई लंबाई उंचाईका उपदेश इहां नाहीं है। घन फल कीएं जो प्रदेशनिका प्रमाण भया सो इहां कह्या है ॥ ९६ ॥ आगैं सर्वतैं जघन्य अवगाहनाकौं आदि देकरि उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत शरीरकी अवगाहनाके भेद तिनिका स्वामी वा अल्पबहुत्व वा क्रमतैं गुणकार तिनिकौं गाथा पंचकरि इहां दिखावै हैं—

सुहमणिवातेआभूवातेआपुणिपदिट्ठिदं इदरं।
बितिचपमादिल्लाणं एयाराणं तिसेढीय ॥ ९७ ॥

सूक्ष्मनिवातेआभूवातेअप्निप्रतिष्ठितामितरत्।
द्वित्रिचपमाद्यानामेकादशानां त्रिश्रेणयः ॥ ९७ ॥

जी० प्र०—अत्र नामैकदेशो नाम्नि प्रवर्तत इति लघुकरणन्यायमाश्रित्य निवेत्यादिवर्णैर्निगोदवायुकायिकादयो जीवा गृह्यंते। निगोदवायुतेजोऽभूकायिकनामानः पच सूक्ष्माः प्रथमकोष्ठे भवंति। पुनः वायुतेजोऽप्पृथ्वीकायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकनामानः षट् वादरास्तिर्यक्माागवत् क्रमेण द्वितीयकोष्ठे भवंति। पुनरुक्ततासामर्थ्यात् एते वादरा एवेति ज्ञातव्यं। पुनरप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रिय

... आद्यानां ... एकादशानामत्र ... ततः पंक्तयः कर्तव्याः । तत्रैकैक- पंक्तेः कोष्ठद्वयं द्वयं ज्ञातव्यं ।

मं० प्र०----सूक्ष्माणां--निगोदवायुतेजोभूकायिकानां, वादराणां वायुतेजोऽप्पृथ्वीकायिकानां निगोदानां प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणां च इतरेषामप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीराणा द्वित्रिचतु पर्चेंद्रियाणा एवं षोडशानामपर्याप्तकाना एका पंक्तिः कर्तव्या । तत्र आद्याना निगोदादिप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्यंतानां एकादशाना अधोधस्तिस्रः पंक्तयो लेखितव्याः ॥ ९७ ॥

सं० चं०--इहां नामका एकदेश सो संपूर्ण नामविषैं वर्ते है। इस लघुकरण न्यायका आश्रयकरि गाथाविषैं कह्या हूवा णि वा इत्यादि आदि अक्षरनिकरि निगोदवायुकायिक आदि जीवनिका ग्रहण करना। सो इहां अवगाहनाके भेद जाननेके अर्थि एक यंत्र करना । तहां सूक्ष्मनिगोदिया १ सूक्ष्मवायुकायिक २ सूक्ष्म तेजःकायिक ३ सूक्ष्म अप्कायिक ४ सूक्ष्म पृथ्वीकायिक ५ नाम धारक पांच सूक्ष्म तिस यंत्रके प्रथम कोठेविषैं लिखे हो हैं। बहुरि ताकी बराबर आगैं वादर वायु १ तेज २ जल ३ पृथ्वी ४ निगोद ५ प्रतिष्ठित प्रत्येक ६ नामधारक ये छह वादर पूर्ववत् अनुक्रमकरि दूसरा कोठाविषैं लिखे हो हैं। पहिलैं जिनिके नाम लीए तिनहीके फेर लीए इस प्रयोजनकी समर्थतातैं प्रथम कोठाविषैं सूक्ष्म कहे थे इहां दूसरा कोठाविषैं वादर ही हैं ऐसा जानना। बहुरि ताके आगैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक १ द्वींद्रिय २ त्रींद्रिय ३ चतुरिंद्रिय ४ पंचेंद्रिय ५ नामधारक ए पांच वादर तीसरा कोठाविषैं लिखे हो हैं। इनि सोलहौंविषैं आदिके सूक्ष्मनिगोदादिक ग्यारह तिनिकैं आगैं तीन पंक्ति करनी तहां एक एक पक्तिविषैं दोय दोय कोठे जानने । कैसैं ? सो कहिए है—पूर्वैं तीसरा कोठा कह्या था ताके आगैं दोय कोठे करने। तिनिविषैं जैसैं पहला दूसरा कोठाविषैं पांच सूक्ष्म छह वादर लिखे थे तैसैं इहां भी लिखे हो हैं। बहुरि तिनि दोऊ कोठानिके नीचैं पंक्तिविषैं दोय कोठे और करने। तहां भी तैसैं ही पांच सूक्ष्म छह वादर लिखे हो हैं। बहुरि तिनके नीचै पंक्तिविषैं दोय कोठे और करने तहां भी तैसैं ही पांच सूक्ष्म छह वादर लिखे हो हैं ऐसैं सूक्ष्म निगोदादि ग्यारह स्थानकानिका दोय दोय कोठानिकरि संयुक्त तीन पंक्ति भई। याप्रकार

ऊपरिकी पंक्तिविषै पांच कोठे तातै नीचली पंक्तिविषै दोय कोठे तातै नीचली पंक्तिविषै दोय कोठे तिनि मिलि नव कोठे भए ॥ ९७ ॥

अपदिट्ठिदपत्तेयं वितिचपतिचबिअपदिट्ठिदं सयलं ।
तिचविअपदिट्ठिदं च य सयलं वादालगुणिदकमा ॥ ९८ ॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येकं द्वित्रिचपत्रिचद्व्यप्रतिष्ठितं सकलं ।
त्रिचद्व्यप्रतिष्ठितं च च सकलं द्वाचत्वारिंशद्गुणितक्रमाः ॥ ९८ ॥

जी० प्र०---पुनस्तत्पंक्तित्रयस्याग्रे दशमकोष्ठे अप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियनामानः पंचवादरा भवंति । तदग्रे एकादशे कोष्ठे त्रिचतुर्द्वींद्रियाप्रतिष्ठितप्रत्येकसकलेंद्रियनामानः पंच वादरा भवंति। तदग्रे द्वादशे कोष्ठे त्रिचतुर्द्व्यप्रतिष्ठितप्रत्येकसकलेंद्रियनामानः पंचवादरा भवंति एतेषु चतुष्षष्टिजीवसमासावगाहनविकल्पेषु उपरितनपंक्तिगतद्वाचत्वारिंज्जीवसमासावगाहनविकल्पा गुणितक्रमा भवंति। तदन्ये तु 'सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो' इति सूचितं जात ॥ ९८ ॥

म० प्र०---अप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपचेंद्रियाणा पर्याप्तकानामेका पंक्ति कर्तव्या । पुनरग्रे त्रिचतुर्द्वींद्रियाप्रातिष्ठितप्रत्येकपचेंद्रियाणामपर्याप्तकानामेका पंक्तिः कर्तव्या । पुनरग्रे त्रिचतुर्द्वींद्रियाप्रतिष्ठितप्रत्येकपचेंद्रियाणा पर्याप्तकानामेका पक्तिः कर्तव्या । तत्र प्रथमानां षोडशानां पुनः पंक्तित्रये, उपरितनपक्तिगताना एकादशानां पुनरग्रपक्तित्रयगताना पचदशाना च जीवानां शरीरावगाहनानि द्वाचत्वारिंशद्गुणितक्रमाणि । अवशिष्टाधःपंक्तिद्वयगतजीवाना द्वाविंशतिः शरीरावगाहनानि आवश्यसंख्यातभागाधिकानीति ज्ञातव्यानि ॥ ९८ ॥

सं० चं०—बहुरि तिनि तीनि पंक्तिनिके आगैं ऊपर पंक्तिविषैं दशवां कोठा करना तींहिविषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक १ द्वींद्रिय २ त्रींद्रिय ३ चतुरिंद्रिय ४ पंचेंद्रिय ५ नाम धारक पांच वादर लिखे हो हैं। बहुरि ताके आगैं ग्यारहह्वां कोठाविषैं त्रींद्रिय १ चौइंद्रिय २ वेंद्रिय ३ अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती ४ पंचेंद्रिय ५ नाम धारक पांच वादर लिखे हो हैं। बहुरि ताके आगैं वारहवां कोठाविषैं त्रींद्रिय १ चतुरिंद्रिय २ द्वींद्रिय ३ अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती ४ पंचेंद्रिय ५ नाम धारक पांच वादर लिखे हो हैं। ऐसैं ए चौसठि जीवसमासनिकी अवगाह-

नाके भेद हैं। तिनिविषै ऊपरिकी पंक्तिनिके आठ कोठानिविषै प्राप्त ऐसे जे त्रियालीस जीवसमास तिनकी अवगाहनाके स्थान ते गुणितक्रम हैं अनुक्रमतैं पूर्व स्थानकौं यथासंभव गुणकार करि गुणे उत्तरस्थान हो हैं। बहुरि तातैं इनि नीचैकी दोय पंक्तिनिविषै प्राप्त भए वाईस स्थान ते 'सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो' इस वचनतैं अधिक रूप हैं। तहां एक प्रतिभागका अधिकपनां जानना। पूर्वस्थानकौं संभवता भागहारका भाग देइ एक भागकौं पूर्वस्थानविषै अधिक कीएं उत्तर स्थान हो है ऐसा सूचन कीया है॥ ९८ ॥

अवरमपुण्णं पढमं सोलं पुण पढमविदियतदियोली।
पुण्णिदरपुण्णियाणं जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं॥ ९९ ॥

अवरमपूर्णं प्रथमे षोडश पुनः प्रथमद्वितीयतृतीयावलिः।
पूर्णेतरपूर्णानां जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं ॥ ९९ ॥

जी० प्र०——प्रथमकोष्ठत्रयगतषोडशजीवसमासानां अपर्याप्तजघन्यावगाहा इति ज्ञातव्याः पुनरुपरि प्रथमद्वितीयतृतीयपंक्तिषु एकैकस्यां पंक्तौ द्वौ द्वौ कोष्ठौ यथाक्रमं पर्याप्तापर्याप्तपर्याप्ता इति त्रिविधजीवानां जघन्यमुत्कृष्टमुत्कृष्टं चावगाहनं स्यात्। तथाहि–प्रथमपंक्तौ सूक्ष्माः पंच बादराः षडित्येकादशानां पर्याप्तजीवसमासानां जघन्यावगाहनानि संति। तथा द्वितीयपंक्तिगततदेकादशापर्याप्तजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि संति। तथा तृतीयपंक्तिगतैकादशपर्याप्तजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि संतीत्ययं विभागो ज्ञातव्यः ॥ ९९

मं० प्र०——प्रथमपांक्तिगतानां षोडशानां सूक्ष्मनिगोदादीनां पचेंद्रियपर्यंतानां अपर्याप्तजीवानां अवगाहनानि जघन्यानि पुनरधोऽधः पंक्तित्रये प्रथमपांक्तिगतानां पर्याप्तकजविाना एकादशानां अवगाहनानि जघन्यानि द्वितीयपंक्तिगतानामपर्याप्तकजीवानामेकादशानामवगाहनान्युत्कृष्टानि। तृतीयपंक्तिगताना पर्याप्तकजीवानामेकादशानामवगाहनानि उत्कृष्टानि ॥ ९९ ॥

सं० चं०—पहले तीन कोठेनिविषै प्राप्त जे सोलह जीवसमास तिनिकी अपर्याप्तविषै जघन्य अवगाहना जाननी। बहुरि आगै ऊपरितैं पहली दूसरी तीसरी पंक्तिनिविषै एक एक पंक्तिविषै दोय दोय कोठे कीए ते क्रमतैं पर्याप्त अपर्याप्त पर्याप्त रूप तीनप्रकार जीवकी जघन्य उत्कृष्ट अर उत्कृष्ट अवगाहना है। याका अर्थ यहु–जो

ऊपरितैं प्रथम पंक्तिविषैं दोय दोय कोठानिविषैं पांच सूक्ष्म छह वादर इनि ग्यारह पर्याप्त जीवसमासनिकी जघन्य अवगाहनाके स्थान हैं। तैसैं ही नीचैं दूसरी पंक्तिविषैं प्राप्त तिनि ग्यारह अपर्याप्त जीवसमासनिकी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थान हैं। तैसैं ही तीसरी पंक्तिविषैं प्राप्त तिनि ग्यारह पर्याप्त जीव समासनिकी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थान हैं ॥ ९९ ॥

पुण्णजहण्णं तत्तोवरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं।
वीपुण्णजहण्णोत्ति असंखं संखं गुणं तत्तो ॥ १०० ॥

पूर्णजघन्यं ततोवरमपूर्णस्य पूर्णोत्कृष्टं।
द्विपूर्णजघन्यमिति असंख्यं संख्यं गुणं ततः ॥ १०० ॥

जी० प्र०—तदग्रे दशमे कोष्ठे पर्याप्तकपंचजीवसमासानां जघन्यावगाहनस्थानानि भवंति। ततस्तदग्रे एकादशे कोष्ठे अपर्याप्तकपंचजीवसमासानामुत्कृष्टावगाहनस्थानानि भवंति। तदग्रे द्वादशे कोष्ठे पर्याप्तकपंचजीवसमासानां उत्कृष्टावगाहनस्थानानि भवंति। तत्र दशमकोष्ठगतवादरपर्याप्तद्वींद्रियजघन्यावगाहनपर्यंतानि एकान्नत्रिंशदवगाहनानि असंख्यातगुणितक्रमाणि। तदग्रे वादरपर्याप्तसकलेंद्रियपर्यंतानि त्रयोदश तु संख्यातगुणितक्रमानीति ज्ञातव्यानि ॥ १०० ॥

मं० प्र०—ततः अग्रे प्रथमपंक्तिगतानामप्रतिष्ठितप्रत्येकादीनां पचानां पर्याप्तकजीवानां अवगाहनानि जघन्यानि। ततः द्वितीयाग्रपंक्तिगतानां त्रींद्रियादीना पंचानामपर्याप्तकजीवानामवगाहनान्युत्कृष्टानि। ततस्तृतीयाग्रपंक्तिगतानां त्रींद्रियादीना पंचाना पर्याप्तकजीवाना अवगाहनानि उत्कृष्टानि। सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यशरीरावगाहनादारभ्य पर्याप्तकद्वींद्रियजघन्यशरीरावगाहनपर्यंतानि एकोनत्रिंशच्छरीरावगाहनानि असंख्येयगुणानि। ततस्त्रींद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतानां जीवानां त्रयोदशशरीरावगाहनानि सख्येयगुणानि ज्ञातव्यानि ॥ १०० ॥

सं० चं०—ताके आगैं दशवां कोठाविषैं प्राप्त पर्याप्त पांच जीवसमासनिकी जघन्य अवगाहनाके स्थान हैं। बहुरि तहांतैं आगैं ग्यारह्वां कोठाविषैं अपर्याप्त पांच जीवसमासनिकी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थान हैं। बहुरि ताके आगे वारह्वां कोठाविषैं पर्याप्त पंच जीवसमासनिकी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थान हैं। ऐसैं ए कहे स्थान ति-

निविषैं प्रथम कोठाविषैं प्राप्त सूक्ष्म अपर्याप्तनिगोदिया जीवकी जघन्य अवगाहनातैं लगाइ दशवां कोठाविषै प्राप्त वादरपर्याप्त द्वींद्रियजीवकी जघन्य अवगाहनापर्यंत ऊपरिकी पंक्तिसंबंधी गुणतीस अवगाहनाके स्थान ते असंख्यात असंख्यातगुणा क्रम लीएं है। बहुरि तिसतैं आगै वादरपर्याप्त पंचेंद्रियकी उत्कृष्ट अवगाहनापर्यंत तेरह अवगाहनाके स्थान ते संख्यातगुणां संख्यातगुणां अनुक्रम लीए हैं ऐसा जानना।

सुहमेदरगुणगारो आवलिपल्ला असंखभागो दु।
सट्ठाणे सेढिगया अहिया तत्थेकपडिभागो ॥ १०१ ॥

सूक्ष्मेतरगुणकार आवलिपल्यासंख्येयभागस्तु।
स्वस्थाने श्रेणिगता अधिकास्तत्रैकप्रतिभागः ॥ १०१ ॥

जी० प्र०—अत्र सूक्ष्मजीवावगाहस्थानानि आवल्यसंख्येयभागगुणितानि। वादरजीवावगाहनस्थानानि पल्यासंख्यातभागगुणितानि च स्वस्थाने संतीस्यसंख्यातगुणाकारविभागो द्रष्टव्यः। अधस्तनद्वितीयतृतीयपंक्तिगतानि अवगाहनस्थानानि अधिकक्रमाणि स्युः। तत्र सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानादीनि उत्तरोत्तराणि पूर्वपूर्वावगाहनस्थानादावल्यसंख्यातैकभागमात्राधिकानीत्यर्थः। अधिकागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहारः स चावल्यसंख्येयभागः ८ परमगुरूपदेशागतो ज्ञातव्यः। अत्रोक्तावगाहनस्थानानां गुणकारविधान-
a

मुच्यते तद्यथा—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनस्थानमेकान्नविंशतिवारपल्यासंख्येयभागनववारावल्यसंख्येयभागद्वाविंशतिवाररूपाधिकावल्यसंख्येयभागनववारसंख्यातभक्तद्वाविंशतिवारावल्यसंख्येयभागगुणितघनांगुलप्रमाणमादिभूतं संस्थाप्य

६ । ८ । २२
a

प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ अतः सूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिकजीवस्य जघन्यमवगाहनस्थानमावल्यसंख्येयभागगुणितं
a a a

६ । ८ । २२ । ८
  a   a
प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ृ । ९ अस्य गुणाकारभूतावल्यसंख्यातेन भागहारभूतावल्यसंख्यातभागेषु नवस्वेकः सदृश इत्यपवर्तितः ।
a   a   a

६ । ८ । २२ ।
  a
प । १९ । ८ । ८ । ८ । २२ । ७ृ । ९ । अतः सूक्ष्मापर्याप्ततेजस्कायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणित-
a   a   a

६ । ८ । २२ । ८   ६ । ८ । २२ ।
  a   a   a
प । १९ । ८ । ८ । ८ । २२ । ७ृ । ९ मिदमपवर्तितं प । १९ । ८ । ७ । ८ । २२ । ७ृ । ९ अतः सूक्ष्मापर्याप्ताप्कायिकस्य जघन्यावगा-
a   a   a   a   a   a

६ । ८ । २२
  a
हनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तितं । प । १९ । ८ । ६ । ८ । २२ । ७ृ । ९ । अतः सूक्ष्मापर्याप्तभूकायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्ये-
a   a   a

६ , ८ , २२
  a
यभागगुणितमपवर्तितं प , १९ , ८ , ५ , ८ , २२ , ७ृ , ९ , अतः सूक्ष्मात्सूक्ष्मस्य गुणकारं स्वस्थानभूतमतीत्य परस्थानभूतबादराप-
a   a   a

र्याप्तवातकायिकस्य जघन्यावगाहः पल्यासंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः— प, १८, ८, ५, ८, २२, ७, ९ (६, ८, २१ / a; a a a) अतो बादरतेजस्कायिका-

पर्याप्तजघन्यावगाहः पल्यासंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः— प, १७, ८, ५, ८, २२, ७, ९, (६, ८, २२ / a; a a a) एवं पल्यासंख्येयभागगुणितक्रमेण

अग्रे नवस्थानानि नीत्वा नवमो बादरपञ्चेंद्रियापर्याप्तजघन्यावगाहोयं। प, ८, ८, ५, ८, २२, ७, ९। (६, ८, २२ / a; a a a) अतः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजघ-

न्यावगाहः परस्थानभूतावल्यसंख्येयभागगुणितोपवर्तितः—प। ८। ८। ४। ८। २२। ७। ९। (६, ८, २२, / a; a a a)

अतः सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तोत्कृष्टावगाहो विशेषाधिकः तद्विशेषप्रमाणं तु सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तजघन्यावगाहस्यावल्यसंख्येयभागभक्तैकभागमात्रं

६। ८। २२। (a)

प। ८। ८। ४। ८। २२। ७। ९। ८ (a a a a) इदं प्रक्षिप्य राशिमपवर्तयेत्। प। ८। ८। ४। ८। २१। ७। ९ (६। ८। २१। / a; a a a) अतः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तको-

त्कृष्टावगाहो विशेषाधिकः। विशेषप्रमाणं तु पूर्वोक्तसूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकोत्कृष्टावगाहस्यावल्यसंख्येयभागभक्तैकभागमात्रं

६ । ८ । २१
a
प । ८ । ८ । ४ । ८ । २१ । ७१९ । ८ इमं मेलयित्वापवर्तितः प । ८ । ८ । ४ । ८ । २० । ७ । ९ अतः सूक्ष्मवायुकायिकपर्याप्तजघन्याव-
a a a a a a a

६ । ८ । २० ।
a
गाहः आवल्यसंख्येयभागगुणितोऽपवर्तितः—प । ८ । ८ । ३ । ८ । २० । ७ । ९ अतः सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकं ।
a a a

६ । ८ । १९ ।
a
विशेषोऽत्रावल्यसंख्येयभक्तपूर्वराशिमात्रः तं मेलयित्वा अपवर्तयेत्—प । ८ । ८ । ३ । ८ । १९ । ७ । ९ अतस्तदधस्तनसूक्ष्मवायुकायिकप-
a a a

६ । ८ । १८
a
र्याप्तोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिकं आवल्यसंख्येयभागभक्तपूर्वराशिनाधिकमित्यर्थः । प । ८ । ८ । ३ । ८, १८, ७, ९ अतः सूक्ष्मतेजस्का-
a a a

६, ८, १८
a
यिकपर्याप्तजघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुणितमपवर्तित प, ८, ८, २, ८, १८, ७, ९ एवं द्वे द्वे आवल्यसंख्येयभागभक्तस्वस्वपूर्वराश्य-
a a a
धिके एकैकं स्वस्वपूर्वराशितः आवल्यसंख्येयभागगुणितमित्यष्टावगाहनान्यतीत्य अष्टमं सूक्ष्मभूकायिकपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनं विशेषाधिक-

६, ८, १२
a
मपवर्तितमिदं प, ८, ८, १२, ७, ९ अतः बादरवायुकायिकपर्याप्तजघन्यावगाहनं परस्थानत्वात्पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्तितं—
a a

६, ८, १२
a
प, ७, ८, १२, ११, ९ इतोऽग्रे द्वे द्वे प्राग्वत्प्रतिभागभक्तैकैकभागाधिके एकैकं पल्यासंख्यातगुणितमिति सप्तदशावगाहनान्यतीत्य
a a

६
सप्तदशं बादरपर्याप्तप्रतिष्ठितोत्कृष्टावगाहनमधिकमपवर्तितं प, २, ११, ९ अतः बादराप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येय-
a

६
भागगुणितमपवर्तितं प, १, ११, ९ अतः बादरद्वींद्रियपर्याप्तजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुणितमपवर्तितं ६ अतः त्रिचतुःपंचेंद्रियपर्या-
a ११ ९

प्तजघन्यावगाहनानि प्रत्येकं पूर्वपूर्वतः संख्यातसंख्यातगुणितानि त्रि ६, च ६, पं ६ अतः बादरत्रींद्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं
११ ८ ११ ७ ११ ६

संख्यातगुणं ६ अतः बादरचतुरिंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः द्वींद्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६
११ ५ ११ ४ ११ ३

अतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकापर्याप्तोत्कृष्टावगाहन संख्यातगुणं ६ अतः सकलेंद्रियापर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ अतः त्रींद्रि-
११, २ ११, १

यपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६ ११ इदमपवर्तितं गुणाकारबाहुल्यात्संख्यातघनांगुलप्रमाण भवति ६ ११, अतश्चतुरिंद्रियपर्याप्तकोत्कृ-
११, १

ष्टावगाहन संख्यातगुण ६ ११ ११ अतः द्वींद्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं ६, ११, ११, ११, अतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तोत्कृष्टावगा-
हनं संख्यातगुणं ६, ११, ११, ११, ११, अतः सकलेंद्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनं संख्यातगुणं भवति ६ ११११११११, ॥ १०१ ॥ अथ सूक्ष्म-
निगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनतोऽग्रतनसूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्य गुणकारभूतपल्यसंख्येयभागस्योत्पत्तिक्रम तन्म-
ध्यावगाहविकल्पप्रकारांश्च गाथानवकेनाह—

म० प्र०——सूक्ष्मजीवानामवगाहनगुणकारः आवल्यसंख्येयभागः। इतरेषां वादराणां अवगाहनगुणकारः पल्यासंख्येयभागः। ईदृग्विधो गुणकारः स्वस्थाने प्राचुर्येण संभवति। परस्थाने तु पुनः क्वचित्संभवति तथाहि–सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकनिगोदस्य जघन्यशरीरावगाहनात् सूक्ष्मापर्याप्तकवायुकायिकस्य जघन्यशरीरावगाहनं आवल्यसंख्येयभागगुणं। ततस्तादृक्तेजस्कायिकस्य जघन्यावगाहनं आवल्यसंख्येयभागगुणं। ततस्तादृगप्कायिकस्य जघन्यावगाहनं आवल्यसंख्येयभागगुण। ततस्तादृग्भूकायिकस्य जघन्यावगाहनमावल्यसंख्येयभागगुण इत्येते सूक्ष्मस्य स्वस्थानगुणकाराः। ततः सूक्ष्मापर्याप्तकभूकायिकजघन्यावगाहनात् वादरापर्याप्तकवायुकायिकजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुण इत्येष वादरस्य परस्थानगुणकारः। ततः वादरापर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुण। एव पूर्वपूर्वावगाहनादुत्तरोत्तरावगाहनानि अपर्याप्तपंचेंद्रियजघन्यावगाहनपर्यंतानि नवापि पल्यासंख्येयभागगुणानि द्रष्टव्यानि। इत्येते वादरस्य स्वस्थानगुणकाराः। ततः वादरापर्याप्तपचेंद्रियजघन्यावगाहनादधोध पंक्तित्रयस्य प्रथमपंक्तिगतं सूक्ष्मपर्याप्तनिगोदजघन्यावगाहनं आवल्यसंख्येयभागगुणं इत्येष सूक्ष्मस्य परस्थानगुणकारः। ततोऽधो द्वितीयपंक्तिगतं सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदस्योत्कृष्टावगाहन आवल्यसंख्येयभागाधिकं। ततोऽधस्तृतीयपंक्तिगत सूक्ष्मपर्याप्तनिगोदस्योत्कृष्टावगाहनं आवल्यसंख्येयभागाधिक। तत उपरिप्रथमपंक्तिगत सूक्ष्मपर्याप्तकवायुकायिकस्य जघन्यावगाहनं आवल्यसंख्येयभागगुण। ततो द्वितीयपंक्तिगतं सूक्ष्मापर्याप्तकवायुकायिकस्योत्कृष्टावगाहनं आवल्यसंख्येयभागाधिक। ततोऽधस्तृतीयपंक्तिगत सूक्ष्मपर्याप्तकवायुकायिकस्य उत्कृष्टावगाहनं आवल्यसंख्येयभागाधिकं। एव प्रथमपंक्तिगतानि पर्याप्ततेजस्कायिकादीना जघन्यावगाहनानि आवल्यसंख्येयभागगुणानि। अधोद्वितीयतृतीयपंक्तिगतानि अपर्याप्तपर्याप्तानां तेषां उत्कृष्टावगाहनानि आवल्यसंख्येयभागाधिकानि वादरपर्याप्तप्रत्येकप्रतिष्ठितोत्कृष्टावगाहनपर्यंतानि नेतव्यानि। अय तु विशेषः–प्रथमपंक्तिगतानि वादरपर्याप्तवायुकायिकादीना प्रतिष्ठितप्रत्येकपर्यंताना जघन्यावगाहनानि पल्यासंख्येयभागगुणानि इति अधःश्रेणिद्वयगतान्यवगाहनानि अधिकानि। तत्र अधिकागमने एक. प्रतिभागहारः आवल्यसंख्येयभागमात्रः इति सूत्रकाराभिप्रायात्। पुन अधस्तृतीयपंक्तिगतपर्याप्तप्रतिष्ठितप्रत्येकस्योत्कृष्टवगाहनात्पर्याप्ताप्रतिष्ठितप्रत्येकस्याग्रपंक्तिगतस्य जघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुण। ततः पर्याप्तद्वींद्रियस्य जघन्यावगाहनं पल्यासंख्येयभागगुण ततः पर्याप्तत्रींद्रियस्य जघन्यावगाहन संख्येयगुण। ततः पर्याप्तचतुरिंद्रियस्य जघन्यावगाहनं संख्येयगुणं। तत. पर्याप्तपंचेंद्रियस्य जघन्यावगाहन संख्येयगुण। ततः अग्रपंक्तिगतान्यपर्याप्तत्रिचतुर्द्वींद्रियाप्रतिष्ठितप्रत्येकपंचेंद्रियाणा उत्कृष्टावगाहनानि पूर्वपूर्वावगाहनात्संख्येयगुणानि। ततः

६

अपर्याप्तपंचेंद्रियोत्कृष्टावगाहनात् घनांगुलसंख्येयभागमात्रात् ७ृ अग्रपंक्तिगत पर्याप्तत्रींद्रियस्योत्कृष्टावगाहन संख्येयगुणं भवदपि गुणकारवाहुल्यात् संख्येयघनांगुलमात्रं भवति ६७ृ ततः पर्याप्तचतुर्द्वींद्रियाप्रतिष्ठितप्रत्येकपंचेंद्रियाणामुत्कृष्टावगाहनानि पूर्वपूर्वावगाहनात्संख्येयगुणानि ज्ञातव्यानि। एतेषामुक्तानामवगाहनाना चतुःषष्टिस्थानन्यासोयं——

१	२	३	४	५
सू। आ।आ।णि ६।८।२२ a ~ प १९।८।९।८।२२।ॠ९ a a a	वा ६।८।२२। a ~ प १९।८।८।८।२२।ॠ९ a a a	ते ६।८।२२ a ~ प १९।८।७।८।२२।ॠ९ a a a	आ ६।८।२२ a ~ प १९।८।६।८।२२।ॠ९ a a a	भू ६।८।२२ a ~ प १९।८।५।८।२२।ॠ९ a a a
६	**७**	**८**	**९**	**१०**
वा। अ। ज। वा। ६।८।२२ ~a प। १८।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	ते ६ ८ २२ a ~ प १७।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	आ ६ ८ २२ a ~ प १६।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	पु ६ ८ २२ a ~ प १५।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	णि ६ ८ २२ a ~ प १४।८।५।८।२२।ॠ९ a a a
११	**१२**	**१३**	**१४**	**१५**
प्र ६ ८ २२ a ~ प १३।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	अप्र ६ ८ २२ a ~ प १२।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	वि ६ ८ २२ a~ प ११।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	ति ६ ८ २२ a~ प १०।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	च ६ ८ २२ a~ प ९।८।५।८।२२।ॠ९ a a a
१६	**१७**	**१८**	**१९**	**२०**
पं ६ ८ २२ a ~ प८।८।५।८।२२।ॠ९ a a a	सू।प।ज।णि ६ ८ २२ ~a प८।८।४।८।२२।ॠ९ a a a	सू। अ।उ। णि६ ८ २१ ~ a प ८।८४।८।२१।ॠ९ a a a	सू। प। उ। णि। ६।८।२० ~ a प८।८।४।८।२०।ॠ९ a a a	सू, प, ज, वा, ६, ८, २० ~ a प८, ८, ३, ८, २०, ॠ, ९ a a a

५१

२१	२२	२३	२४	२५
सु, अ, उ, वा, ६ ८ १९ a प ८, ८,३,८,१९, ग़ृ ९ a a a	सू, प, उ, वा, ६ ८ १८ a प ८, ८, ३, ८,१८,ग़ृ९ a a a	सू, प, ज, ते, ६ ८ १८ a प ८, ८, २, ८, १८ग़ृ९ a a a	सू, अ, उ, ते ६ ८ १७ a प८, ८,२,८,१७, ग़ृ९ a a a	सू, प, उ, ते, ६ ८ १६ a प, ८, ८,२,८, १६ ग़ृ९ a a a
२६	२७	२८	२९	३०
सु, प, ज, आ, ६ ८ १६ a प ८, ८, १, ८, १६, ग़ृ९ a a a	सु, अ, उ, आ, ६ ८ १५ a प८, ८, १, ८, १५ ग़ृ९ a a a	सू, प, उ, आ ६ ८ १४ a प ८, ८, १, ८, १४,ग़ृ९ a a a	सू, प, ज, मू, ६ ८ १४ a प ८, ८, १४, ग़ृ ९ a a	सू, अ, उ, मू ६ ८ १३ a प ८, ८, १३, ग़ृ ९ a a
३१	३२	३३	३४	३५
सू, प, उ, मू ६ ८ १२ a प, ८, ८, १२, ग़ृ९ a a	वा, प, ज, वा, ६ ८ १२ a प ७, ८, १२, ग़ृ९ a a	वा, अ, उ, वा, ६ ८ ११ a प ७, ८, ११, ग़ृ९ a a	वा, प, उ, वा, ६ ८ १० a प ७, ८, १०, ग़ृ ९ a a	वा, प, ज, ते, ६ ८ १० a प ६, ८, १०, ग़ृ९ a a
३६	३७	३८	३९	४०
वा । अ । उ । ते । ६।८।९ a प । ६।८।९।ग़ृ९ a a	वा । प । उ । ते ६ ८ ८ a प ६।८।८।ग़ृ९ a a	वा । प । ज । आ । ६ ८ ८ a प ५।८।८।ग़ृ९ a a	वा । आ । उ । आ ६ ८ ७ a प ५।८।७।ग़ृ९ a a	वा । प । उ । आ । ६ ८ ६ a प ५।८।६।ग़ृ९ a a

४१	४२	४३	४४	४५
बा । प । ज । पु ६ ८ ६ a प ४।८।६।ॡ९ a a	बा । अ । उ । पु । ६ ८ ५ a प ४।८।५।ॡ९ a a	बा । प । उ । पु । ६ ८ ४ a प ४।८।४।ॡ९ a a	बा । प । जा णि ६ ८ ४ a प ३ । ८ । ४।ॡ ९ a a	बा । अ । उ। णि । ६ ८ ३ a प। ३ । ८। ३। ॡ ९ a a
४६	४७	४८	४९	५०
बा । प । उ । णि । ६ ८ २ a प ।३।८।२।ॡ९ a a	बा । प । ज । प्र। ६।८।२ a प २।८।२। ॡ९ a a	बा। आ। उ । प्र। ६ ८ १ a प २। ८ । १ । ॡ ९ a a	बा। आ। उ। प्र ६ प २। ॡ ९ a	बा । प। जा। अप्र । ६ प १। ॡ ९ a
५१	५२	५३	५४	५५
प। जा। बि। ६ ॡ। ९	प। जा। ति। ६ ॡ। ८	प। जा। चौ। ६ ॡ। ७	जा। पा। पा ६ ॡ ६	आ उ। ति। ६ ॡ। ५
५६	५७	५८	५९	६०
आ। उ। चा। ६ ॡ। ४	आ। उ। बि। ६ ॡ। ३	आ। उ। अप्र। ६ ॡ। २	आ। उ। पं। ६ ॡ। १	आ। उ। ति। ६। ॡ
६१	६२	६३	६४	
प, उ, च, ६ ॡ ॡ	प, उ, वि, ६, ॡ ॡ ॡ	प, उ, अप्र, ६ ॡॡॡॡ	प, उ, पं, ६ ॡॡॡॡॡ	

यिवनावल्यसंख्यातभागर्दिदंखंडिसिदेकभाग ६ ८ २२ । १ यिदु विशेषप्रमाणमिदरिदम्यधिकर्मेबुदर्थमिदंकूडियपवर्त्तितमिदु ६ ८ २१

a

प ८।८।४।८।२२।ॡ९।८

a a a a

a

प ८।८।४।८।२१।ॡ९

a a a

अपर्याप्तजघन्यं लब्ध्यपर्याप्तकेषु स्वस्थोत्पन्नतृतीयसमये भवति । अपर्याप्तकोत्कृष्टं निर्वृत्त्यपर्याप्तकेषु शरीरापर्याप्तिकालचरमसमये भवति । पर्याप्तजघन्य शरीरपर्याप्तिप्रथमसमये भवति । लब्ध्यपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनानिर्वृत्यपर्याप्तजघन्यावगाहनानि च तन्मध्यपतितानि ज्ञातव्यानि ॥ १०१ ॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवाः अवगाहनानां चतु स्थानवृद्धिक्रमं दशभिर्गाथासूत्रैः प्ररूपयंति--

सं० चं०-इहां गुणतीस स्थान असंख्यातगुण कहे तिनिविषै जे सूक्ष्मजीवनिके अवगाहनाके स्थान हैं ते आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणित जानने। पूर्व स्थानकौं घनावलीका असंख्यातवां भागकरि तहां एक भागकरि गुणें उत्तरस्थान हो है। बहुरि जे वादर जीवनिके अवगाहनाके स्थान हैं ते पल्यका असंख्यातवां भागकरि गुणित हैं पल्यका असंख्यातभागकरि तहां एक भागकरि पूर्वस्थानकौं गुणें उत्तर स्थान हो हैं ऐसैं स्वस्थानविषैं गुणकार हैं याप्रकार असंख्यातका गुणकारविषैं भेद है सो देखना। बहुरि नीचली दूसरी तीसरी पंक्तिविषैं प्राप्त जे अवगाहनाके स्थान ते अधिक अनुक्रम धरैं हैं। तहां सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तककी उत्कृष्ट अवगाहनाके स्थानकौं आदि देकरि उत्तरस्थान पूर्व पूर्व अवगाहनास्थानतैं ताहीकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एक भागमात्र अधिक है। पूर्वस्थानकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना पूर्वस्थानविषैं अधिक कीएं उत्तरस्थानविषैं प्रमाण हो है। इहां अधिकका प्रमाण ल्यावनेके अर्थि भागहार वा भागहारका भागहार सो आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। ऐसैं परमगुरुका उपदेशतैं चल्या आया प्रमाण जानना। बहुरि इहां यहु जानना सूक्ष्मनिगोदियाकातीनों पंक्तिविषैं अनुक्रमकरि पीछै सूक्ष्मवातकायका तीनौंपंक्तिनिविषैं अनुक्रम करना ऐसैं ही क्रमतैं ग्यारह जीव समासनिका अनुक्रम जानना।

यहु यंत्र जीवसमासनिकी अवगाहनाका है इहां ऊपरिकी पंक्तिविषै प्राप्त वियालीसस्थान गुणकाररूप हैं तहां पहला चौथा कोठाविषैं सूक्ष्म जीव कहे ते क्रमतैं पूर्वस्थानतैं उत्तरस्थान आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणित हैं बहुरि दूसरा तीसरा सातवां कोठाविषैं वादर कहे अर दशवां कोठाविषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक वा वेंद्री कहे ते क्रमतैं पल्यके असंख्यातवां भागकरि गुणित हैं बहुरि दशवां कोठाविषैं तेंद्रीसौं लगाइ ग्यारह्वां कोठाविषैं

प्राप्त पंचेंद्री पर्यंत संख्यातकरि गुणित हैं बहुरि नीचली दोय पंक्तिनिके च्यारि कोठानिविषैं जे स्थान कहे ते आवलीका असंख्यातवां भागकरि भाजित पूर्वस्थान प्रमाण अधिक हैं।

सूक्ष्मनिगोद १ वात २ तेज ३ अप ४ पृथ्वी ५ इनि पंच अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	वादरवात ६ तेज ७ अप् ८ पृथ्वी ९ निगोद १० प्रतिष्ठित प्रत्येक ११ इनि छह अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना	अप्रतिष्ठित प्रत्येक १२ वेंद्री १३ तेंद्री १४ चौंद्री १५ पंचेंद्री १६ इनि पांच अपर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	सूक्ष्मनिगोद १७ वात १८ तेज १९ अप् २० पृथ्वी २१ इनि पंच पर्याप्तनि की जघन्य अवगाहना।	वादर वात २२ तेज २३ अप २४ पृथ्वी २५ निगोद २६ प्रतिष्ठित प्रत्येक २७ इनि छहो पर्याप्तनिकी जघन्य अवगाहना	अप्रतिष्ठित प्रत्येक ५० वेंद्री ५१ तेंद्री ५२ चौंद्री ५३ पंचेंद्री ५४ इनि पांच पर्याप्तनिकी जघन्य अवगाहना	तेंद्री ५५ चौइंद्री ५६ वेंद्री ५७ अप्रतिष्ठित ५८ पंचेंद्री ५९ इनि पांच अपर्याप्तनिकी उत्कृष्ट अवगाहना।	वेंद्री ६० चौइंद्री ६१ वेंद्री ६२ अप्रतिष्ठित प्रत्येक ६३ पंचेंद्री ६४ इनि पांच पर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।
			सूक्ष्मनिगोद २८ वात २९ तेज ३० अप् ३१ पृथ्वी ३२ इनि पांच अपर्याप्तनिकी उत्कृष्ट अवगाहना।	वादर वात ३३ तेज ३४ अप् ३५ पृथ्वी ३६ निगोद ३७ प्रतिष्ठित प्रत्येक ३८ इनि छहो अपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।			
			सूक्ष्मनिगोद ३९ वात ४० तेज ४१ अप् ४२ पृथ्वी ४३ इनि पंचपर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना।	वादर वात ४४ तेज ४५ अप् ४६ पृथ्वी ४७ निगोद ४८ प्रतिष्ठित प्रत्येक ४९ इनि छहौ पर्याप्तनि की उत्कृष्ट अवगाहना			

अब इहां कहे जे अवगाहनाके स्थान तिनके गुणकार विधान कहिए है। सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाका स्थान सो आगैं कहैंगे गुणकार तिनिकी अपेक्षा ऐसा है–उसणीसवार पल्यका भाग नववार आवलीका असंख्यातवां भाग वाईसवार एक अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग नव वार संख्यात इनिका तौ जाकौं भाग दीजिए। बहुरि वाईस वार आवलीका असंख्यातवां भागकरि जाकौं गुणिए ऐसा जो घनांगुल तींहि प्रमाण है सो याकौं आदिभूत स्थान स्थापि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्तक वायुकायिक जीवका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणित है सो याका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग अर पूर्वैं आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार नव वार कह्या था तामैं एकवार आवलीका असंख्यातवां भाग सदृश देखि दोऊनिका अपवर्तन कीएं पूर्वैं जहां नव वार कह्या था तहां इहां आठवार आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार जानना। ऐसैं ही आगैं भी गुणकार भागहारकौं समान देखि तिनि दोऊनिका अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त तेजःकायिककी जघन्य अवगाहनाका स्थान आवलीका असंख्यातवां भाग गुणित है। इहां भी पूर्वोक्तप्रकार अपवर्तन कीएं आठवारकी जायगा सातवार आवलीका असंख्यात भागका भागहार हो है। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिकका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां पूर्ववत् अपवर्तन करणा। बहुरि यातैं सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायिकका जघन्य अवगाहना स्थान आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। ऐसैं इहां आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार तौ पांच वार रह्या अन्य सर्वगुणकार भागहार पूर्ववत् जानने। बहुरि इहां पर्यंत सूक्ष्मतैं सूक्ष्मका गुणकार भया तातैं स्वस्थान गुणकार कहिए है। अब सूक्ष्मतैं बादरका गुणकार कहिए है सो यहु परस्थान गुणकार जानना। आगैं भी सूक्ष्मतैं बादर बादरतैं सूक्ष्मका जहां गुणकार होइ सो परस्थान गुणकार है ऐसा विशेष जानना। बहुरि इस सूक्ष्म अपर्याप्त पृथिवीकायिकका जघन्य अवगाहन स्थानतैं स्वस्थानगुणकारकौं उलंघि परस्थानरूप बादर अपर्याप्त वातकायिकका जघन्य अवगाहना

स्थान पल्यका असंख्यातवां भागगुणा है । इहां इस गुणकारकरि उसणीसवार पल्यका असंख्यातवां भागका भागहार था तामे एकवारका अपवर्तन करना। बहुरि यातैं वादरतेजकायिक अपर्याप्तकका जघन्य अवगाहना स्थान पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है इहां भी पूर्ववत् अपवर्तन करना। ऐसैं ही पल्यका असंख्यातवां भागगुणां अनुक्रमकरि अपर्याप्तवादर अप् पृथ्वी निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येकनिके जघन्य अवगाहना स्थान अर अपर्याप्त अप्रतिष्ठित प्रत्येक वेंद्री तेंद्री चौइंद्री पंचेंद्रीके जघन्य अवगाहना स्थान इन नव स्थानकनिकौं प्राप्त-करि पूर्ववत् अपवर्तन करतैं अपर्याप्त पंचेंद्रियका जघन्य अवगाहना स्थानविषैं आठवार पल्यका असंख्यातवां भागहारका भागहार रहै है । अन्य भागहार गुणकार पूर्ववत् जानना। बहुरि यातैं सूक्ष्म निगोद पर्याप्तकका जघन्य अवगाहना स्थान सो परस्थान रूप आवलीका असंख्यातवां भागगुणा है । सो पूर्वैं आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार पांचवार रह्या था तामैं एकवार करि इसगुणकारका अपवर्तन करना । बहुरि यातैं सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहना स्थान विशेषकरि अधिक है। विशेषका प्रमाण कह्या सूक्ष्म निगोद-पर्याप्तका जघन्य अवगाहना स्थानकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एकभागमात्र विशेषका प्रमाण है। याकौं तिसही सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तका जघन्य स्थानविषैं समच्छेद विधानकरि मिलाइ राशिकौं अपवर्त्तन कीएं सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन हो है। अपवर्तन कैसैं करिए? जहां जिस राशिका भागहार देइ एकभागकौं कोई विवक्षित राशिविषैं जोडना होइ तहां तिस राशितैं एक अधिकका तौ गुणकार अर तिस पूर्णराशिका भागहार विवक्षित राशिकौं दीजिए । जैसैं चौसठिका चौथा भाग चौसठिविषैं मिलावना होइ तौ चौसठिकौं पांच गुणांकरि च्यारिका भागदीजिए तैसैं इहां भी आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग मिलावना है तातैं एक अधिक आवलीका असंख्यातवां भागका गुणकार अर आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार करनां । बहुरि पूर्वैं राशिविषै वाईसवार एक अधिक आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार है अर वाईसवार ही आवलीका असंख्यातभागका गुण-

कार रहे सो इनिविषे एकवारका भागहार गुणकार करि अवे कहे जे गुणकार भागहार तिनिका अपवर्तन कीएं वाईसवारकी जायगा गुणकार भागहार इकईस वारही रहै है ऐसैं ही जहां आगे भी विशेष अधिक होइ वहां अपवर्तनकरि आवलीका असंख्यातवां भागका गुणकार अर एक अधिक आवलीकाअसंख्यातवां भागका भागहार एक एकबार घटावनां। बहुरि सूक्ष्मनिगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहनतैं सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। इहां विशेषका प्रमाण सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनाकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं एकभागमात्र है याकौं पूर्व अवगाहनविषै जोडि पूर्ववत् अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्मवायुकायिक अपर्याप्तका जघन्य अवगाह आवलीका संख्यातवां भाग गुणां है। सोई अपवर्तन कीएं च्यारि वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग था सो तीनवार ही रहै है। बहुरि यातैं सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। इहां विशेषका प्रमाण पूर्वराशिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एक भागकरि अधिक जानना ऐसा एक भागमात्र है। ताकौं जोडि अपवर्तन करना। बहुरि यातैं नीचै सूक्ष्मवायुकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन सो विशेषकरि अधिक है। पूर्वराशिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीये तहां एक भागकरि अधिक जाननां। इहां भी अपवर्तन करना। बहुरि यातैं सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्तकका जघन्य अवगाहन आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां अपवर्तन करिए तहां आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार तीनवारकी जायगा दोयवार ही रहै है ऐसैं ही यातैं सूक्ष्मं तेजःकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं सूक्ष्म तेजकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विषेशकरि अधिक है। यातैं सूक्ष्म अपकायिक पर्याप्तकका जघन्य अवगाहन आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा है। यातैं सूक्ष्म अपकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं सूक्ष्म अपकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तका जघन्य अवगाहन आवलीका असंख्यातवां भागगुणा है यातैं सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन

विशेषकरि अधिक है। यातैं सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है ऐसैं दोय दोय तौ आवलीका असंख्यातवां भागकरि भाजित पूर्वराशि प्रमाण विशेषकरि अधिक अर एक एक अपना अपना पूर्वराशितैं आवलीका असंख्यातवां भागगुणा जानना। ऐसैं आठ अवगाहना स्थाननिकौं उलंघि तहां आठवां सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन मो पूर्वोक्तप्रकार अपवर्तन करतैं वारहवार आवलीका असंख्यातवां भागका गुणकार अर आठवांवार पल्यका असंख्यात भागका वारहवार एक अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग नववार संख्यातका भाग जाकैं पाइए ऐसा घनांगुल प्रमाण हो है। बहुरि यातैं वादरवायुकायिक पर्याप्तका जघन्य अवगाहन परस्थानरूप है तातैं पल्यका असंख्यातवां भागगुणां है। इहां पल्यका असंख्यातवां भागका भागहार आठवार था तामैं एकवारकरि अपवर्तन कीएं सातवार रहै है। बहुरि यातैं आगैं दोयदोय स्थान तौ विशेषकरि अधिक अर एक एक स्थान पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा जानना। तहां विशेषका प्रमाण अपना अपना पूर्वराशिकौं आवलीका असंख्यातवां भागरूप प्रतिभागका भाग दीएं एक भाग प्रमाण जानना सो इहां अधिक होइ तहां अपवर्तन कीएं वारहवार आवलीका असंख्यातवां भागका गुणकार अर एक अधिक आवलीका असंख्यातवां भागका भागहार थे तिनिविषैं एक एक वार घटता हो है। बहुरि जहां पल्यका असंख्यातवां भागका गुणकार होइ तहां अपवर्तन कीएं सातवार पल्यका असंख्यातवां भागका भागहार थे तिनिविषैं एक एक वार घटता हो है ऐसा क्रम जानना। सो वादर वायुकायिक पर्याप्तका जघन्य अवगाहनतैं वादर वायुकायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं वादर वायुकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं वादर तेजकाय पर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है यातैं वादर तेजकाय अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं वादर तेजकायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं वादर अप्कायिक अपर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है। यातैं वादर अप्कायिक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक

है। यातैं वादर अप्कायिक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेषकरि अधिक है। यातैं वादर पृथ्वी पर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है यातैं वादर पृथ्वी अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातैं वादर पृथ्वी पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातैं वादर निगोद पर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है। यातैं वादर निगोद अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातैं वादर निगोद पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातैं प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यके असंख्यातवां भाग गुणा है। यातैं प्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। यातैं प्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन विशेष अधिक है। ऐसैं सतरह अवगाहन स्थाननिकौं उलंघि पूर्वोक्तप्रकार अपवर्तन कीएं सतरह्वां वादर पर्याप्त प्रतिष्ठित प्रत्येकका उत्कृष्ट अवगाहन दोयवार पल्यका असंख्यातवां भाग अर नववार संख्यातका भाग जाकौं दीजिए ऐसा घनांगुल प्रमाण हो है। वहुरि यातैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी अपवर्तन करना। वहुरि यातैं वेंद्री पर्याप्तका जघन्य अवगाहन पल्यका असंख्यातवां भाग गुणा है। इहां भी अपवर्तन कीएं पल्यका असंख्यातवां भागका भागहार था सो दूरि होइ घनांगुलका नववार संख्यात भागहार रह्या वहुरि यातैं तेंद्री चौंद्री पंचेंद्री पर्याप्तनिके जघन्य अवगाहन ते क्रम तैंपूर्व पूर्वतैं संख्यात संख्यात गुणैं हैं यातैं तेंद्री अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है यातैं चौंद्री अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं वेंद्री अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं पंचेंद्री अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है ऐसैं एक एकवार संख्यातका गुणकारकरि नववार संख्यातका भागहारविषैं एक एक वारका अपवर्तन करतैं पंचेंद्री अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन एकवार संख्यातकरि भाजित घनांगुल प्रमाण हो है। वहुरि यातैं त्रींद्रिय अपर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है सो अपवर्तन करिए तथापि इहां गुणकारके संख्यातका प्रमाण भागहारके संख्यातका प्रमाणतैं वहुत है

तातैं त्रींदिय पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा घनांगुल प्रमाण है। यातैं चौइंद्री पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं वेंद्री पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। यातैं पंचेंद्री पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन संख्यात गुणा है। ऐसैं क्रमतें अवगाहनके स्थान जाननें ॥१०१॥ आगैं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तका जघन्य अवगाहनतें आगैं सूक्ष्म वायुकायिक लब्धि अपर्याप्तके जघन्य अवगाहनका गुणकार स्वरूप आवलीका असंख्यात भाग कह्या ताकी उत्पत्तिका अनुक्रमकौं अर तिन दोऊनिके मध्य अवगाहनके भेद हैं तिनके प्रकारनिकौं गाथा नवकरि कहै हैं—

अवरुवरि इगिपदेसे जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए।
आदी णिरंतरमदो एगेगपदेसपरिवड्ढी ॥ १०२ ॥

अवरोपरि एकप्रदेशे युते असंख्यातभागवृद्धेः।
आदिः निरंतरमतः एकैकप्रदेशपरिवृद्धिः ॥ १०२ ॥

६ । ८ । २२
a

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनमिदं प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १९ लघुसंदृष्ट्या ज इति कृत्वा संस्था-
१ a १

प्य पुनर्द्वितीयावगाहनभेदनिमित्तमत्रैकप्रदेशे युते सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य द्वितीयावगाहनविकल्पो भवति। ज। एवं प्रदेशोत्तरक्रमेण तावद्वर्धतव्यं यावत्सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तकजघन्यावगाहनं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनाद् आवल्यसंख्येयभागगुणितं भवति। तत्र असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः इति चतुःस्थानगतवृद्धिभिर्मध्ये मध्ये अवक्तव्यभागवृद्धिमिश्र वर्धमानावगाहनस्थानानां उत्पत्तिप्रकारः कथ्यते—सर्वजघन्यावगाहनमिदं (ज) अस्मिन् अनेनैव भक्ते लब्धमेकरूपं। तज्जघन्यस्य उपरि युते द्वितीयविकल्पस्थानं असंख्यातभागवृद्धेरादिर्भवति। ज। ज। पुनस्तज्जघन्यावगाहने एव तदर्धेन ज भक्ते लब्धं रूपद्वयं तज्जघ-
२

न्यस्य उपरि युते तृतीयोऽवगाहनविकल्पः स्यात्। ज। ज। ज। एवमेव जघन्यावगाहनं यथायोग्यासंख्यातैर्भक्त्वा लब्धेषु त्रिचतुःपंचप्रभृति संख्यातासंख्यातरूपेषु जघन्यावगाहनयुतेषु निरंतरमेकैकप्रदेशवृद्धियुक्तावगाहनस्थानान्यसंख्यातान्यतीत्य—

ज। ज। ज। ज। ज। ज। ००० ज। ज। ००० ज॥ १०२॥

म० प्र०—अत्र सर्वजघन्यावगाहनस्य घनांगुलासंख्यातभागमात्रस्य प्रदेशाः असंख्याता एव नानंता. ततस्तस्य अनंतभागवृद्धिर्नास्ति। उत्कृष्टावगाहनस्य संख्यातघनांगुलमात्रस्य प्रदेशाः असंख्याता एव नानंता इति जघन्यादनंतगुणवृद्धिरपि नास्ति ततः असंख्यातभागवृद्ध्यादयश्चतस्र एव वृद्धयः आचार्यैरुच्यते। तथाहि—अवरस्य-जघन्यावगाहनस्य उपरि एकस्मिन् प्रदेशे युते सति द्वितीयमवगाहनं। अयमेवासंख्येयभागवृद्धेरादिर्भवति तत्र जघन्यावगाहनं (ज) इति कृत्वा तस्योपरि रूपमेकं लिखितव्यं (जं) घनांगुलासंख्यातभागमात्रे जघन्ये तावन्मात्रेणैव असंख्यातेन भक्ते लब्धस्य एकप्रदेशस्य दर्शनात् अत. पर निरंतरमेकैकप्रदेशवृद्ध्या युक्तानि सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनानि भवति। जघन्ये जघन्यार्धेन भक्ते लब्धे प्रदेशद्वये जघन्यस्य उपरि वृद्धे तृतीयमवगाहन (जं)। जघन्ये जघन्यत्रिभागेन भक्ते लब्धे प्रदेशत्रये जघन्यस्य उपरिवृद्धे चतुर्थमवगाहन (जं) जघन्ये जघन्यचतुर्भागेन भक्ते सति यल्लब्ध प्रदेशचतुष्कं तस्मिन् जघन्यस्य उपरिवृद्धे सति पचममवगाहन (जं)। एवमेकैकरूपाधिकभागहारभक्तजघन्येन जघन्ये भक्ते यल्लब्धं एकैकरूपाधिकप्रदेशमात्रं तस्मिन् जघन्यस्य उपरिवृद्धे सति षष्ठादिसंख्यातासंख्यातावगाहनानि सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकनिगोद संबंधीनि भवंति। यत्र क्वापि भागो नास्ति तत्र एकद्व्यादिरूपाणामपनयन प्रक्षेपण वा कृत्वा भागो ग्राह्य॥ १०२॥

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवका जघन्य अवगाहन पूर्वोक्त प्रमाण ताकी लघु संदृष्टिकरि यहु सर्वतैं जघन्य भेद है तातैं याका आदि अक्षर। ज। ऐसा स्थापनकरि बहुरि यातैं दूसरा अवगाहनाका भेदके अर्थि इस जघन्य अवगाहनविषैं एक प्रदेश जोडैं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तका दूसरा अवगाहनका भेद हो है। बहुरि ऐसैं ही एक एक प्रदेश बधता अनुक्रमकरि तावत् प्राप्त होना यावत सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तका जघन्य अवगाहन सो सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्त जघन्य अवगाहनतैं आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा होइ तहां असंख्यात भाग वृद्धि संख्यात भाग वृद्धि संख्यात गुण वृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि ऐसैं चतुस्थान पतित वृद्धि अर बीचि २ अवक्तव्य भाग वृद्धि वा अवक्तव्य गुणवृद्धि तिनिकरि बधते जे अवगाहनके स्थान तिनिके उपजनेका विधान कहिए है। भावार्थ—जघन्य अवगाहनाका जेता प्रदेशनिका प्रमाण ताकौं जघन्य अ-

वगाहना प्रमाण असंख्याततैं लगाइ जघन्यपरीतासंख्यातपर्यंत जिस जिसका भाग देना संभवै तिस तिस असंख्यातका भाग देते जिस जिस अवगाहना भेद विषैं प्रदेश बधतीका प्रमाण होइ तहां तहां असंख्यात भाग वृद्धि कहिए। बहुरि तिस जघन्य अवगाहनाका प्रदेश प्रमाणकौं उत्कृष्ट संख्याततैं लगाइ यथा संभव दोय पर्यंत संख्यातके भेदनिका भाग देतैं जघन्य अवगाहनतैं जिस ॰ अवगाहनविषै बधतीका प्रमाण होइ तहां तहां संख्यात भाग वृद्धि कहिये। बहुरि दोयतै लगाइ उत्कृष्ट संख्यातपर्यंत जघन्य अवगाहनाकों गुणैं जिस जिस अवगाहनाविषै प्रदेशनिका प्रमाण होइ तहां तहां संख्यात गुणवृद्धि कहिए। बहुरि जघन्य परीतासंख्याततैं लगाइ आवलीका असंख्यातवां भागपर्यंत असंख्यातभेदनिकरि जघन्य अवगाहनाकौ गुणै जिस जिस अवगाहनाके भेदविषैं प्रदेशनिका प्रमाण होइ तहां तहां असंख्यात गुणवृद्धि कहिए। बहुरि जहां जहां इनि संख्यात वा असंख्यातके भेदनिका भागहार गुणकार संभवै नाहीं ऐसे प्रदेश जघन्य अवगाहनातैं जहां जहां बंधती होइ सो अवक्तव्य भा . वृद्धि वा अवक्तव्य गुणवृद्धि कहिए। सो यहु अवक्तव्य वृद्धि पूर्वोक्त चतुःस्थान पतित वृद्धिके वीचि वीचि होइ है। बहुरि जहां जघन्य अवगाहना प्रमाणतैं बधता असंख्यातका अर अनंतका भागकी वृद्धि न संभवै है। जातैं इनिका भाग जघन्य अवगाहनकौं न बनै हैं। बहुरि इहां आवलीका असंख्यातवां भागतैं बंधता असंख्यताका अर अनंतका गुणकार रूप वृद्धि न संभवै है। जातैं इनिकरि जघन्य अवगाहनाकौं गुणै प्रमाण बधता होइ। इहां सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिकका जघन्य अवगाहना पर्यंत ही विवक्षा है ऐसैं इहां प्रदेश वृद्धिका स्वरूप जानना सोई विशेषकरि कहिए है-सर्वतैं जघन्य अवगाहनकौं इस जघन्य अवगाहना प्रमाण असंख्यातका भाग दीएं एक पाया सो जघन्य अवगाहनाके ऊपरि एक प्रदेश जोडैं दूसरा अवगाहनाका भेद हो है। सो यहु असंख्यात भाग वृद्धिका आदि स्थान है। बहुरि जघन्य अवगाहनातैं आधा प्रमाणरूप असंख्यातका भाग तिस जघन्य अवगाहनाकौं दीएं दोय पाए सो जघन्य अवगाहनाविषैं जोडैं तीसरा अवगाहनाका भेद होइ सो यहु असंख्यात भाग वृद्धिका दूसरा स्थान है। ऐसैं ही क्रमकरि जघन्य अवगाहनाकौं

यथायोग्य असंख्यातका भाग दीएं तीन च्यारि पांच इत्यादि संख्यात असंख्यात पाए ते जघन्य अवगाहना-विषैं जोडैं निरंतर एक एक प्रदेशकी वृद्धिकरि संयुक्त अवगाहनाके स्थान असंख्यात हो हैं। तिनिकौं उलंघि कहा होइ सो कहैं हैं—

अवरोग्गाहणमाणे जहण्णपरिमिदअसंखरासिहिदे।
अवरस्सुवरिं उड्ढे जेट्ठमसंखेज्जभागस्स ॥ १०३ ॥

अवरावगाहनाप्रमाणे जघन्यपरिमितासंख्यातराशिहते।
अवरस्योपरि वृद्धे ज्येष्ठमसंख्यातभागस्य ॥ १०३ ॥

जी० प्र०—एकत्र जघन्यावगाहने जघन्यपरिमितासंख्यातराशिना भक्ते $\frac{ज}{१६}$ लब्धं समच्छेदेन युते सति अपवर्त्य स राशिः असंख्यातभागवृद्धयवगाहनस्थानानां अवसानस्थानं स्यात्। ज। ज। ज। ज। ज। ००० ज ज। ००० $\frac{ज}{१६}$ ज एतानि असंख्यातभागवृद्धि-स्थानानि तु आदी ज, अंते $\frac{ज}{१६}$ शुद्धे $\frac{ज}{१६}$ वड्ढिहिदे $\frac{ज}{१६।१}$ रूवसंजुदे $\frac{ज}{१६।१}$ ठाणेत्येतावति भवंति ॥ १०३ ॥

म० प्र०—जघन्यावगाहनप्रमाणे जघन्यपरिमितासंख्यातराशिना हते सति यल्लब्धं तस्मिन् जघन्यस्योपरि वृद्धे सति असंख्यातभागवृद्धिस्थानानामुत्कृष्टमवगाहनस्थानं भवति $\frac{ज}{१६}$। जघन्यपरिमितासंख्यातात्अल्पस्यासंख्यातस्थानस्याभावादसंख्यातभागहारस्य स एव पर्यंतः। घनांगुलासंख्यातभागात् प्रभृत्यसंख्यातभागहारस्य द्वित्रिचतुर्भागातिक्रमेण हीनहीनरूपतया आगतस्य जघन्यपरिमितासंख्याते एव समाप्तत्वात् ॥ १०३ ॥

सं० चं०—एक जायगा जघन्यअवगाहनाकौं जघन्य परीतासंख्यातराशिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने जघन्य अवगाहनविषैं जोडैं जितने होइं तितने प्रदेश जहां अवगाहना भेदविषैं होंइ तहां असंख्यात भागवृद्धिरूप अवगाहना स्थाननिका अतंस्थान हो है। एते ए असंख्यात भाग वृद्धिके स्थान कितने भए सो कहिए है-आदी अंते सुद्धे वट्टिहिदे रूवसंजुदे ठाणे। इस करण सूत्रकरि असंख्यात भाग वृद्धिरूप अवगाहनाका आदिस्थानके प्रदेश प्रमाणकौं अंतस्थानका प्रदेश प्रमाणमैंसौं घटाएं अवशेष रहै ताकौं स्थान स्थान प्रति एक एक प्रदेश बधता है। जातैं एकका भाग दीएं भी तितने ही रहैं तिनमें एक और जोडैं जितने होंइ तितने असंख्यात भाग वृद्धिके स्थान जानने ॥ १०३ ॥

तस्सुवरि इगिपदेसे जुदे अवत्तव्वभागपारंभो।
वरसंखमवहिदवरे रूऊणे अवरउवरिजुदे ॥ १०४

तस्योपरि एकप्रदेशे युते अवक्तव्यभागप्रारंभः।
वरसंख्यातावहितावरे रूपोने अवरोपरियुते ॥ १०४ ॥

जी० प्र०–प्राक्तनासंख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने तु एकप्रदेशे युते सति अवक्तव्यभागवृद्धिप्रारंभावगाहनस्थानं स्यात् $\frac{ज}{१६ ज}$ तदग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमेण अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानान्यतीत्य एकत्र स्वस्थाने एकवारमुत्कृष्टसंख्यातभक्तजघन्यावगाहने एकप्रदेशोने $\frac{ज}{१५}$ तज्जघन्यावगाहनस्योपरि युते सति $\frac{ज}{१५ ज}$ ॥ १०४ ॥

म॰ प्र–तस्यासंख्यातभागवृद्ध्युत्कृष्टस्थानस्योपरि एकस्मिन् प्रदेशे युते सति अवक्तव्यभागवृद्धेः प्रारंभः आदिर्भवति $\frac{ज}{१६}$ ज ततः एकैकप्रदेशवृद्ध्या असंख्यातस्थानानि गत्वा उत्कृष्टसंख्यातभक्तजघन्ये रूपोने जघन्यस्योपरि युते सति ॥ १०४ ॥

सं॰ च॰—पूर्वोक्त असंख्यात भागवृद्धिका अंत अवगाहना स्थान तींहिविषैं एक प्रदेश जुडें अवक्तव्यभागवृद्धिका आरंभरूप प्रथम अवगाहना स्थान हो है। वहुरि ताके आगें एक एक प्रदेश वधता अनुक्रमकरि अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थानकनिकौं उलंधि एकवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग जघन्य अवगाहनाकौं दीएं जो प्रमाण आवै तामैं एक घटाएं जितने होंइ तितने प्रदेश जघन्य अवगाहनाके ऊपरि जुडें कहा होइ है सो कहै हैं—

तव्वड्ढीए चरिमो तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा ।
संखेज्जभागउड्ढी उवरिमदो रूवपरिवड्ढी ॥ १०५ ॥

तद्वृद्धेश्चरमः तस्योपरि रूपसंयुते प्रथमा ।
संख्यातभागवृद्धिः उपर्यतो रूपपरिवृद्धिः ॥ १०५ ॥

जी॰ प्र॰—तदवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् $\frac{ज}{१६}$ ज $\frac{ज}{१६}$ ज ००० $\frac{ज}{१५}$ ज एते च अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानविकल्पाः कति ? इतिचेत् आदी $\frac{ज}{१६}$ ज अंते $\frac{ज}{१५}$ ज सुद्धे ज/१६।१५ वड्ढिहिदे ज/१६।१५।१ रूवसंजुदे ज/१६।१५ ठाणेत्येतावंतो भवति । इदानीमवक्तव्यवृद्धीनां उत्पत्तिं अंकसंदृष्ट्या विशदयति तद्यथा-जघन्यावगाहनं ४८०० अस्य भागहारभूतपरिमितासंख्यातः १६ अनेन जघन्यावगाहने भक्ते लब्धमसंख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहन स्यात् ३०० । पुनस्तज्जघन्यावगाहने उत्कृष्टसंख्यातेन भक्ते लब्ध संख्यातभागवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् । ३२० ।

एतद्वृद्ध्यंतराले ३०१ । ३०२ । ३०३ । ३०४ । ३०५ । ३०६ । ३०७ । ३०८ । ३०९ । ३१० । ३११ । ३१२ । ३१३ । ३१४ । ३१५ । ३१६ । ३१७ । ३१८ । ३१९ । एते एकान्नविंशतिस्थानविकल्पा एतद्भागहारद्वया १६ । १५ । न्तरभक्तलब्धा न भवंति । कुतः ? त्रिशतविंशत्यग्रत्रिशततल्लब्धाभ्यां तेषामधिकहीनत्वात् । तर्हि कीदृशभागहारभक्तलब्धाः ? इति चेत् उच्यते-एतज्जघन्ये ४८०० अनेन भागहारेण ४८०० भक्ते सति लब्धं ४८०० हारस्य हारो गुणकोंशराशेरितिभिन्नगणिताश्रयेण तदवक्तव्यभागवृद्धेः प्रथमावगाहनविकल्पः ३०१ स्यात्

३०१ ४८००
३०१

अर्थसंदृष्टावप्येवमेव योजयितव्यं । अनेन क्रमेण चरमावक्तव्यभागवृद्धिस्थानावसानस्थानान्यानेतव्यानि । पुनस्तदवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने एकरूपे युते सति संख्यातभागवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात् । ज । तदग्रे एकैकप्रदेशपरिवृद्धिक्रमेणावगाहनस्थानान्यसंख्यातानि गच्छंति ॥ १०५ ॥

१६
ज

मं० प्र०---तद्वृद्धेरवक्तव्यभागवृद्धेश्चरमः पर्यंतो भवति ज अत्र अवक्तव्यभागवृद्धिस्फुटीकरणार्थं अंकसंदृष्टिर्दर्श्यते तद्यथा-जघन्यस्य संदृष्टिः ९६० ।

१५
ज

जघन्यपरिमितासंख्यातस्य संदृष्टिः १६ अनेन जघन्ये भक्ते लब्धं ६० एतस्मिन् जघन्यस्य उपरि वृद्धे सति असंख्यातभागवृद्धेरंतो भवति ६० उत्कृष्टसंख्यात-

९६०

संदृष्टिः १५ अनेन जघन्ये भक्ते सति लब्धं ६४ एतस्मिन् जघन्यस्योपरि वृद्धे सति संख्यातभागवृद्धेरादिर्भवति ६४ मध्ये रूपोत्तरवृद्धिस्थानानि

९६०

६१ ६२ ६३ । एतानि नासंख्यातभागलब्धवृद्धीनि नापि संख्यातभागलब्धवृद्धीनि किंतु संख्यातासंख्याताभ्यामवक्तव्यभागहारेण एकरूपस्यासंख्येयभागैः
९६० ९६० ९६०

१६ ३२ ४८ हीनेन जघन्यपरिमितासंख्येन जघन्ये भक्ते लब्धानि । अथवा एकरूपस्यासंख्येयभागैः ४५ ३० १५ अधिकेन उत्कृष्टसंख्यातेन जघन्ये
६१ ६२ ६३ ६१ ६२ ६३

भक्ते लब्धानि तत्र हीनाधिकाभिन्नांशानामसंख्यातसंख्यातव्यवहारो नास्ति इत्यनुभयत्वात् सिद्धोऽवक्तव्यभागहारः । ते चावक्तव्यभागहाराः जघन्यादारभ्य उत्कृष्टपर्यंताः समच्छेदीकृते जघन्यपरीतासंख्याते प्राक्तनऋणैर्हीने सति संख्यातोत्कृष्टे प्राक्तनधनैर्युक्ते सति ईदृशा भवंति ९६० ९६० ९६० एवं अर्थसंदृष्ट्या
६१ ६२ ६३

अपि आनेतव्यं । एवमुचरत्रापि योज्य । तस्य अवक्तव्यभागवृद्धिचरमस्य उपरि एकस्मिन् रूपे संयुते प्रथमासंख्येयभागवृद्धिर्भवति ज अन उपरि एकैकरूपपरि- वृद्धया संख्येयभागवृद्धिस्थानानि गच्छंति ॥ १०५ ॥

सं० च०—तींहि अवक्तव्य भागवृद्धिका अंत अवगाहन स्थान हो है बहुरि ए अवक्तव्य भागवृद्धि स्थानकनिके भेद कितने हैं सो कहिए है--'आदी अंते सुद्धे वट्टिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इस कारण सूत्रकरि अवक्तव्य भागवृद्धिका आदि स्थानका प्रदेश प्रमाण अंत स्थानका प्रदेश प्रमाणविषैं घटाइ अवशेषकौं वृद्धि प्रमाण एक एकका भाग देइ जो पाए तिनिमें एक जोड़ैं जितने होंइ तितने अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थान हैं। बहुरि अब अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थानकनिकी उत्पत्तिकौं अंक संदृष्टिकरि व्यक्त करैं हैं जैसैं जघन्य अवगाहनाका प्रमाण अडतालीससै ४८०० जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण सोलह उत्कृष्ट संख्यातका प्रमाण १५ तहां भागहारभूत जघन्य परीतासंख्यात सोलह १६ का भाग जघन्य अवगाहना अड़तालीससै ४८०० कौं दीएं तीनसै पाए सो इतने जघन्य अवगाहनातैं वधैं असंख्यात भागवृद्धिका अंत अवगाहना स्थान हो है । बहुरि तिस जघन्य अवगाहना अडतालीससैकौं उत्कृष्ट संख्यात पंद्रह ताका भाग दीए तीनसैं वीस ३२० पाए सो इतने वधे संख्यात भाग वृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान हो है । बहुरि इनि दोऊनिके वीच अंतरालविषैं तीनसै एककौं आदि देकरि तीनसै उगणीस ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ पर्यंत वधे जे उगणीस स्थान भेद हो हैं ते असंख्यात भाग वृद्धिरूप वा संख्यात भागवृद्धिरूप न कहे जांइ तातैं जघन्य असंख्यातका भी वा उत्कृष्ट संख्यातका भी भाग दीए ते तीनसैं एक आदि न पाइए हैं काहे तैं ? जातैं जघन्य असंख्यातका भाग दीएं तीनसैं पाए उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं तीनसै वीस पाए इनितैं तिनकी संख्या हीन अधिक है । तातैं इनिकौं अवक्तव्य भाग वृद्धिरूप स्थान कहिए तौ इहां अवक्तव्य भाग वृद्धिविषैं भागहारका प्रमाण कैसा संभवै है ? सो कहिए है—जघन्यका प्रमाण अडतालीससै ताकौं इस

तीनसै एक प्रमाण भागहारका भागदीएं जो पाइए तितनेका भागहार संभवै है। तहां 'हारस्य हारो गुणकोंशराशेः' इस करण सूत्रकरि भागहारका भागहार है सो भाज्य राशिका गुणकार होइ ऐसैं भिन्न गणितका आश्रय करि अडतालीससैकों तीनसै एककरि गुणि ताकौं अडतालीससैका भाग दीए इतने प्रमाण तिस अवक्तव्य भागवृद्धिका प्रथम अवगाहनभेदके वृद्धिका प्रमाण हो है। सो अपवर्तन कीएं तीनसै एक ही आवे है सो यहु संख्यात असंख्यातरूप भागहाररूप न कह्या जाय तातैं अवक्तव्य भागवृद्धिरूप कह्या है। भावार्थ— इहां ऐसा जो भिन्न गणितका आश्रयकरि इहां भागहारका प्रमाण ऐसा आवै है। बहुरि जैसैं यहु अंक संदृष्टिकरि कथन कीया ऐसैं ही अर्थ संदृष्टिकरि कथन जोडना। इस ही अनुक्रमकरि अवक्तव्य भागवृद्धिके अंतस्थान पर्यंत स्थान ल्यावने। बहुरि तिस अवक्तव्य भागवृद्धिका अंत अवगाहन स्थानविषैं एक प्रदेश जुडैं संख्यात भागवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान हो है। ताके आगै एक एक प्रदेशकी वृद्धिका अनुक्रमकरि अवगाहन स्थान असंख्यात प्राप्त हो हैं ॥१०५॥

अवरद्धे अवरुवरिं उड्ढे तव्वड्ढिपरिसमत्तीहु।
रूवे तदुवरि उड्ढे होदि अवत्तव्वपढमपदं ॥ १०६ ॥

अवरार्धे अवरोपरिवृद्धे तद्वृद्धिपरिसमाप्तिर्हि।
रूपे तदुपरिवृद्धे भवति अवक्तव्यप्रथमपदं ॥ १०६ ॥

जी० प्र०—जघन्यावगाहनार्धे ज/२ जघन्यावगाहनस्योपरि वृद्धे सति संख्यातभागवृद्धिचरमावगाहनस्थानं स्यात ज ० ० ० ज/(१५ प २ ज) एतानि

संख्यातभागवृद्धिस्थानानि कति ! इति चेत् आदी $\frac{ज}{१५ \cdot ज}$ अंते $\frac{ज}{२ \cdot ज}$ सुद्धे $\frac{ज}{२} - \frac{ज}{१५}$ वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणेत्येतावंति स्युः $\frac{ज \; १५ - २}{२ \cdot १५ \cdot १}$ संख्यातभागवृद्धेश्चरमावगाहनस्थाने एकरूपे युते सत्यवक्तव्यभागवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानमुत्पद्यते $\frac{ज}{२ \cdot ज}$ तदग्रे प्रदेशोत्तरवृद्धिक्रमेण अवक्तव्यभागवृद्धिस्थानान्यसंख्यातान्यतीत्यैकत्र ॥ १०६ ॥

म० प्र०—एवमसंख्येयानि संख्यातभागवृद्धिस्थानानि गत्वा जघन्यस्योपरि जघन्यार्धे वृद्धे सति तद्वृद्धिपरिसमाप्तिः संख्यातभागवृद्धिचरमस्थानं भवति $\frac{ज}{२ \cdot ज}$ तस्य संख्यातभागवृद्धिचरमस्थानस्योपरि एकस्मिन् रूपे वृद्धे सति अवक्तव्यवृद्धेः प्रथम पदं स्थानं भवति $\frac{ज}{ज}$ ॥ १०६ ॥

सं० च०—जघन्य अवगाहनाका आधाप्रमाणरूप प्रदेश जघन्य अवगाहनाके ऊपरि वंधते संते संख्यात भागवृद्धिका अंत स्थान हो है। जातैं जघन्य संख्यात का प्रमाण दोय है ताका भाग दीएं राशिका आधा प्रमाण हो है। वहुरि ए संख्यातभाग वृद्धिके स्थान केते हैं सो कहिए है-आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इस सूत्रकरि संख्यात भाग वृद्धिका आदि स्थानका प्रदेश प्रमाणकौं अंतस्थानका प्रदेश प्रमाण विषैं घटाइ अवशेषकौं वृद्धिका प्रमाण एकका भाग दीए भी तितने ही रहैं। तहां एक जोडैं जो प्रमाण होइ तितने संख्यात भागवृद्धिके स्थानक हैं। बहुरि संख्यात भाग वृद्धिका अंत अवगाहनां स्थान विषैं एक प्रदेश जुडें अवक्तव्य भाग वृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान उपजै है। वहुरि ताके आगैं एक एक प्रदेश वधता अनुक्रमकरि अवक्तव्य वृद्धिका स्थान असंख्यात उलंघि एक जायगा कह्या सो कहैं हैं—

रूऊणवरे अवरुस्सुवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं।
तह्मि पदेसे उड्ढे पढमा संखेज्जगुणवड्ढी ॥ १०७ ॥

रूपोनावरे अवरस्योपरि संवर्धिते तदुत्कृष्टं ।
तस्मिन् प्रदेशे वृद्धे प्रथमा संख्यातगुणवृद्धिः ॥ १०७ ॥

जी० प्र०—रूपोनजघन्यावगाहने ज जघन्यावगाहनस्योपरि वर्धिते सति अवक्तव्यभागवृद्धेः चरममुत्कृष्टावगाहनस्थानं स्यात् ज अत्रावक्तव्य-ज भागवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् आदी, अंते, सुद्धे इत्यादिना लब्धानि एतावंति स्युः ज/२ पुनः तच्चरमावक्तव्यभागवृद्धिस्थाने एकप्रदेशे युते सति संख्यातगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात् ज २ तदग्रे एकैकप्रदेशवृद्धया संख्यातगुणवृद्धेरसंख्यातावगाहनस्थानानि नीत्वा एकत्र स्थाने ॥ १०७ ॥

मं० प्र०—ततः एकैकप्रदेशवृद्धया असंख्यातेषु अवक्तव्यवृद्धिस्थानेषु गतेषु जघन्यस्योपरि रूपोनजघन्ये संवर्धिते सति तस्याः अवक्तव्यवृद्धेरुत्कृष्टं स्थानं भवति । तेषामवक्तव्यवृद्धिस्थानाना संख्यातगुणाभ्यामवक्तव्यवृद्धया वर्धमानत्वादवक्तव्यवृद्धिस्थानानि इत्युच्यते रूपाधिकजघन्याद्यादिरूपोनद्विगुण-जघन्यपर्यंतस्थानानां भागगुणाभ्यामनुत्पन्नत्वात् । तस्मिन्नवक्तव्यवृद्धिचरमस्थाने एकस्मिन् प्रदेशे वृद्धे सति प्रथमासंख्यातगुणवृद्धिर्भवति ज २ । तत एकैकप्रदेशवृद्धया संख्येयवृद्धिस्थानानि गच्छति । द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणरूपोत्तरगुणवृद्धिस्थानानामंतरालेषु एकैकस्मिन्नंतराले रूपोनजघन्यमात्राणि अवक्तव्य-गुणवृद्धिस्थानानि भवंतीति विशेषो ज्ञातव्य. ॥ १०७ ॥

सं० च०—एक घाटि जघन्य अवगाहनाका प्रदेश प्रमाण जघन्य अवगाहनाके ऊपरि बंधतैं संतैं अवक्तव्य भागवृद्धिका अंत उत्कृष्ट अवगाहना स्थान हो है। जातैं जघन्य संख्यातका प्रमाण दोय है सो दूणा भए संख्यात गुण वृद्धिका आदि स्थान होइ। तातैं एक घाटि भए याका अंतस्थान हो है। इहां अवक्तव्य भागवृद्धिके स्थान केते हैं ? सो कहिए है-आदी अंते सुद्धे इत्यादि सूत्रकरि याके आदिकौं अंतविषैं घटाइ अवशेषकौं वृद्धि एकका भाग देइ एक जोडैं जो प्रमाण होइ तितने अवक्तव्य भाग वृद्धिके स्थान हो हैं। बहुरि तिस अवक्तव्य भाग वृद्धिका अंत स्थानविषैं एक प्रदेश जुडैं संख्यात गुण वृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान हो है। ताकै

आगैं एक एक प्रदेशकी वृद्धिकरि संख्यात गुण वृद्धिके असंख्यात अवगाहना स्थानकौं प्राप्त होइ एक स्थान विषैं कह्या सो कहैं हैं-

अवरे वरसंखगुणे तच्चरिमो तह्मि रूवसंजुत्ते ।
उग्गाहणह्मि पढमा होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी ॥ १०८॥

अवरे वरसंख्यगुणे तच्चरमः तस्मिन् रूपसंयुक्ते ।
अवगाहने प्रथमा भवाति अवक्तव्यगुणवृद्धिः ॥ १०८ ॥

जी० प्र०-जघन्यावगाहने उत्कृष्टसंख्यातेन गुणिते संख्यातगुणवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् ज १५ एतानि संख्यातगुणवृद्धिस्थानानि कति ? इति चेत् प्राग्वत् आदी अंते सुद्धेत्यादिना लब्धानि एतावंति स्युः । ज १५-२ अग्रे संख्यातगुणवृद्धिचरमावगाहने एकरूपयुते सति अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनस्थानं स्यात् ज १५। इतोऽग्रे एकैकप्रदेशवृद्ध्या अवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानानि असंख्यातानि नीत्वा एकत्र ॥१०८॥

म० प्र०---उत्कृष्टसंख्यातेन जघन्ये गुणिते सति तस्याः संख्यातगुणवृद्धेश्चरमस्थानं भवति तस्मिन् संख्यातगुणवृद्ध्युत्कृष्टे अवगाहने एकस्मिन् रूपे संयुक्ते सति प्रथमा अवक्तव्यगुणवृद्धिर्भवति ततः एकैकप्रदेशवृद्ध्या असंख्येयान्यवक्तव्यगुणवृद्धिस्थानानि गच्छति ॥ १०८ ॥

सं० चं०--जघन्य अवगाहनकौं उत्कृष्ट संख्यात करि गुणैं जितने होंइ तितने प्रदेश जहां पाइए सो संख्यात गुणवृद्धिका अंत अवगाहना स्थान है बहुरि ए संख्यात गुणवृद्धिके स्थान केते हैं ? सो कहिए है--पूर्ववत् आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इत्यादि सूत्रकरि याका आदिकौं अंतविषैं घटाइ वृद्धि एकका भाग देइं एक जोड़ैं जितने पावैं तितने हैं । बहुरि आगैं संख्यात गुणवृद्धिका अंत अवगाहना स्थानविषैं एक प्रदेश जोड़ैं अवक्तव्य गुण वृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान हो है । यातैं आगैं एक एक प्रदेशकी वृद्धिकरि अवक्तव्य गुणवृद्धिके स्थान संख्यात प्राप्तकरि एक स्थान विषै कह्या सो कहैं हैं--- ॥ १०८ ॥

अवरपरित्तासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे ।
तच्चरिमो रूवजुदे तह्मि असंखेज्जगुणपढमं ॥ १०९ ॥

अवरपरीतासंख्येनावरं संगुण्य रूपपरिहीने ।
तच्चरमो रूपयुते तस्मिन् असंख्यातगुणप्रथमं ॥ १०९ ॥

जी०प्र०-जघन्यपरिमितासंख्यातेन जघन्यावगाहनं गुणयित्वा रूपे परिहीने सति तदवक्तव्यगुणवृद्धेश्चरमावगाहनस्थानं स्यात् ज १६ एतानि अवक्तव्यगुणवृद्ध्यवगाहस्थानानि कति ? इति चेत् प्राग्वत् आदी अंतेत्यादिना गतावगाहनस्थानानि एतावंति स्युः ज । अत्र अवक्तव्यगुणवृद्धिरंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते तद्यथा--जघन्यावगाहनमिदं १६ रूपोनपरिमितासंख्यातेन ३ गुणयित्वा ४८ रूपे युते सति अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानं स्यात् ४९ एतस्मिन् जघन्यावगाहनेन भक्ते लब्धं ४९/१६ अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानगुणकारः स्यात् । अनेन जघन्यावगाहनं गुणयित्वा ४९ । १६ अपवर्तिते अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् ४९ अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमस्थानं १६, ४ जघन्यावगाहनेन भक्त्वा १६ । ४ । लब्धमिदं ३,१/१६ । अनेन जघन्यावगाहनं गुणयित्वा १६ ३ १/१६ युते ४९ अवक्तव्यगुणवृद्धेः प्रथमावगाहनं स्यात् । एवमुत्तरोत्तरविकल्पेष्वपि गुणकारक्रमो ज्ञातव्यः । अवक्तव्यगुणवृद्धेःचरमावगाहनं तु (स्थानं तु) जघन्यावगाहनं १६ जघन्यपरिमितासंख्यातेन गुणयित्वा लब्धे रूपोने सति स्यात् ६३ । इदं च जघन्यावगाहनेन भक्त्वा ६३/१६ लब्धं अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्य स्थानानयने गुणकारः स्यात् अनेन जघन्यावगाहने गुणिते अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानमित्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या १६ । ६३/१६ । अथवा अवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनं ६३ जघन्यावगाहनेन १६ भक्त्वा लब्धेन ६३/१६ जघन्यावगाहने गुणिते लब्धमवक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानं भवति ६३ तत्सर्वावक्तव्यगु-

गणवृद्धिस्थानानां न्यासः ४९, ५० ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, अनेन क्रमेण अर्थसंदृष्ट्यापि एतावंति स्युः १५। इदानीं प्रागुक्तावक्तव्यगुणवृद्धिचरमावगाहनस्थानेऽत्र ज १६ । एक रूपे युते सति असंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानं स्यात्–ज १६ ॥ १०९ ॥

म० प्र०—जघन्यपरिमितासंख्यातेन जघन्यं संगुण्य एकस्मिन् रूपे परिहीणे सति तस्या अवक्तव्यगुणवृद्धेश्चरमस्थानं भवति ज १६। तस्मिन् एकरूपे युते सति असंख्यातगुणवृद्धेः प्रथमं स्थान भवति ॥ १०९ ॥

स० चं०—जघन्यपरीतासंख्यातकरि जघन्य अवगाहनांकौं गुणि तामैं एक घटाएं जो प्रमाण होइ तितने प्रदेशरूप तिस अवक्तव्य गुणवृद्धिका अंत अवगाहना स्थान हो हैं। ए अवक्तव्य गुणवृद्धिके स्थान केते हैं ? सो कहिए है–पूर्ववत् आदी अंते सुद्धे इत्यादि सूत्रकरि याका आदिकौं अंतविषैं घटाइ अवशेषकौं वृद्धि एकका भाग देइ एक जोड़ैं जितने होंइ तितने हैं बहुरि इहां अवक्तव्यगुण वृद्धिका स्वरूप अंकसंदृष्टिकरि अवलोकिए हैं। जैसैं जघन्य अवगाहना प्रमाण सोलह १६ एक घाटि जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण जो उत्कृष्ट संख्यात ताका प्रमाण तीन ताकरि जघन्यकौं गुणैं अड़तालीस होंइ। बहुरि जघन्य परिमित असंख्यातका प्रमाण च्यारि ताकरि जघन्यकौं गुणैं चौंसठि होंइ इनिके वीचि जे भेद ते अवक्तव्य गुण वृद्धिके स्थान हैं। जातैं इनि कौं संख्यात वा असंख्यात गुण वृद्धि रूप कहे न जांइ तहां जघन्य अवगाहन सोलहकौं एक घाटि परीतासंख्यात तीनिकरि गुणैं अड़तालीस होंइ तामैं एक जोड़ैं अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम स्थान हो है। याकौं जघन्य अवगाहन सोलहका भाग दीएं पाया गुणचासका सोलहवां भाग प्रमाण अवक्तव्य गुण वृद्धिका प्रथम स्थान ल्यावनेकौं गुणकार हो है। याकरि जघन्य अवगाहनकौं गुणि अपवर्तन कीएं अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान गुणचास प्रदेश प्रमाण हो है। अथवा अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम स्थान एक अधिक तिगुणां सोलह ताकौं जघन्य अवगाहना सोलह ताका भाग देइ पाया एक सोलहवां भाग अधिक तीन ताकरि जघन्यअवगाहन सोलहकौं गुणैं गुणचास पाए तितने ही प्रदेश प्रमाण अवक्तव्य गुणवृद्धिका प्रथम अवगाहन

स्थान होहैं। ऐसैं अन्य उत्तरोत्तर भेदनिविषैं भी गुणकारका अनुक्रम जानना। तहां अवक्तव्य गुणवृद्धिका अंतका अवगाहना स्थान सो जघन्य अवगाहना स्थान सोलहकौं जघन्य परिमितासंख्यात च्यारि करि गुणैं जो पाया तामैं एक घटाएं तरेसाठि होइं सो इतने प्रदेश प्रमाण हैं। बहुरि याकौं जघन्य अवगाहन सोलहका भाग देइ पाया तरेसठिका सोलह्वां भाग सोई अवक्तव्य गुणवृद्धिका अंत अवगाहना स्थान ल्यावने विषैं गुणकार हो है। याकरि जघन्य अवगाहन सोलहकौं गुणैं अवक्तव्य गुणवृद्धिका अंत अवगाहना स्थान हो है सो अवलोकनी। अथवा अवक्तव्य गुणवृद्धिके अंत अवगाहन स्थान तरेसठिकौं जघन्य अवगाहन स्थानकी उत्पत्ति लहका भाग देइ पाया तीन अर पंद्रह सोलह्वां भाग इम करि जघन्यअवगाहन सोलहकौं गुणैं अवक्तव्य गुणवृद्धिका अंत अवगाहना स्थानका प्रदेश प्रमाण हो है सो सर्व अवक्तव्य गुणवृद्धिका स्थापन गुणचास आदि एक एक वंधता तरेसाठि पर्यंत जानना। ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३। बहुरि इस ही अनुक्रम करि अर्थसंदृष्टिविषैं भी एक घाटि जघन्य अवगाहन प्रमाण इस अवक्तव्य गुणवृद्धिके स्थान जानने बहुरि अब पूर्वोक्त अवक्तव्य गुणवृद्धिका अंत अवगाहन स्थानविषै एक प्रदेशजुडैं असंख्यात गुणवृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थान होहै ॥ १०९॥

रूवुत्तरेण तत्तो आवलियासंखभागगुणगारे।
तप्पाउग्गेजादे वाउस्सोग्गाहणं कमसो ॥ ११० ॥

रूपोत्तरेण तत आवलिकासंख्यभागगुणकारे।
तत्प्रायोग्ये जाते वायोरवगाहनं क्रमशः ॥ ११० ॥

जी० प्र०—तत—तस्मादसंख्यातगुणवृद्धिप्रथमावगाहनस्थानादग्रे प्रदेशोत्तरवृद्ध्या असंख्यातगुणवृद्ध्यवगाहनस्थानान्यतीत्य एकत्रस्थाने

यथायोग्यावल्यसंख्येयभागगुणकारे सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकनिगोदजघन्यावगाहनस्य जाते सति सूक्ष्मवायुकायिकलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्था-

६ । ८ । २२ । ८
a a १—

नस्योत्पत्तिर्जायते । प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ अत्र कति अवगाहनस्थानानि ? इति चेत् आदी अंते सुद्धे इत्याद्यानीतानि एता-
a a a

१———
१——
६ । ८ । २२ । ८ ।
a a १—

वंति स्युः— प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ ॥
a a a

अथ सर्वावगाहनस्थानानां गुणकारोत्पत्तिक्रममाह----

म० प्र०---ततः जघन्यासंख्यातगुणवृद्धिस्थानात् रूपोत्तरेण एकैकप्रदेशवृद्धिक्रमेण सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तमध्यमावगाहनस्थानेष्वसंख्यातेषु गच्छत्सु कस्यचिज्जघन्यस्य तत्प्रायोग्ये जिनदृष्टे भागे आवल्यसंख्यातभागगुणकारे जाते—उत्पन्ने सति सूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिकस्य जघन्यावगाहनं तत्प्रमितं भवति ॥११०॥

सं० च०—ततः कहिए तीहि असंख्यात गुण वृद्धिका प्रथम अवगाहन स्थानतैं आगैं एक एक प्रदेश वृद्धिकरि असंख्यातगुण वृद्धिके अवगाहन स्थान असंख्यात हो हैं तिनिकौं उलंघि एक स्थानविषैं यथायोग्य आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण असंख्यातका गुणकार सो सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त निगोदका जघन्य अवगाहन गुण्यका होते संते सूक्ष्मवायुकायिक लब्धि अपर्याप्तका जघन्य अवगाहन स्थानकी उत्पत्ति हो है। इहां ए केते स्थान भए ? तहां आदी अंते सुद्धे इत्यादि सूत्रकरि आदि स्थानकौं अंत स्थानविषैं घटाइ अवशेषकौं वृद्धि एकका भाग देइ लब्धि राशिविषैं एक जोडैं स्थानकनिका प्रमाण हो है ॥ ११०॥ आगैं सर्व अवगाहनके स्थानकनिका गुणकारकी उत्पत्तिका अनुक्रम कहै हैं—

एवं उवरि विणेओ पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं ।
सव्वत्थेक्केक्कह्मिय जीवसमासाण विच्चाले ॥ १११ ॥

एवमुपर्यपि ज्ञेयः प्रदेशवृद्धिक्रमो यथायोग्यं ।
सर्वत्रैकैकस्मिंश्च जीवसमासानामंतराले ॥ १११ ॥

जी० प्र०---एवं--अनेन प्रकारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनस्थानपर्यंत प्रागुक्तचतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमप्रकारेण उपर्यपि सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकतेजस्कायिकजघन्यावगाहनादारभ्य द्वींद्रियपर्याप्तकजघन्यावगाहनपर्यंतं जीवसमासावगाहस्थानानामंतरालेषु प्रत्येकं चतुःस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमेण तथा तदग्रे त्रींद्रियपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानावसानावगाहनस्थानानामंतरालेषु प्रत्येकमसंख्यातगुणवृद्धिं विना त्रिस्थानपतितप्रदेशवृद्धिक्रमेण च गत्वा तत्तद्योग्यगुणकारोत्पत्तिप्रकारो ज्ञातव्यः ॥ १११ ॥ अथ सर्वजीवसमासशरीरावगाहनन्याससंभवां मत्स्यरचनां सूचयितुं जघन्यमध्यमोत्कृष्टावगाहनस्थानानि प्ररूपयति---

म० प्र०---एवं सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदजघन्यात् सूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिकजघन्यपर्यंतं उक्तप्रकारेण उपर्यपि-उत्तरोत्तरेऽपि जीवसमासानां तेजस्कायिकादीनां पर्याप्तपंचेंद्रियोत्कृष्टपर्यंतानां एकस्मिन्नेकस्मिन्नंतराले सर्वत्र--सर्वेषु अवगाहनेषु प्रदेशवृद्धिक्रमः । प्रदेशानामसख्यातभागादिचतु.स्थानत्रिस्थानगततरेन वृद्धेः क्रमः अनुपरिपाटी ज्ञेया नेया वा परमागमज्ञैः । तत्र असख्यातभागवृद्ध्यादिषु सप्तसु कांडकेषु जघन्योत्कृष्टावगाहने स्थापयित्वा "आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसजुदे ठाणे" इत्यनेन सूत्रेण एकैककांडके अवगाहनविकल्पा आनेतव्याः । जघन्यावगाहनं आदि, उत्कृष्टावगाहन अंत इति विशेषो ज्ञातव्य. । अथ शास्त्रकारः सर्वजीवशरीरावगाहनन्याससंभवां मत्स्यरचनां सूचयितुं जघन्यमध्यमोत्कृष्टावगाहनस्थानानि प्ररूपयति ॥ १११ ॥

सं० च०----एवं कहिए इसही प्रकार जैसैं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तक जघन्य अवगाहना स्थानकौं आदि देकरि सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त वायुकायिक जीवका जघन्य अवगाहन स्थानपर्यंत पूर्वोक्तप्रकार चतुः स्थानपतित प्रदेश वृद्धिका अनुक्रम विधान कह्या तैसैं ऊपरि भी सूक्ष्मलब्धि अपर्याप्तक तेजकायका जघन्य अवगाहनतैं लगाइ द्वींद्रिय पर्याप्तका जघन्य अवगाहनस्थान पर्यंत जीवसमासनिका अवगाहना स्थानकनिका अंतरालनि-

१ अथ तत्तज्जीवसमासावगाहनविकल्पप्रमाणमानयति इति ख ग, पुस्तके पाठ ।

विषैं प्रत्येक जुदा जुदा चतुःस्थान पतित वृद्धिका अनुक्रमकरि प्राप्त होइ यथायोग्य गुणकारकी उत्पत्तिका विधान जानना। भावार्थ-जैसैं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तकका जघन्य अवगाहना स्थान अर सूक्ष्मवायुकायिक लब्धि अपर्याप्तका जघन्य अवगाहना स्थानके वीचि अंतरालविषें चतुःस्थान पतित वृद्धिका अनुक्रम विधान कह्या तैसैं ही सूक्ष्मवायुकायिक लब्धि अपर्याप्त अर सूक्ष्म तेज कायिक लब्धि अपर्याप्तकनिका अंतरालविषैं वा ऐसैं ही द्वींद्रिय पर्याप्तका जघन्य अवगाहन स्थान पर्यंत आगिले अंतरालनिविषैं चतुःस्थान पतित वृद्धिका अनुक्रम विधान जानना। विशेष इतना तहां आदि अवगाहन स्थानका वा भागवृद्धि गुण वृद्धिविषैं असंख्यातका प्रमाण वा अनुक्रम वा स्थानकनिका प्रमाण इत्यादि यथासंभव जानने। वहुरि तैसैं ही ताके आगैं तेइंद्री पर्याप्तकका जघन्य अवगाहन स्थान आदि देकरि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत अवगाहन स्थानकनिका एक एक अंतरालविषैं असंख्यात गुणवृद्धिविना त्रिस्थान पतित प्रदेशनिकी वृद्धिका अनुक्रमकरि प्राप्त होइ यथायोग्य गुणकारकी उत्पत्तिका विधान जानना। भावार्थ—इहां पूर्वस्थानतैं अगिला स्थान संख्यातगुणा ही है। तातैं तहां असंख्यात गुणवृद्धि न संभवै है। त्रि थान पतित वृद्धि ही संभवै है इहां भी विशेष इतना जो आदि अवगाहना स्थानका वा भागवृद्धिविषैं असंख्यातका वा गुणवृद्धिविषैं संख्यातका प्रमाण वा अनुक्रम वा स्थानकनिका प्रमाण इत्यादिक यथासंभव जानने। ऐसैं इहां प्रसंग पाइ चतुःस्थानपतित वृद्धिका वर्णन कीया है। बहुरि षट्स्थानपतित कहीं पंचस्थान पतित कहीं चतुःस्थानपतित कहीं त्रिस्थानपतित कहीं द्विस्थानपतित कहीं एकस्थानपतित वृद्धि संभवै है। अथवा कहीं ऐसैंही हानि संभवै है तहां भी ऐसै ही विधान जानना। तहां जाका निरूपण होइ ऐसा जो विवक्षित ताके आदिस्थानके प्रमाणतैं अगले स्थानविषैं प्रमाण तहां बंधता होइ तहां वृद्धि संभवै है। जहां घटता होइ तहां हानि संभवै है सो इनिका स्वरूपनीकैं जाननेके अर्थि इस भाषाटीकाविषैं किछू कथन करिए है। प्रथम षट्स्थान पतित वृद्धि वा हानिका स्वरूप कहिये है अनंत भाग वृद्धि असंख्यातभागवृद्धि संख्यात भागवृद्धि संख्यात गुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि अनंत गुणवृद्धि ऐसैं षट् स्थान पतितवृद्धि जाननी। बहुरि

अनंत भागहानि असंख्यात भागहानि संख्यात भागहानि संख्यात गुणहानि असंख्यात गुणहानि अनंत गुणहानि ऐसैं षट्स्थानपतित हानि जाननी। बहुरि इनिके वीचि वीचि अवक्तव्य वृद्धि वा हानि संभवै है। सो इनिका स्वरूप अंक संदृष्टिरूप दृष्टांतकरि दिखाइए है। जातैं याके जानैं यथार्थ स्वरूपका ज्ञान सुगम होइ है।

तहां जघन्य संख्यातका प्रमाण दोय २ उत्कृष्ट संख्यात का पांच ५ जघन्य असंख्यातका छह ६ उत्कृष्ट असंख्यातका पंद्रह १५ जघन्य अनंतका सोलह १६ उत्कृष्ट अनंतका प्रमाण बहुत है तथापि इहां भागहारविषैं तौ आदिस्थानका प्रमाण जानना। अर गुणकारविषैं आदिस्थानतैं जितने गुणां वंधता वा घटता अंत स्थान होइ तीहिं प्रमाण ग्रहण करना सो इहां अंक संदृष्टि विषैं आदि स्थानका प्रमाण चौवीससै २४०० स्थापन कीया। बहुरि वृद्धिरूप होइ दूसरा स्थान चौवीससै एक २४०१ प्रमाणरूप भया तहां अनंतभाग वृद्धिका आदि संभवै है जातैं आदि स्थानके प्रमाणकौं आदि स्थान प्रमाण जो अनंतका भेद ताका भाग दीएं एक पाया सो आदि स्थानतैं इहां एककी वृद्धि भई है। ऐसैं ही जिस जिस स्थानविषैं आदिस्थानतैं जो अधिकका प्रमाण होइ सो प्रमाण संभवतैं कोई अनंतके भेदका भाग आदि स्थानकौं दीएं आवै तहां तहां अनंतभाग वृद्धि संभवै है। तहां जो स्थान पचीससै पचास २५५० प्रमाणरूप भया तहां अनंतभाग वृद्धिका अंत जानना। जातैं जघन्य अनंतका प्रमाण सोलह ताका भाग आदि स्थानकौं दीए एक सौ पचास पाए सोई इहां आदि स्थानतैं अधिकका प्रमाण है। बहुरि पचीससै इक्यावनतैं लगाइ पचीससै गुणसाठि पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान ते अवक्तव्यभागवृद्धिरूप हैं। जातैं जघन्य अनंतका भी वा उत्कृष्ट असंख्यातका भी भागकी वृद्धि कीएं जो प्रमाण होइ तातैं इनिका प्रमाण हीन अधिक है। यद्यपि भिन्न गणितकरि इहां भागहारका प्रमाण सोलहतैं किछू हीन वा पंद्रहतैं किछू अधिक पाइए तथापि सोलह प्रमाण जघन्य अनंततैं भी याका प्रमाण हीन भया। तातैं याकौं अनंत भागरूप न भया कह्या जाय। अर उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रहतैं भी याका प्रमाण अधिक भया तातैं याकौं असंख्यातका भी भागरूप न कह्या जाय। जातैं

उत्कृष्टतैं अधिक अर जघन्यतैं हीन कहना असंभव है तातैं इहां अवक्तव्य भागका ग्रहण कीया ऐसैं ही आगैं भी यथासंभव अवक्तव्य भाग वृद्धि वा गुणवृद्धि वा अवक्तव्य भाग हानि वा गुणहानिका स्वरूप जानना। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान पचीससै साठि प्रमाण भया तहां असंख्यात भागवृद्धिका आदि संभवै है । जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रहका भाग आदि स्थानकौं दीएं एकसौ साठि पाए सोई इहां आदि स्थानतैं अधिकका प्रमाण है बहुरि ऐसैं ही जिस जिस स्थान विषैं आदिस्थानतैं अधिकका प्रमाण संभवतैं असंख्यातके भेदका भाग आदि स्थानकौं दीए आवै तहां तहां असंख्यात भाग वृद्धि संभवै है तहां जो स्थान अठाईससै प्रमाणरूप भया तहां असंख्यात भाग वृद्धिका अंत जानना । जातैं जघन्य असंख्यात छह ताका भाग आदिस्थानकौं दीए च्यारिसै पाए सोई इहां इतने आदि स्थानतैं अधिक है । बहुरि जे स्थान अट्ठाइससै एक आदि अट्ठाईससै गुण्यासी पर्यंत प्रमाणरूप हैं तहां अवक्तव्य भागवृद्धि संभवै है जातैं जघन्य असंख्यातका भी वा उत्कृष्ट संख्यातका भागकी भी वृद्धिरूप प्रमाणतैं इनिका प्रमाण अधिक हीन है। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अट्ठाईससै असी प्रमाणरूप भया तहां संख्यात भाग वृद्धिका आदि संभवै है जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच ताका भाग आदि स्थानकौं दीए च्यारिसै असी पाए सोई इतने इहां आदि स्थानतैं अधिक हैं। बहुरि ऐसैं ही जिस जिस स्थानविषैं आदि स्थानतैं अधिकका प्रमाण संभवते संख्यातके भेदका भाग आदि स्थानकौं दीए आवै तहां तहां संख्यात भागवृद्धि संभवै है । यहां जो स्थान छत्तीससै प्रमाणरूप भया तहां संख्यात भाग वृद्धिका अंत जाननां । जातैं जघन्य संख्यात दोय ताका भाग आदि स्थानकौं दीएं वारहसै पाए सो इतने इहां आदि स्थानतैं अधिक हैं। बहुरि जे स्थान छत्तीससै एक आदि सैतालीससै निन्याणवे पर्यंत प्रमाणरूप हैं तहां अवक्तव्य भाग वृद्धि संभवै हैं। जातैं जघन्य संख्यात भागवृद्धि वा जघन्य संख्यात गुण वृद्धिरूप प्रमाणतैं भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है। बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अडतालीससै प्रमाण रूप भया तहां संख्यात गुण वृद्धिका आदि संभवै है जातैं जघन्य संख्यात दोय ताकरि आदि स्थानकौं गुणैं

इतना प्रमाण हो है । ऐसैं ही जिस जिस स्थानका प्रमाण संभवते संख्यातके भेदकरि आदि स्थानकौं गुणै आवै तहां तहां संख्यात गुण वृद्धि संभवै है तहां जो स्थान बारह हजार प्रमाणरूप भया तहां संख्यात गुणवृद्धिका अंत जानना । जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच ताकरि आदि स्थानकौं गुण इतना प्रमाण हो है । बहुरि जे स्थान बारह हजार एकतैं लगाई चौदह हजार तीनसौं निन्याणवै पर्यंत प्रमाणरूप हैं तहां अवक्तव्य गुण वृद्धि संभवै है । जातैं उत्कृष्ट संख्यात गुणवृद्धि वा जघन्य असंख्यात गुणवृद्धि रूप प्रमाणतैं भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है । बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान चौदह हजार च्यारिसै प्रमाण रूप भया तहां असंख्यात भागवृद्धि का आदि संभवै है । जातैं जघन्य असंख्यात छह ताकरि आदि स्थानकौं गुणैं इतना प्रमाण हो है । बहुरि ऐसैं ही जिस जिस स्थानका प्रमाण संभवै ते असंख्यातके भेदकरि आदि स्थानकौं गुणैं आवै तहां तहां असंख्यात गुणवृद्धि संभवै है । तहां जो स्थान छत्तीस हजार प्रमाणरूप भया तहां असंख्यात गुणवृद्धिका अंत जानना । जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह ताकरि आदि स्थानकौं गुणै इतना प्रमाण हो है । बहुरि जे स्थान छतीस हजार एक आदि अडतीस हजार तीनसै निन्याणवै पर्यंत प्रमाणरूप हैं तहां अवक्तव्य गुणवृद्धि संभवै है जातैं उत्कृष्ट असंख्यात गुणवृद्धि वा जघन्य अनंत गुणवृद्धिरूप प्रमाणतैं भी इनिका प्रमाण अधिक हीन है । बहुरि वृद्धिरूप होइ जो स्थान अड़तीस हजार च्यारिसै प्रमाणरूप भया तहां अनंत गुणबृद्धि आदि संभवै है जातैं जघन्य अनंत सोलह ताकरि आदि स्थानकौं गुणैं इतना प्रमाण हो है ।

बहुरि ऐसैं ही जिस जिस स्थानका प्रमाण संभवतै अनंतका भेदकरि आदि स्थानकौं गुणै आवै तहां अनंत गुणवृद्धि संभवै है । तहां जो स्थान दोयलाख चालीस हजाररूप प्रमाण भया तहां अनंत गुणवृद्धिका अंत जानना । जातैं यद्यपि अनंतका प्रमाण बहुत है तथापि इहां जिस अनंतके भेदकरि गुणित अंतस्थान होइ सोई अनंतका भेद इहां अंतविषै ग्रहण करना सो अंकसंदृष्टिविषै एकसौ प्रमाण अनंतके भेदका अंतविषै ग्रहण कीया तींहिकरि आदि स्थानकौं गुणै दोयलाख चालीस हजार होइ सोई विवक्षितके अंतस्थान-

का प्रमाण जानना। ऐसैं इहां षट्स्थानपतित वृद्धिका विधान दिखाया। अब षट्स्थान पतित हानिका विधान दिखाइए है-इहां विवक्षितका आदि स्थान दोयलाख चालीस हजार प्रमाणरूप स्थापना कीया यातैं घटिकरि दूसरा स्थान जो दोयलाख गुणतालीस हजार नौसै निन्याणवै प्रमाणरूप भया सो अनंत भाग हानिका आदिरूप है जातैं आदिस्थानकौं आदि स्थान प्रमाणरूप जो अनंतका भेद ताका भाग दीएं एक पाया सोई इहां आदिस्थानतैं एक घटती भया है। वहुरि ऐसैं ही जिस जिस स्थानविषै आदि स्थानतैं जेता घटती होइ तितना प्रमाण कोई अनंतके भेदका भाग आदि स्थानकौं दीएं पावै सो सो स्थान अनंतभाग हानिरूप जानना। तहां जो स्थान दोयलाख पचीस हजार प्रमाणरूप होइ सो स्थान अनंत भागहानिका अंतरूप जानना। जातैं जघन्य अनंत सोलह ताका भाग आदि स्थानकौं दीए पंद्रह हजार पाये सो इहां आदि स्थानतैं हीनका प्रमाण है। बहुरि दोयलाख चौईस हजार नवसै निन्याणवैतैं लगाइ दोयलाख चौईस हजार येक पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान हैं ते अवक्तव्य भाग हानिरूप हैं। जातै जघन्य अनंतका भी वा उत्कृष्ट असंख्यातका भी भागहानिरूप प्रमाणतैं इनिका प्रमाण अधिक आवै है तातैं इनिकौं अनंत वा असंख्यात भागहानिरूप न कहे जाइ। बहुरि हानिरूप स्थान दोयलाख चौवीस हजार प्रमाण होइ सो स्थान असंख्यात भागहानिका आदिरूप जानना। जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रहका आदि स्थानकौं भाग दीएं सोलह हजार पाए सोई इतने इहां आदि स्थानतैं हीन हैं। बहुरि ऐसैं ही जिस जिस स्थानविषैं आदि स्थानतैं हीनका प्रमाण संभवते असंख्यातके भेदका भाग दीएं पावै सो सो स्थान असंख्यात भागहीनरूप जानना। तहां स्थान दोयलाख प्रमाणरूप भया तहां असंख्यात भागहानिका अंत जानना। जातैं जघन्य असंख्यात छहका भाग आदि स्थानकौं दीएं चालीस हजार पाए सोई इतना इहां आदिस्थानतैं हीन है। बहुरि एक घाटि दोयलाखतैं लगाइ एक अधिक एकलाख वाणवै हजार पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान हैं ते अवक्तव्य भाग हानिरूप हैं जातैं जघन्य असंख्यातका भी वा उत्कृष्ट संख्यातका भी भागहानिरूप प्रमाणतैं इनिका प्रमाण हीन अधिक है तातैं इ-

निकौं असंख्यात वा संख्यात भागहानिरूप कहे न जाइ। बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान एक लाख वाणवे हजार प्रमाणरूप होय तहां संख्यात भागहानिका आदि है जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांचका भाग आदि स्थानकौं दीएं अडतालीस हजार पाए सो इतने इहां आदि स्थानतैं हीन हैं। ऐसैंही जिस जिस स्थानविषैं आदि स्थानतैं हीनका प्रमाण संभवते संख्यातका भाग दीएं पावै सो सो स्थान संख्यातभाग हानिरूप जानना। तहां जो स्थान एकलाख वीसहजार प्रमाण होइ सो स्थान संख्यात भागहानिका अंतरूप जानना जातैं जघन्य संख्यात दोयका भाग आदिस्थानकौं दीएं एकलाख वीसहजार पाए सोई इतने इहां आदि स्थानतैं हीन हैं। बहुरि इसही स्थानकौं संख्यात गुणहानिका आदिरूप कहिए जातैं जघन्य संख्यात दोय सो आदि स्थानकौं दुगुणा घाटिकीएं एकलाख वीसहजार पाए सोई इस स्थानका प्रमाण है पूर्वराशिकौं जितनेका भाग दीएं उत्तर राशिका प्रमाण आवै अर तिस उत्तर राशिके प्रमाणकौं तितनेकरि गुणैं पूर्वराशिका प्रमाण होइ तातैं भागहारका कहना अर गुणहानिका कहना एकार्थरूप जानना। जैसैं च्यौसठिकौं च्यारिका भाग दीजिए तौ भी सोलह होइ अर सोलहकौं च्यारिकरि गुणैं भी चौसठि होइ तातैं सोलहकौं चौसठिका चौथा भाग भी कहिए अर चौसठितैं चौगुणा घाटि भी कहिए ऐसैं ही जहां जितनी गुणहानिका प्रमाण होइ तहां तितनेका भागहार जानना। सो इहां जघन्य संख्यात दोय सो आदि स्थानकौं दुगुणा घाटि कीएं वा दोयका भाग दीएं एक लाख वीसहजार होइ तींहि प्रमाण जो स्थान सो संख्यात गुणहानिका आदिरूप जानना। बहुरि ऐसैं ही जिस स्थानका प्रमाण संभवते संख्यातके भेदनिकरि गुणैं आदि स्थानका प्रमाण मात्र होइ सो सो स्थान संख्यात गुणहानिरूप जानना। तहां जो स्थान अडतालीस हजार प्रमाण भया सो स्थान संख्यात गुणहानिका अंतरूप जानना। जातैं उत्कृष्ट संख्यात पांच सो आदि स्थानका प्रमाणकूं पंच गुणा घाटि कीएं इतना प्रमाण आवै है। बहुरि सैतालीस हजार नवसै निन्याणवैतैं लगाइ चालीस हजार एक पर्यंत प्रमाणरूप जे स्थान हैं ते अवक्तव्य गुणहानिरूप जानने। जातैं उत्कृष्ट संख्यात वा जघन्य असंख्यातगुणा घाटि आदि स्थानकौं कीएं भी जो प्रमाण होइ तातैं इनिका

प्रमाण हीन अधिक है। जातैं इनिकौं संख्यात गुणहानिरूप वा असंख्यात गुणहानिरूप न कहे जाइ। बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान चालीस हजार प्रमाणरूप भया सो स्थान असंख्यात गुणहानिका आदिरूप है जातैं जघन्य असंख्यात छह सो आदि स्थानकौं छह गुणां घाटि कीए इतनां प्रमाण आवै है। अैसैं ही जिस जिस स्थानका प्रमाण संभवते असंख्यातके भेदनिकरि गुणैं आदि स्थान मात्र होइ सो सो स्थान असंख्यात गुण हानिरूप जानना। तहां जो स्थान सोलह हजार प्रमाण रूप होइ सो स्थान असंख्यात गुणहानिका अंतरूप है जातैं उत्कृष्ट असंख्यात पंद्रह सो आदि स्थानकौं पंद्रह गुणां घाटि कीएं इतना प्रमाण हो है। बहुरि एक घाटि सोलह हजारतैं लगाइ एक अधिक पंद्रह हजार पर्यंत जे स्थान हैं ते अवक्तव्य गुण हानिरूप जानने। जातैं उत्कृष्ट असंख्यात वा जघन्य अनंत गुणा घाटि भी आदि स्थानकौं कीए जो प्रमाण होइ तिनितैं इनिका प्रमाण हीन अधिक है। बहुरि हानिरूप होइ जो स्थान पंद्रह हजार प्रमाण रूप भया तहां अनंत गुणहानिका आदि जानना। जातैं जघन्य अनंत सोलह सो आदि स्थानकौं सोलह गुणा घाटि कीए इतना प्रमाण आवै है। बहुरि अैसैं ही जिस जिस स्थानका प्रमाण संभवते अनंतका भेदकरि गुणैं आदि स्थान मात्र होइ सो सो स्थान अनंत गुण हानि रूप जानना। तहां जो स्थान चौवीससै प्रमाण रूप भया सो स्थान अनंतगुणहानिका अंत रूप है। जातैं यद्यपि अनंतका प्रमाण बहुत है तथापि इहां आदि स्थानतैं अंत स्थान जितने गुणा घाटि होइ तितने प्रमाण ही अनंतका अंतविषैं ग्रहण करना सो अंकसंदृष्टि विषै जो प्रमाण अनंत भेदका ग्रहण कीया सो आदि स्थानकौं सो गुणा घाटि कीए इतना ही प्रमाण आवै है। या प्रकार जैसैं अंकसंदृष्टिकरि कथन कीया तैसैं ही यथार्थ कथन अवधारण करना। इतना विशेष-तहां जघन्य संख्यातका प्रमाण दोय है। उत्कृष्ट संख्यात-एक घाटि जघन्य परीतासंख्यात मात्र है। जघन्य असंख्यातका जघन्यपरीतासंख्यात प्रमाण है। उत्कृष्ट असंख्यातका उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात मात्र है। जघन्य अनंतका जघन्यपरीतानंत प्रमाण है उत्कृष्ट अनंतका केवलज्ञानमात्र है तथापि इहां भागवृद्धि वा हानिविषै तौ आदि स्थान प्रमाण अर गुणवृद्धि वा हानिविषैं आदि

स्थानतैं अंत स्थान जितने गुणा बंधता वा घटता होइ तीहिं प्रमाण अनंतका ही अंतविषै ग्रहण करना। बहुरि जाका निरूपण कीजिए ताकौं विवक्षित कहिए ताका आदि भेदविषै जितनां प्रमाण होइ सो आदि स्थान का प्रमाण जानना। ताके आगै अगिले स्थान वृद्धिरूप वा हानिरूप होंइ तिनिका प्रमाण यथासंभव जानना। इत्यादिक विशेष होइ सो विशेष जानना। अर अन्य विधान अंकसंदृष्टिवत् जानना। बहुरि जहां आदि स्थानका प्रमाण असंख्यात रूप ही होइ तहां अनंतभागकी वृद्धि वा हानि न संभवै, जहां आदिस्थानका प्रमाण संख्यात रूप ही होइ तहां अनंत भाग अर संख्यातकी वृद्धि वा हानि न संभवै है। बहुरि जहां आदि स्थानतैं अंत स्थानका प्रमाण असंख्यातगुणा ही अधिक वा हीन होइ तहां अनंतगुणवृद्धि वा हानि न संभवै है। जहां आदिस्थानतैं अंतस्थानका प्रमाण संख्यात गुणाही अधिक वा हीन होइ तहां अनंत वा असंख्यात गुणी वृद्धि वा गुणहानि न संभवै है। तातैं कहीं पंचस्थान पतित कहीं चतुस्थान पतित कहीं त्रिस्थान पतित कहीं द्विस्थान पतित कहीं एक स्थान पतित वृद्धि वा हानि यथासंभव जानना। ऐसैं ही आदिस्थानकी अपेक्षा लीएं वृद्धि हानिका स्वरूप कह्या। बहुरि कहीं एक स्थानका प्रमाणकी अपेक्षा दूसरा स्थानविषै वृद्धि वा हानि, कहीं दूसरा स्थानका प्रमाणकी अपेक्षा तीसरा स्थानविषैं वृद्धि वा हानि कही ऐसैं स्थान स्थान प्रति वृद्धि वा हानिका अनुक्रम हो है। तहां अनंत भागादिरूप वृद्धि वा हानि होइ सो यथासंभव जानना। बहुरि पर्याय समासनामा श्रुतज्ञानके भेद वा कषाय स्थान इत्यादिकानि विषै संभवती षट् स्थान पतित वृद्धि वा हानिके अनुक्रमका विधान आगैं ज्ञानमार्गणा अधिकार विषै लिखैंगे सो जानना। ऐसैं वृद्धि वा हानिका विधान अनुक्रम अनेक प्रकार है सो यथासंभव है ऐसैं प्रसंग पाइ षट्गुणी आदि हानि वा वृद्धिका वर्णन कीया ॥ १११ ॥

आगैं जिस जिस जीव समासके अवगाहन कहे तिस तिसके सर्व अवगाहनके भेदनिके प्रमाणकौं ल्यावै हैं—

हेट्ठा जेसिं जहण्णं उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ।

तत्थंतरगा सव्वे तेसिं उग्गाहणविअप्पा ॥ ११२ ॥

अधस्तनं येषां जघन्यमुपर्युत्कृष्टकं भवेद्यत्र।
तत्रांतरगाः सर्वे तेषामवगाहनविकल्पाः ॥ ११२ ॥

जी० प्र०—(मत्स्यरचनामिमां मनसि कृत्वेदमुच्यते) हीनप्रमाणस्थानानि अधस्तनस्थानानि अधिकप्रमाणस्थानानि च उपरितनस्थानानीति परिभाष्यते । येषां जीवानां यत्र जघन्यावगाहनस्थानमधस्तिष्ठति यत्रोत्कृष्टावगाहनस्थानमुपरि तिष्ठति तदंतरालवर्त्यवगाहनस्थानानि सर्वाण्यपि तेषां जीवानां मध्यमावगाहनस्थानविकल्पाः इति प्रवचने प्रतिपादितं। तत्र सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनमिदमादिः-

६ । ८ । २२ । / a   ६ । ८ । २२ । ८ । ४ । प । ११ । ८ । ८ । १ / a a a a a

प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ । / a a a अस्योत्कृष्टावगाहनमिदमंतः— प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ । ८ । / a a a a आदी अंते

६ । ८ । २२ । ८ । / a a

सुद्धेत्यादिना आवल्यसंख्येयभागेन समच्छिन्नमादिमानीय प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ । ८ / a a a a गुण्यगुणकाराणां तथा भाज्यभागहाराणां च साम्यं दर्शयित्वा अत्रतनचतुरावल्यसंख्याद्यग्रतनसर्वगुणकाराणामुपर्येकरूपमपनीय शेषे

६ । ८ । २२ । ८ । ८ । ४ । प । ११ । ८ । १ / a a a a a

प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ । ८ / a a a a वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणेति सूक्ष्मनिगोदलब्धपर्याप्तकस्य सर्वावगाहनस्थानविकल्पा भवंति—

६ । ८ । २२ । ८ । ८ । ४ । प । ११ । ८ । १
a a a a a

प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ । ८ एतेषु मध्ये रूपद्वये अपनीते तज्जीवमध्यमावगाहनस्थानानि भवंति ।
a a a a

६ । ८ । २२ । ८ । ८ । ४ । प । ११ । ८ ।
a a a a a

प । १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९ । ८ । अनेन प्रकारेण सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकादिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकजीवानां स्वस्वजघन्या-
a a a a

वगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टस्थानपर्यंतं सर्वावगाहनास्थानानि तन्मध्यविकल्पांश्च सूत्रानुसारेण आनयेत् ।

अथ मत्स्यरचनांतःप्रविष्टसर्वावगाहनविन्यासक्रमः कथ्यते तद्यथा—प्रथमं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टपर्यंतं षोडशगुणितक्रमस्थानानामेकाधिकस्थानस्य च प्रत्येकं शून्यद्वयसंदृष्टिकरणेन चतुस्त्रिंशच्छून्यानि तिर्यग्लिखितव्यानि तथा तत्पंक्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकवायुकायिकजीवजघन्यावगाहनादितदुत्कृष्टावगाहनावसानैकोनविंशतिस्थानानां अष्टात्रिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि । तथा तत्पंक्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्त तेजस्कायिकजघन्यावगाहस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानैकविंशतिस्थानानां द्वाचत्वारिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि । तथा तत्पंक्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकाप्कायिकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानावसानत्रयोविंशत्यवगाहस्थानानां षट्चत्वारिंशच्छून्यानि लिखितव्यानि । तथा तत्पंक्तेरधः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तकभूकायिकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतं पंचविंशतिस्थानानां पंचाशच्छून्यानि लिखितव्यानि । तथा तत्पंक्तेरधो बादरलब्ध्यपर्याप्तकवायुतेजोभूकायिकनिगोदप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतं यथासंख्यं सप्तविंशत्येकान्नत्रिंशदेकत्रिंशत्त्रयस्त्रिंशत्पंचत्रिंशत् सप्तत्रिंशत्षट्चत्वारिंशच्चतुश्चत्वारिंशत्एकचत्वारिंशदेकचत्वारिंशत्त्रिचत्वारिंशत्स्थानानां चतुःपंचाशत् अष्टपंचाशत्द्विषष्टिषट्षष्टिसप्ततिचतुःसप्ततिद्विनवत्यष्टाशीतिद्व्यशीतिद्व्यशीतिषडशीतिसंख्यानि शून्यानि लिखितव्यानि । अनेन प्रकारेण तत्पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकपंक्तेरधः सूक्ष्मनिगोदपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतं स्थानद्वयस्य

चत्वारि शून्यानि लिखितव्यानि। अनेन प्रकारेण अग्रे एकस्यामेव पंक्तौ सूक्ष्मपर्याप्तकवायुतेजोऽप्भूकायिकानां पुनः बादरपर्याप्तवायुतेजोऽप्पृथ्वीकायिकनिगोदप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवानां च स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतं प्रत्येकं स्थानद्वयस्य चत्वारि चत्वारि शून्यानि लिखितव्यानि। एवमेव प्रतिष्ठितप्रत्येकोत्कृष्टावगाहनस्थानादग्रे तत्पंक्तावेव अप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानादितदुत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतत्रयोदशस्थानानां षड्विंशतिशून्यानि लिखितव्यानि। तथा तत्पंक्तेरधः पर्याप्तकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवानां स्वस्वजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा स्वस्वोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतमेकादशाष्टाष्टदशस्थानानां यथासंख्यं द्वाविंशतिषोडशषोडशविंशतिसंख्यानि शून्यानि लिखितव्यानि। एवं मत्स्यरचनायां सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनस्थानमादिं कृत्वा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तोत्कृष्टावगाहनस्थानपर्यंतं सर्वावगाहनस्थानानां प्रत्येकं शून्यद्वयविवक्षया तत्स्थानगणनाभंगो हीनाधिकभावः शून्यविन्यासक्रमः अनादिनिधनार्षे कथितः। एवं रचिते सति सर्वावगाहनरचना मत्स्याकृतिर्भवति॥ ११२॥ एवं जीवसमासानामवगाहनान्युक्त्वा अधुना तेषां कुलसंख्याविशेषं गाथाचतुष्केण कथयति——

मं० प्र०——येषां सूक्ष्मापर्याप्तनिगोदादीनां पंचेंद्रियपर्याप्तपर्यंतानां जीवानां जघन्यमवगाहनं, अधः—पूर्वं लिखितं, यत्र—यस्मिन् स्थाने विद्यते उत्कृष्टं चोपरि—उत्तरत्र लिखितं यत्र विद्यते तत्र तयोर्जघन्योत्कृष्टयोरंतरगाः अंतरालगताः यावंतोऽवगाहनविकल्पाः संति ते सर्वेऽपि तेषां जीवानां मध्यमावगाहनविकल्पाः भवंति इति ज्ञातव्यं। अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवैर्विरचितायां मत्स्यरचनाया विवरणमुच्यते तद्यथा—सूक्ष्मापर्याप्तकनिगोदस्य जघन्यावगाहनात्तदुत्कृष्टपर्यंतं गुणकाराः षोडश। पुनरेकोऽधिक इति सप्तदशानां स्थानानां प्रतिस्थानं शून्यद्वयाभिप्रायेण चतुस्त्रिंशच्छून्यानि सर्वोपरि पंक्तौ विरचितानि। तदधःसूक्ष्मापर्याप्तवायुकायिकजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतं एकान्नविंशतिस्थानानां अष्टात्रिंशच्छून्यानि। एवं सूक्ष्मापर्याप्ततेजस्कायिकादीनां प्रतिष्ठितप्रत्येकपर्यंतानां प्रत्येकं स्थानद्वयाधिक्येन शून्यचतुष्काधिकानि प्रतिपंक्ति द्विचत्वारिंशत् षट्चत्वारिंशत् पंचाशत् चतुःपंचाशत् अष्टपंचाशत् द्वाषष्टिः षट्षष्टिः सप्ततिः चतुःसप्ततिः शून्यानि। उत्तरत्रापि स्वजघन्यात् स्वोत्कृष्टपर्यंतं स्थानगणनया शून्यगणना ज्ञातव्या। उपरितनपंक्तिजघन्यात् अधस्तनपंक्तिजघन्यं शून्यद्वयमतीत्य भवति। सप्तदश्यां पंक्तौ एकस्यामेव द्वादशानां जीवानां जघन्यात् स्वस्वयोग्यशून्यानि। तदधः द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाणां स्वस्वजघन्यात्स्वस्वोत्कृष्टपर्यंतं चतसृषु पंक्तिषु स्वस्वस्थानगणनया शून्यगणना ज्ञातव्या एवं रचिते सति सर्वावगाहनरचना मत्स्याकृतिर्भवति॥ ११२॥ अथ कुलभेदान् गाथापंचकेनाह——

सं०चं०-इहां मत्स्य रचनाकौं मनविषैं विचार यहु कहिये है जो जिन अवगाहना स्थाननिका प्रदेश प्रमाण थोरा होइ ते अधस्तन स्थान हैं बहुरि जिन अवगाहना स्थाननिका प्रदेश प्रमाण बहुत होइ ते उपरितन स्थान हैं ऐसा कहिये है सो जिन जीवनिका जघन्य अवगाहना स्थान तौ नीचैं तिष्ठै अर जहां उत्कृष्ट अवगाहना स्थान ऊपरि तिष्ठै तिनि दोऊनिका अंतरालविषैं वर्तमान सर्व ही अवगाहनके स्थान तिनजीवनिके मध्य अवगाहना

स्थानके भेदरूप हैं ऐसा सिद्धांतविषैं प्रतिपादन कीया है। भावार्थ–पूर्वें अवगाहनाके स्थान कहे तिनिविषैं जिसका जघन्य स्थान जहां कह्या होइ तहांतैं लगाइ एक एक प्रदेशकी वृद्धिका अनुक्रम लीऐं जहां तिसहीका उत्कृष्ट स्थान कह्या होइ तहां पर्यंत जेते भेद होंइ ते सर्वही भेद तिस जीवकी अवगाहनाके जानने। तहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तका पूर्वोक्त प्रमाणरूप जो जघन्य स्थान सो तो आदि जानना। बहुरि इसहीका पूर्वोक्त प्रमाण रूप जो उत्कृष्ट स्थान सो अंत जानना। तहां 'आदी अंते सुद्धे वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणे' इस करण सूत्रकरि आदिका प्रमाणकौं अंतका समच्छेद अपवर्तनादि विधानकरि घटाएं जो अवशेष प्रमाण रहै ताकौं स्थान २ प्रति वृद्धिरूप जो एक प्रदेश ताका भाग दीए भी तेता ही रहै तामैं एक जोडैं जो प्रमाण होइ तितने सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवनिके सब अवगाहनाके भेद हैं। इनिमैं आदिस्थान अर अंत स्थान इनि दोऊनिकौं घटाये अवशेष तिसही जीवके मध्यम अवगाहनाके स्थान हो हैं। बहुरि इसही प्रकार सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक वायुकायिक जीव आदि देकरि संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त पर्यंत जीवनिके अपने २ जघन्य अवगाहना स्थानतैं लगाइ अपने अपने उत्कृष्ट अवगाहना स्थानपर्यंत सर्व अवगाहनाके स्थान, अर तिनिविषै जघन्य उकृष्ट दोय स्थान घटाये तिनहीके मध्य अवगाहनां स्थान ते सूत्रके अनुसारि ल्याईयें।

अब मत्स्यरचनाके मध्य प्राप्त भए ऐसे सर्व अवगाहना स्थान तिनिके स्थापनका अनुक्रम कहिये है– पूर्वें अवगाहनाके स्थान चौसठि कहे थे तिनिविषै ऊपरि पंक्तिविषैं प्राप्त जे वियालीस गुणकार रूप स्थान तिनिकौं गुणित क्रमस्थान कहिये। बहुरि नीचैकी दोय पंक्तिनिविषैं प्राप्त जे वावीस अधिक रूप स्थान तिनिकौं अधिक स्थान कहिये। तहां चौसठि स्थाननिविषै गुणित क्रमरूप वा अधिक क्रमरूप स्थान अपने अपने जघन्यतैं लगाइ अपने अपने उत्कृष्टपर्यंत जेते जेते होंइ तिनि एक एक स्थानकी दोय दोय बिंदी बरोबरि लिखनी जातैं एक एक स्थानके वीचि अवगाहनाके भेद बहुत हैं तिनिकी संदृष्टिके आर्थि दोय बिंदी स्था-

पीं बहुरि तिनि जीवसमासनिविषैं संभवते स्थाननिकी नीचैं नीचैं पंक्ति करनी ऐसें स्थापैं माछलेकासा आकार हो है सो कहिए है—प्रथम सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तका जघन्य अवगाहन स्थानतैं लगाइ ताहीका उत्कृष्ट पर्यंत सतरह स्थान हैं। तहां सोलह गुणित स्थान है। एक अधिकस्थान है। सो प्रथमादि एक एक स्थानकी दोय दोय विंदीकी संदृष्टि करनेकरि चौंतीस विंदी बरोबरि ऊपरि पंक्तिविषै लिखनी। इहां सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तका जघन्य स्थान पहला है उत्कृष्ट अठारहवां है तथापि गुणाकारपनाका अधिकपना रूप अंतराल सतरह ही है तातैं सतरह ही स्थान ग्रहे हैं। ऐसें आगैं भी जानना। बहुरि तैसैं ही तिस पंक्तिके नीचैं दूसरी पंक्तिविषैं सूक्ष्मलब्धिक अपर्याप्त वायुकायिक जीवका जघन्य अवगाहना स्थानतैं लगाइ ताके उत्कृष्ट अवगाहनां स्थान पर्यंत उगणीस स्थान हैं तिनकी अडतीस विंदी लिखना सो इहां दूसरा स्थानतैं लगाइ स्थान है। तातैं ऊपरिकी पंक्तिविषैं दोय विंदी प्रथम स्थानकी लिखी थी तिनकी नीचाकौं छोडि द्वितीय स्थानकी दोय विदीतैं लगाइ आगै बरोबरि अडतीस विंदी लिखनी। बहुरि तैसैं ही तिस पंक्तिके नीचै तीसरी पंक्तिविषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक तेजस्कायिकका जघन्य अवगाहनतैं उत्कृष्ट अवगाहनपर्यंत इकईस स्थान हैं तिनकी वियालीस विंदी लिखना। सो इहां तीजा स्थानते लगाइ स्थान हैं तातैं ऊपरिकी पंक्तिविषैं दूसरी स्थानकी दोइ विंदी लिखी थीं तिनके नीचाकौं भी छोडि तीसरी स्थानककी दोइ विंदीतैं लगाइ व्यालीस विंदी लिखना बहुरि तैसैं ही तिस पंक्तिके नीचै चौथी पंक्तिविषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्तक अप्कायिकका जघन्य अवगाहन स्थानतैं लगाइ ताका उत्कृष्ट अवगाहन स्थानपर्यंत तेवीस स्थाननिकी छियालीस विंदी लिखनी। सो इहां चौथा स्थानतैं लगाइ स्थान है तातैं तीसरा स्थानकी दोय विंदीका नीचाकौं छोडि चौथा स्थानककी दोय विंदीतै लगाइ छियालीस विंदी लिखना। बहुरि तैसैं ही तिस पंक्तिके नीचै पांचमी पंक्तिविषै सूक्ष्म लब्धि अपर्याप्त पृथ्वीकायिकका जघन्य अवगाहनतैं लगाइ ताका उत्कृष्ट अवगाहन पर्यंत पचीस स्थान हैं तिनकी पचास विंदी लिखना। सो इहां पांचवां स्थानतैं लगाइ स्थान है ताते चौथा स्थानकी दोय विंदीका भी नीचाकौं छोडि पां-

वर्वा स्थानककी दोय विंदीतैं लगाइ पचास विंदी लिखना। बहुरि तैसैं ही तिस पंक्तिके नीचै छठी सातमी आठवीं नवमीं दशमीं ग्यारहमीं बारहवीं तेरहवीं चौदहवीं पंद्रहवीं सोलहवीं पंक्तिविषै वादर लब्धि अपर्याप्तक वायु १ तेज १ अप् १ पृथ्वी १ निगोद प्रतिष्ठित प्रत्येक १ अप्रतिष्ठित प्रत्येक द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय इनि ग्यारहनिका अपना अपना जघन्य स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यंत अनुक्रमतैं सत्ताईस गुणतीस इकतीस तेतीस पैंतीस सैंतीस छियालीस चवालीस इकतालीस इकतालीस तियालीस स्थान हैं तिनिकी चौवन अठावन वासठि छ्यासठि सत्तरि चौहत्तरि वाणवै अठ्यासी वियासी वियासी छियासी विंदी लिखना। सो इहां छठा सातवां आदि स्थानतैं लगाइ स्थान हैं तातैं ऊपरि पंक्तिका आदि स्थानकी दोय दोय विंदीका नीचाकौं छोडि छठा सातवां आदि स्थानकी दोय विंदीतैं लगाइ ए विंदी तिनि पंक्तिनिविषैं क्रमतैं लिखनी।

बहुरि तिस पंचेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तककी पंक्तिके नीचे सतरहवां पंक्तिविषै सूक्ष्मनिगोद पर्याप्तका जघन्य अवगाहना स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट अवगाहना स्थान पर्यंत दोय स्थान हैं तिनिकी च्यारि विंदी लिखनीं। बहुरि इसही प्रकार आगैं इस एक ही पंक्तिविषै सूक्ष्म पर्याप्त वायु, तेज, अप्, पृथ्वी, बहुरि वादर पर्याप्त वायु, तेज, अप, पृथ्वी, निगोद, प्रतिष्ठित प्रत्येक इनिका अपना अपना जघन्य अवगाहना स्थानकौं आदि देकरि अपना अपना उत्कृष्ट अवगाहना स्थानपर्यंत दोय दोय स्थाननिकी च्यारि च्यारि विंदी लिखनी। बहुरि ऐसैं ही प्रतिष्ठित प्रत्येकका उत्कृष्ट अवगाहन स्थानतैं आगैं तिस ही पंक्तिविषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्तका जघन्य अवगाहना स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट अवगाहना स्थानपर्यंत तेरह स्थान हैं तिनिकी छव्वीस विंदी लिखनीं। ऐसैं इस एक ही पंक्तिविषैं विंदी लिखनीं कही। तहां पर्याप्त सूक्ष्म निगोदका आदि स्थान सतरह्वां है तातैं इनिके दोय स्थाननिकी सोलह्वां स्थानकी दोय विंदीनिका नीचाकौं छोडि सतरह्वां अठारवां स्थानकी च्यारि विंदी लिखनीं। बहुरि सूक्ष्म पर्याप्तका आदि स्थान वीसवां है तातैं तिसही पंक्तिविषैं उगणीसवां स्थानकी दोय विंदीका नीचाकौं छोडि वीसवां इकईसवां दोय स्थाननिकी च्यारि

विंदी लिखनीं। ऐसें ही वीचि वीचि एक स्थानकी दोय दोय विंदीका नीचाकौं छोडि छोडि सूक्ष्म पर्याप्त तेज आदिकके दोय दोय स्थाननिकी च्यारि च्यारि विंदी लिखनीं। बहुरि तिसही पंक्तिविषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येकके पचासवांतैं लगाइ स्थान हैं तातैं पचासवां स्थानककी विंदीनितैं लगा तेरह स्थाननिकी छव्वीस विंदी लिखनीं ऐसैं ए एकपंक्तिविषैं कहे। बहुरि तिसपंक्तिके नीचैं नीचैं अठारमी उगणीसमी वीसमी इकवीसमी पंक्तिविषैं पर्याप्त द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय जीवनिका अपना अपना जघन्य अवगाहन स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट स्थानपर्यंत ग्यारह आठ आठ दश स्थान हैं। तिनिकी क्रमतैं वाईस सोलह सोलह वीस विंदी लिखनी। तहां पर्याप्त वेंद्रीके इक्यावनतैं लगाइ स्थान हैं। तातैं सतरही पंक्तिविषैं अप्रतिष्ठित प्रत्येककी छव्वीस विंदी लिखी थीं तिनिके नीचैं आदिकी पचासवां स्थानकी दोय विंदीका नीचाकौं छोडि आगै वाईस विंदी लिखनीं। बहुरि ऐसैं ही नीचै नीचै आदिकी दोय दोय विंदीका नीचाकौं छोडि बावनवां तेरेपनवां चौवनवां स्थानककी विंदीतैं लगाइ क्रमतैं सोलह सोलह वीस विंदी लिखनी। याप्रकार मत्स्यरचनाविषैं सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तका जघन्य अवगाहना स्थानकौं आदि दैकरि संज्ञी पचेंद्री पर्याप्तका उत्कृष्ट अवगाहन स्थान पर्यंत सर्व अवगाहन स्थाननिकी प्रत्येक दोय दोय शून्यकी विवक्षाकरि तिन स्थानकनिकी गणतीके आश्रय ऐसा हीनाधिकतैं रहित विंदीनिके स्थापनका अनुक्रम सो अनादि निधन ऋषिप्रणीत आगमविषै कह्या है।

ऐसैं जीव समासनिकी अवगाहना कहि अब तिनिके कुलकी संख्याका जो विशेष ताकौं गाथा च्यारिकरि कहै हैं—

वावीस सत्त तिण्णि य सत्त य कुलकोटिसयसहस्साइं ।
णेया पुढविदगागणिवाउक्कायाण परिसंखा ॥ ११३ ॥

द्वाविंशतिः सप्त त्रीणि च सप्त च कुलकोटिशतसहस्राणि ।
ज्ञेया पृथिवीदकाग्निवायुकायिकानां परिसंख्या ॥ ११३ ॥

जी० प्र०—पृथ्वीकायिकानां कुलानि द्वात्रिंशतिलक्षकोटयो भवति । अप्कायिकानां कुलानि सप्तलक्षकोटयो भवंति । तेजस्कायिकानां कुलानि त्रिलक्षकोटयो भवंति । वायुकायिकानां कुलानि सप्तलक्षकोटयो भवंति इति ज्ञातव्यं ॥ ११३ ॥

मं० प्र०—उच्चैर्गोत्रनीचैर्गोत्रयोः उत्तरोत्तरप्रकृतिविशेषोदयैः संजाताः वंशाः कुलानि । तेषां कोटिशतसहस्राणि कोटिलक्षाणि । पृथ्वीकायिकाना द्वाविंशतिः कोटिशतसहस्राणि । दकानां—अप्कायिकानां सप्तकोटिशतसहस्राणि दकशब्दोऽपि जलवाचकोऽस्ति । अग्नीनां तेजस्कायिकानां त्रीणि कोटिशतसहस्राणि । वायुकायिकानां सप्तकोटिशतसहस्राणि । यथाक्रममुक्तजीवानां कुलानां परिसंख्या ज्ञेया ॥ ११३ ॥

सं० च०—पृथ्वी कायिकनिके कुल वाईस लाख कोडि हैं । अप्कायिकनिके कुल सात लाख कोडि हैं । तेजकायिकनिके कुल तीन लाख कोडि हैं । वायुकायिकनिके कुल सातलाख कोडि हैं ऐसैं जानना ॥ ११३ ॥

कोडिसयसहस्साइं सत्तट्ठणव य अट्ठवीसाइं ।
वेइंदियतेइंदियचउरिंदियहरिदकायाणं ॥ ११४ ॥

कोटिशतसहस्राणि सप्ताष्ट नव च अष्टाविंशतिः ।
द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियहरितकायानां ॥ ११४ ॥

जी० प्र०—द्वींद्रियाणां कुलानि सप्तलक्षकोट्यो भवंति । त्रींद्रियाणां कुलानि अष्टलक्षकोट्यो भवंति । चतुरिंद्रियाणां कुलानि नवलक्षकोट्यो भवंति । वनस्पतिकायिकानां कुलानि अष्टाविंशतिलक्षकोट्यो भवंति ॥ ११४ ॥

मं० प्र०—द्वींद्रियाणां कुलानां सप्तकोटिशतसहस्राणि, त्रींद्रियाणा कुलाना अष्टकोटिशतसहस्राणि, चतुरिंद्रियाणां कुलानां नवकोटिशतसहस्राणि, हरितकायाना वनस्पतिकायिकाना अष्टाविंशतिकोटिशतसहस्राणि ज्ञेयानि । नव चेति चशब्दः समुच्चयार्थे ॥ ११४ ॥

सं० च०—बे इंद्रियके कुल सात लाख कोडि हैं । त्रींद्रियनिके कुल आठलाख कोडि हैं । चतुरिंद्रियनिके कुल नवलाख कोडि हैं । वनस्पति कायिकनिके कुल अठाईस लाख कोडि हैं ॥ ११४ ॥

अद्धत्तेरस बारस दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं ।
जलचरपक्खिचउप्पयउरपरिसप्पेसु णव होंति ॥११५॥

अर्धत्रयोदश द्वादश दशकं कुलकोटिशतसहस्राणि ।
जलचरपक्षिचतुष्पदोरुपरिसर्पेषु नव भवंति ॥ ११५ ॥

जी० प्र०—पंचेंद्रियतिर्यक्षु जलचराणां कुलानि अर्धत्रयोदश--सार्धद्वादशलक्षकोटयो भवंति । पक्षिणां कुलानि द्वादशलक्षकोटयो भवति । चतुष्पदानां कुलानि दशलक्षकोटयो भवंति । उरःपरिसर्पाणां सरीसृपादीनां कुलानि नवलक्षकोटयो भवंति ॥ ११५ ॥

मं० प्र०—जलचराणा कुलाना अर्धत्रयोदशानि कोटिशतसहस्राणि--अर्धं त्रयोदशं येषां तान्यर्धत्रयोदशानि सार्धं द्वादशेत्यर्थः । पक्षिणां कुलानां द्वादशकोटिशतसहस्राणि । चतुष्पदाना कुलाना दशकोटिशतसहस्राणि । उरसा परिसर्पंति गच्छति इत्युरःपरिसर्पाः गोधासरटादयः तेषा कुलाना नवकोटिशतसहस्राणि भवति । एतद्गाथात्रयोक्तसंख्यानि तिर्यग्गतिकुलानि ॥ ११५ ॥

सं० च०—पंचेंद्रियनिविषैं जलचरनिके कुल साड़ा बारालाख कोडि हैं । पक्षीनिके कुल बारालाख कोडि हैं । चौपदनिके कुल दशलाख कोडि हैं । उरसर्प जे सरीसृप आदि तिनिके कुल नवलाख कोडि हैं ११५

छप्पंचाधियवीसं बारसकुलकोडिसदसहस्साइं ।

सुरणेरइयणराणं जहाकमं होंति णेयाणि ॥ ११६ ॥

षट्पंचाधिकविंशतिः द्वादश कुलकोटिशतसहस्राणि ।
सुरनैरयिकनराणां यथाक्रमं भवंति ज्ञेयानि ॥ ११६ ॥

जी० प्र०—सुराणां कुलानि षड्विंशतिलक्षकोट्यो भवंति । नैरयिकाणां कुलानि पंचविंशतिलक्षकोट्यो भवंति । नराणां कुलानि द्वादशलक्षकोट्यो भवंति । एतानि सर्वकुलानि यथाक्रमं भव्यैर्ज्ञेयानि भवंति ॥ ११६ ॥ अथ सर्वजीवसमासानां कुलयुतिं निर्दिशति—

म० प्र०—सुराणां कुलानि षडधिकविंशतिः कोटिशतसहस्राणि । नैरयिकाणां कुलानि पंचाधिकाविंशतिः कोटिशतसहस्राणि । नराणां कुलानि द्वादशकोटिशतसहस्राणि यथाक्रम—परमागमोक्तक्रमानुसारेण सूत्रकारोक्तयथासख्येन वा ज्ञेयानि भवंति । अत्र शेषगतित्रयकुलसंख्या उक्ता ॥ ११६ ॥

सं० च०—देवनिके कुल छब्बीस लाख कोडि हैं । नारकीनिके कुल पचीसलाख कोडि हैं । मनुष्यनिके कुल बारहलाख कोडि हैं ए सर्व कुल यथाक्रमकरि कहे ते भव्य जीवनिकरि जानने योग्य हैं ॥ ११६ ॥ आगै सर्व समासनिके कुलनिके जोडकौं निर्देश करै हैं—

एया य कोडिकोडी सत्ताणउदी य सदसहस्साइं ।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीणं कुलाणं य ॥ ११७ ॥

एका च कोटिकोटी सप्तनवतिश्च शतसहस्राणि ।
पंचाशत्कोटिसहस्राणि सर्वांगिनां कुलानां च ॥ ११७ ॥

जी० प्र०—एवमुक्तानां पृथ्वीकायिकादिमनुष्यपर्यंतसर्वदेहिकुलानां युतिः एका कोटाकोटिः सप्तनवतिलक्षपंचाशत्सहस्रकोट्यश्च भवति ११७

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु जीवसमासप्ररूपणानाम द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

मं० प्र—एवं गाथाचतुष्टयोक्तानि सर्वांगिनां चतुर्गतिसंसारिजीवानां कुलानि एका कोटाकोटी सप्तनवतिः शतसहस्रकोट्यः पंचाशत्सहस्रकोट्यश्च भवं-

ति १९७५०००००००००००० । तुशब्दः सर्वकुलसमुदाय इयानिति विशेषसूचनार्थः । एकश्चशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः । इतरश्चशब्दः जीवसमासावि-कारस्थानयोन्यवगाहनकुलकोटिसमुच्चयार्थः ॥ ११७ ॥

इत्यभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसग्रहवृत्तौ जीवसमासप्ररूपणानाम द्वितीयोऽधिकारः ॥ २ ॥

सं० च०—ऐसैं कहे जे पृथ्वीकायकादि मनुष्यपर्यंत सर्व प्राणी तिनके कुलनिका जोड एक कोडाकोडि अर सत्याणवै लाख पचास हजार कोडि प्रमाण है १९७५०००००००००००० । इहां कोऊ कहै कि कुल अर जातिविषै भेद कहा? ताका समाधान-जाति है सो तौ योनि है तहां उपजनेके स्थानरूप पुद्गल स्कंधके भेदनिका ग्रहण करना । बहुरि कुल है सो जिनि पुद्गलनिकरि शरीर निपजै तिनिके भेदरूप हैं। जैसैं शरीर पुद्गल आकारादि भेदकरि पंचेंद्रिय तिर्यंचविषै हाथी घोडा इत्यादि भेद हैं ऐसैं सो यथासंभव जानने ।

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितगोम्मटसारद्वितीयनामपंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिकानामा इस भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीसप्ररूपणा तिनिविषैं जीवसमास प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा दूसरा अधिकार संपूर्ण भया ॥ २ ॥

अथ पर्याप्तिप्ररूपणा ।

प्रक्षीणघातिकर्माणं प्राप्तानंतचतुष्टयं ।
तृतीयं तीर्थकर्तारं संभवेशं नवीम्यहं ॥ १ ॥

अत्रोपयोगिलोकोत्तरगणितमुच्यते—तत् संख्यातमसंख्यातमनंतमिति त्रिधा । तत्र संख्यातं जघन्यं मध्यममुत्कृष्टमिति त्रिधा । असंख्यातं तु परीतं युक्तं द्विकवारमिति त्रेधापि जघन्यं मध्यममुत्कृष्टं सन्नवधा भवति । तथानंतमपि नवधा । एतेषु तदेकविंशतिभेदेषु जघन्यसंख्यातं द्विसंख्यं । तस्य भेदग्राहकत्वेन एकस्य तदभावात् । त्र्यादीनां तु तन्मध्यमभेदत्वेन द्विकस्यैव तद्भावात् । उत्कृष्टसंख्यातं रूपोनं जघन्यपरिमितासंख्यातमात्रं । कियत्तज्जघन्यपरिमितासंख्यातं ? इति चेदुच्यते अनवस्था—शलाका- प्रतिशलाका-महाशलाकानामानि प्रमाणयोजनलक्षव्यासमहस्रगाधानि जंबूद्वीपोपमानानि चत्वारि कुंडानि कर्तव्यानि । तत्र अनवस्थाकुंडं सर्षपैरेकसहस्रनवशतसप्तनवतिषड्वारकोट्येकादशलक्षैकान्नत्रिंशत्सहस्रत्रिशतचतुरशीतिपंचवारकोट्येकपंचाशल्लक्षैकत्रिंशत्सहस्रषट्शतषट्त्रिंशच्चतुर्वारकोटिषट्त्रिंशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रत्रिशतत्रिषष्टित्रिवारकोटित्रिषष्टिलक्षत्रिषष्टिसहस्रषट्छतषट्त्रिंशत्कोटीकोटिषट्त्रिंशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्रत्रिशतत्रिषष्टिकोटित्रिषष्टिलक्षत्रिषष्टिसहस्रषट्शतषट्त्रिंशत्संख्यैश्चतुरेकादशभागाधिकैः १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ $\frac{4}{11}$ सशिखं भृत्वा अन्यमेकं सर्षपं शलाकाकुंडे निक्षिप्य तदनवस्थाकुंडसर्षपान्मत्या मनुष्यो देवो वा गृहीत्वा जंबूद्वीपादिद्वीपसमुद्रेषु एकैकस्मिन् दत्ते यत्र द्वीपे समुद्रे वा परिसमाप्यंते तावद्वीपसमुद्रसूचीव्यासं पूर्वोक्तागाधं द्वितीयमनवस्थाकुंडं कृत्वा सशिखं सर्षपैर्भृत्वा शलाकाकुंडे अपरं सर्षपं निक्षिपेत् । तत्कुंडसर्षपान् तदग्रतनद्वीपसमुद्रेषु एकैकं दत्वा तत्सहितपूर्वद्वीपसमुद्रव्यासं प्रागुक्तागाधं तृतीयमनवस्थाकुंडं कृत्वा सर्षपैः सशिखं भृत्वा प्राक्तनशलाकाकुंडे अपरं सर्षपं निक्षिपेत् । अनेन क्रमेण प्रागुक्तैकनवाद्यंककृतसंख्यामात्रेषु अनवस्थाकुंडेषु गतेषु शलाकाकुंडं सशिखं भ्रियते तदा प्रतिशलाकाकुंडे एकं सर्षपं निक्षिपेत् । पुनः शलाकाकुंडं रिक्तयित्वा पुनस्तावत्सु अनवस्थाकुंडेषु गतेषु शलाकाकुंडं भ्रियते तदा प्रतिशलाकाकुंडे अपरं सर्षपं निक्षिपेत् । अनेन क्रमेणैकनवाद्यंकवर्गमात्रेषु अनवस्थाकुंडेषु गतेषु प्रतिशलाकाकुंडमपि भ्रियते तदा महाशलाकाकुंडे एकं सर्षपं निक्षिपेत् । अनेन क्रमेणैकनवादिघनमात्रेषु अनवस्थाकुंडेषु गतेषु महाशलाकाकुंडमपि भ्रियते तदा प्राक्तनानि प्रतिशलाका-

शलाकानवस्थाख्यान्यपि कुंडानि भ्रियंते। तदात्र यच्चरममनवस्थाकुंडं तत्र यावंतः सर्षपास्तत्प्रमाणं रूपोनं चेत्तदोत्कृष्टसंख्यातं भवति तत्संदृष्टिः १५ संपूर्ण तदा जघन्यपरीतासंख्यातं भवति तत्संदृष्टिः १६ अस्योपरि एकाद्येकोत्तरक्रमेण सर्वेषु मध्यपरीतासंख्यातविकल्पेषु गतेषु यदा जघन्यपरीतासंख्यात विरलयित्वा रूपं प्रति तदेव दत्त्वा परस्परगुणितं लब्धमात्रं रूपोनं जायते तदा उत्कृष्टपरीतासंख्यातं भवति। तत्संदृष्टिः २ संपूर्ण तदा जघन्ययुक्तासंख्यातं भवति।२। इदमावलिसदृशं। अस्योपरि एकाद्येकोत्तरक्रमेण मध्यमान् युक्तासंख्यातविकल्पान् नीत्वा जघन्ययुक्तासंख्यातवर्गमात्रं रूपोनं तदा उत्कृष्टसंख्यातं भवति ४ संपूर्ण तदा जघन्यद्विकवारासंख्यातं भवति।४। अस्योपरि द्विरूपोनजघन्यपरीतानंतपर्यंतं एकाद्येकोत्तरक्रमेण मध्यमान् द्विकवारासंख्यातविकल्पान् ज्ञानन् जघन्यद्विकवारासंख्यातं शलाकाविरलनदेयरूपेण संस्थाप्य श ४। वि ४। दे ४। विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। श ४–१। पुनस्तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। श ४–२। पुनस्तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। अनेन क्रमेण प्रथमवारस्थापितशलाकाराशौ निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशिमपि शलाकाविरलनदेयक्रमेण संस्थाप्य श a। वि a। दे a। प्राग्वत् विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श a–१। तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श a–२। एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशौ निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशिमपि प्राग्वत् शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श a। वि a। दे a। विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणयित्वा शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श a १। पुनस्तदुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति तमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। श a-२। एवं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशावपि निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशौ जगच्छ्रेणिघनप्रमिताश्चत्वारो धर्माधर्मैकजीवलोकाकाशप्रदेशाराशयः असंख्यातलोकमात्रोऽप्रतिष्ठितप्रत्येकराशिः ≡ a अतोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः प्रतिष्ठितप्रत्येकराशिः ≡ a × ≡ a एते षड्राशयः प्रक्षेप्याः। तं महाराशिं शलाकाविरलनदेय कृत्वा श a। वि a। दे a। विरलनदेयक्रमेण प्राग्वत् शलाकात्रये निष्ठापिते तत्रोत्पन्नराशौ उत्सर्पिण्यवसर्पिणीद्वयात्मक संख्यातपल्यमात्रकल्पसमयराशिः प a असंख्यातलोकमात्रस्थितिबंधप्रत्ययराशिः ≡ a अतोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रोऽनुभागबंधा (ध्य) व्यवसायराशिः ≡ a ≡ a अतोऽसंख्यातलोकगुणोऽप्यसंख्यातलोकमात्रो योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदराशिः ≡ a ≡ a ≡ a एते चत्वारो राशयो मेलयितव्याः। तं महाराशिं शलाकाविरलनदेय कृत्वा श a। वि a। दे a प्राग्वदेव विरलनदेयक्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तद्रूपोन तदोत्कृष्टद्विकवारासंख्यातं भवति २५६ संपूर्ण तदा जघन्यपरीतानंतं भवति। तत्संदृष्टिः २५६ अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान्मध्यपरीतानंतविकल्पान्नीत्वा इदं जघन्यपरीतानंतं विरलयित्वा रूपं प्रति इदमेव दत्त्वा परस्परं गुणिते यल्लब्धं तद्रूपोन तदा उत्कृष्टपरी-

तानंतं भवति तत्संदृष्टिः—ज जु अ–१ संपूर्णं तदा जघन्ययुक्तानंतं भवति तत्संदृष्टिः। ज जु अ। इदं भव्यराशिसमं। अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान् मध्यमयुक्तानंतविकल्पान् नीत्वा अस्य वर्गं गृहीत्वा रूपोनं तदा उत्कृष्टयुक्तानंतं भवति संदृष्टिः ज जु अ व–१। संपूर्णं तदा जघन्यद्विकवारानंतं भवति। संदृष्टिः ज जु अ न। अस्योपरि एकाद्येकोत्तरान् रूपोनकेवलज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदराशिपर्यंतान् मध्यमान् द्विकवारानंतविकल्पान् जानन् जघन्यद्विकवारानंतं त्रिःप्रतिकं कृत्वा प्राग्वत् शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तत्र सिद्धराशिः ३ पृथिव्यादिचतुष्टयप्रत्येकवनस्पतित्रसराशिरहितसंसारिराशिरेव निगोदराशिः १३ ≡। अतः प्रत्येकवनस्पत्यविकवनस्पतिराशिः १३ = इतोऽनंतगुणपुद्गलराशिः १६ ख। इतोऽनंतानंतगुणो व्यवहारकालसमयराशिः। १६ ख ख। इतोऽनंतानंतगुणोऽलोकाकाशप्रदेशराशिः १६ ख ख ख। एते षट् राशयः प्रक्षेप्तव्याः। तं राशिं प्राग्वत् त्रिः प्रतिकं कृत्वा क्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तत्र धर्माधर्मद्रव्ययोः अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदसमूहमनंतानंतात्मकं (ख ख) प्रक्षिप्य तं राशिं प्राग्वत् त्रि प्रतिकं कृत्वा क्रमेण शलाकात्रये निष्ठापिते यल्लब्धं तं राशिं केवलज्ञानशक्त्यविभागप्रतिच्छेदसमूहे ऊनयित्वा पुनस्तत्रैव निक्षिप्ते उत्कृष्टद्विकवारानंतमुत्पद्यते। तत्संदृष्टिः के। यदीदं सर्वं संख्यातादिकमेकादिकं स्यात् तदा सर्वधारैवोक्ता भवति। तेन शेषाः सम-विषम-कृति-कृतिमातृक-घन-घनमातृक-अकृति-अकृतिमातृक-अघन-अघनमातृक-द्विरूपवर्ग-द्विरूपघन–द्विरूपघनाघनाख्यास्त्रयोदश धारास्तस्यास्त्रैवोत्पन्ना इति जानीहि। तासु द्विरूपवर्गधारादीनामेवात्रोपयोगित्वात्ता एव तिस्रः उच्यते। तत्र द्विरूपवर्गधारा तावत् द्वौ चत्वारः षोडश विसदृछप्पण्णं पणट्ठी बादालं एक्कट्ठं, एवं पूर्वपूर्वस्य कृतिक्रमेण संख्यातस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतासंख्यातस्य वर्गशलाकाराशिः। ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरिमितासंख्यातमुत्पद्यते। ततः संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा आवलिरुत्पद्यते। तस्यामेकवारं वर्गितायां प्रतरावलिरुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यस्य वर्गशलाका राशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यमुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा सूच्यंगुलमुत्पद्यते। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतरांगुलमुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिघनमूलमुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतानंतस्य वर्गशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरीतानंतमुत्पद्यते। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा जघन्ययुक्तानंतमुत्पद्यते। तदभव्यराशिसमं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यद्विकवारानंतमुत्पद्यते। ततः अनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा जीवराशेर्वर्गशलाकाराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तस्य प्रथममूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सर्वजीवराशिरुत्पद्यते। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा सर्वपुद्गलराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा सर्वकालराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाशप्रदेशराशिः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतराकाशप्रदेशराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा धर्माधर्मद्रव्ययोरगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि

गत्वा एकजीवद्रव्यागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदसमूहराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा जघन्यक्षायिकलब्ध्यविभागप्रतिच्छेदकलापराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानवर्गशलाकाराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तस्यार्धच्छेदशलाकाराशिः। ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तस्याष्टमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सप्तवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते षष्ठवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पंचमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते चतुर्थवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते तृतीयवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते द्वितीयवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रथमवर्गमूलं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते गुणपर्ययवत् त्रिलोकोदरवर्तित्रिकालगोचरजीवादिपदार्थसार्थावभासिकेवलज्ञानदिवाकरप्रभाप्रतिपक्षकर्मनिरवशेषक्षयाभिव्यक्तसमस्ताविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मकं सर्वोत्कृष्टं भावप्रमाणमुत्पद्यते। इदमेवोत्कृष्टक्षायिकलब्धिः। संदृष्टि—२। ४। १६। २५६। ६५५३६। ४२९४९६७२९६। १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६। ०। व०। छे०। मू १। १६। ०। २। ४। ०। व०। छे। मू १। प०। २। ४। ०। ज घ मू व०। छे०। मू १। २५६। ०। ज जु अ०। ज जु अ व०। व०। छे०। मू १। जी १६। ०। १६ ख ०। १६ ख ख ०। श्रे आ १६ ख ख ख। प्र आ १६ ख ख ख ख ख ख। ०। ध अ अ ख ख। ०। ए जी अ ख ख ख ०। सू नि ज ज्ञा ख ४। ०। ज क्षा ल ख ५। ०। व ०। छे०। मू ८। मू ७। मू ६। मू ५। मू ४। मू ३। मू २। मू १। के।

अस्या धाराया वर्गितवारास्तु केवलज्ञानस्य वर्गशलाकामात्राः। अस्यां च द्विरूपघनद्विरूपघनाघनधारयोश्च सूच्यंगुलादीनां वर्गशलाकार्धच्छेदराशी नोत्पद्येते, विरलनदेयक्रमेण तदुत्पत्तेः। तथापि ते सूच्यंगुलादयो द्विरूपवर्गधारायां स्वस्वदेयराशेरुपरि विरलनराश्यर्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा उत्पद्यंते। तत्र सूच्यंगुलस्य विरलनराशिः पल्यछेदराशिः देयराशिः पल्यं जगच्छ्रेणेर्विरलनराशिः पल्यच्छेदराश्यसंख्यातैकभागाः देयराशिः घनांगुलं। स्वस्वविरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गे कृते तद्राशिरुत्पद्यते इत्यर्थः। तदर्धच्छेदराशिः राशेरर्धितवारमात्रः। वर्गशलाकाराशिः तदर्धच्छेदानां अर्धितवारमात्रः। अर्धच्छेदाः द्विरूपवर्गधारादिधारात्रये विवक्षितवर्गादुपरितनवर्गे द्विगुणद्विगुणा भवंति तत्प्रणिधौ परस्थाने (स्थापने) द्विरूपघनद्विरूपघनाघनधारयास्त्रिगुणास्त्रिगुणा भवंति। वर्गशलाकाः वर्गादुपरितनवर्गे स्वस्थाने रूपाधिकाः परस्थाने तत्प्रणिधौ समाना भवंति। अर्धच्छेदराशिर्द्विरूपवर्गधाराया राशेर्वर्गशलाकामात्रेषु राशिश्च धारात्रये तदर्धच्छेदमात्रेषु च द्विकेषु गुणितेषु भवति। का वर्गशलाका? राशेर्वर्गितवारः, द्विरूपवर्गधारायामेवार्धच्छेदराशेरर्धितवारो वा भवति। कोऽर्धच्छेदः? राशेरर्धितवारः। अथ द्विरूपघनधारा—अष्टौ चतुष्षष्टिः षोडशघनः वेमदछप्पणघन पण्णट्ठिघनः बादालघनः, एवं पूर्वपूर्वस्य वर्गवर्गक्रमेण संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा आवलेर्घनः। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतरावलिवृंदं। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यवर्गशलाकाघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यच्छेदराशिघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा पल्यप्रथममूलवृंदं। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यघनः। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा वृंदांगुलं। ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा

जगच्छ्रेणिः । अस्यामेकवारं वर्गितायां जगत्प्रतरः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा जीवराशेर्वर्गशलाकाराशिघनः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदशलाकाराशिघनः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलघनः । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जीवराशिघनः ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाशस्य वर्गशलाकाघनः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदघनः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलघनः । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते श्रेण्याकाशघनः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानस्य द्वितीयमूलवृंदं तदेव तस्या अंतः । अनंतरवर्गस्य केवलज्ञानस्य तत्प्रथममूलसंवर्गमात्रत्वे सति केवलज्ञानातिक्रमात् । तदधिकसंख्याया अभावात् । द्विरूपवर्गधारायां यत्रोद्देशे यो यो राशिर्जायते तद्देशे द्विरूपघनधारायां तस्य तस्य घनो जायते—संदृष्टिः—८, ६४, ४०९६, २५६=६५=६५ =। ४२= ४२= । १८= ।०। आ २।२।२। प्र आ ६४ । ० । व व व ०। छे छे छे ० । मू १ मू १ मू १ ।प प प ०, ६।०।–।=।०। जी व व व ०। छे छे छे ०। मू १ मू १ मू १। १६ १६ १६ ।०। श्रे आ व व व ० छे छे छे ।०। मू १ मू १ मू १। सर्वाकाश ।०। के मू २, मू २ मू २। अस्याः स्थानविकल्पाः केवलज्ञानस्य द्विरूपोनवर्गशलाकामात्राः व–२ ।

अथ द्विरूपघनाघनधारोच्यते तद्यथा—अष्टघनमादिं कृत्वा पूर्वपूर्वस्य वर्गक्रमेणासंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा लोकाकाशप्रदेशराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तेजस्कायिकजीवराशेर्गुणकारशलाकाराशिः । का गुणकारशलाका ? विरलनराशिमात्रतत्सर्वदेयराशीनां गुणितवाररूपा । ततोऽसंख्यातान्यसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा तद्वर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराशितेजस्कायिकजीवराशय उत्पद्यंते । एषां राशीनां असंख्यातानि असंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वे उपपत्तिरुच्यते । घनलोकं शलाकाविरलनदेयरूपेण संस्थाप्य श ≡ वि ≡ दे ≡ विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गे कृते शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत् श ≡ अत्रोत्पन्नगुणराशेर्गुणकारशलाका एका । वर्गशलाकाराशिः पल्यासंख्यातैकभागमात्रः विरलनराश्यर्धशिच्छेदयुतदेयराशिवर्गशलाकामात्रत्वात् । अर्धच्छेदराशिः असंख्यातलोकमात्रः देयराश्यर्धच्छेदगुणितविरलनराशिमात्रत्वात् । पुनस्तमुत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव दत्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श ≡ २– अत्रोत्पन्नराशेर्गुणकारशलाके द्वे । वर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराश्युपत्पन्नराशयः त्रयोऽपि असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवंति । एवं तावत्कर्तव्यं यावल्लोकमात्रशलाकाराशिर्निष्ठाप्यते । तदुत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः लोकमात्र्यः ≡ अन्ये त्रयो राशयः असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवंति । पुनस्तदुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयं कृत्वा श ≡ a । वि ≡ a । दे ≡ a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्वा वर्गितसंवर्गे कृते द्वितीयशलाकाराशित एकं रूपमपनयेत् । श ≡ a अत्रोत्पन्नराशेर्गुण-

१ । तदर्धशलाकाराशि अर्धच्छेदशलाकाराशि तेजस्कायिकजीवराशिश्च उत्पद्यते इत्यादि क, घ, पुस्तकयो पाठः । २ राश्यर्धछेदार्धच्छेदमात्रत्वात् इत्यपि पाठः ।

कारशलाकाः रूपाधिकलोकमात्र्यः $\overset{\frown}{\equiv}$ अपरे त्रयो राशयः असंख्यातलोकमात्राः असंख्यातलोकमात्रा भवंति । तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते द्वितीयशलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् श ≡ ∂ -२ अस्योत्पन्नराशेर्गुणकारशलाकाः द्विरूपाधिकलोकमात्र्यः $\overset{\frown}{\equiv}$ शेषास्त्रयो राशयः असंख्यातलोकमात्रा असंख्यातलोकमात्रा भवंति। एवं तदुपरि गुणकारशलाकाः उत्कृष्टसंख्यातलोकमात्रा द्विरूपोना नीत्वा ≡१५ एतासु प्राक्तनद्विरूपाधिकलोकमात्रगुणकारशलाकाः निक्षिप्यंते । तदा ततः प्रभृति चत्वारोऽपि राशय आलापतः असंख्यातलोका असंख्यातलोका भवति । एवं गत्वा द्वितीयवारनिष्ठापितशलाकाराशिं निष्ठापयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं त्रिः प्रतिकं कृत्वा प्राग्वत् इमं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठापयेत् । पुनः तत्रोत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत्त्रिःप्रतिकं कृत्वा अतीतगुणकारशलाकाराशित्रयहीनोयं चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिर्निष्ठाप्यते । तदातेजस्कायिकजीवराशिरुत्पद्यते एतद्दृष्ट्वा--

'आउड्ढराशिवारं लोगे अण्णोण्णसगुणे तेऊ'

इत्युक्तमाचार्यैः । ततोऽसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तेजस्कायिकस्थितेर्वर्गशलाकाराशिः । का तत्स्थितिः? अन्यकायादागत्य तेषूत्पन्नस्य तेजस्कायिकत्वमत्यक्त्वा उत्कृष्टेन अवस्थानकालः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तदर्धच्छेदराशिः । ततः असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते तेजस्कायिकस्थितिप्रमाणं । ततोऽसंख्यातान्यसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदशलाकाराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्रं । ततःसंख्यातानिसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिःर्धच्छेदराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि । कानि तानि? ज्ञानप्रच्छादनान्यस्वभावेन कर्मणामवस्थितिकालात्मकस्थितिबंधनिबंधनानि । ततोसंख्यातान्यसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अनुभागबंधाध्य(ध्य)वसायस्थानानि । कानि तानि? ज्ञानावरणादिकर्मणां वर्गवर्गणास्पर्धकगुणहानिस्थानरूपावस्थिताविभागप्रतिच्छेदसमूहात्मकानुभागस्य बंधनिबंधनानि । ततोसंख्यातान्यसंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशेर्धच्छेदराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदशरीरोत्कृष्टसंख्या । कियती सा? स्कंधांडरावासपुलविदेहा । यतः पृथगसंख्यातलोकालापाः अपि असंख्यातलोकगुणितक्रमाः ततः एतावती ≡∂≡∂≡∂≡∂≡∂ ।

ततः असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातलोकमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथमवर्गमूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदकायस्थितिः । का सा? निगोदशरीराकारेण परिणतपुद्गलस्कंधानां तदाकारात्यजनेन अवस्थानकालः, न तु निगोदजीवानां उत्कृष्टावस्थानकालः । तस्य द्व्यर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमितत्वात् । ततः असंख्यातानि असंख्यातानि वर्गस्थानानि गत्वा गत्वा वर्गशलाकाराशिः अर्धच्छेदराशिः प्रथममूलं । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते योगस्य चतुःस्थानवृद्धिगतश्रेण्यसंख्येयभागमात्रेण उत्कृष्टस्य अविभागप्रतिच्छेदराशि

त्पद्यते । कः सः ? कर्मनोकर्मवर्गणानां सर्वात्मप्रदेशेषु प्रकृतिप्रदेशबंधयोर्हेतुः । ततोऽनंतानंतवर्गस्थानानि गत्वा केवलज्ञानस्य चतुर्थवर्गमूल-घनाघनः । स च तस्य प्रथमचतुर्थवर्गमूलगुणनलब्धमात्रः । अयमेव अस्याः धाराया अंतः । द्विरूपवर्गधारायां यत्स्थाने यो यो राशिर्दृश्यते अस्यां तत्स्थाने तत्सदृशाः नव नव राशिगुणनलब्धमात्राः संति । अस्याः स्थानविकल्पाः केवलज्ञानस्य चतूरूपोनवर्गशलाकामात्राः के व–४ । एवं चतस्र एव धारा उक्ताः । शेषसमादिदशधाराणामत्रानुपयोगित्वात् । तज्जिज्ञासव त्रिलोकसारे बृहद्धारापरिकर्माणि वा शिष्या जानंतु ।

यदेकद्व्यादिगणनया विना उपमयैव उच्यते तदुपमानं, तत्–पल्य सागरोपमं सूच्यंगुलं प्रतरांगुलं घनांगुलं जगच्छ्रेणिः लोकप्रतरो लोकश्च इत्यष्टधा । एषां स्वरूपं परिभाषाकथनपूर्वकं इदानीमुच्यते तद्यथा–यत् सुतीक्ष्णेनापि शस्त्रेण छेत्तुं भेत्तुं मोटयितुं च न शक्यते जलानलादिभि-र्नाशं नैति एकरसवर्णगंधं द्विस्पर्शं शब्दकारणं अशब्दं स्कंधांतरितं आदिमध्यावसानरहितं अप्रदेशं इंद्रियैरग्राह्यं अविभागि तद् द्रव्यं परमाणु कथ्यते । स च अंतरंगवहिरंगकारणाभ्यां वर्णरसगंधस्पर्शैः सर्वदा पूरणं गलनं च स्कंधवत् करोति इति पुद्गलः । तेषामनंतानंतानां स्कंधः अव-सन्नासन्नो नाम, ततः सन्नासन्न त्रुटरेणु त्रसरेणुः रथरेणु, उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिकर्मभूमिमानवबालाग्राणि लिक्षासर्षपयवांगुलानि चेति द्वादशापि अष्टाष्टगुणानि मंतव्यानि । अंगुलं तु उत्सेधांगुलं प्रमाणांगुलं आत्मांगुलमिति त्रिधा । तत्र प्रागुक्तपरिभाषानिष्पन्नमुत्सेधांगुलं । तेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवशरीराणि भावनादिचतुर्विधदेवनगरतन्निकेतनानि च वर्ण्यंते । तच्च पंचशतगुणं भरतक्षेत्रावसर्पिणीकालप्रथम-चक्रवर्त्यंगुलसमं प्रमाणांगुलं भवति । तेन द्वीपोदधिशैलवेदीनदीकुंडजगतीवर्षप्रमाणानि वर्ण्यंते । भरतैरावतमनुष्याणां स्वस्ववर्तमानकालां-गुलमात्मांगुलं भवति । तेन भृंगारकलशदर्पणधनुःपटहयुगशयनशकटहलमुशलशक्तितोमरसिंहासनबाणाक्षनालिचामरदुंदुभिपीठछत्रनरनिवास-नगरनगोद्यानादयो वर्ण्यंते । षडंगुलैः पादस्ततो वितस्तिः हस्तः किष्कुः दंडश्चेति चत्वारोऽपि द्विगुणा द्विगुणा भवंति । द्विसहस्रदंडैः क्रोशः चतुर्भिः क्रोशैर्योजनं । प्रमाणयोजनागाधव्यासो वृत्तो गर्तः, उत्तमभोगभूम्यविपुगलस्य एकादिसप्तदिनाभ्यंतरे गृहीतैरग्रव्यासायामैरोमा-ग्रैर्निरंतरमत्यंतनिचितो भूमिसमो भर्तव्यः । तद्रोमसंख्या साध्यते––

व्यासस्य वर्गो १ । १ दशभिर्गुणिते सति करणिरूपपरिधिर्भवति १ । १ । १० अस्य मूलमिदं $\frac{१९}{६}$ अस्मिन् व्यासतुरीयभागेन गुणिते क्षेत्रफलं भवति । $\frac{१९ । १}{६ । ४}$ अस्मिन् पुनः वेधेन गुणिते घनफलं भवति $\frac{१९}{२४}$ इदं पुनरेकयोजनस्य अष्टसहस्रदंडैः, एक दंडस्य षणव-त्यंगुलैः, एकप्रमाणांगुलस्य पंचशत्या व्यवहारांगुलैः, एकतदंगुलस्य अष्टभिर्यवैरेकयवस्य अष्टभिर्यूकाभिः, एकयूकाया अष्टभिर्लिक्षाभिः, एक-लिक्षाया अष्टभिः कर्मभूमिवालाग्रैः, एकतद्वालाग्रस्य अष्टभिर्जघन्यभोगभूमिवालाग्रैः, एकतद्वालाग्रस्य अष्टभिर्मध्यमभोगभूमिवालाग्रैः एकतद्वा-लाग्रस्य अष्टभिरुत्कृष्टभोगभूमिवालाग्रैश्च घनराशेर्गुणकारा घनात्मका भवंतीति घनीकृतैर्गुणयित्वा––

१९ | ८००० | ९६ | ५०० | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
२४ | ८००० | ९६ | ५०० | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |
८००० | ९६ | ५०० | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ | ८ |

गुणकारेषु राश्यर्धखंडविधानेन लघुकरणेन गुणितेषु यल्लब्धं तदिदमंकक्रमेण अष्टादशशून्यद्विनवैकद्व्येकपंचनवचतु सप्तसप्तसप्तैकत्रिशून्य-द्व्यष्टशून्यत्रिशून्य-त्रिषट्द्विपंचचतुस्त्र्येकचतुर्मात्रं व्यवहारपल्यसंख्या भवति–४१३,४५२६३०३,०८२०३१७,७७४९५१२,१९२००००,००००००००००००० चतुःशतत्रयोदशषट्वारकोटिपंचचत्वारिंशल्लक्षषड्विंशतिसहस्रत्रिशतत्रिपंचवारकोट्यष्टलक्षविंशतिसहस्रत्रिशतसप्तदशचतुर्वारकोटिसप्तसप्ततिलक्षैकान्नपंचाशत्सहस्रपंचशतद्वादशत्रिवारकोटयेकान्नविंशतिलक्षविंशतिसहस्रद्विवारकोटिमात्रमित्यर्थः। एकैकस्मिंस्तद्रोमाग्रे वर्षशते वर्षशतेऽपनीते यावान् कालः स सर्वो व्यवहारपल्यस्य कालो भवति। संदृष्टिः २०१। पुनरेकैकस्मिंस्तद्रोमाग्रे असंख्यातकोटिवर्षसमयैः समं प्रत्येकं खंडिते द्वितीयपल्यस्य रोमाग्रसंख्या भवति, तत्समयसंख्यापि तावती संदृष्टिः वि छे छे ३ इयमानीयते-विरलनराशौ देयराश्य-

|) २५ को २
१
३

र्धच्छेदमात्रैर्गुणिते लब्धस्योत्पन्नराश्यर्धच्छेदप्रमाणत्वात् अद्धापल्यस्य अर्धच्छेदराशौ तेनैव राशिना गुणिते सूच्यंगुलार्धच्छेदः छे छे। अयं च त्रिगुणितो घनांगुलस्यार्धच्छेदः छे छे ३। अनेन अद्धापल्यार्धच्छेदराश्यसंख्यातैकभागे गुणिते जगच्छ्रेण्यर्धच्छेद: वि छे छे ३। अयं च त्रिरूपोनो रज्जुच्छेदः वि छे छे ३। अस्मात् मेरुमस्तकपतितैकार्धच्छेदेन सह लक्षयोजनानां सप्तलक्षाष्टाषष्टिसहस्रांगुलानां च संख्यातैरर्धच्छेदैः अधिकसूच्यंगुलार्धच्छेदेषु अपनीतेषु शेषं समस्तद्वीपसागरसंख्या भवति। तदपनयनं तु यदि प्र छे छे ३ एतावन्मात्रापनयने एकं रूपं फ १ अपनीयते तदा इ छे छे एतावदपनयने कियदपनीयते इति त्रैराशिकेन लब्ध साधिकत्रिभागं $\frac{1}{3}$ गुणेऽपनयेत्। तत्संदृष्टिः–वि छे छे ३। एषा द्वीपसमुद्र-

|)
१
३

संख्या यतः सार्धद्वयोद्धारसागरोपममात्री ततः कारणात् पंचविंशतिकोटीकोट्युद्धारपल्यानि भवंति तावतां पल्यानां प्र प २५ को २, यद्ययं-

राशिः फ वि छे छे ३ तदा एकोद्धारपल्यस्य इ प १ कियान् राशिरिति त्रैराशिकेन प्रागुक्ता एकोद्धारपल्यस्य संदृष्टिः सिद्ध्यति
१
३

वि छे छे ३। पुनरस्यैकैकस्मिन् रोमखंडे असंख्यातवर्षसमयैःसमं पृथक् खंडिते यावंति रोमखंडानि तावती अद्धापल्यस्य रोमखंडसंख्या भवति।
१
२ २५ को २

तत्समयसंख्यापि तावत्येव । ते असंख्यातवर्षसमयाः कतीति चेत् उच्यते—एतावंति रोमखंडानि प्र वि छे छे ३ असंख्यातवर्षसमयैः खंडि-
१ २५ को २
३

तानि यत्रद्धापल्यमात्राणि खंडानि भवेयुः फ प १ तदा एकखंडे असंख्यातवर्षसमयैः खंडिते कति खंडानि भवेयुः ? इति त्रैराशिकेन लब्ध-
मात्रसमया भवंति इत्यर्थः वि छे छे ३। अद्धापल्यं हि निजार्धच्छेदराशेरुपरि असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नं इति ज्ञातव्यं एवं पल्यान्युक्तानि।
१ २५ को २
३

तत्राद्येन पल्येन रोमसंख्या द्वितीयेन द्वीपसमुद्रसंख्या तृतीयेन कर्मस्थित्यादिश्च वर्ण्यते । तैर्दशभिः कोटिकोटिभिः, एकैकं तत्तन्नाम सागरोपमं भवति । तस्योपपत्तिरुच्यते—लवणसमुद्रस्यांतःसूची ५ ल तथापि तथादिसूची १ ल। अनयोर्योगः ६ ल । अस्मिन् रुंद्रार्धेन १ ल गुणिते सति यल्लब्धं तदिदं ६ ल ल वर्गात्मकं कृत्वा ६ ल ल ६ ल ल दशभिःकरण्यात्मभिर्गुणिते सूक्ष्मफलवर्गो भवति ६ ल ल। ६ ल ल १० इमं एकयोजनव्यासवृत्तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलेन ६ ल ल। ६ ल ल। १०। भक्त्वा दशकरण्या दशकरणिमपवर्त्य हारस्य हारो गुणकांशराशे-
१ १ १०
४ ४

रिति चतुष्कद्वयेन स्वस्वोपरितनषट्कं गुणयित्वा २४ लल। २४ लल अस्य मूलं गृहीत्वा २४ ल ल अस्मिन् सहस्रवेधेन गुणिते पल्य-
गर्तानां संख्यात्मकं घनफलं भवति २४ ल ल १००० । अस्मिन् स्वस्वरोमखंडैर्गुणिते तद्गर्त्तानां रोमसंख्या भवति—

२४ ल ल । १ ० ० ० । ४१ = ३३ । पल्योममात्र जलोत्सेके प्र ६ पंचविंशतिसमया यांति फ २५ । तदा एतावद्रोममात्र इ २४ ल ल १०००४१ = ३३ । जलोत्सेके कति समया भवंति ? इति त्रैराशिकेन लब्धसमया एतावंतो यांति १०० ल ल १००० ४१ = ३३ एतावद्भिः समयैः प्र ४१ = ३३ यद्येक पल्यं भवति फ प १, तदा एतावद्भिः समयैः इ १०० ल ल १००३१ = ३३ कति पल्यानि भवन्तीति त्रैराशिकेन दशकोटीकोटिपल्यानि लभ्यते । प १० को २ । एवं सागरोपममुक्तं तत्संदृष्टिः–सा । अद्धापल्यस्य अर्धच्छेदराशिं विरलयित्वा प्रतिरूपमद्धापल्यमेव दत्त्वा वर्गित संवर्गे कृते सूच्यंगुलमुत्पद्यते २ । तस्य वर्गः प्रतरांगुलं ४ । घनांगुलं ६ । पुनः अद्धापल्यस्यार्धच्छेदराशेरसंख्येयभाग विरलयित्वा प्रतिरूपं घनांगुलं दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते जगच्छ्रेणिरुत्पद्यते –, तस्या वर्गो जगत्प्रतरं = घनो लोको भवति ≡ एवमष्टधोपमाप्रमाणान्युक्तानि ।

तेषामर्धच्छेदसंख्या वर्गशलाकासंख्या चोच्यते, तत्र तावदद्धापल्यस्य अर्धच्छेदसंख्या द्विरूपवर्गधारायां अद्धापल्यादधः असंख्यातवर्गस्थानान्यवतीर्य उत्पन्नराशिमात्रीय , छे । तद्वर्गशलाकासंख्या तु ततोऽप्यधोसंख्यातवर्गस्थानान्यवतीर्य उत्पन्नराशिमात्रीयं व । सागरोपमस्य सर्वधारादितत्तद्योग्यधारोत्पन्नस्यार्धच्छेदाः पल्यार्धच्छेदेषु गुणकारस्य दशकोटीकोटेरर्धच्छेदसंख्यातेनाधिकेषु लब्धमात्रा भवंति $\frac{9}{छे}$ तद्वर्गशलाकास्तु तस्यावर्गात्मकत्वात् न घटते । सूच्यंगुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य विरलनदेयक्रमेण उत्पन्नत्वात् अर्धच्छेदवर्गशलाका द्विरूपवर्गधारादित्रयं विना शेषतद्योग्यधारासु उत्पद्यंते । ते अर्धच्छेदाः विरलनराशौ अद्धापल्यार्धच्छेदे देयस्य तत्पल्यस्यार्धच्छेदैर्गुणिते लब्धमात्रा भवंति छे छे तद्वर्गशलाकास्तु सूच्यंगुलस्य द्विरूपवर्गधारायां पल्यस्योपरि स्वविरलनराश्यर्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि गत्वा उत्पत्तेर्द्विगुणपल्यवर्गशलाकामात्र्यः , अथवा सूच्यंगुलार्धच्छेदराशौ गुणकारस्यार्धच्छेदेषु गुण्यस्यार्धच्छेदैर्युतेषु यल्लब्धं तावन्मात्र्यो भवंति व २ । प्रतरांगुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य वर्गशलाकार्धच्छेदाः यथायोग्यधारासु उत्पद्यंते । तत्रार्धच्छेदाः ‘ वग्गादुवरिमवग्गो दुगुणादुगुणो ति ’ सूच्यंगुलार्धच्छेदेभ्यो द्विगुणाः । अथ वा गुण्यगुणकारयोः सूच्यंगुलयोरर्धच्छेदयुतिमात्रा भवंति छे छे २ । तद्वर्गशलाकास्तु रूवहियेति सूच्यंगुलानंतरवर्गराशित्वात् तद्वर्गशलाकाभ्यो रूपाधिकमात्र्यो भवंति व २ । घनांगुलस्य द्विरूपघनधारोत्पन्नस्य अर्धच्छेदाः अन्यत्रोत्पन्नाः ‘ तिगुणातिगुणा परट्ठाणे ति सूच्यंगुलार्धच्छेदेभ्यस्त्रिगुणाः । अथ वा गुण्यगुणकारसूच्यंगुलत्रयस्यार्धच्छेदानां

छे छे १
छे छे १
छे छे १

यावंती युतिस्तावन्मात्रा भवंति छे छे ३ । तद्वर्गशलाकास्तु परसमेति घनधारोत्पन्नघनांगुलस्य द्विरूपवर्गधारोत्पन्नसूच्यंगुलप्रणिधौ समुत्पन्नत्वात् सूच्यंगुलवर्गशलाकामात्र्यो भवंति । जगच्छ्रेणेः द्विरूपघनधारोत्पन्नत्वादर्धच्छेदवर्गशलाका अन्यत्रोत्पद्यंते । ते अर्धच्छेदाः ‘‘विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे लद्धच्छेदा होंति ।’’

इति पल्यार्धच्छेदासंख्येयभागे छे घनांगुलस्यार्धच्छेदैर्गुणिते लब्धमात्रा भवंति छे छे छे ३। तद्वर्गशलाकास्तु द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यभक्ता-
a a
द्धापल्यवर्गशलाकायुतघनांगुलवर्गशलाकामात्र्यः व अथवा-जगच्छ्रेणेर्देयराशिघनांगुलस्योपरि विरलनराश्यर्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि गत्वा उत्प-
१६ । २
व । २

न्नत्वादप्युक्तमात्र्यो भवंति । स च विरलनराशिः कियानिति चेत् उच्यते-अद्धापल्यार्धच्छेदराशेर्वर्गमूलानि द्विगुणपरीतासंख्यातजघन्यस्यार्धच्छे-
दमात्राण्यधोऽवतीर्य चरमवर्गमूलस्यार्धच्छेदाः द्विगुणजघन्यपरीतासंख्यातभक्तवर्गशलाकामात्राः 'तम्मित्तदुगे गुणे रासीति' तदर्ध-
च्छेदस्य व भाज्यमात्रेषु भागहारमात्रेषु च द्विकेषु पृथग्वर्गितेषु असंख्यातभक्तपल्यच्छेदमात्र छे तन्मूलमुत्पद्यते । तदेव
१६ । २ a
जगच्छ्रेणेर्विरलनराशिर्ज्ञातव्यः । लोकप्रतरस्य द्विरूपघनधारोत्पन्नस्यार्धच्छेदवर्गशलाकाः अन्यत्रोत्पद्यंते । ते अर्धच्छेदा जगच्छ्रेण्यर्धछे-
देभ्यो द्विगुणा भवंति छे छे छे ६ वर्गशलाकास्तु रूवहियेति जगच्छ्रेणिवर्गशलाकाभ्यो रूपाधिका भवंति व घनलोकस्य द्विरूपघना-
१६ । ३
व । २

घनधारोत्पन्नत्वादर्धच्छेदवर्गशलाका अन्यत्रोत्पद्यंते, तेऽर्धच्छेदाः 'तिगुणातिगुणा परट्ठाणेति' द्विरूपघनधारोत्पन्नजगच्छ्रेण्यर्धछेदे-
भ्यस्त्रिगुणाः, अथवा गुण्यगुणकारस्थितजगच्छ्रेणित्रयस्यार्धच्छेदेषु वि छे छे ३ मिलितेषु युतिमात्रा भवंति वि छे छे ९ तद्वर्ग
वि, छे छे ३
वि, छे छे ३
शलाकास्तु परसमेति जगच्छ्रेणिवर्गशलाकामात्र्यो भवंति व। अत्रोपयोगिगाथासूत्राणि-
१६, २
व २

छे व
मू १ व
२
मू २ व
२, २
मू ३ व
२,२, २
० ०
० ०
० ०
मू ७ व
१६
मू ७ व
१६, २

गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धछेदजुदा। लद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्सच्छेदणा णत्थि ॥ १ ॥

गुणकारार्धच्छेदाः गुण्यमानस्य अर्धच्छेदयुताः। लब्धस्यार्धच्छेदा अधिकस्य छेदनानि न सति ॥ १ ॥

भज्जस्सद्धच्छेदा हारद्धच्छेदणाहि परिहीणा । अद्धच्छेदसलागा लद्धस्स हवंति सव्वत्थ ॥ २ ॥
विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे । अद्धच्छेदा होंति दु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥ ३ ॥
विरलिदरासिच्छेदा दिण्णद्धच्छेदछेदसम्मिलिदा । वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स ॥ ४ ॥
दुगुणपरीत्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला । विंदंगुलवग्गसला सहिया सेढिस्स वग्गसला ॥ ५ ॥
विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमित्ताणि अहियरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स ॥ ६ ॥
विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमित्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ ७ ॥

एव परिभाषोक्ता । अथ पर्याप्तिप्ररूपणां प्रारभमाणो दृष्टांतपुरस्सरं ताभिः पूर्णापूर्णत्वं जीवानां दर्शयति—

म० प्र०— संभवं केवलज्ञानाद्यनंतगुणसंभवं ।
स्वात्मोत्थसंभवप्राप्त्यै संभजामि त्रिशुद्धितः ॥ १ ॥

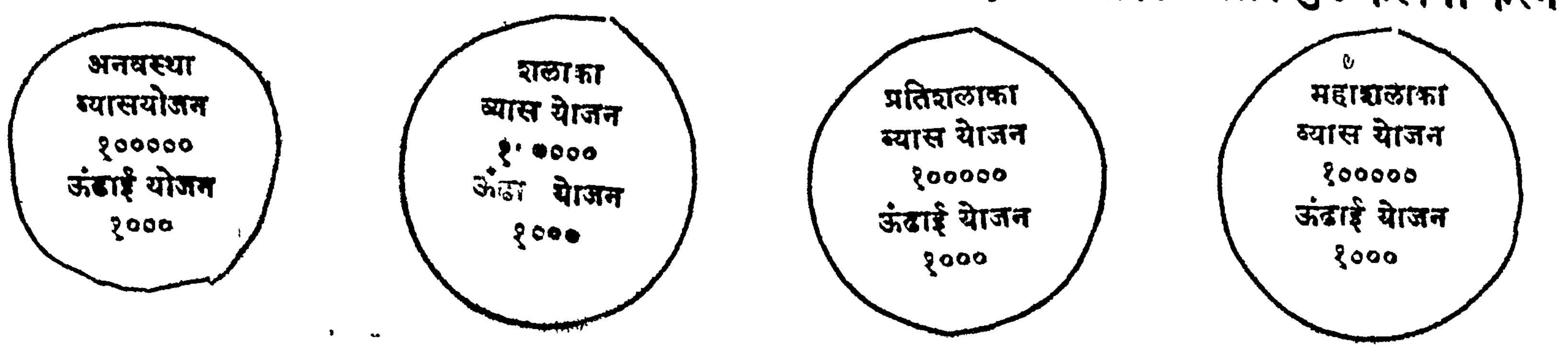
अथैकादशभिर्गाथाभिः पर्याप्तिप्ररूपणाधिकारं प्रतिपादयति—

स० चं०— संभव स्वामि नमौं सदा घातिकर्म विनसाय ।
पाय चतुष्टय जो भयो तीजो श्रीजिनराय ॥ ३ ॥

अब इहां जहां तहां अलौकिक गणितका प्रयोजन पाइए तातैं अलौकिक गणित कहिए है संदृष्टि इनिकी आगै संदृष्टि अधिकारविषै जानना । मान दोय प्रकार है एक लौकिक एक अलौकिक । तहां लौकिक मान छह प्रकार मान १ उन्मान २ अवमान ३ गणितमान ४ प्रतिमान ५ तत्प्रतिमान ६ एवं छह प्रकार जानना । तहां पाइ माणी इत्यादिक मान जानना । ताखडीका तौल उन्मान जानना । चलू इत्यादिकका प्र-

भाज्यस्यार्धच्छेदा हारार्धच्छेदनै परिहीणा । अर्धच्छेदशलाका लब्धस्य भवति सर्वत्र ॥ २ ॥
विरल्यमानराशिं देयस्यार्धच्छेदैः संगुणिते । अर्धच्छेदा भवति खलु सर्वत्रोत्पन्नराशेः ॥ ३ ॥
विरलितराशिच्छेदा देयार्धच्छेदच्छेदसमिलिताः । वर्गशलाकाप्रमाणं भवति समुत्पन्नराशेः ॥ ४ ॥
द्विगुणपरीतासंख्यातेन अपहृतोद्धारपल्यवर्गशलाकाः । वृंदांगुलवर्गशलाकासहिता श्रेण्या वर्गशलाकाः ॥ ५ ॥
विरलितराशितः पुनः यावन्मात्राणि अधिकरूपाणि । तेषामन्योन्य हतिः गुणकारः लब्धराशेः ॥ ६ ॥
विरलितराशितः पुनः यावन्मात्राणि हीनरूपाणि । तेषामन्योन्यहतिः हार उत्पन्नराशेः ॥ ७ ॥

माण अवमान जानना एक दोयकौं आदि देकरि गणती गणितमान जानना। चरिम तोला मासा इत्यादिक प्रतिमान जानना। घोडाका मोल इत्यादिक तत्प्रतिमान जानना। बहुरि अलौकिक मानके च्यारि भेद हैं-द्रव्यमान, क्षेत्रमान, काल मान, भावमान। तहां द्रव्य मान विषैं जघन्य एक परमाणू अर उत्कृष्ट सब पदार्थनिका परिमाण, क्षेत्रमानविषैं जघन्य एक प्रदेश उत्कृष्ट सब आकाश, काल मानविषैं जघन्य एक समय अर उत्कृष्ट तीन कालका समय समूह, भावमानविषैं जघन्य सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तकका लब्धि अक्षर ज्ञान अर उत्कृष्ट केवलज्ञान। बहुरि द्रव्यमानके दोय भेद एक संख्यामान एक उपमामान। तहां संख्यामानके तीन भेद संख्यात १ असंख्यात २ अनंत ३। तहां संख्यात जघन्य मध्यम उत्कृष्टतैं तीनप्रकार है बहुरि असंख्यात है सो परीतासंख्यात युक्तासंख्यात असंख्याताासंख्यात इनि तीनोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्टभेदकरि नव प्रकार है। बहुरि अनंत है सो परीतानंत युक्तानंत अनंतानंत इनि तीनोंके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि नव प्रकार है। ऐसैं संख्यामानके इकईस भेद भए। तिनिविषैं जघन्य संख्यात दोय संख्यामात्र है। इहां एकका गुणकार भागहार कीएं किछू वृद्धि हानि होइ नाही है तातैं दोयके ही भेदका ग्राहकपना है, एककैं नाही है तातैं दोयहीकौं जघन्य संख्यात कहिये। बहुरि तीनि आदिकनिके मध्यम संख्यातका भेदपना है तातैं दोय ही का जघन्य संख्यात कहिये। बहुरि तीनिकौं आदि देकरि एक घाटि उत्कृष्ट संख्यात पर्यंत मध्यम संख्यात जानना। बहुरि एक घाटि जघन्य परीतासंख्यात प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात जानना। सो जघन्य परीतासंख्यात कितना है? ताके जानने निमित्त उपाय कहैं हैं—अनवस्था १ शलाका २ प्रतिशलाका ३ महाशलाका ४ ए नाम धारक च्यारि कुंड कल्पना करने।



तिनिविषैं अनवस्थाकुंडकौं सिघाउ गोलसरसौंकरि भरना तहां केते सरसौंनिकरि भरैं सो कहिए है--एक नव सात नव एक दोय विंदी नव दोय नव नव नव छह आठ इतने तो अंक अनुक्रमतैं लिखने तिनके आगैं इकतीस विंदी लिखनी इतने प्रमाण सरिसौं सो तौ उस कुंडके मांही मावै १९७९१२०९२९९९६८००००००००००००००००००००००००००००००००। बहुरि उस कुंडके ऊपरि आकाशविषैं राशि करिए सो सिघाउ भरना कहिए सो ऊपरि कितने सरिसौंका ढेर होइ सो कहिए है एक सात नव नव दोय विंदी विंदी आठ च्यारि पांच च्यारि पांच एक छह इतनेतौ अनुक्रमतैं लिखने अर इनिके आगैं सोलहवार छत्तीस छत्तीस लिखने १७९९२००८४५४५१६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ ३६ इतनी सरस्यों बहुरि च्यारि सरिसौंका $\frac{4}{11}$ ग्यारह्वां भाग इतनी सरिसौंका ऊपरि ढेर होइ इनिका फलावना गोल घनरूप क्षेत्रफल करण सूत्रनिकरि वा अन्य राशिके करण सूत्रनिकरि होइ है सो त्रिलोकसारादिकसौं जानना इनि दोऊ राशिकौं जोड दीजिए तब एकहजार नवसै सत्ताणवै कोडाकोडि कोडाकोडि कोडाकोडि ग्यारा लाख गुणतीस हजार तीनसै चौरासी कोडाकोडि कोडाकोडिकोडि इक्यावन लाख इकतीस हजार छसै छत्तीस कोडाकोडि कोडाकोडि छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीनसै त्रेसठि कोडाकोडि कोडि त्रेसठि लाख तरेसठि हजार छसै छत्तीस कोडाकोडि छत्तीस लाख छत्तीस हजार तीनसै तरेसठि कोडि तरेसठि लाख तरेसठि हजार छसै छत्तीस सरिस्यौं अर च्यारि सरिस्यौंका ग्यारह्वां भाग १९९७,११२९३८४,५१३१६३६, ३६३६३६३, ६३६३६३६, ३६३६३६३,६३६३६३६। $\frac{4}{11}$ इतनी सरिस्योंकरि अनवस्था कुंड सिघाऊ भर्या। सो भरिकरि अन्य एक सरिस्योंकौं शालाकाकुंडमें नाखि तिस अनवस्थाकुंडकी सर्व सरिस्योंनिकौं मनुष्य है सो बुद्धिकरि अथवा देव है सो हस्तादिकरि ग्रहणकरि जंबूद्वीपादिक द्वीप समुद्रनिविषैं अनुक्रमतैं एक द्वीपविषैं एक समुद्रविषैं गेरता गया वे सरिसौं जहां द्वीपविषैं वा समुद्रविषैं पूर्ण होंइ तहां तिस द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण चौडा अर औंडा पूर्वोक्त हजार ही योजन ऐसा दूसरा अनवस्था कुंड तहां ही करना। सूची कहा कहिए ? विवक्षित-

के सन्मुख अंतके दोऊ तटनिके वीचि जेता चौडाईका परिमाण होइ सोई सूची जाननी । जैसैं लवण समुद्रकी सूची पांच लाख जोजन है । जिस द्वीपकी वा समुद्रकी सूची कहिए तिसतैं पहिले द्वीप वा समुद्र ते वाकी सूचीके मध्य आय गये । ऐसा वहां कीया हूवा अनवस्था कुंडकौं सरसोंनिकरि सिघाऊ भरना । भरिकरि अन्य एक सरिसों उसही शलाका कुंडविषैं गेरणी । अर इस दूसरे अनवस्था कुंडकी सरिसोंनिकौं लेइ तहांतैं आगैं एक द्वीपविषै एक समुद्रविषै गेरते जाइए तेऊ जहां द्वीप वा समुद्रविषै पूर्ण होंइ तिस सहित पूर्वके द्वीप समुद्र तिनिका व्यासरूप जो सूची तींहि प्रमाण चौडा अर ऊंडा पूर्वोक्त हजार जोजन ऐसा तीसरा अनवस्था कुंड सिघाऊ सरिसोंनिकरि भरना । भरिकरि अन्य एक सरिसौं उसही शलाका कुंडमें गेरि इस तीसरे अनवस्था कुंडकी सरिसौं लेइ तहांतै आगै एक द्वीपविषै एक समुद्रविषै गेरणीं । वह जहां पूर्ण होइ तहां तिसकी सूची प्रमाण चौथा अनवस्था कुंड करना ताकौं सरिसोंकरि सिघाऊ भरना । भरिकरि अन्य एक सरिसौं शलाका कुंडविषै गेरिए इनि सरिसोंको तहांतैं आगै एक द्वीपविषै एक समुद्रविषै गेरणी ऐसैं ही व्यासकरि बंधता बंधता अनवस्था कुंडकरि एक एक सरिसौं शलाका कुंडविषै गेरतैं जहां शलाका कुंड भरि जाइ तब अन्य एक सरिसौं प्रतिशलाका कुंडविषै गेरिए ऐसैं एक नव आदि अंक प्रमाण जितनी सरिसौं पहिला अनवस्था कुंडविषै माई थी तितने प्रमाण अनवस्था कुंड भए, शलाका कुंड एकवार सिघाऊ भर्‍या गया । बहुरि इस शलाका कुंडकौं रीता कीया अर पिछला अनवस्था कुंडकी सरिसौं तहांतैं आगै एक द्वीपविषै एक समुद्रविषै गेरता जहां पूर्णभई तहां फेरि उसकी सूची प्रमाण चौडा अनवस्था कुंडकरि एक सरिसौं जो रीताकीया था शलाका कुंड तिसविषै गेरी ऐसैं ही पूर्ववत् व्यासकरि बंधता बंधता तितना ही अनवस्था कुंड कीजिए तब दूसरीवार शलाका कुंड पूर्ण होइ तब प्रतिशलाका कुंडविषै एक सरिसौं और गेरणी । पीछै फेरि शलाका कुंड रीताकरि तैसैं ही भरणा जब भरैं तब एक सरिसौ प्रतिशलाका कुंडविषै और गेरणी ऐसैं ही जब एक नव आदिक प्रमाणकौं नवादिक अंकनितैं गुणे जो परिमाण होइ तितने अनवस्था कुंड जब होंइ तब प्रतिशलाकाकुंड संपूर्ण भरे तब ही एक सरिसौ महा

शलाका कुंडविषै गेरणी बहुरि वे शलाका कुंड वा प्रतिशलाका कुंड दोऊ रीते करणे। बहुरि पूर्वोक्त रीतिकरि एक एक अनवस्था कुंडकरि एक एक सरिसो शलाका कुंडविषै गेरणी जब शलाका कुंड भरे तब एक सरिसो प्रतिशलाका कुंडविषै गेरणी ऐसें करते करते प्रतिशलाका कुंड फेरि संपूर्ण भरै तब दूसरी सरिसौं महा शलाका कुंडविषै फेरि गेरणी। बहुरि वैसें ही शलाका प्रतिशलाका कुंड रीताकरि उसरीतिसौं प्रतिशलाका कुंड भरे तब तीसरी सरिसो महा शलाका कुंडविषै गेरणी। ऐसें करते करते जब येक नवनै आदि देकरि अंकनिका घन कीयें जो परिमाण होइ तितने अनवस्था कुंड जब होंइ तब महा शलाका कुंड भी संपूर्ण भरे तब प्रतिशलाका शलाका अनवस्था कुंड भी भरै इहां जे एक नवनै आदि देकरि अंकनिका घन प्रमाण अनवस्था कुंड कहे ते सर्व ऊंडे तौ हजार योजन ही जानने। बहुरि इनिका व्यास अपना द्वीप वा समुद्रकी सूची प्रमाण बंधता बंधता जानना। सो लक्ष योजनका जेथवा द्वीप समुद्र होइ तितनीवार दूणा दूणा कीयें जिस द्वीप वा समुद्रका व्यास आवै है बहुरि व्यासकौं चौगुणाकरि तामैं तीन लाख योजन घटायें सूचीका प्रमाण आवै है। तातैं तहां प्रथम अनवस्था कुंडका व्यासका प्रमाण लाख योजन है बहुरि पहला कुंडमें जितनी सरिसो माई थी तितनीहीवार लक्ष योजनका दूणा दूणा कीयें जहां द्वीप वा समुद्रविषै वे सरिसौ पूर्ण भई थी तिस द्वीप वा समुद्रके व्यासका परिमाण आवै है। बहुरि व्यासका परिमाणकौं चौगुणा करि तीहिमें तीन लाख योजन घटाइए तब तिसही द्वीप वा समुद्रका सूची परिमाण आवै जो सूची परिमाण आवै सो ही दूसरा कुंडका व्यास परिमाण जानना बहुरि पहिला वा दूसरा कुंडविषैं जितनी सरिसौं माई तितनीवार लक्ष योजनकौं दूणा दूणाकरि जो परिमाण आवै ताकौं चौगुणाकरि तीन लाख योजन घटाइए तब तीसरा अनवस्था कुंडका व्यास परिमाण आवै है। बहुरि पहिला वा दूसरा वा तीसरा अनवस्था कुंडविषै जेती सरिसों माई होइ तेतीवार लक्ष योजनकौं दूणा दूणाकरि जो परिमाण आवै ताकौं चौगुणाकरि तीन लाख योजन घटाएं चौथे अनवस्था कुंडका व्यास परिमाण आवै ऐसें बधता बधता व्यास परिमाण अंतका अनवस्था कुंड पर्यंत जानना तहां जो अंतका अनवस्था

कुंड भया तीहि विषैं जेती सरिसोंका परिमाण होइ तितना जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण जानना। इहाँ शलाका कुंडविषै एक सरिसों गेरैं जो एक अनवस्था कुंड होइ तो शलाका कुंड विषैं एक नव आदि अंक प्रमाण सरिसों गेरैं केते अनवस्था कुंड होंइ? ऐसैं त्रैराशिक करिये तब प्रमाण राशि एक फल राशि एक इच्छा राशि एक नवादि अंक प्रमाण। तहां फलराशिकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीए लब्धराशि एक नवादि अंक प्रमाण हो है। बहुरि प्रतिशलाका कुंडविषै एक सरिसौं गेरैं एक नवादि अंक प्रमाण अनवस्था कुंड होइ तौ प्रतिशलाका कुंडविषैं एक नवादि अंक प्रमाण सरिसों गेरै केते होंइ? ऐसैं त्रैराशिक कीए प्रमाण १ फल १९ = इच्छा १९ = लब्धराशि एक नवादि अंकनिका वर्ग प्रमाण हो है। बहुरि महाशलाका कुंडविषैं एक सरिसों गेरैं अनवस्था कुंड एक नवादि अंकनिका वर्ग प्रमाण होइ तो महा शलाका कुंडविषैं एक नवादि अंक प्रमाण सरिसौं गेरैं केते अनवस्था कुंड होंइ? ऐसैं त्रैराशिक कीए प्रमाण १ फल १९ = वर्ग इच्छा १९ = लब्धराशि एक नवादि अंकानिका घन प्रमाण हो है सो इतना अनवस्था कुंड होइ हैं ऐसा अनवस्था कुंडनिका प्रमाण जानना। बहुरि जघन्य परीतासंख्यातके ऊपरि एक एक बंधता क्रमकरि एक घाटि उत्कृष्ट परीतासंख्यात पर्यंत मध्य परीतासंख्यातके भेद जानने। बहुरि एक घाटि जघन्य युक्तासंख्यात परिमाण उत्कृष्ट परीतासंख्यात जानना। अब जघन्य युक्तासंख्यातका परिमाण कहिए है—जघन्य परीतासंख्यातका विरलन कीजिए विरलन कहा? जेता वाका परिमाण होइ तितना ही एक एक करि जुदा २ स्थापन कीजिये। बहुरि एक एककी जायगा एक एक जघन्य परीतासंख्यात माडिए पीछे सबनिकौं परस्पर गुणिए पाहिला जघन्य परीतासंख्यातकौं दूसरा जघन्य परीतासंख्यातकरि गुणिए जो परिमाण आवै ताहि तीसरा जघन्य परीतासंख्यातकरि गुणिये बहुरि जो परिमाण आवै तीनैं चौथा करि गुणिए ऐसैं अंतताई परस्पर गुणें जो परिमाण आवै सो परिमाण जघन्य युक्तासंख्यातका जानना। याहीकौं अंकसंदृष्टिकरि दिखाइए है--

जघन्य परीतासंख्यातका परिमाण च्यारि ४ याका विरलन कीया १,१,१,१ बहुरि एक एकके स्थानक सोही

दीया $\frac{4}{1}\frac{4}{1}\frac{4}{1}\frac{4}{1}$ परस्पर गुणन कीया तब दोयसै छप्पन भया। ऐसैं ही जानना। सो इस जघन्य युक्तासंख्यातका नाम आवली है जातैं एक आवली समय जघन्य युक्तासंख्यात परिमाण है। बहुरि याके ऊपरि एक एक बंधता एक घाटि उत्कृष्ट युक्तासंख्यात पर्यंत मध्ययुक्तासंख्यातके भेद जानने। बहुरि एक घाटि जघन्य असंख्यातासंख्यात परिमाण उत्कृष्ट युक्तासंख्यात जानना। अब जघन्य असंख्यातासंख्यात कहिए है--जघन्य युक्तासंख्यातकों जघन्य युक्तासंख्यातकरि एकवार परस्पर गुणैं जो परिमाण आवै सो जघन्य असंख्यातासंख्यात जानना। याके ऊपरि एक एक बंधता एक घाटि उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातपर्यंत मध्यम असंख्यातासंख्यातके भेद जानने। एक घाटि जघन्य परीतानंतप्रमाण उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात जानना। अब जघन्य परीतानंत कहिए है--जघन्य असंख्यातासंख्यात परिमाण तीनि राशि करना एक शलाकाराशि एक विरलन राशि एक देय राशि तहां विरलन राशिका तो विरलन करना वखेरिकरि जुदा जुदा एक एकरूप करना अर एक एकके ऊपरि एक एक देय राशि धरना। भावार्थ--यहु जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य असंख्यातासंख्यात जुदे जुदे माडने बहुरि तिनिकों परस्पर गुणिए ऐसैं करि उस शलाकाराशिमेंस्यों एक घटाइ देना बहुरि ऐसैं कीएं जो परिमाण आया तितने परिमाण दोय राशि करना एक विरलन राशि एक देय राशि तहां विरलन राशिका विरलन करि एक एक ऊपरि एक एक देय राशिकों स्थापन करि परस्पर गुणिए ऐसैं करि उस शलाका राशिमेंसूं एक और घटाइ देना बहुरि ऐसैं कीएं जो परिमाण आया तितने प्रमाण विरलन देय स्थापि विरलन राशिका विरलनकरि एक २ प्रति देय राशिकों देइ परस्पर गुणिये तब शलाकाराशिसूं एक और काढिलेना ऐसैं करते करते जब यह पहिलीवार कीया शलाका राशि सर्व संपूर्ण होइ तब तहां जो किछू परिमाण हुवा सो यहु महाराशि असंख्यातासंख्यातके मध्य भेद है सो तितने तितने परिमाण तीनि राशि बहुरि करना। एक शलाकाराशि एक विरलन राशि एक देयराशि। तहां विरलन राशिका विरलनकरि एक एकके स्थानके देइ राशिका स्थापनकरि परस्पर गुणीये तब शलाका राशिमेंसू एक काढि लेना बहुरि जो परिमाण आया ताका विरलन-

करि एक १ प्रति तिसही परिमाणका स्थापनकरि परस्पर गुणिये तब एक और शलाका राशिमेसूं काढि लेना। ऐसैं करतैं करतें जब दूसरी बार भी किया हुवा शलाका राशि संपूर्ण होइ तब ऐसैं करता जो परिमाण आया सो मध्यम असंख्यातासंख्यातका भेदरूप भया। तिस परिमाण तीनि राशि बहुरि स्थापन करना शलाका १ विरलन २ देय ३ तहां विरलन राशिकौं बखेरि एक एक स्थानकविषै देय राशिकौं जुदी जुदी स्थापनकरि परस्पर गुणिये तब तीसरी शलाकाराशिमेंसौं एक काढि लेना। बहुरि ऐसैं करतैं जो परिमाण आया था तिस परिमाण राशिका विरलनकरि एक एक स्थानकविषैं तिसपरिमाण राशिका स्थापनकरि परस्पर गुणिये तब शलाकाराशिमेंस्यो एक और काढि लेना ऐसैं करतैं करतैं जब तीसरीबार भी शलाकाराशि संपूर्ण भया तब शलाकात्रय निष्ठापन हूवा कहिये। आगैं भी जहां शलाकात्रय निष्ठापन कहियेगा तहां ऐसा ही विधान जानना। विशेष इतना जो शलाका विरलन देयका परिमाण उहां जैसा होइ तैसा जानना। अब ऐसैं करते जो मध्यम असंख्यातासंख्यातका भेदरूप राशि उपज्या ताहि विषैं ये छह राशि मिलावना। लोक प्रमाण धर्म द्रव्यके प्रदेश १ लोक प्रमाण अधर्म द्रव्यके प्रदेश २ लोक प्रमाण एक जीवके प्रदेश ३ लोक प्रमाण लोकाकाशके प्रदेश ४ तातैं असंख्यातगुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती कायिक जीवनिका परिमाण ५ तातैं असंख्यात लोकगुणा तौ भी सामान्यपनैं असंख्यातलोक प्रमाण सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवनिका परिमाण ६ ये छहोराशि पूर्वोक्त प्रमाण विषै जोडने। जोडैं जो परिमाण होइ तीहि परिमाण शलाका विरलन देय राशि करनी। पीछैं अनुक्रमतैं पूर्वोक्त प्रकारकरि शलाकात्रय निष्ठापन करना ऐसैं करतैं जो कोई महाराशि मध्य असंख्यातासंख्यातका भेदरूप भया तीहिं विषै च्यारि राशि और मिलावने। वीस कोडाकोड़ी सागर प्रमाण उत्सर्पिणी अवसर्पिणी दोय कालरूप कल्पकालके संख्यात पल्यमात्र समय, बहुरि असंख्यात लोकमात्र स्थिति बंधकौं कारणभूत जे परिणाम तिनिके स्थान, बहुरि इनितैं असंख्यात लोक गुणें तो भी असंख्यात लोकमात्र अनुभाग बंधकौं कारण भूत जे परिणाम तिनिके स्थान, बहुरि इनितैं असंख्यात लोक गुणै तो भी असंख्यात लोकमात्र मन वचन काय

योगनिके अविभाग प्रतिच्छेद, ऐसैं ये च्यारि राशि पूर्वोक्त परिमाण विषैं मिलावने मिलायें जो परिमाण होइ तींहि महाराशि प्रमाण शलाका विरलन देय राशिकरि अनुक्रमतैं पूर्वोक्त प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करना। ऐसैं करतैं जो परिमाण होइ सो जघन्य परीतानंत है। वहुरि याके ऊपरि येक २ वंधता येक घाटि उत्कृष्ट परीतानंत पर्यंत मध्यम परीतानंत जानना वहुरि येक घाटि जघन्य युक्तानंत परिमाण उत्कृष्ट परीतानंत जानना अव जघन्य युक्तानंत कहिये है-जघन्य परीतानंतका विरलनकरि येक येक वखेरि येक येक स्थान विषै येक येक जघन्य परीतानंतका स्थापनकरि परस्परगुणें जो परिमाण आवै सो जघन्य युक्तानंत जानना। सो यहु अभव्यराशि समान है। अभव्य जीव राशी जघन्य युक्तानंत परिमाण है। वहुरि याके ऊपरि येक २ वंधता येक घाटि उत्कृष्ट युक्तानंतपर्यंत मध्य युक्तानंतके भेद जानने। वहुरि एक घाटि जघन्य अनंतानंत परिमाण उत्कृष्ट युक्तानंत जानना। अव जघन्य अनंतानंत कहिये है- जघन्य युक्तानंतकौं जघन्य युक्तानंतकरि येकही वार गुणैं जघन्य अनंतानंत होइ है। वहुरि याके ऊपरि येक येक वंधता येक घाटि केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद प्रमाण उत्कृष्ट अनंतानंत पर्यंत मध्य अनंतानंतके भेद जानने सो याके भेदनिकौं जानता संता ऐसे विधान करै। जघन्य अनंतानंत परिमाण शलाका विरलन देय राशिकरि अनुक्रमतैं शलाकात्रय निष्ठापन पूर्वोक्तप्रकारकरि करना। ऐसैं करतैं जो मध्य अनंतानंत भेदरूप परिमाण होइ तींहि विषैं ए छह राशि और मिलावना। जीवराशिके अनंतवे भाग सिद्धराशि, वहुरि तातैं अनंत गुणा ऐसा पृथ्वी अप् तेज वायु प्रत्येक वनस्पती त्रसराशि रहित संसारी जीवराशिमात्र निगोदराशि, वहुरि प्रत्येक वनस्पति सहित निगोद राशि प्रमाण वनस्पती राशि वहुरि जीवराशितैं अनंतगुणा पुद्गल राशि, वहुरि यातैं अनंतानंत गुणा व्यवहारकालके समयनिका राशि, वहुरि यातैं अनंतानंत गुणा अलोकाकाशके प्रदेशनिका राशि ऐसैं छहौंराशि परिमाण पूर्व परिमाणविषैं मिलावने। वहुरि मिलाएं जो परिमाण होइ तींहि प्रमाण शलाका विरलन देयकरि क्रमतैं पूर्ववत् शलाका त्रय निष्ठापन कीयें जो कोई मध्य अनंतानंतका भेदरूप पारमाण आवै तींहिं विषैं धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्यके अगुरुलघु गुणका अवि-

भाग प्रतिच्छेदनिका परिमाण अनंतानंत है सो जोडना। यौं करतैं जो महापरिमाण होइ तींहि प्रमाण शलाकों विरलन देयकरि क्रमतैं पूर्वोक्त विधिकरि शलाकात्रय निष्ठापन कीयें जो कोई मध्य अनंतानंतका भेदरूप महापरिमाण होइ तिस परिमाणकौं केवल ज्ञान शक्तिका अविभाग प्रतिच्छेदनिका समूहरूप परिमाणविषैं घटाइ पीछे ज्यूंका त्यूं मिलाइये तब केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाणस्वरूप उत्कृष्ट अनंतानत होइ है।

इहां प्रश्न-जो पूर्वोक्त परिमाणकौं पहिलै केवलज्ञानमेंसौं काढि पीछे फेरि मिलाया सो कौंन कारण? ताका समाधान--केवलज्ञानका परिमाण अैसा नाही जो पूर्वोक्त परिमाणके गुणनादि क्रमकरि जान्या जाय। अर उस परिमाणकौं केवलज्ञानमें मिलाइये तौ केवलज्ञानतैं अधिक प्रमाण होइ सो है नाही। बहुरि किछू न कहिए तौ गणितविषैं संबंध टूटै तातैं पूर्वोक्त परिमाणकौं पहलैं केवलज्ञानमेंसौं घटाइ पीछै मिलाइ केवलज्ञानमात्र उत्कृष्ट अनंतानंत कह्या है। अैसैं ये इकईस भेद संख्यामानके कहे।

अब संख्याके विशेषरूप जे चौदह धारा तिनिका कथन कहिये है-सर्वधारा १ समधारा २ विषमधारा ३ कृतिधारा ४ अकृति धारा ५ घनधारा ६ अघन धारा ७ कृति मात्रिक धारा ८ अकृति मात्रिकधारा ९ घनमातृक धारा१० अघनमातृकधारा ११ द्विरूप वर्गधारा १२ द्विरूपघनधारा १३ द्विरूपघनाघनधारा १४ अैसैं ये चौदह धारा जाननी। तहां कहे जे सर्व संख्यातादि भेद ते येक आदितैं होंहि अैसे जे सर्व संख्यात विशेषरूप सो सर्वधारा है अवशेष तेरह धारा याहीविषै उत्पन्न जाननी। या धाराका प्रथम स्थान येक प्रमाण दूसरा स्थान दोय प्रमाण तीसरा स्थान तीन प्रमाण अैसै येक येक बंधता केवलज्ञान पर्यंत जानने। केवलज्ञान शब्दकरि उत्कृष्ट अनंतानंत जानने। इस धाराविषै सर्व ही संख्याके विशेष आये तातै याके सर्वस्थान केवलज्ञान परिमाण जानने। बहुरि जिसविषै समरूप संख्याके विशेष पाइये सो समधारा है। याका आदि स्थान दोय दूसरा स्थान च्यारि तीसरा स्थान छह अैसैं दोय दोय बंधता केवलज्ञान पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान केवलज्ञानके आधा परिमाण हैं। सर्वधाराविषै सर्वसंख्यातके विशेष थे तिनिमें आधे तौ समरूप हैं आधे विषमरूप हैं तातैं याके स्थान केवलज्ञानका आधे प्र-

माण कहे। बहुरि जिसविषै विषमरूप संख्या विशेष पाइये सो विषमधारा है याका आदि स्थान येक दूसरा स्थान तीन ३ तीसरा स्थान पांच ५ अैसैं दोय दोय बंधता येक घाटि केवलज्ञान पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान आधा केवलज्ञान प्रमाण हैं। बहुरि जिसविषै वर्गरूप संख्याका विशेष पाइये सो कृतिधारा है। याका प्रथमस्थान येक जातैं येकका वर्ग येक ही है। बहुरि दूसरा स्थान च्यारि जातै दोयका वर्ग च्यारि हो है। बहुरि तीसरा स्थान नव जातैं तीनिका वर्ग नव है। बहुरि चौथा स्थान सोलह जातैं च्यारिका वर्ग सोलह है। अैसैं ही पंचादिकके वर्ग पचीसतैं आदि देकरि याके स्थान केवलज्ञान पर्यंत जानने याके सर्वस्थान केवलज्ञानका वर्गमूल परिमाण जानने। जिस परिमाणका वर्ग कीयें केवलज्ञानका परिमाण होइ इतने याके स्थान है। बहुरि जिसविषै संख्या विशेष न पाइये सो अकृति धारा है। सर्वधाराके स्थानकनिमैंसौ कृतिधाराके स्थान घटायें अवशेष सर्वस्थान इस धाराके जानने। याका पहिला स्थानक दोय दूसरा तीन तीसरा पांच चौथा छह पांचवां सात छठा आठ इत्यादि येक घाटि केवलज्ञान पर्यंत जानने। याके सर्वस्थान केवलज्ञानका वर्गमूलकरि हीन केवलज्ञान परिमाण जानने। बहुरि जिसविषै घनरूप संख्या विशेष पाइये सो घनमूल धारा है। याका पहिला स्थान येक जातैं येकका घन येक ही है। बहुरि दूसरा स्थान आठ जातै दोयका घन आठ हो है। बहुरि तीसरा स्थान सत्ताईस जातैं तीनिका घन सत्ताईस हो है। चौथा स्थान चौसठि जातैं च्यारिका घन चौसठि हो है। अैसैं पंचादिकका घन सवासौनैं आदि दैकरि येक स्थान केवलज्ञानके आसन्न घनपर्यंत जानने। केवलज्ञानका आसन्न घन कहा कहिये? सो अंक संदृष्टिकरि दिखाइये है।

केवल ज्ञानका परिमाण पैंसठि हजार पांचसै छत्तीस ६५५३६ याका आधा कीजिए तव घनधाराका स्थान होइ ३२७६८ याका घनमूल बत्तीस ३२। बहुरि याके ऊपरि तेतीसनैं आदि देकरि चालीस पर्यंत घनमूलके स्थान हैं जातैं चालीसका घनकीएं चौसठि हजार होइ सो आसन्न घन जानना। जातैं इकतालीसका घन कीजिए तो अडसठि हजार नवसै इकवीस होइ सो केवल ज्ञानके परिमाणसौं बंधता होइ सो संभवै नाही

तातैं केवलज्ञानके नीचैं जो परिमाण घनरूप होइ ताकौं केवलज्ञानका आसन्न घन कहिए। इस आसन्न घनका जो घनमूल ताका जो परिमाण तितने इस धाराके स्थान जानने। कोऊ कहै कि केवलज्ञानके अर्धपरिमाणकौं घनस्थान तुम कैसें जान्या? ताका समाधान—द्विरूप वर्गधाराके जे स्थान कहेंगे तिनि विषैं पहिला तीसरा पांचवानैं आदि देकरि जे विषम स्थान हैं तिनिका तौ चौथा भाग घनधाराका स्थान जानना। जैसैं द्विरूप वर्गधाराका पहिला स्थान च्यारि ताका चौथा भाग एक सो घनधाराका स्थान है। बहुरि तीसरा स्थान दोयसै छप्पन ताका चौथा भाग चौसठि सो घनधाराका स्थान है ऐसा सर्वत्र जानना। बहुरि जे दूसरा चौथा छठानैं आदि देकरि समस्थान हैं तिनिका आधा प्रमाण घनस्थान जानना। जैसैं दूसरा स्थान सोलह ताका आधा आठ सो घनधाराका स्थान है। चौथा स्थान पैंसाठि हजार पांचसै छत्तीस ताका आधा बत्तीस हजार सातसै अडसठि सो भी घनस्थान है। यातैं यहु केवलज्ञान भी द्विरूपवर्गधाराके समस्थानविषैं है तातैं याका आधा परिमाणकौं घनस्थान कह्या। बहुरि प्रश्न—जो केवलज्ञानकौं द्विरूपवर्गधाराके समस्थान विषैं कैसैं जान्या? ताका समाधान—केवलज्ञानकी वर्गशलाकाका भी परिमाण द्विरूप वर्गधाराके समस्थान विषैं कह्या है अर द्विरूप वर्गधाराके जे स्थान हैं तिनिविषैं प्रमाणसमरूप ही है तातैं जानिए है। ऐसैं घनधारा कही। बहुरि जिसविषैं घनरूप संख्या विशेष न पाइए सो अघनधारा है। सर्वधारा विषैं जे स्थान हैं तिनिविषैं घनधाराके स्थान घटाएं अवशेष सर्वस्थान इस अघनधाराके जानने। याका प्रथमस्थान दोय दूसरा स्थान तीन इत्यादिक केवलज्ञानपर्यंत जानना। याके सर्वस्थान घनधाराके स्थानका परिमाणकरि हीन केवलज्ञान परिमाण जानने। बहुरि जिनिका वर्ग होइ ऐसे संख्या विशेष जिस धारा विषैं पाइए सो कृतिमातृकधारा है सो एकनैं आदि देकरि सर्वहीका वर्ग होइ है परंतु याका अंतस्थान केवलज्ञानका वर्गमूल ही जानना। केवलज्ञानके वर्गमूलतैं एकभी अधिकका जो वर्ग करिए तौ केवलज्ञानतैं अधिकका परिमाण होइ तातैं याके स्थान एक सौं लगाइ एक एक बधता केवलज्ञानके वर्गमूलपर्यंत जानने। याके सर्वस्थान केवलज्ञानका वर्गमूल परिमाण जानने। बहुरि जिनिका वर्ग न होइ

ऐसे संख्या विशेष जिस धाराविषैं पाइए सो अकृतिमातृक धारा है सो एक अधिक केवलज्ञानका वर्गमूलकौं आदि देकरि एक एक बंधता केवलज्ञानपर्यंत जानना । इनका वर्ग न हो है। याके सर्वस्थान केवल ज्ञानके वर्गमूल करि हीन केवलज्ञान मात्र जानने अंक संदृष्टि करि केवलज्ञानका प्रमाण सोलह, ताका वर्गमूल च्यारि सो च्यारि पर्यंतका तौ वर्ग होय अर पंचमनैं आदि दे करि सोलह पर्यंतका वर्ग न होइ जो कीजियें तौ केवल ज्ञानतैं अधिक परिमाण होइ सो है नाहीं । बहुरि जिनिका घन होइ सकै ऐसे संख्याविशेष जिस धारा विषैं पाइये सो घनमातृकधारा है सो एकनैं आदि देकरि सर्वहीका घन होइ । परंतु याका अंत स्थान केवल ज्ञानका जो आसन्नघन ताका घनमूल परिमाणही जानना याके सर्वस्थान केवलज्ञानके आसन्नघनका घनमूल समान जानने। बहुरि जिसका घन होइ न सकै ऐसे संख्याविशेष जिस धारामें पाइये सो अघनमातृकधारा है सो केवल ज्ञानका एक अधिक आसन्न घनमूलतैं लगाइ एक एक बंधता केवलज्ञान पर्यंत याके स्थान जानने । अंक संदृष्टिकरि केवलज्ञान पैसठिहजार पांचसै छत्तीस प्रमाण ६५५३६ याका आसन्नघन चौंसठि हजार ६४००० ताका मूल चालीस ४० सो चालीस पर्यंतका घन होइ इकतालीस तैं लगाइ केवलज्ञान पर्यंत याका घन न होइ जो कीजिये तौ केवल ज्ञानतैं अधिक परिमाण होइ सो है नाहीं । बहुरि द्विरूपका वर्गसौं लगाइ पूर्व पूर्वका वर्ग करतैं जे संख्या विशेष होंइ ते जिस धाराविषैं पाइये सो द्विरूप वर्गधारा है। याका प्रथमस्थान दोयका वर्ग च्यारि बहुरि च्यारिका वर्ग दूसरा स्थान सोलह बहुरि याका वर्ग तीसरा स्थान छप्पन अधिक दोयसै २५६ बहुरि याका वर्ग चौथा स्थान पणट्ठी पैंसठि हजार पांच सै छत्तीस ६५५३६ प्रमाणका नाम पणट्ठी कहिये है। बहुरि याका वर्ग पांचवां स्थान वादाल सो बियालीस चौराणवै छिनवै बहत्तरि छिनवै ये अंक लिखैं जो प्रमाण होइ ताकौं वादाल कहिये ४२ ९४ ९६ ७२ ९६ बहुरि याका वर्ग छठा स्थान एकट्ठी सो एक आठ च्यारि च्यारि छह सात च्यारि च्यारि विंदी सात तीन सात विंदी नव पांच पांच एक छह एक छह इनि अंकनि करि जो प्रमाण होइ ताकूं एकट्ठी कहिये है १ ८ ४ ४ ६ ७ ४ ४ ० ७ ३ ७ ० ९ ५ ५ १ ६ १ ६

बहुरि याका वर्ग सातवां स्थान ऐसैं ही पहला पहला स्थाननिका वर्ग कीएं एक एक स्थान होइ तहां संख्यात-स्थान भएं जघन्यपरीतासंख्यातकी वर्गशलाका होइ सो वर्गशलाका कहा कहिए ? दोयके वर्गतैं लगाइ जितनी वार वर्ग कीएं विवक्षित राशि होइ तितनीं ही विवक्षितराशिकी वर्गशलाका जाननी । जातैं द्विरूप वर्गधारा आदि तीन धारानिविषैं जितने स्थान भए जो राशि होइ तीहिं राशिकी तितनी वर्गशलाका हैं जैसैं पणट्ठीकी वर्गशलाका च्यारि वादालकी पांच इत्यादि जाननीं। बहुरि जघन्यपरीतासंख्यातकी वर्गशलाकाका स्थानतैं लगाइ संख्यात स्थान भएं तब जघन्यपरीतासंख्यातके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ सो अर्धच्छेद कहा कहिए—विवक्षितराशिका जेती वार आधा आधा होइ तितने तिस राशिके अर्धच्छेद जानने जैसैं सोलहकौं एकवार आधा कीयें आठ होइ दूसरा आधा कीयें च्यारि होइ तीसरा आधा कीयें दोय होइ चौथा आधा कीयें एक होइ ऐसैं च्यारि वार आधा आधा भया तातैं सोलहका अर्धच्छेद च्यारि जानने। ऐसैं ही चौंसाठिके अर्धच्छेद छह होइ ऐसैं सर्वके अर्धच्छेद जानने। बहुरि तिस जघन्य परीतासंख्यातके अर्धच्छेदरूप स्थानतैं संख्यातवर्ग स्थान गये जघन्य परीतासंख्यातका वर्गमूल होइ यातैं एक स्थान गये इस वर्गमूलका वर्ग कीयें जघन्य परीतासंख्यात होइ बहुरि यातैं संख्यात स्थान गयें जघन्ययुक्तासंख्यात होइ सोई आवलीका परिमाण है। इहां वर्गशलाकादिक न कहे ताका कारण आगैं कहियेगा। बहुरि यातैं एक स्थान जाइये याका एकवार वर्ग कीजिये तब प्रतरावली होइ जातैं आवलीके वर्गहीकौं प्रतरावली कहिये है। बहुरि इहांतैं असंख्यात स्थान जाइ अद्धापल्यका वर्गशलाका राशि होइ है। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान जाइ अद्धापल्यका अर्धच्छेद राशि होइ। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गये अद्धापल्यका वर्गमूल होइ बहुरि यातैं एक स्थान जाइ अद्धापल्य होइ बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गयें सूच्यंगुल होइ। बहुरि यातैं एक स्थान गये प्रतरांगुल होइ बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गयें जगत्श्रेणीका घनमूल होइ । बहुरि यातैं असंख्यात असंख्यात स्थान गयें क्रमतैं जघन्य परीतानंतका वर्गशलाका राशि अर अर्द्धच्छेद राशि अर वर्गमूल होइ। यातैं एक स्थान गयें जघन्य परीतानंत

होइ। बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गयें जघन्ययुक्तानंत होइ । बहुरि यातैं एक स्थान गयें जघन्य अनंतानंत होइ बहुरि यातैं अनतानंत स्थान गयें क्रमतैं जीवराशिका वर्गशलाका राशि अर अर्द्धच्छेदराशि अर वर्ग मूल होइ यातैं एक स्थान गयें जीव राशि होइ, बहुरि अत्र इहांतैं आगैं जे राशि कहिए है तिनिका वर्ग शलाका राशि अर्धच्छेदराशि वर्गमूल सबका ऐसैं कहि लेना । सो जीवराशितैं अनंतानंत वर्गस्थान गए पुद्गल परमाणूनिका परिमाण होइ यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गएं तीनिकालके समयनिका परिमाण होइ यातैं अनंतानत स्थान गयें श्रेणीरूप आकाशके प्रदेशनिका परिमाण होइ सो यहु लोकाकाश अलोकाकाशरूप सव आकाशके लंबाई रूप प्रदेशनिका परिमाण है यामैं चौडाई ऊंचाई न लीनी। बहुरि यातैं एकस्थान गयें प्रतराकाशके प्रदेशनिका परिमाण होइ है सो यहु लोक अलोक रूप सर्व आकाशके प्रदेशनिका लंबाई रूप वा चौडाई रूप प्रदेशनिका परिमाण है यामै ऊंचाई न लीनी। ऊंचाईसाहित घन रूप सर्व आकाशके प्रदेशनिका प्रमाण द्विरूप घन धारा विषैं है इस धाराविषैं नाहीं है । बहुरि यातैं अनंतानंत स्थान जाइ धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्यके अगुरुलघु गुणनिका अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण होइ । जिसका भाग न होइ ऐसा कोई शक्तिका सूक्ष्म अंश ताका नाम अविभाग प्रतिच्छेद है । बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गयें एक जीवके अगुरुलघु गुणके षट् स्थान पतित वृद्धि हानि रूप अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है । बहुरि यातैं अनंतानंत वर्ग स्थान गयें सूक्ष्म निगोदियाके जो लब्ध्यक्षरनामा जघन्य ज्ञान होइ है ताके अविभाग प्रतिच्छेदनिका परिमाण होइ बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गएं असंयत सम्यग्दृष्टी तिर्यंचके जो जघन्य सम्यक्त्वरूप क्षायिक लब्धि हो है ताके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण होइ। बहुरि यातैं अनंतानंत स्थान गए केवल ज्ञानका वर्गशलाका राशि होइ, बहुरि यातैं अनंतानंत वर्ग स्थान गए केवल ज्ञानका अर्धच्छेद राशि होइ बहुरि यातैं अनंतानंत वर्गस्थान गयें केवलज्ञानका अष्टम वर्गमूल होइ। बहुरि यातैं एक एक स्थान गएं क्रमतैं केवल ज्ञानका सप्तम षष्ठम पंचम चतुर्थ तृतीय द्वितीय प्रथम वर्गमूल होइ। जो विवक्षित राशिका वर्गमूल होइ ताकौं वर्गमूल कहिए बहुरि

उस प्रथम वर्गमूलका वर्गमूलकूं द्वितीय वर्गमूल कहिए। बहुरि तिस द्वितीय वर्गमूलका भी वर्गमूल होइ ताकौं तृतीय वर्गमूल कहिए ऐसैं ही चतुर्थादिक वर्गमूल जानने। बहुरि उस प्रथम वर्गमूलतैं एक स्थान जाइए वा वर्ग कीजिए तब गुणपर्यायसंयुक्त जे त्रिलोकके मध्यवर्ती त्रिकालसबंधी जीवादिक पदार्थनिका समूह ताका प्रकाशक जो केवल ज्ञान सूर्य ताकी प्रभाके प्रतिपक्षी कर्मनिके सर्वथा नाशतैं प्रकट भए समस्त अविभाग प्रतिच्छेदनिका समूहरूप सर्वोत्कृष्ट भाग प्रमाण उपजै है । सोई उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि है इहां ही इस धाराका अंतस्थान है। यह ही सर्वोत्कृष्ट परिमाण है । यातैं कोऊ अधिक परिमाण नाहीं । ऐसैं यह द्विरूप वर्ग धारा कही याके वर्गरूप सर्वस्थान केवलज्ञानकी वर्गशलाका परिमाण जानने ।

अब इहां केते इक नियम दिखाइए है--जो राशि विरलन देय क्रमकरि निपजै सो राशि जिस धाराविषैं कही होइ तिस धाराविषैं ही तीहिं राशिकी वर्गशलाका वा अर्धच्छेद न होंइ जैसैं विरलनराशि सोलह १६ ताका विरलनकरि एक एकप्रति सोलहौं जायगा देय राशि जो सोलह सो स्थापि परस्पर गुणन कीएं एकट्ठी प्रमाण होइ सो एकट्ठी प्रमाण राशि द्विरूप वर्गधारा विषैं पाइये है याके अर्धच्छेद चौसठि ६४ वर्गशलाका छह सो इस धारामें न पाइये ऐसैं ही सूच्यंगुल वा जगत्श्रेणी इत्यादिकका जानना। ऐसा नियम इस द्विरूप वर्गधाराविषैं अर द्विरूप घनधारा अर द्विरूप घनाघन धारा विषैं जनना। तहांतैं सूच्यंगुलादिक द्विरूपवर्गधाराविषैं अपनी अपनी देय राशिके स्थानतैं ऊपरि विरलन राशिके जेते अर्धच्छेद होंइ तितने वर्गस्थान गयें उपजैं हैं। तहां सूच्यंगुलका विरलन राशि पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण है देयराशि पल्यप्रमाण है बहुरि जगच्छ्रेणीका विरलनराशि पल्यका अर्धच्छेदनिका असंख्यातवां भागमात्र जानना, देय राशि घनांगुलमात्र जानना। तहां अपना अपना विरलन राशिका विरलन करि एक एक वखेरि तहां एक एक प्रति देय राशिकौं देइ परस्पर गुणैं जो जो राशि उपजै है सो आगें कथन करेंगे। बहुरि द्विरूप वर्गधारादिक तीनि धारानि विषैं पहला पहला वर्गस्थानतैं ऊपरला ऊपरला वर्गस्थान विषैं अर्धच्छेद तौ दूणे दूणे जानने। अर वर्गशलाका एक एक अधिक जाननी। जैसैं दूसरा वर्गस्थान

सोलह ताका अर्धच्छेद च्यारि अर तीसरा वर्गस्थान दोयसै छप्पन ताका अर्धच्छेद आठ ऐसैंही दूणे दूणे जानने। बहुरि वर्गशलाका सोलहकी दोय दोयसै छप्पनकी तीन ऐसैं एक एक अधिक जाननी। बहुरि तींहिं ऊपरला स्थानकके निकटवर्ती जेथवां ऊपरला स्थानक होइ तेथवां अन्य धाराविषैं स्थान होइ तौ तहां तिस पहिले स्थानतैं अर्धच्छेद तिगुणे होंइ जैसैं द्विरूप वर्गधाराका द्वितीय वर्गस्थान सोलह ताके अर्धच्छेद च्यारि अर तातैं ऊपरिला द्विरूप घनधाराका तीसरा स्थान च्यारि हजार छिनवै ताके अर्धच्छेद बारह ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि वर्गशलाका दोऊकी समान जाननी जैसें दोयसै छप्पनकी भी तीन वर्गशलाका च्यारि हजार छिनवैं की भी तीन वर्गशलाका हो हैं। बहुरि राशिके जेते अर्धच्छेद होइं तिनि अर्धच्छेदनिके जेते अर्धच्छेद होंइ तितनी राशिकी वर्गशलाका जाननी। जैसैं राशिका प्रमाण सोलह ताके अर्धच्छेद च्यारि याहूके अर्धच्छेद दोय सो राशि सोलह ताकी वर्गशलाका दोय हैं ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि जेती वर्गशलाका होंइ तितना जायगा दोय दोय मांडि परस्पर गुणिए तब अर्धच्छेदनिका परिमाण आवै। जैसैं सोलहका वर्गशलाका दोय सो दोय जायगा दोय दोय मांडि परस्पर गुणिए तब च्यारि होइ सो सोलहके च्यारि अर्धच्छेद हैं सो यहु नियम द्विरूप वर्ग धारा विषैं ही है बहुरि जेते अर्धच्छेद होंइ तितना दूवा मांडि परस्पर गुणिए तब राशिका परिमाण होइ जैसैं च्यारि अर्धच्छेदके च्यारि जायगा दूवा मांडि परस्पर गुणिए तब जो राशि सोलह तींहिका परिमाण आवै। वर्ग शलाका कहा? जेती बार वर्ग कीयें राशि होइ सो वर्गशलाका है अथवा द्विरूप वर्ग धाराविषैं अर्धच्छेदनिका अर्धच्छेद प्रमाण वर्गशलाका हो है। बहुरि अर्धच्छेद कहा? राशिका जेता बार आधा आधा होइ सो अर्धच्छेदराशि है इत्यादि यथा संभव जानना।

बहुरि द्विरूपका घनकौं आदि देकरि पहला पहला वर्ग करते संख्याविशेष जिस धारा विषैं होइ सो द्विरूपघन धारा है। सो दोयका घन आठ हो है सो तो याका पहिला स्थान बहुरि याका वर्ग चौसठि सो दूसरा स्थान बहुरि याका वर्ग च्यारि हजार छिनवै सो तीसरा स्थान सो यहु सोलहका घन है। बहुरि याका वर्ग दोयसै छ-

प्पन ताका घन सो चौथा स्थान बहुरि पणट्ठीका घन पांचवां स्थान वादालका घन छठा स्थान ऐसैं पहला पहला स्थानकका वर्ग कीएं एक एक स्थान होइ सो ऐसे संख्यात स्थान गए जघन्य परीतासंख्यातका घन होइ यातैं संख्यात स्थान गए आवलीका घन होइ । यातैं एक स्थान गए प्रतरावलीका घन होइ । यातैं असंख्यात असंख्यात स्थान गएं क्रमतैं पल्यकी वर्गशलाकाका घन अर अर्धच्छेदका घन अर वर्गमूलका घन होइ यातैं एक स्थान गएं पल्यका घन होइ । बहुरि यातैं असंख्यात स्थान गए घनांगुल होइ । यातैं असंख्यात स्थान गएं जगच्छ्रेणी होइ । यातैं एकस्थान गएं जगत्प्रतर होइ । यातैं अनंतानंत स्थान गएं क्रमतैं जीवराशिकी वर्ग शलाकाका घन अर अर्धच्छेदका घन अर वर्गमूलका घन होइ । यातैं एकस्थान गयें जीवराशिका घन होइ । यातैं अनंतानंत स्थान गएं श्रेणीरूप सर्व आकाशकी वर्ग शलाकाका घन होइ । तातैं अनंतानंत वर्ग स्थान जाइ ताहीका अर्धच्छेदका घन होइ तातै अनंतानंत वर्गस्थान जाइ ताहीका प्रथम मूलका घन होइ है तातैं एक स्थान जाइ श्रेणी आकाशका घन होइ सोई सर्व आकाशके प्रदेशनिका परिमाण है ।

बहुरि यातैं अनंतानंत स्थान गए केवलज्ञानका द्वितीय वर्गमूल का घन होइ सो याहीकौं अंत स्थान जानना । प्रथम वर्गमूल अर द्वितीय वर्गमूलकौं परस्पर गुणैं जो परिमाण होइ सोई द्वितीय वर्ग मूलका घन जानना जैसैं सोलहका प्रथम वर्गमूल च्यारि द्वितीय वर्गमूल दोय याका परस्पर गुणन कीए आठ होइ सोई द्वितीय वर्गमूल जो दोय ताका घन भी आठ ही होइ । बहुरि द्वितीय वर्गमूलके अनंतर केवल ज्ञानका प्रथम वर्ग मूल ताका घन कीए केवलज्ञानतैं उलंघन होइ सो केवलज्ञानतैं अधिक संख्याका अभाव है तातैं सोई अंतस्थान कह्या । ऐसैं या धाराके सर्वस्थान दोय घाटि केवलज्ञानकी वर्गशलाका मात्र जानने । द्विरूपवर्ग धाराविषैं जिस राशिका जहां वर्ग ग्रहण कीया तहां तिसका घन इस धाराविषैं जानना । बहुरि दोय रूप घनका जो घन ताकौं आदि देकरि पहला पहला स्थानका वर्ग करते जो संख्या विशेष होंइ ते जिस धाराविषै पाइये सो द्विरूप घनाघनधारा है । सो दोयका घन आठ ताका घन पांच सैवारा सो याका

आदि स्थान जानना। बहुरि याका वर्ग दोय लाख वासठि हजार एकसौ चवालीस २६२१४० सो याका दूसरा स्थान जानना। ऐसैंही पहला पहला स्थानका वर्ग करतैं याके स्थान होंहि। ऐसैं असंख्यात वर्ग स्थान गयें लोकाकाशके प्रदेशनिका परिमाण होइ बहुरि यातैं असंख्यात वर्गस्थान गये अग्निकायिक जीवनिकी गुणकार शलाका होंहि जेतीवार गुणन कीयें अग्निकायिक जीवनिका परिमाण होइ तितनी गुणकार शलाका जाननीं। सो याके परिमाण दिखावनेके निमित्त कहिये। लोकाकाशके प्रदेशप्रमाण जुदा जुदा तीन राशि करना शलाका १ विरलन २ देय ३ तहां विरलनराशिकौं एक एक वखेरि एक एक स्थानविषैं देयराशिकौं स्थापनकरि परस्पर गुणन करना। ऐसें कीयें संतैं शलाकाराशिमेंस्यों एक काढि लेना। इहां जो राशि भया ताकी गुणकार शलाका एक भई अर वर्गशलाका पल्यके असंख्यातवैं भागमात्र हुई जातैं विरलन राशिके अर्धच्छेद देय राशिके अर्धच्छेदके अर्धच्छेदनिविषैं जोडैं विवक्षित राशिकी वर्गशलाकाका प्रमाण होइ है। बहुरि अर्धच्छेदराशि असंख्यात लोक प्रमाण भया जातैं देय राशिके अर्धच्छेदनिकरि विरलन राशिकौं गुणैं विवक्षितराशिका अर्धच्छेदनिका प्रमाण होहै बहुरि उत्पन्न भया राशि सो असंख्यातलोक प्रमाण हो है बहुरि यौं करतैं जो राशि भया तीहि प्रमाण विरलन देय राशि करि विरलन राशिका विरलन करना एक एक प्रति देय राशिकौं देना पीछैं परस्पर गुणन करना तब शलाका राशिमेंस्यों एक और काढि लेना। इहां गुणकार शलाका दोय भई अर वर्गशलाका राशि अर्धच्छेदराशि अर इनिकौं गुणन करतां जो राशि उत्पन्न भया सो ये तीनों ही असंख्यात लोक प्रमाण भये बहुरि जहां ताईं वह लोकमात्र शलाकाराशि एक एक काढनेतैं पूर्ण होइ तहां ताईं ऐसैं ही करना। ऐसैं करतैं जो राशि उपज्या ताकी गुणकार शलाका तौ लोकमात्र भई और सर्व तीनौं राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र भये। बहुरि जो यहु राशिका प्रमाण भया तीहि प्रमाण जुदा जुदा शलाका १ विरलन २ देय ३ ऐसे तीनि राशि स्थापि तहां विरलन राशिकौं एक एक वखेरि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ परस्पर गुणनिकरि दूसरी वार स्थाप्या हुआ शलाका राशितैं एक और काढि लेना इहां जो राशि उ-

पज्या ताकी गुणकार शलाका एक अधिक लोकप्रमाण हैं अवशेष तीनौं राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र हैं बहुरि जो राशि भया तिहिं प्रमाण विरलन देय राशि स्थापि विरलन राशिकों बखेरि एक २ प्रति देय राशिकौं देइ परस्पर गुणनकर दूसरा शलाका राशितैं एक और काढि लेना तब गुणकार शलाका दोय अधिक लोक प्रमाण भई अवशेष तीनों राशि असंख्यात लोकमात्र असंख्यात लोकमात्र भई। बहुरि याही प्रकार दोय घाटि उत्कृष्ट संख्यात लोकमात्र गुणकार शलाका प्राप्त करि इनविषैं पूर्वोक्त दोय अधिक लोकमात्र गुणकार शलाका जोडिये तब गुणकार शलाका भी असंख्यात लोकप्रमाण भई तब इहांतैं लगाइ गुणकार शलाका १ वर्गशलाका २ अर्धच्छेद राशि ३ उत्पन्न भई राशि चारि ४ ये च्यारौ विशेषकरि हीनाधिक हैं तथापि सामान्यपनैं असंख्यात लोकप्रमाण असंख्यात जाननी। ऐसैं क्रमतैं जाइ दूसरीवार स्थापी हुई शलाका राशिकौं भी एक एक काढनेतैं पूर्ण करै। बहुरि तहां उत्पन्न भया जो राशि तींहि प्रमाण शलाका १ विरलन २ देय ३ जुदा जुदा तीन राशि स्थापना। पूर्वोक्त प्रकारतैं इस तीसरीवार स्थाप्या हूवा शलाका राशिकौं भी पूर्णकरि बहुरि तहां जो राशि उत्पन्न भया तींहि प्रमाण शलाका १ विरलन २ देय ३ तीन राशि स्थापना। तहां जो पूर्व कही तीन गुणकार शलाकाराशि तिनिका प्रमाण इस चौथीवार स्थाप्या हूवा शलाका राशिमेंस्यों घटायें जो अवशेष प्रमाण रहै सो पूर्वोक्त प्रकार करि एक एक काढनेतैं जब पूर्ण होइ तब तहां जो उत्पन्नराशि होइ तींहि प्रमाण अग्निकायिक जीवराशि है ऐसैं देखि—

'आउड्ढगाशिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेओ'

ऐसा आचार्यनिकरि कह्या है। याका अर्थ–यहु जो साढा तीनवार शलाका राशिकरि लोककौं परस्पर गुणें अग्निकायिक जीवराशि हो है या प्रकार अग्निकायिक जीवराशिकी गुणकार शलाकातैं ऊपरि असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ ताका वर्गशलाका अर्धच्छेद राशि अर प्रथम मूल होइ ताकौं एकवार वर्गरूप कीयें तेजस्कायिक जीवनिका प्रमाण होइ है बहुरि यातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ तेजस्कायिककी

स्थितिकी वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल होइ है यातैं एक स्थान जाइ तेजस्कायिककी स्थिति हो है सो स्थिति कहा कहिये? अन्यकायतैं आयकरि तेजस्काय विषैं जीव उपज्या तहां उत्कृष्टपने जेते काल और काय न धरै तेजस्काय हीके पर्यायनिकौं धरा करै तिसकालके समयनिका प्रमाण जानना। बहुरि यातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ अवधिसंबंधी उत्कृष्ट क्षेत्रकी वर्गशलाका अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है ताकौं एकवार वर्गरूप कीयें अवधिसंबंधी उत्कृष्टक्षेत्र हो है सो कहा? सर्वावधि ज्ञानके जेता क्षेत्र पर्यंत जाननेकी शक्ति ताके प्रदेशनिका प्रमाण हो है। सो यहु क्षेत्र असंख्यात लोकप्रमाण है। इहां कोऊ कहै अवधिज्ञान तौ रूपी पदार्थनिकौं जानैं सो रूपी पदार्थ एकलोक प्रमाण क्षेत्र विषैं ही हैं तथापि इहां इतना क्षेत्र कैसे कह्या? ताका समाधान जैसे अहमिंद्रनिकैं सप्तम नरक पृथ्वीपर्यंत गमन शक्ति है तथापि इच्छा विना कदाचित् गमन न हो है तैसैं सर्वावधि विषैं ऐसी शक्ति है इतने क्षेत्रविषैं जो रूपी पदार्थ होंइ तौ तितनेकौं जानैं परंतु तहां रूपी पदार्थ नांही तातैं सो शक्ति व्यक्त न हो है। बहुरि तातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ स्थिति बंधाध्यवसायस्थाननिकी वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। याकौं एकवार वर्गरूप कीयें स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान हो है ते कहा? सो कहिये है। ज्ञानावरणादिक कर्मनिका ज्ञानकौं आवरना इत्यादिक स्वभाव करि संयुक्त रहनेका जो काल ताकौं स्थिति कहिये तिसके संबंधकौं कारणभूत जे परिणामनिके स्थान तिनिका नाम स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान है। बहुरि तातैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जाइ अनुभागबंधाध्यवसाय स्थाननिकी वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है। ताकौं एकवार वर्गरूप कीयें अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हो है। ते कहा? सो कहिये है ज्ञानावरणादि कर्मनिका वर्ग वर्गणा स्पर्धक गुणहानि स्थानरूप तिष्ठता जो अविभाग प्रतिच्छेदनिका समूह रूप अनुभाग ताके बंधकौं कारण भूत जे परिणाम तिनिके स्थाननिका नाम अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान है। स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान अर अनुभागबंधाध्यवसाय स्थाननिका विशेष व्याख्यान आगे कर्म कांडके अंत अधिकार विषैं लिखैंगे। बहुरि तातैं असंख्यात असंख्यात

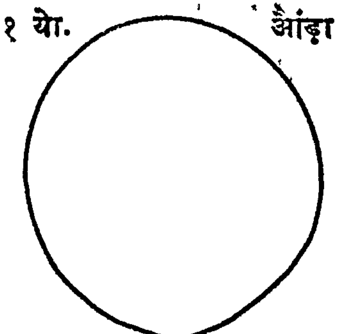
वर्गस्थान जाइ निगोदशरीरनिकी उत्कृष्ट संख्याका वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथममूल हो है । यातैं एक स्थान जाइ निगोद शरीरनिकी उत्कृष्ट संख्या हो है सो केती है ? स्कंध, अंडर, आवास, पुलवी, देह, ए पांच असंख्यात लोकतैं लगाइ असंख्यात लोक गुणे क्रमतैं हैं तातैं पांच जायगा असंख्यात लोक माडि परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तेती लोकविषैं निगोद शरीरनिकी उत्कृष्ट संख्या है बहुरि तातैं असंख्यात लोक असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थान जाइ निगोदकायस्थितिकी वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है याका एकवार वर्ग कीएं निगोद कायकी स्थिति हो है सो निगोद शरीररूप परिणमे जे पुद्गल स्कंध ते उत्कृष्टपनैं निगोद शरीरपनाकौं जेते काल न छोडैं तिसकालके समयनिका प्रमाण जानना । इहां निगोद जीव निगोद पर्यायकौं छोडि अन्य पर्याय उत्कृष्टपनैं यावत् काल न धरै तिसकालका ग्रहण न करना जातैं सो काल अढाई पुद्गल परिवर्तन परिमाण है सो अनंत है तातैं ताका इहां ग्रहण नाहीं । बहुरि तातैं असंख्यात असंख्यातका- वर्गस्थान जाइ उत्कृष्ट योग स्थाननिके अविभाग प्रतिच्छेदनिका वर्गशलाका अर अर्धच्छेद अर प्रथम मूल हो है । याका एकवार वर्ग कीएं एक एक स्थान प्रमाणरूप चयकरि अधिक ऐसे जो जगत श्रेणीके असंख्यातवैं भाग प्रमाण योग स्थान हैं तिनिविषैं जो उत्कृष्ट योग स्थान हैं ताके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है ते लोक प्रमाण जे एक जीवके प्रदेश तिनिविषैं कर्मनोकर्म पर्यायरूप परिणमनेकौं योग्य जे तेइस वर्गणानिविषैं कार्माण वर्गणा अर आहार वर्गणा तिनिकौं तिस कर्म नोकर्म पर्याय रूप परिणमनेविषैं प्रकृतिबंध अर प्रदेश बंधका कारण भूत जानने । बहुरि तातैं अनंतानंत वर्गस्थान जाइ केवलज्ञानका चौथा मूलका घनका घन हो है सो केवलज्ञानका प्रथम मूल अर चतुर्थमूलकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तींहि मात्र है जैसैं अंकसंदृष्टि करि केवलज्ञानका प्रमाण पणट्ठी ६५५३६ ताका प्रथम मूल दोयसै छप्पन चतुर्थ मूल दोय इनिकौं परस्पर गुणैं पांचसै बारह होइ सोई चतुर्थ मूल दोयका घन आठ ताका घन पांचसै बारह हो है सो यहु द्विरूप घनाघनधारा- का अंतस्थान है यातैं अधिकका घनाघन कीएं केवलज्ञानतैं उलंघन हो है सो है नहीं । बहुत कहनेकरि कहा ?

द्विरूप वर्गधाराविषैं जिस जिस स्थानविषैं जिस जिस राशिका वर्ग ग्रहण कीया तिस तिम राशिकौं तिस तिस स्थानविषैं नव जायगा माडि परस्पर गुणैं इस द्विरूप घनाघन धाराविषैं प्रमाण हो है। इस धाराके सर्वस्थान च्यारि घाटि केवलज्ञानका वर्गशलाकामात्र है ऐसैं इहां सर्वधारा द्विरूपवर्गादिक तीन धारानिका प्रयोजन जानि विशेष कथन कह्या अब शेष सम, विषम, कृति, अकृति, कृतिमूल, अकृतिमूल, घन, अघन, घनमूल, अघनमूल इन धारानिका विशेष प्रयोजन न जानि सामान्य कथन कीया जो इनिका विशेष जान्या चाहैं ते त्रिलोकसारविषैं वृहद्धारा परिकर्मा नाम ग्रंथविषैं जानहु।

अथ एक दोय आदि गणना करि कहनेकौं असमर्थ रूप ऐसा जो राशि ताका कोई उपमाकरि प्रतिपादन सो उपमामान है तिसरूप प्रमाण (तिस उपमामानके) आठ प्रकार है--पल्य १ सागर २ सूच्यंगुल ३ प्रतरांगुल ४ घनांगुल ५ जगत श्रेणी ६ जगत्प्रतर ७ जगद्घन ८। तहां पल्य तीन प्रकार है व्यवहार पल्य १ उद्धार पल्य २ अद्धापल्य ३। तहां पहिला पल्यकरि वालनिकी सख्या कहिए है। दूसराकरि द्वीप समुद्रनिका संख्या वर्णिए है तीसरा करि कर्मनिकी वा देवादिकनिकी स्थिति वर्णिए है। अब परिभाषाका कथनपूर्वक तिनि पल्यनिका स्वरूप कहिए है--जे तीक्ष्ण शस्त्रनिकरि भी छेदने भेदने मोडनेको समर्थ न हूजे ऐसा है बहुरि जल अगिनि आदिनिकरि नाशकौं न प्राप्त हो है बहुरि एक एक तो रस वर्ण गंध अर दोय स्पर्श ऐसे पांच गुण संयुक्त है बहुरि शब्दरूप स्कंधका कारण है आप शब्द रहित है बहुरि स्कंध रहित भया है बहुरि आदि मध्य अंत जाका कह्या न जाइ ऐसा है बहुरि बहु प्रदेशनिके अभावतैं अप्रदेशी है बहुरि इंद्रियनिकरि जानने योग्य नाहीं है। बहुरि जाका विभाग न होइ ऐसा है ऐसा जो द्रव्य सो परमाणु कहिए। सो परमाणु अतरंग वहिरंग कारणनितैं अपने वर्ण रस गंध स्पर्शनिकरि सदा काल पूरे कहिए जुडै अर गलै कहिए विखरै तव स्कंधवान आपकौं करै है तातैं पुद्गल ऐसा नाम है। बहुरि तिनि अनंतानंत परमाणूनिकरि जो स्कंध होइ सो अवसन्नासन्न नाम धारक है बहुरि तातैं सन्नासन्न १ तृटरेणु १ त्रसरेणु १ उत्तम भोगभूमि वालौंका वालका अग्रभाग १

मध्यम भोगभूमिवालोंका वालका अग्रभाग १ जघन्य भोगभूमिवालोंका वालका अग्रभाग १ कर्मभूमिवालोंका वालका अग्रभाग १ लीख १ सरिसों १ यव १ अंगुल १ ए वारह पहिला पहिलातैं क्रमकरि आठ आठ गुणे हैं। तहां अंगुल तीन प्रकार है—उत्सेधांगुल १ प्रमाणांगुल २ आत्मांगुल ३ तहां पूर्वोक्त क्रमकरि उपज्या सो उत्सेधांगुल है याकरि नारकी तिर्यंच मनुष्य देवनिके शरीर वा भवनवासी आदि च्यारि प्रकार देवनिके नगर अर मंदिर इत्यादिकनिका प्रमाण वर्णन करिए है। बहुरि तिस उत्सेधांगुलतैं पांचसौ गुणा जो भरत क्षेत्रका अवसर्पिणीकालविषैं पहला चक्रवर्तीका अंगुल है सोई प्रमाणांगुल है याकरि द्वीप समुद्र पर्वत वेदी नदी कुंड जगती वर्ष इत्यादिकनिका प्रमाण वर्णिए है। बहुरि भरत ऐरावत क्षेत्रके मनुष्यनिका अपने अपने वर्तमानकालविषैं जो अंगुल सो आत्मांगुल है। याकरि झारी कलश आरसा धनुष ढोल जूडा शय्या गाडा हलमूसल शक्ति शैल सिंहासन वाण चमर दुंदुभि पीठ छत्र मनुष्यनिके मंदिर वा नगर वा उद्यान इत्यादिकनिका प्रमाण वर्णिए है ऐसैं जहां जैसा संभवै तहां तैसा ही अंगुलकरि निपज्या प्रमाण जानना। बहुरि छह अंगुलनिकरि पाद होइ है बहुरि तातैं दोय पादकी एक वितस्ति दोय वितस्तिका एक हाथ दोय हाथका बीख दोय बीखका एक धनुष बहुरि दोय हजार धनुषनिकरि एक कोश तिनि च्यारि कोशनिकरि एक योजन हो है सो प्रमाणांगुलनिकरि निपज्या ऐसा एक योजन प्रमाण औंडा वा चौड़ा ऐसा एक गर्तखाड़ा करना।

चौड़ा १ यो. औंडा १ यो.



सो गर्त उत्तम भोगभूमिविषैं निपज्या जो जन्मतैं लगाइ एक आदि सात दिन पर्यंत ग्रहे जे मींडाका युगल तिनिके वालनिका अग्रभाग तिनिकी लंबाई चौडाईनिकरि अत्यंत गाढा भूमि समान भरना सिघाऊ न भरना। तहां केते बाल माये सो प्रमाण ल्याइये है—

विक्खंभवग्गदहगुण करणी वट्टस्स परिरयो होदि ।
विक्खंभचउत्थाभे परिरयगुणिदे हवे गुणियं ॥

इसकरण सूत्रकरि गोलक्षेत्रका फल प्रथम ही ल्याइए है या सूत्रका अर्थ—व्यासका वर्गकों दशगुणां कीएं वृत्त क्षेत्रका करणिरूप परिधि हो है। जिस राशिका वर्गमूल ग्रहण करना होइ तिस राशिकों करणिरूप कहिए। बहुरि व्यासका चौथा भागकरि परिधिकों गुणैं क्षेत्र फल हो है। सो इहां व्यास एक योजन १ ताका वर्ग भी एक योजन, ताकौं दशगुणां कीएं दश योजन १० प्रमाण करणिरूप परिधि होइ सो याका वर्ग मूल ग्रहण करना। सो नवका मूल तीन अवशेष एक रह्या ताकौं दूणा मूलका भाग देना सो एकका छठा भाग भया इनिकौं समच्छेदकरि मिलाएं उगणीसका छठा प्रमाण परिधि भया $\frac{19}{6}$ याकौं व्यासका चौथा भाग पाव योजन $\frac{1}{4}$ ताकरि गुणे उगणीसका चौवीसवां भाग प्रमाण $\frac{19}{24}$ क्षेत्रफल भया। बहुरि याकौं वेध एक योजनकरि गुणे उगणीसका चौवीसवां भाग प्रमाण ही घन क्षेत्र फल भया। अब इहां एक योजनके आठ हजार ८००० धनुष एक धनुषका छिनवै ९६ अंगुल एक अंगुलके पांचसै ५०० उत्सेधांगुल आगै एक एकके आठ आठ यव, जू, लीख, कर्मभूमि वालोंका वालका अग्रभाग, जघन्य भोगभूमिवालोंका वालाग्र, मध्यम भोग भूमिवालोंका वालाग्र, उत्तम भोग भूमिवालोंका वालाग्र होइ है। सो इहां घन राशिका गुणकार भागहार घनरूप ही हो है तातैं इनि सवनिका घनरूप गुणकार करनेकौं पहलै उगणीसका चौवीसवां भाग माडि आगै आठ हजार आदि तीन तीन जायगा माडि परस्पर गुणन करना। $\frac{19}{24}$ ८००० । ८००० । ८००० । ९६ । ९६ । ९६ । ५०० । ५०० । ५०० । ८ । सो राशिका गुणकार वा भागहारका अपवर्तनादि विधान करि गुणैं व्यवहार पल्यके सर्व वालनिके खंडनिका प्रमाण अंक अनुक्रम करि वाहीं तरफतैं लगाइ पहले अठारह बिंदी लिख अर पीछैं दोय नव एक दोय एक पांच नव च्यारि सात सात सात एक तीन बिंदी दोय आठ बिंदी तीन बिंदी तीन छह दोय पांच च्यारि तीन एक च्यारि ए अंक लिखने

४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० । इनि अंकनिकरि च्यारिसैतेराकोडाकोडि कोडाकोडि कोडाकोडि पैतालिस लाख छब्बीस हजार तीनसै तीन कोडाकोडि कोडाकोडि कोडि आठ लाख वीस हजार तीनसै सत्रह कोडा कोडि कोडा कोडि सतहत्तरि लाख गुणचास हजार पांचसै वारा कोडाकोडि कोडि उगणीस लाख वीस हजार कोडाकोडि प्रमाण हो है सो इतने रोम खंड व्यवहार पल्यके जानने । बहुरि तिस एक एक रोम खंडकौं सौ सौ वर्ष गए काढिए जितने कालविषैं वे सर्व रोम पूर्ण होंइ सो सर्वव्यवहार पल्यका काल जानना सो इहां एक वर्षके दो अयन एक अयनका तीन ऋतु एक ऋतुका दोयमास एक मासका तीस अहोरात्र एक अहोरात्रके तीस मुहूर्त एक मुहूर्तकी संख्यात आवली एक आवलीके जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय सो क्रमतैं गुणन कीयें तिस कालके समयनिका प्रमाण हो है। बहुरि तिस एक एक रोमके अग्रभागका असंख्यात कोटि वर्षके जेते समय होंइ तितने तितने खंड कीएं दूसरा उद्धार पल्यके रोम खंड होंइ हैं। इहां याके समय भी इतने ही जानने । सो ए कितने हैं ? सो ल्याइये है विरलन राशिकौं देयराशिका अर्धच्छेदनिकरि गुणैं उत्पन्न राशिके अर्धच्छेदनिका प्रमाण हो है तातैं अद्धापल्यका अर्धच्छेद राशिकौं अद्धापल्यका अर्धच्छेद राशि ही करि गुणैं सूच्यंगुलका अर्धच्छेद राशि हो है । बहुरि याकौं तिगुणी कीए घनांगुलका अर्धच्छेद राशि हो है बहुरि याकरि अद्धापल्यका अर्धच्छेद राशिका असंख्यातवां भागकौं गुणैं जगत् श्रेणीका अर्धच्छेद राशि हो है यामैं तीन घटाएं एक राजूके अर्धच्छेदनिके अर्धच्छेदनिका प्रमाण हो है। इहां एक अर्धच्छेद तौ वीचि मेरुके मस्तकविषैं प्राप्त भया तींहिं सहित लाख योजननिके संख्यात अर्धच्छेदभये एकयोजन रहै अर एक योजनके सातलाख अडसाठि हजार अंगुल होंइ सो इनके संख्याते अर्धच्छेद भये एक अंगुल होय सो ये मिलि सर्व संख्याते अर्धच्छेद भए तिनिकरि अधिक एक सूच्यंगुल रही थी ताके अर्धच्छेदनिका जो प्रमाणहोइ सो घटाइए तब समस्तद्वीप समुद्रनिकी संख्या होहै सो घटावना कैसैं होइ ? इहां तिगुणां सूच्यंगुलका अर्धच्छेद प्रमाण गुणकार है सो इतने घटावने होंइ तहां अद्धापल्यके अर्धच्छेदनिका असं-

ख्यातवां भाग प्रमाण गुण्यमेंसौं एक घटाइए तौ इहां संख्यात अधिक सूच्यंगुलका अर्धच्छेद घटावना होइ तो कितना घटाइए ऐसे त्रैराशिककरि किछू अधिक त्रिभाग घटाइए ऐसें साधिक एकका तीसरा भाग करि हीन पल्य के अर्धच्छेदका असंख्यातवां भागकौं पल्यके अर्धच्छेदनिके वर्गनैं तिगुणां प्रमाणकरिगुणें समस्त द्वीप समुद्रनिकी संख्या हो है। सो इतने द्वीप समुद्र अढाई उद्धार सागर प्रमाण हैं तिनिके पचीस कोडाकोडि पल्य भए सो इतने पल्यकी पूर्वोक्त संख्या होइ तौ एक उद्धार पल्यकी केती होइ ? ऐसें त्रैराशिक कीएं पूर्वोक्त द्वीप समुद्रनिकी संख्याकौं पचीस कोडाकोडिका भाग दीजिये तहां जो प्रमाण आवै तितनी उद्धार पल्यके रोम खंडनिकी संख्या जानना। बहुरि इनि एक एक रोम खंडनिके असंख्यातवर्षके जेते समय होंहि तितने खंड कीएं जेते होंइ तितने अद्धापल्यके रोम खंड हैं ताके समय भी इतने ही हैं। जातैं एक एक समय विषैं एक एक रोम खंड काढैं सर्व जेते कालकरि पूर्ण होंइ सो अद्धापल्यका काल है। ते असंख्यात वर्षके समय कितने हैं ? सो कहिए है—उद्धारपल्यके सर्व रोम खंडनिका प्रत्येक असंख्यात वर्ष समय प्रमाण खंड कीएं एक अद्धापल्य प्रमाण होइ तौ एक रोम खंडनिके खंडनिका केता प्रमाण होइ ? ऐसें त्रैराशिक करि जितना लब्ध राशिका प्रमाण होइ तितने एक उद्धारपल्यका रोम खंडके खंडनिका प्रमाण जानना। बहुरि अद्धापल्य है सो द्विरूप वर्ग धारामें अपने अर्धच्छेद राशितैं ऊपरि असंख्यात वर्ग स्थान जाइ उपजै है। याकौं तिगुणा पल्यका अर्धच्छेद राशिका वर्गकौं किंचिदून पल्यका अर्धच्छेदनिका असंख्यातवां भागकरि गुणैं जो प्रमाण आवै ताकौं पचीस कोडा कोडिका भाग दीएं जो प्रमाण होइ ताका भाग दीएं जितने पावैं तितने असंख्यात वर्षनिके समय जानने। इस प्रमाणकरि तिस उद्धार पल्यके रोम खंडनिकौं गुणें अद्धापल्यके रोमनिकी संख्या आवै है। ऐसें तीन प्रकार पल्य कहे। जैसें खासविषैं अन्न भरिए तैसें इहां गर्तविषैं रोम भरि प्रमाण कह्या तातैं याका नाम पल्योपम कह्या है।

बहुरि इनिकौं प्रत्येक दश कोडाकोडिकरि गुणें अपने अपने नामका सागर होइ। दश कोडाकोडि

व्यवहार पल्यकरि व्यवहार सागर, उद्धारपल्य करि उद्धार सागर, अद्धा पल्यकरि अद्धा सागर जानना । इहाँ लवण समुद्रकी उपमा है तातैं याका नाम सागरोपम है सो याकी उत्पत्ति कहिए है—लवण समुद्रकी छेहडाकी सूची पांच लाख योजन ५०००००,५ ल, आदिकी सूची एक लाख योजन १००००० इनिकौं मिलाइ ६ ल आधा व्यासका प्रमाण लाख योजनकरि गुणिये तब ६ ल ल। बहुरि याके वर्गकौं दशगुणा करिये तब करणिरूप क्षेत्र होइ ६ ल ल ६ ल ल १० याका वर्गमूल प्रमाण लवणसमुद्रका सूक्ष्म क्षेत्रफल है। बहुरि तिस करणिरूप लवण समुद्रके क्षेत्रफलकौं पल्यका गर्त एक योजन मात्र ताका करणिरूप सूक्ष्म क्षेत्रफल एक योजनका वर्ग दश गुणाकौं योजनका चौथा भागके वर्गका भाग दीएं जो होइ तीहि प्रमाण है ताका भाग देना ६ ल ल ६ ल ल १० सो इहां दश करणिकरि दश करणिका अपवर्तन करना। बहुरि 'भागहारका भागहार

१/४ १/४ १०

राशिका गुणकार होइ' इस न्यायकरि भागहारका भागहार दोय जायगा च्यारि करि अर राशिका दोय जायगा छक्काका गुणकार करना २४ ल ल २४ ल ल, तब पल्य गर्तनिके प्रमाणका वर्ग होइ। याका वर्गमूल ग्रहैं सर्व गर्तनिका प्रमाण लाख गुणां चोवीस लाख प्रमाण हो है । याकौं हजार योजनका औंडापनकरि गुणें सर्व लवण समुद्रविषैं पल्यगर्त सारिखे गर्तनिका प्रमाण हो है—२४ लल १००० याकौं अपने अपने विवक्षितपल्यके रोम खंडनिकरि गुणैं सर्व गर्तनिके रोमनिका प्रमाण हो है। बहुरि छह रोम जितना क्षेत्र रोकैं तितने क्षेत्र-का जल निकासने विषैं पचीस समय व्यतीत होंइ तौ सर्व रोमनिके क्षेत्रका जल निकासनेमें केते समय होंइ ऐसैं त्रैराशिक करना। तहां प्रमाण राशि रोम छह ६ फलराशि समय पचीस २५ इच्छाराशि सर्वगर्तनिके रोमनिका प्रमाण तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीएं समयनिका प्रमाण आवै। बहुरि पूर्वोक्त अपना अपना समयनिका प्रमाणकरि एक पल्य होइ तौ इतने इहां समय भए तिनके केते पल्य होंइ ऐसैं त्रैराशिक एं दश कोडा कोडि पल्यनिका प्रमाण हो है तातैं दश कोडाकोडि पल्यनिके समूहका नाम सागर कह्या है ।

बहुरि अद्धापल्यका अर्धच्छेद राशिका विरलनकरि एक एक करि वखेरि एक एक रूप प्रति अद्धा पल्यकौं देइ परस्पर गुणनि कीए सूच्यंगुल उपजै है। एक प्रमाणांगुलका प्रमाण लंबा एक प्रदेश प्रमाण चौंड़ा ऊंचा क्षेत्रका इतने प्रदेश जानने जैसैं पल्यका प्रमाण सोलह ताके अर्धच्छेद च्यारि तिनिका विरलनकरि । १ । १ । १ । १ । एक एक प्रति प्रति पल्य सोलहकौं देइ $\frac{16}{1} \mid \frac{16}{1} \mid \frac{16}{1} \mid \frac{16}{1} \mid$ परस्पर गुणै पणट्ठी प्रमाण ६५५३६ होइ तैसैं इहां जानना। बहुरि सूच्यंगुलका जो वर्ग सो प्रतरांगुल है एक अंगुल चौडा एक अंगुल लंबा एक प्रदेश ऊंचा क्षेत्रका इतना प्रदेशनिका प्रमाण है जैसैं पणट्ठीकौं पणट्ठीकरि गुणैं वादाल होइ तैसं इहां सूच्यंगुलकौं सूच्यंगुलकरि गुणैं प्रतरांगुल हो है। बहुरि सूच्यंगुलका घन सो घनांगुल है एक अंगुल चौडा एक अंगुल लंबा एक अंगुल ऊंचा क्षेत्रका इतना प्रदेशनिका प्रमाण है। जैसैं वादालको पणट्ठी करि गुणैं पणट्ठीका घन होइ तैसैं प्रतरांगुलको सूच्यंगुलकरि गुणैं घनांगुल हो है। बहुरि अद्धापल्यके जेते अर्धच्छेद तिनिका असंख्यातवां भागका जो प्रमाण ताकौं विरलनिकरि एक एक प्रति घनांगुल देइ परस्पर गुणैं जगतश्रेणी उपजै है। क्षेत्रखंडन विधानकरि हीनाधिककौं समान कीयें लोकका लंबा श्रेणीबद्ध प्रदेशनिका प्रमाण इतना है। जातैं जगतश्रेणीका सातवां भाग राजू है। सातराजूका घनप्रमाण लोक है। जैसैं पल्यका अर्धच्छेद च्यारि ताका असंख्यातवां भाग दोय सो दोय जायगा माडि पणट्ठी गुणा वादालकौं परस्पर गुणैं विवक्षित प्रमाण होइ तैसैं इहां भी जगत श्रेणीका प्रमाण जानना। बहुरि जगत श्रेणीका वर्ग सो जगत्प्रतर है। क्षेत्र खंडन विधानकरि हीनाधिक समान कीएं लंबा चौड़ा लोकके प्रदेशनिका इतना प्रमाण है। भावार्थ--यह जगत श्रेणीकौं जगत श्रेणीकरि गुणैं जगत प्रतर हो है बहुरि जगत श्रेणीका घन सो लोक है लंबा चौडा ऊंचा सर्व लोकके प्रदेशनिका प्रमाण इतना है भावार्थ—यहु जगत प्रतरकौं जगत् श्रेणीकरि गुणैं लोकका प्रमाण हो है अब इनिके अर्धच्छेद अर वर्ग शलाकानिका प्रमाण कहिए है—तहां प्रथम अद्धापल्यके अर्धच्छेद द्विरूप वर्ग धाराविषैं अद्धा पल्यके स्थानतैं पहिले असंख्यात वर्ग स्थान नीचैं उतरि जो राशि भया तींहि प्रमाण हैं। बहुरि अद्धापल्यकी वर्गशलाका तिसही द्विरूपवर्गधारा-

विषैं तिस पल्यही के अर्धच्छेद स्थानतैं पहले असंख्यात वर्ग स्थान नीचै उतरि उपजी है बहुरि सागरोपमके अर्धच्छेद सर्वधाराविषैं पाइए है ते पल्यके अर्धच्छेदनिविषैं गुणकार जो दश कोडा कोडि ताके संख्यात अर्धछेद जोडै जो प्रमाण होइ तितने हैं बहुरि ताकी वर्गशलाका इहां पल्यराशितैं गुणकार संख्यात ही का है तातैं न वनै है। बहुरि सूच्यंगुल है सो द्विरूप वर्गधाराविषैं प्राप्त है सो यहु राशि विरलन देयका अनुक्रमकरि उपज्या है तातैं याके अर्धच्छेद अर वर्गशलाका सर्वधारा आदि यथा संभव धारानिविषैं प्राप्त है। द्विरूपवर्ग धारा आदि तीन धारानिविषैं प्राप्त नाहीं हैं तहां विरलन राशि पल्यकेअर्धच्छेद इनिकौं देय राशि पल्य ताके अर्धच्छेदनिकरि गुणै जो प्रमाण होइ तितनेतौ सूच्यंगुलके अर्धच्छेद हैं बहुरि द्विरूप वर्गधाराविषैं पल्यरूप स्थानतैं ऊपरि सूच्यंगुलका विरलन राशि जोपल्य के अर्धच्छेद ताके जेते अर्धच्छेद हैं तितने वर्गस्थान जाइ सूच्यंगुलरूप स्थान उपजै हैं तातैं पल्यकी वर्गशलाकाका प्रमाणतैं सूच्यंगुलकी वर्गशलाकाका प्रमाण दूणा है तातैं पल्य पर्यंत एकबार पल्यकी वर्गशलाकाप्रमाण स्थान भएं पीछैं पल्यके अर्धच्छेदनिके अर्धच्छेदनिका जो प्रमाण होइ सोई पल्यकी वर्गशलाकाका प्रमाण सो पल्यतैं ऊपरि दूसरीबार पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण स्थान भए सूच्यंगुल हो है। तातै दूणी पल्यकी वर्गशलाका प्रमाण सूच्यंगुलका वर्ग शलाकी कही। अथवा विरलन राशि पल्यका अर्धच्छेद तिनिके जेते अर्धच्छेद तिनिविषैं देयराशि पल्य ताका अर्धच्छेदनिके अर्धच्छेदनिकौं जोडैं सूच्यंगुलकी वर्ग शलका हो है सो पल्यके अर्धच्छेदनिका अर्धच्छेद प्रमाण पल्यकी वर्गशलाका है। सो इहां भी दूणी भई सो या प्रकार भी पल्यकी वर्ग शलाकातैं दूणी सूच्यंगुलकी वर्ग शलाका है बहुरि प्रतरांगुल है सो द्विरूप वर्गधाराविषैं प्राप्त है ताकी वर्गशलाकाका अर्धछेद यथा योग्य धारानिविषैं प्राप्त जानने। तहां-'वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा दुगुणा हवंति अद्धछिदा' इस सूत्रकरि वर्गतैं ऊपरला वर्ग स्थान विषैं दूणा दूणा अर्धच्छेद कहे तातैं इहां सूच्यंगुलके अर्धछेदनितैं दूणैं प्रतरांगुलके अर्धछेद जानने अथवा गुण्य अर गुणकारका अर्धच्छेद जोडैं राशिका अर्धच्छेद होइ तातैं इहां सूच्यंगुल गुण्यकौं सूच्यंगुलका गुणकार है तातैं दोय सूच्यंगुलके अर्धछेद मिलाएं भी सूच्यंगुलके अर्धछेदनितैं दूणे प्र-

तरांगुलके अर्धछेद हो हैं वहुरि 'वग्गसला रूवहिया' इस सूत्रकरि वर्गशलाका ऊपरला स्थानविषैं एक अधिक
होइ तातैं इहां सूच्यंगुलके अनंतर प्रतरांगुलका वर्गस्थान है तातैं सूच्यंगुलकी वर्गशलाकातैं एक अधिक प्रतरां
गुलकी वर्गशलाका है। वहुरि घनांगुल है सो द्विरूप घनधाराविषैं प्राप्त है सो यहु अन्य धाराविषैं उत्पन्न है सो
'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे' इस सूत्रकरि अन्य धाराका ऊपरला स्थानविषैं तिगुणा तिगुणा अर्धछेद होहि
तातैं सूच्यंगुलके अर्धछेदनितैं तिगुणे घनांगुलके अर्धछेद हैं। अथवा तीन जायगा सूच्यंगुल मांडि पर-
स्पर गुणैं घनांगुल हो है तातैं गुण्य गुणकार रूप तीन सूच्यंगुल तिनका अर्धछेद जोडैं भी घनांगुलके
अर्धछेद ही हो है। वहुरि परसम इस सूत्रकरि अन्य धाराविषैं वर्गशलाका समान हो है। सो
इहां द्विरूप वर्ग धाराविषैं जेथवा स्थानविषैं सूच्यंगुल है तेथवां ही स्थानविषैं द्विरूप घन धाराविषैं
घनांगुल है। तातैं जेती सूच्यंगुलकी वर्गशलाका तितनी ही घनांगुलकी वर्गशलाका जानना। वहुरि जगत
श्रेणी है सो द्विरूप घन धारा विषैं प्राप्त है। सो याके अर्धछेद वर्गशलाका अन्यधाराविषैं उपजैं हैं तहां "वि-
रलज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे लद्धछेदा होंति।" इस सूत्रकरि विरलन रूप राशिकौं देय रा-
शिका अर्धछेदनिकरि गुणैं लब्ध राशिके अर्धछेद होंहि। तातैं इहां विरलन राशि पल्यका अर्धछेदनिका
असंख्यातवां भाग ताकौं देय राशि घनांगुल ताके अर्धछेदनिकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितने जगत श्रेणी
के अर्धच्छेद हैं। वहुरि दूणा जघन्य परीतासंख्यातका भाग अद्धापल्यकी वर्गशलाकाकौं दीएं जो प्रमाण होइ
तितना विरलन राशिका अर्धच्छेद है। ताकौं देयराशि घनांगुलकी वर्गशलाकाविषैं जोडैं जो प्रमाण होइ ति-
तना जगत् श्रेणीकी वर्ग शलाका है अथवा जगत श्रेणी विषैं देय राशि घनांगुल तींहिं रूप द्विरूप घन
धाराका स्थानतैं ऊपरि विरलन राशि पल्यका अर्धच्छेदनिका असंख्यातवां भाग ताके जेते अर्धछेद होइ
तितने वर्गस्थान जाइ जगत् श्रेणीरूप स्थान उपजैं हैं। तातैं भी जगत श्रेणीकी वर्गशलाका पूर्वोक्त प्रमाण
जाननी। सो जगत श्रेणीविषैं विरलन राशिका प्रमाण कितना है? सो [illegible]

तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

अर्थ—विरलन राशितैं जेते हीन रूप होंइ तिनिका परस्पर गुणन कीएं उत्पन्न राशिका भागहार होइ जैसैं विरलन राशि अर्धछेद सात अर हीन रूप अर्धछेद तीन तहां विरलन राशिमात्र दूवा मांड़ि २×२×२×२×२×२×२ परस्पर गुणैं एक सौ अठाईस उत्पन्न राशि होइ । बहुरि हीन रूप प्रमाण दूवा मांडि २×२×२ परस्पर गुणैं आठ भागहार राशि होइ सो उत्पन्न राशिकौं भागहार रूप राशिका भाग दीएं च्यारि अर्धछेद जाका पाइए ऐसा सोलह हो है ऐसैं ही अन्यत्र जानना । ऐसैं मान वर्णन कीया ।

ऐसैं मान भेदनिकरि द्रव्य क्षेत्र काल भावका परिमाण कीजिए है सो जहां द्रव्यका परिमाण होइ तहां तितने पदार्थ जुदे जुदे जानने । बहुरि जहां क्षेत्रका परिमाण होइ तहां तितने प्रदेश जानने । जहां कालका परिमाण होइ तहां तितने समय जानने । जहां भावका परिमाण होइ तहां तितने अविभाग प्रतिछेद जानने इहां दृष्टांत कहिए है जैसैं हजार मनुष्य हैं ऐसा कहिए तहां वे हजार जुदे जुदे जानने । तैसैं द्रव्य परिमाण विषैं जुदे जुदे पदार्थ जानने । बहुरि जैसैं यहु वस्त्र वीस हाथ है तहां उस वस्त्रविषैं वीस अंश जुदे जुदे नाहीं परंतु एक हाथ जितना क्षेत्र रोकै ताकी कल्पनाकरि वीस हाथ कहिए है । तैसैं क्षेत्र परिमाण विषैं जितना क्षेत्र परमाणु रोकै ताकौं प्रदेश कहिए ताकी कल्पनाकरि क्षेत्रका परिमाण कहिए है । बहुरि जैसैं एक वर्षके तीनसै छ्यासठि दिन रात्रि कहिए तहां अखंड़ित काल प्रवाह विषैं अंश है नाहीं परंतु सूर्यके उदय अस्त होनेकी अपेक्षा कल्पनां करि कहिए हैं तैसे काल परिमाणविषैं जितने कालकरि परमाणू मंदगतिकरि एक प्रदेशतैं दूसरे प्रदेशकौं समय कहिए तींहिं अपेक्षा कल्पना करि कालका परिमाण कहिए हैं । बहुरि जैसैं यहु सोलावानीका सोना है तहां उस सोनाविषैं सोला अंश है नाहीं तथापि एक वानके सोनाविषैं जैसे वरणादिक पाइए हैं तिनकी अपेक्षा कल्पना करि कहिए है । तैसैं भाव परिणामविषैं केवलज्ञान गम्य अति सूक्ष्म जाका दूसरा भाग न होइ ऐसा कोइ शक्तिका अंश ताका अविभाग प्रतिच्छेद कहिए ताका कल्पनाकरि भावका परिमाण कहिए है । मुख्य तौ परि-

अर्थ—विरलनराशिके अर्धछेद देयराशिके अर्धछेदनिके अर्धछेदनिकरि सहित जोडैं उत्पन्न राशिकी वर्ग शलाकाका प्रमाण हो है जैसैं विरलनराशि च्यारिके अर्धछेद दोय अर देयराशि सोलहके अर्धच्छेद च्यारि तिनिके अर्धच्छेद दोय मिलाए उत्पन्नराशि पणट्ठीकी वर्गशलाका च्यारि हो हैं ऐसैं ही विरलनराशि पल्यके अर्धछेद तिनिके अर्धछेद तिनिविषैं देय राशि पल्य ताके अर्धछेदनिके अर्धछेद जोडैं उत्पन्न राशि सूच्यंगुलके वर्गशलाकाका प्रमाण हो है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

दुगुणपरित्तासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला।
विंदंगुलवग्गसला सहिया सेढिस्स वग्गसला॥

अर्थ—दूणा जघन्यपरीतसंख्यातका भाग अद्धापल्यकी वर्गशलाकाकौं दीए जो प्रमाण होइ तींहिकरि संयुक्त घनांगुलकी वर्गशलाकाका जो प्रमाण तितनी जगतश्रेणीकी वर्गशलाका हो हैं।

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि आहियरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स॥

अर्थ—विरलन राशितैं जेते अधिक रूप होंइ तीनिका परस्पर गुणन कीएं लब्ध राशिका गुणकार होइ जैसैं च्यारि अर्धछेदरूप विरलन राशि अर तीन अर्धछेद आधिक राशि तहां विरलन राशिके अर्धछेद प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणैं $2 \times 2 \times 2 \times 2$ सोलह १६ लब्ध राशि होइ। अर अधिक राशि तीन अर्धछेद प्रमाण दूवा मांडि $2 \times 2 \times 2$ परस्पर गुणैं आठ गुणकार होइ सो लब्धिराशिकौं गुणकार करि गुणैं सात अर्धछेद जाका पाइए ऐसा एक सौ अठाईस होंइ ऐसैं ही पल्यके अर्धछेद विरलन राशि सो इतने दूवा मांडि परस्पर गुणैं लब्ध राशि पल्य होइ अर अधिक राशि संख्यात अर्धछेद सो इतने दूवे मांडि परस्पर गुणैं दश कोडाकोडि गुणकार होइ सो पल्यकौं दश कोडाकोडिकरि गुणैं सागरका प्रमाण हो है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।

कार आठ ताके अर्धछेद तीन अर गुण्य सोलह ताके अर्धछेद च्यारि इनिकौं जोडें लब्धराशि एकसौ अट्ठाईसके अर्धछेद सात हो हैं ऐसैं ही गुणकार दश कोडाकोडिके संख्यात अर्धछेद गुण्यराशि पल्य ताके अर्धछेदनिमें जोडे लब्धराशि सागरके अर्धछेद हो हैं। बहुरि अधिकके छेद नाहीं हैं काहेतैं सो कहिये है-अर्ध छेदनिके अर्धछेद प्रमाण वर्ग शलाका होइ सो इहां पल्यके अर्धछेदनितैं संख्यात अर्धछेद सागरके अधिक कहे सो इनि अधिक अर्धछेदनिके अर्धछेद होंइ परंतु वर्गशलाकारूप प्रयोजनकी सिद्धि नाहीं। तातैं अधिकके अर्धछेद नाहीं करने ऐसा कह्या याहीतैं सागरकी वर्गशलाकाका अभाव है। उक्तं च–

भज्जस्सद्धछेदा हारद्धछेदणाहि परिहीणा।
अद्धच्छेदसलागा लद्धस्स हवंति सव्वत्थ॥

भाज्यराशिके अर्धछेद भागहारके अर्धछेदनिकरि हीन करिए तब लब्धराशिकी अर्धछेद शलाका सर्वत्र हो हैं जैसैं एकसौ अट्ठाईसके भाज्यके अर्धछेद सात इनमें भागहार आठके तीन अर्धछेद घटाएं लब्धराशि सोलहके च्यारि अर्धछेद हो हैं ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

विरलज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे।
अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुपण्णरासिस्स॥

अर्थ–विरलनराशिकौं देयराशिके अर्धछेदनिकरि गुणैं उत्पन्न राशिके अर्धछेद सर्वत्र हो हैं जैसैं विरलन राशि च्यारि ताकौं देय राशि सोलहके अर्धच्छेद च्यारिकरि गुणैं उत्पन्न राशि पणट्ठीके सोलह अर्धछेद हो हैं ऐसैं इहां भी पल्य अर्धछेद प्रमाण विरलन राशिकौं देयराशि पल्य ताके अर्धछेदनिकरि गुणैं उत्पन्न राशि सूच्यंगलके अर्धछेद हो है। ऐसैं ही अन्यत्र जानना।

विरलिदराशिच्छेदा दिण्णद्धच्छेदच्छेदसंमिलिदा।
वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स।

राशि ताका प्रथम वर्गमूल द्वितीय वर्गमूल इत्यादि क्रमतैं दूणां जघन्य परीतासंख्यातके जेते अर्धछेद होहिं तितने वर्ग मूल करने सो द्विरूप वर्गधाराके स्थाननिविषैं पल्यका अर्धछेद रूप स्थानतैं नीचैं तितने स्थान आइ अंतविषैं जो वर्गमूलरूप स्थान होइ ताके अर्धछेद दूणा जघन्य परीतासंख्यातका भाग पल्यकी वर्गशलाकाकों दीयें जो प्रमाण होइ तितने होंइ बहुरि 'तम्मित्तदुगे गुणेरासी' इस सूत्रकरि अर्धछेदनिका जेता प्रमाण तितने दूवे माडि परस्पर गुणैं राशि होइ सो इहां पल्यकी वर्गशलाकाका प्रमाण भाज्य है सो तितने दूवे माडि परस्पर गुणैं तो पल्यका अर्धछेद राशि होइ अर दूणा जघन्य परीतासंख्यातका प्रमाण भागहार है सो तितने दूवे माडि परस्पर गुणैं यथासंभव असंख्यात होइ ऐसैं तिस अंतके मूलका प्रमाण पल्यके अर्धछेदनिके असंख्यातवे भाग प्रमाण जानना। सोई इहां जगत्श्रेणिविषैं विरलनराशि है। बहुरि जगत् प्रतर है सो द्विरूप घनधाराविषैं प्राप्त है सो याके अर्धछेद वर्गशलाका अन्य धारानिविषैं प्राप्त जानने। तहां जगत्श्रेणीके अर्धछेदनितैं दूणे जगतत्प्रतरके अर्धछेद हैं बहुरि 'वग्गसला रूवहिया' इस सूत्रकरि जगतश्रेणीकी वर्गशलाकातैं एक अधिक जगत प्रतरकी वर्गशलाका है बहुरि घनरूप लोक सो द्विरूपघनाघन धाराविषैं प्राप्त है याके अर्धछेद वर्गशलाका अन्य धारानिविषैं उपजै हैं तहां 'तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे' इस सूत्रकरि द्विरूप घनधाराविषैं प्राप्त जो जगतश्रेणी ताके अर्धछेदनितैं लोकके अर्धछेद तिगुणे जानने। अथवा तीन जायगा जगतश्रेणी माडि परस्पर गुणैं लोक होइ सो गुण्य गुणकार तीन जगतश्रेणीके अर्धछेद जोडैं भी तितने ही लोकके अर्धछेद हो हैं। बहुरि 'परसम' इस सूत्रकरि जगतश्रेणीकी वर्गशलाका मात्र ही लोककी वर्गशलाका हैं इहां प्रयोजनरूप गाथा सूत्र कहिये है—उक्तं च—

गुणयारद्धछेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धच्छेदजुदा।
लद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्सच्छेदणा णत्थि ॥ १ ॥

याका अर्थ—गुणकारके अर्धछेद गुणराशिके अर्धछेद सहित जोडैं लब्धराशिके अर्धछेद होहिं जैसैं गुण-

रिणए पुद्गल तिनिविषैं जिनकौं खलरूप परिणमाए थे तिनिकौं हाड चर्म इत्यादिक स्थिर अवयवरूप परिणमावै अर जिनिकौं रसरूप परिणमाए थे तिनिकौं रुधिर शुक्र इत्यादिक द्रव अवयवरूप परिणमावै ऐसी जो शक्ति होइ ताकौं शरीरपर्याप्ति कहिए है। बहुरि इंद्रियरूप मति श्रुतज्ञान अर चक्षु अचक्षु दर्शनका आवरण अर वीर्यांतराय इनिकै क्षयोपशमकरि निपजी जो आत्माके यथायोग्य द्रव्येंद्रियका स्थानरूप प्रदेशनितैं वर्णादिक ग्रहणरूप उपयोगकी शक्ति जातिनामा नामकर्मके उदयतैं निपजै सो इंद्रिय पर्याप्ति कहिए है। बहुरि तेवीस जातिका वर्गणानिविषैं आहार वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिकी सासोसासरूप परिणमावनेकी शक्ति होइ सासोसास नामकर्मके उदयतैं निपजै सो सासोसास पर्याप्ति कहिए। बहुरि स्वरनामा नाम कर्मके उदयतैं भाषा वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिकौं सत्य असत्य उभय अनुभय भाषारूप परिणमावनेकी शक्ति होइ सो भाषापर्याप्ति कहिय है। बहुरि मनोवर्गणारूप जे पुद्गलस्कंध तिनिकौं अंगोपांग नामा नामकर्मका उदयका वलतैं द्रव्यमनरूप परिणमावनेकी शक्ति होइ तीहि द्रव्य मनका आधारतैं मनका आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशम विशेषकरि गुण दोषका विचार अतीतका यादि करना अनागतविषैं यादि रखना इत्यादिकरूप भावमनके परिणमावनेकी शक्ति होइ ताकौं मनःपर्याप्ति कहिए है। ऐसैं छह पर्याप्ति जानना ॥ ११९ ॥

पज्जत्तीपट्ठवणं जुगवं तु कमेण होदि णिट्ठवणं।
अंतो मुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा ॥ १२० ॥

पर्याप्तिप्रस्थापनं युगपत्तु क्रमेण भवति निष्ठापनं।
अंतर्मुहूर्तकालेन अधिकक्रमास्तावदालापात् ॥ १२० ॥

जी॰ प्र॰—समस्तस्वस्वयोग्यपर्याप्तीनां शरीरनामकर्मोदयप्रथमसमये एव युगपत् प्रतिष्ठापनं प्रारंभो भवति। तु पुनः तन्निष्ठापनानि अंतर्मुहूर्तेन क्रमेण तथापि तावन्मात्रालापेनैव भवंति। तद्यथा–आहारपर्याप्तिनिष्ठापनकालः सर्वतः स्तोकोप्यंतर्मुहूर्तमात्रः, २ ७, इतः अ-

मं० प्र० —पर्याप्तिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते मध्यदीपकत्वात् । आहारपर्याप्तिः, शरीरपर्याप्तिः इंद्रियपर्याप्ति , आनपानपर्याप्तिः, भाषापर्याप्तिः, मन.पर्याप्तिः इति षट् पर्याप्तयः—शक्तिनिष्पत्तयः । तत्र औदारिकादिशरीरनामकर्मोदयवशात् औदारिकादिशरीरपरिणमनयोग्याः आहारवर्गणास्कन्धा, आत्मना गृहीताः एकक्षेत्रस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनंतानंतप्रदेशास्तिष्ठंति । ते च पर्याप्तनामकर्ममंदानुभागोदयवशादल्पान्तर्मुहूर्तपर्यंतमाहारादिशक्तिनिष्पत्तिं नोत्पादयति । पुनरंतर्मुहूर्तादूर्ध्वं पर्याप्तनामकर्मतीव्रानुभागोदयवशात्तत्परिणमनशक्तिनिष्पत्तिं कुर्वंति तथैवाचार्योऽग्रे वक्ष्यति । आहारवर्गणाभ्यः आगतसमयप्रबद्धपुद्गलस्कंधान् खलरसभागेन परिणमयितुं पर्याप्तनामकर्मोदयसहिताहारवर्गणावष्टंभजनिता आत्मनः शक्तिनिष्पत्तिराहारपर्याप्ति । तिलखलोपम खलभाग अस्थ्यादिस्थिरावयवरूपेण तैलोपमं चरमभागं रुधिरादिद्रवावयवरूपेण परिणमयितु पर्याप्तनामकर्मोदयसहितस्य आत्मनः शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः । योग्यदेशस्थितस्पर्शादिविषयग्रहणव्यापाराविशिष्टस्यात्मनः पर्याप्तनामकर्मोदयवशात् स्पर्शनादिद्रव्येंद्रियरूपेण विवक्षितपुद्गलस्कंधान् परिणमयितु शक्तिनिष्पत्तिरिंद्रियपर्याप्तिः । विवक्षितपुद्गलस्कंधान् उच्छ्वासनिश्वासरूपेण परिणमयितु पर्याप्तनामकर्मोदयजनिता आत्मनः शक्तिनिष्पत्तिः उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिः । उचितकालायातभाषावर्गणास्कंधान् चतुर्विधभाषारूपेण परिणमयितुं पर्याप्तस्वरनामकर्मोदयजनिता आहारवर्गणावष्टंभयुक्तस्य आत्मनः शक्तिनिष्पत्तिः भाषापर्याप्तिः । मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधान् द्रव्यमनोरूपेण परिणमयितु गुणदोषविचारदृष्टश्रुतस्मरणादिविशिष्टस्य आत्मनः पर्याप्तांगोपागनामकर्मद्वयोदयजनिता शक्तिनिष्पत्तिः मनःपर्याप्तिः । ताश्च पर्याप्तयः एकेंद्रियस्य आहारशरीरेंद्रियोच्छ्वासनिश्वासनामानश्चतस्रो भवति । विकलेंद्रियाणा द्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियाणा पंच ता एव भाषासहिताः पर्याप्तयो भवंति, संज्ञिपंचेंद्रियाणा ता एव मन.पर्याप्तिसहिताः षडपि पर्याप्तयो भवति । चशब्दः लब्ध्यपर्याप्तकानामेतेषामेकेंद्रियादीनामपर्याप्तयोपि चतुः पंच षट् क्रमेण भवंति इत्यनुक्तसमुच्चयार्थः ॥११९॥

स० च०—आहार पर्याप्ति १ शरीर पर्याप्ति २ इंद्रियपर्याप्ति ३ आनपान कहिए श्वासोश्वास पर्याप्ति ४ भाषा पर्याप्ति ५ मनः पर्याप्ति ६ ऐसैं छह पर्याप्ति हैं । इनिविषैं एकेंद्रियकैं तौ भाषा अर मन विना पहिली च्यारि पर्याप्ति पाइये है। वेंद्री तेंद्री चौइंद्री असैनी पंचेंद्री इनि विकल चतुष्ककै मन विना पांच पर्याप्ति पाइए है। सैनी पंचेंद्रियकै छहो पर्याप्ति पाइए है। तहां औदारिक वैक्रियिक आहारक इनिविषै किसही शरीररूप नाम कर्मकी प्रकृतिका उदय होनेका प्रथम समयसौं लगाइकरि जो तीन शरीर वा छह पर्याप्तिरूप पर्याय परिणमने योग्य जे पुद्गलस्कंध तिनिकौं खलरस भाग रूप परिणमावनेकी पर्याप्ति नामा नामकर्मके उदयतैं भई ऐसी जो आत्माके शक्ति निपजै जैसैं तिलकौं पेलिकरि खलि अर तेल रूप परिणमावै है तैसैं केई पुद्गलानैं तौ खलरूप परिणमावै केई पुद्गलानै रसरूप परिणमावै है ऐसी शक्ति होनेकौं आहार पर्याप्ति कहिए। बहुरि खल रस भाग रूप प-

अपने कार्यरूप शक्तिकरि संपूर्ण भए तिनिकौं पूर्ण कहिए बहुरि जिनका आरंभ भया किछू भए किछू न भये ते अपने कार्यरूप शक्ति करि संपूर्ण न भए तिनिकौं अपूर्ण कहिए तैसें पर्याप्त अपर्याप्त नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयकरि संयुक्त जीव भी अपनी अपनी पर्याप्तिनिकरि पूर्ण अर अपूर्ण हो हैं । जो सर्व पर्याप्तिनिकी शक्तिकरि संपूर्ण होइ सो पूर्ण कहिए । बहुरि जो सर्व पर्याप्तिनिकी शक्तिकरि पूर्ण न होइ सो अपूर्ण कहिये ॥ ११८ ॥ आगैं ते पर्याप्ति कौंन ? अर कौंनके केती पाइए सो विशेष कहै हैं—

आहारसरीरिंदियपज्जत्ती आणपाणभासमणो ।
चत्तारि पंच छप्पि य एइंदियवियलसण्णीणं ॥ ११९ ॥

आहारशरीरेंद्रियाणि पर्याप्तयः आनप्राणभाषामनांसि ।
चतस्रः पंच षडपि च एकेंद्रियाविकलसंज्ञिनां ॥ ११९ ॥

जी० प्र०—पर्याप्तिशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते मध्यदीपकत्वात् । आहारपर्याप्तिः शरीरपर्याप्तिः इंद्रियपर्याप्तिः आनपानपर्याप्तिः भाषापर्याप्तिः मनःपर्याप्तिरिति पर्याप्तयः षट् ६ । तत्र आद्याश्चतस्रः एकेंद्रियजीवानां । मनःपर्याप्तिं विना पंच विकलेंद्रियजीवानां । षट् संज्ञिपंचेंद्रियजीवानां भवंति । अत्र औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामकर्मोदयप्रथमसमयमादि कृत्वा तच्छरीरत्रयषट्पर्याप्तिपर्यायपरिणमनयोग्यपुद्गलस्कंधान् खलरसभागेन परिणमयितुं पर्याप्तिनामकर्मोदयावष्टंभसंभूतात्मनः शक्तिनिष्पत्तिराहारपर्याप्तिः । तथापरिणतपुद्गलस्कंधानां खलभागं अस्थ्यादिस्थिरावयवरूपेण रसभागं रुधिरादिद्रवावयवरूपेण च परिणमयितुं शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्तिः । आवरणवीर्यांतरायक्षयोपशमविजृंभितात्मनो योग्यदेशावस्थितरूपादिविषयग्रहणव्यापारे शक्तिनिष्पत्तिर्जातिनामकर्मोदयजनितेंद्रियपर्याप्तिः । आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधान् उच्छ्वासनिश्वासरूपेण परिणमयितुं उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयजनितशक्तिनिष्पत्तिरुच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिः । स्वरनामकर्मोदयवशाद् भाषावर्गणायातपुद्गलस्कंधान् सत्यासत्योभयानुभयभाषारूपेण परिणमयितुं शक्तिनिष्पत्तिः भाषापर्याप्तिः । मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधान् अंगोपांगनामकर्मोदयबलाधानेन द्रव्यमनोरूपेण परिणमयितुं तद्द्रव्यमनोबलाधानेन नोइंद्रियावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमविशेषेण गुणदोषविचारानुस्मरणप्रणिधानलक्षणभावमनःपरिणमनशक्तिनिष्पत्तिर्मनःपर्याप्तिः ॥ ११९ ॥

माण तौ ऐसे जानना। विशेष जैसा विवक्षित होइ सो जानना। बहुरि जहां क्षेत्र परिमाण विषैं आवलीका परिमाण कहिए तहां आवलीके जेते समय होंइ तितने तहां प्रदेश जानने बहुरि कालपरिमाण विषैं जहां लोक परिमाण कहैं तहां लोकके जितने प्रदेश होंइ तितने समय जानने इत्यादिक ऐसे जानने। बहुरि जहां सख्यात असंख्यात अनंत सामान्यपनैं कहै तहां तिनिका भेद यथायोग्य जानना। सर्वभेद कहनेमें न आवै ज्ञानगम्य है तातैं कौन रीतिसौं कहिए ? परंतु जैसैं लोकविषै कहिए याके लाखां रुपैया छे तहां ऐसा जानिए कोड्यो नाहीं हजारों नाहीं तैसैं हीनाधिक भावकरि स्थूलपणैं परिमाण जानना। सूक्ष्मपणैं परिमाण ज्ञानगम्य है। या प्रकार इस ग्रंथविषैं जहां तहां मानका प्रयोजन जानि मान वर्णन कीया है ॥ अब पर्याप्ति प्ररूपणाका प्रारंभ करता संता प्रथम ही दृष्टांतपूर्वक जीवनिके तिनि पर्याप्तनिकरि पूर्णता अपूर्णता दिखावै हैं—

जह पुण्णापुण्णाइं गिहघडवत्थादियाइं दव्वाइं।
तह पुण्णिदरा जीवा पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा ॥११८॥

यथा पूर्णापूर्णानि गृहघटवस्त्रादिकानि द्रव्याणि।
तथा पूर्णेतरा जीवाः पर्याप्तेतरा मंतव्याः ॥ ११८ ॥

जी० प्र०—यथा लोके गृहघटवस्त्रादिद्रव्याणि व्यंजनपर्यायात्मकानि पूर्णानि सर्वशक्तिसंपूर्णानि अपूर्णानि-तच्छक्तिविकलानि च दृश्यंते तथा पर्याप्तापर्याप्तनामकर्मोदयाक्रांता जीवा अपि पूर्णाः-स्वस्वयोग्यपर्याप्तिभिः संभृताः, अपूर्णाः-तच्छक्तिविकलाश्च भवंति इति मंतव्याः।।१८॥ अथ पर्याप्तीनां तत्स्वामिनां च विशेषमाह—

म० प्र०—यथा लोके गृहघटवस्त्रादिकानि अचेतनद्रव्याणि कानिचित्पूर्णानि स्वावयवैर्निष्पन्नानि, कानिचिदपूर्णानि स्वावयवैरनिष्पन्नानि च विद्यन्ते तथा जीवाः केचित् पूर्णाः स्वशक्तिभिर्निष्पन्ना. पर्याप्ता इति ज्ञातव्याः। केचिज्जीवाः अपूर्णाः स्वशक्तिभिरनिष्पन्नाः—अपर्याप्ताः इति ज्ञातव्याः ॥११८॥

सं० चं०—जैसैं लोकविषैं गृह घट वस्त्र इत्यादिक पदार्थ व्यंजन पर्यायरूप ते पूर्ण अर अपूर्ण दीसैं हैं जे

रीरपर्याप्तिकालः तत्संख्यातैकभागांतर्मुहूर्तेनाधिकः २ १ । २ १ मिलितोऽपि २ १ । ५ अंतर्मुहूर्तः, इतः इंद्रियपर्याप्तिकालः संख्यातैकभाग-
४ ४

मात्रांतर्मुहूर्ताधिकः । २ १ । २ १ । २ १ । मिलितोऽपि २ १ । ५ । ५ अंतर्मुहूर्तः । इतः उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तिकालः संख्यातैकभागांतर्मुहूर्ते-
४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

नाधिकः २ १ । २ १ । २ १ । २ १ । मिलितोऽप्यंतर्मुहूर्तः २ १ । ५ । ५ । ५ । एता एव चतस्रः एकेंद्रियपर्याप्तकस्य पर्याप्तयोऽनेन
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ४ । ४ । ४ ।

क्रमेण पूर्णा भवति । ततः भाषापर्याप्तिकालः संख्यातैकभागांतर्मुहूर्तेनाधिकः २ १ । २ १ । २ १ । २ १ । २ १ । मिलितोऽपि
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

अंतर्मुहूर्तः २ १ । ५ । ५ । ५ । ५ । एताः पंच विकलेंद्रियपर्याप्तकजीवानां अनेन क्रमेण पूर्णा भवंति । ततः मनःपर्याप्तिकालः सं-
४ । ४ । ४ । ४ ।

ख्यातैकभागांतर्मुहूर्तेनाधिकः २ १ । २ १ । २ १ । २ १ । २ १ । २ १ । मिलितोऽप्यंतर्मुहूर्तमात्रः २ १ । ५ । ५ । ५ । ५ । ५ ।
४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४ ।

एताः षट् संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकानां अनेन क्रमेण पूर्णा भवंति ॥ १२० ॥ अथ पर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तकालविभागमाह—

मं० प्र०—षण्णां पर्याप्तीनां प्रस्थापन प्रारंभः युगपदेव—शरीरग्रहणप्रथमसमये एव भवति, तु-पुनः निष्ठापनं—पर्याप्तीनां परिसमाप्तिः क्रमेण अंतर्मुहूर्तकालेन अंतर्मुहूर्तकालेन भवति तद्यथा प्रथममेकेन अंतर्मुहूर्तकालेन आहारपर्याप्तेर्निष्पत्तिर्भवति । २ १ । ततस्तत्संख्यातभागाधिकेन अंतर्मुहूर्तेन शरीरपर्याप्तेर्निष्पत्तिर्भवति २ १ । ५ ततः प्राक्तनाधिकसंख्यातभागेन साधिकेनांतर्मुहूर्तेन इंद्रियपर्याप्तेर्निष्पत्तिर्भवति २ १ । ५ । ४ ततः प्राक्तनाधिकसंख्यातभागेन साधि-
४ ४४

केनांतर्मुहूर्तेन उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तेर्निष्पत्तिर्भवति २ १ ५ ४ ४ ततः प्राक्तनाधिकसंख्यातभागेन साधिकांतर्मुहूर्तेन भाषापर्याप्तेर्निष्पत्तिर्भवति २ १ ५ ४ ४ ४
४ ४ ४ ४ ४ ४ ४

ततः प्राक्तनाधिकसंख्यातभागेन साधिकेनांतर्मुहूर्तेन मनःपर्याप्तेर्निष्पत्तिर्भवति २ १ ५ ४ ४ ४ ४ अथवा पूर्वपूर्वपर्याप्तिकालः सर्वोऽपि स्वसंख्यातभागा-
४ ४ ४ ४ ४

उदये तु अपूर्णस्य च स्वकस्वकपर्याप्तीर्न निष्ठापयति ।
अंतर्मुहूर्तमरणं लब्ध्यपर्याप्तकः स तु ॥ १२२ ॥

जी० प्र०-अपर्याप्तनामकर्मोदये सति एकेंद्रियविकलचतुष्कसंज्ञिजीवा. स्वस्वचतुःपंचषट्पर्याप्तीर्न निष्ठापयंति । उच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रे एव अंतर्मुहूर्ते म्रियंते ते जीवा लब्ध्यपर्याप्तका इति उच्यते । लब्ध्या स्वस्य पर्याप्तिनिष्ठापनयोग्यतया अपर्याप्ता अनिष्पन्ना लब्ध्यपर्याप्ता इति निरुक्तेः ॥ १२२ ॥ अथैकेंद्रियादिसंज्ञिपंचेंद्रियपर्यंतलब्ध्यपर्याप्तकजीवेषु सर्वनिरंतरजन्ममरणकालप्रमाणमाह--

म० प्र०—अपूर्णस्य अपर्याप्तिनामकर्मणः उदये सति तु-पुनः, जीवः स्वकस्वकपर्याप्तीर्न निष्ठापयति स एव लब्धपर्याप्तिक इति तुशब्देन व्यवस्थाप्यते तस्य जीवस्य अंतर्मुहूर्त एव उच्छ्वासाष्टादशभागमात्रे एव मरण भवतीत्ययं विशेषः चशब्देनोच्यते। तस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्योत्कृष्टाभ्या उच्छ्वासाष्टादश भागप्रमितैव स्थितिरिति परमागमे प्रसिद्धत्वात् ॥ १२२ ॥

सं० च०-अपर्याप्त नामा नामकर्मके उदय होते संतें अपने अपने एकेंद्रिय विकलेंद्रिय सैनी जीव च्यारि पांच छह पर्याप्ति तिनिकौं न 'निष्ठापयति' कहिये संपूर्ण न करैं उसासका अठारवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्त ही विषैं मरण पावैं ते जीव लब्धिअपर्याप्त कहिए है। जातैं लब्धि कहिये अपने २ पर्याप्तिनिकी संपूर्णताकी योग्यता तींहिकरि 'अपर्याप्त' कहिये निष्पन्न न भए ते लब्धि अपर्याप्तक कहिये ॥ १२२ ॥ आगैं एकेंद्रियादिक संज्ञी पर्यंत लब्धि अपर्याप्तकजीवनिका निरंतर जन्म वा मरणका कालप्रमाणकौं कहै हैं—

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि ।
अंतोमुहुत्तकाले तावदिया चेव खुद्दभवा ॥ १२३ ॥

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशत् षट्षष्टिसहस्रकानि मरणानि ।
अंतर्मुहूर्तकाले तावंतश्चैव क्षुद्रभवाः ॥ १२३ ॥

जी० प्र०--अंतर्मुहूर्तकाले क्षुद्राणं लब्ध्यपर्याप्तानां मरणानि षट्त्रिंशत्त्रिशताधिकपट्षष्टिसहस्राणि संभवंति । तथा तद्भवा अपि तावंत एव ॥ १२३ ॥ अथ तन्मरणजन्मनां एकेंद्रियादिजीवसंभविनां तत्कालस्य च प्रमाणमाह—

म० प्र०---तस्य लब्ध्यपर्याप्तकस्य द्वित्रिभागाधिकसप्ताशीत्युच्छ्वासोनैकमुहूर्तप्रमिते अंतर्मुहूर्तकाले षट्त्रिंशदुत्तरात्रिशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि मरणानि भवंति। तस्य क्षुद्रभवाश्च तावंत एव। तद्भवस्य सर्वजीवभवेभ्यः अत्यल्पत्वात् क्षुद्रभवत्वं। लब्ध्यपर्याप्तकं मुक्त्वा अन्यजीवस्य कस्यापि उच्छ्वासाष्टादशभागमात्रभवाभावात्। एकभवस्य १ उच्छ्वासाष्टादशभागमात्रत्वे उ $\frac{1}{18}$ षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशताधिकषट्षष्टिसहस्रक्षुद्रभवानां ६६३३६ कियत उच्छ्वासा भवंति? इति त्रैराशिकलब्धा उच्छ्वासाः त्रिभागाधिकपचाशीत्युत्तरषट्शताधिकत्रिसहस्राणि ३६८५ $\frac{1}{3}$ एतावदुच्छ्वासप्रमितान्तर्मुहूर्तः पृथ्वीकायिकादिपचेंद्रियपर्यंत-लब्ध्यपर्याप्तकजीवानामव्यवहितक्षुद्रभवकाल इत्यर्थः॥ १२३॥

सं० च०--क्षुद्रभव कहिये लब्धि अपर्याप्तक जीव तिनिकौं जो वीचिविषैं पर्याप्तिपनौं विना पाया निरंतरपनैं उत्कृष्ट होंइ तौ अंतर्मुहूर्त कालविषैं छ्यासठि हजार तीनसौ छत्तीस ६६३३६ मरण होंइ बहुरि इतने ही भव कहिये जन्म होंइ॥ १२३॥ आगैं ते जन्म मरण एकेंद्रियादि जीवनिके केते केते संभवैं अर तिनिके कालका प्रमाण कहा? सो विशेष कहिये हैं--

सीदी सट्ठी तालं वियले चउवीस होंति पच्चक्खे।
छावट्ठिं च सहस्सा सयं च वत्तीसमेयक्खे॥ १२४॥

अशीतिः षष्टिः चत्वारिंशत् विकले चतुर्विंशतिर्भवंति पंचाक्षे।
षट्षष्टिश्च सहस्राणि शतं च द्वात्रिंशमेकाक्षे॥ १२४॥

जी० प्र०—ते निरंतरक्षुद्रभवा लब्ध्यपर्याप्तेषु एकेंद्रियाणां द्वात्रिंशदग्रशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि भवंति ६६१३२। तद्यथा--कश्चिदेकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकः तद्भवप्रथमसमयादारभ्य उच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रीं स्वस्थितिं जीवित्वा पुनस्तदेकेंद्रिये एवोत्पन्नः पुनस्तावन्मात्रस्वस्थितिं जीवित्वा, एवं निरंतरमेकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकभवानेव बहुवारं गृह्णाति तदा उक्तसंख्यां ६६१३२ नातिक्रामति एवमेव द्वींद्रियलब्ध्यपर्याप्तके अशीतिः ८० त्रींद्रियलब्ध्यपर्याप्तके षष्टिः ६० चतुरिंद्रियलब्ध्यपर्याप्तके चत्वारिंशत् ४० पचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तके चतुर्विंशतिः २४, तत्र तु मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८, असंज्ञिपचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८ संज्ञिपचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तके अष्टौ ८ मिलित्वा पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तके चतुर्विंशतिर्भवंति॥१२४॥ अथैकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य निरंतरक्षुद्रभवसंख्यां स्वामिभेदानाश्रित्य विभजति—

म० प्र०---विकलेंद्रियेषु द्वींद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य अव्यवहिताः क्षुद्रभवाः उत्कर्षेण अशीतिः ८० । त्रींद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य षष्टिः ६० । चतुरिंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य चत्वारिंशत् ४० । पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य चतुर्विंशतिः २४ । एतावंत एव नाधिका भवंति । एकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य द्वात्रिंशदुत्तरैकशताधिकषट्षष्टिसहस्राणि ६६१३२ ॥ १२४ ॥

सं० च०--पूर्वै कहे थे लब्धि अपर्याप्तकनिके निरंतर क्षुद्रभव तिनिविषैं एकेंद्रियनिके छयामठि हजार एकसौ वत्तीस निरंतर क्षुद्रभव हो हैं सो कहिए हैं--कोऊ एकेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तक जीव सो तिस क्षुद्रभवका प्रथम समयतैं लगाइ सांसके अठारवें भाग अपनी आयु प्रमाण जीयकरि मरै वहुरि एकेंद्रिय भया तहां तितनाही आयुकौं भोगि मरिकरि वहुरि एकेंद्रिय होइ ऐसैं निरंतर लब्धि अपर्याप्तकरि क्षुद्रभव एकेंद्रियके उत्कृष्ट होंइ तो छयासठि हजार एकसौ वत्तीस होंइ अधिक न होंइ । ऐसैं ही लब्धि अपर्याप्तक वेइंद्रियके असी ८० होंइ । तेइंद्रिय लब्धि अपर्याप्तकके साठि ६० होंइ चौइंद्रिय लब्धि अपर्याप्तकैं चालीस ४० होंइ । पंचेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तके चौवीस २४ तींहिविषैं भी मनुष्यके आठ ८ होंइ, असैनी तिर्यंचके आठ ८, सैनी तिर्यंचके आठ ८, ऐसैं पंचेंद्रियके चौवीस २४ होंइ ऐसैं लब्धि अपर्याप्तकनिका निरंतर क्षुद्रभवनिका परिमाण कह्या ॥ १२४ ॥

अब एकेंद्रिय लब्धि अपर्याप्तके निरंतर क्षुद्रभव कहे तिनकी संख्या स्वामीनिकी अपेक्षा कहे हैं--

पुढविदगागणिमारुदसाहारणथूलसुहमपत्तेया ।
एदेसु अपुण्णेसु य एक्केक्के बार खं छक्कं ॥ १२५ ॥

पृथ्वीदकाग्निमारुतसाधारणस्थूलसूक्ष्मप्रत्येकाः ।

एतेषु अपूर्णेषु च एकैकस्मिन् द्वादश खं षट्कं ॥ १२५ ॥

जी० प्र०---पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतयः पंचापि प्रत्येकं बादरसूक्ष्मभेदेन दश तथा प्रत्येकवनस्पतिश्चेत्येतेषु एकादशसु लब्ध्यपर्याप्त

मेदेषु एकैकस्मिन् भेदे प्रत्येकं द्वादशोत्तरषट्सहस्री निरंतरक्षुद्रभवा भवंतीति एकादशभिः एकेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तकस्य निरंतरक्षुद्रभवेषु ६६१३२ भक्तेषु एकस्य प्रागुक्तं 'वार खं छक्कमिति ६०१२ निरंतरक्षुद्रभवप्रमाणमागच्छति। उक्तसर्वनिरंतरक्षुद्रभवसंख्यां तत्कालादिप्रमाणं च निर्णेतुं चतुर्धापवर्तनं दर्श्यते तद्यथा--यद्येकक्षुद्रभवस्य उच्छ्वासाष्टादशैकभागकालः तदा षड्त्रिंशत्त्रिशतोत्तरषट्षष्टिसहस्र ६६३३६ निरंतरक्षुद्रभवानां कियंत उच्छ्वासाः ? इति संपाते सति प्र, भ १। फ, उ $\frac{1}{18}$। इ, भ ६६३३६ लब्धोच्छ्वासः ३६८५ $\frac{1}{3}$ इत्ययमंतर्मुहूर्तो ग्राह्यः।

आढ्यानलसानुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तत्रिमितैः ३७७३। आहुर्मुहूर्तमंतर्मुहूर्तमष्टाष्टवर्जितैस्त्रिभागयुतैः॥ इति वचनात्

आयुरंतर्मुहूर्तः स्यादेषोस्याष्टादशांशकः। उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके॥

इत्युक्तोच्छ्वासाष्टादशैकभागमात्रस्यैकक्षुद्रभवः, तदा एतावतां उच्छ्वासानां कति क्षुद्रभवाः ? इति संपाते प्र उ $\frac{1}{18}$। फ भ १। इ उ ३६८५ $\frac{1}{3}$। लब्धक्षुद्रभवाः ६६३३६, पुनः इयतां क्षुद्रभवानां ६६३३६ यदि इयंत उच्छ्वासाः ३६८५ $\frac{1}{3}$ तदा एकक्षुद्रभवस्य किमिति त्रैराशिके कृते लब्धैकक्षुद्रभवकालः उ $\frac{1}{18}$, पुनरियतः कालस्य ३६८५ $\frac{1}{3}$ इयंतो भवाः ६६३३६ तदा इयतः कालस्य उ $\frac{1}{18}$ कति भवाः ? इति संपातेन लब्धभवः १, एवमेकभवस्य तत्कालस्य समस्तभवानां तत्कालानां च क्रमशः प्रमाणराशिकरणात् चतुर्धा त्रैराशिकं सर्वं यथासंभवं ज्ञातव्यं ॥ १२५ ॥ अथ समुद्घातकेवलिनः अपर्याप्तत्वसंभवमाह--

म० प्र० --पृथ्वीदकाग्निमारुतसाधारणानां स्थूलानां सूक्ष्माणां च दशानां, प्रत्येकस्य च, एतेषामेकादशाना लब्ध्यपर्याप्तकानां एकैकस्य अव्यवहिताः क्षुद्रभवाः उत्कर्षेण द्वादशोत्तरषट्सहस्राणि। ६०१२। एकेंद्रियभवेषु एकादशसु भक्तेषु लब्धाः पृथ्वीकायिकाद्येकैकलब्ध्यपर्याप्तकभवा एतावंतो भवंति एतेभ्योऽधिकानि न भवंतीत्यर्थः॥ १२५॥

सं० च०--पृथ्वी १ अप २ तेज ३ वायु ४ साधारण वनस्पति ५ इनि पांचोंके सूक्ष्म वादरकरि दश भेद भये अर एक प्रत्येक वनस्पती इनि ग्यारह लब्धि अपर्याप्तकनिविषैं एक एक भेदविषैं वारह बिंदी छह इनि अंकनिकरि छह हजार वारह ६०१२ निरंतर क्षुद्रभव जानने। पूर्वै निरंतर क्षुद्रभव एकेंद्रियके छयासठिहजार एकसौ वत्तीस कहे तिनिकौं ग्यारहका भाग दीए एक एक के छहहजार वारह क्षुद्र भवनिका प्रमाण आवै है। ऐसैं लब्धि अपर्याप्तके निरंतर

क्षुद्रभव कहे तहां तिनकी संख्या वा कालका निर्णय करनेकौं च्यारि प्रकार अपवर्तन त्रैराशिक करि दिखावे हैं सो त्रैराशिकका स्वरूप ग्रंथका पीठबंधविषैं कह्या था सो जानना। सो इहां दिखाइये है जो एक क्षुद्रभवका काल सांसका अठारवां भाग होइ तो छ्यासठि हजार तीनसौ छत्तीस निरंतर क्षुद्रभवनिका कितना काल होइ तहां प्रमाणराशि १ फलराशि एकका अठारहवां भाग $\frac{1}{18}$ अर इच्छा राशि छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस ६६३३६ तहां फलकौं इच्छाकरि गुणैं प्रमाणका भाग दिये लब्ध राशिविषैं छत्तीससै पिच्यासी अर एक त्रिभाग ३६८५$\frac{1}{3}$ इतना उस्वास भए ऐसैं सब क्षुद्रभवनिका कालका परिमाण भया इहां इतने प्रमाण अंतर्मुहूर्त जानना। जातैं ऐसा वचन है। उक्तं च—

आढ्यानलसानुपहतमनुजोच्छ्वासैस्त्रिसप्तसप्तात्रिमितैः।
आहुर्मुहूर्तमंतर्मुहूर्तमष्टाष्टवर्जितैस्त्रिभागयुतैः॥

याका अर्थ—सुखी धनवान आलस रहित नीरोगी मनुष्यका सैतीससै तेहत्तरि ३७७३ उस्वासनिका एक मुहूर्त तहां अठ्यासी उस्वास अर एक उस्वासका तीसरा भाग हीन घटाए सर्व क्षुद्रभवनिका काल अंतर्मुहूर्त होइ। बहुरि उक्तंच—

आयुरंतर्मुहूर्तः स्यादेषोस्याष्टादशांशकः।
उच्छ्वासस्य जघन्यं च नृतिरश्चां लब्ध्यपूर्णके॥

याका अर्थ—लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य तिर्यंचनिका आयु एक उस्वासका अठारहवां भाग प्रमाण अंतर्मुहूर्तमात्र है सो ऐसैं कह्या एक सासका अठारहवां भाग कालका एक क्षुद्रभव होइ तौ छत्तीससै पिच्यासी अर एकका त्रिभागप्रमाण उसासनिका कितना क्षुद्रभव होइ इहां प्रमाण राशि $\frac{1}{18}$ फलराशि १ इच्छाराशि ३६८५$\frac{1}{3}$ यथोक्त करतैं लब्धि राशि ६६३३६ छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस क्षुद्रभवनिका परिमाण आया बहुरि जो छ्या-

सठि हजार तीनसै छत्तीस क्षुद्रभवनिका काल छत्तीससै पिच्यासी अर एकका त्रिभाग इतना उस्वास होइ तौ एक क्षुद्रभवका कितना काल होइ। इहां प्रमाणराशि ६६३३६ फलराशि ३६८५ $\frac{1}{3}$ इच्छाराशि १ यथोक्तकरतां लब्धराशि एक सांसका अठारहवां भाग $\frac{1}{18}$ एक क्षुद्रभवका काल भया। बहुरि छत्तीससै पिच्यामी अर एकका त्रिभाग ३६८५ $\frac{1}{3}$ इतना सासांका छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस क्षुद्रभव होंइ तौ सांसका अठारहवां भागका कितना क्षुद्रभव होइ इहां प्रमाण राशि ३६८५ $\frac{1}{3}$ फलराशि ६६३३६ इच्छाराशि एकका अठारहवां भाग $\frac{1}{18}$ यथोक्तकरतां लब्धराशि १ क्षुद्रभव हूआ। इहां सर्व फलराशिकौं इच्छा राशिकरि गुणना, प्रमाण राशिका भाग देना तब लब्धराशिका प्रमाण हो है। ऐसैं एक क्षुद्रभव अर एक क्षुद्रभवका काल अर समस्त क्षुद्रभव समस्त क्षुद्रभवका काल इनिकौं क्रमतैं प्रमाणराशि करनेतैं च्यारि प्रकार त्रैराशिक किया है और भी जहां त्रैराशिकका वर्णन होइ तहां ऐसैं ही यथासंभव जानना ॥ १२५ ॥ आगैं समुद्घातकेवलीके अपर्याप्तपनैका संभव कहै हैं—

पज्जत्तसरीरस्स य पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स ।
जोगिस्स अपुण्णत्तं अपुण्णजोगोत्ति णिद्दिट्ठं ॥ १२६ ॥

पर्याप्तशरीरस्य च पर्याप्त्युदयस्य काययोगस्य ।
योगिनोऽपूर्णत्वमपूर्णयोगः इति निर्दिष्टं ॥ १२६ ॥

जी० प्र०—परिपूर्णपरमौदारिकशरीरस्य पर्याप्तनामकर्मोदययुतस्य काययोगयुक्तस्य सयोगकेवलिभट्टारकस्य आरोहणावरोहणकपाटद्वये सद्भूते कथितमपूर्णत्वं अपूर्णकाययोग इति। ततः कारणादौदारिकमिश्रकाययोगाक्रांतः सयोगकेवलिभट्टारकः कपाटयुगलकाले अपर्याप्तनां भजतीति प्रवचने निर्दिष्ट-कथितं ॥ १२६ ॥ अथ लब्ध्यपर्याप्तकादीनां गुणस्थानेषु संभवासंभवप्रकारमाह—

मं० प्र०—पर्याप्तशरीरस्य पर्याप्तनामकर्मोदयवतः काययोगिनः-योगिनः-सयोगकेवलिनः समुद्घातकाले कवाटयुगले प्रतरयुगले लोकपूरणे च पंचसु

समयेषु अपूर्णत्वं-अपर्याप्तत्वं कथं संभवति ? इति प्रश्ने, अपूर्णयोग एव औदारिकमिश्रकार्माणयोगसद्भाव एव तस्यं उपचारतः अपर्याप्तत्वं न मुख्यतः तत एव निर्वृत्यपर्याप्तकगुणस्थानानि प्रथमाद्वितीयचतुर्थषष्ठानि चत्वार्येवेति परमागमे नियमवचनादित्युत्तरं पूर्वाचार्यैर्निर्दिष्टं ॥ १२६ ॥

सं० च०—संपूर्ण परम औदारिक शरीर जाकैं पाइए बहुरि पर्याप्ति नामा नामकर्मका उदयकरि संयुक्त बहुरि काय योगका धारी ऐसा जो सयोगकेवली भट्टारक ताके समुद्धात करतैं कपाटका करिवा विषैं अर संहार विषैं अपूर्ण काययोग कह्या है जातैं तहां संज्ञी पर्याप्तवत् पर्याप्तिनिका आरंभकरि क्रमतैं निष्ठापन करै हैं तातैं औदारिक मिश्र काय योगका धारी केवली भगवान सो कपाट युगलका कालविषैं अपर्याप्तपनाकौं भजै है ऐसा सिद्धांतविषैं कह्या है ॥ १२६ ॥ आगैं लब्धि अपर्याप्तकादि जीवनिकैं गुणस्थाननिका संभवने असंभवनेका विशेष कहै हैं—

लद्धिअपुण्णं मिच्छे तत्थवि विदिये चउत्थछट्ठे य ।
णिव्वत्तिअपज्जत्ती तत्थवि सेसेसु पज्जत्ती ॥ १२७ ॥

लब्ध्यपूर्णं मिथ्यात्वे तत्रापि द्वितीये चतुर्थषष्ठे च ।
निर्वृत्त्यपर्याप्तिस्तत्रापि शेषेषु पर्याप्तिः ॥ १२७ ॥

जी० प्र०—लब्ध्यपर्याप्तकजीवो मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव संभवति नान्यगुणस्थाने सासादनत्वादिविशेषगुणानां तस्याभावात् । पुनः तत्रापि—मिथ्यादृष्टिगुणस्थानेऽपि द्वितीये-सासादनगुणस्थाने, चतुर्थे—असंयतगुणस्थाने, षष्ठे-प्रमत्तगुणस्थाने चेति चतुर्षु गुणस्थानेषु निर्वृत्त्यपर्याप्तकजीवः संभवति, नान्यगुणस्थानेषु । मिथ्यादृष्ट्यसंयतगुणस्थानमृताश्चतुर्गतिषु, सासादनगुणस्थानमृता नरकवर्जितगतिषु चोत्पद्यंते, ततस्तद्गुणस्थानत्रये तदुत्पत्तिप्रथमसमयादारभ्य समयोनौदारिकवैक्रियिकशरीरपर्याप्तिकालपर्यंतं तथा प्रमत्तसंयतस्य समयोनाहारकशरीरपर्याप्तिकालपर्यंतं च निर्वृत्त्यपर्याप्तकत्वसंभवात् । पुनस्तत्रापि—उक्तगुणस्थानचतुष्टयेऽपि शेषेषु मिश्रदेशसंयताप्रमत्तादिसयोगकेवलिपर्यंतगुणस्थानेषु च पर्याप्तकजीवः संभवति तत्कारणस्य पर्याप्तिनामकर्मोदयस्य तत्र सर्वत्र संभवात् ॥१२७॥ अथापर्याप्तकाले सासादनासंयतयोर्नियमेन अभावस्थानान्याह—

मं० प्र०---लब्ध्यपर्याप्तकः मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एवं नोत्तरत्र । सासादनस्य तत्रोत्पत्त्यभावात् । सम्यग्मिथ्यात्वोदयस्य दर्शनमोहोपशमस्य देशसंयमस्य सकलसंयमस्य च लब्ध्यपर्याप्तेकेष्वसंभवात् । निर्वृत्यपर्याप्तः तत्र मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने द्वितीयसासादने चतुर्थे असयते षष्ठेऽपि च प्रमत्ते एतेष्वेव भवति नोत्तरगुणस्थानेषु सम्यग्मिथ्यात्वोदयस्य देशसंयमादेश्च निर्वृत्यपर्याप्तकाले असंभवात् । प्रमत्तसंयमस्य तत्र कथ संभव इति चेदाहारकशरीरप्रारभसमयादारभ्य तन्निर्वृत्यपर्याप्तिपर्याप्त्योः प्रमत्तसंयतगुणस्थाने एव संभव इति परमागमे प्रसिद्धत्वात् । ऋद्धिप्राप्तानामप्रमत्ताद्युपरितनगुणस्थानेषु ऋद्धिप्रयोगासंभवात् । तत्र उक्तगुणस्थानेषु शेषेष्वप्यनुक्तगुणस्थानेषु सर्वेष्वपि पर्याप्ति. सभवति पर्याप्तिनामकर्मणः सर्वत्रोदयसंभवात् ॥ १२७ ॥

सं० च०--लब्धि अपर्याप्तक जीव मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही विषैं पाइए है और गुणस्थान वाकैं संभवै नाही जातैं सासादनपना आदि विशेष गुणनिका ताकैं अभाव है। बहुरि तींहि पहिला मिथ्यादृष्टिविषैं दूसरा सासादन विषैं चौथा असंयतविषैं छठा प्रमत्तविषैं इनि च्यारौ गुणस्थाननिविषैं निवृत्ति अपर्याप्तक पाइए है तहां पहला वा चौथासूं तौ मरिकरि जीव चारौं गतिनिविषैं उपजै है अर सासादनसौं मरिकरि नरक विना तीनि गतिविषै उपजै है सो इनि तीनों गुणस्थाननिविषैं जन्मका प्रथमसमयतैं लगाइ यावत् औदारिक वैक्रियिक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न होइ तावत् एक समय घाटि शरीर पर्याप्तिका काल पर्यंत निवृत्ति अपर्याप्तक है। बहुरि प्रमत्त गुणस्थानविषै यावत् आहारक शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होइ तावत् एक समय घाटि आहारक शरीर पर्याप्ति काल पर्यंत निवृत्ति अपर्याप्तक है। बहुरि इन कहे च्यारौं गुणस्थाननिविषैं अर अवशेष रहे मिश्रादिक सयोगी पर्यंत नव गुणस्थाननिविषैं पर्याप्तक जीव पाइए है जातैं ताका कारणभूत पर्याप्ति नामा नामकर्मका उदय सर्वत्र संभवै है। भावार्थ--लब्धि अपर्याप्तकनिकै गुणस्थान एक पहिला निवृत्ति अपर्याप्तकनिकै गुण स्थान च्यारि पहिला दूसरा चौथा छट्ठा पर्याप्तकनिकैं गुणस्थान सर्वसयोगी पर्यंत जानने ॥ १२६॥ आगैं अपर्याप्तकालविषैं सासादन अर असंयत गुणस्थान जहां नियमकरि न संभवै सो कहै हैं--

हेट्ठिमछप्पुढवीणं जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं ।
पुण्णिदरे णहि सम्मो ण सासणो णारयापुण्णे ॥ १२८ ॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां ज्योतिष्कवानभवनसर्वस्त्रीणां ।
पूर्णेतरस्मिन् नहि सम्यक्त्वं न सासनो नारकापूर्णे ॥ १२८ ॥

जी० प्र०—नरकगतौ रत्नप्रभारहितशेषषड्भूमिनारकाणां ज्योतिर्व्यंतरभावनदेवानां सर्वतिर्यग्मनुष्यदेवस्त्रीणां च निर्वृत्त्यपर्याप्तके सम्यग्दृष्टिर्नहि नास्त्येव, तदा तद्ग्रहणयोग्यकालाभावात् सम्यक्त्वेन सह मृतस्य तिर्यग्मनुष्यस्य तत्रोत्पत्त्यभावाच्च। मरणे विराधितसम्यक्त्वमिथ्यादृष्टिसासादनानां यथासंभवं तत्रोत्पत्तौ विरोधाभावात्। सप्तपृथ्वीनारकनिर्वृत्त्यपर्याप्तके सासादनसम्यग्दृष्टिर्नास्ति तस्य नरके गमनाभावात्। तत्रोत्पन्नस्य तु तस्मिन् काले सासादनत्वसंभवाभावाच्च ॥ १२८ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु पर्याप्तिप्ररूपणानामतृतीयोऽधिकारः ॥ ३ ॥

मं० प्र०—अधस्तनीषु शर्कराप्रभादिषु षट्सु पृथ्वीषु नारकेषु ज्योतिष्कवानभावनेषु सर्वस्त्रीषु च गतित्रयवर्तिनीषु पूर्णेतरस्मिन् निर्वृत्त्यपर्याप्तके सम्यग्दृष्टिर्न संभवति प्राग्गृहीतसम्यक्त्वस्य तत्रोत्पत्त्यभावात्। निर्वृत्त्यपर्याप्तकाले तत्र सम्यक्त्वग्रहणाभावाच्च। पर्याप्तकस्यैव सम्यक्त्वग्रहणयोग्यत्वात्। नारकापर्याप्तके सासादनो नास्त्येव। सासादनस्य नरकगमनाभावात्। बद्धायुष. औपशमिकसम्यग्दृष्टेरपि सम्यक्त्वेन सह तत्र गमनाभावात् ॥ १२८ ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ पर्याप्तिप्ररूपणा नाम तृतीयोऽधिकारः ॥ ३ ॥

सं० चं०—नरक गतिविषैं रत्नप्रभा विना छह पृथ्वी संबंधी नारकीनिकैं अर ज्योतिषी व्यंतर भवन वासी देवनिके अर सर्व ही स्त्री देवांगना मनुष्यणी तिर्यंचनी तिनिकैं निर्वृत्ति अपर्याप्त दशाविषैं सम्यक्त्व न पाइए जातैं तींहि दशाविषैं सम्यक्त्वका ग्रहणेंकौं योग्य काल नाहीं अर सम्यक्त्व सहित मरै तिर्यंच मनुष्य सो तहां उपजै नाहीं बहुरि सम्यक्त्वतैं भ्रष्ट होइ जो जीव मिथ्यादृष्टी वा सासादन होइ तो तिनिका यथासंभव तहां नरकादिविषैं उपजनेका विरोध है नाहीं बहुरि सर्व ही सातौं पृथ्वीके नारकी तिनिकैं निर्वृत्ति अपर्याप्त दशाविषैं सासादन गुणस्थान न पाइए ऐसा नियम जानना जातैं नरकविषैं उपज्या जीवके तिसकालविषैं सासादनपनेका अभाव है ॥ १२८ ॥

इति श्रीआचार्य नेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रहग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि इस सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा भाषाटीका विषैं जीवकांड विषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं पर्याप्तिप्ररूपणा नामा तीसरा अधिकार पूर्ण भया ॥ ३ ॥

अथ प्राणप्ररूपणाधिकारः ॥ ४ ॥

त्रिषष्टिं प्रकृतीर्हत्वा लब्ध्वार्हंत्यं जगन्नुतं ।
शास्ति भव्यान् द्विधा धर्मं यस्तं वंदेऽभिनंदनं ॥ ४ ॥

अथ प्राणप्ररूपणां निरूपयति---

वाहिरपाणेहिं जहा तहेव अब्भंतरेहिं पाणेहिं ।
पाणंति जेहिं जीवा पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा ॥१२९॥

वाह्यप्राणैर्यथा तथैवाभ्यंतरैः प्राणैः ।
प्राणंति यैर्जीवाः प्राणास्ते भवंति निर्दिष्टाः ॥ १२९ ॥

जी० प्र०----यैरभ्यंतरैर्भावप्राणैः जीवाः जीवंति--जीवद्व्यवहारयोग्या भवंति कैरिव ? वाह्यैर्द्रव्यप्राणैरिव यथाशब्दस्य इवार्थवाचकत्वात् ते आत्मनो धर्माः प्राणाः भवतीति निर्दिष्टाः । इति निर्वचनेनैव प्राणशब्दार्थस्य ज्ञातुं शक्यत्वात् तल्लक्षणं पृथग् नोक्तं । पौद्गलिकद्रव्येंद्रियादिव्यापाररूपाः द्रव्यप्राणाः । तन्निमित्तभूतज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमादिविजृंभितचेतनव्यापाररूपा भावप्राणाः । अत्र पर्याप्तिप्राणयोः को भेदः ? इति चेदुच्यते--पंचेंद्रियावरणक्षयोपशमजाः पंचेंद्रियप्राणाः तदुत्पन्नार्थग्रहणसमर्थत्वेनोत्पन्नप्रथमसमयादारभ्य अंतर्मुहूर्तस्योपरि जायमाना इंद्रियपर्याप्तिः । मनोज्ञानावरणक्षयोपशमसन्निधानविजृंभितमनोवर्गणाविरचितद्रव्यमनःसमुत्पन्ना जीवशक्तिः सानुभूतार्थग्रहणसमुत्पन्नांतर्मुहूर्तावसाननिष्पन्ना मनःपर्याप्तिः । अनुभूतार्थग्रहणं तद्योग्यता च मनःप्राणः । नोकर्मशरीरोपचीयमानशक्तिनिष्पत्तिः जीवस्य समुचितकालायातभाषावर्गणाविशेषपरिणतिविधायिभाषापर्याप्तिः । स्वरनामकर्मोदयसहकारिभाषापर्याप्त्युत्तरकालविशिष्टोपयोगप्रयोजनात्मको वाक्प्राणः । कायवर्गणावष्टंभजनितात्मप्रदेशप्रचयशक्तिः कायवलप्राणः । नोकर्मपुद्गलान् खलरसभागपरिणतान् अस्थ्यादिरुधिरादिस्थिरास्थिरावयवरूपेण परिणमयितुं शक्तिनिष्पत्तिर्जीवस्य शरीरपर्याप्तिः । उच्छ्वासनिःश्वासनिःसरणशक्तिनिष्पत्तिरानपानपर्याप्तिः । तत्परिणतिरेव तत्प्राणाः, इति भेदो ज्ञातव्यः ॥ १२९ ॥ अथ प्राणभेदानाह--

मं० प्र०---

तुर्यं तीर्थकृतां धुर्यं हितसद्देशनाकृतं ।
वर्यं लोकत्रयेशानामभिनंदनमाश्रये ॥ ४ ॥

अथ प्राणप्ररूपणार्थं शास्त्रकारो गाथापंचकमाह--

यथा वाह्यप्राणैः-अभ्यंतरप्राणकार्यैर्नयनोन्मीलनादींद्रियव्यापारकायचेष्टावाग्व्यापारोच्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिरूपैर्जीवाः प्राणंति-जीवंति तथा अभ्यंतरैः-इंद्रियावरणक्षयोपशमादिभिर्यैर्जीवाः जीवंति जीवद्व्यवहारयोग्या भवंति ते प्राणा इति पूर्वाचार्यैर्निर्दिष्टा भवति तथैवेत्येवकारः जीवद्व्यवहारसाम्यसूचनार्थः ॥ १२९ ॥

सं० च०— अभिनंदन वंदौं सदा त्रेसठि प्रकृति खिपाय।
जगतनमतपद पाय जिन धर्म कह्यो सुखदाय ॥ ४ ॥

अथ प्राण प्ररूपणाकों निरूपै हैं—

जिनि अभ्यंतर भाव प्राणनिकरि जीव हैं ते प्राणंति कहिए जीवै हैं जीवनके व्यवहार योग्य हो हैं कौंनवत् जैसैं वाह्य द्रव्य प्राणनिकरि जीव जीवै है जातैं यथा शब्द दृष्टांतवाचक हैं तातैं जे आत्माके भाव हैं तेई प्राण हैं ऐसा कह्या है। ऐसे कहनेकरि ही प्राण शब्दका अर्थका जाननेका समर्थपणा हो है तातैं तिस प्राणका लक्षण जुदा न कह्या है। तहां पुद्गल द्रव्यकरि निपजे जे द्रव्य इंद्रियादिक तिनके प्रवर्तन रूप तो द्रव्य प्राण हैं। बहुरि तिनिका कारणभूत ज्ञानावरण अर वीर्यांतरायके क्षयोपशमादिकतैं प्रगट भए चैतन्य उपयोगके प्रवर्तनरूप भाव प्राण हैं। इहां प्रश्न-जो पर्याप्ति अर प्राणविषैं भेद कहा ? ताका समाधान-पंच इंद्रियनिका आवरणका क्षयोपशमतैं निपजे ऐसे पांच इंद्रिय प्राण हैं। बहुरि तिस क्षयोपशमतैं भया जो पदार्थनिके ग्रहणका समर्थपना ताकरि जन्मका प्रथमसमयतैं लगाइ अंतर्मुहूर्त ऊपरि निपजै ऐसी इंद्रिय पर्याप्ति है। इहां कारण कार्यका विशेष है। बहुरि मनसंबंधी ज्ञानावरणका क्षयोपशमका निकटतैं प्रगट भई ऐसी मनोवर्गणाकरि निपज्या द्रव्यमन करि निपजी जो जीवकी शक्ति सो अनुभया पदार्थको ग्रहणकरि उपजी सो अंतर्मुहूर्त मनःपर्याप्तिकालके अंति संपूर्ण भई ऐसी मनः पर्याप्ति है बहुरि अनुभया पदार्थका ग्रहणकरना अर अनुभया पदार्थका ग्रहण करनेका योग्यपनाका होना सो मनः प्राण है। बहुरि नोकर्मरूप शरीरका संचयरूप शक्तिकी जो संपूर्णता सो जीवके योग्य कालविषैं प्राप्त भई जो भाषा वर्गणा तिनिकौं विशेष परिणमनकी करणहारी सो भाषा पर्याप्ति-

है। बहुरि स्वर नामा नामकर्मका उदय है सहकारी जाका ऐसी भाषा पर्याप्ति पूर्ण भएं पीछैं वचनका विशेष रूप उपयोगादिकका परिणमावना तींहि स्वरूप वचन प्राण है। बहुरि कायवर्गणाका अवलंबन करि निवजी जो आत्माके प्रदेशनिका समुचय रूप होनेकी शक्ति सो कायबल प्राण है। बहुरि खल भाग रसभाग रूप परिणए नोकर्मरूप पुद्गलनिकों हाड आदि स्थिर रूप अर रुधिर आदि अस्थिर रूप अवयवकरि परिणवामनेकी शक्तिका संपूर्ण होना सो जीवके शरीरपर्याप्ति है। बहुरि उस्वास निस्वासके निकसनेकी शक्तिका निपजना सो आनपान पर्याप्ति है। बहुरि सासोस्वासका परिणमन सो सासोस्वास प्राण है ऐसैं कारण कार्यादिका विशेष करि पर्याप्ति अर प्राणनिविषैं विशेष जानना ॥ १२९ ॥ आगैं प्राणके भेदनिकों कहे हैं—

पंचवि इंदियपाणा मणवचकायेसु तिण्णि बलपाणा।
आणापाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥१३०॥

पंचापि इंद्रियप्राणाः मनोवचःकायेषु त्रयो बलप्राणाः।
आनपानप्राणा आयुष्कप्राणेन भवंति दश प्राणाः ॥ १३० ॥

जी० प्र०—स्पर्शनादयः पंचेंद्रियप्राणाः मनोबलप्राणः वचोबलप्राणः कायबलप्राणः आनापानप्राण आयुःप्राणश्चेति दशैव प्राणा भवंति नाधिकाः ॥ १३० ॥ अथ द्रव्यभावप्राणानामुत्पत्तिसामग्रीमाह—

मं० प्र०—स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रनामेंद्रियप्राणाः पंच। मनोवचःकायेषु बलप्राणास्त्रयः। आनपानप्राण एकः। आयुःप्राणेनैकेन सह मिलिताः सर्वेऽपि प्राणा दशैव नोनाधिका भवंति। तत्र एवकारो द्रव्येंद्रियाणां अन्नपानादीनां च परमार्थतः प्राणत्वव्यवच्छेदसूचनार्थः ॥ १३० ॥

सं० च०—पांच इंद्रिय प्राण हैं स्पर्शन १ रसन २ घ्राण ३ चक्षु ४ श्रोत्र ५ बहुरि तीन बलप्राण हैं मनोबल १ वचनबल २ कायबल ३ बहुरि एक आनपान कहिए सासोस्वास प्राण है। बहुरि एक आयु प्राण है। ऐसैं प्राण दश हैं अधिक नाहीं है ॥ १३० ॥ आगैं तिनि द्रव्यभाव प्राणनिका उपजनेकी सामग्रीकौं कहैं हैं—

वीरियजुदमदिखउवसमुत्था णोइंदियेंदियेसु बला ।
देहुदये कायाणा वचीवला आउ आउदये ॥ १३१ ॥

वीर्ययुतमतिक्षयोपशमोत्था नोइंद्रियेंद्रियेषु वलाः ।
देहोदये कायानौ वचोवला आयुः आयुरुदये ॥ १३१ ॥

जी० प्र०---वीर्यांतरायक्षयोपशमयुतमतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनिताः नोइंद्रियेंद्रियेषु वलाः स्वार्थग्रहणशक्तिरूपलब्धिनामभावेंद्रियस्वभावाः स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्रेंद्रियप्राणनोइंद्रियजमनोवलप्राणाः षट् भवंति । देहोदये-शरीरनामकर्मोदये सति कायचेष्टाजननशक्तिरूपः कायवलप्राणः। उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयसहितदेहोदयेसति उच्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिकारणशक्तिरूपः आनपानप्राणश्च भवति। स्वरनामकर्मोदये सति वचनव्यापारकरणशक्तिविशेषरूपो वचोवलप्राणो भवति। आयुःकर्मोदये सति नारकादिपर्यायरूपभवधारणशक्तिरूपः आयुःप्राणो भवति। एवं दशप्राणानामुत्पत्तिसामग्री सूचिता ॥ १३१ ॥ अथ प्राणानां स्वामिभेदमाह--

म० प्र०-- वीर्यांतरायक्षयोपशमयुतमतिज्ञानावरणक्षयोपशमोत्था नोइंद्रियेंद्रियेषु वलाः स्वार्थग्रहणशक्तिरूपलब्धिनामभावेंद्रियस्वभावाः इंद्रियमनोवलप्राणाः षट् ६ । देहोदये-शरीरनामकर्मोदये कायचेष्टाजननशक्तिरूपः कायवलप्राणः ७ । उच्छ्वासनिश्वासनामकर्मोदयसहितदेहोदये सति उच्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिकारणशक्तिरूप आनपानप्राणः ८ । स्वरनामकर्मोदयसहितदेहोदये सति वचनव्यापारकारणशक्तिविशेषरूपोवचोवलप्राणः ९ । आयुःकर्मोदये सति नारकादिपर्यायरूपभवधारणशक्तिरूप. आयु प्राणः १० एव दश प्राणाः १० उक्तकारणस्वरूपा भवति। नन्वेव पर्याप्तिप्राणयोः को भेदः, द्वयोरपि शक्तिरूपत्वाविशेषात् [2] इति चेत्तन्न आहारभाषामनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधाना खलरसभागशरीरावयवरूपद्रव्येंद्रियरूपोच्छ्वासनिश्वासरूपभाषारूपद्रव्यमनोरूपपरिणमनकारणात्मकशक्तिनिष्पत्तयः पर्याप्तयः, स्वार्थग्रहणव्यापारकायवाग्व्यापारोच्छ्वासनिश्वासप्रवृत्तिभवधारणरूपजीवद्व्यवहारकारणात्मशक्तिविशेषाः प्राणा इति भिन्नलक्षणलक्षितत्वात् पर्याप्तिप्राणयोर्भेदप्रसिद्धेः ॥ १३१ ॥

सं० चं०--स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्रकरि निपजे पांच इंद्रिय प्राण अर नोइंद्रियकरि निपज्या एक मनोबलप्राण ए छहो तो मतिज्ञानावरण अर वीर्यांतराय तिनिके क्षयोपशमतैं हो हैं । वहुरि शरीर नामा नामकर्मके उदय होतैं कायबल अर सासोस्वास प्राण हो है। वहुरि शरीर नामा नामकर्मका उदय होतैं अर स्वरनामाकर्मका उदय होतैं वचनवल प्राण हो है। वहुरि आयु कर्मका उदय होतैं आयु प्राण हो है ऐसैं प्राणनिके उपजनेकी सामग्री कही ॥ १३१ ॥ आगैं ए प्राण कौन कौनके पाइए सो भेद कहै हैं--

इंदियकायाऊणि य पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा ।
वीइंदियादिपुण्णे वचीमणो सण्णिपुण्णेव ॥ १३२ ॥

इंद्रियकायायूंषि च पूर्णापूर्णेषु पूर्णके आनः ।
द्वींद्रियादिपूर्णे वचो मनः संज्ञिपूर्णे एव ॥ १३२ ॥

जी० प्र०---इंद्रियकायायूंषीति त्रयः प्राणाः पर्याप्तेष्वपर्याप्तेषु च साधारणा भवंति । उच्छ्वासनिश्वासप्राणः पर्याप्तकेष्वेव भवति । तत्कारणोच्छ्वासनामकर्मोदयस्य पर्याप्तकाल एव संभवात् । द्वींद्रियादिषु पंचेंद्रियावसानेषु पर्याप्तेष्वेव वाग्बलप्राणः संभवति तद्धेतुस्वरनामकर्मोदयस्यान्यत्र संभवाभावात् । मनोबलप्राणः पर्याप्तसंज्ञिपंचेंद्रियेष्वेव संभवति तन्निबंधनवीर्यांतरायनोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्यान्यत्रासंभवात् ॥ १३२ ॥ अथ प्राणानामेकेंद्रियादिजीवेषु संख्यानियममवधारयति---

मं० प्र०--इंद्रियकायबलायुःप्राणा. त्र्यादयः सप्तपर्यंताः एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियेषु जीवेषु पूर्णेष्वपूर्णेषु च साधारणाः संभवंति । आनपानप्राणः पुनः पूर्णकेष्वेव संभवति नापर्याप्तकेषु । वचोबलप्राणः द्वींद्रियादिष्वेव पर्याप्तकेष्वेव नैकेंद्रियेषु नाप्यपर्याप्तकेषु । मनोबलप्राणः संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तकेष्वेव नापर्याप्तकेषु पर्याप्तेष्वपि न विकलेंद्रियेषु । पर्याप्तपंचेंद्रियेष्वपि नासंज्ञिपंचेंद्रियेष्विति नियमार्थ एवकारः ॥ १३२ ॥

सं० च०--इंद्रिय प्राण कायबल प्राण आयु प्राण ए तो तीन प्राण पर्याप्त वा अपर्याप्त दोऊ दशाविषैं समान पाइए है । बहुरि सासोस्वास प्राण पर्याप्त दशाविषैं ही पाइए जातैं ताका कारण उच्छ्वास निश्वास नामा नामकर्मका उदय पर्याप्त कालविषैं ही संभवै है । बहुरि वचनबल प्राण वेइंद्रियादिक पंचेंद्रिय पर्यंत जीवनिकै पर्याप्त दशाही विषै पाइये है । जातैं ताका कारणभूत स्वरनामा नामकर्मका उदय अन्यत्र न संभवै है । बहुरि मनबल प्राण सैनी पंचेंद्रियके पर्याप्त दशाविषै ही पाइए है जातैं ताका कारण वीर्यांतराय अर मन आवरणका क्षयोपशम सो अन्यत्र न संभवै है ॥ १३२ ॥ आगैं एकेंद्रियादिक जीवांके केते केते प्राण पाइये सो कहै हैं--

दस सण्णीणं पाणा सेसेगूणंतिमस्स वेऊणा ।

पज्जत्तेसिदरेसु य सत्त दुगे सेसगेगूणा ॥ १३२ ॥

दश संज्ञिनां प्राणाः शेषैकोनमंतिमस्य द्व्यूनाः ।
पर्याप्तेष्वितरेषु च सप्त द्विके शेषकैकोनाः ॥ १३२ ॥

जी० प्र०——समनंतरोक्तस्वामिनियमेनायं विभागो लभ्यते तद्यथा-संज्ञिपंचेंद्रियेषु पर्याप्तेषु दश प्राणा भवंति । शेषेषु असंज्ञादिषु पश्चादानुपूर्व्या द्वींद्रियावसानेषु पर्याप्तेषु एकैकोनाः प्राणाः भवंति । तथाहि--असंज्ञिषु मनोरहिता नव । चतुरिंद्रियेषु मनःश्रोत्रेंद्रियावशेषा अष्टौ । त्रींद्रियेषु मनःश्रोत्रचक्षुरिंद्रियावशेषाः सप्त । द्वींद्रियेषु मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणावशेषाः षट् भवंति । अंतिमे एकेंद्रिये द्वींद्रियोक्तप्राणेषु द्वौ ऊनाविति मनःश्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनवाग्बलमाणावशेषाश्चत्वारः प्राणा भवति तथा इतरेषु अपर्याप्तजीवेषु तु संज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रिययोः प्रत्येकं प्राणाः सप्तैव भवति । पर्याप्तकालसंभविनो उच्छ्वासवाग्मनोबलप्राणानामत्रासंभवात् । शेषेषु चतुरिंद्रियाद्येकेंद्रियावसानेषु अपर्याप्तेषु यथासंख्यं श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनेंद्रियावशेषाः षट्पंचचतुस्त्रिसंख्याः प्राणा भवंति ॥ १३२ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचिताया गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु प्राणप्ररूपणानाम चतुर्थोऽधिकारः ॥४॥

मं० प्र०——संज्ञिपंचेंद्रियाणामेव दश प्राणा भवंति । शेषेष्वसंज्ञिपंचेंद्रियचतुस्त्रिद्व्येकेंद्रियेषु पर्याप्तेषु एकैकोनाः मनोबलश्रोत्रचक्षुर्घ्राणहीनाः प्राणा भवंति । अंतिमस्य द्व्यूनाः रसनवचोबलहीना प्राणाः क्रमेण असंख्यादिषु एकेंद्रियपर्यंतेषु नवाष्टसप्तषट्चत्वारः । इतरेष्वपर्याप्तकेषु द्वयोः संज्ञ्यसंज्ञिपंचेंद्रिययोः सप्तैव उच्छ्वासनिश्वासवचोमनोबलरहिताः शेषाः पंचेंद्रियकायबलायु प्राणाः । शेषेषु चतुस्त्रिद्व्येकेंद्रियेषु एकैकोनाः श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनहीनाः क्रमेण षट्पंचचतुस्त्रिप्राणाः भवंति ॥ १३२ ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसार पंचसंग्रहवृत्तौ प्राणप्ररूपणानाम चतुर्थोऽधिकारः ॥ ४ ॥

सं० च०——पहिलैं कह्या जो प्राणनिके स्वामीनिका नियम ताहीकरि ऐसैं भेद पाइए है सो कहिए है-सैनी पंचेंद्रीपर्याप्तके तौ दश प्राण सर्व ही पाइए। पीछैं अवशेष असंज्ञी आदि द्वींद्रियपर्यंत पर्याप्त जीवनिके एक एक घाटि प्राण पाइए तहां असैनी पंचेंद्रियके मन विना नव प्राण पाइए। चौइंद्रियके मन अर कर्ण इंद्रिय विना आठ प्राण पाइये। तेइंद्रियके मन कर्ण नेत्र इंद्रियविना सात प्राण पाइए। द्वींद्रियके मन कर्ण नेत्र नासिका विना छह प्राण पाइये। बहुरि अंतिम एकेंद्रियविषैं द्वींद्रियके प्राणनितैं दोय घटावना सो मन कर्ण नेत्र नासिका

अर रसना इंद्रिय अर वचनवल इनि विना एकेंद्रियके च्यारि ही प्राण पाइए है। ऐसैं ए प्राण पर्याप्तदशाकी अपेक्षा कहे। अब इतर जो अपर्याप्त दशा ताकी अपेक्षा कहिए है-सैनी वा असैनी पंचेंद्रियके तौ सात सात प्राण हैं जातैं पर्याप्तकालविषैं संभवै ऐसे सासोस्वास वचनवल मनोवल ए तीन प्राण तहां न होंइ। बहुरि चौइंद्रियकै श्रोत्र विना छह पाइए तेंद्रीके नेत्र विना पांच पाइए वेंद्रीके नासिका विना च्यारि पाइए एकेंद्रीकें रसना विना तीन पाइए ऐसैं प्राण पाइए है।

इति श्रीआचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंच संग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसार सम्यग्ज्ञान चंद्रिकानाम इस भाषाटीकाविषै प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं प्राण प्ररूपणा नामा चौथा अधिकार संपूर्ण भया ॥ ४ ॥

संज्ञा प्ररूपणाधिकारः ॥ ५ ॥

जितरजोरहस्यारिः प्राप्तानंतगुणो जिनः ।
जितदोषो जगन्नाथः सुमतीशो नमस्यते ॥ ५ ॥

अथ संज्ञाप्ररूपणां प्ररूपयति--

इह जाहि बाहयावि य जीवा पावंति दारुणं दुक्खं ।
सेवंतावि य उभये ताओ चत्तारि सण्णाओ ॥ १३४ ॥

इह याभिर्बाधिता अपि च जीवाः प्राप्नुवंति दारुणं दुक्खं ।
सेवमाना अपि च उभयस्मिन् ताश्चतस्रः संज्ञाः ॥ १३४ ॥

जी० प्र०---याभिः संज्ञाभिः-आहारभयमैथुनपरिग्रहवांछाभिः, एत्र बाधिता जीवा अस्मिन् भवे तद्विषयान् सेवमानाः अपि च तत्प्राप्त्यप्राप्त्योः सत्योः उभयभवयोर्दारुणं दुःखं प्राप्नुवंति ताः चतस्रो वांछाः संज्ञा इति वदंति॥१३४॥ अथाहारसंज्ञोत्पत्तौ बहिरंतरंगहेतू कथयति-

सुमतिं निर्जिताशेषकुमतिं सुमतीडितं ।
पंचमं तीर्थकर्तारं वंदे सुमतिसिद्धये ॥ ५ ॥

अथ संज्ञाप्ररूपणार्थं गाथापट्कमाह---

याभिराहारादिवांछाभिर्बाधिता अपि संक्लेशिता अपि जीवाः, इह भवे दारुण-तीव्रं दुःखं प्राप्नुवंति । यद्विषयानाहारादीन् सेवमाना भुंजमाना जीवाः उभयस्मिन्-इहभवे परभवेऽपि च दारुणं दुःखं प्राप्नुवंति ताश्चतस्रः संज्ञा इति भण्यते ॥ १३४ ॥

गुण अनंत पाए सकल रज रहस्य अरि जीति ।
दोषरहित जगस्वामि सो सुमति नमौं जुत प्रीति ॥ ५ ॥

अथ संज्ञा प्ररूपणा अधिकारकौं कहै हैं--

सं० च०--आहार भय मैथुन परिग्रह इनिके निमित्ततैं जो वांछा होइ ते च्यारि संज्ञा कहिए सो जिनि संज्ञा-निकरि बाधित पीडित हुए जीव इस संसारविषैं विषयनिकौं सेवते भी इह लोक अर परलोकविषैं तिनिविषयनिकी प्राप्ति वा अप्राप्ति होतैं दारुण भयानक महा दुःखकौं पावैं है ते च्यारि संज्ञा जाननी । वांछाका नाम संज्ञा है वांछा है सो सर्व दुःखका कारण है ॥ १३४ ॥ आगैं आहार संज्ञा उपजनेके बाह्य अभ्यंतर कारण कहैं है--

आहारदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमकोठाए ।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु ॥ १३५ ॥

आहारदर्शनेन च तस्योपयोगेन आमकोष्ठया ।
सातेतरोदीरणया भवति हि आहारसंज्ञा हि ॥ १३५ ॥

जी० प्र०--विशिष्टान्नादिचतुर्विधाहारदर्शनेन तत्स्मरणकथाश्रवणाद्युपयोगेन रिक्तकोष्ठतयेति बाह्यकारणैः असातवेदनीयोदीरणातीव्रो-दयाभ्यां अंतरंगकारणाभ्यां च आहारसंज्ञा भवति--जायते । आहारे-विशिष्टान्नादौ संज्ञा-वांछा आहारसंज्ञा ॥ १३५ ॥ अथ भयसंज्ञोत्प-त्तिकारणमाह---

मं० प्र०---आहारदर्शनेन–विविधरसरूपविशेषभक्ष्यपानादिपरिकिरितान्नवीक्षणेन, तस्य, पूर्वानुभूतविशिष्टाहारस्योपयोगेन–स्मृत्यादिप्रबोधेन, अवमकोष्ठतया–रिक्तोदरतया, सातेतरस्य--असातवेदनीयस्य उदीरणया च जीवस्य आहारे संज्ञा -वांछा, खलु नाम भवति जायते खलु स्फुट ॥ १३५ ॥

सं० च०–विशिष्ट अन्नादिक च्यारि प्रकार आहारका देखना बहुरि आहारका यादि करना कथा सुनना इत्यादिक उपयोगका होना, बहुरि कोठा जो उदर ताका खाली होना क्षुधा होनी ए तौ वाह्य कारण हैं। बहुरि असाता वेदनीय कर्मका तीव्र उदय होना वा उदीरणा होनी ए अंतरंग कारण हैं इनि कारणनितैं आहार संज्ञा हो है। आहार कहिए अन्नादिक तींहिविषैं संज्ञा कहिए वांछा सो आहारसंज्ञा जाननी ॥ १३५ ॥ आगैं भय संज्ञा उपजनेके कारण कहै हैं--

अइभीमदंसणेण य तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए।
भयकम्मुदीरणाए भयसण्णा जायदे चदुहिं ॥ १३६ ॥

अतिभीमदर्शनेन च तस्योपयोगेन अवमसत्त्वेन।
भयकर्मोदीरणया भयसंज्ञा जायते चतुर्भिः ॥ १३६ ॥

जी० प्र०---अतिभयंकरव्याघ्रादिक्रूरमृगादिदर्शनेन तत्कथाश्रवणस्मरणाद्युपयोगेन रिक्तशक्तितया चेति बहिरंगकारणैः भयनोकषायतीव्रोदयेनेति अंतरंगकारणेन च भयसंज्ञा जायते। भयेन उत्पन्ना पलायनेच्छा भयसंज्ञा ॥ १३६ ॥ अथ मैथुनसंज्ञासामग्रीं सूचयति--

मं० प्र०----अतिभीमदर्शनेन -तीव्रभयंकररूपवेषक्रियाद्यवलोकनेन, तस्यातिभीमस्य उपयोगेन स्मृत्यादिप्रबोधेन, अवमसत्त्वतया- हीनमनोबलतया, भयकर्मणो नोकषायविशेषस्योदीरणया च एव चतुर्भिः कारणैः, भयसंज्ञा भयादुत्पन्ना पलायनशरणान्वेषणादिवाछा जायते ॥ १३६ ॥

सं० च०--अतिभयकारी व्याघ्र आदि वा क्रूर मृगादिक वा भूतादिकका देखना वा उनकी कथादिकका सुनना उनकौं यादि करणा इत्यादिक उपयोगका होना बहुरि अपनी हीन शक्तिका होना ए तौ वाह्य कारण हैं। बहुरि भय नामा नोकषायरूप मोह कर्म ताका तीव्र उदय होना यहु अंतरंग कारण है। इनि कारणनिकरि

भय संज्ञा हो है भयकरि भई जो भागि जाना छिपि जाना इत्यादिक रूप वांछा सो भय संज्ञा कहिये ॥ १३६ ॥ आगें मैथुन संज्ञा उपजनेके कारण कहै हैं--

पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाए ।
वेदस्सुदीरणाए मेहुणसण्णा हवदि एवं ॥ १३७ ॥

प्रणीतरसभोजनेन च तस्योपयोगे कुशीलसेवया ।
वेदस्योदीरणया मैथुनसंज्ञा भवति एवं ॥ १३७ ॥

जी० प्र०---वृष्यरसभोजनेन कामकथाश्रवणानुभूतकामविषयस्मरणाद्युपयोगेन कुशीलविटकंदर्पादिजनसेवागोष्ठ्येति वहिरंगकारणैः स्त्रीपुंनपुंसकवेदान्यतमनोकषायोदीरणयेत्यतरंगकारणेन च मैथुनसंज्ञा जायते । मैथुने-मिथुनकर्मणि सुरतव्यापाररूपे संज्ञा-वांछा मैथुनसंज्ञा ॥ १३७ ॥ अथ परिग्रहसंज्ञोत्पत्तिहेतूनाह---

मं० प्र०---प्रणीतरसभोजनेन--साधुवृष्यरससेवनेन, तस्य प्रणीतरसस्य प्रागनुभूतस्य उपयोगे--स्मृत्यादिप्रबोधे सति, कुशीलसेवया--विटजनादिसंसर्गेण, वेदस्य--स्त्रीपुनपुंसकवेदानामन्यतमस्य उदीरणया च एवप्रकारेण काव्यनाटकश्रवणादिना कारणातरेण च मैथुनसंज्ञा- मिथुनकर्मणि रतिक्रीडायां वांछा भवति जायते ॥ १३७ ॥

सं० च०--वृष्य जो कामोत्पादक गरिष्ठ भोजन ताका खाना अर काम कथाका सुनना अर भोगे हूवे काम विषयादिकका यादि करना इत्यादिकरूप उपयोग होना बहुरि कुशीलवान कामी पुरुषनिकरि सहित संगति करनी गोष्ठी करणी ए तौ वाह्य कारण हैं बहुरि स्त्री पुरुष नपुंसक वेदनिविषैं किसी ही वेदरूप नोकषायकी उदीरणा सो अंतरंग कारण है इनि कारणनितैं मैथुनसंज्ञा हो है। मैथुन जो कामसेवनरूप स्त्री पुरुषका युगल संबंधी कर्म तींहिविषैं वांछा सो मैथुनसंज्ञा जाननी ॥ १३७ ॥ आगैं परिग्रहसंज्ञा उपजनेके कारण कहै हैं--

उवयरणदंसणेण य तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य ।

लोहस्सुदीरणाए परिग्गहे जायदे सण्णा ॥ १३८ ॥

उपकरणदर्शनेन च तस्योपयोगेन मूर्छितायै च ।
लोभस्योदीरणया परिग्रहे जायते संज्ञा ॥ १३८ ॥

जी० प्र०---बाह्यपरिग्रहस्य धनधान्याद्युपकरणस्य दर्शनेन तत्कथाश्रवणादिभिः मूर्छितस्य परिग्रहाद्यर्जनाद्यासक्तेः अयेन संबंधेनेति बाह्यकारणैः लोभकषायोदीरणयेति अंतरंगकारणेन परिग्रहसंज्ञा- तदर्जनादिवांछा जायते ॥ १३८ ॥ अथ संज्ञानां स्वामिभेदानाह--

मं० प्र०---उपकरणदर्शनेन -मृदुशयनसुभोजनसुगंधिकुसुमसुरूपस्त्रीसुवर्णादींद्रियभोगसाधनं उपकरणं तस्य दर्शनेन, तस्य उपकरणस्य उपयोगेन--स्मृत्यादिप्रबोधेन, मूर्छितस्य-ममत्वस्य, अय- संबधः तास्मिन् सति, लोभस्य--कषायविशेषस्य, उदीरणया च, परिग्रहे- क्षेत्रादिबाह्यार्थे संज्ञा--वांछा, जायते । एकश्चशब्दः संज्ञाकारणसमुच्चयार्थः, अपरश्चशब्दः संज्ञाचतुष्टयसमुच्चयार्थ. ॥ १३८ ॥

सं० च०--धन धान्यादिक बाह्य परिग्रहरूप उपकरण सामग्रीका देखना अर तिंहि धनादिककी कथाका सुनना यादि करना इत्यादिक उपयोग होना, मूर्छित जो लोभी ताकैं परिग्रह उपजावनेविषे आसक्तता ताका इस जीव सहित संबंधी होना इत्यादिक बाह्य कारण है । बहुरि लोभ कषायकी उदीरणा सो अंतरंग कारण है । इनि कारणनिकरि परिग्रह संज्ञा हो है । परिग्रह जो धन धान्यादिक तिनिके उपजावने आदिरूप वांछा सो परिग्रह संज्ञा जाननी ॥ १३८ ॥ आगैं ए संज्ञा कौनके पाइए सो भेद कहै हैं--

णट्ठपमाए पढमा सण्णा णहि तत्थ कारणाभावा ।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि णहि कज्जे ॥१३९॥

नष्टप्रमादे प्रथमा संज्ञा नहि तत्र कारणाभावात् ।
शेषाः कर्मास्तित्वेन उपचारेण संति नहि कार्ये ॥ १३९ ॥

जी० प्र०--नष्टप्रमादे-अप्रमत्तादिगुणस्थानवर्तिजीवेषु प्रथमा आहारसंज्ञा नहि नैवास्ति । तद्धेतुसातावेदनीयोदीरणायाः प्रमत्ते एव व्युच्छित्तेः

कारणाभावात् कार्यस्याप्यभावः। इति प्रमादरहितेषु प्रथमा संज्ञा नास्ति शेषसंज्ञाः तत्कारणकर्मोदयास्तित्वेन उपचारेणैव संति। न च तत्कार्यं प्रमादरहितेष्वस्ति ॥ १३९ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामधेयपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु संज्ञाप्ररूपणानाम पंचमोऽधिकारः ॥ ५ ॥

मं० प्र०--- एताः प्रागुक्ताः आहारादिसंज्ञाश्चतस्रोऽपि मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तपर्यंतेषु गुणस्थानेषु संभवंति। नष्टप्रमादे-अप्रमत्तसंयतादुपरितनगुणस्थाने प्रथमासंज्ञा-आहारसंज्ञा नह्यस्ति कुतः कारणात्? तत्र अप्रमत्तादौ आदौ आहारसंज्ञाकारणस्य असातवेदनीयोदीरणाख्यस्याभावात्। सातासातवेदनीयमनुष्यायुष्याणां त्रिप्रकृतीनां प्रमत्तविरते एव उदीरणा भवतीति परमागमे प्रसिद्धत्वात्। शेषा भयमैथुनपरिग्रहसंज्ञा अप्रमत्तसंयतादिगुणस्थानेषु तत्तत्कारणभयवेदलोभकर्मोदीरणानां तत्तदुदयव्युच्छित्तिचरमसमयपर्यंतमस्तित्वेन निमित्तेनोपचारेण संति स्वस्वकार्ये पलायनरतिक्रीड परिग्रहस्वीकाररूपे प्रवृत्त्यभावात् मंदमंदतरमंदतमातिसूक्ष्मानुभागोदयसहितसंयमविशेषसमाहितध्यानोपयुक्तानां महामुनीनां भयादिसंज्ञा मुख्यवृत्त्या न संत्येव अन्यथा कदाचिदपि शुक्लध्यानं घातिकर्मक्षयो वा न घटते इति जीवन्मुक्तेरभाव एव प्रसज्यते तदभावे च परमुक्तेरप्यभाव इत्यार्हतानां वैदिकमतप्रसंगः स्यात् ततो मोक्षमिच्छता स्याद्वादिनां क्षपकश्रेण्यामाहारादिचतुःसंज्ञानामभाव एव संभावनीयः, इति केवलिनां कुतः कवलाहारभुक्तिराहारसंज्ञानिषेधात् स्त्रीणां च परिग्रहसंज्ञासद्भावात् क्षपकश्रेण्यारोहणाभावेन कुतो मुक्तिः? सा वस्त्रत्यागपूर्वकसकलसंयमस्य परमागमे प्रतिषिद्धत्वात् तद्विधायकश्वेतपटाद्यागमांतरस्य युक्त्यागमप्रमाणबाधितत्वेन आगमाभासत्वात् ततः केवलिनां कवलाहारभुक्तिः स्त्रीणां मुक्तिर्नास्तीति सिद्धः सत्सुगिसिद्धांतः ॥ १३९ ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ संज्ञाप्ररूपणानाम पंचमोऽधिकारः ॥ ५ ॥

सं० च०—नष्ट भये हैं प्रमाद जिनिके ऐसे जे अप्रमत्तादि गुणस्थानवर्ती जीव तिनिकैं प्रथम आहार संज्ञा नाहीं है। जातैं आहार संज्ञाका कारणभूत जो असाता वेदनीयकी उदीरणा ताकी व्युच्छित्ति प्रमत्त गुणस्थानमें ही भई है तातैं कारणके अभावतैं कार्यका भी अभाव है। ऐसैं प्रमादरहित जीवनिकैं पहिली संज्ञा नाहीं है। बहुरि इनिकैं जो अवशेष तीन संज्ञा हैं सो भी उपचार मात्र हैं। जातैं उन संज्ञानिका कारण भूत जे कर्म तिनिका उदय पाइए है तींहि अपेक्षा है। बहुरि ते भय मैथुन परिग्रह संज्ञा अप्रमादी जीवनिके कार्यरूप नाहीं हैं।

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं संज्ञा प्ररूपणा नाम पचम अधिकार संपूर्ण भया ॥ ५ ॥

मार्गणामहाधिकारे गतिप्ररूपणाधिकारः ॥ ६ ॥

जित्वा घातीनि सर्वाणि लब्ध्वा लब्धिगुणव्रजं ।
प्रकाशितं हितं येन पद्मामं भजेऽनघं ॥ ६ ॥

अथार्हत्परमेश्वरनमस्काररूपमंगलपुरस्सरमार्गणामहाधिकारप्ररूपणप्रतिज्ञां करोति—

धंम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबलं जिणं णमंसित्ता ।
मग्गणमहाहियारं विविहहियारं भणिस्सामो ॥ १४० ॥

धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलं जिनं नमस्कृत्वा ।
मार्गणामहाधिकारं विविधाधिकारं भणिष्यामः ॥ १४० ॥

जी० प्र०—रत्नत्रयात्मको धर्मो धनुः, तदुपकारकज्ञानादिधर्माः गुणाः ज्याः, तदाश्रयाश्चतुर्दशमार्गणाः ता एव बाणाः तैराहतानि मोहारेः-मोहनीयकर्मशत्रोः, बलानि ज्ञानावरणादिकर्मप्रकृतयः, येन असौ धर्मगुणमार्गणाहतमोहारिबलः तं जिनं-अर्हद्भट्टारकं, नमस्कृत्वा गत्यादिविविधाकारांचितं मार्गणामहाधिकारं भणिष्यामः । इत्यनेन मंगलकरणेन विनाशितविघ्नमलो नेमिचन्द्रसैद्धांतचक्रवर्ती मार्गणाधिकारं वक्तुं प्रारभते- ॥ १४० ॥ अथ मार्गणाशब्दस्य निरुक्तिसिद्धलक्षणमाह—

पद्मप्रभ जिनकौं भजौं जीति घाति सब कर्म ।
गुण समूह फुनि पाय जिनि प्रगट कियो हितधर्म ॥ ६ ॥

आगैं अरहंतदेवकौं नमस्काररूप मंगलपूर्वक मार्गणा महा अधिकार प्ररूपणकी प्रतिज्ञा करै हैं—

सं० च०—हम जो ग्रंथकर्ता ते नानाप्रकार गति इंद्रियादिक अधिकार संयुक्त जो मार्गणाका महा अधिकार ताहि कहैंगे ऐसी आचार्य प्रतिज्ञा करी। कहा करिकैं ? जिन जो अर्हंत भट्टारक तिसहिं नमस्कार करिकैं। कैसा है जिन भगवान ? रत्नत्रय स्वरूप धर्म सोही भया धनुष बहुरि ताका उपकारी जे ज्ञानादिक धर्म ते ही भए

१ ग. थेय मदप्रबोधिकाया नोपलभ्यते ।

गुण कहिये चिला बहुरि ताके आश्रयभूत जे चौदह मार्गणा तेही भए मार्गण कहिए वाण तिनिकारि हत्या है मोहनीय कर्मरूप अरि कहिये वैरीका बल जानै ऐसा जिन देव है ॥ १४० ॥ आगैं मार्गणा शब्दकी निरुक्तिनै लीया लक्षण कहै हैं–

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।
ताओ चोदस जाणे सुयणाणे मग्गणा होंति ॥ १४१ ॥

यामिर्वा यासु वा जीवा मृग्यंते यथा तथा दृष्टाः ।
ताश्चतुर्दश जानीहि श्रुतज्ञाने मार्गणा भवंति ॥ १४१ ॥

जी॰ प्र॰—यामिः यासु वा जीवाः यथा श्रुतज्ञानेन दृष्टाः तथा मृग्यते विचार्यंते ज्ञायंते ताश्चतुर्दश मार्गणा भवंति। पूर्वं सामान्येन गुणस्थानजीवसमासपर्याप्तिप्राणसंज्ञामिः एतामि त्रिलोकोदरवर्तिनो जीवाः लक्षणेन भेदेन च विचारिताः पुनरिदानीं विशेषरूपगत्यादिमार्गणाभिः तानेव विचार्यमाणान् जीवान् जानीहि इति शिष्यसंबोधने प्रयुक्तं । गत्यादिमार्गणा यदा एकजीवस्य नारकत्वादिपर्यायस्वरूपा विवक्षिताः तदा 'यामि.' इतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया विभक्तिः । यदा एकद्रव्यं प्रति पर्यायाणामधिकरणता विवक्ष्यते तदा 'यासु' इत्यधिकरणे सप्तमी विभक्तिः। विवक्षावशात्कारकप्रवृत्तिरिति न्यायस्य सद्भावात् ॥ १४१ ॥ अथ तासां चतुर्दशमार्गणानां नाम देशं करोति–

म॰ प्र॰—

पद्मप्रभाभिभावीद्धवपुःप्रवलसुप्रभं ।
पद्मप्रभजिनं वदे षष्ठ तीर्थकृतामहं ॥ ६ ॥

अथ श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्ती चतुर्दशमार्गणास्थानप्ररूपणाः प्रारभमाणस्तदादौ निरुक्तिपूर्वक मार्गणासामान्यलक्षणमाह—

यामिर्यासु वा जीवा मृग्यंते–विचार्यंते ताश्चतुर्दश मार्गणा भवंतीति यथा श्रुतज्ञाने प्रवचने दृष्टास्तथा हे भव्य! जानीहि इति शिष्यसंबोधनं । गुणस्थानजीवसमासपर्याप्तिप्राणसंज्ञाभिः संक्षेपेण विचारितानां जीवानां विस्तरेण गतींद्रियादिभिः पचभावविशेषैर्विचारो युक्त इति करणे इत्थंभूतलक्षणे वा यामिरिति तृतीयानिर्देश. । गतींद्रियादिपचभावेषु पर्यायेषु जीवद्रव्याणि वर्तंते इत्याधारे यास्विति सप्तमीनिर्देशो युक्तः, कारकांतरस्य तत्रासंभवात्, श्रुतं ज्ञायते अनेनेति श्रुतज्ञान–वर्णपदवाक्यरूपं द्रव्यश्रुतं, गुरुशिष्यप्रशिष्यपरपरया द्रव्यागमस्य अविच्छिन्नप्रवाहेण प्रवर्तमानत्वात् । तत्र यथा दृष्टास्तथा जानीहीति वचनेन शास्त्रकारस्य कालदोषात्प्रमादाद्वा यत्स्खलितं तन्मुक्त्वा परमागमानुसारेण व्याख्यातारः अध्येतारो वा अविरुद्धमेव वस्तुस्वरूपं गृह्णति इति प्रव-

शितमाचार्यैः। ननु लोके व्यावहारिकपदार्थस्य विचारे कश्चित् मृगयिता किंचिन्मृग्यं कापि मार्गणा कश्चिन्मार्गणोपाय इति चतुष्टयमस्ति अत्र लोकोत्तरेऽपि तद्वक्तव्य ? इति चेदुच्यते-मृगयिता भव्यवरपुंडरीकः गुरुः शिष्यो वा, मृग्याः गुणस्थानादिविशिष्टा जीवाः, मार्गणा गुरुशिष्ययोर्जीवतत्त्वविचारणा, मार्गणोपाय' गतीन्द्रियादयः पंच भावविशेषाः करणाधिकरणरूपाः सतीति लोकव्यवहारानुसारेण लोकोत्तरव्यवहारोऽपि वर्तत इति ब्रह्माद्वैतहिंसायागादिशास्त्रवत् लोकविरुद्धमिदं प्रवचनं न भवति इति सूक्तं ॥ १४१ ॥ अथ मार्गणानां नामोद्देशं प्ररूपयति —

सं० च०--जैसें श्रुतज्ञानविषैं उपदेश्या तैसें ही जीवनामा पदार्थ जिनकरि वा जिनिविषैं जानिये ते चौदह मार्गणा हैं पूर्वैं तौ सामान्यताकरि गुणस्थान जीवसमास पर्याप्ति प्राण संज्ञा इनिकरि त्रिलोकके मध्यवर्ती समस्त जीव लक्षणकरि वा भेदकरि विचारे। बहुरि अब विशेषरूप गति इंद्रियादि मार्गणानिकरि तिनहीकौं विचारें हैं ऐसें हे शिष्य, तू सुनि जानि। गति आदि जे मार्गणा एक जीवकैं नारकादि पर्यायनिकी विवक्षा लीजिये तब तौ जिनि मार्गणानिकरि जीव जानिए ऐसें तृतीया विभक्तिकरि कहिए। बहुरि जब एक द्रव्य प्रति पर्यायनिके अधिकरणकी विवक्षा 'इनि विषैं जीव पाइए हैं' ऐसी लीजिये तब जिनि मार्गणानिविषैं जीव जानिये ऐसें सप्तमी विभक्तिकरि कहिए। जातैं विवक्षाके वशतैं कर्ता कर्म इत्यादि कारकनिकी प्रवृत्ति है ऐसा न्यायका सद्भाव है ॥ १४१ ॥ आगैं तिनि चौदह मार्गणानिके नाम कहै हैं—

गइइंदियेसु काये जोगे वेदे कसायणाणे य।
संजमदंसणलेस्साभवियासम्मत्तसण्णिआहारे ॥ १४२ ॥

गतींद्रियेषु काये योगे वेदे कषायज्ञाने च।
संयमदर्शनलेश्याभव्यतासम्यक्त्वसंज्ञ्याहारे ॥ १४२ ॥

जी० प्र०--एतानि गत्यादिपदानि तृतीयांतानि वा सप्तम्यंतानि तदा एवं व्याख्येयानि गत्या गत्यां, इंद्रियेण इंद्रिये, कायेन काये, योगेन योगे, वेदेन वेदे, कषायेण कषाये, ज्ञानेन ज्ञाने, संयमेन संयमे, दर्शनेन दर्शने, लेश्यया लेश्यायां, भव्येन भव्ये, सम्यक्त्वेन सम्यक्त्वे.

संज्ञिना संज्ञिनि, आहारेण आहारे च जीवाः मार्ग्यंते इति ता मार्गणा यथानामोद्देशं कथयिष्यंते ॥ १४२ ॥ अथ तासु सांतरमार्गणानां स्वरूपसंख्यातदनंतरकालप्रमाणं व्यवधाननिरूपणार्थं च गाथात्रयमाह– --

मं० प्र०––गतौ इंद्रिये च काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने च संयमे दर्शने लेश्यायां भव्यत्वे सम्यक्त्वे संज्ञिनि आहारके एतेषु पंचभावविशेषेषु जीवा मृग्यंत इत्येतानि चतुर्दशमार्गणास्थाननामानि । गतिकषायसंयमादिषु प्राकृतलक्षणेन विभक्तिलोपो वा द्वंद्वसमासो द्रष्टव्यः । अधिकरणत्वस्य मुख्यताप्रदर्शनार्थः सप्तम्यतनिर्देशः । आर्षशलक्षणेन तृतीयातनिर्देशो वा तेन गत्यादीनां करणत्वमपि यथासंभव संभावनीयं । गत्यादिशब्दानां अर्थनिरुक्त्यादिकं शास्त्रकारः स्वयमेव तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यतीति नास्माभिरत्रोच्यते ॥ १४२ ॥ अथ सांतरमार्गणानां संख्यां तदंतरकालप्रमाणं च प्ररूपयितुं गाथाद्वयमाह–

सं० च०–गति १ इंद्रिय २ काय ३ योग ४ वेद ५ कषाय ६ ज्ञान ७ संयम ८ दर्शन ९ लेश्या १० भव्य ११ सम्यक्त्व १२ संज्ञी १३ आहार १४ ऐसैं ए गति आदि पद हैं ते तृतीया विभक्ति वा सप्तमी विभक्तिका अंति लीए हैं तातैं गतिकरि वा गतिविषैं इत्यादिक ऐसैं व्याख्यान करने । सो इनिकरि वा इनिविषैं जीव मार्ग्यंते कहिए जानिये ते चौदह मार्गणा जैसैं अनुक्रमकरि नाम हैं तैसैं कहैंगे ॥ १४२ ॥ आगैं तिनिविषैं आठ सांतर मार्गणा हैं तिनिका स्वरूप संख्या विधान निरूपणके अर्थि गाथा तीन कहै हैं–[1]

उवसमसुहमाहारे वेगुव्वियमिस्सणरअपज्जत्ते ।
सासणसम्मे मिस्से सांतरगा मग्गणा अट्ठ ॥ १४३ ॥
सत्तदिणाछम्मासा वासपुधत्तं च बारसमुहुत्ता ।
पल्लासंखं तिण्हं वरमवरं एगसमयो दु ॥ १४४ ॥

उपशमसूक्ष्माहारे वैगूर्विकमिश्रनरापर्याप्ते ।
सासनसम्यक्त्वे मिश्रे सांतरका मार्गणा अष्ट ॥ १४३ ॥

1 "स्वरूपसंख्याविधाननिरूपणार्थं गाथात्रयमाह" इति घ पुस्तके पाठ ।

सप्तदिनानि षण्मासा वर्षपृथक्त्वं च द्वादश मुहूर्ताः।
पल्यासंख्यं त्रयाणां वरमवरमेकसमयस्तु ॥ १४४ ॥

जी० प्र०---लोके नानाजीवापेक्षया निवक्षितगुणस्थानं मार्गणास्थानं वा त्यक्त्वा गुणांतरे मार्गणास्थानांतरे वा गत्वा पुनर्यावत्तद्विवक्षितगुणस्थान मार्गणास्थानं वा नायाति तावान् कालः अंतरं नाम । तच्च उत्कृष्टेन औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सप्त दिनानि । तदनंतरं कश्चित्स्यादेवेत्यर्थः । सूक्ष्मसांपरायसंयमिनां षण्मासाः । आहारकतन्मिश्रकाययोगिनां वर्षपृथक्त्वं । त्रिकादुपरि नवकादधः वर्षपृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा । वैक्रियिकमिश्रकाययोगिनां द्वादशमुहूर्ताः । लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्याणां सासादनसम्यग्दृष्टीनां सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां च प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभागमात्रं । एवं सांतरमार्गणा अष्टौ तासां जघन्यांतरं एकसमय एव ज्ञातव्यः । लोके उपशमसम्यग्दृष्ट्यादयो यदि न संति तदा उत्कर्षेणोक्तस्वस्वकालपर्यंतमेव तेषामष्टानां अभावः ततो नाधिकः काल ॥ १४३-१४४ ॥ अथ सांतरमार्गणाविशेषं प्ररूपयति---

म० प्र०--- उपशमसम्यक्त्व सूक्ष्मसापरायसयमः आहारकयोगः आहारकमिश्रयोगः वैक्रियिकमिश्रयोगः नरापर्याप्तः सासादनत्व मिश्रत्वमिति सम्यग्मिथ्यात्व एतेपु गतियोगसंयमसम्यक्त्वमार्गणानामुत्तरभेदेषु अष्टसु सांतरेषु अतरकालो यथासख्यमुच्यते ॥ १४३ ॥

म० प्र०--- नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टातरकाल. उपशमसम्यक्त्वस्य सप्त दिनानि । सूक्ष्मसांपरायसंयमस्य षण्मासाः । आहारककाययोगस्य वर्षपृथक्त्व सप्तवर्षाणि । आहारकमिश्रयोगस्य अष्टवर्षाणि । वैक्रियिकमिश्रयोगस्य द्वादश मुहूर्ताः । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तकस्य सासादनत्वस्य मिश्रत्वस्य च एतेषां त्रयाणा पल्यासंख्यातैकभागमात्रः । लोके उपशमसम्यग्दृष्ट्यादयो यदि न संति तदा उत्कर्षेण उक्तस्वस्वकालपर्यंतमेव तेषामष्टानामभावस्ततो नाधिककाले । जघन्येन तु पुनस्तेषा सर्वेषामेक एव समयोत्तरकालः ॥ १४४ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः सातरमार्गणाविशेषं प्ररूपयति ।

सं० च०--नाना जीवनिकी अपेक्षा विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थाननैं छोडि अन्य कोई गुणस्थान वा मार्गणा स्थानमें प्राप्त होइ वहुरि उसही विवक्षित स्थान वा मार्गणा स्थानकौं यावत् काल प्राप्त न होइ तिसकालका नाम अंतर है सो उपशम सम्यग्दृष्टी जीवनिका लोकविषैं नाना जीव अपेक्षा अंतर सात दिन है। तीन लोककेविषैं कोऊ जीव उपशम सम्यक्त्वी न होइ तो उत्कृष्टपनैं सात दिन ताईं न होइ पीछै कोऊ होय ही होय। ऐसैं ही सवका अंतर जानना। बहुरि सूक्ष्म सांपराय संयमी तिनिका उत्कृष्ट अंतर छह महीना है। पीछै कोऊ होय ही होय। वहुरि आहारक अर आहारकमिश्रकाययोगवाले तिनिका उत्कृष्ट अंतर वर्ष पृथक्त्वका है। तीनतैं ऊपर अर नवतैं नीचै पृथक्त्व संज्ञा है तातैं यहां तीन वर्षके ऊपर अर नव वर्षके नीचै अंतर जानना

पीछे कोई होइ ही होय। बहुरि वैक्रियिक मिश्रकाययोगवालेका उत्कृष्ट अंतर वारह मुहूर्तका है पीछैं कोऊ होय ही होय। बहुरि लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य अर सासादन गुणस्थानवर्ती जीव अर मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव इनि तीनोंका अंतर एक एकका पल्यके असंख्यातवें भाग मात्र जानना पीछे कोई होय ही होय। ऐसैं ए सांतर मार्गणा आठ हैं इनि सबनिका जघन्य अंतर एक समय जानना ॥ १४३–१४४ ॥

पढमुवसमसहिदाए विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा।
विरदीए पण्णरसा विरहिदकालो दु बोधव्वो ॥ १४५ ॥

प्रथमोपशमसहितायाः विरताविरतेश्चतुर्दश दिवसाः।
विरतेः पंचदश विरहितकालस्तु बोद्धव्यः ॥ १४५ ॥

जी० प्र०—विरहकालः लोके नानाजीवापेक्षया उत्कृष्टेनांतरं प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहितायाः विरताविरतेः-अणुव्रतस्य, चतुर्दशदिनानि। तत्सहितविरतेः-महाव्रतस्य पंचदश दिनानि। तु-पुनः, द्वितीयसिद्धांतापेक्षया चतुर्विंशतिदिनानि। इदमुगलक्षणं इत्येकजीवापेक्षयापि उक्तमार्गणानामंतरं प्रवचनानुसारेण बोद्धव्यं ॥ १४५ ॥ अथ गतिमार्गणास्वरूपं निरूपयति—

मं० प्र०—लोके नानाजीवापेक्षया प्रथमोपशमसम्यक्त्वसहितायाः विरत्याविरतेः- देशसंयमस्य चतुर्दश दिवसा उत्कर्षेणांतरकालः विरतेस्तु--सकलसंयमस्य पंचदश दिवसाः विरहितकालो जघन्येन एकः समयो बोद्धव्यः ॥ १४५ ॥ अथ शास्त्रकारो गतिमार्गणा प्रारभमाणः गतिशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकं अर्थं तद्भेदांश्च प्ररूपयति---

सं० चं०–विरह काल कहिए उत्कृष्ट अंतर सो प्रथमोपशम सम्यक्त्वकरि संयुक्त जे विरताविरत पंचम गुणस्थानवर्ती जीव तिनिका चौदह दिनका जानना। बहुरि तिस प्रथमोपशम सम्यक्त्व संयुक्त विरती षष्ठमादि गुणस्थानवर्ती तिनिका पंद्रह दिन जानना। वा दूसरा सिद्धांतकी अपेक्षा करि चौवीस दिन जानना ऐसैं नाना जीव अपेक्षा अंतर कह्या बहुरि इनि मार्गणानिका एक जीव अपेक्षा अंतर अन्यग्रंथके अनुसारि जानना। इहां प्रसंग पाइ कार्यकारी जानि तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकाके अनुसारि काल अंतरका कथन करिए है–

तहां प्रथम कालका वर्णन दोय प्रकार—नाना जीव अपेक्षा अर एक जीव अपेक्षा। तहां विवक्षित गुणस्थाननिका वा मार्गणा स्थाननिविषैं संभवते गुणस्थाननिका सर्व जीवनिविषैं कोई जीवकैं जेते काल सद्भाव पाइए सो नाना जीव अपेक्षा काल जानना। अर तिनहीका विवक्षित एक जीवकैं जेते काल सद्भाव पाइए सो एक जीव अपेक्षा काल जानना। तिनिविषैं प्रथम नानाजीव अपेक्षा काल कहिए है सो सामान्य विशेषकरि दोय प्रकार। तहां गुणस्थाननिविषैं कहिए सो सामान्य अर मार्गणाविषैं कहिए सो विशेष जानना। तहां सामान्य करि मिथ्यादृष्टि असंयत देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त सयोग केवलनिका सर्व काल है इनिका कबहूं अभाव होता नाहीं बहुरि सासादनका जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग। बहुरि मिश्रका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग। बहुरि च्यारों उपशम श्रेणी वालोंका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त। इहां जघन्य एक समय मरण अपेक्षा कह्या है। बहुरि च्यारों क्षपकश्रेणीवाले अर अयोग केवलीनिका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त मात्र काल है। अब विशेषकरि कहिए है तहां गतिमार्गणाविषैं सातों पृथ्वीनिके नारकीनिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। तिर्यंचगतिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि पंच गुणस्थाननिविषैं सामान्यवत् काल है। मनुष्यगतिविषैं सासादनका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त अर मिश्रका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त अर अन्य सर्वगुणस्थाननिविषैं सामान्यवत् काल है। देवगतिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि इंद्रिय मार्गणा अर काय मार्गणाविषैं इंद्रिय काय अपेक्षा सर्वकाल है। गुणस्थान अपेक्षा एकेंद्री विकलेंद्री अर पंच स्थावरनिविषैं मिथ्यादृष्टीका सर्वकाल है। अर पंचेंद्रिय वा त्रसविषैं सर्व गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि योग मार्गणाविषैं तीनों योगनिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगीपर्यंतनिका अर अयोगीका सामान्यवत् काल है। विशेष इतना—मिश्रका जघन्य काल एक समय ही है अर क्षपकनिका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त मात्र काल है। बहुरि वेदमार्गणाविषैं तीन वेदनिविषैं अर वेदरहितविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि अनिवृत्ति करण पर्यंतनिका वा ऊपरि सामान्यवत् काल है। बहुरि कषा-

यमार्गणाविषैं च्यारि कषायनिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि अप्रमत्त पर्यंतनिका मनोयोगीवत् अर दोय उपशमक वा क्षपक अर केवल लोभयुत सूक्ष्मसांपराय अर अकषाय इनिका सामान्यवत् काल है। बहुरि ज्ञान मार्गणाविषैं तीन कुज्ञान पांच सुज्ञाननिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि संयममार्गणाविषैं सातभेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है बहुरि दर्शनमार्गणाविषैं च्यारि भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि लेश्यामार्गणाविषैं छह भेदनिविषैं वा लेश्यारहितनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि भव्य मार्गणाविषैं दोऊ भेदनिविषैं अपने २ गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि सम्यक्त्व मार्गणाविषैं छह भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है विशेष इतना—औपशमिक सम्यक्त्वविषै असंयत देशसंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग अर प्रमत्त अप्रमत्तका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। बहुरि संज्ञी मार्गणाविषैं दोऊ भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। बहुरि आहार मार्गणाविषैं आहारकविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि सयोगी पर्यंतनिका सामान्यवत् काल है। अनाहारकविषैं मिथ्यादृष्टिका सर्वकाल, सासादन असंयतका जघन्य एक समय, उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग, सयोगीका जघन्य तीन समय, उत्कृष्ट संख्यात समय, अयोगीका सामान्यवत् काल है। अब एक जीव अपेक्षा काल कहिए है—

तहां प्रथम सामान्यकरि मिथ्यादृष्टिका कालविषैं तीन भंग—अनादि अनंत १ अनादि सांत २ सादि सांत ३। तहां सादि सांतकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र है। किंचित हीनका नाम देशोन जानना। बहुरि सासादनका जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवली, मिश्रका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त, बहुरि असंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर, संयतासंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व, प्रमत्त अप्रमत्तका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त, च्यारौं उपशम श्रेणीवालोंका जघन्य

एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त, च्यारौं क्षपक श्रेणीवाले वा अयोगिनिका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त सयोगीका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्वकाल है। अब विशेषकरि कहिए है–

गतिमार्गणाविषैं सातौं पृथ्वीनिके नारकीनिविषैं मिथ्यादृष्टिका काल जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट क्रमतैं एक तीन सात दश सतरह बाईस तेतीस सागर। सासादन मिश्रका सामान्यवत्, असंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट कालप्रमाण काल है। तिर्यंच गतिविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र अनंतकाल है। सासादन मिश्र असंयत संयतासंयतका सामान्यवत् तहां असंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तीन पल्य काल है। मनुष्यगतिविषै मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक तीन पल्य। सासादनका मिश्रका सामान्यवत्। असंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तीन पल्य अवशेषनिका सामान्यवत् काल है। देवगतिविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट इकतीस सागर सासादन मिश्रका सामान्यवत्, असंयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट तेतीस सागर काल है। बहुरि इंद्रिय मार्गणाविषैं एकेंद्रियका जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। बहुरि विकलत्रयका जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष, पचेंद्रियविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक हजार सागर, अवशेषनिका सामान्यवत् काल है। बहुरि काय मार्गणाविषैं पृथ्वी अप तेज वायुका जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात लोक प्रमाण काल है। वनस्पतिकायका एकेंद्रियवत् काल है। त्रसकायविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर, अवशेषनिका सामान्यवत् काल है। इहां छहके ऊपरि नवके नीचे ताका नाम पृथक्त्व जानना। अर उस्वासका अठारहवां भाग मात्र क्षुद्रभव जानना। बहुरि योगमार्गणाविषैं वचन मन योगविषैं मिथ्यादृष्टि असंयत संयतासंयत प्रमत्त अप्रमत्त च्यारौं उपशम क्षपक सयोगिनिका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त सासादन मिश्रका सामान्यवत् काल है। काय योगविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य एक समय उत्कृष्ट

असंख्यात पुद्गल परिवर्तन अवशेषनिका सामान्य मनोयोगवत् काल है। अयोगिविषैं सामान्यवत् काल है। वेद मार्गणाविषैं तीनों वेदानिविषैं मिथ्यादृष्टि आदि अनिवृत्तिकरण पर्यंत अर अवेदीनिविषैं सामान्यवत् काल है विशेष इतना जो स्त्रीवेदविषैं मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल पृथक्त्व सौ पल्यप्रमाण अर असंयतका उत्कृष्टकाल देशोन पचावन पल्य है। वहुरि पुरुषवेदविषैं मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्टकाल पृथक्त्व सौ सागर प्रमाण है अर नपुंसक वेदविषैं मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्टकाल असंख्यात पुद्गल परिवर्तनमात्र अर असंयतका उत्कृष्टकाल देशोन तेतीस सागरकाल है। वहुरि कषाय मार्गणा विषै च्यारों कषायनिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि अप्रमत्त पर्यंतका मनोयोगवत् अर दोऊ उपशमक वा क्षपक वा सूक्ष्म लोभ अर अकषाय इनिका समान्यवत् काल है। वहुरि ज्ञानमार्गणाविषैं तीन कुज्ञाननिविषैं वा पांच सुज्ञाननिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। विशेष इतना—विभंगविषैं मिथ्यादृष्टिका काल देशोन तेतीस सागर है। वहुरि संयममार्गणा विषैं सात भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है वहुरि दर्शनमार्गणा विषैं च्यारि भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है विशेष इतना—चक्षुर्दर्शनविषैं मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल दोय हजार सागर है। वहुरि लेश्या मार्गणाविषैं छह भेदनिविषैं वा अलेश्यनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है। विशेष इतना—कृष्ण नील कपोतविषैं मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल क्रमतैं साधिक तेतीस सतरह सात सागर अर असंयतका उत्कृष्टकाल क्रमतैं देशोन तेतीस सतरह सात सागर है। अर पीत पद्मविषैं मिथ्यादृष्टि वा असंयतका उत्कृष्ट काल क्रमतैं दोय अठारह सागर है। संयतासंयतका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। वहुरि शुक्ललेश्याविषैं मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट काल साधिक इकतीस सागर संयतासंयतका जघन्य एक समय उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त काल है। वहुरि भव्य मार्गणाविषैं भव्यविषैं मिथ्यादृष्टिका अनादि सांत वा सादि सांत काल है। तहां सादि सांत जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तनमात्र है। अवशेषनिका सामान्यवत् काल है।

अभव्य विषैं अनादि अनंत काल है । बहुरि सम्यक्त्व मार्गणाविषैं छहौ भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् काल है विशेष इतना उपशम सम्यक्त्वविषैं असंयत संयतासंयतका जघन्य वा उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त मात्र है । बहुरि संज्ञी मार्गणाविषैं संज्ञाविषैं मिथ्यादृष्टि अनिवृत्ति करण पर्यंतनिका पुरुष वेदवत् अवशेषनिका सामान्यवत् काल है। असंज्ञीविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन काल है। दोऊ व्यपदेशरहितनिविषैं सामान्यवत् काल है। बहुरि आहार मार्गणाविषैं आहारकविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात कल्पकाल प्रमाण जो अंगुलका असंख्यातवां भाग तीहिं प्रमाण काल है। अवशेषनिका सामान्यवत् काल है । अनाहारकविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य एक समय उत्कृष्ट तीन समय, सासादन असंयतका जघन्य एक समय उत्कृष्ट दोय समय सयोगीका जघन्य वा उत्कृष्ट तीन समय अयोगीका सामान्यवत् काल है । इहां मार्गणा स्थाननिविषैं काल कह्या तहां ऐसा जानना। विवक्षित मार्गणाके भेदका कालविषैं विवक्षितगुणस्थानका सद्भाव जेते काल पाइए ताका वर्णन है। मार्गणाके भेदका वा तिसविषैं गुणस्थानका पलटना भए तिसकालका अभाव हो है। अब अंतर निरूपण करिए है—

सो दोय प्रकार—नाना जीव अपेक्षा अर एक जीव अपेक्षा। तहां विवक्षित गुणस्थाननिविषैं वा गुणस्थान अपेक्षा लीएं मार्गणा स्थानविषैं कोई ही जीव जेते काल न पाइए सो नानाजीव अपेक्षा अंतर जानना। बहुरि विवक्षित स्थानविषैं जो जीव वर्तै या सोई जीव अन्य स्थानकौं प्राप्त होइ करि बहुरि तिसही स्थानकौं प्राप्त होइ तहां बीचिविषैं जेता कालका प्रमाण सो एक जीव अपेक्षा अंतर जानना। तहां प्रथम नाना जीव अपेक्षा कहिए है-सो सामान्य विशेषकरि दोय प्रकार। तहां सामान्यकरि मिथ्यादृष्टि असंयत देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त सयोगीनिका अंतर नाही है। सासादनका वा मिश्रका जघन्य एक समय उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भागमात्र अंतर है। च्यारि उपशमकनिका जघन्य एक समय उत्कृष्ट वर्ष पृथक्त्व अंतर है। च्यारि क्षपकनिका वा अयोगीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह मास अंतर है । बहुरि विशेषकरि गतिमार्गणाविषैं नारकी तिर्यंच मनुष्य देवनिविषैं

क्रमतैं मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि पांच चौदह च्यारि गुणस्थाननिविषैं सामान्यवत् अंतर है। बहुरि इंद्रिय मार्गणाविषैं एकेंद्रिय विकलेंद्रियका अंतर नाहीं है। पचेंद्रियविषैं सर्व गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है बहुरि काय मार्गणाविषैं पंच स्थावरनिका अंतर नाहीं है त्रस विषै सर्व गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है बहुरि योगमार्गणाविषैं तीनों योगनिविषैं आदिके तेरह गुणस्थाननिका वा अयोगीका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि वेदमार्गणाविषैं तीनों वेदनिविषैं आदिके नव गुणस्थाननिका वा अवेदीनिका सामान्यवत् अंतर है विशेष इतना दोऊ क्षपकनिका उत्कृष्ट अंतर स्त्री नपुंसकवेदविषैं पृथक्त्व वर्षमात्र अर पुरुषवेदनिविषैं साधिक वर्ष प्रमाण है। बहुरि कषाय मार्गणाविषैं च्यारि कषायनिविषैं वा अकषायनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है विशेष इतना–दोय क्षपकनिका उत्कृष्ट अंतर साधिक वर्षमात्र है। बहुरि ज्ञान मार्गणाविषैं तीन कुज्ञान पांच सुज्ञाननिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है विशेष इतना अवधि मनःपर्यय ज्ञानविषैं क्षपकनिका उत्कृष्ट अंतर साधिक वर्षमात्र है। बहुरि संयममार्गणाविषैं सात भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है बहुरि दर्शन मार्गणाविषैं च्यारि भेदनिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है विशेष इतना अवधि दर्शनविषैं क्षपकनिका अंतर साधिक वर्षमात्र है। बहुरि लेश्या मार्गणाविषैं छहों भेदनिविषैं वा अलेश्याविषै अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि भव्य मार्गणाविषै दोय भेदनिविषै अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि सम्यक्त्व मार्गणाविषैं छह भेदनिविषै अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है। विशेष इतना उपशम सम्यक्त्वविषै असंयतादिकका जघन्य अंतर एक समय है अर उत्कृष्ट अंतर असंयतका सात दिन राति देश संयतका चौदह दिन राति प्रमत्त अप्रमत्तका पंद्रह दिन राति अंतर है बहुरि संज्ञी मार्गणाविषै दोय भेदनिविषै वा दोऊ व्यपदेशरहितनिविषै अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि आहार मार्गणाविषै दोऊ भेदनिविषै अपने अपने गुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है विशेष इतना अनाहारकविषै असंयतका जघन्य एक समय उत्कृष्ट पृथक्त्व मास सयोगीका जघन्य एक समय उत्कृष्ट पृथक्त्व वर्षमात्र अंतर है। अव एक जीव अपेक्षा अंतर कहिए है–

सो सामान्य विशेषकरि दोय प्रकार—तहां सामान्यकरि मिथ्यादृष्टिका अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन दूणां छ्यासठि सागर। बहुरि सासादनका जघन्य पल्यके असंख्यातवै भाग उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन। बहुरि मिश्र असंयत देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्त च्यारि उपशमक इनिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परिवर्तन। बहुरि च्यारि क्षपक सयोगी अयोगी इनिका अंतर नाहीं है। बहुरि विशेषकरि गति मार्गणाविषैं नारकविषैं मिथ्यादृष्टि आदि असंयत पर्यंतनिका जघन्य अंतर सामान्यवत् उत्कृष्ट अंतर सात पृथ्वीनिविषैं क्रमतैं एक तीन सात दश सतरह वाईस तेतीस सागर देशोन जानना। बहुरि तिर्यंचनिविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि देशसंयतपर्यंतनिका सामान्यवत् अंतर है। विशेष इतना मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अंतर देशोन तीन पल्य है। बहुरि मनुष्य गतिविषै मिथ्यादृष्ट्यादि च्यारि उपशमक पर्यंत जघन्य अंतर सामान्यवत् उत्कृष्ट अंतर मिथ्यादृष्टिका तिर्यंचवत्, सासादन मिश्र असंयतका पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक तीन पल्य, देश संयत प्रमत्त अप्रमत्त च्यारि उपशमकका पृथक्त्व कोडि पूर्व प्रमाण है। अर क्षपक सयोगी अयोगीनिका सामान्यवत् है। बहुरि देवविषै मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनिका जघन्य अंतर सामान्यवत् उत्कृष्ट अंतर देशोन इकतीस सागर है। बहुरि इंद्रिय मार्गणा विषै एकेंद्रियका जघन्य अंतर क्षुद्रभव उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोय हजार सागर। विकलेंद्रियनिका जघन्य अंतर क्षुद्रभव उत्कृष्ट अंतर असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र है। यहु अंतर एकेंद्रियादिक पर्यायनिका कह्या है। गुणस्थान मिथ्यादृष्टी ही है। ताका तहां अंतर है नाहीं। पंचेंद्रिय विषैं मिथ्यादृष्टिका सामान्यवत् सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनिका जघन्य अंतर सामान्यवत् उत्कृष्ट अंतर पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक हजार सागर है। अवशेषनिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि कायमार्गणाविषैं पृथ्वी अप तेज वायुकायका जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात पुद्गल परिवर्तन अर वनस्पतीका जघन्य क्षुद्रभव उत्कृष्ट असंख्यात लोक मात्रअंतर है। यहु अंतर पृथ्वीकायिकादिका कह्या है गुणस्थान मिथ्यादृष्टि है ताका तहां अंतर है नाहीं। त्रसकायिक विषैं मिथ्यादृष्टीका सामान्यवत् सासादनादि च्यारि उपशमक

पर्यंतनिका जघन्य सामान्यवत् उत्कृष्ट पृथक्त्व कोडि पूर्व अधिक दोये हजार सागर अंतर है। अवशेषनिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि योग मार्गणाविषैं मन वचन काय योगनिविषैं संभवते गुणस्थाननिका वा अयोगीका अंतर नाहीं जातैं एक ही योगविषैं गुणस्थानांतरकों प्राप्त होइ करि विवक्षित गुणस्थानविषैं प्राप्त होता नाहीं। बहुरि वेद मार्गणाविषैं स्त्री पुरुष नपुंसक वेदनिविषैं मिथ्यादृष्टि आदि दोऊ उपशमक पर्यंत जघन्य अंतर सामान्यवत् है उत्कृष्ट अंतर स्त्रीवेदविषैं मिथ्यादृष्टीका देशोन पंचावन पल्य औरनिका पृथक्त्व सौ पल्य पुरुषवेदविषैं मिथ्यादृष्टिका सामान्यवत् औरनिका पृथक्त्व सौ सागर नपुंसकवेदविषैं मिथ्यादृष्टिका तेतीस सागर देशोन औरनिका सामान्यवत् अंतर है। दोय क्षपकनिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि वेदरहितनिविषैं उपशम अनिवृत्तिकरण सूक्ष्म सांपरायका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है। औरनिका अंतर नाही है। बहुरि कषाय मार्गणाविषैं क्रोध मान माया लोभविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि उपशम अनिवृत्ति करण पर्यंतका मनो योगवत्, दोय क्षपकनिका अर केवल लोभविषैं सूक्ष्म सांपरायके उपशम वा क्षपकका अर अकषायविषैं उपशांतकषायादिका अंतर नाही है। बहुरि ज्ञानमार्गणाविषैं कुमति कुश्रुत विभंगविषैं मिथ्यादृष्टि सासादनका अंतर नाहीं। मति श्रुत अवधिविषैं असंयतका अंतर जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन कोडि-पूर्व, देश संयतका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक छ्यासठि सागर, प्रमत्त अप्रमत्तका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक तेतीस सागर। च्यारि उपशमकनिका जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट साधिक छ्यासठि सागर, च्यारि क्षपकनिका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि मनःपर्ययविषैं प्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यंतनिका सामान्यवत् अंतर है। विशेष इतना–प्रमत्त अप्रमत्तका अंतर्मुहूर्त च्यारि उपशमकनिका देशोन कोडि पूर्व प्रमाण उत्कृष्ट अंतर है। बहुरि केवलज्ञानविषैं सयोगी अयोगीका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि संयम मार्गणाविषैं सामायिक छेदोपस्थापनविषैं प्रमत्त अप्रमत्तका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है। दोऊ उपशमकका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन कोडि पूर्व अर दोऊ क्षपकनिका सामान्यवत् अंतर

है। परिहारविशुद्धि विषैं प्रमत्त अप्रमत्तविषैं जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है । सूक्ष्मसांपराय विषैं उपशमक वा क्षपकका अर यथाख्यातविषैं उपशांतकषायादिकका अर संयतासंयतविषैं देश संयतका अंतर नाहीं है। असंयमविषैं मिथ्यादृष्टिका जघन्य अंतर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन तेतीस सागर, सासादन मिश्र असंयतका सामान्यवत् अंतर है। बहुरि दर्शन मार्गणाविषैं चक्षु अचक्षु दर्शनविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि क्षीणकषाय पर्यंतनिका सामान्यवत् अंतर है विशेष इतना—चक्षुर्दर्शनविषैं सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनिका उत्कृष्ट अंतर देशोन दोय हजार सागर है । अवधि दर्शनविषैं अवधिज्ञानवत् अंतर है । केवल दर्शनविषैं सयोगी अयोगीका अंतर नाहीं है। बहुरि लेश्या मार्गणाविषैं कृष्ण नील कापोत विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनिका जघन्य अंतर सामान्यवत् है उत्कृष्ट अंतर क्रमतैं देशोन तेतीस सतरह अर सात सागर प्रमाण है । पीत पद्म विषैं मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनिका जघन्य अंतर सामान्यवत्, उत्कृष्ट अंतर क्रमतैं साधिक दोय अर अठारह सागर है । देशसंयत प्रमत्त अप्रमत्तका अंतर नाहीं है । शुक्ललेश्याविषैं मिथ्यादृष्ट्यादि असंयत पर्यंतनिका जघन्य अंतर सामान्यवत् है। उत्कृष्ट अंतर देशोन इकतीस सागर है। देशसंयत प्रमत्तका अंतर नाही है। अप्रमत्त तीन उपशमकका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्त है। उपशांत कषाय च्यारि क्षपक सयोगीनिका अंतर नाही है। अलेश्याविषैं अयोगीनिका अंतर नाही है। बहुरि भव्य मार्गणाविषै भव्यविषै सर्वगुणस्थाननिका सामान्यवत् अंतर है। अभव्यविषै मिथ्यादृष्टिका अंतर नाही है। बहुरि सम्यक्त्व मार्गणाविषै क्षायिक सम्यक्त्वविषै असंयतादि च्यारि उपशमक पर्यंतनिका जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंयतका देशोन कोडि पूर्व, औरनिका साधिक तेतीस सागर अंतर है। च्यारि क्षपक सयोगी अयोगीका अंतर नाही है। क्षायोपशमिकविषै असंयतादि अप्रमत्त पर्यंतनिका जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट असंयतका देशोन कोडि पूर्व, देशसंयतका देशोन छ्यासठि सागर, प्रमत्त अप्रमत्तका साधिक तेतीस सागर अंतर है। औपशमिकविषैं असंयतादि तीन उपशमक पर्यंतनिका जघन्य वा उत्कृष्ट अंतर अंतर्मुहूर्तमात्र है। उपशांतकषायका अंतर नाही

है। मिश्र सासादन मिथ्यादृष्टिविषैं अपने अपने गुणस्थाननिका अंतर नाही है। बहुरि संज्ञीमार्गणाविषैं संज्ञीविषैं मिथ्यादृष्टिका सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनिका जघन्य सामान्यवत् उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ सागर, च्यारि क्षपकनिका सामान्यवत् अंतर है। असंज्ञीविषैं मिथ्यादृष्टिका अंतर नाही है। उभयरहितविषैं सयोगी अयोगीका अंतर नाही है। बहुरि आहारक मार्गणाविषैं आहारक मिथ्यादृष्टिका सामान्यवत्, सासादनादि च्यारि उपशमक पर्यंतनिका जघन्य सामान्यवत्, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात कल्पकाल मात्र सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग अंतर है। च्यारि क्षपक सयोगीनिका अंतर नाही है। अनाहारकविषैं मिथ्यादृष्टि सासादन असंयत सयोगी अयोगीका अंतर नाही है। इहां मार्गणा स्थानविषैं अंतर कह्या है तहां ऐसा जानना--विवक्षित मार्गणाके भेदका कालविषैं विवक्षित गुणस्थानका अंतराल जेते काल पाइए ताका वर्णन है मार्गणाके भेदका पलटना भएं अथवा मार्गणाके भेदका सद्भाव होतैं विवक्षित गुणस्थानका अंतराल भया था ताकी बहुरि प्राप्ति भए तिस अंतरालका अभाव हो है। ऐसैं प्रसंग पाइ कालका अर अंतरका कथन कीया है सो जानना ॥ १४५ ॥

आगैं इनि चौदह मार्गणानिविषैं गतिमार्गणाका स्वरूपकौं कहै हैं—

गइउदयजपज्जाया चउगइगमणस्स हेउ वा हु गई।
णारयतिरिक्खमाणुस देवगइत्तिय हवे चदुधा ॥ १४६ ॥

गत्युदयजपर्यायः चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्वा हि गतिः।
नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिरिति च भवेत् चतुर्धा ॥ १४६ ॥

जी० प्र०—गम्यत इति गतिः एवमुच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीवं प्राप्य द्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेशः स्यात्? तन्न—गतिनामकर्मोदयोत्पन्नजीवपर्यायस्यैव गतित्वाभ्युपगमात्। गमनं वा गतिः एवं सति ग्रामारामादिगमनस्यापि गतित्वं प्रसज्यते तन्न, भवाद् भवसंक्रांतेरेव विवक्षितत्वात्। गमनहेतुर्वा गतिः इत्यपि भण्यमाने शकटादेरपि गतित्वं प्राप्नोति, तन्न--भवांतरगमनहेतोर्गतिनामकर्मणो गतित्वाभ्युपगमात्।

सा च गतिः उत्तरप्रकृतिसामान्येन एकापि उत्तरोत्तरप्रकृतिविवक्षया नारकतिर्यग्मनुष्यदेवगतिभेदाच्चतुर्धा भवेत् ॥ १४६ ॥ अथ नारकगतिं निर्दिशति—

मं० प्र०—गतिनामकर्मोदयाज्जातो नारकत्वादिपर्यायो गतिः कार्ये कारणोपचारात् । अत्र कर्मोदयवशवर्तिना जीवेन गम्यते प्राप्यते इति गतिः इति निरुक्तिः । अथवा संसारिणां चतुर्गतिगमनस्य हेतुर्गतिनामकर्म । विवक्षितनारकादिपर्यायं गच्छंति संसारिणो जीवा यया सा गतिरिति निरुक्त्या गतिनामकर्मण एव चतुर्गतिगमनहेतुत्वसिद्धेः । अत्र मार्गणाप्रकरणे गतिनामकर्म न गृह्यते वक्ष्यमाणनारकादिगतिप्रपंचस्य नारकादिपर्यायेष्वेव संभवात् । चतुःशब्देन पंचमगतेः सिद्धत्वपर्यायस्य गमनहेतुरात्मनः स्वभावोऽस्ति इति तन्निषेधो विधीयते । सा च गतिरुत्तरप्रकृतिसामान्येन एकापि उत्तरोत्तरप्रकृतिविवक्षया नारकगतिः तिर्यग्गतिः मानुषगतिः देवगतिः इति चतुर्धा-चतुःप्रकारा भवेत् ॥१४६॥ अथ गतिमार्गणाविशेषप्ररूपणार्थं गाथापंचकमाह—

सं० प्र०—गम्यते कहिये गमन करिए सो गति है। इहां तर्क-जो ऐसैं कहैं गमन क्रियारूप परिणया जीवकौं पावने योग्य द्रव्यादिककौं भी गति कहना संभवै तहां समाधान-जो ऐसैं नाहीं है जो गतिनामा नामकर्मके उदयतैं जो जीवकैं पर्याय उत्पन्न होइ तिसहीकौं गति कहिए सो गति च्यारि प्रकार-नारक गति १ तिर्यंचगति २ मनुष्यगति ३ देवगति ४ ए च्यारि गति हैं॥ १४६ ॥ आगैं नारक गतिकौं निर्देश करैं हैं—

ण रमंति जदो णिच्चं दव्वे खेत्ते य कालभावे य।

अण्णोण्णेहि य जह्मा तह्मा ते णारया भणिया ॥ १४७ ॥

न रमंते यतो नित्यं द्रव्ये क्षेत्रे च कालभावे च।

अन्योन्यैश्च यस्मात्तस्मात्ते नारता (का) भणिताः ॥ १४७ ॥

जी० प्र०—यस्मात्कारणात् ये जीवाः नरकगतिसंबंध्यन्नपानादिद्रव्ये तद्भूतलरूपक्षेत्रे,समयादिस्वायुरवसानकाले चित्पर्यायरूपभावे भवांतरवैरोद्भवतज्जनितक्रोधादिभ्योऽन्योन्यैः सह नूतनपुरातननारकाः परस्परं च न रमंते तस्मात्कारणात् ते जीवा नरता इति भणिताः । नरता एव नारताः स्वार्थिकाण्विधानात् । अथ वा नरकेषु जाता नारका इति छाया एवंविधनारकपर्यायो जीवस्य नारकगतिर्निर्दिश्यते । अथ वा हिंसाद्यसदनुष्ठानेषु निरता व्यापृता प्रवृत्ताः -तेषां गतिर्निरतगतिः । अथवा नरान्–प्राणिनः, कायति–पातयति, कदर्थयति खलीकरोति बाधत इति नरकं कर्म तस्यापत्यानि नारकाः, तेषां गतिः नारकगतिः । अथ वा द्रव्यक्षेत्रकालभावेषु अन्योन्येषु चारताः नरताः तेषां

गतिर्नैरतगतिः । अथ वा निर्गतोऽयः पुण्यं एभ्यः ते निरयाः तेषां गतिः निरयगतिः इति व्युत्पत्तिभिरपि नारकगतिलक्षणं कथितं ॥ १४७ ॥
अथ तिर्यग्गतिस्वरूपं निरूपयति—

म० प्र०—यतः कारणात् नित्यं-अनवरतं द्रव्ये-शरीरेंद्रियविषयादौ, क्षेत्रे च उत्पत्तिपतनोपवेशनशयनस्थानाविहारभूम्यादौ, काले उत्पत्तिपर्याप्तिनिष्पत्तिपतनभोजनशयनविहारकालादौ, भावे च-पर्याये उत्पन्नपर्याप्तभोक्तृशयितृविहर्तृत्वाद्यवस्थायां च ये न रमंते-प्रीतिं न भजते-न सुल्यंति अन्योन्यैश्च परस्परं च न रमंते तस्माच्चे नरताः, नरता एव नारताः स्वार्थिकाण्विधानात् इति भणिताः पूर्वसूरिभिः । अत्रैकश्चशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः । इतरश्चशब्दः अनुक्तार्थसमुच्चयार्थः । तद्यथा—गतिनामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पो नारकगतिनामकर्म, तदुदयाज्जाताः नारकाः । अथवा नरान् कायंति कदर्थयंति क्लेशयंतीति नरकाणि अधोभूमिगतसीमंतादिविलानि तेषु भवाः नारकाः, सहजशारीरमानसागंतुकक्षेत्रजैर्दुःखैर्निरंतरसंक्लेशितपरिणामाः बह्वारंभपरिग्रहत्वाद्यार्तरौद्रध्यानार्जितनारकायुःकर्मोदयलब्धनारकभववृत्तयः सप्ताधोभूमिगताः पंचेंद्रियजीवाः नारका इति संक्षेपतो ज्ञातव्याः । विस्तरतस्त्रिलोकसारादिकरणानुयोगशास्त्रेषु द्रष्टव्याः ॥ १४७ ॥

सं० प्र०—जा कारणतैं जे जीव द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं अथवा परस्परमैं जहां क्रीडा न करैं तहां नरक संबंधी अन्न पानादिक वस्तु सो द्रव्य कहिए, बहुरि तहांकी पृथ्वी सो क्षेत्र कहिए। बहुरि तिस गतिसंबंधी प्रथमसमयतैं लगाइ अपना आयुपर्यंत जो काल सो काल कहिए। तिनि जीवनिकैं चैतन्यरूप परिणाम सो भाव कहिए इनि च्यारोंनिविषैं जे कहूं रति न मानैं बहुरि अन्यभवसंबंधी वैरकरि इस भवमें उपजे क्रोधादिक तिनिकरि नवीन पुराणे नारकी कबहूं परस्पर रमैं नाहीं है। तातैं नाहीं है रति कहिए प्रीतिरूप कबहीं तातैं 'नरताः' कहिए नरत तेई नारत जानने। जातैं स्वार्थविषैं अण् प्रत्ययका विधान है। तिनकी जो गति सो नारतगति जानना। अथवा नरकविषैं उपजैं ते नारक तिनिकी जो गति सो नारक गति जाननी। अथवा हिंसादिक आचरणविषैं निरता कहिए प्रवर्तैं अैसे जो निरत तिनकी जो गति सो निरतगति जाननी। अथवा नर कहिए प्राणी तिनिकौं कायति कहिए पीडैं दुःख देंइ अैसे जे नरक कहिए पापकर्म ताका अपत्य कहिए तींहिका उदयतैं निपजे जे नारक तिनकी जो गति सो नारकगति जाननी। अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भावनिविषैं वा परस्पर रत कहिए प्रीतिरूप नाहीं ते नरत तिनकी जो गति सो नरतगति जाननी। निर्गत कहिए गया है अयः कहिए पुण्यकर्म जिनितैं अैसे जे

निरय तिनकी जो गति सो निरय गति जाननी। ऐसैं निरुक्तिकरि नारकगतिका लक्षण कह्या ॥१४७॥ आगैं तिर्यंचगतिका स्वरूप कहै हैं–

तिरियंति कुडिलभावं सुविउलसंण्णा णिगिट्ठिमण्णाणा।
अच्चंतपावबहुला तह्मा तेरिच्छया भणिया ॥ १४८ ॥

तिरोंचंति कुटिलभावं सुविवृतसंज्ञा निकृष्टमज्ञानाः।
अत्यंतपापबहुलास्तस्मात्तैरश्चिका भणिताः ॥ १४८ ॥

जी० प्र०—यस्मात्कारणात् ये जीवाः सुविवृतसंज्ञाः अगूढाहारादिप्रकटसंज्ञायुताः, प्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्ध्यादिभिरल्पीयस्त्वा-
न्निकृष्टाः, हेयोपादेयज्ञानादिभिर्विहीनत्वादज्ञानाः, नित्यनिगोदविवक्षया अत्यंतपापबहुलाः, तस्मात्कारणात्ते जीवाः तिरोभावं कुटिल-
भावं मायापरिणामं अंचति–गच्छंति, इति तिर्यंचो भणिता भवंति । तिर्यंच एव तैरश्चाः स्वार्थिकाण्विधानात् । एवंविधतिर्यक्पर्याय एव
तिर्यग्गतिरिति भाषित ॥ १४८ ॥ अथ मनुष्यगतिस्वरूपं निरूपयति—

म० प्र०—'साध्याहाराणि सूत्राणि' इति न्यायात् यस्मात्कारणात् तिरः कुटिलभावं–मनोवाकायवक्रभावं अंचंति यांति गच्छंति ये जीवाः मायाबहु-
लत्वं तिर्यग्जीवेषु युक्तमेव । तिर्यंच एव तैरश्चा इति स्वार्थिकाण्विधानात् । तैरश्चका इति प्राकृते स्वार्थिककप्रत्ययविधानात् ॥ १४८ ॥
भपरिणामार्जिततिर्यगायुःकर्मोदयजनितभववृत्तयः तिर्यग्गतिनामकर्मोदयकृतसुविवृतसंज्ञाः निकृष्टाज्ञानात्यंतपापबहुलत्वादिपर्यायास्ते जीवाः तस्मात्कारणात् ति-
र्यंच इति भणिताः अर्हदादिभिः । तत्र मनसि यद्वर्तते सुखदुःखतत्साधनस्वीकारपरिहारपरस्पराह्वानादि तन्मुखे न वचंति तद्वचनशक्तेरभावात् । मुखे यद्वृत्तं
तत् कायेन न क्रियते । यद्यपि शुकसारिकादयः केचित् सुशिक्षिताः संज्ञिपंचेंद्रियतिर्यंचो मनोवाकायेषु ऋजु प्रवर्तंते तथापि एकेंद्रियादयः असंज्ञिपंचेंद्रिय-
पर्यंताः जीवाः, अशिक्षितसंज्ञिपंचेंद्रियाश्च मनोवाकायेषु प्रायेण कुटिलभावेनैव प्रवर्तंते । सर्वजनादृश्ये क्षेत्रे नियते काले च मनुष्यवद्गूढभोजनमैथुनाद्यभावात्
सुविवृता-सुप्रकटा, संज्ञा आहारादीच्छा क्रियारूपा येषां ते सुविवृतसंज्ञा इति सूत्रार्थसद्भावः । मनुष्यवद्गुणदोषविवेकानित्यश्रुताभ्यासतत्त्वज्ञानादिशुभोपयोगा-
भावान्नित्याज्ञानत्वं सिद्धं । मनुष्यवदि(दे)व महाव्रतगुणशीलाभावादेकेंद्रियादिषु सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिशुभोपयोगाभावाच्च तीव्रसंक्लेशप्रचुरतयात्यंतपापबहु-

सं० च०—जातैं जो जीव सुविवृतसंज्ञाः कहिए प्रगट है आहारनैं आदि देकरि संज्ञा जिनिकैं ऐसे हैं। बहुरि प्रभाव सुख द्युति लेश्याकी विशुद्धता इत्यादिककरि हीन हैं तातैं निकृष्ट हैं। बहुरि हेयोपादेयका ज्ञान र-

हित है तातैं अज्ञान हैं। वहुरि नित्यनिगोद अपेक्षा अत्यंत पापकी वहुलता जिनिकैं ऐसे हैं तातैं तिरोभव जो कुटिलभाव मायारूप परिणाम ताहि अंचंति कहिए प्राप्त होंइ ते तिर्यंच कहे हैं। वहुरि तिर्यंच ही तैरश्च कहिए इहां स्वार्थविषैं अण् प्रत्ययका विधान हो है। ऐसें जो तिर्यक् पर्याय सोही तिर्यग्गति है ऐसा कह्या है ॥१४८॥ आगैं मनुष्य गतिका स्वरूप कहै हैं—

मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जह्मा।
मणुब्भवा य सव्वे तह्मा ते माणुसा भणिदा ॥ १४९ ॥

मन्यंते यतो नित्यं मनसा निपुणा मनसोत्कटा यस्मात्।
मनूद्भवाश्च सर्वे तस्मात्ते मानुषा भणिताः ॥ १४९ ॥

जी० प्र०---यस्मात्कारणात् ये जीवाः नित्यं मन्यंते हेयोपादेयादिविशेषान् जानंति -वा मनसा निपुणाः-कलाशिल्पादिषु कुशलाः वा मनसोत्कटाः अवधानादिदृढोपयोगाः वा मनोरुद्भवाः अपत्यानीति ते जीवाः सर्वेऽपि मानुषा इति प्रवचने भणिताः ॥ १४९ ॥ अथ तिर्यग्मनुष्यगतिव्यक्तिभेदं न् दर्शयति --

म० प्र०--यतः कारणात् ये जीवा नित्यं मन्यंते अवबुध्यते हेयमुपादेयं च तत्त्वमतत्त्वं च आप्तमनाप्तं च धर्ममधर्मं चेत्यादि विविच्य निश्चिन्वंति मनसा गुणदोषविचारस्मरणाद्युपयोगरूपेण भावमनसा व्यवहर्तुं निपुणाः तत्तत्सूक्ष्मरहस्यवेदिनः मनसा प्रागुक्तलक्षणेन उत्कटा. तीव्रा दूरदर्शनसूक्ष्मविचारचिरकालधारणानानावधानादिसातिशयोपयोगविशिष्टाः यस्मात्कारणात् मनूद्भवाश्च मनोः युगादौ लौकिकलोकोत्तरव्यवहारप्रदर्शकस्य आदिब्रह्मणः अपत्यानि अथवा भोगभूमिस्थितिपरिक्षये तदा तदा संभूतप्रतिश्रुत्यादिभरतपर्यंतानां षोडशमनूनामपत्यानि-प्रजा, अपत्यानीव अपत्यानि इत्युपचाराश्रयः अपायपरिहारोपायप्रापणसुखजीविकोपदेशादिद्वारैस्तैरभिरक्षितत्वात् 'स पिता यस्तु पोषकः' इति नीतिसद्भावाच्च। तस्मात्कारणात् ते अल्पारंभपरिग्रहत्वाद्युपार्जितमनुष्यायुरुदयजनितभवधारणाः, मनुष्यगतिनामकर्मोदयसंपादितपूर्वोक्तमनुष्यपर्यायाः, सार्धद्वीपद्वयप्रमितमनुष्यक्षेत्रसमुद्भवाः सर्वेऽपि मानुषा इति भणिताः परमागमविशारदैः। द्वितीयो यस्माच्छब्दोऽनर्थकः लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्याणां पूर्वोक्तमनुष्यलक्षणाभावेऽपि मनुष्यगतिनामायुःकर्मोदयजनितत्वमात्रेणैव मनुष्यत्वमाचार्यस्येष्टं ज्ञापयति 'अनर्थकानि वचनानि किंचिदिष्टं ज्ञापयत्याचार्यस्य' इति न्यायात् इति। संक्षेपतो मनुष्यगतिकथनं विस्तरतः करणानुयोगे द्रष्टव्यं ॥ १४९ ॥

सं० च०--जातैं जीव नित्य ही मन्यंते कहिए हेयोपादेयके विशेषकौं जानैं हैं अथवा मनसा निपुणाः क-

हिए अनेक शिल्पी आदि कलानिविषै प्रवीण हैं। अथवा 'मनसोत्कटाः' कहिए अवधारना आदि दृढ उपयोगके धारी हैं। अथवा 'मनोरुद्भवाः' कहिए कुलकरादिकतैं निपजे है तातैं ते जीव सर्व ही मनुष्य हैं ऐसैं आगमविषै कहे हैं॥ १४९॥ आगै तिर्यंच मनुष्य गतिके जीवनिका भेद दिखावै हैं—

सामण्णा पंचिंदी पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।
तिरिया णरा तहावि य पंचिंदियभंगदो हीणा॥१५०॥

सामान्याः पंचेंद्रियाः पर्याप्ता योनिमत्यः अपर्याप्ताः।
तिर्यंचो नरास्तथापि च पंचेंद्रियभंगतो हीनाः॥ १५०॥

जी० प्र०—तिर्यंचः—सामान्यतिर्यंचः पंचेंद्रियतिर्यंचः पर्याप्ततिर्यंचः योनिमत्तिर्यंच अपर्याप्ततिर्यंचश्चेति पंचविधा भवंति। तथा मनुष्या अपि। किंतु पंचेंद्रियभंगतः—भेदात् हीना भवंति—सामान्यादिचतुर्विधा एव भवंतीत्यर्थः। सर्वमनुष्याणां केवलं पंचेंद्रियत्वेनैव संभवात्। तिर्यग्वत्तद्विशेषणस्य व्यवच्छेद्यत्वाभावात्॥ १५०॥ अथ देवगतिं प्ररूपयति—

म० प्र०—सामान्यतिर्यंचः पंचेंद्रियतिर्यंचः पर्याप्ततिर्यंचः योनिमतीतिर्यंचः अपर्याप्ततिर्यंच इति तिर्यंचो जीवाः पंचप्रकारा भवंति। तथा तिर्यग्जीवभेदप्रकारेण नराः—मनुष्या अपि, पंचेंद्रियभंगत पंचेंद्रियभेदात्, हीनाः—पंचेंद्रियभेदरहिताः—सामान्यापर्याप्तयोनिमत्पर्याप्तभेदाच्चतुर्विधा इत्यर्थः। सामान्यादीनां विशेषापर्याप्तायोनिमत्पर्याप्तरूपप्रतिपक्षवदपंचेंद्रियरूपप्रतिपक्षस्य मनुष्यगतावसंभवात्—सर्वमनुष्याणा पंचेंद्रियत्वस्यैव संभवात्॥ १५०॥

सं० च०—तिर्यंच पांच प्रकार सामान्यतिर्यंच १ पंचेंद्री तिर्यंच २ पर्याप्त तिर्यंच ३ योनिमती तिर्यंच ४ अपर्याप्त तिर्यंच ५। तहां सर्व ही तिर्यंच भेदनिका समुदायरूप सो तौ सामान्य तिर्यंच है। बहुरि जो एकेंद्रियादिक विना केवल पंचेंद्री तिर्यंच सो पंचेंद्री तिर्यंच है। बहुरि जो अपर्याप्त विना केवल पर्याप्त तिर्यंच सो पर्याप्त तिर्यंच है। बहुरि जो स्त्रीवेदरूप तिर्यंचणी सो योनिमती तिर्यंच है बहुरि जो लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच है सो अपर्याप्त तिर्यंच है। ऐसैं तिर्यंच पंच प्रकार हैं बहुरि तैसैं ही मनुष्य हैं। इतना विशेष-जो पंचेंद्रिय भेदकरि हीन है तातैं सामान्यादिरूपकरि च्यारि प्रकार है। जातैं मनुष्य सर्व ही पंचेंद्री है तातैं जुदा भेद तिर्यंचवत् न होइ

तातैं सामान्य मनुष्य १ पर्याप्त मनुष्य २ योनिमती मनुष्य ३ अपर्याप्त मनुष्य ४ ए च्यारि भेद मनुष्यके जानने। तहां सर्व मनुष्य भेदनिका समुदायरूप सो सामान्य मनुष्य है। केवल पर्याप्त मनुष्य सो पर्याप्त मनुष्य है। स्त्रीवेदरूप मनुष्यणी सो योनिमती मनुष्य, लब्धि अपर्याप्तक मनुष्य सो अपर्याप्त मनुष्य है ॥ १५० ॥ आगैं देवगतिकों कहै हैं—

दीव्वंति जदो णिच्चं गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं।
भासंतदिव्वकाया तह्मा ते वण्णिया देवा ॥ १५१ ॥

दीव्यंति यतो नित्यं गुणैरष्टाभिर्दिव्यभावैः।
भासमानदिव्यकायाः तस्मात्ते वर्णिता देवाः ॥ १५१ ॥

जी० प्र० —यस्मात्कारणात् ये जीवाः नित्यं–अनवरतं, कुलगिरिमहासमुद्रादिषु दीव्यंति क्रीडति मोदंते मदयंति कामयंते अणिमादिभिरष्टभिः दिव्यभावैः–अमानुषगोचरप्रभावैः गुणैर्भासमानाः–प्रकाशमानाः, दिव्यकाया धातुमलदोषरहितप्रभासुरमनोहारशरीराः ते जीवाः तस्मात्कारणात् देवा इति परमागमे वर्णिताः ॥ १५१ ॥ अथ संसारविलक्षणां सिद्धगतिं व्यनक्ति—

म० प्र० —यत कारणात् दिव्यभावैः-अमर्त्यगोचरपर्यायैः, अष्टभिर्गुणैरणिमादिभिर्दीव्यंति-क्रीडंति अप्रतिहतवृत्त्या लोकत्रयेऽपि सपरिवाराः संतो विहरति विजिगीषते वा वलीयसोऽपि परान् स्तुवति वा सविशेष परमेष्ठिनः मोदंते वा सदा पचेंद्रियविषयभोगैः सुख्यंति। कथंभूताः सतः ? भासमानदिव्यकायाः अविच्छिन्नरूपलावण्ययौवनादिभिर्जोज्वलदमर्त्यगोचरवैक्रियिकशरीराः तस्मात् कारणात् ते जीवाः भावनव्यंतरज्योतिष्कवैमानिकविकल्पाः देवा इत्यनादिनिधने परमागमे वर्णिताः-सविस्तर प्ररूपिताः इति संक्षेपेण देवगतिरुक्ता विस्तरेण तु करणानुयोगशास्त्रे द्रष्टव्या ॥१५१॥ अथ कर्मोदयजनितचतुर्गत्यतिवर्तिस्वाभाविकसिद्धगतिप्ररूपणार्थमाह—

सं० च० —जातैं जे जीव नित्य ही दीव्यंति कहिए कुलाचल समुद्रादिकनिविषैं क्रीडा करैं हैं। हर्ष करैं है। मदनरूप हो हैं—कामरूप हो हैं। बहुरि अणिमाकौं आदि देकरि मनुष्य अगोचर दिव्यप्रभाव लीएं गुण तिनिकरि प्रकाशमान हैं। बहुरि धातु मल रोगादिक दोष तिनिकरि रहित है देदीप्यमान मनोहर शरीर जिनिका ऐसे हैं

तातैं ते जीव देव हैं ऐसैं आगमविषै कह्या है। ऐसै निरुक्तिपूर्वक लक्षणकरि च्यारि गति कहीं। यहां जे जीव सातौ नरकनिविषै महा दुःख पीडित हैं ते नारक जानने। बहुरि एकेंद्री वेंद्री तेंद्री चौइंद्री असंज्ञी पंचेंद्री पर्यंत सर्व ही अर जलचरादि पंचेंद्री ते सर्व तिर्यंच जानने। बहुरि आर्य म्लेच्छ भोगभूमि कुभोगभूमिविषै उत्पन्न मनुष्य जानने। भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी वैमानिक भेदलीएं देव जानने ॥ १५१ ॥ आगे संसार दशाका लक्षणरहित जो सिद्धगति ताहि कहै हैं----

जाइजरामरणभया संजोगविजोगदुक्खसण्णाओ।
रोगादिगा य जिस्से ण संति सा होदि सिद्धगई ॥१५२॥

जातिजरामरणभयाः संयोगवियोगदुःखसंज्ञाः।
रोगादिकाश्च यस्यां न संति सा भवति सिद्धगतिः ॥ १५२ ॥

जी० प्र०—जातिजरामरणभयानि, अनिष्टसंयोगेष्टवियोगदुःखसंज्ञाः, रोगादिविविधवेदनाश्च यस्यां न संति सा कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षप्रादुर्भूतसिद्धस्वपर्यायलक्षणा सिद्धगतिरस्ति। अत एव संसारिगत्यपेक्षया गतिमार्गणायाश्चतुर्विधत्वमुक्तं। मुक्तगत्यपेक्षया तस्यास्तद्विलक्षणत्वेन गतिमार्गणायामविवक्षितत्वात् ॥ १५२ ॥ अथ गतिमार्गणायां जीवसंख्यां कथयंस्तावन्नरकगतौ गाथाद्वयेनाह--

म० प्र०—कर्मवशाज्जीवस्य भवे भवे स्वशरीरपर्यायोत्पत्तिर्जातिः। जातस्य तथाविधशरीरपर्यायस्य वयोहान्या विशरणं जरा। स्वायुःक्षयात्तथाविधशरीरपर्यायप्राणत्यागो मरणं। अनर्थाशंकया अपकारकेभ्यः पलायनेच्छा भयं। क्लेशकारणानिष्टद्रव्यसंगमः संयोगः। सुखकारणेष्टद्रव्यापायो वियोगः। एतेभ्यः समुत्पन्नानि आत्मनो निग्रहरूपाणि दुःखानि। शेषास्तिस्रः आहारादिवाञ्छारूपाः संज्ञाः। रोगादिकाश्च रोगमानभंगवधबंधादिविविधवेदनाश्च यस्या गतौ न सति तत्कारणकृत्स्नकर्मविप्रमोक्षे सति न जायंते सा सिद्धगतिः। अनंतज्ञानदर्शनसुखवीर्यादिस्वस्वभावगुणोपलब्धिरूपायाः सिद्धेर्गतिः प्राप्तिः जीवस्य भवति-परमप्रकर्षप्राप्तरत्नत्रयपरिणतशुक्लध्यानविशेषसंपादितपरमसंवरनिर्जराभ्यां सकलकर्मक्षयादात्मनो मुक्तव्यपदेशभाजः स्वाभाविकोर्ध्वगमनसद्भावाल्लोकाग्रप्राप्तस्य सिद्धपरमेष्ठिपर्यायरूपसिद्धिगतिर्भवतीत्यर्थः ॥१५२॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः एकादशभिर्गाथासूत्रैश्चतुर्गतिजीवसंख्यां कथयंति--

सं० च०—जन्म जरा मरण भय अनिष्ट संयोग इष्टवियोग दुख संज्ञा रोगादिक नानाप्रकार वेदना जि-

हिंविषै न होंइ सो समस्तकर्मका सर्वथा नाशतैं प्रकट भया सिद्ध पर्यायरूप लक्षण धरैं सो सिद्धगति जाननी इस गतिविषैं संसारीक भाव नाहीं तातैं संसारीक गतिकी अपेक्षा गति मार्गणा च्यारि प्रकार ही कही। मुक्तिगतिकी अपेक्षा तीहिं मुक्तिगतिका नाम कर्मोदयरूप लक्षण नाही है। तातैं याकी गतिमार्गणाविषैं विवक्षा नाही है ॥ १५२ ॥ आगैं गतिमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहै हैं। तहां प्रथम ही नरक गतिविषैं गाथा दोय करि कहैं हैं–

सामण्णा णेरइया घणअंगुलबिदियमूलगुणसेढी।
बिदियादि बारदसअडछत्तिदुणिजपदहदा सेढी ॥१५३॥

सामान्या नैरयिका घनांगुलद्वितीयमूलगुणश्रेणी।
द्वितीयादिः द्वादश दशाष्टषट्त्रिद्विनिजपदहता श्रेणी ॥ १५३ ॥

जी० प्र०—घर्मादिपृथ्वीभेदविवक्षामकृत्वा सामान्यनारकाः सर्वपृथ्वीजाः घनांगुलद्वितीयवर्गमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमिता भवंति (–२मू०) वशाद्यधस्तनपृथ्वीषु नारकाः पुनः यथाक्रमं द्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयद्वितीयनिजवर्गमूलविभक्तजगच्छ्रेणीमात्राः संति $\overline{१२}$ । $\overline{१०}$ । $\overline{८}$ । $\overline{६}$ । $\overline{३}$ । $\overline{२}$ ॥ १५३ ॥

म० प्र०- घनांगुलद्वितीयवर्गमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमिताः सामान्यनारका भवति यावतस्तत्प्रदेशास्तावत सामान्यनारका इत्यर्थः एवमुत्तरत्रापि सर्वत्र ज्ञातव्यं, अत्र पृथ्वीविशेषस्याविवक्षितत्वात् । द्वितीयादिभूमिनारकसंख्या यथाक्रममुच्यते तद्यथा निजद्वादशवर्गमूलविभक्तजगच्छ्रेणिप्रमिता द्वितीयपृथ्वीनारकाः । निजदशमवर्गमूलहृतजगच्छ्रेणिप्रमिताः तृतीयपृथ्वीनारकाः । निजाष्टमवर्गमूलभक्तजगच्छ्रेणिप्रमिताश्चतुर्थभूमिनारकाः । निजषष्ठमूलवर्गभाजितजगच्छ्रेणिसंख्याः पंचमपृथ्वीनारकाः । निजतृतीयवर्गमूलावाप्तजगच्छ्रेणिप्रमिताः षष्ठपृथ्वीनारकाः । निजद्वितीयवर्गमूलापहृतजगच्छ्रेणिप्रमिता. सप्तमपृथ्वीनारका ज्ञातव्याः।

सं० च०—सामान्य सर्व सातौ ही पृथ्वीके मिले हुवे नारकी जगत श्रेणीकौं घनांगुलका द्वितीय वर्गमूलकरि गुणैं जो परिमाण होइ तिहि प्रमित हैं। इहां घनांगुलका वर्गमूलकरि उस प्रथम वर्गमूलका दूसरीवार वर्ग-

मूल कीजिए सो घनांगुलका द्वितीय वर्गमूल जानना । ऐसैं अंकसंदृष्टिकरि घनांगुलका प्रमाण सोलह ताका वर्गमूल च्यारि ताका द्वितीय वर्गमूल दोय होय ताकरि जगतश्रेणीका प्रमाण दोयसै छप्पनकौं गुणैं पांचसै बारह होय तैसै इहां यथार्थ परिमाण जानना । बहुरि दूसरी पृथ्वीके नारकी जगतश्रेणीका बारह्वां वर्गमूल ताका भाग जगत श्रेणीकौं दीएं जो प्रमाण होइ तीहि प्रमित हैं। इहां जगत श्रेणीका वर्गमूल करिए सो प्रथम वर्ग मूल बहुरि उसका वर्गमूल कीजिए सो द्वितीय वर्गमूल बहुरि उस द्वितीय वर्गमूलका वर्गमूल कीजिए सो तृतीय वर्गमूल इत्यादिक ऐसैं ही इहां अन्य वर्गमूल जानना । बहुरि तीसरी पृथ्वीके नारकी जगत श्रेणीका दशवां वर्गमूलका भाग जगत श्रेणीकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने जानने । बहुरि चौथी पृथ्वीके नारकी जगत श्रेणीका आठवां वर्गमूलका भाग जगत श्रेणीकौं दीएं जो परिमाण आवै तितने जानने । बहुरि ऐसैं ही पाचवीं पृथ्वी छठी पृथ्वी सातवीं पृथ्वीके नारकी अनुक्रमतैं जगत श्रेणीका छठा तीसरा दूसरा वर्गमूलका भाग जगत श्रेणीकौं दीएं जो जो परिमाण आवै तितने तितने जानने । जैसैं दोयसै छप्पनका प्रथम वर्गमूल सोलह द्वितीय वर्गमूल च्यारि तृतीय वर्गमूल दोय इनिका भाग क्रमतैं दोयसै छप्पनकौं दीएं सोलह चौसठि एकसौ अट्ठाईस होइं तैसैं इहां भी यथासंभव परिमाण जानना ॥ १५३ ॥

हेट्ठिमछप्पुढवीणं रासिविहीणो दु सव्वरासी दु ।
पढमावणिह्मि रासी णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो ॥१५४॥

अधस्तनषट्पृथ्वीनां राशिविहीनस्तु सर्वराशिस्तु ।
प्रथमावनौ राशिः नैरयिकाणां तु निर्दिष्टः ॥ १५४ ॥

जी० प्र०---अधस्तनवंशादिषट्पृथ्वीकथितषड्राशीनां संयोगः निजद्वादशमूलभक्तसाधिकजगच्छ्रेणिमात्रः $\frac{—}{१२}$ । अनेन सामान्यनारकरा-

शिर्विहीनः तदा धर्मानारकप्रमाणं भवति–$\frac{२-१}{१२}$ तदपनयन त्रैराशिकमिदं–प्र –। फ १ । इ १२ एकजगच्छ्रेण्यपनयने घनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रराशौ गुणकारे यद्येकं रूपमपनीयते तदा निजद्वादशमूलभक्तसाधिकश्रेण्यपनयने गुणकारे कियदपनीयते ? इति लब्धं साधिकैकद्वादशभागं $\frac{१}{१२}$ अपनयेदित्यर्थः ॥ १५४ ॥ अथ तिर्यग्जीवसंख्यां गाथाद्वयेन आह–

म० प्र०– -अधस्तनद्वितीयादिषट्पृथ्वीनारकसंख्या सर्वा मेलयित्वा पुनस्तत्सर्वराशिना विहीनः सर्वनारकराशिः सामान्यनारकराशिरेव प्रथमावन्यां रत्नप्रभायां नारकाणां राशिर्भवतीति निर्दिष्टः–परमागमे कथितः । तदानयनक्रममुच्यते–तृतीयादिपृथ्वीनारकाः सर्वेऽपि द्वितीयपृथ्वीनारकाणां असंख्येयभागमात्रा एव तद्भागहारमहत्त्वेन लब्धस्याल्पत्वात् ततस्तैः साधिको द्वितीयपृथ्वीनारकराशिरयं १२ । यदि जगच्छ्रेणिमात्री । प्र–। एका गुण्यशलाका । फ १। गुणकारे अपनीयते तदा ईदृशश्रेण्यपनयने । इ १२ । का शलाका भवतीति फलगुणितेच्छा प्रमाणेन भक्त्वा अपवर्तिते लब्धमेकशलाकायाः असंख्यातैकभागमात्रमीदृशं भवति १२ अस्मिन् घनांगुलद्वितीयवर्गमूलमात्रे श्रेणिगुणकारे अपनीते प्रथमपृथ्वीनारकसंख्येयं –$\frac{२-१}{१२}$ । अस्यांकसंदृष्टिः–एतावतः प्र २५६ यद्येका अपनयनशलाका फ १, तदा एतावतः इ $\frac{२५६}{४}$ किं स्यादिति फलगुणितेच्छा प्रमाणेन भक्त्वा अपवर्तित एवं $\frac{१}{४}$। अस्मिन् गुणकारे अपनीते २५६ । $\frac{४-१}{४}$ समच्छेदीकृत्य अपनीते शेषगुणकारः २५६ । $\frac{१५}{४}$ अपवर्त्य गुणिते लब्धमिद । ९६० एवमर्थसदृष्ट्यापि ज्ञातव्य । एवं नरकगतौ जीवसंख्या प्ररूपिता ॥१५४॥

सं० च०—नीचली जे दूसरी वंशा पृथ्वीसौं लगाइ सातवीं पृथ्वी पर्यंत छह पृथ्वीके नारकीनिका जोड दीएं साधिक जगत श्रेणीका बारह्वां वर्गमूलकरि भाजित जगतश्रेणी प्रमाण होइ सो पूर्वे सामान्य सर्वनारकीनिका परिमाण कह्या तामैं घटाएं जितने रहैं तितने पहिली घर्मा पृथ्वीके नारकी जानने। इहां घटावनेरूप त्रैराशिक ऐसैं करना। सामान्य नारकीनिका प्रमाणविषैं जगच्छ्रेणी गुण्य है। बहुरि घनांगुलका द्वितीय वर्गमूल गुणकार है सो इस प्रमाणविषैं जगच्छ्रेणीमात्र घटावना होइ तौ गुणकारका परिमाणमैंस्यों एक घटाइए तौ जो जगच्छ्रेणीका बारह्वां

वर्गमूलकरि भाजित साधिक जगच्छ्रेणीमात्र घटावना होइ तौ गुणकारमेंस्यौं कितना घटै इहां प्रमाणराशि जगतश्रेणी फलराशि एक इच्छाराशि जगत श्रेणीका बारह्वां वर्गमूलकरि भाजित जगतश्रेणी सो इहां फलकरि इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भाग दीएं साधिक एकका बारह्वां भाग जगत श्रेणीके वर्गमूलका भाग आया सो इहां घनांगुलका द्वितीय वर्गमूलमेंस्यौं घटाइ अवशेषकरि जगत श्रेणीकौं गुणे धर्मा पृथ्वीके नारकीनिका प्रमाण हो है ॥ १५४ ॥ आगें तिर्यंच जीवांकी संख्या दोय गाथाकरि कहैं हैं—

संसारी पंचक्खा तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो ।
सामण्णा पंचिंदी पंचिंदियपुण्णतेरिक्खा ॥ १५५ ॥

संसारिणः पंचाक्षाः तत्पूर्णाः त्रिगतिहीनकाः क्रमशः ।
सामान्याः पंचेंद्रियाः पंचेंद्रियपूर्णतैरश्चाः ॥ १५५ ॥

जी० प्र०—नारकमनुष्यदेवराशित्रयविहीनसर्वसंसारिराशिरेव तिर्यग्गतौ सामन्यतिर्यग्राशिप्रमाणं भवति । १३ ≡ । तद्गतित्रयराशिविहीनः सामान्यपचेंद्रियराशिरेव तिर्यग्गतौ पचेंद्रियराशिः स्यात् । =५८३६ तद्गतित्रयपर्याप्तराशिहीनः सामान्यपर्याप्तपंचेंद्रियराशिरेव तिर्यग्गतौ
४ । ४ । ६५६१
a ≡

पर्याप्तपंचेंद्रियराशिः स्यात् । =५८६४ ॥ १५५ ॥
४।४।६५६१
५ ≡

मं० प्र०—सिद्धजीवराशिरहितः सर्वजीवराशिः संसारिजीवराशिर्भवति । तस्मिन्नारकमनुष्यदेवगतित्रयजीवराशिना रहिते सति अवशिष्टः सामान्यतिर्यग्जीवराशिर्भवति । सामान्यपचेंद्रियराशौ नारकदेवमनुष्यगतित्रयजीवराशिना रहिते सति अवशिष्टस्तिर्यक्पंचेंद्रियजीवराशिर्भवति । सामान्यपंचेंद्रियराशिश्च इंद्रियमार्गणायां वक्ष्यमाणो ज्ञातव्यः । सामान्यपचेंद्रियपर्याप्तराशौ शेषगतित्रयपर्याप्तराशिना रहिते सति अवशिष्टस्तिर्यक्पचेंद्रियपर्याप्तराशिर्भवति ॥ १५५ ॥

सं० च०---संसारी जीवनिका जो परिमाण तींहिविषैं नारकी मनुष्य देव इनि तीनौं गतिनिके जीवनिका परिमाण घटाएं जो परिमाण रहै तितने प्रमाण सर्व सामान्य तिर्यंच राशि जानने। बहुरि आगैं इंद्रिय मार्गणाविषैं जो सामान्य पंचेंद्रिय जीवनिका परिमाण कहिएगा तामैंसौं नारकी मनुष्य देवनिका परिमाण घटाएं पंचेंद्रिय तिर्यंचनिका प्रमाण हो है। बहुरि आगैं पर्याप्त पंचेंद्रियानिका प्रमाण कहिएगा तामैंस्यों पर्याप्त नारकी मनुष्य देवनिका परिमाण घटाएं पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचनिका परिमाण हो है॥ १५५॥

छस्सयजोयणकदिहिदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं।
पुण्णूणा पंचक्खा तिरियअपज्जत्तपरिसंखा॥ १५६॥

षट्शतयोजनकृतिहतजगत्प्रतरं योनिमतीनां परिमाणं।
पूर्णोनाः पंचाक्षाः तिर्यगपर्याप्तपरिसंख्या॥ १५६॥

जी० प्र०—षट्शतयोजनानां कृत्या भक्तजगत्प्रतरप्रमाणं तिर्यग्गतौ योनिमतीनां द्रव्यस्त्रीणां प्रमाणं भवति। ४। ६५=। ८१४। १० तिर्यक्पंचेंद्रियपर्याप्तराशिहीनतिर्यक्पंचेंद्रियराशिरेव तिर्यगपर्याप्तपंचेंद्रियराशिप्रमाणं भवति =५८ ३६ ৪≡ ५८ ६४। ५≡ ४, ४, ६५ ६१ ॥ १५६॥ अथ मनुष्यगतिजीवसंख्यां गाथात्रयेणाह—

म० प्र०--षट्शतयोजनकृतिहतजगत्प्रतरमात्रं योनिमतीना द्रव्यतिर्यक्स्त्रीणां प्रमाणं भवति। योजनषट्शतकृतेरंगुलानि षट्त्रिंशदुत्तरपंचशताधिकपंचषष्टिसहस्रगुणितत्रिलक्षचतुर्विंशतिसहस्रकोटिप्रमितानि भवंति। तत्प्रदेशाः संख्यातप्रतरांगुलमात्राः। अयं जगत्प्रतरस्य भागहार.। तिर्यक्पंचेंद्रियपर्याप्तराशिना न्यूनस्तिर्यक्पंचेंद्रियराशिरेव तिर्यक्पंचेंद्रियापर्याप्तराशिपरिसंख्या भवति एव पंचविधतिर्यग्जीवसंख्या कथिता॥ १५६॥

सं०च०—छस्से योजनके वर्गका भाग जगत प्रतरकौं दीएं जो परिमाण होइ सो योनिमती द्रव्य तिर्यंचणीनिका परिमाण जानना। छस्सै योजन लंबा छस्सै योजन चौडा एक प्रदेश ऊंचा ऐसा क्षेत्रविषैं जितने आ-

काश प्रदेश होंइ ताका भाग जगत प्रतरकौं देना सो इनि योजनका प्रतरांगुल कीजिए तब चौगुणा पणट्ठीकौं इक्यासी हजार कोडिकरि गुणिए इतने प्रतरांगुल होंइ तिनिका भाग जगत प्रतरकौं दीजिए तब एक भाग प्रमाण द्रव्य तिर्यंचणी जाननीं। बहुरि पंचेंद्रिय तिर्यंचानिका परिमाणविषैं पंचेंद्रिय पर्याप्त तिर्यंचानिका प्रमाण घटाएं अवशेष अपर्याप्त पंचेंद्रियानिका परिमाण हो है ॥ १५६ ॥ आगैं मनुष्य गतिके जीवानिकी संख्या तीन गाथानिकरि कहै हैं–

सेढी सूईअंगुलआदिमतदियपदभाजिदेगूणा ।
सामण्णमणुसरासी पंचमकदिघणसमा पुण्णा ॥१५७॥

श्रेणी सूच्यंगुलादिमतृतीयपदभाजितैकोना ।
सामान्यमनुष्यराशिः पंचमकृतिघनसमाः पूर्णाः ॥ १५७ ॥

जी० प्र०–जगच्छ्रेणिं सूच्यंगुलस्य प्रथममूलतृतीयमूलाभ्यां भक्त्वा तल्लब्धे एकरूपे अपनीते स राशिः सामान्यमनुष्यराशिः स्यात् ।१।३। द्विरूपवर्गधारासंबंधिपंचमवर्गस्य वादालसंज्ञस्य घनप्रमाणाः पर्याप्तमनुष्या भवंति ४२ = ४२ = ४ = ॥१५७॥ अस्मिन् राशौ परस्परं गुणिते यल्लब्धं तं राशिं अक्षरसंज्ञयांकक्रमेण कथयति–

म० प्र०–सूच्यंगुलप्रथमतृतीयवर्गमूलभाजितैकोनजगच्छ्रेणिमात्रः सामान्यमनुष्यजीवराशिर्भवति । द्विरूपवर्गधारोत्पन्नपंचमवर्गस्य वादालनाम्नो घनो यः तत्समानाः पर्याप्तमनुष्या भवंति ॥ १५७ ॥

सं० च०—जगतश्रेणीकौं सूच्यंगुलकै प्रथम वर्गमूलका भाग दीजिए जो परिमाण आवै ताकौं सूच्यंगुलका तृतीयवर्गमूलका भाग दीजिए जो परिमाण आवै तामैं एक घटाएं जितने अवशेष रहैं तितने सामान्य सर्वमनुष्य जानने। बहुरि द्विरूप वर्गधारा संबंधी पंचम वर्गस्थान वादाल है ताका घन कीजिए जितने होंइ तितने पर्याप्त मनुष्य जानने। ते कितने हैं ?–

तललीनमधुगविमलंधूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा होंति हु माणुसपज्जत्तसंखंका ॥ १५८ ॥

तललीनमधुगाविमलंधूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा भवंति हि मानुषपर्याप्तसंख्यांकाः ॥ १५८ ॥

जी० प्र०—सप्तचतुर्वारकोटिद्वानवतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्रैकशतद्वाषष्टित्रिवारकोटयेकपंचाशल्लक्षद्वाचत्वारिंशत्सहस्रषट्शतत्रिचत्वारिंशद्द्विवारकोटिसप्तत्रिंशल्लक्षैकान्नषष्टिसहस्रत्रिशतचतुःपंचाशत्कोटयेकान्नचत्वारिंशल्लक्षपंचाशत्सहस्रत्रिशतषट्त्रिंशत्प्रमिता पूर्वोक्तपंचमवर्गघनांकरूपा पर्याप्तमनुष्याणां संख्या भवति ७, ९२२८१६२, ५१४२६४३, ३७५९३५४, ३९५०३३६ । अयमेव राशिः पुनरक्षरसंख्यया पूर्वानुपूर्व्या कथ्यते—

साधूरराजकीर्तेरेणांको भारतीविलोलसमधिः ॥
गुणवर्गधर्मनिगलितसंख्यावन्मानवेषु वर्णक्रमाः । इति ॥ १५८ ॥

मं० प्र०—सप्तचतुर्वारकोटिद्वानवतिलक्षाष्टविंशतिसहस्रैकशतद्वाषष्टित्रिवारकोटयेकपंचाशल्लक्षद्वाचत्वारिंशत्सहस्रषट्शतत्रिचत्वारिंशद्द्विवारकोटिसप्तत्रिंशल्लक्षैकोनषष्टिसहस्रत्रिशतचतुःपंचाशत्कोटयेकान्नचत्वारिंशल्लक्षपंचाशत्सहस्रत्रिशतषट्त्रिंशत्प्रमिता पूर्वोक्तपंचमवर्गघनांकरूपा मानुषपर्याप्तपरिसंख्या भवति ॥ सैवाक्षरसंज्ञया गाथायामुक्ता ज्ञातव्या । अत्र किंचित्प्रकृतोपयोगि कथ्यते तद्यथा—पंचचत्वारिंशल्लक्षविष्कंभस्य वृत्तस्य मनुष्यक्षेत्रस्य सूक्ष्मपरिधिः एककोटिद्विचत्वारिंशल्लक्षात्रिंशत्सहस्रद्विशतैकोनपंचाशद्योजनान्येकः क्रोशः एकसहस्रसप्तशतपट्षष्टिदंडाः पंचांगुलानि च । तत्क्षेत्रफलं षोडशलक्षनवशतत्रिकोटिषट्लक्षचतुःपंचाशत्सहस्रषट्शतैकयोजनानि, योजनस्य एकान्नविंशतिश्च षोडशवर्गभागाः, एतस्य क्षेत्रफलस्य अंगुलानि नवसहस्रचतुःशतद्विचत्वारिंशत्त्रिवारकोटयेकपंचाशल्लक्षचतुःसहस्रनवशताष्टाषष्टिकोटीकोटयेकान्नविंशतिलक्षद्विचत्वारिंशत्सहस्रचतु शतकोटिप्रमितानि भवंति एवं सति मनुष्यक्षेत्रप्रतरांगुलेभ्यः पर्याप्तमनुष्याणां संख्येयगुणत्वेन तदवगाहनशक्तिवैचित्र्य केवलागमगम्यं नास्माकमाक्षेपार्हं इत्याज्ञाश्रद्धानविषयत्वज्ञापनार्थं लिखितमाचार्यैः । एवमन्यान्यप्याज्ञाश्रद्धेयानि ज्ञातव्यानि ॥ १५८ ॥

सं० च०—इहां अक्षर संज्ञाकरि वामभागतैं अनुक्रमकरि अंक कहैं हैं। सो अक्षर संज्ञाकरि अंक कहनेका सूत्र उक्तं च कहिए है—आर्या—

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।

स्वरञनशून्यं संख्या मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ॥

याका अर्थ--ककारतैं आदि देकरि नव अक्षर तिनिकरि अनुक्रमतैं एक दोय तीन इत्यादिक अंक जानने। जैसैं ककार लिख्या होइ तहां एका जानना खकार होइ तहां दूवा जानना। गकार लिख्या होइ तहां तीया जानना। ऐसैं ही झकार पर्यंत नव ताईं अंक जानने। क$_1$ ख$_2$ ग$_3$ घ$_4$ ङ$_5$ च$_6$ छ$_7$ ज$_8$ झ$_9$ बहुरि ऐसैं ही टकारने आदि देकरि धकार पर्यंत एक दोय तीन आदि नव अंक जानने ट$_1$ ठ$_2$ ड$_3$ ढ$_4$ ण$_5$ त$_6$ थ$_7$ द$_8$ ध$_9$ बहुरि ऐसैं ही पकारने आदि देकरि मकार ताईं एक दोय आदि पंच अंक जानने। प$_1$ फ$_2$ ब$_3$ भ$_4$ म$_5$। बहुरि ऐसैं ही यकारनें आदि देकरि अष्ट अक्षरनितैं एक आदि अष्ट पर्यंत अंक जानने य$_1$ र$_2$ ल$_3$ व$_4$ श$_5$ ष$_6$ स$_7$ ह$_8$ बहुरि जहां आकार आदि स्वर लिखे हों वा ञकार वा नकार लिख्या होइ तहां विंदी जानना। बहुरि अक्षरकैं जो मात्रा होइ वा तथा कोई ऊपरि अक्षर लिख्या होइ तौ उनका कछू प्रयोजन नाहीं लेना। सो इस सूत्र अपेक्षा इहां अक्षर संज्ञाकरि अंक कहे हैं। आगैं भी श्रुतज्ञानादिका वर्णनविषैं ऐसैं ही जानना। सो इहां त कहिए छह ल कहिए तीन ली कहिए तीन न कहिए विंदी म कहिए पांच धु कहिए नव ग कहिए तीन इत्यादि अनुक्रमतैं च्यारि पांच तीन नव पांच सात तीन तीन च्यारि छह दोय च्यारि एक पांच दोय छह एक आठ दोय दोय नव सात ए अंक जानने। 'अंकानां वामतो गतिः' तातैं अंक वाईं तरफतैं लिखने '७,९२२८१६२,५१४२६४३,३७५९३५४,३९५०३३६' सो ए सात कोडाकोडि कोडाकोडि वाणवै लाख अठाईस हजार एकसौ वासठि कोडा कोडि कोडि इकावनलाख वियालीस हजार छसै तियालीसकोडाकोडि सैंतीस लाख गुणसठि हजार तीनसौ चौवन कोडि गुणतालीस लाख पचास हजार तीनसै छत्तीस पर्याप्त मनुष्य जानने। इनिके अंक दाहिणी तरफसौं अक्षर संज्ञाकरि अन्यत्र भी कहे हैं--

साधूरराजकीर्तेरेणांको भारतीविलोलसमधीः।
गुणवर्गधर्मनिगलितसंख्यावन्मानवेषु वर्णक्रमाः ॥

सो इहां सा कहिए सात धू कहिए नव र कहिए दोय रा कहिए दोय ज कहिए आठ की कहिए एक तैं कहिए छह इत्यादि दक्षिण भागतैं अंक जानने ॥ १५८ ॥

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।
सामण्णा पुण्णूणा मणुवअपज्जत्तगा होंति ॥ १५९ ॥

पर्याप्तमनुष्याणां त्रिचतुर्थो मानुषीणां परिमाणं।
सामान्याः पूर्णोना मानवा अपर्याप्तका भवंति ॥ १५९ ॥

जी० प्र०—पर्याप्तमनुष्यराशेः त्रिचतुर्भागो मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणां परिमाणं भवति ४२ = ४२ = ४२ = ३ सामान्यमनुष्यराशौ पर्याप्तमनुष्यराशावपनीते अपर्याप्तमनुष्यप्रमाण भवति । १ ३ ७ अत्र च 'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः' इति पंचचत्वारिंशल्लक्षविष्कंभमनुष्यलोकस्य विक्खंभवग्गदहगुणेत्यादिना आनीतपरिधि एककोटिद्वाचत्वारिंशल्लक्षत्रिंशत्सहस्रद्विशतैकोनपंचाशद्योजनैकक्रोशसप्तदशशतपट्षष्टिदंडपंचांगुलमात्रः यो १, ४२, ३०, २४९, क्रो १, दं १७६६, अं ५ । अयं च व्यासचतुर्थांशेन ४१/४ ल एतावता ११२५००० गुणितः षोडशलक्षनव-६५४६०१ भागा १९ इद चांगुलीकर्तुं वर्गितमकृत्वा योजनांगुलवर्गेण ७६८००० ७६८००० गुणितं नवसहस्रचतुःशतद्वाचत्वारिंशत्त्रिवारको-२५६ शतत्रिकोटिपद्लक्षचतुःपंचाशत्सहस्रपद्शतैकयोजनमात्रं एकयोजनस्यैकान्नविंशतिद्विशतपट्पंचाशद्भागाधिकं क्षेत्रफलं भवति १६००९०३०-टयेकपंचाशल्लक्षचतुःसहस्रनवशताष्टषष्टिद्विवारकोटयेकान्नविंशतिलक्षत्रिचत्वारिंशत्सहस्रचतुःशतकोटिप्रतरांगुलमात्रं भवति ९४४२, ५१०-४९६८, १९४३४०००००००० एतानि च प्रमाणांगुलानि नोत्सेधांगुलानि कर्तव्यानि । चतुर्थकालादौ उत्सर्पिणतृतीयकालावसाने विदेहादिक्षेत्रे चात्मांगुलस्यापि तत्प्रमाणत्वात् एतेभ्यः पर्याप्तमनुष्याणां संख्यातगुणत्वेऽपि आकाशस्यावगाहशक्तिवैचित्र्यात्संशीतिर्न कर्तव्या ॥ १५९ ॥ अथ देवगतिजीवसंख्यां गाथाचतुष्टयेनाह—

म० प्र०—पर्याप्तमनुष्याणां त्रिचतुर्भागमात्रं मानुषीणां-द्रव्यमनुष्यस्त्रीणां परिमाणं भवति । पर्याप्तमनुष्यराशिना न्यूनसामान्यमनुष्यराशिप्रमिता मनुष्या-पर्याप्तका भवति तिर्यग्मनुष्यगत्योर्द्वयोरपि अपर्याप्तका इत्यत्र लब्ध्यपर्याप्तका एव ग्राह्याः । निवृत्त्यपर्याप्तकानां संख्या पर्याप्तसंख्ययैव सिद्धा न्यूनाधिकत्वा-भावात् । एवं मनुष्यगतिजीवसंख्या कथिता ॥ १५९ ॥

सं० चं०—पर्याप्त मनुष्यनिका प्रमाण कह्या ताका च्यारि भाग कीजिए तामैं तीन भाग प्रमाण मनुषिणी द्रव्य स्त्री जाननी। बहुरि सामान्य मनुष्य राशिमैंस्यों पर्याप्त मनुष्यनिका परिमाण घटाएं अवशेष अपर्याप्त मनुष्यनिका परिमाण हो है इहां 'प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः' इस सूत्रकरि पैंतालीस लाख योजन व्यास धरैं मनुष्य लोक है। ताका 'विक्खंभवग्गदहगुण' इत्यादि सूत्रकरि एक कोडि वियालीस लाख तीस हजार दोयसै गुणचास योजन, एक कोश, सतरहसै छ्यासठि धनुष, पांच अंगुल प्रमाण परिधि है। बहुरि याकौं व्यासकी चौथाई ग्यारह लाख पचीस हजार योजनकरि गुणैं सोलह लाख नवसै तीनि कोडि छहलाख चौवन हजार छसै एक योजन अर एक योजनका दोयसै छप्पन भागविषैं उगणीस भाग इतना क्षेत्रफल है। बहुरि याके अंगुल करने सो एक योजनके सात लाख अडसठि हजार अंगुल हैं। सो वर्गराशिका गुणकार वर्गरूप होइ इस न्यायकरि सात लाख अडसठि हजारका वर्गकरि तिस क्षेत्रफलकौं गुणैं नवहजार च्यारिसै वियालीस कोडाकोडि कोडि इक्यावन लाख च्यारि हजार नवसै अडसठि कोडाकोडि उसणीस लाख तियालीस हजार च्यारिसै कोडि प्रतरांगुल हैं। बहुरि प्रमाणांगुल हैं सो इहां उत्सेधांगुल न करने जातैं चौथा कालका आदिविषैं वा उत्सर्पिणीकालका तीसरा कालका अंतविषैं वा विदेहादि क्षेत्रविषैं आत्मांगुलका भी प्रमाण प्रमाणांगुलके समान है। सो इनि प्रतरांगुलनिके प्रमाणतैं भी पर्याप्त मनुष्य संख्यात गुणे हैं तथापि आकाशकी अवगाहनकी विचित्रता जानि संदेह न करना ॥ १५९ ॥ आगैं देवगतिके जीवनिकी संख्या च्यारि गाथानिकरि कहै हैं–

तिण्णिसयजोयणाणं बेसदछप्पण्णअंगुलाणं च।
कदिहदपदरं वेंतरजोइसियाणं च परिमाणं ॥ १६० ॥

त्रिशतयोजनानां द्विशतषट्पंचाशदंगुलानां च।
कृतिहतप्रतरं व्यंतरज्योतिष्काणां च परिमाणं ॥ १६० ॥

जी० प्र०–त्रिशतयोजनानां कृत्या षट्पंचाशदुत्तरद्विशतांगुलानां कृत्या च भाजितौ जगत्प्रतरौ यथासंख्यं व्यंतरप्रमाणं ज्योतिष्कप्रमाणं च भवति संदृष्टिः- व्यंतराः ४ । ६५ = । ८१ । १० ज्योतिष्काः ४ । ६५ = ॥ १६० ॥

मं० प्र०–त्रिशतयोजनानां कृत्या जगत्प्रतरे भाजिते यल्लब्धं तद् व्यंतरदेवानां परिमाणं भवति । पूर्ववद्भागहारयोजनानामंगुलविधानादि । तत्र पणट्ठी-गुणितैकाशीतिसहस्रकोटिमात्रसंख्येयप्रतरांगुलप्रमितो जगत्प्रतरस्य भागहारः । द्विशतषट्पंचाशदंगुलकृत्या भक्ते जगत्प्रतरे यल्लब्धं तज्ज्योतिष्कदेवानां परिमाणं भवति । अत्र पणट्ठीमात्रसंख्येयप्रतरांगुलप्रमितो जगत्प्रतरस्य भागहारः ॥ १६० ॥

सं० च०—तीनसै योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण होइ तितना व्यंतरनिका प्रमाण जानना। तीनसै योजन लंबा तीनसै योजन चौडा एक प्रदेश ऊंचा ऐसा क्षेत्रका जितने आकाशका प्रदेश होंइ ताका भाग दीजिए सो याका प्रतरांगुल कीएं पैसठि हजार पांचसै छत्तीसकौं इक्यासी हजार कोडि गुणां-करिए इतने प्रतरांगुल होइं तिनिका भाग जगत्प्रतरकौं दीये व्यंतरनिका प्रमाण होइ है। बहुरि दोयसै छप्पन अं-गुलके वर्गका जगत्प्रतरकौं भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना ज्योतिषीनिका परिमाण जानना। दोयसै छप्पन अंगुल चौडा इतना ही लंबा एक प्रदेश ऊंचा ऐसा क्षेत्रका जितना आकाशका प्रदेश होइ ताका भाग दीजिए सो याका प्रतरांगुल पैसठि हजार पांचसै छत्तीस है ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं ज्योतिषी देवनिका परिमाण हो है ॥ १६० ॥

घणअंगुलपढमपदं तदियपदं सेढिसंगुणं कमसो ।
भवणे सोहम्मदुगे देवाणं होदि परिमाणं ॥ १६१ ॥

घनांगुलप्रथमपदं तृतीयपदं श्रेणिसंगुणं क्रमशः ।
भवने सौधर्मद्विके देवानां भवति परिमाणं ॥ १६१ ॥

जी० प्र०—श्रेणीगुणितघनांगुलप्रथमवर्गमूलं श्रेणिगुणितघनांगुलतृतीयवर्गमूलं च यथाक्रमं भवनेषु सौधर्मद्वये च देवानां प्रमाणं भवति । संदृष्टिः—भावनाः –१ । सौधर्मद्वयजाः –३ ॥ १६१ ॥

मं० प्र०—घनांगुलस्य प्रथमवर्गमूलेन गुणितजगच्छ्रेणिमात्रं भवनवासिकदेवानां परिमाणं भवति । घनांगुलतृतीयवर्गमूलसंगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं सौधर्मद्विके-सौधर्मैशानकल्पयोर्देवानां परिमाणं भवति । क्रमश इति यथाक्रमं पूर्वाचार्यानुक्रमं वा सूचयति ॥ १६१ ॥

सं० च०----घनांगुलका जो प्रथम वर्गमूल तिहिनैं जगत श्रेणीकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने भवनवासीनिका परिमाण जानना। बहुरि घनांगुलका जो तृतीय वर्गमूल तिहिनैं जगत श्रेणीकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने सौधर्म अरु ईशान स्वर्गका वासी देवनिका परिमाण जानना ॥ १६१ ॥

तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूलभाजिदा सेढी ।
पल्लासंखेज्जदिमा पत्तेयं आणदादिसुरा ॥ १६२ ॥

तत एकादशनवसप्तपंचचतुर्निजमूलभाजिता श्रेणी ।
पल्यासंख्यातकाः प्रत्येकमानतादिसुराः ॥ १६२ ॥

जी० प्र०---तत उपरि सनत्कुमारमाहेंद्रयुगलादारभ्य शतारसहस्रारयुगलावसानपंचकल्पयुगलेषु देवाः यथाक्रमं निजैकादशमूलेन नवममूलेन सप्तममूलेन पंचममूलेन चतुर्थमूलेन भाजितजगच्छ्रेणिप्रमिता भवंति । ११ । ९ । ७ । ५ । ४ पुनः तत उपरि आनतादिकल्पयुगलद्वये अधस्तनमध्यमोपरिमग्रैवेयकत्रये अनुदिशविमानेषु चतुरनुत्तरविमानेषु च देवाः प्रत्येकं पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवंति प ॥ १६२ ॥
a

मं० प्र०—ततः सौधर्मैशानकल्पाभ्यामूर्ध्वं निजैकादशवर्गमूलभक्तजगच्छ्रेणिमात्राः सनत्कुमारमाहेंद्रकल्पजा देवाः । निजनवमवर्गमूलविभक्तजगच्छ्रेणिप्रमिता ब्रह्मब्रह्मोत्तरकल्पजा देवाः । निजसप्तमवर्गमूलभाजितजगच्छ्रेणिसंख्या लांतवकापिष्ठकल्पजा देवाः । निजपंचमवर्गमूलावाप्तजगच्छ्रेणिप्रमाणाः शुक्रमहाशुक्रकल्पजा देवाः । निजचतुर्थवर्गमूलभाजितजगच्छ्रेणिप्रमाणाः शतारसहस्रारकल्पजा देवाः । आनतादिसुराः-आनतप्राणतारणाच्युतनवग्रैवेयकनवानुदिशविजयवैजयंतजयंतापराजित,भिधाः षट्विंशतिस्थानाविमानवासिनो देवाः प्रत्येकंपल्यासंख्यातैकभागप्रमिता भवंति तत्र आरणादिदेवाः संख्यातगुणहीनाः ॥१६२॥

सं० च०—बहुरि तहां ऊपरि सनत्कुमार माहेंद्र बहुरि ब्रह्म ब्रह्मोत्तर बहुरि लांतवकापिष्ठ शुक्रमहाशुक्र बहुरि शतार सहस्रार इनि पांच युगलनिविषैं अनुक्रमतैं जगतश्रेणीका ग्यारहवां नवमां सातवां पांचवां चौथा जो वर्ग-

मूल तिनिका भाग जगत श्रेणीकों दीएं जितना जितना परिमाण आवै तितना तितना तहांके वासी देवनिका प्रमाण जानना । वहुरि ता ऊपरि आनत प्राणत युगल वहुरि आरण अच्युत युगल वहुरि तीन अधोग्रैवेयक तीन मध्य ग्रैवेयक तीन उपरिम ग्रैवेयक वहुरि नव अनुदिश विमान वहुरि सर्वार्थसिद्धि विमान विना च्यारि अनुत्तर विमान इन एक एकविषैं देव पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण जानने ॥ १६२ ॥

तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो ।
सामण्णदेवरासी जोइसियादो विसेसहिया ॥ १६३ ॥

त्रिगुणा सप्तगुणा वा सर्वार्था मानुषीप्रमाणतः ।
सामान्यदेवराशिः ज्योतिष्कतो विशेषाधिकः ॥ १६३ ॥

जी० प्र०--सर्वार्थसिद्धिजाहमिंद्राः मनुष्यस्त्रीसंख्यातः त्रिगुणा भवंति । अथवा आचार्यांतराभिप्रायेण सप्तगुणा भवंति ४२=४२=४२=$\frac{3}{4}$ । ३ । ७ । ज्योतिष्कराशिमध्ये भावनकल्पवासिदेवमाधिकव्यंतरराशौ संख्येयभागमात्रे ४ । ६५=। ८१ । १० युक्ते सति सर्वसामान्यराशिर्भवति । ४ । ६५= १ ॥ १६३ ॥

इत्याचार्य श्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु गतिप्ररूपणनाम षष्ठोऽधिकारः ॥ ६ ॥

मं० प्र०-सर्वार्थसिद्धिदेवाः, मनुष्यस्त्रीप्रमाणात् त्रिगुणा इति केषांचिदाचार्याणां संप्रदायः । वा--अथवा सप्तगुणा इत्यपरेषां संप्रदायः । नास्माकमत्र-निर्णयशक्तिरस्ति । ज्योतिष्कदेवराशेर्विशेषाधिकः सामान्यदेवराशिर्भवति । ज्योतिष्कराशेः संख्येयभागमात्रेण व्यंतरदेवराशिना असंख्येयश्रेणिमात्रेण भावनदेवराशिना, असंख्यातश्रेणिमात्रेण वैमानिकदेवराशिना च साधिक इत्यर्थः ॥ १६३ ॥

इति श्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धान्तचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ गतिमार्गणाप्ररूपणो नाम षष्ठोऽधिकारः ॥ ६ ॥

---:०:---

संं० च०--बहुरि सर्वार्थसिद्धिके वासी अहमिंद्र देव मनुषिणीनिका जो परिमाण पर्याप्त मनुष्यनिका च्यारिभागमैं तीन भाग प्रमाण कह्या था तातैं तिगुणा जानना। बहुरि कोई आचार्यका अभिप्रायतैं सात गुणा है। बहुरि ज्योतिषी देवनिका परिमाणविषै भवनवासी कल्पवासी देवनिका प्रमाणकरि साधिक ऐसा ज्योतिषी देवनिके संख्यातवै भाग जो व्यंतर राशि सो जोडै सर्व सामान्य देवनिका परिमाण हो है॥ १६३॥

इति श्रीआचार्य नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तीविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसारि इस सम्यग्ज्ञानचद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषै गतिप्ररूपणा नामा छठा अधिकार संपूर्ण भया॥ ६॥

अथ इंद्रियमार्गणाप्ररूपणाधिकारः॥ ७॥

जी०-प्र०-

श्रीमंतं त्रिजगत्पूज्यं लोकालोकप्रकाशकं।
सप्तमं तीर्थकर्तारं श्रीसुपार्श्वं नमाम्यहं॥ ७॥

अथेंद्रियमार्गणां प्रारभमाणः इंद्रियशब्दस्य निरुक्तिपूर्वकमर्थं कथयति-

मं०-प्र०—

सुपार्श्वं भवसतापसंतानहरपार्श्वकं।
सप्तमं तीर्थकर्तारं जिनेंद्रं प्रणमाम्यहं॥ ७॥

अथैकादशभिर्गाथाभिः शास्त्रकारः इंद्रियमार्गणा प्ररूपयति-

सं० चं०-

लोकालोकप्रकाशकर जगत पूज्य श्रीमान।
सप्तम तीर्थंकर नमौं श्रीसुपार्श्व भगवान॥ ७॥

आगैं इंद्रियमार्गणाका आरंभ करैं हैं तहां प्रथम इंद्रिय शब्दका निरुक्ति पूर्वक अर्थ कहैं हैं—

अहमिंदा जह देवा अविसेसं अहमहंति मण्णंता।

ईसंति एक्कमेक्कं इंदा इव इंदिये जाण ॥ १६४ ॥

अहमिंद्रा यथा देवा अविशेषमहमहमिति मन्यमानाः ।
ईशते एकैकमिंद्रा इव इंद्रियाणि जानीहि ॥ १६४ ॥

जी० प्र०–यथा ग्रैवेयकादिजाता अहमिंद्रदेवा अहमहमिति स्वामिभृत्यादिविशेषशून्यं मन्यमाना एकैके भूत्वा आज्ञादिभिरपरतंत्राः संतः ईशते -प्रभवंति-स्वामिभाव श्रयंति तथा स्पर्शनादींद्रियाण्यपि स्पर्शादिस्वस्वविषयेषु ज्ञानमुत्पादयितुं ईशते-परानपेक्षतया प्रभवंति ततः कारणात् अहमिंद्रा इव इंद्रियाणीति सादृश्यार्थाश्रयनिरुक्तिसिद्धमिंद्रियशब्दार्थं जानीहि इति शिष्यसंबोधनं प्रतिपत्तव्यं ॥ १६४ ॥ अथेंद्रियभेदस्वरूपं निरूपयति—

मं० प्र०–यथा अहमिंद्रदेवाः-ग्रैवेयकनिवास्यादयः अविशेषं-इंद्रसामानिकादिभेदं विना स्वस्वव्यापारेषु अहमहमिति स्वतंत्रतया आत्मानं मन्यमानाः, एकैकं-प्रत्येकं, ईशते-स्वामित्वेन सेवादैन्यविरहिताः प्रवर्तंते तथा स्पर्शनादींद्रियाण्यपि स्पर्शादिस्वस्वविषयग्रहणव्यापारेषु हीनाधिकभावविशेषं विना अहमहमिति स्वतंत्रया आत्मान मन्यमानानि प्रत्येकमीशते–परापेक्षा विना वर्तंते । ततः इद्रा इव इद्रियाणीति इवार्थे घप्रत्ययो निपात्यते । स्पर्शनेंद्रियस्य स्वविषये स्पर्शे ज्ञानं जनयितुं रसनाद्यपेक्षा नहि विद्यते एव रसनादीनामपींद्रियांतरनिरपेक्षतया स्वस्वविषयज्ञानजननस्वभावोऽस्तीति ज्ञातव्यं । इद निरुक्तिवचनं इंद्रस्य आत्मनो लिंगमिंद्रिय, इद्रेण जातिनामकर्मणा अगोपागनामकर्मणा वा सृष्टमिंद्रियमित्यादिनिरुक्तीनामुपलक्षणत्वेन सूचकं भवति ॥ १६४ ॥

सं० चं०–जैसैं ग्रैवेयकादिकविषैं उपजे ऐसे अहमिंद्र देव ते सेवक स्वामीके भेदरहित मैं ही मैं हौ ऐसैं मानते संते जुदे जुदे एक एक होइ आज्ञादिककरि पराधीनतातैं रहित होते संते ईश्वरताकौं धरैं हैं प्रभावकौं धरैं हैं स्वामीपनांकौं धरैं हैं तैसैं स्पर्शनादिक इंद्रिय भी अपने अपने स्पर्शादिविषयविषैं ज्ञान उपजावनेविषैं कोई किसीके आधीन नाहीं जुदे जुदे एक एक इंद्रिय परकी अपेक्षा रहित ईश्वरताकौं धरैं हैं प्रभावकौं धरे हैं तातैं अहमिंद्रवत् इंद्रिय हैं । ऐसैं समानतारूप निरुक्तिकरि सिद्ध भया ऐसा इंद्रिय शब्दका अर्थकौं हे शिष्य तू जानि ॥ १६४ ॥ आगैं इंद्रियनिके भेदस्वरूप कहै हैं—

मदिआवरणखओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्जबोहो वा ।

भाविंदियं तु दव्वं देहुदयजदेहचिण्हं तु ॥ १६५ ॥

मत्यावरणक्षयोपशमोत्थविशुद्धिर्हि तज्जबोधो वा ।
भावेंद्रियं तु द्रव्यं देहोदयजदेहचिह्नं तु ॥ १६५ ॥

जी० प्र०—मतिज्ञानावरणक्षयोपशमोत्था विशुद्धिर्जीवस्यार्थग्रहणशक्तिलक्षणलब्धि:, सा च मतिज्ञानावरणक्षयोपशमजनितबोधः स्वार्थग्रहणव्यापाररूपोपयोगः इति द्वयं भावेंद्रियं । भावः—चित्परिणामः, तदात्मकमिंद्रियं भावेंद्रियं, इंद्रस्य—आत्मनो लिंगं इंद्रियं इति व्युत्पत्त्यापि लब्ध्युपयोगलक्षणस्यैव भावेंद्रियत्वसमर्थनात् । पुनः जातिनामकर्मोदयसहकारि देहनामकर्मोदयजनितं निर्वृत्त्युपकरणरूपं, देहचिह्नं—एकेंद्रियादिशरीरस्य प्रतिनियतसंस्थानाभिव्यंजकरूपपुद्गलद्रव्यात्मकमिंद्रिय द्रव्येंद्रियं । एवमिंद्रियं द्रव्यभावात्मकतया द्विधा भिद्यते । तत्र लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियमिति, अर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः अर्थग्रहणव्यापार उपयोगः । 'प्रत्यक्षनिरतानींद्रियाणि' अक्षाणि इंद्रियाणि, अक्षमक्षं प्रति वर्तत इति प्रत्यक्षं विषयः, अक्षबोधो वा । तत्र निरतानि व्यापृतानींद्रियाणि । विशेषाभावात्तेषां संकरव्यतिकररूपेण व्यापृतिः प्राप्नोति ? इति चेन्न, प्रत्यक्षे नियमिते रतानीति प्रतिपादनात् । संकरव्यतिकरदोषनिवारणाय स्वविषयनिरतानींद्रियाणीति वा वक्तव्यं । स्वेषां विषयः स्वविषयः, तत्र निश्चयेन निर्णयेन रतानींद्रियाणि स्वविषयनिरतानींद्रियाणि, संशयविपर्यासावस्थायां निर्णयात्मकरतेरभावात् । तत्र आत्मनोऽनिंद्रियत्वं स्यात् ? इति चेन्न रूढिबलादुभयत्र प्रवृत्त्यविरोधः । अथवा 'स्ववृत्तिनिरतानींद्रियाणि' संशयविपर्ययनिर्णयादौ वर्तनं—वृत्तिः तस्यां स्ववृत्तौ निरतानींद्रियाणि । निर्व्यापारावस्थायामनिंद्रियव्यपदेशः स्यादिति चेन्न, दत्तोत्तरत्वात् । अथवा 'स्वार्थनिरतानींद्रियाणि' अर्यते—परिच्छिद्यते इत्यर्थः स्वस्मिन्नर्थे च निरतानींद्रियाणि निरवद्यत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति । अथवा इंदनादाधिपत्यात् इंद्रियाणि स्पर्शरसगंधरूपशब्दज्ञानावरणकर्मणां क्षयोपशमाः द्रव्येंद्रियकारणानींद्रियाणीत्यर्थः ।

यदिंद्रस्यात्मनो लिंगं यदि वा इंद्रेण कर्मणा । सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं वेति तदिंद्रियं ॥
मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथानेकप्रकारतः । कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥

पुनस्तेष्विंद्रियेषु तत्तदावरणक्षयोपशमविशिष्टात्मकप्रदेशसंस्थानमभ्यंतरनिर्वृत्तिः । तदवष्टब्धशरीरप्रदेशसंस्थानं बाह्यनिर्वृत्तिः । इंद्रियपर्याप्त्यायातनोकर्मवर्गणास्कंधरूपं स्पर्शाद्यर्थज्ञानसहकारि यत्तदभ्यंतरमुपकरणं । तदाश्रयभूतत्वगादिकं बाह्यमुपकरणमिति ज्ञातव्यं ॥ १६५ ॥

अथ तथाविधेंद्रियोपलक्षितजीवानाह—

मं० प्र०—मतिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्था तत्क्षयोपशमाज्जाता आत्मनो विशुद्धिः अर्थग्रहणशक्तिः, लब्धिः, योग्यतेत्यपरनामधेया, तज्जबोधो

वा तद्विशुद्धेर्जातः स्वार्थग्रहणव्यापाररूप उपयोगश्च भावेंद्रियं । भावः चित्परिणामः, तल्लक्षणमिंद्रियं भावेंद्रियमित्यनेन लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियमिति लक्षणार्थ-शास्त्राविसंवादेन खलु स्फुटं भावेंद्रियस्य उपयुक्त । मानव्य मनुष्यार्थः प्रदेशप्रचयाः या निर्वृत्तिः देशोपचारेणोत्पन्न जातिनामकर्मोदयसहितात् शरीरनामकर्मोदयाज्जात शरीरगत स्पर्शनादिभावेंद्रियस्य चिह्न किं निर्वृत्युपकरणभेदेन द्विविधं । द्रव्यं पुद्गलपर्यायः, तद्रूपमिंद्रियं द्रव्येंद्रियं नामैकदेशस्य नाम्नि वर्तनात् । निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियाणीति परमागममाश्रित्य ग्रंथकारः स्वयमेवाग्रे वक्ष्यति । द्विविधशब्दः द्रव्येंद्रियभावेंद्रियभेदेनेंद्रियस्य सामर्थ्यसंभा-र्था इयं गाथा इति सूचयति ॥ १६५ ॥

सं०चं०--इंद्रिय दोय प्रकार हैं एक भावेंद्रिय एक द्रव्येंद्रिय। तहां लब्धि उपयोगरूप तौ भावेंद्रिय है। तहां मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतें भई जो विशुद्धता इंद्रियनिके जे विषय तिनके जाननेकी शक्ति जीवकें भई सो ही है लक्षण जाका सो लब्धि कहिए। बहुरि मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतें निपज्या ज्ञान विषय जाननेका प्रवर्तनरूप सो उपयोग कहिए जैसें किसी जीवकें सुननेकी शक्ति है परंतु उपयोग कहीं और जायगा लागि रह्या था सो विना उपयोग किछू सुनै नाहीं। बहुरि कोऊ जान्या चाहै है अर क्षयोपशम शक्ति नाहीं तौ कैसें जानै तातैं लब्धि अर उपयोग दोऊ मिलें विषयका ज्ञान होइ तातैं इनिकौं भावेंद्रिय कहिए। भाव कहिए चेतना परिणाम तींहिस्वरूप जो इंद्रिय सो भावेंद्रिय कहिए जातें इंद्र जो आत्मा ताका जो लिंग कहिए चिह्न सो इंद्रिय है ऐसी निरुक्ति करि भी लब्धि उपयोगरूप भावेंद्रियका ही दृढपना हो है। बहुरि निर्वृत्ति अर उपकरण रूप द्रव्येंद्रिय है तहां जिनि प्रदेशनिकरि विषयनिकौं जानैं सो निर्वृत्ति कहिए बहुरि वाके सहकारी निकटवर्ती जे होंइ तिनिकौं उपकरण कहिए सो जातिनामा नामकर्मके उदयसहित शरीरनामा नामकर्मके उदयतें निपज्या जो निर्वृत्ति उपकरणरूप देहका चिह्न एकेंद्रियादिकका शरीरका यथायोग्य अपने अपने ठिकानें आकारका प्रकट करनहारा पुद्गल द्रव्यस्वरूप इंद्रिय सो द्रव्येंद्रिय है। ऐसें इंद्रिय द्रव्य भाव भेदकरि दोय प्रकार है तहां लब्धि उपयोग भावेंद्रिय है। तहां विषयके ग्रहण करनेकी शक्ति सो लब्धि है अर विषयके ग्रहणरूप व्यापार सो उपयोग है। अब इंद्रिय शब्दकी निरुक्ति करि लक्षण कहै हैं—

'प्रत्यक्षनिरतानि इंद्रियाणि' अक्ष कहिए इंद्रिय सो अक्ष अक्ष प्रति जो प्रवर्तै सो प्रत्यक्ष कहिए । ऐसा प्रत्यक्षरूप विषय अथवा इंद्रिय ज्ञान तिहिंविषैं निरतानि कहिए व्यापार रूप प्रवर्तै ते इंद्रिय हैं। इहां तर्क-जो इस लक्षणविषैं विशेषके अभावतैं तिन इंद्रियनिके संकर व्यतिकररूपकरि प्रवृत्ति प्राप्त होय। जो परस्पर इंद्रियनिका स्वभाव मिलि जाय सो संकर कहिए अपने स्वभावतैं जुदापनाका होना सो व्यतिकर कहिए। तहां समाधान-जो इहां 'प्रत्यक्षे नियमिते रतानि इंद्रियाणि' अपने अपने नियमरूप प्रत्यक्षविषै जे रत ते इंद्रिय हैं ऐसा लक्षणका प्रतिपादन है । तातैं नियमरूप कहनेकरि अपना अपना विशेषका ग्रहण भया । अथवा संकर व्यतिकर दोष निवारणेके अर्थि 'स्वविषयनिरतानि इंद्रियाणि' स्वविषय कहिए अपना अपना विषय तिहिविषैं 'नि' कहिए निश्चयकरि निर्णयकरि रतानि कहिए प्रवर्तै ते इंद्रिय हैं ऐसा कहना । इहां तर्क-जो संशय विपर्यय-विषैं निर्णयरूप रत नाहीं है तातैं इस लक्षणकरि संशय विपर्ययरूप विषय ग्रहणविषैं आत्माकैं अतींद्रियपना होइ । तहां समाधान-जो रूढिके बलतैं निर्णयविषैं वा संशय विपर्ययविषैं दोऊ जायगा तिसलक्षणकी प्रवृत्ति-का विरोध नाहीं । जैसैं 'गच्छतीति गौः' गमन करै ताहि गो कहिए सो समभिरूढ नयकरि गमनकरतैं वा शयनादि करतैं भी गो कहिए तैसैं इहां भी जानना । अथवा 'स्ववृत्तिनिरतानि इंद्रियाणि' स्ववृत्तिकाहिए संशय विपर्यय रूप वा निर्णयरूप अपना प्रवर्तन तींहिविषैं निरतानि कहिये व्यापार रूप प्रवर्तै ते इंद्रिय हैं ऐसा लक्षण कहिए । इहां तर्क-जो ऐसा लक्षण कीएं अपने विषयका ग्रहण रूप व्यापारविषैं जीव न प्रवर्तै तींहिं अ-वस्थाविषै अतींद्रियपना कहना होइ । तहां समाधान—कि ऐसैं नाहीं, जातैं पूर्वै ही उत्तर दीया है। रूढिकरि विषय ग्रहण व्यापार होतैं वा न होतैं पूर्वोक्त लक्षण संभवै है । अथवा 'स्वार्थनिरतानि इंद्रियाणि' अर्यंते क-हिए जानिए सो अर्थ, सो अपनेविषैं वा विषयरूप अर्थविषैं जे निरत ते इंद्रिय हैं सो इसलक्षणविषै कोऊ दोष नाहीं, तातैं इहां किछू तर्क रूप कहना ही नाहीं । अथवा 'इंदनात् इंद्रियाणि' इंदनात् कहिए स्वामीपनांतैं इंद्रिय हैं । स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द इनिका जानने रूप ज्ञानका आवरणभूत जे कर्म तिनिका क्षयोपशमतैं

अपना अपना विषय जाननेरूप स्वामित्वकौं धरैं द्रव्येंद्रिय है कारण जिनिका ते इंद्रिय हैं। ऐसा अर्थ जानना। उक्तं च श्लोक—

यदिंद्रस्यात्मनो लिंगं यदि वेंद्रेण कर्मणा।
सृष्टं जुष्टं तथा दृष्टं दत्तं चेति तदिंद्रियं ॥

याका अर्थ—इंद्र जो है आत्मा ताका चिह्न सो इंद्रिय है। अथवा इंद्र जो कर्म ताकरि निपज्या वा सेया वा तैसैं देख्या वा दीया सो इंद्रिय है।

मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथानेकप्रकारतः।
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारतः ॥

याका अर्थ–जैसैं मलसंयुक्त मणिकी व्यक्ति अनेक प्रकारतैं हो है। तैसैं कर्मसंयुक्त आत्माकी जाननेरूप क्रिया अनेक प्रकारतैं होइ ऐसैं इंद्रिय शब्दके निरुक्तिका अनेक प्रकारकरि वर्णन कीया। बहुरि तिनि इंद्रियनिविषैं निर्वृत्ति दोय प्रकार अभ्यंतर, बाह्य। तहां जो निज निज इंद्रियावरणकी क्षयोपशमताकी विशेषता लीएं आत्माके प्रदेशनिका संस्थान सो अभ्यंतर निर्वृत्ति है। बहुरि तिसही क्षेत्रविषैं जो शरीरके प्रदेशनिका संस्थान सो बाह्य निर्वृत्ति है। बहुरि उपकरण भी दोयप्रकार है अभ्यंतर, बाह्य। तहां इंद्रिय पर्याप्तिकरि आई जो नो कर्मवर्गणा तिनिका स्कंधरूप जो स्पर्शादिविषय ज्ञानकौं सहकारी होइ सो तौ अभ्यंतर उपकरण है अर ताके आश्रयभूत जो चामडी आदि सो बाह्य उपकरण है। ऐसा विशेष जानना ॥१६५॥ आगैं इनि इंद्रियनिकरि संयुक्त जीवनिकौं कहैं हैं–

फासरसगंधरूवे सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं।

इगिबितिचदुपंचिंदियजीवा णियभेयभिण्णा ओ ॥१६६॥

स्पर्शरसगंधरूपे शब्दे ज्ञानं च चिह्नकं येषां ।
एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवाः निजभेदभिन्ना ओः ॥ १६६ ॥

जी० प्र०—येषां जीवानां स्पर्शे ज्ञानं चिह्नं ते जीवा एकेंद्रियाः । येषां स्पर्शरसयोर्ज्ञानं चिह्नं ते जीवा द्वींद्रियाः । येषां स्पर्शरसगंधेषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवास्त्रींद्रियाः । येषां स्पर्शरसगंधरूपेषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवाश्चतुरिंद्रियाः । येषां स्पर्शरसगंधरूपशब्देषु ज्ञानं चिह्नं ते जीवाः पचेंद्रियाः । ते सर्वे जीवा निजनिजभेदभिन्ना इति ज्ञातव्याः ॥ १६६ ॥ अथैकेंद्रियादिजीवानां संभवदिंद्रियसंख्यां प्ररूपयति—

मं० प्र०—येषां जीवानां स्पर्शे रसे गंधे रूपे शब्दे च ज्ञानं साकारोपयोगरूपं स्वार्थग्रहणशक्तिजनितं भावेंद्रियाख्यलिंगमास्ति ते जीवा यथाक्रममेकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाः, निजभेदभिन्नाः—स्वावांतरभेदविशिष्टा भवंति ओ इति शिष्यसंबोधनार्थं प्राकृते अव्ययं । अत्रायं विभागः—एकस्मिन्नेव स्पर्शे ज्ञान येषां ते एकेंद्रियाः । द्वयोः स्पर्शरसनयोर्ज्ञानं येषां ते द्वींद्रियाः । त्रिषु स्पर्शरसगंधेषु ज्ञानं येषा ते त्रींद्रियाः । चतुर्षु स्पर्शरसगंधरूपेषु ज्ञान येषां ते चतुरिंद्रियाः । पंचसु स्पर्शरसगंधरूपशब्देषु ज्ञान येषा ते पचेंद्रिया इति ॥ १६६ ॥

सं० च०—जिनि जीवनिका स्पर्शविषैं ज्ञान है ऐसा चिह्न होइ ते एकेंद्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श अर रसविषै ज्ञान है ऐसा चिह्न होइ ते जीव द्वींद्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श रस गंधविषैं ज्ञान है ऐसा चिह्न होइ ते जीव तेइंद्रिय हैं । बहुरि जिनिका स्पर्श रस गंध वर्णविषैं ज्ञान है ऐसा चिह्न होइ ते जीव चतुरिंद्रिय हैं। बहुरि जिनिका स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दविषैं ज्ञान ऐसा चिह्न होइ ते जीव पंचेंद्रिय हैं ते सर्व जीव अपने अपने भेदकरि जुदे हैं ऐसैं जानने ॥ १६६ ॥ आगै एकेंद्रियादिक जीवनिकै केती केती इंद्री संभवै हैं सो कहै हैं—

ए इंदियस्स फुसणं एक्कंवि य होदि सेसजीवाणं ।
होंति कमउड्ढियाइं जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं ॥१६७॥

एकेंद्रियस्य स्पर्शनमेकमपि च भवति शेषजीवानां।
भवंति क्रमवर्धितानि जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि ॥ १६७ ॥

जी० प्र०—एकेंद्रियजीवस्य एकं स्पर्शनमेव भवति शेषद्वींद्रियादिजीवानां जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणि क्रमेणैकैकवृद्धानि भवंति। एकमेव इंद्रियं येषां ते एकेंद्रियाः। द्वे एव इंद्रिये येषां ते द्वींद्रियाः। त्रीण्येवेंद्रियाणि येषां ते त्रींद्रियाः। चत्वारि एव इंद्रियाणि येषां ते चतुरिंद्रियाः। पचैव इंद्रियाणि येषां ते पचेंद्रिया इति व्युत्पत्तिसिद्धत्वात् ॥ १६७ ॥ अथ स्पर्शनादींद्रियाणां विषयक्षेत्रं प्रमाणयति--

म० प्र०—प्राक्तनसूत्रे एकेंद्रियादीना विषय वृद्धिक्रमो दर्शितः। अत्रेंद्रियवृद्धिक्रमो दर्श्यते तद्यथा-एकेंद्रियस्य जीवस्य स्पर्शनमेकमेवेंद्रियं भवति। शेषाणां द्वींद्रियादीनां पचेंद्रियपर्यंताना क्रमवृद्धानि जिह्वाघ्राणाक्षिश्रोत्राणींद्रियाणि भवंति। जिह्वा-रसनं, अक्षि चक्षु,। द्वे स्पर्शनरसने इंद्रिये येषां ते द्वींद्रियाः। त्रीणि स्पर्शनरसनघ्राणानींद्रियाणि येषां ते त्रींद्रियाः। चत्वारि स्पर्शनरसनेनघ्राणचक्षूंषि इंद्रियाणि येषा ते चतुरिंद्रियाः। पंच स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुश्रोत्राणींद्रियाणि येषां ते पंचेंद्रिया इति ॥ १६७ ॥

सं० च०—इंद्रिय पंच हैं तिनिविषैं सर्व शरीरकौं स्पर्शन कहिए, जिह्वाकौं रसना कहिए, नासिकाकौं घ्राण कहिए, नेत्रकौं चक्षु कहिए, कर्णकौं श्रोत्र कहिए। तहां एकेंद्रिय जीवके स्पर्शन इंद्री ही है। बहुरि अवशेष जीवनिकै एक एक बंधता इंद्रिय अनुक्रमतैं जानने सो वेइंद्रीके रसना इंद्री बध्या, तेइंद्रीके घ्राण इद्री बध्या, चतुरिंद्रियकैं चक्षु इंद्रिय बध्या, पंचेंद्रियकैं श्रोत्र इंद्रिय बध्या जातैं एक है इंद्रिय जिनिकैं ते जीव एकेंद्रिय हैं। दोय है इंद्रिय जिनिकैं ते द्वींद्रिय है। तीन है इंद्रिय जिनिकैं ते त्रींद्रिय हैं। च्यारि हैं इंद्रिय जिनके ते चतुरिंद्रिय हैं। पांच हैं इंद्रिय जिनके ते पंचेंद्रिय है। ऐसैं निरुक्ति हो है ॥ १६७ ॥ आगैं स्पर्शनादि इंद्रियनिके विषयभूत क्षेत्रका परिमाण कहैं हैं--

धणुवीसडदसयकदी जोयणछादालहीणतिसहस्सा।
अट्ठसहस्स धणूणं विसया दुगुणा असण्णित्ति ॥ १६८ ॥

धनुर्विंशत्यष्टदशककृतिः योजनषट्चत्वारिंशद्धीनत्रिसहस्राणि ।
अष्टसहस्रं धनुषां विषया द्विगुणा असंज्ञीति ॥ १६८ ॥

जी० प्र०—एकेंद्रियजीवस्य स्पर्शनेंद्रियविषयक्षेत्रं विंशतिकृतिदंडप्रमितं भवति । ४०० । द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपर्यंतं स्पर्शनेंद्रियविषयक्षेत्राणि द्विगुणद्विगुणक्रमाणि भवंति । ८०० । १६०० । ३२०० । ६४०० । द्वींद्रियजीवस्य रसनेंद्रियविषयक्षेत्रं अष्टकृतिदंडप्रमाणं भवति । ६४ । त्रींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियावसानजीवानां रसनेंद्रियविषयक्षेत्राणि द्विगुणद्विगुणक्रमाणि भवति । १२८ । २५६ । ५१२ । त्रींद्रियजीवस्य घ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रं दशकृतिदंडपरिमितं भवति १०० । चतुरिंद्रियासंज्ञिपंचेंद्रियजीवयोर्घ्राणेंद्रियविषयक्षेत्रं द्विगुणद्विगुणक्रमं भवति । २०० । ४०० । चतुरिंद्रियजीवस्य चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं षट्चत्वारिंशन्न्यूनत्रिसहस्रयोजनप्रमित भवति २९५४ । असंज्ञिपंचेंद्रियस्य चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं द्विगुणं भवति । ५९०८ । असंज्ञिपंचेंद्रियस्य श्रोत्रेंद्रियविषयक्षेत्र अष्टसहस्रदंडावच्छिन्नं भवति ८००० ॥ १६८ ॥

म० प्र०—एकेंद्रियादीनां जीवानां स्वस्वेंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रं गाथाद्वयेन प्रदर्श्यते । तद्यथा - एकद्वित्रिचतुरसंज्ञिपंचेंद्रियाणां स्पर्शनेंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाण यथाक्रमं धनुषा विंशतिकृतिश्चतुःशतानि, उत्तरत्र द्विगुणद्विगुणानि अष्टशतानि, षोडशशतानि, द्वात्रिंशच्छतानि चतुःषष्टिशतानि च भवंति । द्वींद्रियस्य रसनेंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणं दंडानामष्टकृतिश्चतुःषष्टिः ततः पुनस्त्रींद्रियादीनां द्विगुणद्विगुणं, अष्टाविंशत्युत्तरशत, षट्पंचाशदुत्तरद्विशती द्वादशोत्तरपञ्चशती च भवति । त्रींद्रियस्य घ्राणेंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाण दंडानां दशकृतिः शत । ततो द्विगुणद्विगुणं शतद्वय, शतचतुष्टयं च भवति । चतुरिंद्रियस्य चक्षुर्विषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणं चतु पंचाशदुत्तरनवशताधिकद्विसहस्री योजनानां, ततो द्विगुणं अष्टोत्तरनवशताधिकपञ्चसहस्री योजनानां, असंज्ञिपंचेंद्रियस्य श्रोत्रेंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणं दंडानामष्टसहस्री भवति ॥ १६८ ॥

सं० च०—एकेंद्रिय जीवकैं स्पर्शन इंद्रियके विषयका क्षेत्र वीसकी कृति च्यारिसै धनुषका प्रमाण जानना । बहुरि वेइंद्रियादिक असैनी पंचेंद्रिय पर्यंतकैं दूणा दूणा जानना । सो द्वींद्रियकै आठसै धनुष, त्रींद्रियकैं सोला सै धनुष, चतुरिंद्रियकै बत्तीससै धनुष, असैनी पंचेंद्रियकैं चौसठिसै धनुष स्पर्शन इंद्रियका विषय क्षेत्र जानना । इतना इतना क्षेत्र पर्यंत तिष्ठता जो स्पर्शनरूप विषय ताकौं जानैं । बहुरि द्वींद्रियजीवकैं रसना इंद्रियका विषय क्षेत्र आठकी कृति चौसठि धनुष प्रमाण जानना । आगैं दूणां दूणां सो तेइंद्रियकैं एकसौ अठाईस धनुष चतुरिंद्रियकैं दोयसै छप्पन धनुष असैनी पंचेंद्रियकै पांचसै वारा धनुष रसना इंद्रियका विषयभूत क्षेत्रका परिमाण जानना । बहुरि ते इंद्रियकैं घ्राण इंद्रियका विषयभूत क्षेत्र दशकी कृति सौ धनुष प्रमाण जानना । आगैं दूणां दूणां सो

चौइंद्रीकैं दोयसै धनुष असैनी पंचेंद्रियकैं च्यारिसै धनुष घ्राण इंद्रियका विषय भूत क्षेत्रका प्रमाण जानना। वहुरि चौ इंद्रियकैं नेत्र इंद्रियका विषय क्षेत्र छियालीस घाटि तीन हजार योजन जानना। यातैं दूणां पांच हजार नौसै आठ योजन असैनी पंचेंद्रियकै नेत्र इंद्रियका विषयभूत क्षेत्र जानना। वहुरि असैनी पंचेंद्रियकै श्रोत्र इंद्रियका विषय क्षेत्रका परिमाण आठ हजार धनुष प्रमाण जानना॥ १६८॥

सण्णिस्स वार सोदे तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स।
सत्तेतालसहस्सा वेसदतेसट्ठिमदिरेया॥ १६९॥

संज्ञिनो द्वादश श्रोत्रे त्रयाणां नव योजनानि चक्षुपः।
सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विशतत्रिषष्ट्यतिरेकाणि॥ १६९॥

जी० प्र०–संज्ञिपंचेंद्रियस्य स्पर्शनरसनघ्राणेंद्रियविषयक्षेत्राणि नवनवयोजनमात्राणि चक्षुरिंद्रियविषयक्षेत्रं साधिकं त्रिषष्ट्यग्र्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनप्रमितं भवति। ४७२६३, २७ श्रोत्रेंद्रियविषयक्षेत्रं द्वादशयोजनमात्रं भवति॥ १६९॥

म० प्र०— सञ्ज्ञिपंचेंद्रियस्य त्रयाणा स्पर्शनरसनघ्राणेंद्रियाणा विषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाण समानमेव नवयोजनमात्रं। चक्षुरिंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणं सप्तविंशतिभागाधिकत्रिषष्ट्युत्तरद्विशताधिकसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनमात्र। श्रोत्रेंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाण द्वादश योजनमात्र भवति॥ १६९॥

सं० च०——सैनी पंचेंद्रियकै स्पर्शन रसना घ्राण इनि तीनौं इंद्रियनिका नव नव योजन विषय क्षेत्र है। वहुरि नेत्र इंद्रियका विषय क्षेत्र सैतालीस हजार दोयसै तरेसठि योजन वहुरि सात योजनका वीसवां भागकरि अधिक है। वहुरि श्रोत्र इंद्रियका विषयक्षेत्र बारह योजन है॥ १६९॥

तिण्णिसयसट्ठिविरहिदलक्खं दशमूलताडिदे मूलं।
णवगुणिदे सट्ठिहिदे चक्खुप्फासस्स अद्धाणं॥ १७०॥

त्रिशतषष्टिविरहितलक्षं दशमूलताडिते मूलं ।
नवगुणिते षष्टिहते चक्षुःस्पर्शस्य अध्वा ॥ १७० ॥

जी० प्र०—जंबूद्वीपस्य लक्षयोजनव्यासः पार्श्वद्वयद्वीपचारक्षेत्रेण षष्ट्यधिकत्रिशतयोजनमात्रेण विरहितोऽभ्यंतरपरिधिविष्कंभः स्यात् ९९६४० अस्य वर्गं कृत्वा दशकरण्या वर्गमूलग्रहणयोग्यराशिना गुणयित्वा ९९२८१२९६००० मूले गृहीते अभ्यतरपरिधिप्रमाणं भवति । ३१५०८९ षष्टिमुहूर्तानां प्र ६० एतावद्गम्यक्षेत्रं फ ३१५०८९ तदा नवमुहूर्तानां इ ९ कियदिति त्रैराशिकं कृत्वा नवभिर्गुणयित्वा षष्ट्याहते सति यल्लब्धं तच्चक्षुरिंद्रियविषयसर्वोत्कृष्टक्षेत्र भवति ४७२६३ $\frac{7}{20}$ ॥ १७० ॥ अथेंद्रियाणां संस्थानं निर्दिशति—

म० प्र०---संज्ञिपंचेंद्रियस्य चक्षुरिंद्रियविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणानयनक्रमोयं तद्यथा—जंबूद्वीपविष्कंभात् योजनलक्षात् उभयप्रांतद्वीपचारक्षेत्रप्रमाणं षष्ट्युत्तरत्रिशतमात्रं विशोध्य शेषमभ्यंतरवीथीविष्कंभप्रमाणं भवति तत् विक्खंभवग्गदहगुणकरणीत्यादिना सूत्रेण वर्गयित्वा दशकरण्या गुणयित्वा च पुनर्वर्गमूलं ग्राह्यमेतन्मनसिकृत्य त्रिशतषष्टिविरहितलक्षे दशकरणिताडिते मूलमित्यर्थरुक्त । तन्मूलं अभ्यतरवीथीविष्कंभसूक्ष्मपरिधिप्रमाणं पुनः दिनद्वयमुहूर्ताः षष्टिः प्रमाणराशिः प्रकृतसूक्ष्मपरिधिप्रमाणे फलराशौ अर्धदिननवमुहूर्तप्रमितेन इच्छाराशिना गुणिते पुन. प्रमाणराशिना मुहूर्तषष्ट्याहते भक्ते यल्लब्ध सप्तविंशतिभागाधिकत्रिषष्ट्युत्तरशतद्वयाभ्यधिकसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनप्रमितं तच्चक्षुरिंद्रियस्पर्शनस्य अध्वा चक्षुरिंद्रियग्रहणयोग्योत्कृष्ट क्षेत्र भवति । अभ्यतरवीथ्या निषधगिरेरुपरि सद्दशस्थाने उदयमानं सूर्यं अयोध्यामध्यसौधोपरितनभागास्थितः पुरुतीर्थकरभरतेश्वरादिविशिष्टक्षयोपशमवान् पुरुषविशेषः पश्यतीति नवमुहूर्तक्षेत्रं सिद्धं । एक. सूर्यो दिनद्वयेन परिधिं समापयति इति षष्टिमूहूर्ताः प्रमाणराशिः सिद्ध. ॥ १७० ॥

सं० च०---सूर्यका चारक्षेत्र पांचसै बारा योजन चौडा है तामैं एकसौ अस्सी योजन तौ जंबूद्वीप है ताविषै है। अर तीनसै बत्तीस योजन लवण समुद्रविषै है सो जब सूर्य श्रावण मास कर्कसंक्रांतिविषै अभ्यंतर परिधिविषै आवै तब जंबूद्वीपका अंतरसौं एकसौं अस्सी योजन उरै भ्रमण करै है सो इस अभ्यंतर परिधिका प्रमाण कहै हैं—लाख योजन जंबूद्वीपका व्यासमेंसौं दोनों तरफका चार क्षेत्रका परिमाण तीनसै साठि घटाया तब निन्याणवै हजार छसै च्यालीस योजन व्यास रह्या। याका परिधिके निमित्त 'विक्खंभवग्गदहगुण' इत्यादि सूत्र अनुसारि याका वर्गकरि ताकौं दशगुणा करिए पीछै जो परिमाण होइ ताका वर्गमुल ग्रहण कीजिए यों करतैं तीन लाख पंद्रह हजार निवासी योजन प्रमाण याका परिधि भया सो दोय सूर्यनिकी अपेक्षा साठि मुहूर्तमें इ-

तने क्षेत्रविषै भ्रमण होइ तौ अभ्यंतर परिधिविषै दिनका प्रमाण अठारह मुहूर्त सो मध्याह्न समय सूर्य मध्य आवे तब अयोध्याकी बराबर होइ तातैं नौ मुहूर्तमैं कितने क्षेत्रमें भ्रमण होइ ऐसैं त्रैराशिक करना। इहां प्रमाणराशि साठि ६० फलराशि ३१५०८९ इच्छाराशि ९ स्थापि उस परिधिके प्रमाणकौं नौकरि गुणै साठिका भाग दीजिए तहां लब्ध प्रमाण सैतालीस हजार दोयसै त्रैसठि योजन अर सात योजनका बीसवांभाग इतना चक्षु इंद्रियका उत्कृष्ट विषय क्षेत्र जानना। भावार्थ याका यहु है—जो अयोध्याका चक्री अभ्यंतर परिधिविषै तिष्ठता सूर्यकौं इहांते पूर्वोक्त प्रमाण योजन धरैं देखै है तातैं इतना चक्षु इंद्रियका उत्कृष्ट विषय क्षेत्र कह्या है।

एकेंद्रियादि पंचेंद्रिय जीवनिके स्पर्शनादि इंद्रियनिके उत्कृष्ट विषय ज्ञानका यंत्र

इंद्रियनिके नाम	एकेंद्रिय	द्वींद्रिय	त्रींद्रिय	चतुरिंद्रिय		असंज्ञीपंचेंद्रिय		संज्ञीपंचेंद्रिय
०	धनुष	धनुष	धनुष	धनुष	योजन	धनुष	योजन	योजन
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	०	६४००	०	९
रसन	०	६४	१२८	२५६	०	५१२	०	९
घ्राण	०	०	१००	२००	०	४००	०	९
चक्षु	०	०	०	०	२९५४	०	५९०८	४७२६३। ७ प्रमाण / २० योजन
श्रोत्र	०	०	०	०	०	८०००	०	१२

आगैं इंद्रियनिका आकार कहै हैं—

चक्खू सोदं घाणं जिब्भायारं मसूरजवणाली ।
अतिमुत्तखुरप्पसमं फासं तु अणेयसंठाणं ॥ १७१ ॥

चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारं मसूरयवनाल्य-
तिमुक्तक्षुरप्रसमं स्पर्शनं तु अनेकसंस्थानं ॥ १७१ ॥

जी० प्र०—चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वाकारा यथासंख्यं मसूरिकायवनाल्यतिमुक्तकक्षुरप्रसमाना भवंति। स्पर्शनमनेकसंस्थानं भवति। पृथिव्या-
दीनां द्वींद्रियादीनां च शरीराकारस्यानेकविधत्वात् सर्वव्यापिनः स्पर्शनेंद्रियस्यापि तथात्वसंभवात् ॥ १७१ ॥ अर्थेंद्रियसंस्थानानां प्रदेशाव-
गाहं प्रमाणयति—

म० प्र०—भावेंद्रियस्य स्वरूपविषयक्रमवृद्धिस्वामिविषयक्षेत्रानिर्देशं कृत्वा इदानीं निर्वृत्त्युपकरणभेदं द्रव्येंद्रियं कथयति—तत्र वाह्यनिर्वृत्तिः अभ्यंतरनि-
र्वृत्तिरिति निर्वृत्तिर्द्वेधा । तत्र चक्षुःश्रोत्रघ्राणजिह्वेंद्रियाणां मसूरिकायवनाल्यतिमुक्तकपुष्पक्षुरप्रमुखसदृशी यथाक्रमं स्वस्वस्थानेषु नोकर्मपुद्गलपरिणामाकृतिर्वा-
ह्य निर्वृत्तिः । स्पर्शनेंद्रियस्य सर्वांगसंगतानियतानेकसंस्थाननोकर्मपुद्गलपरिणतिर्वाह्यनिर्वृत्तिः निर्वृत्त्यते तत्तादर्थग्रहणव्यापारोऽनयेति निर्वृत्तिरिति भावेंद्रियं प्रति स-
हकारिकारणत्वात् करणव्युत्पत्तिः सिद्धा । अभ्यंतरनिर्वृत्तिस्तु तत्तत्स्थानेषु स्वस्वावरणक्षयोपशमविशिष्टकार्मणस्कंधपुद्गलसहचरितात्मप्रदेशपरिणतिः । उपकरण
च वाह्याभ्यंतरभेदाद् द्वेधा । तत्र वाह्यमुपकरणं पक्ष्मपुटशष्कुलीचंपककुसुमचपेटहस्तानियताकारदृश्यनोकर्मपुद्गलपरिणामरूप । अभ्यंतरमुपकरण श्वेतकृष्णारुग-
गोलकाद्याकारदृश्यनोकर्मपुद्गलपरिणामरूप । तुशब्देन वाह्यनिर्वृत्तिवचनोपलक्षणस् चेतमभ्यतरनिर्वृत्तिवाह्याभ्यंतरोपकरणत्रयमनुक्तमपि प्रकाशितमित्यागमानुसारेण
व्याख्यातं ॥१७१॥

सं० च०—चक्षु इंद्री तौ मसूरकी दालिका आकार है। बहुरि श्रोत्र इंद्री जवकी जो नाली तीहिके आ-
कार है। बहुरि घ्राण इंद्रिय अतिमुक्तक जो कदंबका फूल ताके आकार है। बहुरि जिह्वा इंद्रिय खुरपाके आ-
कार है। बहुरि स्पर्शन इद्रिय अनेक आकार है जातैं पृथ्वी आदि वा वेंद्री आदि जीवनिका शरीरका आकार
अनेक प्रकार हैं तातैं स्पर्शन इंद्रियका भी आकार अनेक प्रकार कह्या जातैं स्पर्शन इंद्रिय सर्व शरीरविषैं व्याप्त

है ॥ १७१ ॥ आगैं निर्वृत्तिरूप द्रव्येंद्रिय स्पर्शनादिकनिका आकार कह्या सो कितने कितने क्षेत्र प्रदेशकौं रोकैं ऐसा अवगाहनाका प्रमाण कहै हैं–

अंगुलअसंखभागं संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं ।
तत्तो असंखगुणिदं अंगुलसंखेज्जयं तत्तु ॥ १७२ ॥

अंगुलासंख्यभागं संख्यातगुणं ततो विशेषाधिकं ।
ततोऽसंख्यगुणितमंगुलसंख्यातं तत्तु ॥ १७२ ॥

जी॰ प्र॰-रूपाधिकपल्यासंख्यातसंख्यातद्वयपल्यासंख्यातभक्तपल्यासंख्यातगुणितघनांगुलमात्रं ६ । प / प a / a । १ १ । a 1— प / a चक्षुरिंद्रियप्रदेशाव-गाहप्रमाणं भवति । ततः संख्यातेन गुणितं श्रोत्रेंद्रियावगाहप्रमाणं भवति– ६ । प a / प । १ । a 1— प / a ततस्तस्यैवपल्यासंख्येयभागेनसमच्छेदेन ६ । प a 1— प प / प a । १ a a अधिकमपवर्तितं घ्राणेंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति ६ । ततः पल्यासंख्येयभागगुणितं जिह्वेंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणं भवति तत्तु घनांगुलासंख्येयभा- प १ / a -गमात्रमेव । ६ / १ ॥ १७२ ॥ अथ स्पर्शनेंद्रियप्रदेशावगाहप्रमाणमाह–

मं॰ प्र॰—घनांगुलसंख्यातभागमात्रं चक्षुरिंद्रियावगाहनक्षेत्रं तच्च पल्यासंख्यातभागेन रूपाधिकपल्यासंख्यातभागेन संख्यातद्वयेन च विभक्त पल्या संख्यातभागेन गुणितं घनांगुल भवति । ततः संख्येयगुण श्रोत्रेंद्रियावगाहनक्षेत्र । ततोविशेषाधिकं घ्राणेंद्रियावगाहनक्षेत्र । अधिकागमनानिमित्तप्रतिभागहारः

पल्यासंख्यातभागमात्रः । ततः पल्यासंख्यातभागगुणं रसनेंद्रियावगाहनक्षेत्रं तच्च घनांगुलसंख्यातभागमात्रं भवति तत्र तत्र गुणकारभागहाराणामपवर्तनवशात्, तुशब्दः चशब्दार्थः ॥ १७२ ॥

सं० च०—घनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाश प्रदेशनिकौं चक्षु इंद्रिय रोकै है। सो घनांगुलकौं पल्यका असंख्यातवां भागकरि तौं गुणीए अर एक अधिक पल्यका असंख्यातवां भागका अर दोयवार संख्यातका अर पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये जो प्रमाण आवै तितना चक्षु इंद्रियकी अवगाहना है वहुरि यातैं संख्यातगुणा श्रोत्र इंद्रियकी अवगाहना है। बहुरि इस गुणकारकरि एकवार संख्यातके भागहारका अपवर्तन करना। बहुरि याका पल्यका असंख्यातवां भागका भागदीए जो परिमाण आवै तितना उसही श्रोत्रइंद्रीकी अवगाहनाविषैं मिलाए घ्राण इंद्रियकी अवगाहना होइ। सो इहां इस अधिक प्रमाणकरि एक अधिक पल्यका असंख्यातवां भागका भागहार अर पल्यका असंख्यातवां भागका गुणकारका अपवर्तन करना। बहुरि याकौं पल्यका असंख्यातवां भागकरि गुणिए तव जिह्वा इंद्रियकी अवगाहना होइ इस गुणकारकरि पल्यका असंख्यातवां भागहारका अपवर्तन करना। ऐसैं यहु जिह्वा इंद्रीकी अवगाहना घनांगुलके संख्यातवे भाग मात्र जानना ॥ १७२ ॥ आगैं स्पर्शन इंद्रियके प्रदेशनिकी अवगाहनाका प्रमाण कहै हैं।

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयह्मि।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे ॥ १७३ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये।
अंगुलासंख्यभागं जघन्यमुत्कृष्टकं मत्स्ये ॥ १७३ ॥

सं० चं०—स्पर्शनेंद्रियस्य जघन्यप्रदेशावगाहप्रमाणं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पन्नस्य तृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यशरीरावगहनघनांगु-

लसंख्येयभागप्रमितं—६ । ८ । २२ तदेव भवति । उत्कृष्टं तु महामत्स्ये यदुत्कृष्टशरीरावगाहनं संख्यातघनांगुलप्रमि-

प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ९

तमुक्तं ६ ७ ७ ७ ७ ७ तदुक्तं भवति । सर्वत्र स्पर्शनेंद्रियस्य स्वशरीरप्रमाणसर्वात्मप्रदेशसंगतत्वात् ॥ १७३ ॥ एवमिंद्रियज्ञानिजीवान्–संसारि-जीवान् प्ररूप्य अधुना अतींद्रियज्ञानिजीवान् प्ररूपयति–

मं० प्र०––सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये यत्पूर्वोक्तं घनांगुलासंख्यातभागमात्र जघन्यशरीरावगाहनक्षेत्र तदेव स्पर्शनेंद्रियस्य जघन्यावगाहनक्षेत्रं भवति । महामत्स्ये यत्प्रागुक्त संख्यातघनांगुलमात्रमुत्कृष्टशरीरावगाहनक्षेत्र तदेव स्पर्शनेंद्रियस्योत्कृष्टावगाहनक्षेत्र भवति सर्वत्र स्पर्शनेंद्रियस्य स्वशरीरप्रमाणसर्वात्मप्रदेशसंभवात् ॥ १७३ ॥

सं० च०–स्पर्शन इंद्रियका जघन्य अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तक उपजनैतैं तीसरा समय विषैं जो जघन्य शरीरका अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवैं भाग मात्र हो है सोई है । बहुरि उत्कृष्ट अवगाहना स्वयंभू रमण समुद्रविषैं महामच्छका उत्कृष्ट शरीर संख्यात घनांगुल मात्र हो है सो है ॥ १७३ ॥ आगैं इंद्रियज्ञानवाले जीवनिकौं कहि अब अतींद्रिय ज्ञानवाले जीवनिका निरूपण करै हैं–

णवि इंदियकरणजुदा अवग्गहादीहिं गाहया अत्थे ।
णेव य इंदियसोक्खा अणिंदियाणंतणाणसुहा ॥ १७४ ॥

नापि इंद्रियकरणयुता अवग्रहादिभिः ग्राहकाः अर्थे ।
नैव च इंद्रियसौख्या अनिंद्रियानंतज्ञानसुखाः ॥ १७४ ॥

जी० प्र०–ये जीवा नियमेन इंद्रियकरणैः–उन्मीलनादिव्यापारैः, युताः–युक्ता न संति कस्मात् ? तेषामशरीरत्वात् तत्कारणजातिनामादिकर्माभावाच्च । तथा च अवग्रहादिभि–क्षायोपशमिकज्ञानैरर्थग्राहका न भवति । पुनः इंद्रियविषयसंश्लेषजनितसुखयुता नैव संति ते जिनसिद्धनामानो जीवा अनिंद्रियानंतज्ञानसुखकलिता भवंति । कस्मात् ? तज्ज्ञानसुखयोः शुद्धात्मस्वरूपोपलब्ध्युत्पन्नत्वात् ॥ १७४ ॥ अथैकेंद्रियादीनां सामान्यसंख्यामाह—

म० प्र०—संसारिजीवानामिंद्रियस्वरूपं प्ररूप्य इदानीं मुक्तजीवानामतींद्रियत्वं कथयति। तद्यथा–ते मुक्तजीवा इंद्रियकरणयुता न भवंति इंद्रियाणां करणानि–क्रिया उन्मीलननिर्मीलनादिव्यापाराः, तैर्युक्ता न भवत्येव तेषामशरीरत्वात् तत्कारणजातिनामादिकर्माभावाच्च । तथा अवग्रहादिभि -अवग्रहेहावायधारणास्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानादिक्षायोपशमिकोपयोगैः छद्मस्थसंभवैः, अर्थानां–जीवादिपदार्थाना, ग्राहकाः-ज्ञायकाः न भवत्येव तथा इंद्रियसौख्याश्च इंद्रियविषयसंयोगसद्वेद्योदयजनिताभिमानिकह्लादरूपसुखपरिणामाश्च न भवंत्येव । कुतः कारणात् ? इति प्रश्ने यतः कारणात्ते मुक्तजीवाः अनिंद्रियानंतज्ञानसुखाः संजातास्ततः कारणादिति समाधान । अनिद्रिये द्रव्यभावेंद्रियरहिते, अनंते विनाशरहिते अनंतानंतशक्तिसंपन्ने वा ज्ञानसुखे केवलज्ञानपरमस्वास्थ्यलक्षणसुखे येषां विद्येते ते अनिंद्रियानंतज्ञानसुखा इति केवलसम्यक्त्ववीर्यादिशेषगुणानामेतत्साहचर्यनियमादनुक्ता अपि सिद्धाना ते ग्राह्याः । आत्मन. केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनादिगुणानां स्वाभाविकत्वेन इंद्रियादिनिरपेक्षतया अस्तित्वप्रसिद्धेः स्फटिकस्य स्वच्छतावत् सुवर्णस्य उत्कृष्टवर्णशुद्धतावच्च । वस्तुनः स्वभावः परनिरपेक्ष एव औपाधिकधर्माणामेव परापेक्षकत्वात् स्फटिकसुवर्णयोः शोणत्वकालिकावत् ॥ १७४ ॥ अथ संक्षेपतः एकेंद्रियादिजीवसंख्या प्ररूपयति–

सं० च०–जे जीव नियमकरि इंद्रियनिके करण भौंहें टिमकारना आदि व्यापार तिनिकरि संयुक्त नाहीं हैं तातैं ही अवग्रहादिक क्षयोपशम ज्ञानकरि पदार्थका ग्रहण न करै हैं बहुरि इंद्रियजनित विषय संबंधकरि निपज्या सुख तिहिकरि संयुक्त नाहीं हैं ते अर्हत वा सिद्ध अतींद्रिय अनंत ज्ञान वा अतींद्रिय अनंत सुखकरि विराजमान जानने जातैं तिनिका ज्ञान अर सुख सो शुद्धात्मतत्त्वकी उपलब्धितैं उत्पन्न भया है ॥१७४ ॥ आगै एकेंद्रियादि जीवनिकी सामान्यपनै संख्या कहै हैं–

थावरसंखपिपीलियभमरमणुस्सादिगा सभेदा जे ।
जुगवारमसंखेज्जाणंताणंता णिगोदभवा ॥ १७५ ॥

स्थावरशंखपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादिकाः सभेदा ये ।
युगवारमसंख्येया अनंतानंता निगोदभवाः ॥ १७५ ॥

जी० प्र०—स्थावराः पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकवनस्पतिकायिकनामानः पंचविधैकेंद्रियाः । शंखादयो द्वींद्रियाः । पिपीलिकादयस्त्रींद्रियाः । भ्रमरादयश्चतुरिंद्रियाः । मनुष्यादयः पंचेंद्रियाश्च स्वस्वांतरभेदसहिताः प्राक् कथिताः ते प्रत्येकं द्विकवारासंख्यातप्रमिता भवंति । निगोदाः-साधारणवनस्पतिकायिकाः, अनंतानंता भवंति ॥ १७५ ॥ अथ विशेषसंख्यां कथयंस्तावदेकेंद्रियसंख्यामाह–

म० प्र०––स्थावराः पृथिव्यादयः साधारणशरीररहितवनस्पत्यंताः एकेंद्रिया ये जीवास्ते द्विकवारासंख्येयाः असंख्यातलोकमात्राः । तद्विशेषः पुनरग्रे वक्ष्यते । निगोदभवाः साधारणशरीराः एकेंद्रिया ये जीवास्ते अनंतानंताः । त्रसप्रत्येकपृथिव्यादिचतुष्टयराशित्रयरहितसंसारिजीवराशिसंख्याप्रमिताः । शंखादयो द्वींद्रियाः, पिपीलिकादयस्त्रींद्रियाः, भ्रमरादयश्चतुरिंद्रियाः, मनुष्यादयः पंचेंद्रियाश्च ये जीवास्तेऽपि द्विकवारासंख्येयाः जगत्प्रतरासंख्येयभागमात्राः । असंख्यातासंख्याता इत्यर्थः । तद्विशेषश्च अग्रे वक्ष्यते ॥ १७५ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः गाथापचकेन एकेंद्रियादिसंख्याविशेषं कथयंति–

जी० प्र०––स्थावर जो पृथ्वी अप तेज वायु प्रत्येक वनस्पती ए पंच प्रकार तौ एकेंद्री बहुरि संख कौडी लट इत्यादि बेंद्री बहुरि कीड़ी मकोडा इत्यादि तेंद्री बहुरि भ्रमर माखी पतंग इत्यादि चौइंद्रिय बहुरि मनुष्य देव नारकी अर जलचरादि तिर्यंच ते पचेंद्री ए जुदे जुदे एक एक असंख्यातासंख्यात प्रमाण हैं । बहुरि निगोदिया जो साधारण वनस्पती रूप एकेंद्री ते अनंतानंत हैं ॥ १७५ ॥ आगैं विशेष संख्या कहै हैं तहां प्रथम ही एकेंद्रिय जीवानिकी संख्या कहैं हैं–

तसहीणो संसारी एयक्खा ताण संखगा भागा ।
पुण्णाणं परिमाणं संखेज्जदिमं अपुण्णाणं ॥ १७६ ॥

त्रसहीनाः संसारिणः एकाक्षाः तेषां संख्यका भागाः ।
पूर्णानां परिमाणं संख्येयकमपूर्णानां ॥ १७६ ॥

जी०प्र०––त्रसराशिहीनसंसारिराशिरेवैकेंद्रियराशिर्भवति १३–। अस्य च संख्यातबहुभागाः पर्याप्तकपरिमाणं भवति १३–। ४/५ तदेकभागः अपर्याप्तकराशिप्रमाणं भवति १३–। १/५ अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः पंचांकः ५ ॥ १७६ ॥ अथैकेंद्रियावांतरभेदसंख्याविशेषमाह–

मं० प्र० त्रसजीवराशिना हीनसंसारिजीवराशिप्रमिताः एकाक्षाः–एकेंद्रियजीवाः भवति, तेषा संख्येयभक्तबहुभागाः एकेंद्रियपर्याप्तजीवानां परिमाणं १३–।४/५ भवति शेषसंख्येयभक्तैकभागः एकेंद्रियापर्याप्तजीवाना परिमाण १३–१/५ भवति ॥ १७६ ॥

जी० प्र०—सर्व जीव राशि प्रमाणमैंस्यौं सिद्धनिका प्रमाण घटाए संसारी राशि होइ सोई संसारीजीवनिका परिमाणमैंस्यौं त्रस जीवनिका परिमाण घटाएं एकेंद्रिय जीवनिका परिमाण हो है। बहुरि तींहि एकेंद्रिय जीवनिका परिमाणकौं संख्यातका भाग दीजिये तामैं एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त एकेंद्रियनिका परिमाण है बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त एकेंद्रियनिका परिमाण है ॥ १७६ ॥ आगैं एकेंद्रियनिके भेदनिकी संख्याका विशेष कहै हैं—

वादरसुहमा तेसिं पुण्णापुण्णेत्ति छव्विहाणंपि ।
तक्कायमग्गणाये भणिज्जमाणक्कमो णेयो ॥ १७७ ॥

वादरसूक्ष्मास्तेषां पूर्णापूर्ण इति षड्विधानामपि ।
तत्कायमार्गणायां भणिष्यमाणक्रमो ज्ञेयः ॥ १७७ ॥

जी० प्र०—सामान्यैकेंद्रियराशेर्बादरसूक्ष्माविति द्वौ भेदौ तयोः पुनः प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः। एवं षड्भेदानां तत्कायमार्गणायां भणिष्यमाणः क्रमो ज्ञेयः। तद्यथा—एकेंद्रियसामान्यराशेरसंख्यातलोकभक्तैकभागो वादरैकेंद्रियराशिप्रमाणं १३-- १/९ तद्बहुभागः १३--८/९ सूक्ष्मैकेंद्रियराशिप्रमाणं। अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिर्नवांकः ९। पुनः वादरैकेंद्रियराशेरसंख्यातलोकभक्तैकभागस्तत्पर्याप्तराशिः। १३-। १/९ १/७ बहुभागस्तदपर्याप्तराशिः १३-। १/९ ६/७ अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिः सप्तांकः। सूक्ष्मैकेंद्रियराशेः संख्यातभक्तबहुभागस्तत्पर्याप्तराशिः १३-। ८/९ ४/५ तदेकभागस्तदपर्याप्तराशिः १३-। ८/९ १/५ अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः पंचांकः ॥ १७७ ॥ अथ त्रसजीवसंख्यां गाथात्रयेणाह—

मं० प्र०—तेषामेकेंद्रियाणा वादराः सूक्ष्मा इति द्वौ भेदौ। तयोश्च प्रत्येकं पूर्णाः—पर्याप्ताः, अपूर्णाः—अपर्याप्ताश्चेति द्वौ द्वौ भेदौ इति षड्विधानामपि—षड्भेदानामपि राशीना तत्कायमार्गणाया भणिष्यमाणः क्रमः संख्याविधान ज्ञेयं। अत्रैकेंद्रियमार्गणायामपि तथा ज्ञेयः नेयः नेतव्यो वा। तद्यथा

एकेंद्रियजीवराशौ असंख्यातलोकेन खंडिते तदेकभागो बादरैकेंद्रियजीवराशिप्रमाणं १३--१ शेषबहुभागाः सूक्ष्मैकेंद्रियजीवराशिप्रमाणं १३ । ८ असंख्यात-लोकस्य संदृष्टिर्नवांकः । पुनर्बादरैकेंद्रियजीवराशौ असंख्यातलोकेन खंडिते तदेकभागः बादरैकेंद्रियपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं । तद्बहुभागाः बादरैकेंद्रियापर्याप्तजीवराशिप्रमाणं । अत्रासंख्यातलोकस्य संदृष्टिः सप्तांकः । सूक्ष्मैकेंद्रियजीवराशौ संख्यातेन खंडिते तद्बहुभागाः सूक्ष्मैकेंद्रियपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं । तदेकभागः सूक्ष्मैकेंद्रियापर्याप्तजीवराशिप्रमाणं । अत्र संख्यातसंदृष्टिः पंचांकः ॥ १७७ ॥

स० चं०—सामान्य एकेंद्रिय राशिके बादर अर सूक्ष्म ए दोय भेद बहुरि एक एक भेदके पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय दोय ऐसैं च्यारि भए तिनिका परिमाण आगै कायमार्गणाविषै कहिएगा सो अनुक्रम जानना सो कहिए है सामान्य पणै एकेंद्रियका जो परिमाण ताकौं असंख्यात लोकका भाग दीजिए तामैं एक भाग प्रमाण तौ बादर एकेंद्रिय जानने । अर अवशेष बहुभाग प्रमाण सूक्ष्म एकेंद्रिय जानने । बहुरि बादर एकेंद्रियनिके परिमाणकौं असंख्यात लोकका भाग दीजिए तामैं एक भाग प्रमाण तौ पर्याप्त हैं अर अवशेष बहुभाग प्रमाण अपर्याप्त हैं । बहुरि सूक्ष्म एकेंद्रियका परिमाणकौं संख्यातका भागदीजिए तामैं एक भाग प्रमाण तौ अपर्याप्त हैं। बहुरि अवशेष भाग प्रमाण पर्याप्त हैं। बादरविषैं तौ पर्याप्त थोरे हैं अपर्याप्त घने हैं बहुरि सूक्ष्मविषैं पर्याप्त घने हैं अपर्याप्त थोरे हैं ऐसा भेद जानना ॥ १७७ ॥ आगैं त्रस जीवनिकी संख्या तीन गाथानिकरि कहैं हैं—

बितिचपमाणमसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं ।
हीणकमं पडिभागो आवलियासंखभागो दु ॥ १७८ ॥

द्वित्रिचतुःपंचमानमसंख्येनावहतप्रतरांगुलेन हतप्रतरं ।
हीनक्रमं प्रतिभाग आवलिकासंख्यभागस्तु ॥ १७८ ॥

जी० प्र०—द्वित्रिचतु पंचेंद्रियजीवानां सामान्यराशिप्रमाणं असंख्यातभक्तप्रतरांगुलेन भक्तं जगत्प्रतरप्रमितं भवति $\frac{\overline{४}}{२}$। अत्र द्वींद्रियराशिप्र-

माणं सर्वतोऽधिकं । ततस्त्रींद्रियराशिः विशेषहीनः । ततश्चतुरिंद्रियराशिः विशेषहीनः । ततः पंचेंद्रियराशिः विशेषहीनः । अत्र विशेषागमननिमित्तं भागहारः प्रतिभागहारः स चावल्यसंख्येयभागमात्रः ॥ १७८ ॥ तद्विभागक्रमः कथमिति चेदाह--

म० प्र०--- प्रतरांगुलासंख्यातभागविभक्तजगत्प्रतरमात्रं द्वित्रिचतु.पंचेंद्रियजीवसंख्यापरिमाणं भवति तथासत्यपि द्वींद्रियादिपूर्वपूर्वप्रमाणात् त्रींद्रियाद्युत्तरोत्तरप्रमाण हीनक्रम--क्रमेण हीनं भवति । तु पुनः, तद्धान्यानयने आवल्यसंख्येयभागः प्रतिभागहारः क्रमणं भवति आवल्यसंख्यातभागस्यापि संदृष्टिर्नवाकः ॥ १७८ ॥

सं० च०---द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय इनि सर्व त्रसनिका मिलाया हुवा प्रमाण प्रतरांगुलकौं असंख्यातका भाग दीजिए जो प्रमाण आवै ताका भाग जगत प्रतरकौं दीएं या करतैं जितना होइ तितना जानना । इहां द्वींद्रिय राशिका प्रमाण सर्वतैं अधिक है बहुरि तातैं त्रींद्रिय विशेष घाटि है तातैं चौइंद्रिय विशेष घाटि है । तातैं पंचेंद्रिय विशेष घाटि है सो घाटि घाटि कितने हैं ऐसा विशेषका प्रमाण जाननेके निमित्त भागहार अर भागहारका भागहार आवलीका असंख्यातवां भाग मात्र जानना । सो भागहारका अनुक्रम कैसें हैं ? सो कहिये है--

बहुभागे समभागो चउण्णमेदोसिमेक्कभागह्मि ।
उत्तकमो तत्थवि बहुभागो बहुगस्स देओ दु ॥ १७९ ॥

बहुभागे समभागश्चतुर्णामेतेषामेकभागे ।
उक्तक्रमस्तत्रापि बहुभागो बहुकस्य देयस्तु ॥ १७९ ॥

जी० प्र०—त्रसराशिं ४/a आवल्यसंख्यातभागेन भक्त्वा एकभागं पृथक् संस्थाप्य बहुभागं ४ । ८ / a ९ चतुर्भिर्भक्त्वा द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियाणां चतुर्षु स्थानेषु समभागतया दत्त्वा ४ । ४ । ९ । ८ / a । ४ । ४ । ९ । ८ / a । ४ । ४ । ९ । ८ / a । ४ । ४ । ९ । ८ / a तत्पृथक्स्थापितैकभागमिमं ४ । ९ १ / a पु-

नरावल्यसंख्यातैकभागेन (=१ / ४।९।९ / a) भक्त्वा बहुभाग द्वींद्रियस्य दत्त्वा (=।८ / ४।९।९ / a) तदेकभागमिमं (=।२ / ४।९।९ / a) पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा बहुभागं त्रींद्रियस्य दत्त्वा (=।८ / ४।९।९।९ / a) तदेकभागमिमं (=१ / ४।९।९।९ / a) पुनरावल्यसंख्यातैकभागेन भक्त्वा बहुभागं चतुरिंद्रियस्य दत्त्वा (=८ / ४।९।९।९।९ / a) तदेकभागं पंचेंद्रियस्य दद्यात् (=१ / ४।९।९।९।९ / a) तद्विन्यासः—

	वि	ति	च	पं
समभागः	= ८ / ४।४।९ / a	= ८ / ४।४।९ / a	= ८ / ४।४।९ / a	= ८ / ४।४।९ / a
देयमागः	=८ / ४।९।९ / a	= ८ / ४।९।९।९ / a	= ८ / ४।९।९।९।९ / a	= १ / ४।९।९।९।९ / a

स्वस्वाधस्तनराशयः स्वस्वोपरि समच्छेदेन मिलिता ईदृशा भवति—

वि = ८४२४ / ४, ४, ६५६१ / a	ति = ६१२० / ४, ४, ६५६१ / a	च = ५८६४ / ४, ४, ६५६१ / a	प = ५८३६ / ४, ४, ६५६१ / a

म० प्र०—आवल्यसंख्यातैकभागभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरमानं त्रसराशिपरिमाणं संस्थाप्य पुनरावल्यसंख्यातेन तत्खंडयित्वा एकभागं संस्थाप्य तद्बहुभागं गृहीत्वा चतुर्भिर्भक्त्वा तदेकैकभागः एतेषां चतुर्णां द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवानां प्रत्येकं समभाग एव न्यूनाधिकत्वरहित एव दातव्यः। प्राक्संस्थापितैकभागं पुनरावल्यसंख्यातभागेन खंडयित्वा तदेकभागं संस्थाप्य तद्बहुभागं बहुकस्य त्रींद्रियादिभ्योऽधिकस्य द्वींद्रियस्य देयं। तु पुनरपि तदेकभागं आवल्यसंख्यातभागेन खंडयित्वा तदेकभागं संस्थाप्य तद्बहुभागः अवशिष्टबहुकस्य त्रींद्रियस्य देयं। पुनरपि तदेकभागं आवल्यसंख्यातभागेन खंडयित्वा तदेकभागं संस्थाप्य तद्बहुभागः शेषबहुकस्य चतुरिंद्रियस्य देयः। तदेकभागः पुनः सर्वाल्पस्य पंचेंद्रियस्य देयं। एतत्सर्वं विधानं मनसिकृत्य तत्राप्येकभागे उक्तः क्रमः पुनः पुनरेकभागबहुभागविधानं कर्तव्यं, इत्युक्तमाचार्यैः। एते सर्वेऽपि भागाः समच्छेदीकृत्य पंचेंद्रियमारभ्य मेलनीयाः, एवं मेलिते सति जगत्प्रतरस्य गुणकाराः—अंकसंदृष्ट्या पंचेंद्रियस्य षट्त्रिंशदुत्तराष्टशताधिकपंचसहस्राणि। चतुरिंद्रियस्य चतुःषष्ट्युत्तराष्टशताधिकपंचसहस्राणि। त्रींद्रियस्य विंशत्युत्तरैकशता-

मिकषट्सहस्राणि । द्वींद्रियस्य चतुर्विंशत्युत्तरचतुःशताधिकाष्टसहस्राणि । भागहाराः पुनः सर्वेषां समाना एव एकषष्ट्युत्तरपंचशताधिकषट्सहस्रमात्राः ॥१७९॥

सं० च०—त्रस जीवनिका जो परिमाण कह्या तीहिंनैं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तामैं एक भाग तौ जुदा राखिये अर जे अवशेष बहु भाग रहे तिनिके च्यारि वट कीजिये सो एक एक वट द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रियनिकौं बरोवरि दीजिये । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागकौं भाग दीजिए तामैं एक भाग तौ जुदा राखिए अर अवशेष बहुभाग द्वींद्रियनिकौं दीजिये जातैं सर्व त्रसविषैं बहुत प्रमाण द्वींद्रियका है । बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था ताकौं बहुरि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तामैं एक भाग तौ जुदा राखिये बहुरि अवशेष भाग ते इंद्रियनिकौं दीजिए बहुरि जो एक भाग जुदा राख्या था ताकौं बहुरि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तामैं बहु भाग तौ चौइंद्रियनिकौं दीजिए अर एक भाग पचेंद्रियकौं दीजिए । ऐसैं दीए हूवे परिमाण कहे ते नीचैं स्थापिए । बहुरि पूर्वैं जे वरावरि च्यारि वट किए थे तिनिकौं ऊपरि स्थापिए बहुरि अपने अपने नीचैं ऊपरिके परिमाणकौं मिलाएं द्वींद्रियादि जीवनिका परिमाण हो है ॥ १७९ ॥

तिविपचपुण्णपमाणं पदरंगुलसंखभागहिदपदरं ।
हीणकमं पुण्णूणा वितिचपजीवा अपज्जत्ता ॥ १८० ॥

त्रिद्विपंचचतुःपूर्णप्रमाणं प्रतरांगुलासंख्यभागहतप्रतरं ।
हीनक्रमं पूर्णोना द्वित्रिचतुःपंचजीवा अपर्याप्ताः ॥ १८० ॥

जी० प्र०—त्रिद्विपंचचतुरिंद्रियपर्याप्तराशिप्रमाणं प्रतरांगुलसंख्येयभागभक्तजगत्प्रतरप्रमितं भवति = अत्र त्रींद्रियादय उक्तक्रमेण हीनक्र-
४
५
मा भवंति । अत्रापि 'बहुभागे समभागो' इत्यादिसूत्रक्रमेण त्रिद्विपंचचतुरिंद्रियपर्याप्तकानां विभक्तस्य विन्यासोऽयं—

ति = ८ / ४।४।९ / ५	वि = ८ / ४।४।९ / ५	पं = ८ / ४।४।९ / ५	च = ८ / ४।४।१ / ५
= ८ / ४।९।९ / ५	= ८ / ४।९९९ / ५	= ८ / ४।९९९९ / ५	= १ / ४९९९९ / ५

समच्छेदेन मिलितानां न्यासोयं।

ति = ८४२४ / ४।४।६५६१ / ५	वि = ६१२० / ४।४।६५६१ / ५	पं = ५८६५ / ४।४।६५६१ / ५	च = ५८३६ / ४।४।६५६१ / ५

एतेषु पर्याप्तराशिषु निजनिजद्वींद्रियादिसामान्यराशिषु अपनीतेषु शेषद्वींद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतानां अपर्याप्तकजीवराशीनां प्रमाणं भवतीति ज्ञातव्यं—

वि = ५।६१२० / ८४२४ a / ४।४।६५६१	ति = ५ । ८४२४ / ।६१२० a / ४।४।६५६१	च = ५ ।५८३६ / ।५८६४ a / ४।४।६५६१	पं० = ५ । ५८६४ / । ५८३६ a / ४।४।६५६१

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपञ्चसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु इंद्रियमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तमोऽधिकारः ॥ ७ ॥

मं० प्र०—त्रिद्विपंचचतुरिंद्रियपर्याप्तजीवाना परिमाणसंख्या प्रत्येक प्रतरांगुलसंख्यातभागभक्तजगत्प्रतरमात्रं हीनक्रमं–क्रमेण हीनं भवति। अत्रापि प्रतिभागहारः आवल्यसंख्यातभागमात्रः। हान्यानयनविधानं च पूर्ववत् 'बहुभागे समभागो' इति गाथासूत्रव्याख्यानेनैव एकभागबहुभागकरणं, बहुभागस्य चतुर्षु समभागप्रदानं, पुनरवशिष्टैकभागबहुभागस्य त्रींद्रियेषु प्रदानं, पुनरप्यवशिष्टैकभागबहुभागस्य द्वींद्रियेषु प्रदानं, पुनरवशिष्टैकभागबहुभागस्य पंचेंद्रियेषु प्रदानं शेषैकभागस्य चतुरिंद्रियेषु प्रदानं तद्भागानां च समच्छेदीकरणपूर्वकमेलनं च सर्वविधानं निरवशेषं वक्तव्यं। पुनः पूर्वैः द्वींद्रियादिपर्याप्तजीवप्रमाणैरूनाः–परिहीणाः सामान्यद्वींद्रियादिराशय एव अपर्याप्तद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवराशयो भवति। सामान्यद्वींद्रियराशेः सकाशात् = ८४२४। a / ४।४।६५६१

पर्याप्तद्वींद्रियराशौ $= \frac{६११२०}{४।४।६५६१}$ अपनीते तस्यावशिष्टः अपर्याप्तद्वींद्रियजीवराशिर्भवति $= \frac{५६१२०}{४।४।६५६१}$ =८४२४ ə एवं त्रींद्रियादिष्वपि स्वस्वसामान्यराशेः सकाशात्स्वस्वपर्याप्तराशावपनीते सति अवशिष्टः स्वस्वापर्याप्तराशिर्भवति इति विचार्य ज्ञातव्यं । तिविपचेतिव्युत्क्रमकथनं तत्तद्धानिविशेषानयनार्थं ॥१८०॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ इंद्रियमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तमोऽधिकारः ॥ ७ ॥

सं० च०—बहुरि पर्याप्त त्रसजीव प्रतरांगुलका संख्यातवां भागका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितने हैं तिनिविषै घने तौ तेइंद्रिय हैं । तिहिस्यों घाटि द्वींद्रिय हैं । तिहिस्यों घाटि पंचेंद्रिय हैं । तिहिसौं घाटि चौइंद्रिय हैं सो इहां भी पूर्वोक्त 'बहुभागे समभागो' इत्यादि सूत्रोक्त प्रकारकरि सामान्य पर्याप्त त्रस राशिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग जुदा राखि अवशेष बहुभागनिके च्यारि समान भागकरि एक एक भाग तेंद्री वेंद्री पंचेंद्री चौंद्रीनिकौं दैना । बहुरि तिस एक भागकौं भागहार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भाग जुदा राखि बहुभाग ते इंद्रियनिकौं देना । बहुरि तिस एक भागकौं भागहारका भाग देइ एक भाग जुदा राखि बहुभाग द्वींद्रियनिकौं दैनां बहुरि तिस एकभागकौं भागहारका भाग देइ एक भाग जुदा राखि बहुभाग पंचेंद्रियनिमैं दैनां अर एक भाग चौइंद्रियनिकौं देना ऐसैं अपना अपना समभाग ऊपरि स्थापि देय भाग नीचै स्थापि जोडैं तेंद्री आदि पर्याप्त जीवनिका प्रमाण हो है । बहुरि पूर्वै जो सामान्यपनैं वेइंद्रिय आदि जीवनिका प्रमाण कह्या था तामैं सौं इहां कह्या जो अपना अपना पर्याप्तका परिमाण सो घटाय दीएं अपनां अपनां वेंद्री आदि पंचेंद्री पर्यंत अपर्याप्त जीवनिका परिमाण हो है । सो अपर्याप्तनिविषै घने तौ वेइंद्रिय तिहिस्यों घाटि तेइंद्रिय तिहिसौं घाटि चौइंद्रिय तिहिसौं घाटि पंचेंद्रिय हैं ऐसैं इनिका परिमाण कह्या ॥ १८० ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नाम भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं इंद्रियप्ररूपणानामा सातवां अधिकार संपूर्ण भया॥७॥

अथ कायमार्गणाप्ररूपणाधिकारः ।

जी० प्र०— चंद्रकोटिप्रभाचक्रं समवसृतिसंयुतं ।
नवकेवललब्धीशं चंद्रप्रभजिनं भजे ॥ ८ ॥

अथ कायमार्गणामाह—

मं० प्र०— चंद्रप्रभं प्रभाधूतचंद्रकोटिप्रभं प्रभुं ।
अष्टम तीर्थकर्तारं वंदे त्रैलोक्यवंदितं ॥ ८ ॥

अथ विंशत्या गाथाभिः शास्त्रकारः कायमार्गणा प्ररूपयति—

सं० च०— चंद्रप्रभ जिनकौं भजौं चंद्रकोटि सम जोति ।
जाकैं केवल लब्धि नव समवसरण जुत होति ॥

अथ काय मार्गणाकौं कहै हैं—

जाई अविणाभावी तसथावरउदयजो हवे काओ ।
सो जिणमदह्मि भणिओ पुढवीकायादिछब्भेओ ॥ १८१ ॥

जात्यविनाभावित्रसस्थावरोदयजो भवेत्कायः ।
स जिनमते भणितः पृथ्वीकायादिषड्भेदः ॥ १८१ ॥

जी० प्र०—जातिनामकर्मोदयाविनाभावित्रसस्थावरनामकर्मोदयजनितः आत्मनः त्रसत्वस्थावरत्वपर्यायः कायो नाम । स च कायः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायभेदात् षड्भेदो जिनमते भणितः । कायते-त्रस इति स्थावर इति च व्यवहर्तृजनैः शब्दयते-कथ्यते इति काय इति उद्वेजनक्रियायां स्थानक्रियायां च तल्लक्षणस्य निरुक्तिसिद्धत्वात् । चीयते-पुष्टिं नीयते पुद्गलस्कंधैरिति वा कायः-औदारिकादिशरीरं, कायस्थ आत्मपर्यायोऽपि काय इत्युपचर्यते । जातित्रसस्थावरनामकर्मणां जीवविपाकित्वेन तेषां कार्यस्य जीवपर्यायस्य काय इति व्यवहारसिद्धेः । पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्मोदयकार्यत्वेन अत्र शरीरस्यैव कायशब्देन ग्रहणं नास्ति ॥ १८१ ॥ अथ स्थावरकायपंचकं प्रपचयति—

मं०प्र०—जातिनामकर्माविनाभावित्रसस्थावरनामकर्मोदयाज्जातः आत्मनस्त्रसत्वपर्यायः स्थावरत्वपर्यायश्च कायः इति जिनमते-सर्वज्ञवीतरागसमये भणितो भवेत्। कायते त्रस इति स्थावर इति च व्यवहर्तुं जनैः शब्द्यते-कथ्यते इति काय इति उद्वेजनक्रियां स्थानक्रियां च प्रति तल्लक्षणस्य निरुक्तिसिद्धत्वात्। चीयते पुष्टिं नीयते पुद्गलस्कंधैरिति कायः औदारिकादिशरीरं। कायस्थ आत्मपर्यायोऽपि काय इत्युपचारेणोच्यते। जातित्रसस्थावरनामकर्मणां जीवविपाकित्वेन तेषां कार्यस्य जीवपर्यायस्यैव काय इति व्यवहारविषयत्वात् शरीरस्य तु पुद्गलविपाकिशरीरनामकर्मोदयकार्यत्वेन अत्र कायशब्देन ग्रहणात्। स कायः पृथ्वीकायादिविकल्पैः-पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायाविशेषैः, षड्भेदो भवति ॥ १८१ ॥

सं० च०--एकेंद्रियादिक जातिनामा नामकर्मका उदयसहित जो त्रसथावर नामा नामकर्मका उदयकरि निपज्या त्रस स्थावर पर्याय जीवकैं होइ सो काय कहिए सो काय छह प्रकार जिनमतविषैं कह्या है-पृथ्वीकाय १ अपकाय २ तेजकाय ३ वायुकाय ४ वनस्पतीकाय ५ त्रसकाय ६ ए छह भेद जानना। कायते कहिए त्रस हैं स्थावर है ऐसा कहिए सो काय जानना। तहां जो भयादिकतैं उद्वेगरूप होइ भागना आदि क्रिया संयुक्त हो है सो त्रस कहिये। बहुरि जो भयादिक आए स्थितिक्रियायुक्त होइ सो स्थावर कहिए। अथवा चीयते कहिए पुद्गल स्कंधनिकरि संचयरूप कीजिये पुष्टताकौं प्राप्त कीजिए सो काय औदारिकादि शरीरका नाम काय है। बहुरि कायविषैं तिष्ठता जो आत्माका पर्याय ताकौं भी उपचारकरि काय कहिए जातैं जीव विपाकी जो त्रस स्थावर प्रकृति तिनिके उदयतैं जो जीवका पर्याय होइ सो काय है। ऐसा व्यवहारकी सिद्धि है। बहुरि पुद्गलविपाकी शरीर नामा नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं भया शरीर ताका इहां कायशब्दकरि ग्रहण नाहीं है ॥ १८१ ॥ आगैं स्थावरकायके पांच भेद कहै हैं—

पुढवी आऊतेऊवाऊकम्मोदयेण तत्थेव।
णियवण्णचउक्कजुदो ताणं देहो हवे णियमा ॥१८२॥

पृथिव्यप्तेजोवायुकर्म्मोदयेन तत्रैव ।
निजवर्णचतुष्कयुतस्तेषां देहो भवेन्नियमात् ॥ १८२ ॥

जी० प्र०---पृथिव्यप्तेजोवायुविशिष्टनामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृत्युदयेन तत्रैव पृथिव्यप्तेजोव युपुद्गलस्कंधेषु तत्तद्वर्णचतुष्कयुतः तेषां जीवानां देहः नियमेन भवेत् । तथामति पृथ्वीकायिका अप्कायिकाः तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च भवंति । पृथ्वीकायः-पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति पृथ्वीकायिकाः । अथवा पृथ्वी कायः-शरीरं येषां ते पृथ्वीकायिकाः । अप्कायः--अप्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामित्यप्कायिकाः । अथवा आपः कायः शरीरं येषां ते अप्कायिकाः । तेजस्कायः-तेजस्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति तेजस्कायिकाः । अथवा तेजः कायः शरीरं येषां ते तेजस्कायिकाः । वायुकायः--वायुत्वविशिष्टस्थावरपर्यायोऽस्त्येषामिति वायुकायिकाः । अथ वा वायुः कायः-शरीरं येषां ते वायुकायिकाः । तिर्यग्गत्येकेंद्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरकायादीनां नामकर्मप्रकृतीनां उदयमाश्रित्यैव एवंविधनिरुक्तिसंभवात् । पृथ्वीकायिकत्वपर्यायाभिमुखो विग्रहगतौ वर्तमानः पृथ्वीजीवः । गृहीतपृथ्वीशरीरः पृथ्वीकायिकः । तत्त्यक्तो देहः पृथ्वीकायः । तथैव अञ्जीवः अप्कायिकः अप्कायः । तेजोजीवः तेजस्कायिकः तेजस्कायः । वायुजीवः वायुकायिकः वायुकायः, इति त्रिविधत्वं ज्ञातव्यं ॥ १८२ ॥

मं० प्र०---सर्वेषा ससारिणामेकेंद्रिया एव प्रथमाः । द्वींद्रियादीना स्पर्शनमाश्रित्य एकैकेंद्रियवृद्धया तदनतरभावित्वाद् द्वितीयत्वं । एकेंद्रियाश्च कायकायिक स्थाप्य कृत्वा इदमुच्यते- पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकनाम्नां नामकर्मोत्तरोत्तरप्रकृतीनामुदयेन जीवा पृथ्वीकायिकाः, अप्कायिकाः, तेजस्कायिकाः वनस्पतिकायिकाश्च जायते । पृथ्वीकायः पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरपर्यायः अस्ति एषामिति पृथ्वीकायिकाः, अथवा पृथ्वी कायः शरीर येषा ते पृथ्वीकायिकाः । अप्कायः अप्त्वविशिष्टस्थावरपर्याय. अस्त्येषामिति अप्कायिका अथवा आपः कायः शरीर येषा ते अप्कायिका । तेजस्काय --तेजस्त्वविशिष्टस्थावरपर्यायः अस्त्येषामिति तेजस्कायिका. अथवा तेजः कायः शरीर येषा ते तेजस्कायिकाः । वायुकायः-वायुत्वविशिष्टस्थावरपर्यायः अस्त्येषामिति वायुकायिकाः अथवा वायुः कायः शरीर येषा ते वायुकायिकाः । तिर्यग्गत्येकेंद्रियजात्यौदारिकशरीरस्थावरकायादीना नामप्रकृतीनामुदयमाश्रित्यैव विधनिरुक्तिसद्भावात् तत्र तथासति तेषा पृथ्वीकायिकादीना निजनिजवर्णगधरसस्पर्शचतुष्कयुतो देहः-शरीर, नियमात् प्रतिनियमात् भवेदेव । पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरनामकर्मोदयसहितौदारिकशरीरनामकर्मोदयात् पृथ्वीकायिकदेहो भवति । एवमप्कायिकादिदेहा अपि तत्तद्विशिष्टस्थावरनामकर्मोदयसहितौदारिकशरीरनामकर्मोदयाद्भवतीति नियमशब्दार्थः । विग्रहगतौ वर्तमानः पृथ्वीत्वविशिष्टस्थावरकायनामकर्मोदयकृतपर्याय. पृथ्वीजीवः । गृहीततच्छरीरो जीवः पृथ्वीकायिकः, तेन त्यक्तदेह. पृथ्वीकाय, एवमञ्जीवः, अप्कायिकः अप्काय इत्यादि त्रिधा व्यवस्था ज्ञातव्या ॥ १८२ ॥

सं० च०-पृथ्वी अप तेज वायु विशेष धरै जो नामकर्मकी स्थावर प्रकृतिके भेदरूप उत्तरोत्तर प्रकृति ताके

उदयकरि जीवनिके तहां ही पृथिवी अप तेज वायु रूप परिणये जे पुद्गलस्कंध तिनिविषैं अपने २ पृथिवी आदि रूप वर्णादिक चतुष्क संयुक्त शरीर नियमकरि हो हैं। ऐसैं होतैं पृथिवीकायिक अप्कायिक तेजःकायिक वात कायिक जीव हो हैं। तहां पृथिवी विशेष लीए स्थावर पर्याय जिनकैं होइ ते पृथिवी कायिक कहिये अथवा पृथिवी है काय कहिये शरीर जिनका ते पृथिवीकायिक कहिए। ऐसैं ही अप कायिक तेजःकायिक वात कायिक जानने। तिर्यंच गति एकेंद्री जाति औदारिक शरीर स्थावर काय इत्यादिक नामकर्मकी प्रकृतिनिके उदय अपेक्षा ऐसी निरुक्ति संभवै है। बहुरि जो जीव पूर्व पर्यायको छोडि पृथ्वीविषै उपजनेकौं सन्मुख भया होइ सो विग्रह गतिविषै अंतरालमें यावत् रहै तावत् वाकौं पृथ्वी जीव कहिये। जातैं इहां केवल पृथिवीका जीवही है शरीर नाहीं। बहुरि जो पृथिवीरूप शरीरकौं धरै होइ सो पृथिवीकायिक कहिए। जातैं उहां पृथिवीका शरीर वा जीव दोऊ पाइए है। बहुरि जीव तौ निकसि गया होइ वाका शरीर ही होइ ताकौं पृथिवीकाय कहिये जातैं उहां केवल पृथिवीका शरीरही पाइए है। ऐसैं तीन भेद जानने। बहुरि अन्य ग्रंथिनिविषैं च्यारि भेद कहे हैं। तहां ए तीनौं भेद जिस विषैं गर्भित होंइ सो सामान्य पृथिवी ऐसा एक भेद जानना। जातैं पूर्वोक्त तीनों भेद पृथिवीके ही हैं। ऐसैं ही अप् जीव अप् कायिक अप् काय बहुरि तेजःजीव तेजःकायिक तेजःकाय बहुरि वातजीव वातकायिक वात कायरूप तीन तीन भेद जानने ॥ १८२ ॥

वादरसुहुमदयेण य वादरसुहमा हवंति तद्देहा।
घादसरीरं थूलं अघाददेहं हवे सुहुमं ॥ १८३ ॥

वादरसूक्ष्मोदयेन च वादरसूक्ष्मा भवंति तद्देहाः।
घातशरीरं स्थूलं अघातदेहं भवेत्सूक्ष्मं ॥ १८३ ॥

जी० प्र०—बादरनामकर्मोदयेन तद्देहाः पृथ्वीकायिकादिजीवाः बादरा भवंति । सूक्ष्मनामकर्मोदयेन च पृथ्वीकायिकादिजीवाः सूक्ष्मा भवंति । जीवविपाकिबादरसूक्ष्मनामकर्मोदयाभ्यां बादरसूक्ष्मजीवव्यपदेशमद्भावात्तद्देहा अपि बादरसूक्ष्मा भवंति । तेन इंद्रियविषयसंयोगजनितसुखदुःखवत् परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा प्रतिघातसंभवात् घातशरीरं स्थूलं भवति। अघातदेहः सूक्ष्मो भवति। तद्देहिनोऽपि घातशरीराः स्थूलाः, अघातदेहाः सूक्ष्मा भवंति । घातोपलक्षितं शरीरं येषां ते घातशरीराः।अघातो देहो येषां ते अघातदेहा इति बाध्याबाध्यत्वपरिणतिसंभवात् १८३

म० प्र०—पूर्वोक्ताः पृथ्वीकायिकादयो जीवाः प्रत्येकं बादरसूक्ष्मनामकर्मणोर्जीवविपाकिनोरुदयेन बादराः सूक्ष्माश्च भवंति । तद्देहाश्च–तेषां जीवाना देहाश्च--शरीराणि च बादराः सूक्ष्माश्च भवति । अथवा ते पृथिव्यादयो देहा येषा ते तद्देहाः बादरा स्थूला इत्यर्थः । कथं जीवाना बादरसूक्ष्मत्वं तेषाममूर्तत्वादित्याशंक्य तयोर्लक्षणमाह-घातलक्षितं शरीर यस्यासौ घातशरीरो जीवः स्थूलो बादरो भवेत् । अघातः घातरहितो देहो यस्यासौ अघातदेहो जीवः सूक्ष्मो भवेत् परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा घातः पीडा निग्रह इत्यर्थः । अनेन संसारिजीवस्य स्वभावादमूर्तत्वेऽपि मूर्तकार्मणपुद्गलस्कंधसहचारितस्य कथंचिन्मूर्तत्वप्रसिद्धेः । इंद्रियविषयसंयोगजनितसुखदुःखवत् । परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा प्रतिघातसंभवात् तेषा बादरसूक्ष्मशरीरयोरपि बाध्यत्वाबाध्यत्वपरिणामसंभवात् ॥ १८३ ॥

सं० चं०—पूर्वैं कहे जे पृथिवीकायिकादिक जीव ते बादर नामा नाम कर्मकी प्रकृतिके उदयतैं बादर शरीर धरैं बादर शरीर हो है। बहुरि सूक्ष्म नामकर्मकी प्रकृतिके उदयतैं सूक्ष्म होइ। जातैं बादर सूक्ष्म प्रकृती जीवविपाकी हैं तिनके उदयकरि जीवकौं बादर सूक्ष्म कहिए। बहुरि उनका शरीर भी बादर सूक्ष्म ही हो है। तहां इंद्रिय विषयका संयोगकरि निपज्या सुख दुःखकी ज्यों अन्य पदार्थकरि आपका घात होइ रुकै वा आपकरि और पदार्थका घात होइ रुकि जाय ऐसा घात शरीरकौं स्थूल वा बादर शरीर कहिए। बहुरि जो किसीकौं घातै नाहीं वा आपका घात अन्यकरि जाकैं न होइ ऐसा अघात शरीर सो सूक्ष्म शरीर कहिए। बहुरि तिनि शरीरनिके धारक जे जीव ते घातकरि युक्त है शरीर जिनिका ते घातदेह तौ बादर जानने। बहुरि अघातरूप है देह जिनका ते अघातदेह सूक्ष्म जानने। ऐसैं शरीरनिकैं रुकना वा न रुकना संभवै है॥ १८३ ॥

तद्देहमंगुलस्स असंखभागस्स विंदमाणं तु ।

आधारे थूला ओ सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ॥ १८४ ॥

तद्देहमंगुलस्यासंख्यभागस्य वृंदमानं तु ।

आधारे स्थूला ओ सर्वत्र निरंतराः सूक्ष्माः ॥ १८४ ॥

जी० प्र०—तेषां वादरसूक्ष्मपृथ्वीकायिकादिचतुर्विधजीवानां शरीराणि घनांगुलासंख्येयभागमात्राणि भवंति । सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तक-जघन्यशरीरावगाहनादारभ्य वादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकोत्कृष्टशरीरावगाहनपर्यंतं द्वाचत्वारिंशत्स्थानेषु घनांगुलस्य पल्यासंख्यातभागहारसंभवात् अथवा परमागमे—

वीपुण्णजहण्णोत्तियअसंखसंखं गुणं तत्तो ।

इत्यसंख्यातगुणकारसंभववचनात्तस्यासंख्यातभागहाराभिव्यक्तिप्रसिद्धेः । तत्र तु सूक्ष्मापर्याप्तवातकायजघन्यावगाहनन्यासोयं

६ । ८ । २२ ६ । ८ । ४ ।

प १९ । ८ । ८ । ८ । २२ । ग्रृ ९ पृथ्वीकायवादरपर्याप्तकोत्कृष्टावगाहनप्रमाणमिदं प । ४ । ८ । ४ । ग्रृ । ९ आधारे आश्रये वर्तमानशरीर-विशिष्टाः ये जीवास्ते सर्वेऽपि स्थूलाः—वादरा इत्यर्थः । आधारेण तेषां वादरस्वभावप्रतिघाताभावेऽप्यधःपतनरूपप्रतिघातसंभवात्प्रागुक्त-लक्षणमेव समर्थितं भवति । सर्वत्र—सर्वलोके जले स्थले आकाशे वा निरंतराः—आधारानपेक्षितशरीराः जीवाः सूक्ष्मा भवंति । जलस्थलरूपा-धारेण तेषां शरीरगतिप्रतिघातो नास्ति । अत्यंतसूक्ष्मपरिणामत्वात्ते जीवाः सूक्ष्मा भवंति । अंतरयति-व्यवदधाति विलंबयतीत्यंतरं—आधारः, ततो निष्क्रांता निरंतरा इत्यत्रापि पूर्वोक्तलक्षणमेव समर्थितं ज्ञातव्यं । ओ इति शिष्यसंबोधनं । यद्यपि वादरापर्याप्तवायुकायिकादीनां जघन्य-शरीरावगाहनमल्पं । ततोऽसंख्येयगुणत्वेन सूक्ष्मपर्याप्तकवायुकायिकादिपृथ्वीकायिकावसानजीवानां जघन्योत्कृष्टशरीरावगाहनानि महांति तथापि सूक्ष्मनामकर्मोदयसामर्थ्यात् अन्यतस्तेषां प्रतिघाताभावात् निष्क्रम्य गच्छंति श्लक्ष्णवस्त्रनिष्क्रांतजलबिंदुवत् । वादराणां पुनरल्पश-रीरत्वेऽपि वादरनामकर्मोदयवशादन्येन प्रतिघातो भवत्येव श्लक्ष्णवस्त्रानिष्क्रांतसर्षपवत् । य (द्यपि) द्येवं ऋद्धिप्राप्तानां स्थूलशरीरस्य वज्र-शिलादिनिष्क्रांतिरस्ति सा कथं ? इति चेत् तपोऽतिशयमाहात्म्येनेति ब्रूमः, अचिंत्यं हि तपोविद्यामणिमंत्रौषधिशक्त्यतिशयमाहात्म्यं दृष्टस्व-भावत्वात् । 'स्वभावोऽतर्कगोचरः' इति समस्तवादिसंमतत्वात् । अतिशयरहितवस्तुविचारे पूर्वोक्तशास्त्रमार्ग एव वादरसूक्ष्माणां सिद्धः ॥ १८४॥

मं० प्र०—तेषां वादराणां सूक्ष्माणा च पृथ्वीकायिकादीना चतुर्णां देहः-शरीरं, अंगुलस्यासंख्यातभागस्य वृंदमानं घनप्रमाणं घनांगुलासंख्यातभागप्रमा-

णमित्यर्थः । सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तजघन्यशरीरावगाहनादारभ्य वादरपर्याप्तपृथ्वीकायिकोत्कृष्टशरीरावगाहनपर्यंतं घनांगुलस्य पल्यासंख्यातभागमात्रभागहार-संभवात् । परमागमे द्वींद्रियपर्याप्तजघन्यावगाहनपर्यंतमसंख्यातगुणकारसंभववचनाद् घनांगुलस्यासंख्यातभागहाराभिव्यक्तिप्रसिद्धेः । तु -पुनः, वादरसूक्ष्माणां लक्षणांतरं प्रदर्शयितुं गाथोत्तरार्धमाह–तद्यथा–आधारे आश्रये, वर्तमानशरीराः ये जीवास्ते सर्वेऽपि स्थूलाः वादराः भवंति। आधारेण तेषां बाधस्वभावप्रतिघाताभावेप्यधःपतनरूपगतिप्रतिघातसंभवात्, पूर्वोक्तलक्षणसमर्थनं वा इद भवेत् सर्वत्र सर्वस्मिन् लोके जले स्थले आकाशे वा, निरतरा आधारानपेक्षवर्तमानशरीराः जीवाः सूक्ष्मा भवंति । जलस्थलरूपाधारेण येषां शरीरगति तिघातो नास्ति अत्यतसूक्ष्मपरिणामादेव ते जीवा. सूक्ष्मा भवंति । अंतरयति व्यवदधाति विलंबयतीत्यंतर-आधार', ततो निष्क्रांता निरतराः । अत्रापि पूर्वोक्तलक्षणसमर्थनं वेति ज्ञातव्यं । ओ इति शिष्यसंबोधने । यद्यपि वादरापर्याप्तकवायुकायिकादीनां जघन्यशरीरावगाहनमस्य ततोऽसख्येयगुणत्वेनापि वादरनामकर्मोदयवशादन्येन प्रतिघातो भवत्येव श्लक्ष्णवस्त्रानिष्क्रांतसर्षपवत् । यद्येवं ऋद्धिप्राप्तशरीरस्य स्थूलस्य वज्रशिलादिनिष्क्रांतिः कथं ? इति चेत्तपोऽतिशयमाहात्म्यादिति ब्रूमः । अचिंत्यं हि तपोविद्यामणिमंत्रौषधिशक्त्यतिशयमाहात्म्यं दृष्टस्वभावत्वात् 'स्वभावोऽतर्कगोचर.' इति सकलवादिसम्मतत्वात् । अतिशयरहितवस्तुविचारे पूर्वोक्तशास्त्रमार्ग एव वादरसूक्ष्मयोः सिद्धः ॥ १८४ ॥

सं० चं०—तिनि वादर वा सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अप कायिक तेजःकायिक वातकायिक जीवनिके शरीर घनांगुलके अंसख्यातवैं भाग प्रमाण हैं । जातैं पूर्वै जीवसमासाधिकारविषैं अवगाहनाका कथन कीया है । तहां सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्तककी जघन्य शरीर अवगाहना है तातैं लगाइ वादर पर्याप्त पृथिवीकायिककी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत वियालीस स्थान कहे तिनि सवनिविषैं घनांगुलकौं पल्यके असंख्यातवां भागका भागहार संभवै है । अथवा तहां ही 'वीपुण्णजहण्णोत्तिय असंखसंखं गुणं तत्तो' इस सूत्रकरि वियालीसवां स्थानकौं असंख्यातका गुणकार कीएं अगले स्थानविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना हो है तातैं तिस वियालीसवां स्थानविषैं घनांगुलकौं असंख्यातका भागहार प्रकट ही सिद्ध भया । तहां सूक्ष्म अपर्याप्त वातकायकी जघन्य अवगाहना वा पृथ्वीकाय वादर पर्याप्तकी उत्कृष्ट अवगाहनाका प्रमाण तहां ही जीवसमासाधिकारविषैं कह्या है सो जानना वहुरि 'आधारे थूलाओ' आधार कहिए अन्य पुद्गलनिका आश्रय तींहिविषैं वर्तमान शरीर संयुक्त जे जीव ते सर्व स्थूल कहिए वादर जानने । यद्यपि आधारकरि तिनके शरीरका वादर स्वभाव रुकना न हो है तथापि नीचैं गिरना रूप जो गमन ताका रुकना हो है सो तहां प्रतीघात संभवै है तातैं

पूर्वोक्त घातरूप लक्षण ही वादर शरीरनिका दृढभया। बहुरि सर्वत्र लोकविषैं जलविषैं वा स्थलविषैं वा आकाशविषैं निरंतर आधारकी अपेक्षारहित जिनकैं शरीर पाइए ते जीव सूक्ष्म हैं जल स्थलरूप आधारकरि तिनिकैं शरीरके गमनका नीचैं ऊपरि इत्यादि कहीं भी रुकना न हो है। अत्यंत सूक्ष्म परिणमनतैं ते जीव सूक्ष्म कहिए है। अंतरयति कहिए अंतराल करै है ऐसा जो अंतर कहिए आधार तातैं रहित ते निरंतर कहिए। इस विशेषण करि भी पूर्वोक्त ही लक्षण दृढ भया। 'ओ' ऐसा संबोधन पद जानना। याका अर्थ यहु–जो हे शिष्य ऐसैं तू जानि। बहुरि यद्यपि वादर अपर्याप्त वायुकायिकादि जीवनिकी अवगाहना स्तोक है। बहुरि यातैं सूक्ष्म पर्याप्त वायुकायिकादिक पृथ्वीकायिक पर्यंत जीवनिकी जघन्य वा उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यात गुणी है तथापि सूक्ष्म नामकर्मके उदयकी समर्थतातैं अन्य पर्वतादिकतैं भी तिनिका रुकना न हो है निकसि जाय है। जैसैं जलका विंदु वस्त्रतैं निकसि जाय रुकै नाहीं तैसैं सूक्ष्म शरीर जानना। बहुरि वादर नामकर्मके उदयके वशतैं अन्यकरि रुकना हो है जैसैं सरिसौं वस्त्रतैं निकसै नाहीं तैसैं वादर शरीर जानना। बहुरि यद्यपि ऋद्धिकौं प्राप्त भए मुनि देव इत्यादिक तिनिका शरीर वादर है तौ भी ते वज्र पर्वतादिकतैं रुकैं नाहीं निकसि जांय हैं सो यहु तपजनित अतिशयका महिमा है जातैं तप विद्या मणि मंत्र औषधि इनिकी शक्तिके अतिशयका महिमा अचिंत्य है सो दीखै है ऐसा ही द्रव्यका स्वभाव है। बहुरि स्वभावविषैं किछू तर्क नाहीं यहु समस्त वादी मानै हैं। सो इहां अतिशयवानोंका ग्रहण नाहीं। तातैं अतिशयरहित वस्तुका विचारविषैं पूर्वोक्त शास्त्रका उपदेश ही वादर सूक्ष्म जीवनिका सिद्ध भया ॥ १८४ ॥

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति।
पत्तेयं सामण्णं पदिट्ठिदिदरेत्ति पत्तेयं ॥ १८५ ॥

उदये तु वनस्पतिकायनाम्न जीवा वनस्पतयो भवंति ।
प्रत्येकं सामान्यं प्रतिष्ठितेतरे इति प्रत्येकं ॥ १८५ ॥

[illegible] वनस्पतिकायनामकर्मोदये तु पुनः जीवा वनस्पतिकायिका भवंति । ते च प्रत्येकशरीराः सामान्य- [illegible] । एकं एकं प्रति [illegible] एकजीवस्य एकशरीरमित्यर्थः । प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः । समानमेव सा- [illegible] सामान्यशरीराः-साधारणशरीरा इत्यर्थः तत्र प्रत्येकशरीराः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदात् द्विविधाः । इतिशब्दोऽत्र [illegible] प्रतिष्ठिताः, तैरनाश्रिताः अप्रतिष्ठिता इति तयोर्भेदावगमनात् ॥ १८५ ॥

[illegible] वनस्पतिकायिकनामकर्मणः उदये सति तु-पुनः- जीवा वनस्पतिकायिका भवंति । ते च प्रत्येकशरीराः [illegible] द्विविधाः । एकं प्रति नियतं प्रत्येकं, एकस्य जीवस्य एक शरीरमित्यर्थ , प्रत्येकं शरीरं येषां ते प्रत्येकशरीराः समानमेव सामान्यं सा- [illegible] शरीरं येषां ते सामान्यशरीराः साधारणशरीरा इत्यर्थः । प्रत्येकशरीरनामकर्मोदयात् साधारणशरीरनामकर्मोदयाच्च जीवानां [illegible] संभ- [illegible] । तत्र प्रत्येकशरीराः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदाद् द्विविधाः । इतिशब्दः प्रकारवाची । प्रतिष्ठिताः बादरनिगोदशरीरैराश्रिताः । अप्रतिष्ठिताः-तैरनाश्रिताः [illegible] जात्याश्रयेणैकवचनं प्रयुक्त ॥ १८५ ॥

सं० च०—वनस्पती रूप विशेषकों धरैं स्थावरनामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतिके उदय होतैं जीव वनस्पती कायिक हो हैं ते दोय प्रकार—एक प्रत्येक शरीर एक सामान्य कहिए साधारण शरीर । तहां एक प्रति नियम रूप होइ एक जीव प्रति एक शरीर होइ सो प्रत्येक शरीर है । प्रत्येक है शरीर जिनिका ते प्रत्येकशरीर जानने । बहुरि समानका भाव सो सामान्य, सामान्य है शरीर जिनिका ते सामान्य शरीर जीव हैं भावार्थ—बहुत जीवनि का एक ही जीवशरीर साधारण समानरूप होइ सो साधारण शरीर कहिए ऐसा शरीर जिनिकैं होइ ते साधारणशरीर जानने । तहां प्रत्येक शरीरके दोय भेद—एक प्रतिष्ठित एक अप्रतिष्ठित । इहां गाथाविषैं इति शब्द प्रकार वाची जानना । तहां प्रत्येक वनस्पतीके शरीर बादर निगोद जीवनिकरि आश्रित संयुक्त होइ ते प्रतिष्ठित जानने । जे बादर निगोदके आश्रय रहित होइ ते अप्रतिष्ठित जानने ॥ १८५ ॥

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंदबीजबीजरुहा ।

समुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥ १८६ ॥

मूलाग्रपर्वबीजाः कंदास्तथा स्कंधबीजबीजरुहाः ।
सम्मूर्छिमाश्च भणिता प्रत्येकानंतकायाश्च ॥ १८६ ॥

जी॰ प्र॰—मूलं बीजं येषां ते मूलबीजाः । (येषां मूलं प्रादुर्भवति ते) आर्द्रकहरिद्रादयः । अग्रं बीजं येषां ते अग्रबीजाः (येषां अग्रं प्ररोहयति ते) आर्यकोदीच्यादयः । पर्व बीज येषां ते पर्वबीजाः इक्षुवेत्रादयः । कंदो बीज येषां ते कंदबीजाः पिंडालसूरणादयः । स्कंधो बीज येषां ते स्कंधबीजाः सल्लकीकंटकीपलाशादय । बीजात् रोहंतीति बीजरुहाः शालिगोधूमादयः । संमूर्छे समंतात् प्रसृतपुद्गलस्कंधे भवाः सम्मूर्छिमाः मूलादिनियतबीजनिरपेक्षाः ते च ये प्रत्येकशरीरा जीवाः परमागमे भणितास्ते अनंतकायाश्च अनंतानंतनिगोदजीवानां कायाः--शरीराणि एष्विति अनंतकायाः प्रतिष्ठितप्रत्येका इत्यर्थः, चशब्दादप्रतिष्ठितप्रत्येकाश्च संतीत्यर्थः । एते मूलबीजादिसंमूर्छिमपर्यंताः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरजीवास्तेऽपि संमूर्छिमा एव भवंति । प्रतिष्ठितं-साधारणशरीरमाश्रितं प्रत्येकशरीरं येषां ते प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः तैरनाश्रितशरीरा अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराः स्युः । एवं प्रत्येकजीवानां निगोदशरीरैः प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदेन द्विविधत्वं उदाहरणदर्शनपूर्वकं व्याख्यातं । प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिजीवशरीरस्य सर्वोत्कृष्टावगाहनमपि घनांगुलासंख्येयभागमात्रमेवेति पूर्वोक्तादार्द्रकादिस्कंधेषु एकैकस्मिंस्तानि असंख्यातानि असंख्यातानि संति । यद्येतावत्क्षेत्रस्य प्र ६ प । २ । ७ । ९ एकं प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरं फ-१ । स्यात् तदैतावत्क्षेत्रस्य इ-।६।७ कति प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि स्युरिति त्रैराशिकलब्धानि एकैकार्द्रकादिस्कंधसंभवीनि प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि भवंति प २ । ७ । १० । अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिजीवशरीराणि यथासंभवं असंख्यातानि संख्यातानि वा भवंति। यावंति प्रत्येकशरीराणि तावंत एव प्रत्येकवनस्पतिजीवाः तत्र प्रतिशरीरं एकैकस्य जीवस्य प्रतिज्ञान त् ॥ १८६ ॥

मं॰ प्र॰—मूलं बीजं येषां ते मूलबीजाः-आर्द्रकहरिद्रादयः । अग्रं बीजं येषा ते अग्रबीजा - आर्यकोदीच्यादयः । पर्व बीजं येषां ते पर्वबीजाः—इक्षुवेत्रादयः । कंदो बीज येषां ते कंदबीजाः--पिंडालसूरणादयः स्कंधो बीज येषा ते स्कंधबीजाः सल्लकीकंटकीपलाशादयः । बीजाद्रोहंतीति बीजरुहाः--बीजबीजाः शालिगोधूमादयः । सम्मूर्छे भवा. सम्मूर्छिमाः मूलादिनियतबीजनिरपेक्षाः समंतात्प्रसृतपुद्गलस्कंधाज्जातास्ते च ये प्रत्येकशरीरा जीवाः परमागमे भणिताः ते अनतकायाश्च—अनंतानां निगोदजीवाना कायाः—शरीराणि येषु ते अनंतकायाः निगोदजीवशरीरैः प्रतिष्ठिताः, चशब्देन तैरप्रतिष्ठिताश्च सतीत्यर्थोऽनुक्तोऽपि समुच्चीयते एवं प्रत्येकजीवाना निगोदशरीरै. प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदेन द्विविधत्वमुदाहरणप्रदर्शनपूर्वकं व्याख्याव । प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पति-

जीवशरीरस्यापि घनांगुलासंख्यातभागमात्रत्वेन पूर्वोक्तार्द्रकादिषु स्कंधेषु एकैकस्मिन्नसंख्यातानि प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि ज्ञातव्यानि एतावत्क्षेत्रस्य प्र-
६
प । २ । ७ । ९ यद्येकं प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीर भवेत् । फ १ । तदा एतावत्क्षेत्रस्य इ ६ ७ कियंति प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीराणि भवंतीति त्रैराशिकलब्धानि
a
प । २ । ७ । १० । अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिजीवशरीराणि यथासंभवं असंख्यातानि संख्यातानि वा संति यावंति प्रत्येकशरीराणि तावंत एव प्रत्येक-
a
वनस्पतिजीवा भवंति । तत्र प्रतिशरीरमेकैकजीवप्रतिज्ञानात् ॥ १८६ ॥

सं० च०—जिनिकी मूल जो जड़ सोई बीज होइ ते आदा हलद आदि मूल जीव जानने। बहुरि जिनिका अग्र जो अग्रभाग सो ही बीज होइ ते आर्यक आदि अग्रबीज जानने। बहुरि जिनिका पर्व जो पेली सो ही बीज होइ ते सांठा आदि पर्व बीज जानने। बहुरि कंद है बीज जिनिका ते पिंडालु सूरणा आदि कंद बीज जानने। बहुरि स्कंध जो पेड सो ही है बीज जिनिका ते सालरि पलास आदि स्कंध बीज जानने। बहुरि जे बीजहीतैं लगैं ते गोंहू शालि आदि बीजरुह जानने। बहुरि जे मूल आदि निश्चित बीजकी अपेक्षा तैं रहित आपै आप उपजैं ते सम्मूर्छिम कहिए समंततैं भए पुद्गल स्कंध तिनिविषैं उपजैं ऐसे दोव आदि सम्मूर्छिम जानने। ऐसैं ए कहे ते सर्वही प्रत्येकवनस्पती हैं ते अनंत जे निगोद जीव तिनके 'कायः' कहिए शरीर जिनिविषैं पाइए ऐसे 'अनंतकायाः' कहिए प्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। बहुरि चकारतैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। ऐसैं प्रतिष्ठित कहिए साधारण शरीरनिकरि आश्रित है प्रत्येक शरीर जिनका ते प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं। बहुरि तिनिकरि आश्रित नाहीं हैं प्रत्येक शरीर जिनिका ते अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर हैं। ऐसे ए मूल बीज आदि संमूर्छिम पर्यंत सर्व दोय दोय अवस्था लीएं जानने। बहुरि कोऊ जानैगा कि इनिविषै संमूर्छिमकै तौ संमूर्छिम जन्म होगा अन्यकै गर्भादिक होगा सो नाहीं है। ते सर्व ही प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येकशरीरी जीव संमूर्छिम ही हैं। बहुरि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरकी सर्वोत्कृष्ट अवगाहना घनांगुलके असंख्यात भाग मात्र ही है तातैं पूर्वोक्त आदांकौ आदि देकरि एक एक स्कंधविषै असंख्यात प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पाइए हैं। कैसैं? घनांगुलकौं

दोयवार पल्यका असंख्यातवां भाग अर नव वार संख्यातका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने क्षेत्रविषै जो एक प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर होइ तो संख्यात घनांगुलप्रमाण आदा मूला आदि स्कंधविषै केते पाइए? ऐसैं त्रैराशिक कीएं लब्ध राशि दोयवार पल्यका असंख्यातवां भाग दशबार संख्यात माडि परस्पर गुणैं जितना प्रमाण होइ तितने एक एक आदा आदि स्कंधविषै प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर पाइए हैं। बहुरि एक स्कंधविषै अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती जीवनिकैं शरीर यथासंभव असंख्यात भी होंइ वा संख्यात भी होंइ। बहुरि जेते प्रत्येक शरीर हैं तितने ही तहां प्रत्येक वनस्पती जीव जानने जातैं तहां एक एक शरीर प्रति एक एक ही जीव होनेका नियम है ॥ १८६ ॥

बीजे[1] जोणीभूदे जीवो चंकमदि सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥ १८७ ॥

बीजे योनीभूते जीवः चंक्रामति स वा अन्यो वा।
येऽपि च मूलादिकास्ते प्रत्येकाः प्रथमतायां ॥ १८७ ॥

जी० प्र०—बीजे-मूलादिबीजावसाने, योनिभूते-जीवोत्पत्तियोग्ये, जाते सति स एव-तत्र स्थित एव जीवः मृत्वा-स्वायुःक्षयवशेन मुक्तशरीरो भूत्वा पुनस्तत्रैव प्रक्रामति-उत्पद्यते। अन्यो वा अन्यशरीरांतरालस्थितो जीवः स्वायुःक्षयवशेन त्यक्तशरीरो भूत्वा आगत्य स्वयोग्यमूलादिबीजे प्रक्रामति। येऽपि च मूलकादयः प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरत्वेन प्रतिबद्धाः तेऽपि खलु प्रथमतायां स्वोत्पन्नप्रथमसमये अंतर्मुहूर्तकालं साधारणजीवैरप्रतिष्ठितप्रत्येका एव भवंति ॥ १८७ ॥ अथ साधारणशरीरवनस्पतिजीवस्वरूपं गाथाचतुष्टयेन प्ररूपयति—

मं० प्र० बीजे पूर्वोक्तमूलादिबीजपर्यंते जीवोत्पत्त्याधारपुद्गलस्कंधे योनिभूते अविनष्टशक्तिके प्राप्तकालादिबाह्यकारणसन्निधाने स जीवो वा यः पूर्वं तत्र प्रत्येकशरीरत्वेन जीवित्वा मृतः पुनः स एव तदेव मूलादिबीज शरीर कृत्वा प्रक्रामति उत्पद्यते, वा--अथवा पूर्वशरीरस्वामिना जीवे न अन्यत्रोत्पन्ने सति

1. जीवतत्त्वप्रदीपिकामें यह गाथा १९० नंबर पर है।

पुनरन्यो जीवो गत्यंतरादागत्य तदैव तस्मिन् बीजे प्रक्रामति--उत्पद्यते विरोधाभावात् । ये पुनर्मूलकादयः प्रतिष्ठितप्रत्येकत्वेन परमागमे प्रसिद्धास्तेऽपि प्रथम-तायां शरीरग्रहणकाले प्रथमसमये अंतर्मुहूर्तमात्रे वा प्रत्येकाः- अप्रतिष्ठितप्रत्येका एव पश्चान्निगोदजीवैर्यदा आश्रियते तदा प्रतिष्ठिता भवतीति तात्पर्यं । ॥ १८७ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः प्रत्येकजीवानां प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविशेषलक्षणं गाथात्रयेणाह–

सं० च०—बीजे कहिए पूर्वै जे कहे मूलकों आदि देकरि बीज पर्यंत बीजजीव उपजनेका आधार भूत पुद्गलके स्कंध सो योनीभूते कहिए जिस विषै जीव उपजै असी शक्ति संयुक्त होतसंतैं जल वा काला-दिकका निमित्त पाइ सोई जीव वा और जीव आनि उपजैं हैं। भावार्थ—पूर्वै जो बीजविषै जीव तिष्ठै था सो जीव तौ निकरी गया अर उस बीज विषै असी शक्ति रही जो इसविषैं जीव आनि उपजै तहां जलादिकका निमित्त होतैं पूर्वै जो जीव उस बीजकौं अपना प्रत्येक शरीरकरि पीछैं अपना आयुके नाशतै मरण पाइ निकसि गया था सोई जीव बहुरि तिसही अपने योग्य जो मूलादि बीज तींहि विषै आनि उपजै है अथवा जो वह जीव और ठिकानै उपज्या होइ तौ इस बीजविषै अन्य कोई शरीरांतरविषै तिष्ठता जीव अपना आयुके नाशतैं मरण पाइ आनि उपजै है। किछु विरोध नाहीं। जैसैं गोंहू विषै जीव था सो निकसि गया बहुरि याकौं वोया तब उस ही विषै सोई जीव वा अन्य जीव आनि उपज्या सो यावत् काल जीव उपजनेकी शक्ति होइ ता-वत् काल योनीभूत कहिए। बहुरि जब ऊगनेकी शक्ति न होइ तब अयोनीभूत कहिए असा भेद जानना। बहुरि जे मूलतैं आदि देकरि वनस्पती काय प्रत्येक प्रतिष्ठित प्रसिद्ध हैं तेऊ प्रथम अवस्थाविषैं जन्मतैं प्रथम समयतैं लगाइ अंतर्मुहूर्तकालपर्यंत अप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहै हैं। पीछैं निगोदजीव जब आश्रय करै हैं तब स-प्रतिष्ठित प्रत्येक होय हैं ॥ १८७ ॥ आगैं श्रीमाधवचंद्र नामा आचार्य त्रैविद्यदेव सो सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जीवनिका विशेष लक्षण तीन गाथानिकरि कहैं हैं—

गूढसिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं(यं) च छिण्णरुहं।

साहारणं सरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥ १८८ ॥

गूढशिरासंधिपर्वसमभंगमहीरुकं च छिन्नरुहं ।
साधारणं शरीरं तद्विपरीतं च प्रत्येकं ॥ १८८ ॥

जी० प्र०—यत् प्रत्येकशरीरं गूढशिरं-अदृश्यबहिःस्नायुक, गूढसंधि-अदृश्यसंधिरेखाबंधं, गूढपर्वं-अदृश्यग्रंथिकं, समभंगं-त्वग्रहितत्वेन सदृशच्छेदं, अहीरुकं-अंतर्गतसूत्ररहित, छिन्नं रोहतीति छिन्नरुहं च तच्छरीरं साधारणं-साधारणजीवाश्रितत्वेन साधारणमित्युपचर्यते । प्रतिष्ठितशरीरमित्यर्थः । तद्विपरीत गूढशिरत्वादिपूर्वोक्तलक्षणरहितं तालनालिकेरतिंतिणीकादिशरीरं अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमिति विभागं चशब्दः सूचयति ॥ १८८ ॥

मं० प्र०—यत्प्रत्येकशरीरं गूढशिर अदृश्यवहिःस्नायुक गूढसंधि अदृश्यसंधिरेखाबंधं गूढपर्व अदृश्यग्रंथिकं समभंगं त्वग्रहितत्वेन सदृशच्छेदं अहिरुकं—अंतर्गतसूत्ररहित छिन्नं रोहतीति छिन्नरुहं च तच्छरीरं साधारण । साधारणजीवाश्रितत्वेन साधारणमित्युपचारेणोच्यते प्रतिष्ठितशरीरमित्यर्थः । तद्विपरीतं गूढशिरत्वादिपूर्वोक्तलक्षणरहित तालनालिकेरादिशरीरमप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरमिति विभागार्थश्चशब्द. ॥ १८८ ॥

सं० च०—जिस प्रत्येक वनस्पती शरीरका सिरा संधि पर्व गूढ होइ बाह्य दीखै नाहीं तहां सिरा तौ लंबी लकीरसी जैसैं कांकडीविषैं होइ । बहुरि संधि वीचिमें छेहा जैसैं दाड्यौ वा नारंगीविषैं हो है । बहुरि पर्व गांठि जैसैं सांठाविषै हो है सो कची अवस्थाविषै जाकैं ए बाह्य दीखैं नाहीं ऐसा वनस्पती बहुरि समभंग कहिए जाका टूंक ग्रहण कीजिये तो कोऊ तातूं लगा न रहै समान बरावरि टूटै ऐसा । बहुरि अहीरुहं कहिए जाके विषै सूत सारिखा तातूं न होइ ऐसा । बहुरि छिन्नरुहं कहिए जो काट्या हुवा ऊगै ऐसा वनस्पती सो साधारण है । इहां प्रतिष्ठित प्रत्येक साधारण जीवनिकरि आश्रितकी अपेक्षा उपचारकरि साधारण कह्या है । बहुरि तद्विपरीतं कहिये पूर्वोक्त गूढ सिरा आदि लक्षण रहित नालिकेर आम्रादि शरीर अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर जानना । गाथा विषैं कह्या है जो चकार सो इस भेदकौं सूचै है ॥ १८८ ॥

मूले कंदे छल्लीपवालसालदलकुसुमफलबीजे ।

समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया ॥ १८९ ॥

मूले कंदे त्वक्प्रबालशालादलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सति नांता असमे सति भवंति प्रत्येकाः ॥ १८९ ॥

जी० प्र०—मूले कंदे त्वचि पल्लवांकुरे क्षुद्रशाखायां पत्रे कुसुमे फले बीजे च समभंगे सति अनंताः--अनंतकायाः -प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा इत्यर्थः । मूलादिषु समभंगरहितवनस्पतिषु अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवंति ॥ १८९ ॥

मं० प्र० ---येषा प्रत्येकवनस्पतीना मूलं -कदः, त्वक्, प्रवालः--नवपल्लवः, शाला-क्षुद्रशाखा, दलं -पत्रं, कुसुमं, फलं, बीजं च समभंगं भवेत् हीरुकं विना भज्येत तथासति ते जीवाः अनता.--अनतैर्निगोदैराश्रिताः प्रतिष्ठिता इत्यर्थः येषा मूलादिः समभगो न भवति तथासति ते जीवाः अप्रतिष्ठित-प्रत्येका भवति ॥ १८९ ॥

सं० च०—मूल कहिये जड कंद कहिये पेड छली कहिए छालि प्रवाल कहिए कौंपल अंकुरा, शाला कहिए छोटी डाहली शाखा कहिए बडी डाहली दल कहिए पान कुसुम कहिए फूल फल कहिए फल बीज कहिये जातैं फेरि उपजैं सो बीज सो ए समभंग होंइ तो अनंत कहिए अनंतकायरूप प्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। बहुरि जो मूल आदि वनस्पती समभंग न होइ सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं। जीहि वनस्पतिका मूलकंद छाल इत्यादिक समभंग होइ सो प्रतिष्ठित प्रत्येक है अर जाका समभंग न होइ सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है। तोड्या थका तांतू कोई लग्या न रहै बराबरि टूटै सो समभंग कहिए ॥ १८९ ॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंदस्स वावि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥ १९० ॥

कंदस्य वा मूलस्य वा शालास्कंधस्य वापि बहुलतरी ।
त्वक् सा अनंतजीवा प्रत्येकजीवास्तु तनुकतरी ॥ १९० ॥

जी० प्र०—येषां प्रत्येकवनस्पतीनां कंदस्य वा मूलस्य वा शालायाः क्षुद्रशाखाया वा स्कंधस्य या त्वक् बहुलतरी-स्थूलतरी स्यात् ते वनस्पतयः अनंतकायजीवा भवंति-अनंतजीवैः-निगोदजीवैः सहिताः प्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवंति इत्यर्थः तु पुनः येषां कंदादिषु त्वक् तनुतरी ते वनस्पतयः अप्रतिष्ठितप्रत्येकशरीरा भवंति ॥ १९० ॥

मं० प्र०—येषां प्रत्येकवनस्पतीना कंदस्य वा मूलस्य वा शालाया वा स्कंधस्यापि वा त्वक् बहुलतरा -स्थूलतरा भवति ते सानंतजीवाः--अनंतजीवैर्निगोदजीवैः सहिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका इत्यर्थ. । तु पुनः, येषां कंदादीना त्वक् तनुतरा--अत्यल्पा ते अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवा भवति ॥ १९०॥ अथ श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिनः साधारणजीवस्वरूपं गाथासप्तकेन प्ररूपयति--

सं० च०—जिस वनस्पतीका कंदकी वा मूलकी वा क्षुद्र शाखाकी वा स्कंधकी छालि मोटी होइ सो अनंत काय है। निगोदजीव सहित प्रतिष्ठित प्रत्येक है। बहुरि जिस वनस्पतीका कंदादिककी छालि पतली होइ सो अप्रतिष्ठित प्रत्येक है॥ १९० ॥ आगैं श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती साधारण वनस्पतीका स्वरूप सात गाथानिकरि कहै हैं—

साहारणोदयेण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा ।
ते पुण दुविहा जीवा वादरसुहमात्ति विण्णेया ॥ १९१ ॥

साधारणोदयेन निगोदशरीरा भवंति सामान्याः ।
ते पुनर्द्विविधा जीवा वादरसूक्ष्मा इति विज्ञेयाः ॥ १९१ ॥

जी० प्र०—साधारणनामकर्मोदयेन जीवा निगोदशरीरा भवंति । नि-नियतां गां-भूमिं क्षेत्रं निवासं, अनंतानंतजीवानां ददाति इति निगोदं । निगोदं शरीरं येषां ते निगोदशरीराः इति लक्षणसिद्धत्वात् । त एव सामान्याः-साधारणशरीरा जीवा पुनः वादराः सूक्ष्माश्चेति द्विधा पूर्वोक्तलक्षणलक्षिता विज्ञेयाः ॥ १९१ ॥

मं० प्र०—स्थावरनामकर्मोत्तरप्रकृतिभेदस्य साधारणनामकर्मणः उदयेन जीवाः सामान्याः साधारणा भवंति । किंविशिष्टाः संतः ? निगोदशरीराः—नियतानामनंतजीवानामेकामेव गां-भूमिं क्षेत्रं निवासं ददातीति निगोदं शरीरं येषा ते निगोदशरीराः ते साधारणजीवाः पुनः वादराः सूक्ष्मा इति द्विविधा विज्ञेयाः । अत्रापि वादरसूक्ष्मलक्षणं प्रागुक्तमेव ज्ञातव्यं ॥ १९१ ॥

सं० च०—साधारण नामा नामकर्मकी प्रकृतिके उदयतें निगोद शरीरके धारक साधारण जीव हो हैं। नि- कहिये नियतिले अनंते जीव तिनिकों गो कहिये एकही क्षेत्रकों जो द कहिये देइ सो निगोद शरीर जानना। सो जिनकैं पाइए ते निगोदशरीरी हैं बहुरि तेई सामान्य कहिये साधारण जीव हैं। बहुरि ते वादर अर सूक्ष्म ऐसे भेदतें दोय प्रकार पूर्वोक्त वादर सूक्ष्मपना लक्षणके धारक जानने॥ १९१ ॥

साहारणमाहारो साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं साहारणलक्खणं भणियं ॥ १९२ ॥

साधारणमाहारः साधारणमानपानग्रहणं च।
साधारणजीवानां साधारणलक्षणं भणितं ॥ १९२ ॥

जी० प्र०—यत्साधारणनामकर्मोदयवशवर्त्यनंतजीवानां उत्पन्नप्रथमसमये आहारपर्याप्तिस्तत्कार्यं च आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां खल-रसभागपरिणमनं साधारण सदृश समकालं च भवति। तथा शरीरपर्याप्तिः तत्कार्यं च आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां शरीराकारपरिणमनं तथा इंद्रियपर्याप्तिः तत्कार्यं च स्पर्शनादींद्रियाकारपरिणमन तथा आनपानपर्याप्तिः तत्कार्यं च उच्छ्वासनिश्वासग्रहणं साधारणं सदृशं समकालं च भवति। तथा प्रथमसमयोत्पन्नानामिव तत्रैव शरीरे द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामपि अनतानंतजीवानां पूर्वपूर्वसमयोत्पन्नानंतानंतजीवैः सह आहारपर्याप्त्यादिकं सर्वं सदृशं समकालं च भवति। तदिदं साधारणलक्षणं पूर्वसूरिभिर्भणितं ज्ञातव्य। चशब्देन शरीरेंद्रियपर्याप्तिद्वयं समुच्चयीकृतं ॥ १९२ ॥

मं० प्र०—येषामनतजीवाना साधारणनामकर्मोदयवशवर्तिनां, उत्पन्नप्रथमसमये आहारपर्याप्तिः, तत्कार्यं आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधखलरसभागपरिणमनं च साधारणं-सदृश समकालं च तथा शरीरपर्याप्तिः तत्कार्यं आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधस्य शरीराकारपरिणमनं च तथा इंद्रियपर्याप्तिः तत्कार्यं स्पर्शनेंद्रियाकारपरिणमन च तथा आनपानपर्याप्तिः तत्कार्यं उच्छ्वासनिश्वासग्रहण च साधारण सदृशरूपं समकाल च भवति ते साधारणजीवा इति साधारणजीवाना उत्पत्तिप्रथमसमयोत्पन्नानामिव तस्मिन्नेव शरीरे द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामपि अनंतजीवानां पूर्वपूर्वसमयोत्पन्नानंतजीवैः सह आहारपर्याप्त्यादिकं सर्वं सदृशरूपं समकाल भवतीति साधारणलक्षणं पूर्वसूरिभिर्भणित ज्ञातव्यं। चशब्देन शरीरेंद्रियपर्याप्तिद्वयतत्कार्यसमुच्चयः कृतः ॥ १९२ ॥

सं० च०—साधारण नामा नामकर्मके उदयके वशवर्ती जे साधारण जीव तिनिकैं उपजते पहला समय विषै आहार पर्याप्ति हो है सो साधारण कहिए अनंत जीवनिकैं युगपत एक काल हो है। सो आहार पर्याप्तिका कार्य यहु जो आहार वर्गणारूप जे पुद्गल स्कंध तिनिकौं खल रस भागरूप परिणमावै है। बहुरि तिनही आहार वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिकौं शरीरके आकार परिणमावनेरूप है कार्य जाका ऐसा शरीर पर्याप्ति सो भी तिनि जीवनिके साधारण हो है। बहुरि तिनहीकौं स्पर्शन इंद्रियके आकार परिणमावना है कार्य जाका ऐसा इंद्रिय पर्याप्ति सो भी साधारण हो है। बहुरि सासोस्वास ग्रहणरूप है कार्य जाका ऐसा आनपान पर्याप्ति सो भी साधारण हो है। बहुरि एक निगोद शरीर है तींहिविषैं पूर्वैं अनंत जीव थे। बहुरि दूसरा तीसरा आदि समय विषैं नये अनंत जीव उसही विषैं अन्य आनि उपजैं तौ तहां जैसैं वे नये उपजे जे जीव आहार आदि पर्याप्तिकौं धरै हैं तैसैं ही पूर्व २ समय विषै उपजे थे जे अनंतानंत जीव ते भी उनहीकी साथि आहारादिक पर्याप्तिनिकौं धरै हैं सदृश युगपत् सर्व जीवनिके आहारादिक हो है तातैं इनिकौं साधारण कहिये है सो यह साधारणका लक्षण पूर्वाचार्यनिकरि कह्या हूवा जानना ॥ १९२ ॥

जत्थेक्क मरइ जीवो तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं।
वक्कमइ जत्थ एक्को वक्कमणं तत्थ णंताणं ॥ १९३ ॥

यत्रैको म्रियते जीवस्तत्र तु मरणं भवेदनंतानां।
प्रक्रामति यत्र एकः प्रक्रमणं तत्रानंतानां ॥ १९३ ॥

जी० प्र०—यन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः स्वस्थितिक्षयवशेन म्रियते तदा तन्निगोदशरीरे समस्थितिकाः अनंतानंता जीवाः सहैव म्रियंते। यन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः प्रक्रामति-उत्पद्यते तदा तन्निगोदशरीरे समस्थितिकाः-अनंतानंता जीवाः सहैव प्रक्रामंति। एवमुत्पत्तिमरणयोः समकालत्वमपि साधारणलक्षणं प्रदर्शितं। द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामनंतानंतजीवानामपि स्वस्थितिक्षये सहैव मरणं ज्ञातव्यं।

एवमेकनिगोदशरीरे प्रतिसमयमनंतानंतजीवास्तावत्सहैव म्रियंते सहैवोत्पद्यंते यावदसंख्यातसागरोपमकोटीकोटिमात्री असंख्यातलोकमात्रसमयप्र-मिता उत्कृष्टनिगोदकायस्थितिः परिसमाप्यते। अत्र विशेषोऽस्ति-स च कः ? एकबादरनिगोदशरीरे सूक्ष्मनिगोदशरीरे वा अनंतानंताः साधारण-जीवा केवलपर्याप्ता एवोत्पद्यते पुनरपि एकशरीरे केवलमपर्याप्ता एवोत्पद्यंते न च मिश्रा उत्पद्यंते तेषां समानकर्मोदयनियमात् । एकस्य साधा-रणजीवस्य कर्मादानशक्तिलक्षणयोगेन गृहीतपुद्गलपिंडोपकारोऽनंतानतसाधारणजीवानां तस्य चानुग्रहणं भवति । पुनरपि अनंतानंतसाधारण-जीवानां योगशक्तिभिः गृहीतपुद्गलपिंडोपकारः एकस्य अनतानंतसाधारणजीवानां चानुग्रहणं समासेन संपिंडितत्वेन भवति । एकबादरनि-गोदशरीरे सूक्ष्मनिगोदशरीरे वा यथासंख्यं पर्याप्ताः बादरनिगोदजीवाः सूक्ष्मनिगोदजीवाश्च भवप्रथमसमये अनतानंता उत्पद्यंते । द्वितीयस-मये तेभ्योऽसंख्येयगुणहीना उत्पद्यंते । एव निरंतरमावल्यसंख्येयभागकालपर्यंतं प्रतिसमयमसंख्येयगुणहीनक्रमेणोत्पद्यंते। ततः परं जघन्यैकस-मयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्येयभागमात्रकालमंतरयित्वा पुनरपि जघन्येनैकसमयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं निरंतरं निगोदशरीरे अ-संख्यातगुणहीनक्रमेण साधारणजीवा उत्पद्यंते । एवं सांतरनिरंतरक्रमेण तावदुत्पद्यंते यावत्प्रथमसमयोत्पन्नसाधारणजीवस्य सर्वजघन्यो निर्वृत्य-पर्याप्तकालोऽवशिष्यते २ १ पुनरपि तत्प्रथमादिसमयोत्पन्न पर्वसाधारणजीवानां आहारशरीरेंद्रियोच्छ्वासनिःश्वासपर्याप्तीनां स्वस्वयोग्यकाले नि-ष्पत्तिर्भवति ॥ १९२ ॥ अथ बादरनिगोदशरीराधारं प्रतिपादयति–

मं० प्र०—यस्मिन्नेकस्मिन् शरीरे यदा एको जीवः स्वस्थितिक्षयवशान्म्रियते तदा तस्मिन् समये समस्थितिकानामनतजीवानां मरण सहैव भवेत् । यस्मिन्नेकस्मिन्निगोदशरीरे यदा एको जीवः प्रक्रामति–उत्पद्यते तदैव–तस्मिन्निगोदशरीरे समस्थितिकानामनतजीवानां प्रक्रमणमुत्पत्तिः सहैव भवेत् इत्युत्पत्ति-मरणयोः समकालत्वमपि साधारणलक्षणं प्रदर्शितं द्वितीयादिसमयोत्पन्नानामपि अनंतजीवाना स्वस्थितिक्षये सह मरण द्रष्टव्यं । एवमेकस्मिन्निगोदशरीरे प्रतिसमयमनंतानंतजीवाना सहोत्पत्तिः सहमरणं च तावत्संभवति यावदसंख्यातसागरोपमकोटीकोटीनामसंख्यातलोकमात्रसमयप्रमिता उत्कृष्टनिगोदकायस्थितिः परिसमाप्यते ॥ १९३ ॥

सं० च०– एक निगोद शरीरविषैं जिस काल एक जीव अपना आयुके नाशतैं मरै तिसही काल विषैं जि-नकी आयु समान होइ ऐसे अनंतानंत जीव युगपत् मरै हैं। बहुरि जिस कालविषैं एक जीव तहां उपजै है उस-ही कालविषैं उसही जीवकी साथि समान स्थितिके धारक अनंतानंत जीव उपजैं हैं ऐसैं उपजना मरनाका स-मकालपनाकौं भी साधारण जीवनिका लक्षण कहिए है। बहुरि द्वितीयादि समयनिविषैं उपजे अनंतानंत जीव-निका भी अपना आयुका नाश होतै साथि ही मरना जानना। ऐसैं एक निगोद शरीरविषैं समय समय प्रति

अनंतानंत जीव साथिही मरै हैं साथि ही उपजै हैं। निगोद शरीर ज्यौंका त्यौं रहै है सो निगोद शरीरकी उ-त्कृष्ट स्थिति असंख्यात कोडाकोडी सागरमात्र है। सो असंख्यात लोकमात्र समय प्रमाण जानना सो स्थिति यावत् पूर्ण न होइ तावत् ऐसें ही जीवनिका उपजना मरना हुवा करै है। इतना विशेष—जो कोई एक बादर नि-गोद शरीर विषैं वा एक सूक्ष्मनिगोद शरीरविषैं अनंतानंत जीव केवल पर्याप्त ही उपजै हैं तहां अपर्याप्त नाहीं उपजैं हैं। बहुरि कोई एक शरीरविषैं केवल अपर्याप्त ही उपजै हैं तहां पर्याप्त नाहीं उपजै हैं। एक शरीर विषैं पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ नाहीं उपजैं है। जातैं तिन जीवनिके समान कर्मके उदयका नियम है। बहुरि एक साधारण जीवकें कर्मका ग्रहण शक्तिरूप लक्षण धरैं जो काय योग ताकरि ग्रह्या हूवा जो पुद्गल पिंड ताका उप-कार कार्य सो तिस शरीर विषैं तिष्ठते अनंतानंत अन्य जीवनिका अर तिस जीवका उपकारी हो है। बहुरि अनंतानंत साधारण जीवनिका जो काय योग रूप शक्ति ताकरि ग्रहे हूये पुद्गलपिंडनिका कार्यरूप उपकार सो कोई एक जीवका वा तिन अनंतानंत साधारण जीवनिका उपकारी समान एक साथिपनै हो है। बहुरि एक बादर निगोद शरीरविषैं वा सूक्ष्म निगोद शरीर विषै क्रमतैं पर्याप्त बादर निगोद जीव वा सूक्ष्म निगोद जीव उ-पजैं है। तहां पहले समय अनंतानंत उपजै हैं। बहुरि दूसरे समय तिनतैं असंख्यात गुणा घाटि उपजै हैं। ऐसैं ही आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल पर्यंत समय समय प्रति निरंतर असंख्यात गुणा घाटि क्रमकरि जीव उपजै हैं तातैं परैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण कालका अंतराल हो है तहां कोऊ जीव न उपजै है। वहां पीछै बहुरि जघन्य एक समय उत्कृष्ट आवलीका असं-ख्यातवां भाग प्रमाण काल पर्यंत निरंतर असंख्यात गुणा घाटि क्रमकरि तिस निगोद शरीरविषै जीव उ-पजै हैं। ऐसैं अंतर सहित वा निरंतर निगोद शरीरविषै जीव उपजै हैं सो यावत् प्रथम समय विषै उपज्या साधारण जीवका जघन्य निर्वृति अपर्याप्त अवस्थाका काल अवशेष रहै तावत् ऐसैं ही उपजना होइ बहुरि

पीछै तिनि प्रथमादि समयनिविषै उपजे सर्व साधारण जीव तिनिकै आहार शरीर इंद्रिय सासोस्वास पर्याप्तिनिकी संपूर्णता अपने अपने योग्य कालविषै होइ है ॥ १९३ ॥

खंधा असंखलोगा अंडरआवासपुलविदेहावि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥ १९४ ॥

स्कंधा असंख्यलोकाः अंडरावासपुलविदेहा अपि ।
अधस्तनयोनिका असंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥ १९४ ॥

जी० प्र०—बादरनिगोदजीवशरीरसंख्यानयनार्थं उदाहरणपूर्वकमिदं गाथाद्वयेनोच्यते (आह) तद्यथा-स्कंधाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवशरीराणि, असंख्यातलोकाः स्वयोग्यासंख्यातगुणितलोकप्रदेशमात्रा इत्यर्थः । तत्र एकैकस्मिन् स्कंधे लोकाकाशप्रदेशेषु जगच्छ्रेणिघनप्रमितेषु अनंतानंतपुद्गलानामवगाहपरिणामवत्, एकनिगोदजीवकार्मणशरीरे अनंतानंतनिगोदजीवकार्मणशरीराणामवगाहनवद्वा असंख्यातलोकमात्रा अंडराः प्रत्येकजीवशरीरविशेषाः संति । तथैव एकैकस्मिन्नंडरे असंख्यातलोकमात्रा आवासास्तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरभेदाः संति । एकैकस्मिन्नावासे असंख्यातलोकमात्राः पुलवयः तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरविशेषाः संति । एकैकस्मिन् पुलवौ असंख्यातलोकमात्राणि बादरनिगोदजीवशरीराणि संति । एवमंडरादीनि उत्तरोत्तराण्यधस्तनस्कंधादियोनिकानि तत्र जातानि भवंति । यद्येकैकस्मिन् स्कंधे असंख्यातलोकमात्रा अंडराः संति तदा असंख्यातलोकमात्रस्कंधानां कति अंडराः स्युः ? इति त्रैराशिकेन-प्र स्कं १, फ अं ≡ a । इ स्कं ≡ a । लब्धांडराः असंख्यातलोकगुणितासंख्यातलोकमात्रा भवति एवमावासादिषु प्रत्येकं त्रैराशिकक्रमेण लब्धानामसंख्यातलोकगुणिताकाराणां विन्यासोऽयं—स्कंधाः ≡ a । अंडराः ≡ a ≡ a । आवासाः ≡ a ≡ a ≡ a । पुलवयः ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a । बादरनिगोदशरीराणि ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a ॥ १९४ ॥

म० प्र०—बादरनिगोदजीवानां शरीरसंख्यानयनार्थमुदाहरणपूर्वकमिदमुच्यते स्कंधाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवशरीराण्यसंख्यलोकाः स्वयोग्यासंख्यातगुणितलोकप्रदेशमात्राः संति । ननु लोकाकाशप्रदेशाः जगच्छ्रेणिघनमात्राः तेषु ततोऽसंख्येयगुणाः प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवशरीरस्वभावस्कंधाः कथमवगाहते ? इति चेत्तन्न अवगाहनसामर्थ्यात्तदुत्पत्तेः, एकस्मिन् प्रत्येकशरीरे असंख्यातलोकमात्रप्रत्येकशरीराणामवगाहपरिणामस्य परमागमे प्रतिपादितत्वात् । अनंतानंतपुद्गलपरमाणूनामसंख्यातेषु लोकाकाशप्रदेशेष्ववगाहपरिणामवत् । एकनिगोदजीवकार्मणशरीरे अनंतानंतनिगोदजीवकार्मणशरीराणामवगाहपरिणामवद्वा । तत्र एकैकस्मिन्

स्कधे असंख्यातलोकमात्रा अंडरा प्रत्येकजीवशरीरविशेषा संति । एकैकस्मिन्नंडरे असंख्यातलोकमात्राः आवासा, तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरभेदा संति । एकैकस्मिन्नावासे असंख्यातलोकमात्राः पुलवयः तेऽपि प्रत्येकजीवशरीरविशेषा संति । एकैकस्मिन् पुलवौ असंख्यातलोकमात्राणि वादरनिगोदजीवशरीराणि संति इत्यंडरादीन्युत्तरोत्तराणि अधस्तनाधस्तनस्कंधादियोनिकानि तत्र जातानि संतीति । एकस्मिन् स्कंधे प्र १ यद्यसंख्यातलोकमात्रा अंडरा जायते । फ $\equiv a$ । तदा असंख्यातलोकमात्रस्कंधेषु कियतोऽडरा ? इ $\equiv a$ इति त्रैराशिकेन लब्धा. अंडराः असंख्यातलोकमात्रस्कंधेभ्यः असंख्यातलोकगुणिता भवति । एवमावासादिष्वपि प्रत्येकं त्रैराशिकक्रमेण लब्धः असंख्यातलोकमात्रगुणकारः । तन्न्यासोयं स्कंधाः $\equiv a$ अंडराः $\equiv a \equiv a$ आवासाः $\equiv a \equiv a \equiv a$ पुलवय $\equiv a \equiv a \equiv a \equiv a$ वादरनिगोदशरीराणि $\equiv a \equiv a \equiv a \equiv a \equiv a$ ॥ १९४ ॥

सं० च०—वादरनिगोद जीवनिके शरीरकी संख्या जाननेनिमित्त उदाहरणपूर्वक यहु कथन करिए है- इस लोकाकाशविषैं स्कंध यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण हैं । जे प्रतिष्ठित प्रत्येक जीवनिके शरीर तिनिकौं स्कधं कहिये हैं । सो यहु यथा योग्य असंख्यातकरि लोकके प्रदेश गुणैं जो प्रमाण होइ तितने प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर इस लोकविषै जानने । बहुरि एक एक स्कंधविषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर हैं । इहां प्रश्न—जो एक स्कंधविषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर कैसैं संभवै ? ताका समाधान—यहु अवगाहनाकी समर्थता है जैसैं जगत श्रेणीका घन प्रमाण लोकके प्रदेशनिविषैं अनंतानंत पुद्गल परमाणू पाइए जैसैं जहां एक निगोद जीवका कार्माण स्कंध है तहां ही अनंतानंत जीवनिके कर्माण शरीर पाइये है तैसैं ही एक एक स्कधं विषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर हैं ते प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरके अवयवरूप विशेष हैं जैसैं मनुष्य शरीरविषैं हस्तादिक हो हैं तैसै स्कंधविषै अंडर जानने । बहुरि एक एक अंडरविषै असंख्यात लोक प्रमाण आवास पाइए है ते आवास भी प्रतिष्ठित प्रत्येकके शरीरके अवयव रूप विशेष ही जानने । जैसैं हस्तविषै अंगुरी आदि हो हैं । बहुरि एक एक आवासविषै असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी हैं ते पणि प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरके अवयव रूप विशेष ही जानने । जैसैं एक अंगुलीविषैं रेखा आदि हो हैं । बहुरि एक एक पुलवीविषै असंख्यातलोक प्रमाण वादरनिगोदके शरीर जानने । ऐसैं ए अंडरादिक अधस्तन योनि कहे । इनिविषै अधस्तन जो पीछै कह्या भेद ताकी संख्याकी उत्पत्तिकौं कारण ऊपरिका भेद जानना । ऐसैं तहां एक स्कंधविषै असंख्यातलोक प्रमाण

अंडर हैं तौ असंख्यातलोक प्रमाण स्कंधनविषैं केते अंडर हैं ? ऐसैं त्रैराशिक करि लब्धराशी असंख्यात लोक गुणे असंख्यात लोक प्रमाण अंडर जानने। बहुरि ऐसैं ही आवासादिविषैं त्रैराशिक कीएं तिनतैं असंख्यातलोक गुणे आवास जानने। बहुरि तिनतैं असंख्यात लोक गुणे पुलवी जानने। बहुरि तिनतैं असंख्यात लोक गुणे वादरनिगोद शरीर जानने। ते सर्वनिगोदशरीर पांच जायगा असंख्यात लोक माडि परस्पर गुणैं जेता प्रमाण होइ तितने जानने॥ १९४॥

जंबूदीवं भरहो कोसलसागेदतग्घराइं वा।
खंधंडरआवासापुलविसरीराणि दिट्ठंता॥ १९५॥

जंबूद्वीपो भरतः कोशलसाकेततद्गृहाणि वा।
स्कंधांडरावासाः पुलविशरीराणि दृष्टांताः॥ १९५॥

जी० प्र०——स्कंधानां दृष्टांता. जंबूद्वीपादयः। अंडराणां भरतादिक्षेत्राणि। आवासानां कोशलादिदेशाः। पुलवीनां साकेतादिनगराणि। बादरनिगोदजीवशरीराणां साकेतादिनगरगृहाणि। वा शब्द. इवार्थः। उक्तदृष्टांतादन्येऽपि दृष्टांता नेतव्याः॥ १९५॥

म० प्र०——स्कंधाना जंबूद्वीपादयो दृष्टाताः, अडराणा भरतादिक्षेत्राणि, आवासाना कोशलादिदेशाः, पुलवीना साकेतादिनगराणि। वादरनिगोदशरीराणा तद्गृहाः तस्य नगरस्य गृहाः तद्गृहा दृष्टाताः। वा शब्द इवार्थे। उक्तदृष्टातवत् अन्येऽपि दृष्टाना नेतव्या॥ १९५॥

सं० च०——स्कंधनिका दृष्टांत जंबूद्वीपादिक जानने। जैसैं मध्यलोकविषैं जंबूद्वीपादिक द्वीप हैं तैसैं लोकविषैं स्कंध हैं। बहुरि अंडरनिका दृष्टांत भरतादि क्षेत्र जानने। जैसैं एक जंबूद्वीपविषैं भरतक्षेत्र आदि क्षेत्र पाइए तैसैं स्कंधविषैं अंडर जानने। बहुरि आवासनिका दृष्टांत कोशल आदि देश जानने जैसैं भरतक्षेत्रविषैं कोशल देश आदि अनेक देश पाइए तैसैं अंडरविषै आवास जानने। बहुरि पुलवीनिका दृष्टांत अयोध्यादि नगर जानने। जैसैं एक कोशलदेशविषैं अयोध्या नगर आदि अनेक नगर पाइए तैसैं आवासविषैं पुलवी

जानने। बहुरि शरीरनिका दृष्टांत अयोध्याके गृहादिक जानने जैसैं अयोध्याविषैं मंदरादिक पाइए तैसे पुलवी विषै बादर निगोद शरीर जानने। बहुरि वा शब्दकरि यहु दृष्टांत दीया। ऐसैं ही और कोऊ उचित दृष्टांत जानने॥ १९५॥

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण॥ १९६॥

एकनिगोदशरीरे जीवा द्रव्यप्रमाणतो दृष्टाः।
सिद्धैरनंतगुणाः सर्वेण व्यतीतकालेन॥ १९६॥

जी० प्र०—एकस्मिन् निगोदशरीरे वर्तमाना जीवा द्रव्यप्रमाणतः द्रव्याश्रयप्रमाणसंख्यया अनंतानंताः सर्वजीवराश्यनंतबहुभागमात्र-संसारिजीवराश्यसंख्येयभागप्रमिताः सर्वदा विद्यमानाः ते अक्षयानंता इति परमागमे भण्यते। ते च सर्वजीवराश्यनंतैकभागमात्रेभ्योऽनादि-कालसिद्धजीवेभ्योऽनंतगुणाः। तथैव सर्वातीतकालतोऽप्यनंतगुणाः। अनेन कालमाश्रित्यैकशरीरनिगोदजीवसंख्या कथिता। क्षेत्रभावावाश्रि-त्य तत्संख्या आगमानुसारेण योज्यते। सर्वाकाशप्रदेशेभ्यः केवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदेभ्यश्चानंतगुणहीनाः, तथा लोकाकाशप्रदेशेभ्यः सर्वा-वधिज्ञानविषयभावेभ्यश्चानंतगुणिताः संति। तत्संख्यायाः परमागमे जिनदृष्टत्वप्रसिद्धेर्विरोधो नास्ति। ननु अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरे अष्टो-त्तरषट्शतजीवेषु कर्मक्षयं कृत्वा सिद्धेषु सत्सु सिद्धराशेर्वृद्धिदर्शनात् संसारिजीवराशेश्च हानिदर्शनात् कथं सर्वदा सिद्धेभ्योऽनंतगुणत्वं एकशरीर-निगोदजीवानां सर्वजीवराश्यनंतगुणकालसमयसमूहस्य तद्योग्यानंतभागे गते सति संसारिजीवराशिक्षयस्य सिद्धराशिबहुत्वस्य च सुघटत्वात्? इति चेत्तन्न, केवलज्ञानदृष्ट्या केवलिभिः, श्रुतज्ञानदृष्ट्या श्रुतकेवलिभिश्च सदा दृष्टस्य भव्यसंसारिजीवराश्यक्षयस्यातिसूक्ष्मत्वात् तर्कविषयत्वाभा-वात्। प्रत्यक्षागमबाधितस्य च तर्कस्याप्रमाणत्वात्। अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वात् यद्यद्द्रव्यं तत्तदनुष्णं यथा जलं। प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रि-तत्वात् यो यः पुरुषाश्रितः स सोऽसुखप्रदो यथाऽधर्मः इत्यादितर्कवत्। तर्हि तर्कबाधितस्य आगमस्य कथं प्रामाण्यं? इति चेत्तन्न प्रत्यक्ष-प्रमाणतर्कांतरसंभावितस्यागमस्याविसंवादित्वेन प्रामाण्यसुनिश्चयात्। तद्द्वयविरोधिनस्तव तर्कस्याप्रमाणत्वाच्च। तर्हि किमिदं तर्कांतरमिति चे-दुच्यते सर्वो भव्यसंसारिराशिरनंतेनापि कालेन न क्षीयते अक्षयानंतत्वात् यो योऽक्षयानंतः स सोऽनंतेनापि कालेन न क्षीयते यथा इयत्तया परिच्छिन्नः कालसमयौघः, सर्वद्रव्याणां पर्यायोऽविभागप्रतिच्छेदसमूहो वा इत्यनुमानांगस्य तर्कस्य प्रामाण्यसुनिश्चयात्। तर्हि हेतोः साध्य-

समत्वमिति चेन्न भव्यराश्यक्षयानंतत्वस्याप्तागमसिद्धस्य साध्यसमत्वाभावात् । किं बहुना सर्वतत्त्वानां प्रवक्तरि पुरुषे आप्ते सिद्धे सति तद्वाक्यस्यागमस्य सूक्ष्मांतरितदूरार्थेषु प्रामाण्यसुप्रसिद्धेः । तदागमपदार्थेषु निश्शक मम चित्तं किन्तु वावदूकतया । आप्तसिद्धिस्तु विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः इत्यादिवेदवाक्येन । प्रणम्य शंभुमित्यादिनैयायिकवाक्येन । बुद्धो भवेयमित्यादिबौद्धवाक्येन मोक्षमार्गस्य नेतारमित्यार्हतवाक्येन अपरैस्तत्तद्दर्शनदेवतास्तवनरूपवाक्यैश्च सामान्यतोंगीकृता । विशेषेण सर्वज्ञवीतरागस्याद्वाद्याप्तस्यैव युक्त्यापि साधनात् । विस्तरतः स्याद्वादतर्कशास्त्रेषु तत्सिद्धिर्ज्ञातव्या इत्येक सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वात् आप्तस्य तदागमस्य च सिद्धत्वात् तत्प्रणीतं मोक्षतत्त्वं बंधतत्त्वं वावश्यमभ्युपगमनीयमिति सिद्ध सिद्धेभ्योऽनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवानां ॥ १९६ ॥

म० प्र०—एकस्मिन्निगोदशरीरे साधारणशरीरे वर्तमाना जीवा. द्रव्यप्रमाणतः द्रव्याश्रयसंख्ययानंतानंताः सर्वजीवराश्यनंतबहुभागमात्रसंसारजीवराश्यसंख्येयभागप्रमिता. सर्वदा संति ते चाक्षयानंता इत्युच्यते । सर्वजीवराश्यनंतैकभागमात्रेभ्यः अनादिकालसिद्धजीवेभ्योऽनंतगुणा । तथा सर्वस्मादतीतकालादपि अनंतगुणा । अनेन कालमाश्रित्य एकशरीरनिगोदजीवसंख्या कथिता क्षेत्रभावावाश्रित्य तत्संख्या आगमानुसारेण योजनीया । सर्वाकाशप्रदेशेभ्यः केवलज्ञानाविभागप्रतिच्छेदेभ्यश्चानंतगुणहीनतया लोकाकाशप्रदेशेभ्यः सर्वावधिज्ञानविषयभावेभ्यश्चानंतगुणतया जिनदृष्टभावायाम्तत्संख्यया परमागमे प्रसिद्धत्वात् । ननु अष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरे अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु कर्मक्षयं कृत्वा सिद्धेषु सत्सु सिद्धिराशेर्वृद्धिदर्शनात् संसारिजीवराशेश्च हानिदर्शनात् कथं सर्वदा सिद्धेभ्योऽनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवानां सर्वजीवराश्यनंतगुणकालसमयसमूहस्य तद्योग्यानंतभागे गते सति संसारिजीवराशिक्षयस्य सिद्धराशिबहुत्वस्य च सुघटत्वादिति चेत्तन्न, केवलज्ञानचक्षुषा केवलिभि, श्रुतज्ञानचक्षुषा श्रुतकेवलिभिश्च सदा दृष्टस्य भव्यसंसारिजीवाक्षयस्य अति सूक्ष्मतया तर्कागोचरत्वात् । प्रत्यक्षागमबाधितस्य तर्कस्याप्रमाणत्वात् । अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वात् । यद्यद्द्रव्यं तत्तदनुष्णं यथा जलं । प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वात् योयः पुरुषाश्रितः स सः, असुखप्रदः यथा अधर्म इत्यादितर्कवत् । तर्कबाधितस्य आगमस्य कथं प्रामाण्यं ? इति चेत्तन्न प्रत्यक्षप्रमाणतर्कांतरसंभावितस्यागमस्य अविसंवादित्वेन प्रामाण्यसुनिश्चयात् तद्द्वयविरोधिनस्तव तर्कस्याप्रमाणत्वाच्च । तर्हि किमिदं तर्कांतरं ? इति चेदुच्यते सर्वो भव्यसंसारराशिरनंतेनापि कालेन न क्षीयते अक्षयानंतत्वात् । योयः अक्षयानंतः स सः, अनंतेनापि कालेन न क्षीयते यथा इयत्तया परिच्छिन्नः कालसमयौघः सर्वद्रव्याणां पर्यायाविभागप्रतिच्छेदसमूहो वा इति तर्कस्यानुमानप्रमाणागस्य प्रामाण्यसुनिश्चयात् । हेतोः साध्यसमत्वं ? इति चेन्न भव्यराशेरक्षयानंतत्वस्य आप्तागमसिद्धस्य साध्यसमत्वाभावात् । किं बहुना ? सर्वतत्त्वानां प्रवक्तरि पुरुषे आप्ते सिद्धे सति तद्वाक्यस्यागमस्य सूक्ष्मांतरितदूरार्थेषु प्रामाण्यसुप्रसिद्धेः । तदागमपदार्थेषु निश्शंकमस्माकं चित्तमित्यलं वावदूकतया । आप्तसिद्धिश्च विश्वतश्चक्षुरिति विश्वतोमुखं, इत्यादि वेदवाक्येन, प्रणम्य शंभुमित्यादिनैयायिकवाक्येन, बुद्धो भवेयमित्यादि बौद्धवाक्येन, मोक्षमार्गस्य नेतारमित्याद्यार्हतवाक्येन परैश्च तत्तद्दर्शनदेवतास्तवनवाक्यैः सामान्यतोऽभ्युपगता । विशेषतस्तु सर्वज्ञवीतरागस्याप्तस्य स्याद्वादिन

१ प्रथमे समये ३२ । द्वितीये समये ४८ । तृतीये समये ६० । चतुर्थे समये ७२ । पञ्चमे समये ८४ । षष्ठे समये ९६ । सप्तमे समये १०८ । अष्टमे समये १०८ । एवं सकलितजीवाः ६०८ ।

एव युक्तितः साधनात् । विस्तरतः स्याद्वादतर्कशास्त्रेषु तत्सिद्धिर्ज्ञातव्या । तदेवं सुनिश्चितासंभवद्बाधकप्रमाणत्वेन आप्तस्य तदागमस्य च सिद्धत्वात्तत्प्रणीतं मोक्षत्वं बवंतत्त्व चावश्यभ्युपगमनीय इति ।सिद्ध सिद्धेभ्योऽनंतगुणत्वमेकशरीरनिगोदजीवाना ॥ १९६ ॥

सं० च०---एक निगोद शरीरविषै वर्तमान निगोद जीव ते द्रव्यप्रमाण जो द्रव्य अपेक्षा संख्या तातैं अनंतानंत है सर्व जीव राशिकौं अनंतका भाग दीजिए तामैं एक भाग प्रमाण सिद्ध हें सो अनादिकालतै जेते सिद्ध भए तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं। बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण संसारी हैं तिनके असंख्यातवें भाग प्रमाण एक निगोद शरीरविषै जीव विद्यमान हैं ते अक्षयानंत प्रमाण हैं। ऐसैं परमागम विषै काहिए है । बहुरि तैसै ही अतीतकालके समयानितैं अनंत गुणै हैं। इस करि काल अपेक्षा एक शरीर विषै निगोदजीवनिकी संख्या कही। वहुरि ऐसैं ही क्षेत्र भाव अपेक्षा तिनकी संख्या आगम अनुसारि जोडिए। तहां क्षेत्र प्रमाणतै सर्व अकाशके प्रदेशनिके अनंतवै भाग वा लोकाकाशके प्रदेशनितै अनंत गुणैं जानने। भाव प्रमाणतै केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिके अनंतवै भाग अर सर्वावधि ज्ञान गोचर जे भाव तिनितैं अनंत गुणे जानने । ऐसैं एक निगोद शरीर विषै जीवनिका प्रमाण कह्या। इहां प्रश्न—जो छह महीना अर आठ समयके मांही छसै आठ जीव कर्म नाशकरि सिद्ध होंइ सो ऐसैं सिद्ध वधते जांहि संसारी घटते जांहि तातैं तुम सदा काल सिद्धनितैं अनंत गुणे एक निगोद शरीरविषै जीव कैसे कहो हो ? सर्व जीव राशितैं अनंत गुणां अनागत कालका समय समूह है । सो यथायोग्य अनंतवां भाग प्रमाण काल गए संसारी राशिका नाश अर सिद्ध राशिका बहुत्त्व होइ तातैं सर्वदा काल सिद्धनितैं निगोद शरीरविषै निगोद जीवानिका प्रमाण अनंत गुणा संभवै नांही ? ताका समाधान कहै हैं—रे तार्किक भव्य। संसारी जीवानिका परिमाण अक्षयानंत है सो केवली केवल ज्ञान दृष्टिकरि अर श्रुतकेवली श्रुतज्ञान दृष्टिकरि ऐसै ही देखा है। सो यह सूक्ष्मता तर्कगोचर नांही जातै प्रत्यक्ष प्रमाण अर आगम प्रमाण करि विरुद्ध होइ सो तर्क अप्रमाण है। जैसे किसीने कह्या अग्नि उष्ण नाहीं जातै अग्नि है सो पदार्थ है जो जो पदार्थ है सो सो उष्ण नाहीं जैसै जल उष्ण नाहीं है ऐसी तर्क करी परि यहु तर्क

प्रत्यक्ष प्रमाणकरि विरुद्ध है अग्नि प्रत्यक्ष उष्ण है तातैं यहु तर्क प्रमाण नाहीं । बहुरि किसीने कह्या धर्म है परलोकविषैं दुःखदायक है जातैं धर्म है सो पुरुषाश्रित है जो जो पुरुषाश्रित हैं सो सो परलोकविषैं दुःख दायक है जैसे अधर्म है ऐसी तर्क करी परि यहु तर्क आगम प्रमाण करि खंडित है। आगमविषैं धर्म परलोक विषैं सुख दायक कह्या है तातैं प्रमाण नाहीं । ऐसैं ही जे केवली प्रत्यक्ष अर आगमोक्त कथन तातैं विरुद्ध तेरी तर्क प्रमाण नाहीं। इहां बहुरि तर्क करी–जो तर्क करि विरोधी आगम कैसैं प्रमाण होइ? ताका समाधान–जो प्रत्यक्ष प्रमाण अर अन्य तर्क करि संभवता जो आगम ताकैं अविरुद्धपणांकरि प्रमाणपना हो है । तौ सो अन्य तर्क कहा ? सो कहिए है–सर्व भव्य संसारी राशि अनंतकालकरि भी क्षयकौं प्राप्त न होइ जातैं यहु राशि अक्षयानंत है जो जो अक्षयानंत है सो सो अनंतकालकरि भी क्षयकौं प्राप्त न होइ जैसैं तीन कालके समयनिका परिमाण कह्या कि इतनां है परि कबहूं अंत नाहीं वा सर्वद्रव्यनिका अगुरुलघु अविभाग प्रतिच्छेदके समूहका परिमाण कह्या परि अंत नाहीं तैसैं संसारी जीवनिका भी अक्षयानंत प्रमाण जानना । ऐसा यहु अनुमानतैं आया जो तर्क सो प्रमाण है । बहुरि प्रश्न-जो अनंतकालकरि भी क्षय न होना साध्य सो अक्षयानंतके हेतुतैं दृढ कीया तातैं इहां हेतुकै साध्यसमत्व भया ? ताका समाधान–भव्यराशिका अक्षयानंतपना आप्तके आगमकरि सिद्ध है तातै साध्यसमत्वका अभाव है। बहुत कहने करि कहा ? सर्व तत्त्वनिका वक्ता पुरुष जो है आप्त ताकी सिद्धि होतै तिस आप्तके वचनरूप जो आगम ताकी सूक्ष्म अंतरित दूरि पदार्थनिविषै प्रमाणताकी सिद्धि हो है तातैं तिस आगमोक्त पदार्थनिविषै मेरा चित्त निस्संदेह रूप है। बहुत वादी होनेकरि कहा साध्य है? बहुरि आप्तकी सिद्धि कैसै सो कहिए है 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' ऐसा वेदका वचन करि, बहुरि 'प्रणम्य शंभुं' इत्यादि नैयायिक वचनकरि, बहुरि 'बुद्धो भवेयं' इत्यादि बौद्ध वचनकरि, बहुरि, मोक्षमार्गस्य नेतारं, इत्यादि जैन वचन करि बहुरि अन्य अपना अपना मतका देवताका स्तवन रूप वचननिकरि सामान्यपनैं सर्व मतनिविषै आप्त मानै है। बहुरि विशेषपनै सर्वज्ञ वीतराग देव स्याद्वादी ही आप्त है ताका युक्तिकरि साधन कीया है सो बिस्तारतैं स्या-

द्वाद रूप जैन न्यायशास्त्रविषै आप्तकी सिद्धि जाननी। ऐसें ही निश्चयरूप जहां खंडनेवाला प्रमाण न संभवै है तातैं आप्त अर आप्तकरि प्ररूपित आगमकी सिद्धि हो है। तातैं आप्त आगमकरि प्ररूपित ज्यो मोक्षतत्त्व अर बंधतत्त्व सो अवश्य प्रमाण करना ऐसें आगमप्रमाणतैं एक शरीरविषै निगोदजीवनिकैं सिद्धराशितैं अनंत गुणापनो संभवे है। बहुरि अक्षयानंतपना भी सर्व मतवाले मानै है। कोऊ ईश्वरविषै मानै है। कोऊ स्वभावविषै मानैं है। तातैं कह्या हूवा कथन प्रमाण है ॥ १९६ ॥

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो ।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ॥ १९७ ॥

संति अनंता जीवा यैर्न प्राप्तस्त्रसानां परिणामः ।
भावकलंकसुप्रचुरा निगोदवासं न मुंचंति ॥ १९७ ॥

जी० प्र०—नित्यनिगोदलक्षणमनेन ज्ञातव्यं। तत्कथं? यैर्निगोदजीवैः त्रसानां द्वींद्रियादीनां परिणामः-पर्यायः, कदाचिदपि-प्रायेण न प्राप्तः ते जीवा अनंतानंता अनादिसंसारनिगोदभवमेवानुभवंतो नित्यनिगोदसंज्ञाः सर्वदा संति। किं विशिष्टाः? भावकलंकसुप्रचुराः-भावस्य निगोदपर्यायस्य कलंकेन तद्योग्यकषायोदयाविर्भावितदुर्लेश्यालक्षणसंक्लेशेन प्रचुराः अत्यंतं संघटिताः। एवंविधनित्यनिगोदजीवाः निगोदवासं निगोदभवस्थितिं कदाचिदपि न मुंचंति तेन कारणेन निगोदभवस्य आद्यंतरहितत्वादनंतानंतजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं जातं। नित्यविशेषणेन पुनरनित्यनिगोदाः चतुर्गतिनिगोदरूपसादिसांतनिगोदभवयुता केचन जीवाः संतीति सूचितं ज्ञातव्यं। णिच्चचदुग्गदिणिगोदेत्यादौ परमागमे निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात्। एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरे चतुर्गतिजीवराशितो निर्गतेषु अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु मुक्तिंगतेषु तावंतो जीवा नित्यनिगोदभवं त्यक्त्वा चतुर्गतिभवं प्राप्नुवंतीत्ययमर्थः प्रतिपादितो बोद्धव्यः ॥ अथ त्रसकायं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—नित्यनिगोदलक्षणमनेनोच्यते तद्यथा यैर्निगोदजीवैस्त्रसानां द्वींद्रियादीनां परिणामः पर्यायः, कदाचिदपि न प्राप्त ते जीवा अनंतानंताः। अनादौ संसारे निगोदभवमेवानुभवंतो नित्यनिगोदसंज्ञाः सर्वदा संति। किंविशिष्टाः? भावकलकसुप्रचुराः—भावस्य निगोदपर्यायस्य कलंकः—तद्योग्यकषायो

दयाविर्भावितदुर्लेश्यालक्षणः संक्लेशः, तेन सुप्रचुराः-अत्यंतसंघटिताः एवंविधा नित्यनिगोदजीवाः, निगोदवासं--निगादभवस्थितिं कदाचिदपि न मुंचंति अत एव निगोदभवस्य आद्यंतरहितत्वेनानंतानंतजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं भवति । नित्यविशेषणेन पुनरनित्यनिगोदाश्चतुर्गतिनिगोदाः सादिसांतरनिगोदभवाः केचिज्जीवाः संतीति सूचितं ज्ञातव्यं । णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा इत्यादौ परमागमे निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात् । एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरे चतुर्गतिजीवराशेर्निर्गत्य अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु मुक्तिंगतेषु तावंतो जीवा नित्यनिगोदभवं विमुच्य चतुर्गतिभवं गच्छंतीत्ययमर्थः प्रतिपादितो ज्ञातव्यः ॥ १९७ ॥ अथ त्रसकायप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह–

सं० च–इस गाथाविषैं नित्यनिगोदका लक्षण कह्या है अनादि संसारविषैं निगोद पर्यायहीकौं भोगवते अनंते जीव नित्य निगोद नाम धारक सदाकाल हैं। ते कैसे है? जिनिकरि त्रस जे वेइंद्रियादिक तिनिका परिणाम जो पर्याय सो कबहूं न पाया। बहुरि भाव जो निगोद पर्याय तिहिनै कारणभूत जो कलंक कहिये कषायनिका उदय करि प्रगट भया अशुभ लेश्या रूप तीहिंकरि प्रचुरा कहिये अत्यंत संबंधरूप हैं। ऐसैं ए नित्य निगोद जीव कदाचित् निगोद वासकौं न छोडै हैं याहीतैं निगोद पर्यायकैं आदि अंत रहितपनां जानि अनंतानंत जीवनिकैं नित्य निगोदपना कह्या। नित्य विशेषणकरि अनित्य निगोदिया चतुर्गति निगोदरूप आदि अंत निगोद पर्याय संयुक्त केई जीव हैं ऐसा सूचै है जातैं णिच्चचदुग्गदिणिगोद इत्यादिक परमागमविषैं निगोद जीव दोय प्रकार कहे हैं। भावार्थ– जे अनादितैं निगोद पर्यायहीकौं धरै हैं ते नित्यनिगोद जीव हैं। बहुरि वीचि अन्य पर्याय पाय बहुरि निगोद पर्याय धरैं ते इतर निगोद जीव जानना। सो वे आदि अंत लीये हैं। बहुरि जिनिके प्रचुर भाव कलंक है ते निगोदवासकौं न छाडैं सो इहां प्रचुर शब्द है सो एकोदेशका अभावरूप है सकल अर्थका वाचक है तातैं याकरि यहु जान्या जिनकै भाव कलंक थोरा हो है ते जीव कदाचित् नित्य निगोदतैं निकसि चतुर्गतिमें आवै हैं। सो छह महीना अर आठ समयमैं छसै आठ जीव नित्यनिगोदमैंसौं निकसै हैं सोही छह महीना आठ समयमें छसै आठ जीव संसारसौं निकसिकरि मुक्ति पहुंचै हैं ॥ १९७ ॥ आगे त्रस कायकी प्ररूपणा दोय गाथाकरि कहै हैं–

बिहि तिहि चदुहिं पंचहि सहिया जे इंदिएहिं लोयह्मि ।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोवदेसेण ॥ १९८ ॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पंचभिः सहिता ये इंद्रियैर्लोके ।
ते त्रसकाया जीवा ज्ञेया वीरोपदेशेन ॥ १९८ ॥

जी० प्र०—स्पर्शनरसनाभ्यां, द्वाभ्यां ताभ्यां घ्राणेन त्रिभिः च, तैश्चक्षुषेति च चतुर्भिः, तैः श्रोत्रेणेति पंचभिश्चेंद्रियैः सहिता ये जीवा लोके संति ते जीवास्त्रसकाया इति वीरवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवस्य उपदेशेन अविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागतसंप्रदायेन अस्माभिः श्रुतगृहीतधारितार्थैः प्रतिपादिता ज्ञेयाः ॥ १९८ ॥

मं० प्र०—द्वाभ्या स्पर्शनरसनाभ्या, त्रिभिः स्पर्शनरसनघ्राणैः, चतुर्भिस्तैश्चक्षुरंतैः, पंचाभिश्च तैः श्रोत्रांतैरिंद्रियैः सहिताः ये जीवा लोके सति ते त्रसकाया इति वीरस्य श्रीवर्धमानतीर्थकरस्य उपदेशेन अविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागतसंप्रदायेन अस्माभिः श्रुतगृहीतधारितार्थैः प्रतिपादिताः ज्ञेयाः ॥१९८॥

सं० चं०—दोय इंद्री स्पर्शन रसन तिनिकरि संयुक्त द्वींद्रिय बहुरि तीन इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण तिनिकरि संयुक्त त्रींद्रिय, बहुरि च्यारि इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु इनिकरि संयुक्त चतुरिंद्रिय बहुरि पांच इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इनिकरि संयुक्त पंचेंद्रिय ए कहे जे जीव ते त्रसकाय जानने। ऐसैं श्रीवर्धमान तीर्थंकर परमदेवके उपदेशतैं परंपराय क्रमकरि चल्या आया संप्रदायकरि शास्त्रका अर्थधरि हमहूं करि कहे हैं ते जानने ॥ १९८ ॥

उववादमारणंतियपरिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसणालिवाहिरह्मि य णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥१९९॥

उपपादमारणांतिकपरिणतत्रसमुज्झित्वा शेषत्रसाः ।
त्रसनालीबाह्ये च न संतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ १९९ ॥

जी० प्र०—विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्तिः उपपादः । मरणं-प्राणत्यागः अंतः अवसानं यस्य स मरणांतः कालः वर्तमानभवस्थितिचरमांतर्मुहूर्तः । मरणांते भवः मारणांतिकः समुद्घातः उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्यंतजीवप्रदेशप्रसर्पणलक्षणः । उपपादेन परिणतं मारणांतिकसमुद्घातपरिणत चशब्दात् केवलिसमुद्घातेन परिणतं च त्रसं उज्झित्वा--वर्जयित्वा शेषाः स्वस्थानादिपदपरिणताः सर्वे त्रसजीवाः त्रसनाडिबाह्ये लोकक्षेत्रे न संतीति जिनैः अर्हदादिभिर्निर्दिष्टं-कथितं । ततः कारणात् त्रसानां नालिरिव नालिस्त्रसनालिः सा च एकरज्जुविष्कमायामा चतुर्दशरज्जूत्सेधा लोकमध्यस्थिता अन्वर्थसंज्ञया कथिता । कश्चिज्जीवः त्रसनालिबाह्ये वातवलये स्थितः त्रसे बद्धायुष्कः प्राक्तन वायुकायिकभवं त्यक्त्वा उत्तरं त्रसकायं प्राप्य अग्रतनविग्रहगतिप्रथमसमये त्रसनामकर्मोदयेन त्रसो जातः इत्युपपादपरिणतत्रसस्य त्रसनालिबाह्येऽस्तित्व । कश्चित् त्रसजीवः त्रसनालिमध्ये स्थितः तनुवातवलयस्य वायुकायिके बद्धायुष्कः स्वायुरवसानांतर्मुहूर्तकाले तनुवातवलयपर्यंतं त्रसनालिबाह्ये क्षेत्रे आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणमारणांतिकसमुद्घातं करोतीति तस्य त्रसस्य त्रसनालिबाह्यक्षेत्रेऽप्यस्तित्वं । केवली कवाटाद्याकारेण त्रसनालिबाह्ये आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणसमुद्घातं करोतीति तस्य केवलिनोऽपि त्रसनालिबाह्येऽप्यस्तित्वं सिद्धमिति शास्त्रकारस्य तात्पर्यं ॥ १९९ ॥ अथ वनस्पतिवदन्येषामपि जीवानां प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागं कथयति--

म० प्र०—विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्तिः, उपपादः, मरणं प्राणत्यागः, अंतः-अवसान यस्य स मरणांतः कालः वर्तमानभवस्थितिचरमांतर्मुहूर्तः मरणांते भवः मारणांतिक समुद्घातः उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्यंतजीवप्रदेशप्रसर्पणलक्षणः, उपपादेन परिणत मारणांतिकसमुद्घातेन परिणत च त्रसजीवमुज्झित्वा वर्जयित्वा, चशब्देन सूचितं केवलसमुद्घातपरिणत च वर्जयित्वा शेषाः स्वस्थानादिपदपरिणता सर्वे त्रसजीवा त्रसनाली बाह्ये लोकक्षेत्रे न सति इति जिनैः--अर्हदादिभिः, निर्दिष्ट कथित, अत एव त्रसाना नालीव नाली एकरज्जुविष्कभायामा चतुर्दशरज्जुतुंगा लोकमध्यगता त्रसनालीत्यन्वर्थसज्ञया परमागमे प्रसिद्धा । कश्चिज्जीवः त्रसनालीबाह्ये वातवलये स्थितः त्रसे बद्धायुष्क प्राक्तन वातकायिकभव त्यक्त्वा उत्तर त्रसकायभव प्राप्य विग्रहगतौ प्रथमसमये त्रसनामकर्मोदयात् त्रसो भूत्वा वर्तत इत्युपपादपरिणतत्रसस्य त्रसनालीबाह्येऽस्तित्व । कश्चित त्रसजीव त्रसनालिमध्यस्थ, तनुवातवलये वातकायिके बद्धायुष्कः स्वायुरवसानांतर्मुहूर्ते तनुवातवलयपर्यंत त्रसनालिबाह्ये आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षण मारणांतिकसमुद्घात करोतीति तस्य त्रसस्य त्रसनालिबाह्ये अस्तित्व । केवली च कवाटाद्याकारेण त्रसनालिबाह्येप्यात्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणं समुद्घात करोतीति तस्यापि त्रसनालिबाह्ये अस्तित्वं सिद्धमिति तात्पर्यं शास्त्रकारस्य ॥ १९९ ॥ अथ वनस्पतिवदन्येषामपि जीवाना प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागं कथयति—

सं० च०---विवक्षित पर्यायका पहला समयविषै पर्यायकी प्राप्ति सो उपपाद कहिए बहुरि मरण जो प्राण त्याग अर अंत जो पर्यायका अंत जाकै होइ सो मरणांतकाल वर्तमान पर्यायके आयुका अंत अंतर्मुहूर्त मात्र जानना। तींहि मरणांतकालविषै उपज्या सो मारणांतिक समुद्घात कहिए। आगामी पर्यायके उपजनेका स्थान

पर्यंत आत्मप्रदेशनिका फैलना सो मारणांतिकसमुद्घात जानना। ऐसा उपपादरूप परिणम्या अर मारणांतिक समुद्घातरूप परिणम्या अर चकारतैं केवल समुद्घात रूप परिणम्या जो त्रस तींहि विना दश स्थाननिविषै अवशेष स्वस्थानस्वस्थान अर विहारवत्स्वस्थान अर अवशेष पांच समुद्घात रूप परिणमे सर्व ही त्रसजीव त्रसनाली वारै जो लोकक्षेत्र तींहिविषै न पाइए हैं ऐसा जिन जे अर्हंतादिक तिनिकरि कह्या है तातैं जैसे नाली होइ तैसैं त्रस रहनेका स्थान सो त्रसनाली जाननी। त्रस नाली इस लोकके मध्यभाग विषै चौदह राजू ऊंची एक राजू चौडी लंबी सार्थक नाम धारक जाननी। त्रस जीव त्रसनाली विषैं ही है। बहुरि जो जीव त्रसनालीके वाह्य वातलयविषैं तिष्ठता स्थावर था उसनै त्रसका आयु बांधा बहुरि सो पूर्वै वायुकायिक स्थावर पर्यायकौ छाडि आगला विग्रह गतिका प्रथम समयविषै त्रस नामा नामकर्मका उदय अपेक्षाकरि त्रसनालीके वाह्य त्रस हूवा तातै उपपादवाले त्रसका अस्तित्व त्रसनाली वाह्य कह्या। बहुरि कोई जीव त्रसनालीके माहि त्रस है बहुरि त्रसनाली वाहिर तनुवातवलय संबंधी वायुकायिक स्थावरका बंध किया था सो आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहै तब आत्मप्रदेशनिका फैलाव जहांका बंध किया था तिस स्थानक त्रसनालीके वाह्य तनुवातवलय पर्यंत गमन करै तातै मारणांतिक समुद्घातवाले त्रसका अस्तित्व त्रसनालीवाह्य कह्या। बहुरि केवली दंड कपाटादि आकारकरि त्रसनाली वाह्य अपने प्रदेशनिका फैलावनरूप समुद्घात करै है तातै केवल समुद्घातवाले त्रसका अस्तित्व त्रसनाली वाह्य कह्या। इनिविना और त्रसका अस्तित्व त्रसनाली वाह्य नाहीं है ऐसा अभिप्राय शास्त्रके कर्ताका जानना ॥ १९९ ॥ आगैं वनस्पतीवत् अन्य जीवनिकैं प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितपनाका भेद दिखावै हैं—

पुढवीआदिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा।

अपदिट्ठिदा णिगोदहिं पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥२००॥

पृथिव्यादिचतुर्णां केवल्याहारदेवनिरयांगानि ।
अप्रतिष्ठितानि निगोदैः प्रतिष्ठितांगा भवंति शेषाः ॥ २०० ॥

जी० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकचतुर्विधजीवांगानि केवल्याहारकदेवनारकांगानि च बादरनिगोदजीवशरीरैरप्रतिष्ठितानि अनाश्रितानीत्यर्थः । शेषाणि अप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीराणि द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्जीवशरीराणि अवशिष्टमनुष्यजीवशरीराणि च बादरनिगोदजीवशरीरैः प्रतिष्ठितानि–आश्रितानि भवंति ॥ २०० ॥ अथ स्थावरकायिकानां त्रसकायिकानां च शरीरसंस्थानमाह–

मं० प्र०—पृथिव्यादीनां चतुर्णां पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां जीवानामंगानि–शरीराणि, केवल्याहारकदेवनिरयाणां च अंगानि शरीराणि, निगोदैः–बादरनिगोदजीवशरीरैः, अप्रतिष्ठितानि–अनाश्रितानि, शेषाणि अप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीराणि, द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्जीवशरीराणि अवशिष्टमनुष्यजीवशरीराणि च बादरनिगोदशरीरैः प्रतिष्ठितानि आश्रितानि भवति ॥ २०० ॥ अथ स्थावरकायिकानां त्रसकायिकानां च शरीरसंस्थानं प्ररूपयति–

सं० च०–पृथ्वी आदि चारि प्रकार जीव, पृथ्वी १ अप २ तेज ३ वायु ४ इनिका शरीर, बहुरि केवलीका शरीर, बहुरि आहारक शरीर, बहुरि देवनिका शरीर, बहुरि नारकीनिका शरीर ए सर्व निगोद शरीरनिकरि अप्रतिष्ठित हैं आश्रित नाही। इनि विषैं निगोद शरीर न पाईए है। बहुरि अवशेष रहे जे जीव तिनिके शरीर प्रतिष्ठित जानने । इनिविषैं निगोद शरीर पाइए है। तातैं अवशेष सर्व निगोद शरीरनिकरि प्रतिष्ठित हैं आश्रित हैं। तहां सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंच अर पूर्वैं कहेतिनि बिना अवशेष मनुष्य इनि सबनिकैं शरीरविषैं निगोद पाइए हैं ॥ २००॥ आगैं स्थावरकायिक त्रसकायिक जीवनिके शरीरका आकार कहैं हैं—

मसुरंबुबिंदुसूईकलावधयसण्णिहो हवे देहो ।
पुढवीआदिचउण्हं तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

मसूरांबुविंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवेद्देहः ।
पृथिव्यादिचतुर्णां तरुत्रसकाया अनेकविधाः ॥ २०१ ॥

जी० प्र०---पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकजीवानां चतुर्णां देहः-शरीरं यथाक्रमं मसूरांबुविंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवति । पृथ्वीकायिकशरीरं मसूरेण वृत्तचणकेन सदृशं तद्वद्गोलकाकारमित्यर्थः । अप्कायशरीरं जलविंदुना सदृशं इदमपि गोलकाकारमित्यर्थः । तेजस्कायिकशरीरं सूचीकलापेन सदृशं तादृगूर्ध्ववहुमुखमित्यर्थः । वातकायिकशरीरं ध्वजेन सदृशं तादृगायतचतुरस्रमित्यर्थः । यद्यपि तच्छरीराणि उक्तसंस्थानानि तथापि तदवगाहनं घनांगुलासंख्येयभागमात्रमेवेति दृष्टिगोचरं नास्ति--इंद्रियगोचरं नास्ति। इंद्रियगोचरत्वेन प्रतीयमानं पृथिव्यादिकं तु वहुशरीरसमूह इति ग्राह्यं । तरूणां वनस्पतिकायिकानां, त्रसानां द्वींद्रियादीनां च कायाः शरीराणि अनेकविधाः अनियतसंस्थाना यथासंभवं घनांगुलासंख्येयभागादिसंख्यातगुणितघनांगुलावसानावगाहनविकल्पविशिष्टाः संतीति ज्ञातव्याः ॥ २०१ ॥ एवं कायमार्गणाकथनानंतरं कायसहितसंसारिजीवस्य दृष्टांतपूर्वकं व्यवहारमाह---

मं० प्र०---पृथिव्यादीनां चतुर्णां देहो यथाक्रम मसूरांबुविंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवति । पृथ्वीकायिकस्य शरीरं मसूरेण वृत्तचणकेन सदृशं तद्वद्गोलकाकारमित्यर्थः । अप्कायिकस्य शरीरं जलविंदुसदृशं । इदमपि गोलकाकारमित्यर्थः । तेजस्कायिकस्य शरीर सूचीकलापसदृश, तद्वदूर्ध्वबहुमुखमित्यर्थः । वातकायिकस्य शरीरं ध्वजसदृशं तद्वदायतचतुरस्रमित्यर्थः । यद्यप्येतेषा शरीराणि कथितसंस्थानानि तथापि तदवगाहनं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमेव ततो न दृष्टिगोचरः । इंद्रियगोचरतया प्रतीयमानं पृथिव्यादिकं तु बहुशरीरसमूह इति ग्राह्यं । तरूणा वनस्पतिकायिकानां त्रसकायिकाना च कायाः--शरीराणि अनेकविधाः--अनियतसंस्थानाः यथासंभवं घनांगुलासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणितघनांगुलप्रमितावगाहनाः ज्ञातव्याः ॥२०१॥ अथैव कायमार्गणां प्ररूप्य तत्कायसहितस्य संसारिणः दृष्टांतपूर्वकं व्यवहारं प्ररूपयति--

सं० च०--पृथिवीकायिक जीवनिके शरीर मसूर अन्न समान गोल आकार धरैं है । बहुरि अपकायिक जीवनिका शरीर जलकी बूंदके समान गोल आकार धरै है । बहुरि अगिनिकायिक जीवनिका शरीर सुईनिका समूहके समान लंबा अर ऊर्ध्वविषैं चौड़ा बहुमुखरूप आकार धरै है । बहुरि वातकायिक जीवनिका शरीर ध्वजा समान लंबा चौकोर आकार धरै है । ऐसैं इनिके आकार कहे तथापि इनिकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भागमात्र है तातैं जुदे जुदे दीसैं नाहीं । जो पृथ्वी आदि इंद्रियगोचर है सो घने शरीरनिका समुदाय है ऐसा जानना । बहुरि तरु जे बनसपती कायिक अर द्वींद्रियादिक त्रस कायिक इनिके शरीर अनेक

प्रकार आकार धरैं हैं नियम नाहीं। ते घनांगुलका असंख्यातवां भागतैं लगाइ संख्यात घनांगुल पर्यंत अवगाहना धरैं है ऐसैं जानना ॥ २०१ ॥ आगैं काय मार्गणाके कथनके अनंतर कायसहित संसारी जीवनिका दृष्टांतपूर्वक व्यवहार कहैं हैं—

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेहिऊण कावलियं।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावलियं ॥ २०२ ॥

यथा भारवहः पुरुषो वहति भारं गृहीत्वा कावटिकं।
एवमेव वहति जीवः कर्मभरं कायकावटिकं ॥ २०२ ॥

जी० प्र०—लोके यथा भारवाहकः पुरुषः कावटिक-कावटिभृत भारं गृहीत्वा विवक्षितस्थानं वहति नयति प्रापयति तथा संसारिजीवः औदारिकादिनोकर्मशरीरक्षिप्तज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभारं गृहीत्वा नानायोनिस्थानानि वहति । पुनरपि स एव विप्रमुक्तकावटिकभारः एकत्र तदिष्टस्थाने तद्भाराक्रांतिजनितदुःखविगमेन सुखी भूत्वा तिष्ठति तथा कश्चिद्भव्यजीवोऽपि लब्धिभिः स्वीकृतसम्यग्दर्शनादिसामग्रीसंपन्नः तत्त्वज्ञानी शरीरकावटिकभृतकर्मभरं विप्रमुच्य तद्भाराक्रांतिजनितनानाविधदुःखवेदनाविगमेनेष्टे लोकाग्रनिवासे सुखीभूत्वा तिष्ठति इति भव्यजनहितोपदेशोयमाचार्यस्याभिप्रायगतो लक्ष्यः ॥ २०२ ॥ अथ दृष्टांतपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रांतसोपायसिद्धस्वरूपं प्ररूपयति—

म० प्र०—यथा भारवहः कश्चित् पुरुषः कावटिकं भारं गृहीत्वा विवक्षितस्थानं वहति- नयति प्रापयति । एवमेव संसारिजीवः कायकावटिकं-औदारिकादिनोकर्मशरीरकावटिसभृतं, कर्मभारं- ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभारं गृहीत्वा नानायोनिस्थानानि वहति । कावट्या भवः कावटिकः-कावटिसभृत इत्यर्थः । ततो विप्रमुक्तकावटिकभारः पुरुषो यथा क्वचिदिष्टस्थाने तद्भाराक्रांतिजनितदुःखविरहात्सुखी सन्नास्ते तथा कश्चिदासन्नभव्योऽपि लब्धिसंभूतसम्यग्दर्शनादिसामग्रीसंपन्न, तत्त्वज्ञानी शरीरकावटिसंभृतकर्मभारं विप्रमुच्य तद्भाराक्रांतिजनितनानाविधदुःखवेदनाविगमात् क्वचिदिष्टलोकाग्रनिवासे सुखी सन्नास्ते इति भव्यजनहितोपदेशोयमाचार्यस्याभिप्रायगतो लक्ष्य. ॥ २०२ ॥ अथ दृष्टांतपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रांतं सोपायसिद्धस्वरूपं प्ररूपयति—

सं० च०—लोकविषैं जैसैं बोझका वहनहारा कोऊ पुरुष कावडियासो कावडिमैं भर्‍या जो बोझ भार ताहि लेकरि विवक्षित स्थानक पहुंचावै है तैसैं ही यहु संसारी जीव औदारिक आदि नोकर्मशरीरविषै भर्‍या

हूवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मका भार ताहि लेकरि नानाप्रकार योनिस्थानकनिकौं प्राप्त करै है। बहुरि जैसैं सोई पुरुष कावड़िका भारकौं गेरि कोई एक इष्ट स्थानकविषै विश्राम करि तिस भारकरि निपज्या दुःखके वियोगकरि सुखी होइ तिष्ठै है तैसैं कोई भव्य जीव कालादि लब्धिनिकरि अंगीकार कीनीं जो सम्यग्दर्शनादि सामिग्री तींहि करि युक्त होता संता संसारी कावडिकाविषैं भर्‍या कर्म भारकौं छांड़ि तिस भार करि निपज्या नाना प्रकार दुःख पीड़ाका वियोगकरि इष्ट लोकका अग्रभागविषैं सुखी होइ तिष्ठै है। ऐसा हित उपदेश रूप आचार्य का अभिप्राय है ॥२०२॥ आगै दृष्टांतपूर्वक कायमार्गणारहित जे सिद्ध तिनिका उपायसहित स्वरूपकौं कहैं हैं—

जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण ॥ २०३ ॥

यथा कांचनमग्निगतं मुच्यते किट्टेन कालिकया च।
तथा कायबंधमुक्ता अकायिका ध्यानयोगेन ॥ २०३ ॥

जी० प्र०—यथा लोके मलिनं कांचनं- सुवर्णं, अग्निगतं-प्रज्वलज्ज्वलनदग्धं, अंतरंगसूतादिभावनासंस्कृतं सत् किट्टेन-बहिर्मलेन कालिकया च वैवर्ण्यरूपांतरंगमलेन च मुच्यते जाज्वल्यत्षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य सर्वजनैः श्लाघ्यते। तथा ध्यानयोगेन--धर्म्यशुक्लध्यानभावनया संस्कृतबहिरंगतपोग्निविशेषेण आसन्नभव्यजीवा अपि औदारिकतैजसकार्माभ्यां कार्मणशरीरसंश्लेषरूपबंधेन च मुक्ता भूत्वा अकायिकाः-अशरीराः सिद्धपरमेष्ठिनः, अनंतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य-लोकाग्रे सर्वलोकेन स्तुतिप्रणामार्चनादिभिः श्लाघ्यंते। काय अस्ति एषामिति कायिकाः--शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः। तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इत्यर्थः ॥ २०३ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा एकादशगाथासूत्रैः कायमार्गणायां पृथ्वीकायिकादिजीवसंख्यामाख्यांति—

म० प्र०—यथा लोके काचनं-मलिनं सुवर्णं अग्निगतं- प्रज्वलज्ज्वलनदग्धमंतरंगरसादिभावनासंस्कृतं सत् किट्टेन बहिर्मलेन कालिकया च वैवर्ण्यरूपांतरमलेन मुच्यते ततश्च जाज्वलत्षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य सर्वलोकैः श्लाघ्यते तथा ध्यानप्रयोगेन धर्म्यशुक्लध्यानभावनया संस्कृता बहिरंगतपोग्निविशेषदग्धाः आसन्नभव्यजीवाः कायाभ्यां--औदारिकतैजसशरीराभ्यां, बंधेन कार्मणशरीरसंश्लेषेण मुक्ताः संतः, अशरीराः-अकायिकाः सिद्धपरमेष्ठिनः,

अनंतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य लोकाग्रे सर्वलोकैः स्तुतिप्रणामार्चनादिभिः श्लाघ्यंते । कायोऽस्त्येषामिति कायिकाः शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः । तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इति ॥ २०३ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः एकादशभिर्गाथाभिः कायमार्गणायां पृथ्वीकायिकादिजीवानां सख्याविशेषं प्रतिपादयंति—

सं० च०—जैसैं लोकविषैं मलयुक्त सोना सो अग्निकौं प्राप्त होता संता अंतरंग पारा आदिकी भावनाकरि संवार्‍या हुवा बाह्यमल तौ कीटिका अर अंतरंग मल श्वेतादि रूप अन्यवर्ण ताकरि रहित हो है। देदीप्यमान सोलहवान निज स्वरूपकी लब्धिकौं पाइ सर्व जननिकरि सराहिए है तैसें ध्यान योग जो धर्मध्यान शुक्लध्यान रूप भावना ताकरि अर बहिरंग तपरूपी अगिनिका संस्कार करि निकट भव्य जीव हैं ते भी औदारिक तैजस शरीर सहित कार्माण शरीरका संबंध रूप बंधकरि मुक्त होइ अकायिकाः कहिए शरीररहित सिद्ध परमेष्ठी ते अनंत ज्ञानादि स्वरूपकी उपलब्धिकौं पाइ लोकाग्रविषैं सर्व इंद्रादि लोककरि स्तुति नमस्कार पूजनादिक करि सराहिए है। काय जिनिकैं पाइए ते कायिक शरीरधारक संसारी जानने तिनतैं विपरीत कायरहित अकायिक मुक्तजीव जानने ॥२०३॥ आगैं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव ग्यारह गाथा सूत्रनिकरि पृथिवीकायिक आदि जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

आउड्ढरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ ।
भूजलवाऊ अहिया पडिभागोऽसंखलोगो दु ॥२०४॥

सार्धत्रयराशिवारं लोके अन्योन्यसंगुणे तेजः ।
भूजलवायवः अधिकाः प्रतिभागोऽसंख्यलोकस्तु ॥ २०४ ॥

जी० प्र०—जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकप्रदेशप्रमाणं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श । वि । दे । विरलनराशिं विरलयित्वा
≡ ≡ ≡

रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा, समंतात् वर्गः संवर्गः वर्गितस्य संवर्गः वर्गितसंवर्गः तं विधायेत्यर्थः शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तच्छलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं लोकप्रमितशलाकाराशिपरिसमाप्तिपर्यंतं कृत्वा तं च समुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श ≡a वि ≡a दे ≡a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य तत्रतनचरमसमुत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा श ≡a वि ≡a दे ≡a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तृतीयवारस्थापितशलकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य चरमसमुत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा

श ≡a वि ≡a दे ≡a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूप प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नमहाराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं प्रथमद्वितीयतृतीयवारस्थापितशलाकाराशिन्यूनचतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिपरिसमाप्तौ सत्यां तत्रोत्पन्नमहाराशिः तेजस्कायिकजीवराशेः प्रमाणं भवति। अस्य राशेः अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशिवर्गशलाकाराशर्धच्छेदराशीनां प्रमाणं तदल्पबहुत्वं च प्राक् परिभाषोक्तमत्रापि ज्ञातव्यं। पुनः भूजलवायुकायिकाः क्रमेण तेजस्कायिकराशितोऽधिका भवंति तदधिकागमननिमित्त भागहारः प्रतिभागहारः असंख्यातलोकप्रमितो भवति। तत्संदृष्टिर्नवांकः। अधिकक्रमो दर्श्यते तद्यथा—उक्ततेजस्कायिकराशौ ≡a अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡a । १/९ अधिकीकृते सति पृथ्वीकायिकजीवराशिप्रमाणं भवति। ≡a १०/९। पुनः अस्मिन्नेव राशौ अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡a । १०/९ । १/९ अधिकीकृते सत्यप्कायिकजीवराशिप्रमाणं भवति ≡a।१०/९।१०/९ पुनः अस्मिन्नेव राशौ अस्यैव प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡a।१०/९।१०/९।१/९ अधिकीकृते सति वायुकायिकजीवराशिप्रमाणं भवति ≡a । १०/९ । १०/९ । १०/९ ॥ २०४ ॥

म० प्र०---जगच्छ्रेणिघनमात्रलोकप्रदेशप्रमाणं शलाकाविरलनदेयसंज्ञं राशित्रयं संस्थाप्य तत्र विरलनराशिं एकैकरूपतया विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा परस्परं संगुण्य शलाकाराशितः एकं रूपमपनीय तत्रोत्पन्नमसंख्यातलोक विरलनराशिं देयराशिं च कृत्वा विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशि दत्वा परस्पर संगुण्य प्राक्तने लोकमात्रे शलाकाराशौ पुनरप्यपरं रूपमपनयेत्। एवमेव उत्पन्नोत्पन्नासंख्यातलोकराशिविरलन देयं च कृत्वा परस्परं संगुणनं, प्राक्तने शलाकाराशौ रूपापनयन च पुन. पुनस्तावत्कर्तव्य यावत्प्राक्तनशलाकाराशिरूपाणि लोकप्रदेशमात्राणि समाप्तानि भवंति इति प्रथमवाशलाका, पुनस्तत्रोत्पन्नमसंख्यातलोकराशिं शलाकाविरलनदेयप्रतित्रयं कृत्वा प्रथमशलाकानिष्ठापनक्रमेण द्वितीयवारशलाकां तृतीयवारशलाकां चतुर्थवारशलाकार्धं च निष्ठापयेत् तथा सति अर्धचतुर्थशलाकाराशिवारान् लोके घनलोकप्रदेशप्रमाणे अन्योन्यसगुणे परस्परं वर्गितसंवर्गे कृते सति यल्लब्धमसंख्येयलोकप्रमितं तावंतस्तेजस्कायिकजीवा भवंति। अर्धचतुर्थो वारो येपा ते अर्धचतुर्थाः सार्धा त्रयः इत्यर्थ.। सार्धत्रयवारशलाकानिष्ठापनपर्यंतं लोकस्य परस्परं गुणनाल्लब्धमसंख्यातलोकप्रदेशप्रमित तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणमित्यर्थः। तु–पुनः, भूजलवायुकायिकाः क्रमेण ततोऽधिकाधिका', अधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः असंख्यातलोकमात्रः, तत्संदृष्टिर्नवांकः। तद्यथा- असख्यातलोकमात्रं तेजस्कायिकराशिं सस्थाप्य तद्योग्यासंख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभागं तस्मिन्नेव तेजस्कायिकजीवराशौ प्रक्षिपेत् स प्रक्षिप्तराशिः पृथ्वीकायिकजीवराशिर्भवति तमेव पृथ्वीकायिकराशिमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभागे तस्मिन्नेव पृथ्वीकायिकराशौ प्रक्षिपेत् स प्रक्षिप्तराशिरप्कायिकप्रमाणं भवति पुनस्तमेवाप्कायिकराशिमसख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभाग तस्मिन्नेवाप्कायिकराशौ प्रक्षिपेत् स प्रक्षिप्तराशिर्वायुकायिकप्रमाणं भवति ॥ २०४ ॥

सं० च०--जगत श्रेणी घन प्रमाण लोकके प्रदेश तीहि प्रमाण शलाका १ विरलन २ देय ३ ए तीनि राशिकरि तहां विरलनराशिका विरलन करि एक एक जुदा जुदा बखेरि तहां एक एक प्रति देयराशिको स्थापि वर्गित संवर्ग करना। जाका वर्ग कीया ताका समंतपनै वर्ग करना सो इहां परस्पर गुणनेका नाम वर्गितसंवर्ग है। ताहिकरि शलाकाराशिमेंस्यों एक घटावना। बहुरि ऐसैं करतैं जो राशि उपज्या ताहि विरलन करि एक एक प्रति सोई राशि देइ वर्गित संवर्गकरि शलाकाराशिमेंसौं एक और घटावना। ऐसैं लोक प्रमाण शलाका राशि यावत् पूर्ण न होइ तावत् करना ऐसैं करतैं जो राशि उपज्या तीहि प्रमाण शलाका विरलन देय राशि स्थापि विरलन राशिका विरलन करि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ स्थापि वर्गित संवर्ग करि दूसरीबार स्थाप्या हूवा शलाकाराशिमेंसौं एक घटावना। बहुरि तहां उपज्या हूवा राशिका विरलन करि एक एक प्रति सोई राशि स्थापि वर्गित संवर्ग करि तिस शलाका राशिमेंसौं एक और घटावना ऐसैं दूसरी

बार स्थाप्या हूवा शलाका राशिकौं भी समाप्तकरि तहां अंतविषैं जो महाराशि भया तींहि प्रमाण शलाका १ विरलन " देय ३ स्थापि विरलनराशिका विरलन करि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ वर्गित संवर्ग करि तीसरीबार स्थाप्या शलाका राशितैं एक और घटावना बहुरि तहां जो राशि भया ताका विरलन करि एक एक प्रति सोई राशि देइ वर्गित संवर्ग करि तिस शलाका राशितैं एक और काढ़ना ऐसैं तीसरी बार स्थाप्या हूवा शलाका राशिकौं भी समाप्त करि तहां अंतविषैं उपज्या महाराशि तिहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, स्थापि विरलन राशिकौं बखेरि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ वर्गित संवर्गकरि चौथी बार स्थाप्या हूवा शलाकाराशितैं एक काढ़ना। बहुरि तहां जो महाराशि भया ताकौं विरलन करि एक एक प्रति तिसहीकौं देइ वर्गित संवर्गकरि तिस शलाका राशिमैंसौं एक और काढना ऐसैं ही क्रमकरि पहिलीबार दूसरबार तीसरीबार स्थापे जे शलाका राशि तिनिकौं जोड़े जो प्रमाण होइ तितने चौथीवार स्थाप्या हुवा शलाका राशिमैंसौं घटाएं अवशेष जितना प्रमाण रह्या तिनकौं एक एक घटावने करि पूर्ण होतैं अंतविषैं जो महाराशि उपज्या तींहि प्रमाण तेजस्कायिक जीव राशि है। इस राशिका परस्पर गुणकार शलाका राशि वर्ग शलाका राशि अर्द्धच्छेद राशि तिनिका प्रमाण वा अल्पबहुत्व पूर्वैं द्विरूप घनाघन धाराका कथन करतैं कह्या है तैसैं इहां भी जानना। ऐसैं सामान्यपणैं साढा तीन वार वो विशेषपणैं किंचित् घाटि च्यारि शलाका राशि पूर्ण जैसैं होइ तैसैं लोकका परस्पर गुणन कीएं जो राशि होइ तितने अग्निकायिक जीवराशिका प्रमाण है। बहुरि इनितैं पृथ्वी कायिकके जीव अधिक है। इनितैं अप्कायके जीव अधिक हैं। इनितैं वातकायके जीव अधिक हैं। इहां अधिक कितने हैं? ऐसा जाननेके निमित्त भागहार असंख्यात लोक प्रमाण जानना सो कहिए है- असंख्यात लोकमात्र अग्निकायिक जीवनिका परिमाण ताकौ यथायोग्य छोटा असंख्यात लोकका भाग दीएं जेता परिमाण आवै तितने अग्नि कायिकके जीवनिका परिमाणविषै मिलायें पृथ्वीकायिक जीवनिका परिमाण हो है बहुरि इस पृथ्वीकायिक राशिकौं असंख्यात लोकका भाग दीये जेता परिमाण आवै तितने पृथ्वी का-

यिक राशि विषैं मिलायें तितना अप्कायिक जीवनिका परिमाण हो है बहुरि अप्कायिक राशिकौं असंख्यात लोकका भाग दीये जो परिमाण आवै तितना अप्कायिक राशिविषैं मिलाएं वातकायिक जीवनिका परिमाण हो है ऐसें अधिक अधिक जानने ॥ २०४ ॥

अपदिट्ठिदपत्तेया असंखलोगप्पमाणया होंति ।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण असंखलोगेण संगुणिदा ॥ २०५ ॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येका असंख्यलोकप्रमाणका भवंति ।
ततः प्रतिष्ठिताः पुनः असंख्यलोकेन संगुणिताः ॥ २०५ ॥

जी० प्र०—अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणा भवंति ≡a । पुनः प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः तेभ्यः असंख्येयलोकगुणिता भवंति ≡a≡a ॥ २०५ ॥

मं० प्र०——अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिका यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणा भवति पुनः प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकास्ततः अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकप्रमाणात् असंख्येयलोकेन सगुणिता भवति ॥ २०५ ॥

स.चं.-अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती कायिक जीव यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण है बहुरि इनिकौं असंख्यात लोक करि गुणें जो परिमाण होइ तितने प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती कायिक जीव जानने । दोऊनिकौं मिलाएं सामान्य प्रत्येक वनस्पती कायिक जीवनिका प्रमाण हो है ॥ २०५ ॥

तसरासिपुढविआदीचउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।
साहारणजीवाणं परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

त्रसराशिपृथिव्यादिचतुष्कप्रत्येकहीनसंसारी।
साधारणजीवानां परिमाणं भवति जिनदिष्टं ॥ २०६ ॥

जी० प्र०—त्रसराशिना वक्ष्यमाणप्रमाणेन आवल्यसंख्येयभागभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरप्रमितेन = ४ २ a तथा पृथिव्यादिचतुष्टयेन उक्तप्रमाणेन एतावता ते ≡ a पृ ≡ a अ ≡ a वा ≡ a मिलितेन ≡ a । ४

≡ a । १ / ९ ≡ a । २ / ९ ≡ a । ३ / ९ ≡ a । ४ / ९

≡ a । १ / ९ । ९ ≡ a । ३ / ९ । ९ ≡ a । ४ / ९ । ९

≡ । a । १ / ९ । ९ । ९ ≡ a । ४ / ९ । ९ । ९

साधिकचतुर्गुणतेजस्कायिकराशिप्रमाणेन ≡ a । ४ प्रत्येकवनस्पतिराशिद्वयेन ≡ a ≡ a । चेति राशित्रयेण विहीनसंसारराशिरेव साधारणजीवराशिप्रमाणं भवतीति जिनैर्दिष्टं-कथितं वा १३ ≡ ॥ २०६ ॥

मं० प्र०—वक्ष्यमाणेन त्रसराशिना पृथिव्यादिचतुष्कप्रत्येकवनस्पतिराशिभ्या च हीनः संसारिजीवराशिः साधारणजीवानां परिमाणं भवति इति जिनैरर्हदादिभिः, निर्दिष्टं-कथितं ॥ २०६ ॥

स० चं०—आगैं कहिए है आवलीका असंख्यातवां भागकरि भाजित प्रतरांगुलके भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो होइ तितना त्रसराशिका प्रमाण अर पृथ्वी अप तेज वायु इनि च्यारिनिका मिल्या हूवा साधिक चौगुणा तेज कायिक राशिका प्रमाण बहुरि इस प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीका मिल्या हूवा, परिमाण ऐसें इनि तीनि राशिनिकौं संसारी जीवनिका परिमाणमें घटाएं जो अवशेष रहै तितना साधारण वनस्पती जे निगोद जीव तिनिका परिमाण अनंतानंत जानना ऐसा जिनदेवने कह्या है ॥ २०६ ॥

सगसगअसंखभागो वादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहुमपमाणं पाडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥ २०७ ॥

स्वकस्वकासंख्यभागो वादरकायानां भवति परिमाणं ।
शेषाः सूक्ष्मप्रमाणं प्रतिभागः पूर्वनिर्दिष्टः ॥ २०७ ॥

जी० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां साधारणवनस्पतिकायिकानां च असंख्येयलोकैकभागमात्रं स्वस्ववादरकायानां परिमाणं भवति। शेषा· तद्बहुभागाः सूक्ष्मकायिकजीवानां प्रमाणं भवति । अत्र प्रविष्टप्रतिभागः भागहारः पूर्वोक्तासंख्याततलोकमात्र एवेति ज्ञातव्यः । तदंकसंदृष्टिर्नवांकः ॥ २०७ ॥

म० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाना साधारणवनस्पतिकायिकानां च पूर्वोक्तस्वस्वसंख्याया असंख्यातभागमात्रं स्वस्ववादरकायानां प्रमाणं भवति शेषतद्बहुभागमात्रं सूक्ष्मकायानां प्रमाण भवति। अत्र प्रविष्टः प्रतिभागः-भागहारः पूर्वमेव निर्दिष्ट. असंख्याततलोकमात्र इति ज्ञातव्यः। तस्य संदृष्टिर्नवाक.॥२०७॥

सं० च०—पृथिवी अप् तेज वायु साधारण वनस्पती कायिकनिका जो पूर्वै परिमाण कह्या तिस अपने अपने परिमाणकौं असंख्यातका भाग देना। तहां एक भाग प्रमाण तौ अपना अपना वादर कायकानिका प्रमाण है। अवशेष वहुभाग प्रमाण सूक्ष्म कायकानिका प्रमाण है। पृथ्वीकायिकके परिमाणकौं असंख्यातका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण वादर पृथ्वीकायकानिका परिमाण है अवशेष वहुभाग परिमाण सूक्ष्म पृथ्वी कायिकनिका परिमाण है ऐसैं ही सबका जानना। इहां भी भागहारका परिमाण पूर्वै कह्या था असंख्यात लोक प्रमाण सोई है। तातैं इहां भी अग्निकायादिकविषैं पूर्वोक्त प्रकार आधिक अधिकपना जानना ॥ २०७ ॥

सुहमेसु संखभागं संखा भागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥ २०८ ॥

सूक्ष्मेषु संख्यभागः संख्या भागा अपूर्णका इतरे ।
यस्मादपूर्णाद्धातः पूर्णाद्धा संख्यगुणितक्रमा ॥ २०८ ॥

जी० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकानां ये सूक्ष्माः प्रागुक्तास्तेषु अपर्याप्ताः तत्संख्यातैकभागप्रमाणा भवंति । पर्याप्तकास्तत्संख्यातबहुभागप्रमिता भवंति। किं कारणं ? इति चेदुच्यते यस्मात्कारणादंतर्मुहूर्तमात्र्याः अपर्याप्ताद्धायाः कालात्पर्याप्ताद्धा संख्यातगुणितक्रमा भवति । मृदुकठिनभूमिजलवायुवनस्पतितेजस्कायिकजीवानामुत्कृष्टायुषो द्वादशद्वाविंशतिसप्तत्रिदशसहस्रवर्षत्रिदिनप्रमितत्वेन अंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालात् २ ७ पर्याप्तकालस्य संख्येयगुणत्वप्रसिद्धेः तस्मात्कारणात्पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयेन २ ७ । ७ अनेन २ । ७ । ४ यद्येतावंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका जीवाः ≡ a । १० । ८ / ९ । ९ लभ्यते तदा एतावदपर्याप्तकालेन २ ७ कियंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिकजीवा लभ्यंते ? इति त्रैराशिकेन लब्धः संख्यातैकभागमात्रः तदपर्याप्तजीवराशिर्भवति ≡ a । १० । ८ । १ / ९ । ९ । ५ संख्यातस्य संदृष्टिः पंचांकः । तथा—

प्र २ ७ । ४ । फ ≡ a । १० । ८ / ९ । ९ । इ २ ७ । ४ । इति त्रैराशिकेन लब्धस्तत्पर्याप्तजीवराशिर्भवति ≡ a । १० । ८ । ४ / ९ । ९ । ५ एवमुक्तत्रैराशिकद्वयक्रमेण लब्धः सूक्ष्माप्कायिकापर्याप्तराशिः ≡ a । १० । १० । ८ । १ / ९ । ९ । ९ । ५ तत्पर्याप्तराशिः ≡ a । १० । १० । ८ । ४ / ९ । ९ । ९ । ५ । सूक्ष्मतेजस्कायिकापर्याप्तराशिः ≡ a । ८ । १ / ९ । ५ तत्पर्याप्तराशिः ≡ a । ८ । ४ / ९ । ५ सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तराशिः ≡ a । १० । १० । १० । ८ । १ / ९ । ९ । ९ । ९ । ५ तत्पर्याप्तराशिः—
≡ a । १० । १० । १० । ८ । ४ / ९ । ९ । ९ । ९ । ५ सूक्ष्मसाधारणापर्याप्तजीवराशिः १३ ≡ । ८ । १ / ९ । ५ तत्पर्याप्तराशिः १३ ≡ । ८ । ४ / ९ । ५ ॥ २०८ ॥

म० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकानां ये सूक्ष्मकायाः प्रागुक्तसंख्यास्तेषु अपर्याप्ताः तत्संख्यातैकभागमात्रा भवंति । पर्याप्ताः तत्संख्यातबहुभागमात्रा भवंति। अत्र कारणमुच्यते-यस्मात्कारणात् अंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्ताद्धातः संख्यातगुणितक्रमा पर्याप्ताद्धा भवति तद्यथा शुद्धपृथ्वीकायिकस्य उत्कृष्टायुर्वर्षाणि द्वादशसहस्राणि, खरपृथ्वीकायिकस्य द्वाविंशतिसहस्राणि, अप्कायिकस्य सप्तसहस्राणि, तेजस्कायिकस्य दिनानि त्रीणि, वायुकायिकस्य वर्षाणि त्रीणि सहस्राणि, वनस्पतिकायिकस्य दशसहस्राणीति परमागमोक्तपंचस्थावरोत्कृष्टस्थितीनां पर्याप्तकालानां अंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालात्संख्येयगु-

---

१ पर्याप्तकालोऽय २ ७ । ७ अपर्याप्तकालोऽय २ ७ द्वावपि मिलित्वा २ ७ । ७ एव जात। अस्य संदृष्टिः । २ ७ । ४ । रूपाधिकसंख्यातस्य रूपाधिकचतुरंकत्व कृत्वमित्यर्थः

पत्वं सुप्रसिद्धं तस्मात्कारणात्कालसंचयमाश्रित्य प्रवृत्तं त्रैराशिकमिदं- पर्याप्तापर्याप्तकालद्वये एतावति प्र २ ०ृ ४ । यद्येतावंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका लभ्यंते फ ≡ ᑐ १० । ८ । तदा एतावत्पर्याप्तकाले । इ २ ०ृ कियंतो लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धं सूक्ष्मपृथ्वीकायिकराशिसंख्यातैकभागमात्रं तदपर्याप्तजीव-
९।९

प्रमाणं भवति ≡ ᑐ १० । ८ । १ तथा एतावति पर्याप्तापर्याप्तकालद्वये प्र २ ०ृ । ४ । यद्येतावंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका लभ्यते फ ≡ ᑐ १० । ८ तदा
९ । ९ । ५ — ९ । ९

एतावति पर्याप्तकाले इ २ ०ृ । ४ कियंतो लभ्यते इति त्रैराशिकविधानेन लब्धं सूक्ष्मपृथ्वीकायिकराशिसंख्यातबहुभागमात्रं ≡ ᑐ १० । ८ । ४ तत्प-
९ । ९ । ५

र्याप्तजीवप्रमाणं भवति एवं सूक्ष्माप्कायिकादीनामपि पर्याप्तापर्याप्तपरिमाणमानेतव्यं । कालसंचयाश्रितसंख्यानयनमनेनैव विधानेनोत्तरत्रापि ज्ञातव्यं ॥२०८॥

सं० च०—पृथ्वी अप तेज वायु साधारण वनस्पती इनिका पूर्वैं जो सूक्ष्म जीवनिका परिमाण कह्या तीं-हिविषैं अपने अपने सूक्ष्म जीवनिका परिमाणकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां एक भागप्रमाण तौ अपर्याप्त है बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त हैं। सूक्ष्म जीवनिविषैं अपर्याप्त राशितैं पर्याप्तराशिका प्रमाण बहुत जानना। सो कारण कहैं हैं जातैं अपर्याप्त अवस्थाका काल अंतर्मुहूर्त मात्र है। इस कालतैं पर्याप्त अवस्थाका काल संख्यातगुणा है। सो दिखाइए है-कोमल पृथ्वीकायिकका उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है। बहुरि कठिन पृथ्वी कायिकका बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। जलकायिकका सात हजार वर्ष प्रमाण है। तेजकायिकका तीनदिन प्रमाण है। वातकायिकका तीन हजार वर्ष प्रमाण है। वनस्पती कायिकका दश हजार वर्ष प्रमाण है। इहां प्रसंग पाइ विकलत्रयविषैं बेंद्रीका बारा वर्ष तेंद्रीका गुणचास दिन चौंद्रीका छह महिना प्रमाण है ऐसें उत्कृष्ट आयु बलका परिमाण कह्या तीहिविषैं अंतर्मुहूर्तकालविषैं तौ अपर्याप्त अवस्था है अवशेष कालविषैं पर्याप्त अवस्था है तातैं अपर्याप्त अवस्थाका कालतैं पर्याप्त अवस्थाका काल संख्यातगुणा जानना। तहां पृथ्वी कायिकका पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ कालनिविषैं जो सर्व सूक्ष्म जीव पाइए तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्तकालविषैं केते पाइए ऐसें प्रमाणराशि पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ कालनिके समयनिका समुदाय, फलराशि सूक्ष्म जीवनिका प्रमाण,

इच्छाराशि अपर्याप्तकालका समयनिका प्रमाण, तहां फलकरि इच्छाकों गुणि प्रमाणका भाग दीए लब्धिराशिका परिमाण आवै तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त जीव जानने। बहुरि प्रमाण राशि फलराशि पूर्वोक्त इच्छाराशि पर्याप्त काल कीए लब्धिराशिका जो परिमाण आवै तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनिका परिमाण जानना। ताहीतैं संख्यातका भाग दीएं एक भाग प्रमाण अपर्याप्त कहे अवशेष बहु भागप्रमाण पर्याप्त कहे हैं ऐसैंही सूक्ष्म अप्कायिक तेज कायिक वातकायिक साधारण वनस्पतीकायिकविषैं अपना अपना सर्वकालकौं प्रमाणराशिकरि अपने अपने प्रमाणकौं फलराशिकरि अपर्याप्त वा पर्याप्त कालकौं इच्छाराशिकरि लब्धराशि प्रमाण पर्याप्त वा अपर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। इहां पर्याप्त वा अपर्याप्त कालकी अपेक्षा जीवनिका परिमाण सिद्ध हूवा है॥ २०८॥

पल्लासंखेज्जवहिदपदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे।
जलभूणिपवादरया पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा॥२०९॥

पल्यासंख्यावहितप्रतरांगुलभाजिते जगत्प्रतरे।
जलभूनिपबादरकाः पूर्णा आवल्यसंख्यभाजितक्रमाः॥ २०९॥

जी० प्र०—पल्यासंख्येयभागहतप्रतरांगुलेन जगत्प्रतरे भाजिते यल्लब्धं तद्बादराप्कायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति $\overset{=}{४}$/प/a अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तद्बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति $\overset{=}{४}$/प/a/९। पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं

तत्प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशिप्रमाणं भवति $\frac{\overset{=}{४}}{प\ a}$ । ९ ९ पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तदप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्त-राशिप्रमाणं भवति । $\frac{\overset{=}{४}}{प\ a}$ । ९ । ९ । ९ निगोदशब्देन अत्र निगोदाश्रिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका एव गृह्यंते न साधारणाः तेषामग्रे व्यक्तं कथितत्वात् । अत्र आवल्यसंख्येयभागस्य संदृष्टिर्नवांकः ९ ॥ २०९ ॥

म० प्र०–पल्यासंख्यातभागापहतेन प्रतरांगुलेन जगत्प्रतरे भाजिते सति यल्लब्धं तावंतः बादराप्कायिकपर्याप्तजीवा भवंति । तद्राशौ पुनः आवल्यसंख्यातभागेन भक्ते सति यल्लब्ध तत्प्रमाणा' बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवा भवंति । तद्राशौ पुनरप्यावल्यसंख्येयभागेन भक्ते सति यल्लब्धं तत्प्रमिताः प्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजीवा भवंति । तद्राशौ पुनरप्यावल्यसंख्येभागेन भक्ते सति यल्लब्ध तावतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवा भवति । निगोदशब्देनात्र निगोदाश्रिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका गृह्यंते न तु साधारणा. तेषामुत्तरत्र सुव्यक्ताभिधानात् । अत्रावल्यसंख्यातभागस्य सदृष्टिर्नवांकः ॥ २०९ ॥

सं० च०—पल्यके असंख्यातवां भागका भाग प्रतरांगुलकौं दीयें जो परिमाण होवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर अप्कायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । बहुरि इस राशिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । बहुरि इस राशिकौं भी आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । बहुरि इस राशिकौं भी आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । इहां 'णि' इस आदि अक्षरतैं निगोद शब्दकरि प्रतिष्ठित प्रत्येक जानने जातैं साधारणका कथन आगैं प्रगट कहै हैं ॥ २०९ ॥

विंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं ।
पज्जत्ताण पमाणं तेहिं विहीणा अपज्जत्ता ॥ २१० ॥

वृंदावलिलोकानामसंख्यं संख्यं च तेजोवायूनां ।
पर्याप्तानां प्रमाणं तैर्विहीना अपर्याप्ताः ॥ २१० ॥

जी० प्र०- वृंदावलेरसंख्यातैकभागमात्राः वादरतेजस्कायिकपर्याप्तजीवा भवंति ≡ ७ तथा लोकस्य संख्यातभक्तैकभागप्रमिता वादरवायुकायिकपर्याप्तजीवा भवंति ≡ ७ सूक्ष्माणां तु प्राक्कथितत्वात् अत्र वादरा एव गृह्यंते । तैः सूत्रद्वयोक्तवादरजलभूनिपतेजोवायुपर्याप्तजीवराशिभिर्विहीनाः स्वस्ववादरकायिकराशय एव स्वस्वापर्याप्तजीवराशयो भवंति ॥ २१० ॥

मं० प्र०- वृंदावलिलोकयो', यथासंख्यमसंख्यातभागसंख्यातभागमात्रे वादरतेजोवायुकायिकयोः पर्याप्तराश्योः प्रमाणे भवतः—आवलिघनस्यासंख्यातैकभागमात्र वादरतेजस्कायिकपर्याप्तप्रमाणं । लोकस्य संख्यातैकभागमात्रं वादरवायुकायिकपर्याप्तप्रमाण भवतीत्यर्थः । वादरशब्दः पूर्वसूत्रादत्राप्यनुवृत्त इति व्याख्यातः । तैः सूत्रद्वयोक्तैः वादरपृथिव्यप्तेजोवायुप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकपर्याप्तजीवप्रमाणैर्विहीनाः स्वस्ववादरपृथ्वीकायिकादिराशयः स्वस्वापर्याप्तजीवराशयो भवति ॥ २१० ॥

सं० च०—आवलीके जेते समय हैं तिनिका घन कीएं जो प्रमाण होइ ताकौं वृंदावली कहिए ताकौं असंख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना वादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । बहुरि लोककौं संख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर वातकायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । सूक्ष्म जीवनिका प्रमाण पूर्वै कह्या है तातैं इहां बादर ही ग्रहण करने । बहुरि पूर्वै जो पृथ्वी अप तेज वायु प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीरूप वादर जीवनिका परिमाण कह्या था तींहिविषैं अपना अपना पर्याप्त जीवनिका परिमाण घटाए अवशेष रहै तितने तितने बादर अपर्याप्त जीव जानने ॥ २१० ॥

साहारणवादरेसु असंखं भागं असंखगा भागा।
पुण्णाणमपुण्णाणं परिमाणं होदि अणुकमसो ॥ २११ ॥

साधारणवादरेषु असंख्यं भागं संख्यका भागाः।
पूर्णानामपूर्णानां परिमाणं भवत्यनुक्रमशः ॥ २११ ॥

जी० प्र०—साधारणवादरेषु ये पर्याप्तजीवास्तेषां प्रमाणं तद्राशेरसंख्यातैकभागमात्रं भवति। $\frac{१३ \equiv १}{९ । ७}$ शेषाः असंख्यातबहुभागाः अपर्याप्ता भवंति $\frac{१३ \equiv । ६}{९ । ७}$ अनेन अनुक्रमेण तत्सर्ववादरपर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमित्याचार्यसंप्रदायानुक्रममाश्रित्य तदल्पसंख्यत्वमुक्तं। कालसंचयमाश्रित्य कथनं नास्तीति आचार्यस्य हृदयं ॥ २११ ॥

मं० प्र०—साधारणवादरेषु ये पर्याप्तास्तेषां परिमाणं तद्राश्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। अपर्याप्तानां परिमाणं तद्बहुभागमात्रं भवतीत्यनुक्रमशः तेषां सर्ववादरपर्याप्तभवाना दुर्लभत्वमाचार्यसप्रदायानुक्रममाश्रित्य तदल्पसंख्यत्वमुक्त न कालसचयमाश्रित्येत्याचार्यस्य तात्पर्यं ॥ २११ ॥

स० चं०—वादर साधारण वनस्पतीका जो परिमाण कह्या था ताकौं असंख्यातका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण तौ वादर निगोद पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। वहुरि अवशेष असंख्यात वहुभाग प्रमाण वादर निगोद अपर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना ऐसैं अनुक्रमतैं इहां कालकी अपेक्षा अल्प वहुत्व नाहीं कह्या है। वादरनिविषैं पर्याप्तपना दुर्लभ है तातैं पर्याप्त थोरे अपर्याप्त घने हैं ऐसा आचार्यनिका अनुक्रम जानि कथन कीया है ऐसा आचार्यनिका अभिप्राय जानना ॥ २११ ॥

आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं।
कमसो तसतप्पुण्णा पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥ २१२ ॥

आवल्यसंख्यसंख्येनावहितप्रांगुलेन हितप्रतरं ।
क्रमशस्त्रसतत्पूर्णाः पूर्णोनत्रसा अपूर्णा हि ॥ २१२ ॥

जी० प्र०—आवल्यसंख्यातभागभक्तप्रतरांगुलेन भाजितजगत्प्रतरमात्रं सामान्यत्रसराशिप्रमाणं भवति । $\frac{=}{4}$ तथा संख्यातभक्तप्रतरांगुलेन भक्तजगत्प्रतरमात्रं तत्पर्याप्तराशिप्रमाणं भवति $\frac{4}{5}$ । पूर्णत्रसराशिरहितः सामान्यत्रसराशिरेव अपूर्णत्रसराशिप्रमाणं भवति[1] $\frac{=}{4}$ a—५ अत्र-पर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमेव पर्याप्तजीवसंख्याल्पत्वकारणं ॥ २१२ ॥ अथ बादरतेजस्कायिकादिषड्राशीनां संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वयमाह—

मं० प्र०—आवल्यसंख्यातभागेन संख्यातेन च अवहृतप्रतरांगुलेन हतजगत्प्रतरमात्राः क्रमशः यथासंख्यं त्रसास्तत्पर्याप्ताश्च भवंति । आवल्यसंख्यातभागापहृतप्रतरांगुलविभक्तजगत्प्रतरमात्रं त्रसजीवप्रमाणं संख्यातरूपावहृतप्रतरांगुलविभक्तजगत्प्रतरमात्र त्रसपर्याप्तजीवप्रमाणं भवतीत्यर्थः । स्वपर्याप्तराशिना ऊनत्रसराशिस्त्रसापर्याप्तराशिर्भवति, खलु स्फुटं, अत्रापि पर्याप्तभवाना दुर्लभत्वमेव पर्याप्तसंख्याल्पत्वकारणं ॥ २१२ ॥ अथ बादरतेजस्कायिकादिराशीना षण्णां संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वय प्ररूपयंति—

सं० च०—आवलीका असंख्यातवां भागका भाग प्रतरांगुलकौं दीएं जो परिमाण आवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना सर्व त्रस राशिका प्रमाण जानना । बहुरि संख्यातका भाग प्रतरांगुलकौं दीएं जो परिमाण आवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना पर्याप्त त्रस जीव-

1 विरतत्वात् $\frac{=}{4}$ २ a = ४ एवं भवति ।

निका प्रमाण जानना। बहुरि सामान्य त्रस जीवनिका परिमाणमैंस्यों पर्याप्त त्रसनिका परिमाण घटाएं जो परिमाण अवशेष रहै तितना अपर्याप्त त्रस जीवनिका प्रमाण जानना। इहां भी पर्याप्तपनां दुर्लभ है तातैं पर्याप्त त्रस थोरे हैं। अपर्याप्त त्रस बहुत हैं ऐसा जानना॥ २१२॥ आगैं वादर अग्निकायिक आदि छहप्रकार जीवनिका परिमाणका विशेष निर्णय करनेके निमित्त दोय गाथा कहै हैं---

आवलिअसंखभागेणवहिदपल्लूणसायरद्धछिदा।
वादरतेपणिभूजलवादाणं चरिमसायरं पुण्णं॥ २१३॥

आवल्यसंख्यभागेनावहितपल्योनसागरार्धच्छेदाः।
वादरतेपनिभूजलवातानां चरमः सागरः पूर्णः॥ २१३॥

जी० प्र०---अर्धच्छेदाः खलु वादरतेजस्कायिकजीवराशेः आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपमप्रमिता भवंति सा—प/९। अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनःएकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपममात्रा भवंति सा-प/९।९। प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागापहृतपल्यरहितसागरोपमसंख्या भवंति। सा—प/९।९।९। वादरभूकायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यहीनसागरोपमप्रमाणा भवंति। सा — प/९।९।९।९ वादरापकायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागाभाजितपल्यविहीनसागरोपममात्रा भवंति। सा — प/९।९।९।९।९ वादरवायुकायिकजीवराशेः संपूर्णसागरोपमप्रमिता भवंति। सा। चरिमसायरं पुण्णमिति वचनात्॥ २१३॥

मं० प्र०--- वादरतेजस्कायिकाप्रतिष्ठितप्रतिष्ठितभूजलवातकायिकजीवराशीनामर्धच्छेदप्रमाणं प्रथममुच्यते--आवल्यसंख्यातभागावहतपल्यस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः वादरतेजस्कायिकराशेरर्धच्छेदा भवंति। पुनस्तदेकभागस्य पुनरप्यावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागहीनसागरोपमात्राः अप्रतिष्ठितप्रत्येकराशेरर्धच्छेदाः, पुनस्तदेकभागस्य पुनरप्यावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः प्रतिष्ठितप्रत्येकराशेरर्धच्छेदाः, पुनस्तदेक-

भागस्यापरावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः बादरभूमिकायिकराशेरर्धच्छेदाः पुनस्तदेकभागस्यापरावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः बादराप्कायिकराशेरर्धच्छेदाः, पुनः संपूर्णसागरोपममात्राः बादरवातकायिकराशेरर्धच्छेदाः, चरमसागरोपममित्यनेन वातकायिकराश्यर्धच्छेदा उक्ताः अंतः कारणात् ॥ २१३ ॥

सं० च०—बादर अग्निकायिक अप्रतिष्ठित प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पृथ्वी अप् वायु इन छहौं राशिके अर्धच्छेदोंका परिमाण प्रथम कहिए है। अर्धच्छेदका स्वरूप पूर्वै धारानिका कथनविषैं कह्या ही था सो इहां एकबार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीएं जो एक भागका परिमाण आवै तितनां सागरमेंसौं घटाइए तब बादर अग्निकायिक जीवनिका जो परिमाण ताके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि दोयवार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीए जो परिमाण आवै तितनां सागरमेंसों घटाइए तब बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि तीन वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीए जो परिमाण आवै तितनां सागरमेंसों घटाइए तब बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि च्यारिवार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीए जो परिमाण आवै तितना सागरमेंसों घटाएं पृथ्वीकायिक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि पांच वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीएं जो परिमाण आवै तितनां सागरमेंसों घटाए अप्कायिक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि वातकायिक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण संपूर्ण सागरप्रमाण जानना। जातैं सूत्रविषैं ऐसा कह्या है 'अंतविषैं संपूर्ण सागर है'॥ २१३ ॥

तेवि विसेसेणहिया पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण।
तम्हा ते रासीओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥ २१४॥

तेऽपि विशेषेणाधिकाः पल्यासंख्यातभागमात्रेण ।
तस्माच्चे राशयोऽसंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥ २१४ ॥

जी० प्र०—यतः कारणात् ते उक्तार्धच्छेदराशयः वादरतेजस्कायिकोक्तार्धच्छेदराशितः अप्रतिष्ठितप्रत्येकादीनामुक्तार्धच्छेदराशयः पंचापि आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यासंख्येयभागमात्रेण स्वस्वैकैकविशेषेण क्रमशः एवंविधेन—

अ प ८ / ९ । ९	णि प ८ / ९ । ९ । ९	भू प ८ / ९ । ९ । ९ । ९	ज प ८ / ९ । ९ । ९ । ९ । ९	वा प १ / ९ । ९ । ९ । ९ । ९

अधिकाः संति ततः कारणात् तत्तदधिकप्रमिततद्द्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकेन ते जीवराशयो गुणितक्रमा भवंति । तदसंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमः अंकसंदृष्ट्यर्थसंदृष्टिभ्यां दर्श्यते-तत्रांकसंदृष्ट्या यथा-षोडशद्विकान्योन्याभ्यासे यदि पणट्ठिराशिर्लभ्यते तदा चतुःषष्टिद्विकान्योन्याभ्यासे को राशिर्लभ्यते इति प्रमाणफलेच्छाराशीन् कृत्वा—

प्र । वि १६ । फ ६५ = । इ वि ६४ (दे २ ... दे २)

लब्धानयने करणसूत्रमाह—

मं० प्र०—तेप्यर्धच्छेदाः पूर्वपूर्वतः उत्तरोत्तरे पल्यासंख्येयभागमात्रेण द्वितीयादिषु पल्यासंख्यातैकभागस्य बहुभागमात्रेण वातकायिकेषु चरमपल्यासंख्यातैकभागमात्रेण विशेषेणाधिका भवंति तस्मात्कारणात् अधिकपल्यासंख्यातभागमात्रार्धच्छेदपरिमिताद्विकान्योन्यगुणनसंभूतेन असंख्यातलोकेन गुणितक्रमास्ते वादरतेजस्कायिकादिराशयो भवंति । अत्र तेजस्कायिकार्धच्छेदेभ्यः अप्रतिष्ठितप्रत्येकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९ । ९ एतेभ्यः प्रतिष्ठितप्रत्येकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९९९ एतेभ्यः वादरपृथ्वीकायिकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९९९९ एतेभ्यः वादराप्कायिकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९९९९९ एतेभ्यः वादरवातकायिकानामधिकार्धच्छेदा. प १ / ९९९९९ एतेषामधिकार्धच्छेदाना रूपं रूपं प्रति द्विकान्योन्यगुणने असंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—अंकसंदृष्ट्या एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने प्र—दे २ / वि १६ यद्ययं राशिरुत्पद्यते फ इष्ट ६५ = तदा एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने को राशिरुत्पद्यते इ दे २ / वि ६४ लब्धराशिः १८ = अत्र त्रैराशिकविशेषकारणसूत्रमिदं ॥ २१४ ॥

सं० च०—जा कारणतैं कहे जे अर्धच्छेद राशि ते वादर तेज कायिक राशिके अर्धच्छेद राशितैं लगाइ अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनिके अर्धच्छेद पांचौ आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अपना अपना एक एक विशेष करि क्रमतैं अधिक हैं। तहां अग्निकायिक राशिनिके अर्धच्छेदनितैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर दोय वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनितैं प्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर तीन वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि प्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनितैं वादर पृथ्वी कायिक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर च्यारि वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि वादर पृथ्वीकायिक राशिके अर्धच्छेदनितैं बादर जल कायिक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर पांच वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि वादर जलकायिकराशिके अर्धच्छेदनितैं वादर वातकायिक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक करि गुणिए अर पांचवार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये जो प्रमाण आवै तितने अधिक हैं ऐसैं अधिक अधिक अर्धच्छेद जानने। अब इस कथनकौं अंकसंदृष्टिकरि दिखाइए है-पल्यका प्रमाण पैसाठि हजार पाचसै छत्तीस ६५५३६ आवलीका असंख्यातवां भागका प्रमाण आठ, सागरका प्रमाण छह लाख पचपन हजार तीनसै साठि ६५५३६० तहां एक वार दोयवार तीनवार च्यारिवार पांचवार आठका भाग पणट्ठीकौं दीएं इक्यासीसै वाणवै, एक हजार चौबीस, एकसौ अठाईस, सोलह, दोय ८१९२।१०२४।१२८।१६।२। इतने पाइए सो ए क्रमतैं आठ आठ गुणे घाटि हैं बहुरि इतने इतने छह लाख पचावन हजार तीनसै साठिविषैं घटाएं अंतविषैं संपूर्ण हैं तातैं किछू भी न घटाएं अग्निकायिकादि राशिके अर्धच्छेदनिका प्रमाण होइ ६४७१६८। ६५४३३६। ६५५२-

३२ । ६५५३४४ । ६५५३५८ । ६५५३६० । इहां अधिक प्रमाण ल्यावनेकौं पणट्ठीकौं सातकरि गुणैं दोय तीन च्यारि पांचवार आठका भाग दीएं अंतविषैं एककरि गुणि पांचवार आठका भाग दीएं इकहत्तरिसै अडसठ, आठसै छिनवै, एकसौ बारह, चौदह, दोय ७१६८ । ८९६ । ११२ । १४ । २ । अनुक्रमतैं अधिकका प्रमाण आवै है। ऐसैं ही पूर्वोक्त कथनका भावार्थ जानना । बहुरि इहां जितना जितना अर्धच्छेदनिका अधिक प्रमाण कह्या तितना तितना दूवा मांडि परस्पर गुणैं जो जो यथासंभव असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होइ तींहि तींहिकरि गुण्या हूवा अनुक्रमतैं अग्निकायिकादितैं अप्रतिष्ठित प्रत्येकादि राशि जानने। जातैं ऐसैं सूत्र पूर्वै गणित कथनविषैं कह्या है–

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं, अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स ॥

इस सूत्रके अभिप्रायतैं जेते जेते पूर्वराशिके अर्धच्छेदनितैं उत्तर राशिके अर्धच्छेद अधिक कहे तितने तितने दूवे मांडि परस्पर गुणैं जो जो प्रमाण होइ तितने तितने प्रमाणकरि पूर्वराशिकौं गुणैं उत्तर राशिका प्रमाण होइ सो इहां सामान्यपनैं गुणकारका प्रमाण सर्वत्र असंख्यात लोकमात्र है । इहां पूर्वोक्तप्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणैं असंख्यात लोक कैसै होइ? सो इस कथनकौं प्रकट अंक संदृष्टिकरि अर अर्थसंदृष्टिकरि दिखाइए है जैसै सोलह दूवानिकौं परस्पर गुणैं पणट्ठी होइ तौ चौसठि दूवानिकौं परस्पर गुणैं कितने होइ ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां प्रमाण राशिविषैं देय राशि दोय, विरलनराशि सोलह फलराशिविषैं इष्टराशी पणट्ठी ६५५३६ इच्छाराशिविषै देयराशि दोय विरलनराशि चौसठि ॥ २१४ ॥ अब इहां लब्धराशिका प्रमाण ल्यावनेकौं करण सूत्र कहै हैं—

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे ।

लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

देयच्छेदेनावहितेष्टच्छेदः प्रकृतविरलनं भाजिते।
लब्धमितेष्टराश्यन्योन्यहत्या भवति प्रकृतधनं ॥ २१५ ॥

जी० प्र०—देयराश्यर्धच्छेदेन १ फलभूतेष्ट६५ = राश्यर्धच्छेदान् १६ भक्त्वा १६/१ तल्लब्धेन साध्यभूतप्रकृतराशेः १८ = विरलनराशिं ६४ भक्त्वा ६४/१६ तल्लब्ध ४ प्रमितेष्टराशि ६५ = । ६५ = । ६५ = । ६५ = अन्योन्याभ्यासेन साध्यभूतप्रकृतधनमे- कट्ठगाशिर्भवति १८ = एवमर्थसंदृष्ट्यापि --एतावतां द्विकानामभ्यासे यदि लोको जायते तदा एतावतां द्विकानामभ्यासे को राशिर्जायते इति त्रैराशिकं रचयित्वा प्र दे २ वि छे छे छे ९ । a । फ इष्टराशिः । ≡ ३ प्रकृतस्य वि सा--प इ दे २ प्रकृतधनमानीयते— देयस्य रूपद्वयस्य अर्धच्छेदेनैकेन फलभूतेष्टराशेर्लोकस्यार्धच्छेदान् भक्त्वा तेन लब्धेनेच्छाराशिभूतप्रकृतधनार्धच्छेदे विरलनराशौ भक्ते सति सा — प / छे छे छे ९ । ९ / a यल्लब्धं लोकार्धच्छेदभक्त किंचिन्न्यूनसंख्यातपल्यप्रमितं प ९— / छे छे छे ९ / a एतावतां लोकानामभ्यासे कृते यो लब्धराशिः सो- ऽसंख्यातलोकमात्रो भवति- ≡ a । अस्य प लोकच्छेदभक्तन्यूनप्रमाण प / a छे छे छे ९ / a मात्रलोकानामन्योन्याभ्यासेन समुत्पन्नासंख्यात- लोकं स्तोकत्वात् सदृष्ट्या नवांकं कृत्वा न्यूनराशिमात्रद्विकैर्जनितत्वात् वारं कुर्यात् । सोयमसंख्यातलोको बादरतेजस्कायिकराशिर्भवति ≡ a / ९ । अस्य च भागहारः अप्रतनाप्रतिष्ठितप्रत्येकादिजीवराशीनां सर्वभागहारेभ्योऽसंख्यातलोकगुणितः तत्तन्न्यूनराशीनामावल्य-

संख्येयगुणहीनक्रमेण सद्भावात् । तत एव प्रागुक्तत्रैराशिकक्रमेणागता अप्रतिष्ठितादिराशयोऽसंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरे असंख्यातलोकगुणितक्रमा भवंति । अत्रासंख्यातलोकस्यावल्यसंख्येभागस्य च संदृष्टिभूतो नवांको भाज्याहारत्वहुत्वं ज्ञात्वा विवेचनीयः ॥ २१५ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु कायप्ररूपणानामाष्टमोऽधिकारः ॥ ८ ॥

मं० प्र०—देयराश्यर्धच्छेदैः १ फल ६५ = मूतेष्टराश्यर्धच्छेदान् १६ भक्त्वा तल्लब्धेन १६ साध्यमूत १८ = प्रकृतराशेर्विरलनराशिं ६४ भक्त्वा तल्लब्धमितेष्ट ६५ = राश्यन्योन्यगुणकारे उत्पन्नः १८ = प्रकृतराशिर्भवति एवमर्थसंदृष्ट्या एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने प्र दे २ वि छे छे छे ९ a यद्ययं राशिरुत्पद्यते फ इष्ट ≡ तदा एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने को राशिरुत्पद्यते इ दे २ वि. स. प १ ९ त्रैराशिकं कृत्वा दिण्णच्छेदेण इत्यादि करणसूत्रोक्तविधानेन लब्धः लोकार्धच्छेदविभक्तकिंचिदूनसंख्यातपल्यस्य प ᑯ-। छे छे छे ९ a यावंति रूपाणि तावतो वारान् लोकानां परस्परगुणकारे सति उत्पन्नः असंख्यातलोकमात्रः बादरतेजस्कायिकजीवराशिर्भवति ≡ a ९ लोकच्छेदभक्तमूनप्रमाणं विरलयित्वा तद्रूपमात्रान् वारान् लोके अन्योन्यसंगुणिते यः असंख्यातलोक उत्पन्नः तत्प्रमाणो भागहार इति ज्ञातव्यं । स च सर्वभागहारेभ्योऽधिकः । एवमप्रतिष्ठितप्रत्येकादिराशीनामर्धच्छेदान् ऊनप्रमाणानि च ज्ञात्वा उक्तत्रैराशिकविधानेन असंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरमसंख्यातलोकगुणिताः तत्तद्राशयस्तत्तद्भागहाराश्च असंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरमसंख्यातलोकगुणहीना आनेतव्याः । अत्रासंख्यातलोकस्य आवल्यसंख्यातभागस्यापि सद्दृष्टिर्नवाकः तथापि तयोर्भाज्यराश्यल्पबहुत्वे वीक्ष्य विवेचनीयः ॥ २१५ ॥

इतिश्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ कायमार्गणाप्ररूपणानामाष्टमोऽधिकारः ॥८॥

स. चं.–देय राशिके अर्धच्छेदका प्रमाण करि जे फलराशिके अर्धच्छेद प्रमाण राशिविषैं विरलन राशि रूप कहे तिनिका भाग दीएं जो प्रमाण आवे तीहि करि इच्छाराशिरूप प्रकृतराशिविषैं जो विरलन राशिका प्रमाण कह्या ताकौं भाग दीएं जो प्रमाण आवे तितना जायगा फल राशिरूप जो इष्ट राशि ताकौं मांडि परस्पर गुणें जो प्रमाण आवैं तितनां लब्धराशिरूप प्रकृतिधनका प्रमाण हो है सो इहां देय राशि दोय ताका अर्धच्छेद एक तीहिंका जे फलराशि पणट्ठीके अर्धच्छेद प्रमाण राशिविषै विरलन राशिरूप कहे सोलह तिनिकौं भाग दीए सोलह ही पाए इनिका साध्यभूत राशिका इच्छाराशिविषैं कह्या जो विरलन राशि चौंसठि ताकौं भाग दीए च्यारि पाए सो च्यारि जायगा फलराशिरूप पणट्ठी मांडि ६५५३६। ६५५३६। ६५५३६। ६५५३६। परस्पर गुणें लब्धराशि एकट्ठी प्रमाण हो है अैसैं ही यथार्थ कथन जानना। जो पूर्वै गणित कथनविषैं लोकके अर्धच्छेदनिका जेता परिमाण कह्या है तितने दूवे मांडि परस्पर गुणें लोक होइ तौ इहां अग्निकायिक राशिके अर्धच्छेद प्रमाण दूवे मांडि परस्पर गुणे कितने लोक हौंहि? अैसैं त्रैराशिककरि इहां प्रमाण राशिविषैं देय राशि दोय, विरलन राशि लोकका अर्धच्छेदराशि, अर फलराशि लोक अर इच्छाराशि विषै देय राशि दोय, विरलन राशि अग्निकायिक राशिके अर्धच्छेद प्रमाण जानना। तहां लब्धराशि ल्यावनेकौं देय राशि दोय ताका अर्धच्छेद एक ताका भाग फलराशि जो लोक ताका अर्धच्छेदरूप प्रमाण राशिविषैं विरलन राशि है ताकौं भाग दीएं लोकका अर्धच्छेद मात्र पाए। इनका साध्यभूत अग्निकायिक राशिका अर्धच्छेदरूप जो इच्छाराशि ताविषै विरलनराशि अग्निकायिक राशिके अर्धच्छेद तिनिकौं भाग दीएं जो प्रमाण आया सो किछू घाटि संख्यात पल्यकौं लोकका अर्धच्छेदराशिका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना यहु प्रमाण आया सो इतने लोक मांडि परस्पर गुणें जो असंख्यात लोकमात्र परिमाण भया सोई लब्धिराशिरूप वादर अग्निकायिक राशिका प्रमाण इहां जानना। इहां किंचिदून संख्यात पल्य प्रमाण लोकनिकौं परस्पर गुणें जो महत असंख्यात लोक मात्र परिमाण आया सो तौ भाज्य राशि जानना। अर लोकका अर्धच्छेद प्रमाण

लोकनिकौं परस्पर गुणें जो छोटा असंख्यात लोकमात्र परिमाण आया सो भागहार जानना। भागहारका भाग भाज्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितना बादर अग्निकायिक जीवनिका प्रमाण जानना। बहुरि इहां अग्निकायिक राशिविषैं जो भागहार कह्या सो अगले अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनिविषैं जो भागहारका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार कीएं आवै तिनि सबनितैं असंख्यात लोक गुणा जानना। जातैं सागरमेंस्यों जो जो राशि घटाया सो सो क्रमतैं आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा घाटि है तातैं प्रमाण राशि फलराशि पूर्वोक्तवत् स्थापि अर इच्छाराशिविषैं विरलन राशि अपने अपने अर्धच्छेद प्रमाण स्थापि पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशिककरि अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशि भी सामान्यपनैं असंख्यात लोकमात्र हैं तथापि उत्तर उत्तर राशि असंख्यात लोक गुणा जानना। भागहार जहां घटता होइ तहां राशि बंधता होइ सो इहां भागहार असंख्यात लोक गुणा घटता क्रमतैं भया तातैं राशि असंख्यात लोक गुणा भया इहां असंख्यात लोक वा आवलीका असंख्यातवां भागकी संदृष्टि स्थापि अर्थ संदृष्टिका स्थापन है। सो आगैं संदृष्टि अधिकारविषै लिखेंगे ॥ २१५ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचितगोम्मटसारद्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रन्थकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा इस भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं कायप्ररूपणा नामा आठवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ ८ ॥

जी० प्र०—

अथ योगमार्गणाप्ररूणाधिकार ॥ ९ ॥

कल्याणैः पंचभिर्भांतं नवकेवललब्धिभिः ।
शतेंद्रपूज्यपादाब्जं पुष्पदंतं नमाम्यहं ॥ ९ ॥

अथ शास्त्रकारो योगमार्गणां प्रक्रममाणस्तदादौ योगस्य साधारणलक्षणमाह—

म० प्र०—

श्रीपुष्पदंततीर्थेश कुंदपुष्पाभदंतकं ।
वंदेहं पुष्पदतौघप्रभाभ्यर्धिवपुःप्रभं ॥ ९ ॥

अथ शास्त्रकारो योगमार्गणां प्रक्रममाणस्तावद्योगस्य सामान्यलक्षणमाह—

स० चं०—

कुंदकुसुमसम दंतजुत पुष्पदंत जिनराय ।
वंदौ ज्योति अनंतमय पुष्पदंतवतकाय ॥ ९ ॥

आगैं शास्त्रकर्ता योगमार्गणाका निरूपण करैं हैं तहां प्रथम ही योगका सामान्य लक्षण कहै हैं—

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्य ।
जीवस्स जा हु सत्ती कम्मागमकारणं जोगो ॥ २१६ ॥

पुद्गलविपाकिदेहोदयेन मनोवचनकाययुक्तस्य ।
जीवस्य या हि शक्तिः कर्मागमकारणं योगः ॥ २१६ ॥

जी० प्र०—पुद्गलविपाकिनः अंगोपांगनामकर्मणः, देहस्य च शरीरनामकर्मणः, उदयेन मनोवचनकायपर्याप्तिपरिणतस्य कायवाग्मनोवर्गणावलंबिनः संसारिजीवस्य लोकमात्रप्रदेशगता कर्मादानकारणं या शक्तिः सा भावयोगः । तद्विशिष्टात्मप्रदेशेषु यः किंचिच्चलनरूपपरिस्पंदः स द्रव्ययोगः । कर्मेतिलक्षणेन कर्मनोकर्मवर्गणारूपपुद्गलस्कंधस्य ज्ञानावरणादिकर्मौदारिकादिनोकर्मभावेन परिणमनहेतुर्यत्सामर्थ्यं आत्मप्रदेशपरिस्पंदश्च योग इत्युच्यते । अंगोपांगशरीरनामकर्मोदयेन मनोवर्गणागतपुद्गलस्कंधानां आहारवर्गणायातनोकर्मपुद्गलस्कंधानां च संबंधेन जीवप्रदेशानामग्निसंयोगेन लोहस्य दहनशक्तिवत् कर्मनोकर्मादानशक्तिः सामर्थ्यमुत्पद्यते इति भावार्थः ॥२१६॥ अथ योगविशेषमाह—

म.प्र. संसारिणो जीवस्य कर्मागमकारणं कर्मेत्युपलक्षणात् कर्मनोकर्मवर्गणारूपपुद्गलस्कंधस्य ज्ञानावरणादिकर्मभावेन औदारिकशरीरादिनोकर्मभावेन च परिणमनहेतुर्या शक्तिः--सामर्थ्यं तद्विशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदश्च स योग इत्युच्यते । किंविशिष्टस्य जीवस्य ? मनोवचनकाययुक्तस्य मनोभाषाशरीरपर्याप्तिपरिणतस्य मनोवाक्कायवर्गणासहितस्य च । केन हेतुना ? पुद्गलविपाकिदेहोदयेन हेतुना, पुद्गलविपाकिनः यथसभवमंगोपांगनामकर्मणः, देहस्य--औदारिकादिशरीरनामकर्मणश्च, उदयेन--फलदानपरिणत्या, अगोपांगशरीरनामकर्मोदयागतपुद्गलस्कंधकर्मनोकर्मतापरिणमनहेतुः शरीरभाषामनःपर्याप्तिपरिणतस्य कायवाग्मनोवर्गणावलंबिनः संसारिजीवस्य लोकमात्रप्रदेशगता या शक्तिः स भावयोगः तद्विशिष्टात्मप्रदेशानां यः परिस्पंदः किंचिच्चलनरूपः स द्रव्ययोग इति तात्पर्यार्थः॥२१६॥

अथ योगविशेषलक्षणमाह---

सं० च०---संसारी जीवकै कर्म जो ज्ञानावरणादिक कर्म अर उपलक्षणतैं औदारिकादिक नोकर्म तिनिका आगम कहिए कर्म नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिका कर्म नोकर्मरूप परिणमना ताकौं कारणभूत जो शक्ति बहुरि उस शक्तिका धारी जो आत्मा ताके प्रदेशनिका चंचलरूप होना सो योग कहिए है। कैसा है जीव? पुद्गलविपाकी जो यथासंभव अंगोपांग नाम प्रकृति वा देह जो शरीर नाम प्रकृति ताका उदय जो फल देना रूप परिणमना ताकरि मन वा भाषा वा शरीररूप जे पर्याप्ति तिनिकौं धरै है। मनोवर्गणा भाषावर्गणा कायवर्गणाका अवलंबनकरि संयुक्त है। इहां अंगोपांग वा शरीर नामा नामकर्मके उदयतैं शरीर भाषा मनःपर्याप्तिरूप परिणम्या काय भाषा मन वर्गणाका अवलंबनयुक्त आत्मा ताकौं लोकमात्र सर्व प्रदेशनिविषैं प्राप्त जो पुद्गलस्कंधनिकौं कर्म नोकर्मरूप परिणमावनेकौ कारणभूत शक्ति समर्थता सो भाव योग है। बहुरि उस शक्तिका धारी आत्माके प्रदेशनिविषै किछू चलनरूप सकंप होना सो द्रव्य योग है। इहां यहु अर्थ जानना जैसैं अग्निके संयोगकरि लोहके जलावनेकी शक्ति हो है तैसै अंगोपांग शरीर नामा नामकर्मके उदयकरि मन वर्गणा वा भाषा वर्गणाका आए पुद्गल स्कंध अर आहार वर्गणाका आए नोकर्म पुद्गलस्कंध तिनिका संबंधकरि जीवके प्रदेशनिके कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्ति समर्थता हो है॥ २१६॥ आगैं योगनिका विशेष लक्षण कहै हैं--

मणवयणाण पउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।

तण्णामं होदि तदा तेहिं दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मनोवचनयोः प्रवृत्तयः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु ।
तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगाद्धि तद्योगाः ॥ २१७ ॥

जी० प्र०—सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु याः प्रवृत्तयः मनोवचनयोः तदा ज्ञानवाक्प्रयोगजनने जीवप्रयत्नरूपप्रवृत्तीनां सत्यादि तन्नाम भवति सत्यमन इत्यादि । तु-पुनः तैः सत्याद्यर्थैः सद्योगात्-संबधात्, खलु-स्फुटं, ताः मनोवचनप्रवृत्तयः, तद्योगाः--सत्यादिविशेषणविशिष्टाः, चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाश्च भवंति । सम्यग्ज्ञानविषयोर्थः सत्य यथा जलज्ञानविषयो जल स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावात् । मिथ्याज्ञानविषयोर्थः असत्यः यथा जलज्ञानविषयो मरीचिकाचक्रे जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहात् । सत्यासत्यज्ञानविषयोर्थः उभयः सत्यासत्य इत्यर्थः यथा जलज्ञानविषयः कमंडलुनि घटः । अत्र जलधारणार्थक्रियायाः सद्भावात् सत्यतायाः घटाकारविकलत्वादसत्यतायाश्च प्रतीतेः । अयं गौणार्थः अग्निर्माणवक इत्यादिवत । अनुभयज्ञानविषयोर्थः अनुभयः सत्यासत्यार्थद्वयेनावक्तव्यः यथा किंचित्प्रतिभासते । सामान्येन प्रतिभासमानोऽर्थः स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावात् सत्य इति वक्तुं न शक्यते । सामान्यप्रतिभासात् असत्य इत्यपि वक्तुं न शक्यते इति जात्यंतरं अनुभयार्थः स्फुटं चतुर्थो भवति । एव घटे घटविकल्पः सत्यः, घटे पटविकल्पोऽसत्यः, कुंडिकायां जलधारणे घटविकल्पः उभयः, आमंत्रणादिषु अहो देवदत्त इति विकल्पः अनुभयः । कालेनैव गृहीता सा कन्या ।किं मृत्युना अथवा धर्मणा इत्यनुभयः ॥ २१७ ॥ सत्यार्थविषयो मनोयोग इत्यादिविशेषलक्षणं गाथाचतुष्टयेन कथयति—

मं० प्र०--सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु मनोवचनयोः याः प्रवृत्तयः तत्तज्ज्ञानवाक्प्रयोगजनने आत्मनः प्रयत्नास्तासां प्रवृत्तीनां तन्नाम भवति तु-पुनः, तैर्योगात्--सत्याद्यर्थैः सबंधात्, खलु-स्फुटं, ता. मनोवचनप्रवृत्तयः, तद्योगाः-सत्यादिविशेषणविशिष्टाश्चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाश्च भवति । सम्यग्ज्ञानविषयोर्थः सत्यः, यथा जलज्ञानविषयो जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावात् । मिथ्याज्ञानविषयोऽर्थः असत्यः यथा जलज्ञानविषयो मरीचिकाचक्रे जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहात् । सत्यासत्यज्ञानविषयोर्थः उभयः सत्यासत्यरूपः यथा घटज्ञानविषयः कमंडलुनि घटः अत्र जलधारणार्थक्रियासद्भावात् सत्यता, घटाकारविकलत्वात् असत्यता च प्रतीयते इति अयमेव गौणार्थः । अग्निर्माणवक इत्यादिरूपः अनुभयज्ञानविषयोर्थः अनुभयः सत्यासत्यत्वाभ्यामवक्तव्यः यथा किंचित्प्रतिभासत इति सामान्येन प्रतिभासमानोऽर्थः स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावात् सत्य इति वक्तु न शक्यते सामान्यप्रतिभासादसत्य इति वक्तुं न शक्यते इति जात्यंतरमनुभयार्थो नाम चतुर्थो भेद इति ॥ २१७ ॥ सत्यार्थविषयो मनोयोगः सत्यमनोयोग इत्यादिविशेषलक्षणं प्ररूपयितुं गाथाचतुष्टयमाह—

सं० च०—सत्य असत्य उभय अनुभय रूप जे पदार्थ तिनिविषैं जो मन वचनकी प्रवृत्ति होइ उनके जा-

ननेकौं वा कहनेकौं जीवका प्रयत्नरूप प्रवृत्ति होइ सो सत्यादिक पदार्थका संबंधतैं सो सत्य असत्य उभय अनुभय है विशेषण जिनिका ऐसे च्यारि प्रकार मनोयोग अर च्यारिप्रकार वचनयोग जानने । तहां यथार्थ जैसाका तैसा सांचा ज्ञानगोचर जो पदार्थ होइ ताकौं सत्य कहिए जैसैं जलका जाननाके गोचर जल होइ जातैं स्नान पानादिक जल संबंधी क्रिया उसतैं सिद्ध हो है तातैं सत्य कहिए । बहुरि अयथार्थ अन्यथारूप पदार्थ जो मिथ्याज्ञानके गोचर होइ ताकौं असत्य कहिए जैसैं जलका जाननाके गोचर भाडली होइ जातैं स्नान पानादिक जल संबंधी क्रिया भाडलीस्यों सिद्ध न हो हैं तातैं असत्य कहिए । बहुरि यथार्थ वा अयथार्थ रूप पदार्थ जो उभय ज्ञान गोचर होइ ताकौं उभय कहिए जैसैं कमंडलु विषैं घटका ज्ञान होइ जातैं घटकी ज्यों जलधारणादि क्रिया कमंडलुस्यों सिद्ध हो है तातैं सत्य है । बहुरि घटकासा आकार नाहीं है तातैं असत्य है ऐसैं यहु उभय जानना । बहुरि जो यथार्थ अयथार्थका निर्णय करि रहित पदार्थ सो अनुभय गोचर होइ ताकौं अनुभय कहिए । सत्य असत्यरूप कहने योग्य नांहीं जैसैं यह किछू प्रतिभासै है ऐसैं सामान्यरूप पदार्थ प्रतिभास्या तहां उस पदार्थकरि कौन क्रिया सिद्ध हो है ऐसा विशेष निर्णय न भया तातैं सत्य भी न कह्या जाय बहुरि सामान्यपनैं प्रतिभास्या तातैं असत्य भी न कह्या जाय तातैं याकौं अनुभय कहिए। ऐसैं च्यारि प्रकार पदार्थनिविषैं मनकी वा वचनकी प्रवृत्ति होइ सो च्यारि प्रकार मनोयोग वा च्यारि प्रकार वचनयोग जानने । इहां घटविषैं घटकौ विकल्प सो सत्य अर घटविषैं पटका विकल्प सो असत्य, अर कुंडीविषैं जलधारन करि घटका विकल्प सो उभय अर संबोधन आदिविषैं हे देवदत्त इत्यादि विकल्प सो अनुभय जानना ॥ २१७ ॥
आगैं सत्य पदार्थ हैं गोचर जाकैं ऐसा मनोयोग सो सत्य मनोयोग इत्यादिक विशेष लक्षण च्यारि गाथानि करि कहैं हैं–

सब्भावमणो सच्चो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।

तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥ २१८ ॥

सद्भावमनः सत्यं यो योगः स तु सत्यमनोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥ २१८ ॥

जी० प्र०—सद्भावः सत्यार्थः, तद्विषयं मनः सत्यमनः, सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः । तेन सत्यमनसा जनितो योगः—प्रयत्नविशेषः स सत्यमनोयोगः । तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजनितशक्तिरूपभावमनसा जनितप्रयत्नविशेषः मृषा—असत्यमनोयोगः । उभय—सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः उभयमनोयोगः इति हे भव्य! त्वं जानीहि ॥ २१८ ॥

म० प्र०—सद्भावः—सत्यार्थः तद्विषयं मनः—सत्यमनः सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः तेन जनितो यो योगः—प्रयत्नविशेषः स सत्यमनोयोगः । तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजननशक्तिरूपभावमनसा जनित प्रयत्नविशेषः मृषा- असत्यमनोयोगः । उभयः सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः उभयमनोयोग इति हे भव्य? जनीहि ॥ २१८॥

सं० च०—'सद्भावः' कहिए सत्पदार्थ सो है गोचर जाका ऐसा जो मन सत्य पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति लीएं भाव मन होइ तींहि सत्यमनकरि निपज्या जो चेष्टा प्रवर्त्तन रूप योग सो सत्यमनोयोग कहिये। बहुरि ऐसैं ही विपरीत असत्य पदार्थरूप विषयके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति रूप जो भावमन ताकरि जो चेष्टा प्रवर्तन रूप योग होइ सो असत्य मनोयोग कहिए बहुरि युगपत् सत्य असत्य रूप पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्तिरूप जो भावमन ताकरि जो प्रवर्तन रूप योग होइ सो उभय मनोयोग कहिये ऐसैं हे भव्य ! तू जानि ।

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो ।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो ॥ २१९ ॥

न च सत्यमृषायुक्तं यत्तु मनस्तदसत्यमृषामनः ।
यो योगस्तेन भवेत् असत्यमृषा तु मनोयोगः ॥ २१९ ॥

जी० प्र०—यन्मनः सत्यमृषायुक्तं न च भवति तु-पुनः, तदसत्यमृषामनः, अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः । तेन भावमनसा जनितो यो योगः--प्रयत्नविशेषः स तु पुनः असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोयोग इत्यर्थः । इति चत्वारो मनोयोगाः कथिताः ॥ २१९ ॥

म० प्र०---यन्मनः सत्यमृषायुक्तं न च नैव भवति तु--पुनः असत्यमृषामनः अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनः इत्यर्थः । तेन जनितो यो योगः प्रयत्नविशेषः स तु पुनः असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोयोग इत्यर्थः एवं चत्वारो मनोयोगाः कथिताः ॥ २१९ ॥

सं० च०—जो मन सत्य अर मृषा कहिए असत्य तींहिकरि युक्त न होइ बहुरि सत्य असत्य निर्णयकरि रहित जो अनुभय पदार्थ ताके ज्ञान उपजावनेकी शक्तिरूप जो भाव मन तींहिकरि निपज्या जो प्रवर्तनरूप योग सो सत्य असत्यरहित अनुभय मनोयोग कहिए ऐसैं च्यारि प्रकार मनोयोग कह्या ॥ २१९ ॥

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥ २२० ॥

दशविधसत्ये वचने यो योगः स तु सत्यवचोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥ २२० ॥

जी० प्र०--सत्यार्थवाचकं वचनं सत्यवचनं जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थः, स्वरनामकर्मोदयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणालम्बनात्मप्रदेशशक्तिरूपो यो भाववचनजनितो योगः प्रयत्नविशेषः स सत्यवचोयोगो भवति । तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नः असत्यवचोयोगः असत्यवाग्योगो भवति । कमंडलुनि घट इत्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्नतः स उभयवाग्योग इति भव्य! त्वं जानीहि ॥ २२० ॥

म० प्र०—जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थं स्वरनामकर्मोदयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणालम्बनात्मप्रदेशशक्तिरूपं यद्भाववचः तेन जनितो यो योगः-प्रयत्नविशेषः स सत्यवचोयोगः । तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयो वाग्व्यापारप्रयत्नः असत्यवचोयोगः । कमण्डलुनि घटोयमित्यादि-सत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्न उभयवचोयोग इति जानीहि ॥ २२० ॥

सं० च०—सत्य अर्थका कहनहारा सो सत्य वचन है। जनपदनै आदि देकरि दसप्रकार सत्यरूप जो पदार्थ तींहिविषैं वचन प्रवृत्ति करनेकौं समर्थ स्वरनामा नामकर्मके उदयतैं भया भाषा पर्याप्तिकरि निपज्या जो भाषा वर्गणा आलंबन लीएं आत्माके प्रदेशनिविषैं शक्तिरूप भाव वचनकरि उत्पन्न भया जो प्रवृत्तिरूप विशेष सो सत्यवचन योग कहिए। बहुरि तींहिस्यौं विपरीत असत्य पदार्थविषैं वचन प्रवृत्तिकौं कारण जो भाव वचन तींहिकरि जो प्रवर्तनरूप योग होइ सो असत्य वचन कहिए। बहुरि कमंडलुविषैं यहु घट है इत्यादिक सत्य असत्य पदार्थविषैं वचन प्रवृत्तिकौं कारण जो भाव वचन तींहिकरि जो प्रवर्तनरूप योग होइ सो उभय वचन योग कहिए ऐसा हे भव्य! तू जानि ॥ २२० ॥

जो णेव सच्चमोसो सो जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणी आदी ॥ २२१ ॥

यो नैव सत्यमृषा स जानीहि असत्यमृषावचोयोगः।
अमनसां या भाषा संज्ञिनामामंत्रण्यादिः ॥ २२१ ॥

जी० प्र०---यः सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति स असत्यमृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषः अनुभयवचोयोग इति हे भव्य ! त्वं जानीहि। स कः ? उत्तरार्धेन तमेवोदाहरति—अमनसां द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपचेंद्रियपर्यंतजीवानां या अनक्षरात्मिका भाषाः संज्ञिनां च आमंत्रण्याद्यक्षरात्मिकाभाषास्ताः सर्वाः अनुभयवचोयोग इत्युच्यते ॥ २२१ ॥ अथ जनपदादिदशविधसत्यमुदाहरणपूर्वकं गाथात्रयेणाह—

म० प्र०-- यः सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति स असत्यमृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषः अनुभयवचोयोग इति जानीहि। उत्तरार्धेन तमेवोदाहरति अमनसा--द्वीद्रियादीनामसंज्ञिपचेंद्रियपर्यंताना या अनक्षरात्मिका भाषा या च संज्ञिनामामंत्रण्यादिभाषा अक्षरात्मिका स सर्वोऽपि अनुभयवचोयोग इत्युच्यते ॥ २२१ ॥ अथ जनपदादिदशविधसत्यमुदाहरणपूर्वकं गाथात्रयेणाह---

सं० च०—जो सत्य असत्यरूप न होइ ऐसा पदार्थविषैं वचन प्रवृत्तिकौं कारण जो भाव वचन तींहिकरि

जो प्रवर्तनरूप योग होइ सो सत्य असत्य निर्णयरहित अनुभय वचन योग जानना। ताका उदाहरण उत्तर आधा सूत्रकरि कहै हैं—जो वेइंद्रियादिक असैनी पंचेंद्रिय पर्यंत जीवनिकैं केवल अनक्षररूप भाषा है सो अनुभय वचन योग जानना। वा सैनी पंचेंद्रिय जीवनिके आगै कहिए है जो आमंत्रणी आदि अक्षररूप भाषा सो सर्व अनुभय वचन योग जानना ॥ २२१ ॥ आगैं जनपद आदि दशप्रकार सत्यकौं उदाहरण पूर्वक तीनि गाथानिकरि कहै हैं—

जणवदसम्मदिठवणाणामे रूवे पडुच्चववहारे।
संभावणे य भावे उवमाए दसविहं सच्चं ॥ २२२ ॥

जनपदसम्मतिस्थापनानाम्नि रूपे प्रतीत्यव्यवहारयोः।
संभावनायां च भावे उपमायां दशविधं सत्यं ॥ २२२ ॥

जी० प्र०—जनपदे संवृतौ सम्मतौ वा स्थापनायां नाम्नि रूपे प्रतीत्ये व्यवहारे संभावनायां भावे उपमायां चेति दशस्थानेषु सत्यं दशविधं भवति ॥ २२२ ॥

म० प्र०—जनपदे संवृतौ सम्मतौ वा स्थापनायां नाम्नि रूपे प्रतीत्ये-व्यवहारे समावनायां भावे उपमाया च एषु दशसु विषयेषु रूढं यद् वच. तद्दशविध सत्यं ॥ २२२ ॥

सं० च०—जनपदविषैं संवृति वा सम्मितिविषैं स्थापनाविषैं नामविषै रूपविषै प्रतीत्य विषै व्यवहार विषै संभावनाविषै भावविषै उपमाविषै ऐसैं दश स्थानानिविषै दश प्रकार सत्य जानना ॥ २२२ ॥

भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो।
सेदो दिग्घो रज्झदि कूरोत्ति य जं हवे वयणं ॥ २२३ ॥

भक्तं देवी चंद्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्तः ।
श्वेतो दीर्घो रध्यते कूरमिति च यद्भवेद्वचनं ॥ २२३ ॥

जी०प्र०--जनपदेषु तत्रतत्रतत्रतनव्यवहर्तृजनानां रूढं यद्वचनं तज्जनपदसत्यं यथा महाराष्ट्रदेशे भातु भेड्, अंध्रदेशे वंटक मुकुडु, कर्णाटदेशे कूलु, द्रविडदेशे चोरु । तथा संवृत्त्या कल्पनया सम्मत्या वा बहुजनाभ्युपगमेन सर्वदेशसाधारणं यन्नाम रूढं तत् संवृतिसत्यं सम्मतिसत्यं वा, यथा अग्रमहिषीत्वाभावेऽपि कस्याश्चिद्देवीति नाम । अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना तदाश्रितं मुख्यवस्तुनो नाम स्थापनासत्यं यथा चंद्रप्रभप्रतिमा चंद्रप्रभ इति । तथा च यथा भातु इत्यादि नाम देशाद्यपेक्षया सत्यं तथा अन्यनिरपेक्षतयैव संव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्तं संज्ञाकर्म नामसत्यं यथा कश्चित् पुरुषो जिनदत्त इति । अत्र जिनैर्दत्त इति दानक्रियानिरपेक्षमेव प्रयुक्तमिदं । चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वेन रूपादिपुद्गलगुणेषु रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचनं रूपसत्यं यथा कश्चित् पुरुषः श्वेत इति । अत्र केशादीनां नीलादिवर्णांतररसादिगुणांतरसद्भावेऽप्यविवक्षितत्वात् । प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः । यथा कश्चिद्दीर्घ इति अन्यस्य ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वकथनात् । एवं स्थूलसूक्ष्मादिवचनान्यपि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि । नैगमादिनयप्राधान्यमाश्रित्य प्रवृत्तं वचनं व्यवहारसत्यं । अत्र नैगमनयप्राधान्येन यथा रध्यते कूरः पच्यते ओदनः इति । इतिशब्दः संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारदर्शनार्थः । नयव्यवहाराश्रित यद्वचनं - स्यात्सर्वं सत् स्यात् सर्वमसत् इत्यादिवाक्यं व्यवहारसत्य भवति । चशब्दः अर्थनयसमुच्चयार्थः । पच्यते ओदन इत्यत्र पाकसमाप्त्यनतरकालभावी ओदनपर्यायः पाककाले यद्यपि नास्ति तथापि तंडुलानामोदनपर्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षया ओदनपर्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षया तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धिः ॥ २२३ ॥

मं० प्र०---अनंतरगाथोक्तदशविधसत्यानां यथासंख्यमुदाहरणानि दश वक्ष्यमाणानि ज्ञातव्यानि तद्यथा--जनपदे- तत्र तत्र देशे व्यवहर्तृजनानां रूढ यद्वचः तज्जनपदसत्यं यथा महाराष्ट्रदेशे भातु, भेडु । अध्रदेशे वंटक मुकुडु । कर्णाटदेशे कूलु । द्रविडदेशे चोरु इत्यादि । संवृत्या कल्पनया संमत्या वा बहुजनाभ्युपगमेन सर्वदेशसाधारण यन्नाम रूढं तत्सवृतिसत्य संमतिसत्य च । यथा अग्रमहिषीत्वाभावे सति कस्याश्चिद्देवीति नाम । अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना तदाश्रित मुख्यवस्तुनाम संस्थापनासत्य यथा चद्रप्रभप्रतिमा चद्रप्रभ इति । तथा च यथा भक्तादिनामदेशाद्यपेक्षया सत्यं भवति तथा पुनरप्यानिरपेक्षतयैव सव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्त सज्ञाकर्म नाम सत्य यथा कश्चित्पुरुषो जिनदत्त इति अत्र जिनैर्दत्त इति दानक्रियानिरपेक्षमेव प्रयुक्तमिदं । चक्षुर्व्यवहारस्य प्रचुरत्वात् रूपादिपुद्गलगुणानां मध्ये रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचः रूपसत्य । यथा कश्चित्पुरुष श्वेत इति तत्र केशनीलादिवर्णांतराणां रसादिगुणातराणा च सद्भावेप्यविवक्षितत्वात् । प्रतीत्य- विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः यथा कश्चिद्दीर्घ इति अन्यस्य कस्यचित् ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वाभिधानात् एव स्थूलसूक्ष्मादिवचनानि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि । व्यवहारं नैगमादिनयप्राधान्यमा-

श्रित्य प्रवृत्तं यद्वचः तद् व्यवहारसत्यं तत्र नैगमनयप्राधान्येन यथा रध्यते कूरमिति पच्यते ओदन इति । इति शब्दः संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारप्रदर्शनार्थः एवंविधनयव्यवहाराश्रितं यद्वचन स्यात्सर्वं सत्, स्यात्सर्वमसदित्यादिवाक्यं तद्व्यवहारसत्यं भवेत् चशब्दः सर्वनयसमुच्यार्थः । पच्यते ओदन इत्यत्र पाकसमाप्त्यनंतरकालभावी ओदनपर्यायः पाककाले यद्यपि नास्ति तथापि तंडुलानां ओदनपर्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षया ओदनपर्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षया तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धिः ॥ २२३॥

सं० च०—दश प्रकार सत्य कह्या ताका उदाहरण अनुक्रमतें कहिए है--देशनिविषै व्यवहारी मनुष्यनिविषै प्रवृत्तिरूप वचन सो जनपद सत्य कहिए जैसे ओदनकौं महाराष्ट्रदेशविषै भातू वा भेटू कहिए। अंध्रदेशविषै वंटक वा मुकूडु कहिए । कर्णाटदेशविषै कूलु कहिए । द्राविडदेश विषै चोरु कहिए इत्यादिक जानना । बहुरि जो संवृति कहिए कल्पना वा सम्मति कहिए बहुत जीवनिकरि तैसे ही मानना सर्व देशनिविषै समान रूढरूप नाम सो संवृति सत्य कहिए वा इसहीकौं सम्मति सत्य कहिए जैसैं किसीविषै पटरानीपना न पाइए अर वाकौं देवी कहिए । बहुरि जो अन्यविषै अन्यका स्थापन करि तिस मुख्य वस्तुका नाम कहना सो स्थापना सत्य कहिए जैसैं रत्नादिककरि निर्मापित चंद्रप्रभ तीर्थंकरकी प्रतिमाकौं चंद्रप्रभ कहिए । बहुरि देशादिककी अपेक्षा भातु इत्यादिक नामसत्य है तैसैं अन्य अपेक्षारहित केवल व्यवहार निमित्त जिसका जो नाम होइ सो कहना सो नामसत्य कहिए। जैसैं किसीका नाम जिनदत्त है सो जिनभगवान करि दीया होइ ताकौं जिनदत्त कहिए सो इहां दानक्रियाकी अपेक्षा विना ही जिनदत्त नाम कहिए । बहुरि जो पुद्गलके अनेक गुण होतसंतें रूपकी मुख्यता लीएं वचन कहिए सो रूपसत्य कहिए जैसैं यहु पुरुष सुपेद है ऐसा कहिए तहां वाके केशादिक श्याम वा रसादिक अन्य गुण वाकैं पाइए है परि उनकी मुख्यता न करी । बहुरि जो विवक्षित वस्तुतैं अन्य वस्तुकी अपेक्षाकरि तिस विवक्षित वस्तुकौं हीनाधिक मान वचन कहिए सो प्रतीत्यसत्य कहिए याहीका नाम आपेक्षिक सत्य है। जैसैं यहु दीर्घ है ऐसा कहिए सो तहां किसी छोटेकी अपेक्षा याकौं दीर्घ कह्या बहुरि यातैं दीर्घकी अपेक्षा छोटा है परंतु वाकी विवक्षा न लीन्ही। ऐसैं ही स्थूल सूक्ष्मादिक कहना सो

प्रतीत्य सत्य जानना। बहुरि जो नैगमादि नयकी अपेक्षा प्रधानता लीए वचन कहिए सो व्यवहार सत्य जानना। जैसै नैगम नयकी अपेक्षाकरि ऐसा कहिए कि 'भात पचै है' सो भात तौ पचैं पीछै होगा अब तौ चावल ही हैं तथापि थोरे ही कालमें भात होना है तातैं नैगम नयकी विवक्षाकरि भात पर्याय परिणमने योग्य द्रव्य अपेक्षा सत्य कहिए। इति शब्दकरि संग्रहनयादिकका भी व्यवहार विधान जानना। नयनिका व्यवहार की अपेक्षा जैसै सर्व पदार्थ सत्त्व रूप हैं वा असत्त्व रूप हैं इत्यादिक वचन सो व्यवहार सत्य है। नैगमादि नयतैं संग्रह नयादिकका व्यवहार हो है जातैं याकौं व्यवहार सत्य कहिए॥ २२३॥

सक्को जंबूदीवं पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च।
पल्लोवमं च कमसो जणपदसच्चादिदिट्ठंता॥ २२४॥

शक्रो जंबूद्वीपं परिवर्तयति पापवर्जवचनं च।
पल्योपमं च क्रमशो जनपदसत्यादिदृष्टांताः॥ २२४॥

जी० प्र०——संभावनया असंभवपरिहारपूर्वकं वस्तुधर्मविधिलक्षणया यत्प्रवृत्तं वचनं तत्संभावनासत्यं यथा शक्रो जंबूद्वीपं परावर्तयेत् परिवर्तयितुं शक्नोतीत्यर्थः जंबूद्वीपपरिवर्तनशक्त्यसंभवपरिहारेण तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्ष सत्यमिति बीजे अङ्कुरजननादिशक्तिवचनवत्। असंभवपरिहारेण वस्तुधर्मविधिरूपसंभावनाया नियमेन तत्क्रियापेक्षा न घटते। क्रियाया बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वात्। अतींद्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः। तदाश्रितं वचनं भावसत्यं। यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यं प्रासुकं ततस्तत्सेवने पापबंधो नास्तीति पापवर्जनवचनं। अत्र सूक्ष्मप्राणिनामिंद्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्येन प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात्। समस्तातींद्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनस्य सत्यत्वादेव कारणात्। चशब्दः एवंविध युक्तभावसत्य समुच्चयार्थः। प्रसिद्धार्थसादृश्यं उपमासत्यं यथा पल्योपम पल्येन धान्याधारकुशूलेन सह उपमासदृशत्वं रोमखंडाधारतया यस्यास्ति तत्संख्यानं पल्योपममिति असंख्यातासंख्यातरोमखंडाश्रयस्य तत्प्रमाणसमयाश्रयस्य वा संख्यानविशेषस्य यथाकथंचित्पल्यसादृश्यमाश्रित्य प्रवृत्तस्य पल्योपमवचनस्य उपमासत्यत्वसिद्धेः। तथा सागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थश्चशब्दः। एवं यथाक्रम भक्तादयो जनपदसत्यादिदृष्टांता उदाहरणान्युक्तानि॥ २२४॥ अथानुभयवचनभेदान् गाथाद्वयेनाह——

मं० प्र—संभावनया असंभवपरिहारपूर्वकवस्तुधर्मविधिलक्षणया यत्प्रवृत्तं वचस्तत्संभावनासत्यं यथा शक्रो जंबूद्वीपं परावर्तयेत्–परिवर्तयितुं शक्नोतीत्यर्थः। जंबूद्वीपपरिवर्तनशक्त्यसंभवपरिहारेण तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्षं सत्यमिति बीजे अंकुरजननादिशक्तिवचनवत्। असंभवपरिहारेण वस्तुधर्मविधिरूपायाः संभावनायाः नियमेन तत्क्रियापेक्षा नहि विद्यते। क्रियाया बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वात्। अतींद्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः तदाश्रितं वचः भावसत्यं यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादि द्रव्यं प्रासुकं अतस्तत्सेवने पापबंधो नास्तीति पापवर्जवचनं। तत्र सूक्ष्मजंतूनामिंद्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्यात् प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात्, सकलातींद्रियार्थज्ञानिप्रोक्तप्रवचनस्य सत्यत्वात्। चशब्दः एवंविधानुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थः। प्रसिद्धार्थसादृश्यमुपमा तदाश्रितं वच उपमासत्यं यथा पल्योपमं। पल्येन धान्याधारेण कुसूलेन उपमा सादृश्य, रोमखंडाधारतया यस्यास्ति तत्संख्यान पल्योपममिति। असंख्यातासंख्यातरोमखंडाश्रयस्य तत्प्रमाणसमयाश्रयस्य वा संख्यातविशेषस्य यथा कथंचित्पल्यसादृश्यमाश्रित्य प्रवृत्तस्य पल्योपमवचनस्य उपमासत्यत्वसिद्धेः। चशब्द अनुक्तसागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थः एवं क्रमशः–यथाक्रम भक्तादयः जनपदसत्यादिदृष्टांताः–उदाहरणानि दश प्ररूपिताः ॥ २२४ ॥ अथानुभयवचनभेदप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

सं० च०----असंभवपरिहार पूर्वक वस्तुके स्वभावका विधानरूप लक्षण धरै जो संभावना तींहिरूप वचन सो संभावना सत्य कहिए जैसे इंद्र जंबूद्वीप पलटावनेकौं समर्थ है ऐसा कहिए तहां जंबूद्वीपकौं पलटावनेकी शक्ति संभवै नाही। ताका परिहारकरि केवल वामें ऐसी शक्ति ही पाइए है ऐसा जंबूद्वीप पलटावनेकी क्रियाकी अपेक्षारहित वचन सो सत्य है। जैसै वीजविषै अंकूरा उपजावनेकी शक्ति है सो यहु क्रियाकी अपेक्षा लीएं वचन है। जातैं असंभवका परिहारकरि वस्तु स्वभावका विधानरूप जो संभावना ताके नियमकरि क्रियाकी सापेक्षता नाही है। जातैं क्रिया है सो अनेक वाह्य कारण मिलैं उपजै है। वहुरि अतींद्रिय जो पदार्थ तिनिविषैं सिद्धांतके अनुसारि विधि निषेधका संकल्परूप जो परिणाम सो भाव कहिए तींहिनै लीएं जो वचन सो भाव सत्य कहिए जैसैं जो सूकि गया होइ वा अग्निकरि पच्या होइ वा घरटी कोल्हू इत्यादिक यंत्रकरि छिन्न कीया होइ अथवा खटाई वा लूणकरि मिश्रित हूवा होइ वा भस्मीभूत हूवा होइ वस्तु ताकौं प्रासुक कहिए याके सेवनतैं पापबंध नाहीं इत्यादिक पापवर्जनरूप वचन सो भाव सत्य कहिए। यद्यपि इनि वस्तुनिविषै इंद्रिय अगोचर सूक्ष्म जीव पाइए है तथापि आगम प्रमाणतैं प्रासुक अप्रासुकका संकल्परूप भावके आश्रित ऐसा

वचन सो सत्य है जातैं समस्त अतींद्रिय पदार्थके ज्ञानीनिकरि कह्या हूवा वचन सत्य है चकारकरि ऐसा ही और भावसत्य जानना। बहुरि जो किसी प्रसिद्ध पदार्थकी समानता किसी पदार्थकौं कहिए सो उपमा है तींहि रूप वचन सो उपमासत्य कहिए। जैसैं उपमा प्रमाणविषैं पल्योपम कह्या तहां धान भरणेका जो खास ताकौं पल्य कहिए ताकी उपमा जाकौं होइ ऐसी संख्याकौं पल्योपम कह्या सो इहां उपम सत्य है असंख्यातासंख्यात रोम खंडनिके आश्रयभूत वा तींहिं प्रमाण समयनिके आश्रयभूत जो संख्या विशेष ताके कोइ प्रकार खाडाविषैं रोम भरने करि पल्यकी समानताका आश्रय करि पल्योपम कहिए है। चकार करि सागर आदि उपमा सत्यके विशेष जानने। ऐसैं अनुक्रमतैं जनपदादिक सत्यके भोजनादिक उदाहरण क्रमतैं कहे ॥ २२४॥ आगैं अनुभय वचनके आमंत्रणी आदि भेदनिके निरूपणके निमित्त दोय गाथा कहैं हैं—

आमंतणि आणवणी याचाणि यापुच्छणी य पणवणी।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥ २२५ ॥

आमंत्रणी आज्ञापनी याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी।
प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोम्नी च ॥ २२५ ॥

जी० प्र०—आगच्छ भो देवदत्त, इत्याद्याह्वानभाषा आमंत्रणी। इदं कुरु इत्यादिकार्यनियोजनभाषा आज्ञापनी। इदं मह्यं देहीति प्रार्थना भाषा याचनी। किमेतदित्यादिप्रश्नभाषा आपृच्छनी। किं करवाणीत्यादिविज्ञापनभाषा प्रज्ञापनी। इदं वर्जयामीत्यादिपरिहरणभाषा प्रत्याख्यानी। किमिदं बलाका वा पताका वा इत्यादिसंदेहभाषा संशयवचनी। तथैव मयापि भवितव्यमित्यादि इच्छानुवृत्तिभाषा इच्छानुलोमवचनी। एकश्चशब्दः समुच्चयार्थः चरमश्चशब्दोनुक्तसमुच्चयार्थः ॥ २२५ ॥

मं० प्र०—आमंत्रणी आह्वानभाषा आगच्छ भो देवदत्त! इत्यादि। आज्ञापनी—कार्यनियोजनभाषा यथा इदं कुर्याः, इत्यादिः। याचनी—प्रार्थनाभाषा यथा इदं मे देहीत्यादिः। आपृच्छनी- प्रश्नभाषा, किमेतदित्यादिः। प्रज्ञापनी—विज्ञापनभाषा किंकरवाणीत्यादिः। प्रत्याख्यानी—परिहरणभाषा इदं वर्ज-

यामीत्यादिः । संशयवचनी संदेहभाषा किमिदं वलाका पताका वेत्यादिः । इच्छानुलोमवचनी इच्छानुवृत्तिभाषा यथा तथा भवतीत्यादिः । एकः चशब्दः प्रत्येकचशब्दसमुच्चयार्थः । चरमश्चशब्दः अनुक्तसमुच्चयार्थः ॥ २२५ ॥

सं०च०—'हे देवदत्त ! तू आव' इत्यादि बुलावनेरूप जो भाषा सो आमंत्रणी कहिए। बहुरि 'तू इस कार्यकौं करि' इत्यादि कार्य करावनेकी आज्ञारूप जो भाषा सो आज्ञापनी कहिए। तू मोकौं 'यहु वस्तु देहु' इत्यादि मांगनरूप जो भाषा सो याचनी कहिए। बहुरि 'यहु कहा है?' इत्यादि प्रश्नरूप जो भाषा सो आपृच्छनी कहिए। बहुरि 'हे स्वामी मेरी यहु वीनती है' इत्यादि किंकरकी स्वामीसौं वीनतीरूप जो भाषा सो प्रज्ञापनी कहिए। बहुरि 'मैं इस वस्तुका त्याग कीया' इत्यादि त्यागरूप जो भाषा सो प्रत्याख्यानी कहिए। बहुरि जैसैं यहु बुगलोंकी पंकति है कि ध्वजा है इत्यादि संदेहरूप जो भाषा सो संशयवचनी कहिए। बहुरि जैसैं यहु है तैसैं मोकौं भी होना इत्यादि इच्छानुसारि जो भाषा सो इच्छानुवचनी कहिए॥ २२५॥

णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवंति भासाओ।
सोदाराणं जह्मा वत्तावत्तंससंजणया॥ २२६ ॥

नवमी अनक्षरगता असत्यमृषा भवंति भाषाः।
श्रोतॄणां यस्मात् व्यक्ताव्यक्तांशसंज्ञापिकाः॥ २२६ ॥

जी० प्र०—अनक्षरगता अनक्षरात्मिका द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्यंतजीवानां स्वस्वसंकेतप्रदर्शिका भाषा नवमी पूर्वगाथोक्तानुभयभाषाष्टकापेक्षया। एवमामंत्रण्याद्याः असत्यमृषा सत्यासत्यलक्षणरहिता अनुभयभाषा भवंति। अत्र कारणमुच्यते यस्मात्कारणात् श्रोतृजनानां सामान्येन व्यक्तानां विशेषेणाव्यक्तानां अर्थावयवानां संज्ञापिकाः प्रकाशिकाः भाषा भवंति तस्मात्कारणात् सामान्यरूपेण व्यक्तार्थत्वादसत्या इति वक्तुं न शक्यते विशेषस्वरूपेण व्यक्तार्थत्वात्सत्या इत्यपि वक्तुं न शक्यते इत्यनुभयत्वं। एवं यद्यपि परा अनुभयभाषाः संभवंति (संति) तथापि ता अत्रैव नवस्वेवांतर्भावनीयाः। अथवा एतासामुपलक्षणत्वाद् व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिका अपरा अनुभयभाषा पृथगनुसर्तव्याः। अनक्षरात्मकभाषाया

सुव्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावात् 'कथमनुभयत्वमिति चेत्तन्न, द्वींद्रियादिजीवानां तद्भाषावक्तृणां सुखदुःखप्रकरणाद्यवलंबनेन हर्षाद्यभिप्रायस्य ज्ञातुं शक्यत्वेन व्यक्तत्वोपपत्तिभावात् ॥ २२६ ॥ अथ सत्यानुभयासत्योभयमनोवचनयोगानां कारण कथयति—

मं० प्र०---अनक्षरगता अनक्षरात्मिका द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्यंतानां जीवाना स्वस्वसंकेतप्रदर्शिका भाषा नवमी अनुभयभाषा पूर्वगाथोक्तानुभयभाषा-एकापेक्षया । एवमेता आमत्रण्यादयः असत्यमृषा सत्यासत्यलक्षणरहिता अनुभयभाषा भवंति । अत्र कारणमुच्यते--यस्मात्कारणात् श्रोतृणा सामान्येन व्यक्तः, विशेषेण अव्यक्तश्च अंश. वाक्यार्थायवः तयोः संज्ञापिकाः प्रकाशिका इमा भाषाः तस्मात्कारणात् सामान्यरूपेण व्यक्तार्थत्वादसत्या इति वक्तुं न शक्यते विशेषाकारेणाव्यक्तार्थत्वात् सत्या इति च वक्तु न शक्यते इत्यनुभयत्वं । यद्यप्यन्या अनुभयभाषाः सभवति ता अत्रैव नवस्त्वतर्भावनीया. । अथवा एतासा-मुपलक्षणत्वाद् व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिका अन्या अप्यनुभयभाषा पृथगनुसर्तव्याः । अनक्षरात्मकभाषाया व्यक्तार्थांशसज्ञापकत्वाभावात् कथमनुभयत्व-मिति चेत्तन्न, द्वींद्रियादिजीवाना तद्वक्तृणा सुखदु.खप्रकरणाद्यवलबनेन हर्षाद्यभिप्रायस्य ज्ञातु शक्यत्वेन व्यक्तत्वोपपत्तेः ॥ २२६ ॥ अथ सत्यानुभया-सत्योभयमनोवचनयोगाना कारण प्ररूपयति -

सं० च०—आठ भाषा तौ आगैं कहीं अर नवमी अनक्षररूप बेइंद्रियादिक असैनी जीवनिकैं जो भाषा हो है अपने अपने समस्यारूप संकेतकी प्रकट करणहारी सो अनुभय भाषा जाननी। ऐसैं सत्य असत्य लक्षण रहित आमंत्रणी आदि अनुभय भापा जाननी। इनिविषैं सत्य असत्यका निर्णय नाहीं सो कारण कहैं हैं जातैं ऐसे वचननिका सुननेवालाकै सामान्यपनाकरि तौ अर्थका अवयव प्रगट हूवा तातैं असत्य न कही जाइ। ब-हुरि विशेषपनाकरि अर्थका अवयव प्रगट न हूवा तातैं सत्य भी न कह्या जाय तातैं अनुभय कहिए जैसैं कही 'तू आव' सो इहां सभी सुननेवालोंने सामान्यपनैं जान्या कि बुलाया है परंतु वह आवैगा कि न आवैगा ऐसा विशेष निर्णय तौ उस वचनमैं नाहीं तातैं इसकौं अनुभय काहिए। ऐसैं सबका जानना। बहुरि अन्य भी अनु-भय वचनके भेद हैं तथापि इन भेदनिविषैं गर्भित जाननें। अथवा ऐसैं ही उपलक्षणतैं ऐसी ही व्यक्त अव्यक्त वस्तुका अंशकी जनावन हारी और भी अनुभय भाषा जुदी जाननी। इहां कोऊ कहैगा कि अनक्षर भाषाका तौ सामान्यपना भी व्यक्त नाही हो है याकौं अनुभय वचन कैसै काहिए? ताकौं उत्तर—कि अनक्षर भाषा वाले जी-वनिका संकेतरूप वचन हो है तिसतैं उनका वचनकरि उनके सुख दुःख आदिका अवलंबनकरि हर्षादिक रूप

अभिप्राय जानिए है तातैं अनक्षर शब्दविषैं भी सामान्यपनाकी व्यक्तता संभवै है ॥ २२६ ॥ आगे ए मन वचन योगके भेद कहे तिनिका कारण कहै हैं—

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मनोवचनयोर्मूलनिमित्तं खलु पूर्णदेहोदयस्तु ।
मृषोभययोर्मूलनिमित्तं खलु भवत्यावरणं ॥ २२७ ॥

जी० प्र०—सत्यमनोयोगस्य सत्यवाग्योगस्य अनुभयमनोयोगस्य अनुभयवचनयोगस्य च पर्याप्तनामकर्मोदयः शरीरनामकर्मोदयश्च खलु स्फुटं मूलनिमित्तं प्रधानकारणं भवति । सामान्यस्य विशेषाविनाभावित्वेन मनोवचनसामान्यग्रहणेन तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धमेव । अथवा मोसुभयाणमिति कंठोक्तत्वात् शेषसत्यानुभयमनोवचनयोः पारिशेषिकन्यायाद् ग्रहणं भवति । आवरणस्य मंदोदये विद्यमाने असत्यजनकत्वाभावात् मृषोभयोः असत्यमनोवाग्योगयोः उभयमनोवाग्योगयोश्च आवरणतीव्रानुभागोदय एव मूलकारणं भवति खलु-स्फुटं। अत्रायं विशेषः । स कः ? तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणं असत्यमनोवाग्योगनिमित्तं । तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणं उभयमनोवाग्योगनिमित्तमिति जानीहि । दर्शनचारित्रमोहोदययोः असत्योभययोगकारणत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्तन्न, मिथ्यादृष्टेरिव असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतस्यापि तद्योगसद्भावात् । सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु सत्यासत्ययोगव्यवहारस्यावरणमंदतीव्रानुभागोदय एव कारणमिति प्रवचनप्रसिद्धेः । तु पुनः केवलिनि सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः । अयोगकेवलिनि शरीरनामकर्मोदयाभावेन योगाभावात् सत्यानुभयव्यवहारोऽपि नास्ति इति सुव्यक्तं । सयोगकेवलिदिव्यध्वनेः कथं सत्यानुभयवाग्योगत्वमिति चेत्तन्न तदुत्पत्तावनक्षरात्मकत्वेन श्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धेः । तदनंतरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वेन सत्यवाग्योगत्वसिद्धेश्च तस्यापि तदुभयत्वघटनात् ॥ २२७ ॥ अथ सयोगकेवलिनि मनोयोगसंभवप्रकारं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—सत्यमनोयोगस्य सत्यवाग्योगस्य अनुभयमनोयोगस्य अनुभयवाग्योगस्य च पर्याप्तनामकर्मोदयः शरीरनामकर्मोदयश्च खलु-स्फुटं, मूलनिमित्तं प्रधानकारण भवति । सामान्यस्य विशेषाविनाभावित्वेन मनोवचनसामान्यग्रहणेन तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धं अनपवादत्वात् । आवरणस्य मंदोदयत्वात् सतोऽप्यसत्यत्वजनकत्वाभावात् मृषोभयोः असत्यमनोवाग्योगयोः उभयमनोवाग्योगयोश्च तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरण मूलनिमित्तं खलु भवति । अयं

तु विशेषः—तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणमसत्यमनोवाग्योगकारणं । तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणमुभयमनोवाग्योगकारणमिति । दर्शनचारित्रमोहोदययोरसत्योभययोगकारणत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्तन्न, मिथ्यादृष्टिरिवासंयतसम्यग्दृष्टेः संयतस्यापि तद्योगसद्भावात् । सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु सत्यासत्ययोगव्यवहारस्य आवरणमंदतीव्रानुभागोदयजनितत्वेन प्रवचनप्रसिद्धत्वात् । केवलिनि तु सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः । अयोगकेवलिनि शरीरनामकर्मोदयाभावेन योगाभावात् सत्यानुभयव्यवहारो नास्तीति सुव्यक्तं । सयोगकेवलिनां दिव्यध्वनेः कथ सत्यानुभयवाग्योगत्व ? इति चेत्तन्न उत्पत्तौ अनक्षरात्मकतया श्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धेः तदनंतरं श्रोतॄणामभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वात् सत्यवाग्योगसिद्धेश्च ॥ २२७ ॥ अथ सयोगकेवलिनि मनोयोगसंभवप्रकारं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

सं० च०---सत्यमनोयोग वा अनुभय मनोयोग बहुरि सत्यवचन योग वा अनुभय वचन योग इनिका मुख्य कारण पर्याप्तनामा नामकर्मका उदय अर शरीरनामा नामकर्मका उदय जानना। जातैं सामान्य है सो विशेष विना न हो है तातैं मन वचनका सामान्य ग्रहण हूवा तहां उसहीका विशेष जो है सत्य अर अनुभय ताका ग्रहण सहज ही सिद्ध भया। अथवा असत्य उभयका आगैं निकट ही कथन है तातैं इहां अवशेष रहे सत्य अनुभय तिनिका ही ग्रहण करना। बहुरि आवरणका मंद उदय होतैं असत्यपनाकी उत्पत्ति नाहीं हो है। तातैं असत्य वा उभय मनोयोग अर वचनयोगका मुख्यकारण आवरणका तीव्र अनुभागका उदय जानना। इसहू विषैं इतनां विशेष है जो तीव्रतर आवरणके अनुभागका उदय असत्य मन वचनकौं कारण है अर तीव्र आवरणके अनुभागका उदय उभय मन वचनकौं कारण है। इहां कोऊ कहै कि असत्य वा उभय मन वचनका कारण दर्शन चारित्र मोहका उदय क्यों न कहौ ? ताका समाधान-कि असत्य अर उभय मन वचन योग मिथ्यादृष्टीवत् असंयत सम्यग्दृष्टीकैं वा संयमीकैं भी पाइए तातैं तू कहै सो बनै नाहीं तातैं सर्वत्र मिथ्यादृष्टी आदि जीवनिके सत्य असत्य योगका कारण मंद वा तीव्र आवरणके अनुभागका उदय जानना। केवलीकैं सत्य अनुभय योगका सद्भाव सर्व आवरणके अभावतैं जानना। अयोग केवलीकैं शरीर नामा नाम कर्मका उदय नाहीं तातैं सत्य अर अनुभय योगका भी सद्भाव नाहीं है। इहां प्रश्न उपजै है कि—केवलीकैं दिव्यध्वनि है ताकैं सत्य-

वचनपनां वा अनुभय वचनपना कैसैं सिद्धि हो है? ताका समाधान-केवलीकै दिव्यध्वनि हो है सो होते ही तौ अनक्षर हो है सो सुनने वालोंके कर्णप्रदेशकौं यावत् प्राप्त न होइ तावत् कालपर्यंत अनक्षर ही है। तातैं अनुभय वचन कहिए। बहुरि जब सुननेवालोंका कर्णविषैं प्राप्त हो है तब अक्षर रूप होइ यथार्थ वचनका अभिप्राय रूप संशयादिककौं दूर करे है तातैं सत्य वचन कहिए। केवलीका अतिशयकरि पुद्गल वर्गणा तैसैं ही परिणमि जांय हैं ॥ २२७ ॥ आगैं सयोग केवलीकैं मनोयोग कैसैं संभवै है सो दोय गाथानिकरि कहै हैं—

मणसहियाणं वयणं दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्मि ॥ २२८ ॥

मनःसहितानां वचनं दृष्टं तत्पूर्वमिति सयोगे।
उक्तो मन उपचारेणेंद्रियज्ञानेन हीने ॥ २२८ ॥

जी० प्र०—इंद्रियज्ञानेन—मतिज्ञानेन, विहीने सयोगिनि मुख्यवृत्त्या मनोयोगाभावेऽपि उपचारेण मनोयोगोऽस्तीति परमागमे कथितः। उपचारो हि निमित्तप्रयोजनवानेव तत्र निमित्तं यथा अस्मदादेः छद्मस्थस्य मनोयुक्तस्य तत्पूर्वकं मनःपूर्वकमेव वचनं वर्णपदवाक्यात्मकवाग्व्यापारो दृष्ट इति,कारणात्। अस्मदाद्यनतिशयपुरुषदृष्टो धर्मः सातिशयपुरुषे भगवति केवलिनि कथं कल्प्यते? इति न च वाच्यं, तत्कारणस्य मुख्यमनोयोगस्य केवलिन्यभावादेव तत्कल्पनारूपोपचारः कथितः। तस्य प्रयोजनमधुना कथयति ॥ २२८ ॥

मं० प्र०—इंद्रियज्ञानेन मतिज्ञानेन हीने सयोगकेवलिनि मुख्यवृत्त्या मनोयोगाभावादुपचारेण मनोयोगोऽस्तीति परमागमे उक्तः। तस्योपचारस्य निमित्तप्रयोजनपूर्वकत्वात्। तत्र तावन्निमित्तमुच्यते-अस्मादृशां छद्मस्थानां मनःसहितानां, तत्पूर्वं-मनःपूर्वमेव, वचनं वर्णपदवाक्यात्मकवाग्व्यापारो दृष्ट इतिहेतोर्निमित्तात्। इति शब्दस्य हेत्वर्थवृत्तिसंभवात्। अस्मदादिषु अनतिशयपुरुषेषु दृष्टो धर्मः सातिशयपुरुषे भगवति कथं कल्प्यते? इति चेत्तन्न अत एव- तत्र मुख्यस्य मनोयोगस्याभावादेव तत्कल्पनारूप उपचार उक्तः। तस्य प्रयोजनमिदानीमुच्यते ॥ २२८ ॥

सं० च०—इंद्रिय ज्ञान जो मतिज्ञान तींहिकरि रहित ऐसा जु सयोग केवली तींहिविषै मुख्यपनैं तौ मन योग है नाहीं, उपचारतैं है सो उपचारविषै निमित्तका प्रयोजन है सो निमित्त इहां यहु जानना जैसैं हम आदि

छद्मस्थ जीव मनकरि संयुक्त तिनिके मनोयोग पूर्वक अक्षर पद वाक्य स्वरूप वचन व्यापार देखिए है तातै केवलीकैं भी मनयोगपूर्वक वचन योग कह्या। इहां प्रश्न—कि छद्मस्थ हम आदि अतिशय रहित पुरुषनिविषे जो स्वभाव देखिए सो सातिशय भगवान केवलीविषे कैसैं कलिपए ताका समाधान-सादृश्यपना नाहीं है इस ही वासतै छद्मस्थकै मनयोग मुख्य कह्या अर केवलीकै कल्पनामात्र उपचाररूप मन योग है ॥ २२८ ॥ सो इस कहनेका भी प्रयोजन कहै हैं—

अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणंदचंदह्मि ।
मणवग्गणखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

अंगोपांगोदयात् द्रव्यमनोऽर्थं जिनेंद्रचंद्रे ।
मनोवर्गणास्कंधानामागमनात् तु मनोयोगः ॥ २२९ ॥

जी० प्र०—जिनेंद्रचंद्रे--जिनः इंद्रो येषां ते जिनेंद्राः सम्यग्दृष्टयः, तेषां चंद्र इव चंद्रः, भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात् तस्मिन् जिनेंद्रचंद्रे अंगोपांगनामकर्मोदयेन द्रव्यमनः विकसिताष्टदलपद्माकारेण हृदयांतर्भागे भवति तत्परिणमनकारणमनोवर्गणास्कंधानामागमनात् द्रव्यमनःपरिणमनेन प्राप्तिरूपप्रयोजनात् पूर्वोक्तनिमित्तात् मुख्यभावमनोयोगाभावाच्च उपचारेण मनोयोगोऽस्तीत्युच्यते। अथवा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिरूपो भावमनोयोगः तत्समुद्भूतो मनोवर्गणानां द्रव्यमनःपरिणमनरूपो द्रव्यमनोयोगश्च अनेन गाथासूत्रेण भाषितो जातः। पूर्वोक्तोपचारस्य प्रयोजनं तु सर्वजीवदयातत्त्वार्थदेशनाशुक्लध्यानादिकमिति तुशब्देन सूचितं ॥ २२९ ॥ अथ काययोगं कथयन् प्रथमं औदारिककाययोगं निरुक्तिपूर्वकं कथयति—

मं० प्र०---जिनेंद्रचंद्रे--जिनः इंद्रो येषां ते जिनेंद्राः—सम्यग्दृष्टयः, तेषां चंद्र इव चंद्रः, भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात्, तस्मिन् सयोगकेवलिनि, अंगोपांगनामकर्मोदयाद् द्रव्यमन. विकसिताष्टदलपद्माकारं हृदतर्भागे भवति तत्परिणमननिमित्तं मनोवर्गणारूपपुद्गलस्कंधानामागमनात् द्रव्यमनःपरिणमनप्रासेः प्रयोजनात् पूर्वोक्तनिमित्तात् मुख्यभावमनोयोगाभावाच्च उपचारेण मनोयोगोऽस्तीत्युच्यते। अथवा आत्मप्रदेशाना कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिरूपो भावमनोयोगः, तत. समुत्पन्नो मनोवर्गणाना द्रव्यमनःपरिणमनरूपो द्रव्यमनोयोगश्च अनेन गाथासूत्रेणोक्त इति ज्ञातव्यः। पूर्वोक्तोपचारस्य प्रयोजनं तु सर्वजीवदयातत्त्वार्थदेशनाशुक्लध्यानादिकमिति तु शब्देन सूच्यते ॥ २२९ ॥ अथ काययोगप्ररूपणां प्रक्रममाणस्तावत्तद्भेदमौदारिककाययोगं प्ररूपयति—

संo चo—जिन है इंद्र कहिए स्वामी जिनिका ऐसे जो सम्यग्दृष्टी तिनिके चंद्रमा समान संसार आताप अर अज्ञान अंधकारका नाश करन हारा ऐसा जो सयोगी जिन तींहिविषै अंगोपांग नामा नाम कर्मके उदयतैं द्रव्य-मन फूल्या आठ पांखडीका कमलके आकार हृदयस्थानकके मध्य पाईए है। ताके परिणमनेकौं कारणभूत मन वर्गणाका आगमनतैं द्रव्य मनका परिणमन है तातैं प्राप्तिरूप प्रयोजनतै पूर्वोक्त निमित्ततैं मुख्यपनै भावमनयोगका अभाव है तथापि मन योग उपचार मात्र कह्या है। अथवा पूर्व गाथाविषै कह्या था आत्मप्रदेशनिकै कर्म नोकर्मका ग्रहणरूप शक्ति सो भाव मनयोग बहुरि याहीतैं उत्पन्न भया मनोवर्गणारूप पुद्गलनिका मनरूप परिणमना सो द्रव्य मनयोग सो इस गाथा सूत्रकरि संभवै है तातैं केवलीकै मनयोग कह्या है। तु शब्दकरि केवलीकै पूर्वोक्त उपचार कह्या तिसके प्रयोजनभूत सर्वजीवनिकी दया तत्त्वार्थका उपदेश शुक्लध्यानादि सर्व जानने ॥ २२९ ॥ आगै काययोगका निरूपण प्रारंभै है तहां प्रथम ही काय योगका भेद औदारिक काययोग ताकौं निरुक्तिपूर्वक कहै हैं—

पुरुमहदुदारुरालं एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं ।
औरालियं तमु(त्तिउ)च्चइ औरालियकायजोगो सो॥२३०॥

पुरुमहदुदारमुरालमेकार्थः संविजानीहि तस्मिन्भवं ।
औरालिकं तदुच्यते औरालिककाययोगः सः ॥ २३० ॥

जीo प्रo—उदारं उरालं पुरुमहत् स्थूलमित्यर्थः। स्वार्थे ठण् विधानात् उदारं उरालमेवौदारिकमौरालिकं। उदारे उराले वा भवमौदारिकं औरालिकं वेति भवार्थे ठण्विधानात्। औदारिकमेव उपचितपुद्गलपिंडरूपत्वात् कायः, औदारिकश्चासौ कायश्च औदारिककायः. औदारिकशरीरनामकर्मोदयसंपादित. औदारिकशरीराकारस्थूलपुद्गलस्कंधपरिणामः । वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणामादेव महत्त्वसंभवेन औदारिककाय. स्यात् । सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात् कथमस्यौदारिकत्वमिति न वाच्य, ततोऽपि सूक्ष्मतरवैक्रियिकादिशरी

रापेक्षया अस्य महत्त्वयुक्तत्वात् परमागमरूढ्या वा औदारिकत्वं संभवति। औदारिककायार्थं या आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिः सैव औदारिककाययोग इत्युच्यते तदा औदारिकवर्गणास्कंधानां औदारिककायत्वपरिणमनकारणं आत्मप्रदेशपरिस्पंदो वा औदारिककाययोग इति हे भव्य ! त्वं जानीहि इति संबोध्यते। अथवा औदारिककाय एव औदारिककाययोग इति कारणे कार्योपचारात् । अयमुपचारोऽपि निमित्तप्रयोजनवानेव । औदारिककायाद् योगः औदारिककाययोग इति निमित्तस्य तद्योगाकृष्टकर्मनोकर्मपरिणामरूपप्रयोजनस्य च संभवात् ॥ २३० ॥

अथ तन्मिश्रयोगं प्ररूपयति—

मं० प्र०—उदारं पुरु महत् स्थूलमित्येकोऽर्थः उरालशब्दो वा तदेव उदारमेव औदारिकं स्वार्थे ठण्विधानात् तस्मिन् उदारे भवं वा औदारिकं भवार्थे ठण्विधानात् औदारिकश्चासौ कायश्चासौ औदारिककायः—औदारिकशरीरनामकर्मोदयसंपादितः औदारिकशरीराकारः स्थूलपुद्गलस्कंधपरिणामः, वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणामात् महत्त्वसंभवात् । सूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात् कथमौदारिकत्वं ? इति चेत्तन्न ततः सूक्ष्मतरवैक्रियिकादिशरीरापेक्षया तेषां महत्त्वेन परमागमरूढ्या वा औदारिकत्वसंभवात् । औदारिककायार्थां या आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिः स एव औदारिककाययोग इत्युच्यते । औदारिकवर्गणास्कंधानां औदारिककायत्वपरिणमनहेतुः आत्मप्रदेशपरिस्पंदो वा औदारिककाययोग इति हे भव्य ! विजानीहि इति संबोध्यते ॥ २३० ॥ अथ औदारिकायमिश्रयोगं प्ररूपयति----

सं० च०—पुरु वा महत् वा उदार वा उराल वा स्थूल ए एकार्थ हैं सो स्वार्थविषैं ठण् प्रत्ययतैं जो उदार होइ वा उराल होइ सो औदारिक कहिए वा औरालिक भी कहिए। अथवा भव अर्थविषैं ठण् प्रत्ययतैं जो उदारविषै वा उरालविषै उत्पन्न होइ सो औदारिक कहिए वा औरालिक कहिए। बहुरि संचयरूप पुद्गलपिंड सो औदारिक काय कहिए। औदारिक शरीरनामा नामकर्मके उदयतैं निपज्या औदारिक शरीरके आकार स्थूल पुद्गलनिका परिणमन सो औदारिक काय जानना। वैक्रियिक आदि शरीर सूक्ष्म परिणमै है तिनिकी अपेक्षा यहु स्थूल है तातैं औदारिक कहिए है। इहां प्रश्न उपजै है कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि जीवनिकै स्थूलपना नाहीं है तिनिकौ औदारिक शरीर कैसे कहिए है ? ताका समाधान—इनहूतै वैक्रियिकादिक शरीर सूक्ष्म परिणमै है तातै तिनकी अपेक्षा स्थूलपना आया। अथवा परमागमविषै ऐसा रूढि है तातै समभिरूढिकरि सूक्ष्म जीवनिकैं औदारिक शरीर कह्या सो औदारिक शरीरके निमित्त आत्मप्रदेशनिकै कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्ति सो औ

दारिक काय योग कहिए है । अथवा औदारिक वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनिकौं औदारिक शरीररूप परिणमावनेकौं कारण जो आत्मप्रदेशनिका चंचलपना सो औदारिक काययोग है भव्य ! तू जानि । अथवा औदारिक काय सोई औदारिककाय योग है इहां कारणविषै कार्यका उपचार जानना । इहां उपचार है सो निमित्त अर प्रयोजन धरै है तहां औदारिक कायतैं जो योग भया सो औदारिक काय योग कहिए सो यहु तौ निमित्त बहुरि तिस योगतैं ग्रहे पुद्गलनिका कर्म नोकर्मरूप परिणमन सो प्रयोजन संभवै है । तातैं निमित्त अर प्रयोजनकी अपेक्षा उपचार कह्या है ॥ २३० ॥ आगैं औदारिक मिश्रकाययोगकौं कहैं हैं—

ओरालिय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सजोगो सो ॥ २३१ ॥

औरालिकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगः औरालिकामिश्रयोगः सः ॥ २३० ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तलक्षणमौदारिकशरीरं तदेवांतर्मुहूर्तपर्यंतमपूर्णं अपर्याप्तं तावन्मिश्रमित्युच्यते अपर्याप्तकालसंबंधिसमयत्रयसंभविकार्मणकाययोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागमरूढ्या वा अपर्याप्तं -अपर्याप्तशरीरमिश्रमित्यर्थः । ततः कारणादौदारिककायमिश्रेण सह तदर्थं वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्मनोकर्मादानशक्तिप्रदेशपरिस्पंदयोगः स शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावेन औदारिकवर्गणास्कंधानां परिपूर्णशरीरपरिणमनासमर्थः औरिककायमिश्रयोग इति विजानीहि ॥ २३१ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगं कथयति—

मं० प्र०—उक्तार्थं-प्रागुक्तलक्षण तदेव औदारिकं शरीर यावदंतर्मुहूर्तपर्यंतं अपूर्णं-अपर्याप्त तावन्मिश्रमित्युच्यते । अपर्याप्तकालसंबंधिसमयत्रयसंभविकार्मणयोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागमरूढ्या वा अपर्याप्तं शरीर मिश्रमित्यर्थः । तेन औदारिककायामिश्रेण सह तदर्थं वर्तमानो यः सप्रयोगः-आत्मनः कर्मनोकर्मादानशक्तिप्रदेशपरिस्पदसंयोगः स शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावात् औदारिकवर्गणास्कंधानां परिपूर्णशरीरपरिणमनासमर्थः औदारिककायामिश्रयोग इति जानीहि ॥ २३१ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगं प्ररूपयति—

सं० च०—पूर्वोक्त लक्षण लीएं जो औदारिक शरीर सो यावत् काल अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण न होइ अपर्याप्त होइ तावत् काल औदारिक मिश्र कहिए। मिश्र नाम अनेकके मिलनेका है सो इहां अपर्याप्त काल संबंधी तीन समयनिविषैं संभवता जो कार्माण योग ताकी उत्कृष्ट कार्माण वर्गणाकरि संयुक्त है तातैं मिश्र नाम है। अथवा परमागमविषैं ऐसैं ही रूढि है। जो अपर्याप्त शरीरकौं मिश्र कहिए सो तींहि औदारिक मिश्रकरि सहित संप्रयोग कहिए ताके अर्थि प्रवर्त्या जो आत्माकैं कर्म नोकर्म ग्रहणेकी शक्ति धरै प्रदेशनिका चंचलपना सो योग है सो शरीर पर्याप्तिकी पूर्णताके अभावतैं औदारिक वर्गणा स्कंधनिकौं संपूर्ण शरीररूप परिणमावनेकौं असमर्थ है ऐसा औदारिक मिश्र काययोग तू जानि॥ २३१॥ आगैं वैक्रियिक काय योगकौं कहै हैं—

विविहगुणइड्ढिजुत्तं विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं।
तिस्से भवं च णेयं वेगुव्वियकायजोगो सो॥ २३२॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं विक्रियं वा हि भवति विगूर्वं।
तस्मिन् भवं च ज्ञेयं वैगूर्विककाययोगः सः॥ २३२॥

जी० प्र०—विविधगुणर्धियुक्तं–विविधानां–शुभाशुभप्रकाराणां गुणानां–अणिमाद्यतिशयानां ऋद्धिः–महत्त्वं तेन सहितं देवनारकशरीरं वैगूर्वं वैक्रियिकं वा भवति। विगूर्वे–विविधगुणोयोगे भवं वैगूर्वमिति निर्वचनात्। वैक्रियिकमित्यर्थः। वैगूर्विकमिति पाठे विगूर्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्विकमिति ठण्प्रत्ययविधानात्। अथवा विविधा क्रिया विक्रिया अनेकोऽणिमादिविकार इत्यर्थः। तस्यां विक्रियायां भवं वैक्रियिकं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकं, चशब्दस्य प्रयोजनार्थसमुच्चयार्थत्वात्। यः वैगूर्विककायार्थं तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः स वैगूर्विककाययोग इति ज्ञेयः–ज्ञातव्यः। अथ वा वैक्रियिककाय एव वैक्रियिककाययोगः कारणे कार्योपचारात्, अयमप्युपचारः प्राग्वदेव निमित्तप्रयोजनयुक् ' वैक्रियिककायाद्योगः वैक्रियिककाययोगः इति निमित्तस्य तद्योगात्, कर्मनोकर्मरूपपरिणमनप्रयोजनस्य चात्रापि संभवात्॥ २३२॥ अथ वैक्रियिककाययोगसंभवस्थानांतरमाह—

मं० प्र०—विविधगुणर्धियुक्तं–विविधाना–शुभाशुभप्रकाराणां, गुणानां–अणिमाद्यतिशयानां, ऋद्धिः–महत्त्वं, तद्युक्तं देवनारकाणां शरीरं वैगूर्वं। विगूर्वे-

विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्वमिति निर्वचनात् । वैक्रियिकमित्यर्थः । वैगूर्विकमिति च पाठः । तत्र विगूर्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्विकमिति निरुक्तिः । अथवा विविधा क्रिया--विक्रिया अनेकाणिमादिविकार' तस्यां भवं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकं । चशब्देन प्रयोजनार्थ' समुच्चीयते । य एवविधवैगूर्विकका-यार्थस्तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पदः स वैगूर्विककाययोग इति वैक्रियिककाययोग इति ज्ञेयं ॥ २३२ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगस्य संभवस्थानांतरं प्ररूपयति–

सं० च०—विविध नानाप्रकार शुभ अशुभरूप अणिमा महिमा आदि गुण तिनकी ऋद्धि जो महंतता तींहिकरि संयुक्त देवनारकीनिका शरीर सो वैगूर्व कहिए वा वैगूर्विक कहिए वा वैक्रियिक कहिए। तहां विगूर्व कहिए नानाप्रकार गुण तिसविषैं भया सो वैगूर्व है अथवा विगूर्व है प्रयोजन जाका सो वैगूर्विक है। इहां ठण् प्रत्यय आया है। अथवा विविध नानाप्रकार जो क्रिया अनेक अणिमा आदि विकार सो विक्रिया तहां भया होइ वा सो विक्रिया जाका प्रयोजन होइ सो वैक्रियिक है। ऐसी निरुक्ति जानना। सो वैगूर्विक शरीरके अर्थि तिस शरीररूप परिणमने योग्य जो आहार वर्गणारूप स्कंधनिके ग्रहण करणेकी शक्ति धरै आत्मप्रदेशनिका चंचलपना सो वैगूर्विक काय योग जानना। अथवा वैक्रियिक काय सोई वैक्रियिक काय योग है इहां कारण-विषै कार्यका उपचार जानना। सो यहु उपचार निमित्त अर प्रयोजन पूर्ववत् धरै है। तहां वैक्रियिक कायतैं जो योग भया सो वैक्रियिक काय योग है। यहु निमित्त अर तिहिं योगतै कर्म नोकर्मका परिणमन होना सो प्र-योजन संभवै है॥ २३२ ॥ आगै देवनारकीकैं तौ कह्या और भी किसी किसीकै वैक्रियिक काययोग सं-भवै है सो कहै है–

वादरतेऊवाऊ,पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति ।
ओंरालियं सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं ॥२३३॥

वादरतेजोवायुपंचेंद्रियपूर्णका विगूर्वंति ।

औरालिकं शरीरं विगूर्वणात्मकं भवेद्येषां ॥ २३३ ॥

जी० प्र०---बादरा एव स्थूला एव तेजस्कायिका. वायुकायिकाश्च तथा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याः भो स्वस्वौदारिकशरीरं विगूर्वंति--विकुर्वंति वा । ते के ? येषां जीवानां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मकं विक्रियात्मकं भवेत् ते जीवाः क्रियया परिणमतीत्यर्थः । भोगभूमिजाः चक्रवर्तिनश्च पृथग् विगूर्वंति ॥२३३॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

मं.प्र.--बादराः--स्थूलाः तेजस्कायिका वायुकायिकाश्च पचेंद्रियपूर्णकाः संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताश्च तिर्यंचो मनुष्याश्च भोगभूमिजादयः, ते विगूर्वंति-वा । कथंभूतास्ते ? येषां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मक विक्रियात्मकं भवेत् ते अपृथग्विक्रियया-परिणमतीत्यर्थ । भोगभूमिजा चक्रवर्तिनश्च पृथगपि २३४ ॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

सं० च०--बादर तेजकायिक बातकायिक जीव बहुरि कर्मभूमिविषैं जे उत्पन्न भए चक्रवर्तिकौं देकरि सैनी पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच वा मनुष्य बहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य ते औदारिक शरीरकौं विक्रियारूप परिणमावै हैं। जिनिका औदारिक शरीर ही विक्रियालीएं पाइए है ते जीव अपृथक् विक्रिया रूप परिणमै हैं। अर भोगभूमियां चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करै है । जो अपने शरीरतैं भिन्न अनेक शरीरादिक विकार रूप करै सो पृथक विक्रिया कहिए । बहुरि जो अपने शरीरहीकौं अनेक विकार रूप करै सो अपृथक् विक्रिया कहिए ॥ २३३ ॥ आगैं वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहै हैं--

वेगुव्वियउत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपयोगो वेगुव्वियमिस्सजोगो सो ॥ २३४ ॥

वैगूर्विकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगो वैगूर्विकमिश्रयोगः सः ॥ २३४ ॥

जी० प्र०---उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षण तत् वैगूर्विकशरीरमेव वैक्रियिकशरीरमेव वा यावदन्तर्मुहुर्तमात्रापर्याप्तकालपर्यंतं अपरिपूर्णं शरीरपर्या-

आहरदि अणेण मुणी सुहमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तह्मा आहारगो जोगो ॥ २३९ ॥

आहरत्यनेन मुनिः सूक्ष्मानर्थान् स्वस्य संदेहे ।
गत्वा केवलिपार्श्वं तस्मादाहारको योगः ॥ २३९ ॥

जी० प्र०—यतः कारणात् आहारकर्धियुक्तः प्रमत्तमुनीश्वरः स्वस्य प्रवचनपदार्थेषु संशये जाते तद्व्यवच्छेदार्थं अनेनाहारकशरीरेण केवलिश्रीपादपार्श्वे गत्वा सूक्ष्मार्थान् आहरति गृह्णाति इत्याहारः, आहार एव आहारकशरीरं ततः कारणाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तौ सत्यां आहारकवर्गणाभिः आहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यं ॥ २३९ ॥ अथ तन्मिश्रयोगं प्ररूपयति —

मं० प्र०—मुनिः-आहारकर्धियुक्तः प्रमत्तसंयतः, स्वस्य प्रवचनपदार्थेषु सशये जाते सति तद्व्यच्छेदार्थं अनेन केवलिपार्श्वं गत्वा सूक्ष्मानर्थानाहरति-गृह्णातीत्याहारः आहार एव आहारक शरीरं यतस्तस्मात् कारणात् शरीरपर्याप्तिनिष्पत्तौ सत्या आहारकवर्गणापुद्गलस्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यः ॥ २३९ ॥ आहारककायमिश्रयोगं प्ररूपयति—

सं०च०—आहारक ऋद्धिकरि संयुक्त प्रमत्त मुनि सो पदार्थनिविषैं आपकै संदेह होतैं ताके दूरि करनेके अर्थि केवलीके चरणके निकट जाइ आपतैं अन्य जो केवली तींहिकरि जो सूक्ष्म यथार्थ अर्थकौं आहरति कहिए ग्रहण करै सो आहारक कहिए। आहारस्वरूप होइ ताकौं आहारक कहिए। सो ताकैं शरीर पर्याप्ति पूर्ण होतैं आहार वर्गणानिकरि आहारक शरीर योग्य पुद्गलस्कंधानिके ग्रहण करनेकी शक्ति धरै आत्मप्रदेशनिका चंचलपना सो आहारक काययोग जानना ॥ २३९ ॥ आगैं आहारक मिश्र काययोगकौं कहै हैं—

आहारयमुत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सजोगो सो ॥२४०॥

आहारकमुक्तार्थं विजनीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्।
यस्तेन संप्रयोगः आहारकमिश्रयोगः सः ॥ २४० ॥

जी० प्र०---यत् उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपं आहारकशरीरं तदेव यावदपर्याप्तकालांतर्मुहूर्तपर्यंतमपरिपूर्णं आहारकवर्गणायातपुद्गलस्कंधान् आहारकशरीराकारेण परिणमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते। तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वेन ताभिः सह वर्तमानो यः संप्रयोगः--अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पंदः स आहारककायमिश्रयोग इति भण्यते। तु शब्दः इममर्थं हे भव्य! त्वं जानीहि इति विशेषं कथयति ॥ २४० ॥ अथ कार्मणकाययोगमाह—

म० प्र०----उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपं, तदाहारकशरीरमेव यावदपर्याप्तकालांतर्मुहूर्तपर्यंतमपरिपूर्णमाहारकवर्गणायातपुद्गलस्कंधं आहारकशरीराकारेण परिणमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वात् तेन सह वर्तमानो यः संप्रयोगः अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पंदः स आहारककायमिश्रयोग इति भण्यते। तुशब्दः इममर्थं हे भव्य! जानीहीति विशेषं प्रदर्शयति ॥ २४० ॥ अथ कार्मणकाययोगं प्ररूपयति—

सं० च०---पूर्वोक्त लक्षण लीएं आहारक शरीर सो यावत् काल अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण न होइ आहार वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनिका आहारक शरीररूप परिणमावनेकौं असमर्थ होइ तावत् काल आहारक मिश्र कहिए। इहां पूर्वै जो औदारिक शरीररूप वर्गणा है ताके मिलापतैं मिश्रपना जानना। तींहिं आहारक मिश्रकरि सहित जो संप्रयोग कहिए अपूर्ण शक्तियुक्त आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना सो आहारक मिश्रकाययोग है भव्य! तू जानि ॥ २४० ॥ आगैं कार्माण काय योगकौं कहैं हैं—

कम्मेव य कम्मभवं कम्मइयं जो दु तेण संजोगो।
कम्मइयकायजोगो इगिविगतिगसमयकालेसु ॥२४१॥

कर्मैव च कर्मभवं कार्मणं यस्तु तेन संयोगः।
कार्मणकाययोगः एकद्विकत्रिकसमयकालेषु ॥ २४१ ॥

जी॰ प्र॰---कर्मैव--अष्टविधकर्मस्कंध एव, कार्मणं--कार्मणशरीरं, अथवा कर्मभवं--कार्मणशरीरनामकर्मोदयजातं तत् कार्मणं तेन कार्मणस्कंधेन सह वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्माकर्षणशक्तिसंगतप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स कार्मणकाययोग इत्युच्यते। स कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयविशिष्टविग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घातसंबंधिप्रतरद्वयलोकपूरणे समयत्रये च प्रवर्तते शेषकाले नास्तीति विभागः तुशब्देन सूच्यते। अनेन शेषयोगानामव्याघातविषये अंतर्मुहूर्तकालो व्याघातविषये एकसमयादि यथासंभवांतर्मुहूर्तपर्यंतकालश्च एकजीवं प्रति भणितो भवति। नानाजीवापेक्षया उवसमसुहमेत्याद्यष्टसांतरमार्गणावर्जितशेषनैरंतरमार्गणानां सर्वकालः इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥ २४१ ॥ अथ योगप्रवृत्तिप्रकारमाह----

मं॰ प्र॰----कर्मैव -अष्टविधकार्मणस्कंध एव कार्मणशरीरं, वा अथवा कर्मभवं--कार्मणशरीरनामकर्मोदयप्रभवं कार्मणशरीरं खलु--स्फुटं, भवति तेन कार्मणशरीरेण सह वर्तमानो य संयोगः आत्मनः कर्माकर्षणशक्तिसंगतप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स कार्मणकाययोग इत्युच्यते। सोऽपि कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयाविशिष्टेषु विग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घातसंबंधिषु प्रतरद्वयलोकपूरणसमयेषु वा त्रिषु प्रवर्तते नान्यकाले इति विभागः तुशब्देन सूचित.। अनेन शेषयोगानामव्याघातविषये अंतर्मुहूर्तः कालः व्याघातविषये एकसमयादियथासंभवान्तर्मुहूर्तपर्यंतः एकजीव प्रति भणितः। नानाजीवान् प्रति अष्ट, उवसमसुहमेत्यादि सातरमार्गणाः मुक्त्वा शेषनिरंतरमार्गणाना सर्वकाल इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥ २४१ ॥ अथ योगप्रवृत्तिप्रकार प्ररूपयति--

सं॰ च॰---कर्म कहिए ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलस्कंध सोई कार्माण शरीर जानना। अथवा कर्म जो कार्माण शरीर नामा नामकर्म ताके उदयकरि भया सो कार्माण शरीर कहिए तींहि कार्माण स्कंधसहित वर्तमान जो संप्रयोगः कहिए आत्माके कर्मग्रहणशक्ति धरै प्रदेशनिका चंचलपना सो कार्माणकाय योग है सो विग्रह गतिविषैं एक समय वा दोय समय वा तीन समय काल प्रमाण हो है अर केवल समुद्घातविषैं प्रतरद्विक अर लोकपूर्ण इनि तीन समयनिविषैं हो है और कालविषैं कार्माण योग न हो है। याहीतैं यहु जान्या जो कार्माणविना और जे योग कहे ते रुकै नाहीं तौ अंतर्मुहूर्त पर्यंत एक योगका परिणमन उत्कृष्ट रहै पीछैं और योग होइ। बहुरि जो अन्यकरि रुकै तौ समयकौं आदि देकरि अंतर्मुहूर्तपर्यंत एक योगका परिणमन यथासंभव जानना। सो एक जीवकी अपेक्षा तौ ऐसैं है अर नाना जीवकी अपेक्षा 'उपसम सुहुम' इत्यादि गाथानिकरि आठ सांतर मार्गणा विना अन्य मार्गणानिका सर्वकाल सद्भाव कह्या हो है॥ २४१ ॥ आगैं योगनिकी प्रवृत्तिका विधान दिखावै है—

औरालिकं शरीरं विगूर्वणात्मकं भवेद्येषां ॥ २३३ ॥

जी० प्र०---बादरा एव स्थूला एव तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च तथा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याः भोगभूमितिर्यग्मनुष्याश्च स्वस्वौदारिकशरीरं विगूर्वंति--विकुर्वंति वा । ते के ? येषां जीवानां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मकं विक्रियात्मक भवेत् ते जीवाः अपृथग्वि-क्रियया परिणमतीत्यर्थः । भोगभूमिजाः चक्रवर्तिनश्च पृथग् विगूर्वंति ॥२३३॥ अथ वैक्रियिककाययमिश्रयोगं प्ररूपयति--

मं.प्र.--बादराः--स्थूलाः तेजस्कायिका वायुकायिकाश्च पचेंद्रियपूर्णकाः संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताश्च तिर्यंचो मनुष्याश्च भोगभूमिजादयः, ते विगूर्वंति-विकुर्वंति वा । कथंभूतास्ते ? येषा औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मक विक्रियात्मकं भवेत् ते अपृथग्विक्रियया परिणमतीत्यर्थ. । भोगभूमिजा. चक्रवर्तिनश्च पृथगपि विकुर्वंति ॥ २३४ ॥ अथ वैकियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

सं० च०--बादर तेजकायिक बातकायिक जीव बहुरि कर्मभूमिविषैं जे उत्पन्न भए चक्रवर्तिकौं आदि देकरि सैनी पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच वा मनुष्य बहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य ते औदारिक शरीरकौं विक्रियारूप परिणमावे हैं। जिनिका औदारिक शरीर ही विक्रियालीएं पाइए है ते जीव अपृथक् विक्रिया रूप परिणमै हैं। अर भोगभूमियां चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करै है। जो अपने शरीरतैं भिन्न अनेक शरीरादिक विकार रूप करै सो पृथक विक्रिया कहिए। बहुरि जो अपने शरीरहीकौं अनेक विकार रूप करै सो अपृथक् विक्रिया कहिए ॥ २३३ ॥ आगैं वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहै हैं--

वेगुव्वियउत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपयोगो वेगुव्वियमिस्सजोगो सो ॥ २३४ ॥

वैगूर्विकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगो वैगूर्विकमिश्रयोगः सः ॥ २३४ ॥

जी० प्र०--उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणं तत् वैगूर्विकशरीरमेव वैक्रियिकशरीरमेव वा यावदंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालपर्यंतं अपरिपूर्णं शरीरपर्या-

तिनिष्पत्त्यभावेन वैक्रियिककाययोगजननासमर्थं तावत् तु पुनः औदारिककायमिश्रवन्मिश्रमिति जानीहि तेन वैक्रियिककायमिश्रेण सह यः संप्रयोगः कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिसंगतापर्याप्तकालमात्रात्मप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स वैक्रियिककायमिश्रयोगः अपर्याप्तयोगे मिश्रकाययोग इत्यर्थः ॥ २३४ ॥ अथाहारककाययोगं गाथापंचकेनाह----

मं० प्र०---उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणं, तत्--वैगूर्विकशरीरमेव यावदंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालपर्यंतमपरिपूर्णं शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावात् वैक्रियिककाययोगजननासमर्थं तावत् तु पुनः, औदारिककायमिश्रवत् मिश्रमिति जानीहि । तेन वैक्रियिककायमिश्रेण सह वर्तमानः संप्रयोगः कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिसंगतः अपर्याप्तकालप्रमितः आत्मप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स वैक्रियिककायमिश्रयोगो भवति, अपर्याप्तयोगो मिश्रकाययोग इत्यर्थः ॥ २३४ ॥ अथाहारककाययोग गाथापंचकेन प्ररूपयति--

सं० च०---पूर्वोक्त लक्षणने लीएं जो वैगूर्विक वा वैक्रियिक शरीर सो यावत् काल अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण न होइ--शरीर पर्याप्तिकी संपूर्णताका अभावकरि वैक्रियिक काययोग उपजावनेकौं असमर्थ होइ तावत काल वैक्रियिक मिश्र कहिए। मिश्रपना इहां भी औदारिक मिश्रवत् जानना। तींहि वैक्रियिक मिश्रकरि सहित संप्रयोग कहिए कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्तिकौं प्राप्त अपर्याप्त कालमात्र आत्माके प्रदेशनिका चंचल होना सो वैक्रियिक मिश्र काययोग कहिए। अपर्याप्त योगका नाम मिश्र योग जानना ॥ २३४ ॥ आगैं आहारक काय योगकौं पांच गाथानिकरि कहै हैं--

आहारस्सुदएण य पमत्तविरदस्स होदि आहारं ।
असंजमपरिहरणट्ठं संदेहविणासणट्ठं च ॥ २३५ ॥

आहारस्योदयेन च प्रमत्तविरतस्य भवति आहारकं ।
असंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशनार्थं च ॥ २३५ ॥

जी० प्र०----प्रमत्तविरतस्य आहारशरीरनामकर्मोदयेन आहारवर्गणागतपुद्गलस्कंधानां आहारकशरीररूपपरिणमनेनाहारकशरीरं भवति

परिनिष्क्रमणप्रभृतिकल्याणे च संवृत्ते-वर्तमाने सति असंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशार्थं जिनजिनगृहवंदनार्थं च गंतुमुद्युक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारकशरीरं भवति ॥ २३६ ॥

सं० च०–निज क्षेत्र जहां अपनी गमनशक्ति होइ तहां केवली श्रुतकेवली न पाइए । बहुरि परक्षेत्र जहां अपने औदारिक शरीरकी गमन शक्ति न होइ तहां केवली श्रुतकेवली होइ अथवा तहां तप ज्ञान निर्वाण कल्याणक होइ तौ तहां असंयम दूर करनेके निमित्त, वा संदेह दूर करनेके निमित्त, वा जिन अर जिनमंदिर तिनकी वंदना करनेके निमित्त, गमनकरनेकौं उद्यमी भया जो प्रमत्त संयमी ताकैं आहारक शरीर हो है ॥२३६॥

उत्तमअंगम्हि हवे धादुविहीणं सुहं असंहणणं ।
सुहसंठाणं धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥ २३७ ॥

उत्तमांगे भवेत् धातुविहीनं शुभमसंहननं ।
शुभसंस्थानं धवलं हस्तप्रमाणं प्रशस्तोदयं ॥ २३७ ॥

जी० प्र०—तदाहारकशरीरं कथंभूतं ? धातुविहीनं रसादिसप्तधातुरहितं, शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवविशिष्टं, असंहननं-अस्थिबंधनरहितं, शुभसंस्थान-प्रशस्तसमचतुरस्रसंस्थानांगोपांगविन्यासयुतं, धवलं-चंद्रकांतनिर्मितमिवातिविशदं, हस्तप्रमाण चतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितं प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिषु आहारकशरीरतद्बंधनसंघातांगोपांगादिप्रशस्तप्रकृत्युदययुतं, एवंविधं आहारकशरीरं उत्तमांगे भवेत् जायते ॥ २३७ ॥

मं० प्र०—तदाहारकशरीर कथमूतमित्याह--धातुविहीनं--रसादिसप्तधातुरहितं । पुनः कीदृशं ? शुभं--शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवं । पुनरपि कथंभूत ? असंहनन-अस्थिबंधनरहितं, पुनरपि किंविशिष्टं ? शुभसंस्थान--शुभं-प्रशस्तं, समचतुरस्राख्य संस्थानं-अंगोपांगविन्यासो यस्य तत् शुभसंस्थान । भूयोऽपि कीदृशं ? धवलं--चंद्रकांतनिर्मितमिवातिविशदं । भूयोपि किंविशिष्टं ? हस्तप्रमाणं चतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितं । पुनरपि कीदृशं ? प्रशस्तोदयं आहारकशरीरबंधनसंघातांगोपांगादिप्रशस्तप्रकृत्युदयसहितं एवंविधमाहारकशरीरमुत्तमांगे भवेत्--जायेत ॥ २३७ ॥

सं० च०–सो आहारक शरीर कैसा हो है रसादिक सप्त धातुकरि रहित हो है । बहुरि शुभ नाम कर्मके

वेगुव्वियआहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्हि ।
जोगोवि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण ॥ २४२ ॥

वैगूर्विकाहारकक्रिया न समं प्रमत्तविरते ।
योगोऽपि एककाले एक एव च भवति नियमेन ॥ २४२ ॥

जी० प्र०----प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च द्वे युगपन्न संभवतः । तद्यथा–कदाचिदाहारकयोगमवलंब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते तदा विक्रियर्द्धिबलेन वैक्रियिकयोगमवलंब्य वैक्रियिकक्रिया न घटते । आहारकर्धिविक्रियर्ध्योस्तस्य युगपद्वृत्तिविरोधात् । अनेन गणधरादीनां इतरर्धियुगपद्वृत्तिसंभवः सूचितः । तथा योगोऽपि एककाले स्वयोग्यांतर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति द्वौ त्रयो वा योगा एकजीवे युगपन्न संभवंति तथा सति एकयोगकाले अन्ययोगकार्यरूपगमनादिक्रियाणां संभवो नामातिक्रांतयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते कुलालदंडप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलेन चक्रभ्रमणवत्संस्कारक्षये बाणपतनवत्क्रियानिवृत्तिदर्शनादेव संस्कारवशेन युगपदनेकक्रियाप्रवृत्तिप्रसंगे सति प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोः युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितो जातः ॥ २४२ ॥ अथ योगरहितात्मस्वरूपं प्ररूपयति—

म० प्र०---प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च समं युगपन्न संभवतः । यदा आहारकयोगमवलंब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते तदा विक्रियर्धिबलेन वैक्रियिकयोगमवलंब्य क्रिया तस्य न घटते आहारकर्धिविक्रियर्ध्योर्युगपद्वृत्तिविरोधात् । अनेन गणधरादीनामितरर्धियुगपद्वृत्तिसंभवो दर्शितः । तथा योगोऽपि एकस्मिन् काले स्वयोग्यांतर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति न द्वौ त्रयो वा योगाः, तथापि एकयोगकाले अन्ययोगकार्याणां गमनादिक्रियाणां संभवोऽतिक्रांतयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते, कुलालदंडप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलाच्चक्रभ्रमणवत् । संस्कारक्षये तु बाणपतनवत् क्रियानिवृत्तिर्दृश्यते । अत एव संस्कारवशाद् युगपदनेकक्रियाप्रवृत्तिप्रसंगे प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोर्युगपद्वृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितः ॥ २४२ ॥ अथ योगरहितात्मस्वरूपं प्ररूपयति--

सं० च०----प्रमत्तविरत षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनिकैं समकालविषैं युगपत् वैक्रियिक काययोगकी क्रिया अर आहारक योगकी क्रिया नाहीं । ऐसा नाहीं कि एकही कालविषैं आहारक शरीरकौं धारि गमनागमनादि कार्यकौं करै अर विक्रिया ऋद्धिकौं धारि विक्रिया संबंधी कार्यकौं भी करै, दोऊ एंस्यौं एकही होइ यातैं यहु जा-

न्या कि गणधरादिकनिकैं और ऋद्धि युगपत् प्रवर्तैं तौ विरुद्ध नाहीं । बहुरि तैसैं ही अपने योग्य अंतर्मुहूर्त मात्र एक कालविषैं एक जीवकैं युगपत् एकही योग होइ, दोय वा तीन योग युगपत् न होइ यहु नियम है । जो एक योगका कालविषैं अन्य योग संबंधी गमनादि क्रियाकी प्रवृत्ति देखिए है सो पूर्वैं जो योग भया था ताके संस्कारतैं हो है । जैसैं कुंभार पहिले चाक दंडकरि फेऱ्या था पीछे कुंभार उस चाककौं छांडि अन्य कार्यकौं लाग्या वह चाक संस्कारके बलतैं केतेक काल आप ही फिऱ्या करै संस्कार मिटि जाय तब फिरै नाहीं तैसैं आत्मा पहिले जिस योगरूप परिणया था सो उसको छांडि अन्य योगरूप परिणया वह योग संस्कारके बलतैं आप ही प्रवर्तै है । संस्कार मिटैं जैसैं छोड्या हूवा वाण गिरै तैसैं प्रवर्तना मिटै है तातैं संस्कारतैं एक कालविषै अनेक योगनिकी प्रवृत्ति जानना । बहुरि प्रमत्तविरतीकैं संस्कारकी अपेक्षा भी एक काल वैक्रियिक वा आहारक योगकी प्रवृत्ति न हो है ऐसै आचार्यकरि वर्णन कीया है सो जानना ॥ २४२ ॥ आगै योगरहित आत्माके स्वरूपकौं कहै हैं—

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलकलिया ॥२४३॥

येषां न संति योगाः शुभाशुभाः पुण्यपापसंजनकाः ।
ते भवंति अयोगिजिना अनुपमानंतबलकलिताः ॥ २४३ ॥

जी॰ प्र॰—येषामात्मनां पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्मग्रहेतवः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणाः शुभाशुभयोगाः न संति ते आत्मानः अयोगिजिना चरमगुणस्थानवर्त्ययोगिकेवलिनः तदनंतरगुणस्थानातीतसिद्धपर्यायपरिणताश्च भवंति विद्यंते । अत्र योगाभावे सति अयोगिकेवल्यादीनां बलाभावः प्रसज्यते अस्मदादिषु बलस्य योगाश्रितत्वदर्शनात् इत्याशंक्य इदमुच्यते अनुपमानंतबलकलिताः—अनुपमं अस्मदाद्युपमातिक्रांतं, अनंतं अक्षयानंताविभागप्रतिच्छेदसमग्रं बलं वीर्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्तिसकलद्रव्यगुणपर्याययुगपद्ग्रहणसामर्थ्यं तेन

कलिताः व्याप्ताः तत्स्वभावपरिणताः इत्यनंतबलकलिताः इत्येवं योगाश्रितबलं प्रतिनियतविषयं भवेत्, परमात्मनो बलं केवलज्ञानादिवदात्म-
स्वभावत्वेन अप्रतिनियतविषयमित्यनंतबलकलिता इति भावार्थः ॥ २४३ ॥ अथ शरीरस्य कर्मनोकर्मविभागं कथयति—

मं० प्र०---येषामात्मना पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्मबंधहेतवः शुभाशुभा योगाः कायवाग्मनःकर्मलक्षणाः न संति ते आत्मानः अयोगि-
जिना.-चरमगुणस्थानवर्तिनः, अयोगकेवलिनः, तदनंतरगुणस्थानातीतसिद्धत्वपर्यायपरिणताश्च भवंति- विद्यते । ननु योगाभावे तेषां बलाभाव. प्रसज्यते
अस्मदादिषु बलस्य योगाश्रितत्वदर्शनादित्याशंक्य इदमुच्यते--अनुपमानंतबलकलिताः -अनुपमं--अस्मदाद्युपमातिक्रातं, अनंत--अक्षयानंताविभागप्रतिच्छेद-
समग्रं बल वीर्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्तिसकलद्रव्यगुणपर्याययुगपद्ग्रहणसमर्थं तेन कलिताः--व्याप्ताः, तत्स्वभावपरिणता इत्यर्थः योगाश्रितस्य
बलस्य प्रतिनियतविषयत्वात् परमात्मनो बलस्य केवलज्ञानादिवदात्मस्वभावत्वेन अप्रतिनियतविषयत्वात् ॥२४३॥ अथ शरीरस्य कर्मनोकर्मविभागं प्ररूपयति--

सं० च०—जिन आतमनिके पुण्य पापरूप कर्म प्रकृतिके बंधको उपजावन हारे शुभरूप वा अशुभरूप मन वचन कायके योग न होंहिं ते अयोगी जिन चौदहां अंत गुणस्थानवर्ती वा गुणस्थानतीत सिद्ध भगवान जानने। कोऊ जानेगा कि योगनिके अभावतै उनके बलका अभाव है जैसे हम सारिखे जीवनिकैं योगनिके आश्रयभूत बल देखिए है तहां कहिए है। कैसे हैं-सिद्ध ? 'अनुपमानंतबलकलिताः' कहिए जिनके बलकौं हम सारिखे जीवनिका बलकी उपमा न बनै है। बहुरि केवलज्ञानवत् अक्षयानंत अविभाग प्रतिच्छेद लीएं है ऐसा बल वीर्य जो सर्व द्रव्य गुण पर्यायका युगपत् ग्रहणैकी समर्थता तींहिकरि व्याप्त है। तींहि स्वभाव परिणए हैं। योगनिका बल कर्माधीन है तातै प्रमाण लीएं है अनंत नाहीं। परमात्माका बल केवलज्ञानादिवत् आत्मस्वभावरूप है तातै प्रमाणरहित अनंत है ऐसा जानना ॥२४३॥ आगै शरीरोंका कर्म अर नोकर्म भेद दिखावै हैं—

ओरालियवेगुव्वियआहारयतेजणामकम्मुदये।
चउणोकम्मसरीरा कम्मेव य होदि कम्मइयं ॥२४४॥

औरालिकवैगूर्विकाहारकतेजोनामकर्मोदये।
चतुर्नोकर्मशरीराणि कर्मैव च भवति कार्मणं ॥ २४४ ॥

जी० प्र०--औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मोदये सति यथासंख्यं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसनामानि चत्वारि नोकर्मशरीराणि भवंति। नोशब्दस्य विपर्यये ईषदर्थे च वृत्तेः। तेषां शरीराणां कर्मवदात्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वाभावेन कर्मविपर्ययत्वात् कर्मसहकारित्वेन ईषत्कर्मत्वाच्च नोकर्मशरीरत्वसंभवात्। कर्मैव कार्मणशरीरनामकर्मोदयसजातज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कंधसमूह एव कार्मणशरीरं भवति तदन्यस्य परमागमे कार्मणशरीरत्वेन कथनाभावात् ॥ २४४ ॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धादिसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

म० प्र०---औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मणा चतुर्णां उदये सति चत्वारि नोकर्मशरीराणि भवति। अकर्मशरीराणि, ईषत्कर्मशरीराणीति वा नोकर्मशरीराणि नोशब्दस्य च विवक्षितविपर्यये ईषदर्थे च वृत्तिसंभवात् नोइंद्रियादिवत् कर्मशरीरस्यैव आत्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वाभावात् कर्मविपर्ययत्वं, कर्मशरीरसहकारित्वाच्च ईषत्कर्मशरीरत्वमिति नोकर्मशरीरत्व युक्त। कर्मैव कार्मणशरीरनामकर्मणः उदये सति कार्मणं शरीर भवति ज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कधसमूहं विना अन्यस्य कार्मणशरीरस्य परमागमे अनभिधानात्। अथौदारिकादिशरीराणा समयप्रबद्धादि सख्या गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

सं० च०---औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजसरूप जो नामकर्मकी प्रकृति तिनके उदयतैं जे औदारिक आदि च्यारि शरीर होंइ ते नोकर्म शरीर जानने। नो शब्दका दोय अर्थ है एकतौ निषेधरूप अर एक ईषत् स्तोकरूप सो इहां कार्माणकी ज्यों ए च्यारि शरीर आत्माके गुणकौं घातै नाहीं वा गत्यादिकरूप पराधीन न करि सकै तातैं कर्मतैं विपरीत लक्षण धरनेकरि इनिकौं अकर्म शरीर कहिए वा कर्मशरीरके ए सहकारी है तातै ईषत् कर्म शरीर कहिए ऐसै इनिकौं नोकर्म शरीर कहै जैसै मनका नो इंद्रिय कहिए हैं तैसै नोकर्म जानने बहुरि कार्माण शरीर नामा नामकर्मके उदयतैं ज्ञानावरणादिक कर्म स्कंधरूप कर्म सोई कर्म शरीरजानना ॥२४४॥ आगै जे औदारिकादिक शरीर कहे तिनिका समय प्रबद्धादिककी संख्या दोय गाथानिकरि कहिए है—

परमाणूहिं अणंतहिं वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु।
ताहिं अणंतहिं णियमा समयपबद्धो हवे एक्को ॥ २४५ ॥

परमाणुभिरनंतैर्वर्गणासंज्ञा हि भवत्येका हि।

ताभिरनंतैर्नियमात् समयप्रबद्धो भवेदेकः ॥ २४५ ॥

जी॰ प्र॰--अनंतैः द्विकवारानंतमध्यपतितसिद्धानंतैकभागमात्राभव्यराश्यनंतगुणपरिमाणैरेव परमाणुभिरेका वर्गणा भवति खलु न संख्यातैर्वा असंख्यातैर्वा परमाणुभिरित्यर्थः । यद्यपि पुद्गलद्रव्यस्याणुसंख्यातासंख्यातपरमाणुस्कंधरूपवर्गणाः संति तथाप्यत्रौदारिकादिशरीरप्रकरणे औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणवर्गणानामेव ग्रहणात् । ताभिश्च सिद्धानंतैकभागाभव्यराश्यनंतप्रमितानंतवर्गणाभिर्नियमेनैकः समयप्रबद्धो भवति। समये समयेन वा प्रबध्यतेस्म कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना संबध्यते स्म यः पुद्गलस्कंधः स समयप्रबद्ध इति निर्वचनात् । आत्मनो मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामैः प्रतिसमयं कर्मनोकर्मरूपतया परिणममानः तद्योग्यपुद्गलस्कंधः समयप्रबद्ध इति स्याद्वादसिद्धांतप्रसिद्धो बोद्धव्यः । नियमशब्देन वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थौ द्वावप्येवमुक्तस्वरूपौ स्याद्वादिनामेव गोचरौ, न सर्वथैकांतवादिनामित्ययं विभागो व्यवस्थापितः (व्यवस्थाप्यते) ॥ २४५ ॥

मं॰ प्र॰--अनंतै. द्विकवारानंतमध्यपतितैः सिद्धानंतैकभागमात्रै', अभव्यानंतगुणप्रमाणैश्च परमाणुभिरेका वर्गणेति संज्ञया भवति खलु स्फुटं, न संख्यातैः नाप्यसंख्यातैः परमाणुभिर्वर्गणा भवति किंतु अनंतैरेव भवतीति निश्चीयत इत्यर्थः। पुद्गलद्रव्यस्य अणुसंख्यातासंख्यातपरमाणुस्कंधरूपवर्गणासद्भावेऽपि अस्मिन्नौदारिकादिशरीरप्रकरणे आहारतैजसकार्मणवर्गणानामेव ग्रहणात्। ताभिर्वर्गणाभिरनताभिः सिद्धाननभागाभव्यानंतगुणप्रमिताभिर्नियमादेकः समयप्रबद्धो नाम योग्यपुद्गलस्कंधो भवति । समयेन प्रबध्यतेस्म कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना सबध्यते स्म यः पुद्गलस्कंधः स समयप्रबद्धः इति निरुक्तिसिद्धः आत्मनो मिथ्यादर्शनादि संक्लेशपरिणामैः प्रतिसमयं कर्मनोकर्मरूपतया परिणममानस्तत्तद्योग्यपुद्गलस्कंधः समयप्रबद्ध इति स्याद्वादसिद्धांतप्रसिद्धो बोद्धव्यः । नियमशब्देन वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थौ एवमुक्तस्वरूपौ स्याद्वादिनामेव गोचरौ न सर्वथैकातवादिनामिति विभागो व्यवस्थापितः ॥ २४५ ॥

स॰ चं॰—सिद्धराशिके अनंतवे भाग अर अभव्यराशिस्यौं अनंतगुणा ऐसा जो मध्य अनंतानंतका भेद तींहि प्रमाण पुद्गल परमाणूनिकरि जो एक स्कंध होइ सो वर्गणा ऐसा नाम जानना। संख्यात वा असंख्यात परमाणूनिकरि वर्गणा न हो है। जातैं यद्यपि आगैं पुद्गल वर्गणाके तेईस भेद कहैंगे तहां अणु वर्गणा संख्याताणुवर्गणा असंख्याताणुवर्गणा आदि भेद हैं तथापि इहां औदारिक आदि शरीरनिका प्रकरणविषैं आहारवर्गणा वा तैजसवर्गणा वा कार्माणवर्गणाका ही ग्रहण जानना । बहुरि सिद्धनिके अनंतवे भाग वा अभव्यनितैं अनंतगुणी ऐसी मध्य अनंतानंत गुणी प्रमाण वर्गणा तिनिकरि एक समय प्रबद्ध हो है ! समयविषैं वा समयकरि यहु जीव कर्म नोकर्मरूप पूर्वोक्त प्रमाण वर्गणानिका समूहरूप स्कंधकरि संबंध करै है तातैं याकौं समय प्र-

बद्ध कहिए है। ऐसा वर्गणाका वा समय प्रबद्धका भेद स्याद्वादमतविषैं है अन्यमतविषैं नाही। यहु विशेष नियम शब्दकरि जानना। इहां कोऊ प्रश्न करै कि एक ही प्रमाणकौं सिद्धराशिका अनंतवां भाग वा अभव्यराशितैं अनंतगुणा ऐसैं दोय प्रकार कह्या सो कौन कारण ? ताका समाधान-कि सिद्धराशिका अनंतवां भागके अनंत भेद हैं तहां अभव्यराशितैं अनंतगुणा जो सिद्धराशिका अनंतवां भाग होइ सो इहां प्रमाण जानना। ऐसैं अल्प बहुत्वकरि तिस प्रमाणका विशेष जाननेके अर्थि दोय प्रकार कह्या है अन्य किछू प्रयोजन नाही॥२४५॥

ताणं समयपबद्धा सेडिअसंखेज्जभागगुणिदकमा।
णंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहमं खु॥ २४६ ॥

तेषां समयप्रबद्धाः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः।
अनंतेन च तेजोद्विकाः परं परं भवति सूक्ष्मं खलु ॥ २४६ ॥

जी० प्र०-तेषां औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीराणां संबंधिन समयप्रबद्धाः सर्वेऽपि न परस्परं सदृशाः किंतु उत्तरोत्तरेऽधिकपरमाणुसंख्याविशिष्टा भवति। तद्यथा-सर्वतः स्तोक. औदारिकसमयप्रबद्धः। औ स। ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धः। वै स $\overline{a}$। ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितः आहारकशरीरसमयप्रबद्धः। आ स $\overline{a}$ $\overline{a}$। श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमा इत्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्यंतमेव विवक्षितत्वात्। तेन परं तदाहारकशरीरसमयप्रबद्धादग्रे तैजसशरीरसमयप्रबद्धोनंतगुणपरमाणुप्रमितः। तै स $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख। ततः कार्मणशरीरसमयप्रबद्धोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितः। का स $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख ख। अनंतेन च तैजसद्विकमित्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धात् परं तैजसकार्मणशरीरसमयप्रबद्धयोरनंतानंतगुणत्वकथनं तु। चशब्देन प्रत्येकमभुच्चयः सूचितः। यद्येवं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणां उत्तरोत्तरं प्रदेशाधिक्येन स्थूलत्वं प्रसज्यते इत्याशंक्य परं परं सूक्ष्मं भवतीत्युक्तं। यद्यपि वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणुसंचयत्वं तथापि बंधपरिणतिविशेषेण सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवः कार्पासपिंडायःपिंडवत् विरुध्यते खल्विति निश्चेतव्य ॥ २४६ ॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धवर्गणयोरवगाहनभेदानाह—

मं० प्र०—तेषामौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानां शरीराणां संबंधिनः समयप्रबद्धाः सर्वे परस्परसदृशा न भवति किंतु उत्तरोत्तरमधिकपरमाणु-

संख्याः । तद्यथा—सर्वतस्तोकः औदारिकशरीरसमयप्रबद्धः । औ स । ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धः । वै स $\overline{a}$ । ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितः आहारकशरीरसमयप्रबद्धः । आ स $\overline{a}$ $\overline{a}$ । श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमा इत्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्यंतमेव विवक्षितत्वात् । ततोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितस्तैजसशरीरसमयप्रबद्धः । तै. स. $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख । ततोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितः कार्मणशरीरसमयप्रबद्धः । का स $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख ख । अनंतेन च तेजोद्विकमित्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धात्तैजसकार्मणशरीरसमयप्रबद्धयोरनंतानंतगुणत्वकथनात् । चशब्देन प्रत्येकसमुच्चयः सूच्यते । यद्येवं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणा उत्तरोत्तरप्रदेशाधिक्येन स्थूलत्व प्रसज्यत इत्याशंक्य परं परं सूक्ष्म भवति खल्वित्युच्यते । यद्यपि वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणुसंचयत्वं तथापि बंधपरिणामविशेषवशात् सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहसंभवः कार्पासपिंडाय.पिंडवत् न विरुध्यते इति खलुशब्देन निश्चीयते । अथौदारिकादिशरीराणा समयप्रबद्धवर्गणयोरवगाहनभेदं प्ररूपयति ॥ २४६ ॥

सं० च०—तिन पंच शरीरनिके समय प्रबद्ध सर्व ही समान नाही है उत्तरोत्तर अधिक परमाणूनिका समूह लीए हैं सो कहिए है परमाणूनिका प्रमाणकरि औदारिक शरीरका समय प्रबद्ध सर्वतैं स्तोक है यातैं श्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण वैक्रियिकका समय प्रबद्ध है। बहुरि यातैं भी श्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण आहारकका समय प्रबद्ध है ऐसैं आहारक पर्यंत जगत श्रेणीका असंख्यातवां भागकौं गुणकारकी विवक्षा जाननी । तातैं परैं आहारकके समय प्रबद्धतैं अनंतगुणा परमाणूप्रमाण तैजसका समय प्रबद्ध है । बहुरि यातैं भी अनंतगुणा परमाणू प्रमाण कार्माणका समय प्रबद्ध है। इहां 'अनंतेन तेजोद्विकं' इस करि तैजसकार्माणविषैं अनंतानंत गुणा प्रमाण जानना । बहुरि इहां कोऊ आशंका करै कि जो उत्तरोत्तर अधिके अधिके परमाणू कहे तो उत्तरोत्तर स्थूलता भी होयगी तहां कहिए है—परं परं सूक्ष्मं भवति कहिए उत्तरोत्तर सूक्ष्म है। औदारिकतैं वैक्रियिक सूक्ष्म है वैक्रियिकतैं आहारक सूक्ष्म है आहारकतैं तैजस सूक्ष्म है तैजसतैं कार्माण सूक्ष्म है। यद्यपि परमाणू तौ अधिक अधिक हैं तथापि स्कंधका बंधनमें विशेष है तातैं उत्तरोत्तर सूक्ष्म है जैसैं कपासके पिंडतैं लोहके पिंडमें अधिकपना होतै भी कपासके पिडतैं लोहका पिंड क्षेत्र थोरा रोकै तैसैं जानना ॥ २४६॥ आगैं औदारिकादिक शरीरनिका समयप्रबद्ध अर वर्गणा ते कितने कितने क्षेत्रविषैं रहै ऐसा अवगाहना भेदनिकौं कहै हैं—

ओगाहणाणि ताणं समयपबद्धाण वग्गणाणं च ।
अंगुलअसंखभागा उवरुवरिमसंखगुणहीणा ॥ २४७ ॥

अवगाहनानि तेषां समयप्रबद्धानां वर्गणानां च ।
अंगुलासंख्यभागा उपर्युपरि असंख्यगुणहीनानि ॥ २४७ ॥

जी० प्र०—तेषामौदारिकादिशरीराणां संबंधिनां समयप्रबद्धानां तद्वर्गणानां च अवगाहनानि घनांगुलासंख्यातभागप्रमितानि उपर्युपरि असंख्येयगुणहीनानि भवंति। तद्यथा-औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तघनांगुलप्रमितं। औ स ६ । तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं, तदेव पुनरपि सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तं घनांगुलप्रमितं । औ व ६ । एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहनक्षेत्रे द्वे अपि पूर्वपूर्वतत्क्षेत्राभ्यां सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रासंख्येयगुणहीने गच्छतः ।

वै स a । ६ २ २ a a	व । ६ २ २ २ a a a	आ । स । a a । ६ २ २ २ a a a	व । ६ २ २ २ २ a a a a	तै स । a a ख । ६ २ २ २ २ a a a a	व । ६ २ २ २ २ २ a a a a a
का । स । a a ख ख ६ । २ २ २ २ २ a a a a a	व । ६ २ २ २ २ २ २ a a a a a a	॥२४७॥ अमुमेवार्थं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा अपि कथयति—			

मं० प्र०—तेषां-औदारिकादिशरीराणां संबंधिनां समयप्रबद्धानां तद्वर्गणानां चावगाहनानि घनांगुलासंख्यातभागप्रमितानि उपर्युपरि असंख्येयगुण-

१ इस गाथाकी जी० प्र० और मं० प्र० दोनो टीका एकसी है इस लिये और एकही जी० प्र० टीकाकी प्रतिमें पाठ मिला है इसलिये मं० प्र० टीकाको ही जी० प्र० में मिला दिया मालूम पड़ता है।

हीनानि भवंति । तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तघनांगुलप्रमितं औ स ६ तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं तदेव पुनरपि सू-
२
a

च्यंगुलासंख्येयभागभक्तं औ व ६ एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहनक्षेत्रे द्वे अपि पूर्वपूर्वतत्क्षेत्राभ्यां सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रा-
२।२
a।a

संख्येयगुणहीने गच्छतः वै स a।६ ‍ व । ६ आ स a a । ६ ‍ व । ६ ‍ तै. स. a a ख ६ ‍ व । ६
२२ ‍ २ २ २ ‍ २ २ २ ‍ २ २ २ २ ‍ २ २ २ २ ‍ २ २ २ २ २
aa ‍ a a a ‍ a a a ‍ a a a a ‍ a a a a ‍ a a a a a

का स a a ख ख । ६ ‍ व । ६ ‍ अमुमेवार्थं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा अपि कथयंति ॥ २४७ ॥
२ २ २ २ २ ‍ २ २ २ २ २ २
a a a a a ‍ a a a a a a

सं० च०—तिनि औदारिकादिक शरीर संबंधी समयप्रबद्ध वा वर्गणा तिनिका अवगाहनाक्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र है तथापि ऊपरि असंख्यातगुणां घाटि क्रमतै जानना। सोई कहिए है—औदारिक शरीर-के समय प्रबद्धनिका अवगाहना क्षेत्र सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग घनांगुलकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना जानना। बहुरि याकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तब औदारिक शरीरकी वर्गणाके अवगाहन क्षेत्रका प्रमाण होइ। बहुरि यातैं सूच्यंगुलका असंख्यात भाग प्रमाण जो असंख्यात तिहिं असंख्यातगुणा घटता क्रमतैं वैक्रियिकादि शरीरके समय प्रबद्धकी वा वर्गणाकी अवगाहनाका परिमाण हो है। वैक्रियिक शरीरका समय प्रबद्धकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणि औदारिक समयप्रबद्धकी अवगाहना हो है। वैक्रियिक शरीरकी वर्गणाकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणैं औदारिककी वर्गणाकी अवगाहना हो है ऐसैं ही वैक्रियिकतैं आहारककी आहारकतैं तैजसकी तेज-

सतैं कार्माणकी समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहना असंख्यात असंख्यातगुणी क्रमतैं घाटि जाननी ॥ २४७ ॥ इस ही अर्थकौं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्य देव कहैं हैं—

तस्समयबद्धवग्गणओगाहो सूइअंगुलासंख—
भागहिदबिंदअंगुलमुवरुवरिं तेन भजिदकमा ॥२४८॥

तत्समयबद्धवर्गणावगाहः सूच्यंगुलासंख्य—
भागहितवृंदांगुलमुपर्युपरि तेन भजितक्रमाः ॥ २४८ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तौदारिकादिशरीरसंबंधिसमयप्रबद्धतद्वर्गणानामवगाहनानि घनांगुलासंख्येयभागप्रमितान्यपि उपर्युपर्यसंख्यातगुणहीनक्रमाणि भवंति । तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभाजितघनांगुलप्रमितं औ स ६/२/a तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं तस्यैव सूच्यंगुलासंख्येयभागप्रमाणं । तद्व ६/२ २/a a एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणामपि समयप्रबद्धतद्वर्गणावगाहौ पूर्वपूर्वतदवगाहनक्षेत्राभ्यां सूच्यंगुलासंख्येयभागगुणहीनौ गच्छतः ।

वै । स a ६ / २ । २ / a a	तद्व ६ / २ । २ । २ / a a a	आ । स a । a । ६ / २ । २ । २ / a a a	तद्व ६ / २ । २ । २ । २ / a a a a	तै । स a । a ख ६ / २ । २ । २ २ / a a a a
तद्व ६ / २ । २ । २ । २ । २ / a a a a a	का । स a a ख ख ६ / २ । २ । २ । २ । २ / a a a a a	तद्व ६ / २ । २ । २ । २ । २ २ / a a a a a a	॥ २४८ ॥ अथ विस्रसोपचयस्वरूपं प्ररूपयति—	

मं० प्र०—तत्समयप्रबद्धवर्गणावगाहाः सूच्यंगुलासंख्येयभागहतवृंदांगुलमात्राः उपर्युपरि तेन सूच्यंगुलासंख्येयभागेन भाजितक्रमा इति। अथ विस्रसोपचयस्वरूप प्ररूपयति ॥ २४८ ॥

सं० च०—तिनि समय प्रबद्ध वा वर्गणाकी अवगाहनाका परिमाण सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग घनांगुलकौं दीएं जो परिमाण होइ तितना जानना बहुरि ऊपरि ऊपरि पूर्व पूर्वतैं सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र जानने गुणहानिका अर भाग देनेका एक अर्थ है। सो वैक्रियिकका समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणे औदारिकका समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहना होइ अथवा औदारिकका समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग दीयें वैक्रियिक शरीरका समयप्रबद्ध वर्गणाका परिमाण होइ दोऊ एकार्थ हैं ऐसैं ही सबका जानना ॥ २४८ ॥ आगै विस्रसोपचयका स्वरूप कहै हैं—

जीवादो णंतगुणा पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया।
जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडिसमाणा हु ॥ २४९ ॥

जीवतोऽनंतगुणाः प्रतिपरमाणौ विस्रसोपचयाः।
जीवेन च समवेता एकैकं प्रति समाना हि ॥ २४९ ॥

जी० प्र०—जीवराशितोऽनंतानंतगुणितविस्रसोपचयाः पूर्वोक्तौदारिकादिकर्मनोकर्मपरमाणुषु एकैकं प्रति समानसंख्यावच्छिन्नाः जीवप्रदेशैः सह समवेताः संबद्धाः संयुक्ताः संति। विस्रसा स्वभावेनैव आत्मपरिणामनिरपेक्षतयैव उपचीयंते--तत्तत्कर्मनोकर्मपरमाणुस्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कंधतां प्रतिपद्यंते इति विस्रसोपचयाः कर्मनोकर्मपरिणतिरहितपरमाणव इति भावः। यद्येकस्मिन् कर्मनोकर्मपरमाणौ एतावान् विस्रसोपचयः तदा किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसर्वपरमाणूनां कियान् विस्रसोपचयः? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र १। फ १६ ख। इ स ७।१२--इच्छां फलेन सगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा ये लब्धा आत्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचयपरमाणवः ते एतावंतः

स ७ १२—१६ ख । एतेषु पुनः किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणकर्मनोकर्मसत्त्वे प्रक्षिप्ते सति विस्रसोपचयसहितकर्मनोकर्मसत्त्वमेतावद्भवति । स ∂ १२—। १६ ख । २४९ । अथ कर्मनोकर्मोत्कृष्टसंचयस्वरूपस्थानलक्षणं प्ररूपयति–

मं० प्र०— एकैक कर्मनोकर्मपरमाणु प्रति समानाः जीवराशेरनंतगुणसंख्यया सदृशाः, जीवेन आत्मप्रदेशैः सह समवेताः–संबद्धाः, विस्रसोपचयाः, विस्रसा स्वभावेनैव–आत्मपरिणामनिरपेक्षतयैव उपचीयते तत्परमाणुस्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कंधतां प्रतिपद्यते इति विस्रसोपचया इति निरुक्तिसिद्धत्वात्तल्लक्षणं पृथग्नोक्तं । ते च कर्मनोकर्मपरिणतिरहितास्तद्योग्याः । अत्राय विशेषः– एकस्मिन् कर्मनोकर्मपरिमाणौ प्र १ यद्येतावंतो विस्रसोपचयपरमाणवः संति फ १६ ख । तदा एतावत्सु किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वपरमाणुषु कियतः स्युरिति । इ । स ∂ १२–। त्रैराशिकेन लब्धा आत्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचयपरमाणवः इयतो भवेयुः। स ∂ १२–१६ ख । एतेषु किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वे प्रक्षिप्ते विस्रसोपचयसहितकर्मनोकर्मसत्त्वमीदृश भवति । स ∂ १२–१६ ख ॥ २४९ ॥ अथ कर्मनोकर्मोत्कृष्टसंचयस्थान प्ररूपयति–

सं० च०—कर्म वा नोकर्मकी जितनी परमाणु है तिनि एक एक परमाणूनि प्रति जीव राशितैं अनंतानंत गुणा विस्रसोपचयरूप परमाणू जीवके प्रदेशनिस्यों एकक्षेत्रावगाही हैं। विस्रसा कहिए अपने हीस्वभावकरि आत्माके परिणाम विनाही उपचीयंते कहिए कर्म नोकर्म रूपविना परिणए ऐसे कर्म नोकर्म रूप स्कंध तीहिं विषैं स्निग्धरूक्ष गुणका विशेष करि मिलि एक स्कंधरूप होंहि ते विश्रसोपचय कहिए ऐसा निरुक्ति ही करि याका लक्षण आया तातैं जुदा लक्षण न कह्या । विस्रसोपचय रूप परमाणू कर्म नोकर्म रूप होनेको योग्य हैं। उनहीं कर्म नोकर्मके स्कंधविषैं एकक्षेत्रावगाही होइ संबंधरूप परिणमिकरि एक स्कंधरूप हो हैं वर्तमान कर्म नोकर्मरूप परिणए हैं नाहीं ऐसैं विस्रसोपचयरूप परमाणू जानने ते कितने हैं ? सो कहिए है—

जो एक कर्म वा नोकर्म संबंधी परमाणूके जीवराशितैं अनंत गुणे विस्रसोपचयरूप परमाणू होंइ तौ किछू घाटि ड्योढ गुण हानिका प्रमाण करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सर्वसत्त्वरूप कर्म वा नो कर्मके परमाणूनिके केते विस्रसोपचय परमाणू होंहि ऐसैं त्रैराशिक करना। इहां प्रमाण राशि एक,फलराशि अनंतगुणा जीवराशि, इच्छाराशि किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्ध तहां इच्छाकौं फलकरि गुणि प्रमाणका भागदीएं लब्धराशिमात्र आत्माके प्रदेशनिविषैं तिष्ठते सर्वविस्रसोपचय परमाणूनिका प्रमाण जानना। बहुरि इस विस्रसो-

पचय परमाणूनिका परिमाणविषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रवद्धमात्र कर्म नोकर्मरूप परमाणूनिका परिमाणकौं मिलाएं विस्रसोपचयसहित कर्म नोकर्मका सत्त्व हो है ॥ २४९ ॥ आगैं कर्म नोकर्मनिका उत्कृष्टसंचयका स्वरूप वा स्थान वा लक्षण प्ररूपैं हैं—

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे सगसगउक्कस्ससंचओ होदि ।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं ॥ २५० ॥

उत्कृष्टस्थितिचरमे स्वकस्वकोत्कृष्टसंचयो भवति ।
पंचदेहानां वरयोगादिस्वसामग्रीसहितानां ॥ २५० ॥

जी० प्र०—उत्कृष्टयोगादिस्वस्वसामग्रीसहितानां जीवानां औदारिकादिपंचशरीराणां स्वस्वोत्कृष्टस्थितिचरमसमये स्वस्वोत्कृष्टकर्मनोकर्मपरमाणुसंचयो भवति । तत्तत्स्थितिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयं एकैकसमयप्रबद्धगलितैकैकनिषेकावशेषमात्रेषु तावत्सु संचीयमानेषु सत्सु तत्स्थितिचरमसमये आयुर्वर्जितकर्मनोकर्मशरीराणां गलितावशेषोत्कृष्टसंचयः किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रः सत्त्वं भवति स ॥ १२-॥ २५० ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषं कथयंति—

मं० प्र०—उत्कृष्टयोगादिस्वसामग्रीसहिताना जीवाना, औदारिकादिपंचशरीराणां स्वस्वोत्कृष्टस्थितिचरमसमये स्वस्वोत्कृष्टकर्मनोकर्मपरमाणुसंचयो भवति । तत्तत्स्थितिप्रथमसमयादारभ्य समय प्रति एकैकस्मिन् समयप्रबद्धे गलितैकनिषेकावशेषमात्रे संचीयमाने सति तत्स्थितिचरमसमये आयुर्वर्जितकर्मनोकर्मशरीराणां गलितावशेषः उत्कृष्टसंचयः किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रो भवति ॥ २५० ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषं प्रदर्शयंति—

सं० च०—उत्कृष्ट योग आदि अपने अपने उत्कृष्ट बंध होनेकी सामग्री करि सहित जे जीव तिनिकैं औदारिकादिक पंच शरीरनिका उत्कृष्टसंचय जो उत्कृष्टपनैं परमाणूनिका संबंध सो अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिका अंत समयविषैं हो है । तहां स्थितिके पहले समयतैं लगाइ एक एक समयविषैं एक एक समय प्रबद्ध बंधै बहुरि आगैं कहिए है तिसप्रकार एक एक समयप्रबद्धका एक एक निषेककी निर्जरा होइ अवशेष संचयरूप होते संतै

अंतसमयविषैं किछू घाटि ड्योढगुणहानिकरि समयप्रबद्धकौं गुणैं जो परिमाण होइ तितना उत्कृष्टपनैं सत्त्व हो है ॥ २५० ॥ आगैं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेव उत्कृष्ट संचय होनेकी सामग्री कहैं है—

आवासया हु भवअद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य ।
ओकट्टुक्कट्टणया छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ॥ २५१ ॥

आवश्यकानि हि भवाद्धा आयुष्यं योगसंक्लेशौ च ।
अपकर्षणोत्कर्षणके षट् चैते गुणितकर्मांशे ॥ २५१ ॥

जी० प्र०—भवाद्धा आयुष्य योगः संक्लेशः अपकर्षणं उत्कर्षणकं चेति षट् उत्कृष्टकर्मसंचयकर्तुर्जीवस्य आवश्यकानि इत्युच्यंते । गुणितकर्मांशे उत्कृष्टकर्मसंचययुते जीवे तेषामवश्यंभावात् अग्रे तानि विस्तरेण वक्ष्यति खलु स्फुटं ॥ २५१ ॥ अथौदारिकादिपंचशरीराणामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमाह—

मं० प्र०—गुणितकर्मांशे उत्कृष्टकर्मसंचयवति जीवे एतान्यत्रोच्यमानानि षडावश्यकानि अवश्यभवानि उत्कृष्टसंचयकारणानि भवंति । तानि कानि ? इति चेत् भवाद्धा, आयुष्य, योगः, संक्लेशः, अपकर्षण, उत्कर्षणं, इत्येतानि अग्रे विस्तरतो वक्ष्यमाणलक्षणानि ॥ २५१ ॥ अथौदारिकादिपंचशरीराणामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणं कथयति—

सं०च०—गुणितकर्मांश कहिए उत्कृष्ट संचय जाकैं होइ ऐसा जो जीव तींहि विषैं उत्कृष्ट संचयकौं कारण ए छह अवश्य होंइ तातैं उत्कृष्ट संचय करनेवाले जीवकैं ए छह आवश्यक कहिए। भवाद्धा १ आयुर्बल २ योग ३ संक्लेश ४ अपकर्षण ५ उत्कर्षण ६ ए छह जानने इनिका स्वरूप विस्तार लीएं आगैं कहिएगा। अब पंचशरीरनिका बंध उदय सत्त्वादिकविषैं परमाणूनिका प्रमाणका विशेष जाननेकौं स्थिति आदि कहिए है तहां औदारिकादिक पंच शरीरनिकी उत्कृष्ट स्थितिका परिमाण कहै हैं—

पल्लतियं उवहीणं तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं।
छावट्ठी कमट्ठिदि बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं ॥ २५२ ॥

पल्यत्रयमुदधीनां त्रयस्त्रिंशदंतर्मुहूर्त उदधीनां।
षट्षष्टिः कर्मस्थितिर्बंधोत्कृष्टस्थितिस्तेषां ॥ २५२ ॥

जी० प्र०—तेषां औदारिकादिपंचशरीराणां यथासंख्यं बंधोत्कृष्टस्थितयः त्रिपल्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं अंतर्मुहूर्तः षट्षष्ठिसागरोपमं उत्कृष्टकर्मस्थितिः, सा च सामान्येन सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि विशेषेण तु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायाणां त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणि मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि, नामगोत्रयोः विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि आयुषस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि भवंति। बंधप्रकरणे प्ररूपिता सर्वोत्कृष्टस्थितिर्ग्राह्या ॥ २५२ ॥ अथौदारिकादिपंचशरीरोत्कृष्टस्थितीनां गुणहान्यायामं प्रमाणयति—

मं० प्र०—तेषां पंचशरीराणां मध्ये औदारिकशरीरोत्कृष्टस्थितिः पल्यत्रयप्रमिता। वैक्रियिकशरीरस्योदधीनां सागरोपमाणां त्रयस्त्रिंशत्। आहारकशरीरस्यांतर्मुहूर्तमात्री। तैजसशरीरस्य षट्षष्ठिसागरोपमप्रमाणा। कार्मणशरीरस्य कर्मबंधोत्कृष्टस्थितिरेव। आयुर्वर्जितानां ज्ञानावरणादिसप्तमूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमादिसप्ततिकोटिकोटिसागरोपमपर्यंतप्रमिता स्थितिः। बंधप्रकरणे प्ररूपिता सर्वोत्कृष्टस्थितिर्ग्राह्या॥२५२॥ अथ पंचशरीरोत्कृष्टस्थितिषु गुणहानिप्रमाण प्ररूपयति—

सं० च०—तिनि औदारिक आदि पंच शरीरनिकी बंधरूप उत्कृष्टस्थितिविषै औदारिक शरीरकी उत्कृष्टस्थिति तीनपल्य है। वैक्रियिक शरीरकी तेतीस सागर है। आहारक शरीरकी अंतर्मुहूर्त है। तैजस शरीरकी छ्यासठि सागर है कार्माणकी स्थितिबंधविषै जो उत्कृष्ट कर्मकी स्थिति सो जाननी। सो सामान्यपनै सत्तर कोडाकोडी सागर है विशेषपनैं ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अंतरायकी तीस कोडाकोडी, मोहनीयकी सत्तर कोडाकोडी, नाम गोत्रकी वीस कोडाकोडी, आयुकी तेतीस सागर प्रमाण जाननी। ऐसैं पंच शरीरनिकी उत्कृष्टस्थिति कही। अब इहां यथार्थ ज्ञानके निमित्त अंक संदृष्टिकरि दृष्टांत कहिए है—

जैसैं समय प्रबद्धका परिमाण तरेसठिसै ६३०० परमाणू स्थिति अडतालीस समय होइ तैसैं इहां पंचशरीर-

निकी समय प्रबद्धके परमाणूनिका परिमाण अर स्थितिके जेते समय होहिं तिनिका परमाणूका परिमाण पूर्वोक्त जानना ॥ २५२ ॥ आगें इनि पंचशरीरनिकी उत्कृष्ट स्थितिनिविषैं गुणहानि आयामका परिमाण कहै हैं—

अंतोमुहुत्तमेत्तं गुणहाणी होदि आदिमातिगाणं ।
पल्लासंखेज्जदिमं गुणहाणी तेजकम्माणं ॥ २५३ ॥

अंतर्मुहूर्तमात्रा गुणहानिर्भवति आदिमत्रिकानां ।
पल्यासंख्याता गुणहानिस्तेजःकर्मणोः ॥ २५३ ॥

जी० प्र०—आदिमानां औदारिकवैक्रियिकाहारकत्रिशरीराणां उत्कृष्टस्थितिसंबंधिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः प्रत्येकं स्वस्वयोग्यांतर्मुहूर्तमात्री भवति । २ १ । तैजसकार्मणशरीरयोः उत्कृष्टस्थितिसंबंधिनी गुणहानिः स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्री भवति । तत्र तैजसशरीरस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदेभ्योऽसंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिप्रमितेन शलाकाराशिना भक्तसंख्यातपल्यप्रमाणस्वोत्कृष्टस्थितिमात्री प १ छे व छे a कार्मणशरीरस्य तु स्वनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यच्छेदराशिना भक्तसंख्यातपल्यप्रमितस्वोत्कृष्टस्थितिप्रमाणा प १ छे व छे इति विशेषो ज्ञातव्यः । यदि अंतर्मुहूर्तायामस्य एका गुणहानिः तदा सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य पल्यत्रयस्य कियत्यः इति प्र २ १ । फ १ । इ, प ३ । त्रैराशिकेन लब्धाः नानागुणहानिशलाकाः औदारिकशरीरस्थितेरेतावत्यः प ३ / २ १ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि ताः साधयेत् । तत्र प्र २ १ । फ १ । इ सा ३३ लब्धा वैक्रियिकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः सा ३३ / २ १ । प्र २ १ । फ १ । इ २ १ १ । लब्धाः आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः २ १ १ / २ १ । प्र सा ६६ / छे । व । छे । a । फ १ । इ सा ६६ लब्धास्तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः—छे व छे a । प्र सा ७० को २ । फ १ । इ छे व छे

सा ७० को २, लब्धाः कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः। छे व छे। अथौदारिकादिशरीराणां गुणहान्यायामः साध्यंते। तद्यथा एतावन्नानागुणहानीनां यद्येतावान् स्थित्यायामः, तदा एकगुणहानेः कियान् स्थित्यायामः इति त्रैराशिकेन प प ३। फ प ३। इ १। २ ७ लब्धः औदारिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ७। प्र सा ३ ३। फ सा ३३। इ १। लब्ध. वैक्रियिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ७। २ ७ प्र ७। फ २ ७ ७। इ १। लब्धः आहारकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ७। प्र, छे व छे a। फ सा ६६। इ १। लब्धः तैजसशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प ७। प्र छे व छे। फ, सा ७० को २। इ १। लब्धः कार्मणशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प ७। औदा- छे व छे। a छे व छे

रिकादिशरीरस्थितीनामन्योन्याभ्यस्तराशयस्तु तत्तन्नानागुणहानिशलाकाः विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते समुत्पद्यंते तद्यथा—एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते यद्येतावान् राशिरुत्पद्यते तदा एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते को राशिरुत्पद्यते? इति त्रैराशिकं कृत्वा दे २ देय २ लब्धं करणसूत्रेणानीयते—

प्र वि छे छे छे ९। फ ≡। इ वि प ३।
a २ ७

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे। लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥ २१४ ॥

प ३

इति लोकार्धच्छेदैः औदारिकादिशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं भक्त्वा २ ७। छे छे छे ९। तल्लब्धमितेष्विष्टराशिरूपलोकेषु अन्योन्यं गुणितेषु उत्पन्नराशिः औदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्यातलोकमात्रो भवति ≡ a। तथा वैक्रियिकशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं सा ३३ लोकार्धच्छेदैर्भक्त्वा २७। छे छे छे ९। तल्लब्धप्रमितलोकेषु वर्गितसंवर्गीकृतेषु यो राशिः स वैक्रियिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति। ≡ a। ≡ a। अयमौदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिनोऽसंख्यातलोकगुणितः ≡ a अंतर्मुहूर्तभक्तत्रिपल्येभ्योऽतर्मुहूर्तभक्तत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां एकशतदशकोटीकोटिगुणितत्वात् तदधिकमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नस्यास्य ≡ a गुणकारत्वसंभवात्।

अथवा एतावतीनां औदारिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां यद्येतावान् अन्योन्याभ्यस्तराशिः तदा एतावतीनां वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां कियान् अन्योन्याभ्यस्तराशिरिति त्रैराशिके कृते प्र प ३ । फ ≡ a । इ प ३ । ११० को २ । लब्धस्य एकशतदशकोटीको-
२ १ २ १

टिवारौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तानां अन्योन्यगुणितोत्पन्नराशिमात्रत्वात् तेन गुणितत्वप्रसिद्धेः । आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः संख्याताः विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्वा संवर्गोत्पन्नराशिरपि संख्यातः स तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् १ १ । तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः कार्मणशरीरस्थितिगुणहानिशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणितास्ताः पल्यार्धच्छेदराशिना भक्त्वा छे व छे a ऋणं सगुणकार-
छे

भागहारं पृथग्धृत्य व छे a शेषऋणरहितराशिं छे a पल्यच्छेदभाज्यराशिना पल्यच्छेदराशिभागहारः सदृशः इति तावपवर्तयेत् a । शेष-
छे छे

तद्गुणकारभूतासंख्यातः पल्यछेदासंख्यातैकभाग एव न पल्यच्छेदप्रमितः, अन्यथा तावन्मात्रपल्यसंवर्गोत्पन्नतैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिः सूच्यंगुलं भवेत् न च स तथा, परमागमे क्षेत्रप्रमाणेन सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रत्वेन कालप्रमाणेन असंख्यातकल्पमात्रत्वेन च तत्प्रमाणप्रतिपादनात् । तदसंख्यातरूपाणि विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति पल्यं दत्वा संवर्गोत्पन्नराशिः द्विरूपवर्गधारायां पल्यराशेरुपरि विरलनराशिहारभूतासंख्यातस्य यावंतोऽर्धच्छेदाः तावंति वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नसूच्यंगुलासंख्येयभागः २ । अयं च—
a

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति नियमात् प्राक्पृथक्स्थापितऋणेन व छे a अपवर्तितेन एकरूपासंख्येयभागेन पल्ये गुणिते संजातपल्यासंख्यातैकभागेन भक्त्वा
छे

२ प अपवर्तितः सूच्यंगुलासंख्येयभाग एव भवति २ । कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकानां छे व छे प्रतिरूपं द्विकं दत्वा संवर्गोत्प-
a a a

न्नः स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः तदन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति । प । पल्यार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नपल्यस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदराशि-
व

मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यवर्गशलाकाराशेर्हारत्वकथनात् । अथौदारिकादिशरीरस्थितीनां यो यो गुणहान्यायामः स स द्वाभ्यां गुणितो निषेक-

हारापरनामा दोगुणहानिर्भवति । औ २ ०। २ । वै २ ०। २ । आ २ ०। २ । तै प ०। २ । का प ०। २ । तदौदारिकशरीरसमयप्रब-
छे व छे ७। छे व छे

द्धानां अंकसंदृष्ट्या द्रव्यं ६३०० स्थितिः ४८ गुणहानिः ८ नानागुणहानिः ६ निषेकहारः १६ अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४। औदारिकादिशरीर-समयप्रबद्धाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधवंतः । तत्र प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगतः स्यातां, स्थित्यनुभागबंधौ कषायतः स्यातां । तत्र विवक्षितसमये बद्धस्य उत्कृष्टस्थितिबंधस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममात्रस्य प्रथमसमयादारभ्य सप्तसहस्रवर्षकालपर्यंतमाबाधेति त्यक्त्वा शेषस्थितिप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यंतं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकाः परमाणुपुंजाः निषेका भवंति । तद्रचनाकरणविधानं तावदंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते । तद्यथा—विवक्षितैकसमये बद्धकार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं । स । अंकसंदृष्ट्या इदं ६३०० ।

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं । होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ।

इति प्रागुक्तपल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रेण कार्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिना अंकसंदृष्ट्या चतुःषष्ट्यात्मकेन ६४ रूपोनेन भक्तैकभागः । ६३०० । पूर्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहस्य । छे व छे । अंकसंदृष्ट्या षडात्मकस्य ६ चरमगुणहानिसंबंधिद्रव्यं
६३

भवति १०० । अधः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमो भवति । तथा सति प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्याद्रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं भवति १०० । ६४ ।
२

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः ।

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः	
१००	प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं ३२०० , अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदीति गुणहान्यायामेन ८ भक्ते सति मध्यमधनं भवति । ४०० । त रूऊणअद्धाणअद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयमिति तन्मध्यमधनं रूपोनगुणहान्यर्धेन हीननिषेकहारेण भक्तं सत् तत्प्रथमगुणहानिसंबंधिप्रचयो भवति ।
१०० । २	
१०० । २ । २	
१०० । २ । २ । २	४०० अयं चापवर्तितो ३२ निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या गुणितः ३२ । १६ प्रथमगुणहानि
१०० । २ । २ । २ । २	१६-८ प्रथमनिषेको भवति ५१२ 'तत्तो विसेसहीणकमं' उपर्युपरि तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यंतमे-
१०० । २ । २ । २ । २ । २	२ कैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भवति इति रूपाधिकगुणहानि-

गुणितचयप्रमाणो भवति ३२ । ८ अयं च गुणित एतावान् भवति । २८८ । प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासः—

२८८
३२०
३५२
३८४
४१६
४४८
४८०
५१२

द्वितीयगुणहानिद्रव्ये १६०० गुणहान्यायामेन खंडिते मध्यमधनं २०० । इदं पुनः रूपोनगुणहान्यायामार्धहीन निषेकहारेण भक्तं सद् द्वितीयगुणहानिप्रचयो भवति २०० स एव द्विगुणगुणहान्या गुणितो द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति २५६ उपरि नि-
१६-८ १ / २
जैकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रस्वविशेषा हीना भवंति इति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणो भवति १४४ । तृतीयगुणहानिद्रव्ये ८०० गुणहान्या भक्ते मध्यमधनं १०० इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं प्रचयः १०० अयं दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेकः १२८ । अयमुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो
२५ / २

भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणो भवति ८ । ८ गुणितः ७२ । एवमनेन क्रमेण गत्वा चरमगुणहानिद्रव्ये १०० प्राग्वद्गुणहान्या भक्ते लब्धं मध्यमधनं १०० / ८ इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सच्चरमगुणहानिसंबंधिचयः १०० / ८ । २५ / २ अपवर्तितोयं १, दोगुण ८ हान्या गुणितचरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणं भवति १६ । तदुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनं भवतीति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणं १ । ९ चरमनिषेको भवति । एवं द्वितीयादिद्विगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यंतासु गुणहीनक्रमो दृश्यते ततो गुणहानिरन्वर्थनामा स्यात् । तर्हि प्रथमगुणहानेः कथं गुणहानित्वमिति चेत्तन्न, मुख्यत्वेन गुणहानित्वाभावेऽपि उपरितनीनां गुणहानिनिमित्तभूतविशेषहीनत्वस्य सद्भावात् तस्मा उपचारेण तत्सिद्धेः । एवमेकैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्व-

१ मुख्यत्वेन गुणहानित्वं नास्ति तथापि उपरितनीनां गुणहानित्वनिमित्तभूतविशेषहीनत्वमस्तीति ग पुस्तके पाठः ।

सा ७० को २, लब्धाः कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः। छे व छे। अथौदारिकादिशरीराणां गुणहान्यायामाः साध्यंते। तद्यथा एतावन्नानागुणहानीनां यद्येतावान् स्थित्यायामः, तदा एकगुणहानेः कियान् स्थित्यायामः इति त्रैराशिकेन प प ३। फ प ३। इ १। २ ए

लब्धः औदारिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ए। प्र सा ३ ३। फ सा ३३। इ १। लब्धः वैक्रियिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ए। २ ए

प्र ए। फ २ ए ए। इ १। लब्धः आहारकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ए। प्र, छे व छे a। फ सा ६६। इ १। लब्धः तैजसशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प ए। प्र छे व छे। फ, सा ७० को २। इ १। लब्धः कार्मणशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प ए। औदा- छे व छे। a छे व छे

रिकादिशरीरस्थितीनामन्योन्याभ्यस्तराशयस्तु तत्तन्नानागुणहानिशलाकाः विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्वा वर्गितसंवर्गे कृते समुत्पद्यंते तद्यथा—एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते यद्येतावान् राशिरुत्पद्यते तदा एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते को राशिरुत्पद्यते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा दे २ देय २ लब्धं करणसूत्रेणानीयते—

प्र वि छे छे छे ९। फ ≡। इ वि प ३।
a २ ए

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे। लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥ २१४ ॥

प ३

इति लोकार्धच्छेदैः औदारिकादिशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं भक्त्वा २ ए। छे छे छे ९। तल्लब्धमितेष्विष्टराशिरूपलोकेषु अन्योन्यं गुणितेषु उत्पन्नराशिः औदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्यातलोकमात्रो भवति ≡ a। तथा वैक्रियिकशरीरस्थिति- सा ३३ a

नानागुणहानिशलाकाराशिं लोकार्धच्छेदैर्भक्त्वा २ए। छे छे छे ९। तल्लब्धप्रमितलोकेषु वर्गितसंवर्गीकृतेषु यो राशिः स वैक्रियिकशरीर- a

स्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति। ≡ a। ≡ a। अयमौदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशितोऽसंख्यातलोकगुणितः ≡ a अंतर्मुहूर्तभक्तत्रिपल्येभ्योऽन्तर्मुहूर्तभक्तत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां एकसप्तदशकोटीकोटिगुणितत्वात् तदधिकमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नस्यास्य ≡ a गुणकारत्वसंभवात्।

अथवा एतावतीनां औदारिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां यद्येतावान् अन्योन्याभ्यस्तराशिः तदा एतावतीनां वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां कियान् अन्योन्याभ्यस्तराशिरिति त्रैराशिके कृते प्र प ३ । फ ≡ a । इ प ३ । ११० को २ । लब्धस्य एकशतदशकोटीको-
२ ७   २ ७

टिवारौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तानां अन्योन्यगुणितोत्पन्नराशिमात्रत्वात् तेन गुणितत्वप्रसिद्धेः । आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः संख्याताः विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नराशिरपि संख्यातः स तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् ७ ७ । तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः कार्मणशरीरस्थितिगुणहानिशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणितास्ताः पल्यार्धच्छेदराशिना भक्त्वा छे व छे a ऋणं सगुणकार-
छे

भागहारं पृथग्धृत्य व छे a शेषऋणरहितराशिं छे a पल्यच्छेदभाज्यराशिना पल्यच्छेदराशिभागहारः सदृशः इति तावपवर्तयेत् a । शेष-
छे   छे

तद्गुणकारभूतासंख्यातः पल्यछेदासंख्यातैकभाग एव न पल्यच्छेदप्रमितः, अन्यथा तावन्मात्रपल्यसंवर्गोत्पन्नतैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिः सूच्यंगुलं भवेत् न च स तथा, परमागमे क्षेत्रप्रमाणेन सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रत्वेन कालप्रमाणेन असंख्यातकल्पमात्रत्वेन च तत्प्रमाणप्रतिपादनात् । तदसंख्यातरूपाणि विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति पल्यं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नराशिः द्विरूपवर्गधारायां पल्यराशेरुपरि विरलनराशिहारभूतासंख्यातस्य यावंतोऽर्धच्छेदाः तावंति वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नसूच्यंगुलासंख्येयभागः २ । अयं च—
a

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति नियमात् प्राक्पृथक्स्थापितऋणेन व छे a अपवर्तितेन एकरूपासंख्येयभागेन पल्ये गुणिते संजातपल्यासंख्यातैकभागेन भक्त्वा
छे

२ प अपवर्तितः सूच्यंगुलासंख्येयभाग एव भवति २ । कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकानां छे व छे प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नः
a a   a

स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः तदन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति । प । पल्यार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नपल्यस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदराशि-
व

मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यवर्गशलाकाराशेर्हारत्वकथनात् । अथौदारिकादिशरीरस्थितीनां यो यो गुणहान्यायामः स स द्वाभ्यां गुणितो निषेक-

हारापरनामा दोगुणहानिर्भवति । औ २ १७ । २ । वै २ १७ । २ । आ २ १७ । २ । तै प १७ । २ । का प १७ । २ । तदौदारिकशरीरसमयप्रब-
छे व छे ३ । छे व छे

द्धानां अंकसंदृष्ट्या द्रव्यं ६३०० स्थितिः ४८ गुणहानिः ८ नानागुणहानिः ६ निषेकहारः १६ अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ । औदारिकादिशरीर-समयप्रबद्धाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधवंतः । तत्र प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगतः स्यातां, स्थित्यनुभागबंधौ कषायतः स्यातां । तत्र विवक्षितसमये बद्धस्य उत्कृष्टस्थितिबंधस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममात्रस्य प्रथमसमयादारभ्य सप्तसहस्रवर्षकालपर्यंतमाबाधेति त्यक्त्वा शेषस्थितिप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यंतं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकाः परमाणुपुंजाः निषेका भवंति । तद्रचनाकरणविधानं तावदंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते । तद्यथा—विवक्षितैकसमये बद्धकार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं । स । अंकसंदृष्ट्या इदं ६३०० ।

रूऊणण्णोण्णब्भत्थहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं । होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ।

इति प्रागुक्तपल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रेण कार्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिना अंकसंदृष्ट्या चतुःषष्ट्यात्मकेन ६४ रूपोनेन भक्त्वैकभागः । ६३०० । पूर्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहस्य । छे व छे । अंकसंदृष्ट्या षडात्मकस्य ६ चरमगुणहानिसंबंधिद्रव्यं
६३

भवति १०० । अधः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमो भवति । तथा सति प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्याद्रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं भवति १०० । ६४ ।
२

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः ।

१००	प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं ३२०० , अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदीति गुणहान्यायामेन ८ भक्ते सति मध्यमधनं भवति । ४०० ।
१०० । २	त रूऊणअद्धाणअद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयमिति तन्मध्यमधनं रूपोनगुणहान्यर्धेन हीननिषेकहारेण भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसंबंधिप्रचयो भवति ।
१०० । २ । २	४०० अयं चापवर्तितो ३२ निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या गुणितः ३२ । १६ प्रथमगुणहानि
१०० । २ । २ । २	१६-८ प्रथमनिषेको भवति ५१२ 'तत्तो विसेसहीणकमं' उपर्युपरि तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यंतमे-
१०० । २ । २ । २ । २	२ कैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भवति इति रूपाधिकगुणहानि-
१०० । २ । २ । २ । २ । २	

गुणितचयप्रमाणो भवति ३२ । ८ अयं च गुणित एतावान् भवति । २८८ । प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासः—

२८८
३२०
३५२
३८४
४१६
४४८
४८०
५१२

द्वितीयगुणहानिद्रव्ये १६०० गुणहान्यायामेन खंडिते मध्यमधनं २०० । इदं पुनः रूपोनगुणहान्यायामार्धहीन निषेकहारेण भक्तं सद् द्वितीयगुणहानिप्रचयो भवति २०० स एव द्विगुणगुणहान्या गुणितो द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति २५६ उपरि नि-
१६-८
२
जैकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रस्वविशेषा हीना भवंति इति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणो भवति १४४ । तृतीयगुणहानिद्रव्ये ८०० गुणहान्या भक्ते मध्यमधनं १०० इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं प्रचयः १०० अयं दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेकः १२८ । अयमुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो
२५
२

भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणो भवति ८।८ गुणितः ७२ । एवमनेन क्रमेण गत्वा चरमगुणहानिद्रव्ये १०० प्राग्वद्गुण-हान्या भक्ते लब्धं मध्यमधनं १०० । इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सच्चरमगुणहानिसंबंधिचयः १०० अपवर्तितोयं १,
८
८।२५
२
दोगुण ८ हान्या गणितचरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणं भवति १६ । तदुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनं भवतीति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणं १।९ चरमनिषेको भवति । एवं द्वितीयादिद्विगुणहानिषु चरमगुणहानि-पर्यंतासु गुणहीनक्रमो दृश्यते ततो गुणहानिरन्वर्थनामा स्यात् । तर्हि प्रथमगुणहानेः कथं गुणहानित्वमिति चेन्न, मुख्यत्वेन गुणहानित्वाभावेऽपि उपरितनीनां गुणहानिनिमित्तभूतविशेषहीनत्वस्य सद्भावात् तस्या उपचारेण तत्सिद्धेः । एवमेकैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्व-

१ मुख्यत्वेन गुणहानित्वं नास्ति तथापि उपरितनीनां गुणहानित्वनिमित्तभूतविशेषहीनत्वमस्तीति ग पुस्तके पाठः ।

निषेकविन्यासरचनेयं ।

	२२८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२	१४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६	७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८	३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४	१८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६	
६३००	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००	एकत्र ६३०८

एवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषाः निषेकाश्च अर्धार्धक्रमा इति निश्चेतव्याः । अयं तु विशेषः । स्वस्वगुणहानिचरमनिषेके स्वस्वैकैकचयेऽपनीते उपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमप्रथमनिषेको भवति एवमौदारिकादितैजसांतानां नोकर्मसमयप्रबद्धानां तु प्रागुक्तं स्वस्वस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं स्मृत्वा स्वस्वस्थितेः प्रथमसमयादेव आरभ्य निषेकरचना कर्तव्या, औदारिकादिशरीराणां अग्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात् । अधुना अर्थसंदृष्ट्या दर्शयति तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धं द्रव्यमिदं स ७ ७ ख ख लघुसंदृष्टिनिमित्तं स इति लिखित्वा (प) रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते तच्चरमगुणहानिद्रव्यं भवति । $\frac{स}{अ}$ । ततः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यादन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितप्रमाणं भवति । $\frac{स \mid अ}{अ \mid २}$ । इदं पुनः गुणहान्या भक्तं सत् मध्यमधनं भवति $\frac{स \mid अ}{अ \mid २ गु}$ तच्च रूपोनगुणहान्यार्धोनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसंबंधिचयो भवति । अ । २ । गु । गु ३/२ । अयं च दोगुणहान्या गुणि-

तः सन् प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । स । अ । गु २ / अ । २ गु । गु । ३ / २ ततः स्वचरमनिषेकपर्यंतं एकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगुणहान्यायाममात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वचयप्रमाणो भवति । स । अ । गु / अ । २ गु । गु ३ अनेन प्रकारेण द्वितीयादिगुणहानिषु स्वस्य द्रव्यस्य निषेकरचनां कृत्वा चरमगुणहानिद्रव्यमिदं स / अ , गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं भवति २ स / अ । गु । इदं च रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत् तच्चरमगुणहानिचयो भवति स / अ । गु । गु । ३ / २ । अयं च दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेको भवति—
स । गु २ । / अ । गु । गु । ३ / २ तत उपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्रमितश्चरमनिषेको भवति स गु / अ । गु । गु ३ / २ एवं कार्मणशरीरसत्त्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासोयं—

स । अ । गु / अ । २ । गु । गु । ३ / २	स । अ । गु । / अ । २ । २ । गु । गु । ३ / २	० ● ●	स , २ , गु / अ , गु , गु ३ / २	स , गु , / अ , गु , गु , ३ , / २
०	०	छे व छे	●	●
०	●	०	●	●
०	●	●	०	०
स । अ । गु २ / अ । २ । गु । गु ३ / २	स । अ । गु । २ / अ । २ । २ गु । गु ३ / २	०	स , २ , गु , २ , / अ गु , गु , ३ , / २	स , गु , २ / अ , गु , गु , ३ / २
स । अ / अ । २	स , अ / अ , २ , २	० ० ०	स २ / अ ,	म / [illegible]

इत्येवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषनिषेकाश्च अर्धार्धक्रमा ज्ञातव्याः ॥ २५२ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धानां बंधोदयसत्त्वावस्थायां द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति---

मं० प्र०---आदिमाना त्रयाणामौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराणां उत्कृष्टस्थितिसंबधिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः स्वयोग्यांतर्मुहूर्तमात्रः। तैजसकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टस्थितिसंबंधिनी गुणहानिः पल्यासंख्येयभागमात्री। तत्र तैजसशरीरस्य संख्यातपल्यमात्रस्योत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना असंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तादृशपल्यासंख्येयभागमात्री गुणहानिः। कार्मणशरीरस्य तु संख्यातपल्यमात्रस्योत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तथाविधपल्यासंख्येयभागप्रमिता गुणहानिः, इत्ययं विशेषो ज्ञातव्यः। एतावतः स्थित्यायामस्य प्र २१ , यद्येका गुणहानिशलाका लभ्यते फ १ , तदा एतावतः सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य इ प ३ , कियत्यो गुणहानिशलाका लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धाः औदारिकशरीरस्य नानागुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातभागप्रमिताः प ३ / २ १ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि नानागुणहानिशलाकाः साध्याः। प्र २१ । फ १। इ सा ३३। लब्धवैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकाः सा ३३ / २१ । प्र २१ । फ १। इ २११ लब्धाहारकशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः संख्येयरूपाणि १ । प्र सा ६६ । फ १ । इ सा ६६ लब्धतैजसशरीरनानागुणहानिशलाका अपवर्तिताः। छे व छे a / छे व छे a ।

प्र सा ७० को २ । फ १ । इ सा ७० को २ । लब्धकार्मणशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः छे व छे। एतावतीनां नानागुणहानिशलाकानां छे व छे

प्र प ३ , यद्येतावान् स्थित्यायामो लभ्यते फ प ३ , तदा एकगुणहानिशलाकायाः इ १। कियान् स्थित्यायामो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धः औदारिकशरी- २ १ रस्य एकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ १ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि गुणहान्यायामः साध्यः। प्र सा ३३ । फ सा ३३। इ १ लब्धवैक्रियिकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ १ ॥ प्र १ फ २ १ १। इ १। लब्धाहारकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ १ ॥ प्र छे व छे a । फ सा ६६ । इ १ । लब्धतैजसशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः प १ / छे व छे a । प्र छे व छे । फ सा ७० को २ । इ १। लब्धकार्मणशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः

प ७ । एवमानीतस्वस्वनानागुणहानिशलाका विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्वा अन्योन्यसंगुणे कृते यो राशिरुत्पद्यते स अन्योन्याभ्यस्तराशिरित्युच्यते । औदा-
छे व छे

रिकशरीरस्य अन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्येयलोकमात्रः । वैक्रियिकशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशिस्ततोऽसंख्येयलोकगुणः । आहारकशरीरस्य संख्यातरूपाणि । तैजसशरीरस्य सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रः, स चापवर्तितः असंख्यातकल्पप्रमितो भवति । द्विरूपवर्गधारायामद्धापल्यस्योपरि असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नराशिरित्यर्थः । कार्मणशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशिः स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः । छेदराशिमात्रद्विकान्योन्यगुणकारे सत्युत्पन्नस्य पल्यस्य वर्गशलाकाच्छेदमात्रहीनरूपप्रमितद्विकान्योन्यगुणकारसमुत्पन्नवर्गशलाकाराशिर्भागहारो भवति 'विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि' इति परिभाषाबलेन सिद्धत्वात् । समयप्रबद्धस्य स्थितेः प्रथमसमयादारभ्य यावत्सु समयेषु वर्तमाननिषेकाः प्रथमनिषेकादेकैकसमानचयहीना गच्छंति, तेभ्यः समयेभ्यः यस्मिन् समये पूर्वैकचयहीनो निषेकः यदि प्रथमनिषेकादर्धमात्रो भवेत् तस्मात् समयात्प्राक्तनसमयानां सर्वेषामेका गुणहानिरिति संज्ञा, तावत्स्वेव समयेषु उपरितनेषु वर्तमाना निषेकाः प्राक्तनगुणहानिनिषेकाणामर्धार्धमात्रा भवति । चयश्च प्राक्तनगुणहानिचयस्य अर्धमात्रो भवतीति द्वितीयगुणहानिनिषेकचयद्विगुणहीनत्वहेतुत्वात् प्राक्तनसमयानामायामो गुणहानिरित्युपचर्यते । एवं द्वितीयादिगुणहानिनिषेकचयानामर्धार्धमात्राः तृतीयादिचरमपर्यंतगुणहानिनिषेकचया भवतीति द्विगुणहीनत्वसंभवान्मुख्य एव गुणहानिव्यपदेश. । अत एव चरमगुणहानितः प्रभृति प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्रव्यनिषेकचया द्विगुणाद्विगुणा भवति । द्विगुणितो गुणहान्यायामो निषेकभागहार इत्युच्यते । तत्र तत्तत्समयप्रबद्धे तत्तद्रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते लब्धप्रमाणं तत्तच्च चरमगुणहानिद्रव्यं भवति । ततो द्विचरमादिप्रथमगुणहानिपर्यंतानां गुणहानीनां द्रव्याणि द्विगुणद्विगुणानि भवति । तत्र रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकान्योन्यगुणकारेण यल्लब्धमन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धमात्र तेन गुणितं चरमगुणहानिद्रव्यमात्र प्रथमगुणहानिद्रव्य सिद्धं, तस्मिन् गुणहान्यायामेन भक्ते लब्धं तद्गुणहानिमध्यमधनं भवति । तदेव समीकृतचयधनसहितमादिधनं । तस्मिन् रूपोनगुणहान्यायामार्धोननिषेकभागहारेण भक्ते लब्धश्चयो भवति । तस्मिन् द्विगुणहान्यायामेन गुणिते प्रथमनिषेक आगच्छति । ततो द्वितीयादिचरमनिषेकपर्यंता निषेका एकैकचयहीना गच्छंति । पुन प्रथमगुणहानिचयेनैकेन हीनस्तच्चरमनिषेको द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । पुनर्द्वितीयादिचरमसमयपर्यंता निषेका प्रथमगुणहानिचयार्धमात्रेण एकैकेन चयेन हीना गच्छंति । एव तृतीयादिगुणहानीना प्रथमनिषेकाः स्वस्वपूर्वगुणहान्येकचयहीनतच्चरमनिषेकमात्रा भवति । द्वितीयादिनिषेकास्तु एकैकस्वस्वचयहीना गच्छंति यावच्चरमगुणहानिचरमनिषेकः प्राप्यते । एवं प्रथमगुणहानितो द्वितीयादिचरमपर्यंतगुणहानीना द्रव्याणि निषेकाश्चयाश्च पूर्वपूर्वगुणहानिद्रव्यनिषेकचयानां अर्धार्धमात्रा भवति । अत्र पूर्वाचार्यविन्यस्तांकसंदृष्टिमाश्रित्य समयप्रबद्ध-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि-नानागुणहानिशलाका-द्विगुणगुणहानि-चय-निषेक-तत्तद्गुणहानिद्रव्याणां विन्यासस्तदानयनविधान वक्ष्यमाणत्रिकोणरचनावस्थितसत्त्वद्रव्यसंकलनविधानं च सम्यगानयेत् तत्पुनिर्णीतांकसंदृष्टिविभागः सन् पुनरर्थसंदृष्ट्यापि समयप्रबद्धादि सर्वमानयेत् ॥ २५३ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धाना बंधोदयसत्वावस्थासु द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

निपेकविन्यासरचनेयं ।

	२२८	१४४	७२	३६	१८	९	
	३२०	१६०	८०	४०	२०	१०	
	३५२	१७६	८८	४४	२२	११	
	३८४	१९२	९६	४८	२४	१२	
	४१६	२०८	१०४	५२	२६	१३	
	४४८	२२४	११२	५६	२८	१४	
	४८०	२४०	१२०	६०	३०	१५	
	५१२	२५६	१२८	६४	३२	१६	
६३००	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००	एकत्र ६३०८

एवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषाः निपेकाश्च अर्धार्धक्रमा इति निश्चेतव्याः । अयं तु विशेषः । स्वस्वगुणहानिचरमनिपेके स्वस्वैकैकचयेऽपनीते उपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमप्रथमनिपेको भवति एवमौदारिकादितैजसांतानां नोकर्मसमयप्रबद्धानां तु प्रागुक्त स्वस्वस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिपेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाण स्मृत्वा स्वस्वस्थितिप्रथमसमयादेव आरभ्य निपेकरचना कर्तव्या, औदारिकादिशरीराणां अग्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात् । अधुना अर्थसंदृष्ट्या दर्शते तद्यथा––कार्मणसमयप्रबद्धं द्रव्यमिदं स ∂ ∂ ख ख लघुसंदृष्टिनिमित्तं स इति लिखित्वा (स) रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते तच्चरमगुणहानिद्रव्यं भवति । स / अ (१ऋ) । ततः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यादन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितप्रमाणं भवति । स । अ / अ (१ऋ) । २ । इदं पुनः गुणहान्या भक्तं सत् मध्यमधनं भवति स / स । अ । स । अ / अ (१ऋ) । २ गु

तच्च रूपोनगुणहान्यार्धोनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसंबंधिचयो भवति । अ (१ऋ) । २ । गु । गु ३ / २ । अयं च दोगुणहान्या गुणि-

स । अ । गु २
तः सन् प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । अ । २ गु । गु । ३ ततः स्वचरमनिषेकपर्यंतं एकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगु-
२
स । अ । गु
णहान्यायाममात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वचयप्रमाणो भवति । अ । २ गु । गु ३ अनेन प्रकारेण द्वितीयादिगुणहानिषु
२ स
स
स्वस्य द्रव्यस्य निषेकरचनां कृत्वा चरमगुणहानिद्रव्यमिदं अ , गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं भवति अ । गु । इदं च रूपोनगुणहान्य-
स
र्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत् तच्चरमगुणहानिचयो भवति अ । गु । गु । ३ । अयं च दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेको भवति----
२
स । गु२ ।
अ । गु । गु । ३ तत उपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्र-
२ स गु
मितश्चरमनिषेको भवति अ । गु । गु ३ एव कार्मणशरीरसर्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासोयं----
२

स । अ । गु अ । २ । गु । गु । ३ २ ० ० ० स । अ । गु २ अ । २ । गु । गु ३ २ स । अ अ । २	स । अ । गु । अ । २ । २ । गु । गु । ३ २ ० • • स । अ । गु । २ अ । २ । २ गु । गु ३ २ स , अ अ , २ , २	० ० • छे व छे ० • ० ० ० ०	स , २ , गु अ , गु , गु ३ २ • • ० स , २ , गु , २ , अ गु , गु , ३ , २ स २ अ ,	स , गु , अ , गु , गु , ३ , २ • • ० स , गु , २ अ , गु , गु , ३ २ स अ ,

इत्येवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषनिषेकाश्च अर्धार्धक्रमा ज्ञातव्याः ॥ २५२ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धानां बंधोदयसत्त्वावस्थायां द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति----

मं० प्र०---आदिमानां त्रयाणामौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराणां उत्कृष्टस्थितिसंबधिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः स्वयोग्यांतर्मुहूर्तमात्रः । तैजसकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टस्थितिसंबधिनी गुणहानिः पल्यासख्येयभागमात्री । तत्र तैजसशरीरस्य संख्यातपल्यमात्रस्वोत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना असंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्ध तादृशपल्यासंख्येयभागमात्री गुणहानिः। कार्मणशरीरस्य तु सख्यातपल्यमात्रस्वोत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तथाविधपल्यासंख्येयभागप्रमिता गुणहानिः, इत्ययं विशेषो ज्ञातव्यः । एतावतः स्थित्यायामस्य प्र २७ृ , यद्येका गुणहानिशलाका लभ्यते फ १ , तदा एतावतः सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य इ प ३ , कियत्यो गुणहानिशलाका लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धाः औदारिकशरीरस्य नानागुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातभागप्रमिताः प ३ / २ ७ृ । एव वैक्रियिकादिशरीराणामपि नानागुणहानिशलाकाः साध्याः । प्र २७ृ । फ १ । इ सा ३३ । लब्धवैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकाः सा ३३ / २७ृ । प्र २७ृ । फ १ । इ २७ृ७ृ लब्धाहारकशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः संख्येयरूपाणि ७ृ । प्र सा ६६ । फ १ । इ सा ६६ लब्धतैजसशरीरनानागुणहानिशलाका अपवर्तिताः । छे व छे ३ / छे व छे ३ ।

प्र सा ७० को २ । फ १ । इ सा ७० को २ । लब्धकार्मणशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः छे व छे । एतावतीनां नानागुणहानिशलाकानां छे व छे

प्र प ३ / २ ७ृ , यद्येतावान् स्थित्यायामो लभ्यते फ प ३ , तदा एकगुणहानिशलाकायाः इ १ । कियान् स्थित्यायामो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धः औदारिकशरीरस्य एकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ७ृ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि गुणहान्यायामः साध्यः । प्र सा ३३ / २ ७ृ । फ सा ३३ । इ १ लब्धवैक्रियिकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ७ृ ॥ प्र ७ृ फ २ ७ृ ७ृ । इ १ । लब्धाहारकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ७ृ ॥ प्र छे व छे ३ । फ सा ६६ । इ १ । लब्धतैजसशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः प ७ृ / छे व छे ३ । प्र छे व छे । फ सा ७० को २ । इ १ । लब्धकार्मणशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः

प ० ।। एवमानीतस्वस्वनानागुणहानिशलाका विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्वा अन्योन्यसंगुणे कृते यो राशिरुत्पद्यते स अन्योन्याभ्यस्तराशिरित्युच्यते । औदा-
छे व छे

रिकशरीरस्य अन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्येयलोकमात्र । वैक्रियिकशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशिस्ततोऽसंख्येयलोकगुणः । आहारकशरीरस्य सख्यातरूपाणि । तैजसशरीरस्य सूच्यंगुलासंख्येभागमात्रः, स चापवर्तितः असंख्यातकल्पप्रमितो भवति । द्विरूपवर्गधारायामद्धापल्यस्योपरि असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नराशिरित्यर्थः । कार्मणशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशि स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्र । छेदराशिमात्रद्विकान्योन्यगुणकारे सत्युत्पन्नस्य पल्यस्य वर्गशलाकाच्छेदमात्रहीनरूपप्रमितद्विकान्योन्यगुणकारसमुत्पन्नवर्गशलाकाराशिर्भागहारो भवति 'विरलनरासीदो पुण जेत्तियमित्ताणि हीणरूवाणि' इति परिभाषाबलेन सिद्धत्वात् । समयप्रबद्धस्य स्थिते प्रथमसमयादारभ्य यावत्सु समयेषु वर्तमाननिषेकाः प्रथमनिषेकादेकैकसमानचयहीना गच्छंति, तेभ्यः समयेभ्यः यस्मिन् समये पूर्वैकचयहीनो निषेकः यदि प्रथमनिषेकादर्धमात्रो भवेत् तस्मात् समयात्प्राक्तनसमयाना सर्वेषामेका गुणहानिरिति संज्ञा, तावत्स्वेव समयेषु उपरितनेषु वर्तमाना निषेकाः प्राक्तनगुणहानिनिषेकाणामर्धार्धमात्रा भवति । चयश्च प्राक्तनगुणहानिचयस्य अर्धमात्रो भवतीति द्वितीयगुणहानिनिषेकचयद्विगुणहीनत्वहेतुत्वात् प्राक्तनसमयानामायामो गुणहानिरित्युपचर्यते । एवं द्वितीयादिगुणहानिनिषेकचयानामर्धार्धमात्राः तृतीयादिचरमपर्यंतगुणहानिनिषेकचया भवतीति द्विगुणहीनत्वसभवान्मुख्य एव गुणहानिव्यपदेशः । अत एव चरमगुणहानितः प्रभृति प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्रव्यनिषेकचया द्विगुणाद्विगुणा भवति । द्विगुणितो गुणहान्यायामो निषेकभागहार इत्युच्यते । तत्र तत्तत्समयप्रबद्धे तत्तद्रूपेनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते लब्धप्रमाण तत्तच्च चरमगुणहानिद्रव्यं भवति । ततो द्विचरमादिप्रथमगुणहानिपर्यंताना गुणहानीना द्रव्याणि द्विगुणद्विगुणानि भवति । तत्र रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकान्योन्यगुणकारेण यल्लब्धमन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धमात्र तेन गुणितं चरमगुणहानिद्रव्यमात्र प्रथमगुणहानिद्रव्यं सिद्ध, तस्मिन् गुणहान्यायामेन भक्ते लब्धं तद्गुणहानिमध्यमधनं भवति । तदेव समीकृतचयधनसहितमादिधन । तस्मिन् रूपोनगुणहान्यायामार्धोननिषेकभागहारेण भक्ते लब्धश्चयो भवति । तस्मिन् द्विगुणहान्यायामेन गुणिते प्रथमनिषेक आगच्छति । ततो द्वितीयादिचरमनिषेकपर्यंता निषेका एकैकचयहीना गच्छंति । पुन प्रथमगुणहानिचयेनैकेन हीनस्तच्चरमनिषेको द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । पुनर्द्वितीयादिचरमसमयपर्यंता निषेका प्रथमगुणहानिचयार्धमात्रेण एकैकेन चयेन हीना गच्छंति । एवं तृतीयादिगुणहानीनां प्रथमनिषेकाः स्वस्वपूर्वगुणहान्येकचयहीनतच्चरमनिषेकमात्रा भवति । द्वितीयादिनिषेकास्तु एकैकस्वस्वचयहीना गच्छति यावच्चरमगुणहानिचरमनिषेकः प्राप्यते । एव प्रथमगुणहानितो द्वितीयादिचरमपर्यंतगुणहानीना द्रव्याणि निषेकाश्चयाश्च पूर्वपूर्वगुणहानिद्रव्यनिषेकचयाना अर्धार्धमात्रा भवंति । अत्र पूर्वाचार्यविन्यस्ताकसंदृष्टिमाश्रित्य समयप्रबद्ध-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि-नानागुणहानिशलाका-द्विगुणगुणहानि-चय-निषेक-तत्तद्गुणहानिद्रव्याणा विन्यासस्तदानयनविधान वक्ष्यमाणत्रिकोणरचनावस्थितसत्त्वद्रव्यसकलनविधानं च सम्यगानयेत् तत्सुनिर्णीताकसंदृष्टिविभागः सन् पुनरर्थसंदृष्ट्यापि समयप्रबद्धादि सर्वमानयेत् ॥ २५३ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धाना बंधोदयसत्त्वावस्थासु द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

स.चं.-पूर्व पूर्व गुणहानितैं उत्तर उत्तर गुणहानिविषैं गुणहानिका वा निषेकनिका द्रव्य दूणा दूणा घटता होइ है तातैं गुणहानि नाम जानना सो जैसैं अडतालीस समयकी स्थितिविषैं आठ आठ समय प्रमाण एक एक गुणहानिका आयाम हो है तैसैं आदिके तीन शरीर औदारिक वैक्रियिक आहारक तिनकी तौ उत्कृष्टस्थिति संबंधी गुणहानि यथायोग्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण है अपने अपने योग्य अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंइ तितना गुणहानिका आयाम जानना । आयाम नाम लंबाईका है सो इहां समय समय संबंधी निषेक रूपतैं होइ तातैं आयाम अैसी संज्ञा कही बहुरि तैजसकार्माणकी उत्कृष्टस्थिति संबंधी गुणहानि अपने अपने योग्य पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है तहां पल्यकी जो वर्गशलाका ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तितने पल्यके अर्धच्छेदनिमें घटाएं जो अवशेष रहै ताकौं असंख्यात करि गुणें जो परिमाण होइ तितनी तैजसकी सर्वनानागुणहानि है। इस परिमाणका भाग तैजस शरीरकी उत्कृष्टस्थिति संख्यातपल्य प्रमाण है ताकौं दीएं जो परिमाण आवै तींहिं प्रमाण पल्यके असंख्यातवे भागमात्र तैजस शरीरकी गुणहानिका आयाम है। बहुरि पल्यकी वर्गशलाकाके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिकौं पल्यके अर्धच्छेदनिमें घटाएं जो अवशेष रहै तितनी कार्माणकी सर्वनाना गुणहानि है इस परिमाणका भाग कार्माणकी उत्कृष्टस्थिति संख्यातपल्यप्रमाण है ताकौं दीएं जो परिमाण आवैं तींहिं प्रमाण पल्यके असंख्यातवे भागमात्र कार्माण शरीरकी गुणहानिका आयाम है। अैसैं गुणहानि आयाम कह्या बहुरि जैसैं आठ समयकी एक गुणहानि होइ तौ अडतालीस समयकी केती गुणहानि होंइ? अैसैं त्रैराशिक कीए सर्वस्थितिविषैं नानागुणहानिका प्रमाण छह आवै तैसैं जो औदारिक शरीरकी एक अंतर्मुहूर्तमात्र एक गुण हानि शलाका है तौ तीनि पल्यकी नाना गुणहानि कितनी है? अैसैं त्रैराशिक करिए तहां प्रमाण राशि अंतर्मुहूर्तके समय, फलराशि एक, इच्छाराशि तीन पल्यके समय इहां फलराशिकरि इच्छा राशिकौं गुणि प्रमाण राशिका भाग दीए लब्ध प्रमाण तीन पल्यकौं अंतर्मुहूर्तका भाग दीए जो परिमाण आवै तितना सो आया उत्कृष्ट औदारिक शरीरकी स्थितिविषैं नानागुण हानिका प्रमाण जानना । अैसैं ही वैक्रियिक शरीरविषैं

प्रमाण राशि अंतर्मुहूर्त,फलराशि एक, इच्छाराशि तेतीससागर कीयें तेतीस सागरकों अंतर्मुहूर्तका भाग दीयें जो प्रमाण आवै तितना नानागुणहानिका प्रमाण जानना बहुरि आहारक शरीरविषें प्रमाणराशि छोटा अंतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छा राशि बड़ा अंतर्मुहूर्त कीएं अंतर्मुहूर्तकों स्वयोग्य छोटा अंतर्मुहूर्तका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना । बहुरि तैजस शरीरविषें प्रमाण राशि पूर्वोक्त गुण हानि आयाम, फलराशि एक इच्छाराशी छ्यासठ सागर कीएं पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेदकरि हीन पल्यका अर्धच्छेदनितैं असंख्यात गुणा नाना गुणहानिका प्रमाण हो है । बहुरि कार्माण शरीरविषें प्रमाणराशि पूर्वोक्त गुणहानि आयाम, फल राशि एक, इच्छा राशि मोहकी अपेक्षा सत्तरि कोडाकोडी सागर कीएं पल्यकी वर्ग शलाकाका अर्धच्छेदकरि हीन पल्यका अर्धच्छेदमात्र नानागुणहानिका प्रमाण जानना । अब औदारिक आदि शरीरनिका गुणहानिआयाम साधिए है—

जैसें जो छह नाना गुणहानिका अडतालीस समय प्रमाण स्थिति आयाम होइ तौ एक गुण हानिका कितना आयाम होइ ऐसैं त्रैराशिक करिये इहां प्रमाण राशि छह, फलराशी अडतालीस इच्छा राशि एक भया तहां लब्ध राशिमात्र एक गुणहानि आयामका प्रमाण आठ आया तैसें अपना अपना नाना गुणहानि प्रमाणका अपना अपना स्थिति प्रमाण आयाम होइ तो एक गुणहानिका केता आयाम होइ ऐसें त्रैराशिक करिए तहां लब्धराशि मात्र गुणहानिका आयाम हो है । तहां औदारिकविषै प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्य, फलराशि तीनि पल्य, इच्छा राशि एक कीएं लब्ध राशि अंतर्मुहूर्त हो है । बहुरि वैक्रियिकविषै प्रमाण राशि अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तेतीससागर, फलराशि तेतीस सागर, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि अंतर्मुहूर्त हो है बहुरि आहारकविषै प्रमाण राशि संख्यात फलराशि अंतर्मुहूर्त, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि छोटा अंतर्मुहूर्त हो है बहुरि तैजसविषैं प्रमाण राशि पल्यकी वर्ग शलाकाका अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेदनितैं असंख्यातगुणा,फल छ्यासठि सागर, इच्छा एक कीएं लब्ध राशि संख्यातपल्यकों पल्यकी वर्गशलाकाका

अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेदनितैं असंख्यात गुणे प्रमाणका भाग दीएं जो प्रमाण आवे तितना जानना। बहुरि कार्माणविषैं प्रमाणराशि पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेद मात्र, फलराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि संख्यात पल्यकौं पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेदराशिका भाग दीएं जितना आवे तितना जानना। ऐसैं लब्धराशिमात्र एक गुण हानिका आयाम जानना। इतने इतने समयनिके समूहका नाम एक गुण हानि है सर्व स्थितिविषैं जेती गुण हानि पाइए तिसप्रमाणका नाम नानागुण हानि है ऐसा इहां भावार्थ जानना। बहुरि नाना गुणहानिका जेता प्रमाण तितने दूवे माडि परस्पर गुणैं जितना प्रमाण होइ सो अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना जैसैं नाना गुणहानिका प्रमाण छह सो छहका विरलन करि एक एक जायगा दोयके अंक माडि परस्पर गुणे चौसठि होंइ सोई अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण जानना तैसैंही औदारिक आदि शरीरनिकी स्थितिविषैं जो जो नाना गुणहानिका प्रमाण कह्या ताका विरलनकरि एक एक वखेरि अर एक एक जायगा दोय दोय देइ परस्पर गुणैं अपना अपना अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण हो है। तहां लोकके जेते अर्धच्छेद हैं तितने दूवनिकौं परस्पर गुणैं लोक होइ तौ इहां नानागुणहानिप्रमाण दूवे मांडि परस्पर गुणैं केते लोक होंइ ? ऐसैं त्रैराशिक करना तहां लब्धराशि ल्यावनेके अर्थि सूत्र कहिए है—

दिण्णच्छेदेणवहिद इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे।
लद्धमिदइट्ठरासी ण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥ २१४ ॥

ऐसा कायमार्गणाविषैं सूत्र कह्या था ताकरि इहां देयराशि दोय ताका अर्धच्छेद एक ताका भाग इष्टच्छेद लोकके अर्धच्छेदकौं दीएं इतनेही रहे इनि लोकके अर्धच्छेदनिके प्रमाणका भाग औदारिक शरीरकी स्थिति संबंधी नानागुणहानिके प्रमाणकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने इष्टराशिरूप लोक मांडि परस्पर गुणैं जो लब्धि प्रमाण होइ तितना औदारिक शरीरकी स्थितिविषैं अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातलोकमात्र हो है।

बहुरि तैसैंही वैक्रियिक शरीरविषैं नानागुणहानिका प्रमाणकौं लोकका अर्धच्छेद राशिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने लोक मांडि परस्पर गुणैं वैक्रियिक शरीरकी स्थितिविषैं अन्योन्याभ्यस्तविषैं राशि हो है। सो यहु औदारिक शरीरकी स्थितिसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशितैं अनंतगुणा जानना। काहेतैं ? जातैं अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्यतैं अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तेतीस सागरकौं एकसौ दश कोडाकोडीका गुणकार संभवै है। सो यहां एकघाटि एकसौ दश कोडाकोडी गुणां जो औदारिकशरीरकी नानागुणहानिका प्रमाण तितना औदारिकशरीरकी नानागुणहानिका प्रमाणतैं वैक्रियिकशरीरकी नानागुणहानिका प्रमाण अधिक भया सो—

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स ॥

इस सूत्रकरि इस अधिक प्रमाणमात्र दूवे मांडि परस्परगुणैं जो असंख्यातलोकमात्र परिमाण आया सोई औदारिकका अन्योन्याभ्यस्तराशितैं वैक्रियिकका अन्योन्याभ्यस्तराशिविषैं गुणकार जानना। अथवा जो अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्यप्रमाण औदारिक शरीर संबंधी नानागुणहानिका अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यात लोकमात्र होइ तौ एकसौ दश कोडाकोडि गुणा अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्यप्रमाण वैक्रियिकशरीरका नानागुणहानिका अन्योन्याभ्यस्तराशि कितना होइ ? ऐसा त्रैराशिक कीएं 'दिण्णच्छेदेणवहिद' इत्यादि सूत्रकरि एकसौ दश कोडाकोडि वार औदारिक शरीरसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि मांडि परस्पर गुणें वैक्रियिकशरीरसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि हो है तातैंभी औदारिकसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशितैं वैक्रियिकसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशिविषैं असंख्यातलोकका गुणकार सिद्ध भया। बहुरि आहारक शरीरकी नानागुणहानि संख्यात है सो संख्यातका विरलनकरि एक एक प्रति देयकौं देइ परस्पर गुणैं यथायोग्य संख्यात होइ सो आहारकशरीरका अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। बहुरि तैजस शरीरकी स्थितिसंबंधी नानागुणहानिशलाका कार्माण

शरीरकी स्थितिसंबंधी नानागुणहानि शलाकातैं असंख्यात गुणी है सो पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेद पल्य अ-र्धच्छेदनिमें घटाएं जो प्रमाण होइ तातैं असंख्यातगुणी जाननी सो इहां सुगमताके अर्थि याकौं पल्यका अर्धच्छेदराशिका भागदेना तहां पल्यका वर्गशलाकाका अर्धच्छेद राशिकौं असंख्यातकरि गुणिए अर पल्यका अर्धच्छेद-राशिका भागदेना इतना घटावने योग्य जो ऋणराशि ताकौं जुदा राखिए अवशेष ऋणरहित राशि पल्यका अर्ध-च्छेदराशिकौं असंख्यातगुणा करिये पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग दीजिए इतना रह्या सो इहां भाज्यराशिविषैं अर भागहारराशिविषैं पल्यका अर्धच्छेद राशिकौं समान जानि अपवर्तन करना अवशेष गुणकाररूप असं-ख्यात रहिगया सो इस असंख्यातका जेता प्रमाण तितना पल्य मांडि परस्पर गुणन करना जातैं असंख्यात-गुणा पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणैं जेता प्रमाण होइ तितना ही पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग दीएं अवशेष गुणकारमात्र असंख्यात रह्या तितना पल्य मांडि परस्पर गुणैं प्रमाण हो है जैसैं पल्यका प्र-माण सोलह ताके अर्धच्छेद च्यारि असंख्यातका प्रमाण तीन सो तीनिकरि च्यारिकौं गुणैं बारह होइ सो बारह जायगा दूवा मांडि परस्पर गुणैं च्यारिहजार छिनवै होइ सोई बारहकौं च्यारिका भाग दीएं गुणकारमात्र तीन रह्या सो तीन जायगा सोलह मांडि परस्परगुणैं च्यारिहजार छिनवै होइ तातैं सुगमताके अर्थि पूर्वोक्त राशिकौं पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग देइ लब्धिराशि असंख्यात प्रमाण पल्य मांडि परस्पर गुणन कीया। सो इहां यह गुणकाररूप असंख्यात है सो पल्यका अर्धच्छेदनिके असंख्यातवे भागमात्र जानना पल्य का अर्धच्छेदराशि समान न जानना। जो पल्यका अर्धच्छेद समान यहु असंख्यात होइ तौ इतने पल्य मांडि परस्पर गुणैं तैजस श-रीरकी स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि सूच्यंगुल प्रमाण होइ सो है नाही, जातैं शास्त्रविषैं क्षेत्र प्रमाणकरि सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमात्रकाल प्रमाणकरि असंख्यात कल्पकालमात्र तैजस शरीरकी स्थितिसंबंधी अ-न्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण कह्या है तातैं पल्यका अर्धच्छेदका असंख्यातवां भागमात्र संख्यातका विरलनकरि एक एक प्रति पल्यकौं देइ परस्पर गुणैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र प्रमाण हो है सो द्विरूप वर्गधारा

विषैं पल्यराशिरूप स्थानतैं ऊपरि इहां विरलनराशिरूप असंख्यातके जेते अर्धच्छेद होहि तितने वर्गस्थान गएं यहु राशि हो है। बहुरि—

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इस सूत्रके अभिप्रायतैं जो ऋणरूप राशि जुदा स्थाप्या था ताका अपवर्तन कीएं एकका असंख्यातवां भाग भया। याकौं पल्यकरि गुणें पल्यका असंख्यातवां भाग भया जातैं असंख्यात गुणा पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें भी इतना ही प्रमाण है तातैं सुगमताके अर्थि इहां पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग देइ एकका असंख्यातवां भाग पाया ताकरि पल्यका गुणन कीया है सो असैं करतैं जो पल्यका असंख्यातवां भाग भया ताका भाग पूर्वोक्त सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं देना सो भाग दीएं भी आलापकरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागही रह्या सोई तैजस शरीरकी स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना। बहुरि कार्माण शरीरकी स्थिति संबंधी नाना गुणहानि शलाका पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेदकरि हीन पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण है इसका विरलन करि एक एक प्रति दोय दोय परस्पर गुणें ताका अन्योन्याभ्यस्त राशी पल्यकी वर्गशलाकाका भाग पल्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितना जानना जातैं इहां पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें पल्य होइ सो तौ भाज्य भया अर 'विरलनरासीदो पुणजेत्तिय मेत्ताणि हीणारूवाणि' इत्यादि सूत्रकरि हीन राशिरूप पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें पल्यकी वर्गशलाका होइ सो भागहार जानना। बहुरि जैसैं गुणहानि आयाम आठ ताकौं दूणा कीएं दोगुणहानिका प्रमाण सोलह हो है तैसैं औदारिक आदि शरीरनिका जो जो गुणहानि आयामका प्रमाण है ताकौं दूणा कीएं अपनी अपनी दोगुणहानि हो है। याहीका दूसरा नाम निषेकहार जानना।

ऐसैं द्रव्यस्थिति गुणहानि नाना गुणहानि अन्योन्याभ्यस्तराशि दोगुणहानिका कथन करि अवस्थितिके समय संबंधी परमाणूनिका प्रमाणरूप निषेकनिका कथन करिए है–तहां प्रथम अंक संदृष्टिकरि दृष्टांत कहिए है द्रव्य तरेसठिसै ६३०० स्थिति अडतालीस ४८ गुणहानि आयाम आठ ८ नाना गुणहानि छह ६ दो गुण हानि सोलह १६ अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि ६४ । तहां औदारिक आदि शरीरनिके समय प्रबद्ध प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप च्यारि प्रकार बंध धरै हैं । तहां प्रकृतिबंध प्रदेशबंध योगतैं हो हैं, स्थितिबंध अनुभागबंध कषायतैं हो है । तहां विवक्षित कोई एक समयविषै बंध्या कार्माणका समयप्रबद्ध ताकी उत्कृष्टस्थिति सत्तरि कोडाकोडि सागरकी बंधी तिस स्थितिके पहले समयतैं लगाय सात हजार वर्ष पर्यंत तौ आबाधाकाल है तहां कोई निर्जरा न होइ तातैं कोई निषेक रचना नाहीं । अवशेष स्थितिका प्रथमसमयतैं लगाइ अंतसमय पर्यंत अपना अपना काल प्रमाण स्थिति धरैं जे परमाणूनिके पुंज ते निषेक कहिए तिनकी रचना अंकसंदृष्टिकरि प्रथम दिखाइए है–

विवक्षित एक समयविषैं बंध्या कार्माणका समयप्रबद्ध ताका परमाणूनिका प्रमाण रूप द्रव्य तरेसठिसै है तहां–

रूओणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिम गुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुण कमा आदिमगुणहाणि दव्वोत्ति ॥

इस सूत्र अनुसारि एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग सर्वद्रव्यकौं दीएं अंतका गुणहानिका द्रव्य होइ तातैं दूणा दूणा प्रथमगुणहानिपर्यंत द्रव्य जानना । सो इहां अन्योन्याभ्यस्त राशि चौसठिमैंस्यौं एक घटाइ अवशेष ६३ का भाग सर्वद्रव्य ६३०० कौं दीएं सौ पाए सोई नानागुणहानि छह तिनिविषैं अंतकी छठी गुणहानिका द्रव्य जानना । तातैं दूणा दूणा प्रथम गुणहानिपर्यंत द्रव्य जानना ऐसैं होतैं एकघाटि नानागुणहानिशलाका प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणैं जो अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधा प्रमाण दोय ताकरि अंतकी गुणहानिके द्रव्यकौं गुणैं प्रथम गुणहानिका द्रव्य हो है सो एक घाटि नानागुणहानि पांच तीह प्रमाण

दूवा माडि परस्पर गुणैं वत्तीस होइ सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठिका आधाप्रमाण ताकरि अंतगुणहानिका द्रव्य सौकौं गुणैं प्रथमगुणहानिका द्रव्य वत्तीससै हो है। सर्व गुणहानिका द्रव्य अंततैं लगाइ आदि पर्यंत एकसौ दोयसै च्यारिसै आठसै सोलहसै वत्तीससै प्रमाण जानना। बहुरि तहां प्रथमगुणहानिका द्रव्य वत्तीससै तहां 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छादि' इस सूत्रकरि अध्वान जो गुणहानि आयाम प्रमाण गच्छ ताका स्वकीय गुणहानिसंबंधी द्रव्यकौं भाग दीएं मध्यसमयसंबंधी मध्यधन आवै है सो इहां वत्तीससैकौं गच्छ आठका भागदीएं मध्यधन च्यारिसै हो है। बहुरि "रूऊण अद्धाणअद्धेणूणेणिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं"इस सूत्रके अनुसारि एक घाटि गच्छका आधाप्रमाणकरि हीन जो निषेकहार कहिए दो गुणहानि ताकरि मध्यधनकौं भाजित कीएं चयका प्रमाण आवै है स्थान स्थान प्रति जितना २ वधै वा घटै ताकानाम चय जानना। सो इहां एक घाटि गच्छ सात ताका आधा साढा तीन सो निषेकहार सोलहमें घटाएं साढा बारह ताका भाग मध्यधन च्यारिसैकौं दीएं वत्तीस पाए सोई प्रथम गुणहानिविषैं चयका प्रमाण जानना बहुरि इस चयकौं निषेक हार जो दोगुणहानि ताकरि गुणैं प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक होइ सो इहां वत्तीसकौं सोलहकरिगुणैं प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक पांचसै वारह प्रमाण रूप हो है भावार्थ—जो तरेसठिसै परमाणूका समय प्रबद्ध बध्या हुता, ताकी स्थितिविषैं आवाधाकाल भए पीछै पहले समय तिन परमाणूनिविषैं पांचसै वारह परमाणू निर्जरा है। ऐसैं अन्य समय संबंधी निषेकनिविषैं उक्तप्रमाण परमाणूनिकी निर्जरा होनेका क्रम जानना। बहुरि 'तत्तो विसेसहीणकमं' तातैं ऊपरि ऊपरि तिस गुणहानिके अंतनिषेक पर्यंत एक एक चय घटता अनुक्रम जानना। तहां प्रथम निषेकतैं एक घाटि गच्छप्रमाण चयघटैं एक अधिक गुणहानि आयाम करि गुणित चय प्रमाण अंत निषेक हो है सो इहां द्वितीयादि निषेकनिकेविषैं वत्तीस वत्तीस घटावना। तहां एक घाटि गच्छ सात तीहि प्रमाण चयके भये दोयसै चौवीस सो इतने प्रथम निषेकनितैं घटैं अंत निषेकविषैं दोयसै अठ्यासी प्रमाण हो है

सो एक अधिक गुणहानि नव ताकरि चय वत्तीसकौं गुणैं भी दोयसै अठ्यासी हो है ऐसैं प्रथम गुणहानिविषैं निषेक रचना जाननी--५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८, बहुरि ऐसैं ही द्वितीय गुणहानिका द्रव्य सोलहसै ताकौं गुणहानि आयामरूप गच्छका भाग दीएं मध्यधन दोयसै होइ याकौं एक घाटि गुणहानि आयामका आधा प्रमाणकरि हीन निषेकहार साढा वारह ताका भाग दीएं द्वितीय गुणहानिविषैं चयका प्रमाण सोलह होइ। बहुरि याकौं दोगुणहानि सोलहकरि गुणैं द्वितीयगुणहानिका प्रथम निषेक दोयसै छप्पन प्रमाण हो है ऊपरि ऊपरि द्वितीयादि निषेक अपना एक एक चयकरि घटता जानना तहां एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटै एक अधिक गुणहानि आयामकरि गुणित अपना चयप्रमाण अंतका निषेक एकसौ चवालीस प्रमाण हो है। बहुरि तृतीय गुणहानिविषैं द्रव्य आठसैकौं गुणहानिका भाग दीएं मध्यधन सौ १००, याकौं एक घाटि गुणहानिका आधाकरि हीन दोगुणहानिका भाग दीएं चयका प्रमाण आठ, याकौं दोगुणहानिकरि गुणि प्रथमनिषेक एकसौ अट्ठाईस यातैं ऊपरि अपना एक एक चय घटता होइ एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटैं एक अधिक गुणहानि आयामकरि गणित स्वकीय चयमात्र अंतनिषेक बहत्तरि हो है। ऐसैं ही इस क्रमकरि चतुर्थ आदि गुणहानिविषैं प्राप्त होइ, अंतगुणहानिविषैं द्रव्य सौ १०० ताकौं पूर्वोक्तप्रकार गुणहानिका भाग दीएं मध्यधन साढा वारह याकौं एक घाटि गुणहानिका आधा प्रमाणकरि हीन दोगुणहानिका भागदीएं चयका प्रमाण १, याकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेकका प्रमाण सोलह तातैं ऊपरि अपना एक एक चय घटता होइ। एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटै एक अधिक गुणहानिकरि गुणित स्वकीय चयमात्र स्थितिके अंतनिषेकका प्रमाण नव हो है ऐसैं द्वितीयादिक अंतगुणहानिपर्यंतविषैं द्रव्यादिक हैं ते गुणकाररूप हानिका अनुक्रम लीएं है तातैं गुणहानि ऐसा नाम सार्थक जानना। इहां तर्क--जो प्रथम गणहानिविषैं तौ पूर्व गणहानिके अभावतैं गणहानिपना नाही? ताका समाधान कि--मुख्यपनैं ताका गणहानि नाम नाही है तथापि ऊपरिकी गणहानिकौं गुणहानिपनाकौं कारणभूत जो चय ताका हीन होनेका सद्भाव पाईए है तातैं उपचारकरि प्रथमकौं भी गुणहानि कहिए है गुणकार

हानि अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण यादि। करि इहां आबाधाकाल है नाही, तातैं अपनी अपनी स्थितिका प्रथम समयहीतैं लगाय निषेक रचना करनी जातैं औदारिक आदि शरीरनिका तैसैंही आगैं वर्णन कीजिये है ॥ २५३॥ आगैं औदारिक आदिके समयप्रबद्धनिका बंध उदय सत्त्व अवस्थाविषैं द्रव्यका प्रमाण निरूपण करैं हैं—

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि ।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं ॥ २५४ ॥

एकं समयप्रबद्धं बध्नाति एकमुदेति चरमे ।
गुणहानीनां द्व्यर्धं समयप्रबद्धं भवेत् सत्त्वं ॥ २५४ ॥

जी० प्र०—औदारिकादिशरीराणां मध्ये तैजसकार्मणशरीरयोरनादिसंबद्धत्वेन सर्वदा बंधोदयसत्त्वासंभवात् जीवः मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तं तैजसं कार्मणीयं च प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धं बध्नाति—तैजसशरीररूपतां ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरूपतां च नयति, प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धमुदेति च स्वफलदानपरिणत्या परिणम्य फलं दत्त्वा तैजसशरीररूपतां कार्मणरूपतां च त्यक्त्वा गलतीत्यर्थः । विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमनिषेके किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वद्रव्यं भवति, परमार्थतस्तु एतावत्सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयं संभवतीत्यर्थः । औदारिकवैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धानां विशेषोऽस्ति । स कः ? तच्छरीरद्वयग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वायुश्चरमसमयपर्यंतं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टो जीवः प्रतिसमयमेकैकं तच्छरीरसमयप्रबद्धं बध्नाति तत्तच्छरीरस्वरूपेण परिणमयतीत्यर्थः । तर्हि उदयः कियान् ? इति चेदुच्यते—शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः उदेति तदेकदेशस्य उपचारेण प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेतीति कथनात् । द्वितीयसमये प्रथमसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकः, द्वितीयसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः एवं द्वौ उदयतः । एवं तृतीयादिसमयेषु प्रागबद्धैकैकनिषेकवृद्ध्योदयक्रमेण चरमसमये उदयः सत्त्वसंचयश्च युगपद्द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रो भवति । आचार्येणापि तथा वक्ष्यते। आहारकशरीरस्याप्येवमेव । अयं तु विशेषः, तच्छरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थित्यंतर्मुहूर्तकालावसानसमये किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्योदयः सत्त्वसंचयश्च युगपद्भवतीति विशेषो ज्ञातव्यः ॥ २५४ ॥ अथौदारिकवैक्रियिकशरीरयोः स्थितिबंधोदयसत्त्वविशेषमाह—

१। ब पुस्तके आहारकशरीरस्य तु तच्छ......इत्यादि पाठः ।

मं० प्र०—तत्र तैजसकार्मणशरीरयोरनादिसंबंधित्वेन सर्वदा सर्वबंधोदयसत्त्वसंभवात् जीवः मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तकं प्रतिसमये तैजसीयं कार्मणीयं चैकैकं समयप्रबद्धं बध्नाति–तैजसरूपतां कार्मणरूपतां च प्रापयति, प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धद्रव्यमुदेति च–स्वफलदानपरिणत्या विपच्यते स्वफलं दत्त्वा तैजसरूपतां कार्मणरूपतां च त्यक्त्वा गलतीत्यर्थः। विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमसमये किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वद्रव्यं भवेत्। परमार्थतस्तु एतावत् सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयमस्तीति निश्चेतव्यं। औदारिकवैक्रियिकशरीरयोस्तु ऋजुगत्या उत्पन्न. शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वायुश्चरमसमयपर्यंतं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टो जीव प्रतिसमयमेकैक समयप्रबद्धं बध्नाति, उदयस्तु न तथा, किं तर्हि? शरीरग्रहणप्रथमसमये समयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेक उदेति। तदेकदेशस्तद्ग्रहणेन गृह्यते इत्यौपचारिक न्यायमाश्रित्य आचार्येण प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेति इत्युक्तं। द्वितीयसमये प्रथमसमयसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकः, द्वितीयसमयसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकश्चोदेति। एवं तृतीयादिसमयेषु एकैकनिषेकवृद्ध्या उदेति। चरमसमय उदयश्च सत्त्वसंचयश्च द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्र भवति। आचार्येणापि तथा विवक्ष्यते आहारकशरीरस्याप्येवमेव। अयं तु विशेषः–आहारकशरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमये अंतर्मुहूर्तकालावसानसमये किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्योदयः सत्त्वसंचयश्च युगपदेव भवतीति विशेषो ज्ञातव्यः॥ २५४॥ अथौदारिकवैक्रियिकशरीरयोः स्थितिबंधोदयसत्त्वविशेषं प्ररूपयति–

स० चं०–औदारिक आदि शरीरनिविषैं तैजस अर कार्माण इनि दोऊनिका जीवकैं अनादितैं निरंतर संबंध है तातैं इनिका सदाकाल उदय अर सत्त्व संभवै है तातैं जीव मिथ्यादर्शन आदि परिणामके निमित्ततैं समय समय प्रति तैजससंबंधी अर कार्माणसंबंधी एक एक समयप्रबद्धकौं बांधै है। पुद्गलवर्गणानिकौं तैजस शरीररूप अर ज्ञानावरणादिरूप आठप्रकार कर्मरूप परिणमावै है। बहुरि इनि दोऊ शरीरनिका समय समय प्रति एक एकसमय प्रबद्ध उदयरूप हो है अपना फल देनेरूप परिणतिरूप परिणामकरि फल देइ तैजस शरीरपनाकौं वा कार्माण शरीरपनाकौं छोडि गलै है निर्जरै है। बहुरि विवक्षित समयप्रबद्धकी स्थितिका अंत निषेक संबंधी समयविषैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है। इतने परमाणू सत्तारूप एकठे हो हैं सर्वदा संबंधतैं परमार्थकरि इनि दोऊनिका सत्त्वद्रव्य समय समय प्रति सदाही इतना संभवै है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक शरीरनिके समय प्रबद्धनिविषै विशेष है सो कहिए है। तिनि औदारिक वा वैक्रियिक शरीरनिके ग्रहणका प्रथम समयतैं लगाइ अपने आयुका अंतसमय पर्यंत शरीरनामा नामकर्मके उदय संयुक्त जीव सो समय

समय प्रति एक एक तिस शरीरके समय प्रबद्धकौं बांधै है पुद्गलवर्गणानिकौं तिस शरीररूप परिणमावै है। उदय कितना है? सो कहै हैं—शरीर ग्रहणका प्रथम समयविषैं बंध्या जो समयप्रबद्ध ताका पहला निषेक उदय हो है। इहां प्रश्न—जो गाथाविषैं समय समय प्रति एक एक समयप्रबद्धका उदय कह्या है इहां एक निषेकका उदय कैसे कहो हो? ताका सामाधान—कि निषेक है सो समयप्रबद्धका एकदेश है ताकौं उपचारकरि समयप्रबद्ध कहिए है बहुरि दूसरा समयविषै पहिले समय बंध्या था जो समयप्रबद्ध ताका तो दूसरा निषेक अर दूसरे समय बंध्या जो समयप्रबद्ध ताका पहिला निषेक ऐसैं दोय निषेक उदय हो हैं बहुरि ऐसैंही तीसरा आदि समयविषै एक एक बंधता निषेक उदय हो है ऐसैं क्रमकरि अंत समयविषै उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण हो है बहुरि आहारक शरीरका तिस शरीर ग्रहणका समय प्रथमतैं लगाय अपना अंतर्मुहूर्त मात्र स्थितिका अंत समयविषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण द्रव्यका उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् हो है—इतना विशेष जानना। इहां समय समय प्रति बंधै सो समयप्रबद्ध कहिए तातैं समय समय प्रति समयप्रबद्धका बंधना तौ संभवै अर समय प्रबद्धका उदय अर किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्धमात्र सत्त्व कैसैं हो है सो वर्णन इहांही आगे करैंगे ॥ २५४ ॥ आगे औदारिक वैक्रियिक शरीरनिविषै विशेष कहै हैं—

णवरि य दुसरीराणं गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो ।
गुणहाणीण दिवड्ढं संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

नवरि च द्विशरीरयोर्गलितावशेषायुर्मात्रस्थितिबंधः ।
गुणहानीनां द्व्यर्धं संचयमुदयं च चरमे ॥ २५५ ॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकशरीरद्वयस्य शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं बध्यमानशरीरसमयप्रबद्धानां स्थितिबंधः गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवति। तद्यथा-शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रः। द्वितीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः, एकसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः। तृतीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः द्विसमयोनस्वायुः-स्थितिमात्रः एव चतुर्थाद्युत्तरोत्तरसमयेषु बद्धानां समयप्रबद्धानां स्थितिबंधः गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवन् चरमसमये बद्धस्य समय-प्रबद्धस्यस्थितिबंधः एकसमयमात्रो भवति। प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यंतं बद्धानां समयप्रबद्धानां स्वायुरवसानसमयमतिक्रम्य अवस्थित्य-संभवात् चरमसमये गलितावशेषसर्वसमयप्रबद्धानां किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्राणां देवनारकयोर्वैक्रियिकशरीरस्य तिर्यग्मनुष्ययोरौदारिक-शरीरस्य च संचय उदयश्च युगपदेव भवति ॥ २५५ ॥ औदारिकशरीरस्य कस्मिन् स्थाने कीदृक्सामग्रीरूपावश्यकयुतजीवे उत्कृष्टसंचयः स्यात्? इति चेदाह—

मं० प्र०—द्वयोरौदारिकवैक्रियिकयोः शरीरयोः शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं बध्यमानानां समयप्रबद्धानां गलितावशेषस्वायुः-स्थितिमात्रः स्थितिबंधो भवति। तद्यथा शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रः, द्वितीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य एकसमयोनस्वायुः स्थितिमात्रः स्थितिबंधः, तृतीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य द्विसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः स्थितिबंधः। एवं चतुर्थाद्युत्तरोत्तरसमयेषु बद्धानां समयप्रबद्धानां स्थितिबंधाः रूपोनगच्छमात्रसमयोनस्वायु स्थितिमात्रा ज्ञातव्याः। स्वस्थितिचरमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः एकसमयमात्रः, प्रथमसमयादिचरम-समयपर्यंतेषु बद्धाना समयप्रबद्धानां शक्तिस्थितेर्व्यक्तिस्थितेश्च स्वायुरवसानसमयमतिक्रम्य सत्त्वासंभवात् अत एव कारणाद्विसदृशस्थितीनां समयप्रबद्धाना सर्वेषामपि स्वायुश्चरमसमये गलितावशेषसत्त्वद्रव्यस्य किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रस्य संचय उदयश्च युगपदेव भवति। ततः परं स्वायुःक्षयादा-त्मनस्तच्छरीरद्वये अवस्थानाभावात् अखंडिता स्वयोग्यस्थितिः शक्तिस्थितिः सैव खंडिता व्यक्तिस्थितिः॥ अथ वैक्रियिकशरीरस्योत्कृष्टसंचयस्थानं प्ररूपयति—

स० चं०—औदारिक वैक्रियिक शरीरनिका शरीर ग्रहणका प्रथम समयतैं लगाइ अपनी स्थितिका अंतसमयपर्यंत बंधैं हैं जे समयप्रबद्ध तिनिका स्थितिबंध गलितावशेष आयुमात्र जानना। जितना अपना आयु प्रमाण होइ तींहिविषैं जो अतीतभया सो गलित कहिए अवशेष रह्या सो गलितावशेष आयु कहिए है तींहि प्रमाण जानना। सोई कहिए है-शरीर ग्रहणका प्रथम समयविषैं जो समय प्रबद्ध बंध्या ताका स्थितिबंध संपूर्ण अपना आयुमात्र हो है। बहुरि दूसरे समयजो समय प्रबद्ध बंध्या ताका स्थितिबंध एक समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है। बहुरि तीसरे समय जो बंध्या समयप्रबद्ध ताका स्थितिबंध दोय समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है ऐसैं ही

चौथा आदि उत्तरोत्तर समयनिविषैं बंधे जे समय प्रबद्ध तिनिका स्थितिबंध एक एक समय घटता होता अंत समयविषैं बंध्या हुवा समयप्रबद्धका स्थितिबंध एक समयमात्र है जातैं प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत बंधे जे समयप्रबद्ध तिनकी अपने आयुका अंतकौं उलंघि स्थिति न संभवै है ऐसैं जिस जिस समय प्रबद्धकी जितनी जितनी स्थिति होइ तिस तिस समयप्रबद्धकी तितनी तितनी स्थितिमात्र निषेक रचना जाननी। अंतविषैं एक समयकी स्थिति समयप्रबद्धकी कही तहां एक निषेक संपूर्ण समयप्रबद्धमात्र जानना। बहुरि अंतसमयविषैं गलितावशेष समयप्रबद्ध किंचिदूनद्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसत्वरूप एकठे हो हैं। जे समयप्रबद्ध बंधे तिनिके निषेक पूर्वैं गले निर्जरारूप भए तिनितैं अवशेष निषेकरूप जे समयप्रबद्ध रहे तिनिकौं गलितावशेष कहिए। ते सर्व एकठे होइ किछू घाटि ड्योढ गुणहानिमात्र समयप्रबद्ध सत्तारूप एकठे अंत समयविषैं होंहि हैं। बहुरि तींहि अंत समयविषैं ही तिनि सर्वनिका उदय हो है। आयुके अंतभए पीछै ते रहैं नाहीं तातैं तींहि समय सर्व निर्जरैं हैं ऐसैं देव नारकीनिकै तौ वैक्रियिकशरीरका अर मनुष्यतिर्यंचनिकै औदारिक शरीरका अंतसमयविषैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धनिका सत्त्व और उदय युगपत् जानना ॥ २५६ ॥ आगैं किस स्थानविषैं कैसी सामग्रीरूप आवश्यक संयुक्त जीवविषै उत्कृष्ट संचय हो है सो कहै हैं—

ओरालियवरसंचं देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स ।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

औरालिकवरसंचयं देवोत्तरकुरूपजातजीवस्य ।
तिर्यग्मनुष्यस्य भवेत् चरमाद्विचरमे त्रिपल्यस्थितिकस्य ॥ २५६ ॥

जी० प्र०—यो जीवः त्रिपल्योपमायुष्को देवोत्तरकुर्वोः तिर्यङ् मनुष्यो वा भूत्वा उत्पन्नः तदुत्पत्तिप्रथमसमये उत्कृष्टयोगेन आहारितः

उत्कृष्टवृद्धया वर्धितः उत्कृष्टानि योगस्थानानि बहुशो गच्छति जघन्यानि न गच्छति। तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानानि बहुवारं गृण्हाति तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृह्णाति। अधस्तननिषेकस्य जघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृण्हाति अधस्तनस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति–उपरितनपरमाणूनपकृष्य अधस्तनभागस्तोकान्निक्षिपतीत्यर्थः। उपरितनस्थितिनिषेकानामुत्कृष्टपदं करोति–उपरितनभागे अधस्तनपरमाणूनुत्कृष्य बहून्निक्षिपतीत्यर्थः। अंतरे गमनविकुर्वणां न प्राप्नोति अंतरे नखच्छेदं न करोति–अल्पा भाषाद्धाः अल्पा मनोयोगाद्धाः स्तोकाः वाग्योगशलाकाः स्तोका मनोयोगशलाका एवमंतर्मुहूर्तमात्रे जीवितावशेषे सति योगयवमध्यस्योपरिमभागार्धांतर्मुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानांतरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थितः द्विचरमचरमसमययोरुत्कृष्टयोगस्थानं गच्छति तस्य औदारिकशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति वैक्रियिकशरीरस्याप्येवमेव वक्तव्य किंतु अंतरे नखच्छेदो न कृतः इत्येतद्विशेषणं न संभवेति ॥ २५६ ॥

सं० च०—औदारिक आदि शरीरनिकी जहां जीवके उत्कृष्टपने बहुत परमाणू एकठी होंइ तहां उत्कृष्ट संचय कहिए। तहां जो जीव तीन पल्य आयु धरै देवकुरु वा उत्तरकुरु भोगभूमिका तिर्यंच वा मनुष्य होइ उपज्या तहां उपजनेके पहिले समय तिस जीवकौं तहां योग्य जो उत्कृष्ट योग ताकरि आहार ग्रहण कीया बहुरि ताकौं योग्य जो उत्कृष्ट योगकी वृद्धि ताकरि वर्धमान भया बहुरि सो जीव उत्कृष्ट योग स्थाननिकौं बहुतवार ग्रहण करै है अर जघन्य योगस्थाननिकौं बहुतवार ग्रहण न करै है तिस जीवकौं योग्य उत्कष्ट योगस्थान तिनिकौं बहुत बार प्राप्त होइ है अर तिस जीवकौं योग्य जघन्य योगस्थान तिनिकौं बहुतवार प्राप्त न हो है। बहुरि अधस्तन स्थितिनिके निषेकका जघन्य पद करै है। याका अर्थ यहु—जो ऊपरिके निषेक संबंधी जे परमाणू तिन थोरे परमाणूनिकौं अपकर्षणकरि स्थिति घटाइ नीचले निषेक निविषै निक्षेपण करै है मिलावै है बहुरि उपरितन स्थितिके निषेकनिका उत्कृष्टपद करै है याका अर्थ यहु जो नीचले निषेकनिविषै तिष्ठते परमाणू तिनि बहुत परमाणूनिका उत्कर्षणकरि स्थितिकौं बधाइ ऊपरिके निषेकनिविषै निक्षेपण करै है मिलावै है बहुरि अंतरविषै गमनाविकुर्वणाकौं न करै है अंतरविषै नखच्छेद न करै है। याका अर्थ मेरे जाननेमें नीकैं न आया है तातैं स्पष्ट नाहीं लिख्या है बुद्धिमान जानियो। बहुरि तिस जीवके आयुविषै वचनयोगका काल स्तोक होइ मनोयोगका काल

१। " जघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृह्णाति " इति पाठांतरं। २। इसकी म० प्र० नहीं मिली है।

स्तोक होइ बहुरि वचनयोग स्तोकवार होइ मनोयोग स्तोकवार होइ। भावार्थ—काययोगका प्रवर्तन बहुतवार होइ बहुतकाल होइ ऐसैं आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं आगैं कर्मकांडविषै योगमध्ययवरचना कहैंगे ताका ऊपरला भागविषै जो योगस्थान पाइए है तहां अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत तिष्ठ्या पीछैं आगैं जो जीवयवमध्य रचना कहैंगे तहां अंतकी गुणहानि संबंधी जो योगस्थान तहां आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कालपर्यंत तिष्ठ्या बहुरि आयुका द्विचरम समयविषै अर अंतसमयविषै उत्कृष्ट योगस्थानकौं प्राप्त भया तहां तिस जीवकें तिन अंतके दोऊ समयनिविषै औदारिक शरीरका उत्कृष्ट संचय होहै बहुरि वैक्रियिक शरीरका भी वैसैंही कहना। विशेष इतना जो अंतर विषै नखच्छेद न करै है यहु विशेषण न संभवै है ॥ २५६ ॥

वेगुव्वियवरसंचं बावीससमुद्दआरणदुगम्हि।
जह्मा वरजोगस्स य वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा ॥२५७॥

वैगूर्विकवरसंचयं द्वाविंशतिसमुद्रमारणाद्विके।
यस्माद्वरयोगस्य च वारा अन्यत्र नहि बहुकाः ॥ २५७ ॥

जी० प्र०—वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः आरणाच्युतकल्पद्वयस्य उपरितनपटलवर्तिषु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकेषु एव देवेषु संभवति नान्यत्र अधस्तनोपरितनपटलेषु नारकेषु च। कुतः (वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो न भवति। कुतो नास्तीत्याशंक्य उत्तरं कथयति) यस्मात्कारणात् आरणाच्युतकल्पद्वयादन्यत्र वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टयोगवारा बहवो न संति चशब्दात्तद्योग्यसामग्र्यंतरं च बहुवारं न संभवति तस्मात् कारणात् ॥ २५७ ॥ अथ तैजसशरीरकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टसंचयस्थानविशेषमाह—

मं० प्र०—आरणाच्युतकल्पयोरुपरितनपटलवर्तिषु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिषु देवेषु वैक्रियिकशरीरस्योत्कृष्टसंचयो भवति। अन्यत्र अधः उपरि देवेषु नारकेषु च वैक्रियिकशरीरस्योत्कृष्टसचयः कुतो नास्तीत्याशंक्य उत्तर कथयति—यस्मात् कारणात् आरणाच्युतकल्पाभ्यामन्यत्र वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टयोगवारा बहवो न संति, तद्योग्यसामग्र्यंतरं च बहुवार नास्ति तस्मात्कारणात्। आरणाच्युतयोरेव बहुवारोत्कृष्टयोगसामग्र्यंतरसंभवात् वैक्रियिकशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति इति निश्चेतव्यं। वरयोगस्य चेति चशब्देन तद्योग्यसामग्र्यंतरं सूचितं ॥ अथ तैजसकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टसंचयस्थानविशेषं प्ररूपयति—

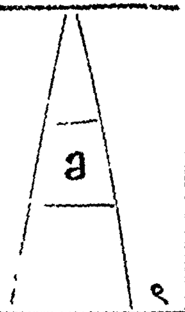
स० चं०——वैक्रियिक शरीरका उत्कृष्ट संचय सो आरण अच्युत दोय स्वर्गनिके ऊपरला पटल संबंधी बाईस सागर आयुसंयुक्तदेव तिनविषै संभवै है। अन्यत्र नीचले ऊपरले पटलनिविषै वा सर्व नारकीनिविषै न संभवै है जातैं आरण अच्युत विना अन्यत्र वैक्रियिक शरीररूप योगका बहुतवार प्रवर्तन न हो है चकारतैं तिस योग्य अन्य सामग्री सो भी अन्यत्र बहुतवार न संभवै है ॥ २५७ ॥ आगैं तैजस शरीर अर कार्मण शरीरनिका उत्कृष्ट संचयस्थानका विशेष कहैं हैं——

तेजासरीरजेट्ठं सत्तमचरिमम्हि विदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य णिरये बहुबारभमिदस्स ॥२५८॥

तैजसशरीरज्येष्ठं सप्तमचरमे द्वितीयवारस्य ।
कार्मणस्यापि तत्रैव च निरये बहुवारभ्रमितस्य ॥ २५८ ॥

जी० प्र०——तैजसशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः औदारिकशरीरवज्ज्ञातव्यः । किंतु सप्तमपृथिव्यां द्वितीयवारोत्पन्नस्यैव जीवस्य तैजसशरीरोत्कृष्टसंचयो भवतीति विशेषः । आहारकशरीरस्यापि औदारिकशरीरवत् किंतु प्रमत्तविरतस्य आहारकशरीरमुत्थापितस्यैव भवति । कार्मणशरीरस्य तु सप्तमपृथिव्यामेव नारकेषु बहुवारं भ्रमितस्यैव चरमवारे कार्मणशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो भवति अन्यत्र तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशस्यासंभवात् । केन कारणेन ? इति चेत् -कश्चिज्जीवः बादरपृथ्वीकायेष्वंतर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटिपृथक्त्वाधिकद्विसहस्रसागरोपमहीनकर्मस्थितिस्थितः तत्र भवस्थितिमनुपालयमानस्य स्तोकाः अपर्याप्तभवाः बहवः पर्याप्तभवाः दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः यदा यदा आयुष्यं बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्येन जघन्ययोगेन बध्नाति उत्कृष्टयोगेनाहारित उत्कृष्टवृद्ध्या वर्धितः बहुशो बहुशः उत्कृष्टयोगस्थानानि गतः जघन्ययोगस्थानानि न गतः बहुशो बहुशो बहुकेशपरिणामपरिगतः विशुध्यन् तत्प्रायोग्यविशुद्ध्या विशुध्यति । अधस्तनीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति । उपरितनीनां स्थितीनां निषेकस्य उत्कृष्टपदं करोति एवं एत संभ्रमित्वा बादरत्रसपर्याप्तकेषूत्पन्नः तत्र च संसरमाणस्य बहवः पर्याप्तभवाः स्तोकाः अपर्याप्तभवा दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः, ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः एवं संसरित्वा पश्चिमे भवग्रहणे अधःसप्तमपृथ्वीनारकेषूत्पन्नः तद्भवग्रहण-

प्रथमसमये तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेनाहारितः उत्कृष्टयोगवृद्ध्या वर्धितः अंतर्मुहूर्तेन सर्वलघुपर्याप्तिभिः प्राप्तः तत्र नरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं योगावश्यकं संक्लेशावश्यकं च प्राप्तः एवं परिभ्रम्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे सति योगयवमध्यस्य उपरितनभागे अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा चरमजीवगुणहानिस्थानांतरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थित्वा त्रिचरमद्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशं संप्राप्य चरमद्विचरमसमये उत्कृष्टयोगस्थानं प्राप्य चरमसमयतद्भवस्थो जायते तस्य कार्मणशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति । एवमौदारिकशरीराणां उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषः कथितः ननु एकैकसमये जीवेन बद्धैकैकसमयप्रबद्धस्य आबाधावर्जितस्वस्वस्थितिप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयमेकैकनिषेक एवोदेति कथमेकैकसमयप्रबद्ध उदेतीति प्रश्ने उच्यते–अनादिबंधनिबंधनबद्धविवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेकः ९ उदेति तदा तदनंतरसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य द्विचरमनिषेकः उदेति १०, तदनंतरसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य त्रिचरमनिषेकः उदेति ११ एवं चतुर्थादिसमयेषु बद्धसमयप्रबद्धानां चतुश्चरमादिनिषेकोदयक्रमेण आबाधावर्जितविवक्षितस्थितिसमयमात्रस्थानेषु गत्वा चरमतस्समयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेक उदेति एवं विवक्षितसमये एकः समयप्रबद्धो बध्नाति एकः उदेति किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति । तत्संदृष्टिरियं—



								९
							९	१०
						९	१०	११
					९	१०	११	१२
				९	१०	११	१२	१३
			९	१०	११	१२	१३	१४
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५
	८	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१८

सा ७० को २ ०००००												
	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
	१४४	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४
	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६
	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८
	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०
	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०
	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०
	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०
	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०	०

तावत्तत्त्रिकोणरचनावस्थित सत्त्वद्रव्यं हीनहीनसंकलनेन अधिकाधिकसंकलनेन अनुलोमविलोमसंकलनेन च सुव्यक्तयति । तत्र हीनहीनसंकलनेन यथा—प्रथमसमयप्रबद्धनिषेके संपूर्णसमयप्रबद्धः ६३००, द्वितीयसमयद्वितीयनिषेके प्रथमनिषेकोनसमयप्रबद्धः, तृतीयसमयतृतीयनिषेके प्रथमद्वितीयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, चतुर्थसमयचतुर्थनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयसमयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, पंचमसमयपंचमनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थनिषेकोनसमयप्रबद्धः एव पष्ठादिसमयपष्ठादिनिषेकेषु प्रथमनिषेकादिरूपोनगच्छमात्रनिषेकोनसमयप्रबद्धाः । अतस्तदभावद्रव्ये निक्षिप्ते प्रथमगुणहानौ गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धा भवंति ६३००×८ । तदभावद्रव्य तु प्रथमनिषेकाः रूपोनगुणहानिमात्राः ५१२×८ । द्वितीयनिषेकाः द्विरूपोनगुणहानिमात्राः ४८० । ८--२ । तृतीयनिषेकाः त्रिरूपोनगुणहानिमात्राः ४४८ । ८–३ । एवं क्रमहान्या गत्वा चरमे चरमनिषेकः एकः ३२० अत्र प्रथमादिपंक्तिषु द्वितीयादिनिषेकेषु एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषेषु प्रक्षिप्तेषु रूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनमात्रप्रथमनिषेकप्रमाणमभावद्रव्यं भवति । ५१२ । ८/२ । ८/१ । अत्र स्थिताभावद्रव्यं च द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारे संकलितमात्रविशेषमिदं ३२ । ८/३ । ८/२ । ८/१

१ स्वस्वप्रचयेषु प्रक्षिप्तेषु इति किं ? प्रथमनिषेके ५१२ सपूर्ण , द्वितीयनिषेके ४८० । ३२ । एकचयाधिके, तृतीयनिषेके ४४८ । ३२ । ३२ । द्विचयाधिके एवं एकोत्तराधिकक्रमेण चरमनिषेकपर्यंत क्रियमाणे सति अष्टाविंशतिप्रमितानि द्वदशोत्तरपञ्चशतानि जायंते । अत्र षट्पञ्चाशत्प्रमितानि द्वात्रिंशत्कानि ऋणेऋणरूपाणि सतीति ज्ञातव्य ।

२ व्येकपदोत्तरघात सरूपवारो धृतो मुखेन युत । रूपादिकवरातासपदायकैर्हतो वित्त ॥ १ ॥ हारारूपादिका स्थाप्या अशा गच्छ दिकास्तथा । सैकवारप्रमाणांताश्चैकवारादिकं धन ॥ २ ॥ एकवारद्विवारादिसंकलनसूत्रमिदं ।

पूर्वाभावद्रव्यादपनीय शेषद्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रविशेष शुद्धसर्वऋणं भवति । एते द्वे धनऋणे एकस्यामेव पंक्तौ स्थापयितव्ये ६३०० । ८ । ३२ । ८ । ५ । ८ । ८ पुनः द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेके द्वितीयादिगुणहानिसर्वद्रव्य-
३ २ १

मिदमस्ति ३१०० । तदनंतरसमयनिषेके द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकोनं तदस्ति ३१००–२५६ । एवं प्रथमगुणहानिवद् हानिप्रमाणमवधार्य निक्षिप्ते तदा गुणहानिमात्रं द्वितीयादिगुणहानिद्रव्याणि भवंति ३१००।८। रूपोनगुणहानिसंकलितमात्रेभ्योऽभावस्वप्रथमनिषेकेभ्यः २५६ । ८ । ८ ।
२ । १

द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रस्वविशेषे ऋणप्रविष्टऋणे १६ । ८ । ८।८ अपनीते शेषं द्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमा-
३ । २।१

त्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रस्वविशेषं शुद्धसर्वऋणं भवति । एते द्वे पूर्वस्थापितधनर्णयोः उपर्येकपंक्त्या पूर्ववत् स्थापयितव्ये—

३१००–८ ।	ऋ १६ । ८×५ । ८ । ८ ३ । २ । १
६३०० । ८	ऋ ३२ । ८ ५ । ८ । ८ ३ । २ । १

एवमुपर्यपि ऋणराश्योऽर्धार्धक्रमेण धनराश्यो गुणहानिगुणितचरमगुणहानिधन-

१०० । ८ । न्यूनाधस्तनगुणहानिधनार्धक्रमेण गच्छंतीत्युपरितनोपरितनगुणहानिद्रव्यं पढमस्सहीणदलमेत्तमित्युक्तमेव भवति । तत्र पंक्तिद्वये

प्रथमधनपंक्तौ—		चरमगुणहानिमादिं कृत्वा प्रथमगुणहानिपर्यंतं सर्वत्र हानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यं १०० । ८ मेलयित्वा			
	१०० । ८				
	३०० । ८	मेलयित्वा—	२०० । ८	द्वाभ्यां संभेद्य	१०० । २
	७०० । ८		४०० । ८		२०० । २
	१५०० । ८		८०० । ८		४०० । २
	३१०० । ८		१६०० । ८		८०० । २
	६३०० । ८		३२०० । ८		१६०० । २
			६४०० । ८		३२०० । २

गुणसंकलनं आनीते उभयपंक्तिद्रव्ये एवं तिष्ठतः । ६३००।८।२।६३।८।५।८।८। अत्र धनपंक्तौ प्रविष्टद्वितीयऋणं नानागुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यमात्रमिदं १००।८।६। एतानि त्रीणि
३ २ १

द्रव्याणि समयप्रबद्धेन ६३०० शलाकीकृतानि क्रमेणैवं तिष्ठंति ८।२।, ८।५।८।८, ।८।६ एतेषु मध्यराशेर्भागहारभूतशतपदक्रयोर्य
१००।६१, ६३।

थ.क्रम चतुष्कद्वयाभ्यां संभेद्य चतुष्कं द्वाभ्यां गुणयित्वा गुणहानिमुत्पाद्य गुणहान्या गुणहानिमपवर्त्य पुनर्भागहारभूतपंचविंशतौ रूपाधिक-

त्रिगुणहानौ कृतायां एवं ८।५।८ / ८।३।३ अत्र स्थिते ऋणरूपे ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति पार्श्वे स्थापिते एवं ८।५।८ / ८।३।३ | ८।५।१ / ८।३।३

एतयोरुपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य

८।५।८ / ८।३।३	८।५।१ / ८।३।३
२।८ / ८।३।३	२।१ / ८।३।३

गुणहानिगुणितप्रथमकिर्द्धं | २।८ / ८।३।३ | उपर्यधस्त्रिभिर्गुणयित्वा

| ६।८ / ८।३।९ | अतः पंचरूपाण्युद्धृत्य १।५।८ / ८।३।९ उपरि समच्छेदं कृत्वा पंचगुणहानेः पंचगुणहानिं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणमेकरूपं त्रिगुणहानौ निक्षिप्त

८।३।८।५ / ८।३।९ अपवर्तिते एवं ८।५ / ९ शेष १।८ / ८।३।९ उपरितनपार्श्वे समच्छेदं कृत्वा गुणहानेर्गुणहानिं प्रदर्श्य त्रिगुणपंचके रूपे

१।८ / ८।३।९ अपनीते एवं ८।५।३ / ८।३।९ पुनस्तदधःस्थापितद्वितीयद्विकं— २।१ / ८।३।३ उपर्यधो नवभिर्गुणयित्वा २।९ / ८।३।३।९

अत्रतनचतुर्दश— १।५।३। रूपाणि त्रिभिः समच्छेदीकृत्य उपरितनराशौ रूपोनत्रिपंचकस्य रूपोनत्रिपंचकरूपचतुर्दशरूपाणि दर्श-

यित्वा त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं मेलयित्वा ८।३।५।३ / ८।३।३।९ रूपाधिकत्रिगुणगुणहान्या रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिमपवर्त्य-

५।३ / ३।९ भागहारभूतसप्तविंशतौ एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्तिते एकरूपार्धं स्यात् १ / २ अत्र च गतनावशिष्टरूपचतुष्टयं ४ / ८।३।२७

अपवर्तिते रूपासंख्येयभागत्वात् १ साधिकं कृत्वा १ द्वितीयऋणे ८, ६ अर्थसंदृष्टया अत्र— प, ७, छेव छे किंचिदूनं कृत्वा
a २ ६३ छेव छे प
व

अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकाः स्युः व ७–। प्रथमऋणं ८ । ५ अर्थसंदृष्टिनिमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणयित्वा ८, १० एकरूपं पृथक्
९ १८
संस्थाप्य— ८ । १ शेषमपवर्त्य ८ । १ द्विगुणगुणहानौ शोधिते एतावत् ८ । ३ इदं पुनः द्वितीयऋणा व ७–धिकेन पृथक्संस्था-
१८ २ २
पितगुणहान्यष्टादशैकभागेन ८, १ न्यूनयित्वा १२– समयप्रबद्धेन गुणितं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति । स १२–।
१८

अथाधिकसंकलनेन सत्त्वद्रव्यमुच्यते—आबाधारहितकर्मस्थितीनां समयप्रबद्धानां चरमसंचयगुणहानौ गुणहानिसंकलनमात्रचरमनिषेकाः आदिधनरूपेण तिष्ठंति— ९, ८, ८ रूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषाः चयधनरूपेण तिष्ठंति १, ८, ८, ८, एतद्धनद्वय-
२, १ ३, २, १
मेकीकृतं द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं चरमगुणहानिसर्वधनं भवति १, ८, ४, ८, ८ तद्यथा—
६
आदिधनस्य चरमनिषेकस्वरूपं पृथग् न्यस्य १, ८, ८ शेषे ८, ८, ८ त्रिभिः समच्छेदीकृते ८, ३ ८ । ८ उत्तरधनस्थितऋण-
२, १ २, १ ६
रूपं पृथग्न्यस्य १, ८, ८ अवशिष्टेन ८, ८, ८ युते सति एतावति ८, ४, ८, ८ पुनः पृथक्स्थापितादिधनैकरूपेण त्रिभिः
६ ६ ६
समच्छेदीकृतेन २, ८, ८ उत्तरधनस्थितैकऋणरूपन्यूनेन— २, ८, ८ चतुर्गुणहानीनामुपरियुतत्वात्, पुनः यतः कारणाद् द्विचरम-
६ ६

गुणहानौ निजचरमादिनिषेकाः चरमगुणहानिचरमादिनिषेकेभ्यो द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चरमगुणहानिद्रव्येणाधिकाः स्युस्ततः कारणाद् द्विचरम-गुणहानिद्रव्यं पूर्वस्मादादिधनं चयधनं च द्विगुणं द्विगुणं स्यात् ९, २, ८, ८ | २, ८, ८, ८
२, १ | ३, २, १
अतः कारणात् सर्वधनं द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्येणाधिकं भवति— २, ८, ४, ८, ८ (२– / ६) । १००, ८, तद्यथा संदृष्टिः—

							१८
						१८	२०
					१८	२०	२२
				१८	२०	२२	२४
			१८	२०	२२	२४	२६
		१८	२०	२२	२४	२६	२८
	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०
१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२

इदं संकलितं सत्पूर्वस्मात् द्विगुणं भवति २ । ८ । ४ । ८ । ८ । इदं च

							९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
						९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	
					९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६		
				९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६			
			९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६				
		९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६					
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६						
९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६							

संकलितं गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं तदधिकप्रमाणं भवति १०० । ८ एवं चरमादिगुणहानिद्रव्याणि स्वस्वाधस्तनतो द्विगुणद्विगुणगुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्याधिकानि भूत्वा गच्छंति । तद्यथा–प्रथमगुणहानिपर्यंतं संदृष्टिः–

१	२— १- ८, ४, ८, ८ ६	ऋ १००, ८					
२	२— १— ८, ४, ८, ८ ६	१००, ८	ऋ १००, ८				
४	२— १— ८, ४, ८, ८ ६	२००, ८	१००, ८	ऋ १००, ८			
८	२— १— ८, ४, ८, ८ ६	४००, ८	२००, ८	१००, ८	ऋ १००८		
१६	२— १- ८, ४, ८, ८ ६	८००, ८	४००, ८	२००, ८	१००, ८	ऋ १००।८	
३२	२— १— ८, ४, ८, ८, ६	१६००, ८	८००।८	४००, ८	२००।८	१००।८	ऋ १००।८
	प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः	पंचमपंक्तिः	चरमपंक्तिः	

अत्र चरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं सत् सर्वगुणहानिप्रथमपंक्तिसर्वधनमेतावत्स्यात् ६३, ८, ४, ८, ८ (२— ... १—, ६), अनेन प्रकारेण गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं सत् अधिकसर्वधनं स्यात् ६३००।८ तद्यथा-ऋणसहितोत्तरधनरचनासंदृष्टिः-

१०० । ८
२०० । ८
४०० । ८
८०० । ८
१६००। ८
३२००। ८

इदं संकलितं तत्प्रमाणमित्यर्थः । अत्रोत्तरधनसंकलनार्थं निक्षिप्तं नानागुणहानिशलाकागुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यं ऋणं भवति १००, ८, ६ । एते त्रयो राशयः समयप्रबद्धेन प्रमाण्यते तदा क्रमेणादिधनमिदं | २— ८, ४, ८, ८ / १००, ६ | उत्तरधनमिदं ८, १ ऋणमिदं | ८, ६ / ६३ | अत्रापि ग्रतपद्कविधानसंजातद्रव्यमिदं २— ८, ४, ८ / ८, ३, ३

अधिकरूपे पार्श्वे स्थापिते एवं | २— ८, ४, ८ / ८, ३, ३ | २— ८, ४, १ / ८, ३, ३ | उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य

| ८, ४, ८ / ८, ३, ३ | ८, ४, १ / ८, ३, ३ |
| २, ८ / ८, ३, ३ | २, १ / ८, ३, ३ |

प्रथमद्विकमुपर्यधस्त्रिभिः संगुण्य | २, ३, ८ / ८, ३, ३, ३ | रूपचतुष्कं गृहीत्वा उपरिनिक्षिप्ते एवं | ८, ३, ४, ८ / ८, ३, ९

अपवर्तितं ४, ८ / ९ पुनः द्वितीयद्विकमुपर्यधः त्रिभिर्गुणयित्वा ६, १ / ८, ३, ९ अस्माद्रूपचतुष्टयं चतुर्गुणितैकरूपात्मकं गृहीत्वा १, ४ / ८, ३, ९

उपरि समच्छेदेन त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं निक्षिप्य १— ८, ३, ४ / ८, ३, ९ अपवर्तिते एवं ४ / ९ इदं प्रथमद्विकशेषेण २, ८ / ८, ३, ९ द्वितीयद्विक-

शेषा २, १ / ८, ३, ९ धिकेन २, ८ / ८, ३, ९ अधिकं कृत्वा ४ / ९ अपवर्तित किंचिदूनार्धं १ / २ भवति । अनेन द्वितीयऋणसंख्यातवर्गशलाकाः किंचिद्-

नयेत् व ग्रृ—शेषप्रथमधनमिदं ४, ८ / ९ द्वितीयधने ८ / ८ समच्छेदेन मेलयित्वा ८, १३ / ८ संदृष्टिनिमित्तं गुणहान्यष्टादशैकभागं ८, १ / १८ ऋणं नि-

क्षिप्यापवर्त्य ८, ३ / २ किंचिदूनसंख्यातवर्गशलाकाभ्यधिकाष्टादशभागेनोनयित्वा समयप्रबद्धेन गुणिते किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति स ə १२— ।

अथानुलोमविलोमसंकलनेन सत्त्वद्रव्यमुच्यते । तत्र त्रिकोणरचनायां प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकः एकः ५१२—१ द्वितीयनिषेकौ द्वौ ४८०—२ तृतीयनिषेकास्त्रय ४४८—३ एवमेकैकोत्तरक्रमेण गत्वा चरमनिषेका गुणहानिमात्राः संति २८८, ८ इयं प्रथमा पंक्तिः । पुनर्द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकगुणहानिमात्राः २५६, ८ द्वितीयनिषेकाः द्विरूपाधिकगुणहानिमात्राः २४०, ८ तृतीयनिषेकाः त्रि-

३-

रूपाधिकगुणहानिमात्रा २२४, ८ एवं एकैकचयाधिकक्रमेण गत्वा चरमनिषेकाः द्विगुणगुणहानिमात्राः संति १४४, ८ इयं द्वितीया पंक्तिः । पुनः तृतीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः १२८, ८, २ द्वितीयनिषेका द्विरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः

२- ३-

१२०, ८, २ तृतीयनिषेकाः त्रिरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः । ११२, ८, २, अनेन प्रकारेण गत्वा चरमनिषेकाः त्रिगुणगुणहानिमात्राः संति ७२, ८, २ इयं तृतीया पंक्तिः । एवं चतुर्थादिपंक्तिः प्रथमादिनिषेकाः गच्छमात्रा भूत्वा गच्छंति यावत् स्वस्वचरमनिषेकं तावत् । एवमेताः सर्वाः तिर्यग्रूपेण रचयितव्याः । तथा सति नानागुणहानिशलाकामात्राः पंक्तयो भवति । तत्संदृष्टिः—

प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः	पंचमपंक्ति	चरमपंक्तिः
	८	८	८	८	८
२८८।८	१४४।८	७२।८।२	३६।८।३	१८।८।४	९।८।५
	७	७	७	७	७
३२०।७	१६०।८	८०।८।२	४०।८।३	२०।८।४	१०।८।५
	६	६	६	६	६
३५२।६	१७६।८	८८।८।२	४४।८।३	२२।८।४	११।८।५
	५	५	५	५	५
३८४।५	१९२।८	९६।८।२	४८।८।३	२४।८।४	१२।८।५
	४	४	४	४	४
४१६।४	२०८।८	१०४।८।२	५२।८।३	२६।८।४	१३।८।५
	३	३	३	३	३
४४८।३	२२४।८	११२।८।२	५६।८।३	२८।८।४	१४।८।५
	२	२	२	२	२
४८०।२	२४०।८	१२०।८।२	६०।८।३	३०।८।४	१५।८।५
	१	१	१	१	१
५१२।१	२५६।८	१२८।८।२	६४।८।३	३२।८।४	१६।८।५

अत्र प्रथमपंक्तौ चरमनिषेकात्प्रभृति प्रथमनिषेकपर्यंतं स्वस्वगुणकारमात्राः एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वस्वविशेषानुद्धृत्य पृथक् स्थापयितव्याः। संदृष्टिः–

३२	१	८
३२	२	७
३२	३	६
३२	४	५
३२	५	४
३२	६	३
३२	७	२
३२	८	१

एषां युतिः गुणहानिप्रमितगच्छस्य द्विकवारसंकलनमात्रविशेषा भवंति–३२। ८। ८ १ २ / ३ २ १। ८ अपनीतशेषद्वितीयगुणहान्यादिनिषेकमात्रा एकाद्येकोत्तरक्रमेण एते

२५६	८
२५६	७
२५६	६
२५६	५
२५६	४
२५६	३
२५६	२
२५६	१

संकलिताः संतो गुणहानिरूपगच्छस्य एकवारसंकलनमात्रा भवंति २५६, ८/२, ८ १/१, एतौ द्वौ राशी मिलित्वा द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं प्रथमपंक्त्यादिधनं भवति ३२, ८ २, ४, ८, ८/६, अत्रोत्तरधनं नास्ति, तथा द्वितीयपंक्तेः स्वप्रथमादिनिषेकेषु तच्चरमनिषेकपर्यंतेषु एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थितानि अधिकरूपाणि पृथक्स्थाप्यानि। संदृष्टिः–

१४४	८	१४४	८
१६०	७	१६०	८
१७६	६	१७६	८
१९२	५	१९२	८
२०८	४	२०८	८
२२४	३	२२४	८
२४०	२	२४०	८
२५६	१	२५६	८

अत्र चरमनिषेकात्प्रभृतिस्वस्वगुणकारमात्रैकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषानुद्धृत्य स्थापयेत्–

१६ । ८ । १	१६ । ८	१६ । ३६
१६ । ७ । २	१६ । १४	१६ । २८
१६ । ६ । ३	१६ । १८	१६ । २१
१६ । ५ । ४	१६ । २०	१६ । १५
१६ । ४ । ५	१६ । २०	१६ । १०
१६ । ३ । ६	१६ । १८	१६ । ६
१६ । २ । ७	१६ । १४	१६ । ३
१६ । १ । ८	१६ । ८	१६ । १

एषां संकलनं गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषं भवति--१६ । ८ । ८ । ८ तदुद्धृतशेषमिदं ३ । २ । १

१२८ । ८
१२८ । ७
१२८ । ६
१२८ । ५
१२८ । ४
१२८ । ३
१२८ । २
१२८ । १

अस्य संकलितगुणहान्येकवारसंकलनमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति । १२८ । ८ । ८ । एतौ द्वौ राशी मिलित्वा द्विरूपा- २ । १

धिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेष द्वितीयपंक्त्यादिधनं पूर्वस्मादर्धप्रमाणं भवति । १६ । ८ । ४ । ८ । ८ । ६

पुनरपरस्मादपनीतशेषाच्चरमनिषेकात् प्रभृति सर्वत्र गुणहानिगुणितैकाद्येकोत्तरविशेषानपनीय--

१६ । ८ । १
१६ । ८ । २
१६ । ८ । ३
१६ । ८ । ४
१६ । ८ । ५
१६ । ८ । ६
१६ । ८ । ७
१६ । ८ । ८

संकलने १६ । ८ । ८ । ८ । गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनमात्रविशेषा भवंति । अपनीतशेषं सर्वत्र गुणहानिगुणिततृतीय- २

गुणहान्याद्यनिषेकमात्रं--

१२८ , ८
१२८ , ८
१२८ , ८
१२८ , ८
१२८ , ८
१२८ , ८
१२८ , ८
१२८ , ८

इति गुणहानिवर्गमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति १२८,८,८, एतौ द्वौ राशी मिलित्वा रूपाधिकद्व्यर्धगुणहानिगुणितगुणहानिवर्गमात्रविशेष द्वितीयपंक्त्युत्तरधनं भवति १६ , ८ , ८, $\overline{८}$, $\frac{३}{२}$. एव तृतीयादिपंक्तिष्वपि आद्युत्तरधने अर्धार्धक्रमेण गच्छतः यावच्चरमपंक्तिस्तावत्, किंतूत्तरधनं सर्वत्र रूपोनगच्छमात्रगुणकारगुणितं भवति। संदृष्टि—

नाम	आदिधनं।	उत्तरधनं।
अंतगुणहानिः	१ , $८^{२-}$, ४ , $\frac{८}{६}$, $८^{१-}$	१ । ५ । ८ । ८ । $\frac{८^{१-}}{२}$ । ३
पंचमगुणहानिः	२ , $८^{२-}$, ४ , $\frac{८}{६}$, $८^{१-}$	२ । ४ । ८ । ८ । $\frac{८^{१-}}{२}$ । ३
चतुर्थगुणहानिः	४ , $८^{२-}$, ४ , $\frac{८}{६}$, $८^{१-}$	४ । ३ । ८ । ८ । $\frac{८^{१-}}{२}$ । ३
तृतीयगुणहानिः	८ , $८^{२-}$, ४ , $\frac{८}{६}$, $८^{१-}$	८ । २ । ८ । ८ । $\frac{८^{१-}}{२}$ । ३
द्वितीयगुणहानिः	१६ , $८^{२-}$, ४ , $\frac{८}{६}$, $८^{१-}$	१६ । १ । ८ । ८ । $\frac{८^{१-}}{२}$ । ३
प्रथमगुणहानिः	३२ , $८^{२-}$, ४ , $\frac{८}{६}$, $८^{१-}$	०

अत्र चरमपंक्त्यादिधनं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं तदा सर्वपंक्त्यादिधनं संकलितं स्यात् ६३ । द(२–) । ४ । द । द/६ । उत्तरधनगुणकारेषु सर्वत्र स्वस्वगुण्ययुतैकैकरूपेषु अपनीय पृथक् स्थापितेषु रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रराशयः प्रथमपरिपाट्या तिष्ठंति ।

१ । द । द । द(१–)/२ । ३	१ । द । द । द(१–)/२ । ३	१ । द । द । द(१–)/२ । ३	१ । द । द । द(१–)/२ । ३	१ । द । द । द(१–)/२ । ३	०
२ । द । द । ८(१–)/२ । ३	२ । द । द । द(१–)/२ । ३	२ । द । द । द(१–)/२ । ३	२ । ८ । द । द(१–)/२ । ३	०	०
४ । द । द । ८(१–)/२ । ३	४ । द । द । द(१–)/२ । ३	४ । द । द । द(१–)/२ । ३	०	०	०
द । द । द । ८(१–)/२ । ३	द । द । द । द(१–)/२ । ३	०	०	०	०
१६ । द । द । ८(१–)/२ । ३	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०

एते च क्रमेण संकलिता एवं तिष्ठंति—

१– ३१, ८, ८, ८, ३/२	१– १५, ८, ८, ८, ३/२	१– ७, ८, ८, ८, ३/२	१– ३, ८, ८, ८, ३/२	१– १, ८, ८, ८, ३/२

पुनः एतेषु गुणसंकलनार्थं नानागुणहानिमात्रस्थानेषु चरमपरिपाटिमात्रमेतावदेतावत् १, ८, ८, ८, ३/२ ऋणं निक्षिप्य—

१– ३१, ८, ८, ८, १– ३/२	१– १५, ८, ८, ८, १– ३/२	१– ७, ८, ८, ८, १– ३/२	१– ३, ८, ८, ८, १– ३/२	१– ३, ८, ८, ८, १– ३/२	१, ८, ८, ८, १– ३/२

संकलितेषु धनमेतावद्भवति। ६३। ८। ८। ८। ३/२। अत्रैकगुणहानिगुणकाररूपेणाग्रे संस्थाप्य -६३। ८। ८। ३/२। ८। रूपाधिकत्रिगुणगुणहानौ परस्परं गुणितायां पंचविंशतिः। तस्यां च द्वौ अष्टभिरपवर्त्य शेषचतुर्भिर्गुणितायां ६३००। ८। गुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं दृश्यते। प्रागत्र संकलनार्थं निक्षिप्ते एतावदृणे १। ८। ८। ८। ३/२। ६। अत्रैकगुणहानिं नानागुणहानिं चाग्रे संस्थाप्य

१। ८। ८। ३/२। ८। ६। परस्परं गुणिते एवं भवति १००। ८। ६ एवमुक्तमादिधनं। ६३। ८। ४। ८। ८/६। उत्तरधनं ६३००। ८

ऋणं च १००। ८। समयप्रबद्धशलाकाः कृत्वा ८/१००। ४। ८/६। ८ | ८ | ८। ६/६३ | अधिकाधिकसंकलनवन्मेलयित्वा किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति स ख १२–।

एवमायुर्वर्जिताष्टविधकर्ममूलोत्तरप्रकृतीनां प्रतिसमयं बंधोदयसत्त्वलक्षणं कथयित्वा उक्तलक्षणविलक्षणं बंधोदयसत्त्वसामग्रीविशेषं आयुःकर्मणः कथयति—

कश्चिज्जीवः कर्मभूमिमनुष्यः भुज्यमानपूर्वकोटिवर्षायुष्कः परभवसंबंधिपूर्वकोटिवर्षायुष्यं जलचरेषु दीर्घायुर्बंधकाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति योगयवमध्यस्योपर्यंतमुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानांतरे आवल्यसंख्यातैकभागमात्रकालं स्थितः क्रमेण कालं गमयित्वा पूर्वकोट्यायुर्जलचरेषु उत्पन्नोंतर्मुहूर्तसर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः अंतर्मुहूर्तेन विश्रांतः अंतर्मुहूर्तेन पुनरपि परभवसंबंधि-

पूर्वकोट्यायुष्यं जलचरेषु बध्नाति तदा दीर्घायुर्बंधाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति। योगयवमजीवो बहुशः साताद्धया सहितः अनंतरसमये आयुर्बंधं निर्लेपति इत्येवं तज्जीवानां आयुर्वेदनाद्रव्यं च उत्कृष्टसंचयं भवति। अंतर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो भूत्वा तदनंतरमंतर्मुहूर्तकालं विश्रम्य जीवित्वा उत्पन्नांतर्मुहूर्ताद्धाप्रमाणेन वा पूर्वकोट्यायुष्यं सवर्मध्येकेनैव समयेन जीविताद्धायाममात्रसंख्यातसदृशखंडं कदलीघातेन घातयित्वा पुनः घातसमये एव परभवसंबंधिपूर्वकोट्यायुष्यं जलचरसंबंधिनि अन्यायुर्बंधाद्धातोजलचरायुर्बंधाद्धा दीर्घेति दीर्घायुर्बंधाद्धया बद्ध्वा जलचरेष्वेकभावेन संकेतवर्जितेषु सातबहुलेषु अपकर्षणकारणेन विनाश्यमानद्रव्यस्य बहुत्वाभावं स्तोकं वा जलचरेषु आयुर्बंधो ज्ञातव्यः। एकसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकं स्थापयित्वा स ३२ । १६ जीविताद्धया गुणयित्वा स ३२ । १६ । २७१४ अत्र

८ । पू , १६--पू
२
८ , पू , --पू
२

रूपोनजीविताद्धासंकलनमात्रगोपुच्छविशेषान् स ३२ , २७ ७ ४ , २ ७ ७ , ४ , अपनीय स ३२ , २ ७ ७ , ४ , १६ , २ ७ ७ ४ ,

८ , पू , १६————————पू २   ८ पू   १६   पू , २
२   २

अपवर्तितं रूपोनार्धार्धरहितदोगुणहान्या रूपोनजीवितार्धहीनदोगुणहानिमपवर्त्य शेषं स ३२ । २ ७ ७ ४ , उत्कृष्टायुर्बंधाद्धया गुणितं

८ , पू

स ३२ , २ ७ ७ ४ , २ ७ ७ आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धं भवति --स ३२ , २ तत्कथं ? उत्कृष्टबंधाद्धागुणितजीविताद्धावलि

८ पू   ८ ७

शलाकानां संख्यातगुणत्वात् , प्रकृतिगोपुच्छस्य प्रथमनिषेके जीविताद्धामात्रविशेषेषु अपनीतेषु स ३२ १६--२७७ ४ एकसमयप्रबद्धमा-

८ पू १६   पू ,
२

त्रित्य विकृतिगोपुच्छस्य प्रथमखंडप्रथमनिषेको भवति अपवर्तितः स ३२   असावेव संख्यातरूपमात्रखंडशलाकागुणितः

८ , पू २७७ ४

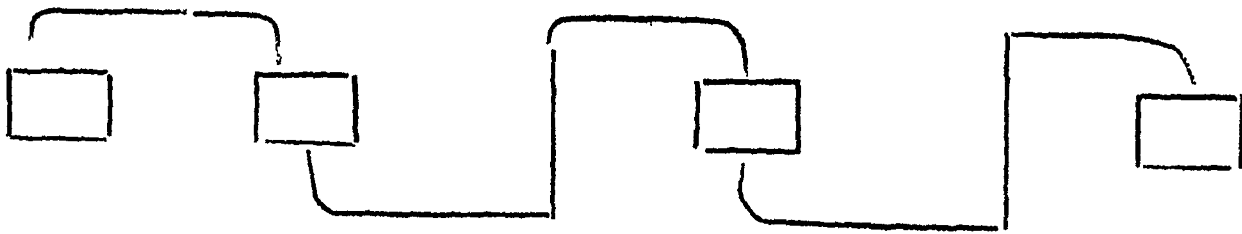
स ३२ , पू , जीविद्धामात्रविशेषान् स ३२ , २ ७ ७ ४ आदिमुत्तरं च कृत्वा रूपोनखंडशलाकाः ७ गच्छं कृत्वा आनीत-

८ पू २७७४   ८ , पू , १६ ,-- पू
२

संकलनेन स ३२ । २ ७ ७ ७, ४, $\overset{१८}{७}$ । ७ । ऊनितः एकसमयप्रबद्धप्रतिबद्धसंख्यातखंडविकृतिगोपुच्छस्य प्रथमनिषेको भवति—

८ । पू । १६—$\frac{\overset{१८}{पू}}{२}$ । २ । ७ ।

$\frac{स ३२ , पू}{८ , पू , २ ७ ७ ४}$ तत्कथं ? प्रथमखंडप्रथमनिषेकाद्द्वितीयादिखंडप्रथमनिषेकाणां तत्र जीविताद्धामात्रप्रचयहीनत्वात्—



पू
२ ७ ७ ४

पुनरपि स एव विकृतिगोपुच्छस्य संख्यातखंड— $\frac{स ३२ , २ ७ ७ । ४ , \overset{१८}{७} , ७ ,}{८ , पू , १६ \frac{\overset{१८}{पू}}{२} । २}$ प्रथमनिषेकः $\frac{स ३२ , पू—}{८ । पू । २ ७ ७ ७ ४}$ नष्टद्रव्यप्रमाणमानेतुं रूपोनोत्कृष्टबंधाद्धया गुणयित्वा—$\frac{स ३२ , पू २ ७ ७—१}{८ , पू , २ ७ ७ ४}$ खंडशलाकामात्रविशेषान् $\frac{स ३२ ।}{८ , पू १६—\frac{\overset{१८}{पू}}{२}}$ ७ आदिमुत्तरं च कृत्वा द्विरूपोनोत्कृष्ट-बंधाद्धां गच्छं $\overset{१८}{२}$ ७ ७ कृत्वाऽऽनीतसंकलनेन $\frac{स ३२ , ७ , \overset{१८}{२} ७ ७ , \overset{१८}{२} ७ ७}{८ , पू १६—\frac{\overset{१८}{पू}}{२} , २}$ ऊनः एकसमयप्रबद्धमाश्रित्य विकृतिगो-पुच्छस्य नष्टसर्वनिषेकाः समयप्रबद्धसंख्येयभागानां भवंति , ते उत्कृष्टायुर्बंधाद्धया गुणिताः तदावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धाः विकृति-

स्वरूपेण नष्टा आगच्छंति स ३२—, पू २ १ १ । २ १ १ अपवर्तिते एवं स ३२, २ अत्रायं विशेषः-एतद्विकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यं प्र-
८, पू, २ १ १ ४ ८ १
कृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यात्संख्यातगुणं, कुतः? उत्कृष्टबंधाद्धया कदलीघातेन घातिताबस्तनाद्धां गुणयित्वा पूर्वकोट्या भागे गृहीते यल्लब्धं—
स ३२, २ १ १ ४, २ १ १ तस्मात्कदलीघातैकखंडायामेन उत्कृष्टबंधाद्धावर्गे भक्ते यल्लब्धं स ३२, पू २ १ १ २ १ १,
८ पू ८, पू २ १ १ ४
अस्य संख्यातगुणत्वोपलंभात् एतद्द्रव्यद्वये एकत्र कृते सति प्रकृतिस्वरूपेण (प्रकृतिविकृतिरूपेण) नष्टद्रव्यमावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धा
भवंति स ३२, २ एतेषु उभयोत्कृष्टबंधाद्धामात्रसमयप्रबद्धेषु अपनीतेषु आयुरुत्कृष्टसंचयद्रव्यं भवति स ३२, २ १ १, २ ॥ २५८ ॥
८ १ ८

अथ द्वादशगाथासूत्रैर्योगमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

म० प्र०—अधः सप्तमनरकभूम्यां द्वितीयवारोत्पन्नस्य जीवस्य तैजसशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति । तत्रैव सप्तमभूम्यां बहुवारसमुत्पन्नस्य चरमवारे कार्मणशरीरोत्कृष्टसंचयोभवति अन्यत्र तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशस्याभावात् ॥२५८॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः द्वादशभिर्गाथाभिर्योगमार्गणायां संख्यां प्ररूपयंति—

स० चं०—तैजसशरीरका भी उत्कृष्ट संचय औदारिकशरीरवत् जानना । विशेष इतना जो सातवीं नरक पृथ्वीविषैं दूसरीवार जो जीव उपज्या होइ सातवी पृथ्वीविषैं उपजि मरि तिर्यंच होइ फेरि सातवीं पृथ्वीविषैं उपज्या होइ तिस ही जीवकैं हो है। बहुरि आहारक शरीरका भी उत्कृष्ट संचय औदारिकशरीरवत् जानना। विशेष इतना जो आहारकशरीरकौं उपजावनहारा प्रमत्तसंयमीहीकैं हो है बहुरि कार्माणशरीका उत्कृष्ट संचय सो सातवीं नरक पृथ्वीविषैं नारकिनविषैं जो जीव बहुवार भ्रम्या होइ तिसहीकैं होइ है किस प्रकार हो है? सो कहैं हैं—कोई जीव बादर पृथ्वी कायनिविषैं अंतर्मुहूर्त घाटि पृथक्त्व कोडिपूर्व करि अधिक दोय हजार सागर हीन कर्मकी स्थितिकौं प्राप्त भया तहां तिस बादर पृथ्वीकाय संबंधी अपर्याप्त पर्याय थोरे धरै पर्याप्त पर्याय बहुत धरै तिनिका एकठ्ठा किया हुवा पर्याप्तकाल बहुत भया अपर्याप्तकाल थोरा भया ऐसें इनिकों पालता संता जब जब आयु बांधै तब तब जघन्य योगकरि बांधै यहु यथायोग्य उत्कृष्टयोगकरि आहार

ग्रहण करै अर उत्कृष्ट योगनिकी वृद्धिकरि बंधै बहुरि यथायोग्य उत्कृष्ट योगनिकौं बहुतवार प्राप्त न होइ जघन्य-योगस्थाननिकौं बहुत वार प्राप्त न होइ। बहुरि संक्लेश परिणामरूप परिणया यथायोग्य मंदकषायरूप विशुद्धताकरि विशुद्ध होइ पूर्वोक्त प्रकार अधस्तन स्थितिनिके निषेकका जघन्यपद करै उपरितन स्थितिनिके निषेकका उत्कृष्टपद करै है। ऐसैं भ्रमणकरि वादर त्रसपर्याविषै उपज्या तहां भ्रमता तिस जीवकैं पर्याप्तपर्याय थोरे अपर्याप्त पर्याय बहुत भए तिनिका एकठा कीया पर्याप्तकाल बहुत भया अपर्याप्तकाल थोरा भया ऐसैं भ्रमणकरि पीछला पर्यायका ग्रहणविषैं सातवीं नरक पृथ्वीके नारक जे बिले तिनिविषैं उपज्या तहां तिस पर्यायके ग्रहणका प्रथम समयविषैं यथायोग्य उत्कृष्ट योगकरि आहार ग्रहण कीया। बहुरि उत्कृष्ट योगवृद्धिकरि बध्या बहुरि थोरा अंतर्मुहूर्तकालकरि सर्व पर्याप्ति पूर्ण कीए, बहुरि तिस नरकविषैं तेतीस सागर कालपर्यंत योग आवश्यक अर संक्लेश आवश्यककौं प्राप्त भया ऐसैं भ्रमणकरि आयुका स्तोककाल अवशेष रहैं योगयवमध्य रचनाका ऊपरला भागरूप योगस्थानविषैं अंतर्मुहूर्तकालपर्यंत तिष्ठि अर पीछैं जीवयवमध्य रचनाकी अंतगुणहानिरूप योगस्थानविषैं आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कालपर्यंत तिष्ठि आयुका अंततैं तीसरा दूसरा समयनिविषै उत्कृष्ट संक्लेशकौं पाइ अंतसमयविषैं उत्कृष्ट योगस्थानकौं पाइ तिस पर्यायका अंतसमयविषै जीव तिष्ठ्या ताकै कार्माण शरीरका उत्कृष्ट संचय होइ है। ऐसैं औदारिक आदि शरीरनिका उत्कृष्ट संचय होनेकी सामग्रीका विशेष कह्या। भावार्थ—पूर्वैं उत्कृष्ट संचय होनैविषैं छह आवश्यक कहे थे ते इहां यथासंभव जानि लेना। पर्यायसंबंधी कालतौं भवाद्धा है। अर आयुका प्रमाण सो आयुष्य है। यथासंभव योगस्थान होना सो योग है, तीव्र कषाय होना सो संक्लेश है। ऊपरले निषेकनिके परमाणू नीचले निषेकनिविषैं मिलावना सो अपकर्षण है। नीचले निषेकनिका परमाणू ऊपरिके निषेकनिविषैं मिलावना सो उत्कर्षण है ऐसैं ए छह आवश्यक यथासंभव जानने। बहुरि एक प्रश्न उपजै है कि—एक समयविषैं जीवकरि बांध्या जो एक समयप्रबद्ध ताके आबाधारहित अपनी स्थितिका प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमय पर्यंत समय समय प्रति एक

एक निषेक उदय आवै है। पूर्वैं गाथाविषैं समय समयप्रति एक एक समयप्रबद्धका उदयका आवना कैसैं कह्या है? ताका समाधान—जो समय समय प्रति बंधे समय प्रबद्धनिका एक एक निषेक एकठे होइ विवक्षित एक समयविषैं समय प्रबद्धमात्र हो है कैसैं ? सो कहिए है—अनादिबंधका निमित्तकरि बंध्या विवक्षित समयप्रबद्ध ताका तिस कालविषैं अंत निषेक उदय हो है तिस कालविषैं ताके अंनतरि बंध्या समयप्रबद्धका अंततैं दूसरा निषेक उदय हो है ताके अनंतरि बंध्या समयप्रबद्धका अंततैं तीसरा निषेक उदय हो है ऐसैं चौथा आदि समयनिविषैं बंधे समयप्रबद्धनिका अंततैं चौथा आदि निषेकनिका उदय क्रमकरि आबाधाकालरहित विवक्षित स्थितिके जेते समय तितने स्थान जाय अंतविषै जो समयप्रबद्ध बंध्या ताका आदि निषेक उदय हो है ऐसैं सबनिकौं जोडैं विवक्षित एक समयविषै एक समयप्रबद्ध उदय आवै है अंकसंदृष्टिकरि जैसैं जिन समयप्रबद्धनिके सर्वनिषेक गलि गए तिनिका तौ उदय है ही नाहीं, बहुरि जिस समयप्रबद्धके सैंतालीस निषेक पूर्वैं गले ताका अंत नवका निषेक वर्तमान समयविषैं उदय आवै है। बहुरि जाके छियालीस निषेक पूर्वैं गले ताका दशका निषेक उदय हो है ऐसैं ही क्रमतैं जाका एकहू निषेक पूर्वैं न गल्या ताका प्रथम पांचसै बाराका निषेक उदय हो है ऐसैं वर्तमान कोई एक समय विषैं सर्व उदय रूप निषेकका उदय हो है ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६। १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२। ३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४। ७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८। १४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६। २८८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२। ऐसैं इनिकौं जोड़ैं संपूर्ण समय प्रबद्धमात्र प्रमाण हो है। आगामी कालविषैं जैसैं नवीन समय प्रबद्धके निषेकनिका उदयका सद्भाव होता जाइगा तैसैं पुराणे समय प्रबद्धके निषेकनिके उदयका अभाव होता जायगा जैसैं आगामी समयविषैं नवीन समयप्रबद्धका पांचसै बाराका निषेक उदय आवैगा तहां वर्तमान समयविषैं जिस समय प्रबद्धका पांचसै बाराका निषेक उदय था ताका पांचसै बाराका निषेकका अभाव होइ दूसरा च्यारिसै असीका निषेक उदय होगा। बहुरि जिससमयप्रबद्धका वर्तमान समयविषैं च्यारिसै असीका निषेक उदय था ताका तिस निषेकका अभाव होइ च्यारिसै अड़ता-

लीसके निषेकका उदय होगा ऐसें क्रमतें जिससमयप्रबद्धका वर्तमान समयविषैं नवका निषेक उदय थीं ताका आगामी समयविषैं सर्व अभाव होगा ऐसें ही क्रम समयप्रति जानना तातें समय समय प्रति एक एक समय प्रबद्धका एक एक निषेक मिलि एक एक समय प्रबद्धका उदय हो है बहुरि गलें पीछें अवशेष रहें सर्व निषेक तिनिकौं जोड़ैं किंचित् ऊन द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है। कैसें ? सो कहिए है—जिस समय प्रबद्धका एकहू निषेक गल्या नाही ताके सर्व निषेक नीचैं पंक्तिविषैं लिखिए बहुरि ताके ऊपरि जिससमय प्रबद्धका एक निषेक गल्या होइ ताके आदि निषेक विना अवशेष निषेक पंक्तिविषैं लिखिए बहुरि ताके ऊपर जिस समय प्रबद्धके दोय निषेक गले होंइ ताके आदिके दोय निषेक विना अवशेष निषेक पंक्तिविषैं लिखिए ऐसें ही ऊपरि ऊपरि एक एक निषेक घटता लिखि सर्वके ऊपरि जिस समय प्रबद्धके अन्यनिषेक गलि एक अवशेष रह्या होइ ताका अंत निषेक लिखना। ऐसें करते त्रिकोण रचना हो है।

षष्ठम गुणहानि	पंचम गुणहानि	चतुर्थगुणहानि	तृतीय गुणहानि	द्वितीयगुणहानि	प्रथम गुणहानि
९	११८	३३६	७७२	१६४४	३३८८
१९	१३८	३७६	८५२	१८०४	३७०८
३०	१६०	४२०	९४०	१९८०	४०६०
४२	१८४	४६७	१०३६	२१७२	४४४४
५५	२१०	५२०	११४०	२३८०	४८६०
६९	२३८	५७६	१२५२	२६०४	५३०८
८४	२६८	६३६	१३७२	२८४४	५७८८
१००	३००	७००	१५००	३१००	६३००
जोड ४०८	जोड १६१६	जोड ४०३२	जोड ८८६४	जोड १८५२८	जोड ३७८५६

अंकसंदृष्टिकरि जैसैं नीचैही नीचै अडतालीस निषेक लिखे ताके ऊपर पांचसै बाराका विना सैतालीस निषेक लिखे। ताके ऊपरि पांचसै बारा अर च्यारिसै असीका विना छियालीस निषेक लिखे। ऐसैं ही क्रमतैं ऊपरि ही ऊपरि नवका निषेक लिख्या ऐसैं लिखते त्रिकूटी रचना हो है तातैं इस त्रिकोण यंत्रका जोडा हूवा सर्व द्रव्य प्रमाण सत्त्व द्रव्य जानना। सो कितना हो है सो कहिए है-किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण हो है। पूर्वैं जो गुणहानि आयामका प्रमाण कह्या तामैं आधा गुणहानि आयामका प्रमाण मिलाए द्व्यर्धगुणहानि हो है। तामैं किछू घाटि संख्यातगुणी पल्यकी वर्गशलाका करि अधिक जो गुणहानिका अठारह्वां भागका प्रमाण सो घटावना, घटाएं जो प्रमाण होइ ताका नाम इहां किंचिदून द्व्यर्धगुणहानि जानना। ताकरि समय प्रबद्धके विषै जो परमाणूनिका प्रमाण कह्या ताकौं गुणैं जो प्रमाण होइ सोई त्रिकोण यंत्रविषै प्राप्त सर्वनिषेकनिके परमाणू जोडैं प्रमाण हो है। जैसैं अंक संदृष्टिकरि कीया हूवा त्रिकोणयंत्र ताकी सर्वपंक्तिके अंकनिकौं जोडैं इकहत्तरि हजार तीनसै च्यारि हो है अर गुणहानि आयाम आठ तामैं आधा गुणहानि आयाम च्यारि मिलाए द्व्यर्धगुणहानिका प्रमाण बारह होइ, ताकरि समय प्रबद्ध तरेसठिसैंकौं गुणैं पिचहत्तरि हजार छसै होइ। इहां त्रिकोण यंत्रका जोड़ घटता भया तातैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्त्व कह्या। तहां द्व्यर्धगुणहानिविषैं ऊनका प्रमाण दार्ष्टांतविषैं महत्प्रमाण है तातैं पूर्वोक्त जानना। इहां अंकसंदृष्टिदृष्टांतविषैं गुणहानिका अठारह्वां भागकरि गुणित समयप्रबद्धका प्रमाण अठाईससै तामैं गुणहानि आठ नानागुणहानि छै करि गुणित समयप्रबद्धका तरेसठिवां भाग अडतालीससै तामैं किंचित् अधिक आधा समयप्रबद्धका प्रमाण तेतीससै च्यारि घटाइ अवशेष चौदहसै छिनवे जोडैं बियालीससै छिनवे भए सो द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धविषैं घटाएं त्रिकोण यंत्रका जोड हो है। बहुरि इस त्रिकोण यंत्रका जोड इतना कैसै भया? सो जोड देनेका विधान हीन हीन संकलनकरि वा अधिक अधिक संकलनकरि वा अनुलोम विलोम संकलनकरि तीनप्रकार कह्या है तहां

घटता घटता प्रमाण लीएं निषेकनिका क्रमतैं जोडना सो हीन हीन संकलन कहिए । बधता बधता प्रमाण लीएं निषेकनिका क्रमतैं जोडना सो अधिक अधिक संकलन कहिए । हीन प्रमाण लीएं वा अधिक प्रमाण लीएं निषेकनिका जैसैं होइ तैसैं जोड़ना सो अनुलोम विलोम संकलन कहिए सो ऐसैं जोड़ देनेका विधान आगै संदृष्टि अधिकारविषैं लिखैंगे तहां जानना । इहां जोडविषैं संदृष्टि समझनेमें न आवती तातैं नाहीं लिख्या है । ऐसैं आयु विना कर्मप्रकृतिनिका समय समय प्रति बंध उदय सत्त्वका लक्षण कह्या बहुरि आयुका अन्यथा लक्षण है जातैं आयुका अपकर्ष कालनिविषैं वा असंक्षेप अंतकालविषैं ही बंध हो है । बहुरि आबाधा काल पूर्वभवविषैं व्यतीत हो है तातैं आयुकी जितनी स्थिति तितनी ही निषेकनिकी रचना जानना । आबाधा-काल घटावना नाहीं । बहुरि आयुकर्मका उत्कृष्टसंचय कोडि पूर्ववर्षप्रमाण आयुका धारी जलचर जीवकैं हो है तहां कर्मभूमियां मनुष्य कोटिपूर्ववर्ष प्रमाण आयुका धारी यथायोग्य संक्लेश वा उत्कृष्ट योगकरि परभवसंबंधी कोटिपूर्व वर्ष का आयु जलचरविषैं उपजनेका बांध्या सो आगैं कहिएगी योगयवमध्य रचना, ताका ऊपरि स्थानविषैं अंतर्मुहूर्त तिष्ठ्या बहुरि अंत जीव गुणहानिका स्थानविषै आवलीका असंख्यातवां भागमात्र काल तिष्ठ्या क्रमतैं काल गमाइ कोडिपूर्व आयुका धारी जलचरविषै उपज्या अंतर्मुहूर्तकरि सर्वपर्याप्तनिकरि पर्याप्त भया । अंतर्मुहूर्तकरि बहुरि परभव संबंधी जलचरविषैं उपजनेका कोडिपूर्व आयुकौं बांधै है तहां दीर्घ आयुका बंध काल करि यथायोग्य संक्लेशकरि उत्कृष्ट योगकरि बांधै है सो योगयवरचनाका अंतस्थानवर्ती जीव बहुतवार साताकौं कालकरि युक्त होता अपने कालविषै परभव संबंधी आयुकौं घटावै ताकै आयु वेदना द्रव्यका प्रमाण उत्कृष्ट हो है सो द्रव्य रचना संस्कृत टीकातैं जाननी । याप्रकार औदारिक आदि शरीरनिका बंध उदय सत्त्व विशेष जाननेके अर्थि वर्णन कीया ॥ २५८ ॥ आगै श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव बारह गाथानिकरि योग मार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहै हैं—

वादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा ।
विक्किरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥ २५९ ॥

वादरपूर्णाः तैजसाः स्वकराशेरसंख्यभागमिताः ।
विक्रियाशक्तियुक्ताः पल्यासंख्याता वायवः ॥ २५९ ॥

जी० प्र०---वादरपर्याप्ततेजस्कायिकजीवेषु विक्रियाशक्तियुक्ताः स्वराशेर्वृंदावल्यसंख्येयभागमात्रस्य ८ ≡ पुनरसंख्येयभागप्रमिता ८ a a भवंति a a वादरपर्याप्तवायुकायिकजीवेषु लोकसंख्येयभागमात्रेषु ७ विक्रियाशक्तियुक्ताः पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवंति प a ।
" वादरतेऊवाऊपंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति " इत्यनेन अनयोर्वैक्रियिकयोगस्य अस्तित्वकथनात् ॥ २५८ ॥

मं० प्र०----विक्रियाशक्तियुक्ताः वादरपर्याप्ततेजस्कायिका जीवाः स्वराशेर्वृंदावल्यसंख्येयभागस्य पुनरसंख्येयभागप्रमिताः । विक्रियाशक्तियुक्ता वादरपर्याप्ता वायुकायिका जीवाः पल्यासंख्येयभागप्रमिताः 'वादरतेऊवाऊपंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति' इत्यनेन अनयोर्वैक्रियिकयोगस्य कथितत्वात् ॥ २५९ ॥

स० चं०—वादर पर्याप्त तेजकायिक जीव तिनिविषै उनही जीवनिका जो पूर्वै परिमाण आवलीके घनका असंख्यातवां भागमात्र कह्या था तिस राशिकौं असंख्यातका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने जीव विक्रिया शक्तिकरि संयुक्त जानने । बहुरि वादर पर्याप्त वातकायिक जीव लोकके संख्यातवे भागप्रमाण कहे थे तिनिविषै पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण जीव विक्रिया शक्तियुक्त जानने जातै 'वादरतेऊवाऊपंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति' इस गाथाकरि वादर पर्याप्त अग्निकायिक अर पवनकायिक जीवनिकैं वैक्रियिक योगका सद्भाव कह्या है ॥ २५९ ॥

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।

वेगुव्वियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥ २६० ॥

पल्यासंख्याताहतवृंदांगुलगुणितश्रेणिमात्रा हि ।
वैगूर्विकपंचाक्षा भोगभुमाः पृथक् विगूर्वंति ॥ २६० ॥

जी० प्र०—पर्याप्तपंचेंद्रियतिर्यग्मनुष्येषु वैक्रियिकयोगिनः पल्यासंख्यातैकभागाभ्यस्तघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रा भवंति—६ । प
a
खलु--स्फुटं । तत्र भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिजेषु चक्रवर्तिनश्च पृथक् मूलशरीरादन्यदेव उत्तरशरीरं विगुर्वंति। अनेन कर्मभूमिजानामपृथग्विक्रिया सूचिता ॥ २६० ॥

मं० प्र०---वैक्रियिकयोगिनः पर्याप्तपंचेंद्रियाः तिर्यंचो मनुष्याश्च पल्यासंख्यातभागाभ्यस्तघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्राः खलु--स्फुटं भवंति । तत्र भोगभूमिजास्तिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिजेषु चक्रवर्तिनश्च पृथग्--मूलशरीरादन्यदेव उत्तरशरीरं विकुर्वंति। अनेन कर्मभूमिजानामपृथग्विक्रिया एव सूचिता॥ २६० ॥

सं० च०—पल्यका असंख्यातवां भागकरि घनांगुलकौं गुणें जो परिमाण होइ ताकरि जगच्छ्रेणी गुणें जो परिमाण आवै तितने वैक्रियिक योगके धारक पर्याप्त पंचेंद्री तिर्यंच वा मनुष्य जानने । तहां भोगभूमिविषैं उपजे तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमिविषैं चक्रवर्ती ए पृथक् विक्रियाकौं भी करै हैं इनिविना सर्व कर्मभूमियानिकैं अपृथक् विक्रिया ही है । जो मूलशरीरतैं जुदा शरीरादि करना सो पृथक् विक्रिया जाननी । अपने शरीरहीकौं अनेकरूप करना सो अपृथक् विक्रिया जाननी ॥ २६० ॥

देवेहिं सादिरेया तिजोगिणो तेहिं हीण तसपुण्णा ।
बियजोगिणो तदूणा संसारी एक्कजोगा हु ॥ २६१ ॥

देवैः सातिरेकाः त्रियोगिनस्तैर्हीनाः त्रसपूर्णाः ।
द्वियोगिनस्तदूनाः संसारिणः एकयोगा हि ॥ २६१ ॥

जी० प्र०—घनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितनारकैः —२ , संख्यातपण्णट्ठीप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्त-तिर्यग्भिः ४ , ६५ = १ वादालघनप्रमितपर्याप्तमनुष्यैश्च ४२ = ४२ = ४२ =, सातिरेकः साधिको देवराशिः = ४ , ६५ = १ त्रियोगि-राशिर्भवति—कायवाङ्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिरित्यर्थः। तैर्हीनत्रसपर्याप्तराशिः ४ / ५— द्वियोगिराशिप्रमाणं भवति—कायवाग्योगयुक्तजीवराशिरि-त्यर्थः। ताभ्यां द्वित्रियोगराशिभ्यां हीनसंसारी १३ = एकयोगिराशिर्भवति—काययोगिजीवराशिरित्यर्थः। एवं खलु स्फुटं ज्ञातव्यं ॥२६१॥

मं० प्र०- --नारकतिर्यक्संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तपर्याप्तमनुष्यराशिभिः सातिरेकः--देवराशिः त्रियोगिराशिः कायवाग्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिर्भवति तैस्त्रियोगि-जीवैर्हीनास्त्रसपूर्णाः पर्याप्तत्रसाः द्वियोगिनः--कायवाग्योगयुक्तजीवराशिर्भवति इत्यर्थः, तैः- द्वियोगिजीवैः त्रियोगिजीवैश्च हीनः संसारिजीवराशिः एकयोगः काययोगजीवराशिर्भवति इति खलु--स्फुटं ज्ञातव्यं ॥ २६१ ॥

स० चं०—देवाकौं जो परिमाण साधिक ज्योतिष्कराशिमात्र कह्या था तींहि प्रमाणविषैं घनांगुलका द्वितीय मूलकरि गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण नारकी अर संख्यात पणट्ठी प्रतरांगुलकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच अर वादालका घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य इनिकौं मिलाएं जो परिमाण होइ तितने जीव त्रियोगी जानने। इनिकैं मन वचन काय तीनों योग पाइए है। बहुरि जो पूर्वै पर्याप्त त्रस जीवनिका प्रमाण कह्या था तामैं त्रियोगी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै तितने द्वियोगी जीव जानने। इनिकैं वचन काय दोय ही योग पाइए है। बहुरि संसारी जीवनिका जो परिमाण तामैं द्वियोगी अर त्रियोगी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै तितने जीव एक योगी जानने। इनिकैं एक काययोग ही पाइए ऐसैं प्रगट जानना ॥ २६१ ॥

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा ।

तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा ॥२६२॥

अंतर्मुहूर्तमात्राः चतुर्मनोयोगाः क्रमेण संख्यगुणाः ।
तद्योगः सामान्यं चतुर्वचोयोगाः ततस्तु संख्यगुणाः ॥ २६२ ॥

जी० प्र०—सत्यासत्योभयानुभयाख्याः चत्वारो मनोयोगाः अंतर्मुहूर्तमात्राः प्रत्येकमंतर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणा भवंति

अ २ ७ृ । ६४
उ २ ७ृ । १६
अ २ ७ृ । ४
स २ ७ृ । १

एषां कालानां युतिः सामान्यं सामान्यमनोयोगकालो भवति २ ७ृ ८५ अयमप्यंतर्मुहूर्तमात्र एव, ततः सामान्यमनोयोग-कालात्तु पुनः ते चत्वारो वाग्योगकाला अपि क्रमेण संख्यातगुणाः, तथापि प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रा एव—

अ २ ७ृ । ८५ । २५६
उ २ ७ृ । ८५ । ६४
अ २ ७ृ , ८५ , १६
स २ ७ृ , ८५ , ४

एषां युतिः २ ७ृ , ८५ , ३४० अपि अंतर्मुहूर्तमात्री भवति ॥ २६२ ॥

म० प्र०—चत्वारः–सत्यासत्योभयानुभयविकल्पाः मनोयोगाः अंतर्मुहूर्तमात्राः–प्रत्येकमंतर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणाः । तद्यथा–सत्यमनोयोगस्य कालः सर्वतः स्तोकः अंतर्मुहूर्तः २७ृ , १ , ततः संख्येयगुणोऽतर्मुहूर्तः असत्यमनोयोगस्य कालः । २ ७ृ । ४ । ततः सख्येयगुणोंत-र्मुहूर्त उभयमनोयोगस्य कालः २७ृ , १६ , ततः संख्येयगुणोंतर्मुहूर्त. अनुभयमनोयोगस्य कालः , २७ृ , ६४ , तद्योगः तेषा चतुर्योगकालाना योगः मेलनं, सामान्यमनोयोगकालः सोऽप्यतर्मुहूर्तमात्र एव , २७ृ , ८५ , ततश्चतुर्मनोयोगकालसंयोगात् तु–पुनः संख्येयगुणाश्चतुर्वाग्योगकालाः । तद्यथा–अस्माच्चतुर्मनोयोगकालसयोगात् सख्येयगुणोंतर्मुहूर्तः सत्यवाग्योगकालः , २७ृ , ८५ , ४ , ततः संख्येयगुणोऽतर्मुहूर्तः असत्यवाग्योगकालः , २७ृ , ८५ , १६ , ततः संख्येयगुणोंतर्मुहूर्त उभयवाग्योगकालः , २७ृ , ८५ , ६४ , ततः संख्येयगुणोऽतर्मुहूर्तः अनुभयवाग्योगकालः । २७ृ , ८५, २५६॥२६२॥

सं० च०—च्यारि प्रकार मनोयोग प्रत्येक अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति लीएं है तथापि अनुक्रमतैं संख्यात गुणे जानने । सोई कहिए है-सत्य मनोयोगका काल सबतैं थोरा है सो भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण है ताकी संदृष्टि एक

अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा काल असत्य मनोयोगका है ताकी संदृष्टि च्यारि अंतर्मुहूर्त ४। इहां संख्यातकी सहनानी च्यारि जाननी। बहुरि यातैं संख्यातगुणा उभयमनोयोगका काल है ताकी संदृष्टि सोलह अंतर्मुहूर्त १६। बहुरि यातैं संख्यातगुणा अनुभयमनोयोगका काल है ताकी संदृष्टि चौसठि। ६४। अंतर्मुहूर्त। ऐसैं च्यारि मनोयोगका कालका जो परिमाण हूवा सो सामान्य मनोयोगका काल है। तिहिकी संदृष्टि पिच्यासी अंतर्मुहूर्त ८५। बहुरि सामान्य मनोयोगका कालतैं संख्यातगुणा च्यारि वचनयोगका काल है तथापि क्रमतैं संख्यातगुणा है तौ भी प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र ही है। तहां सामान्य मनोयोगका कालतैं संख्यातगुणा सत्य वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि चौगुणा पिच्यासी ८५–४ अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा असत्य वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि सोलहगुणा पिच्यासी ८५–१६ अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा उभय वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि चौसठिगुणा पिच्यासी ८५–६४ अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा अनुभय वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि दोयसै छप्पनगुणा पिच्यासी ८५–२५६ अंतर्मुहूर्त ॥ २६२ ॥

तज्जोगो सामण्णं काओ संखाहदो तिजोगमिदं।
सव्वसमासविभजिदं सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ॥२६३॥

तद्योगः सामान्यं कायः संख्याहतः त्रियोगिमितं।
सर्वसमासविभक्तं स्वकस्वकगुणसंगुणे तु स्वकराशिः ॥ २६३ ॥

जी० प्र०—तेषां चतुर्णां वाग्योगकालानां योगः–युतिः सामान्यवाग्योगकालो भवति २१, ८५, ३४० अस्मात् काययोगकालः संख्यातगुणः २१, ८५, १३६० सर्वसमासेन सर्वेषां मनोवाक्काययोगकालानां संयोगेन २१, ८५, १७०१ त्रियोगमितं प्रागुक्तां

म २ॄ , ८५ , १
व २ॄ , ८५ , ३४०
का २ॄ , ८५ , १३६०
एषां योगः १७०१

त्रियोगिजीवसंख्यां विभज्य स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालेन गुणिते सति स्वस्वसत्यमनोयोगादियुक्तजीवराशिर्भवति[1] अनेन कालसंचयमाश्रित्य संख्या प्ररूपिता, तद्यथा–एतावति काले प्र २ ॄ , ८५ , १७०१ यद्येतावंतो जीवाः संचीयंते फ = ॄ॥ १ / ४, ६५=ॄ १ तदा एतावति काले इ २ ॄ कियतो जीवाः संचीयंते इति त्रैराशिकं कृत्वा स्वस्वशलाकाभिर्गुणयित्वा प्रमाणराशिना भक्ते सति सत्यमनोयोगादियोगिनां संख्या भवति, सत्यमनोयोगिनः–

= ॄ॥ , १ / ४ , ६५ = ॄ , ८५ , १७०१

असत्यमनोयोगिनः = ॄ॥ । ४ / ४ । ६५ = ॄ । ८५ । १७०१

उभयमनोयोगिनः = ॄ॥ । १६ / ४ । ६५ = ॄ । ८५ । १७०१

अनुभयमनोयोगिनः– = ॄ॥ । ६४ / ४ । ६५ = ॄ । ८५ । १७०१

समस्तमनोयोगिनः = ॄ॥ । / ४ । ६५ = ॄ । १७०१

सत्यवाग्योगिनः– = ॄ॥ । ४ / ४ । ६५ = ॄ । १७०१

असत्यवाग्योगिनः = ॄ॥ । १६ / ४ । ६५ = ॄ । १७०१

उभयवाग्योगिनः ॄ॥ । ६४ / ४ । ६५ = ॄ । १७०१

अनुभयवाग्योगिनः = ॄ॥ । २५६ / ४ । ६५ = ॄ । १७०१

समस्तवाग्योगिनः = ॄ॥ । ३४० / ४ । ६५ = ॄ । १७०१

समस्तकाययोगिनः–

१ "त्रियोगिजीवराशिप्रमाण भक्त्वा स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालरूपगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वसत्यमनोयोग्यादि जीवराशिप्रमाणमायाति।" इत्यपि पाठ।

=। ॻृ। १३६० । द्वियोगिषु वाग्योगकालोंऽन्तर्मुहूर्तः । २ॻृ। काययोगकालः ततः संख्यातगुणः २ॻृ। ४ उभयकालयुत्या
४ । ६५=ॻृ । १७०१

२ॻृ। ४। द्वियोगिजीवसंख्यां त्रियोगिहीनत्रसपर्याप्तराशिमात्रीं भक्त्वा स्वस्वगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वराशिर्भवति। द्वियोगिवाग्योगिनः =२ॻृ। १ । द्वियोगिकाययोगिनः =२ॻृ। ४
४ । २ॻृ। ५ ४ । २ॻृ। ५
५– ५– ॥ २६३ ॥

मं० प्र०—तेषा चतुर्वाग्योगकालाना योगः–समेलनं सामान्यवाग्योगकालो भवति २ ॻृ । ८५ । ३४० । ततः संख्येयगुणः काययोगकालः २ ॻृ। ८५। १३६० । सर्वेषां मनोवाक्काययोगकालानां समासेन- सयोगेन २ ॻृ। ८५। १७०१ त्रियोगमिति प्रागुक्तां त्रियोगिजीवसंख्यां विभज्य स्वस्वकालप्रमाणेन सत्यमनोयोगादीना प्रत्येकं योगकालेन गुणिते सति स्वस्वराशिर्भवति—सत्यमनोयोगादियुक्तजीवराशिर्भवति । अनेन कालसंचयमाश्रित्य संख्या प्ररूपिता । एतावति काले । प्र २ ॻृ। ८५ । १७०१ यद्येतावंतो जीवा लभ्यते फ=ॻृ / ४ । ६५=ॻृ । तदा एतावति काले इ २ ॻृ कियंतो जीवा लभ्यंत इति त्रैराशिकेन लब्धा अपवर्तिताः सत्यमनोयोगिजीवसंख्या =ॻृ / ४ । ६५=ॻृ। ८५ । १७०१ एवमसत्यमनोयोग्यादिजीवाना संख्या सर्वसमासविभक्तस्वस्वकालगुणितत्रियोगिप्रमाणप्रमिता आनेतव्या ॥ २६३ ॥

स० चं०—बहुरि जो चार्‍यो वचन योगनिका काल कह्या ताका जोड दीएं जो परिमाण होइ सो सामान्य वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि तीनसै चालीस गुणा पिच्यासी ८५ । ३४० अंतर्मुहूर्त । यातैं संख्यातगुणा काल काययोगका जानना। ताकी संदृष्टि तेरहसै साठिगुणा पिच्यासी ८५।१३६० अंतर्मुहूर्त। ऐसैं इनि तीनों योगनिके कालका जोड दीएं सतरहसै एकगुणा पिच्यासी ८५।१७०१ अंतर्मुहूर्त प्रमाण भया। ताके जेते समय हों-

हि तिस प्रमाण करि त्रियोगी कहिए पूर्वै जो त्रियोगी जीवनिका परिमाण कह्या था ताकौं भाग दीजिए जो एक भागका परिमाण आवै ताकौं सत्यमनोयोगके कालके जेते समय तिनकरि गुणैं जो परिमाण आवै तितने सत्यमनोयोगी जीव जानने। बहुरि ताहीकौं असत्यमनोयोगकालके जेते समय तिनकरि गुणैं जो परिमाण आवै तितने असत्यमनोयोगी जीव जानने। असैंही काययोगपर्यंत सर्वका परिमाण जानना। इहां सर्वत्र त्रैराशिक करना तहां जो सर्वयोगनिका कालविषैं पूर्वोक्त त्रियोगी सर्व जीव पाइए तौ विवक्षित योगके कालविषैं केते जीव पाइए? असैं सर्वयोगनिका काल प्रमाणराशि त्रियोगी जीवनिका परिमाण फलराशि अर जिस योगकी विवक्षा होइ तिसका काल इच्छाराशि असैं करिकैं फलराशिकौं इच्छाराशिकरि गुणि प्रमाणराशिका भाग दीएं जो जो परिमाण आवै तितने तितने जीव विवक्षित योगके धारक जानने। बहुरि द्वियोगी जीवनिविषैं वचनयोगका काल अंतर्मुहूर्त मात्र ताकी संदृष्टि एक अंतर्मुहूर्त यातैं संख्यातगुणा काययोगका काल ताकी संदृष्टि च्यारि अंतर्मुहूर्तमात्र इनि दोऊनिके कालकौं जोंड जो प्रमाण होइ ताका भाग द्वियोगी जीव राशिकौं दीएं जो एक भागका परिमाण होइ ताकौं अपना अपना कालकरि गुणैं अपना अपना राशि हो है। तहां किछू घाटि त्रसराशिके प्रमाणकौं संदृष्टि अपेक्षा पांचकरि भाग देइ एककरि गुणैं द्वियोगीनिविषैं वचनयोगीनिका प्रमाण हो है। पांचका भाग देइ च्यारि करि गुणैं द्वियोगीनिविषैं काययोगीनिका प्रमाण हो है॥ २६३॥

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता।
कम्मोरालियमिस्सयओरालियजोगिणो जीवा॥ २६४॥

कार्मणौदारिकमिश्रकौरालाद्धासु संचितानंताः।
कार्मणौरालिकमिश्रकौरालिकयोगिनो जीवाः॥ २६४॥

जी० प्र०—कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगौदारिककाययोगानां कालेषु वक्ष्यमाणप्रमाणेषु ये संचिताः कार्मणकाययोगिनः औदारिकमिश्रकाययोगिनः औदारिककाययोगिनश्च जीवाः ते प्रत्येकमनंतानंताः भवंति ॥ २६४ ॥ तद्यथा—

म० प्र०—कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगौदारिककाययोगानां कालेषु वक्ष्यमाणप्रमाणेषु सचिताः कार्मणकाययोगिनः, औदारिकमिश्रकाययोगिनः, औदारिककाययोगिनश्च जीवाः प्रत्येकमनंतानंता ज्ञातव्याः । ॥ २६४ ॥ तद्यथा—

स०चं०—कार्माण काययोग औदारिकमिश्र काययोग औदारिककाय योग इनिके कालनिविषैं संचित कहिए एकठे भए जे कार्माण काययोगी औदारिक मिश्र काययोगी औदारिक काययोगी जीव ते प्रत्येक जुदे जुदे अनंतानंत जानने सोई कहिए है ॥ २६४ ॥

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी ।
सगगुणगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो ॥ २६५ ॥

समयत्रयसंख्यावलिसंख्यगुणावलिसमासहितराशिं ।
स्वकगुणगुणिते स्तोकः असंख्यसंख्याहतः क्रमशः ॥ २६५ ॥

जी० प्र०—कार्मणकाययोगकालः समयत्रयं भवति । विग्रहगतौ अनाहारकसमयत्रये कार्मणकाययोगस्यैव संभवात् । औदारिकमिश्रकाययोगस्य कालः संख्यातावलिमात्रो भवति अंतर्मुहूर्तप्रमितापर्याप्तकालस्यैव तत्कालत्वात् । औदारिककाययोगकालः ततः संख्यातगुणाः तत्कालद्वयहीनसर्वकालस्यैव औदारिककाययोगकालत्वात् । तेषां कालानां न्यासः—स ३ । २ ╒ । २ ╒ । ४ । एषां युतिः २ ╒ । ५ । अनया द्वियोगित्रियोगिसंख्याविहीनसंसारिराशिप्रमितैककाययोगिसंख्यां भक्त्वा स्वस्वकालमात्रगुणकारेण गुणिते सति लब्धं स्वस्वयोगिसंख्या भवति । अत्र कार्मणकाययोगिनः सर्वतः स्तोका १३=३ / २ ╒ ५ एभ्यः औदारिकमिश्रकाययोगिनः असंख्यातगुणाः— १३= २ ╒ / २ ╒ । ५ । एभ्य औदारिककाययोगिनः संख्यागुणाः—१३= । २ ╒ । ४ / २ ╒ । ५ एते त्रयोऽपि राशयः । एतावति काले यद्येतावंतो जीवा संचीयंते तदा एतावति काले कियंतो जीवाः संचीयंते ?

इति त्रैराशिकसिद्धा ज्ञातव्याः ।

प २ ७ृ । ५	फ १३=	इ स ३ ।	ल । का० जी०	१३=३ / २ ७ृ ५
प २ ७ृ । ५	फ १३=	इ २ ७ृ	ल । औ०मि०जी.	१३=२ ७ृ / २ ७ृ । ५
प २ ७ृ । ५	फ १३=	इ २ ७ृ । ४	ल औ०का०जी०	१३= । २ ७ृ ४ / २ ७ृ । ५

क्रमशः इत्यनेन धवलाख्यप्रथमसिद्धांतोक्तसंख्यानुक्रममाश्रित्य उक्तेयं संख्या प्ररूपणा अस्माभिरित्यौद्धत्यपरिहारः शास्त्रकारेण सूचितः ॥२६५॥

म० प्र०—कार्मणकाययोगस्य कालः समयत्रयं, कुतः ? विग्रहगतौ अनाहारकसमयत्रये कार्मणकाययोगस्यैव संभवात् । औदारिकमिश्रकाययोगस्य काल· सख्यातावलिमात्रः अंतर्मुहूर्तप्रमितापर्याप्तकालस्यैव तत्कालत्वात् । ततः सख्येयगुणः औदारिककाययोगकालः । एतेषा कालाना न्यासः--स ३ । २ ७ृ । २ ७ृ । ४ । एतत्संयोग २ ७ृ । ५ । अनेन द्वियोगित्रियोगिसख्येन ससारिराशिप्रमितकाययोगिसंख्या भक्त्वा स्वस्वकालमात्रगुणकारेण गुणिते लब्धं स्वस्वयोगिसंख्या भवति । तत्र कार्मणकाययोगिजीवराशिः सर्वत. स्तोकः १३ = ३ तस्मादसंख्येयगुणः औदारिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति

२ ७ृ । ५

१३ = । २ ७ृ ततः सख्येयगुणः औदारिककाययोगिजीवराशि १३ = । २ ७ृ । ४ अत्र एतावति काले प ३— यद्येतावतो जीवाः सचीयंते फ
३— / २ ७ृ । ५ ३— / २ ७ृ । ५ २ ७ृ । ५

१३ = तदा एतावति काले इ ३, कियंतो जीवाः सचीयते इति त्रैराशिकेन लब्धं कार्मणकाययोगिजीवप्रमाणं १३ = ३ । एवमौदारिकमिश्रकाययोगिप्रमाणं
३— / २ ७ृ । ५

मौदारिककाययोगिप्रमाण च गाथासूत्रसूचित त्रैराशिकविधानेनानेतव्यं । क्रमश इत्यनेन धवलाख्यप्रथमसिद्धातोक्तसंख्यानुक्रममाश्रित्येयं सख्या प्ररूपणा अस्माभिर्विधीयत इत्यौद्धत्यपरिहारः शास्त्रकारेण सूचितः ॥ २६५ ॥

स० चं०—कार्मण काययोगका काल तीन समय है जातैं विग्रह गतिविषैं अनाहारक तीनि समयनिविषैं कार्माणकाय योगही संभवै है। बहुरि औदारिक मिश्रकाययोगका काल संख्यात आवली प्रमाण है जातैं अंतर्मु-

हूर्त प्रमाण अपर्याप्त अवस्थाविषैं औदारिकमिश्रका काल है। बहुरि तातैं संख्यातगुणा औदारिक काययोगका काल है जातैं तिनि दोऊ कालनि विना अवशेष सर्व औदारिक योगीका ही काल है सो इनि सर्वकालनिका जोड दीएं जो समयनिका परिमाण भया ताकौं द्विसंयोगी त्रिसंयोगी राशिकरि हीन संसारी जीव राशिमात्र एक योगी जीव राशिके परिमाणकौं भाग दीएं जो एकभागविषैं परिमाण आवै तीहिंकौं कार्माण कालकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने कार्माणकाययोगी हैं। अर तिसही एकभागकौं औदारिक मिश्रकालकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने औदारिक मिश्रयोगी जानने। बहुरि तिसही एक भागकौं औदारिकके कालकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने औदारिक काययोगी जानने। इहां कार्माण काययोगी तौ सबतैं स्तोक हैं। इनितैं असंख्यात गुणे औदारिकमिश्रकाय योगी हैं। इनतैं संख्यातगुणे औदारिक काययोगी हैं। इहां भी जो तीनूं काययोगके कालविषैं सर्व एकयोगी जीव पाइए तौ कार्माण शरीर आदि विवक्षितके कालविषैं केते पाइए ? ऐसैं त्रैराशिक हो है तहां तीनों काययोगनिका काल सो प्रमाणराशि, एकयोगी जीवनिका परिमाण सो फलराशि कार्मणादिक विवक्षितका काल सो इच्छाराशि, फलराशिकौं इच्छाराशिकरि गुणैं प्रमाणराशिका भाग दीएं जो जो प्रमाण पावै तितने तितने विवक्षित योगके धारक जीव जानने। क्रमशः इस शब्दकरि आचार्यने कह्या है कि धवलनामा प्रथमसिद्धांतके अनुसारि यह कथन कीया है। याकरि अपना उद्धतताका परिहार प्रगट कीया है ॥ २६५ ॥

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे ।
आवलिअसंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥ २६६ ॥

सोपक्रमानुपक्रमकालः संख्यातवर्षस्थितिवाने ।
आवल्यसंख्यभागः संख्यातावलिप्रमः क्रमशः ॥२६६॥

जी० प्र०—वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्या वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्या च गाथाचतुष्टयेनोच्यते। तद्यथा–संख्येयवर्षस्थितिषु दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यायुष्केषु वानेषु देवेषु तत्स्थितेः सोपक्रमकालः अनुपक्रमकालश्चेति द्वौ भंगौ भवतः। तत्र उत्पत्तिः–उपक्रमः तत्सहितः कालः सोपक्रमकालः निरंतरोत्पत्तिकालः इत्यर्थः। तत्प्रमाणं आवल्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। अनुपक्रमकालः–उत्पत्तिरहितः कालः, स च संख्यातावलिप्रमितो भवति। द्वादशमुहूर्तमात्रः उत्कर्षेण उत्पत्त्यभावकालः इत्यर्थः। क्रमशः–यथाक्रमं, वनेषु भवाः वानाः–व्यंतराः इत्यर्थः। वाने इत्येकवचनं सामान्यापेक्षया कृतं ॥ २६६ ॥

म० प्र०—वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्या वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्या च गाथाचतुष्टयेनोच्यते। तद्यथा–संख्येयवर्षस्थितिषु दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यायुष्केषु व्यंतरेषु तत्स्थितेर्द्वौ भागौ, सोपक्रमकालः अनुपक्रमकालश्चेति। तत्र उपक्रमः–उत्पत्तिः, तत्सहितः सोपक्रमकालः–आवल्यसंख्येयभागमात्रः–निरंतरोत्पत्तिकाल इत्यर्थः। अनुपक्रमकालः उत्पत्तिरहितकालः संख्यातावलिप्रमः, द्वादशमुहूर्तमात्रः उत्कर्षेणोत्पत्त्यंतरकाल इत्यर्थः। क्रमशः यथासंख्यं तथैव व्याख्यात। वनेषु भवा वानाः–व्यंतरा इत्यर्थः। वाने इत्येकवचनं सामान्यापेक्षया कृतं ॥ २६६ ॥

स० चं०—वैक्रियिक मिश्र अर वैक्रियिककाय योगके धारक जे जीव तिनकी संख्या च्यारि गाथानिकरि कहैं हैं–संख्यातवर्षकी है स्थिति जिनकी ऐसे जे मुख्यताकरि दशहजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिके धारक वान कहिए व्यंतर देव तिनिविषैं उनकी स्थितिके दोय भाग हैं–एक सोपक्रम काल, एक अनुपक्रम काल। तहां उपक्रम कहिए उत्पत्ति तीहि सहित जो काल सो सोपक्रम काल कहिए सो आवलीके असंख्यातवे भागमात्र है जो व्यंतर देव उपजिवो ही करैं वीचि कोई समय अंतर नहिं पडै तौ आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण कालपर्यंत उपजिवो करैं। बहुरि जो उत्पत्ति रहित काल होइ सो अनुपक्रम काल कहिए सो संख्यात आवली प्रमाण है बारह मुहूर्तमात्र जानना जो कोई ही व्यंतर देव न उपजै तौ बारह मुहूर्तपर्यंत न उपजै पीछैं कोई उपजै ही उपजै ऐसैं अनुक्रमतैं काल जाननं ॥ २६६ ॥

तहिं सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु संखगुणा।
तत्तो संखगुणूणा अपुण्णकालम्हि सुद्धसला ॥ २६७ ॥

तस्मिन् सर्वाः शुद्धशलाकाः सोपक्रमकालतस्तु संख्यगुणाः।
ततः संख्यगुणोना अपूर्णकाले शुद्धशलाकाः ॥ २६७ ॥

जी० प्र०—तत्र दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यस्थितौ सर्वाः पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयसंबंधिन्यः शुद्धशलाकाः शुद्धोपक्रमकालशलाकाः आवल्यसंख्यातैकभागमात्रात् सोपक्रमकालात् संख्यातगुणिता भवंति २ ↄ ↄ एताभ्यः अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकाः संख्यातगुणहीना भवंति । २ । ↄ तद्यथा सोपक्रमानुपक्रमकालद्वयस्य यद्येका शलाका तदा दशसहस्रवर्षकालस्थितौ कियंत्यः शलाका भवेयुरिति त्रैराशिकेन प्र २ ↄ a, फ श १, इ वर्ष १०००० लब्धमिश्रशलाका २ ↄ ↄ ↄ भवंति। अत्र भाज्यराशौ एतावद्दृणे २ ↄ ↄ प्रक्षिप्ते एवं २ ↄ ↄ ↄ a इदमपवर्त्य प्रक्षिप्तऋणे किंचिदूनिते एवं ↄ ↄ—। प्र श १ । फ उ २ । इ श ↄ ↄ—। लब्धशुद्धोपक्रमसर्वकालो भवति २ ↄ ↄ—। अस्य कालस्य शुद्धशलाकाजनितत्वेन शुद्धशलाका इत्याचार्येण उक्तं । पुनरपि दशसहस्रवर्षप्रमितसर्वकाले शुद्धोपक्रमकाल एतावान् लभ्यते तदा अपर्याप्तकाले एतावति कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र सर्वे २ ↄ ↄ ↄ। फ २ ↄ ↄ—। इ २ ↄ ↄ लब्धं अपर्याप्तकालस्य शुद्धोपक्रमकालो भवंति २ ↄ। अथवा—प्र का २। फ श १ । इ २ ↄ ↄ—लब्धाः पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयशुद्धोपक्रमशलाकाः ↄ ↄ— । प्र श १। फ २। इ श ↄ ↄ—लब्धः सर्वशुद्धोपक्रमकालः २ ↄ ↄ—। पुनरपि प्र श १ फ २ इ ↄ लब्धः अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमकालः २ ↄ। उभयत्र जघन्यजननांतरमेकसमयमाश्रित्य शुद्धोपक्रमशलाकाः साधिता इति ज्ञातव्यं। अनुपक्रमकालरहितः उपक्रमकालः शुद्धोपक्रमकालः ॥ २६७ ॥

मं० प्र०——तत्र-दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यस्थितौ सर्वाः-पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयसंबंधिन्यः शुद्धशलाकाः-शुद्धोपक्रमकालशलाकाः, आवल्यसंख्यातभाग-मात्रात् सोपक्रमकालात् संख्यातगुणिताः । ततः संख्यातगुणहीना अपर्याप्तकाले शुद्धोपक्रमशलाका भवंति । तद्यथा—सोपक्रमानुपक्रमकालद्वयं मिलितमिदं २ । एतावतः कालस्य प्र २ यद्येकशलाका लभ्यते फ १ । तदा एतावतः कालस्य इ २ ७ ७ ७, कियत्यः शलाका लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धाः सर्वमिश्रशलाकाः २ ७ ७ ७ भाज्यराशौ एतावद्दणं २ ७ ७ निक्षिप्यापवर्तिताः ७ ७ । प्राग्निक्षिप्तऋणेन किंचिदूनाः ७ ७– । पुनरेकस्यां शलाकायां प्र १, यद्येतावान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते फ २ तदा इयतीषु शलाकासु इ ७ ७– । कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धः सर्वशुद्धोपक्रम-कालः २ ७ ७–अस्य शुद्धशलाकाजनितत्वात् शुद्धशलाका इत्याचार्यैरुक्तं । पुनः एतावति सर्वकाले प्र २ ७ ७ ७, यद्येतावान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते फ २ ७ ७–तदा एतावत्यपर्याप्तकाले इ २ ७ ७ कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्ध अपर्याप्तकाले शुद्धोपक्रमकालः २ ७ । अथवा एतावतः कालस्य प्र २ यद्येका उपक्रमशलाका लभ्यते फ १, तदा एतावतः कालस्य इ २ ७ ७, कियत्य उपक्रमशलाका लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धाः सर्वकालसंबंध्युपक्रमशलाकाः २ ७ ७ अपवर्तिताः २ ७ ७ । तथा एतावतः कालस्य प्र २ यद्येका उपक्रमशलाका लभ्यते फ १, तदा एतावतः कालस्य इ २ ७ कियत्यः उपक्रमशलाका लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धाः अपर्याप्तकालसंबंध्युपक्रमशलाका अपवर्तिताः २ ७ उभयत्र जघन्यजननांतर-मेकसमयमाश्रित्य शुद्धोपक्रमशलाकाः साधिताः । अनुपक्रमकालरहित उपक्रमकालः शुद्धोपक्रमकालः ॥ २६७ ॥

सं० च०——तींहि दश हजार वर्षप्रमाण जघन्य स्थितिविषैं सर्व पर्याप्त वा अपर्याप्त कालसंबंधी अनुपक्रम

काल रहितकौं केवल शुद्ध उपक्रमकालकी शलाका कहिए जेतीवार संभवै तेता प्रमाण सो उपक्रमकालतैं संख्यात गुणी है बहुरि अपर्याप्त कालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका तातैं संख्यात गुणी घाटि हैं जो जघन्यस्थितिविषैं शुद्ध उपक्रम शलाकाका परिमाण कह्या था ताके संख्यातवे भाग अपर्याप्तकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका जानना। सोई दिखाइए है–सोपक्रम अनुपक्रम काल दोऊ कालनिकी मिलाई हुई एक शलाका होइ तौ दशहजार वर्ष प्रमाणस्थितिकी केती शलाका होंइ ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां सोपक्रम अर अनुपक्रम कालकौं मिलाए आवलीका असंख्यातवां भाग अधिक संख्यात आवली प्रमाण तौ प्रमाणराशि भया अर फलराशि एक शलाका अर इच्छाराशि दशहजार वर्ष तहां फलकरि इच्छाराशिकौं गुणि प्रमाणका भाग दीएं किंचिदून संख्यातगुणा संख्यातप्रमाण मिश्रशलाका हो है। जघन्य स्थितिविषैं एतीवार उपक्रम वा अनुपक्रमका काल वर्तै है। बहुरि प्रमाणराशि शलाका एक, फलराशि उपक्रमकाल आवलीका असंख्यातवां भाग,इच्छाराशि मिश्रशलाका किंचिदून संख्यातगुणा संख्यात कीएं तौंहि जघन्य स्थिति प्रमाण कालविषैं शुद्ध उपक्रम शलाका कालका परिमाण किंचिदून संख्यातगुणा संख्यात गुणित आवलीका असंख्यातवां भागमात्र हो है। बहुरि प्रमाण जघन्यस्थिति,फल शुद्ध उपक्रम शलाका काल, इच्छा अपर्याप्त काल कीएं अपर्याप्त कालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवां भागमात्र होइ अथवा अन्य प्रकार कहैं हैं-प्रमाण एक शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल, फल एक शलाका, इच्छा सर्वशुद्ध उपक्रम काल करिए पर्याप्त अपर्याप्त सर्वकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका किंचिदून संख्यातगुणी संख्यात जाननी। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल शुद्ध उपक्रम शलाकाकाकाल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र, इच्छा सर्व शुद्ध शलाका किंचिदून संख्यात गुणित संख्यात करिए लब्धराशि विषैं सर्व जघन्यस्थितिसंबंधी शुद्ध उपक्रमकाल आवलीका असंख्यातवा भागकौं किंचिदून संख्यातगुणा संख्यातकरि गुणैं जेता प्रमाण आवै तितना हो है। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक शलाका काल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र काल, इच्छा अपर्याप्त कालसबंधी शलाका संख्यात करिए तहां लब्धिराशिविषैं अपर्याप्त-

कालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवां भागमात्र हो है। इहां दोय प्रकार वर्णन किया तहां दोऊ जायगा जघन्य उपजनेका अंतर एक समय है ताकौं विचारि शुद्ध उपक्रम शलाका साधी है ऐसा जानना। अनुपक्रम कालकरि रहित जो उपक्रम काल सो शुद्ध उपक्रमकाल जानना ॥ २६७ ॥

तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकालल्द्धाहिं ।
सुद्धसलागाहिं गुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥ २६८ ॥

तं शुद्धशलाकाहितनिजराशिमपूर्णकाललब्धाभिः ।
शुद्धशलाकाभिर्गुणे व्यंतरवैगूर्वमिश्रा हि ॥ २६८ ॥

जी० प्र०—तत्सर्वकालसंबंधिशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २७१- । भक्ते निजराशौ व्यंतरजीवराशौ अपर्याप्तकाललब्धशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २७ गुणिते सति यल्लब्धं तत्प्रमाणो व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति = २७ / ४ । ६५=।८१।१०।२१७- खलु स्फुटं ॥ २६८ ॥

मं० प्र०—ताभिः सर्वकालसंबंधिनीभिः शुद्धोपक्रमशलाकाभिः, हृतं-भक्तं, निजराशिं व्यंतरराशिं, अपर्याप्तकाललब्धाभिः शुद्धोपक्रमशलाकाभिः गुणयित्वा यल्लब्धं तत्प्रमाण व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिराशिर्भवति । एतावतीषु शुद्धोपक्रमशलाकासु प्र २७१-यद्येतावान् जीवराशिर्भवति फ = ४ । ६५=८१ । १० । तदा एतावतीषु शुद्धोपक्रमशलाकासु इ २७ कियान् जीवराशिर्भवति इति त्रैराशिकेन सिद्धौ भागहारगुणकारौ लब्धव्यंतरवैक्रियिकमिश्रयोगिराशिः =२७ / ४ । ६५=८१ । १० । २७१- अपवर्तितगुणकारभागहारः व्यंतरराशिसंख्यातैकभागमात्रः = ४ । ६५=८१ । १० । १ । खलु स्फुटं ज्ञातव्य ॥ २६८ ॥

स० चं०—तहाँ जघन्य स्थितिप्रमाण सर्वकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका परिमाण किंचिदून संख्यातगुणा संख्यातकरि गुणित आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कह्या ताका भाग व्यंतर देवनिका जो पूर्वै परिमाण कह्या था ताकौं दीजिए जो परिमाण आवै ताकौं अपर्याप्त काल संबधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका प्रमाण संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवां भागमात्र ताकरि गुणैं जो परिमाण आवै तितने वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक व्यंतरदेव जानने। सो ए व्यंतरदेवनिका जो पूर्वै परिमाण कह्या था ताके संख्यातवे भाग वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक व्यंतर देव हैं। संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिके धारक व्यंतर घने उपजै हैं तातैं उनहीकी मुख्यताकरि इहां परिमाण कह्या है ॥ २६८ ॥

तहिं सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं ।
सुरणिरयकायजोगा वेगुव्वियकायजोगा हु ॥ २६९ ॥

तस्मिन् शेषदेवनारकमिश्रयुते सर्वमिश्रवैगूर्वं ।
सुरनिरयकाययोगा वैगूर्विककाययोगा हि ॥ २६९ ॥

जी० प्र०—तद्व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशौ शेषदेवेषु भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवेषु सप्तपृथ्वीनारकवैक्रियिकमिश्रकाययोगिषु च युतेषु यो राशिः सः सर्ववैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति। = २७/a ॰ शेषदेवनारकेषु अनुपक्रमकालस्य बहुत्वेन वैक्रियिकमिश्रयोगिप्रमाणं अल्पमिति तद्राशयः साधिकाः कर्तव्याः।

४ । ६५ = । ८१ । १० । २ ७ ७/a —

देवनारककाययोगिराशिद्वये युते यो राशिः स वैक्रियिककाययोगिराशिर्भवति। = ७ । १३६० । तन्मध्यात्तिर्यग्मनुष्यसंबंध्यौदारिकाहारककाययोगिसंख्यात्रियोगिराशौ यत्काययोगिराशिप्रमाणं प्रागुक्तं

४ । ६५ = । ७ । १७०१

द्वये अपनीते यावदवशिष्यते स वैक्रियिककाययोगिजीवराशिरित्यर्थः। = ॥ ७। १३६०=। तुशब्दः इमं विशेषं सूचयति ॥ २६६ ॥
४। ६५=७। १७०१

मं० प्र०—तस्मिन् व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिराशौ, शेषदेवानां–भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवानां नारकाणां च वैक्रियिकमिश्रकाययोगिराशौ युते सति यो राशिर्भवति स सर्वो वैक्रियिकामिश्रकाययोगराशिः । शेषदेवनारकेष्वनुपक्रमकालस्य बहुतरत्वात् वैक्रियिकमिश्रयोगिप्र-
= १ ०
४। ६५=८१। १०। ७

माणमल्पमिति तद्राशेः प्रक्षेपः कृतः। देवनारककाययोगिराशिद्वयं मिलितं यत्प्रमाण तत्प्रमितं वैक्रियिककाययोगराशिर्भवति। त्रियोगिराशिमध्ये यत्काययोगिप्रमाण प्रागुक्तं ॥ अत्र तिर्यग्मनुष्यसंबध्यौदारिकाहारककाययोगिसंख्याद्वये अपनीते अवशिष्टः–वैक्रियिककाययोगिराशिरित्यर्थः।
१—
=७। १३६०।
४। ६५=७। १७०१
॥ तुशब्दः इमं विशेषं सूचयति ॥ २६६ ॥
१—
=७। १३६०=
४। ६५=७। १७०१।

स० चं०–तीहिं वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक व्यंतर देवनिका परिमाणविषैं अवशेष जे भवनवासी ज्योतिषी वैमानिक देव अर सर्व नारकी वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक तिनिका परिमाण मिलाएं सर्व वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक जीवनिका परिमाण हो है। व्यंतर देवां विना अन्य देव नारकी तिनकैं अनुपक्रमकाल जो न उपजनेका काल सो बहुत है तातैं सवानितैं वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक व्यंतर देव बहुत हैं इस वास्तैं

औरनिकौं उनविषें मिलायकरि परिमाण कह्या। बहुरि काययोगके धारक देव अर नारकी तिनिका परिमाण मिलाएं वैक्रियिक काययोगके धारक जीवनिका परिमाण हो है। पूर्वे जो त्रियोगी जीवनिका परिमाण विषें काययोगी जीवनिका परिमाण कह्या था तामैं तिर्यंच मनुष्य संबंधी औदारिक आहारक काययोगके धारक जीवनिका परिमाण घटाएं जो परिमाण रहै तितने वैक्रियिक काययोगके धारक जीव जानने। मिश्र योगके धारक जीव एक काय योगी ही हैं सो उनका परिमाण एकयोगीनिका प्रमाणविषें गर्भित जानना ॥ २६९ ॥

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एकसमयम्हि।
आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सं ॥ २७० ॥

आहारकाययोगाः चतुष्पंचाशत् भवंति एकसमये।
आहारमिश्रयोगाः सप्तविंशतिस्तूत्कृष्टम् ॥ २७० ॥

जी० प्र०—आहारककाययोगिनः एकसमये युगपच्चतुष्पंचाशत्प्रमिता भवंति, आहारकमिश्रकाययोगिनः एकसमये युगपत्सप्तविंशतिप्रमिता भवंति। एकसमये उत्कृष्टादिति विशेषणद्वयं तु प्रागुक्तगत्यादिजीवसंख्याभिः वक्ष्यमाणजीवसंख्याभिश्च संबंधनीयं। अत्र मध्यदीपकत्वेनोक्तत्वात्। जघन्यसंख्यापेक्षया नानाकालसंख्यापेक्षया च संभवन् विशेषः परमागमे द्रष्टव्यः ॥ २७० ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु योगमार्गणानाम नवमोऽधिकारः ॥ ९ ॥

म० प्र०—आहारककाययोगिनः एकस्मिन् समये युगपच्चतुःपंचाशद्भवंति। आहारकमिश्रकाययोगिनः एकस्मिन् समये सप्तविंशतिर्भवंति। एकस्मिन् समये, उत्कर्षादिति विशेषणद्वयं प्रागुक्तगत्यादिजीवसंख्यानां वक्ष्यमाणजीवसंख्यानां च संबंधनीयं। अत्र मध्यदीपकत्वेनोक्तत्वात्। जघन्यसंख्यापेक्षया नानाकालापेक्षया च संभवन्विशेषः परमागमे द्रष्टव्यः ॥ २७० ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ योगप्ररूपणानाम नवमोऽधिकारः ॥ ९ ॥

सं० च०—उत्कृष्टपनैं एकसमयविषैं युगपत् आहारक काययोगके धारक चौवन ५४ हो हैं बहुरि आहारक मिश्रकाययोगके धारक सत्ताईस २७ हो हैं। उत्कृष्टपनैं अर एक समय विषै ए दोय विशेषण मध्यदीपक समान हैं जैसैं बीचि धर्‍या दीपक दोऊ तरफ प्रकाश करै है तैसैं इनि दोऊ विशेषणनितैं जो पूर्वैं गति आदिविषैं जीवनिकी संख्या कहि आए अर आगैं वेदादिक विषैं जीवनिकी संख्या कहिएगी सो सब उत्कृष्टपनैं युगपत् अपेक्षा जाननी। जो उत्कृष्टपनैं एकसमयविषैं युगपत् होंइ तो उक्त संख्याप्रमाण जीव होहिं उक्त संख्यातैं हीन होंइ तौ होंइ परंतु अधिक कदाचित् न होंइ ऐसी विवक्षातैं इहां कथन जानना बहुरि जघन्यपनेतैं वा नाना कालकी अपेक्षा संख्याका विशेष अन्य जैनागमतैं जानना ऐसैं योगमार्गणा विषैं जीवनिकी संख्या कही है ॥ २७० ॥

इति श्रीआचार्य श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितगोम्मटसारद्वितीयनामपंचसंग्रहग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस रूपणा तिनिविषैं योगमरूपणा है नाम जाका ऐसा नवमा अधिकार संपूर्ण भया ॥ ९ ॥

अथ वेदमार्गणाधिकारः ॥ १० ॥

जी० प्र०—

कल्याणैः पंचकैर्भांतं पट्चत्वारिंशता गुणैः ।
शीतलं तीर्थकर्तारं वंदे शीतलसूक्तिकं ॥ १० ॥

अथ वेदमार्गणामाह—

मं० प्र०—

भवतापविलोपांगशीतलामोघसूक्तिकं ।
शीतलं तीर्थकर्तारं वंदे त्रैलोक्यवंदितं ॥ १० ॥

अथ शास्त्रकारो गाथाषट्केन वेदमार्गणां प्ररूपयति—

स० चं०— दूरि करत भव ताप सब शीतल जाके बैन ।
तीन भवननायक नमौं शीतल जिन सुखदैन ॥ १० ॥

आगें शास्त्रका कर्ता आचार्य छह गाथानिकरि वेदमार्गणाकौं प्ररूपै है—

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे ।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा ॥ २७१ ॥

पुरुषस्त्रीषंढवेदोदयेन पुरुषस्त्रीषंढाः भावे ।
नामोदयेन द्रव्ये प्रायेण समाः क्वचिद् विषमाः ॥ २७१ ॥

जी० प्र०—पुरुषस्त्रीषंढाख्यत्रिवेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनां उदयेन भावे—चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षंढश्च जीवो भवति । निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मविशेषोदयेन, द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुषः स्त्री षंढश्च भवति । तद्यथा—पुंवेदोदयेन स्त्रियां अभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवो भावपुरुषो भवति । स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावस्त्री भवति । नपुंसकवेदोदयेन उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावनपुंसकं भवति । पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिंगांकितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यपुरुषो भवति । स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्य-

स्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयेन उभयलिंगव्यतिरिक्तदेहांकितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंत द्रव्यनपुंसकं जीवो भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण–प्रचुरवृत्त्या देवनारकेषु भोगभूमिसर्वतिर्यग्मनुष्येषु च समाः द्रव्यभावाभ्यां समवेदोदयांकिता भवति। क्वचित् कर्मभूमिमनुष्यतिर्यग्गतिद्वये विषमाः–विसदृशा अपि भवंति। तद्यथा–द्रव्यतः पुरुषे भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसक। द्रव्यस्त्रियां भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं। द्रव्यनपुंसके भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं इति विषमत्वं द्रव्यभावयोरनियमः कथितः। कुतः? द्रव्यपुरुषस्य क्षपकश्रेण्यारूढानिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं वेदत्रयस्य परमागमे "सेसोदयेण वितहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति।" इति प्रतिपादितत्वेन संभवात् ॥ २७१ ॥

मं० प्र०––पुरुषस्त्रीषंढनाम्नां त्रयाणां वेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनां उदयेन, भावे–चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षंढश्च जीवो भवति। अंगोपांगनामकर्मविशेषोदयेन द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुष स्त्री षंढश्च भवति। तद्यथा- पुंवेदोदयात् स्त्र्यभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः, भावपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयात् पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयात् उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावनपुंसकं भवति। पुंवेदोदयविशिष्टांगोपांगनामकर्मोदयवशात् स्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिंगांकितशरीरो जीवः द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयसहितांगोपांगनामकर्मोदयात् निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरा द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयात् स्मश्रुकूर्चस्तनयोन्यादिलिंगाभावविशिष्टदेहं द्रव्यनपुंसकं भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण–प्रचुरवृत्त्या, देवनारकभोगभूमिषु सर्वेषु तिर्यग्मनुष्यगत्योश्च क्वचित्समाः–यादृशो द्रव्यवेदस्तादृशो भाववेदश्च। क्वचित्तिर्यग्मनुष्यगत्योर्विषमाः–विसदृशाः। द्रव्यपुरुषे भावस्त्रीनपुंसकवेदावपि, द्रव्यस्त्रिया भावनपुंसकवेदावपि, द्रव्यनपुंसके भावस्त्रीपुंवेदावपि संभवतीत्यनियमः कथितः। द्रव्यपुरुषे एव क्षपकश्रेणिमारूढे अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं वेदत्रयस्य परमागमे प्रसिद्धत्वात् ॥ २७१ ॥

स० चं०––चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनिके उदयतैं भाव जो चैतन्य उपयोग तीहिविषैं पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो है। बहुरि निर्माण नामा नामकर्मके उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नामकर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीक पर्याय तीहिविषैं पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है–पुरुषवेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्री वेदके उदयतैं पुरुषका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेदके उदयतैं पुरुष अर स्त्री दोऊनिका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माणनामकर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लीएं अंगोपांग-

नाम नामकर्मका उदयतैं मूछ डाढी लिंगादिक चिह्न संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अंतसमय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है। बहुरि निर्माण नामका उदय संयुक्त स्त्री वेदरूप आकारका विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं रोमरहित मुख स्तन योनि इत्यादि चिह्नसंयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथमसमयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है बहुरि निर्माण नामका उदयतैं संयुक्त नपुंसक वेदरूप आकारका विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामप्रकृतिके उदयतैं मूछ डाढी इत्यादि वा स्तन योनि इत्यादिक दोऊ चिह्नरहित शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है। सो प्रायेण कहिए बहुलताकरि तौ समान वेद हो है जैसा द्रव्यवेद होइ तैसा ही भाव वेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है द्रव्यवेद अन्य होइ भाव वेद अन्य होइ। तहां देव अर नारकी अर भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य इनिकैं तौ जैसा द्रव्य वेद है तैसा ही भाव वेद है। बहुरि कर्मभूमियां तिर्यंच अर मनुष्यविषैं कोई जीवनिकै तौ जैसा द्रव्य वेद हो है तैसा ही भाव वेद है बहुरि केई जीवनिकैं द्रव्यवेद अन्य हो है अर भाव वेद अन्य हो है द्रव्यतैं पुरुष है अर भावतैं पुरुषका अभिलाषरूप स्त्री वेदी है वा स्त्री अर पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है। ऐसैं ही द्रव्यतैं स्त्रीवेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है। बहुरि द्रव्यतैं नपुंसक वेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुष वेदी है वा पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है ऐसा विशेष जानना जातैं आगमविषैं नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं अर द्रव्यतैं एक पुरुष वेद ही है ऐसा कथन कर्या है॥ २७१॥

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो।
संमोहेण ण जाणदि जीवो हि गुणं व दोषं वा ॥२७२॥

वेदस्योदीरणायां परिणामस्य च भवेत्संमोहः ।
संमोहेन न जानाति जीवो हि गुणं वा दोषं वा ॥ २७२ ॥

जी॰ प्र॰——वेदस्य चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतेः अपक्वपाचनलक्षणे दीरणया स्वकाले पाकलक्षणोदयेन च परिणामस्य चित्पर्यायस्य संमोहः- रागद्वेषरूपः चित्तविक्षेपो भवति । तेन संमोहेन गुणं वा दोषं वा जीवो न जानाति । अनेन गुणदोषविवेकाभावलक्षणः वेदोदयकृत-चित्तविक्षेपप्रभवः अनर्थो दर्शितः । ततः कारणात् परमागमभावनाबलेन जीवेन यथावत्स्वरूपसंवेदनादिना आत्महितमेतद्व्रत अवश्यमनुष्ठातव्यमिति भावार्थः ॥ २७२ ॥

मं॰ प्र॰——वेदस्य--चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतेः, उदीरणया च अपक्वपाचनलक्षणया, उदयेन च स्वकालपाकलक्षणेन, परिणामस्य -चित्पर्यायस्य सम्मोहः--रागरूपः मैथुनभङ्गरूपो विक्षेपो भवेत् । तेन सम्मोहेन गुण वा दोष वा जीवो न जानाति इत्यनेन गुणदोषविवेकाभावलक्षणो वेदोदयकृतचित्त-विक्षेपप्रभवोऽनर्थो दर्शितः । ततस्तत्त्वज्ञानिना ब्रह्मचर्यं नियमेन अनुष्ठातव्यमिति तात्पर्यार्थः ॥ २७२ ॥

स॰ चं॰——मोहनीय कर्मकी नोकषायरूप वेद नामा प्रकृति ताका उदीरणा वा उदय तींहिकरि आत्माके परिणामनिकौं रागादिरूप मैथुन है लक्षण जाका ऐसा सम्मोह कहिए चित्तविषैं विक्षेप सो उपजै है। तहां विना ही काल आएं कर्मका फल निपजै सो उदीरणा कहिए । काल आएं फल निपजै सो उदय कहिए। बहुरि उस सम्मोहके उपजनेतैं जीव गुणकौं वा दोषकौं न जानै ऐसा अविवेक रूप अनर्थ वेदके उदयतैं भया सम्मोहतैं हो है तातैं ज्ञानी जीवकौं परमागम भावनाका बलकरि यथार्थ स्वरूपानुभवन आदि भावतैं ब्रह्मचर्य अंगीकार करना योग्य है ऐसा आचार्यका अभिप्राय है ॥ २७२ ॥

पुरुगुणभोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु उत्तमे य जह्मा तह्मा सो वण्णिओ पुरिसो ॥ २७३ ॥

पुरुगुणभोगे शेते करोति लोके पुरुगुणं कर्म ।
पुरूत्तमे च यस्मात् तस्मात् स वर्णितः पुरुषः ॥ २७३ ॥

जी० प्र०—यस्मात् कारणात् लोके यो जीवः पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाधिकगुणसमूहे शेते—स्वामित्वेन प्रवर्तते, पुरुभोगे नरेंद्रनागेंद्रदेवेंद्राद्यधिकभोगचये भोक्तृत्वेन प्रवर्तते, पुरुगुणं कर्म धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनरूपदिव्यानुष्ठानं शेते—करोति च। पुरूत्तमे परमेष्ठिपदे शेते—तिष्ठति पुरूत्तमः सन् तिष्ठति इत्यर्थः तस्मात् कारणात् स जीवः पुरुः इति द्रव्यभावद्वयसंपन्नः पुरुषः इत्ययं जीवो वर्णितः। धातूनामनेकार्थत्वाचकत्वसंभवेन शीङ् स्वप्ने इत्येतस्य धातोः प्रवृत्तिकरणस्थानलक्षणार्थविशेषाः आचार्येण उक्ता न विरुध्यंते। पृषोदरादित्वेन अक्षरविपर्यासश्च तालव्यस्य षत्वं पुरुष इति। षोंतकर्मणि इत्येतस्य धातोर्वा ज्ञातव्यः॥ २७३॥

मं० प्र०—यस्मात्कारणात् लोके यो जीवः पुरुगुणे—सम्यग्ज्ञानाद्यधिकगुणसमूहे शेते—स्वामित्वेन प्रवर्तते। पुरुभोगे नरेंद्रनागेंद्रदेवेंद्राद्यधिकभोगचये भोक्तृत्वेन प्रवर्तते च। पुरुगुणवत् कर्म—धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनमनुष्ठानं शेते—करोति च, पुरौ—उत्तमे परमेष्ठिपदे शेते तिष्ठति च, तस्मात्कारणात् स जीवः पुरुषः इति वर्णितः। अयं च द्रव्यभावाभ्या सपन्नः पुरुषः कथितः। धातूनामनेकार्थसंभवेन शीङ् स्वप्ने इत्यस्य धातोः प्रवृत्तिकरणस्थानलक्षणार्थविशेषा आचार्येण कथिता न विरुध्यंते, पृषोदरादित्वादक्षरविपर्यासश्च, 'षोंऽतकर्मणि' इत्यस्य धातोर्वा॥ २७३॥

स० चं०—जातैं जो जीव पुरुगुण जो उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञानादिक तीहिंविषैं शेते कहिए स्वामी होइ प्रवर्तै। बहुरि पुरुभोग जो उत्कृष्ट इंद्रादिकका भोग तीहिविषै शेते कहिए भोक्ता होय प्रवर्तै। बहुरि पुरुगुण कर्म जो धर्म अर्थ काम मोक्षरूप पुरुषार्थ तीहिनैं शेते कहिए करै। बहुरि पुरु जो उत्तम परमेष्ठीका पद तीहिविषैं शेते कहिए तिष्ठै तातैं सो द्रव्य भाव लक्षण संयुक्त द्रव्य भावतैं पुरुष कह्या है। पुरुष शब्दकी निरुक्तिकरि वर्णन कीया है धातुनिके अनेक अर्थ हैं तातैं शीङ् स्वप्ने इस धातुका स्वामी होना भोगवना करना तिष्ठना अैसैं अर्थ कहे विरोध न उपजावैं है। बहुरि इहां पृषोदर शब्दकीज्यों अक्षरविपर्यास जानने। तालवी शकारका मूर्धनी षकार करना। अथवा 'षोंऽतकर्मणि' इस धातुतैं निपज्या पुरुष शब्द जानना॥ २७३॥

छादयदि सयं दोसे णयदो छाददि परं वि दोसेण।
छादणसीला जह्मा तह्मा सा वण्णिया इत्थी॥ २७४॥

छादयति स्वकं दोषैः नयतः छादयति परमपि दोषेण।

छादनशीला यस्मात् तस्मात् सा वर्णिता स्त्री ॥ २७४ ॥

जी० प्र०—यस्मात्कारणात् स्वयमात्मानं दोषैः मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभैः छादयति संवृणोति, नयतः मृदुभाषितस्निग्धविलोकनानुकूलवर्तनादिकुशलव्यापारैः, परमपि अन्यपुरुषमपि स्ववशं कृत्वा दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकेन छादयति आवृणोति तस्मात्कारणात् छादनशीला द्रव्यभावाभ्यां सा अंगना स्त्रीति वर्णिता-परमागमे प्रतिपादिता। यद्यपि तीर्थकरजनन्यादीनां कासांचित् सम्यग्दृष्टीनां एतदुक्तदोषाभावः, तथापि तासां दुर्लभत्वेन सर्वत्र सुलभप्राचुर्यव्यवहारापेक्षया स्त्रीलक्षणं निरुक्तिपूर्वकमुक्तं। (सा स्तृणाति स्वयमन्य च दोषैरिति निरुक्तिपूर्वकमाचार्येणोक्तं) ॥ २७४ ॥

मं० प्र०—यस्मात् कारणात् य स्तृणाति स्वयं आत्मानं दोषैः--मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभादिभिः छादयति--संवृणोति, नयतः—मृदुभाषितस्निग्धविलोकनानुकूलवर्तनादिकुशलव्यापारैः परमपि--पुरुषमपि स्ववश्यं कृत्वा, दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकेन छादयति तस्मात् छादनशीला द्रव्यभावाभ्या महिला सा स्त्रीति वर्णिता—परमागमे प्रतिपादिता। यद्यपि तीर्थंकरजनन्यादीनां कासांचित्सम्यग्दृष्टीनां प्रोक्तदोषाभावस्तथापि तासां दुर्लभत्वेन सर्वत्र सुलभप्राचुर्यव्यवहारापेक्षया स्त्रीलक्षणं निरुक्तिपूर्वकमाचार्यैरुक्तं ॥ २७४ ॥

सं० च०—जातैं जो स्वयं कहिए आपकौं दोषैः कहिए मिथ्यात्व अज्ञान असंयम क्रोधादिक तिनिकरि स्तृणाति कहिए आच्छादित करै है बहुरि नाहीं केवल आपहीकौं आच्छादित करै है जातैं पर जु है पुरुषवेदी जीव, ताहि कोमल वचन कटाक्ष सहित विलोकन मानुकूल प्रवर्तन इत्यादि प्रवीणतारूप व्यापारनितैं अपने वश करि दोष जे हैं हिंसादिक पाप तिनिकरि स्तृणाति कहिए आच्छादै है ऐसा आच्छादन रूप ही है स्वभाव जाका तातैं सो द्रव्य भावकरि स्त्री ऐसा कह्या है ऐसी स्त्री शब्दकी निरुक्तिकरि वर्णन कीया। यद्यपि तीर्थंकर की माता आदि सम्यग्दृष्टिणी स्त्री निविषै दोष नाहीं तथापि वे स्त्री थोरी अर पूर्वोक्त दोषकरि संयुक्त स्त्री घनी तातैं प्रचुर व्यवहार अपेक्षा ऐसा लक्षण आचार्यनै स्त्रीका कह्या ॥ २७४ ॥

णेवित्थी णेव पुमं णउंसओ उहयलिंगविदिरित्तो।
इट्ठावग्गिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो ॥ २७५ ॥

तैं संख्यातगुणे घाटि द्रव्यपुरुष वेदी तिर्यंच हैं। बहुरि तातैं संख्यातगुणे घाटि सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। बहुरि तातैं संख्यातगुणा घाटि पीतलेश्याका धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। बहुरि तीहस्यों संख्यातगुणा घाटि पद्मलेश्याका धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। ऐसैं ए सब संख्यातगुणा घाटि कह्या ॥ २७७ ॥

इगिपुरिसे बत्तीसं देवी तज्जोगभजिददेवोघे।
सगगुणगारेण गुणे पुरुसा महिला य देवेसु ॥ २७८ ॥

एकपुरुषे द्वात्रिंशद्देव्यः तद्योगभक्तदेवौघे।
स्वकगुणकारेण गुणे पुरुषा महिलाश्च देवेषु ॥ २७८ ॥

जी॰ प्र॰—देवगतौ एकस्मिन् पुरुषे देवे तद्देव्यो द्वात्रिंशत् सर्वजघन्येन एकैकस्य पुरुषस्य द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्। यद्यपि इंद्रादीनां ततः संख्यातगुणिता देव्यः संति तथापि तेषां अल्पत्वेन प्रकीर्णकादीनां असंख्येयगुणितत्वेन बहुत्वं, इंद्रादिदेव्याधिक्यस्य विवक्षा न कृता। तदेकदेवद्वात्रिंशद्देवीनां संयोगेन त्रयस्त्रिंशता ३३ देवौघं देवसामान्यराशिं भक्त्वा तदेकभागेन एकरूपेण पुरुषगुणकारेण गुणिते यल्लब्धं तावंतो देवगतौ पुरुषा भवंति। = ॥ १ / ४ । ६५ = । १ । ३३ । द्वात्रिंशता गुणिते तु यल्लब्धं तावंत्यो देव्यो भवंति। = ॥ ३२ / ४ । ६५ = । १ । ३३ (देवदेवीभेदमकृत्वा सामान्यापेक्षया स्वकगुणकारेणेति उक्तं तेनात्र भेदो ज्ञातव्यः) ॥ २७८ ॥

मं॰ प्र॰—देवगतौ एकस्मिन् पुरुषे देवे तद्देव्यो द्वात्रिंशत् एकैकस्य देवस्य सर्वजघन्यतोऽपि द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशद्देव्यो भवंतीत्यर्थः।[1] यद्यपींद्रादीनां संख्यातगुणा देव्यः संति तथापि तेषामल्पत्वात् प्रकीर्णकादीनां असंख्येयगुणत्वेन बहुत्वमिति इंद्रादिदेव्याधिक्यस्याविवक्षा। तासां देवदेवीनां योगः त्रयस्त्रिंशन्मात्रः। ३३। तेन देवौघं देवसामान्यराशिं भक्त्वा तदेकभागे एकरूपेण पुरुषगुणकारेण गुणिते लब्धमात्रा देवेषु पुरुषा भवंति। ॥ = १ । १ / ४ । ६५ = । १ । ३३ द्वात्रिंशत्प्रमितेन

१ "देवगतौ एकपुरुषस्य देव्य सर्वजघन्येन द्वात्रिंशत् भवति" इति च पुस्तके पाठः।

नैव स्त्री नैव पुमान् नपुंसक उभयलिंगव्यतिरिक्तः ।

इष्टापाकाग्निसमानकवेदनागुरुकः कलुषचित्तः ॥ २७५ ॥

जी०प्र०——यो जीवो नैव पुमान्–पूर्वोक्तपुरुषलक्षणाभावात् पुरुषो न भवति, नैव स्त्री–उक्तस्त्रीलक्षणाभावात् स्त्री अपि न भवति ततः कारण त् उभयलिंगव्यतिरिक्तः श्मश्रुस्तनादिपुंस्त्रीद्रव्यलिंगरहितः इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकः, कलुषचित्तः सर्वदा तद्वेदनया कलंकितहृदयः स जीवो नपुंकमिति परमागमे वर्णितः कथितः, तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्र कामवेदनालक्षणो भावनपुंसकवेदोऽस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यं ॥ २७५ ॥

म० प्र०——यो जीव. नैव पुमान् उक्तपुंलक्षणाभावात्, नैव स्त्रीं उक्तस्त्रीलक्षणाभावात् ततः उभयलिंगव्यतिरिक्त'—स्मश्रुस्तनादिपुंस्त्रीद्रव्यलिंगरहितः, इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकः, कलुषचित्तः—सदा तद्वेदनया कलंकितहृदय. स जीवः नपुंसकामिति परमागमे वर्ण्यते तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षणो भावनपुसकवेदोस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यं ॥ २७५ ॥

सं० च०——जो जीव पूर्वोक्त पुरुष वा स्त्रीनिके लक्षणके अभावतैं पुरुष नाहीं वा स्त्री नाहीं तातैं दोऊही वेदनिके डाढी मूंछ वा स्तन योनि इत्यादि चिह्न तिनिकरि रहित है बहुरि इष्टका पाक जो ईंट पचावनेका पंजावा ताकी अग्नि समान तीव्र काम पीडा करि गरवा भऱ्या है। बहुरि स्त्री वा पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाकरि मैला है चित्त जाका ऐसा जीव नपुंमक आगम विषैं कह्या है यहु नपुंसक शब्दकी निरुक्तिकरि वर्णन कीया। स्त्री पुरुषका अभिलाषरूप तीव्र कामवेदना लक्षण धरैं भावनपुंसक है ऐसा तात्पर्य जानना ॥ २७५ ॥

तिणकारिसिट्ठपागग्गिसरिसपरिणामवेयणुम्मुक्का ।

अवगयवेदा जीवा सगसंभवणंतवरसोक्खा ॥ २७६ ॥

तृणकारीषेष्टपाकाग्निसदृशपरिणामवेदनोन्मुक्ताः ।

स्त्रीगुणकारेण गुणिते ......प्रमाणा देवेषु महिला देव्यो भवंति = ७ । ३२ ‌ देवदेवीभेदमकृत्वा सामान्यापेक्षया स्वकगुणकारेणेति सूत्रकारेणोक्तं तदेव
४ । ६५ = ७ । ३३
मया भेदेनोक्तं ॥ २७८ ॥

स० चं०—देवगतिविषैं एक पुरुषके बत्तीस देवांगना होंइ। कोई ही देवकैं बत्तीससौं घाटि देवांगना नाहीं अर इंद्रादिकनिके देवांगना तिनतैं संख्यातगुणी बहुत हैं तथापि जिनके बहुत देवांगना हैं असे देव तौ थोरे हैं अर बत्तीस देवांगना जिनके हैं असैं प्रकीर्णकादिक देव घने तिनतैं असंख्यात गुणे हैं। तातैं एक एक देवकैं बत्तीस बत्तीस देवांगनाकी विवक्षाकरि अधिककी न करि कही। सो बत्तीस देवांगना अर एक देव मिलाएं तैंतीस भए सो पूर्वै जो देवनिका परिमाण कह्या था ताकौं तेतीसका भाग दीएं जो एक भागका परिमाण आवै ताकौं एक करि गुणें तितना ही रह्या सो इतने तौ देवगतिविषैं पुरुष जानने अर याकौं बत्तीस गुणां कीएं जो परिमाण होइ तितनी देवांगना जाननी। भावार्थ—देवराशिका तेतीस भागमें एकभाग प्रमाण देव है बत्तीस भाग प्रमाण देवांगना हैं॥ २७८ ॥

देवेहिं सादिरेया पुरिसा देवीहिं साहिया इत्थी ।
तेहिं विहीण सवेदो रासी संढाण परिमाणं ॥ २७९ ॥

देवैः सातिरेकाः पुरुषाः देवीभिः साधिकाः स्त्रियः ।
तैर्विहीनः सवेदो राशिः षंढानां परिमाणं ॥ २७९ ॥

जी० प्र०—तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिभ्यां अधिको देवपुरुषराशिः स सामान्यपुरुषराशिर्भवति = ७ । १ । मनुष्यतिर्यक्-
४ । ६५ = ७ । ३३ ।

स्त्रीराशिभ्यामधिको देवीराशिः स सामान्यस्त्रीराशिर्भवति = ७ । ३२ / ४ । ६५ = ७ । ३३ । एतत्पुरुषस्त्रीराशिद्वयविहीनसवेदराशिनपुंसकवेदराशिर्भवति १३ ≡ सवेदराशिस्तु अवेदानिवृत्तिकरणाद्ययोगकेवल्यंतानां संख्यया हीनसंसारराशिः १३–॥ २७०. ॥

मं० प्र०—देवेभ्यः पुरुषदेवराशेः सातिरेकाः—तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिना साधिकाः सामान्यतः पुरुषाः पुंवेदिप्रमाण भवति = ७ । १ / ४ । ६५=७ । ३३ देवीभ्यः प्रागानीतदेवीराशेः सातिरेकाः—तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिना साधिकाः सामान्यतः स्त्रियः स्त्रीवेदिप्रमाण भवंतीत्यर्थः = ७ । ३२ / ४ । ६५=७ । ३३ ताभ्यां—सामान्यपुंवेदिस्त्रीवेदिराशिभ्यां विहीनः सवेदराशिः षढानां—नपुंसकवेदिनां परिमाणं भवति । १३ ≡ । अपगतवेदानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायसयोगायोगकेवलिसंख्यारहितः ससारिजीवराशिः ।१३ –। सवेदराशिरित्यर्थः ॥ २७९ ॥

स० चं०—पुरुषवेदी देवनिका जो परिमाण कह्या तींहिविषैं पुरुषवेदी तिर्यंच मनुष्यनिका परिमाण मिलाएं सर्व पुरुषवेदी जीवनिका परिमाण हो है। बहुरि देवांगनाका जो परिमाण कह्या तींहिंविषैं तिर्यंचणी वा मनुष्यणीका परिमाण मिलाएं सर्वस्त्रीवेदी जीवनिका परिमाण हो है। बहुरि नवमा गुणस्थानका वेदरहित भागतैं लगाइ अयोगकेवली पर्यंत जीवनिका संख्यारहित सर्वसंसारी जीवनिका परिमाणमें पुरुषवेदी अर स्त्रीवेदी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष प्रमाण रहै तितने नपुंसकवेदी जीव जानने ॥ २७९ ॥

गब्भणपुइत्थिसण्णी सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा।
कुरुजा असण्णिगब्भजणपुइत्थीवाणजोइसिया ॥ २८० ॥

थोवा तिसु संखगुणा तत्तो आवलिअसंखभागगुणा ।
पल्लासंखेज्जगुणा तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥ २८१ ॥

गर्भनपुंस्त्रीसंज्ञिनः सम्मूर्छनसंज्ञिपूर्णका इतरे ।
कुरुजा असंज्ञिगर्भजनपुंस्त्रीवानज्योतिष्काः ॥ २८० ॥
स्तोकाः त्रिषु संख्यगुणाः तत आवल्यसंख्यभागगुणाः ।
पल्यासंख्येयगुणाः ततः सर्वत्र संख्यगुणाः ॥ २८१ ॥

जी० प्र०–संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, सम्मूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः, संमूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियापर्याप्ताः, अस्मिन् स्थानद्वये नपुंसकवेदिन एव कुरुजा भोगभूमिजाः ते च गर्भजसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः स्त्रीपुंवेदिन एव असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः व्यंतरदेवाः ज्योतिष्काश्च इत्येे द्वादश जीवराशयः उक्तक्रमेण उपर्युपरि रचयितव्याः। तत्र सर्वाधस्तनराशिः सर्वतः स्तोकः अष्टवारसंख्यातरूपैः आवल्यसंख्येयभागेन पल्यासंख्येयभागेन पणट्ठिगुणितप्रतरांगुलैश्च जगत्प्रतरे भक्ते यल्लब्धं तत्प्रमाणं भवति। =४ । ६५ = १११११ प ८ १११ (a a) । ततः उपरि त्रिषु स्थानेषु द्वितीय– =४ । ६५ = १११११ प ८ ११ (a a)

तृतीय— =४ । ६५ = १ १ १ १ १ प ८ १ (a a) चतुर्थ— =४ । ६५ १ १ १ १ १ प ८ (a a) राशयः संख्यातगुणितक्रमा भवंति । तत उपरि

स्थितः पंचमराशिः आवल्यसंख्येयभागगुणितः =४ । ६५ = १ १ १ १ १ प (a) अत उपरि स्थितः षष्ठराशिः पल्यासंख्येयभागगुणितः—

४ । ६५ = ७ ७ ७ ७ ७ अतः उपरि स्थानेषु सर्वेषु सप्तम—४ । ६५ = ७ ७ ७ ७ अष्टम ४ । ६५ = ७ ७ ७ नवम ४।६५ = ७ ७
दशम ४ । ६५ = ७ एकादश ४ । ६५ = राशयः पंचापि संख्यातगुणितक्रमा भवंति ॥ २८०–२८१ ॥

इति श्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनाम पंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु वेदमार्गणाप्ररूपणो नाम दशमोऽधिकारः॥ १०॥

मं० प्र०—संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, संमूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः, संमूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियापर्याप्ताः, अस्मिन् स्थ नद्वये नपुंसकवेदिन एव, कुरुजा भोगभूमिजाः ते च गर्भजसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः स्त्रीपुंसवेदिन एव, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिन, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, वानाः व्यंतरदेवाः, ज्योतिषिका इत्येते एकादशजीवराशयः उत्क्रमेण उपर्युपरि रचयितव्याः ॥ २८० ॥

मं० प्र०—तेषु सर्वाधस्तनप्रथमराशिः सर्वतः स्तोकः अष्टवारसंख्यातरूपैः आवल्यसंख्येयभागेन पल्यासंख्येयभागेन पणट्ठिना प्रतरांगुलेन च जगत्प्रतरे भक्ते सति यल्लब्धं तत्प्रमाणो भवति । तत उपरि त्रिषु स्थानेषु द्वितीयतृतीयचतुर्थराशयः संख्येयगुणाः। तत उपरिस्थित पंचमराशिः आवल्यसंख्येयभागगुणः। तत उपरिस्थितः षष्ठराशिः पल्यासंख्येयभागगुणः । तत उपरिस्थानेषु सर्वेषु सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशराशयः पंचापि संख्येयगुणाः ॥ २८१ ॥

इति श्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धान्तचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपञ्चसंग्रहवृत्तौ वेदमार्गणाप्ररूपणनामा दशमोऽधिकारः ॥ १० ॥

स० चं०—सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी १ बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुषवेदी २ बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज स्त्रीवेदी ३ बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी ४ बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेंद्री अपर्याप्त नपुंसकवेदी ५ बहुरि भोगभूमियां गर्भज सैनी पंचेंद्री पर्याप्त पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी ६ बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी ७ बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुषवेदी ८ बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज स्त्रीवेदी ९ बहुरि व्यंतरदेव १० अर ज्योतिषदेव ११ ए ग्यारा जीवराशि अनुक्रमतें ऊपरि ऊपरि लिखनी ॥ २८० ॥

सो खेतविषैं बोया हूवा बीज जैसैं बहुत फलकौं प्राप्त होइ वा बहुत सींव पर्यंत होइ तैसैं हलादिकतैं धरतीका फाडना इत्यादिक कृषिकर्मकों करै हैं तैसैं संसारी जीवका किंकर क्रोधादि कषाय नामा पालती सो प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग रूप कर्मका बंध सोही भया खेत तींहिं विषै मिथ्यात्वादिक परिणाम रूप बीज जैसैं कालादिककी सामग्री पाइ अनेक प्रकार सुख दुःख रूप बहुत फलकौं प्राप्त होइ वा अनंत समय पर्यंत फलकौं प्राप्त होइ तैसैं कार्यकौ करैं तातैं इन क्रोधादिकनिका कषाय ऐसा नाम कह्या 'कृषि विलेखने' इस धातुका अर्थकरि कषाय शब्दका निरुक्तिपूर्वक निरूपण आचार्यकरि कीया है ॥ २८२ ॥

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खादचरणपरिणामे ।
घादंति वा कषाया चउसोलअसंखलोगमिदा ॥ २८३ ॥

सम्यक्त्वदेशसकलचरित्रयथाख्यातचरणपारिणामान् ।
घातयंति वा कषायाः चतुःषोडशासंख्यलोकमिताः ॥ २८३ ॥

जी० प्र०---वा अथवा सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं-अणुव्रतं, सकलचारित्रं-महाव्रतं, यथाख्यातचरणं-यथाख्यातचारित्रं एवंविधान् आत्मविशुद्धिपरिणामान् कषंति हिंसंति घ्नंतीति कषाया इति निर्वचनीयं । तद्यथा-अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभकषाया आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषंति अनंतसंसारकारणत्वात्, अनंतं-मिथ्यात्वं, अनंतभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नंति संघटयंतीत्यनंतानुबंधिन इति निरुक्तिसामर्थ्यात् । अप्रत्याख्यानावरणाः अणुव्रतपरिणामं कषंति । अप्रत्याख्यानं ईषत् प्रत्याख्यानं अणुव्रतं आवृण्वंति घ्नंतीति निरुक्तिसिद्धत्वात् । प्रत्याख्यानावरणाः सकलचारित्रं महाव्रतपरिणामं कषंति प्रत्याख्यानं-सकलसंयमं आवृण्वंति घ्नंतीति निरुक्तिसिद्धत्वात् । संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कषंति, सं समीचीनं, विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहंति इति संज्वलनाः इति निरुक्तिबलेन तदुदये सत्यपि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः । एवंविधः कषायः सामान्येन एकः, विशेषविवक्षायां तु अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदाच्चत्वारः । पुनस्ते चत्वारोऽपि प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति षोडश १६ । तद्यथा—अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः संज्वलनक्रोधमानमायालोभाः इति पुनः सर्वेपि उदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यातलोकप्रमिता भवंति । कुतः ? तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानां असंख्यातलोकमात्रत्वात् ≡ ३ ॥ २८३ ॥

स० चं०—पूर्वै जो ग्यारा राशि कहे तिनिविषै नीचला राशि सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी सो सर्वतैं स्तोक है। आठवार संख्यात अर आवलीका असंख्यातवां भाग अर पल्यका असंख्यातवां भाग अर पैंसठि हजार पांचसै छत्तीस प्रतरांगुल इनिका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितने जानने। बहुरि याकै ऊपरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुष वेदीस्यों लगाइ तीन राशि अनुक्रमतैं संख्यातगुणा जानना। बहुरि चौथी राशितैं पंचम राशि संमूर्छन सैनी पंचेंद्री अपर्याप्त नपुंसकवेदी आवलीका असंख्यातवां भागगुणा जानना। बहुरि इस पंचम राशितैं षष्ठराशि पल्यका असंख्यातवां भागगुणा जानना। बहुरि यातैं असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदीस्यों लगाइ ज्योतिषी पर्यंत सप्तम अष्टम नवम दशम एकादशम राशि अनुक्रमतैं संख्यातगुणा जानना। ऐसैं वेदमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कही ॥ २८१ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाकेविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीसप्ररूपणा तिनिविषैं वेदमार्गणा प्ररूपणा नामा दशमां अधिकार समाप्त भया ॥ १० ॥

मं.प्र.-वा--अथवा, सम्यक्त्वं-तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं--अणुव्रतं, सकलचारित्रं-महाव्रतं, यथाख्यातचरणं यथाख्यातचारित्रं, एवं रूपान् आत्मनो विशुद्धपरिणामान्, कषंति हिंसति घ्नंतीति कषाया इति निरुच्यंते। तद्यथा- अनंतानुबंधिनः क्रोधमानमायालोभाः कषाया आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषंति। अनंतसंसारकारणत्वादनंतं मिथ्यात्वं अनंतभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नाति संघटयंति इत्यनंतानुबंधिनः इति निरुक्तिसामर्थ्यात्। अप्रत्याख्यानावरणास्ते अणुव्रतपरिणामं कषंति, अप्रत्याख्यानं ईषत्प्रत्याख्यानमणुव्रतमावृण्वंति घ्नंतीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। प्रत्याख्यानावरणास्ते सकलचारित्रं-महाव्रतपरिणामं कषंति, प्रत्याख्यानं सकलसंयममावृण्वंति घ्नंतीति प्रत्याख्यानावरणाः इति निरुक्तिवशात्। संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कषंति, सं--समीचीन, विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहति इति संज्वलनाः इति निरुक्तिबलाच्चदुदयेऽपि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः, एवंविधः कषायः सामान्यादेकः, विशेषविवक्षायां चत्वारः- अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदात्, पुनस्ते षोडश भवंति एतेषां चतुर्णां प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभभेदात्। तद्यथा-अनंतानुबंधिनः क्रोधमानमायालोभाः, अप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः, प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः, संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः। इति पुनस्ते सर्वेप्युदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यातलोकप्रमिता भवंति। तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानामसंख्यातलोकमात्रत्वात् ॥ २८३ ॥

स० चं०—अथवा 'कषंतीति कषायाः' जे हनैं घात करैं तिनिकौं कषाय कहिए। सो ए क्रोधादिक हैं ते सम्यक्त्व वा देश चारित्र वा सकल चारित्र वा यथाख्यात चारित्र रूप आत्माके विशुद्ध परिणामनिकौं घातैं हैं तातैं इनिका कषाय ऐसा नाम है। यहु कषाय शब्दका दूसरा अर्थ अपेक्षा लक्षण कह्या तहां अनंतानुबंधी क्रोधादिक हैं ते तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्वकौं घातैं हैं जातैं अनंत कहिए अनंत संसारका कारण मिथ्यात्व वा अनंत संसार अवस्थारूप काल ताहि अनुबंध्नंति कहिए संबंधरूप करैं तिनिकौं अनंतानुबंधी कहिए। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक कहे ते अणुव्रतरूप देश चारित्रकौं घातैं हैं जातैं अप्रत्याख्यान कहिए ईषत् प्रत्याख्यान किंचित् त्यागरूप अणुव्रत ताकौं आवृण्वंति कहिए आवरैं नष्ट करैं ताकौं अप्रत्याख्यानावरण कहिए। बहुरि प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक हैं ते महाव्रतरूप सकल चारित्रकौं घातैं हैं जातैं प्रत्याख्यान कहिए सकल त्यागरूप महाव्रत ताकौं आवृण्वंति कहिए आवरै नष्ट करै ताकौं प्रत्याख्यानावरण कहिए। बहुरि संज्वलन क्रोधादिक हैं ते सकल कषायका अभावरूप यथाख्यात चारित्रकौं घातैं हैं जातैं 'सं' कहिए समीचीन निर्मल यथाख्यात चारित्र ताकौं 'ज्वलंति' कहिए दहन करैं

तिनकौं संज्वलन कहिए इस निरुक्तितैं संज्वलनका उदय होते संतैभी सामायिकादि अन्य चारित्र होनेका अविरोध सिद्ध हो है। ऐसा यह कषाय सामान्यपनैं एक प्रकार है विशेषपनैं अनंतानुबंधी १ अप्रत्याख्याना-वरण २ प्रत्याख्यानावरण ३ संज्वलन ४ भेदतैं च्यारि प्रकार है बहुरि इनके एक एकके क्रोध मान माया लोभ करि च्यारि च्यारि भेद कीजिए तब सोलह प्रकार हो हैं। अनंतानुबंधी क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। अप्रत्या-ख्यानावरण क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। प्रत्याख्यानावरण क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। सं-ज्वलन क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। ऐसैं सोलह भेद भए। बहुरि उदय स्थानकोंके विशेषकी अ-पेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण है जातैं कषायनिका कारणभूत जो चारित्रमोह ताकी प्रकृतिके भेद असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २८३ ॥

सिलपुढविभेदधूलीजलराइसमाणओ हवे कोहो।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥ २८४ ॥

शिलापृथ्वीभेदधूलिजलराशिसमानको भवेत् क्रोधः।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥ २८४ ॥

जी० प्र —शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलीरेखाजलरेखासमानः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः भवेत् स नारकतिर्यग्नरा-मरगतिषु क्रमशः यथाक्रमं उत्पादयति जीवं। तद्यथा—शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः जीवं नरकगतावुत्पादयति। पृथ्वीभेदस-मानानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधः तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति। धूलीरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधः जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति। जलरे-खासमानजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधः जीवं देवगतावुत्पादयति। तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्या-दिप्रकृतीर्बध्नातीत्यर्थः। अत्र राजिशब्दो रेखार्थवाची न तु पंक्तिवाची। यथा शिलादिभेदानां चिरतरचिरशीघ्रशीघ्रतरकालैर्विना अनुसंधानं न घ-टते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तक्रोधपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना क्षमालक्षणसंधानार्हो न स्यात् इत्युपमानोपमेययोः साहश्यं संभवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८४ ॥

मं० प्र०——शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलीरेखाजलरेखासमानः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टः क्रोधकषायो भवेत् स नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्रमशः यथाक्रमं जीवस्योत्पादको भवति । तद्यथा–शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधः-कोपः जीवं नारकगतौ व्युत्पादयति । पृथ्वीभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधस्तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तिविशिष्टः क्रोधः मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति, जलरेखासमानजघन्यशक्तिविशिष्टः क्रोधः देवगतौ जीवमुत्पादयति । अत्र राजिशब्दो रेखावाची न तु पंक्तिवाची । तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिप्रकृतीर्बध्नाति इत्यर्थः । यथा शिलादिभेदाना चिरतरचिरशीघ्रशीघ्रतरकालैर्विना संधानं न घटते तथा उत्कृष्टादिशक्तियुक्तक्रोधपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना क्षमालक्षणसंधानार्हो न भवतीत्युपमानोपमेययोः सादृश्यं संभवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८४ ॥

स०चं०--शिलाभेद १ पृथ्वीभेद २ धूलिरेखा ३ जलरेखा ४ समान क्रोध कषाय सो अनुक्रमतैं नारक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं जीवकौं उपजावन हारा है। सोई कहिए हैं-जैसैं शिला जो पाषाणका भेद खंड होना सो बहुत घने काल गए बिना मिलै नाहीं तैसैं बहुत घने काल गए बिना क्षमारूप मिलनकौं न प्राप्त होइ ऐसा जो उत्कृष्ट शक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं नरकगति विषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं पृथ्वीका भेद खंड होना सो घने काल गएं बिना मिलै नाहीं तैसैं घने काल गए बिना जो क्षमारूप मिलनेकौं न प्राप्त होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं तिर्यंचगतिविषैं उपजावै है । बहुरि जैसैं धूलिविषैं करी लीक सो थोरा काल गएं बिना मिलै नाहीं तैसैं थोरा काल गएं बिना जो क्षमारूप मिलनकौं प्राप्त न होइ ऐसा अजघन्य शक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं जलविषैं करीहुई लीक बहुत थोरा काल गएं विना मिलै नाहीं तैसैं बहुत थोरा काल गएं विना जो क्षमारूप मिलनको प्राप्त न होइ ऐसा जो जघन्यशक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं देवगतिविषैं उपजावै है। तिस तिस उत्कृष्टादि शक्तियुक्त क्रोधरूप परिणम्या जीव सो तिस तिस नरक आदि गतिविषैं उपजनेकौं कारण आयुगति आनुपूर्वी आदि प्रकृतिनिकौं बांधै है ऐसा अर्थ जानना। इहां राजि शब्द रेखावाचक जानना, पंक्तिवाचक न जानना। बहुरि इहां शिलाभेद आदि उपमान अर उत्कृष्टशक्तियुक्त आदि क्रोधादिक उपमेय ताका समानपना अतिघना कालादि गएं विना मिलना न होनेकी अपेक्षा जानना ॥२८४॥

सेलट्ठिकट्ठवेत्ते णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥ २८५ ॥

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजभेदेनानुहरन् मानः ।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥ २८५ ॥

जी० प्र०—शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदैरनुहरन् उपमीयमानो मानकषायः क्रमशः—क्रमेण नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा—शिलास्तंभसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायः जीवं नारकगतावुत्पादयति । अस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायः जीवं तिर्यग्गतावुत्पादयति । काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तमानकषायः मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति । वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमानकषायः जीवं देवगतावुत्पादयति । यथा हि चिरतरादिकालैर्विना शैलास्थिकाष्ठवेत्राः नामयितुं न शक्यंते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तमानपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मानं परिहृत्य विनयरूपनमनं कर्तुं न शक्नोतीति सादृश्यसंभवोऽत्र ज्ञातव्यः । तत्तच्छक्तियुक्तमानकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतुतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्म बध्नातीति तात्पर्यं ॥ २८५ ॥

मं० प्र०—शैलास्थिकाष्ठवेत्रान्निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदेन अनुहरन्नुपमीयमानो मानः—अभिमानः कषायः क्रमशः नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवस्योत्पादको भवेत् । तथाहि शैलसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तो मानो नरकगतौ जीवमुत्पादयति । अस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तो मानस्तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तो मानो मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति । वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तो मानो देवगतौ जीवमुत्पादयति । यथा चिरतरादिकालैर्विना शैलास्थिकाष्ठवेत्रा नामयितुं न शक्यंते तथा उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमानपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मानमपाकृत्य विनयरूपनाम प्रापयितुं न शक्यते इति सादृश्यसंभवः । तत्तच्छक्तियुक्तमानपरिणतो जीवस्तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतुतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्मबंधको भवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८५ ॥

स० चं०—शैल १ अस्थि २ काष्ठ ३ वेत ४ समान जो अपने भेदनिकरि उपमीयमान च्यारि प्रकार मान कषाय सो क्रमतैं नारक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं जीवकौं उपजावै है । सो कहिए है—जैसें शैल जो पाषाण सो बहुत घने काल विना नमावने योग्य न होइ तैसें बहुत घनेकाल विना जो विनयरूप नमनकौं प्राप्त न होइ ऐसा जो उत्कृष्टशक्तिलीएं मान सो जीवनिकौं नरक गतिविषैं उपजावै है । बहुरि जैसें अस्थि जो हाड सो घने काल

विना नमावने योग्य न होइ तैसें घने काल विना जो विनयरूप नमनकौं प्राप्त न होइ ऐसा जो अनुत्कृष्टशक्ति
लीएं मान सो जीवकौं तिर्यंच गतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसें काठ थोरा कालविषैं नमावने योग्य न होइ तैसें
थोरा काल विना जो विनयरूप नमनकों प्राप्त न होइ ऐसा जो अजघन्यशक्ति लीएं मान सो जीवकौं मनुष्यग-
तिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसें वैंतकी लकडी बहुत थोरे काल विना नमावने योग्य न होइ तैसें बहुत थोरा
काल विना जो विनयरूप नमनका प्राप्त न होइ ऐसा जो जघन्यशक्ति लीएं मान सो जीवकौं देवगतिविषैं उप-
जावै है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार प्रकृतिबंध होना वा उपमा उपमेयका समानपना जानना ॥ २८५ ॥

वेणूवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे।
सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जियं॥२८६॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगेण गोमूत्रेण च क्षुरप्रेण।
सदृशी माया नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्षिपति जीवं ॥ २८६ ॥

जी० प्र०—वेणूपमूलोरभ्रकशृंगगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्ता माया—वंचना यथाक्रमं नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवं निक्षिपति। तद्यथा—वेणूमूलं वेणुमूलग्रंथिः तेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं नरकगतौ निक्षिपति। उरभ्रकः—मेषः, तच्छृंगसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं तिर्यग्गतौ निक्षिपति। गोमूत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं मनुष्यगतौ निक्षिपति। यथा वेणूमूलादयः चिरतरादिकालं विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुत्वं न प्राप्नुवंति तथा जीवोऽपि उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतः तथाविधकालं विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुपरिणामो न स्यात् इति सादृश्यं युक्तं। "तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतजीवः तत्तद्गतिक्षेपकारणं तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिकर्म बध्नाति।" इति तात्पर्यार्थः ॥ २८६ ॥

मं० प्र०—वेणूपमूलोरभ्रकशृंगगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्ता माया-वंचना, यथाक्रमं नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवं क्षिपति। तद्यथा-वेणूपमूलं वेणुमूलग्रंथिः, तेन सदृशोत्कृष्टशक्तियुक्ता माया नारकगतौ जीवं क्षिपति पातयति। उरभ्रकः—मेषः तच्छृंगसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्ता माया तिर्यग्गतौ जीवं क्षिपति। गोमूत्रसदृशाऽजघन्यशक्तियुक्ता माया मनुष्यगतौ जीवं क्षिपति। क्षुरप्रसमानजघन्यशक्तियुक्ता माया देवगतौ जीवं क्षिपति। यथा वेणूपमूला-

दयश्चिरतरादिकालैर्विना स्वस्वबक्रतां त्यक्त्वा ऋजुत्वं न गच्छंति तथा उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायापरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मायां त्यक्त्वा ऋजुपरिणामो न भवति इति सादृश्यं युक्तं । तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायापरिणतो जीवः तत्तद्गतिक्षेपकारणात्तत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्मबंधको भवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८६ ॥

स० चं०—वेणूपमूल १ उरभ्रकशृंग २ गोमूत्र ३ क्षुर समान माया ठिगनेरूप परिणति सो क्रमतैं नारक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं जीवकौं उपजावै है। सोई कहिए हैं-जैसैं वेणूपमूल जो वांसकी लकडीकी जड सो बहुत घने काल विना सरल न होइ तैसैं बहुत घने काल विना जो सरल न होइ ऐसा जो उत्कृष्ट शक्तिकौं लीएं माया सो जीवकौं नरकगतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं उरभ्रकशृंग जो मींढेका सींग सो घने काल विना सरल न होइ तैसैं घने काल विना जो सरल न होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं माया सो जीवकौं तिर्यंच गतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं गोमूत्र जो गायमूत्रकी धारा सो थोरा कालविना सरल न होइ तैसैं थोरा कालविना सरल न होइ ऐसा अजघन्य शक्तिलीएं माया सो जीवकौं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं खुर जो पृथ्वी ऊपरि वृषभादिकका खोज सो बहुत थोरा कालविना सरल न होइ तैसैं बहुत थोरा काल विना जो सरल न होइ ऐसी जो जघन्यशक्ति लीएं माया सो जीवकौं देवगतिविषैं उपजावै है। इहां भी पूर्वोक्तप्रकार प्रकृतिबंध होना वा उपमा उपमेयका समानपना जानना ॥ २८६ ॥

किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दराएण सरिसओ लोहो ।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवेसुप्पायओ कमसो ॥ २८७ ॥

क्रिमिरागचक्रतनुमलहरिद्रारागेण सदृशो लोभः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवेषु उत्पादकः क्रमशः ॥ २८७ ॥

जी० प्र०—क्रिमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागवंधसमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तो लोभकषायो विषयामिलापरूपः क्रमशो—यथासंख्यं नार-

कतिर्यग्मानुषदेवगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा–क्रिमिरागेण कंबलादिरंजनेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं नारकगतौ उत्पादयति । चक्रमलः–रथांगमलं, तेन समानानुत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं तिर्यग्गतौ उत्पादयति । तनुमलः शरीरमलः बहिर्गतः जल्लमल्लं, तद्बंधसदृशाजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति । हरिद्रारागः, अंगवस्त्रादिरंजनद्रव्यरागः–तद्बंधसदृशजघन्यशक्तियुक्तलोभकषाय. जीवं देवगतावुत्पादयति । क्रिमिरागादिसदृशतच्चदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणामेन परिणतो जीवः तन्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादि कर्म बध्नातीति भावार्थः ॥ २८७ ॥

मं० प्र०— क्रिमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागबंधनमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तो लोभः- विषयाभिलाषरूपः, क्रमशः–यथासंख्यं नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिषु जीवस्योत्पादको भवति। तद्यथा क्रिमिरागेण –कंबलादिरंजनेन सदृशोत्कृष्टशक्तियुक्तो लोभो नारकगतौ जीवमुत्पादयति । चक्रस्य–रथांगस्य मल –अक्षम्रक्षणस्नेह', तत्सदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्तो लोभास्तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । तनोः–शरीरस्य, मलं –बहिर्गतं जल्लमलं, तद्बंधसदृशाजघन्यशक्तियुक्तो लोभो मानुषगतौ जीवमुत्पादयति । हरिद्रारागः--अंगवस्त्रादिरंजनद्रव्यरागस्तद्बंधसदृशजघन्यशक्तियुक्तो लोभो देवगतौ जीवमुत्पादयति । क्रिमिरागादिसदृशतत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणतो जीवस्तत्तन्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतदायुर्गत्यानुपूर्व्यानामादिकर्मबंधको भवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८७ ॥

स० चं०----क्रिमिराग १ चक्रमल २ तनुमल ३ हरिद्राराग ४ समान जो लोभ विषयाभिलाषरूप परिणाम सो क्रमतैं नरक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषै उपजावै है । सोई कहिए है--जैसैं क्रिमिराग कहिए किरमिची रंग सो बहुत घनेकाल गये विना नष्ट न होइ तैसैं जो बहुत घने काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो उत्कृष्ट शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं नरकगतिविषै उपजावै है । बहुरि जैसैं चक्रमल जो पहेका मैल सो घने कालविना नष्ट न होइ तैसैं घने काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं तिर्यंच गतिविषै उपजावै है । बहुरि जैसैं तनुमल जो शरीरका मैल सो थोरा कालविना नष्ट न होइ तैसैं थोरा काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो अजघन्य शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं मनुष्यगतिविषै उपजावै है बहुरि जैसैं हरिद्राराग कहिए हलदका रंग सो बहुत थोरा काल विना नष्ट न होइ तैसैं बहुत थोरे काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो जघन्य शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं देवगतिविषै उपजावै है । ऐसैं जिन जिन कषायनितैं जो जो गतिका उपजना कह्या तिन तिन कषायनितैं तिस ही तिस गति संबंधी आयु वा आनुपूर्वी इत्यादिकका बंध जानना ॥ २८७ ॥

णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्हि ।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥२८८॥

नारकतिर्यग्नरसुरगतिपूत्पन्नप्रथमकाले ।
क्रोधो माया मानः लोभोदयः अनियमो वापि ॥ २८८ ॥

जी० प्र०—नारकतिर्यग्नरसुरगत्युत्पन्नजीवस्य तत्प्रथमकाले-प्रथमसमये यथासंख्यं क्रोधमायामानलोभकषायाणामुदयः स्यादिति नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धांतव्याख्यातुर्यतिवृषभाचार्यस्य अभिप्रायमाश्रित्योक्तं । वा-अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धांतकर्तुः भूतबल्याचार्यस्य अभिप्रायेणाऽनियमो ज्ञातव्यः । प्रागुक्तनियमं विना यथासंभवं कषायोदयोऽस्तीत्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः , ततः कारणादुभयसंप्रदायोऽपि अस्माकं संशयाधिरूढ एवास्ति एकतरावधारणे शक्तिरहितत्वात् अस्ति न् भरतक्षेत्रे केवलिद्वयाभावात् । आरातीयाचार्याणां सिद्धांतद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावात् । यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धांतद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति तत्प्रेक्षावान् कः श्रद्धीते ॥ २८८ ॥

मं० प्र० -- नारकतिर्यग्नरसुरगतिपूत्पन्नस्य जीवस्य तद्भवप्रथमसमये यथासंख्यं क्रो मानमायालोभानां कषायाणामुदयो भवति । इदं नियमवचनं कषायप्राभृतस्य द्वितीयसिद्धांतस्य व्याख्यातणां यतिवृषभाचार्याणामाभिप्रायमाश्रित्योक्तं । वा-अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतस्य प्रथमसिद्धातस्य कर्तृणा भूतबल्याचार्याणामभिप्रायेण अनियमः--प्रागुक्तनियम विना यथासंभवं कषायोदयो भवतीत्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः । तेनोभयसंप्रदायोऽप्यस्माकं सशयाधिरूढो नैकतरावधारणे शक्तिरस्ति । अस्मिन् भरते तीर्थकरश्रुतकेवल्यभावात् । आरातीयाचार्याणां सिद्धांतद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावाच्च । यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धांतद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति कः प्रेक्षावान् श्रद्दधीत ॥ २८८ ॥

स० चं०---नरक तिर्यंच मनुष्य देवविषैं उत्पन्न भया जीवकैं पहिला समयविषैं क्रमतैं क्रोध मान माया लोभका उदय हो है। नारकी उपजै तहां उपजते ही पहले समय क्रोध कषायका उदय होइ । ऐसैं तिर्यंचकैं मायाका, मनुष्यकैं मानका, देवकैं लोभका उदय जानना । सो ऐसा नियम कषायप्राभृत दूसरा सिद्धांतका कर्ता यतिवृषभ नामा आचार्य ताके अभिप्रायकरि जानना । बहुरि महाकर्म प्रकृति प्राभृत प्रथमसिद्धांतका कर्ता

भूतवलि नामा आचार्य ताके अभिप्रायकरि पूर्वोक्त नियम नाही। जिस तिस कोई एक कषायका उदय हो है। ऐसें दोऊ आचार्यनिका अभिप्रायविषैं हमारैं संदेह है सो इस भरतक्षेत्रविषैं केवली श्रुतकेवली नाही वा समीपवर्ती आचार्यनिकैं उन आचार्यनितैं अधिक ज्ञान नाहीं तातैं जो विदेहविषैं गये तीर्थंकरादिकके निकटि शास्त्रार्थविषैं संशय विपर्यय अनध्यवसायका दूर होनेकरि निर्णय होइ तब एक अर्थका निश्चय होइ तातैं हमोने दोऊ कथन कीए हैं ॥ २८८ ॥

अप्परोभयबाधणबंधासंजमणिमित्तकोहादी।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥२८९॥

आत्मपरोभयबाधनबंधासंयमनिमित्तक्रोधादयः।
येषां न संति कषाया अमला अकषायिणो जीवाः ॥ २८९ ॥

जी० प्र०—स्वस्मिन् परस्मिन् उभयस्मिन् इति स्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं बंधनबाधनासंयमानां त्रयाणामपि निमित्तभूताः क्रोधादयः कषायाः, पुंवेदादयो नोकषायाश्च येषां जीवाना न संति ते अकषायाः, अमलाः द्रव्यभावनोकर्ममलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः संतीति ज्ञातव्यं। यद्यपि उपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽपि अकषाया अमलाश्च यथासंभवं द्रव्यभावमलरहिताः संति तथापि तेषां गुणस्थानप्ररूपणयैव अकषायत्वसिद्धिरस्तीति ज्ञातव्य। तद्यथा—कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः स्वस्यैव बंधनहेतुः स्वशिरोऽभिघातादिबाधाहेतुः हिंसाद्यसंयमहेतुश्च भवति। कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः परस्य स्वशत्र्वादेर्बाधनबंधनासंयमहेतुर्भवति। कस्यचित्कामुकादिजीवस्य क्रोधादिकषायः स्वपरयोरपि यथासंभवं बाधनबंधनासंयमहेतुर्भवति इति विभागः लोकानुसारेण आगमानुसारेण च द्रष्टव्यः ॥ २८९ ॥

मं० प्र०—आत्मपरोभयबंधनबाधासंयमनिमित्तानि क्रोधादयः कषायाः येषा जीवानां न संति ते अकषायाः, अमलाः—द्रव्यभावनोकर्मरूपमलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः संतीति ज्ञातव्यं। यद्यप्युपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽप्यकषायाः अमलाश्च यथासंभवद्रव्यभावमलरहिताः, तथापि तेषां गुणस्थानप्ररूपणयैवाकषायत्वसिद्धेः। तद्यथा—कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः आत्मन एव स्वस्यैव, बंधनहेतुः—शिरोऽभिघातादिबाधाहेतुः हिंसाद्यसंयमहेतुश्च भवति

कस्यचित् क्रोधादिः परस्य शव्वादेर्बंधनादिहेतुः, कस्यचित्तु कामुकादेः क्रोधादिः--उभवस्य-स्वपरद्वयस्य यथासंभवं बंधनादिहेतुर्भवतीति विभागो लोकानुसारेण आगमानुसारेण च द्रष्टव्यः ॥ २८९ ॥

स० चं०—आपकौं वा परकौं वा दोऊकौं बंधनके वा बाधाके वा असंयमके कारणभूत ऐसे क्रोधादिक कषाय वा पुरुष वेदादिरूप नोकषाय ते जिनके न पाइये ते द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्ममलकरि रहित सिद्ध भगवान अकषाय जानने। उपशांत कषायसे लेकर च्यारि गुणस्थानवर्ती जीव भी अकषाय निर्मल हैं तिनकैं गुणस्थान प्ररूपणा ही करि अकषायपनाकी सिद्धि जाननी। तहां कोऊ जीवकैं तौ क्रोधादि कषाय ऐसैं हो हैं जिनतैं आपतैं आपको बांधै आप ही आपके मस्तकादिकका घात करै आपही आपकैं हिंसादि रूप असंयम परिणाम करै। बहुरि कोई जीवकैं क्रोधादि कषाय ऐसैं हो हैं जिनतैं और जीवनिकौं बांधै मारै उनके असंयम परिणाम करावै। बहुरि कोई जीवकैं क्रोधादि कषाय ऐसे हो हैं जिनतैं आपका वा और जीवनिका बांधना घात करना असंयम होना होइ सो ऐसे ए कषाय अनर्थके मूल हैं ॥ २८९ ॥

कोहादिकसायाणं चउचउदसवीस होंति पदसंखा।
सत्तीलेस्साआउगबंधाबंधगदभेदेहिं ॥ २९० ॥

क्रोधादिकषायाणां चत्वारः चतुर्दश विंशतिः भवंति पदसंख्याः।
शक्तिलेश्यायुष्कबंधाबंधगतभेदैः ॥ २९० ॥

जी० प्र०—क्रोधादिकषायाणां शक्तिलेश्यायुर्बंधाबंधगतभेदैर्यथाक्रमं चतुश्चतुर्दशविंशतिप्रमितपदानां स्थानानां संख्या भवति। तद्यथा शक्तिस्थानानि चत्वारि ४ लेश्यास्थानानि चतुर्दश १४ आयुर्बंधस्थानानि विंशतिः २० इत्यर्थः ॥ २९० ॥ तानि स्थानान्याह—

म० प्र०—क्रोधादीनां-क्रोधमानमायालोभाना कषायाणा शक्तिलेश्यायुर्बंधाबंधगतभेदैः, यथाक्रम चतुश्चतुर्दशविंशतिप्रमिताः पदाना स्थानानां संख्या-भवति। तद्यथा--शक्तिस्थानानि चत्वारि, लेश्यास्थानानि चतुर्दश, आयुर्बंधाबंधस्थानानि विंशतिरित्यर्थः ॥ २९० ॥

सं० च०—क्रोध मान माया लोभ कषाय तिनकी शक्तिस्थानके भेदकरि च्यारि संख्या हैं। लेश्या स्थानके भेदकरि चौदह है। आयुर्बलके बंधनेके अबंधनेके स्थान भेदकरि बीस संख्या हैं ॥२९०॥ ते स्थान आगैं कहिए है

सिलसेलवेणुमूलक्किमिरायादी कमेण चत्तारि।
कोहादिकसायाणं सत्तिं पडि होंति णियमेण ॥ २९१ ॥

शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि क्रमेण चत्वारि।
क्रोधादिकषायाणां शक्तिं प्रति भवंति नियमेन ॥ २९१ ॥

जी० प्र०—क्रोधादिचतुःकषायाणां शक्तिं प्रति स्वफलदानसामर्थ्यमुद्दिश्य तीव्रतरतीव्रमंदमंदतरानुभागरूपाणि उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपाणि वा स्थानानि चत्वारि नियमेन, शिलाभेदशैलवेणुमूलक्रिमिरागा तीव्रतरानुभागोदाहरणानि आदयो येषां पृथ्वीभेदादीनां तीव्राद्यनुभागाद्युदाहरणानां तानि शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि भवंति इति शिलाभेदादिदृष्टांता स्फुटं व्यवहारावधारणेन भवंति। परमागमव्यवहारिभिराचार्यैः अव्युत्पन्नमंदप्रज्ञशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यानि भवंति। दृष्टांतप्रदर्शनबलेनैव हि अव्युत्पन्नमंदप्रज्ञाः शिष्याः प्रतिबोधयितुं शक्यते। अतो दृष्टांतनामान्येव शिलाभेदादिशक्तीनां नामानीति रूढानि ॥ २९१ ॥

म० प्र०—क्रोधादीना चतुर्णां कषायाणा शक्तिं प्रति स्वफलदानसामर्थ्यमुद्दिश्य तीव्रतरतीव्रमंदमंदतरानुभागरूपाणि उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपाणि वा स्थानानि चत्वारि नियमेन, शिलाभेदशैलवेणुमूलक्रिमिरागाः तीव्रतरानुभागोदाहरणानि आदयो येषां पृथ्वीभेदादीना तीव्रानुभागाद्युदाहरणाना तानि तथोक्तानि इति शिलाभेदादिदृष्टाता नामव्यवहारावधारणेन भवंति—परमागमव्यवहारिभिराचार्यैरव्युत्पन्नमंदप्रज्ञस्वशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यानि भवंति। दृष्टातप्रदर्शनबलेनैव हि अव्युत्पन्नमंदप्रज्ञाः शिष्याः प्रतिपादयितुं शक्यंते अतो दृष्टांतनामान्येव शिलाभेदादीनि शक्तीनां नामानीति वा रूढानि ॥ २९१ ॥

सं० च०—क्रोधादिक जे कषाय तिनिकैं शक्ति कहिए अपना फल देनेकी सामर्थ्य ताकी अपेक्षातैं निश्चय करि च्यारि स्थान हैं। ते अनुक्रमतैं तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, अनुभागरूप वा उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अजघन्य जघन्य अनुभाग रूप जानने। तहां शिलाभेद, शैल, वेणुमूल, क्रिमिराग ए तौ उत्कृष्ट शक्तिके उदाहरण जानने।

आदि शब्दतें पूर्वोक्त अनुत्कृष्टादि शक्तिके उदाहरण जो दृष्टांतमात्र कहे हैं ते सर्व जानने । ए दृष्टांत प्रगट व्यवहारका अवधारण करि हैं अर परमागमका व्यवहारी आचार्यनिकरि मंदबुद्धी शिष्य समझावनेके अर्थि व्यवहार रूप कीएं हैं जातें दृष्टांतके बलकरि ही मंदबुद्धी समझै हैं तातें दृष्टांतकी मुख्यताकरि जे दृष्टांतके नाम तेई शक्तिनिके नाम प्रसिद्ध कीएं हैं ॥ २११ ॥

किण्हं सिलासमाणे किण्हादी छक्कमेण भूमिम्हि ।
छक्कादी सुक्कोत्ति य धूलिम्मि जलम्मि सुक्केक्का ॥२९२॥

कृष्णा शिलासमाने कृष्णादयः षट् क्रमेण भूमौ ।
षट्कादिः शुक्लेति च धूलौ जले शुक्लैका ॥ २९२ ॥

जी० प्र०—शिलाभेदसमाने क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थाने एकैव कृष्णलेश्या भवति । यद्यपि तत्र असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टानि कषायोदयस्थानानि संति तथापि तानि सर्वाण्यपि कृष्णलेश्याया एव संक्लेशहानिस्थानानि नान्यलेश्याया इत्यभिप्रायेण शिलाभेदसमानोत्कृष्टस्थाने कृष्णलेश्यैव इत्याचार्येण कथितं । नियमेन इत्यनुवर्तमानेन नियमशब्देन अत्राप्यवधारणार्थः सूच्यते । स कः ? तच्चरमस्थाने उत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते इति भूमिभेदसमाने क्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थाने क्रमेण कृष्णादयः षडपि लेश्या भवंति । तद्यथा—तत्र सर्वोत्कृष्टमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूमेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेष्वपि कृष्णैव लेश्या भवति नीलाद्यन्यलेश्यालक्षणस्य तत्रासंभवात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेषु उदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या उत्कृष्टनीललेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणस्यैव संभवात् । तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या उत्कृष्टकपोतलेश्याश्च वर्तंते । तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसंभवात् । ततः उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या मध्यमकपोतलेश्या जघन्यतेजोलेश्या च वर्तंते । तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात् । तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याः जघन्यपद्मलेश्या च वर्तंते । तत्र तल्लेश्यापंचकलक्षणसद्भावात् । तत उपरि षट्स्थानपतित-

संक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते। तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमस्थाने अनुत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते। ततः उपरि धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थाने यथाक्रमं लेश्याषट्कादयः शुक्ललेश्यापर्यंताः एकैकहीना भूत्वा गच्छंति। तद्यथा—धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्तप्रथमस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यकृष्णलेश्या मध्यमनीलकपोततेज पद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते। तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने कृष्णलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यनीललेश्या मध्यमाः कपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते। तत्र तल्लेश्यापञ्चकलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने नीललेश्या व्युच्छिद्यते। तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थाने जघन्यकपोतलेश्या मध्यमाः तेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमस्थाने कपोतलेश्या व्युच्छिद्यते। तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु उत्कृष्टा तेजोलेश्या मध्यमे पद्मशुक्ललेश्ये च वर्तते। तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टतेजोलेश्या व्युच्छिद्यते। तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु संख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषूत्कृष्टपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते। तत्र तद्द्वयलेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमोदयस्थान एव उत्कृष्टपद्मलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव वर्तते तत्र तल्लेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने अजघन्यशक्तिर्व्युच्छिद्यते। तत उपरि जलरेखासमानक्रोधजघन्यशक्तियुक्तेषु षट्स्थानपतितविशुद्धवृद्धिविशिष्टेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव वर्तते तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टा शुक्ललेश्यैव स्यात्। एवं चतुःशक्तियुक्तानि क्रोधस्य लेश्याश्रयेण चतुर्दशस्थानान्युक्तानि। अनेनैव क्रमेण मानादीनामपि चतुर्दशलेश्याश्रितस्थानानि नेतव्यानि ॥ २९२ ॥

मं० प्र०—शिलाभेदसमाने क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थाने एकैव कृष्णलेश्या। यद्यपि तत्र असंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टानि कषायोदयस्थानानि संति तथापि तानि सर्वाण्यपि कृष्णलेश्याया एव संक्लेशहानिस्थानानि नान्यलेश्याया इत्यभिप्रायेण शिलाभेदसमाने उत्कृष्टस्थाने कृष्णेत्याचार्येणोक्तं। नियमेनेत्यनुवर्तमानेन नियमशब्देनात्रावधारणार्थः सूच्यते। तत्र तच्चरमस्थाने उत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते। भूमिभेदसमाने क्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थाने क्रमेण कृष्णलेश्यादयः षडपि लेश्या भवंति। तद्यथा—तत्र स्वयोग्यमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूमेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेष्वसंख्येयलोकमात्रेषु अपि कृष्णैव लेश्या, नीलाद्यन्यतमलेश्यालक्षणस्य तत्रासंभवात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेषु उदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या च उत्कृष्टनीललेश्या च वर्तते। तत्स्थानानां लेश्याद्वयलक्षणसंभवात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानि-

स्थानेष्वसंख्येयलोकमात्रेषु उदयस्थानेष्वपि मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या उत्कृष्टकपोतलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावात्, ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या मध्यमकपोतलेश्या जघन्यतेजोलेश्या च वर्तते । तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमाः कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याः जघन्यपद्मलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्यापंचकलक्षणसद्भावात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमाः कृष्णनीलकपोततेज.पद्मलेश्याः जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात् । तत्रैव चरमस्थाने अनुत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते ततः धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थाने क्रमेण लेश्याषट्कादयः शुक्ललेश्यापर्यंता एकैकहीना भवति । तद्यथा—धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्तप्रथमस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि जघन्यकृष्णलेश्या मध्यमा नीलकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात् । तत्रैव चरमोदयस्थाने कृष्णलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थानेषु तल्लेश्यालक्षणाभावात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि जघन्यनीललेश्या, मध्यमा कपोततेज.पद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्यापंचकलक्षणसद्भावात् । तत्रैव चरमस्थाने नीललेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थाने तल्लक्षणाभावात्, ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि जघन्यकपोतलेश्या मध्यमाः तेज.पद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात् । तत्रैव चरमस्थाने कपोतलेश्या व्युच्छिद्यते । तदनंतरस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात् । ततः षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि उत्कृष्टा तेजोलेश्या, मध्यमे पद्मशुक्ललेश्ये च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावात् । तत्रैव चरमस्थाने तेजोलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थाने तल्लक्षणाभावात् । ततः षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि उत्कृष्टा पद्मलेश्या, मध्यमा शुक्ललेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणसद्भावात्, तत्रैव चरमस्थाने पद्मलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थाने तल्लक्षणाभावात् । ततः षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमा शुक्ललेश्या वर्तते तत्र तल्लक्षणसद्भावात् । तत्रैव चरमस्थाने अजघन्यशक्तिर्व्युच्छिद्यते ततः जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तेषु षट्स्थानपतितविशुद्धिविशिष्टेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमा शुक्ललेश्या एकैव वर्तते तत्रैव चरमस्थाने उत्कृष्टा शुक्ललेश्या भवति एवं लेश्याश्रयेण क्रोधस्य चतुःशक्तियुक्तानि चतुर्दशस्थानानि भवति । अनेनैव क्रमेण मानादीनामपि चतुर्दशलेश्याश्रितस्थानानि आनेतव्यानि ॥ २९२ ॥

स० चं०—शिला भेद समान जो क्रोधका उत्कृष्टशक्ति स्थान तीहिविषैं एक कृष्णलेश्या ही है। यद्यपि इस उत्कृष्टशक्तिस्थानविषैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण कषायनिके उदयस्थान हैं बहुरि तथापि ते सर्वस्थान कृष्णलेश्याहीके हैं कृष्णलेश्याहीके उत्कृष्ट मध्यम भेदरूप जानने। षट्स्थानपतित संक्लेशहानिका स्वरूप ऐसा जानना। जेते कषायनिके अविभाग प्रतिच्छेद पहिलें थे तिनसौं घाटि होनेलगे ते अनंतभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानिरूप

घटे ऐसैं तीव्र कषाय घटनेका नाम षट्स्थानपतितसंक्लेशहानि कहिए। कषायनिके अविभाग प्रतिच्छेद अनंत हैं तिनकी अपेक्षा षट्स्थानपतित हानि संभवै है अर स्थानभेद असंख्यातलोक प्रमाण ही हैं। नियम शब्दकरि ताका अंतस्थानविषैं उत्कृष्ट शक्तिकी व्युच्छित्ति हो है। बहुरि भूमिभेद समान क्रोधका अनुत्कृष्टशक्तिस्थान तीहिंविषैं अनुक्रमतैं छहो लेश्या पाइए है। सो कहिए है--भूमिभेद समान क्रोधका अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानका पहिला उदयस्थानतैं लगाइ षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं तौ केवल कृष्णलेश्या ही है, कृष्णलेश्याहीका मध्यभेद पाइए है जातैं अन्य लेश्याका लक्षण तहां नाहीं। बहुरि इहांतैं आगैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्यम कृष्णलेश्या उत्कृष्ट नील लेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि दोऊ लेश्यानिका लक्षण संभवै है। बहुरि इनितैं आगैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं मध्यम कृष्णलेश्या मध्यम नील लेश्या उत्कृष्ट कपोत लेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि तीनों लेश्यानिके लक्षण संभवै हैं। बहुरि इनितैं षट्स्थानपतित संक्लेश हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं मध्यम कृष्णलेश्या मध्यम नील लेश्या मध्यम कपोत लेश्या जघन्य पीतलेश्या पाइए है तातैं इहां तिनि च्यारयो लेश्यानिके लक्षण संभवै है। इनितैं बहुरि षट्स्थानपतित संक्लेश हानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं मध्यम कृष्ण नील कपोत पीत लेश्या अर जघन्य पद्मलेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानिका लक्षण संभवै है। बहुरि इनितैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्य कृष्ण नील कपोत पीत पद्म लेश्या अर जघन्य शुक्ललेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि छहौ लेश्यानिका लक्षण संभवै है। ऐसैं क्रोधका अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानका जे स्थान भेद तिनिविषैं क्रमतैं छहौ लेश्याके स्थानक जानने। इहां अंतस्थानविषैं अनुत्कृष्टशक्तिकी व्युच्छित्ति हुई। बहुरि धूलीरेखा समान क्रोधका अजघन्यशक्तिस्थान ताके स्थानकनिविषैं छह लेश्यातैं एक एक घाटि शुक्ल लेश्या पर्यंत लेश्या पाइए है। सोई कहिए है-धूली रेखा समान क्रोधका प्रथम स्थानतैं लगाइ षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात-

लोक प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य कृष्ण लेश्या मध्यम नील कपोत पीत पद्म शुक्ल लेश्या पाइए हैं जातैं इहां छहो लेश्यानिके लक्षण संभवै है। इहां अंतस्थानविषैं कृष्णलेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं आगैं इसही शक्तिका षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य नील लेश्या मध्यम कपोत पीत पद्म शुक्ललेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानिका लक्षण संभवै है। इहां अंतस्थानकनिविषैं नील लेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं आगैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य कपोत लेश्या मध्यम पीत पद्म शुक्ल लेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि च्यारि लेश्यानिके लक्षण संभवै है इहां अंतस्थानविषैं कपोत लेश्याका विच्छेद हुवा ऐसैं संक्लेश परिणामनिकी हानि होते संते जो मंदकषायरूप परिणाम भया ताकौं विशुद्ध परिणाम कहिए ताके अनंते अविभाग प्रतिच्छेद हैं सो तिनकी अनंत भागवृद्धि असंख्यात भागवृद्धि संख्यात भागवृद्धि संख्यात गुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि अनंतगुण वृद्धिरूप जो वृद्धि सो षट्स्थानपतित विशुद्धवृद्धि कहिए सो उन च्यारि लेश्याका स्थानतैं आगैं षट्स्थानपतित विशुद्धवृद्धिलीयें असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं उत्कृष्ट पीत लेश्या मध्यम पद्म शुक्ललेश्या पाइए है जातैं इहां तीन तिनि लेश्यानिहीका लक्षण संभवै है। इहां अंतस्थानकनिविषैं पीतलेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं षट्स्थानपतित विशुद्ध वृद्धि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं उत्कृष्ट पद्मलेश्या मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए हैं। जातैं इहां तिनि दोय ही लेश्यानिके लक्षण संभवै हैं। इहां अंतस्थानविषैं पद्मलेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं षट्स्थानपतित विशुद्धि वृद्धि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए है जातैं इहां तिस ही लेश्याके लक्षण पाइए है। ऐसैं धूली रेखा समान क्रोधका अजघन्यशक्तिस्थानके जे उदयरूप स्थानक तिनिविषैं लेश्या कही, इहां अंतस्थानविषैं अजघन्यशक्तिकी व्युच्छित्ति भई। बहुरि इहांतैं आगैं जल रेखा समान क्रोधका जघन्य शक्तिस्थान ताके षट्स्थानपतित विशुद्धि वृद्धिलीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्यम शुक्ललेश्या पाइए है। बहुरि याहीके अंतस्थानविषैं उत्कृष्ट शुक्ल

लेश्या पाइए है ऐसैं च्यारिप्रकार शक्तियुक्त क्रोधविषैं लेश्या अपेक्षा चौदह स्थानक कहे। उत्कृष्टशक्तिस्थानविषैं एक, अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानकविषैं छह, अजघन्य शक्तिस्थानकविषैं छह, जघन्यशक्तिस्थानकविषैं एक ऐसैं चौदह कहे। इहां किसीकै भ्रम होइगा कि ए च्यारि शक्तिस्थान कहे इनहीका अनंतानुबंधी आदि नाम है? सो नाहीं, जो तैसैं कहिए तौ षष्ठगुणस्थानविषैं संज्वलन नाहीं है तहां एक शुक्ललेश्या ही संभवै जातैं इहां जघन्यशक्तिस्थानविषैं एक शुक्ललेश्या ही कही है सो षष्ठ गुणस्थानविषै तौ लेश्या तीन हैं तातैं अनंतानुबंधी इत्यादि भेद सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा हैं ते अन्य जानने। बहुरि ये शक्तिस्थानके भेद तीव्र मंद अपेक्षा हैं ते अन्य जानने। सो जैसैं ए क्रोधके चौदह स्थान लेश्या अपेक्षा कहे तैसैं ही उत्कृष्टादिक शक्तिस्थानकनिविषैं मानके वा मायाके वा लोभके भी जानने ॥ २९२ ॥

सेलगकिण्हे सुण्णं णिरयं च य भूगएगबिट्ठाणे।
णिरयं इगिबितिआऊ तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥ २९३ ॥

शैलगकृष्णे शून्ये निरयं च च भूगैकद्विस्थाने।
निरयमेकद्वित्र्यायुस्त्रिस्थाने चत्वारि शेषपदे ॥ २९३ ॥

जी० प्र०—शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु केचित् किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं तीव्रतमसंक्लेशस्थानेषु आयुर्बंधाभावात्। पुनस्तत्रैव अग्रतनेषु केषुचित् हीनसंक्लेशस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकांको लिखितः। ततोऽनंतगुणहीनसंक्लेशेषु भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यत इति तत्स्थानद्वये एकैकांको लिखितः। पुनः तद्भूभेदगत कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिन्नारकायुरेकमेव बध्यते, अग्रे तत्रैव केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यगायुर्द्वयमेव बध्यते। तत्रैव अग्रे केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं बध्यते। इति तद्भूभेदगतत्रिलेश्यास्थानेषु एकद्वित्र्यंका लिखिताः। पुनस्तद्भूभेदगतकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्कस्थानेषु पद्मलेश्यासहितलेश्यापंचकस्थानेषु शुक्ललेश्यासहितलेश्याषट्कस्थानेषु च नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषि चत्वार्यपि बध्यंते। इति शेषस्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं चतुरंको लिखितः ॥ २९३ ॥

म० प्र०—शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेष्वसंख्यातलोकमात्रेषु केषुचित्किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं, तीव्रतमसंक्लेशस्थाने आयुर्बंधाभावात् तत्रैव केषुचित् हीनसंक्लेशस्थानेषु नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकाङ्को लिखितः, ततोऽनतगुणहीनसंक्लेशेषु भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकांको लिखितो । तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचित् नरकायुरेकमेव बध्यते, केषुचित् नरकतिर्यगायुर्द्वयं बध्यते, केषुचिन्नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं बध्यते, इति एकाद्वित्र्यंका लिखिताः । तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानेषु पद्मलेश्यासहितलेश्यापंचकस्थानेषु शुक्ललेश्यासहितलेश्याषट्कस्थानेषु च नारकतिर्यग्मानुषदेवायूंषि चत्वार्यपि बध्यते इति शेषपदेषु त्रिषु चतुरका लिखिताः ॥ २९३॥

स० च०—शिला भेद समान उत्कृष्ट क्रोधका शक्तिस्थानविषैं असंख्यातलोक प्रमाण उदयस्थान कहे तिनिविषैं केई स्थान ऐसे हैं जिनिविषैं कोऊ आयु बंधै नाहीं । सो यंत्रविषैं तहां शून्य लिखना । जातैं जहां अति तीव्र कषाय होइ तहां आयुका बंध होइ नाहीं । बहुरि तहां ही ऊपरिके कहे स्थान थोरे कषाय लीएं हैं तिनिविषैं एक नरकायु ही बंधै है सो इहां एकका अंक लिखना । बहुरि तातैं अनंतगुण घटता संक्लेश लीएं पृथ्वी भेद समान कषायविषैं जे कृष्णलेश्याके स्थान हैं वा कृष्ण वा नील दोय लेश्याके जे स्थान हैं तिनिविषैं एक नरक आयु ही बधै है । सो तिनि दोय स्थाननिविषैं एक एकका अंक लिखना । बहुरि तिसही विषैं केइ अगले स्थान कृष्ण नील कपोत तीन लेश्याके हैं सो तिनिविषैं केई स्थाननिविषैं तौ एक नरकायुहीका बंध हो है । बहुरि केई अगले स्थाननिविषैं नरक वा तिर्यंच दोय आयु बंधै हैं । बहुरि केई अगले स्थाननिविषैं नरक तिर्यंच मनुष्य तीन आयु बंधै हैं । सो तीन लेश्याके स्थानविषैं एक दोय तीनका अंक लिखना । बहुरि तिस ही पृथ्वीके भेद समान शक्तिस्थानविषैं केई कृष्ण नील कपोत पीत इनि च्यारि लेश्याके स्थान हैं केइक कृष्णादि पद्मलेश्यापर्यंत पंच लेश्याके स्थान है । केइक कृष्णादिक शुक्ललेश्या पर्यंत षट्लेश्याके स्थान हैं । सो इन तीनूही जायगा नरक तिर्यंच मनुष्य देव संबधी च्यार्यो ही आयु बंधै हैं सो तीनों जायगा च्यारि च्यारिका अंक लिखना॥२९३॥

धूलिगछक्कठाणे चउराऊतिगदुगं च उवरिल्लं ।
पणचदुठाणे देवं देवं सुण्णं च तिट्ठाणे ॥ २९४ ॥

घूलिगषट्कस्थाने चतुरायूंषि त्रिकाद्रिकं चोपरितनं ।
पंचचतुर्थस्थाने देवं देवं शून्यं च तृतीयस्थाने ॥ २९४ ॥

जी० प्र०— धूलीरेखासदृशशक्तियुक्तेषु लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् भूमेदगतलेश्यापट्कस्थानचरमस्थानशक्तितोऽनंतगुणहीनसंक्लेशयुक्तेषु चत्वार्यायूंषि बध्यंते । तत्रैव नरकायुर्व्युच्छिद्यते । तत्रैव अग्रे केषुचित्स्थानेषु नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयं बध्यते । तत्रैव तिर्यगायुर्व्युच्छिद्यते । तत्रैव अग्रे लेश्यापट्कस्थानेषु केषुचित् शेषमनुष्यदेवायुषी बध्येते । तत्रैव मनुष्यायुर्व्युच्छिद्यते इति चतुस्त्रिद्व्यंका लिखिताः । पुनस्तत्रैव कृष्णलेश्यारहितलेश्यापंचकस्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्कस्थानेषु च देवायुरेकमेव बध्यते । इत्येकैकांको लिखितः । पुनस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहितशुभलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिद्देवायुरेकमेव बध्यते इत्येकांको लिखितः । तत्रैव देवायुर्व्युच्छिद्यते पुनस्तच्छुभलेश्यात्रयस्थानेषु अग्रे केषुचित्तीव्रविशुद्धियुक्तेषु किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । शुभलेश्यात्रयतीव्रतरविशुद्धिविशिष्टपरिणामस्य आयुर्बंधहेतुत्वासंभवात् ॥ २९४ ॥

म० प्र०—ततोऽनंतगुणहीनसंक्लेशेषु धूलिरेखासदृशशक्तिगतेषु लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् चत्वार्यायूंषि बध्यते । तत्रैव नरकायुर्विच्छिन्नं । तत्रैव केषुचिदुपरितनशेषायुस्त्रय बध्यते । तत्रैव तिर्यगायुर्विच्छिन्न । तत्रैव लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् उपरितन शेषायुर्द्वयं बध्यते । तत्रैव मनुष्यायुर्विच्छिन्नं इति चतुस्त्रिद्व्यंका लिखिता । तत्रैव कृष्णलेश्यारहितलेश्यापचकस्थानेषु कृष्णनीललेश्यारहितलेश्याचतुष्कस्थानेषु च देवायुरेकमेव बध्यते इत्यकाकौ लिखितौ । तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशुभलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिद्देवायुरेकमेव बध्यते इत्येकाको लिखितः । तत्रैव देवायुर्बंधो व्युच्छिन्नः । पुनस्तत्रैव केषुचित् तीव्रविशुद्धियुक्तेषु किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । लेश्यात्रयपरिणामस्यापि तीव्रतरविशुद्धिविशिष्टस्य आयुर्बंधहेतुत्वासभवात् ॥ २९४ ॥

स० चं०—बहुरि पूर्वोक्तस्थानतैं अनंतानंतगुणा घाटि संक्लेश लीएं धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई कृष्णादि शुक्ललेश्या पर्यंत षटलेश्याके स्थान हैं । तिनिविषैं केई स्थाननिविषैं तौ नरकादिक च्यार्यो आयु बंधै हैं । केई अगले स्थाननिविषैं नरकायु विना तीन आयु ही बंधैं हैं । केई अगले स्थाननिविषैं मनुष्य देव दोय ही आयु बंधै हैं सो तहां च्यारि तीन दोयके अंक लिखने । बहुरि तिसही धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई कृष्णलेश्या विना पंच लेश्याके स्थान हैं । केई कृष्ण नील विना च्यारि लेश्याके स्थान हैं । इनि दोऊ जायगा एक देवायु ही बंधै हैं सो दोऊ जायगा एक एकका अंक लिखना । बहुरि तिस ही धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई पीतादि तीन शुभलेश्या संबंधी स्थान हैं । तिनिविषैं केई स्थाननिविषैं तौ एक देवायु ही

बंधै हैं सो तहां एकको अंक लिखना। बहुरि केई अगले स्थान तीव्र विशुद्धता लीएं हैं तहां किसी ही आयुका बंध न हो है सो तहां शून्य लिखना॥ २९४॥

सुण्णं दुगइगिठाणे जलम्हि सुण्णं असंखभाजिदकमा।
चउचोदसवीसपदा असंखलोगा हु पत्तेयं॥ २९५॥

शून्यं द्विकैकस्थाने जले शून्यमसंख्यभाजितक्रमाः।
चतुश्चतुर्दशविंशतिपदा असंख्यलोका हि प्रत्येकं॥ २९५॥

जी० प्र०-तत्रैव धूलिरेखासदृशशक्तियुक्तस्थानेषु केषुचित् तेजोलेश्यारहितशुक्ललेश्याद्वययुक्तेषु केवलशुक्ललेश्यायुक्तेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति स्थानद्वये शून्यं लिखितं। ततोऽनंतगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तजलरेखासदृशकषायविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेष्वपि किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं। तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेषु अतिशयेन आयुर्बंधहेतुत्वाभावात्। एवं कथितानि कषायाणां चत्वारि शक्तिस्थानानि चतुर्दशलेश्यास्थानानि विंशतिरायुर्बंधाबंधगतस्थानानि च सर्वाण्यपि असंख्यातलोकमात्राणि भवंति तथापि उत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा तज्जघन्यस्थानपर्यंतमसंख्यातगुणहीनानि भवंति। तद्यथा सर्वकषायोदयस्थानप्रमाणमेतावत् $\equiv a$। तद्योग्यासंख्यातलोकेन खंडयित्वा तद्बहुभागमात्राणि शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवंति इति लिखित्वा $\equiv a \mid 8$ / ९ पुनस्तच्छेषैकभागोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः। तमपि तद्भागहारेण भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवंतीति लिखित्वा— $\equiv a \mid 8$ / ९। ९ पुनस्तच्छेषैकभागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवंतीति लिखित्वा $\equiv a \mid 8$ / ९।९।९ पुनस्तच्छेषैकभागमात्रासंख्यातलोकस्थानानि जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानीति लेखितव्यानि— $\equiv a \mid 1$ / ९।९।९। अत्र भागहारभूतासंख्यातलोकस्यांकसंदृष्टिर्नवांकः ९। पुनस्तथा चतुर्दशपदेषु प्रथमे कृष्णलेश्यापदे यावंति शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानानि तावंत्येव तच्छक्तिगतानि कृष्णलेश्यास-

र्वोत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा तद्योग्यमध्यमस्थानपर्यंतानि असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानानि भवंति। ≡ ∂।८ / ९ एभ्यः भूमे-

दसमानशक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि— ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।१ कुतः ? भूमेदसमानशक्तियुक्तकेवल

सर्वस्थानेषु असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रत्वात्। तदेकभागमात्रेष्वेव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि

≡ ∂।८।८ / ९।९।९।२ -तेभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि—

≡ ∂।८।८ / ९।९।९।३ -पुनस्तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि-

≡ ∂।८।८ / ९।९।९।४ -पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असं-

ख्यातलोकमात्राणि— ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।५ पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याषट्कस्थानान्यसंख्यात

लोकहीनानि ≡ ∂।८।१ / ९।९।९।५ कुतः बहुभागरूपासंख्यातलोकगुणकाररहितत्वात्। पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि धूलिरेखासमानश-

क्तियुक्तसर्वस्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि षट्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि। ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।१ पुनस्त-

त्रैव तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्णलेश्यारहितशेषपंचलेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।२ पुनस्तत्रैव तदेकभागासं-

ख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि कृष्णनीलरहितशेषचतुर्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।३ पुनस्तदेकभागासंख्यात

लोकभक्तबहुभागमात्राणि शुभलेश्यात्रयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।४ पुनस्तत्रैव तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहु-

भागमात्राणि तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂ । ८ । ८ पुनस्तत्रैव तदेकभागमात्राणि केवलशुक्ल-
९ । ९ । ९ । ९ । ५

लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राण्यपि पूर्वस्मादसंख्यातगुणहीनानि ≡ ∂ । ८ । १ । कुतः ? बहुभागरूपासंख्यातलोकगुणकाररहि-
९ । ९ । ९ । ९ । ५

तत्वात् । पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि जलरेखासमानशक्तियुक्तानि केवलशुक्ललेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂ । १ । कुतः
९ । ९ । ९

धूलिरेखासमानशक्तिसर्वस्थानेषु केवलशुक्ललेश्यास्थानेषु प्रविष्टभागहाराणां गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागादसंख्यातगुणकारहीनत्वात् । पुनस्तथायुर्बंधाबंधगतविंशतिपदेषु प्रथमशिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थाने आयुर्बंधस्थानानि कृष्णलेश्योत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यसंख्यातलोकप्रमितस्थानानि ≡ ∂ । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव नरकायुर्बंधहेतुस्थानानि असंख्यातलोकमा-
९ । ९ ।

त्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ∂ । ८ । १ कुतः ? तदेकभागमात्रत्वात् । पुनस्तेभ्यो भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानानि
९ । ९ ।

नरकायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ∂ । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि नर-
९ । ९ । ९ । १

कायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि । ≡ ∂ । ८ । ८ एभ्यस्तत्र । कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि केवलनर-
९ । ९ । ९ । २

कायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ∂ । ८ । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । १

नरकतिर्यगायुर्द्वयबंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ∂ । ८ । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । २

नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयबंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि — ≡ ∂ । ८ । ८ । १ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतु
९ । ९ । ९ । ३ । ९ । २

ष्टयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ∂ । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजःपद्मले-
९ । ९ । ९ । ४

ध्यापंचकस्थानानि चतुर्गत्यायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə। ८। ८ एभ्यस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि
९। ९। ९। ५
चतुरायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə। ८। १ कुतः गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागरहितत्वात्। पु-
९। ९। ९। ५
नस्तेभ्यः धूलिरेखासमानशक्तिगतसर्वस्थानेषु असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि षड्लेश्यास्थानानि चतुरायुर्बंधकारणानि असंख्यातगुणही-
नानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə। ८। ८। ८ पुनस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयबंधकारणानि तदेकभागासं-
९। ९। ९। ९। ९। १
ख्यातबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə। ८। ८। ८ पुनस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि मनुष्यदेवा-
९। ९। ९। ९। ९। २
युर्बंधकारणानि असंख्यातगुणहीनानि तदेकभागासंख्यातलोकभक्तैकभागत्वादसंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə। ८। ८। १ पुनस्तत्रैव कृ-
९। ९। ९। ९। ९। २
ष्णलेश्यावर्जितशेषपंचलेश्यास्थानानि देवायुर्बंधकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə। ८। ८। एभ्यस्तत्रैव
९। ९। ९। ९। २
कृष्णनीलरहितचतुर्लेश्यास्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə। ८। ८। एभ्यस्त-
९। ९। ९। ९। ३
त्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशेषशुभलेश्यात्रयस्थानेषु देवायुर्बंधकारणानि यथायोग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि असंख्यातगुण-
हीनानि असंख्यातलोकमात्राणि। ≡ ə। ८। ८। ८। तदेकभागगतशुभलेश्यात्रयस्थानानि आयुर्बंधरहितानि असंख्यातलोकमाणि
९। ९। ९। ९। ४। ९
असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə। ८। ८। १। पुनस्तत्रैव पद्मशुक्ललेश्याद्वयस्थानानि आयुर्बंधाकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यात-
९। ९। ९। ९। ४। ९
लोकमात्राणि ≡ ə। ८। ८। कुतः प्राक्तनशुभलेश्यात्रयस्थानेषु आयुर्बंधरहितस्थानेषु प्रविष्टभागहारस्य असंख्यातगुणहीनत्वात्।
९। ९। ९। ९। ५
पुनस्तेभ्यस्तत्रैव शुक्ललेश्यास्थानेषु आयुर्बंधाकारणविशुद्धिपरिणामस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə। ८। १
९।९।९।९। ५

कथं ? इति चेत् गुणकारभूतासंख्यातबहुभागरहितत्वात् । पुनस्तेभ्यो जलरेखासमानशक्तिगतशुक्ललेश्यास्थानानि आयुर्बंधशून्यानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । १ । कथं ? धूलिरेखासमानशक्तियुक्तस्थानेषु केवलचरमशुक्ललेश्यास्थाने प्रविष्टपंचवारासंख्यातलोकभागहारेभ्यः तद्गुणकारभूतासंख्यातबहुभागस्य असंख्यातगुणितत्वात् । एवं चत्वारि पदानि, चतुर्दश पदानि, विंशतिः पदानि च प्रत्येकमसंख्यातगुणहीनक्रमाणि ज्ञातव्यानि ॥ २९५ ॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवाः कषायमार्गणायां जीवसंख्यां गाथात्रयेण कथयंति–
/ ९ । ९ । ९ ।

म० प्र०—तत्रैव धूलिरेखासदृशशक्तिस्थानेषु केषुचित् तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वययुक्तेषु केवलशुक्ललेश्यायुक्तेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । ततोऽनंतगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु जलरेखासदृशशक्तिविशिष्टशुक्ललेश्यास्थानेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेषु नितरामायुर्बंधहेतुत्वाभावात् । एवमुक्तानि कषायाणां चत्वारि शक्तिस्थानानि, चतुर्दशलेश्यास्थानानि, विंशतिरायुर्बंधकाबंधस्थानानि सर्वाण्यसंख्यातलोकमात्राणि भवंति तथापि उत्कृष्टस्थानादारभ्य जघन्यस्थानपर्यंतमसंख्यातगुणहीनानि भवंति । तद्यथा—सर्वकषायोदयस्थानप्रमाणमिदं । ≡ a । तद्योग्यासंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तानि उदयस्थानानि लिखितव्यानि भवंति । शिलाभेदः ≡ a । ८ / ९ । पुनस्तदेकभागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि लिखितव्यानि । ≡ a । ८ / ९ । ९ । पुनरतदेकभागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तान्युदयस्थानानि लिखितव्यानि । ≡ a ८ / ९ ९ ९ । पुनस्तदेकभागमात्राणि जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तान्युदयस्थानानि लिखितव्यानि । ≡ a १ / ९ ९ ९ । अत्र भागहारभूतासंख्यातलोकस्य संदृष्टिर्नवांकः । तथा चतुर्दशपदेषु प्रथमे कृष्णलेश्यापदे यावंति शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानानि तावंत्येव तच्छक्तिगतानि कृष्णलेश्याया उत्कृष्टस्थानादारभ्य तद्योग्यमध्यमस्थानपर्यंतानि संक्लेशस्थानानि असंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तानि भवंति । ≡ a ८ / ९ । ततो भूभेदसमानशक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ ९ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि । ≡ a ८ / ९ ९ ९ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि । ≡ a ८ / ९ ९ ९ ९ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि । – a ८ / ९ । ५ । ततस्तत्रैवासंख्ये-

यगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानानि । ≡ a ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि लेश्याषट्क-
९ । ६

स्थानानि । ≡ a । १ । ततो यथायोग्यासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि धूलिरेखासमानशक्तिगतलेश्याषट्कस्थानानि । ≡ a । ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगु-
९ । ६ ९ । ६ । ९

णहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णलेश्यारहितशेषलेश्यापंचकस्थानानि । ≡ a । ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीललेश्यारहित।
९ । ६ । ९ ९

शेषलेश्याचतुष्टयस्थानानि । ≡ a ८ ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशुभलेश्यात्रयस्थानानि । ≡ a ८ ।
९ । ६ । ९ ९ ९ ९ । ६ । ९ ९ ९ ९

ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि पद्मशुक्ललेश्याद्वयस्थानानि ≡ a ८ ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि शु-
९ । ६ । ९ ९ ९ ९ ९

क्ललेश्यास्थानानि ≡ a । १ ततोऽसंख्यगुणहीनानि असंख्येयलोकमात्राणि जलरेखासदृशशक्तिगतशुक्ललेश्यास्थानानि—
९ । ६ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९

≡ a तथा आयुर्बंधाबंधपदेषु विंशतौ प्रथमं शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानेषु आयुर्बंधकस्थानानि कृष्णलेश्योत्कृष्ट-
९ । ६ । ९ ९ ९ ९ ९ ९

स्थानादारभ्य असंख्यातलोकमात्राणि तदसंख्यातबहुभागमात्राणि भवति ≡ a । ८ । ८ तत्रैव नारकायुर्बंधहेतुस्थानानि ततोऽसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येय-
९ । ९ ।

लोकमात्राणि तदेकभागमात्रत्वात् ≡ a ८ ततो भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानानि नारकायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमा-
९ । ९

त्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि नारकायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोत-
९ ९ ९ ९ । ९ । ३

लेश्यात्रयस्थानानि केवलनारकायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नारकतिर्यगा-
९ : ९ । ४

युर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैवाशुभलेश्यात्रयस्थानानि नारकतिर्यग्मनुष्यायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसं-
९ । ९ । ५

ख्येयलोकमात्राणि ≡ a८ / ९।९।६ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यास्थानानि नारकतिर्यग्मनुष्यदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a८ / ९।९।७ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यास्थानानि चतुरायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a८ / ९।९।८ ततस्तत्रैव षट्लेश्यास्थानानि चतुरायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a८ / ९।९।९ ततो धूलिरेखासदृशशक्तिगतानि लेश्याषट्कस्थानान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि चतुरायुर्बंधकारणानि ≡ a८ / ९।९।९।९।१ ततस्तत्रैव लेश्याषट्कस्थानानि नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयबंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a।८ / ९।९।९।९।२ ततस्तत्रैव लेश्याषट्कस्थानानि मनुष्यदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a।८ / ९।९।९।९।३ ततस्तत्रैव कृष्णलेश्याहीनशेषलेश्यापंचकस्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a८। / ९।९।९।९।४ ततस्तत्रैव कृष्णनीललेश्यारहितशेषलेश्याचतुष्कस्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a८ / ९।९।९।९।५ ततस्तत्रैव तेजःपद्मशुक्ललेश्यास्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a८। / ९।९।९।९।६ ततस्तत्रैव शुभलेश्यात्रयस्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a८। / ९।९।९।९।७ ततस्तत्रैव पद्मशुक्ललेश्यास्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a। / ९।९।९।९।८ ततस्तत्रैव केवलशुक्ललेश्यास्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a८ / ९।९।।९।९।९ ततो जलरेखासदृशशक्तिगतकेवलशुक्ललेश्यास्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a८। / ९।९।९।९।१० एवमेतानि पदानि प्रत्येकमसंख्यातभाजितक्रमाण्यसंख्यातलोकमात्राणि ज्ञातव्यानि ॥ २९५ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः कषायमार्गणाया गाथात्रयेण संख्यां प्ररूपयंति–

स० चं०—बहुरि तिस ही धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई स्थान पद्म शुक्ल दोय लेश्या संबंधी हैं। केई स्थान एक शुक्ललेश्या संबंधी हैं सो इनि दोऊ ही जायगा किसी ही आयुका बंध नाहीं सो दोऊ जायगा शून्य लिखना। बहुरि तातैं अनंतगुणी बधती विशुद्धता लीएं जलरेखा समान शक्तिस्थानके सर्वस्थान केवल शुक्ललेश्या संबंधी हैं। तिनिविषैं किसी ही आयुका बंध नाही है। सो तहां शून्य लिखना। जातैं अति तीव्र विशुद्धता आयुके बंधका कारण नाहीं हैं ऐसैं कषायनिके शक्ति स्थान च्यारि कहे अर लेश्या स्थान चौदह कहे अर आयुके बंधनेके वा न बंधनेके स्थान बीस कहे ते सर्व ही स्थान असंख्यातलोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण जानने। परंतु उत्कृष्ट स्थानतैं लगाइ जघन्य स्थान पर्यंत असंख्यात गुणे घाटि जानने। असंख्यातके भेद घने हैं तातैं सामान्यपनैं सर्व ही असंख्यात लोक प्रमाण कहे। सोई कहिए है-सर्व कषायनिके उदयस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं तिनिकौं यथा योग्य असंख्यात लोकका भाग दीजिए तिनिविषैं एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण शिला भेद समान उत्कृष्टशक्ति संबंधी उदयस्थान हैं ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि वह जो एक भाग अवशेष रह्या ताकौं असंख्यात लोकका भाग दीएं एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्टशक्तिसंबंधी उदयस्थान हैं ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि जो एक भाग अवशेष रह्या ताकौं असंख्यातलोकका भाग दीएं एकका भाग विना अवशेष भाग प्रमाण धूलिरेखा समान अजघन्यशक्तिस्थानसंबंधी उदयस्थान हैं। ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि अवशेष एक भाग रह्या तींहि प्रमाण जलरेखा समान जघन्यशक्तिसंबंधी उदयस्थान हैं ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं।

ऐसैं च्यारिशक्ति स्थाननिमें उदयस्थानका प्रमाण कह्या। अब चौदह लेश्यास्थाननिविषैं उदयस्थाननिका प्रमाण कहिए है—पहिलैं कृष्णलेश्या स्थाननिविषैं जेते शिलाभेद समान उत्कृष्टशक्तिस्थानविषैं उदयस्थान हैं ते ते सर्व तिस उत्कृष्टशक्तिकौं प्राप्त कृष्णलेश्याका उत्कृष्टस्थानतैं लगाइ यथायोग्य कृष्णलेश्याके मध्यस्थानपर्यंत षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोकमात्रस्थान हैं ते उत्कृष्टशक्तिकेस्थान समान जानने।

बहुरि इनितैं असंख्यातगुणे घाटि पृथ्वी भेद समान शक्तिस्थानविषैं प्राप्त कृष्णलेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण है। जातैं ते स्थान पृथ्वीभेद समान शक्तिस्थानविषैं जेते उदयस्थान हैं तिनिकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं एकभाग विना बहुभाग मात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील दोय लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण ते तिस अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं एकभाग विना अवशेष भागमात्र प्रमाणकी बहुभाग संज्ञा जाननीं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील कपोत तीन लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि च्यारि लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीयैं बहुभाग मात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि पंच लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातलोक गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि छह लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभाग मात्र हैं इहां पूर्व स्थानतैं बहुभागरूप असंख्यातलोकमात्र गुणकार घट्या तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं प्राप्त कृष्णादि छह लेश्याकेस्थान ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते धूलिरेखासमान शक्तिस्थानसंबंधी सर्वस्थाननिके प्रमाणकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं एकभाग विना बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णरहित पंच लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील रहित च्यारि लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही तीन शुभ लेश्याके स्थान असंख्यातलोकमात्र हैं ते अवशेष

एकभागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि पीतरहित दोय शुभलेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस एकभागका योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र है। बहुरि तिनतैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही केवल शुक्ललेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभागमात्र जानने। इहां बहुभागरूप असंख्यातलोकमात्र गुणकार घट्या तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि जलरेखा समान शक्तिविषैं प्राप्त सर्व शुक्ललेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते जलरेखा शक्तिविषै प्राप्त स्थाननिका प्रमाणमात्र है। इहां धूलिरेखासमान शक्तिके सर्वस्थाननिविषैं जे केवल शुक्ललेश्याके स्थान कहे तहां भागहार अधिक हैं परंतु गुणकारभूत असंख्यात लोकका तहां बहुभाग है इहां एकभाग है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। अब आयुके बंध अबंधके बीस स्थान तिनिविषैं उदयस्थाननिका प्रमाण कहिए है—

प्रथम शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्तिविषैं प्राप्त कृष्णलेश्याके स्थान तिनि कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट स्थानतैं लगाइ असंख्यातलोकप्रमाण आयुके अबंध स्थान हैं ते उत्कृष्ट शक्तिविषैं प्राप्त सर्वस्थाननिका प्रमाणकौं असंख्यातलोकका भागदीएं बहुभाग मात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही नरकायु बंधनेकौं कारण असंख्यातलोक प्रमाण स्थान हैं ते तिस अवशेष एक भाग मात्र हैं। पूर्वै बहुभाग इहां एक भाग तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि पृथ्वीभेदसमान अनुत्कृष्ट शक्तिविषैं प्राप्त कृष्णलेश्याके पूर्वोक्त सर्वस्थान ते नरकायुबंधकौं कारण असंख्यात लोकप्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहांही कृष्णनीललेश्याके पूर्वोक्त सर्वस्थान ते नरकायुबंधकौं कारण असंख्यातलोक प्रमाण हैं बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि तीनि लेश्याके स्थाननिविषैं नरकायु बंधकौं कारण स्थान ते तिन कृष्णादि तीन लेश्यास्थाननिके प्रमाणकौं योग्य असंख्यात लोकका भागदीएं बहुभागमात्र असंख्यात लोकप्रमाण हैं। बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि तहांही कृष्णादि तीन लेश्याके स्थाननिविषैं नरक तिर्यंच आयुके बंधकौं कारण

स्थान ते तिस अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यात लोकका भाग दीएं बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां कृष्णादि तीन लेश्याके स्थाननिविषैं नरक तिर्यंच मनुष्य आयुबंधके कारण स्थान ते अवशेष एक भाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहांही पूर्वोक्त कृष्णादि च्यारि लेश्याके स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबंधके कारण ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि पंच लेश्याके स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबंधके कारण ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि छहौ लेश्याके स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबंधके कारण ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। पूर्व स्थानविषैं गुणकार बहुभाग था इहां एक भाग रह्या तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि धूलिरेखा समान शक्तिविषैं प्राप्त षट्लेश्या स्थाननिविषैं च्यार्यो आयुबंधके कारण स्थान ते तिन अजघन्य शक्तिविषैं प्राप्त षट्लेश्या स्थाननिके प्रमाणकौं असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभाग मात्र असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही षट्लेश्याके स्थाननिविषैं नरक विना तीन आयुबंधके कारण स्थान ते तिस अवशेष एकभागकौं असंख्यातका भाग दीएं बहुभागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही षट्लेश्याके स्थानविषैं मनुष्य देवायुबंधके कारण स्थान ते तिस अवशेष एकभागमात्र असंख्यातलोक प्रमाण हैं इहां पूर्वैं बहुभाग थे इहां एक भाग है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्ण विना पंचलेश्याके स्थान सर्व ही देवायुके बंधके कारण हैं ते असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्ण नील रहित च्यारि लेश्याके स्थान सर्व ही देवायुबंधकौं कारण हैं ते असंख्यातलोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही शुभ तीन लेश्याके स्थाननिविषैं देवायु बंधकौं कारण स्थान ते तिस अजघन्य शक्तिविषैं प्राप्त त्रिलेश्या स्थाननिका प्रमाणकौं योग्य असंख्यात लोकका भाग दीए बहुभाग मात्र असंख्यात लोक

प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही शुभ तीनलेश्याके स्थाननिविषैं किसी ही आयुबंधकौं कारण नाहीं ऐसे स्थान तिस अवशेष एक भागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहांही पूर्वोक्त पद्मलेश्याके स्थान सर्व ही आयु बंधकौं कारण नाहीं ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं। यातैं पूर्वस्थानविषैं भागहार असंख्यात गुणा घटता है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है बहुरि तिनितैं असंख्यात गुण घाटि तहांही पूर्वोक्त शुक्लेश्याके स्थान सर्वही आयुबंधकौं कारण नाहीं ते असंख्यात लोक प्रमा-

काषायनिके शक्तिस्थान च्यारि, लेश्यास्थान चौदह, आयुबंध बंधस्थान बीस, तिनिका यंत्र।

शक्तिस्थान ४	शिलाभेद समान १		पृथ्वीभेद समान १								धूलिरेखासमान १									जलरेखा समान १
लेश्यास्थान १४	१ कृष्ण		१ कृष्ण	२ कृष्णादि	३ कृष्णादि			४ कृष्णादि	५ कृष्णादि	६ कृष्णादि	६ कृष्णादि			५ कृष्ण विना	४ कृष्ण नील विना	३ पीतादि		२ पद्म शुक्ल	१ शुक्ल	१ शुक्ल
आयुबंधाबंधस्थान २०	० अबंध	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	२ नरकतिर्यंचायु	३ नरकतिर्यंचमनुष्यायु	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व सर्व	३ मनुष्यदेवतिर्यंचायु	२ मनुष्यदेवायु	१ देवायु	१ देवायु	१ देवायु	० अबंध	० अबंध	० अबंध	० अबंध

ण हैं पूर्वै बहुभागका गुणकार था इहां एक भागका गुणकार भया तातैं असंख्यातगुणा घटता कह्या है। बहुरि ति-
नितैं असंख्यात गुणे घाटि पूर्वोक्त जलरेखा समान शक्तिविषै प्राप्त शुक्ललेश्याके स्थान सर्वही किसी ही आयुबंध
कौं कारण नाहीं ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं। पूर्व स्थानविषैं जे भागहार कहे तिनतैं तिस ही भागहारका गुण-
कार असंख्यात गुणा है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। ऐसैं च्यारि चौदह वीस पद क्रमतैं असंख्यात
गुणे घाटि कहे तथापि असंख्यातके बहुभेद हैं तातैं सामान्यपनें सबनिकों असंख्यात लोक प्रमाण कहे विशे-
षपनें यथासंभव असंख्यातका प्रमाण जानना ऐसैं ही भागहारविषैं भी यथासंभव असंख्यातलोकका प्रमाण
जानना ॥२९५॥ आगे श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव तीनि गाथनिकरि कषायमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहै हैं—

पुह पुह कसायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो ।
लोहादी संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥ २९६ ॥

पृथक् पृथक् कषायकालः निरये अंतर्मुहूर्तपरिमाणः ।
लोभादिः संख्यगुणः देवेषु च क्रोधप्रभृतितः ॥ २९६ ॥

जी॰ प्र॰—नरकगतौ नारकाणां लोभादिकषायाणां उदयकालः पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तपरिमाणो भवति । तथापि पूर्वपूर्वकषायो-
दयकालादुत्तरोत्तरकषायोदयकालः संख्यातगुणो ज्ञातव्यः । तद्यथा—तत्र लोभकषायोदयकालः सर्वतः स्तोकोंतर्मुहूर्तमात्रः २१ ततो मायाकषा-
योदयकालः संख्यातगुणः २ १ ४ ततो मानकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ । १६ ततः क्रोधकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ ६४
देवगतौ देवानां क्रोधादिकषायोदयकालाः पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्राः तथापि उत्तरोत्तरमानादिलोभपर्यंतं संख्यातगुणक्रमा भवंति ।
तद्यथा-तत्र क्रोधकषायोदयकालः अंतर्मुहूर्तः सर्वतः स्तोकः २ १ । १ । ततो मानकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ । ४ ततो मायाकषा-
योदयकाल संख्यातगुणः २ १ । १६ ततो लोभकषायोदयकालः संख्यातगुण २ १ । ६४ ॥ २९६ ॥

मं॰ प्र॰—णिरये--नरकगतौ लोभादीना कषायाणा कालः पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रोऽपि पूर्वपूर्वकषायकालादुत्तरोत्तरकषायकालः संख्येयगुणः ।

तद्यथा–तत्र सर्वतः स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रो लोभकालः । २ ७ । १ । ततः संख्येयगुणो मायाकालः । २ ७ , ४ , ततः संख्येयगुणो मानकालः , २ , ७ , १६ , ततः संख्येयगुणः क्रोधकालः , २७, ६४ । देवेषु च क्रोधप्रभृतीनां कषायाणां कालः प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रोऽपि पूर्वपूर्वकषायकालादुत्तरोत्तरमानादिकालः संख्येयगुणः । तथाहि-सर्वतः स्तोकांतर्मुहूर्तमात्रः क्रोधकालः , २७,१ , ततः संख्येयगुणो मानकालः , २७ , ४, ततः संख्येयगुणो मायाकालः , २७ १६ ततः संख्येयगुणो लोभकालः , २७ , ६४ ॥ २९६ ॥

स० चं०—नरकगतिविषैं नारकीनिकैं लोभादि कषायनिका उदय काल अंतर्मुहूर्त मात्र है तथापि पूर्व पूर्व कषायतैं पिछले पिछले कषायका काल संख्यात गुणा है अंतर्मुहूर्तके भेद घने तातैं हीनाधिक होतैं भी अंतर्मुहूर्त ही कहिए सोई कहिए हैं–सर्वतैं स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण लोभ कषायका काल है। तातैं संख्यात गुणा मायाकषायका काल है। यातैं संख्यातगुणा मानकषायका काल है। यातैं संख्यातगुणा क्रोधकषायका काल है। बहुरि देवगतिविषैं क्रोधादि कषायनिका काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्तमात्र है तथापि उत्तरोत्तर संख्यात गुणा है सोई कहिए है–स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण तौ क्रोध कषायका काल है। तातैं संख्यातगुणा मानकषायका काल है। तातैं संख्यातगुणा मायाकषायका काल है। तातैं संख्यातगुणा लोभकषायका काल है। भावार्थ–नरकगतिविषैं क्रोध कषायरूप परिणति बहुतर हो है और कषायनिरूप क्रमतैं स्तोक स्तोक रहै है। देवगतिविषैं लोभकषायरूप परिणति बहुतर रहै है और कषायनिरूप क्रमतैं स्तोक स्तोक रहै है ॥ २९६ ॥

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणोवि संगुणिदे ।
सगसगगुणगारेहिं य सगसगरासीण परिमाणं ॥२९७ ॥

सर्वसमासेनावहितस्वकस्वकराशौ पुनरपि संगुणिते ।
स्वकस्वकगुणकारैश्च स्वकस्वकराशीनां परिमाणं ॥ २९७ ॥

जी० प्र०—पुनर्नारकदेवगत्योः सर्वकषायोदयकालानां समासेन युत्या भक्ते स्वस्वगतिसंभविजीवराशौ स्वस्वकषायोदयकालगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वकषायोदयविशिष्टजीवराशीनां परिमाणं भवति। अपिचशब्दौ गतिद्वयसमुच्चयार्थौ नरकगतौ देवगतौ चैवं कर्तव्यमिति ।

तत्र एतावता कालेन यद्येतावंतो जीवा लभ्यंते तदैतावताकालेन कियंतो जीवा लभ्यंते इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र २ज्ञ।८५। फ-२ ।इ २ ज्ञ ६४ अपवर्तितलब्धप्रमिते नरकगतौ क्रोधकषायोदययुक्तनारकजीवराशिप्रमाणं भवति ।—।२।६४। एवं मानादिकषायोदयकालान् इच्छाराशीन् कृत्वा
८५
त्रैराशिकविधानेन लब्धप्रमाणं मानादिकषायोदयपरिणतनारकजीवप्रमाणं भवति । नारकमानकषायिणः –२।१६ नारकमायाकषायिणः।– २।४
८५ ८५

नारकलोभकषायिणः —, २, १ तथा देवगतौ लोभकषायिणः = १— ज्ञ, ६४ / ४, ६५=ज्ञ, ८५ देवमायाकषायिणः = १— ज्ञ, १६ / ४, ६५ = ज्ञ, ८५ देवमा-
८५

नकषायिणः = १— ज्ञ, ४ / ४, ६५=ज्ञ, ८५ देवक्रोधकषायिणः = १— ज्ञ, १ / ४, ६५=ज्ञ, ८५ ॥ २९७ ॥

मं० प्र०——पुनर्नारकदेवगत्योः सर्वकषायकालानां समासेन २ज्ञ। ८५ संयोगेन अपहते-भक्ते, स्वस्वगतिसंभाविजीवराशौ स्वस्वकषायकालगुणकारैः संगुणिते सति स्वस्वकषायविशिष्टजीवराशीना परिमाणं भवति । अपिचशब्दौ गतिद्वयसमुच्चयार्थौ नरकगतौ च देवगतावपि च एवं कर्तव्यमिति । एतावति काले । प्र २ज्ञ। ८५ । यद्येतावंतो जीवा लभ्यते । फ-२ । तदा एतावति काले । इ २ज्ञ। ६४ । कियतो जीवा लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धमपवर्तित नरकगतौ क्रोधकषायपरिणतजीवराशिप्रमाण—२ । ६४ एवं मानादिकालानिच्छराशीन् कृत्वा त्रैराशिकविधानलब्धप्रमाणा मानादिकषायपरिणतजीवराशयो
८५
भवंति । एवमेव देवगतावपि तत्र फलराशिस्तु देवराशिः कर्तव्यः । प्र २ ज्ञ। ८५ । फ = ज्ञ / ४ । ६५=ज्ञ इ २ज्ञ। ६४ लब्धलोभवज्जीवाः-
= ज्ञ। ६४ / ४, ६५=ज्ञ, ८५ एवं मायादिजीवराशयोऽप्यानेतव्याः ॥ २९७ ॥

स० चं०——सर्व च्यारयों कषायनिका जो काल कह्या ताके जेते समय होंहि तिनिका समास कहिए जोड दीएं जो परिमाण आवै ताका भाग अपनी अपनी गतिसंबधी जीवनिके प्रमाणकों दीएं जो एक भागविषैं प्र-

माण होइ ताहि अपना अपना कषायके कालका समयनिके प्रमाणरूप गुणकारकरि गुणै जो जो परिमाण होइ सोई अपना अपना क्रोधादिक कषायसंयुक्त जीवनिका परिमाण जानना। अपि शब्द समुच्चय वाचक है तातैं नरकगति वा देवगतिविषै ऐसैं ही करना। सोई दिखाइए है--च्यार्यौ कषायनिका कालके समयनिका जोड दीएं जो परिमाण होइ तितने कालविषै जो नरकगतिविषैं जीवनिका जो परिमाण कह्या तितने सर्व जीव पाइए तौ लोभकषायके कालका समयनिका जो परिमाण होइ है तितने कालविषैं केते जीव पाइए ऐसैं त्रैराशिक कीएं प्रमाणराशि सर्वकषायनिका काल, फलराशि सर्व नारक राशि, इच्छाराशि लोभकषायका काल तहां प्रमाणराशिका भाग फलराशिकौं देइ इच्छाराशिकरि गुणैं जो लब्धराशिका परिमाण आवै तितने जीव लोभकषायवाले नरकगतिविषैं जानने। बहुरि ऐसैं ही प्रमाणराशि फलराशि पूर्वोक्त इच्छाराशि मायादिकषायनिका काल कीएं लब्धराशिमात्र अनुक्रमतैं मायावाले मानवाले क्रोधवाले जीवनिका परिमाण नरकगतिविषैं जानना। इहां दृष्टांत--जैसैं लोभका कालका प्रमाण एक १ मायाका च्यारि ४ मानका सोलह १६ क्रोधका चौसठि ६४ सबका जोड दीएं पिच्यासी भए। नारकी जीवनिका परिमाण सतरासै १७०० ताहि पिच्यासीका भागदीएं पाए बीस २० ताकौं एककरि गुणैं बीस हुवा सो लोभकषायवालोंका परिमाण है। च्यारिकरि गुणैं असी ८० भए सो मायावालोंका परिमाण है। सोलाकरि गुणैं तीनसौ बीस भए ३२० सो मानवालोंका परिमाण है चौसठिकरि गुणैं बारासै असी भए १२८० भए सो क्रोधवालोंका परिमाण है ऐसैं दृष्टांतकरि यथोक्त नरकगतिविषैं जीव कहे ऐसैं ही देवगतिविषैं जेता जीवनिका परिमाण है ताहि सर्वकषायनिके कालका जोड्या हूवा समयनिका परिमाणका भाग दीएं जो परिमाण आवै ताहि अनुक्रमतें क्रोध मान माया लोभका कालका परिमाणकरि गुणैं अनुक्रमतैं क्रोधवाले मानवाले मायावाले लोभवाले जीवनिका परिमाण देवगतिविषैं जानना ॥ २९७ ॥

णरतिरियलोहमायाकोहो माणो विइंदियादिव्व ।
आवलिअसंखभज्जा सगकालं वा समासेज्ज ॥ २९८ ॥

नरतिरश्चोः लोभमायाक्रोधो मानो द्वींद्रियादिवत् ।
आवल्यसंख्यभाज्याः स्वककालं वा समासाद्य ॥ २९८ ॥

जी० प्र०—मनुष्यतिर्यग्गत्योर्लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्या द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियजीवसंख्यानयनप्रकारेणानेतव्या, तत्र मनुष्यगतौ अकषायसंख्योनमनुष्यजीवराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेनैव लोभादिपरिणतजीवसंख्या आनेतव्या, तथा तिर्यग्गतौ देवनारकमनुष्यसंख्योनसंसारराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेन च लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या, अथ वा अंतर्मुहूर्तमात्रात् सामान्यकषायोदयकालात् द्वींद्रियादिविधानानीतं स्वस्वलोभादिकषायोदयकालमाश्रित्य लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या । तद्यथा–एतावति काले यद्येतावंतो जीवा लभ्यते तदा एतावति काले कियंतो जीवा लभ्यंते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र २ ७, फ $\frac{\overline{1}^{\frown}\ 1\ 3}{}$, इ २ ७, $\frac{८४२४}{४,\ ६५६१}$ अपवर्तिते लब्धं लोभकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं भवति । $\overline{1}^{\frown}$ । ३, $\frac{८४२४}{४,\ ६५६१}$ तथा मायाकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं $\overline{1}^{\frown}$ । ३, $\frac{६१२०}{४,\ ६५६१}$ क्रोधकषायोदयपरिणतमनुष्यराशिप्रमाणं $\overline{1}^{\frown}$ । ३, $\frac{५८६४}{४,\ ६५६१}$ मानकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिः $\overline{1}^{\frown}$ । ३, $\frac{५८३६}{४,\ ६५६१}$ तथा तिर्यग्गतावपि किंचिदूनसंसारराशिं फलराशिं कृत्वा तत्कषायपरिणतजीवराशिप्रमाणमानेतव्यं । तत्र तिर्यग्लोभकषायिण: १३— $\frac{८४२४}{४,\ ६५६१}$ तिर्यग्मायाकषायवंत: १३— । $\frac{६१२०}{४ \mid ६५६१}$ तिर्यक्क्रोधकषायिण:

१३ — , ५८२४ तिर्यग्मानकषायिणः   १३—, ५८३६ द्वीन्द्रियादिविधानेन यथा आवल्यसंख्यातभागमात्रो भागहारः तथा अत्रापि
४ , ६५६१   ४ , ६५६१

जीवसंख्यानयने कालप्रमाणानयने च आवल्यसंख्येयभागमात्रो भागहारः इति सुव्यक्तार्थमाचार्यैः आवलि असंखभज्जेत्युक्तं ॥२९८॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाडे विंशतिप्ररूपणासु कषायमार्गणाप्ररूपणा नाम एकादशोऽधिकारः ॥ ११ ॥

मं॰ प्र॰—मनुष्यतिर्यग्गत्योः लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्या द्वीन्द्रियादिवत्–द्वित्रिचतुःपचेंद्रियजीवसंख्यानयनप्रकारेणानतव्या । मनुष्यगतौ तज्जीवराशिं सस्थाप्य 'बहुभागे समभागो चउण्हं' इत्यादिसूत्रोक्तविधानेन ।तिर्यग्गतावपि अकषायजीवप्रमाणसंख्यातरूपहीनसंसारिराशिं सस्थाप्य 'बहुभाग' इत्यादि सूत्रविधानेनैव लोभादिपरिणतजीवसंख्या आनेतव्याः । वा अथवा स्वस्वकालं द्वीन्द्रियादिविधानानीताल्पबहुत्वमंतर्मुहूर्तमात्रं लोभादिकषायकालमाश्रित्य लोभादिपरिणतजीवसख्या आनेतव्याः । तत्र एतावति काले प्र २ ७ यद्येतावतो जीवा लभ्यंते फ = तदा एतावति काले—
१ ।.३

इ । २ ७ । ८४२४ कियतो जीवा लभ्यंत इति त्रैराशिकेन लब्धलोभपरिणतजीवसख्या १ । ३ । ८४२४ एव मायाक्रोधमानकालानिच्छाराशिं
४ । ६५६१   ४ । ६५६१

कृत्वा तत्तज्जीवसंख्या आनेतव्या । तिर्यग्गतौ तु किंचिदूनसंसारिराशिं फलराशिं कृत्वा तत्तत्कषायपरिणतजविसंख्या आनेतव्या । द्वीन्द्रियादिविधाने यथावल्यसख्यातभागमात्रो भागहारः तथा अत्रापि जीवसंख्यानयने कालप्रमाणानयने च आवल्यसंख्येयभागमात्रो भागहार इति सुव्यक्तयर्थमाचार्यैः आवलिअसंखभज्जेत्युक्तं

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धातचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपचसग्रहवृत्तौ कषायमार्गणाप्ररूपणो नामैकादशोऽधिकारः ॥११॥

स॰ चं॰—मनुष्य तिर्यंचगतिविषैं लोभ माया क्रोध मानवाले जीवनिकी संख्या पूर्वें इंद्रियमार्गणाका अधिकारविषैं जैसें बेंद्री तेंद्री चौइंद्री पंचेंद्रीविषैं जीवनिकी संख्या 'बहुभागे समभागो' इत्यादि गाथाकरि कही थी तैसैं इहां भी संख्याका साधन करना। सोई कहिए है--मनुष्यगतिविषैं जो जीवनिका परिमाण है तामैं कषायरहित मनुष्यनिका प्रमाण घटाएं जो अवशेष रहै ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एक

भाग जुदा राखि अवशेष बहुभागका प्रमाण रह्या ताके च्यारि भागकरि च्यारयौ कषायनिके स्थाननिविषैं समान देने। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनिकौं लोभकषायके स्थान समान भागविषैं जो प्रमाण था तामैं जोडे जो परिमाण होइ तितने लोभकषायवाले मनुष्य जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एकभागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनिकौं मायाकषायके स्थान समान भागविषैं जो परिमाण था तामैं मिलाएं जो परिमाण होइ तितने मायाकषायवाले मनुष्य जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहै तिनिकौं क्रोधकषायके स्थान समान भागविषैं जो परिमाण था तिसविषैं मिलाएं क्रोधकषायवाले मनुष्यनिका परिमाण होइ। बहुरि तिस अवशेष एक भागका जेता परिमाण होइ ताकौं मानकषायके स्थान समान भागविषैं जो परिमाण था तामैं मिलाएं मानकषायवाले मनुष्यनिका परिमाण होइ ऐसैं ही तिर्यंच गतिविषैं जानना। विशेष इतना जो इहा मनुष्य गतिके जीवनिका परिमाणविषैं भाग दीया था। इहां तिर्यंच गतिके जीवनिका जो देव नारक मनुष्यराशिकरि हीन सर्वसंसारी जीवराशिमात्र परिमाण ताकौं भाग देना अन्य सर्व विधान तैसैं ही जानना। ऐसैं कषायनिविषैं तिर्यंच जीवनिका परिमाण जानिए। अथवा अपना अपना कषायनिका कालकी अपेक्षा जीवनिकी संख्या जानिए सो दिखाइए है च्यारयौ कषायनिका कालके समयनिका जो अंतर्मुहूर्तमात्र परिमाण है ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेषके च्यारि भागकरि च्यारौ जायगा समान दीजिए। बहुरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनिकौं समान भागविषैं जो परिमाण था तामैं मिलाएं लोभकषायके कालका परिमाण होइ। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं तैसैं भाग देइ एक भाग विना अवशेष बहुभाग समान भागका प्रमाणविषैं मिलाएं मायाका काल होइ। बहुरि तिस अवशेष एकभागकौं

तैसैं भाग देइ एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग समान भागसंबंधी परिमाणविषैं मिलाएं क्रोधका काल होइ। बहुरि जो अवशेष एक भाग रह्या ताकौं समान भागसंबंधी परिमाणविषैं मिलाएं मानकषायका काल होइ अब इहां त्रैराशिक करना। जो च्यारि कषायनिके कालका परिमाणविषैं सर्व मनुष्य पाइए तौ लोभकषायका कालविषैं केते मनुष्य पाइए ? इहां प्रमाणराशि च्यारयौं कषायनिका समुच्चयरूप कालका परिमाण अर फलराशि मनुष्य गतिके जीवनिका परिमाण अर इच्छाराशि लोभ कषायके कालका परिमाण। तहां फलराशिकौं इच्छाराशिकरि गुणि प्रमाण राशिका भाग दीएं जो लब्धराशिका प्रमाण आवै तितने लोभकषायवाले मनुष्य जानने। असैं ही प्रमाण फलराशि पूर्वोक्त कीएं माया क्रोध मानकालकौं इच्छाराशि कीएं लब्धराशि मात्र मायावाले वा क्रोधवाले वा मानवाले मनुष्यनिकी संख्या जाननी। बहुरि याही प्रकार तिर्यंच गतिविषैं भी लोभवाले मायावाले क्रोधवाले मानवाले जीवनिकी संख्याका साधन करना। विशेष इतना जो उहां फलराशि मनुष्यनिका परिमाण था इहां फलराशि तिर्यंच जीवनिका परिमाण जानना। अन्य विधान तैसैं ही करना। असैं कषाय मार्गणा विषैं जीवनिकी संख्या है ॥ २९८ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम भाषाटीका विषैं जीवकांडविषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं कषाय-मार्गणा प्ररूपणा नाम ग्यारमा अधिकार संपूर्ण भया ॥ ११ ॥

अथ ज्ञानमार्गणाधिकार ॥ १२ ॥

जी० प्र०—

वासवैः पूज्यपादाब्जं समवस्थतिसंस्कृतं ।
द्वादशं तीर्थकर्तारं वासुपूज्यं जिनं स्तुवे ॥ १२ ॥

अथ श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणामुपक्रममाणो निरुक्तिपूर्वज्ञानसामान्यलक्षणमाह—

मं० प्र०—

वासवादिसुपूज्याङ्घ्रिं वासुपूज्य जिनेश्वरं ।
वंदे गर्भादिकल्याणैरत्नवसुपूजितं ॥ १२ ॥

अथ श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणां प्रारभमाणो निरुक्तिपूर्वकं ज्ञानसामान्यलक्षणमाह—

सं० चं०—

वंदौ वासव पूज्यपद वास पूज्य जिन सोय ।
गर्भादिकमें पूज्य जो रत्न द्रव्यतैं होय ॥

आगैं श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणाका प्रारंभ करैं हैं तहां प्रथमही निरुक्ति लीएं ज्ञानका सामान्य लक्षण कहैं हैं—

जाणइ तिकालविषए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे ।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेत्ति णं वेंति ॥ २९९ ॥

जानाति त्रिकालविषयान् द्रव्यगुणान् पर्यायांश्च बहुभेदान् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षमनेन ज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ॥ २९९ ॥

जी० प्र०—त्रिकालविषयान् भूतवर्त्स्यद्वर्तमानकालगोचरान् बहुभेदान्–जीवादिज्ञानादिस्थावरादिनानाप्रकारान् द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाख्यानि, गुणान् ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्यादीन् स्पर्शरसगंधवर्णादीन् गतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतुत्वादींश्च पर्यायांश्च स्थानत्रसत्वादीन् अणुत्वस्कंधत्वादीन् अर्थव्यंजनभेदानन्यांश्च आत्मप्रत्यक्षं स्पष्टं परोक्षं च अस्पष्टं अनेन जानातीति ज्ञानमितीदं करणभूतं स्वार्थ-

ज्ञत्वसाराात्मकं जीवगुणं ब्रुवंति–कथयंति अर्हदादयः । एतज्ज्ञानमेव प्रत्यक्षं परोक्षं चेति द्विविधं प्रमाणं भवति । तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षणानि तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापनं च सविस्तरं मार्तंडादितर्कशास्त्रेषु द्रष्टव्यं, अत्राहेतुवादरूपे आगमे हेतुवादस्यानधिकारात् ॥ २९५ ॥ अथ ज्ञानभेदानाह–

मं० प्र०–त्रिकालविषयान्–वृत्तवर्त्स्यद्वर्तमानकालगोचरान्, बहुभेदान्–जीवादिज्ञानादिस्थावरादिनानाप्रकारान्, द्रव्याणि–जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाख्यानि, गुणान् ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्यादीन्, स्पर्शरसगंधवर्णादीन् गतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतुत्वादीन्, पर्यायांश्च–स्थावरत्वत्रसत्वादीन्, अणुत्वस्कंधत्वादीन् अर्थव्यंजनभेदानन्यांश्च आत्मा प्रत्यक्षं–स्पष्ट, परोक्ष अस्पष्टं च अनेन जानाति इति ज्ञानमितीदं करणभूतं स्वार्थव्यवसायात्मकमात्मनो गुण ब्रुवंति कथयंति अर्हदादयः । एतद् ज्ञानमेव प्रत्यक्षं परोक्षमिति द्विविधं प्रमाणं भवति तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षण तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापन च सविस्तरं तर्कशास्त्रेषु द्रष्टव्यं । हेतुवादस्यात्राहेतुवादरूपे आगमे अनाधिकारात् ॥२९९॥ अथ ज्ञानभेद प्ररूपयति—

सं० च०–त्रिकाल संबंधी हुए हो है होंहिगे ऐसे जीवादि द्रव्य वा ज्ञानादि गुण वा स्थावरादि पर्याय नाना प्रकार हैं तहां जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ए द्रव्य हैं बहुरि ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व सुख वीर्य आदि वा स्पर्श रस गंध वर्ण आदि वा गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व अवगाहनहेतुत्व वर्तनाहेतुत्व आदि गुण हैं। बहुरि स्थावर त्रस आदि वा अणु स्कंधपना आदि वा अन्य अर्थ व्यंजन आदि भेद लीएं अनेक पर्याय हैं तिनकौं प्रत्यक्ष वा परोक्ष जीव नामा पदार्थ इसकरि जानैं है तातैं याकौं ज्ञान कहिए। 'ज्ञायते अनेनेति ज्ञानं' ऐसी ज्ञान शब्दकी निरुक्ति जाननी। इहां जाननरूप क्रियाका आत्मा कर्ता तहां करणस्वरूप ज्ञान अपने विषयभूत अर्थनिका जाननहारा जीवका गुण है ऐसैं अरहंतादिक कहैं हैं । असाधारण कारणका नाम करण है बहुरि यहु सम्यग्ज्ञान है सोई प्रत्यक्ष वा परोक्षरूप प्रमाण है । जो ज्ञान अपने विषयकौं स्पष्ट विशद जानैं ताकौं प्रत्यक्ष कहिए । जो अपने विषयकौं अस्पष्ट अविशद जानैं ताकौं परोक्ष कहिए। सो इस प्रमाणका स्वरूप वा संख्या वा विषय वा फल वा लक्षण बहुरि ताके अन्यथा वादका निराकरण वा स्याद्वाद मतके प्रमाणका स्थापन विशेषपनैं जैनके तर्क शास्त्र हैं तिनिविषैं विचारना । इहां अहेतुवादरूप आगमविषैं हेतुवादका अधिकार नाहीं तातैं सविशेष न कह्या। हेतुकरि जहां अर्थकौं दृढ कीजिए ताका नाम हेतुवाद है सो न्याय शास्त्रनिविषैं हेतुवाद है इहां तो जिनागम अनुसारि वस्तुका स्वरूप कहनेका अधिकार जानना॥२९९॥ आगैं ज्ञानके भेद कहैं हैं–

पंचेव होंति णाणा मदिसुदओहीमणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो केवलणाणं हवे खइयं ॥ ३०० ॥

पंचैव भवंति ज्ञानानि मतिश्रुतावधिमनश्च केवलं ।
क्षायोपशमिकानि चत्वारि केवलज्ञानं भवेत् क्षायिकं ॥ ३०० ॥

जी० प्र०—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलनामानि सम्यग्ज्ञानानि पंचैव नोनाधिकानि । यद्यपि सामान्यापेक्षया संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानमेकमेव कथितं, तथापि विशेषापेक्षया पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानानि पंचैवेत्युक्तानि इत्यर्थः। तेषु मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि भवंति मतिज्ञानाद्यावरणवीर्यांतरायकर्मद्रव्याणां अनुभागस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावरूपः क्षयः, तेषामेव अनुदयप्राप्तानां सदवस्थारूप उपशमः। क्षयश्चासावुपशमश्च क्षयोपशमः क्षयोपशमे भवानि क्षायोपशमिकानि । अथवा क्षयोपशमः प्रयोजनमेषामिति क्षायोपशमिकानि । तत्तदावरणदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य विद्यमानत्वेऽपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाभावात् अविवक्षा ज्ञातव्या । केवलज्ञानं पुनः क्षायिकमेव भवति केवलज्ञानावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयेण प्रादुर्भूतत्वात् । क्षये भवं, क्षयः प्रयोजनमस्येति वा क्षायिकं । यद्यप्यात्मनः केवलज्ञानं प्रतिबंधकावस्थायां शक्तिरूपेण विद्यमानं तथापि प्रतिबंधकक्षयेणैव तद्व्यक्तिः स्यात् इति व्यक्त्यपेक्षया कार्यत्वसंभवात् क्षायिकमित्युक्तं । आवरणक्षये सति प्रादुर्भवति इति निरुक्तेः तद्व्यक्त्यपेक्षत्वात् ॥ ३०० ॥ अथ मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदानाह—

मं० प्र०—मति श्रुतमवधिर्मनःपर्ययः केवल चेति ज्ञानानि-सम्यग्ज्ञानानि पचैव भवति नोनाधिकानि। यद्यपि सामान्यापेक्षया संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानमेकमेवेत्युक्त तथापि विशेषापेक्षया पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानानि पचैवेत्युच्यते इत्यर्थ । तेषु चत्वारि मतिश्रुतावधिमन पययाख्यानि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि—मतिज्ञानाद्यावरणवीर्यांतरायकर्मद्रव्याणामनुभागस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावः क्षयः, तेषामेवानुदयप्राप्ताना सदवस्था उपशमः, क्षयश्चासो उपशमश्चासौ क्षयोपशम. तत्र भवानि तत्प्रयोजनानि वा क्षायोपशमिकानि तत्तदावरणदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य विद्यमानस्यापि ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाभावादविवक्षा, केवलज्ञानं पुन क्षायिकमेव भवेत् केवलज्ञानावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षये प्रादुर्भूतत्वात् । क्षये भव तत्प्रयोजनं वा क्षायिकं । यद्यप्यात्मनः केवलज्ञानं प्रतिबधकावस्थाया शक्त्या विद्यते तथापि प्रतिबंधकक्षयादेव तद्व्यक्तिर्भवतीति व्यक्त्यपेक्षया कार्यत्वसभवात् क्षायिकमित्युच्यते । आवरणक्षये सति भवति प्रादुर्भवतीति निरुक्तेस्तद्व्यक्त्यपेक्षत्वात् ॥ ३०० ॥ अथ मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदानाह—

स० चं०—मति १ श्रुति २ अवधि ३ मनःपर्यय ४ केवल ५ ए सम्यग्ज्ञान पंच ही हैं। हीन अधिक नाहीं। यद्यपि संग्रहनयरूप द्रव्यार्थिक नय करि सामान्यपनैं ज्ञान एकही है तथापि पर्यायार्थिक नयकरि विशेष कीएं पंचभेद हो हैं तिनिविषैं मति श्रुति अवधि मनःपर्यय ए च्यारि ज्ञान क्षायोपशमिक हैं जातैं मतिज्ञानावरणादिक कर्म वा वीर्यांतराय कर्म ताके अनुभागके जे सर्व घातिया स्पर्धक हैं तिनिका उदय नाही सोई क्षय जानना। बहुरि जे उदय अवस्थाकौं न प्राप्त भए ते सत्तारूप तिष्ठैं हैं सोई उपशम जानना। उपशम वा क्षयकरि उपजै ताकौं क्षायोपशम कहिए अथवा क्षयोपशम है प्रयोजन जिनिका ते क्षायोपशमिक कहिए। यद्यपि क्षायोपशमिक विषैं तिस आवरणके देशघातिया स्पर्धकनिका उदय पाइए है तथापि वह तिस ज्ञानका घात करनेकौं समर्थ नाही है तातैं ताकी मुख्यता न करी। याका उदाहरण कहिए है—अवधिज्ञानावरण कर्म सामान्यपनैं देशघाती है तथापि अनुभागका विशेष कीएं याके केई स्पर्धक सर्वघाती हैं केई स्पर्धक देशघाती हैं तहां जिनिकैं अवधिज्ञान किछू भी नाहीं तिनिकैं सर्वघाती स्पर्धकनिका उदय जानना। बहुरि जिनिके अवधिज्ञान पाइए है अर आवरण उदय पाइए है तहां देश घाती स्पर्धकनिका उदय जानना। बहुरि केवलज्ञान क्षायिक ही है जातैं केवलज्ञानावरण वीर्यांतरायका सर्वथा नाशकरि केवलज्ञान प्रकट हो है! क्षय होतैं उपज्या वा क्षय है प्रयोजन जाका ताकौं क्षायिक कहिए। यद्यपि सावरण अवस्थाविषैं आत्माकैं शक्तिरूप केवल ज्ञान है तथापि व्यक्तरूप आवरणके नाश करि हो है तातैं व्यक्तताकी अपेक्षा केवलज्ञान क्षायिक कह्या जातैं व्यक्त भएं ही कार्य सिद्धि संभवै है॥ ३००॥ आगैं मिथ्याज्ञान उपजनेका कारण वा स्वरूप वा स्वामित्व वा भेद कहैं हैं—

अण्णाणतियं होदि हु सण्णाणतियं खु मिच्छअणउदये।
णवरि विभागं णाणं पंचिंदियसण्णिपुण्णेव॥ ३०१॥

अज्ञानत्रिकं भवति सज्ज्ञानत्रिकं खलु मिथ्यात्वानोदये ।
नवरि विभंगं ज्ञानं पंचेंद्रियसंज्ञिपूर्ण एव ॥ ३०१ ॥

जी० प्र०—यत्सम्यग्दर्शनपरिणतजीवसंबंधिमतिश्रुतावधिसंज्ञं सम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य विशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणं तदेव मिथ्यादर्शनानंतानुबंधिकषायान्यतमोदये सति अतत्त्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसंबंधिमिथ्याज्ञानत्रयं खलु—स्फुटं भवति । नवरीति विशेषोऽस्ति यदवधिज्ञानविपर्ययरूपं विभंगनामकं मिथ्याज्ञानं तत् संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्त एव भवति, नान्यस्मिन् जीवे इति अनेन इतरत् मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानमिति द्वयं एकेंद्रियादिषु पर्याप्तापर्याप्तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिसासादनेषु संभवति इति कथितं भवति । द्वितीयः खलुशब्दः अतिशयेन स्पष्टत्वार्थे स्फुट ॥ ३०१ ॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ज्ञानस्वरूपं निरूपयति—

म० प्र०—यन्मतिश्रुतावधिसंज्ञं सम्यग्ज्ञानदर्शनपरिणतजीवसंबंधिसम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य विशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणं तदेव मिथ्यादर्शनानंतानुबंधिकषायान्यतमोदये सति अतत्त्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसंबंधिमिथ्याज्ञानत्रयं, अज्ञानत्रय खलु—स्फुट भवति । णवरीति प्राकृतभाषायामव्यय विशेषार्थे । यदवधिज्ञानविपर्ययरूपं विभंगाख्यं अज्ञानं तत्संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तके एव भवति नान्यस्मिन् जीवे । अनेन इतरत् मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानमित्यज्ञानद्वय एकेंद्रियादिषु पर्याप्तापर्याप्तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिसासादनेषु संभवति इत्युक्तं भवति । द्वितीयः खलुशब्दः अतिशयेन स्पष्टत्वार्थे॥३०१॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ज्ञानस्वरूपमाह—

स० चं०—जे सम्यग्दृष्टीकैं मति श्रुति अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान हैं, संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त वा निर्वृत्ति अपर्याप्त जीवकैं विशेष ग्रहणरूप ज्ञेयाकार सहित उपयोग रूप है लक्षण जिनिका असे हैं तेई तीनों मिथ्यात्व वा अनंतानुबंधी कोई कषायके उदय होतैं तत्त्वार्थका अश्रद्धानरूप परिणया जीवकैं तीनो मिथ्याज्ञान हो है । कुमति कुश्रुति विभंग ए नाम हो हैं । णवरि असा प्राकृतभाषाविषैं विशेष अर्थकौं लीएं अव्यय जानना । सो विशेष यहु जो अवधि ज्ञानका विपर्ययरूप होना सोई विभंग कहिए सो विभंग अज्ञान सैनी पंचेंद्री पर्याप्त हीकैं हो है याहीतैं कुमति कुश्रुति एकेंद्रिय आदि पर्याप्त अपर्याप्त सर्व मिथ्यादृष्टी जीवनिकैं अर सासादन गुणस्थानवर्ती सर्व जीवनिकैं संभवै है ॥ ३०१ ॥ आगैं सम्यग्दृष्टि नामा तीसरा गुणस्थानविषैं ज्ञानका स्वरूप कहे हैं—

मिस्सुदये संमिस्सं अण्णाणतियेण णाणतियमेव ।

संजमविसेससहिए मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥ ३०२ ॥

मिश्रोदये संमिश्रं अज्ञानत्रयेण ज्ञानत्रयमेव ।
संयमविशेषसहिते मनःपर्ययज्ञानमुद्दिष्टं ॥ ३०२ ॥

जी० प्र०—मिश्रोदये-सम्यक्मिथ्यात्वकर्मोदये सति अज्ञानत्रयेण सह सम्यग्ज्ञानत्रयमेव सम्मिश्रं भवति अशक्यविवेचनत्वेन सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमिति व्यपदेशभाग्भवति । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वर्तमानं ज्ञानत्रयं न केवलं सम्यग्ज्ञानं, न केवलं मिथ्याज्ञानं अपि किंतु उभयात्मकश्रद्धानवत् उभयात्मकत्वेन मिथ्याज्ञानसंमिश्रं सम्यग्ज्ञानं भवति इत्याचार्यैः कथितं ज्ञातव्यं । मनःपर्ययज्ञानं तु संयमविशेषसहितेष्वेव प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्यंतेषु सप्तगुणस्थानेषु तपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामविशिष्टेषु संभवति नेतरदेशसंयतादिषु गुणस्थानेषु तथाविधतपोविशेषाभावात् ॥ ३०२ ॥ अथ मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणं गाथात्रयेणाह—

म० प्र०—मिश्रस्य-सम्यग्मिथ्यात्वकर्मणः, उदये सति अज्ञानत्रयेण संमिश्रमेव सज्ज्ञानत्रयं सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमिति व्यपदेशार्हं भवति । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वर्तमान ज्ञानत्रयं न केवलं सम्यग्ज्ञानमेव नापि केवलं मिथ्याज्ञानमेव किंतु उभयात्मकश्रद्धानवत् उभयात्मकत्वेन ज्ञानमपि संमिश्रमिति युक्तमुक्तमाचार्यैः । मनःपर्ययज्ञानं पुनः संयमविशेषसहिते प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्यंततपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामे सभवति नेतरस्मिन् देशसंयतादौ तत्र तादृशतपोविशेषाभावादिति पूर्वाचार्यैरुद्दिष्टं ॥ ३०२ ॥ अथ मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणं गाथात्रयेण प्ररूपयति—

स० चं०—मिश्र कहिए सम्यग्मिथ्यात्व नामा मोहनीय कर्मकी प्रकृति ताके उदय होतैं तीनौं अज्ञानकरि मिल्या तीनौं सम्यग्ज्ञान इहां हो हैं जातैं जुदा कीया जाता नाहीं तातैं सम्यग्मिथ्यामति १ सम्यग्मिथ्याश्रुत २ सम्यग्मिथ्या अवधि ३ ऐसैं इहां नाम हो है। जैसैं इहां एक कालविषैं सम्यग्रूप वा मिथ्यारूप मिल्या हूवा श्रद्धान पाइए है तैसैं ही ज्ञानरूप वा अज्ञानरूप मिल्या हूवा ज्ञान पाइए है । इहां न तौ केवल सम्यग्ज्ञान ही है न केवल मिथ्याज्ञान है, मिथ्याज्ञान करि मिल्या सम्यग्ज्ञानरूप मिश्र जानने । बहुरि मनःपर्यय ज्ञान विशेष संयमका धारक छठा गुणस्थानतैं बारह्वां गुणस्थान पर्यंत सात गुणस्थानवर्ती तप विशेष करि वृद्धिरूप विशुद्धताके धारी महामुनि तिनहीकैं पाइए है जातैं अन्य देश संयतादिविषैं तैसा तपका विशेष न संभवै है ॥३०२॥ आगैं मिथ्याज्ञानका विशेष लक्षण तीनि गाथानिकरि कहैं हैं—

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु विणुवएसकरणेण ।
जा खलु पवट्टए मइ मइ अण्णाणंतिणं वेंति ॥ ३०३ ॥

विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु विनोपदेशकरणेन ।
या खलु प्रवर्तते मतिः मत्यज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥ ३०३ ॥

जी० प्र०—विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु जीवमारणबंधनहेतुषु या मतिः परोपदेशकरणेन विना प्रवर्तते तदिद मत्यज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवंति । तत्र परस्परसंयोगजनितमारणशक्तिविशिष्टं तैलकर्पूरादिद्रव्यं विषं, सिंहव्याघ्रादिक्रूरमृगधारणार्थमभ्यंतरीकृतछागादिजीवं काष्ठादिरचितं तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंपुटीकरणदक्षं सूत्रकीलितं यंत्रं, मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्थमवष्टब्धं काष्ठादिमयं कूटं, तित्तिरलावकहरिणादिधारणार्थविरचित ग्रंथिविशेषकलितरज्जुमय जालं पंजरः, गजोष्ट्रादिधारणार्थमवष्टब्धो गर्तमुखकीलितग्रंथिविशिष्टवारी रज्जुरचनाविशेषो बंधः । आदिशब्देन पक्षिपक्षलगनार्थं दीर्घदंडाग्रप्रक्षिप्तपिप्पलनिर्यासादिचिक्कणबंधग्रहहरिणादिशृंगाग्रलग्नसूत्रग्रंथिविशेषादिश्च गृह्यते । उपदेशपूर्वकत्वे श्रुतज्ञानत्वप्रसंगात् । उपदेशक्रियां विना यदीदृशमूहापोहविकल्पात्मक हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारण आर्तरौद्रध्यानकारण शल्यदंडगारवसंज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकरणं च इंद्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूपं मिथ्याज्ञानं तन्मत्यज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥ ३०३ ॥

मं० प्र०—विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु जीवमारणबंधनहेतुषु या मतिः परोपदेशकरणेन विना प्रवर्तते तदिद मत्यज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवंति । तत्र परस्परसंयोगजनितमारणशक्तिविशिष्टतैलकर्पूरादि द्रव्य विष । सिंहव्याघ्रादिधरणार्थमभ्यतरीकृतछागादिजीवं काष्ठादिरचितं, तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंपुटीकरण दक्षसूत्रकीलितं यत्र । मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्थमवष्टब्ध काष्ठादिमयं कूटं । तित्तिरलावकहरिणादिधरणार्थं विरचित ग्रंथिविशेषकलितरज्जुमय जाल पंजरः । उष्ट्रगजादिधरणार्थमवष्टब्धगर्तमुखकीलितग्रंथिविशिष्टवारी रज्जुरचनाविशेषो बंधः । आदिशब्देन पक्षिपक्षलगनार्थं दीर्घदंडाग्रप्राक्षितपिप्पलनिर्यासादिबंधग्रहहरिणादिशृंगलग्नसूत्रग्रंथिविशेषादिश्च गृह्यते । उपदेशपूर्वकत्वे श्रुताज्ञानत्वप्रसगात् । उपदेशक्रिया विना यदीदृशं ऊहापोहविकल्पात्मक हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारणमार्तरौद्रध्यानकारण, शल्यदंडगारवसंज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकारणं च इंद्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूप मिथ्याज्ञान तन्मत्यज्ञान निश्चेतव्य ॥ ३०३ ॥

स० चं०—परस्पर वस्तुका संयोगकरि मारनेकी शक्ति जिस विषैं होइ ऐसा तैल कर्पूरादिक वस्तु सो विष कहिए । बहुरि सिंह व्याघ्रादि क्रूर जीवनिके धारनके अर्थि जाकैं अभ्यंतर छेला आदि रखिए अर तिसविषैं तिस क्रूर जीवकौं पाव धरत ही किवाड़ जुडि जाय ऐसा सूत्रकी कलकरि संयुक्त होइ काष्ठादिक करि रच्या

हूवा हो है सो यंत्र कहिए। बहुरि माछला काछिवा मूसा कोल इत्यादिक जीवनिकै पकड़नेके निमित्त काष्ठादिकमय बने सो कूट कहिए। बहुरि तीतर लवा हिरण इत्यादि जीवनिके पकड़नेके निमित्त फंदकौं लीएं जो जेरिका जाल बनै सो पींजर कहिए। बहुरि हाथी ऊंट आदिके पकड़ने निमित्त खाडाके ऊपरि गांठिका विशेष लीएं जेवराकी रचनारूप विशेष सो बंध कहिए। आदि शब्दकरि पंखीनिका पांख लगने निमित्त ऊंचे दंडके ऊपरि चिगटास लगावना सो बंध वा हरिणादिकका सींगकै अग्रभाग सूत्रकी गांठि देना इत्यादि विशेष जानने ऐसें जीवनिके मारणे बांधनके कारणरूप कार्यनिविषैं अन्यके उपदेश विना ही स्वयमेव बुद्धि प्रवर्तै सो कुमतिज्ञान कहिए। उपदेशतैं प्रवर्तै तो कुश्रुतज्ञान हो जाइ। तातैं विना ही उपदेश ऐसा विचाररूप विकल्प लीएं हिंसा अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रहका कारण आर्त रौद्रध्यानकौं कारण शल्य दंड गारव आदि अशुभोपयोगोंका कारण जो मन इंद्रियकरि विशेष ग्रहणरूप मिथ्याज्ञान प्रवर्तै सो मति अज्ञान सर्वज्ञदेव कहैं हैं ॥ ३०३ ॥

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादिउवएसा ।
तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणंतिणं बेंति ॥ ३०४ ॥

आभीतमासुरक्षं भारतरामायणाद्युपदेशाः ।
तुच्छाः असाधनीयाः श्रुताज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ॥ ३०४ ॥

जी० प्र०—तुच्छाः परमार्थशून्याः, असाधनीयाः अत एव सत्पुरुषाणामनादरणीयाः परमार्थशून्यत्वात् आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशाः तत्प्रबंधाः तेषां श्रवणादुत्पन्नं यज्ज्ञानं तदिदं श्रुताज्ञानमिति ब्रुवंत्याचार्याः। आसमंताद्भीताः आभीता चोराः तच्छास्त्रमप्याभीतं। असवः प्राणाः तेषां रक्षा येभ्यः ते असुरक्षाः तलवराः तेषां शास्त्रमासुरक्षं। कौरवपांडवीयपंचभर्तृकैकभार्यावृत्तांतयुद्धव्यतिकरादिचर्चाव्याकुलं भारतं, सीताहरणरामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचितं रामायणं। आदिशब्दाद्यन्मिथ्यादर्शनदूषितसर्वथैकांतवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबंधभुवनकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्मत्रिदंडजटाधारादितपःकर्मषोडशपदार्थषट्पदार्थभावनाविधिनियोगभूतचतुष्ट-

यपंचविंशतितत्त्वब्रह्माद्वैतचतुरार्यसत्यविज्ञानाद्वैतसर्वशून्यत्वादिप्रतिपादकागमाभासजनितं श्रुतज्ञानाभासं तत्तत्सर्वं श्रुताज्ञानमिति निश्चेतव्यं, दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वात् ॥ ३०४ ॥

मं० प्र०—तुच्छाः–परमार्थशून्याः, असाधनीयाः–अत एव सतामनादरणीयाः आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशास्तत्प्रबंधाः तेषां श्रवणादुत्पन्नं यज्ज्ञानं तदिदं श्रुताज्ञानमिति ब्रुवंत्याचार्याः । आ- समंताद् भीता आभीता --चोराः, तच्छास्त्रमप्याभीतं, असुरक्षाः–चोराद्यपायेभ्यो जीवरक्षाः–तलवरा तेषां शास्त्रमासुरक्षं, कौरवपाडवीयपंचभर्तृकैकभार्यावृत्तयुद्धव्यतिकरादिचर्चान्याकुलं भारतं, सीताहरणरामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचितं रामायणं । आदिशब्देन यदन्मिथ्यादर्शनदूषितसर्वथैकांतवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबंधेषु नकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्मत्रिदंडजटाधारणादितपस्कर्मषोडशपदार्थषट्पदार्थभावनाविधिनियोगभूतचतुष्टयपंचविंशतितत्त्वब्रह्माद्वैतचतुरार्यसत्याविज्ञानाद्वैतसर्वशून्यत्वादिप्रतिपादकागमाभासजनितं श्रुतज्ञानाभासं तत्तत्सर्वं श्रुताज्ञानमिति निश्चेतव्यं दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वात् ॥ ३०४ ॥

स० चं०—आभीताः कहिए समस्तपनैं भयवान जे चौरादिक तिनिका शास्त्र सो आभीत हैं । बहुरि असु जे प्राण तिनिकी चौरादिकतैं रक्षा जिनितैं होइ ऐसे कोटपाल राजादिक तिनिका जो शास्त्र सो असुरक्ष है । बहुरि कौरव पांडवोंका युद्धादिक वा एक भार्याके पंचभर्ता इत्यादिक विपरीत कथन जिसविषैं पाइए ऐसा शास्त्र सो भारत है । बहुरि रामचंद्रकैं वानरोंकी सेना रावण राक्षस है तिनिका परस्पर युद्ध होना इत्यादिक अपनी इच्छाकरि रच्या हूवा शास्त्र सो रामायण है आदि शब्दतैं जो एकांत वादकरि दूषित अपनी इच्छाके अनुसारि रच्या हूवा शास्त्र जिनिविषैं हिंसारूप यज्ञादिक गृहस्थका कर्म है जटा धारण त्रिदंडधारणादिरूप तपस्वीका कर्म है सोलह पदार्थ हैं वा छह पदार्थ हैं वा भावनाविधि नियोग भूत ए च्यारि हैं वा पचीस तत्त्व है वा अद्वैत ब्रह्मका स्वरूप है वा सर्व शून्य है इत्यादि वर्णन पाइए है ते शास्त्र 'तुच्छाः' कहिए परमार्थतैं रहित हैं बहुरि 'असाधनीयाः' कहिए प्रमाण करने योग्य नाहीं याहीतैं संत पुरुषनिकौं आदरने योग्य नाहीं ऐसैं शास्त्राभ्यासजनित भया जो श्रुतज्ञानकीसी आभासा लीएं कुज्ञान सो श्रुत अज्ञान कहिए । जातैं प्रमाणीक इष्ट अर्थतैं विपरीत अर्थ याका विषय हो है । इहां मति श्रुत अज्ञानका वर्णन उपदेश लीएं किया है अर सामान्यपनैं तौ स्वपर भेद विज्ञानरहित इंद्रिय मन जनित जानना सो सर्व कुमति कुश्रुत है ॥ ३०४ ॥

विवरीयमोहिणाणं खओवसमियं च कम्मबीजं च ।
वेभंगोत्ति पउच्चइ समत्तणाणीण समयम्हि ॥ ३०५ ॥

विपरीतमवधिज्ञानं क्षायोपशामिक च कर्मबीजं च ।
विभंग इति प्रोच्यते समाप्तज्ञानिनां समये ॥ ३०५ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादर्शनकलंकितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणीयवीर्यांतरायक्षयोपशमजनितं द्रव्यक्षेत्रकालभावसीमाश्रितं रूपिद्रव्यविषयं विपरीतं आप्तागमपदार्थेषु विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्योः तीव्रकायक्लेशद्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्यय, चशब्दाद्देवनारकगत्योर्भवप्रत्ययं च मिथ्यात्वादिकर्मबंधबीजं, चशब्दात् कदाचिन्नारकादिगतौ पूर्वभवदुराचारसंचितदुष्कर्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्मबीजं वा अवधिज्ञानं विभंग इति समाप्तज्ञानिनां केवलज्ञानिना समये स्याद्वादशास्त्रे प्रोच्यते कथ्यते। नारकाणां विभंगज्ञानेन वेदनाभिभवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसंधानप्रत्ययबलात् सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीते.। विशिष्टस्य अवधिज्ञानस्य भंगः—विपर्ययः विभंग इति निरुक्तिसिद्धार्थस्यैव अनेन प्ररूपितत्वात् ॥ ३०५ ॥ अथ नवभिर्गाथाभि. स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य मतिज्ञान प्ररूपयति[१]—

मं० प्र०—मिथ्यादर्शनकलकितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमादुत्पन्नं द्रव्यक्षेत्रकालभावसीमाश्रित रूपिद्रव्यविषयं विपरीतं आप्तागमपदार्थेषु विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्योः तीव्रकायक्लेशद्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्ययं, चशब्दाद्देवनारकगत्योर्भवप्रत्ययं च मिथ्यात्वादिकर्मबंधबीज, चशब्दात् कचित् नारकादौ पूर्वभवदुराचारसंचितदुष्कर्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्मबीजं चावधिज्ञानं विभंगं इति समाप्तज्ञानिनां—केवलज्ञानिनां समये प्रोच्यते नारकाणा विभंगज्ञानेन वेदनाभिभवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसधानप्रत्ययबलात्सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीतेः। विशिष्टस्य अवधिज्ञानस्य भगः—विपर्ययः, विभग इति निरुक्तिसिद्धार्थस्यैव अनेन प्ररूपितत्वात् ॥ ३०५ ॥ अथ नवभिर्गाथाभिः स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयानाश्रित्य मतिज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—मिथ्यादृष्टी जीवनिकैं अवधिज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं उत्पन्न भया ऐसा द्रव्यक्षेत्र काल भावकी मर्यादा लीएं रूपी पदार्थ है विषय जाका ऐसा आप्त आगम पदार्थनिविषैं विपरीतका ग्राहक सो विभंग नाम पावै है। वि कहिए विशिष्ट जो अवधिज्ञान ताका भंग कहिए विपरीत भाव सो वि-

[१] 'अथ स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य गाथानवकेन मतिज्ञानमाह।' इति ब पुस्तके पाठ।

भंग कहिए सो तिर्यंच मनुष्य गतिविषैं तौ तीव्र काय क्लेशरूप द्रव्य संयमादिककरि उपजे है सो गुण प्रत्यय हो है। बहुरि देव नरकगतिविषैं भव प्रत्यय हो है सो सब ही विभंगज्ञान मिथ्यात्वादि कर्मबंधका बीज कहिए कारण है चकारतैं कदाचित् नारकादिक गतिविषैं पूर्वभवसंबंधी दुराचारके दुःख फलकौं जानि कहीं सम्यग्दर्शन ज्ञानरूप धर्मका भी बीज हो है ऐसा विभंगज्ञान समासज्ञानी जो संपूर्ण ज्ञानी केवली तिनिके मतविषैं कह्या है ॥ ३०५ ॥ आगैं स्वरूप वा उपजनेका कारण वा भेद वा विषय इनिका आश्रयकरि मतिज्ञानका निरूपण नव गाथानिकरि कहैं हैं—

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं ।
अवगहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं ॥ ३०६ ॥

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं ।
अवग्रहेहावायधारणका भवंति प्रत्येकं ॥ ३०६ ॥

जी० प्र०—स्थूलवर्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थः अभिमुखः, अस्येंद्रियस्य अयमेवार्थः इत्यवधारितो नियमितः। अभिमुखश्चासौ नियमितश्चासौ अभिमुखनियमितः। तस्यार्थस्य बोधनं ज्ञानं आभिनिबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः। अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकमिति स्वार्थिकेन ठण्प्रत्ययेन सिद्धं भवति। स्पर्शनादींद्रियाणां स्थूलादिष्वेव स्पर्शादिषु स्वार्थेषु ज्ञानजननशक्तिसंभवात्। सूक्ष्मांतरितदूरार्थेषु परमाणुशंखचक्रवर्तिमेर्वादिषु तेषां ज्ञानजननशक्तिर्न संभवतीत्यर्थः। अनेन मतिज्ञानस्य स्वरूपमुक्तं। कथंभूतं तत्? अनिंद्रियेंद्रियजं—अनिंद्रियं मनः, इंद्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि। तेभ्यः जातमुत्पन्नं अनिंद्रियेंद्रियजं, अनेन इंद्रियमनसोर्मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं दर्शितं। एवं च कारणभेदात्कार्यभेद इति मतिज्ञानं षट्प्रकारमुक्तं। पुनः प्रत्येकमेकैकस्य मतिज्ञानस्य अवग्रहः ईहा अवायः धारणा चेति चत्वारो भेदा भवंति। तद्यथा—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोवायः मानसी धारणा इति चत्वारः। स्पर्शनजोऽवग्रहः, स्पर्शनजा ईहा स्पर्शनजोवायः स्पर्शनजा धारणा। रसनजोऽवग्रहः रसनजा ईहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा। घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजा ईहा घ्राणजोवायः घ्राणजा धारणा ४। चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषीहा चाक्षुषोवायः चाक्षुषी धारणा ४। श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजा ईहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा। एवं मतिज्ञानं चतुर्विंशतिविकल्पं भवति अवग्रहादीनां लक्षणं उत्तरत्र ग्रंथकारः स्वयमेव वक्ष्यति॥ ३०६ ॥

मं० प्र०—स्थूलवर्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थः अभिमुखः । अस्येंद्रियस्यायमर्थ इत्यवधारितो नियमितः । अभिमुखश्चासौ नियमितश्चासौ अभिमुखनियमितः । तस्यार्थस्य बोधनं—ज्ञानं, आभिनिबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः । अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकमिति स्वार्थिकेन ठणप्रत्ययेन सिद्धं । स्पर्शनादींद्रियाणां स्थूलादिष्वेव स्पर्शादिषु स्वार्थेषु ज्ञानजननशक्तिसंभवात् । सूक्ष्मांतरितदूरार्थेषु परमाणुशंखचक्रवर्तिमेर्वादिषु तेषां ज्ञानजननशक्त्यसंभवात् । अनेन मतिज्ञानस्य स्वरूपमुक्तं । कथंभूतं तत् ? अनिंद्रियेंद्रियजं—अनिंद्रियं—मनः, इंद्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि तेभ्यो जातं—उत्पन्नं । अनेन इंद्रियमनसोर्मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं दर्शितं । एवं च कारणभेदात्कार्यभेद इति मतिज्ञानं षट्प्रकारमुक्तं । पुनः प्रत्येकमेकैकस्य मतिज्ञानस्य अवग्रहः, ईहा अवायः धारणा चेति चत्वारो भेदा भवंति । तद्यथा—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोऽवायः मानसी धारणा । ४ । स्पर्शनजोवग्रहः स्पर्शनजा ईहा स्पर्शनजोऽवायः स्पर्शनजा धारणा । ४ । रसनजोऽवग्रहः रसनजा ईहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा । ४ । घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजा ईहा घ्राणजोऽवायः घ्राणजा धारणा । ४ । चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषी ईहा चाक्षुषोऽवायः चाक्षुषी धारणा । ४ । श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजा ईहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा ।४। एवं मतिज्ञानं चतुर्विंशतिविकल्पं भवति अवग्रहादीनां लक्षणमुत्तरत्र ग्रंथकारः स्वयमेव वक्ष्यति ॥ ३०६ ॥

स० चं०—स्थूलवर्तमान जिस क्षेत्रविषैं इंद्रियमनकी प्रवृत्ति होइ तहां तिष्ठता ऐसा जो इंद्रिय मनके ग्रहण योग्य पदार्थ सो अभिमुख कहिए बहुरि इस इंद्रियका यहु ही विषय है ऐसा नियमरूप जो पदार्थ सो नियमित कहिए ऐसैं पदार्थका जो जानना सो अभिनिबोध कहिए। अभि कहिए अभिमुख अर 'नि' कहिए नियमित जो अर्थ ताका निबोध कहिए जानना ऐसा आभिनिबोध सोई आभिनिबोधिक है इहां स्वार्थविषैं ठण् प्रत्यय आया है सो यह आभिनिबोधिक मतिज्ञानका नाम जानना। इंद्रियनिकैं स्थूल रूप स्पर्शादिक अपने विषयके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति है बहुरि सूक्ष्म अंतरित दूर पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति नाहीं है। तहां सूक्ष्म पदार्थ तौ परमाणु आदिक, अंतरित पदार्थ अतीत अनागत काल संबंधी, दूर पदार्थ मेरु गिरि स्वर्ग नरक पटल आदि दूर क्षेत्रवर्ती जानने ऐसैं मतिज्ञानका स्वरूप कह्या है। सो मतिज्ञान कैसा है ? अनिंद्रिय जो मन अर इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इनिकरि उपजै है। मतिज्ञान उपजनेके कारण इंद्रिय अरु मन हैं। कारणके भेदतैं कार्यविषैं भी भेद कहिए तातैं मतिज्ञान छह प्रकार है तहां एक एकके च्यारि च्यारि भेद हैं अवग्रह ईहा अवाय धारणा। सो मनतैं वा स्पर्शनतैं वा रसनातैं वा घ्राणतैं वा चक्षुतैं वा श्रोत्रतैं ए अवग्रहादि च्यारि

च्यारि उत्पन्न होंइ तातैं चौबीस भेद भए। अवग्रह ईहा अवाय धारणाका लक्षण शास्त्र कर्ता आगैं स्वयमेव कहैगा।

वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे।
कमसो ते वावरिदा पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

व्यंजनार्थावग्रहभेदौ हि भवतः प्राप्ताप्राप्तार्थे।
क्रमशस्तौ व्यापृतौ प्रथमो नहि चक्षुर्मनसोः ॥ ३०७ ॥

जी० प्र०—मतिज्ञानविषयो द्विविधः व्यंजनं अर्थश्चेति। तत्र इद्रियैः प्राप्तो विषयः व्यजनं तैरप्राप्तः अर्थः। तयोः प्राप्ताप्राप्तयोरर्थयोः क्रमशः यथासख्य व्यंजनार्थावग्रहभेदौ तौ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवतः। इंद्रियैः प्राप्तार्थविशेषग्रहणं व्यंजनावग्रहः। तैरप्राप्तार्थविशेषग्रहणं अर्थावग्रह इत्यर्थः। व्यंजनं—अव्यक्तं शब्दादिजातं इति तत्त्वार्थविवरणेषु प्रोक्तं कथमनेन व्याख्यानेन सह संगतमिति चेदुच्यते विगतं—अंजनं—अभिव्यक्तिर्यस्य तद्व्यजनं। व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं अंजु गतिव्यक्तिम्रक्षणेष्विति व्यक्तिम्रक्षणार्थयोर्ग्रहणात्। शब्दाद्यर्थः श्रोत्रादींद्रियेण प्राप्तोऽपि यावन्नाभिव्यक्तस्तावद् व्यंजनमित्युच्यते एकवारजलकणसिक्तनूतनशरावबत्। पुनरभिव्यक्तौ सत्यां स एवार्थो भवति। यथा पुनः पुनर्जलकणसिच्यमाननूतनशरावः अभिव्यक्तसेको भवति। अतः कारणात् चक्षुर्मनसोऽप्राप्ते विषये प्रथमो व्यंजनावग्रहो नास्ति। चक्षुर्मनसी स्वविषयमर्थं प्राप्यैव तत्र ज्ञान जनयतः, इति नैयायिकादीनां मतं स्याद्वादतर्कग्रंथेषु बहुधा निराकृतमित्यत्राहेतुवादे आगमांशे नोपक्रम्यते। व्यजनरूपे विषये स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रैः चतुर्भिरिंद्रियैः अवग्रह एक एवोत्पद्यते नेहादयः। ईहादीनां ज्ञान नां देशसर्वाभिव्यक्तौ सत्यामेव उत्पत्तिसंभवात्। तदा तद्विषयस्य अव्यक्तरूपव्यंजनत्वाभावात्। इति व्यजनावग्रहाश्चत्वार एव ॥ ३०७ ॥

मं० प्र०—मतिज्ञानविषयो द्विविध—व्यंजनमर्थश्चेति। तत्र इंद्रियैः प्राप्तो विषयो व्यजनं। तैरप्राप्तोऽर्थः। तयोः प्राप्ताप्राप्तयोरर्थयोः क्रमशः—यथासंख्यं व्यंजनार्थावग्रहभेदौ तौ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवतः। इंद्रियैः प्राप्तार्थविशेषग्रहणं व्यंजनावग्रहः। तैरप्राप्तार्थविशेषग्रहणमर्थावग्रहः इत्यर्थः। व्यंजनमव्यक्त शब्दादिजात इति तत्त्वार्थविवरणेषु प्रोक्तं कथमनेन व्याख्यानेन सह सगतमिति चेदुच्यते—विगतमंजनं—अभिव्यक्तिर्यस्य तद् व्यंजनं। व्यज्यते—म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं इति च व्यक्तिम्रक्षणयोर्ग्रहणात्। शब्दादिकं श्रोत्रादिना इंद्रियेण प्राप्तमपि यावत् नाभिव्यक्तं तावदेव व्यजनमित्युच्यते एकवारजलकणसिक्तनूतनशरावबत्। पुनरभिव्यक्तौ सत्या तदेवार्थो भवति यथा पुनः पुनर्जलकणसिच्यमाननूतनशरावोऽभिव्यक्तसेको भवति अत कारणात् चक्षुर्मनसोरप्राप्ते विषये प्रथमो

व्यजनावग्रहो नास्ति । चक्षुर्मनश्च स्वविषयमर्थं प्राप्यैव तत्र ज्ञानं जनयत इति नैयायिकादीनां मतं स्याद्वादतर्कशास्त्रेषु बहुधा निराकृतमित्यत्राहेतुवादे आगमाश्रे न प्रक्रम्यते । व्यंजने विषये स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रैश्चतुर्भिरिंद्रियैरवग्रह एक एवोत्पद्यते नेहादयः, ईहादीनां ज्ञानानां देशसर्वाभिव्यक्तौ सत्यामेवोत्पत्तिसंभवात् तत्काले तद्विषयस्य अव्यक्तरूपव्यंजनत्वाभावात् इति व्यजनावग्रहाश्चत्वार एव ॥ २०७ ॥

स० चं०—मतिज्ञानका विषय दोय प्रकार एक व्यंजन एक अर्थ। तहां जो विषय इंद्रियनिकरि प्राप्त होइ स्पर्शित होइ सो व्यंजन कहिए । जो प्राप्त न होइ सो अर्थ कहिए। तिनिका विशेष ग्रहणरूप व्यंजनावग्रह अर अर्थावग्रह भेद प्रवर्तै है। इहां प्रश्न–जो तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकाविषैं तौ अर्थ ऐसा कीया है जो व्यंजन नाम अव्यक्त शब्दादिकका है इहां प्राप्त अर्थकौं व्यंजन कह्या सो कैसैं है? ताका समाधान–व्यंजन शब्दके दोऊ अर्थ हो हैं 'विगतं अंजनं व्यंजनं' दूरि भया है अंजन कहिए व्यक्तभाव जाकैं सो व्यंजन कहिए। सो तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकाविषैं तौ इस अर्थका मुख्य ग्रहण कीया है 'अर व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं' जो प्राप्त होइ ताकौं व्यंजन कहिए सो इहां यहु अर्थ मुख्य ग्रहण कीया है जातैं अंजु धातु गति व्यक्ति म्रक्षण अर्थविषैं प्रवर्तै है तातैं व्यक्ति अर्थका अर म्रक्षण अर्थका ग्रहण करनेतैं कर्णादिक इंद्रियनिकरि शब्दादिक अर्थ प्राप्त हूवे भी यावत् व्यक्त न होइ तावत् व्यंजनावग्रह है व्यक्त भए अर्थावग्रह हो है जैसैं नवा माटीका शरावा जलकी बूंदनिकरि सींचिए तहां एक दोय बार आदि जलकी बूंद परैं व्यक्त न होइ शोषित होइ जाय बहुतवार जलकी बूंद परैं व्यक्त होइ तैसैं कर्णादिककरि प्राप्त हूवा जो शब्दादिक तिनिका यावत् व्यक्तरूप ज्ञान न होइ जो मैंने शब्द सुन्या ऐसा व्यक्त ज्ञान न होइ तावत् व्यंजनावग्रह कहिए। बहुरि बहुत समय पर्यंत इंद्रिय अर विषयका संयोग रहैं व्यक्तरूपज्ञान भएं अर्थावग्रह कहिए बहुरि नेत्र इंद्रिय अर मन ए दूरहीतैं पदार्थकौं जानैं हैं तातैं इनि दोऊनिकैं व्यंजनावग्रह नाहीं अर्थावग्रह ही है। इहां प्रश्न -जैसैं कर्णादिककरि दूरितैं शब्दादिक जानिए है तैसैं ही नेत्रकरि वर्ण जानिए है, वाकौं प्राप्त कह्या अर याकौं अप्राप्त कह्या सो कैसैं हैं? ताका समाधान-दूरि जो शब्द हो है ताकौं यहु नाहीं जानैं है जो दूरि भया शब्द ताके निमित्ततैं आकाशविषैं जे अनेक स्कंध तिष्ठै हैं ते शब्दरूप परिणए है तहां कर्ण

इंद्रियके समीपवर्ती भी स्कंध शब्दरूप परिणए हैं सो तिनिका कर्ण इंद्रियकरि स्पर्श भया है तब शब्दका ज्ञान हो है। ऐसैं ही दूरि तिष्ठता सुगंध दुर्गंध वस्तुके निमित्ततैं पुद्गल स्कंध तत्काल तद्रूप परिणवे हैं तहां जो नासिका इंद्रियके समीपवर्ती स्कंध परिणए हैं तिनिके स्पर्शतैं गंधका ज्ञान हो है ऐसैं ही अग्न्यादिकके निमित्ततैं पुद्गल स्कंध उष्णादिरूप परिणवे हैं तहां जो स्पर्शन इंद्रियके समीपवर्ती स्कंध परिणए हैं तिनिके स्पर्शतैं स्पर्श ज्ञान हो है ऐसैं ही आम्लादि वस्तुके निमित्ततैं स्कंध तद्रूप परिणवे है तहां रसना इंद्रियके समीपवर्ती जो स्कंध परिणए तिनिके संयोगतैं रसका ज्ञान हो है। बहुरि यहु श्रुतज्ञानके बलकरि जाके निमित्ततैं शब्द आदि भए ताकौं जानि ऐसा मानैं है कि मैं दूर वर्ती वस्तुकौं जान्या ऐसैं दूरवर्ती वस्तुके जाननेविषैं भी प्राप्त होना सिद्ध भया अर समीपवर्तीकौं तो प्राप्त होकर जानैं ही है। इहां शब्दादिक परमाणु अर कर्णादिक इंद्रिय परस्पर प्राप्त होंइ अर यावत् जीवकैं व्यक्त ज्ञान न होइ तावत् व्यंजनावग्रह है व्यक्तज्ञान भएं अर्थावग्रह हो है। बहुरि मन अर नेत्र दूरिहीतैं जाने हैं ऐसा नाहीं जो शब्दादिककी ज्यों जानैं तातैं पदार्थ तो दूरि तिष्ठे है ही जब इननैं ग्रहे तब व्यक्त ही ग्रहे तातैं व्यंजनावग्रह इनि दोऊनिकैं नाहीं अर्थावग्रह ही है। उक्तं च–

पुट्ठं सुणेदि सद्दं अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं।
गंधं रसं च फासं बद्धं पुट्ठं वियाणादि ॥ १ ॥

बहुरि नैयायिकमतवाले ऐसा कहैं हैं--मन अर नेत्र भी प्राप्त होइकरि ही वस्तुकौं जाने हैं ताका निराकरण जैन न्यायके शास्त्रनिविषैं अनेक प्रकार कीया है। बहुरि व्यंजन जो अव्यक्त शब्दादिक तिनिविषैं स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इंद्रियनिकरि केवल अवग्रह हो है ईहादिक न हो हैं जातैं ईहादिक तो एकदेश वा सर्वदेश व्यक्त भएं ही हो हैं। व्यंजन नाम अव्यक्तका है तातैं च्यारि इंद्रियनिकरि व्यंजनावग्रहके च्यारि भेद हैं ॥ ३०७ ॥

विसयाणं विसईणं संजोगाणंतरं हवे णियमा।

अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा ॥ ३०८ ॥

विषयाणां विषयिणां संयोगानंतरं भवेन्नियमात्।
अवग्रहज्ञानं गृहीते विशेषाकांक्षा भवेदीहा ॥ ३०८ ॥

जी० प्र०—विषयाणां–अर्थानां, विषयिणां इंद्रियाणां च संयोगः–योग्यदेशावस्थानरूपसंबंध तस्मिन् जाते सति अनंतरं-तदनंतरमेव वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यस्य निर्विकल्पग्रहणमिदमिति प्रकाशरूपं दर्शनं नियमादुत्पद्यते-नियमाज्जायते। अनंतरं तदनंतरं दृष्टस्यार्थस्य वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूपं अवग्रहाख्यं आद्य ज्ञानं भवेत् उत्पद्यते। 'अक्षार्थयोगे सत्तालोकोर्थाकारविकल्पधी. अवग्रह' इति श्रीमद्भट्टाकलंकपादैः, 'दर्शनपूर्वकं ज्ञानं छद्मस्थानां' इति श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिभिरपि प्रोक्तत्वात्, इंद्रियार्थसंबंधानंतरं दर्शनमुत्पद्यते इत्येतस्मिन् गाथासूत्रे अनुक्तमपि पूर्वाचार्यवचनानुसारेण व्याख्यानं ग्राह्यं। गृहीते–अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञाते अर्थविशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। अथवा पताकारूपं विषयमालंब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा पताकायामेव संजायमाना आकांक्षा ईहेति द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। एवं इंद्रियांतरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसंभवात्। अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका इति संशयस्य, बलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥ ३०८ ॥

मं० प्र०—विषयाणा,अर्थाना, विषयिणां इंद्रियाणां च संयोगः-योग्यदेशावस्थानरूपः संबंधः। तस्मिन् सति तदनंतरमेव वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यस्य निर्विकल्पग्रहणमिदमिति प्रकाशरूप दर्शनं नियमादुत्पद्यते, तदनंतरं दृष्टस्यार्थस्य वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूपमवग्रहाख्यमाद्यं ज्ञानं भवेत्–उत्पद्यते। अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः अवग्रह इति श्रीमद्भट्टाकलंकपादैः 'दर्शनपूर्वकं ज्ञानं छद्मस्थानामिति' श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिभिरपि प्रोक्तत्वात् इंद्रियार्थसंबंधानंतर दर्शनमुत्पद्यते इत्येतस्मिन् गाथासूत्रे अनुक्तमपि पूर्वाचार्यवचनानुसारेण व्याख्यातं ग्राह्यं। गृहीते अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञाते अर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। अथवा पताकारूपविषयमालंब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा आकांक्षा ईहानाम द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। एवमिंद्रियांतरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसंभवात्, अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका वा इति संशयस्य बलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥३०८॥

स० चं०----विषय जो शब्दादिक पदार्थ अर विषयी जे कर्णादिक इंद्रियां इनिका जो संयोग कहिये योग्य क्षेत्रविषैं तिष्ठनेरूप संबंध ताकौं होतैं संतैं ताके अनंतर ही वस्तुका सत्तामात्र निर्विकल्प ग्रहण जो यहु है इतना प्रकाशरूप सो दर्शन नियमकरि हो है। ताके अनंतर पीछै ही देख्या जो पदार्थ ताके वर्ण संस्थानादि विशेष ग्रहणरूप अवग्रह नामा ज्ञान हो है। इहां प्रश्न--जो गाथाविषैं तौ पहिलैं दर्शन न कह्या तुम कैसैं कहो हो? ताका समाधान--जो अन्य ग्रंथनिमें कह्या है--'अक्षार्थयोगे सत्तालोकोर्थाकारविकल्पधीरवग्रहः' इंद्रिय अर विषयके संयोग होतैं प्रथम सत्तावलोकनमात्र दर्शन हो है पीछैं पदार्थका आकार विशेष जाननेरूप अवग्रह हो है ऐसा अकलंकाचार्यकरि कह्या है बहुरि "दंसणपुव्वं णाणं छद्मत्थाणं हवेदि णियमेण' छद्मस्थ जीवनिकै नियमतैं दर्शन पूर्वक ही ज्ञान हो है ऐसा नेमिचंद्राचार्यने द्रव्यसहनामा ग्रंथमें कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकावालेनैं ऐसा कह्या है तातैं इहां ज्ञानाधिकारविषैं दर्शनका कथन न कीया तौ भी अन्यग्रंथनितैं ऐसैं ही जानना। सो अवग्रहकरि तौ इतना ग्रहण भया जो यहु श्वेत वस्तु है बहुरि श्वेत तौ बुगलनिकी पंक्ति भी हो है अर ध्वजा भी हो है परि बुगलेनिकी पंकतिरूप विषयकौं अवलंबि यहु बुगलेनिकी पंकति ही होसी वा ध्वजारूप विषयकौं अवलंबि यहु ध्वजा होसी ऐसा विशेष वांछारूप जो ज्ञान ताकौं ईहा कहिए। बहुरि बुगलनिकी यहु पंकति होसी कि ध्वजा होसी ऐसा संशयरूप ज्ञानका नाम ईहा नाहीं है। वा बुगलनिकी पंकतिविषैं यहु ध्वजा होसी ऐसा विपर्यय ज्ञानका नाम ईहा नाहीं है जातैं इहां सम्यग्ज्ञानका अधिकार है सम्यग्ज्ञान प्रमाण है अर संशय विपर्यय है सो मिथ्याज्ञान है तातैं संशय विपर्ययका नाम ईहा नाहीं। जो वस्तु है ताका यथार्थरूप ऐसा ज्ञान करना कि यहु अमुक ही वस्तु होसी ऐसैं होसीरूप जो प्रतीति ताका नाम ईहा है। अवग्रहतैं ईहाविषैं विशेष ग्रहण भया तातैं याके वाकेविषैं मतिज्ञानवरणके क्षयोपशमका तारतम्यकरि भेद जानना ॥ ३०८ ॥

ईहणकरणेण जदा सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।

कालंतरेवि णिण्णिदवत्थुसमरणस्स कारणं तुरियं ॥ ३०९

ईहनकरणेन यदा सुनिर्णयो भवति स अवायस्तु ।
कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणस्य कारणं तुर्यं ॥ ३०९ ॥

जी० प्र०—ईहनकारणेन-विशेषाकांक्षाक्रियायाः पश्चात् यदा ईहितविशेषार्थस्य सुनिर्णयः उत्पतनपतनपक्षविक्षेपादिभिश्चिन्हैः इयं बलाकैवेति बलाकात्वस्य यः सुनिश्चयो भवेत् तदा स अवाय इति व्यपदिश्यते । तुशब्दः प्रागाकांक्षितविशेषस्यैव सुनिर्णयोऽवाय इत्यवधारणार्थः । अनेन विपर्यासेन निर्णयो मिथ्याज्ञानतया अवायो न भवतीति ग्राह्यं ततः स एवावायः पुनः पुनः प्रवृत्तिरूपाभ्यासजनितसंस्कारात्मको भूत्वा कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वेन तुर्यं चतुर्थं धारणाख्यं ज्ञान भवति ॥ ३०९ ॥

मं० प्र०—ईहनकरणात्–विशेषकाक्षाक्रियायाः, पश्चात् यदा ईहितविशेषस्य सुनिर्णयः उत्पतनपतनपक्षविक्षेपादिभिरिचह्नैरियं बलाकैवेति बलाकात्वस्य यः सुनिश्चयो भवेत् तदा स अवाय इति व्यपदिश्यते । तुशब्दः प्रागाकाक्षिताविशेषस्यैव सुनिर्णयोऽवाय इत्यवधारणार्थः । अनेन विपर्यासेन निर्णयो मिथ्याज्ञानतया अवायो न भवतीति ग्राह्यं । ततः स एव अवायः पुनः पुनः प्रवृत्तिरूपाभ्यासजानितसंस्कारात्मकः सन् कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वेन तुर्यं धारणाख्यं चतुर्थज्ञानं भवति ॥ ३०९ ॥

स० चं०—ईहाके करनेकरि ताके पीछैं जिस वस्तुकी ईहा भई थी ताका भलेप्रकार निर्णय रूप जो ज्ञान ताकौं अवाय कहिए । जैसैं पांखनिका हलावना आदि चिह्नकरि यहु निश्चय कीया जो बुगलनिकी पंकतिही है निश्चयकरि और किछू नाहीं ऐसा निर्णयका नाम अवाय है । तुशब्दकरि पूर्वें जो ईहाविषैं वांछित वस्तु था ताहीका भले प्रकार निर्णय सो अवाय है । बहुरि जो वस्तु किछू और है अर और ही वस्तुका निश्चयकरि लीया है तो वाका नाम अवाय नाहीं वह मिथ्याज्ञान है । बहुरि वहां पीछैं बार बार निश्चयरूप अभ्यासतैं उपज्या जो संस्कार तींहि स्वरूप होइ केते इक कालकौं व्यतीत भएं भी यादि आवनेकौं कारणभूत जो ज्ञान सो धारणा नाम चौथा ज्ञानका भेद हो है ऐसैं ही सर्व इंद्रिय वा मन संबंधी अवग्रह ईहा अवाय धारणा भेद जानने ॥३०९॥

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।

तत्थेक्के जादे छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥ ३१० ॥

बहु बहुविधं च क्षिप्रानिःसृदनुक्तं ध्रुवं च इतरच्च ।
तत्रैकैकस्मिन् जाते षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदं तु ॥ ३१० ॥

जी० प्र०—अर्थो व्यंजनं वा मतिज्ञानविषयः बहु. बहुविधः क्षिप्र. अनिसृतः अनुक्त ध्रुवश्चेति षोढा । तथा इतरोऽपि एकः एकविधः अक्षिप्रः निसृत उक्त अध्रुवश्चेति षोढा एवं द्वादशधा भवति। तत्र द्वादशस्वपि एकैकस्मिन् विषये प्रागुक्ताष्टाविंशतिप्रकारे मतिज्ञाने जाते-उत्पन्ने सति मतिज्ञान तु पुनः षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदं भवति ३३६ । तद्यथा–बहुविषये अर्थात्मके अनिन्द्रियेंद्रियभेदेन मतिज्ञानस्य भेदाः षट्, त एव पुनः अवग्रहेहावायधारणाभेदेन प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्विंशतिः । तथा व्यंजनात्मके तु स्पर्शनरसनघ्राण-चक्षुःश्रोत्रैश्चत्वारोऽवग्रहा एव । एवमर्थव्यंजनात्मके बहुविषये मिलित्वा मतिज्ञानभेदा अष्टाविंशतिर्भवंति । अनेन प्रकारेण अर्थव्यंजनात्मक-बहुविधादिष्वपि प्रत्येकमष्टाविंशत्यष्टाविंशतिज्ञानभेदेषु जातेषु द्वादशविषयेषु मतिज्ञानभेदाः षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतीप्रमिता भवंति । यद्येकस्मिन्विषये अष्टाविंशतिर्मतिज्ञानभेदा भवंति तदा द्वादशसु विषयेषु कियंतो मतिज्ञानभेदा भवंतीति प्र १ । फ १८ । इ १२ त्रैराशिकं कृत्वा इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा लब्धस्य तत्प्रमाणत्वात् ॥ ३१० ॥

म० प्र०—अर्थस्य व्यंजनस्य च मतिज्ञानविषयस्य द्वादश भेदा भवति—बहुर्बहुविधः क्षिप्रः अनिसृतः अनुक्तः ध्रुवश्चेति षट् । तदितरे च एकः एकविध. अक्षिप्र· निसृतः उक्तः अध्रुवश्चेति षट् । तत्र—तेषु बह्वादिषु विषयेषु एकैकस्मिन् विषये प्रागुक्ताष्टाविंशतिप्रकारे मतिज्ञाने जाते—उत्पन्ने सति मतिज्ञानं तु—पुनः षट्त्रिंशदुत्तरात्रिशतभेदं भवति । तद्यथा—बहौ विषये अर्थात्मके पंचभ्य इंद्रियेभ्यः मनसश्च प्रत्येकमवग्रहेहावायधारणाख्या मतिज्ञानभेदा-श्चत्वारः, इतींद्रियानिंद्रियेभ्यः सपिंडिताश्चतुर्विंशतिरुत्पद्यंते । तथा व्यंजनात्मके बहौ विषये स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्राख्येंद्रियचतुष्कात् चत्वारोऽवग्रहा एव जायते इति बहौ विषये मिलित्वा मतिज्ञानभेदाः अष्टाविंशतिर्भवति । एवं बहुविधादिषु पंचसु तदितरेषु च षट्सु विषयेषु प्रत्येकमष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदा जायते इत्यष्टाविंशत्या द्वादशसु विषयभेदेषु गुणितेषु सर्वे मतिज्ञानभेदाः षट्त्रिंशदुत्तरात्रिशतीप्रमिता भवति । ३३६ । यद्येकस्मिन् विषये प्र १, अष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदा भवति फ २८ । तदा द्वादसु विषयेषु इ १२ कियंतो भवंतीति त्रैराशिकेन लब्धा मतिज्ञानभेदाः ॥ ३१० ॥

स० चं०—अर्थरूप वा व्यंजनरूप जो मतिज्ञानका विषय ताके बारह भेद हैं--बहु १ बहुविध १ क्षिप्र १ अनिसृत १ अनुक्त १ ध्रुव १ ए छह बहुरि इतर जे छहौं इनके प्रतिपक्षी एक एकविध अक्षिप्र निसृत उक्त अध्रुव ए छह ऐसैं बारह भेद जानने सो व्यंजनावग्रहके च्यारि इंद्रियनि करि च्यारि भेद भए अर अर्थके अवग्रह ईहा

अवाय धारणातैं पंच इंद्रिय छठा मन करि चौबीस भेद भए मिलाएं ते अठाईस भेद भए सो व्यंजन रूप बहु विषयका च्यारि इंद्रियनिकरि अवग्रह हो है सो च्यारि भेद तौ ए भए अर अर्थ रूप बहुविषयका पंच इंद्रिय छठा मनकरि गुणैं अवग्रह ईहा अवाय धारणा हो हैं तातैं चौबीस भए। ऐसैं एक बहुविषय संबंधी अठाईस भेद भए। ऐसैं ही बहुविध आदि भेदनिविषैं अठाईस अठाईस भेद हो हैं। सबकौं मिलाएं बारह विषयनिविषैं मतिज्ञान के तीनसै छत्तीस भेद हो हैं जो एक विषयविषैं अठाईस भेद होइ तौ बारह विषयनिविषैं केते होंहि ऐसैं त्रैराशिक कीएं लब्धराशिमात्र तीनसै छत्तीस मतिज्ञानके भेद हो हैं ॥ ३१० ॥

बहुवत्तिजादिगहणे बहुबहुविहमियरमियरगहणम्हि।
सगणामादो सिद्धा खिप्पादी सेदरा य तहा ॥ ३११ ॥

बहुव्यक्तिजातिग्रहणे बहुबहुविधमितरदितरग्रहणे।
स्वकनामतः सिद्धाः क्षिप्रादयः सेतराश्च तथा ॥ ३११ ॥

जी० प्र०—बहुव्यक्तीनां ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुरित्युच्यते यथा खंडमुंडशवलादिबहुगोव्यक्तयः। बहुजातीनां ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुविध इत्युच्यते यथा गोमहिषाश्वादिबहुजातयः इति। इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकः यथा खंडोऽयमिति। एकजातिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकविधः यथा खंडो वा मुडो वा गौरिति। क्षिप्रादयः क्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः स्वेतरे च अक्षिप्रनिसृतोक्त ध्रुवाश्च स्वस्वनामत एव सिद्धाः। तथाहि क्षिप्रः शीघ्रपतज्जलधाराप्रवाहादिः। अनिसृतः गूढः जलमग्नहस्त्यादिः। अनुक्तः-अकथितः अभिप्रायगतः। ध्रुवः स्थिरः चिरकालावस्थायी पर्वतादिः। अक्षिप्रः मंदं गच्छन्नश्वादिः। निसृतः व्यक्तनिष्क्रांतः जलनिर्गतहस्त्यादिः। उक्तः अयं घटः इति कथितो दृश्यमानः। अध्रुवः क्षणस्थायी विद्युदादिः। तथाचेतिशब्दौ समुच्चयार्थौ ॥ ३११ ॥

मं० प्र०—बहुव्यक्तीनां ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुरित्युच्यते यथा खंडमुडशवलादिबहुगोव्यक्तयः। बहुजातीना ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुविध इत्युच्यते यथा गोमहिषाश्वादयो बहुजातयः इति। इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकः यथा खंडोऽयमिति। एकजातिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकविधः खंडो वा मुंडो गौरिति। क्षिप्रादयः क्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः स्वेतरे च अक्षिप्रानिसृतोक्तध्रुवाः स्वस्वनामत एव सिद्धाः। तथाहि–क्षिप्र.–

शीघ्रपतज्जलधाराप्रवाहादिः । अनिसृतः--गूढः--जलमग्नहस्त्यादिः । अनुक्तः--अकथितः अभिप्रायगतः, ध्रुवः--स्थिरः चिरकालावस्थायी पर्वतादिः । आक्षिप्रः मंदं गच्छन्नश्वादिः । निसृतः--व्यक्तनिष्क्रातः जलनिर्गतहस्त्यादिः । उक्तः--अयं घट इति कथितो दृश्यमानः, अध्रुवः क्षणस्थायी विद्युदादिः तथाचेति समुच्चयार्थौ ॥ ३११ ॥

स० चं०--जहां बहुत व्यक्तिका ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं बहु कहिए । बहुरि जहां बहुजातिका ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं बहुविध कहिए । बहुरि ऐसैं ही इतरका ग्रहणविषैं जहां एक व्यक्तिका ग्रहण रूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं एक कहिए । बहुरि जहां एक जातिका ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं एकविध कहिए । इहां उदाहरण दिखाइए हैं जैसैं खाड़ी गऊ सावली गऊ मूड़ी गऊ इत्यादिक अनेक गऊनिकी व्यक्तिकौं बहु कहिए । बहुरि गऊ भैंस घोड़े इत्यादि अनेक जातिकौं बहुविध कहिए । बहुरि एक खाडी गऊ ऐसी गऊकी एक व्यक्तिकौं एक कहिए । बहुरि खाड़ी मूडी सावली गऊ है ऐसी एक जातिकौं एकविध कहिए । एक जातिविषैं अनेक व्यक्ति पाइए हैं । ऐसैं बारह भेदनिविषैं च्यारि तौ कहे । बहुरि अवशेष क्षिप्रादिक च्यारि अर इनिके प्रतिपक्षी च्यारि ते अपने नामहीतैं प्रसिद्ध हैं । सोही कहिए है--क्षिप्र शीघ्रकौं कहिए जैसैं शीघ्र पडती जल धारा वा जल प्रवाह । बहुरि अनिसृत गूढकौं कहिए जैसें जलविषैं मगन हूवा हाथी । बहुरि अनुक्त विना कहेकौं कहिए जैसैं विनाही कहे किछू अभिप्रायहीतैं जाननेमें आवै । बहुरि ध्रुव अचलकौं वा बहुत काल स्थायीकौं कहिए जैसैं पर्वतादिक । बहुरि अक्षिप्र ढीलेकौं कहिए जैसैं मंद चालता घोटकादिक । बहुरि निसृत प्रगटकौं कहिए जैसैं जलतैं निकस्या हूवा हाथी । बहुरि उक्त कहेको कहिए जैसैं काहूनैं कह्या यहु घट है । बहुरि अध्रुव चंचल वा विनाशीककौं कहिए जैसैं क्षणस्थायी विजुरी आदि । ऐसैं बारह प्रकार मतिज्ञानके विषय हैं । भावार्थ--जाकौं जानिए यहु शीघ्र प्रवर्तै है सो क्षिप्र कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यह गूढ है सो अनिसृत कहिए । बहुरि जाकौं विना कहैं जानिए सो अनुक्त कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यहु ध्रुव है सो ध्रुव कहिए इत्यादिक मतिज्ञानके विषय हैं । इनिकौं मतिज्ञानकरि जानिए है ॥ ३११ ॥

वत्थुस्स पदेसादो वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा ।
सयलं वा अवलंबिय अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ॥ ३१२ ॥

वस्तुनः प्रदेशात् वस्तुग्रहणं तु वस्तुदेशं वा ।
सकलं वा अवलंब्य अनिसृतमन्यवस्तुगातिः ॥ ३१२ ॥

जी० प्र०—कस्यचिद्वस्तुनः, प्रदेशाद्-एकदेशाद् व्यक्तात् तदविनाभाविनोऽव्यक्तस्य वस्तुनो ग्रहणं अनिसृतज्ञानं। अथवा एकस्य वस्तुनः एकदेशं वा सकलं वस्तु वा अवलंब्य गृहीत्वा पुनरन्यस्य वस्तुनः गतिः–ज्ञानं यत्, तदप्यनिसृतज्ञानं भवति ॥ ३१२ ॥ तदुदाहरति–

मं० प्र०—कस्यचिद्वस्तुनः, प्रदेशात्–एकदेशात् व्यक्तात् तदविनाभाविनोऽव्यक्तस्य वस्तुनो ग्रहणमनिसृतज्ञानं। अथवा एकस्य वस्तुनः एकदेशं वा सकलवस्तु वा अवलंब्य–गृहीत्वा पुनरन्यस्य वस्तुनो गतिः–ज्ञानं यत्, तदप्यनिसृतज्ञानं भवति ॥ ३१२ ॥

स० चं०–किसी वस्तुका प्रदेश कहिए एकोदेश अंश प्रगट है तातैं जो वह एकोदेश अंश जिस वस्तु बिना न होइ ऐसे अप्रगट वस्तुका ग्रहण कीजिए सो अनिःसृतज्ञान है अथवा एक किसी वस्तुका एकोदेश अंशकौं वा सर्वांग वस्तुहीकौं अवलंबिकरि ग्रहण करि अन्य कोई अप्रकट वस्तुका ग्रहण करना सो भी अनिःसृत ज्ञान है इनिके उदाहरण आगैं कहैं हैं ॥ ३१२ ॥

पुक्खरगहणे काले हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा ।
वत्थंतरचंदस्स य धेणुस्स य बोहणं च हवे ॥ ३१३ ॥

पुष्करग्रहणे काले हस्तिनश्च वदनगवयग्रहणे वा ।
वस्त्वंतरचंद्रस्य च धेनोश्च बोधनं च भवेत् ॥ ३१३ ॥

जी० प्र०—पुष्करस्य जलाद्बहिर्दृश्यमानस्य जलमग्नहस्तिकराग्रस्य ग्रहणकाले दर्शनकाले एव तदविनाभाविजलमग्नहस्तिग्रहणं जले ह-

स्ती मग्नोऽस्तीति प्रतीतिः । वा इव यथा अनेन अस्मात् साध्याविनाभावनियमनिश्चयात् साधनात् साध्यस्य ज्ञानमनुमानमिति अनुमानप्रमाणं संगृहीतं भवति। अथवा कस्याश्चित् युवतेर्वदनग्रहणकाले वस्त्वंतरस्य चंद्रस्य ग्रहणं। मुखसादृश्याचंद्रस्य स्मरणं चंद्रसदृशं मुखमिति प्रत्यभिज्ञानं वा। अरण्ये गवयग्रहणकाले गवयदर्शनकाल एव धेनोर्बोधनं स्मरणं गोसदृशो गवय इति प्रत्यभिज्ञानं वा भवेत् । वा इव यथा अत्र इवार्थद्योतको वाशब्दः उदाहरणप्रदर्शने प्रयुक्तः अनंतरगाथोक्तानिसृतार्थज्ञानस्य एतावंत्युदाहरणानि। पक्षांतरसूचको वा । यथा महानसे अग्नौ सत्येव धूम उपपन्नो दृष्टः। हृदे अग्न्यभावे धूमोऽनुपपन्नो निश्चितः। तथा सर्वदेशकालसंबंधितया अग्निधूमयोरन्यथानुपपत्तिरूपस्य अविनाभावसंबंधस्य ज्ञानं तर्कः सोपि च मतिज्ञानं भवति । एवमनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काख्यानि चत्वारि मतिज्ञानानि अनिसृतार्थविषयाणि केवलपरोक्षाणि एकदेशतोऽपि वैशद्याभावात् । शेषाणि स्पर्शनादींद्रियानिंद्रियव्यापारप्रभवानि बह्वाद्यर्थविषयाणि मतिज्ञानानि सांव्यवहारिकप्रत्यक्षाणि एकदेशतो वैशद्यसंभवात् । प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानमिति पूर्वाचार्यैः प्रत्यक्षलक्षणस्योक्तत्वात् । तानि सर्वाणि मतिज्ञानानि प्रमाणानि सम्यग्ज्ञानत्वात् । सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं, इति प्रवचने (प्रोक्तत्वात्) प्रतिपादनात् ॥ ३१३ ॥

म० प्र०—पुष्करस्य जलाद्बहिर्दृश्यमानस्य जलमग्नहस्तिकराग्रस्य ग्रहणकाले--दर्शनकाल एव तदविनाभाविजलमग्नहस्तिग्रहणं–जले हस्ती मग्नोऽस्तीति प्रतीतिः वा इव यथा अनेन साध्याविनाभावनियमानिश्चयतः साधनात्साध्यस्य विज्ञानमनुमानमित्यनुमानप्रमाणं संगृहीतं । अथवा कस्याश्चिद् युवतेः, वदनग्रहणे–काले एव वस्त्वंतरस्य चंद्रस्य ग्रहणं मुखसादृश्याच्चंद्रस्य स्मरणं चद्रसदृश मुखमिति प्रत्यभिज्ञानं, वा अरण्ये गवयग्रहणकाले एव धेनोर्बोधनं स्मरणं गोसदृशो गवय इति प्रत्यभिज्ञानं वा भवेत् वा-इव यथा । अत्र इवार्थद्योतको वाशब्दः उदाहरणप्रदर्शने प्रयुक्त, अनंतरगाथोक्तानिसृतार्थज्ञानस्य एतान्युदाहरणानि । पक्षांतरसूचको वा । यथा महानसे अग्नौ सत्येव धूम उपपन्नो दृष्टः, हृदे अग्न्यभावे धूमोऽनुपपन्नो निश्चितः, तथा सर्वदेशकालसंबंधितया अग्निधूमयोरन्यथानुपपत्तिरूपस्याविनाभावसंबंधस्य ज्ञानं तर्काख्यं च मतिज्ञानं भवति । एवमनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काख्यानि चत्वारि मतिज्ञानानि अनिसृतविषयाणि केवलपरोक्षाणि एकदेशतोऽपि वैशद्याभावात् । शेषाणि स्पर्शनादींद्रियानिंद्रियव्यापारप्रभवानि मतिज्ञानानि बह्वादिविषयाणि साव्यवहारिकप्रत्यक्षाणि एकदेशतो वैशद्यसंभवात्, प्रत्यक्ष विशद ज्ञानमिति पूर्वाचार्यैः प्रत्यक्षलक्षणस्योक्तत्वात्। तानि सर्वाणि मतिज्ञानानि प्रमाणानि सम्यग्ज्ञानत्वात् । सम्यग्ज्ञान प्रमाणमिति प्रवचने प्रोक्तत्वात् ॥ ३१३ ॥

स० चं०—पुष्कर कहिए जलतैं वाहिर प्रगट दीसती ऐसी जलविषैं डूब्या हूवा हस्तीकी सूंडि ताकौं जाननेतैं ऐसी प्रतीति हो है कि इस जलविषैं हस्ती मगन है जातैं हस्ती बिना सूंडि न हो है। जिस बिना जो न होइ ताकौं तिसका साधन कहिए जैसैं अग्नि बिना धूम नाहीं तातैं अग्नि साध्य है धूम साधन है। सो साधनतैं साध्यका जानना सो अनुमान प्रमाण है। इहां सूंडि साधन, हस्ती साध्य है। सूंडितैं हस्तीका ज्ञान भया तातैं इहां

अनुमान प्रमाण आया। बहुरि किसी स्त्रीका मुख देखा सो मुखका ग्रहण समयविषैं चंद्रमाका स्मरण भया आगैं चंद्रमा देख्या था स्त्रीके मुखकी अर चंद्रमाकी सदृशता है सो स्त्रीका मुख देखितैंही चंद्रमा यादि आया सो चंद्रमा तिस काल विषैं प्रकट न था ताका ज्ञान भया सो यहु स्मृति प्रमाण है। अथवा चंद्रमासमान स्त्रीका मुख है सो स्त्रीका मुख देखतैं चंद्रमाका ज्ञान भया तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान प्रमाण भी कहिये। ऐसैं ही वनविषैं गवय नामा तिर्यंच-कौं देख्या तहां ऐसा यादि आया कि गऊके सदृश गवय हो है तातैं यहु स्मृति प्रमाण है अथवा गऊ समान गवय हो है सो गऊका ज्ञान गवयकौं देखते ही भया तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान भी कहिए। वा कहिए जैसैं ए उ-दाहरण कहे तैसैं और भी जाननें। जैसैं रसोईविषैं अग्नि होते संतै धूवा हो है अर द्रहविषैं अग्नि नाही तातैं धूवां भी नाहीं तातैं सर्व देश कालविषैं अग्नि अर धूवांकैं अन्यथा अनुपपत्ति भाव है। अन्यथा कहिए अग्नि न होइ तौ अनुपपत्ति कहिए धूवां भी न होइ सो ऐसा अन्यथा अनुपपत्तिका ज्ञान सो तर्क नामा प्रमाण भी मतिज्ञान है। या प्रकार अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ए च्यार्‍यो परोक्ष प्रमाण अनिःसृत है विषय जाका ऐसा मतिज्ञानके भेद जानने। पांचवां आगम नामा परोक्ष प्रमाण श्रुतज्ञानका भेद जानना। एकोदेशपनैं भी विशदता स्पष्टता इनिके जाननेविषैं नाहीं तातैं इनिकौं परोक्ष प्रमाण कहे और इनके बिना जो पांच इंद्रियनिकरि बहु बहुविध आदि जानिए है ते सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानने जातैं इनिके जाननेमें एकोदेश विशदता निर्मलता स्पष्टता पाइए है व्यवहारविषैं भी ऐसैं कहिए है जो मैं नेंत्रनिस्यौं प्रत्यक्ष देख्या बहुरि इस मतिज्ञान विषैं पारमार्थिक प्रत्यक्षपना है नाहीं जातैं अपने विषयकौं तारतम्य रूप संपूर्ण स्पष्ट न जानैं। पूर्वै आचार्यनिकरि प्रत्यक्षका ल-क्षण विशद वा स्पष्ट ही कह्या है ऐसैं ए सर्व मतिज्ञानके भेद जानने ते भेद प्रमाण हैं जातैं ए सर्व सम्यग्ज्ञान हैं बहुरि "सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं" ऐसा सिद्धांतविषैं कह्या है ॥ ३१२ ॥

एक्कचउक्कं चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा।

इगिछब्बारसगुणिदे मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥ ३१४ ॥

एकचतुष्कं चतुर्विंशत्यष्टाविंशतिश्च त्रिःप्रतिं कृत्वा ।

एकषड्द्वादशगुणिते मतिज्ञाने भवंति स्थानानि ॥ ३१४ ॥

जी०प्र०—मतिज्ञानं सामान्येन एकं १ । अवग्रहेहावायधारणापेक्षया चत्वारि ४ । इंद्रियानिंद्रियजनितार्थावग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुर्विंशतिः २४ । अर्थव्यंजनोभयावग्रहापेक्षया अष्टाविंशतिः २८ । एतानि चत्वारि स्थानानि त्रिःप्रतिकानि—

२८ । १	२८ । ६	२८ । १२
२४ । १	२४ । ६	२४ । १२
४ । १	४ । ६	४ । १२
१ । १	१ । ६	१ । १२

कृत्वा यथाक्रमं प्रथमं स्थानचतुष्टयं विषयसामान्येनैकेन गुणयेत्। द्वितीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिविषयषट्केन गुणयेत्। तृतीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिभिर्द्वादशविषयैर्गुणयेत् । एव गुणिते सति मतिज्ञाने सामान्यविषयार्धविषयसर्वविषयापेक्षया स्थानानि भवंति ॥ ३१४ ॥ अथ श्रुतज्ञानमरूपणां प्रारभमाणः प्रथमस्तावत्तत्सामान्यलक्षणमाह—

मं० प्र०—मतिज्ञानसामान्यापेक्षया एकोंकः । १ । अवग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुरंकः । इंद्रियानिंद्रियजनितार्थावग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुर्विंशत्यंकः । अर्थव्यंजनोभयावग्रहाद्यपेक्षया अष्टाविंशत्यंकः । २८ । एवं चत्वारि स्थानानि त्रिःप्रतिकं कृत्वा यथाक्रमं प्रथम स्थानचतुष्टयं विषयसामान्येनैकेन गुणयेत्, द्वितीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिविषयषट्केन गुणयेत् । तृतीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिभिर्विषयैः द्वादशभिर्गुणयेत् एवं गुणिते सति मतिज्ञाने विषयसामान्यार्धविषयसर्वविषयापेक्षाणि स्थानानि भवंति ॥ ३३४ ॥ अथ श्रुतज्ञानप्ररूपणा प्रारभमाणस्तावत्तत्सामान्यलक्षणमाह—

स० चं०—मतिज्ञान सामान्य अपेक्षा करि तौ एक है अर अवग्रह ईहा अवाय धारणाकी अपेक्षा च्यारि है बहुरि पांच इंद्रिय छठा मनकरि अर अवग्रह ईहा अवाय धारणाकी अपेक्षा चौवीस है। बहुरि व्यंजन अर अर्थका भेद कीएं अठाईस है सो एक च्यारि चौवीस अठाईस १ । ४ । २४ । २८ । ज्ञान च्यार्‍योंको जुदे जुदे तीन जायगा माडिए । तहां एक जायगा तौ सामान्यपनैं अपने अपने विषयकौं जानैं हैं ऐसा विषय संबंधी एक भेद

करि गुणिए तब तौ एक च्यारि चौबीस अठाईसभेद भए। बहुरि दूसरी जायगा बहु बहुविध क्षिप्र अनिःसृत अनुक्त ध्रुव ए छह प्रकार विषयके भेद करि गुणिए तब छह ६ चौबीस २४ के एकसौ चवालीस १४४ एकसौ अडसठि १६८ ऐसैं मतिज्ञानके विषय भेदनिकी अपेक्षा भेद भए। बहुरि तीसरी जायगा उनके प्रतिपक्षी सहित बारह विषय भेदनिकरि गुणिए तहां बारह १२ अडतालीस ४८ दोयसै अठ्यासी २८८ तीनसै छत्तीस ३३६ सर्व विषय भेदनिकी अपेक्षा मतिज्ञानके भेद भए। ऐसैं विवक्षा भेदकरि मतिज्ञानके स्थान दिखाए ॥३१४॥ आगैं श्रुतज्ञानकी प्ररूपणाका आरंभ करता संता प्रथमही श्रुतज्ञानका सामान्य लक्षण कहै हैं—

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभंतं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥ ३१५ ॥

अर्थादर्थांतरमुपलभमानं भणंति श्रुतज्ञानं।
आभिनिबोधिकपूर्वं नियमेनेह शब्दजं प्रमुखं ॥ ३१५ ॥

जी० प्र०—मतिज्ञानेन निश्चितमर्थमवलंब्य अर्थांतरं-तत्संबद्धमन्यार्थमुपलभ्यमानं-अवबुध्यमानं श्रुतज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नं जीवस्य ज्ञानपर्यायं श्रुतज्ञानमिति मुनीश्वरा भणंति। तत्कथं भवेत्? आभिनिबोधिकपूर्वं—नियमेन आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं पूर्वं कारणं यस्य तत् तथोक्तं आभिनिबोधिकपूर्वं, मतिज्ञानावरणक्षयोपशमेन मतिज्ञानमेव पूर्वं प्रथममुत्पद्यते पुनः—पश्चात् तद्गृहीतार्थमवलंब्य तद्बलादर्थांतरविषयं श्रुतज्ञानमुत्पद्यते नान्यप्रकारेणेति नियमशब्देन मतिज्ञानप्रवृत्त्यभावे श्रुतज्ञानाभाव इत्यवधार्यते। इह—अस्मिन् श्रुतज्ञानप्रकरणे अक्षरानक्षरात्मकयोः शब्दजलिंगजयोः श्रुतज्ञानभेदयोः मध्ये शब्दज-वर्णपदवाक्यात्मकशब्दजनितं श्रुतज्ञानं प्रमुखं प्रधानं दत्तग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणां तन्मूलत्वात्। अनक्षरात्मकं तु लिंगजं श्रुतज्ञानं एकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतेषु जीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुपयोगित्वादप्रधानं भवति। श्रूयते श्रोत्रेंद्रियेण गृह्यते इति श्रुतः शब्द, तस्मादुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतज्ञानमिति व्युत्पत्तेरपि अक्षरात्मकप्राधान्याश्रयणात्। अथ वा श्रुतमिति रूढिशब्दोयं मतिज्ञानपूर्वकस्य अर्थांतरज्ञानस्य प्रतिपादकः परमागमे रूढः। यथाकथंचिन्निरुक्तिसंभवः रूढिशब्दे अजहत्स्वार्थवृत्तिके कुशं लातीति कुशल इति कुशलादिशब्देषु निपुणाद्यर्थेषु रूढेषु तन्निरुक्तिवत्। तत्र जीवोऽस्तीत्युक्ते जीवोऽस्तीति शब्दज्ञानं श्रोत्रेंद्रियप्रभवं मतिज्ञानं भवति। ज्ञानेन

जीवोऽस्तीति शब्दवाच्यरूपे आत्मास्तित्वे वाच्यवाचकसंबंधसंकेतसंकलनपूर्वकं यत् ज्ञानमुत्पद्यते तदक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं भवति, अक्षरात्मकशब्दसमुत्पन्नत्वेन कार्ये कारणोपचारात्। वातशीतस्पर्शज्ञानेन वातप्रकृतिकस्य तत्स्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमक्षरात्मक लिंगजं श्रुतज्ञानं भवति, शब्दपूर्वकत्वाभावात् ॥ ३१५ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य अक्षरानक्षरात्मकभेदौ प्ररूपयति—

मं० प्र० —मतिज्ञानेन निश्चितादर्थात् तमर्थमालंब्य, अर्थांतरं--तत्संबद्धमन्यमर्थमुपलभमानं—अवबुध्यमानं श्रुतज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नं जीवस्य ज्ञानपर्यायं श्रुतज्ञानमिति मुनीश्वरा भणंति। तत्कीदृशं? आभिनिबोधिकपूर्वं नियमेन—आभिनिबोधिकं—मतिज्ञानं पूर्वं—कारणं, यस्य तत्तथोक्तं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमात् मतिज्ञानमेव प्रथममुत्पद्यते। पुनस्तद्गृहीतार्थमवलंब्य तद्बलादर्थांतरविषयं श्रुतज्ञानमुत्पद्यते नान्यथेति नियमशब्देन मतिज्ञानप्रवृत्त्यभावे श्रुतज्ञानाभाव इत्यवधार्यते। इह श्रुतज्ञानप्रकरणे, अक्षरानक्षरात्मकयोः श्रुतज्ञानभेदयोः, शब्दजं—वर्णपदवाक्यात्मकशब्दप्रभवं श्रुतज्ञानं प्रमुख--प्रधानं दत्तग्रहशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणां तन्मूलत्वात्। अनक्षरात्मकं तु श्रुतज्ञानं एकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतजीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुपयोगात् अप्रधानं। श्रूयते—श्रोत्रेंद्रियेण गृह्यते इति श्रुतः शब्दः, तस्मादुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतज्ञानमिति व्युत्पत्तेरप्यक्षरात्मकप्राधान्याश्रयात्। अथवा श्रुतमिति रूढिशब्दोयं मतिज्ञानपूर्वस्यार्थांतरज्ञानस्य प्रतिपादकः परमागमे रूढः। यथा कथंचिन्निरुक्तिसंभवः रूढिशब्दे अजहत्स्वार्थवृत्तिके कुशं लातीति कुशल इति कुशलादिशब्देषु निपुणाद्यर्थेषु रूढेषु तन्निरुक्तिवत्। तत्र जीवोऽस्तीत्युक्ते जीवोऽस्तीति शब्दज्ञानं श्रोत्रेंद्रियप्रभवं मतिज्ञानं। तस्माज्जीवोऽस्तीति शब्दवाच्ये आत्मास्तित्वे वाच्यवाचकसंबंधसंकेतसंकलनपूर्वकं यत् ज्ञानमुत्पद्यते तदक्षरात्मकश्रुतज्ञानं, अक्षरात्मकाच्छब्दादुत्पन्नत्वात्। कार्ये कारणोपचारात्। वातशीतस्पर्शज्ञानात् वातप्रकृतेस्तत्स्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमनक्षरात्मकं श्रुतं शब्दपूर्वकत्वाभावात् ॥ ३१५ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य अक्षरानक्षरात्मकभेदौ प्ररूपयति—

स० चं०—मतिज्ञानकरि निश्चय कीया जो पदार्थ तिसकौं अवलंबि करि तिसही पदार्थके संबंधकौं लीएं अन्य कोई पदार्थ, ताकौं जो जानैं सो श्रुतज्ञान है सो श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमतैं उपजै है ऐसैं मुनीश्वर कहै हैं। कैसा है श्रुतज्ञान? आभिनिबोधिक जो मतिज्ञान सो है पहिलैं जाके, पहिलैं मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं मतिज्ञान होइ पीछैं मतिज्ञानकरि जो पदार्थ जान्या ताका अवलंबनकरि अन्य कोई पदार्थका जानना होइ सोई श्रुतज्ञान है। ऐसा नियम जानना—पहिलैं मतिज्ञान भएं बिना सर्वथा श्रुतज्ञान न होइ। तीहि श्रुतज्ञानके दोय भेद हैं एक अक्षरात्मक। एक अनक्षरात्मक, इनिविषैं शब्दजं कहिए अक्षर पद छंदादिरूप शब्दतैं उत्पन्न भया जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो प्रमुख कहिए मुख्य प्रधान है जातैं देना लेना शास्त्र पढना इत्यादिक सर्व व्यवहारनिका मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि लिंग जो चिह्न तातैं उत्पन्न भया ऐसा अनक्षरात्मक

श्रुतज्ञान सो एकेंद्रियतैं लगाइ पंचेंद्रिय पर्यंत सर्व जीवनिकैं है तथापि यातैं किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं तातैं प्रधान नाहीं। बहुरि 'श्रूयते इति श्रुतः शब्दः तदुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतं' सुणिए ताकौं शब्द कहिए, शब्दतैं भया जो अर्थज्ञान ताकौं श्रुतज्ञान कहिए इस भी अर्थविषैं अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही प्रधान आया। अथवा श्रुत ऐसा रूढि शब्द है सो मतिज्ञानपूर्वक अर्थांतरका जानने रूप ज्ञानका विशेष, तींहिं अर्थविषैं प्रवर्तै है जैसैं कुशल शब्दका अर्थ तौ यहु जो कुश कहिए डाभ ताकौं लाति कहिये दे सो कुशल परंतु रूढितैं प्रवीण पुरुषका नाम कुशल है तैसैं यहु श्रुतशब्द जानना। तहां 'जीवः अस्ति' ऐसा शब्द कह्या तहां कर्णरूप इंद्रिय मतिज्ञानकरि जीवः अस्ति ऐसे शब्दकौं ग्रह्या। बहुरि तींहिं ज्ञानकरि 'जीवनामा पदार्थ है' ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है शब्द अर अर्थके वाच्य वाचक संबंध है। अर्थ वाच्य है शब्द वाचक है। अर्थ है सो उस शब्दकरि कहने योग्य है, शब्द उस अर्थका कहन हारा है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। सो इहां 'जीवः अस्ति' ऐसैं शब्दका जानना तौ मतिज्ञान है अर उसके निमित्ततैं जीव नामा पदार्थका अस्तित्व जानना सो श्रुतज्ञान है। ऐसैं ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका स्वरूप जानना। अक्षरात्मक जो शब्द तातैं उत्पन्न भया जो ज्ञान ताकौं भी अक्षरात्मक कह्या। इहां कार्यविषैं कारणका उपचार कीया है परमार्थतैं ज्ञान कोई अक्षररूप है नाहीं। बहुरि जैसैं शीतल पवनका स्पर्श भया तहां शीतल पवनका जानना तौ मतिज्ञान है बहुरि तिसका ज्ञानकरि वायुकी प्रकृति वालेकौं यहु शीतल पवन अनिष्ट है ऐसा जानना सो श्रुतज्ञान है सो यहु अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अक्षरके निमित्ततैं भया नाहीं। ऐसैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका स्वरूप जानना ॥३१५॥ आगैं श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक अनक्षरात्मक भेदनिकौं दिखावैं हैं—

लोगाणमसंखमिदा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥ ३१६ ॥

लोकानामसंख्यमितानि अनक्षरात्मके भवंति पट्स्थानानि ।
द्विरूपषष्ठवर्गप्रमाणं रूपोनमक्षरगं ॥ ३१६ ॥

जी० प्र०—श्रुतज्ञानस्य अनक्षरात्मकाक्षरात्मकौ द्वौ भेदौ, तत्र अनक्षरात्मके श्रुतज्ञाने पर्यायपर्यायसमासलक्षणे सर्वजघन्यज्ञानमादिं कृत्वा स्वोत्कृष्टपर्यंतं असंख्येयलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा भवति । ते च असंख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्ध्या संवर्धिता भवंति । अक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्ठवर्गस्य एकट्ठनाम्नो यावंति रूपाणि एकरूपोनानि संति तावंति अक्षराणि अपुनरुक्ताक्षराण्याश्रित्य संख्यातविकल्पं भवति । विवक्षितार्थाभिव्यक्तिनिमित्तं पुनरुक्ताक्षरग्रहणे ततोधिकप्रमाणं भवतीत्यर्थः ॥ ३१६ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य प्रकारांतरेण भेदान् गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—अनक्षरात्मके श्रुतभेदे—पर्यायपर्यायसमासलक्षणे सर्वजघन्यज्ञानादारभ्य स्वोत्कृष्टपर्यंतमसंख्यातलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा भवति । ते च असंख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्ध्या संवृद्धाः । अक्षरात्मक श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्ठवर्गस्य एकट्ठनाम्नो यावति रूपाणि एकरूपहीनानि सति तावदपुनरुक्ताक्षराण्याश्रित्य सख्यातविकल्पं भवति । विवक्षितार्थाभिव्यक्तिनिमित्तपुनरुक्ताक्षरग्रहणे ततोऽधिकप्रमाणमपि भवतीत्यर्थः ॥ ३१६ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य प्रकारांतरेण भेदप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

स० चं०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेद पर्याय अर पर्यायसमास, तीहिं विषैं जघन्यसौं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यातलोक प्रमाण ज्ञानके भेद हो हैं ते भेद असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धिकौं लीए हैं। बहुरि अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो द्विरूप वर्गधाराविषैं जो एकट्ठी नामा छठा स्थानक कह्या तामैं एक घटाएं जो प्रमाण रहै तितने अपुनरुक्त अक्षर हैं तिनकी अपेक्षा संख्यात भेद लीएं है। विवक्षित अर्थकौं प्रकट करने निमित्त बार बार जिन अक्षरनिकौं कहिए ऐसे पुनरुक्त अक्षरनिका प्रमाण अधिक संभवै है सो कथन आगैं होइगा ॥३१६॥ आगैं श्रुतज्ञानका अन्य प्रकार करि भेद कहनेके निमित्त दोय गाथा कहैं हैं—

पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थुपुव्वं च ॥ ३१७ ॥

तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं ।
आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंतित्ति ॥ ३१८ ॥

पर्यायाक्षरपदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च च प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥ ३१७ ॥
तेषां च समासैश्च विंशविधं वा हि भवति श्रुतज्ञानं ।
आवरणस्यापि भेदाः तावन्मात्रा भवंति इति ॥ ३१८ ॥

जी० प्र०—वा–अथवा, पर्यायाक्षरपदसंघातं पर्यायश्च अक्षरं च पदं च संघातश्चेति द्वंद्वैकत्वं । प्रतिपत्तिकानुयोगं–प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्चेति द्वंद्वैकत्वं । द्विकवारप्राभृतकं च प्राभृतकप्राभृतकमित्यर्थः । प्राभृतकं च वस्तु च पूर्वं च इति दशभेदा भवंति । तेषां पूर्वोक्तानां पर्यायादीनां दशभिः समासैः मिलित्वा श्रुतज्ञानं विंशतिविधं भवति । अत्राक्षरादिविषयार्थज्ञानस्य भावश्रुतस्य विवक्षितत्वेन तेषां विंशतिविधत्वनियमे हेतुमाह–श्रुतज्ञानावरणस्य भेदा अपि तावन्मात्रा एव विंशतिविधा एव भवंति, इति इतिशब्दस्य हेत्वर्थवृत्तिसिद्धेः । तद्यथा–पर्यायः पर्यायसमासश्च, अक्षरं, अक्षरसमासश्च, पदं, पदसमासश्च, संघातः, संघातसमासश्च, प्रतिपत्तिकः, प्रतिपत्तिकसमासश्च, अनुयोगः, अनुयोगसमासश्च, प्राभृतकप्राभृतकं, प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च, प्राभृतकं, प्राभृतकसमासश्च, वस्तु वस्तुसमासश्च, पूर्वं, पूर्वसमासश्चेति तदालापक्रमो भवति ॥ ३१७–३१८ ॥ अथ पर्यायनाम्न प्रथमश्रुतज्ञानस्य स्वरूपं गाथाचतुष्टयेनाह—

मं० प्र०—वा अथवा पर्यायाक्षरपदसंघातं–पर्यायश्च अक्षरं च पद च संघातश्चेति द्वंद्वैकत्व । प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्च प्रतिपत्तिकानुयोगं, अत्रापि तथा । चशब्दः समुच्चयार्थः । द्विकवारप्राभृत च प्राभृतकप्राभृतकमित्यर्थः । चशब्दः समुच्चयार्थः । द्वितीयश्चशब्दः छदःपूरणार्थः । तदभावपाठे वा । प्राभृतक वस्तु पूर्वं च । चशब्दः समुच्चयार्थः । इति दशभेदा ॥ ३१७ ॥

म० प्र०—तेषां पूर्वोक्ताना पर्यायादीना दशभि. समासैः सह श्रुतज्ञानं विंशतिविधं भवति । अत्राक्षरादिविषयार्थज्ञानस्य भावश्रुतस्य विवक्षितत्वात् । तेषां विंशतिविधत्वनियमे हेतुमाह–श्रुतज्ञानावरणस्य भेदा अपि तावन्मात्रा एव–विंशतिविधा एव भवंति, इति–हेतोः, इतिशब्दस्य हेत्वर्थवृत्तेः प्रसिद्धत्वात् । तद्यथा–पर्यायः पर्यायसमासश्च, अक्षर अक्षरसमासश्च, पद पदसमासश्च, संघातः संघातसमासश्च, प्रतिपत्तिकः, प्रतिपत्तिकसमासश्च, अनुयोगः अनुयोगसमासश्च, प्राभृतकप्राभृतक प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च, प्राभृतकं प्राभृतकसमासश्च, वस्तु वस्तुसमासश्च, पूर्वं पूर्वसमासश्चेति तदालापक्रमोयं ॥३१८॥ अथ पर्यायनाम्नः प्रथमश्रुतज्ञानभेदस्य स्वरूपप्ररूपणार्थं गाथाचतुष्टयमाह—

स० चं०—पर्याय १ अक्षर २ पद ३ संघात ४ प्रतिपत्तिक ५ अनुयोग ६ प्राभृत प्राभृत ७ प्राभृत ८ वस्तु ९ पूर्व १० दश तौ ए कहे ॥ ३१७ ॥

स० चं०—ते पर्याय आदिक दश भेद कहे तिनके समासनिकरि दश भेद भए मिलिकरि श्रुतज्ञानके बीस भेद भए । ते कहिए हैं—पर्याय १ पर्याय समास २ अक्षर ३ अक्षरसमास ४ पद ५ पदसमास ६ संघात ७ संघात समास ८ प्रतिपत्तिक ९ प्रतिपत्तिक समास १० अनुयोग ११ अनुयोग समास १२ प्राभृतक प्राभृतक १३ प्राभृतक प्राभृतक समास १४ प्राभृत १५ प्राभृत समास १६ वस्तु १७ वस्तु समास १८ पूर्व १९ पूर्वसमास २० ऐसैं बीस भेद हैं । इहां अक्षरादि गोचर जो अर्थ ताके जाननेरूप जो भाव श्रुतज्ञान ताकी मुख्यता जाननी । बहुरि जातैं श्रुतज्ञानावरणके भी तितने ही बीस भेद हैं तातैं श्रुतज्ञानके भी बीस भेद ही कहे हैं ॥३१८॥ आगैं पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञानका भेद ताका निरूपणके अर्थि च्यारि गाथा कहैं हैं—

णवरि विसेसं जाणे सुहमजहण्णं तु पज्जयं णाणं ।
पज्जायावरणं पुण तदणंतरणाणभेदम्हि ॥ ३१९ ॥

नवरि विशेषं जानीहि सूक्ष्मजघन्यं तु पर्यायं ज्ञानं ।
पर्यायावरणं पुनः तदनंतरज्ञानभेदे ॥ ३१९ ॥

जी० प्र०—नवीन विशेषं जानीहि, सः क ? पर्यायज्ञानं—पर्यायाख्यं प्रथमं श्रुतज्ञानं, तु—पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य संबंधि सर्वजघन्यं श्रुतज्ञानं भवति । पुनः—पश्चात् पर्यायज्ञानस्य आवरणं तदनंतरज्ञानभेदे अनंतभागवृद्धियुक्ते पर्यायसमासज्ञानप्रथमभेदे भवति, तद्यथा—उदयागतपर्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धोदयनिषेकस्यानुभागानां सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणः क्षयः, तेषामेव सदवस्थालक्षण उपशमः, देशघातिस्पर्धकानामुदये सति तदावरणोदयेन पर्यायसमासप्रथमज्ञानमेव आव्रियते न तु पर्यायज्ञानं । तदावरणे जीवगुणस्य ज्ञानस्याभावे गुणिनो जीवस्याप्यभावप्रसंगात् । अनुभागरचनायां विन्यस्ते सिद्धानंतैकभागमात्रे द्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्ते नानागुणहानिस्पर्धकवर्गणा-

त्मके श्रुतज्ञानावरणद्रव्ये सर्वतःस्तोकस्य सर्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानुभागसर्वघातिस्पर्धकद्रव्यस्यैव पर्यायज्ञानावरणत्वात् । तावतः आवरणद्रव्यस्य सर्वकालेऽप्युदयाभावात् ॥ ३१९ ॥

म० प्र०—पर्यायज्ञान-पर्यायाख्य प्रथमं श्रुतज्ञानं तु-पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य संबधि सर्वजघन्यं श्रुतज्ञानं भवति । पुनः पर्यायज्ञानस्यावरणं तदनंतरज्ञानभेदे अनतभागवृद्धियुक्ते पर्यायसमासज्ञानप्रथमभेदे भवति । तद्यथा-उदयागतपर्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धस्योदयनिषेकस्यानुभागाना सर्वघातिस्पर्धकाना उदयाभावः क्षयः, तेषामेव सदवस्था उपशमः, देशघातिस्पर्धकानामुदये सति तेन पर्यायसमासप्रथमज्ञानमेवाव्रियते, न तु पर्यायज्ञान, तदावरणे ज्ञानस्य जीवगुणस्याभावे गुणिनो जीवस्याप्यभावप्रसंगात् । अनुभागरचनाया विन्यस्ते सिद्धानंतैकभागमात्रद्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्ते नानागुणहानिस्पर्धकवर्गणात्मके श्रुतज्ञानावरणद्रव्ये सर्वतः स्तोकस्य सर्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानुभागसर्वघातिस्पर्धकद्रव्यस्यैव पर्यायज्ञानावरणत्वात् तावदावरणद्रव्यस्य सर्वकालेप्युदयाभावात् ॥ ३१९ ॥

स० चं०--यहु नवीन विशेष जानहु जो पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञानका भेद सो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त संबंधी सर्वतैं जघन्य श्रुतज्ञान जानना । बहुरि पर्याय श्रुतज्ञानका आवरण सो पर्याय श्रुतज्ञानकौं नाहीं आवरै है। वाके अनंतरि जो पर्याय ज्ञानतैं अनंत भागवृद्धि लीए पर्यायसमास ज्ञानका प्रथम भेद तींहिं विषै पर्याय ज्ञानका आवरण है जातैं उदय आया जो पर्याय ज्ञान आवरणके समय प्रबद्धका उदयरूप निषेक ताकैं सर्वघाती स्पर्धकनिका उदय नाहीं सो क्षय है अर तेई सर्वघाती स्पर्धक जे अगिले निषेकसंबंधी सत्तामें तिष्ठैं हैं तिनिका उपशम है अर देशघाती स्पर्धकनिका उदय है सो ऐसा पर्याय ज्ञानावरणका क्षयोपशम सदा पाइए तातैं पर्याय ज्ञानका आवरणकरि पर्याय ज्ञान आवरै नाहीं । पर्यायसमासज्ञानका प्रथमभेद ही आवरै है। जो पर्याय ज्ञान भी आवरै तौ ज्ञानका अभाव होइ, ज्ञान गुणका अभाव भए गुणी जीव द्रव्यका भी अभाव होइ, सो ऐसैं होइ नाही तातैं पर्यायज्ञान निरावरण ही है। अनुभाग रचनाविषैं भी स्थापित कीया जो सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य जो परमाणूनिका समूह सो द्रव्यके अनुभागकी क्रमतैं हानि वृद्धि करि संयुक्त है बहुरि नानागुणहानि स्पर्धक वर्गणारूप भेद लीएं हैं तिस द्रव्यविषैं सर्वतैं थोरा उदय रूप अनुभाग जाका क्षीण भया ऐसा जो सर्वघाती स्पर्धक तिमहीकौं पर्याय ज्ञानका आवरण कह्या है तितने आवरणका सदा काल उदय न होइ तातैं भी पर्याय ज्ञान निरावरण ही है ॥ ३१९ ॥

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥ ३२० ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
भवति हि सर्वजघन्यं नित्योद्घाटं निरावरणं ॥ ३२० ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातं–जननं तस्य प्रथमसमये निरावरणं–प्रच्छादनरहितं नित्योद्घाटं अत एव सर्वदा प्रकाशमानं सर्वजघन्यं–सर्वनिकृष्टशक्तिकं पर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं भवति खलु एतद्गाथासूत्रं पूर्वाचार्यप्रसिद्धं–स्वोक्तार्थसंप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्थं उदाहरणत्वेन लिखितं ॥ ३२० ॥

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातं–जननं, तस्य प्रथमसमये निरावरणं–प्रच्छादनरहितं नित्योद्घाटं अत एव सर्वदा प्रकाशमानं सर्वजघन्यं सर्वनिकृष्टशक्तिकं पर्यायाख्य श्रुतज्ञान भवति, खलु एतद्गाथासूत्रं पूर्वाचार्यप्रसिद्धं स्वोक्तार्थसंप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्थमुदाहरणत्वेन लिखितं ॥ ३२० ॥

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवका जन्म होतैं पहिला समयविषैं सर्वतैं जघन्य शक्तिकौं लीएं पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है सो निरावरण है इतने ज्ञानका कबहू आच्छादन न होइ, याहीतैं नित्योद्घाट कहिए सदाकाल प्रकट प्रकाशमान है। सो यहु गाथा पूर्वाचार्यनिकरि प्रसिद्ध है इहां अपना कह्या व्याख्यानकी दृढताके निमित्त उदाहरणरूप लिखी है ॥ ३२० ॥

सुहमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण ।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥ ३२१ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तगेषु स्वकसंभवेषु भ्रमित्वा ।
चरमापूर्णत्रिवक्राणां आदिमवक्रस्थिते एव भवेत् ॥ ३२१ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकेषु स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितेषु भवेषु भ्रमित्वा चरमापूर्णभवस्य त्रिवक्रविग्रहगत्या उत्पन्नस्य जीवस्य प्रथमवक्रसमये स्थितस्यैव पूर्वोक्तस्यैव पूर्वोक्त सर्वजघन्यं पर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं भवति तत्रैव तस्य जीवस्य स्पर्शनेंद्रियप्रभवं सर्वजघन्यं मतिज्ञानं, अचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमसंभूतं अचक्षुर्दर्शनमपि भवति। बहुपर्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्ध्या आवरणस्य तीव्रतमानुभागोदयसंभवात्, द्वितीयादिसमयेषु ज्ञानदर्शनवृद्धिसंभवात्। 'त्रिवक्रप्रथमवक्रसमये एव पर्यायज्ञानसंभवो ज्ञातव्यः' ॥ ३२१ ॥

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकगतेषु स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितेषु भवेषु भ्रमित्वा चरमापूर्णभवे त्रिवक्रविग्रहगत्या उत्पन्नस्य जीवस्य प्रथमवक्रसमये स्थितस्यैव पूर्वोक्त सर्वजघन्यं पर्यायाख्य श्रुतज्ञान भवति। तत्रैव तस्य जीवस्य स्पर्शनेंद्रियप्रभवं सर्वजघन्यं मतिज्ञानं, अचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमसभूतमचक्षुर्दर्शनमपि भवति। बहुपर्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्ध्या आवरणस्य तीव्रतमानुभागोदयसंभवात्। द्वितीयादिसमयेषु ज्ञानदर्शनवृद्धिसभवात् ॥ ३२१ ॥

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव सो अपनेविषैं संभवते जे छह हजार बारह बार क्षुद्रभव तिनिविषै भ्रमण करि अंतका लब्धि अपर्याप्तकरूप क्षुद्रभवविषैं तीन वक्रता लीएं जो विग्रहगति ताकरि जन्म धर्‍या होइ ताके विग्रहगतिमें पहिली वक्रता संबंधी समयविषैं तिष्ठता जीवहीकैं सर्वतैं जघन्य पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है। बहुरि तिसहीकैं स्पर्शन इंद्रियसंबंधी जघन्य मतिज्ञान हो है। बहुरि तिसहीकैं अचक्षुर्दर्शनावरणके क्षयोपशमतैं उपज्या जघन्य अचक्षुदर्शन भी हो है। सो इहां बहुत क्षुद्रभवरूप पर्यायके धरनेतैं उत्पन्न भया बहुत संक्लेश ताके बंधनेकरि आवरणका अतितीव्र अनुभागका उदय हो है तातैं क्षुद्रभवनिका अंत क्षुद्रभवनिविषैं पर्यायज्ञान कह्या है। बहुरि द्वितीयादि समयनिविषैं ज्ञान बंधता संभवै है तातैं तीनि वक्रविषैं प्रथम वक्रका समयही विषैं पर्यायज्ञान कह्या है ॥ ३२१ ॥

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि।
फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥ ३२२ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
स्पर्शनेंद्रियमतिपूर्वं श्रुतज्ञानं लब्ध्यक्षरकं ॥ ३२२ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जननप्रथमसमये सर्वजघन्यस्पर्शनेंद्रियमतिज्ञानपूर्वकं लब्ध्यक्षरापरनामधेयं 'पूर्वोक्तचरमभवत्रिवक्रप्रथमसमयादिविशेषणविशिष्टं' सर्वजघन्यं पर्यायश्रुतज्ञानं भवतीति ज्ञातव्यं । लब्धिर्नामश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमः अर्थग्रहणशक्तिर्वा, लब्ध्या अक्षरं अविनश्वरं लब्ध्यक्षरं तावतः क्षयोपशमस्य सदा विद्यमानत्वात् ॥३२२॥ अथ पर्यायसमासप्रकरणं दशभिर्गाथासूत्रैः प्ररूपयति—

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये सर्वजघन्यस्पर्शनेंद्रियमतिज्ञानपूर्वकं लब्ध्यक्षरापरनामधेयं सर्वजघन्यं पर्यायश्रुतज्ञान पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं भवतीति ज्ञातव्य । लब्धिः—श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशम', अर्थग्रहणशक्तिर्वा, लब्ध्या अक्षरं—अविनश्वरं लब्ध्यक्षरं, तावतः क्षयोपशमस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् ॥ ३२२ ॥ अथ दशभिर्गाथाभिः पर्यायसमासप्रकरण प्ररूपयति—

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवकैं उपजनेका पहिला समयविषैं सर्वतैं जघन्य स्पर्शन इंद्रिय संबंधी मतिज्ञानपूर्वक लब्धि अक्षर है दूसरा नाम जाका ऐसा पर्याय ज्ञान हो है। लब्धि कहिए श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम वा जानन शक्ति ताकरि अक्षरं कहिए अविनाशी सो ऐसा पर्यायज्ञान ही है जातैं इतना क्षयोपशम सदाकाल विद्यमान रहै हैं ॥ ३२२ ॥ आगैं दश गाथानिकरि पर्यायसमास ज्ञानकौं प्ररूपैं हैं—

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए ।
संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥ ३२३ ॥

अवरोपरि अनंतमसंख्यं संख्यं च भागवृद्धयः ।
संख्यमसंख्यमनंतं गुणवृद्धयो भवंति हि क्रमेण ॥ ३२३ ॥

जी० प्र०—सर्वजघन्यपर्यायज्ञानस्य उपरि क्रमेण वक्ष्यमाणपरिपाट्या अनंतभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनंतगुणवृद्धिश्चेति षट्स्थानपतिता वृद्धयो भवति खलु । द्विरूपवर्गधाराया अनंतानंतानि वर्गस्थानानि अतीत्यातीत्य उत्पन्नानां जीवपुद्गलकालाकाशश्रेणीनां उपर्यपि अनंतानंतवर्गस्थानानि अतीत्य सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदानामुत्पत्तिकथनात् तज्जघन्यज्ञानस्यानंतात्मकभागहारः सुघटन् न विरुध्यते ॥ ३२३ ॥

मं० प्र०——सर्वजघन्यस्य पर्यायज्ञानस्योपरि क्रमेण-वक्ष्यमाणपरिपाट्या, अनतभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनंतगुणवृद्धिश्चेति षट्स्थानपतिता वृद्धयो भवंति खलु, द्विरूपवर्गधाराया अनंतानंतानि वर्गस्थानानि गत्वा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यज्ञानस्य अविभागप्रतिच्छेदानामुत्पत्तिकथनात् जघन्यज्ञानस्य अनतभागहारो घटते ॥ ३२३ ॥

स० चं०—सर्वतैं जघन्य पर्याय नामा ज्ञान ताके ऊपरि आगैं अनुक्रमतैं आगैं कहिए है तिस परिपाटीकरि अनंतभाग वृद्धि १ असंख्यात भाग वृद्धि २ संख्यात भागवृद्धि ३ संख्यात गुणवृद्धि ४ असंख्यात गुणवृद्धि ५ अनंतगुणवृद्धि ६ ए षट्स्थान पतित वृद्धि हो हैं। इहां कोऊ कहै कि--सर्वजघन्य ज्ञानकौं अनंतका भाग कैसें संभवै ? ताका समाधान--जो द्विरूपवर्गधाराविषैं अनंतानंत वर्गस्थान भए पीछैं क्रमतैं जीवराशि पुद्गल राशि काल समयराशि श्रेणी आकाशराशि हो हैं तिनिके ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान भएं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तक संबंधी जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। जाका भाग न होइ ऐसे ज्ञान शक्तिके अंश तिनिका ऐसा परिमाण है तातैं तिनिकी अपेक्षा अनंतका भागहार संभवै है ॥ ३२३ ॥

जीवाणं च य रासी असंखलोगा वरं खु संखेज्जं ।
भागगुणम्हि य कमसो अवट्ठिदा होंति छट्ठाणे ॥ ३२४ ॥

जीवानां च च राशिः असंख्यलोका वरं खलु संख्यातं ।
भागगुणयोश्च क्रमशः अवस्थिता भवंति षट्स्थाने ॥ ३२४ ॥

जी० प्र०—अत्र अनतभागादिषु षट्सु स्थानेषु क्रमेण एताः षट् संदृष्टयः अवस्थिताः प्रतिनियता भवंति। तद्यथा—अनंतभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः सर्वजीवराशिरेव १६। असंख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः असंख्यातलोक एव ≡ ∂। संख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः उत्कृष्टसंख्यात एव १५ ॥ ३२४ ॥

मं० प्र०—अनंतभागादिषु षट्सु स्थानेषु क्रमेण एताः षट् संदृष्टयः अवस्थिताः—प्रतिनियता भवंति, तद्यथा—अनंतस्य संदृष्टिः जीवानां राशिः, सर्वजीवराशिरित्यर्थः १६। असंख्यातस्य संदृष्टिः असंख्यातलोकः ≡ ∂। संख्यातस्य संदृष्टिः वर—उत्कृष्टं संख्येयं संख्यातोत्कृष्टमित्यर्थः १५। एवं भागे तिस्रः संदृष्टयः। एता एव गुणकारेऽपि संदृष्टयो भवंति ॥ ३२४ ॥

स० चं०—इहां अनंतभाग आदिक छह स्थानकनिविषै ए छह संदृष्टि अवस्थित कहिए नियमरूप जाननी। अनंतविषैं तौ जीवराशिके सर्व जीवानका परिमाण जानना। असंख्यातविषैं असंख्यातलोक जो असंख्यातगुणा लोकाकाशके प्रदेशनिका परिमाण सो जानना। संख्यातविषैं उत्कृष्टसंख्यात जो उत्कृष्टसंख्यातका परिमाण सो जानना। सोइ तीनो प्रमाण भाग वृद्धिविषैं जानना। येही गुणवृद्धिविषै जानना। भागवृद्धिविषैं इनि प्रमाणनिका भाग पूर्वस्थानकौं दीएं जो परिमाण आवै तितने पूर्वस्थानविषैं मिलाएं उत्तर स्थान होइ। गुणवृद्धिविषैं इनि प्रमाणनिकरि पूर्वस्थानकौं गुणैं उत्तरस्थान हो हैं॥ ३२४॥

उव्वंकं चउरंकं पणछस्सत्तंक अट्ठअंकं च।
छव्वड्ढीणं सण्णा कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं॥ ३२५॥

उर्वंकश्चतुरंकः पंचषट्सप्तांकः अष्टांकश्च।
षड्वृद्धीनां संज्ञा क्रमशः संदृष्टिकरणार्थं॥ ३२५॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तानंतभागाद्यर्थसंदृष्टीनां पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्त षड्विधवृद्धीनां यथासंख्यं अपरसंज्ञा· संदृष्टयः कथ्यंते। अनंतभागस्य उर्वंकः उ। असंख्यातभागस्य चतुरंकः ४। संख्यातभागस्य पंचांकः ५। संख्यातगुणस्य षडकः ६। असंख्यातगुणस्य सप्तांकः ७, अनंतगुणस्य अष्टांकः ८॥ ३२५॥

मं० प्र०—पुनरपि लघुसंदृष्टिकरणार्थं उक्तानां षड्वृद्धीना अन्यानि नामानि संदृष्टयश्च नियमात् कथ्यंते। तद्यथा—अनंतभागस्य उर्वंकः, असंख्यातभागस्य चतुरंकः ४, संख्यातभागस्य पंचाकः ५, संख्यातगुणस्य षडक· ६, असंख्यातगुणस्य सप्ताक. ७, अनंतगुणस्य अष्टाकः ८॥ ३२५॥

स० चं०—बहुरि लघुसंदृष्टि करनेके निमित्त अनंतभागवृद्धि आदि छह वृद्धिनिकी अन्यसंज्ञा संदृष्टि सो कहै हैं—तहां अनंतभाग वृद्धिकी उर्वंक कहिए उकार उ, असंख्यात भाग वृद्धिकी च्यारिका अंक ४, संख्या-

गमात्रानंतभागवृद्धिविकल्पाः सर्वेऽपि नेतव्याः । तत्र वृद्धीनां जघन्याद्भेदे सति तन्न्यासो दर्श्यते । तद्यथा--प्रथमविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य एकवारानंतभागवृद्धिं तस्याधो न्यस्येत् तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम । पुनर्द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानंतभागं संस्थाप्य तस्याधः द्विवारानंतभागं न्यस्येत् । तस्य प्रक्षेपकप्रक्षेपक इति नाम । पुनस्तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकप्रक्षेपक न्यस्य तस्याधः त्रिवारानंतभागं पिसुलिनामान न्यस्येत् । पुनश्चतुर्थविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधोधः प्रक्षेपकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं पिसुलिं चतुर्वारानंतभागं पिसुलिपिसुलिनामान च न्यस्येत् । पुनः पंचमे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपक-प्रक्षेपकप्रक्षेपक-पिसुलि-पिसुलिपिसुलीन् पचवारानंतभागं चूर्णिनामानं च न्यस्येत् । पुनः षष्ठे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रागुक्तान् प्रक्षेपकादीन् षड्वारानंतभागं चूर्णिचूर्णिनामानं च न्यस्येत् । एवं सर्वेषु अनंतभागवृद्धिविकल्पेषु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् सप्तमादि चूर्णिचूर्णिपर्यंतान् न्यस्येत् । चरमविकल्पे तु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् अंगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभागरूपचरमचूर्णिचूर्णिपर्यंतान् न्यस्येत् । सर्वत्र प्रक्षेपको गच्छमात्रो भूत्वा गच्छन् चरमविकल्पे अंगुलासंख्यातभागमात्रगुणकारो भवति—

ज १ ज २ ज ३ ज ४ ज ५ ज ६ । ००० । ज २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a

प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रगुणकारो भवति—

१ ‿
ज १ | ज ३ | ज ६ | ज १० | ज १५ | ००० | ज २ । २
१६ । १६ | १६ । १६ | १६ । १६ | १६ । १६ | १६ । १६ | | १६ । १६ a । २ । a १ ।

पिशुलिः सर्वत्र द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रगुणकारः ।

ज १ | ज ४ | ज १० | ज २० | ००० | ज २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ | | १६ । १६ । १६ a ३ a २ a १

पिसुलिपिसुलि. सर्वत्र त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

ज १ | ज ५ | ज १५ | ००० | ज २-३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ | | १६ । १६ । १६ । १६ । a ४ a ३ a २ a १

चूर्णि· सर्वत्र चतरूपोनगच्छस्य चतूर्वारसंकलितधनमात्रगुणकार ।

ज १ | ज ६ | ००० | ज २-४ २-३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ । १६ | | १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a ५ a ४ a ३ a २ a १

चूर्णिचूर्णि· सर्वत्र पंचरूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

जायते स पर्यायसमासश्रुतज्ञानविकल्पेषु सर्वजघन्यप्रथमविकल्पः स्यात् ज १—/१६ अस्यानंतैकभागे ज १—/१६ । १६ अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते स पर्याय-समासद्वितीयज्ञानविकल्पः ज १—/१६ । १—/१६ अस्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासतृतीयज्ञानविकल्पः ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । अ-स्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासचतुर्थज्ञानविकल्पः ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । अस्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासपंचमश्रुतज्ञानविकल्पः । ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । अस्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासषष्ठश्रु-तज्ञानविकल्पः ज १—/१६ १—/१६ १—/१६ १—/१६ १—/१६ १—/१६ एवं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि अनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानानि सर्वाण्यानंतव्यानि ।

तत्र तद्वृद्धीनां तज्जघन्यमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टवृद्धिपर्यंतं भेदे सति तद्विन्यासो दर्श्यते । तद्यथा—प्रथमविकल्पे स्थितवृद्धिं पृथक्कृत्य जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानंतैकभागवृद्धिं स्थापयेत्, तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम । तथा द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेर्द्वौ प्रक्षेपकौ एकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं च अधोधो न्यस्येत् । तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तद्वृद्धेस्त्रीन् प्रक्षेपकान् त्रीन् प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् एकं पिशुलिं च अधोधो न्यस्येत् । चतुर्थविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेश्चतुरः प्रक्षेपकान् षट् प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् चतुरः पिशुलीन् एकं पिशुलिपिशुलिं च अधोधो न्यस्येत् । पंचमविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेः पंच प्रक्षेपकान् दश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् दश पिशुलीन् पंच पिशुलिपिशुलीन् एकं चूर्णिं च अधोधो न्यस्येत् । षष्ठविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेः षट् प्रक्षेपकान् पंचदश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् विंशतिपिशुलीन् पंचदश पिशुलिपिशुलीन् षट् चूर्णीन् एकं चूर्णिचूर्णिं च अधोधो न्यस्येत्, एवमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानेषु सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रेषु सर्वेष्वपि स्वस्वजघन्यानामधोधः स्वस्वप्रक्षेपकान् गच्छमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः पिशुलीन् द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः पिशुलिपिशुलीन् त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः चूर्णीन् चतूरूपोनगच्छस्य

चतुर्वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः चूर्णिचूर्णीन् पंचरूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् एवं गत्वा चरमानंतभागवृद्धियुक्तस्थानविकल्पे पृथक्कृततज्जघन्यस्योपरि न्यस्येत् । तदधस्तनभागे यथाक्रमं प्रक्षेपकान् सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रवारान् न्यस्येत् । तदधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकाः रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्राः संतीति रूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः पिशुलयः द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्राः संतीति द्विरूपो सूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः पिशुलिपिशुलयः त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसंकलनधनमात्राः संतीति द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः चूर्णयः चतूरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्राः संतीति चतूरूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः चूर्णिचूर्णयः पंचरूपोनगच्छस्ये पंचवारसंकलनधनप्रमिताः संतीति पंचरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छस्य पंचवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । एवं तदधस्तनाधस्तनचूर्णिचूर्णयः षट्रूपोनादिगच्छस्य षड्वारादिसंकलनधनप्रमिताः संतीति षड्रूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागादिगच्छानां षड्रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागादिवारसंकलनधनमात्रान् अधोऽधो विन्यस्यन् गत्वा सर्वाधस्तनद्विचरमचूर्णिचूर्णयः द्विरूपोनगच्छोनगच्छस्य द्विरूपोनगच्छवारसंकलनधनप्रमिताः संतीति द्विरूपोनसूच्यगुलासंख्येयभागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छस्य द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्—

```
ज      २       ३       ४।०००।२–३     २–२     २–१     २                    ज    २
१६ २–१   २–१    २–२    २–३।०००।a।४   a।३    a।२    a।१   अपवर्तिते एवं —१६ २–१  a
   a      a      a      a                                                         a
```

तदधो रूपोनगच्छोनगच्छस्य रूपोनगच्छमात्रवारसंकलनधनमात्राः तच्चरमचूर्णिचूर्णयः संतीति रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छस्य रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारसंकलनधनप्रमित—

```
ज      १     २      ३      ४।०००   २।३ । २–२ । २–१ । २                 ज  १
१६ २    २    २–१    २–२    २–३।०००  a४ । a३ । a२ । a१   अपवर्तितमिदं— १६ २
   a     a     a      a      a                                               a
```

स्थापयेत् । परमार्थतः चरमचूर्णिचूर्णीः संकलितमेव न घटेत द्वितीयादिस्थानाभावात् । अत्र षट्स्थानप्रकरणे अनंतभागवृद्धियुक्तविकल्पेषु सर्वत्र प्रक्षेपकाः गच्छमात्राः संतीति सुगमाः । प्रक्षेपकप्रक्षेपकादीनां प्रमाणानयने करणसूत्रमिदं—

> व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः ।
> रूपादिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतो वित्तं ॥

तत्र षष्ठं विकल्पं विवक्षितं कृत्वा चूर्णीनां चतुर्वारसंकलितधनमानीयते । तत्र पदं चतूरूपोनगच्छ ६–४ मात्रं २ । व्येकं एकरहितं २–१

अस्य उत्तरेण घातः एकवारादिसंकलनरचनामाश्रित्यैव द्विकवारादिसंकलनरचनोत्पत्तेः सर्वत्रादिः उत्तरश्चैकैकः उत्तेनैन घातः कर्तव्यः १। १।

१ — १ — १   ५   ६

गुणिते एवं १, सरूपवारोद्धृतः रूपाधिकवार ४। भक्तः ४। मुखमादिः १ तेन समच्छेदेन ५ सहितः ५ रूपादिकवारांतात्तपद धंकैर्हत

२ ३ ४ ५   ६ २ ३ ४ ५

एकरूपप्रभृतिवारावसानहारभक्तपदाद्यंकैः ४ ३ २ १ हतः गुणितः ५ ४ ३ २ १ अपवर्तितः ६ वित्तं षष्ठविकल्पचू र्णिधन भवति, एवमेव सर्वत्र समस्तवारसंकलनधनानि विवक्षितान्यन्यानि आनयेत्। पुनरेतदेव केशववर्णिभिः स्वाभिप्रायेण आनतु गाथाद्वयमुच्यते—

तिरियपदेरूऊणे तदिट्ठेट्ठिल्लसंकलणवारा।
कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूण उड्ढपदसंखा ॥ १ ॥

तिरियपदे अनंतभागवृद्धियुक्तस्थानेषु यद्विवक्षितं स्थानं तत् तिर्यक्पदं ६, तस्मिन् रूऊणे रूपोने कृते ६ १ तदिट्ठेट्ठिल्लसंकलणवारा तदिष्टपदे प्रक्षेपकादधस्तनकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकैक संकलनमिति संभवतां क्रमेणैकवारद्विवारादिसंकलनानां संख्या भवति ५॥ तत्र इष्ट-स्य 'कोट्ठधणस्स' चतुर्वारसंकलनधनगतकोष्ठधनस्य आणयणे आनयने इट्ठूणउड्ढपदसंखा तदिष्टसंकलनवारस्य प्रमाणेन ४ न्यूनोर्ध्वपदं-६-४ पभवो आदिर्भवति ॥ २ ॥

तत्तोरूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥ २ ॥

तत्तो तमादि २ मादिं कृत्वा रूवहियकमे रूपाधिकक्रमेण गुणगारा गुणकारा अनुलोमगत्या होंति--भवंति उड्ढगच्छोत्ति ऊर्ध्वगच्छांको-त्पत्तिपर्यंतं-ज २ ३ ४ ५ ६ तेषां गुणकाराणां अधः हारा भागहारा इगिरूवमादि एकरूपादयः रूउत्तर-रूपोत्तरा होंति भवंति विलोमक्रमेण
१६ ५

रूपाधिकेष्टवारस्थानेषु पभवोत्ति प्रभवांकपर्यंतं ज २ ३ ४ ५ ६ अपवर्तिते लब्धं चतुर्वारसंकलनधनं भवति—
१६ १६ १६ १६ १६ ५ ४ ३ २ १

ज ६
१६ १६ १६ १६ १६

एवमनंतभागवृद्धियुक्तचरमविकल्पे तिर्यक्पदं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्र २ तस्मिन् रूपोने २ अवशिष्टं तदिष्टाध-
a   a

स्तनसंकलनवारा भवंति १० / २ / a तेषु मध्ये विवक्षितस्य चतुर्वारसंकलनगतकोष्ठधनस्यानयने तद्वारप्रमाणे ४ ऊर्ध्वपदे २ / a अपनीते २–४ / a

शेषप्रमाणमादिर्भवति ज २–४ / १६ ५ a ततः तमादिमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण गुणकारा भवंति ऊर्ध्वगच्छप्रमाणं यावदुत्पद्यते तावत्

ज / १६ । ५ २–४ / a । २–३ / a । २–२ / a । २–१ / a । २ / a एषां गुणकाराणामधः एकाद्येकोत्तरा आदिपर्यंतं विलोमक्रमेण हारा भवंति—

ज / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । २—४ / a ५ । २–३ / a ४ । २–२ / a ३ । २–१ / a २ । २ / a १ अत्र विषममपवर्तनमस्तीत्यनपवर्तितमेव अवतिष्ठते तल्लब्धस्य अवधि-

ज्ञानविषयत्वात् । पुनस्तच्चरमविकल्पे विवक्षितद्विचरमचूर्णिचूर्णेर्द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागवारसंकलनधनमानीयते, तद्यथा—तिर्यक्पदे २ / a

रूपोने सति १० / २ / a तदिष्टाधस्तनसंकलनसमस्तवारसंख्या भवति निजेष्टवारसंकलनधनानयने तद्वारसंकलनप्रमाणेन २–२ / a ऊनोर्ध्वपदे २ / a आ-

दिः २ । ततस्तमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण अनुलोमगत्या गुणकारा ऊर्ध्वगच्छप्रमाणांकोत्पत्तिपर्यंतं भवंति—

ज / १६ २ । / a ७० २ । ३ । ४ । ००० । २–३ / a । २–२ / a । २–१ / a । २ / a एषामधः रूपादिरूपोत्तरा हाराः विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारसंकलनांकाव-

साना भवंति प्रभवपर्यंतं—ज / १६ २ / a १० २ / २ / a ७० ३ / २–२ / a ४ / २–३ / a । ००० / ००० २–३ / a ४ २–२ / a ३ २–१ / a २ २ / a १ अत्र समानापवर्तनमस्तीति अपवर्तिते एवं-

ज / १६ १० / २ । / a २ / a चरमचूर्णिचूर्णेः संकलितं नास्ति द्वितीयादिस्थानाभावात् । सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभक्तजघन्यप्रमितं स्यात् ज / १६ १ / २ / a

एवमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं असंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज ≡ a । १– / ≡ a । अत्र उर्वकं चतुरंकेन भक्त्वा तदेकभागः तत्रैव युतोऽस्तीति जघन्यं साधिकं भवति। अग्रेऽपि सर्ववृद्धीनां अयमेव क्रमो भवति। स्वस्वप्राक्तनोर्वंकं भक्त्वा तदेकभागवृद्धिरवगंतव्या। पुनः प्राग्वदनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरपरमसंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज । ≡ a १– / ≡ a ≡ a १– / ≡ a अनेन क्रमेण असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं संख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज । १५ १– / १५ पुनः पूर्ववदनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि आवर्त्य पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरेकं संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानं ज । १५ १– / १५ । १५ १– / १५ अनेन क्रमेण संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा अग्रे प्राग्वदनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानं भवति। एवं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनः अनंतभागासंख्यातभागसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्राग्वत्सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि पूर्ववत्सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि नीत्वा एकमसंख्यातगुणवृद्धियुक्त स्थान भवति। एवमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा अग्रे अनंतभागासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितानि नीत्वा पुनरनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितानि नीत्वा पुनरनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं कांडकप्रमितानि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानान्येव सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा द्वितीयषट्स्थानस्य आदिभूतमष्टांकसंज्ञं भवति इत्येवं सर्वत्र षट्स्थानपतितवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ३२६ ॥

१ सूच्यंगुलसंख्या।

मं० प्र०—पूर्ववृद्धौ—अनंतभागवृद्धौ, सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां सत्यां परवृद्धिः—असंख्यातभागवृद्धिः, एकवारं भवति। पुनरप्यनंतभागवृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां सत्यां असंख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति। अनेन क्रमेण तावद्गतव्यं यावदसंख्यातभागवृद्धिरपि सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रवारान् गच्छति। ततः पुनरप्यनंतभागवृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां संख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति। पुनरपि पूर्वोक्तक्रमेण पूर्वपूर्ववृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां परवृद्धिरेकैकवारं भवतीत्यंगुलासंख्यातभागमात्रसंख्यातभागवृद्धौ गतायां पुनः पूर्ववृद्धिषु सर्वासु पूर्वोक्तक्रमेण संख्यातवारवृद्धिरहितं आवर्तितासु संख्यातगुणवृद्धिः एकवारं भवति। उक्तानां वृद्धीनां पूर्वोक्तसंदृष्टयः उर्वकादय आचार्यैर्न्यस्ता इत्यस्माभिरपि तथैव न्यस्यंते—उ उ ४ उ उ ४ उ उ ५ उ उ ४ उ उ ४ उ उ ५ उ उ ४ उ उ ४ उ उ ६ द्विवारलिखितमूर्वकादिरंगुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टिः। एव षडंकपर्यंतपंक्तिगतोर्वकादीनां सर्वेषामावृत्तौ सत्यां षडंकोऽप्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गत इत्यर्थः। ततः षडंकरहितैकपंक्त्या वृत्तौ सत्यामेकवारं सप्तांकनामासंख्यातगुणवृद्धिर्भवति। एवं षडंकपंक्तिद्वयसप्तांकैकपंक्तिरूपपंक्तित्रयस्यावृत्तौ सत्यां सप्तांकस्यांगुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टिर्भवति इत्थं षट्पंक्तयो जाताः। ततः पुनः सप्तांकरहितपंक्तित्रयस्यावृत्तौ सत्यामेकवारमष्टांकनामा अनंतगुणवृद्धिर्भवति। एव षट्स्थानवृद्धीनां वृत्तिक्रमो दर्शितो ग्रंथलिखितरचनानुसारेण अव्यामोहेन श्रोतृजनैर्ज्ञातव्यः।

अथानंतभागवृद्धेरंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् वृत्तिक्रमो दर्श्यते। तद्यथा—अनंतगुणजीवराशिमात्रस्वार्थप्रकाशनशक्त्यविभागप्रतिच्छेदस्वभावं सर्वजघन्यज्ञानं ज इति संदृष्ट्या संस्थाप्य तस्मिन् सर्वजीवराशिप्रमितानंतेन भक्तेन यल्लब्धं तज्जघन्यस्योपरि समच्छेदीकृत्य योजनीयं, स पर्यायसमासस्य प्रथमविकल्पः

ज १— / १६ । १६ अस्यानंतभागे ज १— / १६ । १६ / १६ अस्मिन्नेव समच्छेदीकृत्य नियुक्ते द्वितीयविकल्पः ज १— १— / १६ । १६ / १६ । १६ अस्यानंतभागे ज १— १— / १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत्प्रक्षिप्ते तृतीयो विकल्पः। ज १— १— १— / १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ अस्यानंतभागे ज १— १— १— / १६ । १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत्प्रक्षिप्ते चतुर्थो विकल्पः ज १— १— १— १— / १६ । १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ अस्यानंतभागे ज १— १— १— १— / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत् प्रक्षिप्ते पंचमो विकल्पः ज १— १— १— १— १— / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ अस्यानंतभागे ज १— १— १— १— / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत्प्रक्षिप्ते षष्ठो विकल्पः। ज १— १— १— १— १— १— / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६। एवं सूच्यंगुलासंख्यातभा-

गमात्रानंतभागवृद्धिविकल्पाः सर्वेऽपि नेतव्याः। तत्र वृद्धीनां जघन्याद्भेदे सति तन्न्यासो दर्श्यते। तद्यथा--प्रथमविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य एकवारानंतभाग-वृद्धिं तस्याधो न्यस्येत् तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम। पुनर्द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानंतभागं संस्थाप्य तस्याधः द्विवारानंत-भागं न्यस्येत्। तस्य प्रक्षेपकप्रक्षेपक इति नाम। पुनस्तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः त्रिवारानंतभागं पिसुलिनामानं न्यस्येत्। पुनश्चतुर्थविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधोधः प्रक्षेपकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं पिसुलिं चतुर्वारानंतभागं पिसुलिपिसु-लिनामानं च न्यस्येत्। पुनः पंचमे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपक-प्रक्षेपकप्रक्षेपक-पिसुलि-पिसुलिपिसुलीन् पंचवारानंतभागं चूर्णिनामानं च न्यस्येत्। पुनः षष्ठे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रागुक्तान् प्रक्षेपकादीन् षड्वारानंतभागं चूर्णिचूर्णिनामानं च न्यस्येत्। एवं सर्वेषु अनंतभागवृद्धिविकल्पेषु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् सप्तमादिचूर्णिचूर्णिपर्यंतान् न्यस्येत्। चरमविकल्पे तु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् अंगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभागरूपचरमचूर्णिचूर्णि पर्यंतान् न्यस्येत्। सर्वत्र प्रक्षेपको गच्छमात्रो भूत्वा गच्छन् चरमविकल्पे अंगुलासंख्यातभागमात्रगुणकारो भवति—

ज १ ज २ ज ३ ज ४ ज ५ ज ६ । ००० । ज २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ ।   १६ a

प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रगुणकारो भवति—

ज १ । ज ३ । ज ६ । ज १० । ज १५ । ००० । ज २ । २ (१—)
१६ । १६ | १६ । १६ | १६ । १६ | १६ । १६ | १६ । १६ | | १६ । १६ a । २ । a १ ।

पिशुलिः सर्वत्र द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रगुणकारः।

ज १ | ज ४ | ज १० | ज २० | ००० | ज २ २ २-१ २
१६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ | | १६ । १६ । १६ a ३ a २ a १

पिसुलिपिसुलि. सर्वत्र त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

ज १ | ज ५ | ज १५ | ००० | ज २—३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ | | १६ ।१६ । १६ । १६ । a ४ a ३ a २ a १

चूर्णिः सर्वत्र चतरूपोनगच्छस्य चतूर्वारसंकलितधनमात्रगुणकार ।

ज १ | ज ६ | ००० | ज २—४ २—३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ । १६ | | १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a ५ a ४ a ३ a २ a १

चूर्णिचूर्णि. सर्वत्र पंचरूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

ज १ | ००० ज
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ | १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a६ (२-५) a५ (२-४) a४ (२-३) a३ (२-२) a२ (२-१) a१ (२)

एवं सप्तमादिचूर्णिचूर्णीनां चरमविकल्पपर्यंतं गुणकारा आनेतव्याः तत्र द्विचरमचूर्णिचूर्णिद्विरूपोनगच्छोनगच्छस्य द्विरूपोनगच्छमात्रवारसंकलितधनमात्रगुणकाराः

२ ३ ४ । ००० २-३ २-२ २-१ २
२-१ २-२ २-३ ००० a४ a३ a२ a१ अपवर्तितेऽङ्गुलासंख्यातभागमात्रगुणकारोऽवशिष्यते १६ । a । २-१ (ज । २ / a) चरमचूर्णिः रूपो-
a a a

नगच्छोनगच्छस्य रूपोनगच्छमात्रवारसंकलितधनमात्रगुणकाराः १ । २ । ३ । ४ । ००० । २-३ २-२ २-१ २ अपवर्तिते एक एव गुण-
२ २-१ २-२ २-३ ००० । a४ a३ a२ a१
a a a a

कारो भवति ज १ / १६ । २ / a परमार्थतस्तु चरमचूर्णिचूर्णि. संकलितमेव नास्ति द्वितीयस्थानाभावात् । एवमंगुलासंख्यातभागमात्रेषु अनंतभागवृद्धिस्थानेषु

गतेषु एकमसंख्यातभागवृद्धिस्थानं भवति ज । ज (। । १–) ≡ a / ≡ a पुनरपि पूर्ववदंगुलासंख्यातभागमात्राण्यनंतभागवृद्धिस्थानान्यानेतव्यानि । तेषु गतेषु पुनरपि

एकवारमसंख्यातभागवृद्धिस्थानं भवति । अनेन क्रमेण असंख्यातभागवृद्धिस्थानेष्वप्यंगुलासंख्यातभागमात्रेषु गतेषु पुनरप्यंगुलासंख्यातभागमात्रेष्वनंतभागवृद्धिस्थानेषु गतेष्वेकवार संख्यातभागवृद्धिस्थानं भवति । उपरि पूर्वोक्तप्रकारेण षट्स्थानवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ३२६॥

स० च०–पूर्ववृद्धि जो पहिली पहिली वृद्धि सो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ तब एक एक बार परवृद्धि कहिए पिछली पिछली वृद्धि होइ ऐसैं बार बार अंतकी वृद्धि जो अनंतगुण वृद्धि तीहिं पर्यंत हो है ऐसा जानना। अब याका अर्थ यंत्र द्वार करि दिखाइए है तहां यंत्रविषैं अनंतभागादिककी उकार आदि संदृष्टि कही थी सो लिखिए है–

पर्यायसमासज्ञानविषैं वृद्धिका यंत्र।

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

बहुरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण वारकी जायगा दोय बार लिखिए है सो इहां पर्याय नाम श्रुतज्ञानका भेद तातैं अनंत भाग वृद्धि लीएं पर्यायसमास नामा श्रुतज्ञानका प्रथमभेद हो है। बहुरि इस प्रथम भेदतैं अनंतभाग वृद्धि लीएं पर्याय समासका दूसरा भेद हो है। ऐसैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भाग वृद्धि होइ तब एकवार असंख्यात भाग वृद्धि होइ। इहां अनंत भाग वृद्धि पहिलैं कही थी तातैं पूर्व कहिए अर असंख्यात भाग वृद्धि वाके पीछैं कही थी तातैं याकौं पर कहिए सो इहां यंत्रविषैं प्रथम पंक्तिका प्रथम कोष्ठ विषैं दोय बार उकार लिख्या सो तो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि की सहनानी जाननी अर ताके आगैं च्यारिका अंक लिख्या सो एकवार असंख्यात भाग वृद्धिकी सहनानी जाननी बहुरि इहां तैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भाग वृद्धि भए पीछे दूसरा एकवार असंख्यात भाग वृद्धि होइ। ऐसैं ही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि हो है तातैं यंत्रविषैं प्रथमपंक्तिका दूसरकोठा विषैं प्रथम कोठावत् दोय उकार एक च्यारि अंक लिख्या। दूसरीबार लिखनेतैं सूच्यंगु-

लका असंख्यातवां भागवार जानि लेना। बहुरि इहांतैं आगैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ तब एकबार संख्यात भागवृद्धि होइ। यातैं प्रथम पंक्तिका तीसरा कोठाविषैं दोय उकार अर एक पांचका अंक लिख्या अब इहांतैं जैसैं पूर्वैं अनंतभाग वृद्धि लीएं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि होइ पीछैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंतभाग वृद्धि होइ तब एकबार संख्यात भागवृद्धि भई तैसैं ही याही अनुक्रमतैं दूसरा संख्यात भागवृद्धि भई बहुरि याही अनुक्रमतैं तीसरा भई ऐसैं संख्यात भागवृद्धि भी सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण बार हो है तातैं इहां यंत्रविषैं प्रथम पंक्तिविषैं जैसे तीन कोठे किये थे तैसैं अंगुलका असंख्यातवां भागकी सहनानीके अर्थि दूसरा तीन कोठे उसही पंक्तिविषैं कीए। इहां असंख्यात भागवृद्धिकौं पूर्व कहिए संख्यात भाग वृद्धिकौं पर कहिए बहुरि इहांतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ एकबार असंख्यात भाग वृद्धि होइ ऐसें सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण असंख्यातभाग वृद्धि होइ सो याकी सहनानीके अर्थि यंत्रविषैं दोय उकार अर च्यारिका अंक करि संयुक्त दोय कोठे कीए। बहुरि यातैं आगैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण अनंतभाग वृद्धि होइ करि एक बार संख्यात गुण वृद्धि होइ सो याकी सहनानीके अर्थि प्रथम पंक्तिका नवमा कोठाविषैं दोय उकार अर छह का अंक लिख्या बहुरि जैसैं प्रथम पंक्तिविषैं अनुक्रम कह्या तैसैंही आदितैं लेकरि सर्व अनुक्रम दूसरा भया तब एकबार दूसरा संख्यात गुणवृद्धि भई। ऐसैं ही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण संख्यात गुण वृद्धि हो है सो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण तैसैं होनेकी सहनानीके अर्थि यंत्रविषैं जैसी प्रथम पंक्ति थी तैसैं ही वाके नीचैं दूसरी पंक्ति लिखी। बहुरि इहांतैं जैसें प्रथम पंक्तिविषैं अनुक्रम कह्या था तैसैं अनुक्रमतैं बहुरि वृद्धि भई। विशेष इतना जो उहां पीछैं ही पीछैं एकबार संख्यात गुणवृद्धि भई थी इहां पीछैं ही पीछैं एकबार असंख्यात गुणवृद्धि भई। याहीतैं यंत्रविषैं तीसरी पंक्ति प्रथम पंक्ति सारिखी लिखी। नवमा कोठाविषैं उहां तौ दोय उकार अर छहका अंक लिख्या था इहां तीसरी पंक्तिविषैं नवमा कोठाविषैं दोय उकार अर सातका

अंक लिख्या इहां और सब पूर्व कहिए अर असंख्यात गुणवृद्धि पर कहिए। बहुरि इहातें जैसें तीनों ही पंक्ति विषैं आदितैं लेकरि अनुक्रमतें वृद्धि भई तैसें ही अनुक्रमतें सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण होइ तब असंख्यात गुणवृद्धि भी सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ निवरै सो इहां यंत्रविषैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण तैसें ही होनेकी सहनानीके अर्थि जैसें तीन पंक्ति करीं थीं तैसें ही दूसरी तीनों पंक्ति लिखी ऐसें छह पंक्ति भई। अब इहांतैं आगैं जैसें आदितैं लेकरि अनुक्रमतें तीनों पंक्तिविषैं वृद्धि कही थी तैसें ही तैसें अनुक्रमतें फेरि सर्ववृद्धि भई। विशेष इतना जो तीसरी पंक्तिका अंतविषैं जहां असंख्यात गुणवृद्धि कही थी सो इहां तीसरी पंक्तिका अंतविषैं एकबार अनंत गुणवृद्धि हो है याहीतैं यंत्रविषैं भी पहिली दूसरी तीसरी सारिखी तीन पंक्ति और लिखीं उहां तीसरी पंक्तिका नवमा कोठाविषैं दोय उकार सप्तका अंक लिख्या था इहां तीसरी पंक्तिका नवमां कोठाविषैं दोय उकार अर आठका अंक लिख्या सो इहां अनंत गुणवृद्धिकौं पर कहिए अन्य सर्व पूर्व कहिए। याके आगैं कोई वृद्धि रही नाहीं तातैं याकौं पूर्व संज्ञा न होइ याहीतैं यहु अनंत गुणवृद्धि एक बारही हो है सो इस अनंत गुणवृद्धिकौं होतसंते जो प्रमाण भया सोई नवीन षट्स्थानपतित वृद्धिका पहिला स्थानक जानना। ऐसें पर्याय समास ज्ञानविषैं असंख्यातलोकवार मात्र बार षट्स्थान पतित वृद्धि हो है। अब याका कथन प्रकट कर दिखाइए है—द्विरूप वर्गधारा विषैं जीवराशितैं अनंतानंत गुणां जघन्य पर्याय नामा ज्ञानकी अपेक्षा अपने विषयकौं प्रकाशनेरूप शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं सो इस प्रमाणकौं जीवराशिप्रमाण अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै ताकौं उस जघन्य ज्ञानविषैं मिलाएं पर्याय समासज्ञानका प्रथम भेद हो है इहां एकबार अनंतभागवृद्धि भई। बहुरि इस पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेदकौं जीवराशिप्रमाण अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना उस पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेद विषैं मिलाएं पर्याय समास ज्ञानका दूसरा भेद हो है। इहां दूसरा अनंत भाग वृद्धि भई। बहुरि उस दूसरे भेदकौं अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना उस दूसरा भेदविषैं मिलाएं पर्यायसमास ज्ञानका तीसरा भेद

हो है। इहां तीसरा अनंत भाग वृद्धि भई। बहुरि उस तीसरे भेदका अनंतकौं भाग दीएं जो परिमाण आया तितना उस तीसरा भेदविषैं मिलाएं पर्याय समासज्ञानका चौथा भेद हो है। इहां चौथा अनंत भागवृद्धि भई। इसही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंतभाग वृद्धि हूवा थका जो पर्यायसमास ज्ञानका भेद भया ताकौं एकबार असंख्यात लोक प्रमाण जो असंख्यात ताका भागदीएं जो परिमाण आवै तितना उसही भेदविषै मिलाएं एकबार असंख्यात भाग वृद्धि लीएं पर्याय समास ज्ञानका भेद हो है। बहुरि याकौं अनंतका भाग दीए जो परिमाण आवै तितना इसही विषैं मिलाएं पर्यायसमासज्ञानका भेद भया। इहांतैं बहुरि अनंत भागवृद्धिका प्रारंभ हुवा सो ऐसैं ही सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण अनंतभाग वृद्धि भए जो पर्याय समास ज्ञानका भेद भया ताकौं फेरि असंख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आया ताकौं उसही भेद विषैं मिलाएं दूसरा असंख्यात भागवृद्धि लीएं पर्याय समासज्ञान का भेद हो है।

ऐसैं अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि भी पूर्ण होइ तहां जो पर्यायसमास ज्ञानका भेद भया ताकौं बहुरि अनंतका भाग दीएं जो परिमाण भया ताकौं तिसहीमें मिलाएं पर्याय समास ज्ञानका भेद होइ। तब इहां अनंत भागवृद्धिका प्रारंभ हूवा सो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि पूर्ण होइ तब जो पर्याय समास ज्ञानका भेद भया ताकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं जो परिमाण होइ ताकौं उसहीविषै मिलाएं पहिले संख्यातभागवृद्धि लीएं पर्यायसमासका भेद होहै यातैं आगैं फेरि अनंतभागवृद्धिका प्रारंभ हूवा सो ऐसैं ही पूर्वै यंत्रद्वारकरि जो अनुक्रम कह्या है तिस अनुक्रमके अनुसारि वृद्धि जानि लेनी। इतना जानिलेना जिस भेदतैं आगैं अनंतभागवृद्धि होइ तहां तिस ही भेदकौं जीवराशि प्रमाण अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना तिस ही भेदविषैं मिलाएं उसतैं अनंतरवर्ती भेद होइ। बहुरि जिस भेदतैं आगैं असंख्यातभागवृद्धि होइ तहां तिसही भेदकौं असंख्यातलोक प्रमाण असंख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै ताकौं तिस ही भेदविषैं मिलाएं उस

भेदतैं अनंतरवर्ती भेद हो है। बहुरि जिस भेदतैं आगैं संख्यातभागवृद्धि होइ तहां तिसही भेदकौं उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण संख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना तिसही भेदविषै मिलाएं उस भेदतैं आगिला भेद होइ। बहुरि जिस भेदतैं आगैं संख्यातगुणवृद्धि होइ तहां तिस भेदकौं उत्कृष्ट संख्यातकरि गुणीए तब उस भेदतैं अनंतरवर्ती भेद होइ। बहुरि जिस भेदतैं आगैं असंख्यातगुणवृद्धि होइ तहां तिस ही भेदकौं असंख्यातलोककरि गुणिए तब उस भेदतैं आगिला भेद होइ। बहुरि जिस भेदतैं आगैं अनंतगुणवृद्धि होइ तहां तिस ही भेदकौं जीवराशिका प्रमाण अनंतकरि गुणिए तब तिस भेदतैं आगिला भेद होइ। ऐसैं षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रम जानना। इहां जो संख्या कही है सो सर्व संख्या ज्ञानका अविभाग प्रतिच्छेदनिकी जाननी अरु जो इहां भेद कहे हैं तिनिका भावार्थ यहु है जो जीवकै कै तौ पर्यायज्ञान ही होइ और उसतैं बधती ज्ञान होइ तौ पर्यायसमासका प्रथम भेद ही होय ऐसा नाही पर्यायज्ञानतैं एक दोय आदि अविभाग प्रतिच्छेद बंधता भी किसी जीवके ज्ञान होइ अर उस पर्याय समासके प्रथम भेदतैं बंधता ज्ञान होइ तौ पर्याय समास ज्ञानका दूसरा भेद ही होइ ऐसैं अन्यत्र भी जानना। अब इहां अनंत भाग वृद्धिरूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान कहे तिनिका जघन्य स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यंत स्थापनका विधान कहिए है। तहां प्रथम संज्ञा कहिए है—विवक्षित मूल स्थानकौं विवक्षित भाग हारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं प्रक्षेपक कहिए। तिस प्रमाणकौं तिसही भाग हारकाभाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं प्रक्षेपक प्रक्षेपक कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं पिशुलि कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं पिशुलिपिशुलि कहिए। ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दियें जो प्रमाण आवै ताकौं चूर्णि कहिए। ताकौं भी विवाक्षित भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं चूर्णि चूर्णि कहिए। ऐसैं ही पूर्वप्रमाणकौं विवक्षित भाग हारकाभाग दीएं द्वितीयादि चूर्णिचूर्णि कहिए। अब इहां दृष्टांत रूप अंक संदृष्टिकरि प्रथम कथन दिखाइए है—विवक्षित जघन्य पर्याय ज्ञानका प्रमाण पैंसठिहजार पांचसै छत्तीस

६५५३६। विवक्षित भागहार अनंतका प्रमाण च्यारि ४ तहां पूर्वोक्त क्रमतैं भागहारका भाग दीएं प्रक्षेपकका प्रमाण सोलह हजार तीनसौ चौरासी १६३८४। प्रक्षेपक प्रक्षेपकका प्रमाण च्यारि हजार छिनवै ४०९६। पिशुलिका प्रमाण एक हजार चौईस १०२४। पिशुलि पिशुलिका प्रमाण दोयसै छप्पन २५६। चूर्णिप्रमाण चौसठि ६४ चूर्णि चूर्णिका प्रमाण सोलह १६ असैं द्वितीयादि चूर्णिचूर्णिका प्रमाण च्यारि आदि जानने। अब इहां ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि नीचैं एकबार प्रक्षेपक १६३८४ स्थापि जोडैं पर्यायसमासके प्रथमभेदका इक्यासी हजार नवसैं बीस ८१९२० प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि नीचैं दोय प्रक्षेपक १६३८४।१६३८४ एक प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापि जोडै पर्याय समासके द्वितीय भेदका एक लाख दोय हजार च्यारिसै १०२४०० प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि नीचैं तीन प्रक्षेपक १६८४३।१६३८४।१६३८४ तीन प्रक्षेपक प्रक्षेपकएक पिशुलि स्थापि जोडैं तीसरे भेदका एक लाख अठाईस हजार १२८०००। प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि नीचैं नीचै च्यारि प्रक्षेपक छह प्रक्षेपक प्रक्षेपक च्यारि पिशुलि एक पिशुलि पिशुलि स्थापि जोडै चौथे भेदका एक लाख साठि हजार। १६००००। प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि नीचै नीचै पांच प्रक्षेपक दश प्रक्षेपक प्रक्षेपक दश पिशुलि पांच पिशुलि पिशुलि एक चूर्णि स्थापि जोडै पांचवे भेदका दोय लाख २००००० प्रमाण हो है बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि नीचै नीचैं छह प्रक्षेपक पंचदश प्रक्षेपक प्रक्षेपक बीस पिशुलि पंद्रह पिशुलि पिशुलि छह चूर्णि एक चूर्णि चूर्णि स्थापि जोडै छठे स्थानका दोयलाख पचास हजार २५०००० प्रमाण हो है असैं ही क्रमतैं सर्वस्थाननिविषैं ऊपरि तौ जघन्य स्थापन करना ताके नीचैं नीचैं जितना गच्छका प्रमाण तितने प्रक्षेपक स्थापन करने। इहां जेथवां स्थान होइ तिस स्थान विषैं तितना गच्छ जानना। जैसैं छठा स्थानविषैं गच्छका प्रमाण छह होइ। बहुरि तिनके नीच एक घाटि गच्छका एकबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापने। बहुरि तिनके नीचैं दोय घाटि गच्छका दोयबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने पिशुलि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचैं तीन

घाटि गच्छका तीनबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने पिशुलि पिशुलि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचैं च्यारि घाटि गच्छका च्यारिबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने चूर्णि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचैं पांच घाटि गच्छका पांचबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने चूर्णि चूर्णि स्थापन करने। ऐसैं नीचै नीचै छह आदि घाटि गच्छका छह आदिवार संकलन धनका जेता जेता प्रमाण तितने तितने द्वितीयादि चूर्णि चूर्णि स्थापन करने ऐसैं स्थापन करि जोडैं पर्याय समास ज्ञानके भेदविषैं प्रमाण आवै है। अब इहां एकबार दोयबार आदि संकलन धन कहे तिनिका स्वरूप इहां ही आगैं वर्णन करैंगे। ऐसैं अंकसंदृष्टि करि वर्णन कीया अब यथार्थ बर्णन करिए है—

पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेद विषैं पर्याय ज्ञानतैं जितने बंधै तितने जुदे कीएं पर्याय ज्ञानके जेते अविभाग प्रतिच्छेद हैं तींहिं प्रमाण मूलविवक्षित जानना। यहु जघन्य ज्ञान है तातैं इस प्रमाणका नाम जघन्य स्थाप्या। बहुरि इस जघन्यकौं जीवराशि मात्र अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताका नाम प्रक्षेपक जानना। इस प्रक्षेपककौं जीवराशिमात्र अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै सो प्रक्षेपक प्रक्षेपक जानना। ऐसैंही क्रमतैं जीवराशिमात्र अनंतका भाग दीएं जो जो प्रमाण आवै सो सो क्रमतैं पिशुलि पिशुलिपिशुलि अर चूर्णि अर चूर्णि चूर्णि अर द्वितीय चूर्णिचूर्णि आदि जानने। सो पर्याय समास ज्ञानका प्रथमभेदविषैं ऊपरि जघन्य स्थापि नीचै ताकी वृद्धिका एक प्रक्षेपक स्थापना। बहुरि दूसरा भेद विषैं ऊपरि जघन्य स्थापि नीचैं नीचैं ताकी वृद्धिके दोय प्रक्षेपक एक प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापने। बहुरि तीसरा भेदविषैं ऊपरि जघन्य स्थापि नीचैं नीचै ताकी वृद्धिके तीन प्रक्षेपक तीन प्रक्षेपक प्रक्षेपक एक पिशुलि स्थापने। बहुरि चौथा भेद विषैं जघन्य ऊपरि स्थापि ताके नीचैं नीचैं ताके वृद्धिके च्यारि प्रक्षेपक छह प्रक्षेपक प्रक्षेपक च्यारि पिशुलि एक पिशुलिपिशुलि स्थापने। बहुरि पांचवां भेदविषैं जघन्य ऊपरि स्थापि ताके नीचैं नीचैं पांच प्रक्षेपक दश प्रक्षेपक प्रक्षेपक दश पिशुलि पांच पिशुलि पिशुलि एक चूर्णि स्थापने। बहुरि छठा भेदविषैं ऊपरि जघन्य स्थापि ताके नीचैं नीचैं ताकी

वृद्धिके छह प्रक्षेपक पंद्रह प्रक्षेपक प्रक्षेपक बीस पिशुलि पंद्रह पिशुलि-पिशुलि छह चूर्णि एक चूर्णि-चूर्णि स्थापने। ऐसैं ही सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र जे अनंतभाग वृद्धि संयुक्त पर्याय समास ज्ञानके स्थान तिनिविषैं अपने अपने जघन्यके नीचें नीचैं प्रक्षेपक गच्छमात्र स्थापने। प्रक्षेपक प्रक्षेपक येक घाटि गच्छ एकवार संकलन धनमात्र स्थापने। पिशुलि दोय घाटि गच्छका दोयबार संकलन धनमात्र स्थापने। पिशुलि पिशुलि तीन घाटि गच्छका तीन बार संकलन धनमात्र स्थापने। चूर्णि च्यारि घाटि गच्छका च्यारिवार संकलन धनमात्र स्थापने। चूर्णि चूर्णि पांच घाटि गच्छका पांचवार संकलन धनमात्र स्थापने ऐसैं ही क्रमतैं एक एक घाटि गच्छका एक एक अधिकवार संकलन मात्र चूर्णि चूर्णि ही अंतपर्यंत जानने तहां अनंत भागवृद्धि युक्त स्थाननिविषैं अंतका जो स्थान तीहिं विषैं जघन्य तौ ऊपरि स्थापना ताके नीचें नीचें सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रक्षेपक स्थापने। एक घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका एकवार संकलन धनमात्र प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापने। दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका दोयवार संकलन धनमात्र पिशुलि स्थापने। तीन घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका तीनबार संकलन धनमात्र पिशुलि पिशुलि स्थापने। च्यारि घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका च्यारि वार संकलन धनमात्र चूर्णि स्थापने। पांच घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका पांच वार संकलन धनमात्र चूर्णि चूर्णि स्थापने। याही प्रकार नीचैं नीचैं चूर्णि चूर्णि छह आदि घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका छह आदिवार संकलन धनमात्र स्थापने। तहां द्विचरम चूर्णि चूर्णि दोयका दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागवार संकलन धनमात्र स्थापन करने। बहुरि अंतका चूर्णि चूर्णि एकका एक घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागवार संकलन धनमात्र स्थापन करना। परमार्थतैं अंत चूर्णि चूर्णिका संकलन धन नाहीं है जातैं द्वितीयादि स्थानका अभाव है। याही जायगा (एक ही जायगा) अंत चूर्णि चूर्णिका स्थापन करना। ऐसैं वृद्धिका अनुक्रम जानना बहुरि इहां षट्स्थान प्रकरण विषैं अनंतभाग वृद्धियुक्त स्थाननिके कहे जे भेद तिनिविषैं सर्वत्र प्रक्षेपक तौ गच्छमात्र है

जेथवां भेद होइ तितने तहां प्रक्षेपक स्थापने तातैं सुगम है । बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक आदिकनिका प्रमाण एकवार दोयबार आदि संकलन धनका विधान जाने बिना जान्या न जाय तातैं सो संकलन धनका विधान कहिए हैं—जितनेका संकलन धन कह्या होय तितनी जायगा ऐसैं अंक स्थापि जोडने जैसैं छठा स्थान विषैं दोय घाटि गच्छका संकलन धन कह्या तहां च्यारि जायगा या प्रकार अंक स्थापि जोडने । कैसैं अवस्थापि जोडिये ? सो कहिये हैं- जितनेका करना होय तितनी जायगा एक आदि एक एक वधता अंकमांडि जोडैं एकबार संकलन धन हो है । बहुरि एकबार संकलन धन विधानविषैं जो पहिलैं अंक लिख्या था सोई इहां दोयबार संकलन विषैं पहिलैं लिखिए । अर उहां एकबार संकलनका दूसरा स्थानविषैं जो अंक था ताकौं याका पहिला स्थानविषैं जोडैं जो प्रमाण होइ सो दूसरा स्थानविषैं लिखिये अर उहां तीसरा स्थानविषैं जो अंक था ताकौं याका दूसरा स्थानविषैं जोडैं जो होइ सो तीसरा स्थानविषैं लिखिये । ऐसैं क्रमतैं लिखि जोडैं दोयबार संकलन धन हो है । बहुरि इस दोयबार संकलधनविषैं जो पहिले अंक लिख्या सोई इहां लिखिये । अर इस प्रथमस्थानमें दोयवार संकलनका दूसरा स्थानका अंक जोडे दूसरा स्थान होइ यामैं वाका तीसरे स्थानका अंक जोडैं याका तीसरा स्थान होइ ऐसैं क्रमतैं जितनेका करना होइ तितना जायगा लिखि जोडैं तीनबार संकलन धन होइ । याही प्रकार च्यारिवार आदि संकलन धनका विधान जानना । इहां उदाहरण कहिये है जैसैं पर्याय समासका छठा भेदविषैं पांचका एकबार संकलन धन करना तहां पांच जायगा क्रमतैं एक दोय तीन च्यारि पांचका अंक मांडि जोडै पंद्रह होइ सो इतने प्रक्षेपक प्रक्षेपक जानना । बहुरि च्यारिका दोयबार संकलन धन करना तहां च्यारि जायगा क्रमतैं एक तीन छह दश मांडि जो वीस होइ सो इतने इतने पिशुलि जानने । बहुरि तीनका तीनवार संकलन धन करना तहां तीन जायगा क्रमतैं एक च्यारि दश मांडि जोडैं पंद्रह होइ सो इतने पिशुलि पिशुलि जानने । बहुरि दोयका च्यारिवार संकलन करना तहां दोय जायगा एक पांच मांडि जोडैं छह होइ

सो इतने चूर्णि जानने। बहुरि एकका पांच जायगा संकलन धन करना तहां एक जायगा एक ही है तातैं ये चूर्णि चूर्णि एकही जानना। ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना। अब ऐसैं ये अंक मांडि जोडैं एकबार संकलनादि विषैं जो प्रमाण होइ ताके ल्यावनेकौं करणसूत्र कहिये है—

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः।
रूपाधिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतो वित्तं ॥ १ ॥

जितनेका संकलनधन करना होइ तिस प्रमाण इहां गच्छ जानना तामैं एक घटाइ अवशेषकौं उत्तर जो क्रमतैं जितनीवार वंधता संकलन कह्या होइ ताकरि गुणिए जो प्रमाण होइ ताकौं जितनीवार संकलन कह्या तामैं एक जोडि जो प्रमाण होइ ताका भाग दीजिए जो लब्ध होइ तामैं मुख जो पहिला स्थानका प्रमाण सो जोडिए जो प्रमाण होइ ताकौं जितनीवार संकलन कह्या होइ तितनी जायगा गच्छतैं लगाइ एक एक बंधता अंक मांडि परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ सो तौ भाज्य अर एकतैं लगाइ एक एक बंधता अंक मांडि परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ सो भागहार, तहां भाज्यकौं भागहारका भाग दीएं जो लब्धराशि होइ ताकरि गुणिए ऐसैं करतैं समस्त विवक्षितवार संकलन धन आवै है। इहां उदाहरण कहिए है—जैसे छठा पर्याय समासका भेदविषैं च्यारि घाटि गच्छ जो दोय ताका च्यारिवार संकलन धनमात्र चूर्णि कहिए। सो इहां गच्छ दोय तामैं एक घटाएं एक याकौं एकवारादि संकलन धन रचना अपेक्षा दोयवार आदि संकलनकी रचना उपजै है सो एक एक वार बंधता संकलन भया तातैं उत्तरका प्रमाण एक ताकरि गुणैं भी एकही भया याकौं इहां च्यारिवार संकलन कह्या सो च्यारिमैं एक मिलाएं पांच भया तिनिका भाग दीएं एकका पांचवां भाग भया। यामैं मुख जो आदिका प्रमाण एक सो समच्छेद करि मिलाएं छहका पांचवां भाग भया। बहुरि इहां च्यारिवार कह्या है सो तामैं एक आदि एक एक बंधता च्यारि पर्यंत अंक मांडि १। २। ३। ४। परस्पर गुणैं चौबीस २४ भये सो भागहार, अर गच्छ दोयका प्रमाणतैं लगाइ येक येक बंधता अंकमाडि। २। ३। ४। ५। परस्पर गुणैं येकसौ बीस। १२०। भाज्य सो

भाज्यकौं भागहारका भाग दीयें लब्धिराशि पांच ताकरि पूर्वोक्त छहका पांचवां भागकौं गुणें छह भये सोई दोयका च्यारिवार संकलन धन जानना। ऐसैं ही तीनका तीनवार संकलनधन पीछे गच्छ तीन एक घटाये दोय उत्तर एककरि गुणें भी दोय इहां तीनवार संकलन है तातें एक अधिकवार प्रमाण च्यारि ताका भाग दीये आधा याम मुख एक जोडैं ब्योढ भया। बहुरि एक आदिवार प्रमाण पर्यंत एक एक अधिक अंक १। २। ३। परस्पर गुणें भागहार छह अर गच्छ आदि एक एक अधिक अंक ३। ४। ५। परस्पर गुणें भाज्य साठि भाज्यकौं भागहारका भाग दीएं पाये दश इनिकरि पूर्वोक्त ब्योढकौं गुणें छठा भेदविषें तीनघाटि गच्छका तीनवार संकलन धनमात्र पिशुलि पिशुलि पद्रह हो है। ऐसैं सर्वत्र विवक्षित संकलन धन ल्यावने। बहुरि संस्कृत टीकाकार केशववर्णी अपने अभिप्रायकरि तिनि प्रक्षेपक प्रक्षेपकादिकका प्रमाण ल्यावने निमित्त दोय गाथारूप करण सूत्र कहैं हैं—

तिरियपदे रूऊणे तदिट्ठहेट्ठिलसंकलणवारा।
कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूणउड्ढपदसंखा॥ १॥

अनंत भागवृद्धियुक्तस्थाननिविषें जेथवां स्थान विवक्षित होइ तीहि प्रमाण तिर्यग् गच्छ कहिये तामें एक घटाएं ताके नीचैं संकलनवारका प्रमाण हो है। इहां उदाहरण—जैसे छठा स्थानविषें गच्छका प्रमाण छहमें एक घटाएं ताके नीचैं पांच संकलनवार हो है। प्रक्षेपकसंबधी कोठाके नीचें एकवार दोयवार तीन च्यारिवार पांचवार संकलन प्रक्षेपक प्रक्षेपक आदिके एक एक कोठानिविषें संभवै हैं ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि विवक्षित कोठानिका संकलन धन ल्यावनेके अर्थि जेथवां भेद होइ तींहि प्रमाण जो ऊर्ध्व गच्छ तीहिविषैं जेतीवार विवक्षित संकलन होइ तितना घटायें अवशेष मात्र प्रभव कहिये आदि जानना।

तत्तोरूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति।
इगिरूवमादिरूवोत्तरहारा होंत्ति पभवोत्ति॥ २॥

अर्थ—तिस आदितैं लगाइ एक एक बंधता ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण पर्यंत अनुक्रमकरि विवक्षितके गुणकार होंहि। बहुरि तिनिके नीचैं एकतैं लगाइ एक एक बंधता उलटा क्रमकरि प्रभव जो आदि ताका भी नीचा पर्यंत तिनिके भागहार होंहि। गुणकारनिकौं परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ ताकौं भागहारनिकौं परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ ताका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै तितने तहां प्रक्षेपक प्रक्षेपक आदि संबंधी कोठाविषैं वृद्धिका प्रमाण आवै है। इहां उदाहरण कहिए है—अनंत भाग वृद्धि युक्त स्थानविषैं विवक्षित छठा स्थानविषैं एक घाटि तिर्यग्गच्छ प्रमाण एकबार आदि पांच संकलन स्थान हैं तिनिविषैं च्यारि बार संकलन संबंधी कोठानिविषैं प्रमाण ल्याइए है। विवक्षित संकलनबार च्यारि तिनिका इहां छठा भेद विवक्षित है तातैं ऊर्ध्व गच्छ छह तामैं घटाएं अवशेष दोय रहे सो आदि जानना। इस आदि दोयतैं लगाइ एक एक अधिक ऊर्ध्वगच्छ छह पर्यंत तौ क्रमकरि गुणकार होइ। अर तिनके नीचैं उलटे क्रमकरि आदि पर्यंत एक आदि एक एक अधिक भागहार होइ सो इहां च्यारिबार संकलनका कोठाविषैं चूर्णि है। चूर्णिका प्रमाण जघन्यका पांचबार अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो तितना है। तिस प्रमाणके दोय तीन च्यारि पांच छह तौ क्रमतैं गुणकार होंइ अर पांच च्यारि तीन दोय एक भागहार होइं तहां गुणकारनिकरि चूर्णिकौं गुणैं भागहारनिका भागदीएं यथा योग्य अपवर्तन कीए छह गुणां चूर्णिमात्र तिस कोठाविषैं प्रमाण आवै है। भावार्थ ऐसा—जो दोय तीन च्यारि पांचका गुणकार अर भागहारका तौ अपवर्तन भया। छहकौं एकका भागहार रह्या तातैं छह गुणां चूर्णिमात्र तहां प्रमाण है। बहुरि ऐसैं ही अनंत भाग वृद्धि युक्त अंतभेदविषै यहु स्थान सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका जो प्रमाण तेथवां है तातैं तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र है। तामैं एक घटाएं अवशेष एकबार आदि संकलनके वार हैं तिनिविषैं विवक्षित च्यारिबार संकलनका कोठाविषैं प्रमाण ल्याइए है। विवक्षित संकलनबार च्यारि ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्रमैंस्यों घटाएं अवशेष मात्र आदि है यातैं एक एक बंधता क्रमकरि ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग पर्यंत तौ गुणकार होइ अर उलटे क्रमकरि एक आदि एक एक बं-

धता पांच पर्यंत भागहार होइ सो च्यारिबार संकलनका कोठाविषैं चूर्णि है तातैं चूर्णिकौं तिनि गुणकारनि करि गुणे भाग हारनिका भाग दीएं लब्धमात्र तिस कोठाविषैं वृद्धिका प्रमाण है इहां गुणकार भागहार समान नाहीं तातैं अपवर्तन होइ सकता नाहीं। इहां लब्धराशिका प्रमाण अवधिज्ञान गोचर जानना। बहुरि तिसही अनंत भागवृद्धियुक्त अंतका भेदविषैं विवक्षित द्विचरम चूर्णि चूर्णिका दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र वार संकलन धनका प्रमाण ल्याइए है। इहां भी तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र है ताम एक घटाएं एकबार आदि संकलनके बार हो हैं। तहां विवक्षित संकलनबार दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र सो ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्रमैं घटाएं अवशेष दोय रहे सो आदि जानना। इसतैं लगाइ एक एक बंधता ऊर्ध्वगच्छ पर्यंत गुणकार अनुक्रम करि हो है। अर एक आदि एक एक बंधता अपने इष्ट बारका प्रमाणतैं एक अधिक पर्यंत उलटे क्रमकरि भागहार हो है। इहां दोय आदि एक घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग पर्यंत अंक गुणकार वा भागहार विषैं समान है तातैं तिनिका अपवर्तन कीया अवशेष सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका गुणकार रह्या एकका भागहार रह्या इहां इस कोठाविषैं द्विचरम चूर्णि चूर्णि है ताका प्रमाण जघन्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्रबार भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना जानना। याकौं पूर्वोक्त गुणकार करि गुणैं एकका भाग दीएं तिस कोठासंबंधी प्रमाण आवै है। बहुरि ऐसैं ही अंतका चूर्णि चूर्णि विषैं संकलन है ही नाहीं जातैं अंतका चूर्णि चूर्णि एकही है सो जघन्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र बार अनंतका भाग दीएं अंत चूर्णि चूर्णिका प्रमाण हो है। ताकौं एक करि गुणैं भी तितना ही तिस कोठाविषैं वृद्धिका प्रमाण जानना। ऐसैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र अनंतभाग वृद्धियुक्त स्थान होइ तब एक असंख्यात भाग वृद्धियुक्त स्थान हो है। इहां ऊर्वंक जो अनंत भागवृद्धियुक्त अंत स्थान ताकौं चतुरंक जो असंख्यातका भाग दीयें जो एक भागका प्रमाण आवै तितनां तिसही पूर्वस्थानविषैं जोड्या सो इहां जघन्य ज्ञान साधिक कहिये किछू अधिक भया। अंकसंदृष्टिका दृष्टांतविषैं स्तोक प्रमाण है तातैं जघन्य तौ गुणकार

भया। यथार्थविषै महत् प्रमाण है तातैं ऐसें वृद्धि होतैं भी साधिकपना ही भया है। अब जैसैं जघन्य ज्ञानकौं मूल स्थापि जैसैं अनंतभाग वृद्धिस्थान प्रक्षेपकादिविशेष लीयें कहे थे तैसैं इहांतैं आगैं इस साधिक जघन्यकौं मूलस्थापि अनंत भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र जानने। ऐसैं ही पूर्वोक्त यंत्र द्वारकारि जैसैं अनुक्रम दिखाया तैसैं अनंत गुणवृद्धि पर्यंत क्रम जानना। तहां भाग वृद्धिविषैं प्रक्षेपकादिक वृद्धिका विशेष जानना सो जिस स्थानतैं आगैं भाग वृद्धि होइ ताकौं मूल स्थापन करना ताकौं एकवार जिस प्रमाणकी भागवृद्धि होइ ताका एकवार भाग दीए प्रक्षेपक हो है। दोयवार भाग दीयें प्रक्षेपक प्रक्षेपक हो है। तीनवार आदि भाग दीयें पिशुलि आदिक हो है ऐसा विधान जानना। ऐसैं सर्वत्र षट्स्थान वृद्धिका अनुक्रम जानना॥ ३२६॥

आदिमछट्ठाणह्मि य पंच य वड्ढी हवंति सेसेसु।
छव्वड्ढीओ होंति हु सरिसा सव्वत्थ पदसंखा॥ ३२७॥

आदिमषट्स्थाने च पंच च वृद्धयो भवंति शेषेषु।
षड्वृद्धयो भवंति हि सदृशा सर्वत्र पदसंख्या॥ ३२७॥

जी० प्र०—अत्र संभवत्सु असंख्यातलोकमात्रेषु षट्स्थानेषु मध्ये आदिमे प्रथमे षट्स्थाने पंचैव वृद्धयो भवंति, चरमस्य अष्टांकसंज्ञस्य अनंतगुणवृद्धियुक्तस्य द्वितीयषट्स्थानस्यादित्वप्रतिपादनात्। शेषेषु द्वितीयादिचरमावसानेषु षट्स्थानेषु सर्वा अष्टांकादयः षड्वृद्धयो भवंति तथासति सदृशी सर्वत्रपदसंख्या एतेषु षट्स्थानेषु संभवति—स्थानविकल्पसंख्या सदृशा समानैव सादृश्यनियमनिमित्तस्य सूच्यंगुलासंख्यातभागस्य अवस्थितस्वरूपत्वात्। तथा सति प्रथमषट्स्थाने पंचवृद्धियुक्तस्थानानि संभवंति॥ ३२७॥ अष्टांकः कथं न घटते इति चेद्धेतुमाह—

मं०प्र०—षण्णां स्थानानां समाहारः षट्स्थानं। आदिमे षट्स्थाने पच वृद्धयो भवंति अष्टांकसंज्ञाया अनंतगुणवृद्धेर्द्वितीयषट्स्थानस्यादित्वप्रतिपादनात्। शेषेषु द्वितयितृतीयादिषु असंख्यातलोकमात्रेषु षट्सु स्थानेषु अष्टांकादयः षडपि वृद्धयो भवति। सर्वासु वृद्धिषु पदसंख्या अंगुलासंख्यातभागप्रमिता स्थानसंख्या सदृशी एकरूपैव न तु विभिन्नरूपा॥

स०चं०—इस पर्याय समास ज्ञानविषै असंख्यात लोकमात्रवार षट् स्थान संभवै है तिनिविषै पहिलीवार तो पांच स्थानपतितवृद्धि हो है जातैं जो पीछैं ही पीछैं अनंतगुण वृद्धिरूप भेद भया ताकौं दूसरीवार षट्स्थानपतित वृद्धिका आदि स्थान कह्या है बहुरि जैसैं पहिले षट् स्थानपतित वृद्धिका क्रम कह्या ताकौं पूर्णकरि दूसरा तैसैं ही फेरि षट्स्थानपतित वृद्धि होइ ऐसैं ही तीसरा होइ इत्यादि असंख्यात लोकवार षट् स्थान हो है तिनिविषैं छहौ वृद्धि पाइये है अनंत गुणवृद्धि रूप तौ पहिला ही स्थान होइ पीछैं क्रमतै पांच वृद्धि अंतकी अनंतभागवृद्धि पर्यंत होइ। बहुरि जो अनंतभागादिक सर्ववृद्धि कहीं तिन सबनिका स्थान प्रमाण सदृश सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र जानना। तातैं जो वृद्धि हो है सो अंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण वार हो है ॥३२७॥

छट्ठाणाणं आदी अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं।
जम्हा जहण्णणाणं अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ॥ ३२८ ॥

षट्स्थानानामादिरष्टांकं भवति चरममुर्वंकं।
यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांकं भवति जिनदृ(दि)ष्टं ॥ ३२८ ॥

जी० प्र०—षट्स्थानवाराणां सर्वेषामादिः प्रथमस्थानमष्टांकमेव अनंतगुणवृद्धिस्थानमेव भवति तेषां चरमस्थानमुर्वंकमेव अनंतभागवृद्धिस्थानमेव भवति। तर्हि प्रथमस्थानस्य अष्टांकत्वं कथं? इति तन्न, यस्मात् तज्जघन्यं ज्ञानं पर्यायाख्यं पूर्वस्मादेकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदानां वर्गस्थानादनंतगुणत्वेन अष्टांकं भवतीति जिनैः अर्हदादिभिः दिष्टं-कथितं दृष्टं वा, तस्मात् कारणात् प्रथमषट्स्थानेऽपि अष्टांकादित्वं युक्तं। अत्र षट्स्थानानामादिः अष्टांकः, अवसानं उर्वंकः इति नियम उक्तोऽस्तीति। चरमषट्स्थानेऽपि आदौ अष्टांके अवसाने उर्वंके च सति तदग्रतनोऽष्टांकः कीदृगस्ति? इति चेत् अर्थाक्षर-ज्ञानरूपो भवति तथैव अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्। तदेवं जघन्यपर्यायज्ञानमादिः इत्युक्तागमो निर्बाधबोधविषयः ॥ ३२८ ॥ एषां षट्स्थानानां स्थानसंख्या समानेति दर्शयति—

म० प्र०—षण्णां वृद्धिस्थानानां अष्टांकमेव—अनंतगुणवृद्धिस्थानमेवादिर्भवति तेषां चरममुर्वंकमेव अनंतभागवृद्धिस्थानमेव पर्यवसानमित्यर्थः। ननु यद्येवं

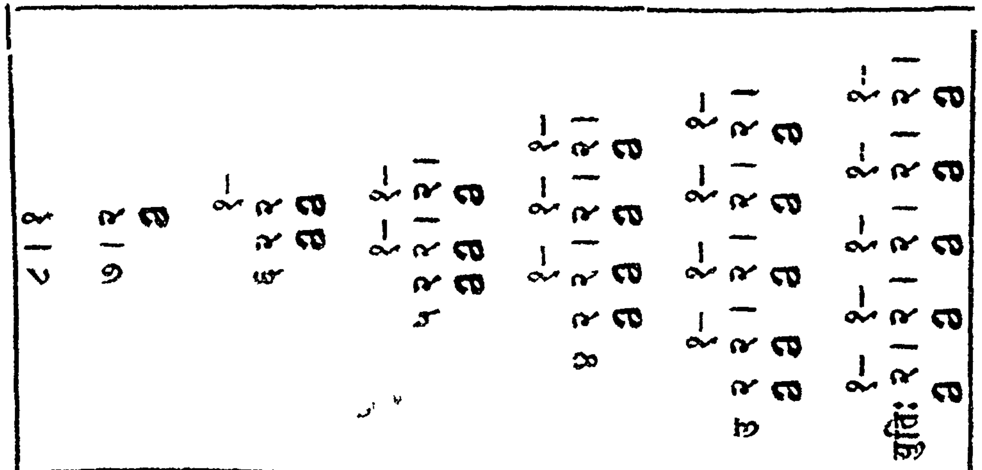
प्रथमे षट्स्थाने अष्टांकस्याभावात् कथमष्टाकादित्वमित्याशंक्येदमुच्यते यस्मात्कारणात् जघन्यज्ञानं पर्यायाख्यं पूर्वसादेकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदानां वर्गस्थानादनंतगुणत्वेनाष्टाक भवति इति जिनैरर्हदादिभिः, दिष्टं-कथितं दृष्टं वा तस्मात्कारणात् प्रथमषट्स्थानेप्यष्टाकादित्वं युक्त ॥ ३२८ ॥

स० चं०—षट्स्थान पतित वृद्धिरूप स्थाननिविषैं अष्टांक कहिये अनंतगुणवृद्धि सो आदि है । बहुरि उर्वंक कहिये अनंतभाग वृद्धि सो अंतस्थान है। भावार्थ—पूर्वैं जो यंत्रद्वार करि वृद्धिका विधान कह्या सो सर्व विधान होइ निवैं तब एक बार षट्स्थानपतित वृद्धि भई कहिए विशेष इतना जा नवमी पंकतिका नवमा कोठा विषैं दोय उकार अर एक आठका अंक लिख्या है सो ताका अर्थ यहु जो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंतभाग वृद्धि होइ करि एकबार अनंतगुण वृद्धि हो है । सो यहु अनंतगुण वृद्धि रूप जो भेद सो नवीन षट्स्थान पतित वृद्धिका आरंभ कीया ताका आदिका स्थान जानना । इसतैं लगाइ प्रथम कोठादिक संबंधी जो रचना कही थी तीहिं अनुक्रमतैं षट्स्थानपतित वृद्धि हो है तहां उस ही नवमी पंकतिका नवमा कोठा विषैं आठका अंक है पहिली जो उकार लिखा था ताका अर्थ यहु जो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्रवार अनंतभाग वृद्धि भई तिनिविषैं अंतकी अनंतभाग वृद्धि लीएं जो स्थान सोई इस षट्स्थानपतित वृद्धिका अंत स्थान जानना । याहीतैं षट्स्थान पतित वृद्धिका आदि स्थान अष्टांक कह्या अर अंतस्थान उर्वंक कह्या है। बहुरि पहिली वार अनंतगुण वृद्धि विना पंच वृद्धि कही अर पीछैं छहौं वृद्धि कही हैं। यहां प्रश्न-जो पहिली बार आदि स्थान जघन्य ज्ञान है ताकौं अष्टांक रूप अनंतगुण वृद्धि संभवै भी है कि नाहीं ? ताका समाधान—जो द्विरूप वर्ग धारा विषैं इस जघन्य ज्ञानतैं पहिला स्थान एक जीवके अगुरु लघुगुणनिके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण है तातैं जघन्यज्ञान अनंतगुणा है। तातैं पहिलीबार भी आदि स्थान जो जघन्यज्ञान तीहिं विषै अनंत गुणवृद्धि अन्य अपेक्षा संभवै है। बहुरि ज्ञान ही की अपेक्षा संभवै नाहीं तातैं पहिलीबार पंच वृद्धि ही कही संभवै है ऐसैं जिन देवनै कह्या है वा देख्या है। बहुरि अंतका षट्स्थानविषै भी आदि अष्टांक अंत ऊर्वक हैं। तातैं आगैं अष्टांक जो अनंतगुण वृद्धि रूप स्थान सो अर्थ अक्षर ज्ञान है सो आगैं कहैंगे सो जानना ॥३२८॥

एक्कं खलु अट्ठंकं सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा।
रूवहियकंडएण य गुणिदकमा जाव उव्वंकं ॥ ३२९ ॥

एकं खलु अष्टांकं सप्तांकं कांडकं ततोऽधः ।
रूपाधिककांडकेन च गुणितक्रमा यावदुर्वंकं ॥ ३२९ ॥

जी० प्र०—एकस्मिन् षट्स्थाने एक एवाष्टांको भवति कुतः ? अंगुल असंखभागं पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी एक्कं वारं होदीति तस्य पूर्वत्वासंभवेनाष्टत्तरभावात् । सप्तांकः असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि कांडकं सूच्यंगुलासंख्यातभ गमात्राण्येव भवंति । तदधस्तनाः षडंकपंचांकचतुरंकोर्वंकास्तु रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातभागगुणितक्रमा भवंति यावदुर्वंक इत्यभिविधिः उर्वंकस्य सीमत्वं सूचयन् तमेव व्याप्नोति तन्न्यासोऽयं—



एवं द्वितीयवारषट्स्थाने आदिभूताष्टांकतोऽग्रे उर्वंकोऽस्ति तथापि 'एक्कं खलु अट्ठंकं' इति नियमवचनान्न तस्यांगुलासंख्यातभागमात्रवारः, खलुशब्दस्य नियमार्थवाचकत्वात् ॥ ३२९ ॥

म० प्र०—एकस्मिन् षट्स्थाने एक एवाष्टाकः तस्यावृत्तेरभावात् । पूर्ववृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां परवृद्धिरेकवारं भवतीति वचनात् अनंतगुणवृद्धेः परतो वृद्ध्यंतराभावात् अस्याः पूर्वत्वासिद्धेश्च । सप्तांकः संख्यातगुणवृद्धिः काडकं—अंगुलासंख्यातभागमात्रवारः तस्य अष्टांकात् पूर्वत्वात् । ततः सप्तांकस्याधः षडकपंचांकचतुरंकोर्वंकाः संख्यातगुणसंख्यातभागासंख्यातभागानंतभागवृद्धयः रूपाधिककाडकेन गुणितक्रमाः । यावदूर्वंक इत्यनेन ऊर्वंकस्य सीमत्वं सूचयन् तमप्यभिव्याप्नोति तन्न्यासोयं—उ

१ १ १ १	१ १ १	१ १	१		
उ २ २ २ २ २ ।	४ २ २ २ २ ।	५ २ २ २ ।	६ २ २ ।	७ २ ।	८ । १
a a a a a	a a a a	a a a	a a	a	

तत्र रूपाधिकत्वकारणं पूर्वोक्तविधानेन अधिकवारांगुलासंख्यातभागमात्रप्रदर्शनयुक्त्या अभ्यूहनीयं । यद्यपि द्वितीयवारषट्स्थाने आदिभूतादष्टांकात् परमुर्वंको भवति तथापि 'एकं खलु अट्ठंकं' इति नियमवचनेन अष्टांकस्य अंगुलासंख्यातभागमात्रवाराभाव एव खलुशब्दस्य नियमार्थत्वात् ।। ३२९ ।।

स० चं०—एकबार जो षट्स्थान होइ तीहि विषैं अष्टांक कहिए अनंत गुण वृद्धि सो एकबार ही हो है जातैं 'अंगुल असंख भागं' इत्यादि सूत्र अनुसार अष्टांकके परैं कोई वृद्धि नाहीं । तातैं याके पूर्वपनाका अभावतैं बार बार पलटनेका अभाव है । बहुरि सप्तांक कहिए असंख्यात गुणवृद्धि सो कांडकं कहिए सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र हो है । बहुरि ताके नीचैं षडंकं कहिए संख्यात गुणवृद्धि पंचंकं कहिए संख्यात भाग वृद्धि चतुरंकं कहिए असंख्यात भागवृद्धि ऊर्वंकं कहिए अनंतभागवृद्धि ए च्यार्‍यो एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणित अनुक्रमतैं जाननीं । इहां यावत् ऊर्वंकं इस वचनकरि उर्वंक पर्यंत अनुक्रमकी मर्यादा कही है सोई कहिए है—असंख्यात गुणवृद्धिका प्रमाण सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण कह्या है ताकौं एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार संख्यात गुणवृद्धि हो है । बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार संख्यात भागवृद्धि हो है । बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार असंख्यात भागवृद्धि हो है । बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार अनंतभाग वृद्धि हो है ऐसें एकबार षट्स्थान पतित वृद्धि होने विषै पूर्वोक्त प्र-

माण लीएं एक एक वृद्धि हो है। दूसरीवार आदिविषैं पहिलैं अष्टांक हो है ताके आगै ऊर्वंक हो है तातैं एकही अष्टांक है ऐसा कह्या है ॥ ३२९ ॥

सव्वसमासो णियमा रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स ।
विंदस्स य संवग्गो होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३३० ॥

सर्वसमासो नियमात् रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य ।
वृंदस्य च संवर्गो भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ३३० ॥

जी० प्र०—सर्वासां अष्टांकादिषड्वृद्धीनां संयोगः रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य वृंदस्य च संवर्गमात्रो भवति इति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं कथितं। अत्र तद्युतिः क्रियते तद्यथा—

अष्टांकस्य आत्मप्रमाणैकरूपे सप्तांकस्य सूच्यंगुलासंख्यातभागे युते सति रूपाधिककांडकं भवति तस्मिन् पुनः आत्मप्रमाणैकरूपे षडंकसंख्यायां कांडकगुणितरूपाधिककांडकमात्र्यां युते सति रूपाधिककांडकवर्गो भवति । तदात्मप्रमाणैकरूपे पंचांकसंख्यायां कांडकगुणितरूपाधिककांडकवर्गप्रमितायां युते सति रूपाधिककांडकघनो भवति । तदात्मप्रमाणैकरूपे चतुरंकसंख्यायां कांडकगुणितरूपाधिककांडकघनप्रमितायां युते सति रूपाधिककांडकवर्गस्य वर्गो भवति । तदात्मप्रमाणैकरूपे उर्वंकसंख्यायां कांडकगुणितरूपाधिकं कांडकवर्गस्य वर्गप्रमितायां रूपाधिककांडकचतुष्टयेन रूपाधिककांडकचतुष्टयं समं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणैकरूपे शेषकांडके युते सति रूपाधिककांडकवर्गस्य घनस्य च संवर्गस्य घनस्य च संवर्गप्रमाणं भवति । इदमित्थमेव प्रतिपत्तव्यं । कुतः ? जिनैर्निर्दिष्टमिति कारणात् इंद्रियज्ञानगोचरत्वाभावात् तेषु गुणकारेषु गुणितेषु लब्धं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं वा ६ घनांगुलसंख्यातभागमात्रं वा ६ घनांगुलमात्रं वा । ६ । संख्यातघनांगुलमात्रं वा ६ १ असंख्यातघनांगुलमात्रं वा ६ a इत्यस्माभिर्न ज्ञायते ॥ ३३० ॥

मं० प्र०—सर्वासामष्टांकादीनां षण्णां वृद्धीनां समासः संयोगः रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य घनस्य च संवर्गमात्रो भवति तद्वर्गेण द्विसमवर्धेन तद्घने त्रिसमवर्धे गुणिते सति यावान् राशिरुत्पद्यते तावत्यः षड्वृद्धयः एकस्मिन् षट्स्थानवारे भवंतीत्यर्थः । तत्संयोगक्रमो दर्श्यते तद्यथा-अष्टांकस्य एकरूपं सप्ता-

कस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे प्रक्षिप्ते रूपाधिककांडकं भवति १ तस्यात्मप्रमाणे एकरूपे षडंकस्य अंगुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपा-

२

a

धिककांडकस्य वर्गो भवति १ १ तस्यात्मप्रमाणे एकरूपे पंचाकस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपाधिककाडकस्य घनो भवति-

१ १ १   २ २

२ २ २   a a

a a a तदात्मप्रमाणैकरूपे चतुरकस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपाधिककांडकस्य घनः रूपाधिककांडकेन गुणितमात्रो भ-

१ १ १ १

२ २ २ २

वति a a a a तदात्मप्रमाणैकरूपे उर्वंकस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपाधिककाडकस्य घनः रूपाधिककाडकवर्गेण

१ १ १ १ १

२ २ २ २ २

गुणितमात्रो भवति a a a a a इति जिनैर्निर्दिष्ट । अपवर्तिते सति लब्धप्रमाणमपि जिनैरेव निश्चयेन दृष्टं । असंख्यातघनागुलमात्रं वा ६ a । संख्यातघनागुलमात्रं वा ६ १ घनागुलमात्र वा ६ घनागुलसंख्येयभागमात्रं वा ६ घनागुलासंख्येयभागमात्र वा ६ अस्माभिर्न ज्ञायते ॥ ३३० ॥

१   a

स० चं०—पूर्वे जो छहो वृद्धिनिका परिमाण कह्या तीहिं सर्वका जोड दीएं रूपाधिक कांडक कहिये एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग ताका वर्ग अर घन ताका संवर्ग कीएं संतै जो प्रमाण होइ तितनां हो है असा जिन देवनिकरि कह्या है। भावार्थ—एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं दोय जायगा मांडि परस्पर गुणन कीये जो परिमाण होय सो तौ रूपाधिक कांडकका वर्ग कहिए। बहुरि एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं तीन जायगा माडि परस्पर गुणन कीएं जो परिमाण होइ ताकौं रूपाधिक कांडकका घन कहिए बहुरि इस वर्गकौं अर घनकौं परस्पर गुणन कीएं जो परिमाण होइ अथवा एक अधिक

सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं पांच जायगा मांडि परस्पर गुणन कीएं जो परिमाण होइ तितनीवार एक षट् स्थानपतित वृद्धिविषै अनंत भागादिक वृद्धि हो है। जैसैं अंक संदृष्टि करि पूर्वैं यंत्रविषैं आठका अंक एक बार लिख्या अर सातका अंक दोयवार लिख्या मिलि तीन भए। बहुरि छहका अंक छहवार लिख्या मिलि तीनका वर्ग नव भया। बहुरि पंचका अंक अठारहवार लिख्या मिलि तीनका घन सत्ताईस भया बहुरि च्यारि का अंक चौवन बार लिख्या मिलि तीन करि गुणित तीनका घन इक्यासी भया। बहुरि ऊर्वकं एकसौ वासठि बार लिख्या मिलिकरि तीनका वर्गकरि गुणित तीनका घन दोयसै तियालीस हूवा। तैसैं ही अनंतगुण वृद्धि एकबार विषै कांडकमात्र असंख्यात गुणवृद्धि जोडैं एक अधिक ही कांडक हो है। बहुरि तींहि अपने प्रमाण एक रूपके अर संख्यात गुण वृद्धिका कांडक प्रमाणके समान गुण्यपणौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका वर्ग हो है बहुरि तिहिं अपने प्रमाण एककै अर संख्यात भाग वृद्धिका कांडक प्रमाणकै समान गुण्यपणौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका घन हो है। बहुरि तिहिं अपने प्रमाण एककैं अर असंख्यात भागवृद्धिका कांडक प्रमाणकैं समान गुण्यपनौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका वर्गकरि गुणित रूपाधिक कांडकका घन हो हैं। बहुरि तीहि अपने प्रमाण एककैं अर अनंतभाग वृद्धिका प्रमाणकैं समान गुण्य पनौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका वर्गकरि गुणित रूपाधिक कांडकका घन प्रमाण हो है। इहां अंक संदृष्टिविषैं कांडकका प्रमाण दोय जानना। यथार्थविषैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र जानना। बहुरि अंक संदृष्टिविषैं जैसे अष्टांक सप्तांक मिलि तीन भए। बहुरि इस प्रमाण लीएं एक तौ यहु अर कांडकमात्र दोय षडंक मिलि तीन भए। ए तीनतौ गुणकार अर पूर्वोक्त तीन गुण्य सो गुणकार करि गुण्यकौं गुणैं तीनका वर्ग भया तैसैंही अनंतगुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि कौं मिल्या हूवा अपना प्रमाण रूपाधिक कांडक तिहि मात्र एक तौ यहु अर कांडकमात्र संख्यात गुणवृद्धि सो मिलि रूपाधिक कांडकमात्र गुणकार हूवा। याकरि पूर्वोक्त रूपाधिक कांडकमात्र गुण्यकौं गुणैं रूपाधिक कांडक का वर्ग हो है ऐसैं ही अन्यविषैं भी जानि लेना। ऐसैं जो यहु सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका वर्गकरि वा-

हीका घनकौं गुणैं जो प्रमाण हो है सो असंख्यात घनांगुलमात्र हो है वा संख्यात घनांगुलमात्र हो है वा घनांगुलमात्र हो है वा घनांगुलके संख्यातवे भाग मात्र हो है वा घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र हो है सो हम जान्या नाहीं सर्वज्ञदेव यथार्थ जान्या है सो प्रमाण है ॥ ३३० ॥

उक्कस्ससंखमेत्तं तत्ति चउत्थेक्कदालछप्पण्णं ।
सत्तदसमं च भागं गंतूणय लद्धिअक्खरं दुगुणं ॥३३१॥

उत्कृष्टसंख्यातमात्रं तत्त्रिचतुर्थैकचत्वारिंशत्षट्पंचाशं ।
सप्तदशमं च भागं गत्वा लब्ध्यक्षरं द्विगुणं ॥ ३३१ ॥

जी० प्र०—रूपाधिककांडकगुणितांगुलासंख्यातभागमात्रवारान् अनंतभागवृद्धिस्थानेषु अंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् असंख्येयभागवृद्धिस्थानेषु च गतेषु तदुभयवृद्धियुक्तजघन्यस्य एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते ज १५/१५ अग्रे पुनः प्रागुक्तक्रमवृद्धिद्वयसहचरितेषु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानेषु उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु गतेषु तत्र प्रक्षेपकवृद्धिषु युतासु लब्ध्यक्षरं सर्वजघन्यपर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं साधिकद्विगुणं भवति । कुतः ? प्रक्षेपकस्य उत्कृष्टसंख्यातभाज्यभागहारानपवर्त्य युते तस्य द्विगुणत्वसंभवात् तत्त्रिचतुर्थे पूर्वोक्तसंख्यातभागवृद्धियुक्तोत्कृष्टसंख्यातमात्रस्थानानां त्रिचतुर्थभागस्थानानि नीत्वा तत्र प्रक्षेपकः प्रक्षेपकप्रक्षेपकश्चेति वृद्धिद्वये जघन्यस्योपरि युते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । तद्यथा—

प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रमितस्य ज १५ ३ । १५ ३ / १५ १५ ४ २ ४ १ ऋणं पृथक्कृत्य ज १/१५ ३/३२ शेषमपवर्त्य ज ९/३२ एकरूपं पृथग्न्यस्य ज १/३२ शेषे ज ८/३२ अपवर्त्य ज १/४ प्रक्षेपकवृद्धौ ज ३/४ युते सति साधिकजघन्यं भवति ज अस्मिन् पुनः उपरितनसाधिकजघन्ये युते

सति लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २ मक्षेपकमक्षेपकागतऋणं यनतः संख्यातगुणहीनमिति किंचिदूनं कृत्वा शेषं ज १–द्विगुणजघन्ये संयोज्य साधिकं कुर्यात्। एकदालछप्पएणं प्रागुक्तसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानां उत्कृष्टसंख्यातममितेषु एकचत्वारिंशत्पद्पंचाशद्भागमात्रस्थानानि नीत्वा मक्षेपकमक्षेपकद्वययोगे साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति तत्र मक्षेपकोऽयं—

ज १५ ४१ / १५ ५६ मक्षेपकमक्षेपकस्तु रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रः। ज १५ ४१ १५ ४१ / १५ १५ ५६ २ ५६ १ अत्रतनं ऋणं

अपनीय पृथक् संस्थाप्य ज १ ४१ / १५ ११२ ५६। शेषं अपवर्त्य ज १६ ८१ / ११२ ५६। एकरूपं धनं पृथग्धृत्य ज १ / ११२ ५६ शेषं ज १६ ८० / ११२ ५६

अपवर्त्य ज १५ / ५६ मक्षेपके निक्षिप्य ज ५६ / ५६ अपवर्तिते जघन्यं भवति। ज। अस्मिन् पुनः उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति। ज २। इदमेव पृथक्स्थापितधनेन ज १ / ११२ ५६ इतः संख्यातगुणहीनऋणेन ज १ ४१ / १५ ११२ ५६ किंचिदूनीकृतेन ज १— / ११२ ५६ साधिकं कुर्यात् ज २। 'सत्तदसमं च भागं' वा अथवा संख्यातभागवृद्धिस्थानानां उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु मध्ये सप्तदशमभागमात्रेषु गतेषु मक्षेपक–मक्षेपकमक्षेपक–पिशुलिसंज्ञवृद्धित्रये मक्षिप्ते साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति। तद्यथा मक्षेपकः ज १५ ७ / १५ १०। मक्षेपकमक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रः ज १५ ७ १५ ७ / १५ १५ १० २ १० । १। पिशुलिः द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रः ज १५ ७। १५ ७। १५ ७ / १५ १५ १५ १० । ३ । १० । २ । १० । १

| ०   १ ८ | १ ८

तद्वृद्धित्रयमध्ये पिशुलेः प्रथमऋणं पृथक् संस्थाप्य ज २   १५ ७।   ७।   शेषधनमपवर्त्य ज १५ ७। ४९

१५ । १५ । ६ । १० । १० । १० ।   १५ १० ६००

| ० | | |

अत्रस्थऋणं ज १ ४९   पृथक्संस्थाप्य शेषमपवर्त्य ज ३४३ । इतस्त्रयोदशरूपाण्यपनीय पृथक्संस्थाप्य ज १३ । शेषं ज ३३० । अपवर्त्य

१५ ६०००   ६०००   ६०००   ६०००

| | |

ज ११   एकत्र संस्थाप्य अस्य प्राक् पृथक्धृतधने ज १३ प्रथमद्वितीयऋणं संख्यातगुणहीनमिति किंचिदूनं कृत्वा ज १३– । एकत्र संस्थाप्य पुनः

२० १०   ६०००   ६०००

| १ ८ | ० | |

प्रक्षेपकप्रक्षेपके ज १५ ७ । ७ ।   ऋणं ज १ ७ । पृथक् संस्थाप्य शेषं ज १५ ७ ७ । अपवर्त्य ज ४९ । प्राक्तनपिशुलिधनैकादशरूपाणि

१५ २ १० । १० ।   १५ २००   १५ २००   २००

| | | | |

मेलयित्वा ज ६० । अपवर्त्य इदं ज ३ । प्रक्षेपके ज ७ । संयोज्य ज १० । अपवर्त्यैदं ज प्राक्पृथग्धृतकिंचिदूनत्रयोदशरूपैः संख्या-

२००   १०   १०   १०

| |

तगुणहीनप्रक्षेपकप्रक्षेपकऋणेन पुनः किंचिदूनितैः ज १३= । साधिकं कृत्वा उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ज २ । प्रथ-

६०००

|

मतः उत्कृष्टसंख्यातगुणितसंख्यातभागस्य सप्तदशभागमात्रेषु ज १५ । ७ संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानेषु पिशुलिपर्यंतेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं

१५ । १०

| ० १ ८

१ सदृष्टेरयमप्याकारः—ज २ १५ । ७ । ७

१० १५ ६०० । १० । १

भवति ज २ । पुनस्तस्यैव एकचत्वारिंशत्षट्पंचाशद्भागस्य प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ज २ अग्रेपि संख्यातभागवृद्धिप्रथमस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टसंख्यातस्य त्रिचतुर्थभागमात्रेषु ज $\frac{१५\ ३}{१५\ ४}$ । प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २ । पुनस्तथा संख्यातभागवृद्धिस्थानेषु प्रथमस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु ज $\frac{१५}{१५}$ लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ननु साधिकजघन्यं द्विगुणं तदा पर्यायसमासमध्यमविकल्पगतं श्रुतज्ञानं उपचारेण लब्ध्यक्षरं कथमुक्तं ? इति चेत् पर्यायज्ञानस्य मुख्यलब्ध्यक्षरस्य समीपवर्तित्वात् । चशब्दः गत्वागत्वेतिवीप्सार्थं ज्ञापयति ॥ ३३१ ॥

म० प्र०—रूपाधिककांडकगुणितांगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभागवृद्धिस्थानेषु अंगुलासंख्यातभागमात्रवारानसंख्येयभागवृद्धिस्थानेषु च गतेषु तदुभयवृद्धियुक्तस्य जघन्यस्य एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पन्नं तेषु प्रत्येकपूर्वोक्तक्रमवृद्धिद्वयसहचरितेषु उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं सर्वजघन्यं पर्यायाख्य श्रुतज्ञानं साधिकं द्विगुणं भवति । उत्कृष्टसंख्यातभागमात्रो गुणकारभागहारावपवर्त्य एतस्मिन् प्रक्षेपकरूप जघन्ये पूर्वानंतरोक्तवृद्धियुक्ते जघन्ये प्रक्षिप्ते सति तद् द्विगुणत्वसंभवात् ‘ ताचि चउत्थ ’ तेषां संख्यातभागवृद्धिस्थानानामुत्कृष्टसंख्यातमात्राणां मध्ये त्रिचतुर्भागेषु गतेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकप्रक्षेपकयोर्जघन्ये प्रक्षिप्तयोर्लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । तद्यथा—प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छैकवारसंकलितधनमात्रस्य ज $\frac{१५ । ३ । १५ । ३}{१५।१५।४।२ । ४ । १}$ गुणकारभागहारावपवर्त्य लब्धं चतुर्थांशमात्रं ज $\frac{१}{४}$ प्रक्षेपके त्रिचतुर्भागमात्रे प्रक्षिप्य अपवर्तिते साधिकजघन्य भवति । तस्मिन्नुपरितने साधिकजघन्ये प्रक्षिप्ते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । अत्र प्रक्षेपकप्रक्षेपके ऋणमिद ज $\frac{१ । ३}{१५ । ४ । ४ । २}$ धनमिद ज $\frac{१}{३२}$ । धनस्य संख्येयभागमात्रत्वाद्दगं धने किंचिदूनं कृत्वा अवशिष्टं ज $\frac{१-}{३२}$ द्विगुणजघन्ये प्रक्षिपेत् ‘एक्कदालछप्पण्ण’ उत्कृष्टसंख्यातमात्रसंख्यातभागवृद्धिस्थानानां मध्ये एकचत्वारिंशत् षट्पंचाशद्भागेषु गतेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकप्रक्षेपकयोर्द्वयो-

योंगे साधिकं जघन्यं द्विगुणं भवति । तद्यथा–प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छैकवारसंकलितघने अपवर्तितशेषे पंचदशषट्पंचाशद्भागमात्रे ज १५/५६ अपवर्तितप्रक्षेपके एकचत्वारिंशत् षट्पंचाशद्भागमात्रे प्रक्षिप्ते सति साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति ज २ । अत्र ऋणं ज । १ । ४ । १ / १५।११२।५६ अस्य धनस्य ज १ / ११२।५६ संख्येयभागत्वात् किंचिदूनं कृत्वा अवशिष्टं ज १– / ११२ । ५६ साधिकद्विगुणजघन्ये प्रक्षिपेत् । सप्तदशमं च भागं । वा—अथ वा उत्कृष्टसंख्यातमात्राणा संख्यातभागवृद्धिस्थानानां मध्ये सप्तदशभागेषु गतेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकप्रक्षेपकपिशुलीनां तिसृणा वृद्धीनां योगे साधिकजघन्य द्विगुणं भवति । तद्यथा- द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितमात्र पिशुलिधनं ज ११ / २० । १० अधिकधनं ज १३ / ६००।१० ऋण ज २ । १५ । ७ । ७ । / १५।१५।३।१०।१०।१०।२ ऋणस्य ऋणं ज २ । ७ । / १५ । १५ । ६ । १० । १० । १० । एतावत्प्रक्षिप्य प्राक्तने ऋणे अपवर्तिते एवं ज ४९ / १५।३००।१०। द्वितीयं ऋणं ज ७ । ७ / १५।६।१०।१०।१० एतावदस्मिन् संकलितघने ज ७।१५।७। / १५।१०।३।१०।२।१०।१ ७ प्रक्षिप्य द्विरूपोनगच्छद्विकवारसंकलितमात्रे पिशुलिघने ज ७ । १५ । ७ । ७ । / १५ । १० । ३ । १० । २ । १०।१ अपवर्त्य गुणिते ज ३४३ / ६०० । १० अत्र गुणकारे त्रयोदशरूपाण्यपनीय पृथक् स्थापितानि ज १३ / ६०० । १० पुनरवशिष्टे अपवर्तिते एवं ज ११ / २०।१० इदमेकत्र संस्थाप्य पुनः प्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छैकवारसंकलितमात्रस्य धने ज १५ । ७ । १५ । ७ / १५।१५।१०।२ । १० । १ अस्मिन् एतावद्दणं निक्षिप्य ज ७ / १५ । १० । २ । १० । पुनरपवर्तिते एवं ज ४९ / २०।१० अस्मिन् प्राक्संस्थापितैकादशरूपाणि प्रक्षिप्य अपवर्तिते त्रिदशमभागमात्रं

भवति ज ३ इदं प्रक्षेपके सप्तदशमे भागमात्रे ज १५ । ७ प्रक्षिप्य ज १५ । १० अपवर्तिते अवशिष्टं साधिकजघन्यमात्रे वृद्धिधनं भवति । ज । एतस्मिन्
१० १५ । १० । १५ । १०
स्वस्मिन् साधिकजघन्यमात्रे प्रक्षिप्ते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ज २ । प्राक्संस्थापितत्रयोदशरूपमात्रे अधिकधने तत्सख्येयभागमात्रं ऋणत्रयमपनीय शेषं
ज १३– द्विगुणलब्ध्यक्षरे साधिकं कुर्यात् । प्रथमत उत्कृष्टसंख्यातस्य सप्तदशमभागमात्रेपु सख्यातभागवृद्धिस्थानेपु पिशुलिपर्यंतेपु गतेपु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं
६०००
भवति । ततः पुनस्तस्यैव एकचत्वारिंशत्षट्पचाशद्भागमात्रेपु स्थानेपु प्रक्षेपकप्रक्षेपकपर्यंतेपु गतेपु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ततः पुनस्तस्यैव त्रिचतुर्थभागमात्रेपु प्रक्षेपकप्रक्षेपकपर्यंतेपु गतेपु लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति । ततः पुनरुत्कृष्टसंख्यातमात्रेपु प्रक्षेपकेपु गतेपु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । साधिकं द्विगुणितमपि पर्यायसमासमध्यमविकल्पगतं श्रुतज्ञान उपचारेण लब्ध्यक्षरमित्युक्तं पर्यायज्ञानस्य मुख्यलब्ध्यक्षरस्य समीपवर्तित्वात 'गंतूगय' गत्वा चेति चशब्देन सप्तदशमभागादिपु स्थानेपु गत्वा द्विगुणं द्विगुण भवतीति वीप्साल्क्षणः समुच्चयो ज्ञाप्यते ॥ ३३१ ॥

स० चं०–एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातभागकरि गुण्या हूवा अंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण तौ अनंतभाग वृद्धि स्थान होइ अर अंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि स्थान होइ तब एकवार संख्यात भागवृद्धि हो है। तहां पूर्ववृद्धि होतैं जो साधिक जघन्यज्ञान भया ताकौं एक अधिक उत्कृष्ट संख्यात करि गुणिये अर उत्कृष्ट सख्यातका भाग दीजिये तितने मात्र भया। बहुरि आगैं पूर्वोक्त अनुक्रम लीयें अनंत असंख्यात भाग वृद्धि सहित संख्यात भागवृद्धिके स्थान उत्कृष्ट संख्यात मात्र होइ तहां प्रक्षेपक संबंधी वृद्धिका प्रमाण जोडें लब्ध्यक्षर जो सर्वतैं जघन्य पर्याय नामा ज्ञान सो साधिक द्विगुणां हो है। कैसे? सो कहिये है—पूर्ववृद्धि भयें जो साधिक जघन्यज्ञान भया सो मूल स्थाप्या। बहुरि इहां संख्यात भागवृद्धिकी विवक्षा है तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीयें प्रक्षेपक हो है। बहुरि गच्छमात्र प्रक्षेपक वृद्धि होइ सो इहां उत्कृष्ट संख्यातमात्र संख्यातवृद्धिके स्थान भये हैं तातैं उत्कृष्ट संख्यातमात्र प्रक्षेपक बधावने। तहां मूल साधिक जघन्य ज्ञान तो जुदा राखना अर तिस साधिक जघन्य ज्ञानकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीयें प्रक्षेपक हो है अर इहां उत्कृष्ट

संख्यातमात्र प्रक्षेपक है तातैं उत्कृष्ट संख्यात हीका गुणकार भया सो गुणकार भागहारका अपवर्तन कीयें सा-
धिक जघन्य रह्या याकौं जुदा राख्या हूवा साधिक जघन्यविषैं जोडैं जघन्यज्ञान साधिक दूणां हो है। बहुरि
'तत्ति चउत्थ' कहिये पूर्वोक्त संख्यातभाग वृद्धि संयुक्त उत्कृष्टसंख्यात मात्र स्थान तिनिकौं च्यारिका भाग देइ
तिनविषैं तीनभाग प्रमाण स्थान भये तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक प्रक्षेपक इनि दोऊ वृद्धिनिकौं साधिक जघन्यविषैं
जोडैं लब्ध्यक्षर ज्ञान साधिक दूणां हो है। कैसैं सो कहिये है—इहां पूर्ववृद्धि भयें जो साधिक जघन्य ज्ञान भया ता-
कौं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीयें प्रक्षेपक प्रक्षेक हो है सो एक घाटि गच्छका एकवार संकलन धनमात्र
प्रक्षेपक प्रक्षेपकनिकी वृद्धि इहां करनी। तहां पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार तिस प्रक्षेपक
प्रक्षेपक कौं एकघाटि उत्कृष्ट संख्यातका तीन चौथा भागकरि अर उत्कृष्ट संख्यातका तीन चौथा भागकरि गुणन
करना अर दोयका एकका भाग देना। साधिक जघन्यकी सहनानी ऐसी है। ज। ऐसैं कीएं साधिक जघन्यकौं
एक घाटि तीन गुणां उत्कृष्ट संख्यातका अर तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार भया। अर दोयबार उत्कृष्ट
संख्यातका अर च्यारि दोय च्यारि एकका भाग हार भया तहां एक घाटि संबंधी ऋणराशि साधिक जघन्य
कौं तीनका गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यातका अर बत्तीसका भागहार कीएं हो है ताकौं जुदा राखि अवशेषका
अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं नवका गुणकार बत्तीसका भागहार मात्र प्रमाण भया। इहां दोयबार उत्कृष्ट
संख्यातका गुणकार अर भागहारका अपवर्तन कीया। गुणकार तीन तीन परस्परगुणें नवका गुणकार भया
च्यारि दोय च्यारि एक भागहारनिकौं परस्पर गुणैं बत्तीसका भागहार भया जातैं दोय तीन आदि राशि गु-
णकार भागहार विषैं होय तहां परस्पर गुणें जेता प्रमाण होइ तितना गुणकार वा भागहार तहां जानना ऐसैं
ही अन्यत्र भी समझना। बहुरि यामैं एक गुणकार साधिक जघन्यका बत्तीसवां भागमात्र है। ताकौं जुदा
स्थापि अवशेष साधिक जघन्यकौं आठका गुणकार बत्तीसका भागहार रह्या ताका अपवर्तन कीएं साधिक ज-
घन्यका चौथा भाग भया। बहुरि प्रक्षेपक गच्छप्रमाण है सो साधिक जघन्यकौं एकवार उत्कृष्टसंख्यातका भा-

ग दीएं प्रक्षेपक होइ ताकौं उत्कृष्ट संख्यातका तीन चौथा भागकरि गुणना। तहां उत्कृष्टसंख्यात गुणकार भागहारका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यका तीन चौथा भागमात्र प्रमाण भया। यामैं पूर्वोक्त एक चौथा भाग जोडैं साधिक जघन्यमात्र वृद्धिका प्रमाण भया। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडैं लब्ध्यक्षर दूणा हो है। इहां प्रक्षेपक प्रक्षेपकसंबंधी ऋणराशि धनराशितैं संख्यातगुणा घाटि है तातैं साधिक जघन्यका बत्तीसवां भागमात्र धनराशिविषैं ऋणराशि घटावनेकौं किंचित् ऊ :करि अवशेष पूर्वोक्तविषैं जोडैं साधिक दूणां हो है। बहुरि 'एक्कदालछप्पण्णं' कहिये पूर्वोक्त संख्यातभागवृद्धिसंयुक्त उत्कृष्टसंख्यातमात्र स्थाननिकौं छप्पनका भाग देइ तिनिविषैं इकतालीस भागमात्रस्थान भये तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपकप्रक्षेपक संबंधी वृद्धि जोडैं लब्ध्यक्षर दूणा हो है। कैसैं ? सो कहिये है—साधिक जघन्यकौं उत्कृष्टसंख्यातका भाग दीएं प्रक्षेपक होइ सो प्रक्षेपक गच्छमात्र है तातैं याकौं उत्कृष्टसंख्यात इकतालीस छप्पनवां भागकरि गुणें उत्कृष्टसंख्यातका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं इकतालीसका गुणकार छप्पन भागहार हो है। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक एक घाटि गच्छका एकवार संकलन धनमात्र है। सो पूर्वोक्त सूत्रके अनुसारि साधिकजघन्यकौं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीए प्रक्षेपक प्रक्षेपक होइ ताकौं एकघाटि इकतालीसगुणां उत्कृष्ट संख्यात अर इकतालीस गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार अर छप्पन दोय छप्पन एकका भागहार भया। इहां एक घाटि संबंधी ऋण साधिक जघन्यकौं इकतालीसका गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यात एकसौ बारा छप्पनका भागहार मात्र जुदा स्थापि अवशेषविषैं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं सोलासै इक्यासीका गुणकार अर एकसौ बारा गुणा छप्पनका भागहार हो है। इहां गुणकारविषै इकतालीस इकतालीस परस्पर गुणैं सोलहसै इक्यासी भये है। बहुरि भागहारविषैं छप्पनकौं दोयकरि गुणें एकसौ बारह भये। अगले छप्पनकौं एककरि गुणैं छप्पन भये जानने। बहुरि इहां गुणकारमें एक जुदा स्थापिये ताका साधिक जघन्यको एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार मात्र धन जानना। अवशेष साधिक जघन्यकौं सोलहसै अस्सीका गुणकार अर एकसौ बारा गुणां छप्पनका भागहार रह्या। तहां एकसौ बारहकरि अपवर्तन कीयें सा-

धिक जघन्यकौं पंद्रहका गुणकार छप्पनका भागहार भया। यामैं प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण जघन्यकौं इकतालीसका गुणकार अर छप्पनका भागहार मात्र मिलाएं अपवर्तन कीए साधिक जघन्य मात्र वृद्धिका प्रमाण भया। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडै लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणां हो है इहां प्रक्षेपक प्रक्षेपक संबंधी पूर्वोक्त धनतैं ऋण संख्यात गुणा घाटि है तातैं किंचित ऊन कीया जो धन राशि ताकौं अधिक कीए साधिक दूणा हो है। बहुरि 'सत्त दशमं च भागं' वा कहिए अथवा संख्यात भागवृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानकनिकौं दशका भाग दीजिये तहां सात भाग मात्र स्थान भए। तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक प्रक्षेपक अर पिशुलि नामा तीन वृद्धि जोडैं साधिक जघन्य ज्ञान दूणा हो है। कैसैं? सो कहिए है—साधिक जघन्यकौं एकवार उत्कृष्ट संख्यातका भागदीये प्रक्षेपक हो है सो गच्छ मात्र है तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यातका सात दशवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं साधिक जघन्यकौं सातका गुणकार अर दशका भागहार हो है। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक एक घाटि गच्छका एकवार संकलनधनमात्र हो है सो साधिक जघन्यकौं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं प्रक्षेपक प्रक्षेपक होइ ताकौं पूर्व सूत्रके अनुसारि एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका अर सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका तौ गुणकार अर दश दोय अर दश एकका भागहार भया। बहुरि पिशुलि दोय घाटि गच्छका दोयवार संकलनधनमात्र हो है। सो साधिक जघन्यकौं तीनवार उत्कृष्टसंख्यातका भाग दीएं पिशुलि हो है ताकौं पूर्व सूत्रके अनुसारि दोय घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यात अर एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यात सातगुणां उत्कृष्टसंख्यात ताका तौ गुणकार अर दश तीन दश दोय दश एकका भागहार भया। इनिविषैं पिशुलिका गुणकारविषैं दोय घटाया था तींहिं संबंधी प्रथम ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यकौं दोयका अर एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका अर सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका गुणकार बहुरि दोयवार उत्कृष्टसंख्यातका अर छहका अर तीनवार दशका भागहार कीएं हो है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेषका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका अर गुणचासका तौ गुणकार भया बहुरि उत्कृष्टसंख्यात छह हजारका भागहार हो है। इहां गुणकारविषैं एक

घाटि है तीहिं संबंधी द्वितीय ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यकौं गुणचासका गुणकार बहुरि उत्कृष्टसंख्यात अर छह हजारका भागहार कीएं हो है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेषका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं तीनसैं तियालीसका गुणकार अर छह हजारका भागहार हो है। इहां गुणकारमैं तेरह घटाइ जुदा स्थापिए तहां साधिक जघन्यकौं तेरहका गुणकार अर छह हजारका भागहार जानना। अवशेष साधिक जघन्यकौं तीनमैं तीसका गुणकार अर छह हजारका भागहार रह्या तहां तीसकरि अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं ग्यारहका गुणकार दश गुणा वीसका भागहार भया सो एक जायगा स्थापिए। बहुरि इहां तेरह गुणकारमस्यों काढि जुदे स्थापि तीहिं संबंधी प्रमाणतैं प्रथम द्वितीय ऋणसंबंधी प्रमाण संख्यात गुणाघाटि है तातैं किंचित् ऊनकरि साधिक जघन्य किंचिदून तेरह गुणाकौं छह हजारका भाग दीएं इतना धन अवशेष रह्या सो जुदा स्थापिए। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक संबंधी गुणकारविषैं एक घटाया था तिहिंसंबंधी ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यकौं सातका गुणकार बहुरि उत्कृष्टसंख्यात अर दोयसैका भागहार किएं हो है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेष पूर्वोक्त प्रमाण साधिक जघन्यकौं उत्कृष्टसंख्यातका गुणकार अर दोयवार सातका गुणकार अर उत्कृष्टसंख्यात दश दोय दश एकका भागहार ताका अपवर्तन वा परस्पर गुणन कीएं साधिक जघन्यकौं गुणचासका गुणकार दोयसैका भागहार भया। यामैं पूर्वोक्त पिशुलि संबंधी ग्यारह गुणकार मिलाएं साधिक जघन्यकौं साठिका गुणकार दोयसैका भागहार भया। इहां वीसकरि अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं तीनका गुणकार दशका भाग हार भया। यामैं प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण साधिक जघन्यकौं सातका गुणकार दशका भाग हार जोडैं दशकरि अपवर्तन कीएं वृद्धिका प्रमाण साधिक जघन्य हो है। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडैं लब्ध्यक्षर दूणा हो है। बहुरि पूर्वै पिशुलि संबंधी ऋण रहित धनविषैं किंचिदून तेरहका गुणकार था तिसविषैं प्रक्षेपक प्रक्षेपक संबंधी ऋण संख्यात गुणा घाटि है ताकौं घटावनेके अर्थि बहुरि किंचित् ऊन कीएं जो साधिक जघन्यकौं दोयवार किंचिदून तेरहका गुणकार अर छह हजारका भागहार भया सो इतना प्रमाण पूर्वोक्त दूणां लब्ध्यक्षरविषैं जोडैं

साधिक दूणां हो है। असैं प्रथम तौ संख्यात भागवृद्धि युक्त जे स्थान तिनिविषैं उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थाननिका सात दशवां भाग प्रमाण स्थान पिशुलि वृद्धि पर्यंत भए लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणां हो है। बहुरि तिसहीका इकतालीस छप्पनवां भाग प्रमाण स्थान प्रक्षेपक प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि आगैं भी संख्यात भागवृद्धिका पहिला स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थाननिका तीन चौथा भाग मात्र स्थान प्रक्षेपक प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं लब्ध्यक्षरज्ञान दूणां हो है। बहुरि तैसैंही संख्यात वृद्धिका पहिला स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थान प्रक्षेपक वृद्धिपर्यंत भएं लब्ध्यक्षरज्ञान दूणा हो है। इहां प्रश्न-जो साधिक जघन्य ज्ञान दूणां भया सो साधिक जघन्य ज्ञानतौ पर्याय समास ज्ञानका मध्य भेद है इहां लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा कैसे कह्या है? ताका समाधान—जो उपचार करि पर्याय समास ज्ञानके भेदकों भी लब्ध्यक्षर कहिए जातैं मुख्यपनें लब्ध्यक्षर है नाम जाका असा जो पर्यायज्ञान ताका समीपवर्ती है। भावार्थ इहां असा—जो लब्ध्यक्षर नामतैं इहां पर्याय समासका यथासंभव मध्यभेदका ग्रहण करना। बहुरि चकार करि गत्वा कहिए असैं स्थान प्रति प्राप्त होइ लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो हैं असा अर्थ जानना ॥ ३३१ ॥

एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि बोच्छामि ॥ ३३२ ॥

एवमसंख्यलोकाः अनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि।
ते पर्यायसमासा अक्षरगमुपरि वक्ष्यामि ॥ ३३२ ॥

जी० प्र०—एवमुक्तप्रकारेण अनक्षरात्मके पर्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहे षट्स्थानवारा असंख्यातलोकमात्रा भवंति तद्यथा—यद्येतावतामनक्षरात्मकज्ञानविकल्पानां एकं षट्स्थानं लभ्यते तदा एतावतामनक्षरात्मकश्रुतज्ञानविकल्पानामसंख्यातलोकमात्राणां कति षट्स्थानवारा लभ्यंते । इति

त्रैराशिकं कृत्वा प्र $\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}$ फ १ । इ ≡ a प्रमाणराशिना इच्छाराशौ भक्ते यल्लब्धं तावंतः षट्स्थानवारा भवंति

≡ a
$\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}\;\frac{1-}{2\,a}$ एवमनेन प्रकारेण असंख्यातलोकवारषट्स्थानवृद्धिसंवृद्धा अनंतभागवृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पमादिं कृत्वा सर्वचरमोर्वंक-वृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टज्ञानावसाना असंख्यातलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा यावंतस्तावंतः पर्यायसमासज्ञानविकल्पा भवंति इत्यर्थः । इत उपरि अक्षरगतं श्रुत-ज्ञानं वक्ष्यामि ॥ ३३२ ॥ अथाक्षरगतं श्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

मं० प्र०—एवमुक्तप्रकारेण अनक्षरात्मके पर्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहे षट्स्थानवाराः असंख्यातलोकमात्रा भवंति । तद्यथा—एतावत्सु ज्ञानविकल्पेषु प्र $\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}$ यद्येकः षट्स्थानवारो लभ्यते । फ १ । तदा एतावत्सु असंख्यातलोकमात्रेषु अनक्षरात्मकज्ञानविकल्पेषु । इ ≡ a । कियंतः ष-ट्स्थानवारा लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धाः षट्स्थानवाराः अप्यसंख्यातलोकमात्रा एव ≡ a $\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}\;\frac{1}{2\,a}$ रूपाधिकांगुलासंख्यातभागानां घनवर्गयोर्गुण-कारमात्रेण भागहारेण लोकस्य गुणकारे असंख्याते अपवर्तितेऽपि तद्बहुत्वमाहात्म्येन असंख्यातलोकत्वस्य संभवात् । एवमुक्तप्रकारेण असंख्यातलोकमात्रवारषट्-स्थानवृद्धिभिः संवृद्धा अनंतभागवृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पादारभ्य सर्वचरमोर्वंकवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टज्ञानपर्यंताः असंख्यातलोकमात्रास्ते पर्यायसमासाः-पर्यायस-मासज्ञानविकल्पा इत्यर्थः । उपरि—इतः परं, अक्षरगतं श्रुतज्ञान वक्ष्यामि ॥ ३३२ ॥ अथाक्षरश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—याप्रकार अनक्षरात्मक जो पर्यायसमास ज्ञानके भेद तिनिविषैं षट्स्थानपतितवृद्धि असंख्यात-लोकमात्र विरियां हो है । सो ही कहिए है जो एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागका वर्गकरि तिसहीके घनकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने भेदनिविषैं एकवार षट्स्थान होइ तौ असंख्यातलोकप्रमाण पर्यायसमासज्ञा-

नके भेदनिविषैं केतीवार षट्स्थान होइ ऐसैं त्रैराशिक करना। तहां प्रमाणराशि एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागका वर्गकरि गुणित ताहीका घनप्रमाण अर फलराशि एक इच्छाराशि असंख्यातलोक पर्याय समासके स्थानमात्र तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीएं जेता लब्धराशिका प्रमाण आवै तितनींवार सर्व भेदनिविषैं षट्स्थानपातित वृद्धि हो है सो भी असंख्यातलोकमात्र हो है जातैं असंख्यातके भेद घने हैं तातैं हीनाधिक होतैं भी असंख्यातलोक ही कहिए। याप्रकार असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान वृद्धिकरि वर्धमान जघन्य ज्ञानतैं अनंतभागवृद्धि लीएं प्रथमस्थानतैं लगाइ अंतका षट्स्थानविषैं अंतका अनंत भागवृद्धि लीएं स्थानपर्यंत जेते ज्ञानके भेद ते सर्व पर्याय समासज्ञानके भेद जानने ॥ ३३२ ॥ अब इहांतैं आगैं अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकौं कहै हैं—

चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं।
अत्थक्खरं तु णाणं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥ ३३३ ॥

चरमोर्वंकेणावहितार्थाक्षरगुणितचरमोर्वंकं।
अर्थाक्षरं तु ज्ञानं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ३३३ ॥

जी० प्र०—पर्यायसमासज्ञानविकल्पसंबंधिषु असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु भागवृद्धिगुणवृद्धियुक्तेषु तद्वृद्धिनिमित्तसंख्यातासंख्यातानंता अवस्थिताः प्रतिनियतप्रमाणा भवंति इति चरमषट्स्थानस्य चरमोर्वंकतोऽग्रेतनमष्टांकवृद्धियुक्तस्थानं अर्थाक्षरश्रुतज्ञानं भवति इति तत्पूर्वकप्रतिनियताष्टांकप्रमाणं अत्रतनाष्टांकविलक्षणमिति कथयति—

असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु यच्चरमं षट्स्थानं तस्य चरमोर्वंकरूपवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानं अष्टांकेन एकवारं गुणिते समुत्पन्नं अर्थाक्षरज्ञानं अष्टांकवृद्धियुक्तस्थानमित्यर्थः तत् कियद्? रूपोनैकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूपद्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञानं श्रुतकेवलमित्युच्यते। के। इदं श्रुतकेवलज्ञानं रूपोनैकट्ठमात्रापुनरुक्ताक्षरप्रमाणेन भक्तं सत् अर्थाक्षररूपमेकाक्षरप्रमाणं भवति के इदमर्थाक्षरं सर्वोत्कृष्टपर्यायसमा-

$$\frac{१^{-}}{१८=}$$

सज्ञानरूपोनैकेन भक्तं सच्चरमोर्वंकगुणिताष्टांकप्रमाणं भवति ततः कारणा दिदानीं तदर्थाक्षरश्रुतज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं चरमोर्वंकापहृताक्षररूपाष्टांकेन गुणय-रूपे चरमोर्वंके गुणिते तु-पुनः अर्थाक्षरज्ञानं युक्तियुक्तं भवति इति जिनैर्निर्दिष्टं । इदमंतदीपकं इति सर्वाण्यपि चतुरंकाद्यष्टांकावसानानि षट्स्थानानां भागवृद्धियुक्तस्थानानि गुणवृद्धियुक्तस्थानानि च स्वस्वपूर्वानंतरोर्वंकवृद्धियुक्तस्थानेन भक्त्वा पुनस्तेनैव गुणयित्वा यथासंख्यं चतुरंकपंचांकषडंकसप्तांकाष्टांकवृद्धियुक्तस्थानानि उत्पद्यंते, न च केवलं पर्यायजघन्यज्ञानमेव भक्त्वा गुणयित्वा उत्पद्यत इति निश्चेतव्यं, इदमर्थाक्षरज्ञानं के उ अपव-

१ ^
१८ = उ

र्तितं सत् श्रुतकेवलज्ञानसंख्यातभागमात्रं अर्थाक्षरज्ञानप्रमाणं भवति के अक्षराज्जातं ज्ञानं अक्षरज्ञानं अर्थविषयमर्थग्राहकं अर्थाक्षरज्ञानं अथवा

१ ^
१८ =

अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः, न क्षरति इत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात् । अर्थश्चासावक्षरं च तदर्थाक्षरं । अथवा अर्यते गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयते इत्यर्थः, अर्थश्चासावक्षर च तदर्थाक्षरं तस्माज्जातं ज्ञानमर्थाक्षरज्ञानं । अथवा त्रिविधमक्षरं लब्ध्यक्षरं निर्वृत्त्यक्षरं स्थापनाक्षरं चेति । तत्र पर्यायज्ञानावरणप्रभृतिश्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यंतक्षयोपशमादुद् भूतात्मनोर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः भावेंद्रियं, तद्रूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं, अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् कंठोष्ठताल्वादिस्थानस्पष्टतादिकरणप्रयत्ननिर्वर्त्यमानस्वरूपं अकारादिककारादिस्वरव्यंजनरूपं मूलवर्णतत्संयोगादिसंस्थानं निर्वृत्त्यक्षरं । पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरं । एवंविधैकाक्षरश्रवणसंजातार्थज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनैः कथितत्वात् किंचित् प्रतिपादितं ॥ ३३२ ॥ अथ श्रुतनिबद्धं श्रुतविषयं च प्ररूपयति—

मं० प्र०—असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानानां यच्चरमं षट्स्थानं तस्य चरमोर्वंकवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानादनंतगुणमर्थाक्षरज्ञान भवति । तत्किंविशिष्टं ? रूपोनैकट्ठमात्रापुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूपद्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञान श्रुतकेवलमित्युच्यते । के । तस्मिन् रूपोनैकट्ठमात्राक्षरप्रमाणेन संख्येयेन

भक्ते यल्लब्ध तदर्थाक्षरज्ञान के इदमेव चरमोर्वंकेण भक्त उत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानस्य चरमोर्वंकनाम्नः अनंतात्मको गुणकारो भवति के = अनेन च-

१ ^
१८ =

१ ^
१८ = उ

रमोर्वंके गुणिते ईदृशं भवति के उ इदमपवर्तितं श्रुतकेवलस्य संख्येयभागमात्रमर्थाक्षरज्ञानमित्युच्यते अक्षराज्जात ज्ञानं अक्षरज्ञान अर्थविषयं अर्थस्य-

१ ^
१८ = उ

ग्राहकं अर्थाक्षरज्ञान । अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः, न क्षरतीत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात् । एतावतामक्षराणां प्र १८= यदि श्रुतकेवलज्ञानं भवति । फ । के । तदा एकस्याक्षरस्य कीदृशं ज्ञानं भवेत् । इ १ । इति त्रैराशिकेन लब्धमर्थाक्षरज्ञानं के, अथवा अर्यते—गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयते इ-

$$\frac{१}{१८=}$$

त्यर्थः, अर्थश्चासौ अक्षरं च तदर्थाक्षरं, तस्माज्जातं अर्थाक्षरज्ञान । अथवा त्रिविधमक्षरं लब्ध्यक्षरं निर्वृत्त्यक्षरं स्थापनाक्षर चेति । तत्र पर्यायज्ञानावरणादिश्रुतकेवलज्ञाना-वरणपर्यंतक्षयोपशमोद्भूता आत्मनोऽर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः-भावेंद्रियं । तद्रूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् कंठोष्ठताल्वादिस्थानस्पृष्टतादिकरणप्रयत्ननि-र्वर्त्यमानस्वरूपं अकारादिककारादिस्वरव्यंजनरूपं मूलवर्णतत्संयोगादिसस्थान निर्वृत्त्यक्षरं । पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरं । एवंविधै-काक्षरश्रवणसंजातमर्थज्ञानं अक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं मया तदनुसारेण किंचित्प्रदर्शितमिति सैद्धांतचक्रवर्त्यभिप्रायः ॥३३३॥ अथ श्रीमाधवचं-द्रत्रैविद्यदेवाः श्रुतनिबद्धविषयप्रमाणं प्ररूपयंति—

स० चं०—पर्यायसमासज्ञानविषैं असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान कहे तिनिविषैं वृद्धिकौं कारण संख्यात असंख्यात अनंत ते अवस्थित हैं-नियमरूप प्रमाण धरै हैं। संख्यातका प्रमाण उत्कृष्टसंख्यातमात्र, असंख्यातका असंख्यातलोकमात्र, अनंतका प्रमाण जीवराशिमात्र जानना। बहुरि अंत का षट्स्थानविषैं अंतका उर्वंक जो अनंतभागवृद्धि ताकौं लीएं पर्यायसमासज्ञानका सर्वोत्कृष्ट भेद तातैं आगैं अष्टांक कहिए अनंतगुणवृद्धिसंयुक्त जो ज्ञानका स्थान सो अर्थाक्षर श्रुतज्ञान है। पूर्वैं अष्टांकका प्रमाण नियमरूप जीवराशिमात्र गुणा था इहां अष्टांक का प्रमाण सो न जानना अन्य जानना। सोई कहिए है—असंख्यातलोकमात्र षट्स्थाननिविषैं जो अंतका षट्-स्थान ताका अंतका ऊर्वंक वृद्धिलीएं जो सर्वोत्कृष्ट पर्यायसमासज्ञान ताकौं एकवार अष्टांककरि गुणैं अर्थाक्षर ज्ञान हो है। तातैं याकौं अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान कहिए सो अष्टांक कितने प्रमाण लीएं हो है सो कहिए है श्रुतकेवलज्ञान एक घाटि एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षरनिका समूह रूप है ताकौं एक घाटि एकट्ठीका भाग दीएं एक अक्षरका प्रमाण आवै है। तहां जेता ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण है ताकौं सर्वोत्कृष्ट पर्या-य समास ज्ञानका भेदरूप ऊर्वंकके अविभाग प्रतिच्छेदनिके प्रमाणका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै सोई इहां

अष्टांकका प्रमाण जानना तातैं अब तिस अर्थाक्षर ज्ञानकी उत्पत्तिकौं कारण जो अंतका ऊर्वंक ताकरि भाजित जो अर्थाक्षर तीहि प्रमाण अष्टांककरि गुण्य जो अंतका ऊर्वंक ताकौं गुणें अर्थाक्षर ज्ञान हो है। इह कथन युक्त है। ऐसा जिनदेव कह्या है। बहुरि यह कथन अंतविषैं धर्‍या हूवा दीपक समान जानना तातैं ऐसैं ही पूर्वै भी चतुरंक आदि अष्टांक पर्यंत षट् स्थाननिके भागवृद्धियुक्त वा गुणवृद्धियुक्त जे स्थान हैं ते सर्व अपना अपना पूर्व ऊर्वंक युक्त स्थानका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै तितने प्रमाणकरि तिस पूर्वस्थानतैं गुणित जानने। ऐसैं श्रुतकेवलज्ञानका संख्यातवां भागमात्र अर्थाक्षर श्रुतज्ञान जानना। अर्थका ग्राहक अक्षरतैं उत्पन्न भया जो ज्ञान सो अर्थाक्षर ज्ञान कहिए। अथवा अर्यते कहिए जानिए सो अर्थ अर द्रव्यकरि न विनशै सो अक्षर जो अर्थ सोई अक्षर ताका जो ज्ञान सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये। अथवा अर्यते कहिये श्रुतकेवलज्ञानका संख्यातवां भागकरि जाका निश्चय कीजिये ऐसा एक अक्षर ताका ज्ञान सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये। अथवा अक्षर तीनप्रकार है लब्धि अक्षर १ निर्वृत्ति अक्षर २ स्थापना अक्षर ३। तहां पर्यायज्ञानावरण श्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यंतके क्षयोपशमतैं उत्पन्न भई जो पदार्थ जाननेकी शक्ति सो लब्धिरूप भाव इंद्रिय तीहिं स्वरूप जो अक्षर कहिये अविनाश सो लब्धि अक्षर कहिये जातैं अक्षरज्ञान उपजनेकौं कारण है। बहुरि कंठ होठ तालवा आदि अक्षर बुलावनेके स्थान अर होठनिका परस्पर मिलना सो स्पृष्टता ताकौं आदि देकरि प्रयत्न तीहिंकरि उत्पन्न भया शब्दरूप अकारादि स्वर अर ककारादिक व्यंजन अर संयोगी अक्षर सो निर्वृत्ति अक्षर कहिये। बहुरि पुस्तकादिविषैं निज देशकी प्रवृत्तिके अनुसारि अकारादिकनिका आकारकरि लिखिए सो स्थापना अक्षर कहिये। इसप्रकार जो एक अक्षर ताके सुननेतैं भया जो अर्थका ज्ञान सो अक्षर श्रुतज्ञान है ऐसा जिनदेवने कह्या है उनहीके अनुसारि मैं भी कुछ कह्या है॥ ३३२॥ आगैं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव शास्त्रके विषयका प्रमाण कहैं हैं—

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।

पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो ॥ ३३४ ॥

प्रज्ञापनीया भावा अनंतभागस्तु अनभिलाप्यानां ।
प्रज्ञापनीयानां पुनः अनंतभागः श्रुतनिबद्धः ॥ ३३४ ॥

जी० प्र०—अनभिलाप्यानां अवाग्विषयाणां केवलं केवलज्ञानगोचराणां भावानां जीवाद्यर्थानां अनंतैकभागमात्राः भावाः--जीवाद्यर्थाः, प्रज्ञापनीयाः तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्याः भवंति । पुनः प्रज्ञापनीयानां भावानां जीवाद्यर्थानां अनंतैकभागः श्रुतनिबद्धः द्वादशांगश्रुतस्कंधस्य निबद्धः विषयतया नियमितः श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थग्रहणशक्तिः केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थः ।

अवाच्यानामनंतांशो भावाः प्रज्ञाप्यनामकाः । प्रज्ञाप्यमानभावानां अनंतांशः श्रुतोदितः ॥ १ ॥

॥ ३३४ ॥ अथ गाथाद्वयेन शास्त्रकारः अक्षरसमासं कथयति—

मं० प्र०—अनभिलाप्याना–अवाग्गोचराणां केवलज्ञानविषयाणा, भावाना जीवाद्यर्थाना अनतैकभागमात्राः भावाः प्रज्ञापनीयाः–तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्या भवंति । पुनः प्रज्ञापनीयाना–सातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्याना अनंतैकभागः श्रुतस्य–द्वादशांगश्रुतस्कधस्य, निबद्धः-विषयतया नियमतो भवति । श्रुतकेवलिनामप्यगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्तीत्यर्थः । तुशब्दो विशेषार्थः ॥ ३३४ ॥ अथ गाथाद्वयेन शास्त्रकारः अक्षरसमासं प्ररूपयति—

स० चं०—अनभिलाप्यानां कहिए वचन गोचर नाही केवलज्ञानहीके गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ तिनके अनंतवे भागमात्र जीवादिक अर्थ ते प्रज्ञापनीया कहिए तीर्थंकरकी सातिशय दिव्यध्वनिकरि कहनेमें आवैं ऐसे हैं । बहुरि तीर्थंकरकी दिव्यध्वनिकरि पदार्थ कहनेमें आवैं हैं तिनके अनंतवे भागमात्र द्वादशांग श्रुतविषैं व्याख्यान कीजिये है । जो श्रुतकेवलीकौं भी गोचर नाहीं ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिविषैं पाइए है । बहुरि जो दिव्यध्वनिकरि भी न कह्या जाय तिस अर्थकौं जाननेकी शक्ति केवलज्ञानविषैं पाइए है ऐसा जानना ॥ ३३४ ॥ आगैं दोयगाथानिकरि अक्षरसमासकौं प्ररूपैं हैं–

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।

संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं ॥ ३३५ ॥

एकाक्षरात्तूपरि एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्येये खलु वृद्धे पदनाम भवति श्रुतज्ञानं ॥ ३३५ ॥

जी० प्र०–एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु-पुनः पूर्वोक्तषट्स्थानवृद्धिक्रमरहिततया एकैकाक्षरेणैव वर्धमानाः द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यंताक्षरसमुदायश्रवणसंजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पाः संख्येयाः द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितागताः तदा अनंतरस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां पदनाम श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३३५ ॥

मं० प्र०–एकाक्षरस्य–एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु–पुनः पूर्ववत् षट्स्थानवृद्धिं विना एकैकेनाक्षरेण वर्धमानेषु द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यंत समुदायश्रवणजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पेषु सख्येयेषु द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितेषु । १६३४८३०७८८८ गतेषु तदनंतरं उत्कृष्टाक्षरसमासविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति पदनाम–पदसंज्ञकं श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३३५ ॥

स० चं०—एक अक्षरतैं उपज्या जो ज्ञान ताके ऊपरि पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रम विना एक एक अक्षर बंधता सो दोय अक्षर तीन अक्षर च्यारि अक्षर इत्यादिक एक घाटि पदका अक्षरपर्यंत अक्षरसमुदायका सुननेकरि उपजैं ऐसे अक्षरसमासके भेद संख्यात जानने। ते दोय घाटि पदके अक्षर जेते होंइ तितने हैं। बहुरि इसके अनंतरि उत्कृष्ट अक्षरसमासकेविषैं एक अक्षरबधतैं पदनामा श्रुतज्ञान हो है ॥ ३३५ ॥

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव ।
सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥ ३३६ ॥

षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षकं चैव ।
सप्तसहस्राण्यष्टशतानि अष्टाशीतिश्च पदवर्णाः ॥ ३३६ ॥

जी०प्र०—अत्र अर्थपदं प्रमाणपदं मध्यमपदं चेति पदं त्रिविधं तत्र यावताक्षरसमूहेन विवक्षितार्थो ज्ञायते तदर्थपदं दंडेन शालिभ्यो गां निवारय, त्वमग्निमानय इत्यादयः। अष्टाक्षरादिसंख्यया निष्पन्नोऽक्षरसमूहः प्रमाणपदं 'नमः श्रीवर्धमानाय' इत्यादि। षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि सप्तसहस्राणि अष्टशतानि अष्टाशीतिश्च पदवर्णाः इत्येतद्गाथोक्तप्रमाणैकपदाऽपुनरुक्ताक्षरसमूहो मध्यमपदं १६३४८३०७८८८। हीनाधिकयोः प्रमाणपदार्थपदयोर्मध्ये एतदुक्तसंख्यापरिमिताक्षरसमूहे वर्तमानत्वात् मध्यमपदं इत्यन्वर्थतया परमागमे तदेव परिगृहीतं, प्रमाणपदार्थे तु लोकव्यवहारे परिगृहीते। अत एव लोकोत्तरे परमागमे मध्यमपदमेव पदमिति व्यवह्रियते ॥ ३३६ ॥ अथ संघातश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

मं० प्र०—त्रिविध पद—अर्थपद प्रमाणपद मध्यमपदमिति, तत्र यावता अक्षरसमूहेन विवक्षितार्थो ज्ञायते तदर्थपदं 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन, अग्निमानय' इत्यादि। प्रमाणेन अष्टाक्षरादिसंख्यया निष्पन्नः अक्षरसमूहः प्रमाणपद नमः श्रीवर्धमानाय इत्यादि। षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिर्लक्षाणि सप्तसहस्राणि अष्टशतानि अष्टाशीतिश्च एकस्य पदस्य वर्णाः अपुनरुक्ताक्षराणीति गाथोक्तप्रमाणाक्षरसमूहो मध्यमपदं। १६३४८३०७८८८। प्रमाणपदार्थपदयोर्हीनाधिकमानयोर्मध्ये उक्तसंख्याक्षरपरिमितसमूहे वर्तमानत्वात् मध्यमपदं इत्यन्वर्थतया परमागमे तदेव परिगृहीत। प्रमाणपदार्थपदे तु लोकव्यवहारे परिगृहीते, अत एव लोकोत्तरे परमागमे मध्यपदमेव 'पदं' इति व्यवह्रियते ॥ ३३६ ॥ अथ संघातश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—पद तीन प्रकार है अर्थपद १ प्रमाणपद २ मध्यमपद ३ तहां जिहिं अक्षर समूहकरि विवक्षित अर्थ जानिये सो तौ अर्थपद कहिये जैसें कह्या कि 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन' इहां इस शब्दके च्यारि पद हैं—गां १ अभ्याज २ शुक्लां ३ दंडेन ४ ये च्यारि पद भए। अर्थ याका यहु जो—गायकौं घेरि सुफेदकौं दंड करि। ऐसें कह्या कि 'अग्निमानय' इहां दोय पद भए अग्निं १ आनय २। अर्थ यहु जो—अग्निको ल्याव। ऐसें विवक्षित अर्थके अर्थी एक दोय आदि अक्षरनिका समूह ताकौं अर्थपद कहिये। बहुरि प्रमाण जो संख्या तिहिंनैं लीएं जो पद कहिये अक्षर समूह ताकौं प्रमाण पद कहिये। जैसें अनुष्टुप छंदके च्यारि पद तहां एक पदके आठ अक्षर होंइ। 'नमः श्रीवर्द्धमानाय' यहु एक पद भया। याका अर्थ यहु जो श्रीवर्धमान स्वामीके अर्थि नमस्कार होहु ऐसैं प्रमाणपद जानना। बहुरि सोलासै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी। १६३४८३०७८८८। गाथाविषैं कहे अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनिविषैं अर्थपद अर प्रमाण पद तौ हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाणकौं लीएं लोकव्यवहारकरि ग्रहण

कीएं हैं तातैं लोकोत्तर परमागमविषैं गाथाविषैं कही जो संख्या तीहिंविषैं वर्तमान जो मध्यमपद ताहीका ग्रहण जानना ॥ ३३६ ॥ आगैं संघातनामा श्रुतज्ञानकौं प्ररूपैं हैं–

एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥ ३३७ ॥

एकपदादुपरि एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्यातसहस्रपदे वृद्धे संघातनाम श्रुतं ॥ ३३७ ॥

जी० प्र०—एकपदस्य उक्तप्रमाणाक्षरसमूहोपरि एकैकाक्षरवृद्ध्या एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु द्विगुणपदज्ञानं भवति । तस्योपरि पुनरपि एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु त्रिगुणपदज्ञान भवति एवं प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितेषु चतुर्गुणपदादिषु संख्यातसहस्रगुणितपदमात्रेषु रूपोनेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु—

१ २   १   २   १   २   १
प। प प। ० ०। प २। प २। प २। ० ०। प ३। प ३। प ३ ० ० ० प १ ० ० ० ७ उ
१– १
१ ६=   १ ६=   १ ६= १ ० ० ० ७

चरमस्य पदसमासज्ञानोत्कृष्टविकल्पस्य उपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति संघातश्रुतज्ञानं भवति १६=१०००७ तच्चतसृणां गतीनां मध्ये एकतमगतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्थज्ञानं ॥ ३३७ ॥ अथ प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपं निरूपयति—

मं० प्र०—एकपदस्य—उक्तप्रमाणाक्षरसमूहस्य, उपरि एकैकाक्षरवृद्ध्या एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु द्विगुणपदज्ञान भवति । तस्योपरि पुनरपि एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु त्रिगुणपदज्ञान भवति एव प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितेषु चतुर्गुणपदादिषु संख्यातसहस्रगुणितपदमात्रेषु रूपोनेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु—

१ २ १ २ १ २

प । प । प ० ० । प २ । प २ । प २ । ० ० प प ३ । प ३ । ० ० ० ० प १ । ० ० ० ७ । उ

१६= १६= १६=१०००७

चरमस्य पदसमासज्ञानोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति संघातश्रुतज्ञानं भवति । १६=१०००७ । तच्च चतसृणां गतीनां मध्ये एकतमगतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्थज्ञानं ॥ ३३७ ॥ अथ प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—एक पदके ऊपरि एक एक अक्षर बंधतें बधतें एक पदका अक्षर प्रमाण पदसमासके भेद भएं पदज्ञान दूणा भया। बहुरि इसतें एक एक अक्षर बंधतें बधतें पदका अक्षर प्रमाण पदसमासके भेद भएं पदज्ञान तिगुणा भया। ऐसैं ही एक एक अक्षरकी बंधवारी लीएं पदका अक्षर प्रमाण पदसमासज्ञानके भेद होत संते चौगुणा पंचगुणा आदि संख्यात हजारकरि गुण्या हूवा पदका प्रमाणमें एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत पदसमासके भेद जानने। पदसमासज्ञानका उत्कृष्ट भेदविषै सोई एक अक्षर मिलायें संघात नामा श्रुतज्ञान हो है सो च्यारि गतिविषैं एक गतिके स्वरूपका निरूपण हारे जो मध्यमपद तिनिका समूहरूप संघात नामा श्रुतज्ञानके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताकौं संघात श्रुतज्ञान कहिये ॥ ३३७ ॥ आगैं प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानके स्वरूपकौं कहै हैं—

एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्हि पडिवत्ती ॥ ३३८ ॥

एकतरगतिनिरूपकसंघातश्रुतादुपरि पूर्वं वा ।
वर्णे संख्येये संघाते वृद्धे प्रतिपत्तिः ॥ ३३८ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तप्रमाणस्य एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतस्य उपरि पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितैकैकपदवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रपदमात्रसंघातेषु संख्यातसहस्रेषु रूपोनेषु संघातसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य संघातसमासोत्कृष्टविकल्पकस्य १६=१०००७ । १०००७-१

एतस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्रतिपत्तिकं नाम श्रुतज्ञानं भवति १६=१०००७ । १०००७ । तच्च नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपक- प्रतिपत्तिकाख्यग्रंथश्रवणजनितार्थज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥ ३३८ ॥ अथानुयोगश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

म० प्र०—पूर्वोक्तप्रमाणस्य एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतस्योपरि पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितैकैकपदवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रपदमात्रसंघा- तेषु संख्यातसहस्रेषु रूपोनेषु संघातसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य संघातसमासोत्कृष्टविकल्पस्य । १६=१०००७ । १०००७-१ । एतस्योपरि ए- कस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्रतिपत्तिकनाम श्रुतज्ञान भवति १६=१०००७ । १०००७ । तच्च नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रंथश्र- वणजनितार्थज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥ ३३८ ॥ अथानुयोगश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—एक गतिका निरूपण करणहारा जो संघातनामा श्रुतज्ञान ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकारकरि एक एक अक्षरकी वधवारी लीयें एक एक पदकी वृद्धिकरि संख्यात हजार पदका समूहरूप संघात श्रुत होइ । बहुरि इस ही अनुक्रमतैं संख्यात हजार संघात श्रुत होइ तिहिमैंस्यों एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत संघात समासके भेद जानना । बहुरि अंतका संघात समास श्रुतज्ञानका उत्कृष्ट भेदविषैं वह अक्षर मिलाइये तब प्रतिपत्तिक नामा श्रुतज्ञान हो है सो नारकादि च्यारि गतिका स्वरूप विस्तारपनैं निरूपण करनहारा जो प्रतिपत्तिक नामा ग्रंथ ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताकौं प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहिए॥३३८॥ आगैं अनुयोग श्रुतज्ञानकौं प्ररूपै हैं—

चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्हि अणियोगं ॥ ३३९ ॥

चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तितस्तु उपरि पूर्वं वा ।
वर्णे संख्याते प्रतिपत्तिवृद्धे अनुयोगं ॥ ३३९ ॥

जी० प्र०—चतुर्गतिस्वरूपनिरूपकप्रतिपत्तिकात् परं तस्योपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु पदसंघातप्रतिपत्तिकेषु वृद्धेषु रू- पोनतावन्मात्रेषु प्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति अनुयोगाख्यं श्रुतज्ञानं भवति । तच्चतुर्दशमार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगसंज्ञशब्दसंदर्भश्रवणजनितार्थज्ञानमित्यर्थः ॥ ३३९ ॥ अथ प्राभृतकप्राभृतकस्य स्वरूपं गाथा- द्वयेन प्ररूपयति—

मं० प्र०—चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तिकात्परं तस्योपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु पदसंघातप्रतिपत्तिकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य प्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति अनुयोगाख्यं श्रुतज्ञानं भवति तत्र चतुर्दशमार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगसंज्ञशब्दसंदर्भश्रवणजनितार्थज्ञानमित्यर्थः ॥ ३३९ ॥ अथ प्राभृतप्राभृतकस्य गाथाद्वयेन स्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—च्यारि गतिके स्वरूपका निरूपण करणहारा प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानके ऊपरि प्रत्येक एक अक्षरकी वृद्धि लीयें संख्यात हजार पदनिका समुदायरूप संख्यात हजार संघात अर संख्यात हजार संघातनिका समूह प्रतिपत्तिक सो अैसें प्रतिपत्तिक संख्यात हजार होइ तिनिविषैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञानके भेद भए। बहुरि तिसका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें अनुयोग नामा श्रुतज्ञान भया सो चौदै मार्गणाके स्वरूपका प्रतिपादक अनुयोग नामा श्रुत ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताकौं अनुयोग नामा श्रुतज्ञान कहिए ॥ ३३९ ॥ आगै प्राभृतप्राभृतकौं दोय गाथानिकरि कहै हैं—

चोद्दसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे ।
चउरादीअणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥ ३४० ॥

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगादुपरि वर्धिते वर्णे ।
चतुराद्यनुयोगे द्विकवारं प्राभृतं भवति ॥ ३४० ॥

जी० प्र०—चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगात्परं तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिश्चतुराद्यनुयोगेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रानुयोगसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमानुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां द्विकवारप्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३४० ॥

मं० प्र०—चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकं—एकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या चतुरादिषु अनुयोगेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेष्वनुयोगसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य अनुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति द्विकवारप्राभृतक—प्राभृतकप्राभृतकं भवति।३४०।

स० चं०—चौदह मार्गणाकरि संयुक्त जो अनुयोग ताके ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षरकी वृद्धिकरि संयुक्त

पद संघात प्रतिपत्तिक इनिकी पूर्वोक्त अनुक्रमतैं वृद्धि होतैं च्यारि आदि अनुयोगनिकी वृद्धिविषैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत अनुयोग समासके भेद भए। बहुरि तिनिका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें प्राभृत प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है ॥ ३४० ॥

अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।
पाहुडपाहुडणामं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३४१ ॥

अधिकारः प्राभृतमेकार्थः प्राभृतस्याधिकारः ।
प्राभृतप्राभृतनामा भवति इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ३४१ ॥

जी० प्र०—वस्तुनामश्रुतज्ञानस्य अधिकारः प्राभृतकं चेति द्वौ एकार्थौ। प्राभृतकस्य अधिकारोऽपि प्राभृतकप्राभृतकनामा भवति ततः कारणात् एकार्थः पर्यायशब्दः इति जिनैः—अर्हद्भट्टारकैः निर्दिष्टं न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः ॥ ३४१ ॥ द्विकवारप्राभृतानंतरं प्राभृतकस्वरूपं प्ररूपयति—

म० प्र०—वस्तुनः अधिकारः प्राभृतक, प्राभृतकप्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकनामा भवतीति एकार्थः—पर्यायशब्दः इति जिनैर्निर्दिष्ट न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः ॥ ३४१ ॥ अथ प्राभृतकस्वरूप प्ररूपयति—

स० चं०—आगें कहियेगा जो वस्तु नामा श्रुतज्ञान ताका जो एक अधिकार ताहीका नाम प्राभृत कहिये बहुरि जो उस प्राभृतकका एक अधिकार ताका नाम प्राभृतकप्राभृतक कहिये ऐसैं जिनदेवने कह्या है ॥३४१॥ आगैं प्राभृतकका स्वरूप कहैं हैं—

दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ।
दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥ ३४२ ॥

द्विकवारप्राभृतादुपरि वर्णे क्रमेण चतुर्विंशतौ ।

द्विकवारप्राभृते संवृद्धे खलु भवति प्राभृतकं ॥ ३४२ ॥

जी० प्र०—द्विकवारप्राभृतकात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः चतुर्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकप्राभृतकज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमसमासोत्कृष्टविकल्पकस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां प्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति॥३४२॥ अथ वस्तुनामश्रुतज्ञानस्वरूपमाह—

म० प्र०—द्विकवारप्राभृतकात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तप्रकारेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया चतुर्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकप्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य उत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३४२ ॥ अथ वस्तुस्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—द्विकवार प्राभृतक जो प्राभृतक प्राभृतक ताकै ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धि लीयें चौवीस प्राभृतक प्राभृतकानिकी वृद्धिविषैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्राभृतक प्राभृतक समासके भेद जानने। बहुरि ताका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है। भावार्थ—एक एक प्राभृतक नामा अधिकारविषैं चौबीस चौबीस प्राभृतक प्राभृतक नामा अधिकार हो है ॥ ३४२॥ आगैं वस्तु नामा श्रुतज्ञानकौं प्ररूपै हैं—

वीसं वीसं पाहुडअहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥ ३४३ ॥

विंशतौ विंशतौ प्राभृताधिकारे एको वस्त्वधिकारः ।
एकैकवर्णवृद्धिः क्रमेण सर्वत्र ज्ञातव्या ॥ ३४३ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तप्राभृतकस्याग्रे तदुपरि पूर्वोक्तक्रमेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः विंशतिप्राभृतकनामाधिकारेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरे वृद्धौ सत्यां एकं वस्तुनामाधिकारश्रुतज्ञानं भवति। वीसं वीसमिति उत्पादादिपूर्वाश्रितवस्तुवस्तुसमूहवीप्सायां द्विर्वचनमुक्तं। सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पात् प्रभृति पूर्वसमासोत्कृष्टविक-

ल्पपर्यंतेषु क्रमेण पर्यायाक्षरपदसंघातेत्यादिपरिपाट्या एकैकवर्णवृद्धिः इदमुपलक्षणं, तेन एकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धयो ज्ञातव्याः । एतत्सूत्रानुसारेण वृत्तौ तथा लिखितं ॥३४३॥ अथ गाथात्रयेण पूर्वनामश्रुतज्ञानस्वरूपं प्ररूपयंस्तदवयवभूतोत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वाणामुत्पत्तिक्रमं दर्शयति—

मं० प्र०—तस्मात्प्राभृतकात्परं प्राभृतकस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण एकैकवर्णवृद्धिसहचारितपदादिवृद्ध्या विंशतौ प्राभृतकनामाधिकारेषु वृद्धेषु प्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु रूपोनतावन्मात्रेषु गतेषु तच्चरमस्य प्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति एको वस्तुनामाधिकारो भवति । वीसं वीसामिति उत्पादादिपूर्वाश्रितवस्तुसमूहवीप्सायां द्विर्वचनमुक्तं । सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पात्प्रभृति पूर्वसमासोत्कृष्टविकल्पपर्यंतेषु क्रमेण पर्यायाक्षरपदसंघातेत्यादिपरिपाट्या एकैकवर्णवृद्धिः। इदमुपलक्षण, तेन एकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धिर्ज्ञातव्या । एतत्सूत्रानुसारेण वृत्तावपि तथैव लिखितं ॥३४३॥ अथ गाथात्रयेण पूर्वस्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—तिहिं प्राभृतकके ऊपर पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धिनै लीएं पदादिककी वृद्धिकरि संयुक्त बीस प्राभृतककी वृद्धि होतैं संतै वामैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्राभृतक समासके भेद जानने । बहुरि ताका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें वस्तु नामा अधिकार हो है । भावार्थ—पूर्वसंबंधी एक एक वस्तु नामा अधिकारविषैं बीस बीस प्राभृतक पाइये है । बहुरि सर्वत्र अक्षर समासका प्रथम भेदतैं लगाइ पूर्वसमासका उत्कृष्ट भेदपर्यंत अनुक्रमतैं एक एक अक्षर वधावना । बहुरि पदका वधावना बहुरि समासका वधावना इत्यादिक परिपाटीकरि यथासंभव वृद्धि सर्वनिविषैं जानना सो सूत्रके अनुसारि व्याख्यान टीकाविषैं करते ही आये हैं ॥ ३४३ ॥ आगैं तीन गाथानिकरि पूर्वनामा श्रुतज्ञानकौं कहैं हैं—

दसचोदसट्ठ अट्ठारसयं वारं च वार सोलं च ।
वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ॥ ३४४ ॥

दश चतुर्दशाष्ट अष्टादशकं द्वादश च द्वादश षोडश च ।
विंशतिः त्रिंशत् पंचदश च दश चतुर्षु वस्तूनां ॥ ३४४ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्दशपूर्वाधिकारेषु यथासंख्यं दशचतुर्दशाष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पंचदशदशदशदशदशवस्तुषु वृद्धेषु सत्सु— ॥ ३४४ ॥

मं० प्र०—तस्माद्वस्तुनः परं वस्तुन उपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्दशपूर्वाधिकारेषु यथासंख्यं दशचतुर्दशाष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पंचदशदशदशदशदशवस्तुषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रवस्तुसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमाणां वस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पाना चतुर्दशानामुपरि प्रत्येकमेकैकास्मिन्नक्षरे वृद्धे सति—॥३४४॥

स० च०—तिहि वस्तु श्रुतके ऊपरि एक एक अक्षरकी वृद्धि लीएं अनुक्रमतैं पदादिककी वृद्धिकरि संयुक्त क्रमतैं दश आदि वस्तुनिकी वृद्धि होतसंतै उनमैंसौं एक एक अक्षर घटावनै पर्यंत वस्तु समासके भेद जाननें। बहुरि तिनके अंत भेदनिविषैं अनुक्रमतैं एक एक अक्षर मिलाएं चौदह पूर्वनामा श्रुतज्ञान होइ तहां आगैं कहिए हैं उत्पाद नामा पूर्व आदि चौदह पूर्व तिनिविषैं अनुक्रमतैं दश १० चौदह १४ आठ ८ अठारह १८ बारह १२ बारह १२ सोलह १६ बीस २० तीस ३० पंद्रह १५ दश १० दश १० दश १० दश १० वस्तु नामा अधिकार पाइए है ॥ ३४४ ॥

उप्पायपुव्वगाणियविरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मप्पवादे य ॥ ३४५ ॥
पच्चाक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोयबिंदुसारे य ॥३४६॥

उत्पादपूर्वाग्रायणीयवीर्यप्रवादास्तिनास्तिकप्रवादानि ।
ज्ञानसत्यप्रवादे आत्मकर्मप्रवादे च ॥ ३४५ ॥

प्रत्याख्यानं वीर्यानुवादकल्याणप्राणवादानि च ।
क्रियाविशालपूर्वं क्रमशः अथ त्रिलोकबिंदुसारं च ॥ ३४६ ॥

जी० प्र०—यथाक्रमं उत्पादपूर्वं आग्रायणीयपूर्वं वीर्यप्रवादपूर्वं अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं ज्ञानप्रवादपूर्वं सत्यप्रवादपूर्वं आत्मप्रवादपूर्वं कर्मप्रवादपूर्वं प्रत्याख्यानपूर्वं विद्यानुवादपूर्वं कल्याणवादपूर्वं प्राणावादपूर्वं क्रियाविशालपूर्वं त्रिलोकबिंदुसारपूर्वं चेति चतुर्दशपूर्वाणि भवंति । एतेषु पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि—अग्रे प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या दशवस्तुप्रमितवस्तुसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु रूपोनैतावन्मात्रवस्तुश्रुतसमासज्ञानविकल्पेषु चरमवस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानं भवति । ततः उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकाक्षरवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या चतुर्दशवस्तुषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमोत्कृष्टोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां अग्रायणीयपूर्वश्रुतज्ञानं भवति । एवमग्रेऽग्रेऽष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पंचदशदशदशदशदशवस्तुषु क्रमेण वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रतावन्मात्रतत्तत्पूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तत्तत्पूर्वसमासोत्कृष्टज्ञानविकल्पस्योपरि एकैकाक्षरे वृद्धे सति तत्तद्वीर्यप्रवादपूर्वास्तिनास्तिप्रवादपूर्वज्ञानप्रवादपूर्वसत्यप्रवादपूर्वात्मप्रवादपूर्वकर्मप्रवादपूर्वप्रत्याख्यानपूर्वविद्यानुवादपूर्वकल्याणवादपूर्वप्राणवादपूर्वक्रियाविशालपूर्वत्रिलोकबिंदुसारपूर्वनामश्रुतज्ञानान्युत्पद्यंते । अत्र त्रिलोकबिंदुसारस्य तु समासो नास्ति उत्तरज्ञानविकल्पाभावात् ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वगतवस्तुप्राभृतकसंख्यां कथयति—

मं० प्र०—यथाक्रमं उत्पादाग्रायणीयवीर्यप्रवादास्तिनास्तिप्रवादज्ञानप्रवादसत्यप्रवादात्मप्रवादकर्मप्रवादप्रत्याख्यानविद्यानुवादकल्याणप्राणावायक्रियाविशालत्रिलोकबिंदुसारनामानि चतुर्दशपूर्वाणि भवंति । चशब्दाः समुच्चयार्थाः । तस्मात् पूर्वापर प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या चतुर्दशसु पूर्वेषु मिलितेषु तावन्मात्राः पूर्वसमासज्ञानविकल्पा भवति ॥ ३४५–३४६ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वसर्ववस्तुप्राभृतकसंख्या प्ररूपयति—

स० चं०—चौदह पूर्वनिके नाम अनुक्रमतैं ऐसैं जानने । उत्पाद १ आग्रायणीय १ वीर्यप्रवाद १ अस्ति नास्ति प्रवाद १ ज्ञानप्रवाद १ सत्यप्रवाद १ आत्मप्रवाद १ कर्मप्रवाद १ प्रत्याख्यानप्रवाद १ विद्यानुवाद १ कल्याणवाद १ प्राणवाद १ क्रियाविशाल १ त्रिलोकबिंदुसार १ ये चौदह पूर्वनिके नाम जानने । इनिके लक्षण आगें कहेंगे—इहां ऐसैं जानना पूर्वोक्त वस्तुश्रुतज्ञानके ऊपरि क्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धि लीएं पदादिककी वृद्धि होतैं दश वस्तु प्रमाणमेंस्यों एक अक्षर घटाइए तहां पर्यंत वस्तु समासज्ञानके भेद हैं । ताके अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलाएं उत्पाद पूर्वनामा श्रुतज्ञान हो है । बहुरि उत्पादपूर्व श्रुतज्ञानके ऊपरि एक एक अक्षर-

अक्षरकी वृद्धि लीयें पदादिकी वृद्धिसंयुक्त चौदहवस्तु होंहि। तामैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत उत्पादपूर्व समासके भेद जानने ताके अंतभेदविषैं वह एक अक्षरबंधै अग्रायणीय पूर्वनामा श्रुतज्ञान होहै ऐसैंही क्रमतैं आगैं आगैं आठ आदि वस्तुकी वृद्धि होतैं तहां एक अक्षर घटावने पर्यंत तिस तिसपूर्व समासके भेद जानने। तिस तिसका अंत भेदविषै सो सो एक अक्षर मिलाएं वीर्यप्रवाद आदि पूर्वनामा श्रुतज्ञान हो है। अंतका त्रिलोक विंदुसार नामा पूर्व आगैं ताकौ समासके भेद नाहीं है जातैं याके आगैं श्रुतज्ञानके भेदका अभाव है।३४५। ३४६॥ आगैं चौदह पूर्वनिविषै वस्तुनाम अधिकारनिकी वा प्राभृतनामा अधिकारनिकी संख्या कहै हैं—

पणणउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवयसया।
एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि॥ ३४७॥

पंचनवतिशतानि वस्तूनि प्राभृतकानि त्रिसहस्रनवशतानि।
एतेषु चतुर्दशस्वपि पूर्वेषु भवंति मिलितानि॥ ३४७॥

जी० प्र०—उत्पादपूर्वमादिं कृत्वा त्रिलोकविंदुसारावसानेषु चतुर्दशपूर्वेषु वस्तूनि सर्वाणि मिलित्वा पंचनवत्युत्तरशतप्रमितानि १९५ भवंति प्राभृतकानि तु सर्वाणि मिलित्वा नवशतोत्तरत्रिसहस्रप्रमितानि भवंति ३९०० । वस्तुसंख्यायां विंशत्या गुणितायां तत्संख्यासंभवात् ॥ ३४७॥ अथ पूर्वोक्तविंशतिविधश्रुतज्ञानविकल्पोपसंहारं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—एतेषु उत्पादपूर्वादिषु त्रिलोकविंदुसारपर्यंतेषु चतुर्दशसु पूर्वेषु वस्तूनि सर्वाणि मिलितानि पंचनवत्युत्तरशतसंख्यानि १९५। प्राभृतकानि तु सर्वाणि मिलितानि नवशतोत्तरत्रिसहस्रसंख्यानि भवति ३९०० वस्तुसंख्याया विंशत्या गुणिताया प्राभृतकसंख्यासंभवात् ॥ ३४७॥ अथ पूर्वोक्तविंशतिविधश्रुतज्ञानविकल्पोपसंहार गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

स० चं०—जो उत्पाद आदि त्रिलोकविंदुसार पर्यंत चौदह पूर्व तिनिविषैं मिलाए हुवे दश आदि वस्तु नामा अधिकार सर्व एकसौ पिच्याणवै १९५ हो हैं। बहुरि एक एक वस्तुविषैं वीस वीस प्राभृत कहे ते सर्व प्राभृतक

उपसंहार दोय गाथानिकरि कहै हैं—

अत्थक्खरं च पदसंघातं पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ ३४८ ॥
कमवण्णुत्तरवड्ढिय ताण समासा य अक्खरगदाणि ।
णाणवियप्पे वीसं गंथे बारस य चोद्दसयं ॥ ३४९ ॥

अर्थाक्षरं च पदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च च प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥ ३४८ ॥
क्रमवर्णोत्तरवर्धिते तेषां समासाश्च अक्षरगताः ।
ज्ञानविकल्पे विंशतिः ग्रंथे द्वादश च चतुर्दशकं ॥ ३४९ ॥

जी० प्र०—अर्थाक्षरं रूपोनैकट्ठविभक्तश्रुतकेवलमात्रमेकाक्षरज्ञानं के $\frac{?}{१८=}$ तच्च तथा पदं च संघातं प्रतिपत्तिकं अनुयोगं द्विकवारप्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु, पूर्वं चेति नव पुनः एषामेव नवानां क्रमवर्णोत्तरवर्धिताः समासाश्च नव एवमष्टादशभेदा अक्षरगतद्रव्यश्रुतविकल्पा भवंति। तद्द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञानमेव पुनः अनक्षरात्मकपर्यायपर्यायसमासज्ञानद्वययुतं सत् विंशतिविधं श्रुतज्ञानं भवति। ग्रंथे शास्त्रसंदर्भे विवक्षिते सति आचारांगादिद्वादशांगविकल्प उत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वभेदं च द्रव्यश्रुतं तच्छ्रवणसंजनितज्ञानस्वरूपं भावश्रुतं। चशब्दात् अंगबाह्यसामायिकादिचतुर्दशप्रकीर्णकभेदद्रव्यभावात्मकश्रुतं पुद्गलद्रव्यरूपं वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं, तच्छ्रवणसमुत्पन्नश्रुतज्ञानपर्यायरूपं भावश्रुतं च समुच्चीयते इति आचार्यस्य अभिप्रायः। पर्यायादिशब्दानां निरुक्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथा—परीयंते व्याप्यंते सर्वे जीवा अनेनेति पर्यायः-सर्वजघन्यज्ञानं, ईदृशज्ञानरहितस्य जीवस्याभावात्। केवलज्ञानवत्स्वपि तत्संभवात् महासंख्यायां कोट्यादौ एकाद्यल्पसंख्यावत्। अक्षाय-श्रोत्रेंद्रियाय राति ददाति स्वमर्पयतीत्यक्षरं। पद्यते गच्छति जानात्यर्थमात्मा

अनेनेति पदं । सं—संक्षेपेण एकदेशेन हन्यते गम्यते ज्ञायते एका गतिः अनेनेति संघातः । प्रतिपद्यंते सामस्त्येन ज्ञायंते चतस्रो गतयः अनयेति प्रतिपत्तिः, संज्ञायां कप्रत्ययविधानात् प्रतिपत्तिकः, अनु गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु युज्यंते संबध्यंते जीवा अस्मिन्ननेनेति चानुयोगः । प्रकर्षेण—नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधान-सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारार्थैराभृतं परिपूर्णं प्राभृतं-वस्तुनोऽधिकारः, प्राभृतमिति संज्ञा अस्यास्तीति प्राभृतकं, प्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकं वसंति पूर्वमहार्णवस्य अर्थाः एकदेशेन संत्यस्मिन्निति वस्तु । पूर्वाधिकारः पूरयति श्रुतार्थान् संविभर्त्तीति पूर्वं । सं—संगृह्य पर्यायादीनि पूर्वपर्यंतानि स्वीकृत्य अस्यंते क्षिप्यंते विकल्प्यंते इति समासाः । पर्यायज्ञानादुत्तरविकल्पाः पर्यायसमासाः । अक्षरज्ञानादुत्तरविकल्पा अक्षरसमासाः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र पदसमासादयो योज्याः । अत्र पूर्वाणि १४, वस्तूनि १९५, प्राभृतकानि ३९००, द्विकवारप्रभृतकानि ९३६००, अनुयोगाः ३७४४००, प्रतिपत्तिकसंघातपदानि संख्यातसहस्रगुणितक्रमाणि एकपदाक्षराणि १६३४८३०७८८८, समस्ताक्षराणि रूपोनैकट्ठप्रमितानि १८४४६७४४०-७३७०९५५१६१५ । एतेष्वक्षरेषु एकपदाक्षरैः प्रमाणितेषु यल्लब्धं तद्द्वादशांगपदप्रमाणं शेषमंगबाह्याक्षराणि ॥ ३४८–३४९ ॥ तत्र प्रथमं तत्पदप्रमाणमाह—

मं० प्र०—अर्थाक्षरं रूपोनैकट्ठविभक्तश्रुतकेवलमात्रमेकमक्षरं अर्थाक्षरं । अर्थाक्षरं च पदं च संघातश्च प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्च प्राभृतकप्राभृतकं च प्राभृतकं च वस्तु च पूर्वं च तेषामक्षरादीनां नवानां क्रमवर्णोत्तरवर्धितसमासाश्च नवेत्यष्टादशभेदा अक्षरगता द्रव्यश्रुतविकल्पा भवंति । ज्ञाने—तद्द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञाने विवक्षिते अनक्षरात्मकपर्यायपर्यायसमासज्ञानद्वयेन सह विंशतिविकल्पं श्रुतज्ञानं भवति । ग्रंथे शास्त्रसंदर्भे विवक्षिते द्वादशविकल्पं आचारांगादिद्वादशागभेद, उत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वकं च द्रव्यश्रुतं तच्छ्रवणजनितज्ञानस्वरूपं भावश्रुतं च । चशब्देन अंगबाह्यं सामायिकादिचतुर्दशप्रकीर्णकभेदमपि द्रव्यभावश्रुत समुच्चीयते । पुद्गलद्रव्यरूप वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं तच्छ्रवणसमुत्पन्नश्रुतज्ञानपर्यायरूपं भावश्रुतमित्याचार्यस्य तात्पर्यं । पर्यायादिशब्दानां निरुक्तिः प्रदर्श्यते । तद्यथा—परीयंते—व्याप्यते सर्वे जीवा अनेनेति पयायः-सर्वजघन्यं ज्ञानं । ईदृशज्ञानरहितस्य जीवस्यैवाभावात् । केवलज्ञानवत्स्वपि जीवेषु तत्संभवत्येव महासख्यायां कोट्यादौ एकाद्यल्पसंख्यावत् । अक्षाय-श्रोत्रेंद्रियाय, राति ददाति, स्वमर्पयतीत्यक्षरं, । पद्यते—गच्छति जानात्यर्थमात्मा अनेनेति पदं । सं—संक्षेपेण—एकदेशेन हन्यते- गम्यते ज्ञायते एका गतिरनेनेति सघातः । प्रतिपद्यंते सामस्त्येन ज्ञायंते चतस्रो गतयः अनयेति प्रतिपत्तिः । संज्ञाया कप्रत्ययविधानात्प्रतिपत्तिकः । अनु—गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु, युज्यते सबंध्यंते जीवाः अस्मिन्ननेनेति वा अनुयोगः । प्रकर्षेण नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानसत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारार्थैराभृतं परिपूर्णं प्राभृतं वस्तुनोऽधिकारः । प्राभृतमिति संज्ञास्यातीति प्राभृतकं । प्राभृतकस्य अधिकारः प्राभृतकप्राभृतकं । वसंति पूर्वमहार्णवस्य अर्थाः एकदेशेन संत्यस्मिन्निति वस्तु । पूर्वाधिकारः—पूरयति श्रुतार्थान् संभिनत्तीति पूर्वं । सं सगृह्य पर्यायादीनि पूर्वपर्यंतानि स्वीकृत्य अस्यते क्षिप्यते विकल्प्यंते इति समासाः । पर्यायज्ञानादुत्तरविकल्पाः पर्यायसमासाः अक्षरज्ञानादुत्तरविकल्पा अक्षरसमासाः एवमुत्तरत्रापि पदसमासादयो योज्याः ॥३४८–३४९॥ अथ द्वादशांगपदसख्यां प्ररूपयति—

स० चं०---अर्थाक्षर १ पद २ संघात ३ प्रतिपत्तिक ४ अनुयोग ५ प्राभृतकप्राभृतक ६ प्राभृतक ७ वस्तु ८ पूर्व ९ ए नव भेद बहुरि एक एक अक्षरकी वृद्धि आदि यथा संभव वृद्धि लीएं इनही अक्षरादिकनिके समास तिनिकरि नवभेद ऐसें सर्व मिलिकरि अठारह भेद अक्षरात्मक द्रव्यश्रुतके हैं अर ज्ञानकी अपेक्षा इनही द्रव्यश्रुतानिके सुननेतैं जो ज्ञानभया सो उस ज्ञानके भी अठारह भेद कहिए। बहुरि अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय १ अर पर्यायसमास २ ए दोय भेद मिलाएं सर्व श्रुतज्ञानके वीस भेद भए। बहुरि ग्रंथ जो शास्त्र ताकी विवक्षा करिए तौ आचारांग आदि द्वादश अंग अर उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व अर चकारतैं सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक तिनिस्वरूप द्रव्यश्रुत ज्ञान जानना ताके सुननेतैं जो ज्ञान भया सो भावश्रुतज्ञान जानना। पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिकमय तौ द्रव्यश्रुत है ताके सुननेतैं जो श्रुतज्ञानका पर्यायरूप ज्ञान भया सो भावश्रुत है। अब जो पर्याय आदि भेद कहे तिनि शब्दनिकी निरुक्ति व्याकरण अनुसारि कहिए हैं परीयंते कहिए सर्व जीव जाकरि व्याप्त हैं सो पर्याय कहिए पर्यायज्ञान विना कोऊ जीव नाहीं। केवल ज्ञानीनिके भी पर्यायज्ञान संभवै है। जैसैं किसीकैं कोटि धन पाइए है तो वाकै एक धनतौ सहज ही वामें आया तैसैं महाज्ञानविषैं स्तोकज्ञान गर्भित भया जानना। बहुरि अक्ष कहिए कर्ण इंद्रिय ताकौं अपना स्वरूपकौं राति कहिए ज्ञान द्वारकरि दे है तातैं अक्षर कहिए। बहुरि पद्यते कहिए जाकरि आत्मा अर्थकौं प्राप्त होइ ताकौं पद कहिए। बहुरि सं कहिए संक्षेपतैं हन्यते गम्यते कहिए जानिए एक गतिका स्वरूप जिहिकरि सो संघात कहिएं। बहुरि प्रतिपद्यते कहिए विस्तारतैं जानिए हैं च्यारि गति जाकरि सो प्रतिपत्ति कहिए नामसंज्ञाविषैं कप्रत्ययतै प्रतिपात्तिक कहिए। बहुरि अनु कहिए गुणस्थाननिके अनुसारि युज्यंते कहिए संबंधरूप जीव जा विषैं कहिए है सो अनुयोग कहिए। बहुरि प्रकर्षेण कहिए नाम १ स्थापना १ द्रव्य १ भाव १ अथवा निर्देश १ स्वामित्व १ साधन १ अधिकरण १ स्थिति १ विधान १ अथवा सत् १ संख्या १ क्षेत्र १ स्पर्शन १ काल १ अंतर १ भाव१ अल्पबहुत्व इत्यादि विशेषकरि प्राभृत कहिए परिपूर्ण होइ ऐसा जो वस्तुका अधिकार सो प्राभृत कहिए। अर जाकी प्रा-

प्राभृत संज्ञा होइ सो प्राभृतक कहिए। बहुरि प्राभृतकका जो अधिकार सो प्राभृतकप्राभृतक कहिए बहुरि वसंति कहिए पूर्वरूपी समुद्रका अर्थ जिस विषैं एकोदेशपनै पाइए सो पूर्वका अधिकार वस्तु कहिए। बहुरि पूरयति कहिए शास्त्रके अर्थकौं पोषै सो पूर्व कहिए। ऐसैं दश भेदनिकी निरुक्ति कही। बहुरि सं कहिए संग्रह करि पर्याय आदि पूर्वपर्यंत भेदनिकौं अंगीकार करि अस्यंते कहिए प्राप्त करिए भेद करिए ते समास कहिए, पर्याय ज्ञानतैं जे पीछैं भेद तिनिकौं पर्यायसमास कहिए। अक्षर ज्ञानतैं जे पीछैं भेद तिनकौं अक्षरसमास कहिए ऐसैं ही दश भेद जानने। ऐसैं पूर्व चौदह अर वस्तु एकसौ पिच्याणवैं अर प्राभृतक तीन हजार नवसै अर प्राभृतक प्राभृतक तिराणवै हजार छसै अर अनुयोग तीन लाख चौहत्तरि हजार च्यारिसै अर प्रतिपत्तिक अर संघात अर पद क्रमतैं संख्यात हजार गुणे अर एक पदके अक्षर सोलहसौ चौंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी अर समस्त श्रुतके अक्षर एकघाटि एकट्ठी प्रमाण इनिकौं पदके अक्षरनिका भाग दीएं जो लब्धराशि होइ सो द्वादशांगके पदोंका प्रमाण जानना। अब शेष अक्षर हैं ते अंगवाह्य श्रुतके जानने। ३४८

३४९। तहां प्रथम द्वादशांगके पदनिकी संख्या कहैं हैं—

बारुत्तरसयकोडी तेसीदी तहय होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा पंचेव पदाणि अंगाणं॥ ३५०॥

द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिस्तथा च भवति लक्षाणां।
अष्टापंचाशत्सहस्राणि पंचैव पदानि अंगानां॥ ३५०॥

जी० प्र०—द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टपंचाशत्सहस्राणि पंच च द्वादशांगानां मध्यमसर्वपदप्रमाणं भवति ११२,८३,५८,००५। अंग्यते मध्यमपदैर्लक्ष्यते इत्यंगं। अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमूहरूपश्रुतस्कंधस्य अंगं अवयवः एकदेशः आचाराद्येकैकशास्त्रमित्यर्थः॥ ३५०॥ अथांगवाह्याक्षरसंख्यां कथयति—

मं० प्र०—द्वादशोत्तरशतं कोटयः त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टापंचाशत्सहस्राणि पंच द्वादशानामंगानां पदानि यथा प्रत्येकं वक्ष्यंते तथैव मिलितानि सर्वाण्यपि भवंति । ११२८३५८००५ । अग्यते मध्यमपदैर्लक्ष्यते इत्यंग । अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमूहस्य श्रुतस्कंधस्य अंग—अवयवः—एकदेशः, आचाराद्येकैकशास्त्रमित्यर्थः ॥ ३५० ॥ अथांगवाह्यस्य अक्षरसंख्यां प्ररूपयति—

स० च०—एकसौ बारह कोडि तियासी लाख अठावन हजार पांच पद ११२८३५८००५ सर्व द्वादशांगके जानने । अंग्यते कहिए मध्यम पदनिकरि जो लखिये सो अंग कहिए अथवा सर्व श्रुतका जो एक एक आचारांगादिक रूप अवयव सो अंग कहिए । ऐसैं अंग शब्दकी निरुक्ति है ॥ ३५० ॥ आगें जो अंगवाह्य प्रकीर्णक तिनिके अक्षरनिकी संख्या कहे हैं—

अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ।
पण्णत्तरि वण्णाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥ ३५१ ॥

अष्टकोट्येकलक्षाणि अष्टसहस्राणि च एकशतकं च ।
पंचसप्ततिः वर्णाः प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥ ३५१ ॥

जी० प्र०—अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपंचसप्ततिप्रमाणाः प्रकीर्णकानां अंगवाह्यानां सामायिकादीनां च चतुर्दशानां वर्णा भवंति ८०१०८१७५ तुशब्दः पूर्वसूत्रे द्वादशांगपदसंख्योक्ता, अस्मिन् सूत्रे च अंगवाह्याक्षरसंख्योक्तेति विशेषं ज्ञापयति ॥ ३५१ ॥ अथामुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रपंचसप्तत्युत्तरैकशतप्रमाणाः प्रकीर्णकानामंगवाह्याना सामायिकादीना चतुर्दशाना वर्णा भवंति । ८०१०८१७५ । तुशब्दो विशेषार्थः । पूर्वसूत्रे द्वादशांगाना पदसंख्या उक्ता । अस्मिन् सूत्रे अंगवाह्यानामक्षरसंख्या उक्ता इत्यय विशेषः । द्विरूपवर्गधाराया रूपोने षष्ठवर्गे एकट्ठिमात्रे मध्यमपदवर्णैर्भक्ते सति लब्ध द्वादशांगपदप्रमाणं । अवशिष्टमंगवाह्याक्षरप्रमाण भवति॥३५१॥अथैतदर्थनिर्णयार्थं गाथाचतुष्टयेन प्रक्रिया प्ररूपयति—

स० चं०—बहुरि सामायिकादिक प्रकीर्णकनिके अक्षर आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तरि ८०१०८१७५ जानने। ३५१। आगैं इस अर्थके निर्णय करनेके अर्थि च्यारि गाथानिकरि अक्षरनिकी प्रक्रिया कहे हैं

तेत्तीस वेंजिणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया।
चत्तारि य जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥ ३५२ ॥

त्रयस्त्रिंशत् व्यंजनानि सप्तविंशतिः स्वरास्तथा भणिताः।
चत्वारश्च योगवहाः चतुष्षष्टिः मूलवर्णाः ॥ ३५२ ॥

ओ—अहो भव्य ! व्यंजनानि अर्धमात्राणि क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ्। ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व् श् ष् स् ह्। इत्येतानि त्रयस्त्रिंशत् ३३। स्वराः एकद्वित्रिमात्राः। अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ इत्येते नव, प्रत्येकं ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदैस्त्रिभिर्गुणिताः अ आ आ ३, इ ई ई ३, उ ऊ ऊ ३, ऋ ॠ ॠ ३, ऌ ॡ ॡ ३, ए १ ए २ ए ३, ऐ १ ऐ २ ऐ ३, ओ १ ओ २ ओ ३, औ १ औ २ औ ३ इत्येते सप्तविंशतिः २७। योगवाहाः अं अः ≍क ≍प इत्येते चत्वारः ४, एवं मिलित्वा मूलवर्णाश्चतुःषष्टिः ६४। यथानादिधने परमागमे प्रसिद्धास्तथैवात्र भणिताः संजानीहि। व्यज्यते स्फुटीक्रियते अर्थो यैस्तानि व्यंजनानि। स्वरंति—अर्थं कथयंतीति स्वराः। योगं—अन्याक्षरसंयोगं वहंतीति योगवाहाः। मूलानि संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणानि वर्णाः, मूलवर्णाः इति समासार्थबलेन असंयुक्ता एव चतुःषष्टिरिति लभ्यंते। ऌवर्णः संस्कृते दीर्घो नास्ति तथापि अनुकरणे देशांतरभाषायां चास्ति। ए ऐ ओ औ इति चत्वारोऽपि संस्कृते ह्रस्वा न संति तथापि प्राकृते देशांतरभाषायां च संति ॥ ३५२ ॥

म० प्र०—व्यंजनानि अर्धमात्राणि क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ्। ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न्। प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व् श् ष् स् ह् इत्येतानि त्रयस्त्रिंशत् ३३। स्वराः एकद्वित्रिमात्राः अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ इत्येते नव प्रत्येकं ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदैस्त्रिभिर्गुणिताः अ आ आ ३। इ ई ई ३। उ ऊ ऊ ३। ऋ ॠ ॠ ३। ऌ ॡ ॡ ३। ए १ ए २ ए ३। ऐ १ ऐ २ ऐ ३। ओ १ ओ २ ओ ३। औ १ औ २ औ ३। इत्येते सप्तविंशतिः २७। योगवाहाः अं अः ≍क ≍प इत्येते चत्वारः। ४। सर्वे मिलिताः, मूलवर्णाः असयुक्तवर्णाः चतुष्षष्टिः। ६४। यथा अनादिनिधने परमागमे प्रसिद्धाः तथात्र भणिताः कथिताः। चशब्दः समुच्चयार्थः। व्यज्यते स्फुटीक्रियते अर्थो यैस्तानि व्यंजनानि। स्वरंति-अर्थं कथयतीति स्वराः। योगमन्याक्षरसंयोग वहतीति योगवाहाः। मूलानि-संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणानि भूताः वर्णा मूलवर्णाः इति समासार्थबलेन असंयुक्ता एव एते चतुःषष्टिवर्णा-म्नाताः। ऌकारस्य दीर्घस्य संस्कृते अभावेपि अनुकरणे देशभाषांतरेषु च सद्भावः। ए ऐ ओ औ इत्येतेषां चतुर्णां संस्कृते ह्रस्वस्याभावेऽपि प्राकृते देशभाषासु च सद्भावोस्ति ॥ ३५२ ॥

स.चं.–ओ कहिये हो भव्य ! तेतीस ३३ तौ व्यंजन अक्षर हैं आधी मात्रा जाके बोलनेके कालविषैं होइ ताकौं व्यंजन कहिये क् ख् ग् घ् ङ्। च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण्। त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म्। य् र् ल् व्। श् ष् स् ह् ए तेतीस व्यंजन अक्षर हैं। बहुरि सत्ताईस स्वर अक्षर हैं अ १ इ १ उ १ ऋ १ ऌ १ ए १ ऐ १ ओ १ औ १ ए नव अक्षर, इनिके एक एकके ह्रस्व दीर्घ प्लुत तीन भेदनिकरि गुणैं सत्ताईस भेद हो हैं। अ आ आ ३। इ ई ई ३। उ ऊ ऊ ३। ऋ ॠ ॠ ३। ऌ ॡ ॡ ३। ए ए ए ३। ऐ ऐ ऐ ३। ओ ओ ओ ३। औ औ औ ३ ! ए सत्ताईस स्वर हैं। जाकी एक मात्रा होय ताकौं ह्रस्व कहिये। जाकी दोय मात्रा होंइ ताकौं दीर्घ कहिए। जाकी तीन मात्रा होंइ ताकौं प्लुत कहिए। बहुरि च्यारि योगवाह अक्षर हैं अनुस्वार १ विसर्ग १ जिह्वामूलीय १ उपध्मानीय १ तहां अं ऐसा अक्षर अनुस्वार है। अः ऐसा अक्षर विसर्ग है। कः ✕ ऐसा अक्षर जिह्वामूलीय है पः ✕ ऐसा अक्षर उपध्मानीय है। ए चौसठि मूल अक्षर अनादिनिधन परमागमविषे प्रसिद्ध हैं। 'सिद्धो वर्णः समाम्नायः' इति वचनात्। व्यज्यते कहिए अर्थ जिनिकरि प्रकट करिए ते व्यंजन कहिए। स्वरंति कहिए अर्थकौं कहैं ते स्वर कहिए। योग कहिए अक्षरके संयोगको वहंति कहिए प्राप्त होंइ ते योगवह कहिए। मूल कहिए और अक्षरके संयोगरहित चौसठि संयोगी अक्षर उपजनेकौं कारण ये चौसठि मूलवर्ण हैं। इस अर्थ करि द्वितीयादि अक्षरके संयोगरहित चौसठि अक्षर हैं इनिविषै दोय आदि अक्षर मिलैं संयोगी हो है। जैसे क्कार व्यंजन अकार स्वर मिलिकरि क ऐसा अक्षर हो है। आकारके मिलनेतैं का ऐसा अक्षर हो है इत्यादि संयोगी अक्षर उपजनेकौं कारण चौसठि मूल अक्षर जानने। इहां प्रश्न–जो व्याकरणविषै ए ऐ ओ औ इनिकौ ह्रस्व न कहे है इहां ए भी ह्रस्व कैसें कहे ताका समाधान–जो संस्कृत भाषाविषैं ह्रस्वरूप ए ऐ ओ औ नाहीं हो हैं तातैं न कहे। प्राकृत भाषा विषैं वा देशांतरकी भाषाविषैं ए ऐ ओ औ ए अक्षर भी ह्रस्व हो हैं तातैं इहां कहे हैं। बहुरि एक दीर्घ ऌकार संस्कृत भाषाविषैं नाहीं हैं तथापि अनुकरणविषैं देशांतरकी भाषाविषैं हो है तातैं इहां कह्या है ॥ ३५२ ॥

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ।
रूऊणं च कुए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥ ३५३ ॥

चतुःषष्टिपदं विरलयित्वा द्विकं च दत्त्वा संगुणं कृत्वा ।
रूपोने च कृते पुनः श्रुतज्ञानस्याक्षराणि भवंति ॥ ३५३ ॥

जी० प्र०——मूलवर्णप्रमाणं चःपष्टिपदं एकैकरूपेण विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा परस्परं संगुण्य तल्लब्धे रूपोने कृते सति श्रुतज्ञानस्य द्वादशांगप्रकीर्णकरूपश्रुतस्कंधस्य द्रव्यश्रुतस्य अपुनरुक्ताक्षराणि भवंति । वाक्यार्थप्रतीत्यर्थं गृहीतानां पुनरुक्ताक्षराणां संख्यानियमाभावात् ॥३५३॥ तदपुनरुक्ताक्षरप्रमाणं कियदिति चेदाह——

म० प्र०——चतुःषष्टिपद मूलवर्णप्रमाणचतुःषष्ट्यंकस्थानरूपाणि विरलयित्वा पंक्तिरूपेण तिर्यक्संस्थाप्य रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संगुण--परस्परगुणनं कृत्वा लब्धे रूपोने कृते सति श्रुतज्ञानस्य—श्रुतकेवलस्य, द्वादशांगप्रकीर्णकश्रुतस्कंधरूपस्य द्रव्यश्रुतस्य अपुनरुक्ताक्षराणि तल्लब्धप्रमितानि भवंति वाक्यार्थप्रतीतिनिमित्तपुनरुक्ताक्षराणां संख्यानियमाभावात् । चशब्दौ क्रियासमुच्चयार्थौ । पुनःशब्दो रूपोनकरणे विशेषमाह । एकद्वित्र्यादिसंयोगाक्षराणां चतुःषष्टिसंयोगपर्यंतानां संकलने सति श्रुतस्कंधाक्षरप्रमाणोत्पत्तिर्भवति इत्ययं विशेषः ॥ ३५३ ॥

स० चं०—मूल अक्षर प्रमाण चौसठि स्थान तिनिका विरलन करिये बरोबरि पंक्तिरूप एक एक जुदा चौसठि जायगा माडिए तहां एक २ के स्थान दोय दोयका अंक २ माडिये पाछै उनकौं परस्पर गुणन करिये दोय दून्यों च्यारि ४ च्यारि दून्यो आठ ८ आठ दून्यो सोलह १६ ऐसैं चौसठि पर्यंत गुणन कीये जो एकट्ठी प्रमाण आवै तामै एक घटाइये इतने अक्षर सर्व द्रव्यश्रुतके जानने ते ये अक्षर अपुनरुक्त जानने जातैं जो वाक्यका अर्थकी प्रतीतिके निमित्त उनही कहै अक्षरनिकौं वारंवार कहे तौ उनका किछू संख्याका नियम है नाहीं ॥३५३॥ तिनि अपुनरुक्त अक्षरनिका प्रमाण कितना है सो कहै हैं—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता ।

सुण्ण णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥ ३५४ ॥

एकाष्ट च च च षट्सप्तकं च च च शून्यसप्तत्रिकसप्त ।

शून्यं नव पंच पंच च एकं षट्कैककश्च पंचकं च ॥ ३५४ ॥

जी० प्र०—एकाष्टचतुश्चतुःषट्सप्तकं चतुश्चतुःशून्यसप्तत्रिकसप्तशून्यं नवपंचपंचएकं षट्कैकश्च पंचकं च इत्येकांकादिपंचांकावसानविंशतिस्थानात्मकद्विरूपवर्गधारोत्पन्नरूपोनषष्ठवर्गप्रमाणाक्षराणि भवंति—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। एतानि अक्षराणि एकद्वित्रिसंयोगादीनि चतुःषष्टिसंयोगपर्यंतानि संति तेषामुत्पत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—उक्तमूलवर्णचतुःषष्टिं तिर्यक्पंक्त्या लिखित्वा तत्र कवर्णे प्रत्येकभंगे एकः १। द्विसंयोगो नास्ति। खवर्णे प्रत्येकभंगः १ द्विसंयोगो भंगः १ एवं २। गवर्णे प्र १ द्वि २ त्रि १ एवं ४। घवर्णे प्र १ द्वि ३ त्रि ३ च १ एवं ८। ङ वर्णे प्र १ द्वि ४ त्रि ६ च ४ पं १ एवं १६। चवर्णे प्र १ द्वि ५ त्रि १० च १० पं ५ ष १ एवं ३२। छवर्णे प्र १ द्वि ६ त्रि १५ च २० पं १५ ष ६ सप्त १ एवं ६४। जवर्णे प्र १ द्वि ७ त्रि २१ च ३५ पं ३५ ष २१ सप्त ७ अष्ट १ एवं १२८। झवर्णे प्र १ द्वि ८ त्रि २८ च ५६ पं ७० ष ५६ सप्त २८ अष्ट ८ नव १ एवं २५६। ञवर्णे प्र १ द्वि ९ त्रि ३६ च ८४ पं १२६ ष १२६ सप्त ८४ अष्ट ३६ नव ९ दश १ एवं ५१२। अनेन क्रमेण चतुःषष्टिस्थानेषु गतेषु प्रत्येकादिभंगाः पूर्वपूर्वेभ्यः उत्तरोत्तरे द्विगुणा द्विगुणा भवंति। ३५४। तेषां संख्यासाधने करणसूत्रं श्रीमदभयचंद्रसूरिसैद्धांतचक्रवर्तिश्रीपादप्रसादेन केशववर्णिनः प्राहुः—

पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं। तियसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं ॥

प्रत्येकभंगमेकं द्विसंयोगं रूपोनपदमात्रं। त्रिसंयोगादिप्रमाणं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं ॥

विवक्षितस्थानेषु सर्वत्र प्रत्येकभंगः एकैकः। द्विसंयोगभंगो रूपोनपदमात्रः। त्रिसंयोगादीनां प्रमाणं तु यथाक्रमं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं। एकवारादिसंकलितं तद्वारसंख्यया एकरूपाधिकया हीनस्य विवक्षितपदस्य यावत्तावद्भवति। यथा दशमे ञवर्णे। त्रिसंयोगाः द्विरूपोनपदस्य एकवार संकलनमात्राः—१०—२ । १०—१ अपवर्तिताः ३६ चतुःसंयोगाः त्रिरूपोनपदस्य द्विकवारसंकलनमात्राः—
२ । १

७ । ८ । ९ अपवर्तिताः ८४। पंचसंयोगाः चतूरूपोनपदस्य त्रिकवारसंकलनमात्राः ६ । ७ । ८ । ९ अपवर्तिताः १२६। षट् संयोगाः पंच रूपो-
३ । २ । १ ॥ ४ । ३ । २ । १

नपदस्य चतुर्वारसंकलनमात्राः ५ । ६ । ७ । ८ । ९ अपवर्तिताः १२६। सप्तसंयोगाः षड्रूपोनपदस्य पंचवारसंकलनमात्राः ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९
५ । ४ । ३ । २ । १ ॥ ६ । ५ । ४ । ३ । २ । १

द्वादशोत्तरपंचशतमेव द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चतुश्चरमत्रिचरमद्विचरमचरमेषु एकहस्य षोडशांशाष्टांशचतुर्थांशार्धप्रमिता भवंति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । १२८ । २५६ । ५१२ । ००० । ०० । ००० । १८=/१६ । १८=/८ । १८=/४ । १८=/२ । एवं स्थिताक्षरसंख्या चउसट्ठिपदं विरलिय इत्यादिना वा 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादिना वा संकलिता सती द्वादशांगप्रकीर्णकश्रुतस्कंधसमस्ताक्षरसंख्या रूपोनैकट्ठप्रमिता भवतीति तात्पर्यं ।३५४॥

मं० प्र०—एकाष्टचतुश्चतु:षट्सप्तचतुश्चतु शून्यसप्तत्रिकसप्तशून्यनवपंचपचैकषडेकपंचप्रमितं श्रुतस्कंधापुनरुक्ताक्षरप्रमाणं । चतुःशब्दस्य आद्यक्षरश्चकारो गृहीतः । सत्तयं चेति चकारः समुच्चयार्थोऽव्ययः । पच चेति अंत्यचकारोऽपि समुच्चयार्थोऽव्ययः । मध्ये मध्ये विभक्तिर्दृश्यते । तदनुसारेण एकाष्टचतुश्चतुःषट्सप्तकं च चतुश्चतुःशून्यसप्तत्रिकसप्तशून्यं नव पच पंच च एकं षट्क एकैकश्च पच च इति छाया द्रष्टव्या । १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ । इदानीं द्विसयोगाद्यक्षरभंगप्राक्रिया दर्श्यते । तद्यथा—अ आ आ ३ । इ ई ई ३ । इति षडक्षराणि लिखित्वा प्रत्येकाक्षराणि षट् । ६ । 'पढमक्खो अंतगदो' इत्यादिना अक्षसचारेणोत्पन्नानि द्विसंयोगाक्षराणि पंचदश १५ । त्रिसंयोगाक्षराणि विंशति । २० । चतुःसयोगाक्षराणि पंचदश १५ । पंचसंयोगाक्षराणि षट् ६ षट्सयोगाक्षरमेकं १ । एव सर्वाणि मिलितानि त्रिषष्टिः ६३ । एव सप्तसयोगादिचतुःषष्टिसंयोगपर्यंताक्षराणि अव्यामोहेनाक्षसचारपूर्वकमानेतव्यानि । एवमानीतानि सर्वाण्यक्षराणि द्विरूपषष्ठवर्गस्य रूपोनस्य यावंति रूपाणि तावंति भवंति ॥ ३५४ ॥

स० चं०—एक आठ च्यारि च्यारि छह सात च्यारि च्यारि विंदी सात तीन सात विंदी नव पांच पांच एक छह एक पंच इतने अंक क्रमतैं लिखैं जो प्रमाण होइ तितने अक्षर सर्व श्रुतके जानने १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ इतने अक्षर हैं। द्विरूप वर्गधाराका छठा वर्गस्थान एकट्ठी प्रमाण है तामैं एक घटायें ऐसैं एक आदि पंच पर्यंत वीस अंक रूप प्रमाण हो है बहुरि इहां विशेष कहिये है-एक अक्षर एक संयोगी द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि चौसठि संयोगी पर्यंत जानने। तिनकी उत्पत्तिका अनुक्रम दिखाइये है यहां कहे मूलवर्ण चौसठि तिनकौं वरोवरि पंक्तिकरि लिखिये। बहुरि तहां केवल कवर्णविषैं तौ एक प्रत्येक भंग ही है। द्विसंयोगी आदि नाहीं है। बहुरि ख वर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी एक ऐसैं दोय भंग है। बहुरि गवर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी दोय त्रिसंयोगी एक ऐसैं च्यारि भंग है। बहुरि घवर्णसहित विषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी तीन त्रिसंयोगी तीन चतुः संयोगी एक ऐसैं आठ भंग जानना। बहुरि ङ वर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी च्यारि त्रिसंयोगी छह चतुः संयोगी च्यारि पंच संयोगी एक ऐसैं सोलह भंग हैं। बहुरि चवर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुः संयोगी पंच संयोगी षट् संयोगी क्रमतैं पांच दश दश पांच एक ऐसैं वत्तीस भंग हैं बहुरि छ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त संयोगी भंग क्रमतैं एक छह पंद्रह

वीस पंद्रह छह एक ऐसें चौसठि भंग हैं। बहुरि जवर्ण सहितविषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त अष्ट संयोगी भंग क्रमतें एक सात इकईस पैंतीस पैंतीस इकईस सात एक ऐसें एकसौ अठाइस भंग हैं। बहुरि झवर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त अष्ट नव संयोगी भंग क्रमतें एक आठ अठाईस छप्पन सत्तरि छप्पन अठाईस आठ एक ऐसें दोयसै छप्पन भंग हैं। बहुरि ञ वर्णसहितविषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त अष्ट नव दश संयोगी भंग क्रमतें एक नव छत्तीस चौरासी एकसौ छब्बीस एकसौ छब्बीस चौरासी छत्तीस नव एक ऐसें पांचसै बारह भंग हैं इसही अनुक्रमकरि चौसठि स्थाननिविषैं प्रत्येक आदि भंग पूर्व पूर्व स्थानतें उत्तर २ स्थानविषैं दूणे दूणे हो हैं ॥

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	००० योगनिके ६४ [illegible]
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी
जोड	२	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसंयोगी
	जोड	४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोगी
		जोड	८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोगी
			जोड	१६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोगी
				जोड	३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोगी
					जोड	६४	१	८	३६	अष्टसंयोगी
						जोड	१२८	१	९	नवसंयोगी
							जोड	२५६	१	दशसंयोगी
								जोड	५१२	००

इहां प्रत्येक आदि भंगनिका स्वरूप कहा? सो कहिये है—जुदे जुदे ग्रहणरूप प्रत्येक भंग हैं ते येकही प्रकार हैं। जैसैं दशवां ञवर्णकी विवक्षाविषैं ञवर्णकौं जुदा ग्रहण करिये यहु येक ही प्रत्येक भंग का विधान जानना। बहुरि दोय तीन आदि अक्षरनिके संयोगतैं जे भंग होंइ तिनकौं द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि कहिये ते अनेक प्रकार हो हैं जैसैं दशवां ञ वर्णकी विवक्षाविषैं दोय अक्षरनिका संयोग—क् ञ्। ख ञ्। ग् ञ्। घ् ञ्। ङ् ञ्। च् ञ्। छ् ञ्। ज् ञ्। झ् ञ्। ऐसैं नव प्रकार हो है। बहुरि तीनि अक्षरनिका संयोग क् ख् ञ्। क् ग् ञ्। क् घ् ञ्। क् ङ् ञ्। क् च् ञ्। क् छ् ञ्। क् ज् ञ्। क् झ् ञ्। ख् ग् ञ्। ख् घ् ञ्। ख् ङ् ञ्। ख् च् ञ्। ख् छ् ञ्। ख् ज् ञ्। ख् झ् ञ्। ग् घ् ञ्। ग् ङ् ञ्। ग् च् ञ्। ग् छ् ञ्। ग् ज् ञ्। ग् झ् ञ्। घ् ङ् ञ्। घ् च् ञ्। घ् छ् ञ्। घ् ज् ञ्। घ् झ् ञ्। ङ् च् ञ्। ङ् छ् ञ्। ङ् ज् ञ्। ङ् झ् ञ्। च् छ् ञ्। च् ज् ञ्। च् झ् ञ्। छ् ज् ञ्। छ् झ् ञ्। ज् झ् ञ्। ऐसैं छत्तीस प्रकार भंग हो है। ऐसैं ही अन्य जानने। बहुरि जितनेकी विवक्षा होइ तितनां संयोगी भंग एक ही प्रकार हो है। जैसैं दश अक्षरनिकी विवक्षा विषै दश अक्षरनिका संयोग रूप भंग एकही हो है ऐसैं भंगनिका स्वरूप जानना। इहां श्रीअभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणनिका प्रसादकरि केशववर्णी संस्कृत टीकाकार सो तिन एक दोय संयोगी आदि भंगनिकी संख्याका साधनविषै करण सूत्र कहै हैं—

पत्तेयभंगमेगं वेसंजोगं विरूवपदमेत्तं।
तियसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं॥

विवक्षित स्थान विषैं सर्वत्र प्रत्येक भंग एक एक ही है बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छ प्रमाण है इहां जेथवां स्थान विवक्षित होइ तीहिं प्रमाण गच्छ जानना। बहुरि त्रिसंयोगी आदि भंगनिका क्रमतैं एक अधिक वार हीन गच्छका संकलन धनमात्र प्रमाण है। भावार्थ यहु जो त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी आदि विषैं एकवार दोयवार आदि संकलन करना। वहुरि जेतीवार संकलन होइ तातैं एक अधिक प्रमाणकों विवक्षित गच्छमें घटाएं अवशेष जेता प्रमाण रहै तितनेका संकलन करना। जैसैं दशवां स्थानकी विवक्षा विषैं त्रिसंयोगी

भंग ल्यावनेकों एकवार संकलन अर एकवारका प्रमाण एक तातैं एक अधिक दोय सो गच्छ दशमें घटाएं आठ होइ ऐसैं आठका एकवार संकलन धनमात्र तहां त्रिसंयोगी भंग जानना । ऐसैं ही अन्यत्र जानना । बहुरि संकलन धन ल्यावनेकों पूर्वै केशववर्णी करि उक्त सूत्र कहे थे—

तत्तो रूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥

इन सूत्रनिके अनुसारि विवक्षित संकलन धन ल्यावना। अब ऐसैं करण सूत्रके अनुसार उदाहरण दिखाइए है-विवक्षित दशमा अवर्ण तहां प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी एक घाटि गच्छमात्र नव त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छमात्र आठ ताका एकवार संकलन धनमात्र सो संकलन धनके साधन करण सूत्रके अनुसारि आठ नवकौं दोय एकका भाग दीएं छत्तीस हो हैं। जातैं आठ नवकौं परस्पर गुणैं बहत्तरि भाज्य दोय एककौं परस्पर गुणैं भागहार दोय भागहारका भाग भाज्यकौं दीएं छत्तीस भए। ऐसैं ही चतुःसंयोगी भंग तीन घाटि गच्छका दोयवार संकलन धनमात्र है तहां सात आठ नवकौं तीन दोय एकका भाग दीएं चौरासी हो हैं। बहुरि पंचसंयोगी च्यारि घाटि गच्छ का तीनवार संकलधनमात्र है तहां छह सात आठ नवकौं च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं एकसौ छब्बीस हो हैं। बहुरि छह संयोगी पांच घाटि गच्छका च्यारिवार संकलनधनमात्र हैं तहां पांच छह सात आठ नवकौं पांच च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं एकसौ छब्बीस हो हैं। बहुरि सप्तसंयोगी छह घाटि गच्छका पांचवार संकलन धनमात्र है। तहां च्यारि पांच छह सात आठ नवकौं पांच च्यारि तीन दोय येकका भाग दीएं चौरासी हो हैं। बहुरि आठ संयोगी सात घाटि गच्छका छहवार संकलन धनमात्र है तहां तीन च्यारि पांच छह सात आठ नवकौं सात छह पांच च्यारि तीन दोय येकका भाग दीएं छत्तीस हो है। बहुरि नव संयोगी आठ घाटि गच्छका सातवार संकलनधनमात्र है तहां दोय तीन च्यारि पांच छह सात आठ नवकौं आठ सात छह पांच च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं नव हो हैं। बहुरि दश संयोगी नव घाटि गच्छका आठवार संकल धनमात्र

है। इहां परमार्थतैं संकलन नाहीं जातैं एकका सर्ववार संकलन एक ही हो है तातैं एक है अैसैं सबनिका जोड दीएं दशवां स्थानविषैं पांचसै बारह भंग भए॥ अैसैं ही सर्व स्थाननि विषैं ल्यावना। तहां अंतका चौसठिवां स्थानविषैं प्रत्येक भंग एक बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छमात्र तरेसठि बहुरि त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छका एकवार संकलन धनमात्र तहां बासठि तरेसठिकौं दोय एकका भाग दीएं उगणीससै तरेपन हो हैं। बहुरि चतुःसंयोगी तीन घाटि गच्छ दोयवार संकलनधनमात्र तहां इकसठि बासठि तरेसठिकौं तीन दोय एकका भाग दीएं गुणतालीस हजार सातसै ग्यारह भंग हो हैं बहुरि पंचसंयोगी च्यारि घाटि गच्छका तीनवार संकलन धनमात्र तहां साठि इकसठि बासठि तरेसठिकौं च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं पांचलाख पिच्याणवै हजार छसै पैसठि हो हैं अैसें ही षट् संयोगी आदि भंग पांच आदि एक एक बंधता घाटि गच्छका तीन आदि एक एक बंधतावार संकलनधनमात्र जानने। तहां पूर्वोक्ततैं गुणसठि अठावन आदि भाज्यविषैं अर पांच छह आदि भागहारनिविषैं अधिक अधिक माडि भाज्यकौं भागहारका भाग दीएं जेता जेता प्रमाण आवै तितना तितना तहां तहां षट्संयोगी आदि भंग जानने। तहां तरेसठि संयोगी भंग बासठि घाटि गच्छ दोय ताका एकसठिवार संकलन धनमात्र तहां दोय तीन आदि एक एक बंधता तरेसठि पर्यंतकौं बासठि इकसठि आदि एक एक घटता एकपर्यंतका भाग दीएं यथा संभव अपवर्तन कीएं तरेसठि भंग हो हैं। बहुरि चौसठि संयोगी भंग एकही है। अैसैं चौसठिवां स्थानविषैं प्रत्येक आदि चौसठि संयोगी पर्यंत भंगनिकौं जोडैं एकट्ठीका आधा प्रमाणमात्र भंग होइ। अैसैं एक आदि एक एक अधिक चौसठि पर्यन्त अक्षरनिके स्थाननिविषैं 'पत्तेयभंगमेगं' इत्यादि करण सूत्रनिकरि भंग हो है। अथवा गुणस्थानाधिकारविषैं प्रमादनिका व्याख्यान करते अक्ष संचार विधान कह्या था तिस विधान करि भी अैसैं ही भंग हो हैं ते भंग क्रमतैं एक दोय चारि आठ सोलह बत्तीस चौसठि एक सौ अठाईस दोयसै छप्पन पांचसै बारह एक हजार चौबीस दोय हजार अडतालिस च्यारि हजार छिनवै आठ हजार एकसौ बानवै सोलह हजार तीनसौ चौरासी बत्तीस हजार सातसै अडसठि पैंसठ हजार पांचसै

छत्तीस एकलाख इकतीस हजार बहत्तरि दोय लाख बासठि हजार एकसौ चवालीस पांच लाख चौबीस हजार दोयसै अठासी दश लाख अडतालीस हजार पांचसै छिहत्तरि बीस लाख सित्ताणवै हजार एकसौ बावन इकतालीस लाख चौराणवे हजार तीनसै दोय तियासी लाख अठासी हजार छसै चारि एक कोडि सडसाठिलाख तेहत्तरि हजार दोयसै आठ इत्यादि दूणै दूणे हो हैं अंत स्थान तैं चौथा तीसरा दूसरा अन्तस्थानविषैं एकट्ठीका सोलवां आठवां चौथा दूसरा भागमात्र भए तिन सबनिकों जोडै 'चउसट्ठिपदं विरलिय' इत्यादि सूत्रोक्त एक घाटि एकट्ठी मात्र भंग हो है अथवा 'अन्तधणं गुणगुणियं 'आदि विहीणं रूउणुत्तारभजियं' इस करण सूत्रकरि अन्त धन एकट्ठीका आधा ताकौं गुणकार दोय करि गुणैं एकट्ठी तामैं एक घटाएं एक घाटि एकट्ठी एक घाटी गुणकार एक ताका भाग दिएं भी इतने ही सर्व भंग हो हैं ऐसै सर्वश्रुत संबंधी समस्त अक्षरानिकी संख्या एक घाटि एकट्ठी प्रमाण जानना इहां जैसैं अ आ आ इ ई ई इनि छह अक्षरनिविषैं प्रत्येक भंग छह द्विसंयोगी पंद्रह त्रिसंयोगी वीस चतुःसंयोगी पंद्रह पंचसंयोगी छह छह संयोगी एक मिलि तरेसठि भंग होंइ। छह जायगा दूवा मांडि परस्पर गुणे येक घटाय तरेसठि हो हैं तैसैं चौसठि मूल अक्षरनिविषैं पूर्वं एक एक स्थानविषैं एक एक प्रत्येक भंग मिलि चौसठि भए। ऐसैं ही सर्व स्थानकनिके द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग मांडि जितने जितने होंइ तितने तितने द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग जानने। सबनिकों जोडैं येक घाटि एकट्ठी प्रमाण हो हैं सोई चौसठि जायगा दोयका अंक मांडि परस्पर गुणैं तहां एक घटाएं एक घाटि एकट्ठी प्रमाण श्रुतज्ञानके अक्षर जानने ॥ ३५४ ॥

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंगपुव्वगपदाणि ।
सेसक्खरसंखा ओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥ ३५५ ॥

मध्यमपदाक्षरावहितवर्णास्ते अंगपूर्वगपदानि ।
शेषाक्षरसंख्या अहो प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥ ३५५ ॥

जी० प्र०—मध्यमपदस्य परमागमप्रसिद्धस्याक्षरैः षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटित्र्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिप्रमितैः तेषु सकलश्रुतस्कंधाक्षरेषु रूपोनैकट्ठमात्रेषु भक्तेषु यल्लब्धं तावंत्यंगपूर्वगतमध्यमपदानि भवंति। अवशिष्टाक्षरसंख्या अंगबाह्यप्रकीर्णकाक्षरप्रमाणं भवति। यद्येतावतामक्षराणां एकं मध्यमपदं तदा एतावदक्षराणां कियंति मध्यमपदानि भवंति ? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्रमाणराशिना भक्ते यल्लब्धं तदंगपूर्वपदानि भवंति। ११-२८३५८००५। अवशिष्टाक्षराणि सामायिकाद्यंगबाह्यश्रुताक्षराणि भवंति। ८०१०८१७५। ओ ! अहो भव्य ! इत्यंगांगबाह्यश्रुतद्वयस्य यथासंभवं पदप्रमाणमक्षरप्रमाणं च त्वं जानीहि। प्राकृते ओ शब्दः अव्ययं संबोधनार्थः ॥३५५॥ अथांगपूर्वपदसंख्याविशेषं त्रयोदशगाथासूत्रैराख्याति—

म०प्र०—मध्यमपदस्य परमागमप्रसिद्धस्य, अक्षरैः—षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटित्र्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिप्रमितैः, तेषु सकलश्रुतस्कंधाक्षरेषु अवहृतेषु—भक्तेषु, यल्लब्धं तावंति अंगपूर्वगतमध्यमपदानि भवति। अवशिष्टाक्षरसंख्या अंगबाह्यप्रकीर्णकाना प्रमाणं भवति। यद्येतावद्भिरक्षरैः प्र १६३४८३०-७८८८ एकं मध्यमपद लभ्यते। फ १। तदा एतावद्भिरक्षरैः इ १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ कियंति मध्यमपदानि लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धान्यंगपूर्वपदानि। ११२८३५८००५। अवशिष्टाक्षराणि ८०१०८१७५। ओ इति प्राकृते संबोधनार्थमव्यय। अहो भव्याः ! इत्थमंगप्रविष्टांगबाह्यश्रुतयोः पदाक्षरप्रमाणे भवद्भिर्ज्ञातव्ये इति। तुशब्दो विशेषार्थः पूर्ववत् ॥ ३५५ ॥ अथ श्रीमाधवचद्रत्रैविद्यदेवा अंगपूर्वाणा पदसंख्याविशेषं त्रयोदशभिर्गाथाभि. प्ररूपयंति—

स.चं०—एक घाटि एकट्ठी प्रमाण समस्तश्रुतके अक्षर कहे तिनिकौं परमागमविषैं प्रसिद्ध जो मध्यम पद ताके अक्षरनिका प्रमाण सोलासै चौंतीस कोडि तियासीलाख सातहजार आठसे अठ्यासी ताका भाग दीएं जो पदनिका प्रमाण आवै तितने तौ अंगपूर्व संबंधी मध्यम पद जानने। बहुरि अवशेष जे अक्षर रहे ते प्रकीर्णकौंके जानने सो एक सौ बारह कोडि तियासीलाख अठावन हजार पांच इतने तौ अंग प्रविष्ट श्रुतका पदनिका प्रमाण आया अवशेष आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तरि अक्षर रहे ते अंगबाह्य प्रकीर्णकके जानने। ऐसैं अंगप्रविष्ट अंगबाह्य दोय प्रकार श्रुतके पदनिका वा अक्षरनिका प्रमाण हे भव्य ! तू जानि ॥ ३५५ ॥ आगे श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेव तेरह गाथानि करि अंगपूर्वनिके पदनिकी संख्या प्ररूपै हैं—

आयारे सुद्दयडे ठाणे समवायणामगे अंगे ।
तत्तो विक्खापण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥ ३५६ ॥

आचारे सूत्रकृते स्थाने समवायनामके अंगे ।
ततो व्याख्याप्रज्ञप्तौ नाथस्य धर्मकथायां ॥ ३५६ ॥

जी० प्र०—द्रव्यश्रुतमधिकृत्य निरुक्तिप्रतिपाद्यार्थपदसंख्याविशेषाणां तत्तदंगपूर्वेषु प्ररूपणा क्रियते भावश्रुते निरुक्त्याद्यसंभवात् । अत्र द्वादशांगेषु प्रथमाचारांगं कथितं। कुतः ? मोक्षहेतुभूतसंवरनिर्जराकारणपंचाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकत्वेन मुमुक्षुभिराद्रियमाणस्य मोक्षांगभूतस्य परमागमशास्त्रस्य प्रथमतोवक्तव्यत्वस्य युक्तिसिद्धत्वात् । चतुर्ज्ञानसप्तर्धिसंपन्नगणधरदेवैः तीर्थकरमुखसरोजसंभूतसर्वभाषात्मकदिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थैः शिष्यप्रशिष्यानुग्रहार्थं विरचितश्रुतस्कंधद्वादशांगानां मध्ये प्रथममाचारांगं विरचितं । आचरंति समंततोऽनुतिष्ठंति मोक्षमार्गमाराधयंति अस्मिन्ननेनेति वा आचारः तस्मिन् आचारांगे—

जदं चरे जदं चिट्ठे जदं आसे जदं सये ।
जदं भुंजेज्जमासेज्ज एवं पावं ण वज्झई ॥ १ ॥

कथं चरेत् ? कथ तिष्ठेत ? कथमासीत् ? कथं शयीत ? कथं भाषेत ? कथं भुंजीत ? कथं पापं न वध्यते ? इति गणधरप्रश्नानुसारेण यतं चरेत् । यतं तिष्ठेत् । यतमासीत । यतं शयीत । यतं भाषेत । यतं भुंजीत । एवं पापं न वध्यते इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादिमुनिजनसमस्ताचरणं वर्ण्यते । सूत्रयति–संक्षेपेण अर्थं सूचयति इति सूत्रं परमागमः । तदर्थं कृतं करणं ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया, अथवा प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्यं, छेदोपस्थापना, व्यवहारधर्मक्रिया, स्वसमयपरसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत् सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगं । तिष्ठंति अस्मिन् एकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा । व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षणः । कर्मवशात् चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंचविशिष्टधर्मप्रधानः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कोपक्रमयुक्तः स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्त्यवक्तव्यः स्यान्नास्त्यवक्तव्यः स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः इत्यादि सप्तभंगीसद्भावेष्वुपयुक्तः अष्टविधकर्मास्रवयुक्तत्वादष्टास्रवः नव जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्थाः—पदार्थाः विषयाः यस्य स नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदाद् दशस्थानकः इत्यादीनि जी-

वस्य, सामान्यार्पणादेकः पुद्गलः विशेषार्पणाया अणुस्कंधभेदाद् द्वितयः, इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यंते इति स्थानं नाम तृतीयमंगं । सं—संग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयंते ज्ञायंते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य अस्मिन्निति समवायांगं। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्मास्तिकायेन अधर्मास्तिकायः सदृशः । संसारिजीवेन संसारिजीवः सदृशः । मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः इत्यादिर्द्रव्यसमवायः । क्षेत्राश्रयेण सीमंतनरक-मनुष्यक्षेत्र--ऋतुविद्रक--सिद्धक्षेत्राणि प्रदेशतः सदृशानि। अवधिस्थान-नरक-जंबूद्वीप- सर्वार्थसिद्धिविमानानि सदृशानि इत्यादि क्षेत्रसमवायः । एकसमयः एकसमयेन सदृशः, आवलिः आवल्या सदृशी, प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यंतराणां जघन्यायूंषि सदृशानि । सप्तमपृथ्वीनरकसर्वार्थसिद्धिदेवानां उत्कृष्टायुषी सदृशे इत्यादिः कालसमवायः । केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भावसमवायः इति समवायाख्यं चतुर्थमंगं । विशेषैः बहुप्रकारैराख्यातं किमस्ति जीवः? किं नास्ति जीवः? किमेको जीवः? किमनेको जीवः? किं नित्यो जीवः? किमनित्यो जीवः? किं वक्तव्यो जीवः? किमवक्तव्यो जीव इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थंकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यंते कथ्यंते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पंचममंगं । नाथः-त्रिलोकेश्वराणांस्वामी तीर्थंकरपरमभट्टारकः तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं, घातिकर्मक्षयानंतरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थंकरत्वपुण्यातिशयविजृंभितमहिम्नः तीर्थंकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं चोद्भवति एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुदिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं रत्नत्रयात्मकं वा धर्मं कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्मकथा तत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं, अथवा ज्ञातॄणां तीर्थंकरगणधरशक्रचक्रधरादीनां धर्मानुबंधिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथानाम वा षष्ठमंगं ॥ ३५६ ॥

मं० प्र०—द्रव्यश्रुतमाधिकृत्य निरुक्तिप्रतिपाद्यार्थपदसंख्याविशेषाणा तत्तदंगपूर्वेषु प्ररूपणा क्रियते भावश्रुते निरुक्त्याद्यसंभवात् । द्वादशांगानां प्रथममाचारांग मोक्षार्थस्य परमागमस्य मुमुक्षुभिरद्रियमाणत्वेन मोक्षहेतुसंवरनिर्जराकारणपंचाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकस्य शास्त्रस्य प्रथमतो वक्तव्यत्व युक्तिसिद्धमिति चतुर्ज्ञानसप्तर्धिसंपन्नैर्गणधरदेवैस्तीर्थकरमुखारविंदसंभूतसर्वभाषात्मक दिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थैः शिष्यप्रशिष्यानुग्रहार्थं विरचितस्य श्रुतस्कंधस्य द्वादशांगानां मध्ये आचारांगं प्रथम विरचितं । आचरंति—समततः अनुतिष्ठंति मोक्षमार्गमाराधयंत्यस्मिन्ननेनेति वा आचारः, तस्मिन्नाचारांगे कथं चरेत् ? कथं तिष्ठेत् ? कथमासीत ? कथं शयीत ? कथं भाषेत ? कथं भुंजीत ? कथं पापं न बध्यते ? इत्यादि गणधरप्रश्नानुसारेण यतं चरेत् ? यतं तिष्ठेत् ? यतमासीत, यत शयीत, यतं भाषेत, यतं भुंजीत, एव पापं न बध्यते इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितं मुनीना समस्तंमाचरणं वर्ण्यते । सूत्रयति—संक्षेपेणार्थं सूचयतीति सूत्रं परमागमः, तदर्थंकृत—करण ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया । अथवा प्रज्ञापना—कल्प्याकल्प्य—छेदोपस्थापना—व्यवहारधर्मक्रियाः स्वसमयपरसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं—करणं क्रियाविशेषो यस्मिन्वर्ण्यते तत्सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगं । तिष्ठंत्यस्मिन्नेकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा, व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः । उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तः इति त्रिलक्षणः । कर्मवशाच्चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः । औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंचविशिष्टधर्मप्रधानः । पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कोपक्रमयुक्तः । स्यादस्ति,

स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्यःस्यादस्त्यवक्तव्यःस्यान्नास्त्यवक्तव्यःस्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः इत्यादि सप्तभंगीसद्भाव उपयुक्तः। अष्टविधकर्मास्रवण युक्तत्वादष्टास्रवः, नव-जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्थाः पदार्था विषया यस्य स नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणाद्वित्रिचतुःपचें-द्रियभेदाद्दशस्थानकः इत्यादीनि जीवस्य, सामान्यार्पणया एकः पुद्गलः, विशेषार्पणया अणुस्कंधभेदाद् द्वितयः इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यंते इति स्थानं नाम तृतीयमंगं । सं-सग्रहेण-सादृश्यसामान्येन अवेयते-ज्ञायंते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य यस्मिन्निति समवायांगं। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्मास्तिकायेन अधर्मास्तिकायः सदृशः, संसारिजीवेन संसारिजीवःसदृशः, मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः, इत्यादिर्द्रव्यसमवायः, क्षेत्राश्रयेण सीमंतनरकमनुष्यक्षेत्रऋजुविद्रकाणि सदृशानि । अवधिस्थाननरकजंबूद्वीपसर्वार्थसिद्धिविमानानि सदृशानि इत्यादिः क्षेत्रसमवायः । एकसमयः एकसमयेन सदृशः, आवलिः आवल्या सदृशी, प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यंतराणा जघन्यायूंषि सदृशानि । सप्तमपृथ्वीनारकसर्वार्थसिद्धिदेवानामुत्कृष्टायुषी सदृशे इत्यादिः कालसमवायः। केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भावसमवायः। इति समवायाख्यं चतुर्थमंगं । विशेषैः-बहुत्वप्रकारैः आख्या, किमस्ति जीवः, किं नास्ति जीव., किमेको जीवः, किमनेको जीवः, किंनित्यो जीवः, किमनित्यो जीवः, किं वक्तव्यो जीवः, किमवक्तव्यो जीवः, इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यते- कथ्यते यस्या सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पंचममंगं। नाथः-त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थकरपरम-भट्टारक' तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं घातिकर्मक्षयानतरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयावजृंभितमहिम्नः तीर्थकरस्य पूर्वाह्णमध्या-ह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति, अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं चोद्भवति एव समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुत्तमक्षमादिलक्षण वा धर्मं कथयति। अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्य-रूपा धर्मकथा तत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं। अथ वा ज्ञातृणा तीर्थकरगणधरशक्रचक्रवर्त्यादीना धर्मानुबंधिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्म-कथा नाम वा षष्ठमंग ॥ ३५६ ॥

सं० चं०—द्रव्यश्रुतकी अपेक्षा सार्थक निरुक्ति लीएं अंगपूर्वके पदनिकी संख्या कहिए है जातैं भावश्रुत विषैं निरुक्त्यादिक संभवैही नाहीं तहां द्वादश अंगनिविषैं प्रथम ही आचारांग है जातैं परमागम जो है सो मोक्षके निमित्त है याहीतैं मोक्षाभिलाषी याकौं आदरं हैं तहां मोक्षका कारण संवरं निर्जरा तिनिका कारण पंचाचारादि सकल चारित्र है तातैं तिस चारित्रका प्रतिपादक शास्त्र पहिलैं कहना सिद्ध भया तीहि कारणतैं च्यारि ज्ञान सप्त ऋद्धिके धारक गणधर देवनिकरि तीर्थंकरके मुखकमलतैं उत्पन्न जो सर्व भाषामय दिव्यध्वनि ताकं सुननेतैं जो अर्थ अवधारण किया तिनिकरि शिष्य प्रतिशिष्यनिके अनुग्रहनिमित्त द्वादशांगरूप श्रुत रचना करी तीहिविषैं पहिलैं आचारांग कह्या सो आचरन्ति कहिए समस्तपनैं मोक्षकौं आराधै हैं जाकरि सो आचार, तिहिं

आचारांगविषैं ऐसा कथन है जो कैसैं चलिए ? कैसैं खडे रहिये ? कैसैं बैठिये ? कैसैं सोइए ? कैसैं बोलिए ? कैसैं खाइए ? कैसैं पाप कर्म न बंधैं ? इत्यादि गणधर प्रश्नके अनुसार यतनतैं चलिये यतनतैं खडे रहिये यतनतैं बैठिए यतनतैं सोइए यतनतैं बोलिए यतनतैं खाइये ऐसैं पापकर्म न बंधैं इत्यादि उत्तर वचन लीयें मुनीश्वरनिका समस्त आचरण इस आचारांगविषैं वर्णन कीजिये है। बहुरि सूत्रयति कहिए संक्षेपतैं अर्थकौं सूचै कहै ऐसा जो परमागम सो सूत्र ताके अर्थकृतं कहिए कारणभूत ज्ञानका विनय आदि निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रिया विशेष सो जिसविषैं वर्णन कीजिये है। अथवा सूत्रकरि कीया धर्मक्रियारूप वा स्वमत परमतका स्वरूप क्रिया रूप विशेष सो जिस विषैं वर्णन कीजिये सो सूत्रकृत नामा दूसरा अंग हैं। बहुरि तिष्ठन्ति कहिए एक आदि एक एक बंधता स्थान जिस विषै पाइये सो स्थाननामा तीसरा अंग है तहां ऐसा व्याख्यान है संग्रह नयकरि आत्मा एक है व्यवहार नयकरि संसारी अर मुक्त दोय भेद संयुक्त है। बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इनि तीन लक्षणनिकरि संयुक्त है। बहुरि कर्मके वशतैं च्यारि गतिविषैं भ्रमै है तातैं चतुःसंक्रमणयुक्त है। बहुरि औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक औदयिक पारिणामिक भेद करि पंचस्वभाव करि प्रधान है। बहुरि पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊर्ध्व अध भेदकरि छह गमन करि संयुक्त है। संसारी जीव विग्रह गतिविषैं विदिशामें गमन न करै श्रेणीवद्ध छहों दिशाविषैं गमन करै है। बहुरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्ति नास्ति स्यादवक्तव्य स्यादस्ति अवक्तव्य स्यान्नास्ति अवक्तव्य स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्य इत्यादि सप्तभंगी विषैं उपयुक्त है। बहुरि आठ प्रकार कर्मका आश्रय करि संयुक्त है। बहुरि जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं विषय जाके ऐसा नवार्थ है। बहुरि पृथ्वी अप् तेज वायु प्रत्येक वनस्पती साधारण वनस्पति द्वींद्रिय त्रींदिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय भेदतैं दश स्थान हैं। इत्यादि जीवकौं प्ररूपै है। बहुरि पुद्गल सामान्य अपेक्षा एक है विशेष करि अणुस्कन्धके भेदतैं दोय प्रकार है इत्यादि पुदलकौं प्ररूपै है। ऐसैं एकने आदि देकरि एक एक बंधता स्थान इस अंगविषैं वर्णिये है। बहुरि 'सं' कहिये समानता करि अवेयंते कहिये जीवादि पदार्थ जिसविषैं जानिये सो समवायांग चौथा जानना।

इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा समानता प्ररूपै हैं तहां द्रव्यकरि धर्मास्तिकाय अरअधर्मास्तिकाय समान है। संसारी जीवनिकरि संसारी जीव समान हैं। मुक्तजीवकरि मुक्तजीव समान हैं इत्यादिक द्रव्य समवाय है। बहुरि क्षेत्रकरि प्रथम नरकका प्रथम पाथडेका सीमंत नामा इंद्रकविला अर अढाई द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्र प्रथम स्वर्गका प्रथम पटलका ऋजु नामा इंद्रक विमान अर सिद्धसिला सिद्धक्षेत्र ये समान हैं। बहुरि सातवां नरकका अवधि स्थान नामा इंद्रक विला अर जंबूद्वीप अर सर्वार्थसिद्धिविमान ये समान हैं इत्यादि क्षेत्र समवाय है। बहुरि कालकरि एक समय एक समय समान है। आवली आवली समान है। प्रथम पृथ्वीके नारकी भवनवासी व्यंतर इनिकी जघन्य आयु समान है बहुरि सातवीं पृथ्वीके नारकी सर्वार्थसिद्धिके देव इनिकी उत्कृष्ट आयु समान है इत्यादिक कालसमवाय है। बहुरि भावकरि केवलज्ञान केवलदर्शन समान हैं इत्यादि भावसमवाय है ऐसें इत्यादि समानता इस अंगविषैं वर्णिये हैं। बहुरि 'वि' कहिये विशेषकरि बहुत प्रकार आख्या कहिये गणधरके कीये प्रश्न प्रज्ञाप्यंते कहिये जानिये जिसविषैं ऐसा व्याख्याप्रज्ञप्तिनामा पांचवा अंग जानना। इस विषैं ऐसा कथन है—कि जीवअस्ति है कि जीवनास्ति है कि जीव एक है कि जीव अनेक है कि जीव नित्य है कि जीव अनित्य है कि जीव वक्तव्य है कि जीव अवक्तव्य है इत्यादि साठि हजार प्रश्न गणधर देव तीर्थंकरके निकट कीये ताका वर्णन इस अंगविषैं है। बहुरि नाथ कहिये तीन लोकका स्वामी तीर्थंकर परम भट्टारक तिनके धर्मकी कथा जिस विषैं होइ ऐसा नाथधर्मकथा नाम छठा अंग है। इसविषैं जीवादि पदार्थनिका स्वभाव वर्णन करिए है। बहुरि घातियाकर्मके नाशतैं उत्पन्न भया केवल ज्ञान उसहीके साथि तीर्थंकर नामा पुण्य प्रकृतिके उदयतें जाकै महिमा प्रकट भया ऐसा तीर्थंकरकै पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न अर्धरात्रि इनि च्यारि कालनिविषैं छह छह घडी पर्यन्त बारह सभाके मध्य सहज ही दिव्यध्वनि होय है बहुरि गणधर इंद्र चक्रवर्ति इनके प्रश्न करनेतैं और कालविषैं भी दिव्यध्वनि हो है ऐसा दिव्यध्वनि निकटवर्ती श्रोतृजननिकौं उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार वा रत्नत्रय स्वरूप धर्म कहै है इत्यादि इस अंग विषैं कथन है। अथवा इसही छठा अंगका दूसरा नाम ज्ञातृधर्मकथा है सो याका

अर्थ यहु है-ज्ञाता जो गणधर देव जाननेकी है इच्छा जाकैं ताका प्रश्नके अनुसारि उत्तर रूप जो धर्मकथा ताकौं ज्ञातृधर्मकथा कहिए। जे अस्ति नास्ति इत्यादिकरूप प्रश्न गणधरदेव कीये तिनिका उत्तर इस अंगविषै वर्णन करिये है। अथवा ज्ञाता तीर्थंकर गणधर इंद्र चक्रवर्त्यादिक तिनिका धर्मसंबंधी कथा इसविषैं पाइये है तातैं भी ज्ञातृधर्मकथा ऐसा नामका धारी छठा अंग जानना ॥ ३५६ ॥

तो वासयअज्झयणे अंतयडे णुत्तरोववाददसे ।
पण्हाणं वायरणे विवायसुत्ते य पदसंखा ॥ ३५७ ॥

तत उपासकाध्ययने अंतकृते अनुत्तरौपपाददशे ।
प्रश्नानां व्याकरणे विपाकसूत्रे च पदसंख्या ॥ ३५७ ॥

जी० प्र०—ततः परं उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयंतीति उपासकाः ते अधीयंते पठ्यंते दर्शनिकव्रतिकसामयिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचर्यारंभपरिग्रहनिवृत्तानुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयसंबंधिव्रतगुणशीलाचारक्रियामंत्रादिविस्तरैर्वर्ण्यंते अस्मिन्निति उपासकाध्ययनं नाम सप्तममंगं। प्रति तीर्थे दश दश मुनीश्वराः तीव्रं चतुर्विधोपसर्गं सोढ्वा इन्द्रादिभिर्विरचितां पूजादिप्रातिहार्यसंभावनां लब्ध्वा कर्मक्षयानंतरं संसारस्यांतं अवसानं कृतवंतोऽन्तकृतः। श्रीवर्धमानतीर्थे नमि-मतंग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलिक-किष्कंविल-पालंवष्ट-पुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि दशदशांतकृतो वर्ण्यंते यस्मिंस्तदंतकृद्दशनामाष्टममंगं। तथा उपपादः प्रयोजनमेषां ते इमे औपपादिकाः। अनुत्तरेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितसर्वार्थसिद्ध्याख्येषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः। प्रति तीर्थं दश दश मुनयो दारुणान् महोपसर्गान् सोढ्वा लब्धप्रातिहार्याः समाधिविधिना त्यक्तप्राणाः ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूपपन्नाः ते वर्ण्यंते यस्मिंस्तदनुत्तरौपपादिकदशं नाम नवममंगं। तत्र श्रीवर्धमानतीर्थे ऋजुदास-धन्य सुनक्षत्र-कार्तिकेय-नंद-नंदन-शालिभद्र-अभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा इत्येते दारुणमहोपसर्गान् विजित्य इंद्रादिकृतां पूजां लब्ध्वा अनुत्तरविमानेषूपपन्नाः एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्याः। प्रश्नस्य-दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्य अर्थः त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणं। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया अवक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थंकरादिवृत्तांतलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितं कथनमाक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुत्वादिबलेन सर्वथैकांतादि परसम-

यार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनारूपा संवेजनी कथा। संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदुःखदुष्कुलविरूपांगदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्वेजनी कथा एवंविधाः कथाः व्याक्रियंते व्याख्यायंते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणं नाम दशममंगं। शुभाशुभकर्मणां तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयफलदानपरिणतिरूप उदयः-विपाकः तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रं नामैकादशमंगं। एतेष्वाचारादिषु विपाकसूत्रपर्यंतेषु एकादशसु अंगेषु प्रत्येकं मध्यमपदानां संख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थः ॥ ३५७ ॥

मं० प्र०—ततः उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयतीत्युपासकाः, ते अधीयंते—पठ्यते दर्शनिकव्रतिकसामायिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचर्यारंभपरिग्रहनिवृत्तानुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयमंबंधिव्रतगुणशीलाचाराक्रियामंत्रादिविस्तरैर्वर्ण्यंते अस्मिन्नित्युपासकाध्ययनं नाम सप्तममंगं। प्रति तीर्थं दश दश मुनीश्वराः तीव्रं चतुर्विधोपसर्गं सोढ्वा इंद्रादिभिर्विरचितां पूजादिप्रातिहार्यसंभावनां लब्ध्वा कर्मक्षयानंतरं संसारस्यांतं कृतवंतोऽतकृतः। श्रीवर्धमानतीर्थे नमि—मतग—सोमिल—रामपुत्र—सुदर्शन—यमलीक—वलिक—किस्कविल—पालवष्ट—पुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि दश दश अंतकृतो वर्ण्यंते यस्मिन् तदतकृद्दश नामाष्टममंग। तथा उपपादः प्रयोजन येषा ते इमे औपपादिकाः, अनुत्तरेषु विजय—वैजयंत—जयत—अपराजित—सर्वार्थसिद्धयाख्येषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः। प्रति तीर्थं दश दश मुनयः दारुणान् महोपसर्गान् सोढ्वा लब्धप्रातिहार्याः समाधिविधिना त्यक्तप्राणाः ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूत्पन्नाः ते वर्ण्यंते यस्मिन् तदनुत्तरोपपादिकदश नाम नवममंग। तत्र श्रीवर्धमानतीर्थे ऋजुदास—धन्य—सुनक्षत्र—कार्तिकेय—नद—नदन—शालिभद्र—अभय—वारिषेण—चिलातपुत्रा इत्येते दारुणमहोपसर्गान् विजित्य इद्रादिकृता पूजां लब्ध्वा अनुत्तरविमानेषूपपन्नाः एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्याः। प्रश्नस्य—दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्य अर्थस्त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरण अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपिणी विक्षेपिणी सवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थकरादिवृत्तातलोकसंस्थानदेशसर्वयतिधर्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितकथनं—आक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुवादवलेन सर्वथैकातादिपरसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थकरायैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनारूप सवेजनी कथा। संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदुष्कुलविरूपागदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्वेजनी कथा, एवंविधाः कथा व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरणं नाम दशममगं। शुभाशुभकर्मणा तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयः फलदानपरिणतिरूप उदयो विपाकः त सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रं नामैकादशमंगं, एतेषु आचारादिषु विपाकसूत्रपर्यंतेष्वेकादशसु अगेषु प्रत्येकं मध्यमपदाना सख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थः ॥ ३५७ ॥

स० च०—बहुरि तहां पीछैं उपासते कहिये आहारादि दानकरि वा पूजनादिकरि संघकौं सेवैं ऐसे जे श्रावक तिनिकौं उपासक कहिये, ते 'अधीयंते' कहिये पढैं सो उपासकाध्ययन नामा सातवां अंग है। इसविषैं दर्श-

निक १ व्रतिक २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ सचित्तविरति ५ रात्रिभक्तविरति ६ ब्रह्मचर्य ७ आरंभनिवृत्त ८ परिग्रहनिवृत्त ९ अनुमतिविरत १० उद्दिष्टविरत ११ ये गृहस्थकी ग्यारह प्रतिमा वा व्रत शील आचार क्रिया मंत्रादिक इनिका विस्तारकरि प्ररूपण है। बहुरि एक एक तीर्थंकरका तीर्थकालविषैं दश दश मुनीश्वर तीव्र चारि प्रकारका उपसर्ग सहि इंद्रादिक करि करी हुई पूजा आदि प्रातिहार्यरूप प्रभावना पाइ पापकर्मका नाशकरि संसारका जो अंत ताहि करते भये तिनिकौं अंतकृत् कहिये। तिनिका कथन जिस अंगमें होइ ताकौं अंतकृद्दशांग आठवां अंग कहिये। तहां वर्धमान स्वामीके वारैं नमि १ मतंग २ सोमिल ३ रामपुत्र ४ सुदर्शन ५ यमलीक ६ वलिक ७ किष्कंवल ८ पालंवष्ट ९ पुत्र १० ये दशभये। ऐसैंही वृषभादिक एक एक तीर्थंकरके वारैं दश दश अंतकृत् केवली हो हैं तिनिका कथन इस अंगविषैं है। बहुरि उपपाद है प्रयोजन जिनिका ऐसे औपपादिक कहिये। बहुरि अनुत्तर कहिये विजय १ वैजयंत २ जयंत ३ अपराजित ४ सर्वार्थसिद्धि ५ इनि विमाननिविषैं औपपादिक होंहिं उपजैं तिनिकौं अनुत्तरौपपादिक कहिये सो एक एक तीर्थंकरके वारैं दश दश महामुनि दारुण उपसर्ग सहि करि बड़ी पूजा पाइ समाधिकरि प्राण छोड़ि विजयादिक अनुत्तर विमाननिविषै उपजैं तिनिकी कथा जिस अंगविषैं होइ सो अनुत्तरौपपादिक दशांगनामा नवमा अंग जानना। तहां श्रीवर्धमान स्वामीके वारै—ऋजुदास १ धन्य २ सुनक्षत्र ३ कार्तिकेय ४ नंद ५ नंदन ६ सालिभद्र ७ अभय ८ वारिषेण ९ चिलातीपुत्र १० ये दश भये। ऐसैं ही दश दश अन्य तीर्थंकरके समय भी भये हैं। तिनि सवनिका कथन इस अंग विषैं है। बहुरि प्रश्न कहिये बूझनहारा पुरुष जो बूझै सो व्याक्रियंते कहिये जिसविषैं वर्णन करिये सो प्रश्न व्याकरण नामा दशवां अंग जानना। इसविषैं जो कोई बूझनेवाला गई वस्तुकौं वा मूठीकी वस्तुकौं वा चिंता वा धन धान्य लाभ अलाभ सुख दुःख जीवना मरणा जीति हारि इत्यादिक प्रश्न बूझै अतीत अनागत वर्तमानकाल संबंधी ताकौं यथार्थ कहनेका उपायरूप व्याख्यान इस अंगविषैं है। अथवा शिष्यकौं प्रश्नके अनुसार आक्षेपिणी १ विक्षेपिणी २ संवेजिनी ३ निर्वेजिनी ४ ये

च्यारि कथा भी प्रश्नव्याकरण अंगविषै प्रकट कीजिये है। तहां तीर्थंकरादिकका चारित्ररूप प्रथमानुयोग, लोक का वर्णन रूप करणानुयोग, श्रावक मुनिधर्मका कथनरूप चरणानुयोग, पंचास्तिकायादिकका कथनरूप द्रव्यानुयोग इनिका कथन अर परमतकी शंका दूरि करिए सो आक्षेपिणी कथा बहुरि प्रमाण नय रूप युक्ति तीहिं करि न्यायके बलतैं सर्वथा एकांतवादी आदि परमतनिकरि कह्या अर्थ ताका खंडन करना सो विक्षेपिणीकथा बहुरि रत्नत्रयरूपधर्म अर तीर्थंकरादिपदकी ईश्वरता वा ज्ञान सुख वीर्यादिकरूप धर्मका फल ताके अनुरागकौं कारण सो संवेजिनी कथा बहुरि संसार देह भोगके रागतैं जीव नारकादिविषै दरिद्र अपमान पीडा दुःख भोगवै है इत्यादिक विराग होनेकौं कारणरूप जो कथा सो निर्वेजिनी कथा कहिये सो ऐसी भी कथा प्रश्नव्याकरण अंग विषैं पाइए है। बहुरि विपाक जो कर्मका उदय ताकौं सूत्रयति कहिये कहै सो विपाक सूत्रनामा ग्यारमां अंग जानना इसविषै कर्मनिका फलदेने रूप जो परिणमन सोई उदय कहिये ताका तीव्र मंद मध्यम अनुमान करि द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा वर्णन पाइए है ऐसैं आचारनैं आदि देकरि विपाक सूत्र पर्यंत ग्यारह अंग तिनिके पदनिकी संख्या कहिए है ॥ ३५७ ॥

अट्ठारस छत्तीसं बादालं अडकडी अडविछप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीसं चोद्दालं सोलससहस्सा ॥ ३५८ ॥
इगिदुगपंचेयारं तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिणक्खमेया कोडी य विवागसुत्तम्हि ॥ ३५९ ॥

अष्टादश षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टकृतिः अष्टद्विपंचाशत् ।

सप्ततिः अष्टाविंशतिः चतुश्चत्वारिंशत् षोडश सहस्राणि ॥ ३५८ ॥
एकद्विपंचैकादशत्रयोविंशतिद्वित्रिनवतिलक्षं चतुर्थादिषु।
चतुरशीतिलक्षमेका कोटिश्च विपाकसूत्रे ॥ ३५९ ॥

जी० प्र०—सहस्रशब्दः सर्वत्र संबध्यते। आचारांगे अष्टादशसहस्राणि पदानि १८०००। सूत्रकृतांगे षट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ३६०००। स्थानांगे द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ४२०००। चतुर्थादिषु समवायादिषु प्रश्नव्याकरणपर्यंतेषु सप्तस्वंगेषु एकलक्षादियोगः क्रियते। तद्यथा—समवायांगे एकलक्षचतुःषष्टिसहस्राणि पदानि १६४०००। व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगे द्विलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २२८०००। ज्ञातृकथांगे पंचलक्षषट्पंचाशत्सहस्राणि पदानि ५५६०००। उपासकाध्ययनांगे एकादशलक्षसप्ततिसहस्राणि पदानि ११७००००। अंतकृद्दशांगे त्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २३२८०००। अनुत्तरौपपादिकदशांगे द्विनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणांगे त्रिनवतिलक्षषोडशसहस्राणि पदानि ९३१६०००। विपाकसूत्रांगे एककोटिचतुरशीतिलक्षाणि पदानि १८४०००००॥ ३५८-३५९ ॥

मं० प्र०—सोलससहस्सा इति सहस्रशब्दः प्रत्येकमभिसंबध्यते आचारांगे अष्टादशसहस्राणि पदानि १८०००। सूत्रकृतांगे षट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ३६०००। स्थानांगे द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ४२०००। तुरियादी—चतुर्थादिषु समवायादिषु प्रश्नव्याकरणपर्यंतेषु सप्तस्वंगेषु एकलक्षादियोगः कर्तव्यः। तद्यथा—समवायांगे एकलक्षचतुःषष्टिसहस्राणि पदानि १६४०००। व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगे द्विलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २२८०००। ज्ञातृकथांगे पंचलक्षषट्पंचाशत्सहस्राणि पदानि ५५६०००। उपासकाध्ययनांगे एकादशलक्षसप्ततिसहस्राणि पदानि ११७००००। अंतकृद्दशांगे त्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २३२८०००। अनुत्तरौपपादिकदशांगे द्विनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ९२४४०००। प्रश्नव्याकरणांगे त्रिनवतिलक्षषोडशसहस्राणि पदानि ९३१६०००। विपाकसूत्रांगे एककोटिचतुरशीतिलक्षाणि पदानि १८४००००० ॥ ३५९ ॥

स० चं०—प्रथम गाथा विषैं अठारह आदि हजार कहे। बहुरि दूसरी गाथाविषैं चौथा अंग आदि अंगनिविषै एकादिक लाख सहित हजार कहे अर विपाकसूत्रका जुदा वर्णन कीया अब इनि गाथानिके अनुसारि एकादश अंगनिकी पदनिकी संख्या कहिये है—आचारांगविषैं पद अठारह हजार १८००० सूत्रकृतांगविषैं पद छत्तीस हजार ३६००० स्थानांगविषैं बियालीस हजार ४२००० समवायांगविषैं एक लाख अर आठकी कृति चौंसठि हजार १६४००० व्याख्याप्रज्ञप्तिविषैं दोय लाख अठाईस हजार २२८००० ज्ञातृकथा अंगविषैं पांचलाख छप्पन हजार ५५६००० उपासकाध्ययन अंगविषैं ग्यारह लाख सत्तरि हजार ११७०००० अंतकृतदशांगविषैं

तेईस लाख अट्ठाईस हजार२३२८००० अनुत्तरौपपादक दशांगविषैं वाणवै लाख चवालीस हजार९२४४०००प्रश्न व्याकरण अंगविषैं तिराणवै लाख सोलह हजार ९३१६००० विपाकसूत्र अंगविषैं एक कोडि चौरासी लाख १८४००००० ऐसें एकादश अंगनिविषैं पदनिकी संख्या जाननी ॥ ३५८–३५९ ॥

वापणनरनोनानं एयारंगे जुदा हु वादम्हि ।
कनजतजमताननमं जनकनजयसीम वाहिरे वण्णा ॥३६०॥

वापणनरनोनानं एकदशांगे युतिर्हि वादे ।
कनजतजमताननमं जनकनजयमीम वाह्ये वर्णाः ॥ ३६० ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तैकादशांगपदसंख्यायुतिः अक्षरसंख्यया वापणनरनोनानं चतुःकोटिपंचदशलक्षद्विसहस्रप्रमिता भवति ;४१५०२००० खलु स्फुटं दृष्टिवादांगे कनजतजमताननमं अष्टोत्तरशतकोट्यष्टाषष्टिलक्षपट्पंचाशत्सहस्रपंचपदानि भवंति १०८६८५६००५ । जनकनजयसीम अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपंचसप्तत्यक्षराणि सामायिकादिचतुर्दशभेदेंऽगवाह्यश्रुते भवंति ८०१०८१७५ । दृष्टीनां त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादः अनुवादः तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद् दृष्टिवादं नाम द्वादशमंगं । तद्यथा कौत्कल-कंठेविद्धि-कौशिक-हरिश्मश्रु-मांधपिक-रोमश—हारीत-मुंड-आश्वलायनादयः क्रियावाददृष्टयः अशीत्युत्तरशतं १८० । मरीचि-कपिल-उलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाद्वलिः—माठर- मौद्गलायनादयः अक्रियावाददृष्टयश्चतुरशीतिः ८४ । शाकल्य-वाल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कठ-माध्यंदिन-मौद—पैप्पलाद-वादरायण-स्विष्ठिक्य-दैत्यकायन-वसु-जैमिन्यादयः अज्ञानकुदृष्टयः सप्तषष्टिः ६७ । वशिष्ट-पाराशर-जतुष्कर्ण-वाल्मिकि-रोमहर्षणि-सत्यदत्त-व्यास-एलापुत्र (तु) औपमन्यव-ऐंद्रदत्त-आगस्त्यादयो वैनयिकदृष्टयो द्वात्रिंशत् ३२ । मिलित्वा मिथ्यावादाः त्रिषष्ट्यग्रत्रिशती भवंति ॥ ३६० ॥

मं० प्र०—युक्ताना एकादशागाना पदसख्यायुतिः अक्षरसज्ञया वा—प—ण—नर—नो—नान चतुःकोटिपंचदशलक्षद्विसहस्रप्रमिता ४१५०२००० । वादे—दृष्टिवादनाम्नि, द्वादश अगे कनजतजमताननमं अष्टोत्तरशतकोटयष्टाषष्टिलक्षषट्पंचाशत्सहस्राणि पंचाग्राणि पदानि १०८, ६८, ५६००५, दृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसख्याना मिथ्यादर्शनाना वादः—अनुवादः, तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद् दृष्टिवादं नाम द्वादशमंगं । तद्यथा—कौत्कल—काठेविद्धि—कौशिक—हरिश्मश्रु—माधपिक—रोमश—हारीत—मुंड—आश्वलायनादीना क्रियावाददृष्टीनामशीतिशत १८० । मरीचि—कपिल—उलूक—गार्ग्य व्याघ्रभू ति—वाद्वलि—माठर—मौद्गलादीना अक्रियावाददृष्टीना चतुरशीतिः ८४ । शाकल्य—वल्कल—कुथुमि—सात्यमुग्रि—नारायण—कठ—माध्यदिन—मौद—पैप्पलाद—वादरायण—स्वि-

ष्ठिक्य-दैतिकायन-वसु-जैमिन्यादीनां अज्ञानां अज्ञानकुदृष्टीनां सप्तषष्टिः ६७। वासिष्ठ-पराशर-जतुकर्ण-वाल्मीकि-रोमहर्षणि-सत्यदत्त-व्यास-एलापुत्र-औपमन्यव-ऐंद्रदत्त-अगस्त्यादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत् ३२ इति मिलित्वा त्रिषष्ट्युत्तरा त्रिशती ३६३। अंगबाह्ये-सामायिकादिचतुर्दशभेदे जनकनजयसीम अष्टकोटयेकलक्षाष्टसहस्रपचसप्तत्युत्तरशतप्रमिताः अपुनरुक्ता वर्णाः ८०१०८१७५ ॥ ३६० ॥

स०चं०-इहां वा आगे अक्षर संज्ञाकरि अंकनिकौं कहैं हैं सो याका सूत्र पूर्वै गतिमार्गणाका वर्णनविषै पर्याप्त मनुष्यनिकी संख्या कही है तहां कह्या है 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्र कह्या है तिसहीतैं अक्षरसंज्ञाकरि अंक जानना। ककारादिक नव अक्षरनिकरि एक दोय आदि क्रमतैं नव अंक जानने। टकारादि नव अक्षरनिकरि नव अंक जानने। पकारादि पंच अक्षरनिकरि पंच अंक जानने। यकरादि आठ अक्षरनिकरि आठ अंक जानने। ञकार नकार इनिकरि बिंदी जानिये ऐसा कहि आए हैं सो इहां 'वापणनरनोनानं इनि अक्षरनिकरि चारि एक पांच बिंदी दोय बिंदी बिंदी बिंदी ए अंक जानना। ताके चारि कोडि पंद्रह लाख दोय हजार ४१५०२००० पद सर्व एकादश अंगनिका जोड दीयें भये। बहुरि दृष्टिवाद नाम बारहवां अंग ताविषै 'कनजतजमताननमं' कहिये एक बिंदी आठ छह आठ पांच छह बिंदी बिंदी पांच इनि अंकनिकरि एकसौ आठ कोडि अडसठि लाख छप्पन हजार पांच पद हैं १०८६८५६००५, सो दृष्टि कहिये मिथ्यादर्शन तिनिका है अनुवाद कहिये निराकरण जिसविषै ऐसा दृष्टिवाद नामा अंग बारहवां जानना। तहां मिथ्यादर्शनसंबंधी कुवादी तीनसै तरेसठि हैं तिनिविषै कौत्कल कांठेविद्धि कौशिक हरिश्मश्रु मांधपिक रोमश हारीत मुंड आश्वलायन इत्यादि क्रियावादी हैं सो इनिके एकसौ अस्सी १८० कुवाद हैं। बहुरि मारीचि कपिल उलूक गार्ग्य व्याघ्रभूति वाड्वालि माठर मौद्गलायन इत्यादि अक्रियावादी हैं तिनिके चौरासी ८४ कुवाद हैं। बहुरि साकल्य वाल्कलि कुथुमि सात्यमुग्री नारायण कठ माध्यंदिन मौद पैप्पलाद वादरायण स्विष्ठिक्य दैत्यकायन वसु जैमिन्य इत्यादि ए अज्ञानवादी हैं। इनिके सडसठि६७कुवाद हैं बहुरि वशिष्ठ पाराशर जतुकर्ण वाल्मिकि रोमहर्षिणि सत्यदत्त व्यास एलापुत्र उपमन्यु ऐंद्रदत्त अगस्ति इत्यादिक ए विनयवादी हैं इनिके कुवाद बत्तीस ३२ हैं। सब मिलाएं तीनसै

तरेसठि कुवाद भये इनिका वर्णन भावाधिकारविषैं कहैंगे इहां प्रवृत्तिविषैं इनि कुवादनिके जे जे अधिकारी तिनिके नाम कहे हैं। बहुरि अंग बाह्य जो सामायिकादिक तिनिविषैं 'जनकनजयसीम' कहिये आठ विंदी एक विंदी आठ एक सात पांच अंक तिनिके आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचत्तरि ८०१०८१७५ अक्षर जानने ॥ ३६० ॥

चंदरविजंबुदीवयदीवसमुद्दयवियाहपण्णत्ती ।
परियम्मं पंचविहं सुत्तं पढमाणि जोगमदो ॥ ३६१ ॥
पुव्वं जलथलमायाआगासयरूवगयामिमा पंच ।
भेदा हु चूलियाए तेसु पमाणं इणं कमसो ॥ ३६२ ॥

चंद्ररविजंबूद्वीपकद्वीपसमुद्रकव्याख्याप्रज्ञप्तयः ।
परिकर्म पंचविधं सूत्रं प्रथमानुयोगमतः ॥ ३६१ ॥
पूर्वं जलस्थलमायाकाशकरूपगता इमे पंच ।
भेदा हि चूलिकायाः तेषु प्रमाणमिदं क्रमशः ॥ ३६२ ॥

जी० प्र०—दृष्टिवादागे अधिकाराः पंच। ते के? परिकर्म सूत्रं प्रथमानुयोगः पूर्वगतं चूलिका चेति। तत्र परितः सर्वतः कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म, तच्च पंचविधं चंद्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः व्याख्याप्रज्ञप्तिश्चेति । तत्र चंद्रप्रज्ञप्तिः चंद्रस्य विमानायुःपरिवारऋद्धिगमनहानिवृद्धिसकलार्धचतुर्थांशग्रहणादीन् वर्णयति । सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणादीन्वर्णयति । जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः जंबूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षकुंडवेदिकावनखंडव्यंतरावासमहानद्यादीन् वर्णयति । द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः असंख्यातद्वीपसागराणां स्वरूपं तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासेषु विद्यमानाकृत्रिमजिनभवनादीन् वर्णयति । व्याख्याप्रज्ञप्तिः रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अ-

नंतरसिद्धपरंपरासिद्धानां अन्यवस्तूनां च वर्णनं करोति। सूत्रयति—सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रं। जीवः अबंधकः अकर्ता निर्गुणः अभोक्ता स्वप्रकाशकः परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः नास्त्येव जीवः इत्यादि क्रियाक्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीनां त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति। प्रथमानुयोगः प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः, । चतुर्विंशतितीर्थकरद्वादशचक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवनवप्रतिवासुदेवरूपत्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणानि वर्णयति। पूर्वं चतुर्दशविधं विस्तरेण अग्रे वक्ष्यति। चूलिकापि पंचविधा जलगता स्थलगता मायागता आकाशगता रूपगता चेति। तत्र जलगता चूलिका जलस्तंभनजलगमनाग्निस्तंभाग्निभक्षणाग्न्यासनाग्निप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। स्थलगता चूलिका मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। मायागता चूलिका मायारूपेंद्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। रूपगता चूलिका सिंहकरितुरगरुरुनरतरुहरिणशशकवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणधातुवादरसवादखन्यावादादींश्च वर्णयति। आकाशगता चूलिका आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। प्रागुक्तचंद्रप्रज्ञप्त्यादिषु क्रमशो यथाक्रमं पदप्रमाणं अनंतरमेव वक्ष्यमाणं जानीहि इति संबोधनमध्याहार्यं।३६१-३६२।

मं० प्र०—दृष्टिवादस्य अधिकाराः परिकर्म सूत्र प्रथमानुयोगः पूर्वगतं चूलिका चेति पंच भवंति। ततः परितः—सर्वतः, कर्माणि—गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म। तच्च पंचविध—चंद्रप्रज्ञप्तिः, सूर्यप्रज्ञप्तिः, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिः, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः, व्याख्याप्रज्ञप्तिरिति। तत्र चंद्रप्रज्ञप्ति—चंद्रस्य विमानायुःपरिवारऋद्धिगमनवृद्धिहानिसकलार्धचतुर्भागग्रहणादीनि वर्णयति। सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणादीनि वर्णयति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः जंबूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षवेदिकावनखंडव्यंतरावासमहानद्यादीनां वर्णनं करोति। द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः—असंख्यातद्वीपसागराणां स्वरूपस्य तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासानां आवासं प्रति विद्यमानाकृत्रिमजिनभवनादीनां च वर्णनं करोति। व्याख्याप्रज्ञप्तिः—रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अनंतरपरंपरासिद्धानां अन्येषां च वस्तूनां वर्णनं करोति। सूत्रयति—सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रं, जीवः अबंधकः, अकर्ता, निर्गुणः, अभोक्ता, स्वप्रकाशकः, परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः, नास्त्येव जीवः इत्यादि क्रियाऽक्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीनां त्रिषष्ठ्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति। प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगः—अधिकारः चतुर्विंशतितीर्थकरद्वादशचक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवनवप्रतिवासुदेवानां त्रिषष्टिपुराणानि वर्णयति। अतःपरं पूर्वं चतुर्दशविधं तच्च अग्रेविस्तरेण वक्ष्यते। चूलिकाः जलगता स्थलगता मायागता आकाशगता रूपगता चेति इमे पंचभेदा भवंति। तत्र जलगता जलस्तंभनजलगमनाग्निस्तंभनभक्षणासनप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति। स्थलगता मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति। मायागता मायारूपेंद्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति। रूपगता सिंहकरीतुरगरुरुनरतरुहरिणशशवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणं धातुवादरसवादखान्यवादादीनि च वर्णयति। आकाशगता आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति। तेषु चंद्रप्रज्ञप्त्यादिषु क्रमशः—यथाक्रमं पदमानं इदमनंतरमेव वक्ष्यमाणं जानीत हे भव्याः! इत्यध्याहारः॥ ३६१-३६१॥

सं० च०—दृष्टिवाद नामा बारह्वां अंगके पंच अधिकार हैं परिकर्म १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ चू-

लिका ५ए पंच अधिकारहैं तिनिविषैं परित: कहिये सर्वांगतैं कर्माणि कहिये जिनतैं गुण कार भागहारादि रूप गणित होइ ऐसे कर्णसूत्र वे जिसविषैं पाइए सो परिकर्म कहिये सो परिकर्म पांच प्रकार है चंदप्रज्ञप्ति१ सूर्यप्रज्ञप्ति२ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ३ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ४ व्याख्याप्रज्ञप्ति ५ । तहां चंद्रप्रज्ञप्ति चंद्रमाका विमान आयु परिवार ऋद्धि गमनविशेष वृद्धि हानि सारा आधा चौथाई ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है बहुरि सूर्यप्रज्ञप्ति सूर्यका आयु मंडल परिवार ऋद्धि गमनका प्रमाण ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है । बहुरि जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति जंबूद्वीपसंबंधी मेरुगिरि कुलाचल द्रह क्षेत्र वेदी वनखंड व्यंतरनिके मांदिर नदी इत्यादि प्ररूपै है। बहुरि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति असंख्यात द्वीप समुद्रसंबंधी स्वरूप वा तहां तिष्ठते ज्योतिषी व्यंतर भवनवासीनिके आवास तहां अकृत्रिम जिनमंदिर तिनकौं प्ररूपै है । बहुरि व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपी अरूपी जीव अजीव आदि पदार्थनिका वा भव्य अभव्य आदि प्रमाणकरि निरूपण करै है ऐसैं परिकर्मके पंच भेद है । बहुरि सूत्रयति कहिये मिथ्यादर्शनके भेदनिकौं सूचै बतावै ताकौं सूत्र कहिये तिसविषैं जीव अबंधकही है अकर्ता है निर्गुण है अभोक्ता है स्वप्रकाशक ही है परप्रकाशक ही है अस्तिरूप ही है नास्तिरूप ही है इत्यादि क्रियावाद अक्रियावाद अज्ञानवाद विनयवाद तिनके तीनसै तरेसठि भेद तिनिका पूर्व पक्षपने करि वर्णन करिये है। बहुरि प्रथम कहिये मिथ्यादृष्टी अव्रती विशेष ज्ञानरहित ताकौं उपदेश देने निमित्त जो प्रवृत्त भया अधिकार अनुयोग कहिए सो प्रथमानुयोग कहिए तींहिं विषैं चौवीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ति नव बलभद्र नव नारायण नव प्रतिनारायण इनि तरेसठि शलाका पुरुषनिका पुराण वर्णन कीया है। बहुरि पूर्वगत चौदह सो आगैं विस्तारनैं लीएं कहैंगे। बहुरि चूलिकाके पंच भेद जल गता १ स्थलगता २ मायागता ३ रूपगता ४ आकाशगता ५ ए पंच भेद तिनिविषैं जगलता चूलिका तौ जल का स्तंभन करना जलविषैं गमन करना अग्निका स्तंभन करना अग्निका भक्षण करना अग्निविषैं प्रवेश करना इत्यादि क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपै है। बहुरि स्थलगता चूलिका मेरुपर्वत भूमि इत्यादि विषै प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक प्ररूपै है। बहुरि मायागता चूलिका मायामई इंद्रजाल विक्रि-

याके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपै है। बहुरि रूपगता चूलिका सिंह हाथी घोड़ा वृषभ हरिण इत्यादि नाना प्रकार रूप पलटिकरि धरना ताके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपै है वा चित्राम काठ लेपादिकका लक्षण प्ररूपै है वा धातु रसायनकौं प्ररूपै है। बहुरि आकाशगता चूलिका आकाश विषैं गमन आदिकौं कारण भूत मंत्र तंत्रादि प्ररूपै है ऐसैं चूलिकाके पांच भेद जानने। ए चंद्रप्रज्ञप्ति आदि देकरि भेद कहे तिनिके पदनि-का प्रमाण आगे कहिए है सो हे भव्य तू जानि। ३६१। ३६२॥

गतनम मनगं गोरम मरगत जवगात नोननं जजलक्खा।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादी॥ ३६३॥
याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो॥ ३६४॥

गतनम मनगं गोरम मरगत जवगातनोननं जजलक्षाणि।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादिषु॥ ३६३॥
याजकनामेनाननमेतानि पदानि भवंति परिकर्मणि।
कानवधिवाचनाननमेषः पुनः चूलिकायोगः॥ ३६४॥

जी० प्र०—अक्षरसंज्ञया चंद्रप्रज्ञप्तौ गतनमनोननं-षट्त्रिंशल्लक्षपंचसहस्राणि पदानि ३६०५००० । सूर्यप्रज्ञप्तौ मनगंनोननं-पंचलक्षत्रिसहस्राणि पदानि ५०३००० । जंबूद्वीपप्रज्ञप्तौ गोरमनोननं त्रिलक्षपंचविंशतिसहस्राणि पदानि । द्वीपसागरप्रज्ञप्तौ मरगतनोननं द्विपंचाशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ५२३६००० । व्याख्याप्रज्ञप्तौ जवगातनोननं—चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ८४३६००० । सूत्रे जजलक्खा—अष्टाशीतिलक्षाणि पदानि ८८००००० । प्रथमानुयोगे मननन—पंचसहस्राणि पदानि ५००० । चतुर्दशपूर्वसमुच्चये धममननोननामं—पंचनवतिकोटिपंचाश-

लक्षपंचपदानि ९५५००००५। जलादी जलगतादिपंचचूलिकास्थानेषु प्रत्येके रनधजधरानन-द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्रद्विशतानि पदानि। २०९८९२००। चंद्रप्रज्ञप्त्यादिपंचविधपरिकर्मयुतौ याजकनामेनाननं—एककोटयेकाशीतिलक्षपंचसहस्राणि पदानि १८१०५०००। जलगतादिपंचविधचूलिकायोगः पुनः कानवधिवाचनाननं—दशकोट्येकोनपंचाशल्लक्षपट्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि १०४९४६००० ॥ ३६३–३६४ ॥

म० प्र०—अक्षरसंज्ञया गतनमनोनन—षट्त्रिंशल्लक्षपंचसहस्राणि पदानि चंद्रप्रज्ञप्तौ ३६०५०००। मनगनोनन पंचलक्षत्रिसहस्राणि पदानि सूर्यप्रज्ञप्तौ ५०३०००। गोरमनोनन त्रिलक्षपंचविंशतिसहस्राणि पदानि जंबूद्वीपप्रज्ञप्तौ ३२५०००। मरगतनोननं द्विपंचाशल्लक्षपट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि द्वीपसागरप्रज्ञप्तौ ५२३६०००। जवगातनोननं चतुरशीतिलक्षपट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि व्याख्याप्रज्ञप्तौ ८४३६०००। जजलक्खा अष्टाशीतिलक्षाः पदानि सूत्रं ८८०००००। मननन पचसहस्राणि पदानि प्रथमानुयोगे ५०००। धममननोनननामं पंचनवतिकोटिपंचाशल्लक्षाणि पंचोत्तराणि पदानि पूर्वगते चतुर्दशपूर्वसमुच्चये ९५५००००५। रनधजधरानन द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्राणि द्विशतोत्तरपदानि प्रत्येके जलगतादिषु पंचसु चूलिकासु समानसंख्यानि-जलगता २०९८९२००। स्थलगता २०९८९२००। मायागता २०९८९२००। आकाशगता २०९८९२००। रूपगता २०९८९२००। याजकनामेनाननं एककोटयेकाशीतिलक्षपंचसहस्राणि पदानि चंद्रप्रज्ञप्त्यादिपंचविधेऽपि परिकर्मणि मिलितान्येतावंति भवति १८१०५०००। कानवधिवाचनाननं दशकोटयेकोन पचाशल्लक्षपट्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि जलगतादीनां पंचानां चूलिकानां एव योग पदसंख्यासयोग १०,४९,४६००० ॥ ३६३–३६४ ॥

स० चं०—इहां 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्रोक्त विधानतैं अक्षर संज्ञाकरि अंक कहैं हैं सो अंकनिकरि जो प्रमाण भया सोई इहां कहिए है एक एक अक्षरतैं एक एक अंक जानि लेना सो 'गतनमनोननं' कहिये छत्तीस लाख पांच हजार ३६०५००० पद चंद्रप्रज्ञप्ति विषैं हैं। बहुरि 'मनगनोननं' कहिये पांच लाख तीन हजार ५०३००० पद सूर्यप्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि गोरमनोननं कहिये तीनलाख पचीस हजार ३२५००० पद जंबूद्वीप प्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि मरगतनोननं कहिये बावन लाख छत्तीस हजार ५२३६००० पद द्वीपसागर प्रज्ञप्तिविषैं है। बहुरि 'जवगातनोननं' कहिये चौरासीलाख छत्तीस हजार ८४३६००० पद व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगके हैं। बहुरि 'जजलक्खा' कहिये अठ्यासी लाख ८८००००० पद सूत्र नामा भेदविषैं हैं बहुरि मननन कहिये पांच हजार ५००० पद प्रथमानुयोगविषैं हैं। बहुरि धममननोनननामं कहिये पिच्याणवै कोड़ि पचासलाख पांच ९५५००००५ पद पूर्वगतविषैं हैं। चौदह पूर्वनिके इतने पद हैं। बहुरि रनधजधरानन कहिये दोय कोडि नवलाख निवासी हजार दोयसै २०९८९२०० पद जलगत आदि चूलिका तिनविषैं एक एकके इतने इतने

पद जानने। जलगता पद २०९८९२०० स्थलगता २०९८९२०० मायागता २०९८९२०० आकाशगता २०९-८९२०० रूपगता २०९८९२०० ऐसैं पद जानने। बहुरि 'याजकनामेनोननं' कहिये एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार १८१०५००० पद चंद्रप्रज्ञप्ति आदि पांच प्रकार परिकर्मका जोड़ दीये हो हैं। बहुरि 'कानवधि वाचनाननं' कहिये दश कोडि गुणचासलाख छियालीस हजार '१०४९४६०००' पद पांचप्रकार चूलिकाका जोड़ दीयें हो हैं। इहां गकारतैं तीनका अंक नकारतैं छहका अंक मकारतैं पांचका अंक रकारतैं दोयका अंक नकारतैं बिंदी इत्यादि अक्षर संज्ञाकरि अंक कहे हैं। ककारतैं लेय गकार तीसरा अक्षर है तातैं तीनका अंक कह्या। बहुरि टकारतैं तकार छठा अक्षर है तातैं छहका अंक कह्या पकारतैं मकार पांचवां अक्षर है तातैं पांचका अंक कह्या यकारतैं रकार दूसरा अक्षर है तातैं दोयका अंक कह्या है नकारतैं बिंदी कही है। इत्यादि अक्षर संज्ञातैं अंक जानने॥ ३६३॥ ३६४॥

पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं।
णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं॥ ३६५॥
छस्सय पण्णासाइं चउसयपण्णास छसयपणुवीसा।
विहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे॥३६६॥

पंचाशदष्टचत्वारिंशत् पंचत्रिंशत् त्रिंशत् पंचाशत् पंचाशत् त्रयोदशशतं।
नवतिः द्वाचत्वारिंशत् पूर्वे पंचपंचाशत् त्रयोदशशतानि॥ ३६५॥
षट्छतपंचाशानि चतुःशतपंचाशत् षट्छतपंचविंशतिः।
द्वाभ्यां लक्षाभ्यां तु गुणितानि पंचमं रूपोनं षट्युतानि षष्ठे॥ ३६६॥

जी० प्र०——उत्पादादिचतुर्दशपूर्वेषु यथाक्रमं पदसंख्योच्यते--वस्तुनः-द्रव्यस्य उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकमुत्पादपूर्वं तच्च जीवादिद्रव्याणां नानानयविषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नवधर्मा भवंति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवविधं। उत्पन्नं उत्पद्यमानं उत्पत्स्यमानं। नष्टं नश्यत् नंक्ष्यत्। स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति नवप्रकारा भवंति। उत्पन्नादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं करोति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदानि एकाकोटिरित्यर्थः १०००००००। अग्रस्य द्वादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानं अग्रायणं। तत्प्रयोजनमग्रायणीयं, द्वितीयं पूर्वं। तच्च सप्तशतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन् वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणिताष्टाचत्वारिंशत्पदानि षण्णवतिलक्षाणि इत्यर्थः। ९६०००००। वीर्यस्य-जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य अनुप्रवादः-अनुवर्णनं अस्मिन्निति वीर्यानुप्रवादं नाम तृतीयं पूर्वं। तच्च आत्मवीर्यपरवीर्योभयवीर्यक्षेत्रवीर्यकालवीर्यभाववीर्यतपोवीर्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचत्रिंशत्पदानि सप्ततिलक्षाणीत्यर्थः ७००००००। अस्ति नास्तीत्यादिधर्माणां प्रवादः-प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं पूर्वं। तच्च जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य। स्यादस्ति नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य। स्यादवक्तव्यं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा वक्तुमशक्यत्वात्। स्यादस्ति चावक्तव्यं च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। इत्येकानेकनित्यानित्याद्यनंतधर्माणां विधिनिषेधावक्तव्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजानां त्रित्र्येकसंख्यानां मेलनं सप्तभंगी प्रश्नवशादेकस्मिन्नेव वस्तुनि अविरोधेन संभवंती नानानयमुख्यगौणभावेन प्ररूपयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदानि षष्टिर्लक्षाणि इत्यर्थः। ६००००००। ज्ञानानां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवादं पंचमं पूर्वं, तच्च मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पंच सम्यग्ज्ञानानि, कुमतिकुश्रुतविभंगाख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसंख्याविषयफलानि आश्रित्य तेषां प्रामाण्याप्रामाण्यविभागं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदानि किंतु पंचमरूऊणमिति कथनादेकरूपोना कोटिरित्यर्थः ९९९९९९९। सत्यस्य प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति सत्यप्रवादं षष्ठं पूर्वं, तच्च वाग्गुप्तिं वाक्संस्कारकारणानि वाक्प्रयोगं द्वादश भाषाः वक्तृभेदान् बहुविधं मृषाभिधानं दशविधं सत्यं च प्ररूपयति। तद्यथा-असत्यनिवृत्तिर्मौनं वा वाग्गुप्तिः। उरःकंठशिरोजिह्वामूलदंतनासिकाताल्वोष्ठाख्यानि अष्टौ स्थानानि। स्पृष्टतेषत्स्पृष्टताविवृततेषद्विवृततासंवृततारूपाः पंच प्रयत्नाश्च वाक्संस्कारकारणानि। शिष्टदुष्टरूपः प्रयोगः वाक्प्रयोगः तल्लक्षणशास्त्रं संस्कृतादिव्याकरणं वा। इदमनेन कृतमित्यनिष्टकथनरूपमभ्याख्यानं। परस्परविरोधकारणं कलहवचनं। परदोषसूचनं पैशून्यवचनं। धर्मार्थकाममोक्षासंबद्धवचनरूपः अबद्धप्रलापः। इंद्रियविषयेषु रत्युत्पादिका वाक् रतिवाक्। तेषु अरत्यादिका वाक् अरतिवाक्। परिग्रहार्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतुर्वाक् उपधिवाक्। व्यवहारवंचनाहेतुर्वाक् निकृतिवाक्। तपोज्ञानादिषु अविनयहेतुर्वाक् अप्रणतिवाक्। स्तेयहेतुर्वाग् मोषवाक्। सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवाक्। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवाक् एवं द्वादशभाषाः। द्वींद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंता जीवा व्यक्ताव्यक्तवक्तृत्वपर्यायाः वक्तारः। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितं बहुविधमसत्यवचनं मृषावाक्।

जनपदसत्यादिदशप्रकारसत्यं तत्प्रागुक्तलक्षणमिति। तत्र सत्यप्रवादे द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदानि षड्भिरधिकानि। छज्जुदा छट्टे इति वचनात् षडुत्तरकोटिरित्यर्थः। १००००००६। आत्मनः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति आत्मप्रवादं सप्तमं पूर्वं। तच्च आत्मनः 'जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो वेदी विराहू सयंभू य सरीरी तह माणवो सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो असंकुडो य खेत्तराहू अंतरप्पा तहेव य' इत्यादिस्वरूपं वर्णयति। तद्यथा-जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणांश्च धारयति। जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवः। व्यवहारनयेन शुभाशुभं कर्म निश्चयनयेन चित्पर्यायांश्च करोतीति कर्ता। व्यवहारनयेन सत्यमसत्यं च वक्तीति वक्ता निश्चयेनावक्ता। नयद्वयोक्तप्राणाः संति अस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूपं च भुंक्ते अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गलः निश्चयेनापुद्गलः। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्वं वेत्ति जानातीति वेदः। व्यवहारेण स्वोपात्तदेहं समुद्घाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः। यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद्भवे भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमति इति स्वयंभूः। व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेनाशरीरः। व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानवः, उपलक्षणान्नारकः तिर्यङ् देवश्च। निश्चयेन मनौ ज्ञाने भवः मानवः। व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता। निश्चयेनासक्ता। व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारे नानायोनिषु जायत इति जंतुः संसारी इत्यर्थः। निश्चयेनाजंतुः। व्यवहारेण मानः अहंकारः अस्यास्तीति मानी, निश्चयेनामानी। व्यवहारेण माया वंचना अस्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी। व्यवहारेण योगः कायवाङ्मनःकर्मास्यास्तीति योगी, निश्चयेनायोगी। व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटति संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुटः, समुद्घाते सर्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः। निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावादनुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः। नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः। व्यवहारेण अष्टकर्माभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वात्, निश्चयेन चैतन्याभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वाच्च अंतरात्मा। इति—च शब्दौ उक्तानुक्तसमुच्चयार्थौ। ततः कारणाद् व्यवहाराश्रयेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्यादिसंबंधेन मूर्तः निश्चयनयाश्रयेणामूर्तः इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयंते। तस्मिन्नात्मप्रवादे द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः २६००००००० । कर्मणः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति कर्मप्रवादमष्टमं पूर्वं तच्च मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबंधोदयोदीरणसत्त्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्मस्वरूपं समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितनवतिपदानि एककोट्यशीतिलक्षाणीत्यर्थः १८०००००० । प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यानं नवमं पूर्वं। तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसंहननबलाद्यनुसारेण परिमितकालं अपरिमितकालं वा प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृत्ति उपवासविधिं तद्भावनांगं पंचसमितित्रिगुप्त्यादिकं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदानि चतुरशीतिलक्षाणीत्यर्थः। ८४ ल.। विद्यानां अनुवादः अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वं, तच्च सप्तशतानि अंगुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्याः रोहिण्यादिपंचशतमहाविद्याः तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमंत्रतंत्रपूजाविधानानि सिद्धविद्यानां फलविशेषान् अष्टमहानिमित्तानि, (तानि कानि?) अंतरीक्षभौमांगस्वरस्वप्नलक्षणव्यंजनच्छिन्ननामानि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचपंचाश-

त्पदानि एककोटिदशलक्षाणीत्यर्थः। ११० ल.। कल्याणानां वादः प्ररूपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेकादशं पूर्वं, तच्च तीर्थकरचक्रधरवलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवादीनां गर्भावतरणकल्याणादिमहोत्सवान् तत्कारणतीर्थकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावनातपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चंद्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः २६ को०। प्राणानां आवादः प्ररूपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वं, तच्च कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्वेदं भूतिकर्मजांगुलिकप्रक्रमं इलापिंगलासुषुम्नादिबहुप्रकारप्राणापानविभागं दशप्राणानां उपकारकापकारकद्रव्याणि गत्याद्यनुसारेण वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदुत्तरषट्छतानि पदानि त्रयोदशकोट्य इत्यर्थः १३ को.। क्रियादिभिः-नृत्यादिभिः, विशालं विस्तीर्णं शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशं पूर्वं। तच्च संगीतशास्त्र छंदोलंकारादिद्वासप्ततिकलाः चतुःषष्टिस्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीतिगर्भाधानादिकाः अष्टोत्तरशतं सम्यग्दर्शनादिकाः पंचविंशतिं देववंदनादिकाः नित्यनैमित्तिकाः क्रियाश्च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदधिकचतुःशतपदानि नवकोट्य इत्यर्थः। ९ को.। त्रिलोकानां विंदवः अवयवाः सारं च वर्ण्यते अस्मिन्निति त्रिलोकविंदुसारं चतुर्दशं पूर्वं तच्च त्रिलोकस्वरूपं षट्त्रिंशत्परिकर्माणि अष्टौ व्यवहारान् चत्वारि वीजानि मोक्षस्वरूपं तद्गमनकारणक्रियाः मोक्षसुखस्वरूपं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचविंशत्यधिकषट्छतानि पदानि द्वादशकोटिपंचाशल्लक्षाणीत्यर्थः १२ को. ५० ल ॥ ३६५-३६६ ॥

म० प्र०—पूर्वे उत्पादपूर्वादौ चतुर्दशविधे प्रत्येकं यथाक्रम पदसंख्या इयमुच्यते तद्यथा—वस्तुनः उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकं उत्पादपूर्वं तत् जीवादिद्रव्याणां नानानयविषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नव धर्मा भवंति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवधा उत्पन्नं, उत्पद्यमानं, उत्पत्स्यमानं, नष्टं, नश्यत्, नक्ष्यत्, स्थितं, तिष्ठत्, स्थास्यदिति नवानां तद्धर्माणामुत्पन्नत्वादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं करोति। तत्र द्वाभ्यां लक्षाभ्यां गुणिता पंचाशत् एककोटिपदानि भवति १००००००० । अग्रस्य द्वादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं—ज्ञानं, अग्रायणं तत्प्रयोजनं अग्रायणीयं द्वितीयं पूर्वं। तत्सप्तशतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन्वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणिताष्टाचत्वारिंशत्पदानि षण्णवतिलक्षाणीत्यर्थः ९६००० ०। वीर्यस्य जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य, अनुप्रवादः—अनुवर्णनमस्मिन्निति वीर्यानुवादं तृतीयपूर्वं। तत् आत्मवीर्यं परवीर्यं उभयवीर्यं क्षेत्रवीर्यं कालवीर्यं भाववीर्यं तपोवीर्यमित्यादीनि समस्तगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचत्रिंशत्पदानि सप्ततिलक्षाणीत्यर्थः। ७०००००० । अस्ति नास्तीत्यादिधर्माणां प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्नित्यास्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं पूर्वं। तत् जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यादस्ति नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य, स्यादवक्तव्यं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा वक्तुमशक्यत्वात्, स्यादस्ति चावक्तव्यं च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य, स्यान्नास्तिचावक्तव्यं च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। एवमेकानेकनित्यानित्याद्यनंतधर्माणां विधिनिषेधावक्तव्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजानां त्रिंत्र्येकसंख्यानां मेलनं सप्तभंगीं प्रश्नवशादेकस्मिन्नेव वस्तुनि अविरोधेन संभवतीं नानानयमुख्यगौणभावेन प्ररूपयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदानि षष्टिलक्षाणीत्यर्थः ६०००००० । ज्ञा-

नानां प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति ज्ञानप्रवादं पंचमं पूर्वं। तत् मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पंचज्ञानानि, कुमतिकुश्रुतिविभंगाख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसंख्याविषयफलान्याश्रित्य तेषां प्रामाण्याप्रामाण्यविभागं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपचाशद्रूपोनपदानि रूपोनकोटिरित्यर्थः। ९९९९९९९। 'पुंचमरूऊणेत्यनेन पंचमे पूर्वे द्विलक्षगुणितपचाशल्लक्षकोटिपदसंख्याया रूपोनत्ववचनात्। सत्यस्य प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति सत्यप्रवादं षष्ठ पूर्वं। तद्वाग्गुप्तिं वाक्संस्कारकारणानि वाक्प्रयोगं द्वादशभाषाः वक्तृभेदान् बहुविध मृषाभिधानं दशविध सत्य च प्ररूपयति तद्यथा—असत्यनिवृत्तिः—मौन वा वाग्गुप्तिः। उरःकंठशिरोजिह्वामूलदंतनासिकाताल्वोष्ठाख्यान्यष्टौ स्थानानि। स्पृष्टतेषत्स्पृष्टताविवृततेषद्विवृततासंवृततारूपाः पचप्रयत्नाश्च वाक्संस्कारकारणानि शिष्टदुष्टरूपो वाक्प्रयोगः। तल्लक्षणशास्त्रं संस्कृतादिव्याकरणं। इदमनेन कृतमित्यनिष्टकथनमभ्याख्यानं। परस्परविघातहेतुः कलहवाक्। पृष्ठतो दोषसूचनं पैशून्यवाक्। धर्मार्थकाममोक्षासंबद्धवाक् अबद्धप्रलापः। इंद्रियविषयेषु रत्युत्पादिका वाक् रतिवाक्। तेष्वरत्युत्पादिका वाक् अरतिवाक्। परिग्रहार्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतुर्वाक् उपधिवाक्। व्यवहारे वंचनाहेतुर्वाक् निकृतिवाक्। तपोज्ञानादिकेष्वविनयहेतुर्वाक् अप्रणतिवाक्। स्तेयहेतुर्वाक् मोषवाक्। सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवाक्। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवाक् इति द्वादशभाषाः। द्वींद्रियादयः संज्ञिपंचेंद्रियपर्यंताः व्यक्तवक्तृत्वपर्यायाः वक्तारः। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितं बहुविध असत्यवचनं मृषाभिधान। जनपदसत्यादिदशप्रकारं सत्य प्राग्व्याख्यातं। तस्मिन् सत्यप्रवादे द्विलक्षगुणितपचाशत्पदानि षडुत्तरकोटिरित्यर्थः। १०००००००६। 'छज्जुदा छट्ठे' इत्यनेन षष्ठे पूर्वे द्विलक्षगुणितपचाशल्लक्षे कोटिप्रमितपदसंख्यया षट्सु तत्त्वकथनात्। आत्मनः प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति आत्मप्रवाद सप्तम पूर्वं। तत् आत्मनः—

"जीवो कत्ता य वेत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो वेदो विह्णू सयंभू य सरीरी तह माणवो-सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो असंकुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य"

इत्यादिस्वरूपं वर्णयति। तद्यथा—जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणान् धारयति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवः। व्यवहारनयेन शुभाशुभं कर्म निश्चयनयेन चित्पर्यायान् करोतीति कर्ता। व्यवहारेण सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता निश्चयेन अवक्ता। नयद्वयोक्तप्राणाः सत्यस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूपं भुंक्ते—अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति—गालयति चेति पुद्गलः निश्चयेनापुद्गलः। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्वं वेत्ति—जानाति, इति वेदः। व्यवहारेण स्वोपात्तदेह समुद्घाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन वेवेष्टीति—व्याप्नोतीति, विष्णुः। यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद्भवे भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमतीति स्वयंभू। व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेन अशरीरः। व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानवः उपलक्षणात् नारकः तिर्यङ् देवश्चेति। निश्चयेन मनौ-ज्ञाने भवः मानवः। व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता निश्चयेनासक्ता। व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारे नानायोनिषु जायत इति जंतुः संसारीत्यर्थः। निश्चयेन अजंतुः। व्यवहारेण मानः—अहंकारः, अस्यास्तीति मानी निश्चयेनामानी। व्यवहारेण माया-वचना अस्यास्तीति मायी, निश्चयेनामायी। व्यवहारेण योगः-कायवाङ्मनस्कर्म, अस्यास्तीति योगी, निश्चयेन अयोगी। व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदालब्धपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटति-संकुचितप्रदेशो भवति इति संकुटः। समुद्घाते सर्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः। निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावाद-

नुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः । नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः । व्यवहारेण अष्टकर्माभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वात् निश्चयेन चैतन्याभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वाच्च अंतरात्मा, अत्र चशब्दाः उक्तानुक्तसमुच्चयार्थाः, तेन व्यवहारेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्यानादिसंबंधान्मूर्त. निश्चयेनामूर्त इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयंते तस्मिन्नात्मप्रवादे द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतानि पदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः । २६०००००० । कर्मणः प्रवादः प्ररूपण, अस्मिन्निति कर्मप्रवादमष्टम पूर्वं । तत् मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं वहुविकल्पवधोदयोदीरणसत्त्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्मस्वरूपं समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितनवतिपदानि एककोट्यशीतिलक्षाणीत्यर्थः । १८०००००० । प्रत्याख्यायते—निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यान नवम पूर्वं तत् नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसहननवलाद्यनुसारेण परिमितकालं अपरिमितकालं वा प्रत्याख्यान सावद्यवस्तुनिवृत्तिं, उपवासविधिं तद्भावनागं पंचसमितित्रिगुप्त्यादिकं च वर्णयति, तत्र द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदानि चतुरशीतिलक्षाणीत्यर्थः ८४००००० । विद्यानां अनुवादः—अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वं । तत्सप्तशतान्यंगुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्याः पचशतानि रोहिण्यादिमहाविद्याः । तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमंत्रतंत्रपूजाविधानानि सिद्धाना तासा फलविशेषान् अष्टौ महानिमित्तानि अंतरिक्ष—भौम—अंग—स्वर—स्वप्न—लक्षण—व्यजन—छिन्न—नामानि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचपंचाशत्पदानि एककोटिदशलक्षाणीत्यर्थः । ११०००००० । कल्याणाना वादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति कल्याणवादं—एकादशं पूर्वं । तत् तीर्थंकरचक्रधरवलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवाना गर्भावतरणादीनि कल्याणानि-महोत्सवान् तत्कारणतीर्थंकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावनातपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चंद्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतानि पदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः । २६०००००० । प्राणाना आवादः—प्ररूपण, अस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वं तत्कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्वेद, भूतिकर्मजांगुलिकप्रक्रमं इलापिंगलसुषुम्नादिवहुप्रकारप्राणापानविभाग दशप्राणानामुपकारकापकारकद्रव्याणि च गत्याद्यनुसारेण वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदुत्तरषट्शतानि पदानि त्रयोदशकोट्य इत्यर्थः १३००००००० । क्रियाभिः—नृत्यादिभिः, विशाल—विस्तीर्णं शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदश पूर्वं तत् संगीतशास्त्रछंदोऽलंकारादिद्वासप्ततिं कलाः, चतुःषष्टिं स्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीतिं, गर्भाधानादिकाः अष्टोत्तरशत, सम्यग्दर्शनादिकाः पंचविंशति देववंदनादिकाः नित्यनैमित्तिकक्रियाश्च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदधिकचतुःशतानि पदानि नवकोट्य इत्यर्थः ९०००००००। त्रिलोकाना विंदवः अवयवाः सारं च वर्ण्यंत अस्मिन्निति त्रिलोकविंदुसार चतुर्दश पूर्वं । तत् त्रिलोकस्वरूपं, षट्त्रिंशत्परिकर्माणि, अष्टौ व्यवहारान्, चत्वारि बीजानि, मोक्षस्वरूपं, तद्गमनकारणक्रियाः, मोक्षसुखं च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचविंशत्यधिकषट्शतानि पदानि द्वादश कोट्यः पचाशल्लक्षाणि चेत्यर्थः १२५०००००० ॥ ३६५—३६६ ॥

स० च०—उत्पाद आदि चौदह पूर्वनिविषैं पदनिकी संख्या कहिये हैं तहां वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्म तिसका पूरक सो उत्पादनामा प्रथम पूर्व है इसविषैं जीवादि वस्तुनिका नानाप्रकार नयविवक्षाकरि क्रमवर्ती युगपत् अनेक धर्मकरि भये जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ते तीनों तीन काल अपेक्षा नव धर्म भये सो उन

धर्मरूप परिणया वस्तु सो भी नव प्रकार हो है। उपज्या, उपजै है, उपजैगा। नष्ट भया, नष्ट हो है नष्ट होयगा। स्थिर भया, स्थिर है, स्थिर होयगा। ऐसैं नवप्रकार द्रव्य भया इन एक एकका उत्पन्नपना आदि नव नव धर्म जानने। ऐसैं इक्यासी भेद लीयें द्रव्यका वर्णन है। याके दोय लाखतैं पंचासकौं गुणिये ऐसा एक कोडि १०००००००० पद जानने। बहुरि अग्र कहिये द्वादशांगविषैं प्रधानभूत जो वस्तु ताका अयन कहिये ज्ञान सो ही है प्रयोजन जाका ऐसा अग्रायणीय नामा दूसरा पूर्व है। इसविषैं सातसै सुनय अर दुर्नय तिनिका अर सप्त तत्त्व नव पदार्थ षट्द्रव्य इत्यादिका वर्णन है। याके दोय लाखतैं अड़तालीसकौं गुणिये ऐसैं छिनवै लाख ९६००००० पद हैं। बहुरि वीर्य कहिये जीवादिक वस्तुकी शक्ति–समर्थता ताका है अनुवाद कहिये वर्णन जिसविषैं ऐसा वीर्यानुवाद नामा तीसरा पूर्व है। इसविषैं आत्माका वीर्य परका वीर्य दोऊका वीर्य क्षेत्रवीर्य कालवीर्य भाववीर्य तपोवीर्य इत्यादिक द्रव्यगुण पर्यायनिका शक्तिरूप वीर्य तिसका व्याख्यान है। याकौं दोयलाखतैं पैंतीसकौं गुणिये ऐसैं सत्तरिलाख ७०००००० पद हैं। बहुरि अस्ति नास्ति आदि जे धर्म तिनिका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषै ऐसा अस्तिनास्ति प्रवाद नामा चौथा पूर्व है। इसविषैं जीवादि वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि संयुक्त हैं तातैं स्यात् अस्ति है। बहुरि परके द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं यह नाही है तातैं स्यान्नास्ति है। बहुरि अनुक्रमतैं स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा स्यात् अस्ति नास्ति है। बहुरि युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा द्रव्य कहनेमें न आवे तातैं स्यात् अवक्तव्य है। बहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि द्रव्य आस्तिरूप है बहुरि युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कहनेमें न आवे तातैं स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। बहुरि पर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि द्रव्य नास्तिरूप है बहुरि युगपत् स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि द्रव्य कहनेमें न आवे तातैं स्यात्नास्तिअवक्तव्य है। बहुरि अनुक्रमतैं स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा द्रव्य अस्ति नास्ति रूप है अर युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अवक्तव्य है तातैं स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य है ऐसैं जिस प्रकार अस्ति नास्ति अपेक्षा सप्तभेद कहे तैसैं एक अनेक धर्म अपेक्षा सप्त भंग हो हैं। अ-

भेद अपेक्षा स्यात् एक है। भेद अपेक्षा स्यात् अनेक है। क्रमतैं भेद अभेद अपेक्षा स्यात् एक अनेक है। युगपत् भेद अभेद अपेक्षा स्यात् अवक्तव्य है। अभेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् एक अवक्तव्य है भेद अपेक्षा वा युगपत् भेद अभेद अपेक्षा स्यात् अनेक अवक्तव्य है। क्रमतैं अभेद भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् एक अनेक अवक्तव्य है। ऐसैं ही नित्य अनित्यनै आदि दे अनंत धर्मनिके सप्त भंग हैं। तहां प्रत्येक भंग तीन अस्ति १ नास्ति २ अवक्तव्य १ अर द्विसंयोगी भंग तीन अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अर त्रिसंयोगी एक अस्ति नास्ति अवक्तव्य१ इनि सप्तभंगनिका समुदाय सो सप्तभंगी सो प्रश्नके वशतैं एक ही वस्तु विषैं अविरोधपनै संभवती नाना प्रकार नयनिकी मुख्यता गौणता करि प्ररूपण कीजिए है। इहां सर्वथा नियमरूप एकांतका अभाव लीए कथंचित् ऐसा है अर्थ जाका सो स्यात् शब्द जानना। इस अंगके दोय लाखतैं तीसकौं गुणिए सो साठि लाख ६०००००० पद हैं। बहुरि ज्ञाननिका है प्रवाद कहिए प्ररूपण जिसविषैं ऐसा ज्ञानप्रवाद नामां पांचवां पूर्व है। इसविषैं मति श्रुति अवधि मनःपर्यय केवल ए पांच सम्यग्ज्ञान अर कुमति कुश्रुति विभंग ए तीन कुज्ञान इनिका स्वरूप संख्या वा विषय वा फल इत्यादि अपेक्षा प्रमाण अप्रमाणता रूप भेद वर्णन कीजिए है याके दोय लाखतैं पचासकौं गुणैं एक कोटि होइ तिनमेंस्यों एक घटाइए ऐसैं एक घाटि कोडि ९९९९९९९ पद हैं। गाथाविषै 'पंचम रूऊण' ऐसा कह्या है तातैं पांचवां अंगमैं एक घटाया अन्य संख्या गाथा अनुसारि कहिए ही है। बहुरि सत्यका है प्रवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा सत्यप्रवाद नामा छठा पूर्व है। इसविषैं वचन गुप्ति बहुरि वचन संस्कारके कारण बहुरि वचनके प्रयोग बहुरि बारह प्रकार भाषा बहुरि बोलणेवाले जीवोंके भेद बहुरि बहुतप्रकार मृषा वचन इत्यादि वर्णन है। तहां असत्य न बोलना वा मौन धरना सो सत्य वचनगुप्ति कहिए। बहुरि वचन संस्कारके कारण दोय एक तो स्थान, एक प्रयत्न तहां जिनि स्थानकनितैं अक्षर बोलें जांहि ते स्थान आठ हैं। हृदय १ कंठ २ मस्तक ३ जिह्वाका मूल ४ दंत ५ नासिका ६ होठ ७ तालवा ८ जैसैं अकार कवर्ग हकार विसर्ग इनिका कंठ स्थान है ऐसैं अक्षरनिके स्थान जानने

बहुरि जिस प्रकार अक्षर कहे जांहि ते प्रयत्न पांच हैं। स्पृष्टता २ ईषत् स्पृष्टता २ विवृतता ३ ईषद्विवृतता ४ संवृतता ५ । तहां अंगका अंगतैं स्पर्श भए अक्षर बोलिए सो स्पृष्टता । किछू थोरा स्पर्श भए बोलिए सो ईषतस्पृष्टता अंगकौं उघाडि बोलिए सो विवृतता किछू थोरा उघाड़ि बोलिए सो ईषद्विवृतता, अंगतैं अंगकौं ढांकि बोलिए सो संवृतता जैसैं पकारादिक होठसे होठका स्पर्श भएंही उच्चारण होंइ ऐसैं प्रयत्न जानने। बहुरि वचन प्रयोग दोय प्रकार शिष्टरूप भला वचन, दुष्टरूप बुरा वचन । बहुरि भाषा बारह प्रकार, तहां इसने ऐसा कीया है ऐसा अनिष्ट वचन कहना सो अभ्याख्यान कहिए १ बहुरि जातैं परस्पर विरोध होइ सो कलह वचन २ बहुरि परका दोष प्रकट करना सो पैशून्य वचन ३ बहुरि धर्म अर्थ काम मोक्षका संबंधरहित वचन सो असंबद्ध प्रलाप रूप वचन ४ बहुरि इंद्रिय विषयनिविषैं रतिका उपजावन हारा वचन सो रतिवचन ५ बहुरि विषयनिविषै अरतिका उपजावन हारा वचन सो अरतिवचन ६ बहुरि तहां परिग्रहका उपजाने राखनेकी आसक्तताका कारण वचन सो उपधिवचन ७ बहुरि व्यवहारविषै ठिगनेरूप वचन सो निकृति वचन ८ बहुरि तप ज्ञानादिक विषै अविनयका कारण वचन सो अप्रणतिवचन ९ बहुरि चोरीका कारणरूप वचन सो मोषवचन १० बहुरि भले मार्गका उपदेशरूप वचन सो सम्यग्दर्शन वचन ११ बहुरि मिथ्या मार्गका उपदेशरूप वचन सो मिथ्यादर्शन वचन १२ ऐसैं बारह भाषा हैं। बहुरि बेइंद्रिय आदि सैनी पंचेद्रिय पर्यंत वचन बोलने बाले वक्तानिके भेद हैं बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावादिककरि मृषा जो असत्य वचन सो बहुत प्रकार है। बहुरि जनपदादि दश प्रकार सत्य वचन पूर्वै योग मार्गणा विषै कहि आए हैं ऐसा कथन इस पूर्वविषैं है। याके दोय लाखतैं पचासकौं गुणिए अर 'छज्जुदा छट्ठ' इस वचनकरि छह मिलाइए ऐसे एक कोटि छह१००००००६ पद हैं। बहुरि आत्माका प्रवाद कहिए प्ररूपण है इसविषैं ऐसा आत्मप्रवाद नामा सातमा पूर्व है इसविषै—जीवो कत्ता य वेत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो वेदी विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो असंकुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य । इत्यादि आत्मस्वरूपका कथन है इसका अर्थ लिखिए है—

जीवति कहिए जीवै है व्यवहार करि दश प्राणनिकौं निश्चयकरि ज्ञान दर्शन सम्यक्त्वरूप चैतन्य प्राणनिकौं धारै है अर पूर्वैं जीया आगैं जीवेगा तातैं आत्माको जीव कहिए। बहुरि व्यवहार करि शुभाशुभ कर्मकौं अर निश्चयकरि चैतन्य प्राणनिकौं करै है तातैं कर्ता कहिए। बहुरि व्यवहारकरि सत्य असत्य वचन बोलै है तातैं वक्ता है निश्चय करि वक्ता नहीं है। बहुरि दोऊ नयनिकरि जे प्राण कहे ते याकैं पाइए है तातैं प्राणी कहिए। बहुरि व्यवहार करि शुभ अशुभ कर्मके फलकौं अर निश्चय करि निज स्वरूपकौं भोगवै है तातैं भोक्ता कहिए। बहुरि व्यवहार करि कर्म नोकर्मरूप पुद्गलनिकौं पूरै है अर गालै है तातैं पुद्गल कहिए निश्चय करि आत्मा पुद्गल है नाहीं। बहुरि दोऊ नयनिकरि लोकालोकसंबंधी त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयनिकौं 'वेत्ति' कहिए जानै है तातैं वेदक कहिए। बहुरि व्यवहारकरि अपने देहकौं वा केवल समुद्घातकरि सर्व लोककौं अर निश्चयकरि ज्ञानतैं सर्व लोकालोककौं वेवेष्टि कहिए व्यापै है तातैं विष्णु कहिए। बहुरि यद्यपि व्यवहार करि कर्मके वशतैं संसारविषैं परिणवै है तथापि निश्चयकरि स्वयं आपही आपविषै ज्ञान दर्शन स्वरूप ही करि भवति कहिए परिणवै है तातैं स्वयंभू कहिए। बहुरि व्यवहारकरि औदारिक आदि का शरीर याकै है तातैं शरीरी कहिये, निश्चय करि शरीरी नाहीं है। वहुरि व्यवहारकरि मनुष्यादि पर्यायरूप परिणवै है तातैं मानव कहिए। उपलक्षणतैं नारकी वा तिर्यंच वा देव कहिए। निश्चयकरि मनु कहिए ज्ञान तीहि विषैं भवः कहिए सत्तारूप है तातैं मानव कहिए। बहुरि व्यवहारकरि कुंटुंब मित्रादि परिग्रहविषै सजति कहिये आसक्त होइ प्रवर्तै है तातैं सक्ता कहिए निश्चयकरि सक्ता नाहीं है। वहुरि व्यवहार करि संसारविषै नाना योनिविषै जायते कहिए उपजै है तातैं जंतु कहिये निश्चयकरि जंतु नाहीं है। वहुरि व्यवहारकरि मान कहिए अहंकार सो याकै है तातैं मानी कहिए निश्चयकरि मानी नाहीं। वहुरि व्यवहारकरि माया जो कपटाई सो याकै हैं तातैं मायावी कहिए, निश्चयकरि मायावी नाहीं। वहुरि व्यवहारकरि मन वचन काय क्रियारूप योग याकै है तातैं योगी कहिए निश्चयकरि योगी नाहीं है। बहुरि व्यवहारकरि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना करि प्रदेशनिकौं संकोचै है तातैं संकुट है। बहुरि

केवलिसमुद्धातकरि सर्व लोकविषैं व्यापै है तातैं असंकुट है । निश्चयकरि प्रदेशनिका संकोच विस्ताररहित किंचित् ऊन चरमशरीर प्रमाण है तातैं संकुट असंकुट नाहीं है। बहुरि दोऊ नयकरि क्षेत्र जो लोकालोक ताहि जानाति कहिए जानै है तातैं क्षेत्रज्ञ कहिए बहुरि व्यवहार करि अष्ट कर्मनिके अभ्यंतर प्रवर्तै है अर निश्चयकरि चैतन्य स्वभावके अभ्यंतर प्रवर्तै है तातैं अंतरात्मा कहिए चकारतैं व्यवहारकरि कर्म नोकर्म रूप मूर्तीक द्रव्यके संवधतैं मूर्तीक है, निश्चयकरि अमूर्तीक है इत्यादिक आत्माके स्वभाव जानने । इनिका व्याख्यान इस पूर्व विषैं है। याके दोयलाखतैं तेरहसैकौं गुणिए ऐसे छब्बीस कोडि २६०००००००० पद हैं। बहुरि कर्मका है प्रवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा कर्मप्रवाद नामा आठवां पूर्व है । बहुरि इसविषैं मूल प्रकृति उत्तर प्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतिरूप भेद लीए बंध उदय उदीरणा सत्ता रूप अवस्थाकौं धरै ज्ञानावरणादिक कर्म तिनिके स्वरूपकौं वा समवधान ईर्यापथ तपस्या आधाकर्म इत्यादिक क्रियारूप कर्मनिकौं प्ररूपिए है । याके दोय लाखतैं निवैकौं गुणिए ऐसे एक कोडि अस्सीलाख १८०००००० पद हैं। बहुरि प्रत्याख्यायते कहिए निषेधिए है पाप जाकरि ऐसा प्रत्याख्यान नामा नवमा पूर्व है इसविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा जीवनिका संहनन वा बल इत्यादिकके अनुसारकरि काल मर्यादा लीए वा यावज्जीव प्रत्याख्यान कहिए सकल पापसहित वस्तुका त्याग उपवासका विधि ताकी भावना पांच समिति तीन गुप्ति इत्यादि वर्णन कीजिए है । याके दोय लाखतैं वियालीसकौं गुणिए ऐसे चौरासी लाख ८४००००० पद हैं। बहुरि विद्यानिका है अनुवाद कहिए अनुक्रमतैं वर्णन इस विषैं ऐसा विद्यानुवाद नामा दशवां पूर्व है इसविषै सातसै अंगुष्ठ प्रसेन आदि अल्पविद्या अर पांचसै रोहिणी आदि महाविद्या तिनका स्वरूप समर्थता साधनभूत मंत्र यंत्र पूजा विधान, सिद्धभये पीछे उन विद्यानिका फल बहुरि अंतरिक्ष १ भौम २ अंग ३ स्वर ४ स्वप्न ५ लक्षण ६ व्यंजन ७ छिन्न ८ ए आठ महानिमित्त इत्यादि प्ररूपिए सो याके दोय लाखतैं पचावनकौं गुणिए ऐसे एक कोड दशलाख ११०००००० पद हैं। बहुरि कल्याणनिका है वाद कहिए प्ररूपण जाविषैं ऐसा कल्याणवाद नामा ग्यारह्वां पूर्व है इस विषैं तीर्थंकर चक्रवर्ति

वलभद्र नारायण प्रतिनारायण इनके गर्भ आदिक कल्याण कहिए महा उच्छव वहुरि तिनके कारणभूत षोडश भावना तपश्चरण आदिक क्रिया वहुरि चन्द्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्र इनिका गमनविशेष ग्रहण शकुन फल इत्यादि विशेष वर्णन कीजिए हैं। याके दोय लाखतैं तेरहसैंकौं गुणिए ऐसे छव्वीस कोडि २६०००००००पद हैं। वहुरि प्राणनिका है आवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा प्राणावाद नामा वारह्वां पूर्व है इसविषैं चिकित्सा आदि आठ प्रकार वैद्यक अर भूतादि व्याधि दूर करनेकौं कारण मंत्रादिक वा विष दूरि करण हारा जो जांगुलिक ताका कर्म वा इला १ पिंगला २ सुषमणा ३ इत्यादि स्वरोदय रूप बहुत प्रकार कारणरूप सासोस्वासका भेद बहुरि दश प्राणनिकौं उपकारी वा अनुपकारी वस्तु गत्यादिकके अनुसारि वर्णन कीजिए है सो जाके दोय लाखतैं छहसै पचासकौं गुणिए ऐसे तेरह कोडि १३००००००० पद हैं। वहुरि क्रियाकारि विशाल कहिए विस्तीर्ण शोभायमान ऐसा क्रियाविशाल नामा तेरह्वां पूर्व है । इसविषैं संगीत शास्त्र छंद अलंकारादि शास्त्र वहत्तरि कला चौसठि स्त्रीका गुणशिल्प आदि चातुर्यता गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया देववंदना आदि पचीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिक प्ररूपिए हैं याके दोय लाखतैं च्यारिसै पचासकौं गुणिए ऐसे नव कोडि ९००००००० पद हैं। वहुरि त्रिलोकनिका विंदु कहिए अवयव अर सार सो प्ररूपिए है याविषैं ऐसा त्रिलोकविंदुसार नामा चौदह्वां पूर्व है । इसविषैं तीन लोकका स्वरूप अर छव्वीस परिकर्म आठ व्यवहार च्यारि वीज इत्यादि गणित अर मोक्षका स्वरूप मोक्षका कारणभूत क्रिया मोक्षका सुख इत्यादि वर्णन कीजिए है याके दोय लाखतैं छहसै पचीसकौं गुणिए ऐसे वारह कोडि पचासलाख १२५०००००० पद हैं ऐसे चौदह पूर्वनिके पदनिकी सख्या हा है इहां दोय लाखका गुणकारका विधानकरि गाथाविषैं संख्या कही थी तातैं टीकाविषैं भी तैसै ही कही है ॥ ३६६ ॥

सामाइय चउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं ।
वेणइयं किदियम्मं दसवेयालं च उत्तरज्झयणं ॥ ३६७ ॥
कप्पववहारकप्पाकप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं ।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥ ३६८ ॥

सामायिकं चतुर्विंशस्तवं ततो वंदना प्रतिक्रमणं ।
वैनयिकं कृतिकर्म दशवैकालिकं च उत्तराध्ययनं ॥ ३६७ ॥
कल्प्यव्यवहार—कल्प्याकल्प्य—महाकल्प्यं च पुंडरीकं ।
महापुंडरीकं निषिद्धिका इति चतुर्दशांगबाह्यं ॥ ३६८ ॥

जी०प्र०—सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवः ततो वंदना प्रतिक्रमणं वैनयिकं कृतिकर्म दशवैकालिकं उत्तराध्ययनं कल्प्यव्यवहारं कल्प्याकल्प्यं महाकल्प्यं पुंडरीकं महापुंडरीकं निषिद्धिका च इत्यंगबाह्यश्रुतं चतुर्दशविधं भवति, तत्र सम एकत्वेन आत्मनि आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेति आत्मविषयोपयोग इत्यर्थः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवात् । अथवा सं समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा सामायिकमित्यर्थः । तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्षड्विधं । तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकमित्यभिधानं वा नामसामायिकं । मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारासु काष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्तिः । इदं सामायिकमिति स्थाप्यमानं यत् किंचिद्वस्तु वा स्थापनासामायिकं । इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञापकः तच्छरीरादिर्वा द्रव्यसामायिकं । ग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु रागद्वेषनिवृत्तिः क्षेत्रसामायिकं । वसंतादिऋतुषु शुक्लकृष्णपक्षयोर्दिनवारनक्षत्रादिषु च इष्टानिष्टेषु कालविशेषेषु रागद्वेषनिवृत्तिः कालसामायिकं । भावस्य जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रोपयोगयुक्तज्ञापकः तत्पर्यायपरिणतसामायिकं वा भावसामायिकं । तत्तत्कालसंबंधिनां चतुर्विंशतितीर्थकराणां नामस्थापनाद्रव्यभावानाश्रित्य पंचमहाकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्य-

परमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्मोपदेशनादितीर्थंकरमहिमस्तुतिः चतुर्विंशतिस्तवः तस्य प्रतिपादकं शास्त्रं वा चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते। तस्मात्परं एकतीर्थंकरालंबना चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिः वंदना तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा वंदना इत्युच्यते। प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमणं तच्च दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकैर्यापथिकौत्तमार्थिकभेदात्सप्तविधं, भरतादिक्षेत्रं दुःषमादिकालं षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदांश्च आश्रित्य तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रतिक्रमणं। विनयः प्रयोजनमस्येति वैनयिकं तच्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारविषयं पंचविधविनयविधानं कथयति। कृतेः क्रियायाः कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादिनवदेवतावंदनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतुःशिरोद्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति। विशिष्टाः कालाविकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि दश वैकालिकानि वर्ण्यंतेऽस्मिन्निति दशवैकालिकं तच्च मुनिजनानां आचरणगोचरविधिं पिंडशुद्धिलक्षणं च वर्णयति। उत्तराणि अधीयंते पठ्यंते अस्मिन्निति उत्तराध्ययनं तच्च चतुर्विधोपसर्गाणां द्वाविंशतिपरीषहाणां च सहनविधानं तत्फलं एवं प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति। कल्प्य योग्यं व्यवह्रियते अनुष्ठीयतेऽस्मिन्ननेनेति वा कल्प्यव्यवहारः, स च साधूनां योग्यानुष्ठानविधानं अयोग्यसेवायां प्रायश्चित्तं च वर्णयति। कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्यं, तद्वर्ण्यते अस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यं। तच्च द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य मुनीनामिदं कल्प्यं योग्यं इदमकल्प्यं अयोग्यमिति विभागं वर्णयति। महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं शास्त्रं तच्च जिनकल्पसाधूनां उत्कृष्टसंहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्तिनां योग्यं त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पानां दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेषं च वर्णयति। पुंडरीकं नाम शास्त्रं भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिविमानेषु उत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्जरासम्यक्त्वसंयमादिविधानं तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेषं च वर्णयति। महच्च तत्पुंडरीकं तत्महापुंडरीकं शास्त्रं तच्च महर्धिकेषु इंद्रप्रतींद्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरणं वर्णयति। निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञायां कप्रत्यये निषिद्धिका प्रायश्चित्तशास्त्रमित्यर्थः, तच्च प्रमाददोषविशुद्ध्यर्थं बहुप्रकारं प्रायश्चित्तं वर्णयति निसीतिका इति क्वचित्पाठो दृश्यते। एवं चतुर्दशविधं अंगबाह्यश्रुतं परिभावनीयं ॥ ३६७-३६८ ॥ अथ शास्त्रकारः श्रुतज्ञानमाहात्म्यं वर्णयति—

मं० प्र०—अंगबाह्यस्य प्रकीर्णकनाम्नो द्रव्यश्रुतस्य सामायिकादयश्चतुर्दशभेदाः व्याख्यायंते तद्यथा—स—एकत्वेन आत्मनि आयः—आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेत्यात्मविषयोपयोग इत्यर्थः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवात्। अथवा समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः—उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः, स प्रयोजनमस्येति सामायिकं—नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि सामायिकं। तत् नाम—स्थापना—द्रव्य—क्षेत्र—काल—भावभेदात् षड्विधं सामायिकं प्रतिपादयति। तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकमित्यभिधानं वा नामसामायिकं। मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारस्थापनासु काष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्तिः इदं सामायिकमिति स्थाप्यमानं यत्किंचिद्वस्तु वा स्थापनासामायिकं। इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकः तच्छरीरादि वा द्रव्यसामायिकं। ग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु

रागद्वेषनिवृत्तिः क्षेत्रसामायिकं। वसंतादिषु ऋतुषु शुक्लकृष्णयोः पक्षयोः दिनवारनक्षत्रादिषु च इष्टानिष्टेषु कालविशेषेषु रागद्वेषनिवृत्ति. कालसामायिकं। भावस्य–जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रोपयुक्तज्ञायकः तत्पर्यायपरिणत सामायिक वा भावसामायिकं। तत्तत्कालसंबंधिना चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणा नामस्थापनाद्रव्यभावानाश्रित्य पंचमहाकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यपरमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्मोपदेशनादितीर्थकरत्वमहिमस्तुतिश्चतुर्विंशतिस्तवः तत्प्रतिपादक शास्त्रमपि चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते। ततः–तस्मात्पर, एकतीर्थकरालबना चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिः वदना तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि वदनेत्युच्यते। प्रतिक्रम्यते–प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियतेऽनेनेति प्रतिक्रमणं तच्च दैवसिक–रात्रिक–पाक्षिक–चातुर्मासिक-सावत्सरिक–ऐर्यापथिकौत्तमार्थभेदात् सप्तविधं भरतादिक्षेत्रं दुष्षमादिकाल षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदाश्चाश्रित्य। तत्प्रतिपादक शास्त्रमपि प्रतिक्रमण। विनयः प्रयोजनमस्येति वैनयिकं तत् ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारविषयं पचविधं विनयविधानं प्ररूपयति। कृतेः–क्रियायाः कर्म–विधानं अस्मिन्वर्ण्यते इति कृतिकर्म तत् अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादीना नवदेवताना वदनानिमित्तं आत्माधीनता–प्रादक्षिण्यत्रिवार–त्र्यवनति-चतुःशिरोद्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधान वर्णयति। विशिष्टाः काला. विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि दशवैकालिकानि वर्ण्यंते अस्मिन्निति दशवैकालिक तत्साधूनामाचारगोचरविधिं पिंडशुद्धिलक्षणं च वर्णयति। उत्तराण्यधीयंते–पठ्यंते अस्मिन्नित्युत्तराध्ययन तत् चतुर्विधोपसर्गाणा द्वाविंशतिपरीषहाणा च सहनविधानं तत्फल एव प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति। कल्प्य–योग्य, व्यवह्रियते–अनुष्ठीयते अस्मिन्ननेनेति वा कल्प्यव्यवहार' शास्त्रं तत् ऋषीणा योग्यानुष्ठानविधानं अयोग्यसेवाया प्रायश्चित्तं च वर्णयति। कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्य वर्ण्यते अस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यं तत् द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य साधूनामिदं कल्प्यं–योग्य, इदमकल्प्यं–अयोग्यमिति विभागं वर्णयति। महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं तत् महासाधूना जिनकल्पानां, उत्कृष्टसहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्तिना योग्यं त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पाना शिक्षादीक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेष च वर्णयति। पुंडरीकं नामशास्त्रं भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिविमानेषु उत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्जरासम्यक्त्वसंयमादिविधानं तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेष च वर्णयति, महच्च तत् पुंडरीक च तत् महापुंडरीक तत् महर्धिकेषु इंद्रप्रतींद्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरण वर्णयति। निषेधनं–प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञाया कप्रत्यये निषिद्धिका प्रायश्चित्तशास्त्रं तत् प्रमाददोषविशुद्ध्यर्थं बहुप्रकार प्रायश्चित्तं वर्णयति। निसीतिकेति नामांतर केषाचित्पाठे दृश्यते। इति एवं अंगबाह्यश्रुतचतुर्दशविधं ज्ञातव्यं। चशब्दाः समुच्चयार्थाः। अथ शास्त्रकारः श्रुतज्ञानस्य माहात्म्यं प्ररूपयति॥३६७।३६८॥

स० चं०—बहुरि प्रकीर्णक नामा अंगबाह्य द्रव्यश्रुत सो चौदह प्रकार है। सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ वैनयिक ५ कृतिकर्म ६ दशवैकालिक ७ उत्तराध्ययन ८ कल्प्यव्यवहार ९ कल्प्याकल्प्य १० महाकल्प्य ११ पुंडरीक १२ महापुंडरीक १३ निषिद्धिका १४। तहां सं कहिए एकत्वपनैकरि आय कहिए आगमन पर द्रव्यनितैं निवृत्ति होइ उपयोगकी आत्माविषैं प्रवृत्ति 'यहु मैं ज्ञाता द्रष्टा हौं' ऐसैं आत्माविषैं उपयोग सो सा-

मायिक कहिए जातैं एकही आत्मा सो जाननें योग्य है तातैं ज्ञेय हैं अर जानने हारा है तातैं ज्ञायक है तातैं आपकौं ज्ञाता द्रष्टा अनुभवै है अथवा सम कहिए राग द्वेषरहित मध्यस्थ आत्मा तिस विषै आयः कहिए उपयोगकी प्रवृत्ति सो समाय कहिए, समाय है प्रयोजन जाका सो सामायिक कहिए। नित्य नैमित्तिक क्रिया विशेष तिस सामायिकका प्रतिपादक शास्त्र सो भी सामायिक कहिए सो नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेद करि सामायिक छह प्रकार है। तहां इष्ट अनिष्ट नामविषैं राग द्वेष न करना! अथवा किसी वस्तुका सामायिक ऐसा नाम धरना सो नाम सामायिक है। बहुरि मनोहर वा अमनोहर स्त्री पुरुषादिकका आकार लीए काठ लेप चित्रामादि रूप स्थापना तिन विषैं राग द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तुविषैं यहु सामायिक है ऐसा स्थापना करि स्थाप्यो हूवा वस्तु सो स्थापनासामायिक है। बहुरि इष्ट अनिष्ट चेतन अचेतन द्रव्यविषै राग द्वेष न करना अथवा जो सामायिक शास्त्रकौं जानै हैं अर वाका उपयोग सामायिकविषैं नाहीं सो जीव वा उस सामायिक शास्त्रके जाननेवालेका शरीरादिक सो द्रव्य सामायिक है। बहुरि ग्राम नगर वनादिक इष्ट अनिष्ट क्षेत्र तिन विषैं राग द्वेष न करना सो क्षेत्र सामायिक है। बहुरि वसंत आदि ऋतु अर शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष दिन वार नक्षत्र इत्यादि इष्ट अनिष्ट कालके विशेष तिनिविषैं राग द्वेष न करना सो काल सामायिक है। बहुरि भाव जो जीवादिक तत्त्वविषैं उपयोगरूप पर्याय ताके मिथ्यात्वकषायरूप संक्लेशपनाकी निवृत्ति अथवा सामायिक शास्त्रकौं जानै है अर उसही विषैं उपयोग जाका है सो जीव अथवा सामायिक पर्यायरूप परिणमन सो भावसामायिक है। ऐसें सामायिक नामा प्रकीर्णक कह्या है। बहुरि जिसकाल विषैं जिनका प्रवर्तन होइ तिसकालविषैं तिनही चौवीस तीर्थंकरनिका नाम स्थापना द्रव्य भावका आश्रय करि पंच कल्याणक चौंतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य परम औदारिक दिव्य शरीर समवसरणसभा धर्मोपदेश देना इत्यादि तीर्थंकरपने की महिमाका स्तवन सो चतुर्विंशति स्तव कहिए। ताका प्रतिपादक शास्त्र सो चतुर्विंशतिस्तव नामा प्रकीर्णक है। बहुरि एक तीर्थंकरका अवलंबनकरि प्रतिमा चैत्यालय इत्यादिककी स्तुति सो वंदना कहिए

याका प्रतिपादक शास्त्र सो वंदना प्रकीर्णक कहिए। बहुरि प्रतिक्रम्यते कहिए प्रमादकरि कीया है दैवसिक आदि दोष तिनिका निराकरण जाकरि कीजिए सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक कहिए। सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक सात प्रकार है–दैवसिक १ रात्रिक २ पाक्षिक ३ चातुर्मासिक ४ सांवत्सरिक ५ ऐर्यापथिक ६ उत्तमार्थ ७ तहां संध्यासमय दिनविषैं कीया दोष जाकरि निवारिए सो दैवसिक है। बहुरि प्रभातसमय रात्रिविषैं कीया दोष जाकरि निवारिए सो रात्रिक है। बहुरि पंद्रह्वे दिन पक्षविषैं कीया दोष जाकरि निवारिए सो पाक्षिक कहिए। बहुरि चौथे महीनै च्यारिमासविषैं कीए दोष जाकरि निवारिए सो चातुर्मासिक कहिए। बहुरि वर्षवें दिन एकवर्षविषै कीए दोष जाकरि निवारिए सो सांवत्सरिक कहिए। बहुरि गमन करतैं निपज्या दोष जाकरि निवारिए सो ऐर्यापथिक कहिए। बहुरि सर्वपर्याय संबंधी दोष जाकरि निवारिए सो उत्तमार्थ है ऐसैं सातप्रकार प्रतिक्रमण जानना। सो भरतादि क्षेत्र अर दुःषमादिकाल छह संहनन करि संयुक्त स्थिर वा अस्थिर पुरुषनिके भेद तिनकी अपेक्षा प्रतिक्रमणका प्रतिपादक शास्त्र सो प्रतिक्रमण नामा प्रकीर्णक कहिए। बहुरि विनय है प्रयोजन जाका सो वैनायिक नामा प्रकीर्णक कहिए। इसविषैं ज्ञान दर्शन चारित्र तप उपचार संबंधी पंच प्रकार विनयके विधानका प्ररूपण है। बहुरि कृति कहिये क्रिया ताका कर्म कहिए विधान इसविषैं प्ररूपिए है सो कृतिकर्म नामा प्रकीर्णक कहिए इसविषैं अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु आदि नव देवतानिकी वंदनाके निमित्त आप आधीन होना सो आत्माधीनता अर गिरद भ्रमणरूप तीन प्रदक्षिणा अर पृथ्वीतैं अंग लगाइ दोय नमस्कार अर शिर नवाइ च्यारि नमस्कार अर हाथ जोड़ि फेरनरूप बारह आवर्त इत्यादि नित्य नैमित्तिक क्रियाका विधान निरूपिए है। बहुरि विशेषरूप जे काल ते विकाल कहिए तिनिकौं होतैं जो होय सो वैकालिक सो दश वैकालिक इसविषैं प्ररूपिए है ऐसा दशवैकालिक नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं मुनिका आचार अर आहारकी शुद्धता अर लक्षण प्ररूपिए है। बहुरि उत्तर जिसविषैं अधीयंते कहिए पढिए सो उत्तराध्ययन नामा प्रकीर्णक है इसविषैं च्यारि प्रकार उपसर्ग बाईस परिषह इनिके सहनेका विधान वा तिनिका फल अर इस प्रश्नका यहु उत्तर ऐसैं उत्तर

विधान प्ररूपिए है । वहुरि कल्प्य कहिए योग्य आचरण सो व्यवह्रियते अस्मिन् कहिए प्रवृत्तिरूप कीजिए जाविषैं ऐसा कल्प्यव्यवहार नामा प्रकीर्णक है इसविषैं मुनीश्वरनिके योग्य आचरणनिका विधान अर अयोग्यका सेवन होतैं प्रायश्चित्त प्ररूपिए है। वहुरि कल्प्य कहिए योग्य अर अकल्प्य कहिए अयोग्य प्ररूपिए हैं जाविषैं ऐसा कल्प्याकल्प्य नामा प्रकीर्णक है इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा साधुनिकौं यहु योग्य है यहु अयोग्य है ऐसा भेद प्ररूपिए है। वहुरि महतां कहिए महान पुरुषनिकैं कल्प्य कहिए योग्य ऐसा आचरण जाविषैं प्ररूपिए है सो महाकल्प्य नामा प्रकीर्णक है । इसविषैं जिनकल्पी महामुनिनिके उत्कृष्ट संहनन योग्य द्रव्य क्षेत्र कालभाव विषैं प्रवर्तैं तिनकैं प्रतिमायोग वा आतापनयोग अभ्रावकाश वृक्षतल रूप त्रिकाल योग इत्यादि आचरण प्ररूपिए है अर स्थविरकल्पीनिकी दीक्षा शिक्षा संघका पोषण यथायोग्य शरीरका समाधान सो आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तम अर्थ स्थानकौं प्राप्त उत्तम आराधना इनिका विशेष प्ररूपिए है वहुरि पुंडरीक नामा प्रकीर्णक भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी इनिविषैं उपजनेकौं कारण ऐसा दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयम इत्यादि विधान प्ररूपिये है। वा तहां उपजनेतैं जो विभवादि पाइए सो प्ररूपिये है। वहुरि महान जो पुंडरीक सो महापुंडरीक नामा प्रकीर्णक है सो महर्धिक जे इंद्र प्रतींद्र अहमिंद्रादिक तिनविषैं उपजनेकौं कारण ऐसे विशेष तपश्चरणादि तिनिकौं प्ररूपै है । वहुरि निषेधनं कहिए प्रमादकरि कीया दोषका निराकरण सो निषिद्धि कहिए संज्ञाविषैं कप्रत्ययकरि निषिद्धिका नाम भया सो ऐसा निषिद्धिका नाम प्रकीर्णक प्रायश्चित्त शास्त्र है इसविषैं प्रमादतैं कीया दोषका विशुद्धताके निमित्त अनेक प्रकार प्रायश्चित्त प्ररूपिए हैं । याका निसतिका ऐसा भी नाम है । ऐसैं अंगवाह्य श्रुतज्ञान चौदह प्रकार कह्या याके अक्षरनिका प्रमाण पूर्वै कह्या ही है । ३६७ । ३६८
आगैं श्रुतज्ञानका महिमा कहै हैं—

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति वोहादो ।

सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥ ३६९ ॥

श्रुतकेवलं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात् ।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानं ॥ ३६९ ॥

जी० प्र०—श्रुतज्ञानं केवलज्ञानं चेति द्वे ज्ञाने बोधात् समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानात् सदृशे समाने भवतः तु-पुनः अयं विशेषः स कः ? परमोत्कर्षपर्यंतं प्राप्तमपि श्रुतकेवलज्ञानं सकलपदार्थेषु परोक्षं अविशदं अस्पष्टं अमूर्तेषु अर्थपर्यायेषु अन्येषु सूक्ष्मांशेषु विशदत्वेन प्रवृत्त्यभावात् । मूर्तेष्वपि व्यंजनपर्यायेषु स्थूलांशेषु स्वविषयेषु अवधिज्ञानादिव साक्षात्कारणाभावाच्च। सकलावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयोत्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं समस्तत्वेन विशदं स्पष्टं भवति । मूर्तामूर्तार्थव्यंजनपर्यायस्थूलसूक्ष्मांशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्तिसंभवात् साक्षात्कारणाच्च । अक्षं आत्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्षं प्रत्यक्षं, उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्षं परोक्षमिति निरुक्तिसिद्धलक्षणभेदात्तयोः श्रुतज्ञानयोः सादृश्याभावात् । तथा चोक्तं समंतभद्रस्वामिभिः—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने । भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥

॥ ३६९ ॥ अथ शास्त्रकारः पंचषष्टिगाथासूत्रैः अवधिज्ञानप्ररूपणामुपक्रमते—

मं० प्र०—श्रुतज्ञान केवलज्ञानं चेति द्वे ज्ञाने अपि बोधात् समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानात् सदृशे—समाने भवतः । तु—पुनः, अयं विशेषोऽस्ति स—यथा—परमोत्कर्षपर्यंतप्राप्तमपि श्रुतज्ञानं—श्रुतकेवलज्ञानं, सकलपदार्थेषु परोक्षं—अविशदमस्पष्ट अमूर्तेषु—अर्थपर्यायेषु अन्येषु च सूक्ष्मांशेषु वैशद्येन प्रवृत्त्यभावात्, मूर्तेषु व्यंजनपर्यायेषु स्थूलांशेषु च स्वविषयेषु अवधिज्ञानादिवत्साक्षात्करणाभावाच्च सकलावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयोत्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं सामस्त्येन विशद—स्पष्टं मूर्तामूर्तार्थव्यंजनपर्यायस्थूलसूक्ष्मांशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्तिसंभवात् साक्षात्करणाच्च । अक्षं—आत्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्ष प्रत्यक्षं । उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययोपेक्षं परोक्षमिति निरुक्तिसिद्धलक्षणभेदात्तयोः श्रुतज्ञानकेवलज्ञानयोः सादृश्याभावश्च । तथा चोक्तं समंतभद्रस्वामिभिः—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने । भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् । इति ।

३६९ ॥ अथ शास्त्रकारः पंचषष्टिगाथाभिरवधिज्ञानप्ररूपणा प्रक्रमते ॥ ३६९ ॥

स० चं० श्रुतज्ञान अर केवल ज्ञान दोऊ समस्त वस्तुनिके द्रव्यगुण पर्याय जाननेकी अपेक्षा समान हैं। इतना विशेष श्रुतज्ञान परोक्ष है केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है। भावार्थ—जैसें केवल ज्ञानका अपरिमित विषय है तैसें श्रुतज्ञानका अपरिमित विषय है। शास्त्रतें सबनिका जाननेकी शक्ति है परि श्रुतज्ञान सर्वोत्कृष्ट होइ तौभी सर्व पदार्थनिविषैं

परोक्ष कहिए अविशद अस्पष्ट ही है जातैं अमूर्तिक पदार्थनिविषैं वा सूक्ष्म अर्थपर्यायनिविषैं वा अन्य सूक्ष्म अंशनिविषैं विशदता करि प्रवृत्ति श्रुतज्ञानकी न हो है। वहुरि जे मूर्तिक व्यंजन पर्याय वा अन्य स्थूल अंश इस ज्ञानके विषय हैं तिनिविषैं भी अवधि ज्ञानादिकी नाईं प्रत्यक्ष रूप न प्रवर्तै है। तातैं श्रुतज्ञान परोक्ष है। वहुरि केवल ज्ञान प्रत्यक्ष कहिए विशद अर स्पष्टरूप मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ स्थूल सूक्ष्म पर्याय तिनिविषैं प्रवर्तै है जातैं समस्त आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयतैं प्रकट हो है तातैं प्रत्यक्ष है। अक्ष कहिए आत्मा तिहि प्रति निश्चत होइ कोई पर द्रव्यकी अपेक्षा न चाहै सो प्रत्यक्ष कहिए। प्रत्यक्षका लक्षण विशद वा स्पष्ट है। जहां अपने विषयके जाननेमैं कसर न होइ ताकौं विशद वा स्पष्ट कहिए। वहुरि उपात्त वा अनुपात्तरूप पर द्रव्यकी सापेक्षाकौं लीए जो होइ सो परोक्ष कहिए। याका लक्षण अविशद अस्पष्ट जानना। मन नेत्र अनुपात्त है अन्य चारि इंद्री उपात्त हैं। ऐसैं श्रुतज्ञान केवल ज्ञान विषैं प्रत्यक्ष परोक्ष लक्षण भेदतैं भेद है। वहुरि विषय अपेक्षा समानता है। सोई समंतभद्राचार्य देवागम स्तोत्र विषैं कह्या है—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशके।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥

याका अर्थ—स्याद्वाद तौ श्रुतज्ञान अर केवल ज्ञान ए दोऊ सर्व तत्त्वके प्रकाशी हैं परंतु प्रत्यक्ष परोक्ष भेदतैं भेद पाइए है इनि दोऊ प्रमाणनिविषैं अन्यतम जो एक सो अवस्तु है एकका अभाव मानैं दोऊनिका अभाव-विनाश जानना ॥ ३६९ ॥ आगैं शास्त्रकर्ता पैसठि गाथानिकरि अवधिज्ञानकौं प्ररूपै हैं—

अवहीयदित्ति ओही सीमाणाणेत्ति वण्णियं समये।
भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणेत्ति णं बेंति ॥ ३७० ॥

अवधीयत इत्यवधिः सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये ।
भवगुणप्रत्ययविधिकं यदवधिज्ञानमिति ब्रुवंति ॥ ३७० ॥

जी० प्र०—अवधीयते-द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमीयते इत्यवधिर्मतिश्रुतकेवलवद्द्रव्यादिभिरपरिमितविषयत्वाभावात् । यत्तृतीयं सीमाविषयं ज्ञानं समये परमागमे वर्णितं कथितं तदिदमवधिज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवंति । तत्कतिविधं भवगुणप्रत्ययविहितं-भवः नरकादिपर्यायः, गुणः-सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिः, भवगुणौ प्रत्ययौ कारणे ताभ्यां विहितमुक्तं भवगुणप्रत्ययविहितं भवप्रत्ययत्वेन गुणप्रत्ययत्वेन अवधिज्ञानं द्विविधं कथितमित्यर्थः ।

म० प्र०–अवधीयते–द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमीयते इत्यवधिः इति मतिश्रुतकेवलज्ञानवत् द्रव्यादिभिरपरिमितविषयत्वाभावात् यत्तृतीयं सीमाविषयं ज्ञान, समये–परमागमे, वर्णितं–प्ररूपितं तदिदमवधिज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवति । तत् कतिविधं ? भवगुणप्रत्ययविधिकं । भवः–नारकादिपर्यायः, गुणःसम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिः । भवगुणौ प्रत्ययौ–कारणे ययोस्तौ भवगुणप्रत्ययौ तौ विधी–प्रकारौ–भेदौ यस्य तद्भवगुणप्रत्ययविधिकं भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं चेति द्विविधमवविज्ञानमित्यर्थ. ॥ ३७० ॥

स०चं०अवधीयते कहिए द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि परिमाण जाका कीजिए सो अवधिज्ञान जानना । जैसे मति श्रुत केवल ज्ञानका विषय द्रव्य क्षेत्रादि करि अपरिमित है। तैसैं अवधि ज्ञानका विषय अपरमित नाहीं। श्रुतज्ञान करि भी शास्त्रके वलतैं अलोक वा अनंतकाल आदि जानैं । अवधिज्ञान करि जेता द्रव्य क्षेत्र काल भाव प्रमाण आगैं कहैंगे तितना ही प्रत्यक्ष जानै । तातैं सीमा जो द्रव्य क्षेत्रादिकी मर्यादा ताकौं लीए है विषय जाका ऐसा जो ज्ञान सो अवधिज्ञान है ऐसैं सर्वज्ञदेव सिद्धांतविषैं कहे हैं । सो अवधिज्ञान दोय प्रकार कह्या है येक भव प्रत्यय १ एक गुणप्रत्यय १ तहां भव जो नारकादिक पर्याय ताके निमित्ततैं होइ सो भव प्रत्यय कहिये जो नारकादि पर्याय धारै ताके अवधि ज्ञान होइ ही होइ तातैं इस अवधिज्ञानको भव प्रत्यय कहिए । वहुरि गुण कहिए सम्यग्दर्शनादि रूप सो है निमित्त जाका सो गुण प्रत्यय कहिये । मनुष्य तिर्यंच सर्वहीकैं अवधि ज्ञान नाहीं जाकैं सम्यग्दर्शनादिककी विशुद्धता होइ ताकैं अवधिज्ञान होइ तातैं इस अवधि ज्ञानकौं गुण प्रत्यय कहिये ॥ ३७० ॥

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थेवि सव्वअंगुत्थो ।

गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिह्णभवो ॥ ३७१ ॥

भवप्रत्ययकं सुरनारकाणां तीर्थेऽपि सर्वांगोत्थं ।
गुणप्रत्ययकं नरतिरश्चां शंखादिचिह्नभवं ॥ ३७१ ॥

जी० प्र०——तत्र भवप्रत्ययावधिज्ञानं सुराणां नारकाणां चरमभवतीर्थंकराणां च संभवति । तच्च तेषां सर्वांगोत्थं भवति । सर्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायकर्मद्वयक्षयोपशमोत्थं भवतीत्यर्थः । गुणप्रत्ययं अवधिज्ञानं नराणां पर्याप्तमनुष्याणां तिरश्चां च संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिरश्चां संभवति । तच्च तेषां शंखादिचिह्नभवं भवति, नाभेरुपरि शंखपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायकर्मद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः । भवप्रत्यये अवधिज्ञाने दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव भवप्रत्ययत्वं ज्ञातव्यं । गुणप्रत्ययेऽवधिज्ञाने तिर्यग्मनुष्यसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव गुणप्रत्ययत्वं ज्ञातव्यं ॥ ३७१ ॥

मं० प्र०——तत्र भवप्रत्ययं अवधिज्ञानं सुराणां नारकाणा चरमभवतीर्थंकरस्यापि संभवति तच्च सर्वांगोत्थ सर्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः । गुणप्रत्ययमवधिज्ञानं नराणा पर्याप्तमनुष्याणां तिरश्चा च संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताना संभवति तच्च शंखादिचिह्नभवं नाभेरुपरि शंखपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः । भवप्रत्यये दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावेऽपि तदनपेक्षत्वाद्भवप्रत्ययत्वं । गुणप्रत्यये तिर्यग्मनुष्यभवसद्भावेऽपि तदनपेक्षत्वाद् गुणप्रत्ययत्व ॥ ३७१ ॥

स० चं०—तहां भव प्रत्यय अवधि ज्ञान देवनिकै नारकीनिकै अर चरम शरीरी तीर्थंकर देवनिकैं पाइये है सो यहु भव प्रत्यय अवधिज्ञान 'सर्वांगोत्थं' कहिये सर्व आत्माके प्रदेशनिविषै तिष्ठता अवधि ज्ञानावरण अर वीर्यांतराय कर्म ताके क्षयोपशमतैं उत्पन्न हो है वहुरि गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है सो पर्याप्त मनुष्य अर सैनी पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच इनिके संभवै है । सो यहु गुण प्रत्यय अवधिज्ञान 'शंखादिचिन्हभव' कहिये नाभिके ऊपरि शंख कमल वज्र सांथिया माछला कलस इत्यादिकका आकार रूप जहां शरीरविषैं भले लक्षण होंइ तहां संबंधी जे आत्माक प्रदेश तिनिविषैं तिष्ठता जो अवधि ज्ञानावरण कर्म अर वीर्यांतराय कर्म तिनिके क्षयोपशमतैं उत्पन्न हो है भव प्रत्यय अवधिज्ञान विषै भी सम्यग्दर्शनादि गुणका सद्भाव है तथापि उन गुणोंकी अपेक्षा नाहीं करनेतैं भव प्रत्यय

कह्या अर गुण प्रत्ययविषै मनुष्य तिर्यंचका सद्भाव है तथापि उन पर्यायनिकी अपेक्षा नाही करनेतैं गुण प्रत्यय कह्या है ॥ ३७१ ॥

गुणपच्चइगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही ॥ ३७२ ॥

गुणप्रत्ययकः षोढा अनुगावस्थितप्रवर्धमानेतरे ।
देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च त्रिधा अवधिः ॥ ३७२ ॥

जी० प्र०—यद्गुणप्रत्ययावधिज्ञानं तदनुगाम्यननुगाम्यवस्थितमनवस्थितं प्रवर्धमानं हीयमानं चेति षड्विधं । तत्र यदवधिज्ञानं स्वस्वामिनं जीवमनुगच्छति तदनुगामि तच्च क्षेत्रानुगामि भवानुगामि उभयानुगामीति त्रिविधं। यत् स्वोत्पत्तिक्षेत्रात् अन्यक्षेत्रे विहरंतं जीवमनुगच्छति भवांतरं नानुगच्छति तत्क्षेत्रानुगामि भवति । यत् उत्पत्तिभवादन्यभवे स्वस्वामिनं अनुगच्छति तद्भवानुगामि भवति। यत्स्वोत्पत्तिक्षेत्रभवाभ्यां अन्यत्रभरतैरावतविदेहादिक्षेत्रे देवमनुष्यादिभवे च वर्तमानं जीवमनुगच्छति तदुभयानुगामि भवति । यदवधिज्ञानं स्वस्वामिनं जीवं नानुगच्छति तदननुगामि । तदपि क्षेत्राननुगामि भवाननुगामि उभयाननुगामीति त्रिविधं । तत्र यत्क्षेत्रांतरं न गच्छति स्वोत्पत्तिक्षेत्रे एव विनश्यति भवांतरं गच्छतु वा मा गच्छतु तत् क्षेत्राननुगामि। यद्भवांतरं नानुगच्छति स्वोत्पत्तिभव एव विनश्यति, क्षेत्रांतरं गच्छतु वा मा वा गच्छतु तद्भवाननुगामि । यत् क्षेत्रांतरं भवांतरं च नानुगच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रभवयोरेव विनश्यति तत् क्षेत्रभवाननुगामि । यद्धानिवृद्धिभ्यां विना सूर्यमंडलवत् एकप्रकारमेव तिष्ठति तदवस्थितं । यत् कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धीयते कदाचिदवतिष्ठते च तदनवस्थित । यत् शुक्लपक्षस्य चंद्रमंडलवत् स्वोत्कृष्टपर्यंतं वर्धते तद्वर्धमानं । यत् कृष्णपक्षचंद्रमंडलवत् स्वक्षयपर्यंतं हीयते तद्धीयमानं देशावधिज्ञानं भवति । तथा सामान्येन अवधिज्ञानं देशावधिः परमावधिः सर्वावधिश्च इति त्रिधा त्रिप्रकारं भवति। एवं गुणप्रत्ययो देशावधि॰ षोढा न परमावधिसर्वावधी इत्यर्थः ॥ ३७२ ॥

मं० प्र०—यद्गुणप्रत्ययावधिज्ञानं तत् षोढा । अनुगामि अवस्थितं प्रवर्धमानमिति त्रीणि, इतराणि च अननुगामि अनवस्थितं हीयमानमिति त्रीणि । एवं षट्प्रकार गुणप्रत्ययमवधिज्ञान भवति । तद्यथा-यदवधिज्ञानं स्वस्वामिनं जीवमनुगच्छति तदनुगामि तच्च क्षेत्रानुगामि भवानुगामि उभयानुगामि त्रिविधं । तत्र स्वोत्पन्नक्षेत्रादन्यस्मिन् क्षेत्रे विहरंत जीवमनुगच्छति भवांतरं नानुगच्छति तत्क्षेत्रानुगामि । यत्स्वोत्पन्नभवादन्यस्मिन्भवेऽपि वर्तमानं जीवमनुगच्छति तद्भवानुगामि । यत्स्वोत्पन्नक्षेत्रभवाभ्यामन्यस्मिन् भरतैरावतविदेहादिक्षेत्रे देवमनुष्यादिभवे च वर्तमानं जीवमनुगच्छति तदुभयानुगामि । यत्स्वस्वामिन जीव ना-

नुगच्छति तदननुगामि । तदपि त्रिविध, तत्र यक्षेत्रांतरं न गच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रे एव विनश्यति भवांतरं गच्छतु मा वा तत्क्षेत्राननुगामि । यद्भवांतरं न गच्छति स्वोत्पन्नभवे एव विनश्यति क्षेत्रांतरं गच्छतु मा वा तत् भवाननुगामि । यत् क्षेत्रांतरं भवांतरं च न गच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रभवयोरेव विनश्यति तदुभयाननुगामि । यत् हानिवृद्धिभ्यां विना सूर्यमंडलवदेकप्रकारमेव अवतिष्ठते तदवस्थितं । यत् कदाचिद्वर्धते कदाचित् हीयते कदाचिदवतिष्ठते च तदनवस्थितं । यत् शुक्लपक्ष-चंद्रमंडलमिव स्वोत्कृष्टपर्यंतं वर्धते तद्वर्धमानं । यत्कृष्णपक्षचंद्रमंडलमिव स्वक्षयपर्यंतं हीयते तत् हीयमानं । पुन. सामान्येन अवधिज्ञानं देशावधिः सर्वावधिः परमावधिश्चेति त्रिप्रकारं भवति ॥ ३७२ ॥

स०चं०—जो गुण प्रत्यय अवधिज्ञान है सो छह प्रकार है अनुगामी १ अवस्थित २ वर्धमान ३ अर इतर कहिए अननुगामी ४ अनवस्थित ५ हीयमान ६ ऐसैं छह प्रकार है तहां जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवके साथि ही गमन करै ताकौं अनुगामी कहिए ताके तीन भेद—क्षेत्रानुगामी १ भवानुगामी २ उभयानुगामी ३ तहां जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्रविषैं उपज्या था तिस क्षेत्रकौं छोड़ि जीव और क्षेत्रविषै विहार किया तहां भी वह अवधि ज्ञान साथि ही रह्या विनष्ट न हुवा और पर्याय धरि विनष्ट होइ सो क्षेत्रानुगामी कहिए । वहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्याय विषैं उपज्या था तिस पर्यायकौं छोड़ि जीव और पर्यायकौं धरया तहां भी वह अवधि ज्ञान साथि ही रह्या सो भवानुगामी कहिए । वहुरि जो अवधि ज्ञान जिस क्षेत्र वा पर्यायविषै उपज्या था तातैं जीव अन्य भरतादि क्षेत्रविषै गमन कीया वा अन्य देवादि पर्याय धरया तहां साथि ही रहै सो उभयानुगामी कहिए । वहुरि जो अवधि ज्ञान अपने स्वामी जीवकी साथि गमन न करै सो अननुगामी कहिए याके तीन भेद क्षेत्राननुगामी १ भवाननुगामी २ उभयाननुगामी ३ तहां जो अवधिज्ञान तिस क्षेत्रविषै उपज्या होइ तिस क्षेत्रविषै तौ जीव और पर्याय धरौ वा मति धरौ वह अवधिज्ञान साथि ही रहै है अर उस क्षेत्रतैं जीव और कोई भरत ऐरावत विदेहादि क्षेत्रनिविषैं गमन करै तो वह ज्ञान अपने उपजनेका क्षेत्र ही विषै विनष्ट होइ सो क्षेत्राननुगामी कहिए । वहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्यायविषैं उपज्या होइ तिस पर्यायविषै तौ जीव और क्षेत्रविषै तौ गमन करौ वा मतिकरौ वह अवधिज्ञान साथि रहे अर उस पर्यायतैं अन्य कोई देव मनुष्य आदि पर्याय धरै तौ अपने उपजनेका पर्यायविषैं विनष्ट होइ सो भवाननुगामी कहिए । वहुरि जो अवधिज्ञान और क्षेत्रविषैं वा और पर्यायविषै

जीवकौं प्राप्त होते साथि न रहै अपने उपजनेका क्षेत्र वा पर्यायविषैं ही विनष्ट होइ सो उभयानानुगामी कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान सूर्यमंडलकी ज्यों घटै वढै नाही एक प्रकारही रहै सो अवस्थित कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान कदाचित् वधै कदाचित् घटै कदाचित् अवास्थित रहै सो अनवस्थित कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान शुक्ल पक्षके चंद्रमंडलकी ज्यों वंधता वंधता अपने उत्कृष्ट पर्यंत वधै सो वर्धमान कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान कृष्ण पक्षके चंद्रमंडलकी ज्यौं घटता घटता अपने नाश पर्यंत घटै सो हीयमान कहिए ऐसैं गुण प्रत्यय अवधिज्ञानके छह भेद कहे। वहुरि तैसैं ही सामान्यपनैं अवधिज्ञान तीन प्रकार है देशावधि १ परमावधि २ सर्वावधि ३ ए तीन भेद हैं तहां गुणप्रत्यय देशावधि ही छह प्रकार जानना ॥ ३७२ ॥

भवपच्चइगो ओही देसोही होदि परमसव्वोही।
गुणपच्चइगो णियमा देसोही वि य गुणे होदि ॥ ३७३॥

भवप्रत्ययकोवधिः देशावधिः भवति परमसर्वावधिः।
गुणप्रत्ययको नियमात् देशावधिरपि च गुणे भवति ॥ ३७३ ॥

जी० प्र०--यः पूर्वोक्तो भवप्रत्ययोऽवधिः स नियमात्—अवश्यंभावात् देशावधिरेव भवति देवनारकयोर्गृहस्थतीर्थकरस्य च परमावधिसर्वावध्योरसंभवात्। परमावधिः सर्वावधिश्च द्वावपि नियमेन गुणप्रत्ययावेव भवतः। संयमलक्षणगुणाभावे तयोरभावात्। देशावधिरपि गुणे दर्शनविशुद्ध्यादिलक्षणे सति भवति। एवं गुणप्रत्ययास्त्रयोऽप्यवधयः संभवंति। भवप्रत्ययस्तु देशावधिरेवेति निश्चितं जातं ॥ ३७३ ॥

मं०प्र०—यः पूर्वोक्तो भवप्रत्ययोऽवधि. स नियमात्—अवश्यंभावाद्देशावधिरेव देवनारकाणा गृहस्थतीर्थकरस्यापि परमसर्वावध्योरसंभवात्। परमावधिः सर्वावधिश्च नियमाद् गुणप्रत्ययावेव संयमविशेषलक्षणगुणाभावे तयोरभावात्। गुणे—दर्शनविशुद्ध्यादिलक्षणे सति देशावधिश्च। एवं गुणप्रत्ययास्त्रयोऽप्यवधयः सभवंति, भवप्रत्ययस्तु देशावधिरेवेति सुनिश्चितं ॥ ३७३ ॥

स०चं०—भव प्रत्यय अवधि तौ देशावधि ही है जातैं देव नारकी ग्रहस्थ तीर्थंकर इनके परमावधि सर्वावधि होइ नाहीं

वहुरि परमावधि अर सर्वावधि निश्चयसौं गुणप्रत्ययही हैं जातैं संयमरूप विशेष गुण विना न होंइ। वहुरि देशावधि भी सम्यग्दर्शनादि गुण होत संतैं हो है तातैं गुणप्रत्यय अवधि तौ तीन प्रकार हो है अर भवप्रत्ययअवधि एक देशावधि ही है॥ ३७४॥

देसावहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदह्मि वरं।
परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स॥ ३७४॥

देशावधेश्च अवरं नरतिरश्चि भवति संयते वरम्।
परमावधिः सर्वावधिः चरमशरीरस्य विरतस्य॥ ३७४॥

जी० प्र०—देशावधेर्ज्ञानस्य जघन्यं नरतिरश्चोरेव संयतासंयतयोः भवति, न देवनारकयोः। देशावधेः सर्वोत्कृष्टं तु नियमेन मनुष्यगतिसकलसंयते एव भवति नेतरगतित्रये तत्र महाव्रताभावात्। परमावधिसर्वावधी द्वावपि जघन्येनोत्कृष्टेन च मनुष्यगतावेव चरमांगस्य महाव्रतिन एव संभवतः। चरमं संसारांतवर्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबंधि शरीरं वज्रऋषभनाराचसंहननयुतं यस्यासौ चरमशरीरः॥ ३७४॥

मं०प्र०—देशावधेर्जघन्यं नरे—मनुष्ये तिरश्चि च जीवे नियमात् संयते असंयते च भवति। न देवनारकयोः। देशावधेरुत्कृष्टं नियमात् संयते मनुष्यगतौ महाव्रतिन्येव, न इतरगतित्रये तत्र महाव्रतासंभवात्। परमावधिसर्वावधी जघन्यतः उत्कृष्टतश्च मनुष्यगतौ चरमशरीरस्य विरतस्य महाव्रतिन एव जीवस्य संभवतः। चरमं—संसारातवर्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबंधिशरीरं वज्रऋषभनाराचसंहननयुक्तं यस्यासौ चरमशरीरः॥ ३७४॥

स०चं०—देशावधिका जघन्यभेद संयमी वा असंयमी मनुष्य तिर्यंच विषैं ही हो है देव नारकी विषैं न हो है। वहुरि देशावधिका उत्कृष्टभेद संयमी महाव्रती मनुष्यविषैं ही हो है जातैं और तीन गतिविषैं महाव्रत संभवै नाहीं। वहुरि परमावधि अर सर्वावधि जघन्य उत्कृष्ट वा चरमशरीरी महाव्रती मनुष्यविषैं संभवै है। चरम कहिए संसारका अंतविषैं भया तिसही भवतैं मोक्ष होनेका कारण ऐसा वज्रवृषभ नाराच शरीर जिसका होइ सो चरम शरीरी कहिए॥ ३७४॥

पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ।
मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

प्रतिपाती देशावधिःअप्रतिपातिनौ भवतः शेषौ अहो।
मिथ्यात्वमविरमणं न च प्रतिपद्यन्ते चरमद्विके ॥ ३७५ ॥

जी० प्र०—सम्यक्त्वचारित्राभ्या प्रच्युत्य मिथ्यात्वासंयमयोः प्राप्तिः प्रतिपातः, तद्युतः प्रतिपाती स तु देशावधिरेव भवति। शेषौ परमावधि-सर्वावधी द्वावपि अप्रतिपातिनावेव भवतः, चरमद्विके—परमावधिसर्वावधिद्विके जीवाः नियमेन मिथ्यात्वं अविरमणं च न प्रतिपद्यंते ततः कारणात् तौ द्वावपि अप्रतिपातिनौ, देशावधिज्ञानं प्रतिपाति अप्रतिपाति च इति निश्चितं ॥ ३७५ ॥

म० प्र०—प्रतिपातः—सम्यक्त्वचारित्राभ्या प्रच्युत्य मिथ्यात्वासंयमयोः प्राप्तिः, तद्वानवधिः प्रतिपाती। स नियमाद्देशावधिरेव। शेषौ परमावधिसर्वावधी अप्रतिपातिनावेव भवतः। ओ इति प्राकृते संबोधनमव्ययं। यस्मात्कारणात् चरमद्विके—परमसर्वावधिद्विके, वर्तमाना जीवा नियमात् मिथ्यात्वं, अविरमणं च न प्रतिपद्यंते तस्मात्कारणात्तौ अप्रतिपातिनावेव, अनेन देशावधिः प्रतिपात्यप्रतिपाती च संभवतीति सुनिश्चितं ॥ ३७५ ॥

स० चं०—देशावधि ही प्रतिपाती है शेष परमावधि सर्वावधि प्रतिपाती नाहीं। प्रतिपात कहिए सम्यक् चारित्रसौं भ्रष्ट होइ मिथ्या असंयमकौं प्राप्त होना तीहि संयुक्त जो होइ सो प्रतिपाती कहिए। जो प्रतिपाती न होइ सो अप्रतिपाती कहिए। देशावधिवाला तौ कदाचित् सम्यक्त्व चारित्रसौं भ्रष्ट होइ मिथ्यात्व असंयमकौं प्राप्त हो है। अर चरमद्विक कहिए अंतका परमावधि सर्वावधि दोय ज्ञानविषै वर्तमान जीव सो निश्चयसौं मिथ्यात्व अर अविरतिकौं प्राप्त न हो है। जातैं देशावधि तौ प्रतिपाती भी है अप्रतिपाती भी है, परमावधि सर्वावधि अप्रतिपाती ही है ॥ ३७५ ॥

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि रूवि जाणदे ओही।
अवरादुक्कस्सोत्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति रूपि जानीते अवधिः ।
अवरादुत्कृष्ट इति च विकल्परहितस्तु सर्वावधिः ॥ ३७६ ॥

जी० प्र०—अवरात् जघन्यविकल्पादारभ्य उत्कृष्टविकल्पपर्यंतं असंख्यातलोकमात्रविकल्पं अवधिज्ञानं द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च प्रतीत्य–नियत-सीमां कृत्वा रूपि पुद्गलद्रव्यं तत्संबंधि संसारिजीवद्रव्यं च जानीते प्रत्यक्षतया अवबुध्यते । तु–पुनः सर्वावधिज्ञानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितं अवस्थितं हानिवृद्धिरहितं परमोत्कर्षप्राप्तमित्यर्थः, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमसर्वोत्कृष्टस्य तत्रैव संभवात्, ततः कारणाद् देशावधिपरमावध्योर्जघन्य-मध्यमोत्कृष्टविकल्पा संभवंतीति निश्चितं भवति ॥ ३७६ ॥

मं०प्र०—अवरात्–जघन्यविकल्पादारभ्य उत्कृष्टविकल्पपर्यंतमसंख्यातलोकमात्रविकल्पमवधिज्ञानं द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च प्रति प्रतिनियतां सीमानं कृत्वा रूपि पुद्गलद्रव्य तत्संबधि संसारिजीवद्रव्य च जानीते प्रत्यक्ष मवबुध्यते । तु–पुनः सर्वावधिज्ञानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितं अवस्थितैकरूपं हानिवृद्धिभ्यां विना परमोत्कर्षप्राप्तं अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य सर्वोत्कृष्टस्य तत्रैव संभवात् । अनेन देशावधिपरमावध्योः जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाः सतीति सुनिश्चितं ॥ ३७६ ॥

स०चं०—अवधिज्ञान जघन्य भेदतैं लगाइ उत्कृष्ट भेदपर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद धरैं है सो सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव प्रति मर्यादा लीए रूपी जो पुद्गल अर पुद्गल संबंधकौं धरैं संसारी जीव तिनिकौं प्रत्यक्ष जानै है। वहुरि सर्वावधिज्ञान है सो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद रहित हानि वृद्धिरहित अवस्थित सर्वोत्कृष्टताकौं प्राप्त है जातैं अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है तातैं देशावधि परमावधिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवै हैं ॥ ३७६ ॥

णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगोज्जियं सविस्सचयं ।
लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

नोकर्मौदारिकसंचयं मध्यमयोगार्जितं सविस्रसोपचयम् ।
लोकविभक्तं जानाति अवरावधिः द्रव्यतो नियमात् ॥ ३७७ ॥

जी० प्र०—देशावधिजघन्यज्ञानं द्रव्यतः मध्यमयोगार्जितं नोकर्मौदारिकसंचयं द्व्यर्धगुणहानिप्रमितसमयप्रवद्धसमूहरूपं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसंयुक्तं लोकेन विभक्तं नियमेन तावन्मात्रमेव जानाति—प्रत्यक्षतया अवबुध्यते न ततोल्पमित्यर्थः। जघन्ययोगार्जितस्य नोकर्मौदारिकसंचयस्य अल्पत्वं ततोऽस्य सूक्ष्मत्वसंभवात्। तद्ग्रहणे तज्ज्ञानस्य शक्त्यभावात्। उत्कृष्टयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयस्य स्थूलत्वं भवति तद्ग्रहणे प्रतिषेधाभावात्।

तेन नियमान्मध्यमयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयो द्रव्यनियमः कथितः। स $\frac{a\ 12-16\ ख}{1-}$ ॥ ३७७ ॥

म० प्र०—द्रव्यतः द्रव्यमाश्रित्य मध्यमयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयं द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रवद्धसमूहरूपं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसहितं लोकविभक्तं सर्वजघन्यदेशावधिज्ञान, नियमात् एतावन्मात्रमेव जानाति नातोऽल्पमात्रमित्यर्थः। जघन्ययोगार्जितस्य समयप्रबद्धस्य अल्पत्वेन सूक्ष्मत्वात् तद्ग्रहणे तज्ज्ञानस्य शक्त्यभावात्। उत्कृष्टयोगार्जितस्य समयप्रबद्धस्य स्थूलस्य ग्रहणे, अप्रतिषेधाच्च, नियमेन मध्यमयोगार्जितस्यैव नोकर्मरूपौदारिकशरीरपरिणतियोग्यसंचयस्य औदारिकशरीरनामकर्मसंचयस्य अतिसूक्ष्मत्वात् तद्ग्रहणे तस्य नितरामशक्तेः। विस्रसोपचयरहितत्वे अल्पस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् स हि तस्यैव घनलोकप्रदेशमात्राणि खंडानि कृत्वा तत्रैकखंडमतींद्रियं तादृशं पुद्गलद्रव्यस्कंध सर्वजघन्यदेशावधिज्ञानं प्रत्यक्षं जानातीत्यनेन द्रव्यनियमः प्ररूपितः।

स $\frac{a\ 12-16\ ख}{1-}$ ॥ ३७७ ॥

स०चं०—मध्यम योगका परिणमनतैं निपज्या ऐसा नोकर्मरूप औदारिक शरीरका संचय कहिये द्व्यर्ध गुणहानिकरि औदारिकका समय प्रबद्धकौं गुणिए तिहि प्रमाण औदारिकका सत्तारूप द्रव्य बहुरि सो अपने योग्य विस्रसोपचयके परमाणूनिकरि संयुक्त ताकौं लोक प्रमाण असंख्यातका भाग दीएं जो एक भाग मात्र द्रव्य होइ तावन्मात्र ही द्रव्यकौं जघन्य अवधिज्ञान जानै है। यातैं अल्प स्कंधकौं न जानै है जघन्य योगनितैं जो निपजै है संचय सो यातैं सूक्ष्म हो है तातैं तिसकौं जाननेकी शक्ति नाहीं। बहुरि उत्कृष्ट योगनितैं जो निपजै है संचय सो यातैं स्थूल है ताकौं जानैं ही है जातैं जो सूक्ष्मकौं जानैं ताकैं उसतैं स्थूलकौं जाननेमें किछू विरुद्ध नाहीं तातैं यहां मध्यम योगनिकरि निपज्या ऐसा औदारिक शरीरका संचय कह्या। बहुरि विस्रसोपचयरहित सूक्ष्म हो है तातैं वाकै जाननेकी शक्ति नाहीं तातैं विस्रसोपचयसहित कह्या। ऐसैं स्कंधकौं लोकके जितने प्रदेश हैं उतने

खंड करिए तहां एक खंड प्रमाण पुद्गल परमाणूनिका स्कंध नेत्रादिक इंद्रियनिके गोचर नाहीं ताकौं जघन्य देशावधिज्ञान प्रत्यक्ष जाने है। ऐसा जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यका नियम कह्या ॥ ३७७ ॥

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥ ३७८ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अवरोवगाहनमानं जघन्यकमवधिक्षेत्रं तु ॥ ३७८ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पत्तितृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यावगाहनं तत् तु—पुनः जघन्यदेशावधिज्ञानविषयभूतक्षेत्रप्रमाणं भवति ६ । ८ । २२ । एतावति क्षेत्रे पूर्वोक्तजघन्यद्रव्याणि यावंति संति तावंति जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति न तद्बहिःस्थितानीति क्षेत्रसीमा

a १—
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ ९
a a a

कथिता ॥ ३७८ ॥

मं०प्र०—तु-पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये यदवगाहनं प्रागुक्त घनांगुलासंख्यातभागमात्र तत्प्रमाणं जघन्यदेशावधिज्ञानस्य क्षेत्र भवति ६ । ८ २२ एतावति क्षेत्रे यावति पूर्वोक्तजघन्यद्रव्याणि संति तावंति सर्वाणि जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति ततो बहिःस्थ न जानातीति क्षेत्रसीमा

a १–
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ ९
a a a

प्रतिपादिता ॥ ३७८ ॥

स०चं०-बहुरि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तकके जन्मतैं तीसरा समयकेविषैं जघन्य अवगाहनाका प्रमाण पूर्वैं

जीव समासाधिकार विषैं कह्या था तीहि प्रमाण जघन्य अवगाहनाका क्षेत्र जानना । इतने क्षेत्रविषैं पूर्वोक्त प्रमाण लीए वा तिसतैं स्थूल जेते पुद्गल स्कंध होंइ तिनिकौं जघन्य देशावधि ज्ञान जानैं है इस क्षेत्रके बारै तिष्ठते जे होंइ तिनकौं न जानैं हैं ऐसैं क्षेत्रकी मर्यादा कही ॥ ३७८ ॥

अवरोहिखेत्तदीहं वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो ।
अण्णं पुण समकरणे अवरोगाहणपमाणं तु ॥३७९॥

अवरावधिक्षेत्रदीर्घं विस्तारोत्सेधकं न जानीमः ।
अन्यत् पुनः समीकरणे अवरावगाहनप्रमाणं तु ॥ ३७९ ॥

जी० प्र०—जघन्यावधिविषयक्षेत्रस्य दैर्घ्यविस्तारोत्सेधप्रमाणं न जानीमः । इदानीं तदुपदेशाभावात् । तु पुनः परमगुरूपदेशपरंपरायातं जघन्यावगाहनप्रमाणं समकरणे-समीकरणे कृते सति घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रं भवति इत्यन्यत्पुनर्जानीमः ॥ ३७९ ॥

मं०प्र—तु—पुनः जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रस्य दैर्घ्यं विस्तारं उत्सेधं च वयं न जानीमः इदानीं तदुपदेशाभावात् । पुनः परमगुरूपदेशपरंपरायातमन्यत्समीकरणे भुजकोटिवेधाना हीनाधिकभावं विना समीकरणे सति जात क्षेत्रफल जघन्यावगाहनप्रमाणं घनागुलासख्यातभागमिति जानीमः ॥ ३७९ ॥

स०चं—वहुरि जघन्य देशावधिज्ञानका विषय भूत क्षेत्रका लंबाई चौडाई उंचाईका प्रमाण हम न जाने है कितना कितना है जातैं इहां ऐसा उपदेश नाहीं परंतु परम गुरुनिका उपदेशकी परंपरातैं इतना जाने हैं जो भुज कोटि वेधनिका समीकरणतैं जो क्षेत्र फल होइ सो जघन्य अवगाहनाके समान घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र हो है आम्ही साम्ही दोय दिसानिविषै जो कोई एक दिशा संबंधी प्रमाण सो भुज कहिए । अवशेष दोय दिशानिविषै कोई एक दिशा संबंधी प्रमाण सो कोटि कहिए । ऊंचाईका प्रमाणकौं वेध कहिए । प्रवृत्तिविषैं उंचाई चौडाई लंबाई तीन नाम हैं सो इनिका क्षेत्र खंड विधानतैं समान प्रमाण करि क्षेत्र फल कीए जो प्रमाण आवै तितना क्षेत्र फल जानना । जघन्य अवधि ज्ञानके क्षेत्रका अर जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्रका क्षेत्र फलसमान है इतना

तो हम जानैं हैं। अर भुज कोटि वेधका प्रमाण कैसें है? सो हम जानते नाहीं अधिक ज्ञानी जानै ही हैं ॥ ३७९ ॥

अवरोगाहणमाणं उस्सेहंगुलअसंखभागस्स ।
सूइस्स य घणपदरं होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ॥ ३८० ॥

अवरावगाहनमानमुत्सेधांगुलासंख्यभागस्य ।
सूचेश्च घनप्रतरं भवति हि तत्क्षेत्रसमीकरणे ॥ ३८० ॥

जी० प्र०—तर्हि तत्सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनं कीदृग् अस्ति? इति चेत्, तदवगाहनं अनियतसंस्थानमस्ति तथापि क्षेत्रखंडनविधानेन भुजकोटिवेधानां समकरणे सति उत्सेधांगुलपरिभाषानिष्पन्नव्यवहारसूच्यंगुलं असंख्यातेन भक्त्वा तदेकभागमात्रभुजकोटिवेधानां अन्योन्यगुणनोत्पन्नघनांगुलासंख्यातभागमात्रं खलु परमागमे स्फुटं प्रसिद्धमागच्छति । तत्समानजघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रमित्यर्थः । २ । २ । गुणिते
a । a ।
२
a
घनांगुलासंख्यातभागमात्रं भवति ६ ॥ ३८० ॥
a

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहन कीदृश ? इति प्रश्न उत्तरवचनमिदं तज्जघन्यावगाहनं अनियतसंस्थानमपि क्षेत्रखडनविधानेन भुजकोटिवेधानां समकरणे सदृशीकरणे सति उत्सेधांगुलस्य—परिभाषानिष्पन्नव्यवहारसूच्यंगुलस्य येन केनाप्यसंख्यातेन खंडितस्य एकखंडमात्रभुजकोटिवेधानामन्योन्यगुणकारोत्पन्नं घनक्षेत्रं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं खलु—परमागमे स्फुटं प्रसिद्धिमायाति, तत्समानं जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रं भवतीति तात्पर्यं। तन्न्यासः—
२ २ गुणितघनांगुलासंख्यातभागमात्र भवति ६ च शब्देन जघन्यावगाहन २ जघन्यदेशावधिक्षेत्रं च ईदृशं भवतीति समुच्चीयते ॥ ३८० ॥
a a a
२
a

स० चं०—इहां कोऊ प्रश्न करै कि जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्रका प्रमाण कहा सो कैसा कहै? ताका समाधान

जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्रका आकार कोऊ एक नियम रूप नाहीं तथापि क्षेत्र खंडविधान करि सदृश कीजिए तब भुजका वा कोटिका वा वेधका प्रमाण उत्सेधांगुलकों योग्य असंख्यातका भाग दीएं जो एक भागका प्रमाण होइ तितना जानना वहुरि भुजकौं वा कोटिकौं वा वेधकौं परस्पर गुणें घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र प्रकट क्षेत्र फल भया सो जघन्य अवगाहनाका प्रमाण है। याहीके समान जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र है। इहां क्षेत्र खडन विधानकरि समीकरणका उदाहरण और भी दिखाइए है जैसैं लोकाकाश ऊंचाई चौडाई लंबाईविषैं हीनाधिक प्रमाण लीए है ताका क्षेत्र फल फैलाइए तब तीनसे तेतालीस राजू प्रमाण घनफल होइ अर जो हीनाधिककों बधाइ घटाइ समान प्रमाणकरि सात सात राजूकी ऊंचाइं लंबाई चौडाई कल्पि परस्पर गुणन करि क्षेत्र फल कीजिए तब भी तीनसे तेतालीस ही राजू होइ ऐसैंही इहां जघन्य क्षेत्रकी लंबाई चौडाई ऊंचाई हीनाधिक प्रमाण लीएं है परि क्षेत्र खंडन विधान करि समीकरण कीजिए तब ऊँचाईका वा चौडाईका वा लंबाईका प्रमाण उत्सेधांगुलके असंख्यातवे भागमात्र होइ। इनिकौं परस्पर गुणन कीए घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण घन क्षेत्र फल हो है सो इतनाही प्रमाण जघन्य अवगाहनाका है अर इतनाही प्रमाण जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका है तातैं समान कहैहैं ॥३८०॥

अवरं तु ओहिखेत्तं उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा।
सुहुमोगाहणमाणं उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥ ३८१ ॥

अवरं तु अवधिक्षेत्रं उत्सेधमंगुलं भवेद्यस्मात्।
सूक्ष्मावगाहनमानमुपरि प्रमाणं तु अंगुलकं ॥ ३८१ ॥

जी०—अ—तु-पुनः, जघन्यदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रं यज्जघन्यावगाहनस्थानं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमुक्तं तदुत्सेधांगुलं व्यवहारांगुलमाश्रित्योक्तं भवति न प्रमाणांगुल नाप्यात्मांगुलमाश्रित्य यस्मात्कारणात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनप्रमाणं जघन्यदेशावधिक्षेत्रं ततः कारणात्, देहगेह ग्रामनगरादिप्रमाणं उत्सेधांगुलेनैवेति परमागमे नियमितत्वात् व्यवहारांगुलमेवाश्रितं भवति। उपरि यत्र "अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो

वि संखेज्जो, इत्यादिगाथासूत्रोक्त कांडकेषु अंगुलग्रहणं तत्र प्रमाणांगुलमेव ग्राह्यं । उत्तरोत्तरनिर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्राणां प्रमाणांगुलाश्रितत्वात् ॥ ३८१ ॥

मं. प्र०-तु-पुनः, जघन्यदेशावधिक्षेत्रं यज्जघन्यावगाहनसमानं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमुक्तं तदुत्सेधांगुलमेव भवेत्—व्यवहारांगुलमाश्रित्य चोक्तं, न प्रमाणांगुल नाप्यात्मांगुलमित्यर्थः । तत्कुतः? इति चेत् यस्मात्कारणात्सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनप्रमाण जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रं तस्मात्कारणात् व्यवहारांगुलमाश्रित्योक्त । तज्जघन्यावगाहनमपि परमागमे देहगेहग्रामनगरादिप्रमाण उत्सेधांगुलेनैवेति नियमितत्वात् व्यवहारांगुलाश्रितमेव । उपरि—उत्तरत्र यत्र 'अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज' इत्यादि गाथासूत्रोक्तकांडकेषु अंगुलग्रहण तत्र प्रमाणांगुलमेव ग्राह्यं । उत्तरोत्तरनिर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्राणा प्रमाणांगुलाश्रितत्वात् ॥ ३८१ ॥

स० चं०—बहुरि जो यहु जघन्य अवगाहना समान जघन्य देशावधिका क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग मात्र कह्या सो उत्सेधांगुलका घन प्रमाण जो घनांगुल ताके असंख्यातवे भागमात्र जानना जातैं इहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपार्याप्तककी जघन्य अवगाहनाके समान जघन्य देशावधिका क्षेत्र कह्या सो शरीरनिका प्रमाण है सो उत्सेधांगुलहीतैं है जातैं परमागमविषै ऐसा कह्या है कि देह गेह ग्राम नगर इत्यादिकका प्रमाण उत्सेधांगुलतैं है तातैं इहां जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रमाण भी उत्सेधांगुलकी ही अपेक्षा जानना । इस उत्सेधांगुलका ही नाम व्यवहारांगुल है । बहुरि आगैं जो 'अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज' इत्यादि सूत्र उक्त कांडकनिविषै अंगुल कह्या है सो वह अंगुल प्रमाणांगुल जानना । जातैं वाके आगैं हस्त कोश योजन भरत क्षेत्रादि उत्तरोत्तर कहे हैं । बहुरि आगमविषैं द्वीप क्षेत्रादिका प्रमाण प्रमाणांगुलतैं कह्या है तातैं तहां प्रमाणांगुलहीका ग्रहण जानना ॥ ३८१ ॥

अवरोहिखेत्तमज्झे अवरोही अवरदव्वमवगमादि ।
तद्दव्वस्सवगाहो उस्सेहासंखघणपदरा ॥ ३८२ ॥

अवरावधिक्षेत्रमध्ये अवरावधिः अवरद्रव्यमवगच्छति ।

तद्द्रव्यस्यावगाहः उत्सेधासंख्यघनप्रतराः ॥ ३८२ ॥

जी०-प्र०—जघन्यावधिक्षेत्रमध्ये स्थितं पूर्वोक्तं जघन्यद्रव्यं जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति तत्क्षेत्रमध्यस्थितानि औदारिकशरीरसंचयलोकविभक्तैकभागप्रमितखंडानि असंख्यातानि जानातीत्यर्थः । तज्जघन्यपुद्गलस्कंधस्योपरि एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधान् न जानातीति न वाच्यं, सूक्ष्मविषयज्ञानस्य स्थूलाववोधने सुघटत्वात् । द्रव्यावगाहक्षेत्रं तु जघन्यावधिविषयक्षेत्रादसंख्यातगुणहीनं भवति, तथाप्युत्सेधघनांगुलासंख्यातभागमात्रमेव भवति । तद्भुजकोटिवेधाः सुच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रा ज्ञातव्याः २ २ ॥ ३८२ ॥

aa aa
२
aa

म० प्र०—जघन्यावधिक्षेत्रमध्ये स्थितं पूर्वोक्त जघन्यद्रव्यं जघन्यदेशावधिज्ञानी जीवः अवगच्छति-जानाति,-तत्क्षेत्रमध्ये अवस्थितान्यसंख्येयानि औदारिकशरीरसंचयखंडानि सर्वाण्यपि जानातीत्यर्थः । ततः एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधान् जानातीति किमत्र वक्तव्य सूक्ष्मविषयस्य ज्ञानस्य स्थूलाववोधने सुघटत्वात् । तस्य जघन्यद्रव्यस्य अवगाहक्षेत्रं जघन्यावधिक्षेत्रादसंख्येयगुणहीनमपि उत्सेधघनांगुलासंख्येयभागमात्रं भवति । तस्य भुजकोटिवेधाः सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्राः २ २ ज्ञातव्याः ॥ ३८२ ॥

aa aa
२
a a

स० चं०—तींहि जघन्य अवधिज्ञान संबंधी क्षेत्रविषैं जे पूर्वोक्त जघन्य अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य तिष्ठै हैं तिनकौं जघन्य देशावधिज्ञानी जीव जानैं है तीहि क्षेत्रविषैं तैसे औदारिक शरीरके संचयकौं लोकका भाग दीए एक भाग मात्र खंड असंख्यात पाइए हैं तिनि सबनिकौं जानै है । बहुरि इस प्रमाणतैं एक दोय आदि जिन स्कंधनिके वधते प्रदेश होंहि तिनिकौं तो जानैही जानैं जातैं सूक्ष्मकौं जानैं स्थूलका जानना सुगम है । बहुरि जो पूर्वैं जघन्य अवधिज्ञान संबंधी द्रव्य कह्या था तिसकी अवगाहनाका प्रमाण तिस जघन्य अवधिका क्षेत्रका प्रमाणके

असंख्यातवे भागमात्र है तथापि घनांगुलके असख्यातवे भागमात्र ही है अर वाकै भुज कोटि वेधका भी प्रमाण सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमात्र है। असंख्यातके भेद घने हैं तातैं यथासंभव जानि लेना ॥ ३८२ ॥

आवलिअसंखभागं तीदभविस्सं च कालदो अवरं ॥
ओही जाणदि भावे कालअसंखेज्जभागं तु ॥ ३८३ ॥

आवल्यसंख्यभागमतीतभविष्यच्च कालतः अवरं ॥
अवधिः जानाति भावे कालासंख्यातभागं तु ॥ ३८३ ॥

जी० प्र०--कालेन जघन्यावधिज्ञानं अतीतभविष्यत्कालधावल्यसंख्यातभागमात्रं जानाति $\frac{a}{8}$ । स्वविषयैकद्रव्यगतव्यंजनपर्यायान् पूर्वोत्तरान् तावतो जानातीत्यर्थः । व्यवहारकालस्य द्रव्यस्य पर्यायस्वरूपं विनाऽन्यस्वरूपांतराभावात् । भावे तज्जघन्यद्रव्यगतवर्तमानपर्याये तु पुनः कालासंख्येयभाग तज्जघन्यावधिविषयकालस्यावल्यसंख्यातैकभागस्य असंख्यातैकभागमात्र जानाति $\frac{aa}{8}$ । एवं जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्यक्षेत्रकालभावानारीमाविभागं प्ररूप्येदानीं द्वितीयादीन् देशावधिज्ञानविकल्पान् चतुर्णिविषयभेदानाह---

मं० प्र०---श्रीमदभयचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिविहितव्याख्यान विश्रांतमिति कर्णाटवृत्त्यनुरूपमयमनुवदति--

स० चं०--जघन्य अवधिज्ञान है सो कालतैं आवलीके असंख्यातवे भागमात्र अतीत अनागत कालकौं जानै है। बहुरि भावतैं आवलीका असंख्यातवां भागमात्र काल प्रमाणका असंख्यातवां भाग प्रमाण भाव तिनकौं जानै है। भावार्थ--जघन्य अवधिज्ञान पूर्वोक्त क्षेत्रविषै पूर्वोक्त एक द्रव्यके आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अतीत कालविषै वा तितना ही अनागत कालविषै जे आकाररूप व्यंजन पर्याय भए अर होहिगें तिनकौं जानै हैं जातैं व्यवहार कालकै अर द्रव्यकै पर्याय ही की पलटन हो है। बहुरि पूर्वोक्त क्षेत्रविषै पूर्वोक्त द्रव्यके वर्तमान परिणमन रूप अर्थ पर्याय हैं तिनिविषैं आवलीका असंख्यातवां भागका असंख्यातवां भाग प्रमाण जे पर्याय तिनि

कौं जानै है ॥ ऐसें जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकी सीमा मर्यादाका भेद कहि आगे तिस अवधिज्ञानके जे द्वितीयादि भेद तिनिकौं च्यारि प्रकार विषय भेदकरि कहै हैं—

अवरद्व्वादुवरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो ।

सिद्धाणंतिमभागो अभव्वसिद्धादणंतगुणो ॥ ३८४ ॥

अवरद्रव्यादुपरिमद्रव्यविकल्पाय भवति ध्रुवहारः ।

सिद्धानंतिमभागः अभव्यसिद्धादनंतगुणः ॥ ३८४ ॥

जी० प्र०—जघन्यदेशावधिविषयद्रव्यात् उपरितनद्वितीयाद्यवधिज्ञानविकल्पविषयद्रव्याणि आनेतुं सिद्धानंतैकभागः, अभव्यसिद्धेभ्योऽनंतगुणः ध्रुवभागहारः स्यात् ॥ ३८४ ॥

स० चं०—जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यतैं ऊपरि द्वितीयादि अवधि ज्ञानके भेदका विषयभूत द्रव्यका प्रमाण ल्यावनेके अर्थि ध्रुवहार जानना । सर्व भेदनिविषैं जिस भाग हारका भागदीएं प्रमाण आवै सो ध्रुव भागहार कहिए जैसैं इस जघन्य देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकौं ध्रुवभागहारके प्रमाणका भाग दीएं जो एक भागका प्रमाण आवै सो देशावधिका द्रव्यसंबंधी दूसरा भेदका विषयभूत द्रव्यका प्रमाण जानना । याकौं ध्रुवहारका भाग दीए जो एक भागका प्रमाण आवै सो देशावधिके तीसरे भेदका विषयभूत जानना । ऐसैं सर्वावधि पर्यंत जानना । पहले पहले घने परमाणूनिका स्कंधरूप द्रव्यकौं ध्रुवभागहारका भाग दीएं पीछे पीछे एक भागमात्र थोरे परमाणूनिका स्कंध आवै सो पूर्वस्कधतैं सूक्ष्म स्कंध होइ सो ज्यों ज्यों सूक्ष्मकौं जानें त्यौं त्यौं ज्ञानकी अधिकता कहिए है जातैं सूक्ष्मकौं जानैं स्थूलका तौ जानना सहजही हो है । बहुरि [जो] वह ध्रुवभागहार कह्या था ताका प्रमाण सिद्ध राशिकौं अनंतका भाग दीजिए ताके एक भाग प्रमाण है । अथवा अभव्य सिद्ध राशिकौं अनंततैं गुणिए तीहि प्रमाण है ॥ ३८४ ॥

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे ।
समयपबद्धपमाणं जाणिज्जो ओहिविसयह्मि ॥ ३८५ ॥

ध्रुवहारकार्मणवर्गणागुणकारं कार्मणवर्गणां गुणिते ।
समयप्रबद्धप्रमाण ज्ञातव्यमवधिविषये ॥ ३८५ ॥

जी० प्र०—द्विरूपोनदेशावधिविकल्पमात्रध्रुवहाराद् गत्युत्पन्नेन कार्मणवर्गणागुणकारेण द्विरूपाधिकपरमावधिज्ञानविकल्पमात्रध्रुवहारसंवर्गसमुत्पन्नकार्मणवर्गणा गुणिता सती अवधिविषये समयप्रबद्धमात्रप्रमाणं स्यादिति ज्ञातव्यं ॥ ३८५ ॥ विशेषेण ध्रुवहारप्रमाणमाह—

स०चं०- देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद होंइ तितनेमें सौं दोय घटाइए जो प्रमाण होइ तितना ध्रुवहार माडि परस्पर गुणि जो प्रमाण होइ सो कार्माण वर्गणाका गुणकार जानना । तीहि कार्माण वर्गणाका गुणकारकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणैं जो प्रमाण होइ सो अवधिज्ञानका विषयविषै समयप्रबद्धका प्रमाण जानना । जो जघन्य देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य कहा था तिसहीका नाम इहां समयप्रबद्ध जानना । इसका विशेष आगैं कहैंगे ॥ ३८५ ॥ ध्रुवहारका प्रमाण सामान्यपनैं सिद्धराशिके अनंतवे भागमात्र कह्या अब विशेषपनैं ध्रुवहारका प्रमाण कहै हैं—

मणदव्ववग्गणाण वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो ।
अवरुक्कस्सविसेसा रूवहिया तव्वियप्पा हु ॥ ३८६ ॥

मनोद्रव्यवर्गणानां विकल्पानंतिमसम खलु ध्रुवहारः ।
अवरोत्कृष्टविशेषाः रूपाधिकास्तद्विकल्पा हि ॥ ३८६ ॥

जी० प्र०—मनोद्रव्यवर्गणाया यावंतो विकल्पास्तेषामनंतैकभागेन सम संख्यया समानं खलु ध्रुवहारप्रमाणं स्यात् । ते च विकल्पाः कति ?

मनोवर्गणाजघन्यं ज तदुत्कृष्टे ज ख ख विशोध्य शेषे ज ख रूपाधिकीकृते एतावंतः ज ख खलु स्युः ॥ ३८६ ॥ ते जघन्योत्कृष्टे प्रमाणयति—

स० चं०—मनोवर्गणाके जितने भेद हैं तिनिकौं अनंतका भाग दीजिए एक भागका जितना प्रमाण होइ सो ध्रुवहारका प्रमाण जानना ते मनोवर्गणाके भेद केते हैं सो कहिए है मनोवर्गणाका जघन्य प्रमाणकौं मनोवर्गणाका उत्कृष्ट प्रमाणमेंसौं घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै तीहिविषैं एक अधिक कीएं मनोवर्गणाके भेदनिका प्रमाण हो है। आगैं सम्यक्त्व मार्गणाका कथनविषैं तेईस जातिकी पुद्गल वर्गणा कहैंगे तहां तैजसवर्गणा भाषावर्गणा मनोवर्गणा कार्माणवर्गणा इत्यादिकका वर्णन करैंगे सो जानना ॥ ३८६ ॥ इस मनोवर्गणाका जघन्य भेद अर उत्कृष्ट भेदका प्रमाण दिखाइए है—

अवरं होदि अणंतं अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ॥ ३८७ ॥

अवरं भवति अनंतमनंतभागेनाधिकमुत्कृष्टं।
इति मनोभेदानंतिमभागो द्रव्ये ध्रुवहारः ॥ ३८७ ॥

जी० प्र०—मनोद्रव्यवर्गणाजघन्यं अनंतो भवति । तदनंतैकभागेनाधिकमुत्कृष्टं भवति इत्येवमुक्तरीत्या मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनंतैकभागः १— ज ख ख अवधिविषयद्रव्यविकल्पेषु ध्रुवहारप्रमाणं ज्ञातव्यं । अथवा—

स० चं०—मनोवर्गणाका जघन्यभेद अनंत प्रमाण है। अनंत परमाणूनिका स्कंधरूप जघन्य मनोवर्गणा है। इस प्रमाणकौं अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना उस जघन्य भेदका प्रमाणविषै जोडैं जो प्रमाण होइ

सोई मनोवर्गणाका उत्कृष्ट भेदका प्रमाण जानना । इतने परमाणूनिका स्कंधरूप उत्कृष्ट मनोवर्गणा हो है सो जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत पूर्वोक्तप्रकार जेते मनोवर्गणाके भेद भए तिनके अनंतवे भागमात्र इहां ध्रुवहारका प्रमाण है ॥ ३८७ ॥ अथवा अन्यप्रकार कहै हैं—

धुवहारस्स पमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
समयपबद्धणिमित्तं कम्मणवग्गणगुणादो दु ॥ ३८८ ॥
होदि अणंतिमभागो तग्गुणगारो वि देसओहिस्स ।
दोऊण दव्वभेदपमाणद्धुवहारसंवग्गो ॥ ३८९ ॥

ध्रुवहारस्य प्रमाणं सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि ।
समयप्रबद्धनिमित्तं कार्मणवर्गणागुणतस्तु ॥ ३८८ ॥
भवत्यनंतिमभागस्तद्गुणकारोऽपि देशावधेः ।
द्व्यूनद्रव्यभेदप्रमाणध्रुवहारसंवर्गः ॥ ३८९ ॥

जी० प्र०—ध्रुवहारप्रमाणं सिद्धानंतैकभागमात्रमपि अवधिविषयसमयप्रबद्धप्रमाणमानेतु उक्तस्य कार्मणवर्गणागुणकारस्य अनंतैकभागमात्रं स्यात् । स च गुणकारोऽपि कियान् ? देशावधिज्ञानस्य द्विरूपोनद्रव्यभेदमात्रध्रुवहारसंवर्गमात्रः स्यात् । कुतः ? तद्द्रव्यरचनायामस्यां—

व त्रिचरमविकल्पादेकाद्येकोत्तरक्रमेण अधोऽधोगत्वा प्रथमविकल्पे कार्मणवर्गणायाः तावतां ध्रुवहाराणां गुणकारत्वेन सद्भावात् । गुणयगुणकारे गुणिते-
९
व प्रागुक्तो लोकविभक्तैकखडमात्रनोकर्मौदारिकसंचय एव स्यात् ।—स a १२—१६ ख
व ९
व ९ ९ ।
व ९ ९ ९ ।
व ९ ९ ९ ९ ।
०
० ०
० १— २
व ≡—६ । २ ९
प a
a

३८८ ॥ ३८९ ॥ देशावधिद्रव्यविकल्पान् प्रमाणयति—

स॰ चं॰—ध्रुवहारका प्रमाण सिद्धराशिके अनंतवे भागमात्र है तथापि अवधिका विषयभूत समयप्रबद्धका प्रमाण ल्यावनेके निमित्त जो कार्माण वर्गणाका गुणकार कह्या ताके अनंतवे भागमात्र जानना । सो तिस कार्माण वर्गणाके गुणकारका प्रमाण कितना है ? सो कहिए है-देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद हैं तिनमें दोय घटाएं जो प्रमाण रहै तितना ध्रुवहार माडि परस्पर गुणन कीएं जो प्रमाण आवै तितना कार्माण वर्गणाका गुणकार जानना । ऐसा प्रमाण कैसें कह्या ? सो कहिए है—देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी रचनाविषैं उत्कृष्ट अंतका जो भेद ताका विषय कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना जानना । बहुरि ताके नीचैं द्विचरम भेद ताका विषय कार्माण वर्गणा प्रमाण जानना । बहुरि ताके नीचैं त्रिचरम भेद ताका विषय कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवभागहारतैं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना जानना । बहुरि ताके नीचैं दोयवार ध्रुवभागहारकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणिए तब चतुर्थ चरमभेद होइ । ऐसैं ही एक एकवार अधिक ध्रुवहारकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणतैं दोय घाटि देशावधिके द्रव्यभेद प्रमाण ध्रुवहारनिके परस्पर गुणनतैं जो गु-

णकारका प्रमाण भया ताकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणें जो प्रमाण भया सोई जघन्य देशावधिज्ञानका विषयभूत लोककरि भाजित नोकर्म औदारिकका संचयमात्र द्रव्यका परिमाण जानना। इहां उत्कृष्ट भेदतैं लगाइ जघन्यभेदपर्यंत रचना कही तातैं ऐसैं गुणकारका प्रमाण कह्या है बहुरि जो जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्टपर्यंत रचना कीजिए तो क्रमतैं ध्रुवहारके भाग देते जाइए अंतका भेदविषैं कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितना द्रव्य प्रमाण होइ इस कथन उस कथनविषैं कुछ अन्यथापना नाहीं है। ऊपरतैं कथन कीया तव ध्रुवहारका गुणकार कहते आए नीचैतैं कथन कीया तव ध्रुवहारका भागहार कहते आए प्रमाण दोऊ कथनविषैं एकसा है॥ ३८९॥ देशावधिके द्रव्यकी अपेक्षा केते भेद हैं? ते कहिए है—

अंगुलअसंखगुणिदा खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ॥ ३९०॥

अंगुलासंख्यगुणिताः क्षेत्रविकल्पाश्च द्रव्यभेदा हि।
क्षेत्रविकल्पा अवरोत्कृष्टविशेषो भवेदत्र॥ ३९०॥

जी० प्र०—सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणितदेशावधिविषयसर्वक्षेत्रविकल्पाः खलु तद्विषयद्रव्यविकल्पा भवंति, ते च क्षेत्रविकल्पाः अत्र देशावधिविषये अवरे जघन्यक्षेत्रे ६ (प/a) तद्विषयोत्कृष्टक्षेत्रे ≡ विशोधिते शेषमात्रा भवंति ≡–६ (प/a) एते एव सूच्यंगुलासंख्यातेन गुणयित्वा एकरूपयुताः देशावधिसर्वद्रव्यविकल्पाः स्युः ≡–६ (प/a) । २ (a) कुतः? जघन्यद्रव्यं ध्रुवहारेण भक्त्वा भक्त्वा सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रद्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकप्रदेशो वर्धते अनेन क्रमेण लोकमात्रक्षेत्रोत्पत्तिपर्यंतं गमनिकासद्भावात् अवशिष्टप्रथमद्रव्यविकल्पस्य पश्चान्निक्षेपात्॥ ३९०॥ ते जघन्योत्कृष्टक्षेत्रे संख्याति—

स० चं०—देशावधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्रकी अपेक्षा जितने भेद हैं तिनकौं अंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद हो है। ते क्षेत्रकी अपेक्षा केते भेद हैं? ते कहिए है-देशावधिज्ञानका जघन्य क्षेत्रका जो प्रदेशनिका प्रमाण है तितना भेद देशावधिका उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाणविषैं घटाएं जो अवशेष रहै तितना भेद देशावधिका क्षेत्रकी अपेक्षा है। इनिकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणिए तामैं एक मिलाएं जो प्रमाण होइ तितना देशावधिका द्रव्यकी अपेक्षा भेद है काहेतें? सो कहिए है—देशावधिका जघन्य भेदविषैं पूर्वैं जो द्रव्यका परिमाण कह्या था ताकौं ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो देशावधिका द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद है। बहुरि इस दूसरा भेदविषैं क्षेत्रका परिमाण तितना ही है। भावार्थ—देशावधिका जघन्यतैं बंधता देशावधिज्ञान होइ तौ देशावधिका दूसरा भेद होइ सो जघन्य करि जो द्रव्य जानिए था ताकौं ध्रुव भागहारका भागदीएं जो सूक्ष्म स्कंधरूप द्रव्य होइ ताकौं जानैं अर क्षेत्रकी अपेक्षा जितना क्षेत्रकौं जघन्यवाला जानै था तितना ही क्षेत्रकौं दूसरा भेदवाला जानैं है। तातैं द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद भया क्षेत्रकी अपेक्षा प्रथम भेद ही है। बहुरि जो द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेदवाला जानैं था ताकौं ध्रुवहारका भाग दीए जो सूक्ष्मस्कंध भया ताकौं द्रव्यकी अपेक्षा तीसरा भेदवाला जानैं अर यहु क्षेत्रकी अपेक्षा तितना ही क्षेत्रकौं जानैं तातैं द्रव्यकी अपेक्षा तीसरा भेद भया क्षेत्रकी अपेक्षा प्रथम भेद ही है ऐसैं द्रव्यकी अपेक्षा सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद होइ तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्र मात्र क्षेत्रकौं जानैं। तातैं द्रव्यकी अपेक्षा तौ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद भए अर क्षेत्रकी अपेक्षा एक ही भेद भया बहुरि इहांसे आगैं ऐसैं ही ध्रुवहारका भाग देतैं देतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद होइ तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्रतैं एक प्रदेश बंधता क्षेत्रकौं जानैं तहां क्षेत्रकी अपेक्षा दूसरा ही भेद रहै। बहुरि तहां पीछै सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र द्रव्य अपेक्षा भेदनिविषैं एक प्रदेश और बंधता क्षेत्रकौं जानैं तहां क्षेत्रकी अपेक्षा तीसरा भेद होइ ऐसैं ही सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद होतैं होतैं क्षेत्रकी अपेक्षा एक एक

बंधता भेद होइ सो ऐसैं लोक प्रमाण उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्रपर्यंत जानना। तातैं क्षेत्रकी अपेक्षा भेदनितै द्रव्यकी अपेक्षा भेद सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण गुणा कह्या। बहुरि अवशेष पहला द्रव्यका भेद था सो पीछैं मिलाया तातैं एकका मिलावना कह्या है ॥ ३९० ॥ तिन देशावधिके जघन्य क्षेत्र अर उत्कृष्ट क्षेत्रनिका प्रमाण कहैं हैं—

अंगुलअसंखभागं अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो।

इदि वग्गणगुणगारो असंखधुवहारसंवग्गो ॥ ३९१ ॥

अंगुलासंख्यभागमवरमुत्कृष्टकं भवेल्लोकः।

इति वर्गणागुणकारोऽसंख्यध्रुवहारसंवर्गः ॥ ३९१ ॥

जी० प्र०—अवरं जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहप्रमाणमिदं ६ । ८ । २२ अपवर्तितं

१—

प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ६

घनांगुलासंख्यातभागमात्रं भवति ६ उत्कृष्टं लोकः जगच्छ्रेणिघनो भवति इत्येवं द्विरूपोनदेशावधिसर्वद्रव्यविकल्पमात्रासंख्यध्रुवहारसंवर्ग एव कार्मणवर्गणागुणकारः स्यात् ॥ ३९१ ॥ अथ क्रमप्राप्तं वर्गणाप्रमाणमाह—

सं० चं०—जघन्य देशावधिका विषयभूत क्षेत्र सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाके समान घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र जानना। बहुरि देशावधिका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र लोकप्रमाण जानना। उत्कृष्ट देशावधिवाला सर्वलोकविषैं तिष्ठता अपना विषयकौं जानैं ऐसैं दोय घाटि देशावधिका द्रव्यकी अपेक्षा जितने

भेद होंइ तितना ध्रुवहार मांडि परस्पर गुणन करना सोई संवर्ग भया यों करतें जो प्रमाण भया होइ सोई कार्माण वर्गणाका गुणकार जानना। सो कह्या ही था ॥ ३९१ ॥ आगैं वर्गणाका परिमाण कहैं हैं—

वग्गणरासिपमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराण संवग्गो ॥ ३९२ ॥

वर्गणाराशिप्रमाणं सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि।
द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्गः ॥ ३९२ ॥

जी० प्र०—कार्मणवर्गणाराशिप्रमाणं सिद्धराश्यनंतैकभागमात्रमपि द्विरूपाधिकपरमावधिसर्वभेदमात्रध्रुवहारसंवर्गमात्रं स्यात् व ॥ ३९२ ॥ ते भेदाः कति ? इति चेदाह—

स चं०—कार्माण वर्गणा राशिका प्रमाण सिद्ध राशिके अनंतवे भागमात्र है तथापि परमावधि ज्ञानके जेते भेद हैं तिनमें दोय मिलाएं जो प्रमाण होइ तितना ध्रुवहार मांडि परस्पर गुणन कीयें जो प्रमाण होइ तितना परमाणूनिका स्कंधरूप कार्माण वर्गणा जाननी जातैं कार्माणवर्गणाकौं एकबार ध्रुवहारका भाग दीएं उत्कृष्ट देशावधिका विषय भूत द्रव्य होइ पीछें परमावधिके जितने भेद हैं तेतीवार क्रमतें ध्रुवहारका भाग दीएं उत्कृष्ट परमावधिका विषयभूत द्रव्य होइ ताकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं एक परमाणू मात्र सर्वावधिका विषय हो है ॥ ३९२ ॥ ते परमावधिके भेद कितने हैं ? सो कहिए है—

परमावहिस्स भेदा सगओगाहणवियप्पहदतेऊ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ॥ ३९३ ॥

परमावधेर्भेदाः स्वकावगाहनाविकल्पहततेजसः ।
इति ध्रुवहारं वर्गणागुणकारं वर्गणां जानीहि ॥ ३९३ ॥

जी० प्र०—परमावधिज्ञानस्य भेदा तेजस्कायिकावगाहनविकल्पैर्गुणिततेजस्कायिकजीवराशि ≡ a मात्रा भवंति ≡ a । ६ । a । ते (१-१ / प)

अवगाहनविकल्पाः प्राग्मत्स्यरचनायां तज्जघन्यमिदं ६ । ८ । २२ / a / प १९ । ८ । ७ । ८ । २२ ७ ९ । (१— a a a) तदुत्कृष्टे ६ । ८ । ८ / a / प ६ । ८ । ८ । ७ ९ (a a) विशोध्य शेष-

मपवर्त्य ६ । a (प a) एकरूपे निक्षिप्ते एतावतः ६ । a (प a) । इत्येवं ध्रुवहारप्रमाणं वर्गणागुणकारप्रमाणं वर्गणाप्रमाणं च जानीहि ॥ ३९३ ॥

स० चं०—अग्निकायके अवगाहनाके जेते भेद हैं तिनकरि अग्निकायके जीवनिका परिमाणकौं गुणें जो परिमाण होइ तितना परमावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद हैं सो अग्निकायकी जघन्य अवगाहनाका प्रदेशनिका परिमाणकौं अग्निकायकी उत्कृष्ट अवगाहनाका परिमाणविषैं घटाएं जो प्रमाण होइ तिनमें एक मिलाएं अग्निकायकी अवगाहनाके भेदनिका प्रमाण हो है । सो जीवसमासका अधिकारविषैं मत्स्यरचना करी है तहां कहे ही हैं। बहुरि अग्निकायका जीवनिका परिमाण कायमार्गणाका अधिकारविषैं कह्या है सो जानना। इनि दोऊनिकौं परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ तितना परमावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद है ऐसैं ध्रुवहारका प्रमाण, वर्गणा गुणकारका प्रमाण, वर्गणाका प्रमाण हे शिष्य ! तू जानि ॥ ३९३ ॥

देसोहिअवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं ।
तदियादिवियप्पेसु वि असंखवारोत्ति एस कमो ॥ ३९५ ॥

देशावध्यवरद्रव्यं ध्रुवहारेणावहिते भवेद्द्वितीयं ।
तृतीयादिविकल्पेष्वपि असंख्यवार इत्येष क्रमः ॥ ३९४ ॥

जी० प्र०—यत्प्रागुक्तं देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्यं--स ७ १२- १६ ख । ध्रुवहारेण एकेन भक्तं द्वितीयदेशावधिविषयद्रव्यं भवति—स ७ १२-१६ ख । एवं तृतीयादिविकल्पेष्वपि असंख्यातवारपर्यंतमेष एव क्रमः कर्तव्यः ॥ ३९४ ॥ तथा सति किं स्यादिति चेदाह—

स० चं —देशावधिज्ञानका विषयभूत जघन्य द्रव्य पूर्वै कह्या था ताकौं ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो दूसरा देशावधिकेभेदका विषयभूत द्रव्य होइ । ऐसैं ही ध्रुवहारका भाग देतैं देतैं तीसरा चौथा इत्यादि भेदनिका विषयभूत द्रव्य होहि ऐसैं असंख्यातवार अनुक्रम करना ॥ ३९४ ॥ ऐसैं अनुक्रम होतैं कहा होइ ? सो कहिए है—

देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं ।
तेजोभासमणाणं वग्गणयं केवलं जत्थ ॥ ३९४
पस्सदि ओही तत्थ असंखेज्जाओ हवंति दीउवही ।
वासाणि असंखेज्जा होंति असंखेज्जगुणिदकमा ३९६ जुम्मं

देशावधिमध्यभेदे सविस्रसोपचयतेजःकर्मांगं ।
तेजोभाषामनसां वर्गणां केवलां यत्र ॥ ३९५ ॥
पश्यत्यवधिस्तत्र असंख्येया भवंति द्वीपोदधयः ।
वर्षाणि असंख्यातानि भवंति असंख्यातगुणितक्रमाणि ॥ ३९६ ॥

जी० प्र०—देशावधिज्ञानमध्यमविकल्पेषु यत्र सविस्रसोपचयं तैजसशरीरस्कंधं तदग्रे यत्र तादृश कार्माणशरीरस्कंधं तदग्रे यत्र केवलां विविस्रोपचयां तैजसवर्गणां तदग्रे यत्र केवलां भाषावर्गणां तदग्रे केवलां मनोवर्गणां च अवधिज्ञानं जानाति । तत्र पंचसु स्थानेषु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपोदधयः काला असंख्यातवर्षाणि च भवंति तथापि उत्तरोत्तरासंख्यातगुणितक्रमाणि ॥ ३९५–३९६ ॥

स० चं०—देशावधिके मध्य भेदनिविषैं देशावधिज्ञान जिस भेदविषैं विस्रसोपचय सहित तैजस शरीररूप स्कंधकौं जानैं हैं बहुरि तिसही क्रमतैं जिस भेदविषैं विस्रसोपचयसहित कार्माण शरीर स्कंधकौ जानै है बहुरि इहांतैं आगैं जिस भेदविषैं विस्रसोपचयरहित केवल तैजस वर्गणाकौं जानैं है । बहुरि इहांतैं आगैं भेदविषैं विस्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणाकौ जानै हैं । इहांतैं आगैं जिस भेदविषैं विस्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणाको जानैं हैं तहां इनि पांच स्थाननिविषैं क्षेत्रका प्रमाण असंख्यात द्वीप समुद्र जानना । अर काल असंख्यात वर्षमात्र जानना । पूर्वोक्त पंच भेद लीएं अवधिज्ञान असंख्यात द्वीप समुद्रविषैं पूर्वोक्त स्कंध असंख्यात वर्षपर्यंत अतीत अनागत यथायोग्य पर्यायके धारी तिनिकौं जानै है परि इतना विशेष है जो इनि पंचभेदनिविषैं पहिला भेदसंबंधी क्षेत्रकालका परिमाण है । तातैं दूसरा भेदसंबंधी क्षेत्रकालका परिमाण असंख्यातगुणा है । दूसरेतैं तीसरेका असंख्यात गुणा है । ऐसैं ही पांचवां भेदपर्यंत जानना । सामान्यपनैं सबका क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र अर काल असंख्यात वर्ष कहे हैं जातैं असंख्यातके भेद घने हैं ॥ ३९५–३९६ ॥

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारस्स विभज्जं सव्वोही जाव ताव हवे ॥ ३९७ ॥

ततः कार्मणस्य एकसमयप्रबद्धं विविस्रसोपचयं ।
ध्रुवहारस्य विभाज्यं सर्वावधिः यावत्तावद्भवेत् ॥ ३९७ ॥

जी० प्र०—ततः पश्चात् तां मनोवर्गणां ध्रुवहारेण पुनः पुनर्भक्त्वा यत्र विकल्पे विविस्रसोपचयः-कार्मणैकसमयप्रबद्ध उत्पद्यते, तत उपरि स एव ध्रुवहारस्य भाज्यं भवेत् यावत्सर्वावधिज्ञानं तावत् ॥ ३९७ ॥

स० चं०—तहां पीछैं तिस मनोवर्गणाकौं ध्रुवहारका भाग दीजिए ऐसैं ही भाग देतैं देतैं विस्रसोपचयरहित कार्माणका समय प्रबद्धरूप द्रव्य होइ । याकौं भी ध्रुवहारका भाग दीजिए । ऐसैं ही ध्रुवहारका भाग यावत् सर्वावधिज्ञान होइ तहां पर्यंत जानना । विस्रसोपचयका स्वरूप योगमार्गणाविषैं कह्या है सो जानना ॥३९७॥

एदम्हि विभज्जंते दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं ।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ॥ ३९८ ॥

एतस्मिन् विभज्यमाने द्विचरमदेशावधौ वर्गणा ।
चरमे कार्मणस्यैकवर्गणा एकवारभक्ता तु ॥ ३९८ ॥

जी० प्र०—एतस्मिन् कार्मणसमयप्रबद्धे विभज्यमाने सति द्विचरमे देशावधिविकल्पे कार्मणवर्गणैवावशिष्यते, तु—पुनः, चरमे ध्रुवहारेण एकवारभक्तैव अवशिष्यते ॥ ३९८ ॥

स० च०—इस कार्माण समय प्रबद्धकौं ध्रुवहारका भागदीएं संतैं देशावधिका द्विचरम भेदविषैं कार्माणवर्गणा रूप विषयभूत द्रव्य हो है जातैं ध्रुवहारमात्र वर्गणानिका समूह रूप समयप्रबद्ध है । बहुरि याकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं चरम जो देशावधिका अंतका भेद तिसविषैं विषयभूत द्रव्य हो है ॥ ३९८ ॥

अंगुलअसंखभागे दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्हि ।

एगागासपदेसो वड्ढदि संपुण्णलोगोत्ति ॥ ३९९ ॥

अंगुलासंख्यभागे द्रव्यविकल्पे गते तु क्षेत्रे ।
एकाकाशप्रदेशो वर्धते संपूर्णलोक इति ॥ ३९९ ॥

जी० प्र०—सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रेषु द्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकाकाशप्रदेशो वर्धते इत्ययं क्रमः तावद्विधेयः यावत् सर्वोत्कृष्ट-देशावधिविषयक्षेत्रं संपूर्णलोको भवति ≡ ॥ ३९९ ॥

स० चं०—सूच्यंगुलका असख्यातवां भागप्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद होतै संतैं क्षेत्रविषैं एक आकाशका प्रदेश बंधै ऐसा अनुक्रम जघन्य देशावधिके क्षेत्रतैं उत्कृष्ट देशावधिज्ञानका विषयभूत सर्व संपूर्णलोक तीहिं पर्यंत जानना। सो यहु कथन टीकाविषैं पूर्वैं विशदरूप कह्या ही था ॥ ३९९ ॥

आवलिअसंखभागो जहण्णकालो कमेण समयेण ।
वड्ढदि देसोहिवरं पल्लं समऊणयं जाव ॥ ४०० ॥

आवल्यसंख्यभागो जघन्यकालः क्रमेण समयेन ।
वर्धते देशावधिवरं पल्यं समयोनकं यावत् ॥ ४०० ॥

जी० प्र०—जघन्यदेशावधिविषयकालः आवल्यसंख्येयभागः $\frac{८}{a}$ सोयं क्रमेण ध्रुवाध्रुववृद्धिरूपेण एकैकसमयेन तावद्वर्धते यावदुत्कृष्टदेशावधि-विषयः समयोनं पल्यं भवेत् प---१ ॥ ४०० ॥ अथ तावेव क्रमौ एकान्नविंशतिकांडकेषु वक्तुमनास्तावत्प्रथमकांडके गाथासार्धद्वयेनाह—

स० चं०—देशावधिका विषयभूत जघन्य काल आवलीका असख्यातवां भाग प्रमाण है सो यहु अनुक्रमतैं ध्रुववृद्धिकरि अथवा अध्रुववृद्धिकरि एक एक समय पर्यंत तहां पर्यंत बधै जहां एक समयघाटि पल्यप्रमाण उत्कृष्ट देशावधिका विषयभूत काल होइ, उत्कृष्ट देशावधिज्ञान एक समय घाटि पल्यप्रमाण अतीत अनागत कालविषैं

भए वा होंहिगे जे स्वयोग्य विषय तिनैं जानैं है ॥ ४०० ॥ आगैं क्षेत्रकालका परिमाण उगणीस कांडकनिविषैं कह्या चाहैं है । कांडक नाम पर्वका है जैसैं साठेकी पैली हो है सो गांठितैं आगिली गांठि पर्यंत जो होइ ताकौं एक पर्व कहिए तैसैं किसी विवक्षित भेदतैं लगाइ किसी विवक्षित भेदपर्यंत जेते भेद होंहि तिनिका समूह सो एक कांड कहिए । ऐसैं देशावधिज्ञानविषैं उगणीस कांडक हैं तहां प्रथम कांडकविषैं क्षेत्रकालका परिमाण अढाई गाथानिकरि कहैं हैं—

अंगुलअसंखभागं धुवरूवेण य असंखवारं तु ।
असंखसंखं भागं असंखवारं तु अद्धुवगे ॥ ४०१ ॥

अंगुलासंख्यवारं ध्रुवरूपेण च असंख्यवारं तु ।
असंख्यसंख्यं भागं असंख्यवारं तु अध्रुवगे ॥ ४०१ ॥

जी० प्र०——घनांगुलासंख्यातैकभागं आवलिभक्तघनांगुलमात्रं ध्रुवरूपेण वृद्धिप्रमाणं स्यात् सा च वृद्धिः प्रथमकांडकचरमविकल्पपर्यंतं असंख्यात वारं भवति । तु-पुनः, तत्रैव कांडके अध्रुववृद्धिविवक्षायां तद्वृद्धि--प्रमाणं घनांगुलस्यासंख्यातैकभागमात्रं संख्यातैकभागमात्रं च स्यात् सापि तच्चरमपर्यंतमसंख्यातवारं भवति ॥ ४०१ ॥

स० चं०——घनांगुलकौं आवलीका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ऐसा अंगुलका असंख्यातवां भागमात्र ध्रुवरूपकरि वृद्धिका प्रमाण हो है सो ध्रुववृद्धि प्रथम कांडकविषैं अंतका भेद पर्यंत असंख्यातवार हो है । बहुरि तिस ही प्रथम कांडकविषैं अंतका भेदपर्यंत अध्रुववृद्धि भी असंख्यातवार हो है सो अध्रुववृद्धिका परिमाण घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण वा घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण है ॥ ४०१ ॥

धुवअद्धुवरूवेण य अवरे खेत्तम्मि वड्ढिदे खेत्ते ।

अवरे कालम्हि पुणो एक्केकं वड्ढदे समयं ॥ ४०२ ॥

ध्रुवाध्रुवरूपेण च अवरे क्षेत्रे वर्द्धिते क्षेत्रे ।
अवरे काले पुनः एकैको वर्धते समयः ॥ ४०२ ॥

जी० प्र०—तेन उक्तध्रुववृद्धिप्रमाणेन अध्रुववृद्धिप्रमाणेन वा जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रस्योपरि क्षेत्रे वर्धिते जघन्यकालस्योपरि एकैकः समयो वर्धते ॥ ४०२ ॥

स० चं०—तीहिं पूर्वोक्त ध्रुववृद्धि प्रमाणकरि वा अध्रुववृद्धि प्रमाणकरि जघन्य देशावधिका विषयभूत क्षेत्रकौं वधतैं संतैं जघन्य कालके ऊपरि एक एक समय बधै है। भावार्थ-पूर्वै यहु क्रम कह्या था जो द्रव्यकी अपेक्षा सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण भेद व्यतीत होइ तब क्षेत्रविषैं एक प्रदेश बधै । अब इहां कहिए है जघन्य ज्ञानका विषयभूत जेता क्षेत्र प्रमाण कह्या ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकारकरि एक एक प्रदेश बंधते वधतैं आवलीका भाग घनांगुलकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितना प्रदेश बधै तब जघन्य देशावधिका विषयभूत कालका प्रमाण कह्या था तातैं एक समय और बंधता कालका प्रमाण होइ। बहुरि तितना ही प्रदेश क्षेत्रविषैं पूर्वोक्त प्रकारकरि बधै तब तिसकालतैं एक समय बधता कालका प्रमाण होइ ऐसैं।तितने।तितने प्रदेश बधैं जो कालप्रमाणविषैं एक एक समय बधै सो तौ ध्रुववृद्धि कहिए। बहुरि पूर्वोक्तप्रकार ही विवक्षित क्षेत्रतैं कहीं घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेशनिकी वृद्धि भए पूर्व कालतैं एकसमय बंधता काल होइ, कहीं घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेशनिकी वृद्धि भएं पहले कालतैं एक समय बंधता काल होइ तहां अध्रुववृद्धि कहिए ऐसैं प्रथमकांडकविषैं अंत भेद पर्यंत ध्रुववृद्धि होइ तौ असख्यातवार हो है बहुरि अध्रुववृद्धि होइ तौ असंख्यातवार हो है ॥ ४०२ ॥

संखातीदा समया पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय पढमादी कंडये वोच्छं ॥ ४०३ ॥

संख्यातीताः समयाः प्रथमे पर्वे उभयतो वृद्धिः ।
क्षेत्रं कालमाश्रित्य प्रथमादीनि कांडकानि वक्ष्ये ॥ ४०२ ॥

जी० प्र०—एवं सति प्रथमे पर्वणि कांडके उभयतः ध्रुवरूपतोऽध्रुवरूपतो वा वृद्धिः क्षेत्रवृद्धिःसंख्यातीताः समयाः जघन्यकालोनतदुत्कृष्टकालमात्राः स्युः ८ । a-१ क्षेत्रवृद्धिस्तु तज्जघन्यक्षेत्रोनतदुत्कृष्टक्षेत्रमात्री ६ । a-१ इमौ वृद्धिक्षेत्रकालौ जघन्यक्षेत्रकालाभ्यां—६ । ८ समच्छेदेन
१ । a ।   १ । a   a a
६ । १ । ८ । १ । मेलयित्वा ६ । a । ८ । a अपवर्तितौ । ६ । ८ प्रथमकांडकचरमविकल्पविषयौ क्षेत्रकालौ स्यातां इतः परं क्षेत्रं कालं
a । १ । a । १   १ । a । १ । a   १ । १
चाश्रित्य प्रथमादीनि एकान्नविंशतिकांडकानि वक्ष्ये इत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥ ४०२ ॥

स० चं —ऐसें होतें प्रथम पर्व कहिए पहला कांडक तीहिविषैं उभयतः कहिए ध्रुवरूप अध्रुवरूप दोऊ वृद्धिकौं लीएं असंख्याते समय हो हैं । भावार्थ प्रथमकांडकविषैं जघन्य कालका परिमाणतें पूर्वोक्तप्रकार ध्रुववृद्धिकरि वा अध्रुववृद्धिकरि एक एक समय बवद्धतें असंख्यात समय बधै हैं । ते कितने हैं ? प्रथमकांडकका उत्कृष्ट कालके समयनिका प्रमाणमेंस्यों जघन्य कालके समयनिका प्रमाण घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै तितने असंख्याते समय प्रथम कांडकविषैं बधै हैं । ऐसें ही प्रथम कांडकका उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाणमेंस्यों जघन्य क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाण घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै तितने प्रदेश प्रथम कांडकनिविषैं पूर्वोक्त प्रकारकरि बधै हैं । अब जो वृद्धिरूप समयनिका प्रमाण कह्या सो जघन्य काल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र तीहिविषैं जोडिए तब प्रथम कांडकका अतभेदविषैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल हो है । बहुरि वृद्धिरूप प्रदेशनिका परिमाणकौं जघन्य क्षेत्र घनांगुलका असंख्यातवां भागमात्र तीहिविषैं मिलाएं प्रथम कांडकका अंत भेदविषैं घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र हो हैं । इहांतैं आगैं विषयभूत क्षेत्रकाल अपेक्षा देशावधिके उगणीस कांडक कहैंगे ऐसा आचार्य प्रतिज्ञा करी है ॥ ४०२ ॥

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदोवि संखेज्जो ।

अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥ ४०४ ॥

अंगुलावल्योः भागोऽसंख्येयोऽपि संख्येयः ।

अंगुलमावल्यंत आवलिकाश्चांगुलपृथक्त्वं ॥ ४०४ ॥

जी० प्र०—प्रथमकांडके क्षेत्रकालौ जघन्यौ घनांगुलावल्योरसंख्यातैकभागौ ६ । ८ उत्कृष्टौ तयोः संख्येयभागौ ६ । ८ द्वितीयकांडके क्षेत्रं
a a १ १
घनांगुलं । कालः आवल्यंतः-किंचिदूनावलिरित्यर्थः ६ । ८— तृतीयकांडके क्षेत्रं घनांगुलपृथक्त्वं कालः आवलिपृथक्त्वं पृ ६ । ८ ॥ ४०४ ॥

स० चं०—प्रथम कांडकविषैं जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है अर जघन्यकाल आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि तिस ही प्रथम कांडकविषैं उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है अर काल आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि आगैं उत्कृष्ट भेद अपेक्षा दूसरा कांडकविषैं क्षेत्र घनांगुल प्रमाण है अर काल 'आवलियंत' कहिए किछू घाटि आवली प्रमाण है। बहुरि तीसरा कांडकविषैं क्षेत्र पृथक्त्व घनांगुल प्रमाण है अर काल पृथक्त्व आवली प्रमाण है। तीनके तौ ऊपरि अर नवमेके नीचैं पृथक्त्व संज्ञा जाननी ॥ ४०४ ॥

आवलियपुधत्तं पुण हत्थं तह गाउयं मुहुत्तं तु ।
जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥ ४०५ ॥

आवलिपृथक्त्वं पुनः हस्तस्तथा गव्यूतिः मुहूर्तस्तु ।

योजनं भिन्नमुहूर्तः दिवसांतः पंचविंशतिस्तु ॥ ४०५ ॥

जी० प्र०—चतुर्थकांडके कालः आवलिपृथक्त्वं । क्षेत्रं एकहस्तः । ह १ । ८ पृ । पंचमकांडके क्षेत्रं एककोशः । कालः अंतर्मुहूर्तः । को १ । का २ ७ षष्ठकांडके क्षेत्रमेकयोजन, कालः भिन्नमुहूर्तः । यो १ का भिन्न मु० १— । सप्तमकांडके कालः किंचिदूनदिवसः क्षेत्रं पंचविंशतियोजनानि यो २५ का दि १— ॥ ४०५ ॥

स० च०—चौथा कांडकविषैं काल पृथक्त्व आवली प्रमाण अर क्षेत्र एक हाथ प्रमाण है। बहुरि पांचवां कांडकविषैं क्षेत्र एक कोश अर काल अंतर्मुहूर्त है बहुरि छठा कांडकविषैं क्षेत्र एक योजन अर काल भिन्न मुहूर्त कहिए किछू घाटि मुहूर्त है। बहुरि सातवां कांडकविषैं काल किछू घाटि एकदिन अर क्षेत्र पचीस योजन है ॥४०४॥

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुवलोए वासपुधत्तं च रुचगम्मि ॥ ४०६ ॥

भरते अर्धमासः साधिकमासश्च जंबूद्वीपे ।
वर्षश्च मनुजलोके वर्षपृथक्त्व च रुचके ॥ ४०६ ॥

जी० प्र०—अष्टमकांडके क्षेत्रं-भरतक्षेत्रं, काल अर्धमासः, भर अर्धमा= । नवमकांडके क्षेत्रं जबूद्वीपः, कालः साधिकमासः, जं= । मा १ । दशमकांडके क्षेत्रं मनुष्यलोकः कालः एकवर्षः, ४५ ल वर्ष १ । एकादशे कांडके क्षेत्रं रुचकद्वीपः, कालः वर्षपृथक्त्वं रु । व पृं ॥ ४०६ ॥

स० चं०—आठवां कांडकविषैं क्षेत्र भरतक्षेत्र अर काल आधा मास है। बहुरि नवमा कांडकविषैं क्षेत्र जंबूद्वीप प्रमाण अर काल किछू अधिक एक मास है। बहुरि दशवां कांडकविषैं क्षेत्र मनुष्य लोक अढाई द्वीप प्रमाण अर काल एक वर्ष है। बहुरि ग्यारहवां कांडकविषैं क्षेत्र रुचक द्वीप अर काल पृथक्त्व वर्ष प्रमाण है ॥ ४०६ ॥

संखेज्जपमे वासे दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
वासम्मि असंखेज्जे दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥ ४०७ ॥

संख्यातप्रमे वर्षे द्वीपसमुद्रा भवंति संख्याताः ।
वर्षे असंख्येये द्वीपसमुद्रा असंख्येयाः ॥ ४०७ ॥

जी० प्र०—द्वादशे कांडके क्षेत्रं संख्येयद्वीपसमुद्राः । कालः संख्यातवर्षाणि ह्वी=१=१ वर्ष १ । उपरित्रयोदशादिषु कांडकेषु तैजसशरीरादिद्रव्यविकल्पस्थानेषु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपसमुद्राः कालः असंख्यातवर्षाणि उभयेऽपि असंख्यातगुणितक्रमेण भवंति । चरमकांडकचरमे द्रव्यं ध्रुवहारभक्तकार्मणवर्गणा व क्षेत्रं संपूर्णलोकः ≡ कालः समयोनपल्यं प—१ ॥ ४०७ ॥

स० चं०—बारहां कांडकविषें क्षेत्र संख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण अर काल संख्यात वर्ष प्रमाण है। बहुरि तेरहां कांडक जे तैजस शरीरादिक द्रव्यकी अपेक्षा पूर्वें स्थानक कहे तिनिविषें क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण है अर काल असंख्यात वर्ष प्रमाण है परि इनविषें इतना विशेष है-तेरहां चौदहांविषें असंख्यातगुणा क्षेत्रकाल है ऐसें ही उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा क्षेत्र काल जानना । बहुरि उगणीसवां अंतका कांडकविषें द्रव्य तौ कार्माण वर्गणाकौं ध्रुवहारका भाग दीजिए तीहि प्रमाण अर क्षेत्र संपूर्ण लोकाकाश प्रमाण अर काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है ॥ ४०७ ॥

कालविसेसेणवहिदखेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी ।
अद्धुववड्ढीवि पुणो अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥ ४०८ ॥

कालविशेषेणावहितक्षेत्रविशेषो ध्रुवा भवेद्वृद्धिः ।
अध्रुववृद्धिरपि पुनः आविरुद्धा इष्टकांडे ॥ ४०८ ॥

जी० प्र०—विवक्षितकांडके जघन्यक्षेत्रं स्वोत्कृष्टक्षेत्र जघन्यकालं च स्वोत्कृष्टकाले विशोध्य शेषराशी क्षेत्रकालविशेषौ स्यातां । तत्र प्रथमकांडके कालविशेषेण $\frac{८}{१ । a}$ । a-१ क्षेत्रविशेषः $\frac{६}{१ । a}$ । a-१ भक्त्वा $\frac{६ \; a-१}{१ \; a} = \frac{a-१}{१ \; a}$ अपवर्तितः $\frac{६}{८}$ ध्रुवावृद्धिर्भवेत् । सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रद्रव्यविकल्पेषु अवस्थितरूपेण गतेषु एकप्रदेशः क्षेत्रे वर्धते । अनेन क्रमेण आवलिभक्तघनांगुलप्रमितप्रदेशाः जघन्यक्षेत्रस्योपरि वर्धते । तदा जघन्यकालस्योपरि एकः समयो वर्धते । एवं तत्कांडकचरमपर्यंतं ध्रुवरूपेण जघन्यकालस्योपरि वर्धितसमयप्रमाणमिदं । $\frac{८ \; a-१}{१ \; a}$ अत्र च जघन्यकाले $\frac{८}{a}$ सम-

च्छेदेन $\frac{\text{६}}{\text{a}}$। $\frac{\text{१}}{\text{१}}$। मिलिते प्रथमकांडकचरमे घनांगुलसंख्येयभागो भवति $\frac{\text{६}}{\text{१}}$ एवं सर्वकांडकेषु ध्रुववृद्धिं साधयेत्। अध्रुववृद्धिरपि विवक्षितकांडकेन तत्क्षेत्रकालाविरोधेन वक्तव्या ॥ ४०८ ॥ तद्यथा—

स० चं —विवक्षित कांडकका जघन्य क्षेत्रके प्रदेशनिका परिमाण तिस ही कांडकका उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशनिका परिमाणमें घटाएं जो प्रमाण रहै ताकौं क्षेत्र विशेष कहिए। बहुरि विवक्षित कांडकका जघन्य कालकें समयनिका परिमाण तिस ही कांडकका उत्कृष्ट कालके समयनिका परिमाणविषैं घटाए अवशेष जो परिमाण रहै ताकौं कालविशेष कहिए। तहां क्षेत्र विशेषकौं काल विशेषका भाग दीए जो प्रमाण होइ सोई तिस कांडकविषैं ध्रुववृद्धिका परिमाण जानना। सो प्रथम कांडकविषैं ऐसैं करतैं घनांगुलकौं आवलीका भाग दीए जो प्रमाण होइ सो ध्रुववृद्धिका प्रमाण जानना। सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद भए तो क्षेत्रविषैं एक प्रदेश बधै अर आवलीकरि भाजित घनांगुल प्रमाण प्रदेश बधैं तब कालविषैं एक समयकी बधवारी होइ ऐसैं प्रथमकांडकका अंतपर्यंत ध्रुववृद्धिकरि जेते समय बधैं तिनकौं जघन्य कालविषैं मिलाएं आवलीका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रथम कांडकका उत्कृष्ट काल हो है। बहुरि जेते जघन्य क्षेत्रतैं प्रदेश बधैं तितने जघन्य क्षेत्रविषैं मिलाएं घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रथमकांडकका उत्कृष्ट क्षेत्र हो है। ऐसैं ही सर्व कांडकविषैं ध्रुववृद्धिका प्रमाण साधन करना। विवक्षित कांडकविषैं समान प्रमाण लीए प्रदेशनिकी वृद्धि होतैं जहां समयकी वृद्धि होइ तहां ध्रुववृद्धि जाननी। बहुरि अध्रुववृद्धि भी यथायोग्य क्षेत्र कालका अविरोधकरि साधनी ॥ ४०८ ॥ सोई कहिए है—

अंगुलअसंखभागं संखं वा अंगुलं च तस्सेव।
संखमसंखं एवं सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥ ४०९ ॥

अंगुलासंख्यभागः संख्यं वा अंगुलं तस्यैव।

संख्यमसंख्यमेवं श्रेणीप्रतरयोरध्रुवगायां ॥ ४०९ ॥

जी० प्र०—घनांगुलासंख्यातैकभागमात्राः ६ / a वा घनांगुलसंख्येयभागमात्राः ६ / १ वा घनांगुलमात्राः ६ वा संख्यातघनांगुलमात्राः ६ १ वा असंख्यातघनांगुलमात्राः ६ a एवं श्रेणीप्रतरयोरपि, तथाहि—श्रेण्यसंख्येयभागमात्राः — / a वा श्रेणिसंख्येयभागमात्राः — / १ वा श्रेणिमात्राः — वाः संख्यातश्रेणिमात्राः—१ वा असंख्यातश्रेणिमात्राः—a वा प्रतरासंख्येयभागमात्राः = / a वा प्रतरसंख्येयभागमात्राः = / १ वा संख्यातप्रतरमात्रा = १ वा असंख्यातप्रतरमात्राः = a प्रदेशा वर्धित्वा वर्धित्वा काले एकैकसमयो वर्धते इत्यध्रुववृद्धिक्रमः ॥ ४०९ ॥

स० च०—अध्रुववृद्धिविषैं पूर्वोक्त क्रमतैं घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्रविषैं वधैं तब काल विषैं एक समय वधै। अथवा घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्रविषैं वधै तब कालविषैं एक समय वधै। अथवा घनांगुल प्रमाण अथवा संख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा असंख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा श्रेणीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणीका संख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणी प्रमाण अथवा संख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा असंख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा प्रतरका असंख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतर-का संख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतर प्रमाण अथवा संख्यात प्रतरप्रमाण अथवा असंख्यात प्रतरप्रमाण प्रदेश क्षेत्रविषैं वधैं तब कालविषैं एक समय वधैं ऐसा अध्रुववृद्धिका अनुक्रम है इहां किछू नियम नाहीं जो इतने प्रदेश वधैं ही समय वधैं तातैं याका नाम अध्रुववृद्धि है। इहां इतना विशेष—जिस कांडकविषैं जिस जिस प्रकार वृद्धि संभवै तिस तिस प्रकार ही अध्रुववृद्धि जाननी। जैसैं प्रथम कांडकविषैं घनांगुलका असंख्यातवां भाग वा घनांगु-लका संख्यातवां भागकरि ही अध्रुववृद्धि संभवै है। जातैं तहां उत्कृष्ट भेदविषैं भी घनांगुलका संख्यातवां भाग मात्र ही क्षेत्र है तौ तहां घनांगुलादिकरि वृद्धि कैसैं संभवै! बहुरि अंतके कांडकविषैं घनांगुलका संख्यातवां भाग आदि संख्यात प्रतरपर्यंत सर्व प्रकारकरि अध्रुववृद्धि संभवै है ऐसैं ही अन्य कांडकनिविषैं यथासंभवकरि अध्रुव-वृद्धि जाननी ॥ ४०९ ॥

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं ।
उक्कस्सं खेत्तं पुण लोगो संपुण्णओ होदि ॥ ४१० ॥

कार्मणवर्गणां ध्रुवहारेणैकभाजिते द्रव्यं ।
उत्कृष्टं क्षेत्रं पुनः लोकः संपूर्णो भवति ॥ ४१० ॥

जी० प्र०—कार्मणवर्गणा एकवारं ध्रुवहारेण भक्ता देशावध्युत्कृष्टद्रव्यं भवति व तदुत्कृष्टक्षेत्रं पुनः संपूर्णलोको भवति ≡ ॥ ४१० ॥

स० चं०—कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने परमाणूनिका स्कंधकौं उत्कृष्ट देशावधि जानै है बहुरि क्षेत्रकरि सपूर्ण लोकाकाशको जानै है। लोकाकाशविषैं जितने पूर्वोक्त स्कंध होंइ वा तिनतैं स्थूल होंइ तिन सवनिकौं जानैं है ॥ ४१० ॥

पल्लं समऊण काले भावेण असंखलोगमेत्ता हु ।
दव्वस्स य पज्जाया वरदेसोहिस्स विसया हु ॥ ४११ ॥

पल्यं समयोनं काले भावेन असंख्यलोकमात्रा हि ।
द्रव्यस्य च पर्याया वरदेशावधेर्विषया हि ॥ ४११ ॥

जी० प्र०—काले देशावधेरुत्कृष्टं समयोनपल्यं भवति प—१ भावेन पुनः असंख्यातलोकमात्रं भवति ≡ a कालभावशब्दद्वयवाच्यास्ते द्रव्यस्य पर्याया वरदेशावधिज्ञानस्य स्फुटं विषया भवंति ॥ ४११ ॥

सं० चं०—देशावधिका विषय भूत उत्कृष्ट काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है। बहुरि भाव असंख्यात लोक प्रमाण है सो इहां काल अर भाव शब्दकरि द्रव्यके पर्याय उत्कृष्ट देशावधि ज्ञानका विषयभूत जान-

ना। भावार्थ—एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण अतीत कालविषै जे अपने जानने योग्य द्रव्यके पर्याय भए अर तितने ही प्रमाण अनागत कालविषैं अपने जानने योग्य द्रव्यके पर्याय होंहिगे तिनकौं उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान जानैं। बहुरि भावकरि तिनि पर्यायनिविषैं असंख्यात लोक प्रमाण जे पर्याय तिनिकौं जानैं ऐसैं काल अर भावशब्दकरि द्रव्यके पर्याय ग्रहे। ऐसैं ही अन्य भेदनिविषैं भी जहां कालका वा भावका परिमाण कह्या है तहां द्रव्यके पर्यायनिका ग्रहण करना। बहुरि इहां देशावधिका मध्य भेदनिविषैं भावका प्रमाण आगैं सूत्र कहैंगे तिस अनुक्रमतैं जानना॥ ४११॥

काले चउण्ह उड्ढी कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य।
उड्ढीए दव्वपज्जय भजिदव्वा खेत्तकाला हु॥ ४१२॥

काले चतुर्णां वृद्धिः कालो भजितव्यः क्षेत्रवृद्धिश्च।
वृद्ध्या द्रव्यपर्याययोः भजितव्यौ क्षेत्रकालौ हि॥ ४१२॥

जी० प्र०—यदा कालवृद्धिस्तदा द्रव्यादीनां चतुर्णां वृद्धयो भवंति। यदा क्षेत्रवृद्धिस्तदा कालवृद्धिः स्याद्वा न वेति भजनीया। यदा द्रव्यभाववृद्धी तदा क्षेत्रकालवृद्धी अपि भजनीये इत्येतत्सर्वं युक्तियुक्तमेव॥ ४१२॥ अथ परमावधिज्ञानप्ररूपणामाह—

स० चं.—इस अवधि ज्ञानका विशेष विषैं जब कालकी वृद्धि होइ तब तो द्रव्य क्षेत्र काल भाव च्यार्‍यो हीकी वृद्धि होइ। बहुरि जब क्षेत्रकी वृद्धि होइ तब काल की वृद्धि भजनीय है होइ भी अर नाहिं भी होइ। बहुरि जब द्रव्यकी अर भावकी वृद्धि होइ तब क्षेत्रकी अर कालकी वृद्धि भजनीय है होइ भी अर न भी होइ। बहुरि द्रव्यकी अर भावकी वृद्धि युगपत् हो है यह सर्व कथन विचारतैं युक्त ही है या प्रकार देशावधि ज्ञानका विषय भूत द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाण कह्या॥ ४१२॥ आगैं परमावधि ज्ञानकी प्ररूपणा कहै हैं—

देसावहिवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे णियमा ।
परमावहिस्स अवरं दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥ ४१३ ॥

देशावधिवरद्रव्यं ध्रुवहारेणावहिते भवेन्नियमात् ।
परमावधेरवरं द्रव्यप्रमाणं तु जिनदिष्टं ॥ ४१३ ॥

जी० प्र०—देशावधेरुत्कृष्टद्रव्यमिदं व ९ तु—पुनः ध्रुवहारेण भक्तं तदा व ९९ परमावधिविषयजघन्यद्रव्यं नियमेन भवतीति जिनैरुक्तं ॥ ४१३ ॥ इदानीं परमावधेरुत्कृष्टद्रव्यप्रमाणमाह—

स चं.—उत्कृष्ट देशावधि ज्ञानका विषय भूत जो द्रव्य कह्या ताकौं एकबार ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना परमाणूनिका स्कंध रूप जघन्य परमावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्य नियमकरि जिनदेवने कह्या है । ४१३ ।

अब परमावधिका उत्कृष्ट द्रव्य प्रमाण कहैं हैं—

परमावहिस्स भेदा सगउग्गाहणवियप्पहददेतऊ ।
चरिमे हारपमाणं जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥ ४१४ ॥

परमावधेर्भेदाः स्वकावगाहनविकल्पाहततेजसः ।
चरमे हारप्रमाणं ज्येष्ठस्य च भवति द्रव्यं तु ॥ ४१४ ॥

जी० प्र०—परमावधिज्ञानविकल्पाः स्वावगाहनविकल्पगुणिततेजस्कायिकजीवसंख्या भवंति ≡ a ६ प a । १ a । तेषु पुनः सर्वोत्कृष्टचरमविकल्पेषु पुनः द्रव्यं ध्रुवहारप्रमाणमेव ९ भवेत् ॥ ४१४ ॥

स० चं—अग्नि कायकी अवगाहनाका जघन्यतैं उत्कृष्ट पर्यंत जो भेदनिका प्रमाण ताकरि अग्निकायके जीवनिका परिमाणकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने परमावधि ज्ञानके भेद हैं। तहां प्रथम भेदके द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग दीए दूसरा भेदका द्रव्य होइ। दूसरा भेदका द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग दीएं तीसरा भेदका द्रव्य होइ। ऐसैं अतका भेद पर्यंत जानने। अंत भेद विषै ध्रुवहार प्रमाण द्रव्य है। ध्रुवहारका जो परिमाण तितने परमाणूनिका सूक्ष्म स्कंधकौं उत्कृष्ट परमावधि ज्ञान जानै है ॥ ४१४ ॥

सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो।
गंगामहाणइस्स पवाहोव्व ध्रुवो हवे हारो ॥ ४१५ ॥

सर्वावधेरेकः परमाणुर्भवति निर्विकल्पः सः।
गंगामहानद्याः प्रवाह इव ध्रुवो भवेत् हारः ॥ ४१५ ॥

जी० प्र०—पुनस्तत्परमावधिसर्वोत्कृष्टं द्रव्यं ९ ध्रुवहारेणैकवार भक्तं एकपरमाणुमात्रं सर्वावधिज्ञानविषयं द्रव्यं भवति। तज्ज्ञानं निर्विकल्पकमेव स्यात् स च ध्रुवहारः गंगामहानद्याः प्रवाहवद्भवति-यथा गंगामहानदीप्रवाहः हिमाचलादवच्छिन्नं प्रवह्य पूर्वोदधौ गत्वा स्थितस्तथायं हारोऽपि देशावधिविषयजघन्यद्रव्यात्परमावधिसर्वोत्कृष्टद्रव्यपर्यंतं प्रवह्य परमाणुपर्यवसाने स्थितः। विषयस्य परमाणोः, विषयिणः परमावधेश्च निर्विकल्पकत्वात् ॥ ४१५ ॥

स. च.—उत्कृष्ट परमावधि ज्ञानका विषय ध्रुवहारहीका भाग दीजिए तव एक परमाणू मात्र सर्वावधि ज्ञानका विषय है सर्वावधि ज्ञान पुद्गल परमाणूकौं जानैं हैं। सो यह ज्ञान निर्विकल्प है यामें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नाहीं। वहुरि जो वह ध्रुवहार कह्या था सो गंगा महानदीका प्रवाह समान ही है जैसे गंगा नदीका प्रवाह हिमाचलस्यों निकसि विच्छेद रहित वहिकरि पूर्व समुद्रकौं प्राप्त होइ तिष्ठ्या तैसें ध्रुवहार जघन्य देशावधिका विषयभूत द्रव्यतैं परमावधिका उत्कृष्ट भेद पर्यंत अवधि ज्ञानके सर्व भेदनिविषैं प्राप्त होइ सर्वावधिका विषयभूत परमाणू तहां तिष्ठ्या। जातैं सर्वावधि ज्ञान भी निर्विकल्प है अर याका विषय परमाणू है सो भी निर्विकल्प है ॥ ४१५ ॥

परमोहिदव्वभेदा जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति ।
तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ॥४१६॥

परमावधिद्रव्यभेदा यावन्मात्रा हि तावन्मात्रा भवंति ।
तस्यैव क्षेत्रकालविकल्पा विषया असंख्यगुणितक्रमाः ॥ ४१६ ॥

जी० प्र०—परमावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पा यावन्मात्राः तावन्मात्रा एव भवंति । तस्य विषयभूतक्षेत्रकालविकल्पाः तावन्मात्रा अपि स्वस्वजघन्यात् स्वस्वोत्कृष्टपर्यंतं असंख्यातगुणितक्रमा भवंति ॥ ४१६ ॥ कीदृगसंख्यातगुणितक्रमाः ? इत्युक्ते आह—

स. चं.—परमावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद कहे अग्निकायकी अवगाहनाके भेदनिका प्रमाणतैं अग्निकायके जीवनिका परिमाणकौं गुणिए तावन्मात्र द्रव्यकी अपेक्षा भेद कहे सो एतावन्मात्र ही परमावधि ज्ञानका विपय भूत क्षेत्रकी अपेक्षा वा कालकी अपेक्षा भेद है। जहां द्रव्यकी अपेक्षा प्रथम भेद है तहां ही क्षेत्र कालकी अपेक्षा भी प्रथम भेद है। जहां दूसरा भेद द्रव्य की अपेक्षा है तहां क्षेत्र काल अपेक्षा भी दूसरा ही भेद है। ऐसैं अंतका भेद पर्यंत जानना। बहुरि जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत एक एक भेदविषैं असंख्यात गुणां असंख्यात गुणा क्षेत्र व काल जानना ॥ ४१६ ॥ कैसा असंख्यात गुणा ? सो कहैं हैं—

आवलिअसंखभागा इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ ।
देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे ॥४१७॥

आवल्यसंख्यभागा इच्छितगच्छधनमानमात्राः ।
देशावधेः क्षेत्रे कालेऽपि च भवंति संवर्गे ॥ ४१७ ॥

जी० प्र०—परमावधेर्विवक्षितक्षेत्रविकल्पे विवक्षितकालविकल्पे च तद्विकल्पस्य यावत्संकलितधनं तावत्प्रमाणमात्रा आवल्यसंख्येयभागाः । पर-

रूपं संवर्गे सति देशावधेरुत्कृष्टक्षेत्रे उत्कृष्टकालेऽपि च गुणकारा भवंति ततस्ते गुणकाराः प्रथमविकल्पे एकः । द्वितीयविकल्पे त्रयः । तृतीयविकल्पे षट् । चतुर्थविकल्पे दश । पंचमविकल्पे पंचदश एवं षष्ठादिचरमपर्यंत नेतव्यं ॥ ४१७ ॥ पुनः प्रकारांतरेण तानेव गुणकारान् उत्पादयति—

स. चं.—परमावधि ज्ञानका विवक्षित क्षेत्रका भेदविषैं वा विवक्षित कालका भेदविषैं जो तिस भेदका संकलित धन होइ तितना आवलीका असंख्यातवां भाग माडि परस्पर गुणन कीया जो प्रमाण होइ सो विवक्षित भेदविषै गुणकार जानना । इस गुणकारकरि देशावधि ज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्रकौं गुणें परमावधिविषैं विवक्षित भेदविषै क्षेत्रका परिमाण होइ अर देशावधिका उत्कृष्ट कालकौं गुणें विवक्षित भेदविषै कालका परिमाण होइ । संकलित धन कहा कहिए जेथवां भेद विवक्षित होइ तहां पर्यंत एकतैं लगाइ एक एक अधिक अंक मांडि तिन सव अंकनिकौं जोडैं जो प्रमाण होइ सो संकलित धन जानना । जैसैं प्रथम भेदविषैं एक ही अंक है याके पहिले कोई अंक नाही तातैं प्रथम भेदविषैं संकलित धन एक जानना । वहुरि दूसरा भेदविषैं एक अर दूवा जोडिए तव संकलित धन तीन भया । वहुरि तीसरा भेदविषैं एक दोय तीन अंक जोडैं संकलित धन छह भया । वहुरि चौथा भेदविषैं च्यारि और जोडैं संकलित धन दश भया । वहुरि पांचवां भेदविषैं पांचको अंक और जोडैं संकलित धन पंद्रह होइ । ऐसैं सव भेदनिविषैं संकलित धन जानना । सो इस एकवार संकलित धन ल्यावनेकौं करण सूत्र पर्याय समास श्रुत ज्ञानका कथन करते कह्या है तिसतैं संकलित धनका प्रमाण ल्यावना । इस संकलित धनका नाम गच्छ धन वा पद धन भी कहिए अव विवक्षित परमावधि ज्ञानका पांचवां भेद ताका संकलित धन पंद्रह जायगा आवलीका असंख्यातवां भाग माडि परस्पर गुणन कीए जो परिमाण होइ सोई पांचवांभेदविषैं गुणकार जानना । इस गुणकार करि उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकाकाश प्रमाण ताकौं गुणिए जो प्रमाण होइ तितना परमावधिका पांचवां भेदका विषयभूत क्षेत्र का परिमाण जानना । अव इसही गुणकार करि देशावधिका विषयभूत उत्कृष्ट काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण ताकौं गुणें इस पांचवां भेदविषैं कालका परिमाण होइ ऐसैं सव भेदनिविषैं क्षेत्रका वा कालका परिमाण जानना ॥ ४१७ ॥ आगे संकलित धनका जो प्रमाण कह्या था ताकौं और प्रकार करि कहै हैं—

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता ।

उभयेवि य गच्छस्स य धणमेत्ता होंति गुणगारा ॥ ४१८ ॥

गच्छसमाः तात्कालिकातीते रूपोनगच्छधनमात्राः ।

उभयेऽपि च गच्छस्य च धनमात्रा भवंति गुणकाराः ॥ ४१८ ॥

जी० प्र०—गच्छसमाः-गच्छमात्राः यथा चतुर्थविकल्पे चत्वारः, तात्कालिकातीते च तृतीयविकल्पे रूपोनगच्छधनमात्राः षट्, ते उभये मिलित्वा गच्छधनमात्रा दशगुणकारा भवंति । एवं सर्वविकल्पेषु ज्ञातव्यं ॥ ४१८ ॥

स० चं०—जेथवां भेद विवक्षित होइ तीहि प्रमाणकौं गच्छ कहिए जैसें चौथा भेद विवक्षित होइ तौ गच्छका प्रमाण च्यारि कहिए सो गच्छके समान धन अर गच्छतैं तत्काल अतीत भया ऐसा विवक्षितभेदतैं पहिला भेद तहां विवक्षित गच्छतैं एक घाटिका गच्छ धन जो संकलित धन इनि दोऊनिकौं मिलाइए तब गच्छका संकलित धन प्रमाण गुणकार होइ । इहां उदाहरण कहिए-जैसें विवक्षित भेद चौथा सो गच्छका प्रमाण भी च्यारि सो च्यारि तौ एक अर तत्काल अतीत भया तीसरा भेद ताका गच्छ धन छह इनि दोऊनिकौं मिलाए दश हूवा सोई दश विवक्षित गच्छ च्यारि ताका संकलित धन हो है सोई चौथा भेदविषैं गुणकार पूर्वोक्त प्रकार जानना । ऐसैं ही सर्व-भेदनिविषैं जानना ॥ ४१८ ॥

परमावहिवरखेत्तेणवहिदउक्कस्सओहिखेत्तं तु ।

सव्वावहिगुणगारो कालेवि असंखलोगो दु ॥ ४१९ ॥

परमावधिवरक्षेत्रेणावहितोत्कृष्टावधिक्षेत्रं ।

सर्वावधिगुणकारः कालेऽपि असंख्यलोकस्तु ॥ ४१९ ॥

जी प्र०—उत्कृष्टावधिक्षेत्रं तावद्द्विरूपघनाघनधारायां लोकगुणकारशलाकावर्गशलाकार्धच्छेदशलाकातेजस्कायिकस्थित्यवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्राणां प्रत्येकमसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वात् पंचासंख्याततलोकगुणितलोकमात्रं तदेव परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणेन भक्तं सत्— ≡ । ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə ≡ ə सर्वावधिविषयक्षेत्रानयने गुणकारो भवति ≡ ə ≡ ə अनेन परमावधिज्ञानविषयसर्वोत्कृष्ट- ≡ । ≡ ə ≡ ə ≡ ə क्षेत्रे गुणिते सर्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रं स्यात् इत्यर्थः । तु-पुनः सर्वावधिविषयकालानयने परमावधिविषयसर्वोत्कृष्टकालस्य प–१ ≡ ə ≡ ə ≡ ə असंख्याततलोकः ≡ ə गुणकारो भवति ॥ ४१९ ॥ तत्परमावधिविषयोत्कृष्टक्षेत्रकालप्रमाणानयनविधाने करणसूत्रद्वयमाह—

स० चं०—उत्कृष्ट अवधिज्ञानके क्षेत्रका परिमाण कहिए है—द्विरूप घनाघनधारा विषैं लोक अर गुणकार शलाका अर वर्गशलाका अर अर्धच्छेद शलाका अर अग्निकायकी स्थितिका परिमाण अर अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण ए स्थानक क्रमतैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान गएं उपजे हैं तातैं पांचवार असंख्यात लोक प्रमाण परिमाणकरि लोककौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना सर्वावधिज्ञानका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण है । याकौं उत्कृष्ट परमावधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्रका भाग दीएं जो परिमाण होइ सोई सर्वावधि ज्ञानका विषयभूत क्षेत्रका परिमाण ल्यावनेके निमित्त गुणकार हो है । इस गुणकारकरि परमावधिका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रकौं गुणिए तव सर्वावधिज्ञानका विषय भूत क्षेत्रका परिमाण हो है । वहुरि काल परिमाण ल्यावनेके निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार है इस असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार करि उत्कृष्ट परमावधिज्ञानका विषयभूत कालकौं गुणिये तव सर्वावधि ज्ञानका विषयभूत कालका परिमाण हो है। इहां कोऊ कहै कि रूपी पदार्थ तौ लोकाकाश विषैं ही पाइए है इहां परमावधि सर्वावधिविषैं क्षेत्रका परिमाण लोकतैं असंख्यातगुणा कैसैं कहिए है ? सो इसका समाधान आगैं द्विरूप घनाघन धाराका कथनविषैं करि आए है सो जानना । शक्ति अपेक्षा कथन जानना ॥ ४१९ ॥ अव परमावधि ज्ञानका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका वा उत्कृष्ट कालका परिमाण ल्यावनेके निमित्त करणसूत्र दोय कहिएहै—

इच्छिदरासिच्छेदं दिण्णच्छेदेहिं भाजिदे तत्थ ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ॥ ४२० ॥

इच्छितराशिच्छेदं देयच्छेदैर्भाजिते तत्र ।
लब्धमितदेयराशीनामभ्यासे इच्छितो राशिः ॥ ४२० ॥

जी० प्र०—अस्य साधारणसूत्रत्वात् ईप्सितराशेः वेसदछप्पण्णस्य अर्धच्छेदाः अष्टौ ८ एषु देयस्य आवल्यसंख्येयभागसंदृष्टिचतुःषष्ठिचतुर्थांशस्य ६४/४ अर्धच्छेदैः भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रैः ६–२ भाजितेषु सत्सु ८/(६–२) तत्र यावल्लब्ध २ तावन्मात्रदेयराशीनां ६४/४ ६४/४ अभ्यासे परस्परगुणने कृते सति ईप्सितराशिरुत्पद्यते । २५६ एवं पल्यसूच्यंगुलजगच्छ्रेणिलोकानामपीप्सितराशीनामर्धच्छेदेषु देयस्यावल्यसंख्येयभागस्यार्धच्छेदैर्भक्तेषु—

पल्यच्छेद	सूच्यंगुलच्छेद	जग च्छ्रेणिच्छेद	लोकच्छेद
छे	छे छे	वि छे छे ३	वि छे छे ९
१६–४	१६–४	१६–४	१६–४

तत्र यल्लब्धं तत्तन्मात्रावल्यसंख्येयभागानामभ्यासे कृते ते पल्यादीप्सितराशयः उत्पद्यंते ॥ ४२० ॥

स० चं०—यह करण सूत्र है सो सर्वत्र संभवै है याका अर्थ दिखाइए है—इच्छित राशि कहिए विवक्षित राशिका प्रमाण ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिकौं देयराशिके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तिसका विरलन कीजिए एक२ जुदा जुदा स्थापिए बहुरि तिस एक एकके स्थानीक जिस देय राशिके अर्धच्छेदनिका भाग दीया था तिसही देय राशिकौं मांड़ि परस्पर गुणन कीजिए तो विवक्षित राशिका प्रमाण होइ । सो प्रथम याका उदाहरण लौकिक गणित करि दिखाइए है—इच्छित राशि दोयसै छप्पन २५६ याके अर्धच्छेद आठ बहुरि देयराशि चौसाठिका चौथा भाग ६४/४ सोलह याके अर्धच्छेद च्यारि, कैसैं ? भाज्य राशि चौसाठि ताके अर्धच्छेद छह तिनिमें

स्यों भागहार च्यारि ताके अर्धच्छेद दोय घटाइए तव अवशेष च्यारि अर्धच्छेद रहे अब इनि च्यारि अर्धच्छेदनिका भाग उन आठ अर्धच्छेदनिकौं दीजिए तव दोय पाया २ सो दोयका विरलन करि १, १, एक एकके स्थानक एक चौसठिका चौथा भाग सोला सोला दीया याहीतें याकौं देयराशि कहिए सो इनिका परस्पर गुणन कीया तव विवाक्षित राशिका परिमाण दोयसै छप्पन हुवा। ऐसें ही अलौकिक गणितविषै विवाक्षित राशि पल्य प्रमाण अथवा सूच्यंगुल प्रमाण वा जगच्छ्रेणी प्रमाण वा लोक प्रमाण जो होइ ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिकौं देयराशि जो आवलीका असंख्यातवां भाग ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिका भाग दीए जो प्रमाण आवे तिनिका विरलन करि—एक एक करि वखेरि वहुरि एक एकके स्थानक एक एक आवलीका असंख्यतवां भाग मांडि परस्पर गुणन कीजिए तो विवाक्षित राशि पल्य वा सूच्यंगुल वा जगच्छ्रेणी वा लोक प्रमाण हो है ॥ ४२० ॥

दिण्णच्छेदेणवहिदलोगच्छेदेण पदधणे भजिदे।
लद्धमिदलोगगुणणं परमावहिचरिमगुणगारो ॥ ४२१ ॥

देयच्छेदेनावहितलोकच्छेदेन पदधने भजिते।
लब्धमितलोकगुणनं परमावधिचरमगुणकारः ॥ ४२१ ॥

जी० प्र—देयच्छेदभक्तलोकच्छेदैः ८/६-२ पदधने निरन्तितृतीयपदस्य धने ३ । ४/२ । १ भक्ते ३ । ४/२ । १ । ८/६-२ यल्लब्धं तन्मात्र ३ वेसदछप्पणानां

गुणने परस्परसंवर्गसंजनितराशिः तृतीयपदे परमावधिक्षेत्रकालयोर्गुणकारप्रमाणं भवति ≡ ६५ = २५६ । प-१ । ६५ = २५६ एवं चरमेऽपि देयमावल्यसंख्येयभागः तस्य अर्धच्छेदाः भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रत्वात् संख्यातरूपन्यूनपरीतासंख्यातमध्यमभेदमात्राः संदृष्ट्या एतावंतः १६-४ एभिः देयार्धच्छेदैर्भक्तेन लोकार्धच्छेदराशिना पदधने—परमावधिज्ञानचरमविकल्पसंकलितसर्वधने भक्ते सति यल्लब्धं तन्मात्रलोकानां

परस्परगुणने परमावधिचरमगुणकारो भवति । यद्येतावता देयरूपावल्यसंख्येयभागानां दे ८ परस्परगुणने लोक उत्पद्यते फ ≡ तदा

a
प्र । वि छे छे ९
१६—४

एतावतां देयरूपावल्यसंख्येयभागानां—दे ८ परस्परगुणने कियंतो लोका उत्पद्यंते इति त्रैराशिकलब्धमात्राणां लो-

a

१—१ ^ १—१ ^ (१ ऊपर)
३ ≡ a ६ a ≡ a ६ a
प २ प १
a a

कानां ≡ a ≡ a ≡ a परमावधिविषयचरमक्षेत्रकालानयने लोकसमयोनपल्ययोर्गुणकारो भवति । ≡ । ≡ a । ≡ a । ≡ a
प—१ । ≡ a ≡ a ≡ a ॥ ४२१ ॥

सं० च०—देय राशिके अर्धच्छेदनिका भाग लोकके अर्धच्छेदनिकौं दीए जो प्रमाण होइ ताका विवक्षित पदका संकलित धनकौं भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना लोकमात्र परिमाण मांडि परस्पर गुणनकीए जो प्रमाण आवै सो विवक्षित पदविषैं क्षेत्र वा कालका गुणकार जानना । ऐसैं ही परमावधिका अंत भेदविषैं गुणकार जानना । सो यहु कथन प्रथम अंक संदृष्टिकरि दिखाइए है । देयराशि चौसठिका चौथा भाग ताके अर्धच्छेद च्यारि तिनिका भाग दोयसै छप्पनका अर्धच्छेद आठ तिनिकौं दीजिए तब दोय पाया तिनिका भाग विवक्षित स्थान तीसरा ताका पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावनेका सूत्र करि तीन च्यारिकौं दोय एकका भाग दीएं संकलित धन छह तिनिकौं दीजिए तब तीन पाया सो तीन जायगा दोयसै छप्पन मांडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण होइ सोई तीसरा स्थानविषै गुणकार जानना । अब इहां कथन है सो कहिए है—देय राशि आवलीका असंख्यातवां भाग ताके अर्ध

च्छेद राशि जो आवलीके अर्धच्छेदनिमेंस्यौं भागहारभूत असंख्यातके अर्धच्छेद घटाएं जो प्रमाण रहै तितना जानना। सो ऐसैं इस देय राशीके अर्धच्छेद संख्यात घाटि परीतासंख्यातका मध्य भेदप्रमाण हो हैं तिनिका भाग लोक प्रमाणके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनकौं दीजिए जो प्रमाण आवै ताका भाग विवक्षित जो कोई परमावधि ज्ञानका भेद ताका जो संकलित धन होइ ताकौं दीजिए जो प्रमाण आवै तितना लोक मांडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण आवै सो तिस भेद विषै गुणकार जानना। इस गुणकार करि देशावधिका उत्कृष्ट लोक प्रमाण क्षेत्रकौं गुणैं जो प्रमाण होइ सो तिस भेद विषैं क्षेत्रका परिमाण जानना। बहुरि इस गुणकार करि देशावधिका उत्कृष्ट एक समय घाटि पल्य प्रमाण कालकौं गुणैं जो प्रमाण होइ सो तिस भेदविषैं कालका परिमाण जानना। ऐसैं ही परमावधिका अंतका भेदविषैं आवलीका असंख्यातवां भागका अर्धच्छेदनिका भाग लोकका अर्धच्छेदकौं दीए जो प्रमाण होइ ताकौं अंतका भेदविषै गुणकार जानना। इहां अंतका भेद विषैं पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावनेकौं करण सूत्रके अनुसारि संकलित धन ल्याइए तब अग्निकायिकके अवगाह भेदनिकरि गुणित अग्निकायिक जीवनिका प्रमाण मात्र गच्छ सो एक गच्छ अधिक गच्छ अर सपूर्ण गच्छकौ दोय एकका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना परमावधिका अन्तभेदविषैं संकलन धन जानना। बहुरि जैसे दोय जायगा सोलह सोलह माडि परस्पर गुणन कीए दोयसै छप्पन होइ तौ छह जायगा सोलह सोलह माडि परस्पर गुणन कीए केते दोयसै छप्पन होंइ? ऐसैं त्रैराशिक कीए पैंसठि हजार पांचसे छत्तीस प्रमाण दोयसै छप्पन होइ। ऐसैं ही 'इच्छिदरासिच्छेदं' इत्यादि करण सूत्रके अनुसार आवलीका असंख्यातवें भागका अर्धच्छेदनिका लोकके अर्धच्छेदनिकौं भाग दीए जो प्रमाण होइ तितने आवलीका असंख्यातवां भाग माडि परस्पर गुणन कीए एक लोक होइ तौ इहां अन्तभेदविषैं संकलित धन प्रमाण आवलीका असख्यातवां भाग माडि परस्पर गुणन कीजिए तौ कितने लोक होंइ ऐसैं त्रैराशिक करना। तहां प्रमाणराशि विषैं देयराशि आवलीका असंख्यातवां भाग विरलन राशि आवलीका असंख्यातवां भागका अर्धच्छेनिदकरि भाजित लोकका अर्धच्छेदमात्र बहुरि फलराशि लोक बहुरि इच्छाराशि विषैं देयराशि आवली-

का असंख्यातवां भाग विरलन राशी अन्तभेदका संकलन धनमात्र इहां लब्ध राशिका जेता प्रमाण आवै तितना लोक प्रमाण प्रमाण होइ सोई अन्त भेदविषैं गुणकार जानना । इसकरि लोककौं वा एक समय घाटि पल्यकौं गुणिए तब परमावधिका सर्वोत्कृष्ट क्षेत्रका वा कालका परिमाण हो है पूर्वैं 'आवलि असखभागा' इत्यादि सूत्रकरि गुणकारका विधान कह्या बहुरि इस सूत्रविषैं गुणकारका विधान कह्या सो इनि दोऊनिका अभिप्राय एक ही है जैसैं अंक संदृष्टिकरि पूर्व गाथानिके अनुसारि तीसरा भेदविषैं संकलित धन प्रमाण छह जायगा सोला १६ मांडि परस्पर गुणन करिए तौ भी वोही प्रमाण होइ अर इस गाथाके अनुसार तीन जायगा दोयसै छप्पन दोयसै छप्पन मांडि परस्पर गुणन कीजिए तौभी सोई प्रमाण होइ ऐसैं सर्वत्र जानना ॥ ४२१ ॥

आवलिअसंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया ।
कालस्स जहण्णादो असंखगुणहीणमेत्ता हु ॥ ४२२ ॥

आवल्यसंख्यभागा जघन्यद्रव्यस्य भवंति पर्यायाः ।
कालस्य जघन्यतः असंख्यगुणहीनमात्रा हि ॥ ४२२ ॥

जी० प्र०—आवल्यसंख्यातभागमात्राः देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्याया भवंति तथापि तद्विषयजघन्यकालात् $\frac{८}{a}$ असंख्यातगुणहीनमात्राः स्फुटं भवंति $\frac{८}{a\,a}$ ॥ ४२२ ॥

स० चं०—जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यका पर्याय ते आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है परन्तु जो जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत कालका प्रमाण कह्या है तातैं जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत भावका प्रमाण असंख्यात गुणा घाटि जानना ॥ ४२२ ॥

सव्वोहित्ति य कमसो आवलिअसंखभागगुणिदकमा ।
दव्वाणं भावाणं पदसंखा सरिसगा होंति ॥ ४२३ ॥

सर्वावधिरिति च क्रमशः आवल्यसंख्यभागगुणितक्रमाः ।
द्रव्यानां भावानां पदसंख्याः सदृशका भवंति ॥ ४२३ ॥

जी० प्र०—देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्यायरूपभावाः जघन्यदेशावधितः सर्वावधिज्ञानपर्यंतं क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितक्रमाः स्युः तेन द्रव्याणां भावानां च स्थानसंख्या समाना एव ॥ ४२३ ॥ अथ नरकगत्यवधिविषयक्षेत्रमाह—

स० चं०-देशावधिका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जहां जघन्य भेद है तहां ही द्रव्यका पर्याय रूप भावकी अपेक्षा आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण भावका जानने रूप जघन्य भेद हो है । बहुरि जहां द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद हो है । तहां ही भावकी अपेक्षा तिस प्रथम भेदका आवलीका असख्यातवां भाग प्रमाणकरि गुणें जो प्रमाण होइ तीहि प्रमाण भावकौं जानने रूप दूसरा भेद हो है । बहुरि जहां द्रव्यकी अपेक्षा तीसरा भेद हो है तहां ही भावकी अपेक्षा तिस दूसरा भेदतैं आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा तीसरा भेद हो है ऐसैं ही क्रमतैं सर्वावधि पर्यंत जानना । अवधि ज्ञानके जेते भेद द्रव्यकी अपेक्षा हैं तेतेही भेद भावकी अपेक्षा है जैसे द्रव्यकी अपेक्षा पूर्वभेदसंबन्धी द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग दीए उत्तर सम्बन्धी द्रव्य भया तैसैं भावकी अपेक्षा पूर्वभेद संबंधी भावकौं आवलीका असंख्यातवां भाग करि गुणे उत्तर भेद संबंधी भाव भया तातैं द्रव्यकी अपेक्षा अर भावकी अपेक्षा स्थानकनिकी संख्या समान है । ४२३ । आगै नारक गतिविषैं अवधि ज्ञानका विषयभूत क्षेत्रका परिमाण कहैं हैं ।

सत्तमखिदिम्मि कोसं कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव ।
जाव य पढमे णिरये जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ॥ ४२४ ॥

सप्तमक्षितौ क्रोशं क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते तावत्।
यावच्च प्रथमे निरये योजनमेकं भवेत् पूर्णं ॥ ४२४ ॥

जी० प्र०—सप्तमक्षितौ अवधिविषयक्षेत्रं एकक्रोशः। तत उपरि प्रतिपृथ्वि तावत् क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते यावत्प्रथमे नरके योजनं संपूर्णं भवति ॥ ४२४ ॥ अथ तिर्यग्मनुष्यगत्योराह—

स० चं०—सातवीं नरक पृथ्वीविषैं अवधि ज्ञानका विषयभूत क्षेत्र एक कोश है। बहुरि आधा आधा कोश तहां ताईं वधै जहां पहले नरक संपूर्ण एक योजन होइ। ऐसैं सातवे नरक अवधिक्षेत्र एक कोश, छठे ड्योढ कोश, पांचवे दोय कोश, चौथे अढाई कोश, तीसरे तीन कोश, दूसरे साढे तीन कोश पहले च्यारि कोश प्रमाण एक योजन जानना ॥ ४२४ ॥ आगे तिर्यंच गति मनुष्य गतिविषैं कहे हैं—

तिरिये अवरं ओघो तेजोयंते य होदि उक्कस्सं।
मणुए ओघं देवे जहाकमं सुणह वोच्छामि ॥ ४२५ ॥

तिरश्चि अवरमोघः तेजोऽन्ते च भवति उत्कृष्टं।
मनुजे ओघो देवे यथाक्रमं श्रुणुत वक्ष्यामि ॥ ४२५ ॥

जी०प्र०—तिर्यग्जीवे देशावधिज्ञानं जघन्यादारभ्य उत्कृष्टतः तेजःशरीरविषयविकल्पपर्यंतमेव सामान्योक्ततद्द्रव्यादिविषयं भवति। मनुष्ये देशावधिजघन्यादारभ्य सर्वावधिज्ञानपर्यंतं सामान्योक्तं सर्वं भवति ॥ ४२५ ॥ देवगतौ यथाक्रमं वक्ष्यामि शृणुत—

स० चं०—तिर्यंच जीवविषैं जघन्य देशावधि ज्ञान हो है बहुरि यातैं लगाइ उत्कृष्टपनैं तैजसशरीर जिस देशावधिके भेदका विषय है तिस भेद पर्यंत सर्व सामान्य अवधिज्ञानके वर्णन विषैं जे भेद कहे ते सर्व हो हैं। बहुरि मनुष्य गतिविषैं जघन्य देशावधितैं सर्वावधि पर्यंत सामान्य अवधिज्ञानविषैं जेते भेद कहे तिनि सर्व भेदनिकौंलीए अवधिज्ञान हो है ॥ ४२५ ॥ बहुरि देवगतिविषैं जैसा अनुक्रम है सो मैं कहौं हौ तुम सुनहु—

पणुवीसजोयणाइं दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥४२६॥

पंचविंशतियोजनानि दिवसांतं च च कुमारभौमयोः ।
संख्यातगुण क्षेत्रं बहुकः कालस्तु ज्योतिष्के ॥ ४२६ ॥

जी० प्र०—भावनव्यंतरयोर्जघन्येन पंचविंशतियोजनानि किंचिदूनदिवसश्च विषयो भवति । ज्योतिष्के क्षेत्रं ततः संख्यातगुणं, कालस्तु बहुकः ॥ ४२६ ॥

स० चं०—भवन वासी अर व्यन्तर इनिकैं अवधि ज्ञानका विषय भूत जघन्यपनै क्षेत्र तौ पचीस योजन है अर काल किछू एक घाटि एक दिन प्रमाण है। बहुरि ज्योतिषी देवनिकैं क्षेत्र तौ इस क्षेत्रतैं असंख्यात गुणा है अर काल इस कालतैं बहुत है ॥ ४२६ ॥

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुराणामसंख्येयाः कोट्यः शेषज्योतिष्कांतानां ।
संख्यातीतसहस्रा उत्कृष्टावधीनां विषयस्तु ॥ ४२७ ॥

जी० प्र०—असुराणां उत्कृष्टविषयक्षेत्रं असंख्यातकोटियोजनमात्रं । शेषनवविधभावनव्यंतरज्योतिष्काणां च असंख्यातसहस्रयोजनानि ४२७

स० चं०—असुर कुमार जातिके भवनवासी देवनिकैं उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र असंख्यात कोडि योजन प्रमाण है बहुरि अवशेष रहे नवप्रकार भवनवासी अर व्यंतर देव अर ज्योतिषी देव तिनिकैं उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असंख्यात सहस्र योजन प्रमाण है ॥ ४२७ ॥

असुराणमसंखेज्जा वस्सा पुण सेसजोइसंताणं ।
तस्संखेज्जदिभागं कालेण य होदि णियमेण ॥ ४२८ ॥

असुराणामसंख्येयानि वर्षाणि पुनः शेषज्योतिष्कांतानां ।
तत्संख्यातभागं कालेन च भवति नियमेन ॥ ४२८ ॥

जी० प्र०—असुरकुलस्योत्कृष्टकालः असंख्येयवर्षाणि पुनः शेषनवविधभावनव्यन्तरज्योतिष्काणां तस्य संख्यातैकभागः व ३/१ ॥ ४२८ ॥

स० चं०—असुरकुमार जातिके भवनवासीनिकैं अवधिका उत्कृष्ट विषय कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्ष प्रमाण है। बहुरि इसकालके संख्यातवे भागमात्र अवशेष नवप्रकार भवनवासी वा व्यंतर ज्योतिषी तिनके अवधिका विषयभूत कालका उत्कृष्ट प्रमाण नियमकरि है ॥ ४२८ ॥

भवणतियाणमधोधो थोवं तिरियेण होदि बहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी सुरगिरिसिहरोत्ति पस्संति ॥ ४२९ ॥

भवनत्रिकाणामधोधः स्तोकं तिरश्चां भवति बहुकं तु ।
ऊर्ध्वेन भवनवासिनः सुरगिरिशिखरांतं पश्यंति ॥ ४२९ ॥

जी० प्र०—भवनत्रयामराणामधोधोऽवधिविषयक्षेत्रं स्तोकं भवति । तिर्यग्रूपेण बहुकं भवति । तु—पुनः, भवनवासिनः स्वकीयावस्थितस्थानादुपरि सुरगिरिशिखरपर्यंतं अवधिदर्शनेन पश्यंति ॥ ४२९ ॥

स० चं०—भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ए जो भवनत्रिक देव तिनिकैं अधोधो कहिए नीचली दिशाप्रति अवधिका विषयभूत क्षेत्र स्तोक है बहुरि तिर्यंच कहिए आपका स्थानककी बरोबरि दिशानिप्रति क्षेत्र बहुत है। बहुरि भवनवासी अपने स्थानकतैं ऊपरि मेरुगीरिका शिखरिपर्यंत अवधि दर्शनकरि देखैं हैं ॥ ४२९ ॥

सक्कीसाणा पढमं बिदियं तु सणक्कुमारमाहिंदा ।
तदियं तु बम्हलांतव सुक्कसहस्सारया तुरियं ॥ ४३० ॥

शक्रैशानाः प्रथमं द्वितीयं तु सनत्कुमारमाहेंद्राः ।
तृतीय तु ब्रह्मलांतवाः शुक्रसहस्रारकाः तुरियं ॥ ४३० ॥

जी० प्र——सौधर्मैशानजाः प्रथमपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति । सनत्कुमारमाहेंद्रजाः पुनर्द्वितीयपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति। ब्रह्मलांतवजाःस्तृतीयपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति । शुक्रशतारजाः चतुर्थपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति ॥ ४३० ॥

स० च०——सौधर्म ईशानवाले देव अवधिकरि प्रथम नरक पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं । बहुरि ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठवाले देव तीसरी पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं । बहुरि शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारवाले देव चौथी पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं ॥ ४३० ॥

आणदपाणदवासी आरण तह अच्चुदा य पस्संति ।
पंचमखिदिपेरंतं छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥ ४३१ ॥

आनतप्राणतवासिनः आरणास्तथा अच्युताश्च पश्यंति ।
पंचमाक्षितिपर्यंतं षष्ठीं ग्रैवेयका देवाः ॥ ४३१ ॥

जी० प्र०——आनतप्राणतवासिनः तथा आरणाच्युतवासिनश्च पंचमपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति, नवग्रैवेयकजा देवाः षष्ठपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति ॥४३१॥

स० चं०——आनत प्राणतके वासी तथा आरण अच्युतके वासी देव पांचवी पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं बहुरि नवग्रैवेयकवाले देव छठी पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं ॥ ४३१ ॥

सव्वं च लोयणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा ।
सक्खेत्ते य सुकम्मे रूवगदमणंतभागं च ॥ ४३२ ॥

सर्वां च लोकनालीं पश्यंति अनुत्तरेषु ये देवाः ।
स्वक्षेत्रे च स्वकर्मणि रूपगतमनतभागं च ॥ ४३२ ॥

जी० प्र०—नवानुदिशपंचानुत्तरेषु ये देवाः, ते सर्वां लोकनालिं पश्यंति अयमर्थः । सौधर्मादिदेवाः उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदंडशिखरपर्यंतं पश्यंति । नवानुदिशपंचानुत्तरदेवास्तु उपरि स्वस्वविमानशिखरमधो यावद्बहिर्वातवलयं तावत् साधिकत्रयोदशरज्वायतां पंचविंशत्युत्तरचतुःशतधनुरूनैकविंशतियोजनैर्न्यूनचतुर्दशरज्वायतां च रज्जुविस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यंतीति ज्ञातव्यं । इदं क्षेत्रपरिमाणनियामकं न किंतु तत्रतत्रतनस्थाननियामकं भवति कुतः ? अच्युतांतानां विहारमार्गेण अन्यत्र गतानां तत्रैव क्षेत्रे तदवध्युत्पत्त्यभ्युपगमात् । स्वक्षेत्रे स्वस्वविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचये एकप्रदेशोऽपनेतव्यः । स्वकर्मणि स्वस्वावधिज्ञानावरणकर्मद्रव्ये एकवारं ध्रुवहारो दातव्यः यावत्प्रदेशप्रचयपरिसमाप्तिः स्यात्तावत्, अनेन तदवधिविषयद्रव्यभेदः सूचितः ॥ ४३२ ॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

स० चं०—नव अनुदिश विमान अर पांच अनुत्तर विमानके वासी स लोकनाली जो त्रसनाली ताकौं देखैं हैं। यहु भावार्थ जानना—सौधर्मादिवासी देव ऊपरि अपने अपने स्वर्गका विमानका ध्वजा दंडका शिखरपर्यंत देखैं हैं बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमानके वासी देव ऊपरि अपने विमानका शिखर पर्यंत अर नीचैकों बाह्य तनुवात पर्यंत सर्व त्रसनालीकौं देखैं है सो अनुदिश विमानवाले तौ किछू एक आधिक तेरह राजू प्रमाण लंबा अर अनुत्तर विमानवाले च्यारिसै पचीस धनुष घाटि इकवीस योजनकरि हीन चौदह राजू प्रमाण लंबा अर एक राजू चौडा अवधिका विषयभूत क्षेत्रकौं देखै हैं। ऐसा इहां क्षेत्रका परिमाण कीया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण लीएं नियमरूप न जानना। जातैं अच्युत स्वर्ग पर्यंतके वासी विहारकरि अन्य क्षेत्रकौं जांइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यंत ही होइ ऐसा नाही जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढराजू नीचैं और जानैं। सौधर्मद्विकके प्रथम नरक पर्यंत अवधिक्षेत्र है सो तहां

भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्रहीकौं जानैं ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि अपना क्षेत्रविषैं एक प्रदेश घटावना अर अपने अवधिज्ञानावरण द्रव्यकौं एकवार ध्रुवहारका भाग देना जहां सर्व प्रदेश पूर्ण होंइ सो तिस अवधिका विषयभूत द्रव्य जानना ॥ ४३२ ॥ इस ही अर्थकौं नीचैं दिखाइए है–

कप्पसुराणं सगसगओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं।
ओहीदव्वपमाणं संठाविय धुवहरेण हरे॥ ४३३ ॥
सगसगखेत्तपदेससलायपमाणं समप्पदे जाव।
तत्थतणचरिमखंडं तत्थतणोहिस्स दव्वं तु॥ ४३४ ॥

कल्पसुराणां स्वकस्वकावधिक्षेत्रं विविस्रसोपचयं।
अवधिद्रव्यप्रमाणं संस्थाप्य ध्रुवहरेण हरेत्॥ ४३३ ॥
स्वकस्वकक्षेत्रप्रदेशशलाकाप्रमाण समाप्यते यावत्।
तत्रतनचरमखंडं तत्रतनावधेर्द्रव्यं तु ॥ ४३४ ॥

जी० प्र०–कल्पवासिनां स्वस्वावधिक्षेत्रं विगतविस्रसोपचयावधिज्ञानावरणद्रव्यं च संस्थाप्य–

≡ ३ / ३४३।२	≡ ४ / ३४३।	≡ ११ / ३४३।२	≡ ६ / ३४३।	≡ १५ / ३४३।२	≡ ८ / ३४३।	≡ १९ / ३४३।२	≡ १० / ३४३	≡ ११ / ३४३।	≡ १३। / ३४३	≡ १४- / ३४३
स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४	स a १२- / ७१४

क्षेत्रे एकप्रदेशमपनीय द्रव्यमेकवारं ध्रुवहारेण भजेत् यावत्स्वस्वावधिक्षेत्रप्रदेशप्रमाणं परिसमाप्यते तावत्। तत्रतनचरमखंडं तत्रतनावधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणं भवति। स्वस्वावधिविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचयप्रमितध्रुवहारभक्तं विविस्रसोपचयस्वस्वावधिज्ञानावरणद्रव्यं स्वस्वावधिविषयद्रव्यं स्यादित्यर्थः॥ ४३३–४३४ ॥

स० चं०—कल्पवासी देवनिकैं अपना अपना अवधिक्षेत्र अर विस्रसोपचयरहित अवधिज्ञानावरणका द्रव्य स्थापिकरि अवधिज्ञानावरण द्रव्यकौं एकवार ध्रुवहारका भागदेइ क्षेत्रविषैं एक प्रदेश घटावना ऐसैं सर्वक्षेत्रके प्रदेश पूर्ण होंइ तहां जो अंतविषैं सूक्ष्म पुद्गलस्कंधरूप खंड होइ सोई तिस अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य जानना। इहां उदाहरण कहिए है—सौधर्म ऐशानवालोंका क्षेत्र प्रथम नरक पर्यंत कह्या है सो प्रथम नरकतैं पहला दूसरा स्वर्गका उपरिम स्थान ड्योढ राजू ऊचा है तातैं अवधिका क्षेत्र एक राजू लंबा चौड़ा ड्योढ राजू ऊंचा भया। सो इस घन रूप ड्योढ राजू क्षेत्रके जितने प्रदेश होंइ ते एकत्र स्थापने। बहुरि किंचिदून द्वयर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्वरूप सर्व कर्मनिकी परमाणूनिका परिमाण है। तिस विषै अवधि ज्ञानावरणनामा कर्मके जेते परमाणू होंई तिन विषै विस्रसोपचयके परमाणू न मिलाइए ऐसे ते अवधिज्ञानावरणके परमाणू एकत्र स्थापने। बहुरि इस अवधिज्ञानावरणके परमाणूनिका प्रमाणकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीजिये तब उस क्षेत्रके प्रदेशनिका परिमाणमेंस्यों एक घटाइए बहुरि एकवार ध्रुवहारका भाग देतैं एक भाग विषै जो प्रमाण आया ताकौं दूसरा ध्रुवहारका भाग दीजिए तब तिस प्रदेशनिका परिमाणमेंस्यों एक और घटाइए। बहुरि दूसर। ध्रुवहारका भाग देते एक भाग विषै जो प्रमाण रह्या ताकौं तीसरा ध्रुवहारका भाग दीजिए तब तिस प्रदेशनिका परिमाणमेस्यों एक और घटाइए। बहुरि दूसरा ध्रुवहारका भाग देतैं एक भाग विषैं जो प्रमाण रह्या ताकौं तीसरा ध्रुवहारका भाग दीजिए तब तिस प्रदेशनिका परिमाणमेंस्यों एक और घटाइए ऐसैं जहां ताईं सर्व क्षेत्रके प्रदेश पूर्ण होंइ तहां ताईं ध्रुवहारका भाग देते जाईये देते देतैं अतके विषै जो परिमाण रहै तितने परमाणूका सूक्ष्म पुद्गल स्कंध जो होइ ताकौं सौधर्म ऐशान स्वर्गवाले देव अवधिज्ञान करि जानैं हैं। इसतैं स्थूल स्कंधको तो जानैं ही जानैं। ऐसैं ही सानत्कुमार माहेंद्रवालोंके घनरूप चारि राजूप्रमाण क्षेत्रके प्रदेशनिका जो प्रमाण तितनीवार अवधिज्ञानावरण द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग देतैं देतैं जो प्रमाण रहै तितने परमाणूनिका स्कधकौं अवधिज्ञान करि जानै है ऐसैं सवनिकै अवधिका विषयभूत क्षेत्रके प्रदेशनिका जो प्रमाण होइ तितनीवार अवधिज्ञाना-

वरण द्रव्यकों ध्रुवहारका भाग देतें देतें जो प्रमाण रहै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं ते देव अवधिज्ञान करि जानैं हैं। तहां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर वालोंके साढा पांच राजू, लांतव कापिष्ठवालोंके छह राजू, शुक्र महाशुक्रवालोंके साढा सात-राजू शतार सहस्रारवालोंके आठ राजू, आनत प्राणतवालोंके साढा नवराजू आरण अच्युतवालोंके दश राजू, ग्रैवेयकवालोंके ग्यारह राजू, अनुदिश विमानवालोंके किछू अधिक तेरह राजू, अनुत्तर विमानवालोंके किछू घाटि चौदह राजू क्षेत्रका परिमाण जानि पूर्वोक्तविधान कीएं तिनि देवनिकैं अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यका परिमाण आवे है ॥ ४३३–४३४ ॥

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जाओ हु वस्सकोडीओ।
उवरिमकप्पचउक्के पल्लासंखेज्जभागो दु ॥ ४३५ ॥
तत्तो लांतवकप्पप्पहुदी सव्वत्थसिद्धिपेरंतं।
किंचूणपल्लमेत्तं कालपमाणं जहाजोग्गम् ॥ ४३६ ॥ जुम्मं।

सौधर्मैशानानामसंख्येया हि वर्षकोट्यः।
उपरिमकल्पचतुष्के पल्यासंख्यातभागस्तु ॥ ४३५ ॥
ततो लांतवकल्पप्रभृतिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतं।
किंचिदूनपल्यमात्रं कालप्रमाणं यथायोग्यं ॥ ४३६ ॥

जी० प्र०—सौधर्मैशानजानमवधिविषयकालः असंख्यातवर्षकोट्यः खलु वर्षको ३। तु–पुनः, उपरितनकल्पचतुष्कजानां यथायोग्यं पल्यासंख्यातभागः प तत उपरि लांतवादिसर्वार्थसिद्धपर्यंतानां यथायोग्यं किंचिदूनपल्यं प–॥ ४३५–४३६ ॥

स० चं० सौधर्म ईशानवालोंके अवधिका विषय भूतकाल असंख्यात कोडि वर्ष प्रमाण है बहुरि तातैं ऊपरि सनत्कुमारादि चारिं स्वर्गवालोंके यथायोग्य पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि तातैं ऊपरि लांतव आदि सर्वार्थसिद्धिपर्यंतवालोंके यथायोग्य किछू घाटि पल्य प्रमाण है ॥ ४३५—४३६ ॥

जोइसियंताणोहीखेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा ।

कप्पसुराणं च पुणो विसरित्थं आयदं होंदि ॥ ४३७ ॥

ज्योतिष्कांतानामवधिक्षेत्राणि उक्तानि न भवंति घनप्रतराणि ।

कल्पसुराणां च पुनः विसदृशमायतं भवति ॥ ४३७ ॥

जी० प्र०—ज्योतिष्कांतत्रिविधदेवाना उक्तावधिविषयक्षेत्राणि समचतुरस्रघनरूपाणि न भवति, सूत्रे तेषां विसदृशत्वकथनात् । अनेन पारिशेष्यात् तद्योग्यस्थाने नरनारकतिर्यगवधिविषयक्षेत्रमेव समघनमित्यर्थः। कल्पसुराणा पुनर्विसदृशमायातं आयतचतुरस्रमित्यर्थः ॥ ४३७ ॥

इत्यवधिज्ञानप्ररूपणा ।

स० चं०—ज्योतिषी पर्यंत जे भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ऐसे तीन प्रकार देव तिनकैं जो अवधिका विषयभूत क्षेत्र कह्या है सो समचतुरस्र कहिए बरोबरि चौकोर घनरूप नाही है जातैं सूत्रविषैं लंबाई चौडाई उंचाई समान नाहीं कही है याहीतैं अवशेष रहे मनुष्य नारकी तिर्यंच तिनिकैं जो अवधिका विषय भूत क्षेत्र है सो बरोबरि चौकोर घनरूप है। अवधिज्ञानी मनुष्यादिक जहां तिष्ठता होइ तहांतैं अपने विषयभूत क्षेत्रका प्रमाणपर्यंत चौकोररूप घनक्षेत्रकौं जानै है। बहुरि कल्पवासी देवनिकैं जो अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र है सो विसदृश आयत कहिए लंबा बहुत चौडा थोडा ऐसा आयतचतुरस्र जानना ॥ ४३७ ॥

इति अवधिज्ञानप्ररूपणा समाप्ता ।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धंचिंतियमणेयभेयगयं ।

मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥४३८॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्धं चिंतितमनेकभेदगतं ।
मनःपर्यय इत्युच्यते यज्जानाति तत्खलु नरलोके ॥ ४३८ ॥

जी० प्र०—चिंतितं-चिंताविषयीकृतं, अचिंतितं-चिंतयिष्यमाणं, अर्धचिंतितं-असंपूर्णचिंतितं वा इत्यनेकभेदगतं अर्थं परमनस्यवस्थितं यज्ज्ञानं जानाति तत् खलु मनःपर्यय इत्युच्यते । तस्योत्पत्तिप्रवृत्ती नरलोके मनुष्यक्षेत्र एव न तद्बहिः । परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्ययः ॥ ४३८ ॥

स० चं०—चिंतितं कहिए अतीतकालमें जिसका चिंतवन कीया अर अचिंतितं कहिए जाकौं अनागतकाल विषैं चिंतवेगा अर अर्ध चिंतितं कहिए जो सपूर्ण चिंतया नाहीं । ऐसा जो अनेक भेद लीए अन्य जीवका मनविषै प्राप्त हुवा अर्थ ताकौं जो जानैं सो मनःपर्यय कहिए । मनः कहिए अन्य जीवका मनविषै चिंतवनरूप प्राप्त भया अर्थ ताकौं पर्येति कहिए जानैं सो मनःपर्यय है ऐसा कहिए है सो इस ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्य क्षेत्र ही विषैं हैं बाह्य नाही है । पराया मन विषैं तिष्ठता जो अर्थ सो मन कहिए ताकौं 'पर्येति, कहिए जानैं सो मनःपर्यय जानना ४३८

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्ति उजुमदी तिविहा ।
उजुमणवयणे काए गदत्थविसयात्ति णियमेण ॥४३९॥

मनःपर्ययश्च द्विविधः ऋजुविपुलमतीति ऋजुमतिस्त्रिविधा ।
ऋजुमनोवचने काये गतार्थविषया इति नियमेन ॥ ४३९ ॥

जी० प्र०—स मनःपर्ययः सामान्येनैकोऽपि भेदविवक्षया ऋजुमतिमनःपर्ययः विपुलमतिमनःपर्ययश्चेति द्विविधः । तत्र ऋज्वी-ऋजुकायवाङ्मनःकृतार्थस्य-परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता-निष्पन्ना मतिर्यस्य स ऋजुमतिः स चासौ मनःपर्ययश्च ऋजुमतिमनःपर्ययः । विपुला कायवाग्मनःकृतार्थस्य-परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता अनिवर्तिता कुटिला च मतिर्यस्य स विपुलमतिः स चासौ मनःपर्ययश्च विपुलमतिमनः-

पर्ययः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले ते मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती तौ च तौ मनःपर्ययौ च ऋजुविपुलमतिमनःपर्ययौ। तत्र ऋजुमतिमनः पर्ययः ऋजुमनोगतार्थविषयः, ऋजुवचनगतार्थविषयः, ऋजुकायगतार्थविषयश्चेति नियमेन त्रिविधः ॥ ४३९ ॥

स चं०—सो यहु मनःपर्यय ज्ञान सामान्यपनैं एक प्रकार है तथापि भेदतैं दोय प्रकार है-ऋजुमति मनःपर्यय १ विपुलमति मनः पर्यय २, तहां सरलपनैं मन वचन कायकरि कीया जो अर्थ अन्य जीवका मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया ताके जाननेतैं निष्पन्न भई ऐसी ऋज्वी कहिए सरल है मति जाकी सो ऋजुमति कहिए। बहुरि सरल वा वक्र मन वचन कायकरि कीया जो अर्थ अन्य जीवका मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया ताके जाननेतैं निष्पन्न भई वा नाईं निष्पन्न भई ऐसी विपुला कहिए कुटिल है मति जाकी सो विपुलमति कहिए ऐसैं ऋजुमति अर विपुलमतिके भेदतैं मनःपर्ययज्ञान दोय प्रकार है। तहां ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान नियमकरि तीनप्रकार है ऋजु मनविषैं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा बहुरि ऋजु वचनविषैं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा बहुरि ऋजुकायविषैं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा ऐसैं ए तीन भेद हैं ॥ ४३९ ॥

विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं।
अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥४४०॥

विपुलमतिरपि च षोढा ऋजुगानृजुवचनकायचित्तगतं।
अर्थं जानाति यस्मात् शब्दार्थगता हि तेषामर्थाः ॥ ४४० ॥

जी० प्र०—विपुलमतिमनःपर्ययोऽपि यस्मात् ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्थं जानाति तस्मात्कारणात् ऋजुमनोगतार्थविषयः ऋजुवचनगतार्थविषयः ऋजुकायगतार्थविषयः अनृजुमनोगतार्थविषयः अनृजुवचनगतार्थविषयः अनृजुकायगतार्थविषयश्चेति षोढा। तयोः ऋजुविपुलमतिमनःपर्यययोः अर्थाः-विषयाः शब्दगता अर्थगताश्च स्फुटं भवति। तद्यथा—कश्चिज्जीवः ऋजुमनसा निर्वर्तितः-निष्पन्नः त्रिकालविषयपदार्थान् चिंतितवान् ऋजुवचनेन निर्वर्तितस्तानुक्तवान् ऋजुकायेन निष्पन्नस्तान् कृतवान्, विस्मृत्य कालांतरेण स्मर्तुमशक्तः, आगत्य पृच्छति वा तूष्णीं तिष्ठति तदा ऋजुमति-

मनःपर्ययज्ञानं जानाति । तथा ऋज्वनृजुमनोवचनकायैर्निर्वर्तितः त्रिकालविषयपदार्थान् चिंतितवान् वा उक्तवान् वा कृतवान् विस्मृत्य कालांतरेण स्मर्तुमशक्तः आगत्य पृच्छति वा तूष्णीं तिष्ठति तदा विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति ॥ ४४० ॥

स० चं०—विपुलमति ज्ञान भी छहप्रकार है। ऋजुमनकौं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा १, ऋजु वचनकौं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा २, ऋजु कायकौं प्राप्त भया अर्थका जाननहारा ३, बहुरि वक्र मनकौं प्राप्त भया अर्थका जाननहारा ४, बहुरि वक्र वचनकौं प्राप्त भया अर्थका जाननहारा ५, बहुरि वक्र कायकौं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा ६ ए छह भेद हैं जातैं सरल वा वक्र मन वचन कायकौं प्राप्त भया पदार्थकौं जानैं है। बहुरि तिन ऋजुमति विपुलमति ज्ञानके अर्थाः कहिए विषय ते शब्दकौं वा अर्थकौं प्राप्त भए प्रगट हो हैं। कैसैं ? सो कहिए है—कोई भी सरल मनकरि निष्पन्न होत संता त्रिकालसंबंधी पदार्थनिकौं चिंतवत भया, वा सरल वचनकरि निष्पन्न होत संता तिनकौं कहत भया वा सरल कायकरि निष्पन्न होत संता तिनकौं करत भया पीछैं भूलिकरि कालांतरविषैं यादि करनेकौं समर्थ न हूवा अर आयकरि ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानीकौं पूछत भया वा यादि करनेका अभिप्रायकौं धारि मौनहीतैं खडा रह्या तौ तहां ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वकौं जानै है। तैसैं ही सरल वा वक्र मन वचन कायकरि निष्पन्न होत संता त्रिकालसंबंधी पदार्थनिकौं चिंतवत भया वा कहत भया वा करत भया बहुरि भूलिकरि केतेक काल पीछै यादि करनेकौं समर्थ न हूवा आयकरि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानीके निकटि पूछत भया वा मौनतैं खडा रह्या तहां विपुलमति मनःपर्ययज्ञान सर्वकौं जानैं ऐसैं इनिका स्वरूप जानना ४४०

तियकालविसयरूविं चिंतितं वट्टमाणजीवेण।
उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ॥४४१॥

त्रिकालविषयरूपि चिंतितं वर्तमानजीवेन।
ऋजुमतिज्ञानं जानाति भूतभविष्यच्च विपुलमतिः ॥ ४४१ ॥

जी० प्र०—त्रिकालविषयपुद्गलद्रव्यं वर्तमानजीवेन चिंत्यमानं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति। भूतभविष्यद्वर्तमानकालविषयं चिंतितं चिंतयिष्यमाणं चिंत्यमानं च विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति ॥ ४४१ ॥

स० चं०—त्रिकालसंबंधी पुद्गल द्रव्यकौं वर्तमान कालविषैं कोई जीव चिंतवन करै है तिस पुद्गल द्रव्यकौं ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है। बहुरि त्रिकालसबंधी पुद्गल द्रव्यकौं कोई जीव अतीत कालविषैं चिंतया था वा वर्तमान कालविषैं चिंतवै है वा अनागत कालविषैं चिंतवेगा ऐसे पुद्गल द्रव्यकौं विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ॥ ४४१ ॥

सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही।

मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥ ४४२ ॥

सर्वांगांगसंभवचिह्नादुत्पद्यते यथावधिः।

मनःपर्ययं च द्रव्यमनस्त उत्पद्यते नियमात् ॥ ४४२ ॥

जी० प्र०—सर्वांगे अंगसंभवशंखादिशुभचिन्हे च यथा अवधिज्ञानमुत्पद्यते तथा मनःपर्ययज्ञानं द्रव्यमनसि एवोत्पद्यते नियमेन नान्यत्रांगप्रदेशेषु ४४२

स० चं०—जैसैं पूर्वै कह्या था भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंगतैं उपजै है अर गुणप्रत्यय शंखादिक चिह्ननितैं उपजै है तैसैं मनःपर्ययज्ञान द्रव्य मनतैं उपजै है नियमतैं और अंगनिके प्रदेशनिविषैं नाही उपजै है ॥४४२॥

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा।

अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा ॥ ४३ ॥

हृदि भवति हि द्रव्यमनः विकसिताष्टच्छदारविंदवत्।

अंगोपांगोदयात् मनोवर्गणास्कंधतो नियमात् ॥ ४४३ ॥

जी० प्र०—अंगोपांगनामकर्मोदयकारणात् मनोवर्गणास्कंधैर्विकसिताष्टच्छदारविंदसदृशं द्रव्यमनो हृदये उत्पद्यते स्फुटं ॥ ४४३ ॥

स० चं०—सो द्रव्य मन हृदय स्थानविषैं प्रफुल्लित आठ पाखुडीका कमलके आकार अंगोपांग नाम कर्मके उदयतैं तेईस जातिकी पुद्गल वर्गणानिविषैं मनोवर्गणा है तिनि स्कंधनिकरि निपजै है ऐसा नियम है ॥४४३॥

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा।
वत्तत्ताभावादो मण मणपज्जं च तत्थ हवे ॥ ४४ ॥

नोइंद्रियमिति संज्ञा तस्य भवेत् शेषेंद्रियाणां वा।
व्यक्तत्वाभावात् मनो मनःपर्ययश्च तत्र भवेत् ॥ ४४४ ॥

जी० प्र०—तस्य द्रव्यमनसः शेषस्पर्शनादींद्रियाणामिव ;स्थाननिर्देशाभ्यां व्यक्तत्वाभावात् ईषदिंद्रियत्वेन नोइन्द्रियमित्यन्वर्थनाम भवेत्। तत्र द्रव्यमनसि भावमनो मनःपर्ययश्चोत्पद्यते ॥ ४४४ ॥

स० चं०—तिस मनका नोइंद्रिय ऐसा नाम है नो कहिए ईषत् किंचिन्मात्र इंद्रिय है जैसें स्पर्शनादिक इंद्रिय प्रकट है तैसें मनके प्रकटपना नाहीं तातैं मनका नोइंद्रिय ऐसा नाम है सो तिस द्रव्य मनविषैं मतिज्ञानरूप भाव मन भी उपजै हैं अर मनःपर्ययज्ञान भी उपजै है ॥ ४४४ ॥

मणपज्जवं च णाणं सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीण।
एगादिजुदेसु हवे वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ॥ ४५ ॥

मनःपर्ययश्च ज्ञानं सप्तसु विरतेषु सप्तर्धीनां।
एकादियुतेषु भवेद्वर्धमानविशिष्टाचरणेषु ॥ ४४५ ॥

जी० प्र०—प्रमत्तादिसप्तगुणस्थानेषु बुद्धितपोविक्रियौषधरसबलाक्षीणनामसप्तर्धिमध्ये एकद्वित्र्यादियुतेष्वेव वर्धमानविशिष्टाचरणेषु मनःपर्ययज्ञानं भवति, नान्यत्र ॥ ४४५ ॥

स० चं०—प्रमत्त आदि सात गुणस्थाननिविषैं बुद्धि १ तप २ वैक्रियिक ३ औषध ४ रस ५ बल ६ अक्षीण ७ इनि सात रिद्धिनिविषैं एक दोय आदि रिद्धिनिकरि संयुक्त बहुरि वर्धमान विशेष रूप चारित्रके धारी जे महामुनि तिनिकैं मनःपर्यय ज्ञान हो है अन्यत्र नाहीं ॥ ४५५ ॥

इंदियणोइंदियजोगादि पेक्खित्तु उजमदी होदि।
णिरवेक्खिय विउलमदी ओहिं वा होदि णियमेण ॥

इंद्रियनोइंद्रिययोगादिमपेक्ष्य ऋजुमतिर्भवति।
निरपेक्ष्य विपुलमतिः अवधिर्वा भवति नियमेन ॥ ४४६ ॥

जी० प्र०—ऋजुमतिमनःपर्ययः स्पर्शनादींद्रियाणि नोइंद्रिय मनोवचनकाययोगांश्च स्वपरसंबंधिनोऽपेक्ष्यैवोत्पद्यते। विपुलमतिमनःपर्ययस्तु अवधिज्ञानमिवताननपेक्ष्यैवोत्पद्यते नियमेन ॥ ४४६ ॥

स० चं०—ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान है सो अपने वा अन्य जीवके स्पर्शनादिक इंद्री अर मन अर मन वचन काय योग तिनकी सापेक्षतैं उपजै है। बहुरि विपुलमति मनःपर्यय है सो अवधिज्ञानकीसी नाई तिनकी अपेक्षा विना ही नियमकरि जानै है ॥ ४४६ ॥

पडिवादी पुण पढमा अप्पडिवादी हु होदि बिदिया हु।
सुद्धो पढमो बोहो सुद्धतरो बिदियबोहो दु ॥

प्रतिपाती पुनः प्रथमः अप्रतिपाती हि भवति द्वितीयो हि।
शुद्धः प्रथमो बोधः शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु ॥ ४४७ ॥

जी० प्र०—प्रथमः ऋजुमतिमनःपर्ययः प्रतिपाती भवति। क्षीणकषायस्याप्यप्रतिपातेऽपि, उपशांतकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्तत्संभवात्। पुनः-

द्वितीयो विपुलमतिमनःपर्ययः अप्रतिपाती खलु । ऋजुमतिमनःपर्ययो विशुद्धः, प्रतिपक्षकर्मक्षयोपशमे सति आत्मप्रसादरूपविशुद्धेः संभवात् । तु पुनः विपुलमतिमनःपर्ययः अतिशयेन विशुद्धो भवति ॥ ४४७ ॥

स० चं०—पहिला रिजुमति मनःपर्यय है सो प्रतिपाती है वहुरि दूसरा विपुलमति मनःपर्यय सो अप्रतिपाती है । जाकैं विशुद्ध परिणामनिकी घटवारी होइ सो प्रतिपाती कहिए । जाकैं विशुद्ध परिणामनिकी घटवारी न होइ सो अप्रतिपाती कहिए । बहुरि रिजुमति मनःपर्यय तौ विशुद्ध है जातैं प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमतैं निर्मल भया है । बहुरि विपुलमति मनः पर्यय विशुद्धतर है जातैं अतिशय करि निर्मल भया है ॥ ४४७ ॥

परमणसिट्ठियमट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय।
पच्छा पच्चक्खेण य उजुमदिणा जाणदे णियमा ॥४४८॥

परमनसि स्थितमर्थमीहामत्या ऋजुस्थितं लब्ध्वा ।
पश्चात् प्रत्यक्षेण च ऋजुमतिना जानीते नियमात् ॥ ४४८ ॥

जी० प्र०—परस्य मनसि ऋजुतया स्थितमर्थं ईहामतिज्ञानेन पूर्वं लब्ध्वा पश्चात् ऋजुमतिज्ञानेन प्रत्यक्षतया मनःपर्ययज्ञानी जानीते नियमात् ॥४४८॥

स० चं०—परजीवके मनविषैं सरलपनैं चिंतवन रूप तिष्ठता जो पदार्थ ताकौं पहलैं तौ ईहा नाम मतिज्ञान करि प्राप्त होइ ऐसा विचारै कि याका मनविषैं कहा है । पीछैं रिजुमति मनःपर्यय ज्ञानकरि तिस अर्थकौं प्रत्यक्षपने करि रिजुमति मनःपर्ययज्ञानी जानै है यह नियम है ॥ ४४८ ॥

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४९॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्धं चिंतितमनेकभेदगतं ।

अवधिर्वा विपुलमतिः लब्ध्वा विजानाति पश्चात् ॥ ४४९ ॥

जी० प्र०—चिंतितं अचिंतितं अथवा अर्धचिंतितं इत्यनेकभेदगतं परमनोगतार्थं पूर्वं लब्ध्वा पश्चाद्विपुलमतिमनःपर्ययः अवधिरिव प्रत्यक्षं जानाति ॥ ४४९ ॥

स० च०—अतीत कालविषैं चिंतया अनागत कालविषैं जाका चिंतवन होगा ऐसा विना चिंतया वा वर्तमान कालविषैं किछू एक आधासा चिंतया ऐसा अन्य जीवका मनविषैं तिष्ठता अनेक भेद लीए अर्थ ताकौं पहिलैं प्राप्त होइ याका मनविषैं यहु है ऐसा जानि पीछै अवधिज्ञानकी नाईं विपुलमति मनःपर्ययज्ञान तिस अर्थकौं प्रत्यक्ष जानै है ॥ ४४९ ॥

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि जीवलक्खियं रूविं ।

उजुविउलमदी जाणदि अवरवरं मज्झिमं च तहा ॥४५०॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति जीवलक्षितं रूपि ।

ऋजुविपुलमती जानीतः अवरवरं मध्यमं च तथा ॥ ४५० ॥

जी० प्र०—द्रव्यं प्रति क्षेत्रं प्रति कालं प्रति भावं प्रति प्रत्येकं जीवलक्षितं-जीवचिंतितं, रूपि-पुद्गलद्रव्यं तत्संबंधिजीवद्रव्यं च जघन्यं उत्कृष्टं तथा मध्यमं च ऋजुविपुलमतिमनःपर्ययौ जानीतः ॥ ४५० ॥

स० च०—द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भावप्रति जीवकरि लक्षित कहिए चिंतवन कीया हूवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गलके संबंधकौं धरैं संसारी जीव द्रव्य ताकौं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि ऋजुमति वा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान जानै है ॥ ४५० ॥

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु ।

चक्खिंदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥४५१॥

अवरं द्रव्यमौदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं तु ।
चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमुत्कृष्टमृजुमतेर्भवेत् ॥ ४५१ ॥

जी० प्र०–तत्र ऋजुमतिमनःपर्ययः जघन्यद्रव्यं औदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं जानाति स a १६ ख । तु-पुनः, उत्कृष्टद्रव्यं चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमात्रं जानाति । तत्कियत् ? औदारिकशरीरावगाहने संख्यातघनांगुले सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धो गलति तदा चक्षुरिंद्रियाभ्यंतरनिर्वृत्तिप्रदेशप्रचये किमिति त्रैराशिकेन प्र ६ १ । फ स a १६ ख । इ ६ प लब्धमात्रं भवति–स a १६ ख । ६ । प ॥ ४५१ ॥

स०चं०–ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान जघन्यपनै करि औदारिक शरीरका निर्जरारूप समय प्रबद्धकौं जानैं है । औदारिक शरीरविषैं समय समय निर्जरा हो है सो एक समयविषैं औदारिक शरीरके जितने परमाणू निर्जरैं तितने परमाणूनिका स्कंधकौं जघन्य रिजुमति मनःपर्यय ज्ञान जानैं है । बहुरि उत्कृष्टपनैं नेत्र इंद्रियकी निर्जरा मात्र द्रव्यकौं जानैं हैं । सो कितना है ? औदारिक शरीरकी अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिसविषैं विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीरका समय प्रबद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भए तौ नेत्र इंद्रियकी अभ्यंतर निर्वृति अंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है तिसविषैं कितने परमाणू निर्जरा रूप भए ऐसा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया तितने परमाणूनिका स्कंधकौं उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान जानैं है ॥ ४५१ ॥

मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं।
खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥ ४५२ ॥

मनोद्रव्यवर्गणामनंतिमभागेन ऋजुगोत्कृष्टं।
खंडितमात्रं भवति विपुलमतेरवरं द्रव्यं ॥ ४५२ ॥

जी० प्र०—मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनंतैकभागेन ध्रुवहारेण ज १ ऋजुमतिविषयोत्कृष्टद्रव्ये खंडिते यावन्मात्रं तत्स्फुटं विपुलमतिविषयजघन्यद्रव्यं भवति स a १६ ख। ६ प ॥ ४५२ ॥

(ख ख; १— ; a)

६ ७ प ७ ७ प । ९ (१— ; a a)

स० चं०—बहुरि तेईस जातिकी पुद्गल वर्गणानिविषैं मनोवर्गणाका जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत जितने भेद हैं तिनिकौं अनंतका भाग दीजिए तहां जो एक भागविषैं प्रमाण होइ सो मनःपर्यय ज्ञानका कथन विषै ध्रुवहारका परिमाण जानना सो ऋजुमतिका उत्कृष्ट विषयभूत द्रव्यविषैं जो परिमाण कह्या था ताकौं इस ध्रुवहारका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं जघन्य विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ॥४५२॥

अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोबचयं।
धुवहारेणिगिवारं भजिदे विदियं हवे दव्वं ॥ ४५३ ॥

अष्टानां कर्मणां समयप्रबद्धं विविस्रसोपचये।

ध्रुवहारेणैकवारं भजिते द्वितीयं भवेद् द्रव्यं ॥ ४५३ ॥

जी० प्र०—अष्टकर्मसामान्यसमयप्रबद्धे विविस्रसोपचये ध्रुवहारेण एकवारं भक्ते यदेकखंडं तद्विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्यं भवति—

स ३ ३ ३ ख ख ॥ ४५३ ॥
९

स० चं —आठ कर्मनिका समुदायरूप जो समय प्रबद्धका प्रमाण तीहि विषैं विस्रसोपचयके परमाणू न मिलाइए तिनहीकौं एकवार मनःपर्यय संबंधी ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं विपुलमति मनःपर्ययका दूसरा भेदरूप ज्ञान जानैं है ॥ ४५३ ॥

तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं ।
धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥ ४५४ ॥

तद्द्वितीयं कल्पानामसंख्येयानां च समयसंख्यासमं ।
ध्रुवहारेणावहृते भवति हि उत्कृष्टकं द्रव्यं ॥ ४५४ ॥

जी० प्र०—तस्मिन् विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्ये असंख्यातकल्पसमयसंख्यैर्ध्रुवहारैर्भक्ते विपुलमतिविषयं सर्वोत्कृष्टद्रव्यं भवति—

स ३ ३ ३ ग ग ॥ ४५४ ॥
९। क ३ ९ ९ ९

स० चं —तिस विपुलमतिके दूसरे भेदसंबंधी द्रव्यकौं तिस ही ध्रुवहारका भाग दीजिए जो प्रमाण आवै ताकौं फेरि ध्रुवहारका भाग दीजिए ऐसैं असंख्यात कल्पकालके जेते समय हैं तितनीवार ध्रुवहारका भाग दीजिए देतैं देतैं अंतविषैं जो परिमाण रहै तितने परिमाणूनिका स्कंधकौं उत्कृष्ट विपुलमतिज्ञान जानैं है ऐसैं द्रव्य प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे ॥ ४५४ ॥

गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ।
विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

गव्यूतिपृथक्त्वमवरमुत्कृष्टं भवति योजनपृथक्त्वं ।
विपुलमतेश्च अवरं तस्य पृथक्त्वं वर खलु नरलोकः ॥ ४५५ ॥

जी० प्र०—ऋजुमतिविषयजघन्यक्षेत्रं गव्यूतिपृथक्त्वं द्वित्रिकोशाः २ । ३ । उत्कृष्टं योजनपृथक्त्वं सप्ताष्टयोजनानि ७ । ८ । विपुलमतिविषयजघन्यक्षेत्रं योजनपृथक्त्वं अष्टनवयोजनानि । ८ । ९ । उत्कृष्टं स्फुटं नरलोकः ॥ ४५५ ॥

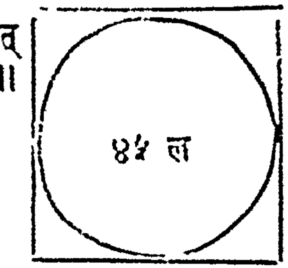
स० चं०—ऋजुमतिका विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व कोश प्रमाण है सो दोय तीन कोश प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है सो सात वा आठ योजन प्रमाण जानना । बहुरि विपुलमतिका विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है सो आठ वा नव योजन प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्यलोक प्रमाण है ॥ ४५४ ॥

णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स ।
जह्मा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥ ४५६ ॥

नरलोक इति च वचनं विष्कंभनियामकं न वृत्तस्य ।
यस्मात्तद्घनप्रतरं मनःपर्ययक्षेत्रमुद्दिष्टं ॥ ४५६ ॥

जी० प्र०—यद्विपुलमतिविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणे नरलोक इति वचनमुक्तं तत् तद्गतविष्कंभस्य नियामकं निश्चायकं भवति न तु वृत्तस्य ।

कुतः ? यतस्तत्पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाणं समचतुरस्रघनप्रतरं मनःपर्ययविषयोत्कृष्टक्षेत्रं समुद्दिष्टं ततः कारणात् तदपि कुतः ? मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणस्थिततिर्यगमराणां परचिंतितानां उत्कृष्टविपुलमतेः परिज्ञानात् ॥४५६॥



स० चं०—नरलोक ऐसा वचन कह्या है सो इहां मनुष्य लोकका विष्कंभका जेता परिमाण है सो लेना अर मनुष्य लोक तौ गोल है अर यहु विपुलमतिका विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कह्या है सो पैंतालीस लाख योजन लंबा तितना ही चौडा ऐसा परिमाण जानना। इहा ऊंचाई थोडी है तातैं घन प्रतर कह्या है जातैं मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य च्यारों कोणानिविषैं तिष्ठते देव तिर्यंच चिंतए हूवे तिनिकौं भी उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ऐसैं क्षेत्रप्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे ॥ ४५६ ॥

दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं।
अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥ ४५७ ॥

द्विकत्रिकभवा हि अवरं सप्ताष्टभवा भवंति उत्कृष्टं।
अष्टनवभवा हि अवरमसंख्येयं विपुलोत्कृष्टं ॥ ४५७ ॥

जी० प्र०—कालं प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्यं द्वित्रिभवाः स्युः। उत्कृष्टं सप्ताष्टभवाः स्युः। विपुलमतेर्विषयजघन्यं अष्टनवभवाः स्युः। उत्कृष्टं पल्यासंख्यातैकभागः स्यात् प/a ॥ ४५७ ॥

स० चं०—कालकरि ऋजुमतिका विषय जघन्यपनैं अतीत अनागतरूप दोय तीन भव है उत्कृष्टपनैं सात

आठ भव है बहुरि विपुलमतिका विषय जघन्य आठ नव भव है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग मात्र है। ऐसैं अतीत अनागत अपेक्षा काल प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे॥ ४५७॥

आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं।
तत्तो असंखगुणिदं असंखलोगं तु विउलमदी॥ ४५८॥

आवल्यसंख्यभागमवरं च वरं च वरमसंख्यगुणं।
ततोऽसंख्यातगुणितमसंख्यलोकं च विपुलमतिः॥ ४५८॥

जी० प्र०—भावं प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्य आवल्यसंख्यातैकभागः। ८/aaa उत्कृष्ट तदालापमपि जघन्यादसंख्यातगुणं ८ a/aaa ततः विपुलमतेर्विषयजघन्यमसंख्यातगुणं ८ a a/aaa उत्कृष्ट तु पुनः असंख्यातलोकः। — a॥ ४५८॥

स० चं०—ऋजुमतिका विषयभूत भाव जघन्यपनैं आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण है। उत्कृष्टपनैं भी आवलीके असंख्यातवां भाग प्रमाण ही कहिए तथापि जघन्यतैं असंख्यात गुणा है। बहुरि विपुलमतिका विषयभूत भाव जघन्यपनै रिजुमतिका उत्कृष्टतैं असंख्यात गुणा है। बहुरि उत्कृष्टपनैं असंख्यात लोक प्रमाण है। ऐसैं भाव प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे॥ ४५८॥

मज्झिमदव्वं खेत्तं कालं भावं च मज्झिमं णाणं।
जाणदि इदि मणपज्जवणाणं कहिदं समासेण॥

मध्यमद्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च मध्यमं ज्ञानं।
जानातीति मनःपर्ययज्ञानं कथितं समासेन॥ ४५९॥

जी० प्र०—ऋजुविपुलमत्योः जघन्योत्कृष्टविकल्पौ जघन्योत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानीतः। मध्यमविकल्पास्तु स्वस्वमध्यमद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानंति इत्येवं मनःपर्ययज्ञानं संक्षेपेणोक्तम् ॥ ४५९ ॥

स० चं—रिजुमति अर विपुलमतिका जघन्यभेद अर उत्कृष्ट भेद तो जघन्य वा उत्कृष्ट द्रव्यके क्षेत्र काल भावनिकों जानै है। अर जे जघन्य अर उत्कृष्टके मध्यवर्ती जे द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनकों रिजुमति अर विपुलमतिके जे मध्य भेद हैं ते जानें हैं ऐसें मनःपर्ययज्ञान संक्षेपकरि कह्या है ॥ ४५९ ॥

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं।
लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥

संपूर्णं तु समग्रं केवलमसंपन्नं सर्वभावगतं।
लोकालोकवितिमिरं केवलज्ञानं मंतव्यं ॥ ४६० ॥

जी० प्र०—जीवद्रव्यस्य शक्तिगतसर्वज्ञानाविभागप्रतिच्छेदानां व्यक्तिगतत्वात् संपूर्णं। मोहनीयवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयादप्रतिहतशक्तियुक्तत्वात् निश्चलत्वाच्च समग्रं। इंद्रियसहायनिरपेक्षत्वात् केवलं। घातिचतुष्टयप्रक्षयात् क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन सकलपदार्थगतत्वात् असंपन्नं। लोकालोकयोर्विगततिमिरं तदिदं केवलज्ञानं मंतव्यं ॥ ४६० ॥ अथ ज्ञानमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

स० चं०—जीव द्रव्यके शक्तिरूप जे सर्व ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद थे ते सर्व व्यक्तरूप भए तातें संपूर्ण हैं बहुरि ज्ञानावरणीय अर वीर्यांतराय नामा कर्मके सर्वथा नाशतें जिसकी शक्ति रुकै नाहीं है वा निश्चल है तातें समग्र है। बहुरि इंद्रियनिका सहायकरि रहित है तातें केवल है। बहुरि प्रतिपक्षी च्यारि घाति कर्मके नाशतें अनुक्रम रहित सकल पदार्थनिविषैं प्राप्त भया है तातें असंपन्न है बहुरि लोकालोकविषैं अज्ञान अंधकार रहित प्रकाशमान है ऐसा अभेदरूप केवलज्ञान जानना ॥ ४६० ॥ आगें ज्ञानमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहे हैं—

चदुगदिमदिसुदबोहा पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा।

संखेज्जा केवलिणो सिद्धादो होंति अदिरित्ता ॥४६१॥

चतुर्गतिमतिश्रुतबोधाः पल्यासंख्येया हि मनःपर्यायाः ।
संख्येयाः, केवलिनः सिद्धात् भवंति अतिरिक्ताः ॥ ४६१ ॥

जी० प्र०—चतुर्गतेर्मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च प्रत्येक पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्युः स्फुटं म प श्रु प मनःपर्ययज्ञानिनः संख्याताः १ केवलज्ञानिनः जिनसंख्यया समधिकसिद्धराशिः ३ ॥ ४६१ ॥

स० चं०—च्यारयो गतिविषैं मतिज्ञानी पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं। बहुरि श्रुतज्ञानी भी पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं बहुरि मनःपर्यय ज्ञानी मनुष्य संख्यात हैं। बहुरि केवलज्ञानी सिद्धराशिविषैं तेरहां चौदहां गुणस्थानवर्ती जीवनिका परिमाण मिलाएं जो होइ तीहिं प्रमाण हैं ॥ ४६१ ॥

ओहिरहिदा तिरिक्खा मदिणाणिअसंखभागगा मणुगा।
संखेज्जा हु तदूणा मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधिरहिताः तिर्यंचः मतिज्ञान्यसंख्यभागका मनुजाः ।
संख्येया हि तदूनाः मतिज्ञानिनः अवधिपरिमाणं ॥ ४६२ ॥

जी० प्र०—अवधिज्ञानरहिततिर्यंचः मतिज्ञानिसंख्यया असंख्येयभागः प १ अवधिरहितमनुष्याः संख्याताः १ एतद्राशिद्वयोना मतिज्ञानसंख्यैव चतुर्गत्यवधिज्ञानपरिमाणं भवति प १० – १ ॥ ४६२ ॥

स० चं०—अवधिज्ञानरहित तिर्यंच, मतिज्ञानी जीवनिकी संख्या कही तीहिंके असंख्यातवे भाग प्रमाण

है। बहुरि अवधिज्ञानरहित मनुष्य संख्यात हैं ए दोऊ राशि मतिज्ञानी जीवनिकी जो संख्या कही थी तिसमैंस्यों घटाइ दीएं जो अवशेष प्रमाण रहै तितने च्यारचो गतिसंबधी अवधिज्ञानी जीव जानने ॥ ४६२ ॥

पल्लासंखघणंगुलहदसेढितिरिक्खगदिविभंगजुदा ।
णरसहिदा किंचूणा चदुगदिवेभंगपरिमाणं ॥ ४६३ ॥

पल्यासंख्यघनांगुलहतश्रेणितिर्यग्गतिविभंगयुताः ।
नरसहिताः किंचिदूनाः चतुर्गतिवैभंगपरिमाणं ॥ ४६३ ॥

जी० प्र०—पल्यासंख्यातघनांगुलहतजगच्छ्रेणिमात्रतिर्यंचः—६ प संख्यातमनुष्याः ७ सम्यग्दृष्ट्यूनघनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रनारकाः—२—सम्यग्दृष्ट्यूनज्योतिष्कसंख्यासाधिकदेवाः १— मिलित्वा चतुर्गतिविभंगज्ञानिसंख्या भवति १—

= ७-
४ । ६५ = ७ ॥ ४६३ ॥

स० चं०—पल्यका असंख्यातवां भाग गुणित घनांगुलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणिए जो प्रमाण होइ तितने तौ तिर्यंच बहुरि संख्याते मनुष्य बहुरि घनांगुलका द्वितीय मूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणिए तितना नारकीनिका प्रमाण है। तामैं सम्यग्दृष्टी नारकी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष रहै तितना नारकी बहुरि ज्योतिषी देवनिका परिमाणविषैं भवनवासी व्यंतर वैमानिक देवनिका परिमाण मिलाए सामान्य देवराशि होइ तामैं सम्यग्दृष्टी देवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष रहै तितने देव इनि सबनिका जोड दीए जो प्रमाण होइ तितने च्यारयो गतिसंबधी विभंगज्ञानी जानने ॥ ४६३ ॥

सण्णाणिरासिपंचयपरिहीणो सव्वजीवरासी हु ।

मदिसुदअण्णाणीणं पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४ ॥

सज्ज्ञानराशिपंचकपरिहीनः सर्वजीवराशिर्हि ।
मतिश्रुताज्ञानिनां प्रत्येकं भवति परिमाणं ॥ ४६४ ॥

जी० प्र०—मत्यादिसम्यग्ज्ञानराशिपंचकेन साधिककेवलराशिमात्रेण ७ सर्वजीवराशिः १६ हीनस्तदा १३– प्रत्येकं मतिश्रुताज्ञानिपरिमाणं स्यात् ॥ ४६४ ॥ ३

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु ज्ञानमार्गणाप्ररूपणानाम द्वादशोऽधिकारः ॥ १२ ॥

स० चं०—सम्यग्ज्ञान पांच तिनिकरि संयुक्त जीवनिका जो परिमाण किछू अधिक केवलज्ञानी जीवनिका परिमाणमात्र सो सर्व जीवराशिका परिमाणविषैं घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै तितने कुमतिज्ञानी जीव जानने। बहुरि तितने ही कुश्रुतज्ञानी जीव जानने ॥ ४६४ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पचसंग्रहग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा इस भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं ज्ञानमार्गणा प्ररूपणा नामा बारहवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १२ ॥

—०:—

अथ संयममार्गणा ॥ १३ ॥

विश्वं विमलयन्स्वीयैर्गुणैर्विश्वातिशायिभिः ।
विमलस्तीर्थकर्ता यो वंदे तं तत्पदाप्तये ॥ १३ ॥

अथ ज्ञानमार्गणां प्ररूप्येदानीं संयममार्गणामाह—

विमल करत निज गुणनितैं सबकौं विमल जिनेश ।
विमल हौंनकौं मैं नमौं अतिशयजुत तीर्थेश ॥ १३ ॥

अथ ज्ञान मार्गणाका प्ररूपणकरि अब संयममार्गणा कहै हैं—

वदसमिदिकसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणियो ॥४६५॥

व्रतसमितिकषायाणां दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानां ।
धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ॥ ४६५ ॥

जी० प्र०—व्रतसमितिकषायदंडेंद्रियाणां पंचानां यथासंख्यं धारणपालननिग्रहत्यागजयाः संयमो भणितः । व्रतधारणं समितिपालनं कषायनिग्रहः दंडत्यागः इंद्रियजयः इति पंचधा संयम इत्यर्थः । सं—सम्यक्, यमनं संयमः ॥ ४६५ ॥

सं० चं०—अहिंसा आदि व्रतनिका धारना, ईर्या आदि समितिनिका पालना, क्रोध आदि कषायनिका निग्रह करना, मन वचन कायरूप दंडका त्याग करना, स्पर्शन आदि पांच इंद्रियनिका जीतना ऐसैं व्रतादिक पंचनिका जो धारणादिक सोई पंचप्रकार संयम जानना । सं—कहिए सम्यक् प्रकार जो यम कहिए नियम सो संयम है ॥ ४६५ ॥

बादरसंजलणुदये सुहुमुदये समखये य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा होदित्ति जिणेहिं णिहिट्ठं ॥ ४६६ ॥

बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मोदये शमक्षययोश्च मोहस्य ।
संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ४६६ ॥

जी० प्र०—बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मलोभोदये मोहनीयोपशमे क्षये च नियमेन संयमभावः स्यात् (इति जिनैरुद्दिष्टं) । तथा हि-प्रमत्ताप्रमत्तयोः संज्वलनकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये उदयनिषेकादुपरितननिषेकाणां उदयाभावलक्षणे उपशमे बादरसंज्वलनदेशघाति-स्पर्धकस्य संयमाविरोधेनोदये सति सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमाः भवंति, सूक्ष्मकृष्टिकरणानिवृत्तिपर्यंतं बादरसंज्वलनोदयेनापूर्वानिवृत्तिकरणेऽपि सामायिकछेदोपस्थापनसंयमौ भवतः, सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदयेन सूक्ष्मसांपरायसंयमः, चारित्रमोहनीयसर्वोपशमेन उपशांतकषाये निरवशेषक्षयेण क्षीणकषायादित्रये च यथाख्यातसंयमो भवतीत्यर्थः, इत्येतज्जिनैरेवोद्दिष्टं ॥ ४६६ ॥ अमुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—बादर संज्वलनका उदय होत संतै बहुरि सूक्ष्म लोभका उदय होत संतैं बहुरि मोहनीयका उपशम होत संतैं वा मोहनीयका क्षय होत संतैं निश्चयकरि संयम भाव हो है ऐसैं जिनदेवने कह्या है । तहां प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थाननिविषैं संज्वलन कषायनिके जे सर्वघाती स्पर्धक हैं तिनिका उदय नाहीं सो तो क्षय है । बहुरि उदय निषेकनितैं ऊपरवर्ती जे निषेक तिनिका उदय नाही सोई उपशम बहुरि बादर संज्वलनके जे देश घातिया स्पर्धक संयमके अविरोधी तिनिका उदय ऐसैं क्षयोपशम होतैं सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हो हैं । बहुरि सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप जो अनिवृत्ति करण तींहि पर्यंत बादर संज्वलनके उदयकरि अपूर्वकरण अर अनिवृत्ति करण गुणस्थाननिविषैं सामायिक अर छेदोपस्थापना दोय ही संयम हो हैं । बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त हूवा ऐसा जो संज्वलन लोभ ताके उदयकरि दशवे गुणस्थान सूक्ष्मसांपराय संयम हो है । बहुरि सर्व चारित्र मोहनीयकर्मके उपशमतैं वा क्षयतैं यथाख्यात संयम हो है तहां ग्यारहै गुणस्थान उपशम यथाख्यात हो है । बारहै तेरहै चौदहै क्षायिक यथाख्यात हो है ॥ ४६६ ॥ इस ही अर्थकौं दोय गाथानिकरि कहैं हैं—

बादरसंजलणुदये बादरसंजमतियं खु परिहारो ।
पमदिदरे सुहुमुदये सुहुमो संजमगुणो होदि ॥४६७॥

वादरसंज्वलनोदये वादरसंयमत्रिकं खलु परिहारः ।
प्रमत्तेतरस्मिन् सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ॥ ४६७ ॥

जी० प्र०—वादरसंज्वलनसंयमाविरोधेन देशघातिस्पर्धकोदये वादरं सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमत्रयं भवति तत्र परिहारविशुद्धिः प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव, शेषद्वय अनिवृत्तिपर्यंतं भवति । सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदये सूक्ष्मसांपरायसंयमगुणो भवति ॥ ४६७ ॥

स० चं०—वादर संज्वलनका देशघाती स्पर्धक जे संयमके विरोधी नाही तिनके उदयकरि सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हो हैं तहां परिहारविशुद्धि तौ प्रमत्त अप्रमत्त दोय गुणस्थाननिविषैं ही हो है अर सामायिक छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं है। बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त हूवा संज्वलन लोभ ताके उदयकरि सूक्ष्मसांपराय नामा सयम गुण हो है ॥ ४६७ ॥

जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदोवि य सो णियमा होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ४६८ ॥

यथाख्यातसंयमः पुनः उपशमतो भवति मोहनीयस्य ।
क्षयतोऽपि च स नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ४६८ ॥

जी० प्र०—स यथाख्यातसंयमः पुनः मोहनीयस्योपशमतः निरवशेषक्षयनश्च नियमेन भवतीति जिनैरुक्तं ॥ ४६८ ॥

स० चं०—बहुरि यथाख्यात संयम है सो निश्चयकरि मोहनीयकर्मके सर्वथा उपशमतैं वा क्षयतैं हो है ऐसैं जिनदेवनिकरि कह्या है ॥ ४६८ ॥

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकसायुदयेण य असंजमो होदि णियमेण ॥ ४६९ ॥

तृतीयकषायोदयेन च विरताविरतो गुणो भवेद्युगपत् ।
द्वितीयकषायोदयेन च असंयमो भवति नियमेन ॥ ४६९ ॥

जी० प्र०—प्रत्याख्यानकषायोदयेन विरताविरतगुणो युगपद् भवति, संयमासंयमयोर्युगपत्संभवात् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिवद्देशसंयतोऽपि मिश्रसंयमीत्यर्थः । अप्रत्याख्यानकषायोदये असंयमो नियमेन भवति ॥ ४६९ ॥

स० चं०—तीसरा प्रत्याख्यान कषायका उदयकरि युगपत् विरत अविरतरूप संयमासंयम हो है जैसैं तीसरे गुणस्थान सम्यक्त्व मिथ्यात्व मिलै ही हो है तैसैं पंचमगुणस्थानविषैं संयम असंयम दोऊ मिश्ररूप हो हैं तातैं यहु मिश्र संयमी है बहुरि दूसरा अप्रत्याख्यान कषायके उदयकरि असंयम हो है। ऐसैं संयम मार्गणाके सात भेद कहे ।

संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजमो होदि ॥ ४७० ॥

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यं ।
जीवः समुद्वहन् सामायिकसंयमो भवति ॥ ४७० ॥

जी० प्र०—सकलसंयमं—व्रतधारणादिपंचविधं युगपत्सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति संगृह्य—संक्षिप्य, एकयमं—भेदरहितसकलसावद्यनिवृत्तिरूपं, अनुत्तरं—असदृशं, संपूर्णं, दुरवगम्य—दुःखेन प्राप्यं तत्सामायिकं समुद्वहन् जीवः सामायिकसंयमः-सामायिकसंयमसंयुक्तो भवति ॥ ४७० ॥

स० च०—समस्त ही व्रतधारणादिक पंचप्रकार संयमकौं संग्रहनयकरि एकयम कहिए मैं सर्व सावद्यका त्यागी हौं ऐसा एकसंयम कहिए सकल सावद्यका त्यागरूप अभेद संयम सोई सामायिक जानना। कैसा है सामायिक ?

अनुत्तरं कहिए जाके समान और नाहीं संपूर्ण है । बहुरि दुरवगम्यं कहिए दुर्लभपनैं पाइए है सो ऐसैं सामायिककौं पालता जीव सामायिकसंयमी हो है ॥ ४७० ॥

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ॥ ७१ ॥

छित्वा च पर्यायं पुराणं यः स्थापयति आत्मानं ।
पंचयमे धर्मे स छेदोपस्थापको जीवः ॥ ४७१ ॥

जी० प्र०—सामायिकसंयतो भूत्वा प्रच्युत्य सावद्यव्यापारप्रतिपन्नो यो जीवः पुराणं-प्राक्तनं सावद्यव्यापारपर्यायं प्रायश्चित्तैश्छित्त्वा आत्मानं व्रतधारणादिपंचप्रकारसंयमरूपधर्मे स्थापयति स छेदोपस्थापनसंयतः स्यात् । छेदेन प्रायश्चित्ताचरणेन उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इति निरुक्तेः । अथवा प्रायश्चित्तेन स्वकृतदोषपरिहाराय पूर्वकृततपस्तद्दोषानुसारेण छित्वा आत्मानं तन्निरवद्यसंयमे स्थापयति स छेदोपस्थापकः ततः, स्वतपश्छेदे सति उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इत्यधिकरणव्युत्पत्तेः ॥ ४७१ ॥

स० चं०—सामायिक चारित्रकौं धारि बहुरि प्रमादतें स्खलित होइ सावद्य क्रियाकौं प्राप्त हूवा ऐसा जो जीव पहिले भया जो सावद्यरूप पर्याय ताका प्रायश्चित्तविधितें छेदन करि अपने आत्माकौं व्रतधारणादि पंचप्रकार संयमरूप धर्मविषैं स्थापन करै सोई छेदोपस्थापन संयमी जानना । छेद कहिए प्रायश्चित्त तींहिकरि उपस्थापन कहिए धर्मविषैं आत्माकौं स्थापना सो जाकैं होइ अथवा छेद कहिए अपने दोष दूर करनेके निमित्त पूर्वें कीया था तप तिसका उस दोषके अनुसारि विच्छेद करना तिसकरि उपस्थापन कहिए निर्दोष संयमविषैं आत्माकौं स्थापना सो जाकैं होइ सो छेदोपस्थापन संयमी है । अपना तपका छेद होतैं है उपस्थापन जाकैं सो छेदोपस्थापन है ऐसी निरुक्ति जानना ॥ ४७१ ॥

पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदावि जो हु सावज्जं ।

पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ॥ ७२ ॥

पंचसमितः त्रिगुप्तः परिहराति सदापि यो हि सावद्यं ।
पंचैकयमः पुरुषः परिहारकसंयतः स हि ॥ ४७२ ॥

जी० प्र०—पंचसमितिरूपेतः त्रिगुप्तियुतः सदापि प्राणिवधं परिहरति, यः पंचानां सामायिकादीनां मध्ये परिहारविशुद्धिनामैकसंयमः पुरुषः सः परिहारविशुद्धिसंयतः स्फुट भवति ॥ ४७२ ॥

स० चं०—पंच सामिति तीन गुप्तिकरि संयुक्त जो जीव सदा काल ही हिंसारूप सावद्यका परिहार करै सो पुरुष सामायिकादि पच संयमनिविषैं परिहारविशुद्धि नामा संयमका धारी प्रकट जानना ॥ ४७२ ॥

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।
पंचक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥ ४७३ ॥

त्रिंशद्वार्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थकरमूले ।
प्रत्याख्यानं पठितः संध्योनद्विगव्यूतिविहारः ॥ ४७३ ॥

जी० प्र०—जन्मनि त्रिंशद्वार्षिकः सर्वदा सुखी सन्नागत्य दीक्षां गृहीत्वा वर्षपृथक्त्वपर्यंतं तीर्थकरश्रीपादमूले प्रत्याख्यानं नवमपूर्वं पठितः स परिहारविशुद्धिसंयमं स्वीकृत्य संध्यात्रयोनसर्वकाले द्विक्रोशप्रमाणविहारी रात्रौ विहाररहितः प्रावृट्कालनियमरहितः परिहारविशुद्धिसंयतो भवति । परिहरणं परिहारः, प्राणिवधान्निवृत्तिः, तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिन् स परिहारविशुद्धिः, स संयमो यस्य स परिहारविशुद्धिसंयमः, तस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तः, जघन्येन तावत्कालमेव तत्र स्थित्वा गुणस्थानांतरश्रयणात् । उत्कृष्टः अष्टत्रिंशद्वर्षोनपूर्वकोटिः उत्पत्तिदिवसादारभ्य त्रिंशद्वर्षाणि सर्वदा सुखेन नीत्वा संयमं प्राप्य वर्षपृथक्त्वं तीर्थकरपादमूले प्रत्याख्यानं पठितस्य तदंगीकरणात् ॥

उक्तं च—

परिहारर्द्धिसमेतः षड्जीवनिकायसंकुले विहरन् ।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन ॥ ४७३ ॥

स० चं०—जो जन्मतैं तीसवर्षका भया होइ बहुरि सर्वदा खानपानादिसैं सुखी होइ ऐसा पुरुष दीक्षाकौं अंगीकार करि पृथक्त्ववर्ष पर्यंत तीर्थंकरके पाद मूल प्रत्याख्यान नामा नवमा पूर्वका पाठी होइ सो परिहारविशुद्धि संयमकौं अंगीकार करि तीनूं संध्या काल विना सर्व कालविषैं दोय कोस विहार करै अर रात्रिविषैं विहार न करै वर्षाकालविषैं किछू नियम नाही, गमन करै वा न करै ऐसा परिहारविशुद्धि संयमी हो है। परिहार कहिए प्राणीनिकी हिंसाका त्याग, ताकरि विशेषरूप जो शुद्धिः कहिए शुद्धता जाविषैं होइ सो परिहारविशुद्धि संयम जानना। इस संयमका जघन्य काल तौ अंतर्मुहूर्त है जातैं कोई जीव अंतर्मुहूर्तमात्र तिस संयमकौं धारि अन्य गुणस्थानकौं प्राप्त होइ, तहां सो संयम है नाही तातैं जघन्य काल अंतर्मुहूर्त कह्या। बहुरि उत्कृष्ट काल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व है। जातैं कोई जीव कोडि पूर्वका धारी तीसवर्षका दीक्षा ग्रहि आठ वर्ष पर्यंत तीर्थंकरके निकटि पढै तहां पीछै परिहारविशुद्धि संयमकौं अंगीकार करै तातैं उत्कृष्टकाल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व कह्या।

उक्तं च—

परिहारर्धिसमेतो जीवः षट्कायसंकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन॥

याका अर्थ—परिहार विशुद्धि ऋद्धिकरि संयुक्त जीव छह कायरूप जीवनिका समूहविषैं विहार करता जलकरि कमलपत्रकी नाई पापकरि लिप्त न होइ॥ ४७३॥

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहुमसंपराओ जहखादेणूणओ किंचि॥ ४७४॥

अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको वा क्षपको वा।
स सूक्ष्मसांपरायः यथाख्यातेनोनः किंचित्॥ ४७४॥

जी० प्र०—सूक्ष्मः लोभकृष्टिगतानुभागमनुभवन् यः उपशमकः क्षपको वा स जीवः सूक्ष्मसांपरायः स्यात् । सूक्ष्मसांपरायः कषायो यस्येत्यन्वर्थनामा महामुनिः यथाख्यातसंयमिभ्यः किंचिन्न्यूनो भवति ॥ ४७४ ॥

स० चं०—सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त भया लोभ कषायका अनुभाग ताके उदयकौं भोगवता उपशमी वा क्षायिकी जीव सो सूक्ष्म है सांपराय कहिए कषाय जाकैं ऐसा सूक्ष्मसांपराय संयमी जानना सो यहु यथाख्यात संयमी जे महामुनि तिनितैं किछू एक घाटि जानना, स्तोकसा ही अंतर है ॥ ४७४ ॥

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।
छदुमट्ठो व जिणो वा जहखादो संजदो सो दु ॥ ४७५ ॥

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्मणि मोहनीये ।
छद्मस्थो वा जिनो वा यथाख्यातः संयतः स तु ॥ ४७५ ॥

जी० प्र०—अशुभमोहनीयकर्मणि उपशांते क्षीणे वा यः उपशांतक्षीणकषायछद्मस्थः सयोगायोगजिनो वा, सः, तु–पुनः, यथाख्यातसंयतो भवति । मोहस्य निरवशेषस्य उपशमात् क्षयाद्वा आत्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं यथाख्यातचारित्रमित्याख्यायते ॥ ४७५ ॥

स० चं०—अशुभरूप मोहनीयनामा कर्म सो उपशम होतैं वा क्षयरूप होतैं उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती वा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ होइ अथवा सयोगी अयोगी जिन होइ सोई यथाख्यात संयमी जानना । मोहनीयकर्मके सर्वथा उपशमतैं वा नाशतैं जो यथावस्थित आत्मस्वभावकी अवस्था सोई है लक्षण जाका ऐसा यथाख्यात चारित्र कहिए है ॥ ४७५ ॥

पंचतिहिचउविहेहिं य अणुगुणसिक्खावएहिं संजुत्ता ।
उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ॥ ४७६ ॥

पंचत्रिचतुर्विधैश्च अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः ।
उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयः झरितकर्माणः ॥ ४७६ ॥

जी० प्र०—पंचत्रिचतुरणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्तसम्यग्दृष्टयः कर्मनिर्जरावंतः ते देशविरताः इति परमागमे उच्यंते ॥ ४७६ ॥

स० चं०—पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यारि शिक्षाव्रत ऐसैं वारह व्रतनिकरि संयुक्त जे सम्यग्दृष्टी कर्म निर्जराके धारक ते देशविरती सयमासयमके धारक परमागमविषैं कहिए हैं ॥ ४७६ ॥

दंसणवयसामाइय पोसहसच्चित्तरायभत्ते य ।
बह्मारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदेदे ॥ ४७७ ॥

दर्शनव्रतसामायिकाः प्रोषधसचित्तरात्रिभक्ताश्च ।
ब्रह्मारंभपरिग्रहानुमतोद्दिष्टदेशविरता एते ॥ ४७७ ॥

जी० प्र०—अत्र नामैकदेशो नाम्नि वर्तते इति नियमाद्गाथार्थो व्याख्यायते । दर्शनिको, व्रतिकः, सामायिकः, प्रोषधोपवासः, सचित्तविरतः, रात्रिभक्तविरतः, ब्रह्मचारी, आरंभविरतः, परिग्रहविरतः, अनुमतिविरतः, उद्दिष्टविरतश्चेत्येकादशैते विरतभेदाः । तत्र—"पंचुंवरसहियाइं सत्तइ वसणाणि जो विवज्जेइ । सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ ।" इत्यादिलक्षणानि ग्रंथांतरेऽवगंतव्यानि ॥ ४७७ ॥

स० चं०—नामके एक देशतैं सर्व नामका ग्रहण करना इस न्यायकरि इस गाथाका अर्थ कीजिए है दर्शनिक १ व्रतिक २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ सचित्तविरत ५ रात्रिभोजनविरत ६ ब्रह्मचारी ७ आरंभविरत ८ परिग्रह विरत ९ अनुमति विरत १० उद्दिष्ट विरत ११ ऐसैं ग्यारह प्रतिमाकी अपेक्षा देशविरतके ग्यारह भेद जानने । तहां पांच उदुंबरादिक अर सप्त व्यसननिकौं त्यागै अर शुद्धसम्यक्त्वी होइ सो दर्शनिक कहिए । पंच अणुव्रतादिककौं धारै सो व्रतिक कहिए । नित्य सामायिक क्रिया जाकैं होइ सो सामायिक कहिए । अवश्य पर्वनिविषैं उपवास जाकैं होइ सो प्रोषधोपवास कहिए । जीवसहित वस्तु सेवनका त्यागी होइ सो सचित्तविरत कहि-

ए। रात्रिविषैं भोजन न करै सो रात्रिभक्तविरत कहिए। सदा काल शील पालै सो ब्रह्मचारी कहिए। पाप आरंभकौं त्यागै सो आरंभ विरत कहिए। पापकी अनुमोदनाकौं त्यागै सो अनुमतिविरत कहिए। अपने निमित्त भया आहारादिककौं त्यागै सो उद्दिष्टविरत कहिए इनिका विशेष वर्णन ग्रंथांतरमें जानना ॥ ४७७ ॥

जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु।
जे तेसु णेव विरया असंजदा ते मुणेदव्वा ॥ ४७८ ॥

जीवाश्चतुर्दशभेदा इंद्रियविषयास्तथाष्टविंशतिस्तु।
ये तेषु नैव विरता असंयताः ते मंतव्याः ॥ ४७८ ॥

जी० प्र०—चतुर्दशजीवभेदाः, तु–पुनः इंद्रियविषयाः अष्टाविंशतिः तेषु ये नैव विरतास्ते असंयता इति मंतव्याः ॥ ४७८ ॥

स० चं०—चौदह जीवसमास रूप भेद बहुरि तैसैं ही अट्ठाईस इंद्रियानिके विषय तिनिविषैं जे विरत न होंई, जीवनिकी दया न करैं विषयानिविषैं रागी होंइ ते असयमी जानने ॥ ४७८ ॥

पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ॥

पंचरसपंचवर्णाः द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शसप्तस्वराः।
मनःसहिताः अष्टविंशतिः इंद्रियविषया मंतव्याः ॥ ४७९ ॥

जी० प्र०—रसाः-तिक्तकटुककषायाम्लमधुराः पंच। वर्णाः-श्वेतपीतहरितारुणकृष्णाः पंच। गंधौ सुगंधदुर्गंधौ द्वौ। स्पर्शाः मृदुकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाः अष्टौ। स्वराः-षड्ज-ऋषभ-गांधार-मध्यम-धैवत-निषादा सरिगमपधनिरूपाः सप्त एते इंद्रियविषयाः सप्तविंशतिः। मनोविषय एकः, एवमष्टविंशतिर्मंतव्याः ॥ ४७९ ॥ अथ संयममार्गणायां जीवसंख्यामाह—

स० चं०—तीखा १ कडवा २ कसायला ३ खाटा ४ मीठा ५ ए पांच रस वहुरि सुपेद १ पीला २ हरया ३ लाल ४ काला ५ ए पांच वर्ण वहुरि सुगंध १ दुर्गंध २ ए दोय गध वहुरि कोमल १ कठोर २ भारया ३ हलका ४ सीता ५ ताता ६ रूखा ७ चिकना ८ ए आठ स्पर्श वहुरि पडज १ ऋपभ २ गांधार ३ मध्यम ४ पंचम ५ धैवत ६ निषाद ७ ए सात स्वर ऐसैं इंद्रियनिके सत्ताईस विषय अर अनेक विकल्परूप एक मनका विषय ऐसैं विषयके भेद अट्ठाईस जानने ॥ ४७९ ॥ आगै संयम मार्गणा विषै जीवनिकी संख्या कहै हैं—

पमदादिचउण्ह जुदी सामयियदुगं कमेण सेसतियं।
सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहिं परिहीणा ॥

प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकं।
सप्तसहस्राणि नवशतानि नवलक्षाणि त्रिभिः परिहीनानि ॥ ४८० ॥

जी० प्र०—प्रमत्ताः ५, ९३, ९८, २०६ अप्रमत्ताः २, ९६, ९९, १०३ उपशमकाऽपूर्वकरणाः २९९, उपशमकानिवृत्तिकरणाः २९९, क्षपकापूर्वकरणाः ५९८, क्षपकानिवृत्तिकरणाः ५९८, एषां चतुर्णां युतिः २०८ सामायिकछेदोपस्थापनसंयमिसंख्या भवति उभयत्र समसंख्यात्वात् ८, ९०, ९९, १०३। ८, ९०, ९९, १०३। परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातसंयमिसंख्याक्रमेण त्रिरूपोनसप्तसहस्रं ६९९७ त्रिरूपोननवशतं ८९७ त्रिरूपोननवलक्षं ८९९९९७ भवति ॥ ४८० ॥

स० चं०—प्रमत्तादि च्यारि गुणस्थानवर्ती जीवनिका जोड दीएं जो प्रमाण होइ तितना जीव सामायिक अर छेदोपस्थापना संयमके धारक जानने। तहां प्रमत्तवाले पांच कोडि तरेणवै लाख अठ्याणवै हजार दोयसे छह ५९३९८२०६, अप्रमत्तवाले दोय कोडि छिनवै लाख निन्याणवै हजार एकसो तीन २९६९९१०३। अपूर्व करण वाले उपशमी दोयसै निन्याणवै २९९, अनिवृत्ति करणवाले उपशमी २९९ क्षायिकी पांचसो अठ्याणवैं ५९८, इनि सवनिका जोड दीएं आठ कोडि निव्वे लाख निन्याणवै हजार एकसौ तीन भया ८९०९९१०३। सो इतने जीव

सामायिक संयमी जानने अर इतने ही जीव छेदोपस्थापना संयमी जानने। बहुरि अवशेष तीन संयमी रहे तहां परिहारविशुद्धि संयमी तीन घाटि सात हजार जानने ६९९७। सूक्ष्म सांपराय संयमी तीन घाटि नवसे ८९७ जानने। यथाख्यात संयमी तीन घाटि नव लाख जानने ८९९ ९७ ॥ ४८१ ॥

पल्लासंखेज्जदिमं विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं।
पुव्वुत्तरासिहीणा संसारी अविरदाण पमा॥

पल्यासंख्येयं विरताविरतानां द्रव्यपरिमाणं।
पूर्वोक्तराशिहीनाः संसारिणः अविरतानां प्रमा॥ ४८१ ॥

जी० प्र०—पल्यासंख्यातैकभागो देशसंयतजीवद्रव्यप्रमाणं भवति प / a a ४ a एतत्पूर्वोक्तषड्राशिविहीनसंसारिराशिरेव अविरतानां प्रमाणं भवति। १३– ॥ ४८१ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां
जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु संयममार्गणाप्ररूपणा नाम
त्रयोदशोऽधिकारः ॥ १३ ॥

स० चं०—पल्यके असंख्यात भाग करिए तामैं एक भाग प्रमाण संयमासंयमका धारक जीव द्रव्यनिका प्रमाण है बहुरि ए कहे जे छहौं संयमके धारक जीव तिनका प्रमाण संसारी जीवनिका प्रमाणमैं स्यौंघटाए जो अवशेष प्रमाण रहै सोई असंयमी जीवनिका प्रमाण जानना॥ ४८१ ॥

इति श्री आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत
टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषै जीवकांडविषै प्ररूपित बीस प्ररूपणा
तिनि विषै संयममार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा तेरहवां
अधिकार सपूर्ण भया॥ १३ ॥

दर्शन मार्गणा ॥१४॥

अनंतानंतभवाम्भोधिपारगोऽनन्तसौख्यदः।
नमामि तीर्थकर्तारं श्रीमदनन्तमुत्तमम्॥ १४ ॥

अथ संयममार्गणां व्याख्याय दर्शनमार्गणां व्याख्याति—

इस अनन्त भव उदधितैं पार करनकौं सेतु।
श्री अनंत जिनपति नमौं सुख अनन्तके हेतु ॥ १४ ॥

आगे दर्शनमार्गणाकौं कहै हैं—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णदे समये ॥

यत्सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वाकारं।
अविशेष्यार्थान् दर्शनमिति भण्यते समये ॥ ४८२ ॥

जी० प्र०—भावानां सामान्यविशेषात्मकबाह्यपदार्थानां आकारं—भेदग्रहणं, अकृत्वा यत्सामान्यग्रहणं—स्वरूपमात्रावभासनं तत् दर्शनमिति परमागमे भण्यते। वस्तुस्वरूपमात्रग्रहणं कथं ? अर्थान्—बाह्यपदार्थान् अविशेष्य—जातिक्रियागुणप्रकारैरविकल्प्य स्वपरसत्तावभासनं दर्शनमित्यर्थः ॥ ४८२ ॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

स० चं०—भाव जे सामान्य विशेषात्म पदार्थ तिनिका आकार कहिए भेद ग्रहण ताहि नैव कृत्वा कहिए न करिकैं 'यत् सामान्यग्रहण' कहिए जो सत्तामात्र स्वरूपका प्रतिभासना तत् दर्शन कहिए सोई दर्शन परमागमविषै कह्या है। कैसे ग्रहण करै है ? 'अर्थान् आविशेष्य' अर्थ जे बाह्य पदार्थ तिनिकौं अविशेष्य कहिए जाति क्रिया गुण प्रकार इत्यादि विशेष करिकैं न अपना वा अन्यका केवल सामान्य रूप सत्तामात्र ग्रहण करै है॥४८२॥
इसही अर्थकौं स्पष्ट करै हैं—

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि ॥ ४८३ ॥

भावानां सामान्यविशेषकानां स्वरूपमात्रं यत् ।
वर्णनहीनग्रहण जीवेन च दर्शनं भवति ॥ ४८३ ॥

जी० प्र०—भावानां सामान्यविशेषात्मकपदार्थानां यत्स्वरूपमात्रं विकल्परहितं यथा भवति तथा जीवेन सह स्वपरसत्तावभासनं तद्दर्शनं भवति । पश्यति दृश्यते अनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनं ॥ ४८३ ॥ अथ चक्षुरचक्षुर्दर्शने लक्षयति—

स० चं०—सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ तिनिका स्वरूप मात्र भेद रहित जैसें है तैसें जीवकरि सहित स्व-पर सत्ताका प्रकाशना सो दर्शन है । जो देखै वा जाकरि देखिए वा देखने मात्र सो दर्शन जानना ॥४८३॥ आगै चक्षु अचक्षु दर्शनके लक्षण कहैं हैं—

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं बेंति ।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खूत्ति ॥ ४८४ ॥

चक्षुषोः यत्प्रकाशते पश्यति तत् चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति ।
शेषेंद्रियप्रकाशो ज्ञातव्यः स अचक्षुरिति ॥ ४८४ ॥

जी० प्र०—चक्षुषोः-नयनयोः संबंधि यत्सामान्यग्रहणं प्रकाशते पश्यति तद्वा दृश्यते जीवेनानेन कृत्वा तद्वा तद्विषयप्रकाशनमेव तद्वा चक्षुर्दर्शनमिति गणधरदेवादयो ब्रुवंति । यश्च शेषेंद्रियप्रकाशः सः अचक्षुर्दर्शनमिति ॥ ४८४ ॥

स० चं०—नेत्रनिका संबंधी जो सामान्य ग्रहण सो जो प्रकाशिए देखिए याकरि वा तिसनेत्रके विषयका

प्रकाशन सो चक्षु दर्शन गणधरादिक कहैं हैं बहुरि नेत्र बिना च्यारि इन्द्रिय अर मनका जो प्रकाशन सो अचक्षु दर्शन है ऐसा जानना ॥ ४८४ ॥

परमाणुआदियाइं अंतिमखंधत्ति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ॥ ४८५ ॥

परमाण्वादीनि अंतिमस्कंधमिति मूर्तद्रव्याणि ।
तदवधिदर्शनं पुनः यत् पश्यति तानि प्रत्यक्षं ॥ ४८५ ॥

जी० प्र०—परमाणोरारभ्य महास्कंधपर्यंतं मूर्तद्रव्याणि यद्दर्शनं पुनः प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शन भवति ॥ ४८५ ॥

स० चं०—परमाणु आदि महास्कंध पर्यंत जे मूर्तीक द्रव्य तिनिकौं जो प्रत्यक्ष देखै सो अवधि दर्शन है ।४८५।

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ॥ ४८६ ॥

बहुविधबहुप्रकारो उद्योताः परिमिते क्षेत्रे ।
लोकालोकवितिमिरो यः केवलदर्शनोद्योतः ॥ ४८६ ॥

जी० प्र०—बहुविधाः-तीव्रमंदमध्यमादिभावेन अनेकविधाः बहुप्रकाराश्चोद्योताः चन्द्रसूर्यरत्नादिप्रकाराः, लोके-परिमितक्षेत्रे एव भवंति तैः प्रकाशैरनुपमेयः लोकालोकयोर्विगततिमिरो यः स केवलदर्शनोद्योतो भवति ॥ ४८६ ॥ अथ दर्शनमार्गणायां जीवसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—बहुत भेदकौं लीए बहुत प्रकारके चंद्रमा सूर्य रत्नादिक संबंधी उद्योत जगत विषैं हैं ते परिमित जो मर्यादा लीएं क्षेत्र तिस विषैं ही अपने प्रकाश करनेकौं समर्थ हैं तातैं तिनि प्रकाशनिकी उपमा देने योग्य

१। भेदेनानेकप्रकारा उद्योताः प्रकाशविशेषा लोके परीमतक्षेत्रएव प्रकाशते। यो लोकालोकयोः सर्वसामान्याकारे वितिमिरः क्रमकरण व्यवधानराहित्येन सदावभासमानः स केवलदर्शनाख्य उद्योतो भवति इतोऽप्ययमपि पाठो दृश्यते क्वचित्पुस्तके ।

नाहीं ऐसा समस्त लोक अर अलोकविषै अंधकाररहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामा उद्योत जानना। ४८६ ॥ आगैं दर्शनमार्गणा विषै जीवनिकी संख्या दोय गाथानि करि कहैं हैं—

जोगे चउरक्खाणं पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ॥ ४८७॥

योगे चतुरक्षाणां पंचाक्षाणां च क्षीणचरमाणां।
चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तेषां ज्ञानं च ॥ ४८७ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्ट्यादयः क्षीणकषायांताः शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनश्च। तत्र लब्ध्यपर्याप्तचतुरिंद्रियपंचेंद्रियाः शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः, पर्याप्तकचतुरिंद्रियपंचेंद्रियाः व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः। तद्यथा-द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियममाणं सर्वं यद्यावल्यसंख्यातभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरं तदा चतुःपंचेंद्रियममाणं कियत् ? इति त्रैराशिके कृते प्र ४ । फ = । इ २ लब्धं पर्याप्तकसंख्यया किंचिदूनं शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसंख्या भवति = । २ ४ । ४ २ a (४ २ a) द्वितीयत्रैराशिके फलराशिः त्रसपर्याप्तकराशिः प्र ४ । फ = । इ २ लब्धं व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसंख्या भवति = २ ४ । ४ ४ (४ ५) — अवधिदर्शनराशिरवधिज्ञानराशिवत् प a १ a a — ७ केवलदर्शनिसंख्या केवलज्ञानिसंख्यावत् ७ ३ ॥ ४८७ ॥

स० चं०—मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत चक्षुदर्शन ही है तिनके दोयभेद हैं एक शक्तिरूप चक्षुदर्शनी १ एक व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी २ तहां लब्धि अपर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेंद्री तो शक्तिरूप चक्षु दर्श-

नी हैं जातैं नेत्र इंद्रिय पर्याप्तिकी पूर्णता अपर्याप्त अवस्थाविषै नाहीं है तातैं तहां प्रगटरूप चक्षुदर्शन न प्रवर्तै है बहुरि पर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेंद्री व्यक्तरूप चक्षुदर्शनी है जातैं तहां प्रगटरूप चक्षुदर्शन हैं। तहां वेंद्री तेंद्री चौइंद्री पंचेंद्री आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतरांगुलकौं दीए जो प्रमाण आवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने हैं तौ चौइंद्री पंचेंद्री कितने हैं ऐसैं प्रमाणराशी च्यारि फलराशि त्रसनिका प्रमाण इच्छाराशि दोय तहां इच्छाकौं फलराशिकरि गुणि प्रमाणका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना चौइंद्री पंचेंद्री राशि है। तहां वेंद्री आदि क्रमतैं घटते हैं तातैं किंचिदूनकरि बहुरि तिसविषैं पर्याप्त जीवानिका प्रमाण घटावना तातैं तिस प्रमाणमैंस्यों भी किछू घटाए जो प्रमाण होइ तितना शक्तिगत चक्षुदर्शनी जानने। बहुरि ऐसैं ही त्रस पर्याप्त जीवानिका प्रमाणकौं च्यारिका भाग देइ दोगुणाकरि तामैं किंचिदून कीए जो प्रमाण होइ तितना व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी है इंद्रियमार्गणाविषै जो चौइंद्री पंचेंद्रिय जीवानिका प्रमाण कह्या है तिनकौं मिलाए चक्षुदर्शनी जीवानिका प्रमाण हो है। बहुरि अवधिदर्शनी जीवनिका प्रमाण अवधिज्ञानी जीवानिका परिमाणके समान जानना। बहुरि केवलदर्शनी जीवानिका परिमाण केवलज्ञानी जीवानिका परिमाणके समान जानना। सो इनिका प्रमाण ज्ञानमार्गणाविषैं कह्या है ॥ ४८७ ॥

एइंदियपहुदीणं खीणकसायंतणंतरासीणं।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ॥ ४८८ ॥

एकेंद्रियप्रभृतीनां क्षीणकषायांतानंतराशीनां।
योगः अचक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणं ॥ ४८८ ॥

जी० प्र०—एकेंद्रियप्रभृतिक्षीणकषायांतानंतानंतजीवानां योगः अचक्षुर्दर्शनजीवप्रमाणं भवति १३-- ॥ ४८८ ॥

स० चं०—एकेंद्रिय आदि क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती पर्यंत अनंत जीवनिका जोड दीए जो परिमाण होइ तितना चक्षुदर्शनी जीवनिका प्रमाण जानना ॥ ४८८ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे
विंशतिप्ररूपणासु दर्शनमार्गणाप्ररूपणानाम
चतुर्दशोऽधिकारः ॥ १४ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनु-
सारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा
तिनि विषै दर्शनमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा
चौदहवा अधिकार संपूर्ण भया ॥१४॥

लेश्या—मार्गणा ॥१५॥

यः सद्धर्मसुधावर्षैर्भव्यसस्यानि प्रीणयन् ।
नीतवान् स्वेष्टसिद्धिं तं धर्मनाथघनं भजे ॥ १५ ॥

अथ लेश्यामार्गणां वक्तुमना निरुक्तिपूर्वकं लेश्यालक्षणमाह—

स० चं०—

सुधाधार सम धर्मतें पोषे भव्य सुधान्य ।
प्राप्त कीए निज इष्टकौं भजौं धर्म घन मान्य ॥ १५ ॥

आगै लेश्या मार्गणा कह्या चाहैं हैं तहां प्रथम ही निरुक्ति लीएं लेश्याका लक्षण कहैं हैं—

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णियअपुण्णपुण्णं च ।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥ ४८९ ॥

लिंपत्यात्मीकरोति एतया निजापुण्यपुण्यं च ।
जीवं इति भवति लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ॥ ४८९ ॥

जी० प्र०—लेश्या द्रव्यभावभेदाद् द्वेधा तत्र भावलेश्यां लक्षयितु इदं सूत्र । लिंपति—आत्मीकरोति निजमपुण्यं पुण्यं च जीव एतयेति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकैर्गणधरदेवादिभिराख्याता । अनया कर्मभिरात्मान लिंपतीति लेश्या । कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या कषायाणामुदयेन अनुरंजिता कमप्यतिशयांतरमुपनीता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या ॥ ४८९ ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टयति—

स० चं०—लेश्या दोय प्रकार—एक द्रव्य लेश्या १ एक भाव लेश्या २ तहां इस सूत्र विषै भाव लेश्याका लक्षण कह्या है । लिंपंति एतया इति लेश्या, पाप अर पुण्यकौं जीवनामा पदार्थ इसकरि लिप्त करै है निज सम्बन्धी करै है सो लेश्या, लेश्या—लक्षणके जाननहारे गणधरादिकनिकरि कहा है । इसकरि आत्मा कर्मकरि आत्माकौं लिप्त

करै है सो लेश्या अथवा कषायनिका उदयकरि अनुरंजित जो योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या कहिए है ॥ ४८९ ॥

इस ही अर्थकौं स्पष्ट करै है—

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥ ४९० ॥

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति ।
ततो द्वयोः कार्यं बंधचतुष्कं समुद्दिष्टं ॥ ४९० ॥

जी० प्र०—कायवाङ्मनःप्रवृत्तिः लेश्या, सा च कषायोदयानुरंजितास्ति ततः कारणात् द्वयोः—योगकषाययोः कार्यं बंधचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपं तद् लेश्याया एव स्यादिति परमागमे समुद्दिष्टं । योगात् प्रकृतिप्रदेशबंधौ कषायस्योदयाच्च स्थित्यनुभागबंधौ स्यातां । तेन कषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिलक्षणाया लेश्यया चतुर्विधबंधो युक्तियुक्त एवेत्यर्थः ॥ ४९० ॥ अथ गाथाद्वयेन अधिकारान्निर्दिशति—

स० चं०—मन वचन कायरूप योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है सो योगनिकी प्रवृत्ति कषायनिका उदयकरि अनुरंजित हो है तिसतैं योग अर कषाय इनि दोऊनिका कार्य च्यारि प्रकारबन्ध कह्या है। योगनितैं प्रकृतिबंध अर प्रदेश बन्ध कह्या है कषायनितैं स्थितिबन्ध अर अनुभागबंध कह्या है तिसही कारण कषायनिका उदयकरि अनुरंजित योगनिकी प्रवृत्ति सोई है लक्षण जाका ऐसैं लेश्याकरि च्यारि प्रकारबध युक्त ही है ॥ ४९० ॥ आगैं दोय गाथानिकरि लेश्याका प्ररूपणविषै सोलह अधिकार कहै हैं—

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो ॥ ४९१ ॥
अंतरभावप्पबहु अहियारा सोलसा हवंतित्ति ।

लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहिं वोच्छामि ॥४९२॥ जुम्मम् ।

निर्देशवर्णपरिणामसंक्रमाः कर्मलक्षणगतयश्च ।
स्वामी साधनसंख्ये क्षेत्रं स्पर्शस्ततः कालः ॥ ४९१ ॥
अंतरभावाल्पबहुत्वमधिकाराः षोडश भवंतीति ।
लेश्यानां साधनार्थं यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ॥ ४९२ ॥

जी० प्र०—निर्देशः वर्णः परिणामः संक्रमः कर्म लक्षणं गतिः स्वामी साधनं संख्या क्षेत्र स्पर्शः ततः कालः अंतरं भावः अल्पबहुत्वं चेति षोडशाधिकाराः लेश्याभेदप्रभेदसाधनार्थं भवंतीति तैर्यथाक्रमं लेश्यां वक्ष्यामि ॥ ४९१–४९२ ॥

स० चं०—निर्देश १ वर्ण २ परिणाम ३ संक्रम ४ कर्म ५ लक्षण ६ गति ७ स्वामी ८ साधन ९ संख्या १० क्षेत्र ११ स्पर्शन १२ काल १३ अंतर १४ भाव १५ अल्प बहुत्व १६ ए सोलह अधिकार लेश्याके भेदसाधन निमित्त हैं तिनकरि अनुक्रमतैं लेश्यामार्गणाकौं कहे हैं ॥ ४९२ ॥

किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥९३॥

कृष्णा नीला कापोता तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च ।
लेश्यानां निर्देशाः षट् चैव भवंति नियमेन ॥ ४९३ ॥

जी० प्र०—कृष्णलेश्या नीललेश्या कपोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या चेति लेश्यानिर्देशाः—लेश्यानामानि षडेव भवंति नियमेन । अत्र एवकारेणैव नियमस्य अवगमात् पुनरनर्थक नियमशब्दोपादानं नैगमनयेन लेश्या षोढा पर्यायार्थिकनयेन असंख्यातलोकधेत्याचार्यस्य अभिप्रायं ज्ञापयति ॥ ४९३ ॥ इति निर्देशाधिकारः ।

स० चं०—नाम मात्र कथनका नाम निर्देश है । लेश्याके ए छह नाम हैं कृष्ण १ नील २ कपोत ३ पीत ४

पद्म ५ शुक्ल ६ ऐसैं छह ही है । इहां एव शब्दकरि तो नियम आया ही बहुरि नियमेन ऐसा कह्या सो नैगम नयकरि छह प्रकार लेश्या है, पर्यायार्थिक नयकरि असंख्यात लोकमात्र भेद है ऐसा अभिप्राय नियम शब्दकरि जानना ॥ ४९३ ॥ इति निर्देशाधिकारः ॥

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।

सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ॥ ४९४ ॥

वर्णोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या।

सा षोढा कृष्णादिः अनेकभदो स्वभेदेन ॥ ४९४ ॥

जी० प्र०—वर्णनामकर्मोदयजनितशरीरवर्णस्तु द्रव्यलेश्या भवति । सा च षोढा–षट्प्रकाराः । ते च प्रकाराः कृष्णादयः स्वस्वभेदैरनेकभेदाः स्युः ॥ ४९४ ॥ तथाहि—

स० चं०—बहुरि वर्णनामा नामकर्मके उदयतैं भया जो शरीरका वर्ण सो द्रव्य लेश्या कहिए सो कृष्णादिक छह प्रकार है तहा एक एक भेद अपने अपने भेदनिकरि अनेकरूप जानने ॥ ४९४ ॥ सोई कहिए है—

छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसंखसण्णिहा वण्णे।

संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं ॥ ४९५ ॥

षट्पदनीलकपोतसुहेमाम्बुजशंखसन्निभा वर्णे।

संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च प्रत्येकम् ॥ ४९५ ॥

जी० प्र०—कृष्णादिलेश्याः वर्णे षट्पद–नीलरत्न–कपोत–सुहेम–अंबुज–शंखसंन्निभा भवति । पुनस्ता इंद्रियग्राह्यशक्तिभिः प्रत्येकं संख्याताः क १ । नी १ । क १ । ते १ । प १ । शु १ । स्कंधभेदेनासंख्याताः कृ a । नी a । क a । ते a । प a । शु a । परमाणुभेदेन अनंतानंताश्च भवति । कृ ख । नी ख । क ख । ते ख । प ख । शु ख ॥ ४९५ ॥

स० चं०—कृष्ण लेश्या षट्पद जो भ्रमर ताके समान है। जिसके शरीरका भ्रमर समान काला वर्ण होइ ताके द्रव्य लेश्या कृष्ण जानना। ऐसैं ही नील लेश्या नीलमणि समान है। कपोत लेश्या कपोत समान है। तेजो लेश्या सुवर्ण समान है। पद्म लेश्या कमल समान है। शुक्ल लेश्या शंख समान है बहुरि इनही एक एक लेश्यानिके नेत्र इंद्रियके गोचर अपेक्षा संख्याते भेद हैं। जैसे कृष्णवर्ण हीन अधिक रूप संख्याते भेदकौं लीए नेत्र इंद्रियकरि देखिए है। बहुरि स्कंध भेदकरि एक एकके असंख्यात असंख्याते भेद हैं जैसे द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीरसंबंधी स्कंध असंख्याते हैं बहुरि परमाणू भेदकरि एक एकके अनन्त भेद हैं जैसैं द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीर सम्बन्धी स्कंधनिविषैं अनंते परमाणू पाईए है। ऐसैं सर्व लेश्यानिके भेद जानने ॥ ४९५ ॥

णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हु तिसुरणरतिरिये।
उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा॥ ४९६ ॥

निरयाः कृष्णाः कल्पा भावानुगता हि त्रिसुरनरतिरश्चि।
उत्तरदेहे षट्कं भोगे रविचन्द्रहरितांगाः ॥ ४९६ ॥

जी० प्र०—नारकाः सर्वे कृष्णा एव, कल्पजाः सर्वे स्वस्वभावलेश्यानुगा एव। भवनत्रयदेवाः मनुष्यास्तिर्यंचो देवविकुर्वणादेहाश्च सर्वे षड्वर्णाः। उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिजनरतिर्यंचः क्रमशः रविचंद्रहरिद्वर्णा एव॥ ४९६ ॥

सं० चं०—नारकी सर्व कृष्ण वर्ण ही हैं। बहुरि कल्पवासी देव जैसी उनके भावलेश्या है तैसाही वर्णके धारक हैं। बहुरि भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव अर मनुष्य अर तिर्यंच अर देवानिका विक्रियातैं भया शरीर ते छहौ वर्णके धारक हैं। बहुरि उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमि सम्बन्धी मनुष्य तिर्यंच अनुक्रमतैं सूर्य सारिखे अर चंद्रमा सारिखे अर हरित वर्णके धारक हैं॥ ४९६ ॥

बादरआऊतेऊ सुक्कातेऊ य वाउकायाणं।

गोमुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णो य॥ ४९७ ॥

बादरासैजसौ शुक्लतेजसौ च वायुकायानाम् ।
गोमूत्रमुद्गवर्णाः क्रमशः अव्यक्तवर्णश्च ॥ ४९७ ॥

जी० प्र०—बादरासैजस्कायिकौ क्रमेण शुक्लपीतवर्णावेव, वातकायिकेषु घनोदधिवातघनवातशरीराणि क्रमेण गोमूत्रमुद्गवर्णा, नितनुवा तशरीराणि अव्यक्तवर्णानि ॥ ४९७ ॥

स० चं०—बादर अप्कायिक शुक्लवर्ण है। बादर तेज कायिक पीतवर्ण है। बादर वात कायिकनिविषैं घनोदधि वात तो गऊका मूत्रके समान वर्ण धरै है। घनवात मूंगा सारिखा वर्ण धरै हैं। तनुवातका वर्ण प्रकट नाही अव्यक्त वर्ण है ॥ ४९७ ॥

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा॥ ४९८ ॥

सर्वेषां सूक्ष्मानां कापोताः सर्वे विग्रहे शुक्लाः ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥ ४९८ ॥

जी० प्र०—सर्वसूक्ष्मजीवदेहाः कपोतवर्णा एव। सर्वे जीवा विग्रहगतौ शुक्लवर्णा एव। सर्वे जीवाः स्वस्वपर्याप्तिप्रारंभप्रथमसमयाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तिपर्यंतं कपोतवर्णा एव नियमेन ॥ ४९८ ॥ इति वर्णाधिकारः। अथ परिणामाधिकारं गाथापंचकेनाह—

स० चं०—सर्व ही सूक्ष्म जीवनिका शरीर कपोत वर्ण है। बहुरि सर्व जीव विग्रहगतिविषैं शुक्ल वर्ण ही हैं। बहुरि सर्व जीव अपने पर्याप्तिके प्रारंभका प्रथम समयतैं लगाय शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता पर्यंत जो अपर्याप्त अवस्था है तहां कपोत वर्ण ही हैं ऐसा नियम है। ऐसें शरीरनिका वर्ण कह्या सो जिसका जो शरीरका वर्ण होइ तिसके सोई द्रव्य लेश्या जाननी ॥ ४९८ ॥ इति वर्णाधिकारः ॥ आगै परिणामाधिकार पंचगाथानिकरि कहैं हैं—

लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ॥ ४९९ ॥

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति ।
तत्र क्लिष्टानि अशुभानि शुभानि विशुद्धानि तदालापात् ॥ ४९९ ॥

जी० प्र०—कषायगतोदयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवंति । तेषु संक्लेशस्थानानि अशुभलेश्यास्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यपि असंख्यातलोकमात्राण्येव । तदेकभागमात्राणि शुभलेश्याविशुद्धिस्थानान्यप्यसंख्यातलोकमात्राण्येव । सक्ले ≡ a । ८ । विशु । ≡ a । १ ॥ ४९९ ॥ (९ beneath each ≡)

स० चं०—कषायसम्बन्धी अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं तिनिकौं यथायोग्य असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग मात्र तौ संक्लेश स्थान हैं ते पाणि असंख्यात लोक प्रमाण हैं । बहुरि एकभाग मात्र विशुद्धि स्थान हैं ते पणि असंख्यात लोक प्रमाण हैं जातैं असंख्यातके भेद बहुत हैं तहां संक्लेश स्थान तौ अशुभलेश्या सम्बन्धी जानने अर विशुद्धिस्थान शुभलेश्या सबंधी जानने ॥ ४९९ ॥

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥ ५०० ॥

तीव्रतमास्तीव्रतरास्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मंदाः ।
मंदतरा मंदतमाः षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ॥ ५०० ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि अशुभलेश्यासंक्लेशस्थानानि कृष्णनीलकपोतभेदात्त्रिविधानि । तत्र कृष्णलेश्यासीव्रतमसंक्लेश-

स्थानानि सामान्याशुभसंक्लेशस्थानेषु ≡ a । ८/९ तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तेषु बहुभागमात्राणि ≡ a । ८ । ८/९ । ९ नीललेश्यातीव्रतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ≡ a । ८ । ८/९ । ९ । ९ कपोतलेश्यातीव्रसंक्लेशस्थानानि तदेकभागमात्राणि ≡ a । ८ । १/९ । ९ । ९ पुनः शुभलेश्याविशुद्धिस्थानेषु पूर्वोक्तासंख्यातलोकभक्तैकभागमात्रेषु ≡ a । १/९ तेजोलेश्यामंदसंक्लेशस्थानानि तदसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि ≡ a । ८/९ । ९ पद्मलेश्याविशुद्धिस्थानानि मंदतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ≡ a । ८/९ । ९ । ९ शुक्ललेश्याविशुद्धिस्थानानि मंदतमसंक्लेशस्थानानि शेषैकभागमात्राणि ≡ a । १/९ । ९ । ९ एतेषु कृष्णलेश्यादिषट्स्थानेषु प्रत्येकमशुभेषु उत्कृष्टाज्जघन्यपर्यंतं शुभेषु च जघन्यादुत्कृष्टपर्यंतं असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितसंक्लेशविशुद्धिस्थानानि भवंति खलु—नियमेन ॥ ५०० ॥

स० चं०—पूर्वै जे असंख्यात लोकके बहुभागमात्र अशुभलेश्या सम्बन्धी संक्लेश स्थान कहे ते कृष्ण नील कपोत भेदकरि तीन प्रकार हैं तहां पूर्वै संक्लेशस्थाननिका जो प्रमाण कह्या ताकौं यथायोग्य असंख्यात लोकका भाग दीएं तहां एक भागविना अवशेष बहुभाग मात्र कृष्णलेश्यासम्बन्धी तीव्रतम कषायरूप संक्लेशस्थान जानने। बहुरि तिस अवशेष एकभागकौं असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग मात्र नील लेश्यासम्बन्धी तीव्रतर कषायरूप संक्लेश स्थान जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागमात्र कपोतलेश्या सम्बन्धी तीव्रकषायरूप संक्लेशस्थान जानने। बहुरि असंख्यात लोकका एकभागमात्र शुभलेश्यासम्बंधी विशुद्धि स्थान कहे ते तेजः पद्म शुक्ल भेदकरि तीन प्रकार हैं। तहां पूर्वै जो विशुद्धिस्थाननिका प्रमाण कह्या ताकौं यथायोग्य असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एकभागविना अवशेष बहुभाग मात्र तेजोलेश्या सम्बंधी मंदकषाय रूप विशुद्धि स्थान जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एकभाग विना अवशेषभागमात्र पद्मलेश्या संबंधी मंदतर कषायरूप विशुद्धिस्थान जानने बहुरि तिस अवशेष एकभागमात्र शुक्ललेश्यासंबंधी मंदतम कषायरूप विशुद्धि स्थान जानने। तहां इनि कृष्णलेश्या आदि छह स्थान

हानौ पुनः स्वस्थानसंक्रमणं परस्थानसंक्रमणं चेत्युभयं भवति । शेषनीलपद्मकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्य हानौ वृद्धौ च अपिशब्दादुभयसंक्रमणं भवति ।

स० च०—संक्रमण नाम परिणामनिकी पलटनिका है सो संक्रमण दोय प्रकार है स्वस्थानसंक्रमण १ परस्थानसंक्रमण २ तहां जो परिणाम जिस लेश्यारूप था सो परिणाम पलटिकरि तिसही लेश्यारूप रहै सो तो स्वस्थान संक्रमण है। बहुरि जो परिणाम पलटिकरि अन्य लेश्याकौं प्राप्त होइ सो परस्थानसंक्रमण है । तहां कृष्ण लेश्या और शुक्ललेश्याकी वृद्धिविषै तौ स्वस्थानसंक्रमण ही है जातैं संक्लेशकी वृद्धि कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट अंशपर्यंत ही है। अर विशुद्धताकी वृद्धि शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अंशपर्यंत ही है। बहुरि कृष्णलेश्या अर शुक्ल लेश्याके हानिविषै स्वस्थानसंक्रमण परस्थानसंक्रमण दोऊ पाइए है। जो उत्कृष्ट कृष्णलेश्यातैं संक्लेशकी हानि होइ तौ कृष्ण लेश्याके मध्यम जघन्य अंशरूप प्रवर्तै तहां स्वस्थानसंक्रमण भया अर जो नीलादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै तहां परस्थान संक्रमण भया ऐसैं कृष्ण लेश्याके हानिविषै दोऊ संक्रमण हैं। बहुरि उत्कृष्ट शुक्ललेश्यातैं जो विशुद्धताकी हानि होइ तो शुक्ल लेश्याके मध्यम जघन्य अंशरूप प्रवर्तै तहां स्वस्थानसंक्रमण भया बहुरि पद्मादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै तहां परस्थानसंक्रमण भया ऐसैं शुक्ल लेश्याके हानिविषै दोऊ संक्रमण हैं । बहुरि अवशेष नील कपोत तेज पद्म लेश्यानिविषैं दोऊ जातिके संक्रमण हानिविषैं भी अर वृद्धिविषैं भी पाइये । वृद्धि हानि होतैं जो जिस लेश्यारूप था उसही लेश्यारूप रहै तहां स्वस्थानसंक्रमण होइ । बहुरि वृद्धि हानि होतैं जिस लेश्यारूप था तिसतैं अन्य लेश्यारूप प्रवर्तै तहां परस्थानसंक्रमण होइ ऐसैं च्यारयौं लेश्यानिके हानिविषैं वा वृद्धिविषैं उभय संक्रमण॥५०४ ॥

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ॥ ५०५ ॥

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिः अवरकादवरवृद्धिः ।
स्वस्थाने अवरात् हानिर्नियमात् परस्थाने ॥ ५०५ ॥

जी० प्र०—कृष्णादिसर्वलेश्योत्कृष्टादनंतरस्वलेश्यास्थानविकल्पे अवरहानिः अनंतैकभागहानिर्भवति, कुतः? तदनंतरस्योर्वंकात्मकत्वात् । सर्वलेश्यानां जघन्यात्पुनः स्वस्थाने अवरवृद्धिः अनंतैकभागवृद्धिरेव भवति । कुतः ? तज्जघन्यानामष्टांकरूपत्वात् । सर्वलेश्याजघन्यस्थानात् परस्थानसंक्रमणेऽनंतरस्थाने अनंतगुणहानिरेव नियमाद्भवति । कुतः? शुक्ललेश्याजघन्यादनंतरपद्मलेश्यास्थानवत्कृष्णलेश्याजघन्यादनंतरनीललेश्यास्थानेऽपि तद्धानेरेव संभवात । एवं सर्वलेश्यानां भवति ॥ ५०५ ॥

स० चं०—कृष्णादि सर्व लेश्यानिका उत्कृष्ट स्थानविषैं जेते परिणाम हैं तिनतैं उत्कृष्ट स्थानकका समीपवर्ती जो तिसही लेश्याका स्थान तिसविषैं अवरहानि कहिए उत्कृष्ट स्थानतैं अनंतभागहानि लीएं परिणाम हैं जातैं उत्कृष्टके अनंतर जो परिणाम ताकौं ऊर्वक कह्या है सो अनंतभागकी संदृष्टि ऊर्वक है। बहुरि स्वस्थानविषैं कृष्णादि सर्व लेश्यानिका जघन्य स्थानके समीपवर्ती जो स्थान है तिसविषैं जघन्य स्थानके परिणामनितैं अवर वृद्धि कहिए। अनंतभागवृद्धि लीएं परिणाम पाइए हैं जातैं जो जघन्यभाव अष्टांकरूप कह्या है सो अनंतगुण वृद्धिकी सहनानी आठका अंक है ताके अनन्तर ऊर्वक ही है। बहुरि सर्व लेश्यानिके जघन्यस्थानतैं जो परस्थानसंक्रमण होइ तौ उस जघन्य स्थानकके परिणामनितैं अनन्तगुणहानिकौं लीएं अनन्तर स्थानविषैं परिणाम हो है सो शुक्ल लेश्याका जघन्य स्थानकके अनन्तर तौ पद्म लेश्याका उत्कृष्ट स्थान है अर कृष्ण लेश्याके जघन्य स्थानके अनंतर नील लेश्याका उत्कृष्ट स्थान है तहां अनंतगुणहानि पाइए है ऐसैं ही सर्व लेश्यानिविषैं जानना। कृष्ण नील कपोतविषैं तो हानि वृद्धि संक्लेश परिणामनिकी जाननी। पीत पद्म शुक्लविषैं हानि वृद्धि विशुद्ध परिणामनिकी जाननी ॥ ५०५ ॥ इस गाथाविषैं कह्या अर्थका कारण आगैं प्रकटकरि कहिए है—

संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा ।
परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥ ५०६ ॥

संक्रमणे षट्स्थानानि हानिषु वृद्धिषु भवन्ति तन्नामानि ।

परिमाणं च च पूर्वमुक्तक्रमं भवति श्रुतज्ञाने ॥ ५०६ ॥

जी० प्र०—अस्मिन् संक्रमणे हानिषु वृद्धिषु च षड्वृद्धयः षड्ढानयश्च भवंति । तासां च नामानि प्रमाणानि च पूर्वे श्रुतज्ञानमार्गणायां उक्तक्रमेणैव भवंति । तत्र अनंतभागः असंख्यातभागः संख्यातभागः संख्यातगुणः असंख्यातगुणः अनंतगुणश्चेति नामानि । उत्कृष्टसंख्यातमसंख्यातलोकः सर्वजीवराशिश्चेति भागक्रमे गुणितक्रमे च प्रमाणानि भवंति ॥ ५०६ ॥ इति संक्रमणाधिकारश्चतुर्थः ॥ अथ कर्माधिकारं गाथाद्वयेनाह—

सं० च०—इस संक्रमणविषैं हानिविषैं अनन्त भागादिक छह स्थान हैं बहुरि वृद्धिविषैं अनन्त भागादिक छह स्थान हैं तिनके नाम वा प्रमाण जो पूर्वैं श्रुतज्ञान मार्गणाविषैं पर्याय समास श्रुतज्ञानका वर्णन करते अनुक्रम कह्या हैं सोई इहां जानना । सो अनन्त भाग १ असंख्यात भाग २ संख्यात भाग ३ संख्यात गुण ४ असंख्यात गुण ५ अनंत गुण ६ ए तौ षट् स्थाननिके नाम हैं । इनि अनन्त भागादिककी सहनानी क्रमतैं ऊर्वक च्यारि पांच छह सात आठका अंक है । बहुरि अनंतका प्रमाण जीवराशिमात्र, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोकमात्र, संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र, ऐसा प्रमाण गुणकार वा भागहारविषैं जानना । बहुरि यंत्र द्वारकरि जो तहां अनुक्रम कह्या है सोई इहां अनुक्रम जानना । वृद्धिविषैं तो तहां कह्या है सोई अनुमक्र जानना बहुरि हानिविषैं उलटा अनुक्रम जानना । कैसे ? सो कहिए है—कपोत लेश्याका जघन्यतैं लगाइ कृष्ण लेश्याका उत्कृष्ट पर्यंत विवक्षा होइ तो क्रमतैं संक्लेशकी वृद्धि संभवै है । बहुरि कृष्ण लेश्याका उत्कृष्टतैं लगाइ कपोत लेश्याका जघन्य पर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं संक्लेशकी हानि संभवै है बहुरि पीतका जघन्यतैं लगाइ शुक्लका उत्कृष्टपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं विशुद्धिकी वृद्धि संभवै है । बहुरि शुक्लका उत्कृष्टतैं लगाइ पीतका जघन्यपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं विशुद्धिकी हानि संभवै है । तहां वृद्धिविषैं यथासंभव षट्स्थानपतित वृद्धि जाननी । हानिविषैं हानि जाननी । तहां पूर्वैं कह्या जो वृद्धिविषैं अनुक्रम तहां पीछै ही पीछै सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र वार अनन्त भाग वृद्धि होइ एकवार अनन्तगुणवृद्धि हो है । तहां अनंत गुण वृद्धिरूप जो स्थान सो नवीन षट्स्थानपतितवृद्धिका प्रारंभ रूप प्रथम स्थान है अर याके पहिलैं जो अनंतभागवृद्धिरूप स्थान

भया सो विवक्षित षटस्थानपतित वृद्धिका अंत स्थान है। बहुरि नवीन षट्स्थान पतितवृद्धिका अनन्त गुणवृद्धिरूप प्रथम स्थानके आगैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र अनंतभाग वृद्धिरूपस्थान हो है । आगे पूर्वोक्त अनुक्रम जानना । अब इहां कृष्ण लेश्याका उत्कृष्ट स्थान है सो षट्स्थानपतितका अन्तस्थानरूप है तातै पूर्वस्थानतैं अनन्तभाग वृद्धिरूप है । बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्य स्थान है सो षट्स्थानपतितका प्रारंभरूप प्रथम स्थान है तातैं याके पूर्वे नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान तातैं अनंत गुण वृद्धिरूप यहु स्थान जानना। बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्यके समीपवर्ती स्थान तिस जघन्य स्थानतैं अनन्त भाग वृद्धिरूप जानना। ऐसैं ही अन्य स्थाननिविषैं वा अन्य लेश्यानिविषैं वृद्धिका अनुक्रम जानना। बहुरि जो हानि अपेक्षा कथन कीजिए तौ कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट स्थानतैं ताके समीपवर्ती स्थान अनन्त भाग हानि लीएं जानना। बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्य स्थानतैं नील लेश्याका उत्कृष्ट स्थान अनंत गुणहानि लीएं जानना । बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्यके समीपवर्ती स्थानतैं जघन्य स्थान अनंत भाग लीए जानना ऐसैं ही अन्य स्थाननिविषैं अन्य लेश्यानि विषै यंत्र द्वारकरि कह्या अनुक्रमतैं उलटा अनुक्रम लीए हानिका अनुक्रम जानना। ऐसैं संक्रमण विषैं वृद्धि हानि है ॥ ५०६ ॥ इति संक्रमणाधिकारः ॥ ४ ॥ आगैं कर्माधिकार गाथा दोयकरि कहै हैं—

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्ठारण्णमज्झदेसम्मि ।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति ॥ ५०७ ॥
णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ॥५०८॥

पथिका ये षट्पुरुषाः परिभ्रष्टा अरण्यमध्यदेशे ।
फलभरितवृक्षमेकं दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति ॥ ५०७ ॥
निर्मूलस्कन्धशाखोपशाखं छित्त्वा चित्वा पतितानि ।
खादितुं फलानि इति यन्मनसा वचनं भवेत् कर्म ॥ ५०८ ॥ युग्मम् ।

जी० प्र०—कृष्णाद्येकैकलेश्यायुक्तषट्पथिकाः पथःपरिभ्रष्टाः अरण्यमध्यदेशे फलभरितमेकं वृक्षं दृष्ट्वा ते विचिंतयंति पुरुषाः तत्र आद्यः—वृक्षं निर्मूलं छित्त्वा, अन्यः स्कंधं छित्त्वा, परः शाखां छित्त्वा, अन्यः उपशाखां छित्त्वा, परः वृक्षाबाधं फलान्येव छित्त्वा, अन्यः पतितान्येव गृहीत्वा च फलान्यश्नीति यन्मनःपूर्वकं वचः तत्क्रमशस्तासां कर्म भवति ॥ ५०७–५०८ ॥ इति कर्माधिकारः ॥ अथ लक्षणाधिकारं गाथानवकेनाह—

स० चं०—कृष्णादिक एक एक लेश्यावाले छह पथिक पुरुष मार्गतें भ्रष्ट भए तहां वनविषें एक फलनिकरि भर्‍या हूवा वृक्षकौं देखि ऐसें चिंतवैं हैं—कृष्ण लेश्यावाला तौ चिंतवै है जो मैं इस वृक्षकौं मूलतें उपाडि फल खास्यों। वहुरि नील लेश्यावाला चिंतवै है मैं इस वृक्षके पेडकौं काटि फल खास्यौं। वहुरि कपोतवाला चिंतवैं है मैं इस वृक्षकी बड़ी शाखानि छेदि फल खास्यौं। वहुरि पीतवाला चिंतवैं है मैं इस वृक्षकी छोटी शाखा छेद फल खास्यों। वहुरि पद्मवाला चिंतवैं है मैं इस वृक्षके फलनिहीकौं छेद फल खास्यों। शुक्लवाला चिंतवै है कि मैं जे आपसे टूटि करि पडे फल तिनकौं खास्यौं। ऐसें मनपूर्वक जो वचन होइ सो तिन लेश्यानिका कर्म जानना। इहां एक उदाहरण कह्या है इसही प्रकार अन्य जानने ॥ ५०७-५०८। इति कर्माधिकारः ॥ आगे लक्षणाधिकार नव गाथानिकरि कहै हैं—

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०९॥

चण्डो न मुञ्चाति वैरं भण्डनशीलश्च धर्मदयारहितः।

दुष्टो न च एति वशं लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ॥ ५०९ ॥

जी० प्र०—चंडनस्तीव्रकोपनः वैरं न मुंचति, भंडनशीलश्च युद्धशीलश्च धर्मदयारहितः दुष्टः निर्दयो वशं नैति एतल्लक्षणं तु–पुनः कृष्णलेश्यस्य भवति ॥ ५०९ ॥

स० चं०—प्रचंड तीव्र क्रोधी होइ वैर न छोडै । भांडनेका युद्ध करनेका जाका सहज होइ । दया धर्मकरि रहित होइ । दुष्ट होइ । किसी गुरु जनादिकके वश्य न होइ ऐसे लक्षण कृष्ण लेश्यावालेके हैं ॥ ५०९ ॥

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५१०॥

मन्दो बुद्धिविहीनो निर्विज्ञानी च विषयलोलश्च ।
मानी मायी च तथा आलस्यः चैव भेद्यश्च ॥ ५१० ॥

जी० प्र०—मंदः-स्वच्छंदसंज्ञिकः क्रियासु मंदो वा, बुद्धिविहीनः वर्तमानकार्यानभिज्ञः, निर्विज्ञानी च-विज्ञानरहितश्च विषयलोलश्च-स्पर्शादिबाह्येंद्रियार्थेषु लंपटश्च, मानी-अभिमानी, मायी च-कुटिलवृत्तिश्च तथा आलस्यश्चैव-क्रियासु कर्तव्येषु कुंठश्चैव भेद्यश्च परेणाववोध्याभिप्रायश्च एतदपि कृष्णलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१० ॥

स० चं०—स्वच्छंद होइ अथवा क्रियाविषैं मंद होइ, वर्तमान कार्यकौं न जानैं ऐसा बुद्धिहीन होइ विज्ञान चातुर्यकरि हीन होइ स्पर्शादिक विषयनिविषैं आतिलंपटी होइ मानी होइ मायावी, कुटिल होइ, क्रियाविषैं कुंठ होइ जिसके अभिप्रायकौं और कोई न जानैं आलसी होइ यहु सर्व कृष्ण लेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ ५१० ॥

णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य ।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ॥५११॥

निद्रावञ्चनबहुलो धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च ।
लक्षणमेतद्भणितं समासतो नीललेश्यस्य ॥ ५११ ॥

जी० प्र०—निद्राबहुलः वंचनबहुलः धनधान्येषु तीव्रसंज्ञश्च इत्येतल्लक्षणं संक्षेपेण नीललेश्यस्य भणितं ॥ ५११ ॥

स० चं०—निद्रा जाके बहुत होइ, औरको ठिगना जाके बहुत होइ, धन धन्यादिकविषैं तीव्र वांछा जाके होइ ऐसा संक्षेपतैं नील लेश्यावालेका लक्षण है ॥ ५११ ॥

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो ।
असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं बहुसो ॥ ५१२ ॥

रुष्यति निन्दति अन्यं दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।
असूयति परिभवति परं प्रशंसति आत्मान बहुशः ॥ ५१२ ॥

जी० प्र०—परस्मै कुप्यति, बहुधा पर निंदति, बहुधा पर दुष्यति, च शोकबहुलः, भयबहुलः, पर न सहते परं परिभवति आत्मानं बहुधा, प्रशंसति ॥ ५१२ ॥

स० चं०—परके ऊपरि क्रोध करै बहुत प्रकार औरकौ निंदै बहुत प्रकार और कौं दुखावै, शोक जाके बहुत होइ भय जाकै बहुत होइ औरकौं नीकै देखि सकै नाही औरका अपमान करै आपकी बहुत प्रकार बढाईकरै ॥

ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यिव परंपि मण्णंतो ।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणिवड्ढिं वा ॥ ५१३ ॥

न च प्रत्येति परं स आत्मानमिव परमपि मन्यमानः ।
तुष्यति अभिष्टुवतो न च जानाति हानिवृद्धी वा ॥ ५१३ ॥

जी० प्र०—स परं न प्रत्येति-न विश्वसिति आत्मानमिव परमपि मन्यमानः अभिष्टुवतः परस्योपरि तुष्यति स्वपरयोर्हानिवृद्धी न च-नैव जानाति ॥ ५१३ ॥

स० चं०—आप सारिखा पापी कपटी औरकौं मानता संता औरका विश्वास न करै, जो आपकी स्तुति करै ताके ऊपरि बहुत संतुष्ट होइ अपनी, अर परकी हानि वृद्धिकौं न जानैं ॥ ५१३ ॥

मरणं पत्थेइ रणे देइ सुबहुगं पि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥

मरण प्रार्थयते रणे ददाति सुबहुकमपि स्तूयमानस्तु ।
न गणयाति कार्याकार्यं लक्षणमेतत्तु कपोतस्य ॥ ५१४ ॥

जी० प्र०—रणे मरणं प्रार्थयते, स्तुतिं कुर्वतो बहुधनं (स्तू म नस्तु बहुकमपि) ददाति, कार्यमकार्यं च न गणयति इत्येतत्कपोतलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१४ ॥

स० चं०—युद्धविषैं मरणकौं चाहै जो आपकी बडाई करै ताकौं बहुत धन देइ, कार्य अकार्यकौं गिणै नाहीं ऐसें लक्षण कपोत लेश्यावालेके हैं ॥ ५१४ ॥

जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी ।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥

जानाति कार्याकार्यं सेव्यमसेव्यं च सर्वसमदर्शी ।
दयादानरतश्च मृदुः लक्षणमेतत्तु तेजसः ॥ ५१५ ॥

जी० प्र०—कार्यमकार्यं च सेव्यमसेव्यं च जानाति, सर्वसमदर्शी दयायां दाने च प्रीतिमान्, मनोवचनकायेषु मृदुः इत्येतत्तेजोलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१५ ॥

स० चं०—कार्य अकार्यकौं जानैं। सेवनेयोग्य न सेवनेयोग्यकौं जानैं, सर्वविषैं समदर्शी होइ, दया दानविषैं प्रीतिमंत, होइ मन वचन कायविषैं कोमल होइ ऐसे लक्षण पीतलेश्यावालेके हैं ॥ ५१५ ॥

चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥

त्यागी भद्रः सुकरः उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि ।
साधुगुरुपूजनरतो लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ॥ ५१६ ॥

जी० प्र०—त्यागी भद्रपरिणामी सौकर्यशीलः शुभोद्युक्तकर्मा च कष्टानिष्टोपद्रवान् सहते, मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतिमान् इत्येतत्पद्मलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१६ ॥

स० चं०—त्यागी होइ सुकार्यरूप जाका स्वभाव होइ शुभविषैं उद्यमी रूप जाके कर्म होंइ, कष्ट वा अनिष्ट उपद्रव तिनकौं सहै मुनिजन अर गुरुजन तिनकी पूजाविषैं प्रीतिवंत होइ ऐसे लक्षण पद्मलेश्यावालेके हैं ॥५१६॥

ण य कुणइ पक्खवायं णावि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥

न च करोति पक्षपातं नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोपि च शुक्ललेश्यस्य ॥ ५१७ ॥

जी० प्र०—पक्षपातं निदानं च न करोति सर्वजनानां समानश्च इष्टानिष्टयोः रागद्वेषरहितः पुत्रमित्रकलत्रादिषु स्नेहरहितः इत्येतत् शुक्ललेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः षष्ठः ॥ अथ गत्यधिकारं एकादशभिः गाथासूत्रैराह—

स० चं०—पक्षपात न करै, निदा न करै, सर्व जीवनिविषैं समान होइ, इष्ट अनिष्टविषैं राग द्वेष रहित होइ, पुत्र

कलत्रादिकविषैं स्नेहरहित होइ ऐसे लक्षण शुक्ल लेश्यावालेके हैं ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः ॥ ६ ॥ आगैं गति अधिकार ग्यारह सूत्रनिकरि कहैं है—

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥ ५१८ ॥

लेश्यानां खलु अंशाः षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुष्कबन्धनयोग्या अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ॥ ५१८ ॥

जी॰ प्र॰—षड्लेश्यानामंशाः जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादष्टादश । पुनः कपोतलेश्योत्कृष्टांशादग्रे तेजोलेश्योत्कृष्टांशात्प्राक् कषायोदयस्थानेषु मध्यमांशा आयुर्बंधयोग्या अष्टौ । एवं षड्विंशतिर्भवंति । तेषु—

शिला	पृथ्वी	धूलि	जल
उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज
कृ १	१ २ ३ ४ ५ ६	६ ५ ४ ३ २ १	शु १
० १	१ १ १ ४ ४ ४	४ १ १ १ ० ०	०
	२	३ ०	
	३	२	
	० ० ० ०	० ० ० ०	

मध्यमांशाः

मध्यमा अष्टौ अष्टापकर्षकाले संभवंति । तद्यथा—भुज्यमानायुरपकृष्यापकृष्य परभवायुर्बध्यते इत्यपकर्षः । अपकर्षाणां स्वरूपमुच्यते-कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याणां भुज्यमानायुर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टं विवक्षितमिदं ६५६१ अत्र भागद्वयेऽतिक्रांते तृतीयभागस्य २१८७ प्रथमांतर्मुहूर्तः परभवायुर्बंधयोग्यः, तत्र न बद्धं तदा, तदेकभागतृतीयभागस्य ७२९ प्रथमांतर्मुहूर्तः । तत्रापि न बद्धं तदा तदेकभागतृतीयभागस्य २४३ प्रथमांतर्मुहूर्तः । एवमग्रेऽग्रे नेतव्यमष्टवारं यावत् । इत्यष्टैवापकर्षाः । नाष्टमापकर्षेऽप्यायुर्बंधनियमः, नाप्यन्योऽपकर्षः तर्हि आयुर्बंधः कथं ? असंक्षेपाद्धा भुज्यमानायुषोंत्यावल्यसंख्येयभागः तस्मिन्नवशिष्टे प्रागेव अंतर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् परभवायुर्नियमेन बद्ध्वा समाप्नोतीति नियमो ज्ञातव्यः—

स० चं०—कार्य अकार्यकौं जानैं। सेवनेयोग्य न सेवनेयोग्यकौं जानैं, सर्वविषैं समदर्शी होइ, दया दानविषैं प्रीतिमंत, होइ मन वचन कायविषैं कोमल होइ ऐसे लक्षण पीतलेश्यावालेके हैं ॥ ५१५ ॥

चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥

त्यागी भद्रः सुकरः उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि।
साधुगुरुपूजनरतो लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ॥ ५१६ ॥

जी० प्र०—त्यागी भद्रपरिणामी सौकर्यशीलः शुभोद्युक्तकर्मा च कष्टानिष्टोपद्रवान् सहते, मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतिमान् इत्येतत्पद्मलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१६ ॥

स० चं०—त्यागी होइ सुकार्यरूप जाका स्वभाव होइ शुभविषैं उद्यमी रूप जाके कर्म होंइ, कष्ट वा अनिष्ट उपद्रव तिनकौं सहै मुनिजन अर गुरुजन तिनकी पूजाविषैं प्रीतिवंत होइ ऐसे लक्षण पद्मलेश्यावालेके हैं ॥५१६॥

ण य कुणइ पक्खवायं णावि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥

न च करोति पक्षपातं नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम्।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोपि च शुक्ललेश्यस्य ॥ ५१७ ॥

जी० प्र०—पक्षपातं निदानं च न करोति सर्वजनानां समानश्च इष्टानिष्टयोः रागद्वेषरहितः पुत्रमित्रकलत्रादिषु स्नेहरहितः इत्येतत् शुक्ललेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः षष्ठः ॥ अथ गत्यधिकारं एकादशभिः गाथासूत्रैराह—

स० चं०—पक्षपात न करै, निंदा न करै, सर्व जीवनिविषैं समान होइ, इष्ट अनिष्टविषैं राग द्वेष रहित होइ, पुत्र

कलत्रादिकविषैं स्नेहरहित होइ ऐसे लक्षण शुक्ल लेश्यावालेके हैं ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः ॥ ६ ॥ आगैं गति अधिकार ग्यारह सूत्रनिकरि कहैं है—

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥ ५१८ ॥

लेश्यानां खलु अंशाः षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुष्कबन्धनयोग्या अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ॥ ५१८ ॥

जी० प्र०—षड्लेश्यानामंशाः जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादष्टादश । पुनः कपोतलेश्योत्कृष्टांशादग्रे तेजोलेश्योत्कृष्टांशात्प्राक् कषायोदयस्थानेषु मध्यमांशा आयुर्बंधयोग्या अष्टौ । एवं षड्विंशतिर्भवंति । तेषु—

शिला	पृथ्वी	धूलि	जल
उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज
कृ १	१ २ ३ ४ ५ ६	६ ५ ४ ३ २ १	शु १
० १	१ १ १ ४ ४ ४	४ १ १ १ ० ०	०
	२	३ ०	
	३	२	
	० ० ० ०	० ० ० ०	

मध्यमांशाः

मध्यमा अष्टौ अष्टापकर्षकाले संभवंति । तद्यथा—भुज्यमानायुरपकृष्यापकृष्य परभवायुर्बध्यते इत्यपकर्षः । अपकर्षाणां स्वरूपमुच्यते-कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याणां भुज्यमानायुर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टं विवक्षितमिदं ६५६१ अत्र भागद्वयेऽतिक्रान्ते तृतीयभागस्य २१८७ प्रथमांतर्मुहूर्तः परभवायुर्बंधयोग्यः, तत्र न बद्धं तदा, तदेकभागतृतीयभागस्य ७२९ प्रथमांतर्मुहूर्तः । तत्रापि न बद्धं तदा तदेकभागतृतीयभागस्य २४३ प्रथमांतर्मुहूर्तः । एवमग्रेग्रे नेतव्यमष्टवारं यावत् । इत्यष्टैवापकर्षाः । नाष्टमापकर्षेप्यायुर्बंधनियमः, नाप्यन्योऽपकर्षः तर्हि आयुर्बंधः कथं ? असंक्षेपाद्धा भुज्यमानायुषोंत्यावल्यसंख्येयभागः तस्मिन्नवशिष्टे प्रागेव अंतर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् परभवायुर्नियमेन बद्ध्वा समाप्नोतीति नियमो ज्ञातव्यः—

१
३
१
३
९
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

अत्र विशेषनिर्णयः क्रियते । सोपक्रमायुष्काः कदलीघातायुष्का; तेन देवनारकभोगभूमिजाः अनुपक्रमायुष्का भवंति । सोपक्रमायुष्का उक्तरीत्या आयुर्बध्नंति । तत्रायुस्तोकवंधाद्धाभ्यंतरे तद्योग्यपरिणामैः केचिदष्टवारं केचित्सप्तवारं केचित् षड्वारं केचित्पंचवारं केचित् चतुर्वारं केचित्त्रिवारं केचिद्द्विवारं केचिदेकवारं परिणमंति । स्वभावादेव तद्बंधमायोग्यपरिणमनं जीवानां कारणांतरनिरपेक्षमित्यर्थः । संदृष्टिः—

अष्टापकर्ष	सप्तापकर्ष	षष्ठापकर्ष	पंचापकर्ष	चतुरपकर्ष	त्र्यपकर्ष	द्व्यपकर्ष	एकापकर्ष
ज. उ	ज. उ	ज. उ	ज. उ	ज. उ	ज. उ	ज. उ	ज. उ
८ ८ ८	७ ७ ७	६ ६ ६	५ ५ ५	४ ४ ४	३ ३ ३	२ २ २	१ १ १
८ ७ ७	७ ६ ६	६ ५ ५	५ ४ ४	४ ३ ३	३ २ २	१ १ १	
८ ६ ६	७ ५ ५	६ ४ ४	५ ३ ३	४ २ २	३ १ १		
८ ५ ५	७ ४ ४	६ ३ ३	५ २ २	४ १ १			
८ ४ ४	७ ३ ३	६ २ २	५ १ १				
८ ३ ३	७ २ २	६ १ १					
८ २ २	७ १ १						
८ १ १							

तृतीयभागप्रथमसमये यैः परभवायुर्बंधः प्रारब्धः ते अंतर्मुहूर्ते एव बंधं निष्ठापयंति । अथवा द्वितीयवारे सर्वायुर्नवमांशावशेषेऽपि तद्बंधप्रायोग्या भवंति अथवा तृतीयवारे सर्वायुःसप्तविंशतिभागावशेषेऽपि प्रायोग्या भवंति एवमष्टमापकर्षपर्यंतं ज्ञातव्यं त्रिभागत्रिभागावशेषे सत्यायुर्बध्नंति एव इत्येकांतो नास्ति तत्र तत्र प्रायोग्या भवंतीति कथितं भवति । निरुपक्रमायुष्काः अनपवर्तितायुष्का देवनारका भुज्यमानायुषि षड्मासावशेषे

सति परभवायुर्बंधप्रायोग्या भवंति, अत्राप्यष्टापकर्षाः स्युः । समयाधिकपूर्वकोटिप्रभृतित्रिपलितोपमपर्यंतं संख्यातासंख्यातवर्षायुष्कभोगभूमितिर्यग्मनुष्या अपि निरुपक्रमायुष्का इति ग्राह्यं । अत्र च अष्टापकर्षैः परभवायुर्बंधं कुर्वाणा जीवाः सर्वतः स्तोकाः, ततः सप्तापकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः षडपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः पंचापकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततश्चतुरपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततस्त्र्यपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततो द्व्यपकर्षाभ्यां कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः एकापकर्षेण कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । संदृष्टिः—

१३—ॄ—१	१३— ॄ—१	१३— ॄ—१	१३— ॄ-१	३१—ॄ—१	१३—ॄ—१	१३—ॄ—१	१३—ॄ—१
ॄॄॄॄॄॄॄॄ	ॄॄॄॄॄॄॄ	ॄॄॄॄॄॄ	ॄॄॄॄॄ	ॄॄॄॄ	ॄॄॄ	ॄ ॄ	ॄ
८	७	६	५	४	३	२	१

पुनरष्टापकर्षैरायुर्बध्नतोऽष्टमापकर्षे आयुर्बंधाद्धाजघन्यं स्तोकं २ ॄ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ ५ ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नतः सप्तमापकर्षे आ-
४
युर्बंधाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं २ ॄ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ ॄ । ५ । ४ । ५ ततः सप्तापकर्षैरायुर्बध्नतः सप्तमापकर्षे आयुर्बंधाद्धा ज-
४ ४ । ४
घन्यं संख्यातगुणं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बंधाद्धा
४ । ४ ४ । ४ । ४
जघन्यं संख्यातगुणं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततः सप्तापकर्षैरायु-
४ । ४ । ४ ४ । ४ । ४ । ४
र्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बंधाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं—
४ । ४ । ४ । ४
२ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततः षडपकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बंधाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं—
४ । ४ । ४ । ४ । ४
२ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५
४ । ४ । ४ । ४ । ४ ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४
एवमेकापकर्षस्योत्कृष्टपर्यंतं नीते द्वासप्ततिविकल्पा भवंति ७२ एवमायुर्बंधयोग्ये लेश्यामध्यमांशानामष्टानामष्टापकर्षैरुत्पत्तिक्रम उक्तः ॥ ५१८ ॥

स० चं०—लेश्यानिके छव्वीस अंश हैं तहां छहों लेश्यानिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि अठारह अंश हैं बहुरि कपोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशतैं आगैं अर तेजो लेश्याके उत्कृष्ट अंशतैं पहिलैं कषायनिका उदय स्थानकनिविषैं आठ मध्यम अंश हैं ऐसैं छव्वीस अंश भए। तहां आयुकर्मके बंधकौं योग्य आठ मध्यम अंश, जानने। तिनिका स्वरूप आगैं स्थानसमुत्कीर्तन अधिकारविषैं भी कहेंगे। ते आठ मध्यम अंश, अपकर्ष काल आठ तिनिविषैं संभवै है, वर्तमान जो भुज्यमान आयु ताकौं अपकृष्य अपकृष्य कहिए घटाइ घटाइ आगामी परभवकी आयुकौं बांधै सो अपकर्ष कहिए। अपकर्षनिका स्वरूप दिखाइए है—तहां उदाहरण कहिए है-किसी कर्म भूमिया मनुष्य वा तिर्यंचका आयु पैसाठिसै इकसठि ६५६१ वर्षका है तहां तिस आयुका दोय भाग गएं इकईससै सित्तासी वर्ष रहे तहां तीसरा भागकौं लागते ही प्रथमसमयस्यों लगाइ अंतर्मुहूर्तपर्यंत कालमात्र प्रथम अपकर्ष है तहां परभव संबधी आयुका बंध होइ। बहुरि जो तहां न बंधै तौ तिस तीसरा भागका दोय भाग गएं सातसै गुणतीस वर्ष आयुके अवशेष रहै तहां अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत दूसरा अपकर्ष है तहां परभवका आयु बांधै। बहुरि तहां भी न बधै तौ तिसका भी दोय भाग गए दोयसै तियालीस वर्ष आयुके अवशेष रहैं अंतर्मुहूर्त कालमात्र तीसरा अपकर्ष विषैं परभवका आयु बांधै। बहुरि तहां भी न बंधै तौ तिसका भी दोय भाग गएं इक्यासी वर्ष रहैं अंतर्मुहूर्त पर्यंत चौथा अपकर्षविषैं परभवका आयु बांधै। ऐसैं ही दोय दोय भाग गएं सत्ताईस वर्ष रहैं वा नव वर्ष रहैं वा तीन वर्ष रहै वा एक वर्ष रहै अंतर्मुहूर्तमात्र काल पर्यंत पांचवां वा छठा वा सातवां वा आठवां अपकर्षविषैं परभवका आयुकौं बंधनेकौं योग्यपना जानना। ऐसैं ही जो भुज्यमान आयुका प्रमाण होइ ताके त्रिभाग त्रिभागविषैं आठ अपकर्ष जानने। बहुरि जो आठौ अपकर्षनिविषैं आयु न बधै अर नवमां आदि अपकर्ष है नाहीं, तौ आयुका बंध कैसैं होइ ? सो कहै हैं—'असंक्षेपाद्धा' जो आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल भुज्यमान आयुका अवशेष रहै ताके पहिले अतर्मुहूर्त काल मात्र समय प्रबद्धनिकरि परभवका आयुकौं बांधि पूर्ण करै है ऐसा नियम है। इहां विशेष निर्णय कीजिए है-विषादिकका निमित्तरूप कदलीघातकरि जिनका मरण होइ ते सोपक्रमायुष्क कहिए तातैं

देव नारकी भोगभूमियां अनुपक्रमायुष्क हैं। सो सोपक्रमायुष्क हैं ते पूर्वोक्त रीतिकरि परभवका आयुकौं बांधै हैं। तहां पूर्वोक्त आठ अपकर्षनिविषैं आयुके बंध होनेकौं योग्य जो परिणाम तिनकरि केई जीव आठवार केई जीव सातवार केई छहवार केइ पांच वार केई च्यारि वार केई तीनवार केई दोवार केई एकवार परिणमैं है। आयुके बध योग्य परिणाम अपकर्षनिविषैं ही होइ सो ऐसा कोई स्वभाव सहज ही है। अन्य कोई कारण नाहीं। तहां तीसरा भागका प्रथम समयविषैं जिन जीवनिकरि परभवके आयुका बंध प्रारंभ किया ते अंतर्मुहूर्त हीविषैं निष्ठापन करैं अथवा दूसरी वार आयुका नवमा भाग अवशेष रहैं तहां तिस बंध होनेकौं योग्य होइ। अथवा तीसरी वार आयुका सत्ताईसवां भाग अवशेष रहै तहां तिस बंध होनेकौं योग्य होइ ऐसें आठवां अपकर्ष पर्यंत जानना। ऐसा किछू नियम है नाही जो इनि अपकर्षनिविषैं आयुका बंध होइ ही होइ। इनिविषैं आयुके बंध होनेकौं योग्य होइ। जो बंध होइ तो होइ, न होइ तौ न होइ। ऐसें आयुके बंधका विधान कह्या। जैसें अन्यकालविषैं समय समय प्रति समयप्रबद्ध बंधै है सो आयुकर्म विना सातकर्मरूप होइ परिणमै है तैसें आयुकर्मका बध जेता कालमें होइ तितने कालविषैं जे समय समय प्रति समय प्रबंद्धबंधै ते आठो ही कर्मरूप होइ परिणमैं हैं ऐसें जानना। बहुरि जिस समयविषैं पहिलैं ही जिसका बंध होइ तहां तिसका प्रारंभ कहिए बहुरि समय समय तिस प्रकृतिका बंध हूवा करै तहां बंध होइ निवरै तहां निष्ठापक कहिए। बहुरि देव नारकीनिके छह महिना आयुका अवशेष रहै तब आयुके बध करनेकौं योग्य होइ पहिलैं न होइ तहां छह महिना ही विषैं त्रिभाग त्रिभागकरि आठ अपकर्ष हो हैं तिनविषैं आयुके बध करने योग्य हो है। बहुरि एक समय अधिक कोटि पूर्व वर्षतैं लगाइ तीन पल्य पर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयुके धारी भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य ते भी निरुपक्रमायुष्क हैं इनकैं आयुका नव मास अवशेष रहैं आठ अपकर्षनिकरि परभवके आयुका बंध होनेका योग्यपना हो है। बहुरि इतना जानना जिस गतिसंबंधी आयुका बंध प्रथम अपकर्षविषैं होइ पीछैं जो द्वितियादि अपकर्षनिविषैं आयुका बंध होइ तौ तिसही गति संबंधी आयुका बंध होइ। बहुरि जो प्रथम अपकर्षविषैं आयुका बंध न होइ तौ अर दूसरे अपकर्षविषैं जिस

किसी आयुका वंध होइ तौ तृतीयादि अपकर्षनिविषें आयुका जो वंध होइ तौ तिस ही गतिसम्बन्धी आयुका वन्ध होइ ऐसें ही आगै जानना। ऐसे कई एक जीवनिके तो आयुका वन्ध एक अपकर्ष ही विषें होइ केई जीवनिके दोय अपकर्षनिकरि होइ. केई जीवनिकै तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनिकरि हो है। तहां आठ अपकर्षनिकरि परभवकी आयुके वन्ध करनहारे जीव स्तोक हैं तिनतें संख्यातगुणे सात अपकर्षनिकरि वन्ध करने वाले हैं तिनतें संख्यात गुणे छह अपकर्षनिकरि वंध करनेवाले हैं ऐसें संख्यात गुणे पांच च्यारि तीन दोय अपकर्षनिकरि वंध करनेवाले जीव जानने। वहुरि आठ अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीव तिसकें आठवां अपकर्षविषें आयु वंधनेका जघन्य काल स्तोक है। तिसतें विशेप अधिक ताका उत्कृष्ट काल है। वहुरि आठ अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें सातवां अपकर्षविषें जघन्य काल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट तिसतें विशेप अधिक है। वहुरि सात अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें सातवां अपकर्षविषें आयुवंधनेका जघन्यकाल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट तिसतें विशेप अधिक है। वहुरि आठ अपकर्षनिकरि आयुवांधता जीवके छठा अपकर्षविषें आयु वंधनेका जघन्य काल तिसतें संख्यात गुणा है। उत्कृष्ट विशेप अधिक है। वहुरि सात अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें छठा अपकर्षविषें आयुका वंधनेका जघन्य काल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट विशेप अधिक है। वहुरि छह अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें छठा अपकर्षविषें आयु वंधनेका जघन्य काल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट किछू अधिक है। ऐसें एक अपकर्षकरि आयुकों वांधता जीवकें तीहि अपकर्षके उत्कृष्ट काल पर्यंत वहत्तरि ७२ भेद हो हैं। तहां जघन्यतें उत्कृष्ट तो विशेप जानना सो तिस विवक्षित जघन्यकौं संख्यातका भाग दीएं जो पावै सो विशेपका प्रमाण जानना। ताकौं जघन्यमें जोड़ें उत्कृष्टका प्रमाण हो है। वहुरि उत्कृष्टतें आगला जघन्य संख्यात गुणां जानना। ऐसें यद्यपि सामान्यपनें सवनिविषें काल अंतर्मुहूर्त्त मात्र है तथापि हीनाधिकपना जाननेकौं अनुक्रम कह्या है जो अपकर्षनिविषें आयुका वंध होइ तौ इतने कालमात्र समयप्रवद्धनिकरि वंध हो है ॥

आठ अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			सात अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			छह अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			पांच अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			च्यारि अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			तीन अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			दोय अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना			एक अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना		
०	जघन्य	उत्कृष्ट																					
८	८	८	०	जघन्य	उत्कृष्ट																		
८	७	७	७	७	७	०	जघन्य	उत्कृष्ट															
८	६	६	७	६	६	६	६	६	०	जघन्य	उत्कृष्ट												
८	५	५	७	५	५	६	५	५	५	५	५	०	जघन्य	उत्कृष्ट									
८	४	४	७	४	४	६	४	४	५	४	४	४	४	४	०	जघन्य	उत्कृष्ट						
८	३	३	७	३	३	६	३	३	५	३	३	४	३	३	३	३	३	०	जघन्य	उत्कृष्ट			
८	२	२	७	२	२	६	२	२	५	२	२	४	२	२	३	२	२	२	२	२	०	ज०	उ०
८	१	१	७	१	१	६	१	१	५	१	१	४	१	१	३	१	१	१	१	१	[illegible]	१	१

यह बहत्तरी भेदनिकी रचना है तहां आठ अपकर्षनिकरि आयु बंधनेकी रचना विषैं पहिली पंक्तिके कोठा निविषैं जो आठ आठका अंक है ताका तौ यह अर्थ जानना जो आठ अपकर्षनिकरि आयु बांधनेवालेका इहां ग्रहण है बहुरि दूसरी तीसरी पंक्तिनिविषै आठ सात आदि अंक है तिनिका यह अर्थ जो तिनिं आठ अपकर्षनिकरि बंधकरने वाले जीवके आठवां आदि अपकर्षनिका ग्रहण है तहां दूसरी पंक्तिविषैं जघन्य काल अपेक्षा ग्रहण जानना। तीसरी पंक्तिविषैं उत्कृष्ट काल अपेक्षा ग्रहण जानना। ऐसें ही सात छह पांच च्यारि तीन दोय एक अपकर्षनिकरि आयु बंधनेकी रचनाविषैं अर्थ जानना। आठौं रचनानिकी दूसरी तीसरीपंक्तिनिके सर्वकोठे बहत्तरि हो है इनि बहत्तरि स्थाननिविषै आयुबंधनके कालका अल्प बहुत्व जानना। मध्य भेदनिके ग्रहणनिमित्त जघन्य उत्कृष्टके वीचि विंदीकी सहनानी जाननी।

ऐसें आयुकौं बंधनेके योग्य लेश्यानिका मध्य आठ अंश तिनकी आठ अपकर्षनिकरि उत्पत्तिका अनुक्रम कह्या ॥ ५१८ ॥

सेसट्ठारसअंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति।
सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥ ५१९ ॥

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवन्ति।
शुक्लोत्कृष्टांशमृताः सर्वार्थं यान्ति खलु जीवाः ॥ ५१९ ॥

जी० प्र०—तेभ्यो मध्यांशेभ्यः शेषाः अष्टादशांशाः चतुर्गतिगमनकारणानि भवंति। तेषु मध्ये शुक्लेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सर्वार्थसिद्धीन्द्रके यांति—उत्पद्यंते खलु नियमेन ॥ ५१९ ॥

स० च०—तिन मध्यम अंशनितैं अवशेष रहैं जे लेश्यानिके अठारह अंश ते च्यारि गतिविषैं गमनकौं कारण हैं मरण इनि अठारह अंशनिकरि सहित होइ सो मरणकरि यथायोग्य गतिकौं जीव प्राप्त हो है तहां शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि सहित मरैं ते जीव सर्वार्थसिद्धि नामा इंद्रके विमानकौं प्राप्त हो हैं ॥ ५१९ ॥

अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।

आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥ ५२० ॥

अवरांशमृता भवन्ति शताराद्विके मध्यमांशकेन मृताः ।

आनतकल्पादुपरि सर्वार्थादिमे भवन्ति ॥ ५२० ॥

जी० प्र०—शुक्ललेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः शतारसहस्रारकल्पद्विके भवंति—उत्पद्यते । शुक्लेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः आनतकल्पादुपरि सर्वार्थसिद्धींद्रकस्यादिमविजयादिविमानपर्यंतेषु यथासंभवमुत्पद्यंते ॥ ५२० ॥

स० चं०—शुक्ल लेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव शतार सहस्रार स्वर्ग विषैं उपजैं हैं बहुरि शुक्ल लेश्या का मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव आनत स्वर्गके ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रकका विजयादिक विमान पर्यंत यथासंभव उपजैं हैं ॥ ५२० ॥

पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।

अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिंदं ॥ ५२१ ॥

पद्मोत्कृष्टांशमृता जीवा उपयान्ति खलु सहस्रारम् ।

अवरांशमृता जीवाः सनत्कुमारं च माहेन्द्रम् ॥ ५२१ ॥

जी० प्र०—पद्मलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पमुपयांति खलु स्फुटं । पद्मलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः सनत्कुमारं माहेंद्रं चोपयांति ॥ ५२१ ॥

स० चं०—पद्म लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं ते जीव सहस्रार स्वर्गकौं प्राप्त हो हैं बहुरि पद्म लेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गकौं प्राप्त हो हैं ॥ ५२१ ॥

मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा ।

साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥

मध्यमांशेन मृताः तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः ।
सानत्कुमारमाहेन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रश्रेण्याम् ॥ ५२२ ॥

जी० प्र०—पद्मलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पादधः सानत्कुमारमाहेंद्रद्वयादुपरि यथासंभवमुत्पद्यंते । तेजोलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पयोश्चरमपटलचक्रेंद्रकसंबंधिगतश्रेणीबद्धविमानेषूत्पद्यंते ॥ ५२२ ॥

स० चं०—पद्मलेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव सहस्रार स्वर्गके नीचैं अर सनत्कुमार माहेंद्रके ऊपरि यथासंभव उपजैं हैं । बहुरि तेजो लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं ते सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका पटलविषैं चक्र नामा इंद्रकके संबंधी श्रेणीबद्ध विमान तिनिविषैं उपजैं हैं ॥ ५२२ ॥

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।
मज्झिमअंसेण मुदा विमलविमाणादिबलभद्दे ॥ ५२३ ॥

अवरांशमृताः सौधर्मैशानादिमर्तौ श्रेण्याम् ।
मध्यमांशेन मृता विमलविमानादिबलभद्रे ॥ ५२३ ॥

जी० प्र०—तेजोलेश्याजघन्यांशेन मृताः जीवाः सौधर्मैशानकल्पयोरादिभूतऋत्विंद्रके श्रेणीबद्धे चोत्पद्यंते । तेजोलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सौधर्मैशानकल्पद्वितीयपटलस्येंद्रकं विमलनामकमादिं कृत्वा सानत्कुमारमाहेंद्रद्विचरमपटलस्येंद्रकं बलभद्रनामकं तत्पर्यंतं उत्पद्यंते ॥ ५२३ ॥

स० चं०—तेजोलेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव सौधर्म ईशानका पहिला रितु(जु)नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमान तिनिविषैं उपजैं हैं । बहुरि तेजोलेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव सौधर्म ईशानका दूसरा पटलका विमल नामा इंद्रकतैं लगाइ सनत्कुमार महेंद्रका द्विचरम पटलका बलभद्र नामा इंद्रक पर्यंत विमानविषैं उपजैं हैं ॥ ५२३ ॥

तिस विषैं उपजैं हैं। बहुरि कापोत लेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव पहिला पृथ्वीका सीमंत इंद्रकतैं नीचैं बारह पटलनिविषैं बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वीका द्विचरम संज्वलित इंद्रकतैं ऊपरि सात पटलनिविषैं बहुरि दूसरी पृथ्वीका ग्यारह पटल तिनविषैं यथायोग्य उपजैं हैं ॥ ५२६ ॥

किण्हचउक्काणं पुण मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये ।
पुढवीआउवणप्फदिजीवेसु हवंति खलु जीवा ॥

कृष्णचतुष्काणां पुनः मध्यांशमृता हि भवनकादित्रये ।
पृथिव्यब्वनस्पतिजीवेषु भवन्ति खलु जीवाः ॥ ५२७ ॥

जी० प्र०—अत्र पुनःशब्दो विशेषप्ररूपकोऽस्ति । तेन कृष्णादित्रिलेश्यामध्यमांशमृताः कर्मभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टयः तेजोलेश्यामध्यमांशमृताः भोगभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टयश्च भवनत्रये खलु उत्पद्यंते इति ज्ञातव्यं । तु पुनः, कृष्णादिचतुर्लेश्यामध्यमांशमृततिर्यग्मनुष्यभवनत्रयसौधर्मैशानमिथ्यादृष्टयः वादरपर्याप्तपृथ्व्यप्कायिकेषु पर्याप्तवनस्पतिकायिकेषु चोत्पद्यंते । भवनत्रयाद्यपेक्षया अत्रापि तेजोलेश्यासंभवो बोद्धव्यः ॥ ५२७ ॥

स० चं०—पुनः कहिए यहु विशेष है—कृष्ण नील कपोत तीन लेश्या तिनके मध्यम अंशकरि मरैं ऐसे कर्मभूमियां मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य अर तेजो लेश्याका मध्य अंशकरि मरैं ऐसे भोगभूमिया मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य ते भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिविषैं उपजे हैं। बहुरि कृष्ण नील कपोत पीत इन च्यारि लेश्यानिके मध्य अंशनिकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी वा सौधर्म ईशान स्वर्गके वासी देव मिथ्यादृष्टी ते वादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक अप्कायिक वनस्पती कायिकविषैं उपजै हैं। भवनत्रयादिककी अपेक्षा इहां पीत लेश्या जाननी, तिर्यंच मनुष्य अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्या जाननी ॥ ५२७ ॥

किण्हतियाणं मज्झिमअंसमुदा तेउवाउवियलेसु ।

कृष्णलेश्याजघन्यांशेनापि मृताः केचिज्जीवाः उत्पद्यंते। इति विशेषो ज्ञातव्यः। नीललेश्या जघन्यांशेन मृता जीवाः वालुकाप्रभानवपटलेषु चरमपटलस्य संप्रज्वलितेंद्रके जायंते। नीललेश्यामध्यांशेन मृताः जीवाः तृतीयपृथ्वीनवमपटलस्य संप्रज्वलितेंद्रकादधश्चतुर्थपृथ्वीपटलसप्तके पंचमपृथ्वीचतुर्थपटलस्यांध्रेंद्रकादुपरि यथायोग्यं जायंते ॥ ५२५ ॥

स० चं०—नील लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरें ते जीव पंचम पृथ्वीका द्विचरम पटलका अंध्र नामा इंद्रकविषें उपजे हैं। केई पांचवां पटलविषें भी उपजे हैं। अरिष्ट पृथ्वीका अतका पटलविषें कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे हुए भी केई जीव उपजें हैं इतना विशेष जानना। वहुरि नीलेलश्याका जघन्य अंशकरि मरें ते जीव वालुका पृथ्वीका अतका पटलविषें संप्रज्वलित नामा इंद्रकविषें उपजें हैं। वहुरि नील लेश्याका मध्यम अंशकरि मरें ते जीव वालुका पृथ्वीके संप्रज्वलित इंद्रकतें नीचें अर चौथी पृथ्वीका सातों पटल अर पंचमी पृथ्वीका अंध्र इंद्रकके ऊपरि यथायोग्य उपजें हैं ॥ ५२५ ॥

वरकाओदंसमुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स।
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते ॥ ५२६ ॥

वरकापोतांशमृताः संज्वलितं यान्ति तृतीयनिरयस्य।
सीमन्तमवरमृता मध्ये मध्येन जायन्ते ॥ ५२६ ॥

जी० प्र०—कापोतलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः तृतीयपृथ्वीनवपटलेषु द्विचरमाष्टमपटलस्य संज्वलितेंद्रके उत्पद्यते। केचित् चरमसंप्रज्वलितेंद्रकेपीति विशेषोऽवगंतव्यः। कापोतलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः धर्माप्रथमपटलस्य सीमंतेंद्रके उत्पद्यंते। कापोतलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सीमंतेंद्रकादधस्तनद्वादशपटलेषु मेघाया द्विचरमसंज्वलितेंद्रकादुपरितनसप्तमपटलेषु द्वितीयपृथ्व्येकादशपटलेषु च यथायोग्यमुत्पद्यंते ॥ ५२६ ॥

स० चं०—कपोत लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरें ते जीव तीसरी पृथ्वीका आठवां द्विचरम पटल ताके संज्वलित नामा इंद्रकविषें उपजें हैं। केई अंतका पटलसंबंधी संप्रज्वलित नामा इंद्रकविषें भी उपजे हैं इतना विशेष जानना। वहुरि कापोत लेश्याका जघन्य अंशकरि मरें ते जीव पहिली पृथ्वीका पहिला धर्मा सीमंतक नामा इंद्रक

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमातिमिस्से मज्झे मज्झेण जायन्ते ॥ ५२४ ॥

कृष्णवरांशेन मृता अवधिस्थाने अवरांशमृताः ।
पञ्चमचरमतिमिस्रे मध्ये मध्येन जायन्ते ॥ ५२४ ॥

जी० प्र०—कृष्णलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सप्तमपृथिव्यामेकमेव पटलं तस्यावधिस्थानेंद्रके जायंते । कृष्णलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः पंचमपृथ्वीचरमपटलस्य तिमिस्रेंद्रके जायंते । कृष्णलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः तदवधिस्थानेंद्रकस्य चतुःश्रेणीबद्धेषु षष्ठपृथ्वीपटलत्रये पंचमपृथ्वीचरमपटले च तत्तद्योग्यतया जायंते ॥ ५२४ ॥

स० चं०—कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं ते जीव सातवी नरक पृथ्वीका एकही पटल है ताका अवधि स्थानक नामा इंद्रक विलविषैं उपजै हैं। बहुरि कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव पंचम पृथ्वीका अंत पटलका तिमिस्र नामा इंद्रकविषैं उपजै हैं। बहुरि कृष्ण लेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव अवधिस्थान इंद्रकका च्यारि श्रेणीबद्ध विल तिनिविषैं वा छठा पृथ्वीका तीनौं पटलनिविषैं वा पांचवी पृथ्वीका चरम पटलविषैं यथायोग्य उपजै हैं ॥ ५२४ ॥

नीलुक्कस्संसमुदा पचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते ॥ ५२५ ॥

नीलोत्कृष्टांशमृताः पञ्चमान्धेन्द्रके अवरमृताः ।
वालुकासंप्रज्वालिते मध्ये मध्येन जायन्ते ॥ ५२५ ॥

जी० प्र०—नीललेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः पंचमपृथ्वीद्विचरमपटलस्यांध्रेंद्रके जायंते । केचित् पंचमपटलेऽपि जायंते । तवोऽरिष्टाचरमपटले

सुरणिरया सगलेस्सहिं णरतिरियं जांति सगजोग्गं ॥ ५२८ ॥

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृता तेजोवायुविकलेषु ।
सुरनिरयाःस्वकलेश्याभिः नरतिर्यञ्चं यान्ति स्वकयोग्यम् ॥ ५२८ ॥

जी० प्र०—कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयस्य मध्यमांशमृततिर्यग्मनुष्याः तेजोवायुविकलत्रयासंज्ञिसाधारणवनस्पतिजीवेषु उत्पद्यंते। भवनत्रयादि सर्वार्थसिद्ध्यंतसुराः धर्माद्यवधिस्थानांतनारकाश्च स्वस्वलेश्यानुगं नरतिर्यक्त्वं यांति ॥ ५२८ ॥ इति गत्यधिकारः ॥ अथ स्वाम्यधिकारं गाथासप्तकेनाह—

स० चं०—कृष्ण नील कपोतके मध्य अंशकरि मरैं ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजःकायिक वा वातकायिक विकलत्रय असैनी पंचेंद्री साधारण वनस्पती इनिविषैं उपजै हैं। बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत देव अर धम्मादि सात पृथ्वीसंबंधी नारकी ते अपनी अपनी लेश्याके अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगतिकौं प्राप्त हो हैं। इहां इतना जानना। जिस गतिसंबंधी पूर्वैं आयु बध्या होइ तिस ही गतिविषैं जो मरण होतैं लेश्या होइ ताके अनुसारि उपजै है जैसैं मनुष्यके पूर्वैं देवायुका बंध भया बहुरि मरण होते कृष्णादि अशुभ लेश्या होइ तौ भवनत्रिकविषैं ही उपजै है ऐसैं ही अन्यत्र जानना ॥ ५२८ ॥ इति गत्यधिकारः । ७ । आगैं स्वामी अधिकार सात गाथानिकरि कहैं हैं—

काऊ काऊ काउ, णीला णीला य णीलकिण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥ ५२९ ॥

कपोता कपोता कपोता नीला नीला च नीलकृष्णे च ।
कृष्णा च परमकृष्णा लेश्या प्रथमादिपृथिवीनाम् ॥ ५२९ ॥

जी० प्र०—प्रथमादिपृथ्वीनारकाणां लेश्योच्यते–तत्र घर्मायां कपोतजघन्यांशः । वंशायां कपोतमध्यमांशः । मेघायां कापोतोत्कृष्टांशनीलजघन्यांशौ । अंजनायां नीलमध्यमांशः । अरिष्टायां नीलोत्कृष्टांशकृष्णजघन्यांशौ । मघव्यां कृष्णमध्यमांशः । माघव्यां कृष्णोत्कृष्टांशः ॥ ५२९ ॥

स० चं०—इहां भावलेश्या अपेक्षा कथन है तहां नारकी जीवनिके कहिए है-तहां घम्मा नामा पहिली पृथ्वीविषैं कपोत लेश्याका जघन्य अंश है। वंशा दूसरी पृथ्वीविषैं कपोतका मध्यम अंश है। मेघा तीसरी पृथ्वीविषैं कपोतका उत्कृष्ट अंश अर नीलका जघन्य अंश है। अंजना चौथी पृथ्वीविषैं नीलका मध्यम अंश है। अरिष्टा पांचवी पृथ्वीविषैं नीलका उत्कृष्ट अंश है अर कृष्णका जघन्य अंश है। मघवी पृथ्वीविषैं कृष्णका मध्यम अंश है। माघवी सातवीं पृथ्वीविषैं कृष्णका उत्कृष्ट अंश है ॥ ५२९ ॥

णरतिरियाणं ओघो इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स ।
सण्णिअपुण्णगमिच्छे सासणसम्मेवि असुहतियं ॥

नरतिरश्चामोघ एकविकले तिस्रः चतस्रः असंज्ञिनः ।
संज्ञ्यपूर्णकमिथ्यात्वे सासादनसम्यक्त्वेपि अशुभत्रिकम् ॥ ५३० ॥

जी० प्र०—नरतिरश्चां प्रत्येकं ओघः सामान्योत्कृष्टषड्लेश्याः स्युः। तत्र एकेंद्रियविकलत्रयजीवेषु तिस्रः कृष्णाद्यशुभलेश्या एव। असंज्ञिपर्याप्तस्य तत्त्रयं तेजोलेश्या च, कुतः? तस्य कपोतमृतस्य घर्मायां तेजोमृतस्य भवनव्यंतरयोरशुभत्रयमृतस्य संज्ञिनरतिर्यग्गत्योश्च उत्पादात्। संज्ञिलब्ध्यपर्याप्तकतिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टौ अपिशब्दादसंज्ञिलब्ध्यपर्याप्तके तिर्यग्मनुष्यभवनत्रयनिर्वृत्त्यपर्याप्तकसासादने च कृष्णाद्यशुभत्रयमेव। तिर्यग्मनुष्योपशमसम्यग्दृष्टीनां सम्यक्त्वकालाभ्यंतरे सुष्ठु संक्लेशेपि देशसंयतवत् तत्त्रयं नास्ति तथापि तद्विराधकसासादनापर्याप्तानामस्तीति ज्ञातव्यं ॥ ५३० ॥

स० चं०—मनुष्य अर तिर्यंचनिके 'ओघ' कहिए सामान्यपनैं कहीं ते सर्व छहौ लेश्या पाइए है। तहां एकेंद्री अर विकलत्रय इनकैं कृष्णादिक तीन अशुभलेश्या पाइए है। बहुरि असैनी पचेंद्री पर्याप्तककैं कृष्णादि च्यारि लेश्या पाइए है जातैं असैनी पंचेंद्री कपोतलेश्या सहित मरैं तौ पहिले नरक उपजैं। तेजोलेश्या सहित मरैं तौ भवनवासी अर व्यंतर देवनिविषैं उपजै। कृष्णादि तीन अशुभलेश्या सहित मरै तौ यथायोग्य मनुष्य तिर्यंचविषैं

उपजें तातैं ताके च्यारि लेश्या हैं। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य मिथ्यादृष्टी बहुरि अपिशब्दतैं असैनी लब्धि पर्याप्तक तिर्यंच मनुष्य मिथ्यादृष्टी बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृति अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य वा भवनत्रिक देव इनिविषैं कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही हैं। तिर्यंच अर मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टी होइ ताके अति संक्लेश परिणाम होंइ तौ भी देशसंयमीवत् कृष्णादिक तीन लेश्या न होंइ। तथापि जो उपशम सम्यक्त्वी विराधनाकरि सासादन होइ ताकैं अपर्याप्त अवस्थाविषैं तीन अशुभ लेश्या ही पाइए हैं॥ ५३०॥

भोगापुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे णियमा।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा॥

भोगाऽपूर्णकसम्यक्त्वे कापोतस्य जघन्यकं भवेन्नियमात्।
मिथ्यात्वे वा सम्यक्त्वे वा पर्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः॥ ५३१॥

जी॰ प्र॰—भोगभूमौ निर्वृत्यपर्याप्तकसम्यग्दृष्टौ कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। कुतः? कर्मभूमिनरतिरश्चां प्राग्बद्धायुषां क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा स्वीकृते तदन्यजघन्येन तत्रोत्पत्तिसंभवात्—तद्योग्यसंक्लेशपरिणामपरिणता इत्यर्थः। तस्यां पर्याप्तेरुपरि सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा शुभलेश्यात्रयमेव॥ ५३१॥

स॰ चं॰—भोगभूमिविषैं निर्वृति अपर्याप्तक सम्यग्दृष्टी जीवविषैं कपोत लेश्याका जघन्य अंश पाइए है। जातैं कर्मभूमिया मनुष्य वा तिर्यंच पहिलैं मनुष्य वा तिर्यंच आयुका बंध कीया पीछैं क्षायिक वा वेदक सम्यक्त्वकौं अंगीकारकरि मरैं तिस सहित ही तहां भोगभूमिविषैं उपजै तहां तिस योग्य संक्लेश परिणाम कपोतका जघन्य अंश तिसरूप परिणाम है। बहुरि भोगभूमिविषैं पर्याप्त अवस्थाविषैं सम्यग्दृष्टी वा मिथ्यादृष्टी जीवके पीतादिक तीन शुभलेश्या ही पाइए है॥ ५३१॥

अयदोत्तिछलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये।

तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥ ५३२ ॥

असंयत इति षड् लेश्याः शुभत्रयलेश्या हि देशविरतत्रये ।
ततः शुक्ला लेश्या अयोगिस्थानमलेश्यं तु ॥ ५३२ ॥

जी० प्र०——असंयतांतचतुर्गुणस्थानेषु षड्लेश्याः खलु । देशविरतादित्रये शुभलेश्यात्रयमेव । ततः उपरि सयोगपर्यंतं षड्गुणस्थानेषु एका शुक्ललेश्यैव । अयोगिगुणस्थानं अलेश्यं लेश्यारहितं तत्र योगकषाययोरभावात् ॥ ५३२ ॥

स० चं०——असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं छहौ लेश्या हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थाननिविषैं पीतादिक तीन शुभलेश्या ही हैं। तातैं ऊपरि अपूर्वकरणतैं लगाइ सयोगी पर्यंत छह गुणस्थाननिविषैं एक शुक्ल लेश्या ही है। अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है-जातैं तहां योग कषायका अभाव है ॥ ५३२ ॥

णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खोत्ति तहिं हवे लेस्सा ॥ ५३३ ॥

नष्टकषाये लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात्।
अथवा योगप्रवृत्तिः मुख्येति तत्र भवेल्लेश्या ॥ ५३३ ॥

जी० प्र०——उपशांतकषायादिनष्टकषायगुणस्थानत्रये कषायोदयाभावेऽपि या लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायादेव । अथवा योगप्रवृत्तिर्लेश्येति योगप्रवृत्तिप्राधान्येन तत्र लेश्या भवति ॥ ५३३ ॥

स० चं०——उपशांत कषायादिक जहां कषाय नष्ट होइ गए ऐसै तीन गुणस्थाननिविषैं कषायका अभाव होतैं भी लेश्या कहिए है सो भूतपूर्वगति न्यायतैं कहिए है। पूर्वैं योगनिकी प्रवृत्ति कषायसहित होती थी तहां लेश्याका सद्भाव था इहां योग पाइए है तातैं उपचारकरि इहां भी लेश्याका सद्भाव कह्या। अथवा योगनिकी प्रवृत्ति सोई लेश्या ऐसा भी कथन है सो योग इहां है ही, ताकी प्रधानताकरि तहां लेश्या है॥ ५३३ ॥

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं॥ ५३४ ॥
तेऊ तेऊ तेउ, पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा॥५३५ ॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।
एतस्माच्च चतुर्दशानां लेश्या भवनादिदेवानाम् ॥ ५३४ ॥
तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मा शुक्ला च ।
शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रिकाः अपूर्णके अशुभाः ॥ ५३५ ॥

जी० प्र०—भवनत्रयादिदेवानां लेश्योच्यते तत्र पर्याप्तापेक्षया भवनत्रयस्य तेजोजघन्यांशः । सौधर्मैशानयोः तेजोमध्यमांशः । सानत्कुमारमाहेंद्रयोः तेजउत्कृष्टांशपद्मजघन्यांशौ । ब्रह्मब्रह्मोत्तरादिषट्कस्य पद्ममध्यमांशः । शतारसहस्रारयोः पद्मोत्कृष्टांशशुक्लजघन्यांशौ । आनतादिचतुर्णां नवग्रैवेयकाणां च शुक्लमध्यमांशः । अत उपरि अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानानां शुक्लोत्कृष्टांशो भवति । भवनत्रयदेवाः अपर्याप्तकाले अशुभत्रिलेश्या एव, अनेन वैमानिकाः अपर्याप्तकाले स्वस्वलेश्या एवेति सूचितं ज्ञातव्यं ॥५३४–५३५॥ इति लेश्याधिकारोऽष्टमः ॥ अथ साधनाधिकारमाह—

स० चं०—देवनिकै लेश्या कहिए है तहां पर्याप्त भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी इनि भवनत्रिककैं तेजोलेश्याका जघन्य अंश है। सौधर्म ईशान दोय स्वर्गवालोकैं तेजोलेश्याका मध्यम अंश है। सनत्कुमार माहेंद्र दोय स्वर्गवालोकैं तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश अर पद्मलेश्याका जघन्य अंश है। ब्रह्म आदि छह स्वर्गवालोकैं पद्मलेश्याका मध्यम अंश है। शतार सहस्रार दोय स्वर्गवालोकैं पद्मलेश्याका उत्कृष्ट अंश अर शुक्ललेश्याका जघन्य अंश है। आनत आदि च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयक इनि तेरह वालौंकैं शुक्ललेश्याका मध्यम अंश है। ताके ऊपरि नव

अनुदिश अर पंच अनुत्तर इनि चौदह विमान वालोंकैं शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंश है। बहुरि भवनत्रिक देवनिकैं अपर्याप्त अवस्थाविषैं कृष्णादि तीन अशुभलेश्या ही पाइए है याहीतैं यहु जानिए है जो वैमानिक देवनिकैं पर्याप्त वा अपर्याप्त अवस्थाविषैं लेश्या समान ही है ऐसैं जिस जीवकैं जो लेश्या पाइए सो जीव तिस लेश्याका स्वामी जानना ॥ ५३४–५३५ ॥ इति स्वाम्यधिकारः। आगैं साधन अधिकार कहैं हैं—

वण्णोदयसंपादिदसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो ॥५३६॥

वर्णोदयसंपादितशरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या।
मोहोदयक्षयोपशमोपशमक्षयजजीवस्पन्दो भावः ॥ ५३६ ॥

जी० प्र०—वर्णनामकर्मोदयेन सपादितः-सजनितः शरीरवर्णो द्रव्यलेश्या भवति। असंयतातगुणस्थानचतुष्के मोहस्य उदयेन, देशविरतत्रये क्षयोपशमेन, उपशमके उपशमेन क्षपके क्षयेण च संजनितसंस्कारो जीवस्पंदनसंज्ञः स भावलेश्या जीवपरिणामप्रदेशस्पंदनेन कृतेत्यर्थः। तेन कारणेन योगकषायाभ्यां भावलेश्येत्युक्तं ॥ ५३६ ॥ इति साधन धिकारो नवमः ॥ अथ संख्याधिकारं गाथाषट्केनाह—

स० चं०—वर्ण नामा नामकर्मके उदयतैं उत्पन्न भया जो शरीरका वर्ण सो द्रव्यलेश्या है तातैं द्रव्यलेश्याका साधन वर्ण नामा नामकर्मका उदय है बहुरि असंयतपर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं मोहनीय कर्मका उदयतैं, देश विरतादिक तीन गुणस्थाननिविषैं मोहनीय कर्मका क्षयोपशमतैं, उपशम श्रेणीविषैं मोहनीयकर्मका उदयतैं, क्षपक श्रेणीविषैं मोहनीय कर्मका क्षयतैं उत्पन्न भया जो जीवका स्पंद सो भाव लेश्या है। स्पंद कहिए जीवके परिणामनिका चंचल होना वा जीवके प्रदेशनिका चंचल होना सो भावलेश्या है। तहां परिणामका चंचल होना कषाय है। प्रदेशनिका चंचल होना योग है। तीहिं कारणकरि योग कषायनिकरि भावलेश्या कहिए है। तातैं भावलेश्याका साधन मोहनीय कर्मका उदय वा क्षयोपशम वा उपशम वा क्षय जानना ॥५३६॥ इति साधनाधिकारः ॥ ९ ॥ आगैं संख्याधिकार छह गाथानिकरि कहैं हैं—

किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।
हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥ ५३७ ॥

कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते ।
हीनक्रमाः कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ॥ ५३७ ॥

जी० प्र०—कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयजीवसामान्यराशिं शुभलेश्यात्रयजीवराशिहीनसंसारिराशिमात्रं १३– आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा १३–बहु-
९

भागः १३–८ त्रिभिर्भक्तः त्रिस्थाने देयः १३–८, १३–८, १३–८, शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः कृष्णलेश्यायां देयः ।
९   ९ । ३, ९ । ३, ९ । ३,

शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्यायां देयः । शेषैकभागे कपोतलेश्यायां दत्ते त्रयो राशयोऽमी—

१३–८,   १३–८,   १३–८, समच्छेदेन मिलिताः— कृ १३–८६४,   नी १३–।६७२,   क १३–। ६५१, किंचिदूनक्रमा
९ । ३,   ९ । ३,   ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३,
१३–८,   १३–८ ।   १३–१
९ । ९ ।   ९ । ९ । ९ ।   ९९९

भवंति— कृ १३– । नी १३– । क १३– इति कृष्णादित्रिलेश्याजीवानां द्रव्यतः प्रमाणमुक्तं । पुनः—वा अथवा कालमाश्रित्य द्रव्याणि भक्त-
                     ।   ॥
     ३–   ३–   ३–

व्यानि । तद्यथा—कृष्णनीलकपोतलेश्याः संस्थाप्य तासां कालो मिलित्वापि अंतर्मुहूर्तः २ ७ृ आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः त्रिभिर्भक्त्वा प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः कृष्णलेश्यायां देयः । शेषैकभागे पुनः आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्यायां देयः । शेषैकभागे कपोतलेश्यायां दत्ते त्रयो राशय एवं— कृ २ ७ृ । ८६४,   नी २ ७ृ । ६७२,   क २ ७ृ । ६५१, तेषां योगः २ ७ृ । २१८७
                           ९ । ९ । ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३

अपवर्तितः २ ७ृ । अधुना त्रैराशिकं प्र २ ७ृ । फ १३–इ २ ७ृ । ८६४ लब्धं कृष्णलेश्याजीवप्रमाणं १३–८६४ अपवर्तिते किंचिदूनत्रिभागो
                                  ९ । ९ । ९ । ३   ९ । ९ । ९ । ३

भवति। एवं नीलकपोतयोरपि ज्ञातव्यं। कृ १३-। नी १३-। क १३-। इति कालसंचयमाश्रित्य द्रव्यतः प्रमाणमुक्तं ॥ ५३७ ॥

| ||

३- ३- ३-

स०चं०--कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण है सो तीन शुभलेश्यावालोंका प्रमाणकौं संसारी जीवनिका प्रमाणमैंस्यों घटाए जितना रहे तितना जानना सो किंचिदून संसारी राशिमात्र भया। ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग रहे तिनके तीन भाग करिए सो एक एक भाग एक एक लेश्यावालोंका समान रूप जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भाग जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहैं सो पूर्वै समान भागनिविषैं जो कृष्ण लेश्यावालोंका वट था तिसविषै जोडि दीए जो प्रमाण होइ तितने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने। बहुरि जो रह एक भाग रह्या था ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहै ते पूर्वै समान भागविषैं नील लेश्यावालोंका वट था तिसविषैं जोडि दीए जो प्रमाण होइ तितने नील लेश्यावाले जीव जानने। बहुरि जो वह एक भाग रह्या था सो पूर्वै समान भागविषैं कपोत लेश्यावालोंका वट था तिसविषै जोडैं जो प्रमाण होइ तितने कपोत लेश्यावाले जीव जानने। ऐसैं कृष्णलेश्यादिक तीन लेश्यावालोंका द्रव्यकरि प्रमाण कह्या सो क्रमतैं किछू किछू घटता जानना। अथवा काल अपेक्षा द्रव्यका परिमाण कीजिए है कृष्ण नील कपोत तीनों लेश्यानिका काल मिलाए जो कोई अंतर्मुहूर्त मात्र होइ ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहै तिनिका तीन भाग कीजिए तहां एक एक समान भाग एक एक लेश्याकौं दीजिए। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भागकौं जुदा राखि बहुभाग रहे सो पूर्वोक्त कृष्ण लेश्याका समान भाग विषैं मिलाइए बहुरि अवशेष जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अव-

शेष बहुभाग पूर्वोक्त नीललेश्याका समान भागविषैं मिलाइए । बहुरि जो एक भाग रह्या सो पूर्वोक्त कपोत लेश्याका समान भागविषै मिलाइए ऐसैं मिलाए जो जो प्रमाण भया सो सो कृष्णादि लेश्यानिका काल जानना। अब इहां त्रैराशिक करना । तहां तीनू लेश्यानिका काल जोडें जो प्रमाण भया सो तौ प्रमाणराशि बहुरि अशुभ लेश्यावाले जीवनिका जो किंचित् ऊन संसारी जीव मात्र प्रमाण सो फलराशि बहुरि कृष्णलेश्याका जो प्रमाण सोई इच्छाराशि तहां फलकरि इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भागदीए लब्ध राशि किंचित् ऊन तीनका भाग अशुभ लेश्यावाले जीवनिका प्रमाणकौं दीए जो प्रमाण भया तितने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । ऐसैं ही प्रमाणराशि फलराशि पूर्वोक्त इच्छाराशि अपना २ कालकरि नील वा कपोत लेश्याविषै भी जीवनिका प्रमाण जानना । ऐसैं काल अपेक्षा द्रव्यकरि अशुभलेश्यावाले जीवनिका प्रमाण कह्या है ॥ ५३७ ॥

खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।
कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ॥ ५३८ ॥

क्षेत्रतः अशुभत्रिका अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः ।
कालादतीतादनंतगुणिताः क्रमाद्धीनाः ॥ ५३८ ॥

जी० प्र०—क्षेत्रप्रमाणेन अशुभत्रिलेश्याजीवाः अनंतलोका अपि क्रमेण परिहीनाः किंचिदूनक्रमा भवंति। कृ ≡ ख। नी ≡ ख-। क ≡ ख= अत्र त्रैराशिकं प्र ≡ फ श १ । इ १३— लब्धशलाकाः ख पुनः प्र । श १ । फ ≡ । इ श ख लब्धं ≡ ख । कालप्रमाणेनाशुभत्रिलेश्या जीवा अतीतकालादनंतगुणिता अपि क्रमहीना भवंति । का कृ अ ख । नी अ ख— । क अ ख = अत्रापि त्रैराशिकं— प्र अ फ श । १ । इ १३— लब्धशलाकाः । ख । पुनः प्र श १ । फ अ । इ श ख लब्धं अ ख ॥ ५३८ ॥
(३— beneath the divisors)

स० चं०—क्षेत्र प्रमाणकरि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव अनंतलोकमात्र जानने लोकाकाशके प्रदेशनितें अनंत गुणे है तहां क्रमतैं हीनक्रम जानने। कृष्णलेश्यावालोंतैं किछू घाटि नीललेश्यावालोंका प्रमाण है। नील लेश्यावालौंतैं किछू घाटि कपोत लेश्यावालोंका प्रमाण है। बहुरि इहां प्रमाणराशि लोक फलराशि एक शलाका इच्छाराशि अपने अपने जीवनिका प्रमाण कीए लब्धिराशिमात्र अनत शलाका भई। बहुरि प्रमाण एक शलाका फल एक लोक इच्छा अनंत शलाका कीएं लब्धराशि अनंत लोकमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण हो है। बहुरि कालप्रमाणकरि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव अतीत कालके समयनिका प्रमाणतें अनंतगुणे हैं इहां भी पूर्वोक्त हीन क्रम जानना। बहुरि इहां प्रमाणराशि अतीत काल फलराशि एक शालाका इच्छाराशि अपने अपने जीवानिका प्रमाण कीए लब्धराशिमात्र अनत शलाका भई बहुरि प्रमाण एक शलाका फल एक अतीत काल इच्छा अनंत शलाका कीएं लब्ध राशि अनंत अतीत कालमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवानिका प्रमाण हो है॥ ५३८॥

केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा।
तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा॥५३९॥

केवलज्ञानानंतिमभागा भावात्तु कृष्णत्रिकजीवाः।
तेजस्त्रिका असंख्येयाः संख्यासंख्येयभागक्रमाः॥ ५३९॥

जी० प्र०—भावप्रमाणेन कृष्णादिलेश्या जीवाः प्रत्येकं केवलज्ञानानन्तैकभागमात्राः अपि किंचिदूनक्रमा भवंति। भा कृ के/ख। नी के-/ख। क के=/ख

अत्रापि त्रैराशिकं प्र १३-/३- । फ श १ । इ के । लब्धं के/(१३-/३-) अपवर्तिते ख। पुनः प्र श ख। फ के। इ श १। लब्धं के/ख। तेजोलेश्यादित्रयजीवाः द्रव्यप्रमाणेन असंख्याता अपि संख्यातासंख्यातभागक्रमा भवंति। ते ∂∂१। प ∂∂। शु ∂॥ ५३९॥

स० चं०—बहुरि भावमानकरि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाणके अनंतवे भाग प्रमाण हैं इहां भी पूर्ववत् ही क्रम जानना। बहुरि इहां प्रमाण राशी अपने अपने लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण, फल एक शलाका इच्छा केवलज्ञान कीए लब्ध राशिमात्र अनन्त प्रमाण भया इसकौं प्रमाणराशि करि फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान कीए केवलज्ञानके अनन्तवें भाग मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण हो है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यावालोंका प्रमाण असंख्यात है तथापि तेजोलेश्यावालोंके सख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग शुक्ल लेश्यावाले हैं ऐसैं द्रव्य करि शुक्ललेश्यावालोंका प्रमाण कह्या॥ ५३९ ॥

जोइसियादो अहिया तिरक्खसण्णिस्स संखभागोदु।
सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं ॥५४०॥

ज्योतिष्कतोऽधिकाः तिर्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु।
सूचेरंगुलस्य च असख्यभागं तु तेजस्त्रिकं ॥ ५४० ॥

जी० प्र०—तेजोलेश्याजीवाः ज्योतिष्कजीवराशितः साधिका भवंति। === ७ [१—, ।।।।] ४।६५=७। कथं ? पणणट्ठिमतरांगुलभक्तजगत्प्रतरमात्रज्योतिष्क— = ४।६५ = घनांगुलप्रथममूलगुणितजगच्छ्रेणिभावन—१ त्रिशतयोजनकृतिभक्तजगत्प्रतरमात्रव्यंतर = ४।६५=८१।१० ० घनांगुलतृतीयमूलगुणित जगच्छ्रेणिमात्रसौधर्मद्वयज — २ पंचसंख्यातगणट्ठीमतरांगुलभक्तजगत्प्रतरमात्रतादृक्संज्ञितिर्यक् = ४।६५=७७७ ७७ तादृशसंख्यातमनुष्याणां मिलितत्वात्। पद्मलेश्याजीवाः तेजोलेश्येभ्यः संख्यातगुणहीनत्वेऽपि संज्ञितिर्यक्तेजोलेश्येभ्योऽपि संख्यातगुणहीना भवंति। पद्मलेश्यातिर्यग्राशौक-

ल्पजमनुष्यैः साधिकमात्रत्वात् संदृष्टिः— == ॥
४ । ६५ = १ १ १ १ १ १
गमात्रा भवंति । २ सू इति तेजस्त्रयजीवाः क्षेत्रप्रमाणेनोक्ताः ॥ ५४० ॥
a १ — शुक्ललेश्या जीवाः सूच्यंगुलासंख्यातैकभा-

स० चं०—तेजो लेश्यावाले जीव ज्योतिष्क राशितैं किछू अधिक हैं कैसें ? सो कहिए है—पैसाठि हजार पांचसै छत्तीस प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने तौ ज्योतिषी देव बहुरि घनांगुलका प्रथमवर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितने भवनवासी बहुरि तीनसै योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने व्यंतर बहुरि घनांगुलका तृतीयवर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितने सौधर्म ईशान स्वर्गके वासी देव बहुरि पांचवार संख्यातकरि गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने तेजो लेश्यावाले तिर्यंच बहुरि संख्यात तेजोलेश्यावाले मनुष्य इनि सबनिका जोड दीए जो प्रमाण होइ तितने जीव तेजोलेश्यावाले जानने । बहुरि पद्मलेश्यावाले जीव तेजोलेश्यावाले जीवनितैं संख्यातगुणे घाटि हैं तथापि तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंचानितैं भी संख्यात गुणे घाटि हैं जातैं पद्मलेश्यावाले पंचेंद्री सैनी तिर्यंचनिका प्रमाणविषैं पद्मलेश्यावाले कल्पवासी देव अर मनुष्य तिनिका प्रमाण मिलाए जो जगत्प्रतरका असख्यातवे भागमात्र प्रमाण भया तितने पद्मलेश्यावाले जीव हैं । बहुरि शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुलके असख्यातवे भाग प्रमाण हैं अैसै क्षेत्र प्रमाणकरि तीन शुभ लेश्यावाले जीवानिका प्रमाण कह्या ॥ ५४० ॥

बेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरं तु जोइसियमाणं ।
तस्स य संखेज्जदिमा तिरिक्खसण्णीणपरिमाणं ॥ ५४१ ॥

द्विशतषट्पञ्चाशदंगुलकृतिहितप्रतरं तु ज्योतिष्कमानं ।

तस्य च संख्येयतमं तिर्यक्संज्ञिनां परिमाणं ॥ ५४१ ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तं तेजःपद्मलेश्याजीवप्रमाणं स्पष्टीकर्तुमाह—ज्योतिष्कप्रमाणं वेसदछप्पण्णंगुलकृतिभक्तजगत्प्रतरमात्रं = ४।६५ = संज्ञितिर्यक्प्रमाणं च तत्संख्येयभागः = ४।६५=१ ॥५४१॥

स० चं०—पूर्वै जो तेजोलेश्यावालौंका प्रमाण ज्योतिषी देवराशितैं साधिक कह्या अर पद्मलेश्याका प्रमाण संज्ञी तिर्यंचनिके संख्यातवे भागमात्र कह्या सो दोयसे छप्पनका वर्ग पणट्ठी तींहि प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितने ज्योतिषी जानने। बहुरि इनिके संख्यातवे भाग प्रमाण सैनी तिर्यंचनिका प्रमाण जानना ॥ ५४१ ॥

तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का ।
ओहिअसंखेज्जदिमं तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

तेजोद्वया असंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागकाः शुक्लाः
अवध्यसंख्येयाः तेजस्त्रिका भावतो भवति ॥ ५४२ ॥

जी० प्र०—तेजोद्वयजीवाः प्रत्येकमसंख्येयकल्पा अपि तेजोलेश्येभ्यः पद्मलेश्या संख्यातगुणहीनाः ते क a १ । प क a शुक्ललेश्याः पल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवंति प/a इति कालप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ताः। तेजस्त्रयजीवाः प्रत्येकं अवधिज्ञानविकल्पानामसंख्येयभागाः तथापि संख्यातासंख्यातगुणहीना भवंति ते ओ/a प ओ/a१ शु ओ/a१a इति भावप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ताः ॥ ५४२ ॥ इति संख्याधिकारः ॥ अथ क्षेत्राधिकारमाह—

स० चं०—तेजोलेश्या पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्प प्रमाण हैं तथापि तेजोलेश्यावालौंके संख्यातवैं भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। कल्पकालका प्रमाण जितने बीस कोडाकोडि सागरके समय होंहि तितना जा

नना। बहुरि शुक्ललेश्यावाले पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं ऐसैं काल प्रमाणकरि तीन शुभलेश्यावाले जीवनिका प्रमाण कह्या बहुरि अवधिज्ञानके जितने भेद हैं तिनके असंख्यातवे भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं तथापि तेजोलेश्यावालोंके संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालोंके असंख्यातवे भागमात्र शुक्ललेश्यावाले हैं। ऐसैं भ.व प्रमाणकरि तेज पद्म शुक्ल लेश्यावालोंका प्रमाण कह्या ॥५४२॥ इति संख्याधिकारः॥

आगै क्षेत्राधिकार कहै हैं—

सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

स्वस्थानसमुद्घाते उपपादे सर्वलोकमशुभानां।
लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रिके ॥ ५४३ ॥

जी० प्र०—विवक्षितलेश्याजीवैर्वर्तमानकाले विवक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाशः क्षेत्रं। तच्च स्वस्थाने समुद्घाते उपपादे च त्र्यशुभलेश्यानां सर्वलोकः ≡ तेजोलेश्यादित्रयस्य तु पुनः लोकस्यासंख्यातैकभागः सामान्येन भवति विशेषेण तु तत्र दशपदेषूच्यते। तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थानं, विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्रं तद्विहारवत्स्वस्थानमिति स्वस्थानं द्वेधा। वेदनादिवशेन निजशरीराज्जीवप्रदेशानां बहिःप्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्घातः। स च वेदनाकषायवैक्रियिकमारणांतिकतैजसाहारककेवलिभेदात् सप्तधा। परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपाद इति दशपदानि। तेषु स्वस्थानस्वस्थाने वेदनासमुद्घाते कषायसमुद्घाते मारणांतिकसमुद्घाते उपपादे चेति पंचपदेषु कृष्णलेश्याजीवक्षेत्रं सर्वलोकः ≡ तत्र कृष्णलेश्याजीवराशिं १३—/३— संख्यातेन भक्त्वा बहुभागः १३-। ४/३—।५। स्वस्थानस्वस्थाने देयः। शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागः १३—। ४/३—।५।५ वेदनासमुद्घाते देयः। शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागः —१३—। ४/३-५। ५।५। कषायसमुद्घाते देयः। शेषैकभागं फलराशिं कृत्वा, १३-१/३—५५।५ एकनिगोदभवायुरुच्छ्वासाष्टादशैकभागान्तर्मुहूर्तं २ ७ प्रमाणराशिं कृत्वा एकसमयं इच्छाराशिं कृत्वा प्र २ ७ फ इ स १ लब्धमुपपादपदे देयं १३—/३-५।५।५।२ ७ एतस्मिन्नेव पुनः

मारणांतिकसमुद्घातकालांतर्मुहूर्तेन गुणिते प्र स १ । फ १३–। इ २ १ । लब्धं मूलराशिसंख्यातैकभागं मारणांतिकसमुद्घाते
३–।५।५ ५।२१

दद्यात् १३— पुनः कृष्णलेश्यात्रयं सपर्याप्तराशि = ४।३– संख्यातेन भक्त्वा बहुभागः– = ४ । ३–५ । स्वस्थानस्वस्थानेऽस्तीति देयः । शेषैकभा-
३–१ ५– ५–

गस्य संख्यातभक्तबहुभागो == ४ । ३-५।५ विहारवत्स्वस्थाने देयः । शेषैकभागः = १ ४ । ३ ५।५ शेषपदेषु यथायोग्यं पतितोऽस्तीति ज्ञातव्यः । त्रस-
५– ५–

पर्याप्तमध्यमावगाहनं संख्यातघनांगुलं फलराशिं कृत्वा विहारवत्स्वस्थानकृष्णलेश्याजीवराशिमिच्छां कृत्वा– प्र १ । फ ६ १ । इ = ४
४ ।३–५५ लब्ध-
५–

मपवर्तितं संख्यातसूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरो विहारवत्स्वस्थाने क्षेत्रं भवति = सू २ १ । पुनः पल्यासंख्यातमात्रघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणि
कृष्णलेश्यावैक्रियिकराशिं – ६ प संख्यातेन भक्त्वा बहुभागं – ६ प ४ स्वस्थानस्वस्थाने दत्वा शेषशेषस्य संख्यातबहुभागसंख्यातबहु-
३– a ३–a।५

भागो विहारवत्स्वस्थाने —६ प ४ वेदनासमुद्घाते – ६ प ४ कषायसमुद्घाते च ६ । प ४ पतितोऽस्तीति ज्ञात्वा शेषैकभागो वैक्रियिक-
३– a ५५ ३– a ५५५ ३–a५५५५

समुद्घाते देयः — ६ प । १ अयमेव यथायोग्यवैगुर्वणावगाहनोत्पन्नसंख्यातघनांगुलैर्गुणितः– घनांगुलवर्गगुणितासंख्यातश्रेणिमात्रं वैक्रि-
३– a ५५५५

यिकसमुद्घाते क्षेत्रं भवति — a ६ । ६ । पुनः सामान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंच संस्थाप्यालापः क्रियते—
तद्यथा—कृष्णलेश्याजीवाः स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणांतिकोपपादपदेषु कियत्क्षेत्रे तिष्ठंति ? सर्वलोके तिष्ठंति । विहारवत्स्वस्थान-
पदे पुनः सामान्यादिलोकत्रयस्यासंख्यातैकभागे तिर्यग्लोकस्य लक्षयोजनोत्सेधादेकजीवशरीरोत्सेधस्य संख्यातगुणहीनत्वात् संख्यातैकभागे
मनुष्यलोकादसंख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति । वैक्रियिकसमुद्घातपदे च सामान्यादिचतुर्लोकानामसंख्यातैकभागे मनुष्यलोकादसंख्यातगुणे च
क्षेत्रे तिष्ठंति । कुतः ? असंख्यातघनांगुलवर्गमात्रजगच्छ्रेणीनां तत्क्षेत्रत्वात् । एवं नीलकपोतयोरपि वक्तव्यं । पुनस्तेजोलेश्याजीवराशिं

।।। १!–
= १ संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागं बहुभागं स्वस्थानस्वस्थाने—
४ । ६५ = १

नपनेतुं पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभागं त्यक्त्वा शेषबहुभागो मारणांतिकसमुद्‌घातजीवराशिर्भवति— =

१‸ १‸
प प
a a ०
४ । ६५ = ८१ । १० a ७ ७ प प
a a

अत्र समीपमारणांतिकसमुद्‌घातजीवानपनेतुं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा बहुभागं त्यक्त्वा एकभागो दूरमारणांतिकजीवराशिर्भवति —

१‸ १‸
= प प १
a a ०
४ । ६५ = ८१ ॥ १० । a ७ ७ प प प
a a a

अस्मिन्मारणांतिकसमुद्‌घातकालांतर्मुहूर्तसंभविशुद्धशलाकाभिः a ७ संगुण्य एकसमयेन भवते सर्व-दूरमारणांतिकसमुद्‌घातजीवममाणं भवति ।

१‸ १‸
प प १ । a ७
= a a ०
४ । ६५ = ८१ । १० । a ७ ७ प प प
a a a

अस्मिन् रज्जुसंख्यातैकभागायामसूच्यंगुलसंख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधक्षेत्रस्य २ । २ / ७ । ७ / ७ । ७ घनफलेन प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितजगच्छ्रेणिसंख्यातैकभागेन — ४ / ७ । ७ । ७ गुणिते दूरमारणांतिकसमुद्‌घातस्य क्षेत्रं भवति— =

१‸ १‸
प। प। १ । a ७ । — ४ / ७ । ७ ७
a a
४ । ६५ = ८१ । १० । a ७ ७ । प प प
a a a

पुनर्द्वादशयोजनायामनवयोजनविष्कंभसूच्यंगुलसंख्यातैक-

भागोत्सेध २ । ९ यो क्षेत्रघनफलं संख्यातघनांगुलप्रमितं ६ ७ संख्यातजीवैर्गुणितं तैजससमुद्घातक्षेत्रं भवति । ६ । ७ । ७ । पुनः सूच्यंगुल-
७ ।
यो १२

संख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधसंख्यातयोजनायामक्षेत्रस्य २ । २ घनफलं संख्यातघनांगुलप्रमितं ६ ७ संख्यातजीवैर्गुणितं आहारकसमुद्घातक्षेत्रं
७ । ७
यो ७

भवति ६ ७ । ७ ॥ ५४३ ॥

स० चं०—विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान कालविषैं विवक्षित स्वस्थानादि विशेष लीएं जितने आकाश विषैं पाइए ताका नाम क्षेत्र है। सो कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यानिका क्षेत्र स्वस्थानविषैं वा समुद्घातविषैं वा उपपादविषैं सर्वलोक है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यानिका क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है असैं संक्षेपकरि क्षेत्र कह्या। बहुरि विशेषकरि दश स्थानकनिविषैं कहिए है। तहां स्वस्थानकनिके तौ दोय भेद एक स्वस्थानस्वस्थान १ एक विहारवत् स्वस्थान २ तहां विवक्षित लेश्यावाले जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रविषैं उपजे होंहि सो तौ स्वस्थानस्वस्थान है बहुरि विवक्षित लेश्यावाले जीवनिकौं विहार करनेके योग्य जो क्षेत्र होइ सो विहारवत्स्वस्थान है। बहुरि अपने शरीरतैं केते इक आत्मप्रदेशनिका बाह्य निकसि यथायोग्य फैलना सो समुद्घात कहिए ताके सात भेद—वेदना १ कषाय २ वैक्रियिक ३ मारणांतिक ४ तैजस ५ आहारक ६ केवल ७ तहां जो बहुत पीडाके निमित्ततैं प्रदेशनिका निकसना सो वेदना समुद्घात है। बहुरि क्रोधादि कषायके निमित्ततैं प्रदेशनिका निकसना सो कषायसमुद्घात है। विक्रियाके निमित्ततैं प्रदेशनिका निकसना सो वैक्रियिक समुद्घात है। मरण होतैं पहिलैं जो नवीन पर्यायके धरनेका क्षेत्रपर्यंत प्रदेशनिका निकसना सो मारणांतिक समुद्घात है। अशुभरूप वा शुभरूप तैजस शरीरनिकरि नगरादिककौं जलावै वा भला करै ताकी साथि जो प्रदेशनिका निकसना सो तैजस समुद्घात है। प्रमत्त गुणस्थानवालेकैं आहारक शरीरकी साथि प्रदेशनिका

निकसना सो आहारक समुद्घात है । केवलज्ञानीके दंड कपाटादि क्रिया होतैं प्रदेशनिका निकसना केवल समुद्घात है। ऐसैं समुद्घातके सात भेद हैं । बहुरि पहलैं जो पर्याय धरता था ताकौं छोडि पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ अतरालविषैं जो प्रवर्तना सो उपपाद कहिए । याका एक भेद हो है । ऐसैं ए दशस्थान भए । तहां कृष्ण लेश्यावाले जीवनिका स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, उपपाद इनि पच पदनिविषैं क्षेत्र सर्वलोक जानना । अब इनि जीवनिका प्रमाण कहिए है—

कृष्ण लेश्यावालोंका जो पूर्वैं परिमाण कह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण तौ स्वस्थान स्वस्थानवाले जीव हैं । भाग देइकरि तहां एक भागकौं तौ जुदा राखिए अवशेष जो रहे ताकौं बहुभाग कहिए यहु सर्वत्र जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातवाले जीव हैं । बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं । बहुरि एक भाग रह्या ताकौं फलराशि करिए बहुरि एक निगोदियाका आयु सांसके अठारह्वां भाग तिस प्रमाण अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंइ सो प्रमाण राशि करिए बहुरि एक समयकौं इच्छाराशि करिए तहां फलकौं इच्छाराशिकरि गुणि प्रमाणका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै तितना जीव उपपादवाले हैं । बहुरि इस उपपादवाले जीवनिके प्रमाणकौं मारणांतिक समुद्घातकाल अंतर्मुहूर्त ताके जेते समय होंहि तिनकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितने जीव मूलराशिके संख्यातवे भागमात्र मारणांतिक समुद्घातवाले जानने । ऐसैं ए जीव सर्वलोकविषै पाइए तातैं इनिका क्षेत्र सर्वलोक है । बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलनिकरि जगत्प्रतरकौं गुणं जो प्रमाण होइ तितना जानना । कैसैं ? सो कहिए है—

कृष्ण लेश्यावाले पर्याप्त त्रस जीवनिका जो प्रमाण पर्याप्त त्रस राशिके किंचिदून त्रिभागमात्र है ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थान स्वस्थानविषैं है अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानविषैं जीव जानने । अवशेष एक भाग रह्या सो अवशेष य-

थायोग्य स्थानविषैं जानना। अब इहां त्रसपर्याप्त जीवनिकी जघन्य मध्यम अवगाहना अनेकप्रकार है सो हीनाधिक बरोबरिकरि संख्यात घनांगुल प्रमाण मध्यम अवगाहना मात्र एक जीवकी अवगाहनाका ग्रहण कीया सो इस अवगाहनाका प्रमाणकौं फल राशि करिए, पूर्वें जो विहारवत्स्वस्थान जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं इच्छाराशि करिए, एक जीवकौं प्रमाणराशी करिए। तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीए जो सख्यात सूच्यंगुलकरि गुण्या हूवा जगत्प्रतर प्रमाण भया सो विहारवत् स्वस्थानविषैं क्षेत्र जानना। बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषैं क्षेत्र घनांगुलका वर्गकरि असंख्यात जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना जानना। कैसें? सो कहिए है—

कृष्ण लेश्यावाले वैक्रियिक शक्तिकरि युक्त जीवनिका जो प्रमाण वैक्रियिक योगी जीवनिका किंचिदून त्रिभागमात्र है ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभागप्रमाण स्वस्थान स्वस्थानविषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिये तहां बहु भाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानविषैं जीव हैं। अवशेष एकभाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घातविषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं सख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषायसमुद्घातविषैं जीव हैं। अवशेष एक भागप्रमाण वैक्रियिक समुद्घातविषैं जीव प्रवर्तें हैं ऐसें जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं हीनाधिक बरोबरिकरि एक जीवसंबंधी वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिसकरि गुणें जो घनांगुलका वर्गकरि गुण्या हूवा असख्यात श्रेणीमात्र प्रमाण भया सो वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र जानना। बहुरि इनहीका सामान्यलोक १ अधोलोक २ ऊर्ध्वलोक ३ तिर्यक्लोक ४ मनुष्यलोक ५ इनि पच लोकनिकी अपेक्षा व्याख्यान कीजिए है—

समस्त जो लोक सो सामान्यलोक है। मध्यलोकतैं नीचैं सो अधोलोक है। मध्यलोकके ऊपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोकविषैं एक राजू चौडा लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौडा लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है। तहां कृष्ण लेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान वेदनासमुद्घात कषायसमुद्घात मारणांतिक-

समुद्घात उपपाद इनिविषैं प्रवर्तते जीव कितने क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं ? तहां उत्तर-जो सामान्यादिक पांचप्रकार सर्वलोकविषैं तिष्ठैं हैं। बहुरि विहारवत् स्वस्थानविषैं प्रवर्तते जीव सामान्यलोक अधोलोक ऊर्ध्वलोकका तौ असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं अर तिर्यक्लोक ऊंचा लाख योजन प्रमाण है अर एक जीवकी उंचाई वाके संख्यातवे भाग प्रमाण है तातैं तिर्यक् लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं अर मानुषोत्तर पर्वतके मध्यवर्ती जो मनुष्यलोक तातैं असंख्यातगुणा क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं। बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषैं प्रवर्तते जीव सामान्यादिक च्यारिलोक तिनके असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं अर मनुष्य लोकतैं असंख्यात गुणा क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं जातैं वैक्रियिक समुद्घातवालोंका क्षेत्र असख्यात गुणा घनांगुलका वर्गकरि गुणित जगच्छ्रेणीमात्र है ऐसैं सात स्थाननिविषैं व्याख्यान कीया बहुरि तैजस समुद्घात आहारकसमुद्घात केवलीसमुद्घात इन लेश्यावाले जीवनिकैं होता नाहीं तातैं इनिका कथन न कीया। इसप्रकार जैसैं कृष्णलेश्याका व्याख्यान कीया तैसैंही नीललेश्या कपोतलेश्याका व्याख्यान जानना विशेष इतनां जहां कृष्णलेश्याका नाम कह्या है तहां नीललेश्या वा कपोतलेश्याका नाम लेना। अब तेजोलेश्याका क्षेत्र कहिए हैं—

तहां प्रथम ही जीवनिका प्रमाण कहिए है-तेजोलेश्यावाले जीवनिका संख्या अधिकार विषैं जो प्रमाण कह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थानविषैं जानना। एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग विहारवत्स्वस्थानविषैं जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग वेदनासमुद्घात विषै जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग कषाय समुद्घातविषैं जानना। बहुरि एकभाग वैक्रियिक समुद्घातविषैं जानना। ऐसैं जीवनिका परिमाण कह्या। अब तेजोलेश्या मुख्यपनैं भवनत्रिक आदि देवनिकैं पाइए है तिनिविषैं एक देवका शरीरका अवगाहनाका प्रमाण मुख्यताकरि सात धनुष ऊंचा अर सात धनुषके दशवें भाग मुखकी चौडाई है प्रमाण जाका ऐसा है सो याका क्षेत्र फल कीजिए है—

वासोत्ति गुणो परिही वास चउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहगुणं खादफलं होदि सव्वत्थ ॥

इस करणसूत्रकरि क्षेत्र फल करना। गोल क्षेत्रविषैं चौडाईके प्रमाणतैं तिगुण तौ परिधि होइ। इस परिधिकौं चौडाईका चौथा भागतैं गुणैं क्षेत्र फल होइ । इस क्षेत्रफलकौं ऊँचाइ रूप जो वेध ताके प्रमाणकरि गुणै घनरूप क्षेत्रफल हो है। सो इहां सात धनुषका दशवां भागमात्र चौडाई ताकौं तिगुणी कीए परिधि होइ। याकौं चौडाईका चौथा भाग करि गुणै क्षेत्र फल हो है। याकौं वेध सात धनुषकरि गुणें घनरूप क्षेत्र फल हो है। बहुरि जो घनराशि होइ ताके गुणकार भागहार घन रूपही होंइ तातैं इहां अंगुल करनेके निमित्त एक धनुषका छिनवै अंगुल होइ, सो जो धनुषरूप क्षेत्रफल भया ताकौं छिनवेका घनकरि गुणिए बहुरि इहां तो कथन प्रमाणांगुलतैं हैं अर देवनिके शरीरका प्रमाण उत्सेधांगुलतैं है तातैं पांचसैका घनका भाग दीजिए ऐसैं करतैं प्रमाणरूप घनांगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण एक देवका शरीरकी अवगाहना भई। इसकरि पूर्वैं जो स्वस्थानस्वस्थानविषैं जीवनिका प्रमाण कह्या था ताकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थानविषैं जानना । बहुरि वेदनासमुद्घातविषैं वा कषायसमुद्घातविषैं प्रदेश मूल शरीरतैं वाह्य निकसैं सो एक प्रदेश क्षेत्रकौं रोकैं वा दोयप्रदेशमात्र क्षेत्रकौं रोकैं ऐसैं एक एक प्रदेश बंधता जो उत्कृष्ट क्षेत्र रोकैं तो मूल शरीरतैं चौडाईविषैं तिगुणा क्षेत्र रोके अर उंचाई मूल शरीर प्रमाण ही है सो याका घनरूप क्षेत्रफल कीएं मूलशरीरके क्षेत्र फलतैं नव गुणा क्षेत्र भया सो जघन्य एकप्रदेश अर उत्कृष्ट मूलशरीरतैं नव गुणा क्षेत्र भया सो हीनाधिककौं वरोवरि कीएं एक जीवकैं मूलशरीरतैं साढा च्यारिगुणा क्षेत्र भया सो शरीरका प्रमाण पूर्वैं घनांगुलके संख्यातवे भाग प्रमाण कह्या था ताकौं साढा च्यारिगुणा कीजिए तब एक जीव संबधी क्षेत्र भया इसकरि वेदना समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब वेदना समुद्घातविषैं क्षेत्र होइ। बहुरि कषायसमुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब कषायसमुद्घातविषैं क्षेत्र होइ। बहुरि विहार करते देवनिकैं मूल शरीरतैं वाह्य आत्माके प्रदेश फैलैं ते प्रदेश एक जीवकी अपेक्षा संख्यात योजन प्रमाण तौ लंबा अर

सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा वा ऊंचा क्षेत्रकों रोकैं सो इसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया इसकरि जो पूर्वें विहारवत्स्वस्थानविषें जीवनिका प्रमाण कह्या था ताकों गुणिए तव सर्व जीवसंवंधी विहारवत् स्वस्थानविषें क्षेत्रका परिमाण होइ। इहां ऐसा अर्थ जानना-जो देवनिकें मूल शरीर तो अन्यक्षेत्रविषें तिष्ठै है अर विहार करि विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्रविषें तिष्ठै है तहां दोऊनिके वीचि आत्माके प्रदेश सूच्यंगुलका संख्यातवां भागमात्र प्रदेश ऊंचे चौडे फैलें हैं अर इहां मुख्यताकी अपेक्षा संख्यात योजन लंवे कहे हैं। वहुरि देव अपनी अपनी इच्छातैं हस्ती घोटक इत्यादिक रूप विक्रिया करें ताकी अवगाहना एक जीवकी अपेक्षा सख्यात घनांगुल प्रमाण है इसकरि पूर्वें जो वैक्रियिक समुद्घातविषें जीवनिका प्रमाण कह्या ताकों गुणिए तव सर्व जीव संवंधी वैक्रियिकसमुद्घातविषें क्षेत्रका परिमाण होइ। वहुरि पीतलेश्यावालेनिविषें व्यंतरदेव घने मरें हैं तातैं इहां व्यंतरनिकी मुख्यताकरि मारणांतिक समुद्घात कहिए है। जितना व्यंतर देवनिका प्रमाण है ताकों व्यंतरनिकी मुख्यपनैं दश हजार वर्ष आदि सख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिके जेते समय होंइ तिनिका भाग दीए जेता प्रमाण आवे तितना जीव एक समयविषें मरणकों प्राप्त हो हैं। वहुरि इनि मरनेवाले जीवनिकें पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भाग प्रमाण जीवनिके ऋजु गति कहिये समयरूप गति हो है वहुरि वहु भाग प्रमाण जीवनिके विग्रह गति कहिये वक्रता लीए परलोककों गति हो है। वहुरि विग्रहगति जीवनिके प्रमाणकों पल्यके असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण जीवनिकें मारणांतिकसमुद्घात न हो है। वहुरि वहुभाग जीवनिकें मारणांतिक समुद्घात हो है। वहुरि इस मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनिके प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण समीप थोरेसे क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। एक भाग प्रमाण दूर वहुत क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं सो एक समयविषें दूर मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवनिका यह प्रमाण कह्या अर मारणांतिक समुद्घातका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तातैं अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंहि तिनकरि तिस प्रमाणकों गुणें जो प्रमाण होइ तितने एकठे भए

दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव जानने । तहां एक जीवके दूरि मारणांतिक समुद्घातविषैं शरीरतैं बाह्य प्रदेश फैलैं ते मुख्यपनैं एक राजूके संख्यातवें भाग प्रमाण लंबे अर सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण चौडे वा ऊंचे क्षेत्रकौं रोकैं । याका घनरूप क्षेत्रफल कीजिए तब प्रतरांगुलका संख्यातवां भागकरि जगच्छ्रेणीका संख्यातवां भागकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना क्षेत्र भया । इसकरि दूरि मारणांतिक जीवनिका प्रमाणकौं गुणिये तब सर्व जीव संबंधी दूर मारणांतिक समुद्घातका क्षेत्र हो है । अन्य मारणांतिक समुद्घातका क्षेत्र स्तोक है तातैं मुख्य ग्रहण तिसहीका कीया । बहुरि तैजस समुद्घातविषैं शरीरतैं बाह्य प्रदेश निकसैं ते बारा योजन लंबा नव योजन चौडा सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण ऊंचा क्षेत्रकौं रोकै सो याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया इसकरि तैजस समुद्घात करनेवालोंका प्रमाण संख्यात है तिसकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना तैजस समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना । बहुरि आहारक समुद्घातविषैं एक जीवकैं शरीरतैं बाह्य निकसे प्रदेश ते संख्यात योजन प्रमाण लंबा अर सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्रकौं रोकैं याका घनरूप क्षेत्र फल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया । इसकरि आहारक समुद्घातवाले जीवनिका संख्यात प्रमाण है ताकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना आहारक समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना । मूल शरीरतैं निकसि आहारक शरीर जहां जाइ तहां पर्यंत लंबी आत्माके प्रदेशनिकी श्रेणी सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण चौडी अर ऊंची आकाशविषैं ही है ऐसा भावार्थ जानना । ऐसैं ही मारणांतिक समुद्घातादिकविषैं भी भावार्थ जानि लेना ।

मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ॥ ५४४ ॥

म्रियते असंख्येयं तस्यासंख्याश्च विग्रहे भवंति ।
तस्यासंख्यं दूरे उपपादे तस्य खलु असंख्यं ॥ ५४४ ॥

णांतिकसमुद्घातजीवप्रमाणं — १० प / ११ a, १० प १ / a, प प प प / a a a a पुनः पल्यासंख्यातभक्तैकभाग उपपाददंडस्थितजीवप्रमाणं — १० प / ११ a, १० प / a, प प प प प / a a a a a

अत्र दूरमारणांतिकराशौ त्रिरज्ज्वायतसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयदेवैः क्रियमाणमारणांतिकदंडस्य घनफलेन प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितरज्जुत्रयेण — ३ । ४ / ७ ९ गुणिते तत्क्षेत्रं स्यात् — १० प / ११ a, १० प / a, प प प प / a a a a, — ७ । ३ । ४ / ९ पुनः उपपाददंडराशौ त्रिरज्ज्वायतसंख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयं प्रति तिर्यग्जीवमुक्तोपपाददंडस्य घनफलेन संख्यातप्रतरांगुलहतत्रिरज्जुमात्रेण — ३ । ४ ९ / ७ गुणिते तत्क्षेत्रं भवति-

— १० प / ११ । a, १० प — / a ७, प प प प प / a a a a a, ३ । ४ ९ तैजसाहारकसमुद्घातयोः क्षेत्रं तेजो लेश्यावत्संख्यातघनांगुलगुणितसंख्यातजीवराशिर्भवति—

९ ६ ९ । ९ ६ ९ पुनः शुक्ललेश्यायां तज्जीवराशिं पल्यासंख्यातभागं संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागबहुभागं स्वस्थानस्वस्थाने प ४ / a ५ विहारवत्स्वस्थाने प । ४ / a ५५ वेदनासमुद्घाते प ४ / a ५ ५ ५ कषायसमुद्घाते च प ४ / a ५ ५ ५ ५ दत्वा शेषैकभागं वैक्रियिकसमुद्घाते दद्यात्- प १ / a ५ ५ ५ ५, अत्र प्रथमराशौ त्रिहस्तोत्सेधतद्दशमभागमुखव्यासैकदेवावगाहनस्य वासोऽपि गुणो परिहीत्याधानीत ६ ३ । ३ ६ । ३ ६ ३ / १० । १० । ४ । घनफलेन घनांगुलसंख्यातैकभागेन ६ / ९ पुनस्तृतीयराशौ नवार्धघनांगुलसंख्यातभागेन ६ । ६ / ९ । २ पुनश्चतुर्थराशौ तावतैव च ६ । ६ / ९ । २ गुणिते सति क्रमेण

स्वस्थानस्वस्थानवेदनासमुद्घातकषायसमुद्घातक्षेत्राणि । भवंति—स्व = प । ४ । ६ वेद = प ४ । ६ । ९ कषा = प ४
३ ५ । १ ३ ५५५ १ । २ ३ ५५५५

द्वितीयराशौ संख्यातयोजनायामसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेध— २ १ । २ १ क्षेत्रघनफलसंख्यातघनांगुलैः ६ १ गुणिते विहारव-
यो १

त्स्वस्थाने क्षेत्रं भवति प । ४ । ६ १ पुनः पंचमराशौ स्वस्वयोग्यतया विकुर्वितशरीरावगाहलब्धसंख्यातघनांगुलैः ६ १ गुणिते वैक्रियिक
३ ५ ५ ।

समुद्घातपदे क्षेत्रं भवति प । ६ १
३ ५ । ५ । ५ । ५

पुनः रज्जुषट्कायामसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेध २ । २ क्षेत्रघनफलमेकजीवप्रतिबद्धं भवति— ६ । ४ अस्मिन्नानतादिदेवानां मनु-
१ १ ७ । १
७ ६

ष्येष्वेवोत्पत्तेस्तत्र संख्यातैरेव म्रियमाणैर्गुणिते मारणांतिकसमुद्घातक्षेत्रं भवति १ । ७ ६ । ४ तैजसाहारकसमुद्घातक्षेत्रं पद्मलेश्यावत् ।—
१

तै १ । ६ १ आ १ । ६ १ केवलिसमुद्घातः दंडकवाटप्रतरलोकपूरणभेदाच्चतुर्धा । दंडसमुद्घातः स्थितोपविष्टभेदाद्द्विधा । कवाटसमुद्घा-
तोऽपि पूर्वाभिमुखोत्तराभिमुखभेदाभ्यां स्थितः उपविष्टश्चेति चतुर्धा । प्रतरलोकपूरणसमुद्घातावेकैकावेव । तत्र वातवलयरहितत्वात् किंचिदूनचतुर्दशर-
ज्जूत्तुंगद्वादशांगुलवृत्तक्षेत्रस्य वासोत्त्रिगुणो परिधिरित्यागतं १२ । ३ । १२ । —१४—षोडशाभ्यधिकद्विशतप्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्र —४ । २१ ६
४ ७

जीवगुणकारेण ४० गुणितं, अष्टसहस्रषट्शतचत्वारिंशत्प्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं स्थितदंडसमुद्घातक्षेत्रं —४ । ८६४० एतदेव नवगुणितं
सप्तसप्ततिसहस्रसप्तशतषष्टिप्रतरांगुलहतजगच्छ्रेणिमात्रमुपविष्टदंडसमुद्घातक्षेत्रं भवति — ४ । ७७७६० किंचिदूनचतुर्दशरज्ज्वायामसप्तरज्जु-
विष्कंभद्वादशांगुलरुद्धक्षेत्रफलं जीवगुणकारेण ४० गुणितं नवशतषष्टिसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरं पूर्वाभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति
= सू २ । ९६० एतदेव त्रिगुणितं द्विसहस्राष्टशताशीतिसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरं निषण्णपूर्वाभिमुखकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति = सू २ । २८८०
किंचिदूनचतुर्दशरज्जुदैर्घ्यस्य पूर्वापरेण रुत्तैकपंचैकरज्जुविष्कंभस्य मुख — १ भूमि — जोग — ८ दले — ४ पद — गुणिदे = ४९ पर्द-
७ ७ ७ ७ ७ ७

घयं होदीत्यधोलोकफलं = ४/७ मुख — १/७ भूमि — ५/७ जोग — ६/७ दले — ३/७ पद — ७/७/२ गुणिदे = २१/७।७।२ पदवयं होदीस्यपवर्त्य = ३/७ २

द्विहते ऊर्ध्वलोकफलं = ३/७ अभिन्नधोलोकफले मिलिते जगत्प्रतरद्वादशांगुलरुंद्रेण गुणितः = १२ एकजीवप्रतिबद्धं तदेव जीवगुणकारेण ४० गुणितं चतुःशताशीतिसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखस्थितकवाटसमुद्‌घातक्षेत्रं भवति = सू २ । ४८० एतदेव त्रिहतं एकसहस्रचतुःशतचत्वारिंशत्सूच्यंगुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखासीनकवाटसमुद्‌घातक्षेत्रं भवति = सू २ । १४४० प्रतरसमुद्‌घातस्य वहिर्वातत्रयाभ्यंतरे सर्वलोके व्याप्तत्वात् तद्वातक्षेत्रफलेन लोकासंख्यातैकभागेन ≡ । १ ऊनं लोकमात्रमेकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रं भवति ≡ १/a लोकपूरणसमुद्‌घाते एकजीवप्रतिबद्धक्षेत्रं सर्वलोको भवति ≡ अत्र आरोहकावरोहकदंडद्वयकवाटचतुष्के प्रत्येकमुत्कृष्टतो विंशतिर्विंशतिजीवसंभवाज्जीवगुणकारः ४० चत्वारिंशत् ।

स. चं–इस सूत्रका अभिप्राय उपपाद क्षेत्र ल्यावनेका है सो पीत लेश्यावाले सौधर्म ईशानवर्ती जीव मध्यलोकतैं दूर क्षेत्रवर्ती हैं सो तिनके कथनमें क्षेत्रका परिमाण बहुत आवै । बहुत प्रमाणमें स्तोक प्रमाण गर्भित करिए है तातैं तिनकी मुख्यताकरि उपपाद क्षेत्रका कथन कीजिए है—

सौधर्म ईशान स्वर्गकेवासी देव घनांगुलका तृतीय वर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणिए तितने प्रमाण हैं । इस प्रमाणकौं पल्यका असख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागप्रमाण एक एक समयविषैं मरणेवाले जीवनिका प्रमाण हो है । इस प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विग्रहगति करनेवालोंका प्रमाण हो है । याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्‌घातवाले जीवनिका प्रमाण हो है । याकौं पल्यका असख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण दूर मारणांतिक समुद्‌घातवाले जीवनिका प्रमाण हो है । याकौं द्वितीय दीर्घ दंडविषैं स्थित मारणांतिक समुद्‌घात ताके पूर्वं भया ऐसा उपपादताकरि युक्त जीवनिके प्रमाण ल्यावनेकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए

तहां एक भाग प्रमाण उपपाद जीवनिका प्रमाण है। तहां तिर्यंच उपजनेकी मुख्यताकरि एक जीवसंबंधी प्रदेश फैलनेकी अपेक्षा डेढराजू लंबा संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्र है याका घन क्षेत्र फल संख्यात प्रतरांगुलकरि डेढ राजूकौं गुणैं जो प्रमाण भया तितना जानना इसकरि उपपाद जीवनिके प्रमाणकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना उपपादविषैं क्षेत्र जानना। बहुरि केवलि समुद्घात इस लेश्याविषैं है नाहीं तातैं कथन न कीया। ऐसैं पीत लेश्याविषैं क्षेत्र है। आगैं पद्मलेश्याविषैं क्षेत्र कहिए है—

संख्याधिकारविषैं पद्मलेश्यावाले जीवनिका जो प्रमाण कह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिये तहां बहुभाग स्वस्थान स्वस्थानविषैं जानना। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग विहारवत् स्वस्थानविषैं जानना। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग वेदना समुद्घातविषैं जानना। अवशेष एक भाग रह्या सो कषायसमुद्घातविषैं जानना। ऐसैं जीवनिका प्रमाण कह्या। अब यहां पद्मलेश्यावाले तिर्यंच जीवनिका अवगाहना प्रमाण बहुत है तातैं तिनकी मुख्यताकरि कथन कीजिए है—

तहां स्वस्थान स्वस्थानविषैं अर विहारवत्स्वस्थानविषैं एक तिर्यंच जीवकी अवगाहना मुख्यपनैं कोस लबी अर ताके नवमे भाग मुखका विस्तार सो याका क्षेत्र फल 'वासोत्तिगुणो परिही' इत्यादि सूत्रकरि करिए तब संख्यात घनांगुल प्रमाण होइ इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणैं स्वस्थान स्वस्थानविषैं क्षेत्र होइ अर विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणैं विहारवत्स्वस्थानविषैं क्षेत्र हो है। बहुरि पूर्वोक्त तिर्यंच शरीरकी अवगाहनातैं पूर्वोक्त प्रकार साढा च्यारि गुणा वेदना अर कषाय समुद्घातविषैं एक जीवकी अपेक्षा क्षेत्र है। इसकरि पूर्वोक्त वेदना समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब वेदना समुद्घातविषैं क्षेत्र होइ, कषाय समुद्घातवाले जीवनिके प्रमाणकौं गुणैं कषायसमुद्घातविषैं क्षेत्रका परिमाण होइ। बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषैं पद्मलेश्यावाले जीव सनत्कुमार माहेंद्रविषैं बहुत हैं तातैं तिनकी अपेक्षा कथन करैं हैं—

सनत्कुमार माहेंद्रविषैं देव जगच्छ्रेणीका ग्यारह्वां वर्गमूलका भाग जगच्छ्रेणीकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितने

हैं। इस राशिकौं संख्यातका भाग दीजिए तब बहुभाग स्वस्थानस्वस्थानविषैं जीव जानने। अवशेष एकभाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत् स्वस्थानविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषायसमुद्घातविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या तीहिं प्रमाण वैक्रियिक समुद्घातविषैं जीव जानने। इस वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं एक जीवसंबंधी विक्रियारूप हस्तिघोटकादिकनिकी संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना तिसकरि गुणें जो प्रमाण होइ सोई वैक्रियिक समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना बहुरि मारणांतिक समुद्घात वा उपपादविषैं भी क्षेत्र सनत्कुमार माहेंद्र अपेक्षा बहुत है तातैं सानत्कुमार माहेंद्रकी अपेक्षा कथन कीजिए है—

मरदि असंखेज्जादिमं तस्सासखा य विग्गहे होंति।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंख॥

जो सनत्कुमार माहेंद्रवासी जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं असंख्य कहिए पल्यका असंख्यातवां भाग ताका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण समय २ जीव मरणकौं प्राप्त हो हैं। बहुरि इस राशिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विग्रह गतिवालोंका प्रमाण है। बहुरि इस राशिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। बहुरि इसकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एकभाग प्रमाण दूरमारणांतिक समुद्घात वाले जीव हैं। बहुरि इसकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भाग प्रमाण उपपादका दंडविषैं स्थित जीव हैं। तहां एक जीव अपेक्षा मारणांतिक समुद्घातविषैं क्षेत्र तीन राजू लंबा सूच्यंगुलका संख्यातवां भागमात्र चौडा वा ऊंचा है। इन सनत्कुमार माहेंद्रवासी देवनिकरि कीया मारणांतिक दंडका घनरूप क्षेत्रफल प्रतरांगुलका संख्यातवां भागकरि तीन राजूकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना है। इसकरि दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण कह्या था ताकौं गुणिए

तत्र मारणांतिक समुद्घातविषैं क्षेत्रका प्रमाण होइ, बहुरि उपपाद विषै तिर्यंच जीवनिकरि कीया सनत्कुमार माहेंद्र प्रति उपपाद रूप दंड सो तीन राजू लंबा संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा वा ऊंचा है। ताका क्षेत्र फल संख्यात प्रतरांगुलकरि गुण्या हूवा तीन राजू प्रमाण एक जीव अपेक्षा क्षेत्र हो है, इसकरि उपपाद वालोंके प्रमाणकौं गुणैं उपपादविषैं क्षेत्रका प्रमाण हो है। बहुरि तैजस अरु आहारक समुद्घातविषैं क्षेत्र जैसैं तेजोलेश्याके कथनविषैं कह्या है तैसे इहां भी संख्यात घनांगुलकरि संख्यात जीवनिकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना जानना। बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्याविषैं होता ही नाही ऐसैं पद्मलेश्याका क्षेत्र कह्या। आगैं शुक्ललेश्याविषैं क्षेत्र कहिए है—

संख्या अधिकार विषैं जो शुक्ललेश्यावालोंका प्रमाण कह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थान स्वस्थानविषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान विषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातविषैं जीव हैं अवशेष एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषायसमुद्घातविषैं जीव हैं अवशेष एक भाग रह्या तिस प्रमाण वैक्रियिक समुद्घातविषैं जीव हैं। तहां शुक्ललेश्यावाले देवनिकी मुख्यताकरि एक जीवका शरीरकी अवगाहना तीन हाथ ऊंची इसके दशवे भाग मुखकी चौडाई याका "वासो त्ति गुणो परिही" इत्यादि सूत्रकरि क्षेत्र फल कीजिए तब संख्यात घनांगुल प्रमाण होइ इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब स्वस्थान स्वस्थानविषै क्षेत्रका परिमाण होइ। बहुरि मूल शरीरकी अवगाहनातैं साढा च्यारि गुणा एक जीवके वेदना अर कषाय समुद्घातविषैं क्षेत्र है। इस साढा च्यारि गुणा घनांगुलका संख्यातवां भागकरि वेदना समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब वेदना समुद्घातविषैं क्षेत्र हो है अर कषाय समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणैं कषायसमुद्घातविषैं क्षेत्र हो है। बहुरि एक देवके विहार करतैं अपने मूल शरीरतैं बाह्य निकसि उत्तर विक्रियाकरि निपजाया शरीर पर्यंत आत्माके प्रदेश संख्यात योजन लंबा अर सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग

चौड़ा वा ऊंचा क्षेत्रकौं रोकैं याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया इसकरि पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणें विहारवत्स्वस्थानविषैं क्षेत्र हो है। वहुरि अपने अपने योग्य विक्रियारूप वनाया गजादिक शरीरनिकी अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण तिसकरि वैक्रियिक समुद्घात वाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणें वैक्रियिक समुद्घातविषैं क्षेत्र हो है। वहुरि शुक्ल लेश्या आनतादिक देवलोकनिविषैं पाइए सो तहांतै मुख्यपनैं आरण अच्युत अपेक्षा मध्यलोक छह राजू है तातैं मारणांतिक समुद्घातविषै एक जीवके प्रदेश छह राजू लंवे अर सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग चौड़े ऊंचे होंइ सो याका जो क्षेत्र फल एक जीव संवंधी भया ताकौं संख्यातकरि गुणिए जातैं आनतादिकतैं मरिकरि मनुष्य ही होइ तातैं मारणांतिक समुद्घातवाले संख्याते ही जीव हैं तातैं संख्यातकरि गुणिए ऐसै गुणें जो होइ सो मारणांतिक समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना। वहुरि तैजस आहारक समुद्घातविषैं जैसैं पद्मलेश्याविषैं क्षेत्र कह्या था तैसै इहां भी जानना। अव केवलसमुद्घातविषैं क्षेत्र कहिए है—

केवल समुद्घात च्यारि प्रकार दंड १ कपाट २ प्रतर ३ लोक पूरण ४। तहां दंड दोय प्रकार एक स्थिति दंड १ एक उपविष्ट दंड २। वहुरि कपाट च्यारि प्रकार पूर्वाभिमुख स्थित कपाट १ उत्तराभिमुखस्थित कपाट २ पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट ३ उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट ४ वहुरि प्रतर अर लोक पूरण एक एक ही प्रकार है। तहां स्थिति दंड समुद्घातविषैं एक जीवके प्रदेश वातवलय विना लोककी ऊंचाइ किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण है सो इस प्रमाणतैं लंवे वहुरि वारह अंगुल प्रमाण चौडे गोल आकार प्रदेश हो हैं सो- वासोत्ति गुणो परि-ही, इत्यादि सूत्रकरि याका क्षेत्रफल दोयसै सोला प्रतरांगुलनिकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना हो है जातैं वारह अंगुल गोल क्षेत्रका क्षेत्रफल एकसौ आठ प्रतरांगुल होइ ताकौं उंचाई दोय श्रेणीकरि गुणनकरैं इतना ही हो है। वहुरि एक समयविषैं इस समुद्घातवाले जीव चालीस होंइ तातैं तिसकौं चालीसकरि गुणिए तव आठ हजार छसै चालीस प्रतरांगुलनिकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना स्थिति दंडविषैं क्षेत्र हो है। वहुरि इस स्थिति दंडके क्षेत्रकौं नवगुणा कीजिए तव उपविष्ट-दंडविषैं क्षेत्र हो है जातैं स्थितिदंडविषैं वारह

अंगुल प्रमाण चौडाई कही इहां तिसतैं तिगुणी छत्तीस अंगुल चौडाई है सो क्षेत्रफलविषैं नव गुणा क्षेत्र भया तातैं नव गुणा कीया ऐसैं करतैं सतहत्तर हजार सातसै साठि प्रतरांगुलनिकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणैं जो प्रमाण भया तितना उपविष्ट दंडविषैं क्षेत्र जानना। बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातविषैं एक जीवके प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण तो लंबे हो हैं सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तौ लंबे हो हैं बहुरि उत्तर दक्षिण दिशाविषैं लोककी चौडाई प्रमाण चौडे हो हैं सो उत्तर दक्षिण दिशाविषैं लोक सर्वत्र सात राजू चौडा है तातैं सात राजू प्रमाण चौडे हो हैं। बहुरि बारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिमविषैं ऊंचे हो हैं सो याका क्षेत्रफल भुज कोटि वेधका परस्पर गुणनकरि चौईस अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण भया ताकौं एकसमयविषैं इस समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण चालीस है तातैं चालीसकरि गुणिये तब नवसै साठि सूच्यंगुलनिकरि जगत्प्रतरकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना पूर्वाभिमुख स्थित कपाटविषैं क्षेत्र हो है बहुरि स्थित कपाटविषैं बारह अंगुलकी ऊंचाई कही उपविष्ट कपाटविषैं तिगुणा छत्तीस अंगुलकी ऊंचाई हो है तातैं पूर्वाभिमुख स्थित कपाटके क्षेत्रतैं तिगुणा अठाइससै असी सूच्यंगुलनिकरि जगत्प्रतरकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाटविषैं क्षेत्र जानना। बहुरि उत्तराभिमुख स्थित कपाटविषैं एक जीवके प्रदेश वातवलयविना लोक प्रमाण लंबे हो हैं सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तो लंबे हो हैं बहुरि पूर्व पश्चिम दिशाविषैं लोककी चौडाईके प्रमाण चौडे हो हैं। सो लोक अधोलोकके तो नीचे सात राजू चौडा है अर अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोकविषैं एक राजू चौडा है याका क्षेत्रफल निमित्त सूत्र कहिए है– 'मुहभूमी जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि ॥' मुख कहिए अंत अर भूमि कहिए आदि इनिका जोग कहिए जोड तिनिका दल कहिए आधा तिसका पद कहिए गच्छका प्रमाण तिसकौं गुणैं पदधन कहिए सर्व गच्छका जोड्या हूआ प्रमाण सो हो है। सो इहां मुख तो एक राजू १ अर भूमि सात राजू ७ जोडिए तब आठ भये इनिका आधा च्यारि भया इसका अधोलोककी ऊंचाई सात राजू सो गच्छका प्रमाण सात राजूनिकरि गुणै जो अठाईस राजू प्रमाण भया तितना अधोलोक संबंधी प्रतररूप क्षेत्रफल जानना।

वहुरि मध्यविषैं लोक एक राजू चौडा सो वंधता वंधता ब्रह्मस्वर्गके निकट पांच राजू भया सो इहां मुख एक राजू भूमि पांच राजू मिलाए छह हूआ ताका आधा तीन, वहुरि ब्रह्मस्वर्ग साढा तीन राजू ऊंचा सो गछका प्रमाण साढा तीनकरि गुणिये तब आधा ऊर्ध्व लोकका क्षेत्रफल साढा दश राजू हुआ । वहुरि ब्रह्मस्वर्गके निकट पांच राजू सो घटता घटता ऊपरि एक राजूका रह्या सो इहां भी मुख एक राजू भूमि पांच राजू मिलाए छह हुआ आधा तीन सो ब्रह्मस्वर्गके ऊपरि लोक साढा तीन राजू है सो गच्छ भया ताकरि गुणे आधा उर्ध्व लोकका क्षेत्रफल साढा दश राजू हो है ऐसैं उर्ध्वलोक अर अधोलोकका सर्व क्षेत्रफल जोडे जगत्प्रतर भया सो ऐसैं लंबाई चौडाई तो जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेश हो हैं । वहुरि वारह अंगुल प्रमाण उत्तर दक्षिण दिशाविषै ऊंचा हो है सो जगत्प्रतरकौं वारह सूच्यंगुलनिकरि गुणें एक जीव संबंधी क्षेत्र वारह अंगुलगुणा जगत्प्रतर प्रमाण हो है । वहुरि इस समुद्घातवाले जीव चालीस हो हैं तातें चालीसकरि तिस क्षेत्रकों गुणे च्यारिसै अस्सी सूच्यंगुलनिकरि गुण्या हूआ जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख कपाटविषैं क्षेत्र हो है । वहुरि स्थितिविषैं वारह अंगुलकी उंचाई कही । उपविष्टविषैं तातै तिगुणी छतीस अंगुलकी ऊंचाई है तातैं पूर्वोक्त प्रमाणतैं तिगुणा चौदासे चालीस सूच्यंगुलनिकरि गुण्या हूवा जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाटविषैं क्षेत्र जानना। वहुरि प्रतर समुद्घातविषैं तीन वात वलय विना सर्वलोकविषैं प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं तीन वात वलयका क्षेत्र फल लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है सो यह प्रमाण लोकका प्रमाणविषैं घटाएं अवशेष रहे तितना एक जीव संबंधी प्रतर समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना । वहुरि लोक पूरणविषैं सर्वलोकाकाशविषैं प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं लोकप्रमाण एक जीव संबंधी लोकपूरणविषैं क्षेत्र जानना । सो प्रतर अर लोक पूरणके वीस जीव तौ करनेवाले अर वीस जीव समेटनेवाले ऐसैं एक समयविषैं चालीस पाइए परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषैं एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए तातैं क्षेत्र तितना ही जानना । वहुरि दंड अर कपाटविषैं भी वीस जीव करनेवाले वीस समेटनेवालेनिकी अपेक्षा चालीस जीव हैं सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्रकों भी रोकैं तातैं दण्ड अर कपाटविषैं चालीसका गुणकार कह्या । यह जीवनिका प्रमाण उत्कृष्टताकी अपेक्षा है ।

सुक्कस्स समुग्घादे असंखभागा य सव्वलोगो य।

शुक्लायाः समुद्घाते असंख्यभागाश्च सर्वलोकश्च।

जी० प्र०—इति सूत्रार्थेन केवलिसमुद्घातापेक्षया लोकस्यासंख्यातबहुभागाः लोकश्च शुक्ललेश्याक्षेत्रमुक्तं रज्जुषट्कायामसंख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधैश्च तिर्यग्मतिबद्धोपपाददंडक्षेत्रफलं संख्यातप्रतरांगुलहतरज्जुषट्कमात्रं। अच्युतकल्पे संख्यातानामेव मरणात् तावतामेव तत्रोत्पत्तेः संख्यातेन गुणितं उपपादपदसर्वक्षेत्रं भवति ७ — । ६ । ४ ७ अत्रापि प्राग्वत् सर्वत्र गुणाकारभागहारानपवर्त्य पंचलोकान् संस्थाप्य आलापः ७

कर्तव्यः ॥ ५४४ ॥ इति क्षेत्राधिकारः ॥ अथ स्पर्शाधिकारं सार्धगाथाषट्केनाह—

स. चं. इस आधा सूत्रकरि शुक्ललेश्याका क्षेत्र लोकके असंख्यात भागनिविषैं एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण वा सर्वलोक प्रमाण कह्या है सो केवल समुद्घात अपेक्षा जानना। बहुरि उपपादविषैं मुख्यपनैं अच्युत स्वर्ग अपेक्षा एक जीवके प्रदेश छह राजू लंबे अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडे वा ऊंचे प्रदेश हो हैं सो इस क्षेत्र फलकौं अच्युत स्वर्गविषैं एक समयविषैं संख्यात ही मरैं तातैं तहां संख्यात ही उपजैं तातैं संख्यातकरि गुणैं जो प्रमाण भया तितना उपपादविषैं क्षेत्र जानना। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार पांच प्रकार लोककी अपेक्षा जैसा भागहार गुणकार संभवै तैसैं जानि लेना ऐसैं शुक्लेश्याविषैं क्षेत्र कह्या। इहां छह लेश्यानिका क्षेत्रका वर्णन दश स्थानविषैं कीया तहां ऐसा जानना। जो जिस अपेक्षा क्षेत्रका प्रमाण आवै तिस अपेक्षा मुख्यपनें क्षेत्र वर्णन कीया है तहां संभवता अन्य स्तोक क्षेत्र अधिक जानि लेना ऐसैं ही आगैं स्पर्शनविषैं भी अर्थ समझना॥ इति क्षेत्राधिकारः। आगैं स्पर्शनाधिकार साढा छह गाथानिकरि कहैं हैं—

फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥ ५४५ ॥

स्पर्शः सर्वो लोकस्त्रिस्थाने अशुभलेश्यानां ॥ ५४५ ॥

जी० प्र०—अशुभलेश्यात्रयस्य स्वस्थानसमुद्घातोपपादसामान्यस्थानत्रये स्पर्शः विवक्षितपदपरिणतैर्वर्तमानक्षेत्रसहितातीतकालस्पृष्टक्षेत्रलक्षणः सर्वलोकः ≡ विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते। तत्र कृष्णलेश्याजीवानां स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणांतिकोपपादेषु पंचपदेषु सर्वलोकः ≡ विहारवत्स्वस्थाने संख्यातसूच्यंगुलोत्सेधरज्जुप्रतर २ ७– तिर्यग्लोकक्षेत्रफलं संख्यातसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरं स्यात् = सू २ ७ वैक्रियिकसमुद्घाते
७ ४९
७

सुरशैलमूलादारभ्य सहस्रारपर्यंतत्रसनाल्यां वातपुद्गलानां संछन्नरूपेण अवस्थानात्। तत्र सर्वत्रातीतकाले बादरवातकायिकानां विकुर्वणाद् रज्जुव्यासायामपंचरज्जूदय – – क्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं भवति ≡ ५ अत्र तैजसाहारककेवलिसमुद्घाताः पुनः न संभवंति। अत्रापि पंच
७।५।७ ३४३
७

लोकान् संस्थाप्य आलापः कर्तव्यः। एवं नीलकपोतयोरपि वक्तव्य ॥ ५४५ ॥ अथ तेजोलेश्यायां गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—क्षेत्रविषै तौ वर्तमानकालविषैं जेता क्षेत्र रोकै तिसहीका ग्रहण कीया वहुरि इहां वर्तमान कालविषैं जेता क्षेत्र रोके तीहि सहित जो अतीतकालविषैं स्वस्थानादिक विशेषणको धरे जीव जेता क्षेत्र रोकि आया होइ तिस क्षेत्र हीका नाम स्पर्श जानना सो कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्याका स्पर्श स्वस्थानविषैं वा समुद्घातविषैं वा उपपादविषैं सामान्यपनैं सर्वलोक जानना। विशेषकरि दश स्थानकनिविषै कहिए है तहां कृष्णलेश्यावाले जीवनिकैं स्वस्थान स्वस्थानविषैं वा वेदना अर कषाय अर मारणांतिक समुद्घातनिविषैं वा उपपादविषैं सर्वलोक प्रमाण स्पर्श जानना। वहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं एक राजू लंवा वा चौडा अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण ऊंचा तिर्यकलोक क्षेत्र है। याका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलनिकरि गुण्या हुवा जगत्प्रतर प्रमाण भया सोई विहारवत्स्वस्थानविषैं स्पर्श जानना। जातैं कृष्णलेश्यावाले गमन क्रिया युक्त त्रस जीव तिर्यगलोकही विषैं पाइए है। वहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषै मेरुगिरिके मूलतैं लगाइ सहस्रार नामा स्वर्गपर्यंत ऊंचा त्रसनाली प्रमाण लंवा चौडा क्षेत्रविषैं पवन कायरूप पुद्गल सर्वत्र आच्छादित रूप भरि रहे हैं। वहुरि पवन कायिक जीवनिकै विक्रिया पाइए है सो अतीत काल अपेक्षा तहां सर्वत्र विक्रियाका सद्भाव है। ऐसा कोऊ क्षेत्र तिसविषैं रह्या नाहीं जहां वि-

क्रिया रूप न प्रवर्तैं तातैं एक राजू लंबा वा चौडा अर पांच राजू ऊंचा क्षेत्र भया ताका क्षेत्र फल लोकके संख्यातवे भाग प्रमाण भया सोई वैक्रियक समुद्घातविषैं स्पर्श जानना। बहुरि तैजस अर आहारक अर केवल समुद्घात इस लेश्याविषैं होता ही नाहीं इहां भी पंच प्रकार लोकका स्थापन करि यथा संभव गुणकार भागहार जानना। बहुरि जैसे कृष्णलेश्याविषैं कथन कीया तैसैं ही नीललेश्या कपोतलेश्याविषैं भी कथन जानना ॥ ५४५ ॥ आगें तेजोलेश्याविषैं कहै हैं—

तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ ५४६ ॥

तैजसश्च स्वस्थाने लोकस्य असंख्यभागमात्रं तु।
अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥ ५४६ ॥

जी० प्र०—तेजोलेश्यायाः स्वस्थाने स्पर्शः स्वस्थनात् स्वस्थानापेक्षया लोकस्यासंख्येय भागः। तु—पुनः, अष्टचतुर्दशभागाः अथवा किंचिदूना भवंति नियमेन विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ॥ ५४६ ॥

स० चं०—तेजोलेश्याका स्वस्थानविषैं स्पर्श स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षा तौ लोकका असंख्यातवां भागमात्र जानना। बहुरि विहारवत्स्वस्थान अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं आठ भाग किछू घाटि प्रमाण स्पर्श जानना ॥ ५४६ ॥

एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूण।
उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ॥ ५४७ ॥

एवं तु समुद्घाते नवचतुर्दशभागश्च किंचिदूनः।

उपपादे प्रथमपदं द्व्यर्धचतुर्दश च किंचिदूनं ॥ ५४७ ॥

जी० प्र०—समुद्घाते स्वस्थानवत् किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागः। किंचिदूननवचतुर्दशभागश्च स्पर्शो भवति मारणांतिकसमुद्घातापेक्षया। उपपादपदे द्व्यर्धचतुर्दशभागः किंचिदूनः इति सामान्येन तेजोलेश्यायास्त्रिस्थाने स्पर्श उक्तः। विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते—तिर्यग्लोकस्य रज्जुप्रतरस्य क्षेत्रे — जलेचरसहितलवणोदककालोदकस्वयंभूरमणसमुद्रेभ्यः शेषसर्वसमुद्रक्षेत्रफलेऽपनीते शेषं शुभत्रयलेश्यास्वस्थानस्वस्थाने स्पर्शो

□ ७
—
७

भवति। तद्यथा जंबूद्वीपादयः स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यंताः सर्वे द्वीपसमुद्राः द्विगुणद्विगुणविस्ताराः संति। तत्र लक्षयोजनविष्कंभो जंबूद्वीपः तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलं—

सत्तणवसुण्णपंचयछण्णवचउरेकपंचसुण्णं च।

इत्येतावत् ७९०५६९४१५० इदमेकखंडं कृत्वा लवणसमुद्रे तादृशानि चतुर्विंशतिः २४ धातकीखंडे शतचतुश्चत्वारिंशत् १४४ कालोदके समुद्रे षट्शतद्वासप्ततिः ६७२। पुष्करद्वीपे द्विसहस्राष्टशताशीतिः।२८८०। तत्समुद्रे एकादशसहस्रनवशतचत्वारि ११९०४। वारुणीद्वीपे अष्टचत्वारिंशत्सहस्रत्रिशतचतुरशीतिः ४८३८४। तत्समुद्रे एकलक्षपंचनवतिसहस्रद्वासप्ततिः १९५०७२ क्षीरवरद्वीपे सप्तलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतषष्टिः ७८३३६०। तदर्णवे एकत्रिंशल्लक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रपंचशतचतुरशीतिः ३१३९५८४ एवं स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यंतमानेतव्यानि। तदानयनसूत्रमयं वाहिरसूई ५ ल, वग्गं ५ ल ५ ल, गुणिते पंचवीस ल ल, अब्भंतरसूई १ ल, वग १ ल १ ल, गुणिते लल परिहीणं २४ ल ल, जंबूवास १ ल ल, विभक्ते २४। ल ल अपवर्तिते

१ ^   १ ^   १। ल ल

तत्तियमेत्ताणि खंडाणि २४ रूऊणसला २ वारस १२ सलाग २। गुणिदे दु २ १२। २ वलयखंडाणि २४। वाहिरसूई सलागा ५ कदी २५ तदंताखिलाखंडा वहिरसूई ५ ल वलयव्वासू २ ल, णा ३ ल, चउगुणिद्व्वास ४२ ल, हदा २४ ल ल, इगिलक्खवग्गभजिदा २४ लल जंबूसमवलयखंडाणि २४ अत्र सर्वद्वीपखंडानि त्यक्त्वा सर्वसमुद्रखंडेषु जंबूद्वीपसमचतुर्विंशतिखंडैर्भक्तेषु लवणसमुद्रे लवणसमुद्रसमखंड-

१ लल

मेकं १। कालोदकखंडेषु भक्तेषु ६७२ अष्टाविंशतिः २८ पुष्करसमुद्रखंडेषु भक्तेषु ११९०४ चतुःशतषण्णवतिः ४९६ वारुणीसमुद्रखंडेषु भक्तेषु-

२४   २४

१९५०७२ अष्टसहस्रैकशताष्टाविंशतिः ८१२८। क्षीरसमुद्रखंडेषु भक्तेषु ३१३९५८४ एकलक्षत्रिंशत्सहस्राष्टशतषोडश १३०८१६ एवं स्वयंभू-

२४   २४

रमणसमुद्रपर्यंतं गंतव्यं १२०८१६ पुनरत्र सर्वत्रैकादिचतुर्गुणोत्तरक्रमेण ऋणे प्रक्षिप्ते द्व्यादिषोडशोत्तरगुणसंकलितक्रमो भवति—
८१२८
४९६
२८
१

०
| ३
वि– १ छे छे २
३ २

०
| ३
वि–१ छे छे ३
३

•
०
०

२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षी
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वा
२	१६	१६			१	४	४			पु
२	१६				१	४				का
२	१				१					ल
धन					ऋण					

अत्र प्रकृतक्षेत्रफलोत्पत्तिनिमित्तं पुष्करसमुद्रस्य द्विगुणषोडशवर्गखंडाने आदिः षोडशगुणोत्तरसद्वीपसमुद्रसंख्यार्धं समुद्रत्रयशलाकोनं गच्छः धनमानीयते । पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय, अत्र गच्छो द्वीपसागरसंख्यार्धमिति गुणोत्तरस्य १६ मूलं ४ गृहीत्वा गच्छमात्रद्विकद्वयेषु परस्परं गुणितेषु रज्जुवर्गः स्यात् । == रूवपरिहीणे १ – रूऊणगुणेण हिये १ – मुहेण गुणयम्मि गुणगणियं =२ । १६ । १६ पुनरिदं-
७ । ७ = = ७ । ७ । १५
· ७ । ७ ७ ७ । १५

चतुर्विंशतिजंबूद्वीपक्षेत्रफलयोजनांगुलवर्गप्रतरांगुलैः संगुणय पश्चात्—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।

इति लक्षयोजनच्छेदमात्रद्विकद्वयैर्जातलक्षयोजनवर्गेण एकयोजनांगुलच्छेदमात्रद्विकद्वयैर्जनितैकयोजनांगुलवर्गेण मेरुमध्यच्छेदस्य द्विकवर्गेण जलचरसमुद्रशलाकात्रयस्य गुणोत्तरघनेन च १६ । १६ । १६ हतप्रतरांगुलेन भक्त्वा भाज्यभागहारान् निरीक्ष्य

= ४ । २ । १६ । १६ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८०००
४ । ७ । ७ । १५ । १ । ल । १ ल । ७६८००० । ७६८००० । ४ १६ । १६ । १६

अपवर्त्य = ७९०५६९४१५० / ७ । ७ । १ ल । १ ल । ४ । ५ हारान् परस्परं गुणयित्वा = ७९०५६९४१५० / ९८०००००००००० भक्ते साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरं

स्यात् = १/१२३९ अत्रत्य ऋणमानीयते 'पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय' अत्रापि गच्छार्धत्वाद् गुणोत्तरचतुष्कस्य मूलं गृहीत्वा गच्छमात्रद्विकेषु

परस्परं गुणितेषु रज्जुः — रूवपरिहीणो — १/७ रूऊण गुणेण हिये — १/७ २ मुहेण १६ । गुणयम्मि गुणगणियं — १/७ २।१६ इदं चतुर्विंशतिखंडजंबूद्वीपक्षेत्र-

फलैक योजनांगुलवर्गप्रतरांगुलैः संगुण्य पश्चात्—

> विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
> तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति लक्षयोजनैरेकयोजनांगुलैश्छेदस्य द्विकेन समुद्रशलाकात्रयजगुणोत्तरधनेन च । ४ । ५ । ४ । हतसूच्यंगुलेन भक्त्वा—

१/७ — । १६ । ४ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८००० अपवर्तिते संख्यातसूच्यंगुलभाजितजगच्छ्रेणिमात्रं भवति— २ ७ अनेन
७ । ३ । २ । १ ल । ७६८००० । २ । ४ । ४ । ४ ।

किंचिदूनितं = १/१२३९ पूर्वोक्तं साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरमात्रं ऋणक्षेत्रं सिद्धं । इदं रज्जुप्रतरे = /४९ समच्छेदेनापनीय = ११९० / ४९ । १२३९ अपवर्तनार्थं

भाज्येन भागहारं भक्त्वा साधिककाम ५१ भक्तजगत्प्रतरं विवक्षितक्षेत्रस्य तलराशौ भवति = १ / ५१ इदमूर्ध्वस्पर्शग्रहणार्थं जीवोत्सेधजनितसंख्यात-

सूच्यंगुलैर्गुणितं शुभलेश्यानां स्वस्थानस्वस्थानस्पर्शो भवति = २ ७ / ५१ इदं दृष्ट्वा तेजोलेश्यायाः स्वस्थानस्वस्थानापेक्षया लोकासंख्येयभागः स्पर्शः

इत्युक्तं । विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घाते च तेजोलेश्याया अष्टचतुर्दशभागः किंचिदूनः स्यात् । ८/१४ — कुतः ? सनत्कुमारमाहेंद्र-

जानां तेजोलेश्योत्कृष्टांशानां उपर्यधोऽच्युतां तृतीयपृथ्व्यंतं विहारसंभवात् । पृथ्वीपटलरहिताधस्तनयोजनानामपनयनात् प्र ≡ १४
३४३

फ श १ इ ≡ ८—इतित्रैराशिकलब्धस्य च तत्प्रमाणत्वात् । अथवा भवनत्रयस्य उपर्यत्र: स्वैरं सौधर्मद्वयतृतीयपृथ्व्यंतं देवप्रयोगेन अच्युतांतं च विहार-
३४३

सद्भावात् तावान् संभवति । मारणांतिकसमुद्घाते तेजोलेश्यायाः किंचिदूननवचतुर्दशभागः भवनत्रयसौधर्मचतुष्कजानां तृतीयपृथिव्यां स्थित्वा अष्टप-पृथ्वीसबंधिबादरपर्याप्तपृथ्वीकायेषु उत्पत्तुं मुक्ततत्समुद्घातदंडानां संभवति । ६ — तैजसाहारकसमुद्घाते संख्यातघनांगुलानि ६ ७ केवलिसमुद्घा-
१४

तोऽत्र न संभवति । उपपादपदे किंचिदूनद्व्यर्धचतुर्दशभागः । ननु तेजोलेश्यतत्पदपरिणतैः सानत्कुमारमाहेंद्रांतं क्षेत्रे स्पृष्टे त्रिरज्जूत्सेधात् किंचिदून-त्रिचतुर्दशभागः कथं नोच्यते सौधर्मद्वयादुपरि संख्यातयोजनानि गत्वा सानत्कुमारद्वयप्रारंभो द्व्यर्धरज्जूदये परिसमाप्तिः तच्चरमे च तेजोलेश्या ना-स्तीति केषां चिदुपदेशाश्रयणात् तिर्यग्लोकस्थिततिर्यग्मनुष्याणां ईशानपर्यंतमुपपादसंभवाद्वा । चशब्दात्तेजोलेश्योत्कृष्टांशभूतानां सनत्कुमारमाहेंद्रांतिम-चक्रेंद्रकप्रणिधि उपपादं वदतां अपि प्रयेया यथासंभवं तस्यापि संभवाददिनामः ॥ ५४७ ॥

स० चं०—बहुरि समुद्घातविषैं ऐसैं स्वस्थानवत् किछू घाटि त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना वा मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा किछू घाटि त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं नवभाग प्रमाण स्पर्श जानना । बहुरि उपपादविषैं त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं किछू घाटि ड्योढ भाग प्रमाण स्पर्श जानना ऐसैं सामान्यपनैं तेजोलेश्याका तीनौं स्थानकनिविषैं स्पर्श कह्या बहुरि विशेषकरि दश स्थानकनि विषैं स्पर्श कहिए है तिर्यग्लोक एक राजूका लंबा चौडा है तिसविषै लवणोद कालोदक स्वयंभूरमण इनि तीनि समुद्रनिविषैं जलचर जीव पाइए है अन्य समुद्रनिविषै जलचर जीव नाहीं सो जिनिविषैं जलचर जीव नाहीं तिनि समुद्रनिका जेता क्षेत्र फल होइ सो तिस तिर्यग्लोकरूप क्षेत्रविषै घटाए अवशेष जेता क्षेत्र रहे तितना पीतपद्म शुक्लेश्यानिका स्वस्थान स्वस्थानविषैं स्पर्श जानना जातैं एकेंद्रियादिककैं शुभलेश्यानिका अभाव है सोई कहिए है—

जंबूद्वीपतैं लगाइ स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत सर्वद्वीप समुद्र दूणां दूणां विस्तारकौं धरैं हैं तहां जंबूद्वीप लाख योजन विस्तारकौं धरैं हैं याका सूक्ष्म तारतम्य रूप क्षेत्र फल कहिए है—

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चउरेक पंच सुण्णं च ।

याका अर्थ—सात नव बिंदी पांच छह नव च्यारि एक पांच बिंदी इतने अंकनिकरि जो प्रमाण भया तितना जंबूद्वीपका सूक्ष्म क्षेत्र फल है। ७ ९० ५६ ९४ १ ५० सो एतावन्मात्र एक खण्ड कल्पना कीया। बहुरि ऐसे ऐसे लवण समुद्र विषैं खण्ड कल्पिए तब चौईस २४ होंइ । धातकीखंडविषैं एकसौ चवालीस १४४, होंइ कालोद-समुद्रविषैं छसै बहत्तरि ६७२ होंइ । पुष्कर द्वीपविषैं अठाइससै असी २८८० होंइ पुष्कर समुद्रविषैं ग्यारह हजार नवसै च्यारि ११९०४ होंइ । वारुणी द्वीपविषैं अड़तालीस हजार तीनसै चौरासी ४८३८४ होंइ । वारुणी समुद्र-विषैं एक लाख पिचाणवे हजार बहत्तरि १९५०७२ होंइ । क्षीरवर द्वीपविषैं सातलाख तियासी हजार तीनसै साठि ७८३३६० होंइ । क्षीरवर समुद्रविषैं इकतीस लाख गुणतालीस हजार पांचसै चउरासी ३१३९५८४ होंइ । ऐसैं स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंतविषैं खंड साधन करना इनि खंडनिके प्रमाणका ज्ञान होनेके निमित्त सूत्र कहिए है—

बाहिर सूईवग्गं अब्भंतर सूइवग्ग परिहीणं ।
जंबूवासविहत्ते तेत्तियमेत्ताणि खंडाणि ॥

बाह्य सूचीका वर्गविषैं अभ्यंतर सूचीका प्रमाण घटाए जो प्रमाण रहै ताकौं जंबूद्वीपका व्यासके वर्गका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने जंबूद्वीप समान खंड जानने । अंततें लगाइ वाके सन्मुख अंत पर्यंत जेता सूधा क्षेत्र होइ ताकौं बाह्य सूची कहिए। बहुरि आदितैं लगाइ वाके सन्मुख आदि पर्यंत जेता सूधा क्षेत्र होइ ताकौं अभ्यंतर सूची कहिए। सो इहां लवणसमुद्रविषैं उदाहरण करि कहिये है—

लवण समुद्रकी बाह्य सूची पांच लाख योजन ताका वर्ग कीजिये तब लाख गुणां पचीस लाख भया। बहुरि तिसहीकी अभ्यंतर सूची एक लाख योजन ताका वर्ग लाख गुणा लाख योजन सो घटाये अवशेष लाख गुणा चौईस लाख ताका जंबूद्वीपका व्यास लाख योजन ताका वर्ग लाख गुणां लाख योजन ताका भाग दीजिये

तब चौईस रहे सो जंबूद्वीप समान चौवीस खंड लवणसमुद्रविषैं जानने। असैं ही सर्व द्वीप समुद्रनिविषैं साधने इस साधनके अर्थि और भी प्रकार कहै हैं—

रूऊण सला वारस सलागगुणिदे दु वलयखंडाणि।
वाहिरसूइ सलागा कदी तदंताखिला खंडा॥

इहां व्यासविषैं जितना लाख कह्या होइ तितने प्रमाण शलाका जानना। सो एक घाटि शलाकावौं बारह शलाकाकरि गुणैं जंबूद्वीप प्रमाण वलयखंड हो हैं। जैसे लवणसमुद्रनिविषैं व्यास दोय लाख योजन है तातें शलाकाका प्रमाण दोय तामें एक घटाएं एक ताका बारह शलाकाका प्रमाण चौईसकरि गुणैं चौईस खंड हो हैं। बहुरि वाह्य सूची संबंधी शलाकाका वर्ग प्रमाण तीहिं पर्यंत खंड हो है। जैसैं लवणसमुद्रविषैं वाह्य सूची पांच लाख योजन है तातैं शलाकाका प्रमाण च्यारि ताका वर्ग पचीस सोई लवण समुद्रपर्यंत सर्व खंडनिका प्रमाण हो है। जंबूद्वीपविषैं एक खंड अर लवणसमुद्रविषैं चौवीस खंड मिलिकरि पचीस खंड हो हैं बहुरि और भी विधान कहै हैं—

वाहिरसूईवलयव्वासूणा चउगुणिद्ववासहदा।
इकलक्खवग्गभजिदा जंबूसमवलयखंडाणि॥ १॥

वाह्य सूचीविषैं वलयका व्यास घटाएं जो रहै ताका चौगुणा व्यासतैं गुणिए एक लाखके वर्गका भाग दीजिये तब जंबूद्वीपके समान गोलाकार खंडनिका प्रमाण हो है। उदाहरण—जैसैं लवणसमुद्रकी वाह्य सूची पांच-लाख योजन तिसमें व्यास दोय लाख योजन घटाइए तब तीन लाख योजन भये। याकौं चौगुणा व्यास आठ लाख योजनकरि गुणिये तब लाख गुणा चौईस लाख भये। याकौं एक लाखका वर्गका भाग दीजिये तब चौईस पाये तितने ही जंबूद्वीप समान लवण समुद्रविषैं खंड हैं असैं सूत्रानितैं साधनकरि खंड ज्ञान करना। बहुरि इहां द्वीप संबंधी खंडानिकौं छोडि सर्व समुद्रसंबंधी खंडानिका ही ग्रहण कीजिये तब जंबूद्वीप समान चौईस खंडनिका भाग समुद्रखंडनिकौं दीए जो प्रमाण आवै तितना सर्व समुद्रनिविषैं लवणसमुद्र समान खंड जानने सो लवण

समुद्रके खंडनिकौं चौईस भाग दीए एक पाया सो लवण समुद्र समान एक खंड भया । कालोद समुद्रके छसै वहत्तरि खंडानिकौं चौवीसका भाग दिये अट्ठाईस पाये सो कालोद समुद्रविषैं लवणसमुद्र समान अठाईस खंड हो हैं । ऐसैं ही पुष्कर समुद्रके खंडानिकौं भाग दीये च्यारिसै छिनवै खंड हो हैं । वारुणी समुद्रके खंडनिकौं भाग दीये आठ हजार एकसौ अठाइस खंड हो हैं। क्षीरसमुद्रके खंडनिकौं भाग दिये एक लाख तीस हजार आठसै सोलह खंड हो हैं ऐसैं ही स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत जानना । सो जाननेका उपाय कहै हैं—

यहु लवलसमुद्रसमान खंडनिका प्रमाण ल्यावनेकी रचना है।

धनराशि					ऋणराशि					समुद्र
२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षीरवर
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वारुणीवर
२	१६	१६			१	४	४			पुष्कर
२	१६				१	४				कालोद
२	१				१					लवणोद

दोय आदि सोलह सोलहगुणां तो धन जानना अर एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण जानना । सो धनविषैं ऋण घटाएं जो प्रमाण रहै तितने लवणसमुद्रसमान खंड जानने । उदाहरण कहिये हैं–प्रथमस्थानंविषैं धन दोय अर रिण एक सो दोयमैं एक घटाएं एक रह्या सो लवण समुद्रविषैं एक खंड भया । बहुरि दूसरे स्थानके दोयकौं सोलह गुणा कीजिये तब बत्तीस तो धन होइ अर एककौं च्यारि गुणा कीजिये तब च्यारि रिण भया सो बत्तीसमें च्यारि घटाएं अठाइस रह्या सो दूसरा कालोदक समुद्रविषैं लवण समुद्र समान अठाईस खंड हैं । वहुरि तीसरे स्थानक बत्तीसकौं सोला गुणा कीएं पांचसै बारा तो धन होइ अर च्यारिकौं चौगुणा कीएं

सोला ऋण होइ सो पांचसै बारामैंस्यों सोला घटाए च्यारिसौं छिनवै रह्या सो इतना ही तीसरा पुष्कर समुद्रविषैं लवण समुद्र समान खंड जानने। ऐसैं स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत जानना। सो इहां जलचर रहित समुद्रनिका क्षेत्र फल कहिए है—

तहा जो द्वीप समुद्रनिका प्रमाण है ताकौं इहां समुद्रनिहीका ग्रहण है तातैं आधा कीजिये तामैं जलचर सहित तीन समुद्र घटाएं जलचर रहित समुद्रनिका प्रमाण हो हैं सो इहां गच्छ जानना सो दोय आदि सोला सोला गुणा धन कह्या था सो धनका जलचररहित समुद्रनिका धनविषैं कितना क्षेत्रफल भया ? सो कहिए है—

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियरूवपरिहीणे।
रूऊणगुणेणहिए मुहेणगुणियम्मि गुणगणियं॥

इस सूत्रकरि गुणकार रूपराशिका जोड हो है याका अर्थ-गच्छप्रमाण जो गुणकार ताकौं परस्पर गुणिकरि एक घटाइए बहुरि एक घाटि गुणकारके प्रमाणका भाग दीजिए बहुरि मुख जो आदिस्थान ताकरि गुणिए तब गुणकाररूप राशिविषैं सर्व जोड होइ। सो प्रथम अन्य उदाहरण दिखाइए है-जैसैं आदिस्थानविषैं दश अर पीछैं चौगुणा चौगुणा बधता ऐसैं पंच स्थानकनिविषैं जो जो प्रमाण भया तिस सर्वका जोड दीएं कितना भया ? सो कहिए है। इहां गच्छका प्रमाण पांच अर गुणकारका प्रमाण च्यारि सो पांच जायगा च्यारि च्यारि माडि परस्पर गुणिए तब एक हजार चौबीस हूवा, यामैं एक घटाएं एक हजार तेईस हूवा। बहुरि याकौं एक घाटि गुणकारका प्रमाण तीनका भाग दीजिए तब तीनसै इकतालीस हूवा। बहुरि आदिस्थानका प्रमाण दश तिसकरि याकौं गुणैं चौतीससै दश ३४१० भया सोई सर्वका जोड जानना। कैसें? पंचस्थानकनिविषैं ऐसा प्रमाण है—१०।४०।१६०।६४०।२५६०। सो इनिका जोड चौतीससै दश ही हो है। ऐसैं अन्यत्र भी जानना सो इस ही सूत्रकरि इहां गच्छका प्रमाण तीन घाटि द्वीपसागरके प्रमाणतैं आधा प्रमाण लीए हैं। सो सर्व द्वीप समुद्रनिका प्रमाण कितना है ? सो कहिए है एक राजूके जेते अर्धच्छेद हैं तिनिमैं लाख योजनके अर्धच्छेद अर एक योजनके साठि लाख अड-

सठि हजार अंगुल तिनिके अर्धच्छेद अर सूच्यंगुलके अर्धच्छेद अर मेरुके मस्तक प्राप्त भया एक अर्धच्छेद इतने अर्धच्छेद घटाएं जेता अवशेष प्रमाण रह्या तितने सर्व द्वीप समुद्र हैं। अब इहां गुणोत्तरका प्रमाण सोलह सो गच्छप्रमाण गुणोत्तरनिकौं परस्पर गुणना। तहां प्रथम एक राजूका अर्धच्छेद राशितें आधाप्रमाण मात्र जायगा सोलह सोलह माडि परस्पर गुणनकीए राजूका वर्ग हो है सो कैसे ? सो कहिए है—

विवक्षित गच्छका आधा प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकारका वर्गमूल माडि परस्पर गुणन कीएं जो प्रमाण होइ सोई संपूर्ण विवक्षित गच्छप्रमाण मात्र विवक्षित गुणकारका वर्गमूल माडि परस्पर गुणन कीएं प्रमाण हो है। जैसैं विवक्षित गच्छ आठ ताका आधा प्रमाण च्यारि सो च्यारि २ जायगा विवक्षित गुणकार नव नव माडि परस्पर गुणें पैसठिसै इकसठि होइ सोई विवक्षित गच्छमात्र आठ जायगा विवक्षित गुणकार नवका वर्गमूल तीन तीन माडि परस्पर गुणन कीएं पैंसठिसै इकसठि हो हैं ऐसैं ही इहां विवक्षित गच्छ एक राजूके अर्धच्छेद ताका अर्धच्छेद प्रमाण मात्र जायगा सोलह सोलह सोलह मांडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ सोई राजूके अर्धच्छेद मात्र सोलहका वर्गमूल च्यारि च्यारि माडि परस्पर गुणें प्रमाण होइ सो राजूके अर्धच्छेद मात्र जायगा दूवा माडि गुणें तौ राजू होइ अर तितनी ही जायगा दोय दोयवार दूवा माडि परस्पर गुणें राजूका वर्ग हो है सो जगत्प्रतरकौं दोयवार सातका भाग दीजिए इतना हो है। वहुरि यासैं एक घटाइए जो प्रमाण होइ ताकौं एक घाटि गुणकारकौं प्रमाण पंद्रह ताका भाग दीजिए। वहुरि इहां आदिविषैं पुष्कर समुद्र है तिसविषैं लवण समुद्र समान खंडनिका प्रमाण दोयकौं दोयवार सोलहकरि गुणिए इतना प्रमाण है सोई मुख भया ताकरि गुणिए ऐसैं करतैं एकघाटि जगत्प्रतरकौं दोय सोलह सोलहका गुणकार अर सात सात पंद्रहका भागहार भया। वहुरि इस राशिका एक लवण समुद्रविषैं जंबूद्वीप समान चौईस खंड हो है तातैं चौईसका गुणकार करना। वहुरि जंबूद्वीपविषैं सूक्ष्म क्षेत्रफल सात नव आदि अंकमात्र है तातैं ताका गुणकार करना। बहुरि एक योजनके सात लाख अडसठि हजार अंगुल हो हैं सो इहां वर्गराशिका ग्रहण है अर वर्गराशिका गुणकार भागहार वर्गरूप ही हो है तातैं दोयवार सात लाख अडसठि

हजारका गुणकार जानना। बहुरि एक सूच्यंगुलका वर्ग प्रतरांगुल हो है तातैं इतने प्रतरांगुलनिका गुणकार जानना। बहुरि—

विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स॥

इस करण सूत्रके अभिप्रायकरि द्वीप समुद्रनिके प्रमाणविषैं राजूके अर्धच्छेदनितैं जेते अर्धच्छेद घटाए हैं तिनि का आधा प्रमाणमात्र गुणकार सोलहकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तितनेका पूर्वोक्त राशिविषैं भागहार जानना। सो इहां जाका आधा ग्रहण कीया तिस संपूर्णराशिमात्र सोलहका वर्गमूल च्यारि तिनिकौं परस्पर गुणैं सोई राशि हो है सो आपने अर्धच्छेदमात्र दूवानिकौं परस्पर गुणैं तौ विवक्षितराशि होइ अर इहां च्यारि कहै हैं तातैं तितने ही मात्र दोयवार दूवानिकौं परस्पर गुणैं विवक्षित राशिका वर्ग हो है तातैं इहां लाख योजनका अर्धच्छेद प्रमाण दोय दूवानिका परस्पर गुणैं तौ लाखका वर्ग भया। एक योजनका अंगुलनिके प्रमाणका अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानिकौं परस्पर गुणैं एक योजनके अंगुल सात लाख अडसठि हजार तिनिका वर्ग भया। बहुरि मेरुमध्यसंबंधी एक अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानिकौं परस्पर गुणैं च्यारि भया बहुरि सूच्यंगुलका अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानिकौं परस्पर गुणैं प्रतरांगुल भया ऐसैं ए भागहार जानने। बहुरि जलचरसाहित तीन समुद्र गच्छविषैं घटाए हैं तातैं तीनवार गुणोत्तर जो सोलह ताका भी भागहार जानना। ऐसैं जगत्प्रतरकौं प्रतरांगुल अर दोय अर सोलह अर चौवीस अर सातसै निवे कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार एकसौ पचास अर सात लाख अडसठि हजार, अर सात लाख अडसठि हजारका तौ गुणकार भया। बहुरि प्रतरांगुल अर सात अर सात अर पंद्रह अर एक लाख अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजार अर च्यारि अर सोलह अर सोलह अर सोलहका भागहार भया। इहां प्रतरांगुल अर दोयवार सोलह अर दोयवार सात लाख अडसठि हजार गुणकार भागहारविषैं समान देखि अपवर्तनकीएं अर गुणकारविषैं दोय चौईसकौं परस्पर गुणैं अठतालीस

अर भागहारविषैं पंद्रह सोलह इनिकौं परस्पर गुणें दोयसै चालीस तहां अडतालीसकरि अपवर्तनकीएं भागहार विषैं पांच रहे ऐसैं अपवर्तन कीएं जो अवशेप प्रमाण रह्या ७९०५६९४१५० तहां सर्व भागहारनिकौं
७।७।१ल।१ल।४।५।
परस्पर गुणि ताकौं गुणकारनिके अंकनिका भाग दीएं किछू अधिक बारहसै गुणतालीस भए। ऐसें धनराशि- विषैं सर्व क्षेत्रफल साधिक 'धगरय' जो बारहसै गुणतालीस ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण क्षेत्रफल भया। इहां कटपयपुरस्थवर्णैः इत्यादि सूत्रके अनुसारि अक्षर संज्ञाकरि धगरय शब्दतें नव तीन दोय एक जनित प्रमाण ग्र- हण करना। अब इहां एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण कह्या था सो जलचर रहित समुद्रनिविषैं ऋणरूप क्षेत्र फल ल्याइए है। 'पदमेत्ते गुणयारे' इत्यादि करणसूत्रकरि प्रथम गच्छमात्र गुणकार च्यारिका परस्पर गुणन क- रना। तहां राजूके अर्धच्छेद प्रमाणका अर्धप्रमाणमात्र च्यारिकौं परस्पर गुणें एक राजू हो है। कैसे ? सो कहिए है—

सर्वद्वीप समुद्रका प्रमाणमात्र गच्छ कल्पैं इहां आधा प्रमाण है तातें गुणकार च्यारिका वर्गमूल दोय ग्रहण सो संपूर्ण गच्छविषैं एक राजूके अर्धच्छेद कहे हैं तातैं एक राजूके अर्धच्छेद प्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणें एक राजू प्रमाण भया सो जगच्छ्रेणीका सातवां भाग प्रमाण है। यामें एक घटाइए जो प्रमाण होइ ताकौं एक घाटि गुणकार तीनका भाग दीजिए। बहुरि पुष्कर समुद्र अपेक्षा आदि स्थानविषैं प्रमाण सोलह ताकरि गुणिए ऐसें एक घाटि जगच्छ्रेणीकौं सोलहका गुणकार बहुरि सात अर तीनका भागहार भया याकौं पूर्वोक्त प्रकार चोवीस खंड अर जंबूद्वीपका क्षेत्रफल रूप योजननिका प्रमाण अर एक योजनके अंगुलनिका वर्गमात्र बहुरि सूच्यंगुलका इहां वर्ग है तातैं इतनौं प्रतरांगुलनिकरि वर्गमात्र बहुरि गुणन करना। बहुरि—

विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ १ ॥

इस सूत्र अनुसारि जितने गच्छविषैं राजू अर्धच्छेद प्रमाणमें घटाइए हैं ताका जो आधा प्रमाण है तितने

च्यारिके अंकनिकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तितनेका भागहार जानना सो जिस राशिका आधा प्रमाण लिया तिस राशिमात्र च्यारिका वर्गमूल दोयकौं परस्पर गुणिए तहां लक्ष योजनके अर्धच्छेद प्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणें एक लाख भए। एक योजनके अंगुलनिका अर्धच्छेद प्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणें सात लाख अडसठि हजार अंगुल भए। बहुरि मेरुमध्यके अर्धच्छेदमात्र दूवाका दोय भए बहुरि सूच्यंगुलका अर्धच्छेदमात्र दूवानिकौं परस्पर गुणै सूच्यंगुल भया ऐसें भागहार भए। बहुरि तीन समुद्र घटाएं तातें तीनवार गुणोत्तर जो च्यारि ताका भी भागहार जानना। ऐसें एक घाटि जगच्छ्रेणीकौं सोलह अर च्यारि अर चौईस अर सातसै निवै कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार एकसौ पचास अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजारका तौ गुणकार भया बहुरि सात अर तीन अर सूच्यंगुल अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर दोय अर च्यारि अर च्यारि अर च्यारिका भागहार भया तहां यथायोग्य अपवर्तन कीएं संख्यात सूच्यंगुलकरि गुण्या हूवा जगच्छ्रेणीमात्र क्षेत्र फल भया सो इतने पूर्वोक्त धन राशिरूप क्षेत्रफलविषैं घटावना सो तिस महत् राशिविषै किंचित् मात्र घट्या सो घटाएं किंचित् ऊन साधिक वारहसै गुणतालीसकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण सर्व जलचर रहित समुद्रनिका क्षेत्र फल ऋणरूप सिद्ध भया। याकौं एक राजू लंबा चौडा ऐसा जो जगत्प्रतरका गुणचासवां भाग मात्र रज्जू प्रतर क्षेत्र तामैं समच्छेद करि घटाइए तब जगत्प्रतरकौं ग्यारहसैं निवैका गुणकार अर गुणचास गुणां वारहसे गुणतालीसका भागहार भया। तहां अपवर्तन करनेके अर्थि भाज्यके गुणकारका भागहारका भाग दीएं किछू अधिक इक्यावन पाए ऐसें साधिक काम जो अक्षर संज्ञाकरि इक्यावन ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्रका प्रतररूप तनका स्पर्श भया। याकौं ऊचाईका स्पर्श ग्रहणके अर्थि जीवनिकी ऊचाईका प्रमाण संख्यात सूच्यंगुल तिनकरि गुणें साधिक इक्यावनकरि भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणा जगत्प्रतरमात्र शुभलेश्यानिका स्वस्थान स्वस्थानविषैं स्पर्श हो है। याकौं देखि तेजो लेश्याका स्वस्थान स्वस्थानकी अपेक्षा स्पर्श लोकका असंख्यातवां भागमात्र कह्या तातैं यहु क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भागमात्र है। बहुरि तेजोलेश्याका

विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घातविषैं स्पर्श किछू घाटि चौदह भागमैं आठ भाग प्रमाण है। काहेतैं ? सो कहिए है—

लोक चौदह राजू ऊंचा है। त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लंबा चौडा है सो तहां चौदह राजूविषैं सनत्कुमार माहेंद्रकेवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपरि अच्युत सोलहां स्वर्ग पर्यंत गमन करैं हैं अर नीचें तीसरी नरक पृथ्वीपर्यंत गमन करैं हैं सो अच्युत स्वर्गतैं तीसरा नरक आठ राजू है तातैं चौदह भागमें आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरककी पृथ्वीकी मोटाईविषैं जहां पटल न पाइए ऐसा हजार योजन घटावने तातैं किंचित् ऊन कहे हैं। इहां जो चौदह घनरूप राजूनिकी एक शलाका होइ तौ आठ घनरूप राजूनिकी केती शलाका होइ? ऐसैं त्रैराशिक कीएं आठ चौदहां भाग आवै है। अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचैं स्वयमेव तौ सौधर्म ईशान स्वर्गपर्यंत वा तीसरा नरकपर्यंत गमन करै है अर अन्य देवके लेगए सोलह्वां स्वर्गपर्यंत विहार करैं हैं तातैं भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवै है। बहुरि तेजोलेश्याका मारणांतिक समुद्घातविषैं स्पर्श चौदह भागमें नव भाग किछू घाटि संभवै है। काहेतैं ? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनिकेवासी देव तीसरे नरक गएं अर तहां ही मरण समुद्घात कीया बहुरि ते जीव आठवीं भुक्ति पृथ्वीविषैं वादरपृथ्वी कायके जीव उपजते हैं तातैं तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनिका विस्तारकरि दंड कीया। तिन आठईं पृथ्वीतैं तीसरा नरक नव राजू है अर तहां पटलरहित पृथ्वीकी मोटाई घटावनी तातैं किंचित् ऊन नव चौदह्वां भाग संभवै है। बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना जातैं ए मनुष्य लोकविषैं ही हो है बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्यावालेके होता नाहीं। बहुरि उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं किछू घाटि डेढभागमात्र जानना सो मध्यलोकतैं तेजोलेश्यातैं मरिकरि सौधर्म ईशानका अंत पटलविषैं उपजैं तीहि अपेक्षा संभवै। इहां कोऊ कहै कि तेजोलेश्याके उपपादविषैं सनत्कुमार माहेंद्रपर्यंत देवका स्पर्श पाइए है सो तीन राजू ऊंचा है तातैं चौदह भागनिविषैं किंचित् ऊन तीन भाग क्यों न कहिए ? ताका समाधान—सौधर्म ईशानतैं ऊपरि संख्यात योजन जाइ सनत्कुमार

माहेंद्रका प्रारंभ हो है तहां प्रथम पटल है अर डेढ राजू जाइ अंतिम पटल है सो अंत पटलविषैं तेजोलेश्या नाही है ऐसा केई आचार्यनिका उपदेश है तातैं अथवा चित्राभूमिविषैं तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनिका उपपाद ईसान पर्यंत ही संभवै है तातैं किंचित् ऊन डेढ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है। बहुरि गाथाविषैं चकार कह्या है तातैं तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं तिनकैं सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्धविमाननिविषैं उत्पत्ति केई आचार्य कहै हैं तिनिका अभिप्रायकरि यथा संभवै तीन भागमात्र भी स्पर्श संभवै है किछू नियम नाहीं। इस ही वास्ते सूत्रविषैं चकार कह्या। ऐसैं पीतलेश्याविषैं स्पर्श कह्या ॥ ५४७ ॥

पम्मस्सय सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ ४८ ॥

पद्मायाश्च स्वस्थानसमुद्घातद्विकयोर्भवति प्रथमपदं।
अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥ ५४८ ॥

जी० प्र०—पद्मलेश्यानां वाशब्दात्स्वस्थानस्वस्थानपदे प्रागुक्तलोकासंख्यातैकभागः स्पर्शो भवति = २ १/५१ विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घातेषु च किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागः। मारणांतिकसमुद्घातेऽपि तथैव पद्मलेश्याजीवानां पृथिव्यब्वनस्पतिषूत्पत्तिसंभवात्। तैजसाहारकसमुद्घातयोः संख्यातघनांगुलानि ६ १ केवलिसमुद्घातोऽत्र नास्ति ॥ ५४८ ॥

स० चं०—पद्मलेश्याके स्वस्थान स्वस्थानविषैं पूर्वोक्तप्रकार लोकके असंख्यातवे भागमात्र स्पर्श जानना। बहुरि विहारवत्स्वस्थान अर वेदना कषाय वैक्रियिकसमुद्घात इनिविषैं किंचित् ऊन चौदह भागविषैं आठ भागमात्र स्पर्श जानना। बहुरि मारणांतिक समुद्घातविषैं भी तैसैं ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भागमात्र स्पर्श जानना जातैं

पद्मलेश्यावाले भी देव पृथ्वी अप् वनस्पतीविषैं उपजे हैं। बहुरि तैजस आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना। बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्याविषैं है नाहीं ॥ ५४८ ॥

उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं च देसूणं।

उपपादे प्रथमपदं पंचचतुर्दशभागकश्च देशोनः।

जी० प्र०—उपपादपदे स्पर्शः शतारसहस्रारपर्यंतं पद्मलेश्यासंभवात् पंचचतुर्दशभागाः किंचिदूना भवंति। $\frac{५}{१४}$ –

स० चं०—यहु आधा सूत्र है। उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागविषैं पंच भाग किछू घाटि जानना जातैं पद्मलेश्या शतार सहस्रार पर्यंत संभवै है सो शतार सहस्रार मध्यलोकतैं पांच राजू ऊंचा है ऐसैं पद्मलेश्याविषैं स्पर्श कह्या ॥

सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोदसा हीणा ॥ ४९ ॥

शुक्लायाश्च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनाः ॥ ५४९ ॥

जी० प्र०—शुक्लेश्याजीवानां स्पर्शः स्वस्थानस्वस्थाने तेजोलेश्यावल्लोकसंख्यातकभागः $= \frac{२ ৭}{५१}$ विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिक मारणांतिकसमुद्घातेषु च देशोनषट्चतुर्दश भागः $\frac{६}{१४}$– तैजसाहारकसमुद्घातयोः संख्यातघनांगुलानि ६ ৭ ॥ ५४९ ॥

स०चं०—शुक्लेश्यावाले जीवनिकै स्वस्थानस्वस्थानविषैं तेजोलेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण स्पर्श है। बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं अर वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घातनिविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातैं अच्युतस्वर्गके ऊपरि देवनिकैं स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन

नाहीं है तातैं अच्युतपर्यंत ही ग्रहण कीया बहुरि तैजस आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना ॥ ५४९ ॥

णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा ।
सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥ ५० ॥

नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवंति भागा वा ।
सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः ॥ ५५० ॥

जी० प्र०—केवलिसमुद्घाते विशेषः, स कः ? दंडसमुद्घाते स्पर्शः क्षेत्रवत् संख्यातप्रतरांगुलहतजगच्छ्रेणिः – ४ । ७ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणदंडयोर्भवति । – ४ । ७ । २ । पूर्वाभिमुखस्थितोपविष्टकवाटसमुद्घाते संख्यातसूच्यंगुलमात्रजगत्प्रतरः = २ ७ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणयोर्भवति = २ ७ । २ तथैवोत्तराभिमुखस्थितोपविष्टकवाटेऽपि = २ ७ । = २ ७ । २ प्रतरसमुद्घाते लोकासंख्यातबहुभागः ≡ $\frac{१ \frown}{a}$ a । वातावरुद्धक्षेत्रेण लोकसंख्यातैक ≡ $\frac{}{a}$ १ भागेन न्यूनत्वात् । लोकपूरणसमुद्घाते सर्वलोकः ≡ खलु नियमेन । उपपादपदे किंचिदूनषट्चतुर्दशभागः $\frac{६-}{१४}$ आरणाच्युतावसानस्यैव विवक्षितत्वात् ॥ ५५० ॥ इति स्पर्शाधिकारः । अथ कालाधिकारं गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—केवल समुद्घातविषैं विशेष है सो कहा ? दंडविषैं तौ स्पर्श क्षेत्रकी नाईं संख्यात प्रतरांगुलनिकरि गुण्या हूवा जगच्छ्रेणी प्रमाण सो करणे अर समेटनेकी अपेक्षा दूणा जानना । बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाटविषैं संख्यात सूच्यंगुलमात्र जगत्प्रतर प्रमाण है सो करणे समेटनेकी अपेक्षा दूणा स्पर्श जानना । बहुरि तैसैं ही उत्तराभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाटविषैं स्पर्श जानना । बहुरि प्रतर समुद्घातविषैं लोककौं असंख्यातका भाग दीजिए तामैं एक भाग विना अवशेष बहुभागमात्र स्पर्श है जातैं वात वलयका क्षेत्र लोकके अ-

संख्यातवे भाग प्रमाण है। तहां व्यास न हो है। बहुरि लोक पूरणविषें स्पर्श सर्वलोक जानना ऐसा नियम है। बहुरि उपपादविषें चौदह भागविषें छह भाग किंचित् ऊन स्पर्श जानना जातैं इहां आरण अच्युत पर्यंत ही की विवक्षा है ॥ ५५० ॥ इति स्पर्शाधिकारः। १२। आगें काल अधिकार दोय गाथानिकरि कहैं हैं—

कालो छल्लेस्साणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।
अंतोमुहुत्तमवरं एयं जीवं पडुच्च हवे ॥ ५१ ॥

कालः षड्लेश्यानां नानाजीवं प्रतीत्य सर्वार्धा।
अंतर्मुहूर्तोऽवरं एकं जीवं प्रतीत्य भवेत् ॥ ५५१ ॥

जी० प्र०—कृष्णलेश्यानां कालः नानाजीवं प्रति सर्वाद्धा सर्वकालः। एकजीवं प्रति जघन्येन अंतर्मुहूर्तो भवति ॥ ५५१ ॥

स० चं०—कृष्ण आदि छहौ लेश्यानिका काल नाना जीवनिकी अपेक्षा सर्वाद्धा कहिए सर्व काल है बहुरि एक जीव अपेक्षा छहौ लेश्यानिका जघन्यकाल तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण जानना ॥ ५५१ ॥

उवहीणं तेत्तीसं सत्तरसत्तेव होंति दो चेव।
अट्ठारस तेत्तीसा उक्कस्सा होंति अदिरेया ॥ ५२ ॥

उदधीनां त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश सप्तैव भवंति द्वौ चैव।
अष्टादश त्रयस्त्रिंशत् उत्कृष्टा भवंति आतिरेकाः ॥ ५५२ ॥

जी० प्र०—उत्कृष्टस्तु सागरोपमाणि कृष्णायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। नीलायाः सप्तदश १७। कपोतायाः सप्त ७। तेजोलेश्याया द्वे २। पद्मायाः अष्टादश १८। शुक्लायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। साधिकानि भवंति अव्याघातविषये। तदाधिक्यं तु देवनारकभवेभ्यः पूर्वभवचरमांतर्मुहूर्तः उत्तरभवप्रथमांतर्मुहूर्तश्च षण्णां। तेजःपद्मयोः पुनः किंचिदूनसागरोपमार्धमपि, कुतः सौधर्मादिसहस्रारपर्यंतं स्वस्वोत्कृष्टस्थितेरुपरि घातायुष्कस्य सम्यग्दृष्टेरंतर्मुहूर्तोनार्धसागरोपमेण मिथ्यादृष्टेस्तु पल्यासंख्यातैकभागेनचाधिक्यात् ॥ ५५२ ॥ इति कालाधिकारः। १३॥ अथांतराधिकारं गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—बहुरि उत्कृष्टकाल कृष्णलेश्याका तेंतीस सागर नीललेश्याका सतरह सागर कपोतलेश्याका सात सागर तेजोलेश्याका दोय सागर पद्मलेश्याका अठारह सागर शुक्ललेश्याका तेतीस सागर किछू किछू अधिक जानना । सो अधिकका प्रमाण कितना ? सो कहैं है—यहु उत्कृष्ट काल नारक वा देवनिकी अपेक्षा कह्या है सो नारकी अर देव जिस पर्यायतैं आनि उपजैं तिस पर्यायका अंतका अंतर्मुहूर्त काल बहुरि देव नारक पर्याय छोडि जहां उपजैं तहां आदिविषैं अंतर्मुहूर्तकाल मात्र सोई लेश्या हो है तातैं पूर्वोक्त कालतैं छहौ लेश्यानिका कालविषैं दोय दोय अंतर्मुहूर्त अधिक जानना । बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्याका कालविषैं किंचित् ऊन आधा सागर भी अधिक जानना जातैं जाकैं आयुका अपवर्तन घात भया ऐसा जो घातायुष्क सम्यग्दृष्टी ताकैं अंतर्मुहूर्त घाटि आधा सागर आयु बंधता हो है । जैसैं सौधर्म ईशानविषैं दोय सागरका आयु कह्या है तहां घातायुष्क सम्यग्दृष्टीकैं अंतर्मुहूर्त घाटि अढाई सागर भी आयु हो है ऐसैं ऊपर भी जानना । बहुरि ऐसैं ही मिथ्यादृष्टी घातायुष्ककैं पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण आयु बंधता हो है सो यहु अधिकपना सौधर्मतैं लगाइ सहस्रार स्वर्गपर्यंत जानना ऊपर घातायुष्कका उपजना नाही तातैं तहां जो आयुका प्रमाण कह्या है तितना ही हो है ऐसैं अधिककालका प्रमाण जानना ॥ ५५२ ॥ इति कालाधिकारः । आगैं अतर अधिकार दोय गाथानिकरि कहै हैं—

अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ५३ ॥
तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु ।
पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ॥ ५४ ॥

अंतरमवरोत्कृष्टं कृष्णत्रयाणां मुहूर्तांतस्तु ।
उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टं ॥ ५५३ ॥
तेजस्त्रयाणामेवं नवरि च उत्कृष्टविरहकालस्तु ।
पुद्गलपरिवर्ता हि असंख्येया भवंति नियमेन ॥ ५५४ ॥

जी० प्र०—अंतरं विरहकालः कृष्णादित्रयस्य जघन्येनांतर्मुहूर्तः । उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि साधिकानि भवंतीति निर्दिष्टं । तत्र कृष्णायां पूर्वकोटिवर्षायुर्मनुष्यो गर्भादष्टवर्षचरमेंतर्मुहूर्तषट्के अवशिष्टे कृष्णां गतः, अंतर्मूहूर्तं स्थित्वा नीलां गतस्तदा कृष्णांतरं प्रारब्धं। ततः नीलां कपोतां तैजसीं पद्मां शुक्लां च प्रत्येकमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अष्टवर्षचरमसमये संयमं स्वीकृत्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि प्रतिपाल्य सर्वार्थसिद्धिं गतः । तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि नीत्वा मनुष्यो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयादंतर्मुहूर्ते शुक्लां पद्मां तैजसीं कपोतां नीलां च प्रत्येकं स्थित्वा कृष्णां गच्छति। इति दशांतर्मुहूर्ताधिकानि अष्टवर्षोनपूर्वकोटिवर्षाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टांतरं भवति । एवं नीलकपोतयोरपि किंतु अधिकांतर्मुहूर्ताः नीलायामष्टौ, कपोतायां षडेव भवंति । तेजोलेश्यायां कश्चिन्मनुष्यः तिर्यग् वा स्थित्वा कपोतां गतस्तदा तेजोलेश्यांतरं प्रारब्धं । पश्चात्कपोतनीलकृष्णलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा एकेंद्रियो भूत्वा आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि भ्रांत्वा विकलेंद्रियो भूत्वा संख्यातसहस्रवर्षाणि भ्रांत्वा पंचेंद्रियो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयात्कृष्णनीलकपोतलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा तेजोलेश्यां गच्छति । इति षडंतर्मुहूर्तसंख्यातसहस्रवर्षावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनान्युत्कृष्टांतरं भवति । पद्मायां कश्चित्स्थित्वा तेजोलेश्यां गतस्तदा पद्मांतरं प्रारब्धं तत्रांतर्मुहूर्तं स्थित्वा सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयं स्थितः च्युत्वा प्राग्वदेकविकलेंद्रियेषु क्रमेणावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुलपरावर्तनसंख्यातसहस्रवर्षाणि स्थित्वा पंचेंद्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा पद्मां गच्छति । इति पचांतर्मुहूर्तसंख्यातसहस्रवर्षपल्यासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टांतरं भवति । एवं शुक्लायामपि, किंतु शुक्लातः पद्मां तैजसीं च प्रत्येकमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा प्राग्वत् सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकद्विसागरोपमस्थितिं एकेंद्रियेषु आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि विकलेंद्रियेषु संख्यातसहस्रवर्षाणि च नीत्वा पंचेंद्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा शुक्लां गच्छति तदा सप्तांतर्मुहूर्तसंख्यातवर्षसहस्रपलितोपमासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टांतरं भवति ॥ ५५३–५५४ ॥ इत्यंतराधिकारः ॥१३॥

अथ भावाल्पबहुत्वाधिकारावाह—

स० चं०—अंतर नाम विरहकालका है जैसैं कोई जीव कृष्णलेश्याविषैं प्रवर्तै था पीछैं कृष्णकौं छोडि अन्य लेश्यानिकौं प्राप्त भया सो जितने कालपर्यंत फिर कृष्णलेश्याकौं प्राप्त न होइ तीहिं कालका नाम कृष्णलेश्याका

अंतर कहिए ऐसैं ही सर्वत्र जानना। सो कृष्णादिक तीन लेश्यानिविषैं जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण है बहुरि उत्कृष्ट किछू अधिक तेतीस सागर प्रमाण है तहां कृष्णलेश्याविषैं अंतर कहैं हैं—

कोई जीव कोडि पूर्व वर्षमात्र आयुका धारी मनुष्य गर्भतैं लगाय आठवर्ष होनेविषैं छह अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं तहां कृष्णलेश्याकौं प्राप्त भया तहां अंतर्मुहूर्त तिष्ठिकरि नील लेश्याकौं प्राप्त भया तब कृष्णलेश्याके अंतरका प्रारंभ कीया तहां एक एक अंतर्मुहूर्त मात्र अनुक्रमतैं नील कपोत पीत पद्म शुक्ललेश्याकौं प्राप्त होइ आठ वर्षका अंतके समय दीक्षा धरी तहां शुक्ललेश्यासहित किछू घाटि कोडि पूर्व पर्यंत संयमकौं पालि सर्वार्थसिद्धिकौं प्राप्त भया। तहां तेतीस सागर पूर्ण करि मनुष्य होइ अंतर्मुहूर्त पर्यंत शुक्ललेश्या रूप रह्या पीछैं अनुक्रमतैं एक एक अंतर्मुहूर्त मात्र पद्म पीत कपोत नील लेश्याकौं प्राप्त होइ कृष्ण लेश्याकौं प्राप्त भया ऐसे जीवकैं कृष्ण लेश्याका दश अंतर्मुहूर्त अर आठ वर्ष घाटि कोटि पूर्व इनकरि अधिक तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट अंतर जानना। ऐसैं ही नील लेश्या अर कपोत लेश्याविषैं उत्कृष्ट अंतर जानना। विशेष इतना-जो तहां दश अंतर्मुहूर्त कहे हैं नीलविषैं आठ कपोतविषैं छह अंतर्मुहूर्त ही अधिक जानने। अब तेजो लेश्याका उत्कृष्ट अंतर कहैं हैं—

कोई जीव मनुष्य वा तिर्यंच तेजोलेश्याविषैं तिष्ठे था तहांस्यों कपोतलेश्याकौं प्राप्त भया तब तेजोलेश्याके अंतरका प्रारंभ कीया तहां एक एक अंतर्मुहूर्त पर्यंत कपोत नील कृष्ण लेश्याकौं प्राप्त होइ एकेंद्री भया तहां उत्कृष्टपनैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण जे पुद्गल द्रव्य परिवर्तन तिनिका जितना काल होइ तितने काल भ्रमण कीया पीछैं विकलेंद्री भया तहां उत्कृष्टपनैं संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल भ्रमण कीया पीछैं पंचेंद्री भया तहां प्रथम समयतैं लगाइ एक एक अंतर्मुहूर्तकालविषैं अनुक्रमतैं कृष्ण नील कपोतकौं प्राप्त होइ तेजोलेश्याकौं प्राप्त भया ऐसे जीवकैं तेजोलेश्याका छह अंतर्मुहूर्त सहित अर संख्यात सहस्र वर्ष करि अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना। अब पद्म लेश्याका अंतर कहैं हैं—

कोई जीव पद्मलेश्याविषैं तिष्ठता था ताकौं छोडि तेजोलेश्याकौं प्राप्त भया तब पद्मके अंतरका प्रारंभ कीया

तहां तेजोलेश्याविषैं अंतर्मुहूर्त तिष्ठि करि सौधर्म ईशानविषैं उपज्या तहां पल्यका असंख्यातवां भागकरि अधिक दोय सागरपर्यंत रह्या। तहांस्यौं चयकरि एकेंद्री भया तहां आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन काल मात्र भ्रमण करि पीछैं विकलेंद्री भया। तहां संख्यात सहस्र वर्ष कालमात्र भ्रमण करि पचेंद्री भया तहां प्रथम समयतैं लगाइ एक एक अंतर्मुहूर्त कृष्ण नील कपोत तेजोलेश्याकौं प्राप्त होइ पद्मलेश्याकौं प्राप्त भया ऐसे जीवकैं पद्मलेश्याका पंच अंतर्मुहूर्त अर पल्यका असंख्यातवां भागकरि अधिक दोय सागर अर संख्यात हजार वर्षनिकरि अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परिवर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना। आगैं शुक्ल लेश्याका अंतर कहैं हैं—

कोई जीव शुक्ललेश्याविषैं तिष्ठै था तहांस्यौं पद्मलेश्याकौं प्राप्त भया तब शुक्ललेश्याका अंतरका प्रारंभ भया। तहां क्रमतैं एक एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र पद्म तेजोलेश्याकौं प्राप्त होइ सौधर्म ईशानविषैं उपजि तहां पूर्वोक्त प्रमाण कालरहित तहां पीछैं एकेंद्री होइ तहां भी पूर्वोक्त प्रमाण काल मात्र भ्रमण करि पीछैं विकलेंद्री होइ तहां भी पूर्वोक्त प्रमाण कालमात्र भ्रमणकरि पंचेंद्री होइ प्रथमसमयतैं एक एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र क्रमतैं कृष्ण नील कपोत तेज पद्मलेश्याकौं प्राप्त होइ शुक्ललेश्याकौं प्राप्त भया ऐसे जीवकैं सात अंतर्मुहूर्त अर संख्यात सहस्र वर्ष अर पल्यका असंख्यातवां भागकरि अधिक दोय सागरकरि अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंतर जानना ॥ ५५३—५५४ ॥ इति अंतराधिकारः ॥ १४ ॥ आगैं भाव अर अल्पवहुत्व अधिकारानिकौं कहैं हैं—

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया हौंति अप्पबहुगं तु।
दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा हौंति ॥ ५५५ ॥

भावतः षड् लेश्या औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु ।
द्रव्यप्रमाणे सिद्धमिति लेश्या वर्णिता भवंति ॥ ५५५ ॥

जी० प्र०—भावेन षडपि लेश्याः औदयिका एव भवंति। कुतः? कषायोदयावष्टंभसंभूतयोगप्रवृत्तेरेव तल्लक्षणत्वात् । तु-पुनः, तासामल्पबहुत्वं पूर्वसंख्याधिकारे द्रव्यप्रमाणे एव सिद्धं। तथाहि—शुक्ललेश्याजीवाः सर्वतः स्तोका अप्यसंख्याताः a तेभ्यः पद्मलेश्या असंख्यातगुणाः a a तेभ्यस्तेजोलेश्याः संख्यातगुणाः a a १ तेभ्यः कपोतलेश्या अनंतानंतगुणाः १३– ।। ३– तेभ्य नीललेश्याः साधिकाः १३ । ३ तेभ्यः कृष्णलेश्याः साधिकाः १३– ३– इति षडपि लेश्याः षोडशाधिकारैर्वर्णिता भवंति ॥ ५५५ ॥ अथालेश्यजीवानाह—

स० चं०—भावकरि छहौ लेश्या औदायिक भावरूप जाननी जातैं कषाय संयुक्त योगनिकी प्रवृत्तिका नाम लेश्या है त दोऊ कर्मनिके उदयतैं हो है। इति भावाधिकारः ॥ १५ ॥

बहुरि तिनि लेश्यानिका अल्प बहुत्व पूर्वें संख्या अधिकारविषैं द्रव्यप्रमाणकरि ही सिद्ध है। जिनका प्रमाण थोडा सो अल्प जिनिका प्रमाण घणा सो बहुत। तहां सबतैं थोरे शुक्ललेश्यावाले जीव हैं ते पाणि असंख्यात है। तिनितैं असंख्यातगुणे पद्मलेश्यावाले जीव हैं। तिनितैं संख्यातगुणे तेजोलेश्यावाले जीव हैं। तिनितैं अनंतानंत गुणे कपोतलेश्यावाले जीव हैं। तिनितैं किछू अधिक नीललेश्यावाले जीव हैं तिनितैं किछू अधिक कृष्णलेश्यावाले जीव हैं ॥ ५५५ ॥ इति अल्पबहुत्वाधिकारः ॥१६॥ ऐसैं छहौ लेश्या सोलह अधिकारनिकरि वर्णन करी हुई जाननी। आगैं लेश्यारहित जीवनिकौं कहैं हैं—

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ॥ ५५६ ॥

कृष्णादिलेश्यारहिताः संसारविनिर्गता अनन्तसुखाः ।
सिद्धिपुरं संप्राप्ता अलेश्यास्ते ज्ञातव्याः ॥ ५५६ ॥

जी० प्र०—ये जीवाः कषायोदयस्थानयोगप्रवृत्त्यभावात् कृष्णादिलेश्यारहिताः तत एव पंचविधसंसारवाराशिविनिर्गताः, अतींद्रियानंतसुख संतृप्ताः स्वात्मोपलब्धिलक्षणां सिद्धिपुरं संप्राप्ताः ते अयोगकेवलिनः सिद्धाश्च अलेश्या जीवा इति ज्ञातव्याः ॥ ५५६ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां
जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु लेश्याप्ररूपणा नाम
पंचदशोऽधिकारः ॥ १५ ॥

स० चं०—जे जीव कषायनिके उदय स्थान लीएं योगनिकी प्रवृत्तिके अभावतें कृष्णादिलेश्यानिकरि रहित हैं तिसहीतैं पंचप्रकार संसार समुद्रतैं निकासि पार भए हैं। बहुरि अतींद्रिय अनंत सुखकरि तृप्त हैं बहुरि आत्माकी उपलब्धि है लक्षण जाका ऐसी सिद्धिपुरीकों सम्यक् पनैं प्राप्त भए हैं ते अयोगकेवली वा सिद्ध भगवान लेश्या रहित अलेश्य जानने ॥ ५५६ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंच संग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषै जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं लेश्या प्ररूपणा नाम पंद्रहां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १५ ॥

भव्यमार्गणाधिकार ॥ १६ ॥

जी० प्र० यस्य नाम्नापि नश्यंति निश्शेषानिष्टराशयः ।
फलंति वांछितार्थाश्च शांतिनाथं तमाश्रये ॥ १६ ॥

अथ भव्यमार्गणाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह—

स० चं०— इष्ट फलत सब होत पुनि, नष्ट अनिष्ट समाज ।
जास नामतैं सो भजौं, शांति नाथ जिनराज ॥ १६ ॥

आगें भव्य मार्गणाका अधिकार च्यारि गाथानिकरि कहै हैं—

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाऽभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ॥ ५५७ ॥

भव्या सिद्धिर्येषां जीवानां ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
तद्विपरीता अभव्याः संसारान्न सिद्ध्यन्ति ॥ ५५७ ॥

जी० प्र०—भव्या भवितुं योग्या भाविनी वा सिद्धिः अनंतचतुष्टयरूपस्वस्वरूपोपलब्धिर्येषां ते भव्यसिद्धाः । अनेन सिद्धेर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्यानां द्वैविध्यमुक्तं । तद्विपरीताः उक्तलक्षणद्वयरहिताः, ते अभव्या भवंति अत एव ते अभव्या न सिद्ध्यंति संसारान्निःसृत्य सिद्धिं न लभंते ॥ ५५७ ॥ एवं द्विविधानामपि भव्यानां सिद्धिलाभप्रसक्तौ तद्योग्यतामात्रवतामुपपत्तिपूर्वकं तां परिहरति—

स० चं०—भव्याः कहिए होनेयोग्य वा होनहार है सिद्धि कहिए अनंत चतुष्टय रूप स्वरूपकी प्राप्ति जिनिकैं ते भव्य सिद्ध जानने याकरि सिद्धिकी प्राप्ति अर योग्यताकरि भव्यनिकै द्विविधपना कह्या है ॥ भावार्थ—भव्य दोय प्रकार हैं केई तो भव्य ऐसे हैं जे मुक्ति होनेकौं केवल योग्य ही हैं परि कबहू सामग्रीकौं पाइ मुक्त न होंइ । बहुरि केई भव्य ऐसे हैं जे काल पाइ मुक्त होहिंगे । बहुरि तद्विपरीताः कहिए पूर्वोक्त दोऊ लक्षण रहित जे जीव

मुक्त होने योग्य भी नहीं अर मुक्त भी होते नाही ते अभव्य जानने तातैं ते वे अभव्य जीव संसारतैं निकसि कदाचित मुक्तिकौ प्राप्त न हों हैं ऐसा ही कोई द्रव्यत्व भाव है ॥ ५५७ ॥ इहां कोऊ भ्रम करैगा जो अभव्य मुक्त न होइ तौ दोऊ प्रकारके भव्यनिकैं तौ मुक्त होना ठहऱ्या तौ जे मुक्त होनेकौं योग्य कहे थे तिन भव्यनिकैं भी कवहूं तौ मुक्ति प्राप्ति होसी सो ऐसे भ्रमकौं दूर करें हैं—

भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ॥५५८॥

भव्यत्वस्य योग्या ये जीवास्ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
न हि मलविगमे नियमात् तेषां कनकोपलानामिव ॥ ५५८ ॥

जी० प्र०—ये भव्यजीवाः भव्यत्वस्य सम्यग्दर्शनादिसामग्रीं प्राप्यानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमनस्य योग्याः केवलयोग्यतामात्रयुक्ताः ते भवसिद्धा संसारप्राप्ता एव भवंति। कुतः तेषां मलस्य विगमे विनाशकरणे केषांचित्कनकोपलानामिव नियमेन सामग्री न संभवतीति कारणात् ॥५५८॥

स० चं०—जे भव्य जीव भव्यत्व जो सम्यग्दर्शनादि सामग्रीकौं पाइ अनत चतुष्टय रूप होना ताकौं केवल योग्य ही हैं तद्रूप होनेके नाहीं ते भव्य सिद्ध हैं। सदा काल ससारकौं प्राप्त रहैं हैं। काहे तैं ? सो कहिए है—जैसैं केई सुवर्ण सहित पाषाण ऐसे हैं तिनकै कदाचित् मैल के नाश करनेकी सामग्री न मिलै तैसैं केई भव्य ऐसे हैं जिनकैं कर्म मल नाश करनेकी कदाचित सामग्री नियमकरि न संभवै है। भावार्थ—जैसे अहमिंद्र देवनिकैं नरकादि विषैं गमन करनेकी शक्ति है परंतु कदाचित् गमन न करैं तैसैं केई भव्य ऐसे हैं जे मुक्त होनेकौं योग्य हैं परंतु कदाचित् मुक्त न होंइ ॥ ५५८ ॥

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा ॥

ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥ ५५९ ॥

न च ये भव्या अभव्या मुक्तिसुखा अतीतानन्तसंसाराः ।
ते जीवा ज्ञातव्या नैव च भव्या अभव्याश्च ॥ ५५९ ॥

जी० प्र०—ये जीवा न च भव्याः नाप्यभव्याः मुक्तिसुखः अतीतानंतसंसाराः ते जीवा नैव भव्या भवंति, नाप्यभव्या भवंति इति ज्ञातव्याः ॥ ५५९ ॥ अत्र जीवसंख्यामाह—

स० चं०—जे जीव केई नवीन ज्ञानादिक अवस्थाकौं प्राप्त होनेके नाहीं तातैं भव्य भी नाहीं। अर अनंत चतुष्टय रूप भए तातैं अभव्य भी नाहीं ऐसे मुक्ति सुखके भोक्ता अनंतसंसाररहित भए ते जीव भव्य भी नाहीं अर अभव्य भी नाहीं. जीवत्व पारिणामिककौं धरें हैं ऐसे जानने ॥ ५५९ ॥ इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं ।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥ ५६० ॥

अवरो युक्तानन्तः अभव्यराशेर्भवति परिमाणं ।
तेन विहीनः सर्वः संसारी भव्यराशेः ॥ ५६० ॥

जी० प्र०—जघन्ययुक्तानंतोऽभव्यराशिपरिमाणं भवति । ज जु अ । तेन अभव्यराशिहीनः सर्वसंसारिराशिः भव्यराशिप्रमाणं भवति १३— अत्र संसारिणां परिवर्तनमुच्यते । परिवर्तनं परिभ्रमणं संसार इत्यनर्थांतरं । तत् द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेदात्पंचधा । तत्र द्रव्यपरिवर्तनं कर्मनोकर्मभेदाद्द्वेधा । तत्र नोकर्मपरिवर्तनं नाम शरीरत्रयस्य षट्पर्याप्तीनां च योग्याः पुद्गलाः केनचिज्जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगंधादिभिः तीव्रमंदमध्यमभावेन यथावस्थिताः द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः, अगृहीताननंतवारानतीत्य मिश्रकाननन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताननन्तवारानतीत्य त एव पुद्गलाः तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावं गच्छेयु तावान् समुदितकालो नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं भवति । तद्यथा—तत्पुद्गलपरिवर्तनकालोऽगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणाद्धा मिश्रग्रहणाद्धेति त्रिविधः । तत्र अगृहीतग्रहणकालः अगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणकालो गृहीतग्रहणाद्धा युगपदुभयग्रहणकालो मिश्रग्रहणाद्धा । तेषां परिवर्तनक्रमोऽयं विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयादारभ्य निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य

सकृन्मिश्रग्रहणं, पुनः निरंतरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं, एवमनन्तानि मिश्रग्रहणानि । ततः निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृत् गृहीतग्रहणं । एवं गृहीतेष्वपि अनंतेषु जातेषु प्रथमपरिवर्तनं भवति । ततोऽन्ये निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । पुनः निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । एवमनंतानि अगृहीतग्रहणानि । ततः निरंतरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृद् गृहीतग्रहणं । एवं गृहीतेष्वप्यनंतेषु जातेषु द्वितीयपरिवर्तनं भवति । ततोऽन्ये निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । पुनः निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । एवं गृहीतग्रहणानि अनंतानि । ततः निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं एवमगृहीतग्रहणेष्वप्यनंतेषु जातेषु तृतीयपरिवर्तनं भवति । ततोऽन्ये निरन्तरं गृहीतानंतवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं । पुनः गृहीताननंतवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं । एवं मिश्रग्रहणानि अनंतानि । ततः निरंतरं गृहीताननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । एवमगृहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु चतुर्थपरिवर्तनं भवति । तदनंतरसमये विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयगृहीताः अनंता द्वितीयादिसमयनिर्जीर्णा ये नोकर्मसमयप्रबद्धपुद्गलास्त एव तादृशा एव शुद्धा आगत्य आश्रयंति तदेतत्सर्वं मिलितं नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनं भवति । कर्मपुद्गलपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये केन चिज्जीवेन अष्टविधकर्मभावेन ये गृहीताः समयाधिकावलिकालमतीत्य द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तक्रमेणैव त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य कर्मभावं प्राप्नुवंति तावत्कालं कर्मपुद्गलपरिवर्तनं भवति । शेषसर्वविशेषो नोकर्मपरिवर्तनवत् ज्ञातव्यः । अनयोः कालौ समानौ । अत्रागृहीतग्रहणकालः अनन्तोऽपि सर्वतः स्तोकः । कुतः, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारपुद्गलानां बहुवारग्रहणाघटनात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये गृहीतानामेव बहुवारग्रहणं संभवतीत्युक्तं भवति । उक्तं च—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १ ॥

सूक्ष्मस्थितिसंयुक्तमासन्नं कर्मनिर्जरामुक्तं ।
प्रायेणैति ग्रहणं द्रव्यमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥ १ ॥

अल्पस्थितिसंयुक्तं जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्जरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपरहितं जीवेन प्रचुरवृत्त्या स्वीक्रियते । कुतः ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कारसंपन्नत्वात् । अगृहीतग्रहणकालात् मिश्रग्रहणकालोऽनंतगुणः । ख ख । ततो जघन्यगृहीतग्रहणकालोऽनंतगुणः । ख ख ख । ततो जघन्यपुद्गलपरिवर्तनकालो विशेषाधिकः । अधिकप्रमाणमिदं ख ख ख अपवर्त्य तत्र निक्षिप्ते

१—   १—   ख

एवं ज = पु । ख ख ख ततः उत्कृष्टगृहीतग्रहणकालः अनंतगुणः ख ख ख ख तत उत्कृष्टपुद्गलपरावर्तनकालो विशेषाधिकः । तद्विशेषप्रमाणमिदं ख ख ख ख, अपवर्त्य निक्षिप्ते एवं ख ख ख ख अत्रागृहीतमिश्रग्रहणकालयोर्जघन्योत्कृष्टभावौ न इत्यवधार्यं । तथाविधपरमगुरूप-

१—   १—   १—   ख

देशाभावात् । संदृष्टिः

उ = गृ = ख ख ख (१–) ख			उ = पु = ख ख ख (१–) ख (१–)		
ज = गृ = ख ख ख			ज = पु = ख ख ख (१–)		
मिश्र ख ख			०		
अगृहीत ख			०		

अत्रागृहीतस्य संदृष्टिः शून्यं मिश्रस्य हंसपदं, गृहीतस्यांकः, अनंतवारस्य द्विवारः । तत्संदृष्टिः—

० ० +	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + ०
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

अत्रोपयोगिगाथासूत्रं—

अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ॥ २ ॥

अगृहीतं मिश्रं गृहीतं मिश्रमगृहीतं तथैव गृहीतं च ।
मिश्रं गृहीतमगृहीतं गृहीतं मिश्रमगृहीतं च ॥ २ ॥

अत्रोपयोग्यार्याद्वयं ।

सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु एकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥

१ + ०
\+ १ ०
\+ ० १
० + १

क्षेत्रपरिवर्तनमपि स्वपरभेदाद्द्वेधा तत्र स्वक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनेनोत्पन्नः स्वस्थितिं १ जीवित्वा
१८

मृतः पुनः प्रदेशोत्तरावगाहनेन उत्पन्नः । एवं द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमेण महामत्स्यावगाहनपर्यंताः संख्यातघनांगुल ६ ७ प्रमितावगाहनविकल्पाः तेनैव जीवेन यावत्स्वीकृताः तत् सर्वं समुदितं स्वक्षेत्रपरिवर्तनं भवति । परक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—सूक्ष्मनिगोदः अपर्याप्तकः सर्वजघन्यावगाहनशरीरः लोकमध्याष्टप्रदेशान् स्वशरीरमध्याष्टप्रदेशान् कृत्वा उत्पन्नः क्षुद्रभवकाल जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैव अवगाहनेन द्विवारं तथा त्रिवारं तथा चतुर्वारं एवं यावत् घनांगुलासंख्येयभागः तावद्वारं तत्रैवोत्पन्नः, पुनः एकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वलोकं स्वस्यजन्मक्षेत्रभावं नयति । तदेतत्सर्वं परक्षेत्रपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रो देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्रसंसारे बंभ्रमता जीवेन जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रे स्वशरीरावगाहनरूपेणास्पृष्टप्रदेशो नास्ति । अवगाहनानि बहुवारं यानि न स्वीकृतानि तानि न संति । कालपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः उत्सर्पिणीप्रथमसमये जातः स्वायुःपरिसमाप्तौ मृतः, पुनर्द्वितीयोत्सर्पिणीद्वितीयसमये जातः स्वायुः परिसमाप्त्या मृतः पुनः तृतीयोत्सर्पिणीतृतीयसमये जातः तथा मृतः, पुनः चतुर्थोत्सर्पिणीचतुर्थसमये जातः अनेन क्रमेण उत्सर्पिणीं समाप्नोति तथावसर्पिणीमपि समाप्नोति एवं जन्मनैरंतर्यमुक्तं । मरणस्याप्येवं नैरंतर्यं ग्राह्यं । तदेतत्सर्वं कालपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

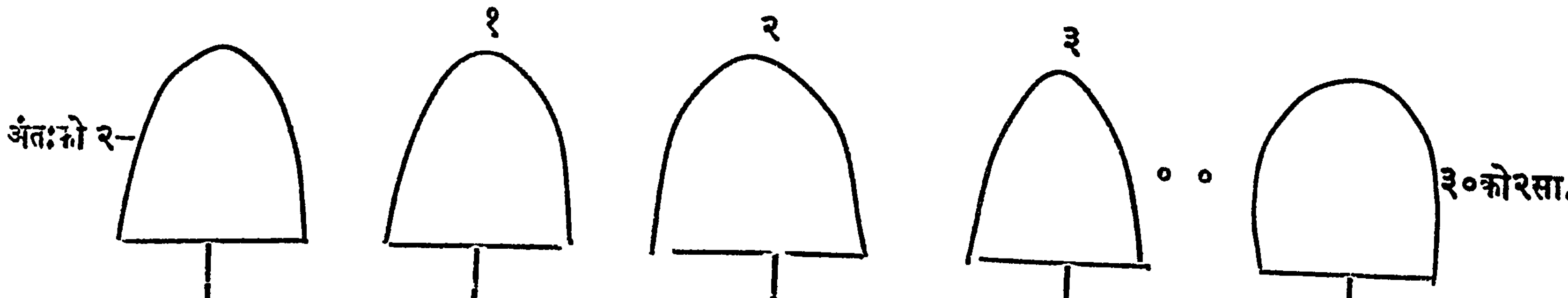
उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥

उत्सर्पणावसर्पणयोः सर्वसमयमालायां क्रमेण उत्पन्नः मृतश्च अनंतवारकालसंसारे परिभ्रमन् जीवः । भवपरिवर्तनमुच्यते—नरकगतौ सर्वजघन्यायुर्दशसहस्रवर्षाणि तेनायुषा तत्रोत्पन्नः पुनः संसारे भ्रांत्वा तेनैव आयुषा तत्रैवोत्पन्नः एवं दशसहस्रवर्षसमयवारं तत्रैवोत्पन्नो मृतः पुनः एकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यंते । पश्चात् तिर्यग्गतौ अंतर्मुहूर्तायुषा उत्पन्नः प्राग्वत् अंतर्मुहूर्तसमयवारमुत्पन्नः उपरिसमयाधिकभावेन त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यंते । एवं मनुष्यगतावपि त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यंते । नरकगतिवद्देवगतावपि दशसहस्रवर्षसमयसमाप्तेरुपरि समयोत्तरक्रमेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यंते । एवं भ्रांत्वागत्य पूर्वोक्तजघन्यस्थितिको नारको जायते । तदा तदेतत्सर्वं भवपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु ।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ॥

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानायुष्यस्थितौ मिथ्यात्वोदयाश्रितजीवेन भवस्थितयोऽनुभविता बहुवारं स्फुटं । भावपरिवर्तनमुच्यते—कश्चित्पंचेंद्रियसंज्ञिपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिर्जीवः स्वयोग्यसर्वजघन्यां ज्ञानावरणप्रकृतिस्थितिं अंतःकोटाकोटिप्रमितां बध्नाति । सागरोपमैककोट्या उपरि द्विवारकोट्या मध्यं अंतःकोटाकोटिरित्युच्यते । तस्य जीवस्य कषायाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि जघन्यस्थितियोग्यानि । तत्र

सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तानि अनुभागाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि । एवं सर्वजघन्यस्थितिं सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यानुभागबंधाध्यवसायस्थानं च प्राप्तस्य तद्योग्यसर्वजघन्यं योगस्थानं भवति । तेषामेव स्थितिकषायाध्यवसायानुभागस्थानानां द्वितीयं असंख्येयभागयुक्तं योगस्थानं भवति । एवमसंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्ध्याख्यचतुःस्थानवृद्धिपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागमितानि योगस्थानानि भवंति । तथा तामेव स्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानमास्कंदतो द्वितीयमनुभागबंधाध्यवसायस्थान भवति। तस्यापि योगस्थानानि पूर्वोक्तान्येव ज्ञातव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि अनुभागाध्यवसायस्थानेषु असंख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्यंतेषु प्रत्येकं योगस्थानानि वेतव्यानि । एवं तामेव स्थितिं प्राप्नुवतो द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति तस्यापि अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च प्राग्वत् ज्ञातव्यानि । एवं तृतीयादिकषायाध्यवसायस्थानेषु संख्यातलोकमात्रपरिसमाप्तिपर्यंतेषु आवृत्तिक्रमो ज्ञातव्यः । ततः समयाधिकस्थितेरपि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि प्राग्वत् असंख्येयलोकमात्राणि भवंति । एवं समयाधिकक्रमेण उत्कृष्टस्थितिपर्यंतं त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितस्थितेरपि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च ज्ञातव्यानि । एवं मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो ज्ञातव्यः । तदेतत्समुदितं भावपरिवर्तनं भवति । संदृष्टिः—



कषाय	जघ०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३००उ
अनुभाग	जघ०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३००उ
योग	जघ.००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००उ

अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि ।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ॥

अत्र स्थितिबंधाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतानि पुनः अनुभागबंधाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतानि योगस्थानजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतानि च सर्वजघन्यस्थितिसंबंधीनि आदिं कृत्वा सर्वोत्कृष्टस्थितिपर्यंतं तत्तत्संबंधीनि संस्थाप्य अक्षसंचारक्रमेण भावसंसारे अनुभूतस्थित्यादिस्थितिबंधाध्यवसायादीन् साधयेदित्यर्थः। अत्रैव पुद्गलपरावर्तनकालः अनंतः। ततः क्षेत्रपरिवर्तनकालः अनंतगुणः। ततः कालपरिवर्तनकालः अनंतगुणः, ततो भवपरिवर्तनकालः अनंतगुणः ततो भावपरिवर्तनकालः अनंतगुणः। संदृष्टिः—

भव ख ख ख ख ख ख एकजीवस्य अतीतकाले भावपरिवर्तनवारा अनंताः। तेभ्यः भवपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः, तेभ्यः कालपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। तेभ्यः क्षेत्रपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। तेभ्यः द्रव्यपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। संदृष्टिः—

भव ख ख ख ख
काल ख ख ख
क्षेत्र ख ख
द्रव्य ख

द्रव्य ख ख ख ख ख
क्षेत्र ख ख ख ख
काल ख ख ख
भव ख ख
भाव ख

अत्रोपयोगि आर्यावृत्तमाह—

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रकृतायां गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु भव्यमार्गणाप्ररूपणानाम षोडशोऽधिकारः ॥ १६ ॥

स० चं०—जघन्य युक्तानंत प्रमाण अभव्य राशिका प्रमाण है बहुरि संसारी जीवनिके परिमाणमें अभव्य राशिका परिमाण घटाएं अवशेष रहे तितना भव्य राशिका प्रमाण है। इहां संसारी जीवनिके परिवर्तन कहिए है—परिवर्त्तन अर परिभ्रमण संसार ए एकार्थ हैं सो द्रव्य १ क्षेत्र २ काल ३ भव ४ भाव ५ भेदतैं परिवर्तन पंच प्रकार हैं तहां द्रव्य परिवर्तन दोय प्रकार है-एक कर्मद्रव्यपरिवर्तन, एक नोकर्मद्रव्य परिवर्तन। तहां नोकर्म द्रव्य परिवर्तन कहिए है—

किसी जीवनें औदारिकादिक तीन शरीरनिविषैं किसी ही शरीर संबंधी छह पर्याप्ति रूप परिणमनेकौं योग्य

पुद्गल किसी एक समयमैं ग्रहे ते स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंधादिक करि तीव्र मंद मध्य भाव लीए यथा संभव ग्रहे बहुरि ते द्वितीयादि समयनिविषैं निर्जरा रूप कीए। बहुरि अनंतवार अगृहीतनिकौं ग्रहिकरि छोडे अनंतवार मिश्रनिकौं ग्रहिकरि छोड़े वीचि गृहीतनिकौं अनंतवार ग्रहिकरि छोड़े ऐसैं भए पीछैं जे पहिले समय पुद्गल ग्रहे तेई पुद्गल तैसैं ही स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंधादिक करि तिसही जीवकैं नोकर्म भावकौं प्राप्त होंइ तितना समुदायरूप काल मात्र नोकर्म द्रव्य परिवर्तन है। जीवकरि पूर्वैं ग्रहे होंइ ऐसे परमाणू जिन समयप्रबद्धरूप स्कंधनिविषैं होंइ ते गृहीत कहिए। बहुरि जीवकरि पूर्वैं न ग्रहे ऐसे परमाणू जिनिविषैं होंइ ते अगृहीत कहिए। गृहीत अर अगृहीत दोऊ जातिके परमाणू जिनिविषैं होंइ ते मिश्र कहिए। इहां कोऊ कहै अगृहीत परमाणू कैसे हैं? ताका सामाधान-सर्व जीवराशिके प्रमाणकौं समय प्रबद्धके परमाणूनिका परिमाणकरि गुणिए बहुरि जो प्रमाण आवैं ताकौं अतीतकालके समयनिका परिमाणकरि गुणिए जो प्रमाण होइ तिसतैं भी पुद्गल द्रव्यका प्रमाण अनंत गुणा है जातैं जीव राशितैं अनंत वर्गस्थान गए पुद्गलराशि हो है तातैं अनादिकाल नाना जीवनिकी अपेक्षा भी अगृहीत परमाणू लोकविषैं बहुत पाइए है। बहुरि एक जीवका परिवर्तन कालकी अपेक्षा नवीन परिवर्तनका प्रारंभ भया तब सर्व ही अगृहीत भए पीछैं ग्रहे तेई गृहीत हो हैं सो इहां जिस अपेक्षा गृहीत अगृहीत मिश्र कहे हैं सो यथासंभव जानना। अब विशेष दिखाइए है—

पुद्गल परिवर्तनका काल तीन प्रकार है तहां अगृहीतके ग्रहणका काल सो अगृहीतग्रहणकाल है, गृहीत के ग्रहण का काल सो गृहीत ग्रहणकाल है। मिश्रके ग्रहणका काल सो मिश्रग्रहणकाल है। सो इनिका परिवर्तन जो पलटना सो कैसे हो है? सो अनुक्रम यंत्रकरि दिखाइए है—

यंत्रविषैं अगृहीतकी सहनानी तो विंदी ॥ ० ॥ जाननी अरु मिश्रकी सहनानी हंसपद ॥ + ॥ जाननी अर गृहीतकी सहनानी एकका अंक ॥ १ ॥ जाननी अर दोयवार लिखनेतैं अनंतवार जानि लेना।

द्रव्य परिवर्तनका यंत्र।

० ० +	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	++ १	+ + १	+ + ०
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

तहां विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तनका पहिले समयतें लगाइ प्रथम वार समयप्रवद्धविषें अगृहीतका ग्रहण करै, दूसरी वार अगृहीतहीका ग्रहण करै, तीसरी वार अगृहीतहीका ग्रहण करै ऐसें निरंतर अनंत वार अगृहीतका ग्रहण होइ निवरै तव एकवार मिश्रका ग्रहण करै। याहीतें यंत्रविषें पहिले कोठाविषें दोयवार विंदी एकवार हसपद लिख्या। वहुरि तहां पीछें तैसें ही निरंतर अनंतवार अगृहीतका ग्रहणकरि एकवार मिश्रका ग्रहण करै ऐसें ही अनुक्रमतें अनंत अनंतवार अगृहीतका ग्रहणकरि एक एक वार मिश्रका ग्रहणकरै ऐसें ही मिश्रका भी ग्रहण अनंतवार हो है याहीतें अनंतवारकी सहनानीके निमित्त यंत्रविषें जैसा पहिला कोठा था तैसाही दूसरा कोठा लिख्या। वहुरि तहां पीछें तैसेंही निरंतर अनंतवार अगृहीतका ग्रहणकरि एकवार गृहीतका ग्रहण करे, याहीतें तीसरा कोठाविषें दोय विंदी अर एकका अंक लिख्या। वहुरि अगृहीत ग्रहण आदि अनुक्रमतें जैसें यहु एकवार गृहीत ग्रहण भया तैसें ही अनुक्रमतें एक एकवार गृहीत ग्रहणकरि अनंतवार गृहीत ग्रहण हो है। याहीतें जैसें तीन कोठे पहिलें लिखे थे तैसें ही अनंतकी सहनानीके निमित्त दूसरा तीन कोठे लिखे सो ऐसें होतें प्रथम परिवर्तन भया। तातें इतनां प्रथमपंक्तिविषें लिखा। अव दूसरी पंक्तिका अर्थ दिखाइए है—

पूर्वोक्त अनुक्रम भए पीछे निरंतर अनंतवार मिश्र ग्रहण करै तव एक वार अगृहीत ग्रहण करै। यातें प्रथम कोठाविषै दोय हंसपद अर एक विंदी लिखी। वहुरि निरंतर अनंतवार मिश्र ग्रहण करि एकवार अगृहीत ग्रहण करै सो इस ही क्रमतें अनंतवार अगृहीत ग्रहणकरै यातें पहला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या। वहुरि तहां

पीछैं निरंतर अनंतवार मिश्र ग्रहणकरि एकवार गृहीत ग्रहण करै यातैं तीसरा कोठाविषै दोय हंसपद अर एक एकका अंक लिख्या। सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम लीए एक एक वार गृहीत ग्रहण होइ सो ऐसैं गृहीत ग्रहण भी अनंतवार हो है यातैं जैसे पहिले तीन कोठे लिखे थे तैसे ही तीन कोठे लिखे ऐसैं होत संते दूसरा परिवर्तन भया। अव तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है—

पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरंतर अनंतवार मिश्रका ग्रहणकरि एकवार गृहीतका ग्रहण करै यातैं प्रथम कोठाविषैं दोय हंसपद अर एक एकका अंक लिख्या सो अनंत अनत बार मिश्र ग्रहण करिकरि एक एक बार गृहीत ग्रहण करि अनंतबार गृहीत ग्रहण हो है यातैं पहिला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या। बहुरि अनंतवार मिश्रका ग्रहण करि एकबार अगृहीतका ग्रहण करै। यातैं तीसरा कोठाविषैं दोय हंसपद अर एक विंदी लिखी सो जैसैं मिश्र ग्रहणादि अनुक्रमतैं एकबार अगृहीतका ग्रहण भया तैसैं ही एक एक वार करि अनंतवार अगृहीतका ग्रहण हो है तातैं पहिले तीन कोठे थे तैसैं ही दूसरा तीन कोठे लिखे ऐसैं होत संतैं तीसरा परिवर्तन भया आगै चौथी पंक्तिका अर्थ दिखाइए है—

पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरंतर अनंतवार गृहीतका ग्रहणकरि एकवार मिश्रका ग्रहण करै यातैं प्रथम कोठाविषैं दोय एका अर एक हंसपद लिख्या है। सो अनंत अनंतवार गृहीतका ग्रहणकरि करि एक एकवार मिश्र ग्रहण करि अनंतवार मिश्रका ग्रहण हो है। यातैं प्रथम कोठा सारिखा दूसरा कोठा कीया। बहुरि तहां पीछैं अनंतवार गृहीतका ग्रहणकरि एकवार अगृहीतका ग्रहण करै यातैं तीसरा कोठाविषै दोय एका अर एक विंदी लिखी। बहुरि चतुर्थ परिवर्तनकी आदितैं जैसा अनुक्रम करि यहु एकवार अगृहीत ग्रहण भया तैसैं ही अनुक्रमतैं अनंतवार अगृहीत ग्रहण होइ यातैं पहिलै तीन कोठे कीए थे तैसैं ही आगैं अनंतवारकी सहनानीके अर्थि दूसरा तीन कोठें कीए ऐसैं होते संते चतुर्थ परिवर्तन भया। बहुरि तीहिं चतुर्थ परिवर्तनका अनंतर समयविषैं विवाक्षित नोकर्म द्रव्य परिवर्तनके पहिले समयविषै जे पुद्गल जिस स्निग्धरूक्ष वर्ण गंधादि भावकौं लीए ग्रहण कीए थे तेई पुद्गल

...कर्मपुद्गलपरिवर्तन कहिए है—

किसी जीवने एक समयविषैं आठ प्रकार कर्मरूप जे पुद्गल ग्रहे ते एक समय अधिक आवली प्रमाण आबाधा कालकौं गए पीछैं द्वितीयादि समयनिविषैं निर्जरारूप कीए पीछैं जैसा अनुक्रम आदितैं लगाइ अंतपर्यंत नोकर्म द्रव्य परिवर्तनविषैं कह्या तैसाही अनुक्रम सर्व चार्‍यो परिवर्तनसंबंधी इस कर्मद्रव्यपरिवर्तनविषैं जानना। विशेष इतना—तहां नोकर्मसंबंधी पुद्गल थे इहां कर्मसंबंधी पुद्गल जानने अनुक्रमविषैं किछू विशेष नाही। पीछैं पहिले समय जैसे पुद्गल ग्रहे थे तेई पुद्गल तिसही भावकौं लीए चतुर्थ परिवर्तनके अनंतर समयविषैं ग्रहण होइ सो यहु सर्व मिल्या हूवा संपूर्ण कर्मपरिवर्तन जानना। इस द्रव्य परिवर्तनकौं पुद्गल परिवर्तन भी कहिए हैं। सो नोकर्म पुद्गलपरिवर्तनका अर कर्मपुद्गलपरिवतनका काल समान है। बहुरि इहां इतनां जानना—पूर्वें जो क्रम कह्या तहां जैसैं पहिले अनंतवार अगृहीतका ग्रहण कह्या तहां वीचि वीचिमैं गृहीत ग्रहण वा मिश्रग्रहण भी होइ सो अनुक्रम विषैं तो पहिलीवार अर दूसरी वार आदि जो अगृहीत ग्रहण होइ सोई गिणनेमैं आवै है। अर काल परिमाणविषैं गृहीत मिश्र ग्रहणका समय सहित सर्व काल गिणनेमैं आवै है। जिनि समयनिविषैं गृहीतका ग्रहण है ते समय गृहीत ग्रहणके कालविषैं गिणनेमैं आवैं हैं। जिनि समयनिविषैं मिश्रका ग्रहण है ते समय मिश्र ग्रहणके कालविषैं गिणनेमैं आवै है। जिन समयनि विषै अगृहीत ग्रहण हो है ते समय अगृहीत ग्रहण काल विषै गिणनेमैं आवै हैं सो यहु उदाहरण कह्या है ऐसैं ही सर्वत्र जानना। क्रमविषैं तौ जैसा अनुक्रम कह्या होइ तैसैं होइ तबही गिणनेमैं आवै अर तिसातिस अनुक्रमके वीचि कोई अन्यरूप प्रवर्तैं सो अनुक्रमविषैं गिणनेमैं नाही अर जिनि समयनिविषैं अन्यरूप भी प्रवर्तैं है तिनिं समयनिरूप जो काल सो परिवर्तनका कालविषैं गिणनेमैं आवै ही है। ऐसैं ही क्षेत्रादि परिवर्तनविषैं भी जानना। जैसे क्षेत्र परिवर्तनविषैं किसी जीवने जघन्य अवगाहना पाई, परिवर्तन प्रारंभ कीया पीछैं केते एक काल अनुक्रमरहित अवगाहना पाई पीछे अनुक्रमरूप अवगाहनाकौं प्राप्त

भया तहां क्षेत्र परिवर्तनका अनुक्रमविषैं तो पाहिले जघन्य अवगाहना पाई थी अर पीछैं दूसरीवार अनुक्रमरूप अवगाहना पाई सो गिणनेमें आवै है। अर क्षेत्र परिवर्तनका कालविषैं वीचिमें अनुक्रमरहित अवगाहना पावनेका काल सहित सर्वकाल गिणनेमें आवै है ऐसैं ही सर्वविषैं जानि लेना। अब इहां द्रव्य परिवर्तनविषैं कालका परिमाण कहैं हैं—

तहां अगृहीत ग्रहणका काल अनंत है तथापि यहु सर्वतैं स्तोक है जातैं जिनि पुद्गलनिस्यौं द्रव्य क्षेत्र काल भावनिका संस्कार नष्ट है ते पुद्गल बहुतवार ग्रहणमें आवते नाही याहीतैं विवक्षित पुद्गल परिवर्तनके मध्य गृहीत पुद्गलनिका ही बहुतवार ग्रहण संभवै है। सोई कह्या है—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं॥

जे पुद्गल कर्मरूप परिणए थे अर जिनकी स्थिति थोरी थी अर निर्जरा होते कर्म अवस्थाकरि रहित भए हैं अर जीवके प्रेदशनिस्यों एक क्षेत्रावगाही तिष्ठै हैं अर संस्थान आकार जिनिका कह्या न जाय अर विवक्षित पुद्गल परिवर्तनका पाहिला समयविषैं जिसस्वरूप ग्रहणमें आए तिसकरि रहित होंइ ऐसे पुद्गल जीवकरि बाहुल्य पनै समयप्रबद्धनिविषै ग्रहण कीजिए है। ऐसा नियम नाहीं जो ऐसे ही पुद्गलनिका ग्रहण करै, परंतु बहुतवार ऐसे ही पुद्गलनिका ग्रहण हो है जातैं ए पुद्गल द्रव्य क्षेत्र काल भावका संस्कार करि संयुक्त हैं। बहुरि अगृहीत ग्रहणके कालतैं मिश्र ग्रहणका काल अनंत गुणा है। बहुरि तिस मिश्र ग्रहणके कालतैं गृहीत ग्रहणका जघन्यकाल अनंत गुणा हैं। बहुरि तिसतैं सर्व पुद्गल परिवर्तनका जघन्य काल किछू अधिक है। जघन्य गृहीत ग्रहण कालकौं अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण कालविषैं मिलाइए तब जघन्य पुद्गल परिवर्तनका काल हो है। बहुरि तिसतैं गृहीत ग्रहणका उत्कृष्ट काल अनंत गुणा है. बहुरि तातैं संपूर्ण पुद्गल परिवर्तनका उत्कृष्ट काल किछू अधिक है। उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण कालकौं अनंतका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितना उत्कृष्ट

गृहीत ग्रहण कालविषैं मिलाइए तव उत्कृष्ट पुद्गल परिवर्तनका काल हो है। इहां अगृहीत ग्रहण काल अर मिश्र ग्रहण कालविषैं जघन्य उत्कृष्टपना नाहीं है जातैं परंपरा सिद्धांतविषै तिनके जघन्य उत्कृष्टपनेका उपदेशका अभाव है इहां प्रासंगिक उक्तं च गाथा कहैं हैं—

अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ॥

पहिला अगृहीत मिश्र गृहीतरूप दूसरा मिश्र अगृहीत गृहीतरूप तीसरा मिश्र गृहीत अगृहीतरूप चौथा गृहीत मिश्र अगृहीतरूप परिवर्तन भए द्रव्य परिवर्तन हो है सो विशदरूप पूर्वै कह्या ही है। उक्तं च आर्या छंद—

सर्वेऽपि पुद्गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥

एकै जीव पुद्गल परिवर्तनरूप संसारविषैं यथा योग्य सर्व पुद्गल वारंवार अनंतवार ग्रहि छांडे है। आगै क्षेत्रपरिवर्तन कहिए है—सो क्षेत्रपरिवर्तन दोय प्रकार—एक स्वक्षेत्र परिवर्तन. एक परक्षेत्रपरिवर्तन। तहां स्वक्षेत्र परिवर्त्तन कहिए है—कोई जीव सूक्ष्मनिगोदियाकी जघन्य अवगाहनाकौं धारि उपज्या अपना सांसका अठारहवां भाग प्रमाण आयुकौं भोगि मूवा वहुरि तिसतैं एक प्रदेश वधती अवगाहनाकौं धरै पीछे दोय प्रदेश वंधती अवगाहनाकौं धरै ऐसैं एक एक प्रदेश अनुक्रमतैं वंधती वंधती महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहनाके भेदनिकौं सोई जीव प्राप्त होइ। जे अवगाहनाके भेद हैं ते सर्व एक जीव अनुक्रमतैं यावत्कालविषैं धारै सो यहु सर्व समुदायरूप स्वक्षेत्रपरिवर्तन जानना। अव परक्षेत्र परिवर्तन कहिए है—

सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जघन्य अवगाहनारूप शरीरका धारक सो लोकाकाशके मध्य जे आठ आकाशके प्रदेश हैं तिनकौं अपने शरीरकी अवगाहनाके मध्यवर्ती आठ प्रदेशकरि अवशेष उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेश तिनकौं रोककरि उपज्या सांसका अठारहवां भाग मात्र क्षुद्रभवकाल जीयकरि मूवा वहुरि सोई जीव

तैसैं ही अवगाहनाकौं धारि तिसही क्षेत्रविषैं दूसरा उपज्या सो ऐसैं घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य अवगाहनाके जेते प्रदेश हैं तितनी वार तो तैसैं ही उपज्या, पीछे तहांस्यों एक प्रदेश आकाशका उसके निकटवर्ती ताकौं रोकिकरि उपज्या ऐसैं अनुक्रमतैं एक एक प्रदेशकरि सर्व लोकाकाशके प्रदेशनिकौं अपना जन्मक्षेत्र करै सो यहु सर्व परक्षेत्रपरिवर्तन है। उक्तं च—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः।
अवगाहनानि वहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्र संसारविषैं भ्रमण करता जीवकरि जाका अपने शरीरकी अवगाहनाकरि स्पर्श न कीया ऐसा सर्व जगच्छ्रेणीका घन प्रमाण लोकविषैं कोई प्रदेश नाहीं है बहुरि जाका बहुतवार अंगीकार न कीया ऐसा कोई अवगाहनाका भेद भी नाहीं। आगैं कालपरिवर्तन कहिये है—

कोई जीव उत्सर्पिणी कालका पहिला समयविषैं उपज्या अपना आयुकौं पूर्णकरि मूवा, बहुरि दूसरा उत्सर्पिणी कालका दूसरा समयविषैं उपज्या अपना आयुकौं पूर्णकरि मूवा, बहुरि तीसरी उत्सर्पिणी कालका तीसरा समयविषैं उपज्या तैसैं ही मूवा, ऐसैं दश कोडाकोडि सागर प्रमाण उत्सर्पिणी कालके जेते समय हैं तिनकौं पूर्ण करै। पीछै इसही अनुक्रमतैं दश कोडाकोडी प्रमाण अवसर्पिणी कालके जेते समय हैं तिनकौं पूर्ण करै। बहुरि जैसैं जन्मकी अपेक्षा अनुक्रम कह्या तैसैं ही मरणकी अपेक्षा अनुक्रम जानना। पहिले समयविषैं मूवा दूसरे समयविषैं मूवा ऐसैं कल्पकाल समयनिकौं पूर्ण करै सो यहु सर्व मिल्या हूआ कालपरिवर्तन जानना। उक्तं च—

उत्सर्पिण्यवसर्पिणिसमयावलिकासु निरवशेषासु।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥

काल संसारविषैं भ्रमण करता जीव उत्सर्पिणी अवसर्पिणीरूप कल्पकालका समस्त समय तिनकी पंकतिविषैं क्रमतैं बहुतबार जन्म धर्‍या है अर मरण कीया है। आगैं भवपरिवर्तन कहे हैं—

कोऊ जीव नरक गतिविषैं जघन्य आयु दशहजार वर्षकी धारि उपज्या, पीछैं मरणकरि संसारविषैं भ्रमणकरि तहां ही जघन्य दश हजार वर्षकी आयुकौं धारि उपज्या, ऐसैं दश हजार वर्षके जेते समय होंहिं तितनीवार तौ जघन्य आयुकौं ही धारि धारि उपजै अर मरै, पीछैं दश हजार वर्ष अर एक समयका आयुकौं धारि उपजै पीछैं दश हजार दोय समयके आयुकौं धारि उपजैं ऐसैं एक एक समय वधता अनुक्रमतैं उत्कृष्ट आयुमात्र तेतीस सागर पूरण करै पीछै तिर्यंच गतिविषैं अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य आयुकौं धारि उपजै सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंहि तितनीवार तौ तिस अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आयुकौं धारि धारि उपजै। पीछैं एक समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयुकौं धारि उपजै पीछै दोय समय अधिक अतमुहूर्त्त आयुकौं धारि उपजै ऐसैं एक एक समय अनुक्रमतैं वधतैं वधतैं उत्कृष्ट आयुका तीन पल्य पूर्णकरै। वहुरि मनुष्य गतिविषैं तिर्यंच गतिकी ज्यों अंतर्मुहूर्ततैं लगाइ तीन पल्यकौं पूर्ण करै। वहुरि देवगतिविषैं नरक गतिकी ज्यौं दश हजार वर्षतैं लगाइ इकतीस सागर पूर्ण करै, जातैं मिथ्यादृष्टी जीव अनुत्तर अनुदिश विमानविषैं उपजै नाही ऊपरिके ग्रैवेयक पर्यंत ही उपजै तातैं इकतीस सागर ही कहे ऐसैं भ्रमणकरि वहुरि नरकविषैं दश हजार वर्षप्रमाण जघन्य आयुकौं धारि उपजै तव यहु संपूर्ण भवपरिवर्तन हो है। उक्तं च—

नरकजघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता वहुशः॥

मिथ्यात्व करि आश्रित जीव तीहिने नरकका जघन्य आयु आदि उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत आयुविषैं संसारकी स्थिति वहुतवार भोगई है। आगैं भावपरिवर्तन कहिए है—

सो भावपरिवर्तन योगस्थान १ अनुभागवंधाध्यवसायस्थान २ कषायाध्यवसायस्थान ३ स्थितिस्थान इनि-च्यारिनिके परिवर्तनतैं हो है सो प्रथम इनिका स्वरूप कहिए हैं—

प्रकृतिबंध प्रदेशवंधकौं कारण ऐसे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग तिनिके जे जघन्यादिक स्थान ते योगस्थान हैं। वहुरि जिनि कषाय युक्त परिणामनितैं कर्मनिका अनुभाग वंध हो है तिनिके जघन्यादि स्थान ते अनुभाग

बंधाध्यवसाय स्थान हैं। बहुरि जिनि कषाय परिणामनितैं स्थितिबंध हो है तिनिके जघन्यादि स्थान ते इहां कषायाध्यवसाय स्थान कहे हैं वा स्थितिबंधाध्यवसायस्थान भी इनिकौं कहिए। बहुरि बधनेरूप जो कर्मनिकी स्थिति तिनिके जघन्यादिक स्थान ते स्थितिस्थान कहिए। इनिका विशेष स्वरूप आगैं कहैंगे सो जानना। बहुरि इहां एक एक स्थिति भेदके बंधके कारण अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबंधाध्यवसायस्थान पाइए है। बहुरि एक एक स्थितिबंधाध्यवसायस्थानविषैं यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान पाइए। बहुरि एक एक अनुभागबंधाध्यवसायस्थानविषैं जगच्छ्रेणीके असंख्यातवे भागमात्र योग स्थान पाइए है। अब इनिके परिवर्तनका अनुक्रम ज्ञानावरण कर्मका उदाहरण करि कहिए है—कोऊ जीव पंचेंद्री सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी सो अपने योग्य जघन्य ज्ञानावरण नामा कर्मकी स्थिति अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण बाधैं है इस जीवके यातैं घाटि स्थिति बंध होता नाहीं तातैं याकैं यहु ही जघन्य स्थिति स्थान है सो कोडिके ऊपरि अर कोडाकोडिके नीचे जो होइ ताकौं अंतः कोटाकोटी कहिए। तहां तिस जघन्य स्थितिबंध करनेवाले जीवकैं तिस जघन्य स्थितिबंध होनेकौं योग्य असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसायस्थान पाइए है ते परिणामनिकी अपेक्षा अनंतभागादिक षट् स्थानकौं लीए हैं। बहुरि तिनिविषैं भी जघन्य कषायाध्यवसायस्थानकौं निमित्त भूत अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकमात्र पाइए है सो पूर्वोक्त कोऊ जीवकैं अंतः कोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य ही तौ स्थिति स्थान हैं अर ताके जघन्य ही कषायाध्यवसायस्थान हैं अर जघन्य ही अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हैं अर तिस जीवके जैसा योग्य होइ तैसा जघन्य ही योगस्थान पाइए है तहां भावपरिवर्तनका प्रारंभ हूवा। बहुरि तिसही जीवके स्थितिस्थान कषायाध्यवसाय स्थान अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान ए तौ तीनो जघन्य ही रहे अर जघन्यतैं असंख्यात भागवृद्धिकौं लीएं योगस्थान दूसरा भया पीछैं स्थिति स्थानादिक तीनौं तौ जघन्य ही रहे अर योगस्थान तीसरा भया ऐसैं अनुक्रमतैं अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा असंख्यात भाग वृद्धि संख्यात भाग वृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धिरूप चतुःस्थान पतित वृद्धिलीएं श्रेणीके असंख्या-

तवे भागप्रमाण योगस्थान भए बहुरि स्थितिस्थान अर कषायाध्यवसायस्थान तौ जघन्य ही रहे अर अनुभाग बंधाध्यवसायस्थानका दूसरा स्थान भया तहां योगस्थान जघन्यतैं लगाइ पूर्वोक्त प्रकार क्रमतैं सर्व भए बहुरि स्थितिस्थान अर कषायाध्यवसायस्थान तौं जघन्यही रहे अर अनुभाग बंधाध्यवसायस्थानका तीसरा स्थान भया तहां भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार भए ऐसैं क्रमतैं अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसायस्थान भए बहुरि स्थिति स्थान तो जघन्य ही रह्या अर कषायाध्यवसाय स्थानका दूसरा स्थान भया। तहां पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननिकौं लीए जघन्यतैं लगाइ अनुभागाध्यवसायस्थान भए। बहुरि स्थिति स्थान तो जघन्य ही रह्या अर कषायाध्यवसाय स्थानका तीसरा स्थान भया तहां भी पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननिकौं लीए क्रमतैं अनुभागाध्यवसायस्थान भए ऐसैं ही क्रमतैं अपने योग्य कषायाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण भए। बहुरि जैसैं यहु अंतःकोटाकोटी प्रमाण जघन्य स्थितिस्थानविषै अनुक्रम कह्या तैसैं ही जघन्यतैं एक समय अधिक दूसरा स्थितिस्थानविषै अपने योग्य योगस्थान अनुभागाध्यवसाय स्थानके परिवर्तनकौं लीए पूर्वोक्त प्रकार क्रमतैं अपने योग्य सर्व कषायाध्यवसाय स्थान भए बहुरि ऐसैं ही जघन्यतैं दोय समय अधिक तीसरा स्थिति स्थानविषै भए ऐसैं एक एक समय बंधता स्थिति स्थानका अनुक्रम करि तीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जानना। बहुरि जैसैं यहु ज्ञानावरण अपेक्षा कथन कीया तैसैं ही कर्मनिकी सर्व मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिनिविषैं परिवर्तनका अनुक्रम जानना। ऐसैं यहु सर्व मिल्या हूवा भाव परिवर्तन जानना। इहां जघन्य स्थिति आदिविषैं सर्व ही कषायाध्यवसाय स्थानादिकनिका पलटना हो है जघन्य स्थिति आदि विषैं जे संभवैं तिनहीका पलटना हो है ऐसा जानना। उक्तं च आर्या छंद—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावससारे॥ १॥

लोकविषैं भाव संसारविषैं भ्रमण करता जीवकरि प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग बंधका योग्य जे योगनिके

कषायनिके स्थितिके स्थान ते सवही भोगिए है। इहां परिवर्तनका अनुक्रमविषैं जघन्य स्थिति स्थानसंबंधी स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान अनुभागबंधाध्यवसायस्थान योगस्थान जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत हो हैं तिनिकौं आदि देकरि सर्वोत्कृष्ट स्थिति पर्यंत अपने अपने संबंधी जघन्यतैं उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति बंधाध्यवसायादिककौं स्थापि यथासंभव जैसैं गुणस्थान प्ररूपणाविषै प्रमाद भेदनिके निमित्ति अक्षसंचार करि परिवर्तनका विधान कह्या था तैसैं इहां भी अक्षसंचार करि परिवर्तनका विधान जानना। ऐसैं ए पंच परिवर्तन कहे ॥ अब इनिका काल कहिए है—

सर्वतैं स्तोक एक पुद्गलपरिवर्तनका काल है सो अनंत है। बहुरि तातैं अनंतगुणा क्षेत्र परिवर्तनका काल है। बहुरि तातैं अनंतगुणा काल परिवर्तनका काल है। बहुरि तातैं अनंतगुणा भव परिवर्तनका काल है। बहुरि तातैं अनंतगुणा भाव परिवर्तनका काल है। याहीतैं एक जीवके अनादितैं लगाइ अतीतकालविषैं भाव परिवर्तन थोरे भए ते पणि अनंत भए। बहुरि तिनितैं अनंतगुण भवपरिवर्तन भए। बहुरि तिनितैं अनंतगुणे कालपरिवर्तन भए। बहुरि तिनितैं अनंत गुणे क्षेत्रपरिवर्तन भए बहुरि तिनितैं अनंतगुणे द्रव्य परिवर्तन भए ऐसैं जानना। बहुरि जैसैं स्वर्गादिविषै दिन रात्रिका अभाव है तहां मनुष्य क्षेत्र अपेक्षा वर्ष आदिका प्रमाण कीजिए हैं तैसैं निगोदादिविषैं जीवनिके जहां परिवर्तनका अनुक्रम न हो है तहां अन्य जीव अपेक्षा परिवर्तनका काल ग्रहण कीजिए है। उक्तं च आर्याछंद—

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

जिनमतकरि दिखाया जो मुक्तिका मार्ग ताकौं न श्रद्धान करता प्राणी जीव नाना प्रकार दुःखनिकरि आकुलित जो पंच प्रकार संसार तीहिविषैं भ्रमण करै है ॥ ५६० ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मट सार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिकानामा संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनविषैं भव्यमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा सोलवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १६ ॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणा ॥ १७ ॥

जी० प्र०— कुंथ्वादिजन्मिनां जन्मजरामृत्युविन शिने ।
सद्बोधसिंधुचंद्राय नमः कुंथुजिनेशिने ॥ १७ ॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणामाह—

स० चं०— ज्ञान उदधि शशि कुंथु जिन वंदौ अमितविकास ।
कुंथ्वादिक कीए सुखी जनम मरण करि नाश ॥ १७ ॥

आगें सम्यक्त्व मार्गणाकौं कहैं हैं—

छप्पंचणवविहाणं अत्थाण जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥ ५६१ ॥

षट्पञ्चनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानाम् ।
आज्ञया अधिगमेन च श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥ ५६१ ॥

जी० प्र०—द्रव्यभेदेन षड्विधानां अस्तिकायभेदेन पंचविधानां पदार्थभेदेन नवविधानां च सर्वज्ञोक्तजीवादिवस्तूनां श्रद्धानं रुचिः सम्यक्त्वं । तच्छ्रद्धानं आज्ञया प्रमाणादिभिर्विना आप्तवचनाश्रयेण ईपन्निर्णयलक्षणया, अथवा अधिगमेन प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारैः विशेषनिर्णयलक्षणेन भवति ।

सरागवीतरागात्मविषयत्वाद् द्विधा स्मृतं । प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिजं ॥ १ ॥
आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतं । आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ॥ २ ॥

अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं । अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं ।

प्रदेशप्रचयात्काया द्रवणाद् द्रव्यनामकाः । परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥ १ ॥

इति सामान्येन पंचास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थानां लक्षणं ॥ ५६१ ॥ अथ षड्द्रव्याणामधिकारान्निर्दिशति—

स. चं.—द्रव्यभेदकरि छहप्रकार अस्तिकायभेदकरि पांचप्रकार पदार्थ भेदकरि नौ प्रकार ऐसे जो सर्वज्ञ देवकरि कहे जीवादिक वस्तु तिनका श्रद्धान रुचि यथावत् प्रतीति सो सम्यक्त्व जानना। सो सर्वज्ञदेवने जैसें कह्या है तैसें ही है ऐसे आप्तवचनकरि सामान्य निर्णयरूप है लक्षण जाका ऐसी जो आज्ञा तीहिकरि बिना ही प्रमाण नयादिक का विशेष जानें श्रद्धान हो है अथवा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण अर द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय अर नाम स्थापना द्रव्य भाव निक्षेप अर व्याकरणादिकरि साधित निरुक्ति अर निर्देश स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादिकरि विशेष निर्णयरूप है लक्षण जाका ऐसा जो आधिगम तींहिकरि श्रद्धान हो है। उक्तं च—

सरागवीतरागात्म—विषयत्वाद् द्विधा स्मृतं।
प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिज ॥ १ ॥

सम्यक्त्व दोय प्रकार है एक सराग एक वीतराग। तहां उपशम संवेग आस्तिक्यादिक गुणनिरूप राग सहित श्रद्धान होइ सो सराग सम्यक्त्व है। बहुरि केवल चैतन्यमात्र आत्मस्वरूपकी विशुद्धता मात्र वीतराग सम्यक्त्व है ॥ उक्तं च—

आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमास्तित्वसंयुतं।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे।

सो सम्यग्दृष्टी जीवके सर्वज्ञ देवविषैं व्रतविषैं शास्त्रविषैं तत्त्वविषैं ऐसें ही है ऐसा आस्तित्वभावकरि संयुक्त चित्त हो है सो सम्यक्त्व सहित जीवविषैं आस्तिक्य गुण है ऐसें अस्तित्व वादीनिकरि कहिए है। अथवा 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, ऐसा कह्या है अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं' ऐसा कह्या है सो ए सर्वविशेषण एकार्थ हैं इनि सबनिका अर्थ यहु जानना जो यथार्थ स्वरूप लीएं पदार्थनिका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है। उक्तं च—

प्रदेशप्रचयात्कायाः द्रवणाद्द्रव्यनामकाः।
परिच्छेद्यत्वतस्तेर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥ १ ॥

स चं—सम्यक्त्वके श्रद्धानविषैं आवने योग्य जे जीवादिक ते बहुतप्रदेशनिका प्रचय समूहकौं धरैं हैं तातैं काय कहिए। बहुरि अपने गुण पर्यायनिकौं द्रवैं हैं व्यापैं हैं तातैं द्रव्य नाम कहिए। बहुरि जीवकरि जानने योग्य हैं तातैं अर्थ कहिए बहुरि वस्तुस्वरूपपनाकौं धरैं हैं तातैं तत्त्व कहिए ऐसैं इनिका सामान्य लक्षण जानना॥५६१॥

आगैं षट्द्रव्यनिके अधिकार कहैं हैं—

छद्दव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणेकालो।
अत्थणखेत्तं संखा ठाणसरूवं फलं च हवे॥ ५६२॥

षड्द्रव्येषु च नाम उपलक्षणानुवादः अस्तित्वकालः।
अस्तित्वक्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूपं फलं च भवेत्॥ ५६२॥

जी प्र०—षड्द्रव्येषु नामानि उपलक्षणानुवादः स्थितिः क्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूपं फलं चेति सप्ताधिकारा भवंति॥ ५६२॥ अथ प्रथमोद्दिष्टनामाधिकारमाह—

स चं—षट्द्रव्यनिके वर्णनविषैं नाम १ उपलक्षणानुवाद २ स्थिति ३ क्षेत्र ४ संख्या ५ स्थानस्वरूप ६ फल ७ ए सात अधिकार जानने॥ ५६२॥ तहां प्रथम कह्या जो नाम अधिकार ताहि कहैं हैं—

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवित्ति होदि पत्तेयं।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया॥ ५६३॥

जीवाजीवं द्रव्यं रूप्यरूपीति भवति प्रत्येकं।
संसारस्था रूपिणः कर्मविमुक्ता अरूपगताः॥ ५६३॥

जी० प्र०—सामान्येन संग्रहनयापेक्षया द्रव्यमेकं । तदेव भेदविवक्षया जीवद्रव्यं अजीवद्रव्यं च । तत्र जीवद्रव्यं रूप्यरूपि च । तत्र संसारस्थाः रूपिणः, कर्मविमुक्ताः सिद्धा अरूपिणो भवंति । अजीवद्रव्यमपि रूप्यरूपि च ॥ ५६३ ॥

स० चं०—सामान्य संग्रह नय अपेक्षा द्रव्य एक प्रकार है । बहुरि सोई द्रव्य भेद विवक्षाकरि दोय प्रकार है । एक जीव द्रव्य १ एक अजीवद्रव्य २ तहां जीव द्रव्य दोय प्रकार है एक रूपी १ अर एक अरूपी २ तहां जे जीव संसार अवस्थाविषैं तिष्ठैं हैं तिनिके मूर्तीक पुद्गलका संबंध पाइए है तातैं तिनकौं रूपी कहिए। बहुरि सिद्ध भगवान पुद्गलीक कर्मकरि मुक्त भए हैं तातैं तिनकौं अरूपी कहिए । बहुरि अजीव द्रव्य भी रूपी अरूपीके भेदतैं दोय प्रकार है ॥ ५६३ ॥ सो कहिए है—

अज्जीवेसु य रूवी पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरोवि ।
आगासं कालोवि य चत्तारि अरूविणो होंति ॥ ५६४ ॥

अजीवेषु रूपीणि पुद्गलद्रव्याणि धर्म इतरोऽपि ।
आकाशं कालोऽपि च चत्वारि अरूपीणि भवंति ॥ ५६४ ॥

जी० प्र०—अजीवेषु पुद्गलद्रव्याणि रूपीणि भवंति धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्यं आकाशद्रव्यं कालद्रव्यं चेति चत्वारि अरूपीणि भवंति। अत्र "वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्। कुर्वंति स्कंधवत् तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः" इत्येवं परमाणूनां पुद्गलत्वे द्व्यणुकादीनामेव कथं ? प्रदेशपूरणगलनरूपेण द्रवंति द्रोष्यंति अदुद्रवन्निति ब्रूमः । ननु—

षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकं ॥

सत्यं, द्रव्यार्थिकनयेन निरंशत्वेऽपि परमाणोः पर्यायार्थिकनयेन षडंशत्वे दोषाभावात् ।

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकं ।
स्कंधोपादानमत्यक्ष परमाणुं प्रचक्षते ॥

॥ ५६४ ॥ इति नामाधिकारः ।

स० चं—अजीव द्रव्यनिविषैं पुद्गल द्रव्य तौ रूपी है। स्पर्श रस गंध वर्ण गुण संयुक्त मूर्तीक है बहुरि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य ए च्यारि अरूपी हैं स्पर्श रस वर्ण गंध रहित अमूर्तीक हैं। इहां उक्तं च—

वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्।
कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ॥

पूरण अर गलनकौं करै सो पुद्गल कहिए। युक्त होनेका नाम पूरण है अर विछुडनेका नाम गलन है जातैं वर्ण गंध रस स्पर्श गुणनिकरि पूरण गलनकौं स्कंधवत् करै है जैसैं स्कंधविषैं कोऊ परमाणु मिलै हैं कोऊ विछुरैं हैं तैसैं परमाणूविषैं कोऊ वर्णादिकका भेद उत्पन्न हो है सो मिलै है कोऊ नष्ट हो है सो विछुरै है तातैं परमाणू हैं ते पुद्गल कहे हैं। बहुरि ऐसैं परमाणूनिकैं पुद्गलपना होते द्व्यणुक आदि स्कंधनिकैं कैसैं पुद्गलपना है? सो कहिए है—कोऊ परमाणू मिलै है कोऊ विछुरै है सो ऐसा प्रदेशनिका पूरणगलन करि करि जे द्रवैं हैं द्रवैंगे द्रए तातैं तिनिकौं पुद्गल कहिए है अपने स्वभाव रूप परिणमनेका नाम द्रवना है इस द्रवत्व गुणतैं द्रव्य नाम पावै है। इहां प्रश्न—जो परमाणूकौं अविभाग निरंश कहिए है सो परमाणू तौ छह कौंणकौं लीएं गोल आकार है सो जहां छह कोण भए तहां छह अंश सहज ही आए तौ निरंश कैसैं कहिए? उक्तं च—

षट्कोणयुगपद्योगात्परमाणोः षडंशता।
षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकं ॥ १ ॥

युगपत् छह कौणका समुदाय है तातैं परमाणूकैं छह अंशपना संभवै है छहौंकौं समानरूप कहतैं संतैं परमाणूमात्र पिंड हो है। ताका उत्तर—परमाणूकैं द्रव्यार्थिक नयकरि निरंशपणा है परंतु पर्यायार्थिक नयकरि छह अंश कहनेमें किछू दोष नाहीं॥ उक्तं च—

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकं।
स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणुं प्रचक्षते ॥ १ ॥

जो द्रव्य आदि अंत रहित है। बहुरि जिसविषैं छह अंश पाइए है। ते कवहूं भिन्न भिन्न न हो हैं तातैं भिन्न भावरहित अंशकौं धरैं हैं। बहुरि स्कंध ग्रहणकी शक्तिका धारक है बहुरि इंद्रियगम्य नाहीं है ऐसे द्रव्यकौं परमाणू कहिए है। परमाणूविषैं कोणनिकी अपेक्षा छह अंश हैं ते अंश कवहूं भिन्न भिन्न न होंइ अथवा परमाणूतैं छोटा जगतविषैं कोऊ और पदार्थ भी नाहीं है जिसकी अपेक्षाकरि भागकल्पना कीजिए तातैं परमाणूकौं अविभाग कहिए है। बहुरि कोणनिकी अपेक्षा छह अंश कहिए तौभी किछू दोष नाहीं। बहुरि आदिपुराणादिविषैं परमाणू गोल कह्या है सो यहु षट्कोणको लीए आकार गोल क्षेत्र हीका भेद है तातैं गोल कह्या है ऐसे अणू वा स्कंधरूप पुद्गल द्रव्य तो रूपी अजीव द्रव्य जानना। बहुरि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाश द्रव्य कालद्रव्य ए च्यार्यो अरूपी अजीव द्रव्य जानने ॥ ५६४ ॥ इति नामाधिकार।

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ॥ ५६५ ॥

उपयोगो वर्णचतुष्कं लक्षणमिह जीवपुद्गलानां तु।
गतिस्थानावगाहवर्तनक्रियोपकारस्तु धर्मचतुर्णां ॥ ५६५ ॥

जी० प्र०—उपयोगः जीवनां, तु—पुनः वर्णचतुष्कं पुद्गलानां, इह परमागमे लक्षणं भवति। गतिस्थानावगाहनवर्तनक्रियाख्याः उपकाराः। तु—पुनः यथासंख्यं धर्माधर्माकाशकालानां लक्षणं भवति ॥ ५६५ ॥

स० चं—द्रव्यनिके लक्षण कहे हैं तहां जीव अर पुद्गलनिके लक्षण उपयोग अर वर्ण चतुष्क जानना। तहां दर्शन-ज्ञान उपयोग जीवनिका लक्षण है। वर्ण गंध रस स्पर्श पुद्गलनिका लक्षण है। बहुरि गति स्थान अवगाह वर्तनारूप क्रियाका उपकार ते धर्मादिक च्यारि द्रव्यनिके लक्षण हैं। तहां गतिहेतुत्व धर्मद्रव्यका लक्षण है। स्थितिहेतुत्व अधर्मद्रव्यका लक्षण है। अवगाहहेतुत्व आकाश द्रव्यका लक्षण है। वर्तना हेतुत्व काल द्रव्यका लक्षण है ॥ ५६५ ॥

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे।
धम्मतिये ण हि किरिया मुक्खा पुण साधगा होंति ॥ ५६६ ॥

गतिस्थानावगाहक्रिया जीवानां पुद्गलानामेव भवेत्।
धर्मत्रिके न हि क्रिया मुख्याः पुनः साधका भवंति ॥ ५६६ ॥

जी० प्र०—गतिस्थानावगाहनक्रियास्तिस्रः जीवपुद्गलयोरेव भवंति धर्माधर्माकाशेषु क्रिया नहि स्थानचलनप्रदेशचलनयोरभावात्। किं तर्हि ? धर्मादिद्रव्याणि गत्यादीनां मुख्यसाधिकानि भवंति ॥ ५६६ ॥ तद्यथा—

स० चं०—गति स्थिति अवगाह ए तीन क्रिया जीव अर पुद्गल ही के पाइए है। तहां प्रदेशतैं प्रदेशांतरविषैं प्राप्त होना सो गति क्रिया है। गमनकरि कहीं तिष्ठना सो स्थिति क्रिया है। गति स्थिति लीए वास करना सो अवगाह क्रिया जानना बहुरि धर्म अधर्म आकाशविषैं ए क्रिया नाहीं है जातैं इनके स्थानचलन प्रदेशचलनका अभाव है तहां अपने स्थानकौं छाडि अन्य स्थान होना सो स्थानचलन कहिए। प्रदेशनिका चंचलरूप होना सो प्रदेशचलन कहिए। बहुरि धर्मादिक द्रव्य गति स्थिति अवगाह क्रियाके मुख्य साधक हैं। जीव पुद्गलनिकैं जो गति स्थिति अवगाह क्रिया हो है ताकौं निमित्त मात्र ही हैं सो कहिए है—

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि ॥ ५६७ ॥

यातस्य पंथाः तिष्ठतः आसनं निवसकस्य वसतिर्वा।
गतिस्थानावगाहकरणे धर्मत्रयं साधक भवति ॥ ५६७ ॥

जी० प्र०—गच्छतः पंथाः, तिष्ठतः आसनं, निवसतः निवासः, यथा गतिस्थानावगाहकरणे साधका भवंति तथा धर्मादित्रयमपि साधकं कारणमित्यर्थः ॥ ५६७ ॥

स० चं—जैसे गमन करनेवालोंकौं पंथा जो मार्ग सो कारण है। तिष्ठनेवालोंकौं आसन जो स्थान सो कारण है। निवास करनेवालोंकौं वसतिका जो वसनेका क्षेत्र सो कारण है तैसैं गति स्थिति अवगाहनके कारण धर्मादिक द्रव्य हैं। जैसैं ते पंथादिक आप गमनादि नाहीं करैं हैं जीवनिकौं प्रेरक होइ गमनादि नाई करावैं है। स्वयमेव जे गमनादि करैं तिनको कारणभूत हो हैं सो कारण इतना ही जो जहां पंथादिक होंइ तहां ही वे गमनादिरूप प्रवर्तैं तैसैं धर्मादिक द्रव्य आप आप गमनादि नाहीं करैं है जीव पुद्गलनिकौं प्रेरक होइ गमनादिक क्रिया नाहीं करावै हैं स्वयमेव ही गमनादिक क्रियारूप प्रवर्तते जे जीव पुद्गल तिनकौं सहकारी कारण हो हैं सो कारण इतना ही जो धर्मादिक द्रव्य जहां होइ तहां ही गमनादि क्रियारूप जीव पुद्गल प्रवर्तैं हैं ॥ ५६७ ॥

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमाविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ॥ ५६८ ॥

वर्तनाहेतुः कालः वर्तनागुणमवेहि द्रव्यनिचयेषु ।
कालाधारेणैव च वर्तंते हि सर्वद्रव्याणि ॥ ५६८ ॥

जी० प्र—णिजंतात् वृतुञ्धातोः कर्मणि भावे वा वर्तनाशब्दव्यवस्थितिः । वर्त्यते वर्तनमात्रं वेति धर्मादिद्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति स्वयमेव वर्तमानानां वाह्योपग्रहाभावे तद्वृत्त्यसंभवात् तेषां प्रवर्तनोपलक्षितः कालः इति कृत्वा वर्तनाकालस्य उपकारो ज्ञातव्यः । अत्र णिचोर्थः कः ? वर्तते द्रव्यपर्यायः तस्य वर्तयिता कालः इति। तदा कालस्य क्रियावत्त्वं प्रसज्यते अधीते शिष्यः, उपाध्यायोऽध्यापयतीत्यादिवत्, तन्न—निमित्तमात्रेपि हेतुकर्तृत्वदर्शनात् कारीषोऽग्निरध्यापयतीत्यादिवत् । तर्हि स कथं निश्चीयते ? समयादिक्रियाविशेषाणां समय इत्यादेः समयादिनिर्वर्त्यपाकादीनां पाकइत्यादेश्च स्वसंज्ञायाः रूढिसद्भावेऽपि तत्र काल इति यदध्यारोप्यते तन्मुख्यकालास्तित्वं कथयति गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् इति षड् द्रव्याणां वर्तनाकारणं मुख्यकालः। वर्तनगुणो द्रव्यनिचये एव, तथा सति कालाधारेणैव सर्वद्रव्याणि वर्तंते स्वस्वपर्यायैः परिणमंति खलु नियमेन। अत्र खलुशब्दोऽवधारणार्थः, अनेन कालस्यैव परिणामक्रियापरत्वापरत्वोपकारौ उक्तौ । तौ तु जीवपुद्गलयोर्दृश्येते धर्मादि—अमूर्तद्रव्येषु कथं ? इति चेदाह—

स० चं०—णिच् प्रत्ययसंयुक्त जो वृतूञ् धातु ताका कर्मविषैं वा भावविषैं वर्तना शब्द निपजै है सो याका

अर्थ यहु जो वर्तै वा वर्तनमात्र होइ ताकौं वर्तना कहिए सो धर्मादिकद्रव्य अपने अपने पर्यायनिकी निष्पत्तिविषैं स्वयमेव वर्तमान हैं तिनकै वाह्य कोई कारणभूत उपकार विना सो प्रवृत्ति संभवै नाहीं तातैं तिनकैं तिस प्रवृत्ति करावनेकौं कारण कालद्रव्य है ऐसैं वर्तना कालका उपकार जानना। इहां णिच् प्रत्ययका अर्थ यहु जो द्रव्यनिका पर्याय वर्तै है ताका वर्तावनेवाला काल है। तहां प्रश्न—जो जैसैं शिष्य पढै है अर उपाध्याय पढावै है तहां दोऊनिकैं पठनाक्रिया देखिए है तैसैं धर्मादिकद्रव्य प्रवर्तै हैं अर काल प्रवर्तावै है तौ धर्मादिक द्रव्यकी ज्यौं कालकैं भी तिनि पर्यायनिका प्रवर्तनरूप क्रियाका सद्भाव आया तहां उत्तर-जो ऐसैं नाहीं है इहां निमित्तमात्र वस्तुकौं हेतुका कर्ता कहिए है जैसैं शीतकालविषैं शीतकरि शिष्य पढनेकौं समर्थ न भए तहां कारीषाके अग्निका निमित्त भया तब वे पढने लग गए तहां निमित्तमात्र देखि ऐसा कहिए जो कारीषाका अग्नि शिष्यानिकौं पढावै है सो कारीषाका अग्नि आप पढनेरूप क्रियावान न हो है। तिनिके पढनेकौं निमित्तमात्र है तैसैं काल आप क्रियावान न हो है कालके निमित्ततैं वे स्वयमेव परिणवै हैं। तातैं ऐसा कहिए है जो तिनिकौं काल प्रवर्तावै है। बहुरि तिस कालका निश्चय कैसैं होइ? सो कहिए है समय घडी इत्यादिक क्रियाविशेष तिनिकौं लोकविषैं समयादिक कहिए है। बहुरि समय घडी इत्यादिकरि जे पचनादि क्रिया होंइ तिनिकौं लोकविषैं पाकादिक कहिए है। तहां तिनिविषैं काल ऐसा जो शब्द आरोपण कीजिए है समयकाल घडीकाल पाककाल इत्यादि कहिए है सो यहु व्यवहारकाल मुख्यकालका आस्तित्वकौं कहै है—जातैं गौण है सो मुख्यकी सापेक्षाकौं धरै है जैसैं किसी पुरुषकौं सिंह कह्या तौ तहां जानिए है जो कोई सिंह नामा पदार्थ जगतविषैं पाइए है ऐसैं कालका निश्चय कीजिए है प्रत्यक्षकेवली जानैं है। बहुरि षट्द्रव्यकी वर्तनाकौं कारण मुख्यकाल है वर्तना गुण द्रव्यसमूहविषैं ही पाइए है ऐसैं होतैं कालका आधारकरि सर्व द्रव्य प्रवर्तैं हैं। अपने अपने पर्यायरूप परिणमैं है यातैं परिणमनरूप जो क्रिया ताकौं परत्व अर अपरत्व जो आगैं पीछैंपना सो कालका उपकार है॥ ५६८॥ इहां प्रश्न जो क्रियाका परत्व अपरत्व तौ जीव पुद्गलविषैं है धर्मादिक अमूर्तीक द्रव्यनिविषैं कैसैं संभवै? सो कहै हैं—

धम्माधम्मादीणं अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं ।
हाणीहिं वि वड्ढंतो हायंतो वट्टदे जम्हा ॥ ५६९ ॥

धर्माधर्मादीनामगुरुकलघुकं तु षड्भिरपि वृद्धिभिः ।
हानिभिरपि वर्धमानं हीयमानं वर्तते यस्मात् ॥ ५६९ ॥

जी० प्र०—यतः धर्माधर्मादीनां अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदा स्वद्रव्यत्वस्य निमित्तभूतशक्तिविशेषाः षड्वृद्धिभिर्वर्धमाना षड्ढानिभिश्च हीयमानाः परिणमंति ततः कारणात्तत्रापि च मुख्यकालस्यैव कारणत्वात् ॥ ५६९ ॥

स० चं०—जातैं धर्म अधर्मादिक द्रव्यनिकैं अपने द्रव्यत्वकौं कारणभूत शक्तिके विशेषरूप जे अगुरुलघु नामा गुणके अविभाग प्रतिच्छेद ते अनंतभागवृद्धि आदि षट्स्थानपतित वृद्धिकरि तौ बधै हैं अर अनंतभागहानि आदि षट्स्थानपतित हानिकरि घटैं हैं तातैं तहां ऐसैं परिणमनविषैं भी मुख्य कालहीकौं कारण जानना ५६९

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदू ॥ ५७० ॥

न च परिणमति स्वयं स न च परिणामयति अन्यदन्यैः ।
विविधपरिणामिकानां भवति हि कालः स्वयं हेतुः ॥ ५७० ॥

जी० प्र०—स कालः संक्रमविधानेन स्वगुणैरन्यद्रव्ये न परिणमति । न च परद्रव्यगुणान् स्वस्मिन् परिणामयति । नापि हेतुकर्तृत्वेन अन्यद् द्रव्यं अन्यगुणैः सह परिणामयति । किं तर्हि ? विविधपरिणामिकानां द्रव्याणां परिणमनस्य स्वयमुदासीननिमित्तं भवति ॥ ५७० ॥

स० चं०—सो कालसंक्रम जो पलटना ताका विधानकरि अपने गुणनिकरि परद्रव्यरूप होइ नाहीं परिणवै बहुरि परद्रव्यके गुणनिकौं अपनेविषैं नाहीं परिणमावै है । बहुरि हेतुकर्ता प्रेरक होइकरि भी अन्य द्रव्यकौं अन्य

गुणनिकरिसहित नाहीं परिणमावे है। तौ? नानाप्रकार परिणामनिकौं धरैं जे द्रव्य स्वयमेव परिणमें है तिनकौं उदासीन सहज निमित्तमात्र हो है जैसैं मनुष्यकैं प्रभातसंबंधी क्रियाकौं प्रभातकाल कारण है क्रियारूप तौ स्वयमेव मनुष्य ही प्रवर्तें हैं परंतु तिनिका निमित्तमात्र प्रभातका काल हो है तैसैं जानना ॥ ५७० ॥

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणये होदि खणमेत्तं ॥ ५७१ ॥

कालमाश्रित्य द्रव्यं स्वकस्वकपर्यायपरिणतं भवति ।
पर्यायावस्थानं शुद्धनयेन भवति क्षणमात्रम् ॥ ५७१ ॥

जी० प्र०—कालमाश्रित्य जीवादि सर्वद्रव्यं स्वस्वपर्यायपरिणतं भवति। तत्पर्यायावस्थानं ऋजुसूत्रनयेन एकसमयो भवति अर्थपर्यायापेक्षया॥ ५७१ ॥

स० चं०—कालका निमित्तरूप आश्रय पाइ जीवादिक सर्वद्रव्य स्वकीय स्वकीय पर्यायरूप परिणए हैं तिस पर्यायका जो अवस्था रहनेका काल सो ऋजुसूत्रनयकरि अर्थपर्याय अपेक्षा एक समयमात्र जानना ॥ ५७१ ॥

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो ।
ववहारअवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ॥ ५७२ ॥

व्यवहारश्च विकल्पो भेदस्तथा पर्याय इत्येकार्थः ।
व्यवहारावस्थानस्थितिर्हि व्यवहारकालस्तु ॥ ५७२ ॥

जी० प्र०—व्यवहारः विकल्पः भेदः तथा पर्यायः इत्येकार्थः तु पुनः तत्र व्यंजनपर्यायस्य अवस्थानतया वर्तमानतया स्थितिः सैव व्यवहारकालो भवति ॥ ५७२ ॥

स० चं०—व्यवहार अर विकल्प अर भेद अर पर्याय ए सर्व एकार्थ हैं। इनि शब्दनिका एक अर्थ है तहां व्यंजन पर्यायका अवस्थान जो वर्तमानपना ताकरि स्थिति जो कालका परिमाण सोई व्यवहारकाल है ॥ ५७२ ॥

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओत्ति।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥५७३॥

अवरा पर्यायस्थितिः क्षणमात्रं भवति सा च समय इति।
द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणं भवेत् स तु ॥ ५७३ ॥

जी० प्र०—द्रव्याणां जघन्या पर्यायस्थितिः क्षणमात्रं भवति। सा च समय इत्युच्यते। स च समयः द्वयोर्गमनपरिणतपरमाण्वोः परस्परातिक्रमकालप्रमाणं स्यात् ॥ ५७३ ॥ अत्रोपयोगिगाथाद्वयं—

णभएयपयेसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो। बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालो ॥ १ ॥

नभ एकप्रदेशस्थः परमाणुर्मंदगतिप्रवर्तमानः। द्वितीयमनंतरक्षेत्रं यावत् याति स समयकालः ॥ १ ॥

आकाशस्य एकप्रदेशस्थितपरमाणुः मंदगतिपरिणतः सन् द्वितीयमनंतरक्षेत्रं यावद्याति स समयाख्यकालो भवति ॥ १ ॥ स च प्रदेशः कियान्—

जेत्तीवि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च। तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥ २ ॥

यावदपि क्षेत्रमात्रमणुना रुद्धं खलु गगनद्रव्यं च। स च प्रदेशो भणितः अपरपरकारणं यस्य ॥ २ ॥

यस्य परमाणोः अपरपरकारणं गगनद्रव्यं यावत्क्षेत्रमात्रं परमाणुना व्याप्तं स्फुटं स प्रदेशो भणितः ॥ २ ॥ अथ व्यवहारकालमाह—

स० चं०—द्रव्यनिकैं जघन्यपर्यायकी स्थिति क्षणमात्र है सो क्षण नाम समयका है समीप तिष्ठती दोय परमाणू मंदगमनरूप परिणई जेता कालविषैं परस्पर उल्लंघन करैं तिस काल प्रमाणका नाम समय है ॥ ५७३ ॥ इहां प्रसंग पाइ दोय गाथा कहैं हैं—

णभएयपयेसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालो ॥ १ ॥

आकाशका एक प्रदेशविषैं तिष्ठती परमाणू मंदगतिरूप परिणई सो तिस प्रदेशके अनंतरि दूसरा प्रदेश ताकौं जेता कालकरि प्राप्त होइ सो समय नामा काल है सो प्रदेश कितना है? सो कहै हैं—

जेत्ती वि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥ २ ॥

जिस परमाणूके आगे पीछेकौं कारण ऐसा आकाशद्रव्य, आकाशविषैं ऐसा कहिए है जो यहु आकाश इस परमाणूके आगैं हैं यहु पीछे है सो आकाश द्रव्य तिस परमाणूकरि जितना रुकै व्याप्त होइ तिस क्षेत्रका नाम प्रदेश कह्या है आगैं व्यवहार कालकौं कहै हैं–

आवलिअसंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥ ५७४ ॥

आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः ।
सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्त स्तोका लवो भणितः ॥ ५७४ ॥

जी० प्र०—जघन्ययुक्तासंख्यातसमयराशिः आवलिः । संख्यातावलिसमूह उच्छ्वासः । स च किं रूपः ?

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स । उस्सासाणिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥ १ ॥

आढ्यस्य अनलसस्य च निरुपहतस्य च भवेत् जीवस्य । उच्छ्वासनिःश्वास एकः प्राण इति आख्यातः ॥ १ ॥

सुखिनः अनलसस्य निरुपहतस्य जीवस्य उच्छ्वासनिश्वासः स एव एकः प्राण उक्तो भवेत् । सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः । सप्तस्तोका लवः ॥

स० चं०—जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण समय तिनिका समूह सो आवली है । बहुरि संख्यात आवलीका समूह सो उश्वास है । सो उश्वास कैसा है ? उक्तं च—

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥ १ ॥

जो कोई मनुष्य आढ्य सुखी होइ आलस्य रोगादिकरि रहित होइ स्वाधीन होइ ताका सासोस्वास नामा

एक प्राण कह्या है ताका काल जानना। बहुरि सात उस्वासका समूह सो स्तोक नामा काल है बहुरि सात स्तोकका समूह सो लव नामा काल है ॥ ५७४ ॥

अट्ठत्तीसद्धलवा नाली बेनालियो मुहुत्तं तु।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥ ५७५ ॥

अष्टत्रिंशदर्धलवा नाली द्विनालिको मुहूर्तस्तु।
एकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्तस्ततः शेषः ॥ ५७५ ॥

जी० प्र०—सार्धाष्टात्रिंशल्लवा नाली घटिका। द्वे नाल्यौ मुहूर्तः। स चैकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्तः, उत्कृष्टांतर्मुहूर्त इत्यर्थः। ततोऽग्रे द्विसमयोनाद्या आवल्यसंख्यातैकभागांताः सर्वेऽन्तर्मुहूर्ताः ॥ ५७५ ॥ अत्रोपयोगि गाथासूत्रं—

ससमयमावलि अवरं समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं। मज्झासंखवियप्पं वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥ १ ॥

ससमय आवलिरवरः समयोनमुहूर्तकस्तु उत्कृष्टः। मध्यासंख्यविकल्पः विजानीहि अंतर्मुहूर्तमिमं ॥ १ ॥

ससमयाधिकावलिः जघन्यांतर्मुहूर्तः समयोनमुहूर्तः उत्कृष्टांतर्मुहूर्तः। मध्यमा असंख्यातविकल्पा मध्यमांतर्मुहूर्ताः, इति जानीहि ॥ १ ॥

स. चं.—साढा अडतीस लवनिका समूह सो नाली है, नाली नाम घटिकाका है। बहुरि दोय घटीका समूह सो मुहूर्त है। इस मूहूर्तमें एक समय घटाइए तब भिन्न मुहूर्त हो है वा याकौं उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कहिए यातैं आगैं दोय समय घाटि मुहूर्त आदि अंतर्मुहूर्तके विशेष जानने। इहां प्रासंगिक गाथा कहे हैं—

ससमयमावलिअवरं समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं।
मज्झासंखावियप्पं वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥

एक समय अधिक आवली मात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त है। बहुरि एक समय घाटि मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है। मध्य समयविषैं दोय समय सहित आवलीतैं लगाइ दोय समय घाटि मुहूर्तपर्यंत असंख्यात भेद लीए मध्य अंतर्मुहूर्त है। ऐसैं जानहु।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ॥ ५७६ ॥

दिवसः पक्षो मासः ऋतुरयनं वर्षमेवमादिर्हि।
संख्येयासंख्येयानंता भवंति व्यवहाराः ॥ ५७६ ॥

जी० प्र०—दिवसः पक्षः मासः ऋतुः अयनं वष इत्यादयः स्फुटं आवल्यादिभेदतः संख्यातासंख्यातानंतपर्यंतं क्रमशः श्रुतावधिकेवलज्ञानविषयविकल्पाः सर्वे व्यवहारकालो भवति ॥ ५७६ ॥

स० चं०—तीस मुहूर्तमात्र अहोरात्र है। मुख्यपनैं पंचदश अहोरात्रमात्र पक्ष है दोय पक्षमात्र एक मास है दोय मासमात्र एक ऋतु हो है तीन ऋतु मात्र एक अयन हो है दोय अयनमात्र एक वर्ष हो है इत्यादि आवलीतैं लगाइ संख्यात असंख्यात अनंत पर्यंत अनुक्रमतैं श्रुतज्ञान अवधिज्ञान केवलज्ञानका विषयभूत व्यवहार काल जानना ५७६

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु।
जोइसियाणं चारे ववहारो खलु समाणोत्ति ॥ ५७७ ॥

व्यवहारः पुनः कालः मानुषक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु।
ज्योतिष्काणां चारे व्यवहारः खलु समान इति ॥ ५७७ ॥

जी० प्र०—व्यवहारकालः पुनः मनुष्यक्षेत्रे स्फुटं ज्ञातव्यः। कुतः? ज्योतिष्काणां चारे स समान इति कारणात् ॥ ५७७ ॥

सं० च०—बहुरि व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्रविषैं प्रगटरूप जानने योग्य है जातैं मनुष्य क्षेत्रविषैं ज्योतिषी देवानिका चलनेका काल अर व्यवहार काल समान है ॥ ५७७ ॥

ववहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु।

तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ॥ ५७८ ॥

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्तमानो भविष्यंस्तु ।
अतीतः संख्येयावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ॥ ५७८ ॥

जी० प्र०—व्यवहारकालः पुनस्त्रिविधः अतीतोऽनागतो वर्तमानश्चेति । तु—पुनः अत्रातीतः संख्यातावलिगुणितसिद्धराशिर्भवति, कुतः ? अष्टोत्तरषट्छतजीवानां मुक्तिगमनकालोऽष्टसमयाधिकषण्मासाः तदा, सर्वजीवराश्यनंतैकभागमुक्तजीवानां कियान् ? इति त्रैराशिकागतस्य तत्प्रमाणत्वात् ।

प ६०८ फ मा ६ इ ३ लब्धं २ । २ ७ ॥ ५७८ ॥

स० चं०—बहुरि व्यवहार काल तीन प्रकार है अतीत १ अनागत २ वर्तमान ३ तहां अतीत काल सिद्ध राशिकौं संख्यात आवलीकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना जानना । कैसैं ? सो कहिए हैं-छह महीना अर आठ समय माहीं छसै आठ जीव सिद्ध हो हैं तो जीवराशिके अनंतवें भाग प्रमाण सर्व सिद्ध केते कालमैं भए ऐसैं त्रैराशिक करना । तहां प्रमाण राशि छसै आठ फलराशि छह महीना आठ समय इच्छा राशि सिद्धनिका प्रमाण सो फल राशिकौं इच्छाराशिकरि गुणें प्रमाणराशिका भाग दीए लब्धराशि संख्यात आवलीकरि सिद्धनिकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना आया । सोई अनादितैं लगाइ अतीतकालका परिमाण जानना ॥ ५७८ ॥

समयो हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥ ५७९ ॥

समयो हि वर्तमानो जीवात् सर्वपुद्गलादपि ।
भावी अनन्तगुणित इति व्यवहारो भवत्कालः ॥ ५७९ ॥

जी० प्र०—वर्तमानकालः खल्वेकसमयः भावी सर्वजीवराशितः सर्वपुद्गलराशितोप्यनंतगुणः, इति व्यवहारकालः त्रिविधो भणितः ॥ ५७९ ॥

स० चं०—वर्तमानकाल एक समय मात्र जानना बहुरि भावी जो अनागत काल सो सर्व जीवराशितैं वा सर्व पुद्गलराशितैं भी अनंतगुणा जानना। ऐसैं व्यवहारकाल तीन प्रकार कह्या ॥ ५७९ ॥

कालोवि य ववएसो सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥ ५८० ॥

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः।
उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥ ५८० ॥

जी० प्र०—काल इति व्यपदेशो मुख्यकालस्य सद्भावप्ररूपकः मुख्याभावे गौणस्याप्यभावात् सिंहाभावे वटुः सिंह इत्यादिवत्। स च मुख्यः नित्योपि उत्पन्नप्रध्वंसी भवति द्रव्यत्वेन उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वात्। अपरः व्यवहारकालः वर्तमानापेक्षया उत्पन्नप्रध्वंसी अतीतानागतापेक्षया दीर्घांतरस्थायी भवति। अत्रोपयोगी श्लोकः—

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
वहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

इत्युपलक्षणानुवादाधिकारः ॥ ५८० ॥

स० चं०—काल ऐसा जो लोकविषैं कहना है सो मुख्यकालका आस्तित्वका कहनहारा है मुख्य विना गौण भी न होइ। जो सिंह पदार्थ ही न होइ तौ यहु पुरुष सिंह है ऐसा कैसैं कहनेमें आवै सो मुख्यकाल द्रव्यकरि नित्य है तथापि पर्यायकरि उत्पाद व्ययकौं धरै है तातैं उत्पन्नप्रध्वंसी कहिए है। बहुरि व्यवहार काल है सो वर्तमान काल अपेक्षा उत्पाद व्यय रूप है तातैं उत्पन्नप्रध्वंसी है बहुरि अतीत अनागत अपेक्षा बहुतकाल स्थितिकौं धरै है तातैं दीर्घांतर स्थायी है। इहां प्रासंगिक श्लोक कहिए है—

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
वहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

तीहिं वस्तुविषैं तिष्ठती परिणमनरूप जो योग्यता सो अंतरंग निमित्त है बहुरि तिस परिणमनका निश्चय-काल बाह्य निमित्त है ऐसैं तत्त्वदर्शीनिकरि निश्चय कीया है ॥ ५८० ॥ इत्युपलक्षणानुवादाधिकारः ॥ २ ॥

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकालअत्थपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ॥ ५८१ ॥

षड्द्रव्यावस्थान सदृशं त्रिकालार्थपर्याये ।
व्यंजनपर्याये वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ॥ ५८१ ॥

जी० प्र०—षड्द्रव्याणां अवस्थानं सदृशमेव भवति त्रिकालभवेषु सूक्ष्मावाग्गोचराचिरस्थाय्यर्थपर्यायेषु तद्विपरीतलक्षणव्यंजनपर्यायेषु वा मिलितेषु तेषां स्थितत्वात् ॥ ५८१ ॥ इदमेव समर्थयति—

स० चं०—अवस्थान नाम स्थितिका है सो षट् द्रव्यनिका अवस्थान समान है। काहे तैं ? सो कहिए है सूक्ष्म वचन अगोचर क्षणस्थायी ऐसे तौ अर्थपर्याय अर स्थूल वचन गोचर चिरस्थायी ऐसे व्यंजन पर्याय सो त्रिकाल संबंधी अर्थ पर्याय वा व्यंजन पर्याय मिलैं तिनि सर्व ही द्रव्यनिकी स्थिति हो है तातैं सर्व द्रव्यनिका अवस्थान समान कह्या सर्व द्रव्य अनादिनिधन हैं ॥ ५८१ ॥ आगैं इसही अर्थकौं दृढ करैं हैं—

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥ ८२ ॥

एकद्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यञ्जनपर्यायाश्चापि ।
अतीतानागतभूताः तावत्तद् भवति द्रव्यम् ॥ ५८२ ॥

जी० प्र०—एकस्मिन् द्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यंजनपर्यायाश्च अतीतानागताः अपिशब्दाद्वर्तमानाश्च संति तावत् तद् द्रव्यं भवति ॥ ५८२ ॥ इति स्थित्यधिकारः ॥

स० चं–एक द्रव्यविषैं जे गुणनिके परिणमनरूप षट्स्थानपतित वृद्धि हानि लीए अर्थ पर्याय बहुरि द्रव्यके आकारादि परिणमनरूप व्यंजन पर्याय ते अतीत अनागत अपिशब्दतें वर्तमान संबंधी यावन्मात्र हैं तावन्मात्र द्रव्य जानना जातें द्रव्य तिनतें जुदा है नाही, सर्व पर्यायनिका समूह सोई द्रव्य है॥ ५८२॥ इति स्थित्यधिकारः

आगासं वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं ।
वावी धम्माधम्मा णवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥ ८३ ॥

आकाशं वर्जयित्वा सर्वाणि लोके चैव न संति वहिः ।
व्यापिनौ धर्माधर्मौ अवस्थितावचलितौ नित्यौ ॥ ५८३ ॥

जी० प्र०—आकाशं विवर्ज्य शेषसर्वद्रव्याणि लोके एव संति न तद्वहिः । तेषु धर्माधर्मौ व्यापिनौ सर्वलोकव्याप्तत्वात् तिले तैलवत्, अवस्थितौ स्थानचलनाभावात्, अचलितौ प्रदेशचलनाभावात्, नित्यौ त्रैकाल्येऽपि विनाशाभावात् । अत्रोपयोगी श्लोकः—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ॥ ५८३ ॥

स० चं०–अब क्षेत्र कहै हैं सो आकाश विना अवशेष सर्वद्रव्य लोक विषै ही हैं बाह्य अलोकविषैं नाहीं है। तिनविषैं धर्म द्रव्य अधर्मद्रव्य तिलविषैं तैलकी ज्यों सर्व लोकविषैं व्याप्त है तातैं व्यापी कहिए। बहुरि निजस्थानतें स्थानांतरविषैं चलै नाहीं है तातैं अवस्थित हैं बहुरि एक स्थानविषैं भी प्रदेशनिका चंचलपना तिनके नाहीं है तातैं अचलित हैं बहुरि त्रिकालविषैं विनाश नाहीं हैं तातैं नित्य है ऐसैं धर्म अधर्म द्रव्य जानने। इहां प्रासांगिक श्लोक—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ॥

आधार तीन प्रकार है औपश्लेषिक वैषयिक अभिव्यापक। तहां चटाईविषै कुमार सोवै है ऐसा कहिए तहां

औपश्लेषिक आधार जानना बहुरि आकाशविषैं घटादिक द्रव्य तिष्ठैं हैं ऐसा कहिए तहां वैषयिक आधार जानना बहुरि तिलविषैं तेल है ऐसा कहिए तहां अभिव्यापक आधार जानना । सो इहां तिलनिविषैं तैलकी ज्यों लोकाकाशके सर्व प्रदेशनिविषैं धर्म अधर्म द्रव्य अपने प्रदेशनिकरि व्याप्त है तातैं इहां अभिव्यापक आधार है । याहीतैं आचार्यनैं धर्म अधर्म द्रव्यकौं व्यापी कह्या है ॥ ५८३ ॥

लोगस्स असंखेज्जादिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगोत्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो ॥ ५८४ ॥

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्वलोक इति ।
आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ॥ ५८४ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यात्मप्रदेशोत्तरेषु महामत्स्यपर्यंतेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु वेदनासमुद्घातस्य त्रिगुणमहामत्स्यपर्यंतेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु स्वयंभूरमणसमुद्रबाह्यस्थंडिलक्षेत्रस्थितमहामत्स्येन सप्तमपृथ्वीमहारौरवनामश्रेणीबद्धं प्रति मुक्तमारणांतिकसमुद्घातस्य पंचशतयोजनतदर्धविष्कंभोत्सेधैकार्धषड्रज्ज्वायतप्रथमद्वितीयतृतीयवक्रोत्कृष्टपर्यंतेषु तदुपरिलोकपूरणपर्यंतेषु अवगाहनविकल्पेषु आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे सति जीवद्रव्यं व्यापृतं प्रवृत्तं भवति, सर्वावगाहनोपपादसमुद्घातानां अस्य संभवात् ॥ ५८४ ॥

स० चं०—जीवका क्षेत्र कहै हैं सो शरीरमात्र अपेक्षा तो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनातैं लगाइ एक एक प्रदेश बंधता उत्कृष्ट महामत्स्यकी अवगाहना पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि समुद्घात अपेक्षा वेदना समुद्घातवालेका एक एक प्रदेश क्षेत्रविषैं बंधता बंधता महामत्स्यकी अवगाहनातैं तिगुणा लंबा चौडा क्षेत्र पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि एक एक प्रदेश बंधता बंधता मारणांतिक समुद्घातवालेका स्वयंभू रमण समुद्रका बाह्य स्थंडिल क्षेत्रविषैं तिष्ठता जो महामत्स्य सो सप्तमनरकविषैं महारौरव नामा श्रेणीबद्ध बिला प्रति कीया जो मारणांतिक समुद्घात तीहिविषैं पांचसै योजन चौडा अढाईसै योजन

ऊंचा प्रथम वक्रगतिविषै एक राजू द्वितीय क्षेत्रविषैं आधा राजू तृतीय क्षेत्रविषैं छहराजू लंवाई लीएं जो उत्कृष्ट क्षेत्र हो है तहां पर्यंत क्षेत्र जानना। बहुरि ताके ऊपरि केवलिसमुद्घातविषैं लोकपूरण पर्यंत क्षेत्र जानना सो ऐसैं सर्व भेदरूप क्षेत्रानिविषैं अपने प्रदेशनिका विस्तार संकोच होतैं जीवद्रव्य व्यापृतं कहिए व्यापक हो है। संकोच होतैं स्तोक क्षेत्रविषैं आत्माके प्रदेश अवगाहरूप तिष्ठैं हैं विस्तार होतैं ते फैलिकरि घने क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं। जातैं जीवकैं अवगाहनाका भेद वा उपपाद वा समुद्घातभेद सर्व ही संभवै है तातैं पूर्वोक्त जीवका क्षेत्र जानना ॥

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा।
एक्केक्को दु पदेसो कालाणूणं धुवो होदि ॥ ५८५ ॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशाद्यो भवन्ति भजनीयाः।
एकैकस्तु प्रदेशः कालाणूनां ध्रुवो भवति ॥ ५८५ ॥

जी० प्र०—पुद्गलद्रव्याणां पुनः एकप्रदेशादयो यथासंभवं भजनीया भवंति। तद्यथा—द्व्यणुकं एकप्रदेशे द्विप्रदेशे वा तिष्ठति। त्र्यणुकं एकप्रदेशे द्विप्रदेशे त्रिप्रदेशे वा तिष्ठतीति। तु-पुनः कालाणूनां एकैकस्य एकैकप्रदेशक्रमो ध्रुवो भवति ॥ ५८५ ॥

स० चं०—पुद्गलद्रव्यानिका एक प्रदेशादिक यथासंभव भजनीय कहिए भेद करने योग्य क्षेत्र जानना सो कहिए है—दोय अणूका स्कंध एक प्रदेशविषैं तिष्ठै वा दोय प्रदेशनिविषैं तिष्ठै, बहुरि तीन परमाणूनिका स्कंध एक प्रदेश वा दोय प्रदेश वा तीन प्रदेशविषैं तिष्ठै ऐसैं जानना। बहुरि कालाणू एक एक लोकाकाशका प्रदेशविषैं एक एक पाइए है सो ध्रुवरूप है भिन्न २ सत्त्व धरै है तातैं तिनिका क्षेत्र एक एक प्रदेशी है ॥ ५८५ ॥

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा।
लोगागासेव ठिदी एगपदेसो अणुस्स हवे ॥ ५८६ ॥

संख्येयासंख्येयानंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः ।
लोकाकाशे एव स्थितिरेकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ॥ ५८६ ॥

जी० प्र०—द्व्यणुकादयः पुद्गलस्कंधाः संख्यातासंख्यातानंतपरमाणवः तथापि लोकाकाश एव तिष्ठंति । अणोरेक एव प्रदेशो भवेत् ॥५८६॥

स० चं०—दोय अणूका स्कंधतैं लगाइ पुद्गल स्कंध संख्यात असंख्यात अनंत परमाणू रूप है तथापि ते वे सर्व लोकाकाश ही विषै तिष्ठैं हैं जैसैं संपूर्ण जलकरि भर्या हूवा पात्रविषैं क्रमतैं गेरे हूवे लवण भस्मी सूई आदि एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठैं हैं तैसैं जानना । बहुरि अविभागी परमाणूका क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र हो है ॥

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं अण्णेहिं विवज्जियं होदि ॥ ५८७ ॥

लोकाकाशप्रदेशाः षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति ।
सर्वमलोकाकाशमन्यैर्विवर्जितं भवति ॥ ५८७ ॥

जी० प्र०—लोकाकाशप्रदेशाः सर्वे षड्द्रव्यैः सर्वदा स्फुटा भवंति । अलोकाकाशः सर्वोऽपि अन्यद्रव्यैर्विवर्जितो भवति ॥५८७॥ इति क्षेत्राधिकारः ॥

स. चं.—लोकाकाशके प्रदेश सर्वही षट्द्रव्यनिकरि सदाकाल प्रगट व्याप्त हैं बहुरि अलोकाकाश सर्व ही अन्य द्रव्यनिकरि रहित है ॥ ५८७ ॥ इति क्षेत्राधिकारः ।

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु ।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ॥ ५८८ ॥

जीवा अनंतसंख्या अनंतगुणाः पुद्गला हि ततस्तु ।
धर्मत्रिकमेकैकं लोकप्रदेशप्रमः कालः ॥ ५८८ ॥

जी० प्र०—सर्वे जीवा द्रव्यप्रमाणेन अनंताः स्युः । तेभ्यः पुद्गलाणवः खलु अनंतगुणाः । तु—पुनः धर्माधर्माकाशाः एकैक एव अखंडद्रव्यत्वात् । कालाणवो लोकप्रदेशमात्राः ॥ ५८८ ॥

स० चं०—संख्या कहैं हैं—तहां द्रव्य परिमाण करि जीव द्रव्य अनंत हैं बहुरि तिनितैं अनंत गुणे पुद्गलके परमाणू हैं बहुरि धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य एक एक ही है जातैं ए तीनौं अखंड द्रव्य हैं बहुरि जेते लोकाकाशके प्रदेश हैं तितने कालाणू हैं ॥ ५८८ ॥

लोगागासपदेसे एक्केक्के जेट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥ ५८९ ॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैके ये स्थिता हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिरिव ते कालाणवो मंतव्याः ॥ ५८९ ॥

जी० प्र०—एकैकलोकाकाशप्रदेशे ये एकैके भूत्वा रत्नानां राशिरिव भिन्नभिन्नव्यक्त्या तिष्ठंति ते कालाणवो मंतव्याः ॥ ५८९ ॥

स. चं—लोकाकाशका एक एक प्रदेशविषैं जे एक एक तिष्ठै हैं जैसें रत्ननिकी राशि भिन्न भिन्न तिष्ठैं तैसें जे भिन्न भिन्न तिष्ठैं है ते कालाणू जानने ॥ ५८९ ॥

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा ॥ ५९० ॥

व्यवहारः पुनः कालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः ।
तत अनंतगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥ ५९० ॥

जी० प्र०—व्यवहारकालः पुनः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणः । ततोऽनंतगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥ ५९० ॥

स. चं—बहुरि व्यवहार काल पुद्गल द्रव्यतैं अनंत गुणा समयरूप जानना । बहुरि तिनितैं अनंतगुणी सर्व आकाशके प्रदेशनिकी संख्या जाननी ॥ ५९० ॥

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणुअवट्ठिदं खेत्तं ॥ ५९१ ॥

लोकाकाशप्रदेशा धर्माधर्मैकजीवगप्रदेशाः ।
सदृशा हि प्रदेशः पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रं ॥ ५९१ ॥

जी० प्र०—लोकाकाशप्रदेशा धर्मद्रव्यप्रदेशा अधर्मद्रव्यप्रदेशा एकैकजीवद्रव्यप्रदेशाश्च सदृशाः खलु संख्यया समाना एव प्रत्येकं जगच्छ्रेणिघनमात्रत्वात्। प्रदेशप्रमाणं पुनः पुद्गलपरमाण्ववष्टब्धक्षेत्रमात्रं भवति । तेन जघन्यक्षेत्रं जघन्यद्रव्यं चाविभागिनी स्तः। अथ क्षेत्रप्रमाणेन षट्द्रव्याणि मीयंते—जीवद्रव्याणि प ≡ । फ श १, इ १६ लब्धं शला १६ ≡ प्र श १ फ ≡ इ श १६ ≡ लोकजीवराश्यपवर्तनेऽनंतः । ख । अनेन फलराशि—लोके गुणिते अनंतलोका भवंति । ≡ख । पुद्गलाः—अनंतगुणाः । ≡ ख ख । धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं लोकाकाशद्रव्यं कालद्रव्यं च लोकमात्रप्रदेशं । ≡ । व्यवहारकालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणाः । ≡ ख ख ख । ततोऽ लोकाकाशप्रदेशा अनंतगुणाः । ≡ख ख ख ख । कालप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प । अ १ । फ श १ इ १६ लब्धशलाका १६ अ प्र श १ फ अ । इ १६ अ अतीतकालजीवराश्यपवर्तने । ख । अनेन फलराश्यतीतकाले गुणिते अनंता अतीतकाला भवंति । अ ख । पुद्गलः व्यवहारकालः अलोकाकाशप्रदेशाश्च अनंतगुणितक्रमेण अनंतातीतकाला भवंति । पु अ ख ख । व्य = का अ ख ख ख । अलोक अ ख ख ख ख । धर्माधर्मलोकाकाशकालद्रव्याणि प । प १ फ श १ इ ≡ लब्धशलाका— ≡ प्र श १ फ क । इ श a संख्यातपल्यलोकापवर्तने । a । अनेनकल्पफलराशौ गुणिते प्रत्येकं असंख्यातकल्पा भवंति क a । क a । क प १ a । क a । भावप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प १६ फ श १ इ के लब्धशलाकाः के अपवर्तिते ख । प्र ख एतावच्छलाकाभिः केवलज्ञानं फ के तदेकशलाकया इ श १ १६ किमिति लब्धं केवलज्ञानानंतैकभागमपि पुद्गलकालालोकाकाशापेक्षया चतुरनंतभागहारं भवति के ख ख ख पुद्गलाः ख ख ख ख के ख व्यवहारकालः के ख ख अलोकाकाशः के धर्माधर्मलोकाकाशकालद्रव्याणि । प्र ≡ । फ श १ । इ ≡ a लब्धशलाका ≡ a ≡ भागहारभूतलोकेन भाज्ये अवधिविकल्पासंख्याततलोके अपवर्तिते । a । पुनः प्र श a । फ ओ । इ श १ लब्धोऽवधिविकल्पासंख्यातैकभागः प्रत्येकं भवति ओ a ओ a ओ a ओ a ॥ इति संख्याधिकारः ॥ ५९१ ॥

सं. च—लोकाकाशके प्रदेश अर धर्मद्रव्यके प्रदेश अर अधर्मद्रव्यके प्रदेश अर एक जीवद्रव्यके प्रदेश सर्व संख्याकरि समान हैं जातैं ए सर्व जगच्छ्रेणीका घनप्रमाण हैं। बहुरि पुद्गल परमाणू जेता क्षेत्रकों रोकै सो प्रदेशका प्रमाण है तातैं जघन्य क्षेत्र अर जघन्य द्रव्य अविभागी है। आगैं क्षेत्र प्रमाणकरि छह द्रव्यनिका प्रमाण कीजिए है—तहां जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण है लोकाकाशके प्रदेशनितैं अनंत गुणा है कैसें सो त्रैराशिक करि कहिए है—प्रमाण राशि लोक अर फलराशि एक शलाका अर इच्छाराशि जीवद्रव्यका प्रमाण सो फलकरि इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भाग दीए लब्धराशि जीवराशिकौं लोकका भाग दीजिए इतना आया सो यहु शलाकाका परिमाण भया। बहुरि प्रमाण राशि एक शलाका फलराशि लोक अर इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाकाका प्रमाण सो पूर्वोक्त शलाकाका प्रमाण जीवराशिकौं लोकका भाग दीए अनत पाए सो जानना। इस अनंतकौं फलराशि लोककरि गुणिए अर प्रमाण राशि एकका भाग दीजिए तव लब्धराशि अनंतलोक प्रमाण भया तातैं जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण कहे ऐसें ही अन्यत्र काल प्रमाणादिकविषैं त्रैराशिककरि साधन करि लेना बहुरि जीवनितैं पुद्गल अनंत गुणे हैं। बहुरि धर्म अधर्म लोकाकाश अर काल द्रव्य ए लोकमात्र प्रदेशनिकौं धरैं हैं। बहुरि व्यवहारकाल पुद्गल द्रव्यतैं अनंत गुणा है बहुरि अलोकाकाशका प्रदेश कालतैं अनंत गुणा है। बहुरि काल प्रमाणकरि जीवद्रव्यका प्रमाण कहिए है—प्रमाणराशि अतीतकाल फलराशि एक शलाका इच्छाराशि जीवनिका परिमाण इहां लब्धि राशिप्रमाण शलाका अनंत भई। बहुरि प्रमाणराशि एक शलाका फलराशि अतीतकाल इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण सो पूर्वोक्त प्रकार फलकरि इच्छाकौं गुणैं प्रमाणका भाग दीएं लब्धराशि प्रमाण अतीत कालतैं अनंतगुणा जीवनिका प्रमाण जानना। इनितैं पुद्गलद्रव्य अर व्यवहार कालके समय अर अलोकाकाशके प्रदेश अनंतगुणे अनंतगुणे क्रमतैं अनंत अतीत काल मात्र जानने। बहुरि धर्मादिकका प्रमाण कहिए है—

प्रमाण कल्पकाल फल एक शलाका इच्छा लोक प्रमाण तहां लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई। बहुरि प्रमाण एक शलाका फल कल्पकाल इच्छा पूर्वोक्त शलाका प्रमाण सो यथोक्त करतां लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण धर्म अधर्म लोकाकाश काल ए च्यार्यौ जानने। वीस कोडाकोडी सागरके संख्याते पल्य भए तीहि प्रमाण कल्पकाल है।

इसतैं असंख्यात गुणे धर्म अधर्म लोकाकाश कालके प्रदेश हैं। बहुरि भावप्रमाणकरि जीवद्रव्यका प्रमाणविषैं प्रमाणराशि जीवद्रव्यका प्रमाण फल एकशलाका इच्छा केवलज्ञान लब्धप्रमाण शलाका अनंत. बहुरि प्रमाण राशि शलाकाका प्रमाण फलराशि केवलज्ञान इच्छाराशि एक शलाका सो यथोक्त करतां लब्धराशिप्रमाण केवलज्ञानके अनंतवे भागमात्र जीवद्रव्य जानने। ते पुद्गल काल अलोकाकाशकी अपेक्षा च्यारिवार अनंतका भाग केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाणकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने जीवद्रव्य हैं। तिनितैं अनंतगुणे पुद्गल हैं तिनितैं अनंतगुणे कालके समय हैं तिनितैं अनंतगुणे अलोकाकाशके प्रदेश हैं तेऊ केवलज्ञानके अनंतवे भाग ही हैं। बहुरि धर्मादिकका प्रमाणविषैं प्रमाण लोक, फल एक शलाका इच्छा अवधिज्ञानके भेद लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई। बहुरि प्रमाणराशि शलाका फल राशि अवधिज्ञानके भेद इच्छाराशि एक शलाका सो यथोक्त करतां अवधिज्ञानके जेते भेद हैं तिनिके असंख्यातवे भागप्रमाण धर्म अधर्म लोकाकाश काल इनि च्यार्योंके एक एक प्रदेशनिका प्रमाण भया॥ १९१॥ इति संख्याधिकारः॥ ५॥

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिआ पदेसावि।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा॥ ९२॥

सर्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि।
रूपिणो जीवाश्चलितास्त्रिविकल्पा भवंति हि प्रदेशाः॥ ५९२॥

जी० प्र०—अरूपि द्रव्यं मुक्तजीवधर्माधर्माकाशकालभेदं सर्वं अवस्थितमेव स्थानचलनाभावात्। तत्प्रदेशा अपि अचलिताः स्युः। रूपिणो जीवाश्चलिता भवंति। तत्प्रदेशाः खलु त्रिविकल्पाः विग्रहगतौ चलिताः, अयोगकेवलिन्यचलिताः शेषजीवानां अष्टप्रदेशाः अचलिताः शेषाः चलिताः॥ ५९२॥

स० चं०—सर्व अरूपी द्रव्य जो मुक्त जीव अर धर्म अर अधर्म अर आकाश अर काल सो अवस्थित है अपने स्थानतैं चलते नाहीं बहुरि इनिके प्रदेश भी अचलितही हैं एक स्थानविषैं भी चलित नाही हैं। बहुरि रूपी जीव जे

संसारी जीव ते चलित हैं स्थानतैं स्थानांतरविषैं गमनादि करैं हैं। बहुरि संसारी जीवनिके प्रदेश तीन प्रकार हैं विग्रह गतिविषैं तो सर्व चलित ही हैं बहुरि अयोगकेवली गुणस्थानविषैं अचलित ही हैं बहुरि अविशेष जीव रहे तिनिके आठ प्रदेश तौ अचलित हैं अवशेष प्रदेश चलित हैं इस आत्माके अन्य प्रदेश तौ चलित हो हैं अर आठ प्रदेश अकंप ही रहैं हैं॥ ५९२॥

पोग्गलदव्वम्हि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचला होंति पदेसा॥ ९३॥

पुद्गलद्रव्ये अणवः संख्यातादयो भवन्ति चलिता हि।
चरमसहास्कन्धे च चलाचला भवंति हि प्रदेशाः॥ ५९३॥

जी० प्र०—पुद्गलद्रव्ये अणवः द्व्यणुकादिसंख्यातासंख्यातानंताणुस्कंधाश्चलिताः खलु स्फुटं। चरममहास्कंधे च प्रदेशाः परमाणवः चलाचला भवंति॥ ५९३॥

स० चं०—पुद्गल द्रव्यविषैं परमाणू अर द्व्यणुक आदि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणूके स्कंध ते चलित हैं। बहुरि अंतका महास्कंधविषैं केई परमाणू अचलित हैं अपने स्थानतैं त्रिकालविषैं स्थानांतरकौं प्राप्त न होंइ बहुरि केई परमाणू चलित हैं ते यथायोग्य चंचल हो हैं॥ ५९३॥

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहि अंतरिया।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा॥ ९४॥
सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा॥९५ जुम्मं।

अणुसंख्यातासंख्यातानन्ताश्च अग्राह्यकाभिरन्तरिताः ।
आहारतेजोभाषामनःकार्माण ध्रुवस्कन्धाः ॥ ५९४ ॥
सान्तरनिरन्तरया च शून्या प्रत्येकदेह–ध्रुवशून्याः ।
बादरनिगोदशून्याः सूक्ष्मनिगोदा नभोमहास्कन्धाः ॥ ५९५ ॥ युग्मम्

जी० प्र०—अणुवर्गणा संख्याताणुवर्गणा असंख्याताणुवर्गणा अनंताणुवर्गणा आहारवर्गणा अग्राह्यवर्गणा तैजसशरीरवर्गणा अग्राह्यवर्गणा भाषावर्गणा अग्राह्यवर्गणा मनोवर्गणा अग्राह्यवर्गणा कार्माणवर्गणा ध्रुववर्गणा सांतरनिरंतरवर्गणा शून्यवर्गणा प्रत्येकशरीरवर्गणा ध्रुवशून्यवर्गणा बादरनिगोदवर्गणा शून्यवर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणा नभोवर्गणा महास्कंधवर्गणा चेति पुद्गलवर्गणाः त्रयोविंशतिभेदा भवंति। अत्रोपयोगी श्लोकः—

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणाः ॥ १ ॥

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिजीवे च पुद्गलशब्दो वर्तते। अकर्मजातिषु कर्मजातिषु नोकर्मजातिषु च वर्गणाशब्दो वर्तते। अत्राणुवर्गणा सुगमा एकैकपरमाणुरूपा स्यात् १ । १ । १ । १ । १ । अणुवर्गणा। संख्याताणुवर्गणा द्व्यणुकादयः एकैकाग्रवधिकाः, उत्कृष्टसंख्याताणुकस्कंधपर्यंताः—

उ १५ । १५ । ०० १५
० ० ०
० ० ०
म ३ ३ ०० ३
ज २ २ ०० २

असंख्याताणुवर्गणा जघन्यपरिमितासंख्याताणुकादयः एकैकाग्रवधिका उत्कृष्टद्विकवारासंख्याताणुस्कंधपर्यंताः—

उ २५५ । २५५ ० ० २५५
० ० ०
० ० ०
१– १– १–
म १६ । १६ । ० ० १६
ज १६ । १६ । ० ० १६

अत्र संख्याताणुवर्गणासु असंख्याताणुवर्गणासु च विवक्षितवर्गणामानंतु गुणकारः तदधस्तनवर्गणाया अधस्तनवर्गणाभक्तविवक्षितवर्गणामात्रः

यथा त्र्यणुकमानेतु द्व्यणुकस्य द्व्यणुकभक्तत्र्यणुकमात्रः २ । ३ तदनंतरोपरितनमनंतवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोनंतगुणं ज २५६ ख
२

० ० म २५६

तदनंतरोपरितनाहारवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं ज २५६ ख ख तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणु-

० ख
आहा ०
०

ज २५६ ख

नाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतगुणं ज २५६ ख ख ख
ख

अग्राह्य ० ० ०

ज २५६ ख ख
ख

तदनंतरोपरितनतेजःशरीरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं—

ज २५६ ख ख ख ख
ख ख

तेजो ० ०

तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतगुणं— उ

```
          १–    १–
   १–     १– १– १–
उ  २५६ ख ख  ख  ख  ख ।
        ० ख     ख
अगेज्ज  ०
        ० १–    १–
   १–     १– १– १–
ज  २५६ ख  ख  ख  ख
          ख     ख
```

तदनंतरोपरितनभाषावर्गणाजघन्यं तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यं एकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं एकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं उ

```
           १–    १–
   १–      १– १– १– १– १–
उ  २५६ ख  ख  ख  ख  ख  ख
           ख     ख     ख
        ०
भासा    ०
        ०
        १–    १–
   १–   १– १– १– १–
ज  २५६ ख ख  ख  ख  ख
        ख     ख
```

ततोऽनंतगुणं—

उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख (उपरि: १——— १— १— १— १— १—; १— १— १—; अधः: ख ख ख)

अगेज्झ ०००

ज २५६ ख ख ख ख ख ख (उपरि: १——— १— १— १— १— १—; १— १— १—; अधः: ख ख ख)

तदनंतरोपरितनमनोवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं—

उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख (उपरि: १——— १— १— १— १— १— १— १—; १— १— १—; अधः: ख ख ख ख)

मनोव ०००

ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख (उपरि: १——— १— १— १— १— १— १—; १— १— १—; अधः: ख ख ख)

तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतगुणं—

उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख (उपरि: १——— १— १— १— १— १— १— १—; १— १— १— १—; अधः: ख ख ख ख)

अगेज्झ ०००

ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख (उपरि: १——— १— १— १— १— १— १— १—; १— १— १— १—; अधः: ख ख ख ख ख)

तदनंतरोपरितनकार्मणवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं—

```
                 १–   १–   १–   १–
        १——— १– १– १– १– १– १– १– १– १–
     उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख
               ख   ख   ख   ख   ख
   ०
कम्मव ०
   ०
             १–   १–   १–   १–
     १——— १– १– १– १– १– १– १– १–
  ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख
             ख   ख   ख   ख
```

तदनंतरोपरितनध्रुववर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतजीवराशिगुणं—

```
             १–   १–   १–   १–   १–
      १——— १– १– १– १– १– १– १– १– १–
   उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख १६ ख
             ख   ख   ख   ख   ख
       ०
ध्रुव  ०
       ०
             १–   १–   १–   १–   १–
      १——— १– १– १– १– १– १– १– १– १–
   ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख
             ख   ख   ख   ख   ख
```

तदनंतरोपरितनसांतरनिरन्तरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतजीवराशिगुणं—

१— १— १— १— १—
१—— १— १— १— १— १— १— १— १— १— १—
उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

सांतर ०
०
निरंतर ०

१— १— १— १— १—
१—— १— १— १— १— १— १— १— १— १— १—
ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख १६ ख
ख ख ख ख ख

अत्रायं विशेषः—परमाणुवर्गणामादिं कृत्वा सांतरनिरंतरवर्गणापर्यंतं पंचदशवर्गणानां सदृशधनिकानि अनंतगुणपुद्गलवर्णमूलमात्राण्यपि विशेषहीनक्रमाणि भवंति । तत्र प्रतिभागहारः सिद्धानंतैकभागः । तदनंतरोपरितनशून्यवर्गणाजघन्यं एकरूपाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतजीवराशिगुणं—

१— १— १— १— १—
१—— १— १— १— १— १— १— १— १— १— १— १—
उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख १६ ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

०
सुखख०
०

१— १— १— १— १—
१—— १— १— १— १— १— १— १— १— १— १— १—
ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख ख ख १६ ख १६ ख
ख ख ख ख ख

षोडशवर्गणा एवं सिद्धाः । तदनंतरोपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणा तु एकजीवस्य एकदेहोपचितकर्मनोकर्मस्कंधः । तत्र कश्चिज्जीवः ...

पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अंतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य सयोगकेवली जातः देशोनपूर्वकोटिपर्यंतमौदारिकतैजसशरीरयोरवस्थितिगणनया निर्जरां कुर्वन् कार्मणशरीरस्य च गुणश्रेणिनिर्जरां कुर्वन् चरमसमयायोगिकेवली स्यात्। तस्यायुः औदारिकतैजसशरीराधिकनामगोत्रवेदनीयरूपत्रिशरीरसंचयः तज्जघन्यं भवति। नंदीश्वरद्वीपस्य अकृत्रिममहाचैत्यालयानां धूपघटेषु स्वयंभूरमणद्वीपसंभूतदवाग्निषु च बादरपर्याप्ततैजस्कायिकाः एकबंधनबद्धा असंख्यातावलिवर्गमात्राः तेषु गुणितकर्मांशाः सुष्ठु बहुत्वेऽपि आवल्यसंख्यातैकभागमात्राः ८ तेषां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयस्तदुत्कृष्टं भवति— उ स ३२ a a ख ख १२— १६ ख ८ इदमेवरूपाधिकं ध्रुवशून्यवर्गणाजघन्यं भवति। कश्चित्

पत्तेयसरीर

ज स a a ख ख १२— १६ ख ३

क्षपितकर्मांश लक्षणो जीवः पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अंतर्मुहूर्ताधिकगर्भाद्यष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य कर्मणामुत्कृष्टगुणश्रेणिनिर्जरां देशोनपूर्वकोटिवर्षपर्यंतं कुर्वन् अंतर्मुहूर्ते सिद्धितव्यमास्ते तदा क्षपकश्रेण्यारूढः उत्कृष्टकर्मनिर्जरां कुर्वन् क्षीणकषायो जातः, तच्छरीरे जघन्येन उत्कृष्टेन च एकबंधनबद्धपुलवय आवल्यसंख्यातैकभागमात्राः संति। कुतः? सर्वस्कंधेषु असंख्यातलोकमात्रतत्प्ररूपणाभावात् तदावल्यसंख्यातैकभागपुलवीस्थितनिगोदशरीराणि प्र पु १। फ ≡ a। इ पु ८/a इति त्रैराशिकसिद्धानि एतावंति ≡ a ८/a एतेषु पुनः प्र श १। फ जी १३— ≡ a ५ इ शरी ≡ a ८/a इति त्रैराशिकलब्धाः १३— ≡ a ८/a बादरनिगोदजीवा एतावंतः। एतेषु क्षीणकषायप्रथमसमये अनंता म्रियंते। द्वितीयसमये ९ ≡ a ५ ऽनंतमृतराशिमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागाधिका म्रियंते एवमावलिपृथक्त्वे गते आवलिसंख्यातैकभागाधिकक्रमेण म्रियंते यावत्तद्गुणस्थानकाल आवल्यसंख्यातैकभागमात्रोऽवशिष्यते। तदनंतरसमये पलितोपमासंख्यातैकभागगुणा म्रियंते। ततः संख्यातपल्यगुणितक्रमेण म्रियंते, यावत्क्षीणकषायचरमसमयस्तावत्। तत्रावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु पृथक्पृथगसंख्यातलोकमात्रशरीराकीर्णेषु पल्यासंख्यातैकभागमृतजीवप्रमाणोनेना गुणितकर्मांशानंतानंतजीवानामनंतानंतविस्रसोपचयसहितत्रिशरीरसंचयो जघन्यबादरनिगोदवर्गणा भवति इयमेवैकाणुना हीना सती उत्कृष्टध्रुवशून्यवर्गणा भवति—

ज ० स ३ ३ ख ख १२—१६ ख १३— । ≡ ३ ८ प

ध्रुवसुराणा ० ० ० ९ ≡ ३ ५ प

ज ० स ३२ ३ ३ ख ख १२—१६ ख ८

स्वयंभूरमणद्वीपस्य मूलकादिशरीरेष्वेकबंधनबद्धजगच्छ्रेण्यसंख्येयभागमात्रपुलविषु स्थितानां गुणितकर्मांशानंतानंतबादरनिगोदजीवानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयः उत्कृष्टबादरनिगोदवर्गणा भवति—

उ ० स ३२ ३ ३ ख ख १२—१६ ख १३— ≡ ३ ८ ३

बादरणिगोदसरीर ० ० ९ ≡ ३ ५

ज ० स ३ ३ ख ख १२—१६ ख १३— ≡ ३ ८ प

९ ≡ ३ ५ प

इयमेकरूपाधिका तृतीयशून्यवर्गणाजघन्यं भवति—

तिदसुराणवगणा ज स ३२ ३ ३ ख ख १२—१६ ख १३— ≡ ३ ८ ३

९ ≡ ३ ५

जले स्थले आकाशे वा एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु स्थितानां क्षपितकर्मांशानंतानंतसूक्ष्मनिगोदानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयः सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणा भवति। ज स a a ख ख १२ – १६ ख १३ – ८ ≡ a २ ८ a / ९ ≡ a ५ / a a इयमेकरूपोना तृतीयशून्यवर्गणोत्कृष्टं भवति— तिय उ० स a a ख ख १२ -- १६ ख १३ -- ८ ≡ a २ ८ a / सुण्णवग्गणा / ९ ≡ a ५ / a a। ननु बादरनिगोदवर्गणोत्कृष्टं पुलवयः श्रेण्यसंख्येयभागः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्यं तु आवल्यसंख्यातैकभागः तेन तदधोऽनेन भाव्यं इति, तन्न-बादरनिगोदवर्गणानिगोदशरीरेभ्यः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाशरीराणां सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणकारोपलंभात्। सूक्ष्मनिगोदवर्गणोत्कृष्टं महामत्स्यशरीरे एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुलविस्थितगुणितकर्मांशानंतानंतजीवानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयो भवति—

सुहमणि उ० स ३२ a a ख ख १२ -- १६ ख १३ -- ८ ≡ a ८ ख २ a
९ ≡ a ५ a a

इदं एकरूपयुतं नभोवर्गणाजघन्यं भवति—

णभवग्ग ज स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख १३--८ ≡ a ८ ख २ a
a a
९ ≡ a ५

इदं प्रतरासंख्येयभागगुणितं नभोवर्गणोत्कृष्टं भवति—

णभवग्ग उ स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख १३--८ ≡ a ८ ख २ a a
a a
९ ≡ a ५

अत्रैकरूपे युते महास्कंधवर्गणाजघन्यं भवति—

महास्कंध ज स ३२ a a ख ख १२--१६ ख १३--८ ≡ a ८ सू २ a a
a a
९ ≡ a ५

अत्र अस्यैव पल्यासंख्यातैकभागे युते महास्कंधवर्गणोत्कृष्टं भवति—

महास्कंध उ स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख १३--८ ≡ a ८ सू २ a a प
a a a
९ ≡ a ५ प
a

एवमेकश्रेणिमाश्रित्य त्रयोविंशतिवर्गणा उक्ताः॥५९४--५९५॥ उक्तार्थमुपसंहरन् तासामेव जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यानि तदल्पबहुत्वं च गाथाषट्केनाह-

स॰ चं॰—पुद्गल द्रव्यके भेदरूप जे वर्गणा ते तेईस भेद लीएं हैं—अणुवर्गणा १ संख्याताणुवर्गणा २ असंख्याताणुवर्गणा ३ अनंताणुवर्गणा ४ आहारवर्गणा ५ अग्राह्यवर्गणा ६ तैजसशरीरवर्गणा ७ अग्राह्यवर्गणा ८ भाषावर्गणा ९ अग्राह्य वर्गणा १० मनोवर्गणा ११ अग्राह्य वर्गणा १२ कार्माण वर्गणा १३ ध्रुव वर्गणा १४ सांतरनिरंतर वर्गणा १५ शून्य वर्गणा १६ प्रत्येक शरीरवर्गणा १७ ध्रुव शून्यवर्गणा १८ बादरनिगोद वर्गणा १९ शून्यवर्गणा २० सूक्ष्मनिगोद वर्गणा २१ नभोवर्गणा २२ महास्कंधवर्गणा २३ ए तेईस भेद जानने। इहां प्रासंगिक श्लोक कहिए है—

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा॥ १॥

मूर्तीक पदार्थनिविषैं अर संसारी जीवविषैं पुद्गल शब्द प्रवर्तै है बहुरि अकर्म जातिके कर्मजातिके नोकर्म जातिके जे पुद्गल तिनिविषैं वर्गणा शब्द प्रवर्तै है सो अब इहां तेईस जातिकी वर्गणानिविषैं केते केते परमाणू पाइए ? सो प्रमाण कहिए हैं—

तहां अणुवर्गणा तौ एक एक परमाणु रूप है इसविषैं जघन्य उत्कृष्ट मध्य भेद भी नाही है बहुरि अन्य वाईस वर्गणानिविषैं भेद हैं तहां जघन्य अर उत्कृष्ट भेद कहिए है—जघन्यके ऊपरि एक एक परमाणू उत्कृष्टका नीचा पर्यंत बधावनेतैं जेते भेद होहिं तितने मध्यके भेद जानने। बहुरि संख्याताणुवर्गणाविषैं जघन्य दोय अणूनिका स्कंध है अर उत्कृष्ट उत्कृष्ट संख्यात अणूनिका स्कंध है। बहुरि असंख्याताणु वर्गणाविषै जघन्य परीतासंख्यात परमाणूनिका स्कंध है उत्कृष्ट उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणूनिका स्कंध है। इहां विवक्षित वर्गणा ल्यावनेके निमित्त गुणकारका ज्ञान करना होइ तौ विवक्षित वर्गणाकौं ताके नीचेकी वर्गणाका भाग दीए जो प्रमाण आवै सोई गुणकारका प्रमाण जानना। तिस गुणकारकरि नीचेकी वर्गणाकौं गुणे विवक्षित वर्गणा हो है जैसें विवक्षित तीन अणूका स्कंध अर नीचे दोय परमाणूका स्कंध तहां तीनकौं दोयका भाग दीए ड्योढ पाया सोई गुणकार है। दोयकौं ड्योढकरि गुणिए तब तीन होइ ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि इहां संख्याताणु असंख्याताणु वर्गणाविषैं जघन्यका भाग उत्कृष्टकौं दीएं जो प्रमाण आवै सोई जघन्यका गुणकार जानना। इस गुणकार करि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि अनंताणुवर्गणाविषै उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। अर जघन्यकौं सिद्ध राशिका अनंतवां भागमात्र जो अनंत ताकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि आहार वर्गणाविषैं उत्कृष्ट अनंताणुवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद हो है। बहुरि इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवाभाग मात्र जो अनंत ताका भाग दीये जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भए उत्कृष्टभेद हो है बहुरि ताके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है तींहिविषैं उत्कृष्ट आहारवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। बहुरि जघन्यभेदकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंत

करि गुणें उत्कृष्टभेद होहै बहुरि ताके ऊपरि तैजसशरीरवर्गणा है ताहिविषैं उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है इस जघन्य भेदकौं सिद्धराशिका अनंतवां भाग मात्र अनंतका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भए उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्ट तैजस वर्गणातैं एक परमाणू आधिक भए जघन्य भेद हो है इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवा भागमात्र अनंतकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि भाषा वर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भए उत्कृष्टभेद हो है बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्टभाषावर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद होहै। इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि मनोवर्गणा है तीहिंविषैं उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद हो है इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतका भागदीएं जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भएं उत्कृष्टभेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है तीहिंविषैं उत्कृष्ट मनोवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद होहै इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवा भाग प्रमाण अनंतकरि गुणें उत्कृष्ट भेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि कार्माणवर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिकभएं जघन्यभेद होहै इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतका भागदीए जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं आधिक भएं उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि ध्रुव वर्गणा है तहां उत्कृष्ट कार्माण वगर्णातैं एक परमाणू अधिक भएं जघन्यभेद होहै। इस जघन्यकौं अनंतगुणां जीव राशिमात्र अनंतकरि गुणें उत्कृष्टभेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि सांतर निरंतर वर्गणा है तहां उत्कृष्ट ध्रुववर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद होहै इस जघन्यकौं अनंतगुणा जीवराशिका प्रमाण करि गुणे उत्कृष्ट भेद होहै। ऐसैं जो ए अणुवर्गणातैं लगाइ पंद्रहवर्गणा कहीं ते सदृश परिमाणकौं लीएं एक एक वर्गणा लोकविषैं अनंत पुद्गलराशिका वर्गमूल प्रमाण पाइए है परि किछू घाटि घाटि क्रमतैं पाइए है। तहां प्रति-

भागहार सिद्धका अनंतवां भागमात्र है सो इस कथनकौं विशेषकरि आगैं कहिएगा। बहुरि ताके ऊपरि शून्यवर्गणा है तहां उत्कृष्ट सांतर निरंतर वर्गणातैं एक एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद हो है इस जघन्यकौं अनंतगुणा जीवराशिका प्रमाणकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद होहै ऐसैं सोलह वर्गणा सिद्ध भईं। बहुरि ताके ऊपरि प्रत्येक शरीर वर्गणा है सो एक शरीर एक जीवका होइ ताकौं प्रत्येक कहिए। तहां जो विस्रसोपचय सहित कर्म वा नोकर्म तिनिका एकस्कंध ताकौं प्रत्येक शरीर वर्गणा कहिए। तहां शून्यवर्गणाका उत्कृष्टतैं एक परमाणूकरि अधिक जघन्य भेद होहै सो यहु जघन्यभेद कहां पाइए है? सो कहिए है—

जाका कर्मके अंश क्षयरूप भए हैं ऐसा कोई क्षपितकर्मांश जीव सो कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण आयुका धारी मनुष्य होइ अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपरि सम्यक्त्व अर संयम दोऊ एक काल अंगीकार करि सयोग केवली भया सो किछू घाटि कोटि पूर्व पर्यंत औदारिक शरीर अर तैजस शरीरका जो प्रकार कह्या है तैसे निर्जरा करत संता अर कार्माण शरीरकी गुणश्रेणी निर्जरा करत संता अयोगकेवलीका अंतसमयकौं प्राप्त भया ताकैं आयुकर्म औदारिक तैजस शरीर अधिक नाम गोत्र वेदनीय कर्मके परिमाणूनिका समूह रूप जो औदारिक तैजस कार्माण इनि तीनि शरीरनिका स्कंध सो जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा है। बहुरि इस जघन्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा हो है सो कहां पाइए? सो कहिए है—

नंदीश्वर नामा द्वीपविषैं अकृत्रिम चैत्यालय है। तहां धूपके घड़े हैं तिनिविषैं वा स्वयंभूरमण द्वीपविषैं उपजे दावानल तिनिविषैं जे वादर पर्याप्त अग्निकायके जीव हैं तहां असंख्यात आवलीका वर्ग प्रमाण जीवनिके शरीरनिका एक स्कंध है। तहां गुणितकर्मांश कहिए जिनके कर्मका संचय बहुत है ऐसे जीव बहुत भी होंइ तौ आवलीका असंख्यातवा भागमात्र होंइ तिनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्माण इनि तीनि शरीरनिका जो एक स्कंध सो उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि ध्रुव शून्य वर्गणा है तहां उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद हो है। इस जघन्यकौं सब मिथ्यादृष्टी जीवनिका जो प्रमाण

ताकौं असंख्यात लोकका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तीहिकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि ताके ऊपरि वादर निगोद वर्गणा है सो वादर निगोदिया जीवनिका विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परिमाणूनिका जो एक स्कंध ताकौं वादर निगोद वर्गणा कहिए है सो ध्रुवशून्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिक जघन्य वादरनिगोदवर्गणा है सो कहां पाइए है ? सो कहैं हैं——

क्षय कीएं हैं कर्म अंश जानैं ऐसा कोई क्षपितकर्मांश जीव सो कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण आयुका धारी मनुष्य होइ गर्भतैं अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपरि सम्यक्त्व अर संयमकौं युगपत अंगीकार करि किछू घाटि कोडि पूर्ववर्ष पर्यंत कर्मनिकी गुणश्रेणी निर्जराकौं करतसंता जब अंतर्मुहूर्त सिद्धपद पावनेका रह्या तब क्षपक श्रेणी चढि उत्कृष्ट कर्मनिर्जराकौं करत संता क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती भया तिसके शरीरविषैं जघन्य वा उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी एक बधनरूप बधे पाइए हैं जातैं सर्व स्कधानिविषैं पुलवी असंख्यात लोक प्रमाण कहे हैं । बहुरि एक एक पुलवीविषैं असंख्यात लोकप्रमाण शरीर पाइए है । बहुरि एक २ शरीरविषैं सिद्धनितैं अनंतगुणे संसारी राशिके असंख्यातवे भागमात्र जीव पाइए है सो आवलीका असंख्यातवां भागकौं असंख्यात लोककरि गुणैं तहां शरीरनिका प्रमाण भया । ताकौं एक शरीरविषैं निगोद जीवनिका जो प्रमाण ताकरि गुणै जो प्रमाण भया तितना तहां एक स्कंधविषैं वादर निगोद जीवनिका प्रमाण जानना । तिनि जीवनिकै क्षीणकषाय गुणस्थानका पहिला समयविषैं अनन्त जीव स्वयमेव अपना आयुका नाशतैं मरैं है बहुरि दूसरे समय जेते पहिले समय मरे तिनिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने पहिले समय मरे जीवनितैं अधिके मरैं हैं । इसही अनुक्रमतैं क्षीणकषायका प्रथम समयतैं लगाइ पृथक्त्व आवलीप्रमाण काल पर्यंत मरैं हैं पीछैं पूर्व पूर्व समय सम्बन्धी मरे जीवनिके प्रमाणकौं आवलीका संख्यातवां भागका भाग दीए जो जो प्रमाण होइ तितने २ पहिले पहिले समयतैं अधिके समय समयतैं मरैं हैं सो क्षीणकषाय गुणस्थानका काल आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अवशेष रहे तहां ताईं इसही अनुक्रमतैं मरै हैं ताके अनंतर समयविषै पल्यका

असंख्यातवां भागकरि पहिले समयसंबंधी जीवनिकौं गुणें जितने होंहि तितने तितने मरैं हैं तहां पीछैं संख्यात पल्यकरि पूर्व पूर्व समय संबंधी मरे जीवनिकौं गुणैं जो जो प्रमाण होइ तितने तितने मरैं हैं सो ऐसैं क्षीणकषाय गुणस्थानका अंत समय पर्यंत जानना। तहां अंतके समयविषैं जे जुदे जुदे असंख्यातलोक प्रमाण शरीरनिकरि संयुक्त ऐसे आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी तिनिविषै जे गुणितकर्मांश जीव मरे तिनकरि हीन अवशेष जे अनंतानंत जीव गुणित कर्मांश रहे तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिके परमाणूनिका जो एक स्कंध सोई जघन्य वादर निगोद वर्गणा है बहुरि इस जघन्यकौं जगच्छ्रेणीका असंख्यातवां भागकरि गुणें उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा हो है सो कैसें पाइए ? सो कहिए है—

स्वयंभूरमण नामा द्वीपविषैं जे मूलाने आदि देकरि सप्रतिष्ठित प्रत्येक बनस्पती हैं तिनके शरीरनिविषैं एक बंधनविषैं वधे जगच्छ्रेणीका असंख्यातवां भागमात्र पुलवी हैं तिनविषैं तिष्ठते जे गुणितकर्मांश जीव अनंतानंत पाइए हैं तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिके परमाणूनिका एक स्कंध सोई उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि तृतीय शून्यवर्गणा है तहां उत्कृष्ट वादरनिगोदवर्गणातैं एक प्रदेश अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है बहुरि ताके ऊपरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है सो सूक्ष्मनिगोदिया जीवनिका विस्रसोपचय सहित कर्म नो कर्म परमाणूनिका एक स्कधंरूप जानना। तहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है सो जघन्य भेद कैसें पाइए है ? सो कहिए है—

जल विषैं वा स्थलविषैं वा आकाशविषैं जहां तहां एक बंधनविषैं बंधे ऐसे जे आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी तिनिविषैं क्षपितकर्मांश अनंतानंत सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिका परमाणूनिका जो एक स्कंध सोई जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है। इहां प्रश्न—जो वादरनिगोद उत्कृष्ट वर्गणाविषैं पुलवी श्रेणीके संख्यातवे भाग प्रमाण कहे अर जघन्य सूक्ष्मनिगोद

वर्गणाविषैं पुलवी आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण कहे तातैं बादरनिगोद वर्गणाके पहिलें याकौं कहना युक्त था जातैं पुलवीनिका बहुत प्रमाणतैं परमाणूनिका भी बहुत प्रमाण संभवै है? ताका समाधान—जो यद्यपि पुलवी इहां घाटि कहे हैं तथापि बादरनिगोद वर्गणासंबंधी निगोद शरीरनितैं सूक्ष्मनिगोद वर्गणा संबंधी शरीरनिका प्रमाण सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग गुणा है तातैं तहां जीवभी बहुत हैं तिनि जीवनिकै तीन शरीर संबंधी परमाणू भी बहुत हैं तातैं बादरनिगोद वर्गणाके पीछे सूक्ष्मनिगोद वर्गणा कही है। बहुरि जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणाकौं पल्यका असंख्यातवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा हो है सो कैसैं पाइए है? सो कहिए है—

यहां महामत्स्यका शरीरविषैं एक स्कंधरूप आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण पुलवी पाइए है तहां गुणितकर्मांश अनंतानंत जीवनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिके परमाणूनिका एक स्कंध सोई उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि नभोवर्गणा है तहां उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणातैं एक अधिक भए जघन्यभेद होहै इस जघन्यकौं जगत्प्रतरका असंख्यातवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि महास्कंध है तहां उत्कृष्ट नभोवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद होहै बहुरि इस जघन्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीए जो प्रमाण आवै ताकौं जघन्यविषैं मिलाए उत्कृष्ट महास्कंधके परमाणूनिका प्रमाण हो है ऐसैं एक पंक्तिकरि तेईस वर्गणा कहीं ॥ ५९४-५९५ ॥ आगैं जो अर्थ कह्या तिसहीकौं संकोचनकरि तिन वर्गणानि हीका उत्कृष्ट जघन्य मध्य भेदनिकौ वा अल्प बहुत्वकौं छह गाथानिकरि कहैं हैं—

परमाणुवग्गणम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं ॥ ५९६ ॥

परमाणुवर्गणायां न अवरोत्कृष्टं च शेषके अस्ति ।
ग्राह्यमहास्कंधानां वरमधिकं शेषकं गुणितम् ॥ ५९६ ॥

जी० प्र०—परमाणुवर्गणायां जघन्योत्कृष्टे न स्तः, अणूनां निर्विकल्पकत्वात् शेषद्वाविंशतिवर्गणानां तु स्तः । तत्र ग्राह्याणां आहारतेजोभाषामनःकार्मणवर्गणानां महास्कंधवर्गणायाश्च उत्कृष्टानि स्वस्वजघन्याद्विशेषाधिकानि शेषषोडशवर्गणानां गुणितानि भवंति ॥ ५९६ ॥

स. च.-परमाणु वर्गणाविषै जघन्य उत्कृष्ट भेद नाहीं है जातैं अणू अभेद है बहुरि अवशेष बाईस वर्गणानिविषैं जघन्य उत्कृष्ट भेद पाइए है। तहां ग्राह्य कहिए जीवके ग्रहण करनेके योग्य ऐसी जे आहार तैजस भाषा मनः कार्मणवर्गणा इहां आहार वर्गणातैं आहार शरीर इंद्री सासोस्वास ए च्यारि पर्याप्ति होहैं। तैजस वर्गणातैं तैजस शरीर हो है। भाषा वर्गणातैं वचन होहै। मनो वगणातैं मन निपजै है। कार्माण वर्गणातैं ज्ञानावरणादिक कर्म हो हैं तातैं इनि पंच वर्गणानिकौं ग्राह्य वर्गणा कही है अर एक महास्कंध इनि छहौ वर्गणानिका उत्कृष्ट तौ अपने अपने जघन्यतैं किछू अधिक प्रमाण लीएं है अर अवशेष सोलह वर्गणानिका उत्कृष्ट भेद अपने अपने जघन्यकौं गुणकार करि गुणिए तब हो है ॥ ५९६ ॥

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं अंतिमखंधस्स जेट्ठं ॥ ५९७ ॥

सिद्धानंतिमभागः प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थं ।
पल्यासंख्येयमंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थं ॥ ५९७ ॥

जी० प्र०—तत्र पंचग्राह्यवर्गणानां उत्कृष्टनिमित्तं प्रतिभागहारः सिद्धानंतैकभागः, तेन स्वस्वजघन्यं भक्त्वा तत्रैव निक्षिप्ते स्वस्वोत्कृष्टं भवतीत्यर्थः । अंतिममहास्कंधोत्कृष्टनिमित्तं प्रतिभागहारः पल्यासंख्यातैकभागः ॥ ५९७ ॥

स० चं—ग्राह्य पंच वर्गणा तिनिका उत्कृष्टके निमित्त सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र प्रतिभाग है अपने अपने जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवा भाग दीए जो प्रमाण होइ तितने जघन्यविषैं मिलाएं अपना अपना उत्कृष्ट भेद होहै। बहुरि अतका महास्कंधका उत्कृष्टका निमित्त पल्यका असंख्यातवां भागमात्र प्रतिभाग है महास्कंध

के जघन्यकौं पल्यका असंख्यातवा भागका भागदीए जो प्रमाण होइ तितना जघन्यविषैं मिलैं उत्कृष्ट महास्कंध हो है ॥ ५९७ ॥

संखेज्जासंखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्जेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥ ५९८ ॥

संख्यातासंख्यातायां गुणकारः स तु भवति हि अनंतायां ।
चतसृषु अग्राह्यास्वपि सिद्धानामनंतिमो भागः ॥ ५९८ ॥

जी० प्र०—तु-पुनः संख्यातासंख्यातवर्गणायोः उत्कृष्टार्थं स्वस्वजघन्यस्य गुणकारः स संख्यातवर्गणायां स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रसंख्यातः १५/२ असंख्यातवर्गणायां स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रासंख्यातो भवति २५५/१६ ताभ्यां स्वस्वजघन्यं गुणयित्वा २ । १५/२ । १६ । २५५/१६ अपवर्तिते १५ । २५५ खलु स्फुटं तयोरुत्कृष्टे स्यातां इत्यर्थः । अनंतवर्गणायां अग्राह्यवर्गणाचतुष्के च उत्कृष्टार्थं गुणकारः सिद्धानंतैकभागः ॥ ५९८ ॥

स० चं०—संख्याताणुवर्गणा अर असंख्याताणुवर्गणाविषैं अपने अपने उत्कृष्टकौं अपना अपना जघन्य का भाग दीए जो प्रमाण होइ सोई गुणकार जानना इस गुणकारकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है बहुरि अनंताणुवर्गणाविषैं अर जीवकरि ग्रहण योग्य नाहीं ऐसी च्यारि अग्राह्य वर्गणाविषैं गुणकार सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र है इसकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है ॥ ५९८ ॥

जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ॥ ५९९ ॥

जीवादनंतगुणो ध्रुवादितिसृणामसंख्यभागस्तु ।
पल्यस्य ततस्ततः असंख्यलोकावहिता मिथ्या ॥ ५९९ ॥

जी० प्र०—सर्वजीवराशितोऽनंतगुणो ध्रुवादितिसृणां वर्गणानां उत्कृष्टनिमित्तं गुणकारो भवति । तु पुनः तदुपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं पल्यासंख्यातैकभागः । कुतः ? प्रत्येकशरीरस्थकार्मणसमयप्रबद्धानां गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धत्वेन जघन्यसमयप्रबद्धात् छेदासंख्येयगुणितत्वात् । तत्संदृष्टिः द्वात्रिंशत् । तया जघन्ये गुणिते तदुत्कृष्टं भवतीत्यर्थः । ततः ध्रुवशून्यवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं गुणाकारः असंख्यातलोकभक्तसर्वमिथ्यादृष्टिराशिः १३— ≡ a ॥ ५९९ ॥
९ ≡ a१

स० चं०—बहुरि ध्रुवादिक तीन वर्गणानिविषैं जीवराशितैं अनंतगुणा गुणकार है याकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट हो है बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणाविषैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र गुणकार है याकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट हो है । काहेतैं ? सो कहिए है—प्रत्येक शरीर वर्गणाविषैं जो कार्माण शरीर है तातैं समय प्रबद्धगुणितकर्मांश जीव संबंधी है तातैं जघन्य समय प्रबद्धके परमाणूका प्रमाणतैं याका प्रमाण पल्यका अर्धच्छेदनिका असंख्यातवां भाग गुणा है । ताकी सहनानी वत्तीसका अंक है तातैं इहां पल्यका असंख्यातवां भागका गुणकार कह्या है । बहुरि ध्रुव शून्य वर्गणाविषैं असंख्यात लोकका भाग मिथ्यादृष्टी जीवनिकौं दीए जो प्रमाण होइ तितना गुणकार है याकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट हो है ॥ ५९९ ॥

सेढीसूईपल्लाजगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पणअवरादो उक्कस्से होंति णियमेण ॥ ६०० ॥

श्रेणी-सूची—पल्य-जगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः
आत्मात्मनावरादुत्कृष्टे भवंति नियमेन ॥ ६०० ॥

जी० प्र०—श्रेणिसूच्यंगुलपल्यजगत्प्रतराणां असंख्यातैकभागाः क्रमशः बादरनिगोदशून्यसूक्ष्मनिगोदवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं गुणकारा भवंति तत्र शून्यवर्गणायां सूच्यंगुलासंख्यातगुणकारस्तु सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्ये रूपोने सति तदुत्कृष्टसंभवात् । सूक्ष्मनिगोदवर्गणायां पल्यासंख्यातगुणाकारोऽपि तत्समयप्रबद्धानां गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धत्वात् । एवं त्रयोविंशतिवर्गणा एकश्रेण्याश्रिताः कथिताः । इदानीं नानाश्रेणीराशिभ्योच्यंते—तद्यथा—परमाणुवर्गणातः सांतरनिरंतरोत्कृष्टावसानवर्गणानां सदृशधनिकानि अनंतपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि उपर्युपरि विशेषहीनानि भवंति । तत्र

प्रतिभागहारः सिद्धानंतैकभागः प्रत्येकदेहजघन्यसदृशघनिकानि वर्तमानकाले क्षपितकर्मांशलक्षणेनागत्य अयोगिचरमसमये चत्वारि। उत्कृष्टानि स्वयंभूरमणद्वीपस्य दावानल दिषु आवल्यसंख्यातैकभागमात्राणि बादरनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले क्षीणकषायचरमसमये चत्वारि तदुत्कृष्टानि महामत्स्यादिषु आवल्यसंख्यातैकभागः। बादरनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले जले स्थले आकाशे वा आवल्यसंख्यातैकभागः। उत्कृष्टान्यपि महामत्स्येषु तदालापानि। अस्मिन् सचित्तवर्गण त्रये अजघन्यानुत्कृष्टानि वर्तमानकाले असंख्यातलोकमात्राणि भवंति। महास्कंधवर्गणा वर्तमानकाले एका सा तु भवनविमानाष्टपृथ्वीमेरुकुलशैलादीनामेकीभावरूपा। कथं संख्यातासंख्यानयोजनांतरितानामेकत्वं? एकबंधनबद्धसूक्ष्मपुद्गलस्कंधैः समवेतानामंतराभावात् ॥ ६०० ॥

स० चं०—जगच्छ्रेणीका असंख्यातवां भाग बहुरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग बहुरि पल्यका असंख्यातवां भाग बहुरि जगत्प्रतरका असंख्यातवां भाग ए अनुक्रमतें बादरनिगोदवर्गणा अर शून्यवर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा अर नभोवर्गणा इनिविषैं गुणकार है इनिकरि अपने अपने जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है इहां शून्यवर्गणाविषैं सूच्यंगुलका असख्यातवां भाग गुणकार कह्या है सो सूक्ष्मनिगोद वर्गणाका जघन्य एक घाटि भये उत्कृष्ट शून्यवर्गणा हो है तातैं कह्या है। बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणाविषैं पल्यका असंख्यातवां भाग गुणकार कह्या है सो ताके उत्कृष्टका कार्माण संबंधी समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीवसंबंधी है तातैं कह्या है ऐसैं ए तेईस वर्गणा एक पंक्ति अपेक्षा कहीं। अब नानापंक्ति अपेक्षा कहिए है। नाना पंक्ति कहा? जो ए वर्गणा कहीं ते वर्गणा लोकविषैं वर्तमान कोई एक कालमें केती केती पाइए है ऐसी अपेक्षा करि कहै हैं—

परमाणू वर्गणातैं लगाइ सांतरनिरतरवर्गणापर्यंत पंद्रह वर्गणा समान परमाणूनिका स्कंधरूप लोकविषैं पुद्गलद्रव्यका जो प्रमाण ताका जो वर्गमूल ताका अनंत गुणा कीए जो प्रमाण होइ तितनी तितनी पाइए है तहां इतना विशेष है ऊपरि किछू घाटि घाटि पाइए है। तहां प्रतिभागहार सिद्धराशिका अनंतवा भाग मात्र है सो कहिए है—

अणूवर्गणा लोकविषैं जेती पाइए हैं तिस प्रमाणकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागका भाग दीए जो प्रमाण आवैं तितना अणुवर्गणाका परिमाणमें घटाए जो प्रमाण रहै तितनी दोय परमाणूका स्कंधरूप सख्याताणु वर्गणा जगतविषैं पाइए है। इसकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना तिसहीमें

घटाइए जो प्रमाण रहै तितनी तितनी परमाणूका स्कंधरूप संख्याताणु वर्गणा लोकविषैं पाइए है इसही अनुक्रमतैं एक एक अधिक परमाणूका स्कंधका प्रमाण करते जहां उत्कृष्ट संख्याताणुवर्गणा भई तहां जो प्रमाण भया ताकौं सिद्ध राशिका अनंतवां भागका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना तिसहीमैं घटाए जो अवशेष रहै तितना जघन्य असंख्याताणु वर्गणा लोकविषैं पाइए हैं याकौं तैसैंही भाग देइ घटाए जो प्रमाण रहै तितनी मध्य असंख्याताणु वर्गणाका प्रथम भेदरूप वर्गणा लोकविषैं पाइए है सो ऐसैं ही एक एक अधिक परमाणूनिका स्कंधका प्रमाण अनुक्रमतैं सांतर निरंतर वर्गणाका उत्कृष्ट पर्यंत जानना। सामान्यपनैं सर्व जुदी वर्गणानिका प्रमाण अनंत पुद्गल राशिका वर्गमूल मात्र जानना। बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणाका जघन्य तौ पूर्वोक्त अयोग केवलीका अंत समयविषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं च्यारि पाइए है। बहुरि उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा स्वयंभूरमण द्वीपका दावानलादिकविषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है। बहुरि बादर निगोद वर्गणाका जघन्य तौ पूर्वोक्त क्षीण कषाय गुणस्थानका अंत समयविषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं च्यारि पाइए है अर वादर निगोद वर्गणाका उत्कृष्ट महामत्स्यादिक विषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है। बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा जघन्य तौ वर्तमानकालविषैं जलमैं वा स्थलमैं वा आकाशमैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा उत्कृष्ट भी आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है। इहां प्रत्येक शरीर वादर निगोद सूक्ष्म निगोद इनि तीन सचित्तवर्गणानिका मध्यभेद वर्तमान कालविषैं असंख्यात लोक प्रमाण पाइए है बहुरि महास्कंध वर्गणा वर्तमान कालमैं जगतविषैं एक ही है सो भवनवासीनिके भवन देवनिके विमान आठ पृथ्वी मेरु गिरि कुलाचल इत्यादिकानिका एक स्कंध रूप है। इहा प्रश्न–जो जिनिकैं असंख्यात संख्यात योजननिका, अन्तर पाइए तिनिका एक स्कंध कैसैं संभवै है ? ताका उत्तर–जो मध्यविषैं सूक्ष्म परमाणूं हैं सो वे विमानादिक अर सूक्ष्म परमाणू तिनि सबनिका एक बंधान है तातैं अंतर नाहीं एक स्कंध है सो ऐसा जो एक स्कंध है ताहीका नाम महास्कंध है ॥ ६०० ॥

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु।
इति तेवीसावियप्पा पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ॥ ६०१ ॥

अधस्तनोत्कृष्टं पुनः रूपाधिकमुपरिमं जघन्यं खलु।
इति त्रयोविंशतिविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि हि जिनदिष्टानि ॥ ६०१ ॥

जी० प्र०—त्रयोविंशतिवर्गणासु अणुवर्गणातः शेषाणां अधस्तनवर्गणोत्कृष्टानि रूपाधिकानि भूत्वा तदुपरितनवर्गणानां जघन्यानि भवंति खलु नियमेन इति त्रयोविंशतिवर्गणाविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि जिनैरुक्तानि खलु स्फुटं। तासु प्रत्येकबादरनिगोदसूक्ष्मनिगोदवर्गणाः तिस्रः सचित्ताः। तत्र अयोगिचरमसमये प्रत्येकशरीरजघन्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति? यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि। तथा तद्द्वितीयवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि इत्यवस्थितक्रमेणानंतवर्गणा अतीत्य अनंतवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन पंच इत्यवस्थितक्रमेण अनंतवर्गणा अतीत्य अनंतवर्गणाद्रव्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति। यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन षट् अनेन क्रमेण सप्ताष्ट सप्तषट् पंचचतुस्त्रि द्विसदृशधनिकानि भवंति। इयं यवमध्यप्ररूपणा भव्यसिद्धप्रायोग्यस्थानेषु ग्राह्या। अनंतवर्गणा सा संसारिजीवप्रायोग्या तद् द्रव्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः इत्यवस्थितक्रमेण अनंतवर्गणा अतीत्य अनंतरवर्गणाद्रव्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः। अयं पूर्वस्मादेकरूपाधिकः- $\frac{१-}{२}$ एवमनंतवर्गणा अतीत्य अनंतरोपरितनवर्गणासु अधस्तनाधस्तनवर्गणाभ्यः एकैकाधिका भवंति। एवं यावत् यवमध्यं तावन्नेतव्यं। यवमध्यवर्गणासदृशधनिकद्रव्यं कचिदस्ति कचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः। अयं ततोऽप्येकरूपाधिकः। एवमनंतवर्गणा अतीत्य अनंतरवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति, यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः अयं पूर्वस्मादेकरूपहीनः। एवं यावदुत्कृष्टा प्रत्येकवर्गणा तावन्नेयं। तदुत्कृष्टमपि स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः इति प्रत्येकवर्गणा भव्यसिद्धान् अभव्यसिद्धांश्च आश्रित्योक्ता। एवं बादरनिगोदवर्गणायामपि वक्तव्यं, पृथक् कथनं नास्ति सूक्ष्मनिगोदवर्गणायां तु जलस्थलाकाशादिषु सर्वजघन्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः एवमभव्यसिद्धप्रायोग्यप्रत्येकशरीर-

वन्नेतव्यं यावत् यवमध्यं तावत् । तत्रापि आवल्यसंख्यातैकभागसदृशधनिकानि भवंति । पुनः प्रत्येकवर्गणावन्नेतव्यं यावत्तद्वर्गणोत्कृष्टं तावत् तदपि एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागो भवति तत्र सर्वत्र अभव्यसिद्धप्रायोग्ययवमध्येषु गुणहान्यध्वानं सर्वजीवेभ्योऽनंतगुणं १६ ख नानागुणहानिशलाकायवमध्यादधः उपर्यपि आवल्यसंख्यातैकभागः ८ ॥ ६०१ ॥

a

स. चं.–तेईस वर्गणानिविषैं अणुवर्गणा विना अवशेष वर्गणानिकैं जो नीचेका उत्कृष्ट भेद होइ तामैं एक अधिक भए ताके ऊपरि जो वर्गणा ताका जघन्य भेद हो है। ऐसैं तेईस वर्गणा भेदकौं लीए पुद्गल द्रव्य जिनदेवने कहे हैं इनिविषैं प्रत्येक वर्गणा अर बादरनिगोदवर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा ए तीन सचित्त हैं जीव सहित हैं सो इनिका विशेष कहिए है—

अयोग केवलीका अतसमयविषैं पाइए ऐसी जघन्य प्रत्येक वर्गणा सो लोकविषैं होइ भी वा न भी होइ,जो होइ तौ एक ही होइ वा दोइ होइ वा तीन होइ उत्कृष्ट होइ तौ च्यारि होइ । बहुरि जघन्यतैं एक परमाणू अधिक ऐसी मध्य प्रत्येकवर्गणा सो लोकविषै होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा उत्कृष्टपनैं च्यारि होइ ऐसैं ही एक एक परमाणूका बंधावतैं इस ही अनुक्रमतैं जब अनंतवर्गणा होंइ तब ताके अनंतर जो एक परमाणू अधिक वर्गणा सो लोकविषैं होइ वा न होइ जो होइ, तौ एक वा दोय वा तीन वा च्यारि वा उत्कृष्टपनैं पांच होइ ऐसैं एक एक परमाणू बंधतैं अनंतवर्गणा पर्यंत पंच ही उत्कृष्टरहैं ताके अनंतरि जो वर्गणा सो होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट छह होइ ऐसैं अनंतवर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट छही होंइ । बहुरि इसही अनुक्रमतैं अनंत वर्गणापर्यंत उत्कृष्ट सात आठ सात छह पांच च्यारि तीन दोय वर्गणा जगतविषैं समान परमाणूनिका प्रमाण लीएं हो हैं यहु यवमध्य प्ररूपणा है जैसैं यव नामा अन्नका मध्य मोटा हो है तैसैं इहां मध्यविषैं वर्गणा आठ कहीं पहिले वा पीछैं थोड़ी थोड़ी कहीं तातैं याकौं यवमध्यप्ररूपणा कहिए है । सो यहु प्ररूपणा मुक्तिगामी भव्य जीवनिकी अपेक्षा है ऐसैं प्रत्येक वर्गणा समान संसारी जीवनिकैं न पाइए है इहांतैं आगैं संसारी जीवनिकैं पाइए ऐसी प्रत्येक वर्गणा कहिए है—

सो पूर्वैं कथन कीया ताके अनंतरि पूर्व प्रत्येक वर्गणातैं एक परमाणू अधिकता लीएं जो प्रत्येक वर्गणा सो जगतविषैं होइ, वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन इत्यादि उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण होइ। ऐसैं ही अनंतवर्गणा भए अनंतरि जो प्रत्येक वर्गणा सो लोकविषैं होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण पूर्व प्रमाणतैं एक अधिक होइ ऐसैं अनंत अनंत वर्गणा भए एक एक अधिक प्रमाण उत्कृष्टविषैं होता जाय जहां यवमध्य होइ तहां ताईं ऐसैं जानना यवमध्यविषैं जेता परमाणूका स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा भई तितने तितने परमाणूनिका स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा जगतविषैं होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ यहु प्रमाण इसतैं जो पूर्वप्रमाण तातैं एक अधिक जानना। ऐसैं अनंत वर्गणा भएं अनंतरि जो वर्गणा भई सो जगतविषैं होइ वा न होइ जो होइ तो एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण होइ सो यहु प्रमाण यवमध्य संबंधी पूर्वप्रमाणतैं एक घाटि जानना। ऐसैं एक परमाणूके घटनेतैं एक एक वर्गणा होइ सो अनंत अनंत वर्गणा भए उत्कृष्टविषैं एक एक घटाइए जहां ताईं उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा होइ तहां ताईं ऐसैं करना। उत्कृष्ट प्रत्येकवर्गणा लोकविषैं होइ वा न होइ जो होय तो एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ ऐसैं प्रत्येक वर्गणा भव्यसिद्ध अभव्य सिद्धनिकी अपेक्षा कही। बहुरि बादरनिगोद वर्गणाका भी कथन प्रत्येक वर्गणावत् जानना किछू विशेष नाहीं। जैसैं प्रत्येक वर्गणाविषैं अयोगीका अंतसमयविषैं संभवती जघन्य वर्गणा ताकौं आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन कीया है तैसैं इहां क्षीणकषायीका अंत समयविषैं संभवती तिसका शरीरके आश्रित जघन्य बादर निगोद वर्गणा ताकौं आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन जानना। बहुरि सामान्य संसारी अपेक्षा दोऊ जायगे समानता संभवै है। बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणाका कथन कहिए है—

सो इहां भव्य सिद्ध अपेक्षा तो कथन है नाहीं तातैं जघन्य सूक्ष्म निगोद वर्गणा लोकविषैं होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। आगै जैसैं संसारीनिकी

अपेक्षा प्रत्येक वर्गणाका कथन कीया तैसैं ही यवमध्य ताईं अनंतानन्त वर्गणा भएं उत्कृष्टविषै एक एक बंधावना पीछे उत्कृष्ट सूक्ष्मवर्गणा पर्यंत एक एक घटावना सामान्यपनैं सर्वत्र उत्कृष्टका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग कहिए। इहां सर्वत्र संसारी सिद्धकौं योग्य ऐसी जो ए प्रत्येक वादर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा तिनिका यव आकार प्ररूपणाविषैं गुणहानिका गच्छ जीवराशितैं अनन्त गुणा जाननां। नाना गुणहानिशलाकाका प्रमाण यवमध्यतैं ऊपरि वा नीचे आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण जानना। भावार्थ—संसारी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणा बादरनिगोदवर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणाविषै जो यवमध्य प्ररूपणा कही तहां लोकविषै पावनेकी अपेक्षा जेते एक एक परमाणू वंधने रूप जे वर्गणा भेद तिनि भेदनिका जो प्रमाण सो तो द्रव्य है अर जिनि वर्गणानिविषै उत्कृष्ट पावनेकी अपेक्षा समानता पाइए तिनिका समूह सो निषेक तिनिका जो प्रमाण सो स्थिति है। बहुरि एक गुणहानिविषैं निषेकनिका जो प्रमाण सो गुणहानिका गच्छ है ताका प्रमाण जीवराशितै अनन्त गुणा है। बहुरि यवमध्यके ऊपरि वा नीचे गुणहानिका प्रमाण सो नानागुणहानि है सो प्रत्येक अवलीका असंख्यातवां भागमात्र है। ऐसैं द्रव्यादिक का प्रमाण जानि जैसैं निषेकनिविषैं द्रव्य प्रमाण ल्यावनेका बिधान है तैसैं उत्कृष्ट पावनेकी अपेक्षा समान रूप जे वर्गणा तिनिका प्रमाण यवमध्यतैं ऊपरि वा नीचैं चय घटता क्रम लीए जानना। इहां प्रश्न—जो इहां तो प्रत्येकादिक तीन सचित्त वर्गणानिके अनंते भेद कहे, एक एक भेदरूप वर्गणा लोकविषैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण सामान्यपनैं कही बहुरि पूर्वै मध्यभेदरूप सचित्तवर्गणा सर्व असंख्यात लोक प्रमाण ही कही सो उत्कृष्ट जघन्य विना सर्व भेद मध्यभेद विषैं आय गए तहां ऐसा प्रमाण कैसे संभवै? ताका समाधान—इहां सर्वभेदनिविषैं ऐसा कह्या है जो होइ भी न भी होइ। होइ तौ एक वा दोय इत्यादि उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ सो नानाकाल अपेक्षा यहु कथन है बहुरि तहां एक कोई विवक्षित वर्तमान काल अपेक्षा वर्तमान कालविषैं सर्व मध्यभेदरूप प्रत्येकादि वर्गणा असंख्यात लोक प्रमाण ही पाइए है अधिक न पाइए है तिनिविषैं किसी भेदरूप वर्गणानिकी नास्ति ही है। किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाण लीएं पाइए हैं। किसी भेदरूप वर्गणा उत्कृष्टपनैं प्रमाण लीएं पाइए है। ऐसा समझना। ईह प्रकार तेईस वर्गणाका वर्णन कीया॥ ६०१॥

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥ ६०२ ॥

पृथ्वी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयकर्मपरमाणवः ।
षड्विधभेदं भणितं पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ॥ ६०२ ॥

जी० प्र०—पृथ्वी जलं छाया चक्षुर्वर्जितशेषचतुरिंद्रियविषयः कर्मपरमाणुश्चेति पुद्गलद्रव्यं षोढा जिनवरैर्भणितं ॥ ६०२ ॥

स० चं०—पृथ्वी अर जल अर छाया अर नेत्र विना च्यारि इन्द्रियनिका विषय अर कार्मांण स्कंध अर परमाणू ऐसैं पुद्गल द्रव्य छह प्रकार जिनेश्वर देवानिकरि कह्या है ॥ ६०२ ॥

बादरबादर बादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ॥ ६०३ ॥

बादरबादरं बादरं बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च ।
सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं धरादिकं भवति षड्भेदं ॥ ६०३ ॥

जी० प्र०—पृथ्वीरूपपुद्गलद्रव्यं बादरबादरं छेत्तुं भेत्तुं अन्यत्र नेतुं शक्यं तद्बादरबादरमित्यर्थः । जलं बादरं, यच्छेत्तुं भेत्तुमशक्यं, अन्यत्र नेतुं शक्यं तद्बादरमित्यर्थः । छाया बादरसूक्ष्मं यच्छेत्तुं भेत्तुमन्यत्र नेतुमशक्यं तद्बादरसूक्ष्ममित्यर्थः । यः चक्षुर्वर्जितचतुरिंद्रियविषयो बाह्यार्थः तत्सूक्ष्मस्थूलं । कर्म सूक्ष्मं, यद्द्रव्यं देशावधिपरमावधिविषयं तत्सूक्ष्ममित्यर्थः । परमाणुसूक्ष्मसूक्ष्मं यः सर्वावधिविषयं तत्सूक्ष्मसूक्ष्ममित्यर्थः ॥ ६०३ ॥

स० चं०—पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादरबादर है जो पुद्गल स्कंध छेदनेकौं भेदनेकौं और जायगें लेजानेकौं समर्थ हूजै तिस स्कंधकौं बादरबादर कहिए । बहुरि जल है सो बादर है जो छेदनेकौं भेदनेकौं समर्थ न हूजै अर और जायगे लेजानेकौं समर्थ हूजै सो स्कंध बादर जानने । बहुरि छाया बादर सूक्ष्म हैं जो छेदने भेदने और जा-

यगे लेजानेकौं समर्थ न हूजै सो वादरसूक्ष्म है। बहुरि नेत्र विना च्यारि इंद्रियनिका विषय सूक्ष्म स्थूल है। बहुरि कार्माणके स्कंध सूक्ष्म हैं जो द्रव्य देशावधि परमावधिके गोचर होइ सो सूक्ष्म है। बहुरि परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है जो सर्वावधिके गोचर होइ सो सूक्ष्मसूक्ष्म है इहां एक एक वस्तुका उदाहरण कह्या है सो पृथ्वी काष्ठ पाषाण इत्यादि बादरबादर हैं। जल तैल दुग्ध इत्यादि बादर है। छाया आतप चांदनी इत्यादि वादरसूक्ष्म है। शब्द गंधादिक सूक्ष्म वादर है। इंद्रियगम्य नाही देशावधि परमावधिगम्य होंहि ते स्कंध सूक्ष्म हैं। परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है ऐसें जानने ॥ ६०३ ॥

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ॥ ६०४ ॥

स्कंधं सकलसमर्थं तस्य चार्धं भणंति देश मिति।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशमविभागिनं चैव परमाणुं ॥ ६०४ ॥

जी० प्र०--स्कंधं सर्वांशसंपूर्णं भणंति तदर्धं च देशं, अर्धस्यार्धं प्रदेशं अविभागिभूतं परमाणुं ॥ ६०४ ॥ इति स्थानस्वरूपाधिकारः।

स० चं०—जो सर्व अंशकरि संपूर्ण होइ ताकौं स्कंध कहिए। ताका आधाकौं देश कहिए। तिस आधाके आधाकौं प्रदेश कहिए। जाका भाग न होइ ताकौं परमाणू कहिए। भावार्थ—विवक्षित स्कंधविषैं संपूर्णतैं एक परमाणू अधिक अर्ध पर्यंत तौ स्कंध संज्ञा है। अर्धतैं लगाइ एक परमाणू अधिक चौथाई पर्यंत देश संज्ञा है। चौथाईतैं लगाइ दोय परमाणूका स्कंध पर्यंत प्रदेश संज्ञा है। अविभागीकौं परमाणू संज्ञा है ॥६०३॥ इति स्थानाधिकारः

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्मतियं।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ॥ ६०५ ॥

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवतिं धर्मत्रयं ।
वर्तनाक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ॥ ६०५ ॥

जी० प्र०—देशांतरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीतं स्थानं । अवकाशदानं अवगाहः । गतिक्रियावतोर्जीवपुद्गलयोः तत्क्रियासाधनभूतं धर्मद्रव्यं मत्स्यानां जलमिव । स्थानक्रियावतोर्जीवपुद्गलयोः तत्क्रियासाधनभूतमधर्मद्रव्यं पथिकानां छायेव । अवगाहनक्रियावतां जीवपुद्गलादीनां तत्क्रियासाधनभूतमाकाशद्रव्यं तिष्ठतो वसतिरिव । ननु क्रियावतोरवगाहिजीवपुद्गलयोरेवावकाशदानं युक्तं धर्मादीनां तु निष्क्रियाणां नित्यसंबद्धानां तत् कथं ? इति तन्न उपचारेण तत्सिद्धेः । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् तथा धर्मादीनां अवगाहनक्रियाया अभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनात् अवगाह इत्युपचर्यते ॥

अथ यदि अवकाशदान आकाशस्य स्वभावस्तदा वज्रादिभिर्लोष्टादीनां भित्त्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो माभूत्, दृश्यते च व्याघातः । तेन आकाशस्य अवगाहनदानं हीयते इति नाशंकनीयं, वज्रलोष्ठादीनां स्थूलत्वाद् व्याघातेऽपि अवगाहिनामेव व्याघातात् तस्य अवगाहनदानसामर्थ्यह्रासाभावात् । सूक्ष्मपुद्गलानां परस्परं प्रत्यवकाशदानकारणात् । यद्येवं तर्हि आकाशस्य तदसाधारणलक्षणं न इतरद्रव्याणामपि तत्सद्भावात् इति न मंतव्यं, सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वस्यैव आकाशस्यासाधारणलक्षणत्वात् । तर्हि अलोकाकाशे अवगाहनदानाभावात् अभावः स्यात् ? तदपि न, स्वभावपरित्यागाभावात् । तु-पुनः द्रव्याणां वर्तनाक्रियासाधनभूतं नियमेन कालद्रव्यं भवति ॥

स० चं०—क्षेत्रतें क्षेत्रांतर प्राप्त होनेकौं कारण सो गति कहिए। गतिका अभाव रूप स्थान कहिए। अवकाशविषैं रहनेकौं अवगाह कहिए। तहां जैसे मत्स्यनिके गमन करनेका साधनभूत जल द्रव्य है तैसैं गति क्रियावान जे जीव पुद्गल तिनकैं गतिक्रियाका साधनभूत धर्मद्रव्य है। बहुरि जैसैं पंथी जनानिकैं स्थान करनेका साधन भूत छाया है तैसैं स्थान क्रियावान जे जीव पुद्गल तिनके स्थान क्रियाका साधन भूत अधर्म द्रव्य है। बहुरि जैसैं वास करनेवालोंके साधनभूत वसतिका है तैसैं अवगाह क्रियावान जे जीव पुद्गलादिक तिनिकैं अवगाह क्रियाका साधन भूत आकाश द्रव्य है। इहां प्रश्न—जो अवगाह क्रियावान तौ जीव पुद्गल हैं तिनिकौं अवकाश देना युक्त कह्या है बहुरि धर्मादिक द्रव्य तौ निष्क्रिय हैं नित्य सम्बन्धकौं धरैं हैं नवीन नाहीं आए जिनिकौं अवकाश देना संभवै ऐसैं इहां कैसैं कहिए सो कहौ ? ताका समाधान—जो उपचार करि कहिए है जैसैं गमनका अभाव होतें संतैं भी सर्वत्र सद्भावकी अपेक्षा आकाशकौं सर्वगत कहिए है तैसैं धर्मादिक द्रव्यनिकैं अवगाह क्रियाका अभाव

होते संते भी लोक विषैं सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा अवगाहका उपचार कीजिए है। बहुरि प्रश्न—जो अवकाश देना आकाशका स्वभाव है तौ वज्रादिककरि पाषाणादिकका अर भीति इत्यादिककरि गऊ इत्यादिकनिका रोकना कैसें हो है। सो रोकना तौ देखि रहे हैं तातैं आकाश तौ तहां भी था पाषाणादिककौं अवकाश न दीया तब आकाशका अवगाह देना स्वभाव न रह्या? तहां उत्तर—जो आकाश तो अवगाह देइ परतु पूर्वैं तहां अवगाह करि तिष्ठे ते वज्रादिक स्थूल हैं तातैं परस्पर रोकै हैं। यामैं आकाशका अवगाह देनेका स्वभाव गया नाही जातैं तहां ही अनंत सूक्ष्म पुद्गल हैं ते परस्पर अवगाह देवैं हैं। बहुरि प्रश्न—जो ऐसैं हैं तो सूक्ष्म पुद्गलादिकनिकैं भी अवगाहहेतुत्व स्वभाव आया। आकाश हीका असाधारण लक्षण कैसैं कहिए है? तहां उत्तर—जो सर्व पदार्थनिकौं साधारण अवगाहहेतुत्व इस आकाश हीका असाधारण लक्षण है और द्रव्य सर्व द्रव्यनिकौं अवगाह देनेकौं समर्थ नाहीं। बहुरि प्रश्न—जो अलोकाकाश तौ सर्व द्रव्यनिकौं अवगाह देता नाहीं तहां ऐसा लक्षण कैसे संभवै? ताका समाधान—जो स्वभावका परित्याग होइ नाहीं। तहां कोई द्रव्य होता तौ अवगाह देता कोई द्रव्य तहां गमनादि न करै तौ अवगाह कौनकौं देवै तिसका तौ अवगाह देने का स्वभाव पाइए है बहुरि सर्व द्रव्यनिकौं वर्तना क्रियाका साधनभूत नियमकरि काल द्रव्य है॥ ६०४॥

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण॥ ६०६॥

अन्योन्योपकारेण च जीवा वर्तंते पुद्गलाः पुनः।
देहादिनिर्वर्तनकारणभूता हि नियमेन॥ ६०६॥

जी० प्र०—अन्योन्यं उपकारिणो जीवा वर्तंते यथा स्वामी भृत्यं वित्तत्यागादिना, भृत्यस्तं हितप्रतिपादनाहितप्रतिषेधादिना, आचार्यः शिष्यं उभयलोकफलप्रदोपदेशक्रियानुष्ठानाभ्यां, शिष्यस्तं आनुकूल्यवृत्त्युपकाराधिकारैः, चशब्दात् अनुपकारानुभयाभ्यामपि वर्तंते। पुद्गलाः पुनः देहा-

दीनां कर्मनोकर्मवाङ्मनउच्छ्वासनिश्वासानां निर्वर्तनकारणभूताः खलु नियमेन भवंति । ननु कर्मापौद्गलिकं अनाकारत्वात्—आकारवतामौदारिकादीनामेव तथात्वं युक्तमिति तन्न, कर्मापि पौद्गलिकमेव लगुडकंटकादिमूर्तद्रव्यसंबंधेन पच्यमानत्वात् । उदकादिमूर्तद्रव्यसंबंधेन व्रीह्यादिवत् । वाक् द्वेधा द्रव्यभावभेदात् । तत्र भाववाग् वीर्यांतरायमतिश्रुतावरणक्षयोपशमांगोपांगनामकर्मलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिका तदभावे तद्वृत्त्यभावात् । तत्पामर्थ्योपेतत्वेन क्रियावतात्मना प्रेर्यमाणपुद्गलाः वाक्त्वेन परिणमंते इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकैव श्रोत्रेंद्रियविषयत्वात् । इतरेंद्रियविषयापि कुतो न स्यात् तद्ग्रहणायोग्यत्वात् घ्राणग्राह्ये गंधद्रव्ये रसन वानुपलब्धिवत् । अमूर्ता वाग् इत्यप्ययुक्तं मूर्तैर्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनात् मूर्तत्वसिद्धेः । मनोऽपि तथा द्वेधा । तत्र भावमनः लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलालंबनात् पौद्गलिकं । द्रव्यमनोऽपि ज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमांगोपांगनामकर्मलाभप्रत्ययगुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकपुद्गलानां तथात्वेन परिणमनात् पौद्गलिकं । कश्चिदाह—मनः द्रव्यांतरं रूपादिपरिणमनविरहितमणुमात्रं, पौद्गलिकं न । आचार्य आह-तेन आत्मनः संबंधः स्यात् न वा ? यदि न, तन्न आत्मनः उपकारेण भाव्यं तन्नोपकुर्वीत, इंद्रियस्य साचिव्यं सचिवत्वं न कुर्यात् । अथ स्यात्, तदा एकदेशसंबंधेन सोऽणुः इतरप्रदेशेषु नोपकुर्यात् । अथादृष्टवशेन तस्य लातचक्रवत्परिभ्रमणं तदप्यसंभाव्यं, अणुमात्रस्य तत्सामर्थ्याभावात्, अमूर्तस्य आत्मनो निष्क्रियस्य अदृष्टगुणः अन्यत्र क्रियारंभे समर्थो न । वायुद्रव्यं हि क्रियावत् स्पर्शवत् प्राप्तं वनस्पतौ परिस्पंदहेतुः तद्विपरीतलक्षणोऽयमणुस्तादृक् क्रियाहेतुर्न स्यात् । वीर्यांतरायज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामोदयापेक्षेणात्मनोदस्यमानकंठ्यवायुः उच्छ्वासलक्षणः स प्राणः । तेनैव वायुना आत्मनो बाह्यवायुरभ्यंतरीक्रियमाणो निश्वासलक्षणः अपानः । तौ च आत्मनोऽनुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात्, ते च मनःप्राणापाना मूर्तिमतः, मनसः प्रतिभयहेत्वशनिपातादिभिः प्राणापानयोश्च श्वादिपूतिगंधिप्रतिभयेन हस्ततलपुटादिभिरास्यसंवरणेन श्लेष्मणा वा प्रतिघातदर्शनात्, अमूर्तस्य मूर्तिमद्भिस्तदसंभवाच्च । तत एव प्राणापानादिव्यापारादात्मनोऽस्तित्वसिद्धिः प्रयोक्तुरभावे प्रतिमाचेष्टितस्येव आत्माभावे तदघटनात् । तथा सदसद्वेद्योदयांतरंगहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशेन उत्पद्यमानप्रीतिपरितापरूपपरिणामौ सुखदुःखे । आयुरुदयेन भवस्थितिं बिभ्रतः प्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितं, तदुच्छेदो मरणं । तान्यपि पौद्गलिकानि मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्तिसंभवात् । न केवलं जीवशरीरादीनामेव निर्वर्तनकारणभूताः पुद्गलाः पुद्गलादीनामपि कांस्यादीनां भस्मादिभिः जलादीनां कतकादिभिः अयःप्रभृतीनां जलादिभिश्च उपकारदर्शनात् एवमौदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मोदयात् आहारवर्गणायातानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च । तैजसनामकर्मोदयात् तेजोवर्गणया तैजसशरीरं । कार्मणनामकर्मोदयात् कार्मणवर्गणया कार्मणशरीरं । स्वरनामकर्मोदयाद् भाषावर्गणया वचनं, नोइंद्रियावरणक्षयोपशमोपेतसंज्ञिनोंगोपांगनामकर्मोदयात् मनोवर्गणया द्रव्यमनश्च भवतीत्यर्थः ॥ ६०६ ॥ अमुमेवार्थं सूत्रद्वयेनाह—

स० च—बहुरि जीव द्रव्य हैं ते परस्पर उपकार करि प्रवर्तें हैं जैसें स्वामी तौ चाकरकौं धनादिक देवै है अर चाकर स्वामीका जैसें हित होइ अर अहितका निषेध होइ तैसें करै है सो ऐसें परस्पर उपकार है । बहुरि आचार्य तौ शिष्यकौं इहलोक परलोकविषैं फलकौं देनेहारा उपदेश क्रियाका आचरण करावना ऐसें उपकार करै है शिष्य

उन आचार्यनिकी अनुकूलवृत्तिकरि सेवा करै है ऐसैं परस्पर उपकार है ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना। बहुरि चकारतैं जीव परस्पर अनुपकार जो बुरा करना तिसरूप भी प्रवर्तै हैं वा उपकार अनुपकार दोऊरूप नाहीं प्रवर्त हैं। बहुरि पुद्गल हैं सो देहादिक जे कर्म नोकर्म वचन मन स्वासोस्वास इनिके निपजावनेका नियमकरि कारणभूत है सो ए पुद्गलके उपकार हैं। इहां प्रश्न—जो जिनिका आकार देखिए ऐसे औदारिकादि शरीर तिनिकौं पुद्गल कहौ, कर्म तौ निराकार हैं पुद्गलीक नाही। तहां उत्तर—जैसैं गोधूमादिक अन्न जलादिक मूर्तीक द्रव्यके संबंधतैं पचै हैं ते गोधूमादिक पुद्गलीक हैं तैसैं कर्म नील गुड कंटकादिक मूर्तीक द्रव्यके सबंधतैं उदय अवस्थारूप होइ पचैं हैं तातैं पुद्गलीक ही हैं।

वचन दोय प्रकार है—एक द्रव्यबचन १ एक भावबचन २ तहां भाववचनतौ वीर्यांतराय मति श्रुत आवरण का क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्मका उदयके निमित्ततैं हो है तातैं पुद्गलीक है पुद्गलके निमित्त विना भाववचन होता नाहीं बहुरि भाव वचनकी सामर्थ्यकौं धरै ऐसा क्रियावान जो आत्मा ताकरि प्रेरित हुवा पुद्गल बचनरूप परिणवै है सो द्रव्यबचन कहिए सो भी पुद्गलीक ही है जातैं सो द्रव्यवचन कर्ण इंद्रियका विषय है जो इंद्रियनिका विषय है सो पुद्गल हो है। इहां प्रश्न—जो कर्णविना अन्य इंद्रियनिका विषय क्यों न होइ ? तहां उत्तर—जो जैसैं गंध नासिका ही का विषय है सो रसनादिक करि ग्रह्या न जाइ तैसैं शब्द कर्णहीका विषय है अन्य इंद्रियनिकरि योग्य नाहीं। इहां तर्क—जो वचन अमूर्तीक है तहां कहिए है ऐसा कहना भी अयुक्त है जातैं वचन मूर्तीककरि ग्रह्या जाइ है वा मूर्तीक द्रव्यकरि रुकै है वा नष्ट हो है तातैं मूर्तीक ही है। बहुरि द्रव्य भावके भेदतैं मन भी दोय प्रकार है तहां भावमन तौ लब्धि उपयोग रूप है सो क्षयोपशमादिक पुद्गलीक निमित्ततैं होहै तातैं पुद्गलीक ही है बहुरि ज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नाम कर्मका उदय इनिके निमित्ततैं गुण दोषका विचार स्मरण इत्यादिकरूप सन्मुख भया जो आत्मा ताकौं उपकारी जे पुद्गल सो मनरूप होइ परिणवैं हैं तातैं द्रव्यमन भी पुद्गलीक है। इहां कोऊ कहै कि मन तौ एक जुदा ही द्रव्य है रूपादिकरूप न परि-

णवै है अणूमात्र है तहां आचार्य कहैं हैं—तींहि मनस्यौं आत्माका संबंध है कि नाहीं है ? जो संबंध नाहीं है तो आत्माकौं उपकारी न होइ, इंद्रियनिविषैं प्रधानताकौं न धरै और जो संबंध है तो वह तो अणुमात्र है सो एकदेशविषै उपकार करेगा अन्य प्रदेशानिविषैं कैसें उपकार करै है। तहां तार्किक कहैं है—कि अमूर्तीक निष्क्रिय आत्माका एक अदृष्टनामा गुण है सो अदृष्ट जो कर्म ताका वशकरि तिस मनका कुँभारका चक्रवत् परिभ्रमण करै है सो ऐसा कहना भी अयुक्त है अणूमात्र जो होइ ताकैं भ्रमणकी समर्थता नाहीं। वहुरि अमूर्तीक निष्क्रियका अदृष्ट गुण कह्या सो औरनिकैं क्रियाका आरंभ करावनेकौं समर्थ न होइ जैसैं पवन आप क्रियावान है सो स्पर्शकरि वनस्पतीकौं चंचल करै है सो यह तौ अणूमात्र निष्क्रियका गुण सो आप क्रियावान नाहीं अन्यकौं कैसे क्रियावान प्रवर्तावै है ? तातैं मन पुद्गलीक ही है। वहुरि वीर्यांतराय अर ज्ञानावरणका क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामकर्मके उदय तींहिकरि संयुक्त जो आत्मा ताकै निकसतौ जो कंठसंबंधी उस्वासरूप पवन सो प्राण कहिए वहुरि तींहिं पवनकरि वाह्य पवनकौं अभ्यंतर करता निस्वासरूप पवन सो अपान कहिए। ते प्राण अपान जीवितव्यकौं कारण हैं तातैं उपकारी हैं सो मन अर प्राणापान ए मूर्तीक हैं जातैं भयके कारण वज्रपातादिक मूर्तीक तिनितैं मनका रुकना देखिए है वहुरि भयके कारण दुर्गंधादिक तींहिकरि वा हस्तादिकतैं मुखके आच्छादन करि वा श्लेष्मादिककरि प्राण अपानका रुकना देखिये है तातैं दोऊ मूर्तीक ही हैं। अमूर्तीक होइ तौ मूर्तीककरि रुकना न संभवै है वहुरि ताहीतैं आत्माका अस्तित्वकी सिद्धि हो है जैसैं कोई काष्ठादिक करि निपज्या प्रतिबिंब सो चेष्टा करै तौ तहां जानिए यामैं तौ स्वयं शक्ति नाहीं चेष्टा करानेवाला कोई पुरुष है तैसैं अचेतन जड शरीरविषैं जो प्राणापानादिक चेष्टा हो है तिस चेष्टाका प्रेरक कोई आत्मद्रव्य अवश्य हैं ऐसें आत्माका अस्तित्वकी सिद्धि हो है वहुरि सुख दुःख जीवित मरण एभी पुद्गल द्रव्य हीं के उपकार हैं तहां साता असाता वेदनीयका उदय तौ अंतरंग कारण अर वाह्य इष्ट अनिष्ट वस्तुका संयोग इनिके निमित्ततैं जो प्रीतिरूप वा आतापरूप होना सो सुख दुःख है। वहुरि आयुकर्मके उदयतैं पर्यायकी स्थितिकौं धारता जीवकैं प्राणापान क्रिया विशेषका नाश न होना सो

जीवित कहिए। प्राणापान क्रियाविशेषका उच्छेद होना सो मरण कहिए सो सुख दुःख जीवित मरण मूर्तीक द्रव्यका निमित्त निकट होत संतैं ही हो है तातैं पुद्गलीक ही है। बहुरि पुद्गल है सो केवल जीवहीकौं उपकारी नाहीं पुद्गलकौं भी पुद्गल उपकारी है जैसैं कांसी इत्यादिककौं भस्मी इत्यादिक अर जलादिकौं कतक फलादिक अर लोहादिककौं जलादिक उपकारी देखिए है ऐसैं और भी जानिए है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक नामा नामकर्मके उदयतैं आहार वर्गणाकरि निपजे तीन शरीर हैं अर सासोस्वास है बहुरि तैजस नामा नाम कर्मके उदयतैं तैजस वर्गणातैं निपज्या तैजस शरीर है। बहुरि कार्माण नामा नामकर्मके उदयतैं कार्माण वर्गणाकरि निपज्या कार्माण शरीर है। बहुरि स्वर नामा नामकर्मके उदयतैं भाषावर्गणातैं निपज्या वचन है। बहुरि नोइंद्रियावरणका क्षयोपशम करि संयुक्त सैनी जीवकैं अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं मन वर्गणातै निपज्या द्रव्य मन है ऐसैं ए पुद्गलके उपकार हैं ॥६०५॥ इसही अर्थकौं दोय सूत्रनिकरि कहैं हैं—

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासोवि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ॥ ६०७॥

आहारवर्गणातः त्रीणि शरीराणि भवन्ति उच्छ्वासः।
निश्वासोपि च तेजोवर्गणास्कन्धात्तेजोङ्गम् ॥ ६०७॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकाहारकनामानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च आहारवर्गणया भवंति। तेजोवर्गणास्कंधैः तेजःशरीरं भवति ॥ ६०७॥

स० चं०—तेईस जातिकी वर्गणानिविषैं आहारक वर्गणातैं औदारिक वैक्रियिक आहारक तीन शरीर हो हैं अर उस्वास निश्वास हो है। बहुरि तैजस वर्गणाका स्कंधनिकरि तैजस शरीर हो है॥ ६०७॥

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।

अट्ठविहकम्मदव्व होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ६०८ ॥

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषा मनश्च कार्मणतः ।
अष्टविधद्रव्यं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥ ६०८ ॥

जी० प्र०—भाषावर्गणास्कंधैश्चतुर्विधभाषा भवंति । मनोवर्गणास्कंधैः द्रव्यमनः, कार्मणवर्गणास्कंधैरष्टविधं कर्मेति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६०८ ॥

स० चं०—भाषावर्गणाका स्कंधनिकरि च्यारि प्रकार भाषा हो है। मनोवर्गणाका स्कंधनिकरि द्रव्य मन हो है। कार्माण वर्गणाका स्कंधनिकरि आठ प्रकार कर्म हो है ऐसैं जिनदेवने कह्या है ॥ ६०८ ॥

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा ॥ ६०९ ॥

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं बन्धस्य च कारणं तु एकादयः ।
सख्येयासंख्येयानन्तविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ॥ ६०९ ॥

जी० प्र०—बाह्याभ्यंतरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावेन स्निह्यतेस्मेति स्निग्धः, तस्य भावः स्निग्धत्वं चिक्कणत्वमित्यर्थः। रूक्षणात् रूक्षः, तस्य भावो रूक्षत्वं चिक्कणत्वाद्विपरीततेत्यर्थः। स्निग्धत्वं तोयाजागोमहिष्युष्ट्रिकाक्षीरघृतादिषु, रूक्षत्वं च पांशुकणिकाशर्करादिषु प्रकर्षापकर्षभावेन दृश्यते तथा परमाणुष्वपि। ते स्निग्धत्वरूक्षत्वे द्व्यणुकादिपर्यायपरिणमनरूपबंधस्य चशब्दाद्विश्लेषस्य च कारणे भवतः। स्निग्धगुणपरिणतपरिमाणोः रूक्षगुणपरिणतपरिमाणोः स्निग्धरूक्षगुणपरिणतपरमाण्वोश्च परस्परश्लेषलक्षणे बंधे सति द्व्यणुकस्कंधो भवतीत्यर्थः। एवं संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशस्कंधोऽपि योज्यः। तत्र स्नेहगुणः एकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानंतविकल्पो भवति तथा रूक्षगुणोऽपि ॥ ६०९ ॥

स० चं०—बाह्य अभ्यंतर कारणके वशतैं जो स्निग्ध पर्यायका प्रगटपनाकरि चिकणास्वरूप होइ सो स्निग्ध है ताका भाव सो स्निग्धत्व कहिये। बहुरि रूखारूप होइ सो रूक्ष है ताका भाव सो रूक्षत्व कहिए। सो जल वा छेलीका दूध वा गायका दूध वा भैंसिका दूध वा ऊटणीका दूध घृत इनिविषैं स्निग्धगुणकी अधिकता वा हीनता

देखिए है अर धूलि वालू रेत वा तुच्छ पाषाणदिक इनिविषैं रूक्षगुणकी अधिकता वा हीनता देखिये है तैसैं ही परमाणू विषैं भी स्निग्ध रूक्षगुणकी अधिकता हीनता पाइए है। ते स्निग्ध रूक्ष गुण द्व्यणुकादि स्कंधपर्यायका परिणमनका कारण हो हैं बहुरि चकारतैं स्कंधतैं विछुरनेके भी कारण हो हैं । स्निग्धरूप दोय परमाणूनिका वा रूक्षरूप दोय परमाणूका एक रुक्ष वा एक स्निग्ध परमाणूका परस्पर जुडनेरूप बंध होतैं द्व्यणुक स्कंध हो है ऐसैं संख्यात असंख्यात अनते परिमाणूनिका स्कंध भी जानना । तहां स्निग्ध गुण वा रूक्षगुण अंशनिकी अपेक्षा संख्यात असंख्यात अनंत भेदकौं लीए है ॥ ६०९ ॥

एयगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं बिगुणतिगुणसंखेज्जाऽ।
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ॥ ६१० ॥

एकगुणं तु जघन्यं स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयाऽ-।
संख्येयानन्तगुणं भवति तथा रूक्षभावं च ॥ ६१० ॥

जी० प्र०—स्निग्धगुणावल्यां तु पुनः एकगुणं स्निग्धत्वं जघन्यं स्यात् । तदादिं कृत्वा द्विगुणत्रिगुणसंख्येयासंख्येयानंतगुणं भवति तथा रूक्षत्वमपि ॥ ६१० ॥

स० चं०—स्निग्ध गुण जो एक गुण है सो जघन्य है जाके एक अंश होइ ताकौं एक गुण कहिए ताकौं आदि देकरि द्विगुण त्रिगुण संख्यातगुण असंख्यातगुण अनंतगुणरूप स्निग्ध गुण जानना। तैसैं ही रूक्षगुण भी जानना । केवलज्ञानगम्य सबतैं थोरा जो स्निग्धत्व वा रूक्षत्व ताकौं एक अंश कलिप तिस अपेक्षा स्निग्धरूक्ष गुणके अंशनिका इहां प्रमाण जानना ॥ ६१० ॥

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया ।

जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥ ६११ ॥

एवं गुणसंयुक्ताः परमाणव आदिवर्गणायां स्थिताः ।
योग्यद्विकयोः, बन्धे द्वयोर्बन्धो भवेन्नियमात् ॥ ६११ ॥

जी० प्र०—एवं स्निग्धरूक्षगुणसंयुक्ताः परमाणवः अणुवर्गणायां तिष्ठति योग्यद्विकानां बंधस्थाने तयोरेव द्वयोर्बंधो नियमेन भवति ॥ ६११ ॥ स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तं बंधस्याविशेषेण प्रसक्तावनिष्टगुणनिवृत्तिपूर्वकं विधिं करोति—

स० चं०—ऐसैं स्निग्ध रूक्षगुणकरि संयुक्त परमाणू ते प्रथम अणु वर्गणाविषैं तिष्ठैं हैं सो यथायोग्य दोयका बंध स्थानविषैं तिनही दोय परमाणूनिका बंध हो है नियमकरि ॥ ६११ ॥ स्निग्ध रूक्ष गुणके निमित्ततैं सर्वत्र बंध हो है किछू विशेष नाहीं ऐसैं कोऊ जानैगा तातैं जहां बंध होने योग्य नाहीं ऐसा निषेध पूर्वक जहां बध होने योग्य है तिस विधिकौं कहै हैं।

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति रुक्खरुक्खा य पोग्गला ।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥ १२ ॥

स्निग्धास्निग्धा न बध्यन्ते रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः ।
स्निग्धरूक्षाश्च बध्यन्ते रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः । ६१२ ॥

जी० प्र०—स्निग्धगुणपुद्गलैः स्निग्धगुणपुद्गलाः न बध्यंते । तथा रूक्षगुणपुद्गलैः रूक्षगुणपुद्गला न बध्यंते, अयमुत्सर्गविधिः । विशेषविधेर्वक्ष्यमाणत्वात् । स्निग्धगुणपुद्गलैः रूक्षगुणपुद्गलाः बध्यंते ते च पुद्गलाः रूपीत्यरूपीतिनामानो भवति ॥ ६१२ ॥ तानेव लक्षयति—

स० चं०—स्निग्ध गुणयुक्त पुद्गलनिकरि स्निग्ध गुणयुक्त पुद्गल बंधै नाहीं। बहुरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गलनिकरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गल बंधै नाहीं सो यहु कथन सामान्य है। बंध भी हो है। सो विशेष आगैं कहेंगे। बहुरि स्निग्धगुणयुक्त पुद्गलनिकरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गल बंधै हैं बहुरि तिनि पुद्गलनिकी दोय संज्ञा है एक रूपी एक अरूपी ॥ ६१२ ॥ तिनि संज्ञानिकौं कहैं हैं—

णिद्धिदरोलीमज्झे विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं ।
रूवित्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवित्ति ॥ १३ ॥

स्निग्धेतरावलीमध्ये विसदृशजातेः समगुण एकः ।
रूपीति भवति संज्ञा शेषाणां ते अरूपिण इति ॥ ६१३ ॥

जी० प्र०—स्निग्धरूक्षगुणावल्योर्मध्ये विसदृशजातेः समानगुणः एकः रूपीतिसंज्ञो भवति । शेषाः सर्वे अरूपीतिसंज्ञा भवंति ॥ ६१३ ॥ तदेवोदाहरति—

स० चं०—स्निग्ध रूक्षगुणनिकी पंकति तिनकै विषैं विसदृश जाति कहिए । स्निग्धकैं अर रूक्षकैं परस्पर विसदृश जाति है ताकैं जो कोई एक समान गुण होइ ताकौं रूपी असी संज्ञाकरि कहिए है अर समान गुण बिना अवशेष रहे तिनिकौं अरूपी असी संज्ञाकरि कहिए है ॥ ६१३ ॥ ताहीकौं उदाहरण करि कहैं हैं—

दोगुणणिद्धाणुस्स य दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी ।
इगितिगुणादि अरूवी रुक्खस्स वि तंव इदि जाणे ॥ ६१४ ॥

द्विगुणस्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुको भवेत् रूपी ।
एकत्रिगुणादिः अरूपी रूक्षस्यापि तद् व इति जानीहि ॥ ६१४ ॥

जी० प्र०—द्वितीयो गुणो द्वौ गुणौ वा यस्य यस्मिन् वा द्विगुणः तस्य द्विगुणस्य स्निग्धाणोः द्विगुणरूक्षाणुः रूपीतिनामा भवेत् । शेषैकत्रिगुणादयः सर्वे रूक्षाणवः अरूपीतिनामानो भवंति । एवं द्विगुणरूक्षाणोर्द्विगुणस्निग्धाणुः रूपी शेषैकत्रिगुणादिसर्वस्निग्धाणवः अरूपीतिनामानः इति जानीहि ॥ ६१४ ॥

स० चं०—दूसरा है गुण जाकैं वा दोय हैं गुण जाकैं असा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणू ताकैं द्विगुणरूक्ष पर-

माणू रूपी कहिए अवशेष एक तीन च्यारि इत्यादि गुणधारक परमाणू अरूपी कहिए असैं ही द्विगुणरूक्षाणुके द्विगुण स्निग्ध रूपी कहिए अवशेष एक तीन इत्यादिक गुणधारक परमाणू अरूपी कहिए ॥ ६१४ ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥६१५॥

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बन्धो जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ॥ ६१५ ॥

जी० प्र०—स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकस्निग्धाणुना बंधो भवति तथा रूक्षाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बंधो भवति । स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बधो भवति । तत्र स्निग्धरूक्षगुणपरमाणुषु जघन्यं एकगुणपरमाणुं वर्जयित्वा शेषाणां समस्निग्धरूक्षधारयोर्विषमस्निग्धरूक्षधारयोश्च स्वस्वतदनंतरोपरितनद्व्यधिकस्निग्धरूक्षाणूनां बंधो भवति । अत्र सदृशगुणरूपिणा रूपिणः, समगुणानां विषमगुणैश्च बंधो नेति विशेषो ज्ञातव्यः, तेषु द्व्यधिकगुणत्वाभावात् ॥ ६१५ ॥

स० च०—स्निग्ध अणूका आपतैं दोय गुण अधिक स्निग्ध अणू सहित बंध होइ । बहुरि रूक्ष अणूका आपतैं दोय गुण अधिक रूक्ष अणूसहित बंध होइ । बहुरि स्निग्ध अणूका आपतैं दोय गुण अधिक रूक्ष अणूसहित बंध होइ । तहां एक गुण सहित जघन्य स्निग्ध अणू वा रूक्ष अणू ताकैं तीन गुण युक्त परमाणू सहित बंध नाहीं । यद्यपि दोय अंश अधिक है तथापि एक अंशयुक्त परमाणू बधने योग्य नाहीं तातैं बंध नाहीं हो है । स्निग्ध वा रूक्ष परमाणूनिका समधाराविषैं वा विषमधाराविषैं दोय अधिक अंश होतैं बंध होहै तहां दोय च्यारि छह आठ इत्यादिक दोय दोय बंधता अंश जहां होइ तहां समधाराविषैं कहिये । बहुरि तीन पांच सात नव इत्यादिक दोय दोय बंधता अंश जहां होई तहां विषमधाराविषैं कहिए । सो समधाराविषैं दोय अंश परमाणू अर च्यारि अंश परमाणूका बंध होइ । च्यारि अंश परमाणू अर छह अंश परमाणूका बंध होइ इत्यादिक दोय अंश अधिक

होतैं बंध होहै। बहुरि विषमधाराविषैं तीन अंश परमाणूका पंच अंश परमाणू सहित बंध होइ पंच अंश परमाणूका सप्त अंश परमाणू सहित बंध होहै। ऐसैं दोय अंश अधिक होतैं बंध होहै। बंध होनेका अर्थ यहु जो एकस्कंधरूप होहै। बहुरि समान गुण धरैं ऐसे जे रूपी परमाणू तिनिकैं परस्पर बंध नाहीं है जैसैं दोय अंश एककै भी होइ, दोय अंश दूसरेकै भी होइ तौ बंध न होइ। बहुरि समगुण धारक परमाणू अर विषम गुणधारक परमाणू बंधै नाहीं जैसैं दोय अंशयुक्त परमाणूका पंच अंशयुक्त परमाणू सहित बंध न होइ जातैं इहां दोय अधिक अंशका अभाव है ॥ ६१५॥

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति।
उभयेवि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ॥६१६॥

स्निग्धेतरयोः समविषमा द्वित्र्यादयः द्व्युत्तरा भवन्ति।
उभयेपि च समविषमा सदृशेतरे भवन्ति प्रत्येकम् ॥ ६१६॥

जी० प्र०—स्निग्धरूक्षगुणानां समपंक्तिद्व्यांकाः विषमपंक्तिद्व्यांकाश्च प्रत्येकं द्वित्र्यादिद्व्युत्तरा भवंति। ते उभयेऽपि अंकाः समविषमाः रूप्यरूपिणः सदृशांकाः असदृशांका भवंति। यथा स्निग्धरूक्षसमांकपंक्तयोः द्व्यस्य द्वयं चतुष्कस्य चतुष्कं षट्कस्य षट्कं अष्टकस्य अष्टकं दशकस्य दशकं द्वादशकस्य द्वादशकं एवमादिसंख्यातासंख्यातानंतगुणायुताः, तद्विषमांकपंक्तयोः त्रयस्य त्रयं पंचकस्य पंचकं सप्तकस्य सप्तकं नवकस्य नवकं एकादशकस्य एकादशकं त्रयोदशकस्य त्रयोदशकं एवमादिसंख्यातासंख्यातानंतगुणायुताश्च परस्परं रूपिणः। शेषाः द्विचतुःषडष्टदशद्वादशादिसंख्यातासंख्यातानंताः। त्रिपंचसप्तनवैकादशत्रयोदशादिसंख्यातासंख्यातानंताश्चारूपिणः। प्रत्येकं स्निग्धे रूक्षे च रूपिणां बंधो नास्ति तत्त्वार्थेऽपि 'गुणसाम्ये सदृशानां' इति तथैव वचनात्। अरूपिणां बधः स्यात् स्वस्थाने परस्थानेऽपि ॥ ६१६॥ अमुमेवार्थं प्रकारांतरेणाह—

स० चं०—स्निग्ध रूक्षविषैं दोय आदि दोय बंधता तौ समपंक्तिविषैं गुण जानना। दोय च्यारि छह आठ इत्यादिक जानने। अर विषमपंक्तिविषैं तीन आदि दोय दोय बंधता जानना तीन पांच सात नव इत्यादिक जानना। ते सम अर विषम रूपी भी हो हैं अर अरूपी भी हो है। जहां दोनोंके समान गुण होई सो रूपी जहां समान

गुण न होंइ सो अरूपी कहिए। जैसैं स्निग्ध रूक्षकी समपंक्तिविषैं दोय गुणके दोय गुण रूपी हैं, च्यारि गुणके च्यारि गुण रूपी है छह गुणके छह गुण रूपी है इत्यादि संख्यात असंख्यात अनंतगुण पर्यंत जानने। बहुरि दोय गुणके दोय गुण विना अर एक तीन च्यारि पांच इत्यादिक अरूपी हैं। भावार्थ—एक परमाणू दोय गुण धारक है अर दूसरा परमाणू भी दोय गुण धारक है तौ तहां तिनकौं परस्पर रूपी कहिए और हीनाधिक गुण धारक परमाणूकौं अरूपी ऐसी संज्ञा कहिए ऐसैं ही च्यारि छह इत्यादिकविषैं जानना। बहुरि विषम पंक्तिविषैं तीन गुणकैं तीन गुण पंच गुणकैं पंच गुण इत्यादिक संख्यात असंख्यात अनंत पर्यंत समान गुणधारक परमाणू परस्पर रूपी हैं अवशेष हीनाधिक गुण धारक हैं ते परस्पर अरूपी हैं ऐसी संज्ञा करि कहिए है। सो सम अर विषम दोऊ पंक्तिनिविषैं ही समान गुण धारक रूपी परमाणू तिनकैं परस्पर बंध न हो है। तत्त्वार्थसूत्रविषैं भी कह्या है—'गुणसाम्ये सदृशानां' याका अर्थ यहु ही—गुणनिकी समानता होतैं सदृश परमाणूनिकैं परस्पर बंध न हो है बहुरि अरूपी परमाणुनिकै यथोचित स्वस्थान वा परस्थानविषैं बंध हो है। स्निग्ध अर स्निग्धका बहुरि रूक्ष अर रूक्षका बंध सो स्वस्थान बंध कहिए। स्निग्ध अर रूक्षका बंध होइ सो परस्थानबंध कहिए॥ ६१६॥ आगैं इसही अर्थकौं और प्रकार करि कहैं हैं—

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसणंतरदुगाण बंधो दु।
णिद्धे लुक्खे वि तहावि जहण्णुभयेवि सव्वत्थ॥ ६१७॥

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनन्तरद्विकयोः बन्धस्तु।
स्निग्धे रूक्षेपि तथापि जघन्योभयेपि सर्वत्र॥ ६१७॥

जी० प्र०—स्निग्धे रूक्षेऽपि द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरक्रमेण गच्छंति तेषु उपरितनानंतरद्विकानां स्निग्धचतुष्कस्य रूक्षचतुष्कस्य च स्निग्धद्वये रूक्षद्वये

च बंधः स्यात्। स्निग्धपंचकस्य रूक्षपंचकस्य च स्निग्धत्रये रूक्षत्रये च बंधः स्यात्। एवं जघन्यगुणाणुतेऽपि बंधप्रसक्तौ जघन्यवर्जिते उभयत्र स्निग्धरूक्षद्वये सर्वत्र बंधो ज्ञातव्य इत्यर्थः ॥ ६१७ ॥

स० चं०—स्निग्धविषैं वा रूक्षविषैं समपंक्तिविषैं दोय आदि दोय दोय बंधना अर विषम पंक्तिविषैं तीन आदि दोय दोय बंधता अंश क्रमकरि पाइए है तहां अनंतर द्विकानिका बंध होइ। कैसैं ? स्निग्ध का च्यारि अंश वा रूक्षका च्यारि अंश सहित पुद्गलकैं दोय अंश सहित रूक्ष पुद्गल सहित बंध होइ वा पंच अंश स्निग्धका वा रूक्षका सहित पुद्गलकैं स्निग्ध तीन अंशयुक्त पुद्गल सहित बंध होइ। ऐसैं दोय अधिक भएं बंध जानना। परंतु एक अंशरूप जघन्य गुण युक्तविषैं बंध न हो है। अन्यत्र स्निग्ध रूक्षविषैं सर्वत्र बंध जानना ॥ ६१७ ॥

णिद्धिदरवरगुणाणू सपरट्ठाणेवि णेदि बंधट्ठं।
बहिरंतरंगहेदुहि गुणंतरं संगदे एदि ॥ ६१८ ॥

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेऽपि नैति बंधार्थम्।
बहिरंतरंगहेतुभिर्गुणांतरं संगते एति ॥ ६१८ ॥

जी० प्र०—स्निग्धजघन्यगुणाणुः रूक्षजघन्यगुणाणुश्च स्वस्थाने परस्थानेपि बंधाय योग्यो न, बाह्याभ्यंतरहेतुभिर्गुणांतरं प्राप्तस्तु योग्यः स्यात् तत्त्वार्थेऽपि 'न जघन्यगुणानां' इत्युक्तत्वात् ॥ ६१८ ॥

स० चं०—स्निग्ध वा रूक्ष तौ जघन्य एक गुण युक्त परमाणू होइ सो स्वस्थान वा परस्थान विषै बंधके अर्थि योग्य नाही है। बहुरि सो परमाणू जो बाह्य अभ्यंतर कारणतैं दोय आदि और अंशनिकौं प्राप्त होइ जाइ तो बंध योग्य होइ तत्त्वार्थ सूत्रविषैं भी कह्या है 'न जघन्यगुणानां' याका अर्थ यहु ही जो जघन्य गुण धारक पुद्गलनिकैं परस्पर बंध न हो हैं ॥ ६१८ ॥

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि।

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥ ६१९ ॥

स्निग्धेतरगुणा अधिका हीनं परिणामयंति वंधे ।
संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशानां स्कंधानाम् ॥ ६११ ॥

जी० प्र०—संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशस्कंधानां मध्ये स्निग्धगुणस्कंधाः रूक्षगुणस्कंधाश्च द्विगुणाधिकाः ते बंधे हीनगुणस्कंधं परिणामयंति । तत्त्वार्थेऽपि "बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च" इत्युक्तत्वात् ॥ ६११ ॥ इति फलाधिकारः । अथ पचास्तिकायानाह—

स० चं०—संख्यात असंख्यात अनंत प्रदेशनिके जे स्कंध तिनिविषें स्निग्ध गुण स्कंध वा रूक्ष गुण स्कंध जे दोय गुण अधिक होंइ ते बंधकौं होत संतैं हीन स्कंधकौं परिणमावैं हैं। जैसें दोय स्कंध हैं एक स्कंधविषें स्निग्धका वा रूक्षका पचास अंश हैं अर एकमें वावन अंश हैं अर तिनि दोऊ स्कंधनिका एक स्कंध भया तौ तहां पचास अंश वालेकौं वावन अंश रूप परिणमावै है। ऐसैं सर्वत्र जानना। तत्त्वार्थ सूत्रविषें भी कह्या है—'बंधेधिकौ पारिणामिकौ च' याका अर्थ यहु ही जो वंध होतैं अधिक अंश हैं सो हीन अंशनिकौं अपनेरूप परिणमावन हारे हैं ॥६१९॥ इति फलाधिकारः। ७। ऐसैं सात अधिकारनिकरि पद् द्रव्य कहे आगें पंचस्तिकायनिकों कहैं हैं—

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसण्णिदं होदि ।
काले पदेसपचयो जम्हा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ६२० ॥

द्रव्यं षट्कमकालं पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति ।
काले प्रदेशप्रचयो यस्मात् नास्तीति निर्दिष्टम् ॥ ६२० ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तद्रव्यषट्कं अकालं कालद्रव्यरहितं पंचास्तिकायसंज्ञकं भवति, कुतः? कालद्रव्ये प्रदेशप्रचयो यतो नास्ति ततः कारणात् इति प्रदेशप्रचययुता अस्तिकाया इत्युक्तं परमागमे ॥ ६२० ॥ अथ नवपदार्थानाह—

स० चं०—पूर्वें जे पद् द्रव्य कहे ते अकालं कहिए काल द्रव्य रहित पंचास्तिकाय नाम पावै हैं जातैं कालकैं

प्रदेशप्रचय नाहीं है। काल एक प्रदेश मात्र ही है अर पुद्गलवत् परस्पर मिले नाहीं तातैं कालकैं कायपणां नाही है। जे प्रदेशनिका प्रचय जो समूह ताकरि युक्त हौंहि ते अस्तिकाय हैं ऐसा परमागमविषैं कह्या है॥ ६२० ॥
आगैं नव पदार्थनिकौं कहैं है—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य हौंतित्ति ॥ ६२१ ॥

नव च पदार्था जीवाजीवाः तेषां च पुण्यपापद्विकम् ।
आस्रवसंवरनिर्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ॥ ६२१ ॥

जी० प्र०—जीवा अजीवाः तेषां पुण्यपापद्वयं आस्रवः संवरो निर्जरा बंधो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवंति। पदार्थशब्दः सर्वत्र संबंधनीयः,-जीवपदार्थः अजीवपदार्थः। इत्यादिः ॥ ६२१ ॥

स० चं०—जीव अर अजीव ए तौ दोय मूल पदार्थ अर तिनहींके पुण्य अर पाप दो ए पदार्थ हैं अर पुण्य पापहीका आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ए पांच पदार्थ ऐसैं सर्व मिले हुए ए नव पदार्थ हैं। पदार्थ शब्द सर्वत्र लगावना। जीव पदार्थ अजीव पदार्थ इत्यादि जानना ॥ ६२१ ॥

जीवदुगं उत्तट्ठं जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदावि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति ॥ ६२२ ॥

जीवद्विकमुक्तार्थं जीवाः पुण्या हि सम्यक्त्वगुणसहिताः ।
व्रतसहिता अपि च पापास्तद्विपरीता भवंतीति ॥ ६२२ ॥

जी० प्र०—जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्वं जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवाः सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्युः। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु-नियमेन ॥ ६२२ ॥ चतुर्दशगुणस्थानेषु जीवसंख्यां मिथ्यादृष्टिसासादनौ च पापजीवाविति आह—

स० चं०—जीव पदार्थ अर अजीव पदार्थ तौ पूर्वै जीवसमास अधिकार विषैं वा इहां षट् द्रव्य अधिकार विषैं कहैं हैं बहुरि जे सम्यक्त्व गुणयुक्त होंइ अर व्रत युक्त होंइ ते पुण्य जीव कहिए। बहुरि इनिस्यौं विपरीत स-म्यक्त्व व्रत रहित जीव ते पाप जीव जानने नियमकरि ॥ ६२२॥ तहां गुणस्थाननिविषैं जीवनिकी संख्या कहिए है तिनिविषैं मिथ्या दृष्टी अर सासादन ए तौ पाप जीव हैं ऐसा कहैं हैं—

मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंता य सासणगुणावि।
मल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टयः पापा अनतानंताश्च सासनगुणा अपि।
पल्यासख्येया अनन्यतरोदयमिथ्यात्वगुणाः ॥ ६२३ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टयः पापाः—पापजीवाः ते चानंतानंता एव इतरगुणस्थानजीवसंख्योनसंसारिमात्रत्वात् १३— सासादनगुणा अपि पापाः अनंतानुबंध्यन्यतमोदयेन प्राप्तमिथ्यात्वगुणत्वात् पल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवंति प ॥ ६२३ ॥
a a ४

स० चं०—मिथ्या दृष्टी पापी जीव हैं ते अनंतानंत हैं जातैं संसारी राशिमैं अन्य गुण स्थानवालोंका प्रमाण घटाए मिथ्या दृष्टी जीवनिका प्रमाण हो है। बहुरि सासादन गुणस्थान वाले भी पाप जीव है जाते अनंनानु बंधी की चौकड़ी विषैं किसी एक प्रकृतिका उदयकरि मिथ्यात्व सदृश गुणकौं प्राप्त हो है ते सासादन वाले जीव पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं ॥ ६२३ ॥

मिच्छा सावयसासणमिस्सा विरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ॥६२४॥

मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंताश्च ।
पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ॥ ६२४ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टयः किंचिदूनसंसारित्व दनंतानंताः १३– । देशसंयताः त्रयोदशकोटिमनुष्याधिकतिर्यंचः पल्यासंख्यातैकभागमात्राः– प धन १३ को । तेभ्यः द्विपंचाशत्कोटिमनुष्याधिकेतरत्रिगतिसासादनाः असंख्यातगुणाः प धन ५२ को । तेभ्यः चतुरुत्तरशतकोटिमनुष्याधिकत्रि-
a a ४ a a a a
गतिमिश्राः संख्यातगुणाः प धन १०४ को । तेभ्यः सप्तशतकोटिमनुष्याधिकत्रिगत्यसंयता असंख्यातगुणा प धन ७०० को ॥ ६२४ ॥
a a a

मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण है तातै अनंतानंत हैं । बहुरि देशसंयत गुणस्थानवाले जीव तेरह कोडि मनुष्यनिकरि अधिक तिर्यंच पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं इहां अन्य गुण स्थान कथनकी अपेक्षा पल्यकौं तीनवार असंख्यात अर एकवार संख्यातका भाग जानना । बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती जीव बावन कोडि मनुष्यनिकरि अधिक इतर तीन गतिके जीव देशसंयमी तिर्यंचानिस्यों असंख्यात गुणे जानने । इहां पल्यकौं दोयवार असंख्यात अर एकवार संख्यातका भाग जानना । बहुरि मिश्र गुणस्थानवर्ती एकसो च्यारि कोडि मनुष्यनिकरि सहित इतर तीन गतिके जीव सासादन वालोंतैं संख्यातगुणे जानने । इहां पल्यकौं दोयवार असंख्यातका भाग जानना । बहुरि अविरत गुणस्थानवर्ती जीव सातसै कोडि मनुष्यनिकरि सहित इतर तीन गतिके जीव मिश्रवालोंतैं असंख्यात गुणे जानने । इहां पल्यकौं एकवार असंख्यातका भाग जानना ॥ ६२४ ॥

तिरधियसयणवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त वे कोडी ।
पंचेव य तेणउदी णवट्ठबिसयच्छउत्तरं पमदे ॥६२५॥

त्र्यधिकशतनवनवतिः षण्णवतिः अप्रमत्ते द्वे कोटी ।
पंचैव च त्रिनवतिः नवाष्टद्विशतषडुत्तरं प्रमत्ते ॥ ६२५ ॥

जी० प्र०—प्रमत्ते पंचकोट्यः त्रिनवतिलक्षाण्यष्टानवतिसहस्राणि द्विशतं षट् च भवंति । ५, ९ ३, ९ ८, २०६ । अप्रमत्ते द्विकोटिषण्णवतिलक्षनवनवतिसहस्रैकशतत्रयो भवंति । २, ९६, ९९, १०३ ॥ ६२५ ॥

स० च०—प्रमत्तगुणस्थानविषैं जीव पांच कोडि तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोयसै छह ५९३९८२०६ हैं । बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषैं जीव तीन अधिक एक सो अर निन्याणवै हजार अर छिनवै लाख अर दोय कोडी २९६९९१०३ इतने हैं । गाथाविषैं पहिलैं अप्रमत्तकी संख्या कहि प्रमत्तकी संख्या छंद मिलनेके अर्थि कही है ॥ ६२५ ॥

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई ।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ॥ ६२६ ॥

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तरमस्तपंचकं केचित् ।
उपशामकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणम् ॥ ६२६ ॥

जी० प्र०—केचिदुपशमकप्रमाणं त्रिशतं भणंति । केचिच्च चतुरुत्तरत्रिशतं भणंति । केचित् पुनः पंचोनचतुरुत्तरत्रिशतं भणंति । एकोनत्रिशतमित्यर्थः । क्षपकप्रमाणं ततो द्विगुणं जानीहि ॥ ६२६ ॥ अत्र प्रवाहयोपदेशसंख्यां निरंतराष्टसमयेषु विभजति—

स० चं०—आठवै नवै दशवै ग्यारहै गुणस्थान उपशम श्रेणावाले जीवनिका प्रमाण केई आचार्य तीनसै कहैं है । केई तीनसै च्यारि कहैं है । केई पांच घाटि अर च्यारि अधिक तीनसै कहैं है ताके एक घाटि तीनसै भए । बहुरि आठवै नवै दशवै वारहै गुणस्थानी क्षपक जीवनिका प्रमाण उपशमकवालौंतैं दूणा हे शिष्य ? तू जानि । ॥ ६२६ ॥ इहां तीनसै च्यारि उपशम श्रेणीवाले जीवनिकी संख्याका निरंतर आठ समयनिविषैं विभाग करैं हैं ॥

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं ।
अडदालं चउवण्णं चउवण्णं होंति उवसमगे ॥ ६२७ ॥

षोडशकं चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत् तथा च द्वाचत्वारिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत् चतुःपचाशत् चतुःपचाशत् भवंति उपशमके ॥ ६२७ ॥

जी० प्र०—उपशमके षोडश चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत् चतुःपंचाशत् चतुः पंचाशत् निरंतराष्टसमयेषु भवंति । १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ ॥ ६२७ ॥

स० चं—वीचिमें अंतराल न पडै अर उपशम श्रेणीकौं जीव माडैं तौ आठ समयनिविषैं उत्कृष्टपनैं एते जीव उपशम श्रेणी माडैं पहिला समयतैं लगाइ आठवा समय पर्यंत अनुक्रमतैं सोलह चौईस तीस छतीस वियालीस अठतालीस चौवन चौवन जीव निरंतर अष्ट समयनिविषैं होंहि । १६ २४ ३० ३६ ४२ ४८ ५४ ५४ ॥ ६२७ ॥

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी ।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ॥ २८ ॥

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिश्च चतुरशीतिः ।
षण्णवतिः अष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतं च क्षपकेषु ॥ ६२८ ॥

जी० प्र०—क्षपके निरंतराष्टसमयेषु उपशमकेभ्यो द्विगुणत्वात् द्वात्रिंशत् अष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिः चतुरशीतिः षण्णवतिः अष्टोत्तरशतं अष्टोत्तरशतं भवंति । इमामेव संख्यां निरतराष्टसमयेषु समीकरणविधानेन आदिः ३४ उत्तरः १२ गच्छः ८ पदमेगेण विहीणमित्यादिनानीतधनं । क्षपका अष्टोत्तरषट्छतं भवंति । ६०८ । उपशमका आदिः १७ उत्तरः ६ गच्छः ८ धनं चतुरुत्तरत्रिशतं ३०४ भवति ॥ ६२८ ॥

स० चं—बहुरि निरंतर अष्ट समयनिविषैं क्षपक श्रेणीको माडैं ऐसे जीव श्रेणीवालोंतैं दूणे जानने तहां पहिला समयतैं लगाइ अनुक्रमतैं बत्तीस अठतालीस साठि बहत्तरि चउरासी छिनवै एकसौ आठ एकसौ आठ ३२ ४८ ६० ७२ ८४ ९६ १०८ १०८ जीव निरंतर अष्ट समयनिविषैं होहैं। इसही संख्याको घाटि बाधिकैं बरोवरि करि पहिलैं चौंतीस माडै पीछैं आठ समयताईं बारह बारह अधिक माडैं तहां आदि चौतीस ३४ उत्तर बारह १२

गच्छ आठ ८ याका 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादिक सूत्रकरि जोड़ दीजिए तहां गच्छ आठ तामैं एक घटाएं सात रहे, दोयका भाग दीएं साढातीन रहे उत्तरकरि गुणैं बियालीस भए, आदिकरि युक्त कीएं छिहंतरि भए, गच्छकरि गुणें छहसै आठ भए, सो निरंतर आठ समयनिविषैं क्षपक श्रेणी माडिकरि जीव एकठे होहिं तिनिका प्रमाण छहसै आठ जानना। बहुरि उपशमकनिविषैं आदि सतरह १७ उत्तर छह ६ गच्छ आठ ८ जोड दीए तीनसैं च्यारि भए सो प्रमाण जानना ॥ ६२८ ॥

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं।
संखा जोगिजिणाणं पंचसयबिउत्तरं वंदे ॥ २९ ॥

अष्टैव शतसहस्राणि अष्टानवतिस्तथा सहस्राणाम्।
संख्या योगिजिनानां पञ्चशतद्व्युत्तरं वन्दे ॥ ६२९ ॥

जी० प्र०—सयोगिजिनसंख्या अष्टलक्षाष्टनवतिसहस्रद्व्युत्तरपंचशतानि ८, ९८, ५०२ तान् सदा वंदे। अत्र निरंतराष्टसमयेषु संचितसयोगिजिनाः आचार्यांतरापेक्षया सिद्धांतवाक्ये--वसुसुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति, दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयसंचिदजीवा बावीसा हवंतीति विशेषकथने त्रैराशिकषट्कं। तद्यथा–प्र के २२। फ का $\frac{८}{६}$। इ के ८, ९८, ५०२। ल का ४०८४१, $\frac{८}{६}$। पुनः प्र का $\frac{८}{६}$। फ स ८। इ का ४०८४१, $\frac{८}{६}$। ल स ३, २६, ७२८। पुनः प्र स ८। फ के २२। इ ३, २६, ७२८ ल। के ८, ९८, ५०२। तथा प्र स ८। फ के ४४। इ ३, २६, ७२८। ल के ८, ९८, ५०२ तथा प्र स ८। फ के ८८। इ ३, २६, ७२८। ल के ८, ९८, ५०२। तथा प्र स ८। फ के १७६। इ ३, २६, ७२८। ल के ८, ९८, ५०२। इदमेकपक्षांतरं ॥ ६२९ ॥ अथैकसमये युगपत्संभवतीं क्षपकोपशमकविशेषसंख्यां गाथात्रयेणाह—

स० च—सयोग केवली जिननिकी संख्या आठ लाख अट्याणवे हजार पांचसै दोय ८९८ ५०२ है तिनिकौं मैं सदाकाल बंदौ हैं। इहां निरंतर आठ समयनिविषैं एकठे भए संयोगी जिन अन्य आचार्य अपेक्षा सिद्धांतविषैं ऐसैं कहैं है।

छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति दोसु समयेसु दो दो जीवा
केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयेसु संचिदजीवा बावीसा हवंति ॥ १ ॥

याका अर्थ छह शुद्ध समयनिविषैं तीन तीन जीव केवलज्ञानकौं उपजावैं हैं, दोय समयनिविषैं दोय दोय जीव केवलज्ञानकौं उपजावैं हैं ऐसैं आठ समयनिविषैं एकठे भए जीव बावीस होहैं। भावार्थ—केवलज्ञान उपजनेका छह महिनेका अंतराल होइ तब वीचिमें अंतराल न पड़े ऐसैं निरंतर आठ समयनिविषैं वाईस जीव केवलज्ञान उपजावैं हैं। सो इहां विशेष कथनविषैं छह त्रैराशिक होहैं—

छहत्रैराशिककायंत्र

प्रमाणराशि	फलराशि	इछाराशि	लब्धप्रमाण
केवली २२	काल मास ६ समय ८	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ छहमास आठ समय गुणा
काल मास ६ समय ८	समय ८	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा प्रमाण	समय ३२६७२८
समय ८	केवलो २२	समय ३२६७२८	केवलो ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८ २ आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८ ४ चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ ८ आठवां भाग	केवली ८९८५०२

तहां बाईस केवलज्ञानी आठ समय अधिक छह मासमात्र कालविषैं होइ तो आठलाख अठ्याणवै हजार पांचसै दोय केवलज्ञानी केते कालविषैं होंइ ? ऐसैं त्रैराशिक कीएं चालीस हजार आठसै इकतालीसकों छहमास आठ समयनिकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना कालका प्रमाण आवै है। बहुरि आठ समय अधिक छहमास

कालविषैं निरंतर केवल उपजनेके आठ समय हैं तौ पूर्वोक्त काल प्रमाणविषैं केते समय हैं ऐसैं त्रैराशिक कीएं तीन लाख छबीस हजार सातसै अठाईस समय आवै हैं। बहुरि आठ समयनिविषैं आचार्यनिके मतनिकी अपेक्षा बाईस वा चवालीस वा अठ्यासी वा एकसौ छिहंतरि केवलज्ञान उपजावै तौ पूर्वोक्त समयनिका प्रमाणविषैं वा तिसतैं आधाविषैं वा चौथाईविषैं वा आठवां भागविषैं केते केवलज्ञान उपजावै ऐसैं चारिप्रकार त्रैराशिक कीए केवलानिका प्रमाण आठ लाख अठ्याणवै हजार पाचसै दोय आवै है ऐसैं जानना ॥ ६२९ ॥ आगैं एक समय-विषैं युगपत् संभवती ऐसी क्षपक वा उपशमक जीवनिकी विशेषसंख्या गाथा तीनिकरि कहैं हैं—

होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥ ६३० ॥
पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा ।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥ ६३१ ॥
जेट्ठावरबहुमज्झिमओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥ ६३२ ॥ विसेसयं ।

भवन्ति क्षपका एकसमये बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च ।
उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमाः स्वर्गतश्च च्युताः ॥ ६३० ॥
प्रत्येकबुद्धतीर्थकरस्त्रीपुंनपुंसकमनोवधिज्ञानयुताः ।
दशषड्विंशतिदशविंशत्यष्टाविंशो यथाक्रमशः ॥ ६३१ ॥

ज्येष्ठावरबहुमध्यामावगाहा द्वौ चत्वारः अष्टैव ।
युगपद् भवन्ति क्षपका उपशमका अर्द्धमेतेषाम् ॥ ६३२ ॥ विशेषकम् ।

जी० प्र०—युगपदुत्कृष्टेन एकसमये बोधितबुद्धाः पुंवेदिनः स्वर्गच्युताश्च प्रत्येकं क्षपकाः अष्टोत्तरशतं। उपशमकास्तदर्धं भवंति । पुनः प्रत्येकबुद्धाः तीर्थकराः स्त्रीवेदिनः नपुंसकवेदिनः मनःपर्ययज्ञानिनः अवधिज्ञानिनः उत्कृष्टावगाहाः जघन्यावगाहाः बहुमध्यमावगाहाश्च क्षपकाः क्रमशः दश षट् विंशतिः दश विंशतिः अष्टाविंशतिः द्वौ चत्वारः अष्टौ, उपशमकाः तदर्धं भवंति। सर्वे मिलित्वा क्षपकाः ४३२। उपशमकाः २१६ ॥ ६३०–६३२
अथ सर्वसंयमसंख्यामाह—

स० चं—युगपत् एक समयविषैं क्षपक श्रेणीवाले जीव ऐसैं उत्कृष्टताकरि पाइए हैं—बोधित बुद्धतौ एकसौ आठ, पुरुषवेदी एकसौ आठ, स्वर्गतैं चयकरि मनुष्य होइ क्षपक भए ऐसे एकसौ आठ, प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिके धारक दश, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी वीस, नपुंसक वेदी दश, मनःपर्ययज्ञानी वीस, अवधिज्ञानी अठाईस, मुक्तहोने योग्य शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक दोय, जघन्य अवगाहनाके धारक च्यारि, सर्व अवगाहनाके मध्यवर्ती ऐसी अवगाहनाके धारक आठ ऐसैं ए सर्व मिले हूवे च्यारिसै वत्तीस भए। बहुरि उपशमक इनितैं आधे सर्व पाइए तातैं सर्व मिले हुवे दोयसै सोलह भए। पूर्वैं गुणस्थाननिविषैं एकठे भए जीवनिकी संख्या कही थी इहां ऐसा कह्या है जो श्रेणीविषै युगपत् उत्कृष्ट होंइ तौ पूर्वोक्तजीव पूर्वोक्त प्रमाण होंइ अधिक न होंइ ॥ ६३०–६३२ ॥ आगै सर्वसंयमी जीवनिकी संख्या कहैं हैं ॥

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ॥ ६३३ ॥

सप्तादय अष्टान्ताः षण्णवमध्याश्च संयताः सर्वे ।
अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्धया नमस्यामि ॥ ६३३ ॥

जी० प्र०—आदौ सप्तांकं अंतेऽष्टांकं च लिखित्वा तयोर्मध्ये च षट्सु नवांकेषु लिखितेषु संजनितत्र्यष्टनवकोटिसंख्या...

जलिमौलिकहस्तोहं मनोवाक्कायशुद्ध्या नमस्यामि । ८९९९९९७ । अत्र च प्रमत्तादिसयोग्यवसानसंख्यायां ८९९९९३९९ । अपनीतायां शेषं द्व्यूनषट्छतं अयोगिसंख्या भवति । ५९८ ॥ ६३३ ॥ अथ चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतसंख्यासाधकपल्यभागहारविशेषानाह—

स० चं—सातका अंक आदि अर आठका अंक अंत अर मध्यविषै छह नवके अंक ८९९९९९७ ऐसैं लिखैं भई तीन घाटि नव कोडि संख्या तिहि प्रमाण जे संयमी छठे गुणस्थानतै लगाइ चौदहवां गुणस्थान पर्यंत हैं तिनिकौं अंजुलीकरि मस्तक हस्त लगावतौ संतौ मन वचन कायरूप त्रिकरण शुद्धताकरि नमस्कार मैं करौं हौ। तहां प्रमत्तवाले ५९३९८२०६ अप्रमत्तवाले २९६९९१०३ च्यार्‍यो गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणावाले ११९६ च्यार्‍यो गुणस्थान वर्ती क्षपक श्रेणीवाले २३९२ संयोगी जिन ८९८५०२ मिले हूवे जे ८९९९९३९९ भए ते नव कोडि तीन घाटिविषैं घटाएं अवशेष पांचसै अठ्याणवै रहे ते अयोगी जिन जानने ॥ ६३३ ॥ आगैं च्यारि गतिनिका मिथ्यादृष्टी सासादन मिश्र अविरत गुणस्थानवर्ती तिनकी संख्याका साधक पल्यके भागहारका विशेष कहैं हैं—जाका भाग दीजिए ताकौं भागहार कहिए सो आगैं जो जो भागहारका प्रमाण कहैं हैं तिस तिसका पल्यकौं भाग दीए जो जो प्रमाण आवै तितना तितना तहां जीवनिका प्रमाण जानना। जहां भागहारका प्रमाण थोरा होइ तहां जीवनिका प्रमाण बहुत जानना। जहां भागहारका प्रमाण बहुत होइ तहां जीवनिका प्रमाण थोरा जानना। ऐसैं एक हजारकौं पांचका भागदीए दोयसै पावै दोयसैका भाग दीए पांच ही पावै ऐसैं जानना सो अब भागहार कहैं हैं—

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ॥६३४॥
देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणि अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाणअवहारा ॥ ६३५ ॥ जुम्मं ।

ओघा असंयतमिश्रकसासनसमीचां भागहारा ये।
रूपोनावलिकासंख्यातेनेह भक्त्वा तत्र निक्षिप्ते ॥ ६३४ ॥
देवानामवहारा भवंति असंख्येन तानवहृत्य ।
तत्रैव च प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानावहाराः ॥ ६३५ ॥

जी० प्र०—गुणस्थानोक्ताः असंयतसम्यग्मिथ्यादृष्टिसासादनानां ये पल्यासंख्यातप्रविष्टभागहाराः अ a मि $a\ a$ सा $a\ a$ ४ एतेषु रूपोनावल्यसंख्यातेन $a-1$ भक्त्वा एतेष्वेव निक्षिप्तेषु देवौघे स्वस्वभागहारा भवंति । अ $\frac{a\ a}{a-1}$ मि $\frac{a\ a\ a}{a-1}$ सा $\frac{a\ a\ ४\ a}{a-1}$ एतान् पुनः रूपोनावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकैकभागे स्वस्वहारे प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानासंयतमिश्रसासादनानां भागहारा भवंति $\frac{a\ a\ a}{a-1,\ a-1}$ $\frac{a\ a\ a\ a}{a-1,\ a-1}$ $\frac{a\ a\ ४\ a\ a}{a-1,\ a-1}$ ॥ ६३४–६३५ ॥

स० चं०—गुणस्थान संख्याविषैं पूर्वै जो असंयत मिश्र सासादनकी संख्याविषैं जो पल्यकौं भाग हार कह्या है तिनकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना तितना भाग हारानिमैं मिलाए देवगतिविषैं भागहार हो है। तहां पूर्वै असयत गुणस्थानविषैं भागहारका प्रमाण एकवार असंख्यात कह्या था ताकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण आवै तितने तिस भागहारमैं मिलाइए जो प्रमाण होइ तितना देवगति सम्बन्धी असंयत गुणस्थानविषैं भागहार जानना। इस भागहारका भाग पल्यकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने देवगतिविषैं असंयत गुणस्थानवर्ती जीव हैं ऐसै ही आगैं भी पल्यके भागहार जानने। बहुरि मिश्रविषैं दोयवार असंख्यात रूप अर सासादनविषैं दोयवार असंख्यात अर एक वार

संख्यात रूप पूर्वै जो भागहारका प्रमाण कह्या था तिसका एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो जो प्रमाण आवै तितना तितना तहां मिलाए देवगति संबंधी मिश्रविषैं वा सासादनविषैं भागहारका प्रमाण हो है। बहुरि देवगति सबंधी असंयत वा मिश्र वा सासादन विषैं जो जो भागहारका प्रमाण कह्या तिस तिसकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो जो प्रमाण आवै तितना २ तिस तिस भागहारमें मिलाए जो जो प्रमाण होइ सो सो सौधर्म ईशान संबंधी अविरत वा मिश्र वा सासादनबिषैं भागहार जानना। जो देवगति संबंधी अविरतविषैं भागहार कह्या था ताकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना तिस भागहार विषै मिलाए सौधर्म ईशान स्वर्ग संबंधी असंयतविषैं भागहार हो है । इसही प्रकार मिश्रविषै वा सासादनविषैं भागहार जानना॥ ६३४–६३५ ॥

सोहम्मसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा॥ ६३६ ॥

सौधर्मेशानहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते।
उपरि असंयतमिश्रकसासनसमीचामवहाराः॥ ६३६ ॥

जी० प्र०—तत्सौधर्मद्वयसासादनहारे $\frac{a\ a\ a\ a\ 4}{a-1-a-1}$ असंख्यातेन चशब्दात् पुनरसंख्यातेन संख्यातरूपैश्च गुणिते यथासंख्यमुपरिसानत्कुमारद्वये असंख्यातमिश्रसासादनहारा भवंति। $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a}{a-1\ a-1}$ $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a\ a}{a-1\ a-1}$ $\frac{a\ a\ a\ a\ 4\ a\ a\ 4}{a-1-a-1}$ ॥ ६३६ ॥ अथास्य गुणितक्रमस्य व्याप्तिमाह—

स० चं०—बहुरि ताके ऊपरि सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्ग है तहां असंयतविषैं सौधर्म ईशान संबंधी सासादनका भागहारतैं असंख्यात गुणा भागहार जानना। इस असंयतका भागहारतैं चकारकरि असंख्यात गुणा मिश्रविषैं

भागहार जानना। यातैं संख्यात गुणा सासादनविषै भागहार जानना ॥ ६३६ ॥ आगै इस गुणनेका अनुक्रमकी व्याप्ति दिखावै हैं—

सोहम्मादासारं जोइसिवणभवणतिरियपुढवीसु।
अविरदामिस्से संखं संखासंखगुण सासणे देसे ॥ ६३७॥

सौधर्मादासहस्रारं ज्योतिषिवनभवनातिर्यक्पृथ्वीषु।
अविरतमिश्रेऽसंख्यं संख्यासंख्यगुणं सासने देशे ॥ ६३७ ॥

जी० प्र०—सौधर्माद्दुपरि सानत्कुमारादिसहस्रारपर्यंतं पंचयुग्मेषु ज्योतिष्कव्यानभावनतिर्यक्सप्तपृथ्वीषु चेति षोडशस्थानेषु अविरते मिश्रे वा असंख्येयगुणितक्रमः सासादने संख्यातगुणितक्रमः, तिर्यग्देशसंयते असंख्यातगुणितक्रमश्च भवति। तथाहि—उक्तसानत्कुमारद्वयसासादनहारात् ब्रह्मद्वयस्य असंयतहारः असंख्यातगुणः। ततो मिश्रहारोसंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः सख्य तगुणः। अत्र संख्यातस्य संदृष्टिश्चतुरंकः। ततः लांतवद्वये असंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः शुक्रद्वयेऽसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततो मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः शतारद्वये असंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः सख्यातगुणः। ततः ज्योतिष्कासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः व्यंतरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः भवनवास्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततस्तिर्यगसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। सासादनहारः संख्यातगुणः। ततस्तिर्यग्देशसंयतहारः असंख्यातगुणः। अयमेव प्रथमपृथिव्यसंयतस्यापि हारः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः द्वितीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः तृतीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः चतुर्थपृथ्व्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः पंचमधरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः षष्ठधरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः सप्तमधरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः ॥ ६३७ ॥ अथानतादिषु गाथात्रयेणाह—

स० चं०—सौधर्म ईशानके ऊपरि सानत्कुमार माहेंद्रतै लगाइ शतार सहस्रारपर्यंत पंच युगल अर ज्योतिषी अर व्यंतर अर भवनवासी अर तिर्यंच अर सात नरककी पृथ्वी इनि सोलह स्थानका संबंधी अविरतविषैं अर मिश्रविषैं असंख्यात गुणा अनुक्रम जानना अर सासादनविषैं संख्यात गुणा अनुक्रम जानना अर तिर्यंच संबंधी देशसंयतविषैं असंख्यात गुणा अनुक्रम जानना सो इस कथनकौं दिखाइए है—

सनत्कुमार माहेंद्रविषैं जो सासादनका भागहार कह्या तींहिस्यों ब्रह्म ब्रह्मोत्तरविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। संख्यातकी सहनानी च्यारिका अंक।४। है॥ बहुरि यातैं लांतव कापिष्ठविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं शुक्र महा शुक्रविषै असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है बहुरि यातैं शतार सहस्रारविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं ज्योतिषीनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं व्यंतरनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै भवनवासीनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं तिर्यंचनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। यातैं तिर्यंचविषैं ही देशसंयतका भागहार असंख्यात गुणा है सो जो देशसंयतविषैं जो भागहारका प्रमाण है सोई प्रथम नरक पृथ्वीविषै असंयतका भागहार है यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं दूसरी नरकपृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भाग-

हार असंख्यात गुणा है यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं तीसरी नरक पृथ्वीविषैं असंख्यातका भागहार असंख्यात गुणा हैं। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं चौथी नरक पृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भाग हार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं पंचम नरक पृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। बहुरि यातैं षष्ठम पृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं सप्तम नरक पृथ्वीविषैं असयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादनका भागहार संख्यातगुणा है ॥६३७॥

आगैं आनतादि विषैं तीनि गाथानिकरि कहैं हैं—

चरमधरासणहारा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसंखसंखगुणहारा ॥ ६३८ ॥

चरमधरासनहारादानतसमीचामारणप्रभृति।
अंतिमग्रैवेयकांतं समीचामसंख्यसंख्यगुणहाराः ॥ ६३८॥

जी० प्र०—तत्सप्तमपृथ्वीसासादनहारात् आनतद्वयासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः आरणाद्वयाद्यंतिमग्रैवेयकांतदशपदासंयतानां दशहाराः संख्यातगुणक्रमाः स्युः। अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः पञ्चांकः ॥ ६३८ ॥

स० च —तीहि सप्तम पृथ्वी संबंधी सासादनके भागहारतैं आनत प्राणत संबंधी अविरतका भागहार असंख्यात गुणा है। बहुरि यातैं आरण अच्युततैं लगाइ नवमां ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानक निविषैं असंयतका भाग हार अनुक्रमतैं संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना। इहां संख्यातकी सहनानी पांचका अंक है ॥ ६३८ ॥

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ॥ ६३९ ॥

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुदिशानां विजयादि ।
समीचां संख्यगुण आनतमिश्रे असंख्यगुणः ॥ ६३९ ॥

जी० प्र०—ततोऽतिमग्रैवेयकासंयतहारात् आनतद्वयादितदुक्तैकादशपदमिथ्यादृष्टीनां एकादशहाराः संख्यातगुणितक्रमाः । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिःषडंकः । ततः तदतिमग्रैवेयकवामहारात् नवानुदिशविजयादिचतुर्विमानासंयतहारौ द्वौ संख्यातगुणक्रमौ । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः सप्तांकः । ततः विजयाद्यसंयतहारादानतद्वयमिश्रहारः असंख्यातगुणः ॥ ६३९ ॥

सं० चं०—तीहि अंतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयतका भागहारतैं आनत प्राणत युगलतैं लगाइ नवमा ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनिविषैं वामे जे मिथ्यादृष्टी जीव तिनिका संख्यात गुणा संख्यात गुणा भागहार अनुक्रमतैं जानना । इहां संख्यातकी सहनानी छहका अंक है । बहुरि तीहि अंतिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिथ्यादृष्टीका भाग हारतैं नवानुदिश विमान वा विजयादिक च्यारि विमान इनि दोऊ स्थानकनिविषैं असंयतका भागहार संख्यात गुणा संख्यातगुणा क्रमतैं जानना । इहां संख्यातकी सहनानी सातका अंक है । बहुरि विजयादिक सम्बन्धी असंयतका भागहारतैं आनत प्राणत सम्बन्धी मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है ॥ ६३९ ॥

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ॥ ४० ॥

ततः संख्येयगुणः सासनसमीचां भवति संख्यगुणः ।
उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुःसंदृष्टिः ॥ ३४० ॥

जी० प्र०—तदानतद्वयमिश्रहारात् आरणाद्वयादितद्दशपदमिश्रहाराः संख्यातगुणक्रमाः । अतः संख्यातस्य संदृष्टिः अष्टांकः । ततः तदंतग्रैवेयकमिश्रहारात् आनतायेकादशपदानां सासादनहाराः संख्यातगुणक्रमाः अत्र संख्यातस्य संदृष्टिश्चतुरंकः । एतेपूक्तपंचस्थलेषु संख्यातानां संदृष्टयः क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुरंका ज्ञातव्याः ॥ ६४० ॥

स० चं०—तीहि आनत प्राणत सम्बन्धी मिश्रका भागहारतें आरण अच्युततें लगाइ नवमा ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनिविषैं मिश्र गुणस्थान सम्बन्धी भागहार अनुक्रमतें संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना तहां नवमां ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनिविषैं सासादनका भागहार अनुक्रमतें संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना। इहां संख्यातकी सहनानी च्यारिका अक । ४ । है । ए कहे पंच स्थानक तिनिविषैं संख्यातकी सहनानी क्रमतें पांच छह सात आठ च्यारिका अंक जानना सो कहते ही आए है ॥ ६४० ॥

सगसगअवहारेहिं पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ॥४१॥

स्वस्वकावहारैः पल्ये भक्ते भवंति स्वकराशयः ।
स्वकस्वकगुणप्रतिपन्नेषु स्वकस्वकराशिषु अपनीतेषु वामाः ॥ ६४१ ॥

जीं० प्र०—प्रागुक्तैः स्वस्वहारैः पल्ये भक्ते सति स्वस्वराशयो भवंति। स्वस्वस्थानस्य गुणप्रतिपन्नेषु सासादनमिश्रासंयतदेशसंयततेषु मेलयित्वा स्वस्वराशावपनीतेषु शेषस्वस्वस्थाने मिथ्यादृष्टयो भवंति। तत्र सामान्ये किंचिदूनसंसारी १३– देवौघे किंचिदूनतद्राशिः— १——— =१– ४ । ६५=१ ॥ सौधर्मद्वये किंचिदूना घनांगुलतृतीयमूलजगच्छ्रेणिः। सनत्कुमारद्वयादिपंचयुग्मेषु किंचिदूना क्रमशो निजैकादशमनवमसप्तमपंचमचतुर्थमूलभक्तजगच्छ्रेणिः, ऊनतात्र हाराधिका ज्ञेया। ज्योतिष्के पणट्ठिप्रमितरांगुलभक्तः व्यंतरसंख्यातप्रतरांगुलभक्तश्च जगत्प्रतरः किंचिदूनः । भवनवासिषु किंचिदूना घनांगुलप्रथममूलहतजगच्छ्रेणिः। तिर्यक्षु किंचिदूनः सर्वतिर्यग्राशिः १३–। प्रथमपृथिव्यां किंचिदूना घनांगुलद्वितीयमूलगुणहतजगच्छ्रेणिः साधिक-

द्वादशांशोना $-\frac{२=१}{१२}$ । द्वितीयादिपृथ्वीषु किंचिदूना क्रमशो निजद्वादशदशमाष्टमषष्ठतृतीयमूलभक्तजगच्छ्रेण्यः । आनतादिषु कंठोक्तयोक्ता ।
सर्वार्थसिद्धावहमिंद्रा असंयता एव । ते च मानुषीप्रमाणात्त्रिगुणाः सप्तगुणा वा भवंति ॥ ६४१ ॥ मनुष्यगतावाह—

स० चं—पूर्वै कह्या जो अपना अपना भागहार तिनिका भाग पल्यकौं दीएं जो जो प्रमाण आवै तितने तितने जीव तहां जानने । बहुरि अपना अपना सासादन मिश्र असंयत अर देशसंयत गुणस्थाननिविषैं जो जो प्रमाण भया तिनिका जोड दीएं जो जो प्रमाण होइ तितना तितना प्रमाण अपना अपना राशिका प्रमाणमें घटाएं जो जो अवशेष प्रमाण रहै तितने तितने जीव तहां मिथ्यादृष्टी जानने । तहां सामान्यपनै मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण हैं। सामान्यपनैं देवगतिविषैं किंचित् ऊन देवराशिप्रमाण मिथ्यादृष्टी जानने । सौधर्मादिक विषैं जो जो जीवनिका प्रमाण कह्या है तहां द्वितीयादि गुणस्थान सबधी प्रमाण घटावनेके निमित्त किंचित् ऊनता कीएं जो जो प्रमाण रहै तितने तितने मिथ्यादृष्टी हैं सो सौधर्मादिकविषैं जीवनिका प्रमाण कितना कितना है? सो गति मार्गणाविषैं कह्या ही है इहां भी किछू कहिए है—

सौधर्म ईशानवाले घनांगुलका तृतीय वर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितने हैं। सनत्कुमार युगल आदिक पंच युगलनिविषैं क्रमतैं जगच्छ्रेणीका ग्यारव्हां नवमां सातवां पांचवा चौथा वर्गमूलका भाग जगच्छ्रेणीकौं दीएं जो जो प्रमाण आवै तितने तितने हैं। ज्योतिषी पण्णट्ठि प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने हैं। व्यंतर संख्यात प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने हैं। भवनवासी घनांगुलके प्रथम वर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणै जो प्रमाण आवै तितने हैं। तिर्यंच किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण है। प्रथम पृथ्वीविषैं नारकी घनांगुलका द्वितीयवर्गमूलकरि साधिक वारव्हां भागकरि हीन जो जगच्छ्रेणी ताकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने हैं। द्वितीयादिक पृथ्वीविषैं क्रमतैं जगच्छ्रेणीका बारव्हां दशवां आठवां छठा तीसरा दूसरा वर्गमूलका भाग जगच्छ्रेणीकौं दीए जो जो प्रमाण होइ तितने तितने जानने। इनि सबनि-

विषैं अन्य गुणस्थानवालोंका प्रमाण घटावनेके अर्थि किंचित् ऊन कीएं मिथ्यादृष्टी जीवनिका प्रमाण हो है। बहुरि आनतादिकविषैं मिथ्यादृष्टी जीवनिका प्रमाण इहां ही पूर्वै कह्या है। बहुरि सर्वार्थसिद्धिविषै अहमिंद्र सर्व असंयत हो हैं ते द्रव्य स्त्री मनुष्यणी तिनितैं तिगुणे वा कोई आचार्यके मतकरि सात गुणे कहे हैं ॥ ६४१ ॥ आगै मनुष्य गतिविषैं संख्या कहैं है—

तेरसकोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्सावि य तद्दुगुणा असंजदा सत्तकोडिसयं ॥ ६४२ ॥

त्रयोदशकोट्यो देशे द्वापंचाशत् सासने मंतव्याः।
मिश्रा अपि च तद्द्विगुणा असंयताः सप्तकोटिशतं ॥ ६४२ ॥

जी० प्र०—देशसंयते त्रयोदशकोट्यो मंतव्याः। १३ को। सासादने द्विपंचाशत् कोट्यः ५२ को। मिश्रे ततो द्विगुणाः १०४ को। असंयते सप्त शतकोट्यः ७०० को। प्रमत्तादीनां संख्या तु प्रागुक्ता ॥ ६४२ ॥

स. चं.—मनुष्य जीव देशसंयतविषैं तेरह कोडि है। बावन कोडि सासादनविषैं जानने। मिश्रविषैं तिनतैं दुगुणे एक सौ च्यारि कोडि जानने। असंयतविषैं सातसै कोडि जानने और प्रमत्तादिककी संख्या पूर्वै कही है सोई जाननी। ऐसै गुणस्थाननिविषैं जीवनिका प्रमाण कह्या है ॥ ६४२ ॥

जीविदरे कम्मचये पुण्णं पावोत्ति होदि पुण्णं तु।
सुहपयडीणं दव्वं पावं असुहाण दव्वं तु ॥ ६४३ ॥

जीवेतरास्मिन् कर्मचये पुण्यं पापमिति भवति पुण्यं तु।
शुभप्रकृतीनां द्रव्यं पापं अशुभप्रकृतीनां द्रव्यं तु ॥ ६४३ ॥

जी० प्र०—जीवपदार्थप्रतिपादनसामान्येन गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टयः सासादनाश्च पापजीवाः । मिश्राः पुण्यपापमिश्रजीवाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वमिश्रपरिणामपरिणतत्वात् । असंयताः सम्यक्त्वेन, देशसंयताः सम्यक्त्वेन देशव्रतेन च युक्तत्वात् पुण्यजीवा एव इत्युक्त्वा अनंतरं अजीवपदार्थप्ररूपणो कर्मचये—कार्मणस्कंधे पुण्यं पापमिति अजीवपदार्थो द्वेधा । तत्र शुभप्रकृतीनां सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणां द्रव्यं पुण्यं । अशुभानां असद्वेद्यादिसर्वाप्रशस्तप्रकृतीनां द्रव्य तु पुनः पापं भवति ॥ ६४३ ॥

स० चं—जीवपदार्थ संबंधी प्रतिपादनविषैं सामान्यपनैं गुणस्थाननिविषैं मिथ्यादृष्टी अर सासादन एतौ पापजीव हैं बहुरि मिश्र हैं ते पुण्य पापरूप मिश्रजीव हैं जातैं युगपत् सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप परिणए हैं बहुरि असंयत तौ सम्यक्त्वकरि संयुक्त है अर देश संयत सम्यक्त्व अर देशव्रतकरि संयुक्त हैं अर प्रमत्तादिक सम्यक्त्व अर सकलव्रतकरि संयुक्त हैं तातैं ए पुण्यजीव हैं ऐसे कहि याके अनंतरि अजीवपदार्थ संबंधी प्ररूपणा करैं हैं—

तहां कर्मचय कहिए कार्माणस्कध तिसविषैं पुण्य पापरूप दोय भेद हैं तातैं अजीव दोय प्रकार है तहां साता वेदनी नरक विना तीन आयु शुभ नाम उच्चगोत्र ए शुभ प्रकृति हैं तिनिकौं द्रव्य पुण्य कहिए बहुरि घातिया कर्मनिकी सर्व प्रकृति असाता वेदनी नरक आयु अशुभ नाम नीच गोत्र ए अशुभ प्रकृति हैं तिनिकौं द्रव्य पाप कहिए ॥ ६४३ ॥

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ॥ ६४४ ॥

आस्रवसंवरद्रव्यं समयप्रबद्धं तु निर्जराद्रव्यं ।
ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ॥ ६४४ ॥

जी० प्र०—आस्रवद्रव्यं संवरद्रव्यं च समयप्रबद्धः । निर्जराद्रव्यं तु पुनः उत्कृष्टं समयप्रबद्धान्नियमेनासंख्यातगुणं भवति ॥ ६४४ ॥

स० चं—बहुरि आस्रव द्रव्य अर संवर द्रव्य समय प्रबद्ध प्रमाण है जातैं एकसमयविषैं आस्रव समय प्रबद्ध प्रमाण पुद्गल परमाणूनिहीका हो है । बहुरि संवर होइ तौ तितने ही कर्मनिका आस्रव न होइ तातैं द्रव्य संवर भी

तितना ही कह्या। बहुरि उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य समय प्रबद्धतैं असंख्यात गुणा नियमकरि जानना जातैं गुण श्रेणी निर्जराविषैं उत्कृष्टपनैं एक समयविषैं असंख्यात समय प्रबद्धनिकी निर्जरा करै है ॥ ६४४ ॥

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ॥ ६४५ ॥

बंधः समयप्रबद्धः किंचिदूनद्व्यर्धमात्रगुणहानिः ।
मोक्षश्च भवत्येवं श्रद्धातव्यास्तु तत्त्वार्थाः ॥ ६४५ ॥

जी० प्र०तु-पुनः बंधोऽपि समयप्रबद्ध एव। मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं भवतीति एवं तत्त्वार्थाः श्रद्धातव्याः ॥६४५॥

अथ सम्यक्त्वभेदमाह—

स० चं—बहुरि बंध द्रव्य भी समय प्रबद्ध प्रमाण है जातैं एक समयविषैं समय प्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनिहीका बंध होहै। बहुरि मोक्षद्रव्य किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण कहे जातैं अयोगीकैं चरमसमयविषैं द्व्यर्धगुण हानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्ता पाइए तिसहीका मोक्ष हो है इसप्रकार तत्त्वार्थ हैं ते श्रद्धान करणे, इस तत्त्वार्थ श्रद्धानहीका नाम सम्यक्त्व है ॥ ६४५ ॥ आगैं सम्यक्त्वके भेद कहैं हैं—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ॥
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥ ६४६ ॥

क्षीणे दर्शनमोहे यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥ ६४६ ॥

जी० प्र०—मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतित्रये अनंतानुबंधिचतुष्टये च करणलब्धिपरिणामसामर्थ्यात् क्षीणे सति यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं

भवति तत्क्षायिकसम्यग्दर्शनं नाम । तच्च नित्यं स्यात् प्रतिपक्षप्रक्षयोत्पन्नात्मगुणत्वात् । पुनः प्रतिसमयं गुणश्रेणिनिर्जराकारणं भवति । तथा चोक्तं—

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेससम्मं च ॥

दर्शनमोहे क्षपिते सिध्यति एकस्मिन्नेव तृतीयतुरीयभवे ।
नातिक्रामति तुरीयभवं न विनश्यति शेषसम्यक्त्वं च ॥ १ ॥

दर्शनमोहे क्षपिते सति तस्मिन्नेव भवे वा तृतीयभवे वा चतुर्थभवे कर्मक्षयं करोति चतुर्थभवं नातिक्रामति । शेषसम्यक्त्ववन्न विनश्यति । तेन नित्यमित्युक्तं । साद्यक्षयानंतमित्यर्थः । अमुमेवार्थमाह—

स० चं—मिथ्यात्व मोहनी सम्यग्मिथ्यात्व मोहनी सम्यक् मोहनी अर अनंतानुबंधीकी चौकड़ी इनि सात प्रकृतिनिका करणलब्धिरूप परिणामनिका बलतैं नाश होत संते जो अति निर्मल श्रद्धान होइ सो क्षायिक सम्यक्त्व है सो प्रतिपक्षी कर्मका नाशकरि आत्माका गुण प्रगट भया है तातैं नित्य है बहुरि समय समय प्रति गुणश्रेणि निर्जराकौं कारण है तातैं कर्मक्षयका हेतु है । उक्तं च—

दंसण मोहे खविदे सिज्झदि एकेव तदिय तुरियभवे ।
णादिकदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं च ॥ १ ॥

दर्शन मोहका क्षय होतैं तीहिं भवविषैं वा देवायुका बंध भएं तीसरा भवविषैं वा पहिलैं मिथ्यात्वदशाविषैं मनुष्य तिर्यंच आयुका बंध भया होइ तौ चौथा भवविषै सिद्ध पदकौं प्राप्त होइ, चौथा भवकौं उलंघै नाहीं । बहुरि अन्य सम्यक्त्ववत् यह क्षायिक सम्यक्त्व विनशै भी नाहीं तीहिस्यों नित्य कह्या है सादि अक्षयानंत है आदि सहित अविनाशी अंत रहित है यह अर्थ जानना ॥ ६४६ ॥ इसही अर्थकौं कहैं हैं—

वयणेहिं वि हेदूहिं वि इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।

बीभच्छजुगंछाहिं य तेलोक्केणवि ण चालेज्जो ॥ ६४७॥

वचनैरपि हेतुभिरपि इंद्रियभयानीतैः रूपैः ।
वीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चाल्यः ॥ ६४७ ॥

जी० प्र०—कुत्सितोक्तिभिः कुहेतुदृष्टांतैः इंद्रियभयोत्पादकविकृतवेषैः वीभत्स्यवस्तूत्पन्नजुगुप्साभिः किं बहुना त्रैलोक्येनापि क्षायिकसम्यक्त्वं न चालयितुं शक्यं ॥ ६४७ ॥ तत्सम्यग्दर्शनं कस्य भवेत् ? इति चेदाह—

स० चं–श्रद्धान नष्ट होनेकौं कारण ऐसे कुत्सित वचननिकरि वा कुत्सित हेतु दृष्टांतनिकरि वा इंद्रियनिकौं भयकारी ऐसे विकाररूप अनेक भेष आकारनिकरि वा ग्लानिकौं कारण ऐसी वस्तुतैं निपज्या जुगुप्सा तिनकरि क्षायिक सम्यक्त्व चलै नाही बहुत कहा कहिये तीन लोक मिलिकरि क्षायिक सम्यक्त्वकौं चलाया चाहैं तौ क्षायिक सम्यक्त्व चलावनेकौं समर्थ न होइ ॥६४७॥ सो क्षायिक सम्यक्त्व कौनकैं हो है ? सो कहैं हैं—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६४८ ॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि ।
मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥ ६४८ ॥

जी० प्र०—दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभकः कर्मभूमिज एव सोऽपि मनुष्य एव तथापि केवलिश्रीपादमूले एव भवति । निष्ठापकस्तु सर्वत्र चतुर्गतिषु भवति ॥ ६४८ ॥ अथ वेदकसम्यक्त्वस्वरूपमाह—

स० चं–दर्शन मोहकी क्षपणाका प्रारंभक तौ कर्मभूमिका उपज्या मनुष्य ही केवलीके पादमूलविषैं ही हो है अर निष्ठापक सर्वत्र च्यार्‍यो गतिविषैं हो है। भावार्थ जो दर्शन मोहका क्षय होनेका विधान है तिसका प्रारंभ तौ केवली वा श्रुतकेवलीके निकट कर्मभूमिया मनुष्य ही करै है। बहुरि सो विधान होतैं होतैं मरण हो जाय तौ जहां

संपूर्ण दर्शन मोहके नाशका कार्य होइ निवरै तहां ताकौं निष्ठापक कहिए सो च्यार्‍यो गति विषैं हो है ॥ ६४८ ॥
आगैं वेदक सम्यक्त्वका स्वरूप कहै हैं—

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥ ६४९ ॥

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानं ।
चलमलिनमगाढं तद् वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥ ६४९ ॥

जी० प्र०—दर्शनमोहनीयस्य सम्यक्त्वप्रकृतेः उदये सति यत्तत्त्वार्थश्रद्धानं चलं मलिनं अगाढं वा उत्पद्यते तद्वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥ ६४९ ॥ अथोपशमसम्यक्त्वस्वरूपं तत्सामग्रीविशेषं च गाथात्रयेणाह—

स० चं०—दर्शनमोहका भेद सम्यक्त्वमोहनी ताका उदयकरि जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल वा मल वा अगाढ होइ सो वेदक सम्यक्त्व है ऐसा तू जानि। चल मलिन अगाढका लक्षण पूर्वै गुणस्थानप्ररूपणाविषैं कह्या है ॥६४९॥
आगैं उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप अर तिसहीकी सामग्रीका विशेष तीन गाथानिकरि कहैं हैं—

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६५०॥

दर्शनमोहोपशमादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानं ।
उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमं ॥ ६५० ॥

जी० प्र०—अनंतानुबंधिचतुष्कस्य दर्शनमोहत्रयस्य च उदयाभावलक्षणाऽप्रशस्तोपशमेन प्रसन्नमलपंकतोयसमानं यत्पदार्थश्रद्धानमुत्पद्यते तदिदमुपशमसम्यक्त्वं नाम ॥ ६५० ॥

स० चं०—अनंतानुबंधीकी चौकडी अर दर्शन मोहका त्रिक इनि सात प्रकृतिनिके उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा प्रशस्त उपशम होनेतें जैसें कतकफलादिकतें मल कर्दमके नीचें बैठनेकरि जल प्रसन्न हो है तैसें जो तत्त्वार्थ श्रद्धान उपजे सो यहु उपशम नामा सम्यक्त्व है ॥ ६५० ॥

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धीय ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६५१॥

क्षायोपशमिकविशुद्धी देशना प्रायोग्यकरणलब्धी च ।
चतस्रोऽपि सामान्याः कारणं पुनर्भवति सम्यक्त्वे ॥ ६५१ ॥

जी० प्र०—क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यताकरणनाम्न्यः पंचलब्धयः उपशमसम्यक्त्वे भवंति । तत्र आद्याः चतस्रोऽपि सामान्याः भव्याभव्ययोः संभवात् । करणलब्धिस्तु भव्य एव स्यात् तथापि सम्यक्त्वग्रहणे चारित्रग्रहणे च ॥ ६५१ ॥ क्षयोपशमसम्यक्त्वग्रहणयोग्यजीवमाह—

स० चं०—सम्यक्त्वके पूर्वं जैसा कर्मका क्षयोपशम चाहिए तैसा होना सो क्षयोपशमिक लब्धि, बहुरि जैसी विशुद्धता चाहिए तैसी होनी सो विशुद्धि लब्धि. बहुरि जैसा उपदेश चाहिए तैसा पावना सो देशनालब्धि, बहुरि पंचेंद्रियादिक रूप योग्यता जैसी चाहिए तैसी होनी सो प्रायोग्यलब्धि बहुरि अधः अपूर्व अनिवृत्तिकरणरूप परिणामनिका होना सो करणलब्धि जाननी । तहां च्यारि लब्धि तो सामान्य हैं भव्य अभव्य सर्वकैं हो हैं बहुरि करण लब्धि है सो भव्यकैं ही हो है सो भी सम्यक्त्व अर चारित्रका ग्रहणविषैं ही हो है । भावार्थ—च्यारि लब्धि तौ संसारविषैं अनेकवार हो हैं बहुरि करणलब्धिकी प्राप्ति भएं सम्यक्त्व वा चारित्र अवश्य हो है ॥ ६५१ ॥ आगें उपशमसम्यक्त्के ग्रहणेको योग्य जो जीव ताका स्वरूप कहै हैं—

चदुगदिभव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।

जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी पर्याप्तश्च शुद्धकश्च साकारः।
जागरूकः सल्लेश्यः सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छाति ॥ ६५२

जी० प्र०—यः चतुर्गतिभव्यः सञ्ज्ञी पर्याप्तकः विशुद्धः आकारेण भेदग्रहणेन सहितः स्त्यानगृद्ध्य दिनिद्रात्रयरहितः भावशुभलेश्यात्रये अन्यतमलेश्यः करणलब्धिपरिणतः स जीवो यथासंभवं सम्यक्त्वमुपगच्छाति ॥ ६५२ ॥

स० चं०—जो जीव च्यारिगतिमें कोई एक गतिविषैं प्राप्त ऐसा भव्य होइ, सैनी होइ पर्याप्त होइ मंदकषाय परिणामता विशुद्धता होइ स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन निद्रातैं रहित होनेतैं जागता होइ भावित शुभ तीन लेश्यानिविषैं कोई एक लेश्याका धारक होइ करणलब्धिरूप परिणया होइ ऐसा जीव यथासंभव सम्यक्त्वकौं प्राप्त हो है॥६५२॥

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं॥६५३॥

चत्वार्यपि क्षेत्राणि आयुष्कबंधेन भवति सम्यक्त्वं।
अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कमुक्त्वा ॥ ६५३ ॥

जी० प्र०—चतुर्णां परभवायुषां एकसंबंधेन जातबद्धायुष्कस्य सम्यक्त्वं भवत्यत्र दोषो नास्ति। अणुव्रतमहाव्रतानि तु एकं बद्धदेवायुष्कं मुक्त्वा नान्ये लभंते ॥ ६५३ ॥

स० चं०—च्यारि आयुविषै किसी ही परभवका आयु बंध कीया होइ तिस बद्धायु जीवकैं सम्यक्त्व उपजै इहां किछू दोष नाहीं। बहुरि अणुव्रत अर महाव्रत जिसके देवायुका बंध भया होइ तिसहीकैं होइ जो पहिलैं नारक तिर्यंच मनुष्यायुका बंध मिथ्यात्वमें भया होइ तौ पीछे अणुव्रत महाव्रत होइ नाहीं। यह नियम है॥६५३॥

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो ।
सो सासणोत्ति णेयो पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५४॥

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः ।
स सासन इति ज्ञेयः पंचमभावेन संयुक्तः ॥ ६५४ ॥

जी० प्र०—यो जीवः सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं यावन्न प्राप्तः तावत् सासादन इति ज्ञेयं स च दर्शनमोहनीयस्यैवापेक्षया पारिणामिकभावेन सहितः, चारित्रमोहनीयापेक्षया तस्यौदयिकभावसद्भावात् ॥ ६५४ ॥

स० चं०—जो जीव सम्यक्त्वतैं पड्या अर मिथ्यात्वकौं यावत् प्राप्त न भया तावत् काल सासादन है ऐसा जानना सो दर्शन मोहहीकी अपेक्षा पांचवां पारणामिक भावकरि संयुक्त है जातैं चारित्र मोहकी अपेक्षा अनंतानुवंधीके उदयतैं सासादन हो है तातैं इहां औदयिक भाव है। यहु सासादन जुदी ही जातिका श्रद्धान रूप सम्यक्त्व मार्गणाका भेद जानना ॥ ६५४ ॥

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छोत्ति णायव्वो ॥ ६५५ ॥

श्रद्धानाश्रद्धानं यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु ।
विरताविरतेन समः सम्यग्मिथ्य इति ज्ञातव्यः ॥ ६५५ ॥

जी० प्र०—जीवादिपदार्थेषु यस्य जीवस्य श्रद्धानमश्रद्धानं च युगपदेव देशसंयतस्य संयमासंयमवद्भवति स जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ ६५५ ॥

स० च०—जिस जीवकैं जीवादि पदार्थनिविषै श्रद्धान वा अश्रद्धान एक कालविषैं होइ जैसैं देश संयतकैं

संयम वा असंयम एक काल हो है तैसैं होइ सो जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टी है ऐसा जानना। यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिश्र नामा भेद कह्या है ॥ ६५५ ॥

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥ ६५६ ॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति।
श्रद्दधाति असद्भावं उपदिष्टं वा अनुपदिष्टं ॥ ६५६ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टान् आप्तागमपदार्थान् न श्रद्दधाति। उपदिष्टान् अनुपदिष्टांश्च असद्भावान् अनाप्तागमपदार्थान् श्रद्दधाति ॥ ६५६ ॥ अथ सम्यक्त्वमार्गणायां जीवसंख्यां गाथात्रयेणाह—

स० चं०—मिथ्यादृष्टी जीव जिन करि उपदेशित ऐसे आप्त आगम पदार्थ तिनिका श्रद्धान करै नाहीं बहुरि कुदेवादिककरि उपदेश्या वा अनुपदेश्या झूठा आप्त आगम पदार्थ तिनिका श्रद्धान करै है यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिथ्यात्व नामा भेद कह्या। ऐसैं सम्यक्त्व मार्गणाके छह भेद कहे। उपशम क्षायिक सम्यक्त्वका विशेष विधान लब्धिसार नामा ग्रंथविषैं कह्या है ताके अनुसारि इहां भाषा टीकाविषैं आगैं किछू लिखेंगे तहां जानना ॥६५६॥ आगैं सम्यक्त्व मार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या तीनि गाथानिकरि कहै हैं—

वासपुधत्ते खइया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे।
तो संखपल्लठिदिये केवदिया एवमणुपादे ॥ ६५७ ॥

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः संख्येया यदि भवंति सौधर्मे।
तर्हि संख्यपल्यस्थितिके कति एवमनुपाते ॥ ६५७ ॥

जी० प्र०—यदि वर्षपृथक्त्वे क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्याताः सौधर्मद्वये उत्पद्यंते तर्हि संख्यातपल्यस्थितिके कति इत्यनुपाते त्रैराशिके कृते प्र-वर्ष ७ फ क्षा = १ । इ प १ लब्धाः ॥ ६५७ ॥

स० चं०—क्षायिक सम्यक्त्वी वहुत कल्पवासी देव हो हैं। वहुरि कल्पवासी देव वहुत सौधर्म ईशान विषैं है तातैं कहैं हैं—जो पृथक्त्व वर्षविषैं क्षायिक सम्यक्त्वी सौधर्म ईशानविषै संख्यात प्रमाण उपजै तौ संख्यात पल्यकी स्थितिविषैं कितने उपजैं? ऐसा त्रैराशिक करना। इहां प्रमाण राशि पृथक्त्व वर्ष प्रमाण, काल फलराशि संख्यात जीव इच्छा राशि संख्यात पल्य प्रमाण, कालसो फलतैं इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भाग दीएं जो लब्धि राशि भया सो कहैं हैं ॥ ६५७ ॥

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदमुवसमया।
आवलिअसंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ॥ ५८ ॥

संख्यावलिहितपल्याः क्षायिकास्ततश्च वेदमुपशमकाः।
आवल्यसंख्यगुणिता असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ॥ ६५८ ॥

जी० प्र०—संख्यातावलिभक्तपल्यमात्रकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयो भवंति प / २ १ । तेभ्यः वेदकोपशमसम्यग्दृष्टयः क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितासंख्यतगुणहीना भवंति । वे = प a / २ १ उ = प / २ १ । a ॥ ६५८ ॥

स० चं०—सो लब्ध राशिका प्रमाण संख्यात आवलीका भाग पल्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितना आया सो तितने ही क्षायिक सम्यग्दृष्टी जानने। वहुरि इनिकौं आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणै जो प्रमाण होइ तितने वेदक सम्यग्दृष्टी जानने। वहुरि क्षायिक जीवांका परिमाणहीतैं असंख्यात गुणा घाटि उपशम सम्यग्दृष्टी जीव जानने ॥ ६५८ ॥

पल्लासंखेज्जदिमा सासणमिच्छा य संखगुणिदा हु।
मिस्सा तेहिं विहीणो संसारी वामपरिमाणं ॥ ५९॥

पल्यासंख्याताः सासनमिथ्याश्च सं॰ गुणिता हि।
मिश्रास्तैर्विहीनः संसारी वामपरिमाणं ॥ ६५९॥

जी॰ प्र॰—पल्यासंख्यातैकभागमात्राः सासादनमिथ्यारुचयः प / a a ४ तेभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः प / a a स्फुटं एतद्राशिद्वयोन-संसारराशिर्वामपरिमाणं भवति वा १३— नवपदार्थप्रमाणमुच्यते—

जीवाः १६ अजीवेषु पुद्गलाः सर्वजीवराशितोऽनंतगुणाः १६ ख। धर्मद्रव्यमेकं। अधर्मद्रव्यमेकं। आकाशद्रव्यमेकं। कालद्रव्यं जगच्छ्रेणिघनमात्रं। ≡। (३ / ≡) (a / १—)

एवमजीवपदार्थौ मिलित्वा साधिकपुद्गलराशिमात्रः १६ ख। पुण्यजीवा असंयतदेशसंयतान्मेलयित्वा तत्र प्रमत्तादीनां संख्याते युते एतावंतः प / a a ४ / a a a ४

अजीवपुण्यं द्व्यर्धगुणहानिसंख्यातैकभागः स a १२— / ७ १ पापजीवाः साधिकपुण्यजीवसिद्धराशिविहीनसंसारिराशिः १३—। अजीवपापं द्व्यर्धगुण-हानिसंख्यातबहुभागः स a १२— / ७ (१ २ / ७) आस्रवपदार्थः समयप्रबद्धः स a। संवरद्रव्यं समयप्रबद्धः स a। निर्जराद्रव्यमेतावत्— स a १२— । ६४ / ऊ प ८५ / a

बंधद्रव्यं समयप्रबद्धः स a। मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिः स a १२— ॥ ६५९ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु सम्यक्त्वमा-र्गणाप्ररूपणानाम सप्तदशोऽधिकारः ॥ १७ ॥

स० चं०—पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण सासादन तेई मिथ्याती सामान्य हैं तिनिका परिमाण है तिनतैं संख्यात गुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव है। बहुरि इन पंच सम्यक्त्व संयुक्त जीवानिका मिलाया हूवा परिमाणकौं संसारी राशिमें घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहे तितने वाम कहिए मिथ्यादृष्टी तिनिका परिमाण है ॥ ६५९ ॥ अव इहां नव पदार्थनिका परिमाण कहिए है—

जीवद्रव्य तौ द्विरूपवर्गधाराविषैं कहे अपने प्रमाण लीए हैं। बहुरि अजीवविषैं पुद्गल द्रव्य जीवराशितैं अनंत गुणे है। धर्मद्रव्य एक है। अधर्मद्रव्य एक है। आकाशद्रव्य एक है। कालद्रव्य जगच्छ्रेणीका घन जो लोक तीहिं प्रमाण है सो पुद्गलका परिमाणविषैं धर्म अधर्म आकाशका परिमाण मिलाएं अजीव पदार्थका परिमाण हो है। बहुरि असंयत अर देश संयतका परिमाण मिलाएं तिनविषैं प्रमत्तादिकानिका प्रमाण संख्यात मिलाएं जो प्रमाण होइ तितने पुण्यजीव हैं। बहुरि किंचिदून द्व्यर्द्धगुण हानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनिकी सत्ता है ताके संख्यातवे भागिमात्र शुभ प्रकृतिरूप अजीव पुण्य है। बहुरि मिश्र अपेक्षा किछू अधिक जो पुण्य जीवनिका प्रमाण ताकौं संसारी राशिमें घटाएं जो प्रमाण रहे तितने पाप जीव हैं। बहुरि द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्धकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष भाग प्रमाण अशुभ प्रकृतिरूप अजीव पाप हैं। बहुरि आस्रव पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। संवर पदार्थ समय प्रबद्ध प्रमाण है। निर्जराद्रव्य गुण श्रेणी निर्जराविषैं उत्कृष्टपनैं जितनी निर्जरा होइ तीहि प्रमाण है। बंध पदार्थ समयप्रबद्ध प्रमाण है। मोक्षद्रव्य द्व्यर्ध गुणहानि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण है ॥ ५५९ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके सम्यग्ज्ञानचंद्रिका अनुसारि नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनविषैं सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणानाम सतरहवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १७ ॥

अथ संज्ञिमार्गणा । १८ ।

जी० प्र०—

निरस्तारिरजोविघ्नो व्यक्तानंतचतुष्टयः ।
शतेंद्रपूज्यपादाब्जः श्रियं दद्यादरो जिनः ॥ १८ ॥

अथ संज्ञिमार्गणामाह—

स० चं०—

अरि रजविघ्न बिनाशकर अमित चतुष्टय थान ।
शत इंद्रनिकरि पूज्य पद द्यो श्री अर भगवान ॥ १८ ॥

आगें संज्ञी मार्गणा कहैं हैं ॥ ६६० ॥

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदिअवबोहो ॥ ६० ॥

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जबोधनं संज्ञा ।
सा यस्य स तु संज्ञी इतरः शेषेंद्रियावबोधः ॥ ६६० ॥

जी० प्र०—नोइंद्रियं मनः तदावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधनं वा संज्ञा सा विद्यते यस्य स संज्ञी इतरः असंज्ञी शेषेंद्रियज्ञानः ॥ ६६० ॥

नो इंद्रिय जो मन ताके आवरणका जो क्षयोपशम तींहिकरि उत्पन्न भया जो बोधन ज्ञान ताकौं संज्ञा कहिए सो संज्ञा जाकैं पाइए ताकौं संज्ञी कहिए है। मन ज्ञानकरि रहित अवशेष यथासंभव इंद्रियनिका ज्ञानकरि संयुक्त जो जीव सो असंज्ञी है ॥ ६६० ॥

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंवेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी दु ॥ ६१ ॥

शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही मनोवलंबेन ।
यो जीवः स सञ्ज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ॥ ६६१ ॥

जी० प्र०—हिताहितविधिनिषेधात्मिका शिक्षा । करचरणचालनादिरूपा क्रिया । चर्मपुत्रिकादिनोपदिश्यम नवधविधानादिरूपदेशः । श्लोकादिपाठ आलापः तद्ग्राही मनोवलंबेन यो मनुष्यः उक्षगजराजकीरादिजीवः स संज्ञी नाम । तद्विपरीतलक्षणः तु पुनः असंज्ञीनाम ॥ ६६१ ॥

स० चं०—हित अहितका करने त्यजनेरूप शिक्षा, हाथ पगका इच्छाकरि चलावने आदिरूप क्रिया, चामठी इत्यादिकरि उपदेश्या वध विधानादिक सो उपदेश, श्लोकादिकका पाठ सो आलाप इनिका ग्रहण करणहारा जो मन ताकों अवलंबनकरि क्रमतें मनुष्य वा बलध वा हाथी वा सूवा इत्यादि जीव सो संज्ञी नाम हैं। बहुरि इस लक्षणतें उलटा लक्षणका जो जीव सो असंज्ञी जानना ॥ ६६१ ॥

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो ॥ ६६२ ॥

मीमांसति यः पूर्वं कार्यमकार्यं च तत्त्वमितरच्च ।
शिक्षते नाम्ना एति च समना अमनाश्च विपरीतः ॥ ६६२ ॥

जी० प्र०—यः पूर्वं कार्यमकार्यं च मीमांसति । तत्त्वमितरच्च शिक्षते । नाम्ना आहूत आयाति स जीवः समनाः समनस्को भवति । तद्विपरीतलक्षणः अमनाः अमनस्को भवति ॥ ६६२ ॥ अत्र जीवसंख्यामाह—

स० चं०—जो पहिलै कार्य अकार्यकों विचारै तत्त्व अतत्त्वकों सीखै, नामकरि बुलाया हूवा आवै, सो जीव मनसहित समनस्क संज्ञी जानना । इस लक्षणतें उलटा लक्षणकौं जो धरें होइ सो जीव मन रहित अमनस्क असंज्ञी जानना ॥ ६६२ ॥ इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं ॥

देवेहिं सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।

तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ॥ ६३ ॥

देवैः सातिरेको राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणं ।
तेनोनः संसारी सर्वेषामसंज्ञिजीवानां ॥ ६६३ ॥

जी० प्र०—चतुर्निकायामरराशिः साधिकः संज्ञिप्रमाणं भवति = १— ४ । ६५=१ तेनोनः सर्वसंसारिराशिः सर्वासंज्ञिपरिमाणं भवति १३— ॥ ६६३ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु संज्ञिमार्गणाप्ररूपणा नाम अष्टादशोऽधिकारः ॥ १८ ॥

स० चं—च्यारि प्रकारके देवनिका जो प्रमाण तिनतैं किछू आधिक संज्ञीजीवनिका प्रमाण है । संज्ञी जीवनिविषैं देव बहुत हैं तिनिविषैं नारक मनुष्य पंचेंद्री सैनी तिर्यंच मिलाए संज्ञी जीवनिका प्रमाण हो है । इस प्रमाणकौं संसारी जीवनिका प्रमाणमें घटाएं अवशेष सर्व असंज्ञी जीवनिका प्रमाण हो है ॥ ६६३ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नाम भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं संज्ञी मार्गणा प्ररूपणा नामा अठारह्वां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १८ ॥

अथ आहारमार्गणा ॥ १९ ॥

जी० प्र०—

मल्लिफुल्लवदामोदो मल्लो मोहारिमर्दने ।
वहिरंतःश्रियोपेतो मल्लिः शल्यहरोऽस्तु नः ॥ १९ ॥

अथाहारमार्गणामाह—

स० चं०— मल्लिकुसुम समगंधजुत मोह शत्रुहर मल्ल ।
वहिरंतर श्रीसहित जिन मल्लि हरहु मम शल्ल ॥ १९ ॥

आगै आहार मार्गणा कहैं हैं—

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम ॥ ६४ ॥

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानां ।
नोकर्मवर्गणानां ग्रहणमाहारकं नाम ॥ ६६४ ॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मान्यतमोदयेन तच्छरीरवचनद्रव्यमनोयोग्यनोकर्मवर्गणानां ग्रहणं आहारो नाम ॥ ६६४ ॥

स० चं०—औदारिक वैक्रियिक आहारक इन तीन शरीर नामा नामकर्मविषैं किसीहीका उदयकरि जो तिस शरीररूप वा बचनरूप वा द्रव्य मनरूप होने योग्य जे नोकर्म वर्गणा तिनिका जो ग्रहण करना सो आहार ऐसा नाम है ॥ ६६४ ॥

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं तम्हा आहारयो भणियो ॥ ६५ ॥

आहारति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्गणाश्च ।
भाषामनसोर्नियतं तस्मादाहारको भणितः ॥ ६६५ ॥

जी० प्र०—औदारिकादित्रिशरीराणां उदयागतैकतमशरीरवर्गणाः भाषामनोवर्गणाश्च नियतजीवसमासे नियतकाले च नियतं यथा भवति तथा आहरति इत्याहरको भणितः ॥ ६६५ ॥

स० चं—औदारिकादिक शरीरनिविषैं जो उदय आया कोई शरीर तीहिरूप आहार वर्गणा बहुरि भाषावर्गणा बहुरि मनोवर्गणा इनवर्गणानिकौं यथायोग्य जीवसामासनिविषैं यथायोग्य कालविषैं यथायोग्यपनैं नियमरूप आहारति कहिए ग्रहण करै सो आहार कह्या है ॥ ६६५ ॥

विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ ६६ ॥

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्च अनाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥ ६६६ ॥

जी० प्र०—विग्रहगत्याश्रितचतुर्गतिजीवाः प्रतरलोकपूरणसमुद्घातपरिणतसयोगिजिनाः अयोगिजिनाः सिद्धाश्च अनाहारा भवंति। शेषजीवाः सर्वेऽपि आहारका एव भवंति ॥ ६६६ ॥ समुद्घातः कतिधा ? इति चेदाह—

स० चं०—विग्रहगतिकौं जे प्राप्त भए ऐसे च्यार्‍यो गतिवाले जीव बहुरि प्रतर अर लोकपूरणरूप केवल समुद्घातकौं प्राप्त भए ऐसे सयोगी जिन बहुरि सर्व अयोगी जिन बहुरि सर्व सिद्ध भगवान ए सर्व अनाहारक हैं अवशेष सर्व जीव आहारक हो हैं ॥ ६६६ ॥ सो समुद्घात कै प्रकार है ? सो कहैं हैं—

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।

वेदनाकषायवैगूर्विकाश्च मारणांतिकः समुद्घातः ।
तेजआहारः षष्ठः सप्तमः केवलिनां तु ॥ ६६७ ॥

जी० प्र०—समुद्घातः वेदनाकषायवैगूर्विकमारणांतिकतैजसाहारककेवलिसमुद्घातभेदात् सप्तधा भवति ॥ ६६७ ॥ स च किंरूपः ? इति चेदाह—

स० चं०—वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक तैजस छठा आहारक सातवां केवल ए सात समुद्घात जानने । इनिका स्वरूप लेश्या मार्गणाविषै क्षेत्राधिकारमैं कह्या था सो जानना ॥ ६६७ ॥ समुद्घातका स्वरूप कहा सो कहैं हैं ॥

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ॥ ६८ ॥

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य ।
निर्गमनं देहाद्भवति समुद्घातनाम तु ॥ ६६८ ॥

जी० प्र०—मूलशरीरमत्यक्त्वा कार्मणतैजसरूपोत्तरदेहयुक्तस्य जीवप्रदेशप्रचयस्य शरीराद्बहिर्निर्गमनं तत् समुद्घातो नाम भवति ॥ ६६८ ॥

स० चं०—मूल शरीरकौ तौ छोड़ै नाहीं बहुरि कार्माण तैजसरूप उत्तर शरीर सहित जीवके प्रदेश समूहका मूल शरीरतैं बाह्य निकसना सो समुद्घात ऐसा नाम जानना ॥ ६६८ ॥

आहारमारणंतियदुगंपि णियमेण एगदिसिगं तु ।
दसदिसिगदा हु सेसा पंच समुग्घादया होंति ॥ ६९ ॥

आहारमारणांतिकद्विकमपि नियमेन एकदिशिकं तु ।
दशदिशि गताहि शेषाः पंच समुद्घातका भवंति ॥ ६६९ ॥

जी० प्र०—आहारमारणांतिकसमुद्घातद्वयमेव एकदिग्गतं भवति तु— पुनः शेषाः पंचसमुद्घाताः दशदिग्गता भवंति ॥ ६६९ ॥ आहारानाहारकालमाह—

स० चं०—आहारक अर मारणांतिक ए दोऊ समुद्घात तौ नियमकरि एक दिशाकौं ही प्राप्त हो हैं जातैं इनविषैं सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण ही उचाई चौडाई होइ अर लंबाई बहुत होइ तातैं एक दिशाकौं प्राप्त कहिए बहुरि अवशेष पंच समुद्घात रहे ते दशो दिशाकौं प्राप्त हैं जातैं इनिविविषैं यथायोग्य लंबाई चौडाई उचाई सर्व ही पाइए है ॥ ६६९ ॥ आगैं आहार अनाहारका काल कहैं हैं—

अंगुलअसंखभागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो ।
कम्मम्मि अणाहारो उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥ ६७० ॥

अंगुलासंख्यभागः कालः आहारकस्योत्कृष्टः ।
कार्मणे अनाहारः उत्कृष्टः त्रयः समया हि ॥ ६७० ॥

जी० प्र०—आहारकालः उत्कृष्टः सूच्यंगुलासंख्यातैकभागः २ । जघन्यः त्रिसमयोनोच्छ्वासाष्टादशैकभागः । अनाहारकालः कार्मणकाये
a
उत्कृष्टः त्रिसमयः । जघन्यः एकसमयः । खलु-स्फुटं ॥ ६७० ॥ अथात्र जीवसंख्यामाह—

स० चं०—आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागप्रमाण है । सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारकका काल है । इहां प्रश्न जो मरण तौ आयुपूरी भएं पीछैं होइ ही होइ तहां अनाहार होइ इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या ? ताका समाधान—जो मरण भए जिस जीवके वक्ररूप विग्रहगति न होइ सूधी एक समयरूप गति होइ ताकैं अनाहारकपणा न हो है आहारकपणाही रहै हैं तातैं

आहारकका पूर्वोक्तकाल उत्कृष्टपनैंकरि कह्या है। बहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारह्वां भाग जानना जातैं क्षुद्रभवविषैं विग्रह गतिके समय घटाए इतना काल हो है। बहुरि अनाहारकका काल कार्माण शरीरविषैं उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जातैं विग्रह गतिविषैं इतने काल पर्यंत ही नोकर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है ॥ ६७० ॥ आगैं इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिदसंसारी सव्वो आहारपरिमाणं ॥ ६७१ ॥

कार्मणकाययोगी भवति अनाहारकाणां परिमाणं ।
तद्विरहितसंसारी सर्वं आहारपरिमाणं ॥ ६७१ ॥

जी० प्र०—कार्मणकाययोगिजीवराशिः अनाहारकपरिमाणं भवति । तद्विरहितसंसारिराशिः आहारकपरिमाणं भवति । तद्यथा-योगकालः कार्मणस्य त्रिसमयाः । औदारिकमिश्रस्य अंतर्मुहूर्तः । औदारिकस्य ततःसंख्यातगुणः। मिलित्वा त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितांतर्मुहूर्तः । ३— १— / २१४
"प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणकोभवेदिति प्र ३— / २१५ । फ १३— । इ स ३ । लब्धमनाहारकजीवप्रमाणं १३— ३ / ३— / २१५

पुनः ३— / २१५ । फ १३— । इ २१५ । लब्धमाहारकजीवप्रमाणं १३— । २१५ / ३— / २१५ वैक्रिकाहारकयोर्यथायोग्यं ज्ञातव्यं ॥ ६७१ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु आहारमार्गणाप्ररूपणानामैकान्नविंशोऽधिकारः ॥ २० ॥

स० चं—कार्माण काययोगवाले जीवनिका जो प्रमाण योगमार्गणाविषैं कह्या सोई अनाहारक जीवनिका प्रमाण जानना। इसकौं संसारी जीवनिका प्रमाणमें घटाएं अवशेष रहै तितना आहारक जीवनिका प्रमाण जानना सोई कहैं हैं—प्रथम योगनिका काल कहिए है—कार्माणका तौ तीन समय, औदारिक मिश्रका अंतर्मुहुर्त प्रमाण, औदारिकका तीहिस्यों संख्यात गुणा काल. तहां सर्वकाल मिलाएं तीन समय अधिक संख्यात अंतर्मुहुर्त प्रमाण काल भया। याका किंचित् ऊन संसारी राशिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं तीनकरि गुणें जो प्रमाण आवै तितने अनाहारक जीव है अवशेष सर्व संसारी आहारक जीव हैं। वैक्रियिक आहारकवाले थोरे हैं तिनकी मुख्यता नाहीं है। इहां—

प्रक्षेप योगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति, ऐसा यह करणसूत्र जानना। याका अर्थ प्रक्षेपकौं मिलायकार मिश्र पिंडका भाग देइ जो प्रमाण होइ ताकौं प्रक्षेपक करि गुणें अपना अपना प्रमाण होइ जैसैं कोई एक हजार प्रमाण वस्तु है तातैं किसीका पंचवट है किसीका सात वट है, किसीका आठ वट है सबकौ मिलाए प्रक्षेपकका प्रमाण वीस भए तिस वीसका भाग हजारकौ दीएं पचास पाए तिनकौं पंचकरि गुणें अढाईसै भए सो पंच वट वालेकैं आए। सातकरि गुणें साढा तीनसौ भए सो सात वट वालेकैं आए। आठकरि गुणें च्यारिसै भए सो आठ वट वालेकै आए। ऐसैं मिश्रक व्यवहार विषै अन्यत्र भी जानना ॥ ६७१ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा भाषा टीकाविषै जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं आहार मार्गणा प्ररूपणा नाम उगणीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १९ ॥

अथ उपयोगाधिकार ॥ २० ॥

जी० प्र०—

सुव्रतः सुव्रतैः सेव्यः सुव्रतः सुव्रताय सः ।
माताईत्यपदो दद्यात् स्वकीयां सुव्रतश्रियं ॥ २१ ॥

अथोपयोगाधिकारमाह—

स० चं–

सुव्रत पावनकों भजौं जाहि भक्त व्रतवंत ।
निज सुव्रत श्री देहु मम सो सुव्रत अरहंत ॥ २० ॥

आगें उपयोगाधिकार कहैं हैं—

वत्थुणिमित्तं भावो जादो जीवस्स जो दु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो सायारो चेव णायारो ॥ ६७२ ॥

वस्तुनिमित्तं भावो जातो जीवस्य यस्तूपयोगः ।
स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चैवानाकारः ॥ ६७२ ॥

जी० प्र०—वसतः गुणपर्यायौ अस्मिन्निति वस्तु ज्ञेयपदार्थः– तद्ग्रहणाय जातः-प्रवृत्तः यो भावः-परिणामः क्रियाविशेषः जीवस्य स उपयोगो नाम । स च साकारोऽनाकारश्चेति द्वेधा ज्ञातव्यः ॥ ६७२ ॥ अथ साकारोपयोगोऽष्टधा इत्याह—

स० चं०—वसैं हैं एकीभाव रूप निवसै हैं गुण पर्याय जाविषैं सो वस्तु ज्ञेय पदार्थ जानना। ताके ग्रहणके अर्थि जो जीवका परिणाम विशेष रूप भाव प्रवर्तै सो उपयोग है। बहुरि सो उपयोग साकार अनाकार भेदतैं दोय प्रकार जानना ॥६७२॥ आगैं साकार उपयोग आठ प्रकार है अनाकार उपयोग च्यारि प्रकार है असा कहैं हैं—

णाणं पंचविहंपि य अण्णाणतियं च सागरुवजोगो ।

चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥ ६७३ ॥

ज्ञानं पंचविधमपि च अज्ञानत्रिकं च साकारोपयोगः ।
चतुर्दर्शनमनाकारः सर्वे तल्लक्षणा जीवाः ॥ ६७३ ॥

जी० प्र०—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि कुमतिकुश्रुतविभंगाज्ञानानि च साकारोपयोगः । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि अनाकारोपयोगः । सर्वे जीवाः तज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा एव तल्लक्षणस्याव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवदोषाभावात् ॥ ६७३ ॥

स० चं०—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ए पंच प्रकार ज्ञान, बहुरि कुमति कुश्रुत विभंग ए तीन अज्ञान ए आठौं साकार उपयोग हैं । बहुरि चक्षु अचक्षु अवधि केवल ए च्यार्यो दर्शन अनाकार उपयोग हैं । सो सर्व ही जीव ज्ञान दर्शन रूप उपयोग लक्षणकौं धरैं हैं इस लक्षण विषैं, अतिव्याप्ति अव्याप्ति असंभवी दोष न संभवै हैं जहां लक्ष्य विषै वा अलक्ष्य विषैं लक्षण पाइए तहां अतिव्याप्ति दोष है जैसैं जीवका लक्षण अमूर्तीक कहिए तौ अमूर्तीकपना जीव विषैं भी है अर धर्मादिक विषैं भी है । बहुरि जहां लक्षणका एक देशविषैं लक्षण पाइए तहां अव्याप्ति दोष है जैसैं जीवका लक्षण रागादिक कहिए तौ रागादिक संसारी विषैं तौ संभवै परि सिद्ध जीवनिविषैं संभवै नाहीं बहुरि जो लक्ष्यतैं विरोधी लक्षण होइ सो असंभवी कहिए जैसैं जीवका लक्षण जड़त्व कहिए सो संभवै ही नाहीं ऐसैं त्रिदोष रहित उपयोग ही जीवका लक्षण जानना ॥ ६७३ ॥

मदिसुदओहिमणेहिंय सगसगविसये विसेसविण्णाणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो दु सायारो ॥ ६७४ ॥

मतिश्रुतावधिमनोभिश्च स्वकस्वकविषये विशेषविज्ञानं ।
अंतर्मुहूर्तकाल उपयोगः स तु साकारः ॥ ६७४ ॥

जी० प्र०—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानैः स्वस्वविषये विशेषविज्ञानं अंतर्मुहूर्तकालं अर्थग्रहणव्यापारलक्षणं उपयोगः, स तु साकारोपयोगो नाम ६७४

स० चं०—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञाननिकरि अपने अपने विषय विषैं जो विशेष ज्ञान होइ अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण पदार्थका ग्रहण रूप लक्षण धरैं जो उपयोग होइ सो साकार उपयोग है। इहां वस्तुका ग्रहण रूप जो चैतन्यका परिणमन ताका नाम उपयोग है। मुख्यपनै उपयोग है सो छद्मस्थकैं एक वस्तुका ग्रहण रूप चैतन्यका परिणमन अंतर्मुहूर्त मात्र ही रहै है तातै अंतर्मुहूर्त ही कह्या है ॥ ६७४ ॥

इंदियमणोहिणा वा अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो ॥ ६७५ ॥

इंद्रियमनोऽवधिना वा अर्थे अविशेष्य यद्ग्रहणं ।
अंतर्मुहूर्तकालः उपयोगः स अनाकारः ॥ ६७५ ॥

जी० प्र०—चक्षुर्दर्शनेन वा शेषेंद्रियैर्मनसा च इत्यचक्षुर्दर्शनेन वा अवधिदर्शनेन वा यज्जीवाद्यर्थान् अविशेषित्वा निर्विकल्पेन ग्रहणं सोंतर्मुहूर्तकालः अनाकारोपयोगो नाम ॥ ६७५ ॥ अथ ज्ञानोपयोगिनां संख्यामाह—

स० चं०—नेत्र इंद्रियरूप चक्षुदर्शन वा अवशेष इंद्रिय अर मनरूप अचक्षु दर्शन वा अवधि दर्शन इनकरि जो जीवादि पदार्थनिका विशेष न करिकैं निर्विकल्पपनैं ग्रहण होइ सो अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण सामान्य अर्थका ग्रहण रूप निराकार उपयोग है। भावार्थ—वस्तु सामान्य विशेषात्मक है तहां सामान्यका ग्रहणकौं निराकार उपयोग कहिए विशेषका ग्रहणकौं साकार उपयोग कहिए जातैं सामान्यविषै वस्तुका आकार प्रतिभासै नाहीं विशेष विषैं आकार प्रतिभासै है ॥ ६७५ ॥ आगैं इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

णाणुवजोगजुदाणं परिमाणं णाणमग्गणं व हवे ।
दंसणुवजोगियाणं दंसणमग्गण व उत्तकमो ॥ ६७६ ॥

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्गणावद्भवेत् ।
दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्गणावदुक्तक्रमः ॥ ६७६ ॥

जी० प्र०—ज्ञानोपयोगिप्रमाणं ज्ञानमार्गणावत् । दर्शनोपयोगिप्रमाणं दर्शनमार्गणावत् भवेत् तद्यथा—कुमतिज्ञानिनः कुश्रुतज्ञानिनश्च किंचि-
दूनसंसारिराशिः १३– विभंगज्ञानिनः = ॰ । ४६५ = ॰ । मतिज्ञानिनः प ॰ श्रुतज्ञानिनः प ॰ अवधिज्ञानिनः प ॰ मनःपर्ययज्ञानिनः ॰ केवलज्ञानिनः ॰ ३

तिर्यग्विभंगज्ञानिनः – ६ प ॰ मनुष्यविभंगज्ञानिनः ॰ नरकविभंगज्ञानिनः – २ – देवविभंगज्ञानिनः = ॰ । ४ । ६५ = ॰ । शक्तिचक्षुर्दर्शनिनः प्र–
त्रि । ति । च । पं । ४ । फ = । इ च । पं । २ । इति त्रैराशिकलब्धमात्राः- = २ = व्यक्तिचक्षुर्दर्शनिनः- प्र – ४ । फ = इ २ इति त्रैराशिक-
लब्धमात्राः = २ – अचक्षुर्दर्शनिनः १३– अवधिदर्शनिनः प ॰ केवलिदर्शनिनः सि ३ ॥ ६७६ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु उपयोगमार्गणा-
प्ररूपणा नाम विंशोऽधिकारः ॥ २० ॥

स० चं०—ज्ञानोपयोगी जीवनिका परिमाण ज्ञानमार्गणावत् है । बहुरि दर्शनोपयोगी जीवनिका परिमाण दर्शनमार्गणावत् है सो कुमतिज्ञानी कुश्रुतज्ञानी विभंगज्ञानी मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी

केवल ज्ञानी बहुरि तिर्यंच विभंग ज्ञानी मनुष्य विभंग ज्ञानी नारक विभंग ज्ञानी इनिका प्रमाण जैसें ज्ञानमार्गणा विषैं कह्या है तैसैं ही ज्ञानोपयोग विषैं प्रमाण जानना । किछू विशेष नाहीं । बहुरि शक्तिगत चक्षुदर्शनी व्यक्तगत चक्षुर्दर्शनी अचक्षु दर्शनी अवधि दर्शनी केवल दर्शनी इनिका प्रमाण जैसें दर्शन मार्गणाविषैं कह्या है तैसैं इहां निराकार उपयोग विषै प्रमाण जानना ॥ किछू विशेष नाहीं ॥ ६७६ ॥

इति आचार्य श्री नेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंच संग्रह ग्रन्थकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीसप्ररूपणा तिनविषैं उपयोगमार्गणा प्ररूपणा नामा वीसवां अधिकार सपूर्ण भया ॥ २० ॥

जी० प्र०—

नमिर्नमत्सुराधीशोऽनंतज्ञानादिवैभवः ।
हतघातिव्रजो जीयाद्याभः शाश्वतं पदं ॥

अथोत्तरमविधेयं ज्ञापयति—

स० चं०—

विभव अमित ज्ञानादि जुत सुरपति नुत नमिनाथ ।
जय मम ध्रुवपद देहु जिहि हत्यो घातिया साथ ॥ २१ ॥

आगैं वीस प्ररूपणाका मूल अर्थ कहि अब उत्तर अर्थकौं कहैं हैं—

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु पत्तेयं ॥ ६७७ ॥

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणोपयोगौ ।
योग्याः प्ररूपितव्या ओघादेशयोः प्रत्येकं ॥ ६७७ ॥

जी० प्र०—उक्तविंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्रत्येकं गुणस्थानानि जीवसमासाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाः, मार्गणाः उपयोगाश्च यथायोग्यं प्ररूपयितव्याः ॥ ६७७ ॥ तद्यथा—

स० चं०—कहीं जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं गुणस्थान अर मार्गणास्थान इनविषै गुणस्थान अर जीव समास अर पर्याप्ति अर प्राण अर संज्ञा अर चौदह मार्गणा अर उपयोग ए वीस प्ररूपणा जैसैं संभवै तैसै निरूपण करनी ॥ ६७७ ॥ सोई कहैं है—

चउ पण चोद्दस चउरो णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥ ६७८ ॥

चत्वारि पंच चतुर्दश चत्वारि निरयादिषु चतुर्दश तु पंचाक्षे ।
त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यात्वं गुणस्थानं ॥ ६७८ ॥

जी० प्र०—नारकादिगतिषु क्रमेण गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि पंच चतुर्दश चत्वारि भवंति । इंद्रियमार्गणायां पंचेंद्रिये तु पुनः कायमार्गणायां त्रसकाये च, चतुर्दश शेषेंद्रियकायेषु एकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं । जीवसमासास्तु नरगतौ संज्ञिपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तौ द्वौ । तिर्यग्गतौ चतुर्दश । मनुष्यगतौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । देवगतौ नरकगतिवद्द्वौ । इंद्रियमार्गणायां एकेंद्रिये बादरसूक्ष्मैकेंद्रियौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । द्वींद्रिये त्रींद्रिये चतुरिंद्रिये च तत्तत्पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ द्वौ । पंचेंद्रिये संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । कायमार्गणायां पृथ्व्यादिपंचसु एकेंद्रियवत् चत्वारः चत्वारः, त्रसे शेषा दश ॥ ६७८ ॥

स. चं.—गति मार्गणाविषैं क्रमतै गुणस्थान मिथ्यादृष्ट्यादि नरकविषैं च्यारि, तिर्यंचविषैं पांच, मनुष्य विषैं चौदह, देवविषैं च्यारि जानने । बहुरि इंद्रिय मार्गणाविषैं अर काय मार्गणाविषैं पंचेंद्रियमैं अर त्रसकायमैं तौ चौदह गुणस्थान हैं अर अवशेष इंद्रिय अर कायमैं एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान है । बहुरि जीव समास नरकगति अर देवगति विषैं सैनी पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त ए दोय हैं अर तिर्यंचविषैं सर्व चौदह ही है । मनुष्यविषैं सैनी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय है । इहां नरक देव गतिविषैं लब्धि अपर्याप्तक नाहीं तातैं निर्वृत्ति अपर्याप्त कह्या । मनुष्यविषैं निर्वृत्ति अ-

पर्याप्त लब्धि अपर्याप्त दोऊ पाइए तातैं सामान्यपनैं अपर्याप्त ही कह्या है । बहुरि इंद्रिय मार्गणाविषै एकेंद्रियमैं वादर सूक्ष्म एकेंद्री सो पर्याप्त अर अपर्याप्त ऐसै च्यारि जीव समास हैं। वेंद्री तेईंद्री चौइंद्रीमैं अपना अपना पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोय जीव समास हैं। पचेंद्रियमें सैनी असैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए च्यारि जीव समास हैं। बहुरि कायमार्गणाविषै पृथ्वी आदि पंच स्थावरनिमें एकेंद्रियवत् च्यारि च्यारि जीव समास हैं। त्रसविषै अवशेष दश जीव समास हैं ॥ ६७८ ॥

मज्झिमचउमणवयणे सण्णिप्पहुदिं दु जाव खीणोत्ति।
सेसाणं जोगित्ति य अणुभयवयणं तु वियलादो ॥ ६७९ ॥

मध्यमचतुर्मनवचनयोः संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् क्षीण इति।
शेषाणां योगीति च अनुभयवचनं तु विकलतः ॥ ६७९ ॥

जी॰ प्र॰—मध्यमेषु असत्योभयमनोवचनयोगेषु चतुर्षु संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायांतानि द्वादश। तु-पुनः सत्यानुभयमनोयोगयोः सत्यवचनयोगे च संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगांतानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवंति। जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः। अनुभयवचनयोगे तु गुणस्थानानि विकलत्रयमिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश। जीवसमासाः द्वित्रिचतुरिंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ताः पंच ॥ ६७९ ॥

स॰ चं—मध्यम जो असत्य अर उभय मन वा वचन इनि च्यारि योगनिविषैं सैनी मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान हैं। बहुरि सत्य अर अनुभय मनो योगविषैं अर सत्य बचन योगविषैं सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थान हैं। बहुरि इनि सबनिविषैं जीव समास एक सैनी पर्याप्त है। बहुरि अ भय बचन योगविषैं विकलत्रय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ तेरह गुणस्थान हैं बहुरि वेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री सैनी पचेंद्री असैनी पंचेंद्री इनका पर्याप्तरूप पांच जीव समास हैं ॥ ६७९ ॥

ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगोत्ति ।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ६८० ॥

औरालं पर्याप्ते स्थावरकायादि यावत् योगीति ।
तन्मिश्रमपर्याप्ते चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ॥ ६८० ॥

जी० प्र०—औदारिकाययोगः एकेंद्रियस्थावरकायपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतत्रयोदशगुणस्थानेषु भवति । तन्मिश्रयोगः अपर्याप्तचतुर्गुणस्थाने ष्वेव नियमेन ॥ ६८० ॥ तेषु केषु ? इति चेदाह—

स० चं—औदारिककाय योग, एकेंद्री स्थावर पर्याप्त मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थाननिविषैं है । बहुरि औदारिक मिश्रकाययोग अपर्याप्त च्यारि गुणस्थाननिविषैं ही हैं नियमकरि ॥६८०॥ किनविषैं ? सो कहैं हैं—

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णरतिरियेवि य दोण्णवि होंतित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ६८१ ॥

मिथ्यात्वे सासनसम्यक्त्वे पुंवेदायते कपाटयोगिनि ।
नरतिरश्चोरपि च द्वावपि भवंतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६८१ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टौ सासादने पुंवेदोदयासंयते कपाटसमुद्घातसयोगे चैतेषु अपर्याप्तचतुर्गुणस्थानेषु स औदारिकमिश्रयोगः स्यादित्यर्थः तौ योगौ द्वावपि नरतिरश्चोरेवेति सर्वज्ञैरुक्तं । जीवसमासाः औदारिकयोगे पर्याप्ताः सप्त । तेन मिश्रयोगे अपर्याप्ताः सप्त । सयोगस्य चैकः एवमष्टौ ॥ ६८१ ॥

स० च—मिथ्यादृष्टी सासादन पुरुष वेदका उदयकरि संयुक्त असंयत, कपाट समुद्घात सहित सयोगी इनि अपर्याप्तरूप च्यारि गुणस्थाननिविषैं सो औदारिक मिश्रयोग पाइए है । बहुरि औदारिक वा औदारिक मिश्र ए दोऊ योग मनुष्य अर तिर्यंचनिहीकैं हैं ऐसा जिनदेवने कह्या है । बहुरि औदारिकविषैं तौ पर्याप्त स[illegible] जीवसमास

हैं अर औदारिक मिश्रविषैं अपर्याप्त सात जीवसमास अर सयोगकैं एक पर्याप्त जीव समास असे आठ जीवसमास हैं ॥ ६८१ ॥

वेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुरणिरयचउट्ठाणे मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु ॥६८२॥

वैगूर्वं पर्याप्ते इतरे खलु भवति तस्य मिश्रं तु ।
सुरनिरयचतुःस्थाने मिश्रे नहि मिश्रयोगो हि ॥ ६८२ ॥

जी० प्र०---वैक्रियिककाययोगः पर्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु भवति खलु स्फुटं । तु--पुनः तन्मिश्रयोगः मिश्रगुणस्थाने तु न हीति कारणात् देवनारकमिथ्यादृष्टिमासादनासंयतेष्वेव भवति । जीवसमासः तयोः क्रमेण संज्ञिपर्याप्तः तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तः एकैकः ॥ ६८२ ॥

स० चं०--वैक्रियिक योग पर्याप्त देव नारकनिक मिथ्यादृष्टीतैं लगाय च्यारि गुणस्थाननिविषैं हैं। बहुरि वैक्रियिक मिश्रयोग मिश्रगुणस्थानविषैं नाही तातैं देवनारकी संबंधी मिथ्यादृष्टी सासादन असंयत इनही विषैं है। बहुरि जीव समास वैक्रियिकविषैं एक सैनी पर्याप्त है अर वैक्रियिक मिश्रविषैं एक सैनी निवृत्ति अपर्याप्त है ॥६८२॥

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु ।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो ॥ ६८३ ॥

आहारः पर्याप्ते इतरे खलु भवति तस्य मिश्रस्तु ।
अंतर्मुहूर्तकाले षष्ठगुणे भवति आहारः ॥ ६८३ ॥

जी० प्र०---आहारककाययोगः संज्ञिपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तकाले एव भवति। तन्मिश्रयोगः इतरस्मिन् संज्ञ्यपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने खलु जघन्योत्कृष्टेन तावत्काले एव भवति। तेन तयोर्योगयोस्तदेव गुणस्थानं जीवसमासः स एव एकैकः ॥ ६८३ ॥

स० चं—आहारक योग सैनी पर्याप्तक छट्ठा गुणस्थानविषैं जघन्यपनै वा उत्कृष्टपनैं अंतर्मुहूर्त कालविषै ही है। बहुरि आहारक मिश्रयोग है सो इतर जो संज्ञी अपर्याप्तरूप छट्ठा गुणस्थानविषैं जघन्यपनैं वा उत्कृष्टपनैं अंतर्मुहूर्त कालविषैं ही हो है तातैं तिन दोऊनिकैं गुणस्थान एक प्रमत्त अर जीवसमास सोई एक एक जानना॥ ६८३॥

ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगादिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ॥ ६८४ ॥

औरालिकमिश्रो वा चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्मणं ।
चतुर्गतिविग्रहकाले योगिनश्च प्रतरलोकपूरणके ॥ ६८४ ॥

जी० प्र०—औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणकाययोगः स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोकपूरणकाले च भवति तेन तत्र गुणस्थानानि जीवसमासाश्च तद्वत् चत्वारि अष्टौ भवंति ॥ ६८४ ॥

स० चं—कार्माणयोग औदारिक मिश्रवत् च्यारि गुणस्थाननिविषै हैं सो कार्माणयोग च्यार्यो गति संबंधी विग्रहगतिविषैं वा सयोगीकैं प्रतरलोक पूरण कालविषैं पाइए है तातैं गुणस्थान च्यारि अर जीवसमास आठ औदारिक मिश्रवत् इहां जानने ॥ ६८४ ॥

थावरकायप्पहुदी संढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्स य पढमो भागोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८५॥

स्थावरकायप्रभृतिः षंढः शेषा असंज्ञ्यादयश्च ।
आनिवृत्तेश्च प्रथमो भागः इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६८५ ॥

जी० प्र०—वेदमार्गणायां षंढवेदः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागांतं भवति तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासा-

चतुर्दश शेषस्त्रीपुंवेदौ संज्ञ्यसंज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्वस्वसवेदभागपर्यंतं भवतः तेन तयोर्गुणस्थानानि नव नव । जीवसमासाः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः इति जिनैरुक्तं ॥ ६८५ ॥

स० चं–वेदमार्गणाविषैं नपुंसकवेद है सो स्थावरकाय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ अनिवृत्तिकरणका पहिला सवेद भाग पर्यंत हो है तातैं गुणस्थान नव जीवसमास सर्व चौदह हैं। बहुरि शेष स्त्रीवेद अर पुरुषवेद सैनी असैनी पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ अनिवृत्ति करणका अपना अपना सवेद भागपर्यंत है तातैं गुणस्थान नव जीवसमास सैनी असैनी पर्याप्त वा अपर्याप्तरूप च्यारि जिन देवनिकरि कहे हैं ॥ ६८५ ॥

थावरकायप्पहुदी अणियट्टीबितिचउत्थभागोत्ति ।
कोहतियं लोहो पुण सुहुमसरागोत्ति विण्णेयो ॥ ६८६ ॥

स्थावरकायप्रभृति अनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्थभाग इति ।
क्रोधत्रिकं लोभः पुनः सूक्ष्मसराग इति विज्ञेयः ॥ ६८६ ॥

जी० प्र०—कषायमार्गणायां क्रोधमानमायाः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणद्वित्रिचतुर्भागांतं । लोभः पुनः सूक्ष्मसांपरायांतं । तेन क्रोधत्रये गुणस्थानानि नव लोभे दश ज्ञेयानि । जीवसमासाः सर्वत्र चतुर्दशैव ॥ ६८६ ॥

स० चं–कषाय मार्गणाविषैं स्थावरकाय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ क्रोध मान माया तौ क्रमतैं अनिवृत्ति करणका दूसरा तीसरा चौथा भागपर्यंत हैं अर लोभ सूक्ष्मसांपराय पर्यंत है तातैं क्रोध मान मायाविषैं गुणस्थान नव लोभविषैं दश अर जीवसमास सर्वत्र चौदह जानने ॥ ६८६ ॥

थावरकायप्पहुदी मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु ।
सण्णीपुण्णप्पहुदी सासणसम्मोत्ति णायव्वो ॥ ६८७ ॥

स्थावरकायप्रभृति मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु ।
संज्ञिपूर्णप्रभृति सासनसम्यगिति ज्ञातव्यः ॥ ६८७ ॥

जी० प्र०—ज्ञानमार्गणायां मतिश्रुताज्ञानद्वयं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनांतं ज्ञातव्यं तेन तत्र गुणस्थाने द्वे । जीवसमासाश्चतुर्दश । तु-पुनः विभंगज्ञानं संज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनांतं तत्र गुणस्थाने द्वे । जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः ॥ ६८७ ॥

स० चं—ज्ञानमार्गणाविषैं कुमति कुश्रुत अज्ञान दोऊ स्थावरकाय मिथ्यादृष्टीनिं लगाइ सासादनपर्यंत है तातैं तहां गुणस्थान दोय अर जीवसमास चौदह हैं। बहुरि विभंगज्ञान संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी आदि सासादन पर्यंत जानना तातैं गुणस्थान दोय अर जीवसमास एक सैनी पर्याप्त ही है ॥ ६८७ ॥

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो ।
खीणकसायं जाव दु केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥ ६८८ ॥

सद्ज्ञानत्रिकमविरतसम्यगादि षष्ठकादिर्मनःपर्ययः ।
क्षीणकषायं यावत्तु केवलज्ञानं जिने सिद्धे ॥ ६८८ ॥

जी० प्र०—मत्यादिसम्यग्ज्ञानत्रयं असंयतादिक्षीणषायांतं तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । मनःपर्ययज्ञानं षष्ठादिक्षीणकषायांतं तेन तत्र गुणस्थानानि सप्त जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः । केवलज्ञानं सयोगायोगयोः सिद्धे च तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तसयोगापर्याप्तौ द्वौ ॥ ६८८ ॥

स० चं—मति श्रुत अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत हैं तातैं गुणस्थान नव अर जीवसमास सैनी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय जानने। बहुरि मनः पर्ययज्ञान छट्ठातैं क्षीणकषाय पर्यंत है तातैं गुणस्थान सात अर जीव समास एक सैनी पर्याप्त ही है। मनः पर्ययज्ञानीकैं आहारक ऋद्धि न होइ तातैं आहारक मिश्र अपेक्षा भी अपर्याप्त पना न संभवै है। बहुरि केवलज्ञान सयोगी अयोगी अर सिद्धविषैं हैं तातैं गुणस्थान दोय जीवसमास सैनी पर्याप्त अर सयोगीकी अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय जानने ॥ ६८८ ॥

अयदोत्ति हु अविरमणं देसे देसो पमत्तइदरे य।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलोत्ति ॥ ६८९ ॥
सुहुमो सुहुमकसाये संते खीणे जिणे जहक्खादं।
संजममग्गणभेदा सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ६९० ॥ जुम्मं।

अयत इति अविरमणं देशे देशः प्रमत्तेतरस्मिन् च ।
परिहारः सामायिकश्छेदः षष्ठादिः स्थूल इति ॥ ६८९ ॥
सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये शांते क्षीणे जिने यथाख्यातं ।
संयममार्गणाभेदाः सिद्धे न सतीति निर्दिष्टं ॥ ६९० ॥

जी० प्र०—संयममार्गणायां अविरमणं मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतचतुर्गुणस्थानेषु तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । देशसंयमः देशसंयतगुणस्थाने तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एव । सामायिकछेदोपस्थापनौ प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणांतचतुर्गुणस्थानेषु । तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्ताहारकपर्याप्तौ द्वौ । परिहारविशुद्धिसंयमः प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव । तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एव तेन सह आहारकर्द्धेरेकत्वासंभवात् । सूक्ष्मसांपरायसंयमः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्तः । यथाख्यातचारित्रं उपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानेषु तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तसमुद्घातकेवल्यपर्याप्तौ द्वौ । संयममार्गणाभेदाः सिद्धे न संतीति परमागमे निर्दिष्टं ॥ ६८९–६९० ॥

स० चं०—संयम मार्गणाविषैं असंयम है सो मिथ्यादृष्ट्यादिक असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं है। तहां जीव समास चौदह हैं। बहुरि देश संयम एक संयत गुणस्थानविषैं ही है तहां जीव समास एक सैनी पर्याप्त है। बहुरि सामायिक छेदोपस्थापना संयम प्रमत्तादिक अनिवृत्ति करण पर्यंत च्यारि गुण स्थानानविषैं है तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त अर आहारक मिश्र अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय है। बहुरि परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त अप्रमत्त दोय गुण स्थानानिविषैं ही है तहां जीव समास एक सैनी पर्याप्त हैं जातैं इस सहित आहारक होइ नाहीं।

बहुरि सूक्ष्मसांपराय संयम सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानविषैं ही है तहां जीव समास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि यथाख्यात संयम उपशांत कषायादिक च्यारि गुणस्थाननिविषैं हैं तहां जीव समास सैनी पर्याप्त अर समुद्घात केवली की अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय हैं । बहुरि सिद्ध विषैं संयम नाही है जातैं चारित्र है सो मोक्षका मार्ग हैं मोक्षरूप नाहीं है ऐसे परमागम विषैं कह्या है ॥ ६८९ ॥ ६९० ॥

चउरक्खथावरविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहोत्ति ।
चक्खुअचक्खूओही जिणसिद्धे केवलं होदि ॥ ६९१ ॥

चतुरक्षस्थावराविरतसम्यग्दृष्टिस्तु क्षीणमोह इति ।
चक्षुरचक्षुरवधिः जिनसिद्धे केवलं भवति ॥ ६९१ ॥

जी० प्र०—दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शनं चतुरिंद्रियमिथ्यादृष्ट्यादि क्षीणकषायांतं। तत्र जीवसमासाः चतुरिंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः षट्। अचक्षुर्दर्शनं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । अवधिदर्शनं असंतादिक्षीणकषायांतं तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ । केवलदर्शनं सयोगायोगगुणस्थानयोः तत्र जीवसमासौ केवलज्ञानोक्तौ द्वौ । सिद्धेऽपि केवलदर्शनं भवति ।

स० चं०—दर्शन मार्गणा विषैं चक्षुदर्शन है सो चौइंद्री मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुण स्थानविषैं है तहां जीवसमास चौइंद्री सैनी पंचेद्री असैनी पंचेंद्री पर्याप्त वा अपर्याप्त ए छह हैं। बहुरि अचक्षु दर्शन स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थानविषैं है तहां जीवसमास चौदह है। बहुरि अवधि दर्शन असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत नव गुणस्थानविषैं है। तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त दोय हैं। बहुरि केवलदर्शन सयोग अयोग दोय गुणस्थानविषैं है । तहां जीवसमास केवलज्ञानवत् दोय हैं अर सिद्धविषैं भी केवल दर्शन है ॥ ६९१ ॥

थावरकायप्पहुदी अविरदसम्मोत्ति असुहतियलेस्सा ।

सण्णीदो अपमत्तो जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥ ६९२ ॥

स्थावरकायप्रभृति अविरतसम्यगिति अशुभत्रिकलेश्याः ।
संज्ञितो ऽप्रमत्तो यावत्तु शुभास्तिस्रो लेश्याः ॥६९२॥

जी० प्र०—लेश्यामार्गणायां अशुभलेश्यात्रयं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतं तत्र जीवसमासाः चतुर्दश । तेजःपद्मलेश्ये संज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तांतं तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ ॥ ६९२ ॥

स० चं०—लेश्या मार्गणाविषैं कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्याएं हैं ते स्थावर मिथ्यादृष्टी आदि असंयत पर्यंत है तहां जीवसमास चौदह हैं। बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि अप्रमत्त पर्यंत हैं तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं ॥ ६९२ ॥

णवरि य सुक्का लेस्सा सजोगिचरिमोत्ति होदि णियमेण ।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ६९३ ॥

नवरि च शुक्ला लेश्या सयोगिचरम इति भवति नियमेन ।
गतयोगेऽपि च सिद्धे लेश्या नास्तीति निर्दिष्टं ॥ ६९३ ॥

जी० प्र०—शुक्ललेश्यायां विशेषः । स कः ? सा लेश्या संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं भवति तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वावेव नियमेन केवल्यपर्याप्तस्य अपर्याप्ते एवांतर्भावात् । अयोगिजिने सिद्धे च लेश्या न संतीति परमागमे प्रतिपादितं ॥ ६९३ ॥

स० चं०—शुक्ललेश्याविषैं विशेष है सो कहां ? शुक्ललेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत है तहां जीव समास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय है नियमकरि जातैं केवल समुद्धातका अपर्याप्तपना इहां अपर्याप्त जीव समासविषैं गर्भित है। बहुरि अयोगी जिनविषैं वा सिद्धविषैं लेश्या नाहीं ऐसा परमागम विषैं कह्या है ॥ ६९३ ॥

थावरकायप्पहुदी अजोगिचरिमोत्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिठाणे अभव्वसिद्धा हवंतित्ति ॥ ६९४ ॥

स्थावरकायप्रभृति अयोगिचरम इति भवंति भवसिद्धाः ।
मिथ्यादृष्टिस्थाने अभव्यसिद्धा भवंतीति ॥ ६९४ ॥

जी० प्र०—भव्यमार्गणायां भव्यसिद्धाः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्ययोगातं भवंति । अभव्यसिद्धाः मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव भवंति इत्युभयत्र जीवसमासाश्चतुर्दश ॥ ६९४ ॥

स० चं०—भव्य मार्गणाविषैं भव्य सिद्ध हैं ते स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि अयोगी पर्यंत हैं अर अभव्य सिद्ध एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान विषै ही हैं इनि दोऊनिविषैं जीवसमास चौदह चौदह हैं ॥ ६९४ ॥

मिच्छो सासणमिस्सो सगसगठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तोत्ति ॥ ६९५ ॥

मिथ्यात्वं सासनमिश्रौ स्वकस्वकस्थ ने भवति अयतात् ।
प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकमप्रमत्त इति ॥ ६९५ ॥

जी० प्र०—सम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यादृष्टिः सासादनः मिश्रश्च स्वस्वगुणस्थाने एव भवति । तत्र मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश । सासादने बादरैकद्वित्रिचतुरिंद्रियसंज्ञ्यपर्याप्तसंज्ञिपर्याप्ताः सप्त । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकस्य सासादनत्वप्राप्तिपक्षे च संज्ञिपर्याप्तदेवापर्याप्ताविति द्वौ । मिश्रे संज्ञिपर्याप्तः । प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वे द्वे असंयताद्यप्रमत्तांतं स्तः । तत्र जीवसमासाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वे मरणाभावात् संज्ञिपर्याप्त एवैकः । वेदकसम्यक्त्वे संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । घर्मानारकस्य भवनत्रयवर्जितदेवस्य भोगभूमिनरतिरश्चोश्च अपर्याप्तत्वेऽपि तत्संभवात् ॥ ६९५ ॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमाह—

स० चं०—सम्यक्त्व मार्गणाविषैं मिथ्यादृष्टी सासादन मिश्र ए तीन तौ अपने अपने एक एक गुणस्थान-

विषैं है। बहुरि जीवसमास मिथ्यादृष्टीविषैं तौ चौदह हैं। सासादनविषैं बादर एकेंद्री वेंद्री तेंद्री चौइंद्री सेनी असैनी पर्याप्त ए सात पाइए। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वतैं पड़ि जो सासादनकौं प्राप्त भया होइ ताकी अपेक्षा तहां सैनी पर्याप्त अर देव अपर्याप्त ए दोय ही जीव समास हैं। मिश्रविषैं सैनी पर्याप्त एकही जीवसमास है। बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदक सम्यक्त्व ए दोऊ असंयतादि अप्रमत्त पर्यंत है। तहां जीव समास प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषैं तौ मरण नाहीं है तातैं एक संज्ञी पर्याप्त ही है अर वेदक सम्यक्त्वविषैं सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं जातैं धर्म्म नरक भवनत्रिक विना देव, भोग भूमिया मनुष्य वा तिर्यंच इनिकै अपर्याप्त विषैं भी वेदक सम्यक्त्व संभवै है॥ ६९५॥ द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको कहैं है—

बिदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहोत्ति।
खइगं सम्मं च तहा सिद्धोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥ ६९६॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यगादिशांतमोह इति।
क्षायिकं सम्यक्त्वं च तथा सिद्ध इति जिनैर्निर्दिष्टं॥ ६९६॥

जी० प्र०—द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं असंयताद्युपशांतकषायांतं भवति। अप्रमत्ते उत्पाद्य उपरि उपशांतकषायांतं गत्वा अधोवतरणे असंयतांतमपि तत्संभवात्। तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तदेवासंयतापर्याप्तौ द्वौ। क्षायिकसम्यक्त्वं असंयताद्ययोगांतं। तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तः बद्धायुष्कापेक्षया घर्मानारकभोगभूमिनरतिर्यग्वैमानिकापर्याप्तश्चेति द्वौ। सिद्धेऽपि क्षायिकसम्यक्त्वं स्यादिति जिनैरुक्तं॥ ६९६॥

स० चं०—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असयतादि उपशांत कषायपर्यंत है जातैं इस द्वितियोपशम सम्यक्त्वकौं अप्रमत्तविषैं उपजाय ऊपरि उपशांत कषाय पर्यंत जाइ नीचे पड़ै तहां असंयत पर्यंत द्वितियोपशम सम्यक्त्व सहित आवै तातैं असंयत आदिविषैं भी कह्या। तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त अर देव असंयत पर्याप्त ए दोय पाइए हैं जातै द्वितीयोपशम सम्यक्त्वविषैं मरण है सो मरि देव ही हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व असंयतादिक अयोगी पर्यंत

है तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त हैं अर जाकैं आयु बंध हूवा होइ ताके धर्मा नरक भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंच वैमानिक देव इनका अपर्याप्त भी है तातैं दोय जीव समास है। बहुरि सिद्धविषैं भी क्षायिक सम्यक्त्व है ऐसा जिन देवने कह्या है ॥ ६९६ ॥

सण्णी सण्णिप्पहुदी खीणकसाओत्ति होदि णियमेण ।
थावरकायप्पहुदी असण्णित्ति हवे असण्णी हु ॥ ६९७ ॥

संज्ञी संज्ञिप्रभृतिः क्षीणकषाय इति भवति नियमेन ।
स्थावरकायप्रभृतिः असंज्ञीति भवेदसंज्ञी हि ॥ ६९७ ॥

जी० प्र०—संज्ञिमार्गणायां संज्ञिजीवः संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं भवति तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । तु—पुनः असंज्ञिजीवः स्थावरकायाद्यसंज्ञ्यंतं मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव स्यान्नियमेन तत्र जीवसमासा द्वादश संज्ञिनो द्वयाभावात् ॥ ६९७ ॥

स० चं०—संज्ञी मार्गणाविषै संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत है। तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय हैं। बहुरि असंज्ञी जीव स्थावरकायादिक असैनी पंचेंद्री पर्यंत मिथ्यादृष्टि गुणस्थानविषैं ही है नियमकरि । तहां जीवसमास सैनी संबंधी दोय बिना बारह जानने ॥ ६९७ ॥

थावरकायप्पहुदी सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी ।
कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धेवि णायव्वो ॥ ६९८ ॥

स्थावरकायप्रभृतिः सयोगिचरम इति भवति आहारी ।
कार्मण अनाहारी अयोगिसिद्धेऽपि ज्ञातव्यः ॥ ६९८ ॥

जी० प्र०—आहारमार्गणायां स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं आहारी भवति । तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतस-

योगानां कार्मणयोगावसरे अयोगिसिद्धयोश्च अनाहारो ज्ञातव्यः । तत्र जीवसमासा अपर्याप्ताः सप्त । अयोगस्य चैकः ॥ ६९८ ॥ अथ गुणस्थानेषु जीवसमासानाह—

स० चं—आहार मार्गणाविषैं स्थावर काय मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत आहारी हैं तहां जीवसमास चौदह हैं बहुरि मिथ्यादृष्टी सासादन असंयत सयोगी इनिकैं कार्माण अवस्थाविषैं अर अयोगी जिन अर सिद्ध भगवान इनि विषैं अनाहार है। तहां जीवसमास अपर्याप्त सात अयोगीकी अपेक्षा एक पर्याप्त ए आठ हैं ॥६९८॥ आगैं गुणस्थाननिविषैं जीव समासनिकौं कहैं हैं—

मिच्छे चोद्दस जीवा सासणअयदे पमत्तविरदे य।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णीपुण्णो दु खीणोत्ति ॥ ६९९ ॥

मिथ्यात्वे चतुर्दश जीवाः सासानायते प्रमत्तविरते च ।
संज्ञिद्विकं शेषगुणे संज्ञिपूर्णस्तु क्षीण इति ॥ ६९९ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश, सासादने अविरते प्रमत्ते चशब्दात् सयोगे च संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। शेषाष्टगुणस्थानेषु अपित्र-यदात् अयोगे च संज्ञिपर्याप्त एवैकः ॥६९९॥ अथ मार्गणास्थानेषु तान् सूचयति—

स० चं—मिथ्यादृष्टीविषैं जीवसमास चौदह हैं सासादनविषैं अविरतविषैं प्रमत्तविषैं चकारतैं सयोगीविषैं संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय जीवसमास हैं इहां प्रमत्तविषैं आहारक मिश्र अपेक्षा अर सयोगीविषैं केवल समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्तपनां जानना। बहुरि अवशेष आठ गुणस्थाननिविषैं अपिशब्दतैं अयोगीविषैं भी एक संज्ञीपर्याप्त जीव समास हैं ॥ ६९९ ॥ आगैं मार्गणास्थाननिविषैं जीवसमासनिकौं दिखावै हैं—

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसेसु जाण दो दो दु।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ॥ ७०० ॥

तिर्यग्गतौ चतुर्दश भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु ।
मार्गणास्थानस्यैवं ज्ञेयानि समासस्थानानि ॥७००॥

जी० प्र०—तिर्यग्गतौ जीवसमासाश्चतुर्दश भवंति शेषगतिषु संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । तु-पुनः सर्वमार्गणास्थानानां यथायोग्यं प्रागुक्तक्रमेण जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥ ७०० ॥ अथ गुणस्थानेषु पर्याप्तिप्राणानाह—

स० चं०—तिर्यंचगतिविषैं जीवसमास चौदह हैं अवशेष गतिनिविषैं संज्ञीपर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय दोय जीवसमास जानने ऐसैं मार्गणास्थाननिविषैं यथायोग्य पूर्वोक्त अनुक्रमकरि जीवसमास जानने ॥ ७०० ॥ आगैं गुणस्थाननिविषैं पर्याप्ति वा प्राण कहैं हैं—

पज्जत्ती पाणावि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि ।
तहि वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ॥ ७०१ ॥

पर्याप्तयः प्राणा अपि च सुगमा भावेंद्रियं न योगिनि ।
तस्मिन् वागुच्छ्वासायुष्ककायत्रिकद्विकमयोगिन आयुः ॥ ७०१ ॥

जी० प्र०—चतुर्दशगुणस्थानेषु पर्याप्तयः प्राणाश्च पृथक् नोच्यंते सुगमत्वात् । तथाहि—क्षीणकषायपर्यंतं षट्पर्याप्तयः दश प्राणाः । सयोगजिने भावेंद्रियं न, द्रव्येंद्रियापेक्षया षट्पर्याप्तयः वागुच्छ्वासनिश्वासायुः कायप्राणाश्चत्वारि भवंति । शेषेंद्रियमनःप्राणाः षट् संति । तत्रापि वाग्योगे विश्रांते त्रयः । पुनः उच्छ्वासनिश्वासे विश्रांते द्वौ । अयोगे आयुः प्राण एकः प्राक्संचितनोकर्मकर्मसंचयः प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गलन् किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रो द्रव्यार्थिकनयेन अयोगिचरमे निःशयति पर्यायार्थिकनयेन अनंतरसमये एवेति तात्पर्यं ॥ ७०१ ॥ अथ गुणस्थानेषु संज्ञा आह—

स० चं०—चौदह गुणस्थाननिविषैं पर्याप्ति अर प्राण जुदे न कहिए है जातैं सुगम है । तहां क्षीणकषाय पर्यंत तौ छहौ पर्याप्ति दशौ प्राण हैं । बहुरि सयोगी जिनविषैं भावेंद्रिय तौ है नाहीं, द्रव्येंद्रियकी अपेक्षा छह पर्याप्ति हैं । बहुरि सयोगीकैं प्राण च्यारि हैं वचनबल १ सासोस्वास २ आयु ३ कायबल ४ ए च्यारि हैं । अवशेष पंचेंद्रिय अर मन ए छह प्राण नाहीं हैं । तहां ही वचनबलका अभाव होतैं तीन ही प्राण रहैं हैं । उस्वास निश्वासका अभाव होतैं दोय ही

रहैं है। बहुरि अयोगीविषैं एक आयु प्राण हो है तहां पूर्वं संचित भया था जो कर्म नोकर्मका स्कंध सो समय समय प्रति एक एक निषेक गलतैं अवशेष द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समयप्रवद्ध प्रमाण सत्त्व रह्या सो द्रव्यार्थिक नयकरि तौ अयोगीका अंत समयविषैं नष्ट हो है। पर्यायार्थिक नयकरि ताके अनंतर समयविषैं नष्ट हो है। यह तात्पर्य है ॥ ७०१ ॥ आगैं गुणस्थाननिविषैं संज्ञा कहैं हैं—

छट्टोत्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा ।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ ॥ ७०२॥

षष्ठ इति प्रथमसंज्ञा सकार्या शेषाश्च कारणापेक्षाः ।
अपूर्वः प्रथमानिवृत्तिः सूक्ष्म इति क्रमेण शेषाः ॥ ७०२ ॥

जी० प्र:—मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तांतं सकार्याः आहारादिचतस्रः संज्ञा भवंति। षष्ठगुणस्थाने आहारसंज्ञा व्युच्छिन्ना। शेषास्तिस्रः अप्रमत्तादिषु कारणास्तित्वापेक्षया अपूर्वकरणांतं कार्यरहिता भवंति। तत्र भयसंज्ञा व्युच्छिन्ना। अनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागांतं कार्यरहिते मैथुनपरिग्रहसंज्ञे स्तः। तत्र मैथुनसंज्ञा व्युच्छिन्ना। सूक्ष्मसांपराये परिग्रहसंज्ञा व्युच्छिन्ना। उपरि उपशांतादिषु कार्यरहिता अपि संज्ञा न संति कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् ॥ ७०२ ॥

स० चं—मिथ्यादृष्टी आदि अप्रमत्तपर्यंत अपना कार्यसहित ज्यारयो संज्ञा है। तहां छठे गुणस्थानि आहार संज्ञाका विच्छेद हूवा अवशेष तीन संज्ञा अप्रमत्तादिविषैं हैं सो तिनिका निमित्तभूत कर्म पाइए है ताकी अपेक्षा हैं कार्य रहित है सा अपूर्वकरण पर्यंत तीन संज्ञा है तहां भय संज्ञाका विच्छेद भया। अनिवृत्तिकरणका प्रथमसवेदभागं पर्यंत मैथुन परिग्रह दोय संज्ञा हैं तहां मैथुन संज्ञाका विच्छेद भया। सूक्ष्मसांपरायविषैं एक परिग्रह संज्ञा रही। ताका तहां ही विच्छेद भया। ऊपरि उपशांत कषायादिकविषैं कारणका अभावतैं कार्यका भी अभाव है। ताते कार्य रहित भी सर्व संज्ञा नाहीं हैं ॥ ७०२ ॥

मग्गण उवजोगावि य सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो
गदिआदिसु मिच्छादी परूविदे रूविदा होंति ॥ ७०३ ॥

मार्गणा उपयोगा अपि च सुगमाः पूर्वं प्ररूपितत्वात् ।
गत्यादिषु मिथ्यात्वादौ प्ररूपिते रूपिता भवंति ॥ ७०३ ॥

जी० प्र०—गुणस्थानेषु मार्गणा उपयोगाश्च वक्तुं सुगमा इति नोच्यंते पूर्वं प्ररूपितत्वात् । कुत इति चेत् ? मार्गणासु गुणस्थानजीवसमासेषु च-क्तेषु उक्ता भवंति । तथापि मंदबुद्धयनुग्रहार्थमुच्यंते तद्यथा—

नरकादिगतिनामोदयजनिता नारकादिपर्यायाः गतयः । तेन मिथ्यादृष्टौ नारकादयः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । सासादने नारकाः पर्याप्ताः, शेषाः उभये । मिश्रे सर्वे पर्याप्ता एव । असंयते घर्मानारकाः उभये, शेषा नारकाः पर्याप्ता एव । भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिमनुष्याः वैमानिकाश्च उभये । कर्मभूमितिर्यंचो भवनत्रयदेवाश्च पर्याप्ता एव । देशसंयते कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याः पर्याप्ताः । प्रमत्ते मनुष्याः पर्याप्ताः, साहारकर्द्धयस्तु उभये । अप्रमत्तादि-क्षीणकषायांताः पर्याप्ताः । सयोगिनि उभये । अयोगिनि पर्याप्ता एव ।

एकेंद्रियादिजातिनामोदयजनितजीवपर्यायाः इंद्रियं, तन्मार्गणाः एकेंद्रियादयः पंच । ताः मिथ्यादृष्टौ पर्याप्तापर्याप्ताः पंच । सासादने अपर्याप्ताः पंच पर्याप्तपंचेंद्रियश्च । मिश्रे पर्याप्तपंचेंद्रिय एव । असंयते स उभयः । देशसंयते पर्याप्तः । प्रमत्ते पर्याप्तः । साहारकर्द्धिस्तूभयः । अप्रमत्तादिक्षीणकषायांतेषु पर्याप्त एव । सयोगे पर्याप्तः । समुद्घाते तूभयः । अयोगे पर्याप्त एव ।

पृथ्वीकायादिविशिष्टैकेंद्रियजातिस्थावरनामोदयत्रसनामोदयजाः षड्जीवपर्यायाः कायाः ते मिथ्यादृष्टौ पर्याप्तापर्याप्ताश्च । सासादने बादरपृथ्व्य-ब्वनस्पतिस्थावरकायाः द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञित्रसकायाश्चापर्याप्ताः संज्ञित्रसकायः उभयोऽपि षड्जीवनिकायः । मिश्रे संज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायपर्याप्त एव । असंयते उभयः, देशसंयते पर्याप्त एव । प्रमत्ते पर्याप्तः । साहारकर्द्धिस्तूभयः । अप्रमत्तादिक्षीणकषायांतेषु पर्याप्त एव । सयोगे पर्याप्तः । समुद्घाते तूभयः । अयोगे पर्याप्त एव ।

पुद्गलविपाकिशरीरांगोपांगनामकर्मोदयेः मनोवचनकाययुक्तजीवस्य कर्मनोकर्मागमकारणा या शक्तिः तज्जनितजीवप्रदेशपरिस्पंदनं वा योगः स च मनोवचनकायभेदात्त्रेधा । तत्र वीर्यांतरायनोइंद्रियावरणक्षयोपशमेन अंगोपांगनामोदयेन च मनःपर्याप्तियुक्तजीवस्य मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां अष्टदलपद्माकारेण हृदये निर्माणनामोदयसंपादितं द्रव्यमनः । तत्परिणामेन नोइंद्रियावरणक्षयोपशमयुक्तजीवप्रदेशानां लब्ध्युपयोगलक्षणं भावमनः तद्व्यापारो मनोयोगः । स च सत्यादिचतुर्विधभेदाच्चतुर्धा । भाषापर्याप्तियुक्तजीवस्य शरीरनामोदयेन स्वरनामोदयसहकारिकारणेन भाषा-

वर्गणायातपुद्गलस्कंधानां चतुर्विधभाषारूपेण परिणमनं वाग्योगः। सोऽपि सत्याद्यर्थवाचकत्वेन चतुर्धा। औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामोदयैः आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां निर्माणनामोदयनिर्मापिततत्तच्छरीरपरिणामनपरिणतौ उत्पन्नजीवपरिस्पंदः औदारिकादिकाययोगः। तत्तच्छरीरपर्याप्तिकाले समयोनांतर्मुहूर्तपर्यंतं तत्तन्मिश्रकाययोगः। अस्य च मिश्रत्वव्यपदेशः औदारिकादिनोकर्मशरीरवर्गणाहरणे स्वतः सामर्थ्यासंभवेन कार्मणवर्गणासव्यपेक्षत्वात्। विग्रहगतौ औदारिकादिनोकर्मवर्गणानां अनाहरणे सति कार्मणशरीरनामोदयेन कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायेण जीवप्रदेशेषु बंधप्रघट्टके उत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पंदः कार्मणकाययोगः, एवं योगाः पंचदश ॥ ७०३ ॥

स० चं–गुणस्थानकनिविषैं चौदह मार्गणा अर उपयोग लगाना सुगम है जातैं पूर्वैं प्ररूपण करि आए हैं। मार्गणानिविषैं गुणस्थान वा जीवसमास कहे तहां ही कथन आय गया तथापि मंद वुद्धीनिके समझनेके निमित्त वहुरि कहिए है। नरकादि गतिनामा नामकर्मके उदयतैं उत्पन्न भए पर्याय ते गतिकहिए सो मिथ्यादृष्टीविषैं च्यार्यो नारकादि गति पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं सासादनविषैं नारक अपर्याप्त नाहीं अवशेष सर्व है। मिश्रविषैं च्यार्यो गति पर्याप्त ही है। असंयतविषैं धर्मानारक तौ पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं अवशेष नारक पर्याप्त ही हैं। वहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमियां मनुष्य अर वैमानिक देव तौ पर्याप्त वा अपर्याप्त दोऊ हैं अर कर्मभूमियां तिर्यंच अर भवनत्रिक देव ए पर्याप्त ही चतुर्थ गुणस्थानविषैं पाइए हैं। वहुरि देशसंयतविषैं कर्मभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य पर्याप्त ही हैं। वहुरि प्रमत्तविषैं मनुष्य पर्याप्त ही है आहारक सहित पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं। वहुरि प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत मनुष्य पर्याप्त ही हैं सयोगीविषैं पर्याप्त वा समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्त हैं। अयोगी पर्याप्त ही हैं।

वहुरि एकेंद्रियादिक जातिनामा नाम कर्मके उदयतैं निपज्या जीवकै पर्याय सो इंद्रिय है तिनकी मार्गणा एकेंद्रियादिक पंच हैं ते मिथ्यादृष्टिविषैं तौ पांचौ पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं, सासादनविषैं अपर्याप्त तौ पांचौ पाइए अर पर्याप्त एक पंचेंद्रिय पाइए है। मिश्रविषैं पर्याप्त पंचेंद्रिय ही है। असंयतविषैं पर्याप्त वा अपर्याप्त पंचेंद्री है। देश संयतविषैं पर्याप्त पंचेंद्री ही है। प्रमत्तविषैं आहारक अपेक्षा दोऊ हैं। अप्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यंत एक पंचेंद्रिय पर्याप्त ही है। सयोगी विषैं पर्याप्त हैं समुद्घात अपेक्षा दोऊ हैं। अयोगी विषैं पर्याप्त ही पंचेंद्रिय हैं।

पृथ्वीकायादिक विशेषकौं लीए एकेंद्रिय जाति अर स्थावर नामा नामकर्मका उदय अर त्रस नामा नामकर्म

का उदयतैं निपजे जीवके पर्याय ते काय कहिए ते छह प्रकार हैं। तहां मिथ्यादृष्टिविषैं तौ छहो पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं। सासादनविषैं बादर पृथ्वी अप वनस्पती ए—स्थावर अर त्रसविषैं बेंद्री तेंदी चौंद्री असैनी पंचेंद्री एतौ अपर्याप्त ही है अर सैनी त्रस काय पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं। आगैं संज्ञी पंचेंद्रिय त्रस काय ही है, तहां मिश्र विषैं पर्याप्त ही हैं। अविरतविषैं दोऊ हैं। देश संयतविषैं पर्याप्त ही हैं। प्रमत्तविषैं पर्याप्त हैं। आहारक सहित दोऊ हैं। अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत पर्याप्त ही हैं सयोगीविषैं पर्याप्त है। समुद्घातसहित दोऊ है। अयोगीविषैं पर्याप्त ही है।

पुद्गल विपाकी शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं मन बचन कायकरि संयुक्त जो जीव ताके कर्म नोकर्म आवनेकौं कारण जो शक्ति वा ताकरि उत्पन्न भया जो जीवके प्रदेशानिका चंचलपना सो योग है सो मन बचन काय भेदतैं तीन प्रकार है। तहां वीर्यांतराय अर नोइंद्रियावरण कर्म तिनके क्षयोपशमकरि अर अंगोपांग नाम कर्मके उदयकरि मनःपर्याप्ति संयुक्त जीवकैं मनोवर्गणारूप जे पुद्गल आए तिनिका आठ पांखड़ीका कमलके आकार हृदय स्थानकविषैं जो निर्माण नामा नामकर्मतैं निपज्या सो द्रव्य मन है तहां जो कमलकी पाखड़ीनिका अग्रभागनिविषै नोइंद्रियावरणका क्षयोपशमयुक्त जीवका प्रदेश समूह है तिनिविषैं लब्धि उपयोग लक्षणकौं धरै भाव मन हैं। ताका जो परिणमन सो मनोयोग है सो सत्य असत्य उभय अनुभय रूप विषयके भेदतै च्यारि प्रकार है। बहुरि भाषापर्याप्ति करि संयुक्त जो जीव ताकै शरीर नामा नामकर्मके उदयकरि अर स्वरनामा नाम कर्मका उदयका सहकारी कारणकरि भाषा वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका च्यारि प्रकार भाषारूप होइ परिणमन सो बचन योग है। सो बचन योग भी सत्यादिक पदार्थनिका कहन हारा है तातैं च्यारि प्रकारि है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक शरीर नामा नामकर्मके उदय करि आहार वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका निर्माण नामा नामकर्मके उदयकरि निपज्या जो शरीर ताके परिणमनके निमित्ततैं जीवका प्रदेशनिका जो चंचल होना सो औदारिक आदि काय योग है। बहुरि शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होइ तावत् एक समय घाटि अंतर्मुहूर्त पर्यंत तिनके मिश्र योग है। इहां मिश्रपना कह्या है सो औदारिकादिक नोकर्मकी वर्गणानिका

आहरण आपहीतै न हो है, कार्माण वर्गणाका सापेक्ष लीए है तातैं कह्या है। बहुरि विग्रह गतिविषैं औदारिकादिक नोकर्मकी वर्गणानिका तौ ग्रहण है नाही, कार्माण शरीर नामा नामकर्मका उदयकरि कार्माण वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका ज्ञानावरणादिक कर्म पर्यायकरि जीवके प्रदेशनिविषैं बंध होतै भया जो जीवके प्रदेशनिका चंचल पना सो कार्माण काययोग है ऐसै ए पंद्रहयोग हैं ॥ ७०४ ॥

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एगारा।
जोगिम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥ ७०४ ॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव षष्ठे एकादश।
योगिनि सप्त योगा अयोगिस्थानं भवेत् शून्यं ॥ ७०४ ॥

जी० प्र०—उक्तपंचदशयोगेषु मध्ये मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु त्रयोदश त्रयोदश भवंति आहारकतन्मिश्रयोः प्रमत्तादन्यत्राभावात्। मिश्रगुणस्थाने तेष्वपर्याप्तयोगत्रयं नेति दश। उपरि क्षीणकषायांतेषु सप्तसु तत्रापि वैक्रियिकयोगाभावात् नव। प्रमत्तसंयते एकादश आहारकतन्मिश्रयोगयोरत्र पतितत्वात्। सयोगे सत्यानुभयमनोवाग्योगाः औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगाश्चेति सप्त। अयोगिजिने योगा नेति शून्यं।

स्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयैः तत्तन्नामवेदा भवंति ते त्रयोपि अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं न तत उपरि।

क्रोधादीनां चतुष्कचतुष्कस्य यथायोग्योदये सति क्रोधमानमायालोभा भवंति ते च मिथ्यादृष्टौ सासादने च चत्वारश्चत्वारः। मिश्रासंयतयोर्विना अनंतानुबंधिनस्त्रयस्त्रयः। देशसंयते विना अप्रत्याख्यानकषायान् द्वौ द्वौ। प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणद्वितीयभागपर्यंतं संज्वलनक्रोधः। तृतीयभागपर्यंतं मानः। चतुर्थभागपर्यंतं माया। पंचमभागपर्यंतं वादरलोभः। सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः। उपरि सर्वेऽपि अकषाया एव।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमेन तत् सम्यग्ज्ञानचतुष्कं। केवलज्ञानावरणनिरवशेषक्षयेण च केवलज्ञानं, मिथ्यात्वोदयसहचरितमतिश्रुतावधिज्ञानावरणक्षयोपशमेन कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानानि च मिलित्वा अष्टौ। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुज्ञानत्रयं। मिश्रे तदेव मिश्रितं। असंयते देशसंयते वा आद्यं सम्यग्ज्ञानत्रयं। प्रमत्तादिक्षीणकषायांतमाद्यं सम्यग्ज्ञानचतुष्कं। सयोगायोगयोरेकं केवलज्ञानमेव।

संज्वलननोकषायमंदोदयेन व्रतधारणसमितिपालनकषायनिग्रहदंडत्यागेंद्रियजयरूपसंयमभावो भवति स च सामान्येन सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति गृहीतः सामायिकनामैकः। विशेषेण असंयमदेशसंयमसामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातभेदात्सप्तधा। तत्र असंयतांतमसं-

यमः । देशसंयते देशसंयमः । प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणांतं सामायिकछेदोपस्थापनौ । प्रमत्ताप्रमत्तयोः परिहारविशुद्धिरपि । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मसांपरायसंयमः । उपशांतकषायादिषु यथाख्यातः ।

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयक्षयोपशमैः केवलदर्शनावरणीयनिरवशेषक्षयेण तानि चत्वारि दर्शनानि स्युः । तत्र मिश्रगुणस्थानांतं चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयं । असंयतादिक्षीणकषायांतं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रयं । सयोगायोगयोः सिद्धे चैकं केवलदर्शनं ।

कषायोदयानुरंजितमनोवाक्कायप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभभेदाद्द्वेधा । तत्र अशुभा । कृष्णनीलकपोतभेदात्त्रेधा । शुभापि तेजःपद्मशुक्लभेदात्त्रेधा । असंयतांतं षडपि । देशसंयतादित्रये शुभा एव अपूर्वकरणादिसयोगांतं शुक्लैव । अयोगे योगाभावात् लेश्या नास्ति ।

सामग्रीविशेषैः रत्नत्रयानंतचतुष्टयस्वरूपेण परिणमितुं योग्यो भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । तौ च मिथ्यादृष्टौ द्वौ । तत्र अभव्यराशिः जघन्ययुक्तानंतमात्रः तेनोनः सर्वसंसारी भव्यराशिः स च आसन्नभव्यः दूरभव्यः अभव्यसमभव्यश्चेति त्रेधा । सासादनादक्षीणकषायांतं भव्य एव । सयोगायोगयोर्भव्याभव्यव्यपदेशो नास्ति ।

क्षयोपशमादिपंचलब्धिपरिणामपरिणतः अनिवृत्तिकरणचरमसमये अनादिमिथ्यादृष्टिः अनंतानुबंधिनो मिथ्यात्वं चोपशमय्य तदनंतरसमये मिथ्यात्वांतरायामांतर्मुहूर्तप्रथमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्राप्य असंयतो भवति । अथ वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वदेशव्रते युगपत्प्राप्य देशसंयतो भवति । अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वमहाव्रते युगपत्प्राप्य अप्रमत्तसंयतो भवति । ते त्रयोऽपि तत्प्राप्तिप्रथमसंयममादिं कृत्वा गुणसंक्रमणविधानेन मिथ्यात्वद्रव्यं गुणसंक्रमणभागहारेण अपकृष्यापकृष्य मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण अंतर्मुहूर्तं कालं त्रिधा कुर्वंति । मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु पूर्वस्थितौ अतिस्थापनावलिमात्रमूनयंतीत्यर्थः । तदप्रमत्तस्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसंख्यातसहस्रसंभवात् प्रमत्तेऽपि तत् सम्यक्त्वं स्यात् । ते अप्रमत्तसंयतं विना त्रय एव तत्सम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्ते जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन च षडावलिमात्रेऽवशिष्टे अनंतानुबंध्यन्यतमोदये सासादना भवंति । अथवा ते चत्वारोऽपि यदि भव्यतागुणविशेषेण सम्यक्त्वविराधका न स्युः तदा तत्काले संपूर्णे जाते सम्यक्त्वप्रकृत्युदये वेदकसम्यग्दृष्टयः वा मिश्रप्रकृत्युदये सम्यग्मिथ्यादृष्टयः वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टयो भवंति । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे विशेषः । स कः ? उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तवेदकसम्यग्दृष्टिः करणत्रयपरिणामसामर्थ्यात् अनंतानुबंधिनां प्रशस्तोपशमं विना अप्रशस्तोपशमेन अधोनिषेकानुत्कृष्य विसंयोज्य क्षपयित्वा दर्शनमोहत्रयस्य अंतरकरणेन अंतरं कृत्वा उपशमविधानेन उपशमय्य अनंतरप्रथमसमये द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उपशमश्रेणिमारुह्य उपशांतकषायं गत्वा अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा क्रमेण अवतीर्य अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि करोति । वा अधः देशसंयमो भूत्वा आस्ते वा असंयतो भूत्वा आस्ते वा मरणे देवासंयतः स्यात् वा मिश्रप्रकृत्युदये मिश्रः स्यात् । अनंतानुबंध्यन्यतमोदये द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं विराधयतीत्याचार्यपक्षे सासादनः स्यात् वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टिः स्यात् इति । क्षायिकसम्यक्त्वं तु असंयतादिचतुर्गुणस्थानमनुष्याणां असंयतदेशसंयतोपचारमहाव्रतमानुषीणां च कर्मभूमवेदकसम्यग्दृष्टीनामेव केवलिश्रुतकेवलिद्वयश्रीपादोपांते सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति ।

तत्सम्यक्त्वं सामान्येन एकं, विशेषेण मिथ्यात्वसासादनमिश्रोपशमवेदकक्षायिकभेदात् षोढा। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सासादने सासादनत्वं। मिश्रे मिश्रत्वं। असंयतादि अप्रमत्तांतेषु उपशमवेदकक्षायिकानि अपूर्वकरणाद्युपशांतकषायांतेषु उपशमश्रेण्यौ वा औपशमिकक्षायिके क्षपकश्रेण्यामपूर्वकरणादिसिद्धपर्यंतमेकं क्षायिकमेव।

नोन्द्रियावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधनं च संज्ञा सा अस्य अस्तीति संज्ञी। इतरेंद्रियज्ञानोऽसंज्ञी। तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं संज्ञी असंज्ञी मिथ्यादृष्टावेव। सयोगायोगयोर्नोइन्द्रियेंद्रियज्ञानाभावात् संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशो नास्ति।

शरीरांगोपांगनामोदयजनितं शरीरवचनचित्तनोकर्मवर्गणाग्रहणमाहारः। विग्रहगतौ प्रतरलोकपूरणसयोगे अयोगे सिद्धे च अनाहारः। तेन मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगेषु तौ द्वौ शेषनवस्वाहारः। अयोगिसिद्धे वा अनाहारः ॥ ७०४ ॥ गुणस्थानेषु उपयोगमाह—

स० चं—कहे पंद्रह योग तिनिविषैं मिथ्यादृष्टि सासादन असंयत इन तीनों विषैं तेरह तेरह योग हैं, जातैं आहारक आहारकमिश्र, प्रमत्त बिना अन्यत्र नाहीं है। बहुरि मिश्रविषैं औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण ए तीनों भी नाहीं तातैं दश ही हैं। बहुरि ऊपरि सात गुणस्थानकनिविषैं वैक्रियिक योग भी नाहीं है तातैं प्रमत्तविषै तौ आहारकद्विकके मिलनेतैं ग्यारह योग हैं औरनिविषैं नव नव योग है। बहुरि सयोगीविषैं सत्य अनुभय मनोयोग सत्य अनुभय बचन योग औदारिक औदारिकमिश्र कार्माण ए सात योग है। अयोग गुणस्थानविषैं योग नाहीं तातैं शून्य है। बहुरि स्त्री पुरुष नपुंसक वेदनिकरि उदय करि वेद हो है ते तीनों अनिवृत्ति करणके सवेदभाग पर्यंत हैं ऊपरि नाहीं।

बहुरि क्रोधादिक च्यारि कषायनिका यथायोग्य अनंतानुबंधी इत्यादि रूप उदय होत संतैं क्रोध मान माया लोभ हो हैं। तहां मिथ्यादृष्टि सासादनविषैं तौ अनंतानुबंधी आदि च्यारि च्यारि प्रकार है। मिश्र असंयतविषैं अनंतानुबंधी विना तीन तीन प्रकार हैं। देश संयतविषैं अप्रत्याख्यान विना दोय दोय प्रकार हैं। प्रमत्तादि अनिवृत्ति करणका दूसरा भागपर्यंत संज्वलन क्रोध है। तीसरा भाग पर्यंत मान है। चौथा भाग पर्यंत माया है। पंचम भाग पर्यंत वादर लोभ है। सूक्ष्मसांपरायविषैं सूक्ष्म लोभ है। ऊपर सर्व कषाय रहित हैं।

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं मति आदि ज्ञान हो हैं। केवल ज्ञानावरणके समस्त

क्षयतैं केवलज्ञान हो है। मिथ्यात्वका उदयकरि सहवर्ती ऐसे मति श्रुत अवधि ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान हो हैं सो सर्व मिलि आठ ज्ञान भये। तहां मिथ्यादृष्टि सासादनविषैं तौ तीन कुज्ञान है। मिश्र विषैं तीन कुज्ञान वा सुज्ञान मिश्ररूप है। अविरत अर देशसंयत विषैं मति श्रुत अवधि ए आदिके तीन सुज्ञान हैं। प्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यंतविषैं मनःपर्यय सहित आदिकके च्यारि सुज्ञान हैं। सयोगी अयोगी विषैं एक केवल ज्ञान है।

बहुरि संज्वलनकी चौकड़ी अर नव नोकषाय इनके मंद उदय करि व्रतका धारना, समितिका पालना, कषायका निग्रह, दंडका त्याग, इंद्रियनिका जय ऐसैं भावरूप संयम हो है। सो संयम सामान्यपनैं एक सामायिक स्वरूप है जातैं 'सर्वसावद्ययोगविरतोस्मि' मैं सर्व पापसहित योगका त्यागी हों ऐसैं भाव विषैं सर्व गर्भित भए। विशेषपनैं असंयम देश संयम सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय यथाख्यात भेदतैं सात प्रकार है। तहां असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं असंयम हीं है। देशसंयतविषैं देशसंयम है। प्रमत्तादिक अनिवृत्तिकरणपर्यंत सामायिक छेदोपस्थापना है। प्रमत्त अप्रमत्तविषैं परिहार विशुद्धि भी है। सूक्ष्म सांपरायविषैं सूक्ष्मसांपराय है। उपशांत कषायादिकविषैं यथाख्यात संयम है।

बहुरि चक्षु अचक्षु अवधि दर्शनावरणके क्षयोपशमतैं अर केवलदर्शनावरणके समस्त क्षयतैं चक्षु अचक्षु अवधि केवल दर्शन हो हैं। तहां मिश्रगुणस्थान पर्यंत तौ चक्षु अचक्षु दोय दर्शन हैं। असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतविषैं चक्षु अचक्षु अवधि तीन दर्शन हैं। सयोग अयोग अर सिद्धविषैं केवल दर्शन है।

कषायके उदयकरि अनुरंजित ऐसी मन बचन कायरूप योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है। सो शुभ अशुभके भेदतैं दोय प्रकार है। तहां अशुभलेश्या कृष्ण नील कपोत भेदतैं तीन प्रकार है। शुभ लेश्या तेजः पद्म शुक्लभेदतैं तीन प्रकार है। तहां असंयत पर्यंत तौ छहौ लेश्या हैं। देश संयतादि अप्रमत्त पर्यंतविषैं तीन शुभलेश्या ही हैं। अपूर्व करणादि सयोगी पर्यंतविषैं शुक्लेश्या ही है। अयोगी, योगके अभावतैं लेश्या रहित हैं।

सामग्रीविशेष करि रत्नत्रय वा अनंत चतुष्टयरूप परिनमनेकौं योग्य सो भव्य कहिए। परिनमनेको योग्य

नाहीं सो अभव्य कहिए। इहां अभव्य राशि जघन्य युक्तानंत प्रमाण है। संसारी राशिमें इतना घटाएं अवशेष रहै तितने भव्य है। सो भव्य तीन प्रकार। आसन्नभव्य १ दूरभव्य २ अभव्यसमभव्य ३। जे थोरे कालमें मुक्त होने होइ ते आसन्न भव्य हैं। जे बहुतकालमें मुक्त होने होइं ते दूर भव्य हैं। जे त्रिकालविषैं मुक्त होनेके नाहीं केवल मुक्त होनेकी योग्यता ही कौं धरैं हैं ते अभव्यसम भव्य हैं। सो इहां मिथ्यादृष्टिविषैं भव्य अभव्य दोऊ हैं। सासादनादि क्षीणकषायपर्यंतविषैं एक भव्य ही है। सयोग अयोगविषैं भव्य अभव्यका उपदेश नाहीं है।

बहुरि अनादि मिथ्यादृष्टी जीव क्षयोपशमादिक पंचलब्धिका परिणामरूप परिणया तहां मिथ्यादृष्टिहीविषैं करण कीए तहां अनिवृत्ति करणका अंत समयविषैं अनंतानुबंधी अर मिथ्यात्व इनि पंचनिका उपशमकरि ताकै अनंतर समयविषैं मिथ्यात्वका ऊपरिके वा नीचेके निषेक छोडि वीचिके निषेकनिका अभाव करना सो अंतर कहिए सो अंतर्मुहूर्तके जेते समय तितने निषेकनिका अभाव अनिवृत्तिकरणविषैं ही कीया था सो तिनिविषैं निषेक-निरूप जो अंतरायामसंबंधी अंतर्मुहूर्त काल ताका प्रथम समयविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं पाइ असंयत हो है। वा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर देशव्रत इनि दोऊनिकौं युगपत् पाइकरि देश संयत हो है। अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर महाव्रत इनि दोऊनिकौं युगपत् पाइकरि अप्रमत्त संयत हो है। तहां तिस पावनेके प्रथम समयतैं लगाइ अंतर्मुहूर्त ताईं गुण संक्रमण विधानकरि मिथ्यास्वरूप द्रव्यकर्मकौं गुण संक्रमण भाग हारकरि घटाइ घटाइ तीन प्रकार करै है। गुण संक्रमण विधान अर गुण संक्रमण भागहारका कथन आगे करैंगे तहां जानना सो मिथ्यात्व प्रकृति रूप अर सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृतिरूप वा सम्यक्त्व प्रकृतिरूप ऐसैं एक मिथ्यात्व तीन प्रकार तहां कीजिए है सो इनि तीनोंका द्रव्य जो परमाणूनिका प्रमाण सो असंख्यात गुणा असंख्यात गुणा घाटि अनुक्रमतैं जानना। इहां प्रश्न जो मिथ्यात्वकौं मिथ्यात्व प्रकृतिरूप कहा कीया? ताका समाधान जो पूर्वै जो उस मिथ्यात्वकी स्थिति तामैं आति स्थापनावली मात्र घटावै है सो आति स्थापनावलीका भी स्वरूप आगै कहैंगे। जो अप्रमत्त गुणस्थानकौं प्राप्त हो हैं सो अप्रमत्तस्यों प्रमत्तमें अरप्रमत्तस्यों अप्रमत्तमें संख्यात हजार वार आवैं जाय है तातैं प्रथ-

मोपशम सम्यक्त्व प्रमत्तविषैं भी कहिये ते ए ग्यारवों गुणस्थानवर्ती प्रथमोपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्त कालविषैं जघन्य एकसमय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं अर तहां अनंतानुबंधी किसी प्रकृतिका उदय होइ तौ सासादन होइ। बहुरि जो भव्यता गुणका विशेषकरि सम्यक्त्व गुणका नाश न होइ तौ उस उपशम सम्यक्त्वका काल कौं पूर्ण होतें सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयतैं वेदक सम्यग्दृष्टी हो है बहुरि जो मिश्र प्रकृतिका उदय होइ तौ सम्यग्मिथ्यादृष्टी कहिए। बहुरि जो मिथ्यात्वहीका उदय तो मिथ्यादृष्टी ही होइ जाइ। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वविषैं विशेष है सो कहा?

उपशम श्रेणी चढनेके निमित्ति कोई सातिशय अप्रमत्त वेदक सम्यग्दृष्टी तहां अप्रमत्तविषैं तीन करणकी सामर्थ्यकरि अनंतानुबंधीका प्रशस्तोपशम विना अप्रशस्तोपशमकरि ऊपरिके जे निषेक जिनिका काल न आया है ते तौ हैं ही जे नीचेके निषेक अनंतानुबंधीके हैं तिनिकौं उत्कृष्ट पणाकरि ऊपरिके निषेकनिविषै प्राप्त करै है वा विसंयोजनकरि अन्य प्रकृतिरूप परिणमावै है ऐसैं क्षपाइ दर्शनमोहकी तीन प्रकृति तिनिका वीचिके निषेकनिका अभाव करने रूप अंतर करणकरि अंतर कीया। बहुरि उपशम विधानकरि दर्शनमोहकी प्रकृतिनिकौ उपशमाइ अंतर कीएं निषेक संबंधी अंतर्मुहूर्त कालका प्रथम समयविषैं द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होइ उपशम श्रेणीकौ चढि क्रमतैं उपशांत कषाय पर्यंत जाइ तहां अंतर्मुहूर्त काल तिष्ठिकरि अनुक्रमतैं एक एक गुणस्थान उतारिकरि अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त होइ तहां अप्रमत्तस्यों प्रमत्तमें वा प्रमत्तस्यों अप्रमत्तमें हजारा वार आवै जाइ तहांस्यों नीचैं देशसंयत होइ तहां तिष्ठै वा असंयत होइ तहां तिष्ठै। अथवा जो ग्यारह्वां आदि गुणस्थाननिविषै मरण होइ तौ तहांस्यौं अनुक्रम विना देव पर्यायरूप असंयत हो है वा मिश्र प्रकृतिके उदयतैं मिश्र गुणस्थानवर्ती हो है वा अनंतानुबंधीके उदय होतैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकौं विराधै है ऐसी किसी आचार्यकी पक्षकी अपेक्षा सासादन हो है। वा मिथ्यात्वका उदयकरि मिथ्यादृष्टी हो है। बहुरि असंयतादिक च्यारि गुणस्थानवर्ती जे मनुष्य बहुरि असंयत देशसंयत गुणस्थानवर्ती उपचार महाव्रत जिनकै पाइए है ऐसी आर्या स्त्री ते कर्मभूमिके उपजे ऐसैं वेदक सम्य-

२११

क्त्वी होंइ तिनहीके केवली श्रुत केवली दोन्योविषैं किसीका चरणांके निकटि सात प्रकृतिका सर्वथा क्षय होते क्षायिक सम्यक्त्व हो है सो ऐसै सम्यक्त्वका विधान कह्या। सो सम्यक्त्व सामान्यपनैं एक प्रकार है विशेषपनैं मिथ्यात्व १ सासादन २ मिश्र ३ उपशम ४ वेदक ५ क्षायिक भेदतैं छह प्रकार है। तहां मिथ्यादृष्टिविषैं तो मिथ्यात्व ही है। सासादनविषैं सासादन है। मिश्रविषैं मिश्र है। असंयतादिक अप्रमत्त पर्यंत विषैं उपशम, वेदक, क्षायिक, तीन सम्यक्त्व है। अपूर्वकरणादि उपशांत कषाय पर्यंत उपशमश्रेणीविषैं उपशम क्षायिक दोय सम्यक्त्व हैं। क्षपक श्रेणीरूप अपूर्वकरणादिक सिद्ध पर्यंत एक क्षायिक सम्यक्त्व ही है।

बहुरि नो इंद्रिय जो मन ताके आवरणके क्षयोपशमतैं भया जो ज्ञान ताकौं संज्ञा कहिये सो जिसके पाइए सो संज्ञी है। जाकैं न पाइए अर यथासंभव अन्य इंद्रियनिका ज्ञान पाइए सो असंज्ञी है। तहां संज्ञी मिथ्यादृष्टि आदि क्षीण कषाय पर्यंत हैं। असंज्ञी मिथ्यादृष्टिविषैं ही है। सयोग अयोगविषैं मन इंद्रिय संबंधी ज्ञान नाही है तातैं संज्ञी असंज्ञी न कहिये है।

बहुरि शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं उत्पन्न भया जो शरीर वचन मन रूप नोकर्म वर्गणाका ग्रहण करना सो आहार है। विग्रहगतिविषैं वा प्रतर लोक पूर्ण सहित सयोगीविषैं वा अयोगीविषैं वा सिद्धविषैं अनाहार है तातैं मिथ्यादृष्टी सासादन असंयत सयोगी इनिविषैं तौ दोऊ है। अवशेष नवगुणस्थानविषैं आहार ही है। अयोगीविषैं वा सिद्धविषैं अनाहार ही है। ॥ ७०४ ॥ गुणस्थाननिविषैं उपयोग कहैं हैं—

दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा।
सत्तुवजोगा सत्तसु दो चेव जिणे य सिद्धे य॥ ७०५ ॥

द्वयोः पंच च षट्चैव द्वयोर्मिश्रे भवंति व्यामिश्राः।
सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वौ चैव जिने च सिद्धे च ॥ ७०५ ॥

जी० प्र०—गुणपर्ययवद्वस्तु तद्ग्रहणव्यापारउपयोगः । ज्ञानं न वस्तूत्थं तथा चोक्तं—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा ।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥ १ ॥

"नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात् तमोवत् इति"। स चोपयोगः ज्ञानदर्शनभेदाद्द्वेधा । तत्र ज्ञानोपयोगः-कुमतिकुश्रुतविभंगमतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलज्ञानभेदादष्टधा । दर्शनोपयोगः चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदाच्चतुर्धा । तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनाख्याः पंच । मिश्रे मतिश्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनाख्याः मिश्राः षट् । असंयतदेशसंयतयोः त एव षडमिश्राः । प्रमत्तादिक्षीणकषायांतेषु त एव मनःपर्ययेण सह सप्त । सयोगे अयोगे सिद्धे च केवलज्ञानदर्शनाख्यौ द्वौ ॥ ७०५ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तीविरचितायां गोम्मटसारापरनामपचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणानिरूपणानामैकविंशोऽधिकारः ॥ २२ ॥

—~~~—

स० चं०—गुण पर्यायवान् वस्तु है ताके ग्रहणरूप जो व्यापार प्रवर्तन सो उपयोग है । ज्ञान है सो जानने योग्य जो वस्तु तातैं नाहीं उपजैं हैं । सो कह्या है—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा ।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥ १ ॥

याका अर्थ जैसैं वस्तु अपने ही उपादान कारणसैं उपज्या आपहीतैं जानने योग्य है तैसैं ज्ञान अपने ही उपादान कारणतैं निपज्या आपहीतैं जानने हारा है । बहुरि ज्ञेय पदार्थ अर प्रकाशादिक ए ज्ञानका कारण नाहीं जातैं ए तौ ज्ञेय है । जैसैं अंधकार ज्ञेय है तैसे ए भी ज्ञेय है—जानने योग्य है । जाननेकौं कारण नाहीं ऐसा जानना । बहुरि सो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदतैं दोय प्रकार है । तहां कुमति कुश्रुत विभंग मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल भेदतैं ज्ञानोपयोग आठ प्रकार है । चक्षु अचक्षु अवधि केवल भेदतैं दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार है । तहां मिथ्यादृष्टि सासादनविषैं तो कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान, चक्षु अचक्षु दर्शन ए पांच उपयोग है बहुरि मिश्र-

विषैं मिश्ररूप मति श्रुत अवधि ज्ञान चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन, ए छह उपयोग है । असंयत देशसंयतविषै मति श्रुत अवधिज्ञान चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन ए छह उपयोग हैं। प्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यंतविषैं तेई मनःपर्यय सहित सात उपयोग हैं। सयोगी अयोगी सिद्धविषैं केवलज्ञान केवलदर्शन ए दोय उपयोग हैं ॥ ७०५ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसार सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषा टीकाविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं गुणस्थाननिविषैं वीस प्ररूपणा निरूपणा नामा इकवीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ २१ ॥

आलापाधिकारः ॥ २२ ॥

जी० प्र०—

नेमिं धर्मरथे नेमिं पूज्यं सर्वनरामरैः ।
वहिरंतःश्रियोपेतं जिनेंद्रं तच्छ्रिये श्रये ॥ २२ ॥

अथालापाधिकारं स्वेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं वक्तुं प्रतिजानीते—

सुरनर गणपति पूज्यपद वहिरंतर श्री धारि ।
नेमि धर्मरथनेमिसम भजौं होंहु श्रीसार ॥ २२ ॥

आगैं आलाप अधिकारकौं अपने इष्टदेवको नमस्कार पूर्वक कहनेकौं प्रतिज्ञा करैं हैं—

गोयमथेरं पणमिय ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं वोच्छामि जहाकमं सुणह ॥ ७०६ ॥

गौतमस्थविरं प्रणम्य ओघादेशयोर्विंशभेदानां ।
योजनिकानामालापं वक्ष्यामि यथाक्रमं शृणुत ॥ ७०६ ॥

सत्तण्हं पुढवीणं ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा।
पढमाविरदेवि तहा सेसाणं पुण्णगालावो ॥ ७१२।

सप्तानां पृथिवीनां ओघे मिथ्यात्वे च त्रय आलापाः।
प्रथमाविरतेऽपि तथा शेषाणां पूर्णकालापाः ॥ ७१२ ॥

जी० प्र०—नरकगतौ सामान्येन सप्तपृथ्वीमिथ्यादृष्टौ त्रयः आलापाः स्युः। तथा प्रथमपृथ्व्यविरतेऽपि त्रय आलापाः स्युः। बद्धनरकायुर्वेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टयोस्तत्रोत्पत्तिसंभवात् शेषपृथ्व्यविरतानामेकः पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तिः ॥ ७१२ ॥

स० चं०—नरकगतिविषैं सामान्यपनैं सप्तपृथ्वी संबंधी मिथ्यादृष्टिविषै तीन आलाप हैं अर तैसेंही प्रथम पृथ्वी संबंधी असंयतविषैं तीन आलाप है। जो नरकायु पहिलैं बाध्या होइ ऐसा वेदक क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव सो तहां ही प्रथम पृथ्वीविषैं उपजै है। बहुरि अवशेष पृथ्वी संबंधी अविरत अर सर्व पृथ्वीका सासादन मिश्र इनकैं एक पर्याप्त आलाप ही है ॥ ७१२ ॥

तिरियचउक्काणोघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव।
णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसेवि पुण्णो दु ॥ ७१३ ॥

तिर्यक्चतुष्काणामोघे मिथ्यात्वद्विके आविरते च त्रय एव।
नवरि च योनिन्ययते पूर्णः शेषेपि पूर्णस्तु ॥ ७१३ ॥

जी० प्र०—तिर्यग्गतौ पंचगुणस्थानेषु सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तयोनिमत्तिरश्चां चतुर्णां साधारणेन मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु प्रत्येकं त्रय आलापा भवंति। तत्रायं विशेषः—योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव। बद्धायुष्कस्यापि सम्यग्दृष्टेः स्त्रीषंढयोरनुत्पत्तेः। तु—पुनः शेषमिश्रदेशसंयतयोरपि पर्याप्तालाप एव ॥ ७१३ ॥

जी० प्र०—विशिष्टा गौर्भूमिः गोतमा—अष्टमपृथ्वी सा स्थविरा नित्या यस्य स गोतमस्थविरः सिद्धसमूहः गौतमस्थविर एव गौतमस्थविरः तं । अथवा गौतमः गौतमस्वामी स्थविरो यस्यासौ गौतमस्थविरः श्रीवर्धमानस्वामी तं। अथवा विशिष्टा गौः वाणी यस्यासौ गोतमः गोतम एव गौतमः सचासौ स्थविरश्च गौतमस्थविरः तं प्रणम्य गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्राग् योजितानां विंशतिप्रकाराणां आलापं यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥७०६॥ तद्यथा—

स० चं–' विशिष्ट जो गो ' कहिए भूमि आठवीं पृथ्वी सो है स्थविर कहिए सास्वती जाकें असा सिद्धसमूह अथवा गोतम सोई स्थविर कहिए गणधर अथवा गोतम है स्थविर कहिए गणधर जाके असा वर्धमान स्वामी अथवा विशिष्ट है गो कहिए वाणी जाकी असा स्थविर कहिए मुनिसमूह सो असें जु गोतम स्थविर ताहि प्रणम्य नमस्कार करिकें ओघ जो गुणस्थान अर आदेश जो मार्गणास्थान इनिविषै जोडनेरूप जो गुणस्थानादिक वीस प्ररूपणा तिनिका आलाप ताहि यथाक्रम कहौंगा सो सुनहु। जहां वीस प्ररूपणा प्ररूपिए असे विवक्षित स्थाननिका कहना ताका नाम आलाप जानना ॥ ७०६ ॥ सो कहैं हैं—

ओघे चोदसठाणे सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे अणियट्टीपंचभागे य ॥ ७०७ ॥

ओघे चतुर्दशस्थाने सिद्धे विंशतिविधानामालापाः ।
वेदकपायविभिन्ने अनिवृत्तिपंचभागे च ॥ ७०७ ॥

जी० प्र०—गुणस्थाने चतुर्दशमार्गणास्थाने च प्रसिद्धे विंशतिविधानां गुणजीवेत्यादीनां सामान्यपर्याप्तापर्याप्ताः त्रयः आलापा भवंति । तथा वेदकपायविभिन्नेषु अनिवृत्तिकरणपंचभागेषु अपि पृथक्पृथग्भवति । ॥ ७०७ ॥ तत्र गुणस्थानेष्वाह—

स० चं–ओघ जो गुणस्थान अर चौदह मार्गणास्थान ए परमागमविषैं प्रसिद्ध हैं सो इनिविषैं ' गुणजीवा पज्जत्ती ' इत्यादिक वीसप्ररूपणानिका सामान्य पर्याप्त अपर्याप्त ए तीन आलाप हो हैं । बहुरि वेद अर कषायकरि है भेद जिनिविषैं असे अनिवृत्ति करणके पंच भाग तिनिविषैं पंच आलाप जुदे जुदे जानने ॥ ७०७ ॥ तहां गुणस्थाननिविषैं कहैं हैं—

स० चं—तिर्यंच पंच प्रकार। सर्वभेद जामै गर्भित ऐसा सामान्य तिर्यंच, बहुरि जाकैं पाचो इंद्रिय पाइये ऐसा पंचेंद्री तिर्यंच, बहुरि जो पर्याप्त अवस्थाकौं धारै सो पर्याप्त तिर्यंच, बहुरि जो स्त्रीवेदरूप है सो योनिमत तिर्यंच, जो लब्धि अपर्याप्त अवस्थाकौं धारै सो लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच, तहां सामान्यादिक चारि प्रकार तिर्यंचनिकैं पंच गुणस्थान पाइए। तहां मिथ्यादृष्टि सासादन अविरतविषैं तीन तीन आलाप हैं। तहां इतना विशेष है योनिमत् तिर्यंचकैं अविरतविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है जातैं जो पहिलैं तिर्यंच आयु बांध्या होइ तौ भी सम्यग्दृष्टि स्त्रीवेद नपुंसकवेदविषैं न उपजै। बहुरि मिश्र वा देश विरतविषैं पर्याप्त आलाप ही है ॥ ७१३ ॥

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण आलावो।
मूलोघं मणुसतिए मणुसिणिअयदम्हि पज्जत्तो ॥ ७१४ ॥

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्ते एक अपूर्ण आलापः।
मूलोघं मनुष्यत्रिके मानुष्ययते पर्याप्तः ॥ ७१४ ॥

जी० प्र०—तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तके एकः अपर्याप्तालाप एव। मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तयोनिमन्मनुष्येषु प्रत्येकं चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवत् मूलौघः स्यात् तथापि योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव। कारणं प्रागुक्तमेव। पुनरयं विशेषः-असंयततैरश्च्यां प्रथमोपशमकवेदकसम्यक्त्वद्वयं, असंयतमानुष्यां प्रथमोपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वत्रयं च संभवति तथापि एकोभुज्यमानपर्याप्तालाप एव। योनिमतीनां पंचगुणस्थानादुपरि गमनासंभवात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नास्ति ॥ ७१४ ॥

स० चं—लब्धि अपर्याप्त तिर्यंचविषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है। बहुरि मनुष्य च्यारि प्रकार-तहां सर्वभेद जामें गर्भित होइ ऐसा सामान्य मनुष्य, बहुरि जो पर्याप्त अवस्थाकौं धारै सो पर्याप्त मनुष्य, बहुरि जो स्त्री वेदरूप सो योनिमत मनुष्य, बहुरि जो लब्धि अपर्याप्तपनांकौं धारै सो लब्धि अपर्याप्त मनुष्य है। तहां सामान्यादिक तीन प्रकार मनुष्यनिकै प्रत्येक चौदह गुणस्थान पाइए। इहां भाववेद अपेक्षा योनिमत् मनुष्यकै चौदह गुणस्थान कहे हैं। गुणस्थानवत् आलाप जानने। विशेष इतना जो योनिमत् मनुष्यकैं असंयतविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है। कारण

पूर्वैं कह्या ही है। बहुरि इतना विशेष है जो असंयत तिर्यंचिणीकैं प्रथमोपशम वेदक ए दोय सम्यक्त्व हैं अर मनुष्यणीकै प्रथमोपशम वेदक क्षायिक ए तीन सम्यक्त्व संभवै हैं तथापि जहां सम्यक्त्व हो है तहां पर्याप्त आलाप ही है। सम्यक्त्व सहित मरै सो स्त्रीवेदविषैं न उपजै है बहुरि द्रव्य अपेक्षा योनिमती पंचम गुणस्थानतैं ऊपरि गमन करै नाही तातैं तिनकैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नाहीं है ॥ ७१४ ॥

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण।
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥ ७१५ ॥

मानुष्यां प्रमत्तविरत आहारद्विकं तु नास्ति नियमेन।
अपगतवेदायां मानुष्यां संज्ञा भूतगतिमासाद्य ॥ ७१५ ॥

जी० प्र०—द्रव्यपुरुषभावस्त्रीरूपे प्रमत्तविरते आहारकतदंगोपांगनामोदयः नियमेन नास्ति। तुशब्दात् अशुभवेदोदये मनःपर्ययपरिहारविशुद्धी अपि न। भावमानुष्यां चतुर्दशगुणस्थानानि, द्रव्यमानुष्यां पंचैवेति ज्ञातव्यं। अपगतवेदानिवृत्तिकरणमानुष्यां कार्यरहितमैथुनसंज्ञा भूतपूर्वगतिन्यायमाश्रित्य भवति। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं मनःपर्ययज्ञानिनि स्यात्। नचाहारकर्धिप्राप्तेनापि परिहारविशुद्धौ त्रिंशद्वर्षैर्विना तत्संयमस्यासंभवात् तत्सम्यक्त्वस्य तु तत्कालं अनवस्थानात्। अत्यक्ततत्संयमस्य उपशमश्रेणिमारोढुमपि दर्शनमोहोपशमाभावाच्च तद्द्वयसंयोगाघटनात् ॥ ७१५ ॥

स० चं०—द्रव्यपुरुष अर भाव स्त्री ऐसा मनुष्य प्रमत्तविरतगुणस्थानविषैं होइ ताकैं आहारक अर आहारक अंगोपांग नामकर्मका उदय नियमकरि नाहीं है। तुशब्दतैं स्त्रीवेद नपुंसकवेदका उदयविषैं मनःपर्ययज्ञान अर परिहार विशुद्धि संयम ए भी न हो हैं। बहुरि भावमनुष्यणीविषैं चौदह गुणस्थान हैं द्रव्य मनुष्यणीविषैं पांच ही गुणस्थान है। बहुरि वेदरहित अनिवृत्ति करणविषैं मनुष्यणीकैं मैथुन संज्ञा कही है सो कार्यरहित पूर्वगति न्यायकरि जाननी। जैसैं कोऊ राजा था वाकौं राजभ्रष्ट भए पीछैं भी राजाही कहिए है तासैं जाननी। सो भावस्त्री भी नवताई हो है। इहां चौदह गुणस्थान कहे सो भूतपूर्व गति न्यायकरि ही कहे हैं। बहुरि आहारक ऋद्धिकौं जो प्राप्त

भया ताकें भी वा परिहार विशुद्धि संयमविषैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अर मनःपर्यय ज्ञान न हो है जातै तेतीस वर्ष विना सो परिहार विशुद्धि संयम होइ नाहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी इतनी स्थिति नाहीं अर परिहार विशुद्धि संयम सहित श्रेणी न चढै तातैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी बनैं नाहीं तातैं तिन दोऊनिका संयोग नाहीं संभवै है ॥ ७१५ ॥

णरलद्धिअपज्जत्ते एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो।
लेस्साभेदविभिण्णा सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा ॥ ७१६ ॥

नरलब्ध्यपर्याप्ते एकस्तु अपूर्णकस्तु आलापः।
लेश्याभेदविभिन्नानि सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि ॥ ७१६ ॥

जी० प्र०—तु–पुनः, मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप एव। लेश्याभेदविभिन्नदेवस्थानानि सप्तविकल्पानि भवंति तद्यथा

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥ १ ॥
तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा ॥ २ ॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च।
एतस्माच्च चतुर्दशानां लेश्या भवनादिदेवानाम् ॥ १ ॥
तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मशुक्ले च।
शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रिका अपूर्णके अशुभाः ॥ २ ॥

भवनत्रय–सौधर्मद्वय–सानत्कुमारद्वय–ब्रह्मषट्क–शतारद्वय–आनतादित्रयोदश–उपरितनचतुर्दशविमानजानां क्रमशः तेजोजघन्यांशतेजोमध्यमांश-तेज उत्कृष्टांश-पद्मजघन्यांश-पद्ममध्यमांश-पद्मोत्कृष्टांश-शुक्लजघन्यांश-शुक्लमध्यमांश–शुक्लोत्कृष्टांशा भवंति ॥ ७१६ ॥

स० चं—बहुरि लब्धि अपर्याप्त मनुष्यविषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है बहुरि लेश्याभेदकरि भिन्न ऐसे देवनिके स्थानक सात हैं ते कहैं हैं—

भवनत्रिक देव बहुरि सौधर्म युगल बहुरि सनत्कुमार युगल बहुरि ब्रह्मादिक छह बहुरि शतारयुगल बहुरि आनतादिक नवम ग्रैवेयक पर्यंत तेरह बहुरि अनुदिश अनुत्तर विमान चौदह इनि सात स्थानकनिविषैं क्रमतैं तेजका जघन्यांश बहुरि तेजका मध्यमांश बहुरि तेजका उत्कृष्टांश, पद्मका जघन्यांश बहुरि पद्मका मध्यमांश बहुरि पद्मका उत्कृष्टांश, शुक्लका जघन्यांश बहुरि शुक्लका मध्यमांश बहुरि शुक्लका उत्कृष्टांश ए लेश्या पाइए हैं ॥ ७१६ ॥

सव्वसुराणं ओघे मिच्छदुगे अविरदेय तिण्णेव ।

णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ॥७१७॥

सर्वसुराणामोघे मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव ।

नवरि च भवनत्रिकस्त्रीणां च च अविरते पूर्णः ॥ ७१७ ॥

जी० प्र०—सर्वदेवसामान्ये चतुर्गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः असंयते च त्रय आलापा भवंति । अयं विशेषः-भवनत्रयदेवानां कल्पस्त्रीणां च असंयते पर्याप्तालाप एव तिर्यग्मनुष्यासंयतानां तत्रोत्पत्त्यभावात् ॥ ७१७ ॥

स० चं—सव सामान्य देवविषैं मिथ्यादृष्टि सासादन असंयत इनिविषैं तीन तीन आलाप हैं बहुरि इतना विशेष जो भवनत्रिक देव अर कल्पवासिनी स्त्री इनकैं असंयतविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है । जातैं असंयत तिर्यंच मनुष्य मरिकरि तहां उपजैं नाहीं ॥ ७१७ ॥

मिस्से पुण्णालाओ अणुद्दिसाणुत्तरा हु ते सम्मा ।

अविरद तिण्णालावा अणुद्दिसाणुत्तरे होंति ॥ ७१८ ॥

मिश्रे पूर्णालापः अनुदिशानुत्तरा हि ते सम्यंचः ।
अविरते त्रय आलापाः अनुदिशानुत्तरे भवंति ॥ ७१८ ॥

जी० प्र०——नवग्रैवेयकावसानसामान्यदेवानां मिश्रगुणस्थाने एकः पर्याप्तालाप एव अनुदिशानुत्तरविमानादहमिंद्राः सर्वे खलु सम्यग्दृष्टय एव तेन असंयते त्रय आलापा भवंति ॥ ७१८ ॥ अथेंद्रियमार्गणायामाह——

स० चं०——नव ग्रैवेयक पर्यंत सामान्य देव तिनिकैं मिश्रगुणस्थानविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है बहुरि अनुदिश अर अनुत्तर विमानवासी अहमिंद्र सर्व सम्यग्दृष्टी ही है तातैं तिनके असंयतविषैं तीन आलाप हैं ॥७१८॥ आगैं इंद्रिय मार्गणा विषैं कहै हैं——

बादरसुहमेइंदियबितिचउरिंदियअसण्णिजीवाणं ।
ओघे पुण्णे तिण्णि य अपुण्णगे पुण अपुण्णो दु ॥ ७१९ ॥

वादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवानां ।
ओघे पूर्णे त्रयश्च अपूर्णके पुनः अपूर्णस्तु ॥ ७१३ ॥

जी० प्र०——तु-पुनः वादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवसामान्ये पर्याप्तनामोदयविशिष्टे त्रय आलापा भवंति । अपर्याप्तनामोदयविशिष्टे पुनः एको लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥७१९॥

स० चं०—वादर सूक्ष्म एकेंद्रिय बहुरि बेंद्री तेंद्री चौंद्री असैनी पंचेंद्री इनकी सामान्य रचना पर्याप्त नामकर्मका उदय संयुक्त, तींहिविषैं तीन आलाप हैं । निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्थाविषैं भी पर्याप्त नामकर्महीका उदय जानना ॥ ७१९ ॥

सण्णी ओघे मिच्छे गुणपडिवण्णे य मूलआलावा ।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥ ७२० ॥

संज्ञ्योघे मिथ्यात्वे गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः अपर्याप्तो भवति आलापः ॥ ७२० ॥

जी० प्र०—संज्ञिसामान्ये पंचगुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ मूलालापास्त्रयो भवंति । गुणप्रतिपन्नेषु तु सासादनाऽसंयतयोः सामान्यपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्ताः मूलालापास्त्रयो भवंति । मिश्रदेशसंयतयोरेकः पर्याप्त एव मूलालापः । संज्ञिलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालापः ॥ ७२० ॥ अथ कायमार्गणायां गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—सैनी पंचेंद्री तिर्यंचकी सामान्य रचनाविषैं पंच गुणस्थान है तिनविषैं मिथ्यादृष्टिमें तो मूलमें कहे थे तेई तीन आलाप हैं। बहुरि जो विशेष गुणको प्राप्तभया ताकैं सासादन अर संयतविषैं मूलमें कहे ते तीनों आलाप है। मिश्र अर देशसंयतविषैं एक पर्याप्त आलाप है। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्तविषैं एक लब्धि अपर्याप्त आलाप ही हैं॥ ७२० ॥ आगैं कायमार्गणाविषैं दोय गाथानिकरि कहे हैं—

भूआउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि ।
ताणं थूलिदरेसु वि पत्तेगे तद्दुभेदेवि ॥ ७२१ ॥
तसजीवाणं ओघे मिच्छादिगुणेवि ओघ आलाओ ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥ ७२२ ॥ जुम्मं ।

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदके त्रयः ।
तेषां स्थूलेतरयोरपि प्रत्येके तद्द्विभेदेऽपि ॥ ७२१ ॥
त्रसजीवानामोघे मिथ्यात्वादिगुणेऽपि ओघ आलापः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः अपर्याप्तो भवत्यालापः ॥ ७२२ ॥

जी० प्र०—पृथ्व्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदेषु तद्बादरसूक्ष्मेषु च प्रत्येकवनस्पतौ तत्प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदयोश्च आलापत्रयमेव । त्रसजीवानां सामान्येन चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवदालापा भवंति विशेषाभावात् । पृथ्व्यादित्रसांतलब्ध्यपर्याप्तेषु एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥ ७२१-७२२ ॥ अथ योगमार्गणायामाह——

स० चं०—पृथ्वी अप तेज वायु नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोद इनके बादर सूक्ष्म भेद बहुरि प्रत्येक वनस्पती याके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेद इनि सबनिविषैं तीन तीन आलाप हैं। त्रस जीवनिके सामान्यकरि चौदह गुणस्थाननिविषैं, गुणस्थाननिविषैं कहे तैसैं ही आलाप हैं किछू विशेष नाहीं। पृथ्वी आदि त्रस पर्यंत जो लब्धि अपर्याप्त है ताकैं एक लब्धि अपर्याप्त ही आलाप है ॥ ७२१-७२२ ॥ आगैं योगमार्गणाविषैं कहै हैं—

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्णआलाओ ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो सगएक्कअपुण्णआलओ ॥७२३॥

एकादशयोगानां पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः।
मिश्रचतुष्कस्य पुनः स्वकैकापूर्णालापः ॥ ७२३ ॥

जी० प्र०—पर्याप्तिगतानां चतुर्मनश्चतुर्वागौदारिकवैक्रियिकाहारकैकादशयोगानां स्वस्वपूर्णालापो भवति यथा सत्यमनोयोगस्य सत्यमनःपर्याप्तालापः । मिश्रयोगचतुष्कस्य पुनः स्वस्वैकापर्याप्तालापो भवति । यथा औदारिकमिश्रस्य औदारिकापर्याप्तालापः ॥७२३॥ अथ शेषमार्गणासु आह—

स० चं०—पर्याप्त अवस्थाविषैं होंहिं ऐसैं च्यारि मन च्यारि वचन औदारिक वैक्रियिक आहारक इन ग्यारह योगनिकैं अपना अपना एक पर्याप्त आलाप ही है। जैसैं सत्य मनोयोगके सत्य मनःपर्याप्त आलाप है ऐसैं सबनिकैं जानना। बहुरि अवशेष रहे च्यारि मिश्र योग तिनकैं अपना अपना एक अपर्याप्त आलाप ही है। जैसैं औदारिक मिश्रके एक औदारिक मिश्र अपर्याप्त आलाप है । ऐसैं सबनिकैं जानना ॥ ७२३ ॥ आगैं अवशेष मार्गणाविषैं कहै हैं—

वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ।
णवरि य संढिच्छीणं णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥ ७२४ ॥

वेदादाहार इति च स्वगुणस्थानानामोघ आलाप :।
नवरि च षंढस्त्रीणां नास्ति हि आहारकानां द्विकं ॥ ७२४ ॥

जी० प्र०—वेदाद्याहारांतदशमार्गणासु स्वस्वगुणस्थानानामालापक्रमः सामान्यगुणस्थानवद्भवति किंतु भावषंढद्रव्यपुरुषे भावस्त्रीद्रव्यपुरुषे च प्रमत्तसंयते आहारकतन्मिश्रालापौ न। 'हत्थपमाणं पसच्छुदयं' इत्याहारकशरीरे प्रशस्तप्रकृतीनामेवोदयनियमात्। वेदानामनिवृत्तिकरणसवेदभागांतेषु क्रोधमानमायावादरलोभानां अवेदचतुर्भागांतेषु सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसांपराये। ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतविभंगानां द्वयोः, मतिश्रुतावधीनां नवसु, मनःपर्ययस्य सप्तसु, केवलज्ञानस्य द्वयोः, असंयमस्य चतुर्षु, देशसंयतस्य एकस्मिन्, सामायिकछेदोपस्थापनयोश्चतुर्षु, परिहारविशुद्धेर्द्वयोः, सूक्ष्मसांपरायस्य एकस्मिन्, यथाख्यातस्य चतुर्षु, चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः द्वादशसु, अवधिदर्शनस्य नवसु, केवलदर्शनस्य द्वयोः, कृष्णनीलकपोतानां चतुर्षु, तेजःपद्मयोः सप्तसु, शुक्लायास्त्रयोदशसु, भव्यमार्गणायां भव्यस्य चतुर्दशसु, अभव्यस्य एकस्मिन्, सम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वसासादनमिश्राणामेकैकस्मिन्, द्वितीयोपशमस्य अष्टसु, प्रथमोपशमवेदकयोश्चतुर्षु, क्षायिकस्य एकादशसु, संज्ञिनोर्द्वादशसु, असंज्ञिन एकस्मिन्, आहारकस्य त्रयोदशसु अनाहारकस्य पंचसु च गुणस्थानेषु सामान्यगुणस्थानोक्तक्रमेणालापः कर्तव्यः ॥ ७२४ ॥

स० चं०—वेदमार्गणातैं लगाइ आहारमार्गणा पर्यंत दश मार्गणानिविषैं अपना अपना गुणस्थाननिका आलापनिका अनुक्रम गुणस्थाननिविषैं कहे तैसैं ही जानना। इतना विशेष है जो भावनपुंसक वा स्त्री होइ अर द्रव्यपुरुष होइ ऐसे जीवके आहारक आहारकमिश्र आलाप नाहीं है जातैं आहारक शरीरविषैं प्रशस्त प्रकृतिनिका ही उदय है। तहां वेदनिके अनिवृति करणका सवेदभाग पर्यंत गुणस्थान है। क्रोध मान माया बादर लोभ इनकैं अनिवृत्ति करणके वेदरहित च्यारि भाग तहां पर्यंत क्रमतैं गुणस्थान हैं। सूक्ष्म लोभके सूक्ष्म सांपराय ही है। कुमति कुश्रुत विभंग इनिकैं दोय गुणस्थान हैं। माति श्रुत अवधिके नव है। मनः पर्ययके सात हैं। केवल ज्ञानके दोय हैं। असंयमके च्यारि हैं। देश संयमकैं एक है। सामायिक छेदोपस्थापनाकैं च्यारि हैं। परिहार विशुद्धिकैं दोय हैं।

सूक्ष्म सांपरायकैं एक है। यथाख्यात चारित्रकैं च्यारि हैं। चक्षु अचक्षु दर्शनके बारह हैं। अवधि दर्शनके नव हैं। केवल दर्शनके दोय हैं। कृष्ण नील कपोत लेश्याके च्यारि हैं। पीत पद्मके सात हैं। शुक्लके तेरह हैं। भव्यके चौदह हैं। अभव्यकै एक है। मिथ्यात्व सासादन मिश्रके एक एक है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकैं आठ हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदककैं च्यारि हैं। क्षायिकके ग्यारह हैं। संज्ञीके बारह हैं। असंज्ञीकैं एक है। आहारककै तेरह हैं। अनाहारककैं पांच हैं। ऐसै ए गुणस्थान कहे तिन गुणस्थाननिविषैं आलाप मूलमें जैसैं सामान्य गुणस्थाननिविषैं अनुक्रम करि आलाप कहे थे तैसैं ही जानने ॥ ७२४ ॥

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥ ७२५ ॥
भव्वा सम्मत्तावि य सण्णी आहारगा य उवजोगा।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदायं॥ ७२६ ॥ जुम्मं।

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाः गतींद्रियाणि कायाः।
योगा वेदकषायाः ज्ञानयमाः दर्शनानि लेश्याः ॥ ७२५ ॥
भव्याः सम्यक्त्वान्यपि च संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगाः।
योग्याः प्ररूपितव्या ओघादेशयोः समुदायं ॥ ७२६ ॥ युगलं।

जी० प्र—गुणस्थानानि चतुर्दश, मूलजीवसमासाः पर्याप्ताः सप्त। अपर्याप्ताः सप्त, संज्ञिनः पर्याप्तयः षट् अपर्याप्तयः षट्। असंज्ञिनो विकलत्रयस्य च पर्याप्तयः पंच अपर्याप्तयः पंच। एकेंद्रियस्य पर्याप्तयः चतस्रः अपर्याप्तयः चतस्रः। प्राणाः संज्ञिनो दश तदपर्याप्तस्य सप्त असंज्ञिनः नव तदपर्याप्तस्य सप्त, चतुरिंद्रियस्य अष्टौ तदपर्याप्तस्य षट्, त्रींद्रियस्य सप्त तदपर्याप्तस्य पंच, द्वींद्रियस्य षट् तदपर्याप्तस्य चत्वारः, एकेंद्रियस्य चत्वारः तदपर्याप्तस्य

त्रयः। सयोगकेवलिनः चत्वारः वाक्कायायुरुच्छ्वासनिश्वासाख्याः। तस्यैव पुनः मिश्रकायायुर्वा, अयोगस्य आयुर्नामैकः। संज्ञाश्चतस्रः, गतयः चतस्रः, इन्द्रियाणि पंच, कायाः षट्, योगाः पर्याप्ता एकादश, अपर्याप्ताश्चत्वारः, वेदाः त्रयः, कषायाश्चत्वारः, ज्ञानानि अष्टौ, संयमाः सप्त, दर्शनानि चत्वारि, लेश्याः षट्, भव्यद्वयं, सम्यक्त्वानि षट्, संज्ञिद्वयं आहारद्वयं उपयोगा-द्वादश एते सर्वे समुच्चयं गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च यथायोग्यं प्ररूपितव्याः ॥ ७२५–७२६ ॥ जीवसमासेषु विशेषमाह—

स० चं–गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह, तहां पर्याप्त सात, अपर्याप्त सात, पर्याप्ति छह, तहां संज्ञी पंचेंद्रियके पर्याप्ति अवस्थाविषैं पर्याप्ति अवस्था संबंधी छह अर अपर्याप्ति अवस्था विषैं अपर्याप्त संबंधी छह, असंज्ञी वा विकलत्रयके पर्याप्ति अपर्याप्ति संबंधी पांच पांच, एकेंद्रीकैं च्यारि च्यारि जानने।

प्राण संज्ञी पंचेंद्रियकैं दश, तीहि अपर्याप्तके सात, असंज्ञी पंचेंद्रीके नव, तीहि अपर्याप्तके सात, चौइंद्रीके आठ, तीहिं अपर्याप्तके छह, तेइंद्रीके सात, तीहिं अपर्याप्तके पांच, बेइंद्रीके छह, तीहिं अपर्याप्तके च्यारि, एकेंद्रियके च्यारि, तीहि अपर्याप्तके तीन हैं। सयोग केवलीकैं वचन काय उस्वास आयु ए च्यारि प्राण हैं। तिसहीकैं वचनबिना तीन हो हैं। कायबल विना दोय होय हैं। अयोगीकैं एक आयु प्राण है—

बहुरि संज्ञा च्यारि गति च्यारि इंद्रिय पांच काय छह योग पंद्रह तिनमें पर्याप्त अवस्था संबंधी ग्यारह, अपर्याप्त अवस्था संबंधी तीन मिश्र अर एक कार्माण ए च्यारि हैं। वेद तीन कषाय च्यारि ज्ञान आठ संयम सात दर्शन च्यारि लेश्या छह भव्य दोय सम्यक्त्व छह संज्ञी दोय आहार दोय उपयोग बारह ए सर्व समुच्चय गुणस्थान वा मार्गणा स्थाननिविषैं यथा योग्य प्ररूपण करने ॥ ७२५ ॥ जीव समासविषैं विशेष कहैं हैं—

ओघे आदेसे वा सण्णीपज्जंतगा हवे जत्थ।
तत्थ य उणवीसंता इगिबितिगुणिदा हवे ठाणा ॥ ७२७ ॥

ओघे आदेशे वा संज्ञिपर्यंतका भवेयुर्यत्र।
तत्र चैकोनत्रिंशांता एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः स्थानानि ॥ ७२७ ॥

श्री० प्र०—सामन्ये विशेषे वा संज्ञिपर्यंता मूलजीवसमासाः यत्र निरूप्यं ते तत्र एकान्नविंशत्यंता उत्तरजीवसमासस्थानविकल्पा एकद्वित्रिगुणिताः संतः सर्वजीवसमासस्थानविकल्पा भवंति ।

सा १ त्र १ स्था १ ए १ वि १ सं १ प १ वि १ अ १ सं १ ए १ वि १ ति १ च १ पं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ त्र १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ अ १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ पं १। पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ अ १ सं १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ त्र १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ पं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ पं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र २ वि १ ति १ च १ अ १ सं १। १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९। गुणकारः सामान्यत एकः १। युतिः १९०। २ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ ३४ ३६ ३८ गुणकारः २ युतिः ३८० ३ ६ ९ १२ १५ १८ २१ २४ २७ ३० ३३ ३६ ३९ ४२ ४५ ४८ ५१ ५४ ५७ गुणकारः ३। युतिः ५७० ॥ ७२७ ॥ इतोऽग्रे गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च ते गुणजीवेत्यादिर्विंशतिभेदा योज्यंते तद्यथा—

स० चं०—गुणस्थान वा मार्गणा स्थानविषैं जहां संज्ञी पंचेंद्री पर्यंत मूल चौदह जीव समास निरूपण करिए तहां उत्तर जीवसमास एकनैं आदि देकरि उगणीस पर्यंत एक सामान्य करि, दोय पर्याप्त अपर्याप्त करि, तीन पर्याप्त अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त करि गुणैं एकनैं आदि देकरि उगणीस पर्यंत वा दोयनैं आदि देकरि अठतीस पर्यंत वा तीननैं आदि देकरि सत्तावन पर्यंत जीवसमासके भेद हैं ते सर्व भेद तहां जानने । सामान्य जीवसमास एक त्रस स्थावर भेदतैं दोय इत्यादि सर्वभेद जीव समास अधिकारविषैं कहे हैं सो जानने। इनिकौं एक दोय तीनकरि गुणैं क्रमतैं एक दोय तीन आदि उगणीस अठतीस सत्तावन पर्यंत भेद हो हैं ॥ ७२६ ॥ इहांतैं आगैं गुणस्थान मार्गणाविषैं गुणस्थान जीव समास इत्यादि बीस भेद जोडिए है सो कहिए है—

वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयउणसमत्थं ।

णमिऊण गोयममहं सिद्धंतालावमणुवोच्छं ॥ ७२८ ॥

वीरमुखकमलान्तर्गतसकलश्रुतग्रहणप्रकटनसमर्थं ।
नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्ये ॥ ७२८ ॥

जी० प्र०—तत्र गुणस्थानेषु यथा तावच्चतुर्दशगुणस्थानजीवाः तदतीताश्च संति । चतुर्दशजीवसमासास्तदतीताश्च संति । षट् षट् पंचचतुश्चतुः पर्याप्त्यपर्याप्तिजीवाः तदतीताश्च संति । दशसप्तनवसप्ताष्टषट्सप्तपंचषट्चतुश्चतुस्त्रिचतुर्द्व्येकप्राणाः तदतीताश्च संति । चतुःसंज्ञाः तदतीताश्च संति । चतुर्गतिकाः सिद्धाश्च संति । पंचजातयः तदतीताश्च संति । षट्कायिकास्तदतीताश्च संति । पंचदशयोगाः अयोगाश्च संति । त्रिवेदाः तदतीताश्च संति । चतुःकषायाः अकषायाश्च संति । अष्टज्ञानाः संति । सप्तसंयमास्तदतीताश्च संति । चतुर्दर्शनाः संति । द्रव्यभावषट्लेश्याः अलेश्याश्च संति । भव्यसिद्धाः अभव्यसिद्धाः अतीतद्वयाश्च संति । षट्सम्यक्त्वाश्च संति । संज्ञिनोऽसंज्ञिनोऽतीतद्वयाश्च संति । आहारिणोऽनाहारिणश्च संति । साकारोपयोगाः अनाकारोपयोगाः युगपदुभयोपयोगाश्च संति । अथ पर्याप्तिविशिष्टगुणस्थानालाप उच्यते—तत्र चतुर्दशगुणस्थानिनः संति न च तदतीताः पर्याप्तिषु तदालापासंभवात्—

स० चं०—वर्धमान स्वामीके मुख कमलतैं निकस्या ऐसा सकल शास्त्र महागंभीर ताके प्रकट करनेकों समर्थ ऐसा सिद्धपर्यंत आलाप सो श्रीगौतम स्वामीकों नमस्कार करि मैं कहो हो—

तहां सामान्य गुणस्थान रचनाविषै जैसैं चौदह गुणस्थानवर्ती जीव हैं। गुणस्थान रहित सिद्ध हैं। चौदह जीवसमास युक्त जीव है । तिनकरि रहित जीव हैं । छह छह पांच पांच च्यारि च्यारि पर्याप्ति अपर्याप्तियुक्त जीव हैं। तिनकरि रहित जीव हैं। दश सात नव सात आठ छह सात पांच छह च्यारि च्यारि तीन च्यारि दोय एक प्राणके धारी जीव हैं। तिनकरि रहित जीव हैं। पंद्रह योग युक्त जीव हैं। अयोगी जीव हैं । तीन वेदयुक्त जीव हैं। तिनकरि रहित जीव हैं। च्यारि कषाय युक्त जीव हैं। तिनकरि रहित जीव हैं। आठ ज्ञानयुक्त जीव हैं। ज्ञान रहित जीव नाहीं। सप्तसंयम युक्त जीव हैं। तिनकरि रहित जीव हैं। च्यारि दर्शन युक्त जीव हैं तिनकरि रहित जीव नाहीं। द्रव्य भाव छह लेश्यायुक्त जीव हैं। लेश्या रहित जीव हैं। भव्य वा अभव्य जीव हैं। दोऊ रहित जीव हैं। छह सम्यक्त्व युक्त जीव हैं। सम्यक्त्व रहित नाही । संज्ञी वा असंज्ञी जीव हैं। दोऊ रहित जीव

हैं। आहारी जीव हैं। अनाहारी जीव है। दोऊ रहित नाहीं। साकारोपयोग वा अनाकारोपयोग वा युगपत् दोऊ उपयोगयुक्त जीव हैं। उपयोग रहित जीव नाहीं हैं। ऐसैं अन्यत्र यथा संभव जानना। अथ गुणस्थान वा मार्गणास्थाननिविषैं यथायोग्य वीस प्ररूपणा निरूपणा कीजिए है—

सो यंत्रनिकरि विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थानका आलापविषैं जो जो प्ररूपणा पाइए सो सो लिखिए हैं—तहां यंत्रनिविषैं ऐसी सहनानी जाननी। पहिलैं तौ एक बडा कोठा तिसविषैं तौ जिस आलापविषैं वीस प्ररूपणा लगाईं तिसका नाम लिखिए है। बहुरि तिस कोठेके आगैं आगैं बरोबरि वीस कोठे तिनविषैं प्रथमादि कोठेतैं लगाइ अनुक्रमतैं गुणस्थान जीवसमास पर्याप्ति प्राण संज्ञी गति इंद्रिय काय योग वेद कषाय ज्ञान संयम दर्शन लेश्या भव्य सम्यक्त्व संज्ञी आहार उपयोग ए वीस प्ररूपणा जो जो पाइए सो सो लिखिए है। तिनविषैं गुणस्थानादिकका नाम नाहीं लिखिए है तथापि पहिला कोठाविषैं गुणस्थान दूसराविषैं जीवसमास तीसराविषैं पर्याप्ति इत्यादि बीसवां कोठाविषैं उपयोग पर्यंत जानने। तहां तीनि कोठेनिविषैं जहां जिस प्ररूपणाका जितना प्रमाण होइ तितनेहीका अंक लिख्या होइ तहां तौ सो प्ररूपणा सर्व जाननी। जैसैं पहिले कोठेमें चौदहका अंक जहां लिख्या होइ तहां सर्व गुणस्थान जानने। दूसरा कोठेविषैं जहां चौदहका अंक लिख्या होइ तहां सर्व जीवसमास जानने ऐसैं ही तृतीयादि कोठेनिविषैं जहां छह दश च्यारि च्यारि छह पंद्रह तीन च्यारि आठ सात च्यारि छह दोय छह दोय वारहके अंक लिखे होंइ तहां अपने अपने कोठेनिविषैं सो सो प्ररूपणा सर्व जाननी। बहुरि जहां प्ररूपणाका अभाव होइ तहां विंदी लिखिए है जैसैं पहिले कोठेविषैं जहां विंदी लिखी होइ तहां गुणस्थानका अभाव जानना। दूसरा कोठाविषैं जहां विंदी लिखी होइ तहां जीवसमासका अभाव जानना। ऐसैं अन्यत्र जानना। बहुरि जहां प्ररूपणाविषैं केतेक भेद पाइए तहां अपने अपने कोठानिविषैं जितने भेद पाइए तितनेका अंक लिखिए है। बहुरि तिन भेदनिके नाम जाननेके अर्थि नामका पहिला अक्षर वा पहिले दोय आदि अक्षर वा दोय विशेषण जाननेके अर्थि दोऊ विशेषणनिके आदिके दोय अक्षर वा तिन अक्षरनिके आगैं अपनी संख्याके अंक लिखिए है सोई कहिए है—

जितने गुणस्थान पाइए तितनेका अंक पहिले कोठेमें लिखिए है तिस अंकके नीचैं तिन गुणस्थाननिका नाम जाननेके अर्थि तिनके नामनिके आदि अक्षर लिखिए है सो आदि अक्षरकी सहनानीतैं सर्व नाम जानि लेना। तहां मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननिके नामकी ऐसी सहनानी जाननी। मि। सा। मिश्र। अवि। देश। प्र। अप्र। अपू। अनि। सू। उ। क्षी। स। अ। बहुरि जहां आदिके ऐसा लिख्या होइ तहां मिथ्यादृष्टि आदि जितने लिखे होंइ तितने गुणस्थान जानने। बहुरि ऐसैं ही दूसरा कोठाविषैं जीवसमास सो जीवसमास दोयप्रकार पर्याप्त वा अपर्याप्त तहां सहनानी ऐसी प। अ। बहुरि तहां सूक्ष्म बादर बेंद्री तेंद्री चौंद्री असंज्ञी संज्ञीकी सहनानी ऐसी सू। बा। बें। तें। चौं। अ। सं। तहां सूक्ष्मके पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ होंइ तौ सहनानी ऐसी सू २ पर्याप्त ही होइ तौ सहनानी ऐसी सू प १ अपर्याप्त ही होइ तौ ऐसी-सूअ १ संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्तकी ऐसी सं २ पर्याप्तकी ऐसी सं प १ संज्ञी अपर्याप्तकी ऐसी सं अ १ सहनानी है ऐसैं ही औरनिकी जाननी। बहुरि जहां अपर्याप्त ही जीव समास होइ तहां 'अपर्याप्त' ऐसा लिखिए है। जहां पर्याप्त ही होइ तहां 'पर्याप्त' ऐसा लिखिए है बहुरि प्रमत्तविषैं आहारक अपेक्षा सयोगीविषैं केवलसमुद्घात अपेक्षा पर्याप्त अपर्याप्त जीवसमास जानने। बहुरि कायमार्गणाकी रचनाविषैं जहां सत्तावन अठ्याणवै च्यारिसै छह जीवसमास कहे हैं ते यथासंभव पर्याप्त अपर्याप्त सामान्य आलापविषैं जानिलेने। बहुरि वनस्पती रचनाविषैं प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक बादर सूक्ष्म नित्य इतर निगोदके पर्याप्त अपर्याप्तकी अपेक्षा यथासंभव जीवसमास बारहनैं आदि देकरि जानने। बहुरि तीसरा कोठाविषैं पर्याप्त सो पर्याप्ति जितनी पाइए तिनके अंक ही लिखिए है नाम नाहीं लिखिए है तहां ऐसा जानना छह तौ संज्ञी पंचेंद्रीके पंच असंज्ञी वा विकलत्रयके च्यारि एकेंद्रीके जानने। ते पर्याप्त आलापविषैं तौ पर्याप्त जानने। अपर्याप्त आलापविषैं अपर्याप्त जानने। सामान्य आलापविषैं ते दोय दोयबार जहां लिखे होंहि तहां पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ जानने। बहुरि चौथा कोठाविषैं प्राण ते प्राण जितने पाइए है तिनके अंक ही लिखिए हैं नाम नाहीं लिखिए है तहां ऐसा जानना—

पर्याप्त आलापविषैं तौ दश संज्ञीके नव असंज्ञीके आठ चौंद्रीके सात तेंद्रीके छह बेंद्रीके च्यारि एकेंद्रीके, ब-

हुरि च्यारि सयोगीके एक अयोगीका यथासंभव जानने। बहुरि अपर्याप्त आलापविषैं सात संज्ञीके, सात असंज्ञीके छह चौंद्रीके पांच तेंद्रीके च्यारि वेंद्रीके तीन एकेंद्री बहुरि दोय सयोगीके यथासभव जाननें। बहुरि जहां सामान्य आलापविषैं ते पूर्वोक्त दोऊ लिखिए तहां पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ जानने। बहुरि पांचवां कोठाविषैं संज्ञा तहां आहारादिककी ऐसी सहनानी है आ। भ। मै। प। बहुरि छठा कोठाविषैं गति तहां नरकादिककी ऐसी सहनानी है न। ति। म। दे। बहुरि सातवां कोठाविषैं इंद्रिय तहां एकेंद्रियादिककी ऐसी सहनानी हे ए। वें। तें। चौं। पं। वहुरि आठवां कोठाविषैं काय सो पृथ्वी आदिकी ऐसी पृ। अ। ते। वा। व। बहुरि पांचो ही स्थावरनिकी ऐसी—स्था ५। बहुरि त्रसकी ऐसी-त्र सहनानी है। बहुरि नवमां कोठाविषैं योग तहां मनके च्यारि तिनकी ऐसी म ४। वचनके च्यारि तिनकी ऐसी व ४ कायकेविषैं औदारिकादिकानिकी ऐसी औ। औ मि। वै। वै मि। आ। आ मि। का। अथवा औदारिक औदारिकमिश्र इनि दोऊनिकी ऐसी-औ २। वैक्रियिक द्विककी ऐसी वै २। आहारक द्विककी ऐसी आ २ बहुरि सयोगीके सत्य अनुभय मन वचन पाइए तिनकी ऐसी म २। व २। बहुरि वेंद्रियादिकके अनुभय वचन पाइए ताकी ऐसी-अनु व १ सहनानी है। बहुरि दशवां कोठाविषै वेद तहां नपुंसकादिककी ऐसी-न। पुं। स्त्री सहनानी है। बहुरि ग्यारहवां कोठाविषैं कषाय तहां क्रोधादिककी ऐसी क्रो। मा। माया। लो सहनानी है। बहुरि वारह्वां कोठाविषैं ज्ञान तहां कुमति कुश्रुत विभंगकी ऐसी कुम। कुश्रु। वि। अथवा इनि तीनोंकी ऐसी-कुज्ञान ३। बहुरि मतिज्ञानादिककी ऐसी-म। श्रु। अ। म। के। अथवा मति श्रुत अवधि तीनोंकी ऐसी-मत्यादि ३। मति श्रुत अवधि मनःपर्ययकी ऐसी मत्यादि ४ सहनानी है। बहुरि तेरह्वां कोठाविषैं संयम तहां संयमादिककी ऐसी अ। दे। सा। छे। प। सू। य। सहनानी है। बहुरि चौदह्वां कोठाविषैं दर्शन तहां चक्षु आदिकी ऐसी च। अच। अव। के। अथवा चक्षु अचक्षु अवधि तीनोंकी ऐसी चक्षु आदि ३ सहनानी है। बहुरि पंद्रह्वां कोठाविषैं लेश्या तहां द्रव्य लेश्याकी सहनानी ऐसी-द्र। याके आगैं जितनी द्रव्य लेश्या पाइए तितनेका अंक जानना। बहुरि भावलेश्याकी सहनानी ऐसी-भा। याके आगैं जितनी भावलेश्या पाइए

तितनेका अंक जानना। दोऊही जागै कृष्णादिक नामनिकी ऐसी कृ। नी। क। इनि तीनोंकी ऐसी—अशुभ ३। तेज आदिककी ऐसी—ते। प। शु। इनि तीनोंकी ऐसी शुभ ३। सहनानी जाननी। बहुरि सोलहवां कोठाविषैं भव्य सो भव्य अभव्यकी ऐसी—भ। अ। सहनानी है। सतरह्वां कोठाविषैं सम्यक्त्व तहां मिथ्यादिककी ऐसी—मि। सा। मिश्र। उ। वे। क्षा। सहनानी है। बहुरि अठारह्वां कोठाविषैं संज्ञी, तहां संज्ञी असंज्ञीकी ऐसी स। अ। सहनानी है। बहुरि उगणीसवां कोठाविषैं आहार तहां आहार अनाहारकी ऐसी आ। अन। सहनानी है। बहुरि वीसवां कोठाविषैं उपयोग तहां ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगकी ऐसी ज्ञा। द। सहनानी है। ऐसैं इन सहनानीनिकरि यंत्रनिविषैं कहिए है अर्थ सो नीकैं जानना। बहुरि जहां गुणस्थानवत् वा मूलौघवत् ऐसा कह्या होय गुणस्थान वा सिद्ध रचनाविषैं जैसैं प्ररूपणा होइ तैसैं यथासंभव जानना। बहुरि और भी जहां जिसवत् कह्या होइ तहां ताके समान प्ररूपणा जानिलेना। तहां जो किछू जिस कोठाविषैं विशेष कह्या होइ सो विशेष जानि लेना। बहुरि जहां स्वकीय ऐसा कह्या होइ तहां जिसका आलाप होइ तिसविषैं संभवती प्ररूपणा वा जिसका आलाप कीजिए सो ही प्ररूपणा जानि लेना। बहुरि इतना कथन जानि लेना—

सव्वेसिं सुहमाणं काऊदा सव्वविग्गहे सुक्का।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ॥ १ ॥

इस सूत्रकरि सर्व पृथ्वीकायादिक सूक्ष्म जीवनिकैं द्रव्यलेश्या कपोत है। विग्रहगति संबंधी कार्माणविषैं शुक्ल है मिश्र शरीरविषैं कपोत है। ऐसैं अपर्याप्त आलापनिविषैं द्रव्यलेश्या कपोत अर शुक्ल ही जानिलेना। बहुरि द्वितीयादि पृथ्वीका रचनाविषैं लेश्या अपनी अपनी पृथ्वीविषैं संभवती स्वकीय जाननी। बहुरि मनुष्य रचनाविषैं प्रमत्तादिकविषैं तीन भेद भाव अपेक्षा हैं, द्रव्य अपेक्षा एक पुरुषवेद ही है। बहुरि सप्तमादि गुणस्थाननिविषैं आहार संज्ञाका अभाव साता असाता वेदनीयकी उदीरणाका अभावतैं जानना। बहुरि स्त्री नपुंसक वेदका उदय होतैं आहारकयोग मनःपर्ययज्ञान परिहारविशुद्धि संयम न होइ ऐसा जानना। बहुरि श्रेणीतैं उतरि द्वितीयो-

पशम सम्यग्दृष्टि चतुर्थादि गुणस्थानकनितैं मरि देव होइ तीहिं अपेक्षा वैमानिक देवनिकैं अपर्याप्तकालविषैं उपशम सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि एकेंद्री जीवनिकैं पर्याप्तनामकर्मके उदयतैं पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था है। बहुरि अपर्याप्त नामकर्मके उदयतैं लब्धि अपर्याप्तक हो है ऐसा जानना । बहुरि कायमार्गणा रचनाविषैं पर्याप्त बादर पृथ्वी बनस्पती त्रसकैं द्रव्यलेश्या छहो हैं। अपकैं शुक्ल तेजकैं पीत वायुकैं हरित वा गोमूत्र वा अव्यक्त वर्णरूप द्रव्य लेश्या स्वकीय जानना। बहुरि साधारण शरीर जाननेके अर्थि गाथा—

पुढवी आदि चउण्हं केवलि आहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदाहु सव्वे परिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥ १ ॥

पृथ्वी आदि च्यारि अर केवली आहारक देवनारकके शरीर निगोद रहित अप्रतिष्ठित हैं। अवशेष सर्व निगोद सहित अप्रतिष्ठित हैं ऐसा साधारण रचनाविषैं स्वरूप जानना। बहुरि सासादन सम्यग्दृष्टि मरि नरक न जाय तातैं नारकी अपर्याप्त सासादन न होइ। बहुरि पंचमी आदि पृथ्वीके आये अपर्याप्त मनुष्यनिके नीललेश्या होतैं वेदक सम्यक्त्व हो है तातैं कृष्ण नील लेश्याकी रचनाविषैं अपर्याप्त आलापविषैं मनुष्यगति कहिए है। बहुरि पर्याप्तविषैं कृष्णलेश्या नाहीं अपर्याप्तमें मिश्रगुणस्थान नाहीं तातैं कृष्णलेश्याका मिश्रगुणस्थानविषैं देव विना तीन गति हैं इत्यादिक यथासंभव अर्थ जानि यंत्रनिकरि कहिए है अर्थ सो जानना। अथ यंत्र रचना—

पर्याप्तगुणस्थानिनां गु १४। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ ४ १। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले $\frac{६}{भा ६}$। भ २। स ६। सं २। आ १। उ १२। अपर्याप्तगुणस्थानिनां गु ५ मि सा अ प्र स। जी ७ अ। प ६ $\frac{५}{}$। ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ४ औमि वैमि आमि कार्म। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु कु म श्रु अ के। सं ४ अ सा छे यथा। द ४ ले $\frac{२ क शु}{भा ६}$।

मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा।

एदेसु एक्कपगदे णत्थित्ति असेसयं जाणे ॥ ७२९ ॥

सर्वेषां सूक्ष्माणां कापोताः सर्वविग्रहे शुक्लाः ।
सर्वोमिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥ ७२९ ॥

जी० म०—भ २ । स ६ । मिश्रं न हि, सं २ । आ २ उ १० । विभंगमनःपर्ययौ नहि, सामान्यमिथ्यादृष्टीनां । गु १ । जी १४ । प ६ । ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ आहारकद्वयं नहि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द १ । ले ६ भा ६ । भ २ स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां गु १ । जी ७ । प । ६ ५ ४ प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ ले २ । क । शु भा ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सासा । जी २ प । अ । प ६ । ६ । प्रा । १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ । यो १३ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु, कु, वि । सं १ अ । द २ ले ६ भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सासा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ । वा ४ । औका १ । वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ । सासा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां गु १ मिश्र । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ वा ४ औका १ वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ १ । स १

मिश्ररुचि । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां-गु १ असं । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ म ४ वा ४ औ २ वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ ।
भा ६

आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां-गु १ अ । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औका १, वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्या-
भा ६

प्तानां-गु १ असं । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ । औमि वैमि का । वे २ न पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशसंयतानां-गु
भा ६

१ देश । जी १ प । प ६ प । प्रा १० प । सं ४ । ग २ ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । म ४, वा ४, औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ देश । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ ६ ।
भा ६

प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औका १, आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां-गु १ अप्र । जी १ । प ६ प । प्रा १० ।
भा ३

सं ३-भ मै प । कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् सदसद्वेद्यानुदीरणात् अत्र आहारसंज्ञा नहि । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ । औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३

अपूर्वकरणानां—गु १ अपू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स २ । उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागवर्तिनां—गु १ अनिवृत्ति । जी १ । प ६ ।
भा १

प्रा १० । सं २ मै प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं
भा १

१ । आ १ । उ ७ । तद्द्वितीयभागवर्तिनां—गु १ अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ ।

ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागवर्तिनां–गु १ अनि । जी १ ।
भा १
प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा ।
भा १
सं १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागवर्तिनां–गु १ अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ ।
ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचमभागवर्तिनां–गु १ अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० ।
भा १
सं १ प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ ।
भा १
आ १ । उ ७ । सूक्ष्मसांपरायाणां—गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ । ज्ञा ४ ।
सं १ सू । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । उपशांतकषायाणां–गु १ उप । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० ।
भा १
ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथा । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ । उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा १
क्षीणकषायाणां–गु १ क्षी । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथा । द ३ ।
ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । सयोगकेवलिनां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा ४ २ । सं ० ग १ म । इं १ । का १ ।
भा १
यो ७ म २ वा २ औ २ का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ यथा । द १ के । ले ६ । भ० । स १ क्षा । सं० । आ २ । उ २ ।
भा १
अयोगकेवलिनां–गु १ अयो । जी १ । प ६ । प्रा १ । आयुर्य । सं ० । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं
१ यथा । द १ के । ले ६ । भ ० । स १ क्षा । सं ० । आ १ अनाहार । उ २ । गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठिनां–गु० जी ० । प ० । प्रा ० ।
भा ०
सं ० । ग ० । इं ० । का ० । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । स ० । द १ के । ले ० । भ ० । स १ क्षा । सं ० । आ १ अनाहार । उ २ ।

आदेशे गत्यनुवादे नारकाणां—गु ४ । जी २ प अ । प ६ । ६ प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ११ । म ४
वा ४ वै २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ कु, कु, वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ३ । पर्याप्तेषुपरि कृष्णलेश्या एकैव

अपर्याप्तकाले कपोतलेश्या विग्रहगतौ शुक्ललेश्या इति द्रव्यलेश्या त्रयं । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ६ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले १ कृ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां–गु २ । मि अ । जी १ । प ६
भा ३
अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु
भा ३
भ २ । स ३ मि वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृष्टीनां–गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । योग ११ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ३ । भ २ । स १ मि । सं १ ।
भा ३
आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ६ । म ४, वा ४, वैका १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ । कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ । भ २ । स १ मिथ्यारुचिः । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ मि । जी १
भा ३
अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ ले २ । कृ शु
भा ३
भ २ । स १ मिथ्यारुचि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां–गु १ सा । जी १ प प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ ।
योे ९ म ४, वा ४, वै का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ । भ १ । स १ सासादनरुचि । सं १ ।
भा ३
आ १ उ ५ । मिश्राणां—गु १ मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ मिश्राणि सं १ अ । द २ । ले १ कृ । भ १ । स १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ असंयतानां– गु १ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ।
भा ३
सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४, वा ४ वै २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ ले ३ कृ क शु
भा ३ अशुभ
भ १ । स ३ उ, वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ ।

वे १ पं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले १ कृ। भ १। स ३। उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तद्-
भा ३ अ

पर्याप्तानां—गु १। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २। वैमि का। वे १ पं। क ४। ज्ञा ३
म, श्रु, अ। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ १ स २ वे। क्षा। सं १। आ २। उ ६। घर्मानारकाणां—गु ४। जी २ प अ। प ६ ६।
भा ३ अशुभ

प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ११। म ४ वा ४ वै २ का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १
अ। द ३। ले ३ कृ क शु। भ २ स ६। सं १ आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु ४। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ न। इं १। का
भा १ क

१। यो ६। म ४ वा ४ वै का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ६। सं १ अ। द ३। ले १ कृ। भ २। स ६। सं १। आ १। उ ६। त-
भा १ क

दपर्याप्तानां—गु २ मि अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २ वैमि। का। वे १ पं। क ४। ज्ञा
५। कु कु म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ २। स ३ मि वे क्षा। सं १। आ २। उ ८। तन्मिथ्यादृशां—गु १ जी २। प ६ ६।
भा १ क

प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ११। म ४ वा ४ वै २ का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १
अ। द २। ले ३ कृ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ न। इं
भा १ क

१। का १। यो ६। म ४, वा ४। वै का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले १ कृ। भ २। स १ मिथ्या-
भा १ क

रुचिः। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २। वैमि का।
वे १। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १। सं १। आ २। उ ४ कु कु च अ। सासादनानां—गु १। जी
भा १ क

१। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ६। वे १। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले १ कृ। भ १। स १।
भा १ क

सं १। आ १। उ ५ कु कु वि च अ। मिश्राणां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४।

ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले १ कृ। भ १। स १। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ जी २। प६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं
भा १ क

१। का १। यो ११। वे १। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १। द ३। ले २ कृ क शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६। तत्प-
भा १ क

र्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले १ कृ। भ १। स ३
भा १ क

उ, वे, क्षा, सं १ आ १, उ ६ तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा ३, म
श्रु अ, सं १, द ३, ले २ क शु, भ १, स २ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६, द्वितीयादिपृथ्वीनारकाणां—गु ४, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १,
भा १ क

इं १, का १, यो ११, वे १, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १, द ३ च अ अ, ले ३ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण भावापेक्षया एका द्रव्यापेक्षया कृ क शु,
भा ३

भ २, स ५ उ वे मि सा मि, सं १, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्तानां—गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ का
१, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं १, द ३, ले १ कृ भ २, स ५ उ वे मि सा मि सं १, आ १, उ ९ म
भा १ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण

श्रु अ कु कु वि च अ अ, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा २ कुकु, सं
१, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४ कु कु च अ, तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग
भा १ स्वस्वयोग्या

१ न, इं १, का १, यो ११ म ४, वा, ४, वै २ का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ३ कृ क शु भ २ स १ मि सं १
भा १ स्वस्वयोग्य

आ २ १, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ कुकु वि, सं १, द २,
ले १ कृ, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, मि का, वे
भा १ स्वस्वयोग्या

१, क ४, ज्ञा २ कुकु, सं १, द २, ले २ क शु, भ २ स १ मि, सं १, आ २, उ ४, तत्सासादनानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग
भा १ स्वस्वयोग्या

१, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १, द २, ले १ कृ, भ २, स १, स, सं १, आ १, उ ५ तत्सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु
भा १ स्वस्वयोग्या

१, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १, मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, तदसंयतानां
भा १

गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १, अ, द ३, च अ अ। ले १ भ १ स २ उ वे,
भा १

सं १ आ १ उ ६ म श्रु अ च अ अ।

पंचविंशतितिर्यग्जु सामान्यानां— गु ५ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ । वे ३ । का ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं २ अ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ उ वे क्षा मि सा मि । सं २ । आ २ । उ ९ म श्रु अ कु कु वि च
भा ६

अ अ । तत्पर्याप्तानां— गु ५ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा
भा ६

७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो २ मिश्र का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ । अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु भ २ । स ४ मि सा क्षा वे । सं २ । आ २ । उ ८ । म श्रु अ कु कु च अ अ ।
भा ३ अशुभ

तन्मिथ्यादृष्टीनां— गु १ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ सं ४ । ग १ । इं ५ । का ६ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ ।
भा ६

तत्पर्याप्तानां गु १, जी ७, प ६ ५ ४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो ९, वे ३ । क ४ ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ,
भा ६

प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो २ मि का, वे ३, का ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २

च अ, ले २, क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ कु कु च अ, तत्सासादनानां—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०
भा ३ अशुभ
७, सं ४, ग १ ति, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४। ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु
भा ६
वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ पं, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ,
द २, ले ६, भ १, स १, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां गु १, जी १, प ६, प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ औ
भा ६
मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४, कु कु च अ।
भा ३ अशुभ
सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६
भा ६
भ १, स १, सं १, आ १, उ ५। असंयतानां—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११,
वे ३, क ४, ज्ञा ३, म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६. भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६, तत्पर्याप्तानां—
भा ६
गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १, द ३, ले ६,
भा ६
भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २,
वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ शु क, भ १, स २ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६
भा १ क
देशसंयतानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे,
द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे, सं १, आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ, पंचेंद्रियतिरश्चां गु ५, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ताप-
भा ३ शुभ
र्याप्ताः, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म
श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ६, उ वे क्षा मि सा मि, सं २, आ २, उ ९ म श्रु अ कु क वि च अ अ,
भा ६

तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २, प ६ ५, प्रा १० ९, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ६, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६ । भ २, स ६ उ वे क्षा मि सा मि, सं २, आ १, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तद्पर्याप्तानां—गु ३ मि सा
भा ६
अ, जी २, प ६ ५ अ, प्रा ७ ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु, सं १ आ, द ३ च अ अ । ले २ क शु, भ २, स ४ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ, मिथ्यादृशां—गु १, जी ४,
भा ३ अशुभ
प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १
भा ६
मि, सं २, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० ९, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २ स १ मि, सं २, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ जी २ सं अ, प सं ६
भा ६
अ ५, प्रा सं ७, अ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु
भा ३ अशुभ
भ २, स १, सं २, आ २, उ ४, सासादनानां—गु १, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १,
भा ६
जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं
भा ६
१, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६, प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १ त्र, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिश्राणां—गु १, जी १,
भा ३ अशु
प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मत्यादिमिश्रत्रयं, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १
भा ६
मिश्र, सं १, आ १, उ ५, मत्यादिमिश्रत्रयं चक्षुरचक्षुश्च। असंयतानां—गु १, जी २, प ६, अ ६, प्रा १०, अ प्रा ७, सं ४,

ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ म श्रु अ च अ अ ।
भा ६
तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६
भा ६
भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४ । ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ १ स २ क्षा वे, सं १, आ २, उ ६ म श्रु अ च अ अ, देशसंयतानां—
भा १ क
गु १, जी १, प ६, प्रा १० सं ४, ग १ ति, इं १, पं १, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६ भ १, स २ उ वे, सं १,
भा ३ शु
आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ, पंचेंद्रियतिर्यक्पर्याप्तानां-पंचेंद्रियतिर्यग्वद्वक्तव्यं ।

तिर्यग्योनिमतीनां—गु ५, जी ४ सञ्ज्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्तभेदः : प ६ ६ सं, ५ ५ अ सं, प्रा १० ७ संज्ञि ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्राः, सं २, आ
६
२, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० सं, ९ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३, ले ६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्राः, सं २,
६
आ १, उ ९ स ३ मि ३ द ३, तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ अ ५ अ, प्रा ७ अ, ७ अ, सं ४, ग १
सं अ सं अ
ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स २ मि सा,
भा ३ अ शु
सं २, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी ४ सञ्ज्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६ संज्ञि, ५ ५ असंज्ञि, प्रा १० ७ सं, ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ आ, द २, ले ६, भ २, स १ मिथ्यात्वं,
६
सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञि ५ असंज्ञि, प्रा १० सं, ९ असंज्ञि, सं

४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ भा ६, भ २, स १ मि, सं २,

आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञ्यपर्याप्तयः, ५ असंज्ञ्यपर्याप्तयः, प्रा ७ सं, ७ असंज्ञि, सं ४,
ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र, का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भा ३ अ शु, भ २, स १

मि, सं २, आ २, उ ४, कु कु च अ, सासादनानां—गु १ सा, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १ ति, इं १
पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६ ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु

१, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६ ६ भ १, स

१, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १। प ६। प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ स्त्री,
क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु भा ३ अशुभ, भ १, स १, सं १, आ २, उ ४, कु कु च अ, मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १ स

प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६ ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ

१ उ ५, असंतानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४ ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १
अ, द ३, ले ६ ६ भ १, स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६, संयतासंयतानां—गु १ दे, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १,

का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६ भा ३, भ १ स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६, तिर्यक्पंचेंद्रियलब्ध्यपर्या-

प्तानां—गु १ मि, जी २ स, अ, प ६ ५, प्रा ७ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मिश्र का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु।
सं १ अ, द २, ले २ क शु भा ३ अशुभ, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, चतुर्विधमनुष्येषु सामान्यानां—गु १४, जी २, प ६ ६, प्रा

१०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भा ६ भ २, स ६, सं

१, आ २, उ १२, तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा ८,
सं ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, सं १, आ २, उ १२, तदपर्याप्तानां—गु ५, मि सा अ प्र स, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं
भा ६
४, ग १, इं १, का १, यो ३, औमि आमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, सं ४ अ सा छे यथाख्यात, द ४,
ले २ क शु, भ २, स ४ मि सा वे क्षा, सं १ आ २, उ १० कु कु म श्रु अ के च अ अ के, तन्मिथ्यादृशां—गु १, जी २, प ६
भा ६
६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११ म ४ वा ४ औ २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २ च अ,
ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र,
६
यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ जी १, प ६
भा ६
अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु, भ २, स १
भा ३ अशुभ
मि, सं १, आ २, उ ४।

सासादनानां—गु १ सा। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ म। इ १ पं। का १० त्र। यो ११। वे ३। क ४ ज्ञा ३ कु कु
वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १, स १ सा, सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४, ग १ म,
भा ६
इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६, भ १। स १ सा। सं १, आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—
भा ६
गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २ मि का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १, द २, ले २ क शु, भ १. स १ सा. सं
भा ३ अशु
१, आ २. उ ४. सम्यग्मिथ्यादृशां-गु १ मि. जी १. प ६, प्रा १०. सं ४. ग १ म, इं १. का १. यो ९, वे ३. क ४. ज्ञा ३. स १. द २। ले ६, भ
भा ६
१ स १ मिश्र। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ असं। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११

वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ-द ३, ले ६ । भ १, स ३, सं १, आ २, उ ६, तत्पर्याप्तानां–गु १, जी १, प ६, प्रा १०,
६
सं ४, ग १, इं १ पं, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ म
६
श्रु अ च अ अ । तदपर्याप्तानां–गु १ अ । जी १, प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो २ मिं का । वे १ पुं । क ४ ।
ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु, भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २, उ ६ । संयतासंयतानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १०
भा ६
। सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रम-
भा ३ शुभ
त्तानां–गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ वा ४ औ १ आ २ । वे ३ द्रव्यपुंवेदिनः
भावापेक्षया त्रिवेदिनः इत्यर्थः । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ म श्रु अ म च अ अ । तत्पर्याप्तानां-गु १ प्र । जी १ प । प ६
भा ३ शुभ
प । प्रा १० प । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औ १ आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे
प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ म श्रु अ म च अ अ । तदपर्याप्तानां–गु १ । जी १ अ । प ६ अ ।
भा ३ शु
प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १ आ मि । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले १ क
भा ३ शु
भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ म श्रु अ च अ अ । अप्रमत्तानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ आहारसंज्ञा नहि साता
सातानुदीरणात् । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अ-
६
पूर्वकरणानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ
भा १
१ । स २ द्वितीयोपशमक्षायिकौ । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं २ मै प । ग १ ।
इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । द्वितीयभागे–गु १ । जी
भा १

१ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ
क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ मा
माया लो । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प-
रिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ मा लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचम-
भागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स
२ । सं १ । आ १ । उ ७ । सूक्ष्मसांपराये—गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो
। ज्ञा ४ । सं १ सू । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । उपशांतकषाये—गु १ उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १
। इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथाख्यातः । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । क्षीण-
कषाये गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथाख्यातः । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स १
क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । सयोगजिने—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा ४ २ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औ २
का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । स १ । द १ । ले ६ भा १ । भ १ । स १ । सं ० । आ २ । उ २ । अयोगिजिने—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ आयु-
ष्यं । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ । सं १ । द १ । ले ६ भा ० । भ १ । स १ । सं ० । आ १ अनाहारः । उ २ ।
पर्याप्तमनुष्याणां मूलौघो वक्तव्यः । मानुषीणां—गु १४ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो ११
शून्यं च । वे १ । क ४ शून्यं च । ज्ञा ७ म श्रु अ के कु कु वि । सं ६ अ दे सा छे सू य । द ४ च अ अ के । ले ६ ६ शून्यं च । भ २ । स ६ ।
सं १ शून्यं च । आ २ । उ ११ मनःपर्ययो नहि ।

१ भावक्षीणा ।

तत्पर्याप्तानां— गु १४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ शून्यं च । वे १ स्त्री शून्यं च । क ४ शून्यं च । ज्ञा ७ । सं ६ । द ४ । ले ६/६ शून्यं च । भ २ । स ६ । सं १ शून्यं च । आ २ । उ ११ । मनःपर्ययः स्त्रीवेदिषु नहि सं-क्लिष्टपरिणामित्वात् । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा सयोगः । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का शून्यं च । वे १ स्त्री । शून्यं च । क ४ । शून्यं च । ज्ञा ३ कु कु के । सं २ अ य । द ३ च अ के । ले २ क शु / भा ४ अ शु ३ शु १ । भ २ । स ३ मि सा क्षा । सं १ शून्यं च । आ २ । उ ६ कु कु के च अ के । मानुषीमिथ्यादृष्टीनां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयं नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६/६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६/६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ यो २ मि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु / ३ अशुभ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ । द २ । ले ६/६ भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तसासादनानां—गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६/६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ ।— ले २ क शु / भा ३ अशुभ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृष्टेः—गु १ मिश्रं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६/६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ ।

जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६/३ । भ १ । स ३ । सं
१ । आ १ । उ ६ । देशसंयतस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं
१ दे । द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो
भा ३ अशु
९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स्त्रीनपुंसकोदये आहारकर्द्धिमनःपर्ययपरिहारविशुद्ध्यो नहि सं २ सा छे, द ३ । ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा,
३
सं १, आ १, उ ६, अप्रमत्तस्य—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३ आहारसंज्ञा नहि, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री,
क ४, ज्ञा ३, सं २, द ३, ले ६ । भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, अपूर्वकरणानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३,
भा ३
ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६ भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १,
भा १
उ ६, अनिवृत्तेः प्रथमभागे—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं २ मै प, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३,
सं २ सा छे, द ३, ले ६ । भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६, द्वितीयभागे—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं १ परिग्रहः
भा १
ग १, इं १ ।, का १, यो ९, वे ०, क ४ । ज्ञा ३, सं २, द ३, ले ६ । भ १, स २ उ क्षा, सं १, आ १, उ ६,
भा १
तृतीयभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ । क ३ मा माया लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे ।
द ३ । ले ६ भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । चतुर्थभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परि । ग १ । इं १ । का १ । यो
भा १
९ । वे० । क २ मा लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे । द ३ ले ६ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । पंचमभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा
भा १
१० । सं १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ बा लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे । द ३ ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ
१

१ । उ ६ । सूक्ष्मसांपरायस्य—गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ सू लो । ज्ञा ३ । सं १ सू । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । उपशांतकषायस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं
भा १
१ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ । सं १ य । द ३ । ले ६ भ । १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । क्षीणकषायस्य गु १ । जी १ । प ६ ।
भा १
प्रा १० सं ० ग १ । इं १ । का १ यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ सं १ य । द ३ ले ६ । भ १ । स १ यथा । सं १ । आ १ । उ ६ । सयोगस्य—गु १ । जी २ । प ६ ।
भा १
६ । प्रा ४ २ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औ २ का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ य । द १ के । ले ६ । भ
भा १
१ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ २ के के । अयोगस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ आयुः । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ० । वे ० । क ० ।
ज्ञा १ के । सं १ । द १ ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं ० । आ १ अनाहार । उ २ के के । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ अ । प
भा ०
६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे १ पं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ ।
भा ३ अशुभ
स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । देवगतौ—गु ४ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ ।
वा ४ २ । का १ वै । वे २ स्त्री पुं । क ४ । ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ
भा ६
९ । म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे २ । क ४ ।
ज्ञा ६ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ अ । सं
भा ३
४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ उ वे क्षा मि सा ।
भा ६
सं १ । आ २ । उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ । मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ ।
वे २ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ ।
भा ६

म ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ उ
भा ३ शुभ
५ तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ ।
ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ कु कु च अ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ ।
भा ६
ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ ।
भा ६
तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ ।
३ शु
ल १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ ।
क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ क शु । भ १ । स १ सा । स १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृष्टां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० ।
६
सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंय-
भा ३
तानां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द
३ ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ ।
३
क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ ।
भा ३
ग १ । इं १ । यो २ मि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ भवनत्रयदेवानां—गु ४ ।
भा ३ शुभ
जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ५ उ वे मि
भा ४
सा मि । सं १ । आ २ । उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ ।

यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि । सं १ । द ३ च अ अ । ले ६ भ २ । स ५ उ वे मि सा मि । सं १ आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु २ नि सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स २ मि सा । सं १ । आ २ । उ ४ ।
भा ३ अशु

मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का
भा ४
१, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३ - सं १, द ३, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १,
१
प ६ ७, प्रा १० अ, सं ४, ग १, इं १, का १ यो २ मि का, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु भ २, स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ ।
भा ३ अशु
क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ ।
भा ४
ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु
भा १
१ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ . यो २ । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ च अ । ले २ क शु भ १ ।
स १ सा । सं १ आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ . वे २ . क ४ ।
भा ३ अशु
ज्ञा ४, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १ . आ १ . उ ५ . असंयतानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ .
भा १
इं १ . का १ . यो ९ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द ३ . ले ६, भ १ . स २ उ वे . सं १ . आ १ . उ ६ . सौधर्मैशानदेवानां—गु
भा १

४ . जी २ . प ६ . प्रा १० ७ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ११ , वे २ . क ४ . ज्ञा ६ सं १ . द ३ । ले ३ पीक शु, भ २ . स ६ . सं
भा १ ते
१ . आ २ . उ ६ . तत्पर्याप्तानां—गु ४ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ६ . वे २ . क ४ . ज्ञा ६ . सं
१ . द ३ ले १ ते । भ २ . स ६ . सं १ . आ १ . उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु ३ मि स अ . जी १ , प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ . इं १
भा १
का १ . यो २ . वे २ . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं १ . द ३ . ले २ । भ २ . स ५ उ वे क्षा मि सा , सं १ आ २ उ ८ म श्रु
भा १
अ कु कु च अ अ . मिथ्यादृष्टीनां—गु १ . जी २ . प ६ ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ११ . वे २ . क ४ .
ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले ३ , भ २ . स १ मि . सं १ , आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ .
भा १
इं १ का १ . यो ९ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले १ , भ २ . स १ मि . सं १ . आ १ . उ १ . तदपर्याप्तानां—गु १ . जी १ .
भा १
प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ , इं १ , का १ . यो २ . वे २ . क ४ . ज्ञा २ . सं १ . द २ . ले २ , भ २ . स १ मि , सं १ आ २ .
भा १
उ ४ . सासादनानां—गु १ . जी २ . प ६ . ६ . प्रा १० ७ . सं ४ . ग १ . इं १ , का १ . यो ११ . वे २ , क ४ . ज्ञा ३ . सं १ .
द २ . ले , ३ भ १ . स १ सा . सं १ , आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ सा . जी १ . प ६ . प्रा १० , सं ४ . ग १ , इं १ . का
भा १
१ . यो ६ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले १ , भ १ . स १ . स १ . आ १ . उ ५ तदपर्याप्तानां—गु १ . जी १ . प ६ अ . प्रा ७ अ .
१
सं ४ . ग १ इं १ . का १ . यो २ मि का . वे २ . क ४ . ज्ञा २ . सं १ . द २ . ले २ क शु , भ १ . स १ सा . सं १ , आ २ , उ ४ .
भा १
सम्यग्मिथ्यादृष्टां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ , इं १ . का १ , यो ६ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले १ ते , भ
१
१ . स १ मिश्रं . सं १ आ १ . उ ५ . असंयतानां—गु १ . जी २ . प ६ ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ११ . वे

३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द ३ , ले ३ ते क शु , भ १ स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ २ . उ ६ . तत्पर्याप्तानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० .
भा १ ते

सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ९ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ , सं १ . द ३ . ले १ , भ १ . स ३ . सं १ . आ १ . उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु
भा १

१ जी १ , प ६ अ . प्रा ७ . अ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ , यो २ मि का . वे १ पुं , क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द ३ . ले २ क शु भ १ .
भा १ ते

स ३ सं १ , आ २ . उ ६ . वैमानिकेषु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागवर्जितोपशमश्रेण्यारोहकावरोहकाणां तदवतीर्णचतुरसंयतादीनां च तत्सम्यक्त्वमृतानां तत्तल्लेश्यया तत्रोत्पत्तेरपर्याप्तकाले संभवति . असंयतस्त्रीणामेकः पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टीनां तत्रानुत्पत्तेः . पर्याप्तकर्मभूमिमनुष्याणामेव दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभसंभवेऽपि तन्निष्ठापकानां चतुर्गतिषूत्पत्तेः क्षायिकसम्यक्त्वमत्र संभवतीति विशेषः स्मर्तव्यः ।

सनत्कुमारमाहेंद्रदेवानां—गु ४ . जी २ , प ६ ६ , प्रा १० ७ . सं ४ , ग १ . इं १ . का १ । यो ११ . वे १ पुं कल्पस्त्रीणां सौधर्मद्वय एवोत्पत्तेः . क ४ . ज्ञा ६ . सं १ , द ३ . ले ४ ते प शु , भ २ , स ६ उ वे क्षा मि सा मि . सं १ . आ २ . उ ९ . तत्पर्याप्तानां—गु ४ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ , ग . १ . इं १ . का १ . यो ९ . वे १ . क ४ . ज्ञा ६ . सं १ . द ३ . ले २ , भ २ . स ६ .
भा २ ते प

सं १ . आ १ . उ ९ .

तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ . जी १ अ . प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ दे . इं १ पं . का १ त्र . यो २ वै मि का . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले २ क शु . भ २ . स ५ मि सा उ वे क्षा . सं १ . आ २ उ ८ . तन्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतानां सौधर्मपुंवेदवदुक्तव्यं एवमुपर्यपि स्वस्वलेश्यानुसारेण योज्यं . अनुदिशानुत्तरविमानजानामसंयतालाप एव तत्राप्ययं विशेषः पर्याप्तकाले वेदकक्षायिकसम्यक्त्वद्वयमेव . सिद्धगतौ सिद्धानां यथासंभवं वक्तव्यं . अस्ति सिद्धगतिस्तत्र केवलज्ञानदर्शनक्षायिकसम्यक्त्वानाहारोपयोगद्वयेभ्यः शेषाः आलापा न संति सिद्धानामेकेंद्रियादिनामोदयाभावात् . गतिमार्गणा गता ॥

इंद्रियानुवादे मूलौघः—तत्र सामान्यैकेंद्रियाणां—गु १ मि . जी ४ बा सू प अ . प ४ ४ . प्रा ४ ३ . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ त्रसोनाः . यो ३ औदारिकतन्मिश्रकार्मणाः . वे १ प . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अ . ले ६ भ २ . स १ मि , सं १ असंज्ञी . आ
भा ३ अशु

२ . उ ३ कु कु अचक्षुः । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी २ वा प सू प . प ४ ए . प्रा ४ ए का उ आयुः . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ . त्रसो नहि . यो १ औ . वे १ सं . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अच . ले ६ भा ३ अशु भ २ . स १ मि . सं १ असंज्ञी . आ १ . उ ३ कु कु

अचक्षुर्दर्शनं . तदपर्याप्तानां—गु १ मि . जी २ वा अ सू अ . प ४ अ . प्रा ३ अ . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ . यो २ मि का . वे १ पं . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अच . ले २ क शु ३ अशु . भ २ . स १ मि . सं १ असंज्ञी । आ २ . उ ३ कु कु अच . बादराणां—गु १ मि . जी २ प अ . प ४ ४ . प्रा ४ ३ . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ . यो ३ औ मि का . वे १ षं . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अच . ले ६ ३ अशु . भ २ . स १ मि . सं १ असंज्ञी . आ २ . उ ३ . तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी १ प . प ४ . प्रा ४, सं ४ . ग १ ति . इं १ ए, का ५, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कुकु, सं १ अ, द १ अच, ले ६ ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ अ, प ४ अ । प्रा ३ ए का आ, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु भा ३ अशु, भ २, स १ मि, स १ असंज्ञी, आ २, उ ३, एवं बादरपर्याप्तनामोदयानामेकेंद्रियाणामुक्तं, अपर्याप्तनामोदयानां तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तु तदपर्याप्तवद्योज्यं,

सूक्ष्माणां—गु १ मि, जी २ प अ, प ४ ४, प्रा ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का ५, यो ३ औ २ का १, वे १ पं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु भा ३ अशु—कुतः ?

सव्वेसिं सुहमाणं काओदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ॥ १ ॥

सर्वेषां सूक्ष्माणां कापोता सर्वविग्रहे शुक्ला ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥ १ ॥

भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञि, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ४, प्रा ४, सं ४, ग १ इं १, का ५, यो १

औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अचक्षु, ले १ क, भ २, सं १ मि, सं १ असंज्ञी, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प
भा ३ अशु
४ अ, प्रा ३ ए का आ, सं ४, ग १, इं १, का ५ यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अचक्षु, ले २ क शु
भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्, द्वींद्रियाणां—गु १ मि। जी २ प अ, प ५ ५, प्रा ६, ४,
भा ३ अशु
सं ४, ग १ ति, इं १ द्वीं, का १ त्र, यो ४, औ २, वाक् १, का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ। द १ अच, ले ६, भ २, स १
मि, सं १ असंज्ञी, आ २। उ ३, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ६, सं ४, ग १ ति। इं १ द्वीं, का १ त्र, यो २, वा १,
भा ३ अशु
का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २। स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १। जी १, प
भा ३
५ अ, प्रा ४ अ, सं ४, ग १, इं १। का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४ - ज्ञा २। सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु। भ २,
स १ मि। सं १। आ २, उ ३,
भा ३ अ शु
तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्। त्रींद्रियाणां—गु १, जी २, प ५ ५, प्रा ७ ५, सं ४, ग १ ति, इं १ त्रीं, का १ त्र, यो ४ औ
२ वा १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानां—
भा ३
गु १ मि, जी १ त्रीं प, प ५, प्रा ७, सं ४, ग १ ति, इं १ त्रीं, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ,
द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ५ अ, प्रा ५ अ, सं ४, ग १,
भा ३
इं १, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ। द १ अच, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ३,
भा ३ अ शु
तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्। चतुरिंद्रियाणां—गु १ मि, जी २ प अ, प ५ ५, प्रा ८, ६, सं ४, ग १, इं १ चतुरिं, का १ त्र,
यो ४ औ २ वा १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४,
भा ३

तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ च प, प ५, प्रा ८ च ४ वा १ का १ औ १ आ १, सं ४, ग १ ति, इं १ च, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६/भा ३, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १। उ ४, तदपर्याप्तानां गु १, जी १ अ, प ५ अ, प्रा ६ अ, च ४, का १ आ १, सं ४, ग १, इं १ च, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु/भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४, तल्लब्ध्यपर्याप्तस्य तदपर्याप्तवत्। पंचेंद्रियाणां—गु १४, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६, प्रा १० ७, ९, ७, सयोगस्य ४, २, अयोगस्य १, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६/भा ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ १२, तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी २ सं, अ, प ६ सं, ५ अ, प्रा १० सं, ९ अ सं, ४ सयो, १ अयो, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ वा ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६/६, भ २, स ६, स २, आ २, उ १२, तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स, जी २ सञ्ज्यसंज्ञिपर्याप्तौ। प ६ अ, सं ५ असंज्ञी, प्रा ७ संज्ञि ७ असंज्ञि २ सयोग, सं ४, ग ४, इं १ प, का १ त्र, यो ४ औमि-आहारकमिश्र-वै-मिश्र-कार्मणा॰ वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु। स ४ अ स छे यथा, द ४ च अ अ के, ले २ क शु/भा ६, भ २, स ५ उ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ १०, मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७। सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे ३, कं ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २ च अ, ले ६/६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १०, ९। सं ४, ग ४, इं १, का १ यो १० म ४ वा ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६/६, भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १। जी २। संज्ञ्यपर्याप्तौ। प ६ अ। ५ अ। प्रा ७ ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ आ मि। वै मि। कार्म्मणा। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। च अ। ले २ क शु/भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४।

सासादनादीनां गुणस्थानवत्, असंज्ञिनां—गु १ मि, जी २ तत्पर्याप्तापर्याप्तौ, प ५ ५। प्रा ९ ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औ २ का १ अनुभयवचनं १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६। भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ९, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ १ अनुभयवाक् १,

भा ३ अशु

वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले ६। भ २, स १ मि, सं १ असं, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५

भा ४

अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र. यो २ औ मि १ का १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु

भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४, पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ, प ६ अ, सं ५ अ अ, प्रा

भा ३

७ सं अ, ७ अ अ, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे १ पं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, तत्संज्ञिनां—गु १ मि, जी १ प अ, प ६ प, प्रा ७ अ अ, सं ४, ग २ ति म, इं

भा ३ अशु

१ पं, का १ त्र, यो २, औमि का, वे १ पं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ द २, ले २ क शु भ २, स १ मि, सं १ संज्ञी, आ २,

उ ४, तदसंज्ञिनां—गु १ मि, जी १, प १ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औमि का, वे १ पं, क ४,

भा ३ अशु

ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४ अतींद्रियाणां सिद्धगतिवत्। इति इंद्रियमार्गणा गता।

भा ३ अशु

कायानुवादे—गु १४, जी ५७ ९८ ४०६, प ६ ६, ५ ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९ ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४ ३, ४ २ १, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६, भ २. स ६, सं २, आ २, उ १२।

तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी १९, ३७, १८६, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, ४, १, स ४, ग

६

४, इं ५, का ६, यो ११ मिश्रत्रयकार्मणाभावात, वे३, क ४ ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ १२,

तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स, जी ३८, ६१, २२०, प ६ ५ ४, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २, सं ४, ग ४,

६

इं ५, का ६, यो ४ अयो मिश्राः कार्मणश्च, वे ३, क ४, ज्ञा ६ मनःपर्ययविभंगाभावात्, सं ४ अ सा छे यथा, द ४, ले २ क शु।
भा ६
भ २, सं ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ २, उ १० ज्ञा ६ द ४, मिथ्यादृष्ट्यादीनां मूलौघः किंतु सामान्यादित्रिविधमिथ्यादृष्टीनामेव कायानुवादमूलौघोक्तजीवसमासा वक्तव्याः, अन्यत्र विशेषो नास्ति।

पृथ्वीकायिकानां—गु १, जी ४ वादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ताः, प ४ ४, प्रा ४, ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का १ पृ, यो ३ औ २ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले ६ भ २, स १ मि, सं १ असं, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानां—
३
गु १ मि, जी २ वा सू, प ४, प्रा ४, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का १ पृ, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६। भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां–गु १, जी २ वा अ सू अ, प ४ अ, प्रा ३ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ ए,
भा ३
का १ पृ, यो २ औमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ३। तद्बा-
भा ३ अशु
दराणां—गु १। जी २ प अ। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ पृ। यो ३ औ २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६ भ २। स १ मि। सं १ असं। आ २। उ ३। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी १। प ४। प्रा ४। सं ४। ग १
भा ३ अशु
ति। इं १ ए। का १ पृ। यो १ औ। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६। भ २। स १ मि। सं १ अ। आ १। उ
भा ३
३। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ। प ४ अ। प्रा ३ अ। सं ४। ग १ ति इं १ ए। का १ पृ। यो २ मि का। वे १ षं। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द १ अच। ले २ कशु। भ २। स १ मि। सं १ असं। आ २। उ ३। तत्सूक्ष्मपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्। तत्सूक्ष्माणां
भा ३ अशु
सूक्ष्मैकेंद्रियवत्। अप्कायिकानां पृथ्वीकायिकवत्। किंतु द्रव्यतो वादरपर्याप्ते शुक्ला तेजस्कायिकेषु सूक्ष्माणां पर्याप्तमिश्रकालयोः कपोता। वादराणां पर्याप्तकाले पीता। उभयविग्रहगतौ शुक्ला। वातकायिकानां अपर्याप्तकाले कपोता। विग्रहगतौ शुक्ला। पर्याप्तकाले गोमूत्रमुद्गाव्यक्तवर्णा।

वनस्पतिकायिकानां—गु १। जी १२ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकवादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो ३ औ २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६। भ २। स १ मि।
३

सं १ अ । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी ६ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ६ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । प्रत्येकानां—गु १ मि । जी ४ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ प २ अ २ । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी २ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तवत् ।

साधारणानां—गु १ मि । जी ८ बादरसूक्ष्मनित्येतरनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदा अपर्याप्ताः । प ४ अ । प्रा ३ । सं ४ । ग १ ति इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तद्बादराणां—गु १ मि । जी ४ नित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ ।

स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ नित्यचतुर्गतिपर्याप्तौ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ पं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु ३
१ । जी २ बादरनित्यचतुर्गती अपर्याप्तौ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ पं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तवत् । साधारण- भा ३ अशु
सर्वसूक्ष्माणां सूक्ष्मपृथ्वीकायवत् । किंतु जीवसमासाश्चत्वारः नित्यनिगोदानां चतुर्गतिनिगोदानां च साधारणवत् । अत्रोपयोगिगाथा—

पुढवीयादिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदा हु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥ १ ॥

त्रसकायानां—गु १४ । जी १० वि ति च सं असं । प ६ ६ । ५ ५ । प्रा १० ७ । ९ ७ । ८ । ६ । ७ ५ ६ ४ । ४ । २ । १ । सं ४ । ग २ २ २ २ २
४ । इं ४ वि ति च पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । त- ६
त्पर्याप्तानां—गु १४ । जी ५ । वि ति च सं असं । प ६ ५ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ १ । सं ४ । ग ४ । इं ४ वि ति च पं । का १ त्र । यो ११ । १ १ १ १ १
वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स । जी ५ वि ६
ति च सं असं । प ६ अ । ५ अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । सं ४ । ग ४ । इं ४ वि ति च पं । का १ त्र । यो ४ मिश्राः ३ कार्मणः । १ १ १ १
वे ३ । क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, सं ४ अ सा छे य, द ४, ले २ क शु, भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ २, भा ३
उ १०, मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १० वि ति च सं असं । प ६ ६ । ५ ५, प्रा १० ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, सं ४, २ २ २ २ २
ग ४, इं ४, का १ त्र, यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५, तत्पर्या-

सानां–गु १ मि । जी ५ वि ति च स अ । प ६ । ५, प्रा १० ९ ८ ७, ६, सं ४ । ग ४, इं ४ वि ति च पं । का १ त्र, यो १० म ४ वा ४
१ १ १ १ १   १ १ १ १

औ १ वै १ । वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ अ . द २ . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ . आ १ उ । ५ . तदपर्याप्तानां–गु १ मि . जी ५
६

वि ति च सं अ । प ६ . ५ अ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ सं ४ ग ४ इं ४ वि ति च पं का १ त्र . यो ३ औ मि १ वै मि १ का १ . वे ३ .
१ १ १ १ १   १ १ १ १

क ४ . ज्ञा २ . सं १ अ . द २ . ले २ क शु । भ २ . स १ मि . सं २ . आ २ . उ ४ . सासादनाद्ययोगांतेषु मूलौघवत् . अकायानां
भा ६

गु० . जी० . प० . प्रा० . सं० ग १ सिद्धगतिः . इं० , का० . यो० . वे० . क० . ज्ञा १ के . सं० द० के० . भ० । स १ क्षा . सं० आ १ अना-
हारः . उ २ . तल्लब्ध्यपर्याप्तानां–गु १ . जी ५ वि ति च सं अ प ६ . ५ अ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ . सं ४ . ग २ ति म . इं ४
१ १ १ १ १

वि ति च पं । का १ त्र . यो २ औ मि १ का १ . वे १ प . क ४ . ज्ञा २ . सं १ अ . द २ च अ . ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २
१ १ १ १   भा ३ अशु

आ २ . उ ४ . कायमार्गणा गता ।

योगानुवादे मूलौघः किंतु गुणस्थानानि त्रयोदशैव . मनोयोगिनां–गु १३ . जी १ पं प . प ६ . प्रा १० . सं ४ । ग ४ . इं १ . का १ त्र

यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ८ . सं ७ . द ४ . ले ६ भ २ . स ६ . सं १ . आ १ . उ १२ . तन्मिथ्यादृष्टीनां– गु १ मि . जी १ . प ६
६

प्रा १० . सं ४ . ग ४ . इं १ . का १ . यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ अ . द २ . ले ६ भ २ . स १ मि . सं १ . आ १ .
६

उ ५ . तत्सासादनस्य–गु १ सा . जी १ . प ६ . प्रा १० । सं ४ । ग ४ . इं १ पं . का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।
सं १ अ । द २ . ले ६ । भ १ . स १ सा . स १ . आ १ . उ ५ . तन्मिश्रस्य–गु १ मिश्रं . जी १ . प ६ . प्रा १० . स ४ . ग ४ . इं १
६

पं . का १ त्र . यो ४ म , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ , द २ , ले ६ । भ १ , स १ मिश्रं , सं १ , आ १ । उ ५ तदसंयतस्य–
६

गु १ अ . जी १ , प ६ । प्रा १० , सं ४ . ग ४ . इं १ पं , का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च

अ अ . ले ६ भ १ . स २ उ वे क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ . तद्देशसंयतस्य– गु १ दे . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग २ ति म .
६
इं १ पं . का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ दे . द ३ च अ अ . ले ६ । भ १ . स २ उ वे क्षा । सं १ । आ १ . उ ६ ।
भा ३ शु

तत्प्रमत्तस्य–गु १ प्र . जी १ प . प ६ . प्रा १० . सं ४ , ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ४ म श्रु अ म . सं ३ सा छे प . द ३ च अ अ . ले ६ , भ १ , स ३ उ वे क्षा । सं १ . आ १ . उ ७ . तदप्रमत्तादिसंयोगांतं मूलौघः किंतु सर्वत्र मनोयोगाश्चत्वारः
भा ३

सयोगे सत्यानुभयौ द्वौ सत्यानुभयमनोयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने स्वस्वनामैकः

असत्यमनोयोगिनां—गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १ असत्यमनः । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म । सं ७ अ दे सा छे प सू यथा । द ३ । ले ६ भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ १० । तन्मिथ्यादृष्ट्यादि-
६
क्षीणकषायांतं योज्यं । उभयमनोयोगिनामप्येवं । स्वस्वयोग एव वक्तव्यः ।

वाग्योगिनां—गु १३ । जी ५ वि ति च सं अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ त्र । यो ४ वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ १२ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ५ । प ६ प । प्रा १० ।
६
९ । ८ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । का १ त्र । यो ४ वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । स २ । आ १ ।
६
उ ५ । सासादनादिसयोगांतं मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने वाग्योगो वक्तव्यः ।

काययोगिनां—गु १३ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ४ ६ ४ ४ ३ ४ २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । क ६ । यो ७ कायस्य । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । तत्पर्याप्तानां—गु १३ ।
६
जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औ वै आ । वे ३ । क । ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ आहारकः । उ १२ । तदपर्याप्तानां–गु ५ मि सा अ प्र स । जी ७ अ । प ६
६

५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु कु म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ १० तन्मिथ्यादृशां—गु १ । जी १४ । प ६
भा ६
६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग ४, इं ५, का ६, यो ५ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९
६
८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि ।
६
सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । तत्सासादनानां—गु १ सा । जी २ प अ । प ६ ६ ।
भा ६
प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ अ । आ २ ।
६
उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । णिरयं
६
सासणसम्मो ण गच्छदीति वचनात् । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १
भा ६
स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ अ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ । प ६
६
६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३
६
उ वे क्षा । सं १ आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ ।

ज्ञा ३ सं १ । द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । ३ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ । सं
६
४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे २ षं पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स ३ । सं १ । आ
६
२ । उ ६ । देशव्रतिनां—गु १ दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ म ति । इं १ । का १ । यो १ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १
दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का
३
१ त्र । यो ३ औ १ आहा २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
३
अप्रमत्तानां—गु १ अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ आहारसंज्ञा नहि । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र यो १ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ ।
सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अग्रेऽपूर्वकरणात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघवत् किंतु औदारिकयोग एव वक्तव्यः ।
३

सयोगकेवलिनां—गु १ सा . जी २ प अ . प ६ ६ . प्रा ४ २ . सं ० . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ३ औ २ का १ . वे
० . क ० . ज्ञा १ के . सं १ यथा . द १ के . ले ६ । भ १ . स १ क्षा . सं ० . आ २ . उ २ के के . औदारिकयोगिनां—गु १३ . जी ७
भा १
प . प ६ . ५ . ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ ६ . ४ . ४ . सं ४ . ग २ म ति . इं ५ . का ६ . यो १ औ , वे ३ . क ४ . ज्ञा ८ . सं ७ .
द ४ . ले ६ । भ २ , सं ६ , सं २ . आ १ . उ १२ . तान्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी ७ , प ६ ५ ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ . ६ .
भा ६
४ . सं ४ , ग २ ति म . इं ५ . का ६ , यो १ औ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ अ . द २ . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ . आ २ .
भा ६
उ ५ . तत्सासादनानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग २ म ति . इं १ पं , का १ त्र . यो १ औ , वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ .
सं १ अ . द २ , ले ६ , भ १ , स १ सा . सं १ , आ १ . उ ५ . सम्यग्मिथ्या दृशां—गु १ मिश्रं . जी १ . प ६ , प्रा १० . सं ४ . ग २ ति
६
म , इं १ . का १ त्र । यो १ औ , वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ , सं १ अ . द २ . ले ६ । भ १ . स १ मिश्रं . सं १ . आ १ . उ ५ , असंयतानां—गु १ अ ,
६

जी १ पं प, प ६, प्रा १०, सं ४. ग २ ति म. इं १ पं. का १ त्र. यो १ औ. वे ३, क ४. ज्ञा ३। सं १ अ, द ३, ले ६। भ १, स ३, सं १, भा ६
आ १. उ ६, देशव्रतानां गु १ दे, जी १ पं प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म. इं १ पं. का १ त्र. यो १ औ, वे ३. क ४, ज्ञा ३. सं १ दे. द ३, ले ६. भ १, स ३. सं १. आ १. उ ६. प्रमत्तात्संयोगांतं वाग्योगिवत् किंतु सर्वत्र औदारिकयोग एव वक्तव्यः।

औदारिकमिश्रयोगिनां-गु ४ मि सा अ स। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग २ ति म। इं ५। का ६। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा ६ विभंगमनःपर्ययाभावात्। सं २ अ य। द ४। ले १ क। भ २। स ४ मि सा वे क्षा। भा ६
सं २। आ १। उ १०। तन्मिथ्यादृशां- गु १ मि। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग २ ति म। इं ५। का ६। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले १। भ २। स १ मि। सं २। आ १। उ ४। तत्सासादनानां- भा ३
गु १ सा। जी १ सं अ। प ६ अ। प्रा ७। सं ४। ग २ ति म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले १। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ४। तदसंयतानां-गु १ अ। जी १ अ प। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ ति म। भा ३ अशुभ
इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले १ क। भ १। स २ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। भा ६
तत्सयोगिनां-गु १। जी १ अ। प ६। प्रा २ का १ आ १। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे ०। क ०। ज्ञा १ के सं १ य. द १ के। ले १ क. भ १. स १ क्षा. सं ०। आ १। उ २. वैक्रियिकयोगिनां-गु ४, मि सा मि अ. जी १ प, प ६। प्रा १०, सं ४, ग २ न दे, इं १ पं। का १ शु
१ त्र. यो १ वै। वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ. सं १, द ३। ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ९। तन्मिथ्यादृशां-गु १। जी १। ६
प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १। ६
उ ६। तत्सासादनानां-गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तत्सम्यग्मिथ्यादृशां-गु १ मिश्रं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ६

ग २ न दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ उ
६
५ । तदसंयतानां–गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ न दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ ।
द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । तन्मिश्रयोगिनां–गु १ मि सा अ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ न दे
६
इं १ पं । का १ त्र , यो १ वैमि , वे ३ , क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ , सं १ अ , द ३ , ले १ क , भ २ , स ५ मि सा उ वे क्षा , सं १ , आ १ ,
भा ६
उ ८ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी १ अ , प ६ अ , प्रा ७ अ । सं ४ , ग २ न दे , इं १ पं , का १ त्र , यो १ वैमि , वे ३ , क ४ ,
ज्ञा २ , सं १ अ , द २ , ले १ । भ २ , स १ मि , सं १ , आ १ , उ ४ , तत्सासादनानां–गु १ सा , जी १ अ , प ६ अ । प्रा ७ अ , स ४ , ग
६
१ दे , इं १ पं , का १ त्र , यो १ वैमि , वे २ , क ४ , ज्ञा २ , सं १ अ , द २ । ले १ क । भ १ , स १ सा । सं १ , आ १ , उ ४ ।
भा ६

तदसंयतानां—गु १ अ । जी १ अ . प ६ अ , प्रा ७ अ . सं ४ . ग २ न दे . इं १ पं , का १ त्र , यो १ वैमि , वे २ पं पुं , क ४ .
ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ । द ३ , ले १ क । भ १ । सं ३ उ वे क्षा , सं १ , आ १ . उ ६ . आहारकयोगिनां–गु १ प्र . जी १ । प ६ , प्रा
भा ४ शु ३ क १
१० ; सं ४ , ग १ म , इं १ पं , का १ त्र । यो १ आ , वे १ पुं . क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं २ सा छे , द ३ , ले १ शु । भ १ . स २
भा ३

वे क्षा , सं १ . आ १ . उ ६ . तन्मिश्रयोगिनां—गु १ प्र . जी १ . प ६ अ . प्रा ७ अ , सं ४ , ग १ म , इं १ पं , का १ त्र , यो १
आमि , वे १ पुं . क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं २ सा छे । द ३ च अ अ , ले १ क । भ १ , स २ वे क्षा , सं १ आ १ , उ ६ , कार्मण-
भा ३
योगिनां–गु ४ मि सा अ स , जी ७ अ , प ६ अ , ५ अ , ४ अ , प्रा ७ , ७ , ६ , ५ , ४ , ३ , २ , सं ४ , ग ४ , इं ५ ,
का ६ , यो १ का , वे ३ , क ४ , ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के , सं २ अ य , द ४ च अ अ के , ले १ शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा , सं
भा ६
२ , आ १ अनाहारः , उ १० , तन्मिथ्यादृशां–गु १ मि , जी ७ अ , प ६ ५ ४ अ , प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ , सं ४ । ग ४ , इं

५ . का ६ . यो १ का . वे ३ , क ४ . ज्ञा २ कुकु , सं १ अ . द २ च अ , ले १ शु , भ २ . स १ मि . सं २ , आ १ अनाहारः . उ ४ .
भा ६

तत्सासादनानां—गु १ सा . जी १ . प ६ . प्रा ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ . का १ . यो १ का . वे ३ , क ४ . ज्ञा २ कुकु . सं १ अ
द २ . ले १ शु , भ १ . स १ सा . सं १ . आ १ अना . उ ४ . तदसंयतानां—गु १ अ . जी १ । प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ , ग ४ . इं १ .
भा ६

का १ . यो १ का . वे २ पं पुं . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ ले १ शु . भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ अना । उ ६ ,
भा ६

तत्सयोगिनां—गु १ सयोगी . जी १ अ . प ६ अ . प्रा २ का . आ . सं० , ग १ म . इं १ . का १ त्र . यो १ का . वे ० । क ० । ज्ञा १ के .
सं १ य . द १ के , ले १ शु , भ १ . स १ क्षा . सं ० . आ १ अना , उ २ केके , योगमार्गणा गता वेदमार्गणानुवादे मूलौघवत् किंतु गुण-
भा १

स्थानानि नवैव ।

तत्र स्त्रीवेदिनां—गु ९ । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १
त्र । यो १३ आहारद्वयं नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि
भा ६

उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ९ । जी २ सं अ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १
त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स
भा ६

६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा । जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ । प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । सं ४ ।
ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स
भा ३ अशु

२ मि सा । सं २ । आ २ । उ ४ कु कु च अ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ ।
सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारकद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ
भा ६

२ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ प । का १ त्र ।

यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ । सं २ । आ १ । उ ५ ।
६

तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ । प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । तत्सासादनानां—गु
भा ३ अशु
१ सा । जी २ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ संज्ञिपर्याप्तः । प
६
६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ, द २ च अ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां । गु १ सा । जी १ सं अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं,
६
का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री, क ४ । ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४,
भा ३ अशु
सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै । वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, असंयतानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं
६
४, ग ३ ति म दे, इं १, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे
६
क्षा । सं १, आ १, उ ६, देशव्रतिनां—गु १ दे, जी १ प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४, व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६, प्रमत्तानां—गु १ प्र, जी १, प ६, प्रा
३
१०, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ १, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, संक्लिष्टत्वात् मनःपर्ययो नहि, सं २ सा छे, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६, अप्रमत्तानां—गु १ अप्र, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३ आहारसंज्ञा
३

नहि . ग १ म . इं १ पं । का १ त्र . यो ९ . म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ मनःपर्ययज्ञानं नहि . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ । भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ । उ ६ . अपूर्वकरणानां—गु १ अपू . जी १ . पं६ . प्रा १० . स ३ . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ९ म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री . क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स २ उ क्षा . सं १ . आ १ उ ६ . अनिवृत्तिकरणानां—गु १ अनि . जी १ . प ६ . प्रा १० , सं २ मै प , ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ९ . म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री । क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स २ उ क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ . पुंवेदिनां—गु ९ . जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः . प ६ ६ ५ ५ . प्रा १० ७ ९ ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ पं , का १ त्र . यो १५ . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ७ केवलज्ञानं नहि . सं ५ अ दे सा छे प . द ३ च अ अ . ले ६ . भ २ , स ६ , सं २ . आ २ . उ १० . तत्पर्याप्तानां—गु ९ . जी २ सं अ . प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ व ४ औ वै आहा । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ५ . सं ५ अ दे सा छे प . द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ . सं २ । आ १ । उ १० . तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प . जी २ . प ६ ५ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ . यो ४ औमि वैमि आमि का । वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे . द ३ च अ अ । ले २ क शु भा ६ । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा सं २ . आ २ । उ ८ ।

तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी ४ . प ६ , ६ , ५ , ५ , प्रा १० , ७ . ९ , ७ , सं ४ , ग ३ ति म दे . इं १ पं , का १ त्र , यो १३ आहारक द्वयं नहि , वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६ , भ २ . स १ मि . सं २ . आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ मि , जी २ . प ६ ५ , प्रा १० , ९ , सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ , का १ त्र . यो १० म ४ व ४ औ वै . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ , द २ . ले ६ , भ २ . स १ मि . सं २ , आ १ . उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ मि . जी २ , प ६ . ५ . अ . प्रा ७ . ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ पं का १ . यो ३ औमि वैमि का . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा २ , सं १ अ , द २ . ले २ क शु भा ६ , भ २ . स १ मि , सं २ . आ २ , उ ४ . तत्सासादनात् प्रथमानिवृत्तिपर्यंतं मूलौघः अत्र सर्वत्र पुंवेदो वक्तव्यः . सासादनमिश्रासंयतानां गतित्रयं । देशसंयतस्य गतिद्वयं . अन्यत्र विशेषो नास्ति ।

नपुंसकवेदिनां—गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं । ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ षं , क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं ४ अ दे सा छे , द ३ च अ अ , ले ६ , भ २ , स ६ , सं २ , आ २ , उ ६ , तत्पर्याप्तानां— गु ९ , जी ७ , प ६ , ५ , ४ , प्रा १० , ९ , ८ , ७ , ६ , ४ , सं ४ । ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ , वे १ षं । क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं ४ अ दे सा छे , द ३ च अ अ , ले ६ भ २ , स ६ , सं २ , आ १ , उ ६ , तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ , जी ७ , प ६ , ५ , ४ अ , प्रा ७ , ७ , ६ , ५ , ४ , ३ । सं ४ । ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो ३ औ मि वैमि का , वे १ षं , क ४ , ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ , सं १ अ , द ३ च अ अ , ले २ क शु भा ३ अशु भ २ , स ४ मि सा वे क्षा , सं २ , आ २ , उ ८ , तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी १४ , प ६ , ६ , ५ , ५ , ४ , ४ , प्रा १० , ७ , ९ , ७ , ८ , ६ , ७ , ५ , ६ , ४ , ४ , ३ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो १३ आहारद्वयं नहि , वे १ न , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ , ले ६ , भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ५ , तत्पर्याप्तानां— गु १ मि , जी ७ , प ६ , ५ , ४ , प्रा १० , ९ , ८ ७ , ६ , ४ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो १० म ४ व ४ औ वै , वे १ षं , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ । ले ६ । भ २ , स १ मि , सं २ , आ १ , उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ मि , जी ७ , प ६ , ५ , ४ , प्रा ७ , ७ , ६ , ५ , ४ ३ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो ३ औमि वैमि का वे १ षं , क ४ , ज्ञा २ , सं १ अ , द २ , ले २ क शु , भा ३ अशु भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ४ , तत्सासादनानां—गु १ । जी २ सं प अ , प ६ , ६ , प्रा १० , ७ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं १ पं , का १ त्र , यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १ . वे १ षं . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ , द २ च अ , ले ६ , भ १ . स १ सा . सं १ . आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ सा . जी १ प . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग ३ न ति म . इं १ प . का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औका वैका . वे १ न , क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६ , भ १ . स १ सा . सं १ . आ १ . उ ५ . तदपर्याप्तानां—गु १ सा . जी १ अ . प ६ अ । प्रा ७ अ . सं ४ . ग २ ति म . इं १ . का १ . यो २ औमिका , वे १ नं . क ४ ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द २ च अ ;

ले २ क शु । भ १ . स १ सा . सं १ . आ २ . उ ४ . तत्सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मिश्रं . जी १ प . प ६ . प्रा १० । सं ४ . ग ३
भा ३ अशु

न ति म . इं १ पं . का १ त्र . यो १० . म ४ . व ४ औ १ वै १ . वे १ न . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ च अ . ले ६, भ १
६

स १ मिश्रं . सं १ . आ १ . उ ५ तदसंयतानां—गु १ अ . जी २ प अ . प ६ . ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग ३ न ति म . इं १ पं . का
१ त्र . यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का . वे १ न . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ भ १ . स ३ . सं १ .
६

आ २ . उ ६ . तत्पर्याप्तानां—गु १ अ . जी १ प . प ६ . प्रा १० . सं ४, ग ३ न ति म । इं १ . का १ . यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ .
वे १ न . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ । भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ तदपर्याप्तानां—गु १
६

अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ च अ
अ । ले २ क शु । भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतिनां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं
भा ३ अशुभ

१ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ
भा ३ शु

१ । उ ६ । प्रमत्तात् प्रथमभागानिवृत्त्यंतं स्त्रीवेदिवत् किंतु वेदस्थाने नपुंसक वेद एव ।

अपगतवेदानां—गु ६ अनि . सू , उ , क्षी , स , अ , जी २ प अ , प ६ , ६ , प्रा १० , ४ , २ , १ , सं १ परि , ग १ म , इं
इं १ पं . का १ त्र . यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ , वे ० . क ४ , ३ , २ , १ लो । ज्ञा ५ म श्रु अ म के , सं ४ सा छे सू य , द ४ च अ
अ के , ले ६ , भ १ , स २ उ क्षा , सं १ , आ , २ , उ ९ , द्वितीयभागानिवृत्तितः सिद्धपर्यंतं मूलौघो भवति , वेदमार्गणा गता ।
भा १

कषायानुवादे ओघः तद्यथा—क्रोधिनां—गु ९ , जी १४ , प ६ , ६ , ५ , ५ , ४ , ४ , प्रा १० , ७ , ९ , ७ ८ , ६ ७ ५ ६ , ४ , ४ ,
३ , सं ४ , ग ४ , इं ५ , का ६ , यो १५ , वे ३ , क १ क्रो , ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म , सं ५ अ दे सा छे य , द ३ च अ अ , ले ६
६

भ २ , स ६ , सं २ . आ . २ , उ १० , तत्पर्याप्तानां—गु ९ . जी ७ प . प ६ . ५ , ४ . प्रा १० , ९ , ८ , ७ , ६ , ४ . सं ४ , ग ४ इं

५, का ६ . यो ११ . म ४ . व ४ . औ वै आ , वे ३ . क १ क्रो , ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म . सं ५ अ दे सा छे प , द ३ च अ
अ, ले ६ , भ २ . स ६ , सं २ , आ १ , उ १० , तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ म , जी ७ अ , प ६ , ५ , ४ अ , प्रा ७ , ७ , ६ .
 ६
५ , ४ , ३ अ , सं ४ , ग ४ , इं ५ , का ६ , यो ४ औमि वैमि आमि का , वे ३ , क १ क्रो , ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं ३ अ सा छे .
द ३ च अ अ . ले २ क शु , भ २ . स ५ मिसा उ वे क्षा . सं २ . आ २ . उ ८ . तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी १४ . प ६ . ६ . ५ .
 भा ६
५ . ४ . ४ , प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ सं ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ । यो १३ आहारद्वयं नहि . वे ३ . क १ क्रो . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द
२ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ ।
 भा ६
६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ
 ६
२ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ७ अ । प ६ ५ ४ अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ अ । सं ४ । ग ४ । इं ५ ।
का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ ।
 भा ६
तत्सासादनानां—गु १ सा । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं । वे ३ ।
क १ क्रो । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ प ।
 ६
प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च
अ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ नरकग-
 ६
तिर्नहि । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औ मि वैमि का । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ । भ १ । स १ सा । सं १ ।
 ६
आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां गु १ मिश्रं । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३
मिश्राणि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १०
 ६

७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयं नहि । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ (६) । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ (६) । भ १ । स ३ उ वे क्षा । स १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औ मि वैमि का । वे २ पुं न । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु (भा ६) । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतानां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ (३) । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां-गु १ प्र जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ । व ४ । औ १ । आ २ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ (३) । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां—गु १ अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ भ मै प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ (३) । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणानां—गु १ अपू । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ३ भ मै प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ (१) । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणानां प्रथमभागे—गु १ अनि । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं २ मै प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ (१) । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । द्वितीयभागे गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे० । क १ क्रो । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ (१) । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । उ ७ । एवं मानमाययोरपि स्वस्वानिवृत्तिभागपर्यंतं वक्तव्यं किंतु क्रोधस्थाने तत्तन्नामकषायः, तथा लोभस्यापि, किंतु गुणस्थानानि दश ।

अकषायिणां—गु ४ उ क्षी सा अ, जी २, प ६ ६, प्रा १० ४ २ १, सं ०, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ २ का १, वे ०, क ०, ज्ञा ५ म श्रु अ म के, सं १ य, द ४ च अ अ के, ले ६, भ १, स २. उ क्षा, सं १, आ २, उ ६,
१

इदं सामान्यकथनं विशेषेण उपशांतकषायात्सिद्धपर्यंतं सामान्यभंगो भवति। कषायमार्गणा गता ज्ञानानुवादे ओघालाप भवंति।

कुमतिकुश्रुतानां—गु २ मि सा, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४। ग ४. इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स २ मि सा, सं २, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी ७ प, प ६ ५
६
४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग ४. इं ५, का ६, यो १० म ४, व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४। ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स २ मि सा, सं २, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३,
६
सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स २ मि सा,
भा ६
सं २, आ २, उ ४, तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, स २,
६
आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां। गु १ मि, जी ७ प, प ६ ५ ४ प, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २। स १ मि, सं २, आ १, उ ४, तदपर्या-
६
प्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग ४. इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प
६
६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं। वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६,
६
भ १। स १ सा, सं १, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र,

यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले ६ ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४। ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले २ क शु भा ६, भ १, स १ सा, सं १ . आ २, उ ४, विभंगज्ञानिनां—गु २ मि सा, जी १ प . प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभंगः। सं १ अ, द २, ले ६ ६, भ २, स २ मि सा . स १, आ १, उ ३ वि च अ, तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १ प, प६, प्रा १०, स४ . ग४ . इं १पं, का १ त्र, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा १, सं १ अ, द २, ले ६ ६, भ २, स१मि . सं१आ १ उ ३, तत्सासादनानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १। का १, यो १०, म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभंगः। सं १ अ, द २, ले ६ ६। भ १, स १ सा, सं १, आ १ . उ ३, मतिश्रुतानां—गु ९, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४। इं १। का १ त्र, यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा २ म श्रु। सं ७। द ३ च अ अ। ले ६ ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु ९। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ११ म ४ व ४ औ वै आ। वे ३। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स ७। द ३ च अ अ। ले ६ ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु २ असंयतः प्रमत्तः। जी १ अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४, इं १ पं। का १ त्र। यो ४ औमि वैमि आमि का। वे २ पुं न। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स ३ अ सा छे। द ३ च अ अ। ले २ क शु भा ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। तदसंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयं नहि। वे ३। क ४, ज्ञा २ म श्रु, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ ६, भ १ स ३ उ वे क्षा, सं १, अ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १०, म ४,

व ४, औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २, म श्रु, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १। उ ५।

तद्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे २ पुं न, क ४। ज्ञा २ म श्रु। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु भा ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। देशव्रतात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघभंगो। भवति किंतु ज्ञानस्थाने मतिश्रुते वक्तव्ये। अवधेरपि एवं, ज्ञानस्थाने अवधिर्वक्तव्यः। वा मतिश्रुते निरुद्धे। मतिश्रुतावधित्रयं वा मतिश्रुतमनःपर्यत्रयं वा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययचतुष्टयं वक्तव्यं।

मनःपर्ययज्ञानिनां—गु ७ प्र अ अ अ सु उ क्षी। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे १ पुं। क ४, ज्ञा १ म। सं ४ सा छे सू य परिहारविशुद्धिर्नहि। द ३ च अ अ। ले ६ ३। भ १। स २ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ४। सयोगायोगसिद्धेषु मूलौघः, ज्ञानमार्गणा गता,

संयमानुवादे—गु ९ प्र अ अ अ सू उ क्षी स अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ५ म श्रु अ म के। स ५ सा छे प सू य। द ४ ले ६ ३। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ९। प्रमत्तानां—गु १ प्र। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३ च अ अ। ले ६ ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अप्र। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ३। आहारसंज्ञा नहि। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६ ३। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। अपूर्वकरणाद्योगिपर्यंतं मूलौघभंगो भवति।

सामायिकसंयतानां—गु ४ प्र अ अ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११। म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं १ सामायिकं। द ३ च अ अ। ले ६ ३। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। अनिवृत्तिपर्यंतं मूलौघभंगोभवति। छेदोपस्थापनसंयतानामप्येवं।

परिहारविशुद्धिसंयमिनां—गु २ प्र अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ परि । द ३ च अ अ । ले ६/३ । भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तत्प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसांपरायसंयतानां च मूलौघभंगः ।

यथाख्यातसंयमिनां—गु ४ उ क्षी स अ । जी २ प । अ । प ६ ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं ० । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ । वे ० । क ० । सा ५ म श्रु अ म के । सं १ य । द ४ । ले ६/१ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ । उपशांतकषायादयोगपर्यंतं देशसंयतानां च मूलौघभंगः ।

असंयतानां—गु ४ मि सा मि अ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ आहारद्वय नहि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ६/६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ मि सा मि अ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ६/६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी ७ अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ अं, द ३ च अ अ, ले २ क शु/भा ६ । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ८, मिथ्यादृष्टितोऽसंयतांतं मूलौघभंगो भवति, संयममार्गणा गता । दर्शनानुवादे ओघालापो भवति—

चक्षुर्दर्शनिनां—गु १२, जी ६, सं अ च । प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, सं ४, ग ४ । इं २ च, पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म . सं ७ अ . दे, सा . छे, प . सू . य । द १ चक्षुः . ले ६/६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा . सं २ . आ २ . उं ८ . तत्पर्याप्तानां—गु १२ . जी ३ सं अ च, प ६ . ५ . प्रा १० . ९ . ८ . सं ४ . ग ४ । इं २ पं च . का १ त्र . यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म . सं ७ अ दे सा छे प सू य . द

१ च । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा . सं २ । आ १ . उ ८ . तदपर्याप्तानां गु ४ . मि , सा . अ . प्र । जी ३ सं अ च । प ६ . ५ .
६ १ १ १

अ . पा ७ . ७ , ६ . अ . सं ४ . ग ४ , इं २ पं च । का १ त्र . यो ४ औमि वैमि आमि का . वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं ३ अ
सा . छे . द १ च । ले २ क शु । भ २ . स ५ मि सा उ वे क्षा . सं २ . आ २ . उ ६ . तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी ६ । सं अ च । प ६ . ६ .
भा ६ २ २ २

५ . ५ . प्रा १० . ७ . ९ . ७ . ८ . ६ . सं ४ . ग ४ . इं २ पं च . का १ त्र . यो १३ आहारद्वयं नहि . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . कु कु
वि . सं १ अ . द १ च । ले ६ । भ २ । स १ मि . सं २ . आ २ . उ ४ . तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी ३ संप . अप . चप . प ६ . ५ .
६

प्रा १० . ९ . ८ . सं ४ ग ४ . इं २ पं च . का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द १
च . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ । आ १ . उ ४ . तदपर्याप्तानां—गु १ मि . जी ३ संअ अअ चअ , प ६ . ५ . अ . प्रा ७ . ७ . ६ .
६

सं ४ . ग ४ . इं २ पं च . का १ त्र . यो ३ औमि वैमि का . वे ३ . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ च . ले २ क शु । भ २ . स १
भा ६
मि . सं २ . आ २ . उ ३ . तत्सासादनात् क्षीणकषायांतं मूलौघभंगः किंतु दर्शनस्थाने एकं चक्षुर्दर्शनमेव वक्तव्यं ।

अचक्षुर्दर्शनिनां—गु १२ . जी १४ . प ६ ६ ५ ५ ४ ४ . प्रा १० ७ . ९ ७ . ८ . ६ . ७ . ५ . ६ . ४ . ४ . ३ . सं ४ . ग
४ . इं ५ . का ६ . यो १५ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ७ केवलं नहि . सं ७ अ दे सा छे प सू य . द १ अ . ले ६ , भ २ . स ६ . सं २ . आ २ .
६
उ ८ . तत्पर्याप्तानां—१२ . जी ७ प . प ६ . ५ . ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ . ६ . ४ . स ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ . यो ११ म ४ .
व ४ . औ १ वै १ आ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ७ केवलं नहि . सं ७ . द १ अ . ले ६ भ २ . स ६ . सं २ . आ . १ , उ ८ . तदपर्याप्तानां—
६
गु ४ मि सा अ प्र . जी ७ अ . प ६ . ५ . ४ अ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ . ३ . सं ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ . यो ४ औमि वैमि आमि
का . वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ , कु कु म श्रु अ . सं ३ अ . सा . छे । द १ अ . ले २ क शु . भ २ , स ५ मि सा उ वे क्षा , सं २ . आ २
भा ६
उ ६ . तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी १४ , प ६ , ६ . ५ , ५ . ४ . ४ . प्रा १० . ७ , ९ , ७ , ८ . ६ , ७ . ५ , ६ . ४ , ४ ,

३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, लेदं ६ भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां–गु १ मि। जी ७ प। प ६। ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३। क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, ले ६ ६। भ २, स १ मि। सं २, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अ, ले २ क शु। भा ६ भ २, स १ मि, सं २, आ २। उ ३, तत्सासादनात् क्षीण-कषायांतं यथायोग्यं योज्यं।

अवधिदर्शनिनां—गु ९, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४। ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६ ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां–गु ९, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४, व ४, औ १, वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६ ६। भ १। स ३, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७, सं ४, ग ४, इं ५, का १ त्र यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ पुं न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स ३ अ सा छे, द १ अ, ले २ ६ भ २, स ३, सं १। आ २, उ ४, असंयतात् क्षीणकषायांतं अवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत्। दर्शनमार्गणा गता। लेश्यानुवादे गुणस्थानालापो मूलौघवत्। अयोगिगुणस्थानं नास्ति।

कृष्णलेश्यानां–गु ४ मि सा मि अ। जी १४। प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ भा १ कृ भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ९ तत्पर्याप्तानां—गु ४ मि सा मि अ, जी ७ प, प ६, ५, ४, प, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ म ति न, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३

च अ अ, ले ६, भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी ७ अ, प ६, ५, ४
भा १ कृ

अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कुम श्रु अ, सं १
अ, द ३, ले २ क शु। भ २, स ३ मि सा वे, पंचमादिपृथ्व्यागतासंयतेषु वेदकसम्यक्त्वसंभवात्, सं २, आ २, उ ८, तन्मि-
भा १ कृ

थ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३। सं ४, ग ४,
इं ५, का ६, यो १३। वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २ उ ५, तत्पर्याप्तानां—
कृ १

गु १ मि. जी ७ प. प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म. इं ५, का ६. यो १० म ४ व ४ औ
वै, वे ३. क ४. ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ. द २। ले ६, भ २. स १ मि, सं २. आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि. जी ७
भा १ कृ

अ, प ६, ५, ४ अ। प्रा ७, ७. ६. ५. ४. ३ अ. सं ४. ग ४। इं ५. का ६. यो ३ औमि वैमि का. वे ३. क ४, ज्ञा २,
कु कु. सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ २. स १ मि, सं २. आ २. उ ४, तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६. प्रा १० ७.
भा १ कृ

सं ४, ग ४, इं १ पं. का १ त्र. यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३, क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १
भा १ कृ

सा, सं १, आ २, उ ५ तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १० प, प ६, प्रा १०. सं ४. ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ
वै, वे ३. क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ. द २, ले ६, भ १. सा १ सा. सं १, आ १. उ ५. तदपर्याप्तानां—गु १ सा. जी १ अ.
भा १

प ६ अ. प्रा ७ अ. सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र. यो ३ औमि वैमि का. वे ३. क ४. ज्ञा २ कु कु. सं १ अ. द २. ले २ क शु
भा १ कृ

भ १. म १ सा. सं १. आ २. उ ४. तन्मिश्राणां—गु १ मिश्र. जी १ पं. प ६. प्रा १०. सं ४. ग ३ न ति म. देवगतौ पर्याप्ते कृष्णलेश्या
अपर्याप्ते मिश्रगुणस्थानं नास्ति। इं १ पं। का १ त्र. यो १० म ४ व ४ औ वै. वे ३. क ४. ज्ञा ३ मिश्राणि. सं १ अ. द २ च अ. ले ६. भ १.
भा १ कृ

स १ मिश्र . स १ . आ १ . उ ५ . तदपर्याप्तानां—गु १ असं । जी २ प अ . प ६ , ६ , प्रा १० . ७ . सं ४ . ग ३ न ति म तेषां देवगतिर्नहि । इं १ पं . का १ त्र . यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १ तेषां सम्यग्दृष्टित्वात् भवनत्रयदेवेषु पादिपृथ्वीष्वनुत्पत्तेः । पर्याप्तानां तु कपोतलेश्या तत्पर्याप्तानां वैक्रियिक मिश्रयोगो नहि । वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ २ . उ ६ .
भा १ क

तत्पर्याप्तानां—गु १ असं . जी १ प . प ६ , प्रा १० . सं ४ . ग ३ न ति म , इं १ पं . का १ त्र . यो १० म ४ व ४ औ वै , वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स ३ उ वे क्षा . स १ . आ १ . उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु १ असं . जी १ अ . प
भा १ क

६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र , यो २ औमि का . वे १ पुं , क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ . ले २ क शु
भा १ क

भ १ , स १ वे . सं १ , आ २ . उ ६ . नीललेश्यानां कृष्णलेश्यावद्वक्तव्यं .

कपोतलेश्यानां—गु ४ मि सा मि अ . जी १४ , प ६ . ६ . ५ , ५ . ४ ४ . प्रा १० , ७ , ९ , ७ , ८ . ६ , ७ , ५ . ६ , ४ . ४ .
३ . सं ४ , ग ४ , इं ५ . का ६ , यो १३ प ४ व ४ औ २ वै २ का १ , वे ३ , क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं १ अ , द ३ च अ
अ , ले ६ . भ २ , स ६ मि सा मि उ वे क्षा . सं २ , आ २ . उ ६ , तत्पर्याप्तानां—गु ४ मि सा मि अ , जी ७ प , प ६ , ५ , ४ , प्रा
भा १ क

१० , ९ , ८ . ७ , ६ . ४ , सं ४ . ग ३ न ति म . देवगतिर्नहि भवनत्रयदेवानामपि पर्याप्तकाले शुभलेश्यत्वात् , इं ५ , का ६ . यो १० म ४ व
४ औ वै , वे ३ . क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं १ अ , द ३ , ले ६ , भ २ , स ६ मि सा मि उ वे क्षा , सं २ . आ १ , उ ९ ,
भा १ क

तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ . जी ७ अ . प ६ . ५ . ४ अ । प्रा ७ , ७ , ६ . ५ , ४ , ३ , सं ४ , ग ४ . इं ५ , का ६ , यो ३ औमि
वैमि का , वे ३ , क ४ , ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . स १ अ , द ३ च अ अ , ले २ क शु , भ २ , स ४ मि सा वे क्षा . स २ , आ २ , उ ८ ,
भा १ क

तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी १४ , प ६ , ६ , ५ , ५ , ४ , ४ , प्रा १० , ७ , ९ ७ . ८ . ६ , ७ , ५ . ६ , ४ , ४ , ३ . सं ४ , ग ४ ,
इं ५ , का ६ , यो १३ , वे ३ . क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ च अ , ले ६ , भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ५ , तत्प-
भा १ क

र्याप्तानां—गु १ मि , जी ७ प , प ६ , ५ . ४ । प्रा १० . ९ , ८ . ७ . ६ , ४ . सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का १ , यो १० म ४

व ४ औ वै , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ च अ , ले ६ . भ २ , स १ मि , सं २ , आ १ . उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ मि ,
भा १ क
जी ७ अ , प ६ , ५ , ४ , अ . प्रा ७ . ७ , ६ , ५ , ४ , ३ , सं ४ , ग ४ , इं ५ , का ६ , यो ३ औमि वैमि का , वे ३ , क ४ , ज्ञा
२ कु कु , स १ . स १ अ . द २ , ले २ क शु . भ २ . स १ मि , सं २ . आ २ , उ ४ , तत्सासादनानां—गु १ सा , जी २ प अ , प ६ ,
भा १ क
६ , प्रा १० , ७ , सं ४ , ग ४ , इं १ पं , का १ त्र , यो १३ , वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ , कु कु वि , सं १ अ , द २ च अ , ले ६ , भ १ , स १ सा , सं १ , आ
क १
२ , उ ५ , तत्पर्याप्तानां—गु १ सा . जी १ प , प ६ , प्रा १० , सं ४ , ग ३ न ति म , इं १ पं . का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औ वै , वे ३ ,
क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , स १ अ , द २ च अ , ले ६ . भ १ , स १ सा . सं १ . आ १ . उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ सा , जी १
भा १ क
अ . प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ , ग ३ ति म दे , इं १ पं , का १ त्र . यो ३ औमि वैमि का , वे ३ , क ४ , ज्ञा २ कु कु , सं १ अ ,
द २ च अ , ले २ क शु , भ १ , स १ सा , सं १ , आ २ , उ ४ , सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं , जी १ प . प ६ , प्रा १० , सं ४
भा १ क
ग ३ न ति म , देवगतिर्नहि , इं १ पं , का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औ वै . वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ मिश्राणि , सं १ अ , द २ , ले ६ ,
भा १ क
भ १ , स १ मिश्रं . सं १ . आ १ , उ ५ . असंयतानां—गु १ अ . जी २ प अ , प ६ ६ , प्रा १० ७ , सं ४ . ग ३ न ति म , इं १ पं ,
का १ त्र , यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ क १ , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ . द ३ , ले ६ . भ १ , स ३ , सं १ , आ
भा १ क
२ , उ ६ , तत्पर्याप्तानां—गु १ अ , जी १ प . प ६ . प्रा १० , सं ४ , ग ३ न ति म , इं १ पं . का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औ वै ,
वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ । द ३ . ले ६ , भ १ , स ३ . सं १ , आ १ , उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु १ अ , जी १ अ . प ६ अ , प्रा
भा १ क
७ अ . सं ४ . ग ३ न ति म . इं १ पं . का १ त्र . यो ३ औमि वैमि का . वे २ पुं न , क ४ . ज्ञा ३ , सं १ अ . द ३ , ले २ क शु ,
भा १ क
भ १ . स ३ वे क्षा । सं १ , आ २ , उ ६ . तेजोलेश्यानां—गु ७ , जी २ प अ . प ६ ६ , प्रा १० ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे , इं १

पं, का १ त्र. यो १५, वे ३. क ४, ज्ञा ७ केवलं नहि. सं ५ अ दे सा छे प, द ३. ले ६, भ २, स ६. सं १. आ २, उ
भा १ ते
१०. तत्पर्याप्तानां—गु ७. जी १ प, प ६. प्रा १०, सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ. वे ३,
क ४. ज्ञा ७ केवलं नहि. सं ५ अ दे सा छे प. द ३. ले ६, भ २. स ६, सं १. आ १, उ १०, तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा
भा १ ते
अ प्र, जी १ अ. प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग २ प दे, इं १ पं. का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ स्त्री पुं, क ४.
ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं ३ अ सा छे. द ३. ले २ क शु. भ २. स ५ मि सा उ वे क्षा. सं १. आ २, उ ८, तन्मिथ्यादृशां—गु
भा १ ते
१ मि. जी २ प, अ. प ६ ६. प्रा १० ७. सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र. यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का. वे ३.
क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २. ले ६. भ २. स १ मि. सं १. आ २. उ ५. तत्पर्याप्तानां—गु १ मि. जी १ प. प ६.
भा १ ते
प्रा १०, सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र. यो १० म ४ व ४ औ वै. वे ३. क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २.
ले ६. भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ दे। इं १
भा १ ते
पं। का १ त्र। यो २। वैमि का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ
भा १ ते
४। सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४।
औ १ वै २ का १, वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु
भा १ ते
१ सा। जी १ प. प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं
१ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १
भा १ ते
दे। इं १ पं। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। सं १। आ
भा १ ते

२ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ वै औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ प । अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १, स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ।

भा १ ते

तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतिनां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां-गु १ अप्र । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । पद्मलेश्यानां—गु ७ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु ७ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ अ दे सा छे प । द ३ ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्तानां— गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि

भा १ ते / भा १ ते / भा १ ते / भा १ ते / भा १ ते / भा १ प / भा १ प

आमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ५ कुकु म श्रु अ। सं ३ अ सा छे। द ३। ले २ क शु। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा। सं १। आ
भा १ प
२। उ ८। तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि। जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १२ म ४
४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कुकु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—
भा १ प
गु १ मि। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा
३ कुकु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ
भा १ प
सं ४। ग १ दे। इं १ पं। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा २ कुकु। सं १ अ। द २ ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं
भा १ प
१। आ २। उ ४। तत्सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १२ म ४ व
४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कुकु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १ अ। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—
भा १
गु १ सा। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कुकु वि
सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १
भा १ प
दे। इं १। का १। यो २ वैमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा २ कुकु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ
भा १ प
४। सम्यग्मिथ्यादृशां— गु १ मिश्रं। जी १, प ६, प्रा १०। सं ४, ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३
मिश्राणि, सं १ अ, द २। ले ६। भ १। स १ मिश्रं। सं १। आ १, उ ५, असंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा
भा १ प
१०, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १३ आहारद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ
१, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २ उ ६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४ ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औका वैका। दे
भा १ प

३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द २, ले ६। भ १। स २ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग २ म दे,
भा १ प

इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले २ क शु। भ १. स २ उ वे क्षा. सं १. आ २. उ ६.
भा १ प

देशव्रतानां—गु १ दे। जी १ प, प ६. प्रा १०. सं ४. ग २ ति म. इं १। का १। यो ९. वे ३. क ४. ज्ञा ३ म श्रु अ. सं १ दे. द ३.
ले ६। भ १. स ३. स १। आ १. उ ६. प्रमत्तानां—गु १ प्र. जी २ प अ. प ६. ६. प्रा १० ७. स ४. ग १ म. इं १. का १। यो ११
भा १ प

म ४ व ४ औ १ आ २. वे ३. क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा. सं १. आ १। उ ७।
भा १ प

अप्रमत्तानां—गु १ अप्र, जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९ म ४ व ४ औ १। वे ३, क ४, ज्ञा ४ म
श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। शुक्ललेश्यानां—गु १३ जी २ प अ। प ६। ६।
भा १ प

प्रा १०। ७। सयोग ४। २। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४, ले ६। भ २। स ६।
भा १ शु

म १, आ २. उ १२. तत्पर्याप्तानां गु १३। जी १ प. प ६. प्रा १० ४. सं ४, ग ३ ति म दे. इं १. का १, यो ११ म ४ व ४ औ १
वै १ आ १. वे ३. क ४. ज्ञा ८। सं ७. द ४ च अ अ के. ले ६। भ २. स ६. सं १। आ १. उ १२. तदपर्याप्तानां—गु ५.
भा १ शु

मि सा अ प्र स. जी १ अ. प ६ अ. प्रा. ७. २, सं ४. ग २ म दे. इं १, का १, यो ४ औमि वैमि आमि का. वे १ पुं.
क ४. ज्ञा ६, सं ४ अ सा छे य. द ४, ले २ क शु। भ २. स ५ मि सा उ वे क्षा. सं १. आ २, उ १०।
भा १ शु

तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि. जी २ प अ. प ६ ६. प्रा १०. ७. सं ४, ग ३ ति म दे. इं १. का १. यो १२ म ४ व ४ औ
१ वै २ का १. वे ३, क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २. ले ६, भ २. स १ मि. सं १. आ २. उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि.
भा १ शु

जी १ प. प ६. प्रा १०. सं ४, ग ३ ति म दे. इं १. का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १. वे ३. क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २.

ले ६, प २, स १, सं १, आ १. उ ५. तदपर्याप्तानां—गु १ मि. जी १ अ. प ६, प्रा ७, सं ४, ग १ दे. इं १. का १. यो २
भा १ शु
वैमि का. वे १ पु. क ४. ज्ञा २ कुकु. सं १ अ. द २. ले २ क शु। भ २. स १ मि. सं १. आ २. उ ४. नामादनानां—गु १ सा.
भा १ शु
जी २ प. अ. प ६. ६. प्रा १०. ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १. यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३. क ४. ज्ञा ३ कुकु
वि. सं १ अ. द २। ले ६। भ १. स १ सा. सं १. आ २. उ ५. तदपर्याप्तानां—गु १ सा. जी १ प. प ६. प्रा १०. सं ४.
भा १ शु
ग ३ ति म दे, इं १, का १. यो १० म ४ व ४ औ वै. वे ३, क ४, ज्ञा ३ कुकु वि. स १ अ। द २. ले ६, भ १. स १ सा. सं १, आ
१, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४. ग १ दे, इं १, का १। यो २ वैमि का, वे १ पुं, क ४,
भा १ शु
ज्ञा २ कुकु, सं १ अ, द २. ले २ क शु। भ १, स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६।
भा १ शु
प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १।
स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का
भा १ शु
१। यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३, ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६।
तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म
भा १ शु
श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ म
भा १ शु
दे। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले २ क। शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १।
आ २। उ ६। देशव्रतानां—गु १ दे। जी १ प। प ६। प्रा १० सं ४। ग २ ति म, इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३
भा १ शु
म श्रु अ। सं १ दे। द ३ ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६ प्रमत्तानां—गु १ प्र। जीं २ प। अ। प ६ ६। प्रा १०, ७। सं ४।
भा १ शु

ग १ म । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३ । क ४। ज्ञा ४, सं ३ सा छे प-द ३, ले ६ । भ १। स ३। सं १ । आ १।
भा १ शु

उ ७ । अप्रमत्तानां गु १ अ म । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ सा छे प । द ३।
ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणात्सयोगपर्यंतानां अलेश्यायोगिसिद्धानां च ओघभंगो भवति । लेश्यामार्गणा गता ।
भा १ शु

भव्यानुवादे भव्यानामोघभंगः । अभव्यानां–गु १ मि। जी १४ प ६ ६ ५ ५ ४ ४ . प्रा १० ७ ९ ७ , ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ , सं ४ । ग
४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४। ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्प-
६

र्याप्तानां–गु १ मि । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।
सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ७ अ । प ६ ५ ४ अ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ अ । सं
६

४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ
भा ६

४ । भव्याभव्यलक्षणरहितसिद्धानां प्राग्वत् । भव्यमार्गणा गता ।

सम्यक्त्वानुवादे सम्यग्दृष्टीनां–गु ११ असंयतादीनि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ४ २ १ । सं ४ . ग ४ . इं १ पं . का १ त्र . यो १५ ।
वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ म श्रु अ म के . सं ७ . द ४ . ले ६ . म १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ २ . उ ९ . तत्पर्याप्तानां–गु ११ . जी १ . प ६ ४ . प्रा
भा ६

१० ४ १ . सं ४ . ग ४ . इं १ . का १ . यो ११ म ४ व ४ औ वै आ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ म श्रु अ म के . सं ७ . द ४ . ले ६ . भ १ . स ३
६

उ वे क्षा । सं १ । [illegible] २ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ अ प्र स । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । २ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १
त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे २ न पुं । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ च अ अ के । ले २ क शु । भ १ । स
भा ४

३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । असंयताद्ययोगिपर्यंतं मूलौघभंगः ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां—गु ११। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७ ४ २१। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ५। सं ७। द ४। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ९। तत्पर्याप्तानां—गु ११। जी १। प ६। प्रा १० ४ १। सं ४। ग ४। इं १। का
६
१ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ वै आ। वे ३। क ४। ज्ञा ५ म श्रु अ म के। सं ७। द ४। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ
६
९। तदपर्याप्तानां—गु ३ अ प्र स। जी १ अ। प ६। प्रा ७, २। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ४ औमि वैमि आमि का। वे २ न, पुं। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ के। सं ४ अ सा छे य। द ४ च अ अ के। ले २ क शु, भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ८।
भा ४
तदसंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १। प ६।
६
प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो
६
३ औमि वैमि का। वे २ न पुं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु। भ १। स १ क्षा। सं १। आ २।
भा ४ क ते प शु
उ ६। तद्देशव्रतानां—गु १ दे। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९ म ४ व ४ औ। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ दे। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ६। प्रमत्तात्सिद्धपर्यंतं ओघभंगो भवंति।
भा ३
वेदकसम्यग्दृष्टीनां—गु ४ अ दे प्र अ। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ५ अ दे सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स १ वे। सं १। आ २। उ ७। तत्पर्याप्तानां—गु ४ अ दे प्र अ। जी १
६

प, प ६, प्रा १०, सं ४। ग ४, इं १, यो ११ म ४ व ४, ओ १ वै १ आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७, तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६, प्रा ७, सं ४, ग
६
४, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ न पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं ३ अ सा छे. द ३, ले २, भ १,
६
स १ वे, सं १, आ १, उ ६, तदसंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १। स १ वे, सं १, आ २, उ
६
६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४. ग ४, इं १, का १ त्र, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ। प ६ अ,
६
प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे २ षं पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले २ क ,शु
भा ६
भ १, स १ वे, सं १, आ २, उ ६, देशव्रतानां—गु १ दे, जी १ प, प ६. प्रा १० सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ. वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६, प्रमत्तानां—गु १ प्र, जी
३
२ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ १, आ २, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६। भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७, अप्रमत्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३, ग
३
१ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७, उ-
३
पशमसम्यग्दृष्टीनां—गु ८, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७; सं ४, ग ४, इं १। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १।

वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ६ अ दे सा छे सू य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ७ । तत्पर्याप्तानां—गु ८ अ दे प्र अ
६
अ अ सू उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ६
अ दे सा छे सू य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ७ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ ।
६
ग १ दे । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ
भा ३ शु
६ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ का । यो १२ म ४ व४ औ १ वै २ का १ । वे ३ । क ४।
ज्ञा ३ म श्रु अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ ।
६
इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ । त-
६
दपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १
अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतानां—गु १ दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति
भा ३
म । इ १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्र-
३
मत्तानां—गु १ म . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ म . इं १ । का १ . यो ९ म ४ व ४ . औ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ४ म श्रु अ
म . सं ३ सा छे . द ३ . ले ६ . भ १ . स १ उ . सं १ . आ १ . उ ७ . अप्रमत्तानां—गु १ अ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ३ . ग
भा ३
१ म . इं १ . का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ४ . सं ३ सा छे . द ३ . ले ६ . भ १ . स १ उ . सं १ . आ १ .
भा ३
उ ७ . अपूर्वकरणादुपशांतकषायपर्यंतमोघभंगः । तथा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रकचीलामपि । सम्यक्त्वमार्गणा गता ।

संज्ञ्यनुवादे संज्ञिनां—गु १२ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ ।
६
का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्तानां—
६
गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि ।
भा ६
जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १०, ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का
६
१ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्या-
६
प्तानां—गु १ मि । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग
६
४ । इं १ । का १ त्र । यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा ।
६
सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ । भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६
६
अ, प्रा ७ अ । सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १ । यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले २ । भ १, स १ सा,
६

सं १, आ २, उ ४, मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, औदारिक मिश्र . वैक्रियिकमिश्रकार्माणाहारकद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६ । भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ
६

५, असंयतानां—गु १ अ । जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १ . का १, यो १३ आहारकद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६ । भ १, स ३, सं १ . आ २ . उ ६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १० .
६

सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, वे ३, क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ । भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १ .
६

आ १ । उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ, प ६, प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का वे २ पुं, न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु । भ १, स ३, सं १ । आ २, उ ६, देशव्रतात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघभंगः ।
भा ६

असंज्ञिनां—गु १ मि । जी १२ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ नहि । प ५ ५ । ४ ४ । प्रा ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ४ । औ २ । का १ अनुभय वचनं । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ ले ६ । भ १, स १ मि । सं १ । आ
भा ४ अ ३ शु १

२ । उ ४ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ६ संज्ञिपर्याप्तो नहि । प ५ । ४ । प्रा ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो २ औ । अनुभयवचनं, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ ले ६ । भ २, स १ मि । सं १ अ, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १
भ ४ अ ३ शु १

मि, जी ६ अ, प ४ अ . प्रा ७ . ६, ५, ४, ३ . सं ४ । ग १ ति, इं ५, का ६, यो २ औमि का . वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ . द २ । ले २ क शु । भ २, स १ मि, स १ अ . आ २ . उ ४, संज्ञासंज्ञिव्यपदेशरहितानां सयोगायोगिसिद्धानां मूलौघभंगः । संज्ञि-
भा ३ अशु

मार्गणा गता ।

आहारानुवादे आहारिणां—गु १३ . जी १४ । प ६, ६ . ५, ५, ४, ४ . प्रा १० . ७ . ९, ७, ८ . ६ . ७, ५, ६ . ४ . ४ .

३, ४, २, सं ४, ग ४ . इं ५, का ६, यो १४ कार्मणो नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ । भ २, स ६ . सं
६
२, आ १, उ १२, तत्पर्याप्तानां— गु १३, जी ७, प ६ . ५ . ४, प्रा १० . ९, ८, ७ . ६, ४ . ४, सं ४, ग ४, इं ५,
का ६ . यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३ . क ४ । ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ । भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२, तदपर्याप्तानां—गु ५
६
मि सा अ प्र स, जी ७ अ, प ६, ५, ४ . प्रा ७, ७, ६, ५, ४ . ३, २, सं ४, ग ४ । इं ५, का ६, यो ३ औ मि वैमि आ-
मि, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, सं ४ अ सा छे यथा, द ४ । ले १ क । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ १, उ
भा ६
१०, मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मि, जी १४ . प ६ . ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १० . ७ . ९, ७, ८ . ६ . ७ . ५ . ६, ४ . ३, सं ४,
ग ४, इं ५ । का ६, यो १३ आहारद्वयकार्मणाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि . सं १ अ . द २, ले ६ । भ २ . स १ मि । सं २ .
६
आ १ । उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी ७ प, प ६ . ५, ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ . ६ . ४ . सं ४ . ग ४ इं ५ . का ६ . यो
१० आहारकद्वयमिश्रत्रयाभावात्, वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ . आ १ . उ ५ . तद-
६
पर्याप्तानां—गु १ मि . जी ७ . प ६ . ५ . ४ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ . ३ . सं ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ . यो २ औमि वैमि . वे ३
क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द २ . ले १ क । भ २ . स १ मि . सं २ . आ १ . उ ४ . सासादनानां—गु १ सा . जी २ प अ . प ६,
भा ६
६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ २ . वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले
६, भ २, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, म
६
४ व ४ औ १ वै १, वे ३ . क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा . सं १, आ १, उ ५,
६

तदपर्याप्तानां—गु १ आ, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४. ग ३ नि म दे, इं १, का १, यो २ औमि वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले १ क भा ६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ४, मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि. सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १. उ ५ असंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १०. ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १३ म ४, व ४ औ २ वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ. सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा। सं १, आ, १, उ ६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०। सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ। द ३ ले ६, भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २ औमि वैमि। वे २ पुं। न। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३ त्र अ अ। ले १ क, भा ६, भ १, स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६।

देशव्रतानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ दे। द ३। ले ६ भा ३, भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। प्रमत्तानां—गु १ प्र जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६ भा ३। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६ भा ३। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ७। अपूर्वकरणानां—गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६ भा १। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। अनिवृत्तीनां प्रथमभागे—

गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं २ मै प। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६। भ
१
१। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। शेषचतुर्भंगेष्वोघभंगः। सूक्ष्मसांपरायाणां—गु १ सू। जी १। प ६, प्रा १०। सं १ प, ग १,
इं १। का १। यो ९। वे ०। क १। सूक्ष्मलोभः। ज्ञा ४। सं १ सू। द ३। ले ६। भ १। स २। उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। उपशां-
१
तकषायाणां—गु १ उ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १ म। इं १। का १। यो ९ म ४ व ४ औ, वे ०, क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म।
सं १ य। द ३ च अ। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। क्षीणकषायाणां—गु १ क्षी। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४।
१
ग १ म। इं १। का १ त्र। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४, सं १ य। द ३। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ७। सयोगिके-
१
वलिनां—गु १ सयो। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा ४। २। सं ०। ग १ म। इं १। का १ त्र। यो ६ म २ व २ औ २। वे ०। क ०।
ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं ०। आ १। उ २। एषामपर्याप्तालापोऽपि वक्तव्यः।
१

अनाहारिणां—गु ५ मि सा अ स अ। जी ८ सप्ताऽपर्याप्ता एकोऽयोगिनः। प ६। ५। ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ १। सं ४। ग ४।
इं ५। का ६। यो १। वे १। क ४। ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के। सं ३ अ य। द ४। ले ६। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा। सं २।
भा ६
आ १। उ १०। तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १ का। वे
३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले १ शु। भ २। स १ मि। सं २। आ १ अ। उ ४। सासादनानां—गु १ सा। जी १ अ।
भा ६
प ६। प्रा ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले १ शु। भ १।
भा ६
स १ सा। सं १। आ १ अ। उ ४। असंयतानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १

क्षा। वे २ पुं षं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले १ शु। भ १। स ३। सं १। आ १ अ। उ ६। प्रमत्तानां—गु १ प्र।
भा ६

जी १। प ६। प्रा ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो १ आमि तेन औदारिकापेक्षयाऽनाहारः वे १ पुं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं २ सा छे। द ३। ले १ क। भ १। स २। सं १। आ १। उ ६। सयोगिकेवलिनां—गु १ स। जी १ अ। प ६ अ। प्रा २ कायवलं।
भा ३

आयुष्यं। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ का। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। के। १ भ १। स १ क्षा। सं ०।
भा १

आ १ अ। उ २। अयोगकेवलिनां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १ आयुः। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ०। वे ०। क ४। ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। ले ६। भ १। स १ क्षा। सं ०। आ १ अ। उ २। सिद्धानां—गु ०। जी ०। प ०। प्रा ०।
भा ०

सं ०। ग १ सिद्धगतिः। इं ०। का ०। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं ०। द १ के। ले ०। भ ०। सं १ क्षा। सं ०। आ १ अ। उ २॥ ७२८॥



अथ भाषा यंत्र रचना

रचनानि कीकणिए है तिनके नाम	गुणस्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्री	काय	जोग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहारक	उपयोग
पर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिको रचना	१४	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९।८।७।६।४।४।१ पर्याप्त	४	४	५	६ पर्याप्त	११ पर्याप्त	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहारक	१२
अपर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ सजो १	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५।४।३।२ अपर्याप्त	४	४	५	६	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी सामान्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६।५।५।४।४।	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।३।	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी पर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९।८।७।६।४।	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औदा १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहारक	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५।४।३।	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २
सासादन सामान्यकी रचना	१ सासादन	२ संप १ संअ १	६।६।	१०।७।	४	४	१ पंचेंद्री	१ त्रस	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासादन	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा ३ द २

सासादन पर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संप	६। प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४औ १वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
सासादन अपर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ ति१म १ दे १	१ पं	१ त्र	३औ मि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४औ१ वै १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
असंयत सामान्य रचना	१ असंयत	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहा रक द्विक विना	३	४	३ म१ श्रु १ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उप१ वे१ क्ष १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४औ१ वै १	३	४	३ म१ श्रु १ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वै१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
असंयत अपर्याप्तरचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३औ मि१ वैमि १ का १	२ न१पु१	४	३ म१ श्रु१ अ १	१ असं	३ आदि के	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्या दि क	१ देश संयत	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ संप१ संअ १	६।६	१०।७	४	१ मनु	१ पं	१ त्र	११ म४व ४औ१ आहा२	३	४	४ म या दिक	३ सा१ छे१ प १	३ आद के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द ३

अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत्त	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ प	१ त्र	६ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म०४ व०४ औ०४	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	६ म०४ व०४ आ१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	३ क्रोध विना	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ सप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ आ१	०	१ लो	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सूक्ष्मसांपराय रचना	१ सूक्ष्म	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ आ१	०	१ लो	४ मत्यादिक	१ सूक्ष्म	२ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३

रचना	गुणस्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रिय	काय	योग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहार	उपयोग
उपसांतकषाय रचना	१ उप	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
क्षीणकषाय रचना	१ क्षीण	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सयोगकेवली रचना	१ सयो	२ प१ अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ मन२ वच२ औदा२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	०	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
अयोगकेवली रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
सामान्य नारक जीवनि की रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ अज्ञा३ मत्यादिक३	१ असं	३ आदि के	द्रव्य३ क१ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
सामान्य	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१	१	१	९ म४ [illegible]	१ [illegible]	४	६ अज्ञा३ [illegible]	१ असं	३ आदि	द्र१ क१ भा३	२	६	१ सं	१ आहारक	९ ज्ञा६ द३

द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकपर्याप्तनि की रचना	४ आदिके	१ सप	६	१०	४	१ न	१ प	१ त्र	६ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादिक३	१ असं	३ आदि के	द्र१क भा१स्व स्व प० संबंधी	२	५ उ१ वे१मि १सा१ मि१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकअपर्याप्त निर्वृत्तिरचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारक मिथ्यादृष्टीनिर्वृत्ति रचना	१ मि	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ कृ१श१ शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकमिथ्यादृष्टीपर्याप्तनि की रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ व १	१ नपुं	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र १ कृष्ण भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकमिथ्यादृष्टीअपर्याप्त निर्वृत्तिरचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १ भा १ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकसासादनकी रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र १ कृ भा १ स्वकीय	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकमिश्र की रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ कृ भा१ स्वकीय	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञान ३ द २

सामान्य नारक अपर्याप्त रचना	२ मि १ अवि १	१ सं अ	६ अप	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का १	१ नपुं	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ असं	२ आदि के	द्र २ क शु भा३ अशुभ	२	३ मिथ्या१ वेद१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३
सामान्य नारक मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वैक्रि२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ क१ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द२
सामान्य नारकमिथ्या दृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनारकमिथ्या दृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सामान्यनारकसासादनरचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा३ अशुभ	१ भ	१ सासा	१ सं	१	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनारकमिश्रगुणस्थानरचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा३ अशुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनारकअसंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ क१ क१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

१२४१

द्वितीयादि-पृथ्वीके नारक असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ भा३ स्वकीय	१ भ	२ उ १ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
पंचप्रकार तिर्यंचनि विशेसामान्य तिर्यंच रचना	५ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	१ ति	५	६	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मनप र्यय के वल विना	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द३
सामान्यतिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदि के	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञा न३ मत्या दि३	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द३
सामान्यतिर्यंच अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अप र्याप्त	६। ५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मि१ सा१ क्षा१ वे१	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
सामान्य तिर्यंच मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७। ९।७।८।६ ७।५।६। ४।४।३।	४	१ ति	५	६	११ म ४ व ४ औ२ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्ति	६।५। ४।	१०।९ ८।७। ६।४।	४	१ ति	५	६	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अप	६।५। ४।	७।७ ६।५। ४।३।	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २

सामान्य तिर्यंच सासादन रचना	१ सासा	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सासा	१ सं अ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क शु १ भा ३ अशु	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
सामान्य तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द
सामान्य तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ व १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पुरुष	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र २ क शु १ भा १ कपोत	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

सामान्यति-र्यंचदेश सं-यत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ औ१ वे १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पंचेंद्री ति-र्यंच रचना	५ आदिके	४संप१ संभ १ असं प १असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मत्या दिक३ कुज्ञा- न ३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
पंचेंद्री तिर्यं-च पर्याप्त रचना	५ आदिके	१ संप१ असं प१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञा न ३ मत्या दि३	२ असं१ देश १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्यं-च अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा १ अवि १	२ संभ १ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	३	४	५ कुम १ कुश्रु त १ मत्या दि ३	१ असं	३ चक्षु अ.दि	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मिथ्या १सा१ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा५ द ३
पंचेंद्री तिर्यं-च मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	४सं प १सं अ १ असं प१ अ संभ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्री तिर्यं-च मिथ्य दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं प१ अ- सं प१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अ च १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री तिर्यं-च मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सअ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१शु १भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २

पंचेंद्री तिर्यंच सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ मन४ वच४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ चक्षु१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ मन४ वच४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ चक्षु१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम कुश्रु१	१ असं	२ चक्षु१ अच१	द्र२ कापोत शु भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
पंचेंद्री तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ मन४ वच४ औ१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ चक्षु१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ मन४ वच४ औ२ का१	३	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उप१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ मन४ वच४ औ१	३	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ पुरुष	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ कापोत१ भा१ कपोत	१ भ	२ क्षा१ वे१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

पंचेंद्री तिर्यंच देश संयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ उ१ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंचरचना-पंचेंद्री तिर्यंच वत् है	पंचेंद्रीवत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्
योनिमती तिर्यंच जो तिर्यंचणी ताकी रचना	५ आदिके	४सं प १सं अ १ असं प १ असं अ१	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	५ क्षायिक विना	२	२	९ ज्ञा६ द३
योनिमती तिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदिके	२ सं प१ असं प १	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान३ मत्यादिक३	२ असं १ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	५ क्षायिक विना	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
योनिमती तिर्यंच अपर्याप्त रचना	२ मिथ्या१ सा १	१ संअ१ असं अ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सासा १	२	२	४ ज्ञा २ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	४ संप१ संअ १ असंप १ असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ सं प असं प१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २

योनिमती तिर्यं मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ संअ १ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औ१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अस	२ च १ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमती तिर्यंचसासादन रचना	१ सा	२ सं प १ संअ १	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमती तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	२ उ१ वे१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
योनिमती तिर्यंच देश संयतरचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	२ उ१ वे	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	२ संअ१ अस अ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	१ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २
च्यारिप्रकार मनुष्यनिविषे सामान्यमनुष्यरचना	१४	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७ ४।३ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैक्रियकद्विक विना	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१२
सामान्य मनुष्य पर्याप्त रचना	१४	१ स प	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
सामान्य मनुष्य अपर्याप्त रचना	५ मिथ्या१ सा१ अवि१ प्र१स१	१ सं अ	६	७ २	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औमि१ आमि १का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं १सा१ वे१ यथा १	४	द्र २ का१शु १ भा६	२	४ मिथ्या १सा१ वेद१ क्षा१	१ सं	२	१० ज्ञा६ द४
सामान्यमनुष्यमिथ्यादृष्टिरचना	१ मिथ्या	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सामान्यमनुष्यमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्यमनुष्यमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क १शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २

सामान्यमनुष्यसासादन रचना	१ सा	२ संप १ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ आ ३ द २
सामान्य मनुष्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ आ ३ द २
सामान्य मनुष्य सासादन अपर्याप्तरच	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अ च १	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ आ२ द २
सामान्य मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ प	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ आ३ द २
सामान्यमनुष्य असंयत रचना	१ असं	२ संप १ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ मत्या-दिक	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ आ३ द ३
सामान्य मनुष्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	२ मत्या-दिक	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ आ३ द ३
सामान्य मनुष्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ पुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा६	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ आ३ द३

		अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ मर वर औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
	१ अयो	१ प	६	१० आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अना-हारक	२ ज्ञा १ द १
पर्याप्त मनुष्य रचना सामान्य मनुष्य पर्याप्तवत्	सामान्य मनुष्य पर्याप्त वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
योनिमत् मनुष्यणी नाकी रचना	१४	२ सं प१ सं अ १	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	७ मनःपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ संप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	७ मनपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२ आहा	११ ज्ञा७ द ४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ सयो १	१ सं अ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ स्त्री	४	३ कुम १ कुश्रु१ केवल १	२ असं १ यथा १	३ च १ अच १ केव १	द्र२ का१ शु१ भा ४ अशुभ ३ शुक्ल१	२	३ मिथ्या १ सा१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	४	४ मत्या दिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	३ मान१ माया१ लोभ१	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	२ माया१ लोभ१	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप १	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	०	१ लोभ	४ मत्या-दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य सूक्ष्म सांपराय रचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ लोभ	४ मत्या-दिक	१ सूक्ष्म	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
सामान्य मनुष्य उपशांत कषाय रचना	१ उ	१ संप	६	१०	[illegible]	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	०	४ मत्या दिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामान्य मनुष्य क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	०	४ मत्या दिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३

सामान्य मनुष्य सयोग केवली रचना	१ सयो	२ सं.प१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
सामान्य मनुष्य अयोग केवली रचना	१ अयो	१ प	६	१८ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा १ द १
पर्याप्त मनुष्य रचना सामान्य मनुष्य पर्याप्तवत्	सामान्य मनुष्य पर्याप्त वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
योनिमत् मनुष्यणी नाकी रचना	१४	२ सं.प१ संअ	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	७ मनः पर्यय विना	६ परिहा रविशु द्धिवि ना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ संप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	७ मनपर्य यवि- ना	६ परिहा रविशु द्धिवि ना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२ आहा	११ ज्ञा७ द ४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ सयो १	२ सं अ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औमि १ का१	१ स्त्री	४	३ कुम १ कुश्रु१ केवल १	२ अस १ यथा १	३ च १ अच १ केव १	द्र२ का१ शु१ भा ४ अशु भ २ शुक्ल१	२	३ मिथ्या १ सा१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
मनुष्यणी सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	[illegible]	४ ज्ञा २ द २
मनुष्यणी सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी असंयत रचना	१ असं	१ सं प १	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ असं १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३

मनुष्यणी देश संयत रचना	१ देश	१ संप	६	१९	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप १	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा छे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	२ सा १ छे १	२ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अपूर्व करण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिकरणद्वितीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिकरणतृतीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	३ मान १ माया १ लोभ १	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३

मनुष्यणी अनिवृत्तिकरणचतुर्थ भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अनिवृत्तिकरणपंचम भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ बादर लोभ	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी सूक्ष्मसांपरायरचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ सूक्ष्म लोभ	३ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी उपशांत कषाय रचना	१ उप	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	२ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी सयोगी रचना	१ सयो	२ संप१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म २ व २ औ२ का १	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
मनुष्यणी अयोगी रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा०	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १

मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
देवगति रचना	४ आदिके	२ सं प१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान ३मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
देवगति पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान ३मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
देवगति अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३
देवमिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
देवमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप १	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ३ शुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देवमिथ्या दृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

देव सासा- दन पर्याप्त रचना	१ सा	२ सं प१ संअ१	६।६	१०७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा- द २
देव सासा दन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१	५ ज्ञा३ द २
देव सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ म अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा३	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
देव सम्य ग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देव असंयत रचना	१ असं	१ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ मत्या- दिक	१ असं	३ चक्षु- आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
देव असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु १भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३

भवनत्रिक देव रचना	४ आदिके	२ सं प१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा४ अशुभ ३ पी१	२	५ क्षायिक विना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
भवनत्रिक देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कु ज्ञान ३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पीत	२	५ क्षायिक विना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
भवनत्रिक देव अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सा१	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देवमिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पी१	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप १	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देव सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा४ अशुभ ३ पी१	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

भवनत्रिक देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ स अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	२ कुम२ कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	२ उ १ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सौधर्म्म ईशान देव रचना	४ आदिके	२ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ३ पी१क १शु१ भा१ पीत	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा६ द ३
सौधर्म्म ईशान देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ प	१ त्र	६ म ४ व ४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत	२	६	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
सौधर्म्म ईशान देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु १भा१ पीत	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिरचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ को१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	२ अस	२ च१ अच१	द्र ३ पी१क१शु१ भा१ पोत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ अस	२ च१ अच१	द्र१ पीत भा१ पोत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशान देवमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अस	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा१ पोत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सौधर्मईशान देवसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ अस	२ च१ अच१	द्र पी१क१शु१ भा१पीत	१ भ	१ सा१	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशानदेवसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ अस	२ च१ अच१	द्र १ पोत भा१ पोत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द
सौधर्मईशानसासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अस	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द
सौधर्मईशानदेवसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप१	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु	४	१ मिश्र	१ अस	२ च१ अच१	द्र १ पोत भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

सौधर्म ईशान देव असंयत रचना	१ असं	१ संप१ संअ१	६|६	१०|७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्या दि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र पी.का१ शु१भा१ पीत	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
सौधर्म ईशान देव असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत शुभ	१ भ	३ उ१ वे १क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सौधर्म ईशान देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु १भा१ पीत	१ भ	३ द्वितीयोपशम१वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द२
कल्पवासिनी देवांगनाके अपर्याप्तविषे पर्याप्तवत् ही रचना	सौधर्म असंयत पर्याप्तवत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	१ स्त्री	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	२ उ१ वे १	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्
सनत्कुमार माहेंद्र देव रचना	४ आदिके	१ संप१ संअ१	६ ६	१०|७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै का१	१ पुरुष देवांगना सौधर्मादिकमें ही उपजै हैं	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ४ पी१प१ का१शु१ भा: पी१प१	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा ६ द ३
सनत्कुमार माहेंद्र देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै१	१ पु	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ पी१प१ भा २ पी१प१	२	६	१ सं	१ आह	६ ज्ञा ६ द ३
सनत्कुमार माहेंद्र देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १का१	१ पु	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु१ भा पी१प१	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सनत्कुमार माहेंद्र मिथ्यदृष्ट्यादि असंयतपर्यंत सौधर्म पुरुषवत् रचना	सौधर्म वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	१ पुरुष वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	स्वकीय स्वर्गसंभवती	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्
ब्रह्मादिउपरिमग्रैवेयकपर्यंत सनत्कुमारवत् रचना	सनत्कुमार वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स्वकीय संभवती	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्
अनुदिशअनुत्तरदेवरचना सौधर्मपुरुष असंयतवत्	सौधर्म असंयत वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	१ पुरुष वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	स्वकीयसंभवती	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्
सिद्धगति रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १
इंद्रियमार्गणाविषै सामान्यएकेंद्री रचना	१ मि	४ बादर सूक्ष्मपर्याप्तअपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द १
सामान्यएकेंद्रीपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
सामान्यएकेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा द १

वादरएकेंद्री रचना	१ मि	२ वादर पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
वादरएकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ वादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
वादरैकेंद्रीअपर्याप्तरचना वादरएकेंद्रीलब्धिअपर्याप्तरचना	१ मि	१ वादर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री रचना	१ मि	२ सूक्ष्म प१अ१	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र१ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्मएकेंद्री अपर्याप्तवा अपर्याप्तनामकर्मकेउदयसेंलब्धिअपर्याप्तकरचना	१ मि	१ सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
वेंद्री रचना	१ मि	२ वेंद्री प१ अ१	५।५	६।४	४	१ ति	१ बे	१ त्र	४ औ२ का१ व१ अनु	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१

बेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ बेंद्री पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ बे	१ त्र	२ व१ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
बेंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ बेंद्री अपर्याप्त	५	४	४	१ ति	१ बे	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
तेंद्री रचना	१ मि	२ तेंद्री प१ अ१	५।५	७।५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
तेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री पर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा २ द १
तेंद्रीअपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री अपर्याप्त	५	५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
चौंद्री रचना	१ मि	२ चौंद्री प १ अ १	५।५	८।६	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ ज्ञा२ द २
चौंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री पर्याप्त	५	८	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	४ ज्ञा२ द२

चौंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री अपर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ चौं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ ज्ञा२ द२
पंचेंद्री रचना	१४	४ संअ संज्ञीप र्याप्तअ पर्याप्त रचना	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ४।२ अ०१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	२	१२ ज्ञा८ द ४
पंचेंद्री पर्याप्त रचना	१४	२ संज्ञी असंज्ञी पर्याप्त	६।५	१०।९ सं०।४ अ०,१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ१वै १आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२ ज्ञा८ द ४
पंचेंद्री अपर्याप्त रचना	५ मि१सा १अवि१ प्र१स१	२ संज्ञी असंज्ञी अपर्याप्त	६।५	७।७ सं०२	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १वैमि १आमि १का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र २ का१शु १ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द ४
पंचेंद्री मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ सं०अ सं प० अ०	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्रीमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ सं प र्याप्त	६।५	१०।९	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	२ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्रीमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना.	१ मि	२ सं अ सं अ पर्याप्त	६।५	७।७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क१शु १भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द २

पंचेंद्री सासादनादिक रचना गुणस्थान वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
असंज्ञीपंचेंद्री रचना	१ मि	२ असंज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त	५।५	६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	४ अनुवचन १ औ२ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ३ अशुभ २ पीत१	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री पर्याप्तरचना	१ मि	१ असंज्ञी पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ अनुभयवचन १ औदा १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पीत १	२	१ मि	१ असं	१ आहा	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अपर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
पंचेंद्रीलब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं० असं० अ २	६।५	७।७	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द २
संज्ञीपंचेंद्रीलब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संज्ञी अपर्याप्त	६	७	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री लब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अपर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २

अ इंद्रियरच न. सिद्धगति वत्	सिद्धगति वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत
षट्कायमार्गणाविषेसामान्यषट्काय रचना	१४	५७। ६८। ४०६।	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।६। ७।८।६। ७।५।६।४। ४।३।४। २।१।	४	४	५	६	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	२	१
षट्कायपर्याप्तरचना	१४	१६। ३७। १८६।	६ ५ ४	१०।६।८। ७।६।४। ४।१	४	४	५	६	११ म४ व ४औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आ	१२
षट्कायअपर्याप्तरचना	५ मि सा१ अवि१ प्र१सं१	३८। ६१। २२०।	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।२	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि १का१	३	४	६ मनपर्ययविभंगविना	४ अ १सा १ छे१ यथा १	४	द्र २ का१शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द ४
षट्कायमिथ्यादृष्ट्यादिरचना गुणस्थान वत्	गुण स्थान वत्	मिथ्यादृष्टि मूलौघवत् शेष गुण स्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
पृथ्वीकायिक रचना	१ मि	४ बादर सूक्ष्मपर्याप्त अपर्याप्त	४।३	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अस	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
पृथ्वीकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अस	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा द १

पृथ्वीकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक बादर रचना	१ मि	२ बादर पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औमि का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक बादरपर्याप्त रचना	१ मि	१ बादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक बादरअपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्तरचना	१ मि	१ बादर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक सूक्ष्मरचना सूक्ष्म एकेंद्रीवत्	सूक्ष्मएकेंद्रीवत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत	सू० ए० वत	सू० ए० वत्	१ पृ	सू० ए० वत्	सू० ए वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्
अप्कायिक तेजकायिक वायुकायिकरचना पृथ्वीवत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत	पृ. वत्	पृ. वत्	१ स्वकीय पृ० वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत	स्वकीय संभवती	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. त्
वनस्पतीकायिक रचना	१ मि	१२ प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितप्रत्येक बादरसूक्ष्मनित्यइतरनिगोद पर्याप्त अप०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच१	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द२

वनस्पतिकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	६ पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
वनस्पतिकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	४ अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि१ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिरचना	१ मि	४ प्र०अ० प०अ०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रतिष्ठितअप्रतिष्ठित पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिअपर्याप्त वा लब्ध्यपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रति अप्र. अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि१ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधारणवनस्पति रचना	१ मि	८ सू.बा. नि.इ. प.अ.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	५ ज्ञा२ द१
साधारणवनस्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू.बा. नि.इ. पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१

साधारण वनस्पती अपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू वा नि. इ अप र्याप्त	४,	३,	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
साधारणवनस्पतीवादर रचना	१ मि	४वानि इतरनि गोद्प र्याप्तअ पर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ, का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द
साधारण वनस्पती वादरपर्याप्त रचना	१ मि	२ वा नि त्यइतर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
साधारणवनस्पतीवादर अपर्याप्त वाल ब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ वा नि त्यइतरअप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
साधारणअर सर्वसूक्ष्मनि कीरचनासू क्ष्मपृथ्वी कायवत्	सूक्ष्मपृथ्वीकाय वत्	४सूनि त्यइतरपर्याप्तअप र्याप्त	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	वनस्पति	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्
नित्यनिगोद चतुर्गतिनि गोदरचना साधारण वत्	साधारणवत्	स्वकीयवत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा० वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
त्रसकाय रचना	१४	१० वे२ते२ चौ२ सं२ अ२	६।६ ५।५	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।२।१	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ पं१	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२

त्रसकाय पर्याप्त रचना	१४	५ वे ते१ चौ१ सं१ अ१	६।५	१०१६ ८।७ ६। ६।१	४	४	४ वे१ते१ चौ१ पं १	१ त्र	११म४ व ४ औ१ वै १ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
त्रसकाय अपर्याप्त रचना	५ मि१सा१ अवि १ प्र१स१	५ वे१ते१ च१अ१ सं १	६।५	७।७ ६। ५। ४। २।	४	४	४ वे१ते१ चौ१ पं १	१ त्र	५ औमि१ वैमि १ आमि १का१	३	४	६ विभंग मनप र्ययवि ना	४ सा१ छे १ य१अ१	४	द्र २ का१शु १भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
त्रसकाय मि थ्या द्वींद्र रचना	१ मि	१० वे१ते२ चौ१सं २अ२	६।६ ५।५	१०।७ ६।७ ८।६ ७।५ ६।	४	४	४ वे१ते१ चौ१ पं १	१ त्र	१३ आहार द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
त्रसकायमि थ्याद्वींद्रि पर्याप्तरचना	१ मि	५ पर्याप्त वे१ते१ चौ१ अ १सं१	६।५	१०। ६। ८। ७। ६।	४	४	४ वे१ते१ चौ १पं१	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
त्रसकायमि थ्याद्वींद्रिअप र्याप्त रचना	१ मि	५ अप वे१ते१ चौ१अ १सं१	६।५	७। ७। ६। ५। ४।	४	४	४ वे१ते१ चौ १ पं १	१ त्र	३औ मि१ वै १ १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
त्रसकाय सासादनादि अयोगि पर्यंत गुणस्थानवत्	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अकाय रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना हार	२ ज्ञा १ द १

त्रसकायलब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१४ पर्याप्त वे१ते१ चौ१सं १अ१	६।५	७।७ ६।५। ४	४	२ ति१ म१	४ वे१ते१ चौ१ पं१	१ त्र	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द २
योगमार्गणा रचना गुणस्थान वत् गुणस्थान तेरह	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० पत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
मनोयोगी रचना	१३ आ. के	१ सं प	६	१० ४	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
मनोयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनोयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
मनोयोगी मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	२ आहा	५ ज्ञा३ द २
मनोयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

मनोयोगी देश संयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनो योगी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	४ मत्यादिक	३ सामा आदि	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
मनोयोगीअप्रमत्तादिसयोगीपर्यंतगुणस्थान वद्	गुणस्थाणवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	४।२ मनका	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सत्यमनोयोगीअनुभयमनोयोगीरची ना मनोयोग वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	सत्य वाअनुभय म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्
असत्यमनोयोगी वा उभयमनोयोगी रचना	१२ आदिके	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ असत्यमन वाउभयमन	३	४	७ केवल विना	७	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
असत्यउभयमनोयोगीरचनामिथ्यादृष्टि द्विक्षीणकषायपर्यंतसत्यमनोयोगी	सत्यमनो योगी वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	२ असत्यवा उभय	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्
वचन योगी रचना	१३ आदिके	५पर्या सवे·ते १वी१ संअ१	६।६ ५ ५	१०।९।८ ७।६।४	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वचनका	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२

वचनयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	५ पर्याप्त वे१ ते१ चौ१ अ१ सं१	६।५	१०।९।८।७।६।४	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वचनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा२ द२
वचनयोगी सासादनादि सयोगीपर्यंत मनोयोगीवत् वचनयोग मैं विशेष	मनोयोगी वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	वचन काय	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
काययोगी रचना	१३ आदिके	१४	६।६।५।५।४।४।	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।३।४।२।१	४	४	५	६	७ कायके	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१२
काययोगी पर्याप्तरचना	१३ आदि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८।७।६।४।४	४	४	५	६	३ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
काययोगी अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ स१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६।५।४।३।२	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द४
काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६।५।५।४।४	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।३	४	४	५	६	५ काय के आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
काययोगी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८।७।६।४	४	४	५	६	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ आ३ द२

कायायोगी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।	४	४	५	६	३ औमि १वैमि १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कायायोगी सासादन रचना	१ सा	२ संप० संअ०	६।६	१०।७।	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै २ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
कायायोगी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
कायायोगी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १वैमि १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
कायायोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
कायायोगी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै२ क१	३	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
कायायोगी असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

काययोगी असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	२ नपु १ पु१	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी देश संयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्या दिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ १ आ२	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
काययोगी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
काययोगी अपूर्वकरणादि क्षीणकषायपर्यंत रचना गुणस्थान वत् योगकाय	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	काय योग औ	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
काययोगी सयोगकेवल. रचना	१ सयो	२ प अ	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द२
औदारिककाययोगी रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९।८। ७।६।४।४	४	२ म१ ति१	५	६	१ औदा	३	४	८	७	४	द्र ५ भा६	२	६	२	१ आ	१२

औदारिककायोगीमिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।९।८। ७।६।४।	४	२ म१ ति१	५	६	१ औ	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
औदारिक काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
औदारिक काययोगी सम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
औदारिककाययोगीअसंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
औदारिक काययोगी देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
औदारिककाययोगीप्रमत्तादि सयोगीपर्यंत रचनाकाययोगीवत् योग औदारिक	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	औदारिक	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्
औदारिक मिश्र योगी रचना	४ मि१ सा१ अवि१ स १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६।५ ४।३।२	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	२ अ१ य१	४	द्र१ कपोत भा६	२	४ मि१ सा १ वे१ क्षा१	२	१ आहा	१० ज्ञा६ द४

औदारिक मिश्रयोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ कपोत भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअप	६ अ	७ प	४	२ ति१ मं१	१ पं	१ त्र	१ औमि	१ पुं	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र१ कपोत भा६	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
औदारिक मिश्रयोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ अ	६ अ	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ औमि	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ कपोत भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आ	२ ज्ञा१ द१
वैक्रियिक काययोगी रचना	४ मि१ सा१ मि१ अ१	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	९ ज्ञा६ द३
वैक्रियिककयोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
वैक्रियिक योगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

२३८

वैक्रियिकयोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
वैक्रियिक योगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
वैक्रियिक मिश्र योगी रचना	मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	१ आ	८ ज्ञा५ द३
वैक्रियिकमिश्रयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र १ कपोत भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ स्त्री १ पुं १	४	३ कुम कुश्रु	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगीअसंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ नपुं पु १	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा४ शुभ ३ कपोत१	१ भ	३ औ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारककाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ पर्याप्त	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आ	१ पुं	४	३ मत्यादि	२ सा १ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ शुक्ल भा ३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३

आहारकमिश्रकाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ अपर्याप्त	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आमि	१ पु	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे १ सा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कार्म्मण काययोगी रचना	४ मि १ सा १ अवि १ स १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	१ का	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	२ अ १ य १	४	द्र १ शुक्ल भा ६	२	५ मिश्र विना	२	१ अनाहारक	१० ज्ञा६ द ४
कार्म्मण काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१ का	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ शुक्ल भा ६	२	१ मि	२	१ अना	४ ज्ञा२ द २
कार्म्मण काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	१ का	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र१ शुक्ल भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा २ द २
कार्म्मण काययोगी असंयत रचना	१ असं	१ सं अ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	१ का	२ नपुं १ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	२ चक्षु आदि	द्र१ शुक्ल भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द३
कार्म्मण काययोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ अ	६	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ का	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ शुक्ल भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १
वेदमार्गणा मूलवत् तहां स्त्री वेदी रचना	६ आदिके	४ संज्ञी असंज्ञी प०२ अ०२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ म१ ति१ दे१	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	१ स्त्री	४	६ मनःपर्यय केवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द ३

स्त्रीवेदीपर्याप्त रचना	६ आदिके	२ सं० अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	६ मनःपर्ययकेवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
स्त्रीवेदी अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	२ सं० अ० अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टि रचना	२ मि	४ सं० अ, प २अ२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं. अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टीअपर्याप्तरचना	१ मि	२ सं. अ अपर्याप्त	६ ६	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

स्त्रीवेदीसासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र॰ का१ शु१ भा अशुभ३	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मतिआदि मनःपर्यय नाहीं	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	१ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदीअपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

स्त्रीवेदी अनिवृत्तिकरण रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै १ प १	१ मे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पुरुषवेदी रचना	९ आदिके	४ सं अ. प० २ अ० २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	१ पुं	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	२ सं अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	१ पुं	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	२ सं अ अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	४ औ मि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ सं अ पर्याप्त अप	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

नपुंसकवेदी सासादनादि अनिवृत्ति पर्यंतगुणस्थानवत् वे भिअग देर	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	मिश्र असंयत तसैंग निवृवे शेष गु:वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ पुं	गु० वत्	गु० वत्	गु० घत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
नपुंसकवेदी रचना	६ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।७ ५।६४ ४।३	४	३ देव विना	५	६	१३ आहारकद्विक विना	१ न	४	६ मनःपर्ययकेवल विना	४ अ १ दे १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ क्षा ६ द ३
नपुंसकवेद पर्याप्त रचना	६ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।६ ८।७ ६४	४	३ देव विना	५	६	१० म४ व४ औ १ वै १	१ न	४	६ मनःपर्यय केवल विना	४ भा १ छे १ दे १ अ १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	६ क्षा ६ द ३
नपुंसकवेदी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ अवि १	७ अपर्याप्त	६।५।४	७।७ ६।४ ४३	४	३ देव विना	५	६	३ औमि १ वै १ का १	१ न	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	४ मि १ सा १ वे १ क्षा१	२	२	८ क्षा ५ द३
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	३ देव विना	५	६	१३ आहारकद्विक विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ क्षा ३ द २
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ क्षा३ द २
नपुंसकवेदी मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	३ देव विना	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ क्षा २ द २

नपुंसकसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ आहारद्विक वै०मि विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	२ सं	२	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदीसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संज्ञी पर्याप्त	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	२ कुम कुश्रु	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१शु १भा३ अशु	१ भ	१ सा	२ सं	२	४ ज्ञा३ द२
नपुंसकसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी असंयतपर्याप्त रचना	१ असं	२ संप१	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी असंयतअ पर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ०	६ अ	७ अ	४	१ नरक	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नपुंसकवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ न	४	३ मत्यादि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी प्रमत्तादिप्रथमभागअनिवृत्तिपर्यंत स्त्रीवेदिवत्वेद १ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	१ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्
वेदरहित अपगतवेदी रचना	६ अनिवृत्ति आदिक	२ संप संअ	६।६	१० ४।२।१	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ २ का१	०	४।३ २।१	५ मति आदि सुज्ञान	सा १ छे १ सू १ प १	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा५ द ४
अपगतवेदोद्वितीयभागअनिवृत्तितैसिद्धपर्यंतमूलौघवत्	मूलौघ वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्
कषायमार्गणागुणस्थानवत्तहांक्रोध रचना	६ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ६।७।८ ६।७।५ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१५	३	१ क्रो	७ केवल विना	५ अ१ सा १ छे १ प १ दे १	३ केवल विना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द ३
क्रोधकषायी पर्याप्त रचना	६ आदिके	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।६ ८।७ ६ ४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ १ आ १	३	१ क्रो	७ केवल विना	५ अ१ दे१ सा १ छे १ प १	३ केवल विना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोधकषायी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	१ क्रो	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ१ सा१ छे १	३ केवल विना	द्र ५ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा५ द३

क्रोधकषायी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्वि कविना	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्र	२	२	५ ज्ञा३ द२
क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ मा६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
क्रोधीमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधीसासादनरचना	१ सा	१ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
क्रोधीसासादनपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
क्रोधीसासादनअपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नारक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

कोधीअसंयत रचना	१ असं	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ स	२	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीदेशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कोधीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
कोधीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
कोधीअपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	८	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

क्रोधीअनिवृत्तिकरण प्रथमभाग रचना	१ अनि	२ सं प	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ प	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	४ मति आदि	२ मा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
क्रोधीअनिवृत्ति करण द्वितीयभाग रचना	१ अनि	२ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	४ मति आदि	२ मा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
एवंऐसेहीम नमायालोभ रचनाअपना अपनाव्युच्छित्तिपर्यंतरचना	एवमान मायाविषै लोभ १० गुणस्थान वत्	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ स्वकीय	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
अकषायी रचना	४ उपशांत कषायादि	२ प १ अ १	६।६	१०। ४।३।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	२	६ आ द ४
अकषायी उपशांतकषायादिसिद्ध गुणस्थान वत् रचना	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
ज्ञानमार्गणा विषै गुणस्थान वत तहां कुमतिकुश्रुत रचना	२ मि १ सा १	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।७ ७।७ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	२	२	४ आ २ द २
कुमतिकुश्रुत पर्याप्त रचना	२ मि १ सा १	७ पर्याप्त	६ ५।४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	२	१ आ	४ आ २ द २

कुमतिकुश्रुत अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु १भा६	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क१शु १भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कुमतिकुश्रुत सासादन रचना	१ सा	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
कुमतिकुश्रुत सासादनपर्याप्तरचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
कुमतिकुश्रुत सासादनअपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु १भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २

विभंग ज्ञानीरचना	२ मि १ सा १	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	१ सं	१ आ	३ ज्ञा१ द२
विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै १	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	३ ज्ञा१ द२
विभंगज्ञानी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै१	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च १ अच १	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	३ ज्ञा१ द२
मतिश्रुत ज्ञानी रचना	९ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	२ म१ श्रु १	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत पर्याप्त रचना	९ असंयतादि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१ वै १ आ १	३	४	२ म १ श्रु १	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द३
मतिश्रुत अपर्याप्त रचना	२ असं १ प्र १	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि ४ आमि १ का १	२ न १ पुं १	४	२ म १ श्रु १	३ अ १ सा १ छे १	३ च १ अच १ अव १	द्र२ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी असंयत रचना	१ असं१	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विकबिना	३	४	२ म १ श्रु १	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द ३

मतिश्रुतज्ञानी असंयतपर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे१ क्षा १	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानीअसंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	४ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ न१ पुं१	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी देशसंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतगुणस्थानवत् ज्ञान २	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	२ म१ श्रु१	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	५ ज्ञा २ द ३
अवधिज्ञानरचनाएवंमतिश्रुतवत्ज्ञान १ अवधिमतिश्रुतरूक्या थ कावाज्ञान३ मतिश्रुतअवधिवामतिश्रुत मनपर्ययज्ञान४मत्यादि	मतिश्रुत वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	१ अवधि ३ म १ श्रु १ अ १ वा मतिश्रुतिमनवा ४ म १ श्रु १ अ १ म १	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
मनःपर्ययज्ञानी रचना	७ प्रमत्त आदि	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ पुं	४	१ मनःपर्यय	४ सा१ छे१ सू१ य१	३ च १ अच १ अव१	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३

मनःपर्ययज्ञानीप्रमत्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ पुं	४	१ मनःपर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्ययज्ञानीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पुं	४	१ मनःपर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्ययज्ञानी अपूर्वकरणादि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थानवत् वेद १ ज्ञान १	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	पुंवा नास्ति	गु० वत्	१ मनःपर्यय	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	४ ज्ञा १ द ३
केवल ज्ञानी रचना	२ सयो१ अयो१	२ प१ अप१	६।६	४।२।१	०	१ म	६ गं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
केवलज्ञानी सयोगीअयोगीसिद्ध रचना गुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामान्यसंयममार्गणा रचना	६ प्रमत्त आदि	२ प१ अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ वैक्रियिकद्विक विना	३	४	५ मति ज्ञान आदि	५ सा१ छे१ प१ सू१ य१	४	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४

सामान्यसंयमीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	३ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअपूर्वकरणादिअयोगीपर्यंतगुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामायकसंयमी रचना	४ प्रमत्तादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	१ सा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामायिकसंयमीप्रमत्तादिअनिवृत्तिपर्यंतगुणस्थानवत्	गुणस्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
छेदोपस्थापनासंयमीरचनाएवंसामायिकवत्	सामायकवत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	छे	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
परिहारविशुद्धिसंयमी रचना	२ प्र१ अप्र१	१ प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ परि	२ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

परिहारविशुद्धिप्रमत्तअप्रमत्तरचनामूलौघवत्	१ स्वकीय	प १	६	१०	४	१ म	१ प	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
सूक्ष्मसापरायसंयमीरचना सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवत्	१ सू	१ प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	१ लो	४ मति आदि	१ सू	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
यथाख्यात संयमी रचना	४ उपशांतक षायादि	२ प१ अ१	६।६	१०।४ २।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा५ द ४
यथाख्यातसंयमीउपशातकषायादिअयोगीपर्यंत गु० वत्	गुणस्था न वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
देशसंयमीरचना देशसंयतगुणस्थानवत्	१ दे	१ प	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
असंयमी रचना	४ मिथ्यादृष्टिआदि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३मति आदि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
असंयमा पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि ३	३ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा६ द३

असंयमी अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु १ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा५ द ३
असंयमी मिथ्यादृष्टि आदि असंयत पर्यंत गुणवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
दर्शनमार्गणाविषै गुणस्थानवत् तहां चक्षुदर्शन रचना	१२ आदिके	६ चौर अर स २	६।६ ५।५	१०।७ ६।७ ८।६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	१ चक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द१
चक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	३प च१ अ१ स१	६ ५	१० ६ ८	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	११म ४व४ औ १ वै १ आ१	३	४	७ केवल विना	७	१ चक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	८ ज्ञा ७ द१
चक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि१ प्र१	३अ च१ अ१ सं१	६ ५	७ ७ ६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि १ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	१ च	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र	२	२	६ ज्ञा५ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	६ च२ अ २ सं२	६।६ ५।५	१०।७ ६।७ ८।६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ च	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा३ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	३ प च १ अ १ सं १	६।५	१०।६ ८	४	४	२ चौ १ पं १	१ त्र	१० म ४ व ४ कु १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ च	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा ३ द १

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	३ अ च १ अ १ स १	६ ५	७ ७।८	४	४	२ चौ १ पं १	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ च	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	१	३ आ २ द १
चक्षुदर्शनी सासादनादिक्षीणकषायपर्यंत गुणवत् दर्शन १	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ चक्षु	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अचक्षुदर्शनी रचना	१२ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१५	३	४	७ केवल विना	७	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	८ आ ७ द १
अचक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदि के	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल विना	७	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	८ आ द १
अचक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	१ अचक्षु	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	६ आ ५ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	४ आ ३ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ आ ३ द १

अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र२ का१शु १भा६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा२ द १
अचक्षुदर्शनी सासादनादि क्षीणकषाय पर्यंतयथासंभवगु०वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ अच	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	यथा संभव
अवधिदर्शनी रचना	६ असंयतादि	२ प अ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा४ द१
अवधिदर्शनी पर्याप्त रचना	६ असंयतादि	१ प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	५ ज्ञा४ द१
अवधिदर्शनी अपर्याप्त रचना	२ असं१ प्र१	१ अ	६	७	४	४	१ प	१ त्र	४औमि १वैमि १का१ आमि १	२ पुं१ न१	४	३ म१ श्रु१ अ१	३ अ१ सा१ छे१	१ अवधि	द्र २ क१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
अवधिदर्शनी असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतअवधिज्ञानवत्	अवधिज्ञानवत्	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	३वा४ मत्यादि	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	यथासंभव अज्ञान वत्
केवलदर्शनी रचना केवल ज्ञानीवत्	केवल ज्ञानवत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्

लेश्यामार्गणाविषैगुणस्थानवत्तूं न्हांकृष्णलेश्या रचना	४ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ६।७।८।६ ७।५।८।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारद्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द ३
कृष्णलेश्या पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा६ द ३
कृष्णलेश्या अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अ	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा१ कृष्ण	२	३ मि१ सा१ वे१	२	२	८ ज्ञा५ द३
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९ ७।८।६।७ ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द २
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कृष्णलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सअ१	६।६	१०।७	४	४	१ प	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

कृष्णलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु १ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कृष्णलेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्यअसंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ २ वै १ का१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ मनुष्य पंचमादि पृथ्वी के आये	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु १ भा १ कृष्ण	१ भ	१ वेदक पंचमादि पृथ्वी के आये	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
नीललेश्य रचना कृष्ण लेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	द्र १ कृ० वत् भा१ नील	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्

कपोतलेश्य रचना	४ आदिके	१४	६६ ५५ ४३	१०७९७ ८६७५ ६४५३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्य पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देवबिना जावें भवनत्रिकके भी घर्मे पीत	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्य अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ अवि १	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा १ कपोत	२	४ मि १ सा १ क्षे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्य सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २

कपोतलेश्य सासादनपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य सासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कपोत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कपोतलेश्य असंयतरचना	१ असं	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
कपोतलेश्य असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
कपोतलेश्य असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ पु१ न१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु १ भा१ कपोत	१ भ	२ वे१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
तेजोलेश्य रचना	७ आदिके	३ सं प१ संअ१ अप१	६।६ ५	१०।७ ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेजो१	२	६	२ सं १ अ १	२	१० ज्ञा७ द ३

तेजोलेश्या पर्याप्त रचना	७ आदिके	२ संप१ अप१	६ ५	१० ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	७ केवल विना	५ अ१ सा१ छे१ प१ सू१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	२	६	२ सं१ अ१	१ आ	१० ज्ञा७ द३
तेजोलेश्या अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	१ संअ	६ अ	७ अ	४	२ मनु१ देव१	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मन्या वि३	२ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ का१ शु१ भा१ तेज१	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	३ संप१ संअ१ अप१	६ ६ ५	१०।७ ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	२	१ मि	२ स१ अ१	२	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ संप१ अप१	६ ५	१० ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	२	१ मि	२ सं१ अ१	१ आ	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टिअ पर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा१ तेज	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
तेजोलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

तेजोलेश्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु १	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा १ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
तेजोलेश्य सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्यअसंयतरचना	१ असं	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प१	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१०म ४व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	२ म१ दे १	१ पं	१ त्र	३औ मि १ वैमि १का१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ सं प	६ प	१० प	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

तेजोलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६ प	१० प	३ आहारकविना	१ म	१ ० प	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
पद्मलेश्य रचना	७ आदि के	२ संप १ सअ १	६।६	१०।७	४	३ नारक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा ७ द ३
पद्मलेश्य पर्याप्त रचना	७ आदि के	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
पद्मलेश्य अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	१ सअ	६ अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आ मि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा १ पद्म	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २

पद्मलेश्यसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्यसासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	१ पुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र२ का१ शु १ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
पद्मलेश्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मि	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
पद्मलेश्य असंयत रचना	१ असं	२ सं प १ सं अ१	६।६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
पद्मलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च १ अच१ अव १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पद्मलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ१	६। अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र २ क १ शु १ भा१ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ सा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

पद्मलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
पद्मलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ आ २ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ स	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
पद्मलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्लेश्य रचना	१३ आदिके	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७ ४।२	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	२	१२
शुक्लेश्य पर्याप्त रचना	१३ अदिके	१ संप	६	१०। ४।	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	१ आ	१२
शुक्लेश्य अपर्याप्त रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ स १	१ संअ	६	७ २	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औ मि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ क १ शु १ भा १ शुक्ल	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	१० ज्ञा ६ द ४
शुक्लेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ रूप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ न क विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २

शुक्लेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्लेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र २ क१ शु १ भा १ शुक्ल १	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
शुक्लेश्य सासादन रचना	१ सा	२ संप १ संअ १	६ ६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व ४ औ१ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
शुक्लेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
शुक्लेश्या सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
शुक्लेश्य सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	अ १	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्लेश्य असंयत रचना	१ असं	२ सप१ संअ१	६ ६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

शुक्ललेश्य असंयत पर्याप्तरचना	१ असं	१ संप१	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
शुक्ललेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि १वैमि १का१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
शुक्ललेश्य देश संयतरचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
शुक्ललेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ स	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्ललेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्ललेश्यअपूर्वकरणतैस गोपर्यंतवो अलेश्यअयो गोसिद्ध२०गु	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
भव्यमार्गणा विषै भव्य रचना गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

अभव्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४४	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द २
अभव्य पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
अभव्य अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अप र्याप्त	६।५।४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु १भा६	१ अभव्य	१ मि	२	२	४ क्षा२ द २
भव्याभव्य रहितसिद्ध रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा १ द १
सम्यक्त्व मार्गणाविषै सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ संप १ सं अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४
सामान्य सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ सं प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ१ वै १ आ१	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा५ द ४
सामान्य सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं१ प्र१ सयोग१	१ सं अ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि १ का१	२ न१ पु१	४	४ म १ श्रु १ अ१ के १	४ अ१ सा१ छे१ य १	४	द्र २ क१ शु १ भा४ क१ शु३	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा ४ द ४

सामान्यसम्यग्दृष्टिअसंयतादिअयोगीपर्यंतगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
क्षायिक सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ प १ अ १	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	९ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै १ औ १ आ १	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	९ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं १ प्रम १ सयोग १	१ अ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वै १ आमि १ का १	२ न १ पुं	४	४ म १ श्रु १ अ १ के १	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ का १ शु १ भा ४ का १ शु १ भ ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	८ ज्ञा ४ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ म १ श्रु १ अव १	१ अ	३ च १ अच १ अव १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिकसम्यग्दृष्टिअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ४ का १ शु १ भ ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतरचना	१ देश	१ सं प	६ प	१० प	४	१ मनुष्य	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
क्षायिक सम्यग्दृष्टिप्रमत्तादिसिद्धपर्यंत गुणस्थान वत् रचना	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ क्षायिक	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
वेदक सम्यग्दृष्टि रचना	४ असंयतादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	७ ज्ञा४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टिपर्याप्त रचना	४ असंयतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै१ आ	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तरचना	२ असं १ प्रम१	१ स अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि१ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टिअसंयत रचना	१ असं	२ सं अ१ संप१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विकविना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टिअसंयत पर्याप्तरचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ आ ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ आ ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि रचना	८ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	४ मति आदि	६ परिहारविशुद्धि विना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उपशम	१ सं	२	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	८ असंयतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	४ मति आदि	६ परिहारविशुद्धि विना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ असंयम	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ आ ३ द ३

उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६ स	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
उपशमसम्यग्दृष्टिअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र२ क१ शु१ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि देशसंयतरचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
उपशमसम्यग्दृष्टिअपूर्वकरणतैं उपशांतकषायपर्यंतगु०वत्, मि॰ [illegible] नामिश्रसम्यग्द [illegible]	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ सं भ वती	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

संज्ञीमार्गणा विषैसंज्ञी रचना	१२ आदिके	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा ७ द ३
संज्ञी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१वै१ आ१	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	१० ज्ञा७ द ३
संज्ञी अपर्याप्त रचना	४ मि१सा१ अवि१प्र१	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ का१शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा॰ द ३
संज्ञी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
संज्ञीमिथ्यादृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
संज्ञीमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१शु१ भा६	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६ ६	१० ७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

संज्ञीसासादनपर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१०म४ व४औ १वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	२	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क१शु १भा	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
संज्ञीअसंयतपर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१०म४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
संज्ञीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	२ पुं १ न १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु १भा६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
राजौदृशसंयतनैक्षीणकषायपर्यंतगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

असंज्ञी रचना	१ मिथ्या	१२ संज्ञीपर्याप्तअपर्याप्त विना	५।५ ४।४	६।७।८ ६।७।५ ६।४ ४।३	४	१ ति	५	६	४अनु भयव चन१ औ२ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असं ज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ पर्याप्तसंज्ञीविना पर्याप्त	५ ४	६।८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	२अनु भयव चन१ औ१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असं ज्ञी	१ आ	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ संज्ञीअपर्याप्तविना अपर्याप्त	५।४	७।६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२क१ शु१भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द२
स ज्ञाअसंज्ञाव्यपदेशरहितसयोगीअयोगीसिद्धरच नागु०वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
आहारमार्गणाविषैआहारकरचना	१३ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८ ६।७।५ ६।४।४ ३।४।२	४	४	५	६	१४ कार्माण विना	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक पर्याप्त रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६ ४।४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ१ वै १आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक अपर्याप्त रचना	५ मि१ स१ अवि१ प्र१ सयो१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ आमि१	३	४	६ विभंग मन पर्ययविना	४ अ१ सा१ छे१ प१	४	द्र १ कपोत भा ६	२	५ मिश्र विना	२	१ आहा र	१० ज्ञा ६ द ४

अनाहारकमिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७'७ ६।'१ ४।२	४	४	५	६	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	२	१ मि	२	२ अनाहारक	४ ज्ञा २ द २
अनाहारक सासादन रचना	१ सा	१ संज्ञी	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा२ द २
अनाहार असंयत रचना	१ असं	१ संज्ञी	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	२ न१ पुं१	४	३ मति१ श्रुति१ अवधि१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द ३
आहारकमिश्रकयोगप्रमत्त औदारिकअपेक्षा अनाहार है ताकी रचना	१ प्र	१ अ	६ अ	७ अ	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहारकमिश्र	१ पुं	४	३ म१ श्रु१ अ१	२ सा१ छे१	३ च१ अच१ अव१	द्र१ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
अनाहारक सयोगकेवली रचना	१ सयोगी	१ अ	६ अ	२ काय १ आयु १	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ शुक्ल भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा १ द१
अनाहारकअयोगकेवली रचना	१ अयोगी	१ पर्याप्त	६ प	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द १
अनाहारक सिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा १ द १

आहारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१२ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	२ औमि १ वैमि १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ क भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २
आहारक सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ५ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	२ औमि१ वैमि १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
आहारक सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

मणपज्जयपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारो ।
एदेसु एक्कपगदे णत्थित्ति असेसयं जाणे ॥ ७३० ॥

मनःपर्ययपरिहारौ प्रथमोपसम्यक्त्वं द्वावाहारौ ।
एतेषु एकप्रकृते नास्तीति अशेषकं जानीहि ॥ ७३० ॥

जी० प्र०—मनःपर्ययज्ञानं परिहारविशुद्धिसयमः प्रथमोपशमसम्यक्त्व आहारकद्विकं च इत्येतेषु मध्ये एकस्मिन् प्रकृते प्रस्तुते अधिकृते सति अवशेषं उद्धरितं नास्ति-न संभवतीति जानीहि, तेषु मध्ये एकस्मिन्नुदिते तस्मिन् पुंसि तदा अन्यस्योत्पत्तिविरोधात् ॥ ७३० ॥

स०चं०—मनःपर्यय ज्ञान अर परिहारविशुद्धि संयम अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर आहारकद्विक योग इनि च्यारों विषैं एक कोई होत संतैं अवशेष तीन न होंइ ऐसा नियम है ॥ ७३० ॥

विदियुवसमसम्मत्तं सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु ।
सगसगलेस्सामरिदे देवअपज्जत्तगेव हवे ॥ ७३१ ॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं श्रेणितोऽवतीर्णेऽविरतादिषु ।
स्वकस्वकलेश्यामृते देवापर्याप्तक एव भवेत् ॥ ७३१ ॥

जी० प्र०—द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं संभवति । केषु ? उपशमश्रेणितः संक्लेशवशादधः असंयतादिषु अवतीर्णेषु । ते च असंयतादयः स्वस्वले-श्यया म्रियंते तदा देवापर्याप्तासंयता एव नियमेन भवंति । कुतः ? बद्धदेवायुष्कादन्यस्य उपशमश्रेण्यां मरणाभावात् । शेषत्रिबद्धायुष्काणां च देश-सकलसंयमयोरेवासंभवात् ॥ ७३१ ॥

सं० च०—उपशम श्रेणीतैं संक्लेश परिणामनिके वशतैं नीचैं असंयतादि गुणस्थाननिविषैं उतरते असंयतादिक अपनी अपनी लेश्याकरि जो मरैं तो अपर्याप्त असंयत देव होंइ नियमकरि, जातैं देवायुका जाकैं बंध भया होइ

१ ख पुस्तके कुतः ? बद्धदेवायुष्कादन्यस्य उपशमश्रेणित । इति पाठः ।

तींहि विना अन्य जीवका उपशम श्रेणीविषैं मरण नाहीं, अन्य आयु जाकैं बंध्या होइ ताकैं देशसंयम सकल संयम भी न होइ तातैं सो जीव अपर्याप्त असंयत देव हो है। तिनिविषैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व संभवै है तातैं वैमानिक अपर्याप्त देवविषैं उपशम सम्यक्त्व कह्या है ॥ ७३१ ॥

सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती ॥ ७३२ ॥

सिद्धानां सिद्धगतिः केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारमुपयोगानामक्रमप्रवृत्तिः ॥ ७३२ ॥

जी० प्र०—सिद्धपरमेष्ठिनां सिद्धगतिः केवलज्ञान केवलदर्शनं क्षायिकसम्यक्त्वं अनाहारः ज्ञानदर्शनोपयोगयोरक्रमप्रवृत्तिश्च भवति ॥७३२॥

सं० च०—सिद्ध परमेष्ठी तिनकै सिद्धगति केवलज्ञान केवल दर्शन क्षायिक सम्यक्त्व अनाहार अर ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगकी अनुक्रमताकरि रहित प्रवृत्ति ए प्ररूपणा पाइए है ॥ ७३२ ॥

गुणजीवठाणरहिया सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥ ७३३ ॥

गुणजीवस्थानरहिताः संज्ञापर्याप्तिप्राणपरिहीनाः ।
शेषनवमार्गणोनाः सिद्धाः शुद्धाः सदा भवंति ॥ ७३३ ॥

जी० प्र०—चतुर्दशगुणस्थानचतुर्दशजीवसमासरहिताः चतुःसंज्ञाषट्पर्याप्तिदशप्राणरहिताः सिद्धगतिज्ञानदर्शनसम्यक्त्वानाहारेभ्यः शेषनवमार्गणारहिताः सिद्धपरमेष्ठिनो द्रव्यभावकर्माभावात् सदा शुद्धा भवंति ॥ ७३३ ॥

सं० च०—चौदह गुणस्थान वा चौदह जीवसमासनिकरि रहित हैं बहुरि च्यारि संज्ञा छह पर्याप्ति दश प्राण-

निकरि रहित हैं, बहुरि सिद्ध गति ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व अनाहार इनि विना अवशेष नव मार्गणानिकरि रहित हैं ऐसें सिद्धपरमेष्ठी द्रव्यकर्म भावकर्मके अभावतें सदा काल शुद्ध हैं ॥ ७३३ ॥

णिक्खेवे एयत्थे णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइ वीसं भेयं सो जाणइ अप्पसब्भावं ॥ ७३४ ॥

निक्षेपे एकार्थे नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगयोः ।
मार्गयति विंशं भेदं स जानाति आत्मसद्भावं ॥ ७३४ ॥

जी०प्र०—नामादिनिक्षेपे प्राणिभूतजीवसत्त्वलक्षणैकार्थे द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनये मतिज्ञानादिप्रमाणे जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति निरुक्तौ किं कस्स केण कत्थवि केव चिरं कतिविहा य भावा इति च निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः साध्या इति च नियोगिप्रश्ने यो भव्यः गुणस्थानादिविंशतिभेदान् जानाति स जीवसद्भावं जानाति ॥ ७३४ ॥

सं० च०—नाम स्थापना द्रव्य भावरूप च्यारि निक्षेप बहुरि प्राणी भूत जीव सत्व इनि च्यारयोनिका एक अर्थ है सो एकार्थ, बहुरि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय, बहुरि मतिज्ञानादिरूप प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण, बहुरि जीवै है जीवैगा जीया ऐसा जीव शब्दका निरुक्ति बहुरि—

"किं कस्स केण कत्थवि केवचिरं कतिविहा य भावा"

कहा ? किसकैं ? किसकरि ? कहां ? किस काल ? कै प्रकार भाव है। ऐसें छह प्रश्न होतें निर्देश स्वामित्व साधन अधिकरण स्थिति विधान इन छहौंतें साधना सो यह नियोग ऐसें निक्षेप एकार्थ नय प्रमाण निरुक्ति नियोगनिविषैं जो भव्य जीव गुणस्थानादिक वीस प्ररूपणा रूप भेदनिकौं जानै है सो भव्य जीव आत्माके सतसमीचीन भावकौं जानै है ॥ ७३४ ॥

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारिअजियसेणगुरू ।

भुवणगुरू जस्सगुरू सो रायो गोम्मटो जयदु ॥ ७३५ ॥

आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः ।
भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ॥ ७३५ ॥

जी० प्र०—आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः भुवनगुरुर्यस्यगुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ॥ ७३५ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु
ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणालापनाम द्वाविंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥ २२ ॥

सं० च०—आर्य जो आर्यसेन नामा आचार्य तिनके गुण अर तिनका गण जो संघ ताका धरनहारा ऐसा जगतका गुरु जो अजितसेन नामा गुरु सो जिसका गुरु है ऐसा गोम्मट राजा जो चामुंडराय राजा सो जयवंत प्रवर्तौ। ऐसा शब्द तौ जिनदेवादिक पूज्यकों कहना संभवै इहां अपने सेवककौं आचार्यने ऐसा कैसें कह्या? ताका समाधान-जैसें इहां प्रवृत्तिविषैं याचक आदि हीन पुरुषकों सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै सो इच्छापूर्वक नम्रता लीएं वचन है तैसें जिनदेवादिकका सेवक जयवंत प्रवर्तौ ऐसा शब्द कहना जानना। बहुरि जैसें पिता आदि पूज्य पुरुष पुत्रादिककौं सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै सो आशीर्वाद रूप वचन है तैसें इहां राजाकौं जयवंत प्रवर्तौ ऐसा कहना युक्त जानना ॥ ७३५ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्ति विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका
अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषै
आलापप्ररूपणा नामा बावीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ २२ ॥

श्रित्वा कार्णाटिकीं वृत्तिं वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः ।
कृतेयमन्यथा किंचिद् विशोध्यं तद्बहुश्रुतैः ॥ १ ॥

अथ संस्कृत टीककारके वचन—

दोहा— अभयचंद्र श्रीमानके हेतु करी जो टीक ।
सोधो बहु श्रुतधर सुधी सो रचना करि ठीक ॥ १ ॥

चौपाई—केशव वर्णी भव्य विचार । कर्णाटक टीका अनुसार ॥
संस्कृत टीका कीनी एहु । जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ॥ १ ॥

अथ भाषा टीकाकारके वचन—

जीवकांडकौं जानिकैं ज्ञानकांडमय होइ ।
निज स्वरूपमें रमि रहै शिवपद पावै सोइ ॥

सोरठा— मंगल श्री अरहंत सिद्ध साधु जिन धर्म फुनि ।
मंगल च्यारि महंत एई हैं उत्तम शरण ॥

सवैया ।

अरथके लोभी ह्वै कै करिकैं सहास अति, अगम अपार ग्रंथ पारावारमें परै ।
थाह तौ न आओ तहां फेरि कौन पाओ पार तातैं सूधे मारग ह्वै आधे पार उत्तरे ॥
इहां परजंत जीव कांडकी है मरजाद याके अर्थ जानैं निज काज सब सुधरै ।
निजमति अनुसारि अर्थ गहि टोडर हू भाषा बनवाई यातैं अर्थ गहौ सगरे ॥

इति जीवकांडं संपूर्णं ॥

प्रत्यक्ष प्रमाणकरि विरुद्ध है अग्नि प्रत्यक्ष उष्ण है तातैं यहु तर्क प्रमाण नाहीं । बहुरि किसीनै कह्या धर्म है परलोकविषैं दुःखदायक है जातैं धर्म है सो पुरुषाश्रित है जो जो पुरुषाश्रित हैं सो सो परलोकविषैं दुःख दायक है जैसे अधर्म है ऐसी तर्क करी परि यहु तर्क आगम प्रमाण करि खंडित है। आगमविषैं धर्म परलोक विषैं सुख दायक कह्या है तातैं प्रमाण नाहीं । ऐसैं ही जे केवली प्रत्यक्ष अर आगमोक्त कथन तातैं विरुद्ध तेरी तर्क प्रमाण नाहीं। इहां बहुरि तर्क करी–जो तर्क करि विरोधी आगम कैसैं प्रमाण होइ? ताका समाधान–जो प्रत्यक्ष प्रमाण अर अन्य तर्क करि संभवता जो आगम ताकैं अविरुद्धपणांकरि प्रमाणपना हो है । तौ सो अन्य तर्क कहा? सो कहिए है–सर्व भव्य संसारी राशि अनंतकालकरि भी क्षयकौं प्राप्त न होइ जातैं यहु राशि अक्षयानंत है जो जो अक्षयानंत है सो सो अनंतकालकरि भी क्षयकौं प्राप्त न होइ जैसैं तीन कालके समयनिका परिमाण कह्या कि इतनां है परि कबहूं अंत नाहीं वा सर्वद्रव्यनिका अगुरुलघु अविभाग प्रतिच्छेदके समूहका परिमाण कह्या परि अंत नाहीं तैसैं संसारी जीवनिका भी अक्षयानंत प्रमाण जानना । ऐसा यहु अनुमानतैं आया जो तर्क सो प्रमाण है । बहुरि प्रश्न-जो अनंतकालकरि भी क्षय न होना साध्य सो अक्षयानंतके हेतुतैं दृढ कीया तातैं इहां हेतुकै साध्यसमत्व भया? ताका समाधान–भव्यराशिका अक्षयानंतपना आप्तके आगमकरि सिद्ध है तातै साध्यसमत्वका अभाव है। बहुत कहने करि कहा? सर्व तत्त्वनिका वक्ता पुरुष जो है आप्त ताकी सिद्धि होतै तिस आप्तके वचनरूप जो आगम ताकी सूक्ष्म अंतरित दूरि पदार्थनिविषै प्रमाणताकी सिद्धि हो है तातैं तिस आगमोक्त पदार्थनिविषै मेरा चित्त निस्संदेह रूप है। बहुत वादी होनेकरि कहा साध्य है? बहुरि आप्तकी सिद्धि कैसै सो कहिए है 'विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः' ऐसा वेदका वचन करि, बहुरि 'प्रणम्य शंभुं' इत्यादि नैयायिक वचनकरि, बहुरि 'बुद्धो भवेयं' इत्यादि बौद्ध वचनकरि, बहुरि, मोक्षमार्गस्य नेतारं, इत्यादि जैन वचन करि बहुरि अन्य अपना अपना मतका देवताका स्तवन रूप वचननिकरि सामान्यपनैं सर्व मतनिविषै आप्त मानै है। बहुरि विशेषपनै सर्वज्ञ वीतराग देव स्याद्वादी ही आप्त है ताका युक्तिकरि साधन कीया है सो बिस्तारतैं स्या-

ऐसें ही निश्चयरूप जहां खंडनेवाला प्रमाण न संभवै
द्वाद रूप जैन न्यायशास्त्रविषै आप्तकी सिद्धि जाननी। ऐसें ही निश्चयरूप जहां खंडनेवाला प्रमाण न संभवै हो तातैं आप्त आगमकरि प्ररूपित ज्यो मोक्षतत्त्व अर
है तातैं आप्त अर आप्तकरि प्ररूपित आगमकी सिद्धि हो है। तातैं आप्त आगमकरि प्ररूपित ज्यो मोक्षतत्त्व अर सिद्धराशितैं अनंत गु-
बंधतत्त्व सो अवश्य प्रमाण करना ऐसैं आगमप्रमाणतैं एक शरीरविषै निगोदजीवनिकैं सिद्धराशितैं अनंत गु- कोऊ स्वभावविषै मानै-
णापनौं संभवै है। बहुरि अक्षयानंतपना भी सर्व मतवाले मानै है। कोऊ ईश्वरविषै मानै है। कोऊ स्वभावविषै मानै-
है। तातैं कह्या हूवा कथन प्रमाण है ॥ १९६ ॥

अत्थि अणंता जीवा जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकसुपउरा णिगोदवासं ण मुंचंति ॥ १९७ ॥

संति अनंता जीवा यैर्न प्राप्तस्त्रसानां परिणामः।
भावकलंकसुप्रचुरा निगोदवासं न मुंचंति ॥ १९७ ॥

जी० प्र०—नित्यनिगोदलक्षणमनेन ज्ञातव्यं। तत्कथं? यैर्निगोदजीवैः त्रसानां द्वींद्रियादीनां परिणामः-पर्यायः, कदाचिदपि-प्राग्रेण न प्राप्तः
ते जीवा अनंतानंता अनादिसंसारनिगोदभवमेवानुभवंतो नित्यनिगोदसंज्ञाः सर्वदा संति। किं विशिष्टाः? भावकलंकसुप्रचुराः-भावस्य निगोदप-
र्यायस्य कलंकेन तद्योग्यकषायोदयाविर्भावितदुर्लेश्यालक्षणसंक्लेशेन प्रचुराः अत्यंतं संघटिताः। एवंविधनित्यनिगोदजीवाः निगोदवासं निगोद-
भवस्थितिं कदाचिदपि न मुंचंति तेन कारणेन निगोदभवस्य आद्यंतरहितत्वादनंतानंतजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं जातं। नित्यविशे-
षणेन पुनरनित्यनिगोदाः चतुर्गतिनिगोदरूपसादिसांतनिगोदभवयुता केचन जीवाः संतीति सूचितं ज्ञातव्यं। णिच्चचदुगदिणिगोदेत्यादौ परमागमे
निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात्। एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरे चतुर्गतिजीव-
राशितो निर्गतेषु अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु मुक्तिंगतेषु तावंतो जीवा नित्यनिगोदभवं त्यक्त्वा चतुर्गतिभवं प्राप्नुवंतीत्ययमर्थः प्रतिपादितो बोद्धव्यः ॥
अथ त्रसकायं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—नित्यनिगोदलक्षणमनेनोच्यते तद्यथा यैर्निगोदजीवैस्त्रसाना द्वींद्रियादीनां परिणामः पर्यायः, कदाचिदपि न प्राप्त ते जीवा अनंतानंताः।
अनादौ संसारे निगोदभवमेवानुभवंतो नित्यनिगोदसंज्ञाः सर्वदा संति। किंविशिष्टाः? भावकलकसुप्रचुराः—भावस्य निगोदपर्यायस्य कलंकः—तद्योग्यकषायो

दयाविर्भावितदुर्लेश्यालक्षणः संक्लेशः, तेन सुप्रचुराः-अत्यंतसंघटिताः एवंविधा नित्यनिगोदजीवाः, निगोदवासं--निगादभवस्थितिं कदाचिदपि न मुंचंति अत एव निगोदभवस्य आद्यंतरहितत्वेनानंतानंतजीवानां नित्यनिगोदत्वं समर्थितं भवति । नित्यविशेषणेन पुनरनित्यनिगोदाश्चतुर्गतिनिगोदाः सादिसांतरनिगोदभवाः केचिज्जीवाः संतीति सूचितं ज्ञातव्यं । णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा इत्यादौ परमागमे निगोदजीवानां द्वैविध्यस्य सुप्रसिद्धत्वात् । एकदेशाभावविशिष्टसकलार्थवाचिना प्रचुरशब्देन कदाचिदष्टसमयाधिकषण्मासाभ्यंतरे चतुर्गतिजीवराशेर्निर्गत्य अष्टोत्तरषट्शतजीवेषु मुक्तिंगतेषु तावंतो जीवा नित्यनिगोदभवं विमुच्य चतुर्गतिभवं गच्छंतीत्ययमर्थः प्रतिपादितो ज्ञातव्यः ॥ १९७ ॥ अथ त्रसकायप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह-

सं० च–इस गाथाविषैं नित्यनिगोदका लक्षण कह्या है अनादि संसारविषैं निगोद पर्यायहीकौं भोगवते अनंते जीव नित्य निगोद नाम धारक सदाकाल हैं । ते कैसे है ? जिनिकरि त्रस जे वेइंद्रियादिक तिनिका परिणाम जो पर्याय सो कबहूं न पाया । बहुरि भाव जो निगोद पर्याय तिहिंनै कारणभूत जो कलंक कहिये कषायनिका उदय करि प्रगट भया अशुभ लेश्या रूप तीहिंकरि प्रचुरा कहिये अत्यंत संबंधरूप हैं । ऐसैं ए नित्य निगोद जीव कदाचित् निगोद वासकौं न छोडै हैं याहीतैं निगोद पर्यायकैं आदि अंत रहितपनां जानि अनंतानंत जीवनिकैं नित्य निगोदपना कह्या । नित्य विशेषणकरि अनित्य निगोदिया चतुर्गति निगोदरूप आदि अंत निगोद पर्याय संयुक्त केई जीव हैं ऐसा सूचै है जातैं णिच्चचदुग्गदिणिगोद इत्यादिक परमागमविषैं निगोद जीव दोय प्रकार कहे हैं । भावार्थ– जे अनादितैं निगोद पर्यायहीकौं धरैं हैं ते नित्यनिगोद जीव हैं । बहुरि बीचि अन्य पर्याय पाय बहुरि निगोद पर्याय धरैं ते इतर निगोद जीव जानना । सो वे आदि अंत लीये हैं । बहुरि जिनिके प्रचुर भाव कलंक हैं ते निगोदवासकौं न छाडैं सो इहां प्रचुर शब्द है सो एकोदेशका अभावरूप है सकल अर्थका वाचक है तातैं याकरि यहु जान्या जिनकै भाव कलंक थोरा हो है ते जीव कदाचित् नित्य निगोदतैं निकसि चतुर्गतिमैं आवै हैं । सो छह महीना अर आठ समयमैं छसै आठ जीव नित्यनिगोदमैंसौं निकसै हैं सोही छह महीना आठ समयमें छसै आठ जीव संसारसौं निकसिकरि मुक्ति पहुंचै हैं ॥ १९७ ॥ आगे त्रस कायकी प्ररूपणा दोय गाथाकरि कहै हैं–

बिहि तिहि चदुहिं पंचहि सहिया जे इंदिएहिं लोयह्मि ।
ते तसकाया जीवा णेया वीरोबदेसेण ॥ १९८ ॥

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिः पंचभिः सहिता ये इंद्रियैर्लोके ।
ते त्रसकाया जीवा ज्ञेया वीरोपदेशेन ॥ १९८ ॥

जी० प्र०—स्पर्शनरसनाभ्यां, द्वाभ्यां ताभ्यां घ्राणेन त्रिभिः च, तैश्चक्षुषेति च चतुर्भिः, तैः श्रोत्रेणेति पंचभिश्चेंद्रियैः सहिता ये जीवा लोके संति ते जीवास्त्रसकाया इति वीरवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवस्य उपदेशेन अविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागतसंप्रदायेन अस्माभिः श्रुतगृहीतधारितार्थैः प्रतिपादिता ज्ञेयाः ॥ १९८ ॥

मं० प्र०—द्वाभ्या स्पर्शनरसनाभ्या, त्रिभिः स्पर्शनरसनघ्राणैः, चतुर्भिस्तैश्चक्षुरंतैः, पंचाभिश्च तैः श्रोत्रांतैरिंद्रियैः सहिताः ये जीवा लोके सति ते त्रसकाया इति वीरस्य श्रीवर्धमानतीर्थंकरस्य उपदेशेन अविच्छिन्नगुरुपर्वक्रमागतसंप्रदायेन अस्माभिः श्रुतगृहीतधारितार्थैः प्रतिपादिताः ज्ञेयाः ॥१९८।

सं० चं०—दोय इंद्री स्पर्शन रसन तिनिकरि संयुक्त द्वींद्रिय बहुरि तीन इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण तिनि-करि संयुक्त त्रींद्रिय, बहुरि च्यारि इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु इनिकरि संयुक्त चतुरिंद्रिय बहुरि पांच इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इनिकरि संयुक्त पंचेंद्रिय ए कहे जे जीव ते त्रसकाय जानने। ऐसैं श्रीवर्धमान तीर्थंकर परमदेवके उपदेशतैं परंपराय क्रमकरि चल्या आया संप्रदायकरि शास्त्रका अर्थधरि हमहूं करि कहे हैं ते जानने ॥ १९८ ॥

उबबादमारणंतियपरिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा ।
तसणालिबाहिरह्मि य णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥१९९॥

उपपादमारणांतिकपरिणतत्रसमुज्झित्वा शेषत्रसाः ।
त्रसनालीबाह्ये च न संतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ १९९ ॥

जी० प्र०—विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्तिः उपपादः । मरणं-प्राणत्यागः अंतः अवसानं यस्य स मरणांतः कालः वर्तमानभवस्थितिचरमांतर्मुहूर्तः । मरणांते भवः मारणांतिकः समुद्घातः उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्यंतजीवप्रदेशप्रसर्पणलक्षणः । उपपादेन परिणतं मारणांतिकसमुद्घातपरिणतं चशब्दात् केवलिसमुद्घातेन परिणतं च त्रसं उज्झित्वा--वर्जित्वा शेषाः स्वस्थानादिपदपरिणताः सर्वे त्रसजीवाः त्रसनाडिबाह्ये लोकक्षेत्रे न संतीति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं-कथितं । ततः कारणात् त्रसानां नालिरिव नालिस्त्रसनालिः सा च एकरज्जुविष्कमायामा चतुर्दशरज्जूत्सेधा लोकमध्यस्थिता अन्वर्थसंज्ञया कथिता । कश्चिज्जीवः त्रसनालिबाह्ये वातवलये स्थितः त्रसे बद्धायुष्कः प्राक्तन वायुकायिकभवं त्यक्त्वा उत्तरं त्रसकायं प्राप्य अग्रतनविग्रहगतिप्रथमसमये त्रसनामकर्मोदयेन त्रसो जातः इत्युपपादपरिणतत्रसस्य त्रसनालिबाह्येऽस्तित्वं । कश्चित् त्रसजीवः त्रसनालिमध्ये स्थितः तनुवातवलयस्य वायुकायिके बद्धायुष्कः स्वायुरवसानांतर्मुहूर्तकाले तनुवातवलयपर्यंतं त्रसनालिबाह्ये क्षेत्रे आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणमारणांतिकसमुद्घातं करोतीति तस्य त्रसस्य त्रसनालिबाह्यक्षेत्रेऽप्यस्तित्वं । केवली कवाटाद्याकारेण त्रसनालिबाह्ये आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणसमुद्घातं करोतीति तस्य केवलिनोऽपि त्रसनालिबाह्येऽप्यस्तित्वं सिद्धमिति शास्त्रकारस्य तात्पर्यं ॥ १९९ ॥ अथ वनस्पतिवदन्येषामपि जीवानां प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागं कथयति--

म० प्र०—विवक्षितभवप्रथमसमयपर्यायप्राप्तिः, उपपादः, मरणं प्राणत्यागः, अंतः-अवसान यस्य स मरणांतः कालः वर्तमानभवस्थितिचरमांतर्मुहूर्तः मरणांते भवः मारणांतिक समुद्घातः उत्तरभवोत्पत्तिस्थानपर्यंतजीवप्रदेशप्रसर्पणलक्षणः, उपपादेन परिणत मारणांतिकसमुद्घातेन परिणत च त्रसजीवमुज्झित्वा वर्जयित्वा, चशब्देन सूचितं केवलसमुद्घातपरिणत च वर्जयित्वा शेषाः स्वस्थानादिपदपरिणताः सर्वे त्रसजीवा त्रसनाली बाह्ये लोकक्षेत्रे न सति इति जिनैः--अर्हदादिभिः, निर्दिष्ट कथित, अत एव त्रसाना नालीव नाली एकरज्जुविष्कभायामा चतुर्दशरज्जुतुंगा लोकमध्यगता त्रसनालीत्यन्वर्थसज्ञया परमागमे प्रसिद्धा । कश्चिज्जीवः त्रसनालीबाह्ये वातवलये स्थितः त्रसे बद्धायुष्क प्राक्तन वातकायिकभव त्यक्त्वा उत्तर त्रसकायभव प्राप्य विग्रहगतौ प्रथमसमये त्रसनामकर्मोदयात् त्रसो भूत्वा वर्तत इत्युपपादपरिणतत्रसस्य त्रसनालीबाह्येऽस्तित्व । कश्चित त्रसजीव त्रसनालिमध्यस्थ. तनुवातवलये वातकायिके बद्धायुष्कः स्वायुरवसानांतर्मुहूर्ते तनुवातवलयपर्यंत त्रसनालिबाह्ये आत्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षण मारणातिकसमुद्घात करोतीति तस्य त्रसस्य त्रसनालिबाह्ये अस्तित्व । केवली च कवाटाद्याकारेण त्रसनालिबाह्येप्यात्मप्रदेशप्रसर्पणलक्षणं समुद्घात करोतीति तस्यापि त्रसनालिबाह्ये अस्तित्वं सिद्धमिति तात्पर्यं शास्त्रकारस्य ॥ १९९ ॥ अथ वनस्पतिवदन्येषामपि जीवाना प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितविभागं कथयति–

सं० च०---विवक्षित पर्यायका पहला समयविषै पर्यायकी प्राप्ति सो उपपाद कहिए बहुरि मरण जो प्राण त्याग अर अंत जो पर्यायका अंत जाकै होइ सो मरणांतकाल वर्तमान पर्यायके आयुका अंत अंतर्मुहूर्त मात्र जानना। तींहि मरणांतकालविषै उपज्या सो मारणांतिक समुद्घात कहिए। आगामी पर्यायके उपजनेका स्थान

पर्यंत आत्मप्रदेशनिका फैलना सो मारणांतिकसमुद्घात जानना। ऐसा उपपादरूप परिणम्या अर मारणांतिक समुद्घातरूप परिणम्या अर चकारतैं केवल समुद्घात रूप परिणम्या जो त्रस तींहि विना दश स्थाननिविषै अवशेष स्वस्थानस्वस्थान अर विहारवत्स्वस्थान अर अवशेष पांच समुद्घात रूप परिणमे सर्व ही त्रसजीव त्रसनाली वारै जो लोकक्षेत्र तींहिविषै न पाइए हैं ऐसा जिन जे अर्हंतादिक तिनिकरि कह्या है तातै जैसै नाली होइ तैसैं त्रस रहनेका स्थान सो त्रसनाली जाननी। त्रस नाली इस लोकके मध्यभाग विषै चौदह राजू ऊंची एक राजू चौडी लंबी सार्थक नाम धारक जाननीं। त्रस जीव त्रसनाली विषैं ही है। बहुरि जो जीव त्रसनालीके वाह्य वातलयविषैं तिष्ठता स्थावर था उसनै त्रसका आयु बांधा बहुरि सो पूर्वें वायुकायिक स्थावर पर्यायकौ छाडि आगला विग्रह गतिका प्रथम समयविषै त्रस नामा नामकर्मका उदय अपेक्षाकरि त्रसनालीके वाह्य त्रस हूवा तातै उपपादवाले त्रसका अस्तित्व त्रसनाली वाह्य कह्या। बहुरि कोई जीव त्रसनालीके माहि त्रस है बहुरि त्रसनाली वाहिर तनुवातवलय संबंधी वायुकायिक स्थावरका बंध किया था सो आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहै तब आत्मप्रदेशनिका फैलाव जहांका बंध किया था तिस स्थानक त्रसनालीके वाह्य तनुवातवलय पर्यंत गमन करै तातै मारणांतिक समुद्घातवाले त्रसका अस्तित्व त्रसनालीवाह्य कह्या। बहुरि केवली दंड कपाटादि आकारकरि त्रसनाली वाह्य अपने प्रदेशनिका फैलावनरूप समुद्घात करै है तातै केवल समुद्घातवाले त्रसका अस्तित्व त्रसनाली वाह्य कह्या। इनिविना और त्रसका अस्तित्व त्रसनाली वाह्य नाहीं है ऐसा अभिप्राय शास्त्रके कर्तांका जानना ॥ १९९ ॥ आगैं वनस्पतीवत् अन्य जीवनिकैं प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठितपनाका भेद दिखावै हैं—

पुढवीआदिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा।

अपदिट्ठिदा णिगोदहिं पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥२००॥

पृथिव्यादिचतुर्णां केवल्याहारदेवनिरयांगानि ।
अप्रतिष्ठितानि निगोदैः प्रतिष्ठितांगा भवंति शेषाः ॥ २०० ॥

जी० प्र०---पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकचतुर्विधजीवांगानि केवल्याहारकदेवनारकांगानि च वादरनिगोदजीवशरीरैरप्रतिष्ठितानि अनाश्रितानीत्यर्थः । शेषाणि अप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीराणि द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्जीवशरीराणि अवशिष्टमनुष्यजीवशरीराणि च वादरनिगोदजीवशरीरैः प्रतिष्ठितानि-आश्रितानि भवंति ॥ २०० ॥ अथ स्थावरकायिकानां त्रसकायिकानां च शरीरसंस्थानमाह-

मं० प्र०---पृथिव्यादीनां चतुर्णां पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां जीवानामंगानि-शरीराणि, केवल्याहारकदेवनिरयाणां च अंगानि शरीराणि, निगोदैः-वादरनिगोदजीवशरीरैः, अप्रतिष्ठितानि-अनाश्रितानि, शेषाणि अप्रतिषिद्धवनस्पतिकायिकशरीराणि, द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियतिर्यग्जीवशरीराणि अवशिष्टमनुष्यजीवशरीराणि च वादरनिगोदशरीरैः प्रतिष्ठितानि आश्रितानि भवति ॥ २०० ॥ अथ स्थावरकायिकानां त्रसकायिकानां च शरीरसंस्थानं प्ररूपयति-

सं० च०-पृथ्वी आदि चारि प्रकार जीव, पृथ्वी १ अप २ तेज ३ वायु ४ इनिका शरीर, बहुरि केवलीका शरीर, बहुरि आहारक शरीर, बहुरि देवनिका शरीर, बहुरि नारकीनिका शरीर ए सर्व निगोद शरीरनिकरि अप्रतिष्ठित हैं आश्रित नाहीं । इनि विषैं निगोद शरीर न पाईए है । बहुरि अवशेष रहे जे जीव तिनिके शरीर प्रतिष्ठित जानने । इनिविषैं निगोद शरीर पाइए है । तातैं अवशेष सर्व निगोद शरीरनिकरि प्रतिष्ठित हैं आश्रित हैं । तहां सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती द्वींद्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पंचेंद्रिय तिर्यंच अर पूर्वैं कहेतिनि बिना अवशेष मनुष्य इनि सबनिकैं शरीरविषैं निगोद पाइए हैं ॥ २००॥ आगैं स्थावरकायिक त्रसकायिक जीवनिके शरीरका आकार कहैं हैं---

मसुरंबुविंदुसूईकलावधयसण्णिहो हवे देहो ।
पुढवीआदिचउण्हं तरुतसकाया अणेयविहा ॥२०१॥

मसूरांबुविंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवेद्देहः ।
पृथिव्यादिचतुर्णां तरुत्रसकाया अनेकविधाः ॥ २०१ ॥

जी० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकजीवानां चतुर्णां देहः–शरीरं यथाक्रमं मसूरांबुविंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवति । पृथ्वीकायिकशरीरं मसूरेण वृत्तचणकेन सदृशं तद्वद्गोलकाकारमित्यर्थः । अप्कायशरीरं जलविंदुना सदृशं इदमपि गोलकाकारमित्यर्थः । तेजस्कायिकशरीरं सूचीकलापेन सदृशं तादृगूर्ध्वबहुमुखमित्यर्थः । वातकायिकशरीरं ध्वजेन सदृशं तादृगायतचतुरस्रमित्यर्थः । यद्यपि तच्छरीराणि उक्तसंस्थानानि तथापि तदवगाहनं घनांगुलासंख्येयभागमात्रमेवेति दृष्टिगोचरं नास्ति–इंद्रियगोचरं नास्ति। इंद्रियगोचरत्वेन प्रतीयमानं पृथिव्यादिकं तु बहुशरीरसमूह इति ग्राह्यं । तरूणां वनस्पतिकायिकानां, त्रसानां द्वींद्रियादीनां च कायाः शरीराणि अनेकविधाः अनियतसंस्थाना यथासंभवं घनांगुलासंख्येयभागादिसंख्यातगुणितघनांगुलावसानावगाहनविकल्पविशिष्टाः संतीति ज्ञातव्याः ॥ २०१ ॥ एवं कायमार्गणाकथनानंतरं कायसहितसंसारिजीवस्य दृष्टांतपूर्वकं व्यवहारमाह—

मं० प्र०—पृथिव्यादीनां चतुर्णां देहो यथाक्रम मसूरांबुविंदुसूचीकलापध्वजसन्निभो भवति । पृथ्वीकायिकस्य शरीरं मसूरेण वृत्तचणकेन सदृशं तद्वद्गोलकाकारमित्यर्थः । अप्कायिकस्य शरीरं जलविंदुसदृशं । इदमपि गोलकाकारमित्यर्थः । तेजस्कायिकस्य शरीर सूचीकलापसदृश, तद्वदूर्ध्वबहुमुखमित्यर्थः । वातकायिकस्य शरीरं ध्वजसदृशं तद्वदायतचतुरस्रमित्यर्थः । यद्यप्येतेषा शरीराणि कथितसंस्थानानि तथापि तदवगाहनं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमेव ततो न दृष्टिगोचरः । इंद्रियगोचरतया प्रतीयमानं पृथिव्यादिकं तु बहुशरीरसमूह इति ग्राह्यं । तरूणा वनस्पतिकायिकानां त्रसकायिकाना च कायाः--शरीराणि अनेकविधाः--अनियतसंस्थानाः यथासंभवं घनांगुलासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणितघनांगुलप्रमितावगाहनाः ज्ञातव्याः ॥२०१॥ अथैव कायमार्गणां प्ररूप्य तत्कायसहितस्य संसारिणः दृष्टांतपूर्वकं व्यवहारं प्ररूपयति--

सं० च०—पृथिवीकायिक जीवनिके शरीर मसूर अन्न समान गोल आकार धरैं है । बहुरि अपकायिक जीवनिका शरीर जलकी बूंदके समान गोल आकार धरै है । बहुरि अगिनिकायिक जीवनिका शरीर सुईनिका समूहके समान लंबा अर ऊर्ध्वविषैं चौड़ा बहुमुखरूप आकार धरै है । बहुरि वातकायिक जीवनिका शरीर ध्वजा समान लंबा चौकौर आकार धरै है । ऐसैं इनिके आकार कहे तथापि इनिकी अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवैं भागमात्र है तातैं जुदे जुदे दीसैं नाहीं । जो पृथ्वी आदि इंद्रियगोचर है सो घने शरीरनिका समुदाय है ऐसा जानना । बहुरि तरु जे वनसपती कायिक अर द्वींद्रियादिक त्रस कायिक इनिके शरीर अनेक

प्रकार आकार धरैं हैं नियम नाहीं । ते घनांगुलका असंख्यातवां भागतैं लगाइ संख्यात घनांगुल पर्यंत अवगाहना धरैं है ऐसैं जानना ॥ २०१ ॥ आगैं काय मार्गणाके कथनके अनंतर कायसहित संसारी जीवनिका दृष्टांतपूर्वक व्यवहार कहैं हैं—

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेहिऊण कावलियं ।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावलियं ॥ २०२ ॥

यथा भारवहः पुरुषो वहति भारं गृहीत्वा कावटिकं ।
एवमेव वहति जीवः कर्मभरं कायकावटिकं ॥ २०२ ॥

जी० प्र०—लोके यथा भारवाहकः पुरुषः कावटिक–कावटिभृत भारं गृहीत्वा विवक्षितस्थानं वहति नयति प्रापयति तथा संसारिजीवः औदारिकादिनोकर्मशरीरक्षिप्तज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभारं गृहीत्वा नानायोनिस्थानानि वहति । पुनरपि स एव विप्रमुक्तकावटिकभारः एकत्र तदिष्टस्थाने तद्भाराक्रांतिजनितदुःखविगमेन सुखी भूत्वा तिष्ठति तथा कश्चिद्भव्यजीवोऽपि लब्धिभिः स्वीकृतसम्यग्दर्शनादिसामग्रीसंपन्नः तत्त्वज्ञानी शरीरकावटिभृतकर्मभरं विप्रमुच्य तद्भाराक्रांतिजनितनानाविधदुःखवेदनाविगमेनेष्टे लोकाग्रनिवासे सुखीभूत्वा तिष्ठति इति भव्यजनहितोपदेशोयमाचार्यस्याभिप्रायगतो लक्ष्यः ॥ २०२ ॥ अथ दृष्टांतपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रांतसोपायसिद्धस्वरूपं प्ररूपयति—

म० प्र०—यथा भारवहः कश्चित् पुरुषः कावटिकं भारं गृहीत्वा विवक्षितस्थानं वहति- नयति प्रापयति । एवमेव संसारिजीवः कायकावटिकं–औदारिकादिनोकर्मशरीरकावटिसभृतं, कर्मभ.र- ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभारं गृहीत्वा नानायोनिस्थानानि वहति । कावठ्या भवः कावटिकः–कावटिसभृत इत्यर्थः । ततो विप्रमुक्तकावटिकभारः पुरुषो यथा क्वचिदिष्टस्थाने तद्भाराक्रातिजानितदुःखविरहात्सुखी सन्नास्ते तथा कश्चिदासन्नभव्योऽपि लब्धिसंभूतसम्यग्दर्शनादिसामग्रीसपन्न, तत्त्वज्ञानी शरीरकावटिसंभृतकर्मभारं विप्रमुच्य तद्भाराक्रातिजानितनानाविधदुःखवेदनाविगमात् क्वचिदिष्टलोकाग्रनिवासे सुखी सन्नास्ते इति भव्यजनाहितोपदेशोयमाचार्यस्याभिप्रायगतो लक्ष्य. ॥ २०२ ॥ अथ दृष्टातपुरस्सरं कायमार्गणाव्यतिक्रातं सोपायसिद्धस्वरूपं प्ररूपयति—

सं० च०—लोकविषैं जैसैं बोझका वहनहारा कोऊ पुरुष कावडियासो कावडिमें भर्‍या जो बोझ भार ताहि लेकरि विवक्षित स्थानक पहुंचावै है तैसैं ही यहु संसारी जीव औदारिक आदि नोकर्मशरीरविषै भर्‍या

हूवा ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्मका भार ताहि लेकरि नानाप्रकार योनिस्थानकनिकौं प्राप्त करै है। बहुरि जैसैं सोई पुरुष कावड़िका भारकौं गेरि कोई एक इष्ट स्थानकविषै विश्राम करि तिस भारकरि निपज्या दुःखके वियोगकरि सुखी होइ तिष्ठै है तैसैं कोई भव्य जीव कालादि लब्धिनिकरि अंगीकार कीनीं जो सम्यग्दर्शनादि सामिग्री तींहि करि युक्त होता संता संसारी कावडिकाविषैं भरया कर्म भारकौं छांड़ि तिस भार करि निपज्या नाना प्रकार दुःख पीड़ाका वियोगकरि इष्ट लोकका अग्रभागविषैं सुखी होइ तिष्ठै है। ऐसा हित उपदेश रूप आचार्य का अभिप्राय है ॥२०२॥ आगै दृष्टांतपूर्वक कायमार्गणारहित जे सिद्ध तिनिका उपायसहित स्वरूपकौं कहैं हैं—

जह कंचणमग्गिगयं मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह कायबंधमुक्का अकाइया झाणजोगेण ॥ २०३ ॥

यथा कांचनमग्निगतं मुच्यते किट्टेन कालिकया च।
तथा कायबंधमुक्ता अकायिका ध्यानयोगेन ॥ २०३ ॥

जी० प्र०—यथा लोके मलिनं कांचनं- सुवर्णं, अग्निगतं–प्रज्वलज्ज्वलनदग्धं, अंतरंगसूतादिभावनासंस्कृतं सत् किट्टेन–बहिर्मलेन कालिकया च वैवर्ण्यरूपांतरंगमलेन च मुच्यते जाज्वलत्षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य सर्वजनैः श्लाघ्यते। तथा ध्यानयोगेन--धर्म्यशुक्लध्यानभावनया संस्कृतबहिरंगतपोग्निविशेषेण आसन्नभव्यजीवा अपि औदारिकतैजसकायाभ्यां कार्मणशरीरसंश्लेषरूपबंधेन च मुक्ता भूत्वा अकायिकाः–अशरीराः सिद्धपरमेष्ठिनः, अनंतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य–लोकाग्रे सर्वलोकेन स्तुतिप्रणामार्चनादिभिः श्लाघ्यंते। काय अस्ति एषामिति कायिकाः--शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः। तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इत्यर्थः ॥ २०३ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा एकादशगाथासूत्रैः कायमार्गणायां पृथ्वीकायिकादिजीवसंख्यामाख्यंति—

म० प्र०—यथा लोके कांचनं–मलिनं सुवर्णं अग्निगतं- प्रज्वलज्ज्वलनदग्धमंतरंगरसादिभावनासंस्कृतं सत् किट्टेन बहिर्मलेन कालिकया च वैवर्ण्यरूपांतरमलेन मुच्यते ततश्च जाज्वलत्षोडशवर्णलक्षणस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य सर्वलोकैः श्लाघ्यते तथा ध्यानप्रयोगेन धर्म्यशुक्लध्यानभावनया संस्कृता बहिरंगतपोग्निविशेषदग्धाः आसन्नभव्यजीवाः कायाभ्यां--औदारिकतैजसशरीराभ्यां, बंधेन कार्मणशरीरसंश्लेषेण मुक्ताः संतः, अशरीराः-अकायिकाः सिद्धपरमेष्ठिनः,

अनंतज्ञानादिस्वरूपोपलब्धिं प्राप्य लोकाग्रे सर्वलोकैः स्तुतिप्रणामार्चनादिभिः श्लाघ्यंते । कायोऽस्त्येषामिति कायिकाः शरीरिणः संसारिण इत्यर्थः । तद्विपरीता अकायिका मुक्ता इति ॥ २०३ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः एकादशभिर्गाथाभिः कायमार्गणायां पृथ्वीकायिकादिजीवानां सख्याविशेषं प्रतिपादयंति—

सं० च०—जैसैं लोकविषैं मलयुक्त सोना सो अग्निकौं प्राप्त होता संता अंतरंग पारा आदिकी भावनाकरि संवार्‌या हुवा बाह्यमल तौ कीटिका अर अंतरंग मल श्वेतादि रूप अन्यवर्ण ताकरि रहित हो है । देदीप्यमान सोलहवान निज स्वरूपकी लब्धिकौं पाइ सर्व जननिकरि सराहिए है तैसें ध्यान योग जो धर्मध्यान शुक्लध्यान रूप भावना ताकरि अर वहिरंग तपरूपी अगिनिका संस्कार करि निकट भव्य जीव हैं ते भी औदारिक तैजस शरीर सहित कार्माण शरीरका संबंध रूप बंधकरि मुक्त होइ अकायिकाः कहिए शरीररहित सिद्ध परमेष्ठी ते अनंत ज्ञानादि स्वरूपकी उपलब्धिकौं पाइ लोकाग्रविषैं सर्व इंद्रादि लोककरि स्तुति नमस्कार पूजनादिक करि सराहिए है । काय जिनिकैं पाइए ते कायिक शरीरधारक संसारी जानने तिनतैं विपरीत कायरहित अकायिक मुक्तजीव जानने ॥२०३॥ आगैं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव ग्यारह गाथा सूत्रनिकरि पृथिवीकायिक आदि जीवनिकी संख्या कहैं है—

आउड्ढरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ ।
भूजलवाऊ अहिया पडिभागोऽसंखलोगो दु ॥२०४॥

सार्धत्रयराशिवारं लोके अन्योन्यसंगुणे तेजः ।
भूजलवायवः अधिकाः प्रतिभागोऽसंख्यलोकस्तु ॥ २०४ ॥

जी० प्र०—जगच्छ्रेणिघनप्रमितलोकप्रदेशप्रमाणं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श । वि । दे । विरलनराशिं विरलयित्वा
≡ ≡ ≡

रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा, समंतात् वर्गः संवर्गः वर्गितस्य संवर्गः वर्गितसंवर्गः तं विधायेत्यर्थः शलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। पुनः तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तच्छलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं लोकप्रमितशलाकाराशिपरिसमाप्तिपर्यंतं कृत्वा तं च समुत्पन्नराशिं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे ≡a ≡a ≡a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं द्वितीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य तत्रतनचरमसमुत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा श वि दे ≡a ≡a ≡a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तृतीयवारस्थापितशलकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति तमेव राशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं तृतीयवारस्थापितशलाकाराशिं निष्ठाप्य चरमसमुत्पन्नमहाराशिं प्राग्वत् त्रिःप्रतिकं कृत्वा

श वि दे
≡a ≡a ≡a विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं रूप प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशितः एकं रूपमपनयेत्। तत्रोत्पन्नमहाराशिं विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा शलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्। एवं प्रथमद्वितीयतृतीयवारस्थापितशलाकाराशिन्यूनचतुर्थवारस्थापितशलाकाराशिपरिसमाप्तौ सत्यां तत्रोत्पन्नमहाराशिः तेजस्कायिकजीवराशेः प्रमाणं भवति। अस्य राशेः अन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशिवर्गशलाकाराश्यर्धच्छेदराशीनां प्रमाणं तदल्पबहुत्वं च प्राक् परिभाषोक्तमत्रापि ज्ञातव्यं। पुनः भूजलवायुकायिकाः क्रमेण तेजस्कायिकराशितोऽधिका भवंति तदधिकागमनिमित्त भागहारः प्रतिभागहारः असंख्यातलोकप्रमितो भवति। तत्संदृष्टिर्नवांकः। अधिकक्रमो दर्श्यते तद्यथा—उक्ततेजस्कायिकराशौ ≡a अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡a । $\frac{१}{९}$ अधिकीकृते सति पृथ्वीकायिकजीवराशिप्रमाणं भवति। ≡a $\frac{१०}{९}$। पुनः अस्मिन्नेव राशौ अस्यैव तत्प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡a । $\frac{१०}{९}$ । $\frac{१}{९}$ अधिकीकृते सत्यप्कायिकजीवराशिप्रमाणं भवति ≡a $\frac{१०}{९}$ । $\frac{१०}{९}$ पुनः अस्मिन्नेव राशौ अस्यैव प्रतिभागहारभक्तैकभागेन ≡a $\frac{१०}{९}$ । $\frac{१०}{९}$ । $\frac{१}{९}$ अधिकीकृते सति वायुकायिकजीवराशिप्रमाणं भवति ≡a । $\frac{१०}{९}$ । $\frac{१०}{९}$ । $\frac{१०}{९}$ ॥ २०४ ॥

म० प्र०---जगच्छ्रेणिघनमात्रलोकप्रदेशप्रमाणं शलाकाविरलनदेयसंज्ञं राशित्रयं संस्थाप्य तत्र विरलनराशिं एकैकरूपतया विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा परस्परं संगुण्य शलाकाराशितः एकं रूपमपनीय तत्रोत्पन्नमसंख्यातलोक विरलनराशिं देयराशिं च कृत्वा विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशि दत्वा परस्पर संगुण्य प्राक्तने लोकमात्रे शलाकाराशौ पुनरप्यपरं रूपमपनयेत् । एवमेव उत्पन्नोत्पन्नासंख्यातलोकराशिविरलन देयं च कृत्वा परस्परं संगुणनं, प्राक्तने शलाकाराशौ रूपापनयन च पुन. पुनस्तावत्कर्तव्य यावत्प्राक्तनशलाकाराशिरूपाणि लोकप्रदेशमात्राणि समाप्तानि भवंति इति प्रथमवारशलाका, पुनस्तत्रोत्पन्नमसंख्यातलोकराशिं शलाकाविरलनदेयप्रतित्रयं कृत्वा प्रथमशलाकानिष्ठापनक्रमेण द्वितीयवारशलाकां तृतीयवारशलाकां चतुर्थवारशलाकार्धं च निष्ठापयेत् तथा सति अर्धचतुर्थशलाकाराशिवारान् लोके घनलोकप्रदेशप्रमाणे अन्योन्यसगुणे परस्परं वर्गितसंवर्गे कृते सति यल्लब्धमसंख्येयलोकप्रमितं तावंतस्तेजस्कायिकजीवा भवंति । अर्धचतुर्थो वारो येषा ते अर्धचतुर्थाः सार्धा त्रयः इत्यर्थ. । सार्धत्रयवारशलाकानिष्ठापनपर्यंतं लोकस्य परस्परं गुणनाल्लब्धमसंख्यातलोकप्रदेशप्रमित तेजस्कायिकजीवराशिप्रमाणमित्यर्थः । तु–पुनः, भूजलवायुकायिकाः क्रमेण ततोऽधिकाधिकाः, अधिकागमननिमित्तं प्रतिभागहारः असंख्यातलोकमात्रः, तत्संदृष्टिर्नवांकः । तद्यथा- असख्यातलोकमात्रं तेजस्कायिकराशिं सस्थाप्य तद्योग्यासंख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभागं तस्मिन्नेव तेजस्कायिकजीवराशौ प्रक्षिपेत् स प्रक्षिप्तराशिः पृथ्वीकायिकजीवराशिर्भवति तमेव पृथ्वीकायिकराशिमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभागे तस्मिन्नेव पृथ्वीकायिकराशौ प्रक्षिपेत् स प्रक्षिप्तराशिरप्कायिकप्रमाणं भवति पुनस्तमेवाप्कायिकराशिमसख्यातलोकेन भक्त्वा तदेकभाग तस्मिन्नेवाप्कायिकराशौ प्रक्षिपेत् स प्रक्षिप्तराशिर्वायुकायिकप्रमाणं भवति ॥ २०४ ॥

सं० च०--जगत श्रेणी घन प्रमाण लोकके प्रदेश तीहि प्रमाण शलाका १ विरलन २ देय ३ ए तीनि राशिकरि तहां विरलनराशिका विरलन करि एक एक जुदा जुदा वखेरि तहां एक एक प्रति देयराशिकौ स्थापि वर्गित संवर्ग करना। जाका वर्ग कीया ताका समंतपनै वर्ग करना सो इहां परस्पर गुणनेका नाम वर्गितसंवर्ग है। ताहिकरि शलाकाराशिमेंस्यौं एक घटावना। बहुरि ऐसैं करतैं जो राशि उपज्या ताहि विरलन करि एक एक प्रति सोई राशि देइ वर्गित संवर्गकरि शलाकाराशिमेंसौं एक और घटावना। ऐसैं लोक प्रमाण शलाका राशि यावत् पूर्ण न होइ तावत् करना ऐसैं करतैं जो राशि उपज्या तीहि प्रमाण शलाका विरलन देय राशि स्थापि विरलन राशिका विरलन करि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ स्थापि वर्गित संवर्ग करि दूसरीबार स्थाप्या हूवा शलाकाराशिमेंसौं एक घटावना। बहुरि तहां उपज्या हूवा राशिका विरलन करि एक एक प्रति सोई राशि स्थापि वर्गित संवर्ग करि तिस शलाका राशिमेंसौ एक और घटावना ऐसैं दूसरी

बार स्थाप्या हूवा शलाका राशिकौं भी समाप्तकरि तहां अंतविषैं जो महाराशि भया तीहिं प्रमाण शलाका १ विरलन " देय ३ स्थापि विरलनराशिका विरलन करि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ वर्गित संवर्ग करि तीसरीबार स्थाप्या शलाका राशितैं एक और घटावना बहुरि तहां जो राशि भया ताका विरलन करि एक एक प्रति सोई राशि देइ वर्गित संवर्ग करि तिस शलाका राशितैं एक और काढ़ना ऐसैं तीसरी बार स्थाप्या हूवा शलाका राशिकौं भी समाप्त करि तहां अंतविषैं उपज्या महाराशि तिहि प्रमाण शलाका, विरलन, देय, स्थापि विरलन राशिकौं बखेरि एक एक प्रति देय राशिकौं देइ वर्गित संवर्गकरि चौथी बार स्थाप्या हूवा शलाकाराशितैं एक काढ़ना। बहुरि तहां जो महाराशि भया ताकौं विरलन करि एक एक प्रति तिसहीकौं देइ वर्गित संवर्गकरि तिस शलाका राशिमेंसों एक और काढना ऐसैं ही क्रमकरि पहिलीबार दूसरबार तीसरीबार स्थापे जे शलाका राशि तिनिकौं जोड़े जो प्रमाण होइ तितने चौथीवार स्थाप्या हुवा शलाका राशिमेंसौं घटाएं अवशेष जितना प्रमाण रह्या तिनकौं एक एक घटावने करि पूर्ण होतैं अंतविषैं जो महाराशि उपज्या तींहि प्रमाण तेजस्कायिक जीव राशि है। इस राशिका परस्पर गुणकार शलाका राशि वर्ग शलाका राशि अर्द्धच्छेद राशि तिनिका प्रमाण वा अल्पबहुत्व पूर्वैं द्विरूप घनाघन धाराका कथन करतैं कह्या है तैसैं इहां भी जानना। ऐसैं सामान्यपणैं साढा तीन वार वो विशेषपणैं किंचित् घाटि च्यारि शलाका राशि पूर्ण जैसैं होइ तैसैं लोकका परस्पर गुणन कीएं जो राशि होइ तितने अग्निकायिक जीवराशिका प्रमाण है। बहुरि इनितैं पृथ्वी कायिकके जीव अधिक है। इनितैं अप्कायके जीव अधिक हैं। इनितैं वातकायके जीव अधिक हैं। इहां अधिक कितने हैं ? ऐसा जाननेके निमित्त भागहार असंख्यात लोक प्रमाण जानना सो कहिए है- असंख्यात लोकमात्र अग्निकायिक जीवनिका परिमाण ताकौ यथायोग्य छोटा असंख्यात लोकका भाग दीएं जेता परिमाण आवै तितने अग्नि कायिकके जीवनिका परिमाणविषै मिलायें पृथ्वीकायिक जीवनिका परिमाण हो है बहुरि इस पृथ्वीकायिक राशिकौं असंख्यात लोकका भाग दीये जेता परिमाण आवै तितने पृथ्वी का-

यिक राशि विषैं मिलायैं तितना अप्कायिक जीवनिका परिमाण हो है बहुरि अप्कायिक राशिकौं असंख्यात लोकका भाग दीये जो परिमाण आवै तितना अप्कायिक राशिविषैं मिलाएं वातकायिक जीवनिका परिमाण हो है ऐसैं अधिक अधिक जानने ॥ २०४ ॥

अपदिट्ठिदपत्तेया असंखलोगप्पमाणया होंति ।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण असंखलोगेण संगुणिदा ॥ २०५ ॥

अप्रतिष्ठितप्रत्येका असंख्यलोकप्रमाणका भवंति ।
ततः प्रतिष्ठिताः पुनः असंख्यलोकेन संगुणिताः ॥ २०५ ॥

जी० प्र०—अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणा भवंति ≡ a । पुनः प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकजीवाः तेभ्यः असंख्येयलोकगुणिता भवंति ≡ a ≡ a ॥ २०५ ॥

मं० प्र०—अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिका यथायोग्यासंख्यातलोकप्रमाणा भवति पुनः प्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकास्ततः अप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकप्रमाणात् असंख्येयलोकेन सगुणिता भवति ॥ २०५ ॥

स.चं.-अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती कायिक जीव यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण है बहुरि इनिकौं असंख्यात लोक करि गुणें जो परिमाण होइ तितने प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती कायिक जीव जानने। दोऊनिकौं मिलाएं सामान्य प्रत्येक वनस्पती कायिक जीवनिका प्रमाण हो है ॥ २०५ ॥

तसरासिपुढविआदीचउक्कपत्तेयहीणसंसारी ।
साहारणजीवाणं परिमाणं होदि जिणदिट्ठं ॥२०६॥

त्रसराशिपृथिव्यादिचतुष्कप्रत्येकहीनसंसारी ।
साधारणजीवानां परिमाणं भवति जिनदिष्टं ॥ २०६ ॥

जी० प्र०—त्रसराशिना वक्ष्यमाणप्रमाणेन आवल्यसंख्येयभागभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरप्रमितेन ≡ ४ / २ / ə तथा पृथिव्यादिचतुष्टयेन उक्तप्रमाणेन एतावता ते ≡ ə पृ ≡ ə अ ≡ ə वा ≡ ə मिलितेन ≡ ə । ४

≡ ə । १ / ९ ≡ ə । २ / ९ ≡ ə । ३ / ९ ≡ ə । ४ / ९

≡ ə । १ / ९ । ९ ≡ ə । ३ / ९ । ९ ≡ ə । ४ / ९ । ९

≡ । ə । १ / ९ । ९ । ९ ≡ ə । ४ / ९ । ९ । ९

साधिकचतुर्गुणतेजस्कायिकराशिप्रमाणेन ≡ ə । ४ प्रत्येकवनस्पतिराशिद्वयेन ≡ ə ≡ ə । चेति राशित्रयेण विहीनसंसारराशिरेव साधारणजीवराशिप्रमाणं भवतीति जिनैर्दिष्टं-कथितं वा १३ ≡ ॥ २०६ ॥

मं० प्र०—वक्ष्यमाणेन त्रसराशिना पृथिव्यादिचतुष्कप्रत्येकवनस्पतिराशिभ्या च हीनः संसारिजीवराशिः साधारणजीवानां परिमाणं भवति इति जिनैरर्हदादिभिः, निर्दिष्टं-कथितं ॥ २०६ ॥

स० चं०—आगैं कहिए हैं आवलीका असंख्यातवां भागकरि भाजित प्रतरांगुलके भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो होइ तितना त्रसराशिका प्रमाण अर पृथ्वी अप तेज वायु इनि च्यारिनिका मिल्या हूवा साधिक चौगुणा तेज कायिक राशिका प्रमाण बहुरि इस प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीका मिल्या हूवा, परिमाण ऐसैं इनि तीनि राशिनिकौं संसारी जीवनिका परिमाणमें घटाएं जो अवशेष रहै तितना साधारण वनस्पती जे निगोद जीव तिनिका परिमाण अनंतानंत जानना ऐसा जिनदेवनें कह्या है ॥ २०६ ॥

सगसगअसंखभागो वादरकायाण होदि परिमाणं ।
सेसा सुहुमपमाणं पाडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो ॥ २०७ ॥

स्वकस्वकासंख्यभागो वादरकायानां भवति परिमाणं ।
शेषाः सूक्ष्मप्रमाणं प्रतिभागः पूर्वनिर्दिष्टः ॥ २०७ ॥

जी० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां साधारणवनस्पतिकायिकानां च असंख्येयलोकैकभागमात्रं स्वस्ववादरकायानां परिमाणं भवति। शेषा' तद्बहुभागाः सूक्ष्मकायिकजीवानां प्रमाणं भवति । अत्र प्रविष्टप्रतिभागः भागहारः पूर्वोक्तासंख्यातलोकमात्र एवेति ज्ञातव्यः । तदंकसंदृष्टिर्नवांकः ॥ २०७ ॥

म० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकाना साधारणवनस्पतिकायिकानां च पूर्वोक्तस्वस्वसंख्याया असंख्यातभागमात्रं स्वस्ववादरकायानां प्रमाणं भवति शेषतद्बहुभागमात्रं सूक्ष्मकायानां प्रमाण भवति। अत्र प्रविष्टः प्रतिभागः-भागहारः पूर्वमेव निर्दिष्ट. असंख्यातलोकमात्र इति ज्ञातव्यः। तस्य संदृष्टिर्नवाक.॥२०७॥

सं० च०—पृथिवी अप् तेज वायु साधारण वनस्पती कायिकनिका जो पूर्वै परिमाण कह्या तिस अपने अपने परिमाणकौं असंख्यातका भाग देना। तहां एक भाग प्रमाण तौ अपना अपना वादर कायकनिका प्रमाण है। अवशेष वहुभाग प्रमाण सूक्ष्म कायकनिका प्रमाण है। पृथ्वीकायिकके परिमाणकौं असंख्यातका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण वादर पृथ्वीकायकनिका परिमाण है अवशेष वहुभाग परिमाण सूक्ष्म पृथ्वी कायिकनिका परिमाण है ऐसैं ही सबका जानना। इहां भी भागहारका परिमाण पूर्वै कह्या था असंख्यात लोक प्रमाण सोई है। तातैं इहां भी अग्निकायादिकविषैं पूर्वोक्त प्रकार अधिक अधिकपना जानना ॥ २०७ ॥

सुहमेसु संखभागं संखा भागा अपुण्णगा इदरा ।
जस्सि अपुण्णद्धादो पुण्णद्धा संखगुणिदकमा ॥ २०८ ॥

सूक्ष्मेषु संख्यभागः संख्या भागा अपूर्णका इतरे ।
यस्मादपूर्णाद्धातः पूर्णाद्धा संख्यगुणितक्रमा ॥ २०८ ॥

जी० प्र०— पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकानां ये सूक्ष्माः प्रागुक्तास्तेषु अपर्याप्ताः तत्संख्यातैकभागप्रमाणा भवंति । पर्याप्तकास्तत्संख्यातबहुभागप्रमिता भवंति। किं कारणं ? इति चेदुच्यते यस्मात्कारणादंतर्मुहूर्तमात्र्याः अपर्याप्ताद्धायाः कालात्तत्पर्याप्ताद्धा संख्यातगुणितक्रमा भवति । मृदुकठिनभूमिजलवायुवनस्पतितेजस्कायिकजीवानामुत्कृष्टायुषो द्वादशद्वाविंशतिसप्तत्रिदशसहस्रवर्षत्रिदिनप्रमितत्वेन अंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालात् २ ७ पर्याप्तकालस्य संख्येयगुणत्वप्रसिद्धेः तस्मात्कारणात्तत्पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयेन २ ७ । ७ अनेन २ । ७ । ४ यद्येतावंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका जीवाः ≡ a । १० । ८ लभ्यते तदा एतावदपर्याप्तकालेन २ ७ कियंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिकजीवा लभ्यंते ? इति त्रै-
९ । ९

राशिकेन लब्धः संख्यातैकभागमात्रः तदपर्याप्तजीवराशिर्भवति ≡ a । १० । ८ । १ संख्यातस्य संदृष्टिः पंचांकः । तथा—
९ । ९ । ५

प्र २ ७ । ४ । फ ≡ a । १० । ८ । इ २ ७ । ४ । इति त्रैराशिकेन लब्धस्तत्पर्याप्तजीवराशिर्भवति ≡ a । १० । ८ । ४ एवमुक्तत्रैराशिकद्वय-
९ । ९ .... ९ । ९ । ५

क्रमेण लब्धः सूक्ष्माप्कायिकापर्याप्तराशिः ≡ a । १० । १० । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः ≡ a । १० । १० । ८ । ४ । सूक्ष्मतेजस्कायिकाप-
९ । ९ । ९ । ५ .... ९ । ९ । ९ । ५

र्याप्तराशिः ≡ a । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः । ≡ a । ८ । ४ सूक्ष्मवायुकायिकापर्याप्तराशिः ≡ a । १० । १० । १० । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः—
९ । ५ .... ९ । ५ .... ९ । ९ । ९ । ९ । ५

≡ a । १० । १० । १० । ८ । ४ सूक्ष्मसाधारणपर्याप्तजीवराशिः १३ ≡ । ८ । १ तत्पर्याप्तराशिः १३ ≡ । ८ । ४ ॥ २०८ ॥
९ । ९ । ९ । ९ । ५ .... ९ । ५ .... ९ । ५

म० प्र०—पृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणवनस्पतिकायिकानां ये सूक्ष्मकायाः प्रागुक्तसंख्यास्तेषु अपर्याप्ताः तत्संख्यातैकभागमात्रा भवंति । पर्याप्ताः तत्संख्यातबहुभागमात्रा भवंति। अत्र कारणमुच्यते-यस्मात्कारणात् अंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्ताद्धातः संख्यातगुणितक्रमा पर्याप्ताद्धा भवति तद्यथा शुद्धपृथ्वीकायिकस्य उत्कृष्टायुर्वर्षाणि द्वादशसहस्राणि, खरपृथ्वीकायिकस्य द्वाविंशतिसहस्राणि, अप्कायिकस्य सप्तसहस्राणि, तेजस्कायिकस्य दिनानि त्रीणि, वायुकायिकस्य वर्षाणि त्रीणि सहस्राणि, वनस्पतिकायिकस्य दशसहस्राणीति परमागमोक्तपंचस्थावरोत्कृष्टस्थितीनां पर्याप्तकालानां अंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालात्संख्येयगु-

---

१ पर्याप्तकालोऽयं २ ७ । ७ अपर्याप्तकालोऽयं २ ७ द्वावपि मिलित्वा २ ७ । ७ एवं जातं। अस्य संदृष्टिः । २ ७ । ४ । रूपाधिकसंख्यातस्य रूपाधिकचतुरंकत्वं कृत्वमित्यर्थः

पत्वं सुप्रसिद्धं तस्मात्कारणात्कालसंचयमाश्रित्य प्रवृत्तं त्रैराशिकमिदं- पर्याप्तापर्याप्तकालद्वये एतावति प्र २ ७ ४ । यद्येतावंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका लभ्यंते फ ≡ ə १० । ८ । तदा एतावत्पर्याप्तकाले । इ २ ७ कियंतो लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धं सूक्ष्मपृथ्वीकायिकराशिसंख्यातैकभागमात्रं तदपर्याप्तजीव- ९।९

प्रमाणं भवति ≡ ə १० । ८ । १ तथा एतावति पर्याप्तापर्याप्तकालद्वये प्र २ ७ । ४ । यद्येतावंतः सूक्ष्मपृथ्वीकायिका लभ्यते फ ≡ ə १० । ८ तदा ९।९।५ ९।९

एतावति पर्याप्तकाले इ २ ७ । ४ कियंतो लभ्यते इति त्रैराशिकविधानेन लब्धं सूक्ष्मपृथ्वीकायिकराशिसंख्यातबहुभागमात्रं ≡ ə १० । ८ । ४ तत्प- ९। ९।५

र्याप्तजीवप्रमाणं भवंति एवं सूक्ष्माप्कायिकादीनामपि पर्याप्तापर्याप्तपरिमाणमानेतव्यं । कालसंचयाश्रितसंख्यानयनमनेनैव विधानेनोत्तरत्रापि ज्ञातव्यं ॥२०८॥

सं० च०—पृथ्वी अप तेज वायु साधारण वनस्पती इनिका पूर्वं जो सूक्ष्म जीवनिका परिमाण कह्या तीं- हिविषैं अपने अपने सूक्ष्म जीवनिका परिमाणकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां एक भागप्रमाण तौ अपर्याप्त है बहुरि अवशेष बहुभाग प्रमाण पर्याप्त हैं। सूक्ष्म जीवनिविषैं अपर्याप्त राशितैं पर्याप्तराशिका प्रमाण बहुत जा- नना। सो कारण कहैं हैं जातैं अपर्याप्त अवस्थाका काल अंतर्मुहूर्त मात्र है। इस कालतैं पर्याप्त अवस्थाका काल संख्यातगुणा है। सो दिखाइए है-कोमल पृथ्वीकायिकका उत्कृष्ट आयु बारह हजार वर्ष प्रमाण है। बहुरि कठिन पृथ्वी कायिकका वाईस हजार वर्ष प्रमाण है। जलकायिकका सात हजार वर्ष प्रमाण है। तेजकायिकका तीनदिन प्रमाण है। वातकायिकका तीन हजार वर्ष प्रमाण है। वनस्पती कायिकका दश हजार वर्ष प्रमाण है। इहां प्रसंग पाइ विकलत्रयविषैं बेंद्रीका बारा वर्ष तेंद्रीका गुणचास दिन चौंद्रीका छह महिना प्रमाण है ऐसैं उ- त्कृष्ट आयु बलका परिमाण कह्या तींहिविषैं अंतर्मुहूर्तकालविषैं तौ अपर्याप्त अवस्था है अवशेष कालविषैं पर्याप्त अवस्था है तातैं अपर्याप्त अवस्थाका कालतैं पर्याप्त अवस्थाका काल संख्यातगुणा जानना। तहां पृथ्वी कायि- कका पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ कालनिविषैं जो सर्व सूक्ष्म जीव पाइए तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण अपर्याप्तकालविषैं केते पाइए ऐसैं प्रमाणराशि पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ कालनिके समयनिका समुदाय, फलराशि सूक्ष्म जीवनिका प्रमाण,

इच्छाराशि अपर्याप्तकालका समयनिका प्रमाण, तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीए लब्धिराशिका परिमाण आवै तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त जीव जानने। बहुरि प्रमाण राशि फलराशि पूर्वोक्त इच्छाराशि पर्याप्त काल कीए लब्धिराशिका जो परिमाण आवै तितने सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनिका परिमाण जानना। ताहीतैं संख्यातका भाग दीएं एक भाग प्रमाण अपर्याप्त कहे अवशेष बहु भागप्रमाण पर्याप्त कहे हैं ऐसैंही सूक्ष्म अप्कायिक तेज कायिक वातकायिक साधारण वनस्पतीकायिकविषैं अपना अपना सर्वकालकौं प्रमाणराशिकरि अपने अपने प्रमाणकौं फलराशिकरि अपर्याप्त वा पर्याप्त कालकौं इच्छाराशिकरि लब्धराशि प्रमाण पर्याप्त वा अपर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। इहां पर्याप्त वा अपर्याप्त कालकी अपेक्षा जीवनिका परिमाण सिद्ध हूवा है॥ २०८ ॥

पल्लासंखेज्जवहिदपदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे।
जलभूणिपवादरया पुण्णा आवलिअसंखभजिदकमा॥२०९॥

पल्यासंख्यावहितप्रतरांगुलभाजिते जगत्प्रतरे।
जलभूनिपवादरकाः पूर्णा आवल्यसंख्यभाजितक्रमाः॥ २०९ ॥

जी० प्र०—पल्यासंख्येयभागहतप्रतरांगुलेन जगत्प्रतरे भाजिते यल्लब्धं तद्बादराप्कायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति $\frac{\overline{\overline{४}}}{प\ \frac{}{a}}$ अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तद्बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवराशिप्रमाणं भवति $\frac{\overline{\overline{४}}}{प\ \frac{}{a}}$ । ९ । पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं

तत्प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशिप्रमाणं भवति $\frac{\overline{\overline{४}}}{प\ a}$ । ९ ९ पुनः अस्मिन् राशौ आवल्यसंख्येयभागेन भक्ते यल्लब्धं तदप्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्त-

राशिप्रमाणं भवति । $\frac{\overline{\overline{४}}}{प\ a}$ । ९ । ९ । ९ निगोदशब्देन अत्र निगोदाश्रिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका एव गृह्यंते न साधारणाः तेषामग्रे व्यक्तं क-

थितत्वात् । अत्र आवल्यसंख्येयभागस्य संदृष्टिर्नवांकः ९ ॥ २०९ ॥

म० प्र०-पल्यासंख्यातभागापहतेन प्रतरांगुलेन जगत्प्रतरे भाजिते सति यल्लब्धं तावंतः बादराप्कायिकपर्याप्तजीवा भवंति । तद्राशौ पुनः आवल्यसंख्यातभागेन भक्ते सति यल्लब्ध तत्प्रमाणा' बादरपृथ्वीकायिकपर्याप्तजीवा भवति। तद्राशौ पुनरप्यावल्यसख्येयभागेन भक्ते सति यल्लब्धं तत्प्रमिताः प्रतिष्ठितप्रत्येकपर्याप्तजीवा भवति । तद्राशौ पुनरप्यावल्यसंख्येभागेन भक्ते सति यल्लब्ध तावतः अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवा भवति । निगोदशब्देनात्र निगोदाश्रिताः प्रतिष्ठितप्रत्येका गृह्यंते न तु साधारणा. तेषामुत्तरत्र सुव्यक्ताभिधानात् । अत्रावल्यसंख्यातभागस्य सदृष्टिर्नवांकः ॥ २०९ ॥

सं० च०—पल्यके असंख्यातवां भागका भाग प्रतरांगुलकौं दीयें जो परिमाण होवे ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर अप्कायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । बहुरि इस राशिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना । बहुरि इस राशिकौं भी आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। बहुरि इस राशिकौं भी आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। इहां 'णि' इस आदि अक्षरतैं निगोद शब्दकरि प्रतिष्ठित प्रत्येक जानने जातैं साधारणका कथन आगैं प्रगट कहै हैं ॥ २०९ ॥

विंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं ।
पज्जत्ताण पमाणं तेहिं विहीणा अपज्जत्ता ॥ २१० ॥

वृंदावलिलोकानामसंख्यं संख्यं च तेजोवायूनां ।
पर्याप्तानां प्रमाणं तैर्विहीना अपर्याप्ताः ॥ २१० ॥

जी० प्र०- वृंदावलेरसंख्यातैकभागमात्राः बादरतेजस्कायिकपर्याप्तजीवा भवंति ≡ तथा लोकस्य संख्यातभक्तैकभागप्रमिता बादरवायुकायिकपर्याप्तजीवा भवंति ७ सूक्ष्माणां तु प्राक्कथितत्वात् अत्र बादरा एव गृह्यंते । तैः सूत्रद्वयोक्तबादरजलभूनिपतेजोवायुपर्याप्तजीवराशिभिर्विहीनाः स्वस्वबादरकायिकराशय एव स्वस्वापर्याप्तजीवराशयो भवंति ॥ २१० ॥

मं० प्र०- वृंदावलिलोकयो', यथासंख्यमसंख्यातभागसंख्यातभागमात्रे बादरतेजोवायुकायिकयोः पर्याप्तराशयोः प्रमाणे भवतः—आवलिघनस्यासंख्यातैकभागमात्र बादरतेजस्कायिकपर्याप्तप्रमाणं । लोकस्य संख्यातैकभागमात्रं बादरवायुकायिकपर्याप्तप्रमाण भवतीत्यर्थः । बादरशब्दः पूर्वसूत्रादत्राप्यनुवृत्त इति व्याख्यातः । तैः सूत्रद्वयोक्तैः बादरपृथिव्यप्तेजोवायुप्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकवनस्पतिकायिकपर्याप्तजीवप्रमाणैर्विहीनाः स्वस्वबादरपृथ्वीकायिकादिराशयः स्वस्वापर्याप्तजीवराशयो भवति ॥ २१० ॥

सं० च०—आवलीके जेते समय हैं तिनिका घन कीएं जो प्रमाण होइ ताकौं वृंदावली कहिए ताकौं असंख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर अग्निकायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। बहुरि लोककौं संख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना बादर वातकायिक पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। सूक्ष्म जीवनिका प्रमाण पूर्वैं कह्या है तातैं इहां बादर ही ग्रहण करने। बहुरि पूर्वैं जो पृथ्वी अप तेज वायु प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतीरूप बादर जीवनिका परिमाण कह्या था तींहिविषैं अपना अपना पर्याप्त जीवनिका परिमाण घटाए अवशेष रहै तितने तितने बादर अपर्याप्त जीव जानने ॥ २१० ॥

साहारणवादरेसु असंखं भागं असंखगा भागा।
पुण्णाणमपुण्णाणं परिमाणं होदि अणुकमसो ॥ २११ ॥

साधारणवादरेषु असंख्यं भागं संख्यका भागाः।
पूर्णानामपूर्णानां परिमाणं भवत्यनुक्रमशः ॥ २११ ॥

जी० प्र०—साधारणवादरेषु ये पर्याप्तजीवास्तेषां प्रमाणं तद्राशेरसंख्यातैकभागमात्रं भवति । १३ ≡ १ शेषाः असंख्यातबहुभागाः अप-
९ । ७
र्याप्ता भवंति १३ ≡ । ६ अनेन अनुक्रमेण तत्सर्ववादरपर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमित्याचार्यसंप्रदायानुक्रममाश्रित्य तदल्पसंख्यत्वमुक्तं । काल-
९ । ७
संचयमाश्रित्य कथनं नास्तीति आचार्यस्य हृदयं ॥ २११ ॥

मं० प्र०--साधारणवादरेषु ये पर्याप्तास्तेषा परिमाण तद्राश्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति । अपर्याप्तानां परिमाणं तद्बहुभागमात्रं भवतीत्यनुक्रमशः तेषां सर्ववादरपर्याप्तभवाना दुर्लभत्वमाचार्यसप्रदायानुक्रममाश्रित्य तदल्पसंख्यत्वमुक्त न कालसचयमाश्रित्येत्याचार्यस्य तात्पर्यं ॥ २११ ॥

स० चं०—वादर साधारण वनस्पतीका जो परिमाण कह्या था ताकौं असंख्यातका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण तौ वादर निगोद पर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना। वहुरि अवशेष असंख्यात वहुभाग प्रमाण वादर निगोद अपर्याप्त जीवनिका प्रमाण जानना ऐसैं अनुक्रमतैं इहां कालकी अपेक्षा अल्प वहुत्व नाहीं कह्या है। वादरनिविषैं पर्याप्तपना दुर्लभ है तातैं पर्याप्त थोरे अपर्याप्त घने हैं ऐसा आचार्यनिका अनुक्रम जानि कथन कीया है ऐसा आचार्यनिका अभिप्राय जानना ॥ २११ ॥

आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं।
कमसो तसतप्पुण्णा पुण्णूणतसा अपुण्णा हु ॥ २१२ ॥

आवल्यसंख्यसंख्येनावहितप्रतरांगुलेन हितप्रतरं।
क्रमशस्त्रसतत्पूर्णाः पूर्णोनत्रसा अपूर्णा हि ॥ २१२ ॥

जी० प्र०—आवल्यसंख्यातभागभक्तप्रतरांगुलेन भाजितजगत्प्रतरमात्रं सामान्यत्रसराशिप्रमाणं भवति। $\frac{\overset{=}{4}}{2}$ तथा संख्यातभक्तप्रतरांगुलेन भक्तजगत्प्रतरमात्रं तत्पर्याप्तराशिप्रमाणं भवति $\frac{\overset{=}{4}}{5}$। पूर्णत्रसराशिरहितः सामान्यत्रसराशिरेव अपूर्णत्रसराशिप्रमाणं भवति[1] $\overset{=}{4}$ a—५ अत्र-पर्याप्तभवानां दुर्लभत्वमेव पर्याप्तजीवसंख्याल्पत्वकारणं ॥ २१२ ॥ अथ वादरतेजस्कायिकादिषड्राशीनां संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वयमाह—

मं० प्र०—आवल्यसंख्यातभागेन संख्यातेन च अवहृतप्रतरांगुलेन हतजगत्प्रतरमात्राः क्रमशः यथासंख्यं त्रसास्तत्पर्याप्ताश्च भवंति। आवल्यसंख्यातभागापहृतप्रतरांगुलविभक्तजगत्प्रतरमात्रं त्रसजीवप्रमाणं संख्यातरूपावहृतप्रतरांगुलविभक्तजगत्प्रतरमात्र त्रसपर्याप्तजीवप्रमाणं भवतीत्यर्थः। त्रसपर्याप्तराशिना ऊनत्रसराशिस्त्रसापर्याप्तराशिर्भवति, खलु स्फुटं, अत्रापि पर्याप्तभवाना दुर्लभत्वमेव पर्याप्तसंख्याल्पत्वकारणं ॥ २१२ ॥ अथ वादरतेजस्कायिकादिराशीना षण्णां संख्याविशेषनिर्णयार्थं गाथाद्वय प्ररूपयंति—

सं० च०—आवलीका असंख्यातवां भागका भाग प्रतरांगुलकौं दीएं जो परिमाण आवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना सर्व त्रस राशिका प्रमाण जानना। बहुरि संख्यातका भाग प्रतरांगुलकौं दीएं जो परिमाण आवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना पर्याप्त त्रस जीव-

1 विरलतवात् $\frac{\overset{=}{4}}{2}$ a $\frac{=}{4}$ एवं भवति।

निका प्रमाण जानना। बहुरि सामान्य त्रस जीवनिका परिमाणमैंस्यों पर्याप्त त्रसनिका परिमाण घटाएं जो परिमाण अवशेष रहै तितना अपर्याप्त त्रस जीवनिका प्रमाण जानना। इहां भी पर्याप्तपनां दुर्लभ है तातैं पर्याप्त त्रस थोरे हैं। अपर्याप्त त्रस बहुत हैं ऐसा जानना॥ २१२॥ आगैं बादर अग्निकायिक आदि छहप्रकार जीवनिका परिमाणका विशेष निर्णय करनेके निमित्त दोय गाथा कहै हैं---

आवलिअसंखभागेणवहिदपल्लूणसायरद्धछिदा।
वादरतेपणिभूजलवादाणं चरिमसायरं पुण्णं॥ २१३॥

आवल्यसंख्यभागेनावहितपल्योनसागरार्धच्छेदाः।
वादरतेपनिभूजलवातानां चरमः सागरः पूर्णः॥ २१३॥

जी० प्र०---अर्धच्छेदाः खलु वादरतेजस्कायिकजीवराशेः आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपमप्रमिता भवंति सा—प/९। अप्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनःएकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यन्यूनसागरोपममात्रा भवंति सा-प/९।९। प्रतिष्ठितप्रत्येकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागापहृतपल्यरहितसागरोपमसंख्या भवंति। सा—प/९।९।९। वादरभूकायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागभक्तपल्यहीनसागरोपमप्रमाणा भवंति। सा — प/९।९।९।९ वादरापकायिकजीवराशेः पुनरेकवारावल्यसंख्येयभागाभाजितपल्यविहीनसागरोपममात्रा भवंति। सा — प/९।९।९।९।९ वादरवायुकायिकजीवराशेः संपूर्णसागरोपमप्रमिता भवंति। सा। चरिमसायरं पुण्णमिति वचनात्॥ २१३॥

मं० प्र०-- वादरतेजस्कायिकाप्रतिष्ठितप्रतिष्ठितभूजलवातकायिकजीवराशीनामर्धच्छेदप्रमाणं प्रथममुच्यते--आवल्यसंख्यातभागावहतपल्यस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः वादरतेजस्कायिकराशेरर्धच्छेदा भवंति। पुनस्तदेकभागस्य पुनरप्यावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागहीनसागरोपमात्राः अप्रतिष्ठितप्रत्येकराशेरर्धच्छेदा', पुनस्तदेकभागस्य पुनरप्यावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः प्रतिष्ठितप्रत्येकराशेरर्धच्छेदाः, पुनस्तदेक-

भागस्यापरावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः बादरभूमिकायिकराशेरर्धच्छेदाः पुनस्तदेकभागस्यापरावल्यसंख्यातभागभक्तस्य तदेकभागेन हीनसागरोपममात्राः बादराप्कायिकराशेरर्धच्छेदाः, पुनः संपूर्णसागरोपममात्राः बादरवातकायिकराशेरर्धच्छेदाः, चरमसागरोपममित्यनेन वातकायिकराश्यर्धच्छेदा उक्ताः अंतः कारणात् ॥ २१३ ॥

सं० च०—बादर अग्निकायिक अप्रतिष्ठित प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती पृथ्वी अप् वायु इन छहौं राशिके अर्धच्छेदोंका परिमाण प्रथम कहिए है। अर्धच्छेदका स्वरूप पूर्वैं धारानिका कथनविषैं कह्या ही था सो इहां एकबार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीएं जो एक भागका परिमाण आवै तितनां सागरमेंसौं घटाइए तब बादर अग्निकायिक जीवनिका जो परिमाण ताके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि दोयवार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीए जो परिमाण आवै तितनां सागरमेंसौं घटाइए तब बादर अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि तीन वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीए जो परिमाण आवै तितनां सागरमेंसौं घटाइए तब बादर प्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि च्यारिवार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीए जो परिमाण आवै तितना सागरमेंसौं घटाएं पृथ्वीकायिक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि पांच वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग पल्यकौं दीएं जो परिमाण आवै तितनां सागरमेंसौं घटाए अप्कायिक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण होइ। बहुरि वातकायिक राशिके अर्धच्छेदनिका परिमाण संपूर्ण सागरप्रमाण जानना। जातैं सूत्रविषैं ऐसा कह्या है 'अंतविषैं संपूर्ण सागर है' ॥ २१३ ॥

तेवि विसेसेणहिया पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण।
तम्हा ते रासीओ असंखलोगेण गुणिदकमा ॥ २१४ ॥

तेऽपि विशेषेणाधिकाः पल्यासंख्यातभागमात्रेण ।
तस्माच्चे राशयोऽसंख्यलोकेन गुणितक्रमाः ॥ २१४ ॥

जी० प्र०—यतः कारणात् ते उक्तार्धच्छेदराशयः बादरतेजस्कायिकोक्तार्धच्छेदराशितः अप्रतिष्ठितप्रत्येकादीनामुक्तार्धच्छेदराशयः पंचापि आवल्यसंख्येयभागभक्तपल्यासंख्येयभागमात्रेण स्वस्वैकैकविशेषेण क्रमशः एवंविधेन—

अ प ८ ९ । ९	णि प ८ ९ । ९ । ९	भू प ८ ९ । ९ । ९ । ९	ज प ८ ९ । ९ । ९ । ९ । ९	वा प १ ९ । ९ । ९ । ९ । ९

अधिकाः संति ततः कारणात् तत्तदधिकप्रमितद्विकान्योन्याभ्याससंभूतासंख्यातलोकेन ते जीवराशयो गुणितक्रमा भवंति । तदसंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमः अंकसंदृष्ट्यर्थसंदृष्टिभ्यां दर्श्यते-तत्रांकसंदृष्ट्या यथा-षोडशद्विकान्योन्याभ्यासे यदि पणट्ठिराशिर्लभ्यते तदा चतुःषष्टिद्विकान्योन्याभ्यासे को राशिर्लभ्यते इति प्रमाणफलेच्छाराशीन् कृत्वा—

प्र । वि १६ । फ ६५ = । इ वि ६४ (दे २ … दे २) | लब्धानयने करणसूत्रमाह—

मं० प्र०—तेप्यर्धच्छेदाः पूर्वपूर्वतः उत्तरोत्तरे पल्यासंख्येयभागमात्रेण द्वितीयादिषु पल्यासंख्यातैकभागस्य बहुभागमात्रेण वातकायिकेषु चरमपल्यासंख्यातैकभागमात्रेण विशेषेणाधिका भवंति तस्मात्कारणात् अधिकपल्यासंख्यातभागमात्रार्धच्छेदपरिमिताद्विकान्योन्यगुणनसंभूतेन असंख्यातलोकेन गुणितक्रमास्ते बादरतेजस्कायिकादिराशयो भवंति । अत्र तेजस्कायिकार्धच्छेदेभ्यः अप्रतिष्ठितप्रत्येकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९ । ९ एतेभ्यः प्रतिष्ठितप्रत्येकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९९९ एतेभ्यः बादरपृथ्वीकायिकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९९९९ एतेभ्यः बादराप्कायिकानामधिकार्धच्छेदाः प ८ / ९९९९९ एतेभ्यः बादरवातकायिकानामधिकार्धच्छेदा. प १ / ९९९९९ एतेषामधिकार्धच्छेदाना रूपं रूपं प्रति द्विकान्योन्यगुणने असंख्यातलोकोत्पत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—अंकसंदृष्ट्या एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने प्र—दे २ / वि १६ यद्ययं राशिरुत्पद्यते फ इष्ट ६५ = तदा एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने को राशिरुत्पद्यते इ दे २ / वि ६४ लब्धराशिः १८ = अत्र त्रैराशिकविशेषकारणसूत्रमिदं ॥ २१४ ॥

सं० च०—जा कारणतैं कहे जे अर्धच्छेद राशि ते वादर तेज कायिक राशिके अर्धच्छेद राशितैं लगाइ अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनिके अर्धच्छेद पांचौ आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अपना अपना एक एक विशेष करि क्रमतैं अधिक हैं। तहां अग्निकायिक राशिनिके अर्धच्छेदनितैं अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर दोय वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि अप्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनितैं प्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर तीन वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि प्रतिष्ठित प्रत्येक राशिके अर्धच्छेदनितैं वादर पृथ्वी कायिक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर च्यारि वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि वादर पृथ्वीकायिक राशिके अर्धच्छेदनितैं बादर जल कायिक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणिए अर पांच वार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण होइ तितने अधिक हैं। बहुरि वादर जलकायिकराशिके अर्धच्छेदनितैं वादर वातकायिक राशिके अर्धच्छेद पल्यकौं एक करि गुणिए अर पांचवार आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये जो प्रमाण आवै तितने अधिक हैं ऐसें अधिक अधिक अर्धच्छेद जानने। अब इस कथनकौं अंकसंदृष्टिकरि दिखाइए है-पल्यका प्रमाण पैसाठि हजार पाचसै छत्तीस ६५५३६ आवलीका असंख्यातवां भागका प्रमाण आठ, सागरका प्रमाण छह लाख पचपन हजार तीनसै साठि ६५५३६० तहां एक वार दोयवार तीनवार च्यारिवार पांचवार आठका भाग पणट्ठीकौं दीएं इक्यासीसै वाणवै, एक हजार चौबीस, एकसौ अठाईस, सोलह, दोय ८१९२।१०२४।१२८।१६।२। इतने पाइए सो ए क्रमतैं आठ आठ गुणे घाटि हैं बहुरि इतने इतने छह लाख पचावन हजार तीनसै साठिविषैं घटाएं अंतविषैं संपूर्ण हैं तातैं किछू भी न घटाएं अग्निकायिकादि राशिके अर्धच्छेदनिका प्रमाण होइ ६४७१६८। ६५४३३६। ६५५२-

३२ । ६५५३४४ । ६५५३५८ । ६५५३६० । इहां अधिक प्रमाण ल्यावनेकौं पणट्ठीकौं सातकरि गुणैं दोय तीन च्यारि पांचवार आठका भाग दीएं अंतविषैं एककरि गुणि पांचवार आठका भाग दीएं इकहत्तरिसै अडसठ, आठसै छिनवै, एकसौ बारह, चौदह, दोय ७१६८ । ८९६ । ११२ । १४ । २ । अनुक्रमतैं अधिकका प्रमाण आवै है । ऐसैं ही पूर्वोक्त कथनका भावार्थ जानना । बहुरि इहां जितना जितना अर्धच्छेदनिका अधिक प्रमाण कह्या तितना तितना दूवा माडि परस्पर गुणैं जो जो यथासंभव असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होइ तींहि तींहिकरि गुण्या हूवा अनुक्रमतैं अग्निकायिकादितैं अप्रतिष्ठित प्रत्येकादि राशि जानने । जातैं ऐसैं सूत्र पूर्वै गणित कथनविषैं कह्या है—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि ।
तेसिं, अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स ॥

इस सूत्रके अभिप्रायतैं जेते जेते पूर्वराशिके अर्धच्छेदनितैं उत्तर राशिके अर्धच्छेद अधिक कहे तितने तितने दूवे मांडि परस्पर गुणैं जो जो प्रमाण होइ तितने तितने प्रमाणकरि पूर्वराशिकौं गुणैं उत्तर राशिका प्रमाण होइ सो इहां सामान्यपनैं गुणकारका प्रमाण सर्वत्र असंख्यात लोकमात्र है । इहां पूर्वोक्तप्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणैं असंख्यात लोक कैसे होइ ? सो इस कथनकौं प्रकट अंक संदृष्टिकरि अर अर्थसंदृष्टिकरि दिखाइए है जैसे सोलह दूवानिकौं परस्पर गुणैं पणट्ठी होइ तौ चौसठि दूवानिकौं परस्पर गुणैं कितने होइ ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां प्रमाण राशिविषैं देय राशि दोय, विरलनराशि सोलह फलराशिविषैं इष्टराशी पणट्ठी ६५५३६ इच्छाराशिविषै देयराशि दोय विरलनराशि चौसठि ॥ २१४ ॥ अब इहां लब्धराशिका प्रमाण ल्यावनेकौं करण सूत्र कहै हैं—

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे ।

लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥२१५॥

देयच्छेदेनावहितेष्टच्छेदः प्रकृतविरलनं भाजिते ।
लब्धमितेष्टराश्यन्योन्यहत्या भवति प्रकृतधनं ॥ २१५ ॥

जी० प्र०—देयराश्यर्धच्छेदेन १ फलभूतेष्ट६५= राश्यर्धच्छेदान् १६ भक्त्वा १६/१ तल्लब्धेन साध्यभूतप्रकृतराशेः १८= विरलनराशिं ६४ भक्त्वा ६४/१६ तल्लब्ध ४ प्रमितेष्टराशि ६५=/१ । ६५=/१ । ६५=/१ । ६५=/१ अन्योन्याभ्यासेन साध्यभूतप्रकृतधनमे- कट्ठराशिर्भवति १८= एवमर्थसंदृष्टयापि—एतावतां द्विकानामभ्यासे यदि लोको जायते तदा एतावतां द्विकानामभ्यासे को राशिर्जायते इति त्रैराशिकं रचयित्वा प्र दे २ / वि छे छे छे ९ । फ इष्टराशिः । ≡a प्रकृतस्य दे २ / वि सा--प / ९ प्रकृतधनमानीयते— a

देयस्य रूपद्वयस्य अर्धच्छेदेनैकेन फलभूतेष्टराशेर्लोकस्यार्धच्छेदान् भक्त्वा तेन लब्धेनेच्छाराशिभूतप्रकृतधनार्धच्छेदे विरलनराशौ भक्ते सति सा — प / छे छे छे ९ । ९ / a यल्लब्धं लोकार्धच्छेदभक्त किंचिन्न्यूनसंख्यातपल्यप्रमितं प ९— / छे छे छे ९ / a एतावतां लोकानामभ्यासे कृते यो लब्धराशिः सो-ऽसंख्यातलोकमात्रो भवति— ≡a । अस्य च लोकच्छेदभक्तन्यूनप्रमाण प / a छे छे छे ९ / a मात्रलोकानामन्योन्याभ्यासेन समुत्पन्नासंख्यात- लोकं स्तोकत्वात् सदृष्टया नवांकं कृत्वा न्यूनराशिमात्रद्विकैर्जनितत्वात् वारं कुर्यात् । सोयमसंख्यातलोको वादरतेजस्कायिकराशिर्भवति ≡a/९ । अस्य च भागहारः अप्रतनाप्रतिष्ठितप्रत्येकादिजीवराशीनां सर्वभागहारेभ्योऽसंख्यातलोकगुणितः तत्तन्न्यूनराशीनामावल्य-

संख्येयगुणहीनक्रमेण सद्भावात् । तत एव प्रागुक्तत्रैराशिकक्रमेणागता अप्रतिष्ठितादिराशयोऽसंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरे असंख्यातलोकगुणितक्रमा भवंति । अत्रासंख्यातलोकस्यावल्यसंख्येभागस्य च संदृष्टिभूतो नवांको भाज्याहारबहुत्वं ज्ञात्वा विवेचनीयः ॥ २१५ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु कायप्ररूपणानामाष्टमोऽधिकारः ॥ ८ ॥

मं० प्र०—देयराश्यर्धच्छेदैः १ फल ६५ = भूतेष्टराश्यर्धच्छेदान् १६ भक्त्वा तल्लब्धेन १६ साध्यभूत १८ = प्रकृतराशेर्विरलनराशिं ६४ भक्त्वा तल्लब्धमितेष्ट ६५ = राश्यन्योन्यगुणकारे उत्पन्नः १८ = प्रकृतराशिर्भवति एवमर्थसंदृष्टया एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने प्र

दे २
वि छे छे छे ९
a

यद्ययं राशिरुत्पद्यते फ तदा एतावद्रूपमात्रद्विकान्योन्यगुणने को राशिरुत्पद्यते इ त्रैराशिकं कृत्वा दिण्णच्छेदेण इत्यादि करणसूत्रो-
इष्ट ≡
दे २
वि. स. प १
९

क्तविधानेन लब्धः लोकार्धच्छेदविभक्तकिंचिदूनसंख्यातपल्यस्य प १- । यावंति रूपाणि तावतो वारान् लोकानां परस्परगुणकारे सति उत्पन्नः असंख्या-
छे छे छे ९
a

तलोकमात्रः बादरतेजस्कायिकजीवराशिर्भवति ≡a लोकच्छेदभक्तमूनप्रमाणं विरलयित्वा तद्रूपमात्रान् वारान् लोके अन्योन्यसंगुणिते यः असंख्यातलो-
९

क उत्पन्नः तत्प्रमाणो भागहार इति ज्ञातव्यं । स च सर्वभागहारेभ्योऽधिकः । एवमप्रतिष्ठितप्रत्येकादिराशीनामर्धच्छेदान् ऊनप्रमाणानि च ज्ञात्वा उक्तत्रैराशिकविधानेन असंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरमसंख्यातलोकगुणिताः तत्तद्राशयस्तत्तद्भागहाराश्च असंख्यातलोकमात्रा अपि उत्तरोत्तरमसंख्यातलोकगुणहीना आनेतव्याः । अत्रासंख्यातलोकस्य आवल्यसंख्यातभागस्यापि सदृष्टिर्नवाकः तथापि तयोर्भाज्यराश्यल्पबहुत्वे वीक्ष्य विवेचनीयः ॥ २१५ ॥

इतिश्रीमदभयचन्द्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ कायमार्गणाप्ररूपणानामाष्टमोऽधिकारः ॥८॥

स. चं.—देय राशिके अर्धच्छेदका प्रमाण करि जे फलराशिके अर्धच्छेद प्रमाण राशिविषैं विरलन राशि रूप कहे तिनिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तीहि करि इच्छाराशिरूप प्रकृतराशिविषैं जो विरलन राशिका प्रमाण कह्या ताकौं भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना जायगा फल राशिरूप जो इष्ट राशि ताकौं मांडि परस्पर गुणें जो प्रमाण आवैं तितनां लब्धराशिरूप प्रकृतिधनका प्रमाण हो है सो इहां देय राशि दोय ताका अर्धच्छेद एक तीहिंका जे फलराशि पणट्ठीके अर्धच्छेद प्रमाण राशिविषै विरलन राशिरूप कहे सोलह तिनिकौं भाग दीए सोलह ही पाए इनिका साध्यभूत राशिका इच्छाराशिविषैं कह्या जो विरलन राशि चौंसठि ताकौं भाग दीए च्यारि पाए सो च्यारि जायगा फलराशिरूप पणट्ठी मांडि ६५५३६। ६५५३६। ६५५३६। ६५५३६। परस्पर गुणें लब्धराशि एकट्ठी प्रमाण हो है ऐसैं ही यथार्थ कथन जानना। जो पूर्वे गणित कथनविषैं लोकके अर्धच्छेदनिका जेता परिमाण कह्या है तितने दूवे मांडि परस्पर गुणें लोक होइ तौ इहां अग्निकायिक राशिके अर्धच्छेद प्रमाण दूवे मांडि परस्पर गुणे कितने लोक होंहि? ऐसैं त्रैराशिककरि इहां प्रमाण राशिविषैं देय राशि दोय, विरलन राशि लोकका अर्धच्छेदराशि, अर फलराशि लोक अर इच्छाराशि विषै देय राशि दोय, विरलन राशि अग्निकायिक राशिके अर्धच्छेद प्रमाण जानना। तहां लब्धराशि ल्यावनेकौं देय राशि दोय ताका अर्धच्छेद एक ताका भाग फलराशि जो लोक ताका अर्धच्छेदरूप प्रमाण राशिविषैं विरलन राशि है ताकौं भाग दीएं लोकका अर्धच्छेद मात्र पाए। इनका साध्यभूत अग्निकायिक राशिका अर्धच्छेदरूप जो इच्छाराशि ताविषै विरलनराशि अग्निकायिक राशिके अर्धच्छेद तिनिकौं भाग दीएं जो प्रमाण आया सो किछू घाटि संख्यात पल्यकौं लोकका अर्धच्छेदराशिका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना यहु प्रमाण आया सो इतने लोक मांडि परस्पर गुणें जो असंख्यात लोकमात्र परिमाण भया सोई लब्धिराशिरूप वादर अग्निकायिक राशिका प्रमाण इहां जानना। इहां किंचिदून संख्यात पल्य प्रमाण लोकनिकौं परस्पर गुणें जो महत असंख्यात लोक मात्र परिमाण आया सो तौ भाज्य राशि जानना। अर लोकका अर्धच्छेद प्रमाण

लोकनिकौं परस्पर गुणें जो छोटा असंख्यात लोकमात्र परिमाण आया सो भागहार जानना। भागहारका भाग भाज्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितना बादर अग्निकायिक जीवनिका प्रमाण जानना। बहुरि इहां अग्निकायिक राशिविषैं जो भागहार कह्या सो अगले अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशिनिविषैं जो भागहारका प्रमाण पूर्वोक्त प्रकार कीएं आवै तिनि सबनितैं असंख्यात लोक गुणा जानना। जातैं सागरमेंस्यों जो जो राशि घटाया सो सो क्रमतैं आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा घाटि है तातैं प्रमाण राशि फलराशि पूर्वोक्तवत् स्थापि अर इच्छाराशिविषैं विरलन राशि अपने अपने अर्धच्छेद प्रमाण स्थापि पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशिककरि अप्रतिष्ठित प्रत्येक आदि राशि भी सामान्यपनैं असंख्यात लोकमात्र हैं तथापि उत्तर उत्तर राशि असंख्यात लोक गुणा जानना। भागहार जहां घटता होइ तहां राशि वधता होइ सो इहां भागहार असंख्यात लोक गुणा घटता क्रमतैं भया तातैं राशि असंख्यात लोक गुणा भया इहां असंख्यात लोक वा आवलीका असंख्यातवां भागकी संदृष्टि स्थापि अर्थ संदृष्टिका स्थापन है। सो आगैं संदृष्टि अधिकारविषै लिखेंगे ॥ २१५ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचितगोम्मटसारद्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रन्थकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा इस भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं कायप्ररूपणा नामा आठवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ ८ ॥

जी० प्र०—

अथ योगमार्गणाप्ररूणाधिकार ॥ ९ ॥

कल्याणैः पंचभिर्भांतं नवकेवललब्धिभिः।
शतेंद्रपूज्यपादाब्जं पुष्पदंतं नमाम्यहं ॥ ९ ॥

अथ शास्त्रकारो योगमार्गणां प्रक्रममाणस्तदादौ योगस्य साधारणलक्षणमाह—

म० प्र०—

श्रीपुष्पदंततीर्थेश कुंदपुष्पाभदंतकं।
वंदेहं पुष्पदंतौघप्रभाभ्यर्धिवपुःप्रभं ॥ ९ ॥

अथ शास्त्रकारो योगमार्गणां प्रक्रममाणस्तावद्योगस्य सामान्यलक्षणमाह—

स० चं०—

कुंदकुसुमसम दंतजुत पुष्पदंत जिनराय।
वंदौ ज्योति अनंतमय पुष्पदंतवतकाय ॥ ९ ॥

आगैं शास्त्रकर्ता योगमार्गणाका निरूपण करैं हैं तहां प्रथम ही योगका सामान्य लक्षण कहै हैं—

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्य।
जीवस्स जा हु सत्ती कम्मागमकारणं जोगो ॥ २१६ ॥

पुद्गलविपाकिदेहोदयेन मनोवचनकाययुक्तस्य।
जीवस्य या हि शक्तिः कर्मागमकारणं योगः ॥ २१६ ॥

जी० प्र०—पुद्गलविपाकिनः अंगोपांगनामकर्मणः, देहस्य च शरीरनामकर्मणः, उदयेन मनोवचनकायपर्याप्तिपरिणतस्य कायवाग्मनोवर्गणावलंबिनः संसारिजीवस्य लोकमात्रप्रदेशगता कर्मादानकारणं या शक्तिः सा भावयोगः। तद्विशिष्टात्मप्रदेशेषु यः किंचिचलनरूपपरिस्पंदः स द्रव्ययोगः। कर्मेतिलक्षणेन कर्मनोकर्मवर्गणारूपपुद्गलस्कंधस्य ज्ञानावरणादिकर्मौदारिकादिनोकर्मभावेन परिणमनहेतुर्यत्सामर्थ्यं आत्मप्रदेशपरिस्पंदश्च योग इत्युच्यते। अंगोपांगशरीरनामकर्मोदयेन मनोवर्गणागतपुद्गलस्कंधानां आहारवर्गणायातनोकर्मपुद्गलस्कंधानां च संबंधेन जीवप्रदेशानामग्निसंयोगेन लोहस्य दहनशक्तिवत् कर्मनोकर्मादानशक्तिः सामर्थ्यमुत्पद्यते इति भावार्थः ॥२१६॥ अथ योगविशेषमाह—

११९

म.प्र. संसारिणो जीवस्य कर्मागमकारणं कर्मेत्युपलक्षणात् कर्मनोकर्मवर्गणारूपपुद्गलस्कंधस्य ज्ञानावरणादिकर्मभावेन औदारिकशरीरादिनोकर्मभावेन च परिणमनहेतुर्या शक्तिः--सामर्थ्यं तद्विशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदश्च स योग इत्युच्यते। किंविशिष्टस्य जीवस्य ? मनोवचनकाययुक्तस्य मनोभाषाशरीरपर्याप्तिपरिणतस्य मनोवाक्कायवर्गणासहितस्य च। केन हेतुना ? पुद्गलविपाकिदेहोदयेन हेतुना, पुद्गलविपाकिनः यथसंभवमंगोपांगनामकर्मणः, देहस्य--औदारिकादिशरीरनामकर्मणश्च, उदयेन--फलदानपरिणत्या, अंगोपांगशरीरनामकर्मोदयागतपुद्गलस्कंधकर्मनोकर्मतापरिणमनहेतुः शरीरभाषामनःपर्याप्तिपरिणतस्य कायवाग्मनोवर्गणावलंबिनः संसारिजीवस्य लोकमात्रप्रदेशगता या शक्तिः स भावयोगः तद्विशिष्टात्मप्रदेशानां यः परिस्पंदः किंचिच्चलनरूपः स द्रव्ययोग इति तात्पर्यार्थः॥२१६॥

अथ योगविशेषलक्षणमाह---

सं० च०---संसारी जीवकैं कर्म जो ज्ञानावरणादिक कर्म अर उपलक्षणतैं औदारिकादिक नोकर्म तिनिका आगम कहिए कर्म नोकर्म वर्गणारूप पुद्गलस्कंधनिका कर्म नोकर्मरूप परिणमना ताकौं कारणभूत जो शक्ति बहुरि उस शक्तिका धारी जो आत्मा ताके प्रदेशनिका चंचलरूप होना सो योग कहिए है। कैसा है जीव ? पुद्गलविपाकी जो यथासंभव अंगोपांग नाम प्रकृति वा देह जो शरीर नाम प्रकृति ताका उदय जो फल देना रूप परिणमना ताकरि मन वा भाषा वा शरीररूप जे पर्याप्ति तिनिकौं धरै है। मनोवर्गणा भाषावर्गणा कायवर्गणाका अवलंबनकरि संयुक्त है। इहां अंगोपांग वा शरीर नामा नामकर्मके उदयतैं शरीर भाषा मनःपर्याप्तिरूप परिणम्या काय भाषा मन वर्गणाका अवलंबनयुक्त आत्मा ताकौं लोकमात्र सर्व प्रदेशनिविषैं प्राप्त जो पुद्गलस्कंधनिकौं कर्म नोकर्मरूप परिणमावनेकौ कारणभूत शक्ति समर्थता सो भाव योग है। बहुरि उस शक्तिका धारी आत्माके प्रदेशनिविषैं किछू चलनरूप सकंप होना सो द्रव्य योग है। इहां यहु अर्थ जानना जैसैं अग्निके संयोगकरि लोहके जलावनेकी शक्ति हो है तैसै अंगोपांग शरीर नामा नामकर्मके उदयकरि मन वर्गणा वा भाषा वर्गणाका आए पुद्गल स्कंध अर आहार वर्गणाका आए नोकर्म पुद्गलस्कंध तिनिका संबंधकरि जीवके प्रदेशनिके कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्ति समर्थता हो है॥ २१६॥ आगैं योगानिका विशेष लक्षण कहै हैं--

मणवयणाण पउत्ती सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।

तण्णामं होदि तदा तेहिं दु जोगा हु तज्जोगा ॥२१७॥

मनोवचनयोः प्रवृत्तयः सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु ।
तन्नाम भवति तदा तैस्तु योगाद्धि तद्योगाः ॥ २१७ ॥

जी० प्र०—सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु याः प्रवृत्तयः मनोवचनयोः तदा ज्ञानवाक्प्रयोगजनने जीवप्रयत्नरूपप्रवृत्तीनां सत्यादि तन्नाम भवति सत्यमन इत्यादि । तु–पुनः तैः सत्याद्यर्थैः सद्योगात्–संबधात्, खलु- स्फुटं, ताः मनोवचनप्रवृत्तयः, तद्योगाः--सत्यादिविशेषणविशिष्टाः, चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाश्च भवंति । सम्यग्ज्ञानविषयोर्थः सत्य यथा जलज्ञानविषयो जल स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावात् । मिथ्याज्ञानविषयोर्थः असत्यः यथा जलज्ञानविषयो मरीचिकाचक्रे जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहात् । सत्यासत्यज्ञानविषयोर्थः उभयः सत्यासत्य इत्यर्थः यथा जलज्ञानविषयः कमंडलुनि घटः । अत्र जलधारणार्थक्रियायाः सद्भावात् सत्यतायाः घटाकारविकलत्वादसत्यतायाश्च प्रतीतेः । अयं गौणार्थः अग्निर्माणवक इत्यादिवत् । अनुभयज्ञानविषयोर्थः अनुभयः सत्यासत्यार्थद्वयेनावक्तव्यः यथा किंचित्प्रतिभासते । सामान्येन प्रतिभासमानोऽर्थः स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावात् सत्य इति वक्तुं न शक्यते । सामान्यप्रतिभासात् असत्य इत्यपि वक्तुं न शक्यते इति जात्यंतरं अनुभयार्थः स्फुटं चतुर्थो भवति । एव घटे घटविकल्पः सत्यः, घटे पटविकल्पोऽसत्यः, कुंडिकायां जलधारणे घटविकल्पः उभयः, आमंत्रणादिषु अहो देवदत्त इति विकल्पः अनुभयः । कालेनैव गृहीता सा कन्या किं मृत्युना अथवा धर्मणा इत्यनुभयः ॥ २१७ ॥ सत्यार्थविषयो मनोयोग इत्यादिविशेषलक्षणं गाथाचतुष्टयेन कथयति–

मं० प्र०—सत्यासत्योभयानुभयार्थेषु मनोवचनयोः याः प्रवृत्तयः तत्तज्ज्ञानवाक्प्रयोगजनने आत्मनः प्रयत्नास्तासां प्रवृत्तीनां तन्नाम भवति तु-पुनः, तैर्योगात्--सत्याद्यर्थैः सबंधात्, खलु - स्फुटं, ता. मनोवचनप्रवृत्तयः, तद्योगाः- सत्यादिविशेषणविशिष्टाश्चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाश्च भवति । सम्यग्ज्ञानविषयोर्थः सत्यः, यथा जलज्ञानविषयो जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियासद्भावात् । मिथ्याज्ञानविषयोऽर्थः असत्यः यथा जलज्ञानविषयो मरीचिकाचक्रे जलं स्नानपानाद्यर्थक्रियाविरहात् । सत्यासत्यज्ञानविषयोर्थः उभयः सत्यासत्यरूपः यथा घटज्ञानविषयः कमंडलुनि घटः अत्र जलधारणार्थक्रियासद्भावात् सत्यता, घटाकारविकलत्वात् असत्यता च प्रतीयते इति अयमेव गौणार्थः । अग्निर्माणवक इत्यादिरूपः अनुभयज्ञानविषयोर्थः अनुभयः सत्यासत्यत्वाभ्यामवक्तव्यः यथा किंचित्प्रतिभासत इति सामान्येन प्रतिभासमानोऽर्थः स्वार्थक्रियाकारिविशेषनिर्णयाभावात् सत्य इति वक्तु न शक्यते सामान्यप्रतिभासादसत्य इति वक्तुं न शक्यते इति जात्यंतरमनुभयार्थो नाम चतुर्थो भेद इति ॥ २१७ ॥ सत्यार्थविषयो मनोयोगः सत्यमनोयोग इत्यादिविशेषलक्षणं प्ररूपयितुं गाथाचतुष्टयमाह–

सं० च०—सत्य असत्य उभय अनुभय रूप जे पदार्थ तिनिविषैं जो मन वचनकी प्रवृत्ति होइ उनके जा-

ननेकौं वा कहनेकौं जीवका प्रयत्नरूप प्रवृत्ति होइ सो सत्यादिक पदार्थका संबंधतैं सो सत्य असत्य उभय अनुभय है विशेषण जिनिका ऐसे च्यारि प्रकार मनोयोग अर च्यारिप्रकार वचनयोग जानने । तहां यथार्थ जैसाका तैसा सांचा ज्ञानगोचर जो पदार्थ होइ ताकौं सत्य कहिए जैसैं जलका जाननाके गोचर जल होइ जातैं स्नान पानादिक जल संबंधी क्रिया उसतैं सिद्ध हो है तातैं सत्य कहिए । बहुरि अयथार्थ अन्यथारूप पदार्थ जो मिथ्याज्ञानके गोचर होइ ताकौं असत्य कहिए जैसैं जलका जाननाके गोचर भाडली होइ जातैं स्नान पानादिक जल संबंधी क्रिया भाडलीस्यों सिद्ध न हो हैं तातैं असत्य कहिए । बहुरि यथार्थ वा अयथार्थ रूप पदार्थ जो उभय ज्ञान गोचर होइ ताकौं उभय कहिए जैसैं कमंडलु विषैं घटका ज्ञान होइ जातैं घटकी ज्यों जलधारणादि क्रिया कमंडलुस्यों सिद्ध हो है तातैं सत्य है । बहुरि घटकासा आकार नाहीं है तातैं असत्य है ऐसैं यहु उभय जानना । बहुरि जो यथार्थ अयथार्थका निर्णय करि रहित पदार्थ सो अनुभय गोचर होइ ताकौं अनुभय कहिए । सत्य असत्यरूप कहने योग्य नांहीं जैसैं यह किछू प्रतिभासै है ऐसैं सामान्यरूप पदार्थ प्रतिभास्या तहां उस पदार्थकरि कौन क्रिया सिद्ध हो है ऐसा विशेष निर्णय न भया तातैं सत्य भी न कह्या जाय बहुरि सामान्यपनैं प्रतिभास्या तातैं असत्य भी न कह्या जाय तातैं याकौं अनुभय कहिए । ऐसैं च्यारि प्रकार पदार्थनिविषैं मनकी वा वचनकी प्रवृत्ति होइ सो च्यारि प्रकार मनोयोग वा च्यारि प्रकार वचनयोग जानने । इहां घटविषैं घटकौ विकल्प सो सत्य अर घटविषैं पटका विकल्प सो असत्य, अर कुंडीविषैं जलधारन करि घटका विकल्प सो उभय अर संबोधन आदिविषैं हे देवदत्त इत्यादि विकल्प सो अनुभय जानना ॥ २१७ ॥
आगैं सत्य पदार्थ हैं गोचर जाकैं ऐसा मनोयोग सो सत्य मनोयोग इत्यादिक विशेष लक्षण च्यारि गाथानि करि कहैं हैं—

सब्भावमणो सच्चो जो जोगो तेण सच्चमणजोगो ।

तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥ २१८ ॥

सद्भावमनः सत्यं यो योगः स तु सत्यमनोयोगः।
तद्विपरीतो मृषा जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥ २१८ ॥

जी० प्र०—सद्भावः सत्यार्थः, तद्विषयं मनः सत्यमनः, सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः। तेन सत्यमनसा जनितो योगः–प्रयत्नविशेषः स सत्यमनोयोगः। तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजनितशक्तिरूपभावमनसा जनितप्रयत्नविशेषः मृषा–असत्यमनोयोगः। उभय–सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः उभयमनोयोगः इति हे भव्य! त्वं जानीहि ॥ २१८ ॥

म० प्र०—सद्भावः–सत्यार्थः तद्विषयं मनः–सत्यमनः सत्यार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः तेन जनितो यो योगः–प्रयत्नविशेषः स सत्यमनोयोगः। तद्विपरीतः असत्यार्थविषयज्ञानजननशक्तिरूपभावमनसा जनित प्रयत्नविशेषः मृषा- असत्यमनोयोगः। उभयः सत्यमृषार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनोजनितप्रयत्नविशेषः उभयमनोयोग इति हे भव्य? जनीहि ॥ २१८॥

सं० च०—'सद्भावः' कहिए सत्पदार्थ सो है गोचर जाका अैसा जो मन सत्य पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति लीएं भाव मन होइ तींहि सत्यमनकरि निपज्या जो चेष्टा प्रवर्त्तन रूप योग सो सत्यमनोयोग कहिये। बहुरि अैसैं ही विपरीत असत्य पदार्थरूप विषयके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति रूप जो भावमन ताकरि जो चेष्टा प्रवर्तन रूप योग होइ सो असत्य मनोयोग कहिए बहुरि युगपत् सत्य असत्य रूप पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्तिरूप जो भावमन ताकरि जो प्रवर्तन रूप योग होइ सो उभय मनोयोग कहिये अैसैं हे भव्य! तू जानि।

ण य सच्चमोसजुत्तो जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे असच्चमोसो दु मणजोगो ॥ २१९ ॥

न च सत्यमृषायुक्तं यत्तु मनस्तदसत्यमृषामनः।
यो योगस्तेन भवेत् असत्यमृषा तु मनोयोगः ॥ २१९ ॥

जी० प्र०—यन्मनः सत्यमृषायुक्तं न च भवति तु-पुनः, तदसत्यमृषामनः, अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपं भावमन इत्यर्थः । तेन भावमनसा जनितो यो योग.--प्रयत्नविशेष. स तु पुनः असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोयोग इत्यर्थः । इति चत्वारो मनोयोगाः कथिताः ॥ २१९ ॥

म० प्र०---यन्मनः सत्यमृषायुक्तं न च नैव भवति तु--पुनः असत्यमृषामनः अनुभयार्थज्ञानजननशक्तिरूपभावमनः इत्यर्थः । तेन जनितो यो योगः प्रयत्नविशेषः स तु पुनः असत्यमृषामनोयोगो भवेत् अनुभयमनोयोग इत्यर्थः एवं चत्वारो मनोयोगाः कथिताः ॥ २१९ ॥

सं० च०—जो मन सत्य अर मृषा कहिए असत्य तींहिकरि युक्त न होइ बहुरि सत्य असत्य निर्णयकरि रहित जो अनुभय पदार्थ ताके ज्ञान उपजावनेकी शक्तिरूप जो भाव मन तींहिकरि निपज्या जो प्रवर्तनरूप योग सो सत्य असत्यरहित अनुभय मनोयोग कहिए ऐसै च्यारि प्रकार मनोयोग कह्या ॥ २१९ ॥

दसविहसच्चे वयणे जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो ।
तव्विवरीओ मोसो जाणुभयं सच्चमोसोत्ति ॥ २२० ॥

दशविधसत्ये वचने यो योगः स तु सत्यवचोयोगः ।
तद्विपरीतो मृषा जानीहि उभयं सत्यमृषेति ॥ २२० ॥

जी० प्र०—सत्यार्थवाचकं वचनं सत्यवचनं जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थः, स्वरनामकर्मोदयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणालम्बनात्मप्रदेशशक्तिरूपो यो भाववचनजनितो योगः प्रयत्नविशेषः स सत्यवचोयोगो भवति । तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नः असत्यवचोयोगः असत्यवाग्योगो भवति । कमंडलु ने घट इत्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्नतः स उभयवाग्योग इति भव्य! त्वं जानीहि ॥ २२० ॥

मं० प्र०—जनपदादिदशविधसत्यार्थविषयवाग्व्यापारजननसमर्थं स्वरनामकर्मोदयापादितभाषापर्याप्तिजनितभाषावर्गणालम्बनात्मप्रदेशशक्तिरूपं यद्भाववचः तेन जनितो यो योगः-प्रयत्नविशेषः स सत्यवचोयोगः । तद्विपरीतो मृषा असत्यार्थविषयो वाग्व्यापारप्रयत्नः असत्यवचोयोगः । कमण्डलुनि घटोयमित्यादिसत्यमृषार्थवाग्व्यापारप्रयत्न उभयवचोयोग इति जानीहि ॥ २२० ॥

सं० च०—सत्य अर्थका कहनहारा सो सत्य वचन है। जनपदनै आदि देकरि दसप्रकार सत्यरूप जो पदार्थ तींहिविषैं वचन प्रवृत्ति करनेकौं समर्थ स्वरनामा नामकर्मके उदयतैं भया भाषा पर्याप्तिकरि निपज्या जो भाषा वर्गणा आलंबन लीएं आत्माके प्रदेशनिविषैं शक्तिरूप भाव वचनकरि उत्पन्न भया जो प्रवृत्तिरूप विशेष सो सत्यवचन योग कहिए। बहुरि तीहिस्यों विपरीत असत्य पदार्थविषैं वचन प्रवृत्तिकौं कारण जो भाव वचन तींहिकरि जो प्रवर्तनरूप योग होइ सो असत्य वचन कहिए। बहुरि कमंडलुविषैं यहु घट है इत्यादिक सत्य असत्य पदार्थविषैं वचन प्रवृत्तिकौं कारण जो भाव वचन तींहिकरि जो प्रवर्तनरूप योग होइ सो उभय वचन योग कहिए ऐसा हे भव्य! तू जानि ॥ २२० ॥

जो णेव सच्चमोसो सो जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा सण्णीणामंतणी आदी ॥ २२१ ॥

यो नैव सत्यमृषा स जानीहि असत्यमृषावचोयोगः।
अमनसां या भाषा संज्ञिनामामंत्रण्यादिः ॥ २२१ ॥

जी० प्र०---यः सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति स असत्यमृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषः अनुभयवचोयोग इति हे भव्य! त्वं जानीहि। स कः? उत्तरार्धेन तमेवोदाहरति—अमनसां द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपचेंद्रियपर्यंतजीवानां या अनक्षरात्मिका भाषाः संज्ञिनां च आमंत्रण्याद्यक्षरात्मिकाभाषास्ताः सर्वाः अनुभयवचोयोग इत्युच्यते ॥ २२१ ॥ अथ जनपदादिदशविधसत्यमुदाहरणपूर्वकं गाथात्रयेणाह—

म० प्र०-- यः सत्यमृषार्थविषयो नैव भवति स असत्यमृषार्थविषयवाग्व्यापारप्रयत्नविशेषः अनुभयवचोयोग इति जानीहि। उत्तरार्धेन तमेवोदाहरति अमनसा--द्वींद्रियादीनामसंज्ञिपचेंद्रियपर्यंताना या अनक्षरात्मिका भाषा या च संज्ञिनामामंत्रण्यादिभाषा अक्षरात्मिका स सर्वोऽपि अनुभयवचोयोग इत्युच्यते ॥ २२१ ॥ अथ जनपदादिदशविधसत्यमुदाहरणपूर्वकं गाथात्रयेणाह---

सं० च०—जो सत्य असत्यरूप न होइ ऐसा पदार्थविषैं वचन प्रवृत्तिकौं कारण जो भाव वचन तींहिकरि

जो प्रवर्तनरूप योग होइ सो सत्य असत्य निर्णयरहित अनुभय वचन योग जानना। ताका उदाहरण उत्तर आधा सूत्रकरि कहै हैं—जो वेइंद्रियादिक असैनी पंचेंद्रिय पर्यंत जीवनिकैं केवल अनक्षररूप भाषा है सो अनुभय वचन योग जानना। वा सैनी पंचेंद्रिय जीवनिके आगै कहिए है जो आमंत्रणी आदि अक्षररूप भाषा सो सर्व अनुभय वचन योग जानना ॥ २२१ ॥ आगैं जनपद आदि दशप्रकार सत्यकौं उदाहरण पूर्वक तीनि गाथानिकरि कहै हैं—

जणवदसम्मदिठवणाणामे रूवे पडुच्चववहारे।
संभावणे य भावे उवमाए दसविहं सच्चं ॥ २२२ ॥

जनपदसम्मतिस्थापनानाम्नि रूपे प्रतीत्यव्यवहारयोः।
संभावनायां च भावे उपमायां दशविधं सत्यं ॥ २२२ ॥

जी० प्र०—जनपदे संवृतौ सम्मतौ वा स्थापनायां नाम्नि रूपे प्रतीत्ये व्यवहारे संभावनायां भावे उपमायां चेति दशस्थानेषु सत्यं दशविधं भवति ॥ २२२ ॥

म० प्र०—जनपदे संवृतौ सम्मतौ वा स्थापनायां नाम्नि रूपे प्रतीत्ये-व्यवहारे समावनायां भावे उपमाया च एषु दशसु विषयेषु रूढं यद् वच. तद्दशविध सत्यं ॥ २२२ ॥

सं० च०—जनपदविषैं संवृति वा सम्मितिविषैं स्थापनाविषैं नामविषै रूपविषै प्रतीत्य विषै व्यवहार विषै संभावनाविषै भावविषै उपमाविषै ऐसैं दश स्थानानिविषै दश प्रकार सत्य जानना ॥ २२२ ॥

भत्तं देवी चंदप्पहपडिमा तह य होदि जिणदत्तो।
सेदो दिग्घो रज्झदि कूरोत्ति य जं हवे वयणं ॥ २२३ ॥

भक्तं देवी चंद्रप्रभप्रतिमा तथा च भवति जिनदत्तः।
श्वेतो दीर्घो रध्यते कूरमिति च यद्वद्वचनं ॥ २२३ ॥

जी०प्र०--जनपदेषु तत्रतत्रतनव्यवहर्तृजनानां रूढं यद्वचनं तज्जनपदसत्यं यथा महाराष्ट्रदेशे भातु भेट्ट, अंध्रदेशे वंटक मुकुडु, कर्णाटदेशे कूळु, द्रविडदेशे चोरु। तथा संवृत्त्या कल्पनया सम्मत्या वा बहुजनाभ्युपगमेन सर्वदेशसाधारणं यन्नाम रूढं तत् संवृतिसत्यं सम्मतिसत्यं वा, यथा अग्रमहिषीत्वाभावेऽपि कस्याश्चिद्देवीति नाम। अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना तदाश्रितं मुख्यवस्तुनो नाम स्थापनासत्यं यथा चंद्रप्रभप्रतिमा चंद्रप्रभ इति। तथा च यथा भातु इत्यादि नाम देशाद्यपेक्षया सत्यं तथा अन्यनिरपेक्षतयैव संव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्तं संज्ञाकर्म नामसत्यं यथा कश्चित् पुरुषो जिनदत्त इति। अत्र जिनैर्दत्त इति दानक्रियानिरपेक्षमेव प्रयुक्तमिदं। चक्षुर्व्यवहारप्रचुरत्वेन रूपादिपुद्गलगुणेषु रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचनं रूपसत्यं यथा कश्चित् पुरुषः श्वेत इति। अत्र केशादीनां नीलादिवर्णांतररसादिगुणांतरसद्भावेप्यविवक्षितत्वात्। प्रतीत्य विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः। यथा कश्चिद्दीर्घ इति अन्यस्य ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वकथनात्। एवं स्थूलसूक्ष्मादिवचनान्यपि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि। नैगमादिनयप्राधान्यमाश्रित्य प्रवृत्तं वचनं व्यवहारसत्यं। अत्र नैगमनयप्राधान्येन यथा रध्यते कूरः पच्यते ओदनः इति। इतिशब्दः संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारदर्शनार्थः। नयव्यवहाराश्रित यद्वचनं -स्यात्सर्वं सत् स्यात् सर्वमसत् इत्यादिवाक्यं व्यवहारसत्यं भवति। चशब्दः अर्थांतरसमुच्चयार्थः। पच्यते ओदन इत्यत्र पाकसमाप्त्यनंतरकालभावी ओदनपर्यायः पाककाले यद्यपि नास्ति तथापि तंडुलानामोदनपर्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षया ओदनपर्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षया तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धिः ॥ २२३ ॥

मं० प्र०---अनंतरगाथोक्तदशविधसत्यानां यथासंख्यमुदाहरणानि दश वक्ष्यमाणानि ज्ञातव्यानि तद्यथा--जनपदे- तत्र तत्र देशे व्यवहर्तृजनानां रूढ यद्वचः तज्जनपदसत्यं यथा महाराष्ट्रदेशे भातु, भेट्ट। अंध्रदेशे वंटक मुकुडु। कर्णाटदेशे कूळु। द्रविडदेशे चोरु इत्यादि। संवृत्या कल्पनया संमत्या वा बहुजनाभ्युपगमेन सर्वदेशसाधारण यन्नाम रूढं तत्संवृतिसत्य संमतिसत्य च। यथा अग्रमहिषीत्वाभावे सति कस्याश्चिद्देवीति नाम। अन्यत्रान्यवस्तुनः समारोपः स्थापना तदाश्रित मुख्यवस्तुनाम संस्थापनासत्य यथा चद्रप्रभप्रतिमा चद्रप्रभ इति। तथा च यथा भक्तादिनामदेशाद्यपेक्षया सत्यं भवति तथा पुनरप्यानिरपेक्षतयैव सव्यवहारार्थं कस्यचित्प्रयुक्त सज्ञाकर्म नाम सत्य यथा कश्चित्पुरुषो जिनदत्त इति अत्र जिनैर्दत्त इति दानक्रियानिरपेक्षमेव प्रयुक्तमिदं। चक्षुर्व्यवहारस्य प्रचुरत्वात् रूपादिपुद्गलगुणानां मध्ये रूपप्राधान्येन तदाश्रितं वचः रूपसत्य। यथा कश्चित्पुरुष श्वेत इति तत्र केशनीलादिवर्णांतराणां रसादिगुणातराणा च सद्भावेप्यविवक्षितत्वात्। प्रतीत्य- विवक्षितादितरदुद्दिश्य विवक्षितस्यैव स्वरूपकथनं प्रतीत्यसत्यं आपेक्षिकसत्यमित्यर्थः यथा कश्चिद्दीर्घ इति अन्यस्य कस्यचित् ह्रस्वत्वमपेक्ष्य प्रकृतस्य दीर्घत्वाभिधानात् एव स्थूलसूक्ष्मादिवचनानि प्रतीत्यसत्यानि ज्ञातव्यानि। व्यवहारं नैगमादिनयप्राधान्यमा-

श्रित्य प्रवृत्तं यद्वचः तद् व्यवहारसत्यं तत्र नैगमनयप्राधान्येन यथा रध्यते कूरमिति पच्यते ओदन इति । इति शब्दः संग्रहनयादिव्यवहारप्रकारप्रदर्शनार्थः एवंविधनयव्यवहाराश्रितं यद्वचन स्यात्सर्वं सत्, स्यात्सर्वमसदित्यादिवाक्यं तद्व्यवहारसत्यं भवेत् चशब्दः सर्वनयसमुच्चयार्थः । पच्यते ओदन इत्यत्र पाकसमाप्त्यनंतरकालभावी ओदनपर्यायः पाककाले यद्यपि नास्ति तथापि तंडुलानां ओदनपर्यायप्रत्यासत्तिप्ररूपकनैगमनयविवक्षया ओदनपर्यायपरिणामिद्रव्यापेक्षया तद्वाक्यस्य सत्यत्वसिद्धिः ॥ २२३॥

सं० च०—दश प्रकार सत्य कह्या ताका उदाहरण अनुक्रमतैं कहिए है--देशनिविषै व्यवहारी मनुष्यनिविषै प्रवृत्तिरूप वचन सो जनपद सत्य कहिए जैसैं ओदनकौं महाराष्ट्रदेशविषै भातू वा भेटू कहिए। अंध्रदेशविषै वंटक वा मुकूडु कहिए । कर्णाटदेशविषै कूलु कहिए । द्राविडदेश विषैं चोरु कहिए इत्यादिक जानना । बहुरि जो संवृति कहिए कल्पना वा सम्मति कहिए बहुत जीवनिकरि तैसैं ही मानना सर्व देशनिविषैं समान रूढरूप नाम सो संवृति सत्य कहिए वा इसहीकौं सम्मति सत्य कहिए जैसैं किसीविषैं पटरानीपना न पाइए अर वाकौं देवी कहिए । बहुरि जो अन्यविषैं अन्यका स्थापन करि तिस मुख्य वस्तुका नाम कहना सो स्थापना सत्य कहिए जैसैं रत्नादिककरि निर्मापित चंद्रप्रभ तीर्थंकरकी प्रतिमाकौं चंद्रप्रभ कहिए । बहुरि देशादिककी अपेक्षा भातु इत्यादिक नामसत्य है तैसैं अन्य अपेक्षारहित केवल व्यवहार निमित्त जिसका जो नाम होइ सो कहना सो नामसत्य कहिए । जैसैं किसीका नाम जिनदत्त है सो जिनभगवान करि दीया होइ ताकौं जिनदत्त कहिए सो इहां दानक्रियाकी अपेक्षा विना ही जिनदत्त नाम कहिए । बहुरि जो पुद्गलके अनेक गुण होतसंतें रूपकी मुख्यता लीएं वचन कहिए सो रूपसत्य कहिए जैसैं यहु पुरुष सुपेद है ऐसा कहिए तहां वाके केशादिक श्याम वा रसादिक अन्य गुण वाकैं पाइए है परि उनकी मुख्यता न करी । बहुरि जो विवक्षित वस्तुतैं अन्य वस्तुकी अपेक्षाकरि तिस विवक्षित वस्तुकौं हीनाधिक मान वचन कहिए सो प्रतीत्यसत्य कहिए याहीका नाम आपेक्षिक सत्य है । जैसैं यहु दीर्घ है ऐसा कहिए सो तहां किसी छोटेकी अपेक्षा याकौं दीर्घ कह्या बहुरि यातैं दीर्घकी अपेक्षा छोटा है परंतु वाकी विवक्षा न लीन्ही । ऐसैं ही स्थूल सूक्ष्मादिक कहना सो

प्रतीत्य सत्य जानना। बहुरि जो नैगमादि नयकी अपेक्षा प्रधानता लीए वचन कहिए सो व्यवहार सत्य जानना। जैसे नैगम नयकी अपेक्षाकरि ऐसा कहिए कि 'भात पचै है' सो भात तौ पचै पीछै होगा अब तौ चावल ही हैं तथापि थोरे ही कालमें भात होना है तातैं नैगम नयकी विवक्षाकरि भात पर्याय परिणमने योग्य द्रव्य अपेक्षा सत्य कहिए। इति शब्दकरि संग्रहनयादिकका भी व्यवहार विधान जानना। नयनिका व्यवहार की अपेक्षा जैसे सर्व पदार्थ सत्त्व रूप हैं वा असत्त्व रूप हैं इत्यादिक वचन सो व्यवहार सत्य है। नैगमादि नयतैं संग्रह नयादिकका व्यवहार हो है जातैं याकौं व्यवहार सत्य कहिए ॥ २२३ ॥

सक्को जंबूदीवं पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च।
पल्लोवमं च कमसो जणपदसच्चादिदिट्ठंता ॥ २२४ ॥

शक्रो जंबूद्वीपं परिवर्तयति पापवर्जवचनं च।
पल्योपमं च क्रमशो जनपदसत्यादिदृष्टांताः ॥ २२४ ॥

जी० प्र०——संभावनया असंभवपरिहारपूर्वकं वस्तुधर्मविधिलक्षणया यत्प्रवृत्तं वचनं तत्संभावनासत्यं यथा शक्रो जंबूद्वीपं परावर्तयेत् परिवर्तयितुं शक्नोतीत्यर्थः जंबूद्वीपपरिवर्तनशक्त्यसंभवपरिहारेण तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्ष सत्यमिति बीजे अंकुरजननादिशक्तिवचनवत्। असंभवपरिहारेण वस्तुधर्मविधिरूपसंभावनाया नियमेन तत्क्रियापेक्षा न घटते। क्रियाया बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वात्। अतींद्रियार्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः। तदाश्रितं वचनं भावसत्यं। यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यं प्रासुकं ततस्तत्सेवने पापबंधो नास्तीति पापवर्जनवचनं। अत्र सूक्ष्मप्राणिनामिंद्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्येन प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात्। समस्तातींद्रियार्थज्ञानिप्रणीतप्रवचनस्य सत्यत्वादेव कारणात्। चशब्दः एवंविधमुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थः। प्रसिद्धार्थसादृश्यं उपमासत्यं यथा पल्योपम पल्येन धान्याधारकुशूलेन सह उपमासदृशत्वं रोमखंडाधारतया यस्यास्ति तत्संख्यानं पल्योपममिति असंख्यातासंख्यातरोमखंडाश्रयस्य तत्प्रमाणसमयाश्रयस्य वा संख्यानविशेषस्य यथाकथंचित्पल्यसादृश्यमाश्रित्य प्रवृत्तस्य पल्योपमवचनस्य उपमासत्यत्वसिद्धेः। तथा सागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थश्चशब्दः। एवं यथाक्रम भक्तादयो जनपदसत्यादिदृष्टांता उदाहरणान्युक्तानि ॥ २२४ ॥ अथानुभयवचनभेदान् गाथाद्वयेनाह——

मं० प्र— संभावनया असमवपरिहारपूर्वकवस्तुधर्मविधिलक्षणया यत्प्रवृत्तं वचस्तत्संभावनासत्यं यथा शक्रो जंबूद्वीपं पगवर्तयेत्–परिवर्तयितुं शक्नोतीत्यर्थः। जंबूद्वीपपरिवर्तनशक्त्यसंभवपरिहारेण तच्छक्तिविधानवचनं तत्क्रियानिरपेक्षं सत्यमिति बीजे अंकुरजननादिशक्तिवचनवत्। असंभवपरिहारेण वस्तुधर्मविधिरूपायाः संभावनायाः नियमेन तत्क्रियापेक्षा नहि विद्यते। क्रियाया बाह्यकारणकलापव्यापारप्रभवत्वात्। अतींद्रियर्थेषु प्रवचनोक्तविधिनिषेधसंकल्पपरिणामो भावः तदाश्रितं वचः भावसत्यं यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादि द्रव्यं प्रासुकं अतस्तत्सेवने पापबंधो नास्तीति पापवर्जवचनं। तत्र सूक्ष्मजंतूनामिंद्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचनप्रामाण्यात् प्रासुकाप्रासुकसंकल्परूपभावाश्रितवचनस्य सत्यत्वात्, सकलातींद्रियार्थज्ञानिप्रोक्तप्रवचनस्य सत्यत्वात्। चशब्दः एवंविधानुक्तभावसत्यसमुच्चयार्थः। प्रसिद्धार्थसादृश्यमुपमा तदाश्रितं वच उपमासत्यं यथा पल्योपमं। पल्येन धान्याधारेण कुसूलेन उपमा सादृश्य, रोमखंडाधारतया यस्यास्ति तत्संख्यान पल्योपममिति। असंख्यातासंख्यातरोमखंडाश्रयस्य तत्प्रमाणसमयाश्रयस्य वा संख्यातविशेषस्य यथा कथंचित्पल्यसादृश्यमाश्रित्य प्रवृत्तस्य पल्योपमवचनस्य उपमासत्यत्वसिद्धेः। चशब्द अनुक्तसागरोपमाद्युपमासत्यविशेषसमुच्चयार्थः एवं क्रमशः–यथाक्रम भक्तादयः जनपदसत्यादिदृष्टांताः–उदाहरणानि दश प्ररूपिताः॥ २२४॥ अथानुभयवचनभेदप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

सं० च०----असंभवपरिहार पूर्वक वस्तुके स्वभावका विधानरूप लक्षण धरै जो संभावना तींहिरूप वचन सो संभावना सत्य कहिए जैसे इंद्र जंबूद्वीप पलटावनेकौं समर्थ है ऐसा कहिए तहां जंबूद्वीपकौं पलटावनेकी शक्ति संभवै नाही। ताका परिहारकरि केवल वामें ऐसी शक्ति ही पाइए है ऐसा जंबूद्वीप पलटावनेकी क्रियाकी अपेक्षारहित वचन सो सत्य है। जैसे वीजविषै अंकूरा उपजावनेकी शक्ति है सो यहु क्रियाकी अपेक्षा लीएं वचन है। जातैं असंभवका परिहारकरि वस्तु स्वभावका विधानरूप जो संभावना ताके नियमकरि क्रियाकी सापेक्षता नाही है। जातैं क्रिया है सो अनेक वाह्य कारण मिलैं उपजै है। वहुरि अतींद्रिय जो पदार्थ तिनिविषैं सिद्धांतके अनुसारि विधि निषेधका संकल्परूप जो परिणाम सो भाव कहिए तींहिनै लीएं जो वचन सो भाव सत्य कहिए जैसैं जो सूकि गया होइ वा अग्निकरि पच्या होइ वा घरटी कोल्हू इत्यादिक यंत्रकरि छिन्न कीया होइ अथवा खटाई वा लूणकरि मिश्रित हूवा होइ वा भस्मीभूत हूवा होइ वस्तु ताकौं प्रासुक कहिए याके सेवनतैं पापबंध नाहीं इत्यादिक पापवर्जनरूप वचन सो भाव सत्य कहिए। यद्यपि इनि वस्तुनिविषै इंद्रिय अगोचर सूक्ष्म जीव पाइए है तथापि आगम प्रमाणतैं प्रासुक अप्रासुकका संकल्परूप भावके आश्रित ऐसा

वचन सो सत्य है जातै समस्त अतींद्रिय पदार्थके ज्ञानीनिकरि कह्या हूवा वचन सत्य है चकारकरि ऐसा ही और भावसत्य जानना। बहुरि जो किसी प्रसिद्ध पदार्थकी समानता किसी पदार्थकौं कहिए सो उपमा है तींहि रूप वचन सो उपमासत्य कहिए। जैसैं उपमा प्रमाणविषैं पल्योपम कह्या तहां धान भरणेका जो खास ताकौं पल्य कहिए ताकी उपमा जाकौं होइ ऐसी संख्याकौं पल्योपम कह्या सो इहां उपम सत्य है असंख्यातासंख्यात रोम खंडनिके आश्रयभूत वा तींहिं प्रमाण समयनिके आश्रयभूत जो संख्या विशेष ताके कोइ प्रकार खाडाविषैं रोम भरने करि पल्यकी समानताका आश्रय करि पल्योपम कहिए है। चकार करि सागर आदि उपमा सत्यके विशेष जानने। ऐसैं अनुक्रमतैं जनपदादिक सत्यके भोजनादिक उदाहरण क्रमतैं कहे ॥ २२४॥ आगैं अनुभय वचनके आमंत्रणी आदि भेदनिके निरूपणके निमित्त दोय गाथा कहैं हैं—

आमंतणि आणवणी याचाणि यापुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसयवयणी इच्छाणुलोमा य ॥ २२५ ॥

आमंत्रणी आज्ञापनी याचनी आपृच्छनी च प्रज्ञापनी।
प्रत्याख्यानी संशयवचनी इच्छानुलोम्नी च ॥ २२५ ॥

जी० प्र०—आगच्छ भो देवदत्त, इत्याद्याह्वानभाषा आमंत्रणी। इदं कुरु इत्यादिकार्यनियोजनभाषा आज्ञापनी। इदं मह्यं देहीति प्रार्थना भाषा याचनी। किमेतदित्यादिप्रश्नभाषा आपृच्छनी। किं करवाणीत्यादि विज्ञापनभाषा प्रज्ञापनी। इदं वर्जयामीत्यादिपरिहरणभाषा प्रत्याख्यानी। किमिदं बलाका वा पताका वा इत्यादिसंदेहभाषा संशयवचनी। तथैव मयापि भवितव्यमित्यादि इच्छानुवर्तिभाषा इच्छानुलोमवचनी। एकश्चशब्दः समुच्चयार्थः चरमश्चशब्दोनुक्तसमुच्चयार्थः ॥ २२५ ॥

मं० प्र०—आमंत्रणी आह्वानभाषा आगच्छ भो देवदत्त! इत्यादि। आज्ञापनी—कार्यनियोजनभाषा यथा इदं कुर्याः, इत्यादिः। याचनी—प्रार्थनाभाषा यथा इदं मे देहीत्यादिः। आपृच्छनी- प्रश्नभाषा, किमेतदित्यादिः। प्रज्ञापनी—विज्ञापनभाषा किंकरवाणीत्यादिः। प्रत्याख्यानी—परिहरणभाषा इदं वर्ज-

यामीत्यादिः । संशयवचनी संदेहभाषा किमिदं वलाका पताका वेत्यादिः । इच्छानुलोमवचनी इच्छानुवृत्तिभाषा यथा तथा भवतीत्यादिः । एकः चशब्दः प्रत्येकचशब्दसमुच्चयार्थः । चरमश्चशब्दः अनुक्तसमुच्चयार्थः ॥ २२५ ॥

सं०च०—'हे देवदत्त ! तू आव' इत्यादि बुलावनेरूप जो भाषा सो आमंत्रणी कहिए। बहुरि 'तू इस कार्यकौं करि' इत्यादि कार्य करावनेकी आज्ञारूप जो भाषा सो आज्ञापनी कहिए। तू मोकौं 'यहु वस्तु देहु' इत्यादि मांगनेरूप जो भाषा सो याचनी कहिए। बहुरि 'यहु कहा है?' इत्यादि प्रश्नरूप जो भाषा सो आपृच्छनी कहिए। बहुरि 'हे स्वामी मेरी यहु वीनती है' इत्यादि किंकरकी स्वामीसौं वीनतीरूप जो भाषा सो प्रज्ञापनी कहिए। बहुरि 'मैं इस वस्तुका त्याग कीया' इत्यादि त्यागरूप जो भाषा सो प्रत्याख्यानी कहिए। बहुरि जैसैं यहु बुगलोंकी पंकति है कि ध्वजा है इत्यादि संदेहरूप जो भाषा सो संशयवचनी कहिए। बहुरि जैसैं यहु है तैसैं मोकौं भी होना इत्यादि इच्छानुसारि जो भाषा सो इच्छानुवचनी कहिए॥ २२५॥

णवमी अणक्खरगदा असच्चमोसा हवंति भासाओ।
सोदाराणं जह्मा वत्तावत्तंससंजणया॥ २२६ ॥

नवमी अनक्षरगता असत्यमृषा भवंति भाषाः।
श्रोतॄणां यस्मात् व्यक्ताव्यक्तांशसंज्ञापिकाः॥ २२६ ॥

जी० प्र०—अनक्षरगता अनक्षरात्मिका द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्यंतजीवानां स्वस्वसंकेतप्रदर्शिका भाषा नवमी पूर्वगाथोक्तानुभयभाषाष्टकापेक्षया। एवमामंत्रण्याद्याः असत्यमृषा सत्यासत्यलक्षणरहिता अनुभयभाषा भवंति। अत्र कारणमुच्यते यस्मात्कारणात् श्रोतृजनानां सामान्येन व्यक्तानां विशेषेणाव्यक्तानां अर्थावयवानां संज्ञापिकाः प्रकाशिकाः भाषा भवंति तस्मात्कारणात् सामान्यरूपेण व्यक्तार्थत्वादसत्या इति वक्तुं न शक्यते विशेषस्वरूपेण व्यक्तार्थत्वात्सत्या इत्यपि वक्तुं न शक्यते इत्यनुभयत्वं। एवं यद्यपि परा अनुभयभाषाः संभवंति (संति) तथापि ता अत्रैव नवस्वेवांतर्भावनीयाः। अथवा एतासामुपलक्षणत्वाद् व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिका अपरा अनुभयभाषा पृथगनुसर्तव्याः। अनक्षरात्मकभाषाया

सुव्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावात् 'कथमनुभयत्वमिति चेत्तन्न, द्वींद्रियादिजीवानां तद्भाषावक्तॄणां सुखदुःखप्रकरणाद्यवलंबनेन हर्षाद्यभिप्रायस्य ज्ञा तुं शक्यत्वेन व्यक्तत्वोपपत्तिभावात् ॥ २२६ ॥ अथ सत्यानुभयासत्योभयमनोवचनयोगानां कारण कथयति—

मं० प्र०—अनक्षरगता अनक्षरात्मिका द्वींद्रियाद्यसंज्ञिपंचेंद्रियपर्यंतानां जीवाना स्वस्वसंकेतप्रदर्शिका भाषा नवमी अनुभयभाषा पूर्वगाथोक्तानुभयभाषा- एकापेक्षया । एवमेता आमन्त्रण्यादयः असत्यमृषा सत्यासत्यलक्षणरहिता अनुभयभाषा भवंति । अत्र कारणमुच्यते--यस्मात्कारणात् श्रोतॄणा सामान्येन व्यक्तः, विशेषेण अव्यक्तश्च अंश. वाक्यार्थावयवः तयोः संज्ञापिकाः प्रकाशिका इमा भाषाः तस्मात्कारणात् सामान्यरूपेण व्यक्तार्थत्वादसत्या इति वक्तुं न शक्यते विशेषाकारेणाव्यक्तार्थत्वात् सत्या इति च वक्तु न शक्यते इत्यनुभयत्वं । यद्यप्यन्या अनुभयभाषाः संभवति ता अत्रैव नवस्त्वतर्भावनीया. । अथवा एतासा- मुपलक्षणत्वाद् व्यक्ताव्यक्तार्थांशसंज्ञापिका अन्या अप्यनुभयभाषा पृथगनुसर्तव्याः । अनक्षरात्मकभाषाया व्यक्तार्थांशसंज्ञापकत्वाभावात् कथमनुभयत्व- मिति चेत्तन्न, द्वींद्रियादिजीवाना तद्वक्तॄणा सुखदु.खप्रकरणाद्यवलबनेन हर्षाद्याभिप्रायस्य ज्ञातु शक्यत्वेन व्यक्तत्वोपपत्तेः ॥ २२६ ॥ अथ सत्यानुभया- सत्योभयमनोवचनयोगाना कारण प्ररूपयति -

सं० च०—आठ भाषा तौ आगैं कहीं अर नवमी अनक्षररूप बेइंद्रियादिक असैनी जीवनिकैं जो भाषा हो है अपने अपने समस्यारूप संकेतकी प्रकट करणहारी सो अनुभय भाषा जाननी। ऐसैं सत्य असत्य लक्षण रहित आमंत्रणी आदि अनुभय भापा जाननी। इनिविषैं सत्य असत्यका निर्णय नाहीं सो कारण कहैं हैं जातैं ऐसे वचननिका सुननेवालाकै सामान्यपनाकरि तौ अर्थका अवयव प्रगट हूवा तातैं असत्य न कही जाइ। ब- हुरि विशेषपनाकरि अर्थका अवयव प्रगट न हूवा तातैं सत्य भी न कह्या जाय तातैं अनुभय कहिए जैसैं कही ,तू आव' सो इहां सभी सुननेवालोंने सामान्यपनैं जान्या कि बुलाया है परंतु वह आवैगा कि न आवैगा ऐसा विशेष निर्णय तौ उस वचनमैं नाहीं तातैं इसकौं अनुभय काहिए। ऐसैं सबका जानना। बहुरि अन्य भी अनु- भय वचनके भेद हैं तथापि इन भेदनिविषैं गर्भित जानने। अथवा ऐसैं ही उपलक्षणतैं ऐसी ही व्यक्त अव्यक्त वस्तुका अंशकी जनावन हारी और भी अनुभय भाषा जुदी जाननी। इहां कोऊ कहैगा कि अनक्षर भाषाका तौ सामान्यपना भी व्यक्त नाहीं हो है याकौं अनुभय वचन कैसैं काहिए ? ताकौं उत्तर—कि अनक्षर भाषा वाले जी- वनिका संकेतरूप वचन हो है तिसतैं उनका वचनकरि उनके सुख दुःख आदिका अवलंबनकरि हर्षादिक रूप

अभिप्राय जानिए है तातै अनक्षर शब्दविषै भी सामान्यपनाकी व्यक्तता संभवै है ॥ २२६ ॥ आगै ए मन वचन योगके भेद कहे तिनिका कारण कहै हैं—

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु ।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं ॥२२७॥

मनोवचनयोर्मूलनिमित्तं खलु पूर्णदेहोदयस्तु ।
मृषोभययोर्मूलनिमित्तं खलु भवत्यावरणं ॥ २२७ ॥

जी० प्र०—सत्यमनोयोगस्य सत्यवाग्योगस्य अनुभयमनोयोगस्य अनुभयवचनयोगस्य च पर्याप्तनामकर्मोदयः शरीरनामकर्मोदयश्च खलु स्फुटं मूलनिमित्तं प्रधानकारण भवति । सामान्यस्य विशेषाविनाभावित्वेन मनोवचनसामान्यग्रहणेन तद्विशेपसत्यानुभयग्रहणं सिद्धमेव । अथवा मोसुभयाणमिति कंठोक्तत्वात् शेषसत्यानुभयमनोवचनयोः पारिशेषिकन्यायाद् ग्रहण भवति । आवरणस्य मंदोदये विद्यमाने असत्यजनकत्वाभावात् मृषोभयोः असत्यमनोवाग्योगयोः उभयमनोवाग्योगयोश्च आवरणतीव्रानुभागोदय एव मूलकारणं भवति खलु-स्फुटं। अत्रायं विशेषः । स कः ? तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणं असत्यमनोवाग्योगनिमित्त । तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणं उभयमनोवाग्योगनिमित्तमिति जानीहि । दर्शनचारित्रमोहोदययोः असत्योभययोगकारणत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्तन्न, मिथ्यादृष्टेरिव असंयतसम्यग्दृष्टेः संयतस्यापि तद्योगसद्भावात् । सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु सत्यासत्ययोगव्यवहारस्यावरणमंदतीव्रानुभागोदय एव कारणमिति प्रवचनप्रसिद्धेः । तु पुनः केवलिनि सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः । अयोगकेवलिनि शरीरनामकर्मोदयाभावेन योगाभावात् सत्यानुभयव्यवहारोऽपि नास्ति इति सुव्यक्त । सयोगकेवलिदिव्यध्वनेः कथं सत्यानुभयवाग्योगत्वमिति चेतन्न तदुत्पत्तावनक्षरात्मकत्वेन श्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धेः । तदनंतरं च श्रोतृजनाभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वेन सत्यवाग्योगत्वसिद्धेश्च तस्यापि तदुभयत्वघटनात् ॥ २२७ ॥ अथ सयोगकेवलिनि मनोयोगसंभवप्रकारं गाथाद्वयेनाह——

मं० प्र०——सत्यमनोयोगस्य सत्यवाग्योगस्य अनुभयमनोयोगस्य अनुभयवाग्योगस्य च पर्याप्तनामकर्मोदयः शरीरनामकर्मोदयश्च खलु-स्फुटं, मूलनिमित्तं प्रधानकारण भवति । सामान्यस्य विशेषाविनाभावित्वेन मनोवचनसामान्यग्रहणेन तद्विशेषसत्यानुभयग्रहणं सिद्धं अनपवादत्वात् । आवरणस्य मंदोदयत्वात् सतोऽप्यसत्यत्वजनकत्वाभावात् मृषोभयोः असत्यमनोवाग्योगयोः उभयमनोवाग्योगयोश्च तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरण मूलनिमित्तं खलु भवति । अयं

तु विशेषः—तीव्रतरानुभागोदयविशिष्टमावरणमसत्यमनोवाग्योगकारणं । तीव्रानुभागोदयविशिष्टमावरणमुभयमनोवाग्योगकारणमिति । दर्शनचारित्रमोहोदययोरसत्योभययोगकारणत्वं कुतो नोक्तमिति चेत्तन्न, मिथ्यादृष्टिरिवासंयतसम्यग्दृष्टेः संयतस्यापि तद्योगसद्भावात् । सर्वत्र मिथ्यादृष्ट्यादिषु सत्यासत्ययोगव्यवहारस्य आवरणमंदतीव्रानुभागोदयजनितत्वेन प्रवचनप्रसिद्धत्वात् । केवलिनि तु सत्यानुभययोगव्यवहारः सर्वावरणक्षयजनित इति ज्ञातव्यः । अयोगकेवलिनि शरीरनामकर्मोदयाभावेन योगाभावात् सत्यानुभयव्यवहारो नास्तीति सुव्यक्तं । सयोगकेवलिनां दिव्यध्वनेः कथ सत्यानुभयवाग्योगत्व ? इति चेत्तन्न उत्पत्तौ अनक्षरात्मकतया श्रोतृश्रोत्रप्रदेशप्राप्तिसमयपर्यंतमनुभयभाषात्वसिद्धेः तदनंतरं श्रोतॄणामभिप्रेतार्थेषु संशयादिनिराकरणेन सम्यग्ज्ञानजनकत्वात् सत्यवाग्योगसिद्धेश्च ॥ २२७ ॥ अथ सयोगकेवलिनि मनोयोगसंभवप्रकारं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

सं० च०---सत्यमनोयोग वा अनुभय मनोयोग बहुरि सत्यवचन योग वा अनुभय वचन योग इनिका मुख्य कारण पर्याप्तनामा नामकर्मका उदय अर शरीरनामा नामकर्मका उदय जानना । जातैं सामान्य है सो विशेष विना न हो है तातैं मन वचनका सामान्य ग्रहण हूवा तहां उसहीका विशेष जो है सत्य अर अनुभय ताका ग्रहण सहज ही सिद्ध भया । अथवा असत्य उभयका आगैं निकट ही कथन है तातैं इहां अवशेष रहे सत्य अनुभय तिनिका ही ग्रहण करना । बहुरि आवरणका मंद उदय होतैं असत्यपनाकी उत्पत्ति नाहीं हो है । तातैं असत्य वा उभय मनोयोग अर वचनयोगका मुख्यकारण आवरणका तीव्र अनुभागका उदय जानना । इसहूविषैं इतनां विशेष है जो तीव्रतर आवरणके अनुभागका उदय असत्य मन वचनकौं कारण है अर तीव्र आवरणके अनुभागका उदय उभय मन वचनकौं कारण है । इहां कोऊ कहै कि असत्य वा उभय मन वचनका कारण दर्शन चारित्र मोहका उदय क्यों न कह्यौ ? ताका समाधान-कि असत्य अर उभय मन वचन योग मिथ्यादृष्टीवत् असंयत सम्यग्दृष्टीकैं वा संयमीकैं भी पाइए तातैं तू कहै सो बनै नाहीं तातैं सर्वत्र मिथ्यादृष्टी आदि जीवनिके सत्य असत्य योगका कारण मंद वा तीव्र आवरणके अनुभागका उदय जानना । केवलीकैं सत्य अनुभय योगका सद्भाव सर्व आवरणके अभावतैं जानना । अयोग केवलीकैं शरीर नामा नाम कर्मका उदय नाहीं तातैं सत्य अर अनुभय योगका भी सद्भाव नाहीं है । इहां प्रश्न उपजै है कि—केवलीकैं दिव्यध्वनि है ताकैं सत्य-

वचनपनां वा अनुभय वचनपना कैसैं सिद्धि हो है? ताका समाधान-केवलीकै दिव्यध्वनि हो है सो होते ही तौ अनक्षर हो है सो सुनने वालोंके कर्णप्रदेशकौं यावत् प्राप्त न होइ तावत् कालपर्यंत अनक्षर ही है। तातैं अनुभय वचन कहिए। बहुरि जब सुननेवालोंका कर्णविषैं प्राप्त हो है तब अक्षर रूप होइ यथार्थ वचनका अभिप्राय रूप संशयादिककौं दूर करे है तातैं सत्य वचन कहिए। केवलीका अतिशयकरि पुद्गल वर्गणा तैसैं ही परिणमि जांय हैं ॥ २२७ ॥ आगैं सयोग केवलीकैं मनोयोग कैसैं संभवै है सो दोय गाथानिकरि कहै हैं—

मणसहियाणं वयणं दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्मि ॥ २२८ ॥

मनःसहितानां वचनं दृष्टं तत्पूर्वमिति सयोगे।
उक्तो मन उपचारेणेंद्रियज्ञानेन हीने ॥ २२८ ॥

जी० प्र०—इंद्रियज्ञानेन—मतिज्ञानेन, विहीने सयोगिनि मुख्यवृत्त्या मनोयोगाभावेऽपि उपचारेण मनोयोगोऽस्तीति परमागमे कथितः। उपचारो हि निमित्तप्रयोजनवानेव तत्र निमित्तं यथा अस्मदादेः छद्मस्थस्य मनोयुक्तस्य तत्पूर्वकं मनःपूर्वकमेव वचनं वर्णपदवाक्यात्मकवाग्व्यापारो दृष्ट इति,कारणात्। अस्मदाद्यनतिशयपुरुषदृष्टो धर्मः सातिशयपुरुषे भगवति केवलिनि कथं कल्पते? इति न च वाच्यं, तत्कारणस्य मुख्यमनोयोगस्य केवलिन्यभावादेव तत्कल्पनारूपोपचारः कथितः। तस्य प्रयोजनमधुना कथयति ॥ २२८ ॥

सं० प्र०—इंद्रियज्ञानेन मतिज्ञानेन हीने सयोगकेवलिनि मुख्यवृत्त्या मनोयोगाभावादुपचारेण मनोयोगोऽस्तीति परमागमे उक्तः। तस्योपचारस्य निमित्तप्रयोजनपूर्वकत्वात्। तत्र तावन्निमित्तमुच्यते-अस्मादृशां छद्मस्थानां मनःसहितानां, तत्पूर्वं-मनःपूर्वमेव, वचनं वर्णपदवाक्यात्मकवाग्व्यापारो दृष्ट इतिहेतोर्निमित्तात्। इति शब्दस्य हेत्वर्थवृत्तिसद्भावात्। अस्मदादिषु अनतिशयपुरुषेषु दृष्टो धर्मः सातिशयपुरुषे भगवति कथं कल्प्यते? इति चेत्तन्न अत एव- तत्र मुख्यस्य मनोयोगस्याभावादेव तत्कल्पनारूप उपचार उक्तः। तस्य प्रयोजनमिदानीमुच्यते ॥ २२८ ॥

सं० च०—इंद्रिय ज्ञान जो मतिज्ञान तींहिकरि रहित ऐसा जु सयोग केवली तींहिविषै मुख्यपनैं तौ मन योग है नाहीं, उपचारतैं है सो उपचारविषै निमित्तका प्रयोजन है सो निमित्त इहां यहु जानना जैसैं हम आदि

छद्मस्थ जीव मनकरि संयुक्त तिनिके मनोयोग पूर्वक अक्षर पद वाक्य स्वरूप वचन व्यापार देखिए है तातै केवलीकैं भी मनयोगपूर्वक वचन योग कह्या। इहां प्रश्न–कि छद्मस्थ हम आदि अतिशय रहित पुरुषनिविषै जो स्वभाव देखिए सो सातिशय भगवान केवलीविषै कैसैं कलिपए ताका समाधान-साहश्यपना नाहीं है इस ही वासतै छद्मस्थकै मनयोग मुख्य कह्या अर केवलीकै कल्पनामात्र उपचाररूप मन योग है ॥ २२८ ॥ सो इस कहनेका भी प्रयोजन कहै हैं–

अंगोवंगुदयादो दव्वमणट्ठं जिणंदचंदह्मि ।
मणवग्गणखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो ॥२२९॥

अंगोपांगोदयात् द्रव्यमनोऽर्थं जिनेंद्रचंद्रे ।
मनोवर्गणास्कंधानामागमनात् तु मनोयोगः ॥ २२९ ॥

जी० प्र०—जिनेंद्रचंद्रे--जिनः इंद्रो येषां ते जिनेंद्राः सम्यग्दृष्टयः, तेषां चंद्र इव चंद्रः, भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात् तस्मिन् जिनेंद्रचंद्रे अंगोपांगनामकर्मोदयेन द्रव्यमनः विकसिताष्टदलपद्माकारेण हृदयांतर्भागे भवति तत्परिणमनकारणमनोवर्गणास्कंधानामागमनात् द्रव्यमनःपरिणमनेन प्राप्तिरूपप्रयोजनात् पूर्वोक्तनिमित्तात् मुख्यभावमनोयोगाभावाच्च उपचारेण मनोयोगोऽस्तीत्युच्यते। अथवा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिरूपो भावमनोयोगः तत्समुद्भूतो मनोवर्गणानां द्रव्यमनःपरिणमनरूपो द्रव्यमनोयोगश्च अनेन गाथासूत्रेण भाषितो जातः। पूर्वोक्तोपचारस्य प्रयोजनं तु सर्वजीवदयातत्त्वार्थदेशनाशुक्लध्यानादिकमिति तुशब्देन सूचितं ॥ २२९ ॥ अथ काययोगं कथयन् प्रथमं औदारिककाययोगं निरुक्तिपूर्वकं कथयति—

मं० प्र०---जिनेंद्रचंद्रे--जिनः इंद्रो येषां ते जिनेंद्राः–सम्यग्दृष्टयः, तेषां चंद्र इव चंद्रः, भवतापाज्ञानतमोविनाशकत्वात्, तस्मिन् सयोगकेवलिनि, अंगोपांगनामकर्मोदयाद् द्रव्यमनः विकसिताष्टदलपद्माकारं हृदंतर्भागे भवति तत्परिणमननिमित्तं मनोवर्गणारूपपुद्गलस्कंधानामागमनात् द्रव्यमनःपरिणमनप्राप्तेः प्रयोजनात् पूर्वोक्तनिमित्तात् मुख्यभावमनोयोगाभावाच्च उपचारेण मनोयोगोऽस्तीत्युच्यते। अथवा आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिरूपो भावमनोयोगः, तत: समुत्पन्नो मनोवर्गणानां द्रव्यमनःपरिणमनरूपो द्रव्यमनोयोगश्च अनेन गाथासूत्रेणोक्त इति ज्ञातव्यः। पूर्वोक्तोपचारस्य प्रयोजनं तु सर्वजीवदयातत्त्वार्थदेशनाशुक्लध्यानादिकमिति तु शब्देन सूच्यते ॥ २२९ ॥ अथ काययोगप्ररूपणां प्रक्रममाणस्तावत्तद्भेदमौदारिककाययोगं प्ररूपयति—

सं० च०—जिन है इंद्र कहिए स्वामी जिनिका ऐसे जो सम्यग्दृष्टी तिनिके चंद्रमा समान संसार आताप अर अज्ञान अंधकारका नाश करन हारा ऐसा जो सयोगी जिन तींहिविषै अंगोपांग नामा नाम कर्मके उदयतैं द्रव्य-मन फूल्या आठ पांखडीका कमलके आकार हृदयस्थानकके मध्य पाइए है। ताके परिणमनेकौं कारणभूत मन वर्गणाका आगमनतैं द्रव्य मनका परिणमन है तातैं प्राप्तिरूप प्रयोजनतैं पूर्वोक्त निमित्ततैं मुख्यपनै भावमनयोगका अभाव है तथापि मन योग उपचार मात्र कह्या है। अथवा पूर्व गाथाविषै कह्या था आत्मप्रदेशनिकै कर्म नोकर्मका ग्रहणरूप शक्ति सो भाव मनयोग बहुरि याहीतैं उत्पन्न भया मनोवर्गणारूप पुद्गलनिका मनरूप परिणमना सो द्रव्य मनयोग सो इस गाथा सूत्रकरि संभवै है तातैं केवलीकै मनयोग कह्या है। तु शब्दकरि केवलीकै पूर्वोक्त उपचार कह्या तिसके प्रयोजनभूत सर्वजीवनिकी दया तत्त्वार्थका उपदेश शुक्लध्यानादि सर्व जाननें ॥ २२९ ॥ आगै काययोगका निरूपण प्रारंभै है तहां प्रथम ही काय योगका भेद औदारिक काययोग ताकौं निरुक्तिपूर्वक कहै हैं—

पुरुमहदुदारुरालं एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं।
ओरालियं तमु(त्तिउ)च्चइ ओरालियकायजोगो सो॥२३०॥

पुरुमहदुदारमुरालमेकार्थः संविजानीहि तस्मिन्भवं।
औरालिकं तदुच्यते औरालिककाययोगः सः ॥ २३० ॥

जी० प्र०—उदारं उरालं पुरुमहत् स्थूलमित्यर्थः। स्वार्थे ठण् विधानात् उदारं उरालमेवौदारिकमौरालिकं। उदारे उराले वा भवमौदारिकं औरालिकं वेति भवार्थे ठणिविधानात्। औदारिकमेव उपचितपुद्गलपिंडरूपत्वात् कायः, औदारिकश्चासौ कायश्च औदारिककायः. औदारिकशरीरनामकर्मोदयसंपादित· औदारिकशरीराकारस्थूलपुद्गलस्कंधपरिणामः। वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणामादेव महत्त्वसंभवेन औदारिककाय· स्यात्। सूक्ष्मपृथ्व्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात् कथमस्यौदारिकत्वमिति न वाच्य, ततोऽपि सूक्ष्मतरवैक्रियिकादिशरी

रापेक्षया अस्य महत्त्वयुक्तत्वात् परमागमरूढ्या वा औदारिकत्वं संभवति। औदारिककायार्थं या आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिः सैव औदारिककाययोग इत्युच्यते तदा औदारिकवर्गणास्कंधानां औदारिककायत्वपरिणमनकारणं आत्मप्रदेशपरिस्पंदो वा औदारिककाययोग इति हे भव्य! त्वं जानीहि इति संबोध्यते। अथवा औदारिककाय एव औदारिककाययोग इति कारणे कार्योपचारात्। अयमुपचारोऽपि निमित्तप्रयोजनवानेव। औदारिककायाद् योगः औदारिककाययोग इति निमित्तस्य तद्योगाकृष्टकर्मनोकर्मपरिणामरूपप्रयोजनस्य च संभवात् ॥ २३० ॥
अथ तन्मिश्रयोगं प्ररूपयति—

मं० प्र०—उदारं पुरु महत् स्थूलमित्येकोऽर्थः उरालशब्दो वा तदेव उदारमेव औदारिकं स्वार्थे ठण्विधानात् तस्मिन् उदारे भवं वा औदारिकं भवार्थे ठण्विधानात् औदारिकश्चासौ कायश्चासौ औदारिककायः—औदारिकशरीरनामकर्मोदयसंपादितः औदारिकशरीराकारः स्थूलपुद्गलस्कंधपरिणामः, वैक्रियिकादिशरीरसूक्ष्मपरिणामात् महत्त्वसंभवात्। सूक्ष्मपृथिव्यप्तेजोवायुसाधारणशरीराणां स्थूलत्वाभावात् कथमौदारिकत्वं? इति चेत्तन्न ततः सूक्ष्मतरवैक्रियिकादिशरीरापेक्षया तेषां महत्त्वेन परमागमरूढ्या वा औदारिकत्वसंभवात्। औदारिककायार्थां या आत्मप्रदेशानां कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिः स एव औदारिककाययोग इत्युच्यते। औदारिकवर्गणास्कंधानां औदारिककायत्वपरिणमनहेतुः आत्मप्रदेशपरिस्पंदो वा औदारिककाययोग इति हे भव्य! विजानीहि इति संबोध्यते ॥ २३० ॥ अथ औदारिकायमिश्रयोगं प्ररूपयति----

सं० च०—पुरु वा महत् वा उदार वा उराल वा स्थूल ए एकार्थ हैं सो स्वार्थविषैं ठण् प्रत्ययतैं जो उदार होइ वा उराल होइ सो औदारिक कहिए वा औरालिक भी कहिए। अथवा भव अर्थविषैं ठण् प्रत्ययतैं जो उदारविषै वा उरालविषै उत्पन्न होइ सो औदारिक कहिए वा औरालिक कहिए। बहुरि संचयरूप पुद्गलपिंड सो औदारिक काय कहिए। औदारिक शरीरनामा नामकर्मके उदयतैं निपज्या औदारिक शरीरके आकार स्थूल पुद्गलनिका परिणमन सो औदारिक काय जानना। वैक्रियिक आदि शरीर सूक्ष्म परिणमै है तिनिकी अपेक्षा यहु स्थूल है तातैं औदारिक कहिए है। इहां प्रश्न उपजै है कि सूक्ष्म पृथ्वीकायिकादि जीवनिकै स्थूलपना नाहीं है तिनिकौ औदारिक शरीर कैसै कहिए है? ताका समाधान—इनहूतै वैक्रियिकादिक शरीर सूक्ष्म परिणमै है तातै तिनकी अपेक्षा स्थूलपना आया। अथवा परमागमविषै ऐसा रूढि है तातै समभिरूढिकरि सूक्ष्म जीवनिकैं औदारिक शरीर कह्या सो औदारिक शरीरके निमित्त आत्मप्रदेशनिकै कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्ति सो औ

दारिक काय योग कहिए है। अथवा औदारिक वर्गणारूप पुद्गल स्कंधनिकौं औदारिक शरीररूप परिणमावनेकौं कारण जो आत्मप्रदेशनिका चंचलपना सो औदारिक काययोग है भव्य ! तू जानि। अथवा औदारिक काय सोई औदारिककाय योग है इहां कारणविषैं कार्यका उपचार जानना। इहां उपचार है सो निमित्त अर प्रयोजन धरै है तहां औदारिक कायतैं जो योग भया सो औदारिक काय योग कहिए सो यहु तौ निमित्त बहुरि तिस योगतैं ग्रहे पुद्गलनिका कर्म नोकर्मरूप परिणमन सो प्रयोजन संभवै है। तातैं निमित्त अर प्रयोजनकी अपेक्षा उपचार कह्या है ॥ २३० ॥ आगैं औदारिक मिश्रकाययोगकौं कहैं हैं—

ओरालिय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सजोगो सो ॥ २३१ ॥

औरालिकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्।
यस्तेन संप्रयोगः औरालिकमिश्रयोगः सः ॥ २३० ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तलक्षणमौदारिकशरीरं तदेवांतर्मुहूर्तपर्यंतमपूर्णं अपर्याप्तं तावन्मिश्रमित्युच्यते अपर्याप्तकालसंबंधिसमयत्रयसंभविकार्मणकाययोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागमरूढ्या वा अपर्याप्तं-अपर्याप्तशरीरमिश्रमित्यर्थः। ततः कारणादौदारिककायमिश्रेण सह तदर्थं वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्मनोकर्मादानशक्तिप्रदेशपरिस्पंदयोगः स शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावेन औदारिकवर्गणास्कंधानां परिपूर्ण शरीरपरिणमनासमर्थः औरिककायमिश्रयोग इति विजानीहि ॥ २३१ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगं कथयति—

मं० प्र० --उक्तार्थ-प्रागुक्तलक्षण तदेव औदारिकं शरीर यावदंतर्मुहूर्तपर्यंतं अपूर्णं-अपर्याप्त तावन्मिश्रमित्युच्यते। अपर्याप्तकालसंबंधिसमयत्रयसंभविकार्मणयोगाकृष्टकार्मणवर्गणासंयुक्तत्वेन परमागमरूढ्या वा अपर्याप्तं शरीर मिश्रमित्यर्थः। तेन औदारिककायामिश्रेण सह तदर्थं वर्तमानो यः सप्रयोगः-आत्मनः कर्मनोकर्मादानशक्तिप्रदेशपरिस्पदसंयोगः स शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावात् औदारिकवर्गणास्कंधानां परिपूर्णशरीरपरिणमनासमर्थः औदारिककायामिश्रयोग इति जानीहि ॥ २३१ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगं प्ररूपयति—

सं० च०——पूर्वोक्त लक्षण लीएं जो औदारिक शरीर सो यावत् काल अंतर्मुहूर्त पर्यंत पूर्ण न होइ अपर्याप्त होइ तावत् काल औदारिक मिश्र कहिए। मिश्र नाम अनेकके मिलनेका है सो इहां अपर्याप्त काल संबंधी तीन समयनिविषैं संभवता जो कार्माण योग ताकी उत्कृष्ट कार्माण वर्गणाकरि संयुक्त है तातैं मिश्र नाम है। अथवा परमागमविषैं असैं ही रूढि है। जो अपर्याप्त शरीरकौं मिश्र कहिए सो तींहि औदारिक मिश्रकरि सहित संप्रयोग कहिए ताके अर्थि प्रवर्त्या जो आत्माकैं कर्म नोकर्म ग्रहणेकी शक्ति धरै प्रदेशनिका चंचलपना सो योग है सो शरीर पर्याप्तिकी पूर्णताके अभावतैं औदारिक वर्गणा स्कंधनिकौं संपूर्ण शरीररूप परिणमावनेकौं असमर्थ है असा औदारिक मिश्र काययोग तू जानि ॥ २३१ ॥ आगैं वैक्रियिक काय योगकौं कहै हैं—

विविहगुणइड्ढिजुत्तं विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं।
तिस्से भवं च णेयं वेगुव्वियकायजोगो सो ॥ २३२ ॥

विविधगुणर्द्धियुक्तं विक्रियं वा हि भवति विगूर्वं।
तस्मिन् भवं च ज्ञेयं वैगूर्विककाययोगः सः ॥ २३२ ॥

जी० प्र०——विविधगुणर्धियुक्तं–विविधानां–शुभाशुभप्रकाराणां गुणानां–अणिमाद्यतिशयानां ऋद्धिः–महत्त्व तेन सहितं देवनारकशरीरं वैगूर्वं वैक्रियिकं वा भवति। विगूर्वे–विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्वमिति निर्वचनात्। वैक्रियिकमित्यर्थः। वैगूर्विकमिति पाठे विगूर्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्विकमिति ठण्प्रत्ययविधानात्। अथवा विविधा क्रिया विक्रिया अनेकोऽणिमादिविकार इत्यर्थः। तस्यां विक्रियायां भवं वैक्रियिकं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकं, चशब्दस्य प्रयोजनार्थसमुच्चयार्थत्वात्। यः वैगूर्विककायार्थं तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः स वैगूर्विककाययोग इति ज्ञेयः–ज्ञातव्यः। अथ वा वैक्रियिककाय एव वैक्रियिककाययोगः कारणे कार्योपचारात्, अयमप्युपचारः प्राग्वदेव निमित्तप्रयोजनयुक् ' वैक्रियिककायाद्योगः वैक्रियिककाययोगः इति निमित्तस्य तद्योगात्, कर्मनोकर्मरूपपरिणमनप्रयोजनस्य चात्रापि संभवात् ॥ २३२ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगसंभवस्थानांतरमाह——

सं० प्र०——विविधगुणर्धियुक्तं–विविधाना–शुभाशुभप्रकाराणां, गुणानां–अणिमाद्यतिशयानां, ऋद्धि–महत्त्वं, तद्युक्तं देवनारकाणां शरीरं वैगूर्वं। विगूर्वे-

विविधगुणोद्योगे भवं वैगूर्वमिति निर्वचनात् । वैक्रियिकमित्यर्थः । वैगूर्विकमिति च पाठः । तत्र विगूर्वः प्रयोजनमस्येति वैगूर्विकमिति निरुक्तिः । अथवा विविधा क्रिया-विक्रिया अनेकाणिमादिविकारः तस्यां भवं सा प्रयोजनमस्येति वा वैक्रियिकं । चशब्देन प्रयोजनार्थः समुच्चीयते । य एवंविधवैगूर्विकका-यार्थस्तद्रूपपरिणमनयोग्यशरीरवर्गणास्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः स वैगूर्विककाययोग इति वैक्रियिककाययोग इति ज्ञेयं ॥ २३२ ॥ अथ वैक्रियिककाययोगस्य संभवस्थानांतरं प्ररूपयति–

सं० च०—विविध नानाप्रकार शुभ अशुभरूप अणिमा महिमा आदि गुण तिनकी ऋद्धि जो महंतता तींहिकरि संयुक्त देवनारकीनिका शरीर सो वैगूर्व कहिए वा वैगूर्विक कहिए वा वैक्रियिक कहिए। तहां विगूर्व कहिए नानाप्रकार गुण तिसविषैं भया सो वैगूर्व है अथवा विगूर्व है प्रयोजन जाका सो वैगूर्विक है। इहां ठण् प्रत्यय आया है। अथवा विविध नानाप्रकार जो क्रिया अनेक अणिमा आदि विकार सो विक्रिया तहां भया होइ वा सो विक्रिया जाका प्रयोजन होइ सो वैक्रियिक है। ऐसी निरुक्ति जानना। सो वैगूर्विक शरीरके अर्थि तिस शरीररूप परिणमने योग्य जो आहार वर्गणारूप स्कंधनिके ग्रहण करणेकी शक्ति धरैं आत्मप्रदेशनिका चंचलपना सो वैगूर्विक काय योग जानना। अथवा वैक्रियिक काय सोई वैक्रियिक काय योग है इहां कारण-विषै कार्यका उपचार जानना। सो यहु उपचार निमित्त अर प्रयोजन पूर्ववत् धरैं है। तहां वैक्रियिक कायतैं जो योग भया सो वैक्रियिक काय योग है। यहु निमित्त अर तिहिं योगतैं कर्म नोकर्मका परिणमन होना सो प्र-योजन संभवै है॥ २३२ ॥ आगै देवनारकीकैं तौ कह्या और भी किसी किसीकै वैक्रियिक काययोग सं-भवै है सो कहै है–

वादरतेऊवाऊ,पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति ।
ओरालियं सरीरं विगुव्वणप्पं हवे जेसिं ॥२३३॥

वादरतेजोवायुपंचेंद्रियपूर्णका विगूर्वंति ।

औरालिकं शरीरं विगूर्वणात्मकं भवेद्येषां ॥ २३३ ॥

जी० प्र०---बादरा एव स्थूला एव तेजस्कायिका. वायुकायिकाश्च तथा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याः औ स्वस्वौदारिकशरीरं विगूर्वंति--विकुर्वंति वा । ते के ? येषां जीवानां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मकं विक्रियात्मकं भवेत् ते जीवाः क्रियया परिणमतीत्यर्थः । भोगभूमिजाः चक्रवर्तिनश्च पृथग् विगूर्वंति ॥२३३॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

मं.प्र.--बादराः--स्थूलाः तेजस्कायिका वायुकायिकाश्च पचेंद्रियपूर्णकाः संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताश्च तिर्यंचो मनुष्याश्च भोगभूमिजादयः, ते विगूर्वंति-वा। कथंभूतास्ते ? येषां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मक विक्रियात्मकं भवेत् ते अपृथग्विक्रियया-परिणमतीत्यर्थ । भोगभूमिजा चक्रवर्तिनश्च पृथगपि २३४ ॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

सं० च०--बादर तेजकायिक बातकायिक जीव बहुरि कर्मभूमिविषैं जे उत्पन्न भए चक्रवर्तिकौं देकरि सैनी पंचेद्री पर्याप्त तिर्यंच वा मनुष्य बहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य ते औदारिक शरीरकौं विक्रियारूप परिणमावे हैं। जिनिका औदारिक शरीर ही विक्रियालीएं पाइए है ते जीव अपृथक् विक्रिया रूप परिणमै हैं। अर भोगभूमियां चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करै है। जो अपने शरीरतैं भिन्न अनेक शरीरादिक विकार रूप करै सो पृथक विक्रिया कहिए। बहुरि जो अपने शरीरहीकौं अनेक विकार रूप करै सो अपृथक् विक्रिया कहिए॥ २३३ ॥ आगैं वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहै हैं--

वेगुव्वियउत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपयोगो वेगुव्वियमिस्सजोगो सो ॥ २३४ ॥

वैगूर्विकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगो वैगूर्विकमिश्रयोगः सः ॥ २३४ ॥

जी० प्र०---उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षण तत् वैगूर्विकशरीरमेव वैक्रियिकशरीरमेव वा यावदन्तर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालपर्यंतं अपरिपूर्णं शरीरपर्या-

आहरदि अणेण मुणी सुहमे अत्थे सयस्स संदेहे ।
गत्ता केवलिपासं तह्मा आहारगो जोगो ॥ २३९ ॥

आहरत्यनेन मुनिः सूक्ष्मानर्थान् स्वस्य संदेहे ।
गत्वा केवलिपार्श्वं तस्मादाहारको योगः ॥ २३९ ॥

जी० प्र०—यतः कारणात् आहारकर्धियुक्तः प्रमत्तमुनीश्वरः स्वस्य प्रवचनपदार्थेषु संशये जाते तद्व्यवच्छेदार्थं अनेनाहारकशरीरेण केवलिश्रीपादपार्श्वे गत्वा सूक्ष्मार्थान् आहरति गृह्णाति इत्याहारः, आहार एव आहारकशरीरं ततः कारणाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तौ सत्यां आहारकवर्गणाभिः आहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यं ॥ २३९ ॥ अथ तन्मिश्रयोगं प्ररूपयति —

मं० प्र०—मुनिः—आहारकर्धियुक्तः प्रमत्तसंयतः, स्वस्य प्रवचनपदार्थेषु सशये जाते सति तद्व्यच्छेदार्थं अनेन केवलिपार्श्वं गत्वा सूक्ष्मानर्थानाहरति—गृह्णातीत्याहारः आहार एव आहारक शरीरं यतस्तस्मात् कारणात् शरीरपर्याप्तिनिष्पत्तौ सत्या आहारकवर्गणापुद्गलस्कंधाकर्षणशक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पंदः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यः ॥ २३९ ॥ आहारककायमिश्रयोगं प्ररूपयति—

सं०च०—आहारक ऋद्धिकरि संयुक्त प्रमत्त मुनि सो पदार्थनिविषैं आपके संदेह होतैं ताके दूरि करनेके अर्थि केवलीके चरणके निकट जाइ आपतैं अन्य जो केवली तीहिकरि जो सूक्ष्म यथार्थ अर्थकौं आहरति कहिए ग्रहण करै सो आहारक कहिए । आहारस्वरूप होइ ताकौं आहारक कहिए । सो ताकैं शरीर पर्याप्ति पूर्ण होतैं आहार वर्गणानिकरि आहारक शरीर योग्य पुद्गलस्कंधानिके ग्रहण करनेकी शक्ति धरै आत्मप्रदेशनिका चंचलपना सो आहारक काययोग जानना ॥ २३९ ॥ आगैं आहारक मिश्र काययोगकौं कहै हैं—

आहारयमुत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सजोगो सो ॥२४०॥

आहारकमुक्तार्थं विजनीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत्।
यस्तेन संप्रयोगः आहारकमिश्रयोगः सः ॥ २४० ॥

जी० प्र०——यत् उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपं आहारकशरीरं तदेव यावदपर्याप्तकालांतर्मुहूर्तपर्यंतमपरिपूर्णं आहारकवर्गणायातपुद्गलस्कंधान् आहा-
रकशरीराकारेण परिणमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते। तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वेन ताभिः सह वर्तमानो यः संप्रयोगः--
अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पंदः स आहारककायमिश्रयोग इति भण्यते। तु शब्दः इममर्थं हे भव्य! त्वं जानीहि इति विशेषं कथयति ॥
२४० ॥ अथ कार्मणकाययोगमाह—

म० प्र०----उक्तार्थं प्रागुक्तस्वरूपं, तदाहारकशरीरमेव यावदपर्याप्तकालांतर्मुहूर्तपर्यंतमपरिपूर्णमाहारकवर्गणायातपुद्गलस्कंधं आहारकशरीराकारेण परि-
णमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणामिश्रत्वात् तेन सह वर्तमानो यः संप्रयोगः अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पंदः स
आहारककायमिश्रयोग इति भण्यते। तुशब्दः इममर्थं हे भव्य! जानीहीति विशेषं प्रदर्शयति ॥ २४० ॥ अथ कार्मणकाययोगं प्ररूपयति—

सं० च०——पूर्वोक्त लक्षण लीएं आहारक शरीर सो यावत् काल अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण न होइ आहार वर्ग-
णारूप पुद्गल स्कंधनिका आहारक शरीररूप परिणमावनेकौं असमर्थ होइ तावत् काल आहारक मिश्र कहिए।
इहां पूर्वै जो औदारिक शरीररूप वर्गणा है ताके मिलापतैं मिश्रपना जानना। तींहिं आहारक मिश्रकरि सहित
जो संप्रयोग कहिए अपूर्ण शक्तियुक्त आत्माके प्रदेशनिका चंचलपना सो आहारक मिश्रकाययोग है भव्य! तू
जानि ॥ २४० ॥ आगैं कार्माण काय योगकौं कहैं हैं—

कम्मेव य कम्मभवं कम्मइयं जो दु तेण संजोगो।
कम्मइयकायजोगो इगिविगतिगसमयकालेसु ॥२४१॥

कर्मैव च कर्मभवं कार्मणं यस्तु तेन संयोगः।
कार्मणकाययोगः एकद्विकत्रिकसमयकालेषु ॥ २४१ ॥

जी० प्र०---कर्मैव--अष्टविधकर्मस्कंध एव, कार्मणं--कार्मणशरीरं, अथवा कर्मभवं--कार्मणशरीरनामकर्मोदयजातं तत् कार्मणं तेन कार्मणस्कंधेन सह वर्तमानो यः संप्रयोगः आत्मनः कर्माकर्षणशक्तिसंगतप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स कार्मणकाययोग इत्युच्यते । स कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयविशिष्टविग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घातसंबंधिप्रतरद्वयलोकपूरणे समयत्रये च प्रवर्तते शेषकाले नास्तीति विभागः तुशब्देन सूच्यते । अनेन शेषयोगानामव्याघातविषये अंतर्मुहूर्तकालो व्याघातविषये एकसमयादि यथासंभवांतर्मुहूर्तपर्यंतकालश्च एकजीवं प्रति भणितो भवति । नानाजीवापेक्षया उवसमसुहमेत्याद्यष्टसांतरमार्गणावर्जितशेषनिरंतरमार्गणानां सर्वकालः इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥ २४१ ॥ अथ योगप्रवृत्तिप्रकारमाह----

मं० प्र०----कर्मैव -अष्टविधकार्मणस्कंध एव कार्मणशरीरं, वा अथवा कर्मभवं--कार्मणशरीरनामकर्मोदयप्रभवं कार्मणशरीरं खलु--स्फुटं, भवति तेन कार्मणशरीरेण सह वर्तमानो य संयोगः आत्मनः कर्माकर्षणशक्तिसंगतप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स कार्मणकाययोग इत्युच्यते । सोऽपि कार्मणकाययोगः एकद्वित्रिसमयाविशिष्टेषु विग्रहगतिकालेषु केवलिसमुद्घातसंबंधिषु प्रतरद्वयलोकपूरणसमयेषु वा त्रिषु प्रवर्तते नान्यकाले इति विभागः तुशब्देन सूचित. । अनेन शेषयोगानामव्याघातविषये अंतर्मुहूर्त कालः व्याघातविषये एकसमयादियथासंभवान्तर्मुहूर्तपर्यंतः एकजीव प्रति भणितः । नानाजीवान् प्रति अष्ट, उवसमसुहमेत्यादि सांतरमार्गणाः मुक्त्वा शेषनिरंतरमार्गणाना सर्वकाल इति विशेषो ज्ञातव्यः ॥ २४१ ॥ अथ योगप्रवृत्तिप्रकार प्ररूपयति--

सं० च०---कर्म कहिए ज्ञानावरणादिरूप पुद्गलस्कंध सोई कार्माण शरीर जानना । अथवा कर्म जो कार्माण शरीर नामा नामकर्म ताके उदयकरि भया सो कार्माण शरीर कहिए तींहि कार्माण स्कंधसहित वर्तमान जो संप्रयोगः कहिए आत्माके कर्मग्रहणशक्ति धरै प्रदेशनिका चंचलपना सो कार्माणकाय योग है सो विग्रह गतिविषैं एक समय वा दोय समय वा तीन समय काल प्रमाण हो है अर केवल समुद्घातविषैं प्रतरद्विक अर लोकपूर्ण इनि तीन समयनिविषैं हो है और कालविषैं कार्माण योग न हो है । याहीतैं यहु जान्या जो कार्माणविना और जे योग कहे ते रुकै नाहीं तौ अंतर्मुहूर्त पर्यंत एक योगका परिणमन उत्कृष्ट रहै पीछैं और योग होइ । बहुरि जो अन्यकरि रुकै तौ समयकौं आदि देकरि अंतर्मुहूर्तपर्यंत एक योगका परिणमन यथासंभव जानना । सो एक जीवकी अपेक्षा तौ ऐसैं है अर नाना जीवकी अपेक्षा 'उपसम सुहुम' इत्यादि गाथानिकरि आठ सांतर मार्गणा विना अन्य मार्गणानिका सर्वकाल सद्भाव कह्या हो है ॥ २४१ ॥ आगै योगनिकी प्रवृत्तिका विधान दिखावै है—

औरालिकं शरीरं विगूर्वणात्मकं भवेद्येषां ॥ २३३ ॥

जी० प्र०---बादरा एव स्थूला एव तेजस्कायिकाः वायुकायिकाश्च तथा संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिर्यग्मनुष्याः भोगभूमितिर्यग्मनुष्याश्च स्वस्वौदारिकशरीरं विगूर्वंति--विकुर्वंति वा । ते के ? येषां जीवानां औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मकं विक्रियात्मक भवेत् ते जीवाः अपृथग्वि-क्रियया परिणमतीत्यर्थः । भोगभूमिजाः चक्रवर्तिनश्च पृथग् विगूर्वंति ॥२३३॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

मं.प्र.--बादराः--स्थूलाः तेजस्कायिका वायुकायिकाश्च पचेंद्रियपूर्णकाः संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताश्च तिर्यंचो मनुष्याश्च भोगभूमिजादयः, ते विगूर्वंति-विकुर्वंति वा। कथंभूतास्ते ? येषा औदारिकशरीरमेव विगूर्वणात्मक विक्रियात्मकं भवेत् ते अपृथग्विक्रियया परिणमतीत्यर्थ. । भोगभूमिजा. चक्रवर्तिनश्च पृथगपि विकुर्वंति॥ २३४ ॥ अथ वैक्रियिककायमिश्रयोगं प्ररूपयति--

सं० च०--बादर तेजकायिक वातकायिक जीव बहुरि कर्मभूमिविषैं जे उत्पन्न भए चक्रवर्तिकौं आदि देकरि सैनी पंचेंद्री पर्याप्त तिर्यंच वा मनुष्य बहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य ते औदारिक शरीरकौं विक्रियारूप परिणमावै हैं। जिनिका औदारिक शरीर ही विक्रियालीएं पाइए है ते जीव अपृथक् विक्रिया रूप परिणमै हैं। अर भोगभूमियां चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करै है। जो अपने शरीरतैं भिन्न अनेक शरीरादिक विकार रूप करै सो पृथक विक्रिया कहिए। बहुरि जो अपने शरीरहीकौं अनेक विकार रूप करै सो अपृथक् विक्रिया कहिए ॥ २३३ ॥ आगैं वैक्रियिक मिश्रकाय योग कहै हैं--

वेगुव्वियउत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं ।
जो तेण संपयोगो वेगुव्वियमिस्सजोगो सो ॥ २३४ ॥

वैगूर्विकमुक्तार्थं विजानीहि मिश्रं तु अपरिपूर्णं तत् ।
यस्तेन संप्रयोगो वैगूर्विकमिश्रयोगः सः ॥ २३४ ॥

जी० प्र०--उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणं तत् वैगूर्विकशरीरमेव वैक्रियिकशरीरमेव वा यावदंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालपर्यंतं अपरिपूर्णं शरीरपर्या-

सिनिष्पत्त्यभावेन वैक्रियिककाययोगजननासमर्थं तावत् तु पुनः औदारिककायमिश्रवन्मिश्रमिति जानीहि तेन वैक्रियिककायमिश्रेण सह यः संप्रयोगः कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिसंगतापर्याप्तकालमात्रात्मप्रदेशपरिस्पंदरूपो योगः स वैक्रियिककायमिश्रयोगः अपर्याप्तयोगे मिश्रकाययोग इत्यर्थः ॥ २३४ ॥ अथाहारककाययोगं गाथापंचकेनाह----

मं० प्र०---उक्तार्थं प्रागुक्तलक्षणं, तत्–वैगूर्विकशरीरमेव यावदंतर्मुहूर्तमात्रापर्याप्तकालपर्यंतमपरिपूर्णं शरीरपर्याप्तिनिष्पत्त्यभावात् वैक्रियिककाययोगजननासमर्थं तावत् तु पुनः, औदारिककायमिश्रवत् मिश्रमिति जानीहि । तेन वैक्रियिककायमिश्रेण सह वर्तमानः सप्रयोगः कर्मनोकर्माकर्षणशक्तिसंगतः अपर्याप्तकालप्रमितः आत्मप्रदेशपरिस्पदरूपो योगः स वैक्रियिककायमिश्रयोगो भवति, अपर्याप्तयोगो मिश्रकाययोग इत्यर्थः ॥ २३४ ॥ अथाहारककाययोग गाथापंचकेन प्ररूपयति---

सं० च०---पूर्वोक्त लक्षणने लीएं जो वैगूर्विक वा वैक्रियिक शरीर सो यावत् काल अंतर्मुहूर्तपर्यंत पूर्ण न होइ–शरीर पर्याप्तिकी संपूर्णताका अभावकरि वैक्रियिक काययोग उपजावनेकौं असमर्थ होइ तावत काल वैक्रियिक मिश्र कहिए। मिश्रपना इहां भी औदारिक मिश्रवत् जानना। तींहि वैक्रियिक मिश्रकारि सहित संप्रयोग कहिए कर्म नोकर्म ग्रहणकी शक्तिकौं प्राप्त अपर्याप्त कालमात्र आत्माके प्रदेशनिका चंचल होना सो वैक्रियिक मिश्र काययोग कहिए। अपर्याप्त योगका नाम मिश्र योग जानना ॥ २३४ ॥ आगैं आहारक काय योगकौं पांच गाथानिकरि कहै हैं–

आहारस्सुदएण य पमत्तविरदस्स होदि आहारं ।
असंजमपरिहरणट्ठं संदेहविणासणट्ठं च ॥ २३५ ॥

आहारस्योदयेन च प्रमत्तविरतस्य भवति आहारकं ।
असंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशनार्थं च ॥ २३५ ॥

जी० प्र०---प्रमत्तविरतस्य आहारशरीरनामकर्मोदयेन आहारवर्गणागतपुद्गलस्कंधानां आहारकशरीररूपपरिणमनेनाहारकशरीरं भवति

परिनिष्क्रमणप्रभृतिकल्याणे च संवृत्ते-वर्तमाने सति असंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशार्थं जिनजिनगृहवंदनार्थं च गंतुमुद्युक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारकशरीरं भवति ॥ २३६ ॥

सं० च०-निज क्षेत्र जहां अपनी गमनशक्ति होइ तहां केवली श्रुतकेवली न पाइए । बहुरि परक्षेत्र जहां अपने औदारिक शरीरकी गमन शक्ति न होइ तहां केवली श्रुतकेवली होइ अथवा तहां तप ज्ञान निर्वाण कल्याणक होइ तौ तहां असंयम दूर करनेके निमित्त, वा संदेह दूर करनेके निमित्त, वा जिन अर जिनमंदिर तिनकी वंदना करनेके निमित्त, गमनकरनेकौं उद्यमी भया जो प्रमत्त संयमी ताकैं आहारक शरीर हो है ॥२३६॥

उत्तमअंगम्हि हवे धादुविहीणं सुहं असंहणणं ।
सुहसंठाणं धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदयं ॥ २३७ ॥

उत्तमांगे भवेत् धातुविहीनं शुभमसंहननं ।
शुभसंस्थानं धवलं हस्तप्रमाणं प्रशस्तोदयं ॥ २३७ ॥

जी० प्र०---तदाहारकशरीरं कथंभूतं ? धातुविहीनं रसादिसप्तधातुरहितं, शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवविशिष्टं, असंहननं-अस्थिबंधनरहितं, शुभसंस्थान-प्रशस्तसमचतुरस्रसंस्थानांगोपांगविन्यासयुतं, धवलं-चंद्रकांतनिर्मितमिवातिविशदं, हस्तप्रमाण चतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितं प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिषु आहारकशरीरतद्बंधनसंघातांगोपांगादिप्रशस्तप्रकृत्युदययुतं, एवंविधं आहारकशरीरं उत्तमांगे भवेत् जायते ॥ २३७ ॥

मं० प्र०---तदाहारकशरीर कथमूतमित्याह--धातुविहीनं--रसादिसप्तधातुरहितं । पुनः कीदृशं ? शुभं--शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवं । पुनरपि कथंभूत ? असहनन-अस्थिबंधनरहितं, पुनरपि किंविशिष्टं ? शुभसंस्थान--शुभं-प्रशस्तं, समचतुरस्राख्य संस्थानं-अंगोपांगविन्यासो यस्य तत् शुभसंस्थान । भूयोऽपि कीदृशं ? धवलं--चंद्रकातनिर्मितमिवातिविशदं । भूयोपि किंविशिष्ट ? हस्तप्रमाणं चतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितं । पुनरपि कीदृशं ? प्रशस्तोदयं आहारकशरीरबंधनसंघातांगोपांगादिप्रशस्तप्रकृत्युदयसहितं एवंविधमाहारकशरीरमुत्तमांगे भवेत्--जायेत ॥ २३७ ॥

सं० च०-सो आहारक शरीर कैसा हो है रसादिक सप्त धातुकरि रहित हो है । बहुरि शुभ नाम कर्मके

वेगुव्वियआहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदह्मि ।
जोगोवि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण ॥ २४२॥

वैगूर्विकाहारकक्रिया न समं प्रमत्तविरते ।
योगोऽपि एककाले एक एव च भवति नियमेन ॥ २४२ ॥

जी० प्र०----प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च द्वे युगपन्न संभवतः । तद्यथा—कदाचिदाहारकयोगमवलंब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते तदा विक्रियर्द्धिवलेन वैक्रियिकयोगमवलंब्य वैक्रियिकक्रिया न घटते । आहारकर्धिविक्रियर्ध्योस्तस्य युगपद्वृत्तिविरोधात् । अनेन गणधरादीनां इतरर्धियुगपद्वृत्तिसंभवः सूचितः । तथा योगोऽपि एककाले स्वयोग्यांतर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति द्वौ त्रयो वा योगा एकजीवे युगपन्न संभवंति तथा सति एकयोगकाले अन्ययोगकार्यरूपगमनादिक्रियाणां संभवो नामातिक्रांतयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते कुलालदंडप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलेन चक्रभ्रमणवत्संस्कारक्षये वाणपतनवत्क्रियानिवृत्तिदर्शनादेव संस्कारवशेन युगपदनेकक्रियाप्रवृत्तिप्रसंगे सति प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोः युगपत्प्रवृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितो जातः ॥ २४२ ॥ अथ योगरहितात्मस्वरूपं प्ररूपयति—

म० प्र०---प्रमत्तविरते वैक्रियिकयोगक्रिया आहारकयोगक्रिया च समं युगपन्न संभवतः । यदा आहारकयोगमवलंब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते तदा विक्रियर्धिवलेन वैक्रियिकयोगमवलंब्य क्रिया तस्य न घटते आहारकर्धिविक्रियर्ध्योर्युगपद्वृत्तिविरोधात् । अनेन गणधरादीनामितरर्धियुगपद्वृत्तिसंभवो दर्शितः । तथा योगोऽपि एकस्मिन् काले स्वयोग्यांतर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति न द्वौ त्रयो वा योगाः, तथापि एकयोगकाले अन्ययोगकार्याणां गमनादिक्रियाणां संभवोऽतिक्रांतयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते, कुलालदंडप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलाच्चक्रभ्रमणवत् । संस्कारक्षये तु वाणपतनवत् क्रियानिवृत्तिर्दृश्यते । अत एव संस्कारवशाद् युगपदनेकक्रियाप्रवृत्तिप्रसंगे प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोर्युगपद्वृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितः॥२४२॥ अथ योगरहितात्मस्वरूपं प्ररूपयति--

सं० च०----प्रमत्तविरत षष्ठम गुणस्थानवर्ती मुनिकैं समकालविषैं युगपत् वैक्रियिक काययोगकी क्रिया अर आहारक योगकी क्रिया नाहीं । ऐसा नाहीं कि एकही कालविषैं आहारक शरीरकौं धारि गमनागमनादि कार्यकौं करैं अर विक्रिया ऋद्धिकौं धारि विक्रिया संबंधी कार्यकौं भी करै, दोऊपेंस्यौं एकही होइ यातैं यहु जा-

न्या कि गणधरादिकनिकैं और ऋद्धि युगपत् प्रवर्तें तौ विरुद्ध नाहीं । बहुरि तैसैं ही अपने योग्य अंतर्मुहूर्त मात्र एक कालविषैं एक जीवकैं युगपत् एकही योग होइ, दोय वा तीन योग युगपत् न होइ यहु नियम है । जो एक योगका कालविषैं अन्य योग संबंधी गमनादि क्रियाकी प्रवृत्ति देखिए है सो पूर्वैं जो योग भया था ताके संस्कारतैं हो है । जैसैं कुंभार पहिले चाक दंडकरि फेन्या था पीछे कुंभार उस चाककौं छांडि अन्य कार्यकौं लाग्या वह चाक संस्कारके बलतैं केतेक काल आप ही फिन्या करै संस्कार मिटि जाय तब फिरै नाहीं तैसैं आत्मा पहिले जिस योगरूप परिणया था सो उसको छांडि अन्य योगरूप परिणया वह योग संस्कारके बलतैं आप ही प्रवर्तै है । संस्कार मिटैं जैसैं छ.ड्या हूवा वाण गिरै तैसैं प्रवर्तना मिटै है तातैं संस्कारतैं एक कालविषै अनेक योगनिकी प्रवृत्ति जानना । बहुरि प्रमत्तविरतीकैं संस्कारकी अपेक्षा भी एक काल वैक्रियिक वा आहारक योगकी प्रवृत्ति न हो है ऐसै आचार्यकरि वर्णन कीया है सो जानना ॥ २४२ ॥ आगै योगरहित आत्माके स्वरूपकौं कहै हैं—

जेसिं ण संति जोगा सुहासुहा पुण्णपावसंजणया ।
ते होंति अजोगिजिणा अणोवमाणंतबलकलिया ॥२४३॥

येषां न संति योगाः शुभाशुभाः पुण्यपापसंजनकाः ।
ते भवंति अयोगिजिना: अनुपमानंतबलकलिताः ॥ २४३ ॥

जी॰ प्र॰—येषामात्मनां पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्मबंधहेतवः कायवाङ्मनःकर्मलक्षणाः शुभाशुभयोगाः न संति ते आत्मानः अयोगिजिना चरमगुणस्थानवर्त्ययोगिकेवलिनः तदनंतरगुणस्थानातीतसिद्धपर्यायपरिणताश्च भवंति विद्यंते । अत्र योगाभावे सति अयोगिकेवल्यादीनां बलाभावः प्रसज्यते अस्मदादिषु बलस्य योगाश्रितत्वदर्शनात् इत्याशंक्य इदमुच्यते अनुपमानंतबलकलिताः—अनुपम अस्मदाद्युपमातिक्रांतं, अनंतं अक्षयानंताविभागप्रतिच्छेदसमग्रं बलं वीर्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकालोकवर्तिसकलद्रव्यगुणपर्याययुगपद्ग्रहणसामर्थ्यं तेन

कलिताः व्याप्ताः तत्स्वभावपरिणताः इत्यनंतवलकलिताः इत्येवं योगाश्रितबलं प्रतिनियतविषयं भवेत्, परमात्मनो बलं केवलज्ञानादिवदात्म-
स्वभावत्वेन अप्रतिनियतविषयमित्यनंतवलकलिता इति भावार्थः ॥ २४३ ॥ अथ शरीरस्य कर्मनोकर्मविभागं कथयति—

मं० प्र०---येषामात्मना पुण्यपापसंजनकाः प्रशस्ताप्रशस्तकर्मबंधहेतवः शुभाशुभा योगाः कायवाग्मनःकर्मलक्षणाः न संति ते आत्मानः अयोगि-
जिना.-चरमगुणस्थानवर्तिनः, अयोगकेवलिनः, तदनतरगुणस्थानातीतसिद्धत्वपर्यायपरिणताश्च भवंति- विद्यते । ननु योगाभावे तेषा वलाभाव. प्रसज्यते
अस्मदादिषु वलस्य योगाश्रितत्वदर्शनादित्याशंक्य इदमुच्यते--अनुपमानंतबलकलिताः -अनुपमं—अस्मादाद्युपमातिक्रातं, अनंत--अक्षयानंताविभागप्रतिच्छेद-
समग्रं वल वीर्यं शक्तिः कालत्रयगोचरलोकाकोकवर्तिसकलद्रव्यगुणपर्याययुगपद्ग्रहणसमर्थं तेन कलिताः--व्याप्ताः, तत्स्वभावपरिणता इत्यर्थः योगाश्रितस्य
वलस्य प्रतिनियतविषयत्वात् परमात्मनो बलस्य केवलज्ञानादिवदात्मस्वभावत्वेन अप्रतिनियतविषयत्वात् ॥२४३॥ अथ शरीरस्य कर्मनोकर्मविभागं प्ररूपयति--

सं० च०—जिन आतमनिके पुण्य पापरूप कर्म प्रकृतिके बंधको उपजावन हारे शुभरूप वा अशुभरूप मन वचन कायके योग न होंहिं ते अयोगी जिन चौदहां अंत गुणस्थानवर्ती वा गुणस्थानतीत सिद्ध भगवान जानने। कोऊ जानेगा कि योगनिके अभावतै उनके वलका अभाव है जैसे हम सारिखे जीवनिकै योगनिके आश्रयभूत बल देखिए है तहां कहिए है। कैसे हैं-सिद्ध? 'अनुपमानंतवलकलिताः' कहिए जिनके वलकौं हम सारिखे जीवनिका बलकी उपमा न बनै है। बहुरि केवलज्ञानवत् अक्षयानंत अविभाग प्रतिच्छेद लीएं है ऐसा वल वीर्य जो सर्व द्रव्य गुण पर्यायका युगपत् ग्रहणकी समर्थता तींहिकरि व्याप्त है। तींहि स्वभाव परिणए हैं। योगनिका बल कर्माधीन है तातै प्रमाण लीएं है अनंत नाहीं। परमात्माका वल केवलज्ञानादिवत् आत्मस्वभावरूप है तातै प्रमाणरहित अनंत है ऐसा जानना ॥२४३॥ आगै शरीरोंका कर्म अर नोकर्म भेद दिखावै हैं—

ओरालियवेगुव्वियआहारयतेजणामकम्मुदये।
चउणोकम्मसरीरा कम्मेव य होदि कम्मइयं ॥२४४॥

औरालिकवैगूर्विकाहारकतेजोनामकर्मोदये।
चतुर्नोकर्मशरीराणि कर्मैव च भवति कार्मणं ॥ २४४ ॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मोदये सति यथासंख्यं औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसनामानि चत्वारि नोकर्मशरीराणि भवंति । नोशब्दस्य विपर्यये ईषदर्थे च वृत्तेः । तेषां शरीराणां कर्मवदात्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वाभावेन कर्मविपर्ययत्वात् कर्मसहकारित्वेन ईषत्कर्मत्वाच्च नोकर्मशरीरत्वसंभवात् । कर्मैव कार्मणशरीरनामकर्मोदयसजातज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कंधसमूह एव कार्मणशरीरं भवति तदन्यस्य परमागमे कार्मणशरीरत्वेन कथनाभावात् ॥ २४४ ॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धादिसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

म० प्र०—औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसशरीरनामकर्मणा चतुर्णां उदये सति चत्वारि नोकर्मशरीराणि भवति । अकर्मशरीराणि, ईषत्कर्मशरीराणीति वा नोकर्मशरीराणि नोशब्दस्य च विवक्षितविपर्यये ईषदर्थे च वृत्तिसंभवात् नोइंद्रियादिवत् कर्मशरीरस्यैव आत्मगुणघातित्वगत्यादिपारतंत्र्यहेतुत्वाभावात् कर्मविपर्ययत्वं, कर्मशरीरसहकारित्वाच्च ईषत्कर्मशरीरत्वमिति नोकर्मशरीरत्व युक्त । कर्मैव कार्मणशरीरनामकर्मणः उदये सति कार्मणं शरीर भवति ज्ञानावरणाद्यष्टविधकार्मणस्कंधसमूहं विना अन्यस्य कार्मणशरीरस्य परमागमे अनभिधानात् । अथौदारिकादिशरीराणा समयप्रबद्धादि संख्या गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

सं० च०—औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजसरूप जो नामकर्मकी प्रकृति तिनके उदयतैं जे औदारिक आदि च्यारि शरीर होंइ ते नोकर्म शरीर जानने। नो शब्दका दोय अर्थ है एकतौ निषेधरूप अर एक ईषत् स्तोकरूप सो इहां कार्माणकी ज्यों ए च्यारि शरीर आत्माके गुणकौं घातै नाहीं वा गत्यादिकरूप पराधीन न करि सकै तातैं कर्मतैं विपरीत लक्षण धरनेकरि इनिकौं अकर्म शरीर कहिए वा कर्मशरीरके ए सहकारी है तातै ईषत् कर्म शरीर कहिए ऐसै इनिकौं नोकर्म शरीर कहै जैसै मनका नो इंद्रिय कहिए हैं तैसै नोकर्म जानने बहुरि कार्माण शरीर नामा नामकर्मके उदयतै ज्ञानावरणादिक कर्म स्कंधरूप कर्म सोई कर्म शरीरजानना ॥२४४॥ आगै जे औदारिकादिक शरीर कहे तिनिका समय प्रबद्धादिककी संख्या दोय गाथानिकरि कहिए है—

परमाणूहिं अणंतहिं वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु ।
ताहिं अणंतहिं णियमा समयपबद्धो हवे एक्को ॥ २४५ ॥

परमाणुभिरनंतैर्वर्गणासंज्ञा हि भवत्येका हि ।

ताभिरनंतैर्नियमात् समयप्रबद्धो भवेदेकः ॥ २४५ ॥

जी० प्र०--अनंतैः द्विकवारानंतमध्यपतितसिद्धानंतैकभागमात्राभव्यराश्यनंतगुणपरिमाणैरेव परमाणुभिरेका वर्गणा भवति खलु न संख्यातैर्वा असंख्यातैर्वा परमाणुभिरित्यर्थः । यद्यपि पुद्गलद्रव्यस्याणुसंख्यातासंख्यातपरमाणुस्कंधरूपवर्गणाः संति तथाप्यत्रौदारिकादिशरीरप्रकरणे औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणवर्गणानामेव ग्रहणात् । ताभिश्च सिद्धानंतैकभागाभव्यराश्यनंतप्रमितानंतवर्गणाभिर्नियमेनैकः समयप्रबद्धो भवति । समये समयेन वा प्रबध्यतेस्म कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना संबध्यते स्म यः पुद्गलस्कंधः स समयप्रबद्ध इति निर्वचनात् । आत्मनो मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामैः प्रतिसमयं कर्मनोकर्मरूपतया परिणममानः तद्योग्यपुद्गलस्कंधः समयप्रबद्ध इति स्याद्वादसिद्धांतप्रसिद्धो बोद्धव्यः । नियमशब्देन वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थौ द्वावप्येवमुक्तस्वरूपौ स्याद्वादिनामेव गोचरौ, न सर्वथैकांतवादिनामित्ययं विभागो व्यवस्थापितः (व्यवस्थाप्यते) ॥ २४५ ॥

मं० प्र०--अनंतैः द्विकवारानंतमध्यपतितैः सिद्धानंतैकभागमात्रैः, अभव्यानंतगुणप्रमाणैश्च परमाणुभिरेका वर्गणेति संज्ञया भवति खलु स्फुटं, न संख्यातैः नाप्यसंख्यातैः परमाणुभिर्वर्गणा भवति किंतु अनंतैरेव भवतीति निश्चीयत इत्यर्थः । पुद्गलद्रव्यस्य अणुसंख्यातासंख्यातपरमाणुस्कंधरूपवर्गणासद्भावेऽपि अस्मिन्नौदारिकादिशरीरप्रकरणे आहारतैजसकार्मणवर्गणानामेव ग्रहणात् । ताभिर्वर्गणाभिरनंताभिः सिद्धानंतभागाभव्यानंतगुणप्रमिताभिर्नियमादेकः समयप्रबद्धो नाम योग्यपुद्गलस्कंधो भवति । समयेन प्रबध्यतेस्म कर्मनोकर्मरूपतया आत्मना संबध्यते स्म यः पुद्गलस्कंधः स समयप्रबद्धः इति निरुक्तिसिद्धः आत्मनो मिथ्यादर्शनादिसंक्लेशपरिणामैः प्रतिसमयं कर्मनोकर्मरूपतया परिणममानस्तत्तद्योग्यपुद्गलस्कंधः समयप्रबद्ध इति स्याद्वादसिद्धांतप्रसिद्धो बोद्धव्यः । नियमशब्देन वर्गणासमयप्रबद्धशब्दार्थौ एवमुक्तस्वरूपौ स्याद्वादिनामेव गोचरौ न सर्वथैकांतवादिनामिति विभागो व्यवस्थापितः ॥ २४५ ॥

स० चं०--सिद्धराशिके अनंतवे भाग अर अभव्यराशिस्यौं अनंतगुणा ऐसा जो मध्य अनंतानंतका भेद तींहि प्रमाण पुद्गल परमाणूनिकरि जो एक स्कंध होइ सो वर्गणा ऐसा नाम जानना । संख्यात वा असंख्यात परमाणूनिकरि वर्गणा न हो है । जातैं यद्यपि आगैं पुद्गल वर्गणाके तेईस भेद कहैंगे तहां अणु वर्गणा संख्याताणुवर्गणा असंख्याताणुवर्गणा आदि भेद हैं तथापि इहां औदारिक आदि शरीरनिका प्रकरणविषैं आहारवर्गणा वा तैजसवर्गणा वा कार्माणवर्गणाका ही ग्रहण जानना । बहुरि सिद्धनिके अनंतवे भाग वा अभव्यनितैं अनंतगुणी ऐसी मध्य अनंतानंत गुणी प्रमाण वर्गणा तिनिकरि एक समय प्रबद्ध हो है । समयविषैं वा समयकरि यहु जीव कर्म नोकर्मरूप पूर्वोक्त प्रमाण वर्गणानिका समूहरूप स्कंधकरि संबंध करै है तातैं याकौं समय प्र-

बद्ध कहिए है। ऐसा वर्गणाका वा समय प्रबद्धका भेद स्याद्वादमतविषैं है अन्यमतविषैं नाहीं। यहु विशेष नियम शब्दकरि जानना। इहां कोऊ प्रश्न करै कि एक ही प्रमाणकौं सिद्धराशिका अनंतवां भाग वा अभव्यराशितैं अनंतगुणा ऐसैं दोय प्रकार कह्या सो कौन कारण? ताका समाधान-कि सिद्धराशिका अनंतवां भागके अनंत भेद हैं तहां अभव्यराशितैं अनंतगुणा जो सिद्धराशिका अनंतवां भाग होइ सो इहां प्रमाण जानना। ऐसैं अल्प बहुत्वकरि तिस प्रमाणका विशेष जाननेके अर्थि दोय प्रकार कह्या है अन्य किछू प्रयोजन नाहीं॥२४५॥

ताणं समयपबद्धा सेडिअसंखेज्जभागगुणिदकमा।
णंतेण य तेजदुगा परं परं होदि सुहमं खु॥ २४६॥

तेषां समयप्रबद्धाः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमाः।
अनंतेन च तेजोद्विकाः परं परं भवति सूक्ष्मं खलु॥ २४६॥

जी० प्र०-तेषां औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणशरीराणां संबंधिनः समयप्रबद्धाः सर्वेऽपि न परस्परं सदृशाः किंतु उत्तरोत्तरेऽधिकपरमाणुसंख्याविशिष्टा भवति। तद्यथा-सर्वतः स्तोकः औदारिकसमयप्रबद्धः। औ स। ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धः। वै स $\overline{a}$। ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितः आहारकशरीरसमयप्रबद्धः। आ स $\overline{a}$ $\overline{a}$। श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमा इत्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्यंतमेव विवक्षितत्वात्। तेन परं तदाहारकशरीरसमयप्रबद्धादग्रे तैजसशरीरसमयप्रबद्धोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितः। तै स $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख। ततः कार्मणशरीरसमयप्रबद्धोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितः। का स $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख ख। अनंतेन च तैजसद्विकमित्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धात् परं तैजसकार्मणशरीरसमयप्रबद्धयोरनंतानंतगुणत्वकथनं तु। चशब्देन प्रत्येकमभुच्चयः सूचितः। यद्येवं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणां उत्तरोत्तरं प्रदेशाधिक्येन स्थूलत्वं प्रसज्यते इत्याशंक्य परं परं सूक्ष्मं भवतीत्युक्तं। यद्यपि वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणुसंचयत्वं तथापि बंधपरिणतिविशेषेण सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहनसंभवः कार्पासपिंडायःपिंडवन्न विरुध्यते खल्विति निश्चेतव्यं॥ २४६॥ अथौदारिकादिशरीराणां समयप्रबद्धवर्गणयोरवगाहनभेदानाह—

मं० प्र०—तेषामौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानां शरीराणां संबंधिनः समयप्रबद्धाः सर्वे परस्परसदृशा न भवति किंतु उत्तरोत्तरमधिकपरमाणु-

संख्याः। तथथा—सर्वतस्तोकः औदारिकशरीरसमयप्रबद्धः। औ स। ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितो वैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धः। वै स $\overline{a}$। ततः श्रेण्यसंख्येयभागगुणितपरमाणुप्रमितः आहारकशरीरसमयप्रबद्धः। आ स $\overline{a}$ $\overline{a}$। श्रेण्यसंख्येयभागगुणितक्रमा इत्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धपर्यंतमेव विवक्षितत्वात्। ततोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितस्तैजसशरीरसमयप्रबद्धः। तै. स. $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख। ततोऽनंतगुणपरमाणुप्रमितः कार्मणशरीरसमयप्रबद्धः। का स $\overline{a}$ $\overline{a}$ ख ख। अनंतेन च तेजोद्विकमित्यनेन आहारकशरीरसमयप्रबद्धात्तैजसकार्मणशरीरसमयप्रबद्धयोरनंतानंतगुणत्वकथनात्। चशब्देन प्रत्येकसमुच्चयः सूच्यते। यद्येवं तर्हि वैक्रियिकादिशरीराणा उत्तरोत्तरप्रदेशाधिक्येन स्थूलत्व प्रसज्यत इत्याशंक्य परं परं सूक्ष्म भवति खल्वित्युच्यते। यद्यपि वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणां बहुपरमाणुसंचयत्वं तथापि बंधपरिणामविशेषवशात् सूक्ष्मसूक्ष्मावगाहसंभवः कार्पासपिंडाय.पिंडवत् न विरुध्यते इति खलुशब्देन निश्चीयते। अथौदारिकादिशरीराणा समयप्रबद्धवर्गणयोरवगाहनभेदं प्ररूपयति ॥ २४६ ॥

सं० च०—तिन पंच शरीरनिके समय प्रबद्ध सर्व ही समान नाही है उत्तरोत्तर अधिक परमाणूनिका समूह लीए हैं सो कहिए है परमाणूनिका प्रमाणकरि औदारिक शरीरका समय प्रबद्ध सर्वतैं स्तोक है यातैं श्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण वैक्रियिकका समय प्रबद्ध है। बहुरि यातैं भी श्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणा परमाणू प्रमाण आहारकका समय प्रबद्ध है ऐसैं आहारक पर्यंत जगत श्रेणीका असंख्यातवां भागकौं गुणकारकी विवक्षा जाननी। तातैं परैं आहारकके समय प्रबद्धतैं अनंतगुणा परमाणूप्रमाण तैजसका समय प्रबद्ध है। बहुरि यातैं भी अनंतगुणा परमाणू प्रमाण कार्माणका समय प्रबद्ध है। इहां 'अनंतेन तेजोद्विकं' इस करि तैजसकार्माणविषैं अनंतानंत गुणा प्रमाण जानना। बहुरि इहां कोऊ आशंका करै कि जो उत्तरोत्तर अधिके अधिके परमाणू कहे तो उत्तरोत्तर स्थूलता भी होयगी तहां कहिए है—परं परं सूक्ष्मं भवति कहिए उत्तरोत्तर सूक्ष्म है। औदारिकतैं वैक्रियिक सूक्ष्म है वैक्रियिकतैं आहारक सूक्ष्म है आहारकतैं तैजस सूक्ष्म है तैजसतैं कार्माण सूक्ष्म है। यद्यपि परमाणू तौ अधिक अधिक हैं तथापि स्कंधका बंधनमैं विशेष है तातैं उत्तरोत्तर सूक्ष्म है जैसैं कपासके पिंडतैं लोहके पिंडमैं अधिकपना होतै भी कपासके पिंडतैं लोहका पिंड क्षेत्र थोरा रोकै तैसैं जानना ॥ २४६॥ आगैं औदारिकादिक शरीरनिका समयप्रबद्ध अर वर्गणा ते कितने कितने क्षेत्रविषैं रहै ऐसा अवगाहना भेदनिकौं कहै हैं—

ओगाहणाणि ताणं समयपबद्धाण वग्गणाणं च ।
अंगुलअसंखभागा उवरुवरिमसंखगुणहीणा ॥ २४७ ॥

अवगाहनानि तेषां समयप्रबद्धानां वर्गणानां च ।
अंगुलासंख्यभागा उपर्युपरि असंख्यगुणहीनानि ॥ २४७ ॥

जी० प्र०—तेषांमौदारिकादिशरीराणां संबंधिनां समयप्रबद्धानां तद्वर्गणानां च अवगाहनानि घनांगुलासंख्यातभागप्रमितानि उपर्युपरि असंख्येयगुणहीनानि भवंति। तद्यथा-औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तघनांगुलप्रमितं। औ स ६ । तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं, तदेव पुनरपि सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तं घनांगुलप्रमितं। औ व ६ । एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहनक्षेत्रे द्वे अपि पूर्वपूर्वतत्क्षेत्राभ्यां सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रासंख्येयगुणहीने गच्छतः।

वै स ā । ६ / २ २ / a a	व । ६ / २ २ २ / a a a	आ । स । ā ā । ६ / २ २ २ / a a a	व । ६ / २ २ २ २ / a a a a	तै स । ā ā ख । ६ / २ २ २ २ / a a a a	व । ६ / २ २ २ २ २ / a a a a a
का । स । ā ā ख ख ६ । / २ २ २ २ २ / a a a a a	व । ६ / २ २ २ २ २ २ / a a a a a a	॥२४७॥ अमुमेवार्थं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा अपि कथयति—			

मं० प्र०—तेषां-औदारिकादिशरीराणां संबंधिनां समयप्रबद्धानां तद्वर्गणानां चावगाहनानि घनांगुलासंख्यातभागप्रमितानि उपर्युपरि असंख्येयगुण-

१ इस गाथाकी जी० प्र० और मं० प्र० दोनो टीका एकसी है इस लिये और एकही जी० प्र० टीकाकी प्रतिमें पाठ मिला है इसलिये मं० प्र० टीकाको ही जी० प्र० में मिला दिया मालूम पड़ता है।

हीनानि भवंति। तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभक्तघनांगुलप्रमितं औ स ६/(२ a) तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं तदेव पुनरपि सू-च्यंगुलासंख्येयभागभक्तं औ व ६/(२।२ a।a) एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीरसमयप्रबद्धवर्गणावगाहनक्षेत्रे द्वे अपि पूर्वपूर्वतत्क्षेत्राभ्यां सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रा-संख्येयगुणहीने गच्छतः वै स a̅।६/(२२ aa) व।६/(२ २ २ a a a) आ स a̅ a̅।६/(२ २ २ a a a) व।६/(२ २ २ २ a a a a) तै. स· a̅ a̅ ख ६/(२ २ २ २ a a a a) व।६/(२ २ २ २ २ a a a a a)

का स a a ख ख।६/(२ २ २ २ २ a a a a a) व।६/(२ २ २ २ २ २ a a a a a a) अमुमेवार्थं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा अपि कथयंति ॥ २४७॥

सं० च०—तिनि औदारिकादिक शरीर संबंधी समयप्रबद्ध वा वर्गणा तिनिका अवगाहनाक्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र है तथापि ऊपरि असंख्यातगुणां घाटि क्रमतै जानना। सोई कहिए है—औदारिक शरीर-के समय प्रबद्धनिका अवगाहना क्षेत्र सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग घनांगुलकौं दीएं जो परिमाण आवै तितना जानना। बहुरि याकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तब औदारिक शरीरकी वर्गणाके अवगाहन क्षेत्रका प्रमाण होइ। बहुरि यातैं सूच्यंगुलका असंख्यात भाग प्रमाण जो असंख्यात तिहिं असंख्यातगुणा घटता क्रमतैं वैक्रियिकादि शरीरके समय प्रबद्धकी वा वर्गणाकी अवगाहनाका परिमाण हो है। वैक्रियिक शरीरका समय प्रबद्धकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणि औदारिक समयप्रबद्धकी अवगाहना हो है। वैक्रियिक शरीरकी वर्गणाकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणैं औदारिककी वर्गणाकी अवगाहना हो है ऐसैं ही वैक्रियिकतैं आहारककी आहारकतैं तैजसकी तेज-

सतैं कार्माणकी समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहना असंख्यात असंख्यातगुणी क्रमतैं घाटि जाननी ॥ २४७ ॥
इस ही अर्थकौं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्य देव कहैं हैं—

तस्समयबद्धवग्गणओगाहो सूइअंगुलासंख—
भागहिदबिंदअंगुलमुवरुवरिं तेन भजिदकमा ॥२४८॥

तत्समयबद्धवर्गणावगाहः सूच्यंगुलासंख्य—
भागहितवृंदांगुलमुपर्युपरि तेन भजितक्रमाः ॥ २४८ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तौदारिकादिशरीरसंबंधिसमयप्रबद्धतद्वर्गणानामवगाहनानि घनांगुलासंख्येयभागप्रमितान्यपि उपर्युपर्यसंख्यातगुणहीनक्रमाणि भवंति । तद्यथा—औदारिकशरीरसमयप्रबद्धस्यावगाहनक्षेत्रं सूच्यंगुलासंख्येयभागभाजितघनांगुलप्रमितं औ स ६/२/a तद्वर्गणावगाहनक्षेत्रं तस्यैव सूच्यंगुलासंख्येयभागप्रमाणं । तद्व ६/२ २/a a एवं वैक्रियिकाद्युत्तरोत्तरशरीराणामपि समयप्रबद्धतद्वर्गणावगाहौ पूर्वपूर्वतदवगाहनक्षेत्राभ्यां सूच्यंगुलासंख्येयभागगुणहीनौ गच्छतः ।

वै । स a ६ २ । २ a a	तद्व ६ २ । २ । २ a a a	आ । स a । a । ६ २ । २ । २ a a a	तद्व ६ २ । २ । २ । २ a a a a	तै । स a । a ख ६ २ । २ । २ २ a a a a
तद्व ६ २ । २ । २ । २ । २ a a a a a	का । स a a ख ख ६ २ । २ । २ । २ । २ a a a a a	तद्व ६ २ । २ । २ । २ । २ २ a a a a a a	॥ २४८ ॥ अथ विस्रसोपचयस्वरूपं प्ररूपयति—	

मं० प्र०—तत्समयप्रबद्धवर्गणावगाहाः सूच्यंगुलासंख्येयभागहतवृंदांगुलमात्राः उपर्युपरि तेन सूच्यंगुलासंख्येयभागेन भाजितक्रमा इति । अथ विस्रसोपचयस्वरूप प्ररूपयति ॥ २४८ ॥

सं० च०—तिनि समय प्रबद्ध वा वर्गणाकी अवगाहनाका परिमाण सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग घनागुलकौं दीएं जो परिमाण होइ तितना जानना बहुरि ऊपरि ऊपरि पूर्व पूर्वतैं सूच्यंगुलके असंख्यातवे भाग मात्र जानने गुणहानिका अर भाग देनेका एक अर्थ है। सो वैक्रियिकका समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणै औदारिकका समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहना होइ अथवा औदारिकका समयप्रबद्ध वर्गणाकी अवगाहनाकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका भाग दीयें वैक्रियिक शरीरका समयप्रबद्ध वर्गणाका परिमाण होइ दोऊ एकार्थ हैं ऐसैं ही सबका जानना ॥ २४८ ॥ आगै विस्रसोपचयका स्वरूप कहै हैं—

जीवादो णंतगुणा पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया।
जीवेण य समवेदा एक्केक्कं पडिसमाणा हु ॥ २४९ ॥

जीवतोऽनंतगुणाः प्रतिपरमाणौ विस्रसोपचयाः।
जीवेन च समवेता एकैकं प्रति समाना हि ॥ २४९ ॥

जी० प्र०—जीवराशितोऽनंतानंतगुणितविस्रसोपचयाः पूर्वोक्तौदारिकादिकर्मनोकर्मपरमाणुषु एकैकं प्रति समानसंख्यावच्छिन्नाः जीवप्रदेशैः सह समवेताः संबद्धाः संयुक्ताः संति। विस्रसा स्वभावेनैव आत्मपरिणामनिरपेक्षतयैव उपचीयंते--तत्तत्कर्मनोकर्मपरमाणुस्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कंधतां प्रतिपद्यंते इति विस्रसोपचयाः कर्मनोकर्मपरिणतिरहितपरमाणव इति भावः। यद्येकस्मिन् कर्मनोकर्मपरिमाणौ एतावान् विस्रसोपचयः तदा किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वपरमाणूनां कियान् विस्रसोपचयः? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र १। फ १६ ख। इ स ७।१२--इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा ये लब्धा आत्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचयपरमाणवः ते एतावंतः

स ७ १२—१६ ख । एतेषु पुनः किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धप्रमाणकर्मनोकर्मसत्त्वे प्रक्षिप्ते सति विस्रसोपचयसहितकर्मनोकर्मसत्त्वमेतावद्भवति । स ∂ १२—। १६ ख । २४९ । अथ कर्मनोकर्मोत्कृष्टसंचयस्वरूपस्थानलक्षणं प्ररूपयति–

मं० प्र०---एकैकं कर्मनोकर्मपरमाणुं प्रति समानाः जीवराशेरनंतगुणसंख्यया सदृशाः, जीवेन आत्मप्रदेशैः सह समवेताः–संबद्धाः, विस्रसोपचयाः, विस्रसा स्वभावेनैव–आत्मपरिणामनिरपेक्षतयैव उपचीयते तत्परमाणुस्निग्धरूक्षत्वगुणेन स्कंधतां प्रतिपद्यते इति विस्रसोपचया इति निरुक्तिसिद्धत्वात्तल्लक्षणं पृथग्नोक्तं । ते च कर्मनोकर्मपरिणतिरहितास्तद्योग्याः । अत्राय विशेषः- एकस्मिन्‌ कर्मनोकर्मपरिमाणौ प्र १ यद्येतावंतो विस्रसोपचयपरमाणवः संति फ १६ ख । तदा एतावत्सु किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वपरमाणुषु कियतः स्युरिति । इ । स ∂ १२–। त्रैराशिकेन लब्धा आत्मप्रदेशस्थितसर्वविस्रसोपचयपरमाणवः इयतो भवेयुः । स ∂ १२–१६ ख । एतेषु किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रकर्मनोकर्मसत्त्वे प्रक्षिप्ते विस्रसोपचयसहितकर्मनोकर्मसत्त्वमीदृश भवति । स ∂ १२–१६ ख ॥ २४९ ॥ अथ कर्मनोकर्मोत्कृष्टसंचयस्थान प्ररूपयति–

सं० च०—कर्म वा नोकर्मकी जितनी परमाणु हैं तिनि एक एक परमाणूनि प्रति जीव राशितैं अनंतानंत गुणा विस्रसोपचयरूप परमाणू जीवके प्रदेशनिस्यों एकक्षेत्रावगाही हैं। विस्रसा कहिए अपने हीस्वभावकरि आत्माके परिणाम विनाही उपचीयंते कहिए कर्म नोकर्म रूपविना परिणए ऐसे कर्म नोकर्म रूप स्कंध तीहिं विषैं स्निग्धरूक्ष गुणका विशेष करि मिलि एक स्कंधरूप होंहि ते विश्रसोपचय कहिए ऐसा निरुक्ति ही करि याका लक्षण आया तातैं जुदा लक्षण न कह्या । विस्रसोपचय रूप परमाणू कर्म नोकर्म रूप होनेको योग्य हैं। उनहीं कर्म नोकर्मके स्कंधविषैं एकक्षेत्रावगाही होइ संबंधरूप परिणमिकरि एक स्कंधरूप हो हैं वर्तमान कर्म नोकर्मरूप परिणए हैं नाहीं ऐसैं विस्रसोपचयरूप परमाणू जानने ते कितने हैं ? सो कहिए है—

जो एक कर्म वा नोकर्म संबंधी परमाणूके जीवराशितैं अनंत गुणे विस्रसोपचयरूप परमाणू होंइ तौ किछू घाटि ड्योढ गुण हानिका प्रमाण करि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सर्वसत्त्वरूप कर्म वा नो कर्मके परमाणूनिके केते विस्रसोपचय परमाणू होंहि ऐसैं त्रैराशिक करना। इहां प्रमाण राशि एक, फलराशि अनंतगुणा जीवराशि, इच्छाराशि किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्ध तहां इच्छाकौं फलकरि गुणि प्रमाणका भागदीएं लब्धराशिमात्र आत्माके प्रदेशनिविषैं तिष्ठते सर्वविस्रसोपचय परमाणूनिका प्रमाण जानना। बहुरि इस विस्रसो-

पचय परमाणूनिका परिमाणविषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्धमात्र कर्म नोकर्मरूप परमाणूनिका परिमाणकौं मिलाएं विस्रसोपचयसहित कर्म नोकर्मका सत्त्व हो है ॥ २४९ ॥ आगैं कर्म नोकर्मनिका उत्कृष्टसंचयका स्वरूप वा स्थान वा लक्षण प्ररूपैं हैं—

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे सगसगउक्कस्ससंचओ होदि ।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं ॥ २५० ॥

उत्कृष्टस्थितिचरमे स्वकस्वकोत्कृष्टसंचयो भवति ।
पंचदेहानां वरयोगादिस्वसामग्रीसहितानां ॥ २५० ॥

जी० प्र०—उत्कृष्टयोगादिस्वस्वसामग्रीसहितानां जीवानां औदारिकादिपंचशरीराणां स्वस्वोत्कृष्टस्थितिचरमसमये स्वस्वोत्कृष्टकर्मनोकर्मपरमाणुसंचयो भवति । तत्तत्स्थितिप्रथमसमयादारभ्य प्रतिसमयं एकैकसमयप्रबद्धगलितैकैकनिषेकावशेषमात्रेषु तावत्सु संचीयमानेषु सत्सु तत्स्थितिचरमसमये आयुर्वर्जितकर्मनोकर्मशरीराणां गलितावशेषोत्कृष्टसंचयः किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रः सत्त्वं भवति स ट १२–॥ २५० ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषं कथयंति—

मं० प्र०—उत्कृष्टयोगादिस्वसामग्रीसहिताना जीवाना, औदारिकादिपंचशरीराणां स्वस्वोत्कृष्टस्थितिचरमसमये स्वस्वोत्कृष्टकर्मनोकर्मपरमाणुसंचयो भवति । तत्तत्स्थितिप्रथमसमयादारभ्य समय प्रति एकैकस्मिन् समयप्रबद्धे गलितैकनिषेकावशेषमात्रे संचीयमाने सति तत्स्थितिचरमसमये आयुर्वर्जितकर्मनोकर्मशरीराणां गलितावशेषः उत्कृष्टसंचयः किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रो भवति ॥ २५० ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषं प्रदर्शयंति—

सं० च०—उत्कृष्ट योग आदि अपने अपने उत्कृष्ट बंध होनेकी सामग्री करि सहित जे जीव तिनिकैं औदारिकादिक पंच शरीरानिका उत्कृष्टसंचय जो उत्कृष्टपनैं परमाणूनिका संबंध सो अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिका अंत समयविषैं हो है । तहां स्थितिके पहले समयतैं लगाइ एक एक समयविषैं एक एक समय प्रबद्ध बंधै बहुरि आगैं कहिए है तिसप्रकार एक एक समयप्रबद्धका एक एक निषेककी निर्जरा होइ अवशेष संचयरूप होते संतै

अंतसमयविषैं किछू घाटि ड्योढगुणहानिकरि समयप्रबद्धकौं गुणें जो परिमाण होइ तितना उत्कृष्टपनैं सत्त्व हो है ॥ २५० ॥ आगैं श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेव उत्कृष्ट संचय होनेकी सामग्री कहैं है—

आवासया हु भवअद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य ।
ओकट्टुक्कट्टणया छच्चेदे गुणिदकम्मंसे ॥ २५१ ॥

आवश्यकानि हि भवाद्धा आयुष्यं योगसंक्लेशौ च ।
अपकर्षणोत्कर्षणके षद् चैते गुणितकर्मांशे ॥ २५१ ॥

जी० प्र०—भवाद्धा आयुष्य योगः संक्लेशः अपकर्षणं उत्कर्षणकं चेति षद् उत्कृष्टकर्मसंचयकर्तुर्जीवस्य आवश्यकानि इत्युच्यंते । गुणितकर्मांशे उत्कृष्टकर्मसंचययुते जीवे तेषामवश्यंभावात् अग्रे तानि विस्तरेण वक्ष्यति खलु स्फुटं ॥ २५१ ॥ अथौदारिकादिपंचशरीराणामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणमाह—

मं० प्र०—गुणितकर्मांशे उत्कृष्टकर्मसंचयवति जीवे एतान्यत्रोच्यमानानि षडावश्यकानि अवश्यभवानि उत्कृष्टसंचयकारणानि भवंति । तानि कानि ? इति चेत् भवाद्धा, आयुष्य, योगः, संक्लेशः, अपकर्षण, उत्कर्षणं, इत्येतानि अग्रे विस्तरतो वक्ष्यमाणलक्षणानि ॥ २५१ ॥ अथौदारिकादिपंचशरीराणामुत्कृष्टस्थितिप्रमाणं कथयति—

सं०च०—गुणितकर्मांश कहिए उत्कृष्ट संचय जाकैं होइ ऐसा जो जीव तींहि विषैं उत्कृष्ट संचयकौं कारण ए छह अवश्य होंइ तातैं उत्कृष्ट संचय करनेवाले जीवकैं ए छह आवश्यक कहिए। भवाद्धा १ आयुर्बल २ योग ३ संक्लेश ४ अपकर्षण ५ उत्कर्षण ६ ए छह जानने इनिका स्वरूप विस्तार लीएं आगैं कहिएगा। अब पंचशरीरनिका बंध उदय सत्त्वादिकविषैं परमाणूनिका प्रमाणका विशेष जाननेकौं स्थिति आदि कहिए है तहां औदारिकादिक पंच शरीरनिकी उत्कृष्ट स्थितिका परिमाण कहैं हैं—

पल्लतियं उवहीणं तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं ।
छावट्ठी कमट्ठिदि बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं ॥ २५२ ॥

पल्यत्रयमुदधीनां त्रयस्त्रिंशदंतर्मुहूर्त उदधीनां ।
षट्षष्टिः कर्मस्थितिर्बंधोत्कृष्टस्थितिस्तेषां ॥ २५२ ॥

जी० प्र०—तेषां औदारिकादिपंचशरीराणां यथासंख्यं बंधोत्कृष्टस्थितयः त्रिपल्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं अंतर्मुहूर्तः षट्षष्ठिसागरोपमं उत्कृष्टकर्मस्थितिः, सा च सामान्येन सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि विशेषेण तु ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयांतरायाणां त्रिंशत्कोटीकोटिसागरोपमाणि मोहनीयस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपमाणि, नामगोत्रयोः विंशतिकोटीकोटिसागरोपमाणि आयुषस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि भवंति । बंधप्रकरणे प्ररूपिता सर्वोत्कृष्टस्थितिर्ग्राह्या ॥ २५२ ॥ अथौदारिकादिपंचशरीरोत्कृष्टस्थितीनां गुणहान्यायामं प्रमाणयति—

मं० प्र०—तेषां पंचशरीराणां मध्ये औदारिकशरीरोत्कृष्टस्थितिः पल्यत्रयप्रमिता । वैक्रियिकशरीरस्योदधीनां सागरोपमाणां त्रयस्त्रिंशत् । आहारकशरीरस्यांतर्मुहूर्तमात्री । तैजसशरीरस्य षट्षष्ठिसागरोपमप्रमाणा । कार्मणशरीरस्य कर्मबंधोत्कृष्टस्थितिरेव। आयुर्वर्जितानां ज्ञानावरणादिसप्तमूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमादिसप्ततिकोटिकोटिसागरोपमपर्यंतप्रमिता स्थितिः। बंधप्रकरणे प्ररूपिता सर्वोत्कृष्टस्थितिर्ग्राह्या॥२५२॥अथ पंचशरीरोत्कृष्टस्थितिषु गुणहानिप्रमाणं प्ररूपयति—

सं० च०—तिनि औदारिक आदि पंच शरीरनिकी बंधरूप उत्कृष्टस्थितिविषै औदारिक शरीरकी उत्कृष्टस्थिति तीनपल्य है। वैक्रियिक शरीरकी तेतीस सागर है। आहारक शरीरकी अंतर्मुहूर्त है। तैजस शरीरकी छ्यासठि सागर है कार्माणकी स्थितिबंधविषै जो उत्कृष्ट कर्मकी स्थिति सो जाननी। सो सामान्यपनै सत्तर कोडाकोडी सागर है विशेषपनैं ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय अंतरायकी तीस कोडाकोडी, मोहनीयकी सत्तर कोडाकोडी, नाम गोत्रकी वीस कोडाकोडी, आयुकी तेतीस सागर प्रमाण जाननी। ऐसैं पंच शरीरनिकी उत्कृष्टस्थिति कही। अब इहां यथार्थ ज्ञानके निमित्त अंक संदृष्टिकरि दृष्टांत कहिए है—

जैसैं समय प्रबद्धका परिमाण तरेसठिसै ६३०० परमाणू स्थिति अडतालीस समय होइ तैसैं इहां पंचशरीर-

निकी समय प्रबद्धके परमाणूनिका परिमाण अर स्थितिके जेते समय होहिं तिनिका परमाणूका परिमाण पूर्वोक्त जानना ॥ २५२ ॥ आगैं इनि पंचशरीरनिकी उत्कृष्ट स्थितिनिविषैं गुणहानि आयामका परिमाण कहै हैं—

अंतोमुहुत्तमेत्तं गुणहाणी होदि आदिमातिगाणं ।
पल्लासंखेज्जादिमं गुणहाणी तेजकम्माणं ॥ २५३ ॥

अंतर्मुहूर्तमात्रा गुणहानिर्भवति आदिमत्रिकानां ।
पल्यासंख्याता गुणहानिस्तेजःकर्मणोः ॥ २५३ ॥

टी० प्र०—आदिमानां औदारिकवैक्रियिकाहारकत्रिशरीराणां उत्कृष्टस्थितिसंबंधिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः प्रत्येकं स्वस्वयोग्यांतर्मुहूर्तमात्री भवति । २ १ । तैजसकार्मणशरीरयोः उत्कृष्टस्थितिसंबंधिनी गुणहानिः स्वस्वयोग्यपल्यासंख्यातैकभागमात्री भवति । तत्र तैजसशरीरस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनरत्यार्धच्छेदेभ्योऽसंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिप्रमितेन शलाकाराशिना भक्तसंख्यातपल्यप्रमाणस्वोत्कृष्टस्थितिमात्री प १ / छे व छे a कार्मणशरीरस्य तु स्वनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनरत्यर्धच्छेदराशिना भक्तसंख्यातपल्यप्रमितस्वोत्कृष्टस्थितिप्रमाणा प १ / छे व छे इति विशेषो ज्ञातव्यः । यदि अंतर्मुहूर्तायामस्य एका गुणहानिः तदा सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य पल्यत्रयस्य कियत्यः इति प्र २ १ । फ १ । इ, प ३ । त्रैराशिकेन लब्धाः नानागुणहानिशलाकाः औदारिकशरीरस्थितेरेतावत्यः प ३ / २ १ । एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि ताः साधयेत् । तत्र प्र २ १ । फ १ । इ सा ३३ लब्धा वैक्रियिकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः सा ३३ / २ १ । प्र २ १ । फ १ । इ २ १ १ । लब्धाः आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः २ १ १ / २ १ । प्र सा ६६ / छे । व । छे । a । फ १ । इ सा ६६ लब्धास्तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः—छे व छे a । प्र सा ७० को २ । फ १ । इ छे व छे

सा ७० को २, लब्धाः कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः । छे व छे । अथौदारिकादिशरीराणां गुणहान्यायामाः साध्यंते । तद्यथा एतावन्नानागुणहानीनां यद्येतावान् स्थित्यायामः, तदा एकगुणहानेः कियान् स्थित्यायामः इति त्रैराशिकेन प प ३ । फ प ३ । इ १ ।
२ १

लब्धः औदारिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र सा ३ ३ । फ सा ३३ । इ १ । लब्धः वैक्रियिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ ।
२ १

प्र १ । फ २ १ १ । इ १ । लब्धः आहारकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ १ । प्र, छे व छे a । फ सा ६६ । इ १ । लब्धः तैजसशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प १ । प्र छे व छे । फ, सा ७० को २ । इ १ । लब्धः कार्मणशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प १ । औदा-
छे व छे । a छे व छे

रिकादिशरीरस्थितीनामन्योन्याभ्यस्तराशयस्तु तत्तन्नानागुणहानिशलाकाः विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा वर्गितसंवर्गे कृते समुत्पद्यंते तद्यथा—एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते यद्येतावान् राशिरुत्पद्यते तदा एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते को राशिरुत्पद्यते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा दे २ देय २ लब्धं करणसूत्रेणानीयते—

प्र वि छे छे छे ९ । फ ≡ । इ वि प ३ ।
a २ १

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे । लद्धमिदइट्ठरासीगण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥ २१४ ॥

प ३

इति लोकार्धच्छेदैः औदारिकादिशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं भक्त्वा २ १ । छे छे छे ९ । तल्लब्धमितेष्विष्टराशिरूपलोकेषु अन्योन्यं गुणितेषु उत्पन्नराशिः औदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्यातलोकमात्रो भवति ≡ a । तथा वैक्रियिकशरीरस्थिति-
a
सा ३३

नानागुणहानिशलाकाराशिं लोकार्धच्छेदैर्भक्त्वा २ १ । छे छे छे ९ । तल्लब्धप्रमितलोकेषु वर्गितसंवर्गीकृतेषु यो राशिः स वैक्रियिकशरीर-
a

स्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति । ≡ a । ≡ a । अयमौदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिनोऽसंख्यातलोकगुणितः ≡ a अंतर्मुहूर्तभक्तत्रिपल्येभ्योऽतर्मुहूर्तभक्तत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां एकत्वादशकोटीकोटिगुणितत्वात् तदधिकमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नस्यास्य ≡ a गुणकारत्वसंभवात् ।

अथवा एतावतीनां औदारिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां यद्येतावान् अन्योन्याभ्यस्तराशिः तदा एतावतीनां वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां कियान् अन्योन्याभ्यस्तराशिरिति त्रैराशिके कृते प्र प ३ । फ ≡ a । इ प ३ । ११० को २ । लब्धस्य एकशतदशकोटीको-
२ १ २ १

टिवारौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तानां अन्योन्यगुणितोत्पन्नराशिमात्रत्वात् तेन गुणितत्वप्रसिद्धेः । आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः संख्याताः विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नराशिरपि संख्यातः स तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् १ १ । तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः कार्मणशरीरस्थितिगुणहानिशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणितास्ताः पल्यार्धच्छेदराशिना भक्त्वा छे व छे a ऋणं सगुणकार-
छे

भागहारं पृथग्धृत्य व छे a शेषऋणरहितराशिं छे a पल्यच्छेदभाज्यराशिना पल्यच्छेदराशिभागहारः सदृशः इति तावपवर्तयेत् a । शेष-
छे छे

तद्गुणकारभूतासंख्यातः पल्यछेदासंख्यातैकभाग एव न पल्यच्छेदप्रमितः, अन्यथा तावन्मात्रपल्यसंवर्गोत्पन्नतैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिः सूच्यंगुलं भवेत् न च स तथा, परमागमे क्षेत्रप्रमाणेन सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रत्वेन कालप्रमाणेन असंख्यातकल्पमात्रत्वेन च तत्प्रमाणप्रतिपादनात् । तदसंख्यातरूपाणि विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति पल्य दत्त्वा संवर्गोत्पन्नराशिः द्विरूपवर्गधारायां पल्यराशेरुपरि विरलनराशिहारभूताऽसंख्यातस्य यावंतोऽर्धच्छेदाः तावंति वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नसूच्यंगुलासंख्येयभागः २ । अयं च—
a

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति नियमात् प्राक्पृथक्स्थापितऋणेन व छे a अपवर्तितेन एकरूपासंख्येयभागेन पल्ये गुणिते संजातपल्यासंख्यातैकभागेन भक्त्वा
छे

२ प अपवर्तितः सूच्यंगुलासंख्येयभाग एव भवति २ । कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकानां छे व छे प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्प-
a a a

न्नः स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः तदन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति । प । पल्यार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नपल्यस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदराशि-
व

मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यवर्गशलाकाराशेर्हारत्वकथनात् । अथौदारिकादिशरीरस्थितीनां यो यो गुणहान्यायामः स स द्वाभ्यां गुणितो निषेक-

हारापरनामा दोगुणहानिर्भवति । औ २ गृ । २ । वै २ गृ । २ । आ २ गृ । २ । तै प गृ । २ । का प गृ । २ । तदौदारिकशरीरसमयप्रब-
छे व छे a । छे व छे

द्धानां अंकसंदृष्ट्या द्रव्यं ६३०० स्थितिः ४८ गुणहानिः ८ नानागुणहानिः ६ निषेकहारः १६ अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ । औदारिकादिशरीर-समयप्रबद्धाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधवंतः । तत्र प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगतः स्यातां, स्थित्यनुभागबंधौ कषायतः स्यातां । तत्र विवक्षितसमये बद्धस्य उत्कृष्टस्थितिबंधस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममात्रस्य प्रथमसमयादारभ्य सप्तसहस्रवर्षकालपर्यंतमाबाधेति त्यक्त्वा शेषस्थितिप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यंतं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकाः परमाणुपुंजाः निषेका भवंति । तद्रचनाकरणविधानं तावदंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते । तद्यथा—विवक्षितैकसमये बद्धकार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं । स । अंकसंदृष्ट्या इदं ६३०० ।

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं । होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ।

इति प्रागुक्तपल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रेण कार्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिना अंकसंदृष्ट्या चतुःषष्ट्यात्मकेन ६४ रूपोनेन भक्तैकभागः । ६३०० । पूर्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहस्य । छे व छे । अंकसंदृष्ट्या षडात्मकस्य ६ चरमगुणहानिसंबंधिद्रव्यं
६३

भवति १०० । अधः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमो भवति । तथा सति प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्याद्रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं भवति १०० । ६४ ।
२

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः ।

१००
१०० । २
१०० । २ । २
१०० । २ । २ । २
१०० । २ । २ । २ । २
१०० । २ । २ । २ । २ । २

प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं ३२०० , अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदीति गुणहान्यायामेन ८ भक्ते सति मध्यमधनं भवति । ४०० । तं रूऊणअद्धाणअद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयमिति तन्मध्यमधनं रूपोनगुणहान्यर्धेन हीननिषेकहारेण भक्तं सत् तत्प्रथमगुणहानिसंबंधिप्रचयो भवति ।
४०० अयं चापवर्तितो ३२ निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या गुणितः ३२ । १६ प्रथमगुणहानि
१६-८ प्रथमनिषेको भवति ५१२ 'तत्तो विसेसहीणकमं' उपर्युपरि तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यंतमेकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भवति इति रूपाधिकगुणहानि-
२

गुणितचयप्रमाणो भवति ३२ । ८ अयं च गुणित एतावान् भवति । २८८ । प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासः—

२८८
३२०
३५२
३८४
४१६
४४८
४८०
५१२

द्वितीयगुणहानिद्रव्ये १६०० गुणहान्यायामेन खंडिते मध्यमधनं २०० । इदं पुनः रूपोनगुणहान्यायामार्धहीन निषेकहारेण भक्तं सद् द्वितीयगुणहानिप्रचयो भवति २०० स एव द्विगुणगुणहान्या गुणितो द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति २५६ उपरि नि-
१६–८
२
जैकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रस्वविशेषा हीना भवंति इति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणो भवति १४४ । तृतीयगुणहानिद्रव्ये ८०० गुणहान्या भक्ते मध्यमधनं १०० इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं प्रचयः १०० अयं दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेकः १२८ । अयमुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो
२५
२

भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणो भवति ८ । ८ गुणितः ७२ । एवमनेन क्रमेण गत्वा चरमगुणहानिद्रव्ये १०० प्राग्वद्गुणहान्या भक्ते लब्धं मध्यमधनं १०० इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सच्चरमगुणहानिसंबंधिचयः १०० अपवर्तितोयं १,
८
८ । २५
२
दोगुण ८ हान्या गुणितचरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणं भवति १६ । तदुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनं भवतीति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणं १ । ९ चरमनिषेको भवति । एवं द्वितीयादिद्विगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यंतासु गुणहीनक्रमो दृश्यते ततो गुणहानिरन्वर्थनामा स्यात् । तर्हि प्रथमगुणहानेः कथं गुणहानित्वमिति चेत्तन्न, मुख्यत्वेन गुणहानित्वाभावेऽपि उपरितनीनां गुणहानिनिमित्तभूतविशेषहीनत्वस्य सद्भावात् तस्या उपचारेण तत्सिद्धेः । एवमेकैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्वे-

१ मुख्यत्वेन गुणहानित्वं नास्ति तथापि उपरितनीनां गुणहानित्वनिमित्तभूतविशेषहीनत्वमस्तीति ग पुस्तके पाठः ।

सा ७० को २, लब्धाः कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाका एतावत्यः। छे व छे। अथौदारिकादिशरीराणां गुणहान्यायामाः साध्यंते। तद्यथा एतावन्नानागुणहानीनां यद्येतावान् स्थित्यायामः, तदा एकगुणहानेः कियान् स्थित्यायामः इति त्रैराशिकेन प प ३। फ प ३। इ १।
२ ꣲ

लब्धः औदारिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ꣲ। प्र सा ३ ३। फ सा ३३। इ १। लब्धः वैक्रियिकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ꣲ।
२ ꣲ

प्र ꣲ। फ २ ꣲ ꣲ। इ १। लब्धः आहारकशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः २ ꣲ। प्र, छे व छे a। फ सा ६६। इ १। लब्धः तैजसशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प ꣲ। प्र छे व छे। फ, सा ७० को २। इ १। लब्धः कार्मणशरीरस्थितेरेकगुणहान्यायामः प ꣲ। औदा-
छे व छे। a छे व छे

रिकादिशरीरस्थितीनामन्योन्याभ्यस्तराशयस्तु तत्तन्नानागुणहानिशलाकाः विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्वा वर्गितसंवर्गे कृते समुत्पद्यंते तद्यथा—एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते यद्येतावान् राशिरुत्पद्यते तदा एतावद्विरलनराशिप्रमितद्विकसंवर्गे कृते को राशिरुत्पद्यते ? इति त्रैराशिकं कृत्वा दे २ देय २ लब्धं करणसूत्रेणानीयते—

प्र वि छे छे छे ९। फ ≡। इ वि प ३।
a २ ꣲ

दिण्णच्छेदेणवहिदइट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे। लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं ॥ २१४ ॥

प ३

इति लोकार्धच्छेदैः औदारिकादिशरीरस्थितिनानागुणहानिशलाकाराशिं भक्त्वा २ ꣲ। छे छे छे ९। तल्लब्धमितेष्विष्टराशिरूपलोके-
a

षु अन्योन्यं गुणितेषु उत्पन्नराशिः औदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्यातलोकमात्रो भवति ≡ a। तथा वैक्रियिकशरीरस्थिति-
सा ३३

नानागुणहानिशलाकाराशिं लोकार्धच्छेदैर्भक्त्वा २ꣲ। छे छे छे ९। तल्लब्धप्रमितलोकेषु वर्गितसंवर्गीकृतेषु यो राशिः स वैक्रियिकशरीर-
a

स्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति। ≡ a। ≡ a। अयमौदारिकशरीरस्थितेरन्योन्याभ्यस्तराशितोऽसंख्यातलोकगुणितः ≡ a अंतर्मुहूर्तभक्तत्रिपल्येभ्योऽन्तर्मुहूर्तभक्तत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणां एकत्रतदशकोटीकोटिगुणितत्वात् तदधिकमात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नस्यास्य ≡ a गुणकारत्वसंभवात्।

अथवा एतावतीनां औदारिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां यद्येतावान् अन्योन्याभ्यस्तराशिः तदा एतावतीनां वैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकानां कियान् अन्योन्याभ्यस्तराशिरिति त्रैराशिके कृते प्र प ३ । फ ≡ a । इ प ३ । ११० को २ । लब्धस्य एकशतदशकोटीको-
२ १ २ १

टिवारौदारिकशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तानां अन्योन्यगुणितोत्पन्नराशिमात्रत्वात् तेन गुणितत्वप्रसिद्धेः । आहारकशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः संख्याताः विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नराशिरपि संख्यातः स तदन्योन्याभ्यस्तराशिः स्यात् १ १ । तैजसशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकाः कार्मणशरीरस्थितिगुणहानिशलाकाभ्योऽसंख्यातगुणितास्ताः पल्यार्धच्छेदराशिना भक्त्वा छे व छे a ऋणं सगुणकार-
छे

भागहारं पृथग्धृत्य व छे a शेषऋणरहितराशिं छे a पल्यच्छेदभाज्यराशिना पल्यच्छेदराशिभागहारः सदृशः इति तावपवर्तयेत् a । शेष-
छे छे

तद्गुणकारभूतासंख्यातः पल्यछेदासंख्यातैकभाग एव न पल्यच्छेदप्रमितः, अन्यथा तावन्मात्रपल्यसंवर्गोत्पन्नतैजसशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिः सूच्यंगुलं भवेत् न च स तथा, परमागमे क्षेत्रप्रमाणेन सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रत्वेन कालप्रमाणेन असंख्यातकल्पमात्रत्वेन च तत्प्रमाणप्रतिपादनात् । तदसंख्यातरूपाणि विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति पल्यं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नराशिः द्विरूपवर्गधारायां पल्यराशेरुपरि विरलनराशिहारभूतासंख्यातस्य यावंतोऽर्धच्छेदाः तावंति वर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नसूच्यंगुलासंख्येयभागः २ । अयं च—
a

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि । तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति नियमात् प्राक्पृथक्स्थापितऋणेन व छे a अपवर्तितेन एकरूपासंख्येयभागेन पल्ये गुणिते संजातपल्यासंख्यातैकभागेन भक्त्वा
छे

२ प अपवर्तितः सूच्यंगुलासंख्येयभाग एव भवति २ । कार्मणशरीरस्थितेर्नानागुणहानिशलाकानां छे व छे प्रतिरूपं द्विकं दत्त्वा संवर्गोत्पन्नः
a a a

स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः तदन्योन्याभ्यस्तराशिर्भवति । प । पल्यार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गसमुत्पन्नपल्यस्य पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदराशि-
व

मात्रद्विकसंवर्गोत्पन्नपल्यवर्गशलाकाराशेर्हारत्वकथनात् । अथौदारिकादिशरीरस्थितीनां यो यो गुणहान्यायामः स स द्वाभ्यां गुणितो निषेक-

हारापरनामा दोगुणहानिर्भवति । औ २ ०।२ । वै २ ०।२ । आ २ ०।२ । तै प ०।२ । का प ०।२ । तदौदारिकशरीरसमयप्रब-
छे व छे ३ । छे व छे

द्धानां अंकसंदृष्ट्या द्रव्यं ६३०० स्थितिः ४८ गुणहानिः ८ नानागुणहानिः ६ निषेकहारः १६ अन्योन्याभ्यस्तराशिः ६४ । औदारिकादिशरीरसमयप्रबद्धाः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधवंतः । तत्र प्रकृतिप्रदेशबंधौ योगतः स्यातां, स्थित्यनुभागबंधौ कषायतः स्यातां । तत्र विवक्षितसमये बद्धस्य उत्कृष्टस्थितिबंधस्य सप्ततिकोटीकोटिसागरोपममात्रस्य प्रथमसमयादारभ्य सप्तसहस्रवर्षकालपर्यंतमाबाधेति त्यक्त्वा शेषस्थितिप्रथमसमयमादिं कृत्वा चरमसमयपर्यंतं तत्तत्कालप्रमितस्थितिकाः परमाणुपुंजाः निषेका भवंति । तद्रचनाकरणविधानं तावदंकसंदृष्ट्या प्रदर्श्यते । तद्यथा—विवक्षितैकसमये बद्धकार्मणसमयप्रबद्धद्रव्यमिदं । स । अंकसंदृष्ट्या इदं ६३०० ।

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिमगुणदव्वं । होदि तदो दुगुणकमा आदिमगुणहाणिदव्वोत्ति ।

इति प्रागुक्तपल्यवर्गशलाकाराशिविभक्तपल्यमात्रेण कार्मणशरीरस्थित्यन्योन्याभ्यस्तराशिना अंकसंदृष्ट्या चतुःषष्ट्यात्मकेन ६४ रूपोनेन भक्त्वैकभागः । ६३०० । पूर्वोक्तनानागुणहानिशलाकासमूहस्य । छे व छे । अंकसंदृष्ट्या षडात्मकस्य ६ चरमगुणहानिसंबंधिद्रव्यं
६३

भवति १०० । अधः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमो भवति । तथा सति प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्याद्रूपोननानागुणहानिशलाकाप्रमितद्विकसंवर्गसंजनितान्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितचरमगुणहानिद्रव्यप्रमाणं भवति १०० । ६४ ।
२

सर्वगुणहानिद्रव्यविन्यासः ।

१००
१०० । २
१०० । २ । २
१०० । २ । २ । २
१०० । २ । २ । २ । २
१०० । २ । २ । २ । २ । २

प्रथमगुणहानिद्रव्यमिदं ३२००, अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छदीति गुणहान्यायामेन ८ भक्ते सति मध्यमधनं भवति । ४०० । तं रूऊणअद्धाणअद्धेणूणेण णिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयमिति तन्मध्यमधनं रूपोनगुणहान्यर्धेन हीननिषेकहारेण भक्तं सत् तत्प्रथमगुणहानिसंबंधिप्रचयो भवति ।
४०० अयं चापवर्तितो ३२ निषेकहारेण द्विगुणगुणहान्या गुणितः ३२ । १६ प्रथमगुणहानि
१६–८ प्रथमनिषेको भवति ५१२ 'तत्तो विसेसहीणकमं' उपर्युपरि तद्गुणहानिचरमनिषेकपर्यंतमे-
२ कैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भवति इति रूपाधिकगुणहानि-

गुणितचयप्रमाणो भवति ३२ । ८ अयं च गुणित एतावान् भवति । २८८ । प्रथमगुणहानिनिषेकविन्यासः—

२८८
३२०
३५२
३८४
४१६
४४८
४८०
५१२

द्वितीयगुणहानिद्रव्ये १६०० गुणहान्यायामेन खंडिते मध्यमधनं २०० । इदं पुनः रूपोनगुणहान्यायामार्धहीन निषेकहारेण भक्तं सद् द्वितीयगुणहानिप्रचयो भवति २०० स एव द्विगुणगुणहान्या गुणितो द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति २५६ उपरि नि-

$\frac{200}{16 - \frac{8}{2}}$

जैकैकविशेषहीनक्रमेण गत्वा चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रस्वविशेषा हीना भवंति इति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणो भवति १४४ । तृतीयगुणहानिद्रव्ये ८०० गुणहान्या भक्ते मध्यमधनं १०० इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनद्विगुणगुणहान्या भक्तं प्रचयः $\frac{100}{\frac{25}{2}}$ अयं दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेकः १२८ । अयमुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो

भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वविशेषप्रमाणो भवति ८।८ गुणितः ७२ । एवमनेन क्रमेण गत्वा चरमगुणहानिद्रव्ये १०० प्राग्वद्गुणहान्या भक्ते लब्धं मध्यमधनं $\frac{100}{8}$ । इदं रूपोनगुणहान्यर्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत्चरमगुणहानिसंबंधिचयः $\frac{100}{8 \mid \frac{25}{2}}$ अपवर्तितोयं १, दोगुण ८ हान्या गणितचरमगुणहानिप्रथमनिषेकप्रमाणं भवति १६ । तदुपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गत्वा चरमस्थितिनिषेकरूपोनगच्छमात्रचयहीनं भवतीति रूपाधिकगुणहानिगुणितनिजप्रचयप्रमाणं १ । ९ चरमनिषेको भवति । एवं द्वितीयादिद्विगुणहानिषु चरमगुणहानिपर्यंतासु गुणहीनक्रमो दृश्यते ततो गुणहानिरन्वर्थनामा स्यात् । तर्हि प्रथमगुणहानेः कथं गुणहानित्वमिति चेत्तन्न, मुख्यत्वेन गुणहानित्वाभावेऽपि उपरितनीनां गुणहानिनिमित्तभूतविशेषहीनत्वस्य सद्भावात् तस्या उपचारेण तत्सिद्धेः[1] । एवमेकैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिगतसर्व-

[1] मुख्यत्वेन गुणहानित्वं नास्ति तथापि उपरितनीनां गुणहानित्वनिमित्तभूतविशेषहीनत्वमस्तीति ग पुस्तके पाठः ।

निषेकविन्यासरचनेयं ।

	२२८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२	१४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६	७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८	३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४	१८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६	
६३००	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००	एकत्र ६३०८

एवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषाः निषेकाश्च अर्धार्धक्रमा इति निश्चेतव्याः । अयं तु विशेषः । स्वस्वगुणहानिचरमनिषेके स्वस्वैकैकचयेऽपनीते उपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमप्रथमनिषेको भवति एवमौदारिकादितैजसांतानां नोकर्मसमयप्रबद्धानां तु प्रागुक्तं स्वस्वस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिषेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं स्मृत्वा स्वस्वस्थितेः प्रथमसमयादेव आरभ्य निषेकरचना कर्तव्या, औदारिकादिशरीराणां अग्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात् । अधुना अर्थसंदृष्ट्या दर्शयति तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धं द्रव्यमिदं स ̅ ̅ ख ख लघुसंदृष्टिनिमित्तं स इति लिखित्वा (प) रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते तच्चरमगुणहानिद्रव्यं भवति । स । ततः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा प्रथमगुणहा-
$\frac{\text{स}}{\text{अ}}$

निद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यादन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितप्रमाणं भवति । $\frac{\text{स} \mid \text{अ}}{\text{अ} \mid \text{२}}$ । इदं पुनः गुणहान्या भक्तं सत् मध्यमधनं भवति $\frac{\text{स} \mid \text{अ}}{\text{अ} \mid \text{२ गु}}$

तच्च रूपोनगुणहान्यार्धोनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसंबंधिचयो भवति । अ । २ । गु । गु ३ $\frac{}{२}$ । अयं च दोगुणहान्या गुणि-

स । अ । गु २

तः सन् प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । अ । २ गु । गु । ३ २ ततः स्वचरमनिषेकपर्यंतं एकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगु-

स । अ । गु

णहान्यायाममात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वचयप्रमाणो भवति । अ । २ गु । गु ३ अनेन प्रकारेण द्वितीयादिगुणहानिषु

स   २ स

स्वस्य द्रव्यस्य निषेकरचनां कृत्वा चरमगुणहानिद्रव्यमिदं अ, गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं भवति अ । गु । इदं च रूपोनगुणहान्य-

स

र्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत् तच्चरमगुणहानिचयो भवति अ । गु । गु । ३ २ । अयं च दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेको भवति—

स । गु२ ।

अ । गु । गु । ३ २ तत उपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्र-

स गु

मितश्चरमनिषेको भवति अ । गु । गु ३ २ एवं कार्मणशरीरसत्त्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासोयं—

स । अ । गु अ । २ । गु । गु । ३ २ ० ० ० स । अ । गु २ अ । २ । गु । गु ३ २ स । अ अ । २	स । अ । गु । अ । २ । २ । गु । गु । ३ २ ० ● ● स । अ । गु । २ अ । २ । २ गु । गु ३ २ स, अ अ, २, २	० ● ● छे व छे ० ● ० ० ० ०	स, २, गु अ, गु, गु ३ २ ● ● ० स, २, गु, २, अ गु, गु, ३, २ स २ अ,	स, गु, अ, गु, गु, ३, २ ● ● ० स, गु, २ अ, गु, गु, ३ २ स [illegible]

इत्येवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषनिषेकाश्च अर्धार्धक्रमा ज्ञातव्याः ॥ २५२ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धानां बंधोदयसत्त्वावस्थायां द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

मं० प्र०—आदिमाना त्रयाणामौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराणां उत्कृष्टस्थितिसंबधिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः स्वयोग्यांतर्मुहूर्तमात्रः। तैजसकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टस्थितिसंबंधिनी गुणहानिः पल्यासंख्येयभागमात्री। तत्र तैजसशरीरस्य संख्यातपल्यमात्रस्योत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना असंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तादृशपल्यासंख्येयभागमात्री गुणहानिः। कार्मणशरीरस्य तु संख्यातपल्यमात्रस्योत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तथाविधपल्यासंख्येयभागप्रमिता गुणहानिः, इत्ययं विशेषो ज्ञातव्यः। एतावतः स्थित्यायामस्य प्र २ ↄ, यद्येका गुणहानिशलाका लभ्यते फ १, तदा एतावतः सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य इ प ३, कियत्यो गुणहानिशलाका लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धाः औदारिकशरीरस्य नानागुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातभागप्रमिताः प ३ / २ ↄ। एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि नानागुणहानिशलाकाः साध्याः। प्र २ ↄ। फ १। इ सा ३३। लब्धवैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकाः सा ३३ / २ ↄ। प्र २ ↄ। फ १। इ २ ↄ ↄ लब्धाहारकशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः संख्येयरूपाणि ↄ। प्र सा ६६। फ १। इ सा ६६ लब्धतैजसशरीरनानागुणहानिशलाका अपवर्तिताः। छे व छे ३।
छे व छे ३

प्र सा ७० को २। फ १। इ सा ७० को २। लब्धकार्मणशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः छे व छे। एतावतीनां नानागुणहानिशलाकानां
छे व छे

प्र प ३ / २ ↄ, यद्येतावान् स्थित्यायामो लभ्यते फ प ३, तदा एकगुणहानिशलाकायाः इ १। कियान् स्थित्यायामो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धः औदारिकशरीरस्य एकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ↄ। एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि गुणहान्यायामः साध्यः। प्र सा ३३ / २ ↄ। फ सा ३३। इ १ लब्धवैक्रियिकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ↄ॥ प्र ↄ फ २ ↄ ↄ। इ १। लब्धाहारकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ↄ॥ प्र छे व छे ३। फ सा ६६। इ १। लब्धतैजसशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः प ↄ / छे व छे ३। प्र छे व छे। फ सा ७० को २। इ १। लब्धकार्मणशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः

प ९। एवमानीतस्वस्वनानागुणहानिशलाका विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्वा अन्योन्यसंगुणे कृते यो राशिरुत्पद्यते स अन्योन्याभ्यस्तराशिरित्युच्यते। औदा-
छे व छे

रिकशरीरस्य अन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्येयलोकमात्रः। वैक्रियिकशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशिस्ततोऽसंख्येयलोकगुणः। आहारकशरीरस्य संख्यातरूपाणि। तैजसशरीरस्य सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रः, स चापवर्तितः असंख्यातकल्पप्रमितो भवति। द्विरूपवर्गधारायामद्धापल्यस्योपरि असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नराशिरित्यर्थः। कार्मणशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशिः स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्रः। छेदराशिमात्रद्विकान्योन्यगुणकारे सत्युत्पन्नस्य पल्यस्य वर्गशलाकाच्छेदमात्रहीनरूपप्रमितद्विकान्योन्यगुणकारसमुत्पन्नवर्गशलाकाराशिर्भागहारो भवति 'विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि' इति परिभाषाबलेन सिद्धत्वात्। समयप्रबद्धस्य स्थितेः प्रथमसमयादारभ्य यावत्सु समयेषु वर्तमाननिषेकाः प्रथमनिषेकादेकैकसमानचयहीना गच्छंति, तेभ्यः समयेभ्यः यस्मिन् समये पूर्वैकचयहीनो निषेकः यदि प्रथमनिषेकादर्धमात्रो भवेत् तस्मात् समयात्प्राक्तनसमयाना सर्वेषामेका गुणहानिरिति संज्ञा, तावत्स्वेव समयेषु उपरितनेषु वर्तमाना निषेकाः प्राक्तनगुणहानिनिषेकाणामर्धार्धमात्रा भवति। चयश्च प्राक्तनगुणहानिचयस्य अर्धमात्रो भवतीति द्वितीयगुणहानिनिषेकचयद्विगुणहीनत्वहेतुत्वात् प्राक्तनसमयानामायामो गुणहानिरित्युपचर्यते। एवं द्वितीयादिगुणहानिनिषेकचयानामर्धार्धमात्राः तृतीयादिचरमपर्यंतगुणहानिनिषेकचया भवतीति द्विगुणहीनत्वसंभवान्मुख्य एव गुणहानिव्यपदेशः। अत एव चरमगुणहानितः प्रभृति प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्रव्यनिषेकचया द्विगुणाद्विगुणा भवति। द्विगुणितो गुणहान्यायामो निषेकभागहार इत्युच्यते। तत्र तत्तत्समयप्रबद्धे तत्तद्रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते लब्धप्रमाण तत्तच्च चरमगुणहानिद्रव्यं भवति। ततो द्विचरमादिप्रथमगुणहानिपर्यंतानां गुणहानीना द्रव्याणि द्विगुणद्विगुणानि भवति। तत्र रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकान्योन्यगुणकारेण यल्लब्धमन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धमात्र तेन गुणितं चरमगुणहानिद्रव्यमात्र प्रथमगुणहानिद्रव्य सिद्धं, तस्मिन् गुणहान्यायामेन भक्ते लब्धं तद्गुणहानिमध्यमधनं भवति। तदेव समीकृतचयधनसहितमादिधनं। तस्मिन् रूपोनगुणहान्यायामार्धोननिषेकभागहारेण भक्ते लब्धश्चयो भवति। तस्मिन् द्विगुणहान्यायामेन गुणिते प्रथमनिषेक आगच्छति। ततो द्वितीयादिचरमनिषेकपर्यंता निषेका एकैकचयहीना गच्छंति। पुन प्रथमगुणहानिचयेनैकेन हीनस्तच्चरमनिषेको द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति। पुनर्द्वितीयादिचरमसमयपर्यंता निषेका प्रथमगुणहानिचयार्धमात्रेण एकैकेन चयेन हीना गच्छंति। एव तृतीयादिगुणहानीना प्रथमनिषेकाः स्वस्वपूर्वगुणहान्येकचयहीनतच्चरमनिषेकमात्रा भवति। द्वितीयादिनिषेकास्तु एकैकस्वस्वचयहीना गच्छंति यावच्चरमगुणहानिचरमनिषेकः प्राप्यते। एवं प्रथमगुणहानितो द्वितीयादिचरमपर्यंतगुणहानीना द्रव्याणि निषेकाश्चयाश्च पूर्वपूर्वगुणहानिद्रव्यनिषेकचयानां अर्धार्धमात्रा भवति। अत्र पूर्वाचार्यविन्यस्तांकसंदृष्टिमाश्रित्य समयप्रबद्ध-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि-नानागुणहानिशलाका-द्विगुणगुणहानि-चय-निषेक-तत्तद्गुणहानिद्रव्याणा विन्यासस्तदानयनविधान वक्ष्यमाणत्रिकोणरचनावस्थितसत्त्वद्रव्यसंकलनविधान च सम्यगानयेत् तत्पुनिर्णीताकसंदृष्टिविभागः सन् पुनरर्थसंदृष्ट्यापि समयप्रबद्धादि सर्वमानयेत् ॥ २५३ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धाना बंधोदयसत्वावस्थासु द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

निपेकविन्यासरचनेयं ।

	२२८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२	१४४ १६० १७६ १९२ २०८ २२४ २४० २५६	७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८	३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४	१८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२	९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६	
६३००	३२००	१६००	८००	४००	२००	१००	एकत्र ६३०८

एवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषाः निपेकाश्च अर्धार्धक्रमा इति निश्चेतव्याः । अयं तु विशेषः । स्वस्वगुणहानिचरमनिपेके स्वस्वैकैकचयेऽपनीते उपरितनोपरितनगुणहानिप्रथमप्रथमनिपेको भवति एवमौदारिकादितैजसांतानां नोकर्मसमयप्रबद्धानां तु प्रागुक्त स्वस्वस्थितिगुणहानिनानागुणहानिनिपेकहारान्योन्याभ्यस्तराशिप्रमाणं स्मृत्वा स्वस्वस्थितिप्रथमसमयादेव आरभ्य निपेकरचना कर्तव्या, औदारिकादिशरीराणां अग्रे तथैव वक्ष्यमाणत्वात् । अधुना अर्थसंदृष्ट्या दर्श्यते तद्यथा—कार्मणसमयप्रबद्धं द्रव्यमिदं स $\overline{\text{ǝ}}$ $\overline{\text{ǝ}}$ ख ख लघुसंदृष्टिनिमित्तं स इति लिखित्वा (स) रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते तच्चरमगुणहानिद्रव्यं भवति । $\frac{स}{अ}$ । ततः प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्विगुणद्विगुणक्रमेण गत्वा प्रथमगुणहानिद्रव्यं चरमगुणहानिद्रव्यादन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धगुणितप्रमाणं भवति । $\frac{स \mid अ}{अ \mid २}$ । इदं पुनः गुणहान्या भक्तं सत् मध्यमधनं भवति $\frac{स \mid अ}{अ \mid २ गु}$ तच्च रूपोनगुणहान्यार्धोनद्विगुणगुणहान्या भक्तं सत् प्रथमगुणहानिसंबंधिचयो भवति । अ । २ । गु । गु $\frac{३}{२}$ । अयं च दोगुणहान्या गुणि-

स । अ । गु २

तः सन् प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेको भवति । अ । २ गु । गु । ३ ततः स्वचरमनिषेकपर्यंतं एकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगु-
२ स । अ । गु

णहान्यायाममात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वचयप्रमाणो भवति । अ । २ गु । गु ३ अनेन प्रकारेण द्वितीयादिगुणहानिषु
स २ स

स्वस्य द्रव्यस्य निषेकरचनां कृत्वा चरमगुणहानिद्रव्यमिदं अ , गुणहान्या भक्तं मध्यमधनं भवति अ । गु । इदं च रूपोनगुणहान्य-
स

र्धहीनदोगुणहान्या भक्तं सत् तच्चरमगुणहानिचयो भवति अ । गु । गु । ३ । अयं च दोगुणहान्या गुणितः प्रथमनिषेको भवति---
स । गु२ । २

अ । गु । गु । ३ तत उपरि निजैकैकचयहीनक्रमेण गच्छन् चरमनिषेके रूपोनगच्छमात्रचयहीनो भूत्वा रूपाधिकगुणहानिगुणितस्वप्रचयप्र-
२ स गु

मितश्चरमनिषेको भवति अ । गु । गु ३ एव कार्मणशरीरसर्वोत्कृष्टस्थितिगतैकसमयप्रबद्धसमस्तगुणहानिनिषेकरचनाविन्यासोयं----
२

स । अ । गु अ । २ । गु । गु । ३ २ ० ० ० स । अ । गु २ अ । २ । गु । गु ३ स । अ २ अ । २	स । अ । गु । अ । २ । २ । गु । गु । ३ २ ० ● ● स । अ । गु । २ अ । २ । २ गु । गु ३ स , अ २ अ , २ , २	० ० ● छे व छे ० ● ० ० ० ०	स , २ , गु अ , गु , गु ३ ● २ ● ० स , २ , गु , २ , अ गु , गु , ३ , स २ २ अ ,	स , गु , अ , गु , गु , ३ , ● २ ● ० स , गु , २ अ , गु , गु , ३ स २ अ ,

इत्येवं प्रथमादिगुणहानिद्रव्याणि तद्विशेषनिषेकाश्च अर्धार्धक्रमा ज्ञातव्याः ॥ २५२ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धानां बंधोदयसत्त्वावस्थायां द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

मं० प्र०—आदिमानां त्रयाणामौदारिकवैक्रियिकाहारकशरीराणां उत्कृष्टस्थितिसंबधिनी गुणहानिः गुणहान्यायामः स्वयोग्यांतर्मुहूर्तमात्रः। तैजसकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टस्थितिसंबधिनी गुणहानिः पल्यासंख्येयभागमात्री। तत्र तैजसशरीरस्य संख्यातपल्यमात्रस्योत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना असंख्यातगुणितेन स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तादृशपल्यासंख्येयभागमात्री गुणहानिः। कार्मणशरीरस्य तु संख्यातपल्यमात्रस्योत्कृष्टस्थितिं पल्यवर्गशलाकार्धच्छेदोनपल्यार्धच्छेदराशिना स्वकीयनानागुणहानिशलाकाप्रमाणेन भक्त्वा यल्लब्धं तथाविधपल्यासंख्येयभागप्रमिता गुणहानिः, इत्ययं विशेषो ज्ञातव्यः। एतावतः स्थित्यायामस्य प्र २ ७, यद्येका गुणहानिशलाका लभ्यते फ १, तदा एतावतः सर्वोत्कृष्टस्थित्यायामस्य इ प ३, कियत्यो गुणहानिशलाका लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धाः औदारिकशरीरस्य नानागुणहानिशलाकाः पल्यासंख्यातभागप्रमिताः प ३ / २ ७। एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि नानागुणहानिशलाकाः साध्याः। प्र २ ७। फ १। इ सा ३३। लब्धवैक्रियिकशरीरनानागुणहानिशलाकाः सा ३३ / २ ७। प्र २ ७। फ १। इ २ ७ ७ लब्धाहारकशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः संख्येयरूपाणि ७। प्र सा ६६। फ १। इ सा ६६ लब्धतैजसशरीरनानागुणहानिशलाका अपवर्तिताः। छे व छे ७। / छे व छे ७

प्र सा ७० को २। फ १। इ सा ७० को २। लब्धकार्मणशरीरनानागुणहानिशलाकाः अपवर्तिताः छे व छे। एतावतीनां नानागुणहानिशलाकानां / छे व छे

प्र प ३, यद्येतावान् स्थित्यायामो लभ्यते फ प ३ / २ ७, तदा एकगुणहानिशलाकायाः इ १। कियान् स्थित्यायामो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धः औदारिकशरीरस्य एकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ७। एवं वैक्रियिकादिशरीराणामपि गुणहान्यायामः साध्यः। प्र सा ३३ / २ ७। फ सा ३३। इ १ लब्धवैक्रियिकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ७॥ प्र ७ फ २ ७ ७। इ १। लब्धाहारकशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः २ ७॥ प्र छे व छे ७। फ सा ६६। इ १। लब्धतैजसशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः प ७ / छे व छे ७। प्र छे व छे। फ सा ७० को २। इ १। लब्धकार्मणशरीरैकगुणहान्यायामः अपवर्तितः

प ०१। एवमानीतस्वस्वनानागुणहानिशलाका विरलयित्वा प्रतिरूपं द्विकं दत्वा अन्योन्यसंगुणे कृते यो राशिरुत्पद्यते स अन्योन्याभ्यस्तराशिरित्युच्यते। औदा-
छे व छे

रिकशरीरस्य अन्योन्याभ्यस्तराशिः असंख्येयलोकमात्र । वैक्रियिकशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशिस्ततोऽसंख्येयलोकगुणः । आहारकशरीरस्य सख्यातरूपाणि । तैजसशरीरस्य सूच्यंगुलासख्येभागमात्रः, स चापवर्तितः असख्यातकल्पप्रमितो भवति। द्विरूपवर्गधारायामद्धापल्यस्योपरि असंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा उत्पन्नराशिरित्यर्थः। कार्मणशरीरस्यान्योन्याभ्यस्तराशि स्ववर्गशलाकाभक्तपल्यमात्र । छेदराशिमात्रद्विकान्योन्यगुणकारे सत्युत्पन्नस्य पल्यस्य वर्गशलाकाच्छेदमात्रहीनरूपप्रमितद्विकान्योन्यगुणकारसमुत्पन्नवर्गशलाकाराशिर्भागहारो भवति 'विरलनरासीदो पुण जेत्तियमित्ताणि हीणरूवाणि' इति परिभाषाबलेन सिद्धत्वात्। समयप्रबद्धस्य स्थिते प्रथमसमयादारभ्य यावत्सु समयेषु वर्तमाननिषेकाः प्रथमनिषेकादेकैकसमानचयहीना गच्छंति, तेभ्यः समयेभ्यः यस्मिन् समये पूर्वैकचयहीनो निषेकः यदि प्रथमनिषेकादर्धमात्रो भवेत् तस्मात् समयात्प्राक्तनसमयाना सर्वेषामेका गुणहानिरिति संज्ञा, तावत्स्वेव समयेषु उपरितनेषु वर्तमाना निषेकाः प्राक्तनगुणहानिनिषेकाणामर्धार्धमात्रा भवति। चयश्च प्राक्तनगुणहानिचयस्य अर्धमात्रो भवतीति द्वितीयगुणहानिनिषेकचयद्विगुणहीनत्वहेतुत्वात् प्राक्तनसमयानामायामो गुणहानिरित्युपचर्यते । एवं द्वितीयादिगुणहानिनिषेकचयानामर्धार्धमात्राः तृतीयादिचरमपर्यंतगुणहानिनिषेकचया भवतीति द्विगुणहीनत्वसभवान्मुख्य एव गुणहानिव्यपदेशः। अत एव चरमगुणहानितः प्रभृति प्रथमगुणहानिपर्यंतं द्रव्यनिषेकचया द्विगुणाद्विगुणा भवति। द्विगुणितो गुणहान्यायामो निषेकभागहार इत्युच्यते। तत्र तच्चरमसमयप्रबद्धे तद्रूपेनान्योन्याभ्यस्तराशिना भक्ते लब्धप्रमाण तत्तच्च चरमगुणहानिद्रव्यं भवति। ततो द्विचरमादिप्रथमगुणहानिपर्यंताना गुणहानीना द्रव्याणि द्विगुणद्विगुणानि भवति । तत्र रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रद्विकान्योन्यगुणकारेण यल्लब्धमन्योन्याभ्यस्तराश्यर्धमात्र तेन गुणितं चरमगुणहानिद्रव्यमात्र प्रथमगुणहानिद्रव्यं सिद्ध, तस्मिन् गुणहान्यायामेन भक्ते लब्धं तद्गुणहानिमध्यमधनं भवति । तदेव समीकृतचयधनसहितमादिधन । तस्मिन् रूपोनगुणहान्यायामार्धोननिषेकभागहारेण भक्ते लब्धश्चयो भवति । तस्मिन् द्विगुणहान्यायामेन गुणिते प्रथमनिषेक आगच्छति। ततो द्वितीयादिचरमनिषेकपर्यंता निषेका एकैकचयहीना गच्छंति । पुन प्रथमगुणहानिचयेनैकेन हीनस्तच्चरमनिषेको द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेको भवति। पुनर्द्वितीयादिचरमसमयपर्यंता निषेका प्रथमगुणहानिचयार्धमात्रेण एकैकेन चयेन हीना गच्छंति । एवं तृतीयादिगुणहानीनां प्रथमनिषेकाः स्वस्वपूर्वगुणहान्येकचयहीनतच्चरमनिषेकमात्रा भवति । द्वितीयादिनिषेकास्तु एकैकस्वस्वचयहीना गच्छति यावच्चरमगुणहानिचरमनिषेकः प्राप्यते । एव प्रथमगुणहानितो द्वितीयादिचरमपर्यंतगुणहानीना द्रव्याणि निषेकाश्चयाश्च पूर्वपूर्वगुणहानिद्रव्यनिषेकचयाना अर्धार्धमात्रा भवंति । अत्र पूर्वाचार्यविन्यस्ताकसदृष्टिमाश्रित्य समयप्रबद्ध-द्रव्य-स्थिति-गुणहानि-नानागुणहानिशलाका-द्विगुणगुणहानि-चय-निषेक-तत्तद्गुणहानिद्रव्याणा विन्यासस्तदानयनविधान वक्ष्यमाणत्रिकोणरचनावस्थितसत्त्वद्रव्यसकलनविधानं च सम्यगानयेत् तत्सुनिर्णीताकसंदृष्टिविभागः सन् पुनरर्थसंदृष्ट्यापि समयप्रबद्धादि सर्वमानयेत् ॥ २५३ ॥ अथौदारिकादिसमयप्रबद्धाना बंधोदयसत्त्वावस्थासु द्रव्यप्रमाणं प्ररूपयति—

स.चं.-पूर्व पूर्व गुणहानितैं उत्तर उत्तर गुणहानिविषैं गुणहानिका वा निषेकनिका द्रव्य दूणा दूणा घटता होइ है तातैं गुणहानि नाम जानना सो जैसैं अडतालीस समयकी स्थितिविषैं आठ आठ समय प्रमाण एक एक गुणहानिका आयाम हो है तैसैं आदिके तीन शरीर औदारिक वैक्रियिक आहारक तिनकी तौ उत्कृष्टस्थिति संबंधी गुणहानि यथायोग्य अंतर्मुहूर्त प्रमाण है अपने अपने योग्य अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंइ तितना गुणहानिका आयाम जानना। आयाम नाम लंबाईका है सो इहां समय समय संबंधी निषेक रूपतैं होइ तातैं आयाम ऐसी संज्ञा कही बहुरि तैजसकार्माणकी उत्कृष्टस्थिति संबंधी गुणहानि अपने अपने योग्य पल्यके असंख्यातवें भाग प्रमाण है तहां पल्यकी जो वर्गशलाका ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तितने पल्यके अर्धच्छेदनिमें घटाएं जो अवशेष रहै ताकौं असंख्यात करि गुणें जो परिमाण होइ तितनी तैजसकी सर्वनानागुणहानि है। इस परिमाणका भाग तैजस शरीरकी उत्कृष्टस्थिति संख्यातपल्य प्रमाण है ताकौं दीएं जो परिमाण आवै तींहिं प्रमाण पल्यके असंख्यातवे भागमात्र तैजस शरीरकी गुणहानिका आयाम है। बहुरि पल्यकी वर्गशलाकाके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिकौं पल्यके अर्धच्छेदनिमें घटाएं जो अवशेष रहै तितनी कार्माणकी सर्वनाना गुणहानि है इस परिमाणका भाग कार्माणकी उत्कृष्टस्थिति संख्यातपल्यप्रमाण है ताकौं दीएं जो परिमाण आवैं तींहिं प्रमाण पल्यके असंख्यातवे भागमात्र कार्माण शरीरकी गुणहानिका आयाम है। ऐसैं गुणहानि आयाम कह्या बहुरि जैसैं आठ समयकी एक गुणहानि होइ तौ अडतालीस समयकी केती गुणहानि होंइ? ऐसैं त्रैराशिक कीए सर्वस्थितिविषैं नानागुणहानिका प्रमाण छह आवै तैसैं जो औदारिक शरीरकी एक अंतर्मुहूर्तमात्र एक गुण हानि शलाका है तौ तीनि पल्यकी नाना गुणहानि कितनी है? ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां प्रमाण राशि अंतर्मुहूर्तके समय, फलराशि एक, इच्छाराशि तीन पल्यके समय इहां फलराशिकरि इच्छा राशिकौं गुणि प्रमाण राशिका भाग दीए लब्ध प्रमाण तीन पल्यकौं अंतर्मुहूर्तका भाग दीए जो परिमाण आवै तितना सो आया उत्कृष्ट औदारिक शरीरकी स्थितिविषैं नानागुण हानिका प्रमाण जानना। ऐसैं ही वैक्रियिक शरीरविषैं

प्रमाण राशि अंतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छाराशि तेतीससागर कीयें तेतीस सागरकौं अंतर्मुहूर्तका भाग दीयें जो प्रमाण आवे तितना नानागुणहानिका प्रमाण जानना बहुरि आहारक शरीरविषें प्रमाणराशि छोटा अंतर्मुहूर्त, फलराशि एक, इच्छा राशि बड़ा अंतर्मुहूर्त कीएं अंतर्मुहूर्तकौं स्वयोग्य छोटा अंतर्मुहूर्तका भाग दीएं जो परिमाण आवे तितना नानागुणहानि शलाकाका प्रमाण जानना । बहुरि तैजस शरीरविषें प्रमाण राशि पूर्वोक्त गुण हानि आयाम, फलराशि एक इच्छाराशी छ्यासठ सागर कीएं पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेदकरि हीन पल्यका अर्धच्छेदनितैं असंख्यात गुणा नाना गुणहानिका प्रमाण हो है । बहुरि कार्माण शरीरविषें प्रमाणराशि पूर्वोक्त गुणहानि आयाम, फल राशि एक, इच्छा राशि मोहकी अपेक्षा सत्तरि कोडाकोडी सागर कीएं पल्यकी वर्ग शलाकाका अर्धच्छेदकरि हीन पल्यका अर्धच्छेदमात्र नानागुणहानिका प्रमाण जानना । अब औदारिक आदि शरीरनिका गुणहानिआयाम साधिए है—

जैसें जो छह नाना गुणहानिका अडतालीस समय प्रमाण स्थिति आयाम होइ तौ एक गुण हानिका कितना आयाम होइ ऐसैं त्रैराशिक करिये इहां प्रमाण राशि छह, फलराशि अडतालीस इच्छा राशि एक भया तहां लब्ध राशिमात्र एक गुणहानि आयामका प्रमाण आठ आया तैसें अपना अपना नाना गुणहानि प्रमाणका अपना अपना स्थिति प्रमाण आयाम होइ तो एक गुणहानिका केता आयाम होइ ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां लब्धराशि मात्र गुणहानिका आयाम हो है । तहां औदारिकविषै प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्य, फलराशि तीनि पल्य, इच्छा राशि एक कीएं लब्ध राशि अंतर्मुहूर्त हो है । बहुरि वैक्रियिकविषै प्रमाण राशि अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तेतीससागर, फलराशि तेतीस सागर, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि अंतर्मुहूर्त हो है बहुरि आहारकविषै प्रमाण राशि संख्यात फलराशि अंतर्मुहूर्त, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि छोटा अंतर्मुहूर्त हो है बहुरि तैजसविषैं प्रमाण राशि पल्यकी वर्ग शलाकाका अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेदनितैं असंख्यातगुणा, फल छ्यासठि सागर, इच्छा एक कीएं लब्ध राशि संख्यातपल्यकौं पल्यकी वर्गशलाकाका

अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेदनितैं असंख्यात गुणे प्रमाणका भाग दीएं जो प्रमाण आवे तितना जानना। बहुरि कार्माणविषैं प्रमाणराशि पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेद मात्र, फलराशि सत्तरि कोडाकोडी सागर, इच्छाराशि एक कीएं लब्धराशि संख्यात पल्यकौं पल्यकी वर्गशलाकाके अर्धच्छेदनिकरि हीन पल्यके अर्धच्छेदराशिका भाग दीएं जितना आवे तितना जानना। ऐसैं लब्धराशिमात्र एक गुण हानिका आयाम जानना। इतने इतने समयनिके समूहका नाम एक गुण हानि है सर्व स्थितिविषै जेती गुण हानि पाइए तिसप्रमाणका नाम नानागुण हानि है ऐसा इहां भावार्थ जानना। बहुरि नाना गुणहानिका जेता प्रमाण तितने दूवे माडि परस्पर गुणैं जितना प्रमाण होइ सो अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना जैसैं नाना गुणहानिका प्रमाण छह सो छहका विरलन करि एक एक जायगा दोयके अंक माडि परस्पर गुणै चौसठि होइ सोई अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण जानना तैसैंही औदारिक आदि शरीरनिकी स्थितिविषैं जो जो नाना गुणहानिका प्रमाण कह्या ताका विरलनकरि एक एक वखेरि अर एक एक जायगा दोय दोय देइ परस्पर गुणैं अपना अपना अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण हो है। तहां लोकके जेते अर्धच्छेद हैं तितने दूवनिकौं परस्पर गुणैं लोक होइ तौ इहां नानागुणहानिप्रमाण दूवे मांडि परस्पर गुणैं केते लोक होंइ? ऐसैं त्रैराशिक करना तहां लब्धराशि ल्यावनेके अर्थि सूत्र काहिए है—

दिण्णच्छेदेणवहिद इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे।
लद्धमिदइट्ठरासी णण्णोण्णहदीए होदि पयदधणं॥ २१४॥

ऐसा कायमार्गणाविषैं सूत्र कह्या था ताकरि इहां देयराशि दोय ताका अर्धच्छेद एक ताका भाग इष्टच्छेद लोकके अर्धच्छेदकौं दीएं इतनेही रहे इनि लोकके अर्धच्छेदनिके प्रमाणका भाग औदारिक शरीरकी स्थिति संबंधी नानागुणहानिके प्रमाणकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने इष्टराशिरूप लोक मांडि परस्पर गुणैं जो लब्धि प्रमाण होइ तितना औदारिक शरीरकी स्थितिविषैं अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण असंख्यातलोकमात्र हो है।

बहुरि तैसैंही वैक्रियिक शरीरविषैं नानागुणहानिका प्रमाणकौं लोकका अर्धच्छेद राशिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने लोक मांडि परस्पर गुणैं वैक्रियिक शरीरकी स्थितिविषैं अन्योन्याभ्यस्तविषैं राशि हो है। सो यहु औदारिक शरीरकी स्थितिसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशितैं अनंतगुणा जानना। काहेतैं ? जातैं अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्यतैं अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तेतीस सागरकौं एकसौ दश कोडाकोडीका गुणकार संभवै है। सो यहां एकघाटि एकसौ दश कोडाकोडी गुणां जो औदारिकशरीरकी नानागुणहानिका प्रमाण तितना औदारिकशरीरकी नानागुणहानिका प्रमाणतैं वैक्रियिकशरीरकी नानागुणहानिका प्रमाण अधिक भया सो—

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणयारो लद्धरासिस्स॥

इस सूत्रकरि इस अधिक प्रमाणमात्र दूवे मांडि परस्परगुणैं जो असंख्यातलोकमात्र परिमाण आया सोई औदारिकका अन्योन्याभ्यस्तराशितैं वैक्रियिकका अन्योन्याभ्यस्तराशिविषैं गुणकार जानना। अथवा जो अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्यप्रमाण औदारिक शरीर संबंधी नानागुणहानिका अन्योन्याभ्यस्तराशि असंख्यात लोकमात्र होइ तौ एकसौ दश कोडाकोडि गुणा अंतर्मुहूर्तकरि भाजित तीन पल्यप्रमाण वैक्रियिकशरीरका नानागुणहानिका अन्योन्याभ्यस्तराशि कितना होइ ? ऐसा त्रैराशिक कीएं 'दिण्णच्छेदेणवहिद' इत्यादि सूत्रकरि एकसौ दश कोडाकोडि वार औदारिक शरीरसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि मांडि परस्पर गुणैं वैक्रियिकशरीरसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि होहै तातैंभी औदारिकसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशितैं वैक्रियिकसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशिविषैं असंख्यातलोकका गुणकार सिद्धभया। बहुरि आहारक शरीरकी नानागुणहानि संख्यात है सो संख्यातका विरलनकरि एक एक प्रति देयकौं देइ परस्पर गुणैं यथायोग्य संख्यात होइ सो आहारकशरीरका अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना। बहुरि तैजस शरीरकी स्थितिसंबंधी नानागुणहानिशलाका कार्माण

शरीरकी स्थितिसंबंधी नानागुणहानि शलाकातैं असंख्यात गुणी है सो पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेद पल्य अर्धच्छेदनिमें घटाएं जो प्रमाण होइ तातैं असंख्यातगुणी जाननी सो इहां सुगमताके अर्थि याकौं पल्यका अर्धच्छेदराशिका भागदेना तहां पल्यका वर्गशलाकाका अर्धच्छेद राशिकौं असंख्यातकरि गुणिए अर पल्यका अर्धच्छेदराशिका भागदेना इतना घटावने योग्य जो ऋणराशि ताकौं जुदा राखिए अवशेष ऋणरहित राशि पल्यका अर्धच्छेदराशिकौं असंख्यातगुणा करिये पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग दीजिए इतना रह्या सो इहां भाज्यराशिविषैं अर भागहारराशिविषैं पल्यका अर्धच्छेद राशिकौं समान जानि अपवर्तन करना अवशेष गुणकाररूप असंख्यात रहिगया सो इस असंख्यातका जेता प्रमाण तितना पल्य माडि परस्पर गुणन करना जातैं असंख्यातगुणा पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणैं जेता प्रमाण होइ तितना ही पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग दीएं अवशेष गुणकारमात्र असंख्यात रह्या तितना पल्य मांडि परस्पर गुणैं प्रमाण हो है जैसैं पल्यका प्रमाण सोलह ताके अर्धच्छेद च्यारि असंख्यातका प्रमाण तीन सो तीनिकरि च्यारिकौं गुणैं बारह होइ सो बारह जायगा दूवा माडि परस्पर गुणैं च्यारिहजार छिनवै होइ सोई बारहकौं च्यारिका भाग दीएं गुणकारमात्र तीन रह्या सो तीन जायगा सोलह मांडि परस्परगुणैं च्यारिहजार छिनवै होइ तातैं सुगमताके अर्थि पूर्वोक्त राशिकौं पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग देइ लब्धिराशि असंख्यात प्रमाण पल्य माडि परस्पर गुणन कीया। सो इहां यह गुणकाररूप असंख्यात है सो पल्यका अर्धच्छेदनिके असंख्यातवे भागमात्र जानना पल्य का अर्धच्छेदराशि समान न जानना। जो पल्यका अर्धच्छेद समान यहु असंख्यात होइ तौ इतने पल्य माडि परस्पर गुणैं तैजस शरीरकी स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशि सूच्यंगुल प्रमाण होइ सो है नाही, जातैं शास्त्रविषैं क्षेत्र प्रमाणकरि सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमात्रकाल प्रमाणकरि असंख्यात कल्पकालमात्र तैजस शरीरकी स्थितिसंबंधी अन्योन्याभ्यस्तराशिका प्रमाण कह्या है तातैं पल्यका अर्धच्छेदका असंख्यातवां भागमात्र संख्यातका विरलनकरि एक एक प्रति पल्यकौं देइ परस्पर गुणैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र प्रमाण हो है सो द्विरूप वर्गधारा

विषैं पल्यराशिरूप स्थानतैं ऊपरि इहां विरलनराशिरूप असंख्यातके जेते अर्धच्छेद होंहि तितने वर्गस्थान गएं यहु राशि हो है। बहुरि—

विरलनरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इस सूत्रके अभिप्रायतैं जो ऋणरूप राशि जुदा स्थाप्या था ताका अपवर्तन कीएं एकका असंख्यातवां भाग भया। याकौं पल्यकरि गुणें पल्यका असंख्यातवां भाग भया जातैं असंख्यात गुणा पल्यकी वर्गशलाका का अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें भी इतना ही प्रमाण है तातैं सुगमताके अर्थि इहां पल्यका अर्धच्छेद राशिका भाग देइ एकका असंख्यातवां भाग पाया ताकरि पल्यका गुणन कीया है सो ऐसैं करतैं जो पल्यका असंख्यातवां भाग भया ताका भाग पूर्वोक्त सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं देना सो भाग दीएं भी आलापकरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागही रह्या सोई तैजस शरीरकी स्थिति संबंधी अन्योन्याभ्यस्त राशि जानना। बहुरि कार्माण शरीरकी स्थिति संबंधी नाना गुणहानि शलाका पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेदकरि हीन पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण है इसका विरलन करि एक एक प्रति दोय दोय परस्पर गुणें ताका अन्योन्याभ्यस्त राशी पल्यकी वर्गशलाकाका भाग पल्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितना जानना जातैं इहां पल्यका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें पल्य होइ सो तौ भाज्य भया अर 'विरलनरासीदो पुणजेत्तिय मेत्ताणि हीणारूवाणि' इत्यादि सूत्रकरि हीन राशिरूप पल्यकी वर्गशलाकाका अर्धच्छेद प्रमाण दूवा माडि परस्पर गुणें पल्यकी वर्गशलाका होइ सो भागहार जानना। बहुरि जैसैं गुणहानि आयाम आठ ताकौं दूणा कीएं दोगुणहानिका प्रमाण सोलह हो है तैसैं औदारिक आदि शरीरनिका जो जो गुणहानि आयामका प्रमाण है ताकौं दूणा कीएं अपनी अपनी दोगुणहानि हो है। याहीका दूसरा नाम निषेकहार जानना।

ऐसैं द्रव्यस्थिति गुणहानि नाना गुणहानि अन्योन्याभ्यस्तराशि दोगुणहानिका कथन करि अवस्थितिके समय संबंधी परमाणूनिका प्रमाणरूप निषेकनिका कथन करिए है—तहां प्रथम अंक संदृष्टिकरि दृष्टांत कहिए है द्रव्य तरेसठिसै ६३०० स्थिति अडतालीस ४८ गुणहानि आयाम आठ ८ नाना गुणहानि छह ६ दो गुण हानि सोलह १६ अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठि ६४ । तहां औदारिक आदि शरीरनिके समय प्रबद्ध प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप च्यारि प्रकार बंध धरै हैं । तहां प्रकृतिबंध प्रदेशबंध योगतैं हो हैं, स्थितिबंध अनुभागबंध कषायतैं हो है । तहां विवक्षित कोई एक समयविषै बंध्या कार्माणका समयप्रबद्ध ताकी उत्कृष्टस्थिति सत्तरि कोडाकोडि सागरकी बंधी तिस स्थितिके पहले समयतैं लगाय सात हजार वर्ष पर्यंत तौ आबाधाकाल है तहां कोई निर्जरा न होइ तातैं कोई निषेक रचना नाहीं । अवशेष स्थितिका प्रथमसमयतैं लगाइ अंतसमय पर्यंत अपना अपना काल प्रमाण स्थिति धरैं जे परमाणूनिके पुंज ते निषेक कहिए तिनकी रचना अंकसंदृष्टिकरि प्रथम दिखाइए है—

विवक्षित एक समयविषैं बंध्या कार्माणका समयप्रबद्ध ताका परमाणूनिका प्रमाण रूप द्रव्य तरेसठिसै है तहां—

रूऊणण्णोण्णब्भवहिददव्वं तु चरिम गुणदव्वं ।
होदि तदो दुगुण कमा आदिमगुणहाणि दव्वोत्ति ॥

इस सूत्र अनुसारि एक घाटि अन्योन्याभ्यस्तराशिका भाग सर्वद्रव्यकौं दीएं अंतका गुणहानिका द्रव्य होइ तातैं दूणा दूणा प्रथमगुणहानिपर्यंत द्रव्य जानना । सो इहां अन्योन्याभ्यस्त राशि चौसठिमैंस्यों एक घटाइ अवशेष ६३ का भाग सर्वद्रव्य ६३०० कौं दीएं सौ पाए सोई नानागुणहानि छह तिनिविषैं अंतकी छठी गुणहानिका द्रव्य जानना। तातैं दूणा दूणा प्रथम गुणहानिपर्यंत द्रव्य जानना ऐसैं होतैं एकघाटि नानागुणहानिशलाका प्रमाण दूवा मांडि परस्पर गुणैं जो अन्योन्याभ्यस्तराशिका आधा प्रमाण होय ताकरि अंतकी गुणहानिके द्रव्यकौं गुणैं प्रथम गुणहानिका द्रव्य हो है सो एक घाटि नानागुणहानि पांच तीह प्रमाण

दूवा माडि परस्पर गुणैं वत्तीस होइ सोई अन्योन्याभ्यस्तराशि चौसठिका आधाप्रमाण ताकरि अंतगुणहानिका द्रव्य सौकौं गुणैं प्रथमगुणहानिका द्रव्य वत्तीससै हो है। सर्व गुणहानिका द्रव्य अंततैं लगाइ आदि पर्यंत एकसौ दोयसै च्यारिसै आठसै सोलहसै वत्तीससै प्रमाण जानना। वहुरि तहां प्रथमगुणहानिका द्रव्य वत्तीससै तहां 'अद्धाणेण सव्वधणे खंडिदे मज्झिमधणमागच्छादि' इस सूत्रकरि अध्वान जो गुणहानि आयाम प्रमाण गच्छ ताका स्वकीय गुणहानिसंबंधी द्रव्यकौं भाग दीएं मध्यसमयसंबंधी मध्यधन आवै है सो इहां वत्तीससैकौं गच्छ आठका भागदीएं मध्यधन च्यारिसै हो है। वहुरि "रूऊण अद्धाणअद्धेणूणेणिसेयहारेण मज्झिमधणमवहरिदे पचयं" इस सूत्रके अनुसारि एक घाटि गच्छका आधाप्रमाणकरि हीन जो निषेकहार कहिए दो गुणहानि ताकरि मध्यधनकौं भाजित कीएं चयका प्रमाण आवै है स्थान स्थान प्रति जितना २ वधै वा घटै ताकानाम चय जानना। सो इहां एक घाटि गच्छ सात ताका आधा साढा तीन सो निषेकहार सोलहमें घटाएं साढा बारह ताका भाग मध्यधन च्यारिसैकौं दीएं वत्तीस पाए सोई प्रथम गुणहानिविषैं चयका प्रमाण जानना वहुरि इस चयकौं निषेक हार जो दोगुणहानि ताकरि गुणैं प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक होइ सो इहां वत्तीसकौं सोलहकरिगुणैं प्रथम गुणहानिका प्रथम निषेक पांचसै बारह प्रमाण रूप हो है भावार्थ—जो तरेसठिसै परमाणूका समय प्रबद्ध बंध्या हुता, ताकी स्थितिविषैं आवाधाकाल भए पीछै पहले समय तिन परमाणूनिविषैं पांचसै बारह परमाणू निर्जरा है। ऐसैं अन्य समय संबंधी निषेकनिविषैं उक्तप्रमाण परमाणूनिकी निर्जरा होनेका क्रम जानना। वहुरि 'तत्तो विसेसहीणकमं' तातैं ऊपरि ऊपरि तिस गुणहानिके अंतनिषेक पर्यंत एक एक चय घटता अनुक्रम जानना। तहां प्रथम निषेकतैं एक घाटि गच्छप्रमाण चयघटैं एक अधिक गुणहानि आयाम करि गुणित चय प्रमाण अंत निषेक हो है सो इहां द्वितीयादि निषेकनिकेविषैं वत्तीस वत्तीस घटावना। तहां एक घाटि गच्छ सात तीहि प्रमाण चयके भये दोयसै चौवीस सो इतने प्रथम निषेकनितैं घटैं अंत निषेकविषैं दोयसै अठ्यासी प्रमाण हो है

सो एक अधिक गुणहानि नव ताकरि चय वत्तीसकौं गुणैं भी दोयसै अठ्यासी हो है ऐसैं प्रथम गुणहानिविषैं निषेक रचना जाननी—५१२, ४८०, ४४८, ४१६, ३८४, ३५२, ३२०, २८८, बहुरि ऐसैं ही द्वितीय गुणहानिका द्रव्य सोलहसै ताकौं गुणहानि आयामरूप गच्छका भाग दीएं मध्यधन दोयसै होइ याकौं एक घाटि गुणहानि आयामका आधा प्रमाणकरि हीन निषेकहार साढा वारह ताका भाग दीएं द्वितीय गुणहानिविषैं चयका प्रमाण सोलह होइ। बहुरि याकौं दोगुणहानि सोलहकरि गुणैं द्वितीयगुणहानिका प्रथम निषेक दोयसै छप्पन प्रमाण हो है ऊपरि ऊपरि द्वितीयादि निषेक अपना एक एक चयकरि घटता जानना तहां एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटै एक अधिक गुणहानि आयामकरि गुणित अपना चयप्रमाण अंतका निषेक एकसौ चवालीस प्रमाण हो है। बहुरि तृतीय गुणहानिविषैं द्रव्य आठसैकौं गुणहानिका भाग दीएं मध्यधन सौ १००, याकौं एक घाटि गुणहानिका आधाकरि हीन दोगुणहानिका भाग दीएं चयका प्रमाण आठ, याकौं दोगुणहानिकरि गुणि प्रथमनिषेक एकसौ अट्ठाईस यातैं ऊपरि अपना एक एक चय घटता होइ एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटैं एक अधिक गुणहानि आयामकरि गणित स्वकीय चयमात्र अंतनिषेक बहत्तरि हो है। ऐसैं ही इस क्रमकरि चतुर्थ आदि गुणहानिविषैं प्राप्त होइ, अंतगुणहानिविषैं द्रव्य सौ १०० ताकौं पूर्वोक्तप्रकार गुणहानिका भाग दीएं मध्यधन साढा वारह याकौं एक घाटि गुणहानिका आधा प्रमाणकरि हीन दोगुणहानिका भागदीएं चयका प्रमाण १, याकौं दो गुणहानिकरि गुणैं प्रथम निषेकका प्रमाण सोलह तातैं ऊपरि अपना एक एक चय घटता होइ। एक घाटि गच्छप्रमाण चय घटै एक अधिक गुणहानिकरि गुणित स्वकीय चयमात्र स्थितिके अंतनिषेकका प्रमाण नव हो है ऐसैं द्वितीयादिक अंतगुणहानिपर्यंतविषैं द्रव्यादिक हैं ते गुणकाररूप हानिका अनुक्रम लीएं है तातैं गुणहानि ऐसा नाम सार्थक जानना। इहां तर्क—जो प्रथम गणहानिविषैं तौ पूर्व गणहानिके अभावतैं गणहानिपना नाहीं? ताका समाधान कि--मुख्यपनैं ताका गणहानि नाम नाहीं है तथापि ऊपरिकी गणहानिकौं गुणहानिपनाकौं कारणभूत जो चय ताका हीन होनेका सद्भाव पाईए है तातैं उपचारकरि प्रथमकौं भी गुणहानि कहिए है गुणकार

१३५

हानि अन्योन्याभ्यस्त राशिका प्रमाण यादि। करि इहां आबाधाकाल है नाहीं, तातैं अपनी अपनी स्थितिका प्रथम समयहीतैं लगाय निषेक रचना करनी जातैं औदारिक आदि शरीरनिका तैसैंही आगैं वर्णन कीजिये है॥ २५३॥ आगैं औदारिक आदिके समयप्रबद्धनिका बंध उदय सत्त्व अवस्थाविषैं द्रव्यका प्रमाण निरूपण करैं हैं—

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिवड्ढं समयपबद्धं हवे सत्तं॥ २५४॥

एकं समयप्रबद्धं बध्नाति एकमुदेति चरमे।
गुणहानीनां द्व्यर्धं समयप्रबद्धं भवेत् सत्त्वं॥ २५४॥

जी० प्र०—औदारिकादिशरीराणां मध्ये तैजसकार्मणशरीरयोरनादिसंबद्धत्वेन सर्वदा बंधोदयसत्त्वासंभवात् जीवः मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तं तैजसं कार्मणीयं च प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धं बध्नाति—तैजसशरीररूपतां ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरूपतां च नयति, प्रतिसमयमेकैकं समयप्रबद्धमुदेति च स्वफलदानपरिणत्या परिणम्य फलं दत्त्वा तैजसशरीररूपतां कार्मणरूपतां च त्यक्त्वा गलतीत्यर्थः। विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमनिषेके किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वद्रव्यं भवति, परमार्थतस्तु एतावत्सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयं संभवतीत्यर्थः। औदारिकवैक्रियिकशरीरसमयप्रबद्धानां विशेषोऽस्ति। स कः? तच्छरीरद्वयग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वायुश्चरमसमयपर्यंतं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टो जीवः प्रतिसमयमेकैकं तच्छरीरसमयप्रबद्धं बध्नाति तत्तच्छरीरस्वरूपेण परिणमयतीत्यर्थः। तर्हि उदयः कियान्? इति चेदुच्यते—शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः उदेति तदेकदेशस्य उपचारेण प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेतीति कथनात्। द्वितीयसमये प्रथमसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकः, द्वितीयसमयबद्धसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकः एवं द्वौ उदयतः। एवं तृतीयादिसमयेषु प्रागबद्धैकैकनिषेकवृद्ध्योदयक्रमेण चरमसमये उदयः सत्त्वसंचयश्च युगपद्द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रो भवति। आचार्येणापि तथा वक्ष्यते। आहारकशरीरस्याप्येवमेव। अयं तु विशेषः, तच्छरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थित्यंतर्मुहूर्तकालावसानसमये किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्योदयः सत्त्वसंचयश्च युगपद्भवतीति विशेषो ज्ञातव्यः॥ २५४॥ अथौदारिकवैक्रियिकशरीरयोः स्थितिबंधोदयसत्त्वविशेषमाह—

१। ब पुस्तके आहारकशरीरस्य तु तच्छ......इत्यादि पाठः।

मं० प्र०—तत्र तैजसकार्मणशरीरयोरनादिसंबंधित्वेन सर्वदा सर्वबंधोदयसत्त्वसंभवात् जीवः मिथ्यादर्शनादिपरिणामनिमित्तकं प्रतिसमये तैजसीयं कार्मणीयं चैकैकं समयप्रबद्ध बध्नाति—तैजसरूपतां कार्मणरूपतां च प्रापयति, प्रतिसमयमेकैकसमयप्रबद्धद्रव्यमुदेति च—स्वफलदानपरिणत्या विपच्यते स्वफलं दत्त्वा तैजसरूपतां कार्मणरूपतां च त्यक्त्वा गलतीत्यर्थः। विवक्षितसमयप्रबद्धस्थितिचरमसमये किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं सत्त्वद्रव्यं भवेत्। परमार्थतस्तु एतावत् सत्त्वद्रव्यं प्रतिसमयमस्तीति निश्चेतव्यं। औदारिकवैक्रियिकशरीरयोस्तु ऋजुगत्या उत्पन्न. शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वायुश्चरमसमयपर्यंतं शरीरनामकर्मोदयविशिष्टो जीव प्रतिसमयमेकैक समयप्रबद्धं बध्नाति, उदयस्तु न तथा, किं तर्हि? शरीरग्रहणप्रथमसमये समयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेक उदेति। तदेकदेशस्तद्ग्रहणेन गृह्यते इत्यौपचारिक न्यायमाश्रित्य आचार्येण प्रतिसमयमेकः समयप्रबद्ध उदेति इत्युक्तं। द्वितीयसमये प्रथमसमय समयप्रबद्धस्य द्वितीयनिषेकः, द्वितीयसमयसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेकश्चोदेति। एवं तृतीयादिसमयेषु एकैकनिषेकवृद्ध्या उदेति। चरमसमय उदयश्च सत्त्वसंचयश्च द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्र भवति। आचार्येणापि तथा विवक्ष्यते आहारकशरीरस्याप्येवमेव। अयं तु विशेषः—आहारकशरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमये अंतर्मुहूर्तकालावसानसमये किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रद्रव्यस्योदयः सत्त्वसंचयश्च युगपदेव भवतीति विशेषो ज्ञातव्यः॥ २५४॥ अथौदारिकवैक्रियिकशरीरयोः स्थितिबंधोदयसत्त्वविशेषं प्ररूपयति—

स० चं०—औदारिक आदि शरीरनिविषैं तैजस अर कार्माण इनि दोऊनिका जीवकैं अनादितैं निरंतर संबंध है तातैं इनिका सदाकाल उदय अर सत्त्व संभवै है तातैं जीव मिथ्यादर्शन आदि परिणामके निमित्ततैं समय समय प्रति तैजससंबंधी अर कार्माणसंबंधी एक एक समयप्रबद्धकौं बांधै है। पुद्गलवर्गणानिकौं तैजस शरीर रूप अर ज्ञानावरणादिरूप आठप्रकार कर्मरूप परिणमावै है। बहुरि इनि दोऊ शरीरनिका समय समय प्रति एक एकसमय प्रबद्ध उदयरूप हो है अपना फल देनेरूप परिणतिरूप परिणामकरि फल देइ तैजस शरीरपनाकौं वा कार्माण शरीरपनाकौं छोडि गलै है निर्जरै है। बहुरि विवक्षित समयप्रबद्धकी स्थितिका अंत निषेक संबंधी समयविषैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है। इतने परमाणू सत्तारूप एकठे हो हैं सर्वदा संबंधतैं परमार्थकरि इनि दोऊनिका सत्त्वद्रव्य समय समय प्रति सदाही इतना संभवै है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक शरीरनिके समय प्रबद्धनिविषै विशेष है सो कहिए है। तिनि औदारिक वा वैक्रियिक शरीरनिके ग्रहणका प्रथम समयतैं लगाइ अपने आयुका अंतसमय पर्यंत शरीरनामा नामकर्मके उदय संयुक्त जीव सो समय

समय प्रति एक एक तिस शरीरके समय प्रबद्धकौं बांधै है पुद्गलवर्गणानिकौ तिस शरीररूप परिणमावै है। उदय कितना है ? सो कहै हैं—शरीर ग्रहणका प्रथम समयविषैं बंध्या जो समयप्रबद्ध ताका पहला निषेक उदय हो है। इहां प्रश्न—जो गाथाविषैं समय समय प्रति एक एक समयप्रबद्धका उदय कह्या है इहां एक निषेकका उदय कैसे कहो हो ? ताका सामाधान—कि निषेक है सो समयप्रबद्धका एकदेश है ताकौं उपचारकरि समयप्रबद्ध कहिए है बहुरि दूसरा समयविषै पहिले समय बंध्या था जो समयप्रबद्ध ताका तो दूसरा निषेक अर दूसरे समय बंध्या जो समयप्रबद्ध ताका पहिला निषेक ऐसैं दोय निषेक उदय हो हैं बहुरि ऐसैंही तीसरा आदि समयविषै एक एक बंधता निषेक उदय हो है ऐसैं क्रमकरि अंत समयविषै उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण हो है बहुरि आहारक शरीरका तिस शरीर ग्रहणका समय प्रथमतैं लगाय अपना अंतर्मुहूर्त मात्र स्थितिका अंत समयविषै किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्धप्रमाण द्रव्यका उदय अर सत्त्वरूप संचय सो युगपत् हो है—इतना विशेष जानना। इहां समय समय प्रति बंधै सो समयप्रबद्ध कहिए तातैं समय समय प्रति समयप्रबद्धका बंधना तौ संभवै अर समय प्रबद्धका उदय अर किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्धमात्र सत्त्व कैसैं हो है सो वर्णन इहांही आगै करैंगे ॥ २५४ ॥ आगै औदारिक वैक्रियिक शरीरनिविषै विशेष कहै हैं—

णवरि य दुसरीराणं गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो।
गुणहाणीण दिवड्ढं संचयमुदयं च चरिमम्हि ॥२५५॥

नवरि च द्विशरीरयोर्गलितावशेषायुर्मात्रस्थितिबंधः।
गुणहानीनां द्व्यर्धं संचयमुदयं च चरमे ॥ २५५ ॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकशरीरद्वयस्य शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं बध्यमानशरीरसमयप्रबद्धानां स्थितिबंधः गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवति। तद्यथा-शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रः। द्वितीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः, एकसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः। तृतीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः द्विसमयोनस्वायुः-स्थितिमात्रः एव चतुर्थाद्युत्तरोत्तरसमयेषु बद्धानां समयप्रबद्धानां स्थितिबंधः गलितावशेषस्वायुःस्थितिमात्रो भवन् चरमसमये बद्धस्य समय-प्रबद्धस्यस्थितिबंधः एकसमयमात्रो भवति। प्रथमसमयादारभ्य चरमसमयपर्यंतं बद्धानां समयप्रबद्धानां स्वायुरवसानसमयमतिक्रम्य अवस्थित्य-संभवात् चरमसमये गलितावशेषसर्वसमयप्रबद्धानां किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्राणां देवनारकयोर्वैक्रियिकशरीरस्य तिर्यग्मनुष्ययोरौदारिक-शरीरस्य च संचय उदयश्च युगपदेव भवति ॥ २५५ ॥ औदारिकशरीरस्य कस्मिन् स्थाने कीदृक्सामग्रीरूपावश्यकयुतजीवे उत्कृष्टसंचयः स्यात्? इति चेदाह—

मं० प्र०—द्वयोरौदारिकवैक्रियिकयोः शरीरयोः शरीरग्रहणप्रथमसमयादारभ्य स्वस्थितिचरमसमयपर्यंतं बध्यमानानां समयप्रबद्धानां गलितावशेषस्वायुः-स्थितिमात्रः स्थितिबंधो भवति। तद्यथा शरीरग्रहणप्रथमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य संपूर्णस्वायुःस्थितिमात्रः, द्वितीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य एकसमयोनस्वायुः स्थितिमात्रः स्थितिबंधः, तृतीयसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य द्विसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रः स्थितिबंधः। एवं चतुर्थाद्युत्तरोत्तरसमयेषु बद्धानां समयप्रबद्धानां स्थितिबंधाः रूपोनगच्छमात्रसमयोनस्वायुःस्थितिमात्रा ज्ञातव्याः। स्वस्थितिचरमसमये बद्धस्य समयप्रबद्धस्य स्थितिबंधः एकसमयमात्रः, प्रथमसमयादिचरम-समयपर्यंतेषु बद्धाना समयप्रबद्धानां शक्तिस्थितेर्व्यक्तिस्थितेश्च स्वायुरवसानसमयमतिक्रम्य सत्त्वासंभवात् अत एव कारणाद्विसदृशस्थितीनां समयप्रबद्धाना सर्वेषामपि स्वायुश्चरमसमये गलितावशेषसत्त्वद्रव्यस्य किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रस्य संचय उदयश्च युगपदेव भवति। ततः परं स्वायुःक्षयादा-त्मनस्तच्छरीरद्वये अवस्थानाभावात् अखंडिता स्वयोग्यस्थितिः शक्तिस्थितिः सैव खंडिता व्यक्तिस्थितिः॥ अथ वैक्रियिकशरीरस्योत्कृष्टसंचयस्थानं प्ररूपयति—

स० चं०—औदारिक वैक्रियिक शरीरनिका शरीर ग्रहणका प्रथम समयतैं लगाइ अपनी स्थितिका अंतसमयपर्यंत बंधैं हैं जे समयप्रबद्ध तिनिका स्थितिबंध गलितावशेष आयुमात्र जानना। जितना अपना आयु प्रमाण होइ तींहिविषैं जो अतीतभया सो गलित कहिए अवशेष रह्या सो गलितावशेष आयु कहिए है तींहि प्रमाण जानना। सोई कहिए है-शरीर ग्रहणका प्रथम समयविषैं जो समय प्रबद्ध बंध्या ताका स्थितिबंध संपूर्ण अपना आयुमात्र हो है। बहुरि दूसरे समयजो समय प्रबद्ध बंध्या ताका स्थितिबंध एक समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है। बहुरि तीसरे समय जो बंध्या समयप्रबद्ध ताका स्थितिबंध दोय समय घाटि अपना आयु प्रमाण हो है ऐसैं ही

चौथा आदि उत्तरोत्तर समयनिविषैं बंधे जे समय प्रबद्ध तिनिका स्थितिबंध एक एक समय घटता होता अंत समयविषैं बंध्या हुवा समयप्रबद्धका स्थितिबंध एक समयमात्र है जातैं प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत बंधे जे समयप्रबद्ध तिनकी अपने आयुका अंतकौं उलंधि स्थिति न संभवै है ऐसैं जिस जिस समय प्रबद्धकी जितनी जितनी स्थिति होइ तिस तिस समयप्रबद्धकी तितनी तितनी स्थितिमात्र निषेक रचना जाननी। अंतविषैं एक समयकी स्थिति समयप्रबद्धकी कही तहां एक निषेक संपूर्ण समयप्रबद्धमात्र जानना। बहुरि अंतसमयविषैं गलितावशेष समयप्रबद्ध किंचिदूनद्व्यर्द्धगुणहानिमात्रसत्वरूप एकठे हो हैं। जे समयप्रबद्ध बंधे तिनिके निषेक पूर्वैं गले निर्जरारूप भए तिनितैं अवशेष निषेकरूप जे समयप्रबद्ध रहे तिनिकौं गलितावशेष कहिए। ते सवे एकठे होइ किछू घाटि ड्योढ गुणहानिमात्र समयप्रबद्ध सत्तारूप एकठे अंत समयविषैं हौंहि हैं। बहुरि तींहि अंत समयविषैं ही तिनि सवनिका उदय हो है। आयुके अंतभए पीछै ते रहैं नाहीं तातैं तींहि समय सर्व निर्जरैं हैं ऐसैं देव नारकीनिकैं तौ वैक्रियिकशरीरका अर मनुष्यतिर्यंचनिकै औदारिक शरीरका अंतसमयविषैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धनिका सत्त्व और उदय युगपत् जानना ॥ २५६ ॥ आगै किस स्थानविषै कैसी सामग्रीरूप आवश्यक संयुक्त जीवविषै उत्कृष्ट संचय हो है सो कहै हैं—

ओरालियवरसंचं देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स।
तिरियमणुस्सस्स हवे चरिमदुचरिमे तिपल्लठिदिगस्स ॥२५६॥

औरालिकवरसंचयं देवोत्तरकुरूपजातजीवस्य।
तिर्यग्मनुष्यस्य भवेत् चरमद्विचरमे त्रिपल्यस्थितिकस्य ॥ २५६ ॥

जी० प्र०—यो जीवः त्रिपल्योपमायुष्को देवोत्तरकुर्वोः तिर्यङ् मनुष्यो वा भूत्वा उत्पन्नः तदुत्पत्तिप्रथमसमये उत्कृष्टयोगेन आहारितः

उत्कृष्टवृद्धया वर्धितः उत्कृष्टानि योगस्थानानि बहुशो गच्छति जघन्यानि न गच्छति। तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगस्थानानि बहुवारं गृण्हाति तत्प्रायोग्यजघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृह्णाति। अधस्तननिषेकस्य जघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृण्हाति अधस्तनस्थितीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति-उपरितनपरमाणूनपकृष्य अधस्तनभागस्तोकान्निक्षिपतीत्यर्थः। उपरितनस्थितिनिषेकानामुत्कृष्टपदं करोति-उपरितनभागे अधस्तनपरमाणूनुत्कृष्य बहून्निक्षिपतीत्यर्थः। अंतरे गमनविकुर्वणां न प्राप्नोति अंतरे नखच्छेदं न करोति-अल्पा भाषाद्धाः अल्पा मनोयोगाद्धाः स्तोकाः वाग्योगशलाकाः स्तोका मनोयोगशलाका एवमंतर्मुहूर्तमात्रे जीवितावशेषे सति योगयवमध्यस्योपरिमभागार्धांतर्मुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानांतरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थितः द्विचरमचरमसमययोरुत्कृष्टयोगस्थानं गच्छति तस्य औदारिकशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति वैक्रियिकशरीरस्याप्येवमेव वक्तव्यं किंतु अंतरे नखच्छेदो न कृतः इत्येतद्विशेषणं न संभवेति ॥ २५६ ॥

सं० च०—औदारिक आदि शरीरनिकी जहां जीवकै उत्कृष्टपनै बहुत परमाणू एकठे होंइ तहां उत्कृष्ट संचय कहिए। तहां जो जीव तीन पल्य आयु धरै देवकुरु वा उत्तरकुरु भोगभूमिका तिर्यंच वा मनुष्य होइ उपज्या तहां उपजनेके पहिले समय तिस जीवकौ तहां योग्य जो उत्कृष्ट योग ताकरि आहार ग्रहण कीया बहुरि ताकौं योग्य जो उत्कृष्ट योगकी वृद्धि ताकरि वर्धमान भया बहुरि सो जीव उत्कृष्ट योग स्थाननिकौं बहुतवार ग्रहण करै है अर जघन्य योगस्थाननिकौं बहुतवार ग्रहण न करै है तिस जीवकौं योग्य उत्कृष्ट योगस्थान तिनिकौं बहुत बार प्राप्त होइ है अर तिस जीवकौं योग्य जघन्य योगस्थान तिनिकौं बहुतवार प्राप्त न हो है। बहुरि अधस्तन स्थितिनिके निषेकका जघन्य पद करै है। याका अर्थ यहु—जो ऊपरिके निषेक संबंधी जे परमाणू तिन थोरे परमाणूनिकौं अपकर्षणकरि स्थिति घटाइ नीचले निषेक निविषै निक्षेपण करै है मिलावै है बहुरि उपरितन स्थितिके निषेकनिका उत्कृष्टपद करै है याका अर्थ यहु जो नीचले निषेकनिविषै तिष्ठते परमाणू तिनि बहुत परमाणूनिका उत्कर्षणकरि स्थितिकौ बधाइ ऊपरिके निषेकनिविषै निक्षेपण करै है मिलावै है बहुरि अंतरविषै गमनाविकुर्वणाकौं न करै है अंतरविषै नखच्छेद न करै है। याका अर्थ मेरे जाननेमें नीकैं न आया है तातैं स्पष्ट नाहीं लिख्या है बुद्धिमान जानियो। बहुरि तिस जीवके आयुविषै वचनयोगका काल स्तोक होइ मनोयोगका काल

१। "जघन्ययोगस्थानानि बहुवारं न गृह्णाति" इति पाठांतरं। २। इसकी म० प्र० नहीं मिली है।

स्तोक होइ बहुरि वचनयोग स्तोकवार होइ मनोयोग स्तोकवार होइ। भावार्थ—काययोगका प्रवर्तन बहुतवार होइ बहुतकाल होइ ऐसैं आयुका अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं आगैं कर्मकांडविषै योगमध्ययवरचना कहैंगे ताका ऊपरला भागविषै जो योगस्थान पाइए है तहां अंतर्मुहूर्तकाल पर्यंत तिष्ठ्या पीछैं आगैं जो जीवयवमध्य रचना कहैंगे तहां अंतकी गुणहानि संबंधी जो योगस्थान तहां आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कालपर्यंत तिष्ठ्या बहुरि आयुका द्विचरम समयविषै अर अंतसमयविषै उत्कृष्ट योगस्थानकौं प्राप्त भया तहां तिस जीवकैं तिन अंतके दोऊ समयनिविषै औदारिक शरीरका उत्कृष्ट संचय होहै बहुरि वैक्रियिक शरीरका भी वैसैंही कहना। विशेष इतना जो अंतर विषै नखच्छेद न करै है यहु विशेषण न संभवै है॥ २५६॥

वेगुव्वियवरसंचं वावीससमुद्दआरणदुगम्हि।
जह्मा वरजोगस्स य वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा॥२५७॥

वैगूर्विकवरसंचयं द्वाविंशतिसमुद्रमारणाद्विके।
यस्माद्वरयोगस्य च वारा अन्यत्र नहि बहुकाः॥ २५७॥

जी० प्र०—वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः आरणाच्युतकल्पद्वयस्य उपरितनपटलवर्तिषु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिकेषु एव देवेषु संभवति नान्यत्र अधस्तनोपरितनपटलेषु नारकेषु च। कुतः (वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो न भवति। कुतो नास्तीत्याशंक्य उत्तरं कथयति) यस्मात्कारणात् आरणाच्युतकल्पद्वयादन्यत्र वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टयोगवारा बहवो न संति चशब्दात्तद्योग्यसामग्र्यतरं च बहुवारं न संभवति तस्मात् कारणात्॥ २५७॥ अथ तैजसशरीरकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टसंचयस्थानविशेषमाह—

मं० प्र०—आरणाच्युतकल्पयोरुपरितनपटलवर्तिषु द्वाविंशतिसागरोपमस्थितिषु देवेषु वैक्रियिकशरीरस्योत्कृष्टसंचयो भवति। अन्यत्र अधः उपरि देवेषु नारकेषु च वैक्रियिकशरीरस्योत्कृष्टसचयः कुतो नास्तीत्याशंक्य उत्तर कथयति—यस्मात् कारणात् आरणाच्युतकल्पाभ्यामन्यत्र वैक्रियिकशरीरस्य उत्कृष्टयोगवारा बहवो न संति, तद्योग्यसामग्र्यंतरं च बहुवार नास्ति तस्मात्कारणात्। आरणाच्युतयोरेव बहुवारोत्कृष्टयोगसामग्र्यंतरसंभवात् वैक्रियिकशरीरोत्कृष्टसचयो भवति इति निश्चेतव्यं। वरयोगस्य चेति चशब्देन तद्योग्यसामग्र्यतरं सूचितं॥ अथ तैजसकार्मणशरीरयोरुत्कृष्टसंचयस्थानविशेषे प्ररूपयति—

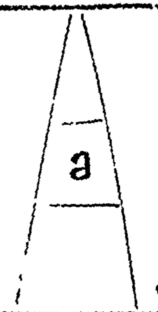
स० चं०—वैक्रियिक शरीरका उत्कृष्ट संचय सो आरण अच्युत दोय स्वर्गनिके ऊपरला पटल संबंधी बाईस सागर आयुसंयुक्तदेव तिनविषै संभवै है। अन्यत्र नीचले ऊपरले पटलनिविषै वा सर्व नारकीनिविषै न संभवै है जातैं आरण अच्युत विना अन्यत्र वैक्रियिक शरीररूप योगका बहुतवार प्रवर्तन न हो है चकारतैं तिस योग्य अन्य सामग्री सो भी अन्यत्र बहुतवार न संभवै है ॥ २५७ ॥ आगैं तैजस शरीर अर कार्मण शरीरनिका उत्कृष्ट संचयस्थानका विशेष कहैं हैं—

तेजासरीरजेट्ठं सत्तमचरिमम्हि विदियवारस्स ।
कम्मस्स वि तत्थेव य णिरये बहुबारभमिदस्स ॥२५८॥

तैजसशरीरज्येष्ठं सप्तमचरमे द्वितीयवारस्य ।
कार्मणस्यापि तत्रैव च निरये बहुवारभ्रमितस्य ॥ २५८ ॥

जी० प्र०—तैजसशरीरस्य उत्कृष्टसंचयः औदारिकशरीरवज्ज्ञातव्यः । किंतु सप्तमपृथिव्यां द्वितीयवारोत्पन्नस्यैव जीवस्य तैजसशरीरोत्कृष्टसंचयो भवतीति विशेषः । आहारकशरीरस्यापि औदारिकशरीरवत् किंतु प्रमत्तविरतस्य आहारकशरीरमुत्थापितस्यैव भवति । कार्मणशरीरस्य तु सप्तमपृथिव्यामेव नारकेषु बहुवारं भ्रमितस्यैव चरमवारे कार्मणशरीरस्य उत्कृष्टसंचयो भवति अन्यत्र तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशस्यासंभवात् । केन कारणेन ? इति चेत्-कश्चिज्जीवः बादरपृथ्वीकायेष्वंतर्मुहूर्तन्यूनपूर्वकोटिपृथक्त्वाधिकद्विसहस्रसागरोपमहीनकर्मस्थितिस्थितः तत्र भवस्थितिमनुपालयमानस्य स्तोकाः अपर्याप्तभवाः बहवः पर्याप्तभवाः दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः यदा यदा आयुष्यं बध्नाति तदा तदा तत्प्रायोग्येन जघन्ययोगेन बध्नाति उत्कृष्टयोगेनाहारित. उत्कृष्टवृद्ध्या वर्धितः बहुशो बहुशः उत्कृष्टयोगस्थानानि गतः जघन्ययोगस्थानानि न गतः बहुशो बहुशो बहुकेशपरिणामपरिणतः विशुध्यन् तत्प्रायोग्यविशुद्ध्या विशुध्यति । अधस्तनीनां निषेकस्य जघन्यपदं करोति । उपरितनीनां स्थितीनां निषेकस्य उत्कृष्टपदं करोति एवं एव संसरित्वा बादरत्रसपर्याप्तकेषूत्पन्नः तत्र च संसरमाणस्य बहवः पर्याप्तभवाः स्तोकाः अपर्याप्तभवा दीर्घाः पर्याप्ताद्धाः, ह्रस्वाः अपर्याप्ताद्धाः एवं संसरित्वा पश्चिमे भवग्रहणे अधःसप्तमपृथ्वीनारकेषूत्पन्नः तत्प्रथमग्रहण-

प्रथमसमये तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेनाहारितः उत्कृष्टयोगवृद्ध्या वर्धितः अंतर्मुहूर्तेन सर्वलघुपर्याप्तिभिः प्राप्तः तत्र नरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमकालं योगावश्यक संक्लेशावश्यकं च प्राप्तः एवं परिभ्रम्य जीवितव्ये स्तोकावशेषे सति योगयवमध्यस्य उपरितनभागे अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा चरमजीवगुणहानिस्थानांतरे आवल्यसंख्येयभागमात्रकालं स्थित्वा त्रिचरमद्विचरमसमये उत्कृष्टसंक्लेशं संप्राप्य चरमद्विचरमसमये उत्कृष्टयोगस्थानं प्राप्य चरमसमयतद्भवस्थो जायते तस्य कार्मणशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति । एवमौदारिकशरीराणां उत्कृष्टसंचयसामग्रीविशेषः कथितः ननु एकैकसमये जीवेन बद्धैकैकसमयप्रबद्धस्य आबाधावर्जितस्वस्वस्थितिप्रथमसमयादारभ्य तच्चरमसमयपर्यंतं प्रतिसमयमेकैकनिषेक एवोदेति कथमेकैकसमयप्रबद्ध उदेतीति प्रश्ने उच्यते–अनादिबंधनिबंधनबद्धविवक्षितसमयप्रबद्धचरमनिषेकः ९ उदेति तदा तदनंतरसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य द्विचरमनिषेकः उदेति १०, तदनंतरसमये बद्धसमयप्रबद्धस्य त्रिचरमनिषेकः उदेति ११ एवं चतुर्थादिसमयेषु बद्धसमयप्रबद्धानां चतुश्चरमादिनिषेकोदयक्रमेण आबाधावर्जितविवक्षितस्थितिसमयमात्रस्थानेषु गत्वा चरमतरसमयप्रबद्धस्य प्रथमनिषेक उदेति एवं विवक्षितसमये एकः समयप्रबद्धो बध्नाति एक उदेति किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति । तत्संदृष्टिरियं---



								१
							१	१०
						१	१०	११
					१	१०	११	१२
				१	१०	११	१२	१३
			१	१०	११	१२	१३	१४
		१	१०	११	१२	१३	१४	१५
	८	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
१	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१८

सा ७० को २ ०००००	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०	१ ० ० ० ० ०
	१४४	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४
	१६०	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६
	१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८
	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०
	२०८	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२
	२२४	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०
	२४०	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०
	२५६	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०
	२८८	३२०	३५२	३८४	४१६	४४८	४८०	५१२	०	०	०	०

तावत्तत्त्रिकोणरचनावस्थित सत्त्वद्रव्यं हीनहीनसंकलनेन अधिकाधिकसंकलनेन अनुलोमविलोमसंकलनेन च सुव्यक्तयति । तत्र हीनहीनसंकलनेन यथा—प्रथमसमयप्रबद्धनिषेके संपूर्णसमयप्रबद्धः ६३००, द्वितीयसमयद्वितीयनिषेके प्रथमनिषेकोनसमयप्रबद्धः, तृतीयसमयतृतीयनिषेके प्रथमद्वितीयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, चतुर्थसमयचतुर्थनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयसमयनिषेकोनसमयप्रबद्धः, पंचमसमयपंचमनिषेके प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थनिषेकोनसमयप्रबद्धः एव पष्ठादिसमयपष्ठादिनिषेकेषु प्रथमनिषेकादिरूपोनगच्छमात्रनिषेकोनसमयप्रबद्धाः । अतस्तदभावद्रव्ये निक्षिप्ते प्रथमगुणहानौ गुणहानिमात्रसमयप्रबद्धा भवंति ६३००×८ । तदभावद्रव्य तु प्रथमनिषेकाः रूपोनगुणहानिमात्राः ५१२×८ । द्वितीयनिषेकाः द्विरूपोनगुणहानिमात्राः ४८० । ८--२ । तृतीयनिषेकाः त्रिरूपोनगुणहानिमात्राः ४४८ । ८–३ । एवं क्रमहान्या गत्वा चरमे चरमनिषेकः एकः ३२० अत्र प्रथमादिपंक्तिषु द्वितीयादिनिषेकेषु एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषेषु प्रक्षिप्तेषु रूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनमात्रप्रथमनिषेकप्रमाणमभावद्रव्यं भवति । ५१२ । ८/२ । ८/१ । अत्र स्थिताभावद्रव्यं च द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारे संकलितमात्रविशेषमिदं ३२ । ८/३ । ८/२ । ८/१

१ स्वस्वप्रचयेषु प्रक्षिप्तेषु इति किं ?प्रथमनिषेके ५१२ संपूर्णे , द्वितीयनिषेके ४८० । ३२ । एकचयाधिके, तृतीयनिषेके ४४८ । ३२ । ३२ । द्विचयाधिके एवं एकोत्तराधिकक्रमेण चरमनिषेकपर्यंत क्रियमाणे सति अष्टाविंशतिप्रमितानि द्वादशोत्तरपंचशतानि जायंते । अत्र षट्पंचाशत्प्रमितानि द्वात्रिंशत्कानि ऋणरूपाणि सतीति ज्ञातव्य ।

२ व्येकपदोत्तघात सरूपवारो धृतो मुखेन युत । रूपादिकवारातप्तपदायकैर्हृतो वित्त ॥ १ ॥ हाररूपादिका स्थाप्या अंशा गच्छ दिकास्तथा । सैकवारप्रमाणांतार्थैकवारादिकं धन ॥ २ ॥ एकवारद्विवारादिसंकलनसूत्रमिद ।

पूर्वो भावद्रव्यादपनीय शेषद्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमात्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रविशेष शुद्धसर्वऋणं भवति । एते द्वे धनऋणे एकस्यामेव पंक्तौ स्थापयितव्ये ६३०० । ८ । ३२ । ८ । ५ । ८ । ८ पुनः द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेके द्वितीयादिगुणहानिसर्वद्रव्य-
३ २ १

मिदमस्ति ३१०० । तदनंतरसमयनिषेके द्वितीयगुणहानिप्रथमनिषेकोनं तदस्ति ३१००–२५६ । एवं प्रथमगुणहानिवद् हानिप्रमाणमवधार्य निक्षिप्ते तदा गुणहानिमात्रं द्वितीयादिगुणहानिद्रव्याणि भवंति ३१००।८। रूपोनगुणहानिसंकलितमात्रेभ्योऽभावस्वप्रथमनिषेकेभ्यः २५६ । ८ । ८ ।
२ । १

द्विरूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रस्वविशेषे ऋणप्रविष्टऋणे १६ । ८ । ८।८ अपनीते शेषं द्विरूपाधिकपंचगुणहानिगुणितरूपोनगुणहानिमा-
३ । २।१

त्रगच्छस्य एकवारसंकलनत्रिभागमात्रस्वविशेषं शुद्धसर्वऋणं भवति। एते द्वे पूर्वस्थापितधनर्णयोः उपर्येकपंक्तया पूर्ववत् स्थापयितव्ये—

३१००–८ ।	ऋ १६ । ८×५ । ८ । ८ ३ । २ । १
६३०० । ८	ऋ ३२ । ८–५ । ८ । ८ ३ । २ । १

एवमुपर्यपि ऋणराश्योऽर्धार्धक्रमेण धनराश्यो गुणहानिगुणितचरमगुणहानिधन-

१०० । ८ । न्यूनाधस्तनगुणहानिधनार्धक्रमेण गच्छंतीत्युपरितनोपरितनगुणहानिद्रव्यं पढमस्सहीणदलमेत्तमित्युक्तमेव भवति। तत्र पंक्तिद्वये प्रथमधनपंक्तौ— चरमगुणहानिमादिं कृत्वा प्रथमगुणहानिपर्यंतं सर्वत्र हानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यं १०० । ८ मेलयित्वा मेलयित्वा— द्वाभ्यां संभेद्य गुणसंकलनं आनीते उभयपंक्तिद्रव्ये एवं

प्रथमधनपंक्तौ	मेलयित्वा	द्वाभ्यां संभेद्य
१०० । ८	२०० । ८	१०० । २
३०० । ८	४०० । ८	२०० । २
७०० । ८	८०० । ८	४०० । २
१५०० । ८	१६०० । ८	८०० । २
३१०० । ८	३२०० । ८	१६०० । २
६३०० । ८	६४०० । ८	३२०० । २

तिष्ठतः । ६३००।८।२।६३।८।५।८।८। अत्र धनपंक्तौ प्रविष्टद्वितीयऋणं नानागुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यमात्रमिदं १००।८।६। एतानि त्रीणि
३ २ १

द्रव्याणि समयप्रबद्धेन ६३०० शलाकीकृतानि क्रमेणैवं तिष्ठंति ८।२।, ८।५।८।८ / १००।६१।, ।८।६ / ६३। एतेषु मध्यराशेर्भागहारभूतशतपदक्रयोर्थ.क्रम चतुष्कद्वयाभ्यां संभेद्य चतुष्कं द्वाभ्यां गुणयित्वा गुणहानिमुत्पाद्य गुणहान्या गुणहानिमपवर्त्य पुनर्भागहारभूतपंचविंशतौ रूपाधिकत्रिगुणहानौ कृतायां एवं ८।५।८ / ८।३।३ अत्र स्थिते ऋणरूपे ऋणस्य ऋणं राशेर्धनमिति पार्श्वे स्थापिते एवं ८।५।८ / ८।३।३ | ८।५।१ / ८।३।३

एतयोरुपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य

८।५।८ / ८।३।३	८।५।१ / ८।३।३
२।८ / ८।३।३	२।१ / ८।३।३

गुणहानिगुणितप्रथमकिद्धं | २।८ / ८।३।३ | उपर्यधस्त्रिभिर्गुणयित्वा

| ६। ८ / ८।३।९ | अतः पंचरूपाण्युद्धृत्य १।५।८ / ८।३।९ उपरि समच्छेदं कृत्वा पंचगुणहानेः पंचगुणहानिं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणमेकरूपं त्रिगुणहानौ निक्षिप्य ८।३।८।५ / ८।३।९ अपवर्तिते एवं ८।५ / ९ शेष १।८। / ८।३।९ उपरितनपार्श्वे समच्छेदं कृत्वा गुणहानेर्गुणहानिं प्रदर्श्य त्रिगुणपंचके रूपे १।८ / ८।३।९ अपनीते एवं ८।५।३। / ८।३।९ पुनस्तदधःस्थापितद्वितीयद्विकं– २।१ / ८।३।३ उपर्यधो नवभिर्गुणयित्वा २।९ / ८।३।३।९ अत्रतनचतुर्दश-- १।५।३। रूपाणि त्रिभिः समच्छेदीकृत्य उपरितनराशौ रूपोनत्रिपंचकस्य रूपोनत्रिपंचकरूपचतुर्दशरूपाणि दर्शयित्वा त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं मेलयित्वा ८।३।५।३ / ८।३।३।९ रूपाधिकत्रिगुणगुणहान्या रूपाधिकत्रिगुणगुणहानिमपवर्त्य- ५।३ / ३।९ भागहारभूतसप्तविंशतौ एकरूपहीनत्वमवगणय्य अपवर्तिते एकरूपार्धं स्यात् १ / २ अत्र च गाक्तनावशिष्टरूपचतुष्टयं ४ / ८।३।२७

अपवर्तिते रूपासंख्येयभागत्वात् १/a साधिकं कृत्वा १/२ द्वितीयऋणे ८, ६/६३ अर्थसंदृष्ट्या अत्र— प, १, छे व छे / छे व छे किंचिदूनं कृत्वा प/व

अपवर्तिते संख्यातवर्गशलाकाः स्युः व १—। प्रथमऋणं ८। ५/९ अर्थसंदृष्टिनिमित्तं उपर्यधो द्वाभ्यां गुणयित्वा ८, १०/१८ एकरूपं पृथक् संस्थाप्य— ८। १/१८ शेषमपवर्त्य ८। १/२ द्विगुणगुणहानौ शोधिते एतावत् ८। ३/२ इदं पुनः द्वितीयऋणा व १—धिकेन पृथक्संस्थापितगुणहान्यष्टादशैकभागेन ८, १/१८ न्यूनयित्वा १२— समयप्रबद्धेन गुणितं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धमत्त्वं भवति। स १२—।

अथाधिकसंकलनेन सत्त्वद्रव्यमुच्यते—आबाधारहितकर्मस्थितीनां समयप्रबद्धानां चरमसंचयगुणहानौ गुणहानिसंकलनमात्रचरमनिषेकाः आदिधनरूपेण तिष्ठंति— ९, ८, ८/२, १ रूपोनगुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषाः चयधनरूपेण तिष्ठंति १, ८, ८, ८,/३, २, १ एतद्धनद्वयमेकीकृतं द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं चरमगुणहानिसर्वधनं भवति १, ८, ४, ८, ८/६ तद्यथा—

आदिधनस्य चरमनिषेकस्वरूपं पृथग् न्यस्य १, ८, ८/२, १ शेषे ८, ८, ८/२, १ त्रिभिः समच्छेदीकृते ८, ३ ८। ८/६ उत्तरधनस्थितऋणरूपं पृथग्न्यस्य १, ८, ८/६ अवशिष्टेन ८, ८, ८/६ युते सति एतावति ८, ४, ८, ८/६ पुनः पृथक्स्थापितादिधनैकरूपेण त्रिभिः समच्छेदीकृतेन ३, ८, ८/६ उत्तरधनस्थितैकऋणरूपन्यूनेन— २, ८, ८/६ चतुर्गुणहानीनामुपरियुतत्वात्, पुनः यतः कारणाद् द्विचरम-

गुणहानौ निजचरमादिनिषेकाः चरमगुणहानिचरमादिनिषेकेभ्यो द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चरमगुणहानिद्रव्येणाधिकाः स्युस्ततः कारणाद् द्विचरमगुणहानिद्रव्यं पूर्वस्मादादिधनं चयधनं च द्विगुणं द्विगुणं स्यात् ९, २, ८, ८ / २, १ | २, ८, ८, ८ / ३, २, १ अतः कारणात् सर्वधनं द्विगुणं द्विगुणं भूत्वा गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्येणाधिकं भवति— २, ८, ४, ८, ८ (२– / ६) । १००, ८, तद्यथा संदृष्टिः—

							१८
						१८	२०
					१८	२०	२२
				१८	२०	२२	२४
			१८	२०	२२	२४	२६
		१८	२०	२२	२४	२६	२८
	१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०
१८	२०	२२	२४	२६	२८	३०	३२

इदं संकलितं सत्पूर्वस्माद् द्विगुणं भवति $\overset{२-}{२}$ । ८ । ४ । ८ । $\overset{१-}{८}$ । इदं च

							९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
						९	१०	११	१२	११	१४	१५	११	
					१	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६		
				१	१०	११	१२	११	१४	१५	१६			
			१	१०	११	१२	१३	१४	१५	११				
		९	१०	११	१२	११	१४	१५	११					
	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	११						
९	१०	११	१२	११	१४	१५	१६							

संकलितं गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यमात्रं तदधिकप्रमाणं भवति १०० । ८ एवं चरमादिगुणहानिद्रव्याणि स्वस्वाधस्तनतो द्विगुणद्विगुणगुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्याधिकानि भूत्वा गच्छंति । तद्यथा—प्रथमगुणहानिपर्यंतं संदृष्टिः—

१	२— १- ८, ४, ८, ८ ६	ऋ १०० , ८					
२	२— १- ८, ४, ८, ८ ६	१०० , ८	ऋ १०० , ८				
४	२— १— ८, ४, ८, ८ ६	२०० , ८	१०० , ८	ऋ १०० , ८			
८	२— १— ८, ४, ८, ८ ६	४०० , ८	२०० , ८	१०० , ८	ऋ १००८		
१६	२— १- ८, ४, ८, ८ ६	८०० , ८	४०० , ८	२०० , ८	१०० , ८	ऋ १००।८	
३२	२— १— ८, ४, ८, ८, ६	१६००,८	८००।८	४००,८	२००।८	१००।८	ऋ १००।८
	प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः	पंचमपंक्तिः	चरमपंक्तिः	

अत्र चरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं सत् सर्वगुणहानिप्रथमपंक्तिसर्वधनमेतावत्स्यात् ६३ , ८ , ४, ८, ८, (२— १— / ६) अनेन प्रकारेण गुणहानिगुणितचरमगुणहानिद्रव्यं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं सत् अधिकसर्वधनं स्यात् ६३००।८ तद्यथा-ऋणसहितोत्तरधनरचनासंदृष्टिः-

१०० । ८
२०० । ८
४०० । ८
८०० । ८
१६००। ८
३२००। ८

इदं संकलितं तत्प्रमाणमित्यर्थः । अत्रोत्तरधनसंकलनार्थं निक्षिप्तं नानागुणहानिशलाकागुणितगुणहानिमात्रचरमगुणहानिद्रव्यं ऋणं भवति १०० , ८ , ६ । एते त्रयो राशयः समयप्रबद्धेन प्रमाण्यते तदा क्रमेणादिधनमिदं

| ८, ४ , ८ , ८ / १०० , ६ | उत्तरधनमिदं ८ , १ ऋणमिदं | ८ , ६ / ६३ | अत्रापि ग्रतपदकविधानसंजातद्रव्यमिदं ८, ४ , ८ / ८ , ३ , ३

अधिकरूपे पार्श्वे स्थापिते एवं | ८ , ४ , ८ / ८ , ३ , ३ | ८ , ४ , १ / ८ , ३ , ३ | उभयत्र उपरिस्थितं रूपद्वयं स्वस्वाधः संस्थाप्य

८ , ४ , ८ / ८ , ३ , ३ | ८ , ४ , १ / ८ , ३ , ३ | प्रथमद्विकमुपर्यधस्त्रिभिः संगुण्य | २ , ३ , ८ / ८ , ३ , ३ , ३ | रूपचतुष्कं गृहीत्वा उपरिनिक्षिप्ते एवं | ८ , ३ , ४ , ८ / ८ , ३ , ९

२ , ८ / ८ , ३ , ३ | २ , १ / ८ , ३ , ३ |

अपवर्तितं ४ , ८ / ९ पुनः द्वितीयद्विकमुपर्यधः त्रिभिर्गुणयित्वा ६ , १ / ८ , ३ , ९ अस्माद्रूपचतुष्टयं चतुर्गुणितैकरूपात्मकं गृहीत्वा १ , ४ / ८ , ३ , ९

उपरि समच्छेदेन त्रिगुणगुणहानौ आत्मप्रमाणमेकरूपं निक्षिप्य १ / ८ , ३ , ४ / ८ , ३ , ९ अपवर्तिते एवं ४ / ९ इदं प्रथमद्विकशेषेण २ , ८ / ८ , ३ , ९ द्वितीयद्विकशेषा २ , १ / ८ , ३ , ९ धिकेन २ , ८ / ८ , ३ , ९ अधिकं कृत्वा ४ / ९ अपवर्तित किंचिदूनार्धं १ / २ भवति । अनेन द्वितीयऋणसंख्यातवर्गशलाकाः किंचिदूनयेत् व ७—शेषप्रथमधनमिदं ४ , ८ / ९ द्वितीयधने ८ समच्छेदेन मेलयित्वा ८ , १३ / ८ संदृष्टिनिमित्तं गुणहान्यष्टादशैकभागं ८ , १ / १८ ऋणं निक्षिप्यापवर्त्य ८ , ३ / २ किंचिदूनसंख्यातवर्गशलाकाभ्यधिकाष्टादशभागेनोनयित्वा समयप्रबद्धेन गुणिते किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति स ७ १२—।

अथानुलोमविलोमसंकलनेन सत्त्वद्रव्यमुच्यते । तत्र त्रिकोणरचनायां प्रथमगुणहानिप्रथमनिषेकः एकः ५१२—१ द्वितीयनिषेकौ द्वौ ४८०—२ तृतीयनिषेकास्त्रय ४४८—३ एवमेकैकोत्तरक्रमेण गत्वा चरमनिषेका गुणहानिमात्राः संति २८८, ८ इयं प्रथमा पंक्तिः । पुनर्द्वितीयगुणहानिप्रथयनिषेकाः रूपाधिकगुणहानिमात्राः २५६, ८ द्वितीयनीषेकाः द्विरूपाधिकगुणहानिमात्राः २४०, ८ तृतीयनिषेकाः त्रि-

३-

रूपाधिकगुणहानिमात्रा २२४, ८ एवं एकैकचयाधिकक्रमेण गत्वा चरमनिषेकाः द्विगुणगुणहानिमात्राः संति १४४, ८ इयं द्वितीया पंक्तिः । पुनः तृतीयगुणहानिप्रथमनिषेकाः रूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः १२८, ८, २ द्वितीयनिषेका द्विरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः

२- ३-

१२०, ८, २ तृतीयनिषेकाः त्रिरूपाधिकद्विगुणगुणहानिमात्राः । ११२, ८, २, अनेन प्रकारेण गत्वा चरमनिषेकाः त्रिगुणगुणहानिमात्राः संति ७२, ८, २ इयं तृतीया पंक्तिः । एवं चतुर्थादिपंक्तिः प्रथमादिनिषेकाः गच्छमात्रा भूत्वा गच्छंति यावत् स्वस्वचरमनिषेकं तावत् । एवमेताः सर्वाः तिर्यग्रूपेण रचयितव्याः । तथा सति नानागुणहानिशलाकामात्राः पंक्तयो भवति । तत्संदृष्टिः—

प्रथमपंक्तिः	द्वितीयपंक्तिः	तृतीयपंक्तिः	चतुर्थपंक्तिः	पंचमपंक्ति	चरमपंक्तिः
२८८।८	८ १४४।८	८ ७२।८।२	८ ३६।८।३	८ १८।८।४	८ ९।८।५
३२०।७	७ १६०।८	७ ८०।८।२	७ ४०।८।३	७ २०।८।४	७ १०।८।५
३५२।६	६ १७६।८	६ ८८।८।२	६ ४४।८।३	६ २२।८।४	६ ११।८।५
३८४।५	५ १९२।८	५ ९६।८।२	५ ४८।८।३	५ २४।८।४	५ १२।८।५
४१६।४	४ २०८।८	४ १०४।८।२	४ ५२।८।३	४ २६।८।४	४ १३।८।५
४४८।३	३ २२४।८	३ ११२।८।२	३ ५६।८।३	३ २८।८।४	३ १४।८।५
४८०।२	२ २४०।८	२ १२०।८।२	२ ६०।८।३	२ ३०।८।४	२ १५।८।५
५१२।१	१ २५६।८	१ १२८।८।२	१ ६४।८।३	१ ३२।८।४	१ १६।८।५

अत्र प्रथमपंक्तौ चरमनिषेकात्प्रभृति प्रथमनिषेकपर्यंतं स्वस्वगुणकारमात्राः एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वस्वविशेषानुद्धृत्य पृथक् स्थापयितव्याः। संदृष्टिः—

३२	१	८
३२	२	७
३२	३	६
३२	४	५
३२	५	४
३२	६	३
३२	७	२
३२	८	१

एषां युतिः गुणहानिप्रमितगच्छस्य द्विकवारसंकलनमात्रविशेषा भवंति—३२ । ८ । ८ । ८ (३ २ १) अपनीतशेषद्वितीयगुणहान्यादिनिषेकमात्रा एकाद्येकोत्तरक्रमेण एते

२५६	८
२५६	७
२५६	६
२५६	५
२५६	४
२५६	३
२५६	२
२५६	१

संकलिताः संतो गुणहानिरूपगच्छस्य एकवारसंकलनमात्रा भवंति २५६ , ८ , ८ (२ १), एतौ द्वौ राशी मिलित्वा द्विरूपाधिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्रविशेषं प्रथमपंक्त्याद्विधनं भवति ३२ , ८ , ४ , ८ , ८ (६), अत्रोत्तरधनं नास्ति , तथा द्वितीयपंक्तेः स्वप्रथमादिनिषेकेषु तच्चरमनिषेकपर्यंतेषु एकाद्येकोत्तरक्रमेण स्थितानि अधिकरूपाणि पृथक्स्थाप्यानि । संदृष्टिः—

१४४	८	१४४	८
१६०	७	१६०	८
१७६	६	१७६	८
१९२	५	१९२	८
२०८	४	२०८	८
२२४	३	२२४	८
२४०	२	२४०	८
२५६	१	२५६	८

अत्र चरमनिषेकात्प्रभृतिस्वस्वगुणकारमात्रैकाद्येकोत्तरक्रमेण स्वविशेषानुद्धृत्य स्थापयेत्—

१६ । ८ । १	१६ । ८	१६ । ३६
१६ । ७ । २	१६ । १४	१६ । २८
१६ । ६ । ३	१६ । १८	१६ । २१
१६ । ५ । ४	१६ । २०	१६ । १५
१६ । ४ । ५	१६ । २०	१६ । १०
१६ । ३ । ६	१६ । १८	१६ । ६
१६ । २ । ७	१६ । १४	१६ । ३
१६ । १ । ८	१६ । ८	१६ । १

एषां संकलनं गुणहानिद्विकवारसंकलनमात्रविशेषं भवति--१६ । ८ । ८ । ८ तदुद्धृतशेषमिदं
३ । २ । १

१२८ । ८
१२८ । ७
१२८ । ६
१२८ । ५
१२८ । ४
१२८ । ३
१२८ । २
१२८ । १

अस्य संकलितगुणहान्येकवारसंकलनमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति । १२८ । ८ । ८ । एतौ द्वौ राशी मिलित्वा द्विरूपा-
२ । १

धिकचतुर्गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनत्रिभागमात्र विशेष द्वितीयपंक्त्यादिधनं पूर्वस्मादर्धप्रमाणं भवति। १६ । ८ । ४ । ८ । ८ ।
६

पुनरपरस्मादपनीतशेषचरमनिषेकात् प्रभृति सर्वत्र गुणहानिगुणितैकाद्येकोत्तरविशेषानपनीय-

१६ । ८ । १
१६ । ८ । २
१६ । ८ । ३
१६ । ८ । ४
१६ । ८ । ५
१६ । ८ । ६
१६ । ८ । ७
१६ । ८ । ८

संकलने १६ । ८ । ८ । ८ । गुणहानिगुणितगुणहानिसंकलनमात्रविशेषा भवंति । अपनीतशेषं सर्वत्र गुणहानिगुणिततृतीय-
२

गुणहान्याद्यनिषेकमात्रं-

१२८, ८
१२८, ८
१२८, ८
१२८, ८
१२८, ८
१२८, ८
१२८, ८
१२८, ८

इति गुणहानिवर्गमात्रतृतीयगुणहान्याद्यनिषेकं भवति १२८, ८, ८, एतौ द्वौ राशी मिलित्वा रूपाधिकद्व्यर्धगुणहानिगुणितगुणहानिव-मार्गत्रविशेष द्वितीयपंक्त्युत्तरधनं भवति १६, ८, ८, ८/१, ३/२. एव तृतीयादिपंक्तिष्वपि आद्युत्तरधने अर्धार्धक्रमेण गच्छतः यावच्चरमपंक्तिस्तावत्, किंतूत्तरधनं सर्वत्र रूपोनगच्छमात्रगुणकारगुणितं भवति। संदृष्टि—

नाम	आदिधनं।	उत्तरधनं।
अंतगुणहानिः	२– १– १, ८, ४, ८, ८ ६	१– १। ५। ८। ८। ८। ३ २
पंचमगुणहानिः	२– १– २, ८, ४, ८, ८ ६	१– २। ४। ८। ८। ८। ३ २
चतुर्थगुणहानिः	२– १– ४, ८, ४, ८, ८ ६	१– ४। ३। ८। ८। ८। ३ २
तृतीयगुणहानिः	२– १– ८, ८, ४, ८, ८ ६	१– ८। २। ८। ८। ८। ३ २
द्वितीयगुणहानिः	२– १– १६, ८, ४, ८, ८ ६	१– १६। १। ८। ८। ८। ३ २
प्रथमगुणहानिः	२– १– ३२, ८, ४, ८, ८ ६	०

अत्र चरमपंक्त्यादिधनं रूपोनान्योन्याभ्यस्तराशिना गुणितं तदा सर्वपंक्त्यादिधनं संकलितं स्यात् $६२ । \overset{१-}{द} । ४ । द । \underset{६}{\overline{द}}$ । उत्तर-धनगुणकारेषु सर्वत्र स्वस्वगुण्ययुतैकैकरूपेषु अपनीय पृथक् स्थापितेषु रूपोननानागुणहानिशलाकामात्रराशयः प्रथमपरिपाट्या तिष्ठंति ।

$१ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$१ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$१ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$१ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$१ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	०
$२ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{८}} । ३$	$२ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$२ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$२ । ८ । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	०	०
$४ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{८}} । ३$	$४ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	$४ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	०	०	०
$द । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{८}} । ३$	$द । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{द}} । ३$	०	०	०	०
$१६ । द । द । \overset{१-}{\underset{२}{८}} । ३$	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०

एते च क्रमेण संकलिता एवं तिष्ठंति—

३१, ८, ८, ८(१–), ३/२	१५, ८, ८, ८(१–), ३/२	७, ८, ८, ८(१–), ३/२	३, ८, ८, ८(१–), ३/२	१, ८, ८, ८(१–), ३/२

पुनः एतेषु गुणसंकलनार्थं नानागुणहानिमात्रस्थानेषु चरमपरिपाटिमात्रमेतावदेतावत् १, ८, ८, ८(–), ३/२ ऋणं निक्षिप्य—

३१(१–), ८, ८, ८(१–), ३/२	१५(१–), ८, ८, ८(१–), ३/२	७(१–), ८, ८, ८(१–), ३/२	३(१–), ८, ८, ८(१–), ३/२	३(१–), ८, ८, ८(१–), ३/२	१, ८, ८, ८(१–), ३/२

संकलितेषु धनमेतावद्भवति। ६३। ८। ८। ८(–)। ३/२। अत्रैकगुणहानिगुणकाररूपेणाग्रे संस्थाप्य -६३। ८। ८(–)। ३/२। ८। रूपाधिकत्रिगुणगुणहानौ परस्परं गुणितायां पंचविंशतिः। तस्यां च द्वौ अष्टभिरपवर्त्य शेषचतुर्भिर्गुणितायां ६३००। ८। गुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्रं दृश्यते। मागत्र संकलनार्थं निक्षिप्ते एतावदृणे १। ८। ८। ८(–)। ३/२। ६। अत्रैकगुणहानिं नानागुणहानिं चाग्रे संस्थाप्य

१। ८। ८(–)। ३/२। ८। ६। परस्परं गुणिते एवं भवति १००। ८। ६ एवमुक्तमादिधनं। ६३। ८(२–)। ४। ८। ८(–)/६। उत्तरधनं ६३००। ८

ऋणं च १००। ८। समयप्रबद्धशलाकाः कृत्वा ८(२–)। ४। ८। ८(–)/१००। ६ | ८ | ८। ६/६३ | अधिकाधिकसंकलनवन्मेलयित्वा किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसत्त्वं भवति स ३ १२–।

एवमायुर्वर्जिताष्टविधकर्ममूलोत्तरप्रकृतीनां प्रतिसमयं बंधोदयसत्त्वलक्षणं कथयित्वा उक्तलक्षणविलक्षणं बंधोदयसत्त्वसामग्रीविशेषं आयुःकर्मणः कथयति—

कश्चिज्जीवः कर्मभूमिमनुष्यः भुज्यमानपूर्वकोटिवर्षायुष्कः परभवसंबंधिपूर्वकोटिवर्षायुष्यं जलचरेषु दीर्घायुर्बंधकाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति योगयवमध्यस्योपर्यंतर्मुहूर्तं स्थितः चरमजीवगुणहानिस्थानांतरे आवल्यसंख्यातैकभागमात्रकालं स्थितः क्रमेण कालं गमयित्वा पूर्वकोट्यायुर्जलचरेषु उत्पन्नोंतर्मुहूर्तेसर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः अंतर्मुहूर्तेन विश्रांतः अंतर्मुहूर्तेन पुनरपि परभवसंबंधि-

पूर्वकोट्यायुष्यं जलचरेषु बध्नाति तदा दीर्घायुर्बंधाद्धया तत्प्रायोग्यसंक्लेशेन तत्प्रायोग्योत्कृष्टयोगेन च बध्नाति । योगचरमजीवो बहुशः साताद्धया सहितः अनंतरसमये आयुर्बंधं निर्लेपति इत्येवं तज्जीवानां आयुर्वेदनाद्रव्यं च उत्कृष्टसंचयं भवति । अंतर्मुहूर्तेन सर्वलघुसर्वपर्याप्तिभिः पर्याप्तो भूत्वा तदनंतरमंतर्मुहूर्तकालं विश्रम्य जीवित्वा उत्पन्नांतर्मुहूर्ताद्धाप्रमाणेन वा पूर्वकोट्यायुष्यं सवर्मध्येकेनैव समयेन जीविताद्धायाममात्रसंख्यातसद्दशखंडं कदलीघातेन घातयित्वा पुनः घातसमये एव परभवसंबंधिपूर्वकोट्यायुष्यं जलचरसंबंधिनि अन्यायुर्बंधाद्धातोजलचरायुर्बंधाद्धा दीर्घेति दीर्घायुर्बंधाद्धया बद्ध्वा जलचरेष्वेकभावेन संकेतवर्जितेषु सातबहुलेषु अपकर्षणकारणेन विनाश्यमानद्रव्यस्य बहुत्वाभावं स्तोकं वा जलचरेषु आयुर्बंधो ज्ञातव्यः । एकसमयप्रबद्धप्रथमनिषेकं स्थापयित्वा स ३२ । १६ जीविताद्धया गुणयित्वा स ३२ । १६ । २११४ अत्र
८ । पू , १६--पू
२
८ , पू , ---पू
२

रूपोनजीविताद्धासंकलनमात्रगोपुच्छविशेषान् स ३२ , २११ ४ , २११ , ४ , अपनीय स ३२ , २११ , ४ , १६ , २११४ ,
८ , पू , १६——————पू २
२
८ पू
१६ पू , २
२

अपवर्तितं रूपोनार्धार्धरहितदोगुणहान्या रूपोनजीवितार्धहीनदोगुणहानिमपवर्त्य शेषं स ३२ । २११ ४ , उत्कृष्टायुर्बंधाद्धया गुणितं
८ , पू

स ३२ , २११४ , २११ आवलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धं भवति --स ३२ , २ तत्कथं ? उत्कृष्टबंधाद्धागुणितजीविताद्धावलि
८ पू
८ १

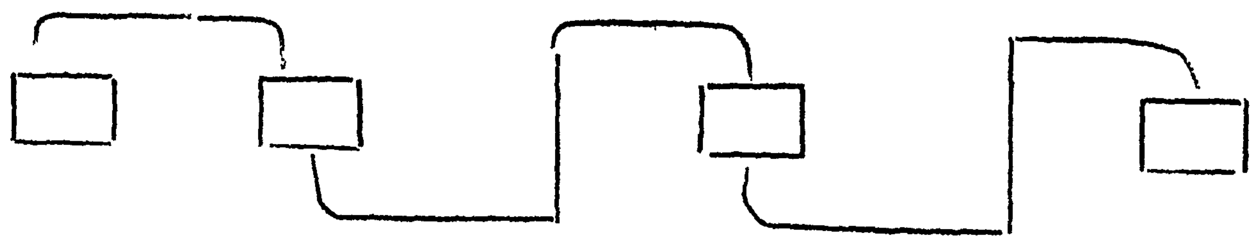
शलाकानां संख्यातगुणत्वात् , प्रकृतिगोपुच्छस्य प्रथमनिषेके जीविताद्धामात्रविशेषेषु अपनीतेषु स ३२ १६--२११ ४ एकसमयप्रबद्धमा-
८ पू १६ पू ,
२

श्रित्य विकृतिगोपुच्छस्य प्रथमखंडप्रथमनिषेको भवति अपवर्तितः स ३२ असावेव संख्यातरूपमात्रखंडशलाकागुणितः
८ , पू २११४

स ३२ , पू , जीविद्धामात्रविशेषान् स ३२ , २११४ आदिमुत्तरं च कृत्वा रूपोनखंडशलाकाः १ गच्छं कृत्वा आनीत-
८ पू २११४
८ , पू , १६ ,-- पू
२

संकलनेन स ३२ । २ ७ ७ ७, ४, ७ । ७ । ऊनितः एकसमयप्रबद्धप्रतिबद्धसंख्यातखंडविकृतिगोपुच्छस्य प्रथमनिषेको भवति—
८ । पू । १६–पू/२ । २ । ७ ।

स ३२ , पू / ८ , पू , २७७ ४ तत्कथं ? प्रथमखंडप्रथमनिषेकाद्द्वितीयादिखंडप्रथमनिषेकाणां तत्र जीविताद्धामात्रप्रचयहीनत्वात्—



पू / २ ७ ७ ४

पुनरपि स एव विकृतिगोपुच्छस्य संख्यातखंड— स ३२ , २ ७ ७ । ४ , ७ , ७ , / ८ , पू , १६ पू/२ । २ प्रथमनिषेकः स ३२ , पू / ८ । पू । २ ७ ७ ७ ४ — नष्टद्रव्यप्रमाणमानेतुं

रूपोनोत्कृष्टबंधाद्धया गुणयित्वा—स ३२ , पू २ ७ ७–१ / ८ , पू , २ ७ ७ ४ खंडशलाकामात्रविशेषान् स ३२ । ७ / ८ , पू १६—पू/२ आदिमुत्तरं च कृत्वा द्विरूपोनोत्कृष्ट-

बंधाद्धां गच्छं २ ७ ७ कृत्वाऽऽनीतसंकलनेन स ३२ , ७ , २ ७ ७ , २ ७ ७ / ८ , पू १६—पू/२ , २ ऊनः एकसमयप्रबद्धमाश्रित्य विकृतिगो-

पुच्छस्य नष्टसर्वनिषेकाः समयप्रबद्धसंख्येयभागानां भवंति , ते उत्कृष्टायुर्बंधाद्धया गुणिताः तदावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धाः विकृति-

स्वरूपेण नष्टा आगच्छंति स ३२—, पू २ ११।२ ११ अपवर्तिते एवं स ३२, २। अत्रायं विशेषः-एतद्विकृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यं प्र-
८, पू, २ ११४ ८ १
कृतिस्वरूपेण नष्टद्रव्यात्संख्यातगुणं, कुतः? उत्कृष्टबंधाद्धया कदलीघातेन घातितावशेषस्तनाद्धां गुणयित्वा पूर्वकोट्या भागे गृहीते यल्लब्धं—
स ३२, २ ११४, २ ११ तस्मात्कदलीघातैकखंडायामेन उत्कृष्टबंधाद्धावर्गे भक्ते यल्लब्धं स ३२, पू २११ २११,
८ पू ८, पू २ ११४
अस्य संख्यातगुणत्वोपलंभात् एतद्द्रव्यद्वये एकत्र कृते सति प्रकृतिस्वरूपेण (प्रकृतिविकृतिरूपेण) नष्टद्रव्यमावलिसंख्यातैकभागमात्रसमयप्रबद्धा
भवंति स ३२, २ एतेषु उभयोत्कृष्टबंधाद्धामात्रसमयप्रबद्धेषु अपनीतेषु आयुरुत्कृष्टसंचयद्रव्यं भवति स ३२, २११, २ ॥ २५८ ॥
८ १ ८

म० प्र०---अधः सप्तमनरकभूम्यां द्वितीयवारोत्पन्नस्य जीवस्य तैजसशरीरोत्कृष्टसंचयो भवति । तत्रैव सप्तमभूम्यां बहुवारसमुत्पन्नस्य चरमवारे कार्मणशरीरोत्कृष्टसंचयोभवति अन्यत्र तद्योग्योत्कृष्टसंक्लेशस्याभावात् ॥२५८॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवाः द्वादशभिर्गाथाभिर्योगमार्गणायां संख्यां प्ररूपयंति--

अथ द्वादशगाथासूत्रैर्योगमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

स० चं०---तैजसशरीरका भी उत्कृष्ट संचय औदारिकशरीरवत् जानना । विशेष इतना जो सातवीं नरक पृथ्वीविषैं दूसरीवार जो जीव उपज्या होइ सातवी पृथ्वीविषैं उपजि मरि तिर्यंच होइ फेरि सातवीं पृथ्वीविषैं उपज्या होइ तिस ही जीवकैं हो है। बहुरि आहारक शरीरका भी उत्कृष्ट संचय औदारिकशरीरवत् जानना। विशेष इतना जो आहारकशरीरकौं उपजावनहारा प्रमत्तसंयमीहीकैं हो है बहुरि कार्माणशरीका उत्कृष्ट संचय सो सातवीं नरक पृथ्वीविषैं नारकिनविषैं जो जीव बहुवार भ्रम्या होइ तिसहीकैं होइ है किम प्रकार हो है? सो कहैं हैं--कोई जीव बादर पृथ्वी कायनिविषैं अंतर्मुहूर्त घाटि पृथक्त्व कोडिपूर्व करि अधिक दोय हजार सागर हीन कर्मकी स्थितिकौं प्राप्त भया तहां तिस बादर पृथ्वीकाय संबंधी अपर्याप्त पर्याय थोरे धरै पर्याप्त पर्याय बहुत धरै तिनिका एकट्ठा किया हुवा पर्याप्तकाल बहुत भया अपर्याप्तकाल थोरा भया ऐसें इनिकौं पालता संता जब जब आयु बांधै तब तब जघन्य योगकरि बांधै यहु यथायोग्य उत्कृष्टयोगकरि आहार

ग्रहण करै अर उत्कृष्ट योगनिकी वृद्धिकरि बंधै बहुरि यथायोग्य उत्कृष्ट योगनिकौं बहुतवार प्राप्त न होइ जघन्य-योगस्थाननिकौं बहुत वार प्राप्त न होइ। बहुरि संक्लेश परिणामरूप परिणया यथायोग्य मंदकषायरूप विशुद्धताकरि विशुद्ध होइ पूर्वोक्त प्रकार अधस्तन स्थितिनिके निषेकका जघन्यपद करै उपरितन स्थितिनिके निषेकका उत्कृष्टपद करै है। ऐसैं भ्रमणकरि बादर त्रसपर्यायविषै उपज्या तहां भ्रमता तिस जीवकैं पर्याप्तपर्याय थोरे अपर्याप्त पर्याय बहुत भए तिनिका एकठा कीया पर्याप्तकाल बहुत भया अपर्याप्तकाल थोरा भया ऐसैं भ्रमणकरि पीछला पर्यायका ग्रहणविषैं सातवीं नरक पृथ्वीके नारक जे बिले तिनिविषैं उपज्या तहां तिस पर्यायके ग्रहणका प्रथम समयविषैं यथायोग्य उत्कृष्ट योगकरि आहार ग्रहण कीया। बहुरि उत्कृष्ट योग-वृद्धिकरि बध्या बहुरि थोरा अंतर्मुहूर्तकालकरि सर्व पर्याप्ति पूर्ण कीए, बहुरि तिस नरकविषैं तेतीस सागर कालपर्यंत योग आवश्यक अर संक्लेश आवश्यककौं प्राप्त भया ऐसैं भ्रमणकरि आयुका स्तोककाल अवशेष रहैं योगयवमध्य रचनाका ऊपरला भागरूप योगस्थानविषैं अंतर्मुहूर्तकालपर्यंत तिष्ठि अर पीछैं जीवयवमध्य रचनाकी अंतगुणहानिरूप योगस्थानविषैं आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कालपर्यंत तिष्ठि आयुका अंततैं तीसरा दूसरा समयनिविषै उत्कृष्ट संक्लेशकौं पाइ अंतसमयविषैं उत्कृष्ट योगस्थानकौं पाइ तिस पर्यायका अंतसमयविषै जीव तिष्ठ्या ताकै कार्माण शरीरका उत्कृष्ट संचय होइ है। ऐसैं औदारिक आदि शरीरनिका उत्कृष्ट संचय होनेकी सामग्रीका विशेष कह्या। भावार्थ—पूर्वैं उत्कृष्ट संचय होनैविषैं छह आवश्यक कहे थे ते इहां यथासंभव जानि लेना। पर्यायसंबंधी कालतौं भवाद्धा है। अर आयुका प्रमाण सो आयुष्य है। यथासंभव योगस्थान होना सो योग है, तीव्र कषाय होना सो संक्लेश है। ऊपरले निषेकनिके परमाणू नीचले निषेकनिविषैं मिलावना सो अपकर्षण है। नीचले निषेकनिका परमाणू ऊपरिके निषेकनिविषैं मिलावना सो उत्कर्षण है ऐसैं ए छह आवश्यक यथासंभव जानने। बहुरि एक प्रश्न उपजै है कि—एक समयविषैं जीवकरि बांध्या जो एक समयप्रबद्ध ताके आबाधारहित अपनी स्थितिका प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमय पर्यंत समय समय प्रति एक

एक निषेक उदय आवै है। पूर्वैं गाथाविषैं समय समयप्रति एक एक समयप्रबद्धका उदयका आवना कैसैं कह्या
है? ताका समाधान—जो समय समय प्रति बंधे समय प्रबद्धनिका एक एक निषेक एकठे होइ विवक्षित एक समयविषैं
समय प्रबद्धमात्र हो है कैसैं ? सो कहिए है—अनादिबंधका निमित्तकरि बंध्या विवक्षित समयप्रबद्ध ताका तिस
कालविषैं अंत निषेक उदय हो है तिस कालविषैं ताके अंनतरि बंध्या समयप्रबद्धका अंततैं दूसरा निषेक उदय
हो है ताके अनंतरि बंध्या समयप्रबद्धका अंततैं तीसरा निषेक उदय हो है ऐसैं चौथा आदि समयनिविषैं बंधे
समयप्रबद्धनिका अंततैं चौथा आदि निषेकनिका उदय क्रमकरि आबाधाकालरहित विवक्षित स्थितिके जे ते स-
मय तितने स्थान जाय अंतविषै जो समयप्रबद्ध बंध्या ताका आदि निषेक उदय हो है ऐसैं सवनिकौं जोड़ै वि-
वक्षित एक समयविषै एक समयप्रबद्ध उदय आवै है अंकसंदृष्टिकरि जैसैं जिन समयप्रबद्धनिके सर्वनिषेक गलि
गए तिनिका तौ उदय है ही नाहीं, बहुरि जिस समयप्रबद्धके सैंतालीस निषेक पूर्वैं गले ताका अंत नवका निषेक
वर्तमान समयविषैं उदय आवै है। बहुरि जाके छियालीस निषेक पूर्वैं गले ताका दशका निषेक उदय हो है ऐसैं
ही क्रमतैं जाका एकहू निषेक पूर्वैं न गल्या ताका प्रथम पांचसै बाराका निषेक उदय हो है ऐसैं वर्तमान कोई
एक समय विषैं सर्व उदय रूप निषेकका उदय हो है ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६। १८ २० २२ २४ २६ २८
३० ३२। ३६ ४० ४४ ४८ ५२ ५६ ६० ६४। ७२ ८० ८८ ९६ १०४ ११२ १२० १२८। १४४ १६० १७६ १९२
२०८ २२४ २४० २५६। २८८ ३२० ३५२ ३८४ ४१६ ४४८ ४८० ५१२। ऐसैं इनिकौं जोड़ै संपूर्ण समय प्रब-
द्धमात्र प्रमाण हो है। आगामी कालविषैं जैसैं नवीन समय प्रबद्धके निषेकनिका उदयका सद्भाव होता जाइगा तैसैं
पुराणे समय प्रबद्धके निषेकनिके उदयका अभाव होता जायगा जैसैं आगामी समयविषैं नवीन समयप्रबद्धका
पांचसै बाराका निषेक उदय आवैगा तहां वर्तमान समयविषैं जिस समय प्रबद्धका पांचसै बाराका निषेक उदय
था ताका पांचसै बाराका निषेकका अभाव होइ दूसरा च्यारिसै असीका निषेक उदय होगा। बहुरि जिससमय-
प्रबद्धका वर्तमान समयविषै च्यारिसै असीका निषेक उदय था ताका तिस निषेकका अभाव होइ च्यारिसै अड़ता-

लीमके निषेकका उदय होगा ऐसें क्रमतें जिससमयप्रबद्धका वर्तमान समयविषें नवका निषेक उदय थों ताका आगामी समयविषें सर्व अभाव होगा ऐसें ही क्रम समयप्रति जानना तातें समय समय प्रति एक एक समय प्रबद्धका एक एक निषेक मिलि एक एक समय प्रबद्धका उदय हो है बहुरि गलैं पीछें अवशेष रहैं सर्व निषेक तिनिकौं जोड़ैं किंचित् ऊन द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्त्व हो है। कैसें ? सो कहिए है—जिस समय प्रबद्धका एकहू निषेक गल्या नाही ताके सर्व निषेक नीचें पंक्तिविषें लिखिए बहुरि ताके ऊपरि जिससमय प्रबद्धका एक निषेक गल्या होइ ताके आदि निषेक विना अवशेष निषेक पंक्तिविषें लिखिए बहुरि ताके ऊपर जिस समय प्रबद्धके दोय निषेक गले होंइ ताके आदिके दोय निषेक विना अवशेष निषेक पंक्तिविषें लिखिए ऐसें ही ऊपरि ऊपरि एक एक निषेक घटता लिखि सर्वके ऊपरि जिस समय प्रबद्धके अन्यनिषेक गलि एक अवशेष रह्या होइ ताका अंत निषेक लिखना। ऐसें करते त्रिकोण रचना हो है।

षष्ठम गुणहानि	पंचम गुणहानि	चतुर्थगुणहानि	तृतीय गुणहानि	द्वितीयगुणहानि	प्रथम गुणहानि
९	११८	३३६	७७२	१६४४	३३८८
१९	१३८	३७६	८५२	१८०४	३७०८
३०	१६०	४२०	९४०	१९८०	४०६०
४२	१८४	४६७	१०३६	२१७२	४४४४
५५	२१०	५२०	११४०	२३८०	४८६०
६९	२३८	५७६	१२५२	२६०४	५३०८
८४	२६८	६३६	१३७२	२८४४	५७८८
१००	३००	७००	१५००	३१००	६३००
जोड ४०८	जोड १६१६	जोड ४०३२	जोड ८८६४	जोड १८५२८	जोड ३७८५६

अंकसंदृष्टिकरि जैसैं नीचैही नीचै अडतालीस निषेक लिखे ताके ऊपर पांचसै वाराका विना सैतालीस निषेक लिखे। ताके ऊपरि पांचसै वारा अर च्यारिसै असीका विना छियालीस निषेक लिखे। ऐसैं ही क्रमतैं ऊपरि ही ऊपरि नवका निषेक लिख्या ऐसैं लिखते त्रिकूटी रचना हो है तातैं इस त्रिकोण यंत्रका जोडा हूवा सर्व द्रव्य प्रमाण सत्त्व द्रव्य जानना। सो कितना हो है सो कहिए है-किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धप्रमाण हो है। पूर्वै जो गुणहानि आयामका प्रमाण कह्या तामै आधा गुणहानि आयामका प्रमाण मिलाए द्व्यर्धगुणहानि हो है। तामै किछू घाटि संख्यातगुणी पल्यकी वर्गशलाका करि अधिक जो गुणहानिका अठारह्वां भागका प्रमाण सो घटावना, घटाएं जो प्रमाण होइ ताका नाम इहां किंचिंदून द्व्यर्धगुणहानि जानना। ताकरि समय प्रबद्धके विषै जो परमाणूनिका प्रमाण कह्या ताकौं गुणै जो प्रमाण होइ सोई त्रिकोण यंत्रविषै प्राप्त सर्वनिषेकनिके परमाणू जोडे प्रमाण हो है। जैसैं अंक संदृष्टिकरि कीया हूवा त्रिकोणयंत्र ताकी सर्वपंक्तिके अंकनिकौं जोडे इकहत्तरि हजार तीनसै च्यारि हो है अर गुणहानि आयाम आठ तामै आधा गुणहानि आयाम च्यारि मिलाए द्व्यर्धगुणहानि का प्रमाण बारह होइ, ताकरि समय प्रबद्ध तरेसठिसैंकौं गुणै पिचहत्तरि हजार छसै होइ। इहां त्रिकोण यंत्रका जोड़ घटता भया तातैं किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिगुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्त्व कह्या। तहां द्व्यर्धगुणहानिविषैं ऊनका प्रमाण दार्ष्टांतविषैं महत्प्रमाण है तातैं पूर्वोक्त जानना। इहां अंकसंदृष्टिदृष्टांतविषैं गुणहानिका अठारह्वां भागकरि गुणित समयप्रबद्धका प्रमाण अठाईससै तामैं गुणहानि आठ नानागुणहानि छै करि गुणित समयप्रबद्धका तरेसठिवां भाग अडतालीससै तामैं किंचित् अधिक आधा समयप्रबद्धका प्रमाण तेतीससै च्यारि घटाइ अवशेष चौदहसै छिनवे जोडैं बियालीससै छिनवे भए सो द्व्यर्धगुणहानिगुणित समयप्रबद्धविषैं घटाएं त्रिकोण यंत्रका जोड हो है। बहुरि इस त्रिकोण यंत्रका जोड इतना कैसैं भया ? सो जोड देनेका विधान हीन हीन संकलनकरि वा अधिक अधिक संकलनकरि वा अनुलोम विलोम संकलनकरि तीनप्रकार कह्या है तहां

घटता घटता प्रमाण लीएं निषेकनिका क्रमतैं जोडना सो हीन हीन संकलन कहिए । बधता बधता प्रमाण लीएं निषेकनिका क्रमतैं जोडना मो अधिक अधिक संकलन कहिए। हीन प्रमाण लीएं वा अधिक प्रमाण लीएं निषेकनिका जैसैं होइ तैसैं जोड़ना सो अनुलोम विलोम संकलन कहिए सो ऐसैं जोड़ देनेका विधान आगै संदृष्टि अधिकारविषैं लिखैंगे तहां जानना। इहां जोडविषैं संदृष्टि समझनेमें न आवती तातैं नाहीं लिख्या है। ऐसैं आयु विना कर्मप्रकृतिनिका समय समय प्रति बंध उदय सत्त्वका लक्षण कह्या बहुरि आयुका अन्यथा लक्षण है जातैं आयुका अपकर्ष कालनिविषैं वा असंक्षेप अंतकालविषैं ही बंध हो है । बहुरि आबाधा काल पूर्वभवविषैं व्यतीत हो है तातैं आयुकी जितनी स्थिति तितनी ही निषेकनिकी रचना जानना। आबाधा-काल घटावना नाहीं। बहुरि आयुकर्मका उत्कृष्टसंचय कोडि पूर्ववर्षप्रमाण आयुका धारी जलचर जीवकैं हो है तहां कर्मभूमियां मनुष्य कोटिपूर्ववर्ष प्रमाण आयुका धारी यथायोग्य संक्लेश वा उत्कृष्ट योगकरि परभवसंबंधी कोटिपूर्व वर्ष का आयु जलचरविषैं उपजनेका बांध्या सो आगैं कहिएगी योगयवमध्य रचना, ताका ऊपरि स्थानविषैं अंतर्मुहूर्त तिष्ठ्या बहुरि अंत जीव गुणहानिका स्थानविषै आवलीका असंख्यातवां भागमात्र काल तिष्ठ्या क्रमतैं काल गमाइ कोडिपूर्व आयुका धारी जलचरविषै उपज्या अंतर्मुहूर्तकरि सर्वपर्याप्तनिकरि पर्याप्त भया। अंतर्मुहूर्तकरि बहुरि परभव संबंधी जलचरविषैं उपजनेका कोडिपूर्व आयुकौं बांधै है तहां दीर्घ आयुका बंध कालकरि यथायोग्य संक्लेशकरि उत्कृष्ट योगकरि बांधै है सो योगयवरचनाका अंतस्थानवर्ती जीव बहुतवार साताकौं कालकरि युक्त होता अपने कालविषै परभव संबंधी आयुकौं घटावै ताकै आयु वेदना द्रव्यका प्रमाण उत्कृष्ट हो है सो द्रव्य रचना संस्कृत टीकातैं जाननी । याप्रकार औदारिक आदि शरीरनिका बंध उदय सत्त्व विशेष जाननेके अर्थि वर्णन कीया ॥ २५८ ॥ आगै श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव बारह गाथानिकरि योग मार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहै हैं—

वादरपुण्णा तेऊ सगरासीए असंखभागमिदा ।
विक्किरियसत्तिजुत्ता पल्लासंखेज्जया वाऊ ॥ २५९ ॥

वादरपूर्णाः तैजसाः स्वकराशेरसंख्यभागमिताः ।
विक्रियाशक्तियुक्ताः पल्यासंख्याता वायवः ॥ २५९ ॥

जी० प्र०---वादरपर्याप्ततेजस्कायिकजीवेषु विक्रियाशक्तियुक्ताः स्वराशेर्वृंदावल्यसंख्येयभागमात्रस्य ८ ≡ a पुनरसंख्येयभागप्रमिता ८ a प भवंति a a वादरपर्याप्तवायुकायिकजीवेषु लोकसंख्येयभागमात्रेषु ७ विक्रियाशक्तियुक्ताः पल्यासंख्येयभागप्रमिता भवंति a ।
"वादरतेऊवाऊपंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति" इत्यनेन अनयोर्वैक्रियिकयोगस्य अस्तित्वकथनात् ॥ २५८ ॥

मं० प्र०----विक्रियाशक्तियुक्ताः वादरपर्याप्ततेजस्कायिका जीवाः स्वराशेर्वृंदावल्यसंख्येयभागस्य पुनरसंख्येयभागप्रमिताः । विक्रियाशक्तियुक्ता वादरपर्याप्ता वायुकायिका जीवाः पल्यासंख्येयभागप्रमिताः 'वादरतेऊवाऊपंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति' इत्यनेन अनयोर्वैक्रियिकयोगस्य कथितत्वात् ॥ २५९ ॥

स० चं०---वादर पर्याप्त तेजकायिक जीव तिनिविषै उनही जीवनिका जो पूर्वै परिमाण आवलीके घनका असंख्यातवां भागमात्र कह्या था तिस राशिकौं असंख्यातका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने जीव विक्रिया शक्तिकरि संयुक्त जानने । बहुरि वादर पर्याप्त वातकायिक जीव लोकके संख्यातवे भागप्रमाण कहे थे तिनिविषै पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण जीव विक्रिया शक्तियुक्त जानने जातै 'वादरतेऊवाऊपंचेंदियपुण्णगा विगुव्वंति' इस गाथाकरि वादर पर्याप्त अग्निकायिक अर पवनकायिक जीवनिकैं वैक्रियिक योगका सद्भाव कह्या है ॥ २५९ ॥

पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु ।

वेगुव्वियपंचक्खा भोगभुमा पुह विगुव्वंति ॥ २६० ॥

पल्यासंख्याताहतवृंदांगुलगुणितश्रेणिमात्रा हि ।
वैगूर्विकपंचाक्षा भोगभुमाः पृथक् विगूर्वंति ॥ २६० ॥

जी० प्र०—पर्याप्तपंचेंद्रियतिर्यग्मनुष्येषु वैक्रियिकयोगिनः पल्यासंख्यातैकभागाभ्यस्तघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रा भवंति—६ । प a खलु--स्फुटं । तत्र भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिजेषु चक्रवर्तिनश्च पृथक् मूलशरीरादन्यदेव उत्तरशरीरं विगुर्वंति। अनेन कर्मभूमिजानामपृथग्विक्रिया सूचिता ॥ २६० ॥

मं० प्र०---वैक्रियिकयोगिनः पर्याप्तपंचेंद्रियाः तिर्यंचो मनुष्याश्च पल्यासंख्यातभागाभ्यस्तघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्राः खलु--स्फुटं भवंति । तत्र भोगभूमिजास्तिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिजेषु चक्रवर्तिनश्च पृथग्--मूलशरीरादन्यदेव उत्तरशरीरं विकुर्वंति। अनेन कर्मभूमिजानामपृथग्विक्रिया एव सूचिता ॥ २६० ॥

सं० च०—पल्यका असंख्यातवां भागकरि घनांगुलकौं गुणें जो परिमाण होइ ताकरि जगच्छ्रेणी गुणें जो परिमाण आवै तितने वैक्रियिक योगके धारक पर्याप्त पंचेंद्री तिर्यंच वा मनुष्य जानने। तहां भोगभूमिविषैं उपजे तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमिविषैं चक्रवर्ती ए पृथक् विक्रियाकौं भी करै हैं इनिविना सर्व कर्मभूमियानिकैं अपृथक् विक्रिया ही है। जो मूलशरीरतैं जुदा शरीरादि करना सो पृथक् विक्रिया जाननी। अपने शरीरहीकौं अनेकरूप करना सो अपृथक् विक्रिया जाननी ॥ २६० ॥

देवेहिं सादिरेया तिजोगिणो तेहिं हीण तसपुण्णा ।
बियजोगिणो तदूणा संसारी एक्कजोगा हु ॥ २६१ ॥

देवैः सातिरेकाः त्रियोगिनस्तैर्हीनाः त्रसपूर्णाः ।
द्वियोगिनस्तदूनाः संसारिणः एकयोगा हि ॥ २६१ ॥

जी० प्र०—घनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिप्रमितनारकैः —२, संख्यातपण्णट्ठीप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरप्रमितसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्त-तिर्यग्भिः ४, ६५=१ वादालघनप्रमितपर्याप्तमनुष्यैश्च ४२=४२=४२=, सातिरेकः साधिको देवराशिः ४, ६५=१ त्रियोगि-राशिर्भवति—कायवाङ्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिरित्यर्थः। तैर्हीनत्रसपर्याप्तराशिः ४ ५– द्वियोगिराशिप्रमाणं भवति—कायवाग्योगयुक्तजीवराशिरि-त्यर्थः। ताभ्यां द्वित्रियोगराशिभ्यां हीनसंसारी १३= एकयोगिराशिर्भवति—काययोगिजीवराशिरित्यर्थः। एवं खलु स्फुटं ज्ञातव्यं ॥२६१॥

मं० प्र०--नारकतिर्यक्संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तपर्याप्तमनुष्यराशिभिः सातिरेकः--देवराशिः त्रियोगिराशिः कायवाग्मनोयोगत्रययुक्तजीवराशिर्भवति तैस्त्रियोगि-जीवैर्हीनास्त्रसपूर्णाः पर्याप्तत्रसाः द्वियोगिनः--कायवाग्योगयुक्तजीवराशिर्भवति इत्यर्थः, तैः- द्वियोगिजीवैः त्रियोगिजीवैश्च हीनः संसारिजीवराशिः एकयोगः काययोगजीवराशिर्भवति इति खलु--स्फुटं ज्ञातव्यं ॥ २६१ ॥

स० चं०—देवानिकौं जो परिमाण साधिक ज्योतिष्कराशिमात्र कह्या था तींहि प्रमाणविषैं घनांगुलका द्वितीय मूलकरि गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण नारकी अर संख्यात पणट्ठी प्रतरांगुलकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच अर वादालका घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्य इनिकौं मिलाएं जो परिमाण होइ तितने जीव त्रियोगी जानने। इनिकैं मन वचन काय तीनों योग पाइए है। बहुरि जो पूर्वै पर्याप्त त्रस जीवनिका प्रमाण कह्या था तामैं त्रियोगी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै तितने द्वियोगी जीव जानने। इनिकैं वचन काय दोय ही योग पाइए है। बहुरि संसारी जीवनिका जो परिमाण तामैं द्वियोगी अर त्रियोगी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै तितने जीव एक योगी जानने। इनिकैं एक काययोग ही पाइए ऐसैं प्रगट जानना ॥ २६१ ॥

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा।

तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा ॥२६२॥

अंतर्मुहूर्तमात्राः चतुर्मनोयोगाः क्रमेण संख्यगुणाः ।
तद्योगः सामान्यं चतुर्वचोयोगाः ततस्तु संख्यगुणाः ॥ २६२ ॥

जी० प्र०—सत्यासत्योभयानुभयाख्याः चत्वारो मनोयोगाः अंतर्मुहूर्तमात्राः प्रत्येकमंतर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणा भवंति

अ २ १। ६४ उ २ १। १६ अ २ १। ४ स २ १। १	एषां कालानां युतिः सामान्यं सामान्यमनोयोगकालो भवति २ १ ८५ अयमप्यंतर्मुहूर्तमात्र एव, ततः सामान्यमनोयोग-कालात्तु पुनः ते चत्वारो वाग्योगकाला अपि क्रमेण संख्यातगुणाः, तथापि प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रा एव—
अ २ १। ८५। २५६ उ २ १। ८५। ६४ अ २ १, ८५, १६ स २ १, ८५, ४	एषां युतिः २ १, ८५, ३४० अपि अंतर्मुहूर्तमात्री भवति ॥ २६२ ॥

म० प्र०---चत्वारः--सत्यासत्योभयानुभयविकल्पाः मनोयोगाः अंतर्मुहूर्तमात्राः--प्रत्येकमंतर्मुहूर्तकालवृत्तयः तथापि क्रमेण संख्येयगुणाः । तद्यथा--सत्यमनोयोगस्य कालः सर्वतः स्तोकः अंतर्मुहूर्तः २१, १, ततः संख्येयगुणोऽतर्मुहूर्तः असत्यमनोयोगस्य कालः। २ १। ४। ततः सख्येयगुणोंत-र्मुहूर्त उभयमनोयोगस्य कालः २१, १६, ततः संख्येयगुणोंतर्मुहूर्त. अनुभयमनोयोगस्य कालः, २१, ६४, तद्योगः तेषा चतुर्योगकालाना योगः मेलनं, सामान्यमनोयोगकालः सोऽप्यतर्मुहूर्तमात्र एव, २१, ८५, ततश्चतुर्मनोयोगकालसंयोगात् तु--पुनः संख्येयगुणाश्चतुर्वाग्योगकालाः। तद्यथा--अस्माच्चतुर्मनोयोगकालसयोगात् सख्येयगुणोंतर्मुहूर्तः सत्यवाग्योगकालः, २१, ८५, ४, ततः संख्येयगुणोऽतर्मुहूर्तः असत्यवाग्योगकालः, २१, ८५, १६, ततः संख्येयगुणोंतर्मुहूर्त उभयवाग्योगकालः, २१, ८५, ६४, ततः संख्येयगुणोऽतर्मुहूर्तः अनुभयवाग्योगकालः। २१, ८५, २५६॥२६२॥

सं० च०—च्यारि प्रकार मनोयोग प्रत्येक अंतर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति लीएं है तथापि अनुक्रमतैं संख्यात गुणे जानने। सोई कहिए है-सत्य मनोयोगका काल सबतैं थोरा है सो भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण है ताकी संदृष्टि एक

अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा काल असत्य मनोयोगका है ताकी संदृष्टि च्यारि अंतर्मुहूर्त ४। इहां संख्यातकी सहनानी च्यारि जाननी। बहुरि यातैं संख्यातगुणा उभयमनोयोगका काल है ताकी संदृष्टि सोलह अंतर्मुहूर्त १६। बहुरि यातैं संख्यातगुणा अनुभयमनोयोगका काल है ताकी संदृष्टि चौसठि। ६४। अंतर्मुहूर्त। ऐसैं च्यारि मनोयोगका कालका जो परिमाण हूवा सो सामान्य मनोयोगका काल है। तिहिकी संदृष्टि पिच्यासी अंतर्मुहूर्त ८५। बहुरि सामान्य मनोयोगका कालतैं संख्यातगुणा च्यारि वचनयोगका काल है तथापि क्रमतैं संख्यातगुणा है तौ भी प्रत्येक अंतर्मुहूर्त मात्र ही है। तहां सामान्य मनोयोगका कालतैं संख्यातगुणा सत्य बचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि चौगुणा पिच्यासी ८५–४ अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा असत्य वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि सोलहगुणा पिच्यासी ८५–१६ अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा उभय वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि चौसठिगुणा पिच्यासी ८५–६४ अंतर्मुहूर्त। बहुरि यातैं संख्यातगुणा अनुभय वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि दोयसै छप्पनगुणा पिच्यासी ८५–२५६ अंतर्मुहूर्त ॥ २६२ ॥

तज्जोगो सामण्णं काओ संखाहदो तिजोगमिदं।
सव्वसमासविभजिदं सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी ॥२६३॥

तद्योगः सामान्यं कायः संख्याहतः त्रियोगिमितं।
सर्वसमासविभक्तं स्वकस्वकगुणसंगुणे तु स्वकराशिः ॥ २६३ ॥

जी० प्र०—तेषां चतुर्णां वाग्योगकालानां योगः—युतिः सामान्यवाग्योगकालो भवति २१, ८५, ३४० अस्मात् काययोगकालः संख्यातगुणः २१, ८५, १३६० सर्वसमासेन सर्वेषां मनोवाक्काययोगकालानां संयोगेन २१, ८५, १७०१ त्रियोगमितं प्रागुक्तां

म २ण्र , ८५ , १
व २ण्र , ८५ , ३४०
का २ण्र , ८५ , १३६०
एषां योगः १७०१

त्रियोगिजीवसंख्यां विभज्य स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालेन गुणिते सति स्वस्वसत्यमनोयोगादियुक्तजीवराशिर्भवति[1] अनेन कालसंचयमाश्रित्य संख्या प्ररूपिता , तद्यथा–एतावति काले प्र २ ण्र , ८५ , १७०१ यद्येतावंतो जीवाः संचीयंते फ = ॥ १ / ४, ६५=ण्र १ तदा एतावति काले इ २ ण्र कियतो जीवाः संचीयंते इति त्रैराशिकं कृत्वा स्वस्वशलाकाभिर्गुणयित्वा

प्रमाणराशिना भक्ते सति सत्यमनोयोगादियोगिनां संख्या भवति , सत्यमनोयोगिनः:-- = ॥ ण्र , १ / ४ , ६५=ण्र , ८५ , १७०१ असत्यमनोयोगिनः = ॥ ण्र । ४ / ४ । ६५=ण्र । ८५ । १७०१ उभयमनोयोगिनः = ॥ ण्र । १६ / ४ । ६५=ण्र । ८५ । १७०१ अनुभयमनोयोगिनः- = ॥ ण्र । ६४ / ४ । ६५=ण्र । ८५ । १७०१ समस्तमनोयोगिनः = ॥ ण्र । / ४ । ६५=ण्र । १७०१ सत्यवाग्योगिनः- = ॥ ण्र । ४ / ४ । ६५=ण्र । १७०१ असत्यवाग्योगिनः = ॥ ण्र । १६ / ४ । ६५=ण्र । १७०१ उभयवाग्योगिनः ॥ ण्र । ६४ / ४ । ६५ =ण्र । १७०१ अनुभयवाग्योगिनः = ॥ ण्र । २५६ / ४ । ६५=ण्र । १७०१ समस्तवाग्योगिनः = ॥ ण्र । ३४० / ४ । ६५=ण्र । १७०१ समस्तकाययोगिनः–

[1] "त्रियोगिजीवराशिप्रमाण भक्त्वा स्वस्वसत्यमनोयोगादिकालरूपगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वसत्यमनोयोग्यादि जीवराशप्रमाणमायाति ।" इत्यपि पाठ ।

= । ७ृ । १३६० । द्वियोगिषु वाग्योगकालोंऽन्तर्मुहूर्तः । २७ृ । काययोगकालः ततः संख्यातगुणः २७ृ । ४ उभयकालयुत्या ४ । ६५=७ृ । १७०१

२७ृ । ४ । द्वियोगिजीवसंख्यां त्रियोगिहीनत्रसपर्याप्तराशिमात्रीं भक्त्वा स्वस्वगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वराशिर्भवति । द्वियोगिवाग्योगिनः = २७ृ । १ / ४ । २७ृ । ५ । द्वियोगिकाययोगिनः = २७ृ । ४ / ४ । २७ृ । ५ ॥ २६३ ॥

मं० प्र०—तेषा चतुर्वाग्योगकालाना योगः–समेलनं सामान्यवाग्योगकालो भवति २ ७ृ । ८५ । ३४० । ततः संख्येयगुणः काययोगकालः २ ७ृ । ८५ । १३६० । सर्वेषां मनोवाक्काययोगकालानां समासेन- सयोगेन २ ७ृ । ८५ । १७०१ त्रियोगमिति प्रागुक्तां त्रियोगिजीवसंख्यां विभज्य स्वस्वकालप्रमाणेन सत्यमनोयोगादीना प्रत्येकं योगकालेन गुणिते सति स्वस्वराशिर्भवति—सत्यमनोयोगादियुक्तजीवराशिर्भवति । अनेन कालसंचयमाश्रित्य संख्या प्ररूपिता । एतावति काले । प्र २ ७ृ । ८५ । १७०१ यद्येतावंतो जीवा लभ्यते फ=७ृ / ४ । ६५=७ृ । तदा एतावति काले इ २ ७ृ कियंतो जीवा लभ्यंत इति त्रैराशिकेन लब्धा अपवार्तिताः सत्यमनोयोगिजीवसंख्या = ७ृ / ४ । ६५=७ृ । ८५ । १७०१ एवमसत्यमनोयोग्यादिजीवाना संख्या सर्वसमासविभक्तस्वस्वकालगुणितत्रियोगिप्रमाणप्रमिता आनेतव्या ॥ २६३ ॥

स० चं०—बहुरि जो चार्‍यो वचन योगनिका काल कह्या ताका जोड दीएं जो परिमाण होइ सो सामान्य वचनयोगका काल है ताकी संदृष्टि तीनसै चालीस गुणा पिच्यासी ८५ । ३४० अंतर्मुहूर्त । यातैं संख्यातगुणा काल काययोगका जानना । ताकी संदृष्टि तेरहसै साठिगुणा पिच्यासी ८५।१३६० अंतर्मुहूर्त । ऐसें इनि तीनों योगनिके कालका जोड दीएं सतरहसै एकगुणा पिच्यासी ८५।१७०१ अंतर्मुहूर्त प्रमाण भया । ताके जेते समय हों-

हि तिस प्रमाण करि त्रियोगी कहिए पूर्वैं जो त्रियोगी जीवनिका परिमाण कह्या था ताकौं भाग दीजिए जो एक भागका परिमाण आवै ताकौं सत्यमनोयोगके कालके जेते समय तिनकरि गुणैं जो परिमाण आवै तितने सत्यमनोयोगी जीव जानने। बहुरि ताहीकौं असत्यमनोयोगकालके जेते समय तिनकरि गुणैं जो परिमाण आवै तितने असत्यमनोयोगी जीव जानने। ऐसैंही काययोगपर्यंत सर्वका परिमाण जानना। इहां सर्वत्र त्रैराशिक करना तहां जो सर्वयोगनिका कालविषैं पूर्वोक्त त्रियोगी सर्व जीव पाइए तौ विवक्षित योगके कालविषैं केते जीव पाइए ? ऐसैं सर्वयोगनिका काल प्रमाणराशि त्रियोगी जीवनिका परिमाण फलराशि अर जिस योगकी विवक्षा होइ तिसका काल इच्छाराशि ऐसैं करिकैं फलराशिकौं इच्छाराशिकरि गुणि प्रमाणराशिका भाग दीएं जो जो परिमाण आवै तितने तितने जीव विवक्षित योगके धारक जानने। बहुरि द्वियोगी जीवनिविषैं वचनयोगका काल अंतर्मुहूर्त मात्र ताकी संदृष्टि एक अंतर्मुहूर्त यातैं संख्यातगुणा काययोगका काल ताकी संदृष्टि च्यारि अंतर्मुहूर्तमात्र इनि दोऊनिके कालकौं जोंड जो प्रमाण होइ ताका भाग द्वियोगी जीव राशिकौं दीएं जो एक भागका परिमाण होइ ताकौं अपना अपना कालकरि गुणैं अपना अपना राशि हो है। तहां किछू घाटि त्रसराशिके प्रमाणकौं संदृष्टि अपेक्षा पांचकरि भाग देइ एककरि गुणैं द्वियोगीनिविषैं वचनयोगीनिका प्रमाण हो है। पांचका भाग देइ च्यारि करि गुणैं द्वियोगीनिविषैं काययोगीनिका प्रमाण हो है ॥ २६३ ॥

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता।
कम्मोरालियमिस्सयओरालियजोगिणो जीवा ॥ २६४ ॥

कार्मणौदारिकमिश्रकौरालाद्धासु संचितानंताः।
कार्मणौरालिकमिश्रकौरालिकयोगिनो जीवाः ॥ २६४ ॥

जी० प्र०—कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगौदारिककाययोगानां कालेषु वक्ष्यमाणप्रमाणेषु ये संचिताः कार्मणकाययोगिनः औदारिकमिश्रकाययोगिनः औदारिककाययोगिनश्च जीवाः ते प्रत्येकमनंतानंताः भवंति ॥ २६४ ॥ तद्यथा—

म० प्र०—कार्मणकाययोगौदारिकमिश्रकाययोगौदारिककाययोगानां कालेषु वक्ष्यमाणप्रमाणेषु सचिताः कार्मणकाययोगिनः, औदारिकमिश्रकाययोगिनः, औदारिककाययोगिनश्च जीवाः प्रत्येकमनंतानंता ज्ञातव्याः । ॥ २६४ ॥ तद्यथा—

स०चं०—कार्माण काययोग औदारिकमिश्र काययोग औदारिककाय योग इनिके कालनिविषैं संचित कहिए एकठे भए जे कार्माण काययोगी औदारिक मिश्र काययोगी औदारिक काययोगी जीव ते प्रत्येक जुदे जुदे अनंतानंत जानने सोई कहिए है ॥ २६४ ॥

समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी ।
सगगुणगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो ॥ २६५ ॥

समयत्रयसंख्यावलिसंख्यगुणावलिसमासहितराशिं ।
स्वकगुणगुणिते स्तोकः असंख्यसंख्याहतः क्रमशः ॥ २६५ ॥

जी० प्र०—कार्मणकाययोगकालः समयत्रयं भवति । विग्रहगतौ अनाहारकसमयत्रये कार्मणकाययोगस्यैव संभवात् । औदारिकमिश्रकाययोगस्य कालः संख्यातावलिमात्रो भवति अंतर्मुहूर्तप्रमितापर्याप्तकालस्यैव तत्कालत्वात् । औदारिककाययोगकालः ततः संख्यातगुणः तत्कालद्वयहीनसर्वकालस्यैव औदारिककाययोगकालत्वात् । तेषां कालानां न्यासः—स ३ । २ ७ । २ ७ । ४ । एषां युतिः २ ७ । ५ । अनया द्वियोगित्रियोगिसंख्याविहीनसंसारिराशिप्रमितैककाययोगिसंख्यां भक्त्वा स्वस्वकालमात्रगुणकारेण गुणिते सति लब्धं स्वस्वयोगिसंख्या भवति । अत्र कार्मणकाययोगिनः सर्वतः स्तोका १३=३ / २ ७ ५ एभ्यः औदारिकमिश्रकाययोगिनः असंख्यातगुणाः— १३= २ ७ / २ ७ । ५ । एभ्य औदारिककाययोगिनः संख्यागुणाः—१३= । २ ७ । ४ / २ ७ । ५ एते त्रयोऽपि राशयः । एतावति काले यद्येतावंतो जीवा संचीयंते तदा एतावति काले कियंतो जीवाः संचीयंते ? इति त्रैराशिकसिद्धा ज्ञातव्याः ।

प ३ २ ॖ १ । ५	फ १३=	इ स ३ ।	ल । का० जी०	१३=३ / ३ २ ॖ ५
प २ ॖ १ । ५	फ १३=	इ २ ॖ	ल । औ० मि० जी.	१३=२ ॖ / २ ॖ । ५
प २ ॖ । ५	फ १३=	इ २ ॖ । ४	ल औ० का० जी०	१३= । २ ॖ ४ / ३ २ ॖ । ५

क्रमशः इत्यनेन धवलाख्यप्रथमसिद्धांतोक्तसंख्यानुक्रममाश्रित्य उक्तेयं संख्या प्ररूपणा अस्माभिरित्यौद्धत्यपरिहारः शास्त्रकारेण सूचितः ॥२६५॥

म० प्र०—कार्मणकाययोगस्य कालः समयत्रयं, कुतः ? विग्रहगतौ अनाहारकसमयत्रये कार्मणकाययोगस्यैव संभवात् । औदारिकमिश्रकाययोगस्य काल· सख्यातावलिमात्रः अंतर्मुहूर्तप्रमितापर्याप्तकालस्यैव तत्कालत्वात् । ततः सख्येयगुणः औदारिककाययोगकालः । एतेषा कालाना न्यासः--स ३ । २ ॖ । २ ॖ । ४ । एतत्संयोग २ ॖ । ५ । अनेन द्वियोगित्रियोगिसख्येन ससारिराशिप्रमितकाययोगिसंख्या भक्त्वा स्वस्वकालमात्रगुणकारेण गुणिते लब्धं स्वस्वयोगिसंख्या भवति । तत्र कार्मणकाययोगिजीवराशिः सर्वत. स्तोकः १३ = ३ तस्मादसंख्येयगुणः औदारिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति

२ ॖ । ५

१३ = । २ ॖ ततः सख्येयगुणः औदारिककाययोगिजीवराशि १३ = । २ ॖ । ४ अत्र एतावति काले प ३— यद्येतावतो जीवाः सचीयंते फ

३— / २ ॖ । ५   ३— / २ ॖ । ५   २ ॖ । ५

१३ = तदा एतावति काले इ ३, कियंतो जीवाः सचीयते इति त्रैराशिकेन लब्धं कार्मणकाययोगिजीवप्रमाणं १३ = ३ । एवमौदारिकमिश्रकाययोगिप्रमाणं

३— / २ ॖ । ५

मौदारिककाययोगिप्रमाण च गाथासूत्रसूचित त्रैराशिकविधानेनानेतव्यं । क्रमश इत्यनेन धवलाख्यप्रथमसिद्धांतोक्तसंख्यानुक्रममाश्रित्येयं सख्या प्ररूपणा अस्माभिर्विधीयत इत्यौद्धत्यपरिहारः शास्त्रकारेण सूचितः ॥ २६५ ॥

स० चं०—कार्मण काययोगका काल तीन समय है जातैं विग्रह गतिविषैं अनाहारक तीनि समयनिविषैं कार्माणकाय योगही संभवै है। बहुरि औदारिक मिश्रकाययोगका काल संख्यात आवली प्रमाण है जातैं अंतर्मु-

हूर्त प्रमाण अपर्याप्त अवस्थाविषैं औदारिकमिश्रका काल है। बहुरि तातैं संख्यातगुणा औदारिक काययोगका काल है जातैं तिनि दोऊ कालनि विना अवशेष सर्व औदारिक योगीका ही काल है सो इनि सर्वकालनिका जोड दीएं जो समयनिका परिमाण भया ताकौं द्विसंयोगी त्रिसंयोगी राशिकरि हीन संसारी जीव राशिमात्र एक योगी जीव राशिके परिमाणकौं भाग दीएं जो एकभागविषैं परिमाण आवै तीहिंकौं कार्माण कालकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने कार्माणकाययोगी हैं। अर तिसही एकभागकौं औदारिक मिश्रकालकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने औदारिक मिश्रयोगी जानने। बहुरि तिसही एक भागकौं औदारिकके कालकरि गुणैं जो परिमाण होइ तितने औदारिक काययोगी जानने। इहां कार्माण काययोगी तौ सबतैं स्तोक हैं। इनितैं असंख्यात गुणे औदारिकमिश्रकाय योगी हैं। इनतैं संख्यातगुणे औदारिक काययोगी हैं। इहां भी जो तीनूं काययोगके कालविषैं सर्व एकयोगी जीव पाइए तौ कार्माण शरीर आदि विवक्षितके कालविषैं केते पाइए ? ऐसैं त्रैराशिक हो है तहां तीनों काययोगनिका काल सो प्रमाणराशि, एकयोगी जीवनिका परिमाण सो फलराशि कार्मणादिक विवाक्षितका काल सो इच्छाराशि, फलराशिकौं इच्छाराशिकरि गुणैं प्रमाणराशिका भाग दीएं जो जो प्रमाण पावै तितने तितने विवक्षित योगके धारक जीव जानने। क्रमशः इस शब्दकरि आचार्यने कह्या है कि धवलनामा प्रथमसिद्धांतके अनुसारि यह कथन कीया है। याकरि अपना उद्धतताका परिहार प्रगट कीया है ॥ २६५ ॥

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे ।
आवलिअसंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो ॥ २६६ ॥

सोपक्रमानुपक्रमकालः संख्यातवर्षस्थितिवाने ।
आवल्यसंख्यभागः संख्यातावलिप्रमः क्रमशः ॥२६६॥

जी० प्र०—वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्या वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्या च गाथाचतुष्टयेनोच्यते। तद्यथा—संख्येयवर्षस्थितिषु दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यायुष्केषु वानेषु देवेषु तत्स्थितेः सोपक्रमकालः अनुपक्रमकालश्चेति द्वौ भंगौ भवतः। तत्र उत्पत्तिः—उपक्रमः तत्सहितः कालः सोपक्रमकालः निरंतरोत्पत्तिकालः इत्यर्थः। तत्प्रमाणं आवल्यसंख्यातैकभागमात्रं भवति। अनुपक्रमकालः—उत्पत्तिरहितः कालः, स च संख्यातावलिप्रमितो भवति। द्वादशमुहूर्तमात्रः उत्कर्षेण उत्पत्त्यभावकालः इत्यर्थः। क्रमशः—यथाक्रमं, वनेषु भवाः वानाः—व्यंतराः इत्यर्थः। वाने इत्येकवचनं सामान्यापेक्षया कृतं ॥ २६६ ॥

म० प्र०—वैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवसंख्या वैक्रियिककाययोगिजीवसंख्या च गाथाचतुष्टयेनोच्यते। तद्यथा—संख्येयवर्षस्थितिषु दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यायुष्केषु व्यंतरेषु तत्स्थितेर्द्वौ भागौ, सोपक्रमकालः अनुपक्रमकालश्चेति। तत्र उपक्रमः—उत्पत्तिः, तत्सहितः सोपक्रमकालः—आवल्यसंख्येयभागमात्रः—निरंतरोत्पत्तिकाल इत्यर्थः। अनुपक्रमकालः उत्पत्तिरहितकालः संख्यातावलिप्रमः, द्वादशमुहूर्तमात्रः उत्कर्षेणोत्पत्त्यंतरकाल इत्यर्थः। क्रमशः यथासंख्यं तथैव व्याख्यात। वनेषु भवा वानाः—व्यंतरा इत्यर्थः। वाने इत्येकवचनं सामान्यापेक्षया कृतं ॥ २६६ ॥

स० चं०—वैक्रियिक मिश्र अर वैक्रियिककाय योगके धारक जे जीव तिनकी संख्या च्यारि गाथानिकरि कहैं हैं—संख्यातवर्षकी है स्थिति जिनकी ऐसे जे मुख्यताकरि दशहजार वर्ष प्रमाण जघन्य स्थितिके धारक वान कहिए व्यंतर देव तिनिविषैं उनकी स्थितिके दोय भाग हैं—एक सोपक्रम काल, एक अनुपक्रम काल। तहां उपक्रम कहिए उत्पत्ति तींहि सहित जो काल सो सोपक्रम काल कहिए सो आवलीके असंख्यातवे भागमात्र है जो व्यंतर देव उपजिवो ही करैं वीचि कोई समय अंतर नहिं पडै तौ आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण कालपर्यंत उपजिवो करैं। बहुरि जो उत्पत्ति रहित काल होइ सो अनुपक्रम काल कहिए सो संख्यात आवली प्रमाण है बारह मुहूर्तमात्र जानना जो कोई ही व्यंतर देव न उपजै तौ बारह मुहूर्तपर्यंत न उपजै पीछैं कोई उपजै ही उपजै ऐसैं अनुक्रमतैं काल जानने ॥ २६६ ॥

तहिं सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु संखगुणा।
तत्तो संखगुणूणा अपुण्णकालम्हि सुद्धसला ॥ २६७ ॥

तस्मिन् सर्वाः शुद्धशलाकाः सोपक्रमकालतस्तु संख्यगुणाः ।
ततः संख्यगुणोना अपूर्णकाले शुद्धशलाकाः ॥ २६७ ॥

जी० प्र०—तत्र दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यस्थितौ सर्वाः पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयसंबंधिन्यः शुद्धशलाकाः शुद्धोपक्रमकालशलाकाः आवल्यसंख्यातैकभागमात्रात् सोपक्रमकालात् संख्यातगुणिता भवंति २ ७ ७ / a एताभ्यः अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमशलाकाः संख्यातगुणहीना भवंति । २ । ७ / a तद्यथा सोपक्रमानुपक्रमकालद्वयस्य यद्येका शलाका तदा दशसहस्रवर्षकालस्थितौ कियंत्यः शलाका भवेयुरिति त्रैराशिकेन प्र २ ७ a, फ श १, इ वर्ष १०००० / a लब्धमिश्रशलाका २ ७ ७ ७ / २ ७ a / a भवंति। अत्र भाज्यराशौ एतावद्गुणो २ ७ ७ / a भक्तिसे एवं २ ७ ७ ७ a / a । / २ ७ a / a इदमपवर्त्य भक्तिप्रमृणो किंचिदूनिते एवं ७ ७– । प्र श १ । फ उ २ । इ श ७ ७— / a । लब्धशुद्धोपक्रमसर्वकालो भवति २ ७ ७– / a । अस्य कालस्य शुद्धशलाकाजनितत्वेन शुद्धशलाका इत्याचार्येण उक्तं । पुनरपि दशसहस्रवर्षप्रमितसर्वकाले शुद्धोपक्रमकाल एतावान् लभ्यते तदा अपर्याप्तकाले एतावति कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र सर्वे २ ७ ७ ७। फ २ ७ ७– । इ २ ७ ७ / a लब्धं अपर्याप्तकालस्य शुद्धोपक्रमकालो भवंति २ ७ / a । अथवा—

प्र का २ / a । फ श १ । इ २ ७ / a ७–लब्धाः पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयशुद्धोपक्रमशलाकाः ७ ७– । प्र श १ । फ २ । इ श ७ ७ / a –लब्धः सर्वशुद्धोपक्रमकालः २ ७ / a ७– । पुनरपि प्र श १ फ २ इ ७ / a लब्धः अपर्याप्तकालशुद्धोपक्रमकालः २ ७ / a । उभयत्र जघन्यजननांतरमेकसमयमाश्रित्य शुद्धोपक्रमशलाकाः साधिता इति ज्ञातव्यं। अनुपक्रमकालरहितः उपक्रमकालः शुद्धोपक्रमकालः ॥ २६७ ॥

मं० प्र०—तत्र-दशसहस्रवर्षमात्रजघन्यस्थितौ सर्वाः-पर्याप्तापर्याप्तकालद्वयसंबंधिन्यः शुद्धशलाकाः-शुद्धोपक्रमकालशलाकाः, आवल्यसंख्यातभाग-मात्रात् सोपक्रमकालात् संख्यातगुणिताः। ततः संख्यातगुणहीना अपर्याप्तकाले शुद्धोपक्रमशलाका भवंति। तद्यथा—सोपक्रमानुपक्रमकालद्वयं मिलितमिदं २/a ।२१ एतावतः कालस्य प्र २/a २१ यद्येकशलाका लभ्यते फ १। तदा एतावतः कालस्य इ २ १ १ १, कियत्यः शलाका लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धाः सर्वमिश्रशलाकाः २ १ १ १/(२ a २ १) भाज्यराशौ एतावद्दणं २/a १ १ निक्षिप्यापवर्तिताः १ १। प्राग्निक्षिप्तऋणेन किंचिदूनाः १ १–। पुनरेकस्यां शलाकायां प्र १, यद्येतावान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते फ २/a तदा इयतीषु शलाकासु इ १ १–। कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धः सर्वशुद्धोपक्रम-कालः २/a १ १–अस्य शुद्धशलाकाजनितत्वात् शुद्धशलाका इत्याचार्यैरुक्तं। पुनः एतावति सर्वकाले प्र २ १ १ १, यद्येतावान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते फ २/a १ १–तदा एतावत्पर्याप्तकाले इ २ १ १ कियान् शुद्धोपक्रमकालो लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्ध अपर्याप्तकाले शुद्धोपक्रमकालः २/a १। अथवा एतावतः कालस्य प्र २/a यद्येका उपक्रमशलाका लभ्यते फ १, तदा एतावतः कालस्य इ २ १ १, कियत्य उपक्रमशलाका लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धाः सर्वकालसंबंध्युपक्रमशलाकाः २ १ १/(२ a) अपवर्तिताः २/a १ १। तथा एतावतः कालस्य प्र २/a यद्येका उपक्रमशलाका लभ्यते फ १, तदा एतावतः कालस्य इ २ १ कियत्यः उपक्रमशलाका लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धाः अपर्याप्तकालसंबंध्युपक्रमशलाका अपवर्तिताः २/a १ उभयत्र जघन्यजननांतर-मेकसमयमाश्रित्य शुद्धोपक्रमशलाकाः साधिताः। अनुपक्रमकालरहित उपक्रमकालः शुद्धोपक्रमकालः ॥ २६७ ॥

सं० च०—तींहि दश हजार वर्षप्रमाण जघन्य स्थितिविषैं सर्व पर्याप्त वा अपर्याप्त कालसंबंधी अनुपक्रम

काल रहितकौं केवल शुद्ध उपक्रमकालकी शलाका कहिए जेतीवार संभवै तेता प्रमाण सो उपक्रमकालतैं संख्यात गुणी है बहुरि अपर्याप्त कालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका तातैं संख्यात गुणी घाटि हैं जो जघन्यस्थितिविषैं शुद्ध उपक्रम शलाकाका परिमाण कह्या था ताके संख्यातवे भाग अपर्याप्तकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका जानना। सोई दिखाइए हैं-सोपक्रम अनुपक्रम काल दोऊ कालनिकी मिलाई हुई एक शलाका होइ तौ दशहजार वर्ष प्रमाणस्थितिकी केती शलाका होंइ ऐसैं त्रैराशिक करिए तहां सोपक्रम अर अनुपक्रम कालकौं मिलाए आवलीका असंख्यातवां भाग अधिक संख्यात आवली प्रमाण तौ प्रमाणराशि भया अर फलराशि एक शलाका अर इच्छाराशि दशहजार वर्ष तहां फलकरि इच्छाराशिकौं गुणि प्रमाणका भाग दीएं किंचिदून संख्यातगुणा संख्यातप्रमाण मिश्रशलाका हो है। जघन्य स्थितिविषैं एतीवार उपक्रम वा अनुपक्रमका काल वर्तै है। बहुरि प्रमाणराशि शलाका एक, फलराशि उपक्रमकाल आवलीका असंख्यातवां भाग, इच्छाराशि मिश्रशलाका किंचिदून संख्यातगुणा संख्यात कीएं तींहि जघन्य स्थिति प्रमाण कालविषैं शुद्ध उपक्रम शलाका कालका परिमाण किंचिदून संख्यातगुणा संख्यात गुणित आवलीका असंख्यातवां भागमात्र हो है। बहुरि प्रमाण जघन्यस्थिति, फल शुद्ध उपक्रम शलाका काल, इच्छा अपर्याप्त काल कीएं अपर्याप्त कालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवां भागमात्र होइ अथवा अन्य प्रकार कहै हैं-प्रमाण एक शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल, फल एक शलाका, इच्छा सर्वशुद्ध उपक्रम काल करिए पर्याप्त अपर्याप्त सर्वकाल संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका किंचिदून संख्यातगुणी संख्यात जाननी। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल शुद्ध उपक्रम शलाकाकाकाल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र, इच्छा सर्व शुद्ध शलाका किंचिदून संख्यात गुणित संख्यात करिए लब्धराशिविषैं सर्व जघन्यस्थितिसंबंधी शुद्ध उपक्रमकाल आवलीका असंख्यातवा भागकौं किंचिदून संख्यातगुणा संख्यातकरि गुणैं जेता प्रमाण आवै तितना हो है। बहुरि प्रमाण एक शलाका, फल एक शलाका काल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र काल, इच्छा अपर्याप्त कालसबंधी शलाका संख्यात करिए तहां लब्धराशिविषैं अपर्याप्त-

कालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका काल संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवां भागमात्र हो है। इहां दोय प्रकार वर्णन किया तहां दोऊ जायगा जघन्य उपजनेका अंतर एक समय है ताकौं विचारि शुद्ध उपक्रम शलाका साधी है ऐसा जानना। अनुपक्रम कालकरि रहित जो उपक्रम काल सो शुद्ध उपक्रमकाल जानना ॥ २६७ ॥

तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहिं ।
सुद्धसलागाहिं गुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु ॥ २६८ ॥

तं शुद्धशलाकाहितनिजराशिमपूर्णकाललब्धाभिः ।
शुद्धशलाकाभिर्गुणे व्यंतरवैगूर्वमिश्रा हि ॥ २६८ ॥

जी० प्र०—तत्सर्वकालसंबंधिशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २७१- (a) । भक्ते निजराशौ व्यंतरजीवराशौ अपर्याप्तकाललब्धशुद्धोपक्रमशलाकाभिः २७ (a) गुणिते सति यल्लब्धं तत्प्रमाणो व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति = २७ (a) / ४। ६५=।८१।१०।२११- (a) खलु स्फुटं ॥ २६८॥

मं० प्र०—ताभिः सर्वकालसंबंधिनीभिः शुद्धोपक्रमशलाकाभि', हतं--भक्तं, निजराशिं व्यंतरराशिं, अपर्याप्तकाललब्धाभिः शुद्धोपक्रमशलाकाभिः गुणयित्वा यल्लब्धं तत्प्रमाण व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिराशिर्भवति। एतावतीषु शुद्धोपक्रमशलाकासु प्र २११- (a) यद्येतावान् जीवराशिर्भवति फ = ० / ४। ६५=८१।१०। तदा एतावतीषु शुद्धोपक्रमशलाकासु इ २१ (a) कियान् जीवराशिर्भवति इति त्रैराशिकेन सिद्धौ भागहारगुणकारौ लब्धव्यंतरवैक्रियिकमिश्रयोगिराशिः =२१ (a) / ४।६५=८१।१०।२११- (a) अपवर्तितगुणकारभागहारः व्यंतरराशिसंख्यातैकभागमात्रः = ० / ४।६५=८१।१०।१। खलु स्फुटं ज्ञातव्य ॥ २६८ ॥

स० चं०—तींहिं जघन्य स्थितिप्रमाण सर्वकालसंबंधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका परिमाण किंचिदून संख्या-
तगुणा संख्यातकरि गुणित आवलीका असंख्यातवां भागमात्र कह्या ताका भाग व्यंतर देवनिका जो पूर्वै परि-
माण कह्या था ताकौं दीजिए जो परिमाण आवै ताकौं अपर्याप्त काल संबधी शुद्ध उपक्रम शलाकाका प्रमाण
संख्यातगुणा आवलीका असंख्यातवां भागमात्र ताकरि गुणैं जो परिमाण आवै तितने वैक्रियिक मिश्रयोगके
धारक व्यंतरदेव जानने। सो ए व्यंतरदेवनिका जो पूर्वै परिमाण कह्या था ताके संख्यातवे भाग वैक्रियिक मिश्र-
योगके धारक व्यंतर देव हैं। संख्यात वर्षप्रमाण स्थितिके धारक व्यंतर घने उपजै हैं तातैं उनहीकी मुख्यता-
करि इहां परिमाण कह्या है ॥ २६८ ॥

तहिं सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा वेगुव्वियकायजोगा हु ॥ २६९ ॥

तस्मिन् शेषदेवनारकमिश्रयुते सर्वमिश्रवैगूर्वं।
सुरनिरयकाययोगा वैगूर्विककाययोगा हि ॥ २६९ ॥

जी० प्र०—तद्व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशौ शेषदेवेषु भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवेषु सप्तपृथ्वीनारकवैक्रियिकमिश्रकाययोगिषु च यु-
तेषु यो राशिः सः सर्ववैक्रियिकमिश्रकाययोगिजीवराशिर्भवति। = २७ a ० शेषदेवनारकेषु अनुपक्रमकालस्य बहुत्वेन वै-

४। ६५ = । ८१ । १० । २ ७ ७ a —

क्रियिकमिश्रयोगिप्रमाणं अल्पमिति तद्राशयः साधिकाः कर्तव्याः। देवनारककाययोगिराशिद्वये युते यो राशिः स वैक्रियिककाययोगिराशिर्भवति।

= ७ । १३६० । तन्मध्यात्तिर्यग्मनुष्यसंबंध्यौदारिकाहारककाययोगिसंख्या-
त्रियोगिराशौ यत्काययोगिराशिप्रमाणं प्रागुक्तं
४। ६५ = । ७ । १७०१

द्वये अपनीते यावदवशिष्यते स वैक्रियिककाययोगिजीवराशिरित्यर्थः । = ॥ ७ । १३६०= । तुशब्दः इमं विशेषं सूचयति ॥ २६६ ॥
४ । ६५=७ । १७०१

मं० प्र०—तस्मिन् व्यंतरवैक्रियिकमिश्रकाययोगिराशौ, शेषदेवानां–भावनज्योतिष्कवैमानिकदेवानां नारकाणां च वैक्रियिकमिश्रकाययोगिराशौ युते सति यो राशिर्भवति स सर्वो वैक्रियिकामिश्रकाययोगराशिः । शेषदेवनारकेष्वनुपक्रमकालस्य बहुतरत्वात् वैक्रियिकमिश्रयोगिप्र-
= १ ०
४ । ६५=८१ । १० । ७
माणमल्पमिति तद्राशेः प्रक्षेपः कृतः । देवनारककाययोगिराशिद्वयं मिलितं यत्प्रमाण तत्प्रमितं वैक्रियिककाययोगराशिर्भवति । त्रियोगिराशिमध्ये यत्काययोगिप्रमाण प्रागुक्तं ॥ अत्र तिर्यग्मनुष्यसंबध्यौदारिकाहारककाययेगिसंख्याद्वये अपनीते अवशिष्टः–वैक्रियिककाययोगिराशिरित्यर्थः ।
१—
=७ । १३६० ।
४ । ६५=७ । १७०१
॥ तुशब्दः इमं विशेषं सूचयति ॥ २६६ ॥
१—
=७ । १३६०=
४ । ६५=७ । १७०१ ।

स० चं०—तीहिं वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक व्यंतर देवनिका परिमाणविषैं अवशेष जे भवनवासी ज्योतिषी वैमानिक देव अर सर्व नारकी वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक तिनिका परिमाण मिलाएं सर्व वैक्रियिक मिश्रकाययोगके धारक जीवनिका परिमाण हो है। व्यंतर देवां विना अन्य देव नारकी तिनकैं अनुपक्रमकाल जो न उपजनेका काल सो बहुत है तातैं सवानितैं वैक्रियिक मिश्रयोगके धारक व्यंतर देव बहुत हैं इस वास्तैं

औरनिकौं उनविषैं मिलायकरि परिमाण कह्या। बहुरि काययोगके धारक देव अर नारकी तिनिका परिमाण मिलाएं वैक्रियिक काययोगके धारक जीवनिका परिमाण हो है। पूर्वै जो त्रियोगी जीवनिका परिमाण विषैं काययोगी जीवनिका परिमाण कह्या था तामैं तिर्यंच मनुष्य संबंधी औदारिक आहारक काययोगके धारक जीवनिका परिमाण घटाएं जो परिमाण रहै तितने वैक्रियिक काययोगके धारक जीव जानने। मिश्र योगके धारक जीव एक काय योगी ही हैं सो उनका परिमाण एकयोगीनिका प्रमाणविषैं गर्भित जानना ॥ २६९ ॥

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एकसमयम्हि।
आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सं ॥ २७० ॥

आहारकाययोगाः चतुष्पंचाशत् भवंति एकसमये।
आहारमिश्रयोगाः सप्तविंशतिस्तूत्कृष्टम् ॥ २७० ॥

जी० प्र०—आहारककाययोगिनः एकसमये युगपच्चतुष्पंचाशत्प्रमिता भवंति, आहारकमिश्रकाययोगिनः एकसमये युगपत्सप्तविंशतिप्रमिता भवंति। एकसमये उत्कृष्टादिति विशेषणद्वयं तु प्रागुक्तगत्यादिजीवसंख्याभिः वक्ष्यमाणजीवसंख्याभिश्च संबंधनीयं। अत्र मध्यदीपकत्वेनोक्तत्वात्। जघन्यसंख्यापेक्षया नानाकालसंख्यापेक्षया च संभवन् विशेषः परमागमे द्रष्टव्यः ॥ २७० ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु योगमार्गणानाम नवमोऽधिकारः ॥ ९॥

म० प्र०—आहारककाययोगिनः एकस्मिन् समये युगपच्चतुःपंचाशद्भवंति। आहारकमिश्रकाययोगिनः एकस्मिन् समये सप्तविंशतिर्भवंति। एकस्मिन् समये, उत्कर्षादिति विशेषणद्वयं प्रागुक्तगत्यादिजीवसंख्याना वक्ष्यमाणजीवसंख्यानां च संबंधनीयं। अत्र मध्यदीपकत्वेनोक्तत्वात्। जघन्यसंख्यापेक्षया नानाकालापेक्षया च संभवन्विशेषः परमागमे द्रष्टव्यः ॥ २७० ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ योगप्ररूपणानाम नवमोऽधिकारः ॥ ९ ॥

सं० च०—उत्कृष्टपनैं एकसमयविषैं युगपत् आहारक काययोगके धारक चौवन ५४ हो हैं बहुरि आहारक मिश्रकाययोगके धारक सत्ताईस २७ हो हैं। उत्कृष्टपनैं अर एक समय विषै ए दोय विशेषण मध्यदीपक समान हैं जैसैं बीचि धर्‌या दीपक दोऊ तरफ प्रकाश करै है तैसैं इनि दोऊ विशेषणनितैं जो पूर्वैं गति आदिविषैं जीवनिकी संख्या कहि आए अर आगैं वेदादिक विषैं जीवनिकी संख्या कहिएगी सो सब उत्कृष्टपनैं युगपत् अपेक्षा जाननी। जो उत्कृष्टपनैं एकसमयविषैं युगपत् होंइ तो उक्त संख्याप्रमाण जीव होहिं उक्त संख्यातैं हीन होंइ तौ होंइ परंतु अधिक कदाचित् न होंइ असी विवक्षातैं इहां कथन जानना बहुरि जघन्यपनेतैं वा नाना कालकी अपेक्षा संख्याका विशेष अन्य जैनागमतैं जानना असैं योगमार्गणा विषैं जीवनिकी संख्या कही है॥ २७०॥

इति श्रीआचार्य श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितगोम्मटसारद्वितीयनामपंचसंग्रहग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीका अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं योगप्ररूपणा है नाम जाका असा नवमा अधिकार संपूर्ण भया॥ ९॥

अथ वेदमार्गणाधिकारः ॥ १० ॥

जी० प्र०—

कल्याणैः पंचकैर्भांतं पद्चत्वारिंशता गुणैः ।
शीतलं तीर्थकर्तारं वंदे शीतलसूक्तिकं ॥ १० ॥

अथ वेदमार्गणामाह—

मं० प्र०—

भवतापविलोपांगशीतलामोघसूक्तिकं ।
शीतलं तीर्थकर्तारं वंदे त्रैलोक्यवंदितं ॥ १० ॥

अथ शास्त्रकारो गाथाषट्केन वेदमार्गणां प्ररूपयति—

स० चं०— दूरि करत भव ताप सब शीतल जाके बैन ।
तीन भवननायक नमौं शीतल जिन सुखदैन ॥ १० ॥

आगैं शास्त्रका कर्ता आचार्य छह गाथानिकरि वेदमार्गणाकौं प्ररूपै हैं—

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे ।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा ॥ २७१ ॥

पुरुषस्त्रीषंढवेदोदयेन पुरुषस्त्रीषंढाः भावे ।
नामोदयेन द्रव्ये प्रायेण समाः क्वचिद् विषमाः ॥ २७१ ॥

जी० प्र०—पुरुषस्त्रीषंढाख्यत्रिवेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनां उदयेन भावे—चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षंढश्च जीवो भवति । निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मविशेषोदयेन, द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुषः स्त्री षंढश्च भवति । तद्यथा—पुंवेदोदयेन स्त्रियां अभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवो भावपुरुषो भवति । स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावस्त्री भवति । नपुंसकवेदोदयेन उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावनपुंसकं भवति । पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिंगांकितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यपुरुषो भवति । स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्य-

स्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयेन उभयलिंगव्यतिरिक्तदेहांकितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंत द्रव्यनपुंसकं जीवो भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण—प्रचुरवृत्त्या देवनारकेषु भोगभूमिसर्वतिर्यग्मनुष्येषु च समाः द्रव्यभावाभ्यां समवेदोदयांकिता भवति। क्वचित् कर्मभूमिमनुष्यतिर्यग्गतिद्वये विषमाः—विसदृशा अपि भवंति। तद्यथा—द्रव्यतः पुरुषे भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसक। द्रव्यस्त्रियां भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं। द्रव्यनपुंसके भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं इति विषमत्वं द्रव्यभावयोरनियमः कथितः। कुतः? द्रव्यपुरुषस्य क्षपकश्रेण्यारूढानिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं वेदत्रयस्य परमागमे "सेसोदयेण वितहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झति।" इति प्रतिपादितत्वेन संभवात् ॥ २७१ ॥

मं० प्र०——पुरुषस्त्रीषंढनाम्नां त्रयाणां वेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनां उदयेन, भावे—चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षंढश्च जीवो भवति। अंगोपांगनामकर्मविशेषोदयेन द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुष स्त्री षंढश्च भवति। तद्यथा- पुंवेदोदयात् स्त्र्यभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः, भावपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयात् पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयात् उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावनपुंसकं भवति। पुंवेदोदयविशिष्टांगोपांगनामकर्मोदयवशात् स्मश्रुकूर्चशिश्नादिलिंगांकितशरीरो जीवः द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयसहितांगोपांगनामकर्मोदयात् निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिंगलक्षितशरीरा द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदययुक्तांगोपांगनामकर्मोदयात् स्मश्रुकूर्चस्तनयोन्यादिलिंगाभावविशिष्टदेहं द्रव्यनपुंसकं भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण—प्रचुरवृत्त्या, देवनारकभोगभूमिषु सर्वेषु तिर्यग्मनुष्यगत्योश्च क्वचित्समाः—यादृशो द्रव्यवेदस्तादृशो भाववेदश्च। क्वचित्तिर्यग्मनुष्यगत्योर्विषमाः—विसदृशाः। द्रव्यपुरुषे भावस्त्रीनपुंसकवेदावपि, द्रव्यस्त्रिया भावनपुंसकवेदावपि, द्रव्यनपुंसके भावस्त्रीपुंवेदावपि संभवतीत्यानियमः कथितः। द्रव्यपुरुषे एव क्षपकश्रेणिमारूढे अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं वेदत्रयस्य परमागमे प्रसिद्धत्वात् ॥ २७१ ॥

स० चं०——चारित्र मोहनीयका भेद नोकषाय तीहरूप पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद नामा प्रकृति तिनिके उदयतैं भाव जो चैतन्य उपयोग तीहिविषैं पुरुष स्त्री नपुंसकरूप जीव हो है। बहुरि निर्माण नामा नामकर्मके उदयकरि संयुक्त अंगोपांगका विशेषरूप नामकर्मकी प्रकृतिके उदयतैं द्रव्य जो पुद्गलीक पर्याय तीहिविषैं पुरुष स्त्री नपुंसक हो है। सो ही कहिए है—पुरुषवेदके उदयतैं स्त्रीका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारी जीव सो भाव पुरुष हो है। बहुरि स्त्री वेदके उदयतैं पुरुषका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हो है बहुरि नपुंसकवेदके उदयतैं पुरुष अर स्त्री दोऊनिका युगपत् अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुरि निर्माणनामकर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका विशेष लीएं अंगोपांग-

नाम नामकर्मका उदयतैं मूछ डाढी लिंगादिक चिह्न संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाय अंतसमय पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है। बहुरि निर्माण नामका उदय संयुक्त स्त्री वेदरूप आकारका विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं रोमरहित मुख स्तन योनि इत्यादि चिह्नसंयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथमसमयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य स्त्री होइ है बहुरि निर्माण नामका उदयतैं संयुक्त नपुंसक वेदरूप आकारका विशेष लीएं अंगोपांग नामा नामप्रकृतिके उदयतैं मूछ डाढी इत्यादि वा स्तन योनि इत्यादिक दोऊ चिह्नरहित शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समयतैं लगाइ अंतसमयपर्यंत द्रव्य नपुंसक हो है। सो प्रायेण कहिए बहुलताकरि तौ समान वेद हो है जैसा द्रव्यवेद होइ तैसा ही भाव वेद होइ बहुरि कहीं समान वेद न हो है द्रव्यवेद अन्य होइ भाव वेद अन्य होइ। तहां देव अर नारकी अर भोगभूमियां तिर्यंच मनुष्य इनिकैं तौ जैसा द्रव्य वेद है तैसा ही भाव वेद है। बहुरि कर्मभूमियां तिर्यंच अर मनुष्यविषैं कोई जीवनिकै तौ जैसा द्रव्य वेद हो है तैसा ही भाव वेद है बहुरि केई जीवनिकैं द्रव्यवेद अन्य हो है अर भाव वेद अन्य हो है द्रव्यतैं पुरुष है अर भावतैं पुरुषका अभिलाषरूप स्त्री वेदी है वा स्त्री अर पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसकवेदी है। ऐसैं ही द्रव्यतैं स्त्रीवेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुषवेदी है वा दोऊनिका अभिलाषरूप नपुंसक वेदी है। बहुरि द्रव्यतैं नपुंसक वेदी है भावतैं स्त्रीका अभिलाषरूप पुरुष वेदी है वा पुरुषका अभिलाषरूप स्त्रीवेदी है ऐसा विशेष जानना जातैं आगमविषैं नवमा गुणस्थानका सवेद भाग पर्यंत भावतैं तीन वेद हैं अर द्रव्यतैं एक पुरुष वेद ही है ऐसा कथन कऱ्या है ॥ २७१ ॥

वेदस्सुदीरणाए परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो।
संमोहेण ण जाणदि जीवो हि गुणं व दोषं वा ॥२७२॥

वेदस्योदीरणायां परिणामस्य च भवेत्संमोहः ।
संमोहेन न जानाति जीवो हि गुणं वा दोषं वा ॥ २७२ ॥

जी० प्र०—वेदस्य चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतेः अपक्वपाचनलक्षणे दीरणया स्वकाले पाकलक्षणोदयेन च परिणामस्य चित्पर्यायस्य संमोहः- रागद्वेषरूपः चित्तविक्षेपो भवति । तेन संमोहेन गुणं वा दोषं वा जीवो न जानाति । अनेन गुणदोषविवेकाभावलक्षणः वेदोदयकृतचित्तविक्षेपप्रभवः अनर्थो दर्शितः । ततः कारणात् परमागमभावनाबलेन जीवेन यथावत्स्वरूपसंवेदनादिना आत्महितमेतद्व्रत अवश्यमनुष्ठतव्यमिति भावार्थः ॥ २७२ ॥

मं० प्र०—वेदस्य--चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतेः, उदीरणया च अपक्वपाचनलक्षणया, उदयेन च स्वकालपाकलक्षणेन, परिणामस्य -चित्पर्यायस्य सम्मोहः--रागरूपः मैथुनभञ्जरूपो विक्षेपो भवेत् । तेन सम्मोहेन गुण वा दोष वा जीवो न जानाति इत्यनेन गुणदोषविवेकाभावलक्षणो वेदोदयकृतचित्तविक्षेपप्रभवोऽनर्थो दर्शित. । ततस्तत्त्वज्ञानिना ब्रह्मचर्यं नियमेन अनुष्ठातव्यमिति तात्पर्यार्थः ॥ २७२ ॥

स० चं०—मोहनीय कर्मकी नोकषायरूप वेद नामा प्रकृति ताका उदीरणा वा उदय तींहिकरि आत्माके परिणामनिकौं रागादिरूप मैथुन है लक्षण जाका ऐसा सम्मोह कहिए चित्तविषैं विक्षेप सो उपजै है। तहां विना ही काल आएं कर्मका फल निपजै सो उदीरणा कहिए । काल आएं फल निपजै सो उदय कहिए। बहुरि उस सम्मोहके उपजनेतैं जीव गुणकौं वा दोषकौं न जानै ऐसा अविवेक रूप अनर्थ वेदके उदयतैं भया सम्मोहतैं हो है तातैं ज्ञानी जीवकौं परमागम भावनाका बलकरि यथार्थ स्वरूपानुभवन आदि भावतैं ब्रह्मचर्य अंगीकार करना योग्य है ऐसा आचार्यका अभिप्राय है ॥ २७२ ॥

पुरुगुणभोगे सेदे करोदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं ।
पुरु उत्तमे य जह्मा तह्मा सो वण्णिओ पुरिसो ॥ २७३ ॥

पुरुगुणभोगे शेते करोति लोके पुरुगुणं कर्म ।
पुरूत्तमे च यस्मात् तस्मात् स वर्णितः पुरुषः ॥ २७३ ॥

जी० प्र०—यस्मात् कारणात् लोके यो जीवः पुरुगुणे सम्यग्ज्ञानाधिकगुणसमूहे शेते—स्वामित्वेन प्रवर्तते, पुरुभोगे नरेंद्रनागेंद्रदेवेंद्राद्यधिकभोगचये भोक्तृत्वेन प्रवर्तते, पुरुगुणं कर्म धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनरूपदिव्यानुष्ठानं शेते—करोति च। पुरूत्तमे परमेष्ठिपदे शेते—तिष्ठति पुरूत्तमः सन् तिष्ठति इत्यर्थः तस्मात् कारणात् स जीवः पुरुः इति द्रव्यभावद्वयसंपन्नः पुरुषः इत्ययं जीवो वर्णितः। धातूनामनेकार्थत्वाचकत्वसंभवेन शीङ् स्वप्ने इत्येतस्य धातोः प्रवृत्तिकरणस्थानलक्षणार्थविशेषाः आचार्येण उक्ता न विरुध्यंते। पृषोदरादित्वेन अक्षरविपर्यासश्च तालव्यस्य षत्वं पुरुष इति। पोंतकर्मणि इत्येतस्य धातोर्वा ज्ञातव्यः॥ २७३॥

मं० प्र०—यस्मात्कारणात् लोके यो जीवः पुरुगुणे—सम्यग्ज्ञानाद्यधिकगुणसमूहे शेते—स्वामित्वेन प्रवर्तते। पुरुभोगे नरेंद्रनागेंद्रदेवेंद्राद्यधिकभोगचये भोक्तृत्वेन प्रवर्तते च। पुरुगुणवत् कर्म—धर्मार्थकाममोक्षलक्षणपुरुषार्थसाधनमनुष्ठानं शेते—करोति च, पुरौ—उत्तमे परमेष्ठिपदे शेते तिष्ठति च, तस्मात्कारणात् स जीवः पुरुषः इति वर्णितः। अयं च द्रव्यभावाभ्यां सपन्नः पुरुषः कथितः। धातूनामनेकार्थसंभवेन शीङ् स्वप्ने इत्यस्य धातोः प्रवृत्तिकरणस्थानलक्षणार्थविशेषा आचार्येण कथिता न विरुध्यंते, पृषोदरादित्वादक्षरविपर्यासश्च, 'षोंऽतकर्मणि' इत्यस्य धातोर्वा॥ २७३॥

स० चं०—जातैं जो जीव पुरुगुण जो उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञानादिक तीहिंविषैं शेते कहिए स्वामी होइ प्रवर्तै। बहुरि पुरुभोग जो उत्कृष्ट इंद्रादिकका भोग तीहिविषै शेते कहिए भोक्ता होय प्रवर्तै। बहुरि पुरुगुण कर्म जो धर्म अर्थ काम मोक्षरूप पुरुषार्थ तीहिंनैं शेते कहिए करै। बहुरि पुरु जो उत्तम परमेष्ठीका पद तीहिविषैं शेते कहिए तिष्ठै तातैं सो द्रव्य भाव लक्षण संयुक्त द्रव्य भावतैं पुरुष कह्या है। पुरुष शब्दकी निरुक्तिकरि वर्णन कीया है धातुनिके अनेक अर्थ हैं तातैं शीङ् स्वप्ने इस धातुका स्वामी होना भोगवना करना तिष्ठना ऐसैं अर्थ कहे विरोध न उपजावैं है। बहुरि इहां पृषोदर शब्दकीज्यों अक्षरविपर्यास जानने। तालवी शकारका मूर्धनी षकार करना। अथवा 'षोंऽतकर्मणि' इस धातुतैं निपज्या पुरुष शब्द जानना॥ २७३॥

छादयदि सयं दोसे णयदो छाददि परं वि दोसेण।
छादणसीला जह्मा तह्मा सा वण्णिया इत्थी॥ २७४॥

छादयति स्वकं दोषैः नयतः छादयति परमपि दोषेण।

छादनशीला यस्मात् तस्मात् सा वर्णिता स्त्री ॥ २७४ ॥

जी० प्र०—यस्मात्कारणात् स्वयमात्मान दोषैः मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभैः छादयति संवृणोति, नयतः मृदुभाषितस्निग्धविलोकनानुकूलवर्तनादिकुशलव्यापारैः, परमपि-अन्यपुरुषमपि स्ववशं कृत्वा दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकेन छादयति आवृणोति तस्मात्कारणात् छादनशीला द्रव्यभावाभ्यां सा अंगना स्त्रीति वर्णिता-परमागमे प्रतिपादिता । यद्यपि तीर्थकरजनन्यादीनां कासां चित् सम्यग्दृष्टीनां एतदुक्तदोषाभावः, तथापि तासां दुर्लभत्वेन सर्वत्र सुलभप्राचुर्यव्यवहारापेक्षया स्त्रीलक्षणं निरुक्तिपूर्वकमुक्तं । (सा स्तृणाति स्वयमन्य च दोषैरिति निरुक्तिपूर्वकमाचार्येणोक्तं) ॥ २७४ ॥

मं० प्र०—यस्मात् कारणात् य स्तृणाति स्वयं आत्मानं दोषैः--मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयमक्रोधमानमायालोभादिभिः छादयति--संवृणोति, नयतः—मृदुभाषितस्निग्धविलोकनानुकूलवर्तनादिकुशलव्यापारैः परमपि--पुरुषमपि स्ववश्यं कृत्वा, दोषेण हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहादिपातकेन छादयति तस्मात् छादनशीला द्रव्यभावाभ्या महिला सा स्त्रीति वर्णिता—परमागमे प्रतिपादिता । यद्यपि तीर्थंकरजनन्यादीनां कासांचित्सम्यग्दृष्टीनां प्रोक्तदोषाभावस्तथापि तासां दुर्लभत्वेन सर्वत्र सुलभप्राचुर्यव्यवहारापेक्षया स्त्रीलक्षणं निरुक्तिपूर्वकमाचार्यैरुक्तं ॥ २७४ ॥

सं० च०—जातैं जो स्वयं कहिए आपकौं दोषैः कहिए मिथ्यात्व अज्ञान असंयम क्रोधादिक तिनिकरि स्तृणाति कहिए आच्छादित करै है बहुरि नाहीं केवल आपहीकौं आच्छादित करै है जातैं पर जु है पुरुषवेदी जीव, ताहि कोमल वचन कटाक्ष सहित विलोकन मानुकूल प्रवर्तन इत्यादि प्रवीणतारूप व्यापारनितैं अपने वश करि दोष जे हैं हिंसादिक पाप तिनिकरि स्तृणाति कहिए आच्छादै है ऐसा आच्छादन रूप ही है स्वभाव जाका तातैं सो द्रव्य भावकरि स्त्री ऐसा कह्या है ऐसी स्त्री शब्दकी निरुक्तिकरि वर्णन कीया । यद्यपि तीर्थंकर की माता आदि सम्यग्दृष्टिणीं स्त्री निविषैं दोष नाहीं तथापि वे स्त्री थोरी अर पूर्वोक्त दोषकरि संयुक्त स्त्री घनी तातैं प्रचुर व्यवहार अपेक्षा ऐसा लक्षण आचार्यने स्त्रीका कह्या ॥ २७४ ॥

णोवित्थी णेव पुमं णउंसओ उहयलिंगविदिरित्तो ।
इट्ठावग्गिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो ॥ २७५ ॥

तैं संख्यातगुणे घाटि द्रव्यपुरुष वेदी तिर्यंच हैं। बहुरि तातैं संख्यातगुणे घाटि सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। बहुरि तातैं संख्यातगुणा घाटि पीतलेश्याका धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। बहुरि तीहस्यौं संख्यातगुणा घाटि पद्मलेश्याका धारक सैनी पंचेंद्री तिर्यंच हैं। ऐसैं ए सब संख्यातगुणा घाटि कह्या ॥ २७७ ॥

इगिपुरिसे बत्तीसं देवी तज्जोगभजिददेवोघे ।
सगगुणगारेण गुणे पुरुसा महिला य देवेसु ॥ २७८ ॥

एकपुरुषे द्वात्रिंशद्देव्यः तद्योगभक्तदेवौघे ।
स्वकगुणकारेण गुणे पुरुषा महिलाश्च देवेषु ॥ २७८ ॥

जी॰ प्र०—देवगतौ एकस्मिन् पुरुषे देवे तद्देव्यो द्वात्रिंशत् सर्वजघन्येन एकैकस्य पुरुषस्य द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशत्[1]। यद्यपि इंद्रादीनां ततः संख्यातगुणिता देव्यः संति तथापि तेषां अल्पत्वेन प्रकीर्णकादीनां असंख्येयगुणितत्वेन बहुत्वं, इंद्रादिदेव्याधिक्यस्य विवक्षा न कृता। तदेकदेवद्वात्रिंशद्देवीनां संयोगेन त्रयस्त्रिंशता ३३ देवौघं देवसामान्यराशिं भक्त्वा तदेकभागेन एकरूपेण पुरुषगुणकारेण गुणिते यल्लब्धं तावंतो देवगतौ पुरुषा भवंति। = ७॥ । १ / ४ । ६५ = । ७ । ३३। द्वात्रिंशता गुणिते तु यल्लब्धं तावंत्यो देव्यो भवंति। = ७॥ । ३२ / ४ । ६५ = । ७ । ३३ (देवदेवीभेदमकृत्वा सामान्यापेक्षया स्वकगुणकारेणेति उक्तं तेनात्र भेदो ज्ञातव्यः) ॥ २७८ ॥

मं॰ प्र०—देवगतौ एकस्मिन् पुरुषे देवे तद्देव्यो द्वात्रिंशत् एकैकस्य देवस्य सर्वजघन्यतोऽपि द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशद्देव्यो भवंतीत्यर्थः। यद्यपींद्रादीनां संख्यातगुणा देव्यः संति तथापि तेषामल्पत्वात् प्रकीर्णकादीनां असंख्येयगुणत्वेन बहुत्वमिति इंद्रादिदेव्याधिक्यस्याविवक्षा। तासां देवदेवीनां योगः त्रयस्त्रिंशन्मात्रः। ३३। तेन देवौघं देवसामान्यराशिं भक्त्वा तदेकभागे एकरूपेण पुरुषगुणकारेण गुणिते लब्धमात्रा देवेषु पुरुषा भवंति। = ७॥ । १ / ४ । ६५ = ७ । ३३ द्वात्रिंशत्प्रमितेन

1. "देवगतौ एकपुरुषस्य देव्यः सर्वजघन्येन द्वात्रिंशत् भवंति" इति च पुस्तके पाठः।

नैव स्त्री नैव पुमान् नपुंसक उभयलिंगव्यतिरिक्तः ।

इष्टापाकाग्निसमानकवेदनागुरुकः कलुषचित्तः ॥ २७५ ॥

जी०प्र०—यो जीवो नैव पुमान्–पूर्वोक्तपुरुषलक्षणाभावात् पुरुषो न भवति, नैव स्त्री–उक्तस्त्रीलक्षणाभावात् स्त्री अपि न भवति ततः कारण त् उभयलिंगव्यतिरिक्तः श्मश्रुस्तनादिपुंस्त्रीद्रव्यलिंगरहितः इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकः,कलुषचित्तः सर्वदा तद्वेदनया कलंकितहृदयः स जीवो नपुंकमिति परमागमे वर्णितः कथितः, तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षणो भावनपुंसकवेदोऽस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यं ॥ २७५ ॥

म० प्र०—यो जीव. नैव पुमान् उक्तपुंलक्षणाभावात, नैव स्त्रीं उक्तस्त्रीलक्षणाभावात् ततः उभयलिंगव्यतिरिक्त'—स्मश्रुस्तनादिपुंस्त्रीद्रव्यलिंगरहितः, इष्टिकापाकाग्निसमानतीव्रकामवेदनागुरुकः, कलुषचित्तः—सदा तद्वेदनया कलंकितहृदय. स जीवः नपुंसकमिति परमागमे वर्ण्यते तथापि स्त्रीपुरुषाभिलाषरूपतीव्रकामवेदनालक्षणो भावनपुसकवेदोस्तीति आचार्यस्य तात्पर्यं ज्ञातव्यं ॥ २७५ ॥

सं० च०—जो जीव पूर्वोक्त पुरुष वा स्त्रीनिके लक्षणके अभावतैं पुरुष नाहीं वा स्त्री नाहीं तातैं दोऊही वेदनिके डाढी मूंछ वा स्तन योनि इत्यादि चिह्न तिनिकरि रहित है बहुरि इष्टका पाक जो ईंट पचावनेका पंजावा ताकी अग्नि समान तीव्र काम पीडा करि गरवा भऱ्या है । बहुरि स्त्री वा पुरुष दोऊनिका अभिलाषरूप मैथुन संज्ञाकरि मैला है चित्त जाका ऐसा जीव नपुंमक आगम विषैं कह्या है यहु नपुंसक शब्दकी निरुक्तिकरि वर्णन कीया। स्त्री पुरुषका अभिलाषरूप तीव्र कामवेदना लक्षण धरैं भावनपुंसक है ऐसा तात्पर्य जानना ॥ २७५ ॥

तिणकारिसिट्ठपागग्गिसरिसपरिणामवेयणुम्मुक्का ।

अवगयवेदा जीवा सगसंभवणंतवरसोक्खा ॥ २७६ ॥

तृणकारीषेष्टपाकाग्निसदृशपरिणामवेदनोन्मुक्ताः ।

स्त्रीगुणकारेण गुणिते लब्धप्रमाणा देवेषु महिला देव्यो भवंति =$\overset{१\ \text{॥}}{\text{७}}$ । ३२ देवदेवीभेदमकृत्वा सामान्यापेक्षया स्वकगुणकारेणेति सूत्रकारेणोक्तं तदेव
४ । ६५ = ७ । ३३

मया भेदेनोक्तं ॥ २७८ ॥

स० चं०—देवगतिविषैं एक पुरुषके बत्तीस देवांगना होंइ। कोई ही देवकैं बत्तीससौं घाटि देवांगना नाहीं अर इंद्रादिकनिके देवांगना तिनतैं संख्यातगुणी बहुत हैं तथापि जिनके बहुत देवांगना हैं ऐसे देव तौ थोरे हैं अर बत्तीस देवांगना जिनके हैं ऐसैं प्रकीर्णकादिक देव घने तिनतैं असंख्यात गुणे हैं। तातैं एक एक देवकैं बत्तीस बत्तीस देवांगनाकी विवक्षाकरि अधिककी न करि कही। सो बत्तीस देवांगना अर एक देव मिलाएं तैंतीस भए सो पूर्वै जो देवनिका परिमाण कह्या था ताकौं तेतीसका भाग दीएं जो एक भागका परिमाण आवै ताकौं एक करि गुणैं तितना ही रह्या सो इतने तौ देवगतिविषैं पुरुष जानने अर याकौं बत्तीस गुणां कीएं जो परिमाण होइ तितनी देवांगना जाननी। भावार्थ—देवराशिका तेतीस भागमें एकभाग प्रमाण देव है बत्तीस भाग प्रमाण देवांगना हैं॥ २७८ ॥

देवेहिं सादिरेया पुरिसा देवीहिं साहिया इत्थी।
तेहिं विहीण सवेदो रासी संढाण परिमाणं ॥ २७९ ॥

देवैः सातिरेकाः पुरुषाः देवीभिः साधिकाः स्त्रियः।
तैर्विहीनः सवेदो राशिः षंढानां परिमाणं ॥ २७९ ॥

जी० प्र०—तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिभ्यां अधिको देवपुरुषराशिः स सामान्यपुरुषराशिर्भवति = $\frac{\text{७}\,\text{॥}\ ।\ १\,\text{॥}\ ।}{४\ ।\ ६५ = \text{७}\ ।\ ३३\ ।}$ मनुष्यतिर्यक्-

स्त्रीराशिभ्यामधिको देवीराशिः स सामान्यस्त्रीराशिर्भवति = ७ । ३२ / ४ । ६५ = ७ । ३३ । एतत्पुरुषस्त्रीराशिद्वयविहीनसवेदराशिनपुंसकवेदराशिर्भवति १३ ≡ सवेदराशिस्तु अवेदानिवृत्तिकरणाद्ययोगकेवल्यंतानां संख्यया हीनसंसारराशिः १३–॥ २७०॥

मं० प्र०—देवेभ्यः पुरुषदेवराशेः सातिरेकाः–तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिना साधिकाः सामान्यतः पुरुषाः पुंवेदिप्रमाण भवति = ७ । १ / ४ । ६५=७ । ३३ । देवीभ्यः प्रागानीतदेवीराशेः सातिरेकाः–तिर्यग्मनुष्यपुरुषराशिना साधिकाः सामान्यतः स्त्रियः स्त्रीवेदिप्रमाण भवंतीत्यर्थः = ७ । ३२ / ४ । ६५=७ । ३३ ताभ्यां–सामान्यपुवेदिस्त्रीवेदिराशिभ्यां विहीनः सवेदराशिः षढानां–नपुंसकादिनां परिमाणं भवंति । १३ ≡ । अपगतवेदानिवृत्तिकरणसूक्ष्मसांपरायोपशांतकषायक्षीणकषायसयोगायोगकेवलिसंख्यारहितः ससारिजीवराशिः ।१३ –। सवेदराशिरित्यर्थः ॥ २७९ ॥

स० चं०—पुरुषवेदी देवनिका जो परिमाण कह्या तींहिविषैं पुरुषवेदी तिर्यंच मनुष्यनिका परिमाण मिलाएं सर्व पुरुषवेदी जीवनिका परिमाण हो है। बहुरि देवांगनाका जो परिमाण कह्या तींहिविषैं तिर्यंचणी वा मनुष्यणीका परिमाण मिलाएं सर्वस्त्रीवेदी जीवनिका परिमाण हो है। बहुरि नवमा गुणस्थानका वेदरहित भागतैं लगाइ अयोगकेवली पर्यंत जीवनिका संख्यारहित सर्वसंसारी जीवनिका परिमाणमें पुरुषवेदी अर स्त्रीवेदी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष प्रमाण रहै तितने नपुंसकवेदी जीव जानने ॥ २७९ ॥

गब्भणपुइत्थिसण्णी सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा ।
कुरुजा असण्णिगब्भजणपुइत्थीवाणजोइसिया ॥ २८० ॥

थोवा तिसु संखगुणा तत्तो आवलिअसंखभागगुणा ।
पल्लासंखेज्जगुणा तत्तो सव्वत्थ संखगुणा ॥ २८१ ॥

गर्भनपुंस्त्रीसंज्ञिनः सम्मूर्छनसंज्ञिपूर्णका इतरे ।
कुरुजा असंज्ञिगर्भजनपुंस्त्रीवानज्योतिष्काः ॥ २८० ॥
स्तोकाः त्रिषु संख्यगुणाः तत आवल्यसंख्यभागगुणाः ।
पल्यासंख्येयगुणाः ततः सर्वत्र संख्यगुणाः ॥ २८१ ॥

जी० प्र०–संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, सम्मूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः, संमूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियापर्याप्ताः, अस्मिन् स्थानद्वये नपुंसकवेदिन एव कुरुजा भोगभूमिजाः ते च गर्भजसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः स्त्रीपुंवेदिन एव असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः व्यंतरदेवाः ज्योतिष्काश्च इत्येकादश जीवराशयः उक्तक्रमेण उपर्युपरि रचयितव्याः। तत्र सर्वाधस्तनराशिः सर्वतः स्तोकः अष्टवारसंख्यातरूपैः आवल्यसंख्येयभागेन पल्यासंख्येयभागेन पणट्ठिगुणितप्रतरांगुलैश्च जगत्प्रतरे भक्ते यल्लब्धं तत्प्रमाणं भवति। ४ । ६५ = १११११ प ८ ११११ (a a) । ततः उपरि त्रिषु स्थानेषु द्वितीय– ४ । ६५ = ११११११ प ८ १११ (a a)

तृतीय—४ । ६५ = १ १ १ १ १ प ८ १ (a a) चतुर्थ—४ । ६५ १ १ १ १ १ प ८ (a a) राशयः संख्यातगुणितक्रमा भवंति। तत उपरि

स्थितः पंचमराशिः आवल्यसंख्येयभागगुणितः ४ । ६५ = १ १ १ १ १ प (a) अत उपरि स्थितः षष्ठराशिः पल्यासंख्येयभागगुणितः—

४ । ६५ = ११११ अतः उपरि स्थानेषु सर्वेषु सप्तम—४ । ६५ = १११ अष्टम ४ । ६५ = ११ नवम ४।६५ = ११

दशम ४ । ६५ = १ एकादश ४ । ६५ = राशयः पंचापि संख्यातगुणितक्रमा भवंति ॥ २८०–२८१ ॥

इति श्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनाम पंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु वेदमार्गणाप्ररूपणो नाम दशमोऽधिकारः॥ १०॥

मं० प्र०—संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः, संज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, संमूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः, संमूर्छिमसंज्ञिपंचेंद्रियापर्याप्ताः, अस्मिन् स्थ नद्वये नपुंसकवेदिन एव, कुरुजा भोगभूमिजाः ते च गर्भजसंज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताः स्त्रीपुंसवेदिन एव, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजनपुंसकवेदिन, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजपुंवेदिनः, असंज्ञिपंचेंद्रियगर्भजस्त्रीवेदिनः, वानाः व्यंतरदेवाः, ज्योतिषिका इत्येते एकादशजीवराशयः उक्तक्रमेण उपर्युपरि रचयितव्याः ॥ २८० ॥

मं० प्र०—तेषु सर्वाधस्तनप्रथमराशिः सर्वतः स्तोकः अष्टवारसंख्यातरूपैः आवल्यसंख्येयभागेन पल्यासंख्येयभागेन पणट्ठिना प्रतरांगुलेन च जगत्प्रतरे भक्ते सति यल्लब्धं तत्प्रमाणो भवति । तत उपरि त्रिषु स्थानेषु द्वितीयतृतीयचतुर्थराशयः संख्येयगुणाः। तत उपरिस्थित पंचमराशिः आवल्यसंख्येयभागगुणः। तत उपरिस्थितः षष्ठराशिः पल्यासंख्येयभागगुणः । तत उपरिस्थानेषु सर्वेषु सप्तमाष्टमनवमदशमैकादशराशयः पंचापि संख्येयगुणाः ॥ २८१ ॥

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ वेदमार्गणाप्ररूपणनामा दशमोऽधिकार ॥ १० ॥

स० चं०—सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी १ बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुषवेदी २ बहुरि सैनी पंचेंद्री गर्भज स्त्रीवेदी ३ बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेंद्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी ४ बहुरि सम्मूर्छन सैनी पंचेंद्री अपर्याप्त नपुंसकवेदी ५ बहुरि भोगभूमियां गर्भज सैनी पंचेंद्री पर्याप्त पुरुषवेदी वा स्त्रीवेदी ६ बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी ७ बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुषवेदी ८ बहुरि असैनी पंचेंद्री गर्भज स्त्रीवेदी ९ बहुरि व्यंतरदेव १० अर ज्योतिषदेव ११ ए ग्यारा जीवराशि अनुक्रमतें ऊपरि ऊपरि लिखनी ॥ २८०॥

सो खेतविषैं बोया हूवा बीज जैसैं बहुत फलकौं प्राप्त होइ वा बहुत सींव पर्यंत होइ तैसैं हलादिकतैं धरतीका फाडना इत्यादिक कृषिकर्मकौं करै हैं तैसैं संसारी जीवका किंकर क्रोधादि कषाय नामा पालती सो प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग रूप कर्मका बंध सोही भया खेत तींहिं विषै मिथ्यात्वादिक परिणाम रूप बीज जैसैं कालादिककी सामग्री पाइ अनेक प्रकार सुख दुःख रूप बहुत फलकौं प्राप्त होइ वा अनंत समय पर्यंत फलकौं प्राप्त होइ तैसैं कार्यकौ करैं तातैं इन क्रोधादिकनिका कषाय ऐसा नाम कह्या 'कृषि विलेखने' इस धातुका अर्थकरि कषाय शब्दका निरुक्तिपूर्वक निरूपण आचार्यकरि कीया है ॥ २८२ ॥

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खादचरणपरिणामे ।
घादंति वा कषाया चउसोलअसंखलोगमिदा ॥ २८३ ॥

सम्यक्त्वदेशसकलचरित्रयथाख्यातचरणपारिणामान् ।
घातयंति वा कषायाः चतुःषोडशासंख्यलोकमिताः ॥ २८३ ॥

जी० प्र०---वा अथवा सम्यक्त्वं तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं-अणुव्रतं, सकलचारित्रं-महाव्रतं, यथाख्यातचरणं-यथाख्यातचारित्रं एवंविधान् आत्मविशुद्धिपरिणामान् कषंति हिंसंति घ्नंतीति कषाया इति निर्वचनीयं। तद्यथा-अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभकषाया आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषंति अनंतसंसारकारणत्वात्, अनंतं-मिथ्यात्वं, अनंतभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नंति संघटयंतीत्यनंतानुबंधिन इति निरुक्तिसामर्थ्यात् । अप्रत्याख्यानावरणाः अणुव्रतपरिणामं कषंते । अप्रत्याख्यानं ईषत् प्रत्याख्यानं अणुव्रतं आवृण्वंति घ्नंतीति निरुक्तिसिद्धत्वात् । प्रत्याख्यानावरणाः सकलचारित्रं महाव्रतपरिणामं कषंति प्रत्याख्यानं-सकलसंयमं आवृण्वंति घ्नंतीति निरुक्तिसिद्धत्वात् । संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कषंति, सं समीचीनं, विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहंति इति संज्वलनाः इति निरुक्तिबलेन तदुदये सत्यपि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः। एवंविधः कषायः सामान्येन एकः, विशेषविवक्षायां तु अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदाश्चत्वारः । पुनस्ते चत्वारोऽपि प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति षोडश १६ । तद्यथा—अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभाः अप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभाः संज्वलनक्रोधमानमायालोभाः इति पुनः सर्वेपि उदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यातलोकप्रमिता भवंति । कुतः ? तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानां असंख्यातलोकमात्रत्वात् ≡ ə ॥ २८३ ॥

स० चं०—पूर्वे जो ग्यारा राशि कहे तिनिविषै नीचला राशि सैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसकवेदी सो सर्वतैं स्तोक है। आठवार संख्यात अर आवलीका असंख्यातवां भाग अर पल्यका असंख्यातवां भाग अर पैंसठि हजार पांचसै छत्तीस प्रतरांगुल इनिका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो परिमाण आवै तितने जानने। वहुरि याके ऊपरि सैनी पंचेंद्री गर्भज पुरुष वेदीस्यों लगाइ तीन राशि अनुक्रमतें संख्यातगुणा जानना। वहुरि चौथी राशितैं पंचम राशि संमूर्छन सैनी पंचेंद्री अपर्याप्त नपुंसकवेदी आवलीका असंख्यातवां भागगुणा जानना। वहुरि इस पंचम राशितैं षष्ठराशि पल्यका असंख्यातवां भागगुणा जानना। वहुरि यातें असैनी पंचेंद्री गर्भज नपुंसक वेदीस्यों लगाइ ज्योतिषी पर्यंत सप्तम अष्टम नवम दशम एकादशम राशि अनुक्रमतैं संख्यातगुणा जानना। ऐसैं वेदमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कही ॥ २८१ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाकेविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीसप्ररूपणा तिनिविषैं वेदमार्गणा प्ररूपणा नामा दशमां अधिकार समाप्त भया ॥ १० ॥

मं.प्र.-वा--अथवा, सम्यक्त्वं--तत्त्वार्थश्रद्धानं, देशचारित्रं--अणुव्रतं, सकलचारित्रं-महाव्रतं, यथाख्यातचरणं यथाख्यातचारित्रं, एवं रूपान् आत्मनो विशुद्धपरिणामान्, कषंति हिंसति घ्नंति इति कषाया इति निरुक्तेः। तद्यथा-अनंतानुबंधिनः क्रोधमानमायालोभाः कषाया आत्मनः सम्यक्त्वपरिणामं कषंति। अनंतसंसारकारणत्वादनंतं मिथ्यात्वं अनंतभवसंस्कारकालं वा अनुबध्नंति संघटयंति इत्यनंतानुबंधिनः इति निरुक्तिसामर्थ्यात्। अप्रत्याख्यानावरणास्ते अणुव्रतपरिणामं कषंति, अप्रत्याख्यानं ईषत्प्रत्याख्यानमणुव्रतमावृण्वंति घ्नंतीति निरुक्तिसिद्धत्वात्। प्रत्याख्यानावरणास्ते सकलचारित्रं-महाव्रतपरिणामं कषंति, प्रत्याख्यानं सकलसंयममावृण्वंति घ्नंतीति प्रत्याख्यानावरणाः इति निरुक्तिवशात्। संज्वलनास्ते यथाख्यातचारित्रपरिणामं कषंति, सं--समीचीन, विशुद्धं संयमं यथाख्यातचारित्रनामधेयं ज्वलंति दहति इति संज्वलनाः इति निरुक्तिबलात् उदये5पि सामायिकादीतरसंयमाविरोधः सिद्धः, एवंविधः कषायः सामान्यादेकः, विशेषविवक्षायां चत्वारः-अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानावरणप्रत्याख्यानावरणसंज्वलनभेदात्, पुनस्ते षोडश भवंति एतेषां चतुर्णां प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभभेदात्। तद्यथा-अनंतानुबंधिनः क्रोधमानमायालोभाः, अप्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः, प्रत्याख्यानावरणाः क्रोधमानमायालोभाः, संज्वलनाः क्रोधमानमायालोभाः। इति पुनस्ते सर्वेप्युदयस्थानविशेषापेक्षया असंख्यातलोकप्रमिता भवंति। तत्कारणचारित्रमोहनीयोत्तरोत्तरप्रकृतिविकल्पानामसंख्यातलोकमात्रत्वात् ॥ २८३ ॥

स० चं०--अथवा 'कषंतीति कषायाः' जे हैं घात करैं तिनिकौं कषाय कहिए। सो ए क्रोधादिक हैं ते सम्यक्त्व वा देश चारित्र वा सकल चारित्र वा यथाख्यात चारित्र रूप आत्माके विशुद्ध परिणामनिकौं घातैं हैं तातैं इनिका कषाय ऐसा नाम है। यहु कषाय शब्दका दूसरा अर्थ अपेक्षा लक्षण कह्या तहां अनंतानुबंधी क्रोधादिक हैं ते तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप सम्यक्त्वकौं घातैं हैं जातैं अनंत कहिए अनंत संसारका कारण मिथ्यात्व वा अनंत संसार अवस्थारूप काल ताहि अनुबध्नंति कहिए संबंधरूप करैं तिनिकौं अनंतानुबंधी कहिए। बहुरि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक कहे ते अणुव्रतरूप देश चारित्रकौं घातैं हैं जातैं अप्रत्याख्यान कहिए ईषत् प्रत्याख्यान किंचित् त्यागरूप अणुव्रत ताकौं आवृण्वंति कहिए आवरैं नष्ट करैं ताकौं अप्रत्याख्यानावरण कहिए। बहुरि प्रत्याख्यानावरण क्रोधादिक हैं ते महाव्रतरूप सकल चारित्रकौं घातैं हैं जातैं प्रत्याख्यान कहिए सकल त्यागरूप महाव्रत ताकौं आवृण्वंति कहिए आवरैं नष्ट करैं ताकौं प्रत्याख्यानावरण कहिए। बहुरि संज्वलन क्रोधादिक हैं ते सकल कषायका अभावरूप यथाख्यात चारित्रकौं घातैं हैं जातैं 'सं' कहिए समीचीन निर्मल यथाख्यात चारित्र ताकौं 'ज्वलंति' कहिए दहन करैं

तिनकौं संज्वलन कहिए इस निरुक्तितैं संज्वलनका उदय होते संतेभी सामायिकादि अन्य चारित्र होनेका अविरोध सिद्ध हो है। ऐसा यह कषाय सामान्यपनैं एक प्रकार है विशेषपनैं अनंतानुबंधी १ अप्रत्याख्यानावरण२ प्रत्याख्यानावरण ३ संज्वलन ४ भेदतैं च्यारि प्रकार है बहुरि इनके एक एकके क्रोध मान माया लोभकरि च्यारि च्यारि भेद कीजिए तब सोलह प्रकार हो हैं। अनंतानुबंधी क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। प्रत्याख्यानावरण क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। संज्वलन क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४। ऐसैं सोलह भेद भए। बहुरि उदय स्थानकोंके विशेषकी अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण है जातैं कषायनिका कारणभूत जो चारित्रमोह ताकी प्रकृतिके भेद असंख्यात लोक प्रमाण हैं ॥ २८३ ॥

सिलपुढविभेदधूलीजलराइसमाणओ हवे कोहो।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥ २८४ ॥

शिलापृथ्वीभेदधूलिजलराशिसमानको भवेत् क्रोधः।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥ २८४ ॥

जी० प्र —शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलीरेखाजलरेखासमानः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः भवेत् स नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्रमशः यथाक्रमं उत्पादयति जीवं। तद्यथा—शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टक्रोधकषायः जीवं नरकगतावुत्पादयति। पृथ्वीभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधः तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति। धूलीरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधः जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति। जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तः क्रोधः जीवं देवगतावुत्पादयति। तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिप्रकृतीर्बध्नातीत्यर्थः। अत्र राजिशब्दो रेखार्थवाची न तु पंक्तिवाची। यथा शिलादिभेदानां चिरतरचिरशीघ्रशीघ्रतरकालैर्विना अनुसंधानं न घटते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तक्रोधपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना क्षमालक्षणसंधानार्हो न स्यात् इत्युपमानोपमेययोः सादृश्यं संभवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८४ ॥

मं० प्र०---शिलाभेदपृथ्वीभेदधूलीरेखाजलरेखासमानः उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यशक्तिविशिष्टः क्रोधकषायो भवेत् स नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्रमशः यथाक्रमं जीवस्योत्पादको भवति । तद्यथा–शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधः-कोपः जीवं नारकगतौ व्युत्पादयति । पृथ्वीभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिविशिष्टः क्रोधस्तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तिविशिष्टः क्रोधः मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति, जलरेखासमानजघन्यशक्तिविशिष्टः क्रोधः देवगतौ जीवमुत्पादयति । अत्र राजिशब्दो रेखावाची न तु पंक्तिवाची । तत्तच्छक्तियुक्तक्रोधकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिप्रकृतीर्बध्नाति इत्यर्थः । यथा शिलादिभेदाना चिरतरचिरशीघ्रशीघ्रतरकालैर्विना संधानं न घटते तथा उत्कृष्टादिशक्तियुक्तक्रोधपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना क्षमालक्षणसंधानार्हो न भवतीत्युपमानोपमेययोः सादृश्यं संभवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८४ ॥

स०चं०--शिलाभेद १ पृथ्वीभेद २ धूलिरेखा ३ जलरेखा ४ समान क्रोध कषाय सो अनुक्रमतैं नारक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं जीवकौं उपजावन हारा है। सोई कहिए हैं-जैसैं शिला जो पाषाणका भेद खंड होना सो बहुत घने काल गए बिना मिलै नाहीं तैसैं बहुत घने काल गए बिना क्षमारूप मिलनकौं न प्राप्त होइ ऐसा जो उत्कृष्ट शक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं नरकगति विषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं पृथ्वीका भेद खंड होना सो घने काल गएं बिना मिलै नाहीं तैसैं घने काल गए बिना जो क्षमारूप मिलनेकौं न प्राप्त होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं तिर्यंचगतिविषैं उपजावै है । बहुरि जैसैं धूलिविषैं करी लीक सो थोरा काल गएं बिना मिलै नाहीं तैसैं थोरा काल गएं बिना जो क्षमारूप मिलनकौं प्राप्त न होइ ऐसा अजघन्य शक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं जलविषैं करीहुई लीक बहुत थोरा काल गएं विना मिलै नाहीं तैसैं बहुत थोरा काल गएं विना जो क्षमारूप मिलनको प्राप्त न होइ ऐसा जो जघन्यशक्ति लीएं क्रोध सो जीवकौं देवगतिविषैं उपजावै है। तिस तिस उत्कृष्टादि शक्तियुक्त क्रोधरूप परिणम्या जीव सो तिस तिस नरक आदि गतिविषैं उपजनेकौं कारण आयुगति आनुपूर्वी आदि प्रकृतिनिकौं बांधै है ऐसा अर्थ जानना । इहां राजि शब्द रेखावाचक जानना, पंक्तिवाचक न जानना। बहुरि इहां शिलाभेद आदि उपमान अर उत्कृष्टशक्तियुक्त आदि क्रोधादिक उपमेय ताका समानपना अतिघना कालादि गएं विना मिलना न होनेकी अपेक्षा जानना ॥२८४॥

सेलट्ठिकट्ठवेत्ते णियभेएणणुहरंतओ माणो ।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो ॥ २८५ ॥

शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजभेदेनानुहरन् मानः ।
नारकतिर्यग्नरामरगतिषूत्पादकः क्रमशः ॥ २८५ ॥

जी० प्र०—शैलास्थिकाष्ठवेत्रान् निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदैः नुहरन् उपमीयमानो मानकषायः क्रमशः—क्रमेण नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा— शिलास्तंभसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायः जीवं नारकगतावुत्पादयति । अस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तमानकषायः जीवं तिर्यग्गतावुत्पादयति । काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तमानकषायः मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति । वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमानकषायः जीवं देवगतावुत्पादयति । यथा हि चिरतरादिकालैर्विना शैलास्थिकाष्ठवेत्राः नामयितुं न शक्यंते तथोत्कृष्टादिशक्तियुक्तमानपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मानं परिहृत्य विनयरूपनमनं कर्तुं न शक्नोतीति सादृश्यसंभवोऽत्र ज्ञातव्यः । तत्तच्छक्तियुक्तमानकषायपरिणतो जीवः तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतुतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्म बध्नातीति तात्पर्यं ॥ २८५ ॥

मं० प्र०—शैलास्थिकाष्ठवेत्रान्निजोत्कृष्टादिशक्तिभेदेन अनुहरन्नुपमीयमानो मानः—अभिमानः कषायः क्रमशः नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवस्योत्पादको भवेत् । तथाहि शैलसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तो मानो नरकगतौ जीवमुत्पादयति । अस्थिसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तो मानस्तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । काष्ठसमानाजघन्यशक्तियुक्तो मानो मनुष्यगतौ जीवमुत्पादयति । वेत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तो मानो देवगतौ जीवमुत्पादयति । यथा चिरतरादिकालैर्विना शैलास्थिकाष्ठवेत्रा नामयितुं न शक्यंते तथा उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमानपरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मानमपाकृत्य विनयरूपनाम प्रापयितुं न शक्यते इति सादृश्यसंभवः । तत्तच्छक्तियुक्तमानपरिणतो जीवस्तत्तद्गत्युत्पत्तिहेतुतत्तदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्मबंधको भवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८५ ॥

स० चं०—शैल १ अस्थि २ काष्ठ ३ वेंत ४ समान जो अपने भेदनिकरि उपमीयमान च्यारि प्रकार मान कषाय सो क्रमतैं नारक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं जीवकौं उपजावै है । सो कहिए है—जैसैं शैल जो पाषाण सो बहुत घने काल विना नमावने योग्य न होइ तैसैं बहुत घनेकाल विना जो विनयरूप नमनकौं प्राप्त न होइ ऐसा जो उत्कृष्टशक्तिलीएं मान सो जीवनिकौं नरक गतिविषैं उपजावै है । बहुरि जैसैं अस्थि जो हाड सो घने काल

विना नमावने योग्य न होइ तैसैं घने काल विना जो विनयरूप नमनकौं प्राप्त न होइ ऐसा जो अनुत्कृष्टशक्ति
लीएं मान सो जीवकौं तिर्यंच गतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं काठ थोरा कालविषैं नमावने योग्य न होइ तैसैं
थोरा काल विना जो विनयरूप नमनकौं प्राप्त न होइ ऐसा जो अजघन्यशक्ति लीएं मान सो जीवकौं मनुष्यग-
तिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसें वैंतकी लकडी बहुत थोरे काल विना नमावने योग्य न होइ तैसैं बहुत थोरा
काल विना जो विनयरूप नमनका प्राप्त न होइ ऐसा जो जघन्यशक्ति लीएं मान सो जीवकौं देवगतिविषैं उप-
जावै है। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार प्रकृतिबंध होना वा उपमा उपमेयका समानपना जानना ॥ २८५ ॥

वेणूवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे ।
सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जियं॥२८६॥

वेणूपमूलोरभ्रकशृंगेण गोमूत्रेण च क्षुरप्रेण ।
सदृशी माया नारकतिर्यग्नरामरगतिषु क्षिपति जीवं ॥ २८६ ॥

जी० प्र०—वेणूपमूलोरभ्रकशृंगगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्ता माया—वंचना यथाक्रमं नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवं निक्षिपति। त-
था—वेणू मूलं वेणुमूलग्रंथिः तेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं नरकगतौ निक्षिपति। उरभ्रकः—मेष, तच्छृंगसदृशानुत्कृष्ट-
शक्तियुक्तमायाकषायः जीवं तिर्यग्गतौ निक्षिपति। गोमूत्रसमानजघन्यशक्तियुक्तमायाकषायः जीवं मनुष्यगतौ निक्षिपति। यथा वेणू मूला-
दयः चिरतरादिकालं विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुत्वं न प्राप्नुवंति तथा जीवोऽपि उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतः तथाविधकाले-
विना स्वस्ववक्रतां परिहृत्य ऋजुपरिणामो न स्यात् इति सादृश्यं युक्तं। "तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायाकषायपरिणतजीवः तत्तद्गतिक्षेपकारणं
तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादिकर्म बध्नाति।" इति तात्पर्यार्थः ॥ २८६ ॥

मं० प्र०—वेणूपमूलोरभ्रकशृंगगोमूत्रक्षुरप्रसदृशोत्कृष्टादिशक्तियुक्ता माया-वंचना, यथाक्रमं नारकतिर्यग्नरामरगतिषु जीवं क्षिपति। तद्यथा-वेणूपमूलं
वेणुमूलग्रंथिः, तेन सदृशोत्कृष्टशक्तियुक्ता माया नारकगतौ जीवं क्षिपति पातयति। उरभ्रकः—मेषः तच्छृंगसदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्ता माया तिर्यग्गतौ जीवं
क्षिपति। गोमूत्रसदृशाऽजघन्यशक्तियुक्ता माया मनुष्यगतौ जीवं क्षिपति। क्षुरप्रसमानजघन्यशक्तियुक्ता माया देवगतौ जीवं क्षिपति। यथा वेणूपमूला-

दयश्चिरतरादिकालैर्विना स्वस्ववक्रतां त्यक्त्वा ऋजुत्वं न गच्छंति तथा उत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायापरिणतो जीवोऽपि तथाविधकालैर्विना मायां त्यक्त्वा ऋजुपरिणामो न भवति इति सादृश्यं युक्तं । तत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तमायापरिणतो जीवः तत्तद्गतिक्षेपकारणात्तत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यानामादिकर्मबंधको भवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८६ ॥

स० चं०—वेणूपमूल १ उरभ्रकशृंग २ गोमूत्र ३ क्षुर समान माया ठिगनेरूप परिणति सो क्रमतैं नारक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं जीवकौं उपजावै है। सोई कहिए है-जैसैं वेणूपमूल जो वांसकी लकडीकी जड सो बहुत घने काल विना सरल न होइ तैसैं बहुत घने काल विना जो सरल न होइ ऐसा जो उत्कृष्ट शक्तिकौं लीएं माया सो जीवकौं नरकगतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं उरभ्रकशृंग जो मींढेका सींग सो घने काल विना सरल न होइ तैसैं घने काल विना जो सरल न होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्ति लीएं माया सो जीवकौं तिर्यंच गतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं गोमूत्र जो गायमूत्रकी धारा सो थोरा कालविना सरल न होइ तैसैं थोरा कालविना सरल न होइ ऐसा अजघन्य शक्तिलीएं माया सो जीवकौं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है। बहुरि जैसैं खुर जो पृथ्वी ऊपरि वृषभादिकका खोज सो बहुत थोरा कालविना सरल न होइ तैसैं बहुत थोरा काल विना जो सरल न होइ ऐसी जो जघन्यशक्ति लीएं माया सो जीवकौं देवगतिविषैं उपजावै है। इहां भी पूर्वोक्तप्रकार प्रकृतिबंध होना वा उपमा उपमेयका समानपना जानना ॥ २८६ ॥

किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दराएण सरिसओ लोहो ।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवेसुप्पायओ कमसो ॥ २८७ ॥

क्रिमिरागचक्रतनुमलहरिद्रारागेण सदृशो लोभः ।
नारकतिर्यग्मानुषदेवेषु उत्पादकः क्रमशः ॥ २८७ ॥

जी० प्र०—क्रिमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागवंधसमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तो लोभकषायो विषयाभिलाषरूपः क्रमशो—यथासंख्यं नार-

कतिर्यग्मानुषदेवगतिषु जीवमुत्पादयति । तद्यथा—क्रिमिरागेण कंबलादिरंजनेन समानोत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं नारकगतौ उत्पादयति । चक्रमलः-रथांगमलं, तेन समानानुत्कृष्टशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं तिर्यग्गतौ उत्पादयति । तनुमलः शरीरमलः बहिर्गतः जल्लमल्लं, तद्वद्धचसदृशाजघन्यशक्तियुक्तलोभकषायः जीवं मनुष्यगतावुत्पादयति । हरिद्राराग:, अंगवस्त्रादिरंजनद्रव्यरागः—तद्वत्सदृशजघन्यशक्तियुक्तलोभकषाय. जीवं देवगतावुत्पादयति । क्रिमिरागादिसदृशतच्चदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणामेन परिणतो जीवः तन्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतत्तदायुर्गत्यानुपूर्व्यादि कर्म बध्नातीति भावार्थः ॥ २८७ ॥

मं० प्र०— क्रिमिरागचक्रमलतनुमलहरिद्रारागबंधनमानोत्कृष्टादिशक्तियुक्तो लोभः- विषयाभिलाषरूपः, क्रमशः—यथासंख्यं नारकतिर्यग्मानुषदेवगतिषु जीवस्योत्पादको भवति। तद्यथा क्रिमिरागेण -कंबलादिरंजनेन सदृशोत्कृष्टशक्तियुक्तो लोभो नारकगतौ जीवमुत्पादयति । चक्रस्य-रथांगस्य मल -अक्षम्रक्षणस्नेहः, तत्सदृशानुत्कृष्टशक्तियुक्तो लोभास्तिर्यग्गतौ जीवमुत्पादयति । तनोः-शरीरस्य, मलं -बहिर्गतं जल्लमलं, तद्वद्यसदृशाजघन्यशक्तियुक्तो लोभो मानुषगतौ जीवमुत्पादयति । हरिद्रारागः--अंगवस्त्रादिरंजनद्रव्यरागस्तद्वत्सदृशजघन्यशक्तियुक्तो लोभो देवगतौ जीवमुत्पादयति । क्रिमिरागादिसदृशतत्तदुत्कृष्टादिशक्तियुक्तलोभपरिणतो जीवस्तत्तन्नारकादिभवोत्पत्तिकारणतदायुर्गत्यानुपूर्वीनामादिकर्मबंधको भवतीति तात्पर्यार्थः ॥ २८७ ॥

स० चं०----क्रिमिराग १ चक्रमल २ तनुमल ३ हरिद्राराग ४ समान जो लोभ विषयाभिलाषरूप परिणाम सो क्रमतैं नरक तिर्यंच मनुष्य देवगतिविषैं उपजावै है । सोई कहिए है--जैसैं क्रिमिराग कहिए किरमिची रंग सो बहुत घने काल गये विना नष्ट न होइ तैसैं जो बहुत घने काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो उत्कृष्ट शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं नरकगतिविषैं उपजावै है । बहुरि जैसैं चक्रमल जो पहेका मैल सो घने काल विना नष्ट न होइ तैसैं घने काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो अनुत्कृष्ट शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं तिर्यंच गतिविषैं उपजावै है । बहुरि जैसैं तनुमल जो शरीरका मैल सो थोरा कालविना नष्ट न होइ तैसैं थोरा काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो अजघन्य शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं मनुष्यगतिविषैं उपजावै है बहुरि जैसैं हरिद्राराग कहिए हलदका रंग सो बहुत थोरा काल विना नष्ट न होइ तैसैं बहुत थोरे काल विना नष्ट न होइ ऐसा जो जघन्य शक्तिलीएं लोभ सो जीवकौं देवगतिविषैं उपजावै है । ऐसैं जिन जिन कषायनितैं जो जो गतिका उपजना कह्या तिन तिन कषायनितैं तिस ही तिस गति संबंधी आयु वा आनुपूर्वी इत्यादिकका बंध जानना ॥ २८७ ॥

णारयतिरिक्खणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्हि ।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि ॥२८८॥

नारकतिर्यग्नरसुरगतिषूत्पन्नप्रथमकाले ।
क्रोधो माया मानः लोभोदयः अनियमो वापि ॥ २८८ ॥

जी० प्र०—नारकतिर्यग्नरसुरगत्युत्पन्नजीवस्य तद्भवप्रथमकाले-प्रथमसमये यथासंख्यं क्रोधमायामानलोभकषायाणामुदयः स्यादिति नियमवचनं कषायप्राभृतद्वितीयसिद्धांतव्याख्यातुर्यतिवृषभाचार्यस्य अभिप्रायमाश्रित्योक्तं । वा-अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतप्रथमसिद्धांतकर्तुः भूतबल्याचार्यस्य अभिप्रायेणाऽनियमो ज्ञातव्यः । प्रागुक्तनियमं विना यथासंभवं कषायोदयोऽस्तीत्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः, ततः कारणादुभयसंप्रदायोऽपि अस्माकं संशयाविरुद्ध एवास्ति एकतरावधारणे शक्तिराहित्यात् अस्ति न भरतक्षेत्रे केवलिद्वयाभावात् । आरातीयाचार्याणां सिद्धांतद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावात् । यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धांतद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति तत्प्रेक्षावान् कः श्रद्धीते ॥ २८८ ॥

मं० प्र० -- नारकतिर्यग्नरसुरगतिषूत्पन्नस्य जीवस्य तद्भवप्रथमसमये यथासंख्यं क्रो मानमायालोभानां कषायाणामुदयो भवति । इदं नियमवचनं कषायप्राभृतस्य द्वितीयसिद्धांतस्य व्याख्यातृणां यतिवृषभाचार्याणामभिप्रायमाश्रित्योक्तं । वा-अथवा महाकर्मप्रकृतिप्राभृतस्य प्रथमसिद्धांतस्य कर्तृणा भूतबल्याचार्याणामभिप्रायेण अनियमः--प्रागुक्तनियम विना यथासंभवं कषायोदयो भवतीत्यर्थः । अपिशब्दः समुच्चयार्थः । तेनोभयसंप्रदायोऽप्यस्माकं संशयाविरुद्धो नैकतरावधारणे शक्तिरस्ति । अस्मिन् भरते तीर्थकरश्रुतकेवल्यभावात् । आरातीयाचार्याणां सिद्धांतद्वयकर्तृभ्यो ज्ञानातिशयवत्त्वाभावाच्च । यद्यपि विदेहे गत्वा तीर्थकरादिसन्निधौ कस्यचिदाचार्यस्य सकलश्रुतार्थेषु संशयविपर्यासानध्यवसायव्यवच्छेदेन वस्तुनिर्णयो भवेत् तदा सिद्धांतद्वयकर्तृविप्रतिपत्तिस्तथैवास्तीति कः प्रेक्षावान् श्रद्दधीत ॥ २८८ ॥

स० चं०---नरक तिर्यंच मनुष्य देवविषैं उत्पन्न भया जीवकैं पहिला समयविषैं क्रमतैं क्रोध मान माया लोभका उदय हो है। नारकी उपजे तहां उपजते ही पहले समय क्रोध कषायका उदय होइ । ऐसैं तिर्यंचकैं मायाका, मनुष्यकैं मानका, देवकैं लोभका उदय जानना । सो ऐसा नियम कषायप्राभृत दूसरा सिद्धांतका कर्ता यतिवृषभ नामा आचार्य ताके अभिप्रायकरि जानना । बहुरि महाकर्म प्रकृति प्राभृत प्रथमसिद्धांतका कर्ता

भूतवलि नामा आचार्य ताके अभिप्रायकरि पूर्वोक्त नियम नाही। जिस तिस कोई एक कषायका उदय हो है। ऐसें दोऊ आचार्यनिका अभिप्रायविषैं हमारैं संदेह है सो इस भरतक्षेत्रविषैं केवली श्रुतकेवली नाही वा समीपवर्ती आचार्यनिकैं उन आचार्यनितैं अधिक ज्ञान नाहीं तातैं जो विदेहविषैं गये तीर्थंकरादिकके निकटि शास्त्रार्थविषैं संशय विपर्यय अनध्यवसायका दूर होनेकरि निर्णय होइ तब एक अर्थका निश्चय होइ तातैं हमोनै दोऊ कथन कीए हैं ॥ २८८ ॥

अप्परोभयबाधणबंधासंजमणिमित्तकोहादी।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा ॥२८९॥

आत्मपरोभयबाधनबंधासंयमनिमित्तक्रोधादयः।
येषां न संति कषाया अमला अकषायिणो जीवाः ॥ २८९ ॥

जी० प्र०—स्वस्मिन् परस्मिन् उभयस्मिन् इति स्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं बंधनबाधनासंयमानां त्रयाणामपि निमित्तभूताः क्रोधादयः कषायाः, पुंवेदादयो नोकषायाश्च येषां जीवानां न संति ते अकषायाः, अमलाः द्रव्यभावनोकर्ममलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः संतीति ज्ञातव्यं। यद्यपि उपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽपि अकषाया अमलाश्च यथासंभवं द्रव्यभावमलरहिताः संति तथापि तेषां गुणस्थानप्ररूपणयैव अकषायत्वसिद्धिरस्तीति ज्ञातव्य। तद्यथा—कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः स्वस्यैव बंधनहेतुः स्वशिरोऽभिघातादिबाधाहेतुः हिंसाद्यसंयमहेतुश्च भवति। कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः परस्य स्वशत्र्वादेर्बाधनबंधनासंयमहेतुर्भवति। कस्यचित्कामुकादिजीवस्य क्रोधादिकषायः स्वपरयोरपि यथासंभवं बाधनबंधनासंयमहेतुर्भवति इति विभागः लोकानुसारेण आगमानुसारेण च द्रष्टव्यः ॥ २८९ ॥

मं० प्र०—आत्मपरोभयबंधनबाधासंयमनिमित्तानि क्रोधादयः कषायाः येषां जीवानां न संति ते अकषायाः, अमलाः—द्रव्यभावनोकर्मरूपमलरहिताः सिद्धपरमेष्ठिनः संतीति ज्ञातव्यं। यद्यप्युपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनोऽप्यकषायाः अमलाश्च यथासंभवद्रव्यभावमलरहिताः, तथापि तेषां गुणस्थानप्ररूपणयैवाकषायत्वसिद्धेः। तद्यथा—कस्यचिज्जीवस्य क्रोधादिकषायः आत्मन एव स्वस्यैव, बंधनहेतुः—शिरोऽभिघातादिबाधाहेतुः हिंसाद्यसंयमहेतुश्च भवति

कस्यचित् क्रोधादिः परस्य शब्वादेर्बंधनादिहेतुः, कस्याचित्तु कामुकादेः क्रोधादिः--उभयस्य--स्वपरद्वयस्य यथासंभवं बंधनादिहेतुर्भवतीति विभागो लोकानुसारेण आगमानुसारेण च द्रष्टव्यः ॥ २८९ ॥

स० चं०—आपकौं वा परकौं वा दोऊकौं बंधनके वा बाधाके वा असंयमके कारणभूत ऐसे क्रोधादिक कषाय वा पुरुष वेदादिरूप नोकषाय ते जिनके न पाइये ते द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्ममलकरि रहित सिद्ध भगवान अकषाय जानने। उपशांत कषायसे लेकर च्यारि गुणस्थानवर्ती जीव भी अकषाय निर्मल हैं तिनकैं गुणस्थान प्ररूपणा ही करि अकषायपनाकी सिद्धि जाननी। तहां कोऊ जीवकैं तौ क्रोधादि कषाय ऐसें हो हैं जिनतैं आपतैं आपको बांधे आप ही आपके मस्तकादिकका घात करै आपही आपकैं हिंसादि रूप असंयम परिणाम करै। बहुरि कोई जीवकैं क्रोधादि कषाय ऐसें हो हैं जिनतैं और जीवनिकौं बांधे मारै उनके असंयम परिणाम करावै। बहुरि कोई जीवकैं क्रोधादि कषाय ऐसे हो हैं जिनतैं आपका वा और जीवनिका बांधना घात करना असंयम होना होइ सो ऐसे ए कषाय अनर्थके मूल हैं॥ २८९ ॥

कोहादिकसायाणं चउचउदसवीस होंति पदसंखा।
सत्तीलेस्साआउगबंधाबंधगदभेदेहिं ॥ २९० ॥

क्रोधादिकषायाणां चत्वारः चतुर्दश विंशतिः भवंति पदसंख्याः।
शक्तिलेश्यायुष्कबंधाबंधगतभेदैः ॥ २९० ॥

जी० प्र०—क्रोधादिकषायाणां शक्तिलेश्यायुर्बंधाबंधगतभेदैर्यथाक्रमं चतुश्चतुर्दशविंशतिप्रमितपदानां स्थानानां संख्या भवति। तद्यथा शक्तिस्थानानि चत्वारि ४ लेश्यास्थानानि चतुर्दश १४ आयुर्बंधस्थानानि विंशतिः २० इत्यर्थः ॥ २९० ॥ तानि स्थानान्याह—

म० प्र०—क्रोधादीनां–क्रोधमानमायालोभाना कषायाणा शक्तिलेश्यायुर्बंधाबंधगतभेदैः, यथाक्रम चतुश्चतुर्दशविंशतिप्रमिताः पदाना स्थानानां संख्या भवति। तद्यथा--शक्तिस्थानानि चत्वारि, लेश्यास्थानानि चतुर्दश, आयुर्बंधाबंधस्थानानि विंशतिरित्यर्थः ॥ २९० ॥

सं० च०—क्रोध मान माया लोभ कषाय तिनकी शक्तिस्थानके भेदकरि च्यारि संख्या हैं। लेश्या स्थानके भेदकरि चौदह हैं। आयुर्वलके बंधनेके अबंधनेके स्थान भेदकरि बीस संख्या हैं ॥२९०॥ ते स्थान आगैं कहिए है

सिलसेलवेणुमूलक्किमिरायादी कमेण चत्तारि।
कोहादिकसायाणं सत्तिं पडि होंति णियमेण ॥ २९१ ॥

शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि क्रमेण चत्वारि।
क्रोधादिकषायाणां शक्तिं प्रति भवंति नियमेन ॥ २९१ ॥

जी० प्र०—क्रोधादिचतुःकषायाणां शक्तिं प्रति स्वफलदानसामर्थ्यमुद्दिश्य तीव्रतरतीव्रमंदमदतरानुभागरूपाणि उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपाणि वा स्थानानि चत्वारि नियमेन, शिलाभेदशैलवेणुमूलक्रिमिरागा तीव्रतरानुभागोदाहरणानि आदयो येषां पृथ्वीभेदादीनां तीव्रानुभागाद्युदाहरणानां तानि शिलाशैलवेणुमूलक्रिमिरागादीनि भवंति इति शिलाभेदादिदृष्टांता स्फुटं व्यवहारावधारणेन भवंति। परमागमव्यवहारिभिराचार्यैः अव्युत्पन्नमंदप्रज्ञशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यानि भवंति। दृष्टांतप्रदर्शनबलेनैव हि अव्युत्पन्नमंदप्रज्ञाः शिष्याः प्रतिबोधयितुं शक्यते। अतो दृष्टांतनामान्येव शिलाभेदादिशक्तीनां नामानीति रूढानि ॥ २९१ ॥

म० प्र०—क्रोधादीनां चतुर्णां कषायाणा शक्तिं प्रति स्वफलदानसामर्थ्यमुद्दिश्य तीव्रतरतीव्रमंदमंदतरानुभागरूपाणि उत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यजघन्यानुभागरूपाणि वा स्थानानि चत्वारि नियमेन, शिलाभेदशैलवेणुमूलक्रिमिरागाः तीव्रतरानुभागोदाहरणानि आदयो येषां पृथ्वीभेदादीना तीव्रानुभागाद्युदाहरणाना तानि तथोक्तानि इति शिलाभेदादिदृष्टाता नामव्यवहारावधारणेन भवंति—परमागमव्यवहारिभिराचार्यैरव्युत्पन्नमंदप्रज्ञस्वशिष्यप्रतिबोधनार्थं व्यवहर्तव्यानि भवंति। दृष्टातप्रदर्शनबलेनैव हि अव्युत्पन्नमंदप्रज्ञाः शिष्याः प्रतिपादयितुं शक्यंते अतो दृष्टांतनामान्येव शिलाभेदादीनि शक्तीनां नामानीति वा रूढानि ॥ २९१ ॥

सं० च०—क्रोधादिक जे कषाय तिनिकैं शक्ति कहिए अपना फल देनेकी सामर्थ्य ताकी अपेक्षातैं निश्चय करि च्यारि स्थान हैं। ते अनुक्रमतैं तीव्रतर, तीव्र, मंद, मंदतर, अनुभागरूप वा उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट अजघन्य जघन्य अनुभाग रूप जानने। तहां शिलाभेद, शैल, वेणुमूल, क्रिमिराग ए तौ उत्कृष्ट शक्तिके उदाहरण जानने।

आदि शब्दतें पूर्वोक्त अनुत्कृष्टादि शक्तिके उदाहरण जो दृष्टांतमात्र कहे हैं ते सर्व जानने। ए दृष्टांत प्रगट व्यवहारका अवधारण करि हैं अर परमागमका व्यवहारी आचार्यनिकरि मंदबुद्धी शिष्य समझावनेके अर्थि व्यवहार रूप कीएं हैं जातैं दृष्टांतके बलकरि ही मंदबुद्धी समझै हैं तातैं दृष्टांतकी मुख्यताकरि जे दृष्टांतके नाम तेई शक्तिनिके नाम प्रसिद्ध कीएं हैं ॥ २११ ॥

किण्हं सिलासमाणे किण्हादी छक्कमेण भूमिम्हि ।
छक्कादी सुक्कोत्ति य धूलिम्मि जलम्मि सुक्केक्का ॥२९२॥

कृष्णा शिलासमाने कृष्णादयः षट् क्रमेण भूमौ ।
षट्कादिः शुक्लेति च धूलौ जले शुक्लैका ॥ २९२ ॥

जी० प्र०—शिलाभेदसमाने क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थाने एकैव कृष्णलेश्या भवति । यद्यपि तत्र असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टानि कषायोदयस्थानानि संति तथापि तानि सर्वाण्यपि कृष्णलेश्याया एव संक्लेशहानिस्थानानि नान्यलेश्याया इत्यभिप्रायेण शिलाभेदसमानोत्कृष्टस्थाने कृष्णलेश्यैव इत्याचार्येण कथितं । नियमेन इत्यनुवर्तमानेन नियमशब्देन अत्राप्यवधारणार्थः सूच्यते । स कः ? तच्चरमस्थाने उत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते इति भूमिभेदसमाने क्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थाने क्रमेण कृष्णादयः षडपि लेश्या भवंति । तद्यथा—तत्र सर्वोग्रमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूमेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेष्वपि कृष्णैव लेश्या भवति नीलाद्यन्यलेश्यालक्षणस्य तत्रासंभवात् । ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेषु उदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या उत्कृष्टनीललेश्या च वर्तेते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणस्यैव संभवात् । तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या उत्कृष्टकपोतलेश्याश्च वर्तंते । तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसंभवात् । ततः उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या मध्यमकपोतलेश्या जघन्यतेजोलेश्या च वर्तंते । तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात् । तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याः जघन्यपद्मलेश्या च वर्तंते । तत्र तल्लेश्यापंचकलक्षणसद्भावात् । तत उपरि षट्स्थानपतित-

संक्लेशहानिस्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमकृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते। तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमस्थाने अनुत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते। ततः उपरि धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थाने यथाक्रमं लेश्याषट्कादयः शुक्ललेश्यापर्यंताः एकैकहीना भूत्वा गच्छंति। तद्यथा—धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्तप्रथमस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यकृष्णलेश्या मध्यमनीलकपोततेज पद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते। तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने कृष्णलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु जघन्यनीललेश्या मध्यमाः कपोततेजःपद्मशुक्लेश्याश्च वर्तते। तत्र तल्लेश्यापञ्चकलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने नीललेश्या व्युच्छिद्यते। तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थाने जघन्यकपोतलेश्या मध्यमाः तेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमस्थाने कपोतलेश्या व्युच्छिद्यते। तदनन्तरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु उत्कृष्टा तेजोलेश्या मध्यमे पद्मशुक्ललेश्ये च वर्तते। तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टतेजोलेश्या व्युच्छिद्यते। तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु संख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषूत्कृष्टपद्मलेश्या जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते। तत्र तद्द्वयलेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमोदयस्थान एव उत्कृष्टपद्मलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरोदयस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। तत उपरि षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव वर्तते तत्र तल्लेश्यालक्षणसद्भावात्। तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने अजघन्यशक्तिर्व्युच्छिद्यते। तत उपरि जलरेखासमानक्रोधजघन्यशक्तियुक्तेषु षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धिविशिष्टेषु असंख्यातलोकमात्रेष्वपि कषायोदयस्थानेषु मध्यमा शुक्ललेश्यैव वर्तते तत्रैव तच्चरमोदयस्थाने उत्कृष्टा शुक्ललेश्यैव स्यात्। एवं चतुःशक्तियुक्तानि क्रोधस्य लेश्याश्रयेण चतुर्दशस्थानान्युक्तानि। अनेनैव क्रमेण मानादीनामपि चतुर्दशलेश्याश्रितस्थानानि नेतव्यानि ॥ २९२ ॥

मं० प्र०—शिलाभेदसमाने क्रोधोत्कृष्टशक्तिस्थाने एकैव कृष्णलेश्या। यद्यपि तत्र असंख्येयलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिविशिष्टानि कषायोदयस्थानानि संति तथापि तानि सर्वाण्यपि कृष्णलेश्याया एव संक्लेशहानिस्थानानि नान्यलेश्याया इत्यभिप्रायेण शिलाभेदसमाने उत्कृष्टस्थाने कृष्णेत्याचार्येणोक्तं। नियमेनेत्यनुवर्तमानेन नियमशब्देनात्रावधारणार्थः सूच्यते। तत्र तच्चरमस्थाने उत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते। भूमिभेदसमाने क्रोधानुत्कृष्टशक्तिस्थाने क्रमेण कृष्णलेश्यादयः षडपि लेश्या भवंति। तद्यथा—तत्र स्वयोग्यमध्यमकृष्णलेश्यास्थानं भूमिभेदसमानक्रोधानुत्कृष्टशक्तिप्रथमोदयस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेष्वसंख्येयलोकमात्रेषु अपि कृष्णैव लेश्या, नीलाद्यन्यतमलेश्यालक्षणस्य तत्रासंभवात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेषु असंख्येयलोकमात्रेषु उदयस्थानेषु मध्यमकृष्णलेश्या च उत्कृष्टनीललेश्या च वर्तते। तत्स्थानानां लेश्याद्वयलक्षणसंभवात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानि-

स्थानेष्वसंख्येयलोकमात्रेषु उदयस्थानेष्वपि मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या उत्कृष्टकपोतलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसद्भावात्, ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानिस्थानेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमकृष्णलेश्या मध्यमनीललेश्या मध्यमकपोतलेश्या जघन्यतेजोलेश्या च वर्तते। तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमाः कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याः जघन्यपद्मलेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्यापंचकलक्षणसद्भावात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेषु असंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमाः कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्याः जघन्यशुक्ललेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमस्थाने अनुत्कृष्टशक्तिर्व्युच्छिद्यते ततः धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तिस्थाने क्रमेण लेश्याषट्कादयः शुक्ललेश्यापर्यंता एकैकहीना भवति। तद्यथा—धूलीरेखासमानक्रोधाजघन्यशक्तियुक्तप्रथमस्थानमादिं कृत्वा षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि जघन्यकृष्णलेश्या मध्यमा नीलकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्याषट्कलक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमोदयस्थाने कृष्णलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थानेषु तल्लेश्यालक्षणाभावात्। ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि जघन्यनीललेश्या, मध्यमा कपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्यापंचकलक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमस्थाने नीललेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थाने तल्लक्षणाभावात्, ततः षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि जघन्यकपोतलेश्या मध्यमाः तेजःपद्मशुक्ललेश्याश्च वर्तते तत्र तल्लेश्याचतुष्टयलक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमस्थाने कपोतलेश्या व्युच्छिद्यते। तदनंतरस्थाने तल्लेश्यालक्षणाभावात्। ततः षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि उत्कृष्टा तेजोलेश्या, मध्यमे पद्मशुक्ललेश्ये च वर्तते तत्र तल्लेश्यात्रयलक्षणसंभवात्। तत्रैव चरमस्थाने तेजोलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थाने तल्लक्षणाभावात्। ततः षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि उत्कृष्टा पद्मलेश्या, मध्यमा शुक्ललेश्या च वर्तते तत्र तल्लेश्याद्वयलक्षणसद्भावात्, तत्रैव चरमस्थाने पद्मलेश्या व्युच्छिद्यते तदनंतरस्थाने तल्लक्षणाभावात्। ततः षट्स्थानपतितविशुद्धिवृद्धियुक्तेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमा शुक्ललेश्या वर्तते तत्र तल्लक्षणसद्भावात्। तत्रैव चरमस्थाने अजघन्यशक्तिर्व्युच्छिद्यते ततः जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तेषु षट्स्थानपतितविशुद्धिविशिष्टेष्वसंख्येयलोकमात्रेषूदयस्थानेष्वपि मध्यमा शुक्ललेश्या एकैव वर्तते तत्रैव चरमस्थाने उत्कृष्टा शुक्ललेश्या भवति एवं लेश्याश्रयेण क्रोधस्य चतुःशक्तियुक्तानि चतुर्दशस्थानानि भवति। अनेनैव क्रमेण मानादीनामपि चतुर्दशलेश्याश्रितस्थानानि आनेतव्यानि ॥ २९२ ॥

स० चं०—शिला भेद समान जो क्रोधका उत्कृष्टशक्ति स्थान तींहिविषैं एक कृष्णलेश्या ही है। यद्यपि इस उत्कृष्टशक्तिस्थानविषैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण कषायनिके उदयस्थान हैं बहुरि तथापि ते सर्वस्थान कृष्णलेश्याहीके हैं कृष्णलेश्याहीके उत्कृष्ट मध्यम भेदरूप जानने। षट्स्थानपतित संक्लेशहानिका स्वरूप ऐसा जानना। जेते कषायनिके अविभाग प्रतिच्छेद पहिलै थे तिनसौं घाटि होनेलगे ते अनंतभागहानि असंख्यातभागहानि संख्यातभागहानि संख्यातगुणहानि असंख्यातगुणहानि अनंतगुणहानिरूप

घटे ऐसैं तीव्र कषाय घटनेका नाम षट्स्थानपतितसंक्लेशहानि कहिए। कषायनिके अविभाग प्रतिच्छेद अनंत हैं तिनकी अपेक्षा षट्स्थानपतित हानि संभवै है अर स्थानभेद असंख्यातलोक प्रमाण ही हैं। नियम शब्दकरि ताका अंतस्थानविषैं उत्कृष्ट शक्तिकी व्युच्छित्ति हो है। बहुरि भूमिभेद समान क्रोधका अनुत्कृष्टशक्तिस्थान तीहिंविषैं अनुक्रमतैं छहो लेश्या पाइए है। सो कहिए है--भूमिभेद समान क्रोधका अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानका पहिला उदयस्थानतैं लगाइ षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं तौ केवल कृष्णलेश्या ही है, कृष्णलेश्याहीका मध्यभेद पाइए है जातैं अन्य लेश्याका लक्षण तहां नाहीं। बहुरि इहांतैं आगैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्यम कृष्णलेश्या उत्कृष्ट नील लेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि दोऊ लेश्यानिका लक्षण संभवै है। बहुरि इनितैं आगैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं मध्यम कृष्णलेश्या मध्यम नील लेश्या उत्कृष्ट कपोत लेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि तीनों लेश्यानिके लक्षण संभवै हैं। बहुरि इनितैं षट्स्थानपतित संक्लेश हानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं मध्यम कृष्णलेश्या मध्यम नील लेश्या मध्यम कपोत लेश्या जघन्य पीतलेश्या पाइए है तातैं इहां तिनि च्यारयो लेश्यानिके लक्षण संभवै है। इनितैं बहुरि षट्स्थानपतित संक्लेश हानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण उदयस्थानकनिविषैं मध्यम कृष्ण नील कपोत पीत लेश्या अर जघन्य पद्मलेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानिका लक्षण संभवै है। बहुरि इनितैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात लोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्य कृष्ण नील कपोत पीत पद्म लेश्या अर जघन्य शुक्ललेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि छहो लेश्यानिका लक्षण संभवै है। ऐसैं क्रोधका अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानका जे स्थान भेद तिनिविषैं क्रमतैं छहो लेश्याके स्थानक जानने। इहां अंतस्थानविषैं अनुत्कृष्टशक्तिकी व्युच्छित्ति हुई। बहुरि धूलीरेखा समान क्रोधका अजघन्यशक्तिस्थान ताके स्थानकनिविषैं छह लेश्यातैं एक एक घाटि शुक्ल लेश्या पर्यंत लेश्या पाइए है। सोई कहिए है-धूली रेखा समान क्रोधका प्रथम स्थानतैं लगाइ षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यात-

लोक प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य कृष्ण लेश्या मध्यम नील कपोत पीत पद्म शुक्ल लेश्या पाइए हैं जातै इहां छहो लेश्यानिके लक्षण संभवै है। इहां अंतस्थानविषैं कृष्णलेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं आगैं इसही शक्तिका षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य नील लेश्या मध्यम कपोत पीत पद्म शुक्ललेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि पंच लेश्यानिका लक्षण संभवै है। इहां अंतस्थानकनिविषैं नील लेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं आगैं षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं जघन्य कपोत लेश्या मध्यम पीत पद्म शुक्ल लेश्या पाइए है जातैं इहां तिनि च्यारि लेश्यानिके लक्षण संभवै है इहां अंतस्थानविषैं कपोत लेश्याका विच्छेद हुवा ऐसैं संक्लेश परिणामनिकी हानि होते संते जो मंदकषायरूप परिणाम भया ताकौं विशुद्ध परिणाम कहिए ताके अनंते अविभाग प्रतिच्छेद हैं सो तिनकी अनंत भागवृद्धि असंख्यात भागवृद्धि संख्यात भागवृद्धि संख्यात गुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि अनंतगुण वृद्धिरूप जो वृद्धि सो षट्स्थानपतित विशुद्धवृद्धि कहिए सो उन च्यारि लेश्याका स्थानतैं आगैं षट्स्थानपतित विशुद्धवृद्धिलीयें असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं उत्कृष्ट पीत लेश्या मध्यम पद्म शुक्ललेश्या पाइए है जातैं इहां तीन तिनि लेश्यानिहीका लक्षण संभवै है। इहां अंतस्थानकनिविषैं पीतलेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं षट्स्थानपतित विशुद्ध वृद्धि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं उत्कृष्ट पद्मलेश्या मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए हैं। जातैं इहां तिनि दोय ही लेश्यानिके लक्षण संभवै हैं। इहां अंतस्थानविषैं पद्मलेश्याका विच्छेद हुवा। बहुरि इहांतैं षट्स्थानपतित विशुद्धि वृद्धि लीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्यम शुक्ललेश्या ही पाइए है जातैं इहां तिस ही लेश्याके लक्षण पाइए है। ऐसैं धूली रेखा समान क्रोधका अजघन्यशक्तिस्थानके जे उदयरूप स्थानक तिनिविषैं लेश्या कही, इहां अंतस्थानविषैं अजघन्यशक्तिकी व्युच्छित्ति भई। बहुरि इहांतैं आगैं जल रेखा समान क्रोधका जघन्य शक्तिस्थान ताके षट्स्थानपतित विशुद्धि वृद्धिलीएं असंख्यातलोक प्रमाण स्थानकनिविषैं मध्यम शुक्ललेश्या पाइए है। बहुरि याहीके अंतस्थानविषैं उत्कृष्ट शुक्ल

लेश्या पाइए है ऐसैं च्यारिप्रकार शक्तियुक्त क्रोधविषैं लेश्या अपेक्षा चौदह स्थानक कहे। उत्कृष्टशक्तिस्थानविषैं एक, अनुत्कृष्ट शक्तिस्थानकनिविषैं छह, अजघन्य शक्तिस्थानकनिविषैं छह, जघन्यशक्तिस्थानकनिविषैं एक ऐसैं चौदह कहे। इहां किसीकै भ्रम होइगा कि ए च्यारि शक्तिस्थान कहे इनहीका अनंतानुबंधी आदि नाम है? सो नाहीं, जो तैसैं कहिए तौ षष्ठगुणस्थानविषैं संज्वलन नाही है तहां एक शुक्ललेश्या ही संभवै जातैं इहां जघन्यशक्तिस्थानविषैं एक शुक्ललेश्या ही कही है सो षष्ठ गुणस्थानविषैं तौ लेश्या तीन हैं तातैं अनंतानुबंधी इत्यादि भेद सम्यक्त्वादि घातनेकी अपेक्षा हैं ते अन्य जानने। बहुरि ये शक्तिस्थानके भेद तीव्र मंद अपेक्षा हैं ते अन्य जानने। सो जैसैं ए क्रोधके चौदह स्थान लेश्या अपेक्षा कहे तैसैं ही उत्कृष्टादिक शक्तिस्थानकनिविषैं मानके वा मायाके वा लोभके भी जानने ॥ २९२ ॥

सेलगकिण्हे सुण्णं णिरयं च य भूगएगबिट्ठाणे।
णिरयं इगिबितिआऊ तिट्ठाणे चारि सेसपदे ॥ २९३ ॥

शैलगकृष्णे शून्ये निरयं च च भूगैकद्विस्थाने।
निरयमेकद्वित्र्यायुस्त्रिस्थाने चत्वारि शेषपदे ॥ २९३ ॥

जी० प्र०--शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु असंख्यातलोकमात्रेषु केचित् किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं तीव्रतमसंक्लेशस्थानेषु आयुर्बंधाभावात्। पुनस्तत्रैव अग्रतनेषु केषुचित् हीनसंक्लेशस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकांको लिखितः। ततोऽनंतगुणहीनसंक्लेशेषु भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यत इति तत्स्थानद्वये एकैकांको लिखितः। पुनः तद्भूभेदगत कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिन्नरकायुरेकमेव बध्यते, अग्रे तत्रैव केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यगायुर्द्वयमेव बध्यते। तत्रैव अग्रे केषुचित्स्थानेषु नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं बध्यते। इति तद्भूभेदगतत्रिलेश्यास्थानेषु एकद्वित्र्यंका लिखिताः। पुनस्तद्भूभेदगतकृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुःस्थानेषु पद्मलेश्यासहितलेश्यापंचकस्थानेषु शुक्ललेश्यासहितलेश्यापट्कस्थानेषु च नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायूंषि चत्वार्यपि बध्यंते। इति शेषस्थानत्रयेऽपि प्रत्येकं चतुरंको लिखितः ॥ २९३ ॥

म० प्र०—शिलाभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेष्वसंख्यातलोकमात्रेषु केषुचित्किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं, तीव्रतमसंक्लेशस्थाने आयुर्बंधाभावात् तत्रैव केषुचित् हीनसंक्लेशस्थानेषु नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकाको लिखितः, ततोऽनतगुणहीनसंक्लेशेषु भूभेदगतकृष्णलेश्यास्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानेषु च नरकायुरेकमेव बध्यते इत्येकांको लिखितौ। तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचित् नरकायुरेकमेव बध्यते, केषुचित् नरकतिर्यगायुर्द्वयं बध्यते, केषुचिन्नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयं बध्यते, इति एकद्वित्र्यंका लिखिताः। तत्रैम कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानेषु पद्मलेश्यासहितलेश्यापंचकस्थानेषु शुक्ललेश्यासहितलेश्याषट्कस्थानेषु च नारकतिर्यग्मानुषदेवायूंषि चत्वार्यपि बध्यते इति शेषपदेषु त्रिषु चतुरका लिखिताः॥ २९३॥

स० च०—शिला भेद समान उत्कृष्ट क्रोधका शक्तिस्थानविषैं असंख्यातलोक प्रमाण उदयस्थान कहे तिनिविषैं केई स्थान असे हैं जिनिविषैं कोऊ आयु बंधै नाहीं। सो यंत्रविषैं तहां शून्य लिखना। जातैं जहां अति तीव्र कषाय होइ तहां आयुका बंध होइ नाहीं। बहुरि तहां ही ऊपरिके कहे स्थान थोरे कषाय लीएं हैं तिनिविषैं एक नरकायु ही बंधै है सो इहां एकका अंक लिखना। बहुरि तातैं अनंतगुण घटता संक्लेश लीएं पृथ्वी भेद समान कषायविषैं जे कृष्णलेश्याके स्थान हैं वा कृष्ण वा नील दोय लेश्याके जे स्थान हैं तिनिविषैं एक नरक आयु ही बधै है। सो तिनि दोय स्थाननिविषैं एक एकका अंक लिखना। बहुरि तिसही विषैं केइ अगले स्थान कृष्ण नील कपोत तीन लेश्याके हैं सो तिनिविषैं केई स्थाननिविषैं तौ एक नरकायुहीका बंध हो है। बहुरि केई अगले स्थाननिविषैं नरक वा तिर्यंच दोय आयु बंधै हैं। बहुरि केई अगले स्थाननिविषैं नरक तिर्यंच मनुष्य तीन आयु बंधै हैं। सो तीन लेश्याके स्थानविषैं एक दोय तीनका अंक लिखना। बहुरि तिस ही पृथ्वीके भेद समान शक्तिस्थानविषैं केई कृष्ण नील कपोत पीत इनि च्यारि लेश्याके स्थान हैं केइक कृष्णादि पद्मलेश्यापर्यंत पंच लेश्याके स्थान है। केइक कृष्णादिक शुक्ललेश्या पर्यंत षट्लेश्याके स्थान हैं। सो इन तीनूही जायगा नरक तिर्यंच मनुष्य देव संबधी च्यार्यो ही आयु बधै हैं सो तीनों जायगा च्यारि च्यारिका अंक लिखना॥२९३॥

धूलिगछक्कट्ठाणे चउराऊतिगदुगं च उवरिल्लं।
पणचदुठाणे देवं देवं सुण्णं च तिट्ठाणे॥ २९४॥

घूलिगषट्कस्थाने चतुरायूंषि त्रिकाद्रिकं चोपरितनं ।
पंचचतुर्थस्थाने देवं देवं शून्यं च तृतीयस्थाने ॥ २९४ ॥

जी० प्र०— धूलीरेखासदृशशक्तियुक्तेषु लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् भूमेदगतलेश्यापट्कस्थानचरमस्थानशक्तितोऽनंतगुणहीनसंक्लेशयुक्तेषु चत्वार्यायूंषि बध्यंते । तत्रैव नरकायुर्व्युच्छिद्यते । तत्रैव अग्रे केषु चित्स्थानेषु नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयं बध्यते । तत्रैव तिर्यगायुर्व्युच्छिद्यते । तत्रैव अग्रे लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् शेषमनुष्यदेवायुषी बध्येते । तत्रैव मनुष्यायुर्व्युच्छिद्यते इति चतुस्त्रिद्व्यंका लिखिताः । पुनस्तत्रैव कृष्णलेश्यारहितलेश्यापंचकस्थानेषु कृष्णनीललेश्याद्वयरहितलेश्याचतुष्कस्थानेषु च देवायुरेकमेव बध्यते । इत्येकैकोंको लिखितः । पुनस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयरहितशुभलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिद्देवायुरेकमेव बध्यते इत्येकांको लिखितः । तत्रैव देवायुर्व्युच्छिद्यते पुनस्तच्छुभलेश्यात्रयस्थानेषु अग्रे केषुचित्तीव्रविशुद्धियुक्तेषु किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । शुभलेश्यात्रयतीव्रतरविशुद्धिविशिष्टपरिणामस्य आयुर्बंधहेतुत्वासंभवात् ॥ २९४ ॥

म० प्र०—ततोऽनंतगुणहीनसंक्लेशेषु धूलिरेखासदृशशक्तिगतेषु लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् चत्वार्यायूंषि बध्यते । तत्रैव नरकायुर्विच्छिन्नं । तत्रैव केषुचिदुपरितनशेषायुस्त्रय बध्यते । तत्रैव तिर्यगायुर्विच्छिन्न । तत्रैव लेश्याषट्कस्थानेषु केषुचित् उपरितन शेषायुर्द्वयं बध्यते । तत्रैव मनुष्यायुर्विच्छिन्नं इति चतुस्त्रिद्व्यंका लिखिता । तत्रैव कृष्णलेश्यारहितलेश्यापचकस्थानेषु कृष्णनीललेश्यारहितलेश्याचतुष्कस्थानेषु च देवायुरेकमेव बध्यते इत्यकाकौ लिखितौ । तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशुभलेश्यात्रयस्थानेषु केषुचिद्देवायुरेकमेव बध्यते इत्येकाको लिखितः । तत्रैव देवायुर्बंधो व्युच्छिन्नः । पुनस्तत्रैव केषुचित् तीव्रविशुद्धियुक्तेषु किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । लेश्यात्रयपरिणामस्यापि तीव्रतरविशुद्धिविशिष्टस्य आयुर्बंधहेतुत्वासभवात् ॥ २९४ ॥

स० चं०—बहुरि पूर्वोक्तस्थाननितैं अनंतानंतगुणा घाटि संक्लेश लीएं धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई कृष्णादि शुक्ललेश्या पर्यंत षटलेश्याके स्थान हैं। तिनिविषैं केई स्थाननिविषैं तौ नरकादिक च्यार्यो आयु बंधै हैं। केई अगले स्थाननिविषैं नरकायु विना तीन आयु ही बंधैं हैं। केई अगले स्थाननिविषैं मनुष्य देव दोय ही आयु बंधै हैं सो तहां च्यारि तीन दोयके अंक लिखने । बहुरि तिसही धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई कृष्णलेश्या विना पंच लेश्याके स्थान हैं । केई कृष्ण नील विना च्यारि लेश्याके स्थान हैं। इनि दोऊ जायगा एक देवायु ही बंधै हैं सो दोऊ जायगा एक एकका अंक लिखना। बहुरि तिस ही धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई पीतादि तीन शुभलेश्या संबंधी स्थान हैं। तिनिविषैं केई स्थाननिविषैं तौ एक देवायु ही

बंधै हैं सो तहां एकको अंक लिखना। बहुरि केई अगले स्थान तीव्र विशुद्धता लीएं हैं तहां किसी ही आयुका बंध न हो है सो तहां शून्य लिखना॥ २९४ ॥

सुण्णं दुगइगिठाणे जलम्हि सुण्णं असंखभाजिदकमा।
चउचोदसवीसपदा असंखलोगा हु पत्तेयं ॥ २९५ ॥

शून्यं द्विकैकस्थाने जले शून्यमसंख्यभजितक्रमाः।
चतुश्चतुर्दशविंशतिपदा असंख्यलोका हि प्रत्येकं॥ २९५ ॥

जी० प्र०-तत्रैव धूलिरेखासदृशशक्तियुक्तस्थानेषु केषुचित् तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वययुक्तेषु केवलशुक्ललेश्यायुक्तेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति स्थानद्वये शून्यं लिखितं। ततोनंतगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तजलरेखासदृशशक्तिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेऽपि किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं। तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेषु अतिशयेन आयुर्बंधहेतुत्वाभावात्। एवं कथितानि कषायाणां चत्वारि शक्तिस्थानानि चतुर्दशलेश्यास्थानानि विंशतिरायुर्बंधाबंधगतस्थानानि च सर्वाण्यपि असंख्यातलोकमात्राणि भवंति तथापि उत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा तज्जघन्यस्थानपर्यंतमसंख्यातगुणहीनानि भवंति। तद्यथा सर्वकषायोदयस्थानप्रमाणमेतावत् $\equiv a$। तद्यथासंख्यातलोकेन खंडयित्वा तद्बहुभागमात्राणि शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवंति इति लिखितानि $\equiv a \mid 8$ / 9 पुनस्तच्छेषैकभागोऽप्यसंख्यातलोकमात्रः। तमपि तद्भागहारेण भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि भूमेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवंतीति लिखित्वा— $\equiv a \mid 8$ / $9 \mid 9$ पुनस्तच्छेषैकभागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानि भवंतीति लिखित्वा $\equiv a \mid 8$ / $9 \mid 9 \mid 9$ पुनस्तच्छेषैकभागमात्रासंख्यातलोकस्थानानि जलरेखासमानजघन्यशक्तियुक्तोदयस्थानानीति लेखितव्यानि— $\equiv a \mid 1$ / $9 \mid 9 \mid 9$। अत्र भागहारभूतासंख्यातलोकस्यांकसंदृष्टिर्नवांकः ९। पुनस्तथा चतुर्दशपदेषु प्रथमे कृष्णलेश्यापदे यावंति शिलाभेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानानि तावंत्येव तच्छक्तिगतानि कृष्णलेश्यास-

वेंत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा तद्योग्यमध्यमस्थानपर्यंतानि असंख्यातलोकमात्राणि षट्स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तस्थानानि भवंति। ≡ ∂।८ / ९ एभ्यः भूमे-
दसमानशक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि– ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।१ कुतः ? भूमेदसमानशक्तियुक्तकेवल
सर्वस्थानेषु असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्रत्वात्। तदेकभागमात्रेष्वेव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि
≡ ∂।८।८ / ९।९।९।२ -तेभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि–
≡ ∂।८।८ / ९।९।९।३ -पुनस्तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि-
≡ ∂।८।८ / ९।९।९।४ -पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानानि असंख्यातगुणहीनानि असं-
ख्यातलोकमात्राणि— ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।५ पुनस्तदेकभागासंख्यातलोकभागमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मशुक्ललेश्याषट्कस्थानान्यसंख्यात
लोकहीनानि ≡ ∂।८।१ / ९।९।९।५ कुतः बहुभागरूपासंख्यातलोकगुणकाररहितत्वात्। पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि धूलिरेखासमानश-
क्तियुक्तसर्वस्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि षट्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि। ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।१ पुनस्त-
त्रैव तदेकभागबहुभागमात्राणि कृष्णलेश्यारहितशेषपंचलेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।२ पुनस्तत्रैव तदेकभागासं-
ख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि कृष्णनीलरहितशेषचतुर्लेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।३ पुनस्तदेकभागासंख्यात
लोकभक्तबहुभागमात्राणि शुभलेश्यात्रयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ∂।८।८ / ९।९।९।९।४ पुनस्तत्रैव तदेकभागासंख्यातलोकभक्तबहु-

भागमात्राणि तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə।८।८ / ९।९।९।९।५ पुनस्तत्रैव तदेकभागमात्राणि केवलशुक्ललेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राण्यपि पूर्वस्मादसंख्यातगुणहीनानि ≡ ə।८।१ / ९।९।९।९।५ । कुतः ? बहुभागरूपासंख्यातलोकगुणकाररहितत्वात् । पुनस्तेभ्योऽसंख्यातगुणहीनान्यपि जलरेखासमानशक्तियुक्तानि केवलशुक्ललेश्यास्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ ə।१ / ९।९।९ । कुतः धूलिरेखासमानशक्तिसर्वस्थानेषु केवलशुक्ललेश्यास्थानेषु प्रविष्टभागहाराणां गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागादसंख्यातगुणकारहीनत्वात् । पुनस्तथायुर्बंधाबंधगतत्रिंशतिपदेषु प्रथमशिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थाने, आयुर्बंधस्थानानि कृष्णलेश्योत्कृष्टस्थानमादिं कृत्वा असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यसंख्यातलोकप्रमितस्थानानि ≡ ə।८।८ / ९।९। एभ्यस्तत्रैव नरकायुर्बंधहेतुस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə।८।१ / ९।९। कुतः ? तदेकभागमात्रत्वात् । पुनस्तेभ्यो भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानानि नरकायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə।८।८ / ९।९।९।१ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि नरकायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि । ≡ ə।८।८ / ९।९।९।२ एभ्यस्तत्र कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि केवलनरकायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə।८।८।८ / ९।९।९।२।९।१ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नरकतिर्यगायुर्द्वयबंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə।८।८।८ / ९।९।९।३।९।२ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्यायुस्त्रयबंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि— ≡ ə।८।८।१ / ९।९।५।३।९।२ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि नरकतिर्यग्मनुष्यदेवायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ ə।८।८ / ९।९।९।४ एभ्यस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजःपद्मले-

श्यापंचकस्थानानि चतुर्गत्यायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । ८ एभ्यस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि
९ । ९ । ९ । ५

चतुरायुर्बंधकारणानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । १ कुतः गुणकारभूतासंख्यातलोकबहुभागरहितत्वात् । पु-
९ । ९ । ९ । ५

नस्तेभ्यः धूलिरेखासमानशक्तिगतसर्वस्थानेषु असंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि षड्लेश्यास्थानानि चतुरायुर्बंधकारणानि असंख्यातगुणही-
नानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a । ८ । ८ । ८ पुनस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयबंधकारणानि तदेकभागासं-
९ । ९ । ९ । ९ । ९ । १

ख्यातबहुभागमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a । ८ । ८ । ८ पुनस्तत्रैव षड्लेश्यास्थानानि मनुष्यदेवा-
९ । ९ । ९ । ९ । ९ । २

युर्बंधकारणानि असंख्यातगुणहीनानि तदेकभागासंख्यातलोकभक्तैकभागत्वादसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a । ८ । ८ । १ पुनस्तत्रैव कृ-
९ । ९ । ९ । ९ । ९ । २

ष्णलेश्यावर्जितशेषपंचलेश्यास्थानानि देवायुर्बंधकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a । ८ । ८ । एभ्यस्तत्रैव
९ । ९ । ९ । ९ । २

कृष्णनीलरहितचतुर्लेश्यास्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातलोकमात्राणि ≡ a । ८ । ८ । एभ्यस्त-
९ । ९ । ९ । ९ । ३

त्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशेषशुभलेश्यात्रयस्थानेषु देवायुर्बंधकारणानि यथायोग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि असंख्यातगुण-
हीनानि असंख्यातलोकमात्राणि । ≡ a । ८ । ८ । ८ । तदेकभागगतशुभलेश्यात्रयस्थानानि आयुर्बंधरहितानि असंख्यातलोकमाणि
९ । ९ । ९ । ९ । ४ । ९

असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । ८ । १ । पुनस्तत्रैव पद्मशुक्ललेश्याद्वयस्थानानि आयुर्बंधाकारणानि असंख्यातगुणहीनानि असंख्यातः
९ । ९ । ९ । ९ । ४ । ९

लोकमात्राणि ≡ a । ८ । ८ । कुतः प्राक्तनशुभलेश्यात्रयस्थानेषु आयुर्बंधरहितस्थानेषु प्रविष्टभागहारस्य असंख्यातगुणहीनत्वात् ।
९ । ९ । ९ । ९ । ५

पुनस्तेभ्यस्तत्रैव शुक्ललेश्यास्थानेषु आयुर्बंधाकारणविशुद्धिपरिणामस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । ८ । १
९।९।९।९ । ५

कथं ? इति चेत् गुणकारभूतासंख्यातबहुभागरहितत्वात् । पुनस्तेभ्यो जलरेखासमानशक्तिगतशुक्ललेश्यास्थानानि अायुर्बन्धशून्यानि असंख्यात-लोकमात्राणि असंख्यातगुणहीनानि ≡ a । १ । कथं ? धूलिरेखासमानशक्तियुक्तस्थानेषु केवलचरमशुक्ललेश्यास्थाने प्रविष्टपंचवारासं-
९ । ९ । ९ ।

ख्यातलोकभागहारेभ्यः तद्गुणकारभूतासंख्यातबहुभागस्य असंख्यातगुणितत्वात् । एवं चत्वारि पदानि, चतुर्दशपदानि, विंशतिः पदानि च प्रत्येकमसंख्यातगुणहीनक्रमाणि ज्ञातव्यानि ॥ २९५ ॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवाः कषायमार्गणायां जीवसंख्यां गाथात्रयेण कथयंति–

म० प्र०—तत्रैव धूलिरेखासदृशशक्तिस्थानेषु केचित् तेजोलेश्यारहितशुभलेश्याद्वययुक्तेषु केवलशुक्ललेश्यायुक्तेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । ततोऽनंतगुणविशुद्धिवृद्धियुक्तेषु जलरेखासदृशशक्तिविशिष्टशुक्ललेश्यास्थानेषु च किमप्यायुर्न बध्यते इति शून्यं लिखितं । तीव्रतमविशुद्धिविशिष्टशुक्ललेश्योत्कृष्टस्थानेषु नितरामायुर्बंधहेतुत्वाभावात् । एवमुक्तानि कषायाणां चत्वारि शक्तिस्थानानि, चतुर्दशलेश्यास्थानानि, विंशतिरायुर्बंधकाबंधस्थानानि सर्वाण्यसंख्यातलोकमात्राणि भवंति तथापि उत्कृष्टस्थानादारभ्य जघन्यस्थानपर्यंतमसंख्यातगुणहीनानि भवति । तद्यथा–सर्वकषायोदयस्थानप्रमाणमिदं । ≡ a । तद्योग्यासंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तियुक्तानि उदयस्थानानि लिखितव्यानि भवंति । शिलाभेदः ≡ a । ८ । पुन-
९

स्तदेकभागमसंख्यातलोकेन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तियुक्तोदयस्थानानि लिखितव्यानि । ≡ a । ८ । पुनस्तदेकभागमसंख्यातलो-
९ । ९

केन भक्त्वा तद्बहुभागमात्राणि धूलिरेखासमानाजघन्यशक्तियुक्तान्युदयस्थानानि लिखितव्यानि । ≡ a ८ । पुनस्तदेकभागमात्राणि जलरेखासमानजघन्यश-
९ ९ ९

क्तियुक्तान्युदयस्थानानि लिखितव्यानि । ≡ a १ । अत्र भागहारभूतासंख्यातलोकस्य संदृष्टिर्नवाकः । तथा चतुर्दशपदेषु प्रथमे कृष्णलेश्यापदे यावंति शिला-
९ ९ ९

भेदसदृशोत्कृष्टशक्तिस्थानानि तावंत्येव तच्छक्तिगतानि कृष्णलेश्याया उत्कृष्टस्थानादारभ्य तद्योग्यमध्यमस्थानपर्यंतानि संक्लेशस्थानानि असंख्येयलोकमात्राणि षट्-स्थानपतितसंक्लेशहानियुक्तानि भवंति । ≡ a ८ । ततो भूभेदसमानशक्तियुक्तकेवलकृष्णलेश्यास्थानान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ ।
९ ९ ९

ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि । ≡ a ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोत-
९ ९ ९

लेश्यात्रयस्थानानि । ≡ a ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्थानानि । − a ८ । ततस्तत्रैवासंख्ये-
९ ९ ९ ९ ९ । ५

यगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यापंचकस्थानानि । ≡ a ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि लेश्याषट्क-
९ । ६

स्थानानि । ≡ a । १ । ततो यथायोग्यासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि धूलिरेखासमानशक्तिगतलेश्याषट्कस्थानानि । ≡ a । ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगु-
९ । ६ ९ । ६ । ९

णहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णलेश्यारहितशेषलेश्यापंचकस्थानानि । ≡ a । ८ । ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीललेश्यारहित।
९ । ६ । ९ ९

शेषलेश्याचतुष्टयस्थानानि । ≡ a ८ ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि कृष्णनीलकपोतलेश्यारहितशुभलेश्यात्रयस्थानानि । ≡ a ८ ।
९ । ६ । ९ ९ ९ ९ । ६ । ९ ९ ९ ९

ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि पद्मशुक्ललेश्याद्वयस्थानानि ≡ a ८ ततस्तत्रैवासंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि शु-
९ । ६ । ९ ९ ९ ९ ९

क्ललेश्यास्थानानि ≡ a । १ ततोऽसंख्यगुणहीनानि असंख्येयलोकमात्राणि जलरेखासदृशशक्तिगतशुक्ललेश्यास्थानानि—
९ । ६ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९

≡ a तथा आयुर्बंधाबंधपदेषु विंशतौ प्रथमं शिलाभेदसमानोत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानेषु आयुर्बंधकस्थानानि कृष्णलेश्योत्कृष्ट-
९ । ६ । ९ ९ ९ ९ ९ ९

स्थानादारभ्य असंख्यातलोकमात्राणि तदसंख्यातबहुभागमात्राणि भवति ≡ a । ८ । ८ तत्रैव नारकायुर्बंधहेतुस्थानानि ततोऽसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येय-
९ । ९ ।

लोकमात्राणि तदेकभागमात्रत्वात् ≡ a ८ ततो भूभेदसमानानुत्कृष्टशक्तिगतकृष्णलेश्यास्थानानि नारकायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमा-
९ । ९

त्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैव कृष्णनीललेश्याद्वयस्थानानि नारकायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोत-
९ ९ ९ ९ । ९ । ३

लेश्यात्रयस्थानानि केवलनारकायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोतलेश्यात्रयस्थानानि नारकतिर्यगा-
९ : ९ । ४

युर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ ततस्तत्रैवाशुभलेश्यात्रयस्थानानि नारकतिर्यग्मनुष्यायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसं-
९ । ९ । ५

ख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ । ९ । ६ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यास्थानानि नारकतिर्यग्मनुष्यदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ । ९ । ७ ततस्तत्रैव कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यास्थानानि चतुरायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ । ९ । ८ ततस्तत्रैव षट्लेश्यास्थानानि चतुरायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ । ९ । ९ ततो धूलिरेखासदृशशक्तिगतानि लेश्याषट्कस्थानान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि चतुरायुर्बंधकारणानि ≡ a ८ / ९ । ९ । ९ । ९ । १ ततस्तत्रैव लेश्याषट्कस्थानानि नरकायुर्वर्जितशेषायुस्त्रयबंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a । ८ / ९ । ९ । ९ । ९ । २ ततस्तत्रैव लेश्याषट्कस्थानानि मनुष्यदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a । ८ / ९ । ९ । ९ । ९ । ३ ततस्तत्रैव कृष्णलेश्याहीनशेषलेश्यापंचकस्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ । / ९।९।९।९। ४ ततस्तत्रैव कृष्णनीललेश्यारहितशेषलेश्याचतुष्कस्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ । ९ । ९ । ९ । ५ ततस्तत्रैव तेजःपद्मशुक्ललेश्यास्थानानि केवलदेवायुर्बंधकारणान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a ८ । / ९ । ९ । ९ । ९ , ६ ततस्तत्रैव शुभलेश्यात्रयस्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्यातलोकमात्राणि ≡ a ८ । / ९ । ९ । ९ । ९ । ७ ततस्तत्रैव पद्मशुक्ललेश्यास्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a । / ९ । ९ । ९ । ९ । ८ ततस्तत्रैव केवलशुक्ललेश्यास्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ / ९ । ९ । । ९ । ९ । ९ ततो जलरेखासदृशशक्तिगतकेवलशुक्ललेश्यास्थानान्यायुर्बंधशून्यान्यसंख्येयगुणहीनान्यसंख्येयलोकमात्राणि ≡ a ८ । / ९ । ९ । ९ । ९ । १० एवमेतानि पदानि प्रत्येकमसंख्यातभाजितक्रमाण्यसंख्यातलोकमात्राणि ज्ञातव्यानि ॥ २९५ ॥ अथ श्रीमाधवचन्द्रत्रैविद्यदेवाः कषायमार्गणाया गाथात्रयेण संख्यां प्ररूपयंति—

स० चं०—बहुरि तिस ही धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं केई स्थान पद्म शुक्ल दोय लेश्या संबंधी हैं। केई स्थान एक शुक्ललेश्या संबंधी हैं सो इनि दोऊ ही जायगा किसी ही आयुका बंध नाहीं सो दोऊ जायगा शून्य लिखना। बहुरि तातैं अनंतगुणी बधती विशुद्धता लीएं जलरेखा समान शक्तिस्थानके सर्वस्थान केवल शुक्ललेश्या संबंधी हैं। तिनिविषैं किसी ही आयुका बंध नाही है। सो तहां शून्य लिखना। जातैं अति तीव्र विशुद्धता आयुके बंधका कारण नाहीं हैं ऐसैं कषायनिके शक्ति स्थान च्यारि कहे अर लेश्या स्थान चौदह कहे अर आयुके बंधनेके वा न बंधनेके स्थान वीस कहे ते सर्व ही स्थान असंख्यातलोक प्रमाण असंख्यात लोक प्रमाण जानने। परंतु उत्कृष्ट स्थानतैं लगाइ जघन्य स्थान पर्यंत असंख्यात गुणे घाटि जानने। असंख्यातके भेद घने हैं तातैं सामान्यपनैं सर्व ही असंख्यात लोक प्रमाण कहे। सोई कहिए है-सर्व कषायनिके उदयस्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं तिनिकौं यथा योग्य असंख्यात लोकका भाग दीजिए तिनिविषैं एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण शिला भेद समान उत्कृष्टशक्ति संबंधी उदयस्थान हैं ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि वह जो एक भाग अवशेष रह्या ताकौं असंख्यात लोकका भाग दीएं एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण पृथ्वी भेद समान अनुत्कृष्टशक्तिसंबंधी उदयस्थान हैं ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि जो एक भाग अवशेष रह्या ताकौं असंख्यातलोकका भाग दीएं एकका भाग विना अवशेष भाग प्रमाण धूलिरेखा समान अजघन्यशक्तिस्थानसंबंधी उदयस्थान हैं। ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि अवशेष एक भाग रह्या तींहि प्रमाण जलरेखा समान जघन्यशक्तिसंबंधी उदयस्थान हैं ते भी असंख्यातलोक प्रमाण हैं।

ऐसैं च्यारिशक्ति स्थाननिमें उदयस्थानका प्रमाण कह्या। अब चौदह लेश्यास्थाननिविषैं उदयस्थाननिका प्रमाण कहिए है—पहिलैं कृष्णलेश्या स्थाननिविषैं जेते शिलाभेद समान उत्कृष्टशक्तिस्थानविषैं उदयस्थान हैं ते ते सर्व तिस उत्कृष्टशक्तिकौं प्राप्त कृष्णलेश्याका उत्कृष्टस्थानतैं लगाइ यथायोग्य कृष्णलेश्याके मध्यस्थानपर्यंत षट्स्थानपतित संक्लेशहानि लीएं असंख्यातलोकमात्रस्थान हैं ते उत्कृष्टशक्तिकेस्थान समान जानने।

बहुरि इनितैं असंख्यातगुणे घाटि पृथ्वी भेद समान शक्तिस्थानविषैं प्राप्त कृष्णलेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण है। जातैं ते स्थान पृथ्वीभेद समान शक्तिस्थानविषैं जेते उदयस्थान हैं तिनिकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं एकभाग विना बहुभाग मात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील दोय लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण ते तिस अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं एकभाग विना अवशेष भागमात्र प्रमाणकी बहुभाग संज्ञा जाननीं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील कपोत तीन लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि च्यारि लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीयें बहुभाग मात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि पंच लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातलोक गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि छह लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभाग मात्र हैं इहां पूर्व स्थानतैं बहुभागरूप असंख्यातलोकमात्र गुणकार घट्या तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि धूलिरेखा समान शक्तिस्थानविषैं प्राप्त कृष्णादि छह लेश्याकेस्थान ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते धूलिरेखासमान शक्तिस्थानसंबंधी सर्वस्थाननिके प्रमाणकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं एकभाग विना बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णरहित पंच लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्ण नील रहित च्यारि लेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही तीन शुभ लेश्याके स्थान असंख्यातलोकमात्र हैं ते अवशेष

एकभागकौं योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि पीतरहित दोय शुभलेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस एकभागका योग्य असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभागमात्र है। बहुरि तिनतै असंख्यातगुणे घाटि तहां ही केवल शुक्ललेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते तिस अवशेष एकभागमात्र जानने। इहां बहुभागरूप असंख्यातलोकमात्र गुणकार घट्या तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि जलरेखा समान शक्तिविषैं प्राप्त सर्व शुक्ललेश्याके स्थान असंख्यातलोक प्रमाण हैं ते जलरेखाशक्तिविषै प्राप्त स्थाननिका प्रमाणमात्र है। इहां धूलिरेखासमान शक्तिके सर्वस्थाननिविषैं जे केवल शुक्ललेश्याके स्थान कहे तहां भागहार अधिक हैं परंतु गुणकारभूत असंख्यात लोकका तहां बहुभाग है इहां एकभाग है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है। अब आयुके बंध अबंधके वीस स्थान तिनिविषैं उदयस्थाननिका प्रमाण कहिए है—

प्रथम शिला भेद समान उत्कृष्ट शक्तिविषैं प्राप्त कृष्णलेश्याके स्थान तिनि कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट स्थानतैं लगाइ असंख्यातलोकप्रमाण आयुके अबंध स्थान हैं ते उत्कृष्ट शक्तिविषैं प्राप्त सर्वस्थाननिका प्रमाणकौं असंख्यातलोकका भागदीएं बहुभाग मात्र हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही नरकायु बंधनेकौं कारण असंख्यातलोक प्रमाण स्थान हैं ते तिस अवशेष एक भाग मात्र हैं। पूर्वैं बहुभाग इहां एक भाग तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि पृथ्वीभेदसमान अनुत्कृष्ट शक्तिविषैं प्राप्त कृष्णलेश्याके पूर्वोक्त सर्वस्थान ते नरकायुबंधकौं कारण असंख्यात लोकप्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहांही कृष्णनीललेश्याके पूर्वोक्त सर्वस्थान ते नरकायुबंधकौं कारण असंख्यातलोक प्रमाण हैं बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही कृष्णादि तीनि लेश्याके स्थाननिविषैं नरकायु बंधकौं कारण स्थान ते तिन कृष्णादि तीन लेश्यास्थाननिके प्रमाणकौं योग्य असंख्यात लोकका भागदीएं बहुभागमात्र असंख्यात लोकप्रमाण हैं। बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि तहांही कृष्णादि तीन लेश्याके स्थाननिविषैं नरक तिर्यंच आयुके बंधकौं कारण

स्थान ते तिस अवशेष एक भागकौं योग्य असंख्यात लोकका भाग दीएं बहुभाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां कृष्णादि तीन लेश्याके स्थाननिविषैं नरक तिर्यंच मनुष्य आयुबंधके कारण स्थान ते अवशेष एक भाग मात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहांही पूर्वोक्त कृष्णादि च्यारि लेश्याके स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबंधके कारण ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि पंच लेश्याके स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबंधके कारण ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्णादि छहौ लेश्याके स्थान सर्व ही च्यार्यो आयुबंधके कारण ते असंख्यात लोक प्रमाण हैं। पूर्व स्थानविषैं गुणकार बहुभाग था इहां एक भाग रह्या तातैं असंख्यातगुणा घाटि कह्या है। बहुरि तिनतैं असंख्यात गुणे घाटि धूलिरेखा समान शक्तिविषैं प्राप्त षट्लेश्या स्थाननिविषैं च्यार्यौ आयुबंधके कारण स्थान ते तिन अजघन्य शक्तिविषैं प्राप्त षट्लेश्या स्थाननिके प्रमाणकौं असंख्यातलोकका भाग दीएं बहुभाग मात्र असंख्यातलोक प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही षट्लेश्याके स्थाननिविषैं नरक विना तीन आयुबंधके कारण स्थान ते तिस अवशेष एकभागकौं असंख्यातका भाग दीएं बहुभागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण हैं बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही षट्लेश्याके स्थानविषैं मनुष्य देवायुबंधके कारण स्थान ते तिस अवशेष एकभागमात्र असंख्यातलोक प्रमाण हैं इहां पूर्वैं बहुभाग थे इहां एक भाग है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या। बहुरि तिनितैं असंख्यातगुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्ण विना पंचलेश्याके स्थान सर्व ही देवायुके बंधके कारण हैं ते असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही पूर्वोक्त कृष्ण नील रहित च्यारि लेश्याके स्थान सर्व ही देवायुबंधकौं कारण हैं ते असंख्यातलोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही शुभ तीन लेश्याके स्थाननिविषैं देवायु बंधकौं कारण स्थान ते तिस अजघन्य शक्तिविषैं प्राप्त त्रिलेश्या स्थाननिका प्रमाणकौं योग्य असंख्यात लोकका भाग दीए बहुभाग मात्र असंख्यात लोक

प्रमाण हैं। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहां ही शुभ तीनलेश्याके स्थाननिविषैं किसी ही आयुबंधकौं कारण नाहीं ऐसे स्थान तिम अवशेष एक भागमात्र असंख्यात लोक प्रमाण जानने। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि तहांही पूर्वोक्त पद्मलेश्याके स्थान सर्व ही आयु बंधकौं कारण नाहीं ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं। यातैं पूर्वस्थानविषैं भागहार असंख्यात गुणा घटता है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कह्या है बहुरि तिनितैं असंख्यात गुण घाटि तहांही पूर्वोक्त शुक्ललेश्याके स्थान सर्वही आयुबंधकौं कारण नाहीं ते असंख्यात लोक प्रमा-

काषायनिके शक्तिस्थान च्यारि, लेश्यास्थान चौदह, आयुबंध बंधस्थान वीस, तिनिका यंत्र।

शक्तिस्थान ४	शिलाभेद समान १		पृथ्वीभेद समान १								धूलिरेखासमान १									जलरेखा समान १
लेश्यास्थान १४	१ कृष्ण		१ कृष्ण	२ कृष्णादि	३ कृष्णादि			४ कृष्णादि	५ कृष्णादि	६ कृष्णादि	६ कृष्णादि			५ कृष्ण विना	४ कृष्ण नील विना	३ पीतादि		२ पद्म शुक्ल	१ शुक्ल	१ शुक्ल
आयुबंधाबंधस्थान २०	० अबंध	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	१ नरकायु	२ नरकतिर्यंचायु	३ नरकतिर्यंचमनुष्यायु	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व	४ सर्व सर्व	३ मनुष्यदेवतिर्यंचायु	२ मनुष्यदेवायु	१ देवायु	१ देवायु	१ देवायु	० अबंध	० अबंध	० अबंध	० अबंध

ण हैं पूर्वे बहुभागका गुणकार था इहां एक भागका गुणकार भया तातैं असंख्यातगुणा घटता कहा है। बहुरि तिनितैं असंख्यात गुणे घाटि पूर्वोक्त जलरेखा समान शक्तिविषै प्राप्त शुक्ललेश्याके स्थान सर्वही किसी ही आयुबंधकौं कारण नाहीं ते असंख्यातलोक प्रमाण हैं। पूर्व स्थानविषैं जे भागहार कहे तिननैं तिस ही भागहारका गुणकार असंख्यात गुणा है तातैं असंख्यात गुणा घाटि कहा है। ऐसैं च्यारि चौदह वीस पद कहतैं असंख्यात गुणे घाटि कहे तथापि असंख्यातके बहुभेद हैं तातैं सामान्यपनें सबनिकौं असंख्यात लोक प्रमाण कहे विशेषपनें यथासंभव असंख्यातका प्रमाण जानना ऐसैं ही भागहारविषैं भी यथासंभव असंख्यातलोकका प्रमाण जानना ॥२९५॥ आगे श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव तीनि गाथनिकरि कषायमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहै हैं—

पुह पुह कसायकालो णिरये अंतोमुहुत्तपरिमाणो।
लोहादी संखगुणो देवेसु य कोहपहुदीदो ॥ २९६ ॥

पृथक् पृथक् कषायकालः निरये अंतर्मुहूर्तपरिमाणः।
लोभादिः संख्यगुणः देवेषु च क्रोधप्रभृतितः ॥ २९६ ॥

जी० प्र०—नरकगतौ नारकाणां लोभादिकषायाणां उदयकालः पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तपरिमाणो भवति। तथापि पूर्वपूर्वकषायोदयकालादुत्तरोत्तरकषायोदयकालः संख्यातगुणो ज्ञातव्यः। तद्यथा—तत्र लोभकषायोदयकालः सर्वतः स्तोकोंतर्मुहूर्तमात्रः २१ ततो मायाकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ ४ ततो मानकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ । १६ ततः क्रोधकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ ६४ देवगतौ देवानां क्रोधादिकषायोदयकालाः पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्राः तथापि उत्तरोत्तरमानादिलोभपर्यंतं संख्यातगुणक्रमा भवति। तद्यथा-तत्र क्रोधकषायोदयकालः अंतर्मुहूर्तः सर्वतः स्तोकः २ १ । १। ततो मानकषायोदयकालः संख्यातगुणः २ १ । ४ ततो मायाकषायोदयकाल संख्यातगुणः २ १ । १६ ततो लोभकषायोदयकालः संख्यातगुण २ १ । ६४ ॥ २९६ ॥

मं० प्र०—णिरये--नरकगतौ लोभादीना कषायाणा कालः पृथक् पृथक् प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रोऽपि पूर्वपूर्वकषायकालादुत्तरोत्तरकषायकालः संख्येयगुणः।

तद्यथा—तत्र सर्वतः स्तोकान्तर्मुहूर्तमात्रो लोभकालः । २७ । १ । ततः संख्येयगुणो मायाकालः । २७, ४, ततः संख्येयगुणो मानकालः, २, ७, १६, ततः संख्येयगुणः क्रोधकालः, २७, ६४ । देवेषु च क्रोधप्रभृतीनां कषायाणां कालः प्रत्येकमंतर्मुहूर्तमात्रोऽपि पूर्वपूर्वकषायकालादुत्तरोत्तरमानादिकालः संख्येयगुणः । तथाहि-सर्वतः स्तोकांतर्मुहूर्तमात्रः क्रोधकालः, २७,१, ततः संख्येयगुणो मानकालः, २७, ४, ततः संख्येयगुणो मायाकालः, २७ १६ ततः संख्येयगुणो लोभकालः, २७, ६४ ॥ २९६ ॥

स० चं०—नरकगतिविषैं नारकीनिकैं लोभादि कषायनिका उदय काल अंतर्मुहूर्त मात्र है तथापि पूर्व पूर्व कषायतैं पिछले पिछले कषायका काल संख्यात गुणा है अंतर्मुहूर्तके भेद घने तातैं हीनाधिक होतैं भी अंतर्मुहूर्त ही कहिए सोई कहिए हैं—सर्वतैं स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण लोभ कषायका काल है। तातैं संख्यात गुणा मायाकषायका काल है। यातैं संख्यातगुणा मानकषायका काल है। यातैं संख्यातगुणा क्रोधकषायका काल है। बहुरि देवगतिविषैं क्रोधादि कषायनिका काल प्रत्येक अंतर्मुहूर्तमात्र है तथापि उत्तरोत्तर संख्यात गुणा है सोई कहिए है—स्तोक अंतर्मुहूर्त प्रमाण तौ क्रोध कषायका काल है। तातैं संख्यातगुणा मानकषायका काल है। तातैं संख्यातगुणा मायाकषायका काल है। तातैं संख्यातगुणा लोभकषायका काल है। भावार्थ—नरकगतिविषैं क्रोध कषायरूप परिणति बहुतर हो है और कषायनिरूप क्रमतैं स्तोक स्तोक रहै है। देवगतिविषैं लोभकषायरूप परिणति बहुतर रहै है और कषायनिरूप क्रमतैं स्तोक स्तोक रहै है ॥ २९६ ॥

सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणोवि संगुणिदे ।
सगसगगुणगारेहिं य सगसगरासीण परिमाणं ॥२९७॥

सर्वसमासेनावहितस्वकस्वकराशौ पुनरपि संगुणिते ।
स्वकस्वकगुणकारैश्च स्वकस्वकराशीनां परिमाणं ॥ २९७ ॥

जी० प्र०—पुनर्नारकदेवगत्योः सर्वकषायोदयकालानां समासेन युत्या भक्ते स्वस्वगतिसंभविजीवराशौ स्वस्वकषायोदयकालगुणकारेण गुणिते सति स्वस्वकषायोदयविशिष्टजीवराशीनां परिमाणं भवति । अपिचशब्दौ गतिद्वयसमुच्चयार्थौ नरकगतौ देवगतौ चैवं कर्तव्यमिति ।

तत्र एतावता कालेन यद्येतावंतो जीवा लभ्यंते तदैतावताकालेन कियंतो जीवा लभ्यंते इति त्रैराशिकं कृत्वा प्र २ १७ । ८५ । फ–२ । इ २ १७ ६४ अपवर्तितलब्धप्रमिते नरकगतौ क्रोधकषायोदययुक्तनारकजीवराशिप्रमाणं भवति । —।२।६४। एवं मानादिकषायोदयकालान् इच्छाराशीन् कृत्वा
८५
त्रैराशिकविधानेन लब्धप्रमाणं मानादिकषायोदयपरिणतनारकजीवप्रमाणं भवति । नारकमानकषायिणः –२।१६ नारकमायाकषायिणः – २।४
८५ ८५

नारकलोभकषायिणः —, २, १ तथा देवगतौ लोभकषायिणः = १— ॥ १७, ६४ / ४, ६५=१७, ८५ देवमायाकषायिणः = १— ॥ १७, १६ / ४, ६५ = १७, ८५ देवमा-
८५

नकषायिणः = १— ॥ १७, ४ / ४, ६५=१७, ८५ देवक्रोधकषायिणः = १— ॥ १७, १ / ४, ६५=१७, ८५ ॥ २९७ ॥

मं० प्र०——पुनर्नारकदेवगत्योः सर्वकषायकालानां समासेन २ १७ । ८५ संयोगेन अपहृते–भक्ते, स्वस्वगतिसंभविजीवराशौ स्वस्वकषायकालगुणकारैः संगुणिते सति स्वस्वकषायविशिष्टजीवराशीना परिमाणं भवति । अपिचशब्दौ गतिद्वयसमुच्चयार्थौ नरकगतौ च देवगतावपि च एवं कर्तव्यमिति । एतावति काले । प्र २ १७ । ८५ । यद्येतावंतो जीवा लभ्यते । फ–२ । तदा एतावति काले । इ २ १७ । ६४ । कियतो जीवा लभ्यंते इति त्रैराशिकेन लब्धमपवर्तित नरकगतौ क्रोधकषायपरिणतजीवराशिप्रमाण—२ । ६४ एवं मानादिकालानिच्छराशीन् कृत्वा त्रैराशिकविधानलब्धप्रमाणा मानादिकषायपरिणतजीवराशयो
८५
भवंति । एवमेव देवगतावपि तत्र फलराशिस्तु देवराशिः कर्तव्यः । प्र २ १७ । ८५ । फ = ॥ १७ / ४ । ६५=१७ इ २ १७ । ६४ लब्धलोभवज्जीवाः–
= –॥ १७ । ६४ / ४, ६५=१७, ८५ एवं मायादिजीवराशयोऽप्यानेतव्याः ॥ २९७ ॥

स० चं०——सर्व च्यारयौं कषायनिका जो काल कह्या ताके जेते समय होंहि तिनिका समास कहिए जोड दीएं जो परिमाण आवै ताका भाग अपनी अपनी गतिसंवधी जीवनिके प्रमाणकौं दीएं जो एक भागविर्षे प्र-

माण होइ ताहि अपना अपना कषायके कालका समयनिके प्रमाणरूप गुणकारकरि गुणे जो जो परिमाण होइ सोई अपना अपना क्रोधादिक कषायसंयुक्त जीवनिका परिमाण जानना। अपि शब्द समुच्चय वाचक है तातैं नरकगति वा देवगतिविषै ऐसैं ही करना। सोई दिखाइए है--च्यारयौ कषायनिका कालके समयनिका जोड दीएं जो परिमाण होइ तितने कालविषै जो नरकगतिविषैं जीवनिका जो परिमाण कह्या तितने सर्व जीव पाइए तौ लोभकषायके कालका समयनिका जो परिमाण होइ है तितने कालविषैं केते जीव पाइए ऐसैं त्रैराशिक कीएं प्रमाणराशि सर्वकषायनिका काल, फलराशि सर्व नारक राशि, इच्छाराशि लोभकषायका काल तहां प्रमाणराशिका भाग फलराशिकौं देइ इच्छाराशिकरि गुणैं जो लब्धराशिका परिमाण आवै तितने जीव लोभकषायवाले नरकगतिविषैं जानने। बहुरि ऐसैं ही प्रमाणराशि फलराशि पूर्वोक्त इच्छाराशि मायादिकषायनिका काल कीएं लब्धराशिमात्र अनुक्रमतैं मायावाले मानवाले क्रोधवाले जीवनिका परिमाण नरकगतिविषैं जानना। इहां दृष्टांत--जैसैं लोभका कालका प्रमाण एक १ मायाका च्यारि ४ मानका सोलह १६ क्रोधका चौसठि ६४ सबका जोड दीएं पिच्यासी भए। नारकी जीवनिका परिमाण सतरासै १७०० ताहि पिच्यासीका भागदीएं पाए बीस २० ताकौं एककरि गुणैं बीस हुवा सो लोभकषायवालोंका परिमाण है। च्यारि करि गुणैं असी ८० भए सो मायावालोंका परिमाण है। सोलाकरि गुणैं तीनसौ वीस भए ३२० सो मानवालोंका परिमाण है चौसठिकरि गुणैं वारासै असी भए १२८० भए सो क्रोधवालोंका परिमाण है ऐसैं दृष्टांतकरि यथोक्त नरकगतिविषैं जीव कहे ऐसैं ही देवगतिविषैं जेता जीवनिका परिमाण है ताहि सर्वकषायनिके कालका जोड्या हूवा समयनिका परिमाणका भाग दीएं जो परिमाण आवै ताहि अनुक्रमतें क्रोध मान माया लोभका कालका परिमाणकरि गुणैं अनुक्रमतैं क्रोधवाले मानवाले मायावाले लोभवाले जीवनिका परिमाण देवगतिविषैं जानना ॥ २९७ ॥

णरतिरियलोहमायाकोहो माणो बिइंदियादिव्व ।
आवलिअसंखभज्जा सगकालं वा समासेज्ज ॥ २९८ ॥

नरतिरश्चोः लोभमायाक्रोधो मानो द्वींद्रियादिवत् ।
आवल्यसंख्यभाज्याः स्वककालं वा समासाद्य ॥ २९८ ॥

जी० प्र०—मनुष्यतिर्यग्गत्योर्लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्या द्वींद्रियत्रींद्रियचतुरिंद्रियपंचेंद्रियजीवसंख्यानयनप्रकारेणानेतव्या, तत्र मनुष्यगतौ अकषायसंख्योनमनुष्यजीवराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेनैव लोभादिपरिणतजीवसंख्या आनेतव्या, तथा तिर्यग्गतौ देवनारकमनुष्यसंख्योनसंसारराशिं संस्थाप्य बहुभागे समभागो चउण्हमित्यादिसूत्रोक्तविधानेन च लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या, अथ वा अंतर्मुहूर्तमात्रात् सामान्यकषायोदयकालात् द्वींद्रियादिविधानानीतं स्वस्वलोभादिकषायोदयकालमाश्रित्य लोभादिकषायोदयपरिणतजीवसंख्यानेतव्या । तद्यथा—एतावति काले यद्येतावंतो जीवा लभ्यते तदा एतावति काले कियंतो जीवा लभ्यंते इति त्रैराशिकं कृत्वा—प्र २ १ , फ १ । ३ (१ ≡) , इ २ १ , ८४२४ / ४ , ६५६१ अपवर्तिते लब्धं लोभकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं भवति । १ । ३ (१ ≡) , ८४२४ / ४ , ६५६१ तथा मायाकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिप्रमाणं १ । ३ (१ ≡) , ६१२० / ४ , ६५६१ क्रोधकषायोदयपरिणतमनुष्यराशिप्रमाणं १ । ३ (१ ≡) , ५८६४ / ४ , ६५६१ मानकषायोदयपरिणतमनुष्यजीवराशिः १ । ३ (१ ≡) , ५८३६ / ४ , ६५६१ तथा तिर्यग्गतावपि किंचिदूनसंसारराशिं फलराशिं कृत्वा तत्कषायपरिणतजीवराशिप्रमाणमानेतव्यं । तत्र तिर्यग्लोभकषायिणः १३— ८४२४ / ४ , ६५६१ तिर्यग्मायाकषायवंतः १३— । ६१२० / ४ । ६५६१ तिर्यक्क्रोधकषायिणः

१३ — , ५८७४ / ४, ६५६१ तिर्यग्मानकषायिणः १३—, ५८३६ / ४, ६५६१ द्वींद्रियादिविधानेन यथा आवल्यसंख्यातभागमात्रो भागहारः तथा अत्रापि जीवसंख्यानयने कालप्रमाणानयने च आवल्यसंख्येयभागमात्रो भागहारः इति सुव्यक्तार्थमाचार्यैः आवलि असंखभज्जेत्युक्तं ॥२९८॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाडे विंशतिप्ररूपणासु

कषायमार्गणाप्ररूपणा नाम एकादशोऽधिकारः ॥ ११ ॥

मं० प्र०—मनुष्यतिर्यग्गत्योः लोभमायाक्रोधमानकषायपरिणतजीवसंख्या द्वींद्रियादिवत्-द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियजीवसंख्यानयनप्रकारेणानतव्या । मनुष्यगतौ तज्जीवराशिं सस्थाप्य 'बहुभागे समभागो चउण्हं' इत्यादिसूत्रोक्तविधानेन तिर्यग्गतावपि अकषायजीवप्रमाणसंख्यातरूपहीनसंसारिराशिं सस्थाप्य 'बहुभाग' इत्यादि सूत्रविधानेनैव लोभादिपरिणतजीवसंख्या आनेतव्याः । वा अथवा स्वस्वकालं द्वींद्रियादिविधानानीताल्पबहुत्वमंतर्मुहूर्तमात्रं लोभादिकषायकालमाश्रित्य लोभादिपरिणतजीवसख्या आनेतव्याः । तत्र एतावति काले प्र २ ७ यद्येतावतो जीवा लभ्यंते फ १३= / ११.३ तदा एतावति काले—

इ । २ ७ । ८४२४ / ४ । ६५६१ कियतो जीवा लभ्यंत इति त्रैराशिकेन लब्धलोभपरिणतजीवसख्या १ । ३ । ८४२४ / ४ । ६५६१ एव मायाक्रोधमानकालानिच्छाराशिं कृत्वा तत्तज्जीवसंख्या आनेतव्या । तिर्यग्गतौ तु किंचिदूनसंसारिराशिं फलराशिं कृत्वा तत्तत्कषायपरिणतजीवसंख्या आनेतव्या । द्वींद्रियादिविधाने यथावल्यसख्यातभागमात्रो भागहारः तथा अत्रापि जीवसंख्यानयने कालप्रमाणानयने च आवल्यसंख्येयभागमात्रो भागहार इति सुव्यक्तार्थमाचार्यैः आवलिअसंखभज्जेत्युक्तं

इति श्रीमदभयचंद्रसूरिसिद्धांतचक्रवर्तिकृतौ गोम्मटसारपचसंग्रहवृत्तौ कषायमार्गणाप्ररूपणो नामैकादशोऽधिकारः ॥११॥

स० चं०—मनुष्य तिर्यंचगतिविषैं लोभ माया क्रोध मानवाले जीवनिकी संख्या पूर्वैं इंद्रियमार्गणाका अधिकारविषैं जैसैं बेंद्री तेंद्री चौइंद्री पंचेंद्रीविषैं जीवनिकी संख्या 'बहुभागे समभागो' इत्यादि गाथाकरि कही थी तैसैं इहां भी संख्याका साधन करना। सोई कहिए है--मनुष्यगतिविषैं जो जीवनिका परिमाण है तामैं कषायरहित मनुष्यनिका प्रमाण घटाएं जो अवशेष रहै ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं तहां एक

भाग जुदा राखि अवशेष बहुभागका प्रमाण रह्या ताके च्यारि भागकरि च्यारयौ कषायनिके स्थाननिविषैं समान देने। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनिकौं लोभकषायके स्थान समान भागविषैं जो प्रमाण था तामैं जोडे जो परिमाण होइ तितने लोभकषायवाले मनुष्य जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एकभागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनिकौं मायाकषायके स्थान समान भागविषैं जो परिमाण था तामैं मिलाएं जो परिमाण होइ तितने मायाकषायवाले मनुष्य जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहै तिनिकौं क्रोधकषायके स्थान समान भागविषैं जो परिमाण था तिसविषैं मिलाएं क्रोधकषायवाले मनुष्यनिका परिमाण होइ। बहुरि तिस अवशेष एक भागका जेता परिमाण होइ ताकौं मानकषायके स्थान समान भागविषैं जो परिमाण था तामैं मिलाएं मानकषायवाले मनुष्यनिका परिमाण होइ ऐसैं ही तिर्यंच गतिविषैं जानना। विशेष इतना जो इहा मनुष्य गतिके जीवनिका परिमाणविषैं भाग दीया था। इहां तिर्यंच गतिके जीवनिका जो देव नारक मनुष्यराशिकरि हीन सर्वसंसारी जीवराशिमात्र परिमाण ताकौं भाग देना अन्य सर्व विधान तैसैं ही जानना। ऐसैं कषायनिविषैं तिर्यंच जीवनिका परिमाण जानिए। अथवा अपना अपना कषायनिका कालकी अपेक्षा जीवनिकी संख्या जानिए सो दिखाइए है च्यारयौ कषायनिका कालके समयनिका जो अंतर्मुहूर्तमात्र परिमाण है ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेषके च्यारि भागकरि च्यारौ जायगा समान दीजिए। बहुरि अवशेष एक भागकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहे तिनिकौं समान भागविषैं जो परिमाण था तामैं मिलाएं लोभकषायके कालका परिमाण होइ। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं तैसैं भाग देइ एक भाग विना अवशेष बहुभाग समान भागका प्रमाणविषैं मिलाएं मायाका काल होइ। बहुरि तिस अवशेष एकभागकौं

तैसें भाग देइ एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग समान भागसंबंधी परिमाणविषैं मिलाएं क्रोधका काल होइ। बहुरि जो अवशेष एक भाग रह्या ताकौं समान भागसंबंधी परिमाणविषैं मिलाएं मानकषायका काल होइ अब इहां त्रैराशिक करना। जो च्यारि कषायनिके कालका परिमाणविषैं सर्व मनुष्य पाइए तौ लोभकषायका कालविषैं केते मनुष्य पाइए? इहां प्रमाणराशि च्यारयौं कषायनिका समुच्चयरूप कालका परिमाण अर फलराशि मनुष्य गतिके जीवनिका परिमाण अर इच्छाराशि लोभ कषायके कालका परिमाण। तहां फलराशिकौं इच्छाराशिकरि गुणि प्रमाण राशिका भाग दीएं जो लब्धराशिका प्रमाण आवै तितने लोभकषायवाले मनुष्य जानने। असें ही प्रमाण फलराशि पूर्वोक्त कीएं माया क्रोध मानकालकौं इच्छाराशि कीएं लब्धराशि मात्र मायावाले वा क्रोधवाले वा मानवाले मनुष्यनिकी संख्या जाननी। बहुरि याही प्रकार तिर्यंच गतिविषैं भी लोभवाले मायावाले क्रोधवाले मानवाले जीवनिकी संख्याका साधन करना। विशेष इतना जो उहां फलराशि मनुष्यनिका परिमाण था इहां फलराशि तिर्यंच जीवनिका परिमाण जानना। अन्य विधान तैसें ही करना। असें कषाय मार्गणा विषैं जीवनिकी संख्या है॥ २९८॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामा संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नाम भाषाटीका विषैं जीवकांडविषै प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं कषायमार्गणा प्ररूपणा नाम ग्यारमा अधिकार सपूर्ण भया॥ ११॥

अथ ज्ञानमार्गणाधिकार ॥ १२ ॥

जी० प्र०—

वासवैः पूज्यपादाब्जं समवस्थितिसंस्कृतं ।
द्वादशं तीर्थकर्तारं वासुपूज्यं जिनं स्तुवे ॥ १२ ॥

अथ श्रीनेमिचन्द्रसैद्धांतचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणामुपक्रममाणो निरुक्तिपूर्वकज्ञानसामान्यलक्षणमाह—

मं० प्र०—

वासवादिसुपूज्याङ्घ्रिं वासुपूज्य जिनेश्वरं ।
वंदे गर्भादिकल्याणैरत्नवसुपूजितं ॥ १२ ॥

अथ श्रीनेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणां प्रारभमाणो निरुक्तिपूर्वकं ज्ञानसामान्यलक्षणमाह—

सं० चं०—

वंदौं वासव पूज्यपद वास पूज्य जिन सोय ।
गर्भादिकमें पूज्य जो रत्न द्रव्यतैं होय ॥

आगैं श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ज्ञानमार्गणाका प्रारंभ करैं हैं तहां प्रथमही निरुक्ति लीएं ज्ञानका सामान्य लक्षण कहैं हैं—

जाणइ तिकालविषए दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे ।
पच्चक्खं च परोक्खं अणेण णाणेत्ति णं वेंति ॥ २९९ ॥

जानाति त्रिकालविषयान् द्रव्यगुणान् पर्यायांश्च बहुभेदान् ।
प्रत्यक्षं च परोक्षमनेन ज्ञानमिति इदं ब्रुवंति ॥ २९९ ॥

जी० प्र०—त्रिकालविषयान् भूतवत्स्यद्वर्तमानकालगोचरान् बहुभेदान्–जीवादिज्ञानादिस्थावरादिनानाप्रकारान् द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाख्यानि, गुणान् ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्यादीन् स्पर्शरसगंधवर्णादीन् गतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतुत्वादींश्च पर्यायांश्च स्थानत्रसत्वादीन् अणुत्वस्कंधत्वादीन् अर्थव्यंजनभेदानन्यांश्च आत्मप्रत्यक्षं स्पष्टं परोक्षं च अस्पष्टं अनेन जानातीति ज्ञानमितीदं करणभूतं स्वार्थ-

ग्व्यवसायात्मकं जीवगुणं ब्रुवंति–कथयंति अर्हदादयः। एतज्ज्ञानमेव प्रत्यक्षं परोक्षं चेति द्विविधं प्रमाणं भवति। तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षणानि तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापनं च सविस्तरं मार्तंडादितर्कशास्त्रेषु द्रष्टव्यं, अत्राहेतुवादरूपे आगमे हेतुवादस्यानधिकारात् ॥ २९९ ॥ अथ ज्ञानभेदानाह–

मं० प्र०–त्रिकालविषयान्–वृत्तवर्त्स्यद्वर्तमानकालगोचरान्, बहुभेदान्–जीवादिज्ञानादिस्थावरादिनानाप्रकारान्, द्रव्याणि–जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशकालाख्यानि, गुणान् ज्ञानदर्शनसम्यक्त्वसुखवीर्यादीन्, स्पर्शरसगंधवर्णादीन् गतिस्थित्यवगाहनवर्तनाहेतुत्वादीन्, पर्यायांश्च–स्थावरत्वत्रसत्वादीन्, अणुत्वस्कंधत्वादीन् अर्थव्यंजनभेदानन्यांश्च आत्मा प्रत्यक्षं–स्पष्ट, परोक्ष अस्पष्टं च अनेन जानाति इति ज्ञानमितीदं करणभूतं स्वार्थव्यवसायात्मकमात्मनो गुण ब्रुवंति कथयंति अर्हदादयः। एतद् ज्ञानमेव प्रत्यक्षं परोक्षमिति द्विविधं प्रमाणं भवति तत्स्वरूपसंख्याविषयफललक्षण तद्विप्रतिपत्तिनिराकरणं स्याद्वादमतप्रमाणस्थापन च सविस्तरं तर्कशास्त्रेषु द्रष्टव्यं। हेतुवादस्यात्राहेतुवादरूपे आगमे अनधिकारात् ॥२९९॥ अथ ज्ञानभेद प्ररूपयति–

सं० च०–त्रिकाल संबंधी हुए हों है होंहिगे ऐसे जीवादि द्रव्य वा ज्ञानादि गुण वा स्थावरादि पर्याय नाना प्रकार हैं तहां जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ए द्रव्य हैं बहुरि ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व सुख वीर्य आदि वा स्पर्श रस गंध वर्ण आदि वा गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्व अवगाहनहेतुत्व वर्तनाहेतुत्व आदि गुण हैं। बहुरि स्थावर त्रस आदि वा अणु स्कंधपना आदि वा अन्य अर्थ व्यंजन आदि भेद लीएं अनेक पर्याय हैं तिनकौं प्रत्यक्ष वा परोक्ष जीव नामा पदार्थ इसकरि जानैं है तातैं याकौं ज्ञान कहिए। 'ज्ञायते अनेनेति ज्ञानं' ऐसी ज्ञान शब्दकी निरुक्ति जाननी। इहां जाननरूप क्रियाका आत्मा कर्ता तहां करणस्वरूप ज्ञान अपने विषयभूत अर्थनिका जाननहारा जीवका गुण है ऐसैं अरहंतादिक कहैं हैं। असाधारण कारणका नाम करण है बहुरि यहु सम्यग्ज्ञान है सोई प्रत्यक्ष वा परोक्षरूप प्रमाण है। जो ज्ञान अपने विषयकौं स्पष्ट विशद जानैं ताकौं प्रत्यक्ष कहिए। जो अपने विषयकौं अस्पष्ट अविशद जानैं ताकौं परोक्ष कहिए। सो इस प्रमाणका स्वरूप वा संख्या वा विषय वा फल वा लक्षण बहुरि ताके अन्यथा वादका निराकरण वा स्याद्वाद मतके प्रमाणका स्थापन विशेषपनैं जैनके तर्क शास्त्र हैं तिनिविषैं विचारना। इहां अहेतुवादरूप आगमविषैं हेतुवादका अधिकार नाहीं तातैं सविशेष न कह्या। हेतुकरि जहां अर्थकौं दृढ कीजिए ताका नाम हेतुवाद है सो न्याय शास्त्रनिविषैं हेतुवाद है इहां तो जिनागम अनुसारि वस्तुका स्वरूप कहनेका अधिकार जानना ॥२९९॥ आगैं ज्ञानके भेद कहैं हैं–

पंचेव होंति णाणा मदिसुदओहीमणं च केवलयं ।
खयउवसमिया चउरो केवलणाणं हवे खइयं ॥ ३०० ॥

पंचैव भवंति ज्ञानानि मतिश्रुतावधिमनश्च केवलं ।
क्षायोपशमिकानि चत्वारि केवलज्ञानं भवेत् क्षायिकं ॥ ३०० ॥

जी० प्र०—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलनामानि सम्यग्ज्ञानानि पंचैव नोनाधिकानि । यद्यपि सामान्यापेक्षया संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानमेकमेव कथितं, तथापि विशेषापेक्षया पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानानि पंचेत्युक्तानि इत्यर्थः। तेषु मतिश्रुतावधिमनःपर्ययाख्यानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि भवंति मतिज्ञानाद्यावरणवीर्यांतरायकर्मद्रव्याणां अनुभागस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावरूपः क्षयः, तेषामेव अनुदयप्राप्तानां सदवस्थारूप उपशमः। क्षयश्चासावुपशमश्च क्षयोपशमः क्षयोपशमे भवानि क्षायोपशमिकानि । अथवा क्षयोपशमः प्रयोजनमेषामिति क्षायोपशमिकानि । तत्तदावरणदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य विद्यमानत्वेऽपि ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाभावात् अविवक्षा ज्ञातव्या। केवलज्ञानं पुनः क्षायिकमेव भवति केवलज्ञानावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयेण प्रादुर्भूतत्वात् । क्षये भवं, क्षयः प्रयोजनमस्येति वा क्षायिकं । यद्यप्यात्मनः केवलज्ञानं प्रतिबंधकावस्थायां शक्तिरूपेण विद्यमानं तथापि प्रतिबंधकक्षयेणैव तद्व्यक्तिः स्यात् इति व्यक्त्यपेक्षया कार्यत्वसंभवात् क्षायिकमित्युक्तं । आवरणक्षये सति प्रादुर्भवति इति निरुक्तेः तद्व्यक्त्यपेक्षत्वात् ॥ ३०० ॥ अथ मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदानाह—

मं० प्र०—मति श्रुतमवधिर्मनःपर्ययः केवल चेति ज्ञानानि-सम्यग्ज्ञानानि पचैव भवति नोनाधिकानि। यद्यपि सामान्यापेक्षया संग्रहरूपद्रव्यार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानमेकमेवेत्युक्त तथापि विशेषापेक्षया पर्यायार्थिकनयमाश्रित्य ज्ञानानि पचैवेत्युच्यते इत्यर्थ । तेषु चत्वारि मतिश्रुतावधिमन पर्ययाख्यानि ज्ञानानि क्षायोपशमिकानि—मतिज्ञानाद्यावरणवीर्यांतरायकर्मद्रव्याणामनुभागस्य सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावः क्षयः, तेषामेवानुदयप्राप्ताना सदवस्था उपशमः, क्षयश्चासौ उपशमश्चासौ क्षयोपशम. तत्र भवानि तत्प्रयोजनानि वा क्षायोपशमिकानि तत्तदावरणदेशघातिस्पर्धकानामुदयस्य विद्यमानस्यापि ज्ञानोत्पत्तिप्रतिघातित्वाभावादविवक्षा, केवलज्ञानं पुन क्षायिकमेव भवेत् केवलज्ञानावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षये प्रादुर्भूतत्वात् । क्षये भव तत्प्रयोजनं वा क्षायिकं । यद्यप्यात्मनः केवलज्ञानं प्रतिबधकावस्थाया शक्त्या विद्यते तथापि प्रतिबंधकक्षयादेव तद्व्यक्तिर्भवतीति व्यक्त्यपेक्षया कार्यत्वसभवात् क्षायिकमित्युच्यते । आवरणक्षये सति भवति प्रादुर्भवतीति निरुक्तेस्तद्व्यक्त्यपेक्षत्वात् ॥ ३०० ॥ अथ मिथ्याज्ञानोत्पत्तिकारणस्वरूपस्वामिभेदानाह—

स० चं०—मति १ श्रुति २ अवधि ३ मनःपर्यय ४ केवल ५ ए सम्यग्ज्ञान पंच ही हैं। हीन अधिक नाहीं। यद्यपि संग्रहनयरूप द्रव्यार्थिक नय करि सामान्यपनैं ज्ञान एकही है तथापि पर्यायार्थिक नयकरि विशेष कीएं पंचभेद हो हैं तिनिविषैं मति श्रुति अवधि मनःपर्यय ए च्यारि ज्ञान क्षायोपशमिक हैं जातैं मतिज्ञानावरणादिक कर्म वा वीर्यांतराय कर्म ताके अनुभागके जे सर्व घातिया स्पर्धक हैं तिनिका उदय नाही सोई क्षय जानना। बहुरि जे उदय अवस्थाकौं न प्राप्त भए ते सत्तारूप तिष्ठैं हैं सोई उपशम जानना। उपशम वा क्षयकरि उपजै ताकौं क्षायोपशम कहिए अथवा क्षयोपशम है प्रयोजन जिनिका ते क्षायोपशमिक कहिए। यद्यपि क्षायोपशमिक विषैं तिस आवरणके देशघातिया स्पर्धकनिका उदय पाइए है तथापि वह तिस ज्ञानका घात करनेकौं समर्थ नाही है तातैं ताकी मुख्यता न करी। याका उदाहरण कहिए है—अवधिज्ञानावरण कर्म सामान्यपनैं देशघाती है तथापि अनुभागका विशेष कीएं याके केई स्पर्धक सर्वघाती हैं केई स्पर्धक देशघाती हैं तहां जिनिकैं अवधिज्ञान किछू भी नाहीं तिनिकैं सर्वघाती स्पर्धकनिका उदय जानना। बहुरि जिनिके अवधिज्ञान पाइए है अर आवरण उदय पाइए है तहां देश घाती स्पर्धकनिका उदय जानना। बहुरि केवलज्ञान क्षायिक ही है जातैं केवलज्ञानावरण वीर्यांतरायका सर्वथा नाशकरि केवलज्ञान प्रकट हो है। क्षय होतैं उपज्या वा क्षय है प्रयोजन जाका ताकौं क्षायिक कहिए। यद्यपि सावरण अवस्थाविषैं आत्माकैं शक्तिरूप केवल ज्ञान है तथापि व्यक्तरूप आवरणके नाश करि हो है तातैं व्यक्तताकी अपेक्षा केवलज्ञान क्षायिक कह्या जातैं व्यक्त भएं ही कार्य सिद्धि संभवै है ॥ ३०० ॥ आगैं मिथ्याज्ञान उपजनेका कारण वा स्वरूप वा स्वामित्व वा भेद कहैं हैं—

अण्णाणतियं होदि हु सण्णाणतियं खु मिच्छअणउदये।
णवरि विभागं णाणं पंचिंदियसण्णिपुण्णेव ॥ ३०१ ॥

अज्ञानत्रिकं भवति सज्ज्ञानत्रिकं खलु मिथ्यात्वानोदये ।
नवरि विभंगं ज्ञानं पंचेंद्रियसंज्ञिपूर्ण एव ॥ ३०१ ॥

जी० प्र०—यत्सम्यग्दर्शनपरिणतजीवसंबंधिमतिश्रुतावधिसंज्ञं सम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य विशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणं तदेव मिथ्यादर्शनानंतानुबंधिकषायान्यतमोदये सति अतत्त्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसंबंधिमिथ्याज्ञानत्रयं खलु–स्फुटं भवति । नवरीति विशेषोऽस्ति यदवधिज्ञानविपर्ययरूपं विभंगनामकं मिथ्याज्ञानं तत् संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्त एव भवति, नान्यस्मिन् जीवे इति अनेन इतरत् मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानमिति द्वयं एकेंद्रियादिषु पर्याप्तापर्याप्तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिसासादनेषु संभवति इति कथितं भवति । द्वितीयः खलुशब्दः अतिशयेन स्पष्टत्वार्थे स्फुट ॥ ३०१ ॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ज्ञानस्वरूपं निरूपयति—

म० प्र०—यन्मतिश्रुतावधिसंज्ञं सम्यग्ज्ञानदर्शनपरिणतजीवसंबंधिसम्यग्ज्ञानत्रयं संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तजीवस्य विशेषग्रहणरूपाकारसहितोपयोगलक्षणं तदेव मिथ्यादर्शनानंतानुबंधिकषायान्यतमोदये सति अतत्त्वार्थश्रद्धानपरिणतजीवसंबंधिमिथ्याज्ञानत्रयं, अज्ञानत्रय खलु–स्फुट भवति । णवरीति प्राकृतभाषायामव्यय विशेषार्थे । यदवधिज्ञानविपर्ययरूपं विभंगाख्यं अज्ञानं तत्संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्तके एव भवति नान्यस्मिन् जीवे । अनेन इतरत् मत्यज्ञानं श्रुताज्ञानमित्यज्ञानद्वय एकेंद्रियादिषु पर्याप्तापर्याप्तेषु सर्वेषु मिथ्यादृष्टिसासादनेषु संभवति इत्युक्तं भवति । द्वितीयः खलुशब्दः अतिशयेन स्पष्टत्वार्थे॥३०१॥ अथ सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ज्ञानस्वरूपमाह—

स० चं०—जे सम्यग्दृष्टीकैं मति श्रुति अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान हैं, संज्ञी पंचेंद्री पर्याप्त वा निर्वृत्ति अपर्याप्त जीवकैं विशेष ग्रहणरूप ज्ञेयाकार सहित उपयोग रूप है लक्षण जिनिका असे हैं तेई तीनों मिथ्यात्व वा अनंतानुबंधी कोई कषायके उदय होतैं तत्त्वार्थका अश्रद्धानरूप परिणया जीवकैं तीना मिथ्याज्ञान हो है। कुमति कुश्रुति विभंग ए नाम हो हैं। णवरि असा प्राकृतभाषाविषैं विशेष अर्थकौं लीएं अव्यय जानना। सो विशेष यहु जो अवधि ज्ञानका विपर्ययरूप होना सोई विभंग कहिए सो विभंग अज्ञान सैनी पंचेंद्री पर्याप्त हीकैं हो है याहीतैं कुमति कुश्रुति एकेंद्रिय आदि पर्याप्त अपर्याप्त सर्व मिथ्यादृष्टी जीवनिकैं अर सासादन गुणस्थानवर्ती सर्व जीवनिकैं संभवै है ॥ ३०१ ॥ आगैं सम्यग्दृष्टि नामा तीसरा गुणस्थानविषैं ज्ञानका स्वरूप कहै हैं—

मिस्सुदये संमिस्सं अण्णाणतियेण णाणतियमेव ।

संजमविसेससहिए मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं ॥ ३०२ ॥

मिश्रोदये संमिश्रं अज्ञानत्रयेण ज्ञानत्रयमेव ।
संयमविशेषसहिते मनःपर्ययज्ञानमुद्दिष्टं ॥ ३०२ ॥

जी० प्र०—मिश्रोदये-सम्यक्मिथ्यात्वकर्मोदये सति अज्ञानत्रयेण सह सम्यग्ज्ञानत्रयमेव सम्मिश्र भवति अशक्यविवेचनत्वेन सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमिति व्यपदेशभाग्भवति । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वर्तमानं ज्ञानत्रयं न केवलं सम्यग्ज्ञानं, न केवलं मिथ्याज्ञानं अपि किंतु उभयात्मकश्रद्धानवत् उभयात्मकत्वेन मिथ्याज्ञानसंमिश्र सम्यग्ज्ञानं भवति इत्याचार्यैः कथितं ज्ञातव्यं । मनःपर्ययज्ञानं तु संयमविशेषसहितेऽव प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्यंतेषु सप्तगुणस्थानेषु तपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामविशिष्टेषु संभवति नेतरदेशसंयतादिषु गुणस्थानेषु तथाविधतपोविशेषाभावात् ॥ ३०२ ॥ अथ मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणं गाथात्रयेणाह—

म० प्र०—मिश्रस्य-सम्यग्मिथ्यात्वकर्मण', उदये सति अज्ञानत्रयेण संमिश्रमेव सज्ज्ञानत्रयं सम्यग्मिथ्यामतिज्ञानं सम्यग्मिथ्याश्रुतज्ञानं सम्यग्मिथ्यावधिज्ञानमिति व्यपदेशार्हं भवति । सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वर्तमान ज्ञानत्रयं न केवलं सम्यग्ज्ञानमेव नापि केवलं मिथ्याज्ञानमेव किंतु उभयात्मकश्रद्धानवत् उभयात्मकत्वेन ज्ञानमपि संमिश्रमिति युक्तमुक्तमाचार्यैः । मनःपर्ययज्ञानं पुनः संयमविशेषसहिते प्रमत्तसंयतादिक्षीणकषायपर्यंततपोविशेषोपबृंहितविशुद्धिपरिणामे सभवति नेतरस्मिन् देशसंयतादौ तत्र तादृशतपोविशेषाभावादिति पूर्वाचार्यैरुद्दिष्टं ॥ ३०२ ॥ अथ मिथ्याज्ञानविशेषलक्षणं गाथात्रयेण प्ररूपयति—

स० चं०—मिश्र कहिए सम्यग्मिथ्यात्व नामा मोहनीय कर्मकी प्रकृति ताके उदय होतें तीनौं अज्ञानकरि मिल्या तीनौं सम्यग्ज्ञान इहां हो हैं जातैं जुदा कीया जाता नाहीं तातैं सम्यग्मिथ्यामति १ सम्यग्मिथ्याश्रुत २ सम्यग्मिथ्या अवधि ३ ऐसैं इहां नाम हो है। जैसैं इहां एक कालविषैं सम्यग्रूप वा मिथ्यारूप मिल्या हूवा श्रद्धान पाइए है तैसैं ही ज्ञानरूप वा अज्ञानरूप मिल्या हूवा ज्ञान पाइए है । इहां न तौ केवल सम्यग्ज्ञान ही है न केवल मिथ्याज्ञान है, मिथ्याज्ञान करि मिल्या सम्यग्ज्ञानरूप मिश्र जानने । बहुरि मनःपर्यय ज्ञान विशेप संयमका धारक छठा गुणस्थानतैं बारह्वां गुणस्थान पर्यंत सात गुणस्थानवर्ती तप विशेष करि वृद्धिरूप विशुद्धताके धारी महामुनि तिनहीकैं पाइए है जातैं अन्य देश संयतादिविषैं तैसा तपका विशेष न संभवै है ॥३०२॥ आगैं मिथ्याज्ञानका विशेष लक्षण तीनि गाथानिकरि कहैं हैं—

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु विणुवएसकरणेण ।
जा खलु पवट्टए मइ मइ अण्णाणंतिणं वेंति ॥ ३०३ ॥

विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु विनोपदेशकरणेन ।
या खलु प्रवर्तते मतिः मत्यज्ञानमितीदं ब्रुवंति ॥ ३०३ ॥

जी० प्र०—विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु जीवमारणबंधनहेतुषु या मतिः परोपदेशकरणेन विना प्रवर्तते तदिदं मत्यज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवंति । तत्र परस्परसंयोगजनितमारणशक्तिविशिष्टं तैलकर्पूरादिद्रव्यं विषं, सिंहव्याघ्रादिक्रूरमृगधारणार्थमभ्यंतरीकृतछागादिजीवं काष्ठादिरचितं तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंपुटीकरणदक्षं सूत्रकीलितं यंत्रं, मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्थमवष्टब्धं काष्ठादिमयं कूटं, तित्तिरलावकहरिणादिधारणार्थं विरचितं ग्रंथिविशेषकलितरज्जुमयं जालं पंजरः, गजोष्ट्रादिधारणार्थमवष्टब्धो गर्तमुखकीलितग्रंथिविशिष्टवारी रज्जुरचनाविशेषो बंधः । आदिशब्देन पक्षिपक्षलगनार्थं दीर्घदंडाग्रप्रक्षितपिप्पलनिर्यासादिचिक्कणबंधग्रहहरिणादिशृंगाग्रलग्नसूत्रग्रंथिविशेषादिश्च गृह्यते । उपदेशपूर्वकत्वे श्रुतज्ञानत्वप्रसंगात् । उपदेशक्रियां विना यदीदृशमूहापोहविकल्पात्मकं हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारणं आर्तरौद्रध्यानकारणं शल्यदंडगारवसंज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकरणं च इंद्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूपं मिथ्याज्ञानं तन्मत्यज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥ ३०३ ॥

मं० प्र०—विषयंत्रकूटपंजरबंधादिषु जीवमारणबंधनहेतुषु या मतिः परोपदेशकरणेन विना प्रवर्तते तदिदं मत्यज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवंति । तत्र परस्परसंयोगजनितमारणशक्तिविशिष्टतैलकर्पूरादि द्रव्य विष । सिंहव्याघ्रादिधरणार्थमभ्यतरीकृतछागादिजीवं काष्ठादिरचितं, तत्पादनिक्षेपमात्रकवाटसंपुटीकरण दक्षसूत्रकीलितं यत्र । मत्स्यकच्छपमूषकादिग्रहणार्थमवष्टब्ध काष्ठादिमयं कूटं । तित्तिरलावकहरिणादिधरणार्थं विरचित ग्रंथिविशेषकलितरज्जुमय जाल पंजरः । उष्ट्रगजादिधरणार्थमवष्टब्धगर्तमुखकीलितग्रंथिविशिष्टवारी रज्जुरचनाविशेषो बंधः । आदिशब्देन पक्षिपक्षलगनार्थं दीर्घदंडाग्रप्राक्षितपिप्पलनिर्यासादिबंधग्रहहरिणादिशृंगलग्नसूत्रग्रंथिविशेषादिश्च गृह्यते । उपदेशपूर्वकत्वे श्रुतज्ञानत्वप्रसंगात् । उपदेशक्रिया विना यदीदृशं ऊहापोहविकल्पात्मक हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहकारणमार्तरौद्रध्यानकारण, शल्यदंडगारवसंज्ञाद्यप्रशस्तपरिणामकारणं च इंद्रियमनोजनितविशेषग्रहणरूप मिथ्याज्ञान तन्मत्यज्ञान निश्चेतव्य ॥ ३०३ ॥

स० चं०—परस्पर वस्तुका संयोगकरि मारनेकी शक्ति जिस विषैं होइ ऐसा तैल कर्पूरादिक वस्तु सो विष कहिए । बहुरि सिंह व्याघ्रादि क्रूर जीवनिके धारनके अर्थि जाकैं अभ्यंतर छेला आदि रखिए अर तिसविषैं तिस क्रूर जीवकौं पाव धरत ही किवाड़ जुडि जाय ऐसा सूत्रकी कलकरि संयुक्त होइ काष्ठादिक करि रच्या

हूवा हो है सो यंत्र कहिए। बहुरि माछला काछिवा मूसा कोल इत्यादिक जीवनिकै पकड़नेके निमित्त काष्ठादिकमय बनै सो कूट कहिए। बहुरि तीतर लवा हिरण इत्यादि जीवनिकै पकड़नेके निमित्त फंदकौं लीएं जो जेरिका जाल बनै सो पींजर कहिए। बहुरि हाथी ऊंट आदिके पकड़ने निमित्त खाडाके ऊपरि गांठिका विशेष लीएं जेवराकी रचनारूप विशेष सो बंध कहिए। आदि शब्दकरि पंखीनिका पांख लगने निमित्त ऊंचे दंडके ऊपरि चिगटास लगावना सो बंध वा हरिणादिकका सींगकै अग्रभाग सूत्रकी गांठि देना इत्यादि विशेष जानने ऐसें जीवनिके मारणे बांधनके कारणरूप कार्यनिविषें अन्यके उपदेश विना ही स्वयमेव बुद्धि प्रवर्तें सो कुमतिज्ञान कहिए। उपदेशतैं प्रवर्तें तो कुश्रुतज्ञान हो जाइ। तातैं विना ही उपदेश ऐसा विचाररूप विकल्प लीएं हिंसा अनृत स्तेय अब्रह्म परिग्रहका कारण आर्त रौद्रध्यानकों कारण शल्य दंड गारव आदि अशुभोपयोगोंका कारण जो मन इंद्रियकरि विशेष ग्रहणरूप मिथ्याज्ञान प्रवर्तें सो मति अज्ञान सर्वज्ञदेव कहैं हैं॥ २०३॥

आभीयमासुरक्खं भारहरामायणादिउवएसा।
तुच्छा असाहणीया सुयअण्णाणंतिणं बेंति॥ २०४॥

आभीतमासुरक्षं भारतरामायणाद्युपदेशाः।
तुच्छा असाधनीयाः श्रुताज्ञानमिति इदं ब्रुवंति॥ २०४॥

जी० प्र०—तुच्छाः परमार्थशून्याः, असाधनीयाः अत एव सत्पुरुषाणामनादरणीयाः परमार्थशून्यत्वात् आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशाः तत्प्रबंधाः तेषां श्रवणादुत्पन्नं यज्ज्ञानं तदिदं श्रुताज्ञानमिति ब्रुवंत्याचार्याः। आसमंताद्भीताः आभीता चोराः तच्छास्त्रमप्याभीतं। असवः प्राणाः तेषां रक्षा येभ्यः ते असुरक्षाः तलवराः तेषां शास्त्रमासुरक्षं। कौरवपांडवीयपंचभर्तृकैकभार्यावृत्तांतयुद्धव्यतिकरादिचर्चाव्याकुलं भारतं, सीताहरणरामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनारचितं रामायणं। आदिशब्दाद्यद्यन्मिथ्यादर्शनदूषितसर्वथैकांतवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबंधभुवनकोशहिंसायागादिगृहस्थकर्मत्रिदंडजटाधारादितपःकर्मषोडशपदार्थषट्पदार्थभावनाविधिनियोगभूतचतुष्ट-

यपंचविंशतितत्त्वब्रह्माद्वैतचतुरार्यसत्यविज्ञानाद्वैतसर्वशून्यत्वादिप्रतिपादकागमाभासजनितं श्रुतज्ञानाभासं तत्तत्सर्वं श्रुताज्ञानमिति निश्चेतव्यं, दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वात् ॥ ३०४ ॥

मं० प्र०—तुच्छाः-परमार्थशून्याः, असाधनीयाः-अत एव सतामनादरणीयाः आभीतासुरक्षभारतरामायणाद्युपदेशास्तत्प्रबंधाः तेषां श्रवणादुत्पन्नं यज्ज्ञानं तदिदं श्रुताज्ञानमिति ब्रुवंत्याचार्याः । आ- समंताद् भीता आभीता --चोराः, तच्छास्त्रमप्याभीतं, असुरक्षाः-चोराद्यपायेभ्यो जीवरक्षाः-तलवरा तेषां शास्त्रमासुरक्षं, कौरवपाडवीयपचभर्तृकैकभार्यावृत्तातयुद्धव्यतिकरादिचर्चाव्याकुलं भारतं, सीताहरणरामरावणीयजातिवानरराक्षसयुद्धव्यतिकरादिस्वेच्छाकल्पनाराचितं रामायणं । आदिशब्देन यदन्मिथ्यादर्शनदूषितसर्वथैकातवादिस्वेच्छाकल्पितकथाप्रबंधप्रतिपादकांशहिंसायागादिगृहस्थकर्मत्रिदंडजटाधारणादितपस्कर्मषोडशपदार्थषट्पदार्थभावनाविधिनियोगभूतचतुष्टयपचविंशतितत्त्वब्रह्माद्वैतचतुरार्यसत्याविज्ञानाद्वैतसर्वशून्यत्वादिप्रतिपादकागमाभासजनितं श्रुतज्ञानाभासं तत्तत्सर्वं श्रुताज्ञानमिति निश्चेतव्यं दृष्टेष्टविरुद्धार्थविषयत्वात् ॥ ३०४ ॥

स० चं०—आभीताः कहिए समस्तपनैं भयवान जे चौरादिक तिनिका शास्त्र सो आभीत हैं। बहुरि असु जे प्राण तिनिकी चौरादिकतैं रक्षा जिनितैं होइ ऐसे कोटपाल राजादिक तिनिका जो शास्त्र सो असुरक्ष है। बहुरि कौरव पांडवोंका युद्धादिक वा एक भार्याके पंचभर्ता इत्यादिक विपरीत कथन जिसविषैं पाइए ऐसा शास्त्र सो भारत है। बहुरि रामचंद्रकैं वानरोंकी सेना रावण राक्षस है तिनिका परस्पर युद्ध होना इत्यादिक अपनी इच्छाकरि रच्या हूवा शास्त्र सो रामायण है आदि शब्दतैं जो एकांत वादकरि दूषित अपनी इच्छाके अनुसारि रच्या हूवा शास्त्र जिनिविषैं हिंसारूप यज्ञादिक गृहस्थका कर्म है जटा धारण त्रिदंडधारणादिरूप तपस्वीका कर्म है सोलह पदार्थ हैं वा छह पदार्थ हैं वा भावनाविधि नियोग भूत ए च्यारि हैं वा पचीस तत्त्व है वा अद्वैत ब्रह्मका स्वरूप है वा सर्व शून्य है इत्यादि वर्णन पाइए है ते शास्त्र 'तुच्छाः' कहिए परमार्थतैं रहित हैं बहुरि 'असाधनीयाः' कहिए प्रमाण करने योग्य नाहीं याहीतैं संत पुरुषनिकौं आदरने योग्य नाहीं ऐसैं शास्त्राभ्यासजनित भया जो श्रुतज्ञानकीसी आभासा लीएं कुज्ञान सो श्रुत अज्ञान कहिए। जातैं प्रमाणीक इष्ट अर्थतैं विपरीत अर्थ याका विषय हो है। इहां मति श्रुत अज्ञानका वर्णन उपदेश लीएं किया है अर सामान्यपनैं तौ स्वपर भेद विज्ञानरहित इंद्रिय मन जनित जानना सो सर्व कुमति कुश्रुत है ॥ ३०४ ॥

विवरीयमोहिणाणं खओवसमियं च कम्मबीजं च ।
वेभंगोत्ति पउच्चइ समत्तणाणीण समयम्हि ॥ ३०५ ॥

विपरीतमवधिज्ञानं क्षायोपशमिक च कर्मबीजं च ।
विभंग इति प्रोच्यते समाप्तज्ञानिनां समये ॥ ३०५ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादर्शनकलंकितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणीयवीर्यांतरायक्षयोपशमजनितं द्रव्यक्षेत्रकालभावसीमाश्रितं रूपिद्रव्यविषयं विपरीतं आप्तागमपदार्थेषु विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्योः तीव्रकायक्लेशद्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्यय, चशब्दाद्देवनारकगत्योर्भवप्रत्ययं च मिथ्यात्वादिकर्मबंधबीजं, चशब्दात् कदाचिन्नारकादिगतौ पूर्वभवदुराचारसंचितदुष्कर्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्मबीजं वा अवधिज्ञानं विभंग इति समाप्तज्ञानिनां केवलज्ञानिना समये स्याद्वादशास्त्रे प्रोच्यते कथ्यते । नारकाणां विभंगज्ञानेन वेदनाभिभवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसंधानप्रत्ययबलात् सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीते । विशिष्टस्य अवधिज्ञानस्य भंगः—विपर्ययः विभंग इति निरुक्तिसिद्धार्थस्यैव अनेन प्ररूपितत्वात् ॥ ३०५ ॥ अथ नवभिर्गाथाभि· स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य मतिज्ञान प्ररूपयति[1]——

मं० प्र०—मिथ्यादर्शनकलंकितस्य जीवस्य अवधिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमादुत्पन्नं द्रव्यक्षेत्रकालभावसीमाश्रित रूपिद्रव्यविषयं विपरीतं आप्तागमपदार्थेषु विपरीतग्राहकं तिर्यग्मनुष्यगत्योः तीव्रकायक्लेशद्रव्यसंयमरूपगुणप्रत्ययं, चशब्दाद्देवनारकगत्योर्भवप्रत्ययं च मिथ्यात्वादिकर्मबंधबीज, चशब्दात् कचित् नारकादौ पूर्वभवदुराचारसंचितदुष्कर्मफलतीव्रदुःखवेदनाभिभवजनितसम्यग्दर्शनज्ञानरूपधर्मबीजं चावधिज्ञानं विभंगं इति समाप्तज्ञानिनां—केवलज्ञानिनां समये प्रोच्यते नारकाणा विभंगज्ञानेन वेदनाभिभवतत्कारणदर्शनस्मरणानुसधानप्रत्ययबलात्सम्यग्दर्शनोत्पत्तिप्रतीतेः । विशिष्टस्य अवधिज्ञानस्य भगः—विपर्ययः, विभग इति निरुक्तिसिद्धार्थस्यैव अनेन प्ररूपितत्वात् ॥ ३०५ ॥ अथ नवभिर्गाथाभिः स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयानाश्रित्य मतिज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—मिथ्यादृष्टी जीवनिकैं अवधिज्ञानावरण वीर्यांतरायके क्षयोपशमतैं उत्पन्न भया ऐसा द्रव्य-क्षेत्र काल भावकी मर्यादा लीएं रूपी पदार्थ है विषय जाका ऐसा आप्त आगम पदार्थनिविषैं विपरीतका ग्राहक सो विभंग नाम पावै है । वि कहिए विशिष्ट जो अवधिज्ञान ताका भंग कहिए विपरीत भाव सो वि-

[1] 'अथ स्वरूपोत्पत्तिकारणभेदविषयान् आश्रित्य गाथानवकेन मतिज्ञानमाह ।' इति घपुस्तके पाठ ।

भंग कहिए सो तिर्यंच मनुष्य गतिविषैं तौ तीव्र काय क्लेशरूप द्रव्य संयमादिककरि उपजे है सो गुण प्रत्यय हो है। बहुरि देव नरकगतिविषैं भव प्रत्यय हो है सो सब ही विभंगज्ञान मिथ्यात्वादि कर्मबंधका बीज कहिए कारण है चकारतैं कदाचित् नारकादिक गतिविषैं पूर्वभवसंबंधी दुराचारके दुःख फलकौं जानि कहीं सम्यग्दर्शन ज्ञानरूप धर्मका भी बीज हो है ऐसा विभंगज्ञान समासज्ञानी जो संपूर्ण ज्ञानी केवली तिनिके मतविषैं कह्या है ॥ ३०५ ॥ आगैं स्वरूप वा उपजनेका कारण वा भेद वा विषय इनिका आश्रयकरि मतिज्ञानका निरूपण नव गाथानिकरि कहैं हैं—

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं ।
अवगहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं ॥ ३०६ ॥

अभिमुखनियमितबोधनमाभिनिबोधिकमनिंद्रियेंद्रियजं ।
अवग्रहेहावायधारणका भवंति प्रत्येकं ॥ ३०६ ॥

जी० प्र०—स्थूलवर्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थः अभिमुखः, अस्येंद्रियस्य अयमेवार्थः इत्यवधारितो नियमितः। अभिमुखश्चासौ नियमितश्चासौ अभिमुखनियमितः। तस्यार्थस्य बोधनं ज्ञानं आभिनिबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः। अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकमिति स्वार्थिकेन ठण्प्रत्ययेन सिद्धं भवति। स्पर्शनादींद्रियाणां स्थूलादिष्वेव स्पर्शादिषु स्वार्थेषु ज्ञानजननशक्तिसंभवात्। सूक्ष्मांतरितदूरार्थेषु परमाणुशंखचक्रवर्तिमेर्वादिषु तेषां ज्ञानजननशक्तिर्न संभवतीत्यर्थः। अनेन मतिज्ञानस्य स्वरूपमुक्तं। कथंभूतं तत्? अनिंद्रियेंद्रियजं—अनिंद्रियं मनः, इंद्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि। तेभ्यः जातमुत्पन्नं अनिंद्रियेंद्रियजं, अनेन इंद्रियमनसोर्मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं दर्शितं। एवं च कारणभेदात्कार्यभेद इति मतिज्ञानं षट्प्रकारमुक्तं। पुनः प्रत्येकमेकैकस्य मतिज्ञानस्य अवग्रहः ईहा अवायः धारणा चेति चत्वारो भेदा भवंति। तद्यथा—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोवायः मानसी धारणा इति चत्वारः। स्पर्शनजोऽवग्रहः, स्पर्शनजा ईहा स्पर्शनजोवायः स्पर्शनजा धारणा। रसनजोऽवग्रहः रसनजा ईहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा। घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजा ईहा घ्राणजोवायः घ्राणजा धारणा ४। चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषीहा चाक्षुषोवायः चाक्षुषी धारणा ४। श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजा ईहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा। एवं मतिज्ञानं चतुर्विंशतिविकल्पं भवति अवग्रहादीनां लक्षणं उत्तरत्र ग्रंथकारः स्वयमेव वक्ष्यति॥ ३०६ ॥

मं० प्र०—स्थूलवर्तमानयोग्यदेशावस्थितोऽर्थः अभिमुखः । अस्येंद्रियस्यायमर्थ इत्यवधारितो नियमितः । अभिमुखश्चासौ नियमितश्चासौ अभिमुखनियमितः । तस्यार्थस्य बोधनं–ज्ञानं, आभिनिबोधिकं मतिज्ञानमित्यर्थः । अभिनिबोध एव आभिनिबोधिकमिति स्वार्थिकेन ठण्प्रत्ययेन सिद्धं । स्पर्शनादींद्रियाणां स्थूलादिष्वेव स्पर्शादिषु स्वार्थेषु ज्ञानजननशक्तिसंभवात् । सूक्ष्मांतरितदूरार्थेषु परमाणुशंखचक्रवर्तिमेर्वादिषु तेषां ज्ञानजननशक्त्यसंभवात् । अनेन मतिज्ञानस्य स्वरूपमुक्तं । कथंभूतं तत् ? अनिंद्रियेंद्रियजं–अनिंद्रियं–मनः, इंद्रियाणि स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि तेभ्यो जातं–उत्पन्नं । अनेन इंद्रियमनसोर्मतिज्ञानोत्पत्तिकारणत्वं दर्शितं । एवं च कारणभेदात्कार्यभेद इति मतिज्ञानं षट्प्रकारमुक्तं । पुनः प्रत्येकमेकैकस्य मतिज्ञानस्य अवग्रहः, ईहा अवायः धारणा चेति चत्वारो भेदा भवंति । तद्यथा—मानसोऽवग्रहः मानसीहा मानसोऽवायः मानसी धारणा । ४ । स्पर्शनजोवग्रहः स्पर्शनजा ईहा स्पर्शनजोऽवायः स्पर्शनजा धारणा । ४ । रसनजोऽवग्रहः रसनजा ईहा रसनजोऽवायः रसनजा धारणा । ४ । घ्राणजोऽवग्रहः घ्राणजा ईहा घ्राणजोऽवायः घ्राणजा धारणा । ४ । चाक्षुषोऽवग्रहः चाक्षुषी ईहा चाक्षुषोऽवायः चाक्षुषी धारणा । ४ । श्रोत्रजोऽवग्रहः श्रोत्रजा ईहा श्रोत्रजोऽवायः श्रोत्रजा धारणा ।४। एवं मतिज्ञानं चतुर्विंशतिविकल्पं भवति अवग्रहादीनां लक्षणमुत्तरत्र ग्रंथकारः स्वयमेव वक्ष्यति ॥ ३०६ ॥

स० चं०—स्थूलवर्तमान जिस क्षेत्रविषैं इंद्रियमनकी प्रवृत्ति होइ तहां तिष्ठता ऐसा जो इंद्रिय मनके ग्रहण योग्य पदार्थ सो अभिमुख कहिए बहुरि इस इंद्रियका यहु ही विषय है ऐसा नियमरूप जो पदार्थ सो नियमित कहिए ऐसैं पदार्थका जो जानना सो अभिनिबोध कहिए । अभि कहिए अभिमुख अर 'नि' कहिए नियमित जो अर्थ ताका निबोध कहिए जानना ऐसा आभिनिबोध सोई आभिनिबोधिक है इहां स्वार्थविषैं ठण् प्रत्यय आया है सो यह आभिनिबोधिक मतिज्ञानका नाम जानना । इंद्रियनिकैं स्थूल रूप स्पर्शादिक अपने विषयके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति है बहुरि सूक्ष्म अंतरित दूर पदार्थके ज्ञान उपजावनेकी शक्ति नाहीं है । तहां सूक्ष्म पदार्थ तौ परमाणु आदिक, अंतरित पदार्थ अतीत अनागत काल संबंधी, दूर पदार्थ मेरु गिरि स्वर्ग नरक पटल आदि दूर क्षेत्रवर्ती जानने ऐसैं मतिज्ञानका स्वरूप कह्या है । सो मतिज्ञान कैसा है ? अनिंद्रिय जो मन अर इंद्रिय स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रोत्र इनिकरि उपजै है । मतिज्ञान उपजनेके कारण इंद्रिय अरु मन हैं । कारणके भेदतैं कार्यविषैं भी भेद कहिए तातैं मतिज्ञान छह प्रकार है तहां एक एकके च्यारि च्यारि भेद हैं अवग्रह ईहा अवाय धारणा । सो मनतैं वा स्पर्शनतैं वा रसनातैं वा घ्राणतैं वा चक्षुतैं वा श्रोत्रतैं ए अवग्रहादि च्यारि

च्यारि उत्पन्न होंइ तातैं चौबीस भेद भए। अवग्रह ईहा अवाय धारणाका लक्षण शास्त्र कर्ता आगैं स्वयमेव कहैगा।

वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे।
कमसो ते वावरिदा पढमं ण हि चक्खुमणसाणं ॥३०७॥

व्यंजनार्थावग्रहभेदौ हि भवतः प्राप्ताप्राप्तार्थे।
क्रमशस्तौ व्यापृतौ प्रथमो नहि चक्षुर्मनसोः ॥ ३०७ ॥

जी० प्र०—मतिज्ञानविषयो द्विविधः व्यंजनं अर्थश्चेति। तत्र इद्रियैः प्राप्तो विषयः व्यजनं तैरप्राप्तः अर्थः। तयोः प्राप्ताप्राप्तयोरर्थयोः क्रमशः यथासख्य व्यंजनार्थावग्रहभेदौ तौ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवतः। इंद्रियैः प्राप्तार्थविशेषग्रहणं व्यंजनावग्रहः। तैरप्राप्तार्थविशेषग्रहणं अर्थावग्रह इत्यर्थः। व्यंजनं—अव्यक्तं शब्दादिजातं इति तत्त्वार्थविवरणेषु प्रोक्तं कथमनेन व्याख्यानेन सह संगतमिति चेदुच्यते विगतं—अंजनं—अभिव्यक्तिर्यस्य तद्व्यजनं। व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं अंजु गतिव्यक्तिम्रक्षणेष्विति व्यक्तिम्रक्षणार्थयोर्ग्रहणात्। शब्दाद्यर्थः श्रोत्रादींद्रियेण प्राप्तोऽपि यावन्नाभिव्यक्तस्तावद् व्यंजनमित्युच्यते एकवारजलकणसिक्तनूतनशरावत्। पुनरभिव्यक्तौ सत्यां स एवार्थो भवति। यथा पुनः पुनर्जलकणसिच्यमाननूतनशरावः अभिव्यक्तसेको भवति। अतः कारणात् चक्षुर्मनसोऽप्राप्ते विषये प्रथमो व्यंजनावग्रहो नास्ति। चक्षुर्मनसी स्वविषयमर्थं प्राप्यैव तत्र ज्ञान जनयतः, इति नैयायिकादीनां मतं स्याद्वादतर्कग्रंथेषु बहुधा निराकृतमित्यत्राहेतुवादे आगमांशे नोपक्रम्यते। व्यजनरूपे विषये स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्रैः चतुर्भिरिंद्रियैः अवग्रह एक एवोत्पद्यते नेहादयः। ईहादीनां ज्ञान नां देशसर्वाभिव्यक्तौ सत्यामेव उत्पत्तिसंभवात्। तदा तद्विषयस्य अव्यक्तरूपव्यंजनत्वाभावात्। इति व्यजनावग्रहाश्चत्वार एव ॥ ३०७ ॥

मं० प्र०—मतिज्ञानाविषयो द्विविध—व्यंजनमर्थश्चेति। तत्र इंद्रियैः प्राप्तो विषयो व्यजनं। तैरप्राप्तोऽर्थः। तयो. प्राप्ताप्राप्तयोरर्थयोः क्रमशः—यथासंख्यं व्यंजनार्थावग्रहभेदौ तौ व्यापृतौ प्रवृत्तौ भवतः। इंद्रियैः प्राप्तार्थविशेषग्रहणं व्यंजनावग्रहः। तैरप्राप्तार्थविशेषग्रहणमर्थावग्रहः इत्यर्थः। व्यंजनमव्यक्त शब्दादिजात इति तत्त्वार्थविवरणेषु प्रोक्तं कथमनेन व्याख्यानेन सह सगतमिति चेदुच्यते—विगतमंजनं—अभिव्यक्तिर्यस्य तद् व्यंजनं। व्यज्यते—म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं इति च व्यक्तिम्रक्षणयोर्ग्रहणात्। शब्दादिकं श्रोत्रादिना इंद्रियेण प्राप्तमपि यावत् नाभिव्यक्तं तावदेव व्यजनमित्युच्यते एकवारजलकणसिक्तनूतनशरावत्। पुनरभिव्यक्तौ सत्या तदेवार्थो भवति यथा पुनः पुनर्जलकणसिच्यमाननूतनशरावोऽभिव्यक्तसेको भवति अत कारणात् चक्षुर्मनसोरप्राप्ते विषये प्रथमो

व्यजनावग्रहो नास्ति । चक्षुर्मनश्च स्वविषयमर्थं प्राप्यैव तत्र ज्ञानं जनयत इति नैयायिकादीनां मतं स्याद्वादतर्कशास्त्रेषु बहुधा निराकृतमित्यत्राहेतुवादे आगमाशे न प्रक्रम्यते । व्यंजने विषये स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रैश्चतुर्भिरिंद्रियैरवग्रह एक एवोत्पद्यते नेहादयः, ईहादीनां ज्ञानानां देशसर्वाभिव्यक्तौ सत्यामेवोत्पत्तिसंभवात् तत्काले तद्विषयस्य अव्यक्तरूपव्यंजनत्वाभावात् इति व्यजनावग्रहाश्चत्वार एव ॥ २०७ ॥

स० चं०—मतिज्ञानका विषय दोय प्रकार एक व्यंजन एक अर्थ । तहां जो विषय इंद्रियनिकरि प्राप्त होइ स्पर्शित होइ सो व्यंजन कहिए । जो प्राप्त न होइ सो अर्थ कहिए । तिनिका विशेष ग्रहणरूप व्यंजनावग्रह अर अर्थावग्रह भेद प्रवर्तै है। इहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकाविषैं तौ अर्थ ऐसा कीया है जो व्यंजन नाम अव्यक्त शब्दादिकका है इहां प्राप्त अर्थकौं व्यंजन कह्या सो कैसैं है? ताका समाधान—व्यंजन शब्दके दोऊ अर्थ हो हैं 'विगतं अंजनं व्यंजनं' दूरि भया है अंजन कहिए व्यक्तभाव जाकैं सो व्यंजन कहिए । सो तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकाविषैं तौ इस अर्थका मुख्य ग्रहण कीया है 'अर व्यज्यते म्रक्ष्यते प्राप्यते इति व्यंजनं' जो प्राप्त होइ ताकौं व्यंजन कहिए सो इहां यहु अर्थ मुख्य ग्रहण कीया है जातैं अंजु धातु गति व्यक्ति म्रक्षण अर्थविषैं प्रवर्तै है तातैं व्यक्ति अर्थका अर म्रक्षण अर्थका ग्रहण करनेतैं कर्णादिक इंद्रियनिकरि शब्दादिक अर्थ प्राप्त हूवे भी यावत् व्यक्त न होइ तावत् व्यंजनावग्रह है व्यक्त भएं अर्थावग्रह हो है जैसैं नवा माटीका शरावा जलकी बूंदनिकरि सीचिए तहां एक दोय बार आदि जलकी बूंद परैं व्यक्त न होइ शोषित होइ जाय बहुतवार जलकी बूंद परैं व्यक्त होइ तैसैं कर्णादिककरि प्राप्त हूवा जो शब्दादिक तिनिका यावत् व्यक्तरूप ज्ञान न होइ जो मैंने शब्द सुन्या ऐसा व्यक्त ज्ञान न होइ तावत् व्यंजनावग्रह कहिए । बहुरि बहुत समय पर्यंत इंद्रिय अर विषयका संयोग रहैं व्यक्तरूपज्ञान भएं अर्थावग्रह कहिए बहुरि नेत्र इंद्रिय अर मन ए दूरहीतैं पदार्थकौं जानैं हैं तातैं इनि दोऊनिकैं व्यंजनावग्रह नाहीं अर्थावग्रह ही है । इहां प्रश्न -जैसैं कर्णादिककरि दूरितैं शब्दादिक जानिए है तैसैं ही नेत्रकरि वर्ण जानिए है, वाकौं प्राप्त कह्या अर याकौं अप्राप्त कह्या सो कैसैं हैं ? ताका समाधान-दूरि जो शब्द हो है ताकौं यहु नाहीं जानैं है जो दूरि भया शब्द ताके निमित्ततैं आकाशविषैं जे अनेक स्कंध तिष्ठै हैं ते शब्दरूप परिणए है तहां कर्ण

इंद्रियके समीपवर्ती भी स्कंध शब्दरूप परिणए हैं सो तिनिका कर्ण इंद्रियकरि स्पर्श भया है तब शब्दका ज्ञान हो है। ऐसें ही दूरि तिष्ठता सुगंध दुर्गंध वस्तुके निमित्ततैं पुद्गल स्कंध तत्काल तद्रूप परिणवे हैं तहां जो नासिका इंद्रियके समीपवर्ती स्कंध परिणए हैं तिनिके स्पर्शतैं गंधका ज्ञान हो है ऐसें ही अग्न्यादिकके निमित्ततैं पुद्गल स्कंध उष्णादिरूप परिणवे हैं तहां जो स्पर्शन इंद्रियके समीपवर्ती स्कंध परिणए हैं तिनिके स्पर्शतैं स्पर्श ज्ञान हो है ऐसें ही आम्लादि वस्तुके निमित्ततैं स्कंध तद्रूप परिणवे है तहां रसना इंद्रियके समीपवर्ती जो स्कंध परिणए तिनिके संयोगतैं रसका ज्ञान हो है। बहुरि यहु श्रुतज्ञानके बलकरि जाके निमित्ततैं शब्द आदि भए ताकौं जानि ऐसा मानैं है कि मैं दूर वर्ती वस्तुकौं जान्या ऐसें दूरवर्ती वस्तुके जाननेविषैं भी प्राप्त होना सिद्ध भया अर समीपवर्तीकौं तो प्राप्त होकर जानैं ही है। इहां शब्दादिक परमाणु अर कर्णादिक इंद्रिय परस्पर प्राप्त होंइ अर यावत् जीवकैं व्यक्त ज्ञान न होइ तावत् व्यंजनावग्रह है व्यक्तज्ञान भएं अर्थावग्रह हो है। बहुरि मन अर नेत्र दूरिहीतैं जानैं हैं ऐसा नाहीं जो शब्दादिककी ज्यों जानैं तातैं पदार्थ तो दूरि तिष्ठै है ही जब इननैं ग्रहै तब व्यक्त ही ग्रहै तातैं व्यंजनावग्रह इनि दोऊनिकैं नाहीं अर्थावग्रह ही है। उक्तं च—

पुट्ठं सुणेदि सद्दं अपुट्ठं पुण पस्सदे रूवं।
गंधं रसं च फासं बद्धं पुट्ठं वियाणादि ॥ १ ॥

बहुरि नैयायिकमतवाले ऐसा कहैं हैं--मन अर नेत्र भी प्राप्त होइकरि ही वस्तुकौं जानैं हैं ताका निराकरण जैन न्यायके शास्त्रनिविषैं अनेक प्रकार कीया है। बहुरि व्यंजन जो अव्यक्त शब्दादिक तिनिविषैं स्पर्शन रसन घ्राण श्रोत्र इंद्रियनिकरि केवल अवग्रह हो है ईहादिक न हो हैं जातैं ईहादिक तो एकदेश वा सर्वदेश व्यक्त भएं ही हो हैं। व्यंजन नाम अव्यक्तका है तातैं च्यारि इंद्रियनिकरि व्यंजनावग्रहके च्यारि भेद हैं ॥ ३०७ ॥

विसयाणं विसईणं संजोगाणंतरं हवे णियमा।

अवगहणाणं गहिदे विसेसकंखा हवे ईहा ॥ ३०८ ॥

विषयाणां विषयिणां संयोगानंतरं भवेन्नियमात्।
अवग्रहज्ञानं गृहीते विशेषाकांक्षा भवेदीहा ॥ ३०८ ॥

जी॰ प्र०—विषयाणां-अर्थानां, विषयिणां इंद्रियाणां च संयोगः-योग्यदेशावस्थानरूपसंबंधः तस्मिन् जाते सति अनंतरं-तदनंतरमेव वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यस्य निर्विकल्पग्रहणमिदमिति प्रकाशरूपं दर्शनं नियमादुत्पद्यते-नियमाज्जायते। अनंतरं तदनंतरं दृष्टस्यार्थस्य वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूपं अवग्रहाख्यं आद्य ज्ञानं भवेत् उत्पद्यते। 'अक्षार्थयोगे सत्तालोकोर्थाकारविकल्पधी· अवग्रह' इति श्रीमद्भट्टाकलंकपादैः, 'दर्शनपूर्वकं ज्ञानं छद्मस्थानां' इति श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिभिरपि प्रोक्तत्वात्, इंद्रियार्थसंबंधानंतरं दर्शनमुत्पद्यते इत्येतस्मिन् गाथासूत्रे अनुक्तमपि पूर्वाचार्यवचनानुसारेण व्याख्यानं ग्राह्यं। गृहीते-अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञाते अर्थविशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। अथवा पताकारूपं विषयमालंब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा पताकायामेव संजायमाना आकांक्षा ईहेति द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। एवं इंद्रियांतरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसंभवात्। अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका इति संशयस्य, बलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥ ३०८ ॥

मं॰ प्र०—विषयाणा,अर्थाना, विषयिणां इंद्रियाणां च संयोगः-योग्यदेशावस्थानरूपः संबंधः। तस्मिन् सति तदनंतरमेव वस्तुसत्तामात्रलक्षणसामान्यस्य निर्विकल्पग्रहणमिदमिति प्रकाशरूप दर्शनं नियमादुत्पद्यते, तदनतरं दृष्टस्यार्थस्य वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणरूपमवग्रहाख्यमाद्यं ज्ञानं भवेत्—उत्पद्यते। अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधीः अवग्रह इति श्रीमद्भट्टाकलंकपादैः 'दर्शनपूर्वकं ज्ञानं छद्मस्थानामिति' श्रीनेमिचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिभिरपि प्रोक्तत्वात् इंद्रियार्थसंबंधानंतर दर्शनमुत्पद्यते इत्येतस्मिन् गाथासूत्रे अनुक्तमपि पूर्वाचार्यवचनानुसारेण व्याख्यातं ग्राह्यं। गृहीते अवग्रहेण इदं श्वेतमिति ज्ञाते अर्थे विशेषस्य बलाकारूपस्य पताकारूपस्य वा यथावस्थितस्य आकांक्षा बलाकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा बलाकायामेव संजायमाना ईहाख्यं द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। अथवा पताकारूपविषयमालंब्य उत्पद्यमाना अनया पताकया भवितव्यमिति भवितव्यताप्रत्ययरूपा आकांक्षा ईहानाम द्वितीयं ज्ञानं भवेत्। एवमिंद्रियांतरविषयेषु मनोविषये च अवग्रहगृहीते यथावस्थितस्य विशेषस्य आकांक्षारूपा ईहेति निश्चेतव्यं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य तारतम्यभेदेन अवग्रहेहाज्ञानयोर्भेदसंभवात्, अस्मिन् सम्यग्ज्ञानप्रकरणे बलाका वा पताका वा इति संशयस्य बलाकायां पताकया भवितव्यमिति विपर्ययस्य च मिथ्याज्ञानस्यानवतारात् ॥३०८॥

स० चं०----विषय जो शब्दादिक पदार्थ अर विषयी जे कर्णादिक इंद्रियां इनिका जो संयोग कहिये योग्य क्षेत्रविषैं तिष्ठनेरूप संबंध ताकौं होतैं संतैं ताके अनंतर ही वस्तुका सत्तामात्र निर्विकल्प ग्रहण जो यहु है इतना प्रकाशरूप सो दर्शन नियमकरि हो है। ताके अनंतर पीछै ही देख्या जो पदार्थ ताके वर्ण संस्थानादि विशेष ग्रहणरूप अवग्रह नामा ज्ञान हो है। इहां प्रश्न--जो गाथाविषैं तौ पहिलैं दर्शन न कह्या तुम कैसैं कहो हो? ताका समाधान--जो अन्य ग्रंथनिमैं कह्या है--'अक्षार्थयोगे सत्तालोकोर्थाकारविकल्पधीरवग्रहः' इंद्रिय अर विषयके संयोग होतैं प्रथम सत्तावलोकनमात्र दर्शन हो है पीछैं पदार्थका आकार विशेष जाननेरूप अवग्रह हो है ऐसा अकलंकाचार्यकरि कह्या है बहुरि "दंसणपुव्वं णाणं छद्मत्थाणं हवेदि णियमेण' छद्मस्थ जीवनिकै नियमतै दर्शन पूर्वक ही ज्ञान हो है ऐसा नेमिचंद्राचार्यने द्रव्यसहनामा ग्रंथमें कह्या है। बहुरि तत्त्वार्थ सूत्रकी टीकावालेनैं ऐसा कह्या है तातैं इहां ज्ञानाधिकारविषैं दर्शनका कथन न कीया तौ भी अन्यग्रंथनितैं ऐसैं ही जानना। सो अवग्रहकरि तौ इतना ग्रहण भया जो यहु श्वेत वस्तु है बहुरि श्वेत तौ बुगलनिकी पंक्ति भी हो है अर ध्वजा भी हो है परि बुगलेनिकी पंकतिरूप विषयकौं अवलंबि यहु बुगलेनिकी पंकति ही होसी वा ध्वजारूप विषयकौं अवलंबि यहु ध्वजा होसी ऐसा विशेष वांछारूप जो ज्ञान ताकौं ईहा कहिए। बहुरि बुगलनिकी यहु पंकति होसी कि ध्वजा होसी ऐसा संशयरूप ज्ञानका नाम ईहा नाही है। वा बुगलनिकी पंकतिविषैं यहु ध्वजा होसी ऐसा विपर्यय ज्ञानका नाम ईहा नाही है जातैं इहां सम्यग्ज्ञानका अधिकार है सम्यग्ज्ञान प्रमाण है अर संशय विपर्यय है सो मिथ्याज्ञान है तातैं संशय विपर्ययका नाम ईहा नाही। जो वस्तु है ताका यथार्थरूप ऐसा ज्ञान करना कि यहु अमुक ही वस्तु होसी ऐसैं होसीरूप जो प्रतीति ताका नाम ईहा है। अवग्रहतैं ईहाविषैं विशेष ग्रहण भया तातैं याके वाकेविषैं मतिज्ञानवरणके क्षयोपशमका तारतम्यकरि भेद जानना॥ ३०८॥

ईहणकरणेण जदा सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।

कालांतरेवि णिण्णिदवत्थुसमरणस्स कारणं तुरियं ॥ ३०९

ईहनकरणेन यदा सुनिर्णयो भवति स अवायस्तु ।
कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणस्य कारणं तुर्यं ॥ ३०९ ॥

जी० प्र०—ईहनकारणेन-विशेषाकांक्षाक्रियायाः पश्चात् यदा ईहितविशेषार्थस्य सुनिर्णयः उत्पतनपतनपक्षविक्षेपादिभिश्चिन्हैः इयं बलाकैवेति बलाकात्वस्य यः सुनिश्चयो भवेत् तदा स अवाय इति व्यपदिश्यते । तुशब्दः प्रागाकांक्षितविशेषस्यैव सुनिर्णयोऽवाय इत्यवधारणार्थः । अनेन विपर्यासेन निर्णयो मिथ्याज्ञानतया अवायो न भवतीति ग्राह्यं ततः स एवावायः पुनः पुनः प्रवृत्तिरूपाभ्यासजनितसंस्कारात्मको भूत्वा कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वेन तुर्यं चतुर्थं धारणाख्यं ज्ञान भवति ॥ ३०९ ॥

मं० प्र०—ईहनकरणात्-विशेषाकाङ्क्षाक्रियायाः, पश्चात् यदा ईहितविशेषस्य सुनिर्णयः उत्पतनपतनपक्षविक्षेपादिभिश्चिह्नैरियं बलाकैवेति बलाकात्वस्य यः सुनिश्चयो भवेत् तदा स अवाय इति व्यपदिश्यते । तुशब्दः प्रागाकाक्षितविशेषस्यैव सुनिर्णयोऽवाय इत्यवधारणार्थः । अनेन विपर्यासेन निर्णयो मिथ्याज्ञानतया अवायो न भवतीति ग्राह्यं । ततः स एव अवायः पुनः पुनः प्रवृत्तिरूपाभ्यासजानितसस्कारात्मकः सन् कालांतरेऽपि निर्णीतवस्तुस्मरणकारणत्वेन तुर्यं धारणाख्यं चतुर्थज्ञानं भवति ॥ ३०९ ॥

स० चं०—ईहाके करनेकरि ताके पीछैं जिस वस्तुकी ईहा भई थी ताका भलेप्रकार निर्णय रूप जो ज्ञान ताकौं अवाय कहिए। जैसैं पांखनिका हलावना आदि चिह्नकरि यहु निश्चय कीया जो बुगलनिकी पंकतिही है निश्चयकरि और किछू नाहीं ऐसा निर्णयका नाम अवाय है। तुशब्दकरि पूर्वे जो ईहाविषैं वांछित वस्तु था ताहीका भले प्रकार निर्णय सो अवाय है। बहुरि जो वस्तु किछू और है अर और ही वस्तुका निश्चयकरि लीया है तो वाका नाम अवाय नाहीं वह मिथ्याज्ञान है। बहुरि वहां पीछैं बार बार निश्चयरूप अभ्यासतैं उपज्या जो संस्कार तींहि स्वरूप होइ केते इक कालकौं व्यतीत भएं भी यादि आवनेकौं कारणभूत जो ज्ञान सो धारणा नाम चौथा ज्ञानका भेद हो है ऐसैं ही सर्व इंद्रिय वा मन संबंधी अवग्रह ईहा अवाय धारणा भेद जानने ॥३०९॥

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च ।

तत्थेक्के जादे छत्तीसं तिसयभेदं तु ॥ ३१० ॥

बहु बहुविधं च क्षिप्रानिःसृदनुक्तं ध्रुवं च इतरच्च ।
तत्रैकैकस्मिन् जाते षट्त्रिंशत्त्रिशतभेदं तु ॥ ३१० ॥

जी० प्र०—अर्थो व्यंजनं वा मतिज्ञानविषयः बहु. बहुविधः क्षिप्र. अनिसृतः अनुक्त ध्रुवश्चेति षोढा । तथा इतरोऽपि एकः एकविधः अक्षिप्रः निसृत उक्त अध्रुवश्चेति षोढा एवं द्वादशधा भवति। तत्र द्वादशस्वपि एकैकस्मिन् विषये प्रागुक्ताष्टाविंशतिप्रकारे मतिज्ञाने जाते-उत्पन्ने सति मतिज्ञान तु पुनः षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदं भवति ३३६ । तद्यथा--बहुविषये अर्थात्मके अनिन्द्रियेंद्रियभेदेन मतिज्ञानस्य भेदाः षट्, त एव पुनः अवग्रहेहावायधारणाभेदेन प्रत्येकं चत्वारश्चत्वारो भूत्वा चतुर्विंशतिः । तथा व्यंजनात्मके तु स्पर्शनरसनघ्राण-चक्षुःश्रोत्रैश्चत्वारोऽवग्रहा एव । एवमर्थव्यंजनात्मके बहुविषये मिलित्वा मतिज्ञानभेदा अष्टाविंशतिर्भवंति । अनेन प्रकारेण अर्थव्यंजनात्मक-बहुविधादिष्वपि प्रत्येकमष्टाविंशत्यष्टाविंशतिज्ञानभेदेषु जातेषु द्वादशविषयेषु मतिज्ञानभेदाः षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतीप्रमिता भवंति । यद्येकस्मिन्विषये अष्टाविंशतिर्मतिज्ञानभेदा भवंति तदा द्वादशसु विषयेषु कियंतो मतिज्ञानभेदा भवंतीति प्र १ । फ १८ । इ १२ त्रैराशिकं कृत्वा इच्छां फलेन संगुण्य प्रमाणेन भक्त्वा लब्धस्य तत्प्रमाणत्वात् ॥ ३१० ॥

म० प्र०—अर्थस्य व्यंजनस्य च मतिज्ञानविषयस्य द्वादश भेदा भवति—बहुर्बहुविधः क्षिप्रः अनिसृतः अनुक्तः ध्रुवश्चेति षट् । तदितरे च एकः एकविध. अक्षिप्र· निसृतः उक्तः अध्रुवश्चेति षट् । तत्र—तेषु बह्वादिषु विषयेषु एकैकस्मिन् विषये प्रागुक्ताष्टाविंशतिप्रकारे मतिज्ञाने जाते—उत्पन्ने सति मतिज्ञानं तु—पुनः षट्त्रिंशदुत्तरत्रिशतभेदं भवति । तद्यथा—बहौ विषये अर्थात्मके पंचभ्य इन्द्रियेभ्यः मनसश्च प्रत्येकमवग्रहेहावायधारणाख्या मतिज्ञानभेदा-श्चत्वारः, इतींद्रियानिंद्रियेभ्यः सपिंडिताश्चतुर्विंशतिरुत्पद्यंते । तथा व्यंजनात्मके बहौ विषये स्पर्शनरसनघ्राणश्रोत्राख्येंद्रियचतुष्कात् चत्वारोऽवग्रहा एव जायते इति बहौ विषये मिलित्वा मतिज्ञानभेदाः अष्टाविंशतिर्भवति । एवं बहुविधादिषु पंचसु तदितरेषु च षट्सु विषयेषु प्रत्येकमष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदा जायते इत्यष्टाविंशत्या द्वादशसु विषयभेदेषु गुणितेषु सर्वे मतिज्ञानभेदाः षट्त्रिंशदुत्तरात्रिशतीप्रमिता भवति । ३३६ । यद्येकस्मिन् विषये प्र १, अष्टाविंशतिमतिज्ञानभेदा भवति फ २८ । तदा द्वादसु विषयेषु इ १२ कियंतो भवंतीति त्रैराशिकेन लब्धा मतिज्ञानभेदाः ॥ ३१० ॥

स० चं०—अर्थरूप वा व्यंजनरूप जो मतिज्ञानका विषय ताके बारह भेद हैं--बहु १ बहुविध १ क्षिप्र १ अनिसृत १ अनुक्त १ ध्रुव १ ए छह बहुरि इतर जे छहौं इनके प्रतिपक्षी एक एकविध अक्षिप्र निसृत उक्त अध्रुव ए छह ऐसैं बारह भेद जानने सो व्यंजनावग्रहके च्यारि इंद्रियनि करि च्यारि भेद भए अर अर्थके अवग्रह ईहा

अवाय धारणातैं पंच इंद्रिय छठा मन करि चौबीस भेद भए मिलाएं ते अठाईस भेद भए सो व्यंजन रूप बहु विषयका च्यारि इंद्रियनिकरि अवग्रह हो है सो च्यारि भेद तौ ए भए अर अर्थ रूप बहुविषयका पंच इंद्रिय छठा मनकरि गुणैं अवग्रह ईहा अवाय धारणा हो हैं तातैं चौबीस भए। ऐसैं एक बहुविषय संबंधी अठाईस भेद भए। ऐसैं ही बहुविध आदि भेदनिविषैं अठाईस अठाईस भेद हो हैं। सबकौं मिलाएं बारह विषयनिविषैं मतिज्ञान के तीनसै छत्तीस भेद हो हैं जो एक विषयविषैं अठाईस भेद होइ तौ बारह विषयनिविषैं केते होंहि ऐसैं त्रैराशिक कीएं लब्धराशिमात्र तीनसै छत्तीस मतिज्ञानके भेद हो हैं ॥ ३१० ॥

बहुवत्तिजादिगहणे बहुबहुविहमियरमियरगहणम्हि।
सगणामादो सिद्धा खिप्पादी सेदरा य तहा ॥ ३११ ॥

बहुव्यक्तिजातिग्रहणे बहुबहुविधमितरदितरग्रहणे।
स्वकनामतः सिद्धाः क्षिप्रादयः सेतराश्च तथा ॥ ३११ ॥

जी० प्र०— बहुव्यक्तीनां ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुरित्युच्यते यथा खंडमुंडशवलादिबहुगोव्यक्तयः। बहुजातीनां ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुविध इत्युच्यते यथा गोमहिषाश्वादिबहुजातयः इति। इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकः यथा खंडेयमिति। एकजातिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकविधः यथा खंडो वा मुडो वा गौरिति। क्षिप्रादयः क्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः स्वेतरे च अक्षिप्रनिसृतोक्त ध्रुवाश्च स्वस्वनामत एव सिद्धाः। तथाहि क्षिप्रः शीघ्रपतज्जलधाराप्रवाहादिः। अनिसृतः गूढः जलमग्नहस्त्यादिः। अनुक्तः- अकथितः अभिप्रायगतः। ध्रुवः स्थिरः चिरकालावस्थायी पर्वतादिः। अक्षिप्रः मंदं गच्छन्नश्वादिः। निसृतः व्यक्तनिष्क्रांतः जलनिर्गतहस्त्यादिः। उक्तः अयं घटः इति कथितो दृश्यमानः। अध्रुवः क्षणस्थायी विद्युदादिः। तथाचेतिशब्दौ समुच्चयार्थौ ॥ ३११ ॥

मं० प्र०—बहुव्यक्तीनां ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुरित्युच्यते यथा खंडमुडशवलादिबहुगोव्यक्तयः। बहुजातिना ग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषयो बहुविध इत्युच्यते यथा गोमहिषाश्वादयो बहुजातयः इति। इतरग्रहणे एकव्यक्तिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकः यथा खंडोऽयमिति। एकजातिग्रहणे मतिज्ञाने तद्विषय एकविधः खंडो वा मुंडो गौरिति। क्षिप्रादयः क्षिप्रानिसृतानुक्तध्रुवाः स्वेतरे च अक्षिप्रानिसृतोक्तध्रुवाः स्वस्वनामत एव सिद्धाः। तथाहि–क्षिप्र.–

शीघ्रपतज्जलधाराप्रवाहादिः । अनिसृतः--गूढः--जलमग्नहस्त्यादिः । अनुक्तः--अकथितः अभिप्रायगतः, ध्रुवः--स्थिरः चिरकालावस्थायी पर्वतादिः । अक्षिप्रः मंदं गच्छन्नश्वादिः । निसृतः--व्यक्तानिष्क्रातः जलनिर्गतहस्त्यादिः । उक्तः--अयं घट इति कथितो दृश्यमानः, अध्रुवः क्षणस्थायी विद्युदादिः तथाचेति समुच्चयार्थौ ॥ ३११ ॥

स० चं०--जहां बहुत व्यक्तिका ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं बहु कहिए । बहुरि जहां बहुजातिका ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं बहुविध कहिए । बहुरि ऐसैं ही इतरका ग्रहणविषैं जहां एक व्यक्तिका ग्रहण रूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं एक कहिए । बहुरि जहां एक जातिका ग्रहणरूप मतिज्ञान होइ ताके विषयकौं एकविध कहिए । इहां उदाहरण दिखाइए हैं जैसैं खाड़ी गऊ सावली गऊ मूड़ी गऊ इत्यादिक अनेक गऊनिकी व्यक्तिकौं बहु कहिए । बहुरि गऊ भैंस घोड़े इत्यादि अनेक जातिकौं बहुविध कहिए । बहुरि एक खाडी गऊ ऐसी गऊकी एक व्यक्तिकौं एक कहिए । बहुरि खाड़ी मूडी सावली गऊ है ऐसी एक जातिकौं एकविध कहिए । एक जातिविषैं अनेक व्यक्ति पाइए हैं । ऐसैं बारह भेदनिविषैं च्यारि तौ कहे । बहुरि अवशेष क्षिप्रादिक च्यारि अर इनिके प्रतिपक्षी च्यारि ते अपने नामहीतैं प्रसिद्ध हैं । सोही कहिए है--क्षिप्र शीघ्रकौं कहिए जैसैं शीघ्र पडती जल धारा वा जल प्रवाह । बहुरि अनिसृत गूढकौं कहिए जैसैं जलविषैं मगन हूवा हाथी । बहुरि अनुक्त विना कहेकौं कहिए जैसैं विनाही कहे किछू अभिप्रायहीतैं जाननेमें आवै । बहुरि ध्रुव अचलकौं वा बहुत काल स्थायीकौं कहिए जैसैं पर्वतादिक । बहुरि अक्षिप्र ढीलेकौं कहिए जैसैं मंद चालता घोटकादिक । बहुरि निसृत प्रगटकौं कहिए जैसैं जलतैं निकस्या हूवा हाथी । बहुरि उक्त कहेकौ कहिए जैसैं काहूनैं कह्या यहु घट है । बहुरि अध्रुव चंचल वा विनाशीककौं कहिए जैसैं क्षणस्थायी विजुरी आदि । ऐसैं बारह प्रकार मतिज्ञानके विषय हैं । भावार्थ--जाकौं जानिए यहु शीघ्र प्रवर्तै है सो क्षिप्र कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यह गूढ है सो अनिसृत कहिए । बहुरि जाकौं विना कहैं जानिए सो अनुक्त कहिए । बहुरि जाकौं जानिए यहु ध्रुव है सो ध्रुव कहिए इत्यादिक मतिज्ञानके विषय हैं । इनिकौं मतिज्ञानकरि जानिए है ॥ ३११ ॥

वत्थुस्स पदेसादो वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा ।
सयलं वा अवलंबिय अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई ॥ ३१२ ॥

वस्तुनः प्रदेशात् वस्तुग्रहणं तु वस्तुदेशं वा ।
सकलं वा अवलंब्य अनिसृतमन्यवस्तुगतिः ॥ ३१२ ॥

जी० प्र०—कस्यचिद्वस्तुनः, प्रदेशाद्-एकदेशाद् व्यक्तात् तदविनाभाविनोऽव्यक्तस्य वस्तुनो ग्रहणं अनिसृतज्ञानं । अथवा एकस्य वस्तुनः एकदेशं वा सकलं वस्तु वा अवलंब्य गृहीत्वा पुनरन्यस्य वस्तुनः गतिः—ज्ञानं यत्, तदप्यनिसृतज्ञानं भवति ॥ ३१२ ॥ तदुदाहरति—

मं० प्र०—कस्यचिद्वस्तुनः, प्रदेशात्—एकदेशात् व्यक्तात् तदविनाभाविनोऽव्यक्तस्य वस्तुनो ग्रहणमनिसृतज्ञानं । अथवा एकस्य वस्तुनः एकदेशं वा सकलवस्तु वा अवलंब्य—गृहीत्वा पुनरन्यस्य वस्तुनो गतिः—ज्ञानं यत्, तदप्यानिसृतज्ञानं भवति ॥ ३१२ ॥

स० चं०—किसी वस्तुका प्रदेश कहिए एकोदेश अंश प्रगट है तातैं जो वह एकोदेश अंश जिस वस्तु बिना न होइ ऐसे अप्रगट वस्तुका ग्रहण कीजिए सो अनिःसृतज्ञान है अथवा एक किसी वस्तुका एकोदेश अंशकौं वा सर्वांग वस्तुहीकौं अवलंबिकरि ग्रहण करि अन्य कोई अप्रकट वस्तुका ग्रहण करना सो भी अनिःसृत ज्ञान है इनिके उदाहरण आगें कहैं हैं ॥ ३१२ ॥

पुक्खरगहणे काले हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा ।
वत्थंतरचंदस्स य धेणुस्स य बोहणं च हवे ॥ ३१३ ॥

पुष्करग्रहणे काले हस्तिनश्च वदनगवयग्रहणे वा ।
वस्त्वंतरचंद्रस्य च धेनोश्च बोधनं च भवेत् ॥ ३१३ ॥

जी० प्र०—पुष्करस्य जलाद्बहिर्दृश्यमानस्य जलमग्नहस्तिकराग्रस्य ग्रहणकाले दर्शनकाले एव तदविनाभाविजलमग्नहस्तिग्रहणं जले ह-

स्ती मग्नोऽस्तीति प्रतीतिः । वा इव यथा अनेन अस्मात् साध्याविनाभावनियमनिश्चयात् साधनात् साध्यस्य ज्ञानमनुमानमिति अनुमानप्रमाणं संगृहीतं भवति। अथवा कस्याश्चित् युवतेर्वदनग्रहणकाले वस्त्वंतरस्य चंद्रस्य ग्रहणं। मुखसादृश्याचंद्रस्य स्मरणं चंद्रसदृशं मुखमिति प्रत्यभिज्ञानं वा। अरण्ये गवयग्रहणकाले गवयदर्शनकाल एव धेनोर्बोधनं स्मरणं गोसदृशो गवय इति प्रत्यभिज्ञानं वा भवेत् । वा इव यथा अत्र इवार्थद्योतको वाशब्दः उदाहरणप्रदर्शने प्रयुक्तः अनंतरगाथोक्तानिसृतार्थज्ञानस्य एतावंत्युदाहरणानि। पक्षांतरसूचको वा । यथा महानसे अग्नौ सत्येव धूम उपपन्नो दृष्टः। ह्रदे अग्न्यभावे धूमोऽनुपपन्नो निश्चितः। तथा सर्वदेशकालसंबंधितया अग्निधूमयोरन्यथानुपपत्तिरूपस्य अविनाभावसंबंधस्य ज्ञानं तर्कः सोपि च मतिज्ञानं भवति । एवमनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काख्यानि चत्वारि मतिज्ञानानि अनिसृतार्थविषयाणि केवलपरोक्षाणि एकदेशतोऽपि वैशद्याभावात् । शेषाणि स्पर्शनादींद्रियानिंद्रियव्यापारप्रभवानि बह्वाद्यर्थविषयाणि मतिज्ञानानि सांव्यवहारिकप्रत्यक्षाणि एकदेशतो वैशद्यसंभवात् । प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानमिति पूर्वाचार्यैः प्रत्यक्षलक्षणस्योक्तत्वात् । तानि सर्वाणि मतिज्ञानानि प्रमाणानि सम्यग्ज्ञानत्वात् । सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं, इति प्रवचने (प्रोक्तत्वात्) प्रतिपादनात् ॥ ३१३ ॥

म० प्र०––पुष्करस्य जलाद्बहिर्दृश्यमानस्य जलमग्नहस्तिकराग्रस्य ग्रहणकाले––दर्शनकाल एव तदविनाभाविजलमग्नहस्तिग्रहणं–जले हस्ती मग्नोऽस्तीति प्रतीतिः वा इव यथा अनेन साध्याविनाभावनियमानिश्चयतः साधनात्साध्यस्य विज्ञानमनुमानमित्यनुमानप्रमाणं संगृहीतं । अथवा कस्याश्चिद् युवतेः, वदनग्रहणे–काले एव वस्त्वंतरस्य चंद्रस्य ग्रहणं मुखसादृश्याच्चंद्रस्य स्मरणं चद्रसदृश मुखमिति प्रत्यभिज्ञानं, वा अरण्ये गवयग्रहणकाले एव धेनोर्बोधनं स्मरणं गोसदृशो गवय इति प्रत्यभिज्ञानं वा भवेत् वा-इव यथा । अत्र इवार्थद्योतको वाशब्दः उदाहरणप्रदर्शने प्रयुक्त , अनंतरगाथोक्तानिसृतार्थज्ञानस्य एतान्युदाहरणानि । पक्षांतरसूचको वा । यथा महानसे अग्नौ सत्येव धूम उपपन्नो दृष्टः, ह्रदे अग्न्यभावे धूमोऽनुपपन्नो निश्चितः, तथा सर्वदेशकालसंबंधितया अग्निधूमयोरन्यथानुपपत्तिरूपस्याविनाभावसंबंधस्य ज्ञानं तर्काख्यं च मतिज्ञानं भवति । एवमनुमानस्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्काख्यानि चत्वारि मतिज्ञानानि अनिसृतविषयाणि केवलपरोक्षाणि एकदेशतोऽपि वैशद्याभावात् । शेषाणि स्पर्शनादींद्रियानिंद्रियव्यापारप्रभवानि मतिज्ञानानि बह्वादिविषयाणि साव्यवहारिकप्रत्यक्षाणि एकदेशतो वैशद्यसंभवात्, प्रत्यक्ष विशद ज्ञानमिति पूर्वाचार्यैः प्रत्यक्षलक्षणस्योक्तत्वात्। तानि सर्वाणि मतिज्ञानानि प्रमाणानि सम्यग्ज्ञानत्वात् । सम्यग्ज्ञान प्रमाणमिति प्रवचने प्रोक्तत्वात् ॥ ३१३ ॥

स० चं०–पुष्कर कहिए जलतैं वाहिर प्रगट दीसती ऐसी जलविषैं डूब्या हूवा हस्तीकी सूंडि ताकौं जाननेतैं ऐसी प्रतीति हो है कि इस जलविषैं हस्ती मगन है जातैं हस्ती बिना सूंडि न हो है। जिस बिना जो न होइ ताकौं तिसका साधन कहिए जैसैं अग्नि बिना धूम नाहीं तातैं अग्नि साध्य है धूम साधन है। सो साधनतैं साध्यका जानना सो अनुमान प्रमाण है। इहां सूंडि साधन, हस्ती साध्य है। सूंडितैं हस्तीका ज्ञान भया तातैं इहां

अनुमान प्रमाण आया । बहुरि किसी स्त्रीका मुख देखा सो मुखका ग्रहण समयविषैं चंद्रमाका स्मरण भया आगैं चंद्रमा देख्या था स्त्रीके मुखकी अर चंद्रमाकी सदृशता है सो स्त्रीका मुख देखितेही चंद्रमा यादि आया सो चंद्रमा तिस काल विषैं प्रकट न था ताका ज्ञान भया सो यहु स्मृति प्रमाण है । अथवा चंद्रमासमान स्त्रीका मुख है सो स्त्रीका मुख देखतैं चंद्रमाका ज्ञान भया तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान प्रमाण भी कहिये । ऐसैं ही वनविषैं गवय नामा तिर्यंचकौं देख्या तहां ऐसा यादि आया कि गऊके सदृश गवय होहै तातैं यहु स्मृति प्रमाण है अथवा गऊ समान गवय हो है सो गऊका ज्ञान गवयकौं देखते ही भया तातैं याकौं प्रत्यभिज्ञान भी कहिए । वा कहिए जैसैं ए उदाहरण कहे तैसैं और भी जाननें । जैसैं रसोईविषैं अग्नि होते संतै धूवा हो है अर द्रहविषैं अग्नि नाही तातैं धूवां भी नाहीं तातैं सर्व देश कालविषैं अग्नि अर धूवांकैं अन्यथा अनुपपत्ति भाव है । अन्यथा कहिए अग्नि न होइ तौ अनुपपत्ति कहिए धूवां भी न होइ सो ऐसा अन्यथा अनुपपत्तिका ज्ञान सो तर्क नामा प्रमाण भी मतिज्ञान है । या प्रकार अनुमान स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क ए च्यार्यो परोक्ष प्रमाण अनिःसृत है विषय जाका ऐसा मतिज्ञानके भेद जानने । पांचवां आगम नामा परोक्ष प्रमाण श्रुतज्ञानका भेद जानना । एकोदेशपनैं भी विशदता स्पष्टता इनिके जाननेविषैं नाहीं तातैं इनिकौं परोक्ष प्रमाण कहे और इनके बिना जो पांच इंद्रियनिकरि बहु बहुविध आदि जानिए है ते सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष जानने जातैं इनिके जाननेमें एकोदेश विशदता निर्मलता स्पष्टता पाइए है व्यवहारविषैं भी ऐसैं कहिए है जो मैं नेत्रनिस्यौं प्रत्यक्ष देख्या बहुरि इस मतिज्ञान विषैं पारमार्थिक प्रत्यक्षपना है नाहीं जातैं अपने विषयकौं तारतम्य रूप संपूर्ण स्पष्ट न जानैं । पूर्वै आचार्यनिकरि प्रत्यक्षका लक्षण विशद वा स्पष्ट ही कह्या है ऐसैं ए सर्व मतिज्ञानके भेद जानने ते भेद प्रमाण हैं जातैं ए सर्व सम्यग्ज्ञान हैं बहुरि "सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं" ऐसा सिद्धांतविषैं कह्या है ॥ ३१३ ॥

एक्कचउक्कं चउवीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा ।

इगिछव्वारसगुणिदे मदिणाणे होंति ठाणाणि ॥ ३१४ ॥

एकचतुष्कं चतुर्विंशत्यष्टाविंशतिश्च त्रिःप्रतिं कृत्वा ।
एकषड्द्वादशगुणिते मतिज्ञाने भवंति स्थानानि ॥ ३१४ ॥

जी०प्र०—मतिज्ञानं सामान्येन एकं १। अवग्रहेहावायधारणापेक्षया चत्वारि ४। इंद्रियानिंद्रियजनितार्थावग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुर्विंशतिः २४। अर्थव्यंजनोभयावग्रहापेक्षया अष्टाविंशतिः २८। एतानि चत्वारि स्थानानि त्रिःप्रतिकानि—

२८ । १	२८ । ६	२८ । १२
२४ । १	२४ । ६	२४ । १२
४ । १	४ । ६	४ । १२
१ । १	१ । ६	१ । १२

कृत्वा यथाक्रमं प्रथमं स्थानचतुष्टयं विषयसामान्येनैकेन गुणयेत्। द्वितीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिविषयषट्केन गुणयेत्। तृतीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिभिर्द्वादशविषयैर्गुणयेत्। एवं गुणिते सति मतिज्ञाने सामान्यविषयार्धविषयसर्वविषयापेक्षया स्थानानि भवंति ॥ ३१४ ॥ अथ श्रुतज्ञानप्ररूपणां प्रारभमाणः प्रथमस्तावत्तत्सामान्यलक्षणमाह—

मं० प्र०—मतिज्ञानसामान्यापेक्षया एकोंकः । १ । अवग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुरंकः । इंद्रियानिंद्रियजनितार्थावग्रहेहावायधारणापेक्षया चतुर्विंशत्यंकः । अर्थव्यंजनोभयावग्रहाद्यपेक्षया अष्टाविंशत्यंकः । २८ । एवं चत्वारि स्थानानि त्रिःप्रतिकं कृत्वा यथाक्रमं प्रथम स्थानचतुष्टयं विषयसामान्येनैकेन गुणयेत्, द्वितीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिविषयषट्केन गुणयेत्। तृतीयं स्थानचतुष्टयं बह्वादिभिर्विषयैः द्वादशभिर्गुणयेत् एवं गुणिते सति मतिज्ञाने विषयसामान्यार्धविषयसर्वविषयापेक्षाणि स्थानानि भवंति ॥ ३३४ ॥ अथ श्रुतज्ञानप्ररूपणा प्रारभमाणस्तावत्तत्सामान्यलक्षणमाह—

स० चं०—मतिज्ञान सामान्य अपेक्षा करि तौ एक है अर अवग्रह ईहा अवाय धारणाकी अपेक्षा च्यारि है बहुरि पांच इंद्रिय छठा मनकरि अर अवग्रह ईहा अवाय धारणाकी अपेक्षा चौवीस है। बहुरि व्यंजन अर अर्थका भेद कीएं अठाईस है सो एक च्यारि चौवीस अठाईस १ । ४ । २४ । २८ । ज्ञान च्यार्योंको जुदे जुदे तीन जायगा माडिए। तहां एक जायगा तौ सामान्यपनैं अपने अपने विषयकौं जानैं हैं ऐसा विषय संबंधी एक भेद

करि गुणिए तब तौ एक च्यारि चौबीस अठाईसभेद भए। बहुरि दूसरी जायगा बहु बहुविध क्षिप्र अनिःसृत अनुक्त ध्रुव ए छह प्रकार विषयके भेद करि गुणिए तब छह ६ चौबीस २४ के एकसौ चवालीस १४४ एकसौ अडसठि १६८ ऐसैं मतिज्ञानके विषय भेदनिकी अपेक्षा भेद भए। बहुरि तीसरी जायगा उनके प्रतिपक्षी सहित बारह विषय भेदनिकरि गुणिए तहां बारह १२ अडतालीस ४८ दोयसै अठ्यासी २८८ तीनसै छत्तीस ३३६ सर्व विषय भेदनिकी अपेक्षा मतिज्ञानके भेद भए। ऐसैं विवक्षा भेदकरि मतिज्ञानके स्थान दिखाए ॥३१४॥ आगैं श्रुतज्ञानकी प्ररूपणाका आरंभ करता संता प्रथमही श्रुतज्ञानका सामान्य लक्षण कहै हैं—

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभंतं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं णियमेणिह सद्दजं पमुहं ॥ ३१५ ॥

अर्थादर्थांतरमुपलभमानं भणंति श्रुतज्ञानं।
आभिनिबोधिकपूर्वं नियमेनेह शब्दजं प्रमुखं ॥ ३१५ ॥

जी० प्र०—मतिज्ञानेन निश्चितमर्थमवलंब्य अर्थांतरं-तत्संबद्धमन्यार्थमुपलभ्यमानं-अवबुध्यमानं श्रुतज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नं जीवस्य ज्ञानपर्यायं श्रुतज्ञानमिति मुनीश्वरा भणंति। तत्कथं भवेत्? आभिनिबोधिकपूर्वं-नियमेन आभिनिबोधिकं मतिज्ञानं पूर्वं कारणं यस्य तत् तथोक्तं आभिनिबोधिकपूर्वं, मतिज्ञानावरणक्षयोपशमेन मतिज्ञानमेव पूर्वं प्रथममुत्पद्यते पुनः--पश्चात् तद्गृहीतार्थमवलंब्य तद्बलादर्थांतरविषयं श्रुतज्ञानमुत्पद्यते नान्यप्रकारेणेति नियमशब्देन मतिज्ञानप्रवृत्त्यभावे श्रुतज्ञानाभाव इत्यवधार्यते। इह—अस्मिन् श्रुतज्ञानप्रकरणे अक्षरानक्षरात्मकयोः शब्दजलिंगजयोः श्रुतज्ञानभेदयोः मध्ये शब्दज-वर्णपदवाक्यात्मकशब्दजनितं श्रुतज्ञानं प्रमुखं प्रधानं दत्तग्रहणशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणां तन्मूलत्वात्। अनक्षरात्मकं तु लिंगजं श्रुतज्ञानं एकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतेषु जीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुपयोगित्वादप्रधानं भवति। श्रूयते श्रोत्रेंद्रियेण गृह्यते इति श्रुतः शब्दः, तस्मादुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतज्ञानमिति व्युत्पत्तेरपि अक्षरात्मकप्राधान्याश्रयणात्। अथ वा श्रुतमिति रूढिशब्दोयं मतिज्ञानपूर्वकस्य अर्थांतरज्ञानस्य प्रतिपादकः परमागमे रूढः। यथाकथंचिन्निरुक्तिसंभवः रूढिशब्दे अजहत्स्वार्थवृत्तिके कुशं लातीति कुशल इति कुशलादिशब्देषु निपुणाद्यर्थेषु रूढेषु तन्निरुक्तिवत्। तत्र जीवोऽस्तीत्युक्ते जीवोऽस्तीति शब्दज्ञानं श्रोत्रेंद्रियप्रभवं मतिज्ञानं भवति। ज्ञानेन

जीवोऽस्तीति शब्दवाच्यरूपे आत्मास्तित्वे वाच्यवाचकसंबंधसंकेतसंकलनपूर्वकं यत् ज्ञानमुत्पद्यते तदक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं भवति, अक्षरात्मकशब्दसमुत्पन्नत्वेन कार्ये कारणोपचारात्। वातशीतस्पर्शज्ञानेन वातप्रकृतिकस्य तत्स्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमक्षरात्मक लिंगजं श्रुतज्ञानं भवति, शब्दपूर्वकत्वाभावात् ॥ ३१५ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य अक्षरानक्षरात्मकभेदौ प्ररूपयति—

मं० प्र० —मतिज्ञानेन निश्चितादर्थात् तमर्थमालंब्य, अर्थांतरं--तत्सबद्धमन्यमर्थमुपलभमानं—अवबुध्यमानं श्रुतज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नं जीवस्य ज्ञानपर्याय श्रुतज्ञानमिति मुनीश्वरा भणति। तत्कीदृश ? आभिनिबोधिकपूर्वं नियमेन—आभिनिबोधिकं—मतिज्ञानं पूर्वं—कारणं, यस्य तत्तथोक्तं। मतिज्ञानावरणक्षयोपशमात् मतिज्ञानमेव प्रथममुत्पद्यते। पुनस्तद्गृहीतार्थमवलंव्य तद्बलादर्थांतरविषय श्रुतज्ञानमुत्पद्यते नान्यथेति नियमशब्देन मतिज्ञानप्रवृत्त्यभावे श्रुतज्ञानाभाव इत्यवधार्यते। इह श्रुतज्ञानप्रकरणे, अक्षरानक्षरात्मकयोः श्रुतज्ञानभेदयोः, शब्दजं—वर्णपदवाक्यात्मकशब्दप्रभवं श्रुतज्ञान प्रमुख--प्रधानं दत्तग्रहशास्त्राध्ययनादिसकलव्यवहाराणां तन्मूलत्वात्। अनक्षरात्मकं तु श्रुतज्ञान एकेंद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंतजीवेषु विद्यमानमपि व्यवहारानुपयोगात् अप्रधानं। श्रूयते—श्रोत्रेंद्रियेण गृह्यते इति श्रुतः शब्दः, तस्मादुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतज्ञानमिति व्युत्पत्तेरप्यक्षरात्मकप्राधान्याश्रयात्। अथवा श्रुतमिति रूढिशब्दोय मतिज्ञानपूर्वस्यार्थोत्तरज्ञानस्य प्रतिपादकः परमागमे रूढः। यथा कथंचिन्निरुक्तिसंभवः रुढिशब्दे अजहत्स्वार्थवृत्तिके कुशं लातीति कुशल इति कुशलादि शब्देषु निपुणाद्यर्थेषु रूढेषु तन्निरुक्तिवत्। तत्र जीवोऽस्तीत्युक्ते जीवोऽस्तीति शब्दज्ञान श्रोत्रेंद्रियप्रभव मतिज्ञान। तस्माज्जीवोऽस्तीति शब्दवाच्ये आत्मास्तित्वे वाच्यवाचकसबधसकेतसकलनपूर्वक यत् ज्ञानमुत्पद्यते तदक्षरात्मकश्रुतज्ञानं, अक्षरात्मकाच्छब्दादुत्पन्नत्वात्। कार्ये कारणोपचारात्। वातशीतस्पर्शज्ञानात् वातप्रकृतेस्तत्स्पर्शे अमनोज्ञज्ञानमनक्षरात्मक श्रुत शब्दपूर्वकत्वाभावात् ॥ ३१५ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य अक्षरानक्षरात्मकभेदौ प्ररूपयति—

स० चं०—मतिज्ञानकरि निश्चय कीया जो पदार्थ तिसकौं अवलंबि करि तिसही पदार्थके संबंधकौं लीएं अन्य कोई पदार्थ, ताकौं जो जानैं सो श्रुतज्ञान है सो श्रुतज्ञानावरण वीर्यांतराय कर्मके क्षयोपशमतैं उपजै है असैं मुनीश्वर कहै हैं। कैसा है श्रुतज्ञान? आभिनिबोधिक जो मतिज्ञान सो है पहिलैं जाके, पहिलैं मतिज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं मतिज्ञान होइ पीछैं मतिज्ञानकरि जो पदार्थ जान्या ताका अवलंबनकरि अन्य कोई पदार्थका जानना होइ सोई श्रुतज्ञान है। असा नियम जानना—पहिलैं मतिज्ञान भएं बिना सर्वथा श्रुतज्ञान न होइ। तीहि श्रुतज्ञानके दोय भेद हैं एक अक्षरात्मक। एक अनक्षरात्मक, इनिविषैं शब्दजं कहिए अक्षर पद छंदादिरूप शब्दतैं उत्पन्न भया जो अक्षरात्मक श्रुतज्ञान सो प्रमुख कहिए मुख्य प्रधान है जातैं देना लेना शास्त्र पढना इत्यादिक सर्व व्यवहारनिका मूल अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। बहुरि लिंग जो चिह्न तातैं उत्पन्न भया असा अनक्षरात्मक

श्रुतज्ञान सो एकेंद्रियतैं लगाइ पंचेंद्रिय पर्यंत सर्व जीवनिकैं है तथापि यातैं किछू व्यवहार प्रवृत्ति नाहीं तातैं प्रधान नाहीं। बहुरि 'श्रूयते इति श्रुतः शब्दः तदुत्पन्नमर्थज्ञानं श्रुतं' सुणिए ताकौं शब्द कहिए, शब्दतैं भया जो अर्थज्ञान ताकौं श्रुतज्ञान कहिए इस भी अर्थविषैं अक्षरात्मक श्रुतज्ञान ही प्रधान आया अथवा श्रुत ऐसा रूढि शब्द है सो मतिज्ञानपूर्वक अर्थांतरका जानने रूप ज्ञानका विशेष, तींहिं अर्थविषैं प्रवर्तै है जैसैं कुशल शब्दका अर्थ तौ यहु जो कुश कहिए डाभ ताकौं लाति कहिये दे सो कुशल परंतु रूढितैं प्रवीण पुरुषका नाम कुशल है तैसैं यहु श्रुतशब्द जानना। तहां 'जीवः अस्ति' ऐसा शब्द कह्या तहां कर्णरूप इंद्रिय मतिज्ञानकरि जीवः अस्ति ऐसे शब्दकौं ग्रह्या। बहुरि तींहिं ज्ञानकरि 'जीवनामा पदार्थ है' ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है शब्द अर अर्थके वाच्य वाचक संबंध है। अर्थ वाच्य है शब्द वाचक है। अर्थ है सो उस शब्दकरि कहने योग्य है, शब्द उस अर्थका कहन हारा है ऐसा जो ज्ञान भया सो श्रुतज्ञान है। सो इहां 'जीवः अस्ति' ऐसैं शब्दका जानना तौ मतिज्ञान है अर उसके निमित्ततैं जीव नामा पदार्थका अस्तित्व जानना सो श्रुतज्ञान है। ऐसैं ही सर्व अक्षरात्मक श्रुतज्ञानका स्वरूप जानना। अक्षरात्मक जो शब्द तातैं उत्पन्न भया जो ज्ञान ताकौं भी अक्षरात्मक कह्या। इहां कार्यविषैं कारणका उपचार कीया है परमार्थतैं ज्ञान कोई अक्षररूप है नाहीं। बहुरि जैसैं शीतल पवनका स्पर्श भया तहां शीतल पवनका जानना तौ मतिज्ञान है बहुरि तिसका ज्ञानकरि वायुकी प्रकृति वालेकौं यहु शीतल पवन अनिष्ट है ऐसा जानना सो श्रुतज्ञान है सो यहु अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है। अक्षरके निमित्ततैं भया नाहीं। ऐसैं ही सर्व अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानका स्वरूप जानना ॥३१५॥ आगैं श्रुतज्ञानके अक्षरात्मक अनक्षरात्मक भेदनिकौं दिखावैं हैं—

लोगाणमसंखमिदा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूऊणमक्खरगं ॥ ३१६ ॥

लोकानामसंख्यमितानि अनक्षरात्मके भवंति पट्स्थानानि ।
द्विरूपषष्ठवर्गप्रमाणं रूपोनमक्षरगं ॥ ३१६ ॥

जी० प्र०—श्रुतज्ञानस्य अनक्षरात्मकाक्षरात्मकौ द्वौ भेदौ, तत्र अनक्षरात्मके श्रुतज्ञाने पर्यायपर्यायसमासलक्षणे सर्वजघन्यज्ञानमादिं कृत्वा स्वोत्कृष्टपर्यंतं असंख्येयलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा भवति । ते च असंख्येयलोकमात्रवारपट्स्थानवृद्धया संवर्धिता भवंति । अक्षरात्मकं श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्ठवर्गस्य एकट्ठनाम्नो यावंति रूपाणि एकरूपोनानि संति तावंति अक्षराणि अपुनरुक्ताक्षराण्याश्रित्य संख्यातविकल्पं भवति । विवक्षितार्थाभिव्यक्तिनिमित्तं पुनरुक्ताक्षरग्रहणे ततोधिकप्रमाणं भवतीत्यर्थः ॥ ३१६ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य प्रकारांतरेण भेदान् गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—अनक्षरात्मके श्रुतभेदे—पर्यायपर्यायसमासलक्षणे सर्वजघन्यज्ञानादारभ्य स्वोत्कृष्टपर्यंतमसंख्यातलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा भवति । ते च असंख्येयलोकमात्रवारषट्स्थानवृद्धया संवृद्धाः । अक्षरात्मक श्रुतज्ञानं द्विरूपवर्गधारोत्पन्नषष्ठवर्गस्य एकट्ठनाम्नो यावति रूपाणि एकरूपहीनानि सति तावदपुनरुक्ताक्षराण्याश्रित्य संख्यातविकल्पं भवति । विवक्षितार्थाभिव्यक्तिनिमित्तपुनरुक्ताक्षरग्रहणे ततोऽधिकप्रमाणमपि भवतीत्यर्थः ॥ ३१६ ॥ अथ श्रुतज्ञानस्य प्रकारांतरेण भेदप्ररूपणार्थं गाथाद्वयमाह—

स० चं०—अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके भेद पर्याय अर पर्यायसमास, तीहिं विषैं जघन्यसौं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यातलोक प्रमाण ज्ञानके भेद हो हैं ते भेद असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धिकौं लीए हैं। बहुरि अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है सो द्विरूप वर्गधाराविषैं जो एकट्ठी नामा छठा स्थानक कह्या तामैं एक घटाएं जो प्रमाण रहै तितने अपुनरुक्त अक्षर हैं तिनकी अपेक्षा संख्यात भेद लीएं है। विवक्षित अर्थकौं प्रकट करने निमित्त बार बार जिन अक्षरनिकौं कहिए ऐसे पुनरुक्त अक्षरनिका प्रमाण अधिक संभवै है सो कथन आगैं होइगा ॥३१६॥ आगैं श्रुतज्ञानका अन्य प्रकार करि भेद कहनेके निमित्त दोय गाथा कहैं हैं—

पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थुपुव्वं च ॥ ३१७ ॥

तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं ।
आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंतित्ति ॥ ३१८ ॥

पर्यायाक्षरपदसघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च च प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥ ३१७ ॥
तेषां च समासैश्च विंशविधं वा हि भवति श्रुतज्ञानं ।
आवरणस्यापि भेदाः तावन्मात्रा भवंति इति ॥ ३१८ ॥

जी० प्र०—वा–अथवा, पर्यायाक्षरपदसंघातं पर्यायश्च अक्षरं च पदं च संघातश्चेति द्वंद्वैकत्वं । प्रतिपत्तिकानुयोगं–प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्चेति द्वंद्वैकत्वं । द्विकवारप्राभृतकं च प्राभृतकप्राभृतकमित्यर्थः । प्राभृतकं च वस्तु च पूर्वं च इति दशभेदा भवंति । तेषां पूर्वोक्तानां पर्यायादीनां दशभिः समासैः मिलित्वा श्रुतज्ञानं विंशतिविध भवति । अत्राक्षरादिविषयार्थज्ञानस्य भावश्रुतस्य विवक्षितत्वेन तेषां विंशतिविधत्वनियमे हेतुमाह–श्रुतज्ञानावरणस्य भेदा अपि तावन्मात्रा एव विंशतिविधा एव भवंति, इति इतिशब्दस्य हेत्वर्थवृत्तिसिद्धेः । तद्यथा–पर्यायः पर्यायसमासश्च, अक्षर, अक्षरसमासश्च, पद, पदसमासश्च, संघातः, संघातसमासश्च, प्रतिपत्तिकः, प्रतिपत्तिकसमासश्च, अनुयोगः, अनुयोगसमासश्च, प्राभृतकप्राभृतक, प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च, प्राभृतकं, प्राभृतकसमासश्च, वस्तु वस्तुसमासश्च, पूर्वं, पूर्वसमासश्चेति तदालापक्रमो भवति ॥ ३१७–३१८ ॥ अथ पर्यायनाम्न प्रथमश्रुतज्ञानस्य स्वरूपं गाथाचतुष्टयेनाह—

मं० प्र०—वा अथवा पर्यायाक्षरपदसंघातं–पर्यायश्च अक्षरं च पद च संघातश्चेति द्वंद्वैकत्व । प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्च प्रतिपत्तिकानुयोगं, अत्रापि तथा । चशब्दः समुच्चयार्थः । द्विकवारप्राभृत च प्राभृतकप्राभृतकमित्यर्थः । चशब्दः समुच्चयार्थः । द्वितीयश्चशब्दः छदःपूरणार्थः । तदभावपाठे वा । प्राभृतक वस्तु पूर्वं च । चशब्दः समुच्चयार्थः । इति दशभेदा ॥ ३१७ ॥

मं० प्र०—तेषां पूर्वोक्ताना पर्यायादीना दशभि. समासैः सह श्रुतज्ञानं विंशतिविधं भवति । अत्राक्षरादिविषयार्थज्ञानस्य भावश्रुतस्य विवक्षितत्वात् । तेषां विंशतिविधत्वनियमे हेतुमाह–श्रुतज्ञानावरणस्य भेदा अपि तावन्मात्रा एव–विंशतिविधा एव भवंति, इति–हेतोः, इतिशब्दस्य हेत्वर्थवृत्तेः प्रसिद्धत्वात् । तद्यथा–पर्यायः पर्यायसमासश्च, अक्षर अक्षरसमासश्च, पद पदसमासश्च, सघातः संघातसमासश्च, प्रतिपत्तिकः, प्रतिपत्तिकसमासश्च, अनुयोगः अनुयोगसमासश्च, प्राभृतकप्राभृतक प्राभृतकप्राभृतकसमासश्च, प्राभृतकं प्राभृतकसमासश्च, वस्तु वस्तुसमासश्च, पूर्वं पूर्वसमासश्चेति तदालापक्रमोयं ॥३१८॥ अथ पर्यायनाम्नः प्रथमश्रुतज्ञानभेदस्य स्वरूपप्ररूपणार्थं गाथाचतुष्टयमाह—

स० चं०—पर्याय १ अक्षर २ पद ३ संघात ४ प्रतिपत्तिक ५ अनुयोग ६ प्राभृत प्राभृत ७ प्राभृत ८ वस्तु ९ पूर्व १० दश तौ ए कहे ॥ ३१७ ॥

स० चं०—ते पर्याय आदिक दश भेद कहे तिनके समासनिकरि दश भेद भए मिलिकरि श्रुतज्ञानके बीस भेद भए। ते कहिए हैं—पर्याय १ पर्याय समास २ अक्षर ३ अक्षरसमास ४ पद ५ पदसमास ६ संघात ७ संघात समास ८ प्रतिपत्तिक ९ प्रतिपत्तिक समास १० अनुयोग ११ अनुयोग समास १२ प्राभृतक प्राभृतक १३ प्राभृतक प्राभृतक समास १४ प्राभृत १५ प्राभृत समास १६ वस्तु १७ वस्तु समास १८ पूर्व १९ पूर्वसमास २० ऐसैं बीस भेद हैं। इहां अक्षरादि गोचर जो अर्थ ताके जाननेरूप जो भाव श्रुतज्ञान ताकी मुख्यता जाननी। बहुरि जातैं श्रुतज्ञानावरणके भी तितने ही बीस भेद हैं तातैं श्रुतज्ञानके भी बीस भेद ही कहे हैं ॥३१८॥ आगैं पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञानका भेद ताका निरूपणके अर्थि च्यारि गाथा कहैं हैं—

णवरि विसेसं जाणे सुहमजहण्णं तु पज्जयं णाणं।
पज्जायावरणं पुण तदणंतरणाणभेदम्हि ॥ ३१९ ॥

नवरि विशेषं जानीहि सूक्ष्मजघन्यं तु पर्यायं ज्ञानं।
पर्यायावरणं पुनः तदनंतरज्ञानभेदे ॥ ३१९ ॥

जी० प्र०—नवीन विशेषं जानीहि, सः क ? पर्यायज्ञानं—पर्यायाख्यं प्रथमं श्रुतज्ञानं, तु—पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य संबंधि सर्वजघन्यं श्रुतज्ञानं भवति। पुनः—पश्चात् पर्यायज्ञानस्य आवरणं तदनंतरज्ञानभेदे अनंतभागवृद्धियुक्ते पर्यायसमासज्ञानप्रथमभेदे भवति, तद्यथा—उदयागतपर्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धोदयनिषेकस्यानुभागानां सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणः क्षयः, तेषामेव सदवस्थालक्षण उपशमः, देशघातिस्पर्धकानामुदये सति तदावरणोदयेन पर्यायसमासप्रथमज्ञानमेव आव्रियते न तु पर्यायज्ञानं। तदावरणे जीवगुणस्य ज्ञानस्याभावे गुणिनो जीवस्याप्यभावप्रसंगात्। अनुभागरचनायां विन्यस्ते सिद्धानंतैकभागमात्रे द्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्ते नानागुणहानिस्पर्धकवर्गणा-

त्मके श्रुतज्ञानावरणद्रव्ये सर्वतःस्तोकस्य सर्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानुभागसर्वघातिस्पर्धकद्रव्यस्यैव पर्यायज्ञानावरणत्वात् । तावतः आवरणद्रव्यस्य सर्वकालेऽप्युदयाभावात् ॥ ३१९ ॥

म० प्र०—पर्यायज्ञान-पर्यायाख्य प्रथमं श्रुतज्ञानं तु-पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य संबधि सर्वजघन्यं श्रुतज्ञानं भवति । पुनः पर्यायज्ञानस्यावरणं तदनंतरज्ञानभेदे अनतभागवृद्धियुक्ते पर्यायसमासज्ञानप्रथमभेदे भवति । तद्यथा- उदयागतपर्यायज्ञानावरणसमयप्रबद्धस्योदयनिषेकस्यानुभागाना सर्वघातिस्पर्धकाना उदयाभावः क्षयः, तेषामेव सदवस्था उपशमः, देशघातिस्पर्धकानामुदये सति तेन पर्यायसमासप्रथमज्ञानमेवाव्रियते, न तु पर्यायज्ञान, तदावरणे ज्ञानस्य जीवगुणस्याभावे गुणिनो जीवस्याप्यभावप्रसंगात् । अनुभागरचनाया विन्यस्ते सिद्धानंतैकभागमात्रद्रव्यानुभागक्रमहानिवृद्धियुक्ते नानागुणहानिस्पर्धकवर्गणात्मके श्रुतज्ञानावरणद्रव्ये सर्वतः स्तोकस्य सर्वपश्चिमप्रक्षीणोदयानुभागसर्वघातिस्पर्धकद्रव्यस्यैव पर्यायज्ञानावरणत्वात् तावदावरणद्रव्यस्य सर्वकालेप्युदयाभावात् ॥ ३१९ ॥

स० चं०--यहु नवीन विशेष जानहु जो पर्याय नामा प्रथम श्रुतज्ञानका भेद सो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त संबंधी सर्वतैं जघन्य श्रुतज्ञान जानना । बहुरि पर्याय श्रुतज्ञानका आवरण सो पर्याय श्रुतज्ञानकौं नाहीं आवरै है। वाके अनंतरि जो पर्याय ज्ञानतैं अनंत भागवृद्धि लीए पर्यायसमास ज्ञानका प्रथम भेद तींहिं विषै पर्याय ज्ञानका आवरण है जातैं उदय आया जो पर्याय ज्ञान आवरणके समय प्रबद्धका उदयरूप निषेक ताकैं सर्वघाती स्पर्धकनिका उदय नाहीं सो क्षय है अर तेई सर्वघाती स्पर्धक जे अगिले निषेकसंबंधी सत्तामें तिष्ठैं हैं तिनिका उपशम है अर देशघाती स्पर्धकनिका उदय है सो ऐसा पर्याय ज्ञानावरणका क्षयोपशम सदा पाइए तातैं पर्याय ज्ञानका आवरणकरि पर्याय ज्ञान आवरै नाहीं । पर्यायसमासज्ञानका प्रथमभेद ही आवरै है। जो पर्याय ज्ञान भी आवरै तौ ज्ञानका अभाव होइ, ज्ञान गुणका अभाव भए गुणी जीव द्रव्यका भी अभाव होइ, सो ऐसैं होइ नाही तातैं पर्यायज्ञान निरावरण ही है। अनुभाग रचनाविषैं भी स्थापित कीया जो सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र श्रुतज्ञानावरणका द्रव्य जो परमाणूनिका समूह सो द्रव्यके अनुभागकी क्रमतैं हानि वृद्धि करि संयुक्त है बहुरि नानागुणहानि स्पर्धक वर्गणारूप भेद लीएं हैं तिस द्रव्यविषैं सर्वतैं थोरा उदय रूप अनुभाग जाका क्षीण भया ऐसा जो सर्वघाती स्पर्धक तिमहीकौं पर्याय ज्ञानका आवरण कह्या है तितने आवरणका सदा काल उदय न होइ तातैं भी पर्याय ज्ञान निरावरण ही है ॥ ३१९ ॥

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं ॥ ३२० ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
भवति हि सर्वजघन्यं नित्योद्घाटं निरावरणं ॥ ३२० ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातं–जननं तस्य प्रथमसमये निरावरणं–प्रच्छादनरहितं नित्योद्घाटं अत एव सर्वदा प्रकाशमानं सर्वजघन्यं–सर्वनिकृष्टशक्तिकं पर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं भवति खलु एतद्गाथासूत्रं पूर्वाचार्यप्रसिद्धं–स्वोक्तार्थसंप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्थं उदाहरणत्वेन लिखितं ॥ ३२० ॥

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातं–जननं, तस्य प्रथमसमये निरावरणं–प्रच्छादनरहितं नित्योद्घाटं अत एव सर्वदा प्रकाशमानं सर्वजघन्यं सर्वनिकृष्टशक्तिकं पर्यायाख्य श्रुतज्ञान भवति, खलु एतद्गाथासूत्रं पूर्वाचार्यप्रसिद्धं स्वोक्तार्थसंप्रतिपत्तिप्रदर्शनार्थमुदाहरणत्वेन लिखितं ॥ ३२० ॥

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवका जन्म होतैं पहिला समयविषैं सर्वतैं जघन्य शक्तिकौं लीएं पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है सो निरावरण है इतने ज्ञानका कबहूं आच्छादन न होइ, याहीतैं नित्योद्घाट कहिए सदाकाल प्रकट प्रकाशमान है। सो यहु गाथा पूर्वाचार्यनिकरि प्रसिद्ध है इहां अपना कह्या व्याख्यानकी दृढताके निमित्त उदाहरणरूप लिखी है ॥ ३२० ॥

सुहमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण ।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे ॥ ३२१ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तगेषु स्वकसंभवेषु भ्रमित्वा ।
चरमापूर्णत्रिवक्राणां आदिमवक्रस्थिते एव भवेत् ॥ ३२१ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकेषु स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितेषु भवेषु भ्रमित्वा चरमापूर्णभवस्य त्रिवक्रविग्रहगत्या उत्पन्नस्य जीवस्य प्रथमवक्रसमये स्थितस्यैव पूर्वोक्तस्यैव पूर्वोक्त सर्वजघन्यं पर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं भवति तत्रैव तस्य जीवस्य स्पर्शनेंद्रियप्रभवं सर्वजघन्यं मतिज्ञानं, अचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमसंभूतं अचक्षुर्दर्शनमपि भवति । बहुशोऽपर्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्ध्या आवरणस्य तीव्रतमानुभागोदयसंभवात्, द्वितीयादिसमयेषु ज्ञानदर्शनवृद्धिसंभवात् । 'त्रिवक्रप्रथमवक्रसमये एव पर्यायज्ञानसंभवो ज्ञातव्यः' ॥ ३२१ ॥

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकगतेषु स्वसंभवेषु द्वादशोत्तरषट्सहस्रप्रमितेषु भवेषु भ्रमित्वा चरमापूर्णभवे त्रिवक्रविग्रहगत्या उत्पन्नस्य जीवस्य प्रथमवक्रसमये स्थितस्यैव पूर्वोक्त सर्वजघन्यं पर्यायाख्य श्रुतज्ञान भवति । तत्रैव तस्य जीवस्य स्पर्शनेंद्रियप्रभवं सर्वजघन्यं मतिज्ञानं, अचक्षुर्दर्शनावरणक्षयोपशमसंभूतमचक्षुर्दर्शनमपि भवति । बह्वपर्याप्तभवभ्रमणसंभूतबहुतमसंक्लेशवृद्ध्या आवरणस्य तीव्रतमानुभागोदयसंभवात् । द्वितीयादिसमयेषु ज्ञानदर्शनवृद्धिसंभवात् ॥ ३२१ ॥

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीव सो अपनेविषैं संभवते जे छह हजार बारह बार क्षुद्रभव तिनिविषै भ्रमण करि अंतका लब्धि अपर्याप्तकरूप क्षुद्रभवविषैं तीन वक्रता लीएं जो विग्रहगति ताकरि जन्म धर्‍या होइ ताके विग्रहगतिमें पहिली वक्रता संबंधी समयविषैं तिष्ठता जीवहीकैं सर्वतैं जघन्य पर्याय नामा श्रुतज्ञान हो है। बहुरि तिसहीकैं स्पर्शन इंद्रियसंबंधी जघन्य मतिज्ञान हो है। बहुरि तिसहीकैं अचक्षुर्दर्शनावरणके क्षयोपशमतैं उपज्या जघन्य अचक्षुदर्शन भी हो है। सो इहां बहुत क्षुद्रभवरूप पर्यायके धरनेतैं उत्पन्न भया बहुत संक्लेश ताके बंधनेकरि आवरणका अतितीव्र अनुभागका उदय हो है तातैं क्षुद्रभवनिका अंत क्षुद्रभवनिविषैं पर्यायज्ञान कह्या है। बहुरि द्वितीयादि समयनिविषैं ज्ञान बंधता संभवै है तातैं तीनि वक्रविषैं प्रथम वक्रका समयही विषैं पर्यायज्ञान कह्या है ॥ ३२१ ॥

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि ।
फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं ॥ ३२२ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये ।
स्पर्शनेंद्रियमतिपूर्वं श्रुतज्ञानं लब्ध्यक्षरकं ॥ ३२२ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जननप्रथमसमये सर्वजघन्यस्पर्शनेंद्रियमतिज्ञानपूर्वकं लब्ध्यक्षरापरनामधेयं 'पूर्वोक्तचरमभवत्रिवक्रप्रथमसमयादिविशेषणविशिष्टं' सर्वजघन्यं पर्यायश्रुतज्ञानं भवतीति ज्ञातव्यं । लब्धिर्नामश्रुतज्ञानावरणक्षयोपशमः अर्थग्रहणशक्तिर्वा, लब्ध्या अक्षरं अविनश्वरं लब्ध्यक्षरं तावतः क्षयोपशमस्य सदा विद्यमानत्वात् ॥३२२॥ अथ पर्यायसमासप्रकरणं दशभिर्गाथासूत्रैः प्ररूपयति—

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य प्रथमसमये सर्वजघन्यस्पर्शनेंद्रियमतिज्ञानपूर्वकं लब्ध्यक्षरापरनामधेयं सर्वजघन्यं पर्यायश्रुतज्ञान पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं भवतीति ज्ञातव्य । लब्धिः—श्रुतज्ञानावरणक्षयोपशम', अर्थग्रहणशक्तिर्वा, लब्ध्या अक्षरं—अविनश्वरं लब्ध्यक्षरं, तावतः क्षयोपशमस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् ॥ ३२२ ॥ अथ दशभिर्गाथाभिः पर्यायसमासप्रकरण प्ररूपयति—

स० चं०—सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक जीवकैं उपजनेका पहिला समयविषैं सर्वतैं जघन्य स्पर्शन इंद्रिय संबंधी मतिज्ञानपूर्वक लब्धि अक्षर है दूसरा नाम जाका ऐसा पर्याय ज्ञान हो है। लब्धि कहिए श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम वा जानन शक्ति ताकरि अक्षरं कहिए अविनाशी सो ऐसा पर्यायज्ञान ही है जातैं इतना क्षयोपशम सदाकाल विद्यमान रहै हैं ॥ ३२२ ॥ आगैं दश गाथानिकरि पर्यायसमास ज्ञानकौं प्ररूपैं हैं—

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए ।
संखमसंखमणंतं गुणवड्ढी होंति हु कमेण ॥ ३२३ ॥

अवरोपरि अनंतमसंख्यं संख्यं च भागवृद्धयः ।
संख्यमसंख्यमनंतं गुणवृद्धयो भवंति हि क्रमेण ॥ ३२३ ॥

जी० प्र०—सर्वजघन्यपर्यायज्ञानस्य उपरि क्रमेण वक्ष्यमाणपरिपाट्या अनंतभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनंतगुणवृद्धिश्चेति षट्स्थानपतिता वृद्धयो भवति खलु । द्विरूपवर्गधाराया अनंतानंतानि वर्गस्थानानि अतीत्यातीत्य उत्पन्नानां जीवपुद्गलकालाकाशश्रेणीनां उपर्यपि अनंतानंतवर्गस्थानानि अतीत्य सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदानामुत्पत्तिकथनात् तज्जघन्यज्ञानस्यानंतात्मकभागहारः सुघटन् न विरुध्यते ॥ ३२३ ॥

मं० प्र०—सर्वजघन्यस्य पर्यायज्ञानस्योपरि क्रमेण—वक्ष्यमाणपरिपाट्या, अनतभागवृद्धिः असंख्यातभागवृद्धिः संख्यातभागवृद्धिः संख्यातगुणवृद्धिः असंख्यातगुणवृद्धिः अनंतगुणवृद्धिश्चेति षट्स्थानपतिता वृद्धयो भवंति खलु, द्विरूपवर्गधाराया अनंतानंतानि वर्गस्थानानि गत्वा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यज्ञानस्य अविभागप्रतिच्छेदानामुत्पत्तिकथनात् जघन्यज्ञानस्य अनतभागहारो घटते ॥ ३२३ ॥

स० चं०—सर्वतैं जघन्य पर्याय नामा ज्ञान ताके ऊपरि आगैं अनुक्रमतैं आगैं कहिए है तिस परिपाटीकरि अनंतभाग वृद्धि १ असंख्यात भाग वृद्धि २ संख्यात भागवृद्धि ३ संख्यात गुणवृद्धि ४ असंख्यात गुणवृद्धि ५ अनंतगुणवृद्धि ६ ए षट्स्थान पतित वृद्धि हो हैं। इहां कोऊ कहै कि--सर्वजघन्य ज्ञानकौं अनंतका भाग कैसैं संभवै ? ताका समाधान--जो द्विरूपवर्गधाराविषैं अनंतानंत वर्गस्थान भए पीछैं क्रमतैं जीवराशि पुद्गल राशि काल समयराशि श्रेणी आकाशराशि हो हैं तिनिके ऊपरि अनंतानंत वर्गस्थान भएं सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तक संबंधी जघन्य ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण हो है। जाका भाग न होइ ऐसे ज्ञान शक्तिके अंश तिनिका ऐसा परिमाण है तातैं तिनिकी अपेक्षा अनंतका भागहार संभवै है ॥ ३२३ ॥

जीवाणां च य रासी असंखलोगा वरं खु संखेज्जं।
भागगुणम्हि य कमसो अवट्ठिदा होंति छट्ठाणे ॥ ३२४ ॥

जीवानां च च राशिः असंख्यलोका वरं खलु संख्यातं।
भागगुणयोश्च क्रमशः अवस्थिता भवंति षट्स्थाने ॥ ३२४ ॥

जी० प्र०—अत्र अनतभागादिषु षट्सु स्थानेषु क्रमेण एताः षट् संदृष्टयः अवस्थिताः प्रतिनियता भवंति। तद्यथा—अनंतभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः सर्वजीवराशिरेव १६। असंख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः असंख्यातलोक एव ≡ ∂। संख्यातभागवृद्धौ गुणवृद्धौ च भागहारो गुणकारश्च प्रतिनियतः उत्कृष्टसंख्यात एव १५ ॥ ३२४ ॥

मं० प्र०—अनंतभागादिषु षट्सु स्थानेषु क्रमेण एताः षट् संदृष्टयः अवस्थिताः—प्रतिनियता भवंति, तद्यथा—अनंतस्य संदृष्टिः जीवानां राशिः, सर्वजीवराशिरित्यर्थः १६। असंख्यातस्य संदृष्टिः असंख्यातलोकः ≡ ∂। संख्यातस्य संदृष्टिः वर—उत्कृष्टं संख्येयं संख्यातोत्कृष्टमित्यर्थः १५। एवं भागे तिस्रः संदृष्टयः। एता एव गुणकारेऽपि संदृष्टयो भवंति ॥ ३२४ ॥

स० चं०—इहां अनंतभाग आदिक छह स्थानकनिविषै ए छह संदृष्टि अवस्थित कहिए नियमरूप जाननी। अनंतविषैं तौ जीवराशिके सर्व जीवनिका परिमाण जानना। असंख्यातविषैं असंख्यातलोक जो असंख्यातगुणा लोकाकाशके प्रदेशनिका परिमाण सो जानना। संख्यातविषैं उत्कृष्टसंख्यात जो उत्कृष्टसंख्यातका परिमाण सो जानना। सोइ तीनो प्रमाण भाग वृद्धिविषैं जानना। येही गुणवृद्धिविषै जानना। भागवृद्धिविषैं इनि प्रमाणनिका भाग पूर्वस्थानकौं दीएं जो परिमाण आवै तितने पूर्वस्थानविषै मिलाएं उत्तर स्थान होइ। गुणवृद्धिविषैं इनि प्रमाणनिकरि पूर्वस्थानकौं गुणैं उत्तरस्थान हो हैं॥ ३२४॥

उव्वंकं चउरंकं पणछस्सत्तंक अट्ठअंकं च।
छव्वड्ढीणं सण्णा कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं॥ ३२५॥

उर्वंकश्चतुरंकः पंचषट्सप्तांकः अष्टांकश्च।
षड्वृद्धीनां संज्ञा क्रमशः संदृष्टिकरणार्थं॥ ३२५॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तानंतभागाद्यर्थसंदृष्टीनां पुनः लघुसंदृष्टिनिमित्त षड्विधवृद्धीनां यथासंख्यं अपरसंज्ञा· संदृष्टयः कथ्यंते। अनंतभागस्य उर्वंकः उ। असंख्यातभागस्य चतुरंकः ४। संख्यातभागस्य पंचांकः ५। संख्यातगुणस्य षडकः ६। असंख्यातगुणस्य सप्तांकः ७, अनंतगुणस्य अष्टांकः ८॥ ३२५॥

मं० प्र०—पुनरपि लघुसंदृष्टिकरणार्थं उक्तानां षड्वृद्धीना अन्यानि नामानि संदृष्टयश्च नियमात् कथ्यंते। तद्यथा—अनंतभागस्य उर्वंकः, असंख्यातभागस्य चतुरंकः ४, संख्यातभागस्य पंचाकः ५, संख्यातगुणस्य षडकः ६, असंख्यातगुणस्य सप्ताक. ७, अनंतगुणस्य अष्टाकः ८॥ ३२५॥

स० चं०—बहुरि लघुसंदृष्टि करनेके निमित्त अनंतभागवृद्धि आदि छह वृद्धिनिकी अन्यसंज्ञा संदृष्टि सो कहै हैं–तहां अनंतभाग वृद्धिकी उर्वंक कहिए उकार उ, असंख्यात भाग वृद्धिकी च्यारिका अंक ४, संख्या-

गमात्रानंतभागवृद्धिविकल्पाः सर्वेऽपि नेतव्याः । तत्र वृद्धीनां जघन्याद्भेदे सति तन्न्यासो दर्श्यते । तद्यथा--प्रथमविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य एकवारानंतभाग-वृद्धिं तस्याधो न्यस्येत् तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम । पुनर्द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानंतभागं संस्थाप्य तस्याधः द्विवारानंत-भागं न्यस्येत् । तस्य प्रक्षेपकप्रक्षेपक इति नाम । पुनस्तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः त्रिवारानंतभागं पिसुलिनामान न्यस्येत् । पुनश्चतुर्थविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधोधः प्रक्षेपकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं पिसुलिं चतुर्वारानंतभागं पिसुलिपिसु-लिनामान च न्यस्येत् । पुनः पंचमे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपक-प्रक्षेपकप्रक्षेपक-पिसुलि-पिसुलिपिसुलीन् पचवारानंतभागं चूर्णिनामानं च न्यस्येत् । पुनः षष्ठे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रागुक्तान् प्रक्षेपकादीन् षड्वारानंतभागं चूर्णिचूर्णिनामानं च न्यस्येत् । एवं सर्वेषु अनंतभागवृद्धिविकल्पेषु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् सप्तमादिचूर्णिचूर्णिपर्यंतान् न्यस्येत् । चरमविकल्पे तु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् अंगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभागरूपचरमचूर्णिचूर्णि पर्यंतान् न्यस्येत् । सर्वत्र प्रक्षेपको गच्छमात्रो भूत्वा गच्छन् चरमविकल्पे अंगुलासंख्यातभागमात्रगुणकारो भवति—

ज १ ज २ ज ३ ज ४ ज ५ ज ६ । ००० । ज २ प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रगुणकारो भवति—
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a

ज १	ज ३	ज ६	ज १०	ज १५	०००	ज २ । २ (१ –)
१६ । १६	१६ । १६	१६ । १६	१६ । १६	१६ । १६		१६ । १६ a । २ । a १ ।

पिशुलिः सर्वत्र द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रगुणकारः ।

ज १	ज ४	ज १०	ज २०	०००	ज २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६	१६ । १६ । १६	१६ । १६ । १६	१६ । १६ । १६		१६ । १६ । १६ a ३ a २ a १

पिसुलिपिसुलि. सर्वत्र त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

ज १	ज ५	ज १५	०००	ज २–३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६	१६ । १६ । १६ । १६	१६ । १६ । १६ । १६		१६ । १६ । १६ । १६ । a ४ a ३ a २ a १

चूर्णि· सर्वत्र चतरूपोनगच्छस्य चतूर्वारसंकलितधनमात्रगुणकार ।

ज १	ज ६	०००	ज २–४ २–३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६	१६ । १६ । १६ । १६ । १६		१६ । १६ । १६ । १६ । १६ a ५ a ४ a ३ a २ a १

चूर्णिचूर्णि· सर्वत्र पंचरूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

जायते स पर्यायसमासश्रुतज्ञानविकल्पेषु सर्वजघन्यप्रथमविकल्पः स्यात् ज $\frac{१—}{१६}$ अस्यानंतैकभागे ज $\frac{१—}{१६ । १६}$ अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते स पर्याय-समासद्वितीयज्ञानविकल्पः ज $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ अस्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासतृतीयज्ञानविकल्पः ज $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । अ-स्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासचतुर्थज्ञानविकल्पः ज $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । अस्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासपंचमश्रुतज्ञानविकल्पः । ज $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । $\frac{१—}{१६}$ । अस्यानंतैकभागे अस्मिन्नेव समच्छेदेन युते पर्यायसमासषष्ठश्रु-तज्ञानविकल्पः ज $\frac{१—}{१६}$ $\frac{१—}{१६}$ $\frac{१—}{१६}$ $\frac{१—}{१६}$ $\frac{१—}{१६}$ $\frac{१—}{१६}$ एवं सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि अनंतैकभागवृद्धियुक्तस्थानानि सर्वाण्यानेतव्यानि ।

तत्र तद्वृद्धीनां तज्जघन्यमादिं कृत्वा तदुत्कृष्टवृद्धिपर्यंतं भेदे सति तद्विन्यासो दर्श्यते । तद्यथा—प्रथमविकल्पे स्थितवृद्धिं पृथक्कृत्य जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानंतैकभागवृद्धिं स्थापयेत्, तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम । तथा द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेर्द्वौ प्रक्षेपकौ एकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं च अधोधो न्यस्येत् । तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य वृद्धेस्त्रीन् प्रक्षेपकान् त्रीन् प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् एकं पिशुलिं च अधोधो न्यस्येत् । चतुर्थविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेश्चतुरः प्रक्षेपकान् षट् प्रक्षे-पकप्रक्षेपकान् चतुरः पिशुलीन् एकं पिशुलिपिशुलिं च अधोधो न्यस्येत् । पंचमविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तदधस्तनभागे तद्वृद्धेः पंच प्र-क्षेपकान् दश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् दश पिशुलीन् पंच पिशुलिपिशुलीन् एकं चूर्णिं च अधोधो न्यस्येत् । षष्ठविकल्पे तज्जघन्यमुपरि न्यस्य तद-धस्तनभागे तद्वृद्धेः षट् प्रक्षेपकान् पंचदश प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् विंशतिपिशुलीन् पंचदश पिशुलिपिशुलीन् षट् चूर्णीन् एकं चूर्णिचूर्णिं च अधोधो न्यस्येत्, एवमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानेषु सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रेषु सर्वेष्वपि स्वजघन्यानामधोधः स्वस्वप्रक्षेपकान् गच्छमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकान् रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः पिशुलीन् द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमा-त्रान् न्यस्येत् । तेषामधः पिशुलिपिशुलीन् त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्, तेषामधः चूर्णीन् चतूरूपोनगच्छस्य

चतुर्वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तेषामधः चूर्णिचूर्णीन् पंचरूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् एवं गत्वा चरमानंतभागवृद्धियुक्तस्थानविकल्पे पृथक्कृततज्जघन्यमुपरि न्यस्येत् । तदधस्तनभागे यथाक्रमं प्रक्षेपकान् सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रवारान् न्यस्येत् । तदधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकाः रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्राः संतीति रूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य एकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः पिशुलयः द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्राः संतीति द्विरूपो सूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य द्विकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः पिशुलिपिशुलयः त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसंकलनधनमात्राः संतीति द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य त्रिकवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः चूर्णयः चतूरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्राः संतीति चतूरूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागगच्छस्य चतुर्वारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । तदधः चूर्णिचूर्णयः पंचरूपोनगच्छस्ये पंचवारसंकलनधनप्रमिताः संतीति पंचरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छस्य पंचवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत् । एवं तदधस्तनाधस्तनचूर्णिचूर्णयः षटरूपोनादिगच्छस्य षड्वारादिसंकलनधनप्रमिताः संतीति षड्रूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागादिगच्छानां षड्रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागादिवारसंकलनधनमात्रान् अधोऽधो विन्यस्यन् गत्वा सर्वाधस्तनद्विचरमचूर्णिचूर्णयः द्विरूपोनगच्छोनगच्छस्य द्विरूपोनगच्छवारसंकलनधनप्रमिताः संतीति द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्येयभागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छस्य द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागवारसंकलनधनमात्रान् न्यस्येत्—

```
ज      २      ३      ४ | ० ० ० | २–३    २–२    २–१    २                ज    २
१६ २–१  २–१   २–२   २–३ | ० ० ० | a | ४   a | ३   a | २   a | १   अपवर्तिते एवं —१६ २–१  a
   a      a      a      a                                                         a
```

तदधो रूपोनगच्छोनगच्छस्य रूपोनगच्छमात्रवारसंकलनधनमात्राः तच्चरमचूर्णिचूर्णयः संतीति रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागोनसूच्यंगुलासंख्यातभागगच्छस्य रूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारसंकलनधनप्रमित—

```
ज      १     २     ३     ४ | ० ० ०   २ | ३ | २–२ | २–१ | २                 ज  १
१६ २   २    २–१   २–२   २–३ | ० ० ०   a ४ | a ३ | a २ | a १   अपवर्तितमिदं— १६ २
   a    a     a     a     a                                                      a
```

स्थापयेत् । परमार्थतः चरमचूर्णिचूर्णः संकलितमेव न घटेत द्वितीयादिस्थानाभावात् । अत्र षट्स्थानप्रकरणे अनंतभागवृद्धियुक्तविकल्पेषु सर्वत्र प्रक्षेपकाः गच्छमात्राः सतीति सुगमाः । प्रक्षेपकप्रक्षेपकादीनां प्रमाणानयने करणसूत्रमिदं—

> व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः ।
> रूपादिकवारांताप्तपदाद्यंकैर्हतो वित्तं ॥

तत्र षष्ठं विकल्पं विवक्षितं कृत्वा चूर्णीनां चतुर्वारसंकलितधनमानीयते । तत्र पदं चतूरूपोनगच्छ ६–४ मात्रं २ । व्येकं एकरहितं २–१

अस्य उत्तरेण घातः एकवारादिसंकलनरचनामाश्रित्यैव द्विकवारादिसंकलनरचनोत्पत्तेः सर्वत्रादिः उत्तरश्चैकैकः उत्तरेकेन घातः कर्तव्यः १।१। गुणिते एवं १, सरूपवारोद्धृतः रूपाधिकवार ४। भक्तः ४। मुखमादिः १ तेन समच्छेदेन ५ सहितः ५ रूपादिकवारांतासपद धनैर्हत एकरूपप्रभृतिवारावसानहारभक्तपदाद्यंकैः ४ ३ २ १ (२ ३ ४ ५) हतः गुणितः ५ ४ ३ २ १ (६ २ ३ ४ ५) अपवर्तितः ६ वित्तं षष्ठविकल्पचूर्णिधनं भवति, एवमेव सर्वत्र समस्तवारसंकलनधनानि विवक्षितान्यन्यानि आनयेत्। पुनरेतदेव केशववर्णिभिः स्वाभिप्रायेण आनतुं गाथाद्वयमुच्यते—

तिरियपदे रूऊणे तदिट्ठहेट्ठिल्लसंकलणवारा।
कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूण उड्ढपदसंखा ॥ १ ॥

तिरियपदे अनंतभागवृद्धियुक्तस्थानेषु यद्विवक्षितं स्थानं तत् तिर्यक्पदं ६, तस्मिन् रूऊणे रूपोने कृते ६ तदिट्ठहेट्ठिल्लसंकलणवारा तदिष्टपदे प्रक्षेपकादधस्तनकोष्ठेषु प्रतिकोष्ठमेकैक संकलनमिति संभवतां क्रमेणैकवारद्विवारादिसंकलनानां संख्या भवति ५॥ तत्र इष्टस्य 'कोट्ठधणस्स' चतुर्वारसंकलनधनगतकोष्ठधनस्य आणयणे आनयने इट्ठूणउड्ढपदसंखा तदिष्टसंकलनवारस्य प्रमाणेन ४ न्यूनोर्ध्वपदं ६-४ पभवो आदिर्भवति ॥ २ ॥

तत्तोरूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥ २ ॥

तत्तो तमादि २ मादिं कृत्वा रूवहियकमे रूपाधिकक्रमेण गुणगारा गुणकारा अनुलोमगत्या होंति--भवंति उड्ढगच्छोत्ति ऊर्ध्वगच्छांकोत्पत्तिपर्यंतं-ज २ ३ ४ ५ ६ / १६ ५ तेषां गुणकाराणां अधः हारा भागहारा इगिरूवमादि एकरूपादयः रूउत्तर-रूपोत्तरा होंति भवंति विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारस्थानेषु पभवोत्ति प्रभवांकपर्यंतं ज २ ३ ४ ५ ६ / १६ १६ १६ १६ १६ ५ ४ ३ २ १ अपवर्तिते लब्धं चतुर्वारसंकलनधनं भवति—

ज ६ / १६ १६ १६ १६ १६

एवमनंतभागवृद्धियुक्तचरमविकल्पे तिर्यक्पदं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्र २/a तस्मिन् रूपोने २/a अवशिष्टं तदिष्टाध-

स्तनसंकलनवारा भवंति २^{१८}/a तेषु मध्ये विवक्षितस्य चतुर्वारसंकलनगतकोष्ठधनस्यानयने तद्वारप्रमाणे ४ ऊर्ध्वपदे २/a अपनीते २-४/a

शेषप्रमाणमादिर्भवति ज/१६ ५ a २-४ ततः तमादिमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण गुणकारा भवंति ऊर्ध्वगच्छप्रमाणं यावदुत्पद्यते तावत्

ज/१६।५ २-४/a । २-३/a । २-२/a । २-१/a । २/a एषां गुणकाराणामधः एकाद्येकोत्तरा आदिपर्यंतं विलोमक्रमेण हारा भवंति—

ज/१६।१६।१६।१६।१६ । २—४/a ५ । २-३/a ४ । २-२/a ३ । २-१/a २ । २/a १ अत्र विषममपवर्तनमस्तीत्यनपवर्तितमेव अवतिष्ठते तल्लब्धस्य अवधि-

ज्ञानविषयत्वात् । पुनस्तच्चरमविकल्पे विवक्षितद्विचरमचूर्णिचूर्णैर्द्विरूपोनसूच्यंगुलासंख्यातभागवारसंकलनधनमानीयते, तद्यथा—तिर्यक्पदे २/a

रूपोने सति २^{१८}/a तदिष्टाधस्तनसंकलनसमस्तवारसंख्या भवति निजेष्टवारसंकलनधनानयने तद्वारसंकलनप्रमाणेन २-२/a ऊनोर्ध्वपदे २/a आ-

दिः २ । ततस्तमादिं कृत्वा अग्रे रूपाधिकक्रमेण अनुलोमगत्या गुणकारा ऊर्ध्वगच्छप्रमाणांकोत्पत्तिपर्यंतं भवंति—

ज/१६ २^{८८}/a । २ । ३ । ४ । ००० । २-३/a । २-२/a । २-१/a । २/a एषामधः रूपादिरूपोत्तरा हाराः विलोमक्रमेण रूपाधिकेष्टवारसंकलनांकाव-

साना भवंति प्रभवपर्यंतं—ज/१६ २^{१८}/a २/२^{८८}/a ३/२-२/a ४/२-३/a ।००० २-३/a ४ २-२/a ३ २-१/a २ २/a १ अत्र समानापवर्तनमस्तीति अपवर्तिते एवं-

ज/१६ १^{८}/२।/a २ चरमचूर्णिचूर्णैः संकलितं नास्ति द्वितीयादिस्थानाभावात् । सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभक्तजघन्यप्रमितं स्यात् ज/१६ १/२/a

| १–

एवमनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं असंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज ≡a ≡a । अत्र उर्वंकं चतुरंकेन भक्त्वा तदेकभागः तत्रैव युतोऽस्तीति जघन्यं साधिकं भवति। अग्रेऽपि सर्ववृद्धीनां अयमेव क्रमो भवति। स्वस्वप्राक्तनोर्वंकं भक्त्वा तदेकभागवृद्धिरवगंतव्या। पुनः प्राग्वदनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरपरमसंख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं

| १– १–

भवति ज ≡a ≡a ≡a ≡a अनेन क्रमेण असंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं संख्यातभागवृद्धियुक्तं स्थानं भवति ज | १– १५ १५ पुनः पूर्ववदनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि आवर्त्य पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरेकं संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानं ज | १– १५ । १– १५ १५ । १५ अनेन क्रमेण संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा अग्रे प्राग्वदनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा एकं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानं भवति। एवं संख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनः अनंतभागासंख्यातभागसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्राग्वत्सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि पूर्ववत्सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानानि सूच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्राणि नीत्वा एकमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तं स्थानं भवति। एवमसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानान्यपि सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा अग्रे अनंतभागासंख्यातभागसंख्यातभागसंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं कांडकांडकप्रमितानि नीत्वा पुनरनंतासंख्यातसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानान्यपि प्रत्येकं कांडककांडकप्रमितानि नीत्वा पुनरनंतभागासंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानि प्रत्येकं कांडकप्रमितानि नीत्वा पुनरनंतभागवृद्धियुक्तस्थानान्येव सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राणि नीत्वा द्वितीयषट्स्थानस्य आदिभूतमष्टांकसंज्ञं भवति इत्येवं सर्वत्र षट्स्थानपतितवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ३२६ ॥

१ सूच्यंगुलसंख्या।

मं० प्र०—पूर्ववृद्धौ—अनंतभागवृद्धौ, सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गतायां सत्यां परवृद्धिः—असंख्यातभागवृद्धिः, एकवारं भवति। पुनरप्यनंतभागवृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गताया सत्यां असंख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति। अनेन क्रमेण तावद्गतव्यं यावदसंख्यातभागवृद्धिरपि सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रवारान् गच्छति। ततः पुनरप्यनंतभागवृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गताया संख्यातभागवृद्धिरेकवारं भवति। पुनरपि पूर्वोक्तक्रमेण पूर्वपूर्ववृद्धौ सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गताया परवृद्धिरेकैकवारं भवतीत्यंगुलासंख्यातभागमात्रसख्यातभागवृद्धौ गताया पुनः पूर्ववृद्धिषु सर्वासु पूर्वोक्तक्रमेण संख्यातवारवृद्धिरहितं आवर्तितासु संख्यातगुणवृद्धिः एकवारं भवति। उक्ताना वृद्धीना पूर्वोक्तसदृष्टयः उर्वंकादय आचार्यैर्न्यस्ता इत्यस्माभिरपि तथैव न्यस्यंते—उ उ ४ उ उ ४ उ उ ५ उ उ ४ उ उ ४ उ उ ५ उ उ ४ उ उ ४ उ उ ६ द्विवारलिखितमूर्वंकादिरंगुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टिः। एव षडंकपर्यंतपंक्तिगतोर्वंकादीनां सर्वेषामावृत्तौ सत्यां षडकोऽप्यंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् गत इत्यर्थः। ततः षडकरहितैकपंक्तया वृत्तौ सत्यामेकवारं सप्ताकनामासंख्यातगुणवृद्धिर्भवति। एवं षडंकपंक्तिद्वयसप्ताकैकपंक्तिरूपपंक्तित्रयस्यावृत्तौ सत्या सप्ताकस्यांगुलासंख्यातभागमात्रवारसंदृष्टिर्भवति इत्थं षट्पंक्तयो जाताः। ततः पुनः सप्ताकरहितपंक्तित्रयस्यावृत्तौ सत्यामेकवारमष्टाकनामा अनंतगुणवृद्धिर्भवति। एव षट्स्थानवृद्धीनां वृत्तिक्रमो दर्शितो ग्रंथलिखितरचनानुसारेण अव्यामोहेन श्रोतृजनैर्ज्ञातव्यः।

अथानंतभाग वृद्धेरंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् वृत्तिक्रमो दर्श्यते। तद्यथा—अनंतगुणजीवराशिमात्रस्वार्थप्रकाशनशक्त्यविभागप्रतिच्छेदस्वभावं सर्वजघन्यज्ञानं ज इति संदृष्ट्या संस्थाप्य तस्मिन् सर्वजीवराशिप्रमितानंतेन भक्तेन यल्लब्धं तज्जघन्यस्योपरि समच्छेदीकृत्य योजनीयं, स पर्यायसमासस्य प्रथमविकल्पः

ज १—/१६ । १—/१६ अस्यानंतभागे ज १६ । १६ । १६ / १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव समच्छेदीकृत्य नियुक्ते द्वितीयविकल्पः ज १६ । १६ / १६ । १६

ज १—/१६ / १६ अस्यानंतभागे ज १—/१६ / १६ । १६ अस्मिन्नेव समच्छेदीकृत्य पूर्ववत्प्रक्षिप्ते तृतीयो विकल्पः। ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ / १६ । १६ । १६ अस्यानंतभागे ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत्प्रक्षिप्ते चतुर्थो विकल्पः ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ / १६ । १६ । १६ । १६

अस्यानंतभागे ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत् प्रक्षिप्ते पंचमो विकल्पः ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ अस्यानंतभागे

ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ अस्मिन्नेव पूर्ववत्प्रक्षिप्ते षष्ठो विकल्पः। ज १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ । १—/१६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६। एवं सूच्यंगुलासंख्यातभा-

गमात्रानंतभागवृद्धिविकल्पाः सर्वेऽपि नेतव्याः । तत्र वृद्धीनां जघन्याद्भेदे सति तन्न्यासो दर्श्यते । तद्यथा--प्रथमविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य एकवारानंतभागवृद्धिं तस्याधो न्यस्येत् तद्वृद्धेः प्रक्षेपक इति नाम । पुनर्द्वितीयविकल्पे जघन्यमुपरि संस्थाप्य तस्याधः एकवारानंतभागं संस्थाप्य तस्याधः द्विवारानंतभागं न्यस्येत् । तस्य प्रक्षेपकप्रक्षेपक इति नाम । पुनस्तृतीयविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः प्रक्षेपकप्रक्षेपकं न्यस्य तस्याधः त्रिवारानंतभागं पिसुलिनामान न्यस्येत् । पुनश्चतुर्थविकल्पे जघन्यमुपरि न्यस्य तस्याधोधः प्रक्षेपकं प्रक्षेपकप्रक्षेपकं पिसुलिं चतुर्वारानंतभागं पिसुलिपिसुलिनामान च न्यस्येत् । पुनः पंचमे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपक-प्रक्षेपकप्रक्षेपक-पिसुलि-पिसुलिपिसुलीन् पंचवारानंतभागं चूर्णिनामान च न्यस्येत् । पुनः षष्ठे विकल्पे जघन्यस्याधोधः प्रागुक्तान् प्रक्षेपकादीन् षड्वारानतभागं चूर्णिचूर्णिनामानं च न्यस्येत् । एवं सर्वेषु अनंतभागवृद्धिविकल्पेषु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् सप्तमादिचूर्णिचूर्णिपर्यंतान् न्यस्येत् । चरमविकल्पे तु जघन्यस्याधोधः प्रक्षेपकादीन् अंगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभागरूपचरमचूर्णिचूर्णिपर्यंतान् न्यस्येत् । सर्वत्र प्रक्षेपको गच्छमात्रो भूत्वा गच्छन् चरमविकल्पे अंगुलासंख्यातभागमात्रगुणकारो भवति—

ज १ । ज २ । ज ३ । ज ४ । ज ५ । ज ६ । ००० । ज २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । । १६ a

प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रगुणकारो भवति—

ज १ / १६ । १६	ज ३ / १६ । १६	ज ६ / १६ । १६	ज १० / १६ । १६	ज १५ / १६ । १६	०००	ज / १६ । १६ a । २ । a १ । (२ । २; १-)

पिशुलिः सर्वत्र द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रगुणकारः ।

ज १ / १६ । १६ । १६	ज ४ / १६ । १६ । १६	ज १० / १६ । १६ । १६	ज २० / १६ । १६ । १६	०००	ज / १६ । १६ । १६ a ३ a २ a १ (२ २ २-१ २)

पिसुलिपिसुलि. सर्वत्र त्रिरूपोनगच्छस्य त्रिवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

ज १ / १६ । १६ । १६ । १६	ज ५ / १६ । १६ । १६ । १६	ज १५ / १६ । १६ । १६ । १६	०००	ज / १६ । १६ । १६ । १६ । a ४ a ३ a २ a १ (२-३ २-२ २-१ २)

चूर्णिः सर्वत्र चतरूपोनगच्छस्य चतुर्वारसंकलितधनमात्रगुणकार ।

ज १ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६	ज ६ / १६ । १६ । १६ । १६ । १६	०००	ज / १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a ५ a ४ a ३ a २ a १ (२-४ २-३ २-२ २-१ २)

चूर्णिचूर्णि. सर्वत्र पंचरूपोनगच्छस्य पंचवारसंकलितधनमात्रगुणकारः

ज १   ००० ज   २-५ २-४ २-३ २-२ २-१ २
१६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ ।   १६ । १६ । १६ । १६ । १६ । १६ a६ a५ a४ a३ a२ a१

एवं सप्तमादिचूर्णिचूर्णीना चरमविकल्पपर्यंतं गुणकारा ओनतव्याः तत्र द्विचरमचूर्णिचूर्णिद्विरूपोनगच्छोनगच्छस्य द्विरूपोनगच्छमात्रवारसंकलितधनमात्रगुणकाराः

२ ३ ४ । ००० २-३ २-२ २-१ २
२-१ २-२ २-३ ००० a४ a३ a२ a१ अपवर्तितेऽगुलासख्यातभागमात्रगुणकारोऽवशिष्यते १६ । a । २-१ (ज । २ / a) चरमचूर्णिः रूपो-
a a a

नगच्छोनगच्छस्य रूपोनगच्छमात्रवारसकलितधनमात्रगुणकाराः १ । २ । ३ । ४ । ००० । २-३ २-२ २-१ २ अपवर्तिते एक एव गुण-
२ २-१ २-२ २-३ ००० । a४ a३ a२ a१
a a a a

कारो भवति ज १ / १६ । २ / a परमार्थतस्तु चरमचूर्णिचूर्णि. संकलितमेव नास्ति द्वितीयस्थानाभावात् । एवमंगुलासंख्यातभागमात्रेषु अनंतभागवृद्धिस्थानेषु

। । १–
गतेषु एकमसंख्यातभागवृद्धिस्थानं भवति ज । ज ≡a / ≡a पुनरपि पूर्ववदंगुलासंख्यातभागमात्राण्यनंतभागवृद्धिस्थानान्यानेतव्यानि । तेषु गतेषु पुनरपि

एकवारमसख्यातभागवृद्धिस्थानं भवति । अनेन क्रमेण असंख्यातभागवृद्धिस्थानेष्वप्यंगुलासख्यातभागमात्रेषु गतेषु पुनरप्यंगुलासंख्यातभागमात्रेष्वनंतभा-
गवृद्धिस्थानेषु गतेष्वेकवार संख्यातभागवृद्धिस्थानं भवति । उपरि पूर्वोक्तप्रकारेण षट्स्थानवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ३२६॥

स० च०–पूर्ववृद्धि जो पहिली पहिली वृद्धि सो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ तब एक एक बार परवृद्धि कहिए पिछली पिछली वृद्धि होइ ऐसैं बार बार अंतकी वृद्धि जो अनंतगुण वृद्धि तींहिं पर्यंत हो है ऐसा जानना । अब याका अर्थ यंत्र द्वार करि दिखाइए है तहां यंत्रविषैं अनंतभागादिककी उकार आदि संदृष्टि कही थी सो लिखिए है–

पर्यायसमासज्ञानविषैं वृद्धिका यंत्र।

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

बहुरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण वारकी जायगा दोय बार लिखिए है सो इहां पर्याय नाम श्रुतज्ञानका भेद तातैं अनंत भाग वृद्धि लीएं पर्यायसमास नामा श्रुतज्ञानका प्रथमभेद हो है। बहुरि इस प्रथम भेदतैं अनंतभाग वृद्धि लीएं पर्याय समासका दूसरा भेद हो है। ऐसैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भाग वृद्धि होइ तब एकवार असंख्यात भाग वृद्धि होइ। इहां अनंत भाग वृद्धि पहिलैं कही थी तातैं पूर्व कहिए अर असंख्यात भाग वृद्धि वाके पीछैं कही थी तातैं याकौं पर कहिए सो इहां यंत्रविषैं प्रथम पंक्तिका प्रथम कोष्ठ विषैं दोय बार उकार लिख्या सो तो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि की सहनानी जाननी अर ताके आगै च्यारिका अंक लिख्या सो एकवार असंख्यात भाग वृद्धिकी सहनानी जाननी बहुरि इहां तैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भाग वृद्धि भए पीछे दूसरा एकवार असंख्यात भाग वृद्धि होइ। ऐसैं ही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि हो है तातैं यंत्रविषैं प्रथमपंक्तिका दूसरकोठा विषैं प्रथम कोठावत् दोय उकार एक च्यारि अंक लिख्या। दूसरीबार लिखनेतैं सूच्यंगु-

लका असंख्यातवां भागबार जानि लेना। बहुरि इहांतैं आगैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ तब एकबार संख्यात भागवृद्धि होइ। यातैं प्रथम पक्तिका तीसरा कोठाविषैं दोय उकार अर एक पांचका अंक लिख्या अब इहांतैं जैसैं पूर्वैं अनंतभाग वृद्धि लीएं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि होइ पीछैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंतभाग वृद्धि होइ तब एकबार संख्यात भागवृद्धि भई तैसैं ही याही अनुक्रमतैं दूसरा संख्यात भागवृद्धि भई बहुरि याही अनुक्रमतैं तीसरा भई असैं संख्यात भागवृद्धि भी सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण बार हो है तातैं इहां यंत्रविषैं प्रथम पंक्तिविषैं जैसैं तीन कोठे किये थे तैसैं अंगुलका असंख्यातवां भागकी सहनानीके अर्थि दूसरा तीन कोठे उसही पंक्तिविषैं कीए। इहां असंख्यात भागवृद्धिकौं पूर्व कहिए संख्यात भाग वृद्धिकौं पर कहिए बहुरि इहांतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि होइ एकबार असंख्यात भाग वृद्धि होइ असैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण असंख्यातभाग वृद्धि होइ सो याकी सहनानीके अर्थि यंत्रविषैं दोय उकार अर च्यारिका अंक करि संयुक्त दोय कोठे कीए। बहुरि यातैं आगैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण अनंतभाग वृद्धि होइ करि एक बार संख्यात गुण वृद्धि होइ सो याकी सहनानीके अर्थि प्रथम पंक्तिका नवमा कोठाविषैं दोय उकार अर छह का अंक लिख्या बहुरि जैसैं प्रथम पंक्तिविषैं अनुक्रम कह्या तैसैंही आदितैं लेकरि सर्व अनुक्रम दूसरा भया तब एकबार दूसरा संख्यात गुणवृद्धि भई। असैं ही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण संख्यात गुण वृद्धि हो है सो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण तैसैं होनेकी सहनानीके अर्थि यंत्रविषै जैसी प्रथम पंक्ति थी तैसैं ही वाके नीचैं दूसरी पंक्ति लिखी। बहुरि इहांतैं जैसैं प्रथम पंक्तिविषै अनुक्रम कह्या था तैसैं अनुक्रमतैं बहुरि वृद्धि भई। विशेष इतना जो उहां पीछैं ही पीछैं एकबार संख्यात गुणवृद्धि भई थी इहां पीछैं ही पीछैं एकबार असंख्यात गुणवृद्धि भई। याहीतैं यंत्रविषैं तीसरी पंक्ति प्रथम पंक्ति सारिखी लिखी। नवमा कोठामैं उहां तौ दोय उकार अर छहका अंक लिख्या था इहां तीसरी पंक्तिविषैं नवमा कोठाविषैं दोय उकार अर सातका

अंक लिख्या इहां और सब पूर्व कहिए अर असंख्यात गुणवृद्धि पर कहिए। बहुरि इहातें जैसें तीनों ही पंक्ति विषैं आदितैं लेकरि अनुक्रमतैं वृद्धि भई तैसैं ही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण होइ तब असंख्यात गुणवृद्धि भी सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ निवरै सो इहां यंत्रविषैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण तैसैं ही होनेकी सहनानीके अर्थि जैसैं तीन पंक्ति करीं थीं तैसैं ही दूसरी तीनों पंक्ति लिखी ऐसैं छह पंक्ति भईं। अब इहांतैं आगैं जैसैं आदितैं लेकरि अनुक्रमतैं तीनों पंक्तिविषैं वृद्धि कही थी तैसैं ही तैसैं अनुक्रमतैं फेरि सर्ववृद्धि भई। विशेष इतना जो तीसरी पंक्तिका अंतविषैं जहां असंख्यात गुणवृद्धि कही थी सो इहां तीसरी पंक्तिका अंतविषैं एकबार अनंत गुणवृद्धि हो है याहीतैं यंत्रविषैं भी पहिली दूसरी तीसरी सारिखी तीन पंक्ति और लिखीं उहां तीसरी पंक्तिका नवमा कोठाविषैं दोय उकार सप्तका अंक लिख्या था इहां तीसरी पंक्तिका नवमां कोठाविषैं दोय उकार अर आठका अंक लिख्या सो इहां अनंत गुणवृद्धिकौं पर कहिए अन्य सर्व पूर्व कहिए। याके आगैं कोई वृद्धि रही नाहीं तातैं याकौं पूर्व संज्ञा न होइ याहीतैं यहु अनंत गुणवृद्धि एक बारही हो है सो इस अनंत गुणवृद्धिकौं होतसंते जो प्रमाण भया सोई नवीन षट्स्थानपतित वृद्धिका पहिला स्थानक जानना। ऐसैं पर्याय समास ज्ञानविषैं असंख्यातलोकवार मात्र बार षट्स्थान पतित वृद्धि हो है। अब याका कथन प्रकट कर दिखाइए है—द्विरूप वर्गधारा विषैं जीवराशितैं अनंतानंत गुणां जघन्य पर्याय नामा ज्ञानकी अपेक्षा अपने विषयकौं प्रकाशनेरूप शक्तिके अविभाग प्रतिच्छेद कहे हैं सो इस प्रमाणकौं जीवराशिप्रमाण अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै ताकौं उस जघन्य ज्ञानविषैं मिलाएं पर्याय समासज्ञानका प्रथम भेद हो है इहां एकबार अनंतभागवृद्धि भई। बहुरि इस पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेदकौं जीवराशिप्रमाण अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना उस पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेद विषैं मिलाएं पर्याय समास ज्ञानका दूसरा भेद हो है। इहां दूसरा अनंत भाग वृद्धि भई। बहुरि उस दूसरे भेदकौं अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना उस दूसरा भेदविषैं मिलाएं पर्यायसमास ज्ञानका तीसरा भेद

हो है। इहां तीसरा अनंत भाग वृद्धि भई। बहुरि उस तीसरे भेदका अनंतकौं भाग दीएं जो परिमाण आया तितना उस तीसरा भेदविषैं मिलाएं पर्याय समासज्ञानका चौथा भेद हो है। इहां चौथा अनंत भागवृद्धि भई। इसही अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंतभाग वृद्धि हूवा थका जो पर्यायसमास ज्ञानका भेद भया ताकौं एकबार असंख्यात लोक प्रमाण जो असंख्यात ताका भागदीएं जो परिमाण आवै तितना उसही भेदविषै मिलाएं एकबार असंख्यात भाग वृद्धि लीएं पर्याय समास ज्ञानका भेद हो है। बहुरि याकौं अनंतका भाग दीए जो परिमाण आवै तितना इसही विषैं मिलाएं पर्यायसमासज्ञानका भेद भया। इहांतैं बहुरि अनंत भागवृद्धिका प्रारंभ हुवा सो ऐसैं ही सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण अनंतभाग वृद्धि भए जो पर्याय समास ज्ञानका भेद भया ताकौं फेरि असंख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आया ताकौं उसही भेद विषैं मिलाएं दूसरा असंख्यात भागवृद्धि लीएं पर्याय समासज्ञान का भेद हो है।

ऐसैं अनुक्रमतैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि भी पूर्ण होइ तहां जो पर्यायसमास ज्ञानका भेद भया ताकौं बहुरि अनंतका भाग दीएं जो परिमाण भया ताकौं तिसहीमें मिलाएं पर्याय समास ज्ञानका भेद होइ। तब इहां अनंत भागवृद्धिका प्रारंभ हूवा सो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंत भागवृद्धि पूर्ण होइ तब जो पर्याय समास ज्ञानका भेद भया ताकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं जो परिमाण होइ ताकौं उसहीविषै मिलाएं पहिले संख्यातभागवृद्धि लीएं पर्यायसमासका भेद होहै यातैं आगैं फेरि अनंतभागवृद्धिका प्रारंभ हूवा सो ऐसैं ही पूर्वैं यंत्रद्वारकरि जो अनुक्रम कह्या है तिस अनुक्रमके अनुसारि वृद्धि जानि लेनी। इतना जानिलेना जिस भेदतैं आगै अनंतभागवृद्धि होइ तहां तिस ही भेदकौं जीवराशि प्रमाण अनंतका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना तिस ही भेदविषैं मिलाएं उसतैं अनंतरवर्ती भेद होइ। बहुरि जिस भेदतैं आगैं असंख्यातभागवृद्धि होइ तहां तिसही भेदकौं असंख्यातलोक प्रमाण असंख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै ताकौं तिस ही भेदविषैं मिलाएं उस

भेदतैं अनंतरवर्ती भेद हो है । बहुरि जिस भेदतैं आगैं संख्यातभागवृद्धि होइ तहां तिसही भेदकौं उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण संख्यातका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितना तिसही भेदविषै मिलाएं उस भेदतैं आगिला भेद होइ । बहुरि जिस भेदतैं आगैं संख्यातगुणवृद्धि होइ तहां तिस भेदकौं उत्कृष्ट संख्यातकरि गुणीए तब उस भेदतैं अनंतरवर्ती भेद होइ । बहुरि जिस भेदतैं आगैं असंख्यातगुणवृद्धि होइ तहां तिस ही भेदकौं असंख्यातलोककरि गुणिए तब उस भेदतैं आगिला भेद होइ । बहुरि जिस भेदतैं आगैं अनंतगुणवृद्धि होइ तहां तिस ही भेदकौं जीवराशिका प्रमाण अनंतकरि गुणिए तब तिस भेदतैं आगिला भेद होइ । ऐसैं षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रम जानना । इहां जो संख्या कही है सो सर्व संख्या ज्ञानका अविभाग प्रतिच्छेदनिकी जाननी अरु जो इहां भेद कहे हैं तिनिका भावार्थ यहु है जो जीवकैं कै तौ पर्यायज्ञान ही होइ और उसतैं बधती ज्ञान होइ तौ पर्यायसमासका प्रथम भेद ही होय ऐसा नाही पर्यायज्ञानतैं एक दोय आदि अविभाग प्रतिच्छेद बंधता भी किसी जीवके ज्ञान होइ अर उस पर्याय समासके प्रथम भेदतैं बंधता ज्ञान होइ तौ पर्याय समास ज्ञानका दूसरा भेद ही होइ ऐसैं अन्यत्र भी जानना । अब इहां अनंत भाग वृद्धिरूप सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थान कहे तिनिका जघन्य स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट स्थान पर्यंत स्थापनका विधान कहिए है । तहां प्रथम संज्ञा कहिए है—विवक्षित मूल स्थानकौं विवक्षित भाग हारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं प्रक्षेपक कहिए । तिस प्रमाणकौं तिसही भाग हारकाभाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं प्रक्षेपक प्रक्षेपक कहिए । ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं पिशुलि कहिए । ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं पिशुलिपिशुलि कहिए । ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दियें जो प्रमाण आवै ताकौं चूर्णि कहिए । ताकौं भी विवक्षित भागहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं चूर्णि चूर्णि कहिए । ऐसैं ही पूर्वप्रमाणकौं विवक्षित भाग हारकाभाग दीएं द्वितीयादि चूर्णिचूर्णि कहिए । अब इहां दृष्टांत रूप अंक संदृष्टिकरि प्रथम कथन दिखाइए है—विवक्षित जघन्य पर्याय ज्ञानका प्रमाण पैंसठिहजार पांचसै छत्तीस

६५५३६। विवक्षित भागहार अनंतका प्रमाण च्यारि ४ तहां पूर्वोक्त क्रमतैं भागहारका भाग दीएं प्रक्षेपकका प्रमाण सोलह हजार तीनसौ चौरासी १६३८४। प्रक्षेपक प्रक्षेपकका प्रमाण च्यारि हजार छिनवै ४०९६। पिशुलिका प्रमाण एक हजार चौईस १०२४। पिशुलि पिशुलिका प्रमाण दोयसै छप्पन २५६। चूर्णिप्रमाण चौसठि ६४ चूर्णि चूर्णिका प्रमाण सोलह १६ असैं द्वितीयादि चूर्णिचूर्णिका प्रमाण च्यारि आदि जानने। अब इहां ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि नीचैं एकबार प्रक्षेपक १६३८४ स्थापि जोड़ें पर्यायसमासके प्रथमभेदका इक्यासी हजार नवसैं बीस ८१९२० प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि नीचैं दोय प्रक्षेपक १६३८४। १६३८४ एक प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापि जोड़ै पर्याय समासके द्वितीय भेदका एक लाख दोय हजार च्यारिसै १०२४०० प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य ६५५३६ स्थापि नीचैं तीन प्रक्षेपक १६३८४। १६३८४। १६३८४ तीन प्रक्षेपक प्रक्षेपकएक पिशुलि स्थापि जोडैं तीसरे भेदका एक लाख अठाईस हजार १२८०००। प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि नीचैं नीचै च्यारि प्रक्षेपक छह प्रक्षेपक प्रक्षेपक च्यारि पिशुलि एक पिशुलि पिशुलि स्थापि जोडै चौथे भेदका एक लाख साठि हजार। १६००००। प्रमाण हो है। बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि नीचै नीचै पांच प्रक्षेपक दश प्रक्षेपक प्रक्षेपक दश पिशुलि पांच पिशुलि पिशुलि एक चूर्णि स्थापि जोड़ै पांचवे भेदका दोय लाख २००००० प्रमाण हो है बहुरि ऊपरि जघन्य स्थापि नीचै नीचैं छह प्रक्षेपक पंचदश प्रक्षेपक प्रक्षेपक बीस पिशुलि पंद्रह पिशुलि पिशुलि छह चूर्णि एक चूर्णि चूर्णि स्थापि जोडै छठे स्थानका दोयलाख पचास हजार २५०००० प्रमाण हो है असैं ही क्रमतैं सर्वस्थाननिविषैं ऊपरि तौ जघन्य स्थापन करना ताके नीचैं नीचैं जितना गच्छका प्रमाण तितने प्रक्षेपक स्थापन करने। इहां जेथवां स्थान होइ तिस स्थान विषैं तितना गच्छ जानना। जैसैं छठा स्थानविषैं गच्छका प्रमाण छह होइ। बहुरि तिनके नीच एक घाटि गच्छका एकबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापने। बहुरि तिनके नीचैं दोय घाटि गच्छका दोयबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने पिशुलि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचैं तीन

घाटि गच्छका तीनबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने पिशुलि पिशुलि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचैं च्यारि घाटि गच्छका च्यारिबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने चूर्णि स्थापन करने। बहुरि तिनके नीचैं पांच घाटि गच्छका पांचबार संकलन धनका जेता प्रमाण तितने चूर्णि चूर्णि स्थापन करने। ऐसैं नीचै नीचै छह आदि घाटि गच्छका छह आदिवार संकलन धनका जेता जेता प्रमाण तितने तितने द्वितीयादि चूर्णि चूर्णि स्थापन करने ऐसैं स्थापन करि जोडैं पर्याय समास ज्ञानके भेदविषैं प्रमाण आवै है। अब इहां एकबार दोयबार आदि संकलन धन कहे तिनिका स्वरूप इहां ही आगैं वर्णन करैंगे। ऐसैं अंकसंदृष्टि करि वर्णन कीया अब यथार्थ बर्णन करिए है—

पर्याय समास ज्ञानका प्रथम भेद विषैं पर्याय ज्ञानतैं जितने बंधै तितने जुदे कीएं पर्याय ज्ञानके जेते अविभाग प्रतिच्छेद हैं तींहिं प्रमाण मूलविवक्षित जानना। यहु जघन्य ज्ञान है तातैं इस प्रमाणका नाम जघन्य स्थाप्या। बहुरि इस जघन्यकौं जीवराशि मात्र अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताका नाम प्रक्षेपक जानना। इस प्रक्षेपककौं जीवराशिमात्र अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै सो प्रक्षेपक प्रक्षेपक जानना। ऐसैंही क्रमतैं जीवराशिमात्र अनंतका भाग दीएं जो जो प्रमाण आवै सो सो क्रमतैं पिशुलि पिशुलिपिशुलि अर चूर्णि अर चूर्णि चूर्णि अर द्वितीय चूर्णिचूर्णि आदि जानने। सो पर्याय समास ज्ञानका प्रथमभेदविषैं ऊपरि जघन्य स्थापि नीचै ताकी वृद्धिका एक प्रक्षेपक स्थापना। बहुरि दूसरा भेद विषैं ऊपरि जघन्य स्थापि नीचैं नीचैं ताकी वृद्धिके दोय प्रक्षेपक एक प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापने। बहुरि तीसरा भेदविषैं ऊपरि जघन्य स्थापि नीचैं नीचै ताकी वृद्धिके तीन प्रक्षेपक तीन प्रक्षेपक प्रक्षेपक एक पिशुलि स्थापने। बहुरि चौथा भेद विषैं जघन्य ऊपरि स्थापि ताके नीचैं नीचैं ताके वृद्धिके च्यारि प्रक्षेपक छह प्रक्षेपक प्रक्षेपक च्यारि पिशुलि एक पिशुलिपिशुलि स्थापने। बहुरि पांचवां भेदविषैं जघन्य ऊपरि स्थापि ताके नीचैं नीचैं पांच प्रक्षेपक दश प्रक्षेपक प्रक्षेपक दश पिशुलि पांच पिशुलि पिशुलि एक चूर्णि स्थापने। बहुरि छठा भेदविषैं ऊपरि जघन्य स्थापि ताके नीचैं नीचैं ताकी

वृद्धिके छह प्रक्षेपक पंद्रह प्रक्षेपक प्रक्षेपक वीस पिशुलि पंद्रह पिशुलि-पिशुलि छह चूर्णि एक चूर्णि-चूर्णि स्थापने। ऐसैं ही सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र जे अनंतभाग वृद्धि संयुक्त पर्याय समास ज्ञानके स्थान तिनिविषैं अपने अपने जघन्यके नीचें नीचैं प्रक्षेपक गच्छमात्र स्थापने। प्रक्षेपक प्रक्षेपक येक घाटि गच्छ एकवार संकलन धनमात्र स्थापने। पिशुलि दोय घाटि गच्छका दोयबार संकलन धनमात्र स्थापने। पिशुलि पिशुलि तीन घाटि गच्छका तीन बार संकलन धनमात्र स्थापने। चूर्णि च्यारि घाटि गच्छका च्यारिवार संकलन धनमात्र स्थापने। चूर्णि चूर्णि पांच घाटि गच्छका पांचवार संकलन धनमात्र स्थापने ऐसैं ही क्रमतें एक एक घाटि गच्छका एक एक अधिकवार संकलन मात्र चूर्णि चूर्णि ही अंतपर्यंत जानने तहां अनंत भागवृद्धि युक्त स्थाननिविषैं अंतका जो स्थान तीहिं विषैं जघन्य तौ ऊपरि स्थापना ताके नीचें नीचें सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रक्षेपक स्थापने। एक घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका एकवार संकलन धनमात्र प्रक्षेपक प्रक्षेपक स्थापने। दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका दोयवार संकलन धनमात्र पिशुलि स्थापने। तीन घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका तीनवार संकलन धनमात्र पिशुलि पिशुलि स्थापने। च्यारि घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका च्यारि वार संकलन धनमात्र चूर्णि स्थापने। पांच घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका पांच वार संकलन धनमात्र चूर्णि चूर्णि स्थापने। याही प्रकार नीचें नीचैं चूर्णि चूर्णि छह आदि घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका छह आदिवार संकलन धनमात्र स्थापने। तहां द्विचरम चूर्णि चूर्णि दोयका दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागवार संकलन धनमात्र स्थापन करने। बहुरि अंतका चूर्णि चूर्णि एकका एक घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागवार संकलन धनमात्र स्थापन करना। परमार्थतैं अंत चूर्णि चूर्णिका संकलन धन नाही है जातैं द्वितीयादि स्थानका अभाव है। याही जायगा (एक ही जायगा) अंत चूर्णि चूर्णिका स्थापन करना। ऐसैं वृद्धिका अनुक्रम जानना बहुरि इहां षट्स्थान प्रकरण विषैं अनंतभाग वृद्धियुक्त स्थाननिके कहे जे भेद तिनिविषैं सर्वत्र प्रक्षेपक तौ गच्छमात्र है

जेथवां भेद होइ तितने तहां प्रक्षेपक स्थापने तातैं सुगम है। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक आदिकनिका प्रमाण एकवार दोयवार आदि संकलन धनका विधान जाने बिना जान्या न जाय तातैं सो संकलन धनका विधान कहिए हैं—जितनेका संकलन धन कह्या होय तितनी जायगा ऐसैं अंक स्थापि जोडने जैसैं छठा स्थान विषैं दोय घाटि गच्छका संकलन धन कह्या तहां च्यारि जायगा या प्रकार अंक स्थापि जोडने। कैसैं अवस्थापि जोडिये? सो कहिये हैं- जितनेका करना होय तितनी जायगा एक आदि एक एक वधता अंकमांडि जोडैं एकबार संकलन धन हो है। बहुरि एकवार संकलन धन विधानविषैं जो पहिलैं अंक लिख्या था सोई इहां दोयवार संकलन विषैं पहिलैं लिखिए। अर उहां एकवार संकलनका दूसरा स्थानविषैं जो अंक था ताकौं याका पहिला स्थानविषैं जोडैं जो प्रमाण होइ सो दूसरा स्थानविषैं लिखिये अर उहां तीसरा स्थानविषैं जो अंक था ताकौं याका दूसरा स्थानविषैं जोडैं जो होइ सो तीसरा स्थानविषैं लिखिये। ऐसैं क्रमतैं लिखि जोडैं दोयबार संकलन धन हो है। बहुरि इस दोयवार संकलधनविषैं जो पहिले अंक लिख्या सोई इहां लिखिये। अर इस प्रथमस्थानमें दोयवार संकलनका दूसरा स्थानका अंक जोडे दूसरा स्थान होइ यामैं वाका तीसरे स्थानका अंक जोडैं याका तीसरा स्थान होइ ऐसैं क्रमतैं जितनेका करना होइ तितना जायगा लिखि जोडैं तीनवार संकलन धन होइ। याही प्रकार च्यारिवार आदि संकलन धनका विधान जानना। इहां उदाहरण कहिये है जैसैं पर्याय समासका छठा भेदविषैं पांचका एकवार संकलन धन करना तहां पांच जायगा क्रमतैं एक दोय तीन च्यारि पांचका अंक मांडि जोडै पंद्रह होइ सो इतने प्रक्षेपक प्रक्षेपक जानना। बहुरि च्यारिका दोयवार संकलन धन करना तहां च्यारि जायगा क्रमतैं एक तीन छह दश मांडि जो वीस होइ सो इतने इतने पिशुलि जानने। बहुरि तीनका तीनवार संकलन धन करना तहां तीन जायगा क्रमतैं एक च्यारि दश मांडि जोडैं पंद्रह होइ सो इतने पिशुलि पिशुलि जानने। बहुरि दोयका च्यारिवार संकलन करना तहां दोय जायगा एक पांच मांडि जोडैं छह होइ

सो इतने चूर्णि जानने। बहुरि एकका पांच जायगा संकलन धन करना तहां एक जायगा एक ही है तातैं ये चूर्णि चूर्णि एकही जानना। ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना। अब ऐसैं ये अंक मांडि जोडैं एकबार संकलनादि विषैं जो प्रमाण होइ ताके ल्यावनेकौं करणसूत्र कहिये है—

व्येकपदोत्तरघातः सरूपवारोद्धृतो मुखेन युतः।
रूपाधिकवारांताक्षपदाद्यंकैर्हतो वित्तं ॥ १ ॥

जितनेका संकलनधन करना होइ तिस प्रमाण इहां गच्छ जानना तामैं एक घटाइ अवशेषकौं उत्तर जो क्रमतैं जितनीवार वंधता संकलन कह्या होइ ताकरि गुणिए जो प्रमाण होइ ताकौं जितनीवार संकलन कह्या तामैं एक जोडि जो प्रमाण होइ ताका भाग दीजिए जो लब्ध होइ तामैं मुख जो पहिला स्थानका प्रमाण सो जोडिए जो प्रमाण होइ ताकौं जितनीवार संकलन कह्या होइ तितनी जायगा गच्छतैं लगाइ एक एक बंधता अंक मांडि परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ सो तौ भाज्य अर एकतैं लगाइ एक एक बंधता अंक मांडि परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ सो भागहार, तहां भाज्यकौं भागहारका भाग दीएं जो लब्धराशि होइ ताकरि गुणिए ऐसैं करतैं समस्त विवक्षितवार संकलन धन आवै है। इहां उदाहरण कहिए है—जैसे छठा पर्याय समासका भेदविषैं च्यारि घाटि गच्छ जो दोय ताका च्यारिवार संकलन धनमात्र चूर्णि कहिए। सो इहां गच्छ दोय तामैं एक घटाएं एक याकौं एकवारादि संकलन धन रचना अपेक्षा दोयवार आदि संकलनकी रचना उपजै है सो एक एक वार बंधता संकलन भया तातैं उत्तरका प्रमाण एक ताकरि गुणैं भी एकही भया याकौं इहां च्यारिवार संकलन कह्या सो च्यारिमैं एक मिलाएं पांच भया तिनिका भाग दीएं एकका पांचवां भाग भया। यामैं मुख जो आदिका प्रमाण एक सो समच्छेद करि मिलाएं छहका पांचवां भाग भया। बहुरि इहां च्यारिवार कह्या है सो तामैं एक आदि एक एक बंधता च्यारि पर्यंत अंक मांडि १। २। ३। ४। परस्पर गुणैं चौबीस २४ भये सो भागहार, अर गच्छ दोयका प्रमाणतैं लगाइ येक येक बंधता अंकमाडि। २। ३। ४। ५। परस्पर गुणैं येकसौ बीस। १२०। भाज्य सो

भाज्यकौं भागहारका भाग दीयें लब्धिराशि पांच ताकरि पूर्वोक्त छहका पांचवां भागकौं गुणें छह भये सोई दोयका च्यारिवार संकलन धन जानना। ऐसैं ही तीनका तीनवार संकलनधन पीछे गच्छ तीन एक घटाये दोय उत्तर एककरि गुणैं भी दोय इहां तीनवार संकलन है तातैं एक अधिकवार प्रमाण च्यारि ताका भाग दीये आधा याम मुख एक जोडैं ब्याड भया। बहुरि एक आदिवार प्रमाण पर्यंत एक एक अधिक अंक १। २। ३। परस्पर गुणें भागहार छह अर गच्छ आदि एक एक अधिक अंक ३। ४। ५। परस्पर गुणें भाज्य साठि भाज्यकों भागहारका भाग दीएं पाये दश इनिकरि पूर्वोक्त ब्योढकौं गुणें छठा भेदविषैं तीनघाटि गच्छका तीनवार संकलन धनमात्र पिशुलि पिशुलि पद्रह हो है। ऐसैं सर्वत्र विवक्षित संकलन धन ल्यावने। बहुरि संस्कृत टीकाकार केशववर्णी अपने अभिप्रायकरि तिनि प्रक्षेपक प्रक्षेपकादिकका प्रमाण ल्यावने निमित्त दोय गाथारूप करण सूत्र कहैं हैं—

तिरियपदे रूऊणे तदिट्ठहेट्ठिलसंकलणवारा।
कोट्ठधणस्साणयणे पभवं इट्ठूणउड्ढपदसंखा॥ १ ॥

अनंत भागवृद्धियुक्तस्थाननिविषैं जेथवां स्थान विवक्षित होइ तीहि प्रमाण तिर्यग् गच्छ कहिये तामैं एक घटाएं ताके नीचैं संकलनवारका प्रमाण हो है। इहां उदाहरण—जैसे छठा स्थानविषैं गच्छका प्रमाण छहमें एक घटाएं ताके नीचैं पांच संकलनवार हो है। प्रक्षेपकसंबंधी कोठाके नीचैं एकवार दोयवार तीन च्यारिवार पांचवार संकलन प्रक्षेपक प्रक्षेपक आदिके एक एक कोठानिविषैं संभवै हैं ऐसैं ही अन्यत्र जानना। बहुरि विवक्षित कोठानिका संकलन धन ल्यावनेके अर्थि जेथवां भेद होइ तींहि प्रमाण जो ऊर्ध्व गच्छ तीहिविषैं जेतीवार विवक्षित संकलन होइ तितना घटायें अवशेष मात्र प्रभव कहिये आदि जानना।

तत्तोरूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति।
इगिरूवमादिरूवोत्तरहारा होंति पभवोत्ति॥ २ ॥

अर्थ—तिस आदितैं लगाइ एक एक बंधता ऊर्ध्वगच्छका प्रमाण पर्यंत अनुक्रमकरि विवक्षितके गुणकार होंहि। बहुरि तिनिके नीचैं एकतैं लगाइ एक एक बंधता उलटा क्रमकरि प्रभव जो आदि ताका भी नीचा पर्यंत तिनिके भागहार होंहि। गुणकारानिकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ ताकौं भागहारनिकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ ताका भाग दीएं जेता प्रमाण आवैं तितने तहां प्रक्षेपक प्रक्षेपक आदि संबंधी कोठाविषैं वृद्धिका प्रमाण आवै है। इहां उदाहरण कहिए है—अनंत भाग वृद्धि युक्त स्थानविषैं विवक्षित छठा स्थानविषैं एक घाटि तिर्यग्गच्छ प्रमाण एकबार आदि पांच संकलन स्थान हैं तिनिविषैं च्यारि बार संकलन संबंधी कोठानिविषैं प्रमाण ल्याइए है। विवक्षित संकलनबार च्यारि तिनिका इहां छठा भेद विवक्षित है तातैं ऊर्ध्व गच्छ छह तामैं घटाएं अवशेष दोय रहे सो आदि जानना। इस आदि दोयतैं लगाइ एक एक अधिक ऊर्ध्वगच्छ छह पर्यंत तौ क्रमकरि गुणकार होइ। अर तिनके नीचैं उलटे क्रमकरि आदि पर्यंत एक आदि एक एक अधिक भागहार होइ सो इहां च्यारिबार संकलनका कोठाविषैं चूर्णि है। चूर्णिका प्रमाण जघन्यका पांचबार अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो तितना है। तिस प्रमाणके दोय तीन च्यारि पांच छह तौ क्रमतैं गुणकार होंइ अर पांच च्यारि तीन दोय एक भागहार होइं तहां गुणकारानिकरि चूर्णिकौं गुणैं भागहारनिका भागदीएं यथा योग्य अपवर्तन कीए छह गुणां चूर्णिमात्र तिस कोठाविषैं प्रमाण आवै है। भावार्थ ऐसा—जो दोय तीन च्यारि पांचका गुणकार अर भागहारका तौ अपवर्तन भया। छहकौं एकका भागहार रह्या तातैं छह गुणां चूर्णिमात्र तहां प्रमाण है। बहुरि ऐसैं ही अनंत भाग वृद्धि युक्त अंतभेदविषै यहु स्थान सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका जो प्रमाण तेथवां है तातैं तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र है। तामैं एक घटाएं अवशेष एकबार आदि संकलनके वार हैं तिनिविषैं विवक्षित च्यारिबार संकलनका कोठाविषैं प्रमाण ल्याइए है। विवक्षित संकलनबार च्यारि ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्रमैंस्यों घटाएं अवशेष मात्र आदि है यातैं एक एक बंधता क्रमकरि ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग पर्यंत तौ गुणकार होइ अर उलटे क्रमकरि एक आदि एक एक बं-

धता पांच पर्यंत भागहार होइ सो च्यारिबार संकलनका कोठाविषैं चूर्णि है तातैं चूर्णिकौं तिनि गुणकारानि करि गुणे भाग हारनिका भाग दीएं लब्धमात्र तिस कोठाविषैं वृद्धिका प्रमाण है इहां गुणकार भागहार समान नाहीं तातैं अपवर्तन होइ सकता नाहीं। इहां लब्धराशिका प्रमाण अवधिज्ञान गोचर जानना। बहुरि तिसही अनंत भागवृद्धियुक्त अंतका भेदविषैं विवक्षित द्विचरम चूर्णि चूर्णिका दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र वार संकलन धनका प्रमाण ल्याइए है। इहां भी तिर्यग्गच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र है ताम एक घटाएं एकबार आदि संकलनके बार हो हैं। तहां विवक्षित संकलनबार दोय घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र सो ऊर्ध्वगच्छ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्रमैं घटाएं अवशेष दोय रहे सो आदि जानना। इसतैं लगाइ एक एक बंधता ऊर्ध्वगच्छ पर्यंत गुणकार अनुक्रम करि हो है। अर एक आदि एक एक बंधता अपने इष्ट बारका प्रमाणतैं एक अधिक पर्यंत उलटे क्रमकरि भागहार हो है। इहां दोय आदि एक घाटि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग पर्यंत अंक गुणकार वा भागहार विषैं समान है तातैं तिनिका अपवर्तन कीया अवशेष सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका गुणकार रह्या एकका भागहार रह्या इहां इस कोठाविषैं द्विचरम चूर्णि चूर्णि है ताका प्रमाण जघन्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्रबार भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना जानना। याकौं पूर्वोक्त गुणकार करि गुणैं एकका भाग दीएं तिस कोठासंबंधी प्रमाण आवै है। बहुरि ऐसैं ही अंतका चूर्णि चूर्णि विषैं संकलन है ही नाहीं जातैं अंतका चूर्णि चूर्णि एकही है सो जघन्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र बार अनंतका भाग दीएं अंत चूर्णि चूर्णिका प्रमाण हो है। ताकौं एक करि गुणैं भी तितना ही तिस कोठाविषैं वृद्धिका प्रमाण जानना। ऐसैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र अनंतभाग वृद्धियुक्त स्थान होइ तब एक असंख्यात भाग वृद्धियुक्त स्थान हो है। इहां ऊवंक जो अनंत भागवृद्धियुक्त अंत स्थान ताकौं चतुरंक जो असंख्यातका भाग दीयें जो एक भागका प्रमाण आवै तितनां तिसही पूर्वस्थानविषैं जोड्या सो इहां जघन्य ज्ञान साधिक कहिये किछू अधिक भया। अंकसंदृष्टिका दृष्टांतविषैं स्तोक प्रमाण है तातैं जघन्य तौ गुणकार

भया। यथार्थविषै महत् प्रमाण है तातैं ऐसैं वृद्धि होतैं भी साधिकपना ही भया है। अब जैसैं जघन्य ज्ञानकौं मूल स्थापि जैसैं अनंतभाग वृद्धिस्थान प्रक्षेपकादिविशेष लीये कहे थे तैसैं इहांतैं आगैं इस साधिक जघन्यकौं मूलस्थापि अनंत भाग वृद्धि युक्त स्थान सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र जानने। ऐसैं ही पूर्वोक्त यंत्र द्वारकरि जैसैं अनुक्रम दिखाया तैसैं अनंत गुणवृद्धि पर्यंत क्रम जानना। तहां भाग वृद्धिविषैं प्रक्षेपकादिक वृद्धिका विशेष जानना सो जिस स्थानतैं आगैं भाग वृद्धि होइ ताकौं मूल स्थापन करना ताकौं एकवार जिस प्रमाणकी भागवृद्धि होइ ताका एकवार भाग दीए प्रक्षेपक हो है। दोयवार भाग दीयें प्रक्षेपक प्रक्षेपक हो है। तीनवार आदि भाग दीयें पिशुलि आदिक हो है ऐसा विधान जानना। ऐसैं सर्वत्र षट्स्थान वृद्धिका अनुक्रम जानना॥ ३२६ ॥

आदिमछट्ठाणह्मि य पंच य वड्ढी हवंति सेसेसु।
छव्वड्ढीओ होंति हु सरिसा सव्वत्थ पदसंखा॥ ३२७॥

आदिमषट्स्थाने च पंच च वृद्धयो भवंति शेषेषु।
षड्वृद्धयो भवंति हि सदृशा सर्वत्र पदसंख्या॥ ३२७॥

जी॰ प्र॰—अत्र संभवत्सु असंख्यातलोकमात्रेषु षट्स्थानेषु मध्ये आदिमे प्रथमे षट्स्थाने पंचैव वृद्धयो भवंति, चरमस्य अष्टांकसंज्ञस्य अनंतगुणवृद्धियुक्तस्य द्वितीयषट्स्थानस्यादित्वप्रतिपादनात्। शेषेषु द्वितीयादिचरमावसानेषु षट्स्थानेषु सर्वा अष्टांकादयः षड्वृद्धयो भवंति तथासति सदृशी सर्वत्रपदसंख्या एतेषु षट्स्थानेषु संभवति—स्थानविकल्पसंख्या सदृशा समानैव सादृश्यनियमनिमित्तस्य सूच्यंगुलासंख्यातभागस्य अवस्थितस्वरूपत्वात्। तथा सति प्रथमषट्स्थाने पंचवृद्धियुक्तस्थानानि संभवंति॥ ३२७॥ अष्टांकः कथं न घटते इति चेद्धेतुमाह—

मं॰प्र॰—षण्णां स्थानानां समाहारः षट्स्थानं। आदिमे षट्स्थाने पंच वृद्धयो भवंति अष्टांकसंज्ञाया अनंतगुणवृद्धेर्द्वितीयषट्स्थानस्यादित्वप्रतिपादनात्। शेषेषु द्वितीयतृतीयादिषु असंख्यातलोकमात्रेषु षट्सु स्थानेषु अष्टांकादयः षडपि वृद्धयो भवति। सर्वासु वृद्धिषु पदसंख्या अंगुलासंख्यातभागप्रमिता स्थानसंख्या सदृशी एकरूपैव न तु विभिन्नरूपा॥

स०चं०—इस पर्याय समास ज्ञानविषै असंख्यात लोकमात्रवार षट् स्थान संभवै है तिनिविषै पहिलीवार तो पांच स्थानपतितवृद्धि हो है जातैं जो पीछैं ही पीछैं अनंतगुण वृद्धिरूप भेद भया ताकौं दूसरीवार षट्स्थानपतित वृद्धिका आदि स्थान कह्या है बहुरि जैसैं पहिले षट् स्थानपतित वृद्धिका क्रम कह्या ताकौं पूर्णकरि दूसरा तैसैं ही फेरि षट्स्थानपतित वृद्धि होइ ऐसैं ही तीसरा होइ इत्यादि असंख्यात लोकवार षट् स्थान हो है तिनिविषैं छहौ वृद्धि पाइये है अनंत गुणवृद्धि रूप तो पहिला ही स्थान होइ पीछैं क्रमतै पांच वृद्धि अंतकी अनंतभागवृद्धि पर्यंत होइ। बहुरि जो अनंतभागादिक सर्ववृद्धि कहीं तिन सबनिका स्थान प्रमाण सदृश सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र जानना। तातैं जो वृद्धि हो है सो अंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण वार हो है ॥३२७॥

छट्ठाणाणं आदी अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं।
जम्हा जहण्णणाणं अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं ॥ ३२८ ॥

षट्स्थानानामादिरष्टांकं भवति चरममुर्वंकं।
यस्माज्जघन्यज्ञानमष्टांकं भवति जिनदृ(दि)ष्टं ॥ ३२८ ॥

जी० प्र०—षट्स्थानवाराणां सर्वेषामादिः प्रथमस्थानमष्टांकमेव अनंतगुणवृद्धिस्थानमेव भवति तेषां चरमस्थानमुर्वंकमेव अनंतभागवृद्धिस्थानमेव भवति। तर्हि प्रथमस्थानस्य अष्टांकत्वं कथं ? इति तन्न, यस्मात् तज्जघन्यं ज्ञानं पर्यायाख्यं पूर्वस्मादेकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदानां वर्गस्थानादनंतगुणत्वेन अष्टांकं भवतीति जिनैः अर्हदादिभिः दिष्टं-कथितं दृष्टं वा, तस्मात् कारणात् प्रथमषट्स्थानेऽपि अष्टांकादित्वं युक्तं। अत्र षट्स्थानानामादिः अष्टांकः, अवसानं उर्वंकः इति नियम उक्तोऽस्तीति। चरमषट्स्थानेऽपि आदौ अष्टांके अवसाने उर्वंके च सति तदग्रतनोऽष्टांकः कीदृगस्ति ? इति चेत् अर्थाक्षर-ज्ञानरूपो भवति तथैव अग्रे वक्ष्यमाणत्वात्। तदेवं जघन्यपर्यायज्ञानमादिः इत्युक्तागमो निर्बाधबोधविषयः ॥ ३२८ ॥ एषां षट्स्थानानां स्थानसंख्या समानेति दर्शयति—

म० प्र०—षण्णां वृद्धिस्थानानां अष्टांकमेव—अनंतगुणवृद्धिस्थानमेवादिर्भवति तेषां चरममुर्वंकमेव अनंतभागवृद्धिस्थानमेव पर्यवसानमित्यर्थः। ननु यद्येवं

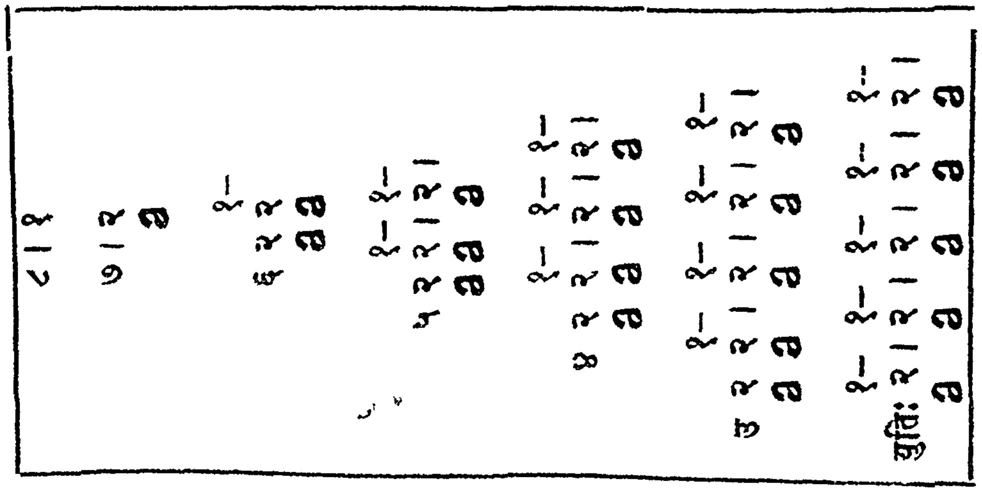
प्रथमे षट्स्थाने अष्टांकस्याभावात् कथमष्टाकादित्वमित्याशंक्येदमुच्यते यस्मात्कारणात् जघन्यज्ञानं पर्यायाख्यं पूर्वसादेकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदानां वर्गस्थानादनंतगुणत्वेनाष्टाक भवति इति जिनैरर्हदादिभिः, दिष्टं-कथितं दृष्टं वा तस्मात्कारणात् प्रथमषट्स्थानेप्यष्टाकादित्वं युक्त ॥ ३२८ ॥

स० चं०—षट्स्थान पतित वृद्धिरूप स्थाननिविषैं अष्टांक कहिये अनंतगुणवृद्धि सो आदि है । बहुरि उर्वंक कहिये अनंतभाग वृद्धि सो अंतस्थान है। भावार्थ—पूर्वैं जो यंत्रद्वार करि वृद्धिका विधान कह्या सो सर्व विधान होइ निवरैं तब एक बार षट्स्थानपतित वृद्धि भई कहिए विशेष इतना जा नवमी पंकतिका नवमा कोठा विषैं दोय उकार अर एक आठका अंक लिख्या है सो ताका अर्थ यहु जो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण अनंतभाग वृद्धि होइ करि एकबार अनंतगुण वृद्धि हो है । सो यहु अनंतगुण वृद्धि रूप जो भेद सो नवीन षट्स्थान पतित वृद्धिका आरंभ कीया ताका आदिका स्थान जानना । इसतैं लगाइ प्रथम कोठादिक संबंधी जो रचना कही थी तीहिं अनुक्रमतैं षट्स्थानपतित वृद्धि हो है तहां उस ही नवमी पंकतिका नवमा कोठा विषैं आठका अंक है पहिली जो उकार लिखा था ताका अर्थ यहु जो सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्रवार अनंतभाग वृद्धि भई तिनिविषैं अंतकी अनंतभाग वृद्धि लीएं जो स्थान सोई इस षट्स्थानपतित वृद्धिका अंत स्थान जानना । याहीतैं षट्स्थान पतित वृद्धिका आदि स्थान अष्टांक कह्या अर अंतस्थान उर्वंक कह्या है। बहुरि पहिली वार अनंतगुण वृद्धि विना पंच वृद्धि कही अर पीछैं छहौं वृद्धि कही हैं। यहां प्रश्न-जो पहिली बार आदि स्थान जघन्य ज्ञान है ताकौं अष्टांक रूप अनंतगुण वृद्धि संभवै भी है कि नाहीं ? ताका समाधान—जो द्विरूप वर्ग धारा विषैं इस जघन्य ज्ञानतैं पहिला स्थान एक जीवके अगुरु लघुगुणनिके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण है तातैं जघन्यज्ञान अनंतगुणा है । तातैं पहिलीबार भी आदि स्थान जो जघन्यज्ञान तीहिं विषैं अनंत गुणवृद्धि अन्य अपेक्षा संभवै है । बहुरि ज्ञान ही की अपेक्षा संभवै नाहीं तातैं पहिलीबार पंच वृद्धि ही कही संभवै है ऐसैं जिन देवनै कह्या है वा देख्या है । बहुरि अंतका षट्स्थानविषै भी आदि अष्टांक अंत ऊर्वंक हैं । तातैं आगैं अष्टांक जो अनंतगुण वृद्धि रूप स्थान सो अर्थ अक्षर ज्ञान है सो आगैं कहेंगे सो जानना ॥३२८॥

एक्कं खलु अट्ठंकं सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा ।
रूवहियकंडएण य गुणिदकमा जाव उव्वंकं ॥ ३२९ ॥

एकं खलु अष्टांकं सप्तांकं कांडकं ततोऽधः ।
रूपाधिककांडकेन च गुणितक्रमा यावदुर्वंकं ॥ ३२९ ॥

जी० प्र०—एकस्मिन् षट्स्थाने एक एवाष्टांको भवति कुतः ? अंगुल असंखभागं पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी एक्कं वारं होदीति तस्य पूर्वत्वासंभवेनाष्टत्तेरभावात् । सप्तांकः असंख्यातगुणवृद्धियुक्तस्थानानि कांडकं सूच्यंगुलासंख्यातभागमात्राण्येव भवंति । तदधस्तनाः षडंकपंचांकचतुरंकोर्वंकास्तु रूपाधिकसूच्यंगुलासंख्यातभागगुणितक्रमा भवंति यावदुर्वंक इत्यभिविधिः उर्वंकस्य सीमत्वं सूचयन् तमेव व्याप्नोति तन्न्यासोऽयं—



एवं द्वितीयवारषट्स्थाने आदिभूताष्टांकतोऽग्रे उर्वंकोऽस्ति तथापि 'एक्कं खलु अट्ठंकं' इति नियमवचनान्न तस्यांगुलासंख्यातभागमात्रवारः, खलुशब्दस्य नियमार्थवाचकत्वात् ॥ ३२९ ॥

म० प्र०——एकस्मिन् षट्स्थाने एक एवाष्टाकः तस्यावृत्तेरभावात् । पूर्ववृद्धौ सूच्यगुलासख्यातभागमात्रवारान् गताया परवृद्धिरेकवारं भवतीति वचनात् अनंतगुणवृद्धेः परतो वृद्ध्यतराभावात् अस्याः पूर्वत्वासिद्धेश्च । सप्तांकः सख्यातगुणवृद्धिः काडकं—अगुलासंख्यातभागमात्रवारः तस्य अष्टांकात् पूर्वत्वात् । ततः सप्तांकस्याधः षडकपचाकचतुरंकोर्वकाः संख्यातगुणसंख्यातभागासंख्यातभागानंतभागवृद्धयः रूपाधिककाडकेन गुणितक्रमाः । यावदूर्वक इत्यनेन ऊर्वकस्य सीमित्वं सूचयन् तमप्यभिव्यप्नोति तन्न्यासोयं—

१ १ १ १	१ १ १	१ १	१		
उ २ २ २ २ २ ।	४ २ २ २ २ ।	५ २ २ २ ।	६ २ २ ।	७ २ ।	८ । १
a a a a a	a a a a	a a a	a a	a	

तत्र रूपाधिकत्वकारणं पूर्वोक्तविधानेन अधिकवारागुलासख्यातभागमात्रप्रदर्शनयुक्त्या अभ्यूहनीयं । यद्यपि द्वितीयवारषट्स्थाने आदिभूतादष्टाकात् परमुर्वको भवति तथापि 'एक्कं खलु अट्ठंकं' इति नियमवचनेन अष्टाकस्य अंगुलासंख्यातभागमात्रवाराभाव एव खलुशब्दस्य नियमार्थत्वात् ॥ ३२९ ॥

स० चं०——एकबार जो षट्स्थान होइ तीहि विषैं अष्टांक कहिए अनंत गुण वृद्धि सो एकबार ही हो है जातैं 'अंगुल असंख भागं' इत्यादि सूत्र अनुसार अष्टांकके परैं कोई वृद्धि नाहीं। तातैं याके पूर्वपनाका अभावतैं बार बार पलटनेका अभाव है। बहुरि सप्तांक कहिए असंख्यात गुणवृद्धि सो कांडकं कहिए सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र हो है। बहुरि ताके नीचैं षडंक कहिए संख्यात गुणवृद्धि पंचंक कहिए संख्यात भाग वृद्धि चतुरंक कहिए असंख्यात भागवृद्धि ऊर्वंक कहिए अनंतभागवृद्धि ए च्यार्‍यो एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणित अनुक्रमतैं जाननीं। इहां यावत् ऊर्वंक इस वचनकरि उर्वंक पर्यंत अनुक्रमकी मर्यादा कही है सोई कहिए है—असंख्यात गुणवृद्धिका प्रमाण सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण कह्या है ताकौं एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार संख्यात गुणवृद्धि हो है। बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार संख्यात भागवृद्धि हो है। बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार असंख्यात भागवृद्धि हो है। बहुरि याकौं भी एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग करि गुणें जो परिमाण होइ तितनीबार अनंतभाग वृद्धि हो है ऐसैं एकबार षट्स्थान पतित वृद्धि होने विषै पूर्वोक्त प-

माण लीएं एक एक वृद्धि हो है। दूसरीवार आदिविषैं पहिलैं अष्टांक हो है ताके आगै ऊर्वंक हो है तातैं एकही अष्टांक है ऐसा कह्या है ॥ ३२९ ॥

सव्वसमासो णियमा रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स ।
विंदस्स य संवग्गो होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३३० ॥

सर्वसमासो नियमात् रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य ।
वृंदस्य च संवर्गो भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ३३० ॥

जी० प्र०—सर्वासां अष्टांकादिषड्वृद्धीनां संयोगः रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य वृंदस्य च संवर्गमात्रो भवति इति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं कथितं। अत्र तद्युतिः क्रियते तद्यथा—

अष्टांकस्य आत्मप्रमाणैकरूपे सप्तांकस्य सूच्यंगुलासंख्यातभागे युते सति रूपाधिककांडकं भवति तस्मिन् पुनः आत्मप्रमाणैकरूपे षडंके संख्यायां कांडकगुणितरूपाधिककांडकमात्र्यां युते सति रूपाधिककांडकवर्गो भवति। तदात्मप्रमाणैकरूपे पंचांकसंख्यायां कांडकगुणितरूपाधिककांडकवर्गप्रमितायां युते सति रूपाधिककांडकघनो भवति। तदात्मप्रमाणैकरूपे चतुरंकसंख्यायां कांडकगुणितरूपाधिककांडकघनप्रमितायां युते सति रूपाधिककांडकवर्गस्य वर्गो भवति। तदात्मप्रमाणैकरूपे उर्वंकसंख्यायां काडकगुणितरूपाधिकं कांडकवर्गस्य वर्गप्रमितायां रूपाधिककांडकचतुष्टयेन रूपाधिककांडकचतुष्टयं समं प्रदर्श्य आत्मप्रमाणैकरूपे शेषकांडके युते सति रूपाधिककांडकवर्गस्य घनस्य च संवर्गस्य घनस्य च संवर्गप्रमाणं भवति। इदमित्थमेव प्रतिपत्तव्यं। कुतः? जिनैर्निर्दिष्टमिति कारणात् इंद्रियज्ञानगोचरत्वाभावात् तेषु गुणकारेषु गुणितेषु लब्धं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं वा ६/a घनांगुलसंख्यातभागमात्रं वा ६/१ घनांगुलमात्रं वा। ६। संख्यातघनांगुलमात्रं वा ६ १ असंख्यातघनांगुलमात्रं वा ६ a इत्यस्माभिर्न ज्ञायते ॥ ३३० ॥

मं० प्र०—सर्वासामष्टांकादीनां षण्णां वृद्धीनां समासः संयोगः रूपाधिककांडकस्य वर्गस्य घनस्य च संवर्गमात्रो भवति तद्वर्गेण द्विसमवधेन तद्घने त्रिसमवधे गुणिते सति यावान् राशिरुत्पद्यते तावत्यः षड्वृद्धयः एकस्मिन् षट्स्थानवारे भवंतीत्यर्थः। तत्संयोगक्रमो दर्श्यते तद्यथा-अष्टांकस्य एकरूपं सप्ता-

कस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे प्रक्षिप्ते रूपाधिककांडकं भवति १ तस्यात्मप्रमाणे एकरूपे षडंकस्य अंगुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपा-
२
a

धिककांडकस्य वर्गो भवति १ १ तस्यात्मप्रमाणे एकरूपे पंचाकस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपाधिककाडकस्य घनो भवति-
१ १ १ २ २
२ २ २ a a

a a a तदात्मप्रमाणैकरूपे चतुरकस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपाधिककांडकस्य घनं: रूपाधिककांडकेन गुणितमात्रो भ-
१ १ १ १
२ २ २ २

वति a a a a तदात्मप्रमाणैकरूपे उर्वंकस्यागुलासंख्यातभागमात्रवारे गुण्यं समं प्रदर्श्य प्रक्षिप्ते सति रूपाधिककाडकस्य घन: रूपाधिककाडकवर्गेण
१ १ १ १ १
२ २ २ २ २

गुणितमात्रो भवति a a a a a इति जिनैर्निर्दिष्टं। अपवर्तिते सति लब्धप्रमाणमपि जिनैरेव निश्चयेन दृष्टं। असंख्यातघनागुलमात्रं वा ६ a।
संख्यातघनागुलमात्रं वा ६ १ घनागुलमात्र वा ६ घनागुलसंख्येयभागमात्रं वा ६ घनागुलासंख्येयभागमात्र वा ६ अस्माभिर्न ज्ञायते ॥ ३३० ॥
१ a

स० चं०—पूर्वै जो छहो वृद्धिनिका परिमाण कह्या तीर्हि सर्वका जोड दीएं रूपाधिक कांडक कहिये एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग ताका वर्ग अर घन ताका संवर्ग कीएं संतै जो प्रमाण होइ तितनां हो है असा जिन देवनिकरि कह्या है। भावार्थ—एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं दोय जायगा मांडि परस्पर गुणन कीये जो परिमाण होय सो तौ रूपाधिक कांडकका वर्ग कहिए। बहुरि एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं तीन जायगा मांडि परस्पर गुणन कीएं जो परिमाण होइ ताकौं रूपाधिक कांडकका घन कहिए बहुरि इस वर्गकौं अर घनकौं परस्पर गुणन कीएं जो परिमाण होइ अथवा एक अधिक

सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकौं पांच जायगा मांडि परस्पर गुणन कीएं जो परिमाण होइ तितनीवार एक षट् स्थानपतित वृद्धिविषै अनंत भागादिक वृद्धि हो है। जैसैं अंक संदृष्टि करि पूर्वैं यंत्रविषैं आठका अंक एक बार लिख्या अर सातका अंक दोयवार लिख्या मिलि तीन भए। बहुरि छहका अंक छहवार लिख्या मिलि तीनका वर्ग नव भया। बहुरि पंचका अंक अठारहवार लिख्या मिलि तीनका घन सत्ताईस भया बहुरि च्यारि का अंक चौवन बार लिख्या मिलि तीन करि गुणित तीनका घन इक्यासी भया। बहुरि ऊर्वंकं एकसौ बासठि बार लिख्या मिलिकरि तीनका वर्गकरि गुणित तीनका घन दोयसै तियालीस हूवा। तैसैं ही अनंतगुण वृद्धि एकबार विषै कांडकमात्र असंख्यात गुणवृद्धि जोडैं एक अधिक ही कांडक हो है। बहुरि तींहि अपने प्रमाण एक रूपके अर संख्यात गुण वृद्धिका कांडक प्रमाणके समान गुण्यपणौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका वर्ग हो है बहुरि तिहिं अपने प्रमाण एककै अर संख्यात भाग वृद्धिका कांडक प्रमाणकै समान गुण्यपणौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका घन हो है। बहुरि तिहिं अपने प्रमाण एककैं अर असंख्यात भागवृद्धिका कांडक प्रमाणकैं समान गुण्यपनौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका वर्गकरि गुणित रूपाधिक कांडकका घन हो हैं। बहुरि तांहि अपने प्रमाण एककैं अर अनंतभाग वृद्धिका प्रमाणकैं समान गुण्य पनौं देखि जोडैं रूपाधिक कांडकका वर्गकरि गुणित रूपाधिक कांडकका घन प्रमाण हो है। इहां अंक संदृष्टिविषैं कांडकका प्रमाण दोय जानना। यथार्थविषैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र जानना। बहुरि अंक संदृष्टिविषैं जैसे अष्टांक सप्तांक मिलि तीन भए। बहुरि इस प्रमाण लीएं एक तौ यहु अर कांडकमात्र दोय षडंक मिलि तीन भए। ए तीनतौ गुणकार अर पूर्वोक्त तीन गुण्य सो गुणकार करि गुण्यकौं गुणैं तीनका वर्ग भया तैसैंही अनंतगुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धि कौं मिल्या हूवा अपना प्रमाण रूपाधिक कांडक तिहि मात्र एक तौ यहु अर कांडकमात्र संख्यात गुणवृद्धि सो मिलि रूपाधिक कांडकमात्र गुणकार हूवा। याकरि पूर्वोक्त रूपाधिक कांडकमात्र गुण्यकौं गुणैं रूपाधिक कांडक का वर्ग हो है असैं ही अन्यविषैं भी जानि लेना। असैं जो यहु सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागका वर्गकरि वा-

हीका घनकौं गुणैं जो प्रमाण हो है सो असंख्यात घनांगुलमात्र हो है वा संख्यात घनांगुलमात्र हो है वा घनांगुलमात्र हो है वा घनांगुलके संख्यातवे भाग मात्र हो है वा घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र हो है सो हम जान्या नाहीं सर्वज्ञदेव यथार्थ जान्या है सो प्रमाण है ॥ ३३० ॥

उक्कस्ससंखमेत्तं तत्ति चउत्थेक्कदालछप्पण्णं ।
सत्तदसमं च भागं गंतूणय लद्धिअक्खरं दुगुणं ॥३३१॥

उत्कृष्टसंख्यातमात्रं तत्त्रिचतुर्थैकचत्वारिंशत्षट्पंचाशं ।
सप्तदशमं च भागं गत्वा लब्ध्यक्षरं द्विगुणं ॥ ३३१ ॥

जी॰ प्र॰—रूपाधिककांडकगुणितांगुलासंख्यातभागमात्रवारान् अनंतभागवृद्धिस्थानेषु अंगुलासंख्यातभागमात्रवारान् असंख्येयभागवृद्धिस्थानेषु च गतेषु तदुभयवृद्धियुक्तजघन्यस्य एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पद्यते ज $\frac{१५}{१५}$ अग्रे पुनः प्रागुक्तक्रमवृद्धिद्वयसहचरितेषु संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानेषु उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु गतेषु तत्र प्रक्षेपकवृद्धिषु युतासु लब्ध्यक्षरं सर्वजघन्यपर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं साधिकद्विगुणं भवति । कुतः ? प्रक्षेपकस्य उत्कृष्टसंख्यातभाज्यभागहारानपवर्त्य युते तस्य द्विगुणत्वसंभवात् तत्त्रिचतुर्थे पूर्वोक्तसंख्यातभागवृद्धियुक्तोत्कृष्टसंख्यातमात्रस्थानानां त्रिचतुर्थभागस्थानानि नीत्वा तत्र प्रक्षेपकः प्रक्षेपकप्रक्षेपकश्चेति वृद्धिद्वये जघन्यस्योपरि युते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । तद्यथा—

प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलनधनप्रमितस्य ज $\frac{१५}{१५}\frac{१५}{१५}\frac{३}{४}$ । $\frac{१५}{२}\frac{३}{४}\frac{}{१}$ ऋणं पृथक्कृत्य ज $\frac{१}{१५}\frac{३}{३२}$ शेषमपवर्त्य ज $\frac{९}{३२}$ एकरूपं पृथग्न्यस्य ज $\frac{१}{३२}$ शेषे ज $\frac{८}{३२}$ अपवर्त्य ज $\frac{१}{४}$ प्रक्षेपकवृद्धौ ज $\frac{३}{४}$ युते सति साधिकजघन्यं भवति ज अस्मिन् पुनः उपरितनसाधिकजघन्ये युते

सति लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २ मक्षेपकमक्षेपकागतऋणं अनतः संख्यातगुणहीनमिति किंचिदूनं कृत्वा शेषं ज १—द्विगुणजघन्ये संयोज्य
                                                                                                                                ३२
साधिकं कुर्यात्। एकदालछप्पगणं प्रागुक्तसंख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानानां उत्कृष्टसंख्यातमितेषु एकचत्वारिंशत्पद्पंचाशद्भागमात्रस्थानानि नीत्वा प्रक्षेपकप्रक्षेपकद्वययोगे साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति तत्र प्रक्षेपकोऽयं—

ज १५ ४१ / १५ ५६ प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्तु रूपोनगच्छस्य एकवारसंकलितधनमात्रः। ज १५ ४१ १५ ४१ १८ / १५ १५ ५६ २ ५६ १ अत्रतनं ऋणं

अपनीय पृथक् संस्थाप्य ज १ ४१ ० / १५ ११२ ५६। शेषं अपवर्त्य ज १६ ८१ / ११२ ५६। एकरूपं धनं पृथग्धृत्य ज १ / ११२ ५६ शेषं ज १६ ८० / ११२ ५६

अपवर्त्य ज १५ / ५६ प्रक्षेपके निक्षिप्य ज ५६ / ५६ अपवर्तिते जघन्यं भवति। ज। अस्मिन् पुनः उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुणं

भवति। ज २। इदमेव पृथक्स्थापितधनेन ज १ / ११२ ५६ इतः संख्यातगुणहीनऋणेन ज १ ४१ ० / १५ ११२ ५६ किंचिदूनीकृतेन ज १— / ११२ ५६

साधिकं कुर्यात् ज २। 'सत्तदसमं च भागं' वा अथवा संख्यातभागवृद्धिस्थानानां उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु मध्ये सप्तदशमभागमात्रेषु गतेषु प्रक्षेपक-प्रक्षेपकप्रक्षेपक-पिशुलिसंज्ञवृद्धित्रये प्रक्षिप्ते साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति। तद्यथा प्रक्षेपकः ज १५ ७ / १५ १०। प्रक्षेपकप्रक्षेपको रूपोनगच्छस्य एकवार-

संकलितधनमात्रः ज १५ ७ १५ ७ १८ / १५ १५ १० २ १० । १। पिशुलिः द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितधनमात्रः ज १५ ७। १५ ७। १५ ७ २८ १८ / १५ १५ १५ १०। ३। १०। २। १०। १

| ०   १ ८ | १ ८

तद्वृद्धित्रयमध्ये पिशुले: प्रथमऋणं पृथक् संस्थाप्य ज २   १५ ७ ।   ७ ।   शेषधनमपवर्त्य ज १५ ७ । ४९

१५ । १५ । ६ । १० । १० । १० ।   १५ १० ६००

| ० | | |

अत्रस्थऋणं ज १ ४९   पृथक्संस्थाप्य शेषमपवर्त्य ज ३४३ । इतस्त्रयोदशरूपाण्यपनीय पृथक्संस्थाप्य ज १३ । शेषं ज ३३० । अपवर्त्य

१५ ६०००   ६०००   ६०००   ६०००

| | |

ज ११   एकत्र संस्थाप्य अस्य प्राक् पृथग्धृतधने ज १३ प्रथमद्वितीयऋणं संख्यातगुणहीनमिति किंचिदूनं कृत्वा ज १३–। एकत्र संस्थाप्य पुनः

२० १०   ६०००   ६०००

| १ ८ | ० | |

प्रक्षेपकप्रक्षेपके ज १५ ७ । ७ ।   ऋणं ज १ ७ । पृथक् संस्थाप्य शेषं ज १५ ७ ७ । अपवर्त्य ज ४९ । प्राक्तनपिशुलिधनैकादशरूपाणि

१५ २ १० । १० ।   १५ २००   १५ २००   २००

| | | | |

मेलयित्वा ज ६० । अपवर्त्य इदं ज ३ । प्रक्षेपके ज ७ । संयोज्य ज १० । अपवर्त्येदं ज प्राक्पृथग्धृतकिंचिदूनत्रयोदशरूपैः संख्या-

२००   १०   १०   १०

| |

तगुणहीनप्रक्षेपकप्रक्षेपकऋणेन पुनः किंचिदूनितैः ज १३=। साधिकं कृत्वा उपरितनजघन्ये युते सति लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ज २ । प्रथ-

६०००

|

मतः उत्कृष्टसंख्यातगुणितसंख्यातभागस्य सप्तदशभागमात्रेषु ज १५ । ७ संख्यातभागवृद्धियुक्तस्थानेषु पिशुलिपर्यंतेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं

१५ । १०

| ० १ ८

१ सहष्टेरयमप्याकार:—ज २ १५ । ७ । ७

१० १५ ६०० । १० । १

भवति ज २ । पुनस्तस्यैव एकचत्वारिंशत्षट्पंचाशद्भागस्य प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ज २ अग्रेपि संख्यातभागवृद्धिप्रथमस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टसंख्यातस्य त्रिचतुर्थभागमात्रेषु ज १५ ३ / १५ ४ । प्रक्षेपकप्रक्षेपकावसानेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति ज २ । पुनस्तथा संख्यातभागवृद्धिस्थानेषु प्रथमस्थानमादिं कृत्वा उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु प्रक्षेपकावसानेषु गतेषु ज १५ / १५ लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ननु साधिकजघन्यं द्विगुणं तदा पर्यायसमासमध्यमविकल्पगतं श्रुतज्ञानं उपचारेण लब्ध्यक्षरं कथमुक्तं ? इति चेत् पर्यायज्ञानस्य मुख्यलब्ध्यक्षरस्य समीपवर्तित्वात् । चशब्दः गत्वागत्वेतिवीप्सार्थं ज्ञापयति ॥ ३३१ ॥

म० प्र०—रूपाधिककांडकगुणितांगुलासंख्यातभागमात्रवारानंतभागवृद्धिस्थानेषु अंगुलासंख्यातभागमात्रवारासंख्येयभागवृद्धिस्थानेषु च गतेषु तदुभयवृद्धियुक्तस्य जघन्यस्य एकवारं संख्यातभागवृद्धिस्थानमुत्पन्नं तेषु प्रत्येकपूर्वोक्तक्रमवृद्धिद्वयसहचरितेषु उत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं सर्वजघन्यं पर्यायाख्यं श्रुतज्ञानं साधिकं द्विगुणं भवति । उत्कृष्टसंख्यातभागमात्रौ गुणकारभागहारावपवर्त्य एतस्मिन् प्रक्षेपकरूपे जघन्ये पूर्वानंतरोक्तवृद्धियुक्ते जघन्ये प्रक्षिप्ते सति तद् द्विगुणत्वसंभवात् ' तत्थि चउत्थ ' तेषां संख्यातभागवृद्धिस्थानानामुत्कृष्टसंख्यातमात्राणां मध्ये त्रिचतुर्भागेषु गतेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकप्रक्षेपकयोर्जघन्ये प्रक्षिप्तयोर्लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । तद्यथा—प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छैकवारसंकलितधनमात्रस्य ज १५ । ३ । १५ । ३ / १५।१५।४।२ । ४ । १ गुणकारभागहारावपवर्त्य लब्धं चतुर्थांशमात्रं ज १/४ प्रक्षेपके त्रिचतुर्भागमात्रे प्रक्षिप्य अपवर्तिते साधिकजघन्यं भवति । तस्मिन्नुपरितने साधिकजघन्ये प्रक्षिप्ते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । अत्र प्रक्षेपकप्रक्षेपके ऋणमिदं ज १ । ३ / १५ । ४ । ४ । २ धनमिदं ज १ / ३२ । धनस्य संख्येयभागमात्रत्वादृणं धने किंचिदूनं कृत्वा अवशिष्टं ज १— / ३२ द्विगुणजघन्ये प्रक्षिपेत् 'एक्कदालछप्पण्ण' उत्कृष्टसंख्यातमात्रसंख्यातभागवृद्धिस्थानानां मध्ये एकचत्वारिंशत् षट्पंचाशद्भागेषु गतेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकप्रक्षेपकयोर्द्वयो-

योगे साधिकं जघन्यं द्विगुणं भवति। तद्यथा–प्रक्षेपकप्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छैकवारसंकलितघने अपवर्तितशेषे पंचदशषट्पंचाशद्भागमात्रे ज १५/५६ अपवर्तितप्रक्षेपके एकचत्वारिंशत् षट्पंचाशद्भागमात्रे प्रक्षिप्ते सति साधिकजघन्यं द्विगुणं भवति ज २ । अत्र ऋणं ज । १ । ४ । १ / १५।११२।५६ अस्य धनस्य ज १ / ११२।५६ संख्येयभागत्वात् किंचिदूनं कृत्वा अवशिष्टं ज १– / ११२ । ५६ साधिकद्विगुणजघन्ये प्रक्षिपेत्। सप्तदशमं च भागं। वा–अथ वा उत्कृष्टसंख्यातमात्राणां संख्यातभागवृद्धिस्थानानां मध्ये सप्तदशभागेषु गतेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकप्रक्षेपकपिशुलीनां तिसृणां वृद्धीनां योगे साधिकजघन्य द्विगुणं भवति। तद्यथा-द्विरूपोनगच्छस्य द्विकवारसंकलितमात्र पिशुलिधनं ज ११ / २० । १० अधिकधनं ज १३ / ६००।१० ऋण ज २ । १५ । ७ । ७ / १५।१५।३।१०।१०।१०।२ । ऋणस्य ऋणं ज २ । ७ / १५ । १५ । ६ । १० । १० । १० । एतावत्प्रक्षिप्य प्राक्तने ऋणे अपवर्तिते एवं ज ४९ / १५।३००।१०। द्वितीयं ऋणं ज ७ । ७ / १५।६।१०।१०।१० एतावदस्मिन् संकलितघने ज ७।१५।७ / १५।१०।३।१०।२।१०।१ ७ प्रक्षिप्य द्विरूपोनगच्छद्विकवारसंकलितमात्रे पिशुलिघने ज ७ । १५ । ७ । ७ / १५ । १० । ३ । १० । २ । १०।१ अपवर्त्य गुणिते ज ३४३ / ६०० । १० अत्र गुणकारे त्रयोदशरूपाण्यपनीय पृथक् स्थापितानि ज १३ / ६०० । १० पुनरवशिष्टे अपवर्तिते एवं ज ११ / २०।१० इदमेकत्र संस्थाप्य पुनः प्रक्षेपकस्य रूपोनगच्छैकवारसंकलितमात्रस्य धने ज १५ । ७ । १५ । ७ / १५।१५।१०।२ । १० । १ अस्मिन् एतावदृणं निक्षिप्य ज ७ / १५ । १० । २ । १० । पुनरपवर्तिते एवं ज ४९ / २०।१० अस्मिन् प्राक्संस्थापितैकादशरूपाणि प्रक्षिप्य अपवर्तिते त्रिदशमभागमात्रं

भवति ज ३ इदं प्रक्षेपके सप्तदशमे भागमात्रे ज १५ । ७ प्रक्षिप्य ज १५ । १० अपवर्तिते अवशिष्टं साधिकजघन्यमात्रे वृद्धिधनं भवति । ज । एतस्मिन्
१० १५ । १० । १५ । १०
स्वस्मिन् साधिकजघन्यमात्रे प्रक्षिप्ते लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ज २ । प्राक्संस्थापितत्रयोदशरूपमात्रे अधिकधने तत्सख्येयभागमात्रं ऋणत्रयमपनीय शेषं ज १३– द्विगुणलब्ध्यक्षरे साधिकं कुर्यात् । प्रथमत उत्कृष्टसंख्यातस्य सप्तदशमभागमात्रेषु सख्यातभागवृद्धिस्थानेषु पिशुलिपर्यंतेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं
६०००
भवति । ततः पुनस्तस्यैव एकचत्वारिंशत्षट्पचाशद्भागमात्रेषु स्थानेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकपर्यंतेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । ततः पुनस्तस्यैव त्रिचतुर्थभागमात्रेषु प्रक्षेपकप्रक्षेपकपर्यंतेषु गतेषु लब्ध्यक्षर द्विगुण भवति । ततः पुनरुत्कृष्टसंख्यातमात्रेषु प्रक्षेपकेषु गतेषु लब्ध्यक्षरं द्विगुणं भवति । साधिकं द्विगुणितमपि पर्यायसमासमध्यमविकल्पगतं श्रुतज्ञान उपचारेण लब्ध्यक्षरमित्युक्तं पर्यायज्ञानस्य मुख्यलब्ध्यक्षरस्य समीपवर्तित्वात 'गंतूगय' गत्वा चेति चशब्देन सप्तदशमभागादिषु स्थानेषु गत्वा द्विगुणं द्विगुण भवतीति वीप्सालक्षणः समुच्चयो ज्ञाप्यते ॥ ३३१ ॥

स० चं०–एक अधिक सूच्यंगुलका असंख्यातभागकरि गुण्या हूवा अंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण तौ अनंतभाग वृद्धि स्थान होइ अर अंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण असंख्यात भाग वृद्धि स्थान होइ तब एकवार संख्यात भागवृद्धि हो है। तहां पूर्ववृद्धि होतैं जो साधिक जघन्यज्ञान भया ताकौं एक अधिक उत्कृष्ट संख्यात करि गुणिये अर उत्कृष्ट सख्यातका भाग दीजिये तितने मात्र भया। बहुरि आगैं पूर्वोक्त अनुक्रम लीयें अनंत असंख्यात भाग वृद्धि सहित संख्यात भागवृद्धिके स्थान उत्कृष्ट संख्यात मात्र होइ तहां प्रक्षेपक संबंधी वृद्धिका प्रमाण जोडें लब्ध्यक्षर जो सर्वतैं जघन्य पर्याय नामा ज्ञान सो साधिक द्विगुणा हो है। कैसे? सो कहिये है—पूर्ववृद्धि भये जो साधिक जघन्यज्ञान भया सो मूल स्थाप्या। बहुरि इहां संख्यात भागवृद्धिकी विवक्षा है तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीयें प्रक्षेपक हो है। बहुरि गच्छमात्र प्रक्षेपक वृद्धि होइ सो इहां उत्कृष्ट संख्यातमात्र संख्यातवृद्धिके स्थान भये हैं तातैं उत्कृष्ट संख्यातमात्र प्रक्षेपक बधावने। तहां मूल साधिक जघन्य ज्ञान तौ जुदा राखना अर तिस साधिक जघन्य ज्ञानकौं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीयें प्रक्षेपक हो है अर इहां उत्कृष्ट

संख्यातमात्र प्रक्षेपक है तातैं उत्कृष्ट संख्यात हीका गुणकार भया सो गुणकार भागहारका अपवर्तन कीयें साधिक जघन्य रह्या याकौं जुदा राख्या हूवा साधिक जघन्यविषैं जोडैं जघन्यज्ञान साधिक दूणां हो है। बहुरि 'तत्ति चउत्थ' कहिये पूर्वोक्त संख्यातभाग वृद्धि संयुक्त उत्कृष्टसंख्यात मात्र स्थान तिनिकौं च्यारिका भाग देइ तिनविषैं तीनभाग प्रमाण स्थान भये तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक प्रक्षेपक इनि दोऊ वृद्धिनिकौं साधिक जघन्यविषैं जोडैं लब्ध्यक्षर ज्ञान साधिक दूणां हो है। कैसैं सो कहिये है—इहां पूर्ववृद्धि भयें जो साधिक जघन्य ज्ञान भया ताकौं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीयें प्रक्षेपक प्रक्षेक हो है सो एक घाटि गच्छका एकवार संकलन धनमात्र प्रक्षेपक प्रक्षेपकनिकी वृद्धि इहां करनी। तहां पूर्वोक्त करणसूत्रके अनुसार तिस प्रक्षेपक प्रक्षेपक कौं एकघाटि उत्कृष्ट संख्यातका तीन चौथा भागकरि अर उत्कृष्ट संख्यातका तीन चौथा भागकरि गुणन करना अर दोयका एकका भाग देना। साधिक जघन्यकी सहनानी असी है। जं। असैं कीएं साधिक जघन्यकौं एक घाटि तीन गुणां उत्कृष्ट संख्यातका अर तीन गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार भया। अर दोयबार उत्कृष्ट संख्यातका अर च्यारि दोय च्यारि एकका भाग हार भया तहां एक घाटि संबंधी ऋणराशि साधिक जघन्य कौं तीनका गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यातका अर बत्तीसका भागहार कीएं हो है ताकौं जुदा राखि अवशेषका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं नवका गुणकार बत्तीसका भागहार मात्र प्रमाण भया। इहां दोयबार उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार अर भागहारका अपवर्तन कीया। गुणकार तीन तीन परस्परगुणें नवका गुणकार भया च्यारि दोय च्यारि एक भागहारनिकौं परस्पर गुणैं बत्तीसका भागहार भया जातैं दोय तीन आदि राशि गुणकार भागहार विषैं होय तहां परस्पर गुणें जेता प्रमाण होइ तितना गुणकार वा भागहार तहां जानना असैं ही अन्यत्र भी समझना। बहुरि यामैं एक गुणकार साधिक जघन्यका बत्तीसवां भागमात्र है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेष साधिक जघन्यकौं आठका गुणकार बत्तीसका भागहार रह्या ताका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यका चौथा भाग भया। बहुरि प्रक्षेपक गच्छप्रमाण है सो साधिक जघन्यकौं एकवार उत्कृष्टसंख्यातका भा-

ग दीएं प्रक्षेपक होइ ताकौं उत्कृष्ट संख्यातका तीन चौथा भागकरि गुणना तहां उत्कृष्टसंख्यात गुणकार भागहारका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यका तीन चौथा भागमात्र प्रमाण भया। यामैं पूर्वोक्त एक चौथा भाग जोडें साधिक जघन्यमात्र वृद्धिका प्रमाण भया। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडें लब्ध्यक्षर दूणा हो है। इहां प्रक्षेपक प्रक्षेपकसंबंधी ऋणराशि धनराशितैं संख्यातगुणा घाटि है तातैं साधिक जघन्यका बत्तीसवां भागमात्र धनराशिविषैं ऋणराशि घटावनेकौं किंचित् ऊन करि अवशेष पूर्वोक्तविषैं जोडें साधिक दूणां हो है। बहुरि 'एक्कदालछप्पण्णं' कहिये पूर्वोक्त संख्यातभागवृद्धिसंयुक्त उत्कृष्टसंख्यातमात्र स्थाननिकौं छप्पनका भाग देइ तिनिविषैं इकतालीस भागमात्रस्थान भये तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपकप्रक्षेपक संबंधी वृद्धि जोडें लब्ध्यक्षर दूणा हो है। कैसैं? सो कहिये है—साधिक जघन्यकौं उत्कृष्टसंख्यातका भाग दीएं प्रक्षेपक होइ सो प्रक्षेपक गच्छमात्र है तातैं याकौं उत्कृष्टसंख्यात इकतालीस छप्पनवां भागकरि गुणें उत्कृष्टसंख्यातका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं इकतालीसका गुणकार छप्पन भागहार हो है। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक एक घाटि गच्छका एकवार संकलन धनमात्र है। सो पूर्वोक्त सूत्रके अनुसारि साधिकजघन्यकौं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीए प्रक्षेपक प्रक्षेपक होइ ताकौं एकघाटि इकतालीसगुणां उत्कृष्ट संख्यात अर इकतालीस गुणा उत्कृष्ट संख्यातका गुणकार अर छप्पन दोय छप्पन एकका भागहार भया। इहां एक घाटि संबंधी ऋण साधिक जघन्यकौं इकतालीसका गुणकार अर उत्कृष्ट संख्यात एकसौ बारा छप्पनका भागहार मात्र जुदा स्थापि अवशेषविषैं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं सोलासै इक्यासीका गुणकार अर एकसौ बारा गुणा छप्पनका भागहार हो है। इहां गुणकारविषै इकतालीस इकतालीस परस्पर गुणैं सोलहसै इक्यासी भये है। बहुरि भागहारविषैं छप्पनकौं दोयकरि गुणें एकसौ बारह भये। अगले छप्पनकौं एककरि गुणैं छप्पन भये जानने। बहुरि इहां गुणकारमें एक जुदा स्थापिये ताका साधिक जघन्यकौ एकसौ बारह गुणा छप्पनका भागहार मात्र धन जानना। अवशेष साधिक जघन्यकौं सोलहसै अस्सीका गुणकार अर एकसौ बारा गुणां छप्पनका भागहार रह्या। तहां एकसौ बारहकरि अपवर्तन कीयें सा-

धिक जघन्यकौं पंद्रहका गुणकार छप्पनका भागहार भया। यामैं प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण जघन्यकौं इकतालीस-का गुणकार अर छप्पनका भागहार मात्र मिलाएं अपवर्तन कीए साधिक जघन्य मात्र वृद्धिका प्रमाण भया। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडै लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणां हो है इहां प्रक्षेपक प्रक्षेपक संबंधी पूर्वोक्त धनतैं ऋण संख्यात गुणा घाटि है तातैं किंचित ऊन कीया जो धन राशि ताकौं अधिक कीए साधिक दूणा हो है। बहुरि 'सत्त दशमं च भागं' वा कहिए अथवा संख्यात भागवृद्धि संयुक्त उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थानकनिकौं दशका भाग दीजिये तहां सात भाग मात्र स्थान भए। तहां प्रक्षेपक अर प्रक्षेपक प्रक्षेपक अर पिशुलि नामा तीन वृद्धि जोडैं साधिक जघन्य ज्ञान दूणा हो है। कैसैं? सो कहिए है—साधिक जघन्यकौं एकवार उत्कृष्ट संख्यातका भागदीये प्रक्षेपक हो है सो गच्छ मात्र है तातैं याकौं उत्कृष्ट संख्यातका सात दशवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं साधिक जघन्यकौं सातका गुणकार अर दशका भागहार हो है। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक एक घाटि गच्छका एकवार संकलनधनमात्र हो है सो साधिक जघन्यकौं दोयवार उत्कृष्ट संख्यातका भाग दीएं प्रक्षेपक प्रक्षेपक होइ ताकौं पूर्व सूत्रके अनुसारि एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका अर सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका तौ गुणकार अर दश दोय अर दश एकका भागहार भया। बहुरि पिशुलि दोय घाटि गच्छका दोयवार संकलनधनमात्र हो है। सो साधिक जघन्यकौं तीनवार उत्कृष्टसंख्यातका भाग दीएं पिशुलि हो है ताकौं पूर्व सूत्रके अनुसारि दोय घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यात अर एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यात सातगुणां उत्कृष्टसंख्यात ताका तौ गुणकार अर दश तीन दश दोय दश एकका भागहार भया। इनिविषैं पिशुलिका गुणकारविषैं दोय घटाया था तींहि संबंधी प्रथम ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यकौं दोयका अर एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका अर सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका गुणकार बहुरि दोयवार उत्कृष्टसंख्यातका अर छहका अर तीनवार दशका भागहार कीएं हो है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेषका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं एक घाटि सातगुणा उत्कृष्टसंख्यातका अर गुणचासका तौ गुणकार भया बहुरि उत्कृष्टसंख्यात छह हजारका भागहार हो है। इहां गुणकारविषैं एक

घाटि है तीहिं संबंधी द्वितीय ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यकौं गुणचासका गुणकार बहुरि उत्कृष्टसंख्यात अर छह हजारका भागहार कीएं हो है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेषका अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं तीनसैं तियालीसका गुणकार अर छह हजारका भागहार हो है। इहां गुणकारमैं तेरह घटाइ जुदा स्थापिए तहां साधिक जघन्यकौं तेरहका गुणकार अर छह हजारका भागहार जानना। अवशेष साधिक जघन्यकौं तीनसै तीसका गुणकार अर छह हजारका भागहार रह्या तहां तीसकरि अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं ग्यारहका गुणकार दश गुणा वीसका भागहार भया सो एक जायगा स्थापिए। बहुरि इहां तेरह गुणकारमस्यों काढि जुदे स्थापि तीहिं संवंधी प्रमाणतैं प्रथम द्वितीय ऋणसंवंधी प्रमाण संख्यात गुणाघाटि है तातैं किंचित् ऊनकरि साधिक जघन्य किंचिदून तेरह गुणाकौं छह हजारका भाग दीएं इतना धन अवशेष रह्या सो जुदा स्थापिए। बहुरि प्रक्षेपक प्रक्षेपक संबंधी गुणकारविषैं एक घटाया था तिहिंसंबंधी ऋणका प्रमाण साधिक जघन्यकौं सातका गुणकार बहुरि उत्कृष्टसंख्यात अर दोयसैका भागहार किएं हो है। ताकौं जुदा स्थापि अवशेष पूर्वोक्त प्रमाण साधिक जघन्यकौं उत्कृष्टसंख्यातका गुणकार अर दोयवार सातका गुणकार अर उत्कृष्टसंख्यात दश दोय दश एकका भागहार ताका अपवर्तन वा परस्पर गुणन कीएं साधिक जघन्यकौं गुणचासका गुणकार दोयसैका भागहार भया। यामैं पूर्वोक्त पिशुलि संबंधी ग्यारह गुणकार मिलाएं साधिक जघन्यकौं साठिका गुणकार दोयसैका भागहार भया। इहां वीसकरि अपवर्तन कीएं साधिक जघन्यकौं तीनका गुणकार दशका भाग हार भया। यामैं प्रक्षेपक संबंधी प्रमाण साधिक जघन्यकौं सातका गुणकार दशका भाग हार जोडैं दशकरि अपवर्तन कीएं वृद्धिका प्रमाण साधिक जघन्य हो है। यामैं मूल साधिक जघन्य जोडैं लब्ध्यक्षर दूणा हो है। बहुरि पूर्वै पिशुलि संबंधी ऋण रहित धनविषैं किंचिदून तेरहका गुणकार था तिसविषैं प्रक्षेपक प्रक्षेपक संबंधी ऋण संख्यात गुणा घाटि है ताकौं घटावनेके अर्थि बहुरि किंचित् ऊन कीएं जो साधिक जघन्यकौं दोयबार किंचिदून तेरहका गुणकार अर छह हजारका भागहार भया सो इतना प्रमाण पूर्वोक्त दूणां लब्ध्यक्षरविषैं जोडैं

साधिक दूणां हो है। असैं प्रथम तौ संख्यात भागवृद्धि युक्त जे स्थान तिनिविषैं उत्कृष्ट संख्यात मात्र स्थाननिका सात दशवां भाग प्रमाण स्थान पिशुलि वृद्धि पर्यंत भए लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणां हो है। बहुरि तिसहीका इकताळीस छप्पनवां भाग प्रमाण स्थान प्रक्षेपक प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो है। बहुरि आगैं भी संख्यात भागवृद्धिका पहिला स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थाननिका तीन चौथा भाग मात्र स्थान प्रक्षेपक प्रक्षेपक वृद्धि पर्यंत भएं लब्ध्यक्षरज्ञान दूणां हो है। बहुरि तैसैंही संख्यात वृद्धिका पहिला स्थानतैं लगाइ उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थान प्रक्षेपक वृद्धिपर्यंत भएं लब्ध्यक्षरज्ञान दूणा हो है। इहां प्रश्न-जो साधिक जघन्य ज्ञान दूणां भया सो साधिक जघन्य ज्ञानतौ पर्याय समास ज्ञानका मध्य भेद है इहां लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा कैसे कह्या है? ताका समाधान—जो उपचार करि पर्याय समास ज्ञानके भेदकों भी लब्ध्यक्षर कहिए जातैं मुख्यपनें लब्ध्यक्षर है नाम जाका असा जो पर्यायज्ञान ताका समीपवर्ती है। भावार्थ इहां असा—जो लब्ध्यक्षर नामतैं इहां पर्याय समासका यथासंभव मध्यभेदका ग्रहण करना। बहुरि चकार करि गत्वा कहिए असैं स्थान प्रति प्राप्त होइ लब्ध्यक्षर ज्ञान दूणा हो हैं असा अर्थ जानना ॥ ३३१ ॥

एवं असंखलोगा अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
ते पज्जायसमासा अक्खरगं उवरि वोच्छामि ॥ ३३२ ॥

एवमसंख्यलोकाः अनक्षरात्मके भवंति षट्स्थानानि।
ते पर्यायसमासा अक्षरगमुपरि वक्ष्यामि ॥ ३३२ ॥

जी० प्र०—एवमुक्तप्रकारेण अनक्षरात्मके पर्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहे षट्स्थानवारा असंख्यातलोकमात्रा भवंति तद्यथा—यद्येतावतामनक्षरात्मकज्ञानविकल्पानां एकं षट्स्थानं लभ्यते तदा एतावतामनक्षरात्मकश्रुतज्ञानविकल्पानामसंख्यातलोकमात्राणां कति षट्स्थानवारा लभ्यंते । इति

त्रैराशिकं कृत्वा प्र $\frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}$ फ १ । इ $\equiv a$ प्रमाणराशिना इच्छाराशौ भक्ते यल्लब्धं तावंतः षट्स्थानवारा भवंति $\dfrac{\equiv a}{\frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}\ \frac{१-}{२ a}}$ एवमनेन प्रकारेण असंख्याततलोकवारषट्स्थानवृद्धिसंवृद्धा अनंतभागवृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पमादिं कृत्वा सर्वचरमोर्वंक-वृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टज्ञानावसाना असंख्याततलोकमात्रा ज्ञानविकल्पा यावंतस्तावंतः पर्यायसमासज्ञानविकल्पा भवंति इत्यर्थः । इत उपरि अक्षरगतं श्रुतज्ञानं वक्ष्यामि ॥ ३३२ ॥ अथाक्षरगतं श्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

मं० प्र०—एवमुक्तप्रकारेण अनक्षरात्मके पर्यायसमासज्ञानविकल्पसमूहे षट्स्थानवाराः असंख्याततलोकमात्रा भवंति । तद्यथा—एतावत्सु ज्ञानविकल्पेषु प्र $\frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}$ यद्येकः षट्स्थानवारो लभ्यते । फ १ । तदा एतावत्सु असंख्याततलोकमात्रेषु अनक्षरात्मकज्ञानविकल्पेषु । इ $\equiv a$ । कियंतः षट्स्थानवारा लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धाः षट्स्थानवाराः अप्यसंख्याततलोकमात्रा एव $\dfrac{\equiv a}{\frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}\ \frac{१}{२ a}}$ रूपाधिकांगुलासंख्यातभागानां घनवर्गयोर्गुण-कारमात्रेण भागहारेण लोकस्य गुणकारे असंख्याते अपवर्तितेऽपि तद्बहुत्वमाहात्म्येन असंख्याततलोकत्वस्य संभवात् । एवमुक्तप्रकारेण असंख्याततलोकमात्रवारषट्-स्थानवृद्धिभिः संवृद्धा अनंतभागवृद्धियुक्तजघन्यज्ञानविकल्पादारभ्य सर्वचरमोर्वंकवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टज्ञानपर्यंताः असंख्याततलोकमात्रास्ते पर्यायसमासाः-पर्यायस-मासज्ञानविकल्पा इत्यर्थः । उपरि—इतः परं, अक्षरगतं श्रुतज्ञान वक्ष्यामि ॥ ३३२ ॥ अथाक्षरश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—याप्रकार अनक्षरात्मक जो पर्यायसमास ज्ञानके भेद तिनिविषैं षट्स्थानपतितवृद्धि असंख्यात-लोकमात्र विरियां हो है । सो ही कहिए है जो एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागका वर्गकरि तिसहीके घनकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितने भेदनिविषैं एकवार षट्स्थान होइ तौ असंख्याततलोकप्रमाण पर्यायसमासज्ञा-

नके भेदनिविषैं केतीवार षट्स्थान होइ ऐसैं त्रैराशिक करना। तहां प्रमाणराशि एक अधिक सूच्यंगुलके असंख्यातवां भागका वर्गकरि गुणित ताहीका घनप्रमाण अर फलराशि एक इच्छाराशि असंख्यातलोक पर्याय समासके स्थानमात्र तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीएं जेता लब्धराशिका प्रमाण आवै तितनीवार सर्व भेदनिविषैं षट्स्थानपातित वृद्धि हो है सो भी असंख्यातलोकमात्र हो है जातैं असंख्यातके भेद घने हैं तातैं हीनाधिक होतैं भी असंख्यातलोक ही कहिए। याप्रकार असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान वृद्धिकरि वर्धमान जघन्य ज्ञानतैं अनंतभागवृद्धि लीएं प्रथमस्थानतैं लगाइ अंतका षट्स्थानविषैं अंतका अनंत भागवृद्धि लीएं स्थानपर्यंत जेते ज्ञानके भेद ते सर्व पर्याय समासज्ञानके भेद जानने ॥ ३३२ ॥ अब इहांतैं आगैं अक्षरात्मक श्रुतज्ञानकौं कहै हैं—

चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं ।
अत्थक्खरं तु णाणं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥ ३३३ ॥

चरमोर्वंकेणावहितार्थाक्षरगुणितचरमोर्वंकं ।
अर्थाक्षरं तु ज्ञानं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ३३३ ॥

जी० प्र०—पर्यायसमासज्ञानविकल्पसंबंधिषु असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु भागवृद्धिगुणवृद्धियुक्तेषु तद्वृद्धिनिमित्तसंख्यातासंख्यातानंता अवस्थिताः प्रतिनियतप्रमाणा भवंति इति चरमषट्स्थानस्य चरमोर्वंकतोऽग्रेतनमष्टांकवृद्धियुक्तस्थानं अर्थाक्षरश्रुतज्ञानं भवति इति तत्पूर्वकप्रतिनियताष्टांकप्रमाणं अत्रतनाष्टांकविलक्षणमिति कथयति—

असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानेषु यच्चरमं षट्स्थानं तस्य चरमोर्वंकरूपवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानं अष्टांकेन एकवारं गुणिते समुत्पन्नं अर्थाक्षरज्ञानं अष्टांकवृद्धियुक्तस्थानमित्यर्थः तत् कियद्? रूपोनैकट्ठमात्राऽपुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूपद्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञानं श्रुतकेवलमित्युच्यते। के। इदं श्रुतकेवलज्ञानं रूपोनैकट्ठमात्रापुनरुक्ताक्षरप्रमाणेन भक्तं सत् अर्थाक्षररूपमेकाक्षरप्रमाणं भवति के इदमर्थाक्षरं सर्वोत्कृष्टपर्यायसमा-

$\frac{१^{=}}{१८=}$

सज्ञानरूपोनैकेन भक्तं सच्चरमोर्वंकगुणिताष्टांकप्रमाणं भवति ततः कारणा दिदानीं तदर्थाक्षरश्रुतज्ञानोत्पत्तिनिमित्तं चरमोर्वंकापहृताक्षररूपाष्टांकेन गुणय-रूपे चरमोर्वंके गुणिते तु-पुनः अर्थाक्षरज्ञानं युक्तियुक्तं भवति इति जिनैर्निर्दिष्टं । इदमंतदीपकं इति सर्वाण्यपि चतुरंकाद्यष्टांकावसानानि षट्स्थानानां भागवृद्धियुक्तस्थानानि गुणवृद्धियुक्तस्थानानि च स्वस्वपूर्वानंतरोर्वंकवृद्धियुक्तस्थानेन भक्त्वा पुनस्तेनैव गुणयित्वा यथासंख्यं चतुरंकपंचांकषं-डंकसप्तांकाष्टांकवृद्धियुक्तस्थानानि उत्पद्यंते, न च केवलं पर्यायजघन्यज्ञानमेव भक्त्वा गुणयित्वा उत्पद्यत इति निश्चेतव्यं, इदमर्थाक्षरज्ञानं के उ अपव-

१ ॒
१८=उ

र्तितं सत् श्रुतकेवलज्ञानसंख्यातभागमात्रं अर्थाक्षरज्ञानप्रमाणं भवति के अक्षराज्जातं ज्ञानं अक्षरज्ञानं अर्थविषयमर्थग्राहकं अर्थाक्षरज्ञानं अथवा

१ ॒
१८=

अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः, न क्षरति इत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात् । अर्थश्चासावक्षरं च तदर्थाक्षरं । अथवा अर्यते गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयते इत्यर्थः, अर्थश्चासावक्षर च तदर्थाक्षरं तस्माज्जातं ज्ञानमर्थाक्षरज्ञानं । अथवा त्रिविधमक्षरं लब्ध्यक्षरं निर्वृत्त्यक्षरं स्थाप-नाक्षरं चेति । तत्र पर्यायज्ञानावरणप्रभृतिश्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यंतक्षयोपशमादुद्भूतात्मनोऽर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः भावेंद्रियं, तद्रूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं, अ-क्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् कंठोष्ठताल्वादिस्थानस्पष्टतादिकरणप्रयत्ननिर्वर्त्यमानस्वरूपं अकारादिककारादिस्वरव्यंजनरूपं मूलवर्णतत्संयोगादिसंस्थानं निर्वृत्त्यक्षरं । पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरं । एवंविधैकाक्षरश्रवणसंजातार्थज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनैः कथितत्वात् किंचित् प्रतिपादितं ॥ ३३३ ॥ अथ श्रुतनिबद्धं श्रुतविषयं च प्ररूपयति—

मं० प्र०—असंख्यातलोकमात्रवारषट्स्थानानां यच्चरमं षट्स्थानं तस्य चरमोर्वंकवृद्धियुक्तसर्वोत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानादनंतगुणमर्थाक्षरज्ञान भवति । तत्किं-विशिष्टं ? रूपोनैकट्ठमात्रापुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूपद्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञान श्रुतकेवलमित्युच्यते । के । तस्मिन् रूपोनैकट्ठमात्राक्षरप्रमाणेन संख्येयेन

भक्ते यल्लब्ध तदर्थाक्षरज्ञान के इदमेव चरमोर्वंकेण भक्त उत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानस्य चरमोर्वंकनाम्नः अनंतात्मको गुणकारो भवति के = अनेन च-

१ ॒ .... ० / १ ॒
१८= .... १८= उ

रमोर्वंके गुणिते ईदृशं भवति के उ इदमपवर्तितं श्रुतकेवलस्य संख्येयभागमात्रमर्थाक्षरज्ञानमित्युच्यते अक्षराज्जात ज्ञानं अक्षरज्ञान अर्थविषयं अर्थस्य-

१ ॒
१८ = उ

ग्राहकं अर्थाक्षरज्ञानं । अर्यते गम्यते ज्ञायते इत्यर्थः, न क्षरतीत्यक्षरं द्रव्यरूपतया विनाशाभावात् । एतावतामक्षराणां प्र १८= यदि श्रुतकेवलज्ञानं भवति । फ । के । तदा एकस्याक्षरस्य कीदृशं ज्ञानं भवेत् । इ १ । इति त्रैराशिकेन लब्धमर्थाक्षरज्ञानं के, अथवा अर्यते—गम्यते श्रुतकेवलस्य संख्येयभागत्वेन निश्चीयते इ-

$\frac{१}{१८=}$

त्यर्थः, अर्थश्चासौ अक्षरं च तदर्थाक्षरं, तस्माज्जातं अर्थाक्षरज्ञानं । अथवा त्रिविधमक्षरं लब्ध्यक्षरं निर्वृत्त्यक्षरं स्थापनाक्षरं चेति । तत्र पर्यायज्ञानावरणादिश्रुतकेवलज्ञाना-वरणपर्यंतक्षयोपशमोद्भूता आत्मनोऽर्थग्रहणशक्तिर्लब्धिः-भावेंद्रियं । तद्रूपमक्षरं लब्ध्यक्षरं अक्षरज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात् कंठोष्ठताल्वादिस्थानस्पृष्टतादिकरणप्रयत्ननि-र्वर्त्यमानस्वरूपं अकारादिककारादिस्वरव्यंजनरूपं मूलवर्णतत्संयोगादिसंस्थानं निर्वृत्त्यक्षरं । पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरं । एवंविधै-काक्षरश्रवणसंजातमर्थज्ञानं अक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनैरर्हदादिभिर्निर्दिष्टं मया तदनुसारेण किंचित्प्रदर्शितमिति सैद्धांतचक्रवर्त्यभिप्रायः ॥३३३॥ अथ श्रीमाधवचं-द्रत्रैविद्यदेवाः श्रुतनिबद्धविषयप्रमाणं प्ररूपयंति—

स० चं०—पर्यायसमासज्ञानविषैं असंख्यातलोकमात्र षट्स्थान कहे तिनिविषैं वृद्धिकौं कारण संख्यात असंख्यात अनंत ते अवस्थित हैं-नियमरूप प्रमाण धरे हैं । संख्यातका प्रमाण उत्कृष्टसंख्यातमात्र, असंख्यातका असंख्यातलोकमात्र, अनंतका प्रमाण जीवराशिमात्र जानना । बहुरि अंत का षट्स्थानविषैं अंतका उर्वंक जो अनंतभागवृद्धि ताकौं लीएं पर्यायसमासज्ञानका सर्वोत्कृष्ट भेद तातैं आगैं अष्टांक कहिए अनंतगुणवृद्धिसंयुक्त जो ज्ञानका स्थान सो अर्थाक्षर श्रुतज्ञान है । पूर्वैं अष्टांकका प्रमाण नियमरूप जीवराशिमात्र गुणा था इहां अष्टांक का प्रमाण सो न जानना अन्य जानना । सोई कहिए है—असंख्यातलोकमात्र षट्स्थाननिविषैं जो अंतका षट्-स्थान ताका अंतका ऊर्वंक वृद्धिलीएं जो सर्वोत्कृष्ट पर्यायसमासज्ञान ताकौं एकवार अष्टांककरि गुणैं अर्थाक्षर ज्ञान हो है । तातैं याकौं अष्टांक वृद्धि युक्त स्थान कहिए सो अष्टांक कितने प्रमाण लीएं हो है सो कहिए है श्रुतकेवलज्ञान एक घाटि एकट्ठी प्रमाण अपुनरुक्त अक्षरनिका समूह रूप है ताकौं एक घाटि एकट्ठीका भाग दीएं एक अक्षरका प्रमाण आवै है । तहां जेता ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाण है ताकौं सर्वोत्कृष्ट पर्या-य समास ज्ञानका भेदरूप ऊर्वंकके अविभाग प्रतिच्छेदनिके प्रमाणका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै सोई इहां

अष्टांकका प्रमाण जानना तातैं अब तिस अर्थाक्षर ज्ञानकी उत्पत्तिकौं कारण जो अंतका ऊर्वंक ताकरि भाजित जो अर्थाक्षर तीहि प्रमाण अष्टांककरि गुण्य जो अंतका ऊर्वंक ताकौं गुणें अर्थाक्षर ज्ञान हो है। इह कथन युक्त है। ऐसा जिनदेव कह्या है। बहुरि यह कथन अंतविषैं धर्‍या हूवा दीपक समान जानना तातैं ऐसैं ही पूर्वैं भी चतुरंक आदि अष्टांक पर्यंत षट् स्थाननिके भागवृद्धियुक्त वा गुणवृद्धियुक्त जे स्थान हैं ते सर्व अपना अपना पूर्व ऊर्वंक युक्त स्थानका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै तितने प्रमाणकरि तिस पूर्वस्थानतैं गुणित जानने। ऐसैं श्रुतकेवलज्ञानका संख्यातवां भागमात्र अर्थाक्षर श्रुतज्ञान जानना। अर्थका ग्राहक अक्षरतैं उत्पन्न भया जो ज्ञान सो अर्थाक्षर ज्ञान कहिए। अथवा अर्यते कहिए जानिए सो अर्थ अर द्रव्यकरि न विनशै सो अक्षर जो अर्थ सोई अक्षर ताका जो ज्ञान सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये। अथवा अर्यते कहिये श्रुतकेवलज्ञानका संख्यातवां भागकरि जाका निश्चय कीजिये ऐसा एक अक्षर ताका ज्ञान सो अर्थाक्षरज्ञान कहिये। अथवा अक्षर तीनप्रकार है लब्धि अक्षर १ निर्वृत्ति अक्षर २ स्थापना अक्षर ३। तहां पर्यायज्ञानावरण श्रुतकेवलज्ञानावरणपर्यंतके क्षयोपशमतैं उत्पन्न भई जो पदार्थ जाननेकी शक्ति सो लब्धिरूप भाव इंद्रिय तीहिं स्वरूप जो अक्षर कहिये अविनाश सो लब्धि अक्षर कहिये जातैं अक्षरज्ञान उपजनेकौं कारण है। बहुरि कंठ होठ तालवा आदि अक्षर बुलावनेके स्थान अर होठनिका परस्पर मिलना सो स्पृष्टता ताकौं आदि देकरि प्रयत्न तीहिंकरि उत्पन्न भया शब्दरूप अकारादि स्वर अर ककारादिक व्यंजन अर संयोगी अक्षर सो निर्वृत्ति अक्षर कहिये। बहुरि पुस्तकादिविषैं निज देशकी प्रवृत्तिके अनुसारि अकारादिकनिका आकारकरि लिखिए सो स्थापना अक्षर कहिये। इसप्रकार जो एक अक्षर ताके सुननेतैं भया जो अर्थका ज्ञान सो अक्षर श्रुतज्ञान है ऐसा जिनदेवने कह्या है उनहीके अनुसारि मैं भी कुछ कह्या है॥ ३३२॥ आगैं श्रीमाधवचंद्र त्रैविद्यदेव शास्त्रके विषयका प्रमाण कहैं हैं—

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।

पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो ॥ ३३४ ॥

प्रज्ञापनीया भावा अनंतभागस्तु अनभिलाप्यानां ।

प्रज्ञापनीयानां पुनः अनंतभागः श्रुतनिबद्धः ॥ ३३४ ॥

जी० प्र०—अनभिलाप्यानां अवाग्विषयाणां केवलं केवलज्ञानगोचराणां भावानां जीवाद्यर्थानां अनंतैकभागमात्राः भावाः--जीवाद्यर्थाः, प्रज्ञापनीयाः तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्याः भवंति । पुनः प्रज्ञापनीयानां भावानां जीवाद्यर्थानां अनंतैकभागः श्रुतनिबद्धः द्वादशांगश्रुतस्कंधस्य निबद्धः विषयतया नियमितः श्रुतकेवलिनामपि अगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्ति तद्दिव्यध्वनेरपि अगोचरजीवाद्यर्थग्रहणशक्तिः केवलज्ञानेऽस्तीत्यर्थः ।

अवाच्यानामनंतांशो भावाः प्रज्ञाप्यनामकाः । प्रज्ञाप्यमानभावानां अनंतांशः श्रुतोदितः ॥ १ ॥

॥ ३३४ ॥ अथ गाथाद्वयेन शास्त्रकारः अक्षरसमासं कथयति—

मं० प्र०—अनभिलाप्याना–अवाग्गोचराणां केवलज्ञानविषयाणा, भावाना जीवाद्यर्थाना अनंतैकभागमात्राः भावाः प्रज्ञापनीयाः–तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्या भवंति । पुनः प्रज्ञापनीयाना–सातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्याना अनंतैकभागः श्रुतस्य–द्वादशांगश्रुतस्कंधस्य, निबद्धः-विषयतया नियमतो भवति । श्रुतकेवलिनामप्यगोचरार्थप्रतिपादनशक्तिर्दिव्यध्वनेरस्तीत्यर्थः । तुशब्दो विशेषार्थः ॥ ३३४ ॥ अथ गाथाद्वयेन शास्त्रकारः अक्षरसमासं प्ररूपयति—

स० चं०—अनभिलाप्यानां कहिए वचन गोचर नाही केवलज्ञानहीके गोचर जे भाव कहिए जीवादिक पदार्थ तिनके अनंतवे भागमात्र जीवादिक अर्थ ते प्रज्ञापनीया कहिए तीर्थंकरकी सातिशय दिव्यध्वनिकरि कहनेमें आवैं ऐसे हैं। बहुरि तीर्थंकरकी दिव्यध्वनिकरि पदार्थ कहनेमें आवै हैं तिनके अनंतवे भागमात्र द्वादशांग श्रुतविषैं व्याख्यान कीजिये है। जो श्रुतकेवलीकौं भी गोचर नाहीं ऐसा पदार्थ कहनेकी शक्ति दिव्यध्वनिविषैं पाइए है। बहुरि जो दिव्यध्वनिकरि भी न कह्या जाय तिस अर्थकौं जाननेकी शक्ति केवलज्ञानविषैं पाइए है ऐसा जानना ॥ ३३४ ॥ आगैं दोयगाथानिकरि अक्षरसमासकौं प्ररूपैं हैं—

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।

संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं ॥ ३३५ ॥

एकाक्षरात्तूपरि एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्येये खलु वृद्धे पदनाम भवति श्रुतज्ञानं ॥ ३३५ ॥

जी० प्र०—एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु-पुनः पूर्वोक्तषट्स्थानवृद्धिक्रमरहिततया एकैकाक्षरेणैव वर्धमानाः द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यंताक्षरसमुदायश्रवणसंजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पाः संख्येयाः द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितागताः तदा अनंतरस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां पदनाम श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३३५ ॥

मं० प्र०—एकाक्षरस्य—एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु—पुनः पूर्ववत् षट्स्थानवृद्धिं विना एकैकेनाक्षरेण वर्धमानेषु द्व्यक्षरत्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यंत समुदायश्रवणजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पेषु सख्येयेषु द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितेषु । १६३४८३०७८८८ गतेषु तदनंतरं उत्कृष्टाक्षरसमासविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति पदनाम—पदसंज्ञकं श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३३५ ॥

स० चं०——एक अक्षरतैं उपज्या जो ज्ञान ताके ऊपरि पूर्वोक्त षट्स्थानपतित वृद्धिका अनुक्रम विना एक एक अक्षर बंधता सो दोय अक्षर तीन अक्षर च्यारि अक्षर इत्यादिक एक घाटि पदका अक्षरपर्यंत अक्षरसमुदायका सुननेकरि उपजैं ऐसे अक्षरसमासके भेद संख्यात जानने। ते दोय घाटि पदके अक्षर जेते होंइ तितने हैं। बहुरि इसके अनंतरि उत्कृष्ट अक्षरसमासकेविषैं एक अक्षरबधतैं पदनामा श्रुतज्ञान हो है ॥ ३३५ ॥

सोलससयचउतीसा कोडी तियसीदिलक्खयं चेव ।
सत्तसहस्साट्ठसया अट्ठासीदी य पदवण्णा ॥ ३३६ ॥

षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षकं चैव ।
सप्तसहस्राण्यष्टशतानि अष्टाशीतिश्च पदवर्णाः ॥ ३३६ ॥

जी०प्र०—अत्र अर्थपदं प्रमाणपदं मध्यमपदं चेति पदं त्रिविधं तत्र यावताक्षरसमूहेन विवक्षितार्थो ज्ञायते तदर्थपदं दंडेन शालिभ्यो गां निवारय, त्वमग्निमानय इत्यादयः। अष्टाक्षरादिसंख्यया निष्पन्नोऽक्षरसमूहः प्रमाणपदं 'नमः श्रीवर्धमानाय' इत्यादि। षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि सप्तसहस्राणि अष्टशतानि अष्टाशीतिश्च पदवर्णाः इत्येतद्गाथोक्तप्रमाणैकपदाऽपुनरुक्ताक्षरसमूहो मध्यमपदं १६३४८३०७८८८। हीनाधिकयोः प्रमाणपदार्थपदयोर्मध्ये एतदुक्तसंख्यापरिमिताक्षरसमूहे वर्तमानत्वात् मध्यमपदं इत्यन्वर्थतया परमागमे तदेव परिगृहीतं, प्रमाणपदार्थे तु लोकव्यवहारे परिगृहीते। अत एव लोकोत्तरे परमागमे मध्यमपदमेव पदमिति व्यवह्रियते ॥ ३३६ ॥ अथ संघातश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

मं० प्र०—त्रिविध पद–अर्थपद प्रमाणपद मध्यमपदमिति, तत्र यावता अक्षरसमूहेन विवक्षितार्थो ज्ञायते तदर्थपदं 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन, अग्निमानय' इत्यादि। प्रमाणेन अष्टाक्षरादिसंख्यया निष्पन्नः अक्षरसमूहः प्रमाणपद नमः श्रीवर्धमानाय इत्यादि। षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटयः त्र्यशीतिर्लक्षाणि सप्तसहस्राणि अष्टशतानि अष्टाशीतिश्च एकस्य पदस्य वर्णाः अपुनरुक्ताक्षराणीति गाथोक्तप्रमाणाक्षरसमूहो मध्यमपदं। १६३४८३०७८८८। प्रमाणपदार्थपदयोर्हीनाधिकमानयोर्मध्ये उक्तसंख्याक्षरपरिमितसमूहे वर्तमानत्वात् मध्यमपदं इत्यन्वर्थतया परमागमे तदेव परिगृहीत। प्रमाणपदार्थपदे तु लोकव्यवहारे परिगृहीते, अत एव लोकोत्तरे परमागमे मध्यपदमेव 'पदं' इति व्यवह्रियते ॥ ३३६ ॥ अथ संघातश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

स० चं०—पद तीन प्रकार है अर्थपद १ प्रमाणपद २ मध्यमपद ३ तहां जिहिं अक्षर समूहकरि विवक्षित अर्थ जानिये सो तौ अर्थपद कहिये जैसैं कह्या कि 'गामभ्याज शुक्लां दंडेन' इहां इम शब्दके च्यारि पद हैं–गां १ अभ्याज २ शुक्लां ३ दंडेन ४ ये च्यारि पद भए। अर्थ याका यहु जो–गायकौं घेरि सुफेदकौं दंड करि। अैसैं कह्या कि 'अग्निमानय' इहां दोय पद भए अग्निं १ आनय २। अर्थ यहु जो–अग्निको ल्याव। अैसैं विवक्षित अर्थके अर्थी एक दोय आदि अक्षरनिका समूह ताकौं अर्थपद कहिये। बहुरि प्रमाण जो संख्या तिहिंनैं लीएं जो पद कहिये अक्षर समूह ताकौं प्रमाण पद कहिये। जैसैं अनुष्टुप छंदके च्यारि पद तहां एक पदके आठ अक्षर होंइ। 'नमः श्रीवर्द्धमानाय' यहु एक पद भया। याका अर्थ यहु जो श्रीवर्धमान स्वामीके अर्थि नमस्कार होहु अैसैं प्रमाणपद जानना। बहुरि सोलासै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी। १६३४८३०७८८८। गाथाविषैं कहे अपुनरुक्त अक्षर तिनिका समूह सो मध्यमपद कहिये। इनिविषैं अर्थपद अर प्रमाण पद तौ हीन अधिक अक्षरनिका प्रमाणकौं लीएं लोकव्यवहारकरि ग्रहण

कीएं हैं तातैं लोकोत्तर परमागमविषैं गाथाविषैं कही जो संख्या तीहिंविषैं वर्तमान जो मध्यमपद ताहीका ग्रहण जानना ॥ ३३६ ॥ आगैं संघातनामा श्रुतज्ञानकों प्ररूपैं हैं—

एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो ।
संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥ ३३७ ॥

एकपदादुपरि एकैकेनाक्षरेण वर्धमानाः ।
संख्यातसहस्रपदे वृद्धे संघातनाम श्रुतं ॥ ३३७ ॥

जी० प्र०—एकपदस्य उक्तप्रमाणाक्षरसमूहोपरि एकैकाक्षरवृद्ध्या एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु द्विगुणपदज्ञानं भवति। तस्योपरि पुनरपि एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु त्रिगुणपदज्ञान भवति एवं प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितेषु चतुर्गुणपदादिषु संख्यातसहस्रगुणितपदमात्रेषु रूपोनेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु—

१ २   १   २   १   २   १
प । प प । ० ० । प २ । प २ । प २ । ० ० । प ३ । प ३ । प ३ ० ० ० प १ ० ० ० ७ ३
१– १
१ ६=   १ ६=   १ ६= १ ० ० ० ७

चरमस्य पदसमासज्ञानोत्कृष्टविकल्पस्य उपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति संघातश्रुतज्ञानं भवति १६=१०००७ तच्चतसृणां गतीनां मध्ये एकतमगतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्थज्ञानं ॥ ३३७ ॥ अथ प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपं निरूपयति—

मं० प्र०—एकपदस्य–उक्तप्रमाणाक्षरसमूहस्य, उपरि एकैकाक्षरवृद्ध्या एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु द्विगुणपदज्ञान भवति । तस्योपरि पुनरपि एकपदाक्षरमात्रेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु त्रिगुणपदज्ञान भवति एव प्रत्येकमेकपदाक्षरमात्रविकल्पसहचरितेषु चतुर्गुणपदादिषु संख्यातसहस्रगुणितपदमात्रेषु रूपोनेषु पदसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु—

१ २ १ २ १ २ १ ^

प । प । प ० ० । प २ । प २ । प २ । ० ० प प ३ । प ३ । ० ० ० ० प १ । ० ० ० ० ७ । उ

१— १ ^

१६= १६= १६=१०००७

चरमस्य पदसमासज्ञानोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति संघातश्रुतज्ञानं भवति । १६=१०००७ । तच्च चतसृणां गतीनां मध्ये एकतमगतिस्वरूपनिरूपकमध्यमपदसमुदायरूपसंघातश्रवणजनितार्थज्ञानं ॥ ३३७ ॥ अथ प्रतिपत्तिकश्रुतज्ञानस्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—एक पदके ऊपरि एक एक अक्षर बंधतैं बधतैं एक पदका अक्षर प्रमाण पदसमासके भेद भएं पदज्ञान दूणा भया। बहुरि इमतैं एक एक अक्षर बंधतैं बधतै पदका अक्षर प्रमाण पदसमासके भेद भएं पदज्ञान तिगुणा भया। ऐसैं ही एक एक अक्षरकी बंधवारी लीएं पदका अक्षर प्रमाण पदसमासज्ञानके भेद होत सते चौगुणा पंचगुणा आदि संख्यात हजारकरि गुण्या हूवा पदका प्रमाणमें एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत पदसमासके भेद जानने। पदसमासज्ञानका उत्कृष्ट भेदविषै सोई एक अक्षर मिलायें संघात नामा श्रुतज्ञान हो है सो च्यारि गतिविषैं एक गतिके स्वरूपका निरूपण हारे जो मध्यमपद तिनिका समूहरूप संघात नामा श्रुतज्ञानके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताकौं संघात श्रुतज्ञान कहिये ॥ ३३७ ॥ आगैं प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानके स्वरूपकौं कहै हैं—

एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्हि पडिवत्ती ॥ ३३८ ॥

एकतरगतिनिरूपकसंघातश्रुतादुपरि पूर्वं वा ।
वर्णे संख्येये संघाते वृद्धे प्रतिपत्तिः ॥ ३३८ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तप्रमाणस्य एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतस्य उपरि पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितैकैकपदवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रपदमात्रसंघातेषु संख्यातसहस्रेषु रूपोनेषु संघातसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य संघातसमासोत्कृष्टविकल्पकस्य १६=१०००७ । १०००७–१

एतस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्रतिपत्तिकं नाम श्रुतज्ञानं भवति १६=१०००७। १०००७ । तच्च नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रंथश्रवणजनितार्थज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥ ३३८ ॥ अथानुयोगश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

मं० प्र०—पूर्वोक्तप्रमाणस्य एकतमगतिनिरूपकसंघातश्रुतस्योपरि पूर्वोक्तप्रकारेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितैकैकपदवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रपदमात्रसंघातेषु संख्यातसहस्रेषु रूपोनेषु संघातसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य संघातसमासोत्कृष्टविकल्पस्य । १६=१०००७। १०००७-१ । एतस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्रतिपत्तिकनाम श्रुतज्ञान भवति १६=१०००७। १०००७ । तच्च नारकादिचतुर्गतिस्वरूपसविस्तरप्ररूपकप्रतिपत्तिकाख्यग्रंथश्रवणजनितार्थज्ञानमिति निश्चेतव्यं ॥ ३३८ ॥ अथानुयोगश्रुतज्ञानं प्ररूपयति—

स०चं०—एक गतिका निरूपण करणहारा जो संघातनामा श्रुतज्ञान ताके ऊपरि पूर्वोक्तप्रकारकरि एक एक अक्षरकी वधवारी लीयें एक एक पदकी वृद्धिकरि संख्यात हजार पदका समूहरूप संघात श्रुत होइ । वहुरि इस ही अनुक्रमतैं संख्यात हजार संघात श्रुत होइ तिहिमैंस्यों एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत संघात समासके भेद जानना । वहुरि अंतका संघात समास श्रुतज्ञानका उत्कृष्ट भेदविषैं वह अक्षर मिलाइये तव प्रतिपत्तिक नामा श्रुतज्ञान हो है सो नारकादि च्यारि गतिका स्वरूप विस्तारपनैं निरूपण करनहारा जो प्रतिपत्तिक नामा ग्रंथ ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताकौं प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान कहिए॥३३८॥ आगैं अनुयोग श्रुतज्ञानकौं प्ररूपै हैं—

चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा ।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्हि अणियोगं ॥ ३३९ ॥

चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तितस्तु उपरि पूर्वं वा ।
वर्णे संख्याते प्रतिपत्तिवृद्धे अनुयोगं ॥ ३३९ ॥

जी० प्र०—चतुर्गतिस्वरूपनिरूपकप्रतिपत्तिकात् परं तस्योपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु पदसंघातप्रतिपत्तिकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति अनुयोगाख्यं श्रुतज्ञानं भवति । तच्चतुर्दशमार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगसंज्ञशब्दसंदर्भश्रवणजनितार्थज्ञानमित्यर्थः ॥ ३३९ ॥ अथ प्राभृतकप्राभृतकस्य स्वरूपं गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

म० प्र०—चतुर्गतिस्वरूपप्ररूपकप्रतिपत्तिकात्परं तस्योपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिक्रमेण संख्यातसहस्रेषु पदसंघातप्रतिपत्तिकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्रतिपत्तिकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य प्रतिपत्तिकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति अनुयोगाख्यं श्रुतज्ञानं भवति तत्र चतुर्दश-मार्गणास्वरूपप्रतिपादकानुयोगसंज्ञशब्दसंदर्भश्रवणजनितार्थज्ञानमित्यर्थः ॥ ३३९ ॥ अथ प्राभृतप्राभृतकस्य गाथाद्वयेन स्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—च्यारि गतिके स्वरूपका निरूपण करणहारा प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञानके ऊपरि प्रत्येक एक अक्षरकी वृद्धि लीयें संख्यात हजार पदनिका समुदायरूप संख्यात हजार संघात अर संख्यात हजार संघातनिका समूह प्रतिपत्तिक सो ऐसैं प्रतिपत्तिक संख्यात हजार होइ तिनिविषैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञानके भेद भए। बहुरि तिसका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें अनुयोग नामा श्रुतज्ञान भया सो चौदै मार्गणाके स्वरूपका प्रतिपादक अनुयोग नामा श्रुत ताके सुननेतैं जो अर्थज्ञान भया ताकौं अनुयोग नामा श्रुतज्ञान कहिए ॥ ३३९ ॥ आगै प्राभृतप्राभृतकौं दोय गाथानिकरि कहै हैं—

चोद्दसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे ।
चउरादीअणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि ॥ ३४० ॥

चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगादुपरि वर्धिते वर्णे ।
चतुराद्यनुयोगे द्विकवारं प्राभृतं भवति ॥ ३४० ॥

जी० प्र०—चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगात्परं तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिश्चतुराद्यनुयोगेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रानुयोगसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमानुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां द्विकवारप्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३४० ॥

मं० प्र०—चतुर्दशमार्गणासंयुतानुयोगात्परं तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकं—एकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया चतुरादिषु अनुयोगेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेष्वनुयोगसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य अनुयोगसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति द्विकवारप्राभृतक—प्राभृतकप्राभृतकं भवति।३४०।

स० चं०—चौदह मार्गणाकरि संयुक्त जो अनुयोग ताके ऊपरि प्रत्येक एक एक अक्षरकी वृद्धिकरि संयुक्त

पद संघात प्रतिपत्तिक इनिकी पूर्वोक्त अनुक्रमतैं वृद्धि होतैं च्यारि आदि अनुयोगनिकी वृद्धिविषैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत अनुयोग समासके भेद भए। बहुरि तिनिका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें प्राभृत प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है ॥ ३४० ॥

अहियारो पाहुडयं एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो ।

पाहुडपाहुडणामं होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ३४१ ॥

अधिकारः प्राभृतमेकार्थः प्राभृतस्याधिकारः ।

प्राभृतप्राभृतनामा भवति इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ३४१ ॥

जी० प्र०—वस्तुनामश्रुतज्ञानस्य अधिकारः प्राभृतकं चेति द्वौ एकार्थौ। प्राभृतकस्य अधिकारोऽपि प्राभृतकप्राभृतकनामा भवति ततः कारणात् एकार्थः पर्यायशब्दः इति जिनैः—अर्हद्भट्टारकैः निर्दिष्टं न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः ॥ ३४१ ॥ द्विकवारप्राभृतानंतरं प्राभृतकस्वरूपं प्ररूपयति—

म० प्र०—वस्तुनः अधिकारः प्राभृतक, प्राभृतकप्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकनामा भवतीति एकार्थः—पर्यायशब्दः इति जिनैर्निर्दिष्ट न स्वरुचिविरचितमित्यर्थः ॥ ३४१ ॥ अथ प्राभृतकस्वरूप प्ररूपयति—

स० चं०—आगैं कहियेगा जो वस्तु नामा श्रुतज्ञान ताका जो एक अधिकार ताहीका नाम प्राभृत कहिये बहुरि जो उस प्राभृतकका एक अधिकार ताका नाम प्राभृतकप्राभृतक कहिये ऐसैं जिनदेवने कह्या है ॥ ३४१ ॥ आगैं प्राभृतकका स्वरूप कहैं हैं—

दुगवारपाहुडादो उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे ।

दुगवारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं ॥ ३४२ ॥

द्विकवारप्राभृतादुपरि वर्णे क्रमेण चतुर्विंशतौ ।

द्विकवारप्राभृते संवृद्धे खलु भवति प्राभृतकं ॥ ३४२ ॥

जी० प्र०—द्विकवारप्राभृतकात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः चतुर्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकप्राभृतकज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमसमासोत्कृष्टविकल्पकस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां प्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति॥३४२॥ अथ वस्तुनामश्रुतज्ञानस्वरूपमाह—

म० प्र०—द्विकवारप्राभृतकात्पर तस्योपरि पूर्वोक्तप्रकारेण प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया चतुर्विंशतिप्राभृतकप्राभृतकेषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकप्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमस्य उत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति प्राभृतकं नाम श्रुतज्ञानं भवति ॥ ३४२ ॥ अथ वस्तुस्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—द्विकवार प्राभृतक जो प्राभृतक प्राभृतक ताके ऊपरि पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धि लीयें चौवीस प्राभृतक प्राभृतकानिकी वृद्धिविषैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्राभृतक प्राभृतक समासके भेद जानने। बहुरि ताका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें प्राभृतक नामा श्रुतज्ञान हो है। भावार्थ—एक एक प्राभृतक नामा अधिकारविषैं चौबीस चौबीस प्राभृतक प्राभृतक नामा अधिकार हो है ॥ ३४२ ॥ आगैं वस्तु नामा श्रुतज्ञानकौं प्ररूपै हैं—

वीसं वीसं पाहुडअहियारे एक्कवत्थुअहियारो ।
एक्केक्कवण्णउड्ढी कमेण सव्वत्थ णायव्वा ॥ ३४३ ॥

विंशतौ विंशतौ प्राभृताधिकारे एको वस्त्वधिकारः।
एकैकवर्णवृद्धिः क्रमेण सर्वत्र ज्ञातव्या ॥ ३४३ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तप्राभृतकस्याग्रे तदुपरि पूर्वोक्तक्रमेण एकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः विंशतिप्राभृतकनामाधिकारेषु संवृद्धेषु सत्सु रूपोनतावन्मात्रेषु प्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमप्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरे वृद्धौ सत्यां एकं वस्तुनामाधिकारश्रुतज्ञानं भवति। वीसं वीसमिति उत्पादादिपूर्वाश्रितवस्तुवस्तुसमूहवीप्सायां द्विर्वचनमुक्तं। सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पात् प्रभृति पूर्वसमासोत्कृष्टविक-

ल्पपर्यंतेषु क्रमेण पर्यायाक्षरपदसंघातेत्यादिपरिपाट्या एकैकवर्णवृद्धिः इदमुपलक्षणं, तेन एकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धयो ज्ञातव्याः। एतत्सूत्रानुसारेण वृत्तौ तथा लिखितं ॥३४३॥ अथ गाथात्रयेण पूर्वनामश्रुतज्ञानस्वरूपं प्ररूपयंस्तदवयवभूतोत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वाणामुत्पत्तिक्रमं दर्शयति—

मं० प्र०—तस्मात्प्राभृतकात्परं प्राभृतकस्योपरि पूर्वोक्तक्रमेण एकैकवर्णवृद्धिसहचारितपदादिवृद्ध्या विंशतौ प्राभृतकनामाधिकारेषु वृद्धेषु प्राभृतकसमासज्ञानविकल्पेषु रूपोनतावन्मात्रेषु गतेषु तच्चरमस्य प्राभृतकसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति एको वस्तुनामाधिकारो भवति। वीसं वीसमिति उत्पादादिपूर्वाश्रितवस्तुसमूहवीप्सायां द्विर्वचनमुक्तं। सर्वत्राक्षरसमासप्रथमविकल्पात्प्रभृति पूर्वसमासोत्कृष्टविकल्पपर्यंतेषु क्रमेण पर्यायाक्षरपदसंघातेत्यादिपरिपाट्या एकैकवर्णवृद्धिः। इदमुपलक्षण, तेन एकैकवर्णपदसंघातादिवृद्धिर्ज्ञातव्या। एतत्सूत्रानुसारेण वृत्तावपि तथैव लिखितं ॥३४३॥ अथ गाथात्रयेण पूर्वस्वरूपं प्ररूपयति—

स० चं०—तिहिं प्राभृतकके ऊपर पूर्वोक्त अनुक्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धिनै लीएं पदादिककी वृद्धिकरि संयुक्त बीस प्राभृतककी वृद्धि होतैं संतैं वामैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत प्राभृतक समासके भेद जानने। बहुरि ताका अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलायें वस्तु नामा अधिकार हो है। भावार्थ—पूर्वसंबंधी एक एक वस्तु नामा अधिकारविषैं बीस बीस प्राभृतक पाइये है। बहुरि सर्वत्र अक्षर समासका प्रथम भेदतैं लगाइ पूर्वसमासका उत्कृष्ट भेदपर्यंत अनुक्रमतैं एक एक अक्षर वधावना। बहुरि पदका वधावना बहुरि समासका वधावना इत्यादिक परिपाटीकरि यथासंभव वृद्धि सबनिविषैं जानना सो सूत्रके अनुसारि व्याख्यान टीकाविषैं करते ही आये हैं ॥ ३४३ ॥ आगैं तीन गाथानिकरि पूर्वनामा श्रुतज्ञानकौं कहैं हैं—

दसचोद्दसट्ठ अट्ठारसयं वारं च वार सोलं च।
वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं ॥ ३४४ ॥

दश चतुर्दशाष्ट अष्टादशकं द्वादश च द्वादश षोडश च।
विंशतिः त्रिंशत् पंचदश च दश चतुर्षु वस्तूनां ॥ ३४४ ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धिभिः वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्दशपूर्वाधिकारेषु यथासंख्यं दशचतुर्दशाष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पंचदशदशदशदशदशवस्तुषु वृद्धेषु सत्सु— ॥ ३४४ ॥

मं० प्र०—तस्माद्वस्तुनः परं वस्तुन उपरि प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्ध्या वक्ष्यमाणोत्पादादिचतुर्दशपूर्वाधिकारेषु यथासंख्यं दशचतुर्दशाष्टाष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पंचदशदशदशदशदशवस्तुषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रवस्तुसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तत्तच्चरमाणां वस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पाना चतुर्दशानामुपरि प्रत्येकमेकैकस्मिन्नक्षरे वृद्धे सति—॥३४४॥

स० च०—तिहि वस्तु श्रुतके ऊपरि एक एक अक्षरकी वृद्धि लीएं अनुक्रमतैं पदादिककी वृद्धिकरि संयुक्त क्रमतैं दश आदि वस्तुनिकी वृद्धि होतसंतै उनमैंसौं एक एक अक्षर घटावनै पर्यंत वस्तु समासके भेद जाननें। बहुरि तिनके अंत भेदनिविषैं अनुक्रमतैं एक एक अक्षर मिलाएं चौदह पूर्वनामा श्रुतज्ञान होइ तहां आगैं कहिए हैं उत्पाद नामा पूर्व आदि चौदह पूर्व तिनिविषैं अनुक्रमतैं दश १० चौदह १४ आठ ८ अठारह १८ बारह १२ बारह १२ सोलह १६ बीस २० तीस ३० पंद्रह १५ दश १० दश १० दश १० दश १० वस्तु नामा अधिकार पाइए है ॥ ३४४ ॥

उप्पायपुव्वगाणियविरियपवादत्थिणत्थियपवादे ।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मप्पवादे य ॥ ३४५ ॥
पच्चाक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य ।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोयबिंदुसारे य ॥३४६॥

उत्पादपूर्वाग्रायणीयवीर्यप्रवादास्तिनास्तिकप्रवादानि ।
ज्ञानसत्यप्रवादे आत्मकर्मप्रवादे च ॥ ३४५ ॥

प्रत्याख्यानं वीर्यानुवादकल्याणप्राणवादानि च ।
क्रियाविशालपूर्वं क्रमशः अथ त्रिलोकविंदुसारं च ॥ ३४६ ॥

जी० प्र०—यथाक्रमं उत्पादपूर्वं आग्रायणीयपूर्वं वीर्यप्रवादपूर्वं अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वं ज्ञानप्रवादपूर्वं सत्यप्रवादपूर्वं आत्मप्रवादपूर्वं कर्मप्रवादपूर्वं प्रत्याख्यानपूर्वं विद्यानुवादपूर्वं कल्याणवादपूर्वं प्राणावादपूर्वं क्रियाविशालपूर्वं त्रिलोकविंदुसारपूर्वं चेति चतुर्दशपूर्वाणि भवंति । एतेषु पूर्वोक्तवस्तुश्रुतज्ञानस्य उपरि—अग्रे प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया दशवस्तुप्रमितवस्तुसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु रूपोनैतावन्मात्रवस्तुश्रुतसमासज्ञानविकल्पेषु चरमवस्तुसमासोत्कृष्टविकल्पस्योपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानं भवति । ततः उत्पादपूर्वश्रुतज्ञानस्य उपरि प्रत्येकमेकैकाक्षरवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया चतुर्दशवस्तुषु वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तच्चरमोत्कृष्टोत्पादपूर्वसमासज्ञानविकल्पस्य उपरि एकाक्षरवृद्धौ सत्यां अग्रायणीयपूर्वश्रुतज्ञानं भवति । एवमग्रेऽग्रेऽष्टादशद्वादशद्वादशषोडशविंशतित्रिंशत्पंचदशदशदशदशदशवस्तुषु क्रमेण वृद्धेषु रूपोनतावन्मात्रतावन्मात्रतत्तत्पूर्वसमासज्ञानविकल्पेषु गतेषु तत्तत्पूर्वसमासोत्कृष्टज्ञानविकल्पस्योपरि एकैकाक्षरे वृद्धे सति तत्तद्वीर्यप्रवादपूर्वास्तिनास्तिप्रवादपूर्वज्ञानप्रवादपूर्वसत्यप्रवादपूर्वात्मप्रवादपूर्वकर्मप्रवादपूर्वप्रत्याख्यानपूर्वविद्यानुवादपूर्वकल्याणवादपूर्वप्राणवादपूर्वक्रियाविशालपूर्वत्रिलोकविंदुसारपूर्वनामश्रुतज्ञानान्युत्पद्यंते । अत्र त्रिलोकविंदुसारस्य तु समासो नास्ति उत्तरज्ञानविकल्पाभावात् ॥ ३४५ ॥ ३४६ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वगतवस्तुप्राभृतकसंख्यां कथयति—

मं० प्र०—यथाक्रमं उत्पादाग्रायणीयवीर्यप्रवादास्तिनास्तिप्रवादज्ञानप्रवादसत्यप्रवादात्मप्रवादकर्मप्रवादप्रत्याख्यानविद्यानुवादकल्याणप्राणावायक्रियाविशालत्रिलोकविंदुसारनामानि चतुर्दशपूर्वाणि भवंति । चशब्दाः समुच्चयार्थाः । तस्मात् पूर्वापर प्रत्येकमेकैकवर्णवृद्धिसहचरितपदादिवृद्धया चतुर्दशसु पूर्वेषु मिलितेषु तावन्मात्राः पूर्वसमासज्ञानविकल्पा भवंति ॥ ३४५–३४६ ॥ अथ चतुर्दशपूर्वसर्ववस्तुप्राभृतकसंख्या प्ररूपयति—

स० चं०—चौदह पूर्वनिके नाम अनुक्रमतैं ऐसैं जानने । उत्पाद १ आग्रायणीय १ वीर्यप्रवाद १ अस्ति नास्ति प्रवाद १ ज्ञानप्रवाद १ सत्यप्रवाद १ आत्मप्रवाद १ कर्मप्रवाद १ प्रत्याख्यानप्रवाद १ विद्यानुवाद १ कल्याणवाद १ प्राणवाद १ क्रियाविशाल १ त्रिलोकविंदुसार १ ये चौदह पूर्वनिके नाम जानने । इनिके लक्षण आगें कहेंगे—इहां ऐसैं जानना। पूर्वोक्त वस्तुश्रुतज्ञानके ऊपरि क्रमतैं एक एक अक्षरकी वृद्धि लीएं पदादिककी वृद्धि होतैं दश वस्तु प्रमाणमेंस्यों एक अक्षर घटाइए तहां पर्यंत वस्तु समासज्ञानके भेद हैं । ताके अंत भेदविषैं वह एक अक्षर मिलाएं उत्पाद पूर्वनामा श्रुतज्ञान हो है । बहुरि उत्पादपूर्व श्रुतज्ञानके ऊपरि एक एक अक्षर-

अक्षरकी वृद्धि लीयें पदादिकी वृद्धिसंयुक्त चौदहवस्तु होंहि। तामैं एक अक्षर घटाइये तहां पर्यंत उत्पादपूर्व समासके भेद जानने ताके अंतभेदविषैं वह एक अक्षरबंधै अग्रायणीय पूर्वनामा श्रुतज्ञान होहै असैंही क्रमतैं आगैं आगैं आठ आदि वस्तुकी वृद्धि होतैं तहां एक अक्षर घटावने पर्यंत तिस तिसपूर्व समासके भेद जानने। तिस तिसका अंत भेदविषैं सो सो एक अक्षर मिलाएं वीर्यप्रवाद आदि पूर्वनामा श्रुतज्ञान हो है। अंतका त्रिलोक विंदुसार नामा पूर्व आगैं ताकै समासके भेद नाहीं है जातैं याके आगैं श्रुतज्ञानके भेदका अभाव है।३४५। ३४६॥ आगैं चौदह पूर्वनिविषै वस्तुनाम अधिकारनिकी वा प्राभृतनामा अधिकारनिकी संख्या कहै हैं—

पणणउदिसया वत्थू पाहुडया तियसहस्सणवयसया।

एदेसु चोद्दसेसु वि पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि॥ ३४७॥

पंचनवतिशतानि वस्तूनि प्राभृतकानि त्रिसहस्रनवशतानि।

एतेषु चतुर्दशस्वपि पूर्वेषु भवंति मिलितानि॥ ३४७॥

जी० प्र०—उत्पादपूर्वमादिं कृत्वा त्रिलोकविंदुसारावसानेषु चतुर्दशपूर्वेषु वस्तूनि सर्वाणि मिलित्वा पंचनवत्युत्तरशतप्रमितानि १९५ भवंति प्राभृतकानि तु सर्वाणि मिलित्वा नवशतोत्तरत्रिसहस्रप्रमितानि भवंति ३९०० । वस्तुसंख्यायां विंशत्या गुणितायां तत्संख्यासंभवात् ॥ ३४७॥ अथ पूर्वोक्तविंशतिविधश्रुतज्ञानविकल्पोपसंहारं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—एतेषु उत्पादपूर्वादिषु त्रिलोकविंदुसारपर्यंतेषु चतुर्दशसु पूर्वेषु वस्तूनि सर्वाणि मिलितानि पंचनवत्युत्तरशतसंख्यानि १९५। प्राभृतकानि तु सर्वाणि मिलितानि नवशतोत्तरत्रिसहस्रसंख्यानि भवति ३९०० वस्तुसंख्याया विंशत्या गुणिताया प्राभृतकसंख्यासंभवात् ॥ ३४७ ॥ अथ पूर्वोक्तविंशतिविधश्रुतज्ञानविकल्पोपसंहार गाथाद्वयेन प्ररूपयति—

स० चं०—जो उत्पाद आदि त्रिलोकविंदुसार पर्यंत चौदह पूर्व तिनिविषैं मिलाए हुवे दश आदि वस्तु नामा अधिकार सर्व एकसौ पिच्याणवै १९५ हो हैं। बहुरि एक एक वस्तुविषैं बीस बीस प्राभृत कहे ते सर्व प्राभृतक

उपसंहार दोय गाथानिकरि कहै हैं—

अत्थक्खरं च पदसंघातं पडिवत्तियाणिजोगं च ।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ ३४८ ॥
कमवण्णुत्तरवड्ढिय ताण समासा य अक्खरगदाणि ।
णाणवियप्पे वीसं गंथे बारस य चोद्दसयं ॥ ३४९ ॥

अर्थाक्षरं च पदसंघातं प्रतिपत्तिकानुयोगं च ।
द्विकवारप्राभृतं च च प्राभृतकं वस्तु पूर्वं च ॥ ३४८ ॥
क्रमवर्णोत्तरवर्धिते तेषां समासाश्च अक्षरगताः ।
ज्ञानविकल्पे विंशतिः ग्रंथे द्वादश च चतुर्दशकं ॥ ३४९ ॥

जी० प्र०—अर्थाक्षरं रूपोनैकट्टविभक्तश्रुतकेवलमात्रमेकाक्षरज्ञानं के १८= तच्च तथा पदं च संघातं प्रतिपत्तिकं अनुयोगं द्विकवारप्राभृतकं प्राभृतकं वस्तु, पूर्वं चेति नव पुनः एषामेव नवानां क्रमवर्णोत्तरवर्धिताः समासाश्च नव एवमष्टादशभेदा अक्षरगतद्रव्यश्रुतविकल्पा भवंति। तद्द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञानमेव पुनः अनक्षरात्मकपर्यायपर्यायसमासज्ञानद्वययुतं सत् विंशतिविधं श्रुतज्ञानं भवति। ग्रंथे शास्त्रसंदर्भे विवक्षिते सति आचारांगादिद्वादशांगविकल्प उत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वभेदं च द्रव्यश्रुतं तच्छ्रवणसंजनितज्ञानस्वरूपं भावश्रुतं। चशब्दात् अंगबाह्यसामायिकादिचतुर्दशप्रकीर्णकभेदद्रव्यभावात्मकश्रुतं पुद्गलद्रव्यरूपं वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं, तच्छ्रवणसमुत्पन्नश्रुतज्ञानपर्यायरूपं भावश्रुतं च समुच्चीयते इति आचार्यस्य अभिप्रायः। पर्यायादिशब्दानां निरुक्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथा—परीयंते व्याप्यंते सर्वे जीवा अनेनेति पर्यायः-सर्वजघन्यज्ञानं, ईदृशज्ञानरहितस्य जीवस्याभावात्। केवलज्ञानवत्स्वपि तत्संभवात् महासंख्यायां कोट्यादौ एकाद्यल्पसंख्यावत्। अक्षाय-श्रोत्रेंद्रियाय राति ददाति स्वमर्पयतीत्यक्षरं। पद्यते गच्छति जानात्यर्थमात्मा

अनेनेति पदं । सं–संक्षेपेण एकदेशेन हन्यते गम्यते ज्ञायते एका गतिः अनेनेति संघातः । प्रतिपद्यंते सामस्त्येन ज्ञायंते चतस्रो गतयः अनयेति प्रतिपत्तिः, संज्ञायां कप्रत्ययविधानात् प्रतिपत्तिकः, अनु गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु युज्यंते संबध्यंते जीवा अस्मिन्ननेनेति चानुयोगः । प्रकर्षेण–नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधान-सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारार्थैराभृतं परिपूर्णं प्राभृतं-वस्तुनोऽधिकारः, प्राभृतमिति संज्ञा अस्यास्तीति प्राभृतकं, प्राभृतकस्याधिकारः प्राभृतकप्राभृतकं वसंति पूर्वमहार्णवस्य अर्थाः एकदेशेन संत्यस्मिन्निति वस्तु। पूर्वाधिकारः पूरयति श्रुतार्थान् संविभर्त्तीति पूर्वं । सं–संगृह्य पर्यायादीनि पूर्वपर्यंतानि स्वीकृत्य अस्यंते क्षिप्यंते विकल्प्यंते इति समासाः । पर्यायज्ञानादुत्तरविकल्पाः पर्यायसमासाः । अक्षरज्ञानादुत्तरविकल्पा अक्षरसमासाः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र पदसमासादयो योज्याः । अत्र पूर्वाणि १४, वस्तूनि १९५, प्राभृतकानि ३९००, द्विकवारप्रभृतकानि ९३६००, अनुयोगाः ३७४४००, प्रतिपत्तिकसंघातपदानि संख्यातसहस्रगुणितक्रमाणि एकपदाक्षराणि १६३४८३०७८८८, समस्ताक्षराणि रूपोनैकट्ठप्रमितानि १८४४६७४४०-७३७०९५५१६१५ । एतेष्वक्षरेषु एकपदाक्षरैः प्रमाणितेषु यल्लब्धं तद्द्वादशांगपदप्रमाणं शेषमंगबाह्याक्षराणि ॥ ३४८–३४९ ॥ तत्र प्रथमं तत्पदप्रमाणमाह—

मं० प्र०—अर्थाक्षरं रूपोनैकट्ठविभक्तश्रुतकेवलमात्रमेकमक्षरं अर्थाक्षरं । अर्थाक्षरं च पदं च संघातश्च प्रतिपत्तिकश्च अनुयोगश्च प्राभृतकप्राभृतकं च प्राभृतकं च वस्तु च पूर्वं च तेषामक्षरादीनां नवानां क्रमवर्णोत्तरवर्धितसमासाश्च नवेत्यष्टादशभेदा अक्षरगता द्रव्यश्रुतविकल्पा भवंति । ज्ञाने–तद्द्रव्यश्रुतश्रवणसंजनितश्रुतज्ञाने विवक्षिते अनक्षरात्मकपर्यायपर्यायसमासज्ञानद्वयेन सह विंशतिविकल्पं श्रुतज्ञानं भवति। ग्रंथे शास्त्रसंदर्भे विवक्षिते द्वादशविकल्पं आचारांगादिद्वादशागभेद, उत्पादपूर्वादिचतुर्दशपूर्वकं च द्रव्यश्रुतं तच्छ्रवणजनितज्ञानस्वरूपं भावश्रुतं च । चशब्देन अंगबाह्यं सामायिकादिचतुर्दशप्रकीर्णकभेदमपि द्रव्यभावश्रुत समुच्चीयते । पुद्गलद्रव्यरूप वर्णपदवाक्यात्मकं द्रव्यश्रुतं तच्छ्रवणसमुत्पन्नश्रुतज्ञानपर्यायरूपं भावश्रुतमित्याचार्यस्य तात्पर्यं । पर्यायादिशब्दानां निरुक्तिः प्रदर्श्यते। तद्यथा–परीयंते–व्याप्यते सर्वे जीवा अनेनेति पर्यायः-सर्वजघन्यं ज्ञानं । ईदृशज्ञानरहितस्य जीवस्यैवाभावात् । केवलज्ञानवत्स्वपि जीवेषु तत्संभवत्येव महासंख्यायां कोट्यादौ एकाद्यल्पसंख्यावत् । अक्षाय–श्रोत्रेंद्रियाय, राति ददाति, स्वमर्पयतीत्यक्षरं, । पद्यते–गच्छति जानात्यर्थमात्मा अनेनेति पदं । सं–संक्षेपेण–एकदेशेन हन्यते- गम्यते ज्ञायते एका गतिरनेनेति संघातः । प्रतिपद्यंते सामस्त्येन ज्ञायंते चतस्रो गतयः अनयेति प्रतिपत्तिः । संज्ञाया कप्रत्ययविधानात्प्रतिपत्तिकः । अनु–गुणस्थानानुसारेण गत्यादिषु मार्गणासु, युज्यते संबध्यंते जीवाः अस्मिन्ननेनेति वा अनुयोगः । प्रकर्षेण नामस्थापनाद्रव्यभावनिर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानसत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालांतरभावाल्पबहुत्वादिविशेषेण वस्त्वधिकारार्थैराभृतं परिपूर्णं प्राभृतं वस्तुनोऽधिकारः । प्राभृतमिति संज्ञास्यास्तीति प्राभृतकं । प्राभृतकस्य अधिकारः प्राभृतकप्राभृतकं । वसंति पूर्वमहार्णवस्य अर्थाः एकदेशेन संत्यस्मिन्निति वस्तु । पूर्वाधिकारः–पूरयति श्रुतार्थान् संबिभर्त्तीति पूर्वं । सं सगृह्य पर्यायादीनि पूर्वपर्यंतानि स्वीकृत्य अस्यते क्षिप्यते विकल्प्यंते इति समासाः । पर्यायज्ञानादुत्तरविकल्पाः पर्यायसमासाः अक्षरज्ञानादुत्तरविकल्पा अक्षरसमासाः एवमुत्तरत्रापि पदसमासादयो योज्याः ॥३४८–३४९॥ अथ द्वादशांगपदसंख्यां प्ररूपयति—

स० चं०----अर्थाक्षर १ पद २ संघात ३ प्रतिपत्तिक ४ अनुयोग ५ प्राभृतकप्राभृतक ६ प्राभृतक ७ वस्तु ८ पूर्व ९ ए नव भेद बहुरि एक एक अक्षरकी वृद्धि आदि यथा संभव वृद्धि लीएं इनही अक्षरादिकनिके समास तिनिकरि नवभेद ऐसैं सर्व मिलिकरि अठारह भेद अक्षरात्मक द्रव्यश्रुतके हैं अर ज्ञानकी अपेक्षा इनही द्रव्यश्रुतानिके सुननेतैं जो ज्ञानभया सो उस ज्ञानके भी अठारह भेद कहिए। बहुरि अनक्षरात्मक श्रुतज्ञानके पर्याय १ अर पर्यायसमास २ ए दोय भेद मिलाएं सर्व श्रुतज्ञानके वीस भेद भए। बहुरि ग्रंथ जो शास्त्र ताकी विवक्षा करिए तौ आचारांग आदि द्वादश अंग अर उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्व अर चकारतैं सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक तिनिस्वरूप द्रव्यश्रुत ज्ञान जानना ताके सुननेतैं जो ज्ञान भया सो भावश्रुतज्ञान जानना। पुद्गल द्रव्यस्वरूप अक्षर पदादिकमय तौ द्रव्यश्रुत है ताके सुननेतैं जो श्रुतज्ञानका पर्यायरूप ज्ञान भया सो भावश्रुत है। अब जो पर्याय आदि भेद कहे तिनि शब्दनिकी निरुक्ति व्याकरण अनुसारि कहिए हैं परीयंते कहिए सर्व जीव जाकरि व्याप्त हैं सो पर्याय कहिए पर्यायज्ञान विना कोऊ जीव नाहीं। केवल ज्ञानीनिके भी पर्यायज्ञान संभवै है। जैसैं किसीकैं कोटि धन पाइए है तो वाकै एक धनतौ सहज ही वामें आया तैसैं महाज्ञानविषैं स्तोकज्ञान गर्भित भया जानना। बहुरि अक्ष कहिए कर्ण इंद्रिय ताकौं अपना स्वरूपकौं राति कहिए ज्ञान द्वारकरि दे है तातैं अक्षर कहिए। बहुरि पद्यते कहिए जाकरि आत्मा अर्थकौं प्राप्त होइ ताकौं पद कहिए। बहुरि सं कहिए संक्षेपतैं हन्यते गम्यते कहिए जानिए एक गतिका स्वरूप जिहिकरि सो संघात कहिएं। बहुरि प्रतिपद्यते कहिए विस्तारतैं जानिए हैं च्यारि गति जाकरि सो प्रतिपत्ति कहिए नामसंज्ञाविषैं कप्रत्ययतै प्रतिपात्तिक कहिए। बहुरि अनु कहिए गुणस्थाननिके अनुसारि युज्यंते कहिए संबंधरूप जीव जा विषैं कहिए है सो अनुयोग कहिए। बहुरि प्रकर्षेण कहिए नाम १ स्थापना १ द्रव्य १ भाव १ अथवा निर्देश १ स्वामित्व १ साधन १ अधिकरण १ स्थिति १ विधान १ अथवा सत् १ संख्या १ क्षेत्र १ स्पर्शन १ काल १ अंतर १ भाव१ अल्पबहुत्व इत्यादि विशेषकरि प्राभृत कहिए परिपूर्ण होइ ऐसा जो वस्तुका अधिकार सो प्राभृत कहिए। अर जाकी प्रा-

प्राभृत संज्ञा होइ सो प्राभृतक कहिए। बहुरि प्राभृतकका जो अधिकार सो प्राभृतकप्राभृतक कहिए बहुरि वसंति कहिए पूर्वरूपी समुद्रका अर्थ जिस विषैं एकोदेशपनै पाइए सो पूर्वका अधिकार वस्तु कहिए। बहुरि पूरयति कहिए शास्त्रके अर्थकौं पोषै सो पूर्व कहिए। ऐसैं दश भेदनिकी निरुक्ति कही। बहुरि सं कहिए संग्रह करि पर्याय आदि पूर्वपर्यंत भेदनिकौं अंगीकार करि अस्यंते कहिए प्राप्त करिए भेद करिए ते समास कहिए, पर्याय ज्ञानतैं जे पीछैं भेद तिनिकौं पर्यायसमास कहिए। अक्षर ज्ञानतैं जे पीछैं भेद तिनकौं अक्षरसमास कहिए ऐसैं ही दश भेद जानने। ऐसैं पूर्व चौदह अर वस्तु एकसौ पिच्याणवैं अर प्राभृतक तीन हजार नवसै अर प्राभृतक प्राभृतक तिराणवै हजार छसै अर अनुयोग तीन लाख चौहत्तरि हजार च्यारिसै अर प्रतिपत्तिक अर संघात अर पद क्रमतैं संख्यात हजार गुणे अर एक पदके अक्षर सोलहसौ चौंतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी अर समस्त श्रुतके अक्षर एकघाटि एकट्ठी प्रमाण इनिकौं पदके अक्षरानिका भाग दीएं जो लब्धराशि होइ सो द्वादशांगके पदोंका प्रमाण जानना। अब शेष अक्षर हैं ते अंगवाह्य श्रुतके जानने। ३४८ ३४९। तहां प्रथम द्वादशांगके पदनिकी संख्या कहैं हैं—

बारुत्तरसयकोडी तेसीदी तहय होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा पंचेव पदाणि अंगाणं॥ ३५०॥

द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिस्तथा च भवति लक्षाणां।
अष्टापंचाशत्सहस्राणि पंचैव पदानि अंगानां॥ ३५०॥

जी० प्र०—द्वादशोत्तरशतकोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टपंचाशत्सहस्राणि पंच च द्वादशांगानां मध्यमसर्वपदप्रमाणं भवति ११२,८३,५८,००५। अंग्यते मध्यमपदैर्लक्ष्यते इत्यंगं। अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमूहरूपश्रुतस्कंधस्य अंगं अवयवः एकदेशः आचाराद्येकैकशास्त्रमित्यर्थः॥ ३५०॥ अथांगवाह्याक्षरसंख्यां कथयति—

मं० प्र०—द्वादशोत्तरशतं कोट्यः त्र्यशीतिलक्षाणि अष्टापंचाशत्सहस्राणि पंच द्वादशानामंगानां पदानि यथा प्रत्येकं वक्ष्यंते तथैव मिलितानि सर्वाण्यपि भवंति । ११२८३५८००५ । अग्यते मध्यमपदैर्लक्ष्यते इत्यंग । अथवा आचारादिद्वादशशास्त्रसमूहस्य श्रुतस्कंधस्य अंग-अवयवः-एकदेशः, आचाराद्यैकैकशास्त्रमित्यर्थः ॥ ३५० ॥ अथांगवाह्यस्य अक्षरसंख्यां प्ररूपयति—

स० च०—एकसौ बारह कोडि तियासी लाख अठावन हजार पांच पद ११२८३५८००५ सर्व द्वादशांगके जानने । अंग्यते कहिए मध्यम पदनिकरि जो लखिये सो अंग कहिए अथवा सर्व श्रुतका जो एक एक आचारांगादिक रूप अवयव सो अंग कहिए । ऐसैं अंग शब्दकी निरुक्ति है ॥ ३५० ॥ आगें जो अंगवाह्य प्रकीर्णक तिनिके अक्षरनिकी संख्या कहै हैं—

अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च ।
पण्णत्तरि वण्णाओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥ ३५१ ॥

अष्टकोट्येकलक्षाणि अष्टसहस्राणि च एकशतकं च ।
पंचसप्ततिः वर्णाः प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥ ३५१ ॥

जी० प्र०—अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपंचसप्ततिप्रमाणाः प्रकीर्णकानां अंगवाह्यानां सामायिकादीनां च चतुर्दशानां वर्णा भवंति ८०१०८१७५ तुशब्दः पूर्वसूत्रे द्वादशांगपदसंख्योक्ता, अस्मिन् सूत्रे च अंगवाह्याक्षरसंख्योक्तेति विशेषं ज्ञायति ॥ ३५१ ॥ अथामुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

मं० प्र०—अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रपंचसप्तत्युत्तरैकशतप्रमाणाः प्रकीर्णकानामंगवाह्याना सामायिकादीना चतुर्दशाना वर्णा भवंति । ८०१०८१७५ । तुशब्दो विशेषार्थः । पूर्वसूत्रे द्वादशांगाना पदसंख्या उक्ता । अस्मिन् सूत्रे अंगवाह्यानामक्षरसंख्या उक्ता इत्यय विशेषः । द्विरूपवर्गधाराया रूपोने षष्ठवर्गे एकट्ठिमात्रे मध्यमपदवर्णैर्भक्ते सति लब्ध द्वादशांगपदप्रमाणं । अवशिष्टमंगवाह्याक्षरप्रमाण भवति॥३५१॥अथैतदर्थनिर्णयार्थं गाथाचतुष्टयेन प्रक्रिया प्ररूपयति—

स० चं०—बहुरि सामायिकादिक प्रकीर्णकानिके अक्षर आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तरि ८०१०८१७५ जानने । ३५१ । आगैं इस अर्थके निर्णय करनेके अर्थि च्यारि गाथानिकरि अक्षरनिकी प्रक्रिया कहै हैं

तेत्तीस वेंजिणाइं सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारि य जोगवहा चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥ ३५२ ॥

त्रयस्त्रिंशत् व्यंजनानि सप्तविंशतिः स्वरास्तथा भणिताः ।
चत्वारश्च योगवहाः चतुःषष्टिः मूलवर्णाः ॥ ३५२ ॥

ओ–अहो भव्य ! व्यंजनानि अर्धमात्राणि क् ख् ग् घ् ङ् । च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह् । इत्येतानि त्रयस्त्रिंशत् ३३ । स्वराः एकद्वित्रिमात्राः । अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ इत्येते नव, प्रत्येकं ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदैस्त्रिभिर्गुणिताः अ आ आ ३, इ ई ई ३, उ ऊ ऊ ३, ऋ ॠ ॠ ३, ऌ ॡ ॡ ३, ए १ ए २ ए ३, ऐ १ ऐ २ ऐ ३, ओ १ ओ २ ओ ३, औ १ औ २ औ ३ इत्येते सप्तविंशतिः २७ । योगवाहाः अं अः ᳲक ᳳप इत्येते चत्वारः ४, एवं मिलित्वा मूलवर्णाश्चतुःषष्टिः ६४ । यथानादिधने परमागमे प्रसिद्धास्तथैवात्र भणिताः संजानीहि । व्यज्यते स्फुटीक्रियते अर्थो यैस्तानि व्यंजनानि । स्वरंति–अर्थं कथयंतीति स्वराः । योगं–अन्याक्षरसंयोगं वहंतीति योगवाहाः । मूलानि संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणानि वर्णाः, मूलवर्णाः इति समासार्थबलेन असंयुक्ता एव चतुःषष्टिरिति लभ्यंते । ऌवर्णः संस्कृते दीर्घो नास्ति तथापि अनुकरणे देशांतरभाषायां चास्ति । ए ऐ ओ औ इति चत्वारोऽपि संस्कृते ह्रस्वा न संति तथापि प्राकृते देशांतरभाषायां च संति ॥ ३५२ ॥

म० प्र०—व्यंजनानि अर्धमात्राणि क् ख् ग् घ् ङ् । च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् श् ष् स् ह् इत्येतानि त्रयस्त्रिंशत् ३३ । स्वराः एकद्वित्रिमात्राः अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ इत्येते नव प्रत्येकं ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदैस्त्रिभिर्गुणिताः अ आ आ ३ । इ ई ई ३ । उ ऊ ऊ ३ । ऋ ॠ ॠ ३ । ऌ ॡ ॡ ३ । ए १ ए २ ए ३ । ऐ १ ऐ २ ऐ ३ । ओ १ ओ २ ओ ३ । औ १ औ २ औ ३ । इत्येते सप्तविंशतिः २७ । योगवाहाः अं अः ᳲक ᳳप इत्येते चत्वारः । ४ । सर्वे मिलिताः, मूलवर्णाः असंयुक्तवर्णाः चतुष्षष्टिः । ६४ । यथा अनादिनिधने परमागमे प्रसिद्धाः तथात्र भणिताः कथिताः । चशब्दः समुच्चयार्थः । व्यज्यते स्फुटीक्रियते अर्थो यैस्तानि व्यंजनानि । स्वरंति-अर्थं कथयंतीति स्वराः । योगमन्याक्षरसंयोग वहंतीति योगवाहाः । मूलानि-संयुक्तोत्तरवर्णोत्पत्तिकारणानि भूताः वर्णा मूलवर्णाः इति समासार्थबलेन असंयुक्ता एव एते चतुःषष्टिवर्णा ग्राह्याः । ऌकारस्य दीर्घस्य संस्कृते अभावेपि अनुकरणे देशभाषांतरेषु च सद्भावः । ए ऐ ओ औ इत्येतेषां चतुर्णां संस्कृते ह्रस्वस्याभावेऽपि प्राकृते देशभाषासु च सद्भावोस्ति ॥ ३५२ ॥

स.चं.–ओ कहिये हो भव्य ! तेतीस ३३ तौ व्यंजन अक्षर हैं आधी मात्रा जाके बोलनेके कालविषैं होइ ताकौं व्यंजन कहिये क् ख् ग् घ् ङ् । च् छ् ज् झ् ञ् । ट् ठ् ड् ढ् ण् । त् थ् द् ध् न् । प् फ् ब् भ् म् । य् र् ल् व् । श् ष् स् ह् ए तेतीस व्यंजन अक्षर हैं। बहुरि सत्ताईस स्वर अक्षर हैं अ १ इ १ उ १ ऋ १ ऌ १ ए १ ऐ १ ओ १ औ १ ए नव अक्षर, इनिके एक एकके ह्रस्व दीर्घ प्लुत तीन भेदनिकरि गुणैं सत्ताईस भेद हो हैं। अ आ आ ३। इ ई ई ३। उ ऊ ऊ ३। ऋ ॠ ॠ ३। ऌ ॡ ॡ ३। ए ए ए ३। ऐ ऐ ऐ ३। ओ ओ ओ ३। औ औ औ ३ ! ए सत्ताईस स्वर हैं। जाकी एक मात्रा होय ताकौं ह्रस्व कहिये। जाकी दोय मात्रा होंइ ताकौं दीर्घ कहिए। जाकी तीन मात्रा होंइ ताकौं प्लुत कहिए। बहुरि च्यारि योगवाह अक्षर हैं अनुस्वार १ विसर्ग १ जिह्वामूलीय १ उपध्मानीय १ तहां अं ऐसा अक्षर अनुस्वार है। अः ऐसा अक्षर विसर्ग है। कः ✕ऐसा अक्षर जिह्वामूलीय है पः ✕ ऐसा अक्षर उपध्मानीय है। ए चौसठि मूल अक्षर अनादिनिधन परमागमविषै प्रसिद्ध हैं। 'सिद्धो वर्णः समाम्नायः' इति वचनात्। व्यज्यते कहिए अर्थ जिनिकरि प्रकट करिए ते व्यंजन कहिए। स्वरंति कहिए अर्थकौं कहैं ते स्वर कहिए। योग कहिए अक्षरके संयोगको वहंति कहिए प्राप्त होंइ ते योगवह कहिए। मूल कहिए और अक्षरके संयोगरहित चौसठि संयोगी अक्षर उपजनेकौं कारण ये चौसठि मूलवर्ण हैं। इस अर्थ करि द्वितीयादि अक्षरके संयोगरहित चौसठि अक्षर हैं इनिविषै दोय आदि अक्षर मिलैं संयोगी हो है। जैसे क्कार व्यंजन अकार स्वर मिलिकरि क ऐसा अक्षर हो है। आकारके मिलनेतें का ऐसा अक्षर हो है इत्यादि संयोगी अक्षर उपजनेकौं कारण चौसठि मूल अक्षर जानने। इहां प्रश्न–जो व्याकरणविषै ए ऐ ओ औ इनिकौ ह्रस्व न कहै है इहां ए भी ह्रस्व कैसें कहे ताका समाधान–जो संस्कृत भाषाविषैं ह्रस्वरूप ए ऐ ओ औ नाहीं हो है तातैं न कहे। प्राकृत भाषा विषैं वा देशांतरकी भाषाविषैं ए ऐ ओ औ ए अक्षर भी ह्रस्व हो हैं तातैं इहां कहे हैं। बहुरि एक दीर्घ ॡकार संस्कृत भाषाविषैं नाहीं हैं तथापि अनुकरणविषैं देशांतरकी भाषाविषैं हो है तातैं इहां कह्या है ॥ ३५२ ॥

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा ।
रूऊणं च कुए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥ ३५३ ॥

चतुःषष्टिपदं विरलयित्वा द्विकं च दत्त्वा संगुणं कृत्वा ।
रूपोने च कृते पुनः श्रुतज्ञानस्याक्षराणि भवंति ॥ ३५३ ॥

जी० प्र०—मूलवर्णप्रमाणं चःपष्टिपदं एकैकरूपेण विरलयित्वा रूपं रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा परस्परं संगुणय तल्लब्धे रूपोने कृते सति श्रुतज्ञानस्य द्वादशांगप्रकीर्णकरूपश्रुतस्कंधस्य द्रव्यश्रुतस्य अपुनरुक्ताक्षराणि भवंति । वाक्यार्थप्रतीत्यर्थं गृहीतानां पुनरुक्ताक्षराणां संख्यानियमाभावात् ॥३५३॥ तदपुनरुक्ताक्षरप्रमाणं कियदिति चेदाह—

म० प्र०—चतुःषष्टिपद मूलवर्णप्रमाणचतुःषष्ट्यंकस्थानरूपाणि विरलयित्वा पंक्तिरूपेण तिर्यक्संस्थाप्य रूपं प्रति द्विकं दत्त्वा संगुण--परस्परगुणनं कृत्वा लब्धे रूपोने कृते सति श्रुतज्ञानस्य—श्रुतकेवलस्य, द्वादशांगप्रकीर्णकश्रुतस्कधरूपस्य द्रव्यश्रुतस्य अपुनरुक्ताक्षराणि तल्लब्धप्रमितानि भवंति वाक्यार्थप्रतीतिनिमित्तपुनरुक्ताक्षराणा संख्यानियमाभावात् । चशब्दौ क्रियासमुच्चयार्थौ । पुनःशब्दो रूपोनकरणे विशेषमाह । एकद्विव्यादिसंयोगाक्षराणा चतुःषष्टिसयोगपर्यंतानां संकलने सति श्रुतस्कंधाक्षरप्रमाणोत्पत्तिर्भवति इत्ययं विशेषः ॥ ३५३ ॥

स० चं०—मूल अक्षर प्रमाण चौसठि स्थान तिनिका विरलन करिये बरोबरि पंक्तिरूप एक एक जुदा चौसठि जायगा माडिए तहां एक २ के स्थान दोय दोयका अंक २ माडिये पाछै उनकौं परस्पर गुणन करिये दोय दून्यों च्यारि ४ च्यारि दून्यो आठ ८ आठ दून्यो सोलह १६ ऐसैं चौसठि पर्यंत गुणन कीये जो एकट्ठी प्रमाण आवै तामें एक घटाइये इतने अक्षर सर्व द्रव्यश्रुतके जानने ते ये अक्षर अपुनरुक्त जानने जातैं जो वाक्यका अर्थकी प्रतीतिके निमित्त उनही कहै अक्षरनिकौं वारंवार कहे तौ उनका किछू संख्याका नियम है नाहीं ॥३५३॥ तिनि अपुनरुक्त अक्षरनिका प्रमाण कितना है सो कहै हैं—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता ।

सुण्ण णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥ ३५४ ॥

एकाष्ट च च च षट्सप्तकं च च च शून्यसप्तत्रिकसप्त ।
शून्यं नव पंच पंच च एकं षट्कैककश्च पंचकं च ॥ ३५४ ॥

जी० प्र०—एकाष्टचतुश्चतुःषट्सप्तकं चतुश्चतुःशून्यसप्तत्रिकसप्तशून्यं नवपंचपंचएकं षट्कैकश्च पंचकं च इत्येकांकादिपंचांकावसानविंशतिस्थानात्मकद्विरूपवर्गधारोत्पन्नरूपोनषष्ठवर्गप्रमाणाक्षराणि भवंति—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५। एतानि अक्षराणि एकद्वित्रिसंयोगादीनि चतुःषष्टिसंयोगपर्यंतानि संति तेषामुत्पत्तिक्रमो दर्श्यते तद्यथा—उक्तमूलवर्णाश्चतुःषष्टिं तिर्यक्पंक्त्या लिखित्वा तत्र कवर्णे प्रत्येकभंगे एकः १। द्विसंयोगो नास्ति। खवर्णे प्रत्येकभंगः १ द्विसंयोगो भंगः १ एवं २। गवर्णे प्र १ द्वि २ त्रि १ एवं ४। घवर्णे प्र १ द्वि ३ त्रि ३ च १ एवं ८। ङ वर्णे प्र १ द्वि ४ त्रि ६ च ४ पं १ एवं १६। चवर्णे प्र १ द्वि ५ त्रि १० च १० पं ५ ष १ एवं ३२। छवर्णे प्र १ द्वि ६ त्रि १५ च २० पं १५ ष ६ सप्त १ एवं ६४। जवर्णे प्र १ द्वि ७ त्रि २१ च ३५ पं ३५ ष २१ सप्त ७ अष्ट १ एवं १२८। झवर्णे प्र १ द्वि ८ त्रि २८ च ५६ पं ७० ष ५६ सप्त २८ अष्ट ८ नव १ एवं २५६। ञवर्णे प्र १ द्वि ९ त्रि ३६ च ८४ पं १२६ ष १२६ सप्त ८४ अष्ट ३६ नव ९ दश १ एवं ५१२। अनेन क्रमेण चतुःषष्टिस्थानेषु गतेषु प्रत्येकादिभंगाः पूर्वपूर्वेभ्यः उत्तरोत्तरे द्विगुणा द्विगुणा भवंति। ३५४। तेषां संख्यासाधने करणसूत्रं श्रीमदभयचंद्रसूरिसैद्धांतचक्रवर्तिश्रीपादप्रसादेन केशववर्णिनः प्राहुः—

पत्तेयभंगमेगं बेसंजोगं विरूवपदमेत्तं। तियसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं ॥

प्रत्येकभंगमेकं द्विसंयोगं रूपोनपदमात्रं। त्रिसंयोगादिप्रमाणां रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं ॥

विवक्षितस्थानेषु सर्वत्र प्रत्येकभंगः एकैकः। द्विसंयोगभंगो रूपोनपदमात्रः। त्रिसंयोगादीनां प्रमाणं तु यथाक्रमं रूपाधिकवारहीनपदसंकलितं। एकवारादिसंकलितं तद्वारसंख्यया एकरूपाधिकया हीनस्य विवक्षितपदस्य यावत्तावद्भवति। यथा दशमे ञवर्णे। त्रिसंयोगाः द्विरूपोनपदस्य एकवारसंकलनमात्राः—$\frac{१०}{२}$—$\frac{२}{}$ । $\frac{१०}{१}$—$\frac{१}{}$ अपवर्तिताः ३६ चतुःसंयोगाः त्रिरूपोनपदस्य द्विकवारसंकलनमात्राः—

$\frac{७ । ८ । ९}{३ । २ । १}$ अपवर्तिताः ८४। पंचसंयोगाः चतूरूपोनपदस्य त्रिकवारसंकलनमात्राः $\frac{६ । ७ । ८ । ९}{४ । ३ । २ । १}$ अपवर्तिताः १२६। षट् संयोगाः पंच रूपोनपदस्य चतुर्वारसंकलनमात्राः $\frac{५ । ६ । ७ । ८ । ९}{५ । ४ । ३ । २ । १}$ अपवर्तिताः १२६। सप्तसंयोगाः षड्रूपोनपदस्य पंचवारसंकलनमात्राः $\frac{४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९}{६ । ५ । ४ । ३ । २ । १}$

द्वादशोत्तरपंचशतमेव द्विगुणा द्विगुणा भूत्वा चतुश्चरमत्रिचरमद्विचरमचरमेषु एकहस्य षोडशांशाष्टांशचतुर्थांशार्धप्रमिता भवंति । १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । १२८ । २५६ । ५१२ । ००० । ०० । ००० । १८= । १८= । १८= । १८= । एवं स्थिताक्षरसंख्या चउसट्ठिपदं विरलिय इत्या-
१६ । ८ । ४ । २
दिना वा 'अंतधणं गुणगुणियं' इत्यादिना वा संकलिता सती द्वादशांगप्रकीर्णकश्रुतस्कंधसमस्ताक्षरसंख्या रूपोनैकट्टप्रमिता भवतीति तात्पर्यं ।३५४॥

मं० प्र०—एकाष्टचतुश्चतु षट्सप्तचतुश्चतु शून्यसप्तत्रिकसप्तशून्यनवपंचपचैकषडेकपंचप्रमितं श्रुतस्कंधापुनरुक्ताक्षरप्रमाणं । चतुःशब्दस्य आद्यक्षरश्चकारो गृहीतः । सत्तयं चेति चकारः समुच्चयार्थोऽव्ययः । पच चेति अंत्यचकारोऽपि समुच्चयार्थोऽव्ययः । मध्ये मध्ये विभक्तिर्दृश्यते । तदनुसारेण एकाष्टचतुश्चतुःषट्सप्तकं च चतुश्चतुःशून्यसप्तत्रिकसप्तशून्यं नव पच पंच च एकं षट्कं एकैकश्च पच च इति छाया द्रष्टव्या । १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ । इदानीं द्विसयोगाद्यक्षरभंगप्राक्रिया दर्श्यते । तद्यथा—अ आ आ ३ । इ ई ई ३ । इति षडक्षराणि लिखित्वा प्रत्येकाक्षराणि षट् । ६ । 'पढमक्खो अंतगदो' इत्यादिना अक्षसचारेणोत्पन्नानि द्विसंयोगाक्षराणि पंचदश १५ । त्रिसंयोगाक्षराणि विंशति । २० । चतुःसयोगाक्षराणि पंचदश १५ । पंचसंयोगाक्षराणि षट् ६ पट्सयोगाक्षरमेक १ । एव सर्वाणि मिलितानि त्रिषष्टिः ६३ । एव सप्तसयोगादिचतुःषष्टिसंयोगपर्यंताक्षराणि अव्यामोहेनाक्षसचारपूर्वकमानेतव्यानि । एवमानीतानि सर्वाण्यक्षराणि द्विरूपषष्ठवर्गस्य रूपोनस्य यावंति रूपाणि तावंति भवंति ॥ ३५४ ॥

स० चं०—एक आठ च्यारि च्यारि छह सात च्यारि च्यारि विंदी सात तीन सात विंदी नव पांच पांच एक छह एक पंच इतने अंक क्रमतैं लिखैं जो प्रमाण होइ तितने अक्षर सर्व श्रुतके जानने १८४४६७४४०७३७०९५-५१६१५ इतने अक्षर हैं। द्विरूप वर्गधाराका छठा वर्गस्थान एकट्ठी प्रमाण है तामैं एक घटायें ऐसैं एक आदि पंच पर्यंत वीस अंक रूप प्रमाण हो है बहुरि इहां विशेष कहिये है-एक अक्षर एक संयोगी द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि चौसाठि संयोगी पर्यंत जानने। तिनकी उत्पत्तिका अनुक्रम दिखाइये है यहां कहे मूलवर्ण चौसठि तिनकौं वरोवरि पंक्तिकरि लिखिये। बहुरि तहां केवल कवर्णविषैं तौ एक प्रत्येक भंग ही है। द्विसंयोगी आदि नाहीं है। बहुरि ख वर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी एक ऐसैं दोय भंग है। बहुरि गवर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी दोय त्रिसंयोगी एक ऐसैं च्यारि भंग है। बहुरि घवर्णसहित विषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी तीन त्रिसंयोगी तीन चतुः संयोगी एक ऐसैं आठ भंग जानना। बहुरि ङ वर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी च्यारि त्रिसंयोगी छह चतुः संयोगी च्यारि पंच संयोगी एक ऐसैं सोलह भंग हैं। बहुरि चवर्ण सहितविषैं प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुः संयोगी पंच संयोगी षट् संयोगी क्रमतैं पांच दश दश पांच एक ऐसैं वत्तीस भंग हैं बहुरि छ वर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त संयोगी भंग क्रमतैं एक छह पंद्रह

वीस पंद्रह छह एक ऐसें चौसठि भंग हैं। बहुरि जवर्ण सहितविषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त अष्ट संयोगी भंग क्रमतें एक सात इकईस पैंतीस पैंतीस इकईस सात एक ऐसें एकसौ अठाइस भंग हैं। बहुरि झवर्ण सहित विषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त अष्ट नव संयोगी भंग क्रमतें एक आठ अठाईस छप्पन सत्तरि छप्पन अठाईस आठ एक ऐसें दोयसै छप्पन भंग हैं। बहुरि ञ वर्णसहितविषैं प्रत्येक द्वि त्रि चतुः पंच षट् सप्त अष्ट नव दश संयोगी भंग क्रमतें एक नव छत्तीस चौरासी एकसौ छब्बीस एकसौ छब्बीस चौरासी छत्तीस नव एक ऐसें पांचसै बारह भंग हैं इसही अनुक्रमकरि चौसठि स्थाननिविषै प्रत्येक आदि भंग पूर्व पूर्व स्थानतें उत्तर २ स्थानविषैं दूणे दूणे हो हैं॥

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	००० चौसठि ६४ पंक्ति
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	प्रत्येक
१	१	२	३	४	५	६	७	८	९	द्विसंयोगी
जोड	२	१	३	६	१०	१५	२१	२८	३६	त्रिसंयोगी
	जोड	४	१	४	१०	२०	३५	५६	८४	चतुःसंयोगी
		जोड	८	१	५	१५	३५	७०	१२६	पंचसंयोगी
			जोड	१६	१	६	२१	५६	१२६	षट्संयोगी
				जोड	३२	१	७	२८	८४	सप्तसंयोगी
					जोड	६४	१	८	३६	अष्टसंयोगी
						जोड	१२८	१	९	नवसंयोगी
							जोड	२५६	१	दशसंयोगी
								जोड	५१२	००

इहां प्रत्येक आदि भंगनिका स्वरूप कहा? सो कहिये है—जुदे जुदे ग्रहणरूप प्रत्येक भंग हैं ते येकही प्रकार हैं। जैसैं दशवां ञवर्णकी विवक्षाविषैं ञवर्णकौं जुदा ग्रहण करिये यहु येक ही प्रत्येक भंग का विधान जानना। बहुरि दोय तीन आदि अक्षरनिके संयोगतैं जे भंग होंइ तिनकौं द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि कहिये ते अनेक प्रकार हो हैं जैसैं दशवां ञ वर्णकी विवक्षाविषैं दोय अक्षरनिका संयोग—क् ञ्। ख ञ्। ग् ञ्। घ् ञ्। ङ ञ्। च् ञ्। छ् ञ्। ज् ञ् । झ् ञ्। ऐसैं नव प्रकार हो है। बहुरि तीनि अक्षरनिका संयोग क् ख् ञ्। क् ग् ञ्। क् घ् ञ्। क् ङ् ञ्। क् च् ञ्। क् छ् ञ्। क् ज् ञ्। क् झ् ञ्। ख् ग् ञ्। ख् घ् ञ्। ख् ङ् ञ्। ख् च् ञ् । ख् छ् ञ्। ख् ज् ञ्। ख् झ् ञ्। ग् घ् ञ्। ग् ङ् ञ्। ग् च् ञ्। ग् छ् ञ्। ग् ज् ञ्। ग् झ् ञ्। घ् ङ् ञ्। घ् च् ञ्। घ् छ् ञ्। घ् ज् ञ्। घ् झ् ञ्। ङ् च् ञ्। ङ् छ् ञ्। ङ् ज् ञ्। ङ् झ् ञ्। च् छ् ञ्। च् ज् ञ्। च् झ् ञ्। छ् ज् ञ्। छ् झ् ञ्। ज् झ् ञ्। ऐसैं छत्तीस प्रकार भंग हो हैं। ऐसैं ही अन्य जानने। बहुरि जितनेकी विवक्षा होइ तितनां संयोगी भंग एक ही प्रकार हो हैं। जैसैं दश अक्षरनिकी विवक्षा विषै दश अक्षरनिका संयोग रूप भंग एकही हो है ऐसैं भंगनिका स्वरूप जानना। इहां श्रीअभयचन्द्रसूरि सिद्धान्तचक्रवर्तीके चरणनिका प्रसादकरि केशववर्णी संस्कृत टीकाकार सो तिन एक दोय संयोगी आदि भंगनिकी संख्याका साधनविषै करण सूत्र कहै हैं—

पत्तेयभंगमेगं वेसंजोगं विरूवपदमेत्तं।
तियसंजोगादिपमा रूवाहियवारहीणपदसंकलिदं॥

विवक्षित स्थान विषैं सर्वत्र प्रत्येक भंग एक एक ही है बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छ प्रमाण है इहां जेथवां स्थान विवक्षित होइ तीहिं प्रमाण गच्छ जानना। बहुरि त्रिसंयोगी आदि भंगनिका क्रमतैं एक अधिक वार हीन गच्छका संकलन धनमात्र प्रमाण है। भावार्थ यहु जो त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी आदि विषैं एकवार दोयवार आदि संकलन करना। बहुरि जेतीवार संकलन होइ तातैं एक अधिक प्रमाणकों विवक्षित गच्छमें घटाएं अवशेष जेता प्रमाण रहै तितनेका संकलन करना। जैसैं दशवां स्थानकी विवक्षा विषैं त्रिसंयोगी

भंग ल्यावनेकौं एकवार संकलन अर एकवारका प्रमाण एक तातैं एक अधिक दोय सो गच्छ दशमें घटाएं आठ होइ ऐसैं आठका एकवार संकलन धनमात्र तहां त्रिसंयोगी भंग जानना । ऐसैं ही अन्यत्र जानना । बहुरि संकलन धन ल्यावनेकौं पूर्वैं केशववर्णी करि उक्त सूत्र कहे थे—

तत्तो रूवहियकमे गुणगारा होंति उड्ढगच्छोत्ति।
इगिरूवमादिरूउत्तरहारा होंति पभवोत्ति ॥

इन सूत्रनिके अनुसारि विवक्षित संकलन धन ल्यावना। अब ऐसैं करण सूत्रके अनुसार उदाहरण दिखाइए है-विवक्षित दशमा अवर्ण तहां प्रत्येक भंग एक द्विसंयोगी एक घाटि गच्छमात्र नव त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छमात्र आठ ताका एकवार संकलन धनमात्र सो संकलन धनके साधन करण सूत्रके अनुसारि आठ नवकौं दोय एकका भाग दीएं छत्तीस हो हैं। जातैं आठ नवकौं परस्पर गुणैं बहत्तरि भाज्य दोय एककौं परस्पर गुणैं भागहार दोय भागहारका भाग भाज्यकौं दीएं छत्तीस भए। ऐसैं ही चतुःसंयोगी भंग तीन घाटि गच्छका दोयवार संकलन धनमात्र है तहां सात आठ नवकौं तीन दोय एकका भाग दीएं चौरासी हो हैं। बहुरि पंचसंयोगी च्यारि घाटि गच्छ का तीनवार संकलधनमात्र है तहां छह सात आठ नवकौं च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं एकसौ छब्बीस हो हैं। बहुरि छह संयोगी पांच घाटि गच्छका च्यारिवार संकलनधनमात्र हैं तहां पांच छह सात आठ नवकौं पांच च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं एकसौ छब्बीस हो हैं। बहुरि सप्तसंयोगी छह घाटि गच्छका पांचवार संकलन धनमात्र है। तहां च्यारि पांच छह सात आठ नवकौं पांच च्यारि तीन दोय येकका भाग दीएं चौरासी हो हैं। बहुरि आठ संयोगी सात घाटि गच्छका छहवार संकलन धनमात्र है तहां तीन च्यारि पांच छह सात आठ नवकौं सात छह पांच च्यारि तीन दोय येकका भाग दीएं छत्तीस हो है। बहुरि नव संयोगी आठ घाटि गच्छका सातवार संकलनधनमात्र है तहां दोय तीन च्यारि पांच छह सात आठ नवकौं आठ सात छह पांच च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं नव हो हैं। बहुरि दश संयोगी नव घाटि गच्छका आठवार संकल धनमात्र

है। इहां परमार्थतैं संकलन नाहीं जातैं एकका सर्ववार संकलन एक ही हो है तातैं एक है ऐसैं सबनिका जोड दीएं दशवां स्थानविषैं पांचसै बारह भंग भए ॥ ऐसैं ही सर्व स्थाननि विषैं ल्यावना। तहां अंतका चौसठिवां स्थानविषैं प्रत्येक भंग एक बहुरि द्विसंयोगी भंग एक घाटि गच्छमात्र तरेसठि बहुरि त्रिसंयोगी भंग दोय घाटि गच्छका एकवार संकलन धनमात्र तहां बासठि तरेसठिकों दोय एकका भाग दीएं उगणीससै तरेपन हो हैं। बहुरि चतुःसंयोगी तीन घाटि गच्छ दोयवार संकलनधनमात्र तहां इकसठि बासठि तरेसठिकौं तीन दोय एकका भाग दीएं गुणतालीस हजार सातसै ग्यारह भंग हो हैं बहुरि पंचसंयोगी च्यारि घाटि गच्छका तीनवार संकलन धनमात्र तहां साठि इकसठि बासठि तरेसठिकों च्यारि तीन दोय एकका भाग दीएं पांचलाख पिच्याणवै हजार छसै पैसठि हो हैं ऐसैं ही षट् संयोगी आदि भंग पांच आदि एक एक बंधता घाटि गच्छका तीन आदि एक एक बंधतावार संकलनधनमात्र जानने। तहां पूर्वोक्ततैं गुणसठि अठावन आदि भाज्यविषैं अर पांच छह आदि भागहारनिविषैं अधिक अधिक माडि भाज्यकौं भागहारका भाग दीएं जेता जेता प्रमाण आवै तितना तितना तहां तहां षट्संयोगी आदि भंग जानने। तहां तरेसठि संयोगी भंग बासठि घाटि गच्छ दोय ताका एकसठिवार संकलन धनमात्र तहां दोय तीन आदि एक एक बंधता तरेसठि पर्यंतकौं बासठि इकसठि आदि एक एक घटता एकपर्यंतका भाग दीएं यथा संभव अपवर्तन कीएं तरेसठि भंग हो हैं। बहुरि चौसठि संयोगी भंग एकही है। ऐसैं चौसठिवां स्थानविषैं प्रत्येक आदि चौसठि संयोगी पर्यंत भंगनिकौं जोडैं एकट्ठीका आधा प्रमाणमात्र भंग होइ। ऐसैं एक आदि एक एक अधिक चौसठि पर्यन्त अक्षरनिके स्थाननिविषैं 'पत्तेयभंगमेगं' इत्यादि करण सूत्रनिकरि भंग हो है। अथवा गुणस्थानाधिकारविषैं प्रमादनिका व्याख्यान करते अक्ष संचार विधान कह्या था तिस विधान करि भी ऐसैं ही भंग हो हैं ते भंग क्रमतैं एक दोय चारि आठ सोलह बत्तीस चौसठि एक सौ अठाईस दोयसै छप्पन पांचसै बारह एक हजार चौबीस दोय हजार अडतालिस च्यारि हजार छिनवै आठ हजार एकसौ बानवै सोलह हजार तीनसौ चौरासी बत्तीस हजार सातसै अडसठि पैंसठ हजार पांचसै

छत्तीस एकलाख इकतीस हजार बहत्तरि दोय लाख बासठि हजार एकसौ चवालीस पांच लाख चौबीस हजार दोयसै अठासी दश लाख अडतालीस हजार पांचसै छिहत्तरि बीस लाख सित्ताणवै हजार एकसौ बावन इकतालीस लाख चौराणवे हजार तीनसै दोय तियासी लाख अठासी हजार छसै चारि एक कोडि सडसाठिलाख तेहत्तरि हजार दोयसै आठ इत्यादि दूणै दूणे हो हैं अंत स्थान तैं चौथा तीसरा दूसरा अन्तस्थानविषैं एकट्ठीका सोलवां आठवां चौथा दूसरा भागमात्र भए तिन सबनिकों जोडै 'चउसट्ठिपदं विरलिय' इत्यादि सूत्रोक्त एक घाटि एकट्ठी मात्र भंग हो है अथवा 'अन्तधणं गुणगुणियं 'आदि विहीणं रूउणुत्तारभजियं' इस करण सूत्रकरि अन्त धन एकट्ठीका आधा ताकौं गुणकार दोय करि गुणैं एकट्ठी तामैं एक घटाएं एक घाटि एकट्ठी एक घाटी गुणकार एक ताका भाग दिएं भी इतने ही सर्व भंग हो हैं ऐसै सर्वश्रुत संबंधी समस्त अक्षरनिकी संख्या एक घाटि एकट्ठी प्रमाण जानना इहां जैसैं अ आ आ इ ई ई इनि छह अक्षरनिविषैं प्रत्येक भंग छह द्विसंयोगी पंद्रह त्रिसंयोगी वीस चतुःसंयोगी पंद्रह पंचसंयोगी छह छह संयोगी एक मिलि तरेसठि भंग होंइ। छह जायगा दूवा मांडि परस्पर गुणे येक घटाय तरेसठि हो हैं तैसैं चौसठि मूल अक्षरनिविषैं पूर्वै एक एक स्थानविषैं एक एक प्रत्येक भंग मिलि चौसठि भए। ऐसैं ही सर्व स्थानकनिके द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग मांडि जितने जितने होंइ तितने तितने द्विसंयोगी त्रिसंयोगी आदि भंग जानने। सबनिकों जोडैं येक घाटि एकट्ठी प्रमाण हो हैं सोई चौसठि जायगा दोयका अंक मांडि परस्पर गुणैं तहां एक घटाएं एक घाटि एकट्ठी प्रमाण श्रुतज्ञानके अक्षर जानने ॥ ३५४ ॥

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंगपुव्वगपदाणि ।
सेसक्खरसंखा ओ पइण्णयाणं पमाणं तु ॥ ३५५ ॥

मध्यमपदाक्षरावहितवर्णास्ते अंगपूर्वगपदानि ।
शेषाक्षरसंख्या अहो प्रकीर्णकानां प्रमाणं तु ॥ ३५५ ॥

जी० प्र०—मध्यमपदस्य परमागमप्रसिद्धस्याक्षरैः षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटित्र्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिप्रमितैः तेषु सकलश्रुतस्कंधाक्षरेषु रूपोनैकट्ठप्रमात्रेषु भक्तेषु यल्लब्धं तावंत्यंगपूर्वगतमध्यमपदानि भवंति। अवशिष्टाक्षरसंख्या अंगबाह्यप्रकीर्णकाक्षरप्रमाणं भवति। यद्येतावतामक्षराणां एकं मध्यमपदं तदा एतावदक्षराणां कियंति मध्यमपदानि भवंति ? इति त्रैराशिकं कृत्वा प्रमाणराशिना भक्ते यल्लब्धं तदंगपूर्वपदानि भवंति। ११-२८३५८००५। अवशिष्टाक्षराणि सामायिकाद्यंगबाह्यश्रुताक्षराणि भवंति। ८०१०८१७५। ओ ! अहो भव्य ! इत्यंगांगबाह्यश्रुतद्वयस्य यथासंभवं पदप्रमाणमक्षरप्रमाणं च त्वं जानीहि। प्राकृते ओ शब्दः अव्ययं संबोधनार्थः ॥३५५॥ अथांगपूर्वपदसंख्याविशेषं त्रयोदशगाथासूत्रैराख्याति—

म०प्र०—मध्यमपदस्य परमागमप्रसिद्धस्य, अक्षरैः—षोडशशतचतुस्त्रिंशत्कोटित्र्यशीतिलक्षसप्तसहस्राष्टशताष्टाशीतिप्रमितैः, तेषु सकलश्रुतस्कंधाक्षरेषु अवहृतेषु—भक्तेषु, यल्लब्धं तावंति अंगपूर्वगतमध्यमपदानि भवति। अवशिष्टाक्षरसंख्या अंगबाह्यप्रकीर्णकाना प्रमाणं भवति। यद्येतावद्भिरक्षरैः प्र १६३४८३०-७८८८ एकं मध्यमपद लभ्यते। फ १। तदा एतावद्भिरक्षरैः इ १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ कियंति मध्यमपदानि लभ्यते इति त्रैराशिकेन लब्धान्यंगपूर्वपदानि। ११२८३५८००५। अवशिष्टाक्षराणि ८०१०८१७५। ओ इति प्राकृते संबोधनार्थमव्यय। अहो भव्याः ! इत्थमंगप्रविष्टांगबाह्यश्रुतयोः पदाक्षरप्रमाणे भवद्भिर्ज्ञातव्ये इति। तुशब्दो विशेषार्थः पूर्ववत् ॥ ३५५ ॥ अथ श्रीमाधवचंद्रत्रैविद्यदेवा अंगपूर्वाणा पदसंख्याविशेषं त्रयोदशभिर्गाथाभिः प्ररूपयंति—

स. चं०—एक घाटि एकट्ठी प्रमाण समस्तश्रुतके अक्षर कहे तिनिकौं परमागमविषैं प्रसिद्ध जो मध्यम पद ताके अक्षरनिका प्रमाण सोलासै चौंतीस कोडि तियासीलाख सातहजार आठसै अठ्यासी ताका भाग दीएं जो पदनिका प्रमाण आवै तितने तौ अंगपूर्व संबंधी मध्यम पद जानने। बहुरि अवशेष जे अक्षर रहे ते प्रकीर्णकोंके जानने सो एक सौ बारह कोडि तियासीलाख अठावन हजार पांच इतने तौ अंग प्रविष्ट श्रुतका पदनिका प्रमाण आया अवशेष आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तरि अक्षर रहे ते अंगबाह्य प्रकीर्णकके जानने। ऐसैं अंगप्रविष्ट अंगबाह्य दोय प्रकार श्रुतके पदनिका वा अक्षरनिका प्रमाण हे भव्य ! तू जानि ॥ ३५५ ॥ आगै श्रीमाधवचन्द्र त्रैविद्यदेव तेरह गाथानि करि अंगपूर्वनिके पदनिकी संख्या प्ररूपै हैं—

आयारे सुद्दयडे ठाणे समवायणामगे अंगे ।
तत्तो विक्खापण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा ॥ ३५६ ॥

आचारे सूत्रकृते स्थाने समवायनामके अंगे ।
ततो व्याख्याप्रज्ञप्तौ नाथस्य धर्मकथायां ॥ ३५६ ॥

जी० प्र०—द्रव्यश्रुतमधिकृत्य निरुक्तिप्रतिपाद्यार्थपदसंख्याविशेषाणां तत्तदंगपूर्वेषु प्ररूपणा क्रियते भावश्रुते निरुक्त्याद्यसंभवात् । अत्र द्वादशांगेषु प्रथमाचारांगं कथितं । कुतः ? मोक्षहेतुभूतसंवरनिर्जराकारणपंचाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकत्वेन मुमुक्षुभिराद्रियमाणस्य मोक्षांगभूतस्य परमागमशास्त्रस्य प्रथमतोवक्तव्यत्वस्य युक्तिसिद्धत्वात् । चतुर्ज्ञानसप्तर्धिसंपन्नगणधरदेवैः तीर्थकरमुखसरोजसंभूतसर्वभाषात्मकदिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थैः शिष्यप्रशिष्यानुग्रहार्थं विरचितश्रुतस्कंधद्वादशांगानां मध्ये प्रथममाचारांगं विरचितं । आचरंति समंततोऽनुतिष्ठंति मोक्षमार्गमाराधयंति अस्मिन्ननेनेति वा आचारः तस्मिन् आचारांगे—

जदं चरे जदं चिट्ठे जदं आसे जदं सये ।
जदं भुंजेज्जमासेज्ज एवं पावं ण वज्झई ॥ १ ॥

कथं चरेत् ? कथ तिष्ठेत ? कथमासीत् ? कथं शयीत ? कथं भाषेत ? कथं भुंजीत ? कथं पापं न वध्यते ? इति गणधरप्रश्नानुसारेण यतं चरेत् । यतं तिष्ठेत् । यतमासीत । यतं शयीत । यतं भाषेत । यतं भुंजीत । एवं पापं न वध्यते इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादिमुनिजनसमस्ताचरणं वर्ण्यते । सूत्रयति—संक्षेपेण अर्थं सूचयति इति सूत्रं परमागमः । तदर्थं कृतं करणं ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया, अथवा प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्यं, छेदोपस्थापना, व्यवहारधर्मक्रिया, स्वसमयपरसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं करणं क्रियाविशेषो यस्मिन् वर्ण्यते तत् सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगं । तिष्ठंति अस्मिन् एकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा । व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त इति त्रिलक्षणः । कर्मवशात् चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारिणामिकभेदेन पंचविशिष्टधर्मप्रधानः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कोपक्रमयुक्तः स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्तिनास्ति स्यादवक्तव्यः स्यादस्त्यवक्तव्यः स्यान्नास्त्यवक्तव्यः स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः इत्यादि सप्तभंगीसद्भावेष्पुपयुक्तः अष्टविधकर्मास्रवयुक्तत्वादष्टास्रवः नव जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्थाः—पदार्थाः विषयाः यस्य स नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियभेदाद् दशस्थानकः इत्यादीनि जी-

वस्य, सामान्यार्पणादेकः पुद्गलः विशेषार्पणाया अणुस्कंधभेदाद् द्वितयः, इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यंते इति स्थानं नाम तृतीयमंगं । सं—संग्रहेण सादृश्यसामान्येन अवेयंते ज्ञायंते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य अस्मिन्निति समवायांगं। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्मास्तिकायेन अधर्मास्तिकायः सदृशः । संसारिजीवेन संसारिजीवः सदृशः । मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः इत्यादिर्द्रव्यसमवायः । क्षेत्राश्रयेण सीमंतनरक-मनुष्यक्षेत्र--ऋजुविमान--सिद्धक्षेत्राणि प्रदेशतः सदृशानि। अवधिस्थान-नरक-जंबूद्वीप- सर्वार्थसिद्धिविमानानि सदृशानि इत्यादि क्षेत्रसमवायः । एकसमयः एकसमयेन सदृशः,आवलिः आवल्या सदृशी,प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यंतराणां जघन्यायूंषि सदृशानि । सप्तमपृथ्वीनरकसर्वार्थसिद्धिदेवानां उत्कृष्टायुषी सदृशे इत्यादिः कालसमवायः । केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भावसमवायः इति समवायाख्यं चतुर्थमंगं । विशेषैः बहुप्रकारैराख्यातं किमस्ति जीवः? किं नास्ति जीवः? किमेको जीवः? किमनेको जीवः? किं नित्यो जीवः? किमनित्यो जीवः? किं वक्तव्यो जीवः? किमवक्तव्यो जीव इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यंते कथ्यंते यस्यां सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पंचममंगं । नाथः-त्रिलोकेश्वराणांस्वामी तीर्थकरपरमभट्टारकः तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं,घातिकर्मक्षयानंतरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयविजृंभितमहिम्नः तीर्थकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं चोद्भवति एवं समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुदिश्य उत्तमक्षमादिलक्षणं रत्नत्रयात्मकं वा धर्मं कथयति । अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्मकथा तत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं, अथवा ज्ञातॄणां तीर्थकरगणधरशक्रचक्रधरादीनां धर्मानुबंधिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथानाम वा षष्ठमंगं ॥ ३५६ ॥

मं० प्र०—द्रव्यश्रुतमाधिकृत्य निरुक्तिप्रतिपाद्यार्थपदसंख्याविशेषाणा तत्तदंगपूर्वेषु प्ररूपणा क्रियते भावश्रुते निरुक्त्याद्यसंभवात् । द्वादशांगानां प्रथममाचारांग मोक्षार्थस्य परमागमस्य मुमुक्षुभिराद्रियमाणत्वेन मोक्षहेतुसंवरनिर्जराकारणपंचाचारादिसकलचारित्रप्रतिपादकस्य शास्त्रस्य प्रथमतो वक्तव्यत्व युक्तिसिद्धमिति चतुर्ज्ञानसप्तर्धिसंपन्नैर्गणधरदेवैस्तीर्थकरमुखारविंदसंभूतसर्वभाषात्मक दिव्यध्वनिश्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थैः शिष्यप्रशिष्यानुग्रहार्थं विरचितस्य श्रुतस्कंधस्य द्वादशांगानां मध्ये आचारांगं प्रथम विरचितं । आचरंति—समततः अनुतिष्ठंति मोक्षमार्गमाराधयंत्यस्मिन्ननेनेति वा आचारः, तस्मिन्नाचारांगे कथं चरेत् ? कथं तिष्ठेत् ? कथमासीत ? कथं शयीत ? कथं भाषेत ? कथं भुंजीत ? कथं पापं न बध्यते ? इत्यादि गणधरप्रश्नानुसारेण यतं चरेत् ? यतं तिष्ठेत् ? यतमासीत, यत शयीत, यतं भाषेत, यतं भुंजीत, एव पापं न बध्यते इत्याद्युत्तरवाक्यप्रतिपादितं मुनीनां समस्तमाचरणं वर्ण्यते । सूचयति—संक्षेपेणार्थं सूचयतीति सूत्रं परमागमः, तदर्थकृत—करणं ज्ञानविनयादिनिर्विघ्नाध्ययनादिक्रिया । अथवा प्रज्ञापना—कल्प्याकल्प्य—छेदोपस्थापना—व्यवहारधर्मक्रियाः स्वसमयपरसमयस्वरूपं च सूत्रैः कृतं—करणं क्रियाविशेषो यस्मिन्वर्ण्यते तत्सूत्रकृतं नाम द्वितीयमंगं। तिष्ठंत्यस्मिन्नेकाद्येकोत्तराणि स्थानानीति स्थानं तस्मिन् संग्रहनयेन एक एवात्मा, व्यवहारनयेन संसारी मुक्तश्चेति द्विविकल्पः। उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तः इति त्रिलक्षणः। कर्मवशाच्चतुर्गतिषु संक्रामतीति चतुःसंक्रमणयुक्तः । औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकौदयिकपारणामिकभेदेन पंचविशिष्टधर्मप्रधानः । पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वाधोगतिभेदेन संसारावस्थायां षट्कोपक्रमयुक्तः । स्यादस्ति,

स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्यःस्यादस्त्यवक्तव्यःस्यान्नास्त्यवक्तव्यःस्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यः इत्यादि सप्तभंगीसद्भाव उपयुक्तः । अष्टविधकर्मास्रवण युक्तत्वादष्टास्रवः, नव-जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षपुण्यपापरूपा अर्थाः पदार्था विषया यस्य स नवार्थः । पृथिव्यप्तेजोवायुप्रत्येकसाधारणाद्वित्रिचतुःपचेंद्रियभेदाद्दशस्थानकः इत्यादीनि जीवस्य, सामान्यार्पणया एकः पुद्गलः, विशेषार्पणया अणुस्कंधभेदाद् द्वितयः इत्यादि पुद्गलादीनां च एकाद्येकोत्तरस्थानानि वर्ण्यंते इति स्थानं नाम तृतीयमंगं । सं-सग्रहेण-सादृश्यसामान्येन अवेयते-ज्ञायंते जीवादिपदार्था द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य यस्मिन्निति समवायांगं। तत्र द्रव्याश्रयेण धर्मास्तिकायेन अधर्मास्तिकायः सदृशः, संसारिजीवेन संसारिजीवःसदृशः, मुक्तजीवेन मुक्तजीवः सदृशः, इत्यादिर्द्रव्यसमवायः, क्षेत्राश्रयेण सीमंतनरकमनुष्यक्षेत्रऋजुविद्रकाणि सदृशानि । अवधिस्थाननरकजंबूद्वीपसर्वार्थसिद्धिविमानानि सदृशानि इत्यादिः क्षेत्रसमवायः । एकसमयः एकसमयेन सदृशः, आवलिः आवल्या सदृशी, प्रथमपृथ्वीनारकभावनव्यंतराणा जघन्यायूंषि सदृशानि । सप्तमपृथ्वीनारकसर्वार्थसिद्धिदेवानामुत्कृष्टायुषी सदृशे इत्यादिः कालसमवायः। केवलज्ञानं केवलदर्शनेन सदृशमित्यादिर्भावसमवायः । इति समवायाख्यं चतुर्थमगं । विशेषैः-बहुत्वप्रकारैः आख्या, किमस्ति जीवः, किं नास्ति जीव., किमेको जीवः, किमनेको जीवः, किंनित्यो जीवः, किमनित्यो जीवः, किं वक्तव्यो जीवः, किमवक्तव्यो जीवः, इत्यादीनि षष्टिसहस्रसंख्यानि भगवदर्हत्तीर्थकरसन्निधौ गणधरदेवप्रश्नवाक्यानि प्रज्ञाप्यते- कथ्यते यस्या सा व्याख्याप्रज्ञप्तिनाम पंचममंगं। नाथः-त्रिलोकेश्वराणां स्वामी तीर्थकरपरमभट्टारक' तस्य धर्मकथा जीवादिवस्तुस्वभावकथनं घातिकर्मक्षयानतरकेवलज्ञानसहोत्पन्नतीर्थकरत्वपुण्यातिशयाविजृंभितमहिम्नः तीर्थकरस्य पूर्वाह्णमध्याह्नापराह्णार्धरात्रेषु षट्षट्घटिकाकालपर्यंतं द्वादशगणसभामध्ये स्वभावतो दिव्यध्वनिरुद्गच्छति, अन्यकालेऽपि गणधरशक्रचक्रधरप्रश्नानंतरं चोद्भवति एव समुद्भूतो दिव्यध्वनिः समस्तासन्नश्रोतृगणानुत्तमक्षमादिलक्षण वा धर्मं कथयति। अथवा ज्ञातुर्गणधरदेवस्य जिज्ञासमानस्य प्रश्नानुसारेण तदुत्तरवाक्यरूपा धर्मकथा तत्पृष्टास्तित्वनास्तित्वादिस्वरूपकथनं । अथ वा ज्ञातृणा तीर्थकरगणधरशक्रचक्रवर्त्यादीना धर्मानुबंधिकथोपकथाकथनं नाथधर्मकथा ज्ञातृधर्मकथा नाम वा षष्ठमंग ॥ ३५६ ॥

सं० चं०—द्रव्यश्रुतकी अपेक्षा सार्थक निरुक्ति लीएं अंगपूर्वके पदनिकी संख्या कहिए है जातैं भावश्रुत विषैं निरुक्त्यादिक संभवैही नाहीं तहां द्वादश अंगनिविषैं प्रथम ही आचारांग है जातें परमागम जो है सो मोक्षके निमित्त है याहीतैं मोक्षाभिलाषी याकौं आदरं हैं तहां मोक्षका कारण सवरैं निर्जरा तिनिका कारण पंचाचारादि सकल चारित्र है तातैं तिस चारित्रका प्रतिपादक शास्त्र पहिलैं कहना सिद्ध भया तीहि कारणतैं च्यारि ज्ञान सप्त ऋद्धिके धारक गणधर देवनिकरि तीर्थंकरके मुखकमलतैं उत्पन्न जो सर्व भाषामय दिव्यध्वनि ताकं सुननेतैं जो अर्थ अवधारण किया तिनिकरि शिष्य प्रतिशिष्यनिके अनुग्रहनिमित्त द्वादशांगरूप श्रुत रचना करी तीहिविषैं पहिलैं आचारांग कह्या सो आचरन्ति कहिए समस्तपनैं मोक्षकौं आराधै हैं जाकरि सो आचार, तिहिं

आचारांगविषैं ऐसा कथन है जो कैसैं चलिए ? कैसैं खडे रहिये ? कैसैं बैठिये ? कैसैं सोइए ? कैसैं बोलिए ? कैसैं खाइए ? कैसैं पाप कर्म न बंधैं ? इत्यादि गणधर प्रश्नके अनुसार यतनतैं चलिये यतनतैं खडे रहिये यतनतैं बैठिए यतनतैं सोइए यतनतैं बोलिए यतनतैं खाइये ऐसैं पापकर्म न बंधैं इत्यादि उत्तर वचन लीयें मुनीश्वरनिका समस्त आचरण इस आचारांगविषैं वर्णन कीजिये है। बहुरि सूत्रयति कहिए संक्षेपतैं अर्थकौं सूचै कहै ऐसा जो परमागम सो सूत्र ताके अर्थकृतं कहिए कारणभूत ज्ञानका विनय आदि निर्विघ्न अध्ययन आदि क्रिया विशेष सो जिसविषैं वर्णन कीजिये है। अथवा सूत्रकरि कीया धर्मक्रियारूप वा स्वमत परमतका स्वरूप क्रिया रूप विशेष सो जिस विषैं वर्णन कीजिये सो सूत्रकृत नामा दूसरा अंग हैं। बहुरि तिष्ठन्ति कहिए एक आदि एक एक बंधता स्थान जिस विषै पाइये सो स्थाननामा तीसरा अंग है तहां ऐसा व्याख्यान है संग्रह नयकरि आत्मा एक है व्यवहार नयकरि संसारी अर मुक्त दोय भेद संयुक्त है। बहुरि उत्पाद व्यय ध्रौव्य इनि तीन लक्षणनिकरि संयुक्त है। बहुरि कर्मके वशतैं च्यारि गतिविषैं भ्रमै है तातैं चतुःसंक्रमणयुक्त है। बहुरि औपशमिक क्षायिक क्षायोपशमिक औदयिक पारिणामिक भेद करि पंचस्वभाव करि प्रधान है। बहुरि पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर ऊर्ध्व अध भेदकरि छह गमन करि संयुक्त है। संसारी जीव विग्रह गतिविषैं विदिशामें गमन न करै श्रेणीबद्ध छहौ दिशाविषै गमन करै है। बहुरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादस्ति नास्ति स्यादवक्तव्य स्यादस्ति अवक्तव्य स्यान्नास्ति अवक्तव्य स्यादस्तिनास्तिअवक्तव्य इत्यादि सप्तभंगी विषैं उपयुक्त है। बहुरि आठ प्रकार कर्मका आश्रय करि संयुक्त है। बहुरि जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं विषय जाके ऐसा नवार्थ है। बहुरि पृथ्वी अप् तेज वायु प्रत्येक वनस्पती साधारण वनस्पति द्वींद्रिय त्रींदिय चतुरिन्द्रिय पंचेन्द्रिय भेदतैं दश स्थान हैं। इत्यादि जीवकौं प्ररूपै है। बहुरि पुद्गल सामान्य अपेक्षा एक है विशेष करि अणुस्कन्धके भेदतैं दोय प्रकार है इत्यादि पुदलकौं प्ररूपै है। ऐसैं एकने आदि देकरि एक एक बंधता स्थान इस अंगविषैं वर्णिये है। बहुरि 'सं' कहिये समानता करि अवेयंते कहिये जीवादि पदार्थ जिसविषैं जानिये सो समवायांग चौथा जानना।

इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा समानता प्ररूपै हैं तहां द्रव्यकरि धर्मास्तिकाय अरअधर्मास्तिकाय समान है। संसारी जीवनिकरि संसारी जीव समान हैं। मुक्तजीवकरि मुक्तजीव समान हैं इत्यादिक द्रव्य समवाय है। वहुरि क्षेत्रकरि प्रथम नरकका प्रथम पाथडेका सीमंत नामा इंद्रकविला अर अढाई द्वीपरूप मनुष्यक्षेत्र प्रथम स्वर्गका प्रथम पटलका ऋजु नामा इंद्रक विमान अर सिद्धसिला सिद्धक्षेत्र ये समान हैं। वहुरि सातवां नरकका अवधि स्थान नामा इंद्रक विला अर जंवूद्वीप अर सर्वार्थसिद्धिविमान ये समान हैं इत्यादि क्षेत्र समवाय है। वहुरि कालकरि एक समय एक समय समान है। आवली आवली समान है। प्रथम पृथ्वीके नारकी भवनवासी व्यंतर इनिकी जघन्य आयु समान है वहुरि सातवीं पृथ्वीके नारकी सर्वार्थसिद्धिके देव इनिकी उत्कृष्ट आयु समान है इत्यादिक कालसमवाय है। वहुरि भावकरि केवलज्ञान केवलदर्शन समान हैं इत्यादि भावसमवाय है ऐसैं इत्यादि समानता इस अंगविषैं वर्णिये हैं। वहुरि 'वि' कहिये विशेषकरि वहुत प्रकार आख्या कहिये गणधरके कीये प्रश्न प्रज्ञाप्यंते कहिये जानिये जिसविषैं ऐसा व्याख्याप्रज्ञप्तिनामा पांचवा अंग जानना। इस विषैं ऐसा कथन है—कि जीवअस्ति है कि जीवनास्ति है कि जीव एक है कि जीव अनेक है कि जीव नित्य है कि जीव अनित्य है कि जीव वक्तव्य हैकि जीव अवक्तव्य है इत्यादि साठि हजार प्रश्न गणधर देव तीर्थंकरके निकट कीये ताका वर्णन इस अंगविषैं है। वहुरि नाथ कहिये तीन लोकका स्वामी तीर्थंकर परम भट्टारक तिनके धर्मकी कथा जिस विषैं होइ ऐसा नाथधर्मकथा नाम छठा अंग है। इसविषैं जीवादि पदार्थनिका स्वभाव वर्णन करिए है। वहुरि घातियाकर्मके नाशतैं उत्पन्न भया केवल ज्ञान उसहीके साथि तीर्थंकर नामा पुण्य प्रकृतिके उदयतैं जाकै महिमा प्रकट भया ऐसा तीर्थंकरकै पूर्वाह्न मध्याह्न अपराह्न अर्धरात्रि इनि च्यारि कालनिविषैं छह छह घडी पर्यन्त वारह सभाके मध्य सहज ही दिव्यध्वनि होय है वहुरि गणधर इंद्र चक्रवर्ति इनके प्रश्न करनेतैं और कालविषैं भी दिव्यध्वनि हो है ऐसा दिव्यध्वनि निकटवर्ती श्रोतृजननिकौं उत्तम क्षमा आदि दश प्रकार वा रत्नत्रय स्वरूप धर्म कहै है इत्यादि इस अंग विषैं कथन है। अथवा इसही छठा अंगका दूसरा नाम ज्ञातृधर्मकथा है सो याका

अर्थ यहु है-ज्ञाता जो गणधर देव जाननेकी है इच्छा जाकैं ताका प्रश्नके अनुसारि उत्तर रूप जो धर्मकथा ताकौं ज्ञातृधर्मकथा कहिए। जे अस्ति नास्ति इत्यादिकरूप प्रश्न गणधरदेव कीये तिनिका उत्तर इस अंगविषै वर्णन करिये है। अथवा ज्ञाता तीर्थंकर गणधर इंद्र चक्रवर्त्यादिक तिनिका धर्मसंबंधी कथा इसविषैं पाइये है तातैं भी ज्ञातृधर्मकथा ऐसा नामका धारी छठा अंग जानना ॥ ३५६ ॥

तो वासयअज्झयणे अंतयडे णुत्तरोववाददसे।
पण्हाणं वायरणे विवायसुत्ते य पदसंखा ॥ ३५७ ॥

तत उपासकाध्ययने अंतकृते अनुत्तरौपपाददशे।
प्रश्नानां व्याकरणे विपाकसूत्रे च पदसंख्या ॥ ३५७ ॥

जी० प्र०——ततः पर उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयंतीति उपासकाः ते अधीयंते पठयंते दर्शनिकव्रतिकसामयिकप्रोषधोपवाससचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचर्यारंभपरिग्रहनिवृत्तानुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयसंबंधिव्रतगुणशीलाचारक्रियामंत्रादिविस्तरैर्वर्ण्यंते अस्मिन्निति उपासकाध्ययनं नाम सप्तममंगं। प्रति तीर्थं दश दश मुनीश्वराः तीव्रं चतुर्विधोपसर्गं सोढ्वा इन्द्रादिभिर्विरचितां पूजादिप्रातिहार्यसंभावनां लब्ध्वा कर्मक्षयानंतरं संसारस्यांतं अवसानं कृतवंतोऽन्तकृतः। श्रीवर्धमानतीर्थे नमि-मतंग-सोमिल-रामपुत्र-सुदर्शन-यमलीक-वलिक-किष्कंविल-पालंवष्ट-पुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि दशदशांतकृतो वर्ण्यंते यस्मिंस्तदंतकृद्दशनामाष्टममंगं। तथा उपपादः प्रयोजनमेषां ते इमे औपपादिकाः। अनुत्तरेषु विजयवैजयंतजयंतापराजितसर्वार्थसिद्धयाख्येषु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः। प्रति तीर्थं दश दश मुनयो दारुणान् महोपसर्गान् सोढ्वा लब्धप्रातिहार्याः समाधिविधिना त्यक्तप्राणाः ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूपपन्नाः ते वर्ण्यंते यस्मिंस्तदनुत्तरौपपादिकदशं नाम नवममंगं। तत्र श्रीवर्धमानतीर्थे ऋजुदास-धन्य सुनक्षत्र-कार्तिकेय-नंद-नंदन-शालिभद्र-अभय-वारिषेण-चिलातपुत्रा इत्येते दारुणमहोपसर्गान् विजित्य इंद्रादिकृतां पूजां लब्ध्वा अनुत्तरविमानेषूपपन्नाः एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्याः। प्रश्नस्य-दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्य अर्थः त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणं। अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपणी विक्षेपणी संवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थंकरादिवृत्तांतलोकसंस्थानदेशसकलयतिधर्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितं कथनमाक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुत्वादिबलेन सर्वथैकांतादि परसम-

यार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थंकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनारूपा संवेजनी कथा। संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदुःखदुष्कुलविरूपांगदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्वेजनी कथा एवंविधाः कथाः व्याक्रियंते व्याख्यायंते यस्मिंस्तत्प्रश्नव्याकरणं नाम दशममंगं। शुभाशुभकर्मणां तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयफलदानपरिणतिरूप उदयः-विपाकः तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रं नामैकादशमंगं। एतेष्वाचारादिषु विपाकसूत्रपर्यंतेषु एकादशसु अंगेषु प्रत्येकं मध्यमपदानां संख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थः ॥ ३५७ ॥

मं० प्र०—ततः उपासते आहारादिदानैर्नित्यमहादिपूजाविधानैश्च संघमाराधयतीत्युपासकाः, ते अधीयंते—पठ्यते दर्शनिकव्रतिकसामायिकप्रोषधोपवाससाचित्तविरतरात्रिभक्तव्रतब्रह्मचर्यारंभपरिग्रहनिवृत्तानुमतोद्दिष्टविरतभेदैकादशनिलयमंबंधिव्रतगुणशीलाचाराक्रियामंत्रादिविस्तरैर्वर्ण्यंत अस्मिन्नित्युपासकाध्ययनं नाम सप्तममंगं। प्रति तीर्थं दश दश मुनीश्वरा' तीव्रं चतुर्विधोपसर्गं सोढ्वा इंद्रादिभिर्विरचितां पूजादिप्रातिहार्यसंभावनां लब्ध्वा कर्मक्षयानंतरं संसारस्यांतं कृतवंतोंऽतकृतः। श्रीवर्धमानतीर्थे नमि—मतग—सोमिल—रामपुत्र—सुदर्शन—यमलीक—वलिक—किस्कविल—पालवष्ट—पुत्रा इति दश। एवं वृषभादितीर्थेष्वपि दश दश अंतकृतो वर्ण्यंते यस्मिन् तदतकृद्दश नामाष्टममंग। तथा उपपादः प्रयोजन येषा ते इमे औपपादिकाः, अनुत्तरेषु विजय—वैजयंत—जयत—अपराजित—सर्वार्थसिद्धयाख्येपु औपपादिकाः अनुत्तरौपपादिकाः। प्रति तीर्थं दश दश मुनयः दारुणान् महोपसर्गान् सोढ्वा लब्धप्रातिहार्या. समाधिविधिना त्यक्तप्राणाः ये विजयाद्यनुत्तरविमानेषूत्पन्नाः ते वर्ण्यंत यस्मिन् तदनुत्तरोपपादिकदश नाम नवममंग। तत्र श्रीवर्धमानतीर्थे ऋजुदास—धन्य—सुनक्षत्र—कार्तिकेय—नद—नदन—शालिभद्र-अभय-वारिषेण—चिलातपुत्रा इत्येते दारुणमहोपसर्गान् विजित्य इद्रादिकृता पूजां लब्ध्वा अनुत्तरविमानेषूपपन्ना. एवं वृषभादितीर्थेष्वपि परमागमानुसारेण ज्ञातव्याः। प्रश्नस्य—दूतवाक्यनष्टमुष्टिचिंतादिरूपस्य अर्थस्त्रिकालगोचरो धनधान्यादिलाभालाभसुखदुःखजीवितमरणजयपराजयादिरूपो व्याक्रियते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरण अथवा शिष्यप्रश्नानुरूपतया आक्षेपिणी विक्षेपिणी सवेजनी निर्वेजनी चेति कथा चतुर्विधा। तत्र प्रथमानुयोगकरणानुयोगचरणानुयोगद्रव्यानुयोगरूपपरमागमपदार्थानां तीर्थकरादिवृत्तातलोकसंस्थानदेशसर्वयतिधर्मपंचास्तिकायादीनां परमताशंकारहितकथनं—आक्षेपणी कथा। प्रमाणनयात्मकयुक्तियुक्तहेतुवादवलेन सर्वथैकातादिपरसमयार्थनिराकरणरूपा विक्षेपणी कथा। रत्नत्रयात्मकधर्मानुष्ठानफलभूततीर्थकराद्यैश्वर्यप्रभावतेजोवीर्यज्ञानसुखादिवर्णनारूप सवेजनी कथा। संसारशरीरभोगरागजनितदुष्कर्मफलनारकादिदुष्कुलविरूपागदारिद्र्यापमानदुःखादिवर्णनाद्वारेण वैराग्यकथनरूपा निर्वेजनी कथा, एवंविधाः कथा व्याक्रियते व्याख्यायते यस्मिन् तत्प्रश्नव्याकरणं नाम दशममग। शुभाशुभकर्मणा तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरूपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयः फलदानपरिणतिरूप उदयो विपाकः त सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रं नामैकादशमंगं, एतेषु आचारादिषु विपाकसूत्रपर्यंतेष्वेकादशसु अंगेषु प्रत्येकं मध्यमपदाना सख्या यथाक्रमं वक्ष्यते इत्यर्थः ॥ ३५७ ॥

स० च०—बहुरि तहां पीछैं उपासते कहिये आहारादि दानकरि वा पूजनादिकरि संघकौं सेवैं ऐसे जे श्रावक तिनिकौं उपासक कहिये, ते 'अधीयंते' कहिये पढैं सो उपासकाध्ययन नामा सातवां अंग है। इसविषैं दर्श-

निक १ व्रतिक २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ सचित्तविरति ५ रात्रिभक्तविरति ६ ब्रह्मचर्य ७ आरंभनिवृत्त ८ परिग्रहनिवृत्त ९ अनुमतिविरत १० उद्दिष्टविरत ११ ये गृहस्थकी ग्यारह प्रतिमा वा व्रत शील आचार क्रिया मंत्रादिक इनिका विस्तारकरि प्ररूपण है। बहुरि एक एक तीर्थंकरका तीर्थकालविषैं दश दश मुनीश्वर तीव्र चारि प्रकारका उपसर्ग सहि इंद्रादिक करि करी हुई पूजा आदि प्रातिहार्यरूप प्रभावना पाइ पापकर्मका नाशकरि संसारका जो अंत ताहि करते भये तिनिकौं अंतकृत् कहिये। तिनिका कथन जिस अंगमें होइ ताकौं अंतकृद्दशांग आठवां अंग कहिये। तहां वर्धमान स्वामीके वारैं नमि १ मतंग २ सोमिल ३ रामपुत्र ४ सुदर्शन ५ यमलीक ६ वलिक ७ किष्कंवल ८ पालंवष्ट ९ पुत्र १० ये दशभये। ऐसैंही वृषभादिक एक एक तीर्थंकरके वारैं दश दश अंतकृत् केवली हो हैं तिनिका कथन इस अंगविषैं है। बहुरि उपपाद है प्रयोजन जिनिका ऐसे औपपादिक कहिये। बहुरि अनुत्तर कहिये विजय १ वैजयंत २ जयंत ३ अपराजित ४ सर्वार्थसिद्धि ५ इनि विमाननिविषैं औपपादिक होंहिं उपजैं तिनिकौं अनुत्तरौपपादिक कहिये सो एक एक तीर्थंकरके वारैं दश दश महामुनि दारुण उपसर्ग सहि करि बड़ी पूजा पाइ समाधिकरि प्राण छोड़ि विजयादिक अनुत्तर विमाननिविषै उपजैं तिनिकी कथा जिस अंगविषैं होइ सो अनुत्तरौपपादिक दशांगनामा नवमा अंग जानना। तहां श्रीवर्धमान स्वामीके वारैं—ऋजुदास १ धन्य २ सुनक्षत्र ३ कार्तिकेय ४ नंद ५ नंदन ६ सालिभद्र ७ अभय ८ वारिषेण ९ चिलातीपुत्र १० ये दश भये। ऐसैं ही दश दश अन्य तीर्थंकरके समय भी भये हैं। तिनि सवनिका कथन इस अंग विषैं है। बहुरि प्रश्न कहिये बूझनहारा पुरुष जो बूझै सो व्याक्रियंते कहिये जिसविषैं वर्णन करिये सो प्रश्न व्याकरण नामा दशवां अंग जानना। इसविषैं जो कोई बूझनेवाला गई वस्तुकौं वा मूठीकी वस्तुकौं वा चिंता वा धन धान्य लाभ अलाभ सुख दुःख जीवना मरणा जीति हारि इत्यादिक प्रश्न बूझै अतीत अनागत वर्तमानकाल संबंधी ताकौं यथार्थ कहनेका उपायरूप व्याख्यान इस अंगविषैं है। अथवा शिष्यकौं प्रश्नके अनुसार आक्षेपिणी १ विक्षेपिणी २ संवेजिनी ३ निर्वेजिनी ४ ये

च्यारि कथा भी प्रश्नव्याकरण अंगविषैं प्रकट कीजिये है। तहां तीर्थंकरादिकका चारित्ररूप प्रथमानुयोग, लोकका वर्णन रूप करणानुयोग, श्रावक मुनिधर्मका कथनरूप चरणानुयोग, पंचास्तिकायादिकका कथनरूप द्रव्यानुयोग इनिका कथन अर परमतकी शंका दूरि करिए सो आक्षेपिणी कथा बहुरि प्रमाण नय रूप युक्ति तीहिं करि न्यायके बलतैं सर्वथा एकांतवादी आदि परमतनिकरि कह्या अर्थ ताका खंडन करना सो विक्षेपिणीकथा बहुरि रत्नत्रयरूपधर्म अर तीर्थंकरादिपदकी ईश्वरता वा ज्ञान सुख वीर्यादिकरूप धर्मका फल ताके अनुरागकों कारण सो संवेजिनी कथा बहुरि संसार देह भोगके रागतें जीव नारकादिविषै दरिद्र अपमान पीडा दुःख भोगवै है इत्यादिक विराग होनेकौं कारणरूप जो कथा सो निर्वेजिनी कथा कहिये सो ऐसी भी कथा प्रश्नव्याकरण अंग विषैं पाइए है। बहुरि विपाक जो कर्मका उदय ताकौं सूत्रयति कहिये कहै सो विपाक सूत्रनामा ग्यारमां अंग जानना इसविषै कर्मनिका फलदेने रूप जो परिणमन सोई उदय कहिये ताका तीव्र मंद मध्यम अनुमान करि द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा वर्णन पाइए है ऐसैं आचारनैं आदि देकरि विपाक सूत्र पर्यंत ग्यारह अंग तिनिके पदनिकी संख्या कहिए है ॥ ३५७ ॥

अट्ठारस छत्तीसं बादालं अडकडी अडविछप्पण्णं ।
सत्तरि अट्ठावीसं चोद्दालं सोलससहस्सा ॥ ३५८ ॥
इगिदुगपंचेयारं तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादी ।
चुलसीदिणक्खमेया कोडी य विवागसुत्तम्हि ॥ ३५९ ॥

अष्टादश षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टकृतिः अष्टद्विपंचाशत् ।

सप्ततिः अष्टाविंशतिः चतुश्चत्वारिंशत् षोडश सहस्राणि ॥ ३५८ ॥
एकद्विपंचैकादशत्रयोविंशतिद्वित्रिनवतिलक्षं चतुर्थादिषु।
चतुरशीतिलक्षमेका कोटिश्च विपाकसूत्रे ॥ ३५९ ॥

जी० प्र०—सहस्रशब्दः सर्वत्र संबध्यते । आचारांगे अष्टादशसहस्राणि पदानि १८००० । सूत्रकृतांगे षट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ३६००० । स्थानांगे द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ४२००० । चतुर्थादिषु समवायादिषु प्रश्नव्याकरणपर्यंतेषु सप्तस्वंगेषु एकलक्षादियोगः क्रियते । तद्यथा—समवायांगे एकलक्षचतुःषष्टिसहस्राणि पदानि १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगे द्विलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २२८००० । ज्ञातृकथांगे पंचलक्षषट्पंचाशत्सहस्राणि पदानि ५५६००० । उपासकाध्ययनांगे एकादशलक्षसप्ततिसहस्राणि पदानि ११७०००० । अंतकृद्दशांगे त्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २३२८००० । अनुत्तरौपपादिकदशांगे द्विनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ९२४४००० । प्रश्नव्याकरणांगे त्रिनवतिलक्षषोडशसहस्राणि पदानि ९३१६००० । विपाकसूत्रांगे एककोटिचतुरशीतिलक्षाणि पदानि १८४००००० ॥ ३५८–३५९ ॥

मं० प्र०—सोलससहस्सा इति सहस्रशब्दः प्रत्येकमभिसबध्यते आचारांगे अष्टादशसहस्राणि पदानि १८००० । सूत्रकृतांगे षट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ३६००० । स्थानांगे द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ४२००० । तुरियादी–चतुर्थादिषु समवायादिषु प्रश्नव्याकरणपर्यंतेषु सप्तस्वंगेषु एकलक्षादियोगः कर्तव्यः । तद्यथा—समवायांगे एकलक्षचतुःषष्टिसहस्राणि पदानि १६४००० । व्याख्याप्रज्ञप्त्यंगे द्विलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २२८००० । ज्ञातृकथांगे पंचलक्षषट्पंचाशत्सहस्राणि पदानि ५५६००० । उपासकाध्ययनांगे एकादशलक्षसप्ततिसहस्राणि पदानि ११७०००० । अंतकृद्दशांगे त्रयोविंशतिलक्षाष्टाविंशतिसहस्राणि पदानि २३२८००० । अनुत्तरौपपादिकदशांगे द्विनवतिलक्षचतुश्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि ९२४४००० । प्रश्नव्याकरणांगे त्रिनवतिलक्षषोडशसहस्राणि पदानि ९३१६००० । विपाकसूत्रांगे एककोटिचतुरशीतिलक्षाणि पदानि १८४००००० ॥ ३५९ ॥

स० चं०—प्रथम गाथा विषैं अठारह आदि हजार कहे । बहुरि दूसरी गाथाविषैं चौथा अंग आदि अंगनिविषै एकादिक लाख सहित हजार कहे अर विपाकसूत्रका जुदा वर्णन कीया अब इनि गाथानिके अनुसारि एकादश अंगनिकी पदनिकी संख्या कहिये है–आचारांगविषैं पद अठारह हजार १८००० सूत्रकृतांगविषैं पद छत्तीस हजार ३६००० स्थानांगविषैं बियालीस हजार ४२००० समवायांगविषैं एक लाख अर आठकी कृति चौंसठि हजार १६४००० व्याख्याप्रज्ञप्तिविषैं दोय लाख अठाईस हजार २२८००० ज्ञातृकथा अंगविषैं पांचलाख छप्पन हजार ५५६००० उपासकाध्ययन अंगविषैं ग्यारह लाख सत्तरि हजार ११७०००० अंतकृतदशांगविषैं

तेईस लाख अट्ठाईस हजार२३२८००० अनुत्तरौपपादक दशांगविषैं वाणवै लाख चवालीस हजार९२४४०००प्रश्न व्याकरण अंगविषैं तिराणवै लाख सोलह हजार ९३१६००० विपाकसूत्र अंगविषैं एक कोडि चौरासी लाख १८४००००० असैं एकादश अंगनिविषैं पदनिकी संख्या जाननी ॥ ३५८–३५९ ॥

वापणनरनोनानं एयारंगे जुदा हु वादम्हि ।
कनजतजमताननमं जनकनजयसीम वाहिरे वण्णा ॥३६०॥

वापणनरनोनानं एकदशांगे युतिर्हि वादे ।
कनजतजमताननमं जनकनजयमीम वाह्ये वर्णाः ॥ ३६० ॥

जी० प्र०—पूर्वोक्तैकादशांगपदसंख्यायुतिः अक्षरसंख्यया वापणनरनोनानं चतुःकोटिपंचदशलक्षद्विसहस्रप्रमिता भवति ;४१५०२००० खलु स्फुटं दृष्टिवादांगे कनजतजमताननमं अष्टोत्तरशतकोट्यष्टापष्टिलक्षपट्पंचाशत्सहस्रपंचपदानि भवंति १०८६८५६००५ । जनकनजयसीम अष्टकोट्येकलक्षाष्टसहस्रैकशतपंचसप्तत्यक्षराणि सामायिकादिचतुर्दशभेदेंअवाह्यश्रुते भवंति ८०१०८१७५ । दृष्टीनां त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादः अनुवादः तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद दृष्टिवादं नाम द्वादशमंगं । तद्यथा कौत्कल-कंठेविद्धि-कौशिक-हरिश्मश्रु-मांधपिक-रोमश—हारीत-मुंड-आश्वलायनादयः क्रियावाददृष्टयः अशीत्युत्तरशतं १८० । मरीचि-कपिल-उलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाड्वलिः—माठर- मौद्गलायनादयः अक्रियावाददृष्टयश्चतुरशीतिः ८४ । शाकल्य-वाल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कठ-माध्यंदिन-मौद—पैप्पलाद-वादरायण-स्विष्ठिक्य-दैत्यकायन-वसु-जैमिन्यादयः अज्ञानकुदृष्टयः सप्तषष्टिः ६७ । वशिष्ट-पाराशर-जतुष्कर्ण-वाल्मिकि-रोमहर्षणि-सत्यदत्त-व्यास-एलापुत्र (तु) औपमन्यव-ऐंद्रदत्त-आगस्त्यादयो वैनयिकदृष्टयो द्वात्रिंशत् ३२ । मिलित्वा मिथ्यावादाः त्रिषष्टयग्रत्रिशती भवंति ॥ ३६० ॥

मं० प्र०—युक्ताना एकादशागाना पदसख्यायुतिः अक्षरसज्ञया वा—प—ण—नर—नो—नान चतुःकोटिपंचदशलक्षद्विसहस्रप्रमिता ४१५०२००० । वादे—दृष्टिवादनाम्नि, द्वादश अगे कनजतजमताननमं अष्टोत्तरशतकोटयष्टापष्टिलक्षषट्पंचाशत्सहस्राणि पंचाग्राणि पदानि १०८, ६८, ५६००५, दृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतसख्याना मिथ्यादर्शनाना वादः—अनुवादः, तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद् दृष्टिवादं नाम द्वादशमंगं । तद्यथा—कौत्कल—काठेविद्धि—कौशिक—हरिश्मश्रु—माधपिक—रोमश—हारीत—मुंड—आश्वलायनादीना क्रियावाददृष्टीनामशीतिशत १८० । मरीचि—कपिल—उलूक—गार्ग्य व्याघ्रभू ति—वाद्वलि—माठर—मौद्गलादीना अक्रियावाददृष्टीना चतुरशीतिः ८४ । शाकल्य—वल्कल—कुथुमि—सात्यमुग्रि—नारायण—कठ—माध्यदिन—मौद—पैप्पलाद—वादरायण—स्वि-

ष्ठिक्य–दैतिकायन–वसु–जैमिन्यादीनां अज्ञानां अज्ञानकुदृष्टीनां सप्तषष्टिः ६७। वासिष्ठ–पराशर–जतुकर्ण–वाल्मीकि–रोमहर्षणि–सत्यदत्त–व्यास–एलापुत्र–औपमन्यव–ऐंद्रदत्त–अगस्त्यादीनां वैनयिकदृष्टीनां द्वात्रिंशत् ३२ इति मिलित्वा त्रिषष्ट्युत्तरा त्रिशती ३६३। अंगबाह्ये–सामायिकादिचतुर्दशभेदे जनकन जयसीम अष्टकोटयेकलक्षाष्टसहस्रपचसप्तत्युत्तरशतप्रमिताः अपुनरुक्ता वर्णाः ८०१०८१७५॥ ३६०॥

स०चं०-इहां वा आगे अक्षर संज्ञाकरि अंकनिकौं कहैं हैं सो याका सूत्र पूर्वै गतिमार्गणाका वर्णनविषैं पर्याप्त मनुष्यनिकी संख्या कही है तहां कह्या है 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्र कह्या है तिसहीतैं अक्षरसंज्ञाकरि अंक जानना। ककारादिक नव अक्षरनिकरि एक दोय आदि क्रमतैं नव अंक जानने। टकारादि नव अक्षरनिकरि नव अंक जानने। पकारादि पंच अक्षरनिकरि पंच अंक जानने। यकरादि आठ अक्षरनिकरि आठ अंक जानने। ञकार नकार इनिकरि बिंदी जानिये ऐसा कहि आए हैं सो इहां 'वापणनरनोनानं इनि अक्षरनिकरि चारि एक पांच बिंदी दोय बिंदी बिंदी बिंदी ए अंक जानना। ताके चारि कोडि पंद्रह लाख दोय हजार ४१५०२००० पद सर्व एकादश अंगनिका जोड दीयें भये। बहुरि दृष्टिवाद नाम बारहवां अंग ताविषैं 'कनजतजमताननमं' कहिये एक बिंदी आठ छह आठ पांच छह बिंदी बिंदी पांच इनि अंकनिकरि एकसौ आठ कोडि अडसठि लाख छप्पन हजार पांच पद हैं १०८६८५६००५, सो दृष्टि कहिये मिथ्यादर्शन तिनिका है अनुवाद कहिये निराकरण जिसविषैं ऐसा दृष्टिवाद नामा अंग बारह्वां जानना। तहां मिथ्यादर्शनसंबंधी कुवादी तीनसै तरेसठि हैं तिनिविषै कौत्कल कांठेविद्धि कौशिक हरिश्मश्रु मांधपिक रोमश हारीत मुंड आश्वलायन इत्यादि क्रियावादी हैं सो इनिके एकसौ अस्सी १८० कुवाद हैं। बहुरि मारीचि कपिल उलूक गार्ग्य व्याघ्रभूति वाड्वालि माठर मौद्गलायन इत्यादि अक्रियावादी हैं तिनिके चौरासी ८४ कुवाद हैं। बहुरि साकल्य वाल्कलि कुथुमि सात्यमुग्री नारायण कठ माध्यंदिन मौद पैप्पलाद बादरायण स्विष्टिक्य दैत्यकायन वसु जैमिन्य इत्यादि ए अज्ञानवादी हैं। इनिके सडसठि६७कुवाद हैं बहुरि वशिष्ठ पाराशर जतुकर्ण वाल्मिकि रोमहर्षिणि सत्यदत्त व्यास एलापुत्र उपमन्यु ऐंद्रदत्त अगस्ति इत्यादिक ए विनयवादी हैं इनिके कुवाद बत्तीस ३२ हैं। सब मिलाएं तीनसै

तरेसठि कुवाद भये इनिका वर्णन भावाधिकारविषैं कहैंगे इहां प्रवृत्तिविषैं इनि कुवादनिके जे जे अधिकारी तिनिके नाम कहे हैं। बहुरि अंग बाह्य जो सामायिकादिक तिनिविषैं 'जनकनजयसीम' कहिये आठ विंदी एक विंदी आठ एक सात पांच अंक तिनिके आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचत्तरि ८०१०८१७५ अक्षर जानने ॥ ३६० ॥

चंदरविजंबुदीवयदीवसमुद्दयवियाहपण्णत्ती ।
परियम्मं पंचविहं सुत्तं पढमाणि जोगमदो ॥ ३६१ ॥
पुव्वं जलथलमायाआगासयरूवगयामिमा पंच ।
भेदा हु चूलियाए तेसु पमाणं इणं कमसो ॥ ३६२ ॥

चंद्ररविजंबूद्वीपकद्वीपसमुद्रकव्याख्याप्रज्ञप्तयः ।
परिकर्म पंचविधं सूत्रं प्रथमानुयोगमतः ॥ ३६१ ॥
पूर्वं जलस्थलमायाकाशकरूपगता इमे पंच ।
भेदा हि चूलिकायाः तेषु प्रमाणमिदं क्रमशः ॥ ३६२ ॥

जी० प्र०—दृष्टिवादाङ्गे अधिकाराः पंच। ते के? परिकर्म सूत्रं प्रथमानुयोगः पूर्वगतं चूलिका चेति। तत्र परितः सर्वतः कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म, तच्च पंचविधं चंद्रप्रज्ञप्तिः सूर्यप्रज्ञप्तिः जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः व्याख्याप्रज्ञप्तिश्चेति । तत्र चंद्रप्रज्ञप्तिः चंद्रस्य विमानायुःपरिवारऋद्धिगमनहानिवृद्धिसकलार्धचतुर्थांशग्रहणादीन् वर्णयति । सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणादीन्वर्णयति । जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः जंबूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षकुंडवेदिकावनखंडव्यंतरावासमहानद्यादीन् वर्णयति । द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः असंख्यातद्वीपसागराणां स्वरूपं तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासेषु विद्यमानाकृत्रिमजिनभवनादीन् वर्णयति । व्याख्याप्रज्ञप्तिः रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अ-

नंतरसिद्धपरंपरासिद्धानां अन्यवस्तूनां च वर्णनं करोति । सूत्रयति—सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रं । जीवः अबंधकः अकर्ता निर्गुणः अभोक्ता स्वप्रकाशकः परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः नास्त्येव जीवः इत्यादि क्रियाक्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीनां त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति । प्रथमानुयोगः प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः, । चतुर्विंशतितीर्थकरद्वादशचक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवनवप्रतिवासुदेवरूपत्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणानि वर्णयति । पूर्वं चतुर्दशविधं विस्तरेण अग्रे वक्ष्यति । चूलिकापि पंचविधा जलगता स्थलगता मायागता आकाशगता रूपगता चेति । तत्र जलगता चूलिका जलस्तंभनजलगमनाग्निस्तंभाग्निभक्षणाग्न्यासनाग्निप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । स्थलगता चूलिका मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । मायागता चूलिका मायारूपेंद्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । रूपगता चूलिका सिंहकरितुरगरुरुनरतरुहरिणशशकवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणधातुवादरसवादखन्यावादादींश्च वर्णयति । आकाशगता चूलिका आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति । प्रागुक्तचंद्रप्रज्ञप्त्यादिषु क्रमशो यथाक्रमं पदप्रमाणं अनंतरमेव वक्ष्यमाणं जानीहि इति संबोधनमध्याहार्यं ।३६१-३६२।

मं० प्र०--दृष्टिवादस्य अधिकाराः परिकर्म सूत्र प्रथमानुयोगः पूर्वगतं चूलिका चेति पंच भवंति । ततः परितः--सर्वतः, कर्माणि—गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म । तच्च पंचविध--चंद्रप्रज्ञप्तिः, सूर्यप्रज्ञप्तिः, जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः, द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः, व्याख्याप्रज्ञप्तिरिति । तत्र चंद्रप्रज्ञप्ति -चंद्रस्य विमानायुःपरिवारऋद्धिगमनवृद्धिहानिसकलार्धचतुर्भागग्रहणादीनि वर्णयति । सूर्यप्रज्ञप्तिः सूर्यस्यायुर्मंडलपरिवारऋद्धिगमनप्रमाणग्रहणादीनि वर्णयति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिः जंबूद्वीपगतमेरुकुलशैलह्रदवर्षवेदिकावनखंडव्यंतरावासमहानद्यादीना वर्णनं करोति । द्वीपसागरप्रज्ञप्तिः--असंख्यातद्वीपसागराणां स्वरूपस्य तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासाना आवासं प्रति विद्यमानाकृत्रिमजिनभवनादीना च वर्णनं करोति । व्याख्याप्रज्ञप्तिः—रूप्यरूपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अनंतरपरंपरासिद्धाना अन्येषा च वस्तूना वर्णनं करोति । सूत्रयति—सूचयति कुदृष्टिदर्शनानीति सूत्रं, जीवः अबंधकः, अकर्ता, निर्गुणः, अभोक्ता, स्वप्रकाशकः, परप्रकाशकः अस्त्येव जीवः, नास्त्येव जीवः इत्यादि क्रियाऽक्रियाज्ञानविनयकुदृष्टीना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतमिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति । प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगः--अधिकारः चतुर्विंशतितीर्थकरद्वादशचक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवनवप्रतिवासुदेवाना त्रिषष्टिपुराणानि वर्णयति । अतःपर पूर्वं चतुर्दशविधं तच्च अग्रेविस्तरेण वक्ष्यते । चूलिकाः जलगता स्थलगता मायागता आकाशगता रूपगता चेति इमे पंचभेदा भवंति । तत्र जलगता जलस्तंभनजलगमनाग्निस्तंभनभक्षणासनप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति । स्थलगता मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति । मायागता मायारूपेंद्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति । रूपगता सिंहकरीतुरगरुरुनरतरुहरिणशशवृषभव्याघ्रादिरूपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणं धातुवादरसवादखान्यवादादीनि च वर्णयति । आकाशगता आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीनि वर्णयति । तेषु चंद्रप्रज्ञप्त्यादिषु क्रमशः—यथाक्रमं पदमानं इदमनंतरमेव वक्ष्यमाणं जानीत हे भव्याः ! इत्यध्याहारः ॥ ३६१—३६१ ॥

सं० च०—दृष्टिवाद नामा बारह्वां अंगके पंच अधिकार हैं परिकर्म १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ चू-

लिका ५ए पंच अधिकारहैं तिनिविषैं परित: कहिये सर्वांगतैं कर्माणि कहिये जिनतैं गुण कार भागहारादि रूप गणित होइ ऐसे कर्णसूत्र वे जिसविषैं पाइए सो परिकर्म कहिये सो परिकर्म पांच प्रकार है चंदप्रज्ञप्ति१ सूर्यप्रज्ञप्ति२ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ३ द्वीपसागरप्रज्ञप्ति ४ व्याख्याप्रज्ञप्ति ५ । तहां चंद्रप्रज्ञप्ति चंद्रमाका विमान आयु परिवार ऋद्धि गमनविशेष वृद्धि हानि सारा आधा चौथाई ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है बहुरि सूर्यप्रज्ञप्ति सूर्यका आयु मंडल परिवार ऋद्धि- गमनका प्रमाण ग्रहण इत्यादि प्ररूपै है। बहुरि जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति जंबूद्वीपसंवंधी मेरुगिरि कुलाचल द्रह क्षेत्र वेदी वनखंड व्यंतरनिके मांदिर नदी इत्यादि प्ररूपै है। बहुरि द्वीपसागरप्रज्ञप्ति असंख्यात द्वीप समुद्रसंबंधी स्वरूप वा तहां तिष्ठते ज्योतिषी व्यंतर भवनवासीनिके आवास तहां अकृत्रिम जिनमंदिर तिनकौं प्ररूपै है। बहुरि व्याख्याप्रज्ञप्ति रूपी अरूपी जीव अजीव आदि पदार्थनिका वा भव्य अभव्य आदि प्रमाणकरि निरूपण करै है ऐसैं परिकर्मके पंच भेद है। बहुरि सूत्रयति कहिये मिथ्यादर्शनके भेदनिकौं सूचै वतावै ताकौं सूत्र कहिये तिसविषैं जीव अबंधकही है अकर्ता है निर्गुण है अभोक्ता है स्वप्रकाशक ही है परप्रकाशक ही है अस्तिरूप ही है नास्ति रूप ही है इत्यादि क्रियावाद अक्रियावाद अज्ञानवाद विनयवाद तिनके तीनसै तरेसठि भेद तिनिका पूर्व पक्षपने करि वर्णन करिये है। बहुरि प्रथम कहिये मिथ्यादृष्टी अव्रती विशेष ज्ञानरहित ताकौं उपदेश देने निमित्त जो प्रवृत्त भया अधिकार अनुयोग कहिए सो प्रथमानुयोग कहिए तींहिं विषैं चौवीस तीर्थंकर वारह चक्रवर्ति नव वलभद्र नव नारायण नव प्रतिनारायण इनि तरेसठि शलाका पुरुषनिका पुराण वर्णन कीया है। बहुरि पूर्वगत चौदह सो आगैं विस्तारनैं लीएं कहैंगे। बहुरि चूलिकाके पंच भेद जल गता १ स्थलगता २ मायागता ३ रूपगता ४ आकाशगता ५ ए पंच भेद तिनिविषैं जगलता चूलिका तौ जल का स्तंभन करना जलविषैं गमन करना अग्निका स्तंभन करना अग्निका भक्षण करना अग्निविषैं प्रवेश करना इत्यादि क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपै है। बहुरि स्थलगता चूलिका मेरुपर्वत भूमि इत्यादि विषै प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रियाके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादिक प्ररूपै है। बहुरि मायागता चूलिका मायामई इंद्रजाल विक्रि-

याके कारणभूत मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपै है। बहुरि रूपगता चूलिका सिंह हाथी घोड़ा वृषभ हरिण इत्यादि नाना प्रकार रूप पलटिकरि धरना ताके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादि प्ररूपै है वा चित्राम काठ लेपादिकका लक्षण प्ररूपै है वा धातु रसायनकौं प्ररूपै है। बहुरि आकाशगता चूलिका आकाश विषैं गमन आदिकौं कारण भूत मंत्र तंत्रादि प्ररूपै है ऐसैं चूलिकाके पांच भेद जानने। ए चंद्रप्रज्ञप्ति आदि देकरि भेद कहे तिनिके पदनिका प्रमाण आगे कहिए है सो हे भव्य तू जानि। ३६१। ३६२॥

गतनम मनगं गोरम मरगत जवगात नोननं जजलक्खा।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादी॥ ३६३॥
याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो॥ ३६४॥

गतनम मनगं गोरम मरगत जवगातनोननं जजलक्षाणि।
मननन धममननोननामं रनधजधरानन जलादिषु॥ ३६३॥
याजकनामेनाननमेतानि पदानि भवंति परिकर्मणि।
कानवधिवाचनाननमेषः पुनः चूलिकायोगः॥ ३६४॥

जी० प्र०—अक्षरसंज्ञया चंद्रप्रज्ञप्तौ गतनमनोननं-षट्त्रिंशल्लक्षपंचसहस्राणि पदानि ३६०५००० । सूर्यप्रज्ञप्तौ मनगंनोननं-पंचलक्षत्रिसहस्राणि पदानि ५०३००० । जंबूद्वीपप्रज्ञप्तौ गोरमनोननं त्रिलक्षपंचविंशतिसहस्राणि पदानि । द्वीपसागरप्रज्ञप्तौ मरगतनोननं द्विपंचाशल्लक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ५२३६००० । व्याख्याप्रज्ञप्तौ जवगातनोननं—चतुरशीतिलक्षषट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि ८४३६००० । सूत्रे जजलक्खा—अष्टाशीतिलक्षाणि पदानि ८८००००० । प्रथमानुयोगे मननन—पंचसहस्राणि पदानि ५००० । चतुर्दशपूर्वसमुच्चये धममननोननामं—पंचनवतिकोटिपंचाश-

लक्षपंचपदानि ९५५००००००५। जलादौ जलगतादिपंचचूलिकास्थानेषु प्रत्येकं रनधजधरानन-द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्रद्विशतानि पदानि। २०९८९२००। चंद्रप्रज्ञप्त्यादिपंचविधपरिकर्मयुतौ याजकनामेनाननं—एककोटयेकाशीतिलक्षपंचसहस्राणि पदानि १८१०५०००। जलगतादिपंचविधचूलिकायोगः पुनः कानवधिवाचनाननं—दशकोटयेकोनपंचाशल्लक्षपट्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि १०४९४६००० ॥ ३६३–३६४ ॥

म० प्र०—अक्षरसंज्ञया गतनमनोनन–पट्त्रिंशल्लक्षपंचसहस्राणि पदानि चन्द्रप्रज्ञप्तौ ३६०५०००। मनगनोनन पंचलक्षत्रिसहस्राणि पदानि सूर्यप्रज्ञप्तौ ५०३०००। गोरमनोनन त्रिलक्षपंचविंशतिसहस्राणि पदानि जंबूद्वीपप्रज्ञप्तौ ३२५०००। मरगतनोननं द्विपंचाशल्लक्षपट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि द्वीपसागरप्रज्ञप्तौ ५२३६०००। जवगातनोननं चतुरशीतिलक्षपट्त्रिंशत्सहस्राणि पदानि व्याख्याप्रज्ञप्तौ ८४३६०००। जजलक्खा अष्टाशीतिलक्षाः पदानि सूत्रं ८८०००००। मननननपचसहस्राणि पदानि प्रथमानुयोगे ५०००। धममननोनननामं पंचनवतिकोटिपंचाशल्लक्षाणि पंचोत्तराणि पदानि पूर्वगते चतुर्दशपूर्वसमुच्चये ९५५००००००५। रनधजधरानन द्विकोटिनवलक्षनवाशीतिसहस्राणि द्विशतोत्तरपदानि प्रत्येकं जलगतादिषु पंचसु चूलिकासु समानसंख्यानि-जलगता २०९८९२००। स्थलगता २०९८९२००। मायागता २०९८९२००। आकाशगता २०९८९२००। रूपगता २०९८९२००। याजकनामेनाननं एककोटयेकाशीतिलक्षपंचसहस्राणि पदानि चंद्रप्रज्ञप्त्यादिपंचविधेऽपि परिकर्मणि मिलितान्येतावंति भवति १८१०५०००। कानवधिवाचनाननं दशकोटयेकोनपंचाशल्लक्षपट्चत्वारिंशत्सहस्राणि पदानि जलगतादीनां पंचानां चूलिकानां एवं योगः पदसंख्यासयोग १०,४९,४६००० ॥ ३६३–३६४ ॥

स० चं०—इहां 'कटपयपुरस्थवर्णैः' इत्यादि सूत्रोक्त विधानतैं अक्षर संज्ञाकरि अंक कहैं हैं सो अंकनिकरि जो प्रमाण भया सोई इहां कहिए है एक एक अक्षरतैं एक एक अंक जानि लेना सो 'गतनमनोननं' कहिये छत्तीस लाख पांच हजार ३६०५००० पद चंद्रप्रज्ञप्ति विषैं हैं। बहुरि 'मनगनोननं' कहिये पांच लाख तीन हजार ५०३००० पद सूर्यप्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि गोरमनोननं कहिये तीनलाख पचीस हजार ३२५००० पद जंबूद्वीप प्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि मरगतनोननं कहिये बावन लाख छत्तीस हजार ५२३६००० पद द्वीपसागर प्रज्ञप्तिविषैं हैं। बहुरि 'जवगातनोननं' कहिये चौरासीलाख छत्तीस हजार ८४३६००० पद व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगके हैं। बहुरि 'जजलक्खा' कहिये अठ्यासी लाख ८८००००० पद सूत्र नामा भेदविषैं हैं बहुरि मननन कहिये पांच हजार ५००० पद प्रथमानुयोगविषैं हैं। बहुरि धममननोनननामं कहिये पिच्याणवै कोड़ि पचासलाख पांच ९५५००००००५ पद पूर्वगतविषैं हैं। चौदह पूर्वनिके इतने पद हैं। बहुरि रनधजधरानन कहिये दोय कोडि नवलाख निवासी हजार दोयसै २०९८९२०० पद जलगत आदि चूलिका तिनविषैं एक एकके इतने इतने

पद जानने। जलगता पद २०९८९२०० स्थलगता २०९८९२०० मायागता २०९८९२०० आकाशगता २०९८९२०० रूपगता २०९८९२०० ऐसैं पद जानने । बहुरि 'याजकनामेनोननं' कहिये एक कोडि इक्यासी लाख पांच हजार १८१०५००० पद चंद्रप्रज्ञप्ति आदि पांच प्रकार परिकर्मका जोड़ दीये हो हैं। बहुरि 'कानवधि वाचनाननं' कहिये दश कोडि गुणचासलाख छियालीस हजार '१०४९४६०००' पद पांचप्रकार चूलिकाका जोड़ दीयें हो हैं। इहां गकारतैं तीनका अंक नकारतैं छहका अंक मकारतैं पांचका अंक रकारतैं दोयका अंक नकारतैं विंदी इत्यादि अक्षर संज्ञाकरि अंक कहे हैं। ककारतैं लेय गकार तीसरा अक्षर है तातैं तीनका अंक कह्या। बहुरि टकारतैं तकार छठा अक्षर है तातैं छहका अंक कह्या पकारतैं मकार पांचवां अक्षर है तातैं पांचका अंक कह्या यकारतैं रकार दूसरा अक्षर है तातैं दोयका अंक कह्या है नकारतैं विंदी कही है। इत्यादि अक्षर संज्ञातैं अंक जानने ॥ ३६३ ॥ ३६४ ॥

पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं।
णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं ॥ ३६५॥
छस्सय पण्णासाइं चउसयपण्णास छसयपणुवीसा।
विहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे ॥३६६॥

पंचाशदष्टचत्वारिंशत् पंचत्रिंशत् त्रिंशत् पंचाशत् पंचाशत् त्रयोदशशतं।
नवतिः द्वाचत्वारिंशत् पूर्वे पंचपंचाशत् त्रयोदशशतानि ॥ ३६५ ॥
षट्छतपंचाशानि चतुःशतपंचाशत् षट्छतपंचविंशतिः।
द्वाभ्यां लक्षाभ्यां तु गुणितानि पंचमं रूपोनं षट्युतानि षष्ठे ॥ ३६६ ॥

जी० प्र०—उत्पादादिचतुर्दशपूर्वेषु यथाक्रमं पदसंख्योच्यते--वस्तुनः-द्रव्यस्य उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकमुत्पादपूर्वं तच्च जीवादिद्रव्याणां नानानयविषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नवधर्मा भवंति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवविधं। उत्पन्नं उत्पद्यमानं उत्पत्स्यमानं। नष्टं नश्यत् नंक्ष्यत्। स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति नवप्रकारा भवंति। उत्पन्नादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं करोति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदानि एकाकोटिरित्यर्थः १०००००००। अग्रस्य द्वादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं ज्ञानं अग्रायणं। तत्प्रयोजनमग्रायणीयं, द्वितीयं पूर्वं। तच्च सप्तशतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन् वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणिताष्टाचत्वारिंशत्पदानि षण्णवतिलक्षाणि इत्यर्थः। ९६०००००। वीर्यस्य-जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य अनुप्रवादः-अनुवर्णनं अस्मिन्निति वीर्यानुप्रवादं नाम तृतीयं पूर्वं। तच्च आत्मवीर्यपरवीर्योभयवीर्यक्षेत्रवीर्यकालवीर्यभाववीर्यतपोवीर्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचत्रिंशत्पदानि सप्ततिलक्षाणीत्यर्थः ७००००००। अस्ति नास्तीत्यादिधर्माणां प्रवादः-प्ररूपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं पूर्वं। तच्च जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य। स्यादस्ति नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य। स्यादवक्तव्यं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा वक्तुमशक्यत्वात्। स्यादस्ति चावक्तव्यं च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यान्नास्ति चावक्तव्यं च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य। इत्येकानेकनित्यानित्याद्यनंतधर्माणां विधिनिषेधावक्तव्यभंगानां प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजानां त्रित्र्येकसंख्यानां मेलनं सप्तभंगी प्रश्नवशादेकस्मिन्नेव वस्तुनि अविरोधेन संभवंती नानानयमुख्यगौणभावेन प्ररूपयति। तत्र द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदानि षष्टिर्लक्षाणि इत्यर्थः। ६००००००। ज्ञानानां प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवादं पंचमं पूर्वं, तच्च मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पंच सम्यग्ज्ञानानि, कुमतिकुश्रुतविभंगाख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसंख्याविषयफलानि आश्रित्य तेषां प्रामाण्याप्रामाण्यविभागं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदानि किंतु पंचमरूऊणमिति कथनादेकरूपोना कोटिरित्यर्थः ९९९९९९९। सत्यस्य प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति सत्यप्रवादं षष्ठं पूर्वं, तच्च वाग्गुप्तिं वाक्संस्कारकारणानि वाक्प्रयोगं द्वादश भाषाः वक्तृभेदान् बहुविधं मृषाभिधानं दशविधं सत्यं च प्ररूपयति। तद्यथा-असत्यनिवृत्तिर्मौनं वा वाग्गुप्तिः। उरःकंठशिरोजिह्वामूलदंतनासिकाताल्वोष्ठाख्यानि अष्टौ स्थानानि। स्पृष्टतेषत्स्पृष्टताविवृततेषद्विवृततासंवृततारूपाः पंच प्रयत्नाश्च वाक्संस्कारकारणानि। शिष्टदुष्टरूपः प्रयोगः वाक्प्रयोगः तल्लक्षणशास्त्रं संस्कृतादिव्याकरणं वा। इदमनेन कृतमित्यनिष्टकथनरूपमभ्याख्यानं। परस्परविरोधकारणं कलहवचनं। परदोषसूचनं पैशून्यवचनं। धर्मार्थकाममोक्षासंबद्धवचनरूपः अबद्धप्रलापः। इंद्रियविषयेषु रत्युत्पादिका वाक् रतिवाक्। तेषु अरत्यादिका वाक् अरतिवाक्। परिग्रहार्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतुर्वाक् उपधिवाक्। व्यवहारवंचनाहेतुर्वाक् निकृतिवाक्। तपोज्ञानादिषु अविनयहेतुर्वाक् अप्रणतिवाक्। स्तेयहेतुर्वाग् मोषवाक्। सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवाक्। मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवाक् एवं द्वादशभाषाः। द्वींद्रियादिपंचेंद्रियपर्यंता जीवा व्यक्ताव्यक्तवक्तृत्वपर्यायाः वक्तारः। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितं बहुविधमसत्यवचनं मृषावाक्।

जनपदसत्यादिदशप्रकारसत्यं तत्प्रागुक्तलक्षणमिति। तत्र सत्यप्रवादे द्विलक्षगुणितपंचाशत्पदानि षड्भिरधिकानि। छज्जुदा छट्टे इति वचनात् षडुत्तरकोटिरित्यर्थः। १००००००६। आत्मनः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति आत्मप्रवाद सप्तमं पूर्वं। तच्च आत्मनः 'जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो वेदी विराहू सयंभू य सरीरी तह माणवो सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो असंकुडो य खेत्तराहू अंतरप्पा तहेव य' इत्यादिस्वरूपं वर्णयति। तद्यथा-जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणांश्च धारयति। जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवः। व्यवहारनयेन शुभाशुभं कर्म निश्चयनयेन चित्पर्यायांश्च करोतीति कर्ता। व्यवहारनयेन सत्यमसत्यं च वक्तीति वक्ता निश्चयेनावक्ता। नयद्वयोक्तप्राणाः संति अस्येति प्राणी। व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूपं च भुंक्ते अनुभवतीति भोक्ता। व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गलः निश्चयेनापुद्गलः। नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्वं वेत्ति जानातीति वेदः। व्यवहारेण स्वोपात्तदेहं समुद्घाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णुः। यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद्भवे भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमति इति स्वयंभूः। व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेनाशरीरः। व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानवः, उपलक्षणान्नारकः तिर्यङ् देवश्च। निश्चयेन मनौ ज्ञाने भवः मानवः। व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता। निश्चयेनासक्ता। व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारे नानायोनिषु जायत इति जंतुः संसारी इत्यर्थः। निश्चयेनाजंतुः। व्यवहारेण मानः अहंकारः अस्यास्तीति मानी, निश्चयेनामानी। व्यवहारेण माया वंचना अस्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी। व्यवहारेण योगः कायवाङ्मनःकर्मास्यास्तीति योगी, निश्चयेनायोगी। व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटति संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुटः, समुद्घाते सर्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः। निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावादनुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः। नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः। व्यवहारेण अष्टकर्माभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वात्, निश्चयेन चैतन्याभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वाच्च अंतरात्मा। इति—च शब्दौ उक्तानुक्तसमुच्चयार्थौ। ततः कारणाद् व्यवहाराश्रयेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्यादिसंबंधेन मूर्तः निश्चयनयाश्रयेणामूर्तः इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयंते। तस्मिन्नात्मप्रवादे द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः २६०००००००। कर्मणः प्रवादः प्ररूपणमस्मिन्निति कर्मप्रवादमष्टमं पूर्वं तच्च मूलोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबंधोदयोदीरणसत्त्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्मस्वरूपं समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितनवतिपदानि एककोट्यशीतिलक्षाणीत्यर्थः १८००००००। प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यानं नवमं पूर्वं। तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसंहननबलाद्यनुसारेण परिमितकालं अपरिमितकालं वा प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृत्तिं उपवासविधिं तद्भावनांगं पंचसमितित्रिगुप्त्यादिकं च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदानि चतुरशीतिलक्षाणीत्यर्थः। ८४ ल.। विद्यानां अनुवादः अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वं, तच्च सप्तशतानि अंगुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्याः रोहिण्यादिपंचशतमहाविद्याः तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमंत्रतंत्रपूजाविधानानि सिद्धविद्यानां फलविशेषान् अष्टमहानिमित्तानि, (तानि कानि?) अंतरीक्षभौमांगस्वरस्वप्नलक्षणव्यंजनच्छिन्ननामानि च वर्णयति। तत्र द्विलक्षगुणितपंचपंचाश-

त्पदानि एककोटिदशलक्षाणीत्यर्थः। ११० ल. ।कल्याणानां वादः प्ररूपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेकादशं पूर्वं, तच्च तीर्थकरचक्रधरबलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवादीनां गर्भावतरणकल्याणादिमहोत्सवान् तत्कारणतीर्थकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावनातपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चंद्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतपदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः २६ को०।प्राणानां आवादः प्ररूपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वं, तच्च कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्वेदं भूतिकर्मजांगुलिकप्रक्रमं इलापिंगलासुषुम्नादिबहुप्रकारप्राणापानविभागं दशप्राणानां उपकारकापकारकद्रव्याणि गत्याद्यनुसारेण वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदुत्तरषट्छतानि पदानि त्रयोदशकोट्य इत्यर्थः १३ को. । क्रियादिभिः-नृत्यादिभिः, विशालं विस्तीर्णं शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशं पूर्वं । तच्च संगीतशास्त्र छंदोलंकारादिद्वासप्ततिकलाः चतुःषष्टिस्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीतिगर्भाधानादिकाः अष्टोत्तरशतं सम्यग्दर्शनादिकाः पंचविंशतिं देववंदनादिकाः नित्यनैमित्तिकाः क्रियाश्च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदधिकचतुःशतपदानि नवकोट्य इत्यर्थः। ९ को.। त्रिलोकानां विंदवः अवयवाः सारं च वर्ण्यते अस्मिन्निति त्रिलोकबिंदुसारं चतुर्दशं पूर्वं तच्च त्रिलोकस्वरूपं षट्त्रिंशत्परिकर्माणि अष्टौ व्यवहारान् चत्वारि वीजानि मोक्षस्वरूपं तद्गमनकारणक्रियाः मोक्षसुखस्वरूपं च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचविंशत्यधिकषट्छतानि पदानि द्वादशकोटिपंचाशल्लक्षाणीत्यर्थः १२ को. ५० ल ॥ ३६५-३६६ ॥

म० प्र०—पूर्वे उत्पादपूर्वादौ चतुर्दशविधे प्रत्येकं यथाक्रम पदसंख्या इयमुच्यते तद्यथा—वस्तुनः उत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकं उत्पादपूर्वं तत् जीवादिद्रव्याणां नानानयविषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नव धर्मा भवंति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवधा उत्पन्नं,उत्पद्यमानं,उत्पत्स्यमानं, नष्टं, नश्यत्, नक्ष्यत्, स्थितं, तिष्ठत्, स्थास्यदिति नवाना तद्धर्माणामुत्पन्नत्वादीना प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं करोति । तत्र द्वाभ्या लक्षाभ्या गुणिता पचाशत् एककोटिपदानि भवति १०००००००। अग्रस्य द्वादशागेषु प्रधानभूतस्य वस्तुनः अयनं—ज्ञानं, अग्रायण तत्प्रयोजनं अग्रायणीय द्वितीयं पूर्वं । तत्सप्तशतसुनयदुर्णयपचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन्वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणिताष्टाचत्वारिंशत्पदानि षण्णवतिलक्षाणीत्यर्थः ९६००० ० । वीर्यस्य जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्य, अनुप्रवादः—अनुवर्णनमस्मिन्निति वीर्यानुवादं तृतीयपूर्वं । तत् आत्मवीर्यं परवीर्यं उभयवीर्यं क्षेत्रवीर्यं कालवीर्यं भावतीर्थं तपोवीर्यमित्यादीनि समस्तगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपचत्रिंशत्पदानि सप्ततिलक्षाणीत्यर्थः । ७०००००० । अस्ति नास्तीत्यादिधर्माणा प्रवादः-प्ररूपणं, अस्मिन्नित्यास्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं पूर्वं । तत् जीवादिवस्तु स्यादस्ति स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यान्नास्ति परद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य, स्यादस्ति नास्ति च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं संयुक्तमाश्रित्य, स्यादवक्तव्य युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयमाश्रित्य तथा वक्तुमशक्यत्वात्, स्यादस्ति चावक्तव्य च स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वय च संयुक्तमाश्रित्य, स्यान्नास्तिचावक्तव्यं च परद्रव्यक्षेत्रकालभावान् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य । स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च क्रमेण स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावद्वयं च संयुक्तमाश्रित्य । एवमेकानेकनित्यानित्याद्यनतधर्माणा विधिनिषेधावक्तव्यभंगाना प्रत्येकद्विसंयोगत्रिसंयोगजानां त्र्येकसंख्याना मेलनं सप्तभंगी प्रश्नवशादेकस्मिन्नेव वस्तुनि अविरोधेन संभवती नानानयमुख्यगौणभावेन प्ररूपयति । तत्र द्विलक्षगुणितत्रिंशत्पदानि षष्टिलक्षाणीत्यर्थः ६०००००० । ज्ञा-

नानां प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति ज्ञानप्रवादं पंचमं पूर्वं । तत् मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि पंचज्ञानानि, कुमतिकुश्रुतिविभंगाख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरूपसंख्याविषयफलान्याश्रित्य तेषां प्रामाण्याप्रामाण्यविभागं च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपचाशद्रूपोनपदानि रूपोनकोटिरित्यर्थः । ९९९९९९९ । पुंचमरूऊणेत्यनेन पंचमे पूर्वे द्विलक्षगुणितपचाशल्लक्षकोटिपदसंख्याया रूपोनत्ववचनात् । सत्यस्य प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति सत्यप्रवादं षष्ठ पूर्वं । तद्वाग्गुप्तिं वाक्संस्कारकारणानि वाक्प्रयोगं द्वादशभाषाः वक्तृभेदान् बहुविध मृषाभिधानं दशविध सत्य च प्ररूपयति तद्यथा—असत्यनिवृत्तिः—मौन वा वाग्गुप्तिः । उरःकंठशिरोजिह्वामूलदंतनासिकाताल्वोष्ठाख्यान्यष्टौ स्थानानि । स्पृष्टतेषत्स्पृष्टताविवृततेषद्विवृततासंवृततारूपाः पचप्रयत्नाश्च वाक्संस्कारकारणानि शिष्टदुष्टरूपो वाक्प्रयोगः । तल्लक्षणशास्त्रं संस्कृतादिव्याकरणं । इदमनेन कृतमित्यनिष्टकथनमभ्याख्यानं । परस्परविघातहेतुः कलहवाक् । पृष्ठतो दोषसूचनं पैशून्यवाक् । धर्मार्थकाममोक्षासंबद्धवाक् अबद्धप्रलापः । इंद्रियविषयेषु रत्युत्पादिका वाक् रतिवाक् । तेष्वरत्युत्पादिका वाक् अरतिवाक् । परिग्रहार्जनसंरक्षणाद्यासक्तिहेतुर्वाक् उपधिवाक् । व्यवहारे वंचनाहेतुर्वाक् निकृतिवाक् । तपोज्ञानादिकेष्वविनयहेतुर्वाक् अप्रणतिवाक् । स्तेयहेतुर्वाक् मोषवाक् । सन्मार्गोपदेशवाक् सम्यग्दर्शनवाक् । मिथ्यामार्गोपदेशवाक् मिथ्यादर्शनवाक् इति द्वादशभाषाः । द्वींद्रियादयः संज्ञिपंचेंद्रियपर्यंताः व्यक्तवक्तृत्वपर्यायाः वक्तारः । द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रितं बहुविध असत्यवचनं मृषाभिधान । जनपदसत्यादिदशप्रकारं सत्य प्राग्व्याख्यातं । तस्मिन् सत्यप्रवादे द्विलक्षगुणितपचाशत्पदानि षडुत्तरकोटिरित्यर्थः । १००० ०००६ । 'छज्जुदा छट्ठे' इत्यनेन षष्ठे पूर्वे द्विलक्षगुणितपचाशल्लक्षे कोटिप्रमितपदसंख्याया षट्सु तत्त्वकथनात् । आत्मनः प्रवादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति आत्मप्रवाद सप्तम पूर्वं । तत् आत्मनः—

"जीवो कत्ता य वेत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो वेदो विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो-सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो असंकुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य"

इत्यादिस्वरूपं वर्णयति । तद्यथा—जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरूपचित्प्राणान् धारयति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवः । व्यवहारनयेन शुभाशुभं कर्म निश्चयनयेन चित्पर्यायान् करोतीति कर्ता । व्यवहारेण सत्यमसत्य च वक्तीति वक्ता निश्चयेन अवक्ता । नयद्वयोक्तप्राणाः सत्यस्येति प्राणी । व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं निश्चयेन स्वस्वरूपं भुंक्ते—अनुभवतीति भोक्ता । व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति—गालयति चेति पुद्गलः निश्चयेनापुद्गलः । नयद्वयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्वं वेत्ति—जानाति, इति वेदः । व्यवहारेण स्वोपात्तदेह समुद्घाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन वेवेष्टीति—व्याप्नोतीति, विष्णुः । यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद्भवे भवे भवति परिणमति तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरूपेणैव भवति परिणमतीति स्वयंभू । व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी निश्चयेन अशरीरः । व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानवः उपलक्षणात् नारकः तिर्यङ् देवश्चेति । निश्चयेन मनौ-ज्ञाने भवः मानवः । व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता निश्चयेनासक्ता । व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारे नानायोनिषु जायत इति जंतुः संसारीत्यर्थः । निश्चयेन अजंतुः । व्यवहारेण मानः—अहंकारः, अस्यास्तीति मानी निश्चयेनामानी । व्यवहारेण माया-वंचना अस्यास्तीति मायी, निश्चयेनामायी । व्यवहारेण योगः-कायवाङ्मनस्कर्म, अस्यास्तीति योगी, निश्चयेन अयोगी । व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदालब्धपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटति-संकुचितप्रदेशो भवति इति संकुटः । समुद्घाते सर्वलोकं व्याप्नोतीत्यसंकुटः । निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावाद-

नुभयः किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थः । नयद्वयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरूपं च जानातीति क्षेत्रज्ञः । व्यवहारेण अष्टकर्माभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वात् निश्चयेन चैतन्याभ्यंतरवर्तिस्वभावत्वाच्च अंतरात्मा, अत्र चशब्दाः उक्तानुक्तसमुच्चयार्थाः, तेन व्यवहारेण कर्मनोकर्मरूपमूर्तद्रव्यानादिसंबंधवान्मूर्त. निश्चयेनामूर्त इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयंते तस्मिन्नात्मप्रवादे द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतानि पदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः । २६०००००० । कर्मणः प्रवादः प्ररूपण, अस्मिन्निति कर्मप्रवादमष्टम पूर्वं । तत् मूलोत्तरोत्तरोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबंधोदयोदीरणसत्त्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्मस्वरूपं समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितनवतिपदानि एककोट्यशीतिलक्षाणीत्यर्थः । १८०००००० । प्रत्याख्यायते—निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यान नवम पूर्वं तत् नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसहननबलाद्यनुसारेण परिमितकालं अपरिमितकालं वा प्रत्याख्यान सावद्यवस्तुनिवृत्तिं, उपवासविधिं तद्भावनागं पंचसमितित्रिगुप्त्यादिकं च वर्णयति, तत्र द्विलक्षगुणितद्वाचत्वारिंशत्पदानि चतुरशीतिलक्षाणीत्यर्थः ८४००००० । विद्यानां अनुवादः—अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वं । तत्सप्तशतान्यंगुष्ठप्रसेनाद्यल्पविद्याः पचशतानि रोहिण्यादिमहाविद्याः । तत्स्वरूपसामर्थ्यसाधनमंत्रतंत्रपूजाविधानानि सिद्धाना तासा फलविशेषान् अष्टौ महानिमित्तानि अंतरिक्ष—भौम—अंग—स्वर—स्वप्न—लक्षण—व्यजन—छिन्न—नामानि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचपंचाशत्पदानि एककोटिदशलक्षाणीत्यर्थः । ११०००००० । कल्याणाना वादः—प्ररूपणं, अस्मिन्निति कल्याणवादं—एकादशं पूर्वं । तत् तीर्थंकरचक्रधरबलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवाना गर्भावतरणादीनि कल्याणानि-महोत्सवान् तत्कारणतीर्थंकरत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावनातपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चंद्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितत्रयोदशशतानि पदानि षड्विंशतिकोट्य इत्यर्थः । २६०००००० । प्राणाना आवादः—प्ररूपण, अस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वं तत्कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्वेद, भूतिकर्मजांगुलिकप्रक्रमं इलापिंगलसुषुम्नादिबहुप्रकारप्राणापानविभाग दशप्राणानामुपकारकापकारकद्रव्याणि च गत्याद्यनुसारेण वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदुत्तरषट्शतानि पदानि त्रयोदशकोट्य इत्यर्थः १३००००००० । क्रियाभिः—नृत्यादिभिः, विशाल—विस्तीर्णं शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदश पूर्वं तत् संगीतशास्त्रछंदोऽलंकारादिद्वासप्तति कलाः, चतुःषष्टिं स्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीति, गर्भाधानादिकाःअष्टोत्तरशत, सम्यग्दर्शनादिकाः पंचविंशति देववंदनादिकाः नित्यनैमित्तिकक्रियाश्च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचाशदधिकचतुःशतानि पदानि नवकोट्य इत्यर्थः ९०००००००। त्रिलोकाना बिंदवः अवयवाः सारं च वर्ण्यते अस्मिन्निति त्रिलोकबिंदुसार चतुर्दश पूर्वं । तत् त्रिलोकस्वरूपं, षट्त्रिंशत्परिकर्माणि, अष्टौ व्यवहारान्, चत्वारि बीजानि, मोक्षस्वरूपं, तद्गमनकारणक्रियाः, मोक्षसुखं च वर्णयति । तत्र द्विलक्षगुणितपंचविंशत्यधिकषट्शतानि पदानि द्वादश कोट्यः पचाशल्लक्षाणि चेत्यर्थः १२५०००००० ॥ ३६५—३६६ ॥

स० च०—उत्पाद आदि चौदह पूर्वनिविषैं पदनिकी संख्या कहिये है तहां वस्तुका उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्म तिसका पूरक सो उत्पादनामा प्रथम पूर्व है इसविषैं जीवादि वस्तुनिका नानाप्रकार नयविवक्षाकरि क्रमवर्ती युगपत् अनेक धर्मकरि भये जे उत्पाद व्यय ध्रौव्य ते तीनों तीन काल अपेक्षा नव धर्म भये सो उन

धर्मरूप परिणया वस्तु सो भी नव प्रकार हो है। उपज्या, उपजै है, उपजैगा। नष्ट भया, नष्ट हो है नष्ट होयगा। स्थिर भया, स्थिर है, स्थिर होयगा। ऐसैं नवप्रकार द्रव्य भया इन एक एकका उत्पन्नपना आदि नव नव धर्म जानने। ऐसैं इक्यासी भेद लीयें द्रव्यका वर्णन है। याके दोय लाखतैं पंचासकौं गुणिये ऐसा एक कोडि १०००००० पद जानने। बहुरि अग्र कहिये द्वादशांगविषैं प्रधानभूत जो वस्तु ताका अयन कहिये ज्ञान सो ही है प्रयोजन जाका ऐसा अग्रायणीय नामा दूसरा पूर्व है। इसविषैं सातसै सुनय अर दुर्नय तिनिका अर सप्त तत्त्व नव पदार्थ षट्द्रव्य इत्यादिका वर्णन है। याके दोय लाखतैं अड़तालीसकौं गुणिये ऐसैं छिनवै लाख ९६००००० पद हैं। बहुरि वीर्य कहिये जीवादिक वस्तुकी शक्ति–समर्थता ताका है अनुवाद कहिये वर्णन जिसविषैं ऐसा वीर्यानुवाद नामा तीसरा पूर्व है। इसविषैं आत्माका वीर्य परका वीर्य दोऊका वीर्य क्षेत्रवीर्य कालवीर्य भाववीर्य तपोवीर्य इत्यादिक द्रव्यगुण पर्यायनिका शक्तिरूप वीर्य तिसका व्याख्यान है। याकौं दोयलाखतैं पैंतीसकौं गुणिये ऐसैं सत्तरिलाख ७०००००० पद हैं। बहुरि अस्ति नास्ति आदि जे धर्म तिनिका है प्रवाद कहिये प्ररूपण इसविषैं ऐसा अस्तिनास्ति प्रवाद नामा चौथा पूर्व है। इसविषैं जीवादि वस्तु अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि संयुक्त हैं तातैं स्यात् अस्ति है। बहुरि परके द्रव्य क्षेत्र काल भावविषैं यह नाहीं है तातैं स्यान्नास्ति है। बहुरि अनुक्रमतैं स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा स्यात् अस्ति नास्ति है। बहुरि युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा द्रव्य कहनेमैं न आवै तातैं स्यात् अवक्तव्य है। बहुरि स्वद्रव्य क्षेत्र काल भावकरि द्रव्य अस्तिरूप है बहुरि युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि कहनेमैं न आवै तातैं स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। बहुरि पर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि द्रव्य नास्तिरूप है बहुरि युगपत् स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि द्रव्य कहनेमैं न आवै तातैं स्यात्नास्तिअवक्तव्य है। बहुरि अनुक्रमतैं स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा द्रव्य अस्ति नास्ति रूप है अर युगपत् स्वपर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अवक्तव्य है तातैं स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य है ऐसैं जिस प्रकार अस्ति नास्ति अपेक्षा सप्तभेद कहे तैसैं एक अनेक धर्म अपेक्षा सप्त भंग हो हैं। अ-

भेद अपेक्षा स्यात् एक है। भेद अपेक्षा स्यात् अनेक है। क्रमतैं भेद अभेद अपेक्षा स्यात् एक अनेक है। युगपत् भेद अभेद अपेक्षा स्यात् अवक्तव्य है। अभेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् एक अवक्तव्य है भेद अपेक्षा वा युगपत् भेद अभेद अपेक्षा स्यात् अनेक अवक्तव्य है। क्रमतैं अभेद भेद अपेक्षा वा युगपत् अभेद भेद अपेक्षा स्यात् एक अनेक अवक्तव्य है। ऐसैं ही नित्य अनित्यनै आदि दे अनंत धर्मनिके सप्त भंग हैं। तहां प्रत्येक भंग तीन अस्ति १ नास्ति २ अवक्तव्य १ अर द्विसंयोगी भंग तीन अस्ति नास्ति, अस्ति अवक्तव्य, नास्ति अवक्तव्य, अर त्रिसंयोगी एक अस्ति नास्ति अवक्तव्य१ इनि सप्तभंगनिका समुदाय सो सप्तभंगी सो प्रश्नके वशतैं एक ही वस्तु विषैं अविरोधपनै संभवती नाना प्रकार नयनिकी मुख्यता गौणता करि प्ररूपण कीजिए है। इहां सर्वथा नियमरूप एकांतका अभाव लीए कथंचित् ऐसा है अर्थ जाका सो स्यात् शब्द जानना। इस अंगके दोय लाखतैं तीसकौं गुणिए सो साठि लाख ६०००००० पद हैं। बहुरि ज्ञाननिका है प्रवाद कहिए प्ररूपण जिसविषैं ऐसा ज्ञानप्रवाद नामां पांचवां पूर्व है। इसविषैं मति श्रुति अवधि मनःपर्यय केवल ए पांच सम्यग्ज्ञान अर कुमति कुश्रुति विभंग ए तीन कुज्ञान इनिका स्वरूप संख्या वा विषय वा फल इत्यादि अपेक्षा प्रमाण अप्रमाणता रूप भेद वर्णन कीजिए है याके दोय लाखतैं पचासकौं गुणैं एक कोटि होइ तिनमेंस्यों एक घटाइए ऐसैं एक घाटि कोडि ९९९९९९९ पद हैं। गाथाविषै 'पंचम रूऊण' ऐसा कह्या है तातैं पांचवां अंगमैं एक घटाया अन्य संख्या गाथा अनुसारि कहिए ही है। बहुरि सत्यका है प्रवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा सत्यप्रवाद नामा छठा पूर्व है। इसविषैं वचन गुप्ति बहुरि वचन संस्कारके कारण बहुरि वचनके प्रयोग बहुरि बारह प्रकार भाषा बहुरि बोलणेवाले जीवोंके भेद बहुरि बहुतप्रकार मृषा वचन इत्यादि वर्णन है। तहां असत्य न बोलना वा मौन धरना सो सत्य वचनगुप्ति कहिए। बहुरि वचन संस्कारके कारण दोय एक तो स्थान, एक प्रयत्न तहां जिनि स्थानकनितैं अक्षर बोलें जांहि ते स्थान आठ हैं। हृदय १ कंठ २ मस्तक ३ जिह्वाका मूल ४ दंत ५ नासिका ६ होठ ७ तालवा ८ जैसैं अकार कवर्ग हकार विसर्ग इनिका कंठ स्थान है ऐसैं अक्षरनिके स्थान जानने

बहुरि जिस प्रकार अक्षर कहे जांहि ते प्रयत्न पांच हैं। स्पृष्टता १ ईषत् स्पृष्टता २ विवृतता ३ ईषद्विवृतता ४ संवृतता ५। तहां अंगका अंगतैं स्पर्श भए अक्षर बोलिए सो स्पृष्टता। किछू थोरा स्पर्श भए बोलिए सो ईषतस्पृष्टता अंगकौं उघाडि बोलिए सो विवृतता किछू थोरा उघाड़ि बोलिए सो ईषद्विवृतता, अंगतैं अंगकौं ढांकि बोलिए सो संवृतता जैसैं पकारादिक होठसे होठका स्पर्श भएंही उच्चारण होंइ ऐसैं प्रयत्न जानने। बहुरि वचन प्रयोग दोय प्रकार शिष्टरूप भला वचन, दुष्टरूप बुरा वचन। बहुरि भाषा बारह प्रकार, तहां इसने ऐसा कीया है ऐसा अनिष्ट वचन कहना सो अभ्याख्यान कहिए १ बहुरि जातैं परस्पर विरोध होइ सो कलह वचन २ बहुरि परका दोष प्रकट करना सो पैशून्य वचन ३ बहुरि धर्म अर्थ काम मोक्षका संबंधरहित वचन सो असंबद्ध प्रलाप रूप वचन ४ बहुरि इंद्रिय विषयनिविषैं रतिका उपजावन हारा वचन सो रतिवचन ५ बहुरि विषयनिविषै अरतिका उपजावन हारा वचन सो अरतिवचन ६ बहुरि तहां परिग्रहका उपजाने राखनेकी आसक्तताका कारण वचन सो उपधिवचन ७ बहुरि व्यवहारविषै ठिगनेरूप वचन सो निकृति वचन ८ बहुरि तप ज्ञानादिक विषै अविनयका कारण वचन सो अप्रणतिवचन ९ बहुरि चोरीका कारणरूप वचन सो मोषवचन १० बहुरि भले मार्गका उपदेशरूप वचन सो सम्यग्दर्शन वचन ११ बहुरि मिथ्या मार्गका उपदेशरूप वचन सो मिथ्यादर्शन वचन १२ ऐसैं बारह भाषा हैं। बहुरि बेइंद्रिय आदि सैनी पंचेद्रिय पर्यंत वचन बोलने बाले वक्तानिके भेद हैं बहुरि द्रव्य क्षेत्र काल भावादिककरि मृषा जो असत्य वचन सो बहुत प्रकार है। बहुरि जनपदादि दश प्रकार सत्य वचन पूर्वै योग मार्गणा विषै कहि आए हैं ऐसा कथन इस पूर्वविषैं है। याके दोय लाखतैं पचासकौं गुणिए अर 'छज्जुदा छहं' इस वचनकरि छह मिलाइए ऐसे एक कोटि छह१०००००६ पद हैं। बहुरि आत्माका प्रवाद कहिए प्ररूपण है इसविषैं ऐसा आत्मप्रवाद नामा सातमा पूर्व है इसविषै—जीवो कत्ता य वेत्ता य पाणी भोत्ता य पुग्गलो वेदी विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो सत्ता जंतू य माणी य मायी जोगी य संकुडो असंकुडो य खेत्तण्हू अंतरप्पा तहेव य। इत्यादि आत्मस्वरूपका कथन है इसका अर्थ लिखिए है—

जीवति कहिए जीवै है व्यवहार करि दश प्राणनिकौं निश्चयकरि ज्ञान दर्शन सम्यक्त्वरूप चैतन्य प्राणनिकौं धारै है अर पूर्वैं जीया आगैं जीवेगा तातैं आत्माको जीव कहिए। बहुरि व्यवहार करि शुभाशुभ कर्मकौं अर निश्चयकरि चैतन्य प्राणनिकौं करै है तातैं कर्ता कहिए। बहुरि व्यवहारकरि सत्य असत्य वचन बोलै है तातैं वक्ता है निश्चय करि वक्ता नहीं है। बहुरि दोऊ नयनिकरि जे प्राण कहे ते याकैं पाइए है तातैं प्राणी कहिए। बहुरि व्यवहार करि शुभ अशुभ कर्मके फलकौं अर निश्चय करि निज स्वरूपकौं भोगवै है तातैं भोक्ता कहिए। बहुरि व्यवहार करि कर्म नोकर्मरूप पुद्गलनिकौं पूरै है अर गालै है तातैं पुद्गल कहिए निश्चय करि आत्मा पुद्गल है नाहीं। बहुरि दोऊ नयनिकरि लोकालोकसंबंधी त्रिकालवर्ती सर्व ज्ञेयनिकौं 'वेत्ति' कहिए जानै है तातैं वेदक कहिए। बहुरि व्यवहारकरि अपने देहकौं वा केवल समुद्घातकरि सर्व लोककौं अर निश्चयकरि ज्ञानतैं सर्व लोकालोककौं वेवेष्टि कहिए व्यापै है तातैं विष्णु कहिए। बहुरि यद्यपि व्यवहार करि कर्मके वशतैं संसारविषैं परिणवै है तथापि निश्चयकरि स्वयं आपही आपविषै ज्ञान दर्शन स्वरूप ही करि भवति कहिए परिणवै है तातैं स्वयंभू कहिए। बहुरि व्यवहारकरि औदारिक आदि का शरीर याकै है तातैं शरीरी कहिये, निश्चय करि शरीरी नाहीं है। वहुरि व्यवहारकरि मनुष्यादि पर्यायरूप परिणवै है तातैं मानव कहिए। उपलक्षणतैं नारकी वा तिर्यंच वा देव कहिए। निश्चयकरि मनु कहिए ज्ञान तीहि विषैं भवः कहिए सत्तारूप है तातैं मानव कहिए। बहुरि व्यवहारकरि कुंटुंब मित्रादि परिग्रहविषै सजति कहिये आसक्त होइ प्रवर्तै है तातैं सक्ता कहिए निश्चयकरि सक्ता नाहीं है। वहुरि व्यवहार करि संसारविषै नाना योनिविषै जायते कहिए उपजै है तातैं जंतु कहिये निश्चयकरि जंतु नाहीं है। वहुरि व्यवहारकरि मान कहिए अहंकार सो याकै है तातैं मानी कहिए निश्चयकरि मानी नाहीं। वहुरि व्यवहारकरि माया जो कपटाई सो याकै हैं तातैं मायावी कहिए, निश्चयकरि मायावी नाहीं। वहुरि व्यवहारकरि मन वचन काय क्रियारूप योग याकै है तातैं योगी कहिए निश्चयकरि योगी नाहीं है। बहुरि व्यवहारकरि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहना करि प्रदेशनिकौं संकोचै है तातैं संकुट है। बहुरि

केवलिसमुद्धातकरि सर्व लोकविषैं व्यापै है तातैं असंकुट है । निश्चयकरि प्रदेशनिका संकोच विस्ताररहित किंचित् ऊन चरमशरीर प्रमाण है तातैं संकुट असंकुट नाही है । बहुरि दोऊ नयकरि क्षेत्र जो लोकालोक ताहि जानाति कहिए जानै है तातैं क्षेत्रज्ञ कहिए बहुरि व्यवहार करि अष्ट कर्मनिके अभ्यंतर प्रवर्तै है अर निश्चयकरि चैतन्य स्वभावके अभ्यंतर प्रवर्तै है तातैं अंतरात्मा कहिए चकारतैं व्यवहारकरि कर्म नोकर्म रूप मूर्तीक द्रव्यके संबधतैं मूर्तीक है, निश्चयकरि अमूर्तीक है इत्यादिक आत्माके स्वभाव जानने । इनिका व्याख्यान इस पूर्व विषैं है। याके दोयलाखतैं तेरहसैकौं गुणिए ऐसे छब्बीस कोडि २६०००००० पद हैं। बहुरि कर्मका है प्रवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा कर्मप्रवाद नामा आठवां पूर्व है । बहुरि इसविषैं मूल प्रकृति उत्तर प्रकृति उत्त-रोत्तर प्रकृतिरूप भेद लीए बंध उदय उदीरणा सत्ता रूप अवस्थाकों धरैं ज्ञानावरणादिक कर्म तिनिके स्वरूपकौं वा समवधान ईर्यापथ तपस्या आधाकर्म इत्यादिक क्रियारूप- कर्मनिकौं प्ररूपिए है । याके दोय लाखतैं निवेकौं गुणिए ऐसे एक कोडि अस्सीलाख १८०००००० पद हैं । बहुरि प्रत्याख्यायते कहिए निषेधिए है पाप जाकरि ऐसा प्रत्याख्यान नामा नवमा पूर्व है इसविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा जीवनिका संहनन वा बल इत्यादिकके अनुसारकरि काल मर्यादा लीए वा यावज्जीव प्रत्याख्यान कहिए सकल पापसहित वस्तुका त्याग उपवासका विधि ताकी भावना पांच समिति तीन गुप्ति इत्यादि वर्णन कीजिए है । याके दोय लाखतैं वियालीसकौं गुणिए ऐसे चौरासी लाख ८४००००० पद हैं । बहुरि विद्यानिका है अनुवाद कहिए अनुक्रमतैं वर्णन इस विषैं ऐसा विद्यानुवाद नामा दशवां पूर्व है इसविषै सातसै अंगुष्ठ प्रसेन आदि अल्पविद्या अर पांचसै रोहिणी आदि महाविद्या तिनका स्वरूप समर्थता साधनभूत मंत्र यंत्र पूजा विधान, सिद्धभये पीछे उन विद्या-निका फल बहुरि अंतरिक्ष १ भौम २ अंग ३ स्वर ४ स्वप्न ५ लक्षण ६ व्यंजन ७ छिन्न ८ ए आठ महानिमित्त इत्यादि प्ररूपिए सो याके दोय लाखतैं पचावनकौं गुणिए ऐसे एक कोड दशलाख ११०००००० पद हैं । बहुरि कल्याणनिका है वाद कहिए प्ररूपण जाविषैं ऐसा कल्याणवाद नामा ग्यारह्वां पूर्व है इस विषैं तीर्थंकर चक्रवर्ति

वलभद्र नारायण प्रतिनारायण इनके गर्भ आदिक कल्याण कहिए महा उच्छव वहुरि तिनके कारणभूत षोडश भावना तपश्चरण आदिक क्रिया वहुरि चन्द्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्र इनिका गमनविशेष ग्रहण शकुन फल इत्यादि विशेष वर्णन कीजिए हैं। याके दोय लाखतैं तेरहसैंकौं गुणिए ऐसे छव्वीस कोडि २६०००००००० पद हैं। वहुरि प्राणनिका है आवाद कहिए प्ररूपण इसविषैं ऐसा प्राणावाद नामा वारह्वां पूर्व है इसविषैं चिकित्सा आदि आठ प्रकार वैद्यक अर भूतादि व्याधि दूर करनेकौं कारण मंत्रादिक वा विष दूरि करण हारा जो जांगुलिक ताका कर्म वा इला १ पिंगला २ सुष्मणा ३ इत्यादि स्वरोदय रूप बहुत प्रकार कारणरूप सासोस्वासका भेद बहुरि दश प्राणनिकौं उपकारी वा अनुपकारी वस्तु गत्यादिकके अनुसारि वर्णन कीजिए है सो जाके दोय लाखतैं छहसै पचासकौं गुणिए ऐसे तेरह कोडि १३०००००००० पद हैं। वहुरि क्रियाकारि विशाल कहिए विस्तीर्ण शोभा-यमान ऐसा क्रियाविशाल नामा तेरह्वां पूर्व है । इसविषैं संगीत शास्त्र छंद अलंकारादि शास्त्र वहत्तरि कला चौसठि स्त्रीका गुणशिल्प आदि चातुर्यता गर्भाधान आदि चौरासी क्रिया सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया देववंदना आदि पचीस क्रिया और नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिक प्ररूपिए हैं याके दोय लाखतैं च्यारिसै पचासकौं गुणिए ऐसे नव कोडि ९०००००००० पद हैं। वहुरि त्रिलोकनिका विंदु कहिए अवयव अर सार सो प्ररूपिए है याविषैं ऐसा त्रिलोकविंदुसार नामा चौदह्वां पूर्व है । इसविषैं तीन लोकका स्वरूप अर छव्वीस परिकर्म आठ व्यवहार च्यारि वीज इत्यादि गणित अर मोक्षका स्वरूप मोक्षका कारणभूत क्रिया मोक्षका सुख इत्यादि वर्णन कीजिए है याके दोय लाखतैं छह सै पचीसकौं गुणिए ऐसे वारह कोडि पचासलाख १२५०००००० पद हैं ऐसे चौदह पूर्वनिके पदनिकी सख्या हा है इहां दोय लाखका गुणकारका विधानकरि गाथाविषै संख्या कही थी तातैं टीकाविषैं भी तैसै ही कही है ॥ ३६६ ॥

सामाइय चउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं ।
वेणइयं किदियम्मं दसवेयालं च उत्तरज्झयणं ॥ ३६७ ॥
कप्पववहारकप्पाकप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं ।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं ॥ ३६८ ॥

सामायिकं चतुर्विंशस्तवं ततो वंदना प्रतिक्रमणं ।
वैनयिकं कृतिकर्म दशवैकालिकं च उत्तराध्ययनं ॥ ३६७ ॥
कल्पव्यवहार–कल्प्याकल्प्य–महाकल्प्यं च पुंडरीकं ।
महापुंडरीकं निषिद्धिका इति चतुर्दशांगवाह्यं ॥ ३६८ ॥

जी०प्र०—सामायिकं चतुर्विंशतिस्तवः ततो वंदना प्रतिक्रमणं वैनयिकं कृतिकर्म दशवैकालिकं उत्तराध्ययनं कल्प्यव्यवहारं कल्प्याकल्प्यं महाकल्प्यं पुंडरीकं महापुंडरीकं निषिद्धिका च इत्यंगवाह्यश्रुतं चतुर्दशविधं भवति, तत्र समं एकत्वेन आत्मनि आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेति आत्मविषयोपयोग इत्यर्थः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवात् । अथवा सं समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः स प्रयोजनमस्येति सामायिकं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा सामायिकमित्यर्थः । तच्च नामस्थापनाद्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्षड्विधं । तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकमित्यभिधानं वा नामसामायिकं । मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारासु काष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्तिः । इदं सामायिकमिति स्थाप्यमानं यत् किंचिद्वस्तु वा स्थापनासामायिकं । इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञापकः तच्छरीरादिर्वा द्रव्यसामायिकं । ग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु रागद्वेषनिवृत्तिः क्षेत्रसामायिकं । वसंतादिऋतुषु शुक्लकृष्णपक्षयोर्दिनवारनक्षत्रादिषु च इष्टानिष्टेषु कालविशेषेषु रागद्वेषनिवृत्तिः कालसामायिकं । भावस्य जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रोपयोगयुक्तज्ञापकः तत्पर्यायपरिणतसामायिकं वा भावसामायिकं । तत्तत्कालसंबंधिनां चतुर्विंशतितीर्थकराणां नामस्थापनाद्रव्यभावानाश्रित्य पंचमहाकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्य-

परमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्मोपदेशनादितीर्थंकरमहिमस्तुतिः चतुर्विंशतिस्तवः तस्य प्रतिपादकं शास्त्रं वा चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते । तस्मात्परं एकतीर्थंकरालंबना चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिः वंदना तत्प्रतिपादकं शास्त्रं वा वंदना इत्युच्यते । प्रतिक्रम्यते प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमणं तच्च दैवसिकरात्रिकपाक्षिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकैर्यापथिकौत्तमार्थिकभेदात्सप्तविधं, भरतादिक्षेत्रं दुःषमादिकालं षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदांश्च आश्रित्य तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि प्रतिक्रमणं । विनयः प्रयोजनमस्येति वैनयिकं तच्च ज्ञानदर्शनचारित्र-तपउपचारविषयं पंचविधविनयविधानं कथयति । कृतेः क्रियायाः कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म तच्च अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादि-नवदेवतावंदनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतुःशिरोद्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति । विशिष्टाः काला विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि दश वैकालिकानि वर्ण्यंतेऽस्मिन्निति दशवैकालिकं तच्च मुनिजनानां आचरणगोचरविधिं पिंडशुद्धिलक्षणं च वर्णयति । उत्तराणि अधीयंते पठ्यंते अस्मिन्निति उत्तराध्ययनं तच्च चतुर्विधोपसर्गाणां द्वाविंशतिपरीषहाणां च सहनविधानं तत्फलं एवं प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति। कल्प्यं योग्यं व्यवह्रियते अनुष्ठीयतेऽस्मिन्ननेनेति वा कल्प्यव्यवहारः, स च साधूनां योग्यानुष्ठानविधानं अयोग्यसेवायां प्रायश्चित्तं च वर्णयति । कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्यं, तद्वर्ण्यते अस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यं । तच्च द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य मुनीनामिदं कल्प्यं योग्यं इदमकल्प्यं अयोग्यमिति विभागं वर्णयति । महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं शास्त्रं तच्च जिनकल्पसाधूनां उत्कृष्टसंहननादि-विशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्तिनां योग्यं त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पानां दीक्षाशिक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधना-विशेषं च वर्णयति।पुंडरीकं नाम शास्त्रं भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिविमानेषु उत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्जरासम्यक्त्वसंयमादिविधानं तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेषं च वर्णयति । महच्च तत्पुंडरीकं तत्महापुंडरीकं शास्त्रं तच्च महर्द्धिकेषु इंद्रप्रतींद्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरणं वर्णयति । निषेधनं प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञायां कप्रत्यये निषिद्धिका प्रायश्चित्तशास्त्रमित्यर्थः, तच्च प्रमाददोषविशुद्ध्यर्थं बहुप्रकारं प्रायश्चित्तं वर्णयति निसीतिका इति क्वचित्पाठो दृश्यते । एवं चतुर्दशविधं अंगबाह्यश्रुतं परिभावनीयं ॥ ३६७–३६८ ॥ अथ शास्त्रकारः श्रुतज्ञानमाहात्म्यं वर्णयति—

मं० प्र०—अंगबाह्यस्य प्रकीर्णकनाम्नो द्रव्यश्रुतस्य सामायिकादयश्चतुर्दशभेदाः व्याख्यायंते तद्यथा—स–एकत्वेन आत्मनि आयः–आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयमहं ज्ञाता द्रष्टा चेत्यात्मविषयोपयोग इत्यर्थः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकत्वसंभवात् । अथवा समे रागद्वेषाभ्यामनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः–उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः, स प्रयोजनमस्येति सामायिकं–नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि सामायिकं। तत् नाम–स्थापना–द्रव्य–क्षेत्र–काल–भावभेदात् षड्विधं सामायिकं प्रतिपादयति । तत्र इष्टानिष्टनामसु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकमित्यभिधानं वा नाम-सामायिकं । मनोज्ञामनोज्ञासु स्त्रीपुरुषाद्याकारस्थापनासु काष्ठलेप्यचित्रादिप्रतिमासु रागद्वेषनिवृत्तिः इदं सामायिकमिति स्थाप्यमानं यत्किंचिद्वस्तु वा स्थापना-सामायिकं । इष्टानिष्टेषु चेतनाचेतनद्रव्येषु रागद्वेषनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रानुपयुक्तज्ञायकः तच्छरीरादि वा द्रव्यसामायिकं । ग्रामनगरवनादिक्षेत्रेषु इष्टानिष्टेषु

रागद्वेषनिवृत्तिः क्षेत्रसामायिकं । वसंतादिषु ऋतुषु शुक्लकृष्णयोः पक्षयोः दिनवारनक्षत्रादिषु च इष्टानिष्टेषु कालविशेषेषु रागद्वेषनिवृत्ति. कालसामायिकं । भावस्य—जीवादितत्त्वविषयोपयोगरूपस्य पर्यायस्य मिथ्यादर्शनकषायादिसंक्लेशनिवृत्तिः सामायिकशास्त्रोपयुक्तज्ञायकः तत्पर्यायपरिणत सामायिक वा भावसामायिकं । तत्तत्कालसंबंधिना चतुर्विंशतेस्तीर्थकराणा नामस्थापनाद्रव्यभावानाश्रित्य पंचमहाकल्याणचतुस्त्रिंशदातिशयाष्टमहाप्रातिहार्यपरमौदारिकदिव्यदेहसमवसरणसभाधर्मोपदेशनादितीर्थकरत्वमहिमस्तुतिश्चतुर्विंशतिस्तवः तत्प्रतिपादक शास्त्रमपि चतुर्विंशतिस्तव इत्युच्यते । ततः—तस्मात्पर, एकतीर्थकरालबना चैत्यचैत्यालयादिस्तुतिः वदना तत्प्रतिपादकं शास्त्रमपि वदनेत्युच्यते । प्रतिक्रम्यते—प्रमादकृतदैवसिकादिदोषो निराक्रियतेऽनेनेति प्रतिक्रमणं तच्च दैवसिक—रात्रिक—पाक्षिक—चातुर्मासिक - सावत्सरिक—ऐर्यापथिकौत्तमार्थभेदात् सप्तविधं भरतादिक्षेत्रं दुष्षमादिकाल षट्संहननसमन्वितस्थिरास्थिरादिपुरुषभेदाश्चाश्रित्य । तत्प्रतिपादक शास्त्रमपि प्रतिक्रमण । विनयः प्रयोजनमस्येति वैनयिकं तत् ज्ञानदर्शनचारित्रतपउपचारविषयं पचविधं विनयविधानं प्ररूपयति । कृतेः—क्रियायाः कर्म—विधानं अस्मिन्वर्ण्यत इति कृतिकर्म तत् अर्हत्सिद्धाचार्यबहुश्रुतसाध्वादीना नवदेवताना वदनानिमित्तं आत्माधीनता—प्रादक्षिण्यत्रिवार—त्र्यवनति - चतुःशिरोद्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधान वर्णयति । विशिष्टाः काला. विकालास्तेषु भवानि वैकालिकानि दशवैकालिकानि वर्ण्यंते अस्मिन्निति दशवैकालिक तत्साधूनामाचारगोचरविधिं पिंडशुद्धिलक्षणं च वर्णयति । उत्तराण्यधीयंते—पठ्यंते अस्मिन्नित्युत्तराध्ययन तत् चतुर्विधोपसर्गाणा द्वाविंशतिपरीषहाणा च सहनविधानं तत्फल एव प्रश्ने एवमुत्तरमित्युत्तरविधानं च वर्णयति । कल्प्य—योग्य, व्यवह्रियते—अनुष्ठीयते अस्मिन्ननेनेति वा कल्प्यव्यवहार' शास्त्रं तत् ऋषीणा योग्यानुष्ठानविधानं अयोग्यसेवाया प्रायश्चित्तं च वर्णयति । कल्प्यं चाकल्प्यं च कल्प्याकल्प्य वर्ण्यते अस्मिन्निति कल्प्याकल्प्यं तत् द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य साधूनामिदं कल्प्यं—योग्य, इदमकल्प्यं—अयोग्यमिति विभागं वर्णयति । महतां कल्प्यमस्मिन्निति महाकल्प्यं तत् महासाधूना जिनकल्पानां, उत्कृष्टसहननादिविशिष्टद्रव्यक्षेत्रकालभाववर्तिना योग्यं त्रिकालयोगाद्यनुष्ठानं स्थविरकल्पाना शिक्षादीक्षागणपोषणात्मसंस्कारसल्लेखनोत्तमार्थस्थानगतोत्कृष्टाराधनाविशेष च वर्णयति । पुंडरीकं नामशास्त्रं भावनव्यंतरज्योतिष्ककल्पवासिविमानेषु उत्पत्तिकारणदानपूजातपश्चरणाकामनिर्जरासम्यक्त्वसंयमादिविधानं तत्तदुपपादस्थानवैभवविशेष च वर्णयति, महच्च तत् पुंडरीक च तत् महापुंडरीक तत् महर्धिकेषु इंद्रप्रतींद्रादिषु उत्पत्तिकारणतपोविशेषाद्याचरण वर्णयति । निषेधनं—प्रमाददोषनिराकरणं निषिद्धिः संज्ञाया कप्रत्यये निषिद्धिका प्रायश्चित्तशास्त्रं तत् प्रमाददोषविशुद्ध्यर्थं बहुप्रकार प्रायश्चित्तं वर्णयति । निसीतिकेति नामांतर केषाचित्पाठे दृश्यते । इति एवं अंगबाह्यश्रुतचतुर्दशविधं ज्ञातव्यं । चशब्दाः समुच्चयार्थाः । अथ शास्त्रकारः श्रुतज्ञानस्य माहात्म्यं प्ररूपयति॥३६७।३६८॥

स० चं०—बहुरि प्रकीर्णक नामा अंगबाह्य द्रव्यश्रुत सो चौदह प्रकार है। सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ वैनयिक ५ कृतिकर्म ६ दशवैकालिक ७ उत्तराध्ययन ८ कल्प्यव्यवहार ९ कल्प्याकल्प्य १० महाकल्प्य ११ पुंडरीक १२ महापुंडरीक १३ निषिद्धिका १४। तहां सं कहिए एकत्वपनैकरि आय कहिए आगमन पर द्रव्यनितैं निवृत्ति होइ उपयोगकी आत्माविषैं प्रवृत्ति 'यहु मैं ज्ञाता द्रष्टा हौं' ऐसैं आत्माविषैं उपयोग सो सा-

मायिक कहिए जातैं एकही आत्मा सो जाननें योग्य है तातैं ज्ञेय हैं अर जानने हारा है तातैं ज्ञायक है तातैं आपकौं ज्ञाता द्रष्टा अनुभवै है अथवा सम कहिए राग द्वेषरहित मध्यस्थ आत्मा तिस विषै आयः कहिए उपयोगकी प्रवृत्ति सो समाय कहिए, समाय है प्रयोजन जाका सो सामायिक कहिए। नित्य नैमित्तिक क्रिया विशेष तिस सामायिकका प्रतिपादक शास्त्र सो भी सामायिक कहिए सो नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेद करि सामायिक छह प्रकार है। तहां इष्ट अनिष्ट नामविषैं राग द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तुका सामायिक ऐसा नाम धरना सो नाम सामायिक है। बहुरि मनोहर वा अमनोहर स्त्री पुरुषादिकका आकार लीए काठ लेप चित्रामादि रूप स्थापना तिन विषैं राग द्वेष न करना। अथवा किसी वस्तुविषैं यहु सामायिक है ऐसा स्थापना करि स्थाप्यो हूवा वस्तु सो स्थापनासामायिक है। बहुरि इष्ट अनिष्ट चेतन अचेतन द्रव्यविषै राग द्वेष न करना अथवा जो सामायिक शास्त्रकौं जानै हैं अर वाका उपयोग सामायिकविषैं नाहीं सो जीव वा उस सामायिक शास्त्रके जाननेवालेका शरीरादिक सो द्रव्य सामायिक है। बहुरि ग्राम नगर वनादिक इष्ट अनिष्ट क्षेत्र तिन विषैं राग द्वेष न करना सो क्षेत्र सामायिक है। बहुरि वसंत आदि ऋतु अर शुक्लपक्ष कृष्ण पक्ष दिन वार नक्षत्र इत्यादि इष्ट अनिष्ट कालके विशेष तिनिविषैं राग द्वेष न करना सो काल सामायिक है। बहुरि भाव जो जीवादिक तत्त्वविषैं उपयोगरूप पर्याय ताकै मिथ्यात्वकषायरूप संक्लेशपनाकी निवृत्ति अथवा सामायिक शास्त्रकौं जानै है अर उसही विषैं उपयोग जाका है सो जीव अथवा सामायिक पर्यायरूप परिणमन सो भावसामायिक है। ऐसें सामायिक नामा प्रकीर्णक कह्या है। बहुरि जिसकाल विषैं जिनका प्रवर्तन होइ तिसकालविषैं तिनही चौवीस तीर्थंकरनिका नाम स्थापना द्रव्य भावका आश्रय करि पंच कल्याणक चौंतीस अतिशय आठ प्रातिहार्य परम औदारिक दिव्य शरीर समवसरणसभा धर्मोपदेश देना इत्यादि तीर्थंकरपने की महिमाका स्तवन सो चतुर्विंशति स्तव कहिए। ताका प्रतिपादक शास्त्र सो चतुर्विंशतिस्तव नामा प्रकीर्णक है। बहुरि एक तीर्थंकरका अवलंबनकरि प्रतिमा चैत्यालय इत्यादिककी स्तुति सो वंदना कहिए

याका प्रतिपादक शास्त्र सो वंदना प्रकीर्णक कहिए। बहुरि प्रतिक्रम्यते कहिए प्रमादकरि कीया है दैवसिक आदि दोष तिनिका निराकरण जाकरि कीजिए सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक कहिए। सो प्रतिक्रमण प्रकीर्णक सात प्रकार है—दैवसिक १ रात्रिक २ पाक्षिक ३ चातुर्मासिक ४ सांवत्सरिक ५ ऐर्यापथिक ६ उत्तमार्थ ७ तहां संध्यासमय दिनविषैं कीया दोष जाकरि निवारिए सो दैवसिक है। बहुरि प्रभातसमय रात्रिविषैं कीया दोष जाकरि निवारिए सो रात्रिक है। बहुरि पंद्रहे दिन पक्षविषैं कीया दोष जाकरि निवारिए सो पाक्षिक कहिए। बहुरि चौथे महीने च्यारिमासविषैं कीए दोष जाकरि निवारिए सो चातुर्मासिक कहिए। बहुरि वर्षवें दिन एकवर्षविषै कीए दोष जाकरि निवारिए सो सांवत्सरिक कहिए। बहुरि गमन करतैं निपज्या दोष जाकरि निवारिए सो ऐर्यापथिक कहिए। बहुरि सर्वपर्याय संबंधी दोष जाकरि निवारिए सो उत्तमार्थ है ऐसैं सातप्रकार प्रतिक्रमण जानना। सो भरतादि क्षेत्र अर दुःषमादिकाल छह संहनन करि संयुक्त स्थिर वा अस्थिर पुरुषनिके भेद तिनकी अपेक्षा प्रतिक्रमणका प्रतिपादक शास्त्र सो प्रतिक्रमण नामा प्रकीर्णक कहिए। बहुरि विनय है प्रयोजन जाका सो वैनायिक नामा प्रकीर्णक कहिए। इसविषैं ज्ञान दर्शन चारित्र तप उपचार संबंधी पंच प्रकार विनयके विधानका प्ररूपण है। बहुरि कृति कहिये क्रिया ताका कर्म कहिए विधान इसविषैं प्ररूपिए है सो कृतिकर्म नामा प्रकीर्णक कहिए इसविषैं अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु आदि नव देवतानिकी वंदनाके निमित्त आप आधीन होना सो आत्माधीनता अर गिरद भ्रमणरूप तीन प्रदक्षिणा अर पृथ्वीतैं अंग लगाइ दोय नमस्कार अर शिर नवाइ च्यारि नमस्कार अर हाथ जोड़ि फेरनरूप बारह आवर्त इत्यादि नित्य नैमित्तिक क्रियाका विधान निरूपिए है। बहुरि विशेषरूप जे काल ते विकाल कहिए तिनिकौं होतैं जो होय सो वैकालिक सो दश वैकालिक इसविषैं प्ररूपिए है ऐसा दशवैकालिक नामा प्रकीर्णक है। इसविषैं मुनिका आचार अर आहारकी शुद्धता अर लक्षण प्ररूपिए है। बहुरि उत्तर जिसविषैं अधीयंते कहिए पढिए सो उत्तराध्ययन नामा प्रकीर्णक है इसविषैं च्यारि प्रकार उपसर्ग बाईस परिषह इनिके सहनेका विधान वा तिनिका फल अर इस प्रश्नका यहु उत्तर ऐसैं उत्तर

विधान प्ररूपिए है । वहुरि कल्प्य कहिए योग्य आचरण सो व्यवह्रियते अस्मिन् कहिए प्रवृत्तिरूप कीजिए जाविषैं ऐसा कल्प्यव्यवहार नामा प्रकीर्णक है इसविषैं मुनीश्वरनिके योग्य आचरणनिका विधान अर अयोग्यका सेवन होतैं प्रायश्चित्त प्ररूपिए है। वहुरि कल्प्य कहिए योग्य अर अकल्प्य कहिए अयोग्य प्ररूपिए हैं जाविषैं ऐसा कल्प्याकल्प्य नामा प्रकीर्णक है इसविषैं द्रव्य क्षेत्र काल भाव अपेक्षा साधुनिकौं यहु योग्य है यहु अयोग्य है ऐसा भेद प्ररूपिए है। वहुरि महतां कहिए महान पुरुषनिकैं कल्प्य कहिए योग्य ऐसा आचरण जाविषैं प्ररूपिए है सो महाकल्प्य नामा प्रकीर्णक है । इसविषैं जिनकल्पी महामुनिनिके उत्कृष्ट संहनन योग्य द्रव्य क्षेत्र कालभाव विषैं प्रवर्तै तिनकैं प्रतिमायोग वा आतापनयोग अभ्रावकाश वृक्षतल रूप त्रिकाल योग इत्यादि आचरण प्ररूपिए है अर स्थविरकल्पीनिकी दीक्षा शिक्षा संघका पोषण यथायोग्य शरीरका समाधान सो आत्मसंस्कार सल्लेखना उत्तम अर्थ स्थानकौं प्राप्त उत्तम आराधना इनिका विशेष प्ररूपिए है वहुरि पुंडरीक नामा प्रकीर्णक भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी कल्पवासी इनिविषैं उपजनेकौं कारण ऐसा दान पूजा तपश्चरण अकामनिर्जरा सम्यक्त्व संयम इत्यादि विधान प्ररूपिये है। वा तहां उपजनेतैं जो विभवादि पाइए सो प्ररूपिये है। वहुरि महान जो पुंडरीक सो महापुंडरीक नामा प्रकीर्णक है सो महर्धिक जे इंद्र प्रतींद्र अहमिंद्रादिक तिनविषैं उपजनेकौं कारण ऐसे विशेष तपश्चरणादि तिनिकौं प्ररूपै है । वहुरि निषेधनं कहिए प्रमादकरि कीया दोषका निराकरण सो निषिद्धि कहिए संज्ञाविषैं कप्रत्ययकरि निषिद्धिका नाम भया सो ऐसा निषिद्धिका नाम प्रकीर्णक प्रायश्चित्त शास्त्र है इसविषैं प्रमादतैं कीया दोषका विशुद्धताके निमित्त अनेक प्रकार प्रायश्चित्त प्ररूपिए हैं । याका निसतिका ऐसा भी नाम है । ऐसैं अंगवाह्य श्रुतज्ञान चौदह प्रकार कह्या याके अक्षरनिका प्रमाण पूर्वैं कह्या ही है । ३६७ । ३६८

आगैं श्रुतज्ञानका महिमा कहै हैं—

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति वोहादो ।

सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥ ३६९ ॥

श्रुतकेवलं च ज्ञानं द्वे अपि सदृशे भवतो बोधात् ।
श्रुतज्ञानं तु परोक्षं प्रत्यक्षं केवलं ज्ञानं ॥ ३६९ ॥

जी० प्र०—श्रुतज्ञानं केवलज्ञानं चेति द्वे ज्ञाने बोधात् समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानात् सदृशे समाने भवतः तु-पुनः अयं विशेषः स कः ? परमोत्कर्षपर्यंतं प्राप्तमपि श्रुतकेवलज्ञानं सकलपदार्थेषु परोक्षं अविशदं अस्पष्टं अमूर्तेषु अर्थपर्यायेषु अन्येषु सूक्ष्मांशेषु विशदत्वेन प्रवृत्त्यभावात् । मूर्तेष्वपि व्यंजनपर्यायेषु स्थूलांशेषु स्वविषयेषु अवधिज्ञानादिव साक्षात्कारणाभावाच्च। सकलावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयोत्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं समस्तत्वेन विशदं स्पष्टं भवति । मूर्तामूर्तार्थव्यंजनपर्यायस्थूलसूक्ष्मांशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्तिसंभवात् साक्षात्कारणाच्च । अक्षं आत्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्षं प्रत्यक्षं, उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्षं परोक्षमिति निरुक्तिसिद्धलक्षणभेदात्तयोः श्रुतज्ञानयोः सादृश्याभावात् । तथा चोक्तं समंतभद्रस्वामिभिः—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने । भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥

॥ ३६९ ॥ अथ शास्त्रकारः पंचषष्टिगाथासूत्रैः अवधिज्ञानप्ररूपणामुपक्रमते—

मं० प्र०—श्रुतज्ञान केवलज्ञानं चेति द्वे ज्ञाने अपि बोधात् समस्तवस्तुद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानात् सदृशे–समाने भवतः । तु–पुनः, अयं विशेषोऽस्ति स–यथा–परमोत्कर्षपर्यंतप्राप्तमपि श्रुतज्ञानं–श्रुतकेवलज्ञानं, सकलपदार्थेषु परोक्षं–अविशदमस्पष्ट अमूर्तेषु–अर्थपर्यायेषु अन्येषु च सूक्ष्मांशेषु वैशद्येन प्रवृत्त्यभावात्, मूर्तेषु व्यंजनपर्यायेषु स्थूलांशेषु च स्वविषयेषु अवधिज्ञानादिवत्साक्षात्करणाभावाच्च सकलावरणवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयोत्पन्नं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं सामस्त्येन विशद–स्पष्टं मूर्तामूर्तार्थव्यंजनपर्यायस्थूलसूक्ष्मांशेषु सर्वेष्वपि प्रवृत्तिसंभवात् साक्षात्करणाच्च । अक्षं–आत्मानमेव प्रतिनियतं परानपेक्ष प्रत्यक्षं । उपात्तानुपात्तपरप्रत्ययापेक्षं परोक्षमिति निरुक्तिसिद्धलक्षणभेदात्तयोः श्रुतज्ञानकेवलज्ञानयोः सादृश्याभावश्च । तथा चोक्तं समंतभद्रस्वामिभिः—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने । भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् । इति ।

३६९ ॥ अथ शास्त्रकारः पंचषष्टिगाथाभिरवधिज्ञानप्ररूपणा प्रक्रमते ॥ ३६५ ॥

स०चं०श्रुतज्ञान अर केवल ज्ञान दोऊ समस्त वस्तुनिके द्रव्यगुण पर्याय जाननेकी अपेक्षा समान हैं। इतना विशेष श्रुतज्ञान परोक्ष है केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है। भावार्थ–जैसें केवल ज्ञानका अपरिमित विषय हैं तैसें श्रुतज्ञानका अपरिमित विषय है। शास्त्रतें सर्वनिका जाननेकी शक्ति है परि श्रुतज्ञान सर्वोत्कृष्ट होइ तौभी सर्व पदार्थनिविषैं

परोक्ष कहिए अविशद अस्पष्ट ही है जातें अमूर्तिक पदार्थनिविषें वा सूक्ष्म अर्थपर्यायनिविषें वा अन्य सूक्ष्म अंशनिविषें विशदता करि प्रवृत्ति श्रुतज्ञानकी न हो है। बहुरि जे मूर्तिक व्यंजन पर्याय वा अन्य स्थूल अंश इस ज्ञानके विषय हैं तिनिविषें भी अवधि ज्ञानादिकी नाईं प्रत्यक्ष रूप न प्रवर्ते है। तातैं श्रुतज्ञान परोक्ष है। बहुरि केवल ज्ञान प्रत्यक्ष कहिए विशद अर स्पष्टरूप मूर्तीक अमूर्तीक पदार्थ स्थूल सूक्ष्म पर्याय तिनिविषे प्रवर्ते है जातें समस्त आवरण अर वीर्यांतरायके क्षयतैं प्रकट हो है तातैं प्रत्यक्ष है। अक्ष कहिए आत्मा तिहि प्रति निश्चत होइ कोई पर द्रव्यकी अपेक्षा न चाहे सो प्रत्यक्ष कहिए। प्रत्यक्षका लक्षण विशद वा स्पष्ट है। जहां अपने विषयके जाननेमैं कसर न होइ ताकौं विशद वा स्पष्ट कहिए। बहुरि उपात्त वा अनुपात्तरूप पर द्रव्यकी सापेक्षाकौं लीए जो होइ सो परोक्ष कहिए। याका लक्षण अविशद अस्पष्ट जानना। मन नेत्र अनुपात्त है अन्य चारि इंद्री उपात्त हैं। ऐसैं श्रुतज्ञान केवल ज्ञान विषें प्रत्यक्ष परोक्ष लक्षण भेदतैं भेद है। बहुरि विषय अपेक्षा समानता है। सोई समंतभद्राचार्य देवागम स्तोत्र विषें कह्या है—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशके।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥

याका अर्थ—स्याद्वाद तौ श्रुतज्ञान अर केवल ज्ञान ए दोऊ सर्व तत्त्वके प्रकाशी हैं परंतु प्रत्यक्ष परोक्ष भेदतैं भेद पाइए है इनि दोऊ प्रमाणनिविषें अन्यतम जो एक सो अवस्तु है एकका अभाव मानें दोऊनिका अभाव-विनाश जानना॥ ३६९॥ आगें शास्त्रकर्ता पैसठि गाथानिकरि अवधिज्ञानकौं प्ररूपे हैं—

अवहीयदित्ति ओही सीमाणाणोत्ति वण्णियं समये।
भवगुणपच्चयविहियं जमोहिणाणोत्ति णं बेंति॥ ३७०॥

अवधीयत इत्यवधिः सीमाज्ञानमिति वर्णितं समये ।
भवगुणप्रत्ययविधिकं यदवधिज्ञानमिति ब्रुवंति ॥ ३७० ॥

जी० प्र०—अवधीयते-द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमीयते इत्यवधिर्मतिश्रुतकेवलवद्द्रव्यादिभिरपरिमितविषयत्वाभावात् । यत्तृतीयं सीमाविषयं ज्ञानं समये परमागमे वर्णितं कथितं तदिदमवधिज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवंति । तत्कतिविधं भवगुणप्रत्ययविहितं—भवः नरकादिपर्यायः, गुणाः-सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिः, भवगुणौ प्रत्ययौ कारणे ताभ्यां विहितमुक्तं भवगुणप्रत्ययविहितं भवप्रत्ययत्वेन गुणप्रत्ययत्वेन अवधिज्ञानं द्विविधं कथितमित्यर्थः ।

म० प्र०—अवधीयते—द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परिमीयते इत्यवधिः इति मतिश्रुतकेवलज्ञानवत् द्रव्यादिभिरपरिमितविषयत्वाभावात् यत्तृतीयं सीमाविषयं ज्ञान, समये—परमागमे, वर्णितं—प्ररूपितं तदिदमवधिज्ञानमित्यर्हदादयो ब्रुवति । तत् कतिविधं ? भवगुणप्रत्ययविधिकं । भवः—नारकादिपर्यायः, गुणःसम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिः । भवगुणौ प्रत्ययौ—कारणे ययोस्तौ भवगुणप्रत्ययौ तौ विधी—प्रकारौ—भेदौ यस्य तद्भवगुणप्रत्ययविधिकं भवप्रत्ययं गुणप्रत्ययं चेति द्विविधमवधिज्ञानमित्यर्थ. ॥ ३७० ॥

स०चं०अवधीयते कहिए द्रव्य क्षेत्र काल भाव करि परिमाण जाका कीजिए सो अवधिज्ञान जानना । जैसे मति श्रुत केवल ज्ञानका विषय द्रव्य क्षेत्रादि करि अपरिमित है। तैसें अवधि ज्ञानका विषय अपरमित नाहीं। श्रुतज्ञान करि भी शास्त्रके वलतैं अलोक वा अनंतकाल आदि जानैं । अवधिज्ञान करि जेता द्रव्य क्षेत्र काल भाव प्रमाण आगैं कहैंगे तितना ही प्रत्यक्ष जानै । तातैं सीमा जो द्रव्य क्षेत्रादिकी मर्यादा ताकों लीए है विषय जाका ऐसा जो ज्ञान सो अवधिज्ञान है ऐसैं सर्वज्ञदेव सिद्धांतविषैं कहे हैं । सो अवधिज्ञान दोय प्रकार कह्या है येक भव प्रत्यय १ एक गुणप्रत्यय १ तहां भव जो नारकादिक पर्याय ताके निमित्ततैं होइ सो भव प्रत्यय कहिये जो नारकादि पर्याय धारै ताके अवधि ज्ञान होइ ही होइ तातैं इस अवधिज्ञानको भव प्रत्यय कहिए । वहुरि गुण कहिए सम्यग्दर्शनादि रूप सो है निमित्त जाका सो गुण प्रत्यय कहिये । मनुष्य तिर्यंच सर्वहीकैं अवधि ज्ञान नाहीं जाकैं सम्यग्दर्शनादिककी विशुद्धता होइ ताकैं अवधिज्ञान होइ तातैं इस अवधि ज्ञानकौं गुण प्रत्यय कहिये ॥ ३७० ॥

भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थेवि सव्वअंगुत्थो ।

गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिह्णभवो ॥ ३७१ ॥

भवप्रत्ययकं सुरनारकाणां तीर्थेऽपि सर्वांगोत्थं ।
गुणप्रत्ययकं नरतिरश्चां शंखादिचिह्नभवं ॥ ३७१ ॥

जी० प्र०—तत्र भवप्रत्ययावधिज्ञानं सुराणां नारकाणां चरमभवतीर्थकराणां च संभवति । तच्च तेषां सर्वांगोत्थं भवति । सर्वात्मप्रदेशस्थाव-
धिज्ञानावरणवीर्यांतरायकर्मद्वयक्षयोपशमोत्थं भवतीत्यर्थः । गुणप्रत्ययं अवधिज्ञानं नराणां पर्याप्तमनुष्याणां तिरश्चां च संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ततिरश्चां सं-
भवति । तच्च तेषां शंखादिचिह्नभवं भवति, नाभेरुपरि शंखपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायकर्मद्वय-
क्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः । भवप्रत्यये अवधिज्ञाने दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव भवप्रत्ययत्वं ज्ञातव्यं । गुणप्रत्ययेऽवधिज्ञाने तिर्यग्म-
नुष्यसद्भावेऽपि तदनपेक्षयैव गुणप्रत्ययत्वं ज्ञातव्यं ॥ ३७१ ॥

मं० प्र०—तत्र भवप्रत्ययं अवधिज्ञानं सुराणां नारकाणा चरमभवतीर्थकरस्यापि संभवति तच्च सर्वांगोत्थ सर्वात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्ष-
योपशमोत्पन्नमित्यर्थः । गुणप्रत्ययमवधिज्ञानं नराणा पर्याप्तमनुष्याणां तिरश्चा च संज्ञिपंचेंद्रियपर्याप्ताना संभवति तच्च शंखादिचिह्नभवं नाभेरुपरिशंखपद्मव-
ज्रस्वस्तिकझषकलशादिशुभचिह्नलक्षितात्मप्रदेशस्थावधिज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः । भवप्रत्यये दर्शनविशुद्ध्यादिगुणसद्भावेऽपि तदनपेक्षत्वा-
द्भवप्रत्ययत्वं । गुणप्रत्यये तिर्यग्मनुष्यभवसद्भावेऽपि तदनपेक्षत्वाद् गुणप्रत्ययत्व ॥ ३७१ ॥

स०चं—तहां भव प्रत्यय अवधि ज्ञान देवनिकै नारकीनिकैं अर चरम शरीरी तीर्थंकर देवनिकैं पाइये है सो यहु
भव प्रत्यय अवधिज्ञान 'सर्वांगोत्थं' कहिये सर्व आत्माके प्रदेशनिविषै तिष्ठता अवधि ज्ञानावरण अर वीर्यांतराय
कर्म ताके क्षयोपशमतैं उत्पन्न हो है वहुरि गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है सो पर्याप्त मनुष्य अर सैनी पंचेंद्री पर्याप्त ति-
र्यंच इनिके संभवै है । सो यहु गुण प्रत्यय अवधिज्ञान 'शंखादिचिन्हभव' कहिये नाभिके ऊपरि शंख कमल
वज्र सांथिया माछला कलस इत्यादिकका आकार रूप जहां शरीरविषैं भले लक्षण होंइ तहां संबंधी जे आत्माक
प्रदेश तिनिविषैं तिष्टता जो अवधि ज्ञानावरण कर्म अर वीर्यांतराय कर्म तिनिके क्षयोपशमतैं उत्पन्न हो है भव
प्रत्यय अवधिज्ञान विषै भी सम्यग्दर्शनादि गुणका सद्भाव है तथापि उन गुणोंकी अपेक्षा नाहीं करनेतैं भव प्रत्यय

कह्या अर गुण प्रत्ययविषै मनुष्य तिर्यंचका सद्भाव है तथापि उन पर्यायनिकी अपेक्षा नाही करनेतैं गुण प्रत्यय कह्या है ॥ ३७१ ॥

गुणपच्चइगो छद्धा अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा ।
देसोही परमोही सव्वोहित्ति य तिधा ओही ॥ ३७२ ॥

गुणप्रत्ययकः षोढा अनुगावस्थितप्रवर्धमानेतरे ।
देशावधिः परमावधिः सर्वावधिरिति च त्रिधा अवधिः ॥ ३७२ ॥

जी० प्र०—यद्गुणप्रत्ययावधिज्ञानं तदनुगाम्यननुगाम्यवस्थितमनवस्थितं प्रवर्धमानं हीयमानं चेति षड्विधं । तत्र यदवधिज्ञानं स्वस्वामिनं जीवमनुगच्छति तदनुगामि तच्च क्षेत्रानुगामि भवानुगामि उभयानुगामीति त्रिविधं । यत् स्वोत्पत्तिक्षेत्रात् अन्यक्षेत्रे विहरंतं जीवमनुगच्छति भवांतरं नानुगच्छति तत्क्षेत्रानुगामि भवति । यत् उत्पत्तिभवादन्यभवे स्वस्वामिनं अनुगच्छति तद्भवानुगामि भवति। यत्स्वोत्पत्तिक्षेत्रभवाभ्यां अन्यत्रभरतैरावतविदेहादिक्षेत्रे देवमनुष्यादिभवे च वर्तमानं जीवमनुगच्छति तदुभयानुगामि भवति । यदवधिज्ञानं स्वस्वामिनं जीवं नानुगच्छति तदननुगामि । तदपि क्षेत्राननुगामि भवाननुगामि उभयाननुगामीति त्रिविधं । तत्र यत्क्षेत्रांतरं न गच्छति स्वोत्पत्तिक्षेत्रे एव विनश्यति भवांतरं गच्छतु वा मा गच्छतु तत् क्षेत्राननुगामि। यद्भवांतरं नानुगच्छति स्वोत्पत्तिभव एव विनश्यति, क्षेत्रांतरं गच्छतु वा मा वा गच्छतु तद्भवाननुगामि । यत् क्षेत्रांतरं भवांतरं च नानुगच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रभवयोरेव विनश्यति तत् क्षेत्रभवाननुगामि । यद्धानिवृद्धिभ्यां विना सूर्यमंडलवत् एकप्रकारमेव तिष्ठति तदवस्थितं । यत् कदाचिद्वर्धते कदाचिद्धीयते कदाचिदवतिष्ठते च तदनवस्थित । यत् शुक्लपक्षस्य चंद्रमंडलवत् स्वोत्कृष्टपर्यंतं वर्धते तद्वर्धमानं । यत् कृष्णपक्षचंद्रमंडलवत् स्वक्षयपर्यंतं हीयते तद्धीयमानं देशावधिज्ञानं भवति । तथा सामान्येन अवधिज्ञानं देशावधिः परमावधिः सर्वावधिश्च इति त्रिधा त्रिप्रकारं भवति । एवं गुणप्रत्ययो देशावधि· षोढा न परमावधिसर्वावधी इत्यर्थः ॥ ३७२ ॥

मं० प्र०—यद्गुणप्रत्ययावधिज्ञानं तत् षोढा । अनुगामि अवस्थितं प्रवर्धमानमिति त्रीणि, इतराणि च अननुगामि अनवस्थितं हीयमानमिति त्रीणि । एवं षट्प्रकार गुणप्रत्ययमवधिज्ञान भवति । तद्यथा-यदवधिज्ञानं स्वस्वामिनं जीवमनुगच्छति तदनुगामि तच्च क्षेत्रानुगामि भवानुगामि उभयानुगामि त्रिविधं । तत्र स्वोत्पन्नक्षेत्रादन्यस्मिन् क्षेत्रे विहरंत जीवमनुगच्छति भवांतरं नानुगच्छति तत्क्षेत्रानुगामि । यत्स्वोत्पन्नभवादन्यस्मिन्भवेऽपि वर्तमानं जीवमनुगच्छति तद्भवानुगामि । यत्स्वोत्पन्नक्षेत्रभवाभ्यामन्यस्मिन् भरतैरावतविदेहादिक्षेत्रे देवमनुष्यादिभवे च वर्तमानं जीवमनुगच्छति तदुभयानुगामि । यत्स्वस्वामिन जीव ना-

नुगच्छति तदननुगामि । तदपि त्रिविध, तत्र यत्क्षेत्रांतरं न गच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रे एव विनश्यति भवांतर गच्छतु मा वा तत्क्षेत्राननुगामि । यद्भवांतर न गच्छति स्वोत्पन्नभवे एव विनश्यति क्षेत्रांतरं गच्छतु मा वा तत् भवाननुगामि । यत् क्षेत्रांतर भवांतर च न गच्छति स्वोत्पन्नक्षेत्रभवयोरेव विनश्यति तदुभयाननुगामि । यत् हानिवृद्धिभ्या विना सूर्यमडलवदेकप्रकारमेव अवतिष्ठते तदवस्थित । यत् कदाचिद्वर्धते कदाचित् हीयते कदाचिदवतिष्ठते च तदनवस्थितं । यत् शुक्लपक्षचंद्रमडलमिव स्वोत्कृष्टपर्यंतं वर्धते तद्वर्धमानं । यत्कृष्णपक्षचंद्रमडलमिव स्वक्षयपर्यंतं हीयते तत् हीयमान । पुन. सामान्येन अवधिज्ञानं देशावधिः सर्वावधिः परमावधिश्चेति त्रिप्रकार भवति ॥ ३७२ ॥

स०चं–जो गुण प्रत्यय अवधिज्ञान है सो छह प्रकार है अनुगामी १ अवस्थित २ वर्धमान ३ अर इतर कहिए अनुगामी ४ अनवस्थित ५ हीयमान ६ ऐसैं छह प्रकार है तहां जो अवधिज्ञान अपने स्वामी जीवके साथि ही गमन करै ताकौं अनुगामी कहिए ताके तीन भेद–क्षेत्रानुगामी १ भवानुगामी २ उभयानुगामी ३ तहां जो अवधिज्ञान जिस क्षेत्रविषैं उपज्या था तिस क्षेत्रकौं छोड़ि जीव और क्षेत्रविषै विहार किया तहां भी वह अवधि ज्ञान साथि ही रह्या विनष्ट न हुवा और पर्याय धरि विनष्ट होइ सो क्षेत्रानुगामी कहिए । वहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्याय विषैं उपज्या था तिस पर्यायकौं छोड़ि जीव और पर्यायकौं धर्‌या तहां भी वह अवधि ज्ञान साथि ही रह्या सो भवानुगामी कहिए । वहुरि जो अवधि ज्ञान जिस क्षेत्र वा पर्यायविषै उपज्या था तातैं जीव अन्य भरतादि क्षेत्रविषै गमन कीया वा अन्य देवादि पर्याय धर्‌या तहां साथि ही रहै सो उभयानुगामी कहिए । वहुरि जो अवधि ज्ञान अपने स्वामी जीवकी साथि गमन न करै सो अननुगामी कहिए याके तीन भेद क्षेत्राननुगामी १ भवाननुगामी २ उभयाननुगामी ३ तहां जो अवधिज्ञान तिस क्षेत्रविषै उपज्या होइ तिस क्षेत्रविषै तौ जीव और पर्याय धरौ वा मति धरौ वह अवधिज्ञान साथि ही रहै है अर उस क्षेत्रतैं जीव और कोई भरत ऐरावत विदेहादि क्षेत्रनिविषैं गमन करै तो वह ज्ञान अपने उपजनेका क्षेत्र ही विषै विनष्ट होइ सो क्षेत्राननुगामी कहिए । वहुरि जो अवधिज्ञान जिस पर्यायविषैं उपज्या होइ तिस पर्यायविषै तौ जीव और क्षेत्रविषै तौ गमन करौ वा मतिकरौ वह अवधिज्ञान साथि रहे अर उस पर्यायतैं अन्य कोई देव मनुष्य आदि पर्याय धरै तौ अपने उपजनेका पर्यायविषैं विनष्ट होइ सो भवाननुगामी कहिए । वहुरि जो अवधिज्ञान और क्षेत्रविषैं वा और पर्यायविषै

जीवकौं प्राप्त होते साथि न रहै अपने उपजनेका क्षेत्र वा पर्यायविषैं ही विनष्ट होइ सो उभयाननुगामी कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान सूर्यमंडलकी ज्यों घटै वधै नाही एक प्रकारही रहै सो अवस्थित कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान कदाचित् वधै कदाचित् घटै कदाचित् अवस्थित रहै सो अनवस्थित कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान शुक्ल पक्षके चंद्रमंडलकी ज्यों बंधता बंधता अपने उत्कृष्ट पर्यंत बधै सो वर्धमान कहिए। वहुरि जो अवधिज्ञान कृष्ण पक्षके चंद्रमंडलकी ज्यौं घटता घटता अपने नाश पर्यंत घटै सो हीयमान कहिए ऐसैं गुण प्रत्यय अवधिज्ञानके छह भेद कहे। वहुरि तैसैं ही सामान्यपनैं अवधिज्ञान तीन प्रकार है देशावधि १ परमावधि २ सर्वावधि ३ ए तीन भेद हैं तहां गुणप्रत्यय देशावधि ही छह प्रकार जानना ॥ ३७२ ॥

भवपच्चइगो ओही देसोही होदि परमसव्वोही।
गुणपच्चइगो णियमा देसोही वि य गुणे होदि ॥ ३७३ ॥

भवप्रत्ययकोवधिः देशावधिः भवति परमसर्वावधिः।
गुणप्रत्ययको नियमात् देशावधिरपि च गुणे भवति ॥ ३७३ ॥

जी० प्र०--यः पूर्वोक्तो भवप्रत्ययोऽवधिः स नियमात्—अवश्यंभावात् देशावधिरेव भवति देवनारकयोर्गृहस्थतीर्थकरस्य च परमावधिसर्वावध्योरसंभवात्। परमावधिः सर्वावधिश्च द्वावपि नियमेन गुणप्रत्ययावेव भवतः। संयमलक्षणगुणाभावे तयोरभावात्। देशावधिरपि गुणे दर्शनविशुद्ध्यादिलक्षणे सति भवति। एवं गुणप्रत्ययास्त्रयोऽप्यवधयः संभवंति। भवप्रत्ययस्तु देशावधिरेवेति निश्चितं जातं ॥ ३७३ ॥

मं०प्र०—यः पूर्वोक्तो भवप्रत्ययोऽवधि. स नियमात्—अवश्यंभावाद्देशावधिरेव देवनारकाणा गृहस्थतीर्थकरस्यापि परमसर्वावध्योरसंभवात्। परमावधिः सर्वावधिश्च नियमाद् गुणप्रत्ययावेव संयमविशेषलक्षणगुणाभावे तयोरभावात्। गुणे—दर्शनविशुद्ध्यादिलक्षणे सति देशावधिश्च। एवं गुणप्रत्ययास्त्रयोप्यवधयः सभवंति, भवप्रत्ययस्तु देशावधिरेवेति सुनिश्चितं ॥ ३७३ ॥

स०चं०—भव प्रत्यय अवधि तौ देशावधि ही है जातैं देव नारकी ग्रहस्थ तीर्थंकर इनके परमावधि सर्वावधि होइ नाहीं

वहुरि परमावधि अर सर्वावधि निश्चयसौं गुणप्रत्ययही हैं जातैं संयमरूप विशेष गुण विना न होंइ। वहुरि देशावधि भी सम्यग्दर्शनादि गुण होत संतैं हो है तातैं गुणप्रत्यय अवधि तौ तीन प्रकार हो है अर भवप्रत्ययअवधि एक देशावधि ही है ॥ ३७४ ॥

देसावहिस्स य अवरं णरतिरिये होदि संजदह्मि वरं।
परमोही सव्वोही चरमसरीरस्स विरदस्स ॥ ३७४ ॥

देशावधेश्च अवरं नरतिरश्चि भवति संयते वरम्।
परमावधिः सर्वावधिः चरमशरीरस्य विरतस्य ॥ ३७४ ॥

जी० प्र०—देशावधेर्ज्ञानस्य जघन्यं नरतिरश्चोरेव संयतासंयतयोः भवति, न देवनारकयोः। देशावधेः सर्वोत्कृष्टं तु नियमेन मनुष्यगतिसकलसंयते एव भवति नेतरगतित्रये तत्र महाव्रताभावात्। परमावधिसर्वावधी द्वावपि जघन्येनोत्कृष्टेन च मनुष्यगतावेव चरमांगस्य महाव्रतिन एव संभवतः। चरमं संसारांतवर्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबंधि शरीरं वज्रवृषभनाराचसंहननयुतं यस्यासौ चरमशरीरः ॥ ३७४ ॥

मं०प्र०—देशावधेर्जघन्यं नरे—मनुष्ये तिरश्चि च जीवे नियमात् संयते असंयते च भवति। न देवनारकयोः। देशावधेरुत्कृष्टं नियमात् संयते मनुष्यगतौ महाव्रतिन्येव, न इतरगतित्रये तत्र महाव्रतासंभवात्। परमावधिसर्वावधी जघन्यतः उत्कृष्टतश्च मनुष्यगतौ चरमशरीरस्य विरतस्य महाव्रतिन एव जीवस्य संभवतः। चरमं—संसारांतवर्तितद्भवमोक्षकारणरत्नत्रयाराधकजीवसंबंधिशरीरं वज्रवृषभनाराचसंहननयुक्तं यस्यासौ चरमशरीरः ॥ ३७४ ॥

स०चं—देशावधिका जघन्यभेद संयमी वा असंयमी मनुष्य तिर्यंच विषैं ही हो है देव नारकी विषैं न हो है। वहुरि देशावधिका उत्कृष्टभेद संयमी महाव्रती मनुष्यविषैं ही हो है जातैं और तीन गतिविषैं महाव्रत संभवै नाहीं। वहुरि परमावधि अर सर्वावधि जघन्य उत्कृष्ट वा चरमशरीरी महाव्रती मनुष्यविषै संभवै है। चरम कहिए संसारका अंतविषै भया तिसही भवतैं मोक्ष होनेका कारण ऐसा वज्रवृषभ नाराच शरीर जिसका होइ सो चरम शरीरी कहिए ॥ ३७४ ॥

पडिवादी देसोही अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ ।
मिच्छत्तं अविरमणं ण य पडिवज्जंति चरिमदुगे ॥३७५॥

प्रतिपाती देशावधिःअप्रतिपातिनौ भवतः शेषौ अहो ।
मिथ्यात्वमविरमणं न च प्रतिपद्यन्ते चरमद्विके ॥ ३७५ ॥

जी० प्र०—सम्यक्त्वचारित्राभ्या प्रच्युत्य मिथ्यात्वासंयमयोः प्राप्तिः प्रतिपातः, तद्युतः प्रतिपाती स तु देशावधिरेव भवति । शेषौ परमावधि-सर्वावधी द्वावपि अप्रतिपातिनावेव भवतः, चरमद्विके—परमावधिसर्वावधिद्विके जीवाः नियमेन मिथ्यात्वं अविरमणं च न प्रतिपद्यंते ततः कारणात् तौ द्वावपि अप्रतिपातिनौ, देशावधिज्ञानं प्रतिपाति अप्रतिपाति च इति निश्चितं ॥ ३७५ ॥

म० प्र०—प्रतिपातः—सम्यक्त्वचारित्राभ्या प्रच्युत्य मिथ्यात्वासयमयोः प्राप्तिः, तद्वानवधिः प्रतिपाती । स नियमाद्देशावधिरेव । शेषौ परमावधिसर्वावधी अप्रतिपातिनावेव भवतः । ओ इति प्राकृते सबोधनमव्ययं । यस्मात्कारणात् चरमद्विके—परमसर्वावधिद्विके, वर्तमाना जीवा नियमात् मिथ्यात्वं, अविरमण च न प्रतिपद्यंते तस्मात्कारणात्तौ अप्रतिपातिनावेव, अनेन देशावधिः प्रतिपात्यप्रतिपाती च संभवतीति सुनिश्चित ॥ ३७५ ॥

स० चं०—देशावधि ही प्रतिपाती है शेष परमावधि सर्वावधि प्रतिपाती नाहीं । प्रतिपात कहिए सम्यक् चारित्रसौं भ्रष्ट होइ मिथ्या असंयमकौं प्राप्त होना तीहि संयुक्त जो होइ सो प्रतिपाती कहिए । जो प्रतिपाती न होइ सो अप्रतिपाती कहिए । देशावधिवाला तौ कदाचित् सम्यक्त्व चारित्रसौं भ्रष्ट होइ मिथ्यात्व असंयमकौं प्राप्त हो है । अर चरमाद्विक कहिए अंतका परमावधि सर्वावधि दोय ज्ञानविषै वर्तमान जीव सो निश्चयसौं मिथ्यात्व अर अविरतिकौं प्राप्त न हो है । जातैं देशावधि तौ प्रतिपाती भी है अप्रतिपाती भी है, परमावधि सर्वावधि अप्रतिपाती ही है ॥ ३७५ ॥

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि रूवि जाणदे ओही ।
अवरादुक्कस्सोत्ति य वियप्परहिदो दु सव्वोही ॥३७६॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं प्रति रूपि जानीते अवधिः।
अवरादुत्कृष्ट इति च विकल्परहितस्तु सर्वावधिः ॥ ३७६ ॥

जी० प्र०—अवरात् जघन्यविकल्पादारभ्य उत्कृष्टविकल्पपर्यंतं असंख्याततलोकमात्रविकल्पं अवधिज्ञानं द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च प्रतीत्य—नियतसीमां कृत्वा रूपि पुद्गलद्रव्यं तत्संबंधि संसारिजीवद्रव्यं च जानीते प्रत्यक्षतया अवबुध्यते। तु—पुनः सर्वावधिज्ञानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितं अवस्थितं हानिवृद्धिरहितं परमोत्कर्षप्राप्तमित्यर्थः, अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमसर्वोत्कृष्टस्य तत्रैव संभवात्, ततः कारणाद् देशावधिपरमावध्योर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पा संभवंतीति निश्चितं भवति ॥ ३७६ ॥

मं०प्र०—अवरात्—जघन्यविकल्पादारभ्य उत्कृष्टविकल्पपर्यंतमसंख्यातलोकमात्रविकल्पमवधिज्ञानं द्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च प्रति प्रतिनियतां सीमानं कृत्वा रूपि पुद्गलद्रव्य तत्संबधि संसारिजीवद्रव्य च जानीते प्रत्यक्षमवबुध्यते। तु—पुनः सर्वावधिज्ञानं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितं अवस्थितैकरूपं हानिवृद्धिभ्यां विना परमोत्कर्षप्राप्तं अवधिज्ञानावरणक्षयोपशमस्य सर्वोत्कृष्टस्य तत्रैव संभवात्। अनेन देशावधिपरमावध्योः जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाः सतीति सुनिश्चितं ॥ ३७६ ॥

स०चं—अवधिज्ञान जघन्य भेदतैं लगाइ उत्कृष्ट भेदपर्यंत असंख्यात लोक प्रमाण भेद धरैं है सो सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव प्रति मर्यादा लीए रूपी जो पुद्गल अर पुद्गल संबंधकौं धरैं संसारी जीव तिनिकौं प्रत्यक्ष जानैं है। बहुरि सर्वावधिज्ञान है सो जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद रहित हानि वृद्धिरहित अवस्थित सर्वोत्कृष्टताकौं प्राप्त है जातैं अवधिज्ञानावरणका उत्कृष्ट क्षयोपशम तहां ही संभवै है तातैं देशावधि परमावधिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद संभवै हैं ॥ ३७६ ॥

णोकम्मुरालसंचं मज्झिमजोगोज्जियं सविस्सचयं।
लोयविभत्तं जाणदि अवरोही दव्वदो णियमा ॥३७७॥

नोकर्मौदारिकसंचयं मध्यमयोगार्जितं सविस्रसोपचयम्।
लोकविभक्तं जानाति अवरावधिः द्रव्यतो नियमात् ॥ ३७७ ॥

जी० प्र०—देशावधिजघन्यज्ञानं द्रव्यतः मध्यमयोगार्जितं नोकर्मौदारिकसंचयं द्व्यर्धगुणहानिमितसमयप्रबद्धसमूहरूपं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसंयुक्तं लोकेन विभक्तं नियमेन तावन्मात्रमेव जानाति—प्रत्यक्षतया अवबुध्यते न ततोल्पमित्यर्थः। जघन्ययोगार्जितस्य नोकर्मौदारिकसंचयस्य अल्पत्वं ततोऽस्य सूक्ष्मत्वसंभवात्। तद्ग्रहणे तज्ज्ञानस्य शक्त्यभावात्। उत्कृष्टयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयस्य स्थूलत्वं भवति तद्ग्रहणे प्रतिषेधाभावात्।

तेन नियमान्मध्यमयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयो द्रव्यनियमः कथितः। स a १२—१६ खं ॥ ३७७ ॥

म० प्र०—द्रव्यतः द्रव्यमाश्रित्य मध्यमयोगार्जितनोकर्मौदारिकसंचयं द्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धसमूहरूपं स्वयोग्यविस्रसोपचयपरमाणुसहितं लोकविभक्तं सर्वजघन्यदेशावधिज्ञान, नियमात् एतावन्मात्रमेव जानाति नातोऽल्पमात्रमित्यर्थः। जघन्ययोगार्जितस्य समयप्रबद्धस्य अल्पत्वेन सूक्ष्मत्वात् तद्ग्रहणे तज्ज्ञानस्य शक्त्यभावात्। उत्कृष्टयोगार्जितस्य समयप्रबद्धस्य स्थूलस्य ग्रहणे, अप्रतिषेधाच्च, नियमेन मध्यमयोगार्जितस्यैव नोकर्मरूपौदारिकशरीरपरिणतियोग्यसंचयस्य औदारिकशरीरनामकर्मसंचयस्य अतिसूक्ष्मत्वात् तद्ग्रहणे तस्य नितरामशक्तेः। विस्रसोपचयरहितत्वे अल्पस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् स हि तस्यैव घनलोकप्रदेशमात्राणि खंडानि कृत्वा तत्रैकखंडमतींद्रियं तादृशं पुद्गलद्रव्यस्कध सर्वजघन्यदेशावधिज्ञानं प्रत्यक्षं जानातीत्यनेन द्रव्यनियमः प्ररूपितः।

स a १२—१६ ख ॥ ३७७ ॥

स० चं०—मध्यम योगका परिणमनतैं निपज्या ऐसा नोकर्मरूप औदारिक शरीरका संचय कहिये द्व्यर्ध गुणहानिकरि औदारिकका समय प्रबद्धकौं गुणिए तिहि प्रमाण औदारिकका सत्तारूप द्रव्य बहुरि सो अपने योग्य विस्रसोपचयके परमाणूनिकरि संयुक्त ताकौं लोक प्रमाण असंख्यातका भाग दीएं जो एक भाग मात्र द्रव्य होइ तावन्मात्र ही द्रव्यकौं जघन्य अवधिज्ञान जानै है। यातैं अल्प स्कंधकौं न जानै है जघन्य योगनितैं जो निपजै है संचय सो यातैं सूक्ष्म हो है तातैं तिसकौं जाननेकी शक्ति नाहीं। बहुरि उत्कृष्ट योगनितैं जो निपजै है संचय सो यातैं स्थूल है ताकौं जानैं ही है जातैं जो सूक्ष्मकौं जानैं ताकैं उसतैं स्थूलकौं जाननेमैं किछू विरुद्ध नाहीं तातैं यहां मध्यम योगनिकरि निपज्या ऐसा औदारिक शरीरका संचय कह्या। बहुरि विस्रसोपचयरहित सूक्ष्म हो है तातैं वाकै जाननेकी शक्ति नाहीं तातैं विस्रसोपचयसहित कह्या। ऐसैं स्कंधकौं लोकके जितने प्रदेश हैं उतने

खंड करिए तहां एक खंड प्रमाण पुद्गल परमाणूनिका स्कंध नेत्रादिक इंद्रियनिके गोचर नाहीं ताकौं जघन्य देशावधिज्ञान प्रत्यक्ष जाने है। ऐसा जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यका नियम कह्या ॥ ३७७ ॥

सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि ।
अवरोगाहणमाणं जहण्णयं ओहिखेत्तं तु ॥ ३७८ ॥

सूक्ष्मनिगोदापर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये ।
अवरोवगाहनमानं जघन्यकमवधिक्षेत्रं तु ॥ ३७८ ॥

जी० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य उत्पत्तितृतीयसमये यत्पूर्वोक्तजघन्यावगाहनं तत् तु—पुनः जघन्यदेशावधिज्ञानविषयभूतक्षेत्रप्रमाणं भवति ६ । ८ । २२ । एतावति क्षेत्रे पूर्वोक्तजघन्यद्रव्याणि यावंति संति तावंति जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति न तद्बहिःस्थितानीति क्षेत्रसीमा

a १—
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १९
a a a

कथिता ॥ ३७८ ॥

मं० प्र०—तु-पुनः, सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जातस्य तृतीयसमये यदवगाहनं प्रागुक्त घनागुलासंख्यातभागमात्रं तत्प्रमाणं जघन्यदेशावधिज्ञानस्य क्षेत्र भवति ६ । ८ २२ एतावति क्षेत्रे यावति पूर्वोक्तजघन्यद्रव्याणि संति तावंति सर्वाणि जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति ततो बहिःस्थ न जानातीति क्षेत्रसीमा

a १—
प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । १९
a a a

प्रतिपादिता ॥ ३७८ ॥

स० चं०-बहुरि सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तकके जन्मतैं तीसरा समयकेविषैं जघन्य अवगाहनाका प्रमाण पूर्वैं

जीव समासाधिकार विषैं कह्या था तीहि प्रमाण जघन्य अवगाहनाका क्षेत्र जानना । इतने क्षेत्रविषैं पूर्वोक्त प्रमाण लीए वा तिसतैं स्थूल जेते पुद्गल स्कंध होंइ तिनिकौं जघन्य देशावधि ज्ञान जानै है इस क्षेत्रके वारै तिष्ठते जे होंइ तिनकौं न जानै हैं ऐसैं क्षेत्रकी मर्यादा कही ।। ३७८ ।।

अवरोहिखेत्तदीहं वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो ।
अण्णं पुण समकरणे अवरोगाहणपमाणं तु ॥३७९॥

अवरावधिक्षेत्रदीर्घं विस्तारोत्सेधकं न जानीमः ।
अन्यत् पुनः समीकरणे अवरावगाहनप्रमाणं तु ।। ३७९ ।।

जी० प्र०—जघन्यावधिविषयक्षेत्रस्य दैर्घ्यविस्तारोत्सेधप्रमाणं न जानीमः । इदानीं तदुपदेशाभावात् । तु पुनः परमगुरूपदेशपरंपरायातं जघन्यावगाहनप्रमाणं समकरणे-समीकरणे कृते सति घनांगुलासंख्यातैकभागमात्रं भवति इत्यन्यत्पुनर्जानीमः ।। ३७९ ।।

मं०प्र–तु–पुनः जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रस्य दैर्घ्यं विस्तारं उत्सेधं च वयं न जानीमः इदानीं तदुपदेशाभावात् । पुनः परमगुरूपदेशपरंपरायातमन्यत्समी करणे भुजकोटिवेधाना हीनाधिकभावं विना समीकरणे सति जात क्षेत्रफल जघन्यावगाहनप्रमाणं घनांगुलासंख्यातभागमिति जानीमः ।। ३७९ ।।

स०चं–वहुरि जघन्य देशावधिज्ञानका विषय भूत क्षेत्रका लंबाई चौडाई उंचाईका प्रमाण हम न जाने हैं कितना कितना है जातैं इहां ऐसा उपदेश नाहीं परंतु परम गुरुनिका उपदेशकी परंपरातैं इतना जाने हैं जो भुज कोटि वेधनिका समीकरणतैं जो क्षेत्र फल होइ सो जघन्य अवगाहनाके समान घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र हो है आम्ही साम्ही दोय दिसानिविषै जो कोई एक दिशा संबंधी प्रमाण सो भुज कहिए । अवशेष दोय दिशानिविषै कोई एक दिशा संबंधी प्रमाण सो कोटि कहिए । ऊंचाईका प्रमाणकौं वेध कहिए । प्रवृत्तिविषैं उंचाई चौडाई लंबाई तीन नाम हैं सो इनिका क्षेत्र खंड विधानतैं समान प्रमाण करि क्षेत्र फल कीए जो प्रमाण आवै तितना क्षेत्र फल जानना । जघन्य अवधि ज्ञानके क्षेत्रका अर जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्रका क्षेत्र फल समान है इतना

तो हम जानैं हैं। अर भुज कोटि वेधका प्रमाण कैसें है? सो हम जानते नाहीं अधिक ज्ञानी जानै ही हैं॥ ३७९॥

अवरोगाहणमाणं उस्सेहंगुलअसंखभागस्स।
सूइस्स य घणपदरं होदि हु तक्खेत्तसमकरणे॥ ३८०॥

अवरावगाहनमानमुत्सेधांगुलासंख्यभागस्य।
सूचेश्च घनप्रतरं भवति हि तत्क्षेत्रसमीकरणे॥ ३८०॥

जी० प्र०—तर्हि तत्सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहनं कीदृग् अस्ति? इति चेत्, तदवगाहनं अनियतसंस्थानमस्ति तथापि क्षेत्रखंडनविधानेन भुजकोटिवेधानां समकरणे सति उत्सेधांगुलपरिभाषानिष्पन्नव्यवहारसूच्यंगुलं असंख्यातेन भक्त्वा तदेकभागमात्रभुजकोटिवेधानां अन्योन्यगुणनोत्पन्नघनांगुलासंख्यातभागमात्रं खलु परमागमे स्फुटं प्रसिद्धमागच्छति। तत्समानजघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रमित्यर्थः। २ । २ । गुणिते
३ । ३ ।
२
३
घनांगुलासंख्यातभागमात्रं भवति ६॥ ३८०॥
३

मं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकस्य जघन्यावगाहन कीदृश? इति प्रश्न उत्तरवचनमिदं तज्जघन्यावगाहनं अनियतसंस्थानमपि क्षेत्रखंडनविधानेन भुजकोटिवेधानां समकरणे सदृशीकरणे सति उत्सेधांगुलस्य—परिभाषानिष्पन्नव्यवहारसूच्यंगुलस्य येन केनाप्यसंख्यातेन खंडितस्य एकखंडमात्रभुजकोटिवेधानामन्योन्यगुणकारोत्पन्नं घनक्षेत्रं घनांगुलासंख्यातभागमात्रं खलु—परमागमे स्फुटं प्रसिद्धिमायाति, तत्समानं जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रं भवतीति तात्पर्यं। तन्न्यासः—
२ २ गुणितघनांगुलासंख्यातभागमात्र भवति ६ च शब्देन जघन्यावगाहन २ जघन्यदेशावधिक्षेत्रं च ईदृशं भवतीति समुच्चीयते॥ ३८०॥
३ ३ ३
२
३

स० चं०—इहां कोऊ प्रश्न करै कि जघन्य अवगाहनारूप क्षेत्रका प्रमाण कह्या सो कैसाक है? ताका समाधान

जघन्य अवगाहना रूप क्षेत्रका आकार कोऊ एक नियम रूप नाहीं तथापि क्षेत्र खंडविधान करि सदृश कीजिए तब भुजका वा कोटिका वा वेधका प्रमाण उत्सेधांगुलकों योग्य असंख्यातका भाग दीएं जो एक भागका प्रमाण होइ तितना जानना वहुरि भुजकौं वा कोटिकौं वा वेधकौं परस्पर गुणें घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र प्रकट क्षेत्र फल भया सो जघन्य अवगाहनाका प्रमाण है। याहीके समान जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र है। इहां क्षेत्र खंडन विधानकरि समीकरणका उदाहरण और भी दिखाइए है जैसैं लोकाकाश ऊंचाई चौडाई लंबाईविषैं हीनाधिक प्रमाण लीए है ताका क्षेत्र फल फैलाइए तब तीनसै तेतालीस राजू प्रमाण घनफल होइ अर जो हीनाधिककों बधाइ घटाइ समान प्रमाणकरि सात सात राजूकी ऊंचाइं लंबाई चौडाई कल्पि परस्पर गुणन करि क्षेत्र फल कीजिए तब भी तीनसै तेतालीस ही राजू होइ ऐसैंही इहां जघन्य क्षेत्रकी लंबाई चौडाई ऊंचाई हीनाधिक प्रमाण लीएं है परि क्षेत्र खंडन विधान करि समीकरण कीजिए तब ऊँचाईका वा चौडाईका वा लंबाईका प्रमाण उत्सेधांगुलके असंख्यातवे भागमात्र होइ। इनिकौं परस्पर गुणन कीए घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण घन क्षेत्र फल हो है सो इतनाही प्रमाण जघन्य अवगाहनाका है अर इतनाही प्रमाण जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका है तातैं समान कहैहैं ॥३८०॥

अवरं तु ओहिखेत्तं उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा।
सुहुमोगाहणमाणं उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥ ३८१ ॥

अवरं तु अवधिक्षेत्रं उत्सेधमंगुलं भवेद्यस्मात्।

सूक्ष्मावगाहनमानमुपरि प्रमाणं तु अंगुलकं ॥ ३८१ ॥

जी०—अ—तु-पुनः, जघन्यदेशावधिज्ञानविषयक्षेत्रं यज्जघन्यावगाहनसमानं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमुक्तं तदुत्सेधांगुलं व्यवहारांगुलमाश्रित्योक्तं भवति न प्रमाणांगुलं नाप्यात्मांगुलमाश्रित्य यस्मात्कारणात् सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनप्रमाणं जघन्यदेशावधिक्षेत्रं ततः कारणात्, देहगेह ग्रामनगरादिप्रमाणं उत्सेधांगुलेनैवेति परमागमे नियमितत्वात् व्यवहारांगुलमेवाश्रितं भवति। उपरि यत्र "अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदो

वि संखेज्जो, इत्यादिगाथासूत्रोक्त कांडकेषु अंगुलग्रहणं तत्र प्रमाणांगुलमेव ग्राह्यं । उत्तरोत्तरनिर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्राणां प्रमाणांगुलाश्रितत्वात् ॥ ३८१ ॥

मं. प्र०-तु-पुनः, जघन्यदेशावधिक्षेत्रं यज्जघन्यावगाहनसमानं घनांगुलासंख्यातभागमात्रमुक्तं तदुत्सेधांगुलमेव भवेत्—व्यवहारांगुलमाश्रित्य चोक्तं, न प्रमाणागुल नाप्यात्मागुलमित्यर्थः । तत्कुतः? इति चेत् यस्मात्कारणात्सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहनप्रमाण जघन्यदेशावधिज्ञानक्षेत्रं तस्मात्कारणात् व्यवहारागुलमाश्रित्योक्त । तज्जघन्यावगाहनमपि परमागमे देहगेहग्रामनगरादिप्रमाण उत्सेधागुलेनैवेति नियमितत्वात् व्यवहारागुलाश्रितमेव । उपरि—उत्तरत्र यत्र ' अगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज ' इत्यादि गाथासूत्रोक्तकांडकेषु अगुलग्रहण तत्र प्रमाणागुलमेव ग्राह्यं । उत्तरोत्तरनिर्दिश्यमानहस्तगव्यूतियोजनभरतादिक्षेत्राणा प्रमाणागुलाश्रितत्वात् ॥ ३८१ ॥

स० चं०—बहुरि जो यहु जघन्य अवगाहना समान जघन्य देशावधिका क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग मात्र कह्या सो उत्सेधांगुलका घन प्रमाण जो घनांगुल ताके असंख्यातवे भागमात्र जानना जातैं इहां सूक्ष्म निगोद लब्धि अपार्याप्तककी जघन्य अवगाहनाके समान जघन्य देशावधिका क्षेत्र कह्या सो शरीरनिका प्रमाण है सो उत्सेधांगुलहीतैं है जातैं परमागमविषै ऐसा कह्या है कि देह गेह ग्राम नगर इत्यादिकका प्रमाण उत्सेधांगुलतैं है तातैं इहां जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रमाण भी उत्सेधांगुलकी ही अपेक्षा जानना । इस उत्सेधांगुलका ही नाम व्यवहारांगुल है । बहुरि आगैं जो ' अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज ' इत्यादि सूत्र उक्त कांडकनिविषै अंगुल कह्या है सो वह अंगुल प्रमाणांगुल जानना । जातैं वाके आगै हस्त कोश योजन भरत क्षेत्रादि उत्तरोत्तर कहैं हैं । बहुरि आगमविषैं द्वीप क्षेत्रादिका प्रमाण प्रमाणांगुलतैं कह्या है तातैं तहां प्रमाणांगुलहीका ग्रहण जानना ॥ ३८१ ॥

अवरोहिखेत्तमज्झे अवरोही अवरदव्वमवगमदि ।
तद्दव्वस्सवगाहो उस्सेहासंखघणपदरा ॥ ३८२ ॥

अवरावधिक्षेत्रमध्ये अवरावधिः अवरद्रव्यमवगच्छति ।

तद्द्रव्यस्यावगाहः उत्सेधासंख्यघनप्रतराः ॥ ३८२ ॥

जी०–प्र०–जघन्यावधिक्षेत्रमध्ये स्थितं पूर्वोक्तं जघन्यद्रव्यं जघन्यदेशावधिज्ञानं जानाति तत्क्षेत्रमध्यस्थितानि औदारिकशरीरसंचयलोकविभक्तैकभागप्रमितखंडानि असंख्यातानि जानातीत्यर्थः । तज्जघन्यपुद्गलस्कंधस्योपरि एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधान् न जानातीति न वाच्यं, सूक्ष्मविषयज्ञानस्य स्थूलावबोधने सुघटत्वात् । द्रव्यावगाहक्षेत्रं तु जघन्यावधिविषयक्षेत्रादसंख्यातगुणहीनं भवति, तथाप्युत्सेधघनांगुलासंख्यातभागमात्रमेव भवति । तद्भुजकोटिवेधाः सुच्यंगुलासंख्यातैकभागमात्रा ज्ञातव्याः २ २ ॥ ३८२ ॥

aa aa
२
aa

म० प्र०–जघन्यावधिक्षेत्रमध्ये स्थितं पूर्वोक्त जघन्यद्रव्यं जघन्यदेशावधिज्ञानी जीवः अवगच्छति-जानाति,-तत्क्षेत्रमध्ये अवस्थितान्यसंख्येयानि औदारिकशरीरसंचयखंडानि सर्वाण्यपि जानातीत्यर्थः । ततः एकद्व्यादिप्रदेशोत्तरपुद्गलस्कंधान् जानातीति किमत्र वक्तव्य सूक्ष्मविषयस्य ज्ञानस्य स्थूलावबोधने सुघटत्वात् । तस्य जघन्यद्रव्यस्य अवगाहक्षेत्रं जघन्यावधिक्षेत्रादसंख्येयगुणहीनमपि उत्सेधघनांगुलासंख्येयभागमात्रं भवति । तस्य भुजकोटिवेधाः सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्राः २ २ ज्ञातव्याः ॥ ३८२ ॥

aa aa
२
a a

स० चं०–तींहि जघन्य अवधिज्ञान संबंधी क्षेत्रविषैं जे पूर्वोक्त जघन्य अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य तिष्ठै हैं तिनकौं जघन्य देशावधिज्ञानी जीव जानैं है तीहि क्षेत्रविषैं तैसे औदारिक शरीरके संचयकौं लोकका भाग दीए एक भाग मात्र खंड असंख्यात पाइए हैं तिनि सबनिकौं जानै है । बहुरि इस प्रमाणतैं एक दोय आदि जिन स्कंधनिके वधते प्रदेश होंहि तिनिकौं तो जानेही जानैं जातैं सूक्ष्मकौं जानैं स्थूलका जानना सुगम है । बहुरि जो पूर्वैं जघन्य अवधिज्ञान संबंधी द्रव्य कह्या था तिसकी अवगाहनाका प्रमाण तिस जघन्य अवधिका क्षेत्रका प्रमाणके

असंख्यातवे भागमात्र है तथापि घनांगुलके असख्यातवे भागमात्र ही है अर वाके भुज कोटि वेधका भी प्रमाण सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागमात्र है। असंख्यातके भेद घने हैं तातैं यथासंभव जानि लेना ॥ ३८२ ॥

आवलिअसंखभागं तीदभविस्सं च कालदो अवरं ॥

ओही जाणदि भावे कालअसंखेज्जभागं तु ॥ ३८३ ॥

आवल्यसंख्यभागमतीतभविष्यच्च कालतः अवरं ॥

अवधिः जानाति भावे कालासंख्यातभागं तु ॥ ३८३ ॥

जी० प्र०--कालेन जघन्यावधिज्ञान अतीतभविष्यत्कालघावल्यसंख्यातभागमात्रं जानाति ८ । स्वविषयैकद्रव्यगतव्यंजनपर्यायान् पूर्वोक्त-
a
रान् तावतो जानातीत्यर्थः । व्यवहारकालस्य द्रव्यस्य पर्यायस्वरूपं विनाऽन्यस्वरूपांतराभावात् । भावे तज्जघन्यद्रव्यगतवर्तमानपर्याये तु पुनः कालासंख्येयभाग तज्जघन्यावधिविषयकालस्यावल्यसंख्यातैकभागस्य असंख्यातैकभागमात्र जानाति ८ । एवं जघन्यदेशावधिज्ञानविषयद्रव्य-
aa
क्षेत्रकालभावानांरीमाविभागं प्ररूप्येदानीं द्वितीयादीन् देशावधिज्ञानविकल्पान् चतुर्विधविषयभेदानाह---

मं० प्र०---श्रीमदभयचंद्रसैद्धांतचक्रवर्तिविहितव्याख्यान विश्रांतमिति कर्णाटवृत्त्यनुरूपमयमनुवदति--

स० चं०--जघन्य अवधिज्ञान है सो कालतैं आवलीके असंख्यातवे भागमात्र अतीत अनागत कालकौं जानै है। बहुरि भावतैं आवलीका असंख्यातवां भागमात्र काल प्रमाणका असंख्यातवां भाग प्रमाण भाव तिनकौं जानै है। भावार्थ--जघन्य अवधिज्ञान पूर्वोक्त क्षेत्रविषै पूर्वोक्त एक द्रव्यके आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अतीत कालविषै वा तितना ही अनागत कालविषै जे आकाररूप व्यंजन पर्याय भए अर होहिगें तिनकौं जानै है जातैं व्यवहार कालकैं अर द्रव्यकैं पर्याय ही की पलटन हो है। बहुरि पूर्वोक्त क्षेत्रविषैं पूर्वोक्त द्रव्यके वर्तमान परिणमन रूप अर्थ पर्याय हैं तिनिविषैं आवलीका असंख्यातवां भागका असंख्यातवां भाग प्रमाण जे पर्याय तिनि

कों जानै है ॥ ऐसें जघन्य देशावधि ज्ञानके विषयभूत द्रव्य क्षेत्र काल भावनिकी सीमा मर्यादाका भेद कहि आगें तिस अवधिज्ञानके जे द्वितीयादि भेद तिनिकों च्यारि प्रकार विषय भेदकरि कहै हैं—

अवरदव्वादुपरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो।

सिद्धाणंतिमभागो अभव्वसिद्धादणंतगुणो ॥ ३८४ ॥

अवरद्रव्यादुपरिमद्रव्यविकल्पाय भवति ध्रुवहारः।

सिद्धानंतिमभागः अभव्यसिद्धादनंतगुणः ॥ ३८४ ॥

जी० प्र०—जघन्यदेशावधिविषयद्रव्यात् उपरितनद्वितीयाद्यवधिज्ञानविकल्पविषयद्रव्याणि आनेतुं सिद्धानंतैकभागः, अभव्यसिद्धेभ्योऽनंतगुणः ध्रुवभागहारः स्यात् ॥ ३८४ ॥

स० चं०—जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यतैं ऊपरि द्वितीयादि अवधि ज्ञानके भेदका विषयभूत द्रव्यका प्रमाण ल्यावनेके अर्थि ध्रुवहार जानना। सर्व भेदनिविषैं जिस भाग हारका भागदीएं प्रमाण आवै सो ध्रुव भागहार कहिए जैसें इस जघन्य देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकों ध्रुवभागहारके प्रमाणका भाग दीएं जो एक भागका प्रमाण आवै सो देशावधिका द्रव्यसंबंधी दूसरा भेदका विषयभूत द्रव्यका प्रमाण जानना। याकौं ध्रुवहारका भाग दीए जो एक भागका प्रमाण आवै सो देशावधिके तीसरे भेदका विषयभूत जानना। ऐसें सर्वावधि पर्यंत जानना। पहले पहले घने परमाणूनिका स्कंधरूप द्रव्यकौं ध्रुवभागहारका भाग दीएं पीछे पीछे एक भागमात्र थोरे परमाणूनिका स्कंध आवै सो पूर्वस्कधतैं सूक्ष्म स्कंध होइ सो ज्यों ज्यों सूक्ष्मकौं जानें त्यौं त्यौं ज्ञानकी अधिकता कहिए है जातैं सूक्ष्मकौं जानैं स्थूलका तौ जानना सहजही हो है। बहुरि [जो] वह ध्रुवभागहार कह्या था ताका प्रमाण सिद्ध राशिकौं अनंतका भाग दीजिए ताके एक भाग प्रमाण है। अथवा अभव्य सिद्ध राशिकौं अनंततैं गुणिए तीहि प्रमाण है ॥ ३८४ ॥

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे।
समयपबद्धपमाणं जाणिज्जो ओहिविसयम्हि ॥ ३८५ ॥

ध्रुवहारकार्मणवर्गणागुणकारं कार्मणवर्गणां गुणिते।
समयप्रबद्धप्रमाण ज्ञातव्यमवधिविषये ॥ ३८५ ॥

जी० प्र०—द्विरूपोनदेशावधिविकल्पमात्रध्रुवहाराद् गत्युत्पन्नेन कार्मणवर्गणागुणकारेण द्विरूपाधिकपरमावधिज्ञानविकल्पमात्रध्रुवहारसंवर्गसमुत्पन्नकार्मणवर्गणा गुणिता सती अवधिविषये समयप्रबद्धमात्रप्रमाणं स्यादिति ज्ञातव्यं ॥ ३८५ ॥ विशेषेण ध्रुवहारप्रमाणमाह—

स०चं०- देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद होंइ तितनेमें सौं दोय घटाइए जो प्रमाण होइ तितना ध्रुवहार माडि परस्पर गुणि जो प्रमाण होइ सो कार्माण वर्गणाका गुणकार जानना। तीहि कार्माण वर्गणाका गुणकारकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणैं जो प्रमाण होइ सो अवधिज्ञानका विषयविषै समयप्रबद्धका प्रमाण जानना। जो जघन्य देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य कहा था तिसहीका नाम इहां समयप्रबद्ध जानना। इसका विशेष आगैं कहैंगे ॥ ३८५ ॥ ध्रुवहारका प्रमाण सामान्यपनैं सिद्धराशिके अनंतवे भागमात्र कह्या अब विशेषपनैं ध्रुवहारका प्रमाण कहै हैं—

मणदव्ववग्गणाण वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो।
अवरुक्कस्सविसेसा रूवहिया तव्वियप्पा हु ॥ ३८६ ॥

मनोद्रव्यवर्गणानां विकल्पानंतिमसम खलु ध्रुवहारः।
अवरोत्कृष्टविशेषाः रूपाधिकास्तद्विकल्पा हि ॥ ३८६ ॥

जी० प्र०—मनोद्रव्यवर्गणाया यावंतो विकल्पास्तेषामनंतैकभागेन सम संख्यया समानं खलु ध्रुवहारप्रमाणं स्यात्। ते च विकल्पाः कति?

मनोवर्गणाजघन्यं ज तदुत्कृष्टे ज ख ख विशोध्य शेषे ज ख रूपाधिकीकृते एतावंतः ज ख खलु स्युः ॥ ३८६ ॥ ते जघन्योत्कृष्टे प्रमाणयति—

स० चं०—मनोवर्गणाके जितने भेद हैं तिनिकौं अनंतका भाग दीजिए एक भागका जितना प्रमाण होइ सो ध्रुवहारका प्रमाण जानना ते मनोवर्गणाके भेद केते हैं सो कहिए है मनोवर्गणाका जघन्य प्रमाणकौं मनोवर्गणाका उत्कृष्ट प्रमाणमेंसौं घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै तीहिविषैं एक अधिक कीएं मनोवर्गणाके भेदनिका प्रमाण हो है। आगैं सम्यक्त्व मार्गणाका कथनविषैं तेईस जातिकी पुद्गल वर्गणा कहैंगे तहां तैजसवर्गणा भाषावर्गणा मनोवर्गणा कार्माणवर्गणा इत्यादिकका वर्णन करैंगे सो जानना ॥ ३८६ ॥ इस मनोवर्गणाका जघन्य भेद अर उत्कृष्ट भेदका प्रमाण दिखाइए है—

अवरं होदि अणंतं अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो ॥ ३८७ ॥

अवरं भवति अनंतमनंतभागेनाधिकमुत्कृष्टं।
इति मनोभेदानंतिमभागो द्रव्ये ध्रुवहारः ॥ ३८७ ॥

जी० प्र०—मनोद्रव्यवर्गणाजघन्यं अनंतो भवति । तदनंतैकभागेनाधिकमुत्कृष्टं भवति इत्येवमुक्तरीत्या मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनंतैकभागः १— ज ख ख अवधिविषयद्रव्यविकल्पेषु ध्रुवहारप्रमाणं ज्ञातव्यं । अथवा—

स० चं०—मनोवर्गणाका जघन्यभेद अनंत प्रमाण है। अनंत परमाणूनिका स्कंधरूप जघन्य मनोवर्गणा है। इस प्रमाणकौं अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना उस जघन्य भेदका प्रमाणविषै जोडैं जो प्रमाण होइ

सोई मनोवर्गणाका उत्कृष्ट भेदका प्रमाण जानना। इतने परमाणूनिका स्कंधरूप उत्कृष्ट मनोवर्गणा हो है सो जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत पूर्वोक्तप्रकार जेते मनोवर्गणाके भेद भए तिनके अनंतवे भागमात्र इहां ध्रुवहारका प्रमाण है ॥ ३८७ ॥ अथवा अन्यप्रकार कहै हैं—

धुवहारस्स पमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि ।
समयपबद्धणिमित्तं कम्मणवग्गणगुणादो दु ॥ ३८८ ॥
होदि अणंतिमभागो तग्गुणगारो वि देसओहिस्स ।
दोऊण दव्वभेदपमाणद्धुवहारसंवग्गो ॥ ३८९ ॥

ध्रुवहारस्य प्रमाणं सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि ।
समयप्रबद्धनिमित्तं कार्मणवर्गणागुणतस्तु ॥ ३८८ ॥
भवत्यनंतिमभागस्तद्गुणकारोऽपि देशावधेः ।
द्व्यूनद्रव्यभेदप्रमाणध्रुवहारसंवर्गः ॥ ३८९ ॥

जी० प्र०—ध्रुवहारप्रमाणं सिद्धानंतैकभागमात्रमपि अवधिविषयसमयप्रबद्धप्रमाणमानेतु उक्तस्य कार्मणवर्गणागुणकारस्य अनंतैकभागमात्रं स्यात्। स च गुणकारोऽपि कियान्? देशावधिज्ञानस्य द्विरूपोनद्रव्यभेदमात्रध्रुवहारसंवर्गमात्रः स्यात्। कुतः? तद्द्रव्यरचनायामस्यां—

व त्रिचरमविकल्पादेकाद्येकोत्तरक्रमेण अधोऽधोगत्वा प्रथमविकल्पे कार्मणवर्गणायाः तावतां ध्रुवहाराणां गुणकारत्वेन सद्भावात्। गुणयगुणकारे गुणिते-
१-
प्रागुक्तो लोकविभक्तैकखडमात्रनोकर्मौदारिकसंचय एव स्यात्।—स ə १२—१६ ख
≡

९
व
व ९
व ९ ९ ।
व ९ ९ ९ ।
व ९ ९ ९ ९ ।
०
० ०
० १- २
व≡—६ । २ ९
प ə
ə

३८८ ॥ ३८९ ॥ देशावधिद्रव्यविकल्पान् प्रमाणयति—

स० चं०—ध्रुवहारका प्रमाण सिद्धराशिके अनंतवे भागमात्र है तथापि अवधिका विषयभूत समयप्रबद्धका प्रमाण ल्यावनेके निमित्त जो कार्माण वर्गणाका गुणकार कह्या ताके अनंतवे भागमात्र जानना। सो तिस कार्माण वर्गणाके गुणकारका प्रमाण कितना है? सो कहिए है देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद हैं तिनमें दोय घटाएं जो प्रमाण रहै तितना ध्रुवहार माडि परस्पर गुणन कीएं जो प्रमाण आवै तितना कार्माण वर्गणाका गुणकार जानना। ऐसा प्रमाण कैसें कह्या? सो कहिए है—देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी रचनाविषैं उत्कृष्ट अंतका जो भेद ताका विषय कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना जानना। बहुरि ताके नीचैं द्विचरम भेद ताका विषय कार्माण वर्गणा प्रमाण जानना। बहुरि ताके नीचैं त्रिचरम भेद ताका विषय कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवभागहारतैं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना जानना। बहुरि ताके नीचैं दोयवार ध्रुवभागहारकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणिए तब चतुर्थ चरमभेद होइ। ऐसैं ही एक एकवार अधिक ध्रुवहारकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणतैं दोय घाटि देशावधिके द्रव्यभेद प्रमाण ध्रुवहारनिके परस्पर गुणनतैं जो गु-

णकारका प्रमाण भया ताकरि कार्माण वर्गणाकौं गुणें जो प्रमाण भया सोई जघन्य देशावधिज्ञानका विषयभूत लोककरि भाजित नोकर्म औदारिकका संचयमात्र द्रव्यका परिमाण जानना। इहां उत्कृष्ट भेदतैं लगाइ जघन्यभेदपर्यंत रचना कही तातैं ऐसैं गुणकारका प्रमाण कह्या है बहुरि जो जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्टपर्यंत रचना कीजिए तो क्रमतैं ध्रुवहारके भाग देते जाइए अंतका भेदविषैं कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितना द्रव्य प्रमाण होइ इस कथन उस कथनविषैं कुछ अन्यथापना नाहीं है। ऊपरतैं कथन कीया तव ध्रुवहारका गुणकार कहते आए नीचैतैं कथन कीया तव ध्रुवहारका भागहार कहते आए प्रमाण दोऊ कथनविषैं एकसा है॥ ३८९॥ देशावधिके द्रव्यकी अपेक्षा केते भेद हैं? ते कहिए है—

अंगुलअसंखगुणिदा खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ॥ ३९०॥

अंगुलासंख्यगुणिताः क्षेत्रविकल्पाश्च द्रव्यभेदा हि।
क्षेत्रविकल्पा अवरोत्कृष्टविशेषो भवेदत्र॥ ३९०॥

जी० प्र०—सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणितदेशावधिविषयसर्वक्षेत्रविकल्पाः खलु तद्विषयद्रव्यविकल्पा भवंति, ते च क्षेत्रविकल्पाः अत्र देशावधिविषये अवरे जघन्यक्षेत्रे ६ (प/a) तद्विषयोत्कृष्टक्षेत्रे ≡ विशोधिते शेषमात्रा भवंति ≡−६ (प/a) एते एव सूच्यंगुलासंख्यातेन गुणयित्वा एकरूपयुताः देशावधिसर्वद्रव्यविकल्पाः स्युः ≡−६ (प/a) (a/१) ^ । २ कुतः? जघन्यद्रव्यं ध्रुवहारेण भक्त्वा भक्त्वा सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रद्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकप्रदेशो वर्धते अनेन क्रमेण लोकमात्रक्षेत्रोत्पत्तिपर्यंतं गमनिकासद्भावात् अवशिष्टप्रथमद्रव्यविकल्पस्य पश्चान्निक्षेपात्॥ ३९०॥ ते जघन्योत्कृष्टक्षेत्रे संख्याति—

स० चं०—देशावधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्रकी अपेक्षा जितने भेद हैं तिनकौं अंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना देशावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद हो है। ते क्षेत्रकी अपेक्षा केते भेद हैं? ते कहिए है-देशावधिज्ञानका जघन्य क्षेत्रका जो प्रदेशानिका प्रमाण है तितना भेद देशावधिका उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशानिका प्रमाणविषैं घटाएं जो अवशेष रहै तितना भेद देशावधिका क्षेत्रकी अपेक्षा है। इनिकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणिए तामैं एक मिलाएं जो प्रमाण होइ तितना देशावधिका द्रव्यकी अपेक्षा भेद है काहेतैं? सो कहिए है—देशावधिका जघन्य भेदविषैं पूर्वैं जो द्रव्यका परिमाण कह्या था ताकौं ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो देशावधिका द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद है। बहुरि इस दूसरा भेदविषैं क्षेत्रका परिमाण तितना ही है। भावार्थ—देशावधिका जघन्यतैं बंधता देशावधिज्ञान होइ तौ देशावधिका दूसरा भेद होइ सो जघन्य करि जो द्रव्य जानिए था ताकौं ध्रुव भागहारका भागदीएं जो सूक्ष्म स्कंधरूप द्रव्य होइ ताकौं जानैं अर क्षेत्रकी अपेक्षा जितना क्षेत्रकौं जघन्यवाला जाने था तितना ही क्षेत्रकौं दूसरा भेदवाला जानैं है। तातैं द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद भया क्षेत्रकी अपेक्षा प्रथम भेद ही है। बहुरि जो द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेदवाला जानैं था ताकौं ध्रुवहारका भाग दीए जो सूक्ष्मस्कंध भया ताकौं द्रव्यकी अपेक्षा तीसरा भेदवाला जानैं अर यहु क्षेत्रकी अपेक्षा तितना ही क्षेत्रकौं जानैं तातैं द्रव्यकी अपेक्षा तीसरा भेद भया क्षेत्रकी अपेक्षा प्रथम भेद ही है ऐसैं द्रव्यकी अपेक्षा सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद होइ तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्र मात्र क्षेत्रकौं जानैं। तातैं द्रव्यकी अपेक्षा तौ सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण भेद भए अर क्षेत्रकी अपेक्षा एक ही भेद भया बहुरि इहांसे आगैं ऐसैं ही ध्रुवहारका भाग देतैं देतैं सूच्यंगुलका असख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद होइ तहां पर्यंत जघन्य क्षेत्रतैं एक प्रदेश बंधता क्षेत्रकौं जानैं तहां क्षेत्रकी अपेक्षा दूसरा ही भेद रहै। बहुरि तहां पीछै सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग मात्र द्रव्य अपेक्षा भेदानिविषैं एक प्रदेश और बंधता क्षेत्रकौं जानैं तहां क्षेत्रकी अपेक्षा तीसरा भेद होइ ऐसैं ही सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद होतैं होतैं क्षेत्रकी अपेक्षा एक एक

बंधता भेद होइ सो ऐसैं लोक प्रमाण उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्रपर्यंत जानना । तातैं क्षेत्रकी अपेक्षा भेदनितै द्रव्यकी अपेक्षा भेद सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण गुणा कह्या । बहुरि अवशेष पहला द्रव्यका भेद था सो पीछैं मिलाया तातैं एकका मिलावना कह्या है ॥ ३९० ॥ तिन देशावधिके जघन्य क्षेत्र अर उत्कृष्ट क्षेत्रनिका प्रमाण कहैं हैं—

अंगुलअसंखभागं अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो ।
इदि वग्गणगुणगारो असंखधुवहारसंवग्गो ॥ ३९१ ॥

अंगुलासंख्यभागमवरमुत्कृष्टकं भवेल्लोकः ।
इति वर्गणागुणकारोऽसंख्यध्रुवहारसंवर्गः ॥ ३९१ ॥

जी० प्र०—अवरं जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रं सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यावगाहप्रमाणमिदं ६ । ८ । २२ अपवर्तितं

प १९ । ८ । ९ । ८ । २२ । ७ । ६ (ऊपर: ▪ १–; नीचे: a a a)

घनांगुलासंख्यातभागमात्रं भवति ६ (प/a) उत्कृष्टं लोकः जगच्छ्रेणिघनो भवति इत्येवं द्विरूपोनदेशावधिसर्वद्रव्यविकल्पमात्रासंख्यध्रुवहारसंवर्ग एव कार्मणवर्गणागुणकारः स्यात् ॥ ३९१ ॥ अथ क्रमप्राप्तं वर्गणाप्रमाणमाह—

सं० चं०—जघन्य देशावधिका विषयभूत क्षेत्र सूक्ष्मनिगोद लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाके समान घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र जानना । बहुरि देशावधिका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र लोकप्रमाण जानना । उत्कृष्ट देशावधिवाला सर्वलोकविषैं तिष्ठता अपना विषयकौं जानैं ऐसैं दोय घाटि देशावधिका द्रव्यकी अपेक्षा जितने

भेद होंइ तितना ध्रुवहार मांडि परस्पर गुणन करना सोई संवर्ग भया यों करतें जो प्रमाण भया होइ सोई कार्माण वर्गणाका गुणकार जानना। सो कह्या ही था ॥ ३९१ ॥ आगैं वर्गणाका परिमाण कहैं हैं—

वग्गणरासिपमाणं सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराण संवग्गो ॥ ३९२ ॥

वर्गणाराशिप्रमाणं सिद्धानंतिमप्रमाणमात्रमपि।
द्विकसहितपरमभेदप्रमाणावहाराणां संवर्गः ॥ ३९२ ॥

जी० प्र०—कार्मणवर्गणाराशिप्रमाणं सिद्धराश्यनंतैकभागमात्रमपि द्विरूपाधिकपरमावधिसर्वभेदमात्रध्रुवहारसंवर्गमात्रं स्यात् व ॥ ३९२ ॥ ते भेदाः कति ? इति चेदाह—

स चं०—कार्मांण वर्गणा राशिका प्रमाण सिद्ध राशिकै अनंतवे भागमात्र है तथापि परमावधि ज्ञानके जेते भेद हैं तिनमें दोय मिलाएं जो प्रमाण होइ तितना ध्रुवहार मांडि परस्पर गुणन कीयें जो प्रमाण होइ तितना परमाणूनिका स्कंधरूप कार्माण वर्गणा जाननी जातैं कार्माणवर्गणाकौं एकबार ध्रुवहारका भाग दीएं उत्कृष्ट देशावधिका विषय भूत द्रव्य होइ पीछैं परमावधिके जितने भेद हैं तेतीवार क्रमतैं ध्रुवहारका भाग दीएं उत्कृष्ट परमावधिका विषयभूत द्रव्य होइ ताकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं एक परमाणू मात्र सर्वावधिका विषय हो है ॥ ३९२ ॥ ते परमा[वधि]के भेद कितने हैं ? सो कहिए है—

परमावहिस्स भेदा सगओगाहणवियप्पहदतेऊ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे ॥ ३९३ ॥

परमावधेर्भेदाः स्वकावगाहनाविकल्पहततेजसः ।
इति ध्रुवहारं वर्गणागुणकारं वर्गणां जानीहि ॥ ३९३ ॥

जी० प्र०—परमावधिज्ञानस्य भेदा तेजस्कायिकावगाहनविकल्पैर्गुणिततेजस्कायिकजीवराशि ≡ a मात्रा भवंति ≡ a । ६ । a । ते (१–१ / प) अवगाहनविकल्पाः प्राग्मत्स्यरचनायां तज्जघन्यमिदं ६ । ८ । २२ (प १९ । ८ । ७ । ८ । २२ ११९ ।) तदुत्कृष्टे ६ । ८ । ८ (प ६ । ८ । ८ । ११९) विशोध्य शेषमपवर्त्य ६ । a एकरूपे निक्षिप्ते एतावतः ६ । a । इत्येवं ध्रुवहारप्रमाणं वर्गणागुणकारप्रमाणं वर्गणाप्रमाणं च जानीहि ॥ ३९३ ॥

स० चं०—अग्निकायके अवगाहनाके जेते भेद हैं तिनकरि अग्निकायके जीवनिका परिमाणकौं गुणैं जो परिमाण होइ तितना परमावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद हैं सो अग्निकायकी जघन्य अवगाहनाका प्रदेशनिका परिमाणकौं अग्निकायकी उत्कृष्ट अवगाहनाका परिमाणविषैं घटाएं जो प्रमाण होइ तिनमें एक मिलाएं अग्निकायकी अवगाहनाके भेदनिका प्रमाण हो है । सो जीवसमासका अधिकारविषैं मत्स्यरचना करी है तहां कहे ही हैं । बहुरि अग्निकायका जीवनिका परिमाण कायमार्गणाका अधिकारविषैं कह्या है सो जानना । इनि दोऊनिकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तितना परमावधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा भेद है ऐसैं ध्रुवहारका प्रमाण, वर्गणा गुणकारका प्रमाण, वर्गणाका प्रमाण हे शिष्य ! तू जानि ॥ ३९३ ॥

देसोहिअवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे बिदियं ।
तदियादिबियप्पेसु वि असंखवारोत्ति एस कमो ॥ ३९५ ॥

देशावध्यवरद्रव्यं ध्रुवहारेणावहिते भवेद्द्वितीयं ।
तृतीयादिविकल्पेष्वपि असंख्यवार इत्येष क्रमः ॥ ३९४ ॥

जी० प्र०—यत्प्रागुक्तं देशावधिज्ञानविषयजघन्यद्रव्यं—स ∂ १२– १६ ख । ध्रुवहारेण एकेन भक्तं द्वितीयदेशावधिविषयद्रव्यं भवति— स ∂ १२–१६ ख । एवं तृतीयादिविकल्पेष्वपि असंख्यातवारपर्यंतमेष एव क्रमः कर्तव्यः ॥ ३९४ ॥ तथा सति किं स्यादिति चेदाह—

स० चं —देशावधिज्ञानका विषयभूत जघन्य द्रव्य पूर्वें कह्या था ताकौं ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ सो दूसरा देशावधिकेभेदका विषयभूत द्रव्य होइ । ऐसैं ही ध्रुवहारका भाग देतैं देतैं तीसरा चौथा इत्यादि भेदनिका विषयभूत द्रव्य होहि ऐसैं असंख्यातवार अनुक्रम करना ॥ ३९४ ॥ ऐसैं अनुक्रम होतैं कहा होइ ? सो कहिए है—

देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं ।
तेजोभासमणाणं वग्गणयं केवलं जत्थ ॥ ३९४
पस्सदि ओही तत्थ असंखेज्जाओ हवंति दीउवही ।
वासाणि असंखेज्जा होंति असंखेज्जगुणिदकमा ३९६ जुम्मं

देशावधिमध्यभेदे सविस्रसोपचयतेजःकर्माङ्गं ।
तेजोभाषामनसां वर्गणां केवलां यत्र ॥ ३९५ ॥

पश्यत्यवधिस्तत्र असंख्येया भवंति द्वीपोदधयः ।
वर्षाणि असंख्यातानि भवंति असंख्यातगुणितक्रमाणि ॥ ३९६ ॥

जी० प्र०—देशावधिज्ञानमध्यमविकल्पेषु यत्र सविस्रसोपचयं तैजसशरीरस्कंधं तदग्रे यत्र तादृश कार्माणशरीरस्कंधं तदग्रे यत्र केवलां विविस्रोपचयां तैजसवर्गणां तदग्रे यत्र केवलां भाषावर्गणां तदग्रे केवलां मनोवर्गणां च अवधिज्ञानं जानाति । तत्र पंचसु स्थानेषु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपोदधयः काला असंख्यातवर्षाणि च भवंति तथापि उत्तरोत्तरासंख्यातगुणितक्रमाणि ॥ ३९५–३९६ ॥

स० चं —देशावधिके मध्य भेदनिविषैं देशावधिज्ञान जिस भेदविषैं विस्रसोपचय सहित तैजस शरीररूप स्कंधकौं जानैं हैं बहुरि तिसही क्रमतैं जिस भेदविषैं विस्रसोपचयसहित कार्माण शरीर स्कंधकौ जानै है बहुरि इहांतैं आगैं जिस भेदविषैं विस्रसोपचयरहित केवल तैजस वर्गणाकौं जानैं है। बहुरि इहांतैं आगैं भेदविषैं विस्रसोपचयरहित केवल भाषावर्गणाकौ जानै हैं। इहांतैं आगैं जिस भेदविषैं विस्रसोपचयरहित केवल मनोवर्गणाको जानै हैं तहां इनि पांच स्थाननिविषैं क्षेत्रका प्रमाण असंख्यात द्वीप समुद्र जानना। अर काल असंख्यात वर्षमात्र जानना। पूर्वोक्त पंच भेद लीएं अवधिज्ञान असंख्यात द्वीप समुद्रविषैं पूर्वोक्त स्कंध असंख्यात वर्षपर्यंत अतीत अनागत यथायोग्य पर्यायके धारी तिनिकौं जानै है परि इतना विशेष है जो इनि पंचभेदनिविषैं पहिला भेदसंबंधी क्षेत्रकालका परिमाण है। तातैं दूसरा भेदसंबंधी क्षेत्रकालका परिमाण असंख्यातगुणा है। दूसरेतैं तीसरेका असंख्यात गुणा है। ऐसैं ही पांचवां भेदपर्यंत जानना। सामान्यपनैं सबका क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र अर काल असंख्यात वर्ष कहे हैं जातैं असंख्यातके भेद घने हैं ॥ ३९५–३९६ ॥

तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोवचयं ।
धुवहारस्स विभज्जं सव्वोही जाव ताव हवे ॥ ३९७ ॥

ततः कार्मणस्य एकसमयप्रबद्धं विविस्रसोपचयं ।
ध्रुवहारस्य विभाज्यं सर्वावधिः यावत्तावद्भवेत् ॥ ३९७ ॥

जी० प्र०—ततः पश्चात् तां मनोवर्गणां ध्रुवहारेण पुनः पुनर्भक्त्वा यत्र विकल्पे विविस्रसोपचयः-कार्मणैकसमयप्रबद्ध उत्पद्यते, तत उपरि स एव ध्रुवहारस्य भाज्यं भवेत् यावत्सर्वावधिज्ञानं तावत् ॥ ३९७ ॥

स० चं०—तहां पीछैं तिस मनोवर्गणाकौं ध्रुवहारका भाग दीजिए ऐसैं ही भाग देतैं देतैं विस्रसोपचयरहित कार्माणका समय प्रबद्धरूप द्रव्य होइ । याकौं भी ध्रुवहारका भाग दीजिए । ऐसैं ही ध्रुवहारका भाग यावत् सर्वावधिज्ञान होइ तहां पर्यंत जानना । विस्रसोपचयका स्वरूप योगमार्गणाविषैं कह्या है सो जानना ॥३९७॥

एदम्हि विभज्जंते दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं ।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु ॥ ३९८ ॥

एतस्मिन् विभज्यमाने द्विचरमदेशावधौ वर्गणा ।
चरमे कार्मणस्यैकवर्गणा एकवारभक्ता तु ॥ ३९८ ॥

जी० प्र०—एतस्मिन् कार्मणसमयप्रबद्धे विभज्यमाने सति द्विचरमे देशावधिविकल्पे कार्मणवर्गणैवावशिष्यते, तु—पुनः, चरमे ध्रुवहारेण एकवारभक्तैव अवशिष्यते ॥ ३९८ ॥

स० च —इस कार्माण समय प्रबद्धकौं ध्रुवहारका भागदीएं संतैं देशावधिका द्विचरम भेदविषैं कार्माणवर्गणा रूप विषयभूत द्रव्य हो है जातैं ध्रुवहारमात्र वर्गणानिका समूह रूप समयप्रबद्ध है । बहुरि याकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं चरम जो देशावधिका अंतका भेद तिसविषैं विषयभूत द्रव्य हो है ॥ ३९८ ॥

अंगुलअसंखभागे दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्हि ।

एगागासपदेसो वड्ढदि संपुण्णलोगोत्ति ॥ ३९९ ॥

अंगुलासंख्यभागे द्रव्यविकल्पे गते तु क्षेत्रे ।
एकाकाशप्रदेशो वर्धते संपूर्णलोक इति ॥ ३९९ ॥

जी० प्र०—सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रेषु द्रव्यविकल्पेषु गतेषु जघन्यक्षेत्रस्योपर्येकाकाशप्रदेशो वर्धते इत्ययं क्रमः तावद्विधेयः यावत् सर्वोत्कृष्टदेशावधिविषयक्षेत्रं संपूर्णलोको भवति ≡ ॥ ३९९ ॥

स० चं०—सूच्यंगुलका असख्यातवां भागप्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद होतै संतैं क्षेत्रविषैं एक आकाशका प्रदेश बंधै ऐसा अनुक्रम जघन्य देशावधिके क्षेत्रतैं उत्कृष्ट देशावधिज्ञानका विषयभूत सर्व संपूर्णलोक तीहिं पर्यंत जानना। सो यहु कथन टीकाविषैं पूर्वैं विशदरूप कह्या ही था ॥ ३९९ ॥

आवलिअसंखभागो जहण्णकालो कमेण समयेण ।
वड्ढदि देसोहिवरं पल्लं समऊणयं जाव ॥ ४०० ॥

आवल्यसंख्यभागो जघन्यकालः क्रमेण समयेन ।
वर्धते देशावधिवरं पल्यं समयोनकं यावत् ॥ ४०० ॥

जी० प्र०—जघन्यदेशावधिविषयकालः आवल्यसंख्येयभागः $\frac{८}{a}$ सोयं क्रमेण ध्रुवाध्रुववृद्धिरूपेण एकैकसमयेन तावद्वर्धते यावदुत्कृष्टदेशावधिविषयः समयोनं पल्यं भवेत् प---१ ॥ ४०० ॥ अथ तावेव क्रमौ एकान्नविंशतिकांडकेषु वक्तुमनास्तावत्प्रथमकांडके गाथासार्धद्वयेनाह—

स० चं०—देशावधिका विषयभूत जघन्य काल आवलीका असख्यातवां भाग प्रमाण है सो यहु अनुक्रमतैं ध्रुववृद्धिकरि अथवा अध्रुववृद्धिकरि एक एक समय पर्यंत तहां पर्यंत बधै जहां एक समयघाटि पल्यप्रमाण उत्कृष्ट देशावधिका विषयभूत काल होइ, उत्कृष्ट देशावधिज्ञान एक समय घाटि पल्यप्रमाण अतीत अनागत कालविषैं

भए वा होंहिगे जे स्वयोग्य विषय तिनैं जानैं है ॥ ४०० ॥ आगैं क्षेत्रकालका परिमाण उगणीस कांडकनिविषैं कह्या चाहै है । कांडक नाम पर्वका है जैसैं साठेकी पैली हो है सो गांठितैं आगिली गांठि पर्यंत जो होइ ताकौं एक पर्व कहिए तैसैं किसी विवक्षित भेदतैं लगाइ किसी विवक्षित भेदपर्यंत जेते भेद होंहि तिनिका समूह सो एक कांड कहिए । ऐसैं देशावधिज्ञानविषैं उगणीस कांडक हैं तहां प्रथम कांडकविषैं क्षेत्रकालका परिमाण अढाई गाथानिकरि कहैं हैं—

अंगुलअसंखभागं धुवरूवेण य असंखवारं तु ।
असंखसंखं भागं असंखवारं तु अद्धुवगे ॥ ४०१ ॥

अंगुलासंख्यवारं ध्रुवरूपेण च असंख्यवारं तु ।
असंख्यसंख्यं भागं असंख्यवारं तु अध्रुवगे ॥ ४०१ ॥

जी० प्र०—घनांगुलासंख्यातैकभागं आवलिभक्तघनांगुलमात्रं ध्रुवरूपेण वृद्धिप्रमाणं स्यात् सा च वृद्धिः प्रथमकांडकचरमविकल्पपर्यंतं असंख्यात वारं भवति । तु-पुनः, तत्रैव कांडके अध्रुववृद्धिविवक्षायां तद्वृद्धि--प्रमाणं घनांगुलस्यासंख्यातैकभागमात्रं संख्यातैकभागमात्रं च स्यात् सापि तच्चरमपर्यंतमसंख्यातवारं भवति ॥ ४०१ ॥

स० चं०—घनांगुलकौं आवलीका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ऐसा अंगुलका असंख्यातवां भागमात्र ध्रुवरूपकरि वृद्धिका प्रमाण हो है सो ध्रुववृद्धि प्रथम कांडकविषैं अंतका भेद पर्यंत असंख्यातवार हो है । बहुरि तिस ही प्रथम कांडकविषैं अंतका भेदपर्यंत अध्रुववृद्धि भी असंख्यातवार हो है सो अध्रुववृद्धिका परिमाण घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण वा घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण है ॥ ४०१ ॥

धुवअद्धुवरूवेण य अवरे खेत्तम्मि वड्ढिदे खेत्ते ।

अवरे कालम्हि पुणो एक्केकं वड्ढदे समयं ॥ ४०२ ॥

ध्रुवाध्रुवरूपेण च अवरे क्षेत्रे वर्द्धिते क्षेत्रे ।
अवरे काले पुनः एकैको वर्धते समयः ॥ ४०२ ॥

जी० प्र०—तेन उक्तध्रुववृद्धिप्रमाणेन अध्रुववृद्धिप्रमाणेन वा जघन्यदेशावधिविषयक्षेत्रस्योपरि क्षेत्रे वर्धिते जघन्यकालस्योपरि एकैकः समयो वर्धते ॥ ४०२ ॥

स० चं०—तीहिं पूर्वोक्त ध्रुववृद्धि प्रमाणकरि वा अध्रुववृद्धि प्रमाणकरि जघन्य देशावधिका विषयभूत क्षेत्रकैं वधतैं संतैं जघन्य कालके ऊपरि एक एक समय बधै है। भावार्थ-पूर्वं यहु क्रम कह्या था जो द्रव्यकी अपेक्षा सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागप्रमाण भेद व्यतीत होइ तब क्षेत्रविषैं एक प्रदेश बधै। अब इहां कहिए है जघन्य ज्ञानका विषयभूत जेता क्षेत्र प्रमाण कह्या ताके ऊपरि पूर्वोक्त प्रकारकरि एक एक प्रदेश वधते वधतैं आवलीका भाग घनांगुलकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितना प्रदेश बधै तब जघन्य देशावधिका विषयभूत कालका प्रमाण कह्या था तातैं एक समय और बंधता कालका प्रमाण होइ। बहुरि तितना ही प्रदेश क्षेत्रविषैं पूर्वोक्त प्रकारकरि बधै तब तिसकालतैं एक समय बधता कालका प्रमाण होइ ऐसैं। तितने तितने प्रदेश बधैं जो कालप्रमाणविषैं एक एक समय बधै सो तौ ध्रुववृद्धि कहिए। बहुरि पूर्वोक्तप्रकार ही विवक्षित क्षेत्रतैं कहीं घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेशनिकी वृद्धि भए पूर्व कालतैं एकसमय बंधता काल होइ, कहीं घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेशनिकी वृद्धि भएं पहले कालतैं एक समय बंधता काल होइ तहां अध्रुववृद्धि कहिए ऐसैं प्रथमकांडकविषैं अंत भेद पर्यंत ध्रुववृद्धि होइ तौ असख्यातवार हो है बहुरि अध्रुववृद्धि होइ तौ असंख्यातवार हो है ॥ ४०२ ॥

संखातीदा समया पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी ।
खेत्तं कालं अस्सिय पढमादी कंडये वोच्छं ॥ ४०३ ॥

संख्यातीताः समयाः प्रथमे पर्वे उभयतो वृद्धिः ।
क्षेत्रं कालमाश्रित्य प्रथमादीनि कांडकानि वक्ष्ये ॥ ४०३ ॥

जी० प्र०—एवं सति प्रथमे पर्वणि कांडके उभयतः ध्रुवरूपतोऽध्रुवरूपतो वा वृद्धिः क्षेत्रवृद्धिःसंख्यातीताः समयाः जघन्यकालोनतदुत्कृष्टकालमात्राः स्युः ८ । ३-१/१।३ । क्षेत्रवृद्धिस्तु तज्जघन्यक्षेत्रोनतदुत्कृष्टक्षेत्रमात्री ६ । ३-१/१।३ इमौ वृद्धिक्षेत्रकालौ जघन्यक्षेत्रकालाभ्यां—६ । ८/३ ३ समच्छेदेन ६ । १ । ८ । १ । / ३ । १ । ३ । १ मेलयित्वा ६ । ३ । ८ । ३ / १ । ३ । १ । ३ अपवर्तितौ । ६ । ८ / १ । १ प्रथमकांडकचरमविकल्पविषयौ क्षेत्रकालौ स्यातां इतः परं क्षेत्रं कालं चाश्रित्य प्रथमादीनि एकान्नविंशतिकांडकानि वक्ष्ये इत्याचार्यप्रतिज्ञा ॥ ४०३ ॥

स० चं —ऐसैं होतैं प्रथम पर्व कहिए पहला कांडक तीहिविषैं उभयतः कहिए ध्रुवरूप अध्रुवरूप दोऊ वृद्धिकौं लीएं असंख्याते समय हो हैं । भावार्थ प्रथमकांडकविषैं जघन्य कालका परिमाणतैं पूर्वोक्तप्रकार ध्रुववृद्धिकरि वा अध्रुववृद्धिकरि एक एक समय प्रबढ्तैं असंख्यात समय बधे हैं । ते कितने हैं ? प्रथमकांडकका उत्कृष्ट कालके समयनिका प्रमाणमेंस्यों जघन्य कालके समयनिका प्रमाण घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै तितने असंख्याते समय प्रथम कांडकविषैं बधे हैं । ऐसैं ही प्रथम कांडकका उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाणमेंस्यों जघन्य क्षेत्रके प्रदेशनिका प्रमाण घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहै तितने प्रदेश प्रथम कांडकनिविषैं पूर्वोक्त प्रकारकरि बधे हैं । अब जो वृद्धिरूप समयनिका प्रमाण कह्या सो जघन्य काल आवलीका असंख्यातवां भागमात्र तीहिविषैं जोडिए तब प्रथम कांडकका अतभेदविषैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल हो है । बहुरि वृद्धिरूप प्रदेशनिका परिमाणकौं जघन्य क्षेत्र घनांगुलका असंख्यातवां भागमात्र तीहिविषैं मिलाएं प्रथम कांडकका अंत भेदविषैं घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र हो हैं । इहांतैं आगैं विषयभूत क्षेत्रकाल अपेक्षा देशावधिके उगणीस कांडक कहैंगे ऐसा आचार्य प्रतिज्ञा करी है ॥ ४०३ ॥

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्जदोवि संखेज्जो ।

अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥ ४०४ ॥

अंगुलावल्योः भागोऽसंख्येयोऽपि संख्येयः ।

अंगुलमावल्यंत आवलिकाश्चांगुलपृथक्त्वं ॥ ४०४ ॥

जी० प्र०—प्रथमकांडके क्षेत्रकालौ जघन्यौ घनांगुलावल्योरसंख्यातैकभागौ ६ । ८ उत्कृष्टौ तयोः संख्येयभागौ ६ । ८ द्वितीयकांडके क्षेत्रं घनांगुलं । कालः आवल्यंतः-किंचिदूनावलिरित्यर्थः ६ । ८– तृतीयकांडके क्षेत्रं घनांगुलपृथक्त्वं कालः आवलिपृथक्त्वं पृ ६ । ८ ॥ ४०४ ॥

स० चं०—प्रथम कांडकविषैं जघन्य क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है अर जघन्यकाल आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि तिस ही प्रथम कांडकविषैं उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है अर काल आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि आगैं उत्कृष्ट भेद अपेक्षा दूसरा कांडकविषैं क्षेत्र घनांगुल प्रमाण है अर काल 'आवलियंत' कहिए किछू घाटि आवली प्रमाण है। बहुरि तीसरा कांडकविषैं क्षेत्र पृथक्त्व घनांगुल प्रमाण है अर काल पृथक्त्व आवली प्रमाण है। तीनके तौ ऊपरि अर नवमेके नीचैं पृथक्त्व संज्ञा जाननी ॥ ४०४ ॥

आवलियपुधत्तं पुण हत्थं तह गाउयं मुहुत्तं तु ।
जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णुवीसं तु ॥ ४०५ ॥

आवलिपृथक्त्वं पुनः हस्तस्तथा गव्यूतिः मुहूर्तस्तु ।

योजनं भिन्नमुहूर्तः दिवसांतः पंचविंशातिस्तु ॥ ४०५ ॥

जी० प्र०—चतुर्थकांडके कालः आवलिपृथक्त्वं । क्षेत्रं एकहस्तः । ह १ । ८ पृ । पंचमकाडके क्षेत्रं एककोशः । कालः अंतर्मुहूर्तः । को १ । का २ १ षष्ठकांडके क्षेत्रमेकयोजन, कालः भिन्नमुहूर्तः । यो १ का भिन्न मु० १– । सप्तमकांडके कालः किंचिदूनदिवसः क्षेत्रं पंचविंशतियोजनानि यो २५ का दि १– ॥ ४०५ ॥

स० च०—चौथा कांडकविषैं काल पृथक्त्व आवली प्रमाण अर क्षेत्र एक हाथ प्रमाण है। बहुरि पांचवां कांडकविषैं क्षेत्र एक कोश अर काल अंतर्मुहूर्त है बहुरि छठा कांडकविषैं क्षेत्र एक योजन अर काल भिन्न मुहूर्त कहिए किछू घाटि मुहूर्त है। बहुरि सातवां कांडकविषैं काल किछू घाटि एकदिन अर क्षेत्र पचीस योजन है ॥४०४॥

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुवलोए वासपुधत्तं च रुचगम्मि ॥ ४०६ ॥

भरते अर्धमासः साधिकमासश्च जंबूद्वीपे ।
वर्षश्च मनुजलोके वर्षपृथक्त्व च रुचके ॥ ४०६ ॥

जी० प्र०—अष्टमकांडके क्षेत्र-भरतक्षेत्रं, काल अर्धमासः, भर अर्धमा=। नवमकांडके क्षेत्रं जबूद्वीपः, कालः साधिकमासः, जं= । मा १ । दशमकांडके क्षेत्रं मनुष्यलोकः कालः एकवर्षः, ४५ ल वर्ष १ । एकादशे कांडके क्षेत्रं रुचकद्वीपः, कालः वर्षपृथक्त्वं रु । व पृं ॥ ४०६ ॥

स० चं०—आठवां कांडकविषैं क्षेत्र भरतक्षेत्र अर काल आधा मास है। बहुरि नवमा कांडकविषैं क्षेत्र जंबूद्वीप प्रमाण अर काल किछू अधिक एक मास है। बहुरि दशवां कांडकविषैं क्षेत्र मनुष्य लोक अढाई द्वीप प्रमाण अर काल एक वर्ष है। बहुरि ग्यारहां कांडकविषैं क्षेत्र रुचक द्वीप अर काल पृथक्त्व वर्ष प्रमाण है ॥ ४०६ ॥

संखेज्जपमे वासे दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा ।
वासम्मि असंखेज्जे दीवसमुद्दा असंखेज्जा ॥४०७॥

संख्यातप्रमे वर्षे द्वीपसमुद्रा भवंति संख्याताः ।
वर्षे असंख्येये द्वीपसमुद्रा असंख्येयाः ॥ ४०७ ॥

जी० प्र०—द्वादशे कांडके क्षेत्रं संख्येयद्वीपसमुद्राः । कालः संख्यातवर्षाणि द्वी=रा=१ वर्ष १ । उपरित्रयोदशादिषु कांडकेषु तैजसशरीरादिद्रव्यविकल्पस्थानेषु क्षेत्राणि असंख्यातद्वीपसमुद्राः कालः असंख्यातवर्षाणि उभयेऽपि असंख्यातगुणितक्रमेण भवंति । चरमकांडकचरमे द्रव्यं ध्रुवहारभक्तकार्मणवर्गणा व क्षेत्रं संपूर्णलोकः ≡ कालः समयोनपल्यं प—१/९ ॥ ४०७ ॥

स० चं०—बारहां कांडकविषैं क्षेत्र संख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण अर काल संख्यात वर्ष प्रमाण है। बहुरि तेरहां कांडक जे तैजस शरीरादिक द्रव्यकी अपेक्षा पूर्वै स्थानक कहे तिनिविषैं क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र प्रमाण है अर काल असंख्यात वर्ष प्रमाण है परि इनविषैं इतना विशेष है-तेरहां चौदहांविषैं असंख्यातगुणा क्षेत्रकाल है ऐसैं ही उत्तरोत्तर असंख्यात गुणा क्षेत्र काल जानना । बहुरि उगणीसवां अंतका कांडकविषैं द्रव्य तौ कार्माण वर्गणाकौं ध्रुवहारका भाग दीजिए तीहि प्रमाण अर क्षेत्र संपूर्ण लोकाकाश प्रमाण अर काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है ॥ ४०७ ॥

कालविसेसेणवहिदखेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी।
अद्धुववड्ढीवि पुणो अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि ॥ ४०८ ॥

कालविशेषेणावहितक्षेत्रविशेषो ध्रुवा भवेद्वृद्धिः ।
अध्रुववृद्धिरपि पुनः आविरुद्धा इष्टकांडे ॥ ४०८ ॥

जी० प्र०—विवक्षितकांडके जघन्यक्षेत्रं स्वोत्कृष्टक्षेत्रे जघन्यकालं च स्वोत्कृष्टकाले विशोध्य शेषराशी क्षेत्रकालविशेषौ स्यातां । तत्र प्रथमकांडके कालविशेषेण ८ । a-१/१ । a क्षेत्रविशेषः ६ । a-१/१ । a भक्त्वा ६ a-१/१ a = a-१/१ a अपवर्तितः ६/८ ध्रुवावृद्धिर्भवेत् । सूच्यंगुलासंख्येयभागमात्रद्रव्यनिकल्पेषु अवस्थितरूपेण गतेषु एकप्रदेशः क्षेत्रे वर्धते । अनेन क्रमेण आवलिभक्तघनांगुलमितप्रदेशाः जघन्यक्षेत्रस्योपरि वर्धंते । तदा जघन्यकालस्योपरि एकः समयो वर्धते । एवं तत्कांडकचरमपर्यंतं ध्रुवरूपेण जघन्यकालस्योपरि वर्धितसमयप्रमाणमिदं । ८ a-१/१ a अत्र च जघन्यकाले ८/a सम-

च्छेदेन ६ । ७ । मिलिते प्रथमकांडकचरमे घनांगुलसंख्येयभागो भवति ६ एवं सर्वकांडकेषु ध्रुववृद्धिं साधयेत् । अध्रुववृद्धिरपि विवक्षितकांडकेन त-
a ७ ७
त्क्षेत्रकालाविरोधेन वक्तव्या ॥ ४०८ ॥ तद्यथा—

स० चं —विवक्षित कांडकका जघन्य क्षेत्रके प्रदेशनिका परिमाण तिस ही कांडकका उत्कृष्ट क्षेत्रके प्रदेशनिका परिमाणमें घटाएं जो प्रमाण रहै ताकौं क्षेत्र विशेष कहिए। बहुरि विवक्षित कांडकका जघन्य कालकें समयनिका परिमाण तिस ही कांडकका उत्कृष्ट कालके समयनिका परिमाणविषैं घटाए अवशेष जो परिमाण रहै ताकौं कालविशेष कहिए। तहां क्षेत्र विशेषकौं काल विशेषका भाग दीए जो प्रमाण होइ सोई तिस कांडकविषैं ध्रुववृद्धिका परिमाण जानना। सो प्रथम कांडकविषैं ऐसैं करतैं घनांगुलकौं आवलीका भाग दीए जो प्रमाण होइ सो ध्रुववृद्धिका प्रमाण जानना। सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण द्रव्यकी अपेक्षा भेद भए तो क्षेत्रविषैं एक प्रदेश बधै अर आवलीकरि भाजित घनांगुल प्रमाण प्रदेश बधैं तब कालविषैं एक समयकी बधवारी होइ ऐसैं प्रथमकांडकका अंतपर्यंत ध्रुववृद्धिकरि जेते समय बधैं तिनकौं जघन्य कालविषैं मिलाएं आवलीका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रथम कांडकका उत्कृष्ट काल हो है। बहुरि जेते जघन्य क्षेत्रसैं प्रदेश बधैं तितने जघन्य क्षेत्रविषैं मिलाएं घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रथमकांडकका उत्कृष्ट क्षेत्र हो है। ऐसैं ही सर्व कांडकविषैं ध्रुववृद्धिका प्रमाण साधन करना। विवक्षित कांडकविषैं समान प्रमाण लीए प्रदेशनिकी वृद्धि होतैं जहां समयकी वृद्धि होइ तहां ध्रुववृद्धि जाननी। बहुरि अध्रुववृद्धि भी यथायोग्य क्षेत्र कालका अविरोधकरि साधनी ॥ ४०८ ॥ सोई कहिए है—

अंगुलअसंखभागं संखं वा अंगुलं च तस्सेव ।
संखमसंखं एवं सेढीपदरस्स अद्धुवगे ॥ ४०९ ॥

अंगुलासंख्यभागः संख्यं वा अंगुलं तस्यैव ।

संख्यमसंख्यमेवं श्रेणीप्रतरयोरध्रुवगायां ॥ ४०९ ॥

जी० प्र०—घनांगुलासंख्यातैकभागमात्राः ६ वा घनांगुलसंख्येयभागमात्राः ६ वा घनांगुलमात्राः ६ वा संख्यातघनांगुलमात्राः ६ १ वा असंख्यातघनांगुलमात्राः ६ a एवं श्रेणीप्रतरयोरपि, तथाहि—श्रेण्यसंख्येयभागमात्राः a वा श्रेणिसंख्येयभागमात्राः १ वा श्रेणिमात्राः — वाः संख्यातश्रेणिमात्राः—१ वा असंख्यातश्रेणिमात्राः—a वा प्रतरासंख्येयभागमात्राः = वा प्रतरसंख्येयभागमात्राः = वा संख्यातप्रतरमात्रा = १ वा असंख्यातप्रतरमात्राः = a प्रदेशा वर्धित्वा वर्धित्वा काले एकैकसमयो वर्धते इत्यध्रुववृद्धिक्रमः ॥ ४०९ ॥

स० च०—अध्रुववृद्धिविषैं पूर्वोक्त क्रमतैं घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्रविषैं वधैं तब काल विषैं एक समय वधै। अथवा घनांगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण प्रदेश क्षेत्रविषैं वधै तब कालविषैं एक समय वधै। अथवा घनांगुल प्रमाण अथवा संख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा असंख्यात घनांगुल प्रमाण अथवा श्रेणीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणीका संख्यातवां भाग प्रमाण अथवा श्रेणी प्रमाण अथवा सख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा असख्यात श्रेणी प्रमाण अथवा प्रतरका असंख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतरका संख्यातवां भाग प्रमाण अथवा प्रतर प्रमाण अथवा संख्यात प्रतरप्रमाण अथवा असख्यात प्रतरप्रमाण प्रदेश क्षेत्रविषैं बधैं तब कालविषैं एक समय वधैं ऐसा अध्रुववृद्धिका अनुक्रम है इहां किछू नियम नाहीं जो इतने प्रदेश वधैं ही समय वधैं तातैं याका नाम अध्रुववृद्धि है। इहां इतना विशेष—जिस कांडकविषैं जिस जिस प्रकार वृद्धि संभवै तिस तिस प्रकार ही अध्रुववृद्धि जाननी। जैसैं प्रथम कांडकविषैं घनांगुलका असंख्यातवां भाग वा घनांगुलका संख्यातवां भागकरि ही अध्रुववृद्धि संभवै है। जातैं तहां उत्कृष्ट भेदविषैं भी घनांगुलका संख्यातवां भाग मात्र ही क्षेत्र है तौ तहां घनांगुलादिकरि वृद्धि कैसैं संभवै! बहुरि अंतके कांडकविषैं घनांगुलका सख्यातवां भाग आदि संख्यात प्रतरपर्यंत सर्व प्रकारकरि अध्रुववृद्धि संभवै है ऐसैं ही अन्य कांडकनिविषैं यथासंभवकरि अध्रुववृद्धि जाननी ॥ ४०९ ॥

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं ।
उक्कस्सं खेत्तं पुण लोगो संपुण्णओ होदि ॥ ४१० ॥

कार्मणवर्गणां ध्रुवहारेणैकभाजिते द्रव्यं ।
उत्कृष्टं क्षेत्रं पुनः लोकः संपूर्णो भवति ॥ ४१० ॥

जी० प्र०—कार्मणवर्गणा एकवारं ध्रुवहारेण भक्ता देशावध्युत्कृष्टद्रव्यं भवति व तदुत्कृष्टक्षेत्रं पुनः संपूर्णलोको भवति ≡ ॥ ४१० ॥

स० चं०—कार्माण वर्गणाकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितने परमाणूनिका स्कंधकौं उत्कृष्ट देशावधि जानै है बहुरि क्षेत्रकरि सपूर्ण लोकाकाशको जानै है। लोकाकाशविषैं जितने पूर्वोक्त स्कंध होइं वा तिनतैं स्थूल होइं तिन सवनिकौं जानैं है ॥ ४१० ॥

पल्ल समऊण काले भावेण असंखलोगमेत्ता हु ।
दव्वस य पज्जाया वरदेसोहिस्स विसया हु ॥ ४११ ॥

पल्यं समयोनं काले भावेन असंख्यलोकमात्रा हि ।
द्रव्यस्य च पर्याया वरदेशावधेर्विषया हि ॥ ४११ ॥

जी० प्र०—काले देशावधेरुत्कृष्टं समयोनपल्यं भवति प—१ भावेन पुनः असंख्यातलोकमात्रं भवति ≡ a कालभावशब्दद्वयवाच्यास्ते द्रव्यस्य पर्याया वरदेशावधिज्ञानस्य स्फुटं विषया भवंति ॥ ४११ ॥

सं० चं०—देशावधिका विषय भूत उत्कृष्ट काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण है। बहुरि भाव असंख्यात लोक प्रमाण है सो इहां काल अर भाव शब्दकरि द्रव्यके पर्याय उत्कृष्ट देशावधि ज्ञानका विषयभूत जान-

ना। भावार्थ—एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण अतीत कालविषै जे अपने जानने योग्य द्रव्यके पर्याय भए अर तितने ही प्रमाण अनागत कालविषैं अपने जानने योग्य द्रव्यके पर्याय होंहिगे तिनकौं उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान जानैं। बहुरि भावकरि तिनि पर्यायनिविषैं असंख्यात लोक प्रमाण जे पर्याय तिनिकौं जानैं ऐसैं काल अर भावशब्दकरि द्रव्यके पर्याय ग्रहे। ऐसैं ही अन्य भेदनिविषैं भी जहां कालका वा भावका परिमाण कह्या है तहां द्रव्यके पर्यायनिका ग्रहण करना। बहुरि इहां देशावधिका मध्य भेदनिविषैं भावका प्रमाण आगैं सूत्र कहैंगे तिस अनुक्रमतैं जानना॥ ४११॥

काले चउण्ह उड्ढी कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य।
उड्ढीए दव्वपज्जय भजिदव्वा खेत्तकाला हु॥ ४१२॥

काले चतुर्णां वृद्धिः कालो भजितव्यः क्षेत्रवृद्धिश्च।
वृद्ध्या द्रव्यपर्याययोः भजितव्यौ क्षेत्रकालौ हि॥ ४१२॥

जी० प्र०—यदा कालवृद्धिस्तदा द्रव्यादीनां चतुर्णां वृद्धयो भवंति। यदा क्षेत्रवृद्धिस्तदा कालवृद्धिः स्याद्वा न वेति भजनीया। यदा द्रव्यभाववृद्धी तदा क्षेत्रकालवृद्धी अपि भजनीये इत्येतत्सर्वं युक्तियुक्तमेव॥ ४१२॥ अथ परमावधिज्ञानप्ररूपणामाह—

स० चं.—इस अवधि ज्ञानका विशेष विषैं जब कालकी वृद्धि होइ तब तो द्रव्य क्षेत्र काल भाव च्यार्यो हीकी वृद्धि होइ। बहुरि जब क्षेत्रकी वृद्धि होइ तब काल की वृद्धि भजनीय है होइ भी अर नाहिं भी होइ। बहुरि जब द्रव्यकी अर भावकी वृद्धि होइ तब क्षेत्रकी अर कालकी वृद्धि भजनीय है होइ भी अर न भी होइ। बहुरि द्रव्यकी अर भावकी वृद्धि युगपत् हो है यह सर्व कथन विचारतैं युक्त ही है या प्रकार देशावधि ज्ञानका विषय भूत द्रव्य क्षेत्र काल भावका प्रमाण कह्या॥ ४१२॥ आगैं परमावधि ज्ञानकी प्ररूपणा कहै हैं—

देसावहिवरदव्वं धुवहारेणवहिदे हवे णियमा ।
परमावहिस्स अवरं दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं ॥ ४१३ ॥

देशावधिवरद्रव्यं ध्रुवहारेणावहिते भवेन्नियमात् ।
परमावधेरवरं द्रव्यप्रमाणं तु जिनदिष्टं ॥ ४१३ ॥

जी० प्र०—देशावधेरुत्कृष्टद्रव्यमिदं व ६ तु-पुनः ध्रुवहारेण भक्तं तदा व ९९ परमावधिविषयजघन्यद्रव्यं नियमेन भवतीति जिनैरुक्तं ॥ ४१३ ॥ इदानीं परमावधेरुत्कृष्टद्रव्यप्रमाणमाह—

स. चं.—उत्कृष्ट देशावधि ज्ञानका विषय भूत जो द्रव्य कह्या ताकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना परमाणूनिका स्कंध रूप जघन्य परमावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्य नियमकरि जिनदेवने कह्या है । ४१३ ।

अब परमावधिका उत्कृष्ट द्रव्य प्रमाण कहैं हैं—

परमावहिस्स भेदा सगउग्गाहणवियप्पहददेतऊ ।
चरिमे हारपमाणं जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु ॥ ४१४ ॥

परमावधेर्भेदाः स्वकावगाहनविकल्पाहततेजसः ।
चरमे हारप्रमाणं ज्येष्ठस्य च भवति द्रव्यं तु ॥ ४१४ ॥

जी० प्र०—परमावधिज्ञानविकल्पाः स्वावगाहनविकल्पगुणिततेजस्कायिकजीवसंख्या भवंति ≡ a ६ । १—/प/a १ ॒ a । तेषु पुनः सर्वोत्कृष्टचरमविकल्पेषु पुनः द्रव्यं ध्रुवहारप्रमाणमेव ९ भवेत् ॥ ४१४ ॥

स० चं—अग्नि कायकी अवगाहनाका जघन्यतैं उत्कृष्ट पर्यंत जो भेदनिका प्रमाण ताकरि अग्निकायके जीवनिका परिमाणकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने परमावधि ज्ञानके भेद हैं। तहां प्रथम भेदके द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग दीए दूसरा भेदका द्रव्य होइ। दूसरा भेदका द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग दीएं तीसरा भेदका द्रव्य होइ। ऐसैं अंतका भेद पर्यंत जानने। अंत भेद विषै ध्रुवहार प्रमाण द्रव्य है। ध्रुवहारका जो परिमाण तितने परमाणूनिका सूक्ष्म स्कंधकौं उत्कृष्ट परमावधि ज्ञान जानै है ॥ ४१४ ॥

सव्वावहिस्स एक्को परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो।
गंगामहाणइस्स पवाहोव्व धुवो हवे हारो ॥ ४१५ ॥

सर्वावधेरेकः परमाणुर्भवति निर्विकल्पः सः।
गंगामहानद्याः प्रवाह इव ध्रुवो भवेत् हारः ॥ ४१५ ॥

जी० प्र०—पुनस्तत्परमावधिसर्वोत्कृष्टं द्रव्यं ९ ध्रुवहारेणैकवार भक्तं एकपरमाणुमात्रं सर्वावधिज्ञानविषयं द्रव्यं भवति। तज्ज्ञानं निर्विकल्पकमेव स्यात् स च ध्रुवहारः गंगामहानद्याः प्रवाहवद्भवति-यथा गंगामहानदीप्रवाहः हिमाचलादवच्छिन्नं प्रवह्य पूर्वोदधौ गत्वा स्थितस्तथायं हारोऽपि देशावधिविषयजघन्यद्रव्यात्परमावधिसर्वोत्कृष्टद्रव्यपर्यंतं प्रवह्य परमाणुपर्यवसाने स्थितः। विषयस्य परमाणोः, विषयिणः परमावधेश्च निर्विकल्पकत्वात् ॥ ४१५ ॥

स. च.—उत्कृष्ट परमावधि ज्ञानका विषय ध्रुवहारहीका भाग दीजिए तव एक परमाणू मात्र सर्वावधि ज्ञानका विषय है सर्वावधि ज्ञान पुद्गल परमाणूकौं जानैं हैं। सो यह ज्ञान निर्विकल्प है यामें जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेद नाहीं। बहुरि जो वह ध्रुवहार कह्या था सो गंगा महानदीका प्रवाह समान ही है जैसे गंगा नदीका प्रवाह हिमाचलस्यों निकसि विच्छेद रहित वहिकरि पूर्व समुद्रकौं प्राप्त होइ तिष्ठ्या तैसैं ध्रुवहार जघन्य देशावधिका विषयभूत द्रव्यतैं परमावधिका उत्कृष्ट भेद पर्यंत अवधि ज्ञानके सर्व भेदनिविषैं प्राप्त होइ सर्वावधिका विषयभूत परमाणू तहां तिष्ठ्या। जातैं सर्वावधि ज्ञान भी निर्विकल्प है अर याका विषय परमाणू है सो भी निर्विकल्प है ॥ ४१५ ॥

परमोहिदव्वभेदा जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति ।
तस्सेव खेत्तकालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा ॥४१६॥

परमावधिद्रव्यभेदा यावन्मात्रा हि तावन्मात्रा भवंति ।
तस्यैव क्षेत्रकालविकल्पा विषया असंख्यगुणितक्रमाः ॥ ४१६ ॥

जी० प्र०–परमावधिज्ञानविषयद्रव्यविकल्पा यावन्मात्राः तावन्मात्रा एव भवंति । तस्य विषयभूतक्षेत्रकालविकल्पाः तावन्मात्रा अपि स्वस्वजघन्यात् स्वस्वोत्कृष्टपर्यंतं असंख्यातगुणितक्रमा भवंति ॥ ४१६ ॥ कीदृगसंख्यातगुणितक्रमाः ? इत्युक्ते आह—

स. चं.–परमावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जितने भेद कहे अग्निकायकी अवगाहनाके भेदनिका प्रमाणतैं अग्निकायके जीवनिका परिमाणकौं गुणिए तावन्मात्र द्रव्यकी अपेक्षा भेद कहे सो एतावन्मात्र ही परमावधि ज्ञानका विषय भूत क्षेत्रकी अपेक्षा वा कालकी अपेक्षा भेद है । जहां द्रव्यकी अपेक्षा प्रथम भेद है तहां ही क्षेत्र कालकी अपेक्षा भी प्रथम भेद है । जहां दूसरा भेद द्रव्य की अपेक्षा है तहां क्षेत्र काल अपेक्षा भी दूसरा ही भेद है । ऐसैं अंतका भेद पर्यंत जानना । वहुरि जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत एक एक भेदविषैं असंख्यात गुणां असंख्यात गुणा क्षेत्र व काल जानना ॥ ४१६ ॥ कैसा असंख्यात गुणा ? सो कहैं हैं–

आवलिअसंखभागा इच्छिदगच्छदच्छधणमाणमेत्ताओ ।
देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे ॥४१७॥

आवल्यसंख्यभागा इच्छितगच्छधनमानमात्राः ।
देशावधेः क्षेत्रे कालेऽपि च भवंति संवर्गे ॥ ४१७ ॥

जी० प्र०–परमावधेर्विवक्षितक्षेत्रविकल्पे विवक्षितकालविकल्पे च तद्विकल्पस्य यावत्संकलितधनं तावत्प्रमाणमात्रा आवल्यसंख्येयभागाः । पर-

रूपं संवर्गे सति देशावधेरुत्कृष्टक्षेत्रे उत्कृष्टकालेऽपि च गुणकारा भवंति ततस्ते गुणकाराः प्रथमविकल्पे एकः । द्वितीयविकल्पे त्रयः । तृतीयविकल्पे षट् । चतुर्थविकल्पे दश । पंचमविकल्पे पंचदश एवं षष्ठादिचरमपर्यंत नेतव्यं ॥ ४१७ ॥ पुनः प्रकारांतरेण तानेव गुणकारान् उत्पादयति—

स. चं.—परमावधि ज्ञानका विवक्षित क्षेत्रका भेदविषैं वा विवक्षित कालका भेदविषैं जो तिस भेदका संकलित धन होइ तितना आवलीका असंख्यातवां भाग मांडि परस्पर गुणन कीया जो प्रमाण होइ सो विवक्षित भेदविषै गुणकार जानना । इस गुणकारकरि देशावधि ज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्रकौं गुणें परमावधिविषैं विवक्षित भेदविषै क्षेत्रका परिमाण होइ अर देशावधिका उत्कृष्ट कालकौं गुणें विवक्षित भेदविषै कालका परिमाण होइ । संकलित धन कहा कहिए जेथवां भेद विवक्षित होइ तहां पर्यंत एकतैं लगाइ एक एक अधिक अंक मांडि तिन सब अंकनिकौं जोडैं जो प्रमाण होइ सो संकलित धन जानना । जैसैं प्रथम भेदविषैं एक ही अंक है याके पहिले कोई अंक नाही तातैं प्रथम भेदविषैं संकलित धन एक जानना । बहुरि दूसरा भेदविषैं एक अर दूवा जोडिए तब संकलित धन तीन भया । बहुरि तीसरा भेदविषैं एक दोय तीन अंक जोडैं संकलित धन छह भया । बहुरि चौथा भेदविषैं च्यारि और जोडैं संकलित धन दश भया । बहुरि पांचवां भेदविषैं पांचको अंक और जोडैं संकलित धन पंद्रह होइ । ऐसैं सब भेदनिविषैं संकलित धन जानना । सो इस एकवार संकलित धन ल्यावनेकौं करण सूत्र पर्याय समास श्रुत ज्ञानका कथन करते कह्या है तिसतैं संकलित धनका प्रमाण ल्यावना । इस संकलित धनका नाम गच्छ धन वा पद धन भी कहिए अब विवक्षित परमावधि ज्ञानका पांचवां भेद ताका संकलित धन पंद्रह जायगा आवलीका असंख्यातवां भाग मांडि परस्पर गुणन कीए जो परिमाण होइ सोई पांचवांभेदविषैं गुणकार जानना । इस गुणकार करि उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकाकाश प्रमाण ताकौं गुणिए जो प्रमाण होइ तितना परमावधिका पांचवां भेदका विषयभूत क्षेत्र का परिमाण जानना । अब इसही गुणकार करि देशावधिका विषयभूत उत्कृष्ट काल एक समय घाटि एक पल्य प्रमाण ताकौं गुणें इस पांचवां भेदविषैं कालका परिमाण होइ ऐसैं सब भेदनिविषैं क्षेत्रका वा कालका परिमाण जानना ॥ ४१७ ॥ आगे संकलित धनका जो प्रमाण कह्या था ताकौं और प्रकार करि कहै हैं—

गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता ।
उभयेवि य गच्छस्स य धणमेत्ता होंति गुणगारा ॥ ४१८ ॥

गच्छसमाः तात्कालिकातीते रूपोनगच्छधनमात्राः ।
उभयेऽपि च गच्छस्य च धनमात्रा भवंति गुणकाराः ॥ ४१८ ॥

जी० प्र०—गच्छसमाः-गच्छमात्राः यथा चतुर्थविकल्पे चत्वारः, तात्कालिकातीते च तृतीयविकल्पे रूपोनगच्छधनमात्राः षट्, ते उभये मिलित्वा गच्छधनमात्रा दशगुणकारा भवंति । एवं सर्वविकल्पेषु ज्ञातव्यं ॥ ४१८ ॥

स० चं०—जेथवां भेद विवक्षित होइ तीहि प्रमाणकौं गच्छ कहिए जैसें चौथा भेद विवक्षित होइ तौ गच्छका प्रमाण च्यारि कहिए सो गच्छके समान धन अर गच्छतें तत्काल अतीत भया ऐसा विवक्षितभेदतें पहिला भेद तहां विवक्षित गच्छतें एक घाटिका गच्छ धन जो संकलित धन इनि दोऊनिकौं मिलाइए तब गच्छका संकलित धन प्रमाण गुणकार होइ । इहां उदाहरण कहिए-जैसें विवक्षित भेद चौथा सो गच्छका प्रमाण भी च्यारि सो च्यारि तौ एक अर तत्काल अतीत भया तीसरा भेद ताका गच्छ धन छह इनि दोऊनिकौं मिलाए दश हूवा सोई दश विवक्षित गच्छ च्यारि ताका संकलित धन हो है सोई चौथा भेदविषैं गुणकार पूर्वोक्त प्रकार जानना । ऐसें ही सर्वभेदनिविषैं जानना ॥ ४१८ ॥

परमावहिवरखेत्तेणवहिदउक्कस्सओहिखेत्तं तु ।
सव्वावहिगुणगारो कालेवि असंखलोगो दु ॥ ४१९ ॥

परमावधिवरक्षेत्रेणावहितोत्कृष्टावधिक्षेत्रं ।

सर्वावधिगुणकारः कालेऽपि असंख्यलोकस्तु ॥ ४१९ ॥

जी प्र०—उत्कृष्टावधिक्षेत्रं तावद्द्विरूपघनाघनधारायां लोकगुणकारशलाकावर्गशलाकार्धच्छेदशलाकातेजस्कायिकस्थित्यवधिनिबद्धोत्कृष्टक्षेत्राणां प्रत्येकमसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा गत्वोत्पन्नत्वात् पंचासंख्याततलोकगुणितलोकमात्रं तदेव परमावधिज्ञानविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्रमाणेन भक्तं सत्—
≡ । ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a ≡ a सर्वावधिविषयक्षेत्रानयने गुणकारो भवति ≡ a ≡ a अनेन परमावधिज्ञानविषयसर्वोत्कृष्ट-
≡ । ≡ a ≡ a ≡ a
क्षेत्रे गुणिते सर्वावधिज्ञानविषयक्षेत्रं स्यात् इत्यर्थः । तु-पुनः सर्वावधिविषयकालानयने परमावधिविषयसर्वोत्कृष्टकालस्य प–१ ≡ a ≡ a ≡ a असंख्याततलोकः ≡ a गुणकारो भवति ॥ ४१९ ॥ तत्परमावधिविषयोत्कृष्टक्षेत्रकालप्रमाणानयनविधाने करणसूत्रद्वयमाह—

स० चं०—उत्कृष्ट अवधिज्ञानके क्षेत्रका परिमाण कहिए है—द्विरूप घनाघनधारा विषैं लोक अर गुणकार शलाका अर वर्गशलाका अर अर्धच्छेद शलाका अर अग्निकायकी स्थितिका परिमाण अर अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण ए स्थानक क्रमतैं असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान गएं उपजे हैं तातैं पांचवार असंख्यात लोक प्रमाण परिमाणकरि लोककौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना सर्वावधिज्ञानका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका परिमाण है । याकौं उत्कृष्ट परमावधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्रका भाग दीएं जो परिमाण होइ सोई सर्वावधि ज्ञानका विषयभूत क्षेत्रका परिमाण ल्यावनेके निमित्त गुणकार हो है । इस गुणकारकरि परमावधिका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रकौं गुणिए तव सर्वावधिज्ञानका विषय भूत क्षेत्रका परिमाण हो है । बहुरि काल परिमाण ल्यावनेके निमित्त असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार है इस असंख्यात लोक प्रमाण गुणकार करि उत्कृष्ट परमावधिज्ञानका विषयभूत कालकौं गुणिये तव सर्वावधि ज्ञानका विषयभूत कालका परिमाण हो है । इहां कोऊ कहै कि रूपी पदार्थ तौ लोकाकाश विषैं ही पाइए है इहां परमावधि सर्वावधिविषैं क्षेत्रका परिमाण लोकतैं असंख्यातगुणा कैसैं कहिए है? सो इसका समाधान आगैं द्विरूप घनाघन धाराका कथनविषैं करि आए है सो जानना । शक्ति अपेक्षा कथन जानना ॥ ४१९ ॥ अव परमावधि ज्ञानका विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्रका वा उत्कृष्ट कालका परिमाण ल्यावनेके निमित्त करणसूत्र दोय कहिएहै—

इच्छिदरासिच्छेदं दिण्णच्छेदेहिं भाजिदे तत्थ ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी ॥ ४२० ॥

इच्छितराशिच्छेदं देयच्छेदैर्भाजिते तत्र ।
लब्धमितदेयराशीनामभ्यासे इच्छितो राशिः ॥ ४२० ॥

जी० प्र०—अस्य साधारणसूत्रत्वात् ईप्सितराशेः वेसदछप्पण्णस्य अर्धच्छेदाः अष्टौ ८ एषु देयस्य आवल्यसंख्येयभागसंदृष्टिचतुःषष्टिचतुर्थांशस्य ६४/४ अर्धच्छेदैः भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रैः ६–२ भाजितेषु सत्सु ८/(६–२) तत्र यावल्लब्ध २ तावन्मात्रदेयराशीनां ६४/४ ६४/४ अभ्यासे परस्परगुणने कृते सति ईप्सितराशिरुत्पद्यते । २५६ एवं पल्यसूच्यंगुलजगच्छ्रेणिलोकानामपीप्सितराशीनामर्धच्छेदेषु देयस्यावल्यसंख्येयभागस्यार्धच्छेदैर्भक्तेषु—

पल्यच्छेद	सूच्यंगुलच्छेद	जग च्छ्रेणिच्छेद	लोकच्छेद
छे / १६–४	छे छे / १६–४	वि छे छे ३ / १६–४	वि छे छे ९ / १६–४

तत्र यल्लब्धं तत्तन्मात्रावल्यसंख्येयभागानामभ्यासे कृते ते पल्यादीप्सितराशयः उत्पद्यंते ॥ ४२० ॥

स० चं०—यह करण सूत्र है सो सर्वत्र संभवै है याका अर्थ दिखाइए है—इच्छित राशि कहिए विवाक्षित राशिका प्रमाण ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिकौं देयराशिके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तिसका विरलन कीजिए एक२ जुदा जुदा स्थापिए बहुरि तिस एक एकके स्थानीक जिस देय राशिके अर्धच्छेदनिका भाग दीया था तिसही देय राशिकौं मांड़ि परस्पर गुणन कीजिए तो विवक्षित राशिका प्रमाण होइ । सो प्रथम याका उदाहरण लौकिक गणित करि दिखाइए है—इच्छित राशि दोयसै छप्पन २५६ याके अर्धच्छेद आठ बहुरि देयराशि चौसाठिका चौथा भाग ६४/४ सोलह याके अर्धच्छेद च्यारि, कैसैं ? भाज्य राशि चौसठि ताके अर्धच्छेद छह तिनिमें

स्यों भागहार च्यारि ताके अर्धच्छेद दोय घटाइए तब अवशेष च्यारि अर्धच्छेद रहे अब इनि च्यारि अर्धच्छेदनिका भाग उन आठ अर्धच्छेदनिकौं दीजिए तब दोय पाया २ सो दोयका विरलन करि १,१, एक एकके स्थानक एक चौसठिका चौथा भाग सोला सोला दीया याहीतें याकौं देयराशि कहिए सो इनिका परस्पर गुणन कीया तब विवाक्षित राशिका परिमाण दोयसै छप्पन हुवा। ऐसै ही अलौकिक गणितविषै विवाक्षित राशि पल्य प्रमाण अथवा सूच्यंगुल प्रमाण वा जगच्छ्रेणी प्रमाण वा लोक प्रमाण जो होइ ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिकौं देयराशि जो आवलीका असंख्यातवां भाग ताके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनिका भाग दीए जो प्रमाण आवै तिनिका विरलन करि–एक एक करि बखेरि बहुरि एक एकके स्थानक एक एक आवलीका असंख्यतवां भाग मांडि परस्पर गुणन कीजिए तो विवाक्षित राशि पल्य वा सूच्यंगुल वा जगच्छ्रेणी वा लोक प्रमाण हो है ॥ ४२० ॥

दिण्णच्छेदेणवहिदलोगच्छेदेण पदधणे भजिदे।
लद्धमिदलोगगुणणं परमावहिचरिमगुणगारो ॥ ४२१ ॥

देयच्छेदेनावहितलोकच्छेदेन पदधने भजिते।
लब्धमितलोकगुणनं परमावधिचरमगुणकारः ॥ ४२१ ॥

जी० प्र—देयच्छेदभक्तलोकच्छेदैः ८/(६–२) पदधने निरन्तितृतीयपदस्य धने ३।४/(२।१) भक्ते ३।४/(२।१।८/(६–२)) यल्लब्धं तन्मात्र ३ वेसदछप्पणानां

गुणने परस्परसंवर्गसंजनितराशिः तृतीयपदे परमावधिक्षेत्रकालयोर्गुणकारप्रमाणं भवति ≡ ६५ = २५६। प–१। ६५ = २५६ एवं चरमेऽपि देयमावल्यसंख्येयभागः तस्य अर्धच्छेदाः भागहारार्धच्छेदन्यूनभाज्यार्धच्छेदमात्रत्वात् संख्यातरूपन्यूनपरीतासंख्यातमध्यमभेदमात्राः संदृष्ट्या एतावंतः १६–४ एभिः देयार्धच्छेदैर्भक्तेन लोकार्धच्छेदराशिना पदधने–परमावधिज्ञानचरमविकल्पसंकलितसर्वधने भक्ते सति यल्लब्धं तन्मात्रलोकानां

परस्परगुणने परमावधिचरमगुणकारो भवति । यद्येतावता देयरूपावल्यसंख्येयभागानां दे ८ / a प । वि छे छे ९ / १६—४ परस्परगुणने लोक उत्पद्यते फ ≡ तद

एतावतां देयरूपावल्यसंख्येयभागानां—दे ८ / a परस्परगुणने कियंतो लोका उत्पद्यंते इति त्रैराशिकलब्धमात्राणां लो-

१≡ a (प / a) ६ (१—१ / २) a ≡ a (प / a) ६ (१—१ / १) a

कानां ≡ a ≡ a ≡ a परमावधिविषयचरमक्षेत्रकालानयने लोकसमयोनपल्ययोर्गुणकारो भवति । ≡ । ≡ a । ≡ a । ≡ a प—१ । ≡ a ≡ a ≡ a ॥ ४२१ ॥

सं० च०—देय राशिके अर्धच्छेदनिका भाग लोकके अर्धच्छेदनिकौं दीए जो प्रमाण होइ ताका विवक्षित पदका संकलित धनकौं भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना लोकमात्र परिमाण मांड़ि परस्पर गुणनकीए जो प्रमाण आवै सो विवक्षित पदविषैं क्षेत्र वा कालका गुणकार जानना । ऐसैं ही परमावधिका अंत भेदविषैं गुणकार जानना । सो यहु कथन प्रथम अंक संदृष्टिकरि दिखाइए है । देयराशि चौसठिका चौथा भाग ताके अर्धच्छेद च्यारि तिनिका भाग दोयसै छप्पनका अर्धच्छेद आठ तिनिकौं दीजिए तब दोय पाया तिनिका भाग विवक्षित स्थान तीसरा ताका पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावनेका सूत्र करि तीन च्यारिकौं दोय एकका भाग दीएं संकलित धन छह तिनिकौं दीजिए तब तीन पाया सो तीन जायगा दोयसै छप्पन मांडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण होइ सोई तीसरा स्थानविषै गुणकार जानना । अब इहां कथन है सो कहिए है—देय राशि आवलीका असंख्यातवां भाग ताके अर्ध

च्छेद राशि जो आवलीके अर्धच्छेदनिमेंस्यौं भागहारभूत असंख्यातके अर्धच्छेद घटाएं जो प्रमाण रहै तितना जानना। सो ऐसें इस देय राशीके अर्धच्छेद संख्यात घाटि परीतासंख्यातका मध्य भेद प्रमाण हो हैं तिनिका भाग लोक प्रमाणके जेते अर्धच्छेद होंइ तिनकौं दीजिए जो प्रमाण आवै ताका भाग विवक्षित जो कोई परमावधि ज्ञानका भेद ताका जो संकलित धन होइ ताकौं दीजिए जो प्रमाण आवै तितना लोक मांडि परस्पर गुणन कीए जो प्रमाण आवै सो तिस भेद विषै गुणकार जानना। इस गुणकार करि देशावधिका उत्कृष्ट लोक प्रमाण क्षेत्रकौं गुणें जो प्रमाण होइ सो तिस भेद विषैं क्षेत्रका परिमाण जानना। बहुरि इस गुणकार करि देशावधिका उत्कृष्ट एक समय घाटि पल्य प्रमाण कालकौं गुणें जो प्रमाण होइ सो तिस भेदविषैं कालका परिमाण जानना। ऐसैं ही परमावधिका अंतका भेदविषैं आवलीका असंख्यातवां भागका अर्धच्छेदनिका भाग लोकका अर्धच्छेदकौं दीए जो प्रमाण होइ ताकौं अतका भेदविषै गुणकार जानना। इहां अंतका भेद विषैं पूर्वोक्त संकलित धन ल्यावनेकौं करण सूत्रके अनुसारि संकलित धन ल्याइए तब अग्निकायिकके अवगाह भेदनिकरि गुणित अग्निकायिक जीवनिका प्रमाण मात्र गच्छ सो एक गच्छ अधिक गच्छ अर सपूर्ण गच्छकौ दोय एकका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना परमावधिका अन्तभेदविषैं संकलन धन जानना। बहुरि जैसे दोय जायगा सोलह सोलह माडि परस्पर गुणन कीए दोयसै छप्पन होइ तौ छह जायगा सोलह सोलह माडि परस्पर गुणन कीए केते दोयसै छप्पन होंइ? ऐसैं त्रैराशिक कीए पैसठि हजार पांचसै छत्तीस प्रमाण दोयसै छप्पन होइ। ऐसैं ही 'इच्छिदरासिच्छेदं' इत्यादि करण सूत्रके अनुसार आवलीका असंख्यातवें भागका अर्धच्छेदनिका लोकके अर्धच्छेदनिकौं भाग दीए जो प्रमाण होइ तितने आवलीका असंख्यातवां भाग माडि परस्पर गुणन कीए एक लोक होइ तौ इहां अन्तभेदविषैं संकलित धन प्रमाण आवलीका असख्यातवां भाग माडि परस्पर गुणन कीजिए तौ कितने लोक होंइ ऐसैं त्रैराशिक करना। तहां प्रमाणराशि विषैं देयराशि आवलीका असंख्यातवां भाग विरलन राशि आवलीका असंख्यातवां भाग का अर्धच्छेनिदकरि भाजित लोकका अर्धच्छेदमात्र बहुरि फलराशि लोक बहुरि इच्छाराशि विषैं देयराशि आवली-

का असंख्यातवां भाग विरलन राशी अन्तभेदका संकलन धनमात्र इहां लब्ध राशिका जेता प्रमाण आवै तितना लोक प्रमाण प्रमाण होइ सोई अन्त भेदविषैं गुणकार जानना। इसकरि लोककौं वा एक समय घाटि पल्यकौं गुणिए तब परमावधिका सर्वोत्कृष्ट क्षेत्रका वा कालका परिमाण हो है पूर्वैं 'आवलि असखभागा' इत्यादि सूत्रकरि गुणकारका विधान कह्या बहुरि इस सूत्रविषैं गुणकारका विधान कह्या सो इनि दोऊनिका अभिप्राय एक ही है जैसें अंक संदृष्टिकरि पूर्व गाथानिके अनुसारि तीसरा भेदविषैं संकलित धन प्रमाण छह जायगा सोला १६ मांडि परस्पर गुणन करिए तौ भी वोही प्रमाण होइ अर इस गाथाके अनुसार तीन जायगा दोयसै छप्पन दोयसै छप्पन मांडि परस्पर गुणन कीजिए तौभी सोई प्रमाण होइ ऐसैं सर्वत्र जानना ॥ ४२१ ॥

आवलिअसंखभागा जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया ।
कालस्स जहण्णादो असंखगुणहीणमेत्ता हु ॥ ४२२ ॥

आवल्यसंख्यभागा जघन्यद्रव्यस्य भवंति पर्यायाः ।
कालस्य जघन्यतः असंख्यगुणहीनमात्रा हि ॥ ४२२ ॥

जी० प्र०—आवल्यसख्यातभागमात्राः देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्याया भवंति तथापि तद्विषयजघन्यकालात् $\frac{८}{a}$ असंख्यातगुणहीनमात्राः स्फुटं भवंति $\frac{८}{a\,a}$ ॥ ४२२ ॥

स० चं०—जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत द्रव्यका पर्याय ते आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण है परन्तु जो जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत कालका प्रमाण कह्या है तातैं जघन्य देशावधि ज्ञानका विषयभूत भावका प्रमाण असंख्यात गुणा घाटि जानना ॥ ४२२ ॥

सव्वोहिति य कमसो आवलिअसंखभागगुणिदकमा ।
दव्वाणं भावाणं पदसंखा सरिसगा होंति ॥ ४२३ ॥

सर्वावधिरिति च क्रमशः आवल्यसंख्यभागगुणितक्रमाः ।
द्रव्यानां भावानां पदसंख्याः सदृशका भवंति ॥ ४२३ ॥

जी० प्र०—देशावधिजघन्यद्रव्यस्य पर्यायरूपभावाः जघन्यदेशावधितः सर्वावधिज्ञानपर्यंतं क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितक्रमाः स्युः तेन द्रव्याणां भावानां च स्थानसंख्या समाना एव ॥ ४२३ ॥ अथ नारकगतावधिविषयक्षेत्रमाह—

स० चं०-देशावधिका विषयभूत द्रव्यकी अपेक्षा जहां जघन्य भेद है तहां ही द्रव्यका पर्याय रूप भावकी अपेक्षा आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण भावका जानने रूप जघन्य भेद हो है । बहुरि जहां द्रव्यकी अपेक्षा दूसरा भेद हो है । तहां ही भावकी अपेक्षा तिस प्रथम भेदका आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाणकरि गुणें जो प्रमाण होइ तीहि प्रमाण भावकौं जानने रूप दूसरा भेद हो है । बहुरि जहां द्रव्यकी अपेक्षा तीसरा भेद हो है तहां ही भावकी अपेक्षा तिस दूसरा भेदतें आवलीका असंख्यातवां भाग गुणा तीसरा भेद हो है ऐसें ही क्रमतें सर्वावधि पर्यंत जानना । अवधि ज्ञानके जेते भेद द्रव्यकी अपेक्षा हैं तेतेही भेद भावकी अपेक्षा है जैसे द्रव्यकी अपेक्षा पूर्वभेदसंबन्धी द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग दीए उत्तर सम्बन्धी द्रव्य भया तैसें भावकी अपेक्षा पूर्वभेद संबंधी भावकौं आवलीका असंख्यातवां भाग करि गुणें उत्तर भेद संबंधी भाव भया तातें द्रव्यकी अपेक्षा अर भावकी अपेक्षा स्थानकनिकी संख्या समान है । ४२३ । आगें नारक गतिविषें अवधि ज्ञानका विषयभूत क्षेत्रका परिमाण कहैं हैं ।

सत्तमखिदिम्मि कोसं कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव ।
जाव य पढमे णिरये जोयणमेक्कं हवे पुण्णं ॥ ४२४ ॥

सप्तमक्षितौ कोशं क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते तावत् ।

यावच्च प्रथमे निरये योजनमेकं भवेत् पूर्णं ॥ ४२४ ॥

जी० प्र०—सप्तमक्षितौ अवधिविषयक्षेत्रं एकक्रोशः । तत उपरि प्रतिपृथ्वि तावत् क्रोशस्यार्धार्धं प्रवर्धते यावत्प्रथमे नरके योजनं संपूर्णं भवति ॥ ४२४ ॥ अथ तिर्यग्मनुष्यगत्योराह—

स० चं०—सातवीं नरक पृथ्वीविषैं अवधि ज्ञानका विषयभूत क्षेत्र एक कोश है। बहुरि आधा आधा कोश तहां ताईं वधै जहां पहले नरक संपूर्ण एक योजन होइ। ऐसें सातवे नरक अवधिक्षेत्र एक कोश, छठे ड्योढ कोश, पांचवे दोय कोश, चौथे अढाई कोश, तीसरे तीन कोश, दूसरे साढे तीन कोश पहले च्यारि कोश प्रमाण एक योजन जानना ॥ ४२४ ॥ आगे तिर्यंच गति मनुष्य गतिविषैं कहे हैं—

तिरिये अवरं ओघो तेजोयंते य होदि उक्कस्सं ।

मणुए ओघं देवे जहाकमं सुणह वोच्छामि ॥ ४२५ ॥

तिरश्चि अवरमोघः तेजोऽन्ते च भवति उत्कृष्टं ।

मनुजे ओघो देवे यथाक्रमं शृणुत वक्ष्यामि ॥ ४२५ ॥

जी०प्र०—तिर्यग्जीवे देशावधिज्ञानं जघन्यादारभ्य उत्कृष्टतः तेजःशरीरविषयविकल्पपर्यंतमेव सामान्योक्ततद्द्रव्यादिविषयं भवति । मनुजे देशावधिजघन्यादारभ्य सर्वावधिज्ञानपर्यंतं सामान्योक्तं सर्वं भवति ॥ ४२५ ॥ देवगतौ यथाक्रमं वक्ष्यामि शृणुत—

स० चं०—तिर्यंच जीवविषैं जघन्य देशावधि ज्ञान हो है बहुरि यातैं लगाइ उत्कृष्टपनैं तैजसशरीर जिस देशावधिके भेदका विषय है तिस भेद पर्यंत सर्व सामान्य अवधिज्ञानके वर्णन विषैं जे भेद कहे ते सर्व हो हैं। बहुरि मनुष्य गतिविषैं जघन्य देशावधितैं सर्वावधि पर्यंत सामान्य अवधिज्ञानविषैं जेते भेद कहे तिनि सर्व भेदनिकौंलीए अवधिज्ञान हो है ॥ ४२५ ॥ बहुरि देवगतिविषैं जैसा अनुक्रम है सो मैं कहौं हौं तुम सुनहु—

पणुवीसजोयणाइं दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं ।
संखेज्जगुणं खेत्तं बहुगं कालं तु जोइसिगे ॥४२६॥

पंचविंशतियोजनानि दिवसांतं च च कुमारभौमयोः ।
संख्यातगुण क्षेत्रं बहुकः कालस्तु ज्योतिष्के ॥ ४२६ ॥

जी० प्र०—भावनव्यंतरयोर्जघन्येन पंचविंशतियोजनानि किंचिदूनदिवसश्च विषयो भवति । ज्योतिष्के क्षेत्रं ततः संख्यातगुणं, कालस्तु बहुकः ॥ ४२६ ॥

स० चं०—भवन वासी अर व्यन्तर इनिकैं अवधि ज्ञानका विषय भूत जघन्यपनै क्षेत्र तौ पचीस योजन है अर काल किछू एक घाटि एक दिन प्रमाण है। बहुरि ज्योतिषी देवनिकैं क्षेत्र तौ इस क्षेत्रतैं असंख्यात गुणा है अर काल इस कालतैं बहुत है ॥ ४२६ ॥

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोइसंताणं ।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सोहीण विसओ दु ॥४२७॥

असुराणामसंख्येयाः कोट्यः शेषज्योतिष्कांतानां ।
संख्यातीतसहस्रा उत्कृष्टावधीनां विषयस्तु ॥ ४२७ ॥

जी० प्र०—असुराणां उत्कृष्टविषयक्षेत्रं असंख्यातकोटियोजनमात्रं । शेषनवविधभावनव्यंतरज्योतिष्काणां च असंख्यातसहस्रयोजनानि ४२७

स० चं०—असुर कुमार जातिके भवनवासी देवनिकैं उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र असंख्यात कोडि योजन प्रमाण है बहुरि अवशेष रहे नवप्रकार भवनवासी अर व्यंतर देव अर ज्योतिषी देव तिनिकैं उत्कृष्ट विषय क्षेत्र असंख्यात सहस्र योजन प्रमाण है ॥ ४२७ ॥

असुराणमसंखेज्जा वस्सा पुण सेसजोइसंताणं ।
तस्संखेज्जदिभागं कालेण य होदि णियमेण ॥ ४२८ ॥

असुराणामसंख्येयानि वर्षाणि पुनः शेषज्योतिष्कांतानां ।
तत्संख्यातभागं कालेन च भवति नियमेन ॥ ४२८ ॥

जी० प्र०—असुरकुलस्योत्कृष्टकालः असंख्येयवर्षाणि पुनः शेषनवविधभावनव्यन्तरज्योतिष्काणां तस्य संख्यातैकभागः व १/a ॥ ४२८ ॥

स० चं०—असुरकुमार जातिकै भवनवासीनिकैं अवधिका उत्कृष्ट विषय कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्ष प्रमाण है। बहुरि इसकालके संख्यातवे भागमात्र अवशेष नवप्रकार भवनवासी वा व्यंतर ज्योतिषी तिनके अवधिका विषयभूत कालका उत्कृष्ट प्रमाण नियमकरि है ॥ ४२८ ॥

भवणतियाणमधोधो थोवं तिरियेण होदि बहुगं तु ।
उड्ढेण भवणवासी सुरगिरिसिहरोत्ति पस्संति ॥ ४२९ ॥

भवनत्रिकाणामधोधः स्तोकं तिरश्चां भवति बहुकं तु ।
ऊर्ध्वेन भवनवासिनः सुरगिरिशिखरांतं पश्यंति ॥ ४२९ ॥

जी० प्र०—भवनत्रयामराणामधोधोऽवधिविषयक्षेत्रं स्तोकं भवति । तिर्यग्रूपेण बहुकं भवति । तु-पुनः, भवनवासिनः स्वकीयावस्थितस्थानादुपरि सुरगिरिशिखरपर्यंतं अवधिदर्शनेन पश्यंति ॥ ४२९ ॥

स० चं०—भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ए जो भवनत्रिक देव तिनिकैं अधोधो कहिए नीचली दिशाप्रति अवधिका विषयभूत क्षेत्र स्तोक है बहुरि तिर्यच कहिए आपका स्थानककी बरोबरि दिशानिप्रति क्षेत्र बहुत है। बहुरि भवनवासी अपने स्थानकतैं ऊपरि मेरुगीरिका शिखरिपर्यंत अवधि दर्शनकरि देखैं हैं ॥ ४२९ ॥

सक्कीसाणा पढमं बिदियं तु सणक्कुमारमाहिंदा ।
तदियं तु बम्हलांतव सुक्कसहस्सारया तुरियं ॥ ४३० ॥

शक्रैशानाः प्रथमं द्वितीयं तु सनत्कुमारमाहेंद्राः ।
तृतीय तु ब्रह्मलांतवाः शुक्रसहस्रारकाः तुरियं ॥ ४३० ॥

जी० प्र—सौधर्मैशानजाः प्रथमपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति । सनत्कुमारमाहेंद्रजाः पुनर्द्वितीयपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति। ब्रह्मलांतवजास्तृतीयपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति । शुक्रशतारजाः चतुर्थपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति ॥ ४३० ॥

स० च०—सौधर्म ईशानवाले देव अवधिकरि प्रथम नरक पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं । बहुरि ब्रह्म ब्रह्मोत्तर लांतव कापिष्ठवाले देव तीसरी पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं । बहुरि शुक्र महाशुक्र शतार सहस्रारवाले देव चौथी पृथ्वी पर्यंत देखैं हैं ॥ ४३० ॥

आणदपाणदवासी आरण तह अच्चुदा य पस्संति ।
पंचमखिदिपेरंतं छट्ठिं गेवेज्जगा देवा ॥ ४३१ ॥

आनतप्राणतवासिनः आरणास्तथा अच्युताश्च पश्यंति ।
पंचमक्षितिपर्यंतं षष्ठीं ग्रैवेयका देवाः ॥ ४३१ ॥

जी० प्र०—आनतप्राणतवासिनः तथा आरणाच्युतवासिनश्च पंचमपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति, नवग्रैवेयकजा देवाः षष्ठपृथ्वीपर्यंतं पश्यंति ॥४३१॥

स० चं०—आनत प्राणतके वासी तथा आरण अच्युतके वासी देव पांचवी पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं बहुरि नवग्रैवेयकवाले देव छठी पृथ्वीपर्यंत देखैं हैं ॥ ४३१ ॥

सव्वं च लोयणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सक्खेत्ते य सुकम्मे रूवगदमणंतभागं च ॥ ४३२ ॥

सर्वां च लोकनालीं पश्यंति अनुत्तरेषु ये देवाः।
स्वक्षेत्रे च स्वकर्मणि रूपगतमनतभागं च ॥ ४३२ ॥

जी० प्र०—नवानुदिशपंचानुत्तरेषु ये देवाः, ते सर्वां लोकनालिं पश्यंति अयमर्थः। सौधर्मादिदेवाः उपरि स्वस्वस्वर्गविमानध्वजदंडशिखरपर्यंतं पश्यंति। नवानुदिशपंचानुत्तरदेवास्तु उपरि स्वस्वविमानशिखरमधो यावद्बहिर्वातवलयं तावत् साधिकत्रयोदशरज्वायतां पंचविंशत्युत्तरचतुःशतधनुरूनैकविंशतियोजनैर्न्यूनचतुर्दशरज्वायतां च रज्जुविस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यंतीति ज्ञातव्यं। इदं क्षेत्रपरिमाणनियामकं न किंतु तत्रतत्रतनस्थाननियामकं भवति कुतः? अच्युतांतानां विहारमार्गेण अन्यत्र गतानां तत्रैव क्षेत्रे तदवध्युत्पत्त्यभ्युपगमात्। स्वक्षेत्रे स्वस्वविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचये एकप्रदेशोऽपनेतव्यः। स्वकर्मणि स्वस्वावधिज्ञानावरणकर्मद्रव्ये एकवारं ध्रुवहारो दातव्यः यावत्प्रदेशप्रचयपरिसमाप्तिः स्यात्तावत्, अनेन तदवधिविषयद्रव्यभेदः सूचितः॥ ४३२ ॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

स० चं०—नव अनुदिश विमान अर पांच अनुत्तर विमानके वासी स लोकनाली जो त्रसनाली ताकौं देखैं हैं। यहु भावार्थ जानना—सौधर्मादिवासी देव ऊपरि अपने अपने स्वर्गका विमानका ध्वजा दंडका शिखरपर्यंत देखैं हैं बहुरि नव अनुदिश पंच अनुत्तर विमानके वासी देव ऊपरि अपने विमानका शिखर पर्यंत अर नीचैकौं बाह्य तनुवात पर्यंत सर्व त्रसनालीकौं देखैं है सो अनुदिश विमानवाले तौ किछू एक अधिक तेरह राजू प्रमाण लंबा अर अनुत्तर विमानवाले च्यारिसै पचीस धनुष घाटि इकवीस योजनकरि हीन चौदह राजू प्रमाण लंबा अर एक राजू चौडा अवधिका विषयभूत क्षेत्रकौं देखै हैं। ऐसा इहां क्षेत्रका परिमाण कीया है सो स्थानकका नियमरूप जानना। क्षेत्रका परिमाण लीएं नियमरूप न जानना। जातैं अच्युत स्वर्ग पर्यंतके वासी विहारकरि अन्य क्षेत्रकौं जांइ अर तहां अवधि होइ तौ पूर्वोक्त स्थानक पर्यंत ही होइ ऐसा नाही जो प्रथम स्वर्गवाला पहिले नरक जाइ अर तहां सेती डेढराजू नीचैं और जानैं। सौधर्मद्विकके प्रथम नरक पर्यंत अवधिक्षेत्र है सो तहां

भी तिष्ठता तहां पर्यंत क्षेत्रहीकौं जानैं ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि अपना क्षेत्रविषैं एक प्रदेश घटावना अर अपने अवधिज्ञानावरण द्रव्यकौं एकवार ध्रुवहारका भाग देना जहां सर्व प्रदेश पूर्ण होंइ सो तिस अवधिका विषयभूत द्रव्य जानना ॥ ४३२ ॥ इस ही अर्थकौं नीचैं दिखाइए है—

कप्पसुराणं सगसगओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं ।
ओहीदव्वपमाणं संठाविय धुवहरेण हरे ॥ ४३३ ॥
सगसगखेत्तपदेससलायपमाणं समप्पदे जाव ।
तत्थतणचरिमखंडं तत्थतणोहिस्स दव्वं तु ॥ ४३४ ॥

कल्पसुराणां स्वकस्वकावधिक्षेत्रं विविस्रसोपचयं ।
अवधिद्रव्यप्रमाणं संस्थाप्य ध्रुवहरेण हरेत् ॥ ४३३ ॥
स्वकस्वकक्षेत्रप्रदेशशलाकाप्रमाण समाप्यते यावत् ।
तत्रतनचरमखंडं तत्रतनावधेर्द्रव्यं तु ॥ ४३४ ॥

जी० प्र०—कल्पवासिनां स्वस्वावधिक्षेत्रं विगतविस्रसोपचयावधिज्ञानावरणद्रव्यं च संस्थाप्य—

≡३ / ३४३।२	≡४ / ३४३।	≡११ / ३४३।२	≡६ / ३४३।	≡१५ / ३४३।२	≡८ / ३४३।	≡१९ / ३४३।२	≡१० / ३४३	≡११ / ३४३।	≡१३। / ३४३	≡१४- / ३४३
स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४	स a१२- / ७४

क्षेत्रे एकप्रदेशमपनीय द्रव्यमेकवारं ध्रुवहारेण भजेत् यावत्स्वस्वावधिक्षेत्रप्रदेशप्रमाणं परिसमाप्यते तावत्। तत्रतनचरमखंडं तत्रतनावधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणं भवति। स्वस्वावधिविषयक्षेत्रप्रदेशप्रचयममिनध्रुवहारभक्तं विविस्रसोपचयस्वस्वावधिज्ञानावरणद्रव्यं स्वस्वावधिविषयद्रव्यं स्यादित्यर्थः ॥ ४३३–४३४ ॥

स० चं०—कल्पवासी देवनिकैं अपना अपना अवधिक्षेत्र अर विस्रसोपचयरहित अवधिज्ञानावरणका द्रव्य स्थापिकरि अवधिज्ञानावरण द्रव्यकौं एकवार ध्रुवहारका भागदेइ क्षेत्रविषैं एक प्रदेश घटावना ऐसैं सर्वक्षेत्रके प्रदेश पूर्ण होंइ तहां जो अंतविषैं सूक्ष्म पुद्गलस्कंधरूप खंड होइ सोई तिस अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य जानना। इहां उदाहरण कहिए है—सौधर्म ऐशानवालोंका क्षेत्र प्रथम नरक पर्यंत कह्या है सो प्रथम नरकतैं पहला दूसरा स्वर्गका उपरिम स्थान ड्योढ राजू ऊचा है तातैं अवधिका क्षेत्र एक राजू लंबा चौड़ा ड्योढ राजू ऊंचा भया। सो इस घन रूप ड्योढ राजू क्षेत्रके जितने प्रदेश होंइ ते एकत्र स्थापने। बहुरि किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्वरूप सर्व कर्मनिकी परमाणूनिका परिमाण है। तिस विषै अवधि ज्ञानावरणनामा कर्मके जेते परमाणू होंई तिन विषै विस्रसोपचयके परमाणू न मिलाइए ऐसे ते अवधिज्ञानावरणके परमाणू एकत्र स्थापने। बहुरि इस अवधिज्ञानावरणके परमाणूनिका प्रमाणकौं एकवार ध्रुवहारका भाग दीजिये तब उस क्षेत्रके प्रदेशनिका परिमाणमेंस्यों एक घटाइए बहुरि एकवार ध्रुवहारका भाग देतैं एक भाग विषै जो प्रमाण आया ताकौं दूसरा ध्रुवहारका भाग दीजिए तब तिस प्रदेशनिका परिमाणमेंस्यों एक और घटाइए। बहुरि दूसर। ध्रुवहारका भाग देते एक भाग विषै जो प्रमाण रह्या ताकौं तीसरा ध्रुवहारका भाग दीजिए तब तिस प्रदेशनिका परिमाणमेस्यों एक और घटाइए। बहुरि दूसरा ध्रुवहारका भाग देतैं एक भाग विषैं जो प्रमाण रह्या ताकौं तीसरा ध्रुवहारका भाग दीजिए तब तिस प्रदेशनिका परिमाणमेंस्यों एक और घटाइए ऐसैं जहां ताई सर्व क्षेत्रके प्रदेश पूर्ण होंइ तहां ताई ध्रुवहारका भाग देते जाईये देते देतैं अतके विषै जो परिमाण रहै तितने परमाणूका सूक्ष्म पुद्गल स्कंध जो होइ ताकौं सौधर्म ऐशान स्वर्गवाले देव अवधिज्ञान करि जानैं हैं। इसतैं स्थूल स्कंधको तो जानै ही जानैं। ऐसैं ही सानत्कुमार माहेंद्रवालोंके घनरूप चारि राजूप्रमाण क्षेत्रके प्रदेशनिका जो प्रमाण तितनीवार अवधिज्ञानावरण द्रव्यकौं ध्रुवहारका भाग देतैं देतैं जो प्रमाण रहै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं अवधिज्ञान करि जानै है ऐसैं सवनिकै अवधिका विषयभूत क्षेत्रके प्रदेशनिका जो प्रमाण होइ तितनीवार अवधिज्ञाना-

वरण द्रव्यकों ध्रुवहारका भाग देतें देतें जो प्रमाण रहै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं ते देव अवधिज्ञान करि जानैं हैं। तहां ब्रह्म ब्रह्मोत्तर वालोंके साढा पांच राजू, लांतव कापिष्ठवालोंके छह राजू, शुक्र महाशुक्रवालोंके साढा सात-राजू शतार सहस्रारवालोंके आठ राजू, आनत प्राणतवालोंके साढा नवराजू आरण अच्युतवालोंके दश राजू, ग्रैवेयकवालेंके ग्यारह राजू, अनुदिश विमानवालोंके किछू अधिक तेरह राजू, अनुत्तर विमानवालोंके किछू घाटि चोदह राजू क्षेत्रका परिमाण जानि पूर्वोक्तविधान कीएं तिनि देवनिकैं अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्यका परिमाण आवै है॥ ४३३–४३४॥

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जाओ हु वस्सकोडीओ।
उवरिमकप्पचउक्के पल्लासंखेज्जभागो दु॥ ४३५॥
तत्तो लांतवकप्पप्पहुदी सव्वत्थसिद्धिपेरंतं।
किंचूणपल्लमेत्तं कालपमाणं जहाजोग्गम्॥ ४३६॥ जुम्मं।

सौधर्मैशानानामसंख्येया हि वर्षकोट्यः।
उपरिमकल्पचतुष्के पल्यासंख्यातभागस्तु॥ ४३५॥
ततो लांतवकल्पप्रभृतिसर्वार्थसिद्धिपर्यंतं।
किंचिदूनपल्यमात्रं कालप्रमाणं यथायोग्यं॥ ४३६॥

जी० प्र०—सौधर्मैशानजानमवधिविषयकालः असंख्यातवर्षकोट्यः खलु वर्षको a। तु–पुनः, उपरितनकल्पचतुष्कजानां यथायोग्यं पल्यासंख्यातभागः प तत उपरि लांतवादिसर्वार्थसिद्धपर्यंतानां यथायोग्यं किंचिदूनपल्यं प–॥ ४३५–४३६॥

a

स० चं -सौधर्म ईशानवालोंके अवधिका विषय भूतकाल असंख्यात कोडि वर्ष प्रमाण है बहुरि तातैं ऊपरि सनत्कुमारादि चारिं स्वर्गवालोंके यथायोग्य पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण है। बहुरि तातैं ऊपरि लांतव आदि सर्वार्थसिद्धिपर्यंतवालोंके यथायोग्य किछू घाटि पल्य प्रमाण है ॥ ४३५-४३६ ॥

जोइसियंताणोहीखेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा ।
कप्पसुराणं च पुणो विसरित्थं आयदं होंदि ॥ ४३७॥

ज्योतिष्कांतानामवधिक्षेत्राणि उक्तानि न भवंति घनप्रतराणि ।
कल्पसुराणां च पुनः विसदृशमायतं भवति॥ ४३७ ॥

जी० प्र०—ज्योतिष्कांतत्रिविधदेवाना उक्तावधिविषयक्षेत्राणि समचतुरस्रघनरूपाणि न भवंति, सूत्रे तेषां विसदृशत्वकथनात् । अनेन पारिशेष्यात् तद्योग्यस्थाने नरनारकतिर्यगवधिविषयक्षेत्रमेव समघनमित्यर्थः। कल्पसुराणा पुनर्विसदृशमायातं आयतचतुरस्रमित्यर्थः ॥ ४३७ ॥

इत्यवधिज्ञानप्ररूपणा ।

स० चं०—ज्योतिषी पर्यंत जे भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी ऐसे तीन प्रकार देव तिनकैं जो अवधिका विषयभूत क्षेत्र कह्या है सो समचतुरस्र कहिए बरोबरि चौकोर घनरूप नाही है जातैं सूत्रविषैं लंबाई चौडाई उंचाई समान नाहीं कही है याहीतैं अवशेष रहे मनुष्य नारकी तिर्यंच तिनिकैं जो अवधिका विषय भूत क्षेत्र है सो बरोबरि चौकोर घनरूप है। अवधिज्ञानी मनुष्यादिक जहां तिष्ठता होइ तहांतैं अपने विषयभूत क्षेत्रका प्रमाणपर्यंत चौकोररूप घनक्षेत्रकौं जानै है। बहुरि कल्पवासी देवनिकैं जो अवधिज्ञानका विषयभूत क्षेत्र है सो विसदृश आयत कहिए लंबा बहुत चौडा थोडा ऐसा आयतचतुरस्र जानना ॥ ४३७ ॥

इति अवधिज्ञानप्ररूपणा समाप्ता ।

चिंतियमचिंतियं वा अद्धंचिंतियमणेयभेयगयं ।

मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥४३८॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्धं चिंतितमनेकभेदगतं ।

मनःपर्यय इत्युच्यते यज्जानाति तत्खलु नरलोके ॥ ४३८ ॥

जी० प्र०—चिंतितं-चिंताविषयीकृतं, अचिंतितं-चिंतयिष्यमाणं, अर्धचिंतितं-असंपूर्णचिंतितं वा इत्यनेकभेदगतं अर्थं परमनस्यवस्थितं यज्ज्ञानं जानाति तत् खलु मनःपर्यय इत्युच्यते । तस्योत्पत्तिप्रवृत्ती नरलोके मनुष्यक्षेत्र एव न तद्बहिः । परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थः मनः तत् पर्येति गच्छति जानातीति मनःपर्ययः ॥ ४३८ ॥

स० चं०—चिंतितं कहिए अतीतकालमें जिसका चिंतवन कीया अर अचिंतितं कहिए जाकौं अनागतकाल विषैं चिंतवेगा अर अर्ध चिंतितं कहिए जो सपूर्ण चिंतया नाहीं । ऐसा जो अनेक भेद लीए अन्य जीवका मनविषै प्राप्त हुवा अर्थ ताकौं जो जानैं सो मनःपर्यय कहिए । मनः कहिए अन्य जीवका मनविषै चिंतवनरूप प्राप्त भया अर्थ ताकौं पर्येति कहिए जानैं सो मनःपर्यय है ऐसा कहिए है सो इस ज्ञानकी उत्पत्ति मनुष्य क्षेत्र ही विषैं हैं बाह्य नाहीं है । पराया मन विषैं तिष्ठता जो अर्थ सो मन कहिए ताकौं 'पर्येति, कहिए जानैं सो मनःपर्यय जानना ४३८

मणपज्जवं च दुविहं उजुविउलमदित्तिउजुमदी तिविहा ।

उजुमणवयणे काए गदत्थविसयात्ति णियमेण ॥४३९॥

मनःपर्ययश्च द्विविधः ऋजुविपुलमतीति ऋजुमतिस्त्रिविधा ।

ऋजुमनोवचने काये गतार्थविषया इति नियमेन ॥ ४३९ ॥

जी० प्र०—स मनःपर्ययः सामान्येनैकोऽपि भेदविवक्षया ऋजुमतिमनःपर्ययः विपुलमतिमनःपर्ययश्चेति द्विविधः । तत्र ऋज्वी-ऋजुकायवाङ्मनःकृतार्थस्य-परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता-निष्पन्ना मतिर्यस्य स ऋजुमतिः स चासौ मनःपर्ययश्च ऋजुमतिमनःपर्ययः । विपुला कायवाग्मनःकृतार्थस्य-परकीयमनोगतस्य विज्ञानान्निर्वर्तिता अनिवर्तिता कुटिला च मतिर्यस्य स विपुलमतिः स चासौ मनःपर्ययश्च विपुलमतिमनः-

पर्ययः। अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले ते मती ययोस्तौ ऋजुविपुलमती तौ च तौ मनःपर्ययौ च ऋजुविपुलमतिमनःपर्ययौ। तत्र ऋजुमतिमनःपर्ययः ऋजुमनोगतार्थविषयः, ऋजुवचनगतार्थविषयः, ऋजुकायगतार्थविषयश्चेति नियमेन त्रिविधः ॥ ४३९ ॥

स चं०—सो यहु मनःपर्यय ज्ञान सामान्यपनैं एक प्रकार है तथापि भेदतैं दोय प्रकार है-ऋजुमति मनःपर्यय १ विपुलमति मनः पर्यय २, तहां सरलपनैं मन वचन कायकरि कीया जो अर्थ अन्य जीवका मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया ताके जाननेतैं निष्पन्न भई ऐसी ऋज्वी कहिए सरल है मति जाकी सो ऋजुमति कहिए। बहुरि सरल वा वक्र मन वचन कायकरि कीया जो अर्थ अन्य जीवका मन विषै चिंतवनरूप प्राप्त भया ताके जाननेतैं निष्पन्न भई वा नाईं निष्पन्न भई ऐसी विपुला कहिए कुटिल है मति जाकी सो विपुलमति कहिए ऐसैं ऋजुमति अर विपुलमतिके भेदतैं मनःपर्ययज्ञान दोय प्रकार है। तहां ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान नियमकरि तीनप्रकार है ऋजु मनविषैं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा बहुरि ऋजु वचनविषैं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा बहुरि ऋजुकायविषैं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा ऐसैं ए तीन भेद हैं ॥ ४३९ ॥

विउलमदीवि य छद्धा उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं।
अत्थं जाणदि जम्हा सद्दत्थगया हु ताणत्था ॥४४०॥

विपुलमतिरपि च षोढा ऋजुगानृजुवचनकायचित्तगतं।
अर्थं जानाति यस्मात् शब्दार्थगता हि तेषामर्थाः ॥ ४४० ॥

जी० प्र०—विपुलमतिमनःपर्ययोऽपि यस्मात् ऋज्वनृजुमनोवचनकायगतार्थं जानाति तस्मात्कारणात् ऋजुमनोगतार्थविषयः ऋजुवचनगतार्थविषयः ऋजुकायगतार्थविषयः अनृजुमनोगतार्थविषयः अनृजुवचनगतार्थविषयः अनृजुकायगतार्थविषयश्चेति षोढा। तयोः ऋजुविपुलमतिमनःपर्यययोः अर्थाः-विषयाः शब्दगता अर्थगताश्च स्फुटं भवति। तद्यथा—कश्चिज्जीवः ऋजुमनसा निर्वर्तितः-निष्पन्नः त्रिकालविषयपदार्थान् चिंतितवान् ऋजुवचनेन निर्वर्तितस्तानुक्तवान् ऋजुकायेन निष्पन्नस्तान् कृतवान्, विस्मृत्य कालांतरेण स्मर्तुमशक्तः, आगत्य पृच्छति वा तूष्णीं तिष्ठति तदा ऋजुमति-

मनःपर्ययज्ञानं जानाति । तथा ऋज्वनृजुमनोवचनकायैर्निर्वर्तितः त्रिकालविषयपदार्थान् चिंतितवान् वा उक्तवान् वा कृतवान् विस्मृत्य कालांतरेण स्मर्तुमशक्तः आगत्य पृच्छति वा तूष्णीं तिष्ठति तदा विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति ॥ ४४० ॥

स० चं०—विपुलमति ज्ञान भी छहप्रकार है। ऋजुमनकौं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा १, ऋजु वचनकौं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा २, ऋजु कायकौं प्राप्त भया अर्थका जाननहारा ३, बहुरि वक्र मनकौं प्राप्त भया अर्थका जाननहारा ४, बहुरि वक्र वचनकौं प्राप्त भया अर्थका जाननहारा ५, बहुरि वक्र कायकौं प्राप्त भया अर्थका जानन हारा ६ ए छह भेद हैं जातैं सरल वा वक्र मन वचन कायकौं प्राप्त भया पदार्थकौं जानैं है। बहुरि तिन ऋजुमति विपुलमति ज्ञानके अर्थाः कहिए विषय ते शब्दकौं वा अर्थकौं प्राप्त भए प्रगट हो हैं। कैसैं ? सो कहिए है—कोई भी सरल मनकरि निष्पन्न होत संता त्रिकालसंबंधी पदार्थनिकौं चिंतवत भया, वा सरल वचनकरि निष्पन्न होत संता तिनकौं कहत भया वा सरल कायकरि निष्पन्न होत संता तिनकौं करत भया पीछैं भूलिकरि कालांतरविषैं यादि करनेकौं समर्थ न हूवा अर आयकरि ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानीकौं पूछत भया वा यादि करनेका अभिप्रायकौं धारि मौनहीतैं खडा रह्या तौ तहां ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वकौं जानै है। तैसैं ही सरल वा वक्र मन वचन कायकरि निष्पन्न होत संता त्रिकालसंबंधी पदार्थनिकौं चिंतवत भया वा कहत भया वा करत भया बहुरि भूलिकरि केतेक काल पीछै यादि करनेकौं समर्थ न हूवा आयकरि विपुलमति मनःपर्ययज्ञानीके निकटि पूछत भया वा मौनतैं खडा रह्या तहां विपुलमति मनःपर्ययज्ञान सर्वकौं जानैं ऐसैं इनिका स्वरूप जानना ४४०

तियकालविसयरूविं चिंतितं वट्टमाणजीवेण ।
उजुमदिणाणं जाणदि भूदभविस्सं च विउलमदी ॥४४१॥

त्रिकालविषयरूपि चिंतितं वर्तमानजीवेन ।
ऋजुमतिज्ञानं जानाति भूतभविष्यच्च विपुलमतिः ॥ ४४१ ॥

जी० प्र०—त्रिकालविषयपुद्गलद्रव्यं वर्तमानजीवेन चिंत्यमानं ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति । भूतभविष्यद्वर्तमानकालविषयं चिंतितं चिंतयिष्यमाणं चिंत्यमानं च विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानं जानाति ॥ ४४१ ॥

स० चं०—त्रिकालसंबंधी पुद्गल द्रव्यकौं वर्तमान कालविषैं कोई जीव चिंतवन करै है तिस पुद्गल द्रव्यकौं ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है। बहुरि त्रिकालसबंधी पुद्गल द्रव्यकौं कोई जीव अतीत कालविषैं चिंतया था वा वर्तमान कालविषैं चिंतवै है वा अनागत कालविषैं चिंतवेगा ऐसे पुद्गल द्रव्यकौं विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ॥ ४४१ ॥

सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही ।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ॥ ४४२ ॥

सर्वांगांगसंभवचिह्नादुत्पद्यते यथावधिः ।
मनःपर्ययं च द्रव्यमनस्त उत्पद्यते नियमात् ॥ ४४२ ॥

जी० प्र०—सर्वांगे अंगसंभवशंखादिशुभचिन्हे च यथा अवधिज्ञानमुत्पद्यते तथा मनःपर्ययज्ञानं द्रव्यमनसि एवोत्पद्यते नियमेन नान्यत्रांगप्रदेशेषु ४४२

स० चं०—जैसैं पूर्वैं कह्या था भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंगतैं उपजै है अर गुणप्रत्यय शंखादिक चिह्ननितैं उपजै है तैसैं मनःपर्ययज्ञान द्रव्य मनतैं उपजै है नियमतैं और अंगनिके प्रदेशनिविषैं नाही उपजै है ॥४४२॥

हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा ।
अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा ॥ ४३ ॥

हृदि भवति हि द्रव्यमनः विकसिताष्टच्छदारविंदवत् ।
अंगोपांगोदयात् मनोवर्गणास्कंधतो नियमात् ॥ ४४३ ॥

जी० प्र०—अंगोपांगनामकर्मोदयकारणात् मनोवर्गणास्कंधैर्विकसिताष्टच्छदारविंदसदृशं द्रव्यमनो हृदये उत्पद्यते स्फुटं ॥ ४४३ ॥

स० चं०—सो द्रव्य मन हृदय स्थानविषैं प्रफुल्लित आठ पाखुडीका कमलके आकार अंगोपांग नाम कर्मके उदयतैं तेईस जातिकी पुद्गल वर्गणानिविषैं मनोवर्गणा है तिनि स्कंधनिकरि निपजै है ऐसा नियम है ॥४४३॥

णोइंदियत्ति सण्णा तस्स हवे सेसइंदियाणं वा।
वत्तत्ताभावादो मण मणपज्जं च तत्थ हवे ॥ ४४ ॥

नोइंद्रियमिति संज्ञा तस्य भवेत् शेषेंद्रियाणां वा।
व्यक्तत्वाभावात् मनो मनःपर्ययश्च तत्र भवेत् ॥ ४४४ ॥

जी० प्र०—तस्य द्रव्यमनसः शेषस्पर्शनादींद्रियाणामिव ;स्थाननिर्देशाभ्यां व्यक्तत्वाभावात् ईषदिंद्रियत्वेन नोइन्द्रियमित्यन्वर्थनाम भवेत्। तत्र द्रव्यमनसि भावमनो मनःपर्ययश्चोत्पद्यते ॥ ४४४ ॥

स० चं०—तिस मनका नोइंद्रिय ऐसा नाम है नो कहिए ईषत् किंचिन्मात्र इंद्रिय है जैसें स्पर्शनादिक इंद्रिय प्रकट है तैसें मनके प्रकटपना नाहीं तातैं मनका नोइंद्रिय ऐसा नाम है सो तिस द्रव्य मनविषैं मतिज्ञानरूप भाव मन भी उपजै हैं अर मनःपर्ययज्ञान भी उपजै है ॥ ४४४ ॥

मणपज्जवं च णाणं सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीण।
एगादिजुदेसु हवे वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु ॥ ४५ ॥

मनःपर्ययश्च ज्ञानं सप्तसु विरतेषु सप्तर्धीनां।
एकादियुतेषु भवेद्वर्धमानविशिष्टाचरणेषु ॥ ४४५ ॥

जी० प्र०—प्रमत्तादिसप्तगुणस्थानेषु बुद्धितपोविक्रियौषधरसबलाक्षीणनामसप्तर्धिमध्ये एकद्वित्र्यादियुतेष्वेव वर्धमानविशिष्टाचरणेषु मनःपर्ययज्ञानं भवति, नान्यत्र ॥ ४४५ ॥

स० चं०—प्रमत्त आदि सात गुणस्थाननिविषैं बुद्धि १ तप २ वैक्रियिक ३ औषध ४ रस ५ बल ६ अक्षीण ७ इनि सात रिद्धिनिविषैं एक दोय आदि रिद्धिनिकरि संयुक्त बहुरि वर्धमान विशेष रूप चारित्रके धारी जे महामुनि तिनिकैं मनःपर्यय ज्ञान हो है अन्यत्र नाहीं ॥ ४५५ ॥

इंदियणोइंदियजोगादि पेक्खित्तु उजुमदी होदि।
णिरवेक्खिय विउलमदी ओहिं वा होदि णियमेण ॥

इंद्रियनोइंद्रिययोगादिमपेक्ष्य ऋजुमतिर्भवाति।
निरपेक्ष्य विपुलमतिः अवधिर्वा भवति नियमेन ॥ ४४६ ॥

जी० प्र०—ऋजुमतिमनःपर्ययः स्पर्शनादींद्रियाणि नोइंद्रिय मनोवचनकाययोगांश्च स्वपरसंबंधिनोऽपेक्ष्यैवोत्पद्यते। विपुलमतिमनःपर्ययस्तु अवधिज्ञानमिवताननपेक्ष्यैवोत्पद्यते नियमेन ॥ ४४६ ॥

स० चं०—ऋजुमाति मनःपर्ययज्ञान है सो अपने वा अन्य जीवके स्पर्शनादिक इंद्री अर मन अर मन वचन काय योग तिनकी सापेक्षतैं उपजै है। बहुरि विपुलमति मनःपर्यय है सो अवधिज्ञानकीसी नाईं तिनकी अपेक्षा विना ही नियमकरि जानै है ॥ ४५६ ॥

पडिवादी पुण पढमा अप्पडिवादी हु होदि बिदिया हु।
सुद्धो पढमो बोहो सुद्धतरो बिदियबोहो दु ॥

प्रतिपाती पुनः प्रथमः अप्रतिपाती हि भवति द्वितीयो हि।
शुद्धः प्रथमो बोधः शुद्धतरो द्वितीयबोधस्तु ॥ ४४७ ॥

जी० प्र०—प्रथमः ऋजुमतिमनःपर्ययः प्रतिपाती भवति। क्षीणकषायस्याप्यप्रतिपातेऽपि, उपशांतकषायस्य चारित्रमोहोद्रेकात्तत्संभवात्। पुनः-

द्वितीयो विपुलमतिमनःपर्ययः अप्रतिपाती खलु । ऋजुमतिमनःपर्ययो विशुद्धः, प्रतिपक्षकर्मक्षयोपशमे सति आत्मप्रसादरूपविशुद्धेः संभवात् । तु पुनः विपुलमतिमनःपर्ययः अतिशयेन विशुद्धो भवति ॥ ४४७ ॥

स० चं०—पहिला रिजुमति मनःपर्यय है सो प्रतिपाती है बहुरि दूसरा विपुलमति मनःपर्यय सो अप्रतिपाती है। जाकैं विशुद्ध परिणामनिकी घटवारी होइ सो प्रतिपाती कहिए। जाकैं विशुद्ध परिणामनिकी घटवारी न होइ सो अप्रतिपाती कहिए। बहुरि रिजुमति मनःपर्यय तौ विशुद्ध है जातैं प्रतिपक्षी कर्मके क्षयोपशमतैं निर्मल भया है। बहुरि विपुलमति मनः पर्यय विशुद्धतर है जातैं अतिशय करि निर्मल भया है ॥ ४४७ ॥

परमणसिट्ठियमट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय।
पच्छा पच्चक्खेण य उजुमदिणा जाणदे णियमा ॥४४८॥

परमनसि स्थितमर्थमीहामत्या ऋजुस्थितं लब्ध्वा ।
पश्चात् प्रत्यक्षेण च ऋजुमतिना जानीते नियमात् ॥ ४४८ ॥

जी० प्र०—परस्य मनसि ऋजुतया स्थितमर्थं ईहामतिज्ञानेन पूर्वं लब्ध्वा पश्चात् ऋजुमतिज्ञानेन प्रत्यक्षतया मनःपर्ययज्ञानी जानीते नियमात् ॥४४८॥

स० चं०—परजीवके मनविषैं सरलपनैं चिंतवन रूप तिष्ठता जो पदार्थ ताकौं पहलैं तौ ईहा नाम मतिज्ञान करि प्राप्त होइ ऐसा विचारै कि याका मनविषैं कह्या है। पीछैं रिजुमति मनःपर्यय ज्ञानकरि तिस अर्थकौं प्रत्यक्षपने करि रिजुमति मनःपर्ययज्ञानी जानै है यह नियम है॥ ४४८ ॥

चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं ।
ओहिं वा विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा ॥४४९॥

चिंतितमचिंतितं वा अर्धं चिंतितमनेकभेदगतं ।

अवधिर्वा विपुलमतिः लब्ध्वा विजानाति पश्चात् ॥ ४४९ ॥

जी० प्र०—चिंतितं अचिंतितं अथवा अर्धचिंतितं इत्यनेकभेदगतं परमनोगतार्थं पूर्वं लब्ध्वा पश्चाद्विपुलमतिमनःपर्ययः अवधिरिव प्रत्यक्षं जानाति ॥ ४४९ ॥

स० च०—अतीत कालविषैं चिंतया अनागत कालविषैं जाका चिंतवन होगा ऐसा विना चिंतया वा वर्तमान कालविषैं किछू एक आधासा चिंतया ऐसा अन्य जीवका मनविषैं तिष्ठता अनेक भेद लीए अर्थ ताकौं पहिलैं प्राप्त होइ याका मनविषैं यहु है ऐसा जानि पीछै अवधिज्ञानकी नाईं विपुलमति मनःपर्ययज्ञान तिस अर्थकौं प्रत्यक्ष जानै है ॥ ४४९ ॥

दव्वं खेत्तं कालं भावं पडि जीवलक्खियं रूविं।
उजुविउलमदी जाणदि अवरवरं मज्झिमं च तहा ॥४५०॥

द्रव्यं क्षेत्रं कालं भाव प्रति जीवलक्षितं रूपि ।
ऋजुविपुलमती जानीतः अवरवरं मध्यमं च तथा ॥ ४५० ॥

जी० प्र०—द्रव्यं प्रति क्षेत्रं प्रति कालं प्रति भावं प्रति प्रत्येकं जीवलक्षितं-जीवचिंतितं, रूपि-पुद्गलद्रव्यं तत्संबंधिजीवद्रव्यं च जघन्यं उत्कृष्टं तथा मध्यमं च ऋजुविपुलमतिमनःपर्ययौ जानीतः ॥ ४५० ॥

स० च०—द्रव्य प्रति वा क्षेत्र प्रति वा काल प्रति वा भावप्रति जीवकरि लक्षित कहिए चिंतवन कीया हूवा जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गलके संबंधकौं धरैं संसारी जीव द्रव्य ताकौं जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि ऋजुमति वा विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान जानै है ॥ ४५० ॥

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु ।

चक्खिंदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥४५१॥

अवरं द्रव्यमौरालिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं तु।
चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमुत्कृष्टमृजुमतेर्भवेत् ॥ ४५१ ॥

जी० प्र०—तत्र ऋजुमतिमनःपर्ययः जघन्यद्रव्यं औदारिकशरीरनिर्जीर्णसमयप्रबद्धं जानाति स ३ १६ ख। तु-पुनः, उत्कृष्टद्रव्यं चक्षुरिंद्रियनिर्जीर्णमात्रं जानाति। तत्कियत् ? औदारिकशरीरावगाहने संख्यातघनांगुले सविस्रसोपचयौदारिकशरीरसमयप्रबद्धो गलति तदा चक्षुरिंद्रियाभ्यंतरनिर्वृत्तिप्रदेशप्रचये किमिति त्रैराशिकेन प्र ६ ११ फ स ३ १६ ख । इ ६ प ११ ११ प लब्धमात्रं भवति—स ३ १६ ख । ६ । प ६ ११ प ११ ११ प ॥ ४५१ ॥

स० चं०—ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान जघन्यपनें करि औदारिक शरीरका निर्जरारूप समय प्रबद्धकौं जानैं है। औदारिक शरीरविषैं समय समय निर्जरा हो है सो एक समयविषैं औदारिक शरीरके जितने परमाणू निर्जरैं तितने परमाणूनिका स्कंधकौं जघन्य रिजुमति मनःपर्यय ज्ञान जानैं है । बहुरि उत्कृष्टपनैं नेत्र इंद्रियकी निर्जरा मात्र द्रव्यकौं जानैं हैं। सो कितना है ? औदारिक शरीरकी अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिसविषैं विस्रसोपचय सहित औदारिक शरीरका समय प्रबद्ध प्रमाण परमाणू निर्जरा रूप भए तौ नेत्र इंद्रियकी अभ्यंतर निर्वृत्ति अंगुलके असंख्यातवे भाग प्रमाण है तिसविषैं कितने परमाणू निर्जरा रूप भए ऐसा त्रैराशिक करि जितना परमाणू आया तितने परमाणूनिका स्कंधकौं उत्कृष्ट ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान जानैं है ॥ ४५१ ॥

मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं।
खंडिदमेत्तं होदि हु विउलमदिस्सावरं दव्वं ॥ ४५२ ॥

मनोद्रव्यवर्गणामनंतिमभागेन ऋजुगोत्कृष्टं।
खंडितमात्रं भवति विपुलमतेरवरं द्रव्यं ॥ ४५२ ॥

जी० प्र०—मनोद्रव्यवर्गणाविकल्पानामनंतैकभागेन ध्रुवहारेण १— ज १ ऋजुमतिविषयोत्कृष्टद्रव्ये खंडिते यावन्मात्रं तत्स्फुटं विपुलमतिविषयजघन्यद्रव्यं भवति स ३ १६ ख। ६ प ॥ ४५२ ॥
ख ख १-- ३

१—
६ ७ प ७ ७ प। ९
३ ३

स० चं०—बहुरि तेईस जातिकी पुद्गल वर्गणानिविषैं मनोवर्गणाका जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत जितने भेद हैं तिनिकौं अनंतका भाग दीजिए तहां जो एक भागविषैं प्रमाण होइ सो मनःपर्यय ज्ञानका कथन विषै ध्रुवहारका परिमाण जानना सो ऋजुमतिका उत्कृष्ट विषयभूत द्रव्यविषैं जो परिमाण कह्या था ताकौं इस ध्रुवहारका भाग दीएं जो परिमाण आवै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं जघन्य विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ॥४५२॥

अट्ठण्हं कम्माणं समयपबद्धं विविस्ससोवचयं।
धुवहारेणिगिवारं भजिदे विदियं हवे दव्वं ॥ ४५३ ॥

अष्टानां कर्मणां समयप्रबद्धं विविस्रसोपचयं।

ध्रुवहारेणैकवारं भाजिते द्वितीयं भवेद् द्रव्यं ॥ ४५३ ॥

जी० प्र०—अष्टकर्मसामान्यसमयप्रबद्धे विविस्रसोपचये ध्रुवहारेण एकवारं भक्ते यदेकखंडं तद्विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्यं भवति—

स ३ ३ ३ ख ख ॥ ४५३ ॥
९

स० चं —आठ कर्मनिका समुदायरूप जो समय प्रबद्धका प्रमाण तीहि विषैं विस्रसोपचयके परमाणू न मिलाइए तिनहीकौं एकवार मनःपर्यय संबंधी ध्रुवहारका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने परमाणूनिका स्कंधकौं विपुलमति मनःपर्ययका दूसरा भेदरूप ज्ञान जानैं है ॥ ४५३ ॥

तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं ।
धुवहारेणवहरिदे होदि हु उक्कस्सयं दव्वं ॥ ४५४ ॥

तद्द्वितीयं कल्पानामसंख्येयानां च समयसंख्यासमं ।
ध्रुवहारेणावहृते भवति हि उत्कृष्टकं द्रव्यं ॥ ४५४ ॥

जी० प्र०—तस्मिन् विपुलमतिविषयद्वितीयद्रव्ये असंख्यातकल्पसमयसंख्यैर्ध्रुवहारैर्भक्ते विपुलमतिविषयं सर्वोत्कृष्टद्रव्यं भवति—

स ३ ३ ३ ख ख ॥ ४५४ ॥
९। क ३९९९

स० चं —तिस विपुलमतिके दूसरे भेदसंबंधी द्रव्यकौं तिस ही ध्रुवहारका भाग दीजिए जो प्रमाण आवै ताकौं फेरि ध्रुवहारका भाग दीजिए ऐसैं असंख्यात कल्पकालके जेते समय हैं तितनीवार ध्रुवहारका भाग दीजिए देतैं देतैं अंतविषैं जो परिमाण रहै तितने परिमाणूनिका स्कंधकौं उत्कृष्ट विपुलमतिज्ञान जानैं है ऐसैं द्रव्य प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे ॥ ४५४ ॥

गाउयपुधत्तमवरं उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं ।
विउलमदिस्स य अवरं तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं ॥४५५॥

गव्यूतिपृथक्त्वमवरमुत्कृष्टं भवति योजनपृथक्त्वं ।
विपुलमतेश्च अवरं तस्य पृथक्त्वं वर खलु नरलोकः ॥ ४५५ ॥

जी० प्र०—ऋजुमतिविषयजघन्यक्षेत्रं गव्यूतिपृथक्त्वं द्वित्रिकोशाः २ । ३ । उत्कृष्टं योजनपृथक्त्वं सप्ताष्टयोजनानि ७ । ८ । विपुलमतिविषयजघन्यक्षेत्रं योजनपृथक्त्वं अष्टनवयोजनानि । ८ । ९ । उत्कृष्टं स्फुटं नरलोकः ॥ ४५५ ॥

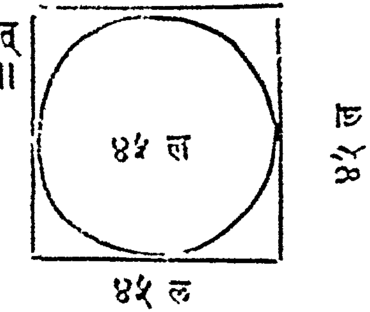
स० चं०—ऋजुमतिका विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व कोश प्रमाण है सो दोय तीन कोश प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है सो सात वा आठ योजन प्रमाण जानना । बहुरि विपुलमतिका विषयभूत जघन्य क्षेत्र पृथक्त्व योजन प्रमाण है सो आठ वा नव योजन प्रमाण जानना । बहुरि उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्यलोक प्रमाण है ॥ ४५५ ॥

णरलोएत्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स ।
जह्मा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं ॥ ४५६ ॥

नरलोक इति च वचनं विष्कंभनियामकं न वृत्तस्य ।
यस्मात्तद्घनप्रतरं मनःपर्ययक्षेत्रमुद्दिष्टं ॥ ४५६ ॥

जी० प्र०—यद्विपुलमतिविषयोत्कृष्टक्षेत्रप्ररूपणे नरलोक इति वचनमुक्तं तत् तद्गतविष्कंभस्य नियामकं निश्चायकं भवति न तु वृत्तस्य ।

कुतः ? यतस्तत्पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाणं समचतुरस्रघनप्रतरं मनःपर्ययविषयोत्कृष्टक्षेत्रं समुद्दिष्टं ततः कारणात्
तदपि कुतः ? मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणस्थिततिर्यगमराणां परचिंतितानां उत्कृष्टविपुलमतेः परिज्ञानात् ॥४५६॥



स० चं०—नरलोक ऐसा वचन कह्या है सो इहां मनुष्य लोकका विष्कंभका जेता परिमाण है सो लेना अर मनुष्य लोक तौ गोल है अर यहु विपुलमतिका विषयभूत क्षेत्र समचतुरस्र घन प्रतर कहिए समान चौकोर घन रूप प्रतर क्षेत्र कह्या है सो पैंतालीस लाख योजन लंबा तितना ही चौडा ऐसा परिमाण जानना। इहां ऊंचाई थोडी है तातैं घन प्रतर कह्या है जातैं मानुषोत्तर पर्वतके बाह्य च्यारों कोणानिविषैं तिष्ठते देव तिर्यंच चिंतए हूवे तिनिकौं भी उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्ययज्ञान जानैं है ऐसैं क्षेत्रप्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे ॥ ४५६ ॥

दुगतिगभवा हु अवरं सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं।
अडणवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं ॥ ४५७ ॥

द्विकत्रिकभवा हि अवरं सप्ताष्टभवा भवंति उत्कृष्टं।
अष्टनवभवा हि अवरमसंख्येयं विपुलोत्कृष्टं ॥ ४५७ ॥

जी० प्र०—कालं प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्यं द्वित्रिभवाः स्युः। उत्कृष्टं सप्ताष्टभवाः स्युः। विपुलमतेर्विषयजघन्यं अष्टनवभवाः स्युः। उत्कृष्टं पल्यासंख्यातैकभागः स्यात् प ॥ ४५७ ॥
a

स० चं०—कालकरि ऋजुमतिका विषय जघन्यपनैं अतीत अनागतरूप दोय तीन भव है उत्कृष्टपनैं सात

आठ भव है बहुरि विपुलमतिका विषय जघन्य आठ नव भव है उत्कृष्ट पल्यका असंख्यातवां भाग मात्र है। ऐसैं अतीत अनागत अपेक्षा काल प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे॥ ४५७॥

आवलिअसंखभागं अवरं च वरं च वरमसंखगुणं।
तत्तो असंखगुणिदं असंखलोगं तु विउलमदी॥ ४५८॥

आवल्यसंख्यभागमवरं च वरं च वरमसंख्यगुणं।
ततोऽसंख्यातगुणितमसंख्यलोकं च विपुलमतिः॥ ४५८॥

जी० प्र०—भावं प्रति ऋजुमतेर्विषयजघन्यं आवल्यसंख्यातैकभागः। ८/aaa उत्कृष्टं तदालापमपि जघन्यादसंख्यातगुणं ८ a/aaa ततः विपुलमतेर्विषयजघन्यमसंख्यातगुणं ८ a a/aaa उत्कृष्टं तु पुनः असंख्यातलोकः। ≡ a॥ ४५८॥

स० चं०—ऋजुमतिका विषयभूत भाव जघन्यपनैं आवलीके असंख्यातवे भाग प्रमाण है। उत्कृष्टपनैं भी आवलीके असंख्यातवां भाग प्रमाण ही कहिए तथापि जघन्यतैं असंख्यात गुणा है। बहुरि विपुलमतिका विषयभूत भाव जघन्यपनै रिजुमतिका उत्कृष्टतैं असंख्यात गुणा है। बहुरि उत्कृष्टपनैं असंख्यात लोक प्रमाण है। ऐसैं भाव प्रति जघन्य उत्कृष्ट भेद कहे॥ ४५८॥

मज्झिमदव्वं खेत्तं कालं भावं च मज्झिमं णाणं।
जाणदि इदि मणपज्जवणाणं कहिदं समासेण॥

मध्यमद्रव्यं क्षेत्रं कालं भावं च मध्यमं ज्ञानं।
जानातीति मनःपर्ययज्ञानं कथितं समासेन॥ ४५९॥

जी० प्र०—ऋजुविपुलमत्योः जघन्योत्कृष्टविकल्पौ जघन्योत्कृष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानीतः । मध्यमविकल्पास्तु स्वस्वमध्यमद्रव्यक्षेत्रकालभावान् जानंति इत्येवं मनःपर्ययज्ञानं संक्षेपेणोक्तं ॥ ४५९ ॥

स० चं०—रिजुमति अर विपुलमतिका जघन्यभेद अर उत्कृष्ट भेद तो जघन्य वा उत्कृष्ट द्रव्यके क्षेत्र काल भावनिकौं जानै है। अर जे जघन्य अर उत्कृष्टके मध्यवर्ती जे द्रव्य क्षेत्र काल भाव तिनकौं रिजुमति अर विपुलमतिके जे मध्य भेद हैं ते जानैं हैं ऐसैं मनःपर्ययज्ञान संक्षेपकरि कह्या है ॥ ४५९ ॥

संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं ।
लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेदव्वं ॥

संपूर्णं तु समग्रं केवलमसंपन्नं सर्वभावगतं ।
लोकालोकवितिमिरं केवलज्ञानं मंतव्यं ॥ ४६० ॥

जी० प्र०—जीवद्रव्यस्य शक्तिगतसर्वज्ञानाविभागप्रतिच्छेदानां व्यक्तिगतत्वात् संपूर्णं । मोहनीयवीर्यांतरायनिरवशेषक्षयादप्रतिहतशक्तियुक्तत्वात् निश्चलत्वाच्च समग्रं । इंद्रियसहायनिरपेक्षत्वात् केवलं । घातिचतुष्टयप्रक्षयात् क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन सकलपदार्थगतत्वात् असंपन्नं । लोकालोकयोर्विगततिमिरं तदिदं केवलज्ञानं मंतव्यं ॥ ४६० ॥ अथ ज्ञानमार्गणायां जीवसंख्यामाह—

स० चं०—जीव द्रव्यके शक्तिरूप जे सर्व ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेद थे ते सर्व व्यक्तरूप भए तातैं संपूर्ण है बहुरि ज्ञानावरणीय अर वीर्यांतराय नामा कर्मके सर्वथा नाशतैं जिसकी शक्ति रुकै नाहीं है वा निश्चल है तातैं समग्र है। बहुरि इंद्रियनिका सहायकरि रहित है तातैं केवल है। बहुरि प्रतिपक्षी च्यारि घाति कर्मके नाशतैं अनुक्रम रहित सकल पदार्थनिविषैं प्राप्त भया है तातैं असंपन्न है बहुरि लोकालोकविषैं अज्ञान अंधकार रहित प्रकाशमान है ऐसा अभेदरूप केवलज्ञान जानना ॥ ४६० ॥ आगैं ज्ञानमार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या कहे हैं—

चदुगदिमदिसुदबोहा पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा ।

संखेज्जा केवलिणो सिद्धादो होंति अदिरित्ता ॥४६१॥

चतुर्गतिमतिश्रुतबोधाः पल्यासंख्येया हि मनःपर्यायाः।
संख्येयाः, केवलिनः सिद्धात् भवंति अतिरिक्ताः ॥ ४६१ ॥

जी० प्र०—चतुर्गतेर्मतिज्ञानिनः श्रुतज्ञानिनश्च प्रत्येकं पल्यासंख्यातैकभागमात्राः स्युः स्फुटं म प श्रु प मनःपर्ययज्ञानिनः संख्याताः १ केवलज्ञानिनः जिनसंख्यया समधिकसिद्धराशिः ३ ॥ ४६१ ॥

स० चं०—च्यारयो गतिविषैं मतिज्ञानी पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं। बहुरि श्रुतज्ञानी भी पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं बहुरि मनःपर्यय ज्ञानी मनुष्य संख्यात हैं। बहुरि केवलज्ञानी सिद्धराशिविषैं तेरहां चौदहां गुणस्थानवर्ती जीवनिका परिमाण मिलाएं जो होइ तीहिं प्रमाण हैं ॥ ४६१ ॥

ओहिरहिदा तिरिक्खा मदिणाणिअसंखभागगा मणुगा।
संखेज्जा हु तदूणा मदिणाणी ओहिपरिमाणं ॥४६२॥

अवधिरहिताः तिर्यंचः मतिज्ञान्यसंख्यभागका मनुजाः।
संख्येया हि तदूनाः मतिज्ञानिनः अवधिपरिमाणं ॥ ४६२ ॥

जी० प्र०—अवधिज्ञानरहिततिर्यंचः मतिज्ञानिसंख्यया असंख्येयभागः प १ अवधिरहितमनुष्याः संख्याताः १ एतद्राशिद्वयोना मतिज्ञानसंख्यैव चतुर्गत्यवधिज्ञानपरिमाणं भवति प १ – १ ॥ ४६२ ॥

स० चं०—अवधिज्ञानरहित तिर्यंच, मतिज्ञानी जीवनिकी संख्या कही तीहिंके असंख्यातवे भाग प्रमाण

है। बहुरि अवधिज्ञानरहित मनुष्य संख्यात हैं ए दोऊ राशि मतिज्ञानी जीवनिकी जो संख्या कही थी तिसमैंस्यों घटाइ दीएं जो अवशेष प्रमाण रहै तितने च्यारयो गतिसंबधी अवधिज्ञानी जीव जानने ॥ ४६२ ॥

पल्लासंखघणंगुलहदसेढितिरिक्खगदिविभंगजुदा।
णरसहिदा किंचूणा चदुगदिवेभंगपरिमाणं ॥ ४६३ ॥

पल्यासंख्यघनांगुलहतश्रेणितिर्यग्गतिविभंगयुताः।
नरसहिताः किंचिदूनाः चतुर्गतिवैभंगपरिमाणं ॥ ४६३ ॥

जी० प्र०—पल्यासंख्यातघनांगुलहतजगच्छ्रेणिमात्रतिर्यंचः—६ प संख्यातमनुष्याः ७ सम्यग्दृष्ट्यूनघनांगुलद्वितीयमूलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रना-
a

रकाः—२—सम्यग्दृष्ट्यूनज्योतिष्कसंख्यासाधिकदेवाः १— मिलित्वा चतुर्गतिविभंगज्ञानिसंख्या भवति १—
= ७-   = ७—
४।६५ = ७   ४। ६५ = ७ ॥४६३॥

स० चं०—पल्यका असंख्यातवां भाग गुणित घनांगुलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणिए जो प्रमाण होइ तितने तौ तिर्यंच बहुरि संख्याते मनुष्य बहुरि घनांगुलका द्वितीय मूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणिए तितना नारकीनिका प्रमाण है। तामैं सम्यग्दृष्टी नारकी जीवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष रहै तितना नारकी बहुरि ज्योतिषी देवनिका परिमाणविषैं भवनवासी व्यंतर वैमानिक देवनिका परिमाण मिलाए सामान्य देवराशि होइ तामैं सम्यग्दृष्टी देवनिका परिमाण घटाएं जो अवशेष रहै तितने देव इनि सबनिका जोड दीए जो प्रमाण होइ तितने च्यारयो गतिसंबधी विभंगज्ञानी जानने ॥ ४६३ ॥

सण्णाणिरासिपंचयपरिहीणो सव्वजीवरासी हु।

मदिसुदअण्णाणीणं पत्तेयं होदि परिमाणं ॥४६४ ॥

सज्ज्ञानराशिपंचकपरिहीनः सर्वजीवराशिर्हि ।
मतिश्रुताज्ञानिनां प्रत्येकं भवति परिमाणं ॥ ४६४ ॥

जी० प्र०—मत्यादिसम्यग्ज्ञानराशिपंचकेन साधिककेवलराशिमात्रेण ७ सर्वजीवराशिः १६ हीनस्तदा १३– प्रत्येकं मतिश्रुताज्ञानिपरिमाणं स्यात् ॥ ४६४ ॥ ३

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु ज्ञानमार्गणाप्ररूपणानाम द्वादशोऽधिकारः ॥ १२ ॥

स० चं०—सम्यग्ज्ञान पांच तिनिकरि संयुक्त जीवनिका जो परिमाण किछू अधिक केवलज्ञानी जीवनिका परिमाणमात्र सो सर्व जीवराशिका परिमाणविषैं घटाएं जो अवशेष परिमाण रहै तितने कुमतिज्ञानी जीव जानने। बहुरि तितने ही कुश्रुतज्ञानी जीव जानने ॥ ४६४ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पचसंग्रहग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाकै अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा इस भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं ज्ञानमार्गणा प्ररूपणा नामा बारहवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १२ ॥

—:०:—

अथ संयममार्गणा ॥ १३ ॥

विश्वं विमलयन्स्वीयैर्गुणैर्विश्वातिशायिभिः ।
विमलस्तीर्थकर्ता यो वंदे तं तत्पदाप्तये ॥ १३ ॥

अथ ज्ञानमार्गणां प्ररूप्येदानीं संयममार्गणामाह—

विमल करत निज गुणनितैं सबकौं विमल जिनेश ।
विमल हौंनकौं मैं नमौं अतिशयजुत तीर्थेश ॥ १३ ॥

अथ ज्ञान मार्गणाका प्ररूपणकरि अब संयममार्गणा कहै हैं—

वदसमिदिकसायाणं दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणियो ॥४६५॥

व्रतसमितिकषायाणां दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानां ।
धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ॥ ४६५ ॥

जी० प्र०—व्रतसमितिकषायदंडेंद्रियाणां पंचानां यथासंख्यं धारणपालननिग्रहत्यागजयाः संयमो भणितः । व्रतधारणं समितिपालनं कषायनिग्रहः दंडत्यागः इंद्रियजयः इति पंचधा संयम इत्यर्थः । सं—सम्यक्, यमनं संयमः ॥ ४६५ ॥

सं० चं०—अहिंसा आदि व्रतनिका धारना, ईर्या आदि समितिनिका पालना, क्रोध आदि कषायनिका निग्रह करना, मन वचन कायरूप दंडका त्याग करना, स्पर्शन आदि पांच इंद्रियनिका जीतना ऐसैं व्रतादिक पंचनिका जो धारणादिक सोई पंचप्रकार संयम जानना । सं—कहिए सम्यक् प्रकार जो यम कहिए नियम सो संयम है ॥ ४६५ ॥

बादरसंजलणुदये सुहुमुदये समखये य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ४६६ ॥

बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मोदये शमक्षययोश्च मोहस्य ।
संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ४६६ ॥

जी० प्र०—बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मलोभोदये मोहनीयोपशमे क्षये च नियमेन संयमभावः स्यात् (इति जिनैरुद्दिष्टं) । तथा हि-प्रमत्ताप्रमत्तयोः संज्वलनकषायाणां सर्वघातिस्पर्धकानामुदयाभावलक्षणे क्षये उदयनिषेकादुपरितननिषेकाणां उदयाभावलक्षणे उपशमे बादरसंज्वलनदेशघाति-स्पर्धकस्य संयमाविरोधेनोदये सति सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमाः भवंति, सूक्ष्मकृष्टिकरणानिवृत्तिपर्यंतं बादरसंज्वलनोदयेनापूर्वानि-वृत्तिकरणेऽपि सामायिकछेदोपस्थापनसंयमौ भवतः, सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदयेन सूक्ष्मसांपरायसंयमः, चारित्रमोहनीयसर्वोपशमेन उपशान्तक-षाये निरवशेषक्षयेण क्षीणकषायादित्रये च यथाख्यातसंयमो भवतीत्यर्थः, इत्येतज्जिनैरेवोद्दिष्टं ॥ ४६६ ॥ अमुमेवार्थं गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—बादर संज्वलनका उदय होत संतै बहुरि सूक्ष्म लोभका उदय होत संतैं बहुरि मोहनीयका उपशम होत संतैं वा मोहनीयका क्षय होत संतैं निश्चयकरि संयम भाव हो है ऐसैं जिनदेवने कह्या है । तहां प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थाननिविषैं संज्वलन कषायनिके जे सर्वघाती स्पर्धक हैं तिनिका उदय नाहीं सो तो क्षय है । बहुरि उदय निषे-कनितैं ऊपरवर्ती जे निषेक तिनिका उदय नाही सोई उपशम बहुरि बादर संज्वलनके जे देश घातिया स्पर्धक सं-यमके अविरोधी तिनिका उदय ऐसैं क्षयोपशम होतैं सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हो हैं । बहुरि सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप जो अनिवृत्ति करण तींहि पर्यंत बादर संज्वलनके उदयकरि अपूर्वकरण अर अ-निवृत्ति करण गुणस्थाननिविषैं सामायिक अर छेदोपस्थापना दोय ही संयम हो हैं । बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त हूवा ऐसा जो संज्वलन लोभ ताके उदयकरि दशवे गुणस्थान सूक्ष्मसांपराय संयम हो है । बहुरि सर्व चारित्र मोहनी-यकर्मके उपशमतैं वा क्षयतैं यथाख्यात संयम हो है तहां ग्यारहै गुणस्थान उपशम यथाख्यात हो है । बारहै तेरहै चौदहै क्षायिक यथाख्यात हो है ॥ ४६६ ॥ इस ही अर्थकौं दोय गाथानिकरि कहैं हैं—

बादरसंजलणुदये बादरसंजमातियं खु परिहारो ।
पमादिदरे सुहुमुदये सुहुमो संजमगुणो होदि ॥४६७॥

बादरसंज्वलनोदये बादरसंयमत्रिकं खलु परिहारः ।
प्रमत्तेतरस्मिन् सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ॥ ४६७ ॥

जी० प्र०—बादरसंज्वलनसंयमाविरोधेन देशघातिस्पर्धकोदये बादरं सामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसंयमत्रयं भवति तत्र परिहारविशुद्धिः प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव, शेषद्वयं अनिवृत्तिपर्यंतं भवति । सूक्ष्मकृष्टिगतसंज्वलनलोभोदये सूक्ष्मसांपरायसंयमगुणो भवति ॥ ४६७ ॥

स० चं०—बादर संज्वलनका देशघाती स्पर्धक जे संयमके विरोधी नाही तिनके उदयकरि सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि ए तीन संयम हो हैं तहां परिहारविशुद्धि तौ प्रमत्त अप्रमत्त दोय गुणस्थाननिविषैं ही हो है अर सामायिक छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं है। बहुरि सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त हूवा संज्वलन लोभ ताके उदयकरि सूक्ष्मसांपराय नामा संयम गुण हो है ॥ ४६७ ॥

जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदोवि य सो णियमा होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ४६८ ॥

यथाख्यातसंयमः पुनः उपशमतो भवति मोहनीयस्य ।
क्षयतोऽपि च स नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ४६८ ॥

जी० प्र०—स यथाख्यातसंयमः पुनः मोहनीयस्योपशमतः निरवशेषक्षयतश्च नियमेन भवतीति जिनैरुक्तं ॥ ४६८ ॥

स० चं०—बहुरि यथाख्यात संयम है सो निश्चयकरि मोहनीयकर्मके सर्वथा उपशमतैं वा क्षयतैं हो है ऐसैं जिनदेवनिकरि कह्या है ॥ ४६८ ॥

तदियकसायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकसायुदयेण य असंजमो होदि णियमेण ॥ ४६९ ॥

तृतीयकषायोदयेन च विरताविरतो गुणो भवेद्युगपत् ।
द्वितीयकषायोदयेन च असंयमो भवति नियमेन ॥ ४६९ ॥

जी० प्र०—प्रत्याख्यानकषायोदयेन विरताविरतगुणो युगपद् भवति, संयमासंयमयोर्युगपत्संभवात् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिवद्देशसंयतोऽपि मिश्रसंयमीत्यर्थः । अप्रत्याख्यानकषायोदये असंयमो नियमेन भवति ॥ ४६९ ॥

स० चं०—तीसरा प्रत्याख्यान कषायका उदयकरि युगपत् विरत अविरतरूप संयमासंयम हो है जैसें तीसरे गुणस्थान सम्यक्त्व मिथ्यात्व मिलै ही हो है तैसें पंचमगुणस्थानविषैं संयम असंयम दोऊ मिश्ररूप हो हैं तातैं यहु मिश्र संयमी है बहुरि दूसरा अप्रत्याख्यान कषायके उदयकरि असंयम हो है। ऐसैं संयम मार्गणाके सात भेद कहे ।

संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजमो होदि ॥ ४७० ॥

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यं ।
जीवः समुद्वहन् सामायिकसंयमो भवति ॥ ४७० ॥

जी० प्र०—सकलसंयमं—व्रतधारणादिपंचविधं युगपत्सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति संगृह्य—संक्षिप्य, एकयमं—भेदरहितसकलसावद्यनिवृत्तिरूपं, अनुत्तरं—असदृशं, संपूर्णं, दुरवगम्य—दुःखेन प्राप्यं तत्सामायिकं समुद्वहन् जीवः सामायिकसंयमः-सामायिकसंयमसयुक्तो भवति ॥ ४७० ॥

स० च०—समस्त ही व्रतधारणादिक पंचप्रकार संयमकौं संग्रहनयकरि एकयम कहिए मैं सर्व सावद्यका त्यागी हौं ऐसा एकसंयम कहिए सकल सावद्यका त्यागरूप अभेद संयम सोई सामायिक जानना। कैसा है सामायिक ?

अनुत्तरं कहिए जाके समान और नाहीं संपूर्ण है । बहुरि दुरवगम्यं कहिए दुर्लभपनैं पाइए है सो ऐसैं सामायिककौं पालता जीव सामायिकसंयमी हो है ॥ ४७० ॥

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ॥ ७१ ॥

छित्वा च पर्यायं पुराणं यः स्थापयति आत्मानं ।
पंचयमे धर्मे स छेदोपस्थापको जीवः ॥ ४७१ ॥

जी० प्र०—सामायिकसंयतो भूत्वा प्रच्युत्य सावद्यव्यापारप्रतिपन्नो यो जीवः पुराणं–प्राक्तनं सावद्यव्यापारपर्यायं प्रायश्चित्तैश्छित्वा आत्मानं व्रतधारणादिपंचप्रकारसंयमरूपधर्मे स्थापयति स छेदोपस्थापनसंयतः स्यात् । छेदेन प्रायश्चित्ताचरणेन उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इति निरुक्तेः । अथवा प्रायश्चित्तेन स्वकृतदोषपरिहाराय पूर्वकृततपस्तद्दोषानुसारेण छित्वा आत्मानं सन्निरवद्यसंयमे स्थापयति स छेदोपस्थापकसंयतः, स्वतपश्छेदे सति उपस्थापनं यस्य स छेदोपस्थापन इत्यधिकरणव्युत्पत्तेः ॥ ४७१ ॥

स० चं०—सामायिक चारित्रकौं धारि बहुरि प्रमादतें स्खलित होइ सावद्य क्रियाकौं प्राप्त हूवा ऐसा जो जीव पहिले भया जो सावद्यरूप पर्याय ताका प्रायश्चित्तविधितें छेदन करि अपने आत्माकौं व्रतधारणादि पंचप्रकार संयमरूप धर्मविषैं स्थापन करै सोई छेदोपस्थापन संयमी जानना । छेद कहिए प्रायश्चित्त तींहिकरि उपस्थापन कहिए धर्मविषैं आत्माकौं स्थापना सो जाकैं होइ अथवा छेद कहिए अपने दोष दूर करनेके निमित्त पूर्वैं कीया था तप तिसका उस दोषके अनुसारि विच्छेद करना तिसकरि उपस्थापन कहिए निर्दोष संयमविषैं आत्माकौं स्थापना सो जाकैं होइ सो छेदोपस्थापन संयमी है । अपना तपका छेद होतैं है उपस्थापन जाकैं सो छेदोपस्थापन है ऐसी निरुक्ति जानना ॥ ४७१ ॥

पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदावि जो हु सावज्जं ।

पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ॥ ४७२ ॥

पंचसमितः त्रिगुप्तः परिहराति सदापि यो हि सावद्यं ।
पंचैकयमः पुरुषः परिहारकसंयतः स हि ॥ ४७२ ॥

जी० प्र०—पंचसमितिसमेतः त्रिगुप्तिगुप्तः सदापि प्राणिवधं परिहरति, यः पंचानां सामायिकादीनां मध्ये परिहारविशुद्धिनामैकसंयमः पुरुषः सः परिहारविशुद्धिसंयतः स्फुटं भवति ॥ ४७२ ॥

स० चं०—पंच समिति तीन गुप्तिकरि संयुक्त जो जीव सदा काल ही हिंसारूप सावद्यका परिहार करै सो पुरुष सामायिकादि पंच संयमनिविषैं परिहारविशुद्धि नामा संयमका धारी प्रकट जानना ॥ ४७२ ॥

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।
पंचक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ॥ ४७३ ॥

त्रिंशद्वार्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थकरमूले ।
प्रत्याख्यानं पठितः संध्योनद्विगव्यूतिविहारः ॥ ४७३ ॥

जी० प्र०—जन्मनि त्रिंशद्वार्षिकः सर्वदा सुखी सन्नागत्य दीक्षां गृहीत्वा वर्षपृथक्त्वपर्यंतं तीर्थकरश्रीपादमूले प्रत्याख्यानं नवमपूर्वं पठितः स परिहारविशुद्धिसंयमं स्वीकृत्य संध्यात्रयोनसर्वकाले द्विक्रोशप्रमाणविहारी रात्रौ विहाररहितः प्रावृट्कालनियमरहितः परिहारविशुद्धिसंयतो भवति । परिहरणं परिहारः, प्राणिवधान्निवृत्तिः, तेन विशिष्टा शुद्धिर्यस्मिन् स परिहारविशुद्धिः, स संयमो यस्य स परिहारविशुद्धिसंयमः, तस्य जघन्यकालोऽन्तर्मुहूर्तः, जघन्येन तावत्कालमेव तत्र स्थित्वा गुणस्थानांतराश्रयणात् । उत्कृष्टः अष्टत्रिंशद्वर्षोनपूर्वकोटिः उत्पत्तिदिवसादारभ्य त्रिंशद्वर्षाणि सर्वदा सुखेन नीत्वा संयमं प्राप्य वर्षपृथक्त्वं तीर्थकरपादमूले प्रत्याख्यानं पठितस्य तदंगीकरणात् ॥

उक्तं च—

परिहारर्धिसमेतः षड्जीवनिकायसंकुले विहरन् ।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन ॥ ४७३ ॥

स० चं०—जो जन्मतैं तीसवर्षका भया होइ बहुरि सर्वदा खानपानादिसे सुखी होइ ऐसा पुरुष दीक्षाकौं अंगीकार करि पृथक्त्ववर्ष पर्यंत तीर्थंकरके पाद मूल प्रत्याख्यान नामा नवमा पूर्वका पाठी होइ सो परिहारविशुद्धि संयमकौं अंगीकार करि तीनूं संध्या काल विना सर्व कालविषैं दोय कोस विहार करै अर रात्रिविषैं विहार न करै वर्षाकालविषैं किछू नियम नाही, गमन करै वा न करै ऐसा परिहारविशुद्धि संयमी हो है। परिहार कहिए प्राणीनिकी हिंसाका त्याग, ताकरि विशेषरूप जो शुद्धिः कहिए शुद्धता जाविषैं होइ सो परिहारविशुद्धि संयम जानना। इस संयमका जघन्य काल तौ अंतर्मुहूर्त है जातैं कोई जीव अंतर्मुहूर्तमात्र तिस संयमकौं धारि अन्य गुणस्थानकौं प्राप्त होइ, तहां सो संयम है नाही तातैं जघन्य काल अंतर्मुहूर्त कह्या। बहुरि उत्कृष्ट काल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व है। जातैं कोई जीव कोडि पूर्वका धारी तीसवर्षका दीक्षा ग्रहि आठ वर्ष पर्यंत तीर्थंकरके निकटि पढै तहां पीछै परिहारविशुद्धि संयमकौं अंगीकार करै तातैं उत्कृष्टकाल अडतीस वर्ष घाटि कोडि पूर्व कह्या।

उक्तं च—

परिहारर्धिसमेतो जीवः षट्कायसंकुले विहरन्।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन॥

याका अर्थ—परिहार विशुद्धि ऋद्धिकरि संयुक्त जीव छह कायरूप जीवनिका समूहविषैं विहार करता जलकरि कमलपत्रकी नाईं पापकरि लिप्त न होइ॥ ४७३॥

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहुमसंपराओ जहखादेणूणओ किंचि॥ ४७४॥

अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको वा क्षपको वा।
स सूक्ष्मसांपरायः यथाख्यातेनोनः किंचित्॥ ४७४॥

जी० प्र०—सूक्ष्मः लोभकृष्टिगतानुभागमनुभवन् यः उपशमकः क्षपको वा स जीवः सूक्ष्मसांपरायः स्यात् । सूक्ष्मसांपरायः कषायो यस्येत्यन्वर्थनामा महामुनिः यथाख्यातसंयमिभ्यः किंचिन्न्यूनो भवति ॥ ४७४ ॥

स० चं०—सूक्ष्मकृष्टिकौं प्राप्त भया लोभ कषायका अनुभाग ताके उदयकौं भोगवता उपशमी वा क्षायिकी जीव सो सूक्ष्म है सांपराय कहिए कषाय जाकें ऐसा सूक्ष्मसांपराय संयमी जानना सो यहु यथाख्यात संयमी जे महामुनि तिनितैं किछू एक घाटि जानना, स्तोकसा ही अंतर है ॥ ४७४ ॥

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।
छदुमट्ठो व जिणो वा जहखादो संजदो सो दु ॥ ४७५ ॥

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्मणि मोहनीये ।
छद्मस्थो वा जिनो वा यथाख्यातः संयतः स तु ॥ ४७५ ॥

जी० प्र०—अशुभमोहनीयकर्मणि उपशांते क्षीणे वा यः उपशांतक्षीणकषायछद्मस्थः सयोगायोगजिनो वा, सः, तु—पुनः, यथाख्यातसंयतो भवति । मोहस्य निरवशेषस्य उपशमात् क्षयाद्वा आत्मस्वभावावस्थापेक्षालक्षणं यथाख्यातचारित्रमित्याख्यायते ॥ ४७५ ॥

स० चं०—अशुभरूप मोहनीयनामा कर्म सो उपशम होतैं वा क्षयरूप होतैं उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती वा क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ होइ अथवा सयोगी अयोगी जिन होइ सोई यथाख्यात संयमी जानना । मोहनीयकर्मके सर्वथा उपशमतैं वा नाशतैं जो यथावस्थित आत्मस्वभावकी अवस्था सोई है लक्षण जाका ऐसा यथाख्यात चारित्र कहिए है ॥ ४७५ ॥

पंचतिहिचउविहेहिं य अणुगुणसिक्खावएहिं संजुत्ता ।
उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ॥ ४७६ ॥

पंचत्रिचतुर्विधैश्च अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः ।
उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयः झरितकर्माणः ॥ ४७६ ॥

जी० प्र०—पंचत्रिचतुरणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्तसम्यग्दृष्टयः कर्मनिर्जरावंतः ते देशविरताः इति परमागमे उच्यंते ॥ ४७६ ॥

स० चं०—पांच अणुव्रत तीन गुणव्रत च्यारि शिक्षाव्रत ऐसैं वारह व्रतनिकरि संयुक्त जे सम्यग्दृष्टी कर्म निर्जराके धारक ते देशविरती सयमासयमके धारक परमागमविषैं कहिए है ॥ ४७६ ॥

दंसणवयसामाइय पोसहसच्चित्तरायभत्ते य ।
बह्मारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदेदे ॥ ४७७ ॥

दर्शनव्रतसामायिकाः प्रोषधसचित्तरात्रिभक्ताश्च ।
ब्रह्मारंभपरिग्रहानुमतोद्दिष्टदेशविरता एते ॥ ४७७ ॥

जी० प्र०—अत्र नामैकदेशो नाम्नि वर्तते इति नियमाद्गाथार्थो व्याख्यायते । दर्शनिको, व्रतिकः, सामायिकः, प्रोषधोपवासः, सचित्तविरतः, रात्रिभक्तविरतः, ब्रह्मचारी, आरंभविरतः, परिग्रहविरतः, अनुमतिविरतः, उद्दिष्टविरतश्चेत्येकादशैते विरतभेदाः । तत्र—"पंचुंवरसहियाइं सत्तइ वसणाणि जो विवज्जेइ । सम्मत्तविसुद्धमई सो दंसणसावओ भणिओ ।" इत्यादिलक्षणानि ग्रंथांतरेऽवगंतव्यानि ॥ ४७७ ॥

स० चं०—नामके एक देशतैं सर्व नामका ग्रहण करना इस न्यायकरि इस गाथाका अर्थ कीजिए है दर्शनिक १ व्रातिक २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ सचित्तविरत ५ रात्रिभोजनविरत ६ ब्रह्मचारी ७ आरंभविरत ८ परिग्रह विरत ९ अनुमति विरत १० उद्दिष्ट विरत ११ ऐसैं ग्यारह प्रतिमाकी अपेक्षा देशविरतके ग्यारह भेद जानने । तहां पांच उदुंबरादिक अर सप्त व्यसननिकौं त्यागै अर शुद्धसम्यक्त्वी होइ सो दर्शनिक कहिए । पंच अणुव्रतादिककौं धारै सो व्रातिक कहिए । नित्य सामायिक क्रिया जाकें होइ सो सामायिक कहिए । अवश्य पर्वनिविषैं उपवास जाकें होइ सो प्रोषधोपवास कहिए । जीवसहित वस्तु सेवनका त्यागी होइ सो सचित्तविरत कहि-

ए। रात्रिविषैं भोजन न करै सो रात्रिभक्तविरत कहिए। सदा काल शील पालै सो ब्रह्मचारी कहिए। पाप आरंभकौं त्यागै सो आरंभ विरत कहिए। पापकी अनुमोदनाकौं त्यागै सो अनुमतिविरत कहिए। अपने निमित्त भया आहारादिककौं त्यागै सो उद्दिष्टविरत कहिए इनिका विशेष वर्णन ग्रंथांतरमें जानना ॥ ४७७ ॥

जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु।
जे तेसु णेव विरया असंजदा ते मुणेदव्वा ॥ ४७८ ॥

जीवाश्चतुर्दशभेदा इंद्रियविषयास्तथाष्टविंशतिस्तु।
ये तेषु नैव विरता असंयताः ते मंतव्याः ॥ ४७८ ॥

जी० प्र०—चतुर्दशजीवभेदाः, तु–पुनः इंद्रियविषयाः अष्टाविंशतिः तेषु ये नैव विरतास्ते असंयता इति मंतव्याः ॥ ४७८ ॥

स० चं०—चौदह जीवसमास रूप भेद बहुरि तैसैं ही अट्ठाईस इंद्रियानिके विषय तिनिविषैं जे विरत न होंई, जीवनिकी दया न करैं विषयनिविषैं रागी होंइ ते असयमी जानने ॥ ४७८ ॥

पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ॥

पंचरसपंचवर्णाः द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शसप्तस्वराः।
मनःसहिताः अष्टविंशतिः इंद्रियविषया मंतव्याः ॥ ४७९ ॥

जी० प्र०—रसाः-तिक्तकटुककषायाम्लमधुराः पंच। वर्णाः-श्वेतपीतहरितारुणकृष्णाः पंच। गंधौ सुगंधदुर्गंधौ द्वौ। स्पर्शाः मृदुकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षाः अष्टौ। स्वराः-षड्ज-ऋषभ-गांधार-मध्यम-धैवत-निषादा सरिगमपधनिरूपाः सप्त एते इंद्रियविषयाः सप्तविंशतिः। मनोविषय एकः, एवमष्टविंशतिर्मंतव्यः ॥ ४७९ ॥ अथ संयममार्गणायां जीवसंख्यामाह—

स० चं०—तीखा १ कडवा २ कसायला ३ खाटा ४ मीठा ५ ए पांच रस बहुरि सुपेद १ पीला २ हरया ३ लाल ४ काला ५ ए पांच वर्ण बहुरि सुगंध १ दुर्गंध २ ए दोय गध बहुरि कोमल १ कठोर २ भारया ३ हलका ४ सीता ५ ताता ६ रूखा ७ चिकना ८ ए आठ स्पर्श बहुरि पडज १ ऋषभ २ गांधार ३ मध्यम ४ पंचम ५ धैवत ६ निषाद ७ ए सात स्वर ऐसैं इंद्रियनिके सत्ताईस विषय अर अनेक विकल्परूप एक मनका विषय ऐसैं विषयके भेद अट्ठाईस जानने ॥ ४७९ ॥ आगै संयम मार्गणा विषै जीवनिकी सख्या कहै हैं—

पमदादिचउण्ह जुदी सामयियदुगं कमेण सेसतियं ।
सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहिं परिहीणा ॥

प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकं ।
सप्तसहस्राणि नवशतानि नवलक्षाणि त्रिभिः परिहीनानि ॥ ४८० ॥

जी० प्र०—प्रमत्ताः ५, ९३, ९८, २०६ अप्रमत्ताः २, ९६, ९९, १०३ उपशमकाऽपूर्वकरणाः २९९, उपशमकानिवृत्तिकरणाः २९९, क्षपकापूर्वकरणाः ५९८, क्षपकानिवृत्तिकरणाः ५९८, एषां चतुर्णां युतिः २रोकं सामायिकछेदोपस्थापनसंयमिसंख्या भवति उभयत्र समसंख्यात्वात् ८, ९०, ९९, १०३। ८, ९०, ९९, १०३। परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसापराययथाख्यातसंयमिसंख्याक्रमेण त्रिरूपोनसप्तसहस्रं ६९९७ त्रिरूपोननवशतं ८९७ त्रिरूपोननवलक्षं ८९९९९७ भवति ॥ ४८० ॥

स० चं०—प्रमत्तादि च्यारि गुणस्थानवर्ती जीवनिका जोड दीएं जो प्रमाण होइ तितना जीव सामायिक अर छेदोपस्थापना संयमके धारक जानने। तहां प्रमत्तवाले पांच कोडि तरणवै लाख अठ्याणवै हजार दोयसे छह ५९३९८२०६, अप्रमत्तवाले दोय कोडि छिनवै लाख निन्याणवै हजार एकसो तीन २९६९९१०३। अपूर्व करण वाले उपशमी दोयसै निन्याणवै २९९, अनिवृत्ति करणवाले उपशमी २९९ क्षायिकी पांचसो अठ्याणवैं ५९८, इनि सवनिका जोड दीएं आठ कोडि निवै लाख निन्याणवै हजार एकसौ तीन भया ८९०९९१०३। सो इतने जीव

सामायिक संयमी जानने अर इतने ही जीव छेदोपस्थापना संयमी जानने। बहुरि अवशेष तीन संयमी रहे तहां परिहारविशुद्धि संयमी तीन घाटि सात हजार जानने ६९९७। सूक्ष्म सांपराय संयमी तीन घाटि नवसे ८९७ जानने। यथाख्यात संयमी तीन घाटि नव लाख जानने ८९९९७॥ ४८०॥

पल्लासंखेज्जदिमं विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं।
पुव्वुत्तरासिहीणा संसारी अविरदाण पमा॥

पल्यासंख्येयं विरताविरतानां द्रव्यपरिमाणं।
पूर्वोक्तराशिहीनाः संसारिणः अविरतानां प्रमा॥ ४८१॥

जी० प्र०—पल्यासंख्यातैकभागो देशसंयतजीवद्रव्यप्रमाणं भवति प/a. एतत्पूर्वोक्तषड्राशिविहीनसंसारिराशिरेव अविरतानां प्रमाणं भवति। १३–॥ ४८१॥

a a ४ a

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां
जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु संयममार्गणाप्ररूपणा नाम
त्रयोदशोऽधिकारः॥ १३॥

स० चं०—पल्यके असंख्यात भाग करिए तामैं एक भाग प्रमाण संयमासंयमका धारक जीव द्रव्यनिका प्रमाण है बहुरि ए कहे जे छहौं संयमके धारक जीव तिनका प्रमाण संसारी जीवनिका प्रमाणमैं स्यौं घटाए जो अवशेष प्रमाण रहै सोई असंयमी जीवनिका प्रमाण जानना॥ ४८१॥

इति श्री आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीयनाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत
टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषै प्ररूपित बीस प्ररूपणा
तिनि विषै संयममार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा तेरहवां
अधिकार सपूर्ण भया॥ १३॥

दर्शन मार्गणा ॥१४॥

अनंतानंतभवार्णवपारंगतमनंतसुखं ।
नमामि तीर्थकर्तारं वंदेऽनंतप्रभुं सदा॥ १४ ॥

अथ संयममार्गणां व्याख्याय दर्शनमार्गणां व्याख्याति—

इस अनन्त भव उदधितैं पार करनकों सेतु ।
श्री अनंत जिनपति नमों सुख अनन्तके हेतु ॥ १४ ॥

आगे दर्शनमार्गणाकों कहें हैं—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णदे समये ॥

यत्सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वाकारं ।
अविशेष्यार्थान् दर्शनमिति भण्यते समये ॥ ४८२ ॥

जी० प्र०—भावानां सामान्यविशेषात्मकबाह्यपदार्थानां आकारं—भेदग्रहणं, अकृत्वा यत्सामान्यग्रहणं—स्वरूपमात्रावभासनं तत् दर्शनमिति परमागमे भण्यते । वस्तुस्वरूपमात्रग्रहणं कथं ? अर्थान्—बाह्यपदार्थान् अविशेष्य—जातिक्रियागुणप्रकारैरविकल्प्य स्वपरसत्तावभासनं दर्शनमित्यर्थः ॥ ४८२ ॥ अमुमेवार्थं विशदयति—

स० चं०—भाव जे सामान्य विशेषात्म पदार्थ तिनिका आकार कहिए भेद ग्रहण ताहि नैव कृत्वा कहिए न करिकैं 'यत् सामान्यग्रहण' कहिए जो सत्तामात्र स्वरूपका प्रतिभासना तत् दर्शन कहिए सोई दर्शन परमागमविषै कह्या है। कैसे ग्रहण करै है ? 'अर्थान् अविशेष्य' अर्थ जे बाह्य पदार्थ तिनिकौं अविशेष्य कहिए जाति क्रिया गुण प्रकार इत्यादि विशेष करिकैं न अपना वा अन्यका केवल सामान्य रूप सत्तामात्र ग्रहण करै है॥४८२॥ इसही अर्थकौं स्पष्ट करैं हैं—

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि ॥ ४८३ ॥

भावानां सामान्यविशेषकानां स्वरूपमात्रं यत् ।
वर्णनहीनग्रहण जीवेन च दर्शनं भवति ॥ ४८३ ॥

जी० प्र०—भावानां सामान्यविशेषात्मकपदार्थानां यत्स्वरूपमात्रं विकल्परहितं यथा भवति तथा जीवेन सह स्वपरसत्तावभासनं तद्दर्शनं भवति। पश्यति दृश्यते अनेन दर्शनमात्रं वा दर्शनं ॥ ४८३ ॥ अथ चक्षुरचक्षुर्दर्शने लक्षयति—

स० चं०—सामान्य विशेषात्मक जे पदार्थ तिनिका स्वरूप मात्र भेद रहित जैसें है तैसें जीवकरि सहित स्व-पर सत्ताका प्रकाशना सो दर्शन है। जो देखै वा जाकरि देखिए वा देखने मात्र सो दर्शन जानना॥४८३॥ आगै चक्षु अचक्षु दर्शनके लक्षण कहैं हैं—

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं बेंति ।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खूत्ति ॥ ४८४ ॥

चक्षुषोः यत्प्रकाशते पश्याति तत् चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति ।
शेषेंद्रियप्रकाशो ज्ञातव्यः स अचक्षुरिति ॥ ४८४ ॥

जी० प्र०—चक्षुषोः-नयनयोः संबंधि यत्सामान्यग्रहणं प्रकाशते पश्यति तद्वा दृश्यते जीवेनानेन कृत्वा तद्वा तद्विषयप्रकाशनमेव तद्वा चक्षुर्दर्शनमिति गणधरदेवादयो ब्रुवति। यश्च शेषेंद्रियप्रकाशः सः अचक्षुर्दर्शनमिति ॥ ४८४ ॥

स० चं०—नेत्रनिका संबंधी जो सामान्य ग्रहण सो जो प्रकाशिए देखिए याकरि वा तिसनेत्रके विषयका

प्रकाशन सो चक्षु दर्शन गणधरादिक कहैं हैं बहुरि नेत्र बिना च्यारि इन्द्रिय अर मनका जो प्रकाशन सो अचक्षु दर्शन है ऐसा जानना ॥ ४८४ ॥

परमाणुआदियाइं अंतिमखंधत्ति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ॥ ४८५ ॥

परमाण्वादीनि अंतिमस्कंधमिति मूर्तद्रव्याणि ।
तदवधिदर्शनं पुनः यत् पश्यति तानि प्रत्यक्षं ॥ ४८५ ॥

जी० प्र०—परमाणोरारभ्य महास्कंधपर्यंतं मूर्तद्रव्याणि यद्दर्शनं पुनः प्रत्यक्षं पश्यति तदवधिदर्शनं भवति ॥ ४८५ ॥

स० चं०—परमाणु आदि महास्कंध पर्यंत जे मूर्तीक द्रव्य तिनिकौं जो प्रत्यक्ष देखै सो अवधि दर्शन है ।४८५।

बहुविहबहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोगवितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ॥ ४८६ ॥

बहुविधबहुप्रकारो उद्योताः परिमिते क्षेत्रे ।
लोकालोकवितिमिरो यः केवलदर्शनोद्योतः ॥ ४८६ ॥

जी० प्र०—बहुविधाः-तीव्रमंदमध्यमादिभावेन अनेकविधाः बहुप्रकाराश्चोद्योताः चद्रसूर्यरत्नादिप्रकाराः, लोके-परिमितक्षेत्रे एव भवंति तैः प्रकाशैरनुपमेयः लोकालोकयोर्विगततिमिरो यः स केवलदर्शनोद्योतो भवति ॥ ४८६ ॥ अथ दर्शनमार्गणायां जीवसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—बहुत भेदकौं लीए बहुत प्रकारके चंद्रमा सूर्य रत्नादिक संबंधी उद्योत जगत विषैं हैं ते परिमित जो मर्यादा लीएं क्षेत्र तिस विषैं ही अपने प्रकाश करनेकौं समर्थ हैं तातैं तिनि प्रकाशनिकी उपमा देने योग्य

१ । भेदेनानेकप्रकारा उद्योताः प्रकाशविशेषा लोके परीमतक्षेत्रएव प्रकाशते । यो लोकालोकयोः सर्वसामान्याकारे वितिमिरः क्रमकरण व्यवधानराहित्येन सदावभासमानः स केवलदर्शनाख्य उद्योतो भवति इतोऽप्ययमपि पाठो दृश्यते क्वचित्पुस्तके ।

नाहीं ऐसा समस्त लोक अर अलोकविषै अंधकाररहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामा उद्योत जानना। ४८६ ॥ आगैं दर्शनमार्गणा विषै जीवनिकी संख्या दोय गाथानि करि कहैं हैं—

जोगे चउरक्खाणं पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं। चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ॥ ४८७॥

योगे चतुरक्षाणां पंचाक्षाणां च क्षीणचरमाणां।
चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तेषां ज्ञानं च ॥ ४८७ ॥

जीं० प्र०—मिथ्यादृष्ट्यादयः क्षीणकषायांताः शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनश्च। तत्र लब्ध्यपर्याप्तचतुरिंद्रियपंचेंद्रियाः शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः, पर्याप्तकचतुरिंद्रियपंचेंद्रियाः व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिनः। तद्यथा-द्वित्रिचतुःपंचेंद्रियसमासां सर्वं यद्यावल्यसंख्यातभक्तप्रतरांगुलभाजितजगत्प्रतरं तदा चतुःपंचेंद्रियसमासां कियत् ? इति त्रैराशिके कृते प्र ४ । फ = । इ २ लब्धं पर्याप्तकसंख्यया किंचिदूनं शक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसंख्या भवति = । २ = द्वितीयत्रैराशिके फलराशिः त्रसपर्याप्तकराशिः प्र ४ । फ = । इ २ लब्धं व्यक्तिगतचक्षुर्दर्शनिसंख्या भवति = २—अवधिदर्शनराशिरवधिज्ञानराशिवत् प ... केवलदर्शनिसंख्या केवलज्ञानिसंख्यावत् ... ॥ ४८७ ॥

स० चं०—मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत चक्षुदर्शन ही है तिनकै दोयभेद हैं एक शक्तिरूप चक्षुदर्शनी १ एक व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी २ तहां लब्धि अपर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेंद्री तौ शक्तिरूप चक्षु दर्श-

नी है जातैं नेत्र इंद्रिय पर्याप्तिकी पूर्णता अपर्याप्त अवस्थाविषै नाहीं है तातैं तहां प्रगटरूप चक्षुदर्शन न प्रवर्तै है बहुरि पर्याप्तक चौइंद्री अर पंचेंद्री व्यक्तरूप चक्षुदर्शनी है जातैं तहां प्रगटरूप चक्षुदर्शन हैं। तहां वेंद्री तेंद्री चौइंद्री पंचेंद्री आवलीका असंख्यातवां भाग प्रतरांगुलकौं दीए जो प्रमाण आवै ताका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने हैं तौ चौइंद्री पंचेंद्री कितने हैं ऐसैं प्रमाणराशी च्यारि फलराशि त्रसनिका प्रमाण इच्छाराशि दोय तहां इच्छाकौं फलराशिकरि गुणि प्रमाणका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना चौइंद्री पंचेंद्री राशि है। तहां वेंद्री आदि क्रमतैं घटते हैं तातैं किंचिदूनकरि बहुरि तिसविषैं पर्याप्त जीवानिका प्रमाण घटावना तातैं तिस प्रमाणमैंस्यों भी किछू घटाए जो प्रमाण होइ तितना शक्तिगत चक्षुदर्शनी जानने। बहुरि ऐसैं ही त्रस पर्याप्त जीवानिका प्रमाणकौं च्यारिका भाग देइ दोगुणाकरि तामैं किंचिदून कीए जो प्रमाण होइ तितना व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी है इंद्रियमार्गणाविषै जो चौइंद्री पंचेंद्रिय जीवानिका प्रमाण कह्या है तिनकौं मिलाए चक्षुदर्शनी जीवानिका प्रमाण हो है। बहुरि अवधिदर्शनी जीवनिका प्रमाण अवधिज्ञानी जीवानिका परिमाणके समान जानना। बहुरि केवलदर्शनी जीवानिका परिमाण केवलज्ञानी जीवानिका परिमाणके समान जानना। सो इनिका प्रमाण ज्ञानमार्गणाविषैं कह्या है ॥ ४८७ ॥

एइंदियपहुदीणं खीणकसायंतणंतरासीणं।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं ॥ ४८८ ॥

एकेंद्रियप्रभृतीनां क्षीणकषायांतानंतराशीनां।
योगः अचक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणं ॥ ४८८ ॥

जी० प्र०—एकेंद्रियप्रभृतिक्षीणकषायांतानंतानंतजीवानां योगः अचक्षुर्दर्शनजीवप्रमाणं भवति १३-॥ ४८८ ॥

स० चं०—एकेंद्रिय आदि क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती पर्यंत अनंत जीवनिका जोड दीए जो परिमाण होइ तितना चक्षुदर्शनी जीवनिका प्रमाण जानना ॥ ४८८ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचन्द्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु दर्शनमार्गणाप्ररूपणानामा चतुर्दशोऽधिकारः ॥ १४ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनि विषै दर्शनमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा चौदहवा अधिकार संपूर्ण भया ॥१४॥

लेश्या—मार्गणा ॥१५॥

यः सद्धर्मसुधावर्षैर्भव्यसस्यानि प्रीणयन् ।
नीतवान् स्वेष्टसिद्धिं तं धर्मनाथघनं भजे ॥ १५ ॥

अथ लेश्यामार्गणां वक्तुमना निरुक्तिपूर्वकं लेश्यालक्षणमाह—

स० चं०— सुधाधार सम धर्मतें पोषे भव्य सुधान्य ।
प्राप्त कीए निज इष्टकौं भजौं धर्म घन मान्य ॥ १५ ॥

आगे लेश्या मार्गणा कह्या चाहैं हैं तहां प्रथम ही निरुक्ति लीएं लेश्याका लक्षण कहैं हैं—

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णियअपुण्णपुण्णं च ।
जीवोत्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥ ४८९ ॥

लिंपत्यात्मीकरोति एतया निजापुण्यपुण्यं च ।
जीवं इति भवति लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ॥ ४८९ ॥

जी० प्र०—लेश्या द्रव्यभावभेदाद् द्वेधा तत्र भावलेश्यां लक्षयितु इदं सूत्र । लिंपति—आत्मीकरोति निजमपुण्यं पुण्यं च जीव एतयेति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकैर्गणधरदेवादिभिराख्याता । अनया कर्मभिरात्मानं लिंपतीति लेश्या । कषायोदयानुरंजिता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या कषायाणामुदयेन अनुरंजिता कमप्यतिशयांतरमुपनीता योगप्रवृत्तिर्वा लेश्या ॥ ४८९ ॥ अमुमेवार्थं स्पष्टयति—

स० चं०—लेश्या दोय प्रकार—एक द्रव्य लेश्या १ एक भाव लेश्या २ तहां इस सूत्र विषै भाव लेश्याका लक्षण कह्या है । लिंपंति एतया इति लेश्या, पाप अर पुण्यकौं जीवनामा पदार्थ इसकरि लिप्त करै है निज सम्बन्धी करै है सो लेश्या, लेश्या—लक्षणके जाननहारे गणधरादिकनिकरि कहा है । इसकरि आत्मा कर्मकरि आत्माकौं लिप्त

करै है सो लेश्या अथवा कषायनिका उदयकरि अनुरंजित जो योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या कहिए है ॥ ४८९ ॥
इस ही अर्थकौं स्पष्ट करै है—

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होइ ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥ ४९० ॥

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति ।
ततो द्वयोः कार्यं बंधचतुष्कं समुद्दिष्टं ॥ ४९० ॥

जी० प्र०——कायवाङ्मनःप्रवृत्तिः लेश्या, सा च कषायोदयानुरंजितास्ति ततः कारणात् द्वयोः—योगकषाययोः कार्यं बंधचतुष्कं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशरूपं तद् लेश्याया एव स्यादिति परमागमे समुद्दिष्टं । योगात् प्रकृतिप्रदेशबंधौ कषायस्योदयाच्च स्थित्यनुभागबंधौ स्यातां । तेन कषायोदयानुरंजितयोगप्रवृत्तिलक्षणाया लेश्यया चतुर्विधबंधो युक्तियुक्त एवेत्यर्थः ॥ ४९० ॥ अथ गाथाद्वयेन अधिकारान्निर्दिशति—

स० चं०—मन वचन कायरूप योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है सो योगनिकी प्रवृत्ति कषायनिका उदयकरि अनुरंजित हो है तिसतैं योग अर कषाय इनि दोऊनिका कार्य च्यारि प्रकारबन्ध कह्या है। योगनितैं प्रकृतिबंध अर प्रदेश बन्ध कह्या है कषायनितैं स्थितिबन्ध अर अनुभागबंध कह्या है तिसही कारण कषायनिका उदयकरि अनुरंजित योगनिकी प्रवृत्ति सोई है लक्षण जाका ऐसैं लेश्याकरि च्यारि प्रकारबध युक्त ही है ॥ ४९० ॥ आगैं दोय गाथानिकरि लेश्याका प्ररूपणविषै सोलह अधिकार कहै हैं—

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो ॥ ४९१ ॥
अंतरभावप्पबहु अहियारा सोलसा हवंतित्ति ।

लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहिं वोच्छामि ॥४९२॥ जुम्मम् ।

निर्देशवर्णपरिणामसंक्रमाः कर्मलक्षणगतयश्च ।
स्वामी साधनसंख्ये क्षेत्रं स्पर्शस्ततः कालः ॥ ४९१ ॥
अंतरभावाल्पबहुत्वमधिकाराः षोडश भवंतीति ।
लेश्यानां साधनार्थं यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ॥ ४९२ ॥

जी० प्र०—निर्देशः वर्णः परिणामः संक्रमः कर्म लक्षणं गतिः स्वामी साधनं संख्या क्षेत्रं स्पर्शः ततः कालः अंतरं भावः अल्पबहुत्वं चेति षोडशाधिकाराः लेश्याभेदप्रभेदसाधनार्थं भवंतीति तैर्यथाक्रमं लेश्यां वक्ष्यामि ॥ ४९१–४९२ ॥

स० चं०—निर्देश १ वर्ण २ परिणाम ३ संक्रम ४ कर्म ५ लक्षण ६ गति ७ स्वामी ८ साधन ९ संख्या १० क्षेत्र ११ स्पर्शन १२ काल १३ अंतर १४ भाव १५ अल्प बहुत्व १६ ए सोलह अधिकार लेश्याके भेदसाधन निमित्त हैं तिनकरि अनुक्रमतैं लेश्यामार्गणाकौं कहै हैं ॥ ४९२ ॥

किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ॥९३॥

कृष्णा नीला कापोता तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च ।
लेश्यानां निर्देशाः षट् चैव भवंति नियमेन ॥ ४९३ ॥

जी० प्र०—कृष्णालेश्या नीललेश्या कपोतलेश्या तेजोलेश्या पद्मलेश्या शुक्ललेश्या चेति लेश्यानिर्देशाः—लेश्यानामानि षढेव भवंति नियमेन । अत्र एवकारेणैव नियमस्य अवगमात् पुनरनर्थक नियमशब्दोपादानं नैगमनयेन लेश्या षोढा पर्यायार्थिकनयेन असंख्यातलोकभेत्याचार्यस्य अभिप्रायं ज्ञापयति ॥ ४९३ ॥ इति निर्देशाधिकारः ।

स० चं०—नाम मात्र कथनका नाम निर्देश है । लेश्याके ए छह नाम हैं कृष्ण १ नील २ कपोत ३ पीत ४

पद्म ५ शुक्ल ६ ऐसें छह ही है । इहां एव शब्दकरि तो नियम आया ही बहुरि नियमेन ऐसा कह्या सो नैगम नयकरि छह प्रकार लेश्या है, पर्यायार्थिक नयकरि असंख्यात लोकमात्र भेद है ऐसा अभिप्राय नियम शब्दकरि जानना ॥ ४९३ ॥ इति निर्देशाधिकारः ॥

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ॥ ४९४ ॥

वर्णोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या।
सा षोढा कृष्णादिः अनेकभदो स्वभेदेन ॥ ४९४ ॥

जी० प्र०—वर्णनामकर्मोदयजनितशरीरवर्णस्तु द्रव्यलेश्या भवति । सा च षोढा-षट्प्रकाराः । ते च प्रकाराः कृष्णादयः स्वस्वभेदैरनेकभेदाः स्युः ॥ ४९४ ॥ तथाहि—

स० चं०—बहुरि वर्णनामा नामकर्मके उदयतैं भया जो शरीरका वर्ण सो द्रव्य लेश्या कहिए सो कृष्णादिक छह प्रकार है तहा एक एक भेद अपने अपने भेदनिकरि अनेकरूप जानने ॥ ४९४ ॥ सोई कहिए है—

छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसंखसण्णिहा वण्णे।
संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं ॥ ४९५ ॥

षट्पदनीलकपोतसुहेमाम्बुजशंखसन्निभा वर्णे।
संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च प्रत्येकम् ॥ ४९५ ॥

जी० प्र०—कृष्णादिलेश्याः वर्णे षट्पद-नीलरत्न-कपोत-सुहेम-अंबुज-शंखसंज्ञिभा भवति । पुनस्ता इंद्रियग्राह्यविकल्पैः प्रत्येकं संख्याताः भवन्ति। कृ १ । नी १ । क १ । ते १ । प १ । शु १ । स्कंधभेदेनासंख्याताः कृ a । नी a । क a । ते a । प a । शु a । परमाणुभेदेन अनंतानंताश्च भवति । कृ ख । नी ख । क ख । ते ख । प ख । शु ख ॥ ४९५ ॥

स० चं०—कृष्ण लेश्या षट्पद जो भ्रमर ताके समान है। जिसके शरीरका भ्रमर समान काला वर्ण होइ ताके द्रव्य लेश्या कृष्ण जानना। ऐसैं ही नील लेश्या नीलमणि समान है। कपोत लेश्या कपोत समान है। तेजो लेश्या सुवर्ण समान है। पद्म लेश्या कमल समान है। शुक्ल लेश्या शंख समान है बहुरि इनही एक एक लेश्यानिके नेत्र इंद्रियके गोचर अपेक्षा संख्याते भेद हैं। जैसे कृष्णवर्ण हीन अधिक रूप संख्याते भेदकौं लीए नेत्र इंद्रियकरि देखिए है। बहुरि स्कंध भेदकरि एक एकके असंख्यात असंख्याते भेद हैं जैसे द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीरसंबंधी स्कंध असंख्याते हैं बहुरि परमाणू भेदकरि एक एकके अनन्त भेद हैं जैसैं द्रव्य कृष्ण लेश्यावाले शरीर सम्बन्धी स्कंधनिविषैं अनंते परमाणू पाईए है। ऐसैं सर्व लेश्यानिके भेद जानने ॥ ४९५ ॥

णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हु तिसुरणरतिरिये।
उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा॥ ४९६ ॥

निरयाः कृष्णाः कल्पा भावानुगता हि त्रिसुरनरतिरश्चि।
उत्तरदेहे षट्कं भोगे रविचन्द्रहरितांगाः ॥ ४९६ ॥

जी० प्र०—नारकाः सर्वे कृष्णा एव, कल्पजाः सर्वे स्वस्वभावलेश्यानुगा एव। भवनत्रयदेवाः मनुष्यास्तिर्यंचो देवविकुर्वणादेहाश्च सर्वे षड्वर्णाः। उत्तममध्यमजघन्यभोगभूमिजनरतिर्यंचः क्रमशः रविचंद्रहरिद्वर्णा एव॥ ४९६ ॥

सं० चं०—नारकी सर्व कृष्ण वर्ण ही हैं। बहुरि कल्पवासी देव जैसी उनके भावलेश्या है तैसाही वर्णके धारक हैं। बहुरि भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देव अर मनुष्य अर तिर्यंच अर देवनिका विक्रियातैं भया शरीर ते छहौ वर्णके धारक हैं। बहुरि उत्तम मध्यम जघन्य भोगभूमि सम्बन्धी मनुष्य तिर्यंच अनुक्रमतैं सूर्य सारिखे अर चंद्रमा सारिखे अर हरित वर्णके धारक हैं॥ ४९६ ॥

बादरआऊतेऊ सुक्कातेउ य वाउकायाणं।

गोमुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णो य ॥ ४९७ ॥

बादरासैजसौ शुक्लतेजसौ च वायुकायानाम् ।
गोमूत्रमुद्गवर्णाः क्रमशः अव्यक्तवर्णश्च ॥ ४९७ ॥

जी० प्र०—बादरासेजस्कायिकौ क्रमेण शुक्लपीतवर्णावेव, वातकायिकेषु घनोदधिवातघनवातशरीराणि क्रमेण गोमूत्रमुद्गवर्णाः, नितनुवा तशरीराणि अव्यक्तवर्णानि ॥ ४९७ ॥

स० चं०—बादर अप्कायिक शुक्लवर्ण है। बादर तेज कायिक पीतवर्ण है। बादर वात कायिकनिविषैं घनोदधि वात तो गऊका मूत्रके समान वर्ण धरै है। घनवात मूंगा सारिखा वर्ण धरै हैं। तनुवातका वर्ण प्रकट नाही अव्यक्त वर्ण है ॥ ४९७ ॥

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवे णियमा ॥ ४९८ ॥

सर्वेषां सूक्ष्मानां कापोताः सर्वे विग्रहे शुक्लाः ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥ ४९८ ॥

जी० प्र०—सर्वसूक्ष्मजीवदेहाः कपोतवर्णा एव । सर्वे जीवा विग्रहगतौ शुक्लवर्णा एव । सर्वे जीवाः स्वस्वपर्याप्तिप्रारंभप्रथमसमयाच्छरीरपर्याप्तिनिष्पत्तिपर्यंतं कपोतवर्णा एव नियमेन ॥ ४९८ ॥ इति वर्णाधिकारः । अथ परिणामाधिकारं गाथापंचकेनाह—

स० चं०—सर्व ही सूक्ष्म जीवनिका शरीर कपोत वर्ण है। बहुरि सर्व जीव विग्रहगतिविषैं शुक्ल वर्ण ही हैं। बहुरि सर्व जीव अपने पर्याप्तिके प्रारंभका प्रथम समयतैं लगाय शरीर पर्याप्तिकी पूर्णता पर्यंत जो अपर्याप्त अवस्था है तहां कपोत वर्ण ही हैं ऐसा नियम है। ऐसैं शरीरनिका वर्ण कह्या सो जिसका जो शरीरका वर्ण होइ तिसके सोई द्रव्य लेश्या जाननी ॥ ४९८ ॥ इति वर्णाधिकारः ॥ आगै परिणामाधिकार पंचगाथानिकरि कहैं हैं—

लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ॥ ४९९ ॥

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति ।
तत्र क्लिष्टानि अशुभानि शुभानि विशुद्धानि तदालापात् ॥ ४९९ ॥

जी० प्र०—कषायगतोदयस्थानानि असंख्यातलोकमात्राणि भवंति । तेषु संक्लेशस्थानानि अशुभलेश्यास्थानानि तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राण्यपि असंख्यातलोकमात्राण्येव । तदेकभागमात्राणि शुभलेश्याविशुद्धिस्थानान्यप्यसंख्यातलोकमात्राण्येव । सक्ले ≡ a । ८ । विशु । ≡ a । १ ॥ ४९९ ॥
(९)

स० चं०—कषायसम्बन्धी अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यात लोक प्रमाण हैं तिनिकौं यथायोग्य असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग मात्र तौ संक्लेश स्थान हैं ते पणि असंख्यात लोक प्रमाण हैं । बहुरि एकभाग मात्र विशुद्धि स्थान हैं ते पणि असंख्यात लोक प्रमाण हैं जातैं असंख्यातके भेद बहुत हैं तहां संक्लेश स्थान तौ अशुभलेश्या सम्बन्धी जानने अर विशुद्धिस्थान शुभलेश्या संबंधी जानने ॥ ४९९ ॥

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ॥ ५०० ॥

तीव्रतमास्तीव्रतरास्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मंदाः ।
मंदतरा मंदतमाः षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ॥ ५०० ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तासंख्यातलोकबहुभागमात्राणि अशुभलेश्यासंक्लेशस्थानानि कृष्णनीलकपोतभेदात्त्रिविधानि । तत्र कृष्णलेश्यासीव्रतमसंक्लेश-

स्थानानि सामान्याशुभसंक्लेशस्थानेषु ≡ a । ८ / ९ तद्योग्यासंख्यातलोकभक्तेषु बहुभागमात्राणि ≡ a । ८ । ८ / ९ । ९ नीललेश्यातीव्रतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ≡ a । ८ । ८ / ९ । ९ । ९ कपोतलेश्यातीव्रसंक्लेशस्थानानि तदेकभागमात्राणि ≡ a । ८ । १ / ९ । ९ । ९ पुनः शुभलेश्याविशुद्धिस्थानेषु पूर्वोक्तासंख्यातलोकभक्तैकभागमात्रेषु ≡ a । १ / ९ तेजोलेश्यामंदसंक्लेशस्थानानि तदसंख्यातलोकभक्तबहुभागमात्राणि ≡ a । ८ / ९ । ९ पद्मलेश्याविशुद्धिस्थानानि मंदतरसंक्लेशस्थानानि तदेकभागबहुभागमात्राणि ≡ a । ८ / ९ । ९ । ९ शुक्ललेश्याविशुद्धिस्थानानि मंदतमसंक्लेशस्थानानि शेषैकभागमात्राणि ≡ a । १ / ९ । ९ । ९ एतेषु कृष्णलेश्यादिषट्स्थानेषु प्रत्येकमशुभेषु उत्कृष्टाज्जघन्यपर्यंतं शुभेषु च जघन्यादुत्कृष्टपर्यंतं असंख्यातलोकमात्रषट्स्थानपतितहानिवृद्धिस्थानानि भवंति खलु—नियमेन ॥ ५०० ॥

स० चं०—पूर्वैं जे असंख्यात लोकके बहुभागमात्र अशुभलेश्या सम्बन्धी संक्लेश स्थान कहे ते कृष्ण नील कपोत भेदकरि तीन प्रकार हैं तहां पूर्वैं संक्लेशस्थाननिका जो प्रमाण कह्या ताकौं यथायोग्य असंख्यात लोकका भाग दीएं तहां एक भागविना अवशेष बहुभाग मात्र कृष्णलेश्यासम्बन्धी तीव्रतम कषायरूप संक्लेशस्थान जानने। बहुरि तिस अवशेष एकभागकौं असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग मात्र नील लेश्यासम्बन्धी तीव्रतर कषायरूप संक्लेश स्थान जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागमात्र कपोतलेश्या सम्बन्धी तीव्रकषायरूप संक्लेशस्थान जानने। बहुरि असंख्यात लोकका एकभागमात्र शुभलेश्यासम्बंधी विशुद्धि स्थान कहे ते तेजः पद्म शुक्ल भेदकरि तीन प्रकार हैं। तहां पूर्वैं जो विशुद्धिस्थाननिका प्रमाण कह्या ताकौं यथायोग्य असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एकभागविना अवशेष बहुभाग मात्र तेजोलेश्या सम्बंधी मंदकषाय रूप विशुद्धि स्थान जानने। बहुरि तिस अवशेष एक भागकौं असंख्यात लोकका भाग दीजिए तहां एकभाग विना अवशेषभागमात्र पद्मलेश्या संबंधी मंदतर कषायरूप विशुद्धिस्थान जानने बहुरि तिस अवशेष एकभागमात्र शुक्ललेश्यासंबंधी मंदतम कषायरूप विशुद्धि स्थान जानने। तहां इनि कृष्णलेश्या आदि छह स्थान

हानौ शुनः स्वस्थानसंक्रमणं परस्थानसंक्रमणं चेत्युभयं भवति । शेषनीलपद्मकपोततेजोलेश्याचतुष्टयस्य हानौ वृद्धौ च अपिशब्दादुभयसंक्रमणं भवति ।

स० च०—संक्रमण नाम परिणामनिकी पलटनिका है सो संक्रमण दोय प्रकार है स्वस्थानसंक्रमण १ परस्थानसंक्रमण २ तहां जो परिणाम जिस लेश्यारूप था सो परिणाम पलटिकरि तिसही लेश्यारूप रहै सो तो स्वस्थान संक्रमण है। बहुरि जो परिणाम पलटिकरि अन्य लेश्याकौं प्राप्त होइ सो परस्थानसंक्रमण है । तहां कृष्ण लेश्या और शुक्ललेश्याकी वृद्धिविषै तौ स्वस्थानसक्रमण ही है जातैं संक्लेशकी वृद्धि कृष्णलेश्याके उत्कृष्ट अंशपर्यंत ही है। अर विशुद्धताकी वृद्धि शुक्ल लेश्याके उत्कृष्ट अशपर्यंत ही है। बहुरि कृष्णलेश्या अर शुक्ल लेश्याके हानिविषैं स्वस्थानसंक्रमण परस्थानसंक्रमण दोऊ पाइए है। जो उत्कृष्ट कृष्णलेश्यातैं संक्लेशकी हानि होइ तौ कृष्ण लेश्याके मध्यम जघन्य अंशरूप प्रवर्तैं तहां स्वस्थानसंक्रमण भया अर जो नीलादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तैं तहां परस्थान संक्रमण भया ऐसैं कृष्ण लेश्याके हानिविषै दोऊ संक्रमण हैं। बहुरि उत्कृष्ट शुक्ललेश्यातैं जो विशुद्धताकी हानि होइ तो शुक्ल लेश्याके मध्यम जघन्य अंशरूप प्रवर्तैं तहां स्वस्थानसंक्रमण भया बहुरि पद्मादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तैं तहां परस्थानसंक्रमण भया ऐसैं शुक्ल लेश्याके हानिविषै दोऊ संक्रमण हैं । बहुरि अवशेष नील कपोत तेज पद्म लेश्यानिविषैं दोऊ जातिके संक्रमण हानिविषैं भी अर वृद्धिविषैं भी पाइये । वृद्धि हानि होतैं जो जिस लेश्यारूप था उसही लेश्यारूप रहै तहां स्वस्थानसंक्रमण होइ । बहुरि वृद्धि हानि होतैं जिस लेश्यारूप था तिसतैं अन्य लेश्यारूप प्रवर्तैं तहां परस्थानसंक्रमण होइ ऐसैं च्यार्यौं लेश्यानिके हानिविषैं वा वृद्धिविषैं उभय संक्रमण॥५०४ ॥

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ॥ ५०५ ॥

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिः अवरकादवरवृद्धिः ।
स्वस्थाने अवरात् हानिर्नियमात् परस्थाने ॥ ५०५ ॥

जी० प्र०—कृष्णादिसर्वलेश्योत्कृष्टादनंतरस्वलेश्यास्थानविकल्पे अवरहानिः अनंतैकभागहानिर्भवति, कुतः? तदनंतरस्योर्वंकात्मकत्वात् । सर्वलेश्यानां जघन्यात्पुनः स्वस्थाने अवरवृद्धिः अनंतैकभागवृद्धिरेव भवति । कुतः ? तज्जघन्यानामष्टांकरूपत्वात् । सर्वलेश्याजघन्यस्थानात् परस्थानसंक्रमणेऽनंतरस्थाने अनंतगुणहानिरेव नियमाद्भवति । कुतः ? शुक्ललेश्याजघन्यादनंतरपद्मलेश्यास्थानवत्कृष्णलेश्याजघन्यादनंतरनीललेश्यास्थानेऽपि तद्धानेरेव संभवात । एव सर्वलेश्यानां भवति ॥ ५०५ ॥

स० चं०—कृष्णादि सर्व लेश्यानिका उत्कृष्ट स्थानविषैं जेते परिणाम हैं तिनतैं उत्कृष्ट स्थानकका समीपवर्ती जो तिसही लेश्याका स्थान तिसविषैं अवरहानि कहिए उत्कृष्ट स्थानतैं अनंतभागहानि लीएं परिणाम हैं जातैं उत्कृष्टके अनंतर जो परिणाम ताकौं ऊर्वंक कह्या है सो अनंतभागकी संदृष्टि ऊर्वंक है। बहुरि स्वस्थानविषैं कृष्णादि सर्व लेश्यानिका जघन्य स्थानके समीपवर्ती जो स्थान है तिसविषैं जघन्य स्थानके परिणामनितैं अवर वृद्धि कहिए। अनंतभागवृद्धि लीएं परिणाम पाइए हैं जातैं जो जघन्यभाव अष्टांकरूप कह्या है सो अनंतगुण वृद्धिकी सहनानी आठका अंक है ताके अनन्तर ऊर्वंक ही है। बहुरि सर्व लेश्यानिके जघन्यस्थानतैं जो परस्थानसंक्रमण होइ तौ उस जघन्य स्थानकके परिणामानितैं अनन्तगुणहानिकौं लीएं अनन्तर स्थानविषैं परिणाम हो है सो शुक्ल लेश्याका जघन्य स्थानकके अनन्तर तौ पद्म लेश्याका उत्कृष्ट स्थान है अर कृष्ण लेश्याके जघन्य स्थानके अनंतर नील लेश्याका उत्कृष्ट स्थान है तहां अनंतगुणहानि पाइए है ऐसैं ही सर्व लेश्यानिविषैं जानना । कृष्ण नील कपोतविषैं तो हानि वृद्धि संक्लेश परिणामानिकी जाननी । पीत पद्म शुक्लविषैं हानि वृद्धि विशुद्ध परिणामनिकी जाननी ॥ ५०५ ॥ इस गाथाविषैं कह्या अर्थका कारण आगैं प्रकटकरि कहिए है—

संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा ।
परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ॥ ५०६ ॥

संक्रमणे षट्स्थानानि हानिषु वृद्धिषु भवन्ति तन्नामानि ।

परिमाणं च च पूर्वमुक्तक्रमं भवति श्रुतज्ञाने ॥ ५०६ ॥

जी० प्र०—अस्मिन् संक्रमणे हानिषु वृद्धिषु च षड्वृद्धयः षड्हानयश्च भवंति । तासां च नामानि प्रमाणानि च पूर्वं श्रुतज्ञानमार्गणायां उक्तक्रमेणैव भवंति । तत्र अनंतभागः असंख्यातभागः संख्यातभागः संख्यातगुणः असंख्यातगुणः अनंतगुणश्चेति नामानि । उत्कृष्टसंख्यातमसंख्यातलोकः सर्वजीवराशिश्चेति भागक्रमे, गुणितक्रमे च प्रमाणानि भवंति ॥ ५०६ ॥ इति संक्रमणाधिकारश्चतुर्थः ॥ अथ कर्माधिकारं गाथाद्वयेनाह—

सं० च०—इस संक्रमणविषैं हानिविषैं अनन्त भागादिक छह स्थान हैं वहुरि वृद्धिविषैं अनन्त भागादिक छह स्थान हैं तिनके नाम वा प्रमाण जो पूर्वैं श्रुतज्ञान मार्गणाविषैं पर्याय समास श्रुतज्ञानका वर्णन करते अनुक्रम कह्या हैं सोई इहां जानना। सो अनन्त भाग १ असंख्यात भाग २ संख्यात भाग ३ संख्यात गुण ४ असंख्यात गुण ५ अनंत गुण ६ ए तौ षट् स्थाननिके नाम हैं। इनि अनन्त भागादिककी सहनानी क्रमतैं ऊर्वक च्यारि पांच छह सात आठका अंक है। वहुरि अनंतका प्रमाण जीवराशिमात्र, असंख्यातका प्रमाण असंख्यात लोकमात्र, संख्यातका प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र, ऐसा प्रमाण गुणकार वा भागहारविषैं जानना। वहुरि यंत्र द्वारकरि जो तहां अनुक्रम कह्या है सोई इहां अनुक्रम जानना। वृद्धिविषैं तो तहां कह्या है सोई अनुमक्र जानना वहुरि हानिविषैं उलटा अनुक्रम जानना। कैसे ? सो कहिए है—कपोत लेश्याका जघन्यतैं लगाइ कृष्ण लेश्याका उत्कृष्ट पर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं संक्लेशकी वृद्धि सभवै है। वहुरि कृष्ण लेश्याका उत्कृष्टतैं लगाइ कपोत लेश्याका जघन्य पर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं संक्लेशकी हानि सभवै है वहुरि पीतका जघन्यतैं लगाइ शुक्लका उत्कृष्टपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं विशुद्धिकी वृद्धि संभवै है। वहुरि शुक्लका उत्कृष्टतैं लगाइ पीतका जघन्यपर्यंत विवक्षा होइ तौ क्रमतैं विशुद्धिकी हानि संभवै है। तहां वृद्धिविषैं यथासंभव षट्स्थानपतित वृद्धि जाननी। हानिविषैं हानि जाननी। तहां पूर्वैं कह्या जो वृद्धिविषैं अनुक्रम तहां पीछै ही पीछै सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र वार अनन्त भाग वृद्धि होइ एकवार अनन्तगुणवृद्धि हो है। तहां अनंत गुण वृद्धिरूप जो स्थान सो नवीन षट्स्थानपतितवृद्धिका प्रारंभ रूप प्रथम स्थान है अर याके पहिलैं जो अनंतभागवृद्धिरूप स्थान

भया सो विवक्षित षट्स्थानपतित वृद्धिका अंत स्थान है। बहुरि नवीन षट्स्थान पतितवृद्धिका अनन्त गुणवृद्धिरूप प्रथम स्थानके आगैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागमात्र अनंतभाग वृद्धिरूपस्थान हो है। आगे पूर्वोक्त अनुक्रम जानना। अब इहां कृष्ण लेश्याका उत्कृष्ट स्थान है सो षट्स्थानपतितका अन्तस्थानरूप है तातै पूर्वस्थानतैं अनन्तभाग वृद्धिरूप है। बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्य स्थान है सो षट्स्थानपतितका प्रारंभरूप प्रथम स्थान है तातैं याके पूर्वे नीललेश्याका उत्कृष्ट स्थान तातैं अनंत गुण वृद्धिरूप यहु स्थान जानना। बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्यके समीपवर्ती स्थान तिस जघन्य स्थानतैं अनन्त भाग वृद्धिरूप जानना। ऐसैं ही अन्य स्थाननिविषैं वा अन्य लेश्यानिविषैं वृद्धिका अनुक्रम जानना। बहुरि जो हानि अपेक्षा कथन कीजिए तौ कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट स्थानतैं ताके समीपवर्ती स्थान अनन्त भाग हानि लीएं जानना। बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्य स्थानतैं नील लेश्याका उत्कृष्ट स्थान अनंत गुणहानि लीएं जानना। बहुरि कृष्ण लेश्याका जघन्यके समीपवर्ती स्थानतैं जघन्य स्थान अनंत भाग लीए जानना ऐसैं ही अन्य स्थाननिविषैं अन्य लेश्यानि विषै यंत्र द्वारकरि कह्या अनुक्रमतैं उलटा अनुक्रम लीए हानिका अनुक्रम जानना। ऐसैं संक्रमण विषैं वृद्धि हानि है॥ ५०६॥ इति संक्रमणाधिकारः॥ ४॥ आगैं कर्माधिकार गाथा दोयकरि कहै हैं—

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्ठारण्णमज्झदेसम्मि।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति॥ ५०७॥
णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं॥५०८॥

पथिका ये षट्पुरुषाः परिभ्रष्टा अरण्यमध्यदेशे ।
फलभरितवृक्षमेकं दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति ॥ ५०७ ॥
निर्मूलस्कन्धशाखोपशाखं छित्त्वा चित्वा पतितानि ।
खादितुं फलानि इति यन्मनसा वचनं भवेत् कर्म ॥ ५०८ ॥ युग्मम् ।

जी० प्र०—कृष्णाद्येकैकलेश्यायुक्तषट्पथिकाः पथःपरिभ्रष्टाः अरण्यमध्यदेशे फलभरितमेकं वृक्षं दृष्ट्वा ते विचिंतयंति पुरुषाः तत्र आद्यः—वृक्षं निर्मूलं छित्त्वा, अन्यः स्कंधं छित्त्वा, परः शाखां छित्त्वा, अन्यः उपशाखां छित्त्वा, परः वृक्षावाधं फलान्येव छित्त्वा, अन्यः पतितान्येव गृहीत्वा च फलान्यश्नीति यन्मनःपूर्वकं वचः तत्क्रमशस्तासां कर्म भवति ॥ ५०७–५०८ ॥ इति कर्माधिकारः ॥ अथ लक्षणाधिकारं गाथानवकेनाह—

स० चं०—कृष्णादिक एक एक लेश्यावाले छह पथिक पुरुष मार्गतैं भ्रष्ट भए तहां वनविषैं एक फलनिकरि भर्या हूवा वृक्षकौं देखि ऐसैं चिंतवैं हैं—कृष्ण लेश्यावाला तौ चिंतवै हैं जो मैं इस वृक्षकौं मूलतैं उपाडि फल खास्यों। वहुरि नील लेश्यावाला चिंतवै है मैं इस वृक्षके पेडकौं काटि फल खास्यौं। वहुरि कपोतवाला चिंतवैं है मैं इस वृक्षकी बड़ी शाखानि छेदि फल खास्यौं। वहुरि पीतवाला चितवैं है मैं इस वृक्षकी छोटी शाखा छेद फल खास्यों। वहुरि पद्मवाला चिंतवैं है मैं इस वृक्षके फलनिहीकौं छेद फल खास्यों। शुक्लवाला चिंतवै है कि मैं जे आपसे टूटि करि पडे फल तिनकौं खास्यौं। ऐसैं मनपूर्वक जो वचन होइ सो तिन लेश्यानिका कर्म जानना। इहां एक उदाहरण कह्या है इसही प्रकार अन्य जानने ॥ ५०७-५०८। इति कर्माधिकारः ॥ आगे लक्षणाधिकार नव गाथानिकरि कहै हैं—

चंडो ण मुचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ॥५०९॥

चण्डो न मुञ्चति वैरं भण्डनशीलश्च धर्मदयारहितः ।

दुष्टो न च एति वशं लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ॥ ५०९ ॥

जी० प्र०—चंडनस्तीव्रकोपनः वैरं न मुंचति, भंडनशीलश्च युद्धशीलश्च धर्मदयारहितः दुष्टः निर्दयो वशं नैति एतल्लक्षणं तु-पुनः कृष्णलेश्यस्य भवति ॥ ५०९ ॥

स० चं०—प्रचंड तीव्र क्रोधी होइ वैर न छोडै। भांडनेका युद्ध करनेका जाका सहज होइ। दया धर्मकरि रहित होइ। दुष्ट होइ। किसी गुरु जनादिकके वश्य न होइ ऐसे लक्षण कृष्ण लेश्यावालेके हैं ॥ ५०९ ॥

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ॥५१०॥

मन्दो बुद्धिविहीनो निर्विज्ञानी च विषयलोलश्च।
मानी मायी च तथा आलस्यः चैव भेद्यश्च ॥ ५१० ॥

जी० प्र०—मंदः-स्वच्छंदसंज्ञिकः क्रियासु मंदो वा, बुद्धिविहीनः वर्तमानकार्यानभिज्ञः, निर्विज्ञानी च-विज्ञानरहितश्च विषयलोलश्च-स्पर्शादि-बाह्येंद्रियार्थेषु लंपटश्च, मानी-अभिमानी, मायी च-कुटिलवृत्तिश्च तथा आलस्यश्चैव-क्रियासु कर्तव्येषु कुंठश्चैव भेद्यश्च परेणानवबोध्याभिप्रायश्च एतदपि कृष्णलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१० ॥

स० चं०—स्वच्छंद होइ अथवा क्रियाविषैं मंद होइ, वर्तमान कार्यकौं न जानैं ऐसा बुद्धिहीन होइ विज्ञान चातुर्यकरि हीन होइ स्पर्शादिक विषयनिविषैं अतिलंपटी होइ मानी होइ मायावी, कुटिल होइ, क्रियाविषैं कुंठ होइ जिसके अभिप्रायकौं और कोई न जानैं आलसी होइ यहु सर्व कृष्ण लेश्यावालेके लक्षण हैं ॥ ५१० ॥

णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ॥५११॥

निद्रावञ्चनबहुलो धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च ।
लक्षणमेतद्भणितं समासतो नीललेश्यस्य ॥ ५११ ॥

जी० प्र०—निद्रावहुलः वंचनवहुलः धनधान्येषु तीव्रसंज्ञश्च इत्येतल्लक्षणं संक्षेपेण नीललेश्यस्य भणितं ॥ ५११ ॥

स० चं०—निद्रा जाके वहुत होइ, औरको ठिगना जाके वहुत होइ, धन धन्यादिकविषें तीव्र वांछा जाके होइ ऐसा संक्षेपतैं नील लेश्यावालेका लक्षण है ॥ ५११ ॥

रूसइ णिंदइ अण्णे दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो ।
असुयइ परिभवइ परं पसंसये अप्पयं बहुसो ॥ ५१२ ॥

रुष्यति निन्दति अन्यं दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।
असूयति परिभवति परं प्रशंसति आत्मान बहुशः ॥ ५१२ ॥

जी० प्र०—परस्मै कुप्यति, बहुधा पर निंदति, बहुधा पर दुष्यति, च शोकबहुलः, भयबहुलः, पर न सहते परं परिभवति आत्मानं बहुधा, प्रशंसति ॥ ५१२ ॥

स० चं०—परके ऊपरि क्रोध करै वहुत प्रकार औरकौ निंदै वहुत प्रकार और कौं दुखावै, शोक जाके वहुत होइ भय जाकै बहुत होइ औरकौं नीकै देखि सकै नाही औरका अपमान करै आपकी बहुत प्रकार वढाईकरै ॥

ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं यिव परंपि मण्णंतो ।
थूसइ अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणिवड्ढिं वा ॥ ५१३ ॥

न च प्रत्येति परं स आत्मानमिव परमपि मन्यमानः ।
तुष्यति अभिष्टुवतो न च जानाति हानिवृद्धी वा ॥ ५१३ ॥

जी० प्र०—स परं न प्रत्येति-न विश्वसिति आत्मानमिव परमपि मन्यमानः अभिष्टुवतः परस्योपरि तुष्यति स्वपरयोर्हानिवृद्धी न च-नैव जानाति ॥ ५१३ ॥

स० चं०—आप सारिखा पापी कपटी औरकौं मानता संता औरका विश्वास न करै, जो आपकी स्तुति करै ताके ऊपरि बहुत संतुष्ट होइ अपनी, अर परकी हानि वृद्धिकौं न जानैं ॥ ५१३ ॥

मरणं पत्थेइ रणे देइ सुबहुगं पि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ॥

मरण प्रार्थयते रणे ददाति सुबहुकमपि स्तूयमानस्तु ।
न गणयाति कार्याकार्यं लक्षणमेतत्तु कपोतस्य ॥ ५१४ ॥

जी० प्र०—रणे मरणं प्रार्थयते, स्तुतिं कुर्वतो बहुधनं (स्तू म नस्तु बहुकमपि) ददाति, कार्यमकार्यं च न गणयति इत्येतत्कपोतलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१४ ॥

स० चं०—युद्धविषैं मरणकौं चाहै जो आपकी बढाई करै ताकौं बहुत धन देइ, कार्य अकार्यकौं गिणै नाहीं ऐसैं लक्षण कपोत लेश्यावालेके हैं ॥ ५१४ ॥

जाणइ कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी ।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ॥

जानाति कार्याकार्यं सेव्यमसेव्यं च सर्वसमदर्शी ।
दयादानरतश्च मृदुः लक्षणमेतत्तु तेजसः ॥ ५१५ ॥

जी० प्र०—कार्यमकार्यं च सेव्यमसेव्यं च जानाति, सर्वसमदर्शी दयायां दाने च प्रीतिमान्, मनोवचनकायेषु मृदुः इत्येतत्तेजोलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१५ ॥

स० चं०—कार्य अकार्यकौं जानैं। सेवनेयोग्य न सेवनेयोग्यकौं जानैं, सर्वविषैं समदर्शी होइ, दया दानविषैं प्रीतिमंत, होइ मन वचन कायविषैं कोमल होइ ऐसे लक्षण पीतलेश्यावालेके हैं ॥ ५१५ ॥

चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥

त्यागी भद्रः सुकरः उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि ।
साधुगुरुपूजनरतो लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ॥ ५१६ ॥

जी० प्र०—त्यागी भद्रपरिणामी सौकर्यशीलः शुभोद्युक्तकर्मा च कष्टानिष्टोपद्रवान् सहते, मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतिमान् इत्येतत्पद्मलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१६ ॥

स० चं०—त्यागी होइ सुकार्यरूप जाका स्वभाव होइ शुभविषैं उद्यमी रूप जाके कर्म होंइ, कष्ट वा अनिष्ट उपद्रव तिनकौं सहै मुनिजन अर गुरुजन तिनकी पूजाविषैं प्रीतिवंत होइ ऐसे लक्षण पद्मलेश्यावालेके हैं ॥५१६॥

ण य कुणइ पक्खवायं णवि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥

न च करोति पक्षपातं नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोपि च शुक्ललेश्यस्य ॥ ५१७ ॥

जी० प्र०—पक्षपातं निदानं च न करोति सर्वजनानां समानश्च इष्टानिष्टयोः रागद्वेषरहितः पुत्रमित्रकलत्रादिषु स्नेहरहितः इत्येतत् शुक्ललेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः षष्ठः ॥ अथ गत्यधिकारं एकादशभिः गाथासूत्रैराह—

स० चं०—पक्षपात न करै, निंदा न करै, सर्व जीवनिविषैं समान होइ, इष्ट अनिष्टविषैं राग द्वेष रहित होइ, पुत्र

कलत्रादिकविषैं स्नेहरहित होइ ऐसे लक्षण शुक्ल लेश्यावालेके हैं ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः ॥ ६ ॥ आगैं गति अधिकार ग्यारह सूत्रनिकरि कहैं है—

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥ ५१८ ॥

लेश्यानां खलु अंशाः षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुष्कबन्धनयोग्या अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ॥ ५१८ ॥

जी० प्र०—षड्लेश्यानामंशाः जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादष्टादश । पुनः कपोतलेश्योत्कृष्टांशादग्रे तेजोलेश्योत्कृष्टांशात्प्राक् कषायोदयस्थानेषु मध्यमांशा आयुर्बंधयोग्या अष्टौ । एवं षड्विंशतिर्भवंति । तेषु—

शिला	पृथ्वी	धूलि	जल
उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज
कृ १	१ २ ३ ४ ५ ६	६ ५ ४ ३ २ १	शु १
० १	१ १ १ ४ ४ ४	४ १ १ १ ० ०	०
	२	३ ०	
	३	२	
	० ० ० ०	० ० ० ०	

मध्यमांशाः

मध्यमा अष्टौ अष्टापकर्षकाले संभवंति । तद्यथा—भुज्यमानायुरपकृष्याकृष्य परभवायुर्बध्यते इत्यपकर्षः । अपकर्षाणां स्वरूपमुच्यते-कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याणां भुज्यमानायुर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टं विवक्षितमिदं ६५६१ अत्र भागद्वयेऽतिक्रांते तृतीयभागस्य २१८७ प्रथमांतर्मुहूर्तः परभवायुर्बंधयोग्यः, तत्र न बद्धं तदा, तदेकभागतृतीयभागस्य ७२९ प्रथमांतर्मुहूर्तः । तत्रापि न बद्धं तदा तदेकभागतृतीयभागस्य २४३ प्रथमांतर्मुहूर्तः । एवमग्रेऽग्रे नेतव्यमष्टवारं यावत् । इत्यष्टैवापकर्षाः । नाष्टमापकर्षेऽप्यायुर्बंधनियमः, नाप्यन्योऽपकर्षः तर्हि आयुर्बंधः कथं ? असंक्षेपाद्धा भुज्यमानायुषोंत्यावल्यसंख्येयभागः तस्मिन्नवशिष्टे प्रागेव अंतर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् परभवायुर्नियमेन बद्ध्वा समाप्नोतीति नियमो ज्ञातव्यः—

स० चं०—कार्य अकार्यकौं जानैं। सेवनेयोग्य न सेवनेयोग्यकौं जानैं, सर्वविषैं समदर्शी होइ, दया दानविषैं प्रीतिमंत, होइ मन वचन कायविषैं कोमल होइ ऐसे लक्षण पीतलेश्यावालेके हैं ॥ ५१५ ॥

चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ॥

त्यागी भद्रः सुकरः उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि।
साधुगुरुपूजनरतो लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ॥ ५१६ ॥

जी० प्र०—त्यागी भद्रपरिणामी सौकर्यशीलः शुभोद्युक्तकर्मा च कष्टानिष्टोपद्रवान् सहते, मुनिजनगुरुजनपूजाप्रीतिमान् इत्येतत्पद्मलेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१६ ॥

स० चं०—त्यागी होइ सुकार्यरूप जाका स्वभाव होइ शुभविषैं उद्यमी रूप जाके कर्म होंइ, कष्ट वा अनिष्ट उपद्रव तिनकौं सहै मुनिजन अर गुरुजन तिनकी पूजाविषैं प्रीतिवंत होइ ऐसे लक्षण पद्मलेश्यावालेके हैं ॥५१६॥

ण य कुणइ पक्खवायं णावि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा णेहोवि य सुक्कलेस्सस्स ॥

न च करोति पक्षपातं नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम्।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोपि च शुक्ललेश्यस्य ॥ ५१७ ॥

जी० प्र०—पक्षपातं निदानं च न करोति सर्वजनानां समानश्च इष्टानिष्टयोः रागद्वेषरहितः पुत्रमित्रकलत्रादिषु स्नेहरहितः इत्येतत् शुक्ललेश्यस्य लक्षणं भवति ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः षष्ठः ॥ अथ गत्यधिकारं एकादशभिः गाथासूत्रैराह—

स० चं०—पक्षपात न करै, निंदा न करै, सर्व जीवनिविषैं समान होइ, इष्ट अनिष्टविषैं राग द्वेष रहित होइ, पुत्र

कलत्रादिकविषैं स्नेहरहित होइ ऐसे लक्षण शुक्ल लेश्यावालेके हैं ॥ ५१७ ॥ इति लक्षणाधिकारः ॥ ६ ॥ आगैं गति अधिकार ग्यारह सूत्रनिकरि कहैं है—

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ॥ ५१८ ॥

लेश्यानां खलु अंशाः षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुष्कबन्धनयोग्या अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ॥ ५१८ ॥

जी० प्र०—षड्लेश्यानामंशाः जघन्यमध्यमोत्कृष्टभेदादष्टादश । पुनः कपोतलेश्योत्कृष्टांशादग्रे तेजोलेश्योत्कृष्टांशात्प्राक् कषायोदयस्थानेषु मध्यमांशा आयुर्बंधयोग्या अष्टौ । एवं षड्विंशतिर्भवंति । तेषु—

शिला	पृथ्वी	धूलि	जल
उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज	उ ०००००० ज
कृ १	१ २ ३ ४ ५ ६	६ ५ ४ ३ २ १	शु १
० १	१ १ १ ४ ४ ४	४ १ १ १ ० ०	०
	२	३ ०	
	३	२	
	० ० ० ०	० ० ० ०	

मध्यमांशाः

मध्यमा अष्टौ अष्टापकर्षकाले संभवंति । तद्यथा—भुज्यमानायुरपकृष्यापकृष्य परभवायुर्बध्यते इत्यपकर्षः । अपकर्षाणां स्वरूपमुच्यते-कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याणां भुज्यमानायुर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टं विवक्षितमिदं ६५६१ अत्र भागद्वयेऽतिक्रान्ते तृतीयभागस्य २१८७ प्रथमांतर्मुहूर्तः परभवायुर्बंधयोग्यः, तत्र न बद्धं तदा, तदेकभागतृतीयभागस्य ७२९ प्रथमांतर्मुहूर्तः । तत्रापि न बद्धं तदा तदेकभागतृतीयभागस्य २४३ प्रथमांतर्मुहूर्तः । एवमग्रेऽग्रे नेतव्यमष्टवारं यावत् । इत्यष्टैवापकर्षाः । नाष्टमापकर्षेऽप्यायुर्बंधनियमः, नाप्यन्योऽपकर्षः तर्हि आयुर्बंधः कथं ? असंक्षेपाद्धा भुज्यमानायुषोंत्यावल्यसंख्येयभागः तस्मिन्नवशिष्टे प्रागेव अंतर्मुहूर्तमात्रसमयप्रबद्धान् परभवायुर्नियमेन बद्ध्वा समाप्नोतीति नियमो ज्ञातव्यः—

२
३
१
३
९
२७
८१
२४३
७२९
२१८७
६५६१

अत्र विशेषनिर्णयः क्रियते । सोपक्रमायुष्काः कदलीघातायुष्काः तेन देवनारकभोगभूमिजा अनुपक्रमायुष्का भवंति । सोपक्रमायुष्का उक्तरीत्या आयुर्बध्नंति । तत्रायुस्तोकबंधाद्धाभ्यंतरे तद्योग्यपरिणामैः केचिदष्टवारं केचित्सप्तवारं केचित् षड्वारं केचित्पंचवारं केचित् चतुर्वारं केचित्त्रिवारं केचिद्द्विवारं केचिदेकवारं परिणमंति । स्वभावादेव तद्बंधप्रायोग्यपरिणमनं जीवानां कारणांतरनिरपेक्षमित्यर्थः । संदृष्टिः—

अष्टापकर्ष	सप्तापकर्ष	षष्ठापकर्ष	पंचापकर्ष	चतुरपकर्ष	त्र्यपकर्ष	द्व्यपकर्ष	एकापकर्ष
ज. उ							
८ ८ ८	ज. उ						
८ ७ ७	७ ७ ७	ज. उ					
८ ६ ६	७ ६ ६	६ ६ ६	ज. उ				
८ ५ ५	७ ५ ५	६ ५ ५	५ ५ ५	ज. उ			
८ ४ ४	७ ४ ४	६ ४ ४	५ ४ ४	४ ४ ४	ज. उ		
८ ३ ३	७ ३ ३	६ ३ ३	५ ३ ३	४ ३ ३	३ ३ ३	ज. उ	
८ २ २	७ २ २	६ २ २	५ २ २	४ २ २	३ २ २	२ २ २	ज. उ
८ १ १	७ १ १	६ १ १	५ १ १	४ १ १	३ १ १	१ १ १	१ १ १

तृतीयभागप्रथमसमये यैः परभवायुर्बंधः प्रारब्धः ते अंतर्मुहूर्ते एव बंधं निष्ठापयंति । अथवा द्वितीयवारे सर्वायुर्नवमांशावशेषेऽपि तद्बंधप्रायोग्या भवंति अथवा तृतीयवारे सर्वायुःसप्तविंशतिभागावशेषेऽपि प्रायोग्या भवंति एवमष्टमापकर्षपर्यंतं ज्ञातव्यं त्रिभागत्रिभागावशेषे सत्यायुर्बध्नंति एव इत्येकांतो नास्ति तत्र तत्र प्रायोग्या भवंतीति कथितं भवति । निरुपक्रमायुष्काः अनपवर्तितायुष्का देवनारका भुज्यमानायुषि षड्मासावशेषे

सति परभवायुर्बंधप्रायोग्या भवंति, अत्राप्यष्टापकर्षाः स्युः । समयाधिकपूर्वकोटिप्रभृतित्रिपलितोपमपर्यंतं संख्यातासंख्यातवर्षायुष्कभोगभूमितिर्यग्मनुष्या अपि निरुपक्रमायुष्का इति ग्राह्यं । अत्र च अष्टापकर्षैः परभवायुर्बंधं कुर्वाणा जीवाः सर्वतः स्तोकाः, ततः सप्तापकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः षडपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः पंचापकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततश्चतुरपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततस्त्र्यपकर्षैः कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततो द्व्यपकर्षाभ्यां कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । ततः एकापकर्षेण कुर्वाणाः संख्यातगुणाः । संदृष्टिः—

१३—ॄ—१ ॄॄॄॄॄॄॄॄ ८	१३—ॄ—१ ॄॄॄॄॄॄॄ ७	१३—ॄ—१ ॄॄॄॄॄॄ ६	१३—ॄ-१ ॄॄॄॄॄ ५	३१—ॄ—१ ॄॄॄॄ ४	१३—ॄ—१ ॄॄॄ ३	१३—ॄ—१ ॄ ॄ २	१३—ॄ—१ ॄ १

पुनरष्टापकर्षैरायुर्बध्नतोऽष्टमापकर्षे आयुर्बंधाद्धाजघन्यं स्तोकं २ ॄ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ ५ ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नतः सप्तमापकर्षे आ-
४

युर्बंधाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं २ ॄ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ ॄ । ५ । ४ । ५ ततः सप्तापकर्षैरायुर्बध्नतः सप्तमापकर्षे आयुर्बंधाद्धा ज-
४ ... ४ । ४

घन्यं संख्यातगुणं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततोऽष्टापकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बंधाद्धा
४ । ४ ... ४ । ४ । ४

जघन्यं संख्यातगुणं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततः सप्तापकर्षैरायु-
४ । ४ । ४ ... ४ । ४ । ४ । ४

र्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बंधाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं—
४ । ४ । ४ । ४

२ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ ततः षडपकर्षैरायुर्बध्नतः षष्ठापकर्षे आयुर्बंधाद्धा जघन्यं संख्यातगुणं—
४ । ४ । ४ । ४ । ४

२ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ ततस्तदुत्कृष्टं विशेषाधिकं २ॄ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५ । ४ । ५
४ । ४ । ४ । ४ । ४ ... ४ । ४ । ४ । ४ । ४ । ४

एवमेकापकर्षस्योत्कृष्टपर्यंतं नीते द्वासप्ततिविकल्पा भवंति ७२ एवमायुर्बंधयोग्ये लेश्यामध्यमांशानामष्टानामष्टापकर्षैरुत्पत्तिक्रम उक्तः ॥ ५१८ ॥

स० चं०—लेश्यानिके छव्वीस अंश हैं तहां छहों लेश्यानिके जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदकरि अठारह अंश हैं बहुरि कपोतलेश्याके उत्कृष्ट अंशतैं आगैं अर तेजो लेश्याके उत्कृष्ट अंशतैं पहिलैं कषायनिका उदय स्थानकनिविषैं आठ मध्यम अंश हैं ऐसैं छव्वीस अंश भए। तहां आयुकर्मके बंधकौं योग्य आठ मध्यम अंश, जानने। तिनिका स्वरूप आगैं स्थानसमुत्कीर्तन अधिकारविषैं भी कहेंगे। ते आठ मध्यम अंश, अपकर्ष काल आठ तिनिविषैं सभवै है, वर्तमान जो भुज्यमान आयु ताकौं अपकृष्य अपकृष्य कहिए घटाइ घटाइ आगामी परभवकी आयुकौं बांधै सो अपकर्ष कहिए। अपकर्षनिका स्वरूप दिखाइए है—तहां उदाहरण कहिए है-किसी कर्म भूमिया मनुष्य वा तिर्यंचका आयु पैसाठिसै इकसठि ६५६१ वर्षका है तहां तिस आयुका दोय भाग गएं इकईससै सित्तासी वर्ष रहै तहां तीसरा भागकौं लागते ही प्रथमसमयस्यों लगाइ अंतर्मुहूर्तपर्यंत कालमात्र प्रथम अपकर्ष है तहां परभव संबधी आयुका बंध होइ। बहुरि जो तहां न बंधै तौ तिस तीसरा भागका दोय भाग गएं सातसै गुणतीस वर्ष आयुके अवशेष रहै तहां अंतर्मुहूर्त काल पर्यंत दूसरा अपकर्ष है तहां परभवका आयु बांधै। बहुरि तहां भी न बधै तौ तिसका भी दोय भाग गए दोयसै तियालीस वर्ष आयुके अवशेष रहैं अंतर्मुहूर्त कालमात्र तीसरा अपकर्ष विषैं परभवका आयु बांधै। बहुरि तहां भी न बंधै तौ तिसका भी दोय भाग गएं इक्यासी वर्ष रहैं अंतर्मुहूर्त पर्यंत चौथा अपकर्षविषैं परभवका आयु बांधै। ऐसैं ही दोय दोय भाग गएं सत्ताईस वर्ष रहैं वा नव वर्ष रहैं वा तीन वर्ष रहै वा एक वर्ष रहै अंतर्मुहूर्तमात्र काल पर्यंत पांचवां वा छठा वा सातवां वा आठवां अपकर्षविषैं परभवका आयुकौं बंधनेकौं योग्यपना जानना। ऐसैं ही जो भुज्यमान आयुका प्रमाण होइ ताके त्रिभाग त्रिभागविषैं आठ अपकर्ष जानने। बहुरि जो आठौ अपकर्षनिविषैं आयु न बधै अर नवमां आदि अपकर्ष है नाहीं, तौ आयुका बंध कैसैं होइ? सो कहै हैं—'असंक्षेपाद्धा' जो आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण काल भुज्यमान आयुका अवशेष रहैताके पहिले अतर्मुहूर्त काल मात्र समय प्रबद्धनिकरि परभवका आयुकौं बांधि पूर्ण करै है ऐसा नियम है। इहां विशेष निर्णय कीजिए है-विषादिकका निमित्तरूप कदलीघातकरि जिनका मरण होइ ते सोपक्रमायुष्क कहिए तातैं

देव नारकी भोगभूमियां अनुपक्रमायुष्क हैं। सो सोपक्रमायुष्क हैं ते पूर्वोक्त रीतिकरि परभवका आयुकौं बांधै हैं। तहां पूर्वोक्त आठ अपकर्षनिविषैं आयुके बंध होनेकौं योग्य जो परिणाम तिनकरि केई जीव आठवार केई जीव सातवार केई छहवार केइ पांच वार केई च्यारि वार केई तीनवार केई दोवार केई एकवार परिणमैं है। आयुके बध योग्य परिणाम अपकर्षनिविषैं ही होंइ सो ऐसा कोई स्वभाव सहज ही है। अन्य कोई कारण नाहीं। तहां तीसरा भागका प्रथम समयविषैं जिन जीवनिकरि परभवके आयुका बंध प्रारंभ किया ते अंतर्मुहूर्त हीविषैं निष्ठापन करैं अथवा दूसरी वार आयुका नवमा भाग अवशेष रहैं तहां तिस बंध होनेकौं योग्य होंइ। अथवा तीसरी वार आयुका सत्ताईसवां भाग अवशेष रहै तहां तिस बंध होनेकौं योग्य होइ ऐसें आठवां अपकर्ष पर्यंत जानना। ऐसा किछू नियम है नाही जो इनि अपकर्षनिविषैं आयुका बंध होइ ही होइ। इनिविषैं आयुके बंध होनेकौं योग्य होइ। जो बंध होइ तो होइ, न होइ तौ न होइ। ऐसें आयुके बंधका विधान कह्या। जैसें अन्यकालविषैं समय समय प्रति समयप्रबद्ध बंधै है सो आयुकर्म विना सातकर्मरूप होइ परिणमै है तैसें आयुकर्मका बध जेता कालमें होइ तितने कालविषैं जे समय समय प्रति समय प्रबंद्धबंधै ते आठो ही कर्मरूप होइ परिणमैं हैं ऐसें जानना। बहुरि जिस समयविषैं पहिलैं ही जिसका बंध होइ तहां तिसका प्रारंभ कहिए बहुरि समय समय तिस प्रकृतिका बंध हूवा करै तहां बंध होइ निवरै तहां निष्ठापक कहिए। बहुरि देव नारकीनिके छह महिना आयुका अवशेष रहै तब आयुके बध करनेकौं योग्य होइ पहिलैं न होइ तहां छह महिना ही विषैं त्रिभाग त्रिभागकरि आठ अपकर्ष हो हैं तिनविषैं आयुके बध करने योग्य हो है। बहुरि एक समय अधिक कोटि पूर्व वर्षतैं लगाइ तीन पल्य पर्यंत असंख्यात वर्षमात्र आयुके धारी भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य ते भी निरुपक्रमायुष्क हैं इनकैं आयुका नव मास अवशेष रहैं आठ अपकर्षनिकरि परभवके आयुका बंध होनेका योग्यपना हो है। बहुरि इतना जानना जिस गतिसंबंधी आयुका बंध प्रथम अपकर्षविषैं होइ पीछैं जो द्वितियादि अपकर्षनिविषैं आयुका बंध होइ तौ तिसही गति संबंधी आयुका बंध होइ। बहुरि जो प्रथम अपकर्षविषैं आयुका बंध न होइ तौ अर दूसरे अपकर्षविषैं जिस

किसी आयुका वंध होइ तौ तृतीयादि अपकर्षनिविषें आयुका जो वंध होइ तौ तिस ही गतिसम्बन्धी आयुका वन्ध होइ ऐसें ही आगै जानना। ऐसे कई एक जीवनिके तो आयुका वन्ध एक अपकर्ष ही विषें होइ केई जीवनिके दोय अपकर्षनिकरि होइ. केई जीवनिके तीन वा च्यारि वा पांच वा छह वा सात वा आठ अपकर्षनिकरि हो है। तहां आठ अपकर्षनिकरि परभवकी आयुके वन्ध करनहारे जीव स्तोक हैं तिनतें संख्यातगुणे सात अपकर्षनिकरि वन्ध करने वाले हैं तिनतें संख्यात गुणे छह अपकर्षनिकरि वंध करनेवाले हैं ऐसें संख्यात गुणे पांच च्यारि तीन दोय अपकर्षनिकरि वंध करनेवाले जीव जानने। वहुरि आठ अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीव तिसकें आठवां अपकर्षविषें आयु वंधनेका जघन्य काल स्तोक है। तिसतें विशेष अधिक ताका उत्कृष्ट काल है। वहुरि आठ अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें सातवां अपकर्षविषें जघन्य काल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट तिसतें विशेष अधिक है। वहुरि सात अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें सातवां अपकर्षविषें आयुवंधनेका जघन्यकाल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट तिसतें विशेष अधिक है। वहुरि आठ अपकर्षनिकरि आयुवांधता जीवके छठा अपकर्षविषें आयु वंधनेका जघन्य काल तिसतें संख्यात गुणा है। उत्कृष्ट विशेष अधिक है। वहुरि सात अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें छठा अपकर्षविषें आयुका वंधनेका जघन्य काल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट विशेष अधिक है। वहुरि छह अपकर्षनिकरि आयुकों वांधता जीवकें छठा अपकर्षविषें आयु वंधनेका जघन्य काल तिसतें संख्यातगुणा है उत्कृष्ट किछू अधिक है। ऐसें एक अपकर्षकरि आयुकों वांधता जीवकें तीहि अपकर्षके उत्कृष्ट काल पर्यंत वहत्तरि '७२ भेद हो हैं। तहां जघन्यतें उत्कृष्ट तौ विशेष जानना सो तिस विवक्षित जघन्यकों संख्यातका भाग दीएं जो पावै सो विशेषका प्रमाण जानना। ताकों जघन्यमें जोड़ें उत्कृष्टका प्रमाण हो है। वहुरि उत्कृष्टतें आगला जघन्य संख्यात गुणां जानना। ऐसें यद्यपि सामान्यपनें सवनिविषें काल अंतर्मुहूर्त मात्र है तथापि हीनाधिकपना जाननेकों अनुक्रम कह्या है जो अपकर्षनिविषें आयुका वंध होइ तौ इतने कालमात्र समयप्रवद्धनिकरि वंध हो है ॥

आठ अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना																							
०	जघन्य	उत्कृष्ट	सात अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना																				
८	८	८	०	जघन्य	उत्कृष्ट	छह अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना																	
८	७	७	७	७	७	०	जघन्य	उत्कृष्ट	पांच अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना														
८	६	६	७	६	६	६	६	६	०	जघन्य	उत्कृष्ट	च्यारि अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना											
८	५	५	७	५	५	६	५	५	५	५	५	०	जघन्य	उत्कृष्ट	तीन अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना								
८	४	४	७	४	४	६	४	४	५	४	४	४	४	४	०	जघन्य	उत्कृष्ट	दोय अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना					
८	३	३	७	३	३	६	३	३	५	३	३	४	३	३	३	३	३	०	जघन्य	उत्कृष्ट	एक अपकर्षनि करि आयु बंधने की रचना		
८	२	२	७	२	२	६	२	२	५	२	२	४	२	२	३	२	२	२	२	२	०	ज०	उ०
८	१	१	७	१	१	६	१	१	५	१	१	४	१	१	३	१	१	१	१	१	[illegible]	१	१

यह वहत्तरी भेदनिकी रचना है तहां आठ अपकर्षनिकरि आयु बंधनेकी रचना विषैं पहिली पंक्तिके कोठा निविषैं जो आठ आठका अंक है ताका तौ यह अर्थ जानना जो आठ अपकर्षनिकरि आयु बांधनेवालेका इहां ग्रहण है बहुरि दूसरी तीसरी पंक्तिनिविषै आठ सात आदि अंक है तिनिका यह अर्थ जो तिनिं आठ अपकर्षनिकरि बंधकरने वाले जीवके आठवां आदि अपकर्षनिका ग्रहण है तहां दूसरी पंक्तिविषैं जघन्य काल अपेक्षा ग्रहण जानना। तीसरी पंक्तिविषैं उत्कृष्ट काल अपेक्षा ग्रहण जानना। ऐसें ही सात छह पांच च्यारि तीन दोय एक अपकर्षनिकरि आयु बंधनेकी रचनाविषैं अर्थ जानना। आठौं रचनानिकी दूसरी तीसरीपंक्तिनिके सर्वकोठे वहत्तरि हो है इनि वहत्तरि स्थाननिविषै आयुबंधनके कालका अल्प वहुत्व जानना। मध्य भेदनिके ग्रहणनिमित्त जघन्य उत्कृष्टके वीचि बिंदीकी सहनानी जाननी।

ऐसें आयुकौं बंधनेके योग्य लेश्यानिका मध्य आठ अंश तिनकी आठ अपकर्षनिकरि उत्पत्तिका अनुक्रम कह्या ॥ ५१८ ॥

सेसट्ठारसअंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति।
सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ॥ ५१९ ॥

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवन्ति।
शुक्लोत्कृष्टांशमृताः सर्वार्थं यान्ति खलु जीवाः ॥ ५१९ ॥

जी० प्र०—तेभ्यो मध्यांशेभ्यः शेषाः अष्टादशांशाः चतुर्गतिगमनकरणानि भवंति। तेषु मध्ये शुक्ललेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सर्वार्थसिद्धीन्द्रके यांति—उत्पद्यंते खलु नियमेन ॥ ५१९ ॥

स० च०—तिन मध्यम अंशनितैं अवशेष रहैं जे लेश्यानिके अठारह अंश ते च्यारि गतिविषैं गमनकौं कारण हैं मरण इनि अठारह अशनिकरि सहित होइ सो मरणकरि यथायोग्य गतिकौं जीव प्राप्त हो है तहां शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि सहित मरैं ते जीव सर्वार्थसिद्धि नामा इंद्रके विमानकौं प्राप्त हो हैं ॥ ५१९ ॥

अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।
आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ॥ ५२० ॥

अवरांशमृता भवन्ति शताराद्विके मध्यमांशकेन मृताः ।
आनतकल्पादुपरि सर्वार्थादिमे भवन्ति ॥ ५२० ॥

जी० प्र०—शुक्ललेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः शतारसहस्रारकल्पद्विके भवंति—उत्पद्यते । शुक्ललेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः आनतकल्पादुपरि सर्वार्थसिद्धींद्रकस्यादिमविजयादिविमानपर्यंतेषु यथासंभवमुत्पद्यंते ॥ ५२० ॥

स० चं०—शुक्ल लेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव शतार सहस्रार स्वर्ग विषैं उपजैं हैं बहुरि शुक्ल लेश्या का मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव आनत स्वर्गके ऊपरि सर्वार्थसिद्धि इंद्रकका विजयादिक विमान पर्यंत यथासंभव उपजैं हैं ॥ ५२० ॥

पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।
अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिंदं ॥ ५२१ ॥

पद्मोत्कृष्टांशमृता जीवा उपयान्ति खलु सहस्रारम् ।
अवरांशमृता जीवाः सनत्कुमारं च माहेन्द्रम् ॥ ५२१ ॥

जी० प्र०—पद्मलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पमुपयांति खलु स्फुटं । पद्मलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः सनत्कुमारं माहेंद्रं चोपयांति ॥५२१॥

स० चं०—पद्म लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं ते जीव सहस्रार स्वर्गकौं प्राप्त हो हैं बहुरि पद्म लेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गकौं प्राप्त हो हैं ॥ ५२१ ॥

मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा ।

साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ॥

मध्यमांशेन मृताः तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः ।
सानत्कुमारमाहेन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रश्रेण्याम् ॥ ५२२ ॥

जी० प्र०—पद्मलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सहस्रारकल्पादधः सानत्कुमारमाहेंद्रद्वयादुपरि यथासंभवमुत्पद्यंते । तेजोलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सानत्कुमारमाहेंद्रकल्पयोश्चरमपटलचक्रेंद्रकसंबंधिगतश्रेणीबद्धविमानेषूत्पद्यंते ॥ ५२२ ॥

स० चं०—पद्मलेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव सहस्रार स्वर्गके नीचैं अर सनत्कुमार माहेंद्रके ऊपरि यथासंभव उपजैं हैं । बहुरि तेजो लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं ते सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका पटलविषैं चक्र नामा इंद्रकके संबंधी श्रेणीबद्ध विमान तिनिविषैं उपजैं हैं ॥ ५२२ ॥

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।
मज्झिमअंसेण मुदा विमलविमाणादिबलभद्दे ॥ ५२३ ॥

अवरांशमृताः सौधर्मैशानादिमर्तौ श्रेण्याम् ।
मध्यमांशेन मृता विमलविमानादिबलभद्रे ॥ ५२३ ॥

जी० प्र०—तेजोलेश्याजघन्यांशेन मृताः जीवाः सौधर्मैशानकल्पयोरादिभूतर्त्विंद्रके श्रेणीबद्धे चोत्पद्यंते । तेजोलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सौधर्मैशानकल्पद्वितीयपटलस्येंद्रकं विमलनामकमादिं कृत्वा सानत्कुमारमाहेंद्रद्विचरमपटलस्येंद्रकं बलभद्रनामकं तत्पर्यंतं उत्पद्यंते ॥ ५२३ ॥

स० चं०—तेजोलेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव सौधर्म ईशानका पहिला रितु(ऋजु)नामा इंद्रक वा श्रेणीबद्ध विमान तिनिविषैं उपजैं हैं । बहुरि तेजोलेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव सौधर्म ईशानका दूसरा पटलका विमल नामा इंद्रकतैं लगाइ सनत्कुमार महेंद्रका द्विचरम पटलका बलभद्र नामा इंद्रक पर्यंत विमानविषैं उपजैं हैं ॥ ५२३ ॥

तिस विषैं उपजैं हैं। बहुरि कापोत लेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव पहिला पृथ्वीका सीमंत इंद्रकतैं नीचैं बारह पटलनिविषैं बहुरि मेघा तीसरी पृथ्वीका द्विचरम संज्वलित इंद्रकतैं ऊपरि सात पटलनिविषैं बहुरि दूसरी पृथ्वीका ग्यारह पटल तिनविषैं यथायोग्य उपजैं हैं ॥ ५२६ ॥

किण्हचउक्काणं पुण मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये ।
पुढवीआउवणप्फदिजीवेसु हवंति खलु जीवा ॥

कृष्णचतुष्काणां पुनः मध्यांशमृता हि भवनकादित्रये ।
पृथिव्यब्वनस्पतिजीवेषु भवन्ति खलु जीवाः ॥ ५२७ ॥

जी० प्र०—अत्र पुनःशब्दो विशेषप्ररूपकोऽस्ति। तेन कृष्णादित्रिलेश्यामध्यमांशमृताः कर्मभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टयः तेजोलेश्यामध्यमांशमृताः भोगभूमितिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टयश्च भवनत्रये खलु उत्पद्यंते इति ज्ञातव्यं। तु पुनः, कृष्णादिचतुर्लेश्यामध्यमांशमृततिर्यग्मनुष्यभवनत्रयसौधर्मैशानमिथ्यादृष्टयः बादरपर्याप्तपृथ्व्यप्कायिकेषु पर्याप्तवनस्पतिकायिकेषु चोत्पद्यंते। भवनत्रयाद्यपेक्षया अत्रापि तेजोलेश्यासंभवो बोद्धव्यः ॥ ५२७ ॥

स० चं०—पुनः कहिए यहु विशेष है—कृष्ण नील कपोत तीन लेश्या तिनके मध्यम अंशकरि मरैं ऐसे कर्मभूमियां मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य अर तेजो लेश्याका मध्य अंशकरि मरैं ऐसे भोगभूमिया मिथ्यादृष्टी तिर्यंच वा मनुष्य ते भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी देवनिविषैं उपजे हैं। बहुरि कृष्ण नील कपोत पीत इन च्यारि लेश्यानिके मध्य अंशनिकरि मरे ऐसे तिर्यंच वा भवनवासी व्यंतर ज्योतिषी वा सौधर्म ईशान स्वर्गके वासी देव मिथ्यादृष्टी ते बादर पर्याप्तक पृथ्वीकायिक अप्कायिक वनस्पती कायिकविषैं उपजे हैं। भवनत्रयादिककी अपेक्षा इहां पीत लेश्या जाननी, तिर्यंच मनुष्य अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्या जाननी ॥ ५२७ ॥

किण्हतियाणं मज्झिमअंसमुदा तेउवाउवियलेसु ।

कृष्णलेश्याजघन्यांशेनापि मृताः केचिज्जीवाः उत्पद्यंते। इति विशेषो ज्ञातव्यः। नीललेश्य जघन्यांशेन मृता जीवाः वालुकाप्रभान्तपटलेषु चरमपटलस्य संप्रज्वलितेंद्रके जायंते। नीललेश्यामध्यांशेन मृताः जीवाः तृतीयपृथ्वीनवमपटलस्य संप्रज्वलितेंद्रकादधश्चतुर्थपृथ्वीपटलसप्तके पंचमपृथ्वीचतुर्थपटलस्यांध्रेंद्रकादुपरि यथायोग्यं जायंते ॥ ५२५ ॥

स० चं०—नील लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरें ते जीव पंचम पृथ्वीका द्विचरम पटलका अंध्र नामा इंद्रकविषें उपजे हैं। केई पांचवां पटलविषें भी उपजे हैं। अरिष्ट पृथ्वीका अतका पटलविषें कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरे हुए भी केई जीव उपजें हैं इतना विशेष जानना। वहुरि नीललेश्याका जघन्य अंशकरि मरें ते जीव वालुका पृथ्वीका अतका पटलविषें संप्रज्वलित नामा इंद्रकविषें उपजें हैं। वहुरि नील लेश्याका मध्यम अंशकरि मरें ते जीव वालुका पृथ्वीके संप्रज्वलित इंद्रकतें नीचें अर चौथी पृथ्वीका सातो पटल अर पंचमी पृथ्वीका अंध्र इंद्रकके ऊपरि यथायोग्य उपजें हैं॥ ५२५ ॥

वरकाओदंसमुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स।
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते॥ ५२६ ॥

वरकापोतांशमृताः संज्वलितं यान्ति तृतीयनिरयस्य।
सीमन्तमवरमृता मध्ये मध्येन जायन्ते ॥ ५२६ ॥

जी० प्र०—कापोतलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः तृतीयपृथ्वीनवपटलेषु द्विचरमाष्टमपटलस्य संज्वलितेंद्रके उत्पद्यते। केचित् चरमसंप्रज्वलितेंद्रकेपीति विशेषोऽवगंतव्यः। कापोतलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः धर्माप्रथमपटलस्य सीमंतेंद्रके उत्पद्यंते। कापोतलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः सीमंतेंद्रकादधस्तनद्वादशपटलेषु मेघाया द्विचरमसंज्वलितेंद्रकादुपरितनसप्तमपटलेषु द्वितीयपृथ्व्येकादशपटलेषु च यथायोग्यमुत्पद्यंते ॥ ५२६ ॥

स० चं०—कपोत लेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरें ते जीव तीसरी पृथ्वीका आठवां द्विचरम पटल ताके संज्वालित नामा इंद्रकविषें उपजें हैं। केई अंतका पटलसंवंधी संप्रज्वलित नामा इंद्रकविषें भी उपजे हैं इतना विशेष जानना। वहुरि कापोत लेश्याका जघन्य अंशकरि मरें ते जीव पहिली पृथ्वीका पहिला धर्मा सीमंतक नामा इंद्रक

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से मज्झे मज्झेण जायन्ते ॥ ५२४ ॥

कृष्णवरांशेन मृता अवधिस्थाने अवरांशमृताः ।
पञ्चमचरमतिमिस्रे मध्ये मध्येन जायन्ते ॥ ५२४ ॥

जी० प्र०—कृष्णलेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः सप्तमपृथिव्यामेकमेव पटलं तस्यावधिस्थानेंद्रके जायंते । कृष्णलेश्याजघन्यांशेन मृता जीवाः पंचमपृथ्वीचरमपटलस्य तिमिस्रेंद्रके जायंते । कृष्णलेश्यामध्यमांशेन मृता जीवाः तदवधिस्थानेंद्रकस्य चतुःश्रेणीबद्धेषु षष्ठपृथ्वीपटलत्रये पंचमपृथ्वीचरमपटले च तत्तद्योग्यतया जायंते ॥ ५२४ ॥

स० चं०—कृष्णलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं ते जीव सातवी नरक पृथ्वीका एकही पटल है ताका अवधि स्थानक नामा इंद्रक विलविषैं उपजै हैं। बहुरि कृष्णलेश्याका जघन्य अंशकरि मरैं ते जीव पंचम पृथ्वीका अंत पटलका तिमिस्र नामा इंद्रकविषैं उपजै हैं। बहुरि कृष्ण लेश्याका मध्यम अंशकरि मरैं ते जीव अवधिस्थान इंद्रकका च्यारि श्रेणीबद्ध विल तिनिविषैं वा छठा पृथ्वीका तीनौं पटलनिविषैं वा पांचवी पृथ्वीका चरम पटलविषैं यथायोग्य उपजै हैं ॥ ५२४ ॥

नीलुक्कस्संसमुदा पंचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते ॥ ५२५ ॥

नीलोत्कृष्टांशमृताः पञ्चमान्धेन्द्रके अवरमृताः ।
वालुकासंप्रज्वालिते मध्ये मध्येन जायन्ते ॥ ५२५ ॥

जी० प्र०—नीललेश्योत्कृष्टांशेन मृता जीवाः पंचमपृथ्वीद्विचरमपटलस्यांध्रेंद्रके जायंते । केचित् पंचमपटलेऽपि जायंते । तयोऽरिष्टाचरमपटले

सुरणिरया सगलेस्सहिं णरतिरियं जांति सगजोग्गं ॥ ५२८ ॥

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृता तेजोवायुविकलेषु ।
सुरनिरयाःस्वकलेश्याभिः नरतिर्यञ्चं यान्ति स्वकयोग्यम् ॥ ५२८ ॥

जी० प्र०—कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयस्य मध्यमांशमृततिर्यग्मनुष्याः तेजोवायुविकलत्रयासंज्ञिसाधारणवनस्पतिजीवेषु उत्पद्यंते । भवनत्रयादि सर्वार्थसिद्धयंतसुराः धर्माद्यवधिस्थानांतनारकाश्च स्वस्वलेश्यानुगं नरतिर्यक्त्वं यांति ॥ ५२८ ॥ इति गत्यधिकारः ॥ अथ स्वाम्यधिकारं गाथासप्तकेनाह—

स० चं०—कृष्ण नील कपोतके मध्य अंशकरि मरैं ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य ते तेजःकायिक वा वातकायिक विकलत्रय असैनी पंचेंद्री साधारण वनस्पती इनिविषैं उपजै हैं। बहुरि भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धि पर्यंत देव अर धम्मादि सात पृथ्वीसंबंधी नारकी ते अपनी अपनी लेश्याके अनुसारि यथायोग्य मनुष्यगति वा तिर्यंचगतिकौं प्राप्त हो हैं। इहां इतना जानना। जिस गतिसंबंधी पूर्वैं आयु बध्या होइ तिस ही गतिविषैं जो मरण होतैं लेश्या होइ ताके अनुसारि उपजै है जैसैं मनुष्यके पूर्वैं देवायुका बंध भया बहुरि मरण होते कृष्णादि अशुभ लेश्या होइ तौ भवनत्रिकविषैं ही उपजै है ऐसैं ही अन्यत्र जानना ॥ ५२८ ॥ इति गत्यधिकारः । ७ । आगैं स्वामी अधिकार सात गाथानिकरि कहैं हैं—

काऊ काऊ काउ, णीला णीला य णीलकिण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादिपुढवीणं ॥ ५२९ ॥

कपोता कपोता कपोता नीला नीला च नीलकृष्णे च ।
कृष्णा च परमकृष्णा लेश्या प्रथमादिपृथिवीनाम् ॥ ५२९ ॥

जी० प्र०—प्रथमादिपृथ्वीनारकाणां लेश्योच्यते—तत्र घर्मायां कपोतजघन्यांशः। वंशायां कपोतमध्यमांशः। मेघायां कापोतोत्कृष्टांशनीलजघन्यांशौ। अंजनायां नीलमध्यमांशः। अरिष्टायां नीलोत्कृष्टांशकृष्णजघन्यांशौ। मघव्यां कृष्णमध्यमांशः। माघव्यां कृष्णोत्कृष्टांशः॥ ५२९॥

स० चं०—इहां भावलेश्या अपेक्षा कथन है तहां नारकी जीवनिके कहिए है-तहां घम्मा नामा पहिली पृथ्वीविषैं कपोत लेश्याका जघन्य अंश है। वंशा दूसरी पृथ्वीविषैं कपोतका मध्यम अंश है। मेघा तीसरी पृथ्वीविषैं कपोतका उत्कृष्ट अंश अर नीलका जघन्य अंश है। अंजना चौथी पृथ्वीविषैं नीलका मध्यम अंश है। अरिष्टा पांचवी पृथ्वीविषैं नीलका उत्कृष्ट अंश है अर कृष्णका जघन्य अंश है। मघवी पृथ्वीविषैं कृष्णका मध्यम अंश है। माघवी सातवीं पृथ्वीविषैं कृष्णका उत्कृष्ट अंश है॥ ५२९॥

णरतिरियाणं ओघो इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स।
सण्णिअपुण्णगमिच्छे सासणसम्मेवि असुहतियं॥

नरतिरश्चामोघ एकविकले तिस्रः चतस्रः असंज्ञिनः।
संज्ञ्यपूर्णकमिथ्यात्वे सासादनसम्यक्त्वेपि अशुभत्रिकम्॥ ५३०॥

जी० प्र०—नरतिरश्चां प्रत्येकं ओघः सामान्योत्कृष्टषड्लेश्याः स्युः। तत्र एकेंद्रियविकलत्रयजीवेषु तिस्रः कृष्णाद्यशुभलेश्या एव। असंज्ञिपर्याप्तस्य तत्त्रयं तेजोलेश्या च, कुतः? तस्य कपोतमृतस्य घर्मायां तेजोमृतस्य भवनव्यंतरयोरशुभत्रयमृतस्य संज्ञिनरतिर्यग्गत्योश्च उत्पादात्। संज्ञिलब्ध्यपर्याप्तकतिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टौ अपिशब्दादसंज्ञिलब्ध्यपर्याप्तके तिर्यग्मनुष्यभवनत्रयनिर्वृत्त्यपर्याप्तकसासादने च कृष्णाद्यशुभत्रयमेव। तिर्यग्मनुष्योपशमसम्यग्दृष्टीनां सम्यक्त्वकालाभ्यंतरे सुष्ठु संक्लेशेपि देशसंयतवत् तत्त्रयं नास्ति तथापि तद्विराधकसासादनापर्याप्तानामस्तीति ज्ञातव्यं॥ ५३०॥

स० चं०—मनुष्य अर तिर्यंचनिके 'ओघ' कहिए सामान्यपनै कहीं ते सर्व छहौ लेश्या पाइए है। तहां एकेंद्री अर विकलत्रय इनकै कृष्णादिक तीन अशुभलेश्या पाइए है। बहुरि असैनी पचेंद्री पर्याप्तककै कृष्णादि च्यारि लेश्या पाइए है जातैं असैनी पंचेंद्री कपोतलेश्या सहित मरैं तौ पहिले नरक उपजैं। तेजोलेश्या सहित मरैं तौ भवनवासी अर व्यंतर देवनिविषैं उपजै। कृष्णादि तीन अशुभलेश्या सहित मरै तौ यथायोग्य मनुष्य तिर्यंचविषैं

उपजें तातैं ताके च्यारि लेश्या हैं। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य मिथ्यादृष्टी बहुरि अपिशब्दतैं असैनी लब्धि पर्याप्तक तिर्यंच मनुष्य मिथ्यादृष्टी बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृति अपर्याप्तक तिर्यंच वा मनुष्य वा भवनत्रिक देव इनिविषैं कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही हैं। तिर्यंच अर मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टी होइ ताके अति संक्लेश परिणाम होंइ तौ भी देशसंयमीवत् कृष्णादिक तीन लेश्या न होंइ । तथापि जो उपशम सम्यक्त्वी विराधनाकरि सासादन होइ ताकैं अपर्याप्त अवस्थाविषैं तीन अशुभ लेश्या ही पाइए हैं ॥ ५३० ॥

भोगापुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णियं हवे णियमा ।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ॥

भोगाऽपूर्णकसम्यक्त्वे कापोतस्य जघन्यकं भवेन्नियमात्।
मिथ्यात्वे वा सम्यक्त्वे वा पर्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः ॥ ५३१ ॥

जी० प्र०—भोगभूमौ निर्वृत्यपर्याप्तकसम्यग्दृष्टौ कपोतलेश्याजघन्यांशो भवति। कुतः ? कर्मभूमिनरतिरश्चां प्राग्बद्धायुषां क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा स्वीकृते तदन्यजघन्येन तत्रोत्पत्तिसंभवात्—तद्योग्यसंक्लेशपरिणामपरिणता इत्यर्थः। तस्यां पर्याप्तिरुपरि सम्यग्दृष्टौ मिथ्यादृष्टौ वा शुभलेश्यात्रयमेव ॥ ५३१ ॥

स० चं०—भोगभूमिविषैं निर्वृति अपर्याप्तक सम्यग्दृष्टी जीवविषैं कपोत लेश्याका जघन्य अंश पाइए है। जातैं कर्मभूमिया मनुष्य वा तिर्यंच पहिलैं मनुष्य वा तिर्यंच आयुका बंध कीया पीछैं क्षायिक वा वेदक सम्यक्त्वकौं अंगीकारकरि मरैं तिस सहित ही तहां भोगभूमिविषैं उपजै तहां तिस योग्य संक्लेश परिणाम कपोतका जघन्य अंश तिसरूप परिणाम है। बहुरि भोगभूमिविषैं पर्याप्त अवस्थाविषैं सम्यग्दृष्टी वा मिथ्यादृष्टी जीवके पीतादिक तीन शुभलेश्या ही पाइए है ॥ ५३१ ॥

अयदोत्तिछलेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।

तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ॥ ५३२ ॥

असंयत इति षड् लेश्याः शुभत्रयलेश्या हि देशविरतत्रये ।
ततः शुक्ला लेश्या अयोगिस्थानमलेश्यं तु ॥ ५३२ ॥

जी० प्र०——असंयतांतचतुर्गुणस्थानेषु षड्लेश्याः खलु । देशविरतादित्रये शुभलेश्यात्रयमेव । ततः उपरि सयोगपर्यंतं षड्गुणस्थानेषु एका शुक्ललेश्यैव । अयोगिगुणस्थानं अलेश्यं लेश्यारहितं तत्र योगकषाययोरभावात् ॥ ५३२ ॥

स० चं०——असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं छहौ लेश्या हैं। देशविरत आदि तीन गुणस्थाननिविषैं पीतादिक तीन शुभलेश्या ही हैं। तातैं ऊपरि अपूर्वकरणतैं लगाइ सयोगी पर्यंत छह गुणस्थाननिविषैं एक शुक्ल लेश्या ही है। अयोगी गुणस्थान लेश्यारहित है-जातैं तहां योग कषायका अभाव है ॥ ५३२ ॥

णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खोत्ति तहिं हवे लेस्सा ॥ ५३३ ॥

नष्टकषाये लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात्।
अथवा योगप्रवृत्तिः मुख्येति तत्र भवेल्लेश्या ॥ ५३३ ॥

जी० प्र०——उपशांतकषायादिनष्टकषायगुणस्थानत्रये कषायोदयाभावेऽपि या लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायादेव । अथवा योगप्रवृत्तिर्लेश्येति योगप्रवृत्तिप्राधान्येन तत्र लेश्या भवति ॥ ५३३ ॥

स० चं०——उपशांत कषायादिक जहां कषाय नष्ट होइ गए ऐसै तीन गुणस्थाननिविषैं कषायका अभाव होतैं भी लेश्या कहिए है सो भूतपूर्वगाति न्यायतैं कहिए है। पूर्वै योगनिकी प्रवृत्ति कषायसहित होती थी तहां लेश्याका सद्भाव था इहां योग पाइए है तातैं उपचारकरि इहां भी लेश्याका सद्भाव कह्या। अथवा योगनिकी प्रवृत्ति सोई लेश्या ऐसा भी कथन है सो योग इहां है ही, ताकी प्रधानताकरि तहां लेश्या है॥ ५३३ ॥

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं॥ ५३४ ॥
तेऊ तेऊ तेउ, पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा॥५३५ ॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।
एतस्माच्च चतुर्दशानां लेश्या भवनादिदेवानाम् ॥ ५३४ ॥
तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मा शुक्ला च ।
शुक्ला च परमशुक्ला भवनात्रिकाः अपूर्णके अशुभाः ॥ ५३५ ॥

जी० प्र०—भवनत्रयादिदेवानां लेश्योच्यते तत्र पर्याप्तापेक्षया भवनत्रयस्य तेजोजघन्यांशः । सौधर्मैशानयोः तेजोमध्यमांशः । सानत्कुमारमाहेंद्रयोः तेजउत्कृष्टांशपद्मजघन्यांशौ । ब्रह्मब्रह्मोत्तरादिषट्कस्य पद्ममध्यमांशः । शतारसहस्रारयोः पद्मोत्कृष्टांशशुक्लजघन्यांशौ । आनतादिचतुर्णां नवग्रैवेयकाणां च शुक्लमध्यमांशः । अत उपरि अनुदिशानुत्तरचतुर्दशविमानानां शुक्लोत्कृष्टांशो भवति । भवनत्रयदेवाः अपर्याप्तकाले अशुभत्रिलेश्या एव, अनेन वैमानिकाः अपर्याप्तिकाले स्वस्वलेश्या एवेति सूचितं ज्ञातव्यं ॥५३४–५३५॥ इति स्वाम्यधिकारोऽष्टमः ॥ अथ साधनाधिकारमाह—

स० चं०—देवनिके लेश्या कहिए है तहां पर्याप्त भवनवासी व्यंतर ज्योतषी इनि भवनत्रिककैं तेजोलेश्याका जघन्य अंश है। सौधर्म ईशान दोय स्वर्गवालोकैं तेजोलेश्याका मध्यम अंश है। सनत्कुमार माहेंद्र दोय स्वर्गवालोकैं तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंश अर पद्मलेश्याका जघन्य अंश है। ब्रह्म आदि छह स्वर्गवालोंकैं पद्मलेश्याका मध्यम अंश है। शतार सहस्रार दोय स्वर्गवालोंकैं पद्मलेश्याका उत्कृष्ट अंश अर शुक्ललेश्याका जघन्य अंश है। आनत आदि च्यारि स्वर्ग अर नव ग्रैवेयक इनि तेरह वालौंकैं शुक्ललेश्याका मध्यम अंश है। ताके ऊपरि नव

अनुदिश अर पंच अनुत्तर इनि चौदह विमान वालोंकैं शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंश है। बहुरि भवनत्रिक देवनिकैं अपर्याप्त अवस्थाविषैं कृष्णादि तीन अशुभलेश्या ही पाइए है याहीतैं यहु जानिए है जो वैमानिक देवनिकैं पर्याप्त वा अपर्याप्त अवस्थाविषैं लेश्या समान ही है ऐसैं जिस जीवकैं जो लेश्या पाइए सो जीव तिस लेश्याका स्वामी जानना ॥ ५३४–५३५ ॥ इति स्वाम्यधिकारः। आगैं साधन अधिकार कहैं हैं—

वण्णोदयसंपादिदसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो ॥५३६॥

वर्णोदयसंपादितशरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या।
मोहोदयक्षयोपशमोपशमक्षयजजीवस्पन्दो भावः ॥ ५३६ ॥

जी० प्र०—वर्णनामकर्मोदयेन सपादितः-सजनितः शरीरवर्णो द्रव्यलेश्या भवति। असंयतांतगुणस्थानचतुष्के मोहस्य उदयेन, देशविरतत्रये क्षयोपशमेन, उपशमके उपशमेन क्षपके क्षयेण च संजनितसंस्कारो जीवस्पंदनसंज्ञः स भावलेश्या जीवपरिणामप्रदेशस्पंदनेन कृतेत्यर्थः। तेन कारणेन योगकषायाभ्यां भावलेश्येत्युक्तं ॥ ५३६ ॥ इति साधन धिकारो नवमः ॥ अथ संख्याधिकारं गाथाषट्केनाह—

स० चं०—वर्ण नामा नामकर्मके उदयतैं उत्पन्न भया जो शरीरका वर्ण सो द्रव्यलेश्या है तातैं द्रव्यलेश्याका साधन वर्ण नामा नामकर्मका उदय है बहुरि असंयतपर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं मोहनीय कर्मका उदयतैं, देश विरतादिक तीन गुणस्थाननिविषैं मोहनिय कर्मका क्षयोपशमतैं, उपशम श्रेणीविषैं मोहनीयकर्मका उदयतैं, क्षपक श्रेणीविषैं मोहनीय कर्मका क्षयतैं उत्पन्न भया जो जीवका स्पंद सो भाव लेश्या है। स्पंद काहिए जीवके परिणामनिका चंचल होना वा जीवके प्रदेशनिका चंचल होना सो भावलेश्या है। तहां परिणामका चंचल होना कषाय है। प्रदेशनिका चंचल होना योग है। तीहिं कारणकरि योग कषायनिकरि भावलेश्या कहिए है। तातैं भावलेश्याका साधन मोहनीय कमका उदय वा क्षयोपशम वा उपशम वा क्षय जानना ॥५३६॥ इति साधनाधिकारः ॥ ९ ॥ आगैं सख्याधिकार छह गाथानिकरि कहैं हैं—

किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।
हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ॥ ५३७ ॥

कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते ।
हीनक्रमाः कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ॥ ५३७ ॥

जी० प्र०—कृष्णाद्यशुभलेश्यात्रयजीवसामान्यराशिं शुभलेश्यात्रयजीवराशिहीनसंसारिराशिमात्रं १३– आवल्यसंख्यातेन भक्त्वा १३–बहु-
९
भागः १३– ८ त्रिभिर्भक्तः त्रिस्थाने देयः १३– ८, १३– ८, १३– ८, शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः कृष्णलेश्यायां देयः ।
९   ९ । ३, ९ । ३, ९ । ३,
शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्यायां देयः । शेषैकभागे कपोतलेश्यायां दत्ते त्रयो राशयोऽमी—
१३–८, १३– ८, १३– ८, समच्छेदेन मिलिताः— कृ १३– ८६४, नी १३– । ६७२, क १३– । ६५१, किंचिदूनक्रमा
९ । ३, ९ । ३, ९ । ३,   ९ । ९ । ९ । ३, ९ । ९ । ९ । ३, ९ । ९ । ९ । ३,
१३–८, १३–८ । १३–१
९ । ९ । ९ । ९ । ९ । ९९९
भवंति— कृ १३– । नी १३– । क १३– इति कृष्णादित्रिलेश्याजीवानां द्रव्यतः प्रमाणमुक्तं । पुनः—वा अथवा कालमाश्रित्य द्रव्याणि भक्त-
। ॥
३– ३– ३–
व्यानि । तद्यथा—कृष्णनीलकपोतलेश्याः संस्थाप्य तासां कालो मिलित्वापि अंतर्मुहूर्तः २ १ आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः त्रिभिर्भक्त्वा प्रत्येकं देयः । शेषैकभागे पुनरावल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागः कृष्णलेश्यायां देयः । शेषैकभागे पुनः आवल्यसंख्यातेन भक्ते बहुभागो नीललेश्यायां देयः। शेषैकभागे कपोतलेश्यायां दत्ते त्रयो राशय एवं— कृ २ १ । ८६४, नी २ १ । ६७२, क २ १ । ६५१, येषां योगः २ १ । २१८७
९ । ९ । ९ । ३, ९ । ९ । ९ । ३, ९ । ९ । ९ । ३, ९ । ९ । ९ । ३
अपवर्तितः २ १ । अधुना त्रैराशिकं प्र २ १ । फ १३–इ २ १ । ८६४ लब्धं कृष्णलेश्याजीवप्रमाणं १३—८६४ अपवर्तिते किंचिदूनत्रिभागो
९ । ९ । ९ । ३   ९ । ९ । ९ । ३

भवति । एवं नीलकपोतयोरपि ज्ञातव्यं । कृ १३– । नी १३– । क १३– । इति कालसंचयमाश्रित्य द्रव्यतः प्रमाणमुक्तं ॥ ५३७ ॥

| ||

३– ३– ३–

स०चं०—कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण है सो तीन शुभलेश्यावालोंका प्रमाणकौं संसारी जीवनिका प्रमाणमैंस्यों घटाए जितना रहे तितना जानना सो किंचिदून संसारी राशिमात्र भया । ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष बहुभाग रहे तिनके तीन भाग करिए सो एक एक भाग एक एक लेश्यावालोंका समान रूप जानना । बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भाग जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहैं सो पूर्वैं समान भागनिविषैं जो कृष्ण लेश्यावालोंका वट था तिसविषै जोडि दीए जो प्रमाण होइ तितने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । बहुरि जो ह एक भाग रह्या था ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग देइ तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहै ते पूर्वैं समान भागविषैं नील लेश्यावालोंका वट था तिसविषैं जोडि दीए जो प्रमाण होइ तितने नील लेश्यावाले जीव जानने । बहुरि जो वह एक भाग रह्या था सो पूर्वैं समान भागविषैं कपोत लेश्यावालोंका वट था तिसविषै जोडैं जो प्रमाण होइ तितने कपोत लेश्यावाले जीव जानने । ऐसैं कृष्णलेश्यादिक तीन लेश्यावालोंका द्रव्यकरि प्रमाण कह्या सो क्रमतैं किछू किछू घटता जानना । अथवा काल अपेक्षा द्रव्यका परिमाण कीजिए है कृष्ण नील कपोत तीनों लेश्यानिका काल मिलाए जो कोई अंतर्मुहूर्त मात्र होइ ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अवशेष बहुभाग रहै तिनिका तीन भाग कीजिए तहां एक एक समान भाग एक एक लेश्याकौं दीजिए । बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भागकौं जुदा राखि बहुभाग रहे सो पूर्वोक्त कृष्ण लेश्याका समान भाग विषैं मिलाइए बहुरि अवशेष जो एक भाग रह्या ताकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागकौं जुदा राखि अव-

शेष बहुभाग पूर्वोक्त नीललेश्याका समान भागविषैं मिलाइए । बहुरि जो एक भाग रह्या सो पूर्वोक्त कपोत लेश्याका समान भागविषै मिलाइए ऐसैं मिलाए जो जो प्रमाण भया सो सो कृष्णादि लेश्यानिका काल जानना । अब इहां त्रैराशिक करना । तहां तीनू लेश्यानिका काल जोडें जो प्रमाण भया सो तौ प्रमाणराशि बहुरि अशुभ लेश्यावाले जीवनिका जो किंचित् ऊन संसारी जीव मात्र प्रमाण सो फलराशि बहुरि कृष्णलेश्याका जो प्रमाण सोई इच्छाराशि तहां फलकरि इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भागदीए लब्ध राशि किंचित् ऊन तीनका भाग अशुभ लेश्यावाले जीवनिका प्रमाणकौं दीए जो प्रमाण भया तितने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । ऐसैं ही प्रमाणराशि फलराशि पूर्वोक्त इच्छाराशि अपना २ कालकरि नील वा कपोत लेश्याविषै भी जीवनिका प्रमाण जानना । ऐसैं काल अपेक्षा द्रव्यकरि अशुभलेश्यावाले जीवनिका प्रमाण कह्या है ॥ ५३७ ॥

खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।
कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ॥ ५३८ ॥

क्षेत्रतः अशुभत्रिका अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः ।
कालादतीतादनंतगुणिताः क्रमाद्धीनाः ॥ ५३८ ॥

जी० प्र०—क्षेत्रप्रमाणेन अशुभत्रिलेश्याजीवाः अनंतलोका अपि क्रमेण परिहीनाः किंचिदूनक्रमा भवंति। कृ ≡ ख। नी ≡ ख-। क ≡ ख= अत्र त्रैराशिकं म ≡ फ श १ । इ १३– लब्धशलाकाः ख पुनः म । श १ । फ ≡ । इ श ख लब्धं ≡ ख । कालप्रमाणेनाशुभत्रिले-
३–
श्या जीवा अतीतकालादनंतगुणिता अपि क्रमहीना भवंति । का कृ अ ख । नी अ ख– । क अ ख = अत्रापि त्रैराशिकं—
म अ फ श । १ । इ १३– लब्धशलाकाः । ख । पुनः म श १ । फ अ । इ श ख लब्धं अ ख ॥ ५३८ ॥
३–

स० चं०—क्षेत्र प्रमाणकरि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव अनंतलोकमात्र जानने लोकाकाशके प्रदेशनितें अनंत गुणे है तहां क्रमतें हीनक्रम जानने। कृष्णलेश्यावालोंतें किछू घाटि नीललेश्यावालोंका प्रमाण है। नील लेश्यावालौतें किछू घाटि कपोत लेश्यावालोंका प्रमाण है। बहुरि इहां प्रमाणराशि लोक फलराशि एक शलाका इच्छाराशि अपने अपने जीवनिका प्रमाण कीए लब्धिराशिमात्र अनत शलाका भईं। बहुरि प्रमाण एक शलाका फल एक लोक इच्छा अनंत शलाका कीएं लब्धराशि अनंत लोकमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण हो है। वहुरि कालप्रमाणकरि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव अतीत कालके समयनिका प्रमाणतें अनंतगुणे हैं इहां भी पूर्वोक्त हीन क्रम जानना। बहुरि इहां प्रमाणराशि अतीत काल फलराशि एक शालाका इच्छाराशि अपने अपने जीवनिका प्रमाण कीए लब्धराशिमात्र अनत शलाका भईं बहुरि प्रमाण एक शलाका फल एक अतीत काल इच्छा अनंत शलाका कीएं लब्ध राशि अनंत अतीत कालमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण हो है॥ ५३८॥

केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा।
तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा॥५३९॥

केवलज्ञानानंतिमभागा भावात्तु कृष्णत्रिकजीवाः।
तेजस्त्रिका असंख्येयाः संख्यासंख्येयभागक्रमाः॥ ५३९॥

जी० प्र०—भावप्रमाणेन कृष्णादिलेश्या जीवाः प्रत्येकं केवलज्ञानानंतैकभागमात्राः अपि किंचिदूनक्रमा भवंति। भा कृ के। नी के-। क के =
ख ख ख

अत्रापि त्रैराशिकं प्र १३– । फ श १। इ के। लब्धं के अपवर्तिते ख। पुनः प्र श ख। फ के। इ श १। लब्धं के। तेजोलेश्यादित्रयजीवाः द्रव्य-
३–   १३–   ख
                    ३–

प्रमाणेन असंख्याता अपि संख्यातासंख्यातभागक्रमा भवंति। ते ≡ a ७। प ≡ a। शु a॥ ५३९॥

स० चं०—बहुरि भावमानकरि अशुभ तीन लेश्यावाले जीव केवल ज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाणके अनंतवे भाग प्रमाण हैं इहां भी पूर्ववत् ही क्रम जानना। बहुरि इहां प्रमाण राशी अपने अपने लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण, फल एक शलाका इच्छा केवलज्ञान कीए लब्ध राशिमात्र अनन्त प्रमाण भया इसकौं प्रमाणराशि करि फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान कीए केवलज्ञानके अनन्तवें भाग मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण हो है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यावालोंका प्रमाण असंख्यात है तथापि तेजोलेश्यावालोंके सख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालोंके असंख्यातवें भाग शुक्ल लेश्यावाले हैं ऐसें द्रव्य करि शुक्ललेश्यावालोंका प्रमाण कह्या॥ ५३९॥

जोइसियादो अहिया तिरक्खसण्णिस्स संखभागोदु।
सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं॥५४०॥

ज्योतिष्कतोऽधिकाः तिर्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु।
सूचेरंगुलस्य च असख्यभागं तु तेजस्त्रिकं॥ ५४०॥

जी० प्र०—तेजोलेश्याजीवाः ज्योतिष्कजीवराशितः साधिका भवंति। === ‍१।‍ ‍४।६५=१ कथं ? पण्णट्ठिप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरमात्रज्योतिष्क— = ४।६५ = घनांगुलप्रथममूलगुणितजगच्छ्रेणिभावन—१ त्रिशतयोजनकृतिभक्तजगत्प्रतरमात्रव्यंतर = ४।६५=८१।१० ० घनांगुलतृतीयमूलगुणित जगच्छ्रेणिमात्रसौधर्मद्वयज — २ पंचसंख्यातगुणपण्णट्ठीप्रतरांगुलभक्तजगत्प्रतरमात्रतादृक्संज्ञितिर्यक् = ४।६५=१११११ तादृशसंख्यातमनुष्याणां मिलितत्वात्। पद्मलेश्याजीवाः तेजोलेश्येभ्यः संख्यातगुणहीनत्वेऽपि संज्ञितिर्यक्तेजोलेश्येभ्योऽपि संख्यातगुणहीना भवंति। पद्मलेश्यातिर्यग्राशौक-

ल्पजमनुष्यैः साधिकमात्रत्वात् संदृष्टिः— == ॥
४ । ६५ = ११११११
गमात्रा भवंति । २ सू इति तेजस्त्रयजीवाः क्षेत्रप्रमाणेनोक्ताः ॥ ५४० ॥ शुक्ललेश्या जीवाः सूच्यंगुलासंख्यातैकभा-
a १

स० चं०——तेजो लेश्यावाले जीव ज्योतिष्क राशितैं किछू अधिक हैं कैसैं ? सो कहिए है—पैसठि हजार पांचसै छत्तीस प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने तौ ज्योतिषी देव बहुरि घनांगुलका प्रथमवर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने भवनवासी बहुरि तीनसै योजनके वर्गका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने व्यंतर बहुरि घनांगुलका तृतीयवर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितने सौधर्म ईशान स्वर्गके वासी देव बहुरि पांचवार संख्यातकरि गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने तेजो लेश्यावाले तिर्यंच बहुरि संख्यात तेजोलेश्यावाले मनुष्य इनि सवनिका जोड दीए जो प्रमाण होइ तितने जीव तेजोलेश्यावाले जानने । बहुरि पद्मलेश्यावाले जीव तेजोलेश्यावाले जीवनितैं संख्यातगुणे घाटि हैं तथापि तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंचानितैं भी संख्यात गुणे घाटि हैं जातैं पद्मलेश्यावाले पंचेंद्री सैनी तिर्यंचनिका प्रमाणविषैं पद्मलेश्यावाले कल्पवासी देव अर मनुष्य तिनिका प्रमाण मिलाए जो जगत्प्रतरका असंख्यातवें भागमात्र प्रमाण भया तितने पद्मलेश्यावाले जीव हैं । बहुरि शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ऐसैं क्षेत्र प्रमाणकरि तीन शुभ लेश्यावाले जीवनिका प्रमाण कह्या ॥ ५४० ॥

बेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरं तु जोइसियमाणं ।
तस्स य संखेज्जदिमा तिरिक्खसण्णीणपरिमाणं ॥ ५४१ ॥

द्विशतषट्पंचाशदंगुलकृतिहितप्रतरं तु ज्योतिष्कमानं ।

तस्य च संख्येयतमं तिर्यक्संज्ञिनां परिमाणं ॥ ५४१ ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तं तेजःपद्मलेश्याजीवप्रमाणं स्पष्टीकर्तुमाह–ज्योतिष्कप्रमाणं वेसदछप्पण्णंगुलकृतिभक्तजगत्प्रतरमात्रं = संज्ञितिर्यक्प्रमाणं च तत्संख्येयभागः = ॥५४१॥ ४।६५ = ४।६५ = १

स० चं०—पूर्वे जो तेजोलेश्यावालोंका प्रमाण ज्योतिषी देवराशितैं साधिक कह्या अर पद्मलेश्याका प्रमाण संज्ञी तिर्यचनिके संख्यातवे भागमात्र कह्या सो दोयसे छप्पनका वर्ग पणट्ठी तींहि प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितने ज्योतिषी जानने। बहुरि इनिके संख्यातवे भाग प्रमाण सैनी तिर्यंचनिका प्रमाण जानना ॥ ५४१ ॥

तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का।
ओहिअसंखेज्जदिमं तेउतिया भावदो होंति ॥५४२॥

तेजोद्वया असंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागकाः शुक्लाः
अवध्यसंख्येयाः तेजस्त्रिका भावतो भवति ॥ ५४२ ॥

जी० प्र०—तेजोद्वयजीवाः प्रत्येकमसंख्येयकल्पा अपि तेजोलेश्येभ्यः पद्मलेश्या संख्यातगुणहीनाः ते क a १ । प क a शुक्ललेश्याः पल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवंति प/a इति कालप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ताः। तेजस्त्रयजीवाः प्रत्येकं अवधिज्ञानविकल्पानामसंख्येयभागाः तथापि संख्यातासंख्यातगुणहीना भवंति ते ओ/a प ओ/a१ शु ओ/a१a इति भावप्रमाणेन शुभलेश्यात्रयजीवा उक्ताः ॥ ५४२ ॥ इति संख्याधिकारः ॥ अथ क्षेत्राधिकारमाह—

स० चं०—तेजोलेश्या पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्प प्रमाण हैं तथापि तेजोलेश्यावालोंके संख्यातवैं भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। कल्पकालका प्रमाण जितने बीस कोड़ाकोड़ि सागरके समय होंहि तितना जा

नना। बहुरि शुक्ललेश्यावाले पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं ऐसैं काल प्रमाणकरि तीन शुभलेश्यावाले जीवनिका प्रमाण कह्या बहुरि अवधिज्ञानके जितने भेद हैं तिनके असंख्यातवे भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं तथापि तेजोलेश्यावालोंके संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालोंके असंख्यातवे भागमात्र शुक्ललेश्यावाले हैं। ऐसैं भ.व प्रमाणकरि तेज पद्म शुक्ल लेश्यावालोंका प्रमाण कह्या ॥५४२॥ इति संख्याधिकारः ॥

आगै क्षेत्राधिकार कहै हैं—

सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ॥५४३॥

स्वस्थानसमुदघाते उपपादे सर्वलोकमशुभानां।
लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रिके ॥ ५४३ ॥

जी० प्र०—विवक्षितलेश्याजीवैर्वर्तमानकाले त्रिविवक्षितपदत्रिशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाशः क्षेत्र। तच्च स्वस्थाने समुद्घाते उपपादे च त्र्यशुभलेश्यानां सर्वलोकः ≡ तेजोलेश्यादित्रयस्य तु पुनः लोकस्यासख्यातैकभागः सामान्येन भवति विशेषेण तु तत्र दशपदेषूच्यते। तत्र तावत् उत्पन्नपुरग्रामादिक्षेत्रं तत् स्वस्थानस्वस्थानं, विवक्षितपर्यायपरिणतेन परिभ्रमितुमुचितक्षेत्रं तद्विहारवत्स्वस्थानमिति स्वस्थानं द्वेधा। वेदनादिवशेन निजशरीराज्जीवप्रदेशानां बहिःप्रदेशे तत्प्रायोग्यविसर्पणं समुद्घातः। स च वेदनाकषायवैक्रियिकमारणांतिकतैजसाहारककेवलिभेदात् सप्तधा। परित्यक्तपूर्वभवस्य उत्तरभवप्रथमसमये प्रवर्तनमुपपाद इति दशपदानि। तेषु स्वस्थानस्वस्थाने वेदनासमुद्घाते कषायसमुद्घाते मारणांतिकसमुद्घाते उपपादे चेति पंचपदेषु कृष्णलेश्याजीवक्षेत्रं सर्वलोकः ≡ तत्र कृष्णलेश्याजीवराशिं १३— / ३— संख्यातेन भक्त्वा बहुभागः १३-। ४ / ३—।५। स्वस्थानस्वस्थाने देयः। शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागः १३—। ४ / ३—।५।५ वेदनासमुद्घाते देयः। शेषैकभागस्य संख्यातभक्तबहुभागः —१३—। ४ / ३-५। ५।५। कषायसमुद्घाते देयः। शेषैकभागं फलराशिं कृत्वा, १३-१ / ३—५ ५। ५ एकनिगोदभवायुरुच्छ्वासाष्टादशैकभागान्तर्मुहूर्तं २ १ प्रमाणराशिं कृत्वा एकसमयं इच्छाराशिं कृत्वा प्र २ १ फ इ स १ लब्धमुपपादपदे देयं १३— / ३-५।५।५।२१ एतस्मिन्नेव पुनः

मारणांतिकसमुद्घातकालांतर्मुहूर्तेन गुणिते प्र स १। फ १३–। इ २ ७ । लब्धं मूलराशिसंख्यातैकभागं मारणांतिकसमुद्घाते
३–।५।५ ५।२७

दद्यात् १३— पुनः कृष्णलेश्यात्रयं सपर्याप्तराशिं = ४।३– संख्यातेन भक्त्वा बहुभागः– = ४ ४।३–५। स्वस्थानस्वस्थानेऽस्तीति देयः। शेषैकभा-
३–७ ५– ५–

गस्य संख्यातभक्तबहुभागो == ४ ४।३-५।५ विहारवत्स्वस्थाने देयः। शेषैकभागः = १ ४।३ ५।५ शेषपदेषु यथायोग्यं पतितोऽस्तीति ज्ञातव्यः। त्रस-
५– ५–

पर्याप्तमध्यमावगाहनं संख्यातघनांगुलं फलराशिं कृत्वा विहारवत्स्वस्थानकृष्णलेश्याजीवराशिमिच्छां कृत्वा– प्र १। फ ६ ७। इ = ४ ४।३–५५ लब्ध-
५–

मपवर्तितं संख्यातसूच्यंगुलगुणितजगत्प्रतरो विहारवत्स्वस्थाने क्षेत्रं भवति = सू २ ७। पुनः पल्यासंख्यातमात्रघनांगुलगुणितजगच्छ्रेणि
कृष्णलेश्यावैक्रियिकराशिं – ६ प संख्यातेन भक्त्वा बहुभागं – ६ प ४ स्वस्थानस्वस्थाने दत्त्वा शेषशेषस्य संख्यातबहुभागसंख्यातबहु-
३– a ३–a।५

भागो विहारवत्स्वस्थाने — ६ प ४ वेदनासमुद्घाते – ६ प ४ कषायसमुद्घाते च ६। प ४ पतितोऽस्तीति ज्ञात्वा शेषैकभागो वैक्रियिक-
३– a ५५ ३– a ५५५ ३–a५५५५

समुद्घाते देयः — ६ प। १ अयमेत्र यथायोग्यवैगुर्वणावगाहनोत्पन्नसंख्यातघनांगुलैर्गुणितः– घनांगुलवर्गगुणितासंख्यातश्रेणिमात्रं वैक्रि-
३– a ५५५५

यिकसमुद्घाते क्षेत्रं भवति — a ६। ६। पुनः सामान्याध ऊर्ध्वतिर्यग्मनुष्यलोकान् पंच संस्थाप्यालापः क्रियते—

तद्यथा—कृष्णलेश्याजीवाः स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणांतिकोपपादपदेषु कियत्क्षेत्रे तिष्ठंति ? सर्वलोके तिष्ठंति। विहारवत्स्वस्थान-
पदे पुनः सामान्यादिलोकत्रयस्यासंख्यातैकभागे तिर्यग्लोकस्य लक्षयोजनोत्सेधादेकजीवशरीरोत्सेधस्य संख्यातगुणहीनत्वात् संख्यातैकभागे
मनुष्यलोकादसंख्यातगुणे च क्षेत्रे तिष्ठन्ति। वैक्रियिकसमुद्घातपदे च सामान्यादिचतुर्लोकानामसंख्यातैकभागे मनुष्यलोकादसंख्यातगुणे च
क्षेत्रे तिष्ठंति। कुतः ? असंख्यातघनांगुलवर्गमात्रजगच्छ्रेणीनां तत्क्षेत्रत्वात्। एवं नीलकपोतयोरपि वक्तव्यं। पुनस्तेजोलेश्याजीवराशिं

।।। १!–
= ७ संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागं बहुभागं स्वस्थानस्वस्थाने—
४। ६५ = ७

नपनेतुं पल्यासंख्यातेन भक्त्वैकभागं त्यक्त्वा शेषबहुभागो मारणांतिकसमुद्घातजीवराशिर्भवति— =

१ ॒ १ ॒
प प
a a ०
४ । ६५ = ८१ । १० a ṛ ṛ प प
a a

अत्र समीपमारणांतिकसमुद्घातजीवानपनेतुं पल्यासंख्यातेन भक्त्वा बहुभागं त्यक्त्वा एकभागो दूरमारणांतिकजीवराशिर्भवति —

१ ॒ १ ॒
= प प १
a a ०
४ । ६५ = ८१ ॥ १० । a ṛ ṛ प प प
a a a

अस्मिन्मारणांतिकसमुद्घातकालांतर्मुहूर्तसंभविशुद्धशलाकाभिः a ṛ संगुणय एकसमयेन भवते सर्व-दूरमारणांतिकसमुद्घातजीवप्रमाणं भवति ।

१ ॒ १ ॒
प प १ । a ṛ
= a a ०
४ । ६५ = ८१ । १० । a ṛ ṛ प प प
a a a

अस्मिन् रज्जुसंख्यातैकभागायामसूच्यंगुलसंख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधक्षेत्रस्य २ । २ ṛ । ṛ / ७ । ṛ घनफलेन प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितजगच्छ्रेणिसंख्यातैकभागेन — ४ / ७ । ṛ । ṛ गुणिते दूरमारणांतिकसमुद्घातस्य क्षेत्रं भवति— =

१ ॒ १ ॒
प । प । १ । a ṛ । — ४ / ७ । ṛ ṛ
a a ०
४ । ६५ = ८१ । १० । a ṛ ṛ । प प प
a a a

पुनर्द्वादशयोजनायामनवयोजनविष्कंभसूच्यंगुलसंख्यातैक-

भागोत्सेध २ । ९ यो क्षेत्रघनफलं संख्यातघनांगुलप्रमितं ६ ७ संख्यातजीवैर्गुणितं तैजससमुद्घातक्षेत्रं भवति । ६ । ७ । ७ । पुनः सूच्यंगुल-
७ ।
यो १२
संख्यातैकभागविष्कंभोत्सेधसंख्यातयोजनायामक्षेत्रस्य २ । २ घनफलं संख्यातघनांगुलप्रमितं ६ ७ संख्यातजीवैर्गुणितं आहारकसमुद्घातक्षेत्रं
७ । ७
यो ७
भवति ६ ७ । ७ ॥ ५४३ ॥

स० चं०—विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान कालविषैं विवक्षित स्वस्थानादि विशेष लीएं जितने आकाश विषैं पाइए ताका नाम क्षेत्र है। सो कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यानिका क्षेत्र स्वस्थानविषैं वा समुद्घातविषैं वा उपपादविषैं सर्वलोक है। बहुरि तेजोलेश्या आदि तीन शुभलेश्यानिका क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है ऐसैं संक्षेपकरि क्षेत्र कह्या। बहुरि विशेषकरि दश स्थानकनिविषैं कहिए है। तहां स्वस्थानकनिके तौ दोय भेद एक स्वस्थानस्वस्थान १ एक विहारवत् स्वस्थान २ तहां विवक्षित लेश्यावाले जीव जिस नरक स्वर्ग नगर ग्रामादि क्षेत्रविषैं उपजे होंहि सो तौ स्वस्थानस्वस्थान है बहुरि विवक्षित लेश्यावाले जीवनिकौं विहार करनेके योग्य जो क्षेत्र होइ सो विहारवत्स्वस्थान है। बहुरि अपने शरीरतैं केते इक आत्मप्रदेशनिका बाह्य निकासि यथायोग्य फैलना सो समुद्घात कहिए ताके सात भेद—वेदना १ कषाय २ वैक्रियिक ३ मारणांतिक ४ तैजस ५ आहारक ६ केवल ७ तहां जो बहुत पीडाके निमित्ततैं प्रदेशनिका निकसना सो वेदना समुद्घात है। बहुरि क्रोधादि कषायके निमित्ततैं प्रदेशनिका निकसना सो कषायसमुद्घात है। विक्रियाके निमित्ततैं प्रदेशनिका निकसना सो वैक्रियिक समुद्घात है। मरण होतैं पहिलैं जो नवीन पर्यायके धरनेका क्षेत्रपर्यंत प्रदेशनिका निकसना सो मारणांतिक समुद्घात है। अशुभरूप वा शुभरूप तैजस शरीरनिकरि नगरादिककौं जलावै वा भला करै ताकी साथि जो प्रदेशनिका निकसना सो तैजस समुद्घात है। प्रमत्त गुणस्थानवालेकैं आहारक शरीरकी साथि प्रदेशनिका

निकसना सो आहारक समुद्घात है। केवलज्ञानीके दंड कपाटादि क्रिया होतैं प्रदेशनिका निकसना केवल समुद्घात है। ऐसैं समुद्घातके सात भेद हैं। वहुरि पहलैं जो पर्याय धरता था ताकौं छोडि पहिले समय अन्य पर्याय रूप होइ अतरालविषैं जो प्रवर्तना सो उपपाद कहिए। याका एक भेद हो है। ऐसैं ए दशस्थान भए। तहां कृष्ण लेश्यावाले जीवनिका स्वस्थानस्वस्थान, वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणांतिकसमुद्घात, उपपाद इनि पंच पदनिविषैं क्षेत्र सर्वलोक जानना। अब इनि जीवनिका प्रमाण कहिए है—

कृष्ण लेश्यावालोंका जो पूर्वैं परिमाण कह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण तौ स्वस्थान स्वस्थानवाले जीव हैं। भाग देइकरि तहां एक भागकौं तौ जुदा राखिए अवशेष जो रहे ताकौं वहुभाग कहिए यहु सर्वत्र जानना। वहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातवाले जीव हैं। वहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं। वहुरि एक भाग रह्या ताकौं फलराशि करिए वहुरि एक निगोदियाका आयु सांसके अठारह्वां भाग तिस प्रमाण अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंइ सो प्रमाण राशि करिए वहुरि एक समयकौं इच्छाराशि करिए तहां फलकौं इच्छाराशिकरि गुणि प्रमाणका भाग दीएं जेता प्रमाण आवै तितना जीव उपपादवाले हैं। वहुरि इस उपपादवाले जीवनिके प्रमाणकौं मारणांतिक समुद्घातकाल अंतर्मुहूर्त ताके जेते समय होंहि तिनकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितने जीव मूलराशिके संख्यातवे भागमात्र मारणांतिक समुद्घातवाले जानने। ऐसैं ए जीव सर्वलोकविषै पाइए तातैं इनिका क्षेत्र सर्वलोक है। वहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुलनिकरि जगत्प्रतरकौं गुणं जो प्रमाण होइ तितना जानना। कैसैं? सो कहिए है—

कृष्ण लेश्यावाले पर्याप्त त्रस जीवनिका जो प्रमाण पर्याप्त त्रस राशिके किंचिदून त्रिभागमात्र है ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण स्वस्थान स्वस्थानविषैं है अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या सो अवशेष य-

थायोग्य स्थानविषैं जानना । अब इहां त्रसपर्याप्त जीवनिकी जघन्य मध्यम अवगाहना अनेकप्रकार है सो हीनाधिक बरोबरिकरि संख्यात घनांगुल प्रमाण मध्यम अवगाहना मात्र एक जीवकी अवगाहनाका ग्रहण कीया सो इस अवगाहनाका प्रमाणकौं फल राशि करिए, पूर्वै जो विहारवत्स्वस्थान जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं इच्छाराशि करिए. एक जीवकौं प्रमाणराशी करिए। तहां फलकरि इच्छाकौं गुणि प्रमाणका भाग दीए जो संख्यात सूच्यंगुलकरि गुण्या हूवा जगत्प्रतर प्रमाण भया सो विहारवत् स्वस्थानविषैं क्षेत्र जानना । बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषैं क्षेत्र घनांगुलका वर्गकरि असंख्यात जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना जानना । कैसें ? सो कहिए है—

कृष्ण लेश्यावाले वैक्रियिक शक्तिकरि युक्त जीवनिका जो प्रमाण वैक्रियिक योगी जीवनिका किंचिदून त्रिभागमात्र है ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभागप्रमाण स्वस्थान स्वस्थानविषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिये तहां बहु भाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थानविषैं जीव हैं। अवशेष एकभाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घातविषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषायसमुद्घातविषैं जीव हैं। अवशेष एक भागप्रमाण वैक्रियिक समुद्घातविषैं जीव प्रवर्तें हैं ऐसें जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं हीनाधिक बरोबरिकरि एक जीवसंबंधी वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र संख्यात घनांगुल प्रमाण है तिसकरि गुणैं जो घनांगुलका वर्गकरि गुण्या हूवा असंख्यात श्रेणीमात्र प्रमाण भया सो वैक्रियिक समुद्घातका क्षेत्र जानना । बहुरि इनहीका सामान्यलोक १ अधोलोक २ ऊर्ध्वलोक ३ तिर्यक्लोक ४ मनुष्यलोक ५. इनि पंच लोकनिकी अपेक्षा व्याख्यान कीजिए है—

समस्त जो लोक सो सामान्यलोक है। मध्यलोकतैं नीचैं सो अधोलोक है। मध्यलोकके ऊपरि ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोकविषैं एक राजू चौडा लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौडा लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है। तहां कृष्ण लेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान वेदनासमुद्घात कषायसमुद्घात मारणांतिक-

समुद्घात उपपाद इनिविषैं प्रवर्तते जीव कितने क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं ? तहां उत्तर-जो सामान्यादिक पांचप्रकार सर्वलोकविषैं तिष्ठैं हैं। बहुरि विहारवत् स्वस्थानविषैं प्रवर्तते जीव सामान्यलोक अधोलोक ऊर्ध्वलोकका तौ असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्रविषै तिष्ठैं हैं अर तिर्यक्लोक ऊंचा लाख योजन प्रमाण है अर एक जीवकी उंचाई वाके संख्यातवे भाग प्रमाण है तातैं तिर्यक् लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं अर मानुषोत्तर पर्वतके मध्यवर्ती जो मनुष्यलोक तातैं असंख्यातगुणा क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं। बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषैं प्रवर्तते जीव सामान्यादिक च्यारिलोक तिनके असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्रविषैं तिष्ठैं हैं अर मनुष्य लोकतैं असंख्यात गुणा क्षेत्रविषैं तिष्ठै हैं जातैं वैक्रियिक समुद्घातवालोंका क्षेत्र असख्यात गुणा घनांगुलका वर्गकरि गुणित जगच्छ्रेणीमात्र है ऐसैं सात स्थाननिविषैं व्याख्यान कीया बहुरि तैजस समुद्घात आहारकसमुद्घात केवलीसमुद्घात इन लेश्यावाले जीवनिकैं होता नाहीं तातैं इनिका कथन न कीया। इसप्रकार जैसैं कृष्णलेश्याका व्याख्यान कीया तैसैंही नीललेश्या कपोतलेश्याका व्याख्यान जानना विशेष इतना जहां कृष्णलेश्याका नाम कह्या है तहां नीललेश्या वा कपोतलेश्याका नाम लेना। अब तेजोलेश्याका क्षेत्र कहिए हैं—

तहां प्रथम ही जीवनिका प्रमाण कहिए है-तेजोलेश्यावाले जीवनिका संख्या अधिकार विषैं जो प्रमाण कह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थानविषैं जानना। एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग विहारवत्स्वस्थानविषैं जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग वेदनासमुद्घात विषै जानना। बहुरि जो एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग कषाय समुद्घातविषैं जानना। बहुरि एकभाग वैक्रियिक समुद्घातविषैं जानना। ऐसैं जीवनिका परिमाण कह्या। अब तेजोलेश्या मुख्यपनैं भवनत्रिक आदि देवनिकैं पाइए है तिनिविषैं एक देवका शरीरका अवगाहनाका प्रमाण मुख्यताकरि सात धनुष ऊंचा अर सात धनुषके दशवें भाग मुखकी चौडाई है प्रमाण जाका ऐसा है सो याका क्षेत्र फल कीजिए है—

वासोत्ति गुणो परिही वास चउत्थाहदो दु खेत्तफलं।
खेत्तफलं वेहगुणं खादफलं होदि सव्वत्थ ॥

इस करणसूत्रकरि क्षेत्र फल करना। गोल क्षेत्रविषैं चौडाईके प्रमाणतैं तिगुण तौ परिधि होइ। इस परिधिकौं चौडाईका चौथा भागतैं गुणैं क्षेत्र फल होइ। इस क्षेत्रफलकौं ऊँचाइ रूप जो बेध ताके प्रमाणकरि गुणै घनरूप क्षेत्रफल हो है। सो इहां सात धनुषका दशवां भागमात्र चौडाई ताकौं तिगुणी कीए परिधि होइ। याकौं चौडाईका चौथा भाग करि गुणे क्षेत्र फल हो है। याकौं बेध सात धनुषकरि गुणें घनरूप क्षेत्र फल हो है। बहुरि जो घनरा।ि होइ ताके गुणकार भागहार घन रूपही होंइ तातैं इहां अंगुल करनेके निमित्त एक धनुषका छिनवै अंगुल होइ, सो जो धनुषरूप क्षेत्रफल भया ताकौं छिनवेका घनकरि गुणिए बहुरि इहां तो कथन प्रमाणांगुलतैं हैं अर देवनिके शरीरका प्रमाण उत्सेधांगुलतैं है तातैं पांचसैका घनका भाग दीजिए ऐसैं करतैं प्रमाणरूप घनांगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण एक देवका शरीरकी अवगाहना भई। इसकरि पूर्वें जो स्वस्थानस्वस्थानविषैं जीवनिका प्रमाण कह्या था ताकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थानविषैं जानना। बहुरि वेदनासमुद्घातविषैं वा कषायसमुद्घातविषैं प्रदेश मूल शरीरतैं बाह्य निकसैं सो एक प्रदेश क्षेत्रकौं रोकैं वा दोयप्रदेशमात्र क्षेत्रकौं रोकैं ऐसैं एक एक प्रदेश बंधता जो उत्कृष्ट क्षेत्र रोकैं तो मूल शरीरतैं चौडाईविषैं तिगुणा क्षेत्र रोके अर उंचाई मूल शरीर प्रमाण ही है सो याका घनरूप क्षेत्रफल कीएं मूलशरीरके क्षेत्र फलतैं नव गुणा क्षेत्र भया सो जघन्य एकप्रदेश अर उत्कृष्ट मूलशरीरतैं नव गुणा क्षेत्र भया सो हीनाधिककौं बरोबरि कीएं एक जीवकैं मूलशरीरतैं साढा च्यारिगुणा क्षेत्र भया सो शरीरका प्रमाण पूर्वैं घनांगुलके संख्यातवे भाग प्रमाण कह्या था ताकौं साढा च्यारिगुणा कीजिए तब एक जीव संबधी क्षेत्र भया इसकरि वेदना समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब वेदना समुद्घातविषैं क्षेत्र होइ। बहुरि कषायसमुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब कषायसमुद्घातविषैं क्षेत्र होइ। बहुरि विहार करते देवनिकैं मूल शरीरतैं बाह्य आत्माके प्रदेश फैलैं ते प्रदेश एक जीवकी अपेक्षा संख्यात योजन प्रमाण तौ लंबा अर

सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा वा ऊंचा क्षेत्रकों रोकै सो इसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया इसकरि जो पूर्वं विहारवत्स्वस्थानविषें जीवनिका प्रमाण कह्या था ताकौं गुणिए तव सर्व जीवसंवंधी विहारवत् स्वस्थानविषें क्षेत्रका परिमाण होइ। इहां ऐसा अर्थ जानना-जो देवनिकैं मूल शरीर तौ अन्यक्षेत्रविषें तिष्ठै है अर विहार करि विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्रविषें तिष्ठै है तहां दोऊनिकै वीचि आत्माके प्रदेश सूच्यंगुलका संख्यातवां भागमात्र प्रदेश ऊंचे चौडे फैलें हैं अर इहां मुख्यताकी अपेक्षा संख्यात योजन लंवे कहे हैं। वहुरि देव अपनी अपनी इच्छातैं हस्ती घोटक इत्यादिक रूप विक्रिया करैं ताकी अवगाहना एक जीवकी अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है इसकरि पूर्वं जो वैक्रियिक समुद्घातविषें जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं गुणिए तव सर्व जीव संवंधी वैक्रियिकसमुद्घातविषें क्षेत्रका परिमाण होइ। वहुरि पीतलेश्यावालेनिविषें व्यंतरदेव घने मरै हैं तातैं इहां व्यंतरनिकी मुख्यताकरि मारणांतिक समुद्घात कहिए है। जितना व्यंतर देवनिका प्रमाण है ताकौं व्यंतरनिकी मुख्यपनैं दश हजार वर्ष आदि संख्यात वर्ष प्रमाण स्थितिके जेते समय होंइ तिनिका भाग दीए जेता प्रमाण आवै तितना जीव एक समयविषें मरणकौं प्राप्त हो हैं। वहुरि इनि मरनेवाले जीवनिकैं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भाग प्रमाण जीवनिकै ऋजु गति कहिये समयरूप गति हो है वहुरि वहु भाग प्रमाण जीवनिकै विग्रह गति कहिये वक्रता लीए परलोककौं गति हो है। वहुरि विग्रहगति जीवनिके प्रमाणकौं पल्यके असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण जीवनिकैं मारणांतिकसमुद्घात न हो है। वहुरि वहुभाग जीवनिकैं मारणांतिक समुद्घात हो है। वहुरि इस मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनिके प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां वहुभाग प्रमाण समीप थोरेसे क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। एक भाग प्रमाण दूर वहुत क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं सो एक समयविषें दूर मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवनिका यह प्रमाण कह्या अर मारणांतिक समुद्घातका काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तातैं अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंहि तिनकरि तिस प्रमाणकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितने एकठे भए

दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव जानने। तहां एक जीवके दूरि मारणांतिक समुद्घातविषैं शरीरतैं बाह्य प्रदेश फैलैं ते मुख्यपनैं एक राजूके संख्यातवें भाग प्रमाण लंबे अर सूच्यंगुलके संख्यातवें भाग प्रमाण चौडे वा ऊंचे क्षेत्रकौं रोकैं। याका घनरूप क्षेत्रफल कीजिए तब प्रतरांगुलका सख्यातवां भागकरि जगच्छ्रेणीका सख्यातवां भागकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना क्षेत्र भया। इसकरि दूरि मारणांतिक जीवनिका प्रमाणकौं गुणिये तब सर्व जीव संबंधी दूर मारणांतिक समुद्घातका क्षेत्र हो है। अन्य मारणांतिक समुद्घातका क्षेत्र स्तोक है तातैं मुख्य ग्रहण तिसहीका कीया। बहुरि तैजस समुद्घातविषैं शरीरतैं बाह्य प्रदेश निकसैं ते वारा योजन लंबा नव योजन चौडा सूच्यंगुलका सख्यातवां भाग प्रमाण ऊचा क्षेत्रकौं रोकै सो याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया इसकरि तैजस समुद्घात करनेवालोंका प्रमाण संख्यात है तिसकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना तैजस समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना। बहुरि आहारक समुद्घातविषैं एक जीवकैं शरीरतैं वाह्य निकसे प्रदेश ते संख्यात योजन प्रमाण लंबा अर सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्रकौं रोकैं याका घनरूप क्षेत्र फल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया। इसकरि आहारक समुद्घातवाले जीवनिका संख्यात प्रमाण है ताकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना आहारक समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना। मूल शरीरतैं निकसि आहारक शरीर जहां जाइ तहां पर्यंत लंबी आत्माके प्रदेशनिकी श्रेणी सूच्यगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण चौडी अर ऊंची आकाशविषैं ही है ऐसा भावार्थ जानना। ऐसैं ही मारणांतिक समुद्घातादिकविषैं भी भावार्थ जानि लेना।

मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ॥ ५४४ ॥

म्रियते असंख्येयं तस्यासंख्याश्च विग्रहे भवंति।
तस्यासंख्यं दूरे उपपादे तस्य खलु असंख्यं ॥ ५४४ ॥

णांतिकसमुद्घातजीवप्रमाणं — प १ २ १ २ प १ / ११ a a / प प प प / a a a a पुनः पल्यासंख्यातभक्तैकभाग उपपाददंडस्थितजीवप्रमाणं — १ २ १ २ प प / ११ a a / प प प प प / a a a a a

अत्र दूरमारणांतिकराशौ त्रिरज्ज्वायतसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयदेवैः क्रियमाणमारणांतिकदंडस्य घनफलेन प्रतरांगुलसंख्यातैकभागगुणितरज्जुत्रयेण — ३ । ४ / ७ ०१ गुणिते तत्क्षेत्रं स्यात् — १ २ १ २ — प प ७ । ३ । ४ / ११ a a ०१ / प प प प / a a a a पुनः उपपाददंडराशौ त्रिरज्ज्वायतसंख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधस्य सनत्कुमारद्वयं प्रति तिर्यग्जीवमुक्तोपपाददंडस्य घनफलेन संख्यातप्रतरांगुलहतत्रिरज्जुमात्रेण — ३ । ४ ०१ / ७ गुणिते तत्क्षेत्रं भवति-

— १ २ १ २ प प — ३ । ४ ०१ / ११ । a a ७ / प प प प प / a a a a a तैजसाहारकसमुद्घातयोः क्षेत्रं तेजो लेश्यावत्संख्यातघनांगुलगुणितसंख्यातजीवराशिर्भवति—

०१ ६ ०१ । ०१ ६ ०१ पुनः शुक्ललेश्यायां तज्जीवराशिं पल्यासंख्यातभागं संख्यातेन भक्त्वा भक्त्वा बहुभागबहुभागं स्वस्थानस्वस्थाने प ४ / a ५ विहारवत्स्वस्थाने प । ४ / a ५५ वेदनासमुद्घाते प ४ / a ५ ५ ५ कषायसमुद्घाते च प ४ / a ५ ५ ५ ५ दत्वा शेषैकभागं वैक्रियिकसमुद्घाते दद्यात्-

प १ / a ५ ५ ५ ५, अत्र प्रथमराशौ त्रिहस्तोत्सेधतद्दशमभागमुखव्यासैकदेवावगाहनस्य वासोचि गुणो परिहीत्याद्यानीत ह ३ । ३ ह । ३ ह ३ / १० । १० । ४ । घनफलेन घनांगुलसंख्यातैकभागेन ६ / ०१ पुनस्तृतीयराशौ नवार्धघनांगुलसंख्यातभागेन ६ । ६ / ०१ । २ पुनश्चतुर्थराशौ तावतैव च ६ । ६ / ०१ । २ गुणिते सति क्रमेण

स्वस्थानस्वस्थानवेदनासमुद्घातकषायसमुद्घातक्षेत्राणि भवंति—स्व = प । ४ । ६ वेद = प ४ । ६ । ९ कषा = प ४
३ ५ । १ ३ ५५५ १ । २ ३५५५५

द्वितीयराशौ संख्यातयोजनायामसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेध— २ १ । २ १ क्षेत्रघनफलसंख्यातघनांगुलैः ६ १ गुणिते विहारव-
यो १

त्स्वस्थाने क्षेत्रं भवति प । ४ । ६ १ पुनः पंचमराशौ स्वस्वयोग्यतया विकुर्वितशरीरावगाहलब्धसंख्यातघनांगुलैः ६ १ गुणिते वैक्रियिक
३ ५ ५ ।

समुद्घातपदे क्षेत्रं भवति प । ६ १
३ ५ । ५ । ५ । ५

पुनः रज्जुषट्कायामसूच्यंगुलसंख्यातभागविष्कंभोत्सेध २ । २ क्षेत्रघनफलमेकजीवप्रतिबद्धं भवति— ६ । ४ अस्मिन्नानतादिदेवानां मनु-
१ १ — ७ । १
७ ६

ष्येष्वेवोत्पत्तेस्तत्र संख्यातैरेव म्रियमाणैर्गुणिते मारणांतिकसमुद्घातक्षेत्रं भवति १ । ७ ६ । ४ तैजसाहारकसमुद्घातक्षेत्रं पद्मलेश्यावत् ।—
१

तै १ । ६ १ आ १ । ६ १ केवलिसमुद्घातः दंडकवाटप्रतरलोकपूरणभेदाच्चतुर्धा । दंडसमुद्घातः स्थितोपविष्टभेदाद्द्वेधा । कवाटसमुद्घा-
तोऽपि पूर्वाभिमुखोत्तराभिमुखभेदाभ्यां स्थितः उपविष्टश्चेति चतुर्धा । प्रतरलोकपूरणसमुद्घातावेकैकावेव । तत्र वातवलयरहितत्वात् किंचिदूनचतुर्दशर-
ज्जूत्तुंगद्वादशांगुलवृत्तक्षेत्रस्य वासोत्रिगुणो परिधिरित्यागतं १२ । ३ । १२ । —१४—षोडशाभ्यधिकद्विशतप्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्र —४ । २१ ६
४ ७

जीवगुणकारेण ४० गुणितं, अष्टसहस्रषट्शतचत्वारिंशत्प्रतरांगुलगुणितजगच्छ्रेणिमात्रं स्थितदंडसमुद्घातक्षेत्रं —४ । ८६४० एतदेव नवगुणितं
सप्तसप्ततिसहस्रसप्तशतषष्टिप्रतरांगुलहतजगच्छ्रेणिमात्रमुपविष्टदंडसमुद्घातक्षेत्रं भवति — ४ । ७७७६० किंचिदूनचतुर्दशरज्ज्वायामसप्तरज्जु-
विष्कंभद्वादशांगुलरुद्धक्षेत्रफलं जीवगुणकारेण ४० गुणितं नवशतषष्टिसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरं पूर्वाभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति
= सू २ । ९६० एतदेव त्रिगुणितं द्विसहस्राष्टशताशीतिसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरं निषण्णपूर्वाभिमुखकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति = सू २ । २८८०
किंचिदूनचतुर्दशरज्जुदीर्घस्य पूर्वापरेण एकैकपंचैकरज्जुविष्कंभस्य मुख — १ भूमि — जोग — ८ दले — ४ पद — गुणिदे = ४९ पदे-
७ ७ ७ ७ ७ ७ ३

घथा होदीत्यधोलोकफलं = ४ मुख — १ भूमि — ५ जोग — ६ दले — ३ पद — गुणिदे = २१ पदवधां होदीस्यपवर्त्य = ३ (हर: ७, ७, ७, ७, ७, ७ ७ २, ७ ७ । २, ७ २)

द्विहते ऊर्ध्वलोकफलं = ३ (हर: ७) अरिमन्नधोलोकफले मिलिते जगत्प्रतरद्वादशांगुलरुंद्रेण गुणितः = १२ एकजीवप्रतिवद्धं तदेव जीवगुणकारेण ४० गुणितं चतुःशताशीतिसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखस्थितकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति = सू २ । ४८० एतदेव त्रिहतं एकसहस्रचतुःशतचत्वारिंशत्सूच्यंगुलहतजगत्प्रतरमुत्तराभिमुखासीनकवाटसमुद्घातक्षेत्रं भवति = सू २ । १४४० प्रतरसमुद्घातस्य वहिर्वातत्रयाभ्यंतरे सर्वलोके व्याप्तत्वात् तद्वातक्षेत्रफलेन लोकासंख्यातैकभागेन ≡ । १ ऊनं लोकमात्रमेकजीवप्रतिवद्धक्षेत्रं भवति ≡ (१ ८ / a) लोकपूरणसमुद्घाते एकजीवप्रतिवद्धक्षेत्रं सर्वलोको भवति ≡ अत्र आरोहकावरोहकदंडद्वयकवाटचतुष्के प्रत्येकमुत्कृष्टतो विंशतिविंशतिजीवसंभवाज्जीवगुणकारः ४० चत्वारिंशत् ।

स. चं–इस सूत्रका अभिप्राय उपपाद क्षेत्र ल्यावनेका है सो पीत लेश्यावाले सौधर्म ईशानवर्ती जीव मध्यलोकतैं दूर क्षेत्रवर्ती हैं सो तिनके कथनमें क्षेत्रका परिमाण बहुत आवै । बहुत प्रमाणमें स्तोक प्रमाण गर्भित करिए है तातैं तिनकी मुख्यताकरि उपपाद क्षेत्रका कथन कीजिए है—

सौधर्म ईशान स्वर्गकेवासी देव घनांगुलका तृतीय वर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणिए तितने प्रमाण हैं। इस प्रमाणकौं पल्यका असख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भागप्रमाण एक एक समयविषैं मरणेवाले जीवनिका प्रमाण हो है। इस प्रमाणकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विग्रहगति करनेवालोंका प्रमाण हो है। याकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण हो है। याकौं पल्यका असख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण हो है। याकौं द्वितीय दीर्घ दंडविषैं स्थित मारणांतिक समुद्घात ताके पूर्वै भया ऐसा उपपादताकरि युक्त जीवनिके प्रमाण ल्यावनेकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए

तहां एक भाग प्रमाण उपपाद जीवनिका प्रमाण है । तहां तिर्यंच उपजनेकी मुख्यताकरि एक जीवसंबंधी प्रदेश फैलनेकी अपेक्षा डेढराजू लंबा संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा ऊंचा क्षेत्र है याका घन क्षेत्र फल संख्यात प्रतरांगुलकरि डेढ राजूकौं गुणैं जो प्रमाण भया तितना जानना इसकरि उपपाद जीवनिके प्रमाणकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना उपपादविषैं क्षेत्र जानना । बहुरि केवलि समुद्घात इस लेश्याविषैं है नाहीं तातैं कथन न कीया । ऐसैं पीत लेश्याविषैं क्षेत्र है । आगैं पद्मलेश्याविषैं क्षेत्र कहिए है—

संख्याधिकारविषैं पद्मलेश्यावाले जीवनिका जो प्रमाण कह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिये तहां बहुभाग स्वस्थान स्वस्थानविषैं जानना । अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग विहारवत् स्वस्थानविषैं जानना । अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग वेदना समुद्घातविषैं जानना । अवशेष एक भाग रह्या सो कषायसमुद्घातविषैं जानना । ऐसैं जीवनिका प्रमाण कह्या । अब यहां पद्मलेश्यावाले तिर्यंच जीवनिका अवगाहना प्रमाण बहुत है तातैं तिनकी मुख्यताकरि कथन कीजिए है—

तहां स्वस्थान स्वस्थानविषैं अर विहारवत्स्वस्थानविषैं एक तिर्यंच जीवकी अवगाहना मुख्यपनैं कोस लबी अर ताके नवमे भाग मुखका विस्तार सो याका क्षेत्र फल 'वासोत्तिगुणो परिही' इत्यादि सूत्रकरि करिए तब संख्यात घनांगुल प्रमाण होइ इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणैं स्वस्थान स्वस्थानविषैं क्षेत्र होइ अर विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणैं विहारवत्स्वस्थानविषैं क्षेत्र हो है । बहुरि पूर्वोक्त तिर्यंच शरीरकी अवगाहनातैं पूर्वोक्त प्रकार साढा च्यारि गुणा वेदना अर कषाय समुद्घातविषैं एक जीवकी अपेक्षा क्षेत्र है। इसकरि पूर्वोक्त वेदना समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तब वेदना समुद्घातविषैं क्षेत्र होइ, कषाय समुद्घातवाले जीवनिके प्रमाणकौं गुणैं कषायसमुद्घातविषैं क्षेत्रका परिमाण होइ । बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषैं पद्मलेश्यावाले जीव सनत्कुमार माहेंद्रविषैं बहुत हैं तातैं तिनकी अपेक्षा कथन करैं हैं—

सनत्कुमार माहेंद्रविषैं देव जगच्छ्रेणीका ग्यारह्वां वर्गमूलका भाग जगच्छ्रेणीकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितने

हैं। इस राशिकौं संख्यातका भाग दीजिए तब बहुभाग स्वस्थानस्वस्थानविषैं जीव जानने। अवशेष एकभाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत् स्वस्थानविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषायसमुद्घातविषैं जीव जानने। अवशेष एक भाग रह्या तीहिं प्रमाण वैक्रियिक समुद्घातविषैं जीव जानने। इस वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं एक जीवसंबंधी विक्रियारूप हस्तिघोटकादिकनिकी संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना तिसकरि गुणें जो प्रमाण होइ सोई वैक्रियिक समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना बहुरि मारणांतिक समुद्घात वा उपपादविषैं भी क्षेत्र सनत्कुमार माहेंद्र अपेक्षा बहुत है तातैं सानत्कुमार माहेंद्रकी अपेक्षा कथन कीजिए है—

मरदि असंखेज्जादिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ॥

जो सनत्कुमार माहेंद्रवासी जीवनिका प्रमाण कह्या ताकौं असंख्य कहिए पल्यका असंख्यातवां भाग ताका भाग दीजिए तहां एक भाग प्रमाण समय २ जीव मरणकौं प्राप्त हो हैं। बहुरि इस राशिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विग्रह गतिवालोंका प्रमाण है। बहुरि इस राशिकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं। बहुरि इसकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां एकभाग प्रमाण दूरमारणांतिक समुद्घात वाले जीव हैं। बहुरि इसकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिये तहां एक भाग प्रमाण उपपादका दंडविषैं स्थित जीव हैं। तहां एक जीव अपेक्षा मारणांतिक समुद्घातविषैं क्षेत्र तीन राजू लंबा सूच्यंगुलका संख्यातवां भागमात्र चौडा वा ऊंचा है। इन सनत्कुमार माहेंद्रवासी देवनिकरि कीया मारणांतिक दंडका घनरूप क्षेत्रफल प्रतरांगुलका संख्यातवां भागकरि तीन राजूकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना है। इसकरि दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण कह्या था ताकौं गुणिए

तत्र मारणांतिक समुद्घातविषैं क्षेत्रका प्रमाण होइ, बहुरि उपपाद विषै तिर्यंच जीवनिकरि कीया सनत्कुमार माहेंद्र प्रति उपपाद रूप दंड सो तीन राजू लंबा संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडा वा ऊंचा है। ताका क्षेत्र फल संख्यात प्रतरांगुलकरि गुण्या हूवा तीन राजू प्रमाण एक जीव अपेक्षा क्षेत्र हो है, इसकरि उपपाद वालोंके प्रमाणकौं गुणैं उपपादविषैं क्षेत्रका प्रमाण हो है। बहुरि तैजस अरु आहारक समुद्घातविषैं क्षेत्र जैसैं तेजोलेश्याके कथनविषैं कह्या है तैसे इहां भी संख्यात घनांगुलकरि संख्यात जीवनिकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितना जानना। बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्याविषैं होता ही नाही ऐसैं पद्मलेश्याका क्षेत्र कह्या। आगैं शुक्ललेश्याविषैं क्षेत्र कहिए है—

सख्या अधिकार विषैं जो शुक्ललेश्यावालोंका प्रमाण कह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थान स्वस्थानविषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान विषैं जीव हैं। अवशेष एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण वेदनासमुद्घातविषैं जीव हैं अवशेष एक भाग रह्या ताकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए तहां बहुभाग प्रमाण कषायसमुद्घातविषैं जीव हैं अवशेष एक भाग रह्या तिस प्रमाण वैक्रियिक समुद्घातविषैं जीव हैं। तहां शुक्ललेश्यावाले देवनिकी मुख्यताकरि एक जीवका शरीरकी अवगाहना तीन हाथ ऊंची इसके दशवे भाग मुखकी चौडाई याका "वासो त्ति गुणो परिही" इत्यादि सूत्रकरि क्षेत्र फल कीजिए तव संख्यात घनांगुल प्रमाण होइ इसकरि स्वस्थान स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तव स्वस्थान स्वस्थानविषै क्षेत्रका परिमाण होइ। बहुरि मूल शरीरकी अवगाहनातैं साढा च्यारि गुणा एक जीवके वेदना अर कषाय समुद्घातविषैं क्षेत्र है। इस साढा च्यारि गुणा घनांगुलका सख्यातवां भागकरि वेदना समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणिए तव वेदना समुद्घातविषैं क्षेत्र हो है अर कषाय समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणैं कषायसमुद्घातविषैं क्षेत्र हो है। बहुरि एक देवके विहार करतैं अपने मूल शरीरतैं बाह्य निकसि उत्तर विक्रियाकरि निपजाया शरीर पर्यंत आत्माके प्रदेश संख्यात योजन लंबा अर सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग

चौड़ा वा ऊंचा क्षेत्रकौं रोकैं याका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण भया इसकरि पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानवाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणें विहारवत्स्वस्थानविषें क्षेत्र हो है। वहुरि अपने अपने योग्य विक्रियारूप वनाया गजादिक शरीरनिकी अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण तिसकरि वैक्रियिक समुद्घात वाले जीवनिका प्रमाणकौं गुणें वैक्रियिक समुद्घातविषें क्षेत्र हो है। वहुरि शुक्ल लेश्या आनतादिक देवलोकनिविषें पाइए सो तहांतै मुख्यपनैं आरण अच्युत अपेक्षा मध्यलोक छह राजू है तातैं मारणांतिक समुद्घातविषै एक जीवके प्रदेश छह राजू लंवे अर सूच्यंगुलके संख्यातवे भाग चौड़े ऊंचे होंइ सो याका जो क्षेत्र फल एक जीव संवंधी भया ताकौं संख्यातकरि गुणिए जातैं आनतादिकतैं मरिकरि मनुष्य ही होइ तातैं मारणांतिक समुद्घातवाले संख्याते ही जीव हैं तातैं संख्यातकरि गुणिए ऐसै गुणें जो होइ सो मारणांतिक समुद्घातविषें क्षेत्र जानना। वहुरि तैजस आहारक समुद्घातविषैं जैसैं पद्मलेश्याविषैं क्षेत्र कह्या था तैसै इहां भी जानना। अव केवलसमुद्घातविषें क्षेत्र कहिए है—

कवल समुद्घात च्यारि प्रकार दंड १ कपाट २ प्रतर ३ लोक पूरण ४। तहां दंड दोय प्रकार एक स्थिति दंड १ एक उपविष्ट दंड २। वहुरि कपाट च्यारि प्रकार पूर्वाभिमुख स्थित कपाट १ उत्तराभिमुखस्थित कपाट २ पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाट ३ उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट ४ वहुरि प्रतर अर लोक पूरण एक एक ही प्रकार है। तहां स्थिति दंड समुद्घातविषैं एक जीवके प्रदेश वातवलय विना लोककी ऊंचाइ किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण है सो इस प्रमाणतैं लंवे वहुरि वारह अंगुल प्रमाण चौडे गोल आकार प्रदेश हो हैं सो- वासोत्ति गुणो परिही, इत्यादि सूत्रकरि याका क्षेत्रफल दोयसै सोला प्रतरांगुलनिकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना हो है जातैं वारह अंगुल गोल क्षेत्रका क्षेत्रफल एकसौ आठ प्रतरांगुल होइ ताकौं उंचाई दोय श्रेणीकरि गुणनकरैं इतना ही हो है। वहुरि एक समयविषें इस समुद्घातवाले जीव चालीस होंइ तातैं तिसकौं चालीसकरि गुणिए तव आठ हजार छसै चालीस प्रतरांगुलनिकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना स्थिति दंडविषैं क्षेत्र हो है। वहुरि इस स्थिति दंडके क्षेत्रकौं नवगुणा कीजिए तव उपविष्ट-दंडविषैं क्षेत्र हो है जातैं स्थितिदंडविषैं वारह

अंगुल प्रमाण चौडाई कही इहां तिसतैं तिगुणी छत्तीस अंगुल चौडाई है सो क्षेत्रफलविषैं नव गुणा क्षेत्र भया तातैं नव गुणा कीया ऐसैं करतैं सतहत्तर हजार सातसै साठि प्रतरांगुलनिकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणैं जो प्रमाण भया तितना उपविष्ट दंडविषैं क्षेत्र जानना । बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित कपाट समुद्घातविषैं एक जीवके प्रदेश वातवलय विना लोक प्रमाण तो लंबे हो हैं सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तौ लंबे हो हैं बहुरि उत्तर दक्षिण दिशाविषैं लोककी चौडाई प्रमाण चौडे हो हैं सो उत्तर दक्षिण दिशाविषैं लोक सर्वत्र सात राजू चौडा है तातैं सात राजू प्रमाण चौडे हो हैं । बहुरि बारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिमविषैं ऊंचे हो हैं सो याका क्षेत्रफल भुज कोटि वेधका परस्पर गुणनकरि चौईस अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण भया ताकौं एकसमयविषैं इस समुद्घातवाले जीवनिका प्रमाण चालीस है तातैं चालीसकरि गुणिये तब नवसै साठि सूच्यंगुलनिकरि जगत्प्रतरकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना पूर्वाभिमुख स्थित कपाटविषैं क्षेत्र हो है बहुरि स्थित कपाटविषैं बारह अंगुलकी ऊंचाई कही उपविष्ट कपाटविषैं तिगुणा छत्तीस अंगुलकी ऊंचाई हो है तातैं पूर्वाभिमुख स्थित कपाटके क्षेत्रतैं तिगुणा अठाइससै असी सूच्यंगुलनिकरि जगत्प्रतरकौं गुणैं जो प्रमाण होइ तितना पूर्वाभिमुख उपविष्ट कपाटविषैं क्षेत्र जानना । बहुरि उत्तराभिमुख स्थित कपाटविषैं एक जीवके प्रदेश वातवलयविना लोक प्रमाण लंबे हो हैं सो किंचित् ऊन चौदह राजू प्रमाण तो लंबे हो हैं बहुरि पूर्व पश्चिम दिशाविषैं लोककी चौडाईके प्रमाण चौडे हो हैं । सो लोक अधोलोकके तो नीचे सात राजू चौडा है अर अनुक्रमतैं घटता घटता मध्य लोकविषैं एक राजू चौडा है याका क्षेत्रफल निमित्त सूत्र कहिए है— 'मुहभूमी जोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि ॥' मुख कहिए अंत अर भूमि कहिए आदि इनिका जोग कहिए जोड तिनिका दल कहिए आधा तिसका पद कहिए गच्छका प्रमाण तिसकौं गुणैं पदधन कहिए सर्व गच्छका जोड्या हूआ प्रमाण सो हो है । सो इहां मुख तो एक राजू १ अर भूमि सात राजू ७ जोडिए तब आठ भये इनिका आधा च्यारि भया इसका अधोलोककी ऊंचाई सात राजू सो गच्छका प्रमाण सात राजूनिकरि गुणै जो अठाईस राजू प्रमाण भया तितना अधोलोक संबंधी प्रतररूप क्षेत्रफल जानना ।

वहुरि मध्यविषैं लोक एक राजू चौडा सो वंधता वंधता ब्रह्मस्वर्गके निकट पांच राजू भया सो इहां मुख एक राजू भूमि पांच राजू मिलाए छह हूआ ताका आधा तीन, वहुरि ब्रह्मस्वर्ग साढा तीन राजू ऊंचा सो गछका प्रमाण साढा तीनकरि गुणिये तब आधा ऊर्ध्व लोकका क्षेत्रफल साढा दश राजू हुआ । वहुरि ब्रह्मस्वर्गके निकट पांच राजू सो घटता घटता ऊपरि एक राजूका रह्या सो इहां भी मुख एक राजू भूमि पांच राजू मिलाएं छह हुआ आधा तीन सो ब्रह्मस्वर्गके ऊपरि लोक साढा तीन राजू है सो गच्छ भया ताकरि गुणे आधा उर्ध्व लोकका क्षेत्रफल साढा दश राजू हो है ऐसैं उर्ध्वलोक अर अधोलोकका सर्व क्षेत्रफल जोडे जगत्प्रतर भया सो ऐसैं लंबाई चौडाई तो जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेश हो हैं । वहुरि वारह अंगुल प्रमाण उत्तर दक्षिण दिशाविषै ऊंचा हो है सो जगत्प्रतरकौं वारह सूच्यंगुलनिकरि गुणें एक जीव संबंधी क्षेत्र वारह अंगुलगुणा जगत्प्रतर प्रमाण हो है । वहुरि इस समुद्घातवाले जीव चालीस हो हैं तातैं चालीसकरि तिस क्षेत्रकौं गुणै च्यारिसै अस्सी सूच्यंगुलनिकरि गुण्या हूआ जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख कपाटविषैं क्षेत्र हो है । वहुरि स्थितिविषैं वारह अंगुलकी उंचाई कही । उपविष्टविषैं तातै तिगुणी छतीस अंगुलकी ऊंचाई है तातैं पूर्वोक्त प्रमाणतैं तिगुणा चौदासै चालीस सूच्यंगुलनिकरि गुण्या हूवा जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाटविषैं क्षेत्र जानना । वहुरि प्रतर समुद्घातविषैं तीन वात वलय विना सर्वलोकविषैं प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं तीन वात वलयका क्षेत्र फल लोकके असंख्यातवे भाग प्रमाण है सो यह प्रमाण लोकका प्रमाणविषैं घटाएं अवशेष रहे तितना एक जीव संबंधी प्रतर समुद्घातविषैं क्षेत्र जानना । वहुरि लोक पूरणविषैं सर्वलोकाकाशविषैं प्रदेश व्याप्त हो हैं तातैं लोकप्रमाण एक जीव संबंधी लोकपूरणविषैं क्षेत्र जानना । सो प्रतर अर लोक पूरणके वीस जीव तौ करनेवाले अर वीस जीव समेटनेवाले ऐसैं एक समयविषैं चालीस पाइए परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र ही विषैं एक क्षेत्रावगाहरूप सर्व पाइए तातैं क्षेत्र तितना ही जानना । वहुरि दंड अर कपाटविषैं भी वीस जीव करनेवाले वीस समेटनेवालेनिकी अपेक्षा चालीस जीव हैं सो ए जीव जुदे जुदे क्षेत्रकौं भी रोकैं तातैं दण्ड अर कपाटविषैं चालीसका गुणकार कह्या । यह जीवनिका प्रमाण उत्कृष्टताकी अपेक्षा है ।

सुक्कस्स समुग्घादे असंखभागा य सव्वलोगो य ।

शुक्लायाः समुद्घाते असंख्यभागाश्च सर्वलोकश्च ।

जी० प्र०—इति सूत्रार्थेन केवलिसमुद्घातापेक्षया लोकस्यासंख्यातबहुभागाः लोकश्च शुक्ललेश्याक्षेत्रमुक्तं रज्जुषट्कायामसंख्यातसूच्यंगुलविष्कंभोत्सेधैश्च तिर्यग्गमतिबद्धोपपाददंडक्षेत्रफलं संख्यातप्रतरांगुलहतरज्जुषट्कमात्रं । अच्युतकल्पे संख्यातानामेव मरणात् तावतामेव तत्रोत्पत्तेः संख्यातेन गुणितं उपपादपदसर्वक्षेत्रं भवति ७ — । ६ । ४ ७ अत्रापि प्राग्वत् सर्वत्र गुणाकारभागहारानपवर्त्य पंचलोकान् संस्थाप्य आलापः ७ कर्तव्यः ॥ ५४४ ॥ इति क्षेत्राधिकारः ॥ अथ स्पर्शाधिकारं सार्धगाथाषट्केनाह—

स. चं. इस आधा सूत्रकरि शुक्ललेश्याका क्षेत्र लोकके असंख्यात भागनिविषैं एक भाग विना अवशेष बहुभाग प्रमाण वा सर्वलोक प्रमाण कह्या है सो केवल समुद्घात अपेक्षा जानना। बहुरि उपपादविषैं मुख्यपनैं अच्युत स्वर्ग अपेक्षा एक जीवके प्रदेश छह राजू लंबे अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौडे वा ऊंचे प्रदेश हो हैं सो इस क्षेत्र फलकौं अच्युत स्वर्गविषैं एक समयविषैं संख्यात ही मरैं तातैं तहां संख्यात ही उपजैं तातैं संख्यातकरि गुणैं जो प्रमाण भया तितना उपपादविषैं क्षेत्र जानना। इहां भी पूर्वोक्त प्रकार पांच प्रकार लोककी अपेक्षा जैसा भागहार गुणकार संभवै तैसैं जानि लेना ऐसैं शुक्ललेश्याविषैं क्षेत्र कह्या। इहां छह लेश्यानिका क्षेत्रका वर्णन दश स्थानविषैं कीया तहां ऐसा जानना। जो जिस अपेक्षा क्षेत्रका प्रमाण आवै तिस अपेक्षा मुख्यपनैं क्षेत्र वर्णन कीया है तहां संभवता अन्य स्तोक क्षेत्र अधिक जानि लेना ऐसैं ही आगैं स्पर्शनविषैं भी अर्थ समझना ॥ इति क्षेत्राधिकारः। आगैं स्पर्शनाधिकार साढा छह गाथानिकरि कहैं हैं—

फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ॥ ५४५ ॥

स्पर्शः सर्वो लोकस्त्रिस्थाने अशुभलेश्यानां ॥ ५४५ ॥

जी० प्र०—अशुभलेश्यात्रयस्य स्वस्थानसमुद्घातोपपादसामान्यस्थानत्रये स्पर्शः विवक्षितपदपरिणतैर्वर्तमानक्षेत्रसहितातीतकालस्पृष्टक्षेत्रलक्षणः सर्वलोकः ≡ विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते। तत्र कृष्णलेश्याजीवानां स्वस्थानस्वस्थानवेदनाकषायमारणांतिकोपपादेषु पंचपदेषु सर्वलोकः ≡ विहारवत्स्वस्थाने संख्यातसूच्यंगुलोत्सेधरज्जुप्रतर २ ७ – तिर्यग्लोकक्षेत्रफलं संख्यातसूच्यंगुलहतजगत्प्रतरं स्यात् = सू २ ७ वैक्रियिकसमुद्घाते
– ४९
७

सुरशैलमूलादारभ्य सहस्रारपर्यंतत्रसनाल्यां वातपुद्गलानां संच्छन्नरूपेण अवस्थानात्। तत्र सर्वत्रातीतकाले बादरवातकायिकानां विकुर्वणाद् रज्जुव्यासायामपंचरज्जूदय – – क्षेत्रफलं लोकसंख्यातभागमात्रं भवति ≡ ५ अत्र तैजसाहारककेवलिसमुद्घाताः पुनः न संभवंति। अत्रापि पंच
७।५।७ ३४३
–
७

लोकान् संस्थाप्य आलापः कर्तव्यः। एवं नीलकपोतयोरपि वक्तव्य ॥ ५४५ ॥ अथ तेजोलेश्यायां गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—क्षेत्रविषै तौ वर्तमानकालविषैं जेता क्षेत्र रोकै तिसहीका ग्रहण कीया बहुरि इहां वर्तमान काल विषैं जेता क्षेत्र रोके तीहि सहित जो अतीतकालविषैं स्वस्थानादिक विशेणको धरे जीव जेता क्षेत्र रोकि आया होइ तिस क्षेत्र हीका नाम स्पर्श जानना सो कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्याका स्पर्श स्वस्थानविषैं वा समुद्घातविषैं वा उपपादविषैं सामान्यपनैं सर्वलोक जानना। विशेषकरि दश स्थानकनिविषै कहिए है तहां कृष्णलेश्यावाले जीवनिकैं स्वस्थान स्वस्थानविषैं वा वेदना अर कषाय अर मारणांतिक समुद्घातनिविषैं वा उपपादविषैं सर्वलोक प्रमाण स्पर्श जानना। बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं एक राजू लंबा वा चौडा अर संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण ऊंचा तिर्यकलोक क्षेत्र है। याका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलनिकरि गुण्या हुवा जगत्प्रतर प्रमाण भया सोई विहारवत्स्वस्थानविषैं स्पर्श जानना। जातैं कृष्णलेश्यावाले गमन क्रिया युक्त त्रस जीव तिर्यगलोकही विषैं पाइए है। बहुरि वैक्रियिक समुद्घातविषै मेरुगिरिके मूलतैं लगाइ सहस्रार नामा स्वर्गपर्यंत ऊंचा त्रसनाली प्रमाण लंबा चौडा क्षेत्रविषैं पवन कायरूप पुद्गल सर्वत्र आच्छादित रूप भरि रहे हैं। बहुरि पवन कायिक जीवनिकै विक्रिया पाइए है सो अतीत काल अपेक्षा तहां सर्वत्र विक्रियाका सद्भाव है। ऐसा कोऊ क्षेत्र तिसविषैं रह्या नाहीं जहां वि-

क्रिया रूप न प्रवर्तै तातैं एक राजू लंबा वा चौडा अर पांच राजू ऊंचा क्षेत्र भया ताका क्षेत्र फल लोकके संख्यात-वे भाग प्रमाण भया सोई वैक्रियक समुद्घातविषैं स्पर्श जानना। बहुरि तैजस अर आहारक अर केवल समुद्घात इस लेश्याविषैं होता ही नाहीं इहां भी पंच प्रकार लोकका स्थापन करि यथा संभव गुणकार भागहार जानना। बहुरि जैसे कृष्णलेश्याविषैं कथन कीया तैसैं ही नीललेश्या कपोतलेश्याविषैं भी कथन जानना ॥ ५४५ ॥ आगें तेजोलेश्याविषैं कहै हैं—

तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ ५४६ ॥

तैजसश्च स्वस्थाने लोकस्य असंख्यभागमात्रं तु।
अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥ ५४६ ॥

जी० प्र०—तेजोलेश्यायाः स्वस्थाने स्पर्शः स्वस्थनात् स्वस्थानापेक्षया लोकस्यासंख्येय भागः। तु—पुनः, अष्टचतुर्दशभागाः अथवा किंचिदूना भवंति नियमेन विहारवत्स्वस्थानापेक्षया ॥ ५४६ ॥

स० चं०—तेजोलेश्याका स्वस्थानविषैं स्पर्श स्वस्थान स्वस्थान अपेक्षा तौ लोकका असंख्यातवां भागमात्र जानना। बहुरि विहारवत्स्वस्थान अपेक्षा त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं आठ भाग किछू घाटि प्रमाण स्पर्श जानना ॥ ५४६ ॥

एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूणं।
उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ॥ ५४७ ॥

एवं तु समुद्घाते नवचतुर्दशभागश्च किंचिदूनः।

उपपादे प्रथमपदं द्व्यर्धचतुर्दश च किंचिदूनं ॥ ५४७ ॥

जी० प्र०—समुद्घाते स्वस्थानवत् किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागः । किंचिदूननवचतुर्दशभागश्च स्पर्शो भवति मारणांतिकसमुद्घातापेक्षया । उपपादपदे द्व्यर्धचतुर्दशभागः किंचिदूनः इति सामान्येन तेजोलेश्यायास्त्रिस्थाने स्पर्श उक्तः । विशेषेण तु दशपदेषु उच्यते—तिर्यग्लोकस्य रज्जुप्रतरस्य क्षेत्रे — जलेचरसहितलवणोदककालोदकस्वयंभूरमणसमुद्रेभ्यः शेषसर्वसमुद्रक्षेत्रफलेऽपनीते शेषं शुभत्रयलेश्यास्वस्थानस्वस्थाने स्पर्शो

□ ७ —
७

भवति । तद्यथा जंबूद्वीपादयः स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यंताः सर्वे द्वीपसमुद्राः द्विगुणद्विगुणविस्ताराः संति । तत्र लक्षयोजनविष्कंभो जंबूद्वीपः तस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलं—

सत्तणवसुण्णपंचयछण्णवचउरेकपंचसुण्णं च ।

इत्येतावत् ७९०५६९४१५० इदमेकखंडं कृत्वा लवणसमुद्रे तादृशानि चतुर्विंशतिः २४ धातकीखंडे शतचतुश्चत्वारिंशत् १४४ कालोदके समुद्रे षट्शतद्वासप्ततिः ६७२ । पुष्करद्वीपे द्विसहस्राष्टशताशीतिः ।२८८०। तत्समुद्रे एकादशसहस्रनवशतचत्वारि ११९०४ । वारुणीद्वीपे अष्टचत्वारिंशत्सहस्रत्रिशतचतुरशीतिः ४८३८४ । तत्समुद्रे एकलक्षपंचनवतिसहस्रद्वासप्ततिः १९५०७२ क्षीरवरद्वीपे सप्तलक्षत्र्यशीतिसहस्रत्रिशतषष्टिः ७८३३६० । तदर्णवे एकत्रिंशल्लक्षैकोनचत्वारिंशत्सहस्रपंचशतचतुरशीतिः ३१३९५८४ एवं स्वयंभूरमणसमुद्रपर्यंतमानेतव्यानि । तदानयनसूत्रमिदं वाहिरसूई ५ ल, वग्गं ५ ल ५ ल, गुणिते पञ्चीस ल ल, अब्भंतरसूई १ ल, वग्ग १ ल १ ल, गुणिते लल परिहीणं २४ ल ल, जंबूवास १ ल ल, विभक्ते २४ । ल ल अपवर्तिते

१ ^   १ ^   १ । ल ल

तत्तियमेत्ताणि खंडाणि २४ रूऊणसला २ वारस १२ सलाग २ । गुणिदे दु २ १२ । २ वलयखंडाणि २४ । वाहिरसूई सलागा ५ कदी २५ तदंताखिलाखंडा वहिरसूई ५ ल वलयव्वासू २ ल, णा ३ ल, चउगुणिद्व्वास ४२ ल, हदा २४ ल ल, इगिलक्खवग्गभजिदा २४ लल जंबूसमवलयखंडाणि २४ अत्र सर्वद्वीपखंडानि त्यक्त्वा सर्वसमुद्रखंडेषु जंबूद्वीपसमचतुर्विंशतिखंडैर्भक्तेषु लवणसमुद्रे लवणसमुद्रसमखंड-
१ लल

मेकं १ । कालोदकखंडेषु भक्तेषु ६७२/२४ अष्टाविंशतिः २८ पुष्करसमुद्रखंडेषु भक्तेषु ११९०४/२४ चतुःशतषण्णवतिः ४९६ वारुणीसमुद्रखंडेषु भक्तेषु-

१९५०७२/२४ अष्टसहस्रैकशताष्टाविंशतिः ८१२८ । क्षीरसमुद्रखंडेषु भक्तेषु ३१३९५८४/२४ एकलक्षत्रिंशत्सहस्राष्टशतषोडश १३०८१६ एवं स्वयंभू-

रमणसमुद्रपर्यंतं गंतव्यं १३०८१६ पुनरत्र सर्वत्रैकादिचतुर्गुणोत्तरक्रमेण ऋणे प्रक्षिप्ते द्व्यादिषोडशोत्तरगुणसंकलितक्रमो भवति—

८१२८
४९६
२८
१

वि– १ छे छे २ | ० ३
३ २

वि– १ छे छे ३ | ० ३
३

० ० ०

२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षी
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वा
२	१६	१६			१	४	४			पु
२	१६				१	४				का
२	१				१					ल
धन					ऋण					

अत्र प्रकृतक्षेत्रफलोत्पत्तिनिमित्तं पुष्करसमुद्रस्य द्विगुणषोडशवर्गखंडाने आदिः षोडशगुणोत्तरस्वयंभूरमणसमुद्रसंख्यार्थं समुद्रत्रयशलाकोनं गच्छः धनमानीयते । पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय, अत्र गच्छो द्वीपसागरसंख्यार्धमिति गुणोत्तरस्य १६ मूलं ४ गृहीत्वा गच्छमात्रद्विकद्वयेषु परस्परं गुणितेषु रज्जुवर्गः स्यात् । = रूवपरिहीणे १ − रूऊणगुणेण हिये १ − मुहेण गुणयम्मि गुणगणियं = २ । १६ । १६ पुनरिदं-
७ । ७ = ७ । ७ = ७ ७ । १५ ७ । ७ । १५

चतुर्विंशतिजंबूद्वीपक्षेत्रफलयोजनांगुलवर्गप्रतरांगुलैः संगुणय पश्चात्—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।

इति लक्षयोजनछेदमात्रद्विकद्वयैर्जातलक्षयोजनवर्गेण एकयोजनांगुलछेदमात्रद्विकद्वयैर्जनितैकयोजनांगुलवर्गेण मेरुमध्यरूछेदस्य द्विकवर्गेण जलचरसमुद्रशलाकात्रयस्य गुणोत्तरधनेन च १६ । १६ । १६ हतप्रतरांगुलेन भक्त्वा भाज्यभागहारान् निरीक्ष्य

= ४ । २ । १६ । १६ । २४ । ७९०५६९४१५० । ७६८००० । ७६८०००
४ । ७ । ७ । १५ । १ । ल । १ ल । ७६८००० । ७६८०० । ४ १६ । १६ । १६

अपवर्त्य = ७९०५६९४१५० / ७ । ७ । १ ल । १ ल । ४ । ५ हारान् परस्परं गुणयित्वा = ७९०५६९४१५० / ९८०००००००००० भक्ते साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरं स्यात् = १/१२३९ अत्रत्य ऋणमानीयते 'पदमेते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिये' अत्रापि गच्छार्धत्वाद् गुणोत्तरचतुष्कस्य मूलं गृहीत्वा गच्छमात्रद्विकेषु परस्परं गुणितेषु रज्जुः — १/७ रूपपरिहीणे — १/७ रूऊण गुणेण हिये — १/७ २ मुहेण १६ । गुणयम्मि गुणगणियं — १/७ २।१६ इदं चतुर्विंशतिखंडजंबूद्वीपक्षेत्र-फलैक योजनांगुलवर्गप्रतरांगुलैः संगुण्य पश्चात्—

> विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
> तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इति लक्षयोजनैरेकयोजनांगुलैर्वैर्लच्छेदस्य द्विकेन समुद्रशलाकात्रयजगुणोत्तरधनेन च । ४ । ५ । ४ । हतसूच्यंगुलेन भक्त्वा—

— १/७ । १६/३ । ४/२ । २४/१ ल । ७९०५६९४१५०/७६८००० । ७६८०००/२ । ७६८०००/४ । ४ । ४ । अपवर्तिते संख्यातसूच्यंगुलभाजितजगच्छ्रेणिमात्रं भवति — २ ७ अनेन किंचिदूनितं = १/१२३९ पूर्वोक्तं साधिकधगरयभक्तजगत्प्रतरमात्रं ऋणक्षेत्रं सिद्धं । इदं रज्जुप्रतरे = /४९ समच्छेदेनापनीय = ११९० / ४९ । १२३९ अपवर्तनार्थं भाज्येन भागहारं भक्त्वा सातिरेकमाप ५१ भक्तजगत्प्रतरं विवक्षितक्षेत्रस्य तलस्पर्शो भवति = १/५१ इदमूर्ध्वस्पर्शग्रहणार्थं जीवोत्सेधजनितसंख्यात-सूच्यंगुलैर्गुणितं शुभलेश्यानां स्वस्थानस्वस्थानस्पर्शो भवति = २ ७/५१ इदं दृष्ट्वा तेजोलेश्यायाः स्वस्थानस्वस्थानापेक्षया लोकासंख्येयभागः स्पर्शः इत्युक्तं । विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिकसमुद्घाते च तेजोलेश्याया अष्टचतुर्दशभागः किंचिदूनः स्यात् । ८/१४ — कुतः ? सनत्कुमारमाहेंद्र-

जानां तेजोलेश्योत्कृष्टांशानां उपर्यधोऽच्युतां तृतीयपृथ्व्यंतं विहारसंभवात् । पृथ्वीपटलरहिताधस्तनयोजनानामपनयनात् म $\equiv$ १४/३४३ फ श १ इ $\equiv$ ८–इति त्रैराशिकलब्धस्य च तत्प्रमाणत्वात् । अथवा भवनत्रयस्य उपर्यत्रः स्वैरं सौधर्मद्वयतृतीयपृथ्व्यंतं देवप्रयोगेन अच्युतांतं च विहार-/३४३ सद्भावात् तावान् संभवति । मारणांतिकसमुद्घाते तेजोलेश्यायाः किंचिदूननवचतुर्दशभागः भवनत्रयसौधर्मचतुष्कजानां तृतीयपृथिव्यां स्थित्वा अष्टप-पृथ्वीसंबंधिबादरपर्याप्तपृथ्वीकायेषु उत्पत्तुं मुक्ततत्समुद्घातदंडानां संभवति । ९ – तैजसाहारकसमुद्घाते संख्यातघनांगुलानि ६ ७ केवलिसमुद्घा-/१४ तोऽत्र न संभवति । उपपादपदे किंचिदूनद्व्यर्धचतुर्दशभागः । ननु तेजोलेश्यतत्पदपरिणतैः सानत्कुमारमाहेंद्रांतं क्षेत्रे स्पृष्टे त्रिरज्जूत्सेधात् किंचिदून-त्रिचतुर्दशभागः कथं नोच्यते सौधर्मद्वयादुपरि संख्यातयोजनानि गत्वा सानत्कुमारद्वयप्रारंभो द्व्यर्धरज्जूदये परिसमाप्तिः तच्चरमे च तेजोलेश्या ना-स्तीति केषां चिदुपदेशाश्रयणात् चित्रास्थिततिर्यग्मनुष्याणां ईशानपर्यंतमुपपादसंभवाद्वा । चशब्दात्तेजोलेश्योत्कृष्टांशभूतानां सनत्कुमारमाहेंद्रांतिम-चक्रेंद्रकश्रेणिबद्धे उत्पादं वदतां आचार्याणां मते यथासंभवं तस्यापि संभवादनियमः ॥ ५४७ ॥

स० चं०—बहुरि समुद्घातविषैं ऐसैं स्वस्थानवत् किछू घाटि त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना वा मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा किछू घाटि त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं नवभाग प्रमाण स्पर्श जानना । बहुरि उपपादविषैं त्रसनालीके चौदह भागनिविषैं किछू घाटि ड्योढ भाग प्रमाण स्पर्श जानना ऐसैं सामान्यपनैं तेजोलेश्याका तीनौं स्थानकनिविषैं स्पर्श कह्या बहुरि विशेषकरि दश स्थानकनि विषैं स्पर्श कहिए है तिर्यग्लोक एक राजूका लंबा चौडा है तिसविषै लवणोद कालोदक स्वयंभूरमण इनि तीनि समुद्रनिविषैं जलचर जीव पाइए है अन्य समुद्रनिविषै जलचर जीव नाहीं सो जिनिविषैं जलचर जीव नाहीं तिनि समुद्रनिका जेता क्षेत्र फल होइ सो तिस तिर्यग्लोकरूप क्षेत्रविषै घटाए अवशेष जेता क्षेत्र रहे तितना पीतपद्म शुक्ललेश्यानिका स्वस्थान स्वस्थानविषैं स्पर्श जानना जातैं एकेंद्रियादिककैं शुभलेश्यानिका अभाव है सोई कहिए है—

जंबूद्वीपतैं लगाइ स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत सर्वद्वीप समुद्र दूणां दूणां बिस्तारकौं धरैं हैं तहां जंबूद्वीप लाख योजन विस्तारकौं धरैं हैं याका सूक्ष्म तारतम्य रूप क्षेत्र फल कहिए है—

सत्त णव सुण्ण पंच य छण्णव चउरेक पंच सुण्णं च ।

याका अर्थ—सात नव बिंदी पांच छह नव च्यारि एक पांच बिंदी इतने अंकनिकरि जो प्रमाण भया तितना जंबूद्वीपका सूक्ष्म क्षेत्र फल है । ७ ९० ५६ ९४ १ ५० सो एतावन्मात्र एक खण्ड कल्पना कीया बहुरि ऐसे ऐसे लवण समुद्र विषैं खण्ड कल्पिए तब चौबीस २४ होंइ । धातकीखंडविषैं एकसौ चवालीस १४४, होंइ कालोद-समुद्रविषैं छसै बहत्तरि ६७२ होंइ । पुष्कर द्वीपविषैं अठाइससे असी २८८० होंइ पुष्कर समुद्रविषैं ग्यारह हजार नवसै च्यारि ११९०४ होंइ । वारुणी द्वीपविषैं अड़तालीस हजार तीनसै चौरासी ४८३८४ होंइ । वारुणी समुद्र-विषैं एक लाख पिचाणवे हजार बहत्तरि १९५०७२ होंइ । क्षीरवर द्वीपविषैं सातलाख तियासी हजार तीनसै साठि ७८३३६० होंइ । क्षीरवर समुद्रविषैं इकतीस लाख गुणतालीस हजार पांचसै चउरासी ३१३९५८४ होंइ । ऐसैं स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंतविषैं खंड साधन करना इनि खंडनिके प्रमाणका ज्ञान होनेके निमित्त सूत्र कहिए है—

बाहिर सूईवग्गं अब्भंतर सूइवग्ग परिहीणं ।
जंबूवासविहत्ते तेत्तियमेत्ताणि खंडाणि ॥

बाह्य सूचीका वर्गविषैं अभ्यंतर सूचीका प्रमाण घटाए जो प्रमाण रहै ताकौं जंबूद्वीपका व्यासके वर्गका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने जंबूद्वीप समान खंड जानने । अंततैं लगाइ वाके सन्मुख अंत पर्यंत जेता सूधा क्षेत्र होइ ताकौं बाह्य सूची कहिए । बहुरि आदितैं लगाइ वाके सन्मुख आदि पर्यंत जेता सूधा क्षेत्र होइ ताकौं अभ्यंतर सूची कहिए । सो इहां लवणसमुद्रविषैं उदाहरण करि कहिये है—

लवण समुद्रकी बाह्य सूची पांच लाख योजन ताका वर्ग कीजिये तब लाख गुणां पचीस लाख भया । बहुरि तिसहीकी अभ्यंतर सूची एक लाख योजन ताका वर्ग लाख गुणा लाख योजन सो घटाये अवशेष लाख गुणा चौबीस लाख ताका जंबूद्वीपका व्यास लाख योजन ताका वर्ग लाख गुणां लाख योजन ताका भाग दीजिये

तव चौईस रहे सो जंबूद्वीप समान चौवीस खंड लवणसमुद्रविषैं जानने। ऐसें ही सर्व द्वीप समुद्रनिविषैं साधने इस साधनके अर्थि और भी प्रकार कहै हैं—

रूऊण सला वारस सलागगुणिदे दु वलयखंडाणि।
वाहिरसूइ सलागा कदी तदंताखिला खंडा॥

इहां व्यासविषैं जितना लाख कह्या होइ तितने प्रमाण शलाका जानना। सो एक घाटि शलाकाकौं बारह शलाकाकरि गुणैं जंबूद्वीप प्रमाण वलयखंड हो हैं। जैसे लवणसमुद्रनिविषैं व्यास दोय लाख योजन है तातैं शलाकाका प्रमाण दोय तामें एक घटाएं एक ताका बारह शलाकाका प्रमाण चौईसकरि गुणैं चौईस खंड हो हैं। बहुरि बाह्य सूची संबंधी शलाकाका वर्ग प्रमाण तीहिं पर्यंत खंड हो है। जैसैं लवणसमुद्रविषैं बाह्य सूची पांच लाख योजन है तातैं शलाकाका प्रमाण च्यारि ताका वर्ग पचीस सोई लवण समुद्रपर्यंत सर्व खंडनिका प्रमाण हो है। जंबूद्वीपविषैं एक खंड अर लवणसमुद्रविषैं चौवीस खंड मिलिकरि पचीस खंड हो हैं बहुरि और भी विधान कहै हैं—

वाहिरसूईवलयव्वासूणा चउगुणिद्दवासहदा।
इकलक्खवग्गभजिदा जंबूसमवलयखंडाणि॥ १॥

बाह्य सूचीविषैं वलयका व्यास घटाएं जो रहै ताका चौगुणा व्यासतैं गुणिए एक लाखके वर्गका भाग दीजिये तब जंबूद्वीपके समान गोलाकार खंडनिका प्रमाण हो है। उदाहरण—जैसैं लवणसमुद्रकी बाह्य सूची पांचलाख योजन तिसमें व्यास दोय लाख योजन घटाइए तब तीन लाख योजन भये। याकौं चौगुणा व्यास आठ लाख योजन करि गुणिये तब लाख गुणा चौईस लाख भये। याकौं एक लाखका वर्गका भाग दीजिये तब चौईस पाये तितने ही जंबूद्वीप समान लवण समुद्रविषैं खंड हैं ऐसैं सूत्रानितैं साधनकरि खंड ज्ञान करना। बहुरि इहां द्वीप संबंधी खंडानिकौं छोडि सर्व समुद्रसंबंधी खंडनिका ही ग्रहण कीजिये तब जंबूद्वीप समान चौईस खंडनिका भाग समुद्रखंडनिकौं दीए जो प्रमाण आवै तितना सर्व समुद्रनिविषैं लवणसमुद्र समान खंड जानने सो लवण

समुद्रके खंडनिकौं चौईस भाग दीए एक पाया सो लवण समुद्र समान एक खंड भया। कालोद समुद्रके छसै बहत्तरि खंडनिकौं चौवीसका भाग दिये अट्ठाईस पाये सो कालोद समुद्रविषैं लवणसमुद्र समान अठाईस खंड हो हैं। ऐसैं ही पुष्कर समुद्रके खंडानिकौं भाग दीये च्यारिसै छिनवै खंड हो हैं। वारुणी समुद्रके खंडनिकौं भाग दीये आठ हजार एकसौ अठाइस खंड हो हैं। क्षीरसमुद्रके खंडनिकौं भाग दिये एक लाख तीस हजार आठसै सोलह खंड हो हैं ऐसैं ही स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत जानना। सो जाननेका उपाय कहै हैं—

यहु लवलसमुद्रसमान खंडनिका प्रमाण ल्यावनेकी रचना है।

धनराशि					ऋणराशि					समुद्र
२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षीरवर
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वारुणीवर
२	१६	१६			१	४	४			पुष्कर
२	१६				१	४				कालोद
२	१				१					लवणोद

दोय आदि सोलह सोलहगुणां तो धन जानना अर एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण जानना। सो धनविषैं ऋण घटाएं जो प्रमाण रहै तितने लवणसमुद्रसमान खंड जानने। उदाहरण कहिये हैं–प्रथमस्थानंविषैं धन दोय अर रिण एक सो दोयमैं एक घटाएं एक रह्या सो लवण समुद्रविषैं एक खंड भया। बहुरि दूसरे स्थानके दोयकौं सोलह गुणा कीजिये तब बत्तीस तो धन होइ अर एककौं च्यारि गुणा कीजिये तब च्यारि रिण भया सो बत्तीसमें च्यारि घटाएं अठाइस रह्या सो दूसरा कालोदक समुद्रविषैं लवण समुद्र समान अठाईस खंड हैं। बहुरि तीसरे स्थानक बत्तीसकौं सोला गुणा कीएं पांचसै बारा तो धन होइ अर च्यारिकौं चौगुणा कीएं

सोला ऋण होइ सो पांचसै बारामैंस्यों सोला घटाए च्यारिसौं छिनवै रह्या सो इतना ही तीसरा पुष्कर समुद्रविषैं लवण समुद्र समान खंड जानने। ऐसैं स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत जानना। सो इहां जलचर रहित समुद्रनिका क्षेत्र फल कहिए है—

तहां जो द्वीप समुद्रनिका प्रमाण है ताकौं इहां समुद्रनिहीका ग्रहण है तातैं आधा कीजिये तामैं जलचर सहित तीन समुद्र घटाएं जलचर रहित समुद्रनिका प्रमाण हो हैं सो इहां गच्छ जानना सो दोय आदि सोला सोला गुणा धन कह्या था सो धनका जलचररहित समुद्रनिका धनविषैं कितना क्षेत्रफल भया ? सो कहिए है—

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियरूवपरिहीणे।
रूऊणगुणेणहिए मुहेणगुणियम्मि गुणगणियं॥

इस सूत्रकरि गुणकार रूपराशिका जोड हो है याका अर्थ-गच्छप्रमाण जो गुणकार ताकौं परस्पर गुणिकरि एक घटाइए बहुरि एक घाटि गुणकारके प्रमाणका भाग दीजिए बहुरि मुख जो आदिस्थान ताकरि गुणिए तब गुणकाररूप राशिविषैं सर्व जोड होइ। सो प्रथम अन्य उदाहरण दिखाइए है-जैसैं आदिस्थानविषैं दश अर पीछैं चौगुणा चौगुणा बधता ऐसैं पंच स्थानकनिविषैं जो जो प्रमाण भया तिस सर्वका जोड दीएं कितना भया ? सो कहिए है। इहां गच्छका प्रमाण पांच अर गुणकारका प्रमाण च्यारि सो पांच जायगा च्यारि च्यारि माडि परस्पर गुणिए तब एक हजार चौबीस हूवा, यामैं एक घटाएं एक हजार तेईस हूवा। बहुरि याकौं एक घाटि गुणकारका प्रमाण तीनका भाग दीजिए तब तीनसै इकतालीस हूवा। बहुरि आदिस्थानका प्रमाण दश तिसकरि याकौं गुणैं चौतीससै दश ३४१० भया सोई सर्वका जोड जानना। कैसैं ? पंचस्थानकनिविषैं ऐसा प्रमाण है—१०। ४०। १६०। ६४०। २५६०। सो इनिका जोड चौतीससै दश ही हो है। ऐसैं अन्यत्र भी जानना सो इस ही सूत्रकरि इहां गच्छका प्रमाण तीन घाटि द्वीपसागरके प्रमाणतैं आधा प्रमाण लीए हैं। सो सर्व द्वीप समुद्रनिका प्रमाण कितना है ? सो कहिए है एक राजूके जेते अर्धच्छेद हैं तिनिमैं लाख योजनके अर्धच्छेद अर एक योजनके साठि लाख अड-

सठि हजार अंगुल तिनिके अर्धच्छेद अर सूच्यंगुलके अर्धच्छेद अर मेरुके मस्तक प्राप्त भया एक अर्धच्छेद इतने अर्धच्छेद घटाएं जेता अवशेष प्रमाण रह्या तितने सर्व द्वीप समुद्र हैं। अब इहां गुणोत्तरका प्रमाण सोलह सो ग-च्छप्रमाण गुणोत्तरनिकौं परस्पर गुणना। तहां प्रथम एक राजूका अर्धच्छेद राशितें आधाप्रमाण मात्र जायगा सोलह सोलह माडि परस्पर गुणनकीए राजूका वर्ग हो है सो कैसें ? सो कहिए है—

विवक्षित गच्छका आधा प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकारका वर्गमूल माडि परस्पर गुणन कीएं जो प्रमाण होइ सोई संपूर्ण विवक्षित गच्छप्रमाण मात्र विवक्षित गुणकारका वर्गमूल माडि परस्पर गुणन कीएं प्रमाण हो है। जैसैं विवक्षित गच्छ आठ ताका आधा प्रमाण च्यारि सो च्यारि २ जायगा विवक्षित गुणकार नव नव माडि परस्पर गुणें पैंसाठिसै इकसठि होइ सोई विवक्षित गच्छमात्र आठ जायगा विवक्षित गुणकार नवका वर्गमूल तीन तीन माडि परस्पर गुणन कीएं पैंसठिसै इकसठि हो हैं ऐसैं ही इहां विवक्षित गच्छ एक राजूके अर्धच्छेद ताका अर्ध-च्छेद प्रमाण मात्र जायगा सोलह सोलह सोलह मांडि परस्पर गुणें जो प्रमाण होइ सोई राजूके अर्धच्छेद मात्र सोलहका वर्गमूल च्यारि च्यारि माडि परस्पर गुणें प्रमाण होइ सो राजूके अर्धच्छेद मात्र जायगा दूवा माडि गुणें तौ राजू होइ अर तितनी ही जायगा दोय दोयवार दूवा माडि परस्पर गुणें राजूका वर्ग हो है सो जगत्प्रतरकौं दोयवार सातका भाग दीजिए इतना हो है। बहुरि यासैं एक घटाइए जो प्रमाण होइ ताकौं एक घाटि गुणकारकौं प्रमाण पंद्रह ताका भाग दीजिए। बहुरि इहां आदिविषैं पुष्कर समुद्र है तिसविषैं लवण समुद्र समान खंडनिका प्रमाण दोयकौं दोयवार सोलहकरि गुणिए इतना प्रमाण है सोई मुख भया ताकरि गुणिए ऐसैं करतैं एकघाटि जगत्प्रतरकौं दोय सोलह सोलहका गुणकार अर सात सात पंद्रहका भागहार भया। बहुरि इस राशिका एक लवण समुद्रविषैं जंबूद्वीप समान चौईस खंड हो है तातैं चौईसका गुणकार करना। बहुरि जंबूद्वीपविषैं सूक्ष्म क्षेत्रफल सात नव आदि अंकमात्र है तातैं ताका गुणकार करना। बहुरि एक योजनके सात लाख अडसठि हजार अंगुल हो हैं सो इहां वर्गराशिका ग्रहण है अर वर्गराशिका गुणकार भागहार वर्गरूप ही हो है तातैं दोयवार सात लाख अडसठि

हजारका गुणकार जानना। बहुरि एक सूच्यंगुलका वर्ग प्रतरांगुल हो है तातैं इतने प्रतरांगुलनिका गुणकार जानना। बहुरि—

विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥

इस करण सूत्रके अभिप्रायकरि द्वीप समुद्रनिके प्रमाणविषैं राजूके अर्धच्छेदनितैं जेते अर्धच्छेद घटाए हैं तिनि का आधा प्रमाणमात्र गुणकार सोलहकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तितनेका पूर्वोक्त राशिविषैं भागहार जानना। सो इहां जाका आधा ग्रहण कीया तिस संपूर्णराशिमात्र सोलहका वर्गमूल च्यारि तिनिकौं परस्पर गुणें सोई राशि हो है सो आपने अर्धच्छेदमात्र दूवानिकौं परस्पर गुणें तौ विवक्षितराशि होइ अर इहां च्यारि कहे हैं तातैं तितने ही मात्र दोयवार दूवानिकौं परस्पर गुणें विवक्षित राशिका वर्ग हो है तातैं इहां लाख योजनका अर्धच्छेद प्रमाण दोय दूवानिका परस्पर गुणें तौ लाखका वर्ग भया। एक योजनका अंगुलनिके प्रमाणका अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानिकौं परस्पर गुणें एक योजनके अंगुल सात लाख अडसठि हजार तिनिका वर्ग भया। बहुरि मेरुमध्यसंबंधी एक अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानिकौं परस्पर गुणें च्यारि भया बहुरि सूच्यंगुलका अर्धच्छेदमात्र दोय दूवानिकौं परस्पर गुणें प्रतरांगुल भया ऐसें ए भागहार जानने। बहुरि जलचरसाहित तीन समुद्र गच्छविषैं घटाए हैं तातैं तीनवार गुणोत्तर जो सोलह ताका भी भागहार जानना। ऐसैं जगत्प्रतरकौं प्रतरांगुल अर दोय अर सोलह अर चौबीस अर सातसै निवे कोडि छप्पन लाख चौराणवे हजार एकसौ पचास अर सात लाख अडसठि हजार, अर सात लाख अडसठि हजारका तौ गुणकार भया। बहुरि प्रतरांगुल अर सात अर सात अर पंद्रह अर एक लाख अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजार अर च्यारि अर सोलह अर सोलह अर सोलहका भागहार भया। इहां प्रतरांगुल अर दोयवार सोलह अर दोयवार सात लाख अडसठि हजार गुणकार भागहारविषैं समान देखि अपवर्तनकीएं अर गुणकारविषैं दोय चौईसकौं परस्पर गुणें अठतालीस

अर भागहारविषैं पंद्रह सोलह इनिकौं परस्पर गुणें दोयसै चालीस तहां अडतालीसकरि अपवर्तनकीएं भागहार विषैं पांच रहे ऐसैं अपवर्तन कीएं जो अवशेष प्रमाण रह्या ७९०५६९४१५० तहां सर्व भागहारनिकौं

७।७।१ल।१ल।४।५।

परस्पर गुणि ताकौं गुणकारनिके अंकनिका भाग दीएं किछू अधिक बारहसै गुणतालीस भए। ऐसें धनराशिविषैं सर्व क्षेत्रफल साधिक 'धगरय' जो बारहसै गुणतालीस ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण क्षेत्रफल भया। इहां कटपयपुरस्थवर्णैः इत्यादि सूत्रके अनुसारि अक्षर संज्ञाकरि धगरय शब्दतें नव तीन दोय एक जनित प्रमाण ग्रहण करना। अब इहां एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण कह्या था सो जलचर रहित समुद्रनिविषैं ऋणरूप क्षेत्रफल ल्याइए है। 'पदमेत्ते गुणयारे' इत्यादि करणसूत्रकरि प्रथम गच्छमात्र गुणकार च्यारिका परस्पर गुणन करना। तहां राजूके अर्धच्छेद प्रमाणका अर्धप्रमाणमात्र च्यारिकौं परस्पर गुणें एक राजू हो है। कैसे ? सो कहिए है—

सर्वद्वीप समुद्रका प्रमाणमात्र गच्छ कल्पैं इहां आधा प्रमाण है तातें गुणकार च्यारिका वर्गमूल दोय ग्रहण सो संपूर्ण गच्छविषैं एक राजूके अर्धच्छेद कहे हैं तातैं एक राजूके अर्धच्छेद प्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणें एक राजू प्रमाण भया सो जगच्छ्रेणीका सातवां भाग प्रमाण है। यामें एक घटाइए जो प्रमाण होइ ताकौं एक घाटि गुणकार तीनका भाग दीजिए। बहुरि पुष्कर समुद्र अपेक्षा आदि स्थानविषैं प्रमाण सोलह ताकरि गुणिए ऐसें एक घाटि जगच्छ्रेणीकौं सोलहका गुणकार बहुरि सात अर तीनका भागहार भया याकौं पूर्वोक्त प्रकार चोवीस खंड अर जंबूद्वीपका क्षेत्रफल रूप योजननिका प्रमाण अर एक योजनके अंगुलनिका वर्गमात्र बहुरि सूच्यंगुलका इहां वर्ग है तातैं इतनौं प्रतरांगुलनिकरि वर्गमात्र बहुरि गुणन करना। बहुरि—

विरलिदरासीदोपुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥ १ ॥

इस सूत्र अनुसारि जितने गच्छविषैं राजू अर्धच्छेद प्रमाणमें घटाइए हैं ताका जो आधा प्रमाण है तितने

च्यारिके अंकनिकौं परस्पर गुणैं जो प्रमाण होइ तितनेका भागहार जानना सो जिस राशिका आधा प्रमाण लिया तिस राशिमात्र च्यारिका वर्गमूल दोयकौं परस्पर गुणिए तहां लक्ष योजनके अर्धच्छेद प्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणें एक लाख भए। एक योजनके अंगुलनिका अर्धच्छेद प्रमाण दूवानिकौं परस्पर गुणें सात लाख अडसठि हजार अंगुल भए। बहुरि मेरुमध्यके अर्धच्छेदमात्र दूवाका दोय भए बहुरि सूच्यंगुलका अर्धच्छेदमात्र दूवानिकौं परस्पर गुणै सूच्यंगुल भया ऐसैं भागहार भए। बहुरि तीन समुद्र घटाएं तातैं तीनवार गुणोत्तर जो च्यारि ताका भी भागहार जानना। ऐसैं एक घाटि जगच्छ्रेणीकौं सोलह अर च्यारि अर चौईस अर सातसै निवै कोडि छप्पन लाख चौराणवै हजार एकसौ पचास अर सात लाख अडसठि हजार अर सात लाख अडसठि हजारका तौ गुणकार भया बहुरि सात अर तीन अर सूच्यंगुल अर एक लाख अर सात लाख अडसठि हजार अर दोय अर च्यारि अर च्यारि अर च्यारिका भागहार भया तहां यथायोग्य अपवर्तन कीएं संख्यात सूच्यंगुलकरि गुण्या हूवा जगच्छ्रेणीमात्र क्षेत्र फल भया सो इतने पूर्वोक्त धन राशिरूप क्षेत्रफलविषैं घटावना सो तिस महत् राशिविषै किंचित् मात्र घट्या सो घटाएं किंचित् ऊन साधिक वारहसै गुणतालीसकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण सर्व जलचर रहित समुद्रनिका क्षेत्र फल ऋणरूप सिद्ध भया। याकौं एक राजू लंबा चौडा ऐसा जो जगत्प्रतरका गुणचासवां भाग मात्र रज्जू प्रतर क्षेत्र तामैं समच्छेद करि घटाइए तब जगत्प्रतरकौं ग्यारहसैं निवैका गुणकार अर गुणचास गुणां वारहसै गुणतालीसका भागहार भया। तहां अपवर्तन करनेके अर्थि भाज्यके गुणकारका भागहारका भाग दीएं किछू अधिक इक्यावन पाए ऐसैं साधिक काम जो अक्षर संज्ञाकरि इक्यावन ताकरि भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्रका प्रतररूप तनका स्पर्श भया। याकौं ऊचाईका स्पर्श ग्रहणके अर्थि जीवनिकी ऊचाईका प्रमाण संख्यात सूच्यंगुल तिनकरि गुणें साधिक इक्यावनकरि भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणा जगत्प्रतरमात्र शुभलेश्यानिका स्वस्थान स्वस्थानविषैं स्पर्श हो है। याकौं देखि तेजो लेश्याका स्वस्थान स्वस्थानकी अपेक्षा स्पर्श लोकका असंख्यातवां भागमात्र कह्या तातैं यहु क्षेत्र लोकके असंख्यातवे भागमात्र है। बहुरि तेजोलेश्याका

विहारवत्स्वस्थान अर वेदना समुद्घात अर कषाय समुद्घात अर वैक्रियिक समुद्घातविषैं स्पर्श किछू घाटि चौदह भागमैं आठ भाग प्रमाण है। काहेतैं ? सो कहिए है—

लोक चौदह राजू ऊंचा है। त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लंबा चौडा है सो तहां चौदह राजूविषैं सनत्कुमार माहेंद्रकेवासी उत्कृष्ट तेजोलेश्यावाले देव ऊपरि अच्युत सोलहां स्वर्ग पर्यंत गमन करैं हैं अर नीचें तीसरी नरक पृथ्वीपर्यंत गमन करैं हैं सो अच्युत स्वर्गतैं तीसरा नरक आठ राजू है तातैं चौदह भागमें आठ भाग कहे अर तिसमें तिस तीसरा नरककी पृथ्वीकी मोटाईविषैं जहां पटल न पाइए ऐसा हजार योजन घटावने तातैं किंचित् ऊन कहे हैं। इहां जो चौदह घनरूप राजूनिकी एक शलाका होइ तौ आठ घनरूप राजूनिकी केती शलाका होइ? ऐसें त्रैराशिक कीएं आठ चौदहां भाग आवै है। अथवा भवनत्रिक देव ऊपरि वा नीचैं स्वयमेव तौ सौधर्म ईशान स्वर्गपर्यंत वा तीसरा नरकपर्यंत गमन करै है अर अन्य देवके लेगए सोलह्वां स्वर्गपर्यंत विहार करैं हैं तातैं भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श संभवै है। बहुरि तेजोलेश्याका मारणांतिक समुद्घातविषैं स्पर्श चौदह भागमें नव भाग किछू घाटि संभवै है। काहेतैं? भवनत्रिक देव वा सौधर्मादिक च्यारि स्वर्गनिकेवासी देव तीसरे नरक गएं अर तहां ही मरण समुद्घात कीया बहुरि ते जीव आठवीं भुक्ति पृथ्वीविषैं वादरपृथ्वी कायके जीव उपजते हैं तातैं तहां पर्यंत मरण समुद्घातरूप प्रदेशनिका विस्तारकरि दंड कीया। तिन आठई पृथ्वीतैं तीसरा नरक नव राजू है अर तहां पटलरहित पृथ्वीकी मोटाई घटावनी तातैं किंचित् ऊन नव चौदह्वां भाग संभवै है। बहुरि तैजस समुद्घात अर आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना जातैं ए मनुष्य लोकविषैं ही हो है बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्यावालेके होता नाहीं। बहुरि उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं किछू घाटि डेढभागमात्र जानना सो मध्यलोकतैं तेजोलेश्यातैं मरिकरि सौधर्म ईशानका अंत पटलविषैं उपजैं तीहि अपेक्षा संभवै। इहां कोऊ कहै कि तेजोलेश्याके उपपादविषैं सनत्कुमार माहेंद्रपर्यंत देवका स्पर्श पाइए है सो तीन राजू ऊंचा है तातैं चौदह भागनिविषैं किंचित् ऊन तीन भाग क्यों न कहिए? ताका समाधान–सौधर्म ईशानतैं ऊपरि संख्यात योजन जाइ सनत्कुमार

माहेंद्रका प्रारंभ हो है तहां प्रथम पटल है अर डेढ राजू जाइ अंतिम पटल है सो अंत पटलविषैं तेजोलेश्या नाही है ऐसा केई आचार्यनिका उपदेश है तातैं अथवा चित्राभूमिविषैं तिष्ठता तिर्यंच मनुष्यनिका उपपाद ईसान पर्यंत ही संभवै है तातैं किंचित् ऊन डेढ भागमात्र ही स्पर्श कह्या है। बहुरि गाथाविषैं चकार कह्या है तातैं तेजोलेश्याका उत्कृष्ट अंशकरि मरैं तिनकैं सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्गका अंतका चक्र नामा इंद्रकसंबंधी श्रेणीबद्धविमाननिविषैं उत्पत्ति केई आचार्य कहै हैं तिनिका अभिप्रायकरि यथा संभवै तीन भागमात्र भी स्पर्श संभवै है किछू नियम नाहीं। इस ही वास्ते सूत्रविषैं चकार कह्या। ऐसैं पीतलेश्याविषैं स्पर्श कह्या ॥ ५४७ ॥

पम्मस्सय सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ॥ ४८ ॥

पद्मायाश्च स्वस्थानसमुद्घातद्विकयोर्भवति प्रथमपदं ।
अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ॥ ५४८ ॥

जी० प्र०—पद्मलेश्यानां वाशब्दात्स्वस्थानस्वस्थानपदे प्रागुक्तलोकासंख्यातैकभागः स्पर्शो भवति = २ ‍१ विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषाय-
५१
वैक्रियिकसमुद्घातेषु च किंचिदूनाष्टचतुर्दशभागः। मारणांतिकसमुद्घातेऽपि तथैव पद्मलेश्याजीवानां पृथिव्यब्वनस्पतिषूत्पत्तिसंभवात्। तैजसाहारकसमुद्घातयोः संख्यातघनांगुलानि ६ १ केवलिसमुद्घातोऽत्र नास्ति ॥ ५४८ ॥

स० चं०—पद्मलेश्याके स्वस्थान स्वस्थानविषैं पूर्वोक्तप्रकार लोकके असंख्यातवे भागमात्र स्पर्श जानना। बहुरि विहारवत्स्वस्थान अर वेदना कषाय वैक्रियिकसमुद्घात इनिविषैं किंचित् ऊन चौदह भागविषैं आठ भागमात्र स्पर्श जानना। बहुरि मारणांतिक समुद्घातविषैं भी तैसैं ही किंचित् ऊन आठ चौदहवां भागमात्र स्पर्श जानना जातैं

पद्मलेश्यावाले भी देव पृथ्वी अप् वनस्पतीविषैं उपजे हैं। बहुरि तैजस आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना। बहुरि केवल समुद्घात इस लेश्याविषैं है नाहीं ॥ ५४८ ॥

उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं च देसूणं।

उपपादे प्रथमपदं पंचचतुर्दशभागकश्च देशोनः।

जी० प्र०—उपपादपदे स्पर्शः शतारसहस्रारपर्यंतं पद्मलेश्यासंभवात् पंचचतुर्दशभागाः किंचिदूना भवंति। $\frac{५}{१४}$ –

स० चं०—यहु आधा सूत्र है। उपपादविषैं स्पर्श चौदह भागविषैं पंच भाग किछू घाटि जानना जातैं पद्मलेश्या शतार सहस्रार पर्यंत संभवै है सो शतार सहस्रार मध्यलोकतैं पांच राजू ऊंचा है ऐसैं पद्मलेश्याविषैं स्पर्श कह्या ॥

सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोदसा हीणा ॥ ४९ ॥

शुक्लायाश्च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनाः ॥ ५४९ ॥

जी० प्र०—शुक्लेश्याजीवानां स्पर्शः स्वस्थानस्वस्थाने तेजोलेश्यावल्लोकसंख्यातैकभागः = २ ॥ $\frac{}{५१}$ विहारवत्स्वस्थाने वेदनाकषायवैक्रियिक मारणांतिकसमुद्घातेषु च देशोनषट्चतुर्दश भागः $\frac{६}{१४}$– तैजसाहारकसमुद्घातयोः संख्यातघनांगुलानि ६ ॥ ॥ ५४९ ॥

स०चं०—शुक्लेश्यावाले जीवनिकै स्वस्थानस्वस्थानविषैं तेजोलेश्यावत् लोकका असंख्यातवां भागप्रमाण स्पर्श है। बहुरि विहारवत्स्वस्थानविषैं अर वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घातनिविषैं स्पर्श चौदह भागनिविषैं छह भाग किछू एक घाटि स्पर्श जानना। जातैं अच्युतस्वर्गके ऊपरि देवनिकैं स्वस्थान छोडि अन्यत्र गमन

नाहीं है तातैं अच्युतपर्यंत ही ग्रहण कीया बहुरि तैजस आहारक समुद्घातविषैं संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना ॥ ५४९ ॥

णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा ।
सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो ॥ ५० ॥

नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवंति भागा वा ।
सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः ॥ ५५० ॥

जी० प्र०—केवलिसमुद्घाते विशेषः, स कः ? दंडसमुद्घाते स्पर्शः क्षेत्रवत् संख्यातप्रतरांगुलहतजगच्छ्रेणिः — ४ । १७ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणदंडयोर्भवति । — ४ । १७ । २ । पूर्वाभिमुखस्थितोपविष्टकवाटसमुद्घाते संख्यातसूच्यंगुलमात्रजगत्प्रतरः = २ १७ स च द्विगुणितः आरोहणावरोहणयोर्भवति = २ १७ । २ तथैवोत्तराभिमुखस्थितोपविष्टकवाटेऽपि = २ १७ । = २ १७ । २ प्रतरसमुद्घाते लोकासंख्यातबहुभागः ≡ १ॱ/a /a । वातावरुद्धक्षेत्रेण लोकसंख्यातैक ≡ /a १ भागेन न्यूनत्वात् । लोकपूरणसमुद्घाते सर्वलोकः ≡ खलु नियमेन । उपपादपदे किंचिदूनषट्चतुर्दशभागः ६/१४ — आरणाच्युतावसानस्यैव विवक्षितत्वात् ॥ ५५० ॥ इति स्पर्शाधिकारः । अथ कालाधिकारं गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—केवल समुद्घातविषैं विशेष है सो कहा ? दंडविषैं तौ स्पर्श क्षेत्रकी नाईं संख्यात प्रतरांगुलनिकरि गुण्या हूवा जगच्छ्रेणी प्रमाण सो करणे अर समेटनेकी अपेक्षा दूणा जानना । बहुरि पूर्वाभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाटविषैं संख्यात सूच्यंगुलमात्र जगत्प्रतर प्रमाण है सो करणे समेटनेकी अपेक्षा दूणा स्पर्श जानना । बहुरि तैसैं ही उत्तराभिमुख स्थित वा उपविष्ट कपाटविषैं स्पर्श जानना । बहुरि प्रतर समुद्घातविषैं लोककौं असंख्यातका भाग दीजिए तामैं एक भाग विना अवशेष बहुभागमात्र स्पर्श है जातैं वात वलयका क्षेत्र लोकके अ-

संख्यातवे भाग प्रमाण है। तहां व्यास न हो है। बहुरि लोक पूरणविषैं स्पर्श सर्वलोक जानना ऐसा नियम है। बहुरि उपपादविषैं चौदह भागविषैं छह भाग किंचित् ऊन स्पर्श जानना जातैं इहां आरण अच्युत पर्यंत ही की विवक्षा है॥ ५५०॥ इति स्पर्शाधिकारः। १२। आगें काल अधिकार दोय गाथानिकरि कहैं हैं—

कालो छल्लेस्साणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।
अंतोमुहुत्तमवरं एयं जीवं पडुच्च हवे॥ ५१॥

कालः षड्लेश्यानां नानाजीवं प्रतीत्य सर्वाद्धा।
अंतर्मुहूर्तोऽवरं एकं जीवं प्रतीत्य भवेत्॥ ५५१॥

जी॰ प्र॰—कृष्णलेश्यानां कालः नानाजीवं प्रति सर्वाद्धा सर्वकालः। एकजीवं प्रति जघन्येन अंतर्मुहूर्तो भवति॥ ५५१॥

स॰ चं॰—कृष्ण आदि छहौं लेश्यानिका काल नाना जीवनिकी अपेक्षा सर्वाद्धा कहिए सर्व काल है बहुरि एक जीव अपेक्षा छहौं लेश्यानिका जघन्यकाल तौ अंतर्मुहूर्त प्रमाण जानना॥ ५५१॥

उवहीणं तेत्तीसं सत्तरसत्तेव होंति दो चेव।
अट्ठारस तेत्तीसा उक्कस्सा होंति अदिरेया॥ ५२॥

उदधीनां त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश सप्तैव भवंति द्वौ चैव।
अष्टादश त्रयस्त्रिंशत् उत्कृष्टा भवंति अतिरेकाः॥ ५५२॥

जी॰ प्र॰—उत्कृष्टस्तु सागरोपमाणि कृष्णायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। नीलायाः सप्तदश १७। कपोतायाः सप्त ७। तेजोलेश्याया द्वे २। पद्मायाः अष्टादश १८। शुक्लायास्त्रयस्त्रिंशत् ३३। साधिकानि भवंति अव्याघातविषये। तदाधिक्यं तु देवनारकभवेभ्यः पूर्वभवचरमांतर्मुहूर्तः उत्तरभवप्रथमांतर्मुहूर्तश्च षण्णां। तेजःपद्मयोः पुनः किंचिदूनसागरोपमार्धमपि, कुतः सौधर्मादिसहस्रारपर्यंतं स्वस्वोत्कृष्टस्थितेरुपरि घातायुष्कस्य सम्यग्दृष्टेरंतर्मुहूर्तोनार्धसागरोपमेण मिथ्यादृष्टेस्तु पल्यासंख्यातैकभागेनचाधिक्यात्॥ ५५२॥ इति कालाधिकारः। १३॥ अथांतराधिकारं गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—बहुरि उत्कृष्टकाल कृष्णलेश्याका तेंतीस सागर नीललेश्याका सतरह सागर कपोतलेश्याका सात सागर तेजोलेश्याका दोय सागर पद्मलेश्याका अठारह सागर शुक्ललेश्याका तेतीस सागर किछू किछू अधिक जानना। सो अधिकका प्रमाण कितना ? सो कहैं है—यहु उत्कृष्ट काल नारक वा देवनिकी अपेक्षा कह्या है सो नारकी अर देव जिस पर्यायतैं आनि उपजैं तिस पर्यायका अंतका अंतर्मुहूर्त काल बहुरि देव नारक पर्याय छोडि जहां उपजैं तहां आदिविषैं अंतर्मुहूर्तकाल मात्र सोई लेश्या हो है तातैं पूर्वोक्त कालतैं छहौ लेश्यानिका कालविषैं दोय दोय अंतर्मुहूर्त अधिक जानना। बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्याका कालविषैं किंचित् ऊन आधा सागर भी अधिक जानना जातैं जाकैं आयुका अपवर्तन घात भया ऐसा जो घातायुष्क सम्यग्दृष्टी ताकैं अंतर्मुहूर्त घाटि आधा सागर आयु बंधता हो है। जैसैं सौधर्म ईशानविषैं दोय सागरका आयु कह्या है तहां घातायुष्क सम्यग्दृष्टीकैं अंतर्मुहूर्त घाटि अढाई सागर भी आयु हो है ऐसैं ऊपर भी जानना। बहुरि ऐसैं ही मिथ्यादृष्टी घातायुष्ककैं पल्यका असंख्यातवां भाग प्रमाण आयु बंधता हो है सो यहु अधिकपना सौधर्मतैं लगाइ सहस्रार स्वर्गपर्यंत जानना ऊपर घातायुष्कका उपजना नाही तातैं तहां जो आयुका प्रमाण कह्या है तितना ही हो है ऐसैं अधिककालका प्रमाण जानना ॥ ५५२ ॥ इति कालाधिकारः। आगैं अंतर अधिकार दोय गाथानिकरि कहै हैं—

अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ५३ ॥
तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु।
पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ॥ ५४ ॥

अंतरमवरोत्कृष्टं कृष्णत्रयाणां मुहूर्तांतस्तु ।
उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टं ॥ ५५३ ॥
तेजस्त्रयाणामेवं नवरि च उत्कृष्टविरहकालस्तु ।
पुद्‌गलपरिवर्ता हि असंख्येया भवंति नियमेन ॥ ५५४ ॥

जी० प्र०—अंतरं विरहकालः कृष्णादित्रयस्य जघन्येनांतर्मुहूर्तः । उत्कृष्टेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि साधिकानि भवंतीति निर्दिष्टं । तत्र कृष्णायां पूर्वकोटिवर्षायुर्मनुष्यो गर्भादष्टवर्षचरमेंतर्मुहूर्तषट्के अवशिष्टे कृष्णां गतः, अंतर्मुहूर्त्तं स्थित्वा नीलां गतस्तदा कृष्णांतरं प्रारब्धं। ततः नीलां कपोतां तैजसीं पद्मां शुक्लां च प्रत्येकमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा अष्टवर्षचरमसमये संयमं स्वीकृत्य देशोनपूर्वकोटिवर्षाणि प्रतिपाल्य सर्वार्थसिद्धिं गतः । तत्र त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि नीत्वा मनुष्यो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयादंतर्मुहूर्तं शुक्लां पद्मां तैजसीं कपोतां नीलां च प्रत्येकं स्थित्वा कृष्णां गच्छति। इति दशांतर्मुहूर्ताधिकानि अष्टवर्षोनपूर्वकोटिवर्षाधिकत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि उत्कृष्टांतरं भवति । एवं नीलकपोतयोरपि किंतु अधिकांतर्मुहूर्ताः नीलायामष्टौ, कपोतायां षडेव भवंति । तेजोलेश्यायां कश्चिन्मनुष्यः तिर्यग् वा स्थित्वा कपोतां गतस्तदा तेजोलेश्यांतरं प्रारब्धं। पश्चात्कपोतनीलकृष्णलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा एकेंद्रियो भूत्वा आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि भ्रांत्वा विकलेंद्रियो भूत्वा संख्यातसहस्रवर्षाणि भ्रांत्वा पंचेंद्रियो भूत्वा तद्भवप्रथमसमयात्कृष्णनीलकपोतलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा तेजोलेश्यां गच्छति। इति षडंतर्मुहूर्तसंख्यातसहस्रवर्षावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनान्युत्कृष्टांतरं भवति । पद्मायां कश्चित्स्थित्वा तेजोलेश्यां गतस्तदा पद्मांतरं प्रारब्धं तत्रांतर्मुहूर्तं स्थित्वा सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयं स्थितः च्युत्वा प्राग्वदेकविकलेंद्रियेषु क्रमेणावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुलपरावर्तनसंख्यातसहस्रवर्षाणि स्थित्वा पंचेंद्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजोलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा पद्मां गच्छति । इति पचांतर्मुहूर्तसंख्यातसहस्रवर्षपल्यासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टांतरं भवति । एवं शुक्लायामपि, किंतु शुक्लातः पद्मां तैजसीं च प्रत्येकमंतर्मुहूर्तं स्थित्वा प्राग्वत् सौधर्मद्वये पल्यासंख्यातैकभागाधिकद्विसागरोपमस्थिति एकेंद्रियेषु आवल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि विकलेंद्रियेषु संख्यातसहस्रवर्षाणि च नीत्वा पंचेंद्रियभवप्रथमसमयात् कृष्णनीलकपोततेजःपद्मलेश्यासु एकैकांतर्मुहूर्तं स्थित्वा शुक्लां गच्छति तदासप्तांतर्मुहूर्तसंख्यातवर्षसहस्रपल्योपमासंख्यातैकभागाधिकसागरोपमद्वयावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुद्गलपरावर्तनानि उत्कृष्टांतरं भवति ॥ ५५३–५५४ ॥ इत्यंतराधिकारः ॥१२॥

अथ भावाल्पबहुत्वाधिकारावाह—

स० चं०—अंतर नाम विरहकालका है जैसैं कोई जीव कृष्णलेश्याविषैं प्रवर्तै था पीछैं कृष्णकौं छोडि अन्य लेश्यानिकौं प्राप्त भया सो जितने कालपर्यंत फिर कृष्णलेश्याकौं प्राप्त न होइ तीहिं कालका नाम कृष्णलेश्याका

अंतर कहिए अैसें ही सर्वत्र जानना। सो कृष्णादिक तीन लेश्यानिविषैं जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण है बहुरि उत्कृष्ट किछू अधिक तेतीस सागर प्रमाण है तहां कृष्णलेश्याविषैं अंतर कहैं हैं—

कोई जीव कोडि पूर्व वर्षमात्र आयुका धारी मनुष्य गर्भतैं लगाय आठवर्ष होनेविषैं छह अंतर्मुहूर्त अवशेष रहैं तहां कृष्णलेश्याकौं प्राप्त भया तहां अंतर्मुहूर्त तिष्ठिकरि नील लेश्याकौं प्राप्त भया तब कृष्णलेश्याके अंतरका प्रारंभ कीया तहां एक एक अंतर्मुहूर्त मात्र अनुक्रमतैं नील कपोत पीत पद्म शुक्ललेश्याकौं प्राप्त होइ आठ वर्षका अंतके समय दीक्षा धरी तहां शुक्ललेश्यासहित किछू घाटि कोडि पूर्व पर्यंत संयमकौं पालि सर्वार्थसिद्धिकौं प्राप्त भया। तहां तेतीस सागर पूर्ण करि मनुष्य होइ अंतर्मुहूर्त पर्यंत शुक्ललेश्या रूप रह्या पीछैं अनुक्रमतैं एक एक अंतर्मुहूर्त मात्र पद्म पीत कपोत नील लेश्याकौं प्राप्त होइ कृष्ण लेश्याकौं प्राप्त भया अैसे जीवकैं कृष्ण लेश्याका दश अंतर्मुहूर्त अर आठ वर्ष घाटि कोटि पूर्व इनकरि अधिक तेतीस सागरप्रमाण उत्कृष्ट अंतर जानना। अैसैं ही नील लेश्या अर कपोत लेश्याविषैं उत्कृष्ट अंतर जानना। विशेष इतना-जो तहां दश अंतर्मुहूर्त कहे हैं नीलविषैं आठ कपोताविषैं छह अंतर्मुहूर्त ही अधिक जानने। अब तेजो लेश्याका उत्कृष्ट अंतर कहैं हैं—

कोई जीव मनुष्य वा तिर्यंच तेजोलेश्याविषैं तिष्ठे था तहांस्यों कपोतलेश्याकौं प्राप्त भया तब तेजोलेश्याके अंतरका प्रारंभ कीया तहां एक एक अंतर्मुहूर्त पर्यंत कपोत नील कृष्ण लेश्याकौं प्राप्त होइ एकेंद्री भया तहां उत्कृष्टपनैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण जे पुद्गल द्रव्य परिवर्तन तिनिका जितना काल होइ तितने काल भ्रमण कीया पीछैं विकलेंद्री भया तहां उत्कृष्टपनैं संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल भ्रमण कीया पीछैं पंचेंद्री भया तहां प्रथम समयतैं लगाइ एक एक अंतर्मुहूर्तकालविषैं अनुक्रमतैं कृष्ण नील कपोतकौं प्राप्त होइ तेजोलेश्याकौं प्राप्त भया अैसे जीवकैं तेजोलेश्याका छह अंतर्मुहूर्त साहित अर संख्यात सहस्र वर्ष करि अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना। अब पद्म लेश्याका अंतर कहैं हैं—

कोई जीव पद्मलेश्याविषैं तिष्ठता था ताकौं छोडि तेजोलेश्याकौं प्राप्त भया तब पद्मके अंतरका प्रारंभ कीया

तहां तेजोलेश्याविषैं अंतर्मुहूर्त तिष्ठि करि सौधर्म ईशानाविषैं उपज्या तहां पल्यका असंख्यातवां भागकरि अधिक दोय सागरपर्यंत रह्या। तहांस्यों चयकरि एकेंद्री भया तहां आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन काल मात्र भ्रमण करि पीछैं विकलेंद्री भया। तहां संख्यात सहस्र वर्ष कालमात्र भ्रमण करि पंचेंद्री भया तहां प्रथम समयतैं लगाइ एक एक अंतर्मुहूर्त कृष्ण नील कपोत तेजोलेश्याकौं प्राप्त होइ पद्मलेश्याकौं प्राप्त भया ऐसे जीवकैं पद्मलेश्याका पंच अंतर्मुहूर्त अर पल्यका असंख्यातवां भागकरि अधिक दोय सागर अर संख्यात हजार वर्षनिकरि अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परिवर्तन मात्र उत्कृष्ट अंतर जानना। आगैं शुक्ल लेश्याका अंतर कहैं हैं—

कोई जीव शुक्ललेश्याविषैं तिष्ठै था तहांस्यों पद्मलेश्याकौं प्राप्त भया तब शुक्ललेश्याका अंतरका प्रारंभ भया। तहां क्रमतैं एक एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र पद्म तेजोलेश्याकौं प्राप्त होइ सौधर्म ईशानविषैं उपजि तहां पूर्वोक्त प्रमाण कालरहित तहां पीछैं एकेंद्री होइ तहां भी पूर्वोक्त प्रमाण काल मात्र भ्रमण करि पीछैं विकलेंद्री होइ तहां भी पूर्वोक्त प्रमाण कालमात्र भ्रमणकरि पंचेंद्री होइ प्रथमसमयतैं एक एक अंतर्मुहूर्त काल मात्र क्रमतैं कृष्ण नील कपोत तेज पद्मलेश्याकौं प्राप्त होइ शुक्ललेश्याकौं प्राप्त भया ऐसे जीवकैं सात अंतर्मुहूर्त अर संख्यात सहस्र वर्ष अर पल्यका असंख्यातवां भागकरि अधिक दोय सागरकरि अधिक आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुद्गल परावर्तन मात्र शुक्ललेश्याका उत्कृष्ट अंतर जानना ॥ ५५३—५५४ ॥ इति अंतराधिकारः ॥ १४ ॥ आगैं भाव अर अल्पबहुत्व अधिकारनिकौं कहैं हैं—

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु।
दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ॥ ५५५ ॥

भावतः षड् लेश्या औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु ।
द्रव्यप्रमाणे सिद्धमिति लेश्या वर्णिता भवंति ॥ ५५५ ॥

जी० प्र०—भावेन षडपि लेश्याः औदयिका एव भवंति। कुतः? कषायोदयावष्टंभसंभूतयोगप्रवृत्तेरेव तल्लक्षणत्वात् । तु—पुनः, तासामल्पबहुत्वं पूर्वसंख्याधिकारे द्रव्यप्रमाणे एव सिद्धं। तथाहि—शुक्ललेश्याजीवाः सर्वतः स्तोका अप्यसंख्याताः a तेभ्यः पद्मलेश्या असंख्यातगुणाः a a तेभ्यस्तेजोलेश्याः संख्यातगुणाः a a १ तेभ्यः कपोतलेश्या अनंतानंतगुणाः १३— तेभ्य नीललेश्याः साधिकाः १३ तेभ्यः कृष्णलेश्याः साधिकाः १३— इति षडपि लेश्याः षोडशाधिकारैर्वर्णिता भवंति ॥ ५५५ ॥ अथालेश्यजीवानाह—

स० चं०—भावकरि छहौ लेश्या औदायिक भावरूप जाननी जातैं कषाय संयुक्त योगनिकी प्रवृत्तिका नाम लेश्या है त दोऊ कर्मनिके उदयतैं हो है। इति भावाधिकारः ॥ १५ ॥

बहुरि तिनि लेश्यानिका अल्प बहुत्व पूर्वै संख्या अधिकारविषैं द्रव्यप्रमाणकरि ही सिद्ध है। जिनका प्रमाण थोडा सो अल्प जिनिका प्रमाण घणा सो बहुत। तहां सबतैं थोरे शुक्ललेश्यावाले जीव हैं ते पाणि असंख्यात है। तिनितैं असंख्यातगुणे पद्मलेश्यावाले जीव हैं। तिनितैं संख्यातगुणे तेजोलेश्यावाले जीव हैं। तिनितैं अनंतानंत गुणे कपोतलेश्यावाले जीव हैं। तिनितैं किछू अधिक नीललेश्यावाले जीव हैं तिनितैं किछू अधिक कृष्णलेश्यावाले जीव हैं ॥ ५५५ ॥ इति अल्पबहुत्वाधिकारः ॥१६॥ ऐसैं छहौ लेश्या सोलह अधिकारनिकरि वर्णन करी हुई जाननी। आगैं लेश्यारहित जीवनिकौं कहै है—

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणिग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ॥ ५५६ ॥

कृष्णादिलेश्यारहिताः संसारविनिर्गता अनन्तसुखाः ।
सिद्धिपुरं संप्राप्ता अलेश्यास्ते ज्ञातव्याः ॥ ५५६ ॥

जी० प्र०—ये जीवाः कषायोदयस्थानयोगप्रवृत्त्यभावात् कृष्णादिलेश्यारहिताः तत एव पंचविधसंसारवाराशिविनिर्गताः, अतींद्रियानंतसुख संतृप्ताः स्वात्मोपलब्धिलक्षणं सिद्धिपुरं संप्राप्ताः ते अयोगकेवलिनः सिद्धाश्च अलेश्या जीवा इति ज्ञातव्याः ॥ ५५६ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्ररचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां
जीवकाण्डे विंशतिप्ररूपणासु लेश्याप्ररूपणा नाम
पंचदशोऽधिकारः ॥ १५ ॥

स० चं०—जे जीव कषायनिके उदय स्थान लीएं योगनिकी प्रवृत्तिके अभावतैं कृष्णादिलेश्यानिकरि रहित हैं तिसहीतैं पंचप्रकार संसार समुद्रतैं निकसि पार भए हैं। बहुरि अतींद्रिय अनंत सुखकरि तृप्त हैं बहुरि आत्माकी उपलब्धि है लक्षण जाका ऐसी सिद्धिपुरीकौं सम्यक् पनैं प्राप्त भए हैं ते अयोगकेवली वा सिद्ध भगवान लेश्या रहित अलेश्य जानने ॥ ५५६ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ति विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंच संग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत
टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषै जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा
तिनिविषैं लेश्या प्ररूपणा नाम पंद्रहां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १५ ॥

भव्यमार्गणाधिकार ॥ १६ ॥

जी० प्र० यस्य नाम्नापि नश्यंति निश्शेषानिष्टराशयः ।
फलंति वांछितार्थाश्च शांतिनाथं तमाश्रये ॥ १६ ॥

अथ भव्यमार्गणाधिकारं गाथाचतुष्टयेनाह—

स० चं०— इष्ट फलत सब होत पुनि, नष्ट अनिष्ट समाज ।
जास नामतैं सो भजौं, शांति नाथ जिनराज ॥ १६ ॥

आगैं भव्य मार्गणाका अधिकार च्यारि गाथानिकरि कहै हैं—

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरीयाऽभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ॥ ५५७ ॥

भव्या सिद्धिर्येषां जीवानां ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
तद्विपरीता अभव्याः संसारान्न सिद्ध्यन्ति ॥ ५५७ ॥

जी० प्र०—भव्या भवितुं योग्या भाविनी वा सिद्धिः अनंतचतुष्टयरूपस्वस्वरूपोपलब्धिर्येषां ते भव्यसिद्धाः । अनेन सिद्धेर्लब्धियोग्यताभ्यां भव्यानां द्वैविध्यमुक्तं । तद्विपरीताः उक्तलक्षणद्वयरहिताः, ते अभव्या भवंति अत एव ते अभव्या न सिद्ध्यंति संसारान्निःसृत्य सिद्धिं न लभंते ॥ ५५७ ॥ एवं द्विविधानामपि भव्यानां सिद्धिलाभप्रसक्तौ तद्योग्यतामात्रवतामुपपत्तिपूर्वकं तां परिहरति—

स० चं०—भव्याः कहिए होनेयोग्य वा होनहार है सिद्धि कहिए अनंत चतुष्टय रूप स्वरूपकी प्राप्ति जिनिकैं ते भव्य सिद्ध जानने याकरि सिद्धिकी प्राप्ति अर योग्यताकरि भव्यनिकै द्विविधपना कह्या है ॥ भावार्थ—भव्य दोय प्रकार हैं केई तो भव्य ऐसे हैं जे मुक्ति होनेकौं केवल योग्य ही हैं परि कबहूं सामग्रीकौं पाइ मुक्त न होंइ । बहुरि केई भव्य ऐसे हैं जे काल पाइ मुक्त होहिंगे । बहुरि तद्विपरीताः कहिए पूर्वोक्त दोऊ लक्षण रहित जे जीव

मुक्त होने योग्य भी नहीं अर मुक्त भी होते नाही ते अभव्य जानने तातैं ते वे अभव्य जीव संसारतैं निकसि कदाचित मुक्तिकौ प्राप्त न हो हैं ऐसा ही कोई द्रव्यत्व भाव है ॥ ५५७ ॥ इहां कोऊ भ्रम करैगा जो अभव्य मुक्त न होइ तौ दोऊ प्रकारके भव्यनिकैं तौ मुक्त होना ठहऱ्या तौ जे मुक्त होनेकौं योग्य कहे थे तिन भव्यनिकैं भी कवहूं तौ मुक्ति प्राप्ति होसी सो ऐसे भ्रमकौं दूर करें हैं–

भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ॥५५८॥

भव्यत्वस्य योग्या ये जीवास्ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
न हि मलविगमे नियमात् तेषां कनकोपलानामिव ॥ ५५८ ॥

जी० प्र०—ये भव्यजीवाः भव्यत्वस्य सम्यग्दर्शनादिसामग्रीं प्राप्यानन्तचतुष्टयस्वरूपेण परिणमनस्य योग्याः केवलयोग्यतामात्रयुक्ताः ते भवसिद्धा संसारप्राप्ता एव भवंति। कुतः तेषां मलस्य विगमे विनाशकरणे केषांचित्कनकोपलानामिव नियमेन सामग्री न संभवतीति कारणात् ॥५५८॥

स० चं०—जे भव्य जीव भव्यत्व जो सम्यग्दर्शनादि सामग्रीकौं पाइ अनत चतुष्टय रूप होना ताकौं केवल योग्य ही हैं तद्रूप होनेके नाहीं ते भव्य सिद्ध हैं। सदा काल ससारकौं प्राप्त रहैं हैं। काहे तैं ? सो कहिए है–जैसैं केई सुवर्ण सहित पाषाण ऐसे हैं तिनके कदाचित् मैल के नाश करनेकी सामग्री न मिलै तैसैं केई भव्य ऐसे हैं जिनकैं कर्म मल नाश करनेकी कदाचित सामग्री नियमकरि न संभवै है। भावार्थ–जैसे अहमिंद्र देवनिकैं नरकादि विषैं गमन करनेकी शक्ति है परंतु कदाचित् गमन न करैं तैसैं केई भव्य ऐसे हैं जे मुक्त होनेकौं योग्य हैं परंतु कदाचित् मुक्त न होंइ ॥ ५५८ ॥

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा ॥

ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ॥ ५५९ ॥

न च ये भव्या अभव्या मुक्तिसुखा अतीतानन्तसंसाराः ।
ते जीवा ज्ञातव्या नैव च भव्या अभव्याश्च ॥ ५५९ ॥

जी० प्र०—ये जीवा न च भव्याः नाप्यभव्याः मुक्तिसुख : अतीतानंतसंसाराः ते जीवा नैव भव्या भवंति, नाप्यभव्या भवंति इति ज्ञातव्याः ॥ ५५९ ॥ अत्र जीवसंख्यामाह—

स० चं०—जे जीव केई नवीन ज्ञानादिक अवस्थाकौं प्राप्त होनेके नाहीं तातैं भव्य भी नाहीं । अर अनंत चतुष्टय रूप भए तातैं अभव्य भी नाहीं ऐसे मुक्ति सुखके भोक्ता अनंतसंसाररहित भए ते जीव भव्य भी नाहीं अर अभव्य भी नाहीं. जीवत्व पारिणामिककौं धरें हैं ऐसे जानने ॥ ५५९ ॥ इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं ।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ॥ ५६० ॥

अवरो युक्तानन्तः अभव्यराशेर्भवति परिमाणं ।
तेन विहीनः सर्वः संसारी भव्यराशेः ॥ ५६० ॥

जी० प्र०—जघन्ययुक्तानंतोऽभव्यराशिपरिमाणं भवति । ज जु अ । तेन अभव्यराशिहीनः सर्वसंसारिराशिः भव्यराशिप्रमाणं भवति १३— अत्र संसारिणां परिवर्तनमुच्यते । परिवर्तनं परिभ्रमणं संसार इत्यनर्थांतरं । तत् द्रव्यक्षेत्रकालभवभावभेदात्पंचधा । तत्र द्रव्यपरिवर्तनं कर्मनोकर्मभेदाद्द्वेधा । तत्र नोकर्मपरिवर्तनं नाम शरीरत्रयस्य षट्पर्याप्तीनां च योग्याः पुद्गलाः केनचिज्जीवेन एकस्मिन् समये गृहीताः स्निग्धरूक्षवर्णगंधादिभिः तीव्रमंदमध्यमभावेन यथावस्थिताः द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः, अगृहीताननंतवारानतीत्य मिश्रकाननन्तवारानतीत्य मध्ये गृहीताननन्तवारानतीत्य त एव पुद्गलाः तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकर्मभावं गच्छेयु तावान् समुदितकालो नोकर्मद्रव्यपरिवर्तनं भवति । तद्यथा—तत्पुद्गलपरिवर्तनकालोऽगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणाद्धा मिश्रग्रहणाद्धेति त्रिविधः । तत्र अगृहीतग्रहणकालः अगृहीतग्रहणाद्धा गृहीतग्रहणकालो गृहीतग्रहणाद्धा युगपदुभयग्रहणकालो मिश्रग्रहणाद्धा । तेषां परिवर्तनक्रमोऽयं विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयादारभ्य निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य

सकृन्मिश्रग्रहणं, पुनः निरंतरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं, एवमनन्तानि मिश्रग्रहणानि । ततः निरन्तरमगृहीताननन्तवारानतीत्य सकृत् गृहीतग्रहणं । एवं गृहीतेष्वपि अनंतेषु जातेषु प्रथमपरिवर्तनं भवति । ततोऽग्रे निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । पुनः निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । एवमनंतानि अगृहीतग्रहणानि । ततः निरंतरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृद् गृहीतग्रहणं । एवं गृहीतेष्वप्यनतेषु जातेषु द्वितीयपरिवर्तनं भवति । ततोऽग्रे निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । पुनः निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । एवं गृहीतग्रहणानि अनंतानि । ततः निरन्तरं मिश्रकाननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं एवमगृहीतग्रहणेष्वप्यनंतेषु जातेषु तृतीयपरिवर्तनं भवति । ततोऽग्रे निरन्तरं गृहीतानंतवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं । पुनः गृहीताननंतवारानतीत्य सकृन्मिश्रग्रहणं । एवं मिश्रग्रहणानि अनंतानि । ततः निरंतरं गृहीताननंतवारानतीत्य सकृदगृहीतग्रहणं । एवमगृहीतेष्वप्यनन्तेषु जातेषु चतुर्थपरिवर्तनं भवति । तदनंतरसमये विवक्षितनोकर्मपुद्गलपरिवर्तनप्रथमसमयगृहीताः अनंता द्वितीयादिसमयनिर्जीर्णा ये नोकर्मसमयप्रबद्धपुद्गलास्त एव तादृशा एव शुद्धा आगत्य आश्रयंति तदेतत्सर्वं मिलितं नोकर्मपुद्गलपरिवर्तनं भवति । कर्मपुद्गलपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन् समये केन चिज्जीवेन अष्टविधकर्मभावेन ये गृहीताः समयाधिकावलिकालमतीत्य द्वितीयादिसमयेषु निर्जीर्णाः पूर्वोक्तक्रमेणैव त एव तेनैव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य कर्मभावं प्राप्नुवंति तावत्कालं कर्मपुद्गलपरिवर्तनं भवति । शेषसर्वविशेषो नोकर्मपरिवर्तनवत् ज्ञातव्यः । अनयोः कालौ समानौ । अत्रागृहीतग्रहणकालः अनन्तोऽपि सर्वतः स्तोकः । कुतः, विनष्टद्रव्यक्षेत्रकालभावसंस्कारपुद्गलानां बहुवारग्रहणाघटनात् । अनेन विवक्षितपुद्गलपरिवर्तनमध्ये गृहीतानामेव बहुवारग्रहणं संभवतीत्युक्तं भवति । उक्तं च—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ १ ॥

सूक्ष्मस्थितिसंयुक्तमासन्नं कर्मनिर्जरामुक्तं ।
प्रायेणैति ग्रहणं द्रव्यमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥ १ ॥

अल्पस्थितिसंयुक्तं जीवप्रदेशेषु स्थितं निर्जरया विमोचितकर्मस्वरूपं पुद्गलद्रव्यं अनिर्दिष्टसंस्थानं विवक्षितपरावर्तनप्रथमसमयोक्तस्वरूपरहितं जीवेन प्रचुरवृत्त्या स्वीक्रियते । कुतः ? द्रव्यादिचतुर्विधसंस्कारसंपन्नत्वात् । अगृहीतग्रहणकालात् मिश्रग्रहणकालोऽनंतगुणः । ख ख । ततो जघन्यगृहीतग्रहणकालोऽनंतगुणः । ख ख ख । ततो जघन्यपुद्गलपरिवर्तनकालो विशेषाधिकः । अधिकप्रमाणमिदं ख ख ख अपवर्त्य तत्र निक्षिप्ते (१— / ख) एवं ज = पु । ख ख ख (१—) ततः उत्कृष्टगृहीतग्रहणकालः अनंतगुणः ख ख ख ख (१—) तत उत्कृष्टपुद्गलपरावर्तनकालो विशेषाधिकः । तद्विशेषप्रमाणमिदं ख ख ख ख, अपवर्त्य निक्षिप्ते (१— / ख) एवं ख ख ख (१—) ख (१—) अत्रागृहीतमिश्रग्रहणकालयोर्जघन्योत्कृष्टभावौ न इत्यवधार्यं । तथाविधपरमगुरूप-

देशाभावात् । संदृष्टिः उ = गृ = ख ख ख ख (१–) उ = पु = ख ख ख ख (१– १–)

ज = गृ = ख ख ख ज = पु = ख ख ख (१–)

मिश्र ख ख ०

अगृहीत ख ०

अत्रागृहीतस्य संदृष्टिः शून्यं मिश्रस्य हंसपदं, गृहीतस्यांकः, अनंतवारस्य द्विवारः । तत्संदृष्टिः—

० ० +	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	+ + १	+ + १	+ + ०
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

अत्रोपयोगिगाथासूत्रं—

अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ॥ २ ॥

अगृहीतं मिश्रं गृहीतं मिश्रमगृहीतं तथैव गृहीतं च ।
मिश्रं गृहीतमगृहीतं गृहीतं मिश्रमगृहीतं च ॥ २ ॥

अत्रोपयोग्यार्याद्वयं ।

सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु एकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥

१ + ० क्षेत्रपरिवर्तनमपि स्वपरभेदाद्द्वेधा तत्र स्वक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः सूक्ष्मनिगोदजघन्यावगाहनेनोत्पन्नः स्वस्थितिं १८ जीवित्वा
+ १ ०
+ ० १
० + १

मृतः पुनः प्रदेशोत्तरावगाहनेन उत्पन्नः । एवं द्व्यादिप्रदेशोत्तरक्रमेण महामत्स्यावगाहनपर्यंताः संख्यातघनांगुल प्रमितावगाहनविकल्पाः तेनैव जीवेन यावत्स्वीकृताः तत् सर्वं समुदितं स्वक्षेत्रपरिवर्तनं भवति । परक्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—सूक्ष्मनिगोदः अपर्याप्तकः सर्वजघन्यावगाहनशरीरः लोकमध्याष्टप्रदेशान् स्वशरीरमध्याष्टप्रदेशान् कृत्वा उत्पन्नः क्षुद्रभवकालं जीवित्वा मृतः स एव पुनस्तेनैव अवगाहनेन द्विवारं तथा त्रिवारं तथा चतुर्वारं एवं यावत् घनांगुलासंख्येयभागः तावद्वारं तत्रैवोत्पन्नः, पुनः एकैकप्रदेशाधिकभावेन सर्वलोकं स्वस्यजन्मक्षेत्रभावं नयति । तदेतत्सर्वं परक्षेत्रपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्रसंसारे बंभ्रमता जीवेन जगच्छ्रेणिघनप्रमितजगत्क्षेत्रे स्वशरीरावगाहनरूपेणास्पृष्टप्रदेशो नास्ति । अवगाहनानि बहुवारं यानि न स्वीकृतानि तानि न संति । कालपरिवर्तनमुच्यते—कश्चिज्जीवः उत्सर्पिणीप्रथमसमये जातः स्वायुःपरिसमाप्तौ मृतः, पुनर्द्वितीयोत्सर्पिणीद्वितीयसमये जातः स्वायुः परिसमाप्त्या मृतः पुनः तृतीयोत्सर्पिणीतृतीयसमये जातः तथा मृतः, पुनः चतुर्थोत्सर्पिणीचतुर्थसमये जातः अनेन क्रमेण उत्सर्पिणीं समाप्नोति तथावसर्पिणीमपि समाप्नोति एवं जन्मनैरंतर्यमुक्तं । मरणस्याप्येवं नैरंतर्यं ग्राह्यं । तदेतत्सर्वं कालपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

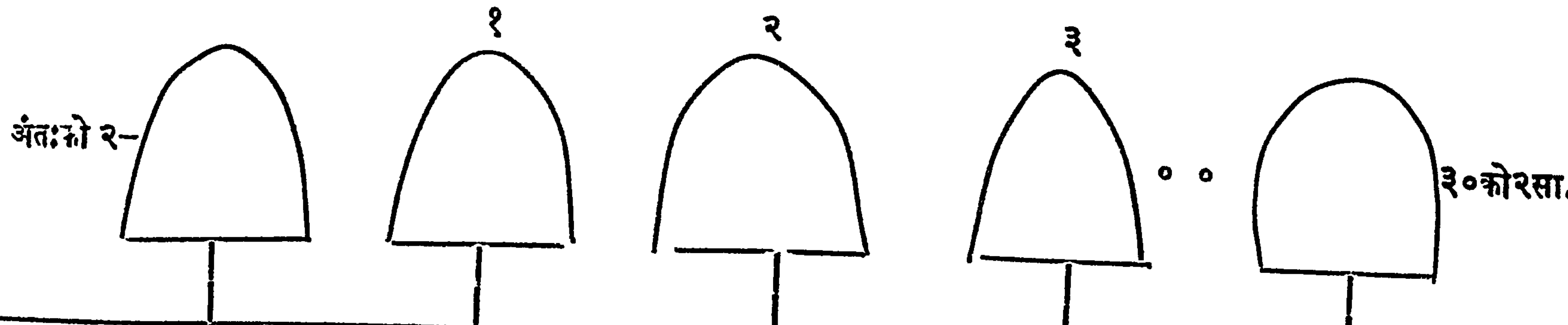
उत्सर्पणावसर्पणसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥

उत्सर्पणावसर्पणयोः सर्वसमयमालायां क्रमेण उत्पन्नः मृतश्च अनंतवारकालसंसारे परिभ्रमन् जीवः । भवपरिवर्तनमुच्यते—नरकगतौ सर्वजघन्यायुर्दशसहस्रवर्षाणि तेनायुषा तत्रोत्पन्नः पुनः संसारे भ्रांत्वा तेनैव आयुषा तत्रैवोत्पन्नः एवं दशसहस्रवर्षसमयवारं तत्रैवोत्पन्नो मृतः पुनः एकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यंते । पश्चात् तिर्यग्गतौ अंतर्मुहूर्तायुषा उत्पन्नः प्राग्वत् अंतर्मुहूर्तसमयवारमुत्पन्नः उपरिसमयाधिकभावेन त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यंते । एवं मनुष्यगतावपि त्रिपल्योपमानि तेनैव जीवेन परिसमाप्यंते । नरकगतिवद्देवगतावपि दशसहस्रवर्षसमयसमाप्तेरुपरि समयोत्तरक्रमेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमाप्यंते । एवं भ्रांत्वागत्य पूर्वोक्तजघन्यस्थितिको नारको जायते । तदा तदेतत्सर्वं भवपरिवर्तनं भवति । अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानेषु ।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ॥

नरकजघन्यायुष्याद्युपरिमग्रैवेयकावसानायुषः स्थितौ मिथ्यात्वोदयाश्रितजीवेन भवस्थितयोऽनुभविता बहुवारं स्फुटं । भावपरिवर्तनमुच्यते—कश्चित्पंचेंद्रियसंज्ञिपर्याप्तकमिथ्यादृष्टिर्जीवः स्वयोग्यसर्वजघन्यां ज्ञानावरणप्रकृतिस्थितिं अंतःकोटाकोटिप्रमितां बध्नाति । सागरोपमैककोट्या उपरि द्विवारकोट्या मध्यं अंतःकोटाकोटिरित्युच्यते । तस्य जीवस्य कषायाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि षट्स्थानपतितानि जघन्यस्थितियोग्यानि । तत्र

सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थाननिमित्तानि अनुभागाध्यवसायस्थानानि असंख्येयलोकप्रमितानि । एवं सर्वजघन्यस्थितिं सर्वजघन्यकषायाध्यवसायस्थानं सर्वजघन्यानुभागबंधाध्यवसायस्थानं च प्राप्तस्य तद्योग्यसर्वजघन्यं योगस्थानं भवति । तेषामेव स्थितिकषायाध्यवसायानुभागस्थानानां द्वितीयं असंख्येयभागयुक्तं योगस्थानं भवति । एवमसंख्यातभागवृद्धि-संख्यातभागवृद्धि-संख्यातगुणवृद्धि-असंख्यातगुणवृद्ध्याख्यचतुःस्थानवृद्धिपतितानि श्रेण्यसंख्येयभागमितानि योगस्थानानि भवंति । तथा तामेव स्थितिं तदेव कषायाध्यवसायस्थानमास्कंदतो द्वितीयमनुभागबंधाध्यवसायस्थानं भवति। तस्यापि योगस्थानानि पूर्वोक्तान्येव ज्ञातव्यानि । एवं तृतीयादिष्वपि अनुभागाध्यवसायस्थानेषु असंख्यातलोकपरिसमाप्तिपर्यंतेषु प्रत्येकं योगस्थानानि नेतव्यानि । एवं तामेव स्थितिं श्रयतो द्वितीयं कषायाध्यवसायस्थानं भवति तस्यापि अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च प्राग्वत् ज्ञातव्यानि । एवं तृतीयादिकषायाध्यवसायस्थानेषु संख्यातलोकमात्रपरिसमाप्तिपर्यंतेषु आवृत्तिक्रमो ज्ञातव्यः । ततः समयाधिकस्थितेरपि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि प्राग्वत् असंख्येयलोकमात्राणि भवंति । एवं समयाधिकक्रमेण उत्कृष्टस्थितिपर्यंतं त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटिप्रमितस्थितेरपि स्थितिबंधाध्यवसायस्थानानि अनुभागबंधाध्यवसायस्थानानि योगस्थानानि च ज्ञातव्यानि । एवं मूलप्रकृतीनां उत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमो ज्ञातव्यः । तदेतत्समुदितं भावपरिवर्तनं भवति । संदृष्टिः—



कषाय	जघ०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३००उ
अनुभाग	जघ०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३०० ≡ ३००उ
योग	जघ.००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००३००उ

अत्रोपयोग्यार्यावृत्तं—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि ।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ॥

अत्र स्थितिबंधाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतानि पुनः अनुभागबंधाध्यवसायजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतानि योगस्थानजघन्यात्तदुत्कृष्टपर्यंतानि च सर्वजघन्यस्थितिसंबंधीनि आदिं कृत्वा सर्वोत्कृष्टस्थितिपर्यंतं तत्तत्सबंधीनि संस्थाप्य अक्षसंचारक्रमेण भावसंसारे अनुभूतस्थित्यादिस्थितिबंधाध्यवसायादीन् साधयेदित्यर्थः। अत्रैव पुद्गलपरावर्तनकालः अनंतः। ततः क्षेत्रपरिवर्तनकालः अनंतगुणः। ततः कालपरिवर्तनकालः अनंतगुणः, ततो भवपरिवर्तनकालः अनंतगुणः ततो भावपरिवर्तनकालः अनंतगुणः। संदृष्टिः—

भाव ख ख ख ख ख ख
भव ख ख ख ख ख
काल ख ख ख
क्षेत्र ख ख
द्रव्य ख

एकजीवस्य अतीतकाले भावपरिवर्तनवारा अनंताः। तेभ्यः भवपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः, तेभ्यः कालपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। तेभ्यः क्षेत्रपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। तेभ्यः द्रव्यपरिवर्तनवारा अनंतगुणाः। संदृष्टिः—

द्रव्य ख ख ख ख ख
क्षेत्र ख ख ख ख
काल ख ख ख
भव ख ख
भाव ख

अत्रोपयोगि आर्यावृत्तमाह—

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रकृतायां गोम्मटसारपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु भव्यमार्गणाप्ररूपणानाम षोडशोऽधिकारः ॥ १६ ॥

स० चं०—जघन्य युक्तानंत प्रमाण अभव्य राशिका प्रमाण है बहुरि संसारी जीवनिके परिमाणमें अभव्य राशिका परिमाण घटाएं अवशेष रहे तितना भव्य राशिका प्रमाण है। इहां संसारी जीवनिके परिवर्तन कहिए है—परिवर्त्तन अर परिभ्रमण संसार ए एकार्थ हैं सो द्रव्य १ क्षेत्र २ काल ३ भव ४ भाव ५ भेदतें परिवर्तन पंच प्रकार हैं तहां द्रव्य परिवर्तन दोय प्रकार है-एक कर्मद्रव्यपरिवर्तन, एक नोकर्मद्रव्य परिवर्तन। तहां नोकर्म द्रव्य परिवर्तन कहिए है—

किसी जीवनें औदारिकादिक तीन शरीरानिविषैं किसी ही शरीर संबंधी छह पर्याप्ति रूप परिणमनेकौं योग्य

पुद्‌गल किसी एक समयमैं ग्रहे ते स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंधादिक करि तीव्र मंद मध्य भाव लीए यथा संभव ग्रहे बहुरि ते द्वितीयादि समयनिविषैं निर्जरा रूप कीए। बहुरि अनंतवार अगृहीतनिकौं ग्रहिकरि छोडे अनंतवार मिश्रनिकौं ग्रहिकरि छोड़े वीचि गृहीतनिकौं अनंतवार ग्रहिकरि छोड़े ऐसैं भए पीछैं जे पहिले समय पुद्‌गल ग्रहे तेई पुद्‌गल तैसैं ही स्निग्ध रूक्ष वर्ण गंधादिक करि तिसही जीवकैं नोकर्म भावकौं प्राप्त होंइ तितना समुदायरूप काल मात्र नोकर्म द्रव्य परिवर्तन है। जीवकरि पूर्वें ग्रहे होंइ ऐसे परमाणू जिन समयप्रबद्धरूप स्कंधनिविषैं होंइ ते गृहीत कहिए। बहुरि जीवकरि पूर्वें न ग्रहे ऐसे परमाणू जिनिविषैं होंइ ते अगृहीत कहिए। गृहीत अर अगृहीत दोऊ जातिके परमाणू जिनिविषैं होंइ ते मिश्र कहिए। इहां कोऊ कहै अगृहीत परमाणू कैसै हैं? ताका सामाधान-सर्व जीवराशिके प्रमाणकौं समय प्रबद्धके परमाणूनिका परिमाणकरि गुणिए बहुरि जो प्रमाण आवैं ताकौं अतीतकालके समयनिका परिमाणकरि गुणिए जो प्रमाण होइ तिसतैं भी पुद्‌गल द्रव्यका प्रमाण अनंत गुणा है जातैं जीव राशितैं अनंत वर्गस्थान गए पुद्‌गलराशि हो है तातैं अनादिकाल नाना जीवनिकी अपेक्षा भी अगृहीत परमाणू लोकविषैं बहुत पाइए है। बहुरि एक जीवका परिवर्तन कालकी अपेक्षा नवीन परिवर्तनका प्रारंभ भया तब सर्व ही अगृहीत भए पीछैं ग्रहे तेई गृहीत हो हैं सो इहां जिस अपेक्षा गृहीत अगृहीत मिश्र कहे हैं सो यथासंभव जानना। अब विशेष दिखाइए है—

पुद्‌गल परिवर्तनका काल तीन प्रकार है तहां अगृहीतके ग्रहणका काल सो अगृहीतग्रहणकाल है, गृहीत के ग्रहण का काल सो गृहीत ग्रहणकाल है। मिश्रके ग्रहणका काल सो मिश्रग्रहणकाल है। सो इनिका परिवर्तन जो पलटना सो कैसे हो है? सो अनुक्रम यंत्रकरि दिखाइए है—

यंत्रविषैं अगृहीतकी सहनानी तो विंदी ॥ ० ॥ जाननी अरु मिश्रकी सहनानी हंसपद ॥ + ॥ जाननी अर गृहीतकी सहनानी एकका अंक ॥ १ ॥ जाननी अर दोयवार लिखनेतैं अनंतवार जानि लेना।

द्रव्य परिवर्तनका यंत्र।

० ० +	० ० +	० ० १	० ० +	० ० +	० ० १
+ + ०	+ + ०	+ + १	+ + ०	+ + ०	+ + १
+ + १	+ + १	+ + ०	++ १	+ + १	+ + ०
१ १ +	१ १ +	१ १ ०	१ १ +	१ १ +	१ १ ०

तहां विवक्षित नोकर्म पुद्गल परिवर्तनका पहिले समयतैं लगाइ प्रथम वार समयप्रवद्धविषैं अगृहीतका ग्रहण करै, दूसरी वार अगृहीतहीका ग्रहण करै, तीसरी वार अगृहीतहीका ग्रहण करै ऐसैं निरंतर अनंत वार अगृहीतका ग्रहण होइ निवरै तव एकवार मिश्रका ग्रहण करै। याहीतैं यंत्रविषैं पहिले कोठाविषैं दोयवार विंदी एकवार हसपद लिख्या। वहुरि तहां पीछैं तैसैं ही निरंतर अनंतवार अगृहीतका ग्रहणकरि एकवार मिश्रका ग्रहण करै ऐसैं ही अनुक्रमतैं अनंत अनंतवार अगृहीतका ग्रहणकरि एक एक वार मिश्रका ग्रहणकरै ऐसैं ही मिश्रका भी ग्रहण अनंतवार हो है याहीतैं अनंतवारकी सहनानीके निमित्त यंत्रविषैं जैसा पहिला कोठा था तैसाही दूसरा कोठा लिख्या। वहुरि तहां पीछैं तैसैंही निरंतर अनंतवार अगृहीतका ग्रहणकरि एकवार गृहीतका ग्रहण करै, याहीतैं तीसरा कोठाविषैं दोय विंदी अर एकका अंक लिख्या। वहुरि अगृहीत ग्रहण आदि अनुक्रमतैं जैसैं यहु एकवार गृहीत ग्रहण भया तैसैं ही अनुक्रमतैं एक एकवार गृहीत ग्रहणकरि अनंतवार गृहीत ग्रहण हो है। याहीतैं जैसैं तीन कोठे पहिलैं लिखे थे तैसैं ही अनंतकी सहनानीके निमित्त दूसरा तीन कोठे लिखे सो ऐसैं होतैं प्रथम परिवर्तन भया। तातैं इतनां प्रथमपंक्तिविषैं लिखा। अव दूसरी पंक्तिका अर्थ दिखाइए है—

पूर्वोक्त अनुक्रम भए पीछे निरंतर अनंतवार मिश्र ग्रहण करै तव एक वार अगृहीत ग्रहण करै। यातैं प्रथम कोठाविषै दोय हंसपद अर एक विंदी लिखी। वहुरि निरंतर अनंतवार मिश्र ग्रहण करि एकवार अगृहीत ग्रहण करै सो इस ही क्रमतैं अनंतवार अगृहीत ग्रहणकरै यातैं पहला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या। वहुरि तहां

पीछैं निरंतर अनंतवार मिश्र ग्रहणकरि एकवार गृहीत ग्रहण करै यातैं तीसरा कोठाविषै दोय हंसपद अर एक एकका अंक लिख्या। सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम लीए एक एक वार गृहीत ग्रहण होइ सो ऐसैं गृहीत ग्रहण भी अनंतवार हो है यातैं जैसे पहिले तीन कोठे लिखे थे तैसे ही तीन कोठे लिखे ऐसैं होत संते दूसरा परिवर्तन भया। अब तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाइए है—

पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरंतर अनंतवार मिश्रका ग्रहणकरि एकवार गृहीतका ग्रहण करै यातैं प्रथम कोठाविषैं दोय हंसपद अर एक एकका अंक लिख्या सो अनंत अनत बार मिश्र ग्रहण करिकरि एक एक बार गृहीत ग्रहण करि अनंतबार गृहीत ग्रहण हो है यातैं पहिला कोठा सारिखा दूसरा कोठा लिख्या। बहुरि अनंतवार मिश्रका ग्रहण करि एकबार अगृहीतका ग्रहण करै। यातैं तीसरा कोठाविषैं दोय हंसपद अर एक विंदी लिखी सो जैसैं मिश्र ग्रहणादि अनुक्रमतैं एकबार अगृहीतका ग्रहण भया तैसैं ही एक एक वार करि अनंतवार अगृहीतका ग्रहण हो है तातैं पहिले तीन कोठे थे तैसैं ही दूसरा तीन कोठे लिखे ऐसैं होत संतैं तीसरा परिवर्तन भया आगे चौथी पंक्तिका अर्थ दिखाइए है—

पूर्वोक्त क्रम भए पीछैं निरंतर अनंतवार गृहीतका ग्रहणकरि एकवार मिश्रका ग्रहण करै यातैं प्रथम कोठाविषैं दोय एका अर एक हंसपद लिख्या है। सो अनंत अनंतवार गृहीतका ग्रहणकरि करि एक एकवार मिश्र ग्रहण करि अनंतवार मिश्रका ग्रहण हो है। यातैं प्रथम कोठा सारिखा दूसरा कोठा कीया। बहुरि तहां पीछैं अनंतवार गृहीतका ग्रहणकरि एकवार अगृहीतका ग्रहण करै यातैं तीसरा कोठाविषै दोय एका अर एक विंदी लिखी। बहुरि चतुर्थ परिवर्तनकी आदितैं जैसा अनुक्रम करि यहु एकवार अगृहीत ग्रहण भया तैसैं ही अनुक्रमतैं अनंतवार अगृहीत ग्रहण होइ यातैं पहिलै तीन कोठे कीए थे तैसैं ही आगैं अनंतवारकी सहनानीके अर्थि दूसरा तीन कोठें कीए ऐसैं होते संते चतुर्थ परिवर्तन भया। बहुरि तीहिं चतुर्थ परिवर्तनका अनंतर समयविषैं विवाक्षित नोकर्म द्रव्य परिवर्तनके पहिले समयविषै जे पुद्गल जिस स्निग्धरूक्ष वर्ण गंधादि भावकौं लीए ग्रहण कीए थे तेई पुद्गल

... कर्मपुद्गलपरिवर्तन कहिए हैं—

किसी जीवने एक समयविषैं आठ प्रकार कर्मरूप जे पुद्गल ग्रहे ते एक समय अधिक आवली प्रमाण आबाधा कालकौं गए पीछैं द्वितीयादि समयनिविषैं निर्जरारूप कीए पीछैं जैसा अनुक्रम आदितैं लगाइ अंतपर्यंत नोकर्म द्रव्य परिवर्तनविषैं कह्या तैसाही अनुक्रम सर्व चार्‍यो परिवर्तनसंबंधी इस कर्मद्रव्यपरिवर्तनविषैं जानना। विशेष इतना—तहां नोकर्मसंबंधी पुद्गल थे इहां कर्मसंबंधी पुद्गल जानने अनुक्रमविषैं किछू विशेष नाही। पीछैं पहिले समय जैसे पुद्गल ग्रहे थे तेई पुद्गल तिसही भावकौं लीए चतुर्थ परिवर्तनके अनंतर समयविषैं ग्रहण होइ सो यहु सर्व मिल्या हूवा संपूर्ण कर्मपरिवर्तन जानना। इस द्रव्य परिवर्तनकौं पुद्गल परिवर्तन भी कहिए हैं। सो नोकर्म पुद्गलपरिवर्तनका अर कर्मपुद्गलपरिवतनका काल समान है। बहुरि इहां इतनां जानना—पूर्वे जो क्रम कह्या तहां जैसैं पहिले अनंतवार अगृहीतका ग्रहण कह्या तहां वीचि वीचिमें गृहीत ग्रहण वा मिश्रग्रहण भी होइ सो अनुक्रम विषैं तो पहिलीवार अर दूसरी वार आदि जो अगृहीत ग्रहण होइ सोई गिणनेमें आवै है। अर काल परिमाणविषैं गृहीत मिश्र ग्रहणका समय सहित सर्व काल गिणनेमें आवै है। जिनि समयनिविषैं गृहीतका ग्रहण है ते समय गृहीत ग्रहणके कालविषैं गिणनेमें आवैं हैं। जिनि समयनिविषैं मिश्रका ग्रहण है ते समय मिश्र ग्रहणके कालविषैं गिणनेमें आवै है। जिन समयनि विषै अगृहीत ग्रहण हो है ते समय अगृहीत ग्रहण काल विषै गिणनेमें आवै हैं सो यहु उदाहरण कह्या है ऐसैं ही सर्वत्र जानना। क्रमविषैं तौ जैसा अनुक्रम कह्या होइ तैसैं होइ तबही गिणनेमें आवै अर तिसातिस अनुक्रमके वीचि कोई अन्यरूप प्रवर्तै सो अनुक्रमविषैं गिणनेमें नाही अर जिनि समयनिविषैं अन्यरूप भी प्रवर्तै है तिनिं समयनिरूप जो काल सो परिवर्तनका कालविषैं गिणनेमें आवै ही है। ऐसैं ही क्षेत्रादि परिवर्तनविषैं भी जानना। जैसे क्षेत्र परिवर्तनविषैं किसी जीवने जघन्य अवगाहना पाई, परिवर्तन प्रारंभ कीया पीछैं केते एक काल अनुक्रमरहित अवगाहना पाई पीछे अनुक्रमरूप अवगाहनाकौं प्राप्त

भया तहां क्षेत्र परिवर्तनका अनुक्रमविषैं तौ पाहिले जघन्य अवगाहना पाई थी अर पीछैं दूसरीवार अनुक्रमरूप अवगाहना पाई सो गिणनेमें आवै है। अर क्षेत्र परिवर्तनका कालविषैं वीचिमें अनुक्रमरहित अवगाहना पावनेका काल सहित सर्वकाल गिणनेमें आवै है ऐसैं ही सर्वविषैं जानि लेना। अब इहां द्रव्य परिवर्तनविषैं कालका परिमाण कहैं हैं—

तहां अगृहीत ग्रहणका काल अनंत है तथापि यहु सर्वतैं स्तोक है जातैं जिनि पुद्गलानिस्यौं द्रव्य क्षेत्र काल भावनिका संस्कार नष्ट है ते पुद्गल बहुतवार ग्रहणमें आवते नाही याहीतैं विवक्षित पुद्गल परिवर्तनके मध्य गृहीत पुद्गलनिका ही बहुतवार ग्रहण संभवै है। सोई कह्या है—

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥

जे पुद्गल कर्मरूप परिणए थे अर जिनकी स्थिति थोरी थी अर निर्जरा होते कर्म अवस्थाकरि रहित भए हैं अर जीवके प्रेदशनिस्यों एक क्षेत्रावगाही तिष्ठे हैं अर संस्थान आकार जिनिका कह्या न जाय अर विवक्षित पुद्गल परिवर्तनका पाहिला समयविषैं जिसस्वरूप ग्रहणमें आए तिसकरि रहित होंइ ऐसे पुद्गल जीवकरि बाहुल्यपनै समयप्रबद्धनिविषै ग्रहण कीजिए है। ऐसा नियम नाहीं जो ऐसे ही पुद्गलनिका ग्रहण करै, परंतु बहुतवार ऐसे ही पुद्गलनिका ग्रहण हो है जातैं ए पुद्गल द्रव्य क्षेत्र काल भावका संस्कार करि संयुक्त हैं। बहुरि अगृहीत ग्रहणके कालतैं मिश्र ग्रहणका काल अनंत गुणा है। बहुरि तिस मिश्र ग्रहणके कालतैं गृहीत ग्रहणका जघन्यकाल अनंत गुणा हैं। बहुरि तिसतैं सर्व पुद्गल परिवर्तनका जघन्य काल किछू अधिक है। जघन्य गृहीत ग्रहण कालकौं अनंतका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण कालविषैं मिलाइए तब जघन्य पुद्गल परिवर्तनका काल हो है। बहुरि तिसतैं गृहीत ग्रहणका उत्कृष्ट काल अनंत गुणा है, बहुरि तातैं संपूर्ण पुद्गल परिवर्तनका उत्कृष्ट काल किछू अधिक है। उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण कालकौं अनंतका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितना उत्कृष्ट

गृहीत ग्रहण कालविषैं मिलाइए तव उत्कृष्ट पुद्गल परिवर्तनका काल हो है। इहां अगृहीत ग्रहण काल अर मिश्र ग्रहण कालविषैं जघन्य उत्कृष्टपना नाहीं है जातैं परंपरा सिद्धांतविषै तिनके जघन्य उत्कृष्टपनेका उपदेशका अभाव है इहां प्रासंगिक उक्तं च गाथा कहैं हैं—

अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च।
मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च॥

पहिला अगृहीत मिश्र गृहीतरूप दूसरा मिश्र अगृहीत गृहीतरूप तीसरा मिश्र गृहीत अगृहीतरूप चौथा गृहीत मिश्र अगृहीतरूप परिवर्तन भए द्रव्य परिवर्तन हो है सो विशदरूप पूर्वैं कह्या ही है। उक्तं च आर्या छंद—

सर्वेऽपि पुद्गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे॥

एकै जीव पुद्गल परिवर्तनरूप संसारविषैं यथा योग्य सर्व पुद्गल वारंवार अनंतवार ग्रहि छांडे है। आगै क्षेत्रपरिवर्तन कहिए है—सो क्षेत्रपरिवर्तन दोय प्रकार—एक स्वक्षेत्र परिवर्तन एक परक्षेत्रपरिवर्तन। तहां स्वक्षेत्र परिवर्तन कहिए है—कोई जीव सूक्ष्मनिगोदियाकी जघन्य अवगाहनाकौं धारि उपज्या अपना सांसका अठारहवां भाग प्रमाण आयुकौं भोगि मूवा वहुरि तिसतैं एक प्रदेश वधती अवगाहनाकौं धरै पीछे दोय प्रदेश वंधती अवगाहनाकौं धरै ऐसैं एक एक प्रदेश अनुक्रमतैं वंधती वंधती महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना पर्यंत संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहनाके भेदनिकौं सोई जीव प्राप्त होइ। जे अवगाहनाके भेद हैं ते सर्व एक जीव अनुक्रमतैं यावत्कालविषैं धारै सो यहु सर्व समुदायरूप स्वक्षेत्रपरिवर्तन जानना। अब परक्षेत्र परिवर्तन कहिए है—

सूक्ष्मनिगोदिया लब्धि अपर्याप्तक जघन्य अवगाहनारूप शरीरका धारक सो लोकाकाशके मध्य जे आठ आकाशके प्रदेश हैं तिनकौं अपने शरीरकी अवगाहनाके मध्यवर्ती आठ प्रदेशकरि अवशेष उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेश तिनकौं रोककरि उपज्या सांसका अठारहवां भाग मात्र क्षुद्रभवकाल जीयकरि मूवा वहुरि सोई जीव

तैसैं ही अवगाहनाकौं धारि तिसही क्षेत्रविषैं दूसरा उपज्या सो ऐसैं घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रमाण जघन्य अवगाहनाके जेते प्रदेश हैं तितनी वार तो तैसैं ही उपज्या, पीछे तहांस्यों एक प्रदेश आकाशका उसके निकटवर्ती ताकौं रोकिकरि उपज्या ऐसैं अनुक्रमतैं एक एक प्रदेशकरि सर्व लोकाकाशके प्रदेशनिकौं अपना जन्मक्षेत्र करै सो यहु सर्व परक्षेत्रपरिवर्तन है। उक्तं च—

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः।
अवगाहनानि वहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ॥

क्षेत्र संसारविषैं भ्रमण करता जीवकरि जाका अपने शरीरकी अवगाहनाकरि स्पर्श न कीया ऐसा सर्व जगच्छ्रेणीका घन प्रमाण लोकविषैं कोई प्रदेश नाहीं है बहुरि जाका बहुतवार अंगीकार न कीया ऐसा कोई अवगाहनाका भेद भी नाहीं। आगैं कालपरिवर्तन कहिये है—

कोई जीव उत्सर्पिणी कालका पहिला समयविषैं उपज्या अपना आयुकौं पूर्णकरि मूवा, बहुरि दूसरा उत्सर्पिणी कालका दूसरा समयविषैं उपज्या अपना आयुकौं पूर्णकरि मूवा, बहुरि तीसरी उत्सर्पिणी कालका तीसरा समयविषैं उपज्या तैसैं ही मूवा, ऐसैं दश कोडाकोडि सागर प्रमाण उत्सर्पिणी कालके जेते समय हैं तिनकौं पूर्ण करै। पीछै इसही अनुक्रमतैं दश कोडाकोडी प्रमाण अवसर्पिणी कालके जेते समय हैं तिनकौ पूर्ण करै। बहुरि जैसैं जन्मकी अपेक्षा अनुक्रम कह्या तैसैं ही मरणकी अपेक्षा अनुक्रम जानना। पहिले समयविषैं मूवा दूसरे समयविषैं मूवा ऐसैं कल्पकाल समयनिकौं पूर्ण करै सो यहु सर्व मिल्या हूआ कालपरिवर्तन जानना। उक्तं च—

उत्सर्पिण्यवसर्पिणिसमयावलिकासु निरवशेषासु।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ॥

काल संसारविषैं भ्रमण करता जीव उत्सर्पिणी अवसर्पिणीरूप कल्पकालका समस्त समय तिनकी पंकतिविषैं क्रमतैं बहुतबार जन्म धऱ्या है अर मरण कीया है। आगैं भवपरिवर्तन कहे हैं—

कोऊ जीव नरक गतिविषैं जघन्य आयु दशहजार वर्षकी धारि उपज्या, पीछैं मरणकरि संसारविषैं भ्रमणकरि तहां ही जघन्य दश हजार वर्षकी आयुकौं धारि उपज्या, ऐसैं दश हजार वर्षके जेते समय होंहिं तितनीवार तौ जघन्य आयुकौं ही धारि धारि उपजै अर मरै, पीछैं दश हजार वर्ष अर एक समयका आयुकौं धारि उपजै पीछैं दश हजार दोय समयके आयुकौं धारि उपजैं ऐसैं एक एक समय वधता अनुक्रमतैं उत्कृष्ट आयुमात्र तेतीस सागर पूरण करै पीछै तिर्यंच गतिविषैं अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य आयुकौं धारि उपजै सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्तके जेते समय होंहि तितनीवार तौ तिस अंतर्मुहूर्त प्रमाण ही आयुकौं धारि धारि उपजै। पीछैं एक समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयुकौं धारि उपजै पीछै दोय समय अधिक अतमुहूर्त्त आयुकौं धारि उपजै ऐसैं एक एक समय अनुक्रमतैं वधतैं वधतैं उत्कृष्ट आयुका तीन पल्य पूर्णकरै। वहुरि मनुष्य गतिविषैं तिर्यंच गतिकी ज्यों अंतर्मुहूर्ततैं लगाइ तीन पल्यकौं पूर्ण करै। वहुरि देवगतिविषैं नरक गतिकी ज्यौं दश हजार वर्षतैं लगाइ इकतीस सागर पूर्ण करै, जातैं मिथ्यादृष्टी जीव अनुत्तर अनुदिश विमानविषैं उपजै नाही ऊपरिके ग्रैवेयक पर्यंत ही उपजै तातैं इकतीस सागर ही कहे ऐसैं भ्रमणकरि वहुरि नरकविषैं दश हजार वर्षप्रमाण जघन्य आयुकौं धारि उपजै तव यहु संपूर्ण भवपरिवर्तन हो है। उक्तं च—

नरकजघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवेयकावसानेषु।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता वहुशः॥

मिथ्यात्व करि आश्रित जीव तीहिने नरकका जघन्य आयु आदि उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत आयुविषैं संसारकी स्थिति वहुतवार भोगई है। आगैं भावपरिवर्तन कहिए है—

सो भावपरिवर्तन योगस्थान १ अनुभागवंधाध्यवसायस्थान २ कषायाध्यवसायस्थान ३ स्थितिस्थान इनि च्यारिनिके परिवर्तनतैं हो है सो प्रथम इनिका स्वरूप कहिए हैं—

प्रकृतिबंध प्रदेशवंधकौं कारण ऐसे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग तिनिके जे जघन्यादिक स्थान ते योगस्थान हैं। वहुरि जिनि कषाय युक्त परिणामनितैं कर्मनिका अनुभाग वंध हो है तिनिके जघन्यादि स्थान ते अनुभाग

बंधाध्यवसाय स्थान हैं। बहुरि जिनि कषाय परिणामनितैं स्थितिबंध हो है तिनिके जघन्यादि स्थान ते इहां कषायाध्यवसाय स्थान कहे हैं वा स्थितिबंधाध्यवसायस्थान भी इनिकौं कहिए । बहुरि बधनेरूप जो कर्मनिकी स्थिति तिनिके जघन्यादिक स्थान ते स्थितिस्थान कहिए। इनिका विशेष स्वरूप आगैं कहैंगे सो जानना । बहुरि इहां एक एक स्थिति भेदके बंधके कारण अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबंधाध्यवसायस्थान पाइए है। बहुरि एक एक स्थितिबंधाध्यवसायस्थानविषैं यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान पाइए। बहुरि एक एक अनुभागबंधाध्यवसायस्थानविषैं जगच्छ्रेणीके असंख्यातवे भागमात्र योग स्थान पाइए है। अब इनिके परिवर्तनका अनुक्रम ज्ञानावरण कर्मका उदाहरण करि कहिए है—कोऊ जीव पंचेंद्री सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी सो अपने योग्य जघन्य ज्ञानावरण नामा कर्मकी स्थिति अंतःकोटाकोटी सागरप्रमाण बाधैं है इस जीवके यातैं घाटि स्थिति बंध होता नाहीं तातैं याकैं यहु ही जघन्य स्थिति स्थान है सो कोडिके ऊपरि अर कोडाकोडिके नीचे जो होइ ताकौं अंतः कोटाकोटी कहिए । तहां तिस जघन्य स्थितिबंध करनेवाले जीवकैं तिस जघन्य स्थितिबंध होनेकौं योग्य असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसायस्थान पाइए है ते परिणामनिकी अपेक्षा अनंतभागादिक षट् स्थानकौं लीए हैं। बहुरि तिनिविषैं भी जघन्य कषायाध्यवसायस्थानकौं निमित्त भूत अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान असंख्यात लोकमात्र पाइए है सो पूर्वोक्त कोऊ जीवकैं अंतः कोटाकोटी सागर प्रमाण जघन्य ही तौ स्थिति स्थान हैं अर ताके जघन्य ही कषायाध्यवसायस्थान हैं अर जघन्य ही अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान हैं अर तिस जीवकै जैसा योग्य होइ तैसा जघन्य ही योगस्थान पाइए है तहां भावपरिवर्तनका प्रारंभ हूवा। बहुरि तिसही जीवके स्थितिस्थान कषायाध्यवसाय स्थान अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान ए तौ तीनो जघन्य ही रहे अर जघन्यतैं असंख्यात भागवृद्धिकौं लीएं योगस्थान दूसरा भया पीछैं स्थिति स्थानादिक तीनौं तौ जघन्य ही रहे अर योगस्थान तीसरा भया ऐसैं अनुक्रमतैं अविभाग प्रतिच्छेदनिकी अपेक्षा असंख्यात भाग वृद्धि संख्यात भाग वृद्धि संख्यातगुणवृद्धि असंख्यात गुणवृद्धिरूप चतुःस्थान पतित वृद्धिलीएं श्रेणीके असंख्या-

तवे भागप्रमाण योगस्थान भए बहुरि स्थितिस्थान अर कषायाध्यवसायस्थान तौ जघन्य ही रहे अर अनुभाग बंधाध्यवसायस्थानका दूसरा स्थान भया तहां योगस्थान जघन्यतैं लगाइ पूर्वोक्त प्रकार क्रमतैं सर्व भए बहुरि स्थितिस्थान अर कषायाध्यवसायस्थान तौं जघन्यही रहे अर अनुभाग वंधाध्यवसायस्थानका तीसरा स्थान भया तहां भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार भए ऐसैं क्रमतैं अपने योग्य असंख्यात लोक प्रमाण अनुभागाध्यवसायस्थान भए बहुरि स्थिति स्थान तो जघन्य ही रह्या अर कषायाध्यवसाय स्थानका दूसरा स्थान भया। तहां पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननिकौं लीए जघन्यतैं लगाइ अनुभागाध्यवसायस्थान भए। बहुरि स्थिति स्थान तो जघन्य ही रह्या अर कषायाध्यवसाय स्थानका तीसरा स्थान भया तहां भी पूर्वोक्त प्रकार योगस्थाननिकौं लीए क्रमतैं अनुभागाध्यवसायस्थान भए ऐसैं ही क्रमतैं अपने योग्य कषायाध्यवसाय स्थान असंख्यात लोक प्रमाण भए। बहुरि जैसैं यहु अंतःकोटाकोटी प्रमाण जघन्य स्थितिस्थानविषै अनुक्रम कह्या तैसें ही जघन्यतैं एक समय अधिक दूसरा स्थितिस्थानविषै अपने योग्य योगस्थान अनुभागाध्यवसाय स्थानके परिवर्तनकौं लीए पूर्वोक्त प्रकार क्रमतैं अपने योग्य सर्व कषायाध्यवसाय स्थान भए बहुरि ऐसें ही जघन्यतैं दोय समय अधिक तीसरा स्थिति स्थानविषै भए ऐसें एक एक समय बंधता स्थिति स्थानका अनुक्रम करि तीस कोडाकोडी सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति पर्यंत जानना। बहुरि जैसैं यहु ज्ञानावरण अपेक्षा कथन कीया तैसें ही कर्मनिकी सर्व मूल प्रकृति वा उत्तर प्रकृतिनिविषैं परिवर्तनका अनुक्रम जानना। ऐसैं यहु सर्व मिल्या हूवा भाव परिवर्तन जानना। इहां जघन्य स्थिति आदिविषैं सर्व ही कषायाध्यवसाय स्थानादिकनिका पलटना हो है जघन्य स्थिति आदि विषैं जे संभवैं तिनहीका पलटना हो है ऐसा जानना। उक्तं च आर्या छंद—

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशवंधयोग्यानि।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावससारे ॥ १ ॥

लोकविषैं भाव संसारविषैं भ्रमण करता जीवकरि प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग बंधका योग्य जे योगनिके

कषायनिके स्थितिके स्थान ते सवही भोगिए है। इहां परिवर्तनका अनुक्रमविषैं जघन्य स्थिति स्थानसंबंधी स्थिति बंधाध्यवसाय स्थान अनुभागबंधाध्यवसायस्थान योगस्थान जघन्यतैं लगाइ उत्कृष्ट पर्यंत हो हैं तिनिकौं आदि देकरि सर्वोत्कृष्ट स्थिति पर्यंत अपने अपने संबंधी जघन्यतैं उत्कृष्ट पर्यंत स्थिति बंधाध्यवसायादिककौं स्थापि यथासंभव जैसें गुणस्थान प्ररूपणाविषै प्रमाद भेदनिके निमित्ति अक्षसंचार करि परिवर्तनका विधान कह्या था तैसें इहां भी अक्षसंचार करि परिवर्तनका विधान जानना। ऐसें ए पंच परिवर्तन कहे ॥ अब इनिका काल कहिए है—

सर्वतैं स्तोक एक पुद्‌गलपरिवर्तनका काल है सो अनंत है। बहुरि तातैं अनंतगुणा क्षेत्र परिवर्तनका काल है। बहुरि तातैं अनंतगुणा काल परिवर्तनका काल है। बहुरि तातैं अनंतगुणा भव परिवर्तनका काल है। बहुरि तातैं अनंतगुणा भाव परिवर्तनका काल है। याहीतैं एक जीवके अनादितैं लगाइ अतीतकालविषैं भाव परिवर्तन थोरे भए ते पणि अनंत भए। बहुरि तिनितैं अनंतगुण भवपरिवर्तन भए। बहुरि तिनितैं अनंतगुणे कालपरिवर्तन भए। बहुरि तिनितैं अनंत गुणे क्षेत्रपरिवर्तन भए बहुरि तिनितैं अनंतगुणे द्रव्य परिवर्तन भए ऐसें जानना। बहुरि जैसें स्वर्गादिविषै दिन रात्रिका अभाव है तहां मनुष्य क्षेत्र अपेक्षा वर्ष आदिका प्रमाण कीजिए हैं तैसें निगोदादिविषैं जीवनिके जहां परिवर्तनका अनुक्रम न हो है तहां अन्य जीव अपेक्षा परिवर्तनका काल ग्रहण कीजिए है। उक्तं च आर्याछंद—

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ॥

जिनमतकरि दिखाया जो मुक्तिका मार्ग ताकौं न श्रद्धान करता प्राणी जीव नाना प्रकार दुःखनिकरि आकुलित जो पंच प्रकार संसार तीहिविषैं भ्रमण करै है ॥ ५६० ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्तिविरचित गोम्मट सार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिकानामा संस्कृत टीकाकै अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनविषैं भव्यमार्गणा प्ररूपणा है नाम जाका ऐसा सोलवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १६ ॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणा ॥ १७ ॥

जी० प्र०— कुंथ्वादिजन्तूनां जन्मजरामृत्युविनाशिने ।
सद्बोधसिंधुचंद्राय नमः कुंथुजिनेशिने ॥ १७ ॥

अथ सम्यक्त्वमार्गणामाह—

स० चं०— ज्ञान उदधि शशि कुंथु जिन वंदौं अमितविकास ।
कुंथ्वादिक कीए सुखी जनम मरण करि नाश ॥ १७ ॥

आगें सम्यक्त्व मार्गणाकौं कहैं हैं—

छप्पंचणवविहाणं अत्थाण जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥ ५६१ ॥

षट्पञ्चनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानाम् ।
आज्ञया अधिगमेन च श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥ ५६१ ॥

जी० प्र०—द्रव्यभेदेन षड्विधानां अस्तिकायभेदेन पंचविधानां पदार्थभेदेन नवविधानां च सर्वज्ञोक्तजीवादिवस्तूनां श्रद्धानं रुचिः सम्यक्त्वं । तच्छ्रद्धानं आज्ञया प्रमाणादिभिर्विना आप्तवचनाश्रयेण ईषन्निर्णयलक्षणया, अथवा अधिगमेन प्रमाणनयनिक्षेपनिरुक्त्यनुयोगद्वारैः विशेषनिर्णयलक्षणेन भवति ।

सरागवीतरागात्मविषयत्वाद् द्विधा स्मृतं । प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिजं ॥ १ ॥
आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतं । आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ॥ २ ॥

अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं । अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं ।

प्रदेशप्रचयात्काया द्रवणाद् द्रव्यनामकाः । परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥ १ ॥

इति सामान्येन पंचास्तिकायषड्द्रव्यनवपदार्थानां लक्षणं ॥ ५६१ ॥ अथ षड्द्रव्याणामधिकारान्निर्दिशति—

स. चं.–द्रव्यभेदकरि छहप्रकार अस्तिकायभेदकरि पांचप्रकार पदार्थ भेदकरि नौ प्रकार ऐसे जो सर्वज्ञ देवकरि कहे जीवादिक वस्तु तिनका श्रद्धान रुचि यथावत् प्रतीति सो सम्यक्त्व जानना। सो सर्वज्ञदेवने जैसें कह्या है तैसें ही है ऐसे आप्तवचनकरि सामान्य निर्णयरूप है लक्षण जाका ऐसी जो आज्ञा तीहिकरि बिना ही प्रमाण नयादिक का विशेष जानें श्रद्धान हो है अथवा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण अर द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय अर नाम स्थापना द्रव्य भाव निक्षेप अर व्याकरणादिकरि साधित निरुक्ति अर निर्देश स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादिकरि विशेष निर्णयरूप है लक्षण जाका ऐसा जो आधिगम तींहिकरि श्रद्धान हो है। उक्तं च—

सरागवीतरागात्म–विषयत्वाद् द्विधा स्मृतं।
प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिज ॥ १ ॥

सम्यक्त्व दोय प्रकार है एक सराग एक वीतराग। तहां उपशम संवेग आस्तिक्यादिक गुणनिरूप राग साहित श्रद्धान होइ सो सराग सम्यक्त्व है। बहुरि केवल चैतन्यमात्र आत्मस्वरूपकी विशुद्धता मात्र वीतराग सम्यक्त्व है ॥ उक्तं च—

आप्ते व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमास्तित्वसंयुतं।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे।

सो सम्यग्दृष्टी जीवके सर्वज्ञ देवविषैं व्रतविषैं शास्त्रविषैं तत्त्वविषैं ऐसें ही है ऐसा आस्तित्वभावकरि संयुक्त चित्त हो है सो सम्यक्त्व साहित जीवविषैं आस्तिक्य गुण है ऐसें अस्तित्व वादीनिकरि कहिए है। अथवा 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, ऐसा कह्या है अथवा तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं' ऐसा कह्या है सो ए सर्वविशेषण एकार्थ हैं इनि सबनिका अर्थ यहु जानना जो यथार्थ स्वरूप लीएं पदार्थनिका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है। उक्तं च—

प्रदेशप्रचयात्कायाः द्रवणाद्द्रव्यनामकाः।
परिच्छेद्यत्वतस्तेर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ॥ १ ॥

स चं–सम्यक्त्वके श्रद्धानविषैं आवने योग्य जे जीवादिक ते बहुतप्रदेशनिका प्रचय समूहकौं धरैं हैं तातैं काय कहिए। बहुरि अपने गुण पर्यायनिकौं द्रवैं हैं व्यापैं हैं तातैं द्रव्य नाम कहिए। बहुरि जीवकरि जानने योग्य हैं तातैं अर्थ कहिए बहुरि वस्तुस्वरूपपनाकौं धरैं हैं तातैं तत्त्व कहिए ऐसैं इनिका सामान्य लक्षण जानना॥५६१॥

आगैं षद्द्रव्यनिके अधिकार कहैं हैं—

छद्दव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणेकालो।
अत्थणखेत्तं संखा ठाणसरूवं फलं च हवे॥ ५६२॥

षड्द्रव्येषु च नाम उपलक्षणानुवादः अस्तित्वकालः।
अस्तित्वक्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूपं फलं च भवेत्॥ ५६२॥

जी प्र०—षड्द्रव्येषु नामानि उपलक्षणानुवादः स्थितिः क्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूपं फलं चेति सप्ताधिकारा भवंति॥ ५६२॥ अथ प्रथमोद्दिष्टनामाधिकारमाह—

स चं–षद्द्रव्यनिके वर्णनविषैं नाम १ उपलक्षणानुवाद २ स्थिति ३ क्षेत्र ४ संख्या ५ स्थानस्वरूप ६ फल ७ ए सात अधिकार जानने॥ ५६२॥ तहां प्रथम कह्या जो नाम अधिकार ताहि कहैं हैं—

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवित्ति होदि पत्तेयं।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया॥ ५६३॥

जीवाजीवं द्रव्यं रूप्यरूपीति भवति प्रत्येकं।
संसारस्था रूपिणः कर्मविमुक्ता अरूपगताः॥ ५६३॥

जी० प्र०—सामान्येन संग्रहनयापेक्षया द्रव्यमेकं। तदेव भेदविवक्षया जीवद्रव्यं अजीवद्रव्यं च। तत्र जीवद्रव्यं रूप्यरूपि च। तत्र संसारस्थाः रूपिणः, कर्मविमुक्ताः सिद्धा अरूपिणो भवंति। अजीवद्रव्यमपि रूप्यरूपि च ॥ ५६३ ॥

स० चं०—सामान्य संग्रह नय अपेक्षा द्रव्य एक प्रकार है। बहुरि सोई द्रव्य भेद विवक्षाकरि दोय प्रकार है। एक जीव द्रव्य १ एक अजीवद्रव्य २ तहां जीव द्रव्य दोय प्रकार है एक रूपी १ अर एक अरूपी २ तहां जे जीव संसार अवस्थाविषें तिष्ठें हैं तिनिके मूर्तीक पुद्गलका संबंध पाइए है तातें तिनकौं रूपी कहिए। बहुरि सिद्ध भगवान पुद्गलीक कर्मकरि मुक्त भए हैं तातें तिनकौं अरूपी कहिए। बहुरि अजीव द्रव्य भी रूपी अरूपीके भेदतें दोय प्रकार है ॥ ५६३ ॥ सो कहिए है—

अज्जीवेसु य रूवी पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरोवि।
आगासं कालोवि य चत्तारि अरूविणो होंति ॥ ५६४॥

अजीवेषु रूपीणि पुद्गलद्रव्याणि धर्म इतरोऽपि।
आकाशं कालोऽपि च चत्वारि अरूपीणि भवंति ॥ ५६४ ॥

जी० प्र०—अजीवेषु पुद्गलद्रव्याणि रूपीणि भवंति धर्मद्रव्यं तथा अधर्मद्रव्यं आकाशद्रव्यं कालद्रव्यं चेति चत्वारि अरूपीणि भवंति। अत्र "वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्। कुर्वंति स्कंधवत् तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः" इत्येवं परमाणूनां पुद्गलत्वे द्वयणुकादीनामेव कथं? प्रदेशपूरणगलनरूपेण द्रवंति द्रोष्यंति अदुद्रवन्निति ब्रूमः। ननु—

षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता।
षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकं ॥

सत्यं, द्रव्यार्थिकनयेन निरंशत्वेऽपि परमाणोः पर्यायार्थिकनयेन षडंशत्वे दोषाभावात्।

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकं।
स्कंधोपादानमत्यक्ष परमाणुं प्रचक्षते ॥

॥ ५६४ ॥ इति नामाधिकारः।

स० चं—अजीव द्रव्यनिविषैं पुद्गल द्रव्य तौ रूपी है। स्पर्श रस गंध वर्ण गुण संयुक्त मूर्तीक है बहुरि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य कालद्रव्य ए च्यारि अरूपी हैं स्पर्श रस वर्ण गंध रहित अमूर्तीक हैं। इहां उक्तं च—

वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत्।
कुर्वंति स्कंधवत्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ॥

पूरण अर गलनकौं करै सो पुद्गल कहिए। युक्त होनेका नाम पूरण है अर विछुडनेका नाम गलन है जातैं वर्ण गंध रस स्पर्श गुणनिकरि पूरण गलनकौं स्कंधवत् करै है जैसैं स्कंधविषैं कोऊ परमाणु मिलै हैं कोऊ विछुरैं हैं तैसैं परमाणूविषैं कोऊ वर्णादिकका भेद उत्पन्न हो है सो मिलै है कोऊ नष्ट हो है सो विछुरै है तातैं परमाणू हैं ते पुद्गल कहे हैं। बहुरि ऐसैं परमाणूनिकैं पुद्गलपना होते द्व्यणुक आदि स्कंधनिकैं कैसैं पुद्गलपना है? सो कहिए है—कोऊ परमाणू मिलै है कोऊ विछुरै है सो ऐसा प्रदेशनिका पूरणगलन करि करि जे द्रवैं हैं द्रवैंगे द्रए तातैं तिनिकौं पुद्गल कहिए है अपने स्वभाव रूप परिणमनेका नाम द्रवना है इस द्रवत्व गुणतैं द्रव्य नाम पावै है। इहां प्रश्न—जो परमाणूकौं अविभाग निरंश कहिए है सो परमाणू तौ छह कौंणकौं लीएं गोल आकार है सो जहां छह कोण भए तहां छह अंश सहज ही आए तौ निरंश कैसैं कहिए? उक्तं च—

षट्कोणयुगपद्योगात्परमाणोः षडंशता।
षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकं ॥ १ ॥

युगपत् छह कौणका समुदाय है तातैं परमाणूकैं छह अंशपना संभवै है छहौंकौं समानरूप कहतैं संतैं परमाणूमात्र पिंड हो है। ताका उत्तर—परमाणूकैं द्रव्यार्थिक नयकरि निरंशपणा है परंतु पर्यायार्थिक नयकरि छह अंश कहनेमें किछू दोष नाहीं ॥ उक्तं च—

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकं।
स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणुं प्रचक्षते ॥ १ ॥

जो द्रव्य आदि अंत रहित है। बहुरि जिसविषैं छह अंश पाइए है। ते कबहूं भिन्न भिन्न न हो हैं तातैं भिन्न भावरहित अंशकौं धरैं हैं। बहुरि स्कंध ग्रहणकी शक्तिका धारक है बहुरि इंद्रियगम्य नाहीं है ऐसे द्रव्यकौं परमाणू कहिए है। परमाणूविषैं कोणनिकी अपेक्षा छह अंश हैं ते अंश कबहूं भिन्न भिन्न न होंइ अथवा परमाणूतैं छोटा जगतविषैं कोऊ और पदार्थ भी नाहीं है जिसकी अपेक्षाकरि भागकल्पना कीजिए तातैं परमाणूकौं अविभाग कहिए है। बहुरि कोणनिकी अपेक्षा छह अंश कहिए तौभी किछू दोष नाहीं। बहुरि आदिपुराणादिविषैं परमाणू गोल कह्या है सो यहु षट्कोणको लीए आकार गोल क्षेत्र हीका भेद है तातैं गोल कह्या है ऐसे अणू वा स्कंधरूप पुद्गल द्रव्य तो रूपी अजीव द्रव्य जानना। बहुरि धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाश द्रव्य कालद्रव्य ए च्यार्यो अरूपी अजीव द्रव्य जानने ॥ ५६४ ॥ इति नामाधिकार।

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ॥ ५६५ ॥

उपयोगो वर्णचतुष्कं लक्षणमिह जीवपुद्गलानां तु।
गतिस्थानावगाहवर्तनक्रियोपकारस्तु धर्मचतुर्णां ॥ ५६५ ॥

जी० प्र०—उपयोगः जीवनां, तु—पुनः वर्णचतुष्कं पुद्गलानां, इह परमागमे लक्षणं भवति। गतिस्थानावगाहनवर्तनक्रियाख्याः उपकाराः। तु—पुनः यथासंख्यं धर्माधर्माकाशकालानां लक्षणं भवति ॥ ५६५ ॥

स० चं०—द्रव्यनिके लक्षण कहै हैं तहां जीव अर पुद्गलनिके लक्षण उपयोग अर वर्ण चतुष्क जानना। तहां दर्शन-ज्ञान उपयोग जीवनिका लक्षण है। वर्ण गंध रस स्पर्श पुद्गलनिका लक्षण है। बहुरि गति स्थान अवगाह वर्तनारूप क्रियाका उपकार ते धर्मादिक च्यारि द्रव्यनिके लक्षण हैं। तहां गतिहेतुत्व धर्मद्रव्यका लक्षण है। स्थितिहेतुत्व अधर्मद्रव्यका लक्षण है। अवगाहहेतुत्व आकाश द्रव्यका लक्षण है। वर्तना हेतुत्व काल द्रव्यका लक्षण है ॥ ५६५ ॥

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे ।
धम्मतिये ण हि किरिया मुक्खा पुण साधगा होंति ॥ ५६६ ॥

गतिस्थानावगाहक्रिया जीवानां पुद्गलानामेव भवेत् ।
धर्मत्रिके न हि क्रिया मुख्याः पुनः साधका भवंति ॥ ५६६ ॥

जी० प्र०—गतिस्थानावगाहनक्रियास्तिस्रः जीवपुद्गलयोरेव भवंति धर्माधर्माकाशेषु क्रिया नहि स्थानचलनप्रदेशचलनयोरभावात्। किं तर्हि ? धर्मादिद्रव्याणि गत्यादीनां मुख्यसाधिकानि भवंति ॥ ५६६ ॥ तद्यथा—

स० चं०—गति स्थिति अवगाह ए तीन क्रिया जीव अर पुद्गल ही के पाइए है। तहां प्रदेशतैं प्रदेशांतरविषैं प्राप्त होना सो गति क्रिया है। गमनकरि कहीं तिष्ठना सो स्थिति क्रिया है। गति स्थिति लीए वास करना सो अवगाह क्रिया जानना बहुरि धर्म अधर्म आकाशविषैं ए क्रिया नाहीं है जातैं इनके स्थानचलन प्रदेशचलनका अभाव है तहां अपने स्थानकौं छाडि अन्य स्थान होना सो स्थानचलन कहिए। प्रदेशनिका चंचलरूप होना सो प्रदेशचलन कहिए। बहुरि धर्मादिक द्रव्य गति स्थिति अवगाह क्रियाके मुख्य साधक हैं। जीव पुद्गलनिकैं जो गति स्थिति अवगाह क्रिया हो है ताकौं निमित्त मात्र ही हैं सो कहिए है—

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि ॥ ५६७ ॥

यातस्य पंथाः तिष्ठतः आसनं निवसकस्य वसतिर्वा ।
गतिस्थानावगाहकरणे धर्मत्रयं साधक भवति ॥ ५६७ ॥

जी० प्र०—गच्छतः पंथाः, तिष्ठतः आसनं, निवसतः निवासः, यथा गतिस्थानावगाहकरणे साधका भवंति तथा धर्मादित्रयमपि साधकं कारणमित्यर्थः ॥ ५६७ ॥

स० चं–जैसे गमन करनेवालोंकौं पंथा जो मार्ग सो कारण है। तिष्ठनेवालोंकौं आसन जो स्थान सो कारण है। निवास करनेवालोंकौं वसतिका जो वसनेका क्षेत्र सो कारण है तैसैं गति स्थिति अवगाहनके कारण धर्मादिक द्रव्य हैं। जैसैं ते पंथादिक आप गमनादि नाहीं करैं हैं जीवनिकौं प्रेरक होइ गमनादि नाईं करावैं है। स्वयमेव जे गमनादि करैं तिनको कारणभूत हो हैं सो कारण इतना ही जो जहां पंथादिक होंइ तहां ही वे गमनादिरूप प्रवर्तैं तैसैं धर्मादिक द्रव्य आप आप गमनादि नाहीं करैं है जीव पुद्गलनिकौं प्रेरक होइ गमनादिक क्रिया नाहीं करावै हैं स्वयमेव ही गमनादिक क्रियारूप प्रवर्तते जे जीव पुद्गल तिनकौं सहकारी कारण हो हैं सो कारण इतना ही जो धर्मादिक द्रव्य जहां होइ तहां ही गमनादि क्रियारूप जीव पुद्गल प्रवर्तैं हैं ॥ ५६७ ॥

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ॥ ५६८ ॥

वर्तनाहेतुः कालः वर्तनागुणमवेहि द्रव्यनिचयेषु ।
कालाधारेणैव च वर्तंते हिं सर्वद्रव्याणि ॥ ५६८ ॥

जी० प्र––णिजंतात् वृतूञ्धातोः कर्मणि भावे वा वर्तनाशब्दव्यवस्थितिः । वर्त्यते वर्तनमात्रं वेति धर्मादिद्रव्याणां स्वपर्यायनिर्वृत्तिं प्रति स्वयमेव वर्तमानानां वाह्योपग्रहाभावे तद्वृत्त्यसंभवात् तेषां प्रवर्तनोपलक्षितः कालः इति कृत्वा वर्तनाकालस्य उपकारो ज्ञातव्यः । अत्र णिचोर्थः कः ? वर्तते द्रव्यपर्यायः तस्य वर्तयिता कालः इति। तदा कालस्य क्रियावत्त्वं प्रसज्यते अधीते शिष्यः, उपाध्यायोऽध्यापयतीत्यादिवत्, तन्न–निमित्तमात्रेपि हेतुकर्तृत्वदर्शनात् कारीषोऽग्निरध्यापयतीत्यादिवत् । तर्हि स कथं निश्चीयते ? समयादिक्रियाविशेषाणां समय इत्यादेः समयादिनिर्वर्त्यपाकादीनां पाकइत्यादेश्च स्वसंज्ञायाः रूढिसद्भावेऽपि तत्र काल इति यदध्यारोप्यते तन्मुख्यकालास्तित्वं कथयति गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् इति षड् द्रव्याणां वर्तनाकारणं मुख्यकालः। वर्तनगुणो द्रव्यनिचये एव, तथा सति कालाधारेणैव सर्वद्रव्याणि वर्तंते स्वस्वपर्यायैः परिणमंति खलु नियमेन। अत्र खलुशब्दोऽवधारणार्थः, अनेन कालस्यैव परिणामक्रियापरत्वापरत्वोपकारौ उक्तौ । तौ तु जीवपुद्गलयोर्दृश्येते धर्मादि–अमूर्तद्रव्येषु कथं ? इति चेदाह––

स० चं०––णिच् प्रत्ययसंयुक्त जो वृतूञ् धातु ताका कर्मविषैं वा भावविषैं वर्तना शब्द निपजै है सो याका

अर्थ यहु जो वर्तै वा वर्तनमात्र होइ ताकौं वर्तना कहिए सो धर्मादिकद्रव्य अपने अपने पर्यायनिकी निष्पत्तिविषैं स्वयमेव वर्तमान हैं तिनकै वाह्य कोई कारणभूत उपकार विना सो प्रवृत्ति संभवै नाहीं तातैं तिनकैं तिस प्रवृत्ति करावनेकौं कारण कालद्रव्य है ऐसैं वर्तना कालका उपकार जानना। इहां णिच् प्रत्ययका अर्थ यहु जो द्रव्यनिका पर्याय वर्तै है ताका वर्तावनेवाला काल है। तहां प्रश्न–जो जैसैं शिष्य पढै है अर उपाध्याय पढावै है तहां दोऊनिकैं पठनाक्रिया देखिए है तैसैं धर्मादिकद्रव्य प्रवर्तै हैं अर काल प्रवर्तावै है तौ धर्मादिक द्रव्यकी ज्यौं कालकैं भी तिनि पर्यायनिका प्रवर्तनरूप क्रियाका सद्भाव आया तहां उत्तर-जो ऐसैं नाहीं है इहां निमित्तमात्र वस्तुकौं हेतुका कर्ता कहिए है जैसैं शीतकालविषैं शीतकरि शिष्य पढनेकौं समर्थ न भए तहां कारीषाके अग्निका निमित्त भया तब वे पढने लग गए तहां निमित्तमात्र देखि ऐसा कहिए जो कारीषाका अग्नि शिष्यनिकौं पढावै है सो कारीषाका अग्नि आप पढनेरूप क्रियावान न हो है। तिनिके पढनेकौं निमित्तमात्र है तैसैं काल आप क्रियावान न हो है कालके निमित्ततैं वे स्वयमेव परिणवै हैं। तातैं ऐसा कहिए है जो तिनिकौं काल प्रवर्तावै है। बहुरि तिस कालका निश्चय कैसैं होइ? सो कहिए है समय घडी इत्यादिक क्रियाविशेष तिनिकौं लोकविषैं समयादिक कहिए है। बहुरि समय घडी इत्यादिकरि जे पचनादि क्रिया होंइ तिनिकौं लोकविषैं पाकादिक कहिए है। तहां तिनिविषैं काल ऐसा जो शब्द आरोपण कीजिए है समयकाल घडीकाल पाककाल इत्यादि कहिए है सो यहु व्यवहारकाल मुख्यकालका आस्तित्वकौं कहै है–जातैं गौण है सो मुख्यकी सापेक्षाकौं धरै है जैसैं किसी पुरुषकौं सिंह कह्या तौ तहां जानिए है जो कोई सिंह नामा पदार्थ जगतविषैं पाइए है ऐसैं कालका निश्चय कीजिए है प्रत्यक्षकेवली जानैं है। बहुरि षद्द्रव्यकी वर्तनाकौं कारण मुख्यकाल है वर्तना गुण द्रव्यसमूहविषैं ही पाइए है ऐसैं होतैं कालका आधारकरि सर्व द्रव्य प्रवर्तै हैं। अपने अपने पर्यायरूप परिणमैं है यातैं परिणमनरूप जो क्रिया ताकौं परत्व अर अपरत्व जो आगैं पीछैंपना सो कालका उपकार है॥ ५६८॥ इहां प्रश्न जो क्रियाका परत्व अपरत्व तौ जीव पुद्गलविषैं है धर्मादिक अमूर्तीक द्रव्यनिविषैं कैसैं संभवै? सो कहै हैं—

धम्माधमादीणं अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं ।
हाणीहिं वि वड्ढंतो हायंतो वट्टदे जम्हा ॥ ५६९ ॥

धर्माधर्मादीनामगुरुकलघुकं तु षड्भिरपि वृद्धिभिः ।
हानिभिरपि वर्धमानं हीयमानं वर्तते यस्मात् ॥ ५६९ ॥

जी० प्र०—यतः धर्माधर्मादीनां अगुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदा स्वद्रव्यत्वस्य निमित्तभूतशक्तिविशेषाः षड्वृद्धिभिर्वर्धमाना षड्ढानिभिश्च हीयमानाः परिणमंति ततः कारणात्तत्रापि च मुख्यकालस्यैव कारणत्वात् ॥ ५६९ ॥

स० चं०—जातैं धर्म अधर्मादिक द्रव्यनिकैं अपने द्रव्यत्वकौं कारणभूत शक्तिके विशेषरूप जे अगुरुलघु नामा गुणके अविभाग प्रतिच्छेद ते अनंतभागवृद्धि आदि षट्स्थानपतित वृद्धिकरि तौ बधै हैं अर अनंतभागहानि आदि षट्स्थानपतित हानिकरि घटैं हैं तातैं तहां ऐसैं परिणमनविषैं भी मुख्य कालहीकौं कारण जानना ५६९

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदू ॥ ५७० ॥

न च परिणमति स्वयं स न च परिणामयति अन्यदन्यैः ।
विविधपरिणामिकानां भवति हि कालः स्वयं हेतुः ॥ ५७० ॥

जी० प्र०—स कालः संक्रमविधानेन स्वगुणैरन्यद्रव्ये न परिणमति । न च परद्रव्यगुणान् स्वस्मिन् परिणामयति । नापि हेतुकर्तृत्वेन अन्यद् द्रव्यं अन्यगुणैः सह परिणामयति । किं तर्हि ? विविधपरिणामिकानां द्रव्याणां परिणमनस्य स्वयमुदासीननिमित्तं भवति ॥ ५७० ॥

स० चं०—सो कालसंक्रम जो पलटना ताका विधानकरि अपने गुणानिकरि परद्रव्यरूप होइ नाहीं परिणवै बहुरि परद्रव्यके गुणनिकौं अपनेविषैं नाहीं परिणमावै है । बहुरि हेतुकर्ता प्रेरक होइकरि भी अन्य द्रव्यकौं अन्य

गुणनिकरिसहित नाहीं परिणमावे है। तौ? नानाप्रकार परिणामनिकौं धरैं जे द्रव्य स्वयमेव परिणमें है तिनकौं उदासीन सहज निमित्तमात्र हो है जैसें मनुष्यकैं प्रभातसंबंधी क्रियाकौं प्रभातकाल कारण है क्रियारूप तौ स्वयमेव मनुष्य ही प्रवर्तैं हैं परंतु तिनिका निमित्तमात्र प्रभातका काल हो है तैसें जानना ॥ ५७० ॥

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणये होदि खणमेत्तं ॥ ५७१ ॥

कालमाश्रित्य द्रव्यं स्वकस्वकपर्यायपरिणतं भवति ।
पर्यायावस्थानं शुद्धनयेन भवति क्षणमात्रम् ॥ ५७१ ॥

जी० प्र०—कालमाश्रित्य जीवादि सर्वद्रव्यं स्वस्वपर्यायपरिणतं भवति। तत्पर्यायावस्थानं ऋजुसूत्रनयेन एकसमयो भवति अर्थपर्यायापेक्षया॥ ५७१ ॥

स० चं०—कालका निमित्तरूप आश्रय पाइ जीवादिक सर्वद्रव्य स्वकीय स्वकीय पर्यायरूप परिणए हैं तिस पर्यायका जो अवस्था रहनेका काल सो ऋजुसूत्रनयकरि अर्थपर्याय अपेक्षा एक समयमात्र जानना ॥ ५७१ ॥

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओत्ति एयट्ठो ।
ववहारअवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ॥ ५७२ ॥

व्यवहारश्च विकल्पो भेदस्तथा पर्याय इत्येकार्थः ।
व्यवहारावस्थानस्थितिर्हि व्यवहारकालस्तु ॥ ५७२ ॥

जी० प्र०—व्यवहारः विकल्पः भेदः तथा पर्यायः इत्येकार्थः तु पुनः तत्र व्यंजनपर्यायस्य अवस्थानतया वर्तमानतया स्थितिः सैव व्यवहारकालो भवति ॥ ५७२ ॥

स० चं०—व्यवहार अर विकल्प अर भेद अर पर्याय ए सर्व एकार्थ हैं। इनि शब्दनिका एक अर्थ है तहां व्यंजन पर्यायका अवस्थान जो वर्तमानपना ताकरि स्थिति जो कालका परिमाण सोई व्यवहारकाल है ॥ ५७२ ॥

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओत्ति।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥५७३॥

अवरा पर्यायस्थितिः क्षणमात्रं भवति सा च समय इति।
द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणं भवेत् स तु ॥ ५७३ ॥

जी० प्र०—द्रव्याणां जघन्या पर्यायस्थितिः क्षणमात्रं भवति। सा च समय इत्युच्यते। स च समयः द्वयोर्गमनपरिणतपरमाण्वोः परस्परातिक्रमकालप्रमाणं स्यात् ॥ ५७३ ॥ अत्रोपयोगिगाथाद्वयं—

णभएयपयेसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो। बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालो ॥ १ ॥

नभ एकप्रदेशस्थः परमाणुर्मंदगतिप्रवर्तमानः। द्वितीयमनंतरक्षेत्रं यावत् याति स समयकालः ॥ १ ॥

आकाशस्य एकप्रदेशस्थितपरमाणुः मंदगतिपरिणतः सन् द्वितीयमनंतरक्षेत्रं यावद्याति स समयाख्यकालो भवति ॥ १ ॥ स च प्रदेशः कियान्—

जेत्तीवि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च। तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥ २ ॥

यावदपि क्षेत्रमात्रमणुना रुद्धं खलु गगनद्रव्यं च। स च प्रदेशो भणितः अपरपरकारणं यस्य ॥ २ ॥

यस्य परमाणोः अपरपरकारणं गगनद्रव्यं यावत्क्षेत्रमात्रं परमाणुना व्याप्तं स्फुटं स प्रदेशो भणितः ॥ २ ॥ अथ व्यवहारकालमाह—

स० चं०—द्रव्यनिकैं जघन्यपर्यायकी स्थिति क्षणमात्र है सो क्षण नाम समयका है समीप तिष्ठती दोय परमाणू मंदगमनरूप परिणई जेता कालविषैं परस्पर उल्लंघन करैं तिस काल प्रमाणका नाम समय है ॥ ५७३ ॥ इहां प्रसंग पाइ दोय गाथा कहैं हैं—

णभएयपयेसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो।
बीयमणंतरखेत्तं जावदियं जादि तं समयकालो ॥ १ ॥

आकाशका एक प्रदेशविषैं तिष्ठती परमाणू मंदगतिरूप परिणई सो तिस प्रदेशके अनंतरि दूसरा प्रदेश ताकौं जेता कालकरि प्राप्त होइ सो समय नामा काल है सो प्रदेश कितना है? सो कहै हैं—

जेत्ती वि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ॥ २ ॥

जिस परमाणूके आगे पीछेकौं कारण ऐसा आकाशद्रव्य, आकाशविषैं ऐसा कहिए है जो यहु आकाश इस परमाणूके आगैं है यहु पीछै है सो आकाश द्रव्य तिस परमाणूकरि जितना रुकै व्याप्त होइ तिस क्षेत्रका नाम प्रदेश कह्या है आगैं व्यवहार कालकौं कहै हैं—

आवलिअसंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ॥ ५७४ ॥

आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः ।
सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्त स्तोका लवो भणितः ॥ ५७४ ॥

जी० प्र०—जघन्ययुक्तासंख्यातसमयराशिः आवलिः । संख्यातावलिसमूह उच्छ्वासः । स च किं रूपः ?

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स । उस्सासाणिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥ १ ॥

आढ्यस्य अनलसस्य च निरुपहतस्य च भवेत् जीवस्य । उच्छ्वासनिःश्वास एकः प्राण इति आख्यातः ॥ १ ॥

सुखिनः अनलसस्य निरुपहतस्य जीवस्य उच्छ्वासनिश्वासः स एव एकः प्राण उक्तो भवेत् । सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः । सप्तस्तोका लवः ॥

स० चं०—जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण समय तिनिका समूह सो आवली है । बहुरि संख्यात आवलीका समूह सो उश्वास है । सो उश्वास कैसा है ? उक्तं च—

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो एगो पाणोत्ति आहीदो ॥ १ ॥

जो कोई मनुष्य आढ्य सुखी होइ आलस्य रोगादिकरि रहित होइ स्वाधीन होइ ताका सासोस्वास नामा

एक प्राण कह्या है ताका काल जानना। बहुरि सात उस्वासका समूह सो स्तोक नामा काल है बहुरि सात स्तोकका समूह सो लव नामा काल है ॥ ५७४ ॥

अट्ठत्तीसद्धलवा नाली बेनालियो मुहुत्तं तु ।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ॥ ५७५ ॥

अष्टत्रिंशदर्धलवा नाली द्विनालिको मुहूर्तस्तु ।
एकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्तस्ततः शेषः ॥ ५७५ ॥

जी० प्र०—सार्धाष्टात्रिंशल्लवा नाली घटिका । द्वे नाल्यौ मुहूर्तः। स चैकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्तः, उत्कृष्टांतर्मुहूर्त इत्यर्थः। ततोऽग्रे द्विसमयोनाद्या आवल्यसंख्यातैकभागांताः सर्वेऽन्तर्मुहूर्ताः ॥ ५७५ ॥ अत्रोपयोगि गाथासूत्रं—

ससमयमावालि अवरं समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं । मज्झासंखवियप्पं वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥ १ ॥

ससमय आवलिरवरः समयोनमुहूर्तकस्तु उत्कृष्टः। मध्यासंख्यविकल्पः विजानीहि अंतर्मुहूर्तमिमं ॥ १ ॥

ससमयाधिकावलिः जघन्यांतर्मुहूर्तः समयोनमुहूर्तः उत्कृष्टांतर्मुहूर्तः। मध्यमा असंख्यातविकल्पा मध्यमांतर्मुहूर्ताः, इति जानीहि ॥ १ ॥

स. चं.—साढा अडतीस लवनिका समूह सो नाली है, नाली नाम घटिकाका है। बहुरि दोय घटीका समूह सो मुहूर्त है। इस मूहूर्तमें एक समय घटाइए तब भिन्न मुहूर्त हो है वा याकौं उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कहिए यातैं आगैं दोय समय घाटि मुहूर्त आदि अंतर्मुहूर्तके विशेष जानने। इहां प्रासंगिक गाथा कहै हैं—

ससमयमावलिअवरं समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखावियप्पं वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ॥

एक समय अधिक आवली मात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त है। बहुरि एक समय घाटि मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है। मध्य समयविषैं दोय समय सहित आवलीतैं लगाइ दोय समय घाटि मुहूर्तपर्यंत असंख्यात भेद लीए मध्य अंतर्मुहूर्त है। ऐसैं जानहु।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ॥ ५७६ ॥

दिवसः पक्षो मासः ऋतुरयनं वर्षमेवमादिर्हि।
संख्येयासंख्येयानंता भवंति व्यवहाराः ॥ ५७६ ॥

जी० प्र०—दिवसः पक्षः मासः ऋतुः अयनं वर्ष इत्यादयः स्फुटं आवल्यादिभेदतः संख्यातासंख्यातानंतपर्यंतं क्रमशः श्रुतावधिकेवलज्ञानविषयविकल्पाः सर्वे व्यवहारकालो भवति ॥ ५७६ ॥

स० चं०—तीस मुहूर्तमात्र अहोरात्र है। मुख्यपनैं पंचदश अहोरात्रमात्र पक्ष है दोय पक्षमात्र एक मास है दोय मासमात्र एक ऋतु हो है तीन ऋतु मात्र एक अयन हो है दोय अयनमात्र एक वर्ष हो है इत्यादि आवलीतैं लगाइ संख्यात असंख्यात अनंत पर्यंत अनुक्रमतैं श्रुतज्ञान अवधिज्ञान केवलज्ञानका विषयभूत व्यवहार काल जानना ५७६

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु।
जोइसियाणं चारे ववहारो खलु समाणोत्ति ॥ ५७७ ॥

व्यवहारः पुनः कालः मानुषक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु।
ज्योतिष्काणां चारे व्यवहारः खलु समान इति ॥ ५७७ ॥

जी० प्र०—व्यवहारकालः पुनः मनुष्यक्षेत्रे स्फुटं ज्ञातव्यः। कुतः ? ज्योतिष्काणां चारे स समान इति कारणात् ॥ ५७७ ॥

सं० च०—बहुरि व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्रविषैं प्रगटरूप जानने योग्य है जातैं मनुष्य क्षेत्रविषैं ज्योतिषी देवनिका चलनेका काल अर व्यवहार काल समान है ॥ ५७७ ॥

ववहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु।

तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ॥ ५७८ ॥

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्तमानो भविष्यंस्तु ।
अतीतः संख्येयावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ॥ ५७८ ॥

जी० प्र०—व्यवहारकालः पुनस्त्रिविधः अतीतोऽनागतो वर्तमानश्चेति । तु—पुनः अत्रातीतः संख्यातावलिगुणितसिद्धराशिर्भवति, कुतः? अष्टोत्तरषट्छतजीवानां मुक्तिगमनकालोऽष्टसमयाधिकषण्मासाः तदा, सर्वजीवराश्यनंतैकभागमुक्तजीवानां कियान्? इति त्रैराशिकागतस्य तत्प्रमाणत्वात् ।

प्र ६०८ फ मा ६ इ ३ लब्धं ३ । २ १ ॥ ५७८ ॥

स० चं०—बहुरि व्यवहार काल तीन प्रकार है अतीत १ अनागत २ वर्तमान ३ तहां अतीत काल सिद्ध राशिकौं संख्यात आवलीकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना जानना । कैसैं? सो कहिए है-छह महीना अर आठ समय माहीं छसै आठ जीव सिद्ध हो हैं तो जीवराशिके अनंतवें भाग प्रमाण सर्व सिद्ध केते कालमैं भए ऐसैं त्रैराशिक करना । तहां प्रमाण राशि छसै आठ फलराशि छह महीना आठ समय इच्छा राशि सिद्धनिका प्रमाण सो फल राशिकौं इच्छाराशिकरि गुणें प्रमाणराशिका भाग दीए लब्धराशि संख्यात आवलीकरि सिद्धनिकौं गुणें जो प्रमाण होइ तितना आया । सोई अनादितैं लगाइ अतीतकालका परिमाण जानना ॥ ५७८ ॥

समयो हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥ ५७९ ॥

समयो हि वर्तमानो जीवात् सर्वपुद्गलादपि ।
भावी अनन्तगुणित इति व्यवहारो भवत्कालः ॥ ५७९ ॥

जी० प्र०—वर्तमानकालः खल्वेकसमयः भावी सर्वजीवराशितः सर्वपुद्गलराशितोप्यनंतगुणः, इति व्यवहारकालः त्रिविधो भणितः ॥ ५७९ ॥

स० चं०—वर्तमानकाल एक समय मात्र जानना बहुरि भावी जो अनागत काल सो सर्व जीवराशितैं वा सर्व पुद्गलराशितैं भी अनंतगुणा जानना। ऐसैं व्यवहारकाल तीन प्रकार कह्या ॥ ५७९ ॥

कालोवि य ववएसो सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥ ५८० ॥

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः।
उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥ ५८० ॥

जी० प्र०—काल इति व्यपदेशो मुख्यकालस्य सद्भावप्ररूपकः मुख्याभावे गौणस्याप्यभावात् सिंहाभावे वटुः सिंह इत्यादिवत्। स च मुख्यः नित्योपि उत्पन्नप्रध्वंसी भवति द्रव्यत्वेन उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वात्। अपरः व्यवहारकालः वर्तमानापेक्षया उत्पन्नप्रध्वंसी अतीतानागतापेक्षया दीर्घांतरस्थायी भवति। अत्रोपयोगी श्लोकः—

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
वहिर्निश्चयकालस्तु निश्चित तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

इत्युपलक्षणानुवादाधिकारः ॥ ५८० ॥

स० चं०—काल ऐसा जो लोकविषैं कहना है सो मुख्यकालका आस्तित्वका कहनहारा है मुख्य विना गौण भी न होइ। जो सिंह पदार्थ ही न होइ तौ यहु पुरुष सिंह है ऐसा कैसैं कहनेमें आवै सो मुख्यकाल द्रव्यकरि नित्य है तथापि पर्यायकरि उत्पाद व्ययकौं धरै है तातैं उत्पन्नप्रध्वंसी कहिए है। बहुरि व्यवहार काल है सो वर्तमान काल अपेक्षा उत्पाद व्यय रूप है तातैं उत्पन्नप्रध्वंसी है बहुरि अतीत अनागत अपेक्षा बहुतकाल स्थितिकौं धरै है तातैं दीर्घांतर स्थायी है। इहां प्रासंगिक श्लोक कहिए है—

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिता।
वहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥

तीहिं वस्तुविषैं तिष्ठती परिणमनरूप जो योग्यता सो अंतरंग निमित्त है बहुरि तिस परिणमनका निश्चय-काल वाह्य निमित्त है ऐसैं तत्त्वदर्शीनिकरि निश्चय कीया है ॥ ५८० ॥ इत्युपलक्षणानुवादाधिकारः ॥ २ ॥

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकालअत्थपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तादो ॥ ५८१ ॥

षड्द्रव्यावस्थान सदृशं त्रिकालार्थपर्याये ।
व्यंजनपर्याये वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ॥ ५८१ ॥

जी० प्र०—षड्द्रव्याणां अवस्थानं सदृशमेव भवति त्रिकालभवेषु सूक्ष्मावाग्गोचराचिरस्थाय्यर्थपर्यायेषु तद्विपरीतलक्षणव्यंजनपर्यायेषु वा मिलितेषु तेषां स्थितत्वात् ॥ ५८१ ॥ इदमेव समर्थयति—

स० चं०—अवस्थान नाम स्थितिका है सो षट् द्रव्यनिका अवस्थान समान है । काहे तैं ? सो कहिए है सूक्ष्म वचन अगोचर क्षणस्थायी ऐसे तौ अर्थपर्याय अर स्थूल वचन गोचर चिरस्थायी ऐसे व्यंजन पर्याय सो त्रिकाल संबंधी अर्थ पर्याय वा व्यंजन पर्याय मिलैं तिनि सर्व ही द्रव्यनिकी स्थिति हो है तातैं सर्व द्रव्यनिका अवस्थान समान कह्या सर्व द्रव्य अनादिनिधन हैं ॥ ५८१ ॥ आगैं इसही अर्थकौं दृढ करैं हैं—

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ॥ ८२ ॥

एकद्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यञ्जनपर्यायाश्चापि ।
अतीतानागतभूताः तावत्तद् भवति द्रव्यम् ॥ ५८२ ॥

जी० प्र०—एकस्मिन् द्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यंजनपर्यायाश्च अतीतानागताः अपिशब्दाद्वर्तमानाश्च संति तावत् तद् द्रव्यं भवति ॥ ५८२ ॥ इति स्थित्यधिकारः ॥

स० चं–एक द्रव्यविषैं जे गुणनिके परिणमनरूप षट्स्थानपतित वृद्धि हानि लीए अर्थ पर्याय बहुरि द्रव्यके आकारादि परिणमनरूप व्यंजन पर्याय ते अतीत अनागत अपिशब्दतें वर्तमान संबंधी यावन्मात्र हैं तावन्मात्र द्रव्य जानना जातें द्रव्य तिनतें जुदा है नाही, सर्व पर्यायनिका समूह सोई द्रव्य है॥ ५८२॥ इति स्थित्याधिकारः

आगासं वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं ।
वावी धम्माधम्मा णवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ॥ ८३ ॥

आकाशं वर्जयित्वा सर्वाणि लोके चैव न संति वहिः ।
व्यापिनौ धर्माधर्मौ अवस्थितावचलितौ नित्यौ ॥ ५८३ ॥

जी० प्र०—आकाशं विवर्ज्य शेषसर्वद्रव्याणि लोके एव संति न तद्वहिः। तेषु धर्माधर्मौ व्यापिनौ सर्वलोकव्याप्तत्वात् तिले तैलवत्, अवस्थितौ स्थानचलनाभावात्, अचलितौ प्रदेशचलनाभावात्, नित्यौ त्रैकाल्येऽपि विनाशाभावात्। अत्रोपयोगी श्लोकः—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ॥ ५८३ ॥

स० चं०–अब क्षेत्र कहै हैं सो आकाश विना अवशेष सर्वद्रव्य लोक विषै ही हैं बाह्य अलोकविषैं नाहीं है। तिनविषैं धर्म द्रव्य अधर्मद्रव्य तिलविषैं तैलकी ज्यों सर्व लोकविषैं व्याप्त है तातैं व्यापी कहिए। बहुरि निजस्थानतें स्थानांतरविषैं चलै नाहीं है तातैं अवस्थित हैं बहुरि एक स्थानविषैं भी प्रदेशनिका चंचलपना तिनके नाहीं है तातैं अचलित हैं बहुरि त्रिकालविषैं विनाश नाहीं हैं तातैं नित्य है ऐसैं धर्म अधर्म द्रव्य जानने। इहां प्रासांगिक श्लोक—

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ॥

आधार तीन प्रकार है औपश्लेषिक वैषयिक अभिव्यापक। तहां चटाईविषै कुमार सोवै है ऐसा कहिए तहां

औपश्लेषिक आधार जानना बहुरि आकाशविषैं घटादिक द्रव्य तिष्ठैं हैं ऐसा कहिए तहां वैषयिक आधार जानना बहुरि तिलविषैं तेल है ऐसा कहिए तहां अभिव्यापक आधार जानना । सो इहां तिलनिविषैं तैलकी ज्यों लोकाकाशके सर्व प्रदेशनिविषैं धर्म अधर्म द्रव्य अपने प्रदेशनिकरि व्याप्त है तातैं इहां अभिव्यापक आधार है । याहीतैं आचार्यनैं धर्म अधर्म द्रव्यकौं व्यापी कह्या है ॥ ५८३ ॥

लोगस्स असंखेज्जादिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगोत्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो ॥ ५८४ ॥

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्वलोक इति ।
आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ॥ ५८४ ॥

जीं० प्र०—सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तजघन्यात्मप्रदेशोत्तरेषु महामत्स्यपर्यंतेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु वेदनासमुद्घातस्य त्रिगुणमहामत्स्यपर्यंतेषु तदुपरि प्रदेशोत्तरेषु स्वयंभूरमणसमुद्रबाह्यस्थंडिलक्षेत्रस्थितमहामत्स्येन सप्तमपृथ्वीमहारौरवनामश्रेणीबद्धं प्रति मुक्तमारणांतिकसमुद्घातस्य पंचशतयोजनतदर्धविष्कंभोत्सेधैकार्धषड्रज्ज्वायतप्रथमद्वितीयतृतीयवक्रोत्कृष्टपर्यंतेषु तदुपरिलोकपूरणपर्यंतेषु अवगाहनविकल्पेषु आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे सति जीवद्रव्यं व्यापृतं प्रवृत्तं भवति, सर्वावगाहनोपपादसमुद्घातानां अस्य संभवात् ॥ ५८४ ॥

स० चं०—जीवका क्षेत्र कहै हैं सो शरीरमात्र अपेक्षा तो सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनातैं लगाइ एक एक प्रदेश बंधता उत्कृष्ट महामत्स्यकी अवगाहना पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि समुद्घात अपेक्षा वेदना समुद्घातवालेका एक एक प्रदेश क्षेत्रविषैं बंधता बंधता महामत्स्यकी अवगाहनातैं तिगुणा लंबा चौडा क्षेत्र पर्यंत क्षेत्र जानना । बहुरि ताके ऊपरि एक एक प्रदेश बंधता बंधता मारणांतिक समुद्घातवालेका स्वयंभू रमण समुद्रका वाह्य स्थंडिल क्षेत्रविषैं तिष्ठता जो महामत्स्य सो सप्तमनरकविषैं महारौरव नामा श्रेणीबद्ध बिला प्रति कीया जो मारणांतिक समुद्घात तीहिविषैं पांचसै योजन चौडा अढाईसै योजन

ऊंचा प्रथम वक्रगतिविषै एक राजू द्वितीय क्षेत्रविषैं आधा राजू तृतीय क्षेत्रविषैं छहराजू लंबाई लीएं जो उत्कृष्ट क्षेत्र हो है तहां पर्यंत क्षेत्र जानना। बहुरि ताके ऊपरि केवलिसमुद्‌घातविषैं लोकपूरण पर्यंत क्षेत्र जानना सो ऐसैं सर्व भेदरूप क्षेत्रानिविषैं अपने प्रदेशनिका विस्तार संकोच होतैं जीवद्रव्य व्यापृतं कहिए व्यापक हो है। संकोच होतैं स्तोक क्षेत्रविषैं आत्माके प्रदेश अवगाहरूप तिष्ठैं हैं विस्तार होतैं ते फैलिकरि घने क्षेत्रविषैं तिष्ठैं है। जातैं जीवकैं अवगाहनाका भेद वा उपपाद वा समुद्‌घातभेद सर्व ही संभवै है तातैं पूर्वोक्त जीवका क्षेत्र जानना ॥

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा।
एक्केक्को दु पदेसो कालाणूणं धुवो होदि ॥ ५८५ ॥

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशाद्यो भवन्ति भजनीयाः।
एकैकस्तु प्रदेशः कालाणूनां ध्रुवो भवति ॥ ५८५ ॥

जी० प्र०—पुद्गलद्रव्याणां पुनः एकप्रदेशादयो यथासंभवं भजनीया भवंति। तद्यथा—द्व्यणुकं एकप्रदेशे द्विप्रदेशे वा तिष्ठति। त्र्यणुकं एकप्रदेशे द्विप्रदेशे त्रिप्रदेशे वा तिष्ठतीति। तु-पुनः कालाणूनां एकैकस्य एकैकप्रदेशक्रमो ध्रुवो भवति ॥ ५८५ ॥

स० चं०—पुद्‌गलद्रव्यानिका एक प्रदेशादिक यथासंभव भजनीय कहिए भेद करने योग्य क्षेत्र जानना सो कहिए है—दोय अणूका स्कंध एक प्रदेशविषैं तिष्ठै वा दोय प्रदेशनिविषैं तिष्ठै, बहुरि तीन परमाणूनिका स्कंध एक प्रदेश वा दोय प्रदेश वा तीन प्रदेशविषैं तिष्ठै ऐसैं जानना। बहुरि कालाणू एक-एक लोकाकाशका प्रदेशविषैं एक एक पाइए है सो ध्रुवरूप है भिन्न २ सत्त्व धरै है तातैं तिनिका क्षेत्र एक एक प्रदेशी है ॥ ५८५ ॥

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा।
लोगागासेव ठिदी एगपदेसो अणुस्स हवे ॥ ५८६ ॥

संख्येयासंख्येयानंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः ।
लोकाकाशे एव स्थितिरेकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ॥ ५८६ ॥

जी० प्र०—द्व्यणुकादयः पुद्गलस्कंधाः संख्यातासंख्यातानंतपरमाणवः तथापि लोकाकाश एव तिष्ठति । अणोरेक एव प्रदेशो भवेत् ॥५८६॥

स० चं०—दोय अणूका स्कधंतैं लगाइ पुद्गल स्कंध संख्यात असंख्यात अनंत परमाणू रूप है तथापि ते वे सर्व लोकाकाश ही विषै तिष्ठैं हैं जैसैं संपूर्ण जलकरि भर्या हूवा पात्रविषैं क्रमतैं गेरे हूवे लवण भस्मी सूई आदि एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठै हैं तैसैं जानना । बहुरि अविभागी परमाणूका क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र हो है ॥

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं अण्णेहिं विवज्जियं होदि ॥ ५८७ ॥

लोकाकाशप्रदेशाः षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति ।
सर्वमलोकाकाशमन्यैर्विवर्जितं भवति ॥ ५८७ ॥

जी० प्र०—लोकाकाशप्रदेशाः सर्वे षड्द्रव्यैः सर्वदा स्फुटा भवंति । अलोकाकाशः सर्वोऽपि अन्यद्रव्यैर्विवर्जितो भवति॥५८७॥इति क्षेत्राधिकारः॥

स. चं.—लोकाकाशके प्रदेश सर्वही षट्द्रव्यनिकरि सदाकाल प्रगट व्याप्त हैं बहुरि अलोकाकाश सर्व ही अन्य द्रव्यनिकरि रहित है ॥ ५८७ ॥ इति क्षेत्राधिकारः ।

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु ।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ॥ ५८८ ॥

जीवा अनंतसंख्या अनंतगुणाः पुद्गला हि ततस्तु ।
धर्मत्रिकमेकैकं लोकप्रदेशप्रमः कालः ॥ ५८८ ॥

जी० प्र०—सर्वे जीवा द्रव्यप्रमाणेन अनंताः स्युः । तेभ्यः पुद्गलाणवः खलु अनंतगुणाः । तु--पुनः धर्माधर्माकाशाः एकैक एव अखंडद्रव्यत्वात् । कालाणवो लोकप्रदेशमात्राः ॥ ५८८ ॥

स० चं०—संख्या कहैं हैं—तहां द्रव्य परिमाण करि जीव द्रव्य अनंत हैं बहुरि तिनितैं अनंत गुणे पुद्गलके परमाणू हैं बहुरि धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य एक एक ही है जातैं ए तीनौं अखंड द्रव्य हैं बहुरि जेते लोकाकाशके प्रदेश हैं तितने कालाणू हैं ॥ ५८८ ॥

लोगागासपदेसे एक्केक्के जेट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥ ५८९ ॥

लोकाकाशप्रदेशे एकैके ये स्थिता हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिरिव ते कालाणवो मंतव्याः ॥ ५८९ ॥

जी० प्र०—एकैकलोकाकाशप्रदेशे ये एकैके भूत्वा रत्नानां राशिरिव भिन्नभिन्नव्यक्त्या तिष्ठंति ते कालाणवो मंतव्याः ॥ ५८९ ॥

स. चं—लोकाकाशका एक एक प्रदेशविषैं जे एक एक तिष्ठै हैं जैसैं रत्ननिकी राशि भिन्न भिन्न तिष्ठै तैसैं जे भिन्न भिन्न तिष्ठैं है ते कालाणू जानने ॥ ५८९ ॥

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा ॥ ५९० ॥

व्यवहारः पुनः कालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः ।
तत अनंतगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥ ५९० ॥

जी० प्र०—व्यवहारकालः पुनः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणः । ततोऽनंतगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ॥ ५९० ॥

स. चं—बहुरि व्यवहार काल पुद्गल द्रव्यतैं अनंत गुणा समयरूप जानना । बहुरि तिनितैं अनंतगुणी सर्व आकाशके प्रदेशनिकी संख्या जाननी ॥ ५९० ॥

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणुअवट्ठिदं खेत्तं ॥ ५९१ ॥

लोकाकाशप्रदेशा धर्माधर्मैकजीवगप्रदेशाः ।
सदृशा हि प्रदेशः पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रं ॥ ५९१ ॥

जी० प्र०—लोकाकाशप्रदेशा धर्मद्रव्यप्रदेशा अधर्मद्रव्यप्रदेशा एकैकजीवद्रव्यप्रदेशाश्च सदृशाः खलु संख्यया समाना एव प्रत्येकं जगच्छ्रेणिघनमात्रत्वात्। प्रदेशप्रमाणं पुनः पुद्गलपरमाण्ववष्टब्धक्षेत्रमात्रं भवति । तेन जघन्यक्षेत्रं जघन्यद्रव्यं च विभागिनी स्तः । अथ क्षेत्रप्रमाणेन षट्द्रव्याणि मीयंते—जीवद्रव्याणि प ≡ । फ श १, इ १६ लब्धं शला १६ ≡ प्र श १ फ ≡ इ श १६ ≡ लोकजीवराश्यपवर्तनेऽनंतः । ख । अनेन फलराशि—लोके गुणिते अनंतलोका भवंति । ≡ ख । पुद्गलाः—अनंतगुणाः । ≡ ख ख । धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं लोकाकाशद्रव्यं कालद्रव्यं च लोकमात्रप्रदेशं । ≡ । व्यवहारकालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणः । ≡ ख ख ख । ततो लोकाकाशप्रदेशा अनंतगुणाः । ≡ ख ख ख ख । कालप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प । अ १ । फ श १ इ १६ लब्धशलाका १६ अ प्र श १ फ अ । इ १६ अ अतीतकालजीवराश्यपवर्तने । ख । अनेन फलराश्यतीतकाले गुणिते अनंता अतीतकाला भवंति । अ ख । पुद्गलः व्यवहारकालः अलोकाकाशप्रदेशाश्च अनंतगुणितक्रमेण अनंतातीतकाला भवंति । पु अ ख ख । व्य = का अ ख ख ख । अलोक अ ख ख ख ख । धर्माधर्मलोकाकाशकालद्रव्याणि प । प १ फ श १ इ ≡ लब्धशलाका—≡ प्र श १ फ क । इ श a संख्यातपल्यलोकापवर्तने । a । अनेनकल्पफलराशौ गुणिते प्रत्येकं असंख्यातकल्पा भवंति क a । क a । क प १ a । क a । भावप्रमाणेन जीवद्रव्याणि प्र १६ फ श १ इ के लब्धशलाकाः के अपवर्तिते ख । प्र ख एतावच्छलाकाभिः केवलज्ञानं फ के तदेकशलाकया इ श १ किमिति लब्धं केवलज्ञानानंतैकभागमपि पुद्गलकालालोकाकाशापेक्षया चतुरनंतभागहारं भवति के १६ पुद्गलाः ख ख ख ख के व्यवहारकालः ख ख ख के अलोकाकाशः ख ख के धर्माधर्मलोकाकाशकालद्रव्याणि ख । प्र ≡ । फ श १ । इ ≡ a लब्धशलाका ≡ a भागहारभूतलोकेन भाज्ये अवधिविकल्पासंख्यातलोके ≡ अपवर्तिते । a । पुनः प्र श a । फ ओ । इ श १ लब्धोऽवधिविकल्पासंख्यातैकभागः प्रत्येकं भवति ओ a ओ a ओ a ओ a ॥ इति संख्याधिकारः ॥ ५९१ ॥

सं. च—लोकाकाशके प्रदेश अर धर्मद्रव्यके प्रदेश अर अधर्मद्रव्यके प्रदेश अर एक जीवद्रव्यके प्रदेश सर्व संख्याकरि समान हैं जातैं ए सर्व जगच्छ्रेणीका घनप्रमाण हैं। वहुरि पुद्‌गल परमाणू जेता क्षेत्रकौं रोकै सो प्रदेशका प्रमाण है तातैं जघन्य क्षेत्र अर जघन्य द्रव्य अविभागी है। आगैं क्षेत्र प्रमाणकरि छह द्रव्यनिका प्रमाण कीजिए है—तहां जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण है लोकाकाशके प्रदेशनितैं अनंत गुणा है कैसैं सो त्रैराशिक करि कहिए है—प्रमाण राशि लोक अर फलराशि एक शलाका अर इच्छाराशि जीवद्रव्यका प्रमाण सो फलकरि इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भाग दीए लब्धराशि जीवराशिकौं लोकका भाग दीजिए इतना आया सो यहु शलाकाका परिमाण भया। वहुरि प्रमाण राशि एक शलाका फलराशि लोक अर इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाकाका प्रमाण सो पूर्वोक्त शलाकाका प्रमाण जीवराशिकौं लोकका भाग दीए अनत पाए सो जानना। इस अनंतकौं फलराशि लोककरि गुणिए अर प्रमाण राशि एकका भाग दीजिए तव लब्धराशि अनंतलोक प्रमाण भया तातैं जीव द्रव्य अनंतलोक प्रमाण कहे ऐसैं ही अन्यत्र काल प्रमाणादिकविषैं त्रैराशिककरि साधन करि लेना वहुरि जीवनितैं पुद्‌गल अनंत गुणे हैं। वहुरि धर्म अधर्म लोकाकाश अर काल द्रव्य ए लोकमात्र प्रदेशनिकौं धरैं हैं। वहुरि व्यवहारकाल पुद्‌गल द्रव्यतैं अनंत गुणा है वहुरि अलोकाकाशका प्रदेश कालतैं अनंत गुणा है। वहुरि काल प्रमाणकरि जीवद्रव्यका प्रमाण कहिए है—प्रमाणराशि अतीतकाल फलराशि एक शलाका इच्छाराशि जीवनिका परिमाण इहां लब्धि राशिप्रमाण शलाका अनंत भई। वहुरि प्रमाणराशि एक शलाका फलराशि अतीतकाल इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण सो पूर्वोक्त प्रकार फलकरि इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भाग दीएं लब्धराशि प्रमाण अतीत कालतैं अनंतगुणा जीवनिका प्रमाण जानना। इनितैं पुद्‌गलद्रव्य अर व्यवहार कालके समय अर अलोकाकाशके प्रदेश अनंतगुणे अनंतगुणे क्रमतैं अनंत अतीत काल मात्र जानने। वहुरि धर्मादिकका प्रमाण कहिए है—

प्रमाण कल्पकाल फल एक शलाका इच्छा लोक प्रमाण तहां लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई। वहुरि प्रमाण एक शलाका फल कल्पकाल इच्छा पूर्वोक्त शलाका प्रमाण सो यथोक्त करतां लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण धर्म अधर्म लोकाकाश काल ए च्यार्‍यौ जानने। वीस कोडाकोडी सागरके संख्याते पल्य भए तीहिं प्रमाण कल्पकाल है।

इसतैं असंख्यात गुणे धर्म अधर्म लोकाकाश कालके प्रदेश हैं। बहुरि भावप्रमाणकरि जीवद्रव्यका प्रमाणविषैं प्रमाणराशि जीवद्रव्यका प्रमाण फल एकशलाका इच्छा केवलज्ञान लब्धप्रमाण शलाका अनंत. बहुरि प्रमाण राशि शलाकाका प्रमाण फलराशि केवलज्ञान इच्छाराशि एक शलाका सो यथोक्त करतां लब्धराशिप्रमाण केवलज्ञानके अनंतवे भागमात्र जीवद्रव्य जानने। ते पुद्गल काल अलोकाकाशकी अपेक्षा च्यारिवार अनंतका भाग केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदनिका प्रमाणकौं दीएं जो प्रमाण आवै तितने जीवद्रव्य हैं। तिनितैं अनंतगुणे पुद्गल हैं तिनितैं अनंतगुणे कालके समय हैं तिनितैं अनंतगुणे अलोकाकाशके प्रदेश हैं तेऊ केवलज्ञानके अनंतवे भाग ही हैं। बहुरि धर्मादिकका प्रमाणविषैं प्रमाण लोक, फल एक शलाका इच्छा अवधिज्ञानके भेद लब्धप्रमाण शलाका असंख्यात भई। बहुरि प्रमाणराशि शलाका फल राशि अवधिज्ञानके भेद इच्छाराशि एक शलाका सो यथोक्त करतां अवधिज्ञानके जेते भेद हैं तिनिके असंख्यातवे भागप्रमाण धर्म अधर्म लोकाकाश काल इनि च्यार्योंके एक एक प्रदेशनिका प्रमाण भया ॥ १९१ ॥ इति संख्याधिकारः ॥ ५ ॥

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिआ पदेसावि ।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा ॥ ९२ ॥

सर्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि ।
रूपिणो जीवाश्चलितास्त्रिविकल्पा भवंति हि प्रदेशाः ॥ ५९२ ॥

जी० प्र०—अरूपि द्रव्यं मुक्तजीवधर्माधर्माकाशकालभेदं सर्वं अवस्थितमेव स्थानचलनाभावात् । तत्प्रदेशा अपि अचलिताः स्युः । रूपिणो जीवाश्चलिता भवंति । तत्प्रदेशाः खलु त्रिविकल्पाः विग्रहगतौ चलिताः, अयोगकेवलिन्यचलिताः शेषजीवानां अष्टप्रदेशाः अचलिताः शेषाः चलिताः ॥ ५९२ ॥

स० चं०—सर्व अरूपी द्रव्य जो मुक्त जीव अर धर्म अर अधर्म अर आकाश अर कालसो अवस्थित है अपने स्थानतैं चलते नाहीं बहुरि इनिके प्रदेश भी अचलितही हैं एक स्थानविषैं भी चलित नाही हैं। बहुरि रूपी जीव जे

संसारी जीव ते चलित हैं स्थानतैं स्थानांतरविषैं गमनादि करैं हैं। बहुरि संसारी जीवनिके प्रदेश तीन प्रकार हैं विग्रह गतिविषैं तो सर्व चलित ही हैं बहुरि अयोगकेवली गुणस्थानविषैं अचलित ही हैं बहुरि अविशेष जीव रहे तिनिके आठ प्रदेश तौ अचलित हैं अवशेष प्रदेश चलित हैं इस आत्माके अन्य प्रदेश तौ चलित हो हैं अर आठ प्रदेश अकंप ही रहैं हैं॥ ५९२ ॥

पोग्गलदव्वम्हि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचला होंति पदेसा॥ ९३ ॥

पुद्गलद्रव्ये अणवः संख्यातादयो भवन्ति चलिता हि।
चरमसहास्कन्धे च चलाचला भवंति हि प्रदेशाः ॥ ५९३ ॥

जी० प्र०—पुद्गलद्रव्ये अणवः द्व्यणुकादिसंख्यातासंख्यातानंताणुस्कंध.श्चलिताः खलु स्फुटं। चरममहास्कंधे च प्रदेशाः परमाणवः चलाचला भवंति ॥ ५९३ ॥

स० चं०—पुद्गल द्रव्यविषैं परमाणू अर द्व्यणुक आदि संख्यात असंख्यात अनंत परमाणूके स्कंध ते चलित हैं। बहुरि अंतका महास्कंधविषैं केई परमाणू अचलित हैं अपने स्थानतैं त्रिकालविषैं स्थानांतरकौं प्राप्त न होंइ बहुरि केई परमाणू चलित हैं ते यथायोग्य चंचल हो हैं ॥ ५९३ ॥

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहि अंतरिया।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा॥ ९४ ॥
सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा॥९५ जुम्मं।

अणुसंख्यातासंख्यातानन्ताश्च अग्राह्यकाभिरन्तरिताः।
आहारतेजोभाषामनःकार्माण ध्रुवस्कन्धाः ॥ ५९४ ॥
सान्तरनिरन्तरया च शून्या प्रत्येकदेह–ध्रुवशून्याः।
वादरनिगोदशून्याः सूक्ष्मनिगोदा नभोमहास्कन्धाः ॥ ५९५ ॥ युग्मम्

जी० प्र०—अणुवर्गणा संख्याताणुवर्गणा असंख्याताणुवर्गणा अनंताणुवर्गणा आहारवर्गणा अग्राह्यवर्गणा तैजसशरीरवर्गणा अग्राह्यवर्गणा भाषावर्गणा अग्राह्यवर्गणा मनोवर्गणा अग्राह्यवर्गणा कार्माणवर्गणा ध्रुववर्गणा सांतरनिरंतरवर्गणा शून्यवर्गणा प्रत्येकशरीरवर्गणा ध्रुवशून्यवर्गणा वादरनिगोदवर्गणा शून्यवर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणा नभोवर्गणा महास्कंधवर्गणा चेति पुद्गलवर्गणाः त्रयोविंशतिभेदा भवंति। अत्रोपयोगी श्लोकः—

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणाः ॥ १ ॥

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिजीवे च पुद्गलशब्दो वर्तते। अकर्मजातिषु कर्मजातिषु नोकर्मजातिषु च वर्गणाशब्दो वर्तते। अत्राणुवर्गणा सुगमा एकैकपरमाणुरूपा स्यात् १ । १ । १ । १ । १ । अणुवर्गणा। संख्याताणुवर्गणा द्व्यणुकादयः एकैकाग्रवधिकाः, उत्कृष्टसंख्याताणुकस्कंधपर्यंताः—

उ १५ ।	१५ ।	००	१५
०	०		०
०	०		०
म ३	३	० ०	३
ज २	२	० ०	२

असंख्याताणुवर्गणा जघन्यपरिमितासंख्याताणुकादयः एकैकाग्रवधिका उत्कृष्टद्विकवारासंख्याताणुस्कंधपर्यंताः—

उ २५५ ।	२५५	० ०	२५५
०	०		०
०	०		०
१–	१–		१–
म १६ ।	१६ ।	० ०	१६
ज १६ ।	१६ ।	० ०	१६

अत्र संख्याताणुवर्गणासु असंख्याताणुवर्गणासु च विवक्षितवर्गणामानंतु गुणकारः तदधस्तनवर्गणाया अधस्तनवर्गणाभक्तविवक्षितवर्गणामात्रः

यथा त्र्यणुकमानेतुं द्व्यणुकस्य द्व्यणुकभक्तत्र्यणुकमात्रः २ । ३/२ तदनंतरोपरितनमनंतवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोनंतगुणं ज २५६ ख ० ० अ २५६

तदनंतरोपरितनाहारवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं उ २५६ ख ख तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणु-

आहा ० ० ०

ज २५६ ख

नाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतगुणं— उ २५६ ख ख ख ख तदनंतरोपरितनतेजःशरीरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं—

अग्रा ० ० ०

उ २५६ ख ख ख ख ख ख

तेजो ० ०

ज २५६ ख ख ख

तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतगुणं— उ २५६ ख ख ख ख ख। तदनंतरोपरितनभाषावर्गणाजघन्यं

```
                 १—    १—
        १—       १— १— १—
उ       २५६ ख ख  ख  ख  ख
          ० ख       ख
अग्रेज्ज     ०
          ० १—    १—
     १—     १— १— १—
ज    २५६ ख  ख  ख  ख
            ख     ख
```

एकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं उ २५६ ख ख ख ख ख ख तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यं एकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं

```
           १—    १—
      १—   १— १— १— १— १—
उ     २५६ ख ख  ख  ख  ख  ख
          ख     ख     ख
          ०
भासा      ०
          ०
          १—    १—
     १—   १— १— १— १—
ज    २५६ ख ख  ख  ख  ख
          ख     ख
```

ततोऽनंतगुणं—

१—   १—   १—
१—— १— १— १— १— १—
उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख
ख ख ख

०
अग्रेज्झ ०
०

१—   १—   १—
१—— १— १— १— १— १—
ज २५६ ख ख ख ख ख ख
ख ख ख

तदनंतरोपरितनमनोवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं—

१—   १—   १—
१—— १— १— १— १— १— १— १—
उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख
ख ख ख ख

०
मनोव ०
०

१—   १—   १—
१—— १— १— १— १— १— १—
ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख
ख ख ख

तदनंतरोपरितनाग्राह्यवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतगुणं—

१—   १—   १—   १—
१—— १— १— १— १— १— १— १—
उ २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख
ख ख ख ख

०
अग्रेज्झ ०
०

१—   १—   १—   १—
१—— १— १— १— १— १— १— १—
ज २५६ ख ख ख ख ख ख ख ख
ख ख ख ख ख

तदनंतरोपरितनकार्मणवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं तदनंतैकभागेनाधिकं—

```
                    १–    १–    १–    १–
          १———  १– १– १– १– १– १– १– १– १–
        उ २५६ ख ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख
                ख     ख     ख     ख     ख
```

```
          ०
  कम्मव   ०
          ०
```

```
              १–    १–    १–    १–
        १———  १– १– १– १– १– १– १– १–
      ज २५६ ख ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख
              ख     ख     ख     ख
```

तदनंतरोपरितनध्रुववर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतजीवराशिगुणं—

```
              १–    १–    १–    १–    १–
        १———  १– १– १– १– १– १– १– १– १–
      उ २५६ ख ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  १६ ख
              ख     ख     ख     ख     ख
```

```
          ०
  ध्रुव    ०
          ०
```

```
              १–    १–    १–    १–    १–
        १———  १– १– १– १– १– १– १– १– १–
      ज २५६ ख ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख  ख
              ख     ख     ख     ख     ख
```

तदनंतरोपरितनसांतरनिरन्तरवर्गणाजघन्यमेकाणुनाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतजीवराशिगुणं—

```
           १--     १--     १--     १--     १--
 १——      १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १--      १--
उ २५६ ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  १६ ख  १६ ख
          ख       ख       ख       ख       ख
```

सांतर ०
०
निरंतर ०

```
           १--     १--     १--     १--     १--
 १——      १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १--      १--
ज २५६ ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  १६ ख
          ख       ख       ख       ख       ख
```

अत्रायं विशेषः—परमाणुवर्गणामादिं कृत्वा सांतरनिरंतरवर्गणापर्यंतं पंचदशवर्गणानां सदृश्यनिकानि अनंतगुणपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि विशेषहीनक्रमाणि भवंति । तत्र प्रतिभागहारः सिद्धानंतैकभागः । तदनंतरोपरितनशून्यवर्गणाजघन्यं एकरूपाधिकं तदुत्कृष्टं ततोऽनंतजीवराशिगुणं—

```
           १--     १--     १--     १--     १--
 १——      १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १--      १--     १--
उ २५६ ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  १६ ख  १६ ख  १६ ख
          ख       ख       ख       ख       ख
```

०
ध्रुवशून्य०
०

```
           १--     १--     १--     १--     १--
 १——      १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १-- १--      १--     १--
ग २५६ ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  ख   ख  १६ ख  १६ ख
          ख       ख       ख       ख       ख
```

षोडशवर्गणा एवं सिद्धाः । तदनंतरोपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणा तु एकजीवस्य एकदेहोपचितकर्मनोकर्मस्कंधः । तत्र

पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अंतर्मुहूर्ताधिकाष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य सयोगकेवली जातः देशोनपूर्वकोटिपर्यंतमौदारिकतैजसशरीरयोरवस्थितिगणनया निर्जरां कुर्वन् कार्मणशरीरस्य च गुणश्रेणिनिर्जरां कुर्वन् चरमसमयायोगिकेवली स्यात्। तस्यायुः औदारिकतैजसशरीराधिकनामगोत्रवेदनीयरूपत्रिशरीरसंचयः तज्जघन्यं भवति। नंदीश्वरद्वीपस्य अकृत्रिममहाचैत्यालयानां धूपघटेषु स्वयंभूरमणद्वीपसंभूतदवाग्निषु च बादरपर्याप्ततैजस्कायिकाः एकबंधनबद्धा असंख्यातावलिवर्गमात्राः तेषु गुणितकर्मांशाः सुष्ठु बहुत्वेऽपि आवल्यसंख्यातैकभागमात्राः ८ तेषां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयस्तदुत्कृष्टं भवति— उ स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख ८ इदमेवरूपाधिकं ध्रुवशून्यवर्गणाजघन्यं भवति। कश्चित्

पत्तेयसरीर

ज स a a ख ख १२-- १६ ख ३

क्षपितकर्मांश लक्षणो जीवः पूर्वकोटिवर्षायुः मनुष्यो भूत्वा अंतर्मुहूर्ताधिकगर्भाद्यष्टवर्षोपरि सम्यक्त्वसंयमौ युगपत् स्वीकृत्य कर्मणामुत्कृष्टगुणश्रेणिनिर्जरां देशोनपूर्वकोटिवर्षपर्यंतं कुर्वन् अंतर्मुहूर्ते सिद्धितव्यमास्ते तदा क्षपकश्रेण्यारूढः उत्कृष्टकर्मनिर्जरां कुर्वन् क्षीणकषायो जातः, तच्छरीरे जघन्येन उत्कृष्टेन च एकबंधनबद्धपुलवय आवल्यसंख्यातैकभागमात्राः संति। कुतः? सर्वस्कंधेषु असंख्यातलोकमात्रतत्प्ररूपणाभावात् तदावल्यसंख्यातैकभागपुलवीस्थितनिगोदशरीराणि प्र पु १। फ ≡ a। इ पु ८ इति त्रैराशिकसिद्धानि एतावंति ≡ a ८ एतेषु पुनः प्र श १। फ जी १३— इ शरी ≡ a ८ इति त्रैराशिकलब्धाः १३— ≡ a ८ बादरनिगोदजीवा एतावंतः। एतेषु क्षीणकषायप्रथमसमये अनंता म्रियंते। द्वितीयसम-

९ ≡ a ५

येऽनंतमृतराशिमावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकभागाधिका म्रियंते एवमावलिपृथक्त्वे गते आवलिसंख्यातैकभागाधिकक्रमेण म्रियंते यावत्तद्गुणस्थानकाल आवल्यसंख्यातैकभागमात्रोऽवशिष्यते। तदनंतरसमये पलितोपमासंख्यातैकभागगुणा म्रियंते। ततः संख्यातपल्यगुणितक्रमेण म्रियंते, यावत्क्षीणकषायचरमसमयस्तावत्। तत्रावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु पृथक्पृथगसंख्यातलोकमात्रशरीराकीर्णेषु पल्यासंख्यातैकभागमृतजीवममाणोनाना गुणितकर्मांशानंतानंतजीवानामनंतानंतविस्रसोपचयसहितत्रिशरीरसंचयो जघन्यबादरनिगोदवर्गणा भवति इयमेवैकाणुना हीना सती उत्कृष्टध्रुवशून्यवर्गणा भवति—

ज ० स a a ख ख १२—१६ ख १३— । ≡ a ८ प १ aa

ध्रुवसुरगणा ० ० ० ९ ≡ a ५ प a

ज ० स ३२ a a ख ख १२—१६ ख ८ a

स्वयंभूरमणद्वीपस्य मूलकादिशरीरेष्वेकबंधनबद्धजगच्छ्रेण्यसंख्येयभागमात्रपुलविषु स्थितानां गुणितकर्मांशानंतानंतबादरनिगोदजीवानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयः उत्कृष्टबादरनिगोदवर्गणा भवति—

उ ० स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३— ≡ a ८ a a

बादरणिगोदसरीर ० ० ● ९ ≡ a ५

ज ० स a a ख ख १२—१६ ख १३— ≡ a ८ प १ aa

९ ≡ a ५ प a

इयमेकरूपाधिका तृतीयशून्यवर्गणाजघन्यं भवति—

तिदसुरगणावगणा ज स ३२ a a ख ख १२—१६ ख १३— ≡ a ८ a a

९ ≡ a ५

जले स्थले आकाशे वा एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभागपुलविषु स्थितानां क्षपितकर्मांशानंतानंतसूक्ष्मनिगोदानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयः सूक्ष्मनिगोदजघन्यवर्गणा भवति। ज स a a ख ख१२ – १६ ख १३ – ८ ≡ a २ ८ a / ९ ≡ a ५ / a a इयमेकरूपोना तृतीयशून्यवर्गणोत्कृष्टं भवति— तिय उ० स a a ख ख १२ -- १६ ख १३ -- ८ ≡ a २ ८ a / सुरा.वग्गणा ९ ≡ a ५ / a a । ननु वादरनिगोदवर्गणोत्कृष्टं पुलवयः श्रेण्यसंख्येयभागः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्यं तु आवल्यसंख्यातैकभागः तेन तदधोऽनेन भाव्यं इति, तन्न-वादरनिगोदवर्गणानिगोदशरीरेभ्यः सूक्ष्मनिगोदवर्गणाशरीराणां सूच्यंगुलासंख्यातैकभागगुणकारोपलंभात्। सूक्ष्मनिगोदवर्गणोत्कृष्टं महामत्स्यशरीरे एकबंधनबद्धावल्यसंख्यातैकभागमात्रपुलविस्थितगुणितकर्मांशानंतानंतजीवानां सविस्रसोपचयत्रिशरीरसंचयो भवति—

सुहमणि उ० स ३२ a a ख ख १२ -- १६ ख १३ -- ८ ≡ a ८ ख़ २ a
९ ≡ a ५ / a a

इदं एकरूपयुतं नभोवर्गणाजघन्यं भवति—

णभवग्ग ज स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख १३--८ ≡ a ८ ख़ २ a
a a
९ ≡ a ५

इदं प्रतरासंख्येयभागगुणितं नभोवर्गणोत्कृष्टं भवति—

णभवग्ग उ स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख १३--८ ≡ a ८ ख़ २ a a
a a
९ ≡ a ५

अत्रैकरूपे युते महास्कंधवर्गणाजघन्यं भवति—

महास्कंध ज स ३२ a a ख ख १२--१६ ख १३--८ ≡ a ८ सू २ a a
(a a)

९ ≡ a ५

अत्र अस्यैव पल्यासंख्यातैकभागे युते महास्कंधवर्गणोत्कृष्टं भवति—

महास्कंध उ स ३२ a a ख ख १२-- १६ ख १३--८ ≡ a ८ सू २ a a प
(a a a)

९ ≡ a ५ प
(a)

एवमेकश्रेणिमाश्रित्य त्रयोविंशतिवर्गणा उक्ताः॥५९४--५९५॥ उक्तार्थमुपसंहरन् तासामेव जघन्योत्कृष्टानुत्कृष्टाजघन्यानि तदल्पबहुत्वं च गाथाषट्केनाह-

स० चं०—पुद्गल द्रव्यके भेदरूप जे वर्गणा ते तेईस भेद लीएं हैं—अणुवर्गणा १ संख्याताणुवर्गणा २ असंख्याताणुवर्गणा ३ अनंताणुवर्गणा ४ आहारवर्गणा ५ अग्राह्यवर्गणा ६ तैजसशरीरवर्गणा ७ अग्राह्यवर्गणा ८ भाषावर्गणा ९ अग्राह्य वर्गणा १० मनोवर्गणा ११ अग्राह्य वर्गणा १२ कार्माण वर्गणा १३ ध्रुव वर्गणा १४ सांतरनिरंतर वर्गणा १५ शून्य वर्गणा १६ प्रत्येक शरीरवर्गणा १७ ध्रुव शून्यवर्गणा १८ बादरनिगोद वर्गणा १९ शून्यवर्गणा २० सूक्ष्मनिगोद वर्गणा २१ नभोवर्गणा २२ महास्कंधवर्गणा २३ ए तेईस भेद जानने। इहां प्रासंगिक श्लोक कहिए है—

मूर्तिमत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ॥ १ ॥

मूर्तीक पदार्थनिविषैं अर संसारी जीवविषैं पुद्गल शब्द प्रवर्तै है बहुरि अकर्म जातिके कर्मजातिके नोकर्म जातिके जे पुद्गल तिनिविषैं वर्गणा शब्द प्रवर्तै है सो अब इहां तेईस जातिकी वर्गणानिविषैं केते केते परमाणू पाइए ? सो प्रमाण कहिए हैं—

तहां अणुवर्गणा तो एक एक परमाणु रूप है इसविषैं जघन्य उत्कृष्ट मध्य भेद भी नाही है बहुरि अन्य बाईस वर्गणानिविषैं भेद हैं तहां जघन्य अर उत्कृष्ट भेद कहिए है—जघन्यके ऊपरि एक एक परमाणू उत्कृष्टका नीचा पर्यंत बधावनेतैं जेते भेद होहिं तितने मध्यके भेद जानने। बहुरि संख्याताणुवर्गणाविषैं जघन्य दोय अणूनिका स्कंध है अर उत्कृष्ट उत्कृष्ट संख्यात अणूनिका स्कंध है। बहुरि असंख्याताणु वर्गणाविषै जघन्य परीतासंख्यात परमाणूनिका स्कंध है उत्कृष्ट उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणूनिका स्कंध है। इहां विवक्षित वर्गणा ल्यावनेके निमित्त गुणकारका ज्ञान करना होइ तौ विवक्षित वर्गणाकौं ताके नीचेकी वर्गणाका भाग दीए जो प्रमाण आवै सोई गुणकारका प्रमाण जानना। तिस गुणकारकरि नीचेकी वर्गणाकौं गुणै विवक्षित वर्गणा हो है जैसें विवक्षित तीन अणूका स्कंध अर नीचे दोय परमाणूका स्कंध तहां तीनकौं दोयका भाग दीए ड्योढ पाया सोई गुणकार है। दोयकौं ड्योढकरि गुणिए तब तीन होइ ऐसैं सर्वत्र जानना। बहुरि इहां संख्याताणु असंख्याताणु वर्गणाविषैं जघन्यका भाग उत्कृष्टकौं दीएं जो प्रमाण आवै सोई जघन्यका गुणकार जानना। इस गुणकार करि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि अनंताणुवर्गणाविषै उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। अर जघन्यकौं सिद्ध राशिका अनंतवां भागमात्र जो अनंत ताकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि आहार वर्गणाविषैं उत्कृष्ट अनंताणुवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद हो है। बहुरि इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवाभाग मात्र जो अनंत ताका भाग दीये जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भए उत्कृष्टभेद हो है बहुरि ताके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है तींहिविषैं उत्कृष्ट आहारवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है। बहुरि जघन्यभेदकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंत

करि गुणै उत्कृष्टभेद होहै बहुरि ताके ऊपरि तैजसशरीरवर्गणा है ताहिविषैं उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है इस जघन्य भेदकौं सिद्धराशिका अनंतवां भाग मात्र अनंतका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भए उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्ट तैजस वर्गणातैं एक परमाणू आधिक भए जघन्य भेद हो है इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवा भागमात्र अनंतकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि भाषा वर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतका भाग दीए जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भए उत्कृष्टभेद हो है बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्टभाषावर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद होहै। इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि मनोवर्गणा है तीहिंविषैं उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद हो है इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतका भागदीएं जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं अधिक भएं उत्कृष्टभेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि अग्राह्य वर्गणा है तीहिंविषैं उत्कृष्ट मनोवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद होहै इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवा भाग प्रमाण अनंतकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि कार्माणवर्गणा है तीहिविषैं उत्कृष्ट अग्राह्य वर्गणातैं एक परमाणू अधिकभएं जघन्यभेद होहै इस जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र अनंतका भागदीए जो प्रमाण आवै तितने जघन्यतैं आधिक भएं उत्कृष्ट भेद हो है। बहुरि ताके ऊपरि ध्रुव वर्गणा है तहां उत्कृष्ट कार्माण वगर्णातैं एक परमाणू अधिक भएं जघन्यभेद होहै। इस जघन्यकौं अनंतगुणां जीव राशिमात्र अनंतकरि गुणें उत्कृष्टभेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि सांतर निरंतर वर्गणा है तहां उत्कृष्ट ध्रुववर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद होहै इस जघन्यकौं अनंतगुणा जीवराशिका प्रमाण करि गुणै उत्कृष्ट भेद होहै। ऐसैं जो ए अणुवर्गणातैं लगाइ पंद्रहवर्गणा कहीं ते सदृश परिमाणकौं लीएं एक एक वर्गणा लोकविषैं अनंत पुद्गलराशिका वर्गमूल प्रमाण पाइए है परि किछू घाटि घाटि क्रमतैं पाइए है। तहां प्रति-

भागहार सिद्धका अनंतवां भागमात्र है सो इस कथनकौं विशेषकरि आगें कहिएगा। बहुरि ताके ऊपरि शून्य-वर्गणा है तहां उत्कृष्ट सांतर निरंतर वर्गणातैं एक एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद हो है इस जघन्यकौं अनंत-गुणा जीवराशिका प्रमाणकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद होहै ऐसैं सोलह वर्गणा सिद्ध भई। बहुरि ताके ऊपरि प्रत्येक शरीर वर्गणा है सो एक शरीर एक जीवका होइ ताकौं प्रत्येक कहिए। तहां जो विस्रसोपचय सहित कर्म वा नोकर्म तिनिका एकस्कंध ताकौं प्रत्येक शरीर वर्गणा कहिए। तहां शून्यवर्गणाका उत्कृष्टतैं एक परमाणूकरि अधिक जघन्य भेद होहै सो यहु जघन्यभेद कहां पाइए है? सो कहिए है—

जाका कर्मके अंश क्षयरूप भए है ऐसा कोई क्षपितकर्मांश जीव सो कोटि पूर्व वर्ष प्रमाण आयुका धारी मनुष्य होइ अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपरि सम्यक्त्व अर संयम दोऊ एक काल अंगीकार करि सयोग केवली भया सो किछू घाटि कोटि पूर्व पर्यंत औदारिक शरीर अर तैजस शरीरका जो प्रकार कह्या है तैसे निर्जरा करत संता अर कार्माण शरीरकी गुणश्रेणी निर्जरा करत संता अयोगकेवलीका अंतसमयकौं प्राप्त भया ताकैं आयु-कर्म औदारिक तैजस शरीर अधिक नाम गोत्र वेदनीय कर्मके परिमाणूनिका समूह रूप जो औदारिक तैजस कार्माण इनि तीनि शरीरनिका स्कंध सो जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा है। बहुरि इस जघन्यकौं पल्यका असंख्या-तवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा हो है सो कहां पाइए? सो कहिए है—

नंदीश्वर नामा द्वीपविषैं अकृत्रिम चैत्यालय है। तहां धूपके घड़े हैं तिनिविषैं वा स्वयंभूरमण द्वीपविषैं उपजे दावानल तिनिविषैं जे बादर पर्याप्त अग्निकायके जीव हैं तहां असंख्यात आवलीका वर्ग प्रमाण जीवनिके शरीरनिका एक स्कंध है। तहां गुणितकर्मांश कहिए जिनके कर्मका संचय बहुत है ऐसे जीव बहुत भी होंइ तौ आवलीका असंख्यातवा भागमात्र होंइ तिनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्माण इनि तीनि शरीरनिका जो एक स्कंध सो उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि ध्रुव शून्य वर्गणा है तहां उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणातैं एक परमाणू अधिक भएं जघन्य भेद हो है। इस जघन्यकौं सब मिथ्यादृष्टी जीवनिका जो प्रमाण

ताकौं असंख्यात लोकका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तीहिकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है । बहुरि ताके ऊपरि वादर निगोद वर्गणा है सो वादर निगोदिया जीवनिका विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परिमाणूनिका जो एक स्कंध ताकौं वादर निगोद वर्गणा कहिए है सो ध्रुवशून्य वर्गणातें एक परमाणू अधिक जघन्य वादरनिगोदवर्गणा है सो कहां पाइए है ? सो कहैं हैं——

क्षय कीएं हैं कर्म अंश जानें ऐसा कोई क्षपितकर्मांश जीव सो कोडि पूर्व वर्ष प्रमाण आयुका धारी मनुष्य होइ गर्भतें अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षके ऊपरि सम्यक्त्व अर संयमकौं युगपत अंगीकार करि किछू घाटि कोडि पूर्ववर्ष पर्यंत कर्मनिकी गुणश्रेणी निर्जराकौं करतसंता जब अंतर्मुहूर्त सिद्धपद पावनेका रह्या तब क्षपक श्रेणी चढि उत्कृष्ट कर्मनिर्जराकौं करत संता क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती भया तिसके शरीरविषैं जघन्य वा उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी एक बधनरूप बधे पाइए हैं जातें सर्व स्कधनिविषैं पुलवी असंख्यात लोक प्रमाण कहे हैं । बहुरि एक एक पुलवीविषैं असंख्यात लोकप्रमाण शरीर पाइए है । बहुरि एक २ शरीरविषैं सिद्धनितैं अनंतगुणे संसारी राशिके असंख्यातवे भागमात्र जीव पाइए है सो आवलीका असंख्यातवां भागकौं असंख्यात लोककरि गुणैं तहां शरीरनिका प्रमाण भया । ताकौं एक शरीरविषैं निगोद जीवनिका जो प्रमाण ताकरि गुणे जो प्रमाण भया तितना तहां एक स्कंधविषैं वादर निगोद जीवनिका प्रमाण जानना । तिनि जीवनिकै क्षीणकषाय गुणस्थानका पहिला समयविषैं अनन्त जीव स्वयमेव अपना आयुका नाशतैं मरैं है बहुरि दूसरे समय जेते पहिले समय मरे तिनिकौं आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितने पहिले समय मरे जीवनितैं अधिके मरैं हैं । इसही अनुक्रमतैं क्षीणकषायका प्रथम समयतैं लगाइ पृथक्त्व आवलीप्रमाण काल पर्यंत मरैं हैं पीछैं पूर्व पूर्व समय सम्बन्धी मरे जीवनिके प्रमाणकौं आवलीका संख्यातवां भागका भाग दीए जो जो प्रमाण होइ तितने २ पहिले पहिले समयतैं अधिके समय समयतैं मरैं हैं सो क्षीणकषाय गुणस्थानका काल आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण अवशेष रहे तहां ताईं इसही अनुक्रमतैं मरै हैं ताके अनंतर समयविषै पल्यका

असंख्यातवां भागकरि पहिले समयसंबंधी जीवनिकौं गुणें जितने होंहि तितने तितने मरैं हैं तहां पीछैं संख्यात पल्यकरि पूर्व पूर्व समय संबंधी मरे जीवनिकौं गुणें जो जो प्रमाण होइ तितने तितने मरैं हैं सो ऐसैं क्षीणकषाय गुणस्थानका अंत समय पर्यंत जानना। तहां अंतके समयविषैं जे जुदे जुदे असंख्यातलोक प्रमाण शरीरनिकरि संयुक्त ऐसे आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी तिनिविषै जे गुणितकर्मांश जीव मरे तिनकरि हीन अवशेष जे अनंतानंत जीव गुणित कर्मांश रहे तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिके परमाणूनिका जो एक स्कंध सोई जघन्य वादर निगोद वर्गणा है बहुरि इस जघन्यकौं जगच्छ्रेणीका असंख्यातवां भागकरि गुणें उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा हो है सो कैसें पाइए ? सो कहिए है—

स्वयंभूरमण नामा द्वीपविषैं जे मूलाने आदि देकरि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पती हैं तिनके शरीरनिविषैं एक बंधनविषैं वधे जगच्छ्रेणीका असंख्यातवां भागमात्र पुलवी हैं तिनविषैं तिष्ठते जे गुणितकर्मांश जीव अनंतानंत पाइए है तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिके परमाणूनिका एक स्कंध सोई उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि तृतीय शून्यवर्गणा है तहां उत्कृष्ट वादरनिगोदवर्गणातैं एक प्रदेश अधिक भए जघन्य भेद हो है। इस जघन्यकौं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागकरि गुणें उत्कृष्ट भेद हो है बहुरि ताके ऊपरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है सो सूक्ष्मनिगोदिया जीवनिका विस्रसोपचय सहित कर्म नो कर्म परमाणूनिका एक स्कंधरूप जानना। तहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्य भेद हो है सो जघन्य भेद कैसें पाइए है ? सो कहिए है—

जल विषैं वा स्थलविषैं वा आकाशविषैं जहां तहां एक बंधनविषैं बंधे ऐसे जे आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पुलवी तिनिविषैं क्षपितकर्मांश अनंतानंत सूक्ष्म निगोदिया जीव हैं तिनिका विस्रसोपचयसहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिका परमाणूनिका जो एक स्कंध सोई जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है। इहां प्रश्न—जो वादरनिगोद उत्कृष्ट वर्गणाविषैं पुलवी श्रेणीके संख्यातवे भाग प्रमाण कहे अर जघन्य सूक्ष्मनिगोद

वर्गणाविषैं पुलवी आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण कहे तातैं वादरनिगोद वर्गणाके पहिलें याकौं कहना युक्त था जातैं पुलवीनिका बहुत प्रमाणतैं परमाणूनिका भी बहुत प्रमाण संभवै है? ताका समाधान—जो यद्यपि पुलवी इहां घाटि कहे हैं तथापि वादरनिगोद वर्गणासंबंधी निगोद शरीरनितैं सूक्ष्मनिगोद वर्गणा संबंधी शरीरनिका प्रमाण सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग गुणा है तातैं तहां जीवभी बहुत हैं तिनि जीवनिकैं तीन शरीर संबंधी परमाणू भी बहुत हैं तातैं बादरनिगोद वर्गणाके पीछे सूक्ष्मनिगोद वर्गणा कही है। बहुरि जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणाकौं पल्यका असंख्यातवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा हो है सो कैसें पाइए है? सो कहिए है—

यहां महामत्स्यका शरीरविषैं एक स्कंधरूप आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण पुलवी पाइए है तहां गुणितकर्मांश अनंतानंत जीवनिका विस्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्माण तीन शरीरनिके परमाणूनिका एक स्कंध सोई उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा है। बहुरि ताके ऊपरि नभोवर्गणा है तहां उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणातैं एक अधिक भए जघन्यभेद होहै इस जघन्यकौं जगत्प्रतरका असंख्यातवां भागकरि गुणैं उत्कृष्ट भेद होहै। बहुरि ताके ऊपरि महास्कंध है तहां उत्कृष्ट नभोवर्गणातैं एक परमाणू अधिक भए जघन्यभेद होहै बहुरि इस जघन्यकौं पल्यका असंख्यातवां भागका भाग दीए जो प्रमाण आवै ताकौं जघन्यविषैं मिलाए उत्कृष्ट महास्कंधके परमाणूनिका प्रमाण हो है ऐसैं एक पंक्तिकरि तेईस वर्गणा कहीं॥ ५९४–५९५॥ आगैं जो अर्थ कह्या तिसहीकौं संकोचनकरि तिन वर्गणानि हीका उत्कृष्ट जघन्य मध्य भेदनिकौं वा अल्प बहुत्वकौं छह गाथानिकरि कहैं हैं—

परमाणुवग्गणम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि।
गेज्झमहक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं॥ ५९६॥

परमाणुवर्गणायां न अवरोत्कृष्टं च शेषके अस्ति।
ग्राह्यमहास्कंधानां वरमधिकं शेषकं गुणितम्॥ ५९६॥

जी० प्र०—परमाणुवर्गणायां जघन्योत्कृष्टे न स्तः, अणूनां निर्विकल्पकत्वात् शेषद्वाविंशतिवर्गणानां तु स्तः। तत्र ग्राह्याणां आहारतेजोभाषामनःकार्मणवर्गणानां महास्कंधवर्गणायाश्च उत्कृष्टानि स्वस्वजघन्याद्विशेषाधिकानि शेषषोडशवर्गणानां गुणितानि भवंति ॥ ५९६ ॥

स. च.-परमाणु वर्गणाविषै जघन्य उत्कृष्ट भेद नाहीं है जातैं अणू अभेद है बहुरि अवशेष बाईस वर्गणानिविषैं जघन्य उत्कृष्ट भेद पाइए है। तहां ग्राह्य कहिए जीवके ग्रहण करनेके योग्य ऐसी जे आहार तैजस भाषा मनः कार्माणवर्गणा इहां आहार वर्गणातैं आहार शरीर इंद्री सासोस्वास ए च्यारि पर्याप्ति होहैं। तैजस वर्गणातैं तैजस शरीर हो है। भाषा वर्गणातैं वचन होहै। मनो वगणातैं मन निपजै है। कार्माण वर्गणातैं ज्ञानावरणादिक कर्म हो हैं तातैं इनि पंच वर्गणानिकौं ग्राह्य वर्गणा कही है अर एक महास्कंध इनि छहौं वर्गणानिका उत्कृष्ट तौ अपने अपने जघन्यतैं किछू अधिक प्रमाण लीएं है अर अवशेष सोलह वर्गणानिका उत्कृष्ट भेद अपने अपने जघन्यकौं गुणकार करि गुणिए तब हो है ॥ ५९६ ॥

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठं।
पल्लासंखेज्जदिमं अंतिमखंधस्स जेट्ठं ॥ ५९७ ॥

सिद्धानंतिमभागः प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थं।
पल्यासंख्येयमंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थं ॥ ५९७ ॥

जी० प्र०—तत्र पंचग्राह्यवर्गणानां उत्कृष्टनिमित्तं प्रतिभागहारः सिद्धानंतैकभागः, तेन स्वस्वजघन्यं भक्त्वा तत्रैव निक्षिप्ते स्वस्वोत्कृष्टं भवतीत्यर्थः। अंतिममहास्कंधोत्कृष्टनिमित्तं प्रतिभागहारः पल्यासंख्यातैकभागः ॥ ५९७ ॥

स० चं—ग्राह्य पंच वर्गणा तिनिका उत्कृष्टके निमित्त सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र प्रतिभाग है अपने अपने जघन्यकौं सिद्धराशिका अनंतवा भाग दीए जो प्रमाण होइ तितने जघन्यविषैं मिलाएं अपना अपना उत्कृष्ट भेद होहै। बहुरि अंतका महास्कंधका उत्कृष्टका निमित्त पल्यका असंख्यातवां भागमात्र प्रतिभाग है महास्कंध

के जघन्यकौं पल्यका असंख्यातवा भागका भागदीए जो प्रमाण होइ तितना जघन्यविषैं मिलैं उत्कृष्ट महास्कंध हो है ॥ ५९७ ॥

संखेज्जासंखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते।
चत्तारि अगेज्जेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ॥ ५९८ ॥

संख्यातासंख्यातायां गुणकारः स तु भवति हि अनंतायां।
चतसृषु अग्राह्यास्वपि सिद्धानामनंतिमो भागः ॥ ५९८ ॥

जी० प्र०—तु-पुनः संख्यातासंख्यातवर्गणायोः उत्कृष्टार्थं स्वस्वजघन्यस्य गुणकारः स संख्यातवर्गणायां स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रसंख्यातः १५/२ असंख्यातवर्गणायां स्वजघन्यभक्तस्वोत्कृष्टमात्रासंख्यातो भवति २५५/१६ ताभ्यां स्वस्वजघन्यं गुणयित्वा २। १५/२। १६। २५५/१६ अपवर्तिते १५। २५५ खलु स्फुटं तयोरुत्कृष्टे स्यातां इत्यर्थः। अनंतवर्गणायां अग्राह्यवर्गणाचतुष्के च उत्कृष्टार्थं गुणकारः सिद्धानंतैकभागः ॥ ५९८ ॥

स० चं०—संख्याताणुवर्गणा अर असंख्याताणुवर्गणाविषैं अपने अपने उत्कृष्टकौं अपना अपना जघन्य का भाग दीए जो प्रमाण होइ सोई गुणकार जानना इस गुणकारकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है बहुरि अनंताणुवर्गणाविषैं अर जीवकरि ग्रहण योग्य नाहीं ऐसी च्यारि अग्राह्य वर्गणाविषैं गुणकार सिद्धराशिका अनंतवां भागमात्र है इसकरि जघन्यकौं गुणें उत्कृष्ट भेद हो है ॥ ५९८ ॥

जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ॥ ५९९ ॥

जीवादनंतगुणो ध्रुवादितिसृणामसंख्यभागस्तु।
पल्यस्य ततस्ततः असंख्यलोकावहिता मिथ्या ॥ ५९९ ॥

जी० प्र०—सर्वजीवराशितोऽनंतगुणो ध्रुवादितिसृणां वर्गणानां उत्कृष्टनिमित्तं गुणकारो भवति । तु पुनः तदुपरितनप्रत्येकशरीरवर्गणोत्कृष्ट-निमित्तं पल्यासंख्यातैकभागः । कुतः ? प्रत्येकशरीरस्थकार्मणसमयप्रबद्धानां गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धत्वेन जघन्यसमयप्रबद्धात् छेदासंख्येयगुणि-तत्वात् । तत्संदृष्टिः द्वात्रिंशत् । तया जघन्ये गुणिते तदुत्कृष्टं भवतीत्यर्थः । ततः ध्रुवशून्यवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं गुणकारः असंख्यातलोकभक्तसर्वमिथ्या-दृष्टिराशिः १३— ≡ a ॥ ५९९ ॥

९ ≡ a९

स० चं०—बहुरि ध्रुवादिक तीन वर्गणानिविषैं जीवराशितैं अनंतगुणा गुणकार है याकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट हो है बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणाविषैं पल्यका असंख्यातवां भागमात्र गुणकार है याकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट हो है । काहेतैं ? सो कहिए है—प्रत्येक शरीर वर्गणाविषैं जो कार्माण शरीर है तातैं समय प्रबद्धगुणितकर्मांश जीव संबंधी है तातैं जघन्य समय प्रबद्धके परमाणूका प्रमाणतैं याका प्रमाण पल्यका अर्धच्छेदनिका असंख्या-तवां भाग गुणा है । ताकी सहनानी बत्तीसका अंक है तातैं इहां पल्यका असंख्यातवां भागका गुणकार कह्या है । बहुरि ध्रुव शून्य वर्गणाविषैं असंख्यात लोकका भाग मिथ्यादृष्टी जीवनिकौं दीए जो प्रमाण होइ तितना गुणकार है याकरि जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट हो है ॥ ५९९ ॥

सेढीसूईपल्लाजगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पणअवरादो उक्कस्से होंति णियमेण ॥ ६०० ॥

श्रेणी-सूची—पल्य-जगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः
आत्मात्मनावरादुत्कृष्टे भवंति नियमेन ॥ ६०० ॥

जी० प्र०—श्रेणिसूच्यंगुलपल्यजगत्प्रतराणां असंख्यातैकभागाः क्रमशः वादरनिगोदशून्यसूक्ष्मनिगोदवर्गणोत्कृष्टनिमित्तं गुणकारा भवंति तत्र शून्यवर्गणायां सूच्यंगुलासंख्यातगुणकारस्तु सूक्ष्मनिगोदवर्गणाजघन्ये रूपोने सति तदुत्कृष्टसंभवात् । सूक्ष्मनिगोदवर्गणायां पल्यासंख्यातगु-णकारोऽपि तत्समयप्रबद्धानां गुणितकर्मांशजीवप्रतिबद्धत्वात् । एवं त्रयोविंशतिवर्गणा एकश्रेण्याश्रिताः कथिताः । इदानीं नानाश्रेणीराशिभ्योच्यंते—तद्यथा—परमाणुवर्गणातः सांतरनिरंतरोत्कृष्टावसानवर्गणानां सदृशधनिकानि अनंतपुद्गलवर्गमूलमात्राण्यपि उपर्युपरि विशेषहीनानि भवंति । तत्र

प्रतिभागहारः सिद्धानंतैकभागः प्रत्येकदेहजघन्यसदृशघनिकानि वर्तमानकाले क्षपितकर्मांशलक्षणेनागत्य अयोगिचरमसमये चत्वारि। उत्कृष्टानि स्वयंभूरमणद्वीपस्य दावानल दिषु आवल्यसंख्यातैकभागमात्राणि वादरनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले क्षीणकषायचरमसमये चत्वारि तदुत्कृष्टानि महामत्स्यादिषु आवल्यसंख्यातैकभागः। सूक्ष्मनिगोदजघन्यानि वर्तमानकाले जले स्थले आकाशे वा आवल्यसंख्यातैकभागः। उत्कृष्टान्यपि महामत्स्येषु तदालापानि। अस्मिन् सचित्तवर्गणात्रये अजघन्यानुत्कृष्टानि वर्तमानकाले असंख्यातलोकमात्राणि भवंति। महास्कंधवर्गणा वर्तमानकाले एका सा तु भवनविमानाष्टपृथ्वीमेरुकुलशैलादीनामेकीभावरूपा। कथं संख्यातासंख्यातयोजनांतरितानामेकत्वं ? एकबंधनबद्धसूक्ष्मपुद्गलस्कंधैः समवेतानामंतराभावात् ॥ ६०० ॥

स० चं०—जगच्छ्रेणीका असंख्यातवां भाग वहुरि सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग वहुरि पल्यका असंख्यातवां भाग वहुरि जगत्प्रतरका असंख्यातवां भाग ए अनुक्रमतें वादरनिगोदवर्गणा अर शून्यवर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा अर नभोवर्गणा इनिविषैं गुणकार है इनिकरि अपने अपने जघन्यकौं गुणैं उत्कृष्ट भेद हो है इहां शून्यवर्गणाविषैं सूच्यंगुलका असंख्यातवां भाग गुणकार कह्या है सो सूक्ष्मनिगोद वर्गणाका जघन्य एक घाटि भये उत्कृष्ट शून्यवर्गणा हो है तातैं कह्या है। वहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणाविषैं पल्यका असंख्यातवां भाग गुणकार कह्या है सो ताके उत्कृष्टका कार्माण संबंधी समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीवसंबंधी है तातैं कह्या है ऐसैं ए तेईस वर्गणा एक पंक्ति अपेक्षा कहीं। अव नानापंक्ति अपेक्षा कहिए है। नाना पंक्ति कहा? जो ए वर्गणा कहीं ते वर्गणा लोकविषैं वर्तमान कोई एक कालमें केती केती पाइए है ऐसी अपेक्षा करि कहै हैं—

परमाणू वर्गणातैं लगाइ सांतरनिरंतरवर्गणापर्यंत पंद्रह वर्गणा समान परमाणूनिका स्कंधरूप लोकविषैं पुद्गलद्रव्यका जो प्रमाण ताका जो वर्गमूल ताका अनंत गुणा कीए जो प्रमाण होइ तितनी तितनी पाइए है तहां इतना विशेष है ऊपरि किछू घाटि घाटि पाइए है। तहां प्रतिभागहार सिद्धराशिका अनंतवा भाग मात्र है सो कहिए है—

अणूवर्गणा लोकविषैं जेतीं पाइए हैं तिस प्रमाणकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागका भाग दीए जो प्रमाण आवैं तितना अणुवर्गणाका परिमाणमें घटाए जो प्रमाण रहै तितनी दोय परमाणूका स्कंधरूप सख्याताणु वर्गणा जगतविषैं पाइए है। इसकौं सिद्धराशिका अनंतवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना तिसहीमें

घटाइए जो प्रमाण रहै तितनी तितनी परमाणूका स्कंधरूप संख्याताणु वर्गणा लोकविषैं पाइए है इसही अनुक्रमतैं एक एक अधिक परमाणूका स्कंधका प्रमाण करते जहां उत्कृष्ट संख्याताणुवर्गणा भई तहां जो प्रमाण भया ताकौं सिद्ध राशिका अनंतवां भागका भाग दीए जो प्रमाण होइ तितना तिसहीमैं घटाए जो अवशेष रहै तितना जघन्य असंख्याताणु वर्गणा लोकविषैं पाइए हैं याकौं तैसैंही भाग देइ घटाए जो प्रमाण रहै तितनी मध्य असंख्याताणु वर्गणाका प्रथम भेदरूप वर्गणा लोकविषैं पाइए है सो ऐसैं ही एक एक अधिक परमाणूनिका स्कंधका प्रमाण अनुक्रमनैं सांतर निरंतर वर्गणाका उत्कृष्ट पर्यंत जानना। सामान्यपनैं सर्व जुदी वर्गणानिका प्रमाण अनंत पुद्गल राशिका वर्गमूल मात्र जानना। बहुरि प्रत्येक शरीर वर्गणाका जघन्य तौ पूर्वोक्त अयोग केवलीका अंत समयविषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं च्यारि पाइए है। बहुरि उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा स्वयंभूरमण द्वीपका दावानलादिकविषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है। बहुरि बादर निगोद वर्गणाका जघन्य तौ पूर्वोक्त क्षीण कषाय गुणस्थानका अंत समयविषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं च्यारि पाइए है अर बादर निगोद वर्गणाका उत्कृष्ट महामत्स्यादिक विषैं पाइए सो उत्कृष्टपनैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है। बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणा जघन्य तौ वर्तमानकालविषैं जलमैं वा स्थलमैं वा आकाशमैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा उत्कृष्ट भी आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण पाइए है। इहां प्रत्येक शरीर बादर निगोद सूक्ष्म निगोद इनि तीन सचित्तवर्गणानिका मध्यभेद वर्तमान कालविषैं असंख्यात लोक प्रमाण पाइए है बहुरि महास्कंध वर्गणा वर्तमान कालमैं जगतविषैं एक ही है सो भवनवासीनिके भवन देवनिके विमान आठ पृथ्वी मेरु गिरि कुलाचल इत्यादिकानिका एक स्कंध रूप है। इहा प्रश्न–जो जिनिकैं असंख्यात संख्यात योजननिका, अन्तर पाइए तिनिका एक स्कंध कैसैं संभवै है? ताका उत्तर–जो मध्यविषैं सूक्ष्म परमाणू हैं सो वे विमानादिक अर सूक्ष्म परमाणू तिनि सवनिका एक बंधान है तातैं अंतर नाहीं एक स्कंध है सो ऐसा जो एक स्कंध है ताहीका नाम महास्कंध है ॥ ६०० ॥

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इति तेवीसवियप्पा पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ॥ ६०१ ॥

अधस्तनोत्कृष्टं पुनः रूपाधिकमुपरिमं जघन्यं खलु ।
इति त्रयोविंशतिविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि हि जिनदिष्टानि ॥ ६०१ ॥

जी० प्र०—त्रयोविंशतिवर्गणासु अणुवर्गणातः शेषाणां अधस्तनवर्गणोत्कृष्टानि रूपाधिकानि भूत्वा तदुपरितनवर्गणानां जघन्यानि भवंति खलु नियमेन इति त्रयोविंशतिवर्गणाविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि जिनैरुक्तानि खलु स्फुटं । तासु प्रत्येकबादरनिगोदसूक्ष्मनिगोदवर्गणाः तिस्रः सचित्ताः । तत्र अयोगिचरमसमये प्रत्येकशरीरजघन्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति ? यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि । तथा तद्द्वितीयवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति । यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन चत्वारि इत्यवस्थितक्रमेणानंतवर्गणा अतीत्य अनंतवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति । यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन पंच इत्यवस्थितक्रमेण अनंतवर्गणा अतीत्य अनंतवर्गणाद्रव्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति । यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन षट् अनेन क्रमेण सप्ताष्ट सप्तषट् पंचचतुस्त्रि द्व्येकशधनिकानि भवंति । इयं यवमध्यप्ररूपणा भव्यसिद्धमायोग्यस्थानेषु ग्राह्या । अनंतवर्गणा सा संसारिजीवमायोग्या तद् द्रव्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः इत्यवस्थितक्रमेण अनंतवर्गणा अतीत्य अनंतरवर्गणाद्रव्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः । अयं पूर्वस्मादेकरूपाधिकः $\frac{१-}{२ \; a}$ एवमनंतवर्गणा अतीत्य अनंतरोपरितनवर्गणासु अधस्तनाधस्तनवर्गणाभ्यः एकैकाधिका भवंति । एवं यावत् यवमध्यं तावन्नेतव्यं । यवमध्यवर्गणासदृशधनिकद्रव्यं क्वचिदस्ति क्वचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः । अयं ततोऽप्येकरूपाधिकः । एवमनंतवर्गणा अतीत्य अनंतरवर्गणाद्रव्यं स्यादस्ति स्यान्नास्ति, यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः अयं पूर्वस्मादेकरूपहीनः । एवं यावदुत्कृष्टा प्रत्येकवर्गणा तावन्नेयं । तदुत्कृष्टमपि स्यादस्ति स्यान्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः इति प्रत्येकवर्गणा भव्यसिद्धान् अभव्यसिद्धांश्च आश्रित्योक्ता । एवं बादरनिगोदवर्गणायामपि वक्तव्यं, पृथक् कथनं नास्ति सूक्ष्मनिगोदवर्गणायां तु जलस्थलाकाशादिषु सर्वजघन्यं कथंचिदस्ति कथंचिन्नास्ति यद्यस्ति तदा एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागः एवमभव्यसिद्धमायोग्यप्रत्येकशरीर-

वन्नेतव्यं यावत् यवमध्यं तावत् । तत्रापि आवल्यसंख्यातैकभागसदृशधनिकानि भवंति । पुनः प्रत्येकवर्गणावन्नेतव्यं यावत्तद्वर्गणोत्कृष्टं तावत् तदपि एकं वा द्वयं वा त्रयं वा उत्कृष्टेन आवल्यसंख्यातैकभागो भवति तत्र सर्वत्र अभव्यसिद्धप्रायोग्ययवमध्येषु गुणहान्यध्वानं सर्वजीवेभ्योऽनंतगुणं १६ ख नानागुणहानिशलाकायवमध्यादधः उपर्यपि आवल्यसंख्यातैकभागः ८ ॥ ६०१ ॥

a

स. चं.—तेईस वर्गणानिविषैं अणुवर्गणा विना अवशेष वर्गणानिकैं जो नीचेका उत्कृष्ट भेद होइ तामैं एक अधिक भए ताके ऊपरि जो वर्गणा ताका जघन्य भेद हो है। ऐसैं तेईस वर्गणा भेदकौं लीए पुद्गल द्रव्य जिनदेवने कहे हैं इनिविषैं प्रत्येक वर्गणा अर वादरनिगोदवर्गणा अर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा ए तीन सचित्त हैं जीव सहित हैं सो इनिका विशेष कहिए है—

अयोग केवलीका अंतसमयविषैं पाइए ऐसी जघन्य प्रत्येक वर्गणा सो लोकविषैं होइ भी वा न भी होइ, जो होइ तौ एक ही होइ वा दोइ होइ वा तीन होइ उत्कृष्ट होइ तौ च्यारि होइ । बहुरि जघन्यतैं एक परमाणू अधिक ऐसी मध्य प्रत्येकवर्गणा सो लोकविषै होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन वा उत्कृष्टपनैं च्यारि होइ ऐसैं ही एक एक परमाणूका बंधावतैं इस ही अनुक्रमतैं जब अनंतवर्गणा होंइ तब ताके अनंतर जो एक परमाणू अधिक वर्गणा सो लोकविषैं होइ वा न होइ जो होइ, तौ एक वा दोय वा तीन वा च्यारि वा उत्कृष्टपनैं पांच होइ ऐसैं एक एक परमाणू बंधतैं अनंतवर्गणा पर्यंत पंच ही उत्कृष्टरहैं ताके अनंतरि जो वर्गणा सो होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट छह होइ ऐसैं अनंतवर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट छही होंइ । बहुरि इसही अनुक्रमतैं अनंत वर्गणापर्यंत उत्कृष्ट सात आठ सात छह पांच च्यारि तीन दोय वर्गणा जगतविषैं समान परमाणूनिका प्रमाण लीएं हो। हैं यहु यवमध्य प्ररूपणा है जैसैं यव नामा अन्नका मध्य मोटा हो है तैसैं इहां मध्यविषैं वर्गणा आठ कहीं पहिले वा पीछैं थोड़ी थोड़ी कहीं तातैं याकौं यवमध्यप्ररूपणा कहिए है । सो यहु प्ररूपणा मुक्तिगामी भव्य जीवनिकी अपेक्षा है ऐसैं प्रत्येक वर्गणा समान संसारी जीवनिकैं न पाइए है इहांतैं आगैं संसारी जीवनिकैं पाइए ऐसी प्रत्येक वर्गणा कहिए है—

सो पूर्वैं कथन कीया ताके अनंतरि पूर्व प्रत्येक वर्गणातैं एक परमाणू अधिकता लीएं जो प्रत्येक वर्गणा सो जगतविषैं होइ, वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन इत्यादि उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण होइ। ऐसैं ही अनंतवर्गणा भए अनंतरि जो प्रत्येक वर्गणा सो लोकविषैं होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण पूर्व प्रमाणतैं एक अधिक होइ ऐसैं अनंत अनंत वर्गणा भए एक एक अधिक प्रमाण उत्कृष्टविषैं होता जाय जहां यवमध्य होइ तहां ताईं ऐसैं जानना यवमध्यविषैं जेता परमाणूका स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा भई तितने तितने परमाणूनिका स्कंधरूप प्रत्येक वर्गणा जगतविषैं होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ यहु प्रमाण इसतैं जो पूर्वप्रमाण तातैं एक अधिक जानना। ऐसैं अनंत वर्गणा भएं अनंतरि जो वर्गणा भई सो जगतविषैं होइ वा न होइ जो होइ तो एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भागप्रमाण होइ सो यहु प्रमाण यवमध्य संबंधी पूर्वप्रमाणतैं एक घाटि जानना। ऐसैं एक परमाणूके बंधनेतैं एक एक वर्गणा होइ सो अनंत अनंत वर्गणा भए उत्कृष्टविषैं एक एक घटाइए जहां ताईं उत्कृष्ट प्रत्येक वर्गणा होइ तहां ताईं ऐसैं करना। उत्कृष्ट प्रत्येकवर्गणा लोकविषैं होइ वा न होइ जो होय तो एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ ऐसें प्रत्येक वर्गणा भव्यसिद्ध अभव्य सिद्धनिकी अपेक्षा कही। बहुरि बादरनिगोद वर्गणाका भी कथन प्रत्येक वर्गणावत् जानना किछू विशेष नाहीं। जैसें प्रत्येक वर्गणाविषैं अयोगीका अंतसमयविषैं संभवती जघन्य वर्गणा ताकौं आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन कीया है तैसैं इहां क्षीणकषायीका अंत समयविषैं संभवती तिसका शरीरके आश्रित जघन्य बादर निगोद वर्गणा ताकौं आदि देकरि भव्य सिद्ध अपेक्षा कथन जानना। बहुरि सामान्य संसारी अपेक्षा दोऊ जायगे समानता संभवै है। बहुरि सूक्ष्मनिगोद वर्गणाका कथन कहिए है—

सो इहां भव्य सिद्ध अपेक्षा तो कथन है नाहीं तातैं जघन्य सूक्ष्म निगोद वर्गणा लोकविषैं होइ वा न होइ जो होइ तौ एक वा दोय वा तीन उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ। आगै जैसैं संसारीनिकी

अपेक्षा प्रत्येक वर्गणाका कथन कीया तैसैं ही यवमध्य ताईं अनंतानन्त वर्गणा भएं उत्कृष्टविषै एक एक वंधावना पीछे उत्कृष्ट सूक्ष्मवर्गणा पर्यंत एक एक घटावना सामान्यपनैं सर्वत्र उत्कृष्टका प्रमाण आवलीका असंख्यातवां भाग कहिए। इहां सर्वत्र संसारी सिद्धकौं योग्य ऐसी जो ए प्रत्येक वादर सूक्ष्मनिगोद वर्गणा तिनिका यव आकार प्ररूपणाविषैं गुणहानिका गच्छ जीवराशितैं अनन्त गुणा जाननां। नाना गुणहानिशलाकाका प्रमाण यवमध्यतैं ऊपरि वा नीचे आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण जानना। भावार्थ—संसारी अपेक्षा प्रत्येकवर्गणा बादरनिगोदवर्गणा सूक्ष्मनिगोदवर्गणाविषै जो यवमध्य प्ररूपणा कही तहां लोकविषै पावनेकी अपेक्षा जेते एक एक परमाणू वंधने रूप जे वर्गणा भेद तिनि भेदनिका जो प्रमाण सो तो द्रव्य है अर जिनि वर्गणानिविषै उत्कृष्ट पावनेकी अपेक्षा समानता पाइए तिनिका समूह सो निषेक तिनिका जो प्रमाण सो स्थिति है। बहुरि एक गुणहानिविषैं निषेकनिका जो प्रमाण सो गुणहानिका गच्छ है ताका प्रमाण जीवराशितै अनन्त गुणा है। बहुरि यवमध्यके ऊपरि वा नीचे गुणहानिका प्रमाण सो नानागुणहानि है सो प्रत्येक अवलीका असंख्यातवां भागमात्र है। ऐसैं द्रव्यादिक का प्रमाण जानि जैसैं निषेकनिविषैं द्रव्य प्रमाण ल्यावनेका बिधान है तैसैं उत्कृष्ट पावनेकी अपेक्षा समान रूप जे वर्गणा तिनिका प्रमाण यवमध्यतैं ऊपरि वा नीचैं चय घटता क्रम लीए जानना। इहां प्रश्न—जो इहां तो प्रत्येकादिक तीन सचित्त वर्गणानिके अनंते भेद कहे, एक एक भेदरूप वर्गणा लोकविषैं आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण सामान्यपनैं कही बहुरि पूर्वै मध्यभेदरूप सचित्तवर्गणा सर्व असंख्यात लोक प्रमाण ही कही सो उत्कृष्ट जघन्य विना सर्व भेद मध्यभेद विषैं आय गए तहां ऐसा प्रमाण कैसे संभवै? ताका समाधान—इहां सर्वभेदनिविषैं ऐसा कह्या है जो होइ भी न भी होइ। होइ तौ एक वा दोय इत्यादि उत्कृष्ट आवलीका असंख्यातवां भाग प्रमाण होइ सो नानाकाल अपेक्षा यहु कथन है बहुरि तहां एक कोई विवक्षित वर्तमान काल अपेक्षा वर्तमान कालविषैं सर्व मध्यभेदरूप प्रत्येकादि वर्गणा असंख्यात लोक प्रमाण ही पाइए है अधिक न पाइए है तिनिविषैं किसी भेदरूप वर्गणानिकी नास्ति ही है। किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाण लीएं पाइए हैं। किसी भेदरूप वर्गणा उत्कृष्टपनैं प्रमाण लीएं पाइए है। ऐसा समझना। ईह प्रकार तेईस वर्गणाका वर्णन कीया॥ ६०१॥

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू।
छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ॥ ६०२ ॥

पृथ्वी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयकर्मपरमाणवः ।
षड्विधभेदं भणितं पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ॥ ६०२ ॥

जी० प्र०—पृथ्वी जलं छाया चक्षुर्वर्जितशेषचतुरिंद्रियविषयः कर्मपरमाणुश्चेति पुद्गलद्रव्यं षोढा जिनवरैर्भणितं ॥ ६०२ ॥

स० चं०—पृथ्वी अर जल अर छाया अर नेत्र विना च्यारि इन्द्रियनिका विषय अर कार्माण स्कंध अर परमाणू ऐसैं पुद्गल द्रव्य छह प्रकार जिनेश्वर देवानिकरि कह्या है ॥ ६०२ ॥

बादरबादर बादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ॥ ६०३ ॥

बादरबादरं बादरं बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च ।
सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं धरादिकं भवति षड्भेदं ॥ ६०३ ॥

जी० प्र०—पृथ्वीरूपपुद्गलद्रव्यं बादरबादरं छेत्तुं भेत्तुं अन्यत्र नेतुं शक्यं तद्बादरबादरमित्यर्थः । जलं बादरं, यच्छेत्तुं भेत्तुमशक्यं, अन्यत्र नेतुं शक्यं तद्बादरमित्यर्थः । छाया बादरसूक्ष्मं यच्छेत्तुं भेत्तुमन्यत्र नेतुमशक्यं तद्बादरसूक्ष्ममित्यर्थः । यः चक्षुर्वर्जितचतुरिंद्रियविषयो बाह्यार्थः तत्सूक्ष्मस्थूलं । कर्म सूक्ष्मं, यद्द्रव्यं देशावधिपरमावधिविषयं तत्सूक्ष्ममित्यर्थः। परमाणुः सूक्ष्मसूक्ष्मं यः सर्वावधिविषयं तत्सूक्ष्मसूक्ष्ममित्यर्थः ॥ ६०३ ॥

स० चं०—पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादरबादर है जो पुद्गल स्कंध छेदनेकौं भेदनेकौं और जायगै लेजानेकौं समर्थ हूजै तिस स्कंधकौं बादरबादर कहिए। बहुरि जल है सो बादर है जो छेदनेकौं भेदनेकौं समर्थ न हूजै अर और जायगे लेजानेकौं समर्थ हूजै सो स्कंध बादर जानने। बहुरि छाया बादर सूक्ष्म हैं जो छेदने भेदने और जा-

यगे लेजानेकौं समर्थ न हूजै सो वादरसूक्ष्म है। बहुरि नेत्र विना च्यारि इंद्रियनिका विषय सूक्ष्म स्थूल है। बहुरि कार्माणके स्कंध सूक्ष्म है जो द्रव्य देशावधि परमावधिके गोचर होइ सो सूक्ष्म है। बहुरि परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है जो सर्वावधिके गोचर होइ सो सूक्ष्मसूक्ष्म है इहां एक एक वस्तुका उदाहरण कह्या है सो पृथ्वी काष्ठ पाषाण इत्यादि बादरबादर हैं। जल तैल दुग्ध इत्यादि बादर है। छाया आतप चांदनी इत्यादि वादरसूक्ष्म है। शब्द गंधादिक सूक्ष्म वादर है। इंद्रियगम्य नाही देशावधि परमावधिगम्य होंहि ते स्कंध सूक्ष्म हैं। परमाणू सूक्ष्मसूक्ष्म है ऐसैं जानने ॥ ६०३ ॥

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसोत्ति।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ॥ ६०४ ॥

स्कंधं सकलसमर्थं तस्य चार्धं भणंति देश मिति।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशमविभागिनं चैव परमाणुं ॥ ६०४ ॥

जी० प्र०--स्कंधं सर्वांशसंपूर्णं भणंति तदर्धं च देशं, अर्धस्यार्धं प्रदेशं अविभागिभूतं परमाणुं ॥ ६०४ ॥ इति स्थानस्वरूपाधिकारः।

स० चं०—जो सर्व अंशकरि संपूर्ण होइ ताकौं स्कंध कहिए। ताका आधाकौं देश कहिए। तिस आधाके आधाकौं प्रदेश कहिए। जाका भाग न होइ ताकौं परमाणू कहिए। भावार्थ—विवक्षित स्कंधविषैं संपूर्णतैं एक परमाणू आधिक अर्ध पर्यंत तौ स्कंध संज्ञा है। अर्धतैं लगाइ एक परमाणू अधिक चौथाई पर्यंत देश संज्ञा है। चौथाईते लगाइ दोय परमाणूका स्कंध पर्यंत प्रदेश संज्ञा है। अविभागीकौं परमाणू संज्ञा है ॥६०३॥ इति स्थानाधिकारः

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्मतियं।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ॥ ६०५ ॥

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवतिं धर्मत्रयं ।
वर्तनाक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ॥ ६०५ ॥

जी० प्र०—देशांतरप्राप्तिहेतुर्गतिः । तद्विपरीतं स्थानं । अवकाशदानं अवगाहः । गतिक्रियावतोर्जीवपुद्गलयोः तत्क्रियासाधनभूतं धर्मद्रव्यं मत्स्यानां जलमिव । स्थानक्रियावतोर्जीवपुद्गलयोः तत्क्रियासाधनभूतमधर्मद्रव्यं पथिकानां छायेव । अवगाहनक्रियावतां जीवपुद्गलादीनां तत्क्रियासाधनभूतमाकाशद्रव्यं तिष्ठतो वसतिरिव । ननु क्रियावतोरवगाहिजीवपुद्गलयोरेवावकाशदानं युक्तं धर्मादीनां तु निष्क्रियाणां नित्यसंबद्धानां तत् कथं ? इति तन्न उपचारेण तत्सिद्धेः । यथा गमनाभावेऽपि सर्वगतमाकाशमित्युच्यते सर्वत्र सद्भावात् तथा धर्मादीनां अवगाहनक्रियाया अभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदर्शनात् अवगाह इत्युपचर्यते ॥

अथ यदि अवकाशदान आकाशस्य स्वभावस्तदा वज्रादिभिर्लोष्टादीनां भित्त्यादिभिर्गवादीनां च व्याघातो माभूत्, दृश्यते च व्याघातः । तेन आकाशस्य अवगाहनदानं हीयते इति नाशंकनीयं, वज्रलोष्ठादीनां स्थूलत्वाद् व्याघातेऽपि अवगाहिनामेव व्याघातात् तस्य अवगाहनदानसामर्थ्यह्रासाभावात् । सूक्ष्मपुद्गलानां परस्परं प्रत्यवकाशदानकारणात् । यद्येवं तर्हि आकाशस्य तदसाधारणलक्षणं न इतरद्रव्याणामपि तत्सद्भावात् इति न मंतव्यं, सर्वपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वस्यैव आकाशस्यासाधारणलक्षणत्वात् । तर्हि अलोकाकाशे अवगाहनदानाभावात् अभावः स्यात् ? तदपि न, स्वभावपरित्यागाभावात् । तु-पुनः द्रव्याणां वर्तनाक्रियासाधनभूतं नियमेन कालद्रव्यं भवति ॥

स० चं०—क्षेत्रतें क्षेत्रांतर प्राप्त होनेकौं कारण सो गति कहिए। गतिका अभाव रूप स्थान कहिए। अवकाशविषैं रहनेकौं अवगाह कहिए। तहां जैसे मत्स्यानिके गमन करनेका साधनभूत जल द्रव्य है तैसैं गति क्रियावान जे जीव पुद्गल तिनकैं गतिक्रियाका साधनभूत धर्मद्रव्य है। बहुरि जैसैं पंथी जनानिकैं स्थान करनेका साधन भूत छाया है तैसैं स्थान क्रियावान जे जीव पुद्गल तिनके स्थान क्रियाका साधन भूत अधर्म द्रव्य है। बहुरि जैसैं वास करनेवालोंके साधनभूत वसतिका है तैसैं अवगाह क्रियावान जे जीव पुद्गलादिक तिनिकैं अवगाह क्रियाका साधन भूत आकाश द्रव्य है। इहां प्रश्न—जो अवगाह क्रियावान तौ जीव पुद्गल हैं तिनिकौं अवकाश देना युक्त कह्या है बहुरि धर्मादिक द्रव्य तौ निष्क्रिय हैं नित्य सम्बन्धकौं धरें हैं नवीन नाहीं आए जिनिकौं अवकाश देना संभवै ऐसैं इहां कैसैं कहिए सो कहौ ? ताका समाधान—जो उपचार करि कहिए है जैसैं गमनका अभाव होते संतैं भी सर्वत्र सद्भावकी अपेक्षा आकाशकौं सर्वगत कहिए है तैसैं धर्मादिक द्रव्यनिकैं अवगाह क्रियाका अभाव

होते संते भी लोक विषैं सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा अवगाहका उपचार कीजिए है। बहुरि प्रश्न—जो अवकाश देना आकाशका स्वभाव है तौ वज्रादिककरि पाषाणादिकका अर भीति इत्यादिककरि गऊ इत्यादिकनिका रोकना कैसें हो है। सो रोकना तौ देखि रहे हैं तातैं आकाश तौ तहां भी था पाषाणादिककौं अवकाश न दीया तब आकाशका अवगाह देना स्वभाव न रह्या ? तहां उत्तर—जो आकाश तो अवगाह देइ परतु पूर्वैं तहां अवगाह करि तिष्ठे ते वज्रादिक स्थूल हैं तातैं परस्पर रोकै हैं। यामैं आकाशका अवगाह देनेका स्वभाव गया नाही जातैं तहां ही अनंत सूक्ष्म पुद्गल हैं ते परस्पर अवगाह देवैं हैं। बहुरि प्रश्न—जो ऐसैं हैं तो सूक्ष्म पुद्गलादिकनिकैं भी अवगाहहेतुत्व स्वभाव आया। आकाश हीका असाधारण लक्षण कैसैं कहिए है ? तहां उत्तर—जो सर्व पदार्थनिकौं साधारण अवगाहहेतुत्व इस आकाश हीका असाधारण लक्षण है और द्रव्य सर्व द्रव्यनिकौं अवगाह देनेकौं समर्थ नाहीं। बहुरि प्रश्न—जो अलोकाकाश तौ सर्व द्रव्यनिकौं अवगाह देता नाहीं तहां ऐसा लक्षण कैसे संभवै ? ताका समाधान—जो स्वभावका परित्याग होइ नाहीं। तहां कोई द्रव्य होता तौ अवगाह देता कोई द्रव्य तहां गमनादि न करै तौ अवगाह कौनकौं देवै तिसका तौ अवगाह देने का स्वभाव पाइए है बहुरि सर्व द्रव्यनिकौं वर्तना क्रियाका साधनभूत नियमकरि काल द्रव्य है ॥ ६०४ ॥

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण ॥ ६०६ ॥

अन्योन्योपकारेण च जीवा वर्तंते पुद्गलाः पुनः।
देहादिनिर्वर्तनकारणभूता हि नियमेन ॥ ६०६ ॥

जी० प्र०—अन्योन्यं उपकारिणो जीवा वर्तंते यथा स्वामी भृत्यं वित्तत्यागादिना, भृत्यस्तं हितप्रतिपादनाहितप्रतिषेधादिना, आचार्यः शिष्यं उभयलोकफलप्रदोपदेशक्रियानुष्ठानाभ्यां, शिष्यस्तं आनुकूल्यवृत्त्युपकाराधिकारैः, चशब्दात् अनुपकारानुभयाभ्यामपि वर्तंते। पुद्गलाः पुनः देहा-

दीनां कर्मनोकर्मवाङ्मनउच्छ्वासनिश्वासानां निर्वर्तनकारणभूताः खलु नियमेन भवंति । ननु कर्मापौद्गलिकं अनाकारत्वात्–आकारवतामौदारिका-दीनामेव तथात्वं युक्तमिति तन्न, कर्मापि पौद्गलिकमेव लगुडकंटकादिमूर्तद्रव्यसंबंधेन पच्यमानत्वात् । उदकादिमूर्तद्रव्यसंबंधेन व्रीह्यादिवत् । वाक् द्वेधा द्रव्यभावभेदात् । तत्र भाववाग् वीर्यांतरायमतिश्रुतावरणक्षयोपशमांगोपांगनामकर्मलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिका तदभावे तद्वृत्त्यभावात् । तत्सामर्थ्योपेतेन क्रियावतात्मना प्रेर्यमाणपुद्गलाः वाक्त्वेन परिणमंते इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकैव श्रोत्रेंद्रियविषयत्वात् । इतरेंद्रियविषयापि कुतो न स्यात् तद्ग्रहणायोग्यत्वात् घ्राणग्राह्ये गंधद्रव्ये रसनाद्यनुपलब्धिवत् । अमूर्ता वाग् इत्यप्ययुक्तं मूर्तैर्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदर्शनात् मूर्तत्वसिद्धेः । मनोऽपि तथा द्वेधा । तत्र भावमनः लब्ध्युपयोगलक्षणं पुद्गलालंबनात् पौद्गलिकं । द्रव्यमनोऽपि ज्ञानावरणवीर्यांतरायक्षयोपशमांगोपांगनामकर्मलाभप्रत्यय-गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुग्राहकपुद्गलानां तथात्वेन परिणमनात् पौद्गलिकं । कश्चिदाह–मनः द्रव्यांतरं रूपादिपरिणमनवि-रहितमणुमात्रं, पौद्गलिकं न । आचार्य आह-तेन आत्मनः संबंधः स्यात् न वा ? यदि न, तन्न आत्मनः उपकारेण भाव्यं तन्नोपकुर्वीत, इंद्रियस्य सा-चिव्यं सचिवत्वं न कुर्यात् । अथ स्यात्, तदा एकदेशसंबंधेन सोऽणुः इतरप्रदेशेषु नोपकुर्यात् । अथादृष्टवशेन तस्य लातचक्रवत्परिभ्रमणं तदप्यसंभाव्यं, अणुमात्रस्य तत्सामर्थ्याभावात्, अमूर्तस्य आत्मनो निष्क्रियस्य अदृष्टगुणः अन्यत्र क्रियारंभे समर्थो न । वायुद्रव्यं हि क्रियावत् स्पर्शवत् प्राप्तं वन-स्पतौ परिस्पंदहेतुः तद्विपरीतलक्षणोऽयमणुस्तादृक् क्रियाहेतुर्न स्यात् । वीर्यांतरायज्ञानावरणक्षयोपशमांगोपांगनामोदयापेक्षेणात्मनोदस्यमानकंठ्यवायुः उच्छ्वासलक्षणः स प्राणः । तेनैव वायुना आत्मनो बाह्यवायुरभ्यंतरीक्रियमाणो निश्वासलक्षणः अपानः । तौ च आत्मनोऽनुग्राहिणौ जीवितहेतुत्वात्, ते च मनःप्राणापाना मूर्तिमतः, मनसः प्रतिभयहेत्वशनिपातादिभिः प्राणापानयोश्च श्वादिपूतिगंधिप्रतिभयेन हस्ततलपुटादिभिरास्यसंवरणेन श्लेष्मणा प्रतिघातदर्शनात्, अमूर्तस्य मूर्तिमद्भिस्तदसंभवाच्च । तत एव प्राणापानादिव्यापारादात्मनोऽस्तित्वसिद्धिः प्रयोक्तुरभावे प्रतिमाचेष्टितस्येव आत्माभावे तदघटनात् । तथा सदसद्वेद्योदयांतरंगहेतौ सति बाह्यद्रव्यादिपरिपाकनिमित्तवशेन उत्पद्यमानप्रीतिपरितापरूपपरिणामौ सुखदुःखे । आयुरु-दयेन भवस्थितिं बिभ्रतः प्राणापानक्रियाविशेषाव्युच्छेदो जीवितं, तदुच्छेदो मरणं । तान्यपि पौद्गलिकानि मूर्तिमद्धेतुसन्निधाने सति तदुत्पत्तिसंभ-वात् । न केवलं जीवशरीरादीनामेव निर्वर्तनकारणभूताः पुद्गलाः पुद्गलादीनामपि कांस्यादीनां भस्मादिभिः जलादीनां कतकादिभिः अयःप्रभृतीनां जलादिभिश्च उपकारदर्शनात् एवमौदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मोदयात् आहारवर्गणायातानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च । तैजसना-मकर्मोदयात् तेजोवर्गणया तैजसशरीरं । कार्मणनामकर्मोदयात् कार्मणवर्गणया कार्मणशरीरं । स्वरनामकर्मोदयाद् भाषावर्गणया वचनं, नोइंद्रियाव-रणक्षयोपशमोपेतसंज्ञिनोंगोपांगनामकर्मोदयात् मनोवर्गणया द्रव्यमनश्च भवतीत्यर्थः ॥ ६०६ ॥ अमुमेवार्थं सूत्रद्वयेनाह—

स० च–बहुरि जीव द्रव्य हैं ते परस्पर उपकार करि प्रवर्तें हैं जैसें स्वामी तौ चाकरकौं धनादिक देवै है अर चाकर स्वामीका जैसें हित होइ अर अहितका निषेध होइ तैसें करै है सो ऐसें परस्पर उपकार है । बहुरि आचार्य तौ शिष्यकौं इहलोक परलोकविषैं फलकौं देनेहारा उपदेश क्रियाका आचरण करावना ऐसें उपकार करै है शिष्य

उन आचार्यनिकी अनुकूलवृत्तिकरि सेवा करै है ऐसैं परस्पर उपकार है ऐसैं ही अन्यत्र भी जानना। बहुरि चकारतैं जीव परस्पर अनुपकार जो बुरा करना तिसरूप भी प्रवर्तें हैं वा उपकार अनुपकार दोऊरूप नाहीं प्रवत हैं। बहुरि पुद्गल हैं सो देहादिक जे कर्म नोकर्म वचन मन स्वासोस्वास इनिके निपजावनेका नियमकरि कारणभूत है सो ए पुद्गलके उपकार हैं। इहां प्रश्न—जो जिनिका आकार देखिए ऐसे औदारिकादि शरीर तिनिकौं पुद्गल कहौ, कर्म तौ निराकार हैं पुद्गलीक नाही। तहां उत्तर—जैसैं गोधूमादिक अन्न जलादिक मूर्तीक द्रव्यके संबंधतैं पचैं हैं ते गोधूमादिक पुद्गलीक हैं तैसैं कर्म नील गुड कंटकादिक मूर्तीक द्रव्यके सबंधतैं उदय अवस्थारूप होइ पचैं हैं तातैं पुद्गलीक ही हैं।

वचन दोय प्रकार है—एक द्रव्यबचन १ एक भावबचन २ तहां भाववचनतौ वीर्यांतराय मति श्रुत आवरण का क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नामकर्मका उदयके निमित्ततैं हो है तातैं पुद्गलीक है पुद्गलके निमित्त विना भाववचन होता नाहीं बहुरि भाव वचनकी सामर्थ्यकौं धरै ऐसा क्रियावान जो आत्मा ताकरि प्रेरित हुवा पुद्गल बचनरूप परिणवै है सो द्रव्यबचन कहिए सो भी पुद्गलीक ही है जातैं सो द्रव्यवचन कर्ण इंद्रियका विषय है जो इंद्रियनिका विषय है सो पुद्गल हो है। इहां प्रश्न—जो कर्णविना अन्य इंद्रियनिका विषय क्यों न होइ ? तहां उत्तर—जो जैसैं गंध नासिका ही का विषय है सो रसनादिक करि ग्रह्या न जाइ तैसैं शब्द कर्णहींका विषय है अन्य इंद्रियनिकरि योग्य नाहीं। इहां तर्क—जो वचन अमूर्तीक है तहां कहिए है ऐसा कहना भी अयुक्त है जातैं वचन मूर्तीककरि ग्रह्या जाइ है वा मूर्तीक द्रव्यकरि रुकै है वा नष्ट हो है तातैं मूर्तीक ही है। बहुरि द्रव्य भावके भेदतैं मन भी दोय प्रकार है तहां भावमन तौ लब्धि उपयोग रूप है सो क्षयोपशमादिक पुद्गलीक निमित्ततैं होहै तातैं पुद्गलीक ही है बहुरि ज्ञानावरण वीर्यांतरायका क्षयोपशम अर अंगोपांग नामा नाम कर्मका उदय इनिके निमित्ततैं गुण दोषका विचार स्मरण इत्यादिकरूप सन्मुख भया जो आत्मा ताकौं उपकारी जे पुद्गल सो मनरूप होइ परिणवैं हैं तातैं द्रव्यमन भी पुद्गलीक है। इहां कोऊ कहै कि मन तौ एक जुदा ही द्रव्य है रूपादिकरूप न परि-

णवै है अणूमात्र है तहां आचार्य कहैं हैं—तींहि मनस्यौं आत्माका संवंध है कि नाहीं है ? जो संवंध नाहीं है तो आत्माकौं उपकारी न होइ, इंद्रियनिविषैं प्रधानताकौं न धरै और जो संवंध है तो वह तो अणुमात्र है सो एकदेश-विषै उपकार करेगा अन्य प्रदेशनिविषैं कैसें उपकार करै है। तहां तार्किक कहैं है—कि अमूर्तीक निष्क्रिय आत्मा-का एक अदृष्टनामा गुण है सो अदृष्ट जो कर्म ताका वशकरि तिस मनका कुँभारका चक्रवत् परिभ्रमण करै है सो ऐसा कहना भी अयुक्त है अणूमात्र जो होइ ताकैं भ्रमणकी समर्थता नाहीं। बहुरि अमूर्तीक निष्क्रियका अदृष्ट गुण कह्या सो औरनिकैं क्रियाका आरंभ करावनेकौं समर्थ न होइ जैसैं पवन आप क्रियावान है सो स्पर्शकरि वनस्पतीकौं चंचल करै है सो यह तौ अणूमात्र निष्क्रियका गुण सो आप क्रियावान नाहीं अन्यकौं कैसे क्रिया-वान प्रवर्तावै है ? तातैं मन पुद्गलीक ही है। बहुरि वीर्यांतराय अर ज्ञानावरणका क्षयोपशम अर अंगोपांगनामा नामकर्मके उदय तींहिकरि संयुक्त जो आत्मा ताकै निकसतौ जो कंठसंबंधी उस्वासरूप पवन सो प्राण कहिए बहुरि तीहिं पवनकरि बाह्य पवनकौं अभ्यंतर करता निस्वासरूप पवन सो अपान कहिए। ते प्राण अपान जीवि-तव्यकौं कारण हैं तातैं उपकारी हैं सो मन अर प्राणापान ए मूर्तीक हैं जातैं भयके कारण वज्रपातादिक मूर्तीक तिनितैं मनका रुकना देखिए है बहुरि भयके कारण दुर्गंधादिक तींहिकरि वा हस्तादिकतैं मुखके आच्छादन करि वा श्लेष्मादिककरि प्राण अपानका रुकना देखिये है तातैं दोऊ मूर्तीक ही हैं। अमूर्तीक होइ तौ मूर्तीककरि रुकना न संभवै है बहुरि ताहीतैं आत्माका अस्तित्वकी सिद्धि हो है जैसैं कोई काष्ठादिक करि निपज्या प्रतिबिंब सो चेष्टा करै तौ तहां जानिए यामैं तौ स्वयं शक्ति नाहीं चेष्टा करानेवाला कोई पुरुष है तैसैं अचेतन जड शरीरविषैं जो प्राणा-पानादिक चेष्टा हो है तिस चेष्टाका प्रेरक कोई आत्मद्रव्य अवश्य हैं ऐसैं आत्माका अस्तित्वकी सिद्धि हो है बहुरि सुख दुःख जीवित मरण एभी पुद्गल द्रव्य हीं के उपकार हैं तहां साता असाता वेदनीयका उदय तौ अंतरंग कारण अर बाह्य इष्ट अनिष्ट वस्तुका संयोग इनिके निमित्ततैं जो प्रीतिरूप वा आतापरूप होना सो सुख दुःख है। बहुरि आयुकर्मके उदयतैं पर्यायकी स्थितिकौं धारता जीवकैं प्राणापान क्रिया विशेषका नाश न होना सो

जीवित कहिए। प्राणापान क्रियाविशेषका उच्छेद होना सो मरण कहिए सो सुख दुःख जीवित मरण मूर्तीक द्रव्यका निमित्त निकट होत संतैं ही हो है तातैं पुद्गलीक ही है। बहुरि पुद्गल है सो केवल जीवहीकौं उपकारी नाहीं पुद्गलकौं भी पुद्गल उपकारी है जैसैं कांसी इत्यादिककौं भस्मी इत्यादिक अर जलादिकौं कतक फलादिक अर लोहादिककौं जलादिक उपकारी देखिए है ऐसैं और भी जानिए है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक नामा नामकर्मके उदयतैं आहार वर्गणाकरि निपजे तीन शरीर हैं अर सासोस्वास है बहुरि तैजस नामा नाम कर्मके उदयतैं तैजस वर्गणातैं निपज्या तैजस शरीर है। बहुरि कार्माण नामा नामकर्मके उदयतैं कार्माण वर्गणाकरि निपज्या कार्माण शरीर है। बहुरि स्वर नामा नामकर्मके उदयतैं भाषावर्गणातैं निपज्या वचन है। बहुरि नोइंद्रियावरणका क्षयोपशम करि संयुक्त सैनी जीवकैं अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं मन वर्गणातै निपज्या द्रव्य मन है ऐसैं ए पुद्गलके उपकार हैं ॥६०५॥ इसही अर्थकौं दोय सूत्रनिकरि कहैं हैं—

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासोवि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ॥ ६०७॥

आहारवर्गणातः त्रीणि शरीराणि भवन्ति उच्छ्वासः।
निश्वासोपि च तेजोवर्गणास्कन्धात्तेजोऽङ्गम् ॥ ६०७ ॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकाहारकनामानि त्रीणि शरीराणि उच्छ्वासनिश्वासौ च आहारवर्गणया भवंति। तेजोवर्गणास्कंधैः तेजःशरीरं भवति ॥ ६०७ ॥

स० चं०—तेईस जातिकी वर्गणानिविषैं आहारक वर्गणातैं औदारिक वैक्रियिक आहारक तीन शरीर हो हैं अर उस्वास निश्वास हो है। बहुरि तैजस वर्गणाका स्कंधनिकरि तैजस शरीर हो है॥ ६०७ ॥

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।

अट्ठविहकम्मदव्व होदित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ६०८ ॥

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषा मनश्च कार्मणतः ।
अष्टविधद्रव्यं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥ ६०८ ॥

जी० प्र०—भाषावर्गणास्कंधैश्चतुर्विधभाषा भवंति । मनोवर्गणास्कंधैः द्रव्यमनः, कार्मणवर्गणास्कंधैरष्टविधं कर्मेति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६०८ ॥

स० चं०—भाषावर्गणाका स्कंधनिकरि च्यारि प्रकार भाषा हो है। मनोवर्गणाका स्कंधनिकरि द्रव्य मन हो है। कार्माण वर्गणाका स्कंधनिकरि आठ प्रकार कर्म हो है ऐसैं जिनदेवने कह्या है ॥ ६०८ ॥

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा ॥ ६०९ ॥

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं बन्धस्य च कारणं तु एकादयः ।
सख्येयासंख्येयानन्ताविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ॥ ६०९ ॥

जी० प्र०—बाह्याभ्यंतरकारणवशात् स्नेहपर्यायाविर्भावेन स्निह्यतेस्मेति स्निग्धः, तस्य भावः स्निग्धत्वं चिक्कणत्वमित्यर्थः। रूक्षणात् रूक्षः, तस्य भावो रूक्षत्वं चिक्कणत्वाद्विपरीततेत्यर्थः। स्निग्धत्वं तोयाजागोमहिष्युष्ट्रिकाक्षीरघृतादिषु, रूक्षत्वं च पांशुकणिकाशर्करादिषु प्रकर्षाप्रकर्षभावेन दृश्यते तथा परमाणुष्वपि। ते स्निग्धत्वरूक्षत्वे द्व्यणुकादिपर्यायपरिणमनरूपबंधस्य चशब्दाद्विश्लेषस्य च कारणे भवतः। स्निग्धगुणपरिणतपरमाणोः रूक्षगुणपरिणतपरमाणोः स्निग्धरूक्षगुणपरिणतपरमाण्वोश्च परस्परश्लेपलक्षणे बंधे सति द्व्यणुकस्कंधो भवतीत्यर्थः। एवं संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशस्कंधोऽपि योज्यः। तत्र स्नेहगुणः एकद्वित्रिचतुःसंख्येयासंख्येयानंतविकल्पो भवति तथा रूक्षगुणोऽपि ॥ ६०९ ॥

स० चं०—बाह्य अभ्यंतर कारणके वशतैं जो स्निग्ध पर्यायका प्रगटपनाकरि चिकणास्वरूप होइ सो स्निग्ध है ताका भाव सो स्निग्धत्व कहिये। बहुरि रूखारूप होइ सो रूक्ष है ताका भाव सो रूक्षत्व कहिए। सो जल वा छेलीका दूध वा गायका दूध वा भैंसिका दूध वा ऊटणीका दूध घृत इनिविषैं स्निग्धगुणकी अधिकता वा हीनता

देखिए है अर धूलि वालू रेत वा तुच्छ पाषाणदिक इनिविषैं रूक्षगुणकी अधिकता वा हीनता देखिये है तैसैं ही परमाणू विषैं भी स्निग्ध रूक्षगुणकी अधिकता हीनता पाइए है। ते स्निग्ध रूक्ष गुण द्व्यणुकादि स्कंधपर्यायका परिणमनका कारण हो हैं बहुरि चकारतैं स्कंधतैं विछुरनेके भी कारण हो हैं । स्निग्धरूप दोय परमाणूनिका वा रूक्षरूप दोय परमाणूका एक रुक्ष वा एक स्निग्ध परमाणूका परस्पर जुडनेरूप बंध होतैं द्व्यणुक स्कंध हो है ऐसैं संख्यात असंख्यात अनते परिमाणूनिका स्कंध भी जानना । तहां स्निग्ध गुण वा रूक्षगुण अंशनिकी अपेक्षा संख्यात असंख्यात अनंत भेदकौं लीए है ॥ ६०९ ॥

एयगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं बिगुणतिगुणसंखेज्जाऽ।
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ॥ ६१० ॥

एकगुणं तु जघन्यं स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयाऽ- ।
संख्येयानन्तगुणं भवति तथा रूक्षभावं च ॥ ६१० ॥

जी० प्र०—स्निग्धगुणावल्यां तु पुनः एकगुणं स्निग्धत्वं जघन्यं स्यात् । तदादिं कृत्वा द्विगुणत्रिगुणसंख्येयासंख्येयानंतगुणं भवति तथा रूक्षत्वमपि ॥ ६१० ॥

स० चं०—स्निग्ध गुण जो एक गुण है सो जघन्य है जाके एक अंश होइ ताकौं एक गुण कहिए ताकौं आदि देकरि द्विगुण त्रिगुण संख्यातगुण असंख्यातगुण अनंतगुणरूप स्निग्ध गुण जानना। तैसैं ही रूक्षगुण भी जानना । केवलज्ञानगम्य सबतैं थोरा जो स्निग्धत्व वा रूक्षत्व ताकौं एक अंश कलिप तिस अपेक्षा स्निग्धरूक्ष गुणके अंशनिका इहां प्रमाण जानना ॥ ६१० ॥

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया ।

जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ॥ ६११ ॥

एवं गुणसंयुक्ताः परमाणव आदिवर्गणायां स्थिताः ।
योग्यद्विकयोः, बन्धे द्वयोर्बन्धो भवेन्नियमात् ॥ ६११ ॥

जी० प्र०—एवं स्निग्धरूक्षगुणसंयुक्ताः परमाणवः अणुवर्गणायां तिष्ठति योग्यद्विकानां बंधस्थाने तयोरेव द्वयोर्बंधो नियमेन भवति ॥ ६११ ॥ स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तं बंधस्याविशेषेण प्रसक्तावनिष्टगुणनिवृत्तिपूर्वकं विधिं करोति—

स० चं०—ऐसैं स्निग्ध रूक्षगुणकरि संयुक्त परमाणू ते प्रथम अणु वर्गणाविषैं तिष्ठैं हैं सो यथायोग्य दोय-का बंध स्थानविषैं तिनही दोय परमाणूनिका बंध हो है नियमकरि ॥ ६१ ॥ स्निग्ध रूक्ष गुणके निमित्ततैं सर्वत्र बंध हो है किछू विशेष नाहीं ऐसैं कोऊ जानैगा तातैं जहां बंध होने योग्य नाहीं ऐसा निषेध पूर्वक जहां बंध होने योग्य है तिन विधिकौं कहै हैं।

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति रुक्खरुक्खा य पोग्गला ।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥ १२ ॥

स्निग्धास्निग्धा न बध्यन्ते रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः ।
स्निग्धरूक्षाश्च बध्यन्ते रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः । ६१२ ॥

जी० प्र०—स्निग्धगुणपुद्गलैः स्निग्धगुणपुद्गलाः न बध्यंते । तथा रूक्षगुणपुद्गलैः रूक्षगुणपुद्गला न बध्यंते, अयमुत्सर्गविधिः । विशेषविधेर्वक्ष्यमाणत्वात् । स्निग्धगुणपुद्गलैः रूक्षगुणपुद्गलाः बध्यंते ते च पुद्गलाः रूपीत्यरूपीतिनामानो भवति ॥ ६१२ ॥ तानेव लक्षयति—

स० चं०—स्निग्ध गुणयुक्त पुद्गलनिकरि स्निग्ध गुणयुक्त पुद्गल बंधैं नाहीं। बहुरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गलनिकरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गल बंधै नाहीं सो यहु कथन सामान्य है। बंध भी हो है। सो विशेष आगैं कहैंगे। बहुरि स्निग्धगुणयुक्त पुद्गलनिकरि रूक्षगुणयुक्त पुद्गल बंधै हैं बहुरि तिनि पुद्गलनिकी दोय संज्ञा है एक रूपी एक अरूपी ॥ ६१२ ॥ तिनि संज्ञानिकौं कहैं हैं—

णिद्धिदरोलीमज्झे विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं ।
रूवित्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवित्ति ॥ १३ ॥

स्निग्धेतरावलीमध्ये विसदृशजातेः समगुण एकः ।
रूपीति भवति संज्ञा शेषाणां ते अरूपिण इति ॥ ६१३ ॥

जी० प्र०—स्निग्धरूक्षगुणावल्योर्मध्ये विसदृशजातेः समानगुणः एकः रूपीतिसंज्ञो भवति । शेषाः सर्वे अरूपीतिसंज्ञा भवंति ॥ ६१३ ॥

तदेवोदाहरति—

स० चं०—स्निग्ध रूक्षगुणनिकी पंकति तिनकै विषैं विसदृश जाति कहिए । स्निग्धकैं अर रूक्षकैं परस्पर विसदृश जाति है ताकैं जो कोई एक समान गुण होइ ताकौं रूपी ऐसी संज्ञाकरि कहिए है अर समान गुण बिना अवशेष रहे तिनिकौं अरूपी ऐसी संज्ञाकरि कहिए है ॥ ६१३ ॥ ताहीकौं उदाहरण करि कहैं हैं—

दोगुणणिद्धाणुस्स य दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी ।
इगितिगुणादि अरूवी रुक्खस्स वि तंव इदि जाणे ॥६१४॥

द्विगुणस्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुको भवेत् रूपी ।
एकत्रिगुणादिः अरूपी रूक्षस्यापि तद् व इति जानीहि ॥ ६१४ ॥

जी० प्र०—द्वितीयो गुणो द्वौ गुणौ वा यस्य यस्मिन् वा द्विगुणः तस्य द्विगुणस्य स्निग्धाणोः द्विगुणरूक्षाणुः रूपीतिनामा भवेत्। शेषैकत्रिगुणादयः सर्वे रूक्षाणवः अरूपीतिनामानो भवंति। एवं द्विगुणरूक्षाणोर्द्विगुणस्निग्धाणुः रूपी शेषैकत्रिगुणादिसर्वस्निग्धाणवः अरूपीतिनामानः इति जानीहि ॥ ६१४ ॥

स० चं०—दूसरा है गुण जाकैं वा दोय हैं गुण जाकैं ऐसा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणू ताकैं द्विगुणरूक्ष पर-

माणू रूपी कहिए अवशेष एक तीन च्यारि इत्यादि गुणधारक परमाणू अरूपी कहिए ऐसैं ही द्विगुणरूक्षाणुकै द्विगुण स्निग्ध रूपी कहिए अवशेष एक तीन इत्यादिक गुणधारक परमाणू अरूपी कहिए ॥ ६१४ ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥६१५॥

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बन्धो जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ॥ ६१५ ॥

जी० प्र०—स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकस्निग्धाणुना बंधो भवति तथा रूक्षाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बंधो भवति । स्निग्धाणोः द्विगुणाधिकरूक्षाणुना बंधो भवति । तत्र स्निग्धरूक्षगुणपरमाणुषु जघन्यं एकगुणपरमाणुं वर्जयित्वा शेषाणां समस्निग्धरूक्षधारयोर्विषमस्निग्धरूक्षधारयोश्च स्वस्वतदनंतरोपरितनद्व्यधिकस्निग्धरूक्षाणूनां बंधो भवति । अत्र सदृशगुणरूपिणा रूपिणः, समगुणानां विषमगुणैश्च बंधो नेति विशेषो ज्ञातव्यः, तेषु द्व्यधिकगुणत्वाभावात् ॥ ६१५ ॥

स० च०—स्निग्ध अणूका आपतैं दोय गुण अधिक स्निग्ध अणू सहित बंध होइ । बहुरि रूक्ष अणूका आपतैं दोय गुण अधिक रूक्ष अणूसहित बंध होइ । बहुरि स्निग्ध अणूका आपतैं दोय गुण अधिक रूक्ष अणूसहित बंध होइ । तहां एक गुण सहित जघन्य स्निग्ध अणू वा रूक्ष अणू ताकैं तीन गुण युक्त परमाणू सहित बंध नाहीं । यद्यपि दोय अंश अधिक है तथापि एक अंशयुक्त परमाणू बधने योग्य नाहीं तातैं बंध नाहीं हो है । स्निग्ध वा रूक्ष परमाणूनिका समधाराविषैं वा विषमधाराविषैं दोय अधिक अंश होतैं बंध होहै तहां दोय च्यारि छह आठ इत्यादिक दोय दोय बंधता अंश जहां होइ तहां समधाराविषै कहिये । बहुरि तीन पांच सात नव इत्यादिक दोय दोय बंधता अंश जहां होई तहां विषमधाराविषै कहिए । सो समधाराविषै दोय अंश परमाणू अर च्यारि अंश परमाणूका बंध होइ । च्यारि अंश परमाणू अर छह अंश परमाणूका बंध होइ इत्यादिक दोय अंश अधिक

होतें बंध होहै। बहुरि विषमधाराविषैं तीन अंश परमाणूका पंच अंश परमाणू सहित बंध होइ पंच अंश परमाणूका सप्त अंश परमाणू सहित बंध होहै। ऐसैं दोय अंश अधिक होतें बंध होहै। बंध होनेका अर्थ यहु जो एकस्कंधरूप होहै। बहुरि समान गुण धरैं ऐसे जे रूपी परमाणू तिनिकैं परस्पर बंध नाहीं है जैसैं दोय अंश एककै भी होइ, दोय अंश दूसरेकै भी होइ तौ बंध न होइ। बहुरि समगुण धारक परमाणू अर विषम गुणधारक परमाणू बंधै नाहीं जैसैं दोय अंशयुक्त परमाणूका पंच अंशयुक्त परमाणू सहित बंध न होइ जातैं इहां दोय अधिक अंशका अभाव है ॥ ६१५॥

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति।
उभयेवि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ॥६१६॥

स्निग्धेतरयोः समविषमा द्वित्र्यादयः द्व्युत्तरा भवन्ति।
उभयेपि च समविषमा सदृशेतरे भवन्ति प्रत्येकम् ॥ ६१६।

जी॰ प्र॰—स्निग्धरूक्षगुणानां समपंक्तिद्व्यांकाः विषमपंक्तिद्व्यांकाश्च प्रत्येकं द्वित्र्यादिद्व्युत्तरा भवंति। ते उभयेऽपि अंकाः समविषमाः रूप्यरूपिणः सदृशांकाः असदृशांका भवंति। यथा स्निग्धरूक्षसमांकपंक्त्योः द्व्यस्य द्व्यं चतुष्कस्य चतुष्कं षट्कस्य षट्कं अष्टकस्य अष्टकं दशकस्य दशकं द्वादशकस्य द्वादशकं एवमादिसंख्यातासंख्यातानंतगुणायुताः, तद्विषमांकपंक्त्योः त्र्यस्य त्र्यं पंचकस्य पंचकं सप्तकस्य सप्तकं नवकस्य नवकं एकादशकस्य एकादशकं त्रयोदशकस्य त्रयोदशकं एवमादिसंख्यातासंख्यातानंतगुणायुताश्च परस्परं रूपिणः। शेषाः द्विचतुःषडष्टदशद्वादशादिसंख्यातासंख्यातानंताः। त्रिपंचसप्तनवैकादशत्रयोदशादिसंख्यातासंख्यातानंताश्चारूपिणः। प्रत्येकं स्निग्धे रूक्षे च रूपिणां बंधो नास्ति तत्त्वार्थेऽपि 'गुणसाम्ये सदृशानां' इति तथैव वचनात्। अरूपिणां बंधः स्यात् स्वस्थाने परस्थानेऽपि ॥ ६१६ ॥ अमुमेवार्थं प्रकारांतरेणाह—

स॰ चं॰—स्निग्ध रूक्षविषैं दोय आदि दोय बंधता तौ समपंक्तिविषैं गुण जानना। दोय च्यारि छह आठ इत्यादिक जानने। अर विषमपंक्तिविषैं तीन आदि दोय दोय बंधता जानना तीन पांच सात नव इत्यादिक जानना। ते सम अर विषम रूपी भी हो है अर अरूपी भी हो है। जहां दोनोंके समान गुण होई सो रूपी जहां समान

गुण न होंइ सो अरूपी कहिए। जैसें स्निग्ध रूक्षकी समपंक्तिविषैं दोय गुणके दोय गुण रूपी हैं, च्यारि गुणके च्यारि गुण रूपी है छह गुणके छह गुण रूपी है इत्यादि संख्यात असंख्यात अनंतगुण पर्यंत जानने। बहुरि दोय गुणके दोय गुण विना अर एक तीन च्यारि पांच इत्यादिक अरूपी हैं। भावार्थ—एक परमाणू दोय गुण धारक है अर दूसरा परमाणू भी दोय गुण धारक है तौ तहां तिनकौं परस्पर रूपी कहिए और हीनाधिक गुण धारक परमाणूकौं अरूपी ऐसी संज्ञा कहिए ऐसें ही च्यारि छह इत्यादिकविषैं जानना। बहुरि विषम पंक्तिविषैं तीन गुणकैं तीन गुण पंच गुणकैं पंच गुण इत्यादिक संख्यात असंख्यात अनंत पर्यंत समान गुणधारक परमाणू परस्पर रूपी हैं अवशेष हीनाधिक गुण धारक हैं ते परस्पर अरूपी हैं ऐसी संज्ञा करि कहिए है। सो सम अर विषम दोऊ पंक्तिनिविषैं ही समान गुण धारक रूपी परमाणू तिनकैं परस्पर बंध न हो है। तत्त्वार्थसूत्रविषैं भी कह्या है—'गुणसाम्ये सदृशानां' याका अर्थ यहु ही—गुणनिकी समानता होतैं सदृश परमाणूनिकैं परस्पर बंध न हो है बहुरि अरूपी परमाणुनिकै यथोचित स्वस्थान वा परस्थानविषैं बंध हो है। स्निग्ध अर स्निग्धका बहुरि रूक्ष अर रूक्षका बंध सो स्वस्थान बंध कहिए। स्निग्ध अर रूक्षका बंध होइ सो परस्थानबंध कहिए॥ ६१६ ॥ आगैं इसही अर्थकौं और प्रकार करि कहैं हैं—

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसणंतरदुगाण बंधो दु।
णिद्धे लुक्खे वि तहावि जहण्णुभयेवि सव्वत्थ ॥ ६१७ ॥

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनन्तरद्विकयोः बन्धस्तु।
स्निग्धे रूक्षेपि तथापि जघन्योभयेपि सर्वत्र ॥ ६१७ ॥

जी० प्र०—स्निधे रूक्षेऽपि द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरक्रमेण गच्छंति तेषु उपरितनानंतरद्विकानां स्निग्धचतुष्कस्य रूक्षचतुष्कस्य च स्निग्धद्वये रूक्षद्वये

च बंधः स्यात् । स्निग्धपंचकस्य रूक्षपंचकस्य च स्निग्धत्रये रूक्षत्रये च बंधः स्यात् । एवं जघन्यगुणाणुतेऽपि बंधप्रसक्तौ जघन्यवर्जिते उभयत्र स्निग्धरूक्षद्वये सर्वत्र बंधो ज्ञातव्य इत्यर्थः ॥ ६१७ ॥

स० चं०—स्निग्धविषैं वा रूक्षविषैं समपंक्तिविषैं दोय आदि दोय दोय बंधना अर विषम पंक्तिविषैं तीन आदि दोय दोय बंधता अंश क्रमकरि पाइए है तहां अनंतर द्विकनिका बंध होइ । कैसैं ? स्निग्ध का च्यारि अंश वा रूक्षका च्यारि अंश सहित पुद्गलकैं दोय अंश सहित रूक्ष पुद्गल सहित बंध होइ वा पंच अंश स्निग्धका वा रूक्षका सहित पुद्गलकैं स्निग्ध तीन अंशयुक्त पुद्गल सहित बंध होइ। ऐसैं दोय अधिक भएं बंध जानना। परंतु एक अंशरूप जघन्य गुण युक्तविषैं बंध न हो है। अन्यत्र स्निग्ध रूक्षविषैं सर्वत्र बंध जानना ॥ ६१७ ॥

णिद्धिदरवरगुणाणू सपरट्ठाणेवि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंगहेदुहि गुणंतरं संगदे एदि ॥ ६१८ ॥

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेऽपि नैति बंधार्थम् ।
बहिरंतरंगहेतुभिर्गुणांतरं संगते एति ॥ ६१८ ॥

जी० प्र०—स्निग्धजघन्यगुणाणुः रूक्षजघन्यगुणाणुश्च स्वस्थाने परस्थानेपि बंधाय योग्यो न, बाह्याभ्यंतरहेतुभिर्गुणांतरं प्राप्तस्तु योग्यः स्यात् तत्त्वार्थेऽपि 'न जघन्यगुणानां' इत्युक्तत्वात् ॥ ६१८ ॥

स० चं०—स्निग्ध वा रूक्ष तौ जघन्य एक गुण युक्त परमाणू होइ सो स्वस्थान वा परस्थान विषै बंधके अर्थि योग्य नाहीं है। बहुरि सो परमाणू जो बाह्य अभ्यंतर कारणतैं दोय आदि और अंशनिकौं प्राप्त होइ जाइ तो बंध योग्य होइ तत्त्वार्थ सूत्रविषैं भी कह्या है 'न जघन्यगुणानां' याका अर्थ यहु ही जो जघन्य गुण धारक पुद्गलनिकैं परस्पर बंध न हो है ॥ ६१८ ॥

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि ।

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥ ६१९ ॥

स्निग्धेतरगुणा अधिका हीनं परिणामयंति बंधे ।
संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशानां स्कंधानाम् ॥ ६१९ ॥

जी० प्र०—संख्यातासंख्यातानंतप्रदेशस्कंधानां मध्ये स्निग्धगुणस्कंधाः रूक्षगुणस्कंधाश्च द्विगुणाधिकाः ते बंधे हीनगुणस्कंधं परिणामयंति । तत्त्वार्थेऽपि "बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च" इत्युक्तत्वात् ॥ ६१९ ॥ इति फलाधिकारः । अथ पंचास्तिकायानाह—

स० चं०—संख्यात असंख्यात अनंत प्रदेशनिके जे स्कंध तिनिविषैं स्निग्ध गुण स्कंध वा रूक्ष गुण स्कंध जे दोय गुण अधिक होंइ ते बंधकौं होत संतैं हीन स्कंधकौं परिणमावैं हैं। जैसें दोय स्कंध हैं एक स्कंधविषैं स्निग्ध-का वा रूक्षका पचास अंश हैं अर एकमें बावन अंश हैं अर तिनि दोऊ स्कंधनिका एक स्कंध भया तौ तहां पचा-स अंश वालेकौं बावन अंश रूप परिणमावै है। ऐसैं सर्वत्र जानना। तत्त्वार्थ सूत्रविषैं भी कह्या है—'बंधेधिकौ पा-रिणामिकौ च' याका अर्थ यहु ही जो बंध होतैं अधिक अंश हैं सो हीन अंशनिकौं अपनेरूप परिणमावन हारे हैं ॥६१९॥ इति फलाधिकारः। ७। ऐसैं सात अधिकारनिकरि षट् द्रव्य कहे आगें पंचास्तिकायनिकों कहैं हैं—

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसण्णिदं होदि ।
काले पदेसपचयो जम्हा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ६२० ॥

द्रव्यं षट्कमकालं पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति ।
काले प्रदेशप्रचयो यस्मात् नास्तीति निर्दिष्टम् ॥ ६२० ॥

जी० प्र०—प्रागुक्तद्रव्यषट्कं अकालं कालद्रव्यरहितं पंचास्तिकायसंज्ञकं भवति, कुतः? कालद्रव्ये प्रदेशप्रचयो यतो नास्ति ततः कारणात् इति प्रदेशप्रचययुता अस्तिकाया इत्युक्तं परमागमे ॥ ६२० ॥ अथ नवपदार्थानाह—

स० चं०—पूर्वैं जे षट् द्रव्य कहे ते अकालं कहिए काल द्रव्य रहित पंचास्तिकाय नाम पावै हैं जातैं कालकैं

प्रदेशप्रचय नाहीं है। काल एक प्रदेश मात्र ही है अर पुद्गलवत् परस्पर मिलै नाहीं तातैं कालकैं कायपणां नाही है। जे प्रदेशनिका प्रचय जो समूह ताकरि युक्त हौंहि ते अस्तिकाय हैं ऐसा परमागमविषैं कह्या है॥ ६२० ॥
आगैं नव पदार्थनिकौं कहैं है—

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य हौंतित्ति ॥ ६२१ ॥

नव च पदार्था जीवाजीवाः तेषां च पुण्यपापद्विकम् ।
आस्रवसंवरनिर्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ॥ ६२१ ॥

जी० प्र०—जीवा अजीवाः तेषां पुण्यपापद्वयं आस्रवः संवरो निर्जरा बंधो मोक्षश्चेति नवपदार्था भवंति। पदार्थशब्दः सर्वत्र संबंधनीयः,-जीवपदार्थः अजीवपदार्थः। इत्यादिः॥ ६२१ ॥

स० चं०—जीव अर अजीव ए तौ दोय मूल पदार्थ अर तिनहीके पुण्य अर पाप दो ए पदार्थ हैं अर पुण्य पापहीका आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष ए पांच पदार्थ ऐसैं सर्व मिले हुए ए नव पदार्थ हैं। पदार्थ शब्द सर्वत्र लगावना। जीव पदार्थ अजीव पदार्थ इत्यादि जानना॥ ६२१ ॥

जीवदुगं उत्तट्ठं जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदावि य पावा तव्विवरीया हवंतित्ति ॥ ६२२ ॥

जीवद्विकमुक्तार्थं जीवाः पुण्या हि सम्यक्त्वगुणसहिताः ।
व्रतसहिता अपि च पापास्तद्विपरीता भवंतीति ॥ ६२२ ॥

जी० प्र०—जीवाजीवपदार्थौ द्वौ पूर्वं जीवसमासे षड्द्रव्याधिकारे चोक्तार्थौ। पुण्यजीवाः सम्यक्त्वगुणयुक्ता व्रतयुक्ताश्च स्युः। तद्विपरीतलक्षणाः पापजीवाः खलु-नियमेन॥ ६२२ ॥ चतुर्दशगुणस्थानेषु जीवसंख्यां मिथ्यादृष्टिसासादनौ च पापजीवाविति आह—

स० चं०—जीव पदार्थ अर अजीव पदार्थ तौ पूर्वै जीवसमास अधिकार विषैं वा इहां षट् द्रव्य अधिकार विषैं कहैं हैं बहुरि जे सम्यक्त्व गुणयुक्त होंइ अर व्रत युक्त होंइ ते पुण्य जीव कहिए। बहुरि इनिस्यों विपरीत स-म्यक्त्व व्रत रहित जीव ते पाप जीव जानने नियमकरि ॥ ६२२॥ तहां गुणस्थाननिविषैं जीवनिकी संख्या कहिए है तिनिविषैं मिथ्या दृष्टी अर सासादन ए तौ पाप जीव हैं ऐसा कहैं हैं—

मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंता य सासणगुणावि।
मल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ॥६२३॥

मिथ्यादृष्टयः पापा अनतानंताश्च सासनगुणा अपि।
पल्यासख्येया अनन्यतरोदयमिथ्यात्वगुणाः ॥ ६२३ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टयः पापाः—पापजीवाः ते चानंतानंता एव इतरगुणस्थानजीवसंख्योनसंसारिमात्रत्वात् १३— सासादनगुणा अपि पापाः अनंतानुबंध्यन्यतमोदयेन प्राप्तमिथ्यात्वगुणत्वात् पल्यासंख्यातैकभागमात्रा भवंति प ॥ ६२३ ॥
a a ४

स० चं०—मिथ्या दृष्टी पापी जीव हैं ते अनंतानंत हैं जातैं संसारी राशिमैं अन्य गुण स्थानवालोंका प्रमाण घटाए मिथ्या दृष्टी जीवनिका प्रमाण हो है। बहुरि सासादन गुणस्थान वाले भी पाप जीव है जाते अनंनानु बंधी की चौकड़ी विषैं किसी एक प्रकृतिका उदयकरि मिथ्यात्व सदृश गुणकौं प्राप्त हो है ते सासादन वाले जीव पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं ॥ ६२३ ॥

मिच्छा सावयसासणमिस्सा विरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ॥६२४॥

मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारानंताश्च ।
पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ॥ ६२४ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टयः किंचिदूनसंसारित्व दनंतानंताः १३– । देशसंयताः त्रयोदशकोटिमनुष्याधिकतिर्यंचः पल्यासंख्यातैकभागमात्राः– प धन १३ को । तेभ्यः द्विपंचाशत्कोटिमनुष्याधिकेतरत्रिगतिसासादनाः असंख्यातगुणाः प धन ५२ को । तेभ्यः चतुरुत्तरशतकोटिमनुष्याधिकत्रि-
a a ४ a　　a a a
गतिमिश्राः संख्यातगुणाः प धन १०४ को । तेभ्यः सप्तशतकोटिमनुष्याधिकत्रिगत्यसंयता असंख्यातगुणा प धन ७०० को ॥ ६२४ ॥
a a　　a

मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण है तातै अनंतानंत हैं । बहुरि देशसंयत गुणस्थानवाले जीव तेरह कोडि मनुष्यनिकरि अधिक तिर्यंच पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं इहां अन्य गुण स्थान कथनकी अपेक्षा पल्यकौं तीनवार असंख्यात अर एकवार संख्यातका भाग जानना । बहुरि सासादन गुणस्थानवर्ती जीव बावन कोडि मनुष्यनिकरि अधिक इतर तीन गतिके जीव देशसंयमी तिर्यंचनिस्यों असंख्यात गुणे जानने । इहां पल्यकौं दोयवार असंख्यात अर एकवार संख्यातका भाग जानना । बहुरि मिश्र गुणस्थानवर्ती एकसो च्यारि कोडि मनुष्यनिकरि सहित इतर तीन गतिके जीव सासादन वालौंतैं संख्यातगुणे जानने । इहां पल्यकौं दोयवार असंख्यातका भाग जानना । बहुरि अविरत गुणस्थानवर्ती जीव सातसै कोडि मनुष्यनिकरि सहित इतर तीन गतिके जीव मिश्रवालोंतैं असंख्यात गुणे जानने । इहां पल्यकौं एकवार असंख्यातका भाग जानना ॥ ६२४ ॥

तिरधियसयणवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त वे कोडी ।
पंचेव य तेणउदी णवट्ठबिसयच्छउत्तरं पमदे ॥६२५॥

त्र्यधिकशतनवनवतिः षण्णवतिः अप्रमत्ते द्वे कोटी ।
पंचैव च त्रिनवतिः नवाष्टद्विशतषडुत्तरं प्रमत्ते ॥ ६२५ ॥

जी० प्र०—प्रमत्ते पंचकोट्यः त्रिनवतिलक्षाण्यष्टानवतिसहस्राणि द्विशतं षट् च भवंति। ५, ९ ३, ९ ८, २०६। अप्रमत्ते द्विकोटिषण्णवतिलक्षनवनवतिसहस्रैकशतत्रयो भवंति। २, ९६, ९९, १०३ ॥ ६२५ ॥

स० च०—प्रमत्तगुणस्थानविषैं जीव पांच कोडि तिराणवै लाख अठ्याणवै हजार दोयसै छह ५९३९८२०६ हैं। बहुरि अप्रमत्त गुणस्थानविषैं जीव तीन अधिक एक सो अर निन्याणवै हजार अर छिनवै लाख अर दोय कोडी २९६९९१०३ इतने हैं। गाथाविषैं पहिलैं अप्रमत्तकी संख्या कहि प्रमत्तकी संख्या छंद मिलनेके अर्थि कही है॥ ६२५॥

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ॥६२६॥

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तरमस्तपंचकं केचित्।
उपशामकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणम् ॥ ६२६ ॥

जी० प्र०—केचिदुपशमकप्रमाणं त्रिशतं भणंति। केचिच्च चतुरुत्तरत्रिशतं भणंति। केचित् पुनः पंचोनचतुरुत्तरत्रिशतं भणंति। एकोनत्रिशतमित्यर्थः। क्षपकप्रमाणं ततो द्विगुणं जानीहि ॥ ६२६ ॥ अत्र प्रवाहयोपदेशसंख्यां निरंतराष्टसमयेषु विभजति—

स० चं—आठवै नवै दशवै ग्यारव्है गुणस्थान उपशम श्रेणावाले जीवनिका प्रमाण केई आचार्य तीनसै कहैं है। केई तीनसै च्यारि कहैं है। केई पांच घाटि अर च्यारि अधिक तीनसै कहैं है ताके एक घाटि तीनसै भए। बहुरि आठवे नवे दशवे बारव्है गुणस्थानी क्षपक जीवनिका प्रमाण उपशमकवालौंतैं दूणा हे शिष्य? तू जानि। ॥६२६॥ इहां तीनसै च्यारि उपशम श्रेणीवाले जीवनिकी संख्याका निरंतर आठ समयनिविषैं विभाग करैं हैं॥

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं।
अडदालं चउवण्णं चउवण्णं होंति उवसमगे॥ ६२७ ॥

षोडशकं चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत् तथा च द्वाचत्वारिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत् चतुःपचाशत् चतुःपचाशत् भवंति उपशमके ॥ ६२७ ॥

जी० प्र०—उपशमके षोडश चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत् द्वाचत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत् चतुःपंचाशत् चतुः पंचाशत् निरंतराष्टसमयेषु भवंति । १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५४ ॥ ६२७ ॥

स० चं—वीचिमें अंतराल न पडै अर उपशम श्रेणीकौं जीव माडै तौ आठ समयनिविषैं उत्कृष्टपनैं एते जीव उपशम श्रेणी माडैं पहिला समयतैं लगाइ आठवा समय पर्यंत अनुक्रमतैं सोलह चौईस तीस छतीस वियालीस अठतालीस चौवन चौवन जीव निरंतर अष्ट समयनिविषैं होंहि । १६ २४ ३० ३६ ४२ ४८ ५४ ५४ ॥ ६२७ ॥

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी ।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ॥ २८ ॥

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिश्च चतुरशीतिः ।
षण्णवतिः अष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतं च क्षपकेषु ॥ ६२८ ॥

जी० प्र०—क्षपके निरंतराष्टसमयेषु उपशमकेभ्यो द्विगुणत्वात् द्वात्रिंशत् अष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिः चतुरशीतिः षण्णवतिः अष्टोत्तरशतं अष्टोत्तरशतं भवंति । इमामेव संख्यां निरतराष्टसमयेषु समीकरणविधानेन आदिः ३४ उत्तरः १२ गच्छः ८ पदमेगेण विहीणमित्यादिनानीतधनं । क्षपका अष्टोत्तरषट्छतं भवंति । ६०८ । उपशमका आदिः १७ उत्तरः ६ गच्छः ८ धनं चतुरुत्तरत्रिशतं ३०४ भवति ॥ ६२८ ॥

स० चं—बहुरि निरंतर अष्ट समयनिविषैं क्षपक श्रेणीको माडैं ऐसे जीव श्रेणीवालौंतैं दूणे जानने तहां पहिला समयतैं लगाइ अनुक्रमतैं बत्तीस अठतालीस साठि बहत्तरि चउरासी छिनवै एकसौ आठ एकसौ आठ ३२ ४८ ६० ७२ ८४ ९६ १०८ १०८ जीव निरंतर अष्टसमयनिविषैं होहैं। इसही संख्याको घाटि बाधिकैं बरोवरि करि पहिलैं चौंतीस माडै पीछैं आठ समयताईं बारह बारह अधिक माडै तहां आदि चौंतीस ३४ उत्तर बारह १२

गच्छ आठ ८ याका 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादिक सूत्रकरि जोड़ दीजिए तहां गच्छ आठ तामैं एक घटाएं सात रहे, दोयका भाग दीएं साढातीन रहे उत्तरकरि गुणैं बियालीस भए, आदिकरि युक्त कीएं छिहंतरि भए, गच्छकरि गुणें छहसै आठ भए, सो निरंतर आठ समयनिविषैं क्षपक श्रेणी माडिकरि जीव एकठे होहिं तिनिका प्रमाण छहसै आठ जानना। बहुरि उपशमकनिविषैं आदि सतरह १७ उत्तर छह ६ गच्छ आठ ८ जोड दीए तीनसैं च्यारि भए सो प्रमाण जानना ॥ ६२८ ॥

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं ।
संखा जोगिजिणाणं पंचसयबिउत्तरं वंदे ॥ २९ ॥

अष्टैव शतसहस्राणि अष्टानवतिस्तथा सहस्राणाम् ।
संख्या योगिजिनानां पञ्चशतद्व्युत्तरं वन्दे ॥ ६२९ ॥

जी० प्र०—सयोगिजिनसंख्या अष्टलक्षाष्टनवतिसहस्रद्व्युत्तरपंचशतानि ८, ९ ८, ५०२ तान् सदा वंदे। अत्र निरंतराष्टसमयेषु संचितसयोगिजिनाः आचार्यांतरापेक्षया सिद्धांतवाक्ये--वसुसुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति, दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययति एवमट्ठसमयसंचिदजीवा बावीसा हवंतीति विशेषकथने त्रैराशिकषट्कं। तद्यथा—प्र के २२। फ का ६/८। इ के ८, ९ ८, ५०२। ल का ४०८४१, ६/८। पुनः प्र का ६/८। फ स ८। इ का ४०८४१, ६/८। ल स ३, २६, ७२८। पुनः प्र स ८। फ के २२। इ ३, २६, ७२८ ल। के ८, ९८, ५०२। तथा प्र स ८। फ के ४४। इ ३, २६, ७२८/२। ल के ८, ९८, ५०२ तथा प्र स ८। फ के ८८। इ ३, २६, ७२८/२ २। ल के ८, ९८, ५०२। तथा प्र स ८। फ के १७६। इ ३, २६, ७२८/२।२।२। ल के ८, ९८, ५०२। इदमेकपक्षांतरं ॥ ६२९ ॥ अथैकसमये युगपत्संभवतीं क्षपकोपशमकविशेषसंख्यां गाथात्रयेणाह—

स० च—सयोग केवली जिननिकी संख्या आठ लाख अट्याणवे हजार पांचसै दोय ८९८ ५०२ है तिनिकौं मैं सदाकाल वंदौ हैं। इहां निरंतर आठ समयनिविषैं एकठे भए संयोगी जिन अन्य आचार्य अपेक्षा सिद्धांतविषैं ऐसैं कहैं है।

छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति दोसु समयेसु दो दो जीवा
केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयेसु संचिदजीवा बावीसा हवंति ॥ १ ॥

याका अर्थ छह शुद्ध समयनिविषैं तीन तीन जीव केवलज्ञानकौं उपजावैं हैं, दोय समयनिविषैं दोय दोय जीव केवलज्ञानकौं उपजावैं हैं ऐसैं आठ समयनिविषैं एकठे भए जीव बाबीस होहैं। भावार्थ—केवलज्ञान उपजनेका छह महिनेका अंतराल होइ तब वीचिमें अंतराल न पड़े ऐसैं निरंतर आठ समयनिविषैं वाईस जीव केवलज्ञान उपजावैं हैं। सो इहां विशेष कथनविषैं छह त्रैराशिक होहैं—

छहत्रैराशिककायंत्र			
प्रमाणराशि	फलराशि	इछाराशि	लब्धप्रमाण
केवली २२	काल मास ६ समय ८	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ छहमास आठ समय गुणा
काल मास ६ समय ८	समय ८	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा प्रमाण	समय ३२६७२८
समय ८	केवलो २२	समय ३२६७२८	केवलो ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८ २ आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८ ४ चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ ८ आठवां भाग	केवली ८९८५०२

तहां वाईस केवलज्ञानी आठ समय अधिक छह मासमात्र कालविषैं होइ तो आठलाख अठ्याणवै हजार पांचसै दोय केवलज्ञानी केते कालविषैं होंइ ? ऐसैं त्रैराशिक कीएं चालीस हजार आठसै इकतालीसकौं छहमास आठ समयनिकरि गुणैं जो प्रमाण होइ तितना कालका प्रमाण आवै है। बहुरि आठ समय अधिक छहमास

कालविषैं निरंतर केवल उपजनेके आठ समय हैं तौ पूर्वोक्त काल प्रमाणविषैं केते समय हैं ऐसैं त्रैराशिक कीएं तीन लाख छवीस हजार सातसै अठाईस समय आवै हैं। बहुरि आठ समयनिविषैं आचार्यनिके मतनिकी अपेक्षा बाईस वा चवालीस वा अठ्यासी वा एकसौ छिहंतरि केवलज्ञान उपजावै तौ पूर्वोक्त समयनिका प्रमाणविषैं वा तिसतैं आधाविषैं वा चौथाईविषैं वा आठवां भागविषैं केते केवलज्ञान उपजावै ऐसैं चारिप्रकार त्रैराशिक कीए केवलानिका प्रमाण आठ लाख अठ्याणवै हजार पाचसै दोय आवै है ऐसैं जानना ॥ ६२९ ॥ आगैं एक समयविषैं युगपत् संभवती ऐसी क्षपक वा उपशमक जीवनिकी विशेषसंख्या गाथा तीनिकरि कहैं हैं—

होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥ ६३० ॥
पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा ।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥ ६३१ ॥
जेट्ठावरबहुमाज्झिमओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥ ६३२ ॥ विसेसयं ।

भवान्ति क्षपका एकसमये बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च ।
उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमाः स्वर्गतश्च च्युताः ॥ ६३० ॥
प्रत्येकबुद्धतीर्थंकरस्त्रीपुंनपुंसकमनोवधिज्ञानयुताः ।
दशषङ्विंशतिदशविंशत्यष्टाविंशो यथाक्रमशः ॥ ६३१ ॥

ज्येष्ठावरबहुमध्यामावगाहा द्वौ चत्वारः अष्टैव ।
युगपद् भवन्ति क्षपका उपशमका अर्द्धमेतेषाम् ॥ ६३२ ॥ विशेषकम् ।

जी० प्र०—युगपदुत्कृष्टेन एकसमये बोधितबुद्धाः पुंवेदिनः स्वर्गच्युताश्च प्रत्येकं क्षपकाः अष्टोत्तरशतं। उपशमकास्तदर्धं भवंति । पुनः प्रत्येकबुद्धाः तीर्थकराः स्त्रीवेदिनः नपुंसकवेदिनः मनःपर्ययज्ञानिनः अवधिज्ञानिनः उत्कृष्टावगाहाः जघन्यावगाहाः बहुमध्यमावगाहाश्च क्षपकाः क्रमशः दश षट् विंशतिः दश विंशतिः अष्टाविंशतिः द्वौ चत्वारः अष्टौ, उपशमकाः तदर्धं भवंति । सर्वे मिलित्वा क्षपकाः ४३२ । उपशमकाः २१६ ॥ ६३०–६३२
अथ सर्वसंयमसंख्यामाह—

स० चं०—युगपत् एक समयविषैं क्षपक श्रेणीवाले जीव ऐसैं उत्कृष्टताकरि पाइए हैं—बोधित बुद्धतौ एकसौ आठ, पुरुषवेदी एकसौ आठ, स्वर्गतैं चयकरि मनुष्य होइ क्षपक भए ऐसे एकसौ आठ, प्रत्येक बुद्धि ऋद्धिके धारक दश, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी वीस, नपुंसक वेदी दश, मनःपर्ययज्ञानी वीस, अवधिज्ञानी अठाईस, मुक्तहोने योग्य शरीरकी उत्कृष्ट अवगाहनाके धारक दोय, जघन्य अवगाहनाके धारक च्यारि, सर्व अवगाहनाके मध्यवर्ती ऐसी अवगाहनाके धारक आठ ऐसैं ए सर्व मिले हूवे च्यारिसै वत्तीस भए। बहुरि उपशमक इनितैं आधे सर्व पाइए तातैं सर्व मिले हुवे दोयसै सोलह भए। पूर्वैं गुणस्थाननिविषैं एकठे भए जीवनिकी संख्या कही थी इहां ऐसा कह्या है जो श्रेणीविषै युगपत् उत्कृष्ट होंइ तौ पूर्वोक्तजीव पूर्वोक्त प्रमाण होंइ अधिक न होंइ ॥ ६३०–६३२ ॥ आगै सर्वसंयमी जीवनिकी संख्या कहैं हैं ॥

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ॥ ६३३ ॥

सप्तादय अष्टान्ताः षण्णवमध्याश्च संयताः सर्वे ।
अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्ध्या नमस्यामि ॥ ६३३ ॥

जी० प्र०—आदौ सप्तांकं अंतेऽष्टांकं च लिखित्वा तयोर्मध्ये च षट्सु नवांकेषु लिखितेषु संजनितत्र्यष्टनवकोटि[illegible]

जलिमौलिकहस्तोहं मनोवाक्कायशुद्ध्या नमस्यामि । ८९९९९९७ । अत्र च प्रमत्तादिसयोग्यवसानसंख्यायां ८९९९९३९९ । अपनीतायां शेषं द्व्यूनषट्छतं अयोगिसंख्या भवति । ५९८ ॥ ६३३ ॥ अथ चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रासंयतसंख्यासाधकपल्यभागहारविशेषानाह—

स० चं०—सातका अंक आदि अर आठका अंक अंत अर मध्यविषै छह नवके अंक ८९९९९९७ ऐसैं लिखैं भई तीन घाटि नव कोडि संख्या तीहि प्रमाण जे संयमी छठे गुणस्थानतै लगाइ चौदहवां गुणस्थान पर्यंत हैं तिनिकौं अंजुलीकरि मस्तक हस्त लगावतौ संतौ मन वचन कायरूप त्रिकरण शुद्धताकरि नमस्कार मैं करौं हौ। तहां प्रमत्तवाले ५९३९८२०६ अप्रमत्तवाले २९६९९१०३ च्यार्यो गुणस्थानवर्ती उदशम श्रेणावाले ११९६ च्यार्यो गुणस्थान वर्ती क्षपक श्रेणीवाले २३९२ संयोगी जिन ८९८५०२ मिले हूवे जे ८९९९९३९९ भए ते नव कोडि तीन घाटिविषैं घटाएं अवशेष पांचसै अठ्याणवै रहे ते अयोगी जिन जानने ॥ ६३३ ॥ आगैं च्यारि गतिनिका मिथ्यादृष्टी सासादन मिश्र अविरत गुणस्थानवर्ती तिनकी संख्याका साधक पल्यके भागहारका विशेष कहैं हैं—जाका भाग दीजिए ताकौं भागहार कहिए सो आगैं जो जो भागहारका प्रमाण कहैं हैं तिस तिसका पल्यकौं भाग दीए जो जो प्रमाण आवै तितना तितना तहां जीवनिका प्रमाण जानना । जहां भागहारका प्रमाण थोरा होइ तहां जीवनिका प्रमाण बहुत जानना । जहां भागहारका प्रमाण बहुत होइ तहां जीवनिका प्रमाण थोरा जानना। ऐसैं एक हजारकौं पांचका भागदीए दोयसै पावै दोयसैका भाग दीए पांच ही पावै ऐसैं जानना सो अब भागहार कहैं हैं—

आघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ॥६३४॥
देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणि अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाणअवहारा ॥ ६३५ ॥ जुम्मं ।

ओघा असंयतमिश्रकसासनसमीचां भागहारा ये।
रूपोनावलिकासंख्यातेनेह भक्त्वा तत्र निक्षिप्ते ॥ ६३४ ॥
देवानामवहारा भवंति असंख्येन तानवहृत्य ।
तत्रैव च प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानावहाराः ॥ ६३५ ॥

जी० प्र०—गुणस्थानोक्ताः असंयतसम्यग्मिथ्यादृष्टिसासादनानां ये पल्यासंख्यातप्रविष्टभागहाराः अ a मि $a\ a$ सा $a\ a\ 4$ एतेषु रूपोनावल्यसंख्या-तेन $a-1$ भक्त्वा एतेष्वेव निक्षिप्तेषु देवौघे स्वस्वभागहारा भवंति । अ $\frac{a\ a}{a-1}$ मि $\frac{a\ a\ a}{a-1}$ सा $\frac{a\ a\ 4\ a}{a-1}$ एतान् पुनः रूपोनावल्यसंख्यातेन भक्त्वा एकैकभागे स्वस्वहारे प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानासंयतमिश्रसासादनानां भागहारा भवंति $\frac{a\ a\ a}{a-1,\ a-1}$ $\frac{a\ a\ a\ a}{a-1,\ a-1}$ $\frac{a\ a\ 4\ a\ a}{a-1,\ a-1}$ ॥ ६३४–६३५ ॥

स० चं०—गुणस्थान संख्याविषैं पूर्वैं जो असंयत मिश्र सासादनकी संख्याविषैं जो पल्यकौं भाग हार कह्या है तिनकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण आवै तितना तितना भाग हारनिमैं मिलाए देवगतिविषैं भागहार हो है। तहां पूर्वैं असयत गुणस्थानविषैं भागहारका प्रमाण एकवार असंख्यात कह्या था ताकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीजिए जो प्रमाण आवै तितने तिस भागहार मैं मिलाइए जो प्रमाण होइ तितना देवगति सम्बन्धी असंयत गुणस्थानविषैं भागहार जानना। इस भागहारका भाग पल्यकौं दीए जो प्रमाण होइ तितने देवगतिविषैं असंयत गुणस्थानवर्ती जीव हैं ऐसै ही आगैं भी पल्यके भागहार जानने। बहुरि मिश्रविषैं दोयवार असंख्यात रूप अर सासादनविषैं दोयवार असंख्यात अर एक वार

संख्यात रूप पूर्वैं जो भागहारका प्रमाण कह्या था तिसका एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो जो प्रमाण आवै तितना तितना तहां मिलाए देवगति संबंधी मिश्रविषैं वा सासादनविषैं भागहारका प्रमाण हो है। बहुरि देवगति सबंधी असंयत वा मिश्र वा सासादन विषैं जो जो भागहारका प्रमाण कह्या तिस तिसकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो जो प्रमाण आवै तितना २ तिस तिस भागहारमें मिलाए जो जो प्रमाण होइ सो सो सौधर्म ईशान संबंधी अविरत वा मिश्र वा सासादनविषैं भागहार जानना। जो देवगति संबंधी अविरतविषैं भागहार कह्या था ताकौं एक घाटि आवलीका असंख्यातवां भागका भाग दीएं जो प्रमाण होइ तितना तिस भागहार विषै मिलाए सौधर्म ईशान स्वर्ग संबंधी असंयतविषैं भागहार हो है । इसही प्रकार मिश्रविषै वा सासादनविषैं भागहार जानना ॥ ६३४—६३५ ॥

सोहम्मसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा ॥ ६३६ ॥

सौधर्मैशानहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते।
उपरि असंयतमिश्रकसासनसमीचामवहाराः ॥ ६३६ ॥

जी० प्र०—तत्सौधर्मद्वयसासादनहारे $\frac{a\ a\ a\ a\,4}{a-1-a-1}$ असंख्यातेन चशब्दात् पुनरसंख्यातेन संख्यातरूपैश्च गुणिते यथासंख्यमुपरिसानत्कुमारद्वये असंख्यातमिश्रसासादनहारा भवंति। $\frac{a\ a\ a\ a\,4\ a}{a-1\ a-1}$ $\frac{a\ a\ a\ a\,4\ a\ a}{a-1\ a-1}$ $\frac{a\ a\ a\ a\,4\ a\ a\,4}{a-1-a-1}$ ॥ ६३६ ॥ अथास्य गुणितक्रमस्य व्याप्तिमाह—

स० चं०—बहुरि ताके ऊपरि सनत्कुमार माहेंद्र स्वर्ग है तहां असंयतविषैं सौधर्म ईशान संबंधी सासादनका भागहारतैं असंख्यात गुणा भागहार जानना। इस असंयतका भागहारतैं चकारकरि असंख्यात गुणा मिश्रविषैं

भागहार जानना। यातै संख्यात गुणा सासादनविषै भागहार जानना ॥ ६३६ ॥ आगै इस गुणनेका अनुक्रमकी व्याप्ति दिखावै हैं—

सोहम्मादासारं जोइसिवणभवणतिरियपुढवीसु।
अविरदमिस्से संखं संखासंखगुण सासणे देसे ॥ ६३७॥

सौधर्मादासहस्रारं ज्योतिषिवनभवनातिर्यक्पृथ्वीषु।
अविरतमिश्रेऽसंख्यं संख्यासंख्यगुणं सासने देशे ॥ ६३७ ॥

जी० प्र०—सौधर्माद्युपरि सानत्कुमारादिसहस्रारपर्यंतं पंचयुग्मेषु ज्योतिष्कव्यानभावनतिर्यक्सप्तपृथ्वीषु चेति षोडशस्थानेषु अविरते मिश्रे वा असंख्येयगुणितक्रमः सासादने संख्यातगुणितक्रमः, तिर्यग्देशसंयते असंख्यातगुणितक्रमश्च भवति। तथाहि—उक्तसानत्कुमारद्वयसासादनहारात् ब्रह्मद्वयस्य असंयतहारः असंख्यातगुणः। ततो मिश्रहारोऽसंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्य तगुणः। अत्र संख्यातस्य संदृष्टिश्चतुरंकः। ततः लांतवद्वये असंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः शुक्रद्वयेऽसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततो मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः शतारद्वये असंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः ज्योतिष्कासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः व्यंतरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः भवनवास्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततस्तिर्यगसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। सासादनहारः संख्यातगुणः। ततस्तिर्यग्देशसंयतहारः असंख्यातगुणः। अयमेव प्रथमपृथिव्यसंयतस्यापि हारः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः द्वितीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः तृतीयपृथिव्यसंयतहारः असंख्यातगुणः ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः चतुर्थपृथ्व्यसंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः पंचमधरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः षष्ठधरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः। ततः सप्तमधरासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः मिश्रहारः असंख्यातगुणः। ततः सासादनहारः संख्यातगुणः ॥ ६३७ ॥ अथानतादिषु गाथात्रयेणाह—

स० चं०—सौधर्म ईशानके ऊपरि सानत्कुमार माहेंद्रतै लगाइ शतार सहस्रारपर्यंत पंच युगल अर ज्योतिषी अर व्यंतर अर भवनवासी अर तिर्यंच अर सात नरककी पृथ्वी इनि सोलह स्थानका संबंधी अविरतविषैं अर मिश्रविषैं असंख्यात गुणा अनुक्रम जानना अर सासादनविषैं संख्यात गुणा अनुक्रम जानना अर तिर्यंच संबंधी देशसंयतविषैं असंख्यात गुणा अनुक्रम जानना सो इस कथनकौं दिखाइए है—

सनत्कुमार माहेंद्रविषैं जो सासादनका भागहार कह्या तींहिस्यों ब्रह्म ब्रह्मोत्तरविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। संख्यातकी सहनानी च्यारिका अंक।४। है॥ बहुरि यातैं लांतव कापिष्ठविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं शुक्र महा शुक्रविषै असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है बहुरि यातैं शतार सहस्रारविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं ज्योतिषीनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं व्यंतरनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातै भवनवासीनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं तिर्यंचनिविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। यातैं तिर्यंचविषैं ही देशसंयतका भागहार असंख्यात गुणा है सो जो देशसंयतविषैं जो भागहारका प्रमाण है सोई प्रथम नरक पृथ्वीविषै असंयतका भागहार है यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं दूसरी नरकपृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भाग-

हार असंख्यात गुणा है यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं तीसरी नरक पृथ्वीविषैं असंख्यातका भागहार असंख्यात गुणा हैं। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं चौथी नरक पृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भाग हार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं पंचम नरक पृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यातगुणा है। बहुरि यातैं षष्ठम पृथ्वीविषैं असंयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यातगुणा है। यातैं सासादनका भागहार संख्यात गुणा है। बहुरि यातैं सप्तम नरक पृथ्वीविषैं असयतका भागहार असंख्यात गुणा है। यातैं मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है। यातै सासादनका भागहार संख्यातगुणा है ॥६३७॥

आगैं आनतादि विषैं तीनि गाथानिकरि कहैं हैं—

चरमधरासणहारा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसंखसंखगुणहारा ॥ ६३८ ॥

चरमधरासनहारादानतसमीचामारणप्रभृति।
अंतिमग्रैवेयकांतं समीचामसंख्यसंख्यगुणहाराः ॥६३८॥

जी० प्र०—तत्सप्तमपृथ्वीसासादनहारात् आनतद्वयासंयतहारः असंख्यातगुणः। ततः आरणाद्वयाद्यंतिमग्रैवेयकांतदशपदासंयतानां दशहाराः संख्यातगुणक्रमाः स्युः। अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः पचांकः ॥ ६३८ ॥

स० च —तीहि सप्तम पृथ्वी संबंधी सासादनके भागहारतैं आनत प्राणत संबंधी अविरतका भागहार असंख्यात गुणा है। बहुरि यातैं आरण अच्युततैं लगाइ नवमां ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनिविषैं असंयतका भाग हार अनुक्रमतैं संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना। इहां संख्यातकी सहनानी पांचका अंक है ॥ ६३८ ॥

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ॥ ६३९ ॥

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुदिशानां विजयादि ।
समीचां संख्यगुण आनतमिश्रे असंख्यगुणः ॥ ६३९ ॥

जी० प्र०—ततोऽतिमग्रैवेयकासंयतहारात् आनतद्वयादितदुक्तैकादशपदमिथ्यादृष्टीनां एकादशहाराः संख्यातगुणितक्रमाः । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिःषडंकः । ततः तदतिमग्रैवेयकवामहारात् नवानुदिशविजयादिचतुर्विमानासंयतहारौ द्वौ संख्यातगुणक्रमौ । अत्र संख्यातस्य संदृष्टिः सप्तांकः । ततः विजयाद्यसंयतहारादानतद्वयमिश्रहारः असंख्यातगुणः ॥ ६३९ ॥

सं० चं०—तीहि अंतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयतका भागहारतैं आनत प्राणत युगलतैं लगाइ नवमा ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनिविषैं वामे जे मिथ्यादृष्टी जीव तिनिका संख्यात गुणा संख्यात गुणा भागहार अनुक्रमतैं जानना । इहां संख्यातकी सहनानी छहका अंक है । बहुरि तीहि अंतिम ग्रैवेयक सम्बन्धी मिथ्यादृष्टीका भाग हारतैं नवानुदिश विमान वा विजयादिक च्यारि विमान इनि दोऊ स्थानकनिविषैं असंयतका भागहार संख्यात गुणा संख्यातगुणा क्रमतैं जानना । इहां संख्यातकी सहनानी सातका अंक है । बहुरि विजयादिक सम्बन्धी असंयतका भागहारतैं आनत प्राणत सम्बन्धी मिश्रका भागहार असंख्यात गुणा है ॥ ६३९ ॥

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ॥ ४० ॥

ततः संख्येयगुणः सासनसमीचां भवति संख्यगुणः ।
उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुःसंदृष्टिः ॥ ३४० ॥

जी० प्र०—सदानतद्वयमिश्रहारात् आरणाद्वयादितद्दशपदमिश्रहाराः संख्यातगुणक्रमाः । अतः संख्यातस्य संदृष्टिः अष्टांकः । ततः तदंतग्रैवेयकमिश्रहारात् आनताद्येकादशपदानां सासादनहाराः संख्यातगुणक्रमाः अत्र संख्यातस्य संदृष्टिश्चतुरंकः । एतेपूक्तपंचस्थलेषु संख्यातानां संदृष्टयः क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुरंका ज्ञातव्याः ॥ ६४० ॥

स० चं०—तीहि आनत प्राणत सम्बन्धी मिश्रका भागहारतैं आरण अच्युततैं लगाइ नवमा ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानकनिविषैं मिश्र गुणस्थान सम्बन्धी भागहार अनुक्रमतैं संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना तहां नवमां ग्रैवेयक पर्यंत ग्यारह स्थानकनिविषैं सासादनका भागहार अनुक्रमतैं संख्यात गुणा संख्यात गुणा जानना। इहां संख्यातकी सहनानी च्यारिका अंक । ४ । है। ए कहे पंच स्थानक तिनिविषैं संख्यातकी सहनानी क्रमतैं पांच छह सात आठ च्यारिका अंक जानना सो कहते ही आए है ॥ ६४० ॥

सगसगअवहारेहिं पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ॥४१॥

स्वस्वकावहारैः पल्ये भक्ते भवंति स्वकराशयः ।
स्वकस्वकगुणप्रतिपन्नेषु स्वकस्वकराशिषु अपनीतेषु वामाः ॥ ६४१ ॥

जीं० प्र०—प्रागुक्तैः स्वस्वहारैः पल्ये भक्ते सति स्वस्वराशयो भवंति। स्वस्वस्थानस्य गुणप्रतिपन्नेषु सासादनमिश्रासंयतदेशसंयततेषु मेलयित्वा स्वस्वराशावपनीतेषु शेषस्वस्वस्थाने मिथ्यादृष्टयो भवंति। तत्र सामान्ये किंचिदूनसंसारी १३– देवौघे किंचिदूनतद्राशिः— ॥ १— =१– ४। ६५=१

सौधर्मद्वये किंचिदूना घनांगुलतृतीयमूलजगच्छ्रेणिः। सनत्कुमारद्वयादिपंचयुग्मेषु किंचिदूना क्रमशो निजैकादशमनवमसप्तमपंचमचतुर्थमूलभक्तजगच्छ्रेणिः, ऊनतात्र हाराधिका ज्ञेया। ज्योतिष्के पण्णट्ठिप्रतरांगुलभक्तः व्यंतरसंख्यातप्रतरांगुलभक्तश्च जगत्प्रतरः किंचिदूनः । भवनवासिषु किंचिदूना घनांगुलप्रथममूलहतजगच्छ्रेणिः। तिर्यक्षु किंचिदूनः सर्वतिर्यग्राशिः १३–। प्रथमपृथिव्यां किंचिदूना घनांगुलद्वितीयमूलगुणहतजगच्छ्रेणिः साधिक-

द्वादशांशोना $-\frac{2=1}{12}$ । द्वितीयादिपृथ्वीषु किंचिदूना क्रमशो निजद्वादश्वदशमाष्टमषष्ठतृतीयमूलभक्तजगच्छ्रेणिः । आनतादिषु कंठोक्तयोक्ता । सर्वार्थसिद्धावहमिंद्रा असंयता एव । ते च मानुषीप्रमाणात्त्रिगुणाः सप्तगुणा वा भवंति ॥ ६४१ ॥ मनुष्यगतावाह—

स० चं०—पूर्वें कह्या जो अपना अपना भागहार तिनिका भाग पल्यकौं दीएं जो जो प्रमाण आवै तितने तितने जीव तहां जानने । बहुरि अपना अपना सासादन मिश्र असंयत अर देशसंयत गुणस्थाननिविषैं जो जो प्रमाण भया तिनिका जोड दीएं जो जो प्रमाण होइ तितना तितना प्रमाण अपना अपना राशिका प्रमाणमें घटाएं जो जो अवशेष प्रमाण रहै तितने तितने जीव तहां मिथ्यादृष्टी जानने । तहां सामान्यपनै मिथ्यादृष्टी किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण हैं। सामान्यपनैं देवगतिविषैं किंचित् ऊन देवराशिप्रमाण मिथ्यादृष्टी जानने । सौधर्मादिक विषैं जो जो जीवनिका प्रमाण कह्या है तहां द्वितीयादि गुणस्थान सबधी प्रमाण घटावनेके निमित्त किंचित् ऊनता कीएं जो जो प्रमाण रहै तितने तितने मिथ्यादृष्टी हैं सो सौधर्मादिकविषैं जीवनिका प्रमाण कितना कितना है? सो गति मार्गणाविषैं कह्या ही है इहां भी किछू कहिए है—

सौधर्म ईशानवाले घनांगुलका तृतीय वर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौं गुणै जो प्रमाण होइ तितने हैं । सनत्कुमार युगल आदिक पंच युगलनिविषैं क्रमतैं जगच्छ्रेणीका ग्यारव्हां नवमां सातवां पांचवा चौथा वर्गमूलका भाग जगच्छ्रेणीकौं दीएं जो जो प्रमाण आवे तितने तितने हैं। ज्योतिषी पण्णट्ठि प्रमाण प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो प्रमाण आवे तितने हैं । व्यंतर संख्यात प्रतरांगुलका भाग जगत्प्रतरकौं दीएं जो प्रमाण आवे तितने हैं । भवनवासी घनांगुलके प्रथम वर्गमूलकरि जगच्छ्रेणीकौ गुणै जो प्रमाण आवे तितने हैं। तिर्यंच किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण है । प्रथम पृथ्वीविषैं नारकी घनांगुलका द्वितीयवर्गमूलकरि साधिक वारव्हां भागकरि हीन जो जगच्छ्रेणी ताकौ गुणैं जो प्रमाण होइ तितने हैं । द्वितीयादिक पृथ्वीविषैं क्रमतैं जगच्छ्रेणीका बारव्हां दशवां आठवां छठा तीसरा दूसरा वर्गमूलका भाग जगच्छ्रेणीकौं दीए जो जो प्रमाण होइ तितने तितने जानने । इनि सबनि-

विषैं अन्य गुणस्थानवालोंका प्रमाण घटावनेके अर्थि किंचित् ऊन कीएं मिथ्यादृष्टी जीवनिका प्रमाण होहै। बहुरि आनतादिकविषैं मिथ्यादृष्टी जीवनिका प्रमाण इहां ही पूर्वै कह्या है। बहुरि सर्वार्थसिद्धिविषै अहमिंद्र सर्व असंयत हो हैं ते द्रव्य स्त्री मनुष्यणी तिनितैं तिगुणे वा कोई आचार्यके मतकरि सात गुणे कहे हैं ॥ ६४१ ॥ आगैं मनुष्य गतिविषैं संख्या कहैं है—

तेरसकोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा ।
मिस्सावि य तद्दुगुणा असंजदा सत्तकोडिसयं ॥ ६४२ ॥

त्रयोदशकोट्यो देशे द्वापंचाशत् सासने मंतव्याः ।
मिश्रा अपि च तद्द्विगुणा असंयताः सप्तकोटिशतं ॥ ६४२ ॥

जी० प्र०—देशसंयते त्रयोदशकोट्यो मंतव्याः । १३ को । सासादने द्विपंचाशत् कोट्यः ५२ को । मिश्रे ततो द्विगुणाः १०४ को । असंयते सप्त शतकोट्यः ७०० को । प्रमत्तादीनां संख्या तु प्रागुक्ता ॥ ६४२ ॥

स. चं.—मनुष्य जीव देशसंयतविषैं तेरह कोडि है। बावन कोडि सासादनविषैं जानने। मिश्रविषैं तिनतैं दुगुणे एक सौ च्यारि कोडि जानने। असंयतविषैं सातसै कोडि जानने और प्रमत्तादिककी संख्या पूर्वै कही है सोई जाननी। ऐसैं गुणस्थाननिविषैं जीवनिका प्रमाण कह्या है ॥ ६४२ ॥

जीविदरे कम्मचये पुण्णं पावोत्ति होदि पुण्णं तु ।
सुहपयडीणं दव्वं पावं असुहाण दव्वं तु ॥ ६४३ ॥

जीवेतरास्मिन् कर्मचये पुण्यं पापमिति भवति पुण्यं तु ।
शुभप्रकृतीनां द्रव्यं पापं अशुभप्रकृतीनां द्रव्यं तु ॥ ६४३ ॥

जी० प्र०—जीवपदार्थप्रतिपादनसामान्येन गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टयः सासादनाश्च पापजीवाः । मिश्राः पुण्यपापमिश्रजीवाः सम्यक्त्वमिथ्यात्व मिश्रपरिणामपरिणतत्वात् । असंयताः सम्यक्त्वेन, देशसंयताः सम्यक्त्वेन देशव्रतेन च युतत्वात् पुण्यजीवा एव इत्युक्त्वा अनंतरं अजीवपदार्थप्ररूपणो कर्मचये—कार्मणस्कंधे पुण्यं पापमिति अजीवपदार्थौ द्वेधा । तत्र शुभप्रकृतीनां सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणां द्रव्यं पुण्यं । अशुभानां असद्वेद्यादिसर्वामश-स्तप्रकृतीनां द्रव्यं तु पुनः पापं भवति ॥ ६४३ ॥

स० चं—जीवपदार्थ संबंधी प्रतिपादनविषैं सामान्यपनैं गुणस्थाननिविषैं मिथ्यादृष्टी अर सासादन एतौ पाप-जीव हैं बहुरि मिश्र हैं ते पुण्य पापरूप मिश्रजीव हैं जातैं युगपत् सम्यक्त्व अर मिथ्यात्वरूप परिणए हैं बहुरि असंयत तौ सम्यक्त्वकरि संयुक्त है अर देश संयत सम्यक्त्व अर देशव्रतकरि संयुक्त हैं अर प्रमत्तादिक सम्यक्त्व अर सकलव्रतकरि संयुक्त हैं तातैं ए पुण्यजीव हैं ऐसे कहि याके अनंतरि अजीवपदार्थ संबंधी प्ररूपणा करैं हैं—

तहां कर्मचय कहिए कार्माणस्कध तिसविषैं पुण्य पापरूप दोय भेद हैं तातैं अजीव दोय प्रकार है तहां साता वेदनी नरक विना तीन आयु शुभ नाम उच्चगोत्र ए शुभ प्रकृति हैं तिनिकौं द्रव्य पुण्य कहिए बहुरि घातिया कर्मनिकी सर्व प्रकृति असाता वेदनी नरक आयु अशुभ नाम नीच गोत्र ए अशुभ प्रकृति हैं तिनिकौं द्रव्य पाप कहिए ॥ ६४३ ॥

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ॥ ६४४ ॥

आस्रवसंवरद्रव्यं समयप्रबद्धं तु निर्जराद्रव्यं ।
ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ॥ ६४४ ॥

जी० प्र०—आस्रवद्रव्यं संवरद्रव्यं च समयप्रबद्धः । निर्जराद्रव्यं तु पुनः उत्कृष्टं समयप्रबद्धान्नियमेनासंख्यातगुणं भवति ॥ ६४४ ॥

स० चं—बहुरि आस्रव द्रव्य अर संवर द्रव्य समय प्रबद्ध प्रमाण है जातैं एकसमयविषैं आस्रव समय प्रबद्ध प्रमाण पुद्गल परमाणूनिहीका हो है । बहुरि संवर होइ तौ तितने ही कर्मनिका आस्रव न होइ तातैं द्रव्य संवर भी

तितना ही कह्या। बहुरि उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य समय प्रवद्धतैं असंख्यात गुणा नियमकरि जानना जातैं गुण श्रेणी निर्जराविषैं उत्कृष्टपनैं एक समयविषैं असंख्यात समय प्रबद्धनिकी निर्जरा करै है ॥ ६४४ ॥

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ॥ ६४५ ॥

बंधः समयप्रबद्धः किंचिदूनद्व्यर्धमात्रगुणहानिः ।
मोक्षश्च भवत्येवं श्रद्धातव्यास्तु तत्त्वार्थाः ॥ ६४५ ॥

जी० प्र०तु-पुनः बंधोऽपि समयप्रबद्ध एव। मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रसमयप्रबद्धं भवतीति एवं तत्त्वार्थाः श्रद्धातव्याः ॥६४५॥

अथ सम्यक्त्वभेदमाह—

स० चं—बहुरि बंध द्रव्य भी समय प्रबद्ध प्रमाण है जातैं एक समयविषैं समय प्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनिहीका बंध होहै। बहुरि मोक्षद्रव्य किंचिदून द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण कहे जातैं अयोगीकैं चरमसमयविषैं द्व्यर्धगुण हानिकरि गुणित समय प्रबद्ध प्रमाण सत्ता पाइए तिसहीका मोक्ष हो है इसप्रकार तत्त्वार्थ हैं ते श्रद्धान करणे, इस तत्त्वार्थ श्रद्धानहीका नाम सम्यक्त्व है ॥ ६४५ ॥ आगैं सम्यक्त्वके भेद कहैं हैं—

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ॥
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदु ॥ ६४६ ॥

क्षीणे दर्शनमोहे यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ॥ ६४६ ॥

जी० प्र०—मिथ्यात्वसम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतित्रये अनंतानुबंधिचतुष्टये च करणलब्धिपरिणामसामर्थ्यात् क्षीणे सति यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं

भवति तत्क्षायिकसम्यग्दर्शनं नाम । तच्च नित्यं स्यात् प्रतिपक्षप्रक्षयोत्पन्नात्मगुणत्वात् । पुनः प्रतिसमयं गुणश्रेणिनिर्जराकारणं भवति । तथा चोक्तं—

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेससम्मं च ॥

दर्शनमोहे क्षपिते सिध्यति एकस्मिन्नेव तृतीयतुरीयभवे ।
नातिक्रामति तुरीयभवं न विनश्यति शेषसम्यक्त्वं च ॥ १ ॥

दर्शनमोहे क्षपिते सति तस्मिन्नेव भवे वा तृतीयभवे वा चतुर्थभवे कर्मक्षयं करोति चतुर्थभवं नातिक्रामति । शेषसम्यक्त्ववत्त विनश्यति । तेन नित्यमित्युक्तं । साद्यक्षयानंतमित्यर्थः । अमुमेवार्थमाह—

स० चं—मिथ्यात्व मोहनी सम्यग्मिथ्यात्व मोहनी सम्यक् मोहनी अर अनंतानुबंधीकी चौकड़ी इनि सात प्रकृतिनिका करणलब्धिरूप परिणामनिका बलतैं नाश होत संते जो अति निर्मल श्रद्धान होइ सो क्षायिक सम्यक्त्व है सो प्रतिपक्षी कर्मका नाशकरि आत्माका गुण प्रगट भया है तातैं नित्य है बहुरि समय समय प्रति गुणश्रेणि निर्जराकौं कारण है तातैं कर्मक्षयका हेतु है । उक्तं च—

दंसण मोहे खविदे सिज्झदि एकेव तदिय तुरियभवे ।
णादिकदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं च ॥ १ ॥

दर्शन मोहका क्षय होतैं तीहिं भवविषैं वा देवायुका बंध भएं तीसरा भवविषैं वा पहिलैं मिथ्यात्वदशाविषैं मनुष्य तिर्यंच आयुका बंध भया होइ तौ चौथा भवविषै सिद्ध पदकौं प्राप्त होइ, चौथा भवकौं उलंघै नाहीं । बहुरि अन्य सम्यक्त्ववत् यह क्षायिक सम्यक्त्व विनशै भी नाहीं तीहिस्यों नित्य कह्या है सादि अक्षयानंत है आदि सहित अविनाशी अंत रहित है यह अर्थ जानना ॥ ६४६ ॥ इसही अर्थकौं कहैं हैं—

वयणेहिं वि हेदूहिं वि इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।

बीभच्छजुगंछाहिं य तेलोक्केणवि ण चालेज्जो ॥ ६४७॥

वचनैरपि हेतुभिरपि इंद्रियभयानीतैः रूपैः।
बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चाल्यः ॥ ६४७ ॥

जी० प्र०—कुत्सितोक्तिभिः कुहेतुदृष्टांतैः इंद्रियभयोत्पादकविकृतवेषैः बीभत्स्यवस्तूत्पन्नजुगुप्साभिः किं बहुना त्रैलोक्येनापि क्षायिकसम्यक्त्वं न चालयितुं शक्यं ॥ ६४७ ॥ तत्सम्यग्दर्शनं कस्य भवेत् ? इति चेदाह—

स० चं—श्रद्धान नष्ट होनेकौं कारण ऐसे कुत्सित वचननिकरि वा कुत्सित हेतु दृष्टांतनिकरि वा इंद्रियनिकौं भयकारी ऐसे विकाररूप अनेक भेष आकारनिकरि वा ग्लानिकौं कारण ऐसी वस्तुतें निपज्या जुगुप्सा तिनकरि क्षायिक सम्यक्त्व चलै नाही बहुत कहा कहिये तीन लोक मिलिकरि क्षायिक सम्यक्त्वकौं चलाया चाहैं तौ क्षायिक सम्यक्त्व चलावनेकौं समर्थ न होइ ॥६४७॥ सो क्षायिक सम्यक्त्व कौनकैं हो है ? सो कहैं हैं—

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ॥ ६४८ ॥

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि।
मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ॥ ६४८ ॥

जी० प्र०—दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभकः कर्मभूमिज एव सोऽपि मनुष्य एव तथापि केवलिश्रीपादमूले एव भवति। निष्ठापकस्तु सर्वत्र चतुर्गतिषु भवति ॥ ६४८ ॥ अथ वेदकसम्यक्त्वस्वरूपमाह—

स० चं—दर्शन मोहकी क्षपणाका प्रारंभक तौ कर्मभूमिका उपज्या मनुष्य ही केवलीके पादमूलविषैं ही हो है अर निष्ठापक सर्वत्र च्यार्‍यो गतिविषैं हो है। भावार्थ जो दर्शन मोहका क्षय होनेका विधान है तिसका प्रारंभ तौ केवली वा श्रुतकेवलीके निकट कर्मभूमिया मनुष्य ही करै है। बहुरि सो विधान होतैं होतैं मरण हो जाय तौ जहां

संपूर्ण दर्शन मोहके नाशका कार्य होइ निवरै तहां ताकौं निष्ठापक कहिए सो च्यार्यो गति विषैं हो है ॥ ६४८ ॥
आगें वेदक सम्यक्त्वका स्वरूप कहै हैं—

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ॥ ६४९ ॥

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानं ।
चलमलिनमगाढं तद् वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥ ६४९ ॥

जी० प्र०—दर्शनमोहनीयस्य सम्यक्त्वप्रकृतेः उदये सति यत्तत्त्वार्थश्रद्धानं चलं मलिनं अगाढं वा उत्पद्यते तद्वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ॥ ६४९ ॥ अथोपशमसम्यक्त्वस्वरूपं तत्सामग्रीविशेषं च गाथात्रयेणाह—

स० चं०—दर्शनमोहका भेद सम्यक्त्वमोहनी ताका उदयकरि जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल वा मल वा अगाढ होइ सो वेदक सम्यक्त्व है ऐसा तू जानि। चल मलिन अगाढका लक्षण पूर्वै गुणस्थानप्ररूपणाविषैं कह्या है ॥६४९॥
आगें उपशम सम्यक्त्वका स्वरूप अर तिसहीकी सामग्रीका विशेष तीन गाथानिकरि कहैं हैं—

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६५०॥

दर्शनमोहोपशमादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानं ।
उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमं ॥ ६५० ॥

जी० प्र०—अनंतानुबंधिचतुष्कस्य दर्शनमोहत्रयस्य च उदयाभावलक्षणाऽप्रशस्तोपशमेन प्रसन्नमलपंकतोयसमानं यत्पदार्थश्रद्धानमुत्पद्यते तदिदमुपशमसम्यक्त्वं नाम ॥ ६५० ॥

स० चं०—अनंतानुवंधीकी चौकडी अर दर्शन मोहका त्रिक इनि सात प्रकृतिनिके उदयका अभाव है लक्षण जाका ऐसा प्रशस्त उपशम होनेतें जैसें कतकफलादिकतें मल कर्दमके नीचें वैठनेकरि जल प्रसन्न हो है तैसें जो तत्त्वार्थ श्रद्धान उपजे सो यहु उपशम नामा सम्यक्त्व है ॥ ६५० ॥

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धीय ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६५१॥

क्षायोपशमिकविशुद्धी देशना प्रायोग्यकरणलब्धी च ।
चतस्रोऽपि सामान्याः कारणं पुनर्भवति सम्यक्त्वे ॥ ६५१ ॥

जी० प्र०—क्षायोपशमिकविशुद्धिदेशनाप्रायोग्यताकरणनाम्न्यः पंचलब्धयः उपशमसम्यक्त्वे भवंति । तत्र आद्याः चतस्रोऽपि सामान्याः भव्याभव्ययोः संभवात् । करणलब्धिस्तु भव्य एव स्यात् तथापि सम्यक्त्वग्रहणे चारित्रग्रहणे च ॥ ६५१ ॥ क्षयोपशमसम्यक्त्वग्रहणयोग्यजीवमाह—

स० चं०—सम्यक्त्वके पूर्वे जैसा कर्मका क्षयोपशम चाहिए तैसा होना सो क्षयोपशमिक लब्धि, वहुरि जैसी विशुद्धता चाहिए तैसी होनी सो विशुद्धि लब्धि. वहुरि जैसा उपदेश चाहिए तैसा पावना सो देशनालब्धि, वहुरि पंचेंद्रियादिक रूप योग्यता जेसी चाहिए तेसी होनी सो प्रायोग्यलब्धि वहुरि अधः अपूर्व अनिवृत्तिकरणरूप परिणामनिका होना सो करणलब्धि जाननी । तहां च्यारि लब्धि तो सामान्य हैं भव्य अभव्य सर्वकें हो हैं वहुरि करण लब्धि है सो भव्यकें ही हो है सो भी सम्यक्त्व अर चारित्रका ग्रहणविषें ही हो है । भावार्थ—च्यारि लब्धि तो संसारविषें अनेकवार हो हैं वहुरि करणलब्धिकी प्राप्ति भएं सम्यक्त्व वा चारित्र अवश्य हो है ॥ ६५१ ॥ आगें उपशमसम्यक्त्के ग्रहणेको योग्य जो जीव ताका स्वरूप कहै हैं—

चदुगदिभव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।

जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी पर्याप्तश्च शुद्धकश्च साकारः ।
जागरूकः सल्लेश्यः सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥ ६५२

जी० प्र०——यः चतुर्गतिभव्यः सज्ञी पर्याप्तकः विशुद्धः आकारेण भेदग्रहणेन सहितः स्त्यानगृद्ध्य दिनिद्रात्रयरहितः भावशुभलेश्यात्रये अन्यतमलेश्यः करणलब्धिपरिणतः स जीवो यथासंभवं सम्यक्त्वमुपगच्छति ॥ ६५२ ॥

स० चं०——जो जीव च्यारिगतिमें कोई एक गतिविषैं प्राप्त ऐसा भव्य होइ, सैनी होइ पर्याप्त होइ मंदकषाय परिणामता विशुद्धता होइ स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन निद्रातैं रहित होनेतैं जागता होइ भावित शुभ तीन लेश्यानिविषैं कोई एक लेश्याका धारक होइ करणलब्धिरूप परिणया होइ ऐसा जीव यथासंभव सम्यक्त्वकौ प्राप्त हो है॥६५२॥

चत्तारिवि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥६५३॥

चत्वार्यपि क्षेत्राणि आयुष्कबंधेन भवति सम्यक्त्वं ।
अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कमुक्त्वा ॥ ६५३ ॥

जी० प्र०——चतुर्णां परभवायुषां एकसंबंधेन जातबद्धायुष्कस्य सम्यक्त्वं भवत्यत्र दोषो नास्ति । अणुव्रतमहाव्रतानि तु एकं बद्धदेवायुष्कं मुक्त्वा नान्ये लभंते ॥ ६५३ ॥

स० चं०——च्यारि आयुविषै किसी ही परभवका आयु बंध कीया होइ तिस बद्धायु जीवकैं सम्यक्त्व उपजै इहां किछू दोष नाहीं । बहुरि अणुव्रत अर महाव्रत जिसके देवायुका बंध भया होइ तिसहीकैं होइ जो पहिलैं नारक तिर्यंच मनुष्यायुका बंध मिथ्यात्वमें भया होइ तौ पीछे अणुव्रत महाव्रत होइ नाहीं । यह नियम है ॥६५३॥

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो ।
सो सासणोत्ति णेयो पंचमभावेण संजुत्तो ॥६५४॥

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः ।
स सासन इति ज्ञेयः पंचमभावेन संयुक्तः ॥ ६५४ ॥

जी० प्र०—यो जीवः सम्यक्त्वात्पतितो मिथ्यात्वं यावन्न प्राप्तः तावत् सासादन इति ज्ञेयं स च दर्शनमोहनीयस्यैवापेक्षया पारिणामिकभावेन सहितः, चारित्रमोहनीयापेक्षया तस्यौदयिकभावसद्भावात् ॥ ६५४ ॥

स० चं०—जो जीव सम्यक्त्वतैं पड्या अर मिथ्यात्वकौं यावत् प्राप्त न भया तावत् काल सासादन है ऐसा जानना सो दर्शन मोहहीकी अपेक्षा पांचवां पारणामिक भावकरि संयुक्त है जातैं चारित्र मोहकी अपेक्षा अनंतानुबंधीके उदयतैं सासादन हो है तातैं इहां औदयिक भाव है। यहु सासादन जुदी ही जातिका श्रद्धान रूप सम्यक्त्व मार्गणाका भेद जानना ॥ ६५४ ॥

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छोत्ति णायव्वो ॥ ६५५ ॥

श्रद्धानाश्रद्धानं यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु ।
विरताविरतेन समः सम्यग्मिथ्य इति ज्ञातव्यः ॥ ६५५ ॥

जी० प्र०—जीवादिपदार्थेषु यस्य जीवस्य श्रद्धानमश्रद्धानं च युगपदेव देशसंयतस्य संयमासंयमवद्भवति स जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्यः ॥ ६५५ ॥

स० च०—जिस जीवकैं जीवादि पदार्थनिविषै श्रद्धान वा अश्रद्धान एक कालविषैं होइ जैसैं देश संयतकैं

संयम वा असंयम एक काल हो है तैसैं होइ सो जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टी है ऐसा जानना। यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिश्र नामा भेद कह्या है ॥ ६५५ ॥

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ॥ ६५६ ॥

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्धाति।
श्रद्धाति असद्भावं उपदिष्टं वा अनुपदिष्टं ॥ ६५६ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टान् आप्तागमपदार्थान् न श्रद्धाति। उपदिष्टान् अनुपदिष्टांश्च असद्भावान् अनाप्तागमपदार्थान् श्रद्धाति ॥ ६५६ ॥ अथ सम्यक्त्वमार्गणायां जीवसंख्यां गाथात्रयेणाह—

स० चं०—मिथ्यादृष्टी जीव जिन करि उपदेशित ऐसे आप्त आगम पदार्थ तिनिका श्रद्धान करै नाहीं बहुरि कुदेवादिककरि उपदेश्या वा अनुपदेश्या झूठा आप्त आगम पदार्थ तिनिका श्रद्धान करै है यहु सम्यक्त्व मार्गणा का मिथ्यात्व नामा भेद कह्या। ऐसैं सम्यक्त्व मार्गणाके छह भेद कहे। उपशम क्षायिक सम्यक्त्वका विशेष विधान लब्धिसार नामा ग्रंथविषैं कह्या है ताके अनुसारि इहां भाषा टीकाविषैं आगैं किछू लिखैंगे तहां जानना ॥ ६५६ ॥ आगैं सम्यक्त्व मार्गणाविषैं जीवनिकी संख्या तीनि गाथानिकरि कहै हैं—

वासपुधत्ते खइया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे।
तो संखपल्लठिदिये केवदिया एवमणुपादे ॥ ५७ ॥

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः संख्येया यदि भवंति सौधर्मे।
तर्हि संख्यपल्यस्थितिके कति एवमनुपाते ॥ ६५७ ॥

जी० प्र०—यदि वर्षपृथक्त्वे क्षायिकसम्यग्दृष्टयः संख्याताः सौधर्मद्वये उत्पद्यंते तर्हि संख्यातपल्यस्थितिके कति इत्यनुपाते त्रैराशिके कृते प्र- वर्ष ७ फ क्षा = १ । इ प १ लब्धाः ॥ ६५७ ॥
८

स० चं०—क्षायिक सम्यक्त्वी वहुत कल्पवासी देव हो हैं । वहुरि कल्पवासी देव वहुत सौधर्म ईशान विषैं है तातैं कहैं हैं—जो पृथक्त्व वर्षविषैं क्षायिक सम्यक्त्वी सौधर्म ईशानविषै संख्यात प्रमाण उपजै तौ संख्यात पल्यकी स्थितिविषैं कितने उपजैं ? ऐसा त्रैराशिक करना । इहां प्रमाण राशि पृथक्त्व वर्ष प्रमाण, काल फलराशि संख्यात जीव इच्छा राशि संख्यात पल्य प्रमाण, कालसो फलतै इच्छाकौं गुणें प्रमाणका भाग दीएं जो लब्धि राशि भया सो कहैं हैं ॥ ६५७ ॥

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदमुवसमया ।
आवलिअसंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ॥ ५८ ॥

संख्यावलिहितपल्याः क्षायिकास्ततश्च वेदमुपशमकाः ।
आवल्यसंख्यगुणिता असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ॥ ६५८ ॥

जी० प्र०—संख्यातावलिभक्तपल्यमात्रकाः क्षायिकसम्यग्दृष्टयो भवंति प । तेभ्यः वेदकोपशमसम्यग्दृष्टयः क्रमेण आवल्यसंख्यातगुणितासं-
२ १
ख्यतगुणहीना भवंति । वे = प ∂ उ = प ॥ ६५८ ॥
२ १ २१।∂

स० चं०—सो लब्ध राशिका प्रमाण संख्यात आवलीका भाग पल्यकौं दीएं जो प्रमाण होइ तितना आया सो तितने ही क्षायिक सम्यग्दृष्टी जानने । वहुरि इनिकौं आवलीका असंख्यातवां भागकरि गुणै जो प्रमाण होइ तितने वेदक सम्यग्दृष्टी जानने । वहुरि क्षायिक जीवांका परिमाणहीतैं असंख्यात गुणा घाटि उपशम सम्यग्दृष्टी जीव जानने ॥ ६५८ ॥

पल्लासंखेज्जदिमा सासणमिच्छा य संखगुणिदा हु।
मिस्सा तेहिं विहीणो संसारी वामपरिमाणं॥ ५९॥

पल्यासंख्याताः सासनमिथ्याश्च सं० गुणिता हि।
मिश्रास्तैर्विहीनः संसारी वामपरिमाणं॥ ६५९॥

जी० प्र०—पल्यासंख्यातैकभागमात्राः सासादनमिथ्यारुचयः प / a a ४ तेभ्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्यातगुणाः प / a a स्फुटं एतद्राशिपं त्रकोन-संसारराशिर्वामपरिमाणं भवति वा १३— नवपदार्थप्रमाणमुच्यते—

जीवाः १६ अजीवेषु पुद्गलाः सर्वजीवराशितोऽनंतगुणाः १६ ख। धर्मद्रव्यमेकं। अधर्मद्रव्यमेकं। आकाशद्रव्यमेकं। कालद्रव्यं जगच्छ्रेणिघनमात्रं। ≡। / ३ ≡ / १ / १—

एवमजीवपदार्थौ मिलित्वा साधिकपुद्गलराशिमात्रः १६ ख। पुण्यजीवा असंयतदेशसंयतान्मेलयित्वा तत्र प्रमत्तादीनां संख्याते युते एतावंतः प / a a ४ / a a a ४

अजीवपुण्यं द्व्यर्धगुणहानिसंख्यातैकभागः स a १२— १ / १ पापजीवाः साधिकपुण्यजीवसिद्धराशिविहीनसंसारिराशिः १३—। अजीवपापं द्व्यर्धगुण-हानिसंख्यातबहुभागः स a १२— १ / १ (१ a) आस्रवपदार्थः समयप्रबद्धः स a। संवरद्रव्यं समयप्रबद्धः स a। निर्जराद्रव्यमेतावत्— स a १२—। ६४ / ऊ प ८५ / a

बंधद्रव्यं समयप्रबद्धः स a। मोक्षद्रव्यं किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिः स a १२— ॥ ६५९॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु सम्यक्त्वमार्गणाप्ररूपणानाम सप्तदशोऽधिकारः॥ १७॥

स० चं०—पल्यके असंख्यातवे भाग प्रमाण सासादन तेई मिथ्याती सामान्य हैं तिनिका परिमाण है तिनतैं संख्यात गुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टी जीव है। बहुरि इन पंच सम्यक्त्व संयुक्त जीवानिका मिलाया हूवा परिमाणकौं संसारी राशिमें घटाएं जो प्रमाण अवशेष रहे तितने वाम कहिए मिथ्यादृष्टी तिनिका परिमाण है ॥ ६५१ ॥ अव इहां नव पदार्थनिका परिमाण कहिए है—

जीवद्रव्य तौ द्विरूपवर्गधाराविषैं कहे अपने प्रमाण लीए हैं। बहुरि अजीवविषैं पुद्गल द्रव्य जीवराशितैं अनंत गुणे है। धर्मद्रव्य एक है। अधर्मद्रव्य एक है। आकाशद्रव्य एक है। कालद्रव्य जगच्छ्रेणीका घन जो लोक तीहिं प्रमाण है सो पुद्गलका परिमाणविषैं धर्म अधर्म आकाशका परिमाण मिलाएं अजीव पदार्थका परिमाण हो है। बहुरि असंयत अर देश संयतका परिमाण मिलाएं तिनविषैं प्रमत्तादिकानिका प्रमाण संख्यात मिलाएं जो प्रमाण होइ तितने पुण्यजीव हैं। बहुरि किंचिदून द्व्यर्द्धगुण हानिकरि गुणित समय प्रवद्ध प्रमाण कर्म परमाणूनिकी सत्ता है ताके संख्यातवे भागिमात्र शुभ प्रकृतिरूप अजीव पुण्य है। बहुरि मिश्र अपेक्षा किछू अधिक जो पुण्य जीवनिका प्रमाण ताकौं संसारी राशिमें घटाएं जो प्रमाण रहे तितने पाप जीव हैं। बहुरि द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समयप्रवद्धकौं संख्यातका भाग दीजिए तहां एक भाग विना अवशेष भाग प्रमाण अशुभ प्रकृतिरूप अजीव पाप हैं। बहुरि आस्रव पदार्थ समयप्रवद्ध प्रमाण है। संवर पदार्थ समय प्रवद्ध प्रमाण है। निर्जराद्रव्य गुण श्रेणी निर्जराविषैं उत्कृष्टपनैं जितनी निर्जरा होइ तीहि प्रमाण है। वंध पदार्थ समयप्रवद्ध प्रमाण है। मोक्षद्रव्य द्व्यर्ध गुणहानि गुणित समय प्रवद्ध प्रमाण है ॥ ५५१ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके सम्यग्ज्ञानचंद्रिका अनुसारि नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनविषैं सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणानाम सतरहवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १७ ॥

अथ संज्ञिमार्गणा । १८ ।

जी० प्र०—

निरस्तारिरजोविघ्नो व्यक्तानंतचतुष्टयः ।
शतेंद्रपूज्यपादाब्जः श्रियं दद्यादरो जिनः ॥ १८ ॥

अथ संज्ञिमार्गणामाह—

स० चं०—

अरि रजविघ्न बिनाशकर अमित चतुष्टय थान ।
शत इंद्रनिकरि पूज्य पद द्यो श्री अर भगवान ॥ १८ ॥

आगें संज्ञी मार्गणा कहैं हैं ॥ ६६० ॥

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदिअवबोहो ॥ ६० ॥

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जबोधनं संज्ञा ।
सा यस्य स तु संज्ञी इतरः शेषेंद्रियावबोधः ॥ ६६० ॥

जी० प्र०—नोइंद्रियं मनः तदावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधनं वा संज्ञा सा विद्यते यस्य स संज्ञी इतरः असंज्ञी शेषेंद्रियज्ञानः ॥ ६६० ॥

नो इंद्रिय जो मन ताके आवरणका जो क्षयोपशम तींहिकरि उत्पन्न भया जो बोधन ज्ञान ताकौं संज्ञा कहिए सो संज्ञा जाकैं पाइए ताकौं संज्ञी कहिए है। मन ज्ञानकरि रहित अवशेष यथासंभव इंद्रियनिका ज्ञानकरि संयुक्त जो जीव सो असंज्ञी है ॥ ६६० ॥

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंवेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी दु ॥ ६१ ॥

शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही मनोवलंबेन ।
यो जीवः स सञ्ज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ॥ ६६१ ॥

जी० प्र०—हिताहितविधिनिषेधात्मिका शिक्षा । करचरणचालनादिरूपा किया । चर्मपुत्रिकादिनोपदिश्यम नवधविधानादिरूपदेशः । श्लोकादिपाठ आलापः तद्ग्राही मनोवलंबेन यो मनुष्यः उक्षगजराजकीरादिजीवः स संज्ञी नाम । तद्विपरीतलक्षणः तु पुनः असंज्ञीनाम ॥ ६६१ ॥

स० चं—हित अहितका करने त्यजनेरूप शिक्षा, हाथ पगका इच्छाकरि चलावने आदिरूप क्रिया, चामठी इत्यादिकरि उपदेश्या वध विधानादिक सो उपदेश, श्लोकादिकका पाठ सो आलाप इनिका ग्रहण करणहारा जो मन ताकों अवलंबनकरि क्रमतैं मनुष्य वा वलध वा हाथी वा सूवा इत्यादि जीव सो संज्ञी नाम हैं। वहुरि इस लक्षणतैं उलटा लक्षणका जो जीव सो असंज्ञी जानना ॥ ६६१ ॥

मींमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो ॥ ६६२ ॥

मीमांसति यः पूर्वं कार्यमकार्यं च तत्त्वमितरच्च ।
शिक्षते नाम्ना एति च समना अमनाश्च विपरीतः ॥ ६६२ ॥

जी० प्र०—यः पूर्वं कार्यमकार्यं च मीमांसति । तत्त्वमितरच्च शिक्षते । नाम्ना आहूत आयाति स जीवः समनाः समनस्को भवति । तद्विपरीतलक्षणः अमनाः अमनस्को भवति ॥ ६६२ ॥ अत्र जीवसंख्यामाह—

स० चं—जो पहिलै कार्य अकार्यकौं विचारै तत्त्व अतत्त्वकौं सीखै, नामकरि बुलाया हूवा आवै, सो जीव मनसहित समनस्क संज्ञी जानना । इस लक्षणतैं उलटा लक्षणकौं जो धरै होइ सो जीव मन रहित अमनस्क असंज्ञी जानना ॥ ६६२ ॥ इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं ॥

देवेहिं सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।

तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ॥ ६३ ॥

देवैः सातिरेको राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणं ।
तेनोनः संसारी सर्वेषामसंज्ञिजीवानां ॥ ६६३ ॥

जी० प्र०—चतुर्निकायामरराशिः साधिकः संज्ञिप्रमाणं भवति = ४ । ६५ = तेनोनः सर्वसंसारिराशिः सर्वासंज्ञिपरिमाणं भवति १३— ॥ ६६३ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु संज्ञिमार्गणाप्ररूपणा नाम अष्टादशोऽधिकारः ॥ १८ ॥

स० चं०—च्यारि प्रकारके देवनिका जो प्रमाण तिनतैं किछू अधिक संज्ञीजीवनिका प्रमाण है। संज्ञी जीवनिविषैं देव बहुत हैं तिनिविषैं नारक मनुष्य पंचेंद्री सैनी तिर्यंच मिलाए संज्ञी जीवनिका प्रमाण हो है। इस प्रमाणकौं संसारी जीवनिका प्रमाणमें घटाएं अवशेष सर्व असंज्ञी जीवनिका प्रमाण हो है ॥ ६६३ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नाम भाषा टीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं संज्ञी मार्गणा प्ररूपणा नामा अठारह्वां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १८ ॥

अथ आहारमार्गणा ॥ १९ ॥

जी० प्र०— मल्लिफुल्लवदामोदो मल्लो मोहारिमर्दने ।
वहिरंतःश्रियोपेतो मल्लिः शल्यहरोऽस्तु नः ॥ १९ ॥

अथाहारमार्गणामाह—

स० चं०— मल्लिकुसुम समगंधजुत मोह शत्रुहर मल्ल ।
वहिरंतर श्रीसहित जिन मल्लि हरहु मम शल्ल ॥ १९ ॥

आगै आहार मार्गणा कहैं हैं—

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम ॥ ६४ ॥

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानां ।
नोकर्मवर्गणानां ग्रहणमाहारकं नाम ॥ ६६४ ॥

जी० प्र०—औदारिकवैक्रियिकाहारकनामकर्मान्यतमोदयेन तच्छरीरवचनद्रव्यमनोयोग्यनोकर्मवर्गणानां ग्रहणं आहारो नाम ॥ ६६४ ॥

स० चं०—औदारिक वैक्रियिक आहारक इन तीन शरीर नामा नामकर्मविषैं किसीहीका उदयकरि जो तिस शरीररूप वा बचनरूप वा द्रव्य मनरूप होने योग्य जे नोकर्म वर्गणा तिनिका जो ग्रहण करना सो आहार ऐसा नाम है ॥ ६६४ ॥

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं तम्हा आहारयो भणियो ॥ ६५ ॥

आहारति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्गणाश्च ।
भाषामनसोर्नियतं तस्मादाहारको भणितः ॥ ६६५ ॥

जी० प्र०—औदारिकादित्रिशरीराणां उदयागतैकतमशरीरवर्गणाः भाषामनोवर्गणाश्च नियतजीवसमासे नियतकाले च नियतं यथा भवति तथा आहरति इत्याहरको भणितः ॥ ६६५ ॥

स० चं—औदारिकादिक शरीरनिविषैं जो उदय आया कोई शरीर तीहिरूप आहार वर्गणा बहुरि भाषावर्गणा बहुरि मनोवर्गणा इनवर्गणानिकौं यथायोग्य जीवसामासनिविषैं यथायोग्य कालविषैं यथायोग्यपनैं नियमरूप आहाराति कहिए ग्रहण करै सो आहार कह्या है ॥ ६६५ ॥

विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ॥ ६६ ॥

विग्रहगतिमापन्नाः केवलिनः समुद्घाता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्च अनाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥ ६६६ ॥

जी० प्र०—विग्रहगत्याश्रितचतुर्गतिजीवाः प्रतरलोकपूरणसमुद्घातपरिणतसयोगिजिनाः अयोगिजिनाः सिद्धाश्च अनाहारा भवंति। शेषजीवाः सर्वेऽपि आहारका एव भवंति ॥ ६६६ ॥ समुद्घातः कतिधा ? इति चेदाह—

स० चं०—विग्रहगतिकौं जे प्राप्त भए ऐसे च्यार्यो गतिवाले जीव बहुरि प्रतर अर लोकपूरणरूप केवल समुद्घातकौं प्राप्त भए ऐसे सयोगी जिन बहुरि सर्व अयोगी जिन बहुरि सर्व सिद्ध भगवान ए सर्व अनाहारक हैं अवशेष सर्व जीव आहारक हो हैं ॥ ६६६ ॥ सो समुद्घात कै प्रकार है ? सो कहैं हैं—

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।

वेदनाकषायवैगूर्विकाश्च मारणांतिकः समुदुघातः ।
तेजआहारः षष्ठः सप्तमः केवलिनां तु ॥ ६६७ ॥

जी० प्र०—समुद्घातः वेदनाकषायवैगूर्विकमारणांतिकतैजसाहारककेवलिसमुद्घातभेदात् सप्तधा भवति ॥ ६६७ ॥ स च किंरूपः ? इति चेदाह—

स० चं०—वेदना कषाय वैक्रियिक मारणांतिक तैजस छठा आहारक सातवां केवल ए सात समुद्घात जानने। इनिका स्वरूप लेश्या मार्गणाविषै क्षेत्राधिकारमैं कह्या था सो जानना ॥ ६६७ ॥ समुद्घातका स्वरूप कहा सो कहैं हैं ॥

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ॥ ६८ ॥

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य ।
निर्गमनं देहाद्भवति समुद्घातनाम तु ॥ ६६८ ॥

जी० प्र०—मूलशरीरमत्यक्त्वा कार्मणतैजसरूपोत्तरदेहयुक्तस्य जीवप्रदेशप्रचयस्य शरीराद्बहिर्निर्गमनं तत् समुद्घातो नाम भवति ॥ ६६८ ॥

स० चं०—मूल शरीरकौ तौ छोड़ै नाहीं बहुरि कार्माण तैजसरूप उत्तर शरीर सहित जीवके प्रदेश समूहका मूल शरीरतैं बाह्य निकसना सो समुद्घात ऐसा नाम जानना ॥ ६६८ ॥

आहारमारणंतियदुगंपि णियमेण एगदिसिगं तु ।
दसदिसिगदा हु सेसा पंच समुग्घादया होंति ॥ ६९ ॥

आहारमारणांतिकद्विकमपि नियमेन एकदिशिकं तु ।
दशदिशि गताहि शेषाः पंच समुद्घातका भवंति ॥ ६६९ ॥

जी० प्र०—आहारमारणांतिकसमुद्घातद्वयमेव एकदिग्गतं भवति तु— पुनः शेषाः पंचसमुद्घाताः दशदिग्गता भवंति ॥ ६६९ ॥ आहारानाहारकालमाह—

स० चं०—आहारक अर मारणांतिक ए दोऊ समुद्घात तौ नियमकरि एक दिशाकौं ही प्राप्त हो हैं जातैं इनविषैं सूच्यंगुलका संख्यातवां भाग प्रमाण ही उचाई चौडाई होइ अर लंबाई बहुत होइ तातैं एक दिशाकौं प्राप्त कहिए बहुरि अवशेष पंच समुद्घात रहे ते दशो दिशाकौं प्राप्त हैं जातैं इनिविषैं यथायोग्य लंबाई चौडाई उचाई सर्व ही पाइए है ॥ ६६९ ॥ आगैं आहार अनाहारका काल कहैं हैं—

अंगुलअसंखभागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो ।
कम्मम्मि अणाहारो उक्कस्सं तिण्णि समया हु ॥ ६७० ॥

अंगुलासंख्यभागः कालः आहारकस्योत्कृष्टः ।
कार्मणे अनाहारः उत्कृष्टः त्रयः समया हि ॥ ६७० ॥

जी० प्र०—आहारकालः उत्कृष्टः सूच्यंगुलासंख्यातैकभागः २ । जघन्यः त्रिसमयोनोच्छ्वासाष्टादशैकभागः । अनाहारकालः कार्मणकाये
a
उत्कृष्टः त्रिसमयः । जघन्यः एकसमयः । खलु-स्फुटं ॥ ६७० ॥ अथात्र जीवसंख्यामाह—

स० चं०—आहारका काल उत्कृष्ट सूच्यंगुलके असंख्यातवे भागप्रमाण है । सूच्यंगुलका असंख्यातवां भागके जेते प्रदेश होंहि तितने समय प्रमाण आहारकका काल है । इहां प्रश्न जो मरण तौ आयुपूरी भएं पीछैं होइ ही होइ तहां अनाहार होइ इहां आहारका काल इतना कैसे कह्या ? ताका समाधान—जो मरण भए जिस जीवके वक्ररूप विग्रहगति न होइ सूधी एक समयरूप गति होइ ताकैं अनाहारकपणा न हो है आहारकपणाही रहै हैं तातैं

आहारकका पूर्वोक्तकाल उत्कृष्टपनैंकरि कह्या है। वहुरि आहारकका जघन्यकाल तीन समय घाटि सांसका अठारह्वां भाग जानना जातैं क्षुद्रभवविषैं विग्रह गतिके समय घटाए इतना काल हो है। वहुरि अनाहारकका काल कार्माण शरीरविषैं उत्कृष्ट तीन समय जघन्य एक समय जानना जातैं विग्रह गतिविषैं इतने काल पर्यंत ही नोकर्म वर्गणानिका ग्रहण न हो है ॥ ६७० ॥ आगैं इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिदसंसारी सव्वो आहारपरिमाणं ॥ ६७१ ॥

कार्मणकाययोगी भवति अनाहारकाणां परिमाणं ।
तद्विरहितसंसारी सर्वं आहारपरिमाणं ॥ ६७१ ॥

जी० प्र०—कार्माणकाययोगिजीवराशिः अनाहारकपरिमाणं भवति । तद्विरहितसंसारिराशिः आहारकपरिमाणं भवति । तद्यथा-योगकालः कार्मणस्य त्रिसमयाः । औदारिकमिश्रस्य अंतर्मुहूर्तः । औदारिकस्य ततःसंख्यातगुणः। मिलित्वा त्रिसमयाधिकसंख्यातगुणितांतर्मुहूर्तः । ३– १– २ ७ ४

"प्रक्षेपयोगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणकोभवेदिति प्र २ ७ ५ । फ १३– । इ स ३ । लब्धमनाहारकजीवप्रमाणं १३– ३ / ३– २ ७ । ५

पुनः ३— २ ७ । ५ । फ १३– । इ २ ७ । ५ । लब्धमाहारकजीवप्रमाणं १३– । २ ७ । ५ / ३– २ ७ । ५ वैक्रिकाहारकयोर्यथायोग्यं ज्ञातव्यं ॥ ६७१ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु आहारमार्गणाप्ररूपणानामैकान्नविंशोऽधिकारः ॥ २० ॥

स० चं—कार्माण काययोगवाले जीवनिका जो प्रमाण योगमार्गणाविषैं कह्या सोई अनाहारक जीवनिका प्रमाण जानना। इसकौं संसारी जीवनिका प्रमाणमें घटाएं अवशेष रहै तितना आहारक जीवनिका प्रमाण जानना सोई कहैं हैं—प्रथम योगनिका काल कहिए है—कार्माणका तौ तीन समय, औदारिक मिश्रका अंतर्मुहुर्त प्रमाण, औदारिकका तीहिस्यों संख्यात गुणा काल, तहां सर्वकाल मिलाएं तीन समय अधिक संख्यात अंतर्मुहुर्त प्रमाण काल भया। याका किंचित् ऊन संसारी राशिका भाग दीएं जो प्रमाण आवै ताकौं तीनकरि गुणें जो प्रमाण आवै तितने अनाहारक जीव है अवशेष सर्व संसारी आहारक जीव हैं। वैक्रियिक आहारकवाले थोरे हैं तिनकी मुख्यता नाहीं है। इहां—

प्रक्षेप योगोद्धृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति, ऐसा यह करणसूत्र जानना। याका अर्थ प्रक्षेपकौं मिलायकरि मिश्र पिंडका भाग देइ जो प्रमाण होइ ताकौं प्रक्षेपक करि गुणें अपना अपना प्रमाण होइ जैसैं कोई एक हजार प्रमाण वस्तु है तातैं किसीका पंचवट है किसीका सात वट है, किसीका आठ वट है सबकौं मिलाए प्रक्षेपकका प्रमाण वीस भए तिस वीसका भाग हजारकौं दीएं पचास पाए तिनकौं पंचकरि गुणें अढाईसै भए सो पंच वट वालेकैं आए। सातकरि गुणें साढा तीनसौ भए सो सात वट वालेकैं आए। आठकरि गुणें च्यारिसै भए सो आठ वट वालेकै आए। ऐसैं मिश्रक व्यवहार विषै अन्यत्र भी जानना ॥ ६७१ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचन्द्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्व प्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञान चंद्रिका नामा भाषा टीकाविषै जीवकांडविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं आहार मार्गणा प्ररूपणा नाम उगणीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ १९ ॥

अथ उपयोगाधिकार ॥ २० ॥

जी० प्र०—

सुव्रतः सुव्रतैः सेव्यः सुव्रतः सुव्रताय सः ।
मासाईत्यपदो दद्यात् स्वकीयां सुव्रतश्रियं ॥ २१ ॥

अथोपयोगाधिकारमाह—

स० चं—

सुव्रत पावनकों भजौं जाहि भक्त व्रतवंत ।
निज सुव्रत श्री देहु मम सो सुव्रत अरहंत ॥ २० ॥

आगैं उपयोगाधिकार कहैं हैं—

वत्थुणिमित्तं भावो जादो जीवस्स जो दु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो सायारो चेव णायारो ॥ ६७२ ॥

वस्तुनिमित्तं भावो जातो जीवस्य यस्तूपयोगः ।
स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चैवानाकारः ॥ ६७२ ॥

जी० प्र०—वसतः गुणपर्यायौ अस्मिन्निति वस्तु ज्ञेयपदार्थः- तद्ग्रहणाय जातः-प्रवृत्तः यो भावः-परिणामः क्रियाविशेषः जीवस्य स उपयोगो नाम । स च साकारोऽनाकारश्चेति द्वेधा ज्ञातव्यः ॥ ६७२ ॥ अथ साकारोपयोगोऽष्टधा इत्याह—

स० चं०—वसैं हैं एकीभाव रूप निवसै हैं गुण पर्याय जाविषैं सो वस्तु ज्ञेय पदार्थ जानना । ताके ग्रहणके अर्थि जो जीवका परिणाम विशेष रूप भाव प्रवर्तै सो उपयोग है । बहुरि सो उपयोग साकार अनाकार भेदतैं दोय प्रकार जानना ॥६७२॥ आगैं साकार उपयोग आठ प्रकार है अनाकार उपयोग च्यारि प्रकार है असा कहैं हैं—

णाणं पंचविहंपि य अण्णाणतियं च सागरुवजोगो ।

चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥ ६७३ ॥

ज्ञानं पंचविधमपि च अज्ञानत्रिकं च साकारोपयोगः ।
चतुर्दर्शनमनाकारः सर्वे तल्लक्षणा जीवाः ॥ ६७३ ॥

जी० प्र०—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि कुमतिकुश्रुतविभंगाज्ञानानि च साकारोपयोगः । चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनानि अनाकारोपयोगः । सर्वे जीवाः तज्ज्ञानदर्शनोपयोगलक्षणा एव तल्लक्षणस्याव्याप्त्यतिव्याप्त्यसंभवदोषाभावात् ॥ ६७३ ॥

स० चं०—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ए पंच प्रकार ज्ञान, बहुरि कुमति कुश्रुत विभंग ए तीन अज्ञान ए आठौं साकार उपयोग हैं। बहुरि चक्षु अचक्षु अवधि केवल ए च्यार्यो दर्शन अनाकार उपयोग हैं। सो सर्व ही जीव ज्ञान दर्शन रूप उपयोग लक्षणकौं धरैं हैं इस लक्षण विषैं, अतिव्याप्ति अव्याप्ति असंभवी दोष न संभवै हैं जहां लक्ष्य विषै वा अलक्ष्य विषैं लक्षण पाइए तहां अतिव्याप्ति दोष है जैसैं जीवका लक्षण अमूर्तीक कहिए तौ अमूर्तीकपना जीव विषैं भी है अर धर्मादिक विषैं भी है। बहुरि जहां लक्षणका एक देशविषैं लक्षण पाइए तहां अव्याप्ति दोष है जैसैं जीवका लक्षण रागादिक कहिए तौ रागादिक संसारी विषैं तौ संभवै परि सिद्ध जीवनिविषैं संभवै नाहीं बहुरि जो लक्ष्यतैं विरोधी लक्षण होइ सो असंभवी कहिए जैसैं जीवका लक्षण जड़त्व कहिए सो संभवै ही नाहीं ऐसैं त्रिदोष रहित उपयोग ही जीवका लक्षण जानना ॥ ६७३ ॥

मदिसुदओहिमणेहिंय सगसगविसये विसेसविण्णाणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो दु सायारो ॥ ६७४ ॥

मतिश्रुतावधिमनोभिश्च स्वकस्वकविषये विशेषविज्ञानं ।
अंतर्मुहूर्तकाल उपयोगः स तु साकारः ॥ ६७४ ॥

जी० प्र०—मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानैः स्वस्वविषये विशेषविज्ञानं अंतर्मुहूर्तकालं अर्थग्रहणव्यापारलक्षणं उपयोगः, स तु साकारोपयोगो नाम ६७४

स० चं०—मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञाननिकरि अपने अपने विषय विषैं जो विशेष ज्ञान होइ अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण पदार्थका ग्रहण रूप लक्षण धरैं जो उपयोग होइ सो साकार उपयोग है। इहां वस्तुका ग्रहण रूप जो चैतन्यका परिणमन ताका नाम उपयोग है। मुख्यपनै उपयोग है सो छद्मस्थकें एक वस्तुका ग्रहण रूप चैतन्यका परिणमन अंतर्मुहूर्त मात्र ही रहै है तातै अंतर्मुहूर्त ही कह्या है॥ ६७४॥

इंदियमणोहिणा वा अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो॥ ६७५॥

इंद्रियमनोऽवधिना वा अर्थे अविशेष्य यद्ग्रहणं।
अंतर्मुहूर्तकालः उपयोगः स अनाकारः॥ ६७५॥

जी० प्र०—चक्षुर्दर्शनेन वा शेषेंद्रियैर्मनसा च इत्यचक्षुर्दर्शनेन वा अवधिदर्शनेन वा यज्जीवाद्यर्थान् अविशेषित्वा निर्विकल्पेन ग्रहणं सोंतर्मुहूर्तकालः अनाकारोपयोगो नाम॥ ६७५॥ अथ ज्ञानोपयोगिनां जीवानां संख्यामाह—

स० चं०—नेत्र इंद्रियरूप चक्षुदर्शन वा अवशेष इंद्रिय अर मनरूप अचक्षु दर्शन वा अवधि दर्शन इनकरि जो जीवादि पदार्थनिका विशेष न करिकैं निर्विकल्पपनैं ग्रहण होइ सो अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण सामान्य अर्थका ग्रहण रूप निराकार उपयोग है। भावार्थ—वस्तु सामान्य विशेषात्मक है तहां सामान्यका ग्रहणकौं निराकार उपयोग कहिए विशेषका ग्रहणकौं साकार उपयोग कहिए जातैं सामान्यविषै वस्तुका आकार प्रतिभासै नाहीं विशेष विषैं आकार प्रतिभासै है॥ ६७५॥ आगैं इहां जीवनिकी संख्या कहैं हैं—

णाणुवजोगजुदाणं परिमाणं णाणमग्गणं व हवे।
दंसणुवजोगियाणं दंसणमग्गण व उत्तकमो॥ ६७६॥

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्गणावद्भवेत् ।
दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्गणावदुक्तक्रमः ॥ ६७६ ॥

जी० प्र०—ज्ञानोपयोगिप्रमाणं ज्ञानमार्गणावत् । दर्शनोपयोगिप्रमाणं दर्शनमार्गणावत् भवेत् तद्यथा—कुमतिज्ञानिनः कुश्रुतज्ञानिनश्च किंचि-
दूनसंसारिराशिः १३– विभंगज्ञानिनः = ൗ (१—, ।।।, ४६५ = ൗ) । मतिज्ञानिनः प (a) श्रुतज्ञानिनः प (a) अवधिज्ञानिनः प a (१ ൨, a a) मनःपर्ययज्ञानिनः ൗ केवलज्ञानिनः ൗ (३)

तिर्यग्विभंगज्ञानिनः – ६ प (a) मनुष्यविभंगज्ञानिनः ൗ नरकविभंगज्ञानिनः – २ – देवविभंगज्ञानिनः = ൗ (१—, ।।, ४ । ६५ = ൗ) । शक्तिचक्षुर्दर्शनिनः प्र–
वि । ति । च । पं । ४ । फ = (४, a) । इ च । पं । २ । इति त्रैराशिकलब्धमात्राः– = २ (४, a ४) = व्यक्तिचक्षुर्दर्शनिनः– प्र – ४ । फ = (ൗ, ।) इ २ (४, ५) इति त्रैराशिक-
लब्धमात्राः = २ (४, ५ ४) – अचक्षुर्दर्शनिनः १३– अवधिदर्शनिनः प a (१ ൨, a a) केवलिदर्शनिनः सि ३ ॥ ६७६ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ तत्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु उपयोगमार्गणा-
प्ररूपणा नाम विंशोऽधिकारः ॥ २० ॥

स० चं०—ज्ञानोपयोगी जीवनिका परिमाण ज्ञानमार्गणावत् है । बहुरि दर्शनोपयोगी जीवनिका परिमाण दर्शनमार्गणावत् है सो कुमतिज्ञानी कुश्रुतज्ञानी विभंगज्ञानी मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी

केवल ज्ञानी बहुरि तिर्यंच विभंग ज्ञानी मनुष्य विभंग ज्ञानी नारक विभंग ज्ञानी इनिका प्रमाण जैसें ज्ञानमार्गणा विषैं कह्या है तैसैं ही ज्ञानोपयोग विषैं प्रमाण जानना। किछू विशेष नाहीं। बहुरि शक्तिगत चक्षुर्दर्शनी व्यक्तगत चक्षुर्दर्शनी अचक्षु दर्शनी अवधि दर्शनी केवल दर्शनी इनिका प्रमाण जैसें दर्शन मार्गणाविषैं कह्या है तैसैं इहां निराकार उपयोग विषै प्रमाण जानना॥ किछू विशेष नाहीं॥ ६७६॥

इति श्राचार्य श्री नेमिचंद्र विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंच संग्रह ग्रन्थकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीकाके अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीसप्ररूपणा तिनविषैं उपयोगमार्गणा प्ररूपणा नामा बीसवां अधिकार सपूर्ण भया॥ २०॥

जी० प्र०—

नमिर्नमत्सुराधीशोऽनंतज्ञानादिवैभवः।
हतघातिव्रजो जीयाद्याभः शाश्वतं पदं॥

अथोत्तरमविधेयं ज्ञापयति—

स० चं०—

विभव अमित ज्ञानादि जुत सुरपति नुत नमिनाथ।
जय मम ध्रुवपद देहु जिहि हत्यो घातिया साथ॥ २१॥

आगैं बीस प्ररूपणाका मूल अर्थ कहि अब उत्तर अर्थकौं कहैं हैं—

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु पत्तेयं॥ ६७७॥

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणोपयोगौ।
योग्याः प्ररूपितव्या ओघादेशयोः प्रत्येकं॥ ६७७॥

जी० प्र०—उक्तविंशतिप्ररूपणासु गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्रत्येकं गुणस्थानानि जीवसमासाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाः, मार्गणाः उपयोगाश्च यथायोग्यं प्ररूपयितव्याः ॥ ६७७ ॥ तद्यथा—

स० चं०—कहीं जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं गुणस्थान अर मार्गणास्थान इनविषैं गुणस्थान अर जीव समास अर पर्याप्ति अर प्राण अर संज्ञा अर चौदह मार्गणा अर उपयोग ए वीस प्ररूपणा जैसैं संभवै तैसै निरूपण करनी ॥ ६७७ ॥ सोई कहैं है—

चउ पण चोद्दस चउरो णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥ ६७८ ॥

चत्वारि पंच चतुर्दश चत्वारि निरयादिषु चतुर्दश तु पंचाक्षे ।
त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यात्वं गुणस्थानं ॥ ६७८ ॥

जी० प्र०—नारकादिगतिषु क्रमेण गुणस्थानानि मिथ्यादृष्ट्यादीनि चत्वारि पंच चतुर्दश चत्वारि भवंति । इंद्रियमार्गणायां पंचेंद्रिये तु पुनः कायमार्गणायां त्रसकाये च, चतुर्दश शेषेंद्रियकायेषु एकं मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं । जीवसमासास्तु नरगतौ संज्ञिपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्तौ द्वौ । तिर्यग्गतौ चतुर्दश । मनुष्यगतौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । देवगतौ नरकगतिवद्द्वौ । इंद्रियमार्गणायां एकेंद्रिये बादरसूक्ष्मैकेंद्रियौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । द्वींद्रिये त्रींद्रिये चतुरिंद्रिये च तत्तत्पर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ द्वौ । पंचेंद्रिये संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः । कायमार्गणायां पृथ्व्यादिपंचसु एकेंद्रियवत् चत्वारः चत्वारः, त्रसे शेषा दश ॥ ६७८ ॥

स. चं.—गति मार्गणाविषैं क्रमतैं गुणस्थान मिथ्यादृष्ट्यादि नरकविषैं च्यारि, तिर्यंचविषैं पांच, मनुष्य विषैं चौदह, देवविषैं च्यारि जानने । बहुरि इंद्रिय मार्गणाविषैं अर काय मार्गणाविषैं पंचेंद्रियमैं अर त्रसकायमैं तौ चौदह गुणस्थान हैं अर अवशेष इंद्रिय अर कायमैं एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान है। बहुरि जीव समास नरकगति अर देवगति विषैं सैनी पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त ए दोय हैं अर तिर्यंचविषैं सर्व चौदह ही है । मनुष्यविषैं सैनी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय है । इहां नरक देव गतिविषैं लब्धि अपर्याप्तक नाहीं तातैं निर्वृत्ति अपर्याप्त कह्या । मनुष्यविषैं निर्वृत्ति अ-

पर्याप्त लब्धि अपर्याप्त दोऊ पाइए तातैं सामान्यपनैं अपर्याप्त ही कह्या है । बहुरि इंद्रिय मार्गणाविषै एकेंद्रियमैं वादर सूक्ष्म एकेंद्री सो पर्याप्त अर अपर्याप्त ऐसैं च्यारि जीव समास हैं। वेंद्री तेईंद्री चौइंद्रीमैं अपना अपना पर्याप्त अपर्याप्त रूप दोय जीव समास हैं। पचेंद्रियमैं सैनी असैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए च्यारि जीव समास हैं। बहुरि कायमार्गणाविषै पृथ्वी आदि पंच स्थावरनिमैं एकेंद्रियवत् च्यारि च्यारि जीव समास हैं। त्रसविषै अवशेष दश जीव समास हैं ॥ ६७८ ॥

मज्झिमचउमणवयणे सण्णिप्पहुदिं दु जाव खीणोत्ति।
सेसाणं जोगित्ति य अणुभयवयणं तु वियलादो ॥ ६७९ ॥

मध्यमचतुर्मनवचनयोः संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् क्षीण इति ।
शेषाणां योगीति च अनुभयवचनं तु विकलतः ॥ ६७९ ॥

जी॰ प्र॰—मध्यमेषु असत्योभयमनोवचनयोगेषु चतुर्षु संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायांतानि द्वादश । तु-पुनः सत्यानुभयमनोयोगयोः सत्यवचनयोगे च संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगांतानि त्रयोदश गुणस्थानानि भवंति । जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः । अनुभयवचनयोगे तु गुणस्थानानि विकलत्रयमिथ्यादृष्ट्यादीनि त्रयोदश । जीवसमासाः द्वित्रिचतुरिंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ताः पंच ॥ ६७९ ॥

स॰ चं॰—मध्यम जो असत्य अर उभय मन वा बचन इनि च्यारि योगनिविषैं सैनी मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थान हैं। बहुरि सत्य अर अनुभय मनो योगविषैं अर सत्य बचन योगविषैं सैनी पर्याप्त मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थान हैं। बहुरि इनि सबनिविषैं जीव समास एक सैनी पर्याप्त है। बहुरि अ भय बचन योगविषैं विकलत्रय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ तेरह गुणस्थान हैं बहुरि वेइंद्री तेइंद्री चौइंद्री सैनी पचेंद्री असैनी पंचेंद्री इनका पर्याप्तरूप पांच जीव समास हैं ॥ ६७९ ॥

ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोंगोत्ति ।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ६८० ॥

औरालं पर्याप्ते स्थावरकायादि यावत् योगीति ।
तन्मिश्रमपर्याप्ते चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ॥ ६८० ॥

जी० प्र०—औदारिकाययोगः एकेंद्रियस्थावरकायपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतत्रयोदशगुणस्थानेषु भवति । तन्मिश्रयोगः अपर्याप्तचतुर्गुणस्थाने ष्वेव नियमेन ॥ ६८० ॥ तेषु केषु ? इति चेदाह—

स० चं—औदारिककाय योग, एकेंद्री स्थावर पर्याप्त मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ सयोगी पर्यंत तेरह गुणस्थाननिविषैं है । बहुरि औदारिक मिश्रकाययोग अपर्याप्त च्यारि गुणस्थाननिविषैं ही हैं नियमकरि ॥६८०॥ किनविषैं ? सो कहैं हैं—

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णरतिरियेवि य दोण्णवि होंतित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ६८१ ॥

मिथ्यात्वे सासनसम्यक्त्वे पुंवेदायते कपाटयोगिनि ।
नरतिरश्चोरपि च द्वावपि भवंतीति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६८१ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टौ सासादने पुंवेदोदयासंयते कपाटसमुद्घातसयोगे चैतेषु अपर्याप्तचतुर्गुणस्थानेषु स औदारिकमिश्रयोगः स्यादित्यर्थः तौ योगौ द्वावपि नरतिरश्चोरेवेति सर्वज्ञैरुक्तं । जीवसमासाः औदारिकयोगे पर्याप्ताः सप्त । तेन मिश्रयोगे अपर्याप्ताः सप्त । सयोगस्य चैकः एवमष्टौ ॥६८१॥

स० च—मिथ्यादृष्टी सासादन पुरुष वेदका उदयकरि संयुक्त असंयत, कपाट समुद्घात सहित सयोगी इनि अपर्याप्तरूप च्यारि गुणस्थाननिविषैं सो औदारिक मिश्रयोग पाइए है । बहुरि औदारिक वा औदारिक मिश्र ए दोऊ योग मनुष्य अर तिर्यचनिहीकैं हैं ऐसा जिनदेवने कह्या है । बहुरि औदारिकविषैं तौ पर्याप्त स[illegible] जीवसमास

हैं अर औदारिक मिश्रविषैं अपर्याप्त सात जीवसमास अर सयोगीकैं एक पर्याप्त जीव समास ऐसै आठ जीवसमास हैं ॥ ६८१ ॥

वेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुरणिरयचउट्ठाणे मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु ॥६८२॥

वैगूर्वं पर्याप्ते इतरे खलु भवति तस्य मिश्रं तु ।
सुरनिरयचतुःस्थाने मिश्रे नहि मिश्रयोगो हि ॥ ६८२ ॥

जी० प्र०---वैक्रियिककाययोगः पर्याप्तदेवनारकमिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानेषु भवति खलु स्फुटं । तु--पुनः तन्मिश्रयोगः मिश्रगुणस्थाने तु न हीति कारणात् देवनारकमिथ्यादृष्टिमासादनासंयतेष्वेव भवति । जीवसमासः तयोः क्रमेण संज्ञिपर्याप्तः तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तः एकैकः ॥ ६८२ ॥

स० चं०---वैक्रियिक योग पर्याप्त देव नारकनिक मिथ्यादृष्टीतैं लगाय च्यारि गुणस्थाननिविषैं हैं। बहुरि वैक्रियिक मिश्रयोग मिश्रगुणस्थानविषैं नाहीं तातैं देवनारकी संबंधी मिथ्यादृष्टी सासादन असंयत इनहीं विषैं है । बहुरि जीव समास वैक्रियिकविषैं एक सैनी पर्याप्त है अर वैक्रियिक मिश्रविषैं एक सैनी निर्वृत्ति अपर्याप्त है ॥६८२॥

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु ।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो ॥ ६८३ ॥

आहारः पर्याप्ते इतरे खलु भवति तस्य मिश्रस्तु ।
अंतर्मुहूर्तकाले षष्ठगुणे भवति आहारः ॥ ६८३ ॥

जी० प्र०---आहारककाययोगः संज्ञिपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने जघन्योत्कृष्टेन अंतर्मुहूर्तकाले एव भवति । तन्मिश्रयोगः इतरस्मिन् संज्ञ्यपर्याप्तषष्ठगुणस्थाने खलु जघन्योत्कृष्टेन तावत्काले एव भवति । तेन तयोर्योगयोस्तदेव गुणस्थानं जीवसमासः स एव एकैकः ॥ ६८३ ॥

स० चं–आहारक योग सैनी पर्याप्तक छट्ठा गुणस्थानविषैं जघन्यपनैं वा उत्कृष्टपनैं अंतर्मुहूर्त कालविषै ही है। बहुरि आहारक मिश्रयोग है सो इतर जो संज्ञी अपर्याप्तरूप छट्ठा गुणस्थानविषैं जघन्यपनैं वा उत्कृष्टपनैं अंतर्मुहूर्त कालविषैं ही हो है तातैं तिन दोऊनिकैं गुणस्थान एक प्रमत्त अर जीवसमास सोई एक एक जानना॥६८३॥

ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगादिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ॥ ६८४ ॥

औरालिकमिश्रो वा चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्मणं ।
चतुर्गतिविग्रहकाले योगिनश्च प्रतरलोकपूरणके ॥ ६८४ ॥

जी० प्र०—औदारिकमिश्रवच्चतुर्गुणस्थानेषु कार्मणकाययोगः स्यात् स चतुर्गतिविग्रहकाले सयोगस्य प्रतरलोकपूरणकाले च भवति तेन तत्र गुणस्थानानि जीवसमासाश्च तद्वत् चत्वारि अष्टौ भवंति ॥ ६८४ ॥

स० चं–कार्माणयोग औदारिक मिश्रवत् च्यारि गुणस्थाननिविषै हैं सो कार्माणयोग च्यार्यो गति संबंधी विग्रहगतिविषैं वा सयोगीकैं प्रतरलोक पूरण कालविषैं पाइए है तातैं गुणस्थान च्यारि अर जीवसमास आठ औदारिक मिश्रवत् इहां जानने ॥ ६८४ ॥

थावरकायप्पहुदी संढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्स य पढमो भागोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥६८५॥

स्थावरकायप्रभृतिः षंढः शेषा असंज्ञ्यादयश्च ।
आनिवृत्तेश्च प्रथमो भागः इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६८५ ॥

जी० प्र०—वेदमार्गणायां षंढवेदः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागांतं भवति तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासा-

चतुर्दश शेषस्त्रीपुंवेदौ संज्ञ्यसंज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणस्वस्वसवेदभागपर्यंतं भवतः तेन तयोर्गुणस्थानानि नव नव । जीवसमासाः संज्ञ्यसंज्ञिनौ पर्याप्तापर्याप्ताविति चत्वारः इति जिनैरुक्तं ॥ ६८५ ॥

स० चं–वेदमार्गणाविषैं नपुंसकवेद है सो स्थावरकाय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ अनिवृत्तिकरणका पहिला सवेद भाग पर्यंत हो है तातैं गुणस्थान नव जीवसमास सर्व चौदह हैं। बहुरि शेष स्त्रीवेद अर पुरुषवेद सैनी असैनी पंचेंद्रिय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ अनिवृत्ति करणका अपना अपना सवेद भागपर्यंत है तातैं गुणस्थान नव जीवसमास सैनी असैनी पर्याप्त वा अपर्याप्तरूप च्यारि जिन देवनिकरि कहे हैं ॥ ६८५ ॥

थावरकायप्पहुदी अणियट्टीबितिचउत्थभागोत्ति ।
कोहतियं लोहो पुण सुहुमसरागोत्ति विण्णेयो ॥ ६८६ ॥

स्थावरकायप्रभृति अनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्थभाग इति ।
क्रोधत्रिकं लोभः पुनः सूक्ष्मसराग इति विज्ञेयः ॥ ६८६ ॥

जी० प्र०—कषायमार्गणायां क्रोधमानमायाः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यनिवृत्तिकरणद्वित्रिचतुर्भागांतं । लोभः पुनः सूक्ष्मसांपरायांतं । तेन क्रोधत्रये गुणस्थानानि नव लोभे दश ज्ञेयानि । जीवसमासाः सर्वत्र चतुर्दशैव ॥ ६८६ ॥

स० चं–कषाय मार्गणाविषैं स्थावरकाय मिथ्यादृष्टीतैं लगाइ क्रोध मान माया तौ क्रमतैं अनिवृत्ति करणका दूसरा तीसरा चौथा भागपर्यंत हैं अर लोभ सूक्ष्मसांपराय पर्यंत है तातैं क्रोध मान मायाविषैं गुणस्थान नव लोभविषैं दश अर जीवसमास सर्वत्र चौदह जानने ॥ ६८६ ॥

थावरकायप्पहुदी मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु ।
सण्णीपुण्णप्पहुदी सासणसम्मोत्ति णायव्वो ॥ ६८७ ॥

स्थावरकायप्रभृति मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु ।
संज्ञिपूर्णप्रभृति सासनसम्यगिति ज्ञातव्यः ॥ ६८७ ॥

जी० प्र०—ज्ञानमार्गणायां मतिश्रुताज्ञानद्वयं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनांतं ज्ञातव्यं तेन तत्र गुणस्थाने द्वे । जीवसमासाश्चतुर्दश । तु-पुनः विभंगज्ञानं संज्ञिपूर्णमिथ्यादृष्ट्यादिसासादनांतं तत्र गुणस्थाने द्वे । जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः ॥ ६८७ ॥

स० चं—ज्ञानमार्गणाविषैं कुमति कुश्रुत अज्ञान दोऊ स्थावरकाय मिथ्यादृष्टीनिं लगाइ सासादनपर्यंत हैं तातैं तहां गुणस्थान दोय अर जीवसमास चौदह हैं। बहुरि विभंगज्ञान संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टी आदि सासादन पर्यंत जानना तातैं गुणस्थान दोय अर जीवसमास एक सैनी पर्याप्त ही है ॥ ६८७ ॥

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो ।
खीणकसायं जाव दु केवलणाणं जिणे सिद्धे ॥ ६८८ ॥

सद्ज्ञानत्रिकमविरतसम्यगादि षष्ठकादिर्मनःपर्ययः ।
क्षीणकषायं यावत्तु केवलज्ञानं जिने सिद्धे ॥ ६८८ ॥

जी० प्र०—मत्यादिसम्यग्ज्ञानत्रयं असंयतादिक्षीणषायांतं तेन तत्र गुणस्थानानि नव । जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । मनःपर्ययज्ञानं षष्ठादिक्षीणकषायांतं तेन तत्र गुणस्थानानि सप्त जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एवैकः । केवलज्ञानं सयोगायोगयोः सिद्धे च तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तसयोगापर्याप्तौ द्वौ ॥ ६८८ ॥

स० चं—मति श्रुत अवधि ए तीन सम्यग्ज्ञान असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत हैं तातैं गुणस्थान नव अर जीवसमास सैनी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय जानने। बहुरि मनः पर्ययज्ञान छट्ठातैं क्षीणकषाय पर्यंत है तातैं गुणस्थान सात अर जीव समास एक सैनी पर्याप्त ही है। मनः पर्ययज्ञानीकैं आहारक ऋद्धि न होइ तातैं आहारक मिश्र अपेक्षा भी अपर्याप्त पना न संभवै है। बहुरि केवलज्ञान सयोगी अयोगी अर सिद्धविषैं हैं तातैं गुणस्थान दोय जीवसमास सैनी पर्याप्त अर सयोगीकी अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय जानने ॥ ६८८ ॥

अयदोत्ति हु अविरमणं देसे देसो पमत्तइदरे य ।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलोत्ति ॥ ६८९ ॥
सुहमो सुहमकसाये संते खीणे जिणे जहक्खादं ।
संजममग्गणभेदा सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ६९० ॥ जुम्मं ।

अयत इति अविरमणं देशे देशः प्रमत्तेतरस्मिन् च ।
परिहारः सामायिकश्छेदः षष्ठादिः स्थूल इति ॥ ६८९ ॥
सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये शांते क्षीणे जिने यथाख्यातं ।
संयममार्गणाभेदाः सिद्धे न सतीति निर्दिष्टं ॥ ६९० ॥

जी० प्र०—संयममार्गणायां अविरमणं मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतचतुर्गुणस्थानेषु तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । देशसंयमः देशसंयतगुणस्थाने तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एव । सामायिकछेदोपस्थापनौ प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणांतचतुर्गुणस्थानेषु । तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्ताहारकपर्याप्तौ द्वौ । परिहारविशुद्धिसंयमः प्रमत्ताप्रमत्तयोरेव । तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्त एव तेन सह आहारकर्द्धेरेकत्वासंभवात् । सूक्ष्मसांपरायसंयमः सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने तत्र जीवसमासः संज्ञिपर्याप्तः । यथाख्यातचारित्रं उपशांतकषायादिचतुर्गुणस्थानेषु तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तसमुद्घातकेवल्यपर्याप्तौ द्वौ । संयममार्गणाभेदाः सिद्धे न संतीति परमागमे निर्दिष्टं ॥ ६८९–६९० ॥

स० चं०—संयम मार्गणाविषैं असंयम है सो मिथ्यादृष्ट्यादिक असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं है । तहां जीव समास चौदह हैं । बहुरि देश संयम एक संयत गुणस्थानविषैं ही है तहां जीव समास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि सामायिक छेदोपस्थापना संयम प्रमत्तादिक अनिवृत्ति करण पर्यंत च्यारि गुण स्थाननिविषैं है तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त अर आहारक मिश्र अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय है । बहुरि परिहार विशुद्धि संयम प्रमत्त अप्रमत्त दोय गुण स्थाननिविषैं ही है तहां जीव समास एक सैनी पर्याप्त हैं जातैं इस सहित आहारक होइ नाहीं ।

बहुरि सूक्ष्मसांपराय संयम सूक्ष्म सांपराय गुणस्थानविषैं ही है तहां जीव समास एक सैनी पर्याप्त है । बहुरि यथाख्यात संयम उपशांत कषायादिक च्यारि गुणस्थाननिविषैं हैं तहां जीव समास सैनी पर्याप्त अर समुद्घात केवली की अपेक्षा अपर्याप्त ए दोय हैं । बहुरि सिद्ध विषैं संयम नाहीं है जातैं चारित्र है सो मोक्षका मार्ग हैं मोक्षरूप नाहीं है ऐसे परमागम विषैं कह्या है ॥ ६८९ ॥ ६९० ॥

चउरक्खथावरविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहोत्ति ।
चक्खुअचक्खूओही जिणसिद्धे केवलं होदि ॥ ६९१ ॥

चतुरक्षस्थावराविरतसम्यग्दृष्टिस्तु क्षीणमोह इति ।
चक्षुरचक्षुरवधिः जिनसिद्धे केवलं भवति ॥ ६९१ ॥

जी०प्र०—दर्शनमार्गणायां चक्षुर्दर्शनं चतुरिंद्रियमिथ्यादृष्ट्यादि क्षीणकषायांतं। तत्र जीवसमासाः चतुरिंद्रियसंज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः षट्। अचक्षुर्दर्शनं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश । अवधिदर्शनं असंतादिक्षीणकषायांतं तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ । केवलदर्शनं सयोगायोगगुणस्थानयोः तत्र जीवसमासौ केवलज्ञानोक्तौ द्वौ । सिद्धेऽपि केवलदर्शनं भवति ।

स० चं०—दर्शन मार्गणा विषैं चक्षुदर्शन है सो चौइंद्री मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थानविषैं है तहां जीवसमास चौइंद्री सैनी पंचेंद्री असैनी पंचेंद्री पर्याप्त वा अपर्याप्त ए छह हैं। बहुरि अचक्षु दर्शन स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत बारह गुणस्थानविषैं है तहां जीवसमास चौदह है। बहुरि अवधि दर्शन असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंत नव गुणस्थानविषैं है। तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त दोय हैं। बहुरि केवलदर्शन सयोग अयोग दोय गुणस्थानविषैं है । तहां जीवसमास केवलज्ञानवत् दोय हैं अर सिद्धविषैं भी केवल दर्शन है ॥ ६९१ ॥

थावरकायप्पहुदी अविरदसम्मोत्ति असुहतियलेस्सा ।

सण्णीदो अपमत्तों जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥ ६९२ ॥

स्थावरकायप्रभृति अविरतसम्यगिति अशुभत्रिकलेश्याः ।
संज्ञितो ऽप्रमत्तो यावत्तु शुभास्तिस्रो लेश्याः ॥६९२॥

जी० प्र०—लेश्यामार्गणायां अशुभलेश्यात्रयं स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतं तत्र जीवसमासाः चतुर्दश । तेजःपद्मलेश्ये संज्ञिमिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तांतं तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ ॥ ६९२ ॥

स० चं०—लेश्या मार्गणाविषैं कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्याएं हैं ते स्थावर मिथ्यादृष्टी आदि असंयत पर्यंत है तहां जीवसमास चौदह हैं। बहुरि तेजोलेश्या अर पद्मलेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि अप्रमत्त पर्यंत हैं तहां जीवसमास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं ॥ ६९२ ॥

णवरि य सुक्का लेस्सा सजोगिचरिमोत्ति होदि णियमेण ।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ॥ ६९३ ॥

नवरि च शुक्ला लेश्या सयोगिचरम इति भवति नियमेन ।
गतयोगेऽपि च सिद्धे लेश्या नास्तीति निर्दिष्टं ॥ ६९३ ॥

जी० प्र०—शुक्ललेश्यायां विशेषः । स कः ? सा लेश्या संज्ञिपर्याप्तमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं भवति तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वावेव नियमेन केवल्यपर्याप्तस्य अपर्याप्ते एवांतर्भावात् । अयोगिजिने सिद्धे च लेश्या न संतीति परमागमे प्रतिपादितं ॥ ६९३ ॥

स० चं०—शुक्ललेश्याविषैं विशेष है सो कहां ? शुक्ललेश्या सैनी मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत है तहां जीव समास सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय है नियमकरि जातैं केवल समुद्घातका अपर्याप्तपना इहां अपर्याप्त जीव समासविषैं गर्भित है। बहुरि अयोगी जिनविषैं वा सिद्धविषैं लेश्या नाहीं ऐसा परमागम विषैं कह्या है ॥ ६९३ ॥

थावरकायप्पहुदी अजोगिचरिमोत्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिठाणे अभव्वसिद्धा हवंतित्ति ॥ ६९४ ॥

स्थावरकायप्रभृति अयोगिचरम इति भवंति भवसिद्धाः ।
मिथ्यादृष्टिस्थाने अभव्यसिद्धा भवंतीति ॥ ६९४ ॥

जी० प्र०—भव्यमार्गणायां भव्यसिद्धाः स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्याद्ययोगातं भवंति । अभव्यसिद्धाः मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव भवंति इत्युभयत्र जीवसमासाश्चतुर्दश ॥ ६९४ ॥

स० चं०—भव्य मार्गणाविषैं भव्य सिद्ध हैं ते स्थावरकाय मिथ्यादृष्टी आदि अयोगी पर्यंत हैं अर अभव्य सिद्ध एक मिथ्यादृष्टी गुणस्थान विषै ही हैं इनि दोऊनिविषैं जीवसमास चौदह चौदह हैं ॥ ६९४ ॥

मिच्छो सासणमिस्सो सगसगठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तोत्ति ॥ ६९५ ॥

मिथ्यात्वं सासनमिश्रौ स्वकस्वकस्थ ने भवति अयतात् ।
प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकमप्रमत्त इति ॥ ६९५ ॥

जी० प्र०—सम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यादृष्टिः सासादनः मिश्रश्च स्वस्वगुणस्थाने एव भवति । तत्र मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश । सासादने बादरैकद्वित्रिचतुरिंद्रियसंज्ञ्यपर्याप्तसंज्ञिपर्याप्ताः सप्त । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वविराधकस्य सासादनत्वप्राप्तिपक्षे च संज्ञिपर्याप्तदेवापर्याप्ताविति द्वौ । मिश्रे संज्ञिपर्याप्तः । प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वे द्वे असंयताद्यप्रमत्तांतं स्तः । तत्र जीवसमासाः प्रथमोपशमसम्यक्त्वे मरणाभावात् संज्ञिपर्याप्त एवैकः । वेदकसम्यक्त्वे संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । घर्मानारकस्य भवनत्रयवर्जितदेवस्य भोगभूमिनरतिरश्चोश्च अपर्याप्तत्वेऽपि तत्संभवात् ॥ ६९५ ॥ द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमाह—

स० चं०—सम्यक्त्व मार्गणाविषैं मिथ्यादृष्टी सासादन मिश्र ए तीन तौ अपने अपने एक एक गुणस्थान-

विषैं है। बहुरि जीवसमास मिथ्यादृष्टीविषैं तौ चौदह हैं। सासादनविषैं बादर एकेंद्री वेंद्री तेंद्री चौइंद्री सैनी असैनी पर्याप्त ए सात पाइए। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वतैं पड़ि जो सासादनकौं प्राप्त भया होइ ताकी अपेक्षा तहां सैनी पर्याप्त अर देव अपर्याप्त ए दोय ही जीव समास हैं। मिश्रविषैं सैनी पर्याप्त एकही जीवसमास है। बहुरि प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदक सम्यक्त्व ए दोऊ असंयतादि अप्रमत्त पर्यंत है। तहां जीव समास प्रथमोपशम सम्यक्त्वविषैं तौ मरण नाहीं है तातैं एक संज्ञी पर्याप्त ही है अर वेदक सम्यक्त्वविषैं सैनी पर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय हैं जातैं घर्म्मा नरक भवनत्रिक विना देव, भोग भूमिया मनुष्य वा तिर्यंच इनिकै अपर्याप्त विषैं भी वेदक सम्यक्त्व संभवै है ॥ ६९५ ॥ द्वितीयोपशम सम्यक्त्वको कहैं है—

बिदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहोत्ति।
खइगं सम्मं च तहा सिद्धोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ६९६ ॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यगादिशांतमोह इति।
क्षायिकं सम्यक्त्वं च तथा सिद्ध इति जिनैर्निर्दिष्टं ॥ ६९६ ॥

जी० प्र०—द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं असंयताद्युपशांतकषायांतं भवति। अप्रमत्ते उत्पाद्य उपरि उपशांतकषायांतं गत्वा अधोवतरणे असंयतांतमपि तत्संभवात्। तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तदेवासंयतापर्याप्तौ द्वौ। क्षायिकसम्यक्त्वं असंयताद्ययोगांतं। तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तः बद्धायुष्कापेक्षया घर्मानारकभोगभूमिनरतिर्यग्वैमानिकापर्याप्तश्चेति द्वौ। सिद्धेऽपि क्षायिकसम्यक्त्वं स्यादिति जिनैरुक्तं ॥ ६९६ ॥

स० चं०—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असयतादि उपशांत कषायपर्यंत है जातैं इस द्वितियोपशम सम्यक्त्वकौं अप्रमत्तविषैं उपजाय ऊपरि उपशांत कषाय पर्यंत जाइ नीचे पड़ै तहां असंयत पर्यंत द्वितियोपशम सम्यक्त्व सहित आवै तातैं असंयत आदिविषैं भी कह्या। तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त अर देव असंयत पर्याप्त ए दोय पाइए हैं जातैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्वविषैं मरण है सो मरि देव ही हो है। बहुरि क्षायिक सम्यक्त्व असंयतादिक अयोगी पर्यंत

है तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त हैं अर जाकैं आयु बंध हूवा होइ ताके धर्मा नरक भोगभूमिया मनुष्य तिर्यंच वैमानिक देव इनका अपर्याप्त भी है तातैं दोय जीव समास है। बहुरि सिद्धविषैं भी क्षायिक सम्यक्त्व है ऐसा जिन देवने कह्या है ॥ ६९६ ॥

सण्णी सण्णिप्पहुदी खीणकसाओत्ति होदि णियमेण ।
थावरकायप्पहुदी असण्णित्ति हवे असण्णी हु ॥ ६९७ ॥

संज्ञी संज्ञिप्रभृतिः क्षीणकषाय इति भवति नियमेन ।
स्थावरकायप्रभृतिः असंज्ञीति भवेदसंज्ञी हि ॥ ६९७ ॥

जी० प्र०—संज्ञिमार्गणायां संज्ञिजीवः संज्ञिमिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं भवति तत्र जीवसमासौ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । तु—पुनः असंज्ञिजीवः स्थावरकायाद्यसंज्ञ्यंतं मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने एव स्यान्नियमेन तत्र जीवसमासा द्वादश संज्ञिनो द्वयाभावात् ॥ ६९७ ॥

स० चं०—संज्ञी मार्गणाविषै संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टी आदि क्षीणकषाय पर्यंत है। तहां जीव समास संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय हैं। बहुरि असंज्ञी जीव स्थावरकायादिक असैनी पचेंद्री पर्यंत मिथ्यादृष्टि गुणस्थानविषैं ही है नियमकरि। तहां जीवसमास सैनी संबंधी दोय बिना बारह जानने ॥ ६९७ ॥

थावरकायप्पहुदी सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी ।
कम्मइय अणाहारी अजोगिसिद्धेवि णायव्वो ॥ ६९८ ॥

स्थावरकायप्रभृतिः सयोगिचरम इति भवति आहारी ।
कार्मण अनाहारी अयोगिसिद्धेऽपि ज्ञातव्यः ॥ ६९८ ॥

जी० प्र०—आहारमार्गणायां स्थावरकायमिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं आहारी भवति । तत्र जीवसमासाश्चतुर्दश मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतस-

योगानां कार्मणयोगावसरे अयोगिसिद्धयोश्च अनाहारो ज्ञातव्यः । तत्र जीवसमासा अपर्याप्ताः सप्त । अयोगस्य चैकः ॥ ६९८ ॥ अथ गुणस्थानेषु जीवसमासानाह—

स० चं—आहार मार्गणाविषैं स्थावर काय मिथ्यादृष्टी आदि सयोगी पर्यंत आहारी हैं तहां जीवसमास चौदह हैं बहुरि मिथ्यादृष्टी सासादन असंयत सयोगी इनिकैं कार्माण अवस्थाविषैं अर अयोगी जिन अर सिद्ध भगवान इनि विषैं अनाहार है । तहां जीवसमास अपर्याप्त सात अयोगीकी अपेक्षा एक पर्याप्त ए आठ हैं ॥६९८॥ आगैं गुणस्थाननिविषैं जीव समासनिकौं कहैं हैं—

मिच्छे चोद्दस जीवा सासणअयदे पमत्तविरदे य ।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णीपुण्णो दु खीणोत्ति ॥ ६९९ ॥

मिथ्यात्वे चतुर्दश जीवाः सासानायते प्रमत्तविरते च ।
संज्ञिद्विकं शेषगुणे संज्ञिपूर्णस्तु क्षीण इति ॥ ६९९ ॥

जी० प्र०—मिथ्यादृष्टौ जीवसमासाश्चतुर्दश, सासादने अविरते प्रमत्ते चशब्दात् सयोगे च संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ । शेषाष्टगुणस्थानेषु अपित्र-यदात् अयोगे च संज्ञिपर्याप्त एवैकः ॥६९९॥ अथ मार्गणास्थानेषु तान् सूचयति—

स० चं—मिथ्यादृष्टीविषैं जीवसमास चौदह हैं सासादनविषैं अविरतविषैं प्रमत्तविषैं चकारतैं सयोगीविषैं संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ए दोय जीवसमास हैं इहां प्रमत्तविषैं आहारक मिश्र अपेक्षा अर सयोगीविषैं केवल समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्तपनां जानना । बहुरि अवशेष आठ गुणस्थाननिविषैं अपिशब्दतैं अयोगीविषैं भी एक संज्ञीपर्याप्त जीव समास हैं ॥ ६९९ ॥ आगैं मार्गणास्थाननिविषैं जीवसमासनिकौं दिखावै हैं—

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसेसु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ॥ ७०० ॥

तिर्यग्गतौ चतुर्दश भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु।
मार्गणास्थानस्यैवं ज्ञेयानि समासस्थानानि ॥७००॥

जी० प्र०—तिर्यग्गतौ जीवसमासाश्चतुर्दश भवंति शेषगतिषु संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ द्वौ। तु—पुनः सर्वमार्गणास्थानानां यथायोग्यं प्रागुक्तक्रमेण जीवसमासा ज्ञातव्याः ॥ ७०० ॥ अथ गुणस्थानेषु पर्याप्तिमाणानाह—

स० चं०—तिर्यंचगतिविषैं जीवसमास चौदह हैं अवशेष गतिनिविषैं संज्ञीपर्याप्त वा अपर्याप्त ए दोय दोय जीवसमास जानने ऐसैं मार्गणास्थानकनिविषैं यथायोग्य पूर्वोक्त अनुक्रमकरि जीवसमास जानने ॥ ७०० ॥ आगैं गुणस्थाननिविषैं पर्याप्ति वा प्राण कहैं हैं—

पज्जत्ती पाणावि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि।
तहि वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ ॥ ७०१ ॥

पर्याप्तयः प्राणा अपि च सुगमा भावेंद्रियं न योगिनि।
तस्मिन् वागुच्छ्वासायुष्ककायत्रिकद्विकमयोगिन आयुः ॥ ७०१ ॥

जी० प्र०—चतुर्दशगुणस्थानेषु पर्याप्तयः प्राणाश्च पृथक् नोच्यंते सुगमत्वात्। तथाहि—क्षीणकषायपर्यंतं षट्पर्याप्तयः दश प्राणाः। सयोगजिने भावेंद्रियं न, द्रव्येंद्रियापेक्षया षट्पर्याप्तयः वागुच्छ्वासनिश्वासायुः कायप्राणाश्चत्वारि भवंति। शेषेंद्रियमनःप्राणाः षट् संति। तत्रापि वाग्योगे विश्रांते त्रयः। पुनः उच्छ्वासनिश्वासे विश्रांते द्वौ। अयोगे आयुः प्राण एकः प्राक्संचितनोकर्मकर्मसंचयः प्रतिसमयमेकैकनिषेकं गलन् किंचिदूनद्व्यर्धगुणहानिमात्रो द्रव्यार्थिकनयेन अयोगिचरमे निनश्यति पर्यायार्थिकनयेन अनंतरसमये एवेति तात्पर्यं ॥ ७०१ ॥ अथ गुणस्थानेषु संज्ञा आह—

स० चं०—चौदह गुणस्थाननिविषैं पर्याप्ति अर प्राण जुदे न कहिए है जातैं सुगम है। तहां क्षीणकषाय पर्यंत तौ छहौ पर्याप्ति दशौ प्राण हैं। बहुरि सयोगी जिनविषैं भावेंद्रिय तौ है नाहीं, द्रव्येंद्रियकी अपेक्षा छह पर्याप्ति हैं। बहुरि सयोगिकैं प्राण च्यारि हैं वचनबल १ सासोस्वास २ आयु ३ कायबल ४ ए च्यारि हैं। अवशेष पंचेंद्रिय अर मन ए छह प्राण नाहीं हैं। तहां ही वचनबलका अभाव होतैं तीन ही प्राण रहैं हैं। उस्वास निश्वासका अभाव होतैं दोय ही

रहैं है। बहुरि अयोगीविषैं एक आयु प्राण हो है तहां पूर्व संचित भया था जो कर्म नोकर्मका स्कंध सो समय समय प्रति एक एक निषेक गलतैं अवशेष द्व्यर्धगुणहानिकरि गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण सत्त्व रह्या सो द्रव्यार्थिक नयकरि तौ अयोगीका अंत समयविषैं नष्ट हो है। पर्यायार्थिक नयकरि ताके अनंतर समयविषैं नष्ट हो है। यह तात्पर्य है॥ ७०१॥ आगैं गुणस्थाननिविषैं संज्ञा कहैं हैं—

छट्ठोत्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ॥ ७०२॥

षष्ठ इति प्रथमसंज्ञा सकार्या शेषाश्च कारणापेक्षाः।
अपूर्वः प्रथमानिवृत्तिः सूक्ष्म इति क्रमेण शेषाः॥ ७०२॥

जी० प्र:—मिथ्यादृष्ट्यादिप्रमत्तांतं सकार्याः आहारादिचतस्रः संज्ञा भवंति। षष्ठगुणस्थाने आहारसंज्ञा व्युच्छिन्ना। शेषास्तिस्रः अप्रमत्ता-दिषु कारणास्तित्वापेक्षया अपूर्वकरणांतं कार्यरहिता भवंति। तत्र भयसंज्ञा व्युच्छिन्ना। अनिवृत्तिकरणप्रथमसवेदभागांतं कार्यरहिते मैथुनपरिग्रहसंज्ञे स्तः। तत्र मैथुनसंज्ञा व्युच्छिन्ना। सूक्ष्मसांपराये परिग्रहसंज्ञा व्युच्छिन्ना। उपरि उपशांतादिषु कार्यरहिता अपि संज्ञा न संति कारणाभावे कार्यस्याप्य-भावात्॥ ७०२॥

स० चं—मिथ्यादृष्टी आदि अप्रमत्तपर्यंत अपना कार्यसहित च्यारयो संज्ञा है। तहां छठे गुणस्थानि आहार संज्ञाका विच्छेद हूवा अवशेष तीन संज्ञा अप्रमत्तादिविषैं हैं सो तिनिका निमित्तभूत कर्म पाइए है ताकी अपेक्षा हैं कार्य रहित है सो अपूर्वकरण पर्यंत तीन संज्ञा है तहां भय संज्ञाका विच्छेद भया। अनिवृत्तिकरणका प्रथमसवेदभागं पर्यंत मैथुन परिग्रह दोय संज्ञा हैं तहां मैथुन संज्ञाका विच्छेद भया। सूक्ष्मसांपरायविषैं एक परिग्रह संज्ञा रही। ताका तहां ही विच्छेद भया। ऊपरि उपशांत कषायादिकविषैं कारणका अभावतैं कार्यका भी अभाव है। तातैं कार्य रहित भी सर्व संज्ञा नाहीं हैं॥ ७०२॥

मग्गण उवजोगावि य सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो
गदिआदिसु मिच्छादी परूविदे रूविदा होंति ॥ ७०३ ॥

मार्गणा उपयोगा अपि च सुगमाः पूर्वं प्ररूपितत्वात् ।
गत्यादिषु मिथ्यात्वादौ प्ररूपिते रूपिता भवंति ॥ ७०३ ॥

जी० प्र०—गुणस्थानेषु मार्गणा उपयोगाश्च वक्तुं सुगमा इति नोच्यंते पूर्वं प्ररूपितत्वात् । कुत इति चेत् ? मार्गणासु गुणस्थानजीवसमासेषु उक्तेषु उक्ता भवंति । तथापि मंदबुद्ध्यनुग्रहार्थमुच्यंते तद्यथा—

नरकादिगतिनामोदयजनिता नारकादिपर्यायाः गतयः । तेन मिथ्यादृष्टौ नारकादयः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च । सासादने नारकाः पर्याप्ताः, शेषाः उभये । मिश्रे सर्वे पर्याप्ता एव । असंयते घर्मानारकाः उभये, शेषा नारकाः पर्याप्ता एव । भोगभूमितिर्यग्मनुष्याः कर्मभूमिमनुष्याः वैमानिकाश्च उभये । कर्मभूमितिर्यंचो भवनत्रयदेवाश्च पर्याप्ता एव । देशसंयते कर्मभूमितिर्यग्मनुष्याः पर्याप्ताः । प्रमत्ते मनुष्याः पर्याप्ताः, साहारकर्द्धयस्तु उभये । अप्रमत्तादि-क्षीणकषायांताः पर्याप्ताः । सयोगिनि उभये । अयोगिनि पर्याप्ता एव ।

एकेंद्रियादिजातिनामोदयजनितजीवपर्यायाः इंद्रियं, तन्मार्गणाः एकेंद्रियादयः पंच । ताः मिथ्यादृष्टौ पर्याप्तापर्याप्ताः पंच । सासादने अपर्याप्ताः पंच पर्याप्तपंचेंद्रियश्च । मिश्रे पर्याप्तपंचेंद्रिय एव । असंयते स उभयः । देशसंयते पर्याप्तः । प्रमत्ते पर्याप्तः । साहारकर्द्धिस्तूभयः । अप्रमत्तादिक्षीणकषायांतेषु पर्याप्त एव । सयोगे पर्याप्तः । समुद्घाते तूभयः । अयोगे पर्याप्त एव ।

पृथ्वीकायादिविशिष्टैकेंद्रियजातिस्थावरनामोदयत्रसनामोदयजाः षड्जीवपर्यायाः कायाः ते मिथ्यादृष्टौ पर्याप्तापर्याप्ताश्च । सासादने बादरपृथ्व्यब्वनस्पतिस्थावरकायाः द्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञित्रसकायाश्चापर्याप्ताः संज्ञित्रसकायः उभयोऽपि षड्जीवनिकायः । मिश्रे संज्ञिपंचेंद्रियत्रसकायपर्याप्त एव । असंयते उभयः, देशसंयते पर्याप्त एव । प्रमत्ते पर्याप्तः । साहारकर्द्धिस्तूभयः । अप्रमत्तादिक्षीणकषायांतेषु पर्याप्त एव । सयोगे पर्याप्तः । समुद्घाते तूभयः । अयोगे पर्याप्त एव ।

पुद्गलविपाकिशरीरांगोपांगनामकर्मोदयैः मनोवचनकाययुक्तजीवस्य कर्मनोकर्मागमकारणा या शक्तिः तज्जनितजीवप्रदेशपरिस्पंदनं वा योगः स च मनोवचनकायवर्गणावलंबनाद्भेदात्त्रेधा । तत्र वीर्यांतरायनोइंद्रियावरणक्षयोपशमेन अंगोपांगनामोदयेन च मनःपर्याप्तियुक्तजीवस्य मनोवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां अष्टदलपद्माकारेण हृदये निर्माणनामोदयसंपादितं द्रव्यमनः । तदवष्टंभेन नोइंद्रियावरणक्षयोपशमयुक्तजीवप्रदेशप्रचये लब्ध्युपयोगलक्षणं भावमनः तद्व्यापारो मनोयोगः । स च सत्यादिनिजविषयभेदाच्चतुर्धा । भाषापर्याप्तियुक्तजीवस्य शरीरनामोदयेन स्वरनामोदयसहकारिकारणेन भाषा-

वर्गणायातपुद्गलस्कंधानां चतुर्विधभाषारूपेण परिणमनं वाग्योगः। सोऽपि सत्याद्यर्थवाचकत्वेन चतुर्धा। औदारिकवैक्रियिकाहारकशरीरनामोदयैः आहारवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां निर्माणनामोदयनिर्मापिततत्तच्छरीरपरिणामनपरिणतौ उत्पन्नजीवपरिस्पंदः औदारिकादिकाययोगः। तत्तच्छरीर-पर्याप्तिकाले समयोनांतर्मुहूर्तपर्यंतं तत्तन्मिश्रकाययोगः। अस्य च मिश्रत्वव्यपदेशः औदारिकादिनोकर्मशरीरवर्गणाहरणे स्वतः सामर्थ्यासंभवेन कार्मणवर्गणासव्यपेक्षत्वात्। विग्रहगतौ औदारिकादिनोकर्मवर्गणानां अनाहरणे सति कार्मणशरीरनामोदयेन कार्मणवर्गणायातपुद्गलस्कंधानां ज्ञानावरणादिकर्मपर्यायेण जीवप्रदेशेषु बंधप्रघट्टके उत्पन्नजीवप्रदेशपरिस्पंदः कार्मणकाययोगः, एवं योगाः पंचदश ॥ ७०२ ॥

स० चं—गुणस्थानकनिविषैं चौदह मार्गणा अर उपयोग लगाना सुगम है जातैं पूर्वैं प्ररूपण करि आए हैं। मार्गणानिविषैं गुणस्थान वा जीवसमास कहे तहां ही कथन आय गया तथापि मंद बुद्धीनिके समझनेके निमित्त बहुरि कहिए है। नरकादि गतिनामा नामकर्मके उदयतैं उत्पन्न भए पर्याय ते गतिकहिए सो मिथ्यादृष्टीविषैं च्यार्यो नारकादि गति पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं सासादनविषैं नारक अपर्याप्त नाहीं अवशेष सर्व है। मिश्रविषैं च्यार्यो गति पर्याप्त ही है। असंयतविषैं धर्मानारक तौ पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं अवशेष नारक पर्याप्त ही हैं। बहुरि भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य अर कर्मभूमियां मनुष्य अर वैमानिक देव तौ पर्याप्त वा अपर्याप्त दोऊ हैं अर कर्मभूमियां तिर्यंच अर भवनत्रिक देव ए पर्याप्त ही चतुर्थ गुणस्थानविषैं पाइए हैं। बहुरि देशसंयतविषैं कर्मभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य पर्याप्त ही हैं। बहुरि प्रमत्तविषैं मनुष्य पर्याप्त ही है आहारक सहित पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं। बहुरि प्रमत्तादि क्षीण-कषाय पर्यंत मनुष्य पर्याप्त ही हैं सयोगीविषैं पर्याप्त वा समुद्घात अपेक्षा अपर्याप्त हैं। अयोगी पर्याप्त ही हैं।

बहुरि एकेंद्रियादिक जातिनामा नाम कर्मके उदयतैं निपज्या जीवकैं पर्याय सो इंद्रिय है तिनकी मार्गणा ए-केंद्रियादिक पंच हैं ते मिथ्यादृष्टिविषैं तौ पांचौ पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं, सासादनविषैं अपर्याप्त तौ पांचौ पाइए अर पर्याप्त एक पंचेंद्रिय पाइए है। मिश्रविषैं पर्याप्त पंचेंद्रिय ही है। असंयतविषैं पर्याप्त वा अपर्याप्त पंचेंद्री है। देश संय-तविषैं पर्याप्त पंचेंद्री ही है। प्रमत्तविषैं आहारक अपेक्षा दोऊ हैं। अप्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यंत एक पंचेंद्रिय पर्याप्त ही है। सयोगी विषैं पर्याप्त हैं समुद्घात अपेक्षा दोऊ हैं। अयोगी विषैं पर्याप्त ही पंचेंद्रिय हैं।

पृथ्वीकायादिक विशेषकौं लीए एकेंद्रिय जाति अर स्थावर नामा नामकर्मका उदय अर त्रस नामा नामकर्म

का उदयतैं निपजे जीवके पर्याय ते काय कहिए ते छह प्रकार हैं। तहां मिथ्यादृष्टिविषैं तौ छहो पर्याप्त वा अपर्याप्त हैं। सासादनविषैं बादर पृथ्वी अप वनस्पती ए—स्थावर अर त्रसविषैं वेंद्री तेंदी चौंद्री असैनी पंचेंद्री एतौ अपर्याप्त ही है अर सैनी त्रस काय पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ हैं। आगैं संज्ञी पंचेंद्रिय त्रस काय ही है, तहां मिश्र विषैं पर्याप्त ही हैं। अविरतविषैं दोऊ हैं। देश संयतविषैं पर्याप्त ही हैं। प्रमत्तविषैं पर्याप्त हैं। आहारक सहित दोऊ हैं। अप्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यंत पर्याप्त ही हैं सयोगीविषैं पर्याप्त है। समुद्धातसहित दोऊ है। अयोगीविषैं पर्याप्त ही है।

पुद्गल विपाकी शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं मन बचन कायकरि संयुक्त जो जीव ताके कर्म नोकर्म आवनेकौं कारण जो शक्ति वा ताकरि उत्पन्न भया जो जीवके प्रदेशनिका चंचलपना सो योग है सो मन बचन काय भेदतैं तीन प्रकार है। तहां वीर्यांतराय अर नोइंद्रियावरण कर्म तिनके क्षयोपशमकरि अर अंगोपांग नाम कर्मके उदयकरि मनःपर्याप्ति संयुक्त जीवकैं मनोवर्गणारूप जे पुद्गल आए तिनिका आठ पांखड़ीका कमलके आकार हृदय स्थानकविषैं जो निर्माण नामा नामकर्मतैं निपज्या सो द्रव्य मन है तहां जो कमलकी पाखड़ीनिका अग्रभागनिविषै नोइंद्रियावरणका क्षयोपशमयुक्त जीवका प्रदेश समूह है तिनिविषैं लब्धि उपयोग लक्षणकौं धरैं भाव मन हैं। ताका जो परिणमन सो मनोयोग है सो सत्य असत्य उभय अनुभय रूप विषयके भेदतै च्यारि प्रकार है। बहुरि भाषापर्याप्ति करि संयुक्त जो जीव ताकै शरीर नामा नामकर्मके उदयकरि अर स्वरनामा नाम कर्मका उदयका सहकारी कारणकरि भाषा वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका च्यारि प्रकार भाषारूप होइ परिणमन सो बचन योग है। सो बचन योग भी सत्यादिक पदार्थनिका कहन हारा है तातैं च्यारि प्रकारि है। बहुरि औदारिक वैक्रियिक आहारक शरीर नामा नामकर्मके उदय करि आहार वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका निर्माण नामा नामकर्मके उदयकरि निपज्या जो शरीर ताके परिणमनके निमित्ततैं जीवका प्रदेशनिका जो चंचल होना सो औदारिक आदि काय योग है। बहुरि शरीरपर्याप्ति पूर्ण न होइ तावत् एक समय घाटि अंतर्मुहूर्त पर्यंत तिनके मिश्र योग है। इहां मिश्रपना कह्या है सो औदारिकादिक नोकर्मकी वर्गणानिका

आहरण आपहीतै न हो है, कार्माण वर्गणाका सापेक्ष लीए है तातैं कह्या हैं। बहुरि विग्रह गतिविषैं औदारिकादिक नोकर्मकी वर्गणानिका तौ ग्रहण है नाही, कार्माण शरीर नामा नामकर्मका उदयकरि कार्माण वर्गणारूप आए जे पुद्गल स्कंध तिनिका ज्ञानावरणादिक कर्म पर्यायकरि जीवके प्रदेशनिविषैं बंध होतै भया जो जीवके प्रदेशनिका चंचल पना सो कार्माण काययोग है ऐसै ए पंद्रहयोग हैं ॥ ७०४ ॥

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एगारा ।
जोगिम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ॥ ७०४ ॥

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव षष्ठे एकादश ।
योगिनि सप्त योगा अयोगिस्थानं भवेत् शून्यं ॥ ७०४ ॥

जी० प्र०—उक्तपचदशयोगेषु मध्ये मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु त्रयोदश त्रयोदश भवंति आहारकतन्मिश्रयोः प्रमत्तादन्यत्राभावात् । मिश्रगुणस्थाने तेष्वपर्याप्तयोगत्रयं नेति दश । उपरि क्षीणकषायांतेषु सप्तसु तत्रापि वैक्रियिकयोगाभावात् नव । प्रमत्तसंयते एकादश आहारकतन्मिश्रयोगयोरत्र पतितत्वात् । सयोगे सत्यानुभयमनोवाग्योगाः औदारिकतन्मिश्रकार्मणकाययोगाश्चेति सप्त । अयोगिजिने योगो नेति शून्यं ।

स्त्रीपुंनपुंसकवेदोदयैः तत्तन्नामवेदा भवंति ते त्रयोपि अनिवृत्तिकरणसवेदभागपर्यंतं न तत उपरि ।

क्रोधादीनां चतुष्कचतुष्कस्य यथायोग्योदये सति क्रोधमानमायालोभा भवंति ते च मिथ्यादृष्टौ सासादने च चत्वारश्चत्वारः । मिश्रासंयतयोर्विना अनंतानुबंधिनस्त्रयस्त्रयः । देशसंयते विना अप्रत्याख्यानकषायान् द्वौ द्वौ । प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणद्वितीयभागपर्यंतं संज्वलनक्रोधः । तृतीयभागपर्यंतं मानः । चतुर्थभागपर्यंतं माया । पंचमभागपर्यंतं बादरलोभः । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मलोभः । उपरि सर्वेऽपि अकषाया एव ।

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययज्ञानावरणक्षयोपशमेन तत् सम्यग्ज्ञानचतुष्कं । केवलज्ञानावरणनिरवशेषक्षयेण च केवलज्ञानं, मिथ्यात्वोदयसहचरितमतिश्रुतावधिज्ञानावरणक्षयोपशमेन कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानानि च मिलित्वा अष्टौ । तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुज्ञानत्रयं । मिश्रे तदेव मिश्रितं । असंयते देशसंयते वा आद्यं सम्यग्ज्ञानत्रयं । प्रमत्तादिक्षीणकषायांतमाद्यं सम्यग्ज्ञानचतुष्कं । सयोगायोगयोरेकं केवलज्ञानमेव ।

संज्वलननोकषायमंदोदयेन व्रतधारणसमितिपालनकषायनिग्रहदंडत्यागेंद्रियजयरूपसंयमभावो भवति स च सामान्येन सर्वसावद्याद्विरतोऽस्मीति गृहीतः सामायिकनामैकः । विशेषेण असंयमदेशसंयमसामायिकछेदोपस्थापनपरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातभेदात्सप्तधा । तत्र असंयतांतमसं-

यमः । देशसंयते देशसंयमः । प्रमत्ताद्यनिवृत्तिकरणांतं सामायिकछेदोपस्थापनौ । प्रमत्ताप्रमत्तयोः परिहारविशुद्धिरपि । सूक्ष्मसांपराये सूक्ष्मसांपरायसंयमः । उपशांतकषायादिषु यथाख्यातः ।

चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयक्षयोपशमैः केवलदर्शनावरणीयनिरवशेषक्षयेण तानि चत्वारि दर्शनानि स्युः । तत्र मिश्रगुणस्थानांतं चक्षुरचक्षुर्दर्शनद्वयं । असंयतादिक्षीणकषायांतं चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनत्रयं । सयोगायोगयोः सिद्धे चैकं केवलदर्शनं ।

कषायोदयानुरंजितमनोवाक्कायप्रवृत्तिर्लेश्या सा च शुभाशुभभेदाद्द्वेधा । तत्र अशुभा । कृष्णनीलकपोतभेदात्त्रेधा । शुभापि तेजःपद्मशुक्लभेदात्त्रेधा । असंयतांतं षडपि । देशसंयतादित्रये शुभा एव अपूर्वकरणादिसयोगांतं शुक्लैव । अयोगे योगाभावात् लेश्या नास्ति ।

सामग्रीविशेषैः रत्नत्रयानंतचतुष्टयस्वरूपेण परिणमितुं योग्यो भव्यः । तद्विपरीतोऽभव्यः । तौ च मिथ्यादृष्टौ द्वौ । तत्र अभव्यराशिः जघन्ययुक्तानंतमात्रः तेनोनः सर्वसंसारी भव्यराशिः स च आसन्नभव्यः दूरभव्यः अभव्यसमभव्यश्चेति त्रेधा । सासादनादक्षीणकषायांतं भव्य एव । सयोगायोगयोर्भव्याभव्यव्यपदेशो नास्ति ।

क्षयोपशमादिपंचलब्धिपरिणामपरिणतः अनिवृत्तिकरणचरमसमये अनादिमिथ्यादृष्टिः अनंतानुबंधिनो मिथ्यात्वं चोपशमय्य तदनंतरसमये मिथ्यात्वांतरायामांतर्मुहूर्तप्रथमसमये प्रथमोपशमसम्यक्त्वं प्राप्य असंयतो भवति । अथ वा प्रथमोपशमसम्यक्त्वदेशव्रते युगपत्प्राप्य देशसंयतो भवति । अथवा प्रथमोपशमसम्यक्त्वमहाव्रते युगपत्प्राप्य अप्रमत्तसंयतो भवति । ते त्रयोऽपि तत्प्राप्तिप्रथमसंयममादिं कृत्वा गुणसंक्रमणविधानेन मिथ्यात्वद्रव्यं गुणसंक्रमणभागहारेण अपकृष्यापकृष्य मिथ्यात्वमिश्रसम्यक्त्वप्रकृतिरूपेण असंख्यातगुणहीनद्रव्यक्रमेण अंतर्मुहूर्तं कालं त्रिधा कुर्वंति । मिथ्यात्वस्य मिथ्यात्वकरणं तु पूर्वस्थितौ अतिस्थापनावलिमात्रमूनयंतीत्यर्थः । तदप्रमत्तस्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसंख्यातसहस्रसंभवात् प्रमत्तेऽपि तत् सम्यक्त्वं स्यात् । ते अप्रमत्तसंयतं विना त्रय एव तत्सम्यक्त्वकालांतर्मुहूर्ते जघन्येन एकसमये उत्कृष्टेन च षडावलिमात्रेऽवशिष्टे अनंतानुबंध्यन्यतमोदये सासादना भवंति । अथवा ते चत्वारोऽपि यदि भव्यतागुणविशेषेण सम्यक्त्वविराधका न स्युः तदा तत्काले संपूर्णे जाते सम्यक्त्वप्रकृत्युदये वेदकसम्यग्दृष्टयः वा मिश्रप्रकृत्युदये सम्यग्मिथ्यादृष्टयः वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टयो भवंति । द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे विशेषः । स कः ? उपशमश्रेण्यारोहणार्थं सातिशयाप्रमत्तवेदकसम्यग्दृष्टिः करणत्रयपरिणामसामर्थ्यात् अनंतानुबंधिनां प्रशस्तोपशमं विना अप्रशस्तोपशमेन अधोनिषेकानुत्कृष्य विसंयोज्य क्षपयित्वा दर्शनमोहत्रयस्य अंतरकरणेन अंतरं कृत्वा उपशमविधानेन उपशमय्य अनंतरप्रथमसमये द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टिर्भूत्वा उपशमश्रेणिमारुह्य उपशांतकषायं गत्वा अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा क्रमेण अवतीर्य अप्रमत्तगुणस्थानं प्राप्य प्रमत्ताप्रमत्तपरावृत्तिसहस्राणि करोति । वा अधः देशसंयमो भूत्वा आस्ते वा असंयतो भूत्वा आस्ते वा मरणे देवासंयतः स्यात् वा मिश्रप्रकृत्युदये मिश्रः स्यात् । अनंतानुबंध्यन्यतमोदये द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं विराधयतीत्याचार्यपक्षे सासादनः स्यात् वा मिथ्यात्वोदये मिथ्यादृष्टिः स्यात् इति । क्षायिकसम्यक्त्वं तु असंयतादिचतुर्गुणस्थानमनुष्याणां असंयतदेशसंयतोपचारमहाव्रतमानुषीणां च कर्मभूमवेदकसम्यग्दृष्टीनामेव केवलिश्रुतकेवलिद्वयश्रीपादोपांते सप्तप्रकृतिनिरवशेषक्षये भवति ।

तत्सम्यक्त्वं सामान्येन एकं, विशेषेण मिथ्यात्वसासादनमिश्रोपशमवेदकक्षायिकभेदात् षोढा। तत्र मिथ्यादृष्टौ मिथ्यात्वं सासादने सासादनत्वं। मिश्रे मिश्रत्वं। असंयतादि अप्रमत्तांतेषु उपशमवेदकक्षायिकानि अपूर्वकरणाद्युपशांतकषायांतेषु उपशमश्रेणौ वा औपशमिकक्षायिके क्षपकश्रेणावपूर्वकरणादिसिद्धपर्यंतमेकं क्षायिकमेव।

नोन्द्रियावरणक्षयोपशमः तज्जनितबोधनं च संज्ञा सा अस्य अस्तीति संज्ञी। इतरेंद्रियज्ञानोऽसंज्ञी। तत्र मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायांतं संज्ञी असंज्ञी मिथ्यादृष्टावेव। सयोगायोगयोर्नोइन्द्रियेंद्रियज्ञानाभावात् संज्ञ्यसंज्ञिव्यपदेशो नास्ति।

शरीरांगोपांगनामोदयजनितं शरीरवचनचित्तनोकर्मवर्गणाग्रहणमाहारः। विग्रहगतौ प्रतरलोकपूरणसयोगे अयोगे सिद्धे च अनाहारः। तेन मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतसयोगेषु तौ द्वौ शेषनवस्वाहारः। अयोगिसिद्धे वा अनाहारः ॥ ७०४ ॥ गुणस्थानेषु उपयोगमाह—

स० चं—कहे पंद्रह योग तिनिविषैं मिथ्यादृष्टि सासादन असंयत इन तीनों विषैं तेरह तेरह योग हैं, जातैं आहारक आहारकमिश्र, प्रमत्त बिना अन्यत्र नाहीं है। बहुरि मिश्रविषैं औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण ए तीनों भी नाहीं तातैं दश ही हैं। बहुरि ऊपरि सात गुणस्थानकनिविषैं वैक्रियिक योग भी नाहीं है तातैं प्रमत्तविषै तो आहारकद्विकके मिलनेतैं ग्यारह योग हैं औरनिविषैं नव नव योग है। बहुरि सयोगीविषैं सत्य अनुभय मनोयोग सत्य अनुभय बचन योग औदारिक औदारिकमिश्र कार्माण ए सात योग है। अयोग गुणस्थानविषैं योग नाहीं तातैं शून्य है। बहुरि स्त्री पुरुष नपुंसक वेदनिकरि उदय करि वेद हो है ते तीनों अनिवृत्ति करणके सवेदभाग पर्यंत हैं ऊपरि नाहीं।

बहुरि क्रोधादिक च्यारि कषायनिका यथायोग्य अनंतानुबंधी इत्यादि रूप उदय होत संतैं क्रोध मान माया लोभ हो हैं। तहां मिथ्यादृष्टि सासादनविषैं तौ अनंतानुबंधी आदि च्यारि च्यारि प्रकार है। मिश्र असंयतविषैं अनंतानुबंधी विना तीन तीन प्रकार हैं। देश संयतविषैं अप्रत्याख्यान विना दोय दोय प्रकार हैं। प्रमत्तादि अनिवृत्ति करणका दूसरा भागपर्यंत संज्वलन क्रोध है। तीसरा भाग पर्यंत मान है। चौथा भाग पर्यंत माया है। पंचम भाग पर्यंत वादर लोभ है। सूक्ष्मसांपरायविषैं सूक्ष्म लोभ है। ऊपर सर्व कषाय रहित हैं।

मति श्रुत अवधि मनःपर्यय ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं मति आदि ज्ञान हो हैं। केवल ज्ञानावरणके समस्त

क्षयतैं केवलज्ञान हो है। मिथ्यात्वका उदयकरि सहवर्ती ऐसे मति श्रुत अवधि ज्ञानावरणके क्षयोपशमतैं कुमति कुश्रुत विभग ज्ञान हो हैं सो सर्व मिलि आठ ज्ञान भये। तहां मिथ्यादृष्टि सासादनविषैं तौ तीन कुज्ञान है। मिश्र विषैं तीन कुज्ञान वा सुज्ञान मिश्ररूप है। अविरत अर देशसंयत विषैं मति श्रुत अवधि ए आदिके तीन सुज्ञान हैं। प्रमत्तादि क्षीणकषायपर्यंतविषैं मनःपर्यय सहित आदिकके च्यारि सुज्ञान हैं। सयोगी अयोगी विषैं एक केवल ज्ञान है।

बहुरि संज्वलनकी चौकड़ी अर नव नोकषाय इनके मंद उदय करि व्रतका धारना, समितिका पालना, कषायका निग्रह, दंडका त्याग, इंद्रियनिका जय ऐसैं भावरूप संयम हो है। सो संयम सामान्यपनैं एक सामायिक स्वरूप है जातैं 'सर्वसावद्ययोगविरतोस्मि' मैं सर्व पापसहित योगका त्यागी हों ऐसैं भाव विषैं सर्व गर्भित भए। विशेषपनैं असंयम देश संयम सामायिक छेदोपस्थापना परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसांपराय यथाख्यात भेदतैं सात प्रकार है। तहां असंयत पर्यंत च्यारि गुणस्थाननिविषैं असंयम हीं है। देशसंयतविषैं देशसंयम है। प्रमत्तादिक अनिवृत्तिकरणपर्यंत सामायिक छेदोपस्थापना है। प्रमत्त अप्रमत्तविषैं परिहार विशुद्धि भी है। सूक्ष्म सांपरायविषैं सूक्ष्मसांपराय है। उपशांत कषायादिकविषैं यथाख्यात संयम है।

बहुरि चक्षु अचक्षु अवधि दर्शनावरणके क्षयोपशमतैं अर केवलदर्शनावरणके समस्त क्षयतैं चक्षु अचक्षु अवधि केवल दर्शन हो हैं। तहां मिश्रगुणस्थान पर्यंत तौ चक्षु अचक्षु दोय दर्शन हैं। असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतविषैं चक्षु अचक्षु अवधि तीन दर्शन हैं। सयोग अयोग अर सिद्धविषैं केवल दर्शन है।

कषायके उदयकरि अनुरंजित ऐसी मन बचन कायरूप योगनिकी प्रवृत्ति सो लेश्या है। सो शुभ अशुभके भेदतैं दोय प्रकार है। तहां अशुभलेश्या कृष्ण नील कपोत भेदतैं तीन प्रकार है। शुभ लेश्या तेजः पद्म शुक्लभेदतैं तीन प्रकार है। तहां असंयत पर्यंत तौ छहौ लेश्या हैं। देश संयतादि अप्रमत्त पर्यंतविषैं तीन शुभलेश्या ही हैं। अपूर्व करणादि सयोगी पर्यंतविषैं शुक्ललेश्या ही है। अयोगी, योगके अभावतैं लेश्या रहित हैं।

सामग्रीविशेष करि रत्नत्रय वा अनंत चतुष्टयरूप परिनमनेकौं योग्य सो भव्य कहिए। परिनमनेको योग्य

नाहीं सो अभव्य कहिए। इहां अभव्य राशि जघन्य युक्तानंत प्रमाण है। संसारी राशिमें इतना घटाएं अवशेष रहे तितने भव्य है। सो भव्य तीन प्रकार। आसन्नभव्य १ दूरभव्य २ अभव्यसमभव्य ३। जे थोरे कालमें मुक्त होने होइ ते आसन्न भव्य हैं। जे बहुतकालमें मुक्त होने होंइ ते दूर भव्य हैं। जे त्रिकालविषैं मुक्त होनेके नाहीं केवल मुक्त होनेकी योग्यता ही कौं धरैं हैं ते अभव्यसम भव्य हैं। सो इहां मिथ्यादृष्टिविषैं भव्य अभव्य दोऊ हैं। सासादनादि क्षीणकषायपर्यंतविषैं एक भव्य ही है। सयोग अयोगविषैं भव्य अभव्यका उपदेश नाहीं है।

बहुरि अनादि मिथ्यादृष्टी जीव क्षयोपशमादिक पंचलब्धिका परिणामरूप परिणया तहां मिथ्यादृष्टिहीविषैं करण कीए तहां अनिवृत्ति करणका अंत समयविषैं अनंतानुबंधी अर मिथ्यात्व इनि पंचनिका उपशमकरि ताके अनंतर समयविषैं मिथ्यात्वका ऊपरिके वा नीचेके निषेक छोडि वीचिके निषेकनिका अभाव करना सो अंतर कहिए सो अंतर्मुहूर्तके जेते समय तितने निषेकनिका अभाव अनिवृत्तिकरणविषैं ही कीया था सो तिनिविषैं निषेक-निरूप जो अंतरायामसंबंधी अंतर्मुहूर्त काल ताका प्रथम समयविषैं प्रथमोपशम सम्यक्त्वकौं पाइ असंयत हो है। वा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर देशव्रत इनि दोऊनिकौं युगपत् पाइकरि देश संयत हो है। अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर महाव्रत इनि दोऊनिकौं युगपत् पाइकरि अप्रमत्त संयत हो है। तहां तिस पावनेके प्रथम समयतैं लगाइ अंतर्मुहूर्त ताईं गुण संक्रमण विधानकरि मिथ्यास्वरूप द्रव्यकर्मकौं गुण संक्रमण भाग हारकरि घटाइ घटाइ तीन प्रकार करै है। गुण संक्रमण विधान अर गुण संक्रमण भागहारका कथन आगे करैंगे तहां जानना सो मिथ्यात्व प्रकृति रूप अर सम्यक्त्वमिथ्यात्व प्रकृतिरूप वा सम्यक्त्व प्रकृतिरूप ऐसैं एक मिथ्यात्व तीन प्रकार तहां कीजिए है सो इनि तीनोंका द्रव्य जो परमाणूनिका प्रमाण सो असंख्यात गुणा असंख्यात गुणा घाटि अनुक्रमतैं जानना। इहां प्रश्न जो मिथ्यात्वकौं मिथ्यात्व प्रकृतिरूप कहा कीया? ताका समाधान जो पूर्वैं जो उस मिथ्यात्वकी स्थिति तामैं अति स्थापनावली मात्र घटावै है सो अति स्थापनावलीका भी स्वरूप आगे कहैंगे। जो अप्रमत्त गुणस्थानकौं प्राप्त हो हैं सो अप्रमत्तस्यों प्रमत्तमें अरप्रमत्तस्यों अप्रमत्तमें संख्यात हजार वार आवैं जाय है तातैं प्रथ-

मोपशम सम्यक्त्व प्रमत्तविषैं भी कहिये ते ए ग्यारह्यों गुणस्थानवर्ती प्रथमोपशमसम्यक्त्वका अंतर्मुहूर्त कालविषैं जघन्य एकसमय उत्कृष्ट छह आवली अवशेष रहैं अर तहां अनंतानुबंधी किसी प्रकृतिका उदय होइ तौ सासादन होइ। बहुरि जो भव्यता गुणका विशेषकरि सम्यक्त्व गुणका नाश न होइ तौ उस उपशम सम्यक्त्वका काल कौं पूर्ण होतें सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयतैं वेदक सम्यग्दृष्टी हो है बहुरि जो मिश्र प्रकृतिका उदय होइ तौ सम्यग्मिथ्यादृष्टी कहिए। बहुरि जो मिथ्यात्वहीका उदय तो मिथ्यादृष्टी ही होइ जाइ। बहुरि द्वितीयोपशम सम्यक्त्वविषैं विशेष है सो कहा?

उपशम श्रेणी चढनेके निमित्ति कोई सातिशय अप्रमत्त वेदक सम्यग्दृष्टी तहां अप्रमत्तविषैं तीन करणकी सामर्थ्यकरि अनंतानुबंधीका प्रशस्तोपशम विना अप्रशस्तोपशमकरि ऊपरिके जे निषेक जिनिका काल न आया है ते तौ हैं ही जे नीचेके निषेक अनंतानुबंधीके हैं तिनिकौं उत्कृष्ट पणाकरि ऊपरिके निषेकनिविषै प्राप्त करै है वा विसंयोजनकरि अन्य प्रकृतिरूप परिणमावै है ऐसैं क्षपाइ दर्शनमोहकी तीन प्रकृति तिनिका वीचिके निषेकनिका अभाव करने रूप अंतर करणकरि अंतर कीया। बहुरि उपशम विधानकरि दर्शनमोहकी प्रकृतिनिकौ उपशमाई अंतर कीएं निषेक संबंधी अंतर्मुहूर्त कालका प्रथम समयविषैं द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टी होइ उपशम श्रेणीकौ चढि क्रमतैं उपशांत कषाय पर्यंत जाइ तहां अंतर्मुहूर्त काल तिष्ठिकरि अनुक्रमतैं एक एक गुणस्थान उतारिकरि अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त होइ तहां अप्रमत्तस्यों प्रमत्तमें वा प्रमत्तस्यों अप्रमत्तमें हजारा वार आवै जाइ तहांस्यों नीचैं देशसंयत होइ तहां तिष्ठै वा असंयत होइ तहां तिष्ठै। अथवा जो ग्यारह्वां आदि गुणस्थाननिविषै मरण होइ तौ तहांस्यौं अनुक्रम विना देव पर्यायरूप असंयत हो है वा मिश्र प्रकृतिके उदयतैं मिश्र गुणस्थानवर्ती हो है वा अनंतानुबंधीके उदय होतैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकौं विराधै है ऐसी किसी आचार्यकी पक्षकी अपेक्षा सासादन हो है। वा मिथ्यात्वका उदयकरि मिथ्यादृष्टी हो है। बहुरि असंयतादिक च्यारि गुणस्थानवर्ती जे मनुष्य बहुरि असंयत देशसंयत गुणस्थानवर्ती उपचार महाव्रत जिनकै पाइए है ऐसी आर्या स्त्री ते कर्मभूमिके उपजे ऐसैं वेदक सम्य-

क्त्वी होंइ तिनहीके केवली श्रुत केवली दोन्योविषैं किसीका चरणांके निकटि सात प्रकृतिका सर्वथा क्षय होते क्षायिक सम्यक्त्व हो है सो ऐसे सम्यक्त्वका विधान कह्या। सो सम्यक्त्व सामान्यपनैं एक प्रकार है विशेषपनैं मिथ्यात्व १ सासादन २ मिश्र ३ उपशम ४ वेदक ५ क्षायिक भेदतैं छह प्रकार है। तहां मिथ्यादृष्टिविषैं तो मिथ्यात्व ही है। सासादनविषैं सासादन है। मिश्रविषैं मिश्र है। असंयतादिक अप्रमत्त पर्यंत विषैं उपशम, वेदक, क्षायिक, तीन सम्यक्त्व है। अपूर्वकरणादि उपशांत कषाय पर्यंत उपशमश्रेणीविषैं उपशम क्षायिक दोय सम्यक्त्व हैं। क्षपक श्रेणीरूप अपूर्वकरणादिक सिद्ध पर्यंत एक क्षायिक सम्यक्त्व ही है।

बहुरि नो इंद्रिय जो मन ताके आवरणके क्षयोपशमतैं भया जो ज्ञान ताकौं संज्ञा कहिये सो जिसके पाइए सो संज्ञी है। जाकैं न पाइए अर यथासंभव अन्य इंद्रियनिका ज्ञान पाइए सो असंज्ञी है। तहां संज्ञी मिथ्यादृष्टि आदि क्षीण कषाय पर्यंत हैं। असंज्ञी मिथ्यादृष्टिविषैं ही है। सयोग अयोगविषैं मन इंद्रिय संबंधी ज्ञान नाही है तातैं संज्ञी असंज्ञी न कहिये है।

बहुरि शरीर अर अंगोपांग नामा नामकर्मके उदयतैं उत्पन्न भया जो शरीर वचन मन रूप नोकर्म वर्गणाका ग्रहण करना सो आहार है। विग्रहगतिविषैं वा प्रतर लोक पूर्ण सहित सयोगीविषैं वा अयोगीविषैं वा सिद्धविषैं अनाहार है तातैं मिथ्यादृष्टी सासादन असंयत सयोगी इनिविषैं तौ दोऊ है। अवशेष नवगुणस्थानविषैं आहार ही है। अयोगीविषैं वा सिद्धविषैं अनाहार ही है। ॥ ७०४ ॥ गुणस्थाननिविषैं उपयोग कहैं हैं—

दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा।
सत्तुवजोगा सत्तसु दो चेव जिणे य सिद्धे य॥ ७०५ ॥

द्वयोः पंच च षट्चैव द्वयोर्मिश्रे भवंति व्यामिश्राः।
सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वौ चैव जिने च सिद्धे च ॥ ७०५ ॥

जी० प्र०—गुणपर्ययवद्वस्तु तद्ग्रहणव्यापारउपयोगः। ज्ञानं न वस्तूत्थं तथा चोक्तं—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥ १ ॥

"नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात् तमोवत् इति"। स चोपयोगः ज्ञानदर्शनभेदाद्द्वेधा। तत्र ज्ञानोपयोगः-कुमतिकुश्रुतविभंगमतिश्रुतावधिमनःपर्यय-केवलज्ञानभेदादष्टधा। दर्शनोपयोगः चक्षुरचक्षुरवधिकेवलदर्शनभेदाच्चतुर्धा। तत्र मिथ्यादृष्टिसासादनयोः कुमतिकुश्रुतविभंगज्ञानचक्षुरचक्षुर्दर्शनाख्याः पंच। मिश्रे मतिश्रुतावधिज्ञानचक्षुरचक्षुरवधिदर्शनाख्याः मिश्राः षट्। असंयतदेशसंयतयोः त एव षडमिश्राः। प्रमत्तादिक्षीणकषायांतेषु त एव मनःपर्ययेण सह सप्त। सयोगे अयोगे सिद्धे च केवलज्ञानदर्शनाख्यौ द्वौ ॥ ७०५ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रवर्तिविरचितायां गोम्मटसारापरनामपचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकांडे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयोर्विंशतिप्ररूपणानिरूपणानामैकविंशोऽधिकारः ॥ २२ ॥

स० चं०—गुण पर्यायवान् वस्तु है ताके ग्रहणरूप जो व्यापार प्रवर्तन सो उपयोग है। ज्ञान है सो जानने योग्य जो वस्तु तातैं नाहीं उपजैं हैं। सो कह्या है—

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ॥ १ ॥

याका अर्थ जैसैं वस्तु अपने ही उपादान कारणसैं उपज्या आपहीतैं जानने योग्य है तैसैं ज्ञान अपने ही उपादान कारणतैं निपज्या आपहीतैं जानने हारा है। बहुरि ज्ञेय पदार्थ अर प्रकाशादिक ए ज्ञानका कारण नाहीं जातैं ए तौ ज्ञेय है। जैसैं अंधकार ज्ञेय है तैसे ए भी ज्ञेय है—जानने योग्य है। जाननेकौं कारण नाहीं ऐसा जानना। बहुरि सो उपयोग ज्ञान दर्शनके भेदतैं दोय प्रकार है। तहां कुमति कुश्रुत विभंग मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल भेदतैं ज्ञानोपयोग आठ प्रकार है। चक्षु अचक्षु अवधि केवल भेदतैं दर्शनोपयोग च्यारि प्रकार है। तहां मिथ्यादृष्टि सासादनविषैं तो कुमति कुश्रुत विभंग ज्ञान, चक्षु अचक्षु दर्शन ए पांच उपयोग है बहुरि मिश्र-

विषैं मिश्ररूप मति श्रुत अवधि ज्ञान चक्षु अचक्षु अवधि दर्शन, ए छह उपयोग है । असंयत देशसंयतविषै मति श्रुत अवधिज्ञान चक्षु अचक्षु अवधिदर्शन ए छह उपयोग हैं। प्रमत्तादि क्षीण कषाय पर्यंतविषैं तेई मनःपर्यय सहित सात उपयोग हैं। सयोगी अयोगी सिद्धविषैं केवलज्ञान केवलदर्शन ए दोय उपयोग हैं ॥ ७०५ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रविरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृतटीकाके अनुसार सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषा टीकाविषैं प्ररूपित जे वीस प्ररूपणा तिनिविषैं गुणस्थाननिविषैं वीस प्ररूपणा निरूपणा नामा इकवीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ २१ ॥

आलापाधिकारः ॥ २२ ॥

जी० प्र०—

नेमिं धर्मरथे नेमिं पूज्यं सर्वनरामरैः ।
वहिरंतःश्रियोपेतं जिनेंद्रं तच्छ्रिये श्रये ॥ २२ ॥

अथालापाधिकारं स्वेष्टदेवतानमस्कारपूर्वकं वक्तुं प्रतिजानीते—

सुरनर गणपति पूज्यपद वहिरंतर श्री धारि ।
नेमि धर्मरथनेमिसम भजौं होंहु श्रीसार ॥ २२ ॥

आगैं आलाप अधिकारकौं अपने इष्टदेवको नमस्कार पूर्वक कहनेकौं प्रतिज्ञा करैं हैं—

गोयमथेरं पणमिय ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं वोच्छामि जहाकमं सुणह ॥ ७०६ ॥

गौतमस्थविरं प्रणम्य ओघादेशयोर्विंशभेदानां ।
योजनिकानामालापं वक्ष्यामि यथाक्रमं शृणुत ॥ ७०६ ॥

सत्तण्हं पुढवीणं ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा।
पढमाविरदेवि तहा सेसाणं पुण्णगालावो॥७१२।

सप्तानां पृथिवीनां ओघे मिथ्यात्वे च त्रय आलापाः।
प्रथमाविरतेऽपि तथा शेषाणां पूर्णकालापाः॥ ७१२॥

जी० प्र०—नरकगतौ सामान्येन सप्तपृथ्वीमिथ्यादृष्टौ त्रयः आलापाः स्युः। तथा प्रथमपृथ्व्यविरतेऽपि त्रय आलापाः स्युः। बद्धनरकायुर्वेदकक्षायिकसम्यग्दृष्टयोस्तत्रोत्पत्तिसंभवात् शेषपृथ्व्यविरतानामेकः पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टेस्तत्रानुत्पत्तिः॥ ७१२॥

स० चं०—नरकगतिविषैं सामान्यपनैं सप्तपृथ्वी संबंधी मिथ्यादृष्टिविषै तीन आलाप हैं अर तैसेंही प्रथम पृथ्वी संबंधी असंयतविषैं तीन आलाप है। जो नरकायु पहिलैं बाध्या होइ ऐसा वेदक क्षायिक सम्यग्दृष्टी जीव सो तहां ही प्रथम पृथ्वीविषैं उपजै है। बहुरि अवशेष पृथ्वी संबंधी अविरत अर सर्व पृथ्वीका सासादन मिश्र इनकें एक पर्याप्त आलाप ही है॥ ७१२॥

तिरियचउक्काणोघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव।
णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसेवि पुण्णो दु॥ ७१३॥

तिर्यक्चतुष्काणामोघे मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव।
नवरि च योनिन्ययते पूर्णः शेषेपि पूर्णस्तु॥ ७१३॥

जी० प्र०—तिर्यग्गतौ पंचगुणस्थानेषु सामान्यपंचेंद्रियपर्याप्तयोनिमत्तिरश्चां चतुर्णां साधारणेन मिथ्यादृष्टिसासादनासंयतेषु प्रत्येकं त्रय आलापा भवंति। तत्रायं विशेषः—योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव। बद्धायुष्कस्यापि सम्यग्दृष्टेः स्त्रीषंढयोरनुत्पत्तेः। तु—पुनः शेषमिश्रदेशसंयतयोरपि पर्याप्तालाप एव॥ ७१३॥

जी० प्र०—विशिष्टा गौर्भूमिः गोतमा—अष्टमपृथ्वी सा स्थविरा नित्या यस्य स गोतमस्थविरः सिद्धसमूहः गौतमस्थविर एव गौतमस्थविरः तं । अथवा गौतमः गौतमस्वामी स्थाविरो यस्यासौ गौतमस्थविरः श्रीवर्धमानस्वामी तं। अथवा विशिष्टा गौः वाणी यस्यासौ गोतमः गोतम एव गौतमः सचासौ स्थविरश्च गौतमस्थविरः तं प्रणम्य गुणस्थानमार्गणास्थानयोः प्राग् योजितानां विंशतिप्रकाराणां आलापं यथाक्रमं वक्ष्यामि ॥७०६॥ तद्यथा—

स० चं–' विशिष्ट जो गो ' कहिए भूमि आठवीं पृथ्वी सो है स्थविर कहिए सास्वती जाकैं ऐसा सिद्धसमूह अथवा गोतम सोई स्थविर कहिए गणधर अथवा गोतम है स्थविर कहिए गणधर जाके ऐसा वर्धमान स्वामी अथवा विशिष्ट है गो कहिए वाणी जाकी ऐसा स्थविर कहिए मुनिसमूह सो ऐसें जु गोतम स्थविर ताहि प्रणम्य नमस्कार करिकैं ओघ जो गुणस्थान अर आदेश जो मार्गणास्थान इनिविषैं जोडनेरूप जो गुणस्थानादिक वीस प्ररूपणा तिनिका आलाप ताहि यथाक्रम कहोंगा सो सुनहु। जहां वीस प्ररूपणा प्ररूपिए ऐसे विवक्षित स्थाननिका कहना ताका नाम आलाप जानना ॥ ७०६ ॥ सो कहैं हैं—

ओघे चोदसठाणे सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे अणियट्टीपंचभागे य ॥ ७०७ ॥

ओघे चतुर्दशस्थाने सिद्धे विंशतिविधानामालापाः ।
वेदकषायविभिन्ने अनिवृत्तिपंचभागे च ॥ ७०७ ॥

जी० प्र०—गुणस्थाने चतुर्दशमार्गणास्थाने च प्रसिद्धे विंशतिविधानां गुणजीवेत्यादीनां सामान्यपर्याप्तापर्याप्ताः त्रयः आलापा भवंति । तथा वेदकषायविभिन्नेषु अनिवृत्तिकरणपंचभागेषु अपि पृथक्पृथग्भवति । ॥ ७०७ ॥ तत्र गुणस्थानेष्वाह—

स० चं–ओघ जो गुणस्थान अर चौदह मार्गणास्थान ए परमागमविषैं प्रसिद्ध हैं सो इनिविषैं ' गुणजीवा पज्जत्ती ' इत्यादिक वीसप्ररूपणानिका सामान्य पर्याप्त अपर्याप्त ए तीन आलाप हो हैं। बहुरि वेद अर कषायकरि है भेद जिनिविषैं ऐसे अनिवृत्ति करणके पंच भाग तिनिविषैं पंच आलाप जुदे जुदे जानने ॥ ७०७ ॥ तहां गुणस्थाननिविषैं कहैं हैं—

स० चं—तिर्यंच पंच प्रकार। सर्वभेद जामें गर्भित ऐसा सामान्य तिर्यंच, बहुरि जाकैं पांचों इंद्रिय पाइये ऐसा पंचेंद्री तिर्यंच, बहुरि जो पर्याप्त अवस्थाकौं धारै सो पर्याप्त तिर्यंच, बहुरि जो स्त्रीवेदरूप है सो योनिमत तिर्यंच, जो लब्धि अपर्याप्त अवस्थाकौं धारै सो लब्धि अपर्याप्त तिर्यंच, तहां सामान्यादिक चारि प्रकार तिर्यंचनिकैं पंच गुणस्थान पाइए। तहां मिथ्यादृष्टि सासादन अविरतविषैं तीन तीन आलाप हैं। तहां इतना विशेष है योनिमत् तिर्यंचकैं अविरतविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है जातैं जो पहिलैं तिर्यंच आयु बांध्या होइ तौ भी सम्यग्दृष्टि स्त्रीवेद नपुंसकवेदविषैं न उपजै। बहुरि मिश्र वा देश विरतविषैं पर्याप्त आलाप ही है॥ ७१३॥

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण आलावो।
मूलोघं मणुसतिए मणुसिणिअयदम्हि पज्जत्तो॥ ७१४॥

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्ते एक अपूर्ण आलापः।
मूलोघं मनुष्यत्रिके मानुष्ययते पर्याप्तः॥ ७१४॥

जी० प्र०—तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्तके एकः अपर्याप्तालाप एव। मनुष्यगतौ सामान्यपर्याप्तयोनिमन्मनुष्येषु प्रत्येकं चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवत् मूलौघः स्यात् तथापि योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एव। कारणं प्रागुक्तमेव। पुनरयं विशेषः-असंयततैरश्च्यां प्रथमोपशमकवेदकसम्यक्त्वद्वयं, असंयतमानुष्यां प्रथमोपशमवेदकक्षायिकसम्यक्त्वत्रयं च संभवति तथापि एकोऽशुज्यमानपर्याप्तालाप एव। योनिमतीनां पंचगुणस्थानादुपरि गमनासंभवात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नास्ति॥ ७१४॥

स० चं—लब्धि अपर्याप्त तिर्यंचविषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है। बहुरि मनुष्य च्यारि प्रकार-तहां सर्वभेद जामें गर्भित होंइ ऐसा सामान्य मनुष्य, बहुरि जो पर्याप्त अवस्थाकौं धारै सो पर्याप्त मनुष्य, बहुरि जो स्त्री वेदरूप सो योनिमत मनुष्य, बहुरि जो लब्धि अपर्याप्तपनांकौं धारै सो लब्धि अपर्याप्त मनुष्य है। तहां सामान्यादिक तीन प्रकार मनुष्यनिके प्रत्येक चौदह गुणस्थान पाइए। इहां भाववेद अपेक्षा योनिमत् मनुष्यके चौदह गुणस्थान कहे हैं। गुणस्थानवत् आलाप जानने। विशेष इतना जो योनिमत् मनुष्यकैं असंयतविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है। कारण

पूर्वै कह्या ही है। बहुरि इतना विशेष है जो असंयत तिर्यंचिणीकैं प्रथमोपशम वेदक ए दोय सम्यक्त्व हैं अर मनुष्यणीकै प्रथमोपशम वेदक क्षायिक ए तीन सम्यक्त्व संभवै हैं तथापि जहां सम्यक्त्व हो है तहां पर्याप्त आलाप ही है। सम्यक्त्व सहित मरै सो स्त्रीवेदविषैं न उपजै है बहुरि द्रव्य अपेक्षा योनिमती पंचम गुणस्थानतैं ऊपरि गमन करै नाही तातैं तिनकैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नाहीं है ॥ ७१४ ॥

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण।
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ॥ ७१५ ॥

मानुष्यां प्रमत्तविरत आहाराद्विकं तु नास्ति नियमेन।
अपगतवेदायां मानुष्यां संज्ञा भूतगतिमासाद्य ॥ ७१५ ॥

जी० प्र०—द्रव्यपुरुषभावस्त्रीरूपे प्रमत्तविरते आहारकतदंगोपांगनामोदयः नियमेन नास्ति। तुशब्दात् अशुभवेदोदये मनःपर्ययपरिहारविशुद्धी अपि न। भावमानुष्यां चतुर्दशगुणस्थानानि, द्रव्यमानुष्यां पंचैवेति ज्ञातव्यं। अपगतवेदानिवृत्तिकरणमानुष्यां कार्यरहितमैथुनसंज्ञा भूतपूर्वगतिन्यायमाश्रित्य भवति। द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं मनःपर्ययज्ञानिनि स्यात्। नचाहारकर्धिप्राप्तेनापि परिहारविशुद्धौ त्रिंशद्वर्षैर्विना तत्संयमस्यासंभवात् तत्सम्यक्त्वस्य तु तत्कालं अनवस्थानात्। अत्यक्ततत्संयमस्य उपशमश्रेणिमारोढुमपि दर्शनमोहोपशमाभावाच्च तद्द्वयसंयोगाघटनात् ॥ ७१५ ॥

स०चं०—द्रव्यपुरुष अर भाव स्त्री ऐसा मनुष्य प्रमत्तविरतगुणस्थानविषैं होइ ताकैं आहारक अर आहारक अंगोपांग नामकर्मका उदय नियमकरि नाहीं है। तुशब्दतैं स्त्रीवेद नपुंसकवेदका उदयविषैं मनःपर्ययज्ञान अर परिहार विशुद्धि संयम ए भी न हो हैं। बहुरि भावमनुष्यणीविषैं चौदह गुणस्थान हैं द्रव्य मनुष्यणीविषैं पांच ही गुणस्थान है। बहुरि वेदरहित अनिवृत्ति करणविषैं मनुष्यणीकैं मैथुन संज्ञा कही है सो कार्यरहित पूर्वगति न्यायकरि जाननी। जैसैं कोऊ राजा था वाकौं राजभ्रष्ट भए पीछैं भी राजाही कहिए है तासैं जाननी। सो भावस्त्री भी नवताई हो है। इहां चौदह गुणस्थान कहे सो भूतपूर्व गति न्यायकरि ही कहे हैं। बहुरि आहारक ऋद्धिकौं जो प्राप्त

भया ताकैं भी वा परिहार विशुद्धि संयमविषैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अर मनःपर्यय ज्ञान न हो है जातै तेतीस वर्ष विना सो परिहार विशुद्धि संयम होइ नाहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी इतनी स्थिति नाहीं अर परिहार विशुद्धि संयम सहित श्रेणी न चढै तातैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी बनैं नाहीं तातैं तिन दोऊनिका संयोग नाहीं संभवै है ॥ ७१५ ॥

णरलद्धिअपज्जत्ते एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो ।
लेस्साभेदविभिण्णा सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा ॥ ७१६ ॥

नरलब्ध्यपर्याप्ते एकस्तु अपूर्णकस्तु आलापः ।
लेश्याभेदविभिन्नानि सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि ॥ ७१६ ॥

जी० प्र०—तु–पुनः, मनुष्यलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप एव । लेश्याभेदविभिन्नदेवस्थानानि सप्तविकल्पानि भवंति तद्यथा

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ॥ १ ॥
तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का भवणतिया पुण्णगे असुहा ॥ २ ॥

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।
एतस्माच्च चतुर्दशानां लेश्या भवनादिदेवानाम् ॥ १ ॥
तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मशुक्ले च ।
शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रिका अपूर्णके अशुभाः ॥ २ ॥

भवनत्रय–सौधर्मद्वय–सानत्कुमारद्वय–ब्रह्मषट्क–शतारद्वय–आनतादित्रयोदश–उपरितनचतुर्दशविमानजानां क्रमशः तेजोजघन्यांशतेजोमध्यमांश-तेज उत्कृष्टांश-पद्मजघन्यांश-पद्ममध्यमांश-पद्मोत्कृष्टांश-शुक्लजघन्यांश-शुक्लमध्यमांश–शुक्लोत्कृष्टांशा भवंति ॥ ७१६ ॥

स० चं—बहुरि लब्धि अपर्याप्त मनुष्यविषैं एक अपर्याप्त आलाप ही है बहुरि लेश्याभेदकरि भिन्न ऐसे देवनिके स्थानक सात हैं ते कहैं हैं—

भवनत्रिक देव बहुरि सौधर्म युगल बहुरि सनत्कुमार युगल बहुरि ब्रह्मादिक छह बहुरि शतारयुगल बहुरि आनतादिक नवम ग्रैवेयक पर्यंत तेरह बहुरि अनुदिश अनुत्तर विमान चौदह इनि सात स्थानकनिविषैं क्रमतैं तेजका जघन्यांश बहुरि तेजका मध्यमांश बहुरि तेजका उत्कृष्टांश, पद्मका जघन्यांश बहुरि पद्मका मध्यमांश बहुरि पद्मका उत्कृष्टांश, शुक्लका जघन्यांश बहुरि शुक्लका मध्यमांश बहुरि शुक्लका उत्कृष्टांश ए लेश्या पाइए हैं ॥ ७१६ ॥

सव्वसुराणं ओघे मिच्छदुगे अविरदेय तिण्णेव ।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ॥७१७॥

सर्वसुराणामोघे मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव ।
नवरि च भवनत्रिककस्त्रीणां च च अविरते पूर्णः ॥ ७१७ ॥

जी० प्र०—सर्वदेवसामान्ये चतुर्गुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टिसासादनयोः असंयते च त्रय आलापा भवंति । अयं विशेषः-भवनत्रयदेवानां कल्पस्त्रीणां च असंयते पर्याप्तालाप एव तिर्यग्मनुष्यासंयतानां तत्रोत्पत्त्यभावात् ॥ ७१७ ॥

स० चं—सव सामान्य देवविषैं मिथ्यादृष्टि सासादन असंयत इनिविषैं तीन तीन आलाप हैं बहुरि इतना विशेष जो भवनत्रिक देव अर कल्पवासिनी स्त्री इनकैं असंयतविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है । जातैं असंयत तिर्यंच मनुष्य मरिकरि तहां उपजैं नाहीं ॥ ७१७ ॥

मिस्से पुण्णालाओ अणुद्दिसाणुत्तरा हु ते सम्मा ।
अविरद तिण्णालावा अणुद्दिसाणुत्तरे होंति ॥ ७१८ ॥

मिश्रे पूर्णालापः अनुदिशानुत्तरा हि ते सम्यंचः ।
अविरते त्रय आलापाः अनुदिशानुत्तरे भवंति ॥ ७१८ ॥

जी० प्र०—नवग्रैवेयकावसानसामान्यदेवानां मिश्रगुणस्थाने एकः पर्याप्तालाप एव अनुदिशानुत्तरविमानादहमिंद्राः सर्वे खलु सम्यग्दृष्टय एव तेन असंयते त्रय आलापा भवंति ॥ ७१८ ॥ अथेंद्रियमार्गणायामाह—

स० चं०—नव ग्रैवेयक पर्यंत सामान्य देव तिनिकैं मिश्रगुणस्थानविषैं एक पर्याप्त आलाप ही है बहुरि अनुदिश अर अनुत्तर विमानवासी अहमिंद्र सर्व सम्यग्दृष्टी ही हैं तातैं तिनके असंयतविषैं तीन आलाप हैं ॥७१८॥ आगैं इंद्रिय मार्गणा विषैं कहैं हैं—

बादरसुहमेइंदियबितिचउरिंदियअसण्णिजीवाणं ।
ओघे पुण्णे तिण्णि य अपुण्णगे पुण अपुण्णो दु ॥ ७१९ ॥

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवानां ।
ओघे पूर्णे त्रयश्च अपूर्णके पुनः अपूर्णस्तु ॥ ७१९ ॥

जी० प्र०—तु-पुनः बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवसामान्ये पर्याप्तनामोदयविशिष्टे त्रय आलापा भवंति । अपर्याप्तनामोदयविशिष्टे पुनः एको लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥७१९॥

स० चं०—बादर सूक्ष्म एकेंद्रिय बहुरि बेंद्री तेंद्री चौंद्री असैनी पंचेंद्री इनकी सामान्य रचना पर्याप्त नामकर्मका उदय संयुक्त, तींहिविषैं तीन आलाप हैं । निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्थाविषैं भी पर्याप्त नामकर्महीका उदय जानना ॥ ७१९ ॥

सण्णी ओघे मिच्छे गुणपडिवण्णे य मूलआलावा ।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥ ७२० ॥

संज्ञ्योघे मिथ्यात्वे गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः अपर्याप्तो भवति आलापः ॥ ७२० ॥

जी० प्र०—संज्ञिसामान्ये पंचगुणस्थानेषु मिथ्यादृष्टौ मूलालापास्त्रयो भवंति । गुणप्रतिपन्नेषु तु सासादनाऽसंयतयोः सामान्यपर्याप्तनिर्वृत्त्यपर्याप्ताः मूलालापास्त्रयो भवंति । मिश्रदेशसंयतयोरेकः पर्याप्त एव मूलालापः । संज्ञिलब्ध्यपर्याप्ते एकः लब्ध्यपर्याप्तालापः ॥ ७२० ॥ अथ कायमार्गणायां गाथाद्वयेनाह—

स० चं०—सैनी पंचेंद्री तिर्यंचकी सामान्य रचनाविषैं पंच गुणस्थान है तिनविषैं मिथ्यादृष्टिमें तो मूलमें कहे थे तेई तीन आलाप हैं। बहुरि जो विशेष गुणको प्राप्तभया ताकैं सासादन अर संयतविषैं मूलमें कहे ते तीनों आलाप है। मिश्र अर देशसंयतविषैं एक पर्याप्त आलाप है। बहुरि सैनी लब्धि अपर्याप्तविषैं एक लब्धि अपर्याप्त आलाप ही है॥ ७२० ॥ आगैं कायमार्गणाविषैं दोय गाथानिकरि कहै हैं—

भूआउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि ।
ताणं थूलिदरेसु वि पत्तेगे तद्दुभेदेवि ॥ ७२१ ॥
तसजीवाणं ओघे मिच्छादिगुणेवि ओघ आलाओ ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ॥ ७२२ ॥ जुम्मं ।

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदके त्रयः ।
तेषां स्थूलेतरयोरपि प्रत्येके तद्द्विभेदेऽपि ॥ ७२१ ॥
त्रसजीवानामोघे मिथ्यात्वादिगुणेऽपि ओघ आलापः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः अपर्याप्तो भवत्यालापः ॥ ७२२ ॥

जी० प्र०—पृथ्व्यप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदेषु तद्बादरसूक्ष्मेषु च प्रत्येकवनस्पतौ तत्प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितभेदयोश्च आलापत्रयमेव । त्रसजीवानां सामान्येन चतुर्दशगुणस्थानेषु गुणस्थानवदालापा भवंति विशेषाभावात् । पृथ्व्यादित्रसांतलब्ध्यपर्याप्तेषु एकः लब्ध्यपर्याप्तालाप एव ॥ ७२१–७२२ ॥ अथ योगमार्गणायामाह——

स० चं०—पृथ्वी अप तेज वायु नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोद इनके बादर सूक्ष्म भेद बहुरि प्रत्येक वनस्पती याके सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित भेद इनि सबनिविषैं तीन तीन आलाप हैं। त्रस जीवनिके सामान्यकरि चौदह गुणस्थाननिविषैं, गुणस्थाननिविषैं कहे तैसैं ही आलाप हैं किछू विशेष नाहीं। पृथ्वी आदि त्रस पर्यंत जो लब्धि अपर्याप्त है ताकैं एक लब्धि अपर्याप्त ही आलाप है॥ ७२१–७२२ ॥ आगैं योगमार्गणाविषैं कहै हैं—

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्णआलाओ ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो सगएक्कअपुण्णआलओ ॥७२३॥

एकादशयोगानां पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः।
मिश्रचतुष्कस्य पुनः स्वकैकापूर्णालापः॥ ७२३ ॥

जी० प्र०—पर्याप्तिगतानां चतुर्मनश्चतुर्वागौदारिकवैक्रियिकाहारकैकादशयोगानां स्वस्वपूर्णालापो भवति यथा सत्यमनोयोगस्य सत्यमनःपर्याप्तालापः। मिश्रयोगचतुष्कस्य पुनः स्वस्वैकापर्याप्तालापो भवति। यथा औदारिकमिश्रस्य औदारिकापर्याप्तालापः॥७२३॥ अथ शेषमार्गणासु आह—

स० चं०—पर्याप्त अवस्थाविषैं होंहिं ऐसैं च्यारि मन च्यारि वचन औदारिक वैक्रियिक आहारक इन ग्यारह योगनिकैं अपना अपना एक पर्याप्त आलाप ही है। जैसैं सत्य मनोयोगके सत्य मनःपर्याप्त आलाप है ऐसैं सबनिकैं जानना। बहुरि अवशेष रहे च्यारि मिश्र योग तिनकैं अपना अपना एक अपर्याप्त आलाप ही है। जैसैं औदारिक मिश्रके एक औदारिक मिश्र अपर्याप्त आलाप है । ऐसैं सबनिकैं जानना॥ ७२३॥ आगैं अवशेष मार्गणाविषैं कहै हैं—

वेदादाहारोत्ति य सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ।
णवरि य संढिच्छीणं णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥ ७२४ ॥

वेदादाहार इति च स्वगुणस्थानानामोघ आलाप :।
नवरि च षंढस्त्रीणां नास्ति हि आहारकानां द्विकं ॥ ७२४ ॥

जी० प्र०—वेदाद्याहारांतदशमार्गणासु स्वस्वगुणस्थानानामालापक्रमः सामान्यगुणस्थानवद्भवति किंतु भावषंढद्रव्यपुरुषे भावस्त्रीद्रव्यपुरुषे च प्रमत्तसंयते आहारकतन्मिश्रालापौ न। 'हत्थपमाणं पसच्छुदयं' इत्याहारकशरीरे प्रशस्तप्रकृतीनामेवोदयनियमात्। वेदानामनिवृत्तिकरणसवेदभागांतेषु क्रोधमानमायाबादरलोभानां अवेदचतुर्भागांतेषु सूक्ष्मलोभस्य सूक्ष्मसांपराये। ज्ञानमार्गणायां कुमतिकुश्रुतविभंगानां द्वयोः, मतिश्रुतावधीनां नवसु, मनःपर्ययस्य सप्तसु, केवलज्ञानस्य द्वयोः, असंयमस्य चतुर्षु, देशसंयतस्य एकस्मिन्, सामायिकछेदोपस्थापनयोश्चतुर्षु, परिहारविशुद्धेर्द्वयोः, सूक्ष्मसांपरायस्य एकस्मिन्, यथाख्यातस्य चतुर्षु, चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोः द्वादशसु, अवधिदर्शनस्य नवसु, केवलदर्शनस्य द्वयोः, कृष्णनीलकपोतानां चतुर्षु, तेजःपद्मयोः सप्तसु, शुक्लायास्त्रयोदशसु, भव्यमार्गणायां भव्यस्य चतुर्दशसु, अभव्यस्य एकस्मिन्, सम्यक्त्वमार्गणायां मिथ्यात्वसासादनमिश्राणामेकैकस्मिन्, द्वितीयोपशमस्य अष्टसु, प्रथमोपशमवेदकयोश्चतुर्षु, क्षायिकस्य एकादशसु, संज्ञिनो द्वादशसु, असंज्ञिन एकस्मिन्, आहारकस्य त्रयोदशसु अनाहारकस्य पंचसु च गुणस्थानेषु सामान्यगुणस्थानोक्तक्रमेणालापः कर्तव्यः ॥ ७२४ ॥

स० चं—वेदमार्गणातैं लगाइ आहारमार्गणा पर्यंत दश मार्गणानिविषैं अपना अपना गुणस्थाननिका आलापनिका अनुक्रम गुणस्थाननिविषैं कहे तैसैं ही जानना। इतना विशेष है जो भावनपुंसक वा स्त्री होइ अर द्रव्यपुरुष होइ ऐसे जीवके आहारक आहारकमिश्र आलाप नाहीं है जातैं आहारक शरीरविषैं प्रशस्त प्रकृतिनिका ही उदय है। तहां वेदनिके अनिवृत्ति करणका सवेदभाग पर्यंत गुणस्थान है। क्रोध मान माया बादर लोभ इनकैं अनिवृत्ति करणके वेदरहित च्यारि भाग तहां पर्यंत क्रमतैं गुणस्थान हैं। सूक्ष्म लोभके सूक्ष्म सांपराय ही है। कुमति कुश्रुत विभंग इनिकैं दोय गुणस्थान हैं। मति श्रुत अवधिके नव है। मनः पर्ययके सात हैं। केवल ज्ञानके दोय हैं। असंयमके च्यारि हैं। देश संयमकैं एक है। सामायिक छेदोपस्थापनाकैं च्यारि हैं। परिहार विशुद्धिकैं दोय हैं।

सूक्ष्म सांपरायकैं एक है। यथाख्यात चारित्रकैं च्यारि हैं। चक्षु अचक्षु दर्शनके बारह हैं। अवधि दर्शनके नव हैं। केवल दर्शनके दोय हैं। कृष्ण नील कपोत लेश्याके च्यारि हैं। पीत पद्मके सात हैं। शुक्लके तेरह हैं। भव्यके चौदह हैं। अभव्यकै एक है। मिथ्यात्व सासादन मिश्रके एक एक है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्वकैं आठ हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर वेदककैं च्यारि हैं। क्षायिकके ग्यारह हैं। संज्ञीके बारह हैं। असंज्ञीकैं एक है। आहारककै तेरह हैं। अनाहारककैं पांच हैं। ऐसै ए गुणस्थान कहे तिन गुणस्थाननिविषैं आलाप मूलमें जैसैं सामान्य गुणस्थाननिविषैं अनुक्रम करि आलाप कहे थे तैसैं ही जानने ॥ ७२४ ॥

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा ॥ ७२५ ॥
भव्वा सम्मत्तावि य सण्णी आहारगा य उवजोगा।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदायं॥ ७२६ ॥ जुम्मं।

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाः गतींद्रियाणि कायाः।
योगा वेदकषायाः ज्ञानयमाः दर्शनानि लेश्याः ॥ ७२५ ॥
भव्याः सम्यक्त्वान्यपि च संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगाः।
योग्याः प्ररूपितव्या ओघादेशयोः समुदायं ॥ ७२६ ॥ युगलं।

जी० प्र—गुणस्थानानि चतुर्दश, मूलजीवसमासाः पर्याप्ताः सप्त। अपर्याप्ताः सप्त, संज्ञिनः पर्याप्तयः षट् अपर्याप्तयः षट्। असंज्ञिनो विकलत्रयस्य च पर्याप्तयः पंच अपर्याप्तयः पंच। एकेंद्रियस्य पर्याप्तयः चतस्रः अपर्याप्तयः चतस्रः। प्राणाः संज्ञिनो दश तदपर्याप्तस्य सप्त असंज्ञिनः नव तदपर्याप्तस्य सप्त, चतुरिंद्रियस्य अष्टौ तदपर्याप्तस्य षट्, त्रींद्रियस्य सप्त तदपर्याप्तस्य पंच, द्वींद्रियस्य षट् तदपर्याप्तस्य चत्वारः, एकेंद्रियस्य चत्वारः तदपर्याप्तस्य

त्रयः। सयोगकेवलिनः चत्वारः वाक्कायायुरुच्छ्वासनिश्वासाख्याः। तस्यैव पुनः मिश्रकायायुर्वा, अयोगस्य आयुर्नामैकः। सञ्ज्ञाश्चतस्रः, गतयः चतस्रः, इन्द्रियाणि पंच, कायाः षट्, योगाः पर्याप्ता एकादश, अपर्याप्ताश्चत्वारः, वेदाः त्रयः, कषायाश्चत्वारः, ज्ञानानि अष्टौ, संयमाः सप्त, दर्शनानि चत्वारि, लेश्याः षट्, भव्यद्वयं, सम्यक्त्वानि षट्, संज्ञिद्वयं आहारद्वयं उपयोगा-द्वादश एते सर्वे समुच्चयं गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च यथायोग्यं प्ररूपितव्याः ॥ ७२५-७२६ ॥ जीवसमासेषु विशेषमाह—

स० चं-गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह, तहां पर्याप्त सात, अपर्याप्त सात, पर्याप्ति छह, तहां संज्ञी पंचेंद्रियके पर्याप्ति अवस्थाविषैं पर्याप्ति अवस्था संबंधी छह अर अपर्याप्ति अवस्था विषैं अपर्याप्त संबंधी छह, असंज्ञी वा विकलत्रयके पर्याप्ति अपर्याप्ति संबंधी पांच पांच, एकेंद्रीकैं च्यारि च्यारि जानने।

प्राण संज्ञी पंचेंद्रियकैं दश, तीहि अपर्याप्तके सात, असंज्ञी पंचेंद्रीकै नव, तीहि अपर्याप्तके सात, चौइंद्रीके आठ, तीहिं अपर्याप्तके छह, तेइंद्रीके सात, तीहिं अपर्याप्तके पांच, वेइंद्रीके छह, तीहिं अपर्याप्तके च्यारि, एकेंद्रियके च्यारि, तीहि अपर्याप्तके तीन हैं। सयोग केवलीकैं वचन काय उस्वास आयु ए च्यारि प्राण हैं। तिसहीकैं वचनविना तीन हो हैं। कायवल विना दोय होय हैं। अयोगीकैं एक आयु प्राण है—

वहुरि संज्ञा च्यारि गति च्यारि इंद्रिय पांच काय छह योग पंद्रह तिनमें पर्याप्त अवस्था संबंधी ग्यारह, अपर्याप्त अवस्था संबंधी तीन मिश्र अर एक कार्माण ए च्यारि हैं। वेद तीन कषाय च्यारि ज्ञान आठ संयम सात दर्शन च्यारि लेश्या छह भव्य दोय सम्यक्त्व छह संज्ञी दोय आहार दोय उपयोग वारह ए सर्व समुच्चय गुणस्थान वा मार्गणा स्थाननिविषैं यथा योग्य प्ररूपण करने ॥ ७२५ ॥ जीव समासविषैं विशेष कहैं हैं—

ओघे आदेसे वा सण्णीपज्जंतगा हवे जत्थ।
तत्थ य उणवीसंता इगिबितिगुणिदा हवे ठाणा ॥ ७२७॥

ओघे आदेशे वा संज्ञिपर्यंतका भवेयुर्यत्र।
तत्र चैकोनविंशांता एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः स्थानानि ॥ ७२७ ॥

श्री० प्र०—सामन्ये विशेषे वा संज्ञिपर्यंता मूलजीवसमासाः यत्र निरूप्यं ते तत्र एकान्नविंशत्यंता उत्तरजीवसमासस्थानविकल्पा एकद्वित्रिगुणिताः संतः सर्वजीवसमासस्थानविकल्पा भवंति ।

सा १ त्र १ स्था १ ए १ वि १ सं १ ए १ वि १ अ १ सं १ ए १ वि १ ति १ च १ पं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ त्र १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ अ १ सं १ पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ पं १। पृ १ अ १ ते १ वा १ व १ वि १ ति १ च १ अ १ सं १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ त्र १ पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ पं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ व २ वि १ ति १ च १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ पं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र १ वि १ ति १ च १ अ १ सं १। पृ २ अ २ ते २ वा २ नि २ च २ प्र २ वि १ ति १ च १ अ १ सं १। १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९। गुणाकारः सामान्यत एकः १। युतिः १९०। २ ४ ६ ८ १० १२ १४ १६ १८ २० २२ २४ २६ २८ ३० ३२ ३४ ३६ ३८ गुणाकारः २ युतिः ३८० ३ ६ ९ १२ १५ १८ २१ २४ २७ ३० ३३ ३६ ३९ ४२ ४५ ४८ ५१ ५४ ५७ गुणाकारः ३। युतिः ५७०॥ ७२७॥ इतोऽग्रे गुणस्थानेषु मार्गणास्थानेषु च ते गुणजीवेत्यादिर्विंशतिभेदा योज्यंते तद्यथा—

स० चं०—गुणस्थान वा मार्गणा स्थानविषैं जहां संज्ञी पंचेंद्री पर्यंत मूल चौदह जीव समास निरूपण करिए तहां उत्तर जीवसमास एकनैं आदि देकरि उगणीस पर्यंत एक सामान्य करि, दोय पर्याप्त अपर्याप्त करि, तीन पर्याप्त अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त करि गुणैं एकनैं आदि देकरि उगणीस पर्यंत वा दोयनैं आदि देकरि अठतीस पर्यंत वा तीननैं आदि देकरि सत्तावन पर्यंत जीवसमासके भेद हैं ते सर्व भेद तहां जानने। सामान्य जीवसमास एक त्रस स्थावर भेदतैं दोय इत्यादि सर्वभेद जीव समास अधिकारविषैं कहे हैं सो जानने। इनिकौं एक दोय तीनकरि गुणैं क्रमतैं एक दोय तीन आदि उगणीस अठतीस सत्तावन पर्यंत भेद हो हैं॥ ७२६॥ इहांतैं आगैं गुणस्थान मार्गणाविषैं गुणस्थान जीव समास इत्यादि बीस भेद जोडिए है सो कहिए है—

वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयउणसमत्थं ।

णमिऊण गोयममहं सिद्धंतालावमणुवोच्छं ॥ ७२८ ॥

वीरमुखकमलांनर्गतसकलश्रुतग्रहणप्रकटनसमर्थं ।
नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्ये ॥ ७२८ ॥

जी० प्र०—तत्र गुणस्थानेषु यथा तावच्चतुर्दशगुणस्थानजीवाः तदतीताश्च संति । चतुर्दशजीवसमासास्तदतीताश्च संति । षट् षट् पंचचतुश्चतुः पर्याप्त्यपर्याप्तिजीवाः तदतीताश्च संति । दशसप्तनवसप्ताष्टषट्सप्तपंचषट्चतुश्चतुस्त्रिचतुर्द्व्येकप्राणाः तदतीताश्च संति । चतुःसंज्ञाः तदतीताश्च संति । चतुर्गतिकाः सिद्धाश्च संति । पंचजातयः तदतीताश्च संति । षट्कायिकास्तदतीताश्च संति । पंचदशयोगाः अयोगाश्च संति । त्रिवेदाः तदतीताश्च संति । चतुःकषायाः अकषायाश्च संति । अष्टज्ञानाः संति । सप्तसंयमास्तदतीताश्च संति । चतुर्दर्शनाः संति । द्रव्यभावषड्लेश्याः अलेश्याश्च संति । भव्यसिद्धाः अभव्यसिद्धाः अतीतद्वयाश्च संति । षट्सम्यक्त्वाश्च संति । संज्ञिनोऽसंज्ञिनोतीततद्द्वयाश्च संति । आहारिणोऽनाहारिणश्च संति । साकारोपयोगाः अनाकारोपयोगाः युगपदुभयोपयोगाश्च सति । अथ पर्याप्तिविशिष्टगुणस्थानालाप उच्यते—तत्र चतुर्दशगुणस्थानिनः संति न च तदतीताः पर्याप्ति पु तदालापासभवात्—

स० चं०—वर्धमान स्वामीके मुख कमलतैं निकस्या असा सकल शास्त्र महागंभीर ताके प्रकट करनेकौं समर्थ असा सिद्धपर्यंत आलाप सो श्रीगौतम स्वामीकौं नमस्कार करि मैं कहौ हौं—

तहां सामान्य गुणस्थान रचनाविषै जैसैं चौदह गुणस्थानवर्ती जीव हैं। गुणस्थान रहित सिद्ध हैं । चौदह जीवसमास युक्त जीव है । तिनकरि रहित जीव हैं । छह छह पांच पांच च्यारि च्यारि पर्याप्ति अपर्याप्तियुक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । दश सात नव सात आठ छह सात पांच छह च्यारि च्यारि तीन च्यारि दोय एक प्राणके धारी जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । पंद्रह योग युक्त जीव हैं । अयोगी जीव हैं । तीन वेदयुक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । च्यारि कषाय युक्त जीव हैं। तिनकरि रहित जीव हैं । आठ ज्ञानयुक्त जीव हैं । ज्ञान रहित जीव नाहीं । सप्तसंयम युक्त जीव हैं । तिनकरि रहित जीव हैं । च्यारि दर्शन युक्त जीव हैं तिनकरि रहित जीव नाहीं । द्रव्य भाव छह लेश्यायुक्त जीव हैं । लेश्या रहित जीव हैं । भव्य वा अभव्य जीव हैं । दोऊ रहित जीव हैं । छह सम्यक्त्व युक्त जीव हैं । सम्यक्त्व रहित नाही । संज्ञी वा असंज्ञी जीव हैं । दोऊ रहित जीव

हैं। आहारी जीव हैं। अनाहारी जीव है। दोऊ रहित नाहीं। साकारोपयोग वा अनाकारोपयोग वा युगपत् दोऊ उपयोगयुक्त जीव हैं। उपयोग रहित जीव नाहीं है। ऐसैं अन्यत्र यथा संभव जानना। अथ गुणस्थान वा मार्गणास्थाननिविषैं यथायोग्य वीस प्ररूपणा निरूपणा कीजिए है—

सो यंत्रनिकरि विवक्षित गुणस्थान वा मार्गणास्थानका आलापविषैं जो जो प्ररूपणा पाइए सो सो लिखिए हैं—तहां यंत्रनिविषैं ऐसी सहनानी जाननी। पहिलैं तौ एक बडा कोठा तिसविषैं तौ जिस आलापविषैं वीस प्ररूपणा लगाई तिसका नाम लिखिए है। बहुरि तिस कोठेके आगैं आगैं बरोवरि वीस कोठे तिनविषैं प्रथमादि कोठेतैं लगाइ अनुक्रमतैं गुणस्थान जीवसमाम पर्याप्ति प्राण संज्ञी गति इंद्रिय काय योग वेद कषाय ज्ञान संयम दर्शन लेश्या भव्य सम्यक्त्व संज्ञी आहार उपयोग ए वीस प्ररूपणा जो जो पाइए सो सो लिखिए है। तिनविषैं गुणस्थानादिकका नाम नाहीं लिखिए है तथापि पहिला कोठाविषैं गुणस्थान दूसराविषैं जीवसमास तीसराविषैं पर्याप्ति इत्यादि बीसवां कोठाविषैं उपयोग पर्यंत जानने। तहां तीनि कोठेनिविषैं जहां जिस प्ररूपणाका जितना प्रमाण होइ तितनेहीका अंक लिख्या होइ तहां तौ सो प्ररूपणा सर्व जाननी। जैसैं पहिले कोठेमें चौदहका अंक जहां लिख्या होइ तहां सर्व गुणस्थान जानने। दूसरा कोठेविषैं जहां चौदहका अंक लिख्या होइ तहां सर्व जीवसमास जानने ऐसैं ही तृतीयादि कोठेनिविषैं जहां छह दश च्यारि च्यारि छह पंद्रह तीन च्यारि आठ सात च्यारि छह दोय छह दोय वारहके अंक लिखे होंइ तहां अपने अपने कोठेनिविषैं सो सो प्ररूपणा सर्व जाननी। बहुरि जहां प्ररूपणाका अभाव होइ तहां विंदी लिखिए है जैसैं पहिले कोठेविषैं जहां विंदी लिखी होइ तहां गुणस्थानका अभाव जानना। दूसरा कोठाविषैं जहां विंदी लिखी होइ तहां जीवसमासका अभाव जानना। ऐसैं अन्यत्र जानना। बहुरि जहां प्ररूपणाविषैं केतेक भेद पाइए तहां अपने अपने कोठानिविषैं जितने भेद पाइए तितनेका अंक लिखिए है। बहुरि तिन भेदनिके नाम जाननेके अर्थि नामका पहिला अक्षर वा पहिले दोय आदि अक्षर वा दोय विशेषण जाननेके अर्थि दोऊ विशेषणनिके आदिके दोय अक्षर वा तिन अक्षरनिके आगैं अपनी संख्याके अंक लिखिए है सोई कहिए है—

जितने गुणस्थान पाइए तितनेका अंक पहिले कोठेमें लिखिए है तिस अंकके नीचैं तिन गुणस्थाननिका नाम जाननेके अर्थि तिनके नामनिके आदि अक्षर लिखिए है सो आदि अक्षरकी सहनानीतैं सर्व नाम जानि लेना। तहां मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थाननिके नामकी ऐसी सहनानी जाननी। मि। सा। मिश्र। अवि। देश। प्र। अप्र। अपू। अनि। सू। उ। क्षी। स। अ। बहुरि जहां आदिके ऐसा लिख्या होइ तहां मिथ्यादृष्टि आदि जितने लिखे होंइ तितने गुणस्थान जानने। बहुरि ऐसैं ही दूसरा कोठाविषैं जीवसमास सो जीवसमास दोयप्रकार पर्याप्त वा अपर्याप्त तहां सहनानी ऐसी प। अ। बहुरि तहां सूक्ष्म बादर बेंद्री तेंद्री चौंद्री असंज्ञी संज्ञीकी सहनानी ऐसी सू। बा। बें। तें। चौं। अ। सं। तहां सूक्ष्मके पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ होंइ तौ सहनानी ऐसी सू २ पर्याप्त ही होइ तौ सहनानी ऐसी सू प १ अपर्याप्त ही होइ तौ ऐसी–सूअ १ संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्तकी ऐसी सं २ पर्याप्तकी ऐसी सं प १ संज्ञी अपर्याप्तकी ऐसी सं अ १ सहनानी है ऐसैं ही औरनिकी जाननी। बहुरि जहां अपर्याप्त ही जीव समास होइ तहां 'अपर्याप्त' ऐसा लिखिए है। जहां पर्याप्त ही होइ तहां 'पर्याप्त' ऐसा लिखिए है बहुरि प्रमत्तविषैं आहारक अपेक्षा सयोगीविषैं केवलसमुद्घात अपेक्षा पर्याप्त अपर्याप्त जीवसमास जानने। बहुरि कायमार्गणाकी रचनाविषैं जहां सत्तावन अठ्याणवै च्यारिसै छह जीवसमास कहे हैं ते यथासंभव पर्याप्त अपर्याप्त सामान्य आलापविषैं जानिलेने। बहुरि वनस्पती रचनाविषैं प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित प्रत्येक बादर सूक्ष्म नित्य इतर निगोदके पर्याप्त अपर्याप्तकी अपेक्षा यथासंभव जीवसमास बारहनैं आदि देकरि जानने। बहुरि तीसरा कोठाविषैं पर्याप्त सो पर्याप्ति जितनी पाइए तिनके अंक ही लिखिए है नाम नाहीं लिखिए है तहां ऐसा जानना छह तौ संज्ञी पंचेंद्रीके पंच असंज्ञी वा विकलत्रयके च्यारि एकेंद्रीके जानने। ते पर्याप्त आलापविषैं तौ पर्याप्त जानने। अपर्याप्त आलापविषैं अपर्याप्त जानने। सामान्य आलापविषैं ते दोय दोयवार जहां लिखे होंहि तहां पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ जानने। बहुरि चौथा कोठाविषैं प्राण ते प्राण जितने पाइए है तिनके अंक ही लिखिए है नाम नाहीं लिखिए है तहां ऐसा जानना—

पर्याप्त आलापविषैं तौ दश संज्ञीके नव असंज्ञीके आठ चौंद्रीके सात तेंद्रीके छह बेंद्रीके च्यारि एकेंद्रीके, ब-

हुरि च्यारि सयोगीके एक अयोगीका यथासंभव जानने। बहुरि अपर्याप्त आलापविषैं सात संज्ञीके, सात असंज्ञीके छह चौंद्रीके पांच तेंद्रीके च्यारि वेंद्रीके तीन एकेंद्री बहुरि दोय सयोगीके यथासभव जाननें। बहुरि जहां सामान्य आलापविषैं ते पूर्वोक्त दोऊ लिखिए तहां पर्याप्त अपर्याप्त दोऊ जानने। बहुरि पांचवां कोठाविषैं संज्ञा तहां आहारादिककी ऐसी सहनानी है आ। भ। मै। प। बहुरि छठा कोठाविषैं गति तहां नरकादिककी ऐसी सहनानी है न। ति। म। दे। बहुरि सातवां कोठाविषैं इंद्रिय तहां एकेंद्रियादिककी ऐसी सहनानी हे ए। वें। तें। चौं। पं। बहुरि आठवां कोठाविषैं काय सो पृथ्वी आदिकी ऐसी पृ। अ। ते। वा। व। बहुरि पांचो ही स्थावरनिकी ऐसी–स्था ५। बहुरि त्रसकी ऐसी-त्र सहनानी है। बहुरि नवमां कोठाविषैं योग तहां मनके च्यारि तिनकी ऐसी म ४। वचनके च्यारि तिनकी ऐसी व ४ कायकेविषैं औदारिकादिकनिकी ऐसी औ। औ मि। वै। वै मि। आ। आ मि। का। अथवा औदारिक औदारिकमिश्र इनि दोऊनिकी ऐसी-औ २। वैक्रियिक द्विककी ऐसी वै २। आहारक द्विककी ऐसी आ २ बहुरि सयोगीके सत्य अनुभय मन वचन पाइए तिनकी ऐसी म २। व २। बहुरि वेंद्रियादिकके अनुभय वचन पाइए ताकी ऐसी-अनु व १ सहनानी है। बहुरि दशवां कोठाविषै वेद तहां नपुंसकादिककी ऐसी-न। पुं। स्त्री सहनानी है। बहुरि ग्यारहवां कोठाविषैं कषाय तहां क्रोधादिककी ऐसी क्रो। मा। माया। लो सहनानी है। बहुरि वारह्वां कोठाविषैं ज्ञान तहां कुमति कुश्रुत विभंगकी ऐसी कुम। कुश्रु। वि। अथवा इनि तीनोंकी ऐसी-कुज्ञान ३। बहुरि मतिज्ञानादिककी ऐसी-म। श्रु। अ। म। के। अथवा मति श्रुत अवधि तीनोंकी ऐसी-मत्यादि ३। मति श्रुत अवधि मनःपर्ययकी ऐसी मत्यादि ४ सहनानी है। बहुरि तेरह्वां कोठाविषैं संयम तहां संयमादिककी ऐसी अ। दे। सा। छे। प। सू। य। सहनानी है। बहुरि चौदह्वां कोठाविषैं दर्शन तहां चक्षु आदिकी ऐसी च। अच। अव। के। अथवा चक्षु अचक्षु अवधि तीनोंकी ऐसी चक्षु आदि ३ सहनानी है। बहुरि पंद्रह्वां कोठाविषैं लेश्या तहां द्रव्य लेश्याकी सहनानी ऐसी-द्र। याके आगैं जितनी द्रव्य लेश्या पाइए तितनेका अंक जानना। बहुरि भावलेश्याकी सहनानी ऐसी-भा। याके आगैं जितनी भावलेश्या पाइए

तितनेका अंक जानना। दोऊही जागै कृष्णादिक नामनिकी ऐसी कृ। नी। क। इनि तीनोंकी ऐसी—अशुभ ३। तेज आदिककी ऐसी—ते। प। शु। इनि तीनोंकी ऐसी शुभ ३। सहनानी जाननी। बहुरि सोलहवां कोठाविषैं भव्य सो भव्य अभव्यकी ऐसी—भ। अ। सहनानी है। सतरहवां कोठाविषैं सम्यक्त्व तहां मिथ्यादिककी ऐसी—मि। सा। मिश्र। उ। वे। क्षा। सहनानी है। बहुरि अठारहवां कोठाविषैं संज्ञी, तहां संज्ञी असंज्ञीकी ऐसी स। अ। सहनानी है। बहुरि उगणीसवां कोठाविषैं आहार तहां आहार अनाहारकी ऐसी आ। अन। सहनानी है। बहुरि वीसवां कोठाविषैं उपयोग तहां ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगकी ऐसी ज्ञा। द। सहनानी है। ऐसैं इन सहनानीनि-करि यंत्रनिविषैं कहिए है अर्थ सो नीकैं जानना। बहुरि जहां गुणस्थानवत् वा मूलौघवत् ऐसा कह्या होय गुण-स्थान वा सिद्ध रचनाविषैं जैसैं प्ररूपणा होइ तैसैं यथासंभव जानना। बहुरि और भी जहां जिसवत् कह्या होइ तहां ताके समान प्ररूपणा जानिलेना। तहां जो किछू जिस कोठाविषैं विशेष कह्या होइ सो विशेष जानि लेना। बहुरि जहां स्वकीय ऐसा कह्या होइ तहां जिसका आलाप होइ तिसविषैं संभवती प्ररूपणा वा जिसका आलाप कीजिए सो ही प्ररूपणा जानि लेना। बहुरि इतना कथन जानि लेना—

सव्वेसिं सुहमाणं काऊदा सव्वविग्गहे सुक्का।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ॥ १ ॥

इस सूत्रकरि सर्व पृथ्वीकायादिक सूक्ष्म जीवानिकैं द्रव्यलेश्या कपोत है। विग्रहगति संबंधी कार्माणविषैं शुक्ल है मिश्र शरीरविषैं कपोत है। ऐसैं अपर्याप्त आलापनिविषैं द्रव्यलेश्या कपोत अर शुक्ल ही जानिलेना। बहुरि द्वितीयादि पृथ्वीका रचनाविषैं लेश्या अपनी अपनी पृथ्वीविषैं संभवती स्वकीय जाननी। बहुरि मनुष्य रचना-विषैं प्रमत्तादिकविषैं तीन भेद भाव अपेक्षा हैं, द्रव्य अपेक्षा एक पुरुषवेद ही है। बहुरि सप्तमादि गुणस्थाननिविषैं आहार संज्ञाका अभाव साता असाता वेदनीयकी उदीरणाका अभावतैं जानना। बहुरि स्त्री नपुंसक वेदका उदय होतैं आहारकयोग मनःपर्ययज्ञान परिहारविशुद्धि संयम न होइ ऐसा जानना। बहुरि श्रेणीतैं उतरि द्वितीयो-

पशम सम्यग्दृष्टि चतुर्थादि गुणस्थानकनितैं मरि देव होइ तीहिं अपेक्षा वैमानिक देवनिकैं अपर्याप्तकालविषैं उपशम सम्यक्त्व कह्या है। बहुरि एकेंद्री जीवनिकैं पर्याप्तनामकर्मके उदयतैं पर्याप्त निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था है। बहुरि अपर्याप्त नामकर्मके उदयतैं लब्धि अपर्याप्तक हो है अैसा जानना । बहुरि कायमार्गणा रचनाविषैं पर्याप्त बादर पृथ्वी बनस्पती त्रसकैं द्रव्यलेश्या छहो हैं। अपकैं शुक्ल तेजकैं पीत वायुकैं हरित वा गोमूत्र वा अव्यक्त वर्णरूप द्रव्य लेश्या स्वकीय जानना। बहुरि साधारण शरीर जाननेके अर्थि गाथा—

पुढवी आदि चउण्हं केवलि आहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदाहु सव्वे परिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥ १ ॥

पृथ्वी आदि च्यारि अर केवली आहारक देवनारकके शरीर निगोद रहित अप्रतिष्ठित हैं। अवशेष सर्व निगोद सहित अप्रतिष्ठित हैं अैसा साधारण रचनाविषैं स्वरूप जानना। बहुरि सासादन सम्यग्दृष्टि मरि नरक न जाय तातैं नारकी अपर्याप्त सासादन न होइ। बहुरि पंचमी आदि पृथ्वीके आये अपर्याप्त मनुष्यनिकै नीललेश्या होतैं वेदक सम्यक्त्व हो है तातैं कृष्ण नील लेश्याकी रचनाविषैं अपर्याप्त आलापविषैं मनुष्यगति कहिए है। बहुरि पर्याप्तविषैं कृष्णलेश्या नाहीं अपर्याप्तमें मिश्रगुणस्थान नाहीं तातैं कृष्णलेश्याका मिश्रगुणस्थानविषैं देव विना तीन गति है इत्यादिक यथासंभव अर्थ जानि यंत्रनिकरि कहिए है अर्थ सो जानना। अथ यंत्र रचना—

पर्याप्तगुणस्थानिनां गु १४। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ ४ १। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ११। वे ३। क ४। ज्ञा ८। सं ७। द ४। ले $\frac{६}{भा ६}$। भ २। स ६। सं २। आ १। उ १२। अपर्याप्तगुणस्थानिनां गु ५ मि सा अ प्र स। जी ७ अ। प ६ ५ ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २। सं ४। ग ४। इ ५। का ६। यो ४ औमि वैमि आमि कार्म। वे ३। क ४। ज्ञा ६। कु कु म श्रु अ के। सं ४ अ सा छे यथा। द ४ ले $\frac{२ क शु}{भा ६}$।

मणपज्जवपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा।

एदेसु एक्कपगदे णत्थित्ति असेसयं जाणे ॥ ७२९ ॥

सर्वेषां सूक्ष्माणां कापोताः सर्वविग्रहे शुक्लाः ।
सर्वोमिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥ ७२९ ॥

जी० प्र०—भ २ । स ६ । मिश्रं न हि, सं २ । आ २ उ १० । विभंगमनःपर्ययौ नहि, सामान्यमिथ्यादृष्टीनां । गु १ । जी १४ । प ६ । ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ आहारकद्वयं नहि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द १ । ले ६ भा ६ । भ २ स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां गु १ । जी ७ । प । ६ ५ ४ प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ । अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ । औमि । वैमि । का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ ले २ । क । शु भा ६ । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सासा । जी २ प । अ । प ६ । ६ । प्रा । १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ । यो १३ । म ४ । वा ४ । औ २ । वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु, कु, वि । सं १ अ । द २ ले ६ भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सासा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ । वा ४ । औका १ । वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ । सासा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु भा ६ । भ १ । स १ सासा । सं १ । आ २ । उ ४ ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां गु १ मिश्र । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० । म ४ वा ४ औका १ वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ भा ६ । भ १ । स १

मिश्ररुचि । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां–गु १ असं । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ म ४ वा ४ औ २ वै २ । का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ ।
भा ६

आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां–गु १ अ । जी १ प । प ६ प । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औका १, वैका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्या-
भा ६

प्तानां–गु १ असं । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ । औमि वैमि का । वे २ नपुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशसंयतानां–गु
भा ६

१ देश । जी १ प । प ६ प । प्रा १० प । सं ४ । ग २ ति म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । म ४, वा ४, औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ देश । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तानां–गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ ६ ।
भा ६

प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ । म ४ । वा ४ । औका १, आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां–गु १ अप्र । जी १ । प ६ प । प्रा १० ।
भा ३

सं ३–भ मै प । कारणाभावे कार्यस्याप्यभावात् सदसद्वेद्यानुदीरणात् अत्र आहारसंज्ञा नहि । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ । औका १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
भा ३

अपूर्वकरणानां–गु १ अपू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ । सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स २ । उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागवर्तिनां–गु १ अनिवृत्ति । जी १ । प ६ ।
भा १

प्रा १० । सं २ मै प । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं
भा १

१ । आ १ । उ ७ । तद्द्वितीयभागवर्तिनां—गु १ अनि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ ।

ज्ञा ४ मश्रु अम। सं २ सा छे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। तृतीयभागवर्तिनां-गु १ अनि। जी १।
भा १
प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ३। ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा।
भा १
सं १। आ १। उ ७। चतुर्थभागवर्तिनां-गु-१ अनि। जी १। प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क २।
ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। पंचमभागवर्तिनां-गु १ अनि। जी १। प ६। प्रा १०।
भा १
सं १ प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ०। क १ लो। ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १।
भा १
आ १। उ ७। सूक्ष्मसांपरायाणां—गु १ सू। जी १। प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क १। ज्ञा ४।
सं १ सू। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। उपशांतकषायाणां-गु १ उप। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०।
भा १
ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १ यथा। द ३। ले ६। भ १। स २। उ क्षा। सं १। आ १। उ ७।
भा १
क्षीणकषायाणां-गु १ क्षी। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४। सं १ यथा। द ३।
ले ६। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ७। सयोगकेवलिनां—गु १। जी २। प ६ ६। प्रा ४ २। सं ० ग १ म। इं १। का १।
भा १
यो ७ म २ वा २ औ २ का १। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ यथा। द १ के। ले ६। भ०। स १ क्षा। सं०। आ २। उ २।
भा १
अयोगकेवलिनां-गु १ अयो। जी १। प ६। प्रा १। आयुष्यं। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं
१ यथा। द १ के। ले ६। भ ०। स १ क्षा। सं ०। आ १ अनाहार। उ २। गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठिनां-गु० जी ०। प ०। प्रा ०।
भा ०
सं ०। ग ०। इं ०। का ०। यो ०। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। स ०। द १ के। ले ०। भ ०। स १ क्षा। सं ०। आ १ अनाहार। उ २।

आदेशे गत्यनुवादे नारकाणां—गु ४। जी २ प अ। प ६। ६ प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ११। म ४
वा ४ वै २ का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ६ कु, कु, वि म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ३। पर्याप्तेपरि कृष्णलेश्या एकैव

अपर्याप्तकाले कपोतलेश्या विग्रहगतौ शुक्ललेश्या इति द्रव्यलेश्या त्रयं । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले १ कृ भा ३ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां–गु २ । मि अ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु भा ३

भ २ । स ३ मि वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यदृष्टीनां–गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । योग ११ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ३ भा ३ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । म ४, वा ४, वैका १ । वे १ ष । क ४ । ज्ञा ३ । कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ भा ३ । भ २ । स १ मिथ्यारुचिः । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ मि । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ । वै मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ ले २ । कृ शु भा ३

भ २ । स १ मिथ्यारुचि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां–गु १ सा । जी १ प प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ म ४, वा ४, वै का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले १ कृ भा ३ । भ १ । स १ सासादनरुचि । सं १ । आ १ उ ५ । मिश्राणां–-गु १ मिश्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ मिश्राणि सं १ अ । द २ । ले १ कृ भा ३ । भ १ । स १ मिश्र । सं १ । आ १ । उ ५ असंयतानां– गु १ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । म ४, वा ४ वै २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ ले ३ कृ क शु भा ३ अशुभ

भ १ । स ३ उ, वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो ९ ।

वे १ पं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले १ कृ। भ १। स २। उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तद्-
भा ३ अ

पर्याप्तानां—गु १। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २। वैमि का। वे १ पं। क ४। ज्ञा ३
म, श्रु, अ। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ १ स २ वे। क्षा। सं १। आ २। उ ६। घर्मानारकाणां—गु ४। जी २ प अ। प ६ ६।
भा ३ अशुभ

प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ११। म ४ वा ४ वै २ का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ। सं १
अ। द ३। ले ३ कृ क शु। भ २ स ६। सं १ आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु ४। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ न। इं १। का
भा १ क

१। यो ६। म ४ वा ४ वै का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ६। सं १ अ। द ३। ले १ कृ। भ २। स ६। सं १। आ १। उ ६। त-
भा १ क

दपर्याप्तानां—गु २ मि अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २ वैमि। का। वे १ पं। क ४। ज्ञा
५। कु कु म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले २ क शु। भ २। स ३ मि वे क्षा। सं १। आ २। उ ८। तन्मिथ्यादृशां—गु १ जी २। प ६ ६।
भा १ क

प्रा १० ७। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो ११। म ४ वा ४ वै २ का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १
अ। द २। ले ३ कृ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ न। इं
भा १ क

१। का १। यो ९। म ४, वा ४। वै का १। वे १ पं। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले १ कृ। भ २। स १ मिथ्या-
भा १ क

रुचिः। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ न। इं १। का १। यो २। वैमि का।
वे १। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १। सं १। आ २। उ ४ कु कु च अ। सासादनानां—गु १। जी
भा १ क

१। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले १ कृ। भ १। स १।
भा १ क

सं १। आ १। उ ५ कु कु वि च अ। मिश्राणां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४।

ज्ञा ३ कु कु वि। सं १। द २। ले १ कृ। भ १। स १। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं
भा १ क
१। का १। यो ११। वे १। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १। द ३। ले २ कृ क शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६। तत्प-
भा १ क
र्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे १। क ४। ज्ञा ३। सं १। द ३। ले १ कृ। भ १। स ३
भा १ क
उ, वे, क्षा, सं १ आ १, उ ६ तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा ३, म
श्रु अ, सं १, द ३, ले २ क शु, भ १, स २ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६, द्वितीयादिपृथ्वीनारकाणां—गु ४, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १,
भा १ क
इं १, का १, यो ११, वे १, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १, द ३ च अ अ, ले २ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण भावापेक्षया एका द्रव्यापेक्षया कृ क शु,
भा ३
भ २, स ५ उ वे मि सा मि, सं १, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्तानां—गु ४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ का
१, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं १, द ३, ले १ कृ भ २, स ५ उ वे मि सा मि सं १, आ १, उ ९ म
भा १ स्वस्वभूम्यनतिक्रमेण
श्रु अ कु कु वि च अ अ, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, वै मि का, वे १, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं
१, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ४ कु कु च अ, तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग
भा १ स्वस्वयोग्या
१ न, इं १, का १, यो ११ म ४, वा, ४, वै २ का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ३ कृ क शु भ २ स १ मि सं १
भा १ स्वस्वयोग्य
आ २ १, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १, द २,
ले १ कृ, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २, मि का, वे
भा १ स्वस्वयोग्या
१, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १, द २, ले २ क शु, भ २ स १ मि, सं १, आ २, उ ४, तत्सासादनानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग
भा १ स्वस्वयोग्या

१, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि, सं १, द २, ले १ कृ, भ २, त १, स, सं १, आ १, उ ५ तत्सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु
भा १ स्वस्वयोग्या

१, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १, मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, तदसंयतानां
भा १

गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १, अ, द ३, च अ अ। ले १ भ १ स २ उ वे,
भा १

सं १ आ १ उ ६ म श्रु अ च अ अ।

पंचविंशतितिर्यक्षु सामान्यानां— गु ५ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४
३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं २
अ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ उ वे क्षा मि सा मि । सं २ । आ २ । उ ९ म श्रु अ कु कु वि च
भा ६

अ अ । तत्पर्याप्तानां— गु ५ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो ९ । वे ३ । क ४ ।
ज्ञा ६ । सं २ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा
भा ६

७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं ५ । का ६ । यो २ मिश्र का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ ।
अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु भ २ । स ४ मि सा क्षा वे । सं २ । आ २ । उ ८ । म श्रु अ कु कु च अ अ ।
भा ३ अशुभ

तन्मिथ्यादृष्टीनां— गु १ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ सं ४ । ग १ । इं ५ । का ६ । यो
११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ ।
भा ६

तत्पर्याप्तानां गु १, जी ७, प ६ ५ ४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो ९, वे ३ । क ४
ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ,
भा ६

प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग १ ति, इं ५, का ६, यो २ मि का, वे ३, का ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २

च अ, ले २, क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४ कु कु च अ, तत्सासादनानां—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०
भा ३ अशुभ
७, सं ४, ग १ ति, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४। ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु
भा ६
वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १ पं, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ,
द २, ले ६, भ १, स १, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां गु १, जी १, प ६, प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ औ
भा ६
मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४, कु कु च अ।
भा ३ अशुभ
सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६
भा ६
भ १, स १, सं १, आ १, उ ५। असंयतानां—गु १, जी २, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११,
वे ३, क ४, ज्ञा ३, म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६. भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६, तत्पर्याप्तानां—
भा ६
गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १, द ३, ले ६,
भा ६
भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २,
वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ शु क, भ १, स २ वे क्षा, सं १, आ २, उ ६
भा १ क
देससंयतानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ दे,
द ३, ले ६, भ १, स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ, पंचेंद्रियतिरश्चां गु ५, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्ताप-
भा ३ शुभ
र्याप्ताः, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म
श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ६, उ वे क्षा मि सा मि, सं २, आ २, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ,
भा ६

तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २, प ६ ५, प्रा १० ९; सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ६, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६ (भा ६) । भ २, स ६ उ वे क्षा मिं सा मिं, सं २, आ १, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तद्पर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी २, प ६ ५ अ, प्रा ७ ७ अ, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु, सं १ आ, द ३ च अ अ। ले २ क शु (भा ३ अशुभ), भ २, स ४ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ, मिथ्यादृशां—गु १, जी ४, प ६ ६ ५ ५, प्रा १० ७ ९ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६ (भा ६), भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० ९, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ (भा ६), भ २ स १ मि, सं २, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ जी २ सं अ, प सं ६ अ ५, प्रा सं ७, अ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु (भा ३ अशुभ) भ २, स १, सं २, आ २, उ ४, सासादनानां—गु १, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६ (भा ६), भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६ (भा ६), भ १; स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १ अ, प ६, प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १ त्र, यो २ मि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु (भा ३ अशु), भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिश्राणां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मत्यादिमिश्रत्रयं, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ (भा ६), भ १, स १ मिश्र, सं १, आ १, उ ५, मत्यादिमिश्रत्रयं चक्षुरचक्षुश्च। असंयतानां—गु १, जी २, प ६, अ ६, प्रा १०, अ प्रा ७, सं ४,

ग १, इं १, का १, यो ११, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ २। उ ६ म श्रु अ च अ अ।
भा ६

तत्पर्याप्तानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले ६
भा ६

भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४। ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मि का, वे १ पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु, भ १ स २ क्षा वे, सं १, आ २, उ ६ म श्रु अ च अ अ, देशसंयतानां—
भा १ क

गु १, जी १, प ६, प्रा १० सं ४, ग १ ति, इं १, पं १, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६ भ १, स २ उ वे, सं १,
भा ३ शु

आ १, उ ६ म श्रु अ च अ अ, पंचेंद्रियतिर्यक्पर्याप्तानां-पंचेंद्रियगतिवद्वक्तव्यं।

तिर्यग्योनिमतीनां—गु ५, जी ४ सञ्ज्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ता भेदः प ६ ६ सं, ५ ५ अ सं, प्रा १० ७ संज्ञि ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३ च अ अ, ले ६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्राः, सं २, आ
६

२, उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ, तत्पर्याप्तानां—गु ५, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १० सं, ९ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि, सं २ अ दे, द ३, ले ६, भ २, स ५ उ वे मि सा मिश्राः, सं २,
६

आ १, उ ९ स ३ मि ३ द ३, तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ अ ५ अ, प्रा ७ अ, ७ अ, सं ४, ग १
सं अ सं अ

ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स २ मि सा,
भा ३ अ शु

सं २, आ २, उ ४ कु कु च अ, मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी ४ सञ्ज्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६ संज्ञि, ५ ५ असंज्ञि, प्रा १० ७ सं, ९ ७ असंज्ञि, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ आ, द २, ले ६, भ २, स १ मिथ्यात्वं,
६

सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञि ५ असंज्ञि, प्रा १० सं, ९ असंज्ञि, सं

४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २,
६
आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ, प ६ संज्ञ्यपर्याप्तयः, ५ असंज्ञ्यपर्याप्तयः, प्रा ७ सं, ७ असंज्ञि, सं ४,
ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ मिश्र, का, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १
भा ३ अ शु
मि, सं २, आ २, उ ४, कु कु च अ, सासादनानां—गु १ सा, जी २ सं प अ, प ६ ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग १ ति, इं १
पं, का १ त्र, यो ११, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, स १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु
६
१, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६ भ १, स
६
१, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १। प ६। प्रा ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मि का, वे १ स्त्री,
क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ १, स १, सं १, आ २, उ ४, कु कु च अ, मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १ स
भा ३ अशुभ
प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ
६
१ उ ५, असंतानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४ ग १, इं १, का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १
अ, द ३, ले ६ भ १, स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६, संयतासंयतानां—गु १ दे, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १,
६
का १, यो ९, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १ स २ उ वे, सं १, आ १, उ ६, तिर्यक्पंचेंद्रियलब्ध्यपर्या-
भा ३
प्तानां—गु १ मि, जी २ स, अ, प ६ ५, प्रा ७ ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो २ मिश्र का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २ कु कु।
सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, चतुर्विधमनुष्येषु सामान्यानां—गु १४, जी २, प ६ ६, प्रा
भा ३ अशुभ
१०, ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भ २, स ६, सं
भा ६

१, आ २, उ १२, तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा ८,
सं ७, द ४, ले ६, भ २, स ६, सं १, आ २, उ १२, तदपर्याप्तानां—गु ५, मि सा अ प्र स, जी १, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं
भा ६
४, ग १, इं १, का १, यो ३, औमि आमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु, सं ४ अ सा छे यथाख्यात, द ४,
ले २ क शु, भ २, स ४ मि सा वे क्षा, सं १ आ २, उ १० कु कु म श्रु अ के च अ अ के, तन्मिथ्यादृशां—गु १, जी २, प ६
भा ६
६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११ म ४ वा ४ औ २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २ च अ,
ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र,
६
यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ जी १, प ६
भा ६
अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु, भ २, स १
भा ३ अशुभ

मि, सं १, आ २, उ ४।
सासादनानां—गु १ सा। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ म। इ १ पं। का १० त्र। यो ११। वे ३। क ४ ज्ञा ३ कु कु
वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १, स १ सा, सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४, ग १ म,
भा ६
इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६, भ १। स १ सा। सं १, आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—
भा ६
गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १। इं १। का १। यो २ मि का। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १, द २, ले २ क शु, भ १. स १ सा. सं
भा ३ अशु
१, आ २. उ ४. सम्यग्मिथ्यादृशां-गु १ मि. जी १. प ६, प्रा १०. सं ४. ग १ म, इं १. का १. यो ९, वे ३. क ४. ज्ञा ३. स १. द २। ले ६, भ
भा ६
१ स १ मिश्र। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ असं। जी २। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १। इं १। का १। यो ११

वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ - द ३, ले ६ । भ १, स ३, सं १, आ २, उ ६, तत्पर्याप्तानां–गु १, जी १, प ६, प्रा १०,
६
सं ४, ग १, इं १ पं, का १, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १, उ ६ म
६
श्रु अ च अ अ । तदपर्याप्तानां–गु १ अ । जी १, प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो २ मिं का । वे १ पुं । क ४ ।
ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु, भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २, उ ६ । संयतासंयतानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १०
भा ६
। सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रम-
भा ३ शुभ
त्तानां–गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ वा ४ औ १ आ २ । वे ३ द्रव्यपुंवेदिनः
भावापेक्षया त्रिवेदिनः इत्यर्थः । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ म श्रु अ म च अ अ । तत्पर्याप्तानां-गु १ प्र । जी १ प । प ६
भा ३ शुभ
प । प्रा १० प । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ वा ४ औ १ आ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे
प । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ म श्रु अ म च अ अ । तदपर्याप्तानां–गु १ । जी १ अ । प ६ अ ।
भा ३ शु
प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १ आ मि । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं २ सा छे । द ३ च अ अ । ले १ क
भा ३ शु
भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ म श्रु अ च अ अ । अप्रमत्तानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ आहारसंज्ञा नहि साता
सातानुदीरणात् । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अ-
६
पूर्वकरणानां–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ
भा १
१ । स २ द्वितीयोपशमक्षायिकौ । सं १ । आ १ । उ ७ । अनिवृत्तिकरणप्रथमभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं २ मै प । ग १ ।
इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । द्वितीयभागे–गु १ । जी
भा १

१ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ४ । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ

क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । तृतीयभागे–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ मा माया लो । ज्ञा ४ । सं २ सा छे । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । चतुर्थभागे–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ प-

रिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क २ मा लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ७ । पंचम-

भागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं २ । द ३ । ले ६ १ । भ १ । स

२ । सं १ । आ १ । उ ७ । सूक्ष्मसांपराये–गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ लो । ज्ञा ४ । सं १ सू । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । उपशांतकषाये–गु १ उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १

। इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथाख्यातः । द ३ । ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । क्षीण-

कषाये गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ४ । सं १ यथाख्यातः । द ३ । ले ६ १ । भ १ । स १

क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । सयोगजिने–गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा ४ २ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औ २ का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ । स १ । द १ । ले ६ भा १ । भ १ । स १ । सं ० । आ २ । उ २ । अयोगिजिने–गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ आयु-

ष्यं । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ । सं १ । द १ । ले ६ भा ० । भ १ । स १ । सं ० । आ १ अनाहारः । उ २ ।

पर्याप्तमनुष्याणां मूलौघो वक्तव्यः । मानुषीणां—गु १४ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ शून्यं च । वे १ । क ४ शून्यं च । ज्ञा ७ म श्रु अ के कु कु वि । सं ६ अ दे सा छे सू य । द ४ च अ अ के । ले ६ ६ शून्यं च । भ २ । स ६ ।

सं १ शून्यं च । आ २ । उ ११ मनःपर्ययो नहि ।

---

१ भावक्षीणा ।

तत्पर्याप्तानां— गु १४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ शून्यं च । वे १ स्त्री शून्यं च । क ४ शून्यं च । ज्ञा ७ । सं ६ । द ४ । ले ६ शून्यं च । भ २ । स ६ । सं १ शून्यं च । आ २ । उ ११ । मनःपर्ययः स्त्रीवेदिषु नहि सं-
६

क्लिष्टपरिणामित्वात् । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा सयोगः । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ शून्यं च । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का शून्यं च । वे १ स्त्री । शून्यं च । क ४ । शून्यं च । ज्ञा ३ कु कु के । सं २ अ य । द ३ च अ के । ले २ क शु भा ४ अ शु ३ शु १ भ २ । स ३ मि मा क्षा । सं १ शून्यं च । आ २ । उ ६ कु कु के च अ के । मानुषीमिथ्यादृष्टीनां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वैक्रियिकद्वयाहारकद्वयं नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १
६
मि । सं १ । आ २ । उ ५ कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ अ ।
६
प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ यो २ मि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ ।
३ अशुभ
आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा१० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ । द २ । ले ६ भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तसासादनानां—गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग
६
१ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—
६
गु १ सा । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ ।— ले २ क शु । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृष्टेः—गु १ मिश्रं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ ।
भा ३ अशुभ
का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ ।
६

जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६/३ । भ १ । स ३ । सं
१ । आ १ । उ ६ । देशसंयतस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ । सं
१ दे । द ३ । ले ६ भा ३ अशु भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो
९ , वे १ स्त्री , क ४ , ज्ञा ३ , स्त्रीनपुंसकोदये आहारकर्द्धिमनःपर्ययपरिहारविशुद्ध्यो नहि सं २ सा छे , द ३ । ले ६ भा ३ , भ १ , स ३ उ वे क्षा ,
सं १ , आ १ , उ ६ , अप्रमत्तस्य—गु १ , जी १ , प ६ , प्रा १० , सं ३ आहारसंज्ञा नहि , ग १ , इं १ , का १ , यो ९ , वे १ स्त्री ,
क ४ , ज्ञा ३ , सं २ , द ३ , ले ६ भा ३ । भ १ , स ३ , सं १ , आ १ , उ ६ , अपूर्वकरणानां—गु १ , जी १ , प ६ , प्रा १० , सं ३ ,
ग १ , इं १ , का १ , यो ९ , वे १ स्त्री , क ४ , ज्ञा ३ , सं २ सा छे , द ३ च अ अ , ले ६ भा १ भ १ , स २ उ क्षा , सं १ , आ १ ,
उ ६ , अनिवृत्तेः प्रथमभागे—गु १ , जी १ , प ६ , प्रा १० , सं २ मै प , ग १ , इं १ , का १ , यो ९ , वे १ स्त्री , क ४ , ज्ञा ३ ,
सं २ सा छे , द ३ , ले ६ भा १ । भ १ , स २ उ क्षा , सं १ , आ १ , उ ६ , द्वितीयभागे—गु १ , जी १ , प ६ , प्रा १० , सं १ परिग्रहः
ग १ , इं १ । , का १ , यो ९ , वे ० , क ४ । ज्ञा ३ , सं २ , द ३ , ले ६ भा १ । भ १ , स २ उ क्षा , सं १ , आ १ , उ ६ ,

तृतीयभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क ३ मा माया लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे ।
द ३ । ले ६ भा १ भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । चतुर्थभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परि । ग १ । इं १ । का १ । यो
९ । वे० । क २ मा लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे । द ३ ले ६ भा १ । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । पंचमभागे—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा
१० । सं १ प । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ बा लो । ज्ञा ३ । सं २ सा छे । द ३ ले ६ भा १ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ

१ । उ ६ । सूक्ष्मसांपरायस्य—गु १ सू । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं १ परिग्रहः । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे ० । क १ सू लो । ज्ञा ३ ।
सं १ सू । द ३ । ले ६ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । उपशांतकषायस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ० । ग १ । इं
भा १
१ । का १ । यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ । सं १ य । द ३ । ले ६ भ । १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । क्षीणकषायस्य गु १ । जी १ । प ६ ।
भा १
प्रा १० सं ० ग १ । इं १ । का १ यो ९ । वे ० । क ० । ज्ञा ३ सं १ य । द ३ ले ६ । भ १ । स १ चथा । सं १ । आ १ । उ ६ । सयोगस्य—गु १ । जी २ । प ६ ।
भा १
६ । प्रा ४ २ । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ७ म २ वा २ औ २ का १ । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ य । द १ के । ले ६ । भ
भा १
१ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ २ के के । अयोगस्य—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १ आयुः । सं ० । ग १ । इं १ । का १ । यो ० । वे ० । क ० ।
ज्ञा १ के । सं १ । द १ ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं ० । आ १ अनाहार । उ २ के के । मनुष्यलब्ध्यपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ अ । प
भा ०
६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे १ पं । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ ।
भा ३ अशुभ
स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । देवगतौ—गु ४ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ ।
वा ४ २ । का १ वै । वे २ स्त्री पुं । क ४ । ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ
६
९ । म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे २ । क ४ ।
ज्ञा ६ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ अ । सं
भा ३
४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा ५ म श्रु अ कु कु । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ २ । स ५ उ वे क्षा मि सा ।
भा ६
सं १ । आ २ । उ ८ म श्रु अ कु कु च अ अ । मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ ।
वे २ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ कु कु वि च अ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ ।
भा ६

म ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ भा ३ शुभ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ उ
५ तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु भा ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ कु कु च अ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ ।
ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ ले ६ भा ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ ।
तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ६ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ ३ शु । भ १ ।
स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां गु १ जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो २ मि का । वे २ ।
क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ क शु ६ । भ १ । स १ सा । स १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० ।
सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ६ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ भा ३ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंय-
तानां—गु १ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द
३ । ले ६ ३ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ ।
क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ भा ३ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ ।
ग १ । इं १ । यो २ वि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द ३ । ले २ क शु भा ३ शुभ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ भवनत्रयदेवानां—गु ४ ।
जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ । सं १ । द ३ । ले ६ भा ४ । भ २ । स ५ उ वे मि
सा मि । सं १ । आ २ । उ ९ म श्रु अ कु कु वि च अ अ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ ।

योे ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ६ म श्रु अ कु कु वि । सं १ । द ३ च अ अ । ले ६ भ २ । स ५ उ वे मि सा मि । सं १ आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु २ नि सा । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ यो २ मि का । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स २ मि सा । सं १ । आ २ । उ ४ ।
भा ३ अशु

मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी २, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ११, वे २, क ४, ज्ञा ३, सं १, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग १, इं १, का १, यो ९, वे २, क ४, ज्ञा ३ - सं १, द ३, ले ६, भ २, स १ मि, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ६ ७, प्रा १० अ, सं ४, ग १, इं १, का १ यो २ मि का, वे २, क ४, ज्ञा २, सं १, द २, ले २ क शु भ २, स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ११ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ । वे २ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ . यो २ । वे २ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ । द २ च अ । ले २ क शु भ १ । स १ सा । सं १ आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ । इं १ । का १ । यो ९ . वे २ . क ४ । ज्ञा ४, सं १, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १ . आ १ . उ ५ . असंयतानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ९ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द ३ . ले ६, भ १ . स २ उ वे . सं १ . आ १ . उ ६ . सौधर्मैशानदेवानां—गु

(इन पंक्तियों के नीचे क्रमशः लिखे उपांक: १; भा ४; १; भा ३ अशु; भा ४; भा १; भा ३ अशु; भा १; भा १)

४ . जी २ . प ६ . प्रा १० ७ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ११ , वे २ . क ४ . ज्ञा ६ सं १ . द ३ । ले ३ पीक शु, भ २ . स ६ . सं
भा १ ते
१ . आ २ . उ ६ . तत्पर्याप्तानां—गु ४ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ६ . वे २ . क ४ . ज्ञा ६ . सं
१ . द ३ ले १ ते । भ २ . स ६ . सं १ . आ १ . उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु ३ मि स अ . जी १ , प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ . इं १
भा १
का १ . यो २ . वे २ . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं १ . द ३ . ले २ । भ २ . स ५ उ वे क्षा मि सा , सं १ आ २ उ ८ म श्रु
भा १
अ कु कु च अ अ . मिथ्यादृष्टीनां—गु १ . जी २ . प ६ ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ११ ; वे २ . क ४ .
ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले ३ , भ २ . स १ मि . सं १ , आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ , जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ .
भा १
इं १ का १ . यो ९ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले १ , भ २ . स १ मि . सं १ . आ १ . उ १ . तदपर्याप्तानां—गु १ . जी १ .
भा १
प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ , इं १ , का १ . यो २ . वे २ . क ४ . ज्ञा २ . सं १ . द २ . ले २ , भ २ . स १ मि , सं १ आ २ .
भा १
उ ४ . सासादनानां—गु १ . जी २ . प ६ . ६ . प्रा १० ७ . सं ४ . ग १ . इं १ , का १ . यो ११ . वे २ , क ४ . ज्ञा ३ . सं १ .
द २ . ले , ३ भ १ . स १ सा . सं १ , आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ सा . जी १ . प ६ . प्रा १० , सं ४ , ग १ , इं १ . का
भा १
१ . यो ६ . वे २ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले १ , भ १ . स १ . स १ . आ १ . उ ५ तदपर्याप्तानां—गु १ . जी १ . प ६ अ . प्रा ७ अ .
१
सं ४ . ग १ इं १ . का १ . यो २ मि का . वे २ . क ४ . ज्ञा २ . सं १ . द २ . ले २ क शु , भ १ . स १ सा . सं १ , आ २ , उ ४ .
भा १
सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ , इं १ . का १ , यो ६ . वे २ . क ४ , ज्ञा ३ . सं १ . द २ . ले १ ते , भ
१
१ . स १ मिश्रं . सं १ आ १ . उ ५ . असंयतानां—गु १ . जी २ . प ६ ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग १ . इं १ . का १ . यो ११ . वे

३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ . द ३ , ले ३ ते क शु भा १ ते , भ १ स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ २ . उ ६ . तत्पर्याप्तानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० .

सं ४ . ग १ . इं १ , का १ . यो ९ . वे २ , क ४ , ज्ञा ३ , सं १ , द ३ . ले १ भा १ , भ १ , स ३ , सं १ , आ १ , उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु

१ जी १ , प ६ अ . प्रा ७ अ , सं ४ . ग १ . इं १ , का १ , यो २ मि का . वे १ पुं , क ४ , ज्ञा ३ . सं १ , द ३ . ले २ क शु भा १ ते भ १ .

स ३ सं १ , आ २ , उ ६ . वैमानिकेषु द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं आरोहकापूर्वकरणप्रथमभागवर्जितोपशमश्रेण्यारोहकावरोहकाणां तदवतीर्णचतुरसंयतादीनां च तत्सम्यक्त्वमृतानां तत्तल्लेश्यया तत्रोत्पत्तेरपर्याप्तकाले संभवति . असंयतस्त्रीणामेकः पर्याप्तालाप एव सम्यग्दृष्टीनां तत्रानुत्पत्तेः . पर्याप्तकर्मभूमिमनुष्याणामेव दर्शनमोहक्षपणाप्रारंभकत्वेऽपि तन्निष्ठापकानां चतुर्गतिषूत्पत्तेः क्षायिकसम्यक्त्वमत्र संभवतीति विशेषः स्मर्तव्यः ।

सनत्कुमारमाहेंद्रदेवानां—गु ४ . जी २ , प ६ ६ , प्रा १० ७ . सं ४ , ग १ . इं १ . का १ । यो ११ . वे १ पुं कल्पस्त्रीणां सौधर्मद्वय एवोत्पत्तेः . क ४ . ज्ञा ६ . सं १ , द ३ . ले ४ ते प शु भा २ ते प , भ २ , स ६ उ वे क्षा मि सा मि . सं १ . आ २ , उ ९ . तत्पर्याप्तानां—गु ४ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ , ग . १ . इं १ . का १ . यो ९ . वे १ . क ४ . ज्ञा ६ . सं १ . द ३ . ले २ २ , भ २ . स ६ .

सं १ . आ १ . उ ९ .

तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ . जी १ अ . प ६ अ . प्रा १७ अ . सं ४ . ग १ दे . इं १ पं . का १ त्र . यो २ वै मि का . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले २ क शु २ . भ २ . स ५ मि सा उ वे क्षा . सं १ . आ २ उ ८ . तन्मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतांतानां सौधर्मपुंवेदवद्वक्तव्यं एवमुपर्यपि स्वस्वलेश्यानुसारेण योज्यं . अनुदिशानुत्तरविमानजानामसंयतालाप एव तत्राप्ययं विशेषः पर्याप्तकाले वेदकक्षायिकसम्यक्त्वद्वयमेव . सिद्धगतौ सिद्धानां यथासंभवं वक्तव्यं . अस्ति सिद्धगतिस्तत्र केवलज्ञानदर्शनक्षायिकसम्यक्त्वानाहारोपयोगद्वयेभ्यः शेषालापो नास्ति सिद्धानामेकेंद्रियादिनामोदयाभावात् . गतिमार्गणा गता ॥

इंद्रियानुवादे मूलौघः—तत्र सामान्यैकेंद्रियाणां—गु १ मि . जी ४ बा सू प अ . प ४ ४ . प्रा ४ ३ . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ त्रसोनाः . यो ३ औदारिकतन्मिश्रकार्मणाः . वे १ ष . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अ . ले ६ भा ३ अशु भ २ . स १ मि , सं १ असंज्ञी . आ

२ . उ २ कु कु अचक्षुः । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी २ वा प सू प . प ४ ए . प्रा ४ ए का उ आयुः . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ . त्रसो नहि . यो १ औ . वे १ सं . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अच . ले ६ भा ३ अशु भ २ . स १ मि . सं १ असंज्ञी . आ १ . उ ३ कु कु

अचक्षुर्दर्शनं . तदपर्याप्तानां—गु १ मि . जी २ वा अ सू अ . प ४ अ . प्रा ३ अ . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ . यो २ मि का . वे १ पं . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अच . ले २ क शु ३ अशु . भ २ . स १ मि . सं १ असंज्ञो । आ २ . उ ३ कु कु अच . बादराणां—गु

१ मि . जी २ प अ . प ४ ४ . प्रा ४ ३ . सं ४ . ग १ ति . इं १ ए . का ५ . यो ३ औ मि का . वे १ षं . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ अच . ले ६ ३ अशु . भ २ . स १ मि . सं १ असंज्ञी . आ २ . उ ३ . तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी १ प . प ४ . प्रा ४ , सं ४ . ग १ ति . इं १

ए , का ५ , यो १ औ , वे १ षं , क ४ , ज्ञा २ कु कु , सं १ अ , द १ अच , ले ६ ३ अशु , भ २ , स १ मि , सं १ असंज्ञी , आ १ , उ

३ , तदपर्याप्तानां—गु १ मि , जी १ अ , प ४ अ । प्रा ३ ए का आ , सं ४ , ग १ ति , इं १ ए , का ५ , यो २ मि का , वे १ षं , क ४ , ज्ञा २ , सं १ अ , द १ अच , ले २ क शु भा ३ अशु , भ २ , स १ मि , स १ असंज्ञी , आ २ , उ ३ , एवं बादरपर्याप्तनामोदयानामेकेंद्रियाणामुक्तं ,

अपर्याप्तनामोदयानां तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तु तदपर्याप्तवद्योज्यं ,

सूक्ष्माणां—गु १ मि , जी २ प अ , प ४ ४ , प्रा ४ ३ , सं ४ , ग १ ति , इं १ ए , का ५ , यो ३ औ २ का १ , वे १ पं , क ४ , ज्ञा २ , सं १ अ , द १ अच , ले २ क शु भा ३ अशु—कुतः ?

सव्वेसिं सुहमाणं काओदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ॥ १ ॥

सर्वेषां सूक्ष्माणां कापोता सर्वविग्रहे शुक्ला ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ॥ १ ॥

भ २ , स १ मि , सं १ असंज्ञि , आ २ , उ ३ , तत्पर्याप्तानां—गु १ , जी १ , प ४ , प्रा ४ , सं ४ , ग १ इं १ , का ५ , यो १

औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अचक्षु, ले १ क, भ २, सं १ मि, सं १ असंज्ञी, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प
भा ३ अशु

४ अ, भा ३ ए का आ, सं ४, ग १, इं १, का ५ यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, दं १ अचक्षु, ले २ क शु
भा ३ अशु

भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्, द्वींद्रियाणां—गु १ मि। जी २ प अ, प ५ ५, भा ६, ४,
सं ४, ग १ ति, इं १ द्वीं, का १ त्र, यो ४, औ २, वाक् १, का १ वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ। द १ अच, ले ६, भ २, स १
भा ३ अशु

मि, सं १ असंज्ञी, आ २। उ ३, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५, भा ६, सं ४, ग १ ति। इं १ द्वीं, का १ त्र, यो २, वा १,
का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २। स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १। जी १, प
भा ३

५ अ, भा ४ अ, सं ४, ग १, इं १। का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४ - ज्ञा २। सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु। भ २,
भा ३ अ शु

स १ मि। सं १। आ २, उ ३,

तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्। त्रींद्रियाणां—गु १, जी २, प ५ ५, भा ७ ५, सं ४, ग १ ति, इं १ त्रीं, का १ त्र, यो ४ औ
२ वा १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानां—
भा ३

गु १ मि, जी १ त्रीं प, प ५, भा ७, सं ४, ग १ ति, इं १ त्रीं, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ,
द १ अच, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां—गु १, जी १, प ५ अ, भा ५ अ, सं ४, ग १,
भा ३

इं १, का १, यो २ मिं का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ। द १ अच, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं १, आ २, उ ३,
भा ३ अशु

तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्। चतुरिंद्रियाणां—गु १ मि, जी २ प अ, प ५ ५, भा ८, ६, सं ४, ग १, इं १ चतुरिं, का १ त्र,
यो ४ औ २ वा १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४,
भा ३

तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ च प, प ५, प्रा ८ च ४ वा १ का १ औ १ आ १, सं ४, ग १ ति, इं १ च, का १ त्र, यो २ औ १ वा १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ भा ३, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १। उ ४, तदपर्याप्तानां गु १, जी १ अ, प ५ अ, प्रा ६ अ, च ४, का १ आ १, सं ४, ग १, इं १ च, का १, यो २ मि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४, तल्लब्ध्यपर्याप्तस्य तदपर्याप्तवत्। पंचेंद्रियाणां—गु १४, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६, प्रा १० ७, ९, ७, सयोगस्य ४, २, अयोगस्य १, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भा ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ १२, तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी २ सं, अ, प ६ सं, ५ अ, प्रा १० सं, ९ अ सं, ४ सयो, १ अयो, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ वा ४ औ वै आ, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भा ६, भ २, स ६, स २, आ २, उ १२, तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स, जी २ सञ्ज्यसंज्ञिपर्याप्तौ। प ६ अ, सं ५ असंज्ञी, प्रा ७ संज्ञि ७ असंज्ञि २ सयोग, सं ४, ग ४, इं १ प, का १ त्र, यो ४ औमि-आहारकमिश्र-वै-मिश्र-कार्मणा' वे ३, क ४, ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु। स ४ अ स छे यथा, द ४ च अ अ के, ले २ क शु भा ६, भ २, स ५ उ वे क्षा मि सा, सं २, आ २, उ १०, मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः, प ६ ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७। सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र यो १३ आहारकद्वयं नहि, वे ३, कं ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ भा ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ कु कु वि च अ, तत्पर्याप्तानां—गु १, जी २ सं अ, प ६ ५, प्रा १०, ९। सं ४, ग ४, इं १, का १ यो १० म ४ वा ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ भा ६, भ २, स १ मि, सं २, आ १, उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १। जी २। संज्ञ्यपर्याप्तौ। प ६ अ। ५ अ। प्रा ७ ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ आ मि। वै मि। कार्म्मण। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। च अ। ले २ क शु भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४।

सासादनादीनां गुणस्थानवत्, असंज्ञिनां—गु १ मि, जी २ तत्पर्याप्तापर्याप्तौ, प ५ ५। प्रा ९ ७, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औ २ का १ अनुभयवचनं १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले ६ भा ३ अशु। भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५, प्रा ९, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ १ अनुभयवाक् १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले ६ भा ४। भ २, स १ मि, सं १ असं, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी १, प ५ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले २ क शु भा ३ भ २, स १ मि, सं १ असंज्ञी, आ २, उ ४, पंचेंद्रियलब्ध्यपर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ, प ६ अ, सं ५ अ अ, प्रा ७ सं अ, ७ अ अ, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औ मि १ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भा ३ अशु भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, तत्संज्ञिनां—गु १ मि, जी १ प अ, प ६ प, प्रा ७ अ अ, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो २, औमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ द २, ले २ क शु भा ३ अशु भ २, स १ मि, सं १ संज्ञी, आ २, उ ४, तदसंज्ञिनां—गु १ मि, जी १, प १ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ पं, का १ त्र, यो २ औमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु भा ३ अशु, भ २, स १ मि, सं १ अ, आ २, उ ४ अतींद्रियाणां सिद्धगतिवत्। इति इंद्रियमार्गणा गता।

कायानुवादे—गु १४, जी ५७ ९८ ४०६, प ६ ६, ५ ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९ ७, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४ ३, ४ २ १, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भा ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ १२।

तत्पर्याप्तानां—गु १४, जी १९, ३७, १८६, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, ४, १, स ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ११ मिश्रत्रयकार्मणाभावात्, वे ३, क ४ ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६ भा ६, भ २, स ६, सं २, आ २, उ १२,

तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स, जी ३८, ६१, २२०, प ६ ५ ४, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २, सं ४, ग ४,

इं ५, का ६, यो ४ अयो मिश्राः कार्मणश्च, वे ३, क ४, ज्ञा ६ मनःपर्ययविभंगाभावात्, सं ४ अ सा छे यथा, द ४, ले २ क शु। भा ६
भ २, सं ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ २, उ १० ज्ञा ६ द ४, मिथ्यादृष्ट्यादीनां मूलौघः किंतु सामान्यादित्रिविधमिथ्यादृष्टीनामेव कायानुवादमूलौघोक्तजीवसमासा वक्तव्याः, अन्यत्र विशेषो नास्ति।

पृथ्वीकायिकानां—गु १, जी ४ बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्ताः, प ४ ४, प्रा ४, ३, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का १ पृ, यो ३ औ २ का १, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अ च, ले ६ भा ३ भ २, स १ मि, सं १ असं, आ २, उ ३, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी २ बा सू, प ४, प्रा ४, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का १ पृ, यो १ औ, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले ६। भा ३ भ २, स १ मि, सं १ अ, आ १, उ ३, तदपर्याप्तानां-गु १, जी २ बा अ सू अ, प ४ अ, प्रा ३ अ, सं ४, ग १ ति, इं १ ए, का १ पृ, यो २ औमि का, वे १ षं, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द १ अच, ले २ क शु। भा ३ अशु भ २। स १ मि। सं १ अ। आ २। उ ३। तद्बादराणां—गु १। जी २ प अ। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ पृ। यो ३ औ २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६ भा ३ अशु भ २। स १ मि। सं १ असं। आ २। उ ३। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी १। प ४। प्रा ४। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ पृ। यो १ औ। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६। भा ३ भ २। स १ मि। सं १ अ। आ १। उ ३। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ। प ४ अ। प्रा ३ अ। सं ४। ग १ ति इं १ ए। का १ पृ। यो २ मि का। वे १ षं। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द १ अच। ले २ कशु भा ३ अशु। भ २। स १ मि। सं १ असं। आ २। उ ३। तत्सूक्ष्मपर्याप्तानां तदपर्याप्तवत्। तत्सूक्ष्माणां सूक्ष्मैकेंद्रियवत्। अप्कायिकानां पृथ्वीकायिकवत्। किंतु द्रव्यतो बादरपर्याप्ते शुक्ला तेजस्कायिकेषु सूक्ष्माणां पर्याप्तमिश्रकालयोः कपोता। बादराणां पर्याप्तकाले पीता। उभयविग्रहगतौ शुक्ला। वातकायिकानां अपर्याप्तकाले कपोता। विग्रगतौ शुक्ला। पर्याप्तकाले गोमूत्रमुद्गाव्यक्तवर्णा।

वनस्पतिकायिकानां—गु १। जी १२ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः। प ४ ४। प्रा ४ ३। सं ४। ग १ ति। इं १ ए। का १ व। यो ३ औ २ का १। वे १ षं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द १ अच। ले ६ भा ३। भ २। स १ मि।

सं १ अ । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी ६ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितप्रत्येकबादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ६ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । प्रत्येकानां—गु १ मि । जी ४ प्रतिष्ठिताप्रतिष्ठितौ प २ अ २ । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । स ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी २ अ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तवत् ।

साधारणानां—गु १ मि । जी ८ बादरसूक्ष्मनित्येतरनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्ताः । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ४ बादरसूक्ष्मनित्यचतुर्गतिनिगोदा अपर्याप्ताः । प ४ अ । प्रा ३ । सं ४ । ग १ ति इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २/३ । भ २ । स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तद्बादराणां—गु १ मि । जी ४ नित्यचतुर्गतिनिगोदाः पर्याप्तापर्याप्ताः । प ४ ४ । प्रा ४ ३ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो ३ औ २ का १ । वे १ षं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६/३ । भ २ ।

स १ मि । सं १ असं । आ २ । उ ३ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ नित्यचतुर्गतिपर्याप्तौ । प ४ । प्रा ४ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो १ औ । वे १ पं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले ६ । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ १ । उ ३ । तदपर्याप्तानां—गु
३
१ । जी २ बादरनित्यचतुर्गती अपर्याप्तौ । प ४ अ । प्रा ३ अ । सं ४ । ग १ ति । इं १ ए । का १ व । यो २ मि का । वे १ पं । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द १ अच । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं १ अ । आ २ । उ ३ । तल्लब्ध्यपर्याप्तानां तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तवत् । साधारण-
भा ३ अशु
सर्वसूक्ष्माणां सूक्ष्मपृथ्वीकायवत् । किंतु जीवसमासाश्चत्वारः नित्यनिगोदानां चतुर्गतिनिगोदानां च साधारणवत् । अत्रोपयोगिगाथा—

पुढवीयादिचउण्हं केवलिआहारदेवणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदा हु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ॥ १ ॥

त्रसकायानां—गु १४ । जी १० वि ति च सं असं । पं ६ ६ । ५ ५ । प्रा १० ७ । ९ ; ७ । ८ । ६ । ७ ५ ६ ४ । ४ । २ । १ । सं ४ । ग
२ २ २ २ २
४ । इं ४ वि ति च पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । त-
६
त्पर्याप्तानां—गु १४ । जी ५ । वि ति च सं असं । प ६ ५ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ १ । सं ४ । ग ४ । इं ४ वि ति च पं । का १ त्र । यो ११ ।
१ १ १ १ १
वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स । जी ५ वि
६
ति च सं असं । प ६ अ । ५ अ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । २ । सं ४ । ग ४ । इं ४ वि ति च पं । का १ त्र । यो ४ मिश्राः ३ कार्मणः ।
१ १ १ १
वे ३ । क ४ , ज्ञा ६ म श्रु अ के कु कु , सं ४ अ सा छे य , द ४ , ले २ क शु , भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा , सं २ , आ २ ,
भा ३
उ १० , मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी १० वि ति च सं असं । प ६ ६ । ५ ५ , प्रा १० ७ , ९ , ७ , ८ , ६ , ७ , ५ , ६ , ४ , सं ४ ,
२ २ २ २ २
ग ४ , इं ४ , का १ त्र , यो १३ आहारकद्वयं नहि , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ , ले ६ , भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ५ , तत्पर्या-

सानां–गु १ मि । जी ५ वि ति च स अ । प ६ । ५ , प्रा १० ९ ८ ७ , ६, सं ४ । ग ४ ; इं ४ वि ति च पं । का १ त्र , यो १० म ४ वा ४
१ १ १ १ १   १ १ १ १
औ १ वै १ । वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ अ . द २ . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ . आ १ उ । ५ . तदनर्याप्तानां–गु १ मि . जी ५
     ६
वि ति च सं अ । प ६ . ५ अ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ सं ४ ग ४ इं ४ वि ति च पं का १ त्र . यो ३ औ मि १ वै मि १ का १ . वे ३ .
१ १ १ १ १   १ १ १ १
क ४ . ज्ञा २ . सं १ अ . द २ . ले २ क शु । भ २ . स १ मि . सं २ . आ २ . उ ४ . सासादनाद्ययोगांतेषु मूलौघवत् . अकायानां
     भा ६
गु० . जी० . प० . प्रा० . सं० ग १ सिद्धगतिः . इं० , का० . यो० . वे० . क० . ज्ञा १ के . सं० द० के० . भ० । स १ क्षा . सं० आ १ अना-
हारः . उ २ . तल्लब्ध्यपर्याप्तानां–गु १ . जी ५ वि ति च सं अ प ६ . ५ अ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ . सं ४ . ग २ ति म . इं ४
     १ १ १ १ १
वि ति च पं । का १ त्र . यो २ औ मि १ का १ . वे १ प . क ४ . ज्ञा २ . सं १ अ . द २ च अ . ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २
१ १ १ १   भा ३ अशु
आ २ . उ ४ . कायमार्गणा गता ।

योगानुवादे मूलौघः किंतु गुणस्थानानि त्रयोदशैव . मनोयोगिनां–गु १३ . जी १ पं प . प ६ . प्रा १० . सं ४ । ग ४ . इं १ . का १ त्र
यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ८ . सं ७ . द ४ . ले ६ भ २ . स ६ . सं १ . आ १ . उ १२ . तन्मिथ्यादृशां– गु १ मि . जी १ . प ६
     ६
प्रा १० . सं ४ . ग ४ . इं १ . का १ . यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ अ . द २ . ले ६ भ २ . स १ मि . सं १ . आ १ .
     ६
उ ५ . तत्सासादनस्य–गु १ सा . जी १ . प ६ . प्रा १० । सं ४ । ग ४ . इं १ पं . का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।
सं १ अ । द २ . ले ६ । भ १ . स १ सा . स १ . आ १ . उ ५ . तन्मिश्रस्य–गु १ मिश्रं . जी १ . प ६ . प्रा १० . स ४ . ग ४ . इं १
     ६
पं . का १ त्र . यो ४ म , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ , द २ , ले ६ । भ १ , स १ मिश्रं , सं १ , आ १ । उ ५ तदसंयतस्य–
     ६
गु १ अ . जी १ , प ६ । प्रा १० , सं ४ . ग ४ . इं १ पं , का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च

अ अ . ले ६ भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ . तद्देशसंयतस्य– गु १ दे . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग २ ति म .
६
इं १ पं . का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ दे . द ३ च अ अ . ले ६ । भ १ . स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ . उ ६ ।
भा ३ शु
तत्प्रमत्तस्य–गु १ प्र . जी १ प . प ६ . प्रा १० . सं ४ , ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ४ म . वे ३ . क ४ . ज्ञा ४ म श्रु अ म . सं ३
सा छे प . द ३ च अ अ . ले ६ , भ १ , स ३ उ वे क्षा । सं १ . आ १ . उ ७ . तदप्रमत्तादिसंयोगांतं मूलौघः किंतु सर्वत्र मनोयोगाश्चत्वारः
भा ३
सयोगे सत्यानुभयौ द्वौ सत्यानुभयमनोयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगांतं मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने स्वस्वनामैकः

असत्यमनोयोगिनां—गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १ असत्यमनः । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ कु कु वि
म श्रु अ म । सं ७ अ दे सा छे प सू यथा । द ३ । ले ६ भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ १० । तन्मिथ्यादृष्ट्यादि-
६
क्षीणकषायांतं योज्यं । उभयमनोयोगिनामप्येवं । स्वस्वयोग एव वक्तव्यः ।

वाग्योगिनां—गु १३ । जी ५ वि ति च सं अ । प ६ । ५ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ४ । का १ त्र । यो ४
वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ । उ १२ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ५ । प ६ प । प्रा १० ।
६
९ । ८ । ७ । ६ । सं ४ । ग ४ । का १ त्र । यो ४ वा । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि । स २ । आ १ ।
६
उ ५ । सासादनादिसयोगांतं मनोयोगिवत् किंतु योगस्थाने वाग्योगो वक्तव्यः ।

काययोगिनां—गु १३ । जी १४ । प ६ ६ ५ ५ ४ ४ । प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ४ ६ ४ ४ ३ ४ २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ ।
क ६ । यो ७ कायस्य । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ भ २ । स ६ । सं २ । आ २ । उ १२ । तत्पर्याप्तानां—गु १३ ।
६
जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औ वै आ । वे ३ । क । ४ ।
ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ १ आहारकः । उ १२ । तदपर्याप्तानां—गु ५ मि सा अ प्र स । जी ७ अ । प ६
६

५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ । कु कु म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ १० तन्मिथ्यादृशां—गु १ । जी १४ । प ६
भा ६
६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ । सं ४ । ग ४, इं ५, का ६, यो ५ आहारकद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ अ, द २, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९
६
८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ २ । स १ मि ।
६
सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । तत्सासादनानां—गु १ सा । जी २ प अ । प ६ ६ ।
भा ६
प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ अ । आ २ ।
६
उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । णिरयं
६
सासणसम्मो ण गच्छदीति वचनात् । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १
भा ६
स १ सा । सं १ । आ २ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ अ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ । प ६
६
६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ५ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३
६
उ वे क्षा । सं १ आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो २ औ वै । वे ३ । क ४ ।

ज्ञा ३ सं १ । द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ । सं
६
४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे २ षं पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स ३ । सं १ । आ
६
२ । उ ६ । देशव्रतिनां—गु १ दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ म ति । इं १ । का १ । यो १ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १
दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ । प ६ ६ । प्रा १०,७ । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का
३
१ त्र । यो ३ औ १ आहा २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ ।
३
अप्रमत्ताना—गु १ अप्र । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ आहारसंज्ञा नहि । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र यो १ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ ।
सं ३ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अग्रेऽपूर्वकरणात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघवत् किंतु औदारिकयोग एव वक्तव्यः ।
३

सयोगकेवलिनां—गु १ सा . जी २ प अ . प ६ ६ . प्रा ४ २ . सं ० . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ३ औ २ का १ . वे
० . क ० . ज्ञा १ के . सं १ यथा . द १ के . ले ६ । भ १ . स १ क्षा . सं ० . आ २ . उ २ के के . औदारिकयोगिनां—गु १३ . जी ७
भा १
प . प ६ . ५ . ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ ६ . ४ . ४ . सं ४ . ग २ म ति . इं ५ . का ६ . यो १ औ , वे ३ . क ४ . ज्ञा ८ . सं ७ .
द ४ . ले ६ । भ २ , सं ६ , सं २ . आ १ . उ १२ . तान्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी ७ , प ६ ५ ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ . ६ .
भा ६
४ . सं ४ , ग २ ति म . इं ५ . का ६ , यो १ औ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . सं १ अ . द २ . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ . आ २ .
भा ६
उ ५ . तत्सासादनानां—गु १ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग २ म ति . इं १ पं , का १ त्र . यो १ औ , वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ .
सं १ अ . द २ , ले ६ , भ १ , स १ सा . सं १ , आ १ . उ ५ . सम्यग्मिथ्या दृशां—गु १ मिश्रं . जी १ . प ६ , प्रा १० . सं ४ . ग २ ति
६
म , इं १ . का १ त्र । यो १ औ , वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ , सं १ अ . द २ . ले ६ । भ १ . स १ मिश्रं . सं १ . आ १ . उ ५ , असंयतानां—गु १ अ ,
६

जी १ पं प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३। सं १ अ, द ३, ले ६। भ १, स ३, सं १,
आ १, उ ६, देशव्रतानां गु १ दे, जी १ पं प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १ औ, वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १, स ३, सं १, आ १, उ ६, प्रमत्ताद्यसंयोगांतं वाग्योगिवत् किंतु सर्वत्र औदारिकयोग एव वक्तव्यः।

औदारिकमिश्रयोगिनां-गु ४ मि सा अ स। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। २। सं ४। ग २ ति म। इं ५। का ६। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा ६ विभंगमनःपर्ययाभावात्। सं २ अ य। द ४। ले १ क। भ २। स ४ मि सा वे क्षा
भा ६
सं २। आ १। उ १०। तन्मिथ्यादृशां- गु १ मि। जी ७ अ। प ६। ५। ४। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३। सं ४। ग २ ति म। इं ५। का ६। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले १। भ २। स १ मि। सं २। आ १। उ ४। तत्सासादनानां-
भा ३
गु १ सा। जी १ सं अ। प ६ अ। प्रा ७। सं ४। ग २ ति म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे ३। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले १। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ४। तदसंयतानां-गु १ अ। जी १ अ प। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ ति म।
भा ३ अशुभ
इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३। ले १ क। भ १। स २ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६।
भा ६
तत्सयोगिनां-गु १। जी १ अ। प ६। प्रा २ का १ आ १। सं ०। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १ औमि। वे ०। क ०। ज्ञा १ के सं १ य, द १ के। ले १ क, भ १, स १ क्षा, सं ०। आ १। उ २। वैक्रियिकयोगिनां-गु ४, मि सा मि अ, जी १ प, प ६। प्रा १०, सं ४, ग २ न दे, इं १ पं। का
१ शु
१ त्र, यो १ वै। वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १, द ३। ले ६। भ २। स ६ मि सा मि उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ९। तन्मिथ्यादृशां-गु १। जी १।
६
प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १।
६
उ ६। तत्सासादनानां-गु १ सा। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ न दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तत्सम्यग्मिथ्यादृशां-गु १ मिश्रं। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४।
६

ग २ न दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ उ
भा ६

५ । तदसंयतानां–गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ न दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ ।
द ३ । ले ६ भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ । तन्मिश्रयोगिनां–गु १ मि सा अ । जी १ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ न दे
भा ६

इं १ पं । का १ त्र , यो १ वैमि , वे ३ , क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ , सं १ अ , द ३ , ले १ क , भ २ , स ५ मि सा उ वे क्षा , सं १ , आ १ ,
भा ६

उ ८ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी १ अ , प ६ अ , प्रा ७ अ । सं ४ , ग २ न दे , इं १ पं , का १ त्र , यो १ वैमि , वे ३ , क ४ ,
ज्ञा २ , सं १ अ , द २ , ले १ । भ २ , स १ मि , सं १ , आ १ , उ ४ , तत्सासादनानां–गु १ सा , जी १ अ , प ६ अ । प्रा ७ अ , स ४ , ग
भा ६

१ दे , इं १ पं , का १ त्र , यो १ वैमि , वे २ , क ४ , ज्ञा २ , सं १ अ , द २ । ले १ क । भ १ , स १ सा । सं १ , आ १ , उ ४ ।
भा ६

तदसंयतानां—गु १ अ । जी १ अ . प ६ अ , प्रा ७ अ . सं ४ . ग २ न दे . इं १ पं , का १ त्र , यो १ वैमि , वे २ पं पुं , क ४ .
ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ । द ३ , ले १ क । भ १ । सं ३ उ वे क्षा , सं १ , आ १ . उ ६ . आहारकयोगिनां–गु १ प्र . जी १ । प ६ , प्रा
भा ४ शु ३ क १

१० ; सं ४ , ग १ म , इं १ पं , का १ त्र । यो १ आ , वे १ पुं . क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं २ सा छे , द ३ , ले १ शु । भ १ . स २
भा ३

वे क्षा , सं १ . आ १ . उ ६ , तन्मिश्रयोगिनां—गु १ प्र . जी १ . प ६ अ . प्रा ७ अ , सं ४ , ग १ म , इं १ पं , का १ त्र , यो १
आमि , वे १ पुं . क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं २ सा छे । द ३ च अ अ , ले १ क । भ १ , स २ वे क्षा , सं १ आ १ , उ ६ , कार्मण-
भा ३

योगिनां–गु ४ मि सा अ स , जी ७ अ , प ६ अ , ५ अ , ४ अ , प्रा ७ , ७ , ६ , ५ , ४ , ३ , २ , सं ४ , ग ४ , इं ५ ,
का ६ , यो १ का , वे ३ , क ४ , ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के , सं २ अ य , द ४ च अ अ के , ले १ शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा , सं
भा ६

२ , आ १ अनाहारः , उ १० , तन्मिथ्यादृशां–गु १ मि , जी ७ अ , प ६ ५ ४ अ , प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ , सं ४ । ग ४ , इं

५ . का ६ , यो १ का . वे ३ , क ४ . ज्ञा २ कुकु , सं १ अ . द २ च अ , ले १ शु , भ २ . स १ मि . सं २ , आ १ अनाहारः . उ ४ .
भा ६
तत्सासादनानां—गु १ सा . जी १ . प ६ . प्रा ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ . का १ . यो १ का . वे ३ , क ४ . ज्ञा २ कुकु . सं १ अ
द २ . ले १ शु , भ १ . स १ सा . सं १ . आ १ अना , उ ४ . तदसंयतानां—गु १ अ . जी १ । प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ , ग ४ . इं १ .
भा ६
का १ . यो १ का . वे २ पं पुं . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ ले १ शु . भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ अना । उ ६ ,
भा ६
तत्सयोगिनां—गु १ सयोगी . जी १ अ . प ६ अ . प्रा २ का . आ . सं ० , ग १ म . इं १ . का १ त्र . यो १ का . वे ० । क ० । ज्ञा १ के .
सं १ य . द १ के , ले १ शु , भ १ . स १ क्षा . सं ० . आ १ अना , उ २ केके , योगमार्गणा गता वेदमार्गणानुवादे मूलौघवत् किंतु गुण-
भा १
स्थानानि नवैव ।

तत्र स्त्रीवेदिनां—गु ९ । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ । सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १
त्र । यो १३ आहारद्वयं नहि । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि
भा ६
उ वे क्षा । सं २ । आ २ । उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ९ । जी २ सं अ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १
त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं ४ अ दे सा छे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स
भा ६
६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा । जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ । प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । सं ४ ।
ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स
भा ३ अशु
२ मि सा । सं २ । आ २ । उ ४ कु कु च अ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी ४ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तापर्याप्ताः । प ६ ६ ५ ५ । प्रा १० ७ ९ ७ ।
सं ४ । ग ३ म ति दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारकद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ
भा ६
२ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ संज्ञ्यसंज्ञिपर्याप्तौ । प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ प । का १ त्र ।

योे १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ च अ । ले ६ । भ २ । स १ । सं २ । आ १ । उ ५ ।
६

तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी २ संज्ञ्यसंज्ञ्यपर्याप्तौ । प ६ ५ अ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ च अ । ले २ क शु । भ २ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ४ । तत्सासादनानां—गु
भा ३ अशु
१ सा । जी २ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ संज्ञिपर्याप्तः । प
६
६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे १ स्त्री । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ, द २ च अ । ले ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां । गु १ सा । जी १ सं अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं,
६
का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का । वे १ स्त्री, क ४ । ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ १, स १ सा, सं १, आ २, उ ४,
भा ३ अशु
सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै । वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ . द २ च अ, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, असंयतानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं
६
४, ग ३ ति म दे, इं १, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे १ स्त्री, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे
६
क्षा । सं १ . आ १ . उ ६ . देशव्रतिनां—गु १ दे . जी १ प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग २ ति म . इं १ पं . का १ त्र . यो ९ म ४ . व ४ औ १, वे १ स्त्री . क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ दे . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ . प्रमत्तानां—गु १ प्र . जी १ . प ६ . प्रा
३
१० . सं ४ . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ९ म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री, क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . संक्लिष्टत्वात् मनःपर्ययो नहि . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ . अप्रमत्तानां—गु १ अप्र . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ३ आहारसंज्ञा
३

नहि . ग १ म . इं १ पं । का १ त्र . यो ९ . म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ मनःपर्ययज्ञानं नहि . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ । भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ । उ ६ . अपूर्वकरणानां—गु १ अपू . जी १ . पं ६ . प्रा १० . स ३ . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ९ म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री . क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स २ उ क्षा . सं १ . आ १ उ ६ . अनिवृत्तिकरणानां—गु १ अनि . जी १ . प ६ . प्रा १० , सं २ मै प , ग १ म . इं १ पं . का १ त्र . यो ९ . म ४ व ४ औ १ . वे १ स्त्री । क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं २ सा छे . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . स २ उ क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ . पुंवेदिनां—गु ९ . जी ४ संज्ञ्यसं.ज्ञपर्याप्तापर्याप्ताः . प ६ ६ ५ ५ . प्रा १० ७ ९ ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ पं . का १ त्र . यो १५ . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ७ केवलज्ञानं नहि . सं ५ अ दे सा छे प . द ३ च अ अ . ले ६ . भ २ . स ६ . सं २ . आ २ . उ १० . तत्पर्याप्तानां—गु ९ . जी २ सं अ . प ६ ५ । प्रा १० ९ । सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ व ४ औ वै आहा । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ५ . सं ५ अ दे सा छे प . द ३ च अ अ । ले ६ । भ २ । स ६ . सं २ । आ १ । उ १० . तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प . जी २ . प ६ ५ । प्रा ७ ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ . यो ४ औमि वैमि आमि का । वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे . द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा सं २ . आ २ । उ ८ ।

तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी ४ . प ६ ,, ६ , ५ , ५ , प्रा १० , ७ . ९ , ७ , सं ४ , ग ३ ति म दे . इं १ पं , का १ त्र , यो १३ आहारक द्वयं नहि, वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६ , भ २ . स १ मि . सं २ . आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां—गु १ मि , जी २ . प ६ ५ , प्रा १० , ९ , सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ ' का १ त्र . यो १० म ४ व ४ औ वै . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ , द २ . ले ६ , भ २ . स १ मि . सं २ , आ १ . उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ मि . जी २ , प ६ . ५ . अ . प्रा ७ . ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे . इं १ पं का १ . यो ३ औमि वैमि का . वे १ पुं . क ४ . ज्ञा २ . सं १ अ , द २ . ले २ क शु , भ २ . स १ मि , सं २ . आ २ , उ ४ . तत्सासादनात् प्रथमानिवृत्तिपर्यंतं मूलौघः अत्र सर्वत्र पुंवेदो वक्तव्यः . सासादनमिश्रासंयतानां गतित्रयं । देशसंयतस्य गतिद्वयं . अन्यत्र विशेषो नास्ति ।

नपुंसकवेदिनां–गु ९ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं । ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे १ षं , क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं ४ अ दे सा छे , द ३ च अ अ , ले ६ , भ २ , स ६ , सं २ , आ २ , उ ६ , तत्पर्याप्तानां– गु ९ , जी ७ , प ६ , ५ , ४ , प्रा १० , ९ , ८ , ७ , ६ , ४ , सं ४ । ग ३ नतिम, इं ५ , का ६ , यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ , वे १ षं । क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं ४ अ दे सा छे , द ३ च अ अ , ले ६ भ २ , स ६ , सं २ , आ १ , उ ६ , तदपर्याप्तानां–गु ३ मि सा अ , जी ७ , प ६ , ५ , ४ अ , प्रा ७ , ७ , ६ , ५ , ४ , ३ । सं ४ । ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो ३ औ मि वैमि का , वे १ षं , क ४ , ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ , सं १ अ , द ३ च अ अ , ले २ क शु / भा ३ अशु भ २ , स ४ मि सा वे क्षा , सं २ , आ २ , उ ८ , तन्मिथ्यादृशां–गु १ मि , जी १४ , प ६ , ६ , ५ , ५ , ४ , ४ , प्रा १० , ७ , ९ , ७ , ८ , ६ , ७ , ५ , ६ , ४ , ४ , ३ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो १३ आहारद्वयं नहि , वे १ न , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ , ले ६ , भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ५ , तत्पर्याप्तानां– गु १ मि , जी ७ , प ६ , ५ , ४ , प्रा १० , ९ , ८ ७ , ६ , ४ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो १० म ४ व ४ औ वै , वे १ षं , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ । ले ६ । भ २ , स १ मि , सं २ , आ १ , उ ५ , तदपर्याप्तानां–गु १ मि , जी ७ , प ६ , ५ , ४ , प्रा ७ , ७ , ६ , ५ , ४ ३ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का ६ , यो ३ औमि वैमि का वे १ षं , क ४ , ज्ञा २ , सं १ अ , द २ , ले २ क शु / भा ३ अशु , भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ४ , तत्सासादनानां–गु १ । जी २ सं प अ , प ६ , ६ , प्रा १० , ७ , सं ४ , ग ३ न ति म , इं १ पं , का १ त्र , यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १ . वे १ षं . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ , द २ च अ , ले ६ , भ १ . स १ सा . सं १ . आ २ . उ ५ . तत्पर्याप्तानां–गु १ सा . जी १ प . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग ३ न ति म . इं १ प . का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औका वैका . वे १ न , क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६ , भ १ . स १ सा . सं १ . आ १ . उ ५ . तदपर्याप्तानां–गु १ सा . जी १ अ . प ६ अ । प्रा ७ अ . सं ४ . ग ३ ति म . इं १ . का १ . यो २ औमिका , वे १ नं . क ४ ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द २ च अ ;

ले २ क शु । भ १ . स १ सा . सं १ . आ २ . उ ४ . तत्सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मिश्रं . जी १ प . प ६ . प्रा १० । सं ४ . ग ३
भा ३ अशु
न ति म . इं १ पं . का १ त्र . यो १० . म ४ . व ४ औ १ वै १ . वे १ न . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ च अ , ले ६, भ १
६

स १ मिश्रं . सं १ . आ १ . उ ५ तदसंयतानां—गु १ अ . जी २ प अ . प ६ . ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग ३ न ति म . इं १ पं . का
१ त्र . यो १३ म ४ व ४ औ वै वैमि का . वे १ न . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ भ १ . स ३ . सं १ .
६

आ २ . उ ६ . तत्पर्याप्तानां—गु १ अ . जी १ प . प ६ . प्रा १० . सं ४ , ग ३ न ति म । इं १ . का १ . यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ .
वे १ न . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ । भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ . उ ६ तदपर्याप्तानां—गु १
६

अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग १ न । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ च अ
अ । ले २ क शु । भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतिनां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति म । इं
भा ३ अशुभ
१ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे १ न । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ
भा ३ शु
१ । उ ६ । प्रमत्तात् प्रथमभागानिवृत्त्यंतं स्त्रीवेदिवत् किंतु वेदस्थाने नपुंसक वेद एव ।

अपगतवेदानां—गु ६ अनि . सू , उ , क्षी , स , अ , जी २ प अ , प ६ , ६ , प्रा १० , ४ , २ , १ , सं १ परि , ग १ म , इं
इं १ पं . का १ त्र . यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ , वे ० . क ४ , ३ , २ , १ लो । ज्ञा ५ म श्रु अ म के , सं ४ सा छे सू य , द ४ च अ
अ के , ले ६ , भ १ , स २ उ क्षा , सं १ , आ , २ , उ ९ , द्वितीयभागानिवृत्तितः सिद्धपर्यंतं मूलौघो भवति , वेदमार्गणा गता ।
भा १

कषायानुवादे ओघः तद्यथा—क्रोधिनां—गु ९ , जी १४ , प ६ , ६ , ५ , ५ , ४ , ४ , प्रा १० , ७ , ९ , ७ ८ , ६ ७ ५ ६ , ४ , ४ ,
३ , सं ४ , ग ४ , इं ५ , का ६ , यो १५ , वे ३ , क १ क्रो , ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म , सं ५ अ दे सा छे प , द ३ च अ अ , ले ६
६
भ २ , स ६ , सं २ . आ . २ , उ १० , तत्पर्याप्तानां—गु ९ . जी ७ प . प ६ . ५ , ४ . प्रा १० , ९ , ८ , ७ , ६ , ४ . सं ४ , ग ४ इं

५, का ६. यो ११. म ४. व ४. औ वै आ, वे ३. क १ क्रो, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म. सं ५ अ दे सा छे प, द ३ च अ अ, ले ६/६, भ २. स ६, सं २, आ १, उ १०, तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प्र, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६.

५, ४, ३ अ, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे ३, क १ क्रो, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ. सं ३ अ सा छे. द ३ च अ अ. ले २ क शु, भा ६, भ २. स ५ मिसा उ वे क्षा. सं २. आ २. उ ८. तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि. जी १४. प ६. ६. ५.

५. ४. ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३ सं ४. ग ४. इं ५. का ६। यो १३ आहारद्वयं नहि. वे ३. क १ क्रो. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २ च अ। ले ६, भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी ७। प ६। ५। ४। प्रा १०। ९। ८। ७।

६। ४। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ च अ। ले ६/६। भ २। स १ मि। सं २। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी ७ अ। प ६ ५ ४ अ। प्रा ७। ७। ६। ५। ४। ३ अ। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो ३ औमि वैमि का। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु, भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ २। उ ४।

तत्सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६/६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ प।

प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २ च अ। ले ६/६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ३ नरकग-

तिर्नहि। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औ मि वैमि का। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २/६। भ १। स १ सा। सं १।

आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृशां गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १ त्र। यो १०। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ मिश्राणि। सं १ अ। द २। ले ६/६। भ १। स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०

७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयं नहि। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६ ६।
भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६। तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र।
यो १०। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले ६ ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। स १। आ १। उ ६। तदपर्या-
प्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औ मि वैमि का। वे २ पुं न। क १ क्रो।
ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु भा ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६। देशव्रतानां—गु १ दे। जी १ प।
प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ दे। द ३ च अ अ। ले ६ ३। भ
१। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। प्रमत्तानां-गु १ प्र जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का
१ त्र। यो ११ म ४। व ४। औ १। आ २। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६ ३। भ १। स ३ उ वे क्षा।
सं १। आ १। उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अप्र। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३ भ मै प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३।
क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३ च अ अ। ले ६ ३। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। अपूर्वकरणानां—
गु १ अपू। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ३ भ मै प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ म।
सं २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६ १। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। अनिवृत्तिकरणानां प्रथमभागे—गु १ अनि। जी १ प।
प ६। प्रा १०। सं २ मै प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क १ क्रो। ज्ञ ४ म श्रु अ म। सं २ सा छे। द ३ च अ अ।
ले ६ १। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। द्वितीयभागे गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं १ प। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र।
यो ९। वे०। क १ क्रो। ज्ञा ४ म श्रु अ प। सं २ सा छे। द ३ च अ अ। ले ६ १। भ १। स २ उ क्षा। सं १। उ ७। एवं मानमाययोरपि
स्वस्वानिवृत्तिभागपर्यंतं वक्तव्यं किंतु क्रोधस्थाने तत्तन्नामकषायः, तथा लोभस्यापि, किंतु गुणस्थानानि दश।

अकषायिणां—गु ४ उ क्षी सा अ, जी २, प ६ ६, प्रा १० ४ २ १, सं ०, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ २ का १, वे ०, क ०, ज्ञा ५ म श्रु अ म के, सं १ य, द ४ च अ अ के, ले ६, भ १, स २. उ क्षा, सं १, आ २, उ ६,
१

इदं सामान्यकथनं विशेषेण उपशांतकषायात्सिद्धपर्यंतं सामान्यभंगो भवति। कषायमार्गणा गता ज्ञानानुवादे ओघालाप भवंति।

कुमतिकुश्रुतानां—गु २ मि सा, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४। ग ४. इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा २, स १ अ, द २, ले ६, भ २, स २ मि सा, सं २, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी ७ प, प ६ ५
६
४, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग ४. इं ५, का ६, यो १० म ४, व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४। ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स २ मि सा, सं २, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु २ मि सा, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३,
६
सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स २ मि सा,
भा ६
सं २, आ २, उ ४, तन्निर्वृत्त्यपर्याप्तानां—गु १ मि, जी १४, प ६ ६ ५ ५ ४ ४, प्रा १० ७ ९ ७ ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २, स १ मि, स २,
६
आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां। गु १ मि, जी ७ प, प ६ ५ ४ प, प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६, भ २। स १ मि, सं २, आ १, उ ४, तदपर्या-
६
प्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६ ५ ४ अ, प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३, सं ४, ग ४. इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, स १ अ, द २ च अ, ले २ क शु, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प
६
६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ आहारद्वयवर्ज्यं। वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ च अ, ले ६,
६
भ १। स १ सा, सं १, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र,

यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा २ कुकु, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १ पं, का १ त्र, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४। ज्ञा २ कुकु, सं १ अ, द २, ले २ क शु/भा ६, भ १, स १ सा, सं १ . आ २, उ ४, विभंगज्ञानिनां—गु २ मि सा, जी १ प . प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा १ त्रिभंगः। सं १ अ, द २, ले ६/६, भ २, स २ मि सा . स १, आ १, उ ३ वि च अ, तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि, जी १ प, प६, प्रा १०, स४ . ग४ . इं १पं, का १ त्र, यो १०, वे ३, क ४, ज्ञा १, सं १ अ, द २, ले ६/६, भ २, स१मि . सं १आ १ उ ३, तत्सासादनानां—गु १ सा, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १। का १, यो १०, म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा १ विभंगः। सं १ अ, द २, ले ६/६। भ १, स १ सा, सं १, आ १ . उ ३, मतिश्रुतानां—गु ९, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४। इं १। का १ त्र, यो १५। वे ३। क ४। ज्ञा २ म श्रु। सं ७। द ३ च अ अ। ले ६/६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु ९। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो ११ म ४ व ४ औ वै आ। वे ३। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स ७। द ३ च अ अ। ले ६/६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु २ असंयतः प्रमत्तः। जी १ अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ४, इं १ पं। का १ त्र। यो ४ औमि वैमि आमि का। वे २ पुं न। क ४। ज्ञा २ म श्रु। स ३ अ सा छे। द ३ च अ अ। ले २ क शु/भा ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। तदसंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ आहारद्वयं नहि। वे ३। क ४, ज्ञा २ म श्रु, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६/६, भ १ स ३ उ वे क्षा, सं १, अ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १०, म ४,

व ४, औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा २, म श्रु, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ १। उ ५।
६

तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो ३ औमि वैमि का। वे २ पुं न, क ४। ज्ञा २ म श्रु। सं १ अ। द ३ च अ अ। ले २ क शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ५। देशव्रतात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघभंगो भ-
भा ६
वति किंतु ज्ञानस्थाने मतिश्रुते वक्तव्ये। अवधेरपि एवं, ज्ञानस्थाने अवधिर्वक्तव्यः। वा मतिश्रुते निरुद्धे। मतिश्रुतावधित्रयं वा मतिश्रुतमनःपर्यत्रयं वा मतिश्रुतावधिमनःपर्ययचतुष्टयं वक्तव्यं।

मनःपर्ययज्ञानिनां—गु ७ प्र अ अ अ सु उ क्षी। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे १ पुं। क ४, ज्ञा १ म। सं ४ सा छे सू य परिहारविशुद्धिर्नहि। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स २ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ४। सयोगायोगसिद्धेषु मूलौघः, ज्ञानमार्गणा गता,
३

संयमानुवादे—गु ९ प्र अ अ अ सू उ क्षी स अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। ४। २। १। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो १३ वैक्रियिकद्वयं नहि। वे ३। क ४। ज्ञा ५ म श्रु अ म के। स ५ सा छे प सू य। द ४ ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा।
३

सं १। आ २। उ ९। प्रमत्तानां—गु १ प्र। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १।
६

आ १। उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अप्र। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ३। आहारसंज्ञा नहि। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ७। अपूर्वकरणादयोगिपर्यंतं
३

मूलौघभंगो भवति।

सामायिकसंयतानां—गु ४ प्र अ अ अ। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १ पं। का १ त्र। यो ११। म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं १ सामायिकं। द ३ च अ अ। ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १।
३

उ ७। अनिवृत्तिपर्यंतं मूलौघभंगोभवति। छेदोपस्थापनसंयतानामप्येवं।

परिहारविशुद्धिसंयमिनां—गु २ प्र अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ परि । द ३ च अ अ । ले ६/३ । भ १ । स २ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तत्प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसांपरायसंयतानां च मूलौघभंगः ।

यथाख्यातसंयमिनां—गु ४ उ क्षी स अ । जी २ प । अ । प ६ ६ । प्रा १० । ४ । २ । १ । सं ० । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ११ म ४ व ४ औ २ का १ । वे ० । क० । ज्ञा ५ म श्रु अ म के । सं १ य । द ४ । ले ६/१ । भ १ । स २ उ क्षा । सं १ । आ २ । उ ९ । उपशांतकषायादयोगपर्यंतं देशसंयतानां च मूलौघभंगः ।

असंयतानां—गु ४ मि सा मि अ । जी १४ । प ६ । ६ । ५ । ५ । ४ । ४ । प्रा १० । ७ । ९ । ७ । ८ । ६ । ७ । ५ । ६ । ४ । ४ । ३ । सं ४ । इं ५ । का ६ । यो १३ आहारद्वय नहि । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ६/६ । भ २ । स ६ । सं २ । आ २ उ ९ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ मि सा मि अ । जी ७ । प ६ । ५ । ४ । प्रा १० । ९ । ८ । ७ । ६ । ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले ६/६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा । सं २ । आ १ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ । जी ७ अ । प ६ । ५ । ४ । प्रा ७ । ७ । ६ । ५ । ४ । ३ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं १ अं, द ३ च अ अ, ले २ क शु/भा ६ । भ २, स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ८, मिथ्यादृष्टितोऽसंयतांतं मूलौघभंगो भवति, संयममार्गणा गता । दर्शनानुवादे ओघालापो भवति—

चक्षुर्दर्शनितां—गु १२, जी ६, सं अ च । प ६, ६, ५, ५, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, सं ४, ग ४ । इं २ च, पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म . सं ७ अ . दे, सा . छे, प . सू . य । द १ चक्षुः . ले ६/६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा . सं २ . आ २ . सं ८ . तत्पर्याप्तानां—गु १२ . जी ३ सं अ च, प ६ . ५ . प्रा १० . ९ . ८ . सं ४ . ग ४ । इं २ पं च . का १ त्र . यो ११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ७ कु कु वि म श्रु अ म . स ७ अ दे सा छे प सू य . द

१ च । ले ६ । भ २ । स ६ मि सा मि उ वे क्षा . सं २ । आ १ . उ ८ . तदपर्याप्तानां गु ४ . मि , सा . अ . प्र । जी ३ सं अ च । प ६ . ५ .
६ १ १ १

अ . पा ७ . ७ , ६ . अ . सं ४ . ग ४ , इं २ पं च । का १ त्र . यो ४ औमि वैमि आमि का . वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . सं ३ अ
सा . छे . द १ च । ले २ क शु । भ २ . स ५ मि सा उ वे क्षा . सं २ . आ २ . उ ६ . तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी ६ । सं अ च । प६ . ६ .
भा ६ २ २ २

५ . ५ . प्रा १० . ७ . ९ . ७ . ८ . ६ . सं ४ . ग ४ . इं २ पं च . का १ त्र . यो १३ आहारद्वयं नहि . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ . कु कु
वि . सं १ अ . द १ च । ले ६ । भ २ । स १ मि . सं २ . आ २ . उ ४ . तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी ३ संप . अप . चप . प ६ . ५ .
६

प्रा १० . ९ . ८ . सं ४ ग ४ . इं २ पं च . का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द १
च . ले ६ । भ २ . स १ मि . सं २ । आ १ . उ ४ . तदपर्याप्तानां—गु १ मि . जी ३ संअ अअ चअ , प ६ . ५ . अ . प्रा ७ . ७ . ६ .
६

सं ४ . ग ४ . इं २ पं च . का १ त्र . यो ३ औमि वैमि का . वे ३ . क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द १ च . ले २ क शु । भ २ . स १
भा ६

मि . सं २ . आ २ . उ ३ . तत्सासादनात् क्षीणकषायांतं मूलौघभंगः किंतु दर्शनस्थाने एकं चक्षुर्दर्शनमेव वक्तव्यं ।

अचक्षुर्दर्शनिनां—गु १२ . जी १४ . प ६ ६ ५ ५ ४ ४ . प्रा १० ७ . ९ ७ . ८ . ६ . ७ . ५ . ६ . ४ . ४ . ३ . सं ४ . ग
४ . इं ५ . का ६ . यो १५ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ७ केवलं नहि . सं ७ अ दे सा छे प सू य . द १ अ . ले ६ , भ २ . स ६ . सं २ . आ २ .
६

उ ८ . तत्पर्याप्तानां—१२ . जी ७ प . प ६ . ५ . ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ . ६ . ४ . स ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ . यो ११ म ४ .
व ४ . औ १ वै १ आ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ७ केवलं नहि . सं ७ . द १ अ . ले ६ भ २ . स ६ . सं २ . आ . १ , उ ८ . तदपर्याप्तानां—
६

गु ४ मि सा अ प्र . जी ७ अ . प ६ . ५ . ४ अ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ . ३ . सं ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ . यो ४ औमि वैमि आमि
का . वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ , कु कु म श्रु अ . सं ३ अ . सा . छे । द १ अ . ले २ क शु . भ २ , स ५ मि सा उ वे क्षा , सं २ . आ २
भा ६

उ ६ . तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी १४ , प ६ , ६ . ५ , ५ . ४ . ४ . प्रा १० . ७ , ९ , ७ , ८ . ६ , ७ . ५ , ६ . ४ , ४ ,

३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३ आहारद्वयं नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २, उ ४, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि। जी ७ प। प ६। ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३। क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द १ अ, ले ६। भ २, स १ मि। सं २, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ७ अ, प ६, ५, ४ अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द १ अ, ले २ क शु। भ २, स १ मि, सं २, आ २। उ ३, तत्सासादनात् क्षीणकषायांतं यथायोग्यं योज्यं।

अवधिदर्शनिनां—गु ९, जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४। ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु ९, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४, व ४, औ १, वै १, आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ७, द १ अ, ले ६। भ १। म ३, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७, सं ४, ग ४, इं ५, का १ त्र यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ पुं न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, स ३ अ सा छे, द १ अ, ले २ भ २, स ३, सं १। आ २, उ ४, असंयतात् क्षीणकषायांतं अवधिज्ञानिवत्। केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत्। दर्शनमार्गणा गता। लेश्यानुवादे गुणस्थानालापो मूलौघवत्। अयोगिगुणस्थानं नास्ति।

कृष्णलेश्यानां—गु ४ मि सा मि अ। जी १४। प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ८, ६, ७, ५, ६, ४, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो १३, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६ भा १ कृ, भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, सं २, आ २, उ ९ तत्पर्याप्तानां—गु ४ मि सा मि अ, जी ७ प, प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ म ति न, इं ५, का ६, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ, सं १ अ, द ३

च अ अ, ले ६, भ २, स ६ मि सा मि उ वे क्षा, स २, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ, जी ७ अ, प ६, ५, ४
भा १ कृ

अ, प्रा ७, ७, ६, ५, ४, ३, सं ४, ग ४, इं ५, का ६, यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं १
अ, द ३, ले २ क शु। भ २, स ३ मि सा वे, पंचमादिपृथ्व्यागतासंयतेषु वेदकसम्यक्त्वसंभवात्, सं २, आ २, उ ८, तन्मि-
भा १ कृ

थ्यादृशां—गु १ मि, जी १४, प ६, ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १०, ७, ९, ७, ८, ६, ७, ५, ६. ४, ४, ३। सं ४, ग ४,
इं ५, का ६, यो १३। वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २ ले ६, भ २, स १ मि, सं २, आ २ उ ५, तत्पर्याप्तानां—
कृ १

गु १ मि. जी ७ प. प ६, ५, ४, प्रा १०, ९, ८, ७, ६, ४, सं ४, ग ३ न ति म. इं ५, का ६. यो १० म ४ व ४ औ
वै, वे ३. क ४. ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ. द २। ले ६, भ २. स १ मि, सं २. आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ मि. जी ७
भा १ कृ

अ, प ६, ५, ४ अ। प्रा ७, ७. ६. ५. ४. ३ अ. सं ४. ग ४। इं ५. का ६. यो ३ औमि वैमि का. वे ३. क ४, ज्ञा २,
कु कु. सं १ अ, द २, ले २ क शु, भ २. स १ मि, सं २. आ २. उ ४, तत्सासादनानां—गु १ सा, जी २ प अ, प ६, ६. प्रा १० ७.
भा १ कृ

सं ४, ग ४, इं १ पं. का १ त्र. यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३, क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १
भा १ कृ

सा, सं १, आ २, उ ५ तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १० प, प ६, प्रा १०. सं ४. ग ३ न ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो १० म ४ व ४ औ
वै, वे ३. क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ. द २, ले ६, भ १. सा १ सा. सं १, आ १. उ ५. तदपर्याप्तानां—गु १ सा. जी १ अ.
भा १

प ६ अ. प्रा ७ अ. सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र. यो ३ औमि वैमि का. वे ३. क ४. ज्ञा २ कु कु. सं १ अ. द २. ले २ क शु
भा १ कृ

भ १. स १ सा. सं १. आ २. उ ४. तन्मिश्राणां—गु १ मिश्र. जी १ पं. प ६. प्रा १०. सं ४. ग ३ न ति म. देवगतौ पर्याप्ते कृष्णलेश्या
अपर्याप्ते मिश्रगुणस्थानं नास्ति। इं १ पं। का १ त्र. यो १० म ४ व ४ औ वै. वे ३. क ४. ज्ञा ३ मिश्राणि. सं १ अ. द २ च अ. ले ६. भ १.
भा १ कृ

न १ मिश्र . स १ . आ १ . उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु १ असं । जी २ प अ . प ६ . ६ . प्रा १० . ७ . सं ४ . ग ३ न ति म तेषां देवगतिर्नहि । इं १ पं . का १ त्र . यो १२ म ४ व ४ औ २ वै १ का १ तेषां सम्यग्दृष्टिवान् भवनत्रयादिर्नास्तिपृथ्वीगतुत्वेषः । पर्याप्तानां तु कपोतलेश्या तन्न्यां शिलाद्वैक्रियिक मिश्रयोगो नहि । वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . म ३ उ वे क्षा . सं १ . आ २ . उ ६ .
भा १ क

तत्पर्याप्तानां–गु १ असं . जी १ प . प ६ , प्रा १० . सं ४ . ग ३ न ति म , इं १ पं . का १ त्र . यो १० म ४ व ४ औ वै , वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ च अ अ . ले ६ . भ १ . म ३ उ वे क्षा . स १ . आ १ . उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु १ असं . जी १ अ . प
भा १ क

६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ . ग १ म . इं १ पं . का १ त्र , यो २ औमि का . वे १ पुं , क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ . द ३ . ले २ क शु
भा १ क

भ १ , म १ वे . सं १ , आ २ . उ ६ . नीललेश्यानां कृष्णलेश्यावद्वक्तव्यं .

कपोतलेश्यानां—गु ४ मि सा मि अ . जी १४ , प ६ . ६ . ५ , ५ . ४ ४ . प्रा १० , ७ , ९ , ७ , ८ . ६ , ७ , ५ . ६ , ४ . ४ . ३ . सं ४ , ग ४ , इं ५ . का ६ , यो १३ प ४ व ४ औ २ वै २ का १ , वे ३ , क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं १ म , द ३ च अ अ , ले ६ . भ २ , स ६ मि सा मि उ वे क्षा . सं २ , आ २ . उ ६ , तत्पर्याप्तानां--गु ४ मि सा मि अ , जी ७ प , प ६ , ५ , ४ , प्रा
भा १ क

१० , ९ , ८ . ७ , ६ . ४ , सं ४ . ग ३ न ति म . देवगतिर्नहि भवनत्रयदेवानामपि पर्याप्तकाले शुभलेश्यत्वात् , इं ५ , का ६ . यो १० म ४ व ४ औ वै , वे ३ . क ४ , ज्ञा ६ कु कु वि म श्रु अ , सं १ अ , द ३ , ले ६ , भ २ , स ६ मि सा मि उ वे क्षा , सं २ . आ १ , उ ९ ,
भा १ क

तदपर्याप्तानां—गु ३ मि सा अ . जी ७ अ . प ६ . ५ . ४ अ । प्रा ७ , ७ , ६ . ५ , ४ , ३ , सं ४ , ग ४ . इं ५ , का ६ , यो ३ औमि वैमि का , वे ३ , क ४ , ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ . स १ अ , द ३ च अ अ , ले २ क शु , भ २ , स ४ मि सा वे क्षा . स २ , आ २ , उ ८ ,
भा १ क

तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि , जी १४ , प ६ , ६ , ५ , ५ , ४ , ४ , प्रा १० , ७ , ९ ७ . ८ . ६ , ७ , ५ . ६ , ४ , ४ , ३ . सं ४ , ग ४ , इं ५ , का ६ , यो १३ , वे ३ . क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ च अ , ले ६ , भ २ , स १ मि , सं २ , आ २ , उ ५ , तत्प-
भा १ क

र्याप्तानां—गु १ मि , जी ७ प , प ६ , ५ . ४ । प्रा १० . ९ , ८ . ७ . ६ , ४ . सं ४ , ग ३ न ति म , इं ५ , का १ , यो १० म ४

व ४ औ वै , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , सं १ अ , द २ च अ , ले ६ . भ २ , स १ मि , सं २ , आ १ . उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ मि ,
भा १ क
जी ७ अ , प ६ , ५ , ४ , अ . प्रा ७ . ७ , ६ , ५ , ४ , ३ , सं ४ , ग ४ , इं ५ , का ६ , यो ३ औमि वैमि का . वे ३ , क ४ , ज्ञा
२ कु कु , स १ . स १ अ . द २ , ले २ क शु . भ २ . स १ मि , सं २ . आ २ , उ ४ , तत्सासादनानां—गु १ सा , जी २ प अ , प ६ ,
भा १ क
६ , प्रा १० , ७ , सं ४ , ग ४ , इं १ पं , का १ त्र , यो १३ , वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ , कु कु वि , सं १ अ , द २ च अ , ले ६ , भ १ , स १ सा , सं १ , आ
क १
२ , उ ५ , तत्पर्याप्तानां—गु १ सा . जी १ प , प ६ , प्रा १० , सं ४ , ग ३ न ति म , इं १ पं . का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औ वै , वे ३ ,
क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि , स १ अ , द २ च अ , ले ६ . भ १ , स १ सा . सं १ . आ १ . उ ५ , तदपर्याप्तानां—गु १ सा , जी १
भा १ क
अ . प ६ अ . प्रा ७ अ . सं ४ , ग ३ ति म दे , इं १ पं , का १ त्र . यो ३ औमि वैमि का , वे ३ , क ४ , ज्ञा २ कु कु , सं १ अ ,
द २ च अ , ले २ क शु , भ १ , स १ सा , सं १ , आ २ , उ ४ , सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं , जी १ प . प ६ , प्रा १० , सं ४
भा १ क
ग ३ न ति म , देवगतिर्नहि , इं १ पं , का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औ वै . वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ मिश्राणि , सं १ अ , द २ , ले ६ ,
भा १ क
भ १ , स १ मिश्रं . सं १ . आ १ , उ ५ . असंयतानां—गु १ अ . जी २ प अ , प ६ ६ , प्रा १० ७ , सं ४ . ग ३ न ति म , इं १ पं ,
का १ त्र , यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ क १ , वे ३ , क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ . द ३ , ले ६ . भ १ , स ३ , सं १ , आ
भा १ क
२ , उ ६ , तत्पर्याप्तानां—गु १ अ , जी १ प . प ६ . प्रा १० , सं ४ , ग ३ न ति म , इं १ पं . का १ त्र , यो १० म ४ व ४ औ वै ,
वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ म श्रु अ . सं १ अ । द ३ . ले ६ , भ १ , स ३ . सं १ , आ १ , उ ६ . तदपर्याप्तानां—गु १ अ , जी १ अ . प ६ अ , प्रा
भा १ क
७ अ . सं ४ . ग ३ न ति म . इं १ पं . का १ त्र . यो ३ औमि वैमि का . वे २ पुं न , क ४ . ज्ञा ३ . , सं १ अ . द ३ , ले २ क शु ,
भा १ क
भ १ . स २ वे क्षा । सं १ , आ २ , उ ६ . तेजोलेश्यानां—गु ७ , जी २ प अ . प ६ ६ , प्रा १० ७ . सं ४ . ग ३ ति म दे , इं १

पं, का १ त्र. यो १५, वे ३, क ४, ज्ञा ७ केवलं नहि. सं ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ २, स ६. सं १. आ २, उ
भा १ ते
१०. तत्पर्याप्तानां—गु ७. जी १ प, प ६. प्रा १०, सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ वै आ. वे ३,
क ४. ज्ञा ७ केवलं नहि. सं ५ अ दे सा छे प. द ३. ले ६, भ २. स ६, सं १. आ १, उ १०, तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा
भा १ ते
अ प्र, जी १ अ. प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग २ प दे, इं १ पं. का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ स्त्री पुं, क ४.
ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ, सं ३ अ सा छे. द ३. ले २ क शु. भ २. स ५ मि सा उ वे क्षा. सं १. आ २, उ ८, तन्मिथ्यादृशां—गु
भा १ ते
१ मि. जी २ प, अ. प ६ ६. प्रा १० ७. सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं, का १ त्र. यो १२ म ४ व ४ औ वै वैमि का. वे ३.
क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २. ले ६. भ २. स १ मि. सं १. आ २. उ ५. तत्पर्याप्तानां—गु १ मि. जी १ प. प ६.
भा १ ते
प्रा १०, सं ४. ग ३ ति म दे. इं १ पं. का १ त्र. यो १० म ४ व ४ औ वै. वे ३. क ४. ज्ञा ३ कु कु वि. सं १ अ. द २.
ले ६. भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १ दे। इं १
भा १ ते
पं। का १ त्र। यो २। वैमि का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ
४। सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४।
भा १ ते
औ १ वै २ का १, वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—गु
१ सा। जी १ प. प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं
भा १ ते
१ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १
भा १ ते
दे। इं १ पं। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे २ स्त्री पुं। क ४। ज्ञा २। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। सं १। आ
भा १ ते

२ । उ ४ । सम्यग्मिथ्यादृशां—गु १ मिश्रं । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ वै
औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ । स १ मिश्रं । सं १ । आ १ । उ ५ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ प ।
भा १ ते
अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १,
भा १ ते
स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ ।
यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ६ ।
भा १ ते
तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इं १ । का १ । यो ३ औमि वैमि का । वे १ पुं । क
४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ । भ १ । स ३ । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतिनां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ ।
भा १ ते
ग २ ति म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । स १ । आ १ ।
भा १ ते
उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र । जी २ प अ । प ६ । ६ । प्रा १० । ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ११ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ ।
सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अप्रमत्तानां-गु १ अ प्र । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ ।
भा १ ते
का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । पद्मलेश्यानां—
भा १ ते
गु ७ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ अ दे सा
छे प । द ३ । ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु ७ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ३ ति म दे ।
भा १ प
इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ५ अ दे सा छे प । द ३ ले ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ
भा १ प
१० । तदपर्याप्तानां— गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग २ म दे । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि

श्रामि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ५ कुकु म श्रु अ। सं ३ अ सा छे। द ३। ले २ क शु। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा। सं १। आ
भा १ प
२। उ ८। तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि। जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १२ म ४ व
४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कुकु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—
भा १ प
गु १ मि। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा
३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ २। स १ मि। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ मि। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ
भा १ प
सं ४। ग १ दे। इं १ पं। का १ त्र। यो २ वैमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २ ले २ क शु. भ २। स १ मि। सं
१। आ २। उ ४। तत्सासादनानां—गु १ सा। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा १० ७। स ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १२ म ४ व
भा १ प
४ औ १ वै २ का १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १। स १ सा। सं १ अ। आ २। उ ५। तत्पर्याप्तानां—
भा १
गु १ सा। जी १ प। प ६. प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ १ वै १। वे ३। क ४। ज्ञा ३ कु कु वि
सं १ अ। द २। ले ६. भ १। स १ सा। सं १। आ १। उ ५। तदपर्याप्तानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग १
भा १ प
दे। इं १। का १। यो २ वैमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले २ क शु। भ १। स १ सा। सं १। आ २। उ
४। सम्यग्मिथ्यादृशां— गु १ मिश्रं। जी १, प ६, प्रा १०। सं ४, ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १०। वे ३। क ४। ज्ञा ३
भा १ प
मिश्राणि, सं १ अ. द २। ले ६। भ १ । स १ मिश्रं। सं १। आ १, उ ५, असंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६, ६. प्रा
भा १ प
१०, ७, सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १, यो १३ आहारद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ
१, स ३ उ वे क्षा, सं १, आ २ उ ६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४ ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औका वैका। दे
भा १ प

३।क४।ज्ञा३।सं१अ।द२,ले६।भ१।स२उवेक्षा।सं१।आ१।उ६।तत्पर्याप्तानां—गु१अ,जी१अ,प६अ,प्रा७अ,सं४, ग२मदे,
भा १ प
इं१,का१,यो ३ औमि वैमि का , वे १ पुं,क ४ , ज्ञा ३ म श्रु अ , सं १ अ , द २ , ले २ क शु । भ १.स२उवेक्षा.सं१.आ२.उ६.
भा १ प
देशव्रतानां—गु १ दे।जी १ प,प ६ .प्रा १० . सं ४.ग २ ति म . इं १।का१। यो ९ . वे ३ .क४.ज्ञा ३ म श्रु अ . सं१ दे . द ३ .
ले ६।भ १ . स ३ . स १।आ १ . उ ६ . प्रमत्तानां—गु१प्र . जी २प अ . प६ . ६ . प्रा १० ७ . स ४.ग१म . इं १ . का १।यो ११
भा १ प
म ४ व ४ औ १ आ २ . वे ३ . क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ १ । उ ७ ।
भा १ प
अप्रमत्तानां—गु १ अप्र , जी १ प । प ६ । प्रा १०; सं ३ । ग १ म । इं १ पं । का १त्र । यो ९ म ४ व ४ औ१ । वे ३ , क ४ , ज्ञा ४ म
श्रु अ म । सं ३ सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स ३ उ वे क्षा । सं १ । आ १ । उ ७ । शुक्ललेश्यानां—गु १३ जी २ प अ । प ६ । ६ ।
भा १ प
प्रा १० । ७ । सयोग ४ । २ । सं ४ । ग ३ ति म दे । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ८ । सं ७ । द ४ , ले ६ । भ २ । स ६ ।
भा १ शु
म १ , आ २ . उ १२ . तत्पर्याप्तानां गु १३ । जी १प . प ६ . प्रा १० ४ . सं ४ , ग ३ ति म दे . इं १ . का१,यो ११ म४ व४ औ १
वै १ आ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ८ । सं ७ . द ४ च अ अ के . ले ६।भ२ . स६ . सं १ । आ १ . उ १२ . तदपर्याप्तानां—गु ५ .
भा १ शु
मि सा अ प्र स . जी १ अ . प ६ अ . प्रा . ७ .२ , सं४ . ग २ म दे . इं १ , का १ , यो ४ औमि वैमि आमि का . वे १ पुं ;
क ४ . ज्ञा ६ , सं ४ अ सा छे य . द ४ , ले २ क शु । भ २ .स ५ मि सा उ वे क्षा , सं १ . आ २ , उ १० ।
भा १ शु
तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि . जी २ प अ , प ६ ६ , प्रा १० , ७ , सं ४ , ग ३ ति म दे . इं १ . का १ ; यो १२ म ४ व ४ औ
१ वै २ का १ . वे ३ , क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६ , भ २ . स १ मि . सं १ . आ २ . उ ५ , तत्पर्याप्तानां—गु १ मि .
भा १ शु
जी १ प . प ६ , प्रा १० . सं ४ , ग ३ ति म दे . इं १ . का १ , यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ . वे ३ . क ४ , ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ .

ले ६, भ २, स १, सं १, आ १, उ ५. तदपर्याप्तानां—गु १ मि. जी १ अ. प ६, प्रा ७, सं ४, ग १ दे. इं १. का १. यो २
भा १ शु
वैमि का. वे १ पु. क ४. ज्ञा २ कुकु. सं १ अ. द २. ले २ क शु। भ २. स १ मि. सं १. आ २. उ ४. सासादनानां—गु १ सा.
भा १ शु
जी २ प. अ. प ६. ६. प्रा १०. ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १. यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १। वे ३. क ४. ज्ञा ३ कुकु
वि. सं १ अ. द २। ले ६। भ १. स १ सा. सं १. आ २. उ ५. तत्पर्याप्तानां—गु १ सा. जी १ प. प ६. प्रा १०. सं ४.
भा १ शु
ग ३ ति म दे, इं १, का १. यो १० म ४ व ४ औ वै. वे ३, क ४, ज्ञा ३ कुकु वि. सं १ अ। द २. ले ६, भ १. स १ सा. सं १, आ
१, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४. ग १ दे, इं १, का १। यो २ वैमि का, वे १ पुं, क ४,
भा १ शु
ज्ञा २ कुकु, सं १ अ, द २. ले २ क शु। भ १, स १ सा। सं १। आ २। उ ४। सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मिश्रं। जी १ प। प ६।
भा १ शु
प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि। सं १ अ। द २। ले ६। भ १।
स १ मिश्रं। सं १। आ १। उ ५। असंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का
भा १ शु
१। यो १३ आहारद्वयाभावात्। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३, ले ६। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ २। उ ६।
तत्पर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ प। प ६। प्रा १०। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १। का १। यो १० म ४ व ४ औ वै। वे ३। क ४। ज्ञा ३ म
भा १ शु
श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग २ म
भा १ शु
दे। इं १। का १। यो ३ औमि वैमि का। वे १ पुं। क ४। ज्ञा ३ म श्रु अ। सं १ अ। द ३। ले २ क। शु। भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १।
आ २। उ ६। देशव्रतानां—गु १ दे। जी १ प। प ६। प्रा १० सं ४। ग २ ति म, इं १ पं। का १ त्र। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३
भा १ शु
म श्रु अ। सं १ दे। द ३ ले ६। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६ प्रमत्तानां—गु १ प्र। जीं २ प। अ। प ६ ६। प्रा १०, ७। सं ४।
भा १ शु

ग १ म । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४, सं ३ सा छे प - द ३, ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ ।
भा १ शु

उ ७ । अप्रमत्तानां गु १ अ म । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ३ । ग १ म । इं १ । का १ । यो ९ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ३ सा छे प । द ३ ।
ले ६ । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ । उ ७ । अपूर्वकरणात्सयोगपर्यंतानां अलेश्यायोगिसिद्धानां च ओघभंगो भवति । लेश्यामार्गणा गता ।
भा १ शु

भव्यानुवादे भव्यानामोघभंगः । अभव्यानां–गु १ मि । जी १४ प ६ ६ ५ ५ ४ ४ . प्रा १० ७ ९ ७, ८ ६ ७ ५ ६ ४ ४ ३, सं ४ । ग
४ । इं ५ । का ६ । यो १३ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ ५ । तत्प-
६

र्याप्तानां–गु १ मि । जी ७ । प ६ ५ ४ । प्रा १० ९ ८ ७ ६ ४ । सं ४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि ।
सं १ अ । द २ । ले ६ । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी ७ अ । प ६ ५ ४ अ । प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ अ । सं
६

४ । ग ४ । इं ५ । का ६ । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु । भ १ अ । स १ मि । सं २ । आ २ । उ
भा ६

४ । भव्याभव्यलक्षणरहितसिद्धानां प्राग्वत् । भव्यमार्गणा गता ।

सम्यक्त्वानुवादे सम्यग्दृष्टीनां–गु ११ असंयतादीनि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ४ २ १ । सं ४ . ग ४ . इं १ पं . का १ त्र . यो १५ ।
वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ म श्रु अ म के . सं ७ . द ४ . ले ६ . भ १ . स ३ उ वे क्षा . सं १ . आ २ . उ ९ . तत्पर्याप्तानां–गु ११ . जी १ . प ६ ४ . प्रा
भा ६

१० ४ १ . सं ४ . ग ४ . इं १ . का १ . यो ११ म ४ व ४ औ वै आ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ५ म श्रु अ म के . सं ७ . द ४ . ले ६ . भ १ . स ३
६

उ वे क्षा । सं १ । २ । उ ९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ अ प्र स । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । २ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १
त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे २ न पुं । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ च अ अ के । ले २ क शु । भ १ । स
भा ४

३ उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । असंयताद्योगिपर्यंतं मूलोघभंगः ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां—गु ११ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ ४ २ १ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु ११ । जी १ । प ६ । प्रा १० ४ १ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का
६
१ त्र । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ म श्रु अ म के । सं ७ । द ४ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ
६
९ । तदपर्याप्तानां—गु ३ अ प्र स । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ , २ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे २ न , पुं । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ के । सं ४ अ सा छे य । द ४ च अ अ के । ले २ क शु , भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ ।
भा ४
तदसंयतानां—गु १ अ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ ।
६
प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो
६
३ औमि वैमि का । वे २ न पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ च अ अ । ले २ क शु । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ २ ।
भा ४ क ते प शु
उ ६ । तद्देशव्रतानां—गु १ दे । जी १ प । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ दे । द ३ च अ अ । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं १ । आ १ । उ ६ । प्रमत्तात्सिद्धपर्यंतं ओघभंगो भवंति ।
भा ३
वेदकसम्यग्दृष्टीनां—गु ४ अ दे प्र अ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ५ अ दे सा छे प । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ वे । सं १ । आ २ । उ ७ । तत्पर्याप्तानां—गु ४ अ दे प्र अ । जी १
६

प, प ६, प्रा १०, सं ४। ग ४, इं १, यो ११ म ४ व ४, ओ १ वै १ आ १, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ५ अ दे सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७, तदपर्याप्तानां—गु २ अ प्र, जी १ अ, प ६, प्रा ७, सं ४, ग
६
४, इं १ पं, का १ त्र, यो ४ औमि वैमि आमि का, वे २ न पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं ३ अ सा छे. द ३, ले २, भ १,
६
स १ वे, सं १, आ १, उ ६, तदसंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १ पं, का १ त्र, यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १। स १ वे, सं १, आ २, उ
६
६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४. ग ४, इं १, का १ त्र, यो १०, म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ। प ६ अ,
६
प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का, वे २ पं पुं, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले २ क ,शु
भा ६
भ १, स १ वे, सं १, आ २, उ ६, देशव्रतानां—गु १ दे, जी १ प, प ६. प्रा १० सं ४, ग २ ति म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९ म ४ व ४ औ. वे ३, क ४, ज्ञा ३, सं १ दे, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ६, प्रमत्तानां—गु १ प्र, जी
३
२ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग १ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ११ म ४ व ४ औ १, आ २, वे ३, क ४, ज्ञा ४ म श्रु अ म, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६। भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७, अप्रमत्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०, सं ३, ग
३
१ म, इं १ पं, का १ त्र, यो ९, वे ३, क ४, ज्ञा ४, सं ३ सा छे प, द ३, ले ६, भ १, स १ वे, सं १, आ १, उ ७, उ-
३
पशमसम्यग्दृष्टीनां—गु ८, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७; सं ४, ग ४, इं १। का १ त्र। यो १२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १।

वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ । सं ६ अ दे सा छे सू य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ७ । तत्पर्याप्तानां—गु ८ अ दे प्र अ
६
अ अ सू उ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ४ म श्रु अ म । सं ६
अ दे सा छे सू य । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ७ । तदपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ ।
६
ग १ दे । इं १ । का १ । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ
भा ३ शु
६ । असंयतानां—गु १ अ । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ का । यो १२ म ४ व४ औ १ वै २ का १ । वे ३ । क ४।
ज्ञा ३ म श्रु अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ । तत्पर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ ।
६
इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ अ । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ । त-
६
दपर्याप्तानां—गु १ अ । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ दे । इं १ । का १ त्र । यो २ वैमि का । वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ । सं १
अ । द ३ । ले २ क शु । भ १ । स १ उ । सं १ । आ २ । उ ६ । देशव्रतानां—गु १ दे । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग २ ति
भा ३
म । इं १ । का १ । यो ९ म ४ व ४ औ १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ । सं १ दे । द ३ । ले ६ । भ १ । स १ उ । सं १ । आ १ । उ ६ । प्र-
३
मत्तानां—गु १ म . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ४ . ग १ म . इं १ । का १ . यो ९ म ४ व ४ . औ १ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ४ म श्रु अ
म . सं ३ सा छे . द ३ . ले ६ . भ १ . स १ उ . सं १ . आ १ . उ ७ . अप्रमत्तानां—गु १ अ . जी १ . प ६ . प्रा १० . सं ३ . ग
भा ३
१ म . इं १ . का १ त्र । यो ९ म ४ व ४ औ . वे ३ . क ४ . ज्ञा ४ . सं ३ सा छे . द ३ . ले ६ . भ १ . स १ उ . सं १ . आ १ .
भा ३
उ ७ . अपूर्वकरणादुपशांतकषायपर्यंतमोघभंगः । तथा मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रह्चीनामपि । सम्यक्त्वमार्गणा गता ।

संज्ञ्यनुवादे संज्ञिनां—गु १२ । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १५ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ २ । उ १० । तत्पर्याप्तानां—गु १२ । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ११ म ४ व ४ औ वै आ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ७ । सं ७ । द ३ । ले ६ ६ । भ २ । स ६ । सं १ । आ १ । उ १० । तदपर्याप्तानां—गु ४ मि सा अ प्र । जी १ अ । प ६ अ । प्रा ७ अ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो ४ औमि वैमि आमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा ५ कु कु म श्रु अ । सं ३ अ सा छे । द ३ । ले २ क शु भा ६ । भ २ । स ५ मि सा उ वे क्षा । सं १ । आ २ । उ ८ । तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि । जी २ प अ । प ६ ६ । प्रा १०, ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १३ आहारद्वयाभावात् । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ । यो १० म ४ व ४ औ वै । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ १ । उ ५ । तदपर्याप्तानां—गु १ मि । जी १ अ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो ३ औमि वैमि का । वे ३ । क ४ । ज्ञा २ कु कु । सं १ अ । द २ । ले २ क शु ६ । भ २ । स १ मि । सं १ । आ २ । उ ४ । सासादनानां—गु १ सा । जी २ । प ६ ६ । प्रा १० ७ । सं ४ । ग ४ । इं १ । का १ त्र । यो १३ म ४ व ४ औ २ वै २ का १ । वे ३ । क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि । सं १ अ । द २ । ले ६ ६ । भ १ । स १ सा । सं १ । आ २ । उ ५ । तत्पर्याप्तानां—गु १ सा । जी १ । प ६ । प्रा १० । सं ४ । ग ४ । इं १ पं । का १ त्र । यो १० म ४ व ४ औ १ वै १ । वे ३ क ४ । ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६ ६ । भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तदपर्याप्तानां—गु १ सा, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ । सं ४, ग ३ ति म दे, इं १, का १ । यो ३ औमि वैमि का, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २, ले २ ६ । भ १, स १ सा,

सं १, आ २, उ ४, विश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १ प, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, औदारिक मिश्र. वैक्रियिकमिश्रकार्माणाहारकद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६। भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५, असंयतानां—गु १ अ। जी २ प अ, प ६, ६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १. का १, यो १३ आहारकद्वयाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६। भ १, स ३, सं १. आ २. उ ६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०. सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, वे ३, क ४. ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले ६। भ १, स ३ उ वे क्षा, सं १. आ १। उ ६, तदपर्याप्तानां—गु १ अ, जी १ अ, प ६, प्रा ७ अ, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो ३ औमि वैमि का वे २ पुं, न, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३ च अ अ, ले २ क शु। भ १, स ३, सं १। आ २, उ ६, देशव्रतात् क्षीणकषायपर्यंतं मूलौघभंगः।

असंज्ञिनां—गु १ मि। जी १२ संज्ञिपर्याप्तापर्याप्तौ नहि। प ५ ५। ४ ४। प्रा ९। ७। ८। ६। ७। ५। ६। ४। ४। ३। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो ४। औ २। का १ अनुभय वचनं। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २ ले ६। भ २, स १ मि। सं १। आ २। उ ४। तत्पर्याप्तानां—गु १ मि, जी ६ संज्ञिपर्याप्तो नहि। प ५। ४। प्रा ९। ८। ७। ६। ४। सं ४। ग १ ति। इं ५। का ६। यो २ औ। अनुभयवचनं, वे ३, क ४, ज्ञा २ कु कु, सं १ अ, द २ ले ६। भ २, स १ मि। सं १ अ, आ १, उ ४, तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी ६ अ, प ४ अ. प्रा ७. ६, ५, ४, ३. सं ४। ग १ ति, इं ५, का ६, यो २ औमि का. वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ. द २। ले २ क शु। भ २, स १ मि, स १ अ. आ २. उ ४, संज्ञासंज्ञिव्यपदेशरहितानां सयोगायोगिसिद्धानां मूलौघभंगः। संज्ञि-मार्गणा गता।

आहारानुवादे आहारिणां—गु १३. जी १४। प ६, ६. ५, ५, ४, ४. प्रा १०. ७. ९, ७, ८. ६. ७, ५, ६. ४. ४.

३, ४, २, सं ४, ग ४ - इं ५, का ६, यो १४ कार्मणो नहि, वे ३, क ४, ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६। भ २, स ६. सं
६
२, आ १, उ १२, तत्पर्याप्तानां— गु १३, जी ७, प ६ . ५ . ४, प्रा १० . ९, ८, ७ . ६, ४ . ४, सं ४, ग ४, इं ५,
का ६. यो ११ म ४ व ४ औ वै आ, वे ३ . क ४। ज्ञा ८, सं ७, द ४, ले ६। भ २, स ६, सं २, आ १, उ १२, तदपर्याप्तानां—गु ५
६
मि सा अ प्र स, जी ७ अ, प ६, ५, ४ . प्रा ७, ७, ६, ५, ४ . ३, २, सं ४, ग ४। इं ५, का ६, यो ३ औ मि वैमि आ-
मि, वे ३, क ४, ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के, सं ४ अ सा छे यथा, द ४। ले १ क। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा, सं २, आ १, उ
भा ६
१०, मिथ्यादृष्टीनां—गु १ मि, जी १४ . प ६ . ६, ५, ५, ४, ४, प्रा १० . ७ . ९, ७, ८ . ६ . ७ . ५ . ६, ४ . ३, सं ४,
ग ४, इं ५। का ६, यो १२ आहारद्वयकार्मणाभावात्, वे ३, क ४, ज्ञा ३, कु कु वि . सं १ अ . द २, ले ६। भ २ . स १ मि। सं २ .
६
आ १। उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ मि . जी ७ प, प ६ . ५, ४ . प्रा १० . ९ . ८ . ७ . ६ . ४ . सं ४ . ग ४ इं ५ . का ६ . यो
१० आहारकद्वयमिश्रत्रयाभावात्, वे ३ . क ४ . ज्ञा ३ कु कु वि . सं १ अ . द २ . ले ६। भ २ . स १ मि . सं २ . आ १ . उ ५ . तद-
६
पर्याप्तानां—गु १ मि . जी ७ . प ६ . ५ . ४ . प्रा ७ . ७ . ६ . ५ . ४ . ३ . सं ४ . ग ४ . इं ५ . का ६ . यो २ औमि वैमि . वे ३
क ४ . ज्ञा २ कु कु . सं १ अ . द २ . ले १ क। भ २ . स १ मि . सं २ . आ १ . उ ४ . सासादनानां—गु १ सा . जी २ प अ . प ६,
भा ६
६, प्रा १०, ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४ व ४ औ २ . वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले
६, भ २, स १ सा, सं १, आ १, उ ५, तत्पर्याप्तानां—गु १ सा, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १०, म
६
४ व ४ औ १ वै १, वे ३ . क ४, ज्ञा ३ कु कु वि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ सा . सं १, आ १, उ ५,
६

तदपर्याप्तानां—गु १ मि, जी १ अ, प ६ अ, प्रा ७ अ, सं ४, ग ३ नि म दे, इं १, का १, यो २ औमि वैमि, वे ३, क ४, ज्ञा २, सं १ अ, द २, ले १ क, भ १, स १ सा, सं १, आ १, उ ४, मिश्राणां—गु १ मिश्रं, जी १, प ६, प्रा १०, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ १ वै १, वे ३, क ४, ज्ञा ३ मिश्राणि, सं १ अ, द २, ले ६, भ १, स १ मिश्रं, सं १, आ १, उ ५ असंयतानां—गु १ अ, जी २ प अ, प ६ ६, प्रा १० ७, सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १२ म ४, व ४ औ २ वै २, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ, द ३, ले ६, भ १, स ३ उ वे क्षा। सं १, आ, १, उ ६, तत्पर्याप्तानां—गु १ अ, जी १, प ६, प्रा १०। सं ४, ग ४, इं १, का १, यो १० म ४ व ४ औ वै, वे ३, क ४, ज्ञा ३ म श्रु अ, सं १ अ। द ३ ले ६, भ १। स ३। सं १। आ १। उ ६। तदपर्याप्तानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १। का १। यो २ औमि वैमि। वे २ पुं। न। क ४। ज्ञा ३। सं १ अ। द ३ त्र अ अ। ले १ क, भ १, स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६।

देशव्रतानां—गु १। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग २ ति म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ३। सं १ दे। द ३। ले ६ भा ६ भ १। स ३ उ वे क्षा। सं १। आ १। उ ६। प्रमत्तानां—गु १ प्र जी २ प अ। प ६। ६। प्रा १०। ७। सं ४। ग १ म। इं १। का १। यो ११ म ४ व ४ औ १ आ २। वे ३। क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६ भा ३। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ७। अप्रमत्तानां—गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं ३ सा छे प। द ३। ले ६ भा ३। भ १। स ३। सं १। आ १। उ ७। अपूर्वकरणानां—गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ३। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६ भा १ भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। अनिवृत्तीनां प्रथमभागे—

गु १ अ। जी १। प ६। प्रा १०। सं २ मै प। ग १ म। इं १। का १। यो ९। वे ३। क ४। ज्ञा ४। सं २ सा छे। द ३। ले ६। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। शेषचतुर्भंगेष्वोघभंगः। सूक्ष्मसांपरायाणां—गु १ सू। जी १। प ६, प्रा १०। सं १ प, ग १, इं १। का १। यो ९। वे ०। क १। सूक्ष्मलोभः। ज्ञा ४। सं १ सू। द ३। ले ६ १। भ १। स २। उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। उपशांतकषायाणां—गु १ उ। जी १। प ६। प्रा १०। सं ०। ग १ म। इं १। का १। यो ९ म ४ व ४ औ, वे ०, क ४। ज्ञा ४ म श्रु अ म। सं १ य। द ३ च अ। ले ६ १। भ १। स २ उ क्षा। सं १। आ १। उ ७। क्षीणकषायाणां—गु १ क्षी। जी १। प ६। प्रा १०। सं ४। ग १ म। इं १। का १ त्र। यो ९। वे ०। क ०। ज्ञा ४, सं १ य। द ३। ले ६ १। भ १। स १ क्षा। सं १। आ १। उ ७। सयोगिकेवलिनां—गु १ सयो। जी २ प अ। प ६ ६। प्रा ४। २। सं ०। ग १ म। इं १। का १ त्र। यो ६ म २ व २ औ २। वे ०। क ०। ज्ञा १ के। सं १ य। द १ के। ले ६ १। भ १। स १ क्षा। सं ०। आ १। उ २। एषामपर्याप्तालापोऽपि वक्तव्यः।

अनाहारिणां—गु ५ मि सा अ स अ। जी ८ सप्ताऽपर्याप्ता एकोऽयोगिनः। प ६। ५। ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३ २ १। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १। वे १। क ४। ज्ञा ६ कु कु म श्रु अ के। सं ३ अ य। द ४। ले ६ भा ६। भ २। स ५ मि सा उ वे क्षा। सं २। आ १। उ १०। तन्मिथ्यादृशां—गु १ मि। जी ७। प ६ ५ ४। प्रा ७ ७ ६ ५ ४ ३। सं ४। ग ४। इं ५। का ६। यो १ का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले १ शु भा ६। भ २। स १ मि। सं २। आ १ अ। उ ४। सासादनानां—गु १ सा। जी १ अ। प ६। प्रा ७। सं ४। ग ३ ति म दे। इं १ पं। का १ त्र। यो १ का। वे ३। क ४। ज्ञा २ कु कु। सं १ अ। द २। ले १ शु भा ६। भ १। स १ सा। सं १। आ १ अ। उ ४। असंयतानां—गु १ अ। जी १ अ। प ६ अ। प्रा ७ अ। सं ४। ग ४। इं १ पं। का १ त्र। यो १

क्रा । वे २ पुं षं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं १ अ । द ३ । ले १ शु । भ १ । स ३ । सं १ । आ १ अ । उ ६ । प्रमत्तानां—गु १ प्र ।
भा ६
जी १ । प ६ । प्रा ७ । सं ४ । ग १ म । इं १ । का १ । यो १ आमि तेन औदारिकापेक्षयाऽनाहारः वे १ पुं । क ४ । ज्ञा ३ म श्रु अ । सं
२ सा छे । द ३ । ले १ क । भ १ । स २ । सं १ । आ १ । उ ६ । सयोगिकेवलिनां–गु १ स । जी १ अ । प ६ अ । प्रा २ कायवलं ।
भा ३
आयुष्यं । सं ० । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो १ का । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं १ य । द १ के । के । १ भ १ । स १ क्षा । सं ० ।
भा १
आ १ अ । उ २ । अयोगकेवलिनां—गु १ अ । जी १ प । प ६ । प्रा १ आयुः । सं ० । ग १ म । इं १ पं । का १ त्र । यो ० । वे ० ।
क ४ । ज्ञा १ के । सं १ य । द १ के । ले ६ । भ १ । स १ क्षा । सं ० । आ १ अ । उ २ । सिद्धानां—गु ० । जी ० । प ० । प्रा ० ।
भा ०
सं ० । ग १ सिद्धगतिः । इं ० । का ० । यो ० । वे ० । क ० । ज्ञा १ के । सं ० । द १ के । ले ० । भ ० । सं १ क्षा । सं ० । आ १
अ । उ २ ॥ ७२८ ॥



अथ भाषा यंत्र रचना

रत्नात्रिक कीकणिए है तिनके नाम	गुणस्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्री	काय	जोग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहारक	उपयोग
पर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	१४	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९।८।७।६।४।४।१ पर्याप्त	४	४	५	६ पर्याप्त	११ पर्याप्त	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहारक	१२
अपर्याप्तगुणस्थानवाले जीवनिकी रचना	५ मि १ सा१ अवि १ प्र १ सजो१	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५।४।३।२ अपर्याप्त	४	४	५	६	४औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ असं१ सा१ छे१ यथा१	४	द्र २ का१शु१ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी सामान्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६।५।५।४।४	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।३।	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी पर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९।८।७।६।४।	४	४	५	६	१० म ४ व४ औदा१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहारक	५ ज्ञा३ द २
मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५।४।३।	४	४	५	६	३औमि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असंयम	२ च१ अच१	द्र २ का१शु१ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द २
सासादन सामान्यकी रचना	१ सासादन	२ संप१ संअ१	६।६।	१०।७।	४	४	१ पंचेंद्री	१ त्रस	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असंयम	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	१ भव्य	१ सासादन	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २

सासादन पर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संप	६। प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४औ १वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
सासादन अपर्याप्तकी रचना	१ सासा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ ति१म १ दे १	१ पं	१ त्र	३औमि१ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४औ१ वै १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
असंयत सामान्य रचना	१ असंयत	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ म१ श्रु १ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उप१ वे१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४व ४औ१ वै १	३	४	३ म१ श्रु १ अ१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
असंयत अपर्याप्तरचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३औमि१ वैमि१ का १	२ न१पु१	४	३ म१ श्रु१ अ१	१ असं	३ आदि के	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ देशसंयत	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ संप१ संअ १	६।६	१०।७	४	१ मनु	१ पं	१ त्र	११ म४व ४औ१ आहा२	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प १	३ आदि के	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द ३

अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत्त	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ प	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	३ सा१ छे१ प१	३ आदि के	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ १ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म०४ व०४ औ१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म०४ व०४ आ१	३	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	४	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	३ क्रोध विना	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ सप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
अनिवृत्ति करण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ आ१	०	१ लो	४ मत्यादिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सूक्ष्मसांपराय रचना	१ सूक्ष्म	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ आ१	०	१ लो	४ मत्यादिक	१ सूक्ष्म	३ आदि के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३

उपसांतकषाय रचना	१ उप	१ सं'प	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आद के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
क्षीणकषाय रचना	१ क्षीण	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ आदि क	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सयोगकेवली रचना	१ सयो	२ प१ अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ मन२ वच२ औदा२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	०	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
अयोगकेवली रचना	१ सगो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र६ भा०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
गुणस्थानातीतसिद्धपरमेष्ठीरचना	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा१ द१
सामान्य नारक जीवनि की रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ अज्ञान३ मत्यादिक३	१ असं	३ आदि के	द्रव्य३ कृ१क १शु१ भा३ अशुभ	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
सामान्य	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१	१	१	९ म४	१	४	६ अज्ञान३	१ असं	३ आदि	द्र१ क१ भा३	२	६	१ सं	१ आहारक	९ ज्ञा६ द३

द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकपर्याप्तनि को रचना	४ आदिके	१ सप	६	१०	४	१ न	१ प	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादिक३	१ असं	३ आदिके	द्र१ क भा१ स्व प० संबंधी	२	५ उ१ वे१ मि १ सा१ मि१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकअपर्याप्त निर्वृतिरचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारक मिथ्यादृष्टिनिर्वृ रचना	१ मि	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र३ कृ१ शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकमिथ्यादृष्टीपर्याप्तनि की रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकमिथ्यादृष्टीअपर्याप्त निर्वृ रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा१ स्वकीय	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकसासादन को रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा१ स्वकीय	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
द्वितीयादि पृथ्वीकेनारकमिश्र की रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा१ स्वकीय	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञान३ द२

सामान्य ना-रक अपर्याप्त रचना	२ मि १ अवि १	१ सं अ	६ अप	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का १	१ नपुं	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क शु भा३ अशुभ	२	३ मिथ्या वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३
सामान्य ना-रक मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वैक्रि२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ क१क १शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द२
सामान्य नारकमिथ्या दृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्यना-रकमिथ्या दृष्टिअपर्या-प्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सामान्यना रकसासा दनरचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा३ अशुभ	१ भ	१ सासा	१ सं	१	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनार कमिश्रगुण स्थानरचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा३ अशुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सामान्यनार कअसंयत र ना	१ असं	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ क१का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

द्वितीयादि-पृथ्वीके नारक असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ भा३ स्वकीय	१ भ	२ उ १ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
पंचप्रकार तिर्यंचनि विशेसामान्य तिर्यंच रचना	५ आदि के	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	१ ति	५	६	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मनपर्ययके वल विना	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा३ द३
सामान्यतिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदि के	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
सामान्यतिर्यंच अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अपर्याप्त	६। ५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मि१ सा१ क्षा१ वे१	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
सामान्य तिर्यंच मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७। ९।७।८।६। ७।५।६। ४।४।३।	४	१ ति	५	६	११ म ४ व ४ औ२ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५। ४।	१०।९ ८।७। ६।४।	४	१ ति	५	६	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंचमिथ्या दृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अप	६।५। ४।	७।७ ६।५। ४।३।	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र२ का१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २

सामान्य तिर्यंच सासादन रचना	१ सासा	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सासा	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सासा	१ सं अ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क २ शु १ भा ३ अशु	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
सामान्य तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द
सामान्य तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ व १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र ३ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सामान्य तिर्यंच असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पुरुष	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा १ कपोत	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

सामान्यतिर्यंचदेश संयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ आदिके	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ औ१ वे १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच रचना	५ आदिके	४ संप१ संअ१ असंप१ असंअ१	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	६ मत्यादिक३ कुज्ञान ३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदिके	१ संप१ असंप१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	२ असं१ देश १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा १ अवि १	२ संअ १ असंअ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	५ कुम १ कुश्रुत १ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु अ.दि	द्र २ क १ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मिथ्या १ सा१ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा५ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	४ संप १ संअ १ असंप १ असंअ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्री तिर्यंच मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ संप१ असंप१	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री तिर्यंच मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ संअ १ असंअ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द २

पंचेंद्री तिर्यंच सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६-६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ चक्षु अचक्षु	द्र६ भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ चक्षु अचक्षु	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम कुश्रु	१ असं	२ चक्षु अचक्षु	द्र२ का शु भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा२ द२
पंचेंद्री तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ चक्षु अचक्षु	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ मत्यादि त्रिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उप१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मत्यादि त्रिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ पुरुष	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र२ का शु भा१ कपोत	१ भ	२ क्षा१ वे१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

पचेंद्री तिर्यंच देश संयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ उ१ वे १	१ स	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पचेंद्री पर्याप्त तिर्यंचरचना-पचेंद्री तिर्यंच वत् है	पंचेंद्रीवत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्	पं० वत्
योनिमती तिर्यंच जो तिर्यंचणी ताकी रचना	५ आदिके	४सं प १सं अ १असं प १ असं अ१	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	५ क्षायिक विना	२	२	६ ज्ञा६ द३
योनिमती तिर्यंच पर्याप्त रचना	५ आदिके	२ सं प१ असं प १	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान३ मत्यादिक३	२ असं १ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	५ क्षायिक विना	२	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
योनिमती तिर्यंच अपर्याप्त रचना	२ मिथ्या१ सा १	१ संअ१ असं अ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सा सा १	२	२	४ ज्ञा २ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	४संप१ संअ १ असंप १ असं अ १	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा ३ द २
योनिमती तिर्यंच मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ सं प असं प१	६।५	१० ९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २

योनिमती तिर्यं मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	२ संअ १ असं अ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औ१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमती तिर्यंचसासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंचसासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमती तिर्यंच मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमती तिर्यंच असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	२ उ१ वे१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
योनिमती तिर्यंच देश संयतरचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	२ उ१ वे१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	२ संअ१ असं अ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा २ द २
च्यारिप्रकार मनुष्यनिविषै सामान्यमनुष्यरचना	१४	२ सं प १ सं अ१	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैकियकद्विकविना	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१२
सामान्य मनुष्य पर्याप्त रचना	१४	१ स प	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
सामान्य मनुष्य अपर्याप्त रचना	५ मिथ्या१ सा१ अवि१ प्र१स१	१ सं अ	६	७ २	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औमि१ आमि १का१	३	४	६ विभंग मनः पर्यय विना	४ असं १सा१ वे१ यथा १	४	द्र २ क१शु १ भा६	२	४ मिथ्या १सा१ वेद१ क्षा१	१ सं	२	१० ज्ञा६ द४
सामान्य मनुष्यमिथ्यादृष्टिरचना	१ मिथ्या	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सामान्यमनुष्यमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य मनुष्यमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क १शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २

सामान्यमनुष्यसासादन रचना	१ सा	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य मनुष्यसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्य मनुष्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
सामान्य मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सामान्यमनुष्य असंयत रचना	१ असं	२ संप १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
सामान्य मनुष्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सामान्य मनुष्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पुं	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ६	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

		अ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
-- ।	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा १ द १
पर्याप्त मनुष्य रचना सामान्य मनुष्य पर्याप्तवत्	सामान्य मनुष्य पर्याप्त वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
योनिमत् मनुष्यणी नाकी रचना	१४	२ सं प१ संअ १	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	७ मनःपर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ संप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	७ मनपर्ययविना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२ आहा	११ ज्ञा७ द ४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ सयो १	१ सं अ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ स्त्री	४	३ कुम १ कुश्रु१ केवल १	२ असं १ यथा १	३ च १ अच १ केव १	द्र२ का१ शु१ भा ४ अशु ३ शुक्ल१	२	३ मिथ्या १ सा१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ सप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण द्वितीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	४	४ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण तृतीय भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	३ मान १ माया १ लोभ १	४ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण चतुर्थ भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	२ माया १ लोभ १	४ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य अनिवृत्ति करण पंचम भाग रचना	१ अनि	१ संप १	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ लोभ	४ मत्यादिक	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य सूक्ष्म सांपराय रचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ लोभ	४ मत्यादिक	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य उपशांत कषाय रचना	१ उ	१ संप	६	१०	[illegible]	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	०	४ मत्यादिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३
सामान्य मनुष्य क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	०	३ मत्यादिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा ४ द ३

सामान्य मनुष्य सयोग केवली रचना	१ सयो	२ संप१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
सामान्य मनुष्य अयोग केवली रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अनाहारक	२ ज्ञा १ द १
पर्याप्त मनुष्य रचना सामान्य मनुष्य पर्याप्तवत्	सामान्य मनुष्य पर्याप्त वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
योनिमत् मनुष्यणी नाकी रचना	१४	२ संप१ संअ	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	१ स्त्री	४	७ मनः पर्यय विना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ संप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	७ मनपर्ययविना	६ परिहारविशुद्धि विना	४	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२ आहा	११ ज्ञा७ द ४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ सयो १	१ सं अ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	० औमि १ का१	१ स्त्री	४	५ कुम १ कुश्रु१ केवल १	२ अस १ यथा १	३ च १ अच १ केव १	द्र२का१ शु१भा ४ अशु भ २ शुक्ल१	२	३ मिथ्या १ सा१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मिं	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
मनुष्यणी सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ २ का १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
मनुष्यणी सम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनुष्यणी असंयत रचना	१ असं	१ सं प १	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्यादि	१ असं १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३

मनुष्यणी देश संयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप १	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा छे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मत्या दिक	२ सा १ छे १	२ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अपूर्व करण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अनिवृत्ति करण प्रथम भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिक रणद्वितीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी-अनिवृत्तिक रणतृतीय भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	३ मान १ माया १ लोभ १	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३

मनुष्यणी अनिवृत्तिकरणचतुर्थ भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी अनिवृत्तिकरणपंचम भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ बादर लोभ	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी सूक्ष्मसांपरायरचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	०	१ सूक्ष्म लोभ	३ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
मनुष्यणी उपशांत कषाय रचना	१ उप	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	२ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी सयोगी रचना	१ सयो	२ संप१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म २ व २ औ२ का १	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
मनुष्यणी अयोगी रचना	१ अयो	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा०	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १

मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
देवगति रचना	४ आदिके	२ सं प१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	१ असं १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
देवगति पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
देवगति अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३
देवमिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
देवमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप १	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ३ शुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देवमिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१	५ ज्ञा३ द २
देव सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
देव सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देव असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु-आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
देव असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३

भवनत्रिक देव रचना	४ आदके	२ संप१ संअ१	६-६	१०-७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा४ अशुभ ३ पी१	२	५ क्षायिक विना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
भवनत्रिक देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ रूप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कु ज्ञान ३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पीत	२	५ क्षायिक विना	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
भवनत्रिक देव अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सा१	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देवमिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पी१	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप १	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
भवनत्रिक देव सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पी१	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २

भवनत्रिक देव सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
भवनत्रिक देव सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	२ उ १ वे १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सौधर्म्म ईशान देव रचना	४ आदिके	२ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै २ का१	२ स्त्री१ पुं १	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ३ पी१ क१ शु१ भा१ पीत	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा६ द ३
सौधर्म्म ईशान देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ प	१ त्र	६ म ४ व ४ वै१	२ स्त्री१ पुं१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत	२	६	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा६ द ३
सौधर्म्म ईशान देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	५ कुम१ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ पीत	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सौधर्मईशान देवमिथ्या दृष्टिरचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	२ असं	२ च१ अच१	द्र ३ पी१क १शु, भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
सौधर्मईशान देवमिथ्या दृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ पीत भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
सौधर्मईशान देवमिथ्या दृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु १भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
सौधर्मईशान देवसासादनरचना	१ सा	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै २ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र पी १क १ शु१भा १पीत	१ भ	१ सा१	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्मईशानदेवसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द
सौधर्मईशानसासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै मि१ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु १भा १ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द
सौधर्मईशानदेवसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प१	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पुं	४	१ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २

सौधर्म ईशान देव असंयत रचना	१ असं	१ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै२ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मत्या दि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र पी.क१ शु१ भा१ पीत	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
सौधर्म ईशान देव असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ वै १	२ स्त्री१ पुं१	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत शुभ	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
सौधर्म ईशान देव असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ पीत	१ भ	३ द्विती योपश म१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
कल्पवासिनी देवांगनाके असंयतविषै पर्याप्तापर्याप्तकी रचना	सौधर्म असंयत पर्याप्तवत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	१ स्त्री	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	२ उ१ वे १	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्	सौ० अ०प० वत्
सनत्कुमार माहेंद्र देव रचना	४ आदिके	१ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै का१	१ पुरुष देवांगना सौधर्म ईशानविषै ही उपजै है	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ४ पी१प१ का१ शु१ भा: पी१प१	२	६	१ सं	२	६ ज्ञा ६ द ३
सनत्कुमार माहेंद्र देव पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ वै१	१ पुं	४	६ कुज्ञान३ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ पी१प१ भा २ पी१प१	२	६	१ सं	१ आह	६ ज्ञा ३ द ३
सनत्कुमार माहेंद्र देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वै१मि १का१	१ पुं	४	५ कुम१ कु श्रु१ मत्या दि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा पी१प१	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द ३

सनत्कुमार माहेंद्र मिथ्य दृष्टयादि असं यतपर्यंत सौधर्म पुरुष वत् रचना	सौधर्म वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	१ पुरुष वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	स्वकीय स्वर्गसंभवती	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्	सौ० वत्
ब्रह्माद्युपरितना द्वि ग्रैवेयकपर्यंतसनत्कुमारवत् रचना	सनत्कुमार वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स्वकीय संभवती	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्	स० वत्
अनुदिशानुत्तरदेवरचना सौधर्मपुरुष असंयतवत्	सौधर्म असंयत वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	१ पुरुष वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	स्वकीयसंभवती	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्	सौअ वत्
सिद्धगति रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १
इंद्रियमार्गणाविषैसामान्यएकेंद्री रचना	१ मि	४ बादर सूक्ष्मपर्याप्तअपर्याप्त	४।४	४।२	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द १
सामान्यएकेंद्रीपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
सामान्यएकेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा द १

वादरएकेंद्री रचना	१ मि	२ वादर पर्याप्त अप र्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
वादरएकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ वादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
वादरैकेंद्रीअ पर्याप्तरचना वादरएकें द्रीलब्धिअप र्याप्तरचना	१ मि	१ वादर अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री रचना	१ मि	२ सूक्ष्म प१अ१	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ सूक्ष्म पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र१ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्मएकेंद्री अपर्याप्तवाअ पर्याप्तनामक मैकेउदयनैंल ब्धिअपर्याप्त करचना	१ मि	१ सूक्ष्म अप र्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
वेंद्री रचना	१ मि	२ वेंद्री प१ अ१	५।५	६।४	४	१ ति	१ वे	१ त्र	४ औ२ का१ व१ अनु	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१

वेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ वेंद्री पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ वे	१ त्र	२ व१ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द १
वेंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ वेंद्री अप र्याप्त	५	४	४	१ ति	१ वे	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
तेंद्री रचना	१ मि	२ तेंद्री प१ अ१	५।५	७।५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
तेंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री पर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा २ द १
तेंद्रीअपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ तेंद्री अप र्याप्त	५	५	४	१ ति	१ ते	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
चौंद्री रचना	१ मि	२ चौंद्री प १ अ १	५।५	८।६	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का १	१ नपुं १	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ ज्ञा२ द २
चौंद्री पर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री पर्याप्त	५	८	४	१ ति	१ चौ	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	४ ज्ञा२ द२

चौंद्री अपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ चौंद्री अपर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ चौं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र १ शु १ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	४ ज्ञा २ द २
पंचेंद्री रचना	१४	१ संअ संज्ञीपर्याप्तअपर्याप्त रचना	६।६ ५।५	१०।७ ६।७ ४।२ अ०१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२ ज्ञा ८ द ४
पंचेंद्री पर्याप्त रचना	१४	२ संज्ञी असंज्ञी पर्याप्त	६।५	१०।९ सं०।४ अ०।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२ ज्ञा ८ द ४
पंचेंद्री अपर्याप्त रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ स १	२ संज्ञी असंज्ञी अपर्याप्त	६।५	७।७ सं०२	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
पंचेंद्री मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ सं० अ सं प० अ०	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्रीमिथ्या दृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ सं पर्याप्त	६।५	१०।९	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	२ कुज्ञान	१ असं	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
पंचेंद्रीमिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना.	१ मि	२ सं अ सं अपर्याप्त	६।५	७।७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

पंचेंद्री सासादनादिक रचना गुण स्थान वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
असंज्ञीपंचेंद्री रचना	१ मि	२ असंज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त	५।५	६।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	४ अनुवचन१ औ२ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ३ अशुभ ३पीत१	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री पर्याप्तरचना	१ मि	१ असंज्ञी पर्याप्त	५	६	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ अनुभयवचन १औदा १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ ३ पीत १	२	१ मि	१ असं	१ आहा	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपंचेंद्री अपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अपर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ क१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
पंचेंद्रीलब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं० असं० अ २	६।५	७।७	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ क१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द २
संज्ञीपंचेंद्रीलब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संज्ञी अपर्याप्त	६	७	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञीपचेंद्री लब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ असंज्ञी अपर्याप्त	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच १	द्र २ क१शु १ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २

अ ंद्रियरच न. सिद्धगति वत्	सिद्धगति वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्	सि० वत्
षट्कायमार्गणाविशेषसामान्यषट्काय रचना	१४	५७। ६८। ४०६।	६६ ५५ ४४	१०।७।६। ७।८।६। ७।५।६।४। ४।३।४। २।१।	४	४	५	६	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१
षट्कायपर्याप्तरचना	१४	१६। ३७। १८६।	६ ५ ४	१०।६।८। ७।६।४। ४।१	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	१२
षट्कायअपर्याप्तरचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ सं १	३८। ६१। २२०।	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।२	४	४	५	६	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	६ मनपर्यय विभंग विना	४ अ, सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ का १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा ६ द ४
षट्कायमिथ्यादृष्टिआदिरचना गुणस्थानवत्	गुण स्थान वत्	मिथ्यादृष्टि आदि मूलौघवत् तद्योग्य गुण स्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
पृथ्वीकायिक रचना	१ मि	४ बादर सूक्ष्म पर्याप्त अपर्याप्त	४।३	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औ २ का १	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अस	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अस	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा २ द १

पृथ्वीकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	२ वादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक वादर रचना	१ मि	२ वादर पर्याप्त अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औमि का१	१ नपुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक वादरपर्याप्त रचना	१ मि	१ वादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकायिक वादरअपर्याप्त वा लब्धि अपर्याप्तरचना	१ मि	१ वादर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ असं	१ अच	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा २ द १
पृथ्वीकायिक सूक्ष्मरचनासु ३ एकेंद्रीवत्	सूक्ष्मएकेंद्रीवत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू०ए० वत	सू० ए० वत	सू० ए० वत्	१ पृ	सू० ए० वत्	सू० ए वत्	सू०ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्	सू० ए० वत्
अप्कायिकतेजकायिकवायुकायिकरचना पृथ्वीवत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत	पृ. वत्	पृ. वत्	१ स्वकीय पृ० वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृथ्वीवत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत	स्वकीय संभवती	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्	पृ. वत्
वनस्पतीकायिक रचना	१ मि	१२ प्रतिष्ठितअप्रतिष्ठितप्रत्येक वादरसूक्ष्मनित्यइतरनिगोद पर्याप्त अप०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच१	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द२

वनस्पतिकायिक पर्याप्त रचना	१ मि	६ पर्याप्त	४।	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
वनस्पतिकायिक अपर्याप्त रचना	१ मि	४ अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिरचना	१ मि	४ प्र०अ० प०अ०	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रतिष्ठितअप्रतिष्ठित पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	४ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येकवनस्पतिअपर्याप्त वा लब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	२ प्रति अप्र. अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ का१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधारणवनस्पति रचना	१ मि	८ सू.बा. नि.इ. प.अ.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ२ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	५ ज्ञा२ द१
साधारणवनस्पतिपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू.बा. नि.इ. पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१

साधारण वनस्पती अपर्याप्त रचना	१ मि	४ सू वा नि. इ अपर्याप्त	४,	३,	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र २ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
साधारणवनस्पतीबादर रचना	१ मि	४ वानि इतरनि गोदपर्याप्तअपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ, का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द
साधारण वनस्पती बादरपर्याप्त रचना	१ मि	२ वा नि त्यइतर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
साधारणवनस्पतीबादर अपर्याप्त वालब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ वा नि त्यइतर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द १
साधारणअर सर्वसूक्ष्मनिकीरचनासूक्ष्मपृथ्वीकायवत्	सूक्ष्मपृथ्वीकाय वत्	४ सूनित्यइतरपर्याप्तअपर्याप्त	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	वनस्पति	सू० पृ० वत्	सू०पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू, पृ. वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्	सू० पृ० वत्
नित्यनिगोद चतुर्गतिनिगोदरचना साधारण वत्	साधारणवत्	स्वकीयवत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा० वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
त्रसकाय रचना	१४	१० वे२ ते२ चौ२ सं२ अ२	६।६ ५।५	१०।७।६। ७।८।६।७ ५।६।४ ४।२।१	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ पं१	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२

त्रसकाय पर्याप्त रचना	१४	५ वे१ ते१ चौ१ सं१ अ१	६।५	१०।९ ८।७ ६। ६।१	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ पं१	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
त्रसकाय अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ स१	५ वे१ ते१ च१ अ१ सं१	६।५	७।७ ६। ५। ४। २।	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ पं१	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	६ विभंग मनपर्यय विना	४ सा१ छे१ य१ अ१	४	द्र२ का१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द४
त्रसकाय मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१० वे२ ते२ चौ२ सं२ अ२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ पं१	१ त्र	१३ आहारद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
त्रसकायमिथ्यादृष्टि पर्याप्तरचना	१ मि	५ पर्याप्त वे१ ते१ चौ१ अ१ सं१	६।५	१०। ९। ८। ७। ६।	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ पं१	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
त्रसकायमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	५ अप. वे१ ते१ चौ१ अ१ सं१	६।५	७। ७। ६। ५। ४।	४	४	४ वे१ ते१ चौ१ प१	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
त्रसकाय [illegible] गुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अकाय रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अनाहार	२ ज्ञा१ द१

त्रसकायल ब्धिअपर्याप्त रचना	१ मि	५अ पर्याप्त बे१ते१ चौ१सं १अ१	६।५	७।७ ६।५। ४	४	२ ति१ म१	४ बे१ते१ चौ१ पं१	१ त्र	२ औमि १का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ का१शु १भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द २
योगमार्गणा रचना गुण स्थान वत् गुणस्थान तेरह	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० पन्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
मनोयोगी रचना	१३ आ.तृके	१ संप	६	१० ४	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
मनोयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
मनोयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
मनोयोगी मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	२ आहा	५ ज्ञा३ द २
मनोयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३

मनोयोगी देश संयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	३ मत्या दिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनो योगी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	४ मनका	३	४	४ मत्या दिक	३ सामा आदि	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
मनोयोगीअप्रमत्तादि सयोगी पर्यंत गुणस्थान वद्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	४।२ मनका	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सत्यमनोयोगी अनुभयमनोयोगीकी ना मनोयोग वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	सत्य वाअनुभय म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्	म० वद्
असत्यमनो योगी वा उभयमनो योगी रचना	१२ आदिके	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ असत्यमन वाउभयमन	३	४	७ केवल विना	७	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
असत्यउभय मनोयोगीरचना मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय पर्यंत सत्य मनोयोगी	सत्यम नो योगी वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	२ असत्यवा उभय	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्	स० वद्
वचन योगी रचना	१३ आदिके	५पर्या सवे ते १ औ१ सं१ अ१	६।६ ५ ५	१०।९।८ ७।६।४	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वचन का	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२

वचनयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिं	५पर्याप्त वे२ ते१चौ १अ१ सं१	६।५	१०।९। ८।७। ६।४	४	४	४ एकेंद्री विना	१ त्र	४ वच नका	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
वचनयोगी सासादनादि सयोगीपर्यंत मनोयोगीवत् वचनयोग मैं विशेष	मनोयोगी वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	वचन काय	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत
काययोगी रचना	१३ आदिके	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४।४। ३।४।२।	४	४	५	६	७ काय के	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	२	१२
काययोगी पर्याप्तरचना	१३ आदि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४।४	४	४	५	६	३ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
काययोगी अपर्याप्त रचना	५ मि१सा१ अवि१ प्र१स१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३ २	४	४	५	६	४ औ मि१वै मि१ आमि १का१	३	४	६ विभं गमनः पर्यय विना	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ क१ शु १ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द४
काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७।५। ६।४ ४।३	४	४	५	६	३ काय के आ हारक द्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
काययोगी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	२ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	१ आ ३ द २

काययोगी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
काययोगी सासादन रचना	१ सा	२ संप० संअ०	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै २ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
काययोगी सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
काययोगी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
काययोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
काययोगी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ२ वै२ क१	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ१ वै१	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

काययोगी असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअं	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	२ नपु१ पु१	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ का१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी देश संयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्या दिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ १ आ२	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
काययोगी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
काययोगीअपूर्वकरणादि क्षीणकषायपर्यंतरचनागुणस्थान वत् योगकाय	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	काय योग औ	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
काययोगी सयोगकेवल. रचना	१ सयो	२ प अ	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द२
औदारिककाययोगी रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९।८। ७।६।४।३	४	२ म१ ति१	५	६	१ औदा	३	४	८	७	४	द्र ५ भा६	२	६	२	१ आ	१२

औदारिककाययोगीमिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।९।८। ७।६।४।	४	२ म१ ति१	५	६	१ औ	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	३ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
औदारिक काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
औदारिक काययोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टिरचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
औदारिककाययोगीअसंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ औ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
औदारिक काययोगी देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मत्यादिक	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ औ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
औदारिककाययोगीप्रमत्तादिसयोगीपर्यंत रचनाकाययोगीवत्योग औदारिक	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	औदारिक	का० वत्	का० वद्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्	का० वत्
औदारिक मिश्र योगी रचना	४ मि१ सा१ अवि१ स१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६।५ ४।३।२	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	२ अ१ य१	४	द्र१ कपोत भा६	२	४ मि१ सा१ वे१ क्षा१	२	१ आहा	१० ज्ञा६ द४

औदारिक मिश्रयोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
औदारिक मिश्रयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअप	६ अ	७ प	४	२ ति१ मं१	१ पं	१ त्र	१ औमि	१ पुं	४	३ मत्या दिक	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
औदारिक मिश्रयोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ अ	६ अ	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ औमि	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ कपोत भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आ	२ ज्ञा१ द१
वैक्रियिक काययोगी रचना	४ मि१ सा१ मि१ अ१	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	९ ज्ञा६ द३
वैक्रियिककायोगी मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
वैक्रियिक योगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

२३८

वैक्रियिकयोगी सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
वैक्रियिक योगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
वैक्रियिक मिश्र योगी रचना	मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	१ आ	८ ज्ञा५ द३
वैक्रियिकमिश्रयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र १ कपोत भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ स्त्री १ पुं १	४	३ कुम कुश्रु	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
वैक्रियिकमिश्रयोगीअसंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ न १ दे १	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ नपुं पु १	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा४शुभ ३कपोत१	१ भ	३ औ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारककाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ पर्याप्त	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आ	१ पुं	४	३ मत्यादि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र १ शुक्ल भा ३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३

आहारकमिश्रकाययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ अपर्याप्त	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आमि	१ पु	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे १ सा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कार्म्माण काययोगी रचना	४ मि १ सा १ अवि १ स १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	१ का	३	४	६ विभंगमनःपर्यय विना	२ अ १ य १	४	द्र १ शुक्ल भा ६	२	५ मिश्र विना	२	१ अनाहारक	१० ज्ञा६ द ४
कार्म्माण काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१ का	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र १ शुक्ल भा ६	२	१ मि	२	१ अना	४ ज्ञा२ द २
कार्म्माण काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	१ का	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच१	द्र१ शुक्ल भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा २ द २
कार्म्माण काययोगी असंयत रचना	१ असं	१ सं अ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	१ का	२ नपुं १ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	२ चक्षु आदि	द्र१ शुक्ल भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द३
कार्म्माण काययोगी सयोगी रचना	१ सयो	१ अ	६	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ का	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ शुक्ल भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १
वेदमार्गणा मूलवत् तहां स्त्री वेद रचना	६ आदिके	४ संज्ञी असंज्ञी प० २ अ० २	६।६ ५।५	१०।७ ६।७	४	३ म१ ति१ दे१	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	१ स्त्री	४	६ मनःपर्यय केवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द ३

स्त्रीवेदीपर्याप्त रचना	९ आदिके	२ सं० अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	६ मनःपर्ययकेवल विना	४ अ१ दे१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
स्त्रीवेदी अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	२ सं० अ० अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा ३ अशुभ	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टि रचना	२ मि	४ सं० अ,प २अ२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं. अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदीमिथ्यादृष्टीअपर्याप्तरचना	१ मि	२ सं. अ अपर्याप्त	६ ६	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी सासादन पर्याप्त रचना	२ सा	१ संप१	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

स्त्रीवेदीसासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ का१ शु१ भा अशुभ३	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मतिआदि मनःपर्यय नाहीं	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	१ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदीअपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

स्त्रीवेदोअनिवृत्तिकरण रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा ३ द ३
पुरुषवेदी रचना	९ आदिके	४ सं अ. प० २ अ० २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	१ पुं	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	२ सं अ. पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म४ व ४औ१ वै१आ १	१ पुं	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१० ज्ञा ७ द ३
पुरुषवेदी अपर्याप्त रच-ा	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	२ सं अ अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	४ औ मि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ सं अ पर्याप्त अप	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं अ० पर्याप्त	६।५	१०।९	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ पुं	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा ३ द २
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्तरचना	१ मि	२ सं अ अपर्याप्त	६।५	७।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

नपुंवेदी सासादनादि अनिवृत्ति पर्यंतगुणस्थानवत् वे भिन्न देर	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	मिश्र असंयत मैं निर्वृत्ति शेष गुःवत्	गु० वत्	गु० वत्	१ पुं	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
नपुंसकवेदी रचना	९ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।७ ५६४ ४।३	४	३ देव विना	५	६	१३ आहारकद्विक विना	१ न	४	६ मनःपर्ययकेवल विना	४ अ १ दे १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
नपुंसकवेद पर्याप्त रचना	९ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६ ४	४	३ देव विना	५	६	१०म४ व४औ १ वै १	१ न	४	६ मनःपर्यय केवल विना	४ सा १ छे १ दे१अ१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा ६ द ३
नपुंसकवेदी अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा१ अवि १	७ अपर्याप्त	६। ५।४	७।७ ६।४ ४ ३	४	३ देव विना	५	६	३ औ मि १ वै १ का १	१ न	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा३ अशुभ	२	४ मि १ सा१ वे १ क्षा१	२	२	८ ज्ञा ५ द३
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।४ ४।३	४	३ देव विना	५	६	१३ आहारकद्विक विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
नपुंसकवेदी मिथ्या दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	३ देव विना	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	१ न	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच १	द्र २ का१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २

नपुंसकसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ आहारद्विक वै०मि विना	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदीसासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संज्ञी पर्याप्त	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	२ कुम कुश्रु	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१शु १भा३ अशु	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा३ द२
नपुंसकसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी असंयतपर्याप्त रचना	१ असं	२ संप१	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी असंयतअ पर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ०	६ अ	७ अ	४	१ नरक	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	३ मत्यादि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ का१शु १भा३ अशुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नपुंसकवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ न	४	३ मत्यादि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी प्रमत्तादिप्रथमभागअनिवृत्तिपर्यंत स्त्रीवेदिवत्वेद १ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	१ नपुंसक	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्	स्त्री० वत्
वेदरहित अपगतवेदी रचना	६ अनिवृत्ति आदिक	२ संप सं अ	६।६	१० ४।२।१	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	०	४।३ २।१।	५ मति आदि सुज्ञान	सा१ छे१ सू१ य१	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा५ द४
अपगतवेदीद्वितीयभागअनिवृत्तितैसिद्धपर्यंतमूलौघवत्	मूलौघ वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्	मू० वत्
कषायमार्गणागुणस्थानवत्तहांक्रोध रचना	९ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८ ९।७।५ ४।५ ४।३	४	४	५	६	१५	३	१ क्रो	७ केवल विना	५ अ१ सा१ छे१ प१ दे१	३ केवल विना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोधकषायी पर्याप्त रचना	९ आदिके	७ पर्याप्त	६। ५। ४।	१०।६ ८।७ ६ ४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ आ१	३	१ क्रो	७ केवल विना	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ केवल विना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोधकषायी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	१ क्रो	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	३ अ१ सा१ छे१	३ केवल विना	द्र ६ क१ शु१ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा५ द३

क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिश्र	२	२	५ ज्ञा३ द२
क्रोधकषायी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१० ९ ८ ७ ६ ४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
क्रोधीमिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७ ७ ६ ५ ४ ३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधीसासादनरचना	१ सा	१ सं प१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ आहारकद्विक विना	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
क्रोधीसासादनपर्याप्त रचना	१ सा	१ स प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
क्रोधीसासादनअपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नारक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	३ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ च१ अच१	द्र२ का१ शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	२	१ क्रो	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

कोधीअसंयत रचना	१ असं	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ क्षा ३ द ३
कोधीअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ क्षा ३ द ३
कोधीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ क्षा ३ द ३
कोधीदेशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ क्षा ३ द ३
कोधीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ क्षा ४ द ३
कोधीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ क्षा ४ द ३
कोधीअपूर्व्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ क्षा ४ द ३

कोधीअनिवृत्तिकरण प्रथमभाग रचना	१ अनि	२ सं प	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ प	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
कोधीअनिवृत्ति करण द्वितीयभाग रचना	१ अनि	२ सं प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	१ को	४ मति आदि	२ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
एवं ऐसेहीमनमायालोभरचनाअपनाअपनाव्युच्छित्तिपर्यंतरचना	एवमान गायाचिदिशलोभ१० गुणस्थानवत्	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ स्वकोय	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
अकषायी रचना	४ उपशांत कषायादि	२ प १ अ १	६।६	१०। ४।२।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११म४ व४औ २का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ औ १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा [illegible] द ४
अकषायी उपशांतकषायादिसिद्ध गुणस्थान वत् रचना	गुण स्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
ज्ञानमार्गणाविषै गुणस्थाननवम तहांकुमतिकुश्रुत रचना	२ मि १ सा १	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ५।६।७ ४।३	३	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा६	२	२ मि १ सा १	२	२	४ ज्ञा २ द २
कुमतिकुश्रुत पर्याप्त रचना	२ मि १ सा १	७ पर्याप्त	६ ५।४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २

कुमतिकुश्रुत अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३औ मि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु १भा६	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७।५ ६।४।४।३	४	४	५	६	१३आ हारक द्विक विना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३	४	४	५	६	३ औ मि १ वैमि १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क१शु १भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कुमतिकुश्रुत सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३आ हारक द्विक विना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
कुमतिकुश्रुत सासादनप र्याप्तरचना	१ सा	१ संप१	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
कुमतिकुश्रुत सासादनअ पर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औ मि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु १भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २

विभंग ज्ञानीरचना	२ मि १ सा १	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	२ मि १ सा १	१ सं	१ आ	३ ज्ञा१ द२
विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै १	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	३ ज्ञा१ द२
विभंगज्ञानी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै१	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच १	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	३ ज्ञा१ द२
मतिश्रुत ज्ञानी रचना	९ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	२ म१ श्रु १	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत पर्याप्त रचना	९ असंयतादि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१ वै १ आ १	३	४	२ म १ श्रु १	७	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द३
मतिश्रुत अपर्याप्त रचना	२ अस १ प्र १	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४औ मि १ वैमि ४ आमि १ का १	२ न १ पुं १	४	२ म १ श्रु १	३ अ १ सा १ छे १	३ च १ अच १ अव १	द्र२ क १ शु १ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी असंयत रचना	१ असं १	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३आहारक द्विकबिना	३	४	२ म १ श्रु १	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द ३

मतिश्रुतज्ञानी असंयतपर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे१ क्षा १	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी असंयत अपर्याप्तरचना	१ असं	४ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ न१ पुं१	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा २ द ३
मतिश्रुतज्ञानी देशसंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतगुणस्थानवत्ज्ञान २	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	२ म१ श्रु१	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	५ ज्ञा २ द ३
अवधिज्ञानरचना एवं मतिश्रुतवत्ज्ञान १ अवधि मतिश्रुतरूप्या थ काबाज्ञान३ मतिश्रुतअवधिवा मतिश्रुत मनःपर्ययज्ञान ४ मत्यादि	मतिश्रुत वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	१ अवधि ३ म १ श्रु १ अ १ वा मतिश्रुति मन वा ४ म १ श्रु १ अ १ म १	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्	म० वत्
मनःपर्यय ज्ञानी रचना	७ प्रमत्त आदि	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ पुं	४	१ मनःपर्यय	४ सा१ छे१ सू१ य१	३ च १ अच १ अव१	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३

मनःपर्ययज्ञानीप्रमत्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	१ पुं	४	१ मनःपर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्ययज्ञानीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पुं	४	१ मनःपर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	४ ज्ञा १ द ३
मनःपर्यय ज्ञानी अपूर्वकरणादि क्षीणकषायपर्यंत गुणस्थानवत् वेद १ ज्ञान १	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	पुंवा नास्ति	गु० वत्	१ मनःपर्यय	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	४ ज्ञा १ द ३
केवल ज्ञानी रचना	२ सयो१ अयो१	२ प१ अप१	६।६	४।२।१	०	१ म	६ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२ का१	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा १ द १
केवलज्ञानी सयोगीअयोगीसिद्ध रचना गुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामान्यसंयममार्गणा रचना	९ प्रमत्त आदि	२ प१ अ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैक्रियिक द्विक विना	३	४	५ मति ज्ञान आदि	५ सा१ छे१ प१ सू१ य१	४	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा ५ द ४

सामान्यसंयमीप्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	३ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामान्यसंयमीअपूर्वकरणादिअयोगीपर्यंतगुणस्थानवत्	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
सामायक संयमी रचना	४ प्रमत्तादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	१ सा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द३
सामायिकसंयमीप्रमत्तादिअनिवृत्तिपर्यंतगुणस्थानवत्	गुणस्थान	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
छेदोपस्थापनासंयमीरचनाएवंसामायिकवत्	सामायकवत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	छे	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्	सा० वत्
परिहारविशुद्धिसंयमी रचना	२ प्र१ अप्र१	१ प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	२ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

परिहारविशुद्धिप्रमत्तअप्रमत्तरचनामूलौघवत्	१ स्वकीय	प १	६	१०	४	१ म	१ प	१ त्र	६ म४ व४ औ१	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
सूक्ष्मसापरायसंयमीरचना सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवत्	१ सू	१ प	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	०	१ लो	४ मति आदि	१ सू	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
यथाख्यात संयमी रचना	४ उपशांतकषायादि	२ प१ अ१	६।६	१०।४ २।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२ का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा५ द ४
यथाख्यातसंयमीउपशातकषायादिअयोगीपर्यंत गु० वत्	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
देशसंयमीरचना देशसंयतगुणस्थानवत्	१ दे	१ प	६	१०	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
असंयमी रचना	४ मिथ्यादृष्टिआदि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७।८।६।७।५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
असंयमापर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८।७।६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि ३	३ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा६ द३

असयमी अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	८ ज्ञा५ द ३
असंयमी मिथ्यादृष्टि आदि असंयत पर्यंत गुणवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
दर्शनमार्गणाविषैगुणस्थानवत् तहाचक्षुदर्शनरचना	१२ अदिके	६ चौरअर स २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	१ चक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द१
चक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ ओदिके	३प च१ अ१ स१	६ ५	१० ९ ८	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	११म ४व४ औ १ वै १ आ१	३	४	७ केवल विना	७	१ चक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	८ ज्ञा७ द१
चक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि१ प्र१	३अ च१ अ१ सं१	६ ५	७ ७ ६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	१ च	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र	२	२	६ ज्ञा५ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	६ च२ अ २ सं२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६	४	४	२ चौ१ पं१	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ च	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा३ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	३ प च १ अ १ सं १	६।५	१०।९ ८	४	४	२ चौ १ पं १	१ त्र	१० म ४ व ४ कु १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ च	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा ३ द १

चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	३ अ च १ अ १ स १	६ ५	७ ७।६	४	४	२ चौ १ पं १	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ च	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा २ द १
चक्षुदर्शनी सासादना दिक्षीणकषायपर्यंत गुणवत् दर्शन १	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ चक्षु	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
अचक्षुदर्शनी रचना	१२ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६।७ ७।६।४ ४।३	४	४	५	६	१५	३	४	७ केवल विना	७	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	८ ज्ञा ७ द १
अचक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल विना	७	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	८ ज्ञा ७ द १
अचक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	१ अचक्षु	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	५ मिश्र विना	२	२	६ ज्ञा ५ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अचक्षु	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा ३ द १
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।६ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	१ अच	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा ३ द १

अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	१ अच	द्र२ का१शु १भा६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा२ द १
अचक्षुदर्शनी सासादनादि क्षीणकषाय पर्यंतयथासंभवगु०वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ अच	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	यथा संभव
अवधिदर्शनी रचना	६ असंयतादि	२ प अ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा४ द१
अवधिदर्शनी पर्याप्त रचना	६ असंयतादि	१ प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै १ आ १	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	५ ज्ञा४ द१
अवधिदर्शनी अपर्याप्त रचना	२ असं१ प्र१	१ अ	६	७	४	४	१ प	१ त्र	४औमि १वैमि १का१ आमि १	२ पुं१ न१	४	३ म१ श्रु१ अ१	३ अ१ सा१ छे१	१ अवधि	द्र २ क१शु १भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
अवधिदर्शनी असंयतादि क्षीणकषाय पर्यंतअवधिज्ञानवत्	अवधिज्ञानवत्	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	३वा४ मत्यादि	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	अ० ज्ञा०	यथासंभवअ ज्ञान वत्
केवलदर्शनी रचना केवल ज्ञानीवत्	केवल ज्ञानवत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्	के० ज्ञा० वत्

लेश्यामार्गणाविषैगुणस्थानवर्तन हांकृष्णलेश्या रचना	४ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८।६ ७।५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारद्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	२	६ ज्ञा६ द ३
कृष्णलेश्या पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा६ द ३
कृष्णलेश्या अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अ	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ कृष्ण	२	३ मि१ सा१ वे१	२	२	८ ज्ञा५ द३
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	३ देव विना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द २
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कृष्णलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ सं प१ स अ१	६।६	१०।७	४	४	१ प	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

कृष्णलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्य सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति १ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ का१ शु१ भा १ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कृष्णलेश्य सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कृष्णलेश्यअसंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१२म ४व४ औ२ वै१ का१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
कृष्णलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ मनुष्यपंच मादिपृथ्वी के आये	१ पं	१ त्र	२ औमि १का१	१ पुरुष	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु १ भा १ कृष्ण	१ भ	१ वेद कपंच मादि पृथ्वीके आये	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
नीललेश्य रचना कृष्ण लेश्यावत्	कृष्णलेश्यावत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	द्र १ कृ० वत् भा१ नील	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्	कृ० वत्

कपोतलेश्य रचना	४ आदिके	१४	६६ ५५ ४४	१०७ ८१७ ८८ ७५ ६४ ४१३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	२	६ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्य पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ प	६ ५ ४	१०१६ ८१७ ६१४	४	३ देवविना जाती मनुष्यतिर्यञ्च नरके भी घर्मे पीत	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	६ कुज्ञान ३ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	२	६	२	१ आ	६ ज्ञा ६ द ३
कपोतलेश्य अपर्याप्त रचना	३ मि १ सा १ अवि १	७ अ	६ ५ ४	७१७ ६१५ ४१३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा १ कपोत	२	४ मि १ सा १ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा ५ द ३
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६१६ ५५ ४१४	१०७१८१७ ८८ ७१५ ६१४ ४१३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ प	६ ५ ४	१०१६ ८१७ ६१४	४	३ देव विना	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अ	६ ५ ४	७१७ ६१५ ४१३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा १ कपोत	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्य सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६१६	१०१७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २

कपोतलेश्य सासादनपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कपात	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
कपोतलेश्य सासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
कपोतलेश्य सम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मिश्र	१ सं प	६	१०	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ कपात	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
कपोतलेश्य असंयत रचना	१ असं	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्धिकविना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
कपोतलेश्य असंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ कपोत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
कपोतलेश्य असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७	४	३ देव विना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ पु१ न १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा१ कपोत	१ भ	२ वे१ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
तेजोलेश्य रचना	७ आदिके	३ सं प१ संअ१ अप१	६।६ ५	१०।७ ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेजो१	२	६	२ सं १ अ १	२	१० ज्ञा७ द ३

तेजोलेश्या पर्याप्त रचना	७ आदिके	२ संप१ अप१	६ ५	१० ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ१ वै १ आ१	३	४	७ केवल विना	५ अ १ सा १ छे १ प १ सू १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	२	६	२ सं १ अ १	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
तेजोलेश्या अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	१ संअ	६ अ	७ अ	४	२ मनु १ देव १	१ पं	१ त्र	४औ मि १ वैमि १ आमि १ का १	२ स्त्री १ पुं १	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्या त्रि ३	२ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु १ भा १ तेज १	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	३ संप १ संअ १ अप १	६ ६ ५	१०।७ ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ१ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ तेज	२	१ मि	२ स १ अ १	२	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ सं प १ अप १	६ ५	१० ६	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	२	१ मि	२ सं१ अ१	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टिअ पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र २ का१ शु १ भा १ तेज	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
तेजोलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै २ का	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
तेजोले या सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ प	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

तेजोलेश्य सासादन अ पर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु १	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु १भा १ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
तेजोलेश्य सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
तेजोलेश्यअसंयतरचना	१ असं	२ सं प१ सं अ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प१	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१०म ४व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य असंयतअपर्याप्तरचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	२ म१ दे १	१ पं	१ त्र	३औ मि १ वैमि १का१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु १भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ सं प	६ प	१० प	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
तेजोलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३

तेजोलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६ प	१० प	३ आहारकविना	१ म	१ ० प	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ तेज	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
पद्मलेश्य रचना	७ आदि के	२ संप १ सअ १	६।६	१०।७	४	३ नारक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा ७ द ३
पद्मलेश्य पर्याप्त रचना	७ आदि के	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै १ आ १	३	४	७ केवल विना	५ अ १ दे १ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	२	६	१ सं	१ आ	१० ज्ञा ७ द ३
पद्मलेश्य अपर्याप्त रचना	४ मि १ सा १ अवि १ प्र १	१ सअ	६ अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	५ कुम १ कुश्रु १ मत्यादि ३	३ अ १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा १ पद्म	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ३
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप १ सअ १	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
पद्मलेश्य मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा १ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २

पद्मलेश्यसासादनरचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ का१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्यसासादनअपर्याप्तरचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का१	१ पुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र२ क१ शु १ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
पद्मलेश्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिरचना	१ मि	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
पद्मलेश्य असंयत रचना	१ असं	२ सं प १ सं अ१	६।६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
पद्मलेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मत्यादि	१ अ	३ च १ अच१ अव १	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
पद्मलेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ१	६। अ	७ अ	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र २ क १ शु १ भा१ पद्म	१ भ	३ औ १ वे १ सा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

पद्मलेश्य देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
पद्मलेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ आ २ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ स	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
पद्मलेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	६ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ पद्म	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्ललेश्य रचना	१३ आदिके	२ संप १ संअ१	६।६	१०।७ ४।२	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	२	१२
शुक्ललेश्य पर्याप्त रचना	१३ अदिके	१ संप	६	१०। ४।	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ१ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	६	१ सं	१ आ	१२
शुक्ललेश्य अपर्याप्त रचना	५ मि १ सा १ अवि १ प्र १ स१	१ संअ	६	७ २	४	२ म १ दे १	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि १ का १	१ पुं	४	६ विभंग मनःपर्यय विना	४ अ १ सा१ छे१ यथा१	४	द्र २ क१ शु१ भा १ शुक्ल	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	१० ज्ञा ६ द ४
शुक्ललेश्य मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ रुप १ संअ १	६।६	१०।७	४	३ न क विना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

शुक्लेश्य मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व४ औ१ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
शुक्लेश्य मिथ्यादृष्टिअ पर्याप्त रचना	१ मि	१ सं अ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पुं१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच १	द्र २ क१ शु १ भा १ शुक्ल १	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
शुक्लेश्य सासादन रचना	१ सा	२ संप १ संअ १	६ ६	१०।७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१२ म४व ४ औ१ वै २ का १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द २
शुक्लेश्य सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
शुक्लेश्या सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क १ शु १भा १ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा २ द २
शुक्लेश्य सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	अ १	२ च १ अच १	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा २ द २
शुक्लेश्य असंयत रचना	१ असं	२ सप१ सं अ१	६ ६	१० ७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

शुक्लेश्य असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप १	६	१०	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
शुक्लेश्य असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	१ पुं	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का१ शु१ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
शुक्लेश्य देश संयतरचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
शुक्लेश्य प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ व१ क्षा१	१ स	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्लेश्य अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
शुक्लेश्यअपूर्वकरणतैस गोपर्यंतवो अलेश्यअयो गोसिद्ध२०गु	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
भव्यमार्गणा विषै भव्य रचना गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

अभव्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४४	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द २
अभव्य पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ अभव्य	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
अभव्य अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु १भा६	१ अभव्य	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द २
भव्याभव्य रहितसिद्ध रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द १
सम्यक्त्व मार्गणाविषै सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ संप १ संअ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४
सामान्य सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ संप	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा५ द ४
सामान्य सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं१ प्र१ सयोग१	१ संअ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	२ न१ पु१	४	४ म १ श्रु १ अ१ के१	४ अ१ सा१ छे१ य १	४	द्र २ क१ शु १ भा४ क१शु३	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा ४ द ४

सामान्यसम्यग्दृष्टिअसंयतादिअयोगीपर्यंतगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थानवत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
क्षायिक सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयतादि	२ प १ अ १	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयतादि	१ प	६ प	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ वै १ औ १ आ १	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं १ प्रम १ सयोग १	१ अ	६ अ	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वै १ आमि १ का १	२ न १ पुं	४	४ म १ श्रु १ अ १ के १	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ का १ शु १ भा ४ का १ शु १ भ ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	८ ज्ञा ५ द ४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ म १ श्रु १ अव १	१ अ	३ च १ अच १ अव १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
क्षायिकसम्यग्दृष्टिअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ४ का १ शु १ भ ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३

क्षायिकसम्यग्दृष्टिदेशसंयतरचना	१ देश	१ सं प	६ प	१० प	४	१ मनुष्य	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
क्षायिक सम्यग्दृष्टिप्रमत्तादिसिद्धपर्यंत गुणस्थानवत् रचना	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ क्षायिक	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
वेदक सम्यग्दृष्टि रचना	४ असंयतादि	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	७ ज्ञा४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टिपर्याप्त रचना	४ असंयतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ वै१ आ१	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टि अपर्याप्तरचना	२ असं १ प्रम१	१ स अ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि १ आमि१ का १	२ न १ पुं१	४	३ मति आदि	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क१ शु१ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टिअसंयत रचना	१ असं	२ सं अ१ संप१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विकविना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
वेदकसम्यग्दृष्टिअसंयतपर्याप्तरचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20
वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सअ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ न १ पुं १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ आ ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६ प	१० प	४	२ म १ ति १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	६ आ ३ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	२ प १ अ १	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म ४ व ४ औ १ आ २	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सप	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि रचना	८ असंयतादि	२ संप १ संअ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ १ वै २ का १	३	४	४ मति आदि	६ परिहार विशुद्धि विना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उपशम	१ सं	२	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	८ असंयतादि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	४ मति आदि	६ परिहार विशुद्धि विना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ आ ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सअ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ असंयम	३ चक्षु आदि	द्र २ का १ शु १ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ आ ३ द ३

उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असं	२ सं प १ सं अ १	६।६ स	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ १ वै २ का १	३	४	३ मत्यादि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
उपशमसम्यग्दृष्टिअसंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ सं अ	६ अ	७ अ	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पुं	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ सं प	६	१०	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	९ म ४ व ४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	६ ज्ञा ३ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	१ सं प	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशम सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ सं प	६	१०	३ आहार विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आ	७ ज्ञा ४ द ३
उपशमसम्यग्दृष्टिअपूर्वकरणतैं उपशांतकषाय पर्यंतगु०वत, मि॰ [illegible] नमिश्रसम्यग्दृ [illegible]	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	१ सं भ वती	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

संज्ञीमार्गणा विषैसंज्ञी रचना	१२ आदिके	२ प१ अ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा ७ द ३
संज्ञी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४व४ औ१वै१ आ१	३	४	७ केवल विना	७	३ केवल विना	द्र६ भा६	२	६	१ सं	१ आ	१० ज्ञा७ द ३
संज्ञी अपर्याप्त रचना	४ मि१सा१ अवि१प्र१	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औमि१ वैमि१ आमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ का१शु १भा६	२	५ मिश्र विना	१ सं	२	८ ज्ञा• द ३
संज्ञी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी मिश्रदृष्टिपर्याप्त रचना	१ मि	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
संज्ञीमिथ्यादृष्टिअपर्याप्त रचना	१ मि	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र२ का१शु १भा६	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द २
संज्ञी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६ ६	१० ७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहार कद्विक विना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ चक्षु१ अच१	द्र६ भा६	२ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

संज्ञीसासादनपर्याप्त रचना	१ सा	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१०म४ व४औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६ अ	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	[illegible]	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच १	द्र २ क १ शु १ भा	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञीसम्यग्मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी असंयत रचना	१ असं	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारकद्विक विना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
संज्ञीअसंयतपर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१०म४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
संज्ञीअसंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का१	२ पुं १ न १	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा६	१ भ	३ औ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
शेष औदृशसंयतत्क्षीणकषायपर्यंतगुणस्थानवत् रचना	गुणस्थान वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्

असंज्ञी रचना	१ मिथ्या	१२ संज्ञीपर्याप्तअपर्याप्त विना	५।५ ४।४	६।७।८ ६।७ ५ ६।४ ४ ३	४	१ ति	५	६	४अनु भयव चन१ औ२ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असं ज्ञी	२	४ ज्ञा २ द २
असंज्ञी पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ पर्याप्तसंज्ञीविना पर्याप्त	५ ४	६।८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	२अनु भयव चन१ औ१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ असं ज्ञी	१ आ	४ ज्ञा२ द २
असंज्ञी अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ संज्ञीअपर्याप्तविना अपर्याप्त	५।४	७।६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र२क१ शु१भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द २
संज्ञाअसंज्ञाव्यपदेशरहितसयोगीअयोगीसिद्धरचना गु०वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्	गु० वत्
आहारमार्गणाविषैआहारकरचना	१३ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७।८। ६।७।५ ६।४।४ ३।४।२	४	४	५	६	१४ कार्माण विना	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक पर्याप्त रचना	१३ आदिके	७ पर्याप्त	६ ५ ४	१०।९ ८।७।६ ४।४	४	४	५	६	११ म ४ व ४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक अपर्याप्त रचना	५ मि१ स१ अवि१ प्र१ सयो१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ आमि१	३	४	६ विभंग मनःपर्ययविना	४ अ१ सा१ छे१ प१	४	द्र २ कपोत भा ६	२	५ मिश्र विना	२	१ आहा र	१० ज्ञा ६ द ४

अनाहारकमि थ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	७ अप र्याप्त	६ ५ ४	७'७ ६।'१ ४।२	४	४	५	६	१ कार्मा ण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	२	१ मि	२	२ अना हारक	४ ज्ञा २ द २
अनाहारक सासादन रचना	१ सा	१ संज्ञ	६ अ	७ अ	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	१ कार्मा ण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा२ द २
अनाहार असंयत रचना	१ असं	१ संज्ञ	६ अ	७ अ	४	४	१ पं	१ त्र	१ कार्मा ण	२ न१ पुं१	४	३ मति१ श्रुति१ अवधि१	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द ३
आहारकमि श्रकप्रमत्त औदारिकअ पेक्षाअनाहार है ताकीरच.	१ प्र	१ अ	६ अ	७ अ	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहा रक मिश्र	१ पुं	४	३ म१ श्रु१ अ१	२ सा१ छे१	३ च१ अच१ अव१	द्र१ कपात भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
अनाहारक सयोगकेवली रचना	१ सयोगी	१ अ	६ अ	२ काय १ आयु १	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ कार्मा ण	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ शुक्ल भा १ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अना हार	२ ज्ञा १ द१
अनाहारकअ योगकेवली रचना	१ अयोगी	१ पर्याप्त	६ य	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र६ भा० नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अना हार	२ ज्ञा१ द १
अनाहारक कसिद्धपरमे ष्ठीरचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना हार	२ ज्ञा १ द १

आहारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७ ८।६ ७।५ ६।४ ४।३	४	४	५	६	१२ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	७ पर्याप्त	६।५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	२ औमि १ वैमि १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र १ क भा ६	२	१ मि	२	१ आ	४ ज्ञा २ द २
आहारक सासादन रचना	१ सा	२ सं प १ सं अ १	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म ४ व ४ औ २ वै २	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन पर्याप्त रचना	१ सा	१ सं प	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २
आहारक सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ सं अ	६ अ	७	४	३ नरक विना	१ पं	१ त्र	२ औमि १ वैमि १	३	४	२ कुम १ कुश्रु १	१ अ	२ च १ अच १	द्र १ कपोत भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा २ द २
आहारक सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ सं प	६ प	१० प	४	४	१ पं	१ त्र	१० म ४ व ४ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच १	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा ३ द २

२६३

मणपज्जयपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारो ।
एदेसु एक्कपगदे णत्थित्ति असेसयं जाणे ॥ ७३० ॥

मनःपर्ययपरिहारौ प्रथमोपसम्यक्त्वं द्वावाहारौ ।
एतेषु एकप्रकृते नास्तीति अशेषकं जानीहि ॥ ७३० ॥

जी० प्र०—मनःपर्ययज्ञानं परिहारविशुद्धिसयमः प्रथमोपशमसम्यक्त्व आहारकद्विकं च इत्येतेषु मध्ये एकस्मिन् प्रकृते प्रस्तुते अधिकृते सति अवशेषं उद्धरितं नास्ति-न संभवतीति जानीहि, तेषु मध्ये एकस्मिन्नुदिते तस्मिन् पुंसि तदा अन्यस्योत्पत्तिविरोधात् ॥ ७२० ॥

स०चं०—मनःपर्यय ज्ञान अर परिहारविशुद्धि संयम अर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर आहारकद्विक योग इनि च्यारों विषैं एक कोई होत संतैं अवशेष तीन न होंइ ऐसा नियम है ॥ ७३० ॥

विदियुवसमसम्मत्तं सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु ।
सगसगलेस्सामरिदे देवअपज्जत्तगेव हवे ॥ ७३१ ॥

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं श्रेणितोऽवतीर्णेऽविरतादिषु ।
स्वकस्वकलेश्यामृते देवापर्याप्तक एव भवेत् ॥ ७३१ ॥

जी० प्र०—द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं संभवति । केषु ? उपशमश्रेणितः संक्लेशवशादधः असंयतादिषु अवतीर्णेषु । ते च असंयतादयः स्वस्वले-श्यया म्रियंते तदा देवापर्याप्तासंयता एव नियमेन भवंति । कुतः ? बद्धदेवायुष्कादन्यस्य उपशमश्रेण्यां मरणाभावात् । शेषत्रिबद्धायुष्काणां च देश-सकलसंयमयोरेवासंभवात् ॥ ७३१ ॥

सं० च०—उपशम श्रेणीतैं संक्लेश परिणामनिके वशतैं नीचैं असंयतादि गुणस्थाननिविषैं उतरते असंयतादिक अपनी अपनी लेश्याकरि जो मरैं तो अपर्याप्त असंयत देव होंइ नियमकरि, जातैं देवायुका जाकैं बंध भया होइ

१ ख पुस्तके कुतः ? बद्धदेवायुष्कादन्यस्य उपशमश्रेणित । इति पाठः ।

तींहि विना अन्य जीवका उपशम श्रेणीविषैं मरण नाहीं, अन्य आयु जाकैं बंध्या होइ ताकैं देशसंयम सकल संयम भी न होइ तातैं सो जीव अपर्याप्त असंयत देव हो है । तिनिविषैं द्वितीयोपशम सम्यक्त्व संभवै है तातैं वैमानिक अपर्याप्त देवविषैं उपशम सम्यक्त्व कह्या है ॥ ७३१ ॥

सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती ॥ ७३२ ॥

सिद्धानां सिद्धगतिः केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारमुपयोगानामक्रमप्रवृत्तिः ॥ ७३२ ॥

जी० प्र०—सिद्धपरमेष्ठिनां सिद्धगतिः केवलज्ञान केवलदर्शनं क्षायिकसम्यक्त्वं अनाहारः ज्ञानदर्शनोपयोगयोरक्रमप्रवृत्तिश्च भवति ॥७३२॥

सं० च०—सिद्ध परमेष्ठी तिनके सिद्धगति केवलज्ञान केवल दर्शन क्षायिक सम्यक्त्व अनाहार अर ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोगकी अनुक्रमताकरि रहित प्रवृत्ति ए प्ररूपणा पाइए है ॥ ७३२ ॥

गुणजीवठाणरहिया सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ॥ ७३३ ॥

गुणजीवस्थानरहिताः संज्ञापर्याप्तिप्राणपरिहीनाः ।
शेषनवमार्गणोनाः सिद्धाः शुद्धाः सदा भवंति ॥ ७३३ ॥

जी० प्र०—चतुर्दशगुणस्थानचतुर्दशजीवसमासरहिताः चतुःसंज्ञाषट्पर्याप्तिदशप्राणरहिताः सिद्धगतिज्ञानदर्शनसम्यक्त्वानाहारेभ्यः शेषनवमार्गणारहिताः सिद्धपरमेष्ठिनो द्रव्यभावकर्माभावात् सदा शुद्धा भवंति ॥ ७३३ ॥

सं० च०—चौदह गुणस्थान वा चौदह जीवसमासनिकरि रहित हैं बहुरि च्यारि संज्ञा छह पर्याप्ति दश प्राण-

निकरि रहित हैं, बहुरि सिद्ध गति ज्ञान दर्शन सम्यक्त्व अनाहार इनि विना अवशेष नव मार्गणानिकरि रहित हैं अैसें सिद्धपरमेष्ठी द्रव्यकर्म भावकर्मके अभावतें सदा काल शुद्ध हैं ॥ ७३३ ॥

णिक्खेवे एयत्थे णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइ वीसं भेयं सो जाणइ अप्पसब्भावं ॥ ७३४ ॥

निक्षेपे एकार्थे नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगयोः ।
मार्गयति विंशं भेदं स जानाति आत्मसद्भावं ॥ ७३४ ॥

जी०प्र०—नामादिनिक्षेपे प्राणिभूतजीवसत्त्वलक्षणैकार्थे द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनये मतिज्ञानादिप्रमाणे जीवति जीविष्यति जीवितपूर्वो वा जीव इति निरुक्तौ किं कस्स केण कत्थवि केव चिरं कतिविहा य भावा इति च निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः साध्या इति च नियोगिप्रश्ने यो भव्यः गुणस्थानादिविंशतिभेदान् जानाति स जीवसद्भावं जानाति ॥ ७३४ ॥

सं० च०—नाम स्थापना द्रव्य भावरूप च्यारि निक्षेप बहुरि प्राणी भूत जीव सत्व इनि च्यारयोनिका एक अर्थ है सो एकार्थ, बहुरि द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय, बहुरि मतिज्ञानादिरूप प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाण, बहुरि जीवै है जीवैगा जीया अैसा जीव शब्दका निरुक्ति बहुरि—

"किं कस्स केण कत्थवि केवचिरं कतिविहा य भावा"

कहा ? किसकैं ? किसकरि ? कहां ? किस काल ? कै प्रकार भाव है । अैसें छह प्रश्न होतैं निर्देश स्वामित्व साधन अधिकरण स्थिति विधान इन छहोंतें साधना सो यह नियोग अैसें निक्षेप एकार्थ नय प्रमाण निरुक्ति नियोगनिविषैं जो भव्य जीव गुणस्थानादिक वीस प्ररूपणा रूप भेदनिकौं जानै है सो भव्य जीव आत्माके सतसमीचीन भावकौं जानै है ॥ ७३४ ॥

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारिअजियसेणगुरू ।

भुवणगुरू जस्सगुरू सो रायो गोम्मटो जयदु ॥ ७३५ ॥

आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः ।
भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ॥ ७३५ ॥

जी० प्र०—आर्यार्यसेनगुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः भुवनगुरुर्यस्यगुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ॥ ७३५ ॥

इत्याचार्यश्रीनेमिचंद्रविरचितायां गोम्मटसारापरनामपंचसंग्रहवृत्तौ जीवतत्त्वप्रदीपिकाख्यायां जीवकाडे विंशतिप्ररूपणासु ओघादेशयार्विंशतिप्ररूणालापनाम द्वाविंशतितमोऽधिकारः समाप्तः ॥ २२ ॥

सं० च०—आर्य जो आर्यसेन नामा आचार्य तिनके गुण अर तिनका गण जो संघ ताका धरनहारा ऐसा जगतका गुरु जो अजितसेन नामा गुरु सो जिसका गुरु है ऐसा गोम्मट राजा जो चामुंडराय राजा सो जयवंत प्रवर्तौ। ऐसा शब्द तौ जिनदेवादिक पूज्यकौं कहना संभवै इहां अपने सेवककौं आचार्यने ऐसा कैसें कह्या? ताका समाधान-जैसें इहां प्रवृत्तिविषैं याचक आदि हीन पुरुषकौं सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै सो इच्छापूर्वक नम्रता लीएं वचन है तैसें जिनदेवादिकका सेवक जयवंत प्रवर्तौ ऐसा शब्द कहना जानना। बहुरि जैसें पिता आदि पूज्य पुरुष पुत्रादिककौं सुखी होहु इत्यादिक वचन कहै सो आशीर्वाद रूप वचन है तैसें इहां राजाकौं जयवंत प्रवर्तौ ऐसा कहना युक्त जानना ॥ ७३५ ॥

इति आचार्य श्रीनेमिचंद्रसिद्धांतचक्रिवर्ति विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नाम संस्कृत टीका अनुसारि सम्यग्ज्ञानचंद्रिका नामा भाषाटीकाविषैं जीवकांडविषैं प्ररूपित जे बीस प्ररूपणा तिनिविषैं आलापप्ररूपणा नामा बावीसवां अधिकार संपूर्ण भया ॥ २२ ॥

श्रित्वा कार्णाटिकीं वृत्तिं वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः ।
कृतेयमन्यथा किंचिद् विशोध्यं तद्बहुश्रुतैः ॥ १ ॥

अथ संस्कृत टीककारके वचन—

दोहा— अभयचंद्र श्रीमानके हेतु करी जो टीक ।
सोधो बहु श्रुतधर सुधी सो रचना करि ठीक ॥ १ ॥

चौपाई—केशव वर्णी भव्य विचार । कर्णाटक टीका अनुसार ॥
संस्कृत टीका कीनी एहु । जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ॥ १ ॥

अथ भाषा टीकाकारके वचन—

जीवकांडकौं जानिकैं ज्ञानकांडमय होइ ।
निज स्वरूपमें रमि रहै शिवपद पावै सोइ ॥

सोरठा— मंगल श्री अरहंत सिद्ध साधु जिन धर्म फुनि ।
मंगल च्यारि महंत एई हैं उत्तम शरण ॥

सवैया ।

अरथके लोभी ह्वै कै करिकै सहास अति, अगम अपार ग्रंथ पारावारमें परे ।
थाह तौ न आओ तहां फेरि कौन पाओ पार तातैं सूधे मारग ह्वै आधे पार उतरे ॥
इहां परजंत जीव कांडकी है मरजाद याके अर्थ जानैं निज काज सब सुधरे ।
निजमति अनुसारि अर्थ गहि टोडर हू भाषा बनवाई यातैं अर्थ गहो सगरे ॥

इति जीवकांड संपूर्ण ॥

इति जीवकांड संपूर्ण।

जीवकांड

समाप्त।